हिंदी विश्वकोश

रंगीन चित्रों का वर्ण विश्लेषण

१. पीले रंग से छापने का ब्लॉक (ङ) बनाने के लिये नील-बैंगनी फिल्टर (क) लगाया जाता है; २. लाल रंग से छापने का ब्लॉक (च) बनानेके लिये हरा फिल्टर (ख) लगाया जाता है, ३. नीले रंग से छापने का ब्लॉक (ज) बनाने के लिये सुर्ख-नारंगी फिल्टर (ग) लगाया जाता है तथा ४. काले रग से छापने का ब्लॉक बनाने के लिये हल्का पीला फिल्टर (छ) लगाया जाता है।

छापते समय पहले पीले रंग के ब्लॉक (ङ) से, फिर उसी के ऊपर लाल रग की छपाई (च) ब्लाक से करने पर दोनो रंगों की आभाएं (tones) मिश्रित होकर (छ) जैसी दिखाई पड़ने लगती हैं। इसी मिश्रित रग के ऊपर नीले ब्लॉक (ज) से छपाई करने पर, तीनों रंगो की आभाएं मिश्रित होकर (झ) के समान बहुरंगी दिखाई देने लगती हैं। इनको अधिक चटक बनाने के लिये काले रंग के चौथे ब्लॉक से भी छपाई की जाती है, जिससे रंग (टोन) स्पष्ट हो जाते हैं।

हिंदी विश्वकोश

खंड ८

'प्राच्य चर्च' से 'भारतीय जनसंघ' तक

नागरीप्रचारिणी सभा,
वाराणसी।

निर्देशक

संपूर्णानंद

प्रधान संपादक

रामप्रसाद त्रिपाठी

संपादक

फूलदेवसहाय वर्मा

मुकुंदीलाल श्रीवास्तव

संपादन सहायक तथा सहकारी

भगवान दास वर्मा	(विज्ञान)	चंद्रचूड़ मणि	(मानवतादि)
अजित नारायण मेहरोत्रा	(विज्ञान)	डा० श्याम तिवारी	(मानवतादि)
माधवाचार्य	(विज्ञान)	चारुचंद्र त्रिपाठी	(मानवतादि)
रमेशचंद्र दुबे	(विज्ञान)	जंगीर सिंह	(मानवतादि)

बैजनाथ वर्मा (चित्रकार)

हिंदी विश्वकोश के संपादन एवं प्रकाशन का संपूर्ण व्यय भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया तथा इसकी बिक्री की समस्त आय भारत सरकार को 'सभा' प्रदान कर देती है।

प्रथम संस्करण

शकाब्द १८८८ सं० २०२३ वि० १९६७ ई०

नागरी मुद्रण, वाराणसी में मुद्रित

परामर्शमंडल के सदस्य

संपादक समिति

प्राक्कथन

हिंदी विश्वकोश का यह आठवाँ खंड, निर्धारित योजना के अनुसार, लगभग छह महीने की अवधि में प्रकाशित हो रहा है। इसी क्रम से विश्वकोश के शेष दो खंड भी १९६७ के अंत तक प्रकाशित कर देने का लक्ष्य हमारे सामने है। इस खंड में ५०४ पृष्ठ हैं, जिनमें ६५७ लेखों के अंतर्गत विशिष्ट विद्वानों की रचनाओं का समावेश किया गया है। पाँच रंगीन तथा कितने ही सादे चित्रफलक, रेखाचित्र और एक रंगीन तथा अनेक सादे मानचित्र भी इस खंड में दिए गए हैं।

हमें अपने संपादन और प्रकाशन कार्य में जिन लेखकों, संस्थाओं, कलाकारों तथा दूतावासों, आदि का सहयोग मिला है उनके प्रति तथा विश्वकोश कार्यालय के अपने सहयोगियों के प्रति हम आभारी हैं। नागरीप्रचारिणी सभा और केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय के अधिकारीगण विशेष रूप से हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं, जिन्होंने पहले की भाँति इस खंड के भी प्रणयन और प्रकाशन मे पूर्ण उत्साह एवं सहयोग प्रदान किया है।

रामप्रसाद त्रिपाठी
प्रधान संपादक

अष्टम खंड के लेखक

अं० प्र० स० तथा अं० प्र० — अंबिका प्रसाद सक्सेना, एम० एस-सी०, पी० एच-डी०, प्राचार्य एवं अध्यक्ष भौतिकी विभाग, गवर्नमेंट साइंस कालेज, ग्वालियर।

अं० प्र० सु० — अंबा प्रसाद 'सुमन', एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट०, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

अ० अ० — अमजद अली, एम० ए०, डी० फिल० डी० लिट० रीडर, इंस्टिटयूट ऑव इस्लामिक स्टडीज, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

अ० अ० या न० अ० अ० — नजीरुद्दीन अकमल अय्यूबी, एम० ए०, डी० लिट०, इंस्टिटयूट ऑव इस्लामिक स्टडीज, मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ।

अ० उ० — अनिरुद्ध उपाध्याय, प्रधानाध्यापक, राजकीय केंद्रीय काष्ठ शिल्प विद्यालय, बरेली।

अ० कु० वि० — अवनींद्र कुमार विद्यालंकार, पत्रकार, इतिहास सदन, ११८ एम०, कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

अ० ति० — अवेश तिवारी, बी० एस-सी०, ए० बी० एम० एस०, डेमान्स्ट्रेटर, चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

अ० ना० मे० — अजित नारायण मेहरोत्रा, एम० ए०, बी० एस-सी०, बी० एड०, साहित्यरत्न, विज्ञान सहायक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

अ० प्र० स० — दे० अं० प्र० स०।

अ० सि० — अभय सिन्हा, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, ए० आर० आइ० सी० (लंदन), टेक्नालोजिस्ट प्लानिंग ऐंड डैवलपमेंट डिविजन, फर्टिलाइजर कारपोरेशन ऑव इंडिया, सिंदरी, धनबाद।

अ० सि० — अवतार सिंह, प्राध्यापक, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

आ० वे० — फादर आस्कर वेरेकुइसे, प्रोफेसर ऑव होली स्क्रिप्चर्स, सेंट अल्बर्टस सेमिनरी, रांची।

आ० स्व० जौ० — आनंद स्वरूप जौहरी, एम० ए०, पी-एच० डी० रीडर, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

इ० हु० सि० — इक्तिदार हुसेन सिद्दीकी, द्वारा–डा० खलीक अहमद निजामी, ३, इंग्लिश हाउस, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ।

उ० कु० सिं० — उमेश कुमार सिंह, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

उ० ना० पं० — उदय नारायण पांडे, एम० ए०, रजिस्ट्रार, लद्दाखी बौद्ध विहार, बेला रोड, दिल्ली।

उ० शं० प्र० — उमाशंकर प्रसाद मेजर, एम० ए० सी० (आर०), एम० बी० बी० एस०, डी० एम० आर० डी० (इंग्लैंड), डी० एम० आर० टी० (इंग्लैंड), रीडर, मेडिकल कालेज, जबलपुर।

उ० सिं० — उजागर सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन), रीडर, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ए० गौ० — (श्रीमती) ए० गौड़, डिपार्टमेंट ऑव ओरिएंटल प्रिंटेड बुक्स ऐंड मैनूस्क्रिप्ट्स, ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन, डब्ल्यू टी–१।

ए० च० — ए० चटर्जी, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

एच० के० शे० — एच० के० शेरवानी, राहत फिज़ा, हिमायतनगर, हैदराबाद २६।

ए० पी० ओ० — ए० पी० ओझायन, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ओं० ना० श० — ओंकारनाथ शर्मा, भूतपूर्व वरिष्ठ लोकोफोरमैन, बी० बी० ऐंड सी० आइ० रेलवे, निवृत्त प्रधानाध्यापक, यंत्रशास्त्र, प्राविधिक प्रशिक्षण केंद्र, पूर्वोत्तर रेलवे, लक्ष्मी निवास, गुलाबबाडी, अजमेर।

ओ० प्र० — ओमप्रकाश, एम० एस-सी०, एफ० आइ० ए०, असिस्टेंट डिविजनल मैनेजर, जीवन बीमा निगम, विभागीय कार्यालय, वाराणसी।

ओं० सिं० — ओंकार सिंह, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

क० प० त्रि० — करुणापति त्रिपाठी, एम० ए०, साहित्याचार्य, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्रशिक्षण विभाग, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

का० कि० द० — कालीकिंकर दत्त, एम० ए०, पी-एच० डी०, पी० आर० एस०, वाइस चांसलर, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

का० चं० बो० — कार्तिक चंद्र बोस, एम० एस-सी०, डी० फिल०, एम० जेड० एस० एफ० ए० जेड०, एफ० आइ० ए० जेड०, एफ० एन० ए० एस०-सी०, प्राध्यापक तथा अध्यक्ष, जंतु विज्ञान विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची।

का० ना० सिं० — काशीनाथ सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०,

प्राध्यापक, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

का० प्र० कार्तिक प्रसाद, बी० एस-सी०, सी० ई०, सुपरिटेंडिंग इंजीनियर, पी० डब्ल्यू० डी०, उत्तर प्रदेश, मेरठ।

का० बु० रेवरेंड कामिल बुल्के, एस० जे०, एम० ए०, डी० फिल्०, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सेंट जेवियर्स कालेज, राँची।

कृ० म० दु० कृष्णानंद दुबे, एम० एस-सी०, प्राध्यापक, दिल्ली कालेज, दिल्ली।

कृ० प्र० गौ० कृष्णदेव प्रसाद गौड, 'बेढब बनारसी', एम० ए०, भू० पू० प्रिंसिपल डी० ए० वी० इंटर कालेज, वाराणसी।

कै० च० मि० कैलाशचंद्र मिश्र, एम० एस-सी०, बी० टी०, पी-एच० डी०, सहायक प्राध्यापक, वनस्पति विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

गं० सिं० गंडा सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्, लोअर माल, पटियाला-३।

गि० च० त्रि० गिरीश चंद्र त्रिपाठी, एम० ए०, पी-एच० डी०, जानकी निकुंज, पुराना किला, लखनऊ।

गि० ना० श० गिरींद्र नाथ शर्मा, एम० ए०, प्राध्यापक, अंग्रेजी विभाग, हरिश्चंद्र डिग्री कालेज, वाराणसी।

गि० प्र० गु० गिरिजा प्रसाद गुप्त, एम० काम०, पी-एच० डी०, एफ० आर० ई० एस० (लंदन), अध्यक्ष वाणिज्य विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन।

गु० त्रि० गुरुदेव त्रिपाठी, एम० ए०, लेक्चरर, हिंदी विभाग, बिड़ला इंस्टिट्यूट ऑव आर्ट्‌स एंड सायंसेज, पिलानी (राजस्थान)।

गु० ना० दु० गुरुनारायण दुबे, एम० एस-सी०, सर्वेक्षण अधीक्षक, भारत सर्वेक्षण विभाग, हैदराबाद (आ० प्र०)।

गो० कृ० अ० गोपी कृष्ण अरोड़ा, प्राध्यापक विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

गो० च० पा० गोविंद चंद्र पांडेय, एम० ए०, डी० फिल०, अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

गो० दा० अ० गोकुलदास अग्रवाल, एम० बी० बी० एस०, विशारद के० ३७।३०, बुलानाला, वाराणसी।

गो० दे०, गा
भी० गो० दे० भीमराव गोपाल देशपांडे, प्रवक्ता, मराठी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

च० त्रि० चंद्रबली त्रिपाठी, एम० ए०, एल-एल० बी०, वकील एवं ग्रंथकार, भूतपूर्व वैयक्तिक सचिव महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, मदनमोहन मालवीय मार्ग, बस्ती उ० प्र०।

चं० भा० पां० चंद्रभान पांडेय, एम० ए०, पी-एच० डी०, भू० पू० लेक्चरर, कालेज ऑव इंडोलाजी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

चं० भू० मि० चंद्रभूषणमिश्र, प्रोफेसर बिड़ला इंस्टिट्यूट ऑव टेकनॉलोजी, मेसरा, राँची।

चं० मो० चंद्रमोहन, पी-एच० डी० (लंदन), एफ०एस०एस०, रीडर, गणित विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

च० ला० गु० चमन लाल गुप्त, प्राध्यापक, एक्सटेंशन एडूकेशन इंस्टिट्यूट, नीलखेड़ी।

चा० त्रि० चारुचंद्र त्रिपाठी, एम० ए०, संपादकीय विभाग, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

ज० गु० जगदीश गुप्त, एम० ए०, डी० फिल०, हिंदी विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद।

ज० चं० जै० जगदीशचंद्र जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, रामनारायण रुइया कालेज, बंबई-२८।

ज० बि० मि० जगदीश विहारी मिश्र, अंग्रेजी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

ज० म० जहीरुद्दीन मलिक, इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

ज० मि० त्रे० जगदीश मित्र त्रेहन, एडीशनल कंसल्टिंग इंजीनियर, रोड्स विंग, ट्रांसपोर्ट ऐंड काम्युनिकेशन मिनिस्ट्री, ट्रांसपोर्ट भवन, पार्लिमेंट स्ट्रीट, नई दिल्ली।

ज० यू० जनयूनहुआ, एम० ए०, पी एच० डी०, लेक्चरर, चीनी साहित्य, चीन भवन, विश्वभारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन, पश्चिमी बंग।

ज० ला० च० जवाहरलाल चतुर्वेदी, प्रधान संपादक पुष्टिमार्गीय-ग्रंथ-रत्नकोश, सूरसागर कार्यालय, कूवावाली गली मथुरा।

ज० श० ग० जगदीश शरन गर्ग, एम० एस सी० (एजी०) एम० एड०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, कृषि प्रसार विभाग, राजकीय कृषि महाविद्यालय, कानपुर।

जि०ना०वा० जितेन्द्रनाथ वाजपेयी, एम० ए०, पी-एच० डी०, इतिहास विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

जी० एल० चं० जी० एल० चंदावरकर, प्रार्थना समाज, १६०, राजा राममोहन राय रोड, बंबई-४।

जी० के० अ० दे० गो० कृ० अ०।

जे० एन० म० जगदीश नारायण मल्लिक, एम० ए०, अध्यक्ष दर्शन विभाग, राजेंद्र कालेज, छपरा।

झ० ला० श० स्व० झम्मनलाल शर्मा, डी० एस-सी०, भूतपूर्व प्रिंसिपल, गवर्नमेंट डिग्री कालेज, नैनीताल।

तु० ना० सिं० तुलसी नारायण सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०, रीडर, अंग्रेजी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

त्रि० पं० त्रिलोचन पंत, एम० ए०, इतिहास विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

द० श० दशरथ शर्मा, एम० ए०, डी० लिट० अध्यक्ष, इतिहास विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

द० श० व० दयालु शरण वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, क्वींस कालेज, वाराणसी।

दी० चं० (स्वर्गीय) दीवानचंद, एम० ए०, डी० लिट्०, भूतपूर्व वाइस चांसलर, आगरा विश्वविद्यालय, ६३ छावनी मार्ग, कानपुर।

दी० ना० ब० या दी० ना० व० दीवेंद्रनाथ बनर्जी, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

दु० शं० ना० दुर्गाशंकर नागर, बी० एस-सी० (कृषि), उपनिदेशक (प्रशिक्षण), कृषि निदेशालय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

ध० प्र० स० धर्मप्रकाश सक्सेना, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, भूगोल विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

न० प्र० सिं० श्रीकांतनंदन प्रसाद सिंह, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

न० क० नवरत्न कपूर, एम० ए०, पी-एच० डी० हिंदी विभाग, गवर्नमेंट डिग्री कालेज, लुधियाना, पंजाब।

न० द० मि० नगेंद्रदत्त मिश्र, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (केम० इंजि०), चीफ केमिस्ट, मण्या नेशनल पेपर मिल्स लि०, बेलागुला, कृष्णराज सागर, मैसूर राज्य।

न० ना० नरेंद्रनाथ, भूतपूर्व मेडिकल आफिसर आॅव हेल्थ, वाराणसी।

न० प्र० नर्मदेश्वर प्रसाद, एम० ए०, प्राध्यापक, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

नि० कौ० निर्मला कौशिक, प्राध्यापिका, भूगोल विभाग, महिला कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

नी० पु० जो० नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी, एम० ए०, पी-एच० डी०, क्यूरेटर, संग्रहालय, मथुरा।

प० द० परमेश्वर दयाल, एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन), अध्यक्ष, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

पी० एम० जे० पी० एम० जोशी, डेक्कन कालेज, पोस्ट ग्रेजुएट एंड रिसर्च इंस्टीटयूट पूना-६।

पु० क० पुष्पा कपूर, एम० ए०, प्राध्यापिका, भूगोल विभाग, महिला कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

पु० वा० पुरुषोत्तम वाजपेयी, एम० ए०, अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश बैंक एंप्लाईज यूनियन, वाराणसी।

प्र० कु० पा० प्रफुल्ल कुमार पारिख एम० एस-सी०, सबडिवीजनल आफिसर (जिआॅलोजी) एमरजेंसी वाटर सप्लाई, पब्लिक हेल्थ इंजीनियरिंग डिवीजन, जमुई, बिहार।

प्र० चं० गु० प्रकाशचंद्र गुप्त, एम० ए०, अंग्रेजी विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद।

प्र० ब० प्रभात बसु, ई-२३, सी० आई० टी० बिल्डिंग्स, क्रिस्टोफर रोड, कलकत्ता-१४।

प्र० मा० प्रभाकर माचवे, सहायक मंत्री, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, ३५ फीरोजशाह रोड, नई दिल्ली-१।

प्र० व० प्रमिला वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, भूगोल विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)।

प्रि० कु० चौ० प्रियकुमार चौबे, बी० ए०, ए० बी० एम० एस०, डी० पी० पी०, मेडिकल एवं हेल्थ आफिसर, काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रे० ल० श० प्रेमलता शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, संगीत शास्त्र विभाग, संगीत भारती, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।

फू० स० व० फूलदेव सहाय वर्मा, एम० एस-सी०, ए० आइ० आइ० एस-सी० भूतपूर्व प्रोफेसर, औद्योगिक रसायन, प्रिंसिपल, कालेज आॅव टेक्नालॉजी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय; संपादक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

ब० उ० बलदेव उपाध्याय, एम० ए०, साहित्याचार्य, निदेशक अनुसंधान संस्थान, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ब० प्र० मि० बलभद्र प्रसाद मिश्र, ४७।१२, कबीर मार्ग, लखनऊ।

ब० प्र० स० बनारसी प्रसाद सक्सेना, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)।

बा० ना० बालेश्वर नाथ, बी० एस-सी०, सी० ई० (आनर्स), एम० आइ० ई०, मेंबर, इरीगेशन टीम (कैंप) कमेटी आन प्रोजेक्टस प्लानिंग कमीशन, ३ मथुरा रोड, नई दिल्ली।

बि० मु० बिभा मुखर्जी, एम० ए०, पी-एच० डी० प्राध्यापिका, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

बृ० मो० सा० बृजमोहन लाल साहनी, एम० ए०, अवकाशप्राप्त रीडर, अंग्रेजी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

बै० पु० बैजनाथ पुरी, एम० ए०, डी० लिट० (आक्सफोर्ड), प्रोफेसर इतिहास, नेशनल एकेडेमी आॅव ऐडमिनिस्ट्रेशन, चार्लविल, मसूरी।

ब्र० कि० श० ब्रजकिशोर शर्मा, एल-एल० एम०, प्राध्यापक, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ।

ब्र० र० दा० (स्व०) ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील, भू० पू० प्रधान मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

भ० दा० अ० भगवानदास अग्रवाल, एम० ए०, बी० एस-सी०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, गणित विभाग, सेंट्रल हिंदू कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भ० दा० व० भगवान दास वर्मा, बी० एस-सी०, एल० टी०, भूतपूर्व अध्यापक, डेली (चीफ्स) कालेज, इंदौर, भूतपूर्व सहायक संपादक, इंडियन क्रानिकल, विज्ञान

तथा साहित्य सहायक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

भ० रे० ध० भदंत रेवत धर्म, एम० ए० अंतरराष्ट्रीय छात्रावास, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी–२।

भ० श० उ० भगवत शरण उपाध्याय, एम० ए०, डी० फिल० (जाग्रेब), भूतपूर्व संपादक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

भ० शं० या० भवानीशंकर याज्ञिक, प्राध्यापक, मेडिकल कालेज, लखनऊ तथा सहायक निदेशक, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विभाग, उत्तर प्रदेश राज्य सरकार, ८ शाहनजफ मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ।

भा० शं० मे० भानुशंकर मेहता, एम० बी० बी० एस०, पैथोलाजिस्ट, बुलानाला, वाराणसी।

भा० स० भाऊ समर्थ, गोएनका उद्यान, सोनेगाँव, नागपुर नं० ५।

भा० सिं० गौ० भारत सिंह गौतम, एम० ए०, हरिश्चंद्र डिग्री कालेज, वाराणसी।

भी० गो० दे० भीमराव गोपाल देशपांडे, एम० ए०, बी० टी०, प्रवक्ता, मराठी विभाग, (काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५) डी० २१।२४, कमच्छा, वाराणसी।

भी० ला० आ० भीखनलाल आत्रेय, एम० ए०, डी० लिट० आत्रेय निवास, लंका, वाराणसी।

भु० ना० मि० भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' एम० ए०, पी-एच० डी०, रीडर, हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, गया।

भृ० ना० प्र० भृगुनाथ प्रसाद, पी-एच० डी०, रीडर, प्राणिशास्त्र विभाग, सायंस कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भै० ना० सिं० भैरवनाथ सिंह, एम० ए०, भूत पूर्व प्रध्यापक, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

मं० दे० शा० मंगलदेव शास्त्री, एम० ए०, पी-एच० डी०, भू० पू० उपकुलपति, संस्कृत विश्वविद्यालय, प्राच्य अनुसंधान संस्थान, इंग्लिशिया लाइंस, वाराणसी।

मं० म० प० मंजुला मणिभाई पटेल, एम० ए०, बी० टी० लेक्चरर, बिड़ला प्लेनेटेरियम, ९६ चौरंगी रोड, कलकत्ता।

म० खा० मनोहर खाडिलकर, संपादक, चैंपियन, लेबर कालोनी, नाटी इमली, वाराणसी।

म० गु० मन्मथनाथ गुप्त, संपादक, 'आजकल', पब्लिकेशंस डिवीजन, भारत सरकार, पुराना सचिवालय, दिल्ली।

म० ना० मे० महराज नारायण मेहरोत्रा एम० एस-सी०, एफ० जी० एम० एस०, प्राध्यापक, भूविज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

म० भ० मधुकर भट्ट, एम० ए०, पी-एच० डी०, एन १।१४, कृष्णकुंज, धर्मनगर, नगवा, लंका, वाराणसी–५।

म० रा० जै० महेंद्र राजा जैन, एम० ए० लाइब्रेरियन, विश्वविद्यालय दारुस्सलाम, नैरोबी, अफ्रीका।

म० ला० द्वि० मनोहर लाल द्विवेदी, साहित्याचार्य एम० ए०, पी-एच० डी०, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

म० वि० या
म० सी० बि० महेशचंद बिजावट, विधि विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मि० च० पां० मिथिलेशचंद्र पांडिया, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अमरोहा (मुरादाबाद)।

मि० च० मिल्टन चरण, अध्यक्ष, भारतीय मसीही सुधार समाज, एस० १७।३८, राजाबाजार, वाराणसी–२।

मु० अ० अ०अं० मुहम्मद अजहर असगर अंसारी, प्रोफेसर, आधुनिक भारतीय इतिहास, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

मु० उ० मुहम्मद उमर, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, इतिहास विभाग, रूरल इंस्टीट्यूट, जामिया मिलिया, नई दिल्ली।

मु० मु० दे० शुद्ध रूप मु० मो० दे० मुकुंद मोरेश्वर देसाई, एम० ए०, अवकाशप्राप्त रीडर, अंग्रेजी विभाग काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मु० रा० श० मुंशीराम शर्मा, एम० ए०, डी० लिट० संचालक वैदिक शोध संस्थान, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

मु० ला० श० मुरारि लाल शर्मा, एम० ए०, ज्योतिषाचार्य, विद्यावारिधि, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मु० रा० मुद्रा राक्षस, सोनेगाँव, लखनऊ।

मु० शु० मुक्ता शुक्ल, एम० ए०, आकाशवाणी, सारनाथ, वाराणसी।

मु० स्व० व० मुकुंद स्वरूप वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस०, भूतपूर्व चीफ मेडिकल ऑफिसर तथा प्रिंसिपल, मेडिकल कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मो० ह० मोहम्मद हबीब, बी० ए०, डी० लिट०, भूतपूर्व प्रोफेसर, इतिहास और राजनीति, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

य० रा० मे० यशवंतराम मेहता, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, (यू० एस० ए०) ऐसोशिएट आइ० ए० आर० आइ०, इकानोमिक बोटैनिस्ट, उत्तर प्रदेश, कानपुर।

र० अ० या
मु० र० मुहम्मद रफीक, एम० ए०, अरबी फारसी विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद।

र० उ० रत्नाकर उपाध्याय, एम० ए०, प्राध्यापक, इतिहास विभाग, गवर्नमेंट इंटर कालेज, श्रीनगर, गढ़वाल।

र० कु० — (स्वर्गीया) रत्नकुमारी, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रधानाध्यापिका, आर्य कन्या पाठशाला, इलाहाबाद।

र० च० क० या र० च० क० — रमेशचंद्र कपूर, डी० एस-सी०, डी० फिल०, प्रोफेसर, रसायन विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

र० च० दु० — रमेशचंद्र दुबे, एम० ए० संपादक सहायक, हिंदी-विश्वकोश, गाँव और पत्रालय, ऊँचा बहादुर पुर, जिला इटावा।

र० ज० — रजिया सज्जाद जहीर, एम० ए०, भूतपूर्व लेक्चरर, उर्दू विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, वजीर मंजिल, वजीर हसन रोड, लखनऊ।

र० ना० दे० — रवींद्रनाथ देव, एम० ए०, लेक्चरर, अंग्रेजी विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद।

र० ना० श० — रमानाथ शर्मा, एम० ए० लेक्चरर, हिंदी विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद।

र० प्र० रा० — रवींद्रप्रताप राव, आर्गेनिक रसायन, यूनिवर्सिटी ऑव ऐडलेड, दक्षिण आस्ट्रेलिया।

र० सिं० — रघुबीर सिंह, रघुबीर निवास, सीतामऊ (म० प्रदेश)।

रा० कु० — रामकुमार, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० प्रोफेसर गणित तथा अध्यक्ष अनुप्रयुक्त गणित विभाग, मोतीलाल नेहरू इंजीनियरिंग कालेज, इलाहाबाद।

रा० के० त्रि० — दे० रा० फे० त्रि०

रा० चं० द्वि० — रामचंद्र द्विवेदी, एम० ए०, पी-एच० डी०, के १।१३, माडल टाउन, दिल्ली।

रा० चं० पां० — रामचंद्र पाडेय, एम० ए०, पी-एच० डी०, व्याकरणाचार्य, लेक्चरर, बौद्ध दर्शन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

रा० च० मा० — रामचंद्र मालवीय, एम० ए०, साहित्याचार्य, प्रस्तोता, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० चं० शु० — रामचंद्र शुक्ल, एम० ए०, लेक्चरर, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, वाराणसी।

रा० च० स० — रामचंद्र सक्सेना, भूतपूर्व प्राध्यापक, प्राणिविज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० दा० ति० या रा० दा० त्रि० — रामदास तिवारी, एम० एस-सी०, डी० फिल० असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

रा० द्वि० — रामाज्ञा द्विवेदी, लेबर कालोनी, ऐशबाग, लखनऊ।

रा० ना० — राजेंदर नागर, एम० ए०, पी-एच० डी०, रीडर, इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

रा० मा० — राजनाथ, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (लंदन), डी० आइ० सी० एफ० एन० आई०, एफ० एन० ए० एस-सी०, एफ० जी० एम० एस०, प्रिंसिपल, सायंस कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० ना० सु० — रामनाथ सुब्रह्मण्यन, एम० ए०, एफ० आई० आई० आई० सी०, सहायक क्यूरैटर, बिडला प्लेनेटोरियम, कलकत्ता–१६

रा० नि० रा० — रामनिवास राय, एम० एस-सी०, डी० फिल०, प्रिंसिपल, सनातन धर्म कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

रा० पू० ति० — रामपूजन तिवारी, एम० ए०, पी-एच० डी०, हिंदी विभाग, विश्वभारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन, बोलपुर, पश्चिमी बंग।

रा० प्र० सिं० — राजेंद्र प्रसाद सिंह, एम० ए०, रिसर्च स्कालर, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० फे० त्रि० — रामफेर त्रिपाठी, एम० ए०, रिसर्च स्कालर (यू० जी० सी०) हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

रा० ब० सिं० — रामबली सिंह, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० भ० क० — रामभरोसेलाल कटियार, एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, दर्शन विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

रा० मू० लु० या रा० लू० — राममूर्ति लूंबा, एम० ए०, एल-एल० बी०, प्राध्यापक, मनोविज्ञान एवं दर्शन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

रा० रा० शा० — राजाराम शास्त्री, प्राचार्य, समाजविज्ञान विद्यालय काशीविद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० शं० शु० — रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०, डी० लिट०, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, ४७८। ५१२ मम्फोर्डगंज, इलाहाबाद।

रा० श० भ० — रामशंकर भट्टाचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०, शोध संस्थान, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० श्या० अं० — राधेश्याम अंबष्ट, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, एफ० बी० एस०, प्राध्यापक, वनस्पति विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

रा० स० ख० — रामसहाय खरे, एम० ए०, रामकृष्ण मिशन हाई स्कूल, वाराणसी।

रा० सिं० का० — रजिंदर सिंह काल्हा डाइरेक्टर, मैप पब्लिकेशन ऑफिस, देहरादून।

रा० सिं० नौ० — रामस्वरूप सिंह नौलखा, एम० ए०, एल० टी०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

रा० ह० स० — रामचंद्र हरि सहस्रबुद्धे, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, डी० एस-सी०, अध्यक्ष, रसायन विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर।

रु० म० — (स्व०) सर रुस्तम पेस्तन जी मसानी, एम० ए०, डी० लिट०, भूतपूर्व म्यूनिसिपल कमिश्नर बंबई, ४६ मिग्ररवेदर रोड, बंबई।

ल० रा० ख० — लवलेशराय खरे, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०,

प्राध्यापक, भौतिकविज्ञान विभाग, इंडियन इंस्टिट्यूट ऑव टेक्नालोजी, कानपुर।

ल० शं० वि० लक्ष्मीशंकर विश्वनाथ गुरु, एम० ए०, ए० एम० एस०, रीडर, चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ल० शं० व्या० लक्ष्मीशंकर व्यास, बी० ए० (ग्रानर्स), एम० ए०, सहायक संपादक, दैनिक 'ग्राज', वाराणसी।

ल० शं० शु० लक्ष्मीशंकर शुक्ल, एम० एस-सी०, दुर्गाकुंड, वाराणसी – ५।

ल० सा० वा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय एम० ए०, डी० फिल०, डी० लिट०, रीडर, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

ला० रा० शु० लालजी राम शुक्ल, एम० ए०, प्राध्यापक, काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ला० शु० लालजी शुक्ल, एम० ए०, डी फिल०, अध्यक्ष हिंदी विभाग, राजकीय धनमाजरी कालेज, इफाल, असम।

ला० सि० लालजी सिंह एम-ए०, आकाशवाणी, लखनऊ।

ले० रा० सि० लेखराज सिंह, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

वं० त्रि० वंशीधर त्रिपाठी, समाज विज्ञान विद्यालय, काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी।

वा० उ० वासुदेव उपाध्याय, एम० ए०, डी० फिल०, अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

वि० कु० अ० विनयकुमार अस्थाना, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

वि० च० विमल चंद्र, एम० ए०, पी-एच० डी०, उपायुक्त, अनुसूचित जातियाँ, भारत सरकार, नई दिल्ली।

वि० त्रि० विश्वनाथ त्रिपाठी, साहित्याचार्य, सहायक संपादक कोश विभाग, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

वि० दा० न० विश्वंभरदास नंदा, महासचिव, केंद्रीय भारत सेवक समाज, ४७ थियेटर कम्यूनिकेशन बिल्डिंग, कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

वि० प्र० गु० विश्वंभरप्रसाद गुप्त, ए० एम० आइ० ई०, कार्यपालक इंजीनियर, सी० पी० डब्ल्यू० डी०, ७६, लूकरगंज, इलाहाबाद।

वि० भा० शु० विद्याभास्कर शुक्ल, पी-एच० डी०, प्रिंसिपल, गवर्नमेंट पोस्ट ग्रैजुएट कालेज ऑव सायंस, रायपुर।

वि० रा० विक्रमादित्य राय, एम० ए०, पी-एच० डी०, रीडर, अंग्रेजी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

वि० रा० सि० विजयराम सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी, प्राध्यापक, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

वि० सा० दु० / भा विद्यासागर दुबे, एम० एस-सी, पी-एच० डी० (लंदन), भूतपूर्व प्रोफेसर, भौमिकी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, कंसल्टिंग जियालोजिस्ट ऐंड माइंस ओनर, मगध भवन, लंका, वाराणसी।

बृ० न० प्र० बृजनंदन प्रसाद, फारेस्ट रिसर्च लैबोरेटरी, बंगलोर।

वे० वेदानंद, सेक्रेटरी, भारत सेवाश्रम संघ, २११, रासबिहारी एवेन्यू, बालीगंज कलकत्ता।

श० ना० रा० शरदचंद्र नारायण रानडे, एम० ए० प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, सेकंड लेफ्टिनेंट, ६९ यू० पी० राइफल्स बटालियन, एन० सी० सी०, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

श० रा० गु० शचीरानी गुर्टू, एम०ए०, फैजबाजार, दरियागंज दिल्ली।

शां० प्रि० द्वि० शांतिप्रिय द्विवेदी, लोलार्क कुंड, वाराणसी।

शि० गो० मि० शिवगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, डी० फिल०, साहित्यरत्न, सहायक प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

शि० मं० सिं० शिवमंगल सिंह, प्राध्यापक भूगोल विभाग काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

शि० मो० व० शिवमोहन वर्मा, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, रसायन विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

शि० शं० कुं० शिवशंकर कुँवर, डिजाइनर, गवर्नमेंट नानफेरस मेटल फैक्टरी, लहरतारा, वाराणसी।

शि० श० शिवानंद शर्मा, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, सेंट एंड्रूज कालेज, गोरखपुर।

शु० ते० शुभदा तेलंग, एम० ए०, प्रिंसिपल, बसंत कालेज फार विमेन, राजघाट, वाराणसी।

श्या० ति० श्याम तिवारी, एम० ए०, पी-एच० डी०, संपादक सहायक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

श्र० कु० ति० श्रवणकुमार तिवारी, स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

श्री० कृ० च०ख० श्रीकृष्णचंद्र खर्कवाल, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

श्री० चं० पां० श्रीचंद्र पांडेय, अहरौरा, मीरजापुर।

श्री० ना० दा० श्रीनाथ दास, एम० ए०, बी० एस-सी०, एम० एड०, अध्यक्ष, बी० एड० विभाग, हरिश्चंद्र डिग्री कालेज, वाराणसी।

श्री० ना० सिं० श्री नारायण सिंह, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

श्री० रा० शु० श्रीरामशुक्ल, एल० एजी०, अवकाशप्राप्त डिप्टी डाइरेक्टर, हार्टीकल्चर ४७, ईदगाह कालोनी, आगरा।

श्री० स० श्रीकृष्ण सक्सेना, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

स० च० सतीश चंद्र, इतिहास विभाग, जयपुर विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)।

स० व० सत्येंद्र वर्मा, पी-एच० डी० (लंदन), डिप्टी सुपरिंटेंडेंट, डिपार्टमेंट ऑव प्लैनिंग ऐंड डेवलपमेंट,

फर्टिलाइजर कारपोरेशन ऑव इंडिया, सिंदरी, धनबाद।

स० वि० (स्व०) सत्यदेव विद्यालंकार, लेखक एवं पत्रकार, नई दिल्ली।

सत्य० प्र० या
स० प्र० सत्य प्रकाश, डी० एस-सी०, एफ० ए० एस-सी०, रीडर रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सा० जा० सावित्री जायसवाल (कुमारी), एम० एस-सी०, प्राध्यापक, वनस्पति विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सी० च० सीताराम चतुर्वेदी, प्रिंसिपल, टाउन डिग्री कालेज, बलिया।

सु० कु० चा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, एम० ए०, डी० लिट०, भूतपूर्व अध्यक्ष, बंगाल विधान परिषद्, पश्चिमी बंगाल, कलकत्ता।

सु० च० गौ० सुरेशचंद्र गौड, एम० एस-सी०, बी० एड, भौतिकी विभाग, गवर्नमेंट इंजीनियरिंग कालेज, रायपुर।

सु० च० श० सुरेशचंद्र शर्मा, एम० ए०, एल० एल० बी, अध्यक्ष, भूगोल विभाग, महारानी लाल कुंवरि डिग्री कालेज, बलरामपुर, गोंडा।

सु० न० प्र० सुरेशनंदन प्रसाद, प्राध्यापक, भूगोल विभाग, पटना कालेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

सु० ना० शा० सुरेंद्रनाथ शास्त्री, एम० ए०, डी० फिल० उपकुलपति, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सु० प्र० सिं० सुरेंद्रप्रताप सिंह, एम० ए, पी-एच० डी, अध्यक्ष भूगोलविभाग, राजा हरिपाल सिंह डिग्री कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर।

सु० सिं० सुरेशसिंह कुँवर, एम० एल० सी०, कालाकांकर, प्रतापगढ, उ० प्र०।

सु० सिं० कु० सुरेशसिंह कुशवाहा, एम० एस-सी०, प्राध्यापक, भौतिकी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सै० अ० अ० रि० सयद अतहर अब्बास रिजवी, आस्ट्रेलियन नैशनल यूनीवर्सिटी स्कूल ऑव जैनरल स्टडीज, कैनबेरा।

ह० चं० गु० हरिश्चंद्र गुप्त, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (आगरा, मैनचेस्टर), गणितीय सांख्यिकी में रीडर, दिल्ली विश्वविद्यालय, १८।२० शक्ति नगर, दिल्ली।

ह० दे० बा० हरदेव बाहरी, एम० ए०, ओ० एल०, शास्त्री, पी-एच० डी०, डी०, लिट०, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

ह० ना० मि० दे० हृ० ना० मि०।

ह० बा० दे० हृ० दे० बा०

ह० बा० मा० हरिबाबू माहेश्वरी, एम० बी० बी० एस०, प्राध्यापक, पैथालोजी विभाग, लेडी हार्डिंज मेडिकल कालेज, नई दिल्ली।

ह० वि० का० हरिविष्णु कामथ, भूतपूर्व संसद सदस्य, वेस्टर्न कोर्ट, जनपथ, नई दिल्ली।

ह० शं० गु० हरिशंकर गुप्त एम० ए० प्राध्यापक, भूगोल विभाग, रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर।

ह० शं० चौ० हरिशंकर चौधरी डी० फिल०, एफ० एन० ए० एस-सी०, पी० ई० एस०, प्राध्यापक, प्राणिविज्ञान विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

ह० श० श्री० हरिशंकर श्रीवास्तव, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

ही० ना० मु० हीरेंद्रनाथ मुखोपाध्याय, एम० ए०, बी० लिट० (आक्सन), बार-एट-ला, संसद सदस्य, १२५, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली।

ही० ला० गु० हीरालाल गुप्त, एम० ए०, डी० फिल०, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)।

ही० ला० जै० हीरालाल जैन, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट०, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत, पालि और प्राकृत विभाग इंस्टिट्यूट ऑव लैंग्वेजेज ऐंड रिसर्च, जबलपुर युनिवर्सिटी, जबलपुर।

हृ० ना० मि० हृदयनारायण मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, दर्शन विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

तत्वों की संकेतसूची

संकेत		तत्व का नाम	संकेत		तत्व का नाम	संकेत		तत्व का नाम
अ	Am	अमरीकियम	ट$_{क}$	Tc	टेकनिशियम	मो	Mo	मोलिब्डिनम
आ$_{इ}$	En	आइंस्टियम	टे$_{ल}$	Te	टेल्यूरियम	य	Zn	यशद
औ	O	ऑक्सिजन	टै	Ta	टैंटेलम	यू	U	यूरेनियम
आ	I	आयोडीन	डि	Dy	डिस्प्रोशियम	यू.	Eu	यूरोपियम
आ$_{ग}$	A	आर्गन	ता	Cu	ताम्र	र	Ag	रजत
आ$_{स}$	As	आर्सेनिक	थू	Tm	थूलियम	रु$_{थ}$	Ru	रुथेनियम
आ$_{स}$	Os	ऑस्मियम	थै	Tl	थैलियम	रु$_{ब}$	Rb	रुबीडियम
इं$_{ड}$	In	इंडियम	थो	Th	थोरियम	रै$_{ड}$	Rn	रेडॉन
इ$_{ट}$	Yb	इटर्बियम	ना	N	नाइट्रोजन	रे	Ra	रेडियम
इ$_{ट्र}$	Y	इट्रियम	नि$_{य}$	Nb	नियोबियम	रे$_{न}$	Re	रेनियम
इ	Ir	इरीडियम	नि	Ni	निकल	रो	Rh	रोडियम
ए$_{र}$	Eb	एर्बियम	नी	Ne	नीऑन	लि	Li	लिथियम
ऐं$_{ट}$	Sb	ऐंटिमनी	ने$_{प}$	Np	नेप्च्यूनियम	लै	La	लैंथेनम
ऐ$_{क}$	Ac	ऐक्टिनियम	न्यो	Nd	न्योडियम	लो	Fe	लोह
ऐ	Al	ऐल्यूमिनियम	पा	Hg	पारद	ल्यू	Lu	ल्यूटीशियम
ऐ$_{स}$	At	ऐस्टैटीन	पै	Pd	पैलेडियम	वं	Sn	वंग
का	C	कार्बन	पो	K	पोटासियम	वै	V	वैनेडियम
कै$_{ड}$	Cd	कैडमियम	पो$_{ल}$	Po	पोलोनियम	स	Sm	समेरियम
कै$_{फ}$	Cf	कैलिफोर्नियम	प्रे	Pr	प्रेजीओडिमियम	सि	Si	सिलिकन
कै	Ca	कैल्सियम	प्रो$_{ट}$	Pa	प्रोटोऐक्टिनियम	सि$_{ल}$	Se	सिलीनियम
को	Co	कोबाल्ट	प्रो$_{म}$	Pm	प्रोमीथियम	सी$_{ज}$	Cs	सीजियम
क्यू	Cm	क्यूरियम	प्लू	Pu	प्लूटोनियम	सी$_{र}$	Ce	सीरियम
क्रि	Kr	क्रिप्टॉन	प्लै	Pt	प्लैटिनम	सी	Pb	सीस
क्रो	Cr	क्रोमियम	फा	P	फॉस्फोरस	से	Ct	सेटियम
क्लो	Cl	क्लोरीन	फ्रा	Fr	फ्रांसियम	सो	Na	सोडियम
गं	S	गंधक	फ्लो	F	फ्लोरीन	स्कै	Sc	स्कैंडियम
गै$_{ड}$	Gd	गैडोलिनियम	ब	Bk	बर्केलियम	स्ट्रों	Sr	स्ट्रौंशियम
गै	Ga	गैलियम	बि	Bi	बिस्मथ	स्व	Au	स्वर्ण
ज$_{क}$	Zr	जर्कोनियम	बे	Ba	बेरियम	हा	H	हाइड्रोजन
ज$_{म}$	Ge	जर्मेनियम	बे$_{र}$	Be	बेरीलियम	ही	He	हीलियम
जी	Xe	जीनान	बो	B	बोरन			
टं	W	टंग्स्टन	ब्रो	Br	ब्रोमीन			
			मू	R	मूलक (रैडिकल)			
ट$_{र}$	Tb	टर्बियम	मैं	Mn	मैंगनीज	है	Hf	हैफ्नियम
टा$_{इ}$	Ti	टाइटेनियम	मै$_{ग}$	Mg	मैग्नीशियम	हो	Ho	होल्मियम

संकेताक्षर

संकेत	पूर्ण रूप
अ०	अक्षांश; अथर्ववेद; अध्याय
अ० कां०	अरण्यकांड (रामायण)
अथर्व०	अथर्ववेद
अधि०	अधिकरण
अनु०	अनुवादक, अनुशासनपर्व,
अयो०	अयोध्याकांड (रामायण)
आं० प्र०	आंध्र प्रदेश
आ० घ० या आपे० घ०	आपेक्षिक घनत्व
आई० ए० एस०	इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस
आई० सी० एस०	इंडियन सिविल सर्विस
आदि०; आ० प०	आदिपर्व (महाभारत)
आ० श्रौ० सू०	आपस्तंब श्रौतसूत्र
आय०	आयतन
आर्क० स० रि०	रिपोर्ट ऑव दि आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑव इंडिया
आश्व०	आश्वलायन
इंट्रो०	इंट्रोडक्शन
ई०	ईसवी
ई० पू०	ईसा पूर्व
उ०	उत्तर
उदा०	उदाहरण
उत्तर०	उत्तरकांड
उ० प्र०	उत्तर प्रदेश
उद्यो०; उद्योग०	उद्योगपर्व (महाभारत)
ऋ०	ऋग्वेद
ए० आई० आर०	ऑल इंडिया रिपोर्टर
ए० इं०; एपि० इं०	एपिग्राफ़िया इंडिका
एक०	एकवचन
ऐ० ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
क० प०; कर्ण०	कर्णपर्व (महाभारत)
का०	कारिका
काम०	कामंदकीय नीतिसार; कामशास्त्र
काव्या०	काव्यालंकार
कि० ग्राम	किलोग्राम
कि० मी० या किमी०	किलोमीटर
कु० सं०	कुमारसंभव
क्र० सं०	क्रमसंख्या
क्र०	क्रथनांक
गा०	गाथा
छांदो०	छांदोग्य उपनिषद्
ज०, ज० सं०	जन्म, जन्म संवत्
जि०	जिला, जिल्द
जे० पी० टी० एस०	जर्नल ऑव दि पालि टेक्स्ट सोसायटी
तैत्ति०	तैत्तिरीय
तै० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
द०	दक्षिण
दी० नि०	दीघनिकाय
दी०	दीपवंश
दे०	देखिए; देशांतर
द्रो० प०, द्रोण०	द्रोणपर्व
ध०	धम्मपद
ना० प्र० प०	नागरीप्रचारिणी पत्रिका
ना० प्र० स०	नागरीप्रचारिणी सभा
नि०	निरुक्त
पं०	पंजाबी; पंडित
प०	पट्टाण; पर्व; पश्चिम; पश्चिमी
पद्म०	पद्मपुराण
पु०	पुराण
पू०	पूर्व
पृ०	पृष्ठ
प्र०	प्रकाशक
प्रक०	प्रकरण
प्रो०	प्रोफेसर
फा०	फारेनहाइट
बा०	बालकांड (रामायण)
बाज० सं०	बाजसनेयी संहिता
ब्र० सू०	ब्रह्मसूत्र
ब्रह्म० पु०	ब्रह्मपुराण
ब्रा०	ब्राह्मण
भाग०	श्रीमद्भागवत
भा० ज्यो०	भारतीय ज्योतिष
भी० प०	भीष्मपर्व
मनु०	मनुस्मृति
मत्स्य०	मत्स्यपुराण
म० भा०; महा०	महाभारत; महावंश
म० म०	महामहोपाध्याय
मिता० टी०	मिताक्षरा टीका
मी०	मील
मिमी०	मिलीमीटर
मे० सा०	मेगासाइकिल
म्यू०	माइक्रॉन
याज्ञ०; याज्ञ० स्मृ०	याज्ञवल्क्य स्मृति
रघु०	रघुवंश
र० का० सं०	रत्नाकाल संवत्
राज०, रा० त०	राजतरंगिणी
ल०, लग०	लगभग
ला०	लाला

ली०	लीटर
वन०; व० प०	वनपर्व (महाभारत)
वा० रा०	वाल्मीकीय रामायण
वायु०	वायुपुराण
वि०, वि० सं०	विक्रमी संवत्
विनय०	विनयपत्रिका
वि० पु०	विष्णु पुराण
वै० इं०	वैदिक इंडेक्स
श०, शत०, श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
श०	शती
शल्य०	शल्यपर्व
शांति०	शांतिपर्व
श्रीमद्भा०	श्रीमद्भागवत
श्लो०	श्लोक
सं०,	संख्या, संपादक, संवत्, संस्करण, संस्कृत, संहिता
सं० ग्रं०	संदर्भ ग्रंथ
संस्क०	संस्करण
स० ग० स०	सेंटीग्रेड, ग्राम, सेकंड पद्धति
स० प०; सभा०	सभापर्व (महाभारत)
सुंदर०	सुंदरकांड
सें०	सेंटीग्रेड
साइकॉ०	साइकॉलोजी
सेंमी०	सेंटीमीटर
से०	सेकंड
स्कंद	स्कंदपुराण
स्व०	स्वर्गीय
ह०	हनुमानबाहुक, हरिवंशपुराण
हि०	हिजरी
हिं०	हिंदी
हिं० वि० को०	हिंदी विश्वकोश
हि०	हिजरी; हिमांक
हिस्टा०	हिस्टॉरिकल

———

फलक सूची

———

हिंदी विश्वकोश

खंड ८

प्राच्य चर्च जो ईसाई समुदाय पूजा तथा शासन के विषय मे अन्तिओक, येरुसलेम, सिकदरिया और कुस्तुतुनिया जैसे प्राचीन ईसाई केंद्रो की प्रणाली अपनाते हैं उन्हे प्राच्य चर्च कहा जाता है क्योकि वे केंद्र रोम के पूर्व मे है। इन समुदायो के सदस्य आजकल पश्चिम यूरोप तथा अमरीका मे भी पाए जाते है। अधिकाश तो वे रोम के चर्च से अलग हो गए है किंतु उनमे सब मिलाकर लगभग डेढ करोड रोमन काथलिक है, जो रोम का शासन स्वीकार करते है यद्यपि वे अन्य प्राच्य चर्चवालो की भाति पूजा मे अपनी ही प्राचीन पद्धति पर चलते है और अन्य रोमन काथलिक समुदायो की तरह लैटिन भाषा का प्रयोग नही करते। रोम से सयुक्त रहनेवाले प्राच्य चर्चो को और उनके सदस्यो को यूनिएट (एकतावादी) कहते है। रोम से अलग रहनेवाले प्राच्य चर्चो का सिंहावलोकन उनके अलग हो जाने के काल-क्रमानुसार यहाँ प्रस्तुत है।

(१) सन् ४३१ ई० मे नेस्तोरियस के सिद्धात को भ्रामक ठहराया गया था (दे० अवतारवाद)। यह सिद्धात पूर्व सीरिया (आजकल ईराक-ईरान) के ईसाइयो को ठीक ही जँचा, दूसरी ओर वे रोमन साम्राज्य के बाहर ही रहते थे, अत उन्होने अपने को एक स्वतत्र नेस्तोरियन चर्च के रूप मे घोषित किया। यह चर्च शताब्दियो तक फलता फूलता रहा और चीन, मध्य एशिया तथा दक्षिण भारत तक फैल गया। १६वी शताब्दी में इस चर्च से सबध रखनेवाले अधिकाश सदस्य, अर्थात् बाबुल के कालदियन ईसाई (आजकल १७००००) तथा मलाबार के थोमस ईसाई (आजकल लगभग दस लाख) रोमन काथलिक चर्च मे सम्मिलित हुए। दक्षिण भारत के अन्य प्राचीन ईसाई १७वी शताब्दी में जेकोबाइट चर्च के सदस्य बन गए किंतु सन् १८८३ ई० मे इनमे से एक समुदाय प्रोटेस्टैंट धर्म के कुछ सिद्धान्त अपनाकर अलग हो गया। वे मार-थोमाइट कहलाते है, (आजकल लगभग २,६०,०००)। सन् १६०७ मे एक अन्य समुदाय ने नेस्तोरियन चर्च से अपना सबध स्थापित किया और सन् १६३० ई० मे एक तीसरा समुदाय रोमन काथलिक बन गया (वे सिरोमलकर कहलाते है, आजकल लगभग १ लाख)।

नेस्तोरियन ईसाइयो की संख्या आजकल लगभग एक लाख है, वे मुख्य रूप से अमरीका, रूस, ईराक, ईरान तथा दक्षिण भारत मे (लगभग ५,०००) रहते है।

(२) सन् ४५१ ई० मे कालसे दोन की ईसाई विश्वसभा ने मोनोफिसिटिज्म का सिद्धान्त भ्रामक घोषित किया था (दे० अवतारवाद)। बाद मे जब सीरिया, मिस्र तथा आरमीनिया के ईसाई समुदाय कुस्तुतुनिया से अलग हो गए, उन्होंने मोनोफिसिटिज्म का सिद्धात अपनाया।

(अ) सीरिया का ईसाई समुदाय, अपने नेता याकूब बुरदेआना के अनुसार जैकोबाइट कहलाता है। आजकल सीरिया तथा इराक मे एक लाख से कम जैकोबाइट शेष है किंतु दक्षिण भारत में उनकी संख्या लगभग सात लाख है।

(आ) मिस्र का प्राचीन ईसाई समुदाय प्राय कोप्त (Copt) कहलाता है। यह समुदाय मिस्र से एथियोपिया मे फैल गया, आजकल उसकी सदस्यता इस प्रकार है मिस्र मे १५ लाख तथा एथियोपिया मे आठ करोड।

(इ) सन् ३०० ई० से ईसाई धर्म आरमीनिया का राजधर्म घोषित किया गया था। बाद मे आरमीनिया ने मोनोफिसाइट सिद्धात अपनाया। आजकल आरमीनियन ईसाइयो की सख्या लगभग २५ लाख है जो अधिकाश रूस मे निवास करते है।

(३) रोमन साम्राज्य की राजधानी बनने के कारण कुस्तुंतुनिया पूर्व यूरोप का प्रधान ईसाई केंद्र बन गया था। इस केंद्र से ईसाई धर्म रूस तथा समस्त पूर्व यूरोप मे फैल गया। अत सन् १०५४ मे जब कुस्तुंतुनिया का चर्च रोम से अलग हो गया तो पूर्व यूरोप के प्राय समस्त ईसाई समुदायो ने कुस्तुंतुनिया का साथ दिया (दे० चर्च का इतिहास)। उन समुदायो को आर्थोदोक्स (अर्थात् सही शिक्षा का अनुयायी) कहा जाता है क्योकि वे ११वी शती तक रोमन चर्च द्वारा धर्म सिद्धात के रूप मे घोषित सभी धार्मिक शिक्षाएं स्वीकार करते है।

उत्पत्ति की दृष्टि से ये सभी समुदाय कुस्तुंतुनिया से संबद्ध है, किंतु सन् १४४८ ई० मे रूस का चर्च स्वाधीन हो गया और बाद मे बहुत से राष्ट्रीय समुदायो ने अपने को स्वतत्र घोषित किया। फिर भी आजकल पूर्व यूरोप के बहुत से आर्थोदोक्स चर्च (यूनान, साइप्रस, अलबानिया, हगरी, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड) कुस्तुंतुनिया अथवा पैत्रियार्क को अपना अध्यक्ष मानते है, यद्यपि वे उनका हस्तक्षेप स्वीकार नही करते। सर्बिया (यूगोस्लाविया), बुलगारिया, रूमानिया तथा जार्जिया के आर्थोदोक्स समुदाय अपने को पूर्ण रूप से स्वतत्र घोषित कर चुके है।

पाचवी शती में जब सीरिया तथा मिस्र के अधिकाश ईसाई अलग हो गए तो उनमे से कुछ कुस्तुंतुनिया के साथ रहे थे, उनको मेलकाइट (Melkite) कहा जाता है। बाद मे वे कुस्तुंतुनिया के साथ आर्थोदोक्स बन गए किंतु इधर वे पर्याप्त संख्या मे रोमन काथलिक चर्च में सम्मिलित हुए।

आर्थोदोक्स ईसाइयो की कुल सख्या बीस करोड से अधिक है, उन समुदायो मे से रूस का आर्थोदोक्स चर्च सबसे महत्वपूर्ण है।

स० ग्र० --डी अत्तवाटर दी क्रिश्चियन चर्चेज आँव दि ईस्ट, द्वितीय खंड; आर० जेनिन एग्लिस ओरिएताल, पेरिस, १६५५।

[का० बु०]

प्राणिउपवन (Zoological garden) वह संस्थान है जहाँ जीवित पशु पक्षियों को बहुत बड़ी संख्या में संग्रहीत कर रखा जाता है। जीवित पशु पक्षियों के संग्रह को रखने की परिपाटी बहुत प्राचीन है। ऐसे उपवनों के होने का सबसे पुराना उल्लेख चीन में ईसा के १२०० वर्ष पूर्व में मिलता है। चीन के चाऊ वंश के प्रथम शासक के पास उस समय ऐसा एक पशु पक्षियो का संग्रहालय था। ईसा के २००० वर्ष पूर्व के मिस्र वासियों की कब्रो के आसपास पशुओ की हड्डियाँ पाई गई हैं, जिससे पता लगता है कि वे लोग आमोद प्रमोद के लिये अपने आसपास पशुओं को रखा करते थे। पीछे रोमन लोग भी पशुओं को पकड़कर अपने पास रखते थे। प्राचीन रोमनो और यूनानियों के पास ऐसे संग्रह थे जिनमे सिह, बाघ, चीता, तेंदुए आदि रहते थे। ऐसा पता लगता है कि ईसा के २९ वर्ष पूर्व ऑगस्टस ऑक्टेवियस (Augustus Octavious) के पास ४१० बाघ, २६० चीते और ६०० अफ्रीकी जतुओं का संग्रह था, जिसमे बाघ, राइनोसिरस, हिपोपॉटैमस (दरियाई घोडा), भालू, हाथी, मकर, साँप, सील (seal), ईगल (उकाब) इत्यादि थे। पीछे जतुओं के सग्रह की दिशा मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है और आज संसार के प्रत्येक देश और प्रत्येक बडे बडे नगर मे प्राणिउपवन विद्यमान है। ऐसे उपवनो के आज तीन प्रमुख उद्देश्य है . (१) मनुष्य का मनोरजन करना, (२) पशु पक्षियो के आचरण, व्यवहार, चालढाल, प्रकृति आदि का अध्ययन करना ताकि जो पशु पक्षी मनुष्य के लिये अधिक उपयोगी हैं उनकी रक्षा और वृद्धि की जाय और (३) उनपर कुछ ऐसे प्रयोग करना जिनसे प्राप्त ज्ञान को मानव हित मे प्रयुक्त किया जा सके। इस अंतिम उद्देश्य की पूर्ति के कारण ही हम अनेक नई नई ओषधियो के आविष्कार करने मे समर्थ हुए है। इन ओषधियों से अनेक असाध्य रोगो की चिकित्सा आज सफलता से की जा रही है। कुछ पशुओं की शारीरिक क्रिया मनुष्य की शारीरिक क्रिया से बहुत मिलती जुलती है। इस कारण नई ओषधियो का जो प्रभाव उन पशुओ पर पडता है वैसा ही प्रभाव मानव शरीर पर भी पड़ता है। पशुओ पर किए गए प्रयोग मनुष्य के लिये बडे उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

एशिया मे अनेक प्राणिउपवन हैं जिनमे अलीपुर स्थित कलकत्ते का प्राणिउपवन बडे महत्व का है। भारत का यह सबसे बड़ा प्राणिउपवन है। इसकी स्थापना १८७५ ई० मे बगाल सरकार द्वारा हुई। इसमे पशु पक्षियों का सग्रह बहुत अच्छा है। इसके अतिरिक्त बबई, दिल्ली और लखनऊ मे भी प्राणिउपवन है। पाकिस्तान मे कराची का प्राणिउपवन उत्कृष्ट कोटि का है। सिंगापुर, बटेविया और सुराबाया मे भी प्राणिउपवन है। सुमात्रा के पश्चिमी तट पर फोर्ट-द-कॉक तथा जोहोर बाहरू मे भी जतुओ का संग्रह उत्तम है। जापान मे दर्जनों प्राणिउपवन हैं, जिनमे टोकियो, नागोया, क्योटो, ओसाका और कोबे के प्राणिउपवन प्रमुख है। शाघाई का प्राणिउपवन यद्यपि छोटा है, तथापि उसमे चीन के जतुओ का संग्रह अच्छा है। रूस के मॉस्को नगर मे जो प्राणिउपवन है उसमे उत्तरी और विदेशी जंतुओ का बहुत अच्छा सग्रह है।

ऑस्ट्रिया और न्यूज़ीलैंड मे भी अनेक प्राणिउपवन है। ऑस्ट्रेलिया के सिडनी, मेलबर्न, ऐडिलेड और पर्थ के प्राणिउपवन महत्व के हैं, पर इनमें ऑस्ट्रेलिया के पशु पक्षियों का सग्रह अच्छा है। न्यूज़ीलैंड के वेलिंग्टन और ऑकलैंड के उपवन अपेक्षया छोटे हैं, पर वेलिंग्टन मे पशु पक्षियो का सग्रह अत्युत्तम है।

अफ्रीका में महत्व के प्राणिउपवन गिजा और काहिरा में है। इनमे अफ्रीकी जंतुओ का संग्रह बहुत अच्छा है। इन प्राणीउपवनों का प्रबंध वहाँ की सरकार द्वारा होता है। खारतूम मे भी एक प्राणिउपवन है, जिसका प्रबंध वहाँ की नगरपालिका करती है। इन प्राणिउपवनो के सिवाय प्रिटोरिया और जोहैनिसबर्ग मे भी उपवन हैं, जिनका प्रबंध वहाँ की सरकार द्वारा होता है।

उत्तरी अमरीका के कैनाडा, मेक्सिको और संयुक्त राज्य, अमरीका, में अनेक प्राणिउपवन है। वस्तुत वहाँ प्रत्येक नगर मे किसी न किसी प्रकार के छोटे मोटे प्राणिउपवन विद्यमान है। कैनाडा के प्राणिउपवनों मे पशु पक्षियो का संग्रह बहुत अच्छा है। संयुक्तराज्य, अमरीका, के प्राणिउपवन अपेक्षया बड़े बडे हैं और कुछ बहुत बड़े क्षेत्र, २६५ एकड़ भूमि तक, मे फैले हुए हैं। इनमे ब्रोंक्स का प्राणिउपवन सबसे बड़ा है। इसका समस्त खर्च नगरपालिका वहन करती है। वाशिंग्टन मे जो उपवन है उसे 'नैशनल जोऑलॉजिकल पार्क' कहते हैं। इसकी स्थापना १८८९–१८९० ई० मे आमोद प्रमोद, शिक्षा और प्राणिविज्ञान के अनुसंधान के विकास के लिये हुई थी। यह भी बहुत बडे क्षेत्र मे फैला हुआ है। फिलाडेल्फिया का 'फेयर माउंट पार्क ज़ू' एक दूसरा सुप्रसिद्ध प्राणिउपवन है। यह लदन के प्राणिउपवन के आदर्श पर १८५९ ई० मे बना था। इसके निर्माण का प्रमुख उद्देश्य शिक्षा का प्रसार था।

यूरोप के प्राय सब देशों, इग्लैंड, फ्रास, जर्मनी, इटली इत्यादि, मे अनेक प्राणिउपवन है। यूरोप का सबसे प्राचीन उपवन शोनब्रुन (Schonbrrun) का है। बूडापेस्ट के प्राणिउपवन मे यूरोप के पक्षियो का अच्छा संग्रह है। लदन का प्राणि-उपवन यद्यपि छोटा है, तथापि यहाँ सग्रह सर्वोत्कृष्ट है। मैंचेस्टर और क्लिफ्टन मे भी छोटे छोटे प्राणिउपवन है। एडिनबरा का उपवन पेंगुइन के लिये सुप्रसिद्ध है। डब्लिन के प्राणिउपवन मे सिंहो का सग्रह बहुत विशाल है। यूरोप के अन्य देशों के नगरो, रोम, लिसबन, मैड्रिड इत्यादि, मे भी छोटे बडे प्राणिउपवन विद्यमान है। [फू० स० व०]

प्राणिऊष्मा जंतुओ के शारीरिक ताप से सबंधित शारीरिक क्रियाएँ, शारीरिक ऊष्मा के ह्रास के मार्ग तथा शरीर का ताप बनाए रखने के लिये आवश्यक ऊष्मोत्पादन की रीति, ये सभी प्रस्तुत विषय के अंतर्गत आते है। विविध प्रकार के तापमापियो के आविष्कार ने उपर्युक्त बातो के अध्ययन मे बड़ी सहायता पहुँचाई है।

जतु दो प्रकार के होते है · प्रथम समतापी (homeothermic), अर्थात् वे जिनके शरीर का ताप लगभग एक सा बना रहता है। इस वर्ग में स्तनधारी, साधारणतः पालतू जानवर तथा पक्षी, आते है, जो उष्ण रक्तवाले भी कहे जाते हैं। द्वितीय असमतापी(poikilothermic), अर्थात् वे जिनके शरीर का ताप बाह्य वातावरण के अनुसार बदला करता है। इस वर्ग मे कीडे, साँप, छिपकली, कछुआ, मेढक, मछली आदि है, जो शीतरक्तवाले कहे जाते हैं। कुछ ऐसे भी जतु है जो उष्ण ऋतु मे उष्ण रक्त के, किंतु शीत ऋतु मे, जब वे शीत निद्रा मे रहते है, शीत रक्तवाले हो जाते है, जैसे हिममूष (marmot)। इस अवस्था में हिममूष का शारीरिक ताप ३७° फा० (लगभग ३°

से०) तक गिर जाने पर भी यह पुनः जीवित हो जाता है। उष्ण रक्तवाले प्राणियो के शरीर का ताप संवेदनाहारी अवस्था में तथा रीढ़ रज्जु का वियोजन होने पर, बाह्य वातावरण के अनुसार यथेष्ट कम किया जा सकता है।

शारीरिक ताप में विभेद — जंतुओं के शारीरिक ताप में हाथी के ९६° फा० (३५.५° सें०) से लेकर छोटी चिड़ियों के १०९° फा० (४२.८° से०) तक अंतर हो सकता है। मनुष्य, बंदर, खच्चर, गधा, घोड़ा, चूहा तथा हाथी का ९६°–१०१° फा० (३५.५°–३८°.३ सें०), गाय, बैल, भेड़, कुत्ता, बिल्ली, खरगोश तथा सूअर का १००°–१०३° फा० (३७.८°–३९.४° से०), टर्की, हंस, बतख, उल्लू, पेलिकन और गिद्ध का १०४°–१०६° फा० (४०°–४१.१° सें०) तथा मुर्गी, कबूतर और अनेक छोटी चिड़ियो का १०७°–१०९° फा० (४१.७°–४२°.८ से०) शारीरिक ताप होता है। इसमें प्रति दिन समयानुसार थोड़ा हेर फेर हो सकता है। बच्चों के शारीरिक ताप मे इस प्रकार का अंतर बड़ों की तुलना मे अधिक होता है।

मनुष्य के शरीर के बाह्य भाग का ताप अंतर्भाग से ७°–९° फा० (४°–५° से०) कम होता है। मलाशय का ताप औसत शारीरिक ताप से २°–४° फा० (१.१°–२.२° सें०) तक अधिक हो सकता है। भोजन के एक या दो घंटे पश्चात् तक शरीर का ताप अधिक रहता है। स्त्रियों और पुरुषों पर पर्यावरण के ताप का प्रभाव भिन्न होता है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों का शारीरिक ताप रजोधर्म से डिंबोत्सर्ग के समय तक लगभग एक डिग्री गिर जाता है।

शारीरिक तापपरिवर्तन की सीमाएँ — उष्ण रक्तवाले जीव ताप का सीमित अंतर ही सह सकते हैं। यह सीमा इस बात पर निर्भर है कि उस जंतु के शरीर मे स्वेदग्रंथियाँ है या नही। ज्वर मे मनुष्य के शरीर का उच्चतम ताप १०७° फा० (४१.७° से०) तक चढ़ जाता है, किंतु मृत्यु के पूर्व ११०° फा० (४३.३° से०) तक चढ़ता पाया गया है। मधुमेहजनित संमूर्छा मे ताप ९२° फा० (३३.३° से०) तक गिर जा सकता है। बर्फ से ढककर मूर्छित मनुष्य के शरीर का ताप ८०° फा० (२६.६° से०) के लगभग ८ दिन तक बिना हानि रखा गया है। शीत रक्तवाले प्राणियों का शारीरिक ताप हिमताप तक गिर जाने पर भी उन्हें कोई हानि नही होती, किंतु वे इसका ९८.६° फा० (३७° से०) से अधिक बढ़ना नही सह सकते। साँप, छिपकली आदि इस अवस्था में मर जाते है।

शारीरिक ताप का नियंत्रण — प्राणियों के शरीर का ताप ऊष्मा के उत्पादन तथा उसकी हानि के अंतर से बना रहता है। शीत रक्तवाले जीवों में ऊष्मोत्पादन बाह्य ताप के अनुसार बदला करता है, किंतु वह सर्वदा ही ऊष्म रक्तवाले प्राणियों से कही कम होता है। उष्ण रक्तवाले भीमकाय जीवों में ऊष्मा का उत्पादन लघुकायों से अधिक होता है, किंतु यह कायावृद्धि के अनुपात मे नही बढ़ता। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों मे ऊष्मोत्पादन कम होता है।

शरीर का ताप बनाए रखने के लिये उत्पन्न ऊष्मा का शरीर से बाहर निकलना आवश्यक है। यह क्रिया विकिरण, संवहन तथा जल के वाष्पीकरण से होती है। स्वेद-ग्रंथि-रहित जंतुओं, जैसे कुत्ते, में त्वचा से वाष्पीकरण नहीं होता है। इसकी पूर्ति वह जोर जोर से हाँफकर करता है। गाय, भैंस आदि मे भी स्वेदग्रंथियाँ बहुत कम होती हैं। इसलिये इन्हें उच्च ताप असह्य होता है। उच्च ताप का प्रभाव दुग्धोत्पादन पर भी पड़ता है। मुर्गियाँ भी गरमी नही सह पाती, किंतु भेड़ को कोई कष्ट नही होता।

ताप का नियंत्रण त्वचा तथा स्वेद द्वारा ही मुख्यत. होता है। गरमी मे त्वचा की रक्तनलियाँ फैल जाती हैं, रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है और ऊष्मा का ह्रास अधिक होता है। शीत ऋतु में यह प्रत्येक बात विपरीत होती है। गरमी या परिश्रम करने से निकले हुए स्वेद-जल की पूर्ति के लिये जल पीना आवश्यक हो जाता है। जीवों में ऊष्मा का नियंत्रण केंद्रीय तंत्रिकातंत्र द्वारा होता है। अनुमान है, तापकेंद्र अधश्चेतक ग्रंथि (hypothalamus) मे अवस्थित है।

[भ० दा० व०]

प्राणिपारिस्थितिकी (Animal Ecology) जीवाणु से लेकर विशालकाय हाथी तक प्रत्येक छोटे बडे जीवित प्राणी की एक विशिष्ट जीवनपद्धति होती है, जो उसकी बनावट, शारीरिक क्रिया तथा पर्यावरण के भौतिक, मौसमी तथा जैव कारको पर निर्भर होती है। जीवो और उनके पर्यावरण के अंतःसंबधों का अध्ययन प्राणिपारिस्थितिकी की विषयवस्तु है।

वृद्धि, उपापचय (metabolism) तथा अन्य बहुत सी क्रियाओ के लिये जीव सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करते हैं। वनस्पतियाँ इस ऊर्जा को विकीर्ण सूर्यप्रकाश से प्राप्त करती हैं और अपनी कोशिकाओं में पर्णहरित (chlorophyll) की प्रकाश-संश्लेषण-क्रिया से कार्बोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीन का संश्लेषण करती हैं। वसा, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट मे स्थित ऊर्जा प्राणियों के काम आती है, क्योकि आहार का संश्लेषण कुछ प्रोटोजोआओ (protozoa) को छोड़कर अन्य सभी प्राणी नहीं कर सकते। अतः प्राणिसमुदाय मे प्राणियो की संख्या और उनका प्रकार परिस्थितियों (environments) से सीधे नियंत्रित होता है और अप्रत्यक्ष रूप से वनस्पतियो को प्रभावित करनेवाले कारको से नियंत्रित होता है, क्योंकि प्राणी आहार, आवास और प्रजनन के लिये इन वनस्पतियों पर निर्भर करते है। वनस्पति और प्राणियो के शरीर का निर्माण करनेवाले तत्व पर्यावरण से प्राप्त होते है और जीवो के निरंतर पैदा होते और मरते रहने के कारण इन तत्वो का अबाध रूप से विनमय होता रहता है।

प्रकृति में रासायनिक चक्र

कार्बन — यह उन सभी कार्बनिक यौगिकों मे पाया जाता है जिनमे जीवद्रव्य (protoplasm) बनता है। हवा या पानी में स्थित कार्बन डाइऑक्साइड से कार्बोहाइड्रेटो का संश्लेषण होता है। ये कार्बोहाइड्रेट वसा और प्रोटीन से मिलकर ऊतक बनाते है। जब इन वनस्पतियों को वनस्पतिभक्षी प्राणी खा जाते है तब ये कार्बन के यौगिक, पाचन तथा अवशोषण के बाद, जातव जीवद्रव्य के रूप मे पुनर्गठित होते है। क्रम से यह जातव जीवद्रव्य दूसरे प्राणियो मे जाता है। प्राणियो मे भंजक उपापचय द्वारा उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड श्वसन अपशिष्ट (respiratory waste) के रूप मे निकलकर हवा या पानी मे लौट जाता है।

ऑक्सीजन — ऑक्सीकर प्रक्रम (oxidative process) के लिये प्राणी ऑक्सीजन पानी या हवा से सीधे प्राप्त करते है और फिर कार्बन से संयुक्त होकर कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में या

हाइड्रोजन से संयुक्त होकर पानी के रूप में यह वातावरण में लौटता है। वनस्पतियों द्वारा प्रयुक्त कार्बन डाइऑक्साइड से ऑक्सीजन वातावरण को लौट आता है। लेकिन सतुलित जलजीवशालाओं में देखा गया है कि वनस्पतियाँ भी कुछ ऑक्सीजन का उपयोग श्वसन में करती है।

वायुमंडलीय नाइट्रोजन — इसे मिट्टी या कुछ फलियों की मूल-ग्रंथिकाओं (root nodules) में स्थित नाइट्रीकारी जीवाणु (nitrifying bacteria) नाइट्रेट में बदल देते है। पौधे नाइट्रेटों का उपयोग करके वनस्पति प्रोटीन बनाते है। ये वनस्पति प्रोटीन की सड़न की क्रिया से मिट्टी में पहुँच जाते है, या पशुओं द्वारा खाए जाने पर जातव प्रोटीन में बदल जाते है।

अपचय (catabolism) के दौरान में, जातव प्रोटीन यूरिया प्रधान नाइट्रोजनी अपशिष्ट के रूप में विभक्त होकर प्राणियों के बाहर आ जाते है। भूमिजीवाणु और अन्य जीवाणु इस यूरिया को अमोनिया और नाइट्राइट में परिवर्तित कर देते है। जीवाणुओं की क्रिया के कारण नाइट्रोजन या तो वायु में चला जाता है, या नाइट्राइट, अथवा नाइट्रेट में परिवर्तित हो जाता है।

खनिज — वनस्पति अपनी जड़ों से कुछ अकार्बनिक पदार्थ प्राप्त करते है, जो वनस्पति के सड़न पर भूमि में वापस लौटते है। प्राणियों को आहार्य वनस्पतियों और पानी से खनिज प्राप्त होते है। प्राणियों के उत्सर्जन, विष्ठा और मरणोपरान्त शरीर के सड़ने से खनिज भूमि या पानी में लौटता है।

पानी — यह जीवों की सभी उपापचय क्रियाओं के लिये आवश्यक जीवद्रव्य का सारतत्व है। यह कोशिकाओं द्वारा अवशोषण करने या उत्सर्जन के लिये पदार्थों के वहन का काम करता है। प्राणियों की पाचनक्रिया में पानी के रासायनिक उपयोग से जल-अपघटन (hydrolysis) द्वारा मंड (starch) शर्करा में परिणत होता है और ऑक्सीकर प्रक्रमों से ऊतकों में उपापचयी पानी बनता है।

जलवायु संबंधी कारक

उष्ण कटिबंध में कुछ स्थलों तथा समुद्रों में पर्यावरण लगभग स्थिर रहता है, परन्तु पृथ्वी के विशाल विस्तार में ताप, आर्द्रता और सूर्यप्रकाश हर मौसम में बदलते रहते है। ये परिवर्तन विभिन्न प्राणियों को अनेक प्रकार से प्रभावित करते है। प्राणी की प्रत्येक जाति का जीवनचक्र वातावरण के जलवायु की दशाओं के अतिशय अनुकूल होता है।

ताप - पक्षियों और स्तनपायियों का शरीर पूर्णत ऊष्मारोधी होता है। ये नियततापी प्राणी है, अत इनपर तापपरिवर्तन का प्रभाव शायद ही होता है। परतु इनके खाद्य पदार्थ पर जाड़े की ठढक और ग्रीष्म की गरमी का असर हो सकता है।

कीटभक्षी पक्षी तथा अन्य प्राणी, जो उत्तर ध्रुवीय और शीतोष्ण प्रदेशों में गर्मियाँ बिताते है, जाड़ों में उपयुक्त आहार के लिये गरम देशों में चले आते है। ऊँचे पहाड़ों पर गरमी बितानेवाले प्राणी जाड़ों में निम्न भूमि पर चले आते है।

गिलहरी, भालू और कुछ कीटभक्षी चमगादड़ों को जब गरम मौसम के आहार सर्दियों में नहीं मिलते तब वे शीतनिष्क्रियता (hibernation) का सहारा लेते है। शीतनिष्क्रियता की स्थिति में प्राणियों का ताप गिरकर आश्रयस्थल के ताप के बराबर हो जाता है, श्वसन मद हो जाता है, उपापचय घटता है और ये उसी वसा के सहारे जीवित रहते है, जो शीतनिष्क्रियता के पूर्व उनके शरीर में सचित हो जाती है।

सरीसृप, उभयचर, मछलियाँ, कीट और अन्य अकशेरुकी (invertebrates) अनियततापी प्राणी है और इनके शरीर का ताप इनके वातावरण के ताप के लगभग बराबर होता है। वातावरण के ताप का प्रत्यक्ष प्रभाव इन प्राणियों पर पड़ता है और गरमी से इनका उपापचय, वृद्धि और क्रियाशीलता तीव्र हो जाती है तथा ये सभी ठढक से मद पड़ जाते है। इस दृष्टि से उपर्युक्त प्राणियों की प्रत्येक जाति की सीमाएं है। अधिक समय तक हिमीभवन (freezing) होने से या घोर गर्मी पड़ने से ये मर सकते है। इनके अधिकाश विकासशील अंडे और लार्वा हिमकारी मौसम में मर जाते है, जिनसे इनकी सख्या में ह्रास होता है।

सरीसृप और उभयचर गरमी के मौसम में खाते है और वृद्धि करते है। ठढ मौसम में इनके लिये पृथ्वी या जल में शीत निष्क्रियता अनिवार्य होती है, अन्यथा इसके अभाव में ये उन भूभागों में, जहाँ ताप निम्न होता है, जमकर मर जाएँ।

शुष्क प्रदेशों के कुछ साँप, जो वसंत ऋतु में दिन में घूमते फिरते है, गरमियों में असह्य गरमी से बचने के लिये रात्रिचर हो जाते है। शीतऋतु में अलवण जल की अधिकांश मछलियाँ निष्क्रिय हो जाती है। समुद्री जीवों पर जलवायु के मौसमी परिवर्तनों का आकस्मिक असर कम इसलिये होता, क्योंकि समुद्र में ताप कभी चरम स्थितियों पर नहीं पहुँचता। कुछ प्रौढ कीट तथा ताजे पानी के क्रस्टेशिया (crustaceans) और रोटिफेरा (rotifera) प्रतिरोधी अंडे देते है, जो जल में और स्थल पर हिमांक पर भी जीवित रहते है।

तापपरिवर्तन विभिन्न प्राणियों के आहार्य वनस्पतियों की वृद्धि, उत्तरजीविता एवं फलने को प्रभावित करता है। जब बहुत समय तक सर्दी पड़ती है तब घास पत्तों का विकास सीमित हो जाता है, जिससे कीट, कृतक और चरनेवाले पशुओं के लिये आहारसकट उपस्थित हो जाता है। यही सकट इनकी उत्तरजीविता की कोटि निर्धारित करता है। अनेक फलों की फसल असामयिक मौसम के कारण घट जाती है, जिससे उनपर निर्भर रहनेवाले पक्षियों को भटकना और भूखों रहना पड़ सकता है।

जल संबंध — अधिकाश जलीय परिस्थितियाँ प्राय स्थिर रहती है, विशेषकर ठढे देशों में। ऐसी स्थिति में, जाड़ों में पानी जमकर सुरक्षित रहता है और गरमियों में वाष्पीकरण द्वारा हुई हानि वर्षा से पूरी हो जाती है। गरम प्रदेशों में वर्षा और हिमपात के उतार चढाव के कारण छोटी बड़ी, सभी झीलें समय समय पर सूख जाती है, जिससे मछलियाँ, मेढक, भेक, बतख और पानी के पास दलदलों में रहनेवाले जीव मारे जाते है।

बहती हुई जलधाराओं में प्रवाह के परिवर्तन से भी उसमें रहनेवाले जीवों पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। भीषण बाढ़, और तीव्र

प्रवाह अनेक जीवों को मार डालता है। नदियों की शाखाओ मे प्रवाह अपर्याप्त होने से पानी शीघ्र गरम हो जाता है और साथ ही जलजीव स्थलीय परभक्षियो के शिकार बनते है। कुछ भेक और कीट बरसाती तालो मे प्रजनन करते है। वर्षा के कम होने, बेमौसम होने, या तालो के सूखने से छोटे भेक और कीट तथा इनके लार्वा मारे जाते है।

आर्द्रता — मिट्टी मे रहनेवाले सभी जीव आर्द्रता के जलाश के परिवर्तन से प्रभावित होते हैं। केंचुए तथा कुछ अन्य कीटो के लार्वा सतह की निकटतम मिट्टी मे रहते है और गरमियो मे सतही परतो के सूखने पर गहराइयों मे चले जाते है। कृमियों और लार्वाओ पर निर्वाह करनेवाला छछूंदर भी आवश्यकतानुसार उथली या गहरी परतो मे आया करता है।

मूल आवश्यकताएँ तथा अन्य बातें

आहार — प्राणियों की आहार की आदते एक दूसरे से भिन्न होती है। प्राण्य की प्रत्येक जाति को आहार की आदतो के अनुसार उचित आहार उचित मात्रा मे मिलना चाहिए। मनुष्य, चूहे, घरेलू मक्खियो आदि जीवों की खाद्य आदतो का सामान्यीकरण हो गया है और ये आवश्यकतानुसार अपना आहार बदल सकते है।

प्राणी की कुछ जातियो की आहार संबधी खास आदते होती है और ये जातियां वही रह सकती है जहा इनका प्रिय खाद्य मिले, जैसे ऊदबिलाव बैतवृक्ष की भीतरी छाल पर, बद गोभी की तितली का लार्वा क्रूसीफेरी (cruciferous) पौधों की पत्तियो पर और घाडामक्खी स्तनपायी के रक्त पर निर्वाह करती है। कुछ खाद्य मौसमी होते है और इनपर निर्वाह करनेवाले जीव दूसरे मौसमों मे आहार बदल देते है, या प्रसुप्त हो जाते है, प्रव्रजन करते है या फिर मर ही जाते है।

शाकाहारी प्राणी ही प्राणिसमुदाय के आधार होते है, क्योकि ये ही दूसर प्राणियो के खाद्य है। इन्हे इनसे शक्तिशाली प्राणी खा जाते है। इस प्रकार सूर्य से वनस्पतियो द्वारा प्राप्त की गई मौलिक ऊर्जा आहारशृंखला मे प्राकृतिक रूप से पारित होती है। समुदाय की सभी आहारशृंखलाओं से आहारचक्र (food cycle) बनता है। छोटे से छोटे समुदाय के आहार संबध भी बहुत जटिल होते है, जिन्हे निम्नलिखित उदाहरणो द्वारा समझा जा सकता है

(१) तालो मे जीवाणु और डायटम (diatom) खाद्य पदार्थ को संश्लेषित करते है और इसके फलस्वरूप बड़े जीव छोटे जीवो को आगे लिखे हुए क्रम से खा जाते है :

जीवाणु और डायटम → छोटे प्रोटोजोआ → बडे प्रोटोजोआ → रोटिफेरा और क्रस्टेशिया → जलीय कीट → मछलियां।
बडी मछलिया मरने और सड़ने पर जीवाणुओ का खाद्य बनती है और इस प्रकार चक्र पूरा होता है।

(२) स्थल पर आहारचक्र निम्नलिखित प्रकार का हो सकता है

भूमिखनिज, कार्बन डाइऑक्साइड और पानी → पौधे → वनस्पतिभक्षी कीट, कृंतक या चरनेवाले पशु → परभक्षी कीट या छोटे मासभक्षी प्राणी → बडे मांसभक्षी। यह चक्र बडे मांसभक्षियों की मृत्यु और सड़न से पूरा होता है।

प्रत्येक आहारशृंखला मे उत्तरवर्ती सदस्य पूर्ववर्ती सदस्य से आकार मे बड़े और कुल सख्या में कम होते है। शृखलाऐं सीधी नही होती, बल्कि इनकी अनेक शाखाएँ और वैकल्पिक कड़ियां होती है। अत. किसी सदस्य की सख्या मे होनेवाले परिवर्तनो का पूर्वानुमान नही हो सकता।

आश्रय और प्रजनन के स्थान — खुले पानी के विशाल क्षेत्र मे रहनेवाले जीव अपनी उत्कृष्ट गमनशक्ति के कारण शत्रु से बच निकलते है, परतु छोटे जलाशयो के जीव और स्थलचर, शत्रु और अपनी प्रकृति के विपरीत पर्यावरण से बचने के लिये, आश्रय या निरापद स्थान का सहारा लेते है। अनेक छोटे स्तनपायी, पक्षी, छिपकली, कीट आदि चरागाह या पेडो के कोटर जैसे आवरणो मे रहते है। समुद्री मछलिया और अकशेरुकी जीव तटीय जल मे चट्टानों या प्रवालभित्ति पर रहते है। छछूँदर, सॉप, कीट और कृमि हमेशा भूमि मे रहते है। ऐसे स्थानो पर पशु अपने स्वभाव के अनुकूल आहार प्राप्त करते और शत्रु तथा मौसम के कुप्रभावो से बचते है।

जीवों की हर जाति को प्रजननस्थान की विशेष आवश्यकता होती है, जहाँ वे बच्चे या अडे जनती है। कुछ जीव आश्रयस्थल ही पर प्रजनन कर लेते है, लेकिन पक्षी और मछलिया प्रजनन का स्थान तैयार करते है। छोटे जीव अपने उपयुक्त स्थल मे प्रजनन करते है।

अपने और अपने सतान के आहार की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये पक्षिया और स्तनपायियो मे प्रत्येक नर मादा एक सीमित क्षेत्र को अपने अधिकार मे रखते है और इस क्षेत्र मे अपनी जाति के अन्य जीव के प्रवेश को रोकते है।

स्पर्धा — आहार के लिये जाति के सभी सदस्यो मे गहरी स्पर्धा चलती है। विभिन्न जाति के प्राणियो का आहार भी एक ही होने पर तो स्पर्धा और भी विकट होती है। एक ही चारागाह टिड्डो, वनस्पतिभक्षी कीटो, कृतको, खरगोशो और घरेलू मवेशियों की आहारभूमि हो सकता है। खाद्याभाव की स्थिति मे, जीवन के लिये सघर्ष तीव्र हो उठता है। प्राणियो की जो जाति निश्चित खाद्य के अतिरिक्त अन्य पदार्थ खा सकती है वह बच रहती है, परतु जो जाति दूसरा खाद्य नही खा सकती उसका अस्तित्व सकटग्रस्त हो जाता है। फसल खराब होने पर अनेक प्राणी भूखों मरते है।

शत्रु — आहार को आदतो के अनुसार प्राणी तीन प्रकार के होते है (१) मासभक्षी, (२) शाकभक्षी और (३) अपमार्जक (scavengers)। मासभक्षी दो प्रकार के होते है (१) परभक्षी (predators) और (२) पराश्रयी (parasites)। परभक्षी अपने शिकार को मारकर खा जाते है, परन्तु पराश्रयी प्राय अपने जीवित परपोषी (host) को खाते ही रहते है। आहारशृखला मे प्रत्येक परभक्षी अपने शिकार से बडा होता है, जबकि पराश्रयी अपने परपोषी से अवश्य ही बहुत छोटा होता है।

कहा जाता है कि परभक्षी अपने शिकार की सख्या को नियन्त्रित रखते हैं। यह भी ठीक है, पर यह सबंध सतुलित होता है। यदि शिकार की जनसख्या बढती है, तो अधिक परभक्षियों का निर्वाह सभव होता है और फलस्वरूप शिकार की सख्या घटती है और परभक्षियों की बढती है। परभक्षियों के लिये, किसी सीमा तक शिकार का ह्रास होना और फिर दूसरे खाद्य की तलाश करना लाभदायक है, अन्यथा आहार के अभाव मे उनका अपना ह्रास होने लगगा।

उदाहरणार्थ लाल लोमड़ी खरगोशों, चूहों, चिड़ियो, कीटों और साथ ही फलों और बेरों पर निर्वाह करती है। ऐसे परभक्षियो की संख्या, जो स्थान और ऋतु के अनुसार आहार बदलते हैं, ध्रुवीय खरगोश या लेमिंग (lemming) पर (जिनकी संख्या घटती बढ़ती रहती है) निर्वाह करनेवाली ध्रुवीय लोमडी की अपेक्षा अधिक स्थिर रहती है।

परजीविता और प्राणियों के रोग — वाइरस (virus), जीवाणु, प्रोटोज़ोआ, पराश्रयी कृमि तथा पराश्रयी संधिपाद प्राणियो मे से प्रत्येक अपने अपने परपोषी जीवों पर जीवित रहते हैं। ये पराश्रयी प्राणी परिस्थिति के विभिन्न कारको से प्रभावित होकर अपने परपोषियो में रोग उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार अनेक रोगो को उत्पन्न करनेवाली पराश्रयिता, परपोषी प्राणियो की जनसख्या को नियंत्रित रखनेवाला बहुत बड़ा साधन है।

जूँ और जोंक जैसे पराश्रयी, जो परपोषी की त्वचा पर रहते हैं, बाह्य परजीवी (ectoparasite) होते है और परपोषी के शरीर के अंदर आंत्र या यकृत मे रहनेवाले फीताकृमि और पर्णाभ कृमि अत - परजीवी (endoparasite) होते है।

कीट और किलनी जैसे कुछ परजीवी मध्यवर्ती परपोषी का काम करते हैं और परजीवी प्रोटोज़ोआ को निश्चित परपोषियों (definitie hosts) तक पहुँचाते है। हानिकारक परजीवी रोगोत्पादक कहलाते है। परजीवी के प्राथमिक आक्रमण के बाद स्वस्थ्य हुआ परपोषी, प्राय. परजीवियों का वाहक बनकर, उनके अडो और लार्वाओ को अन्य परपोषियों मे सक्रमित करता है।

सहभोजिता (Commensalism) — इसके अंतर्गत एक जाति के प्राणी दूसरी जाति के प्राणियों के शरीर मे उन्हे बिना किसी प्रकार का लाभ या हानि पहुँचाए रहते है, जैसे (१) चूषण मत्स्य (remora) यातायात के लिये पृष्ठीय चूषण अंग द्वारा दूसरी मछलियो से चिपकता है तथा (२) केकडा आहार और रक्षा के लिये ऐनेलिड (annelid) कृमियों की नलियो मे रहता है।

सहजीविता (Simbiosis) — इसके अतर्गत प्राणियों की दो जातियाँ परस्पर लाभदायक स्थिति मे साथ साथ रहती है। दोनो जातियो का पृथक् जीवन असंभव होता है। इसका उदाहरण दीमको की एक जाति है। ये दीमकें लकडी खाती है, परन्तु इन्हे अपनी आंतो मे रहनेवाले सैलूलोज़ को पचानेवाले कशाभिक (flagellate) प्रोटोज़ोआओं पर निर्भर रहना पड़ता है। यदि प्रयोग द्वारा दीमको को उनके कशाभिको से अलग कर दिया जाय तो दीमकें भूखी मर जाएँ और कशाभिक भी परपोषी के बाहर जीवित नही रह सकते।

प्राणिनिवह (colony) **और समाज** — सभी कशेरुकी और लगभग सभी संधिपाद प्राणी और अनेक अकशेरुकी भी मुक्त रहनेवाले जीव हैं और स्वतंत्र विचरण करते है।

स्पज, कई प्रवाल, हाइड्रॉयड (hydroid) तथा कचुकित (tunicate) चट्टानों, पौधों, या अन्य प्राणियो की खोल से चिपके रहते है। कशेरुकी और अकशेरुकी दोनो वर्गों मे अनेक एकल जातियाँ है, जिनके प्रत्येक सदस्य लगभग स्वतत्र होते है और बाकी जातियाँ समूह या निवह मे रहती है। स्पज, कंचुकित और ब्राइओज़ोऐनो (Bryozoans) के सदस्य जन्म से ही जुड़े होते है। कीट, मछलियों और चिड़ियों के निवह तथा खुरदार प्राणियों के यूथ में सदस्य जन्म से अलग रहते है, पर उनके व्यवहार सामाजिक संगठनो के प्रति समान होते हैं।

बाज, मक्खीमार पक्षी, साँप और परभक्षी कीट आदि मासभक्षी अकेले रहते है, क्योंकि इससे उन्हे अपना आहार सरलता से मिलता है। ये केवल प्रजनन के लिये मादा से संपर्क करते है। जाड़ों में रोबिन और बतख चारा ढूँढने और निरापद रूप से सोने के लिये साथ रहते है।

शीतनिष्क्रियता के समय चमगादड़, रैटल साँप तथा सोनपाँखी गुबरैला (lady bird beetle) को एकत्र रहने मे सुविधा होती है। मेढक, भेक, जलमुर्गी (gull) तथा फरदार सील मछलियाँ आदि यूथचर सगम के समय समूह मे रहते है।

जहाँ भी एक जाति के बहुत से सदस्य मिल जुलकर रहते हैं और एक दूसरे के हितों की रक्षा करते है वहाँ सामाजिक संगठन पाए जाते हैं। अनेक कीटगण मे सामाजिक आदतो का स्वतंत्र विकास हुआ है, जिसका सर्वाधिक उन्नत रूप हीमेनॉप्टेरा (Hymenoptera) मे है। जन्म, कायिकी (physiology) और आदतो की दृष्टि से इनकी अनेक जातियाँ है, लेकिन किसी जाति का स्वतत्र अस्तित्व सभव नही।

जनसंख्या — पर्यावरण की परिस्थितियो के कारण प्राणियों की जनसख्या मे उतार चढाव होते रहते है। हर जाति की जनसख्या हर साल और हर मौसम मे बदलती है।

अनुकूलन (Adaptations) — परिस्थिति के अनुकूल किसी खास पद्धति का जीवनयापन करने के लिये प्राणी की शरीररचना, शारीरिक क्रिया और आदत होती है। मधुमक्खी में अनेक अनुकूलन है, जैसे मधुसंचय के लिये मुँह मे चूषण अग और शक्कर पर निर्वाह करने की क्षमता। शरीर के बाल और कूर्च (brushes) पराग सचय मे और मोम को आहार और आश्रय के रूप मे ढालने के लिये उपयोगी होते है। मधुमक्खियो की तीन जातियो की तीन विशेष प्रकार की आदतें होती हैं।

मनुष्य — मनुष्य व्यापक जाति है, जो विभिन्न परिस्थितियो मे रह सकती है।

चूहा — अपनी विशिष्टताओ के बावजूद यह कृंतक पर्याप्त व्यापक है और जलवायु, आश्रय और आहार की विविधताओं मे रह सकता है।

छछूँदर — यह जमीन मे रहने के लिये अनुकूलित होता है। इसके दात पतले होते है और कृमियो को पकडने के लिये उपयुक्त होते है। इसके नेत्र आवरणयुक्त, कान सिकुडे हुए, आगे के पैर छोटे, मिट्टी खोदने और मिट्टी मे चलने फिरने के लिये हथेलियाँ बड़ी और पंजे भारी होते है। शरीर पर छोटा, प्रतिवर्त्य (reversible) फर (fur) होता है, जो आगे या पीछे चलने से अव्यवस्थित नहीं होता।

विभिन्न स्तनपायियों के दाँतो मे उनके विभिन्न आहारों के लिये अनुकूल रूपातर होते है। पक्षियो की चोच भी अनुकूलित होती है। बहुत से परजीवी किसी एक ही परपोषी जाति मे रहते हैं और अन्य अपने जीवनचक्र की पूर्ति के लिये मलेरिया परजीवी और यकृत

पर्णाभ (liver flukes) के समान दो विशिष्ट परपोषियों की अपेक्षा करते है ।

अनुकूलन का विकिरण — यह ऑस्ट्रेलिया के धानी प्राणियों (Marsupialia) के एक गण मे पाया जाता है और इसका अनेक जातियो मे विकिरण हुआ है जो दौड़ती, कूदती, पेड़ो पर चढती, बिल बनाती और उड़ती हैं । इनमे से कुछ निम्नलिखित है :

पेरामेलीज़ (Perameles) — यह स्थलीय और बिल बनाने-वाली है ।

फैलेंजर (Phalanger) — यह वृक्षवासी है ।

पिटॉरस (Pitaurus) — यह उड़नेवाले प्राणियो की जाति है ।

मैक्रोपस (Macropus) — यह स्थलीय है ।

डेंड्रोलागस (Dendrolagus) — यह वृक्षवासी है ।

विभिन्न वर्गों के प्राणियों के सर्वसामान्य आवास मे रहने लगने पर भी अनुकूलन का विकिरण होता है ।

समुद्रवासी कशेरुकियो का शरीर सुप्रवाही होता है और उनके पख (fin) तैरने की सुविधा के लिये डाडे जैसे होते है ।

कई अनुकूली गुण प्राणियो के लिये रक्षात्मक होते है, जैसे आर्माडिलो (Armadillo), कछुआ और मोलस्क के खोल, साही के पिच्छाक्ष, मधुमक्खियां तथा ततैयों के डक और विषैले सांपो का विष ।

प्राणियों के रंग — प्राणियो के चारो ओर व्याप्त वातावरण से मेल खाता हुआ उनका रग एक और अनुकूलन है, जिससे शत्रु उन्हें पहचान नहीं पाते । उत्तर कटिबंधो मे जब बर्फ पडती है तब वहा के शशक और लकडबग्घे सफेद आवरणधारी हो जाते है । कई समुद्री अकशेरुकी प्राणियो और मछलियो के लार्वा पारदर्शी होते है । पेडों की छाल पर रहनेवाले कीड़ो का रग पृष्ठभूमि से मिलता जुलता होता है ।

भयसूचक रंग (Warning Colouration) — कुछ तितलियों और कीटों का रग भयसूचक होता है, जिससे शत्रु इन्हे अरुचिकर समझ लेते है । तेज डंकवाली तितलियों और ततैयो का रंग गाढा काला और पीला होता है ।

अनुहरण (Mimicry) — कुछ तितलियाँ, जो सुस्वादु होती है और हानिकारक नही होती, वे हानिकारक तितलियो की नकल उतारती ह । बैसिलार्किया आर्किपस या वाइसराय तितली (Basilarchia archippus Or viceroy butterfly) तितली अरुचिकर डैनॉस प्लेक्सिपस (Danaus plexippus) की नकल उतारती है ।

रक्षात्मक समानता — यह समानता वातावरण मे स्थित किसी पदार्थ से प्राणी के रंग और आकार दोनो मे होती है । ज्योमेट्रिक इल्ली (geometric caterpillar) जब पेड़ पर बैठी होती है, तब वह उस पेड़ की टहनी जैसी दीखती है । भारत में कैलिमा (kallema) पतग जब पंख समेट कर बैठते है, तब सूखे पत्ते के समान लगते है । कुछ तृणकीट (walking sticks) सूखी या हरी टहनियो जैसे और बाकी हरे पत्तों जैसे होते है ।

पहचान के चिह्न — कुछ प्राणी अपने शरीर के चिह्नो से अपनी तरह के प्राणियों को खतरे से आगाह करते हैं । जंका (Junca) और घासस्थली के चंडूल (lark) के पूँछ के पर श्वेत होते हैं । भय की स्थिति मे ये इस प्रकार हिलते डुलते हैं कि अन्य पक्षियों को भयावह स्थिति का संकेत प्राप्त हो जाता है । [रा० चं० स०]

प्राणियों और वनस्पतियों का देशीकरण (Naturalization of Plants and Animals) इस पद का व्यापक रूप से प्रयोग प्राणियो और वनस्पतियो को उनके मूल निवास के समकक्ष, या बिलकुल भिन्न जलवायुवाले दूसरे प्रदेश में, कृत्रिम या प्राकृतिक तरीके से ले जाकर, सफलतापूर्वक उनका विस्तार किए जाने की पद्धति के लिये किया जाता है । व्यापक अर्थ मे देशीकरण पारिस्थितिक अनुकूलन ही है, किंतु सीमित अर्थ मे देशीकरण का तात्पर्य उस क्रिया से है जिसके द्वारा जीवधारी का, अपने ही अथवा अन्य प्रदेश मे, इस प्रकार परिवर्तन किया जाता है जिससे वह वहाँ की जलवायु की नई दशाओं को सहन करने की क्षमता प्राप्त कर ले और वहाँ के अनुकूल बन जाय । इस अनुकूलता का प्रतिपादन कुछ लोग लामार्क (Lamarck) और कुछ डार्विन (Darwin) के सिद्धात के अनुसार करते है ।

देशीकरण का प्रभाव — जब किसी प्राणी या वनस्पति का किसी नवीन और भिन्न देश मे पदार्पण होता है और उसका देशीकरण किया जाता है तब उसमें निम्नलिखित परिवर्तन की संभावनाएँ हो सकती है

(१) किसी विशेष क्षेत्र मे प्राणी की सख्या मे स्पष्ट तीव्र वृद्धि होती है, जैसा ऑस्ट्रेलिया मे खरगोशों तथा न्यूजीलैंड मे हरित चटखों (green finches) की संख्या मे । तीव्र वृद्धि के दो कारण हो सकते हैं : (क) अनुकूलन परिस्थितियाँ, जैसे भोजन की प्रचुरता और उससे प्रजनन की गति मे वृद्धि तथा (ख) नए प्रदेश मे शत्रुओ और अडचनो की अनुपस्थिति ।

(२) नए प्रदेश मे व्यक्ति की माप और शक्ति मे वृद्धि ।

(३) आवागमन के कारण विभिन्न किस्म के प्राणियो की संख्या मे वृद्धि और कुछ विलक्षण जातियो की उत्तरजीविता (survival) ।

(४) प्राणी साधारणतया रूढिवादी होते है, पर उनमे कभी कभी मद गति से परिवर्तन होते भी देखे जाते है ।

(५) कुछ जीव नए देश मे बहुत शीघ्र ही वहाँ की जलवायु के अभ्यस्त हो जाते है और उनमे कोई बाह्य परिवर्तन नही होता, जैसा घोडो, खरगोशो, चूहो, गौरैयों और मुर्गियो मे देखा जाता है, पर कुछ, जैसे तिब्बती याक, कम ऊँचाई के क्षेत्र मे नही पनपते । पशुओं के देशीकरण की सफलता बहुत कुछ उनकी रचनात्मक विलक्षणताओ पर निर्भर करती है ।

(६) जब वातावरण, भोजन अथवा प्रकृति मे किसी प्रकार के प्रत्यक्ष परिवर्तन के फलस्वरूप जैविक या आंगिक परिवर्तन ऐसा जड पकड लेता है कि उन परिस्थितियो के, जिनके कारण परिवर्तन हुए, समाप्त हो जाने पर भी परिवर्तन दृढ बना ही रहता है, तब ऐसे परिवर्तन को रूपातरण (modification) या व्यक्तिगत गुण (acquired character) का उपार्जन कहते है ।

स्वदेशीय एवं आगंतुक प्राणियों की परस्पर प्रतिक्रिया — जब कोई प्राणी एक देश से दूसरे देश मे पहुँचता है, तब यह आगतुक पहले से रहनेवाले देशी प्राणियो, अथवा पूर्वदेशीकृत प्राणियों का विनाश

कर देता है, जैसे जमैका में रहनेवाले बक चूहों (crane rats) और विदेश से आगत जहाजो के चूहों (alien shiprats) का समूल नाश आगंतुक नेवले ने कर दिया। यह नाश दो प्रकार से होता है : (१) आगनुक प्राणियो द्वारा पूर्व के प्राणियो को खाकर, अथवा (२) अपनी वंशवृद्धि कर।

नए देश मे नए जानवरों के साथ साथ उनके परजीवियो (parasites) का प्रवेश भी हो सकता है, जैसे चूहो के साथ प्लेग के पिस्सू का और सूअरों के साथ, मनुष्यो मे ट्राइकिनोसिस (Trichinosis) की बीमारी उत्पन्न करनेवाले, ट्राइकिनेला स्पाइरैलिस (Trichinella spiralis) का प्रवेश।

न्यूज़ीलैंड में प्राणियों के देशीकरण का उदाहरण — यह संदेहात्मक है कि दो जातियों के चमगादड़ों को छोड़कर, न्यूजीलैंड का कोई भी स्तनी प्राणी स्वदेशोत्पन्न है। न्यूजीलैंड मे ४८ जातियां प्रविष्ट की गई, जिनमे ४४ जातियाँ जान बूझकर और चार अनजाने मे। इन चार अनजाने प्राणियों मे मूषक (mouse) की एक और चूहो (rats) की तीन जातियाँ हैं। यहां जब यूरोप के लोगो का बसना प्रारंभ हुआ, तब चूहो की इन तीनो जातियो में से एक जाति मस एक्जलैंस (Mus exulans) समाप्त हो गई तथा ४८ जातियो में से २५ जातियां भली भाँति स्थापित हो गई।

कैप्टन कुक के पदार्पण की तारीख से न्यूजीलैंड मे १३० जाति के पक्षियो का प्रवेश जान बूझकर कराया गया है। २४ जातियाँ वास्तव में जंगली हो गई है, जिनमे से वन्य हंस (mallard), जंगली मुर्गी (pheasant), कबूतर, चकवा (skylark), कस्तूरिका (thrush), कस्तूरक (black bird), तृणाश्चटक (hedge sparrow), रूक (rook), सारिका (starling), भारतीय मैना (Indian mynah), गौरैया, नदी चटक (chaffinch), स्वर्ण चटक (goldfinch), हरित चटक और पीली कलगीवाली चिड़िया (yellow hammer) है। दूसरी तरफ १८६८ ई० से अब तक नौ जाति की चिड़ियां या तो विरल हो गई है या विलुप्त हो चुकी है, जैसे देशी कौआ, देशी कस्तूरिका, देशी तीतर (native quail), श्वेत बक (white heron) तथा अन्य पक्षी। ये किसी समय बहुत थे और अब उन स्थानों से खदेड़ दिए गए है, जहा अधिक आबादी नहीं है। टामसन लिखते हैं 'ऐसा अवश्य नहीं सोचना चाहिए कि केवल आगंतुक जानवरों के ही कारण ऐसा प्रभाव पड़ा है, यद्यपि चूहे, बिल्लियां, खरगोश, सूअर, मवेशी, तथा चिड़ियाँ अपने निवासक्षेत्र की सीमाओं को पारकर दूसरे क्षेत्र मे बहुत दूर तक घुस गए है। निवास तथा प्रजनन स्थानों मे प्रत्यक्ष बाधा और भोजन की पूर्ति मे हस्तक्षेप के कारण, उन मूलदेशीय प्राणियों का विध्वंस और ह्रास हुआ है।'

जो बाते चिड़ियों के लिए लागू होती है, वे ही बाते निम्न कोटि के प्राणियो, सरीसृपो से लेकर कीटो तक के लिये लागू होती है। किंतु पुन इसका कारण आगंतुकों की प्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा मे न ढूंढकर मानव हस्तक्षेपो मे ढूँढना होगा। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि सन् १८७० के बाद मे सरीसृप से लेकर कीटो तक की संख्या मे असाधारण वृद्धि हुई है। इस प्रकार दक्षिणी द्वीप मे बेलबर्ड (bellbird) अधिक संख्या मे हो गए है, यद्यपि उत्तरी द्वीप में ये विरल हैं।

जलवायु में परिवर्तन — जब देश के जलवायु मे तीव्र परिवर्तन होते है, जैसे शुष्क जलवायु का आर्द्र जलवायु मे, या उष्ण जलवायु शीत जलवायु मे परिवर्तित हो जाता है, तब जैविक विकास मे निम्नलिखित परिवर्तन होते है :

(१) चरम अवस्था मे, जैसे यदि कोई देश हिमाच्छादित हो जाय, तो वहा से जीव का लोप हो सकता है, जैसा हिमनद कल्प (Glacial period) मे ग्रेट ब्रिटेन के अधिकांश भागों मे हुआ।

(२) कम उग्र (severe) अवस्था मे, जैसे क्रमिक प्रतिकूल अवस्था उत्पन्न होने पर वरण (selection) पर प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार शुष्क अवस्था का आगमन निकट होने पर, मरुद्भिदी पौधे (xerophytic plants) जीवित रहते है और शीघ्र फूलने और फलनेवाले पौधे जाड़े मे प्रकंद (rhizome) और शल्क कंद (bulb) के रूप मे जमीन के अंदर चले जाते है। जब वर्ष मे अनेक महीनो तक पृथ्वी हिमाच्छादित रहेगी, तब भी उपर्युक्त पौधे जीवित रहेंगे। जीवों के लिये शुष्क होनेवाले देशो मे ग्रीष्मनिष्क्रियता (aestivation), और ठंढे देशो मे शीतनिष्क्रियता (hybernation), उपयोगी होती है। जलवायु का परिवर्तन वनस्पति और प्राणियो के जीवन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित कर सकता है।

(३) कुछ प्राणी, जो कुछ दूर तक चल सकते है और तीव्रगामी है, जलवायु परिवर्तन के कारण अपना निवास क्षेत्र बदल देते है, जैसे जब यूरोप मे दक्षिण की ओर हिमनदकल्प का प्रसार हुआ, तब बहुत से उत्तरी स्तनी इसकी लपेट मे आ गए। अतएव लेमिंग और आर्कटिक लोमड़ी के अवशेष सुदूर दक्षिण तक पाए जाते है। जब मृदु जलवायु (milder climate) प्रारंभ हुई और हिमस्तर पिघलने लगा, तब आर्कटिक प्ररूप के वंशज, जैसे रेनडियर और श्वेत लोमड़ियाँ, उत्तर की ओर चली गईं।

(४) किसी देश की जलवायु का परिवर्तन, प्राणियों के स्वभाव मे महत्वपूर्ण परिवर्तन ला देता है और जीव के जीवनचक्र को भी निर्धारित करने मे महत्वपूर्ण भाग लेता है। जलवायु परिवर्तन के कारण प्राणी की उपापचयी क्रिया (metabolic) की गति मंद या तीव्र हो सकती है, अथवा जीवन की किसी विशेष अवस्था (phases) मे परिवर्तन हो सकता है। स्तनी प्राणियो मे, कम से कम अंतःस्रावी ग्रंथि (endocrine gland) अथवा ग्रंथियो की स्राविक क्रियाशीलता, मे भिन्नता उत्पन्न हो सकती है।

(५) स्तनी मे गर्भकाल एवं प्रसव की ऋतु, पक्षियों मे देशांतरण की आवर्तिता, शीतनिष्क्रियता, विश्राम, शीतनिद्रा (coma), मूर्छा इत्यादि का कारण जलवायु परिवर्तन हो सकता है। आर्द्रता बढ़ने से रसीले पौधों की उत्पत्ति होती है फिर इसके फलस्वरूप कोंपल चरनेवाले प्राणियो की वृद्धि होती है, क्योंकि जंगल का विस्तार होता है तो जीवो को आश्रय मिलता है। आर्द्रता की थोड़ी कमी से घास मे वृद्धि होती है और उसके कारण घास चरनेवाले जानवरों मे वृद्धि होती है। शुष्कता से जंगल की सीमा मे संकुचन होता है

और इस प्रकार प्राणी नए आश्रय (haunts) की खोज के लिये प्रेरित होता है ।

देशीकरण की विधि — जब किसी बहुमूल्य वनस्पति या जानवर का बिलकुल नए और भिन्न प्रकार की जलवायुवाले देश मे देशीकरण के लिये आयात करना हो, तब आयातकर्ता को चाहिए कि वह पशु या वनस्पति की किसी ऐसी किस्म को चुने जो उस जलवायु के अनुकूल प्रतीत हो। गुण की विभिन्नता का भी ध्यान रहना चाहिए, क्योकि कुछ मूलवृंत, या पशु वंश (stocks), अन्य की अपेक्षा अधिक रूढ़ होते हैं। होनहार मूलवृंत या पशु का किसी माध्यमिक स्थान में आयात करना उपयोगी होगा। डार्विन ने प्रेक्षित किया कि इंग्लैंड में पाली गई भेड़ो की अपेक्षा, केप ऑव गुडहोप की मेरीनो नस्ल की भेडे भारत मे भली भांति वृद्धि करती है। उन अवस्थाओं मे जहाँ नए देश में पशु या वनस्पति की वृद्धि मे सफलता किसी विशेष गुण, जैसे मोटे फर या रोएँदार पत्तियों पर निर्भर करती है, उनका वरण ऐसे परिवर्त (variants) मे किया जाय जिनमे वांछित दिशा मे भिन्नता की प्रवृत्ति भली भाँति जान पडे।

विलिस (Willis) ने देखा कि बहुत असंगत प्रयास करने के कारण मनुष्य देशीकरण मे असफल रहा है। असफलताओ से शिक्षा लेकर मनुष्य क्रमिक परिवर्तन का प्रयास कर रहा है, जैसा उसने लाइबिरिया की कॉफी (Coffee) को जावा मे उगाने मे किया है। कॉफी के प्रत्येक क्रमिक पीढ़ी के बीज को लेकर, प्रत्येक बार कुछ अधिक गजों की ऊँचाई पर बोकर, जिस प्राकृतिक अवस्था के अनुरूप बीज था उससे भी बहुत अधिक ऊँचाई पर भली भांति विकसित होने के योग्य बना दिया गया है। लका के वानस्पतिक उपवन मे यूरोप से लाया गया सुंदर साइपीरस पपायरस (Cyperus papyrus) के बीज को उगाने का प्रयास निष्फल हो गया, किंतु भारत के सहारनपुर से लाए गए बीज के उगने का प्रयास सफल हो गया। इसका निष्कर्ष यह है कि मनुष्य को बहुत अधिक शीघ्रता नही करनी चाहिए और प्राकृतिक प्रक्रियाओं से सबक लेकर, लबी अवधि मे धीरे धीरे, क्रम से देशीकरण करना चाहिए। [भू० ना० प्र०]

प्राणियों का जातिवृत्त (Animal Phylogeny)

प्राणियो के जातिवृत्त के द्वारा हमे प्राणियों की उत्पत्ति एव उनके विकास का ज्ञान होता है। इसका मुख्य ध्येय प्राणियो के प्रत्येक स्तर के विकास को विचार मे रखते हुए, समस्त प्राणियो के पारस्परिक संबंध का सामूहिक रूप से परिचय प्राप्त करना है। विश्व मे प्रथम जीवधारी अत्यंत सरल तथा सूक्ष्म रहा होगा। इस सरल जीवधारी से विकास द्वारा, क्रमश. विभिन्न प्रकार के जटिल प्राणियो की उत्पत्ति हुई और इस प्रकार संसार के सभी प्राणी एक दूसरे से संबंधित हैं। प्राणियों का जातिवृत्त विकासवाद के इन्हीं सिद्धातों की सत्यता पर निर्भर रहता है और इसी कारण इनके अध्ययन मे प्रधानत. दो प्रकार के उल्लेखनीय प्रमाणों से सहायता मिलती है :

जीवाश्मीय प्रमाण (Palaeontological Evidences) — भूमि की लाखो वर्ष पुरानी स्तरीभूत चट्टानो (stratified rocks) से प्राचीन काल के प्राणियों के जो चिह्न अथवा जीवाश्म (fossils) अबतक प्राप्त हुए हैं, वे प्राणियों मे समयानुसार होनेवाले अतरो के प्रतीक हैं। वे उनके जातिवृत्त के अकाट्य तथा सबसे विश्वसनीय प्रमाण हैं। निस्संदेह प्राणियो के जातिवृत्त का पूर्ण ज्ञान जीवाश्मों द्वारा ही हो सकता है। वैज्ञानिकों ने घोडे, हाथी, ऊँट तथा अन्य कुछ जीवों की उत्पत्ति, विकास तथा वशावली की, इन्ही प्रमाणो द्वारा, पूर्णतया खोज भी कर ली है। परंतु इस प्रकार के प्रमाण मिलने मे अनेकों कठिनाइयाँ हैं। प्रथम तो जीवाश्मों का पता लगना एवं उनका समूचे रूप मे मिल जाना एक संयोग की बात ही नही, वरन् अत्यंत दुर्लभ भी है। दूसरे, प्राणियो के केवल कडे भाग ही भूमि के स्तरो मे जीवाश्मो के रूप मे सुरक्षित हो सकते हैं। यही कारण है कि अस्थिरहित प्राणियो के जीवाश्म प्राय नही पाए जाते। फलस्वरूप कशेरुक प्राणियो का, जिनका उद्गम सभवत. अकशेरुक (Invertebrata) से हुआ होगा, प्रारंभिक जातिवृत्तों का जीवाश्मो के द्वारा पूर्णरूप से पता लगाना सभव नही। अतएव प्राणियों के विकास के जीवाश्मीय प्रमाण के अपूर्ण होने के कारण बहुधा उनके आकारिकी (morphology) सबंधी प्रमाणों का आश्रय लेना आवश्यक होता है।

आकृतिक प्रमाण (Morphological Evidences) — शारीरिक रचना तथा भ्रूण तत्वो के तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि सबंधित प्राणियो के अगो मे अनेक आकृतिक समरूपताएँ होती है। इन समरूपताओ की न्यूनता तथा अधिकता के अनुसार प्राणियो की पारस्परिक जातीय निकटता का निर्णय किया जा सकता है। विशेषकर प्राणियो की भ्रूण अवस्था की समानताएँ अधिक महत्वपूर्ण होती है। उदाहरणार्थ, स्तनधारियों तथा पक्षियों के भ्रूणों मे मत्स्य की भाँति गलफडो का होना इस बात का प्रतीक है कि इन दोनो श्रेणियों के जीवो की उत्पत्ति तथा विकास मत्स्य पूर्वजों से ही हुआ होगा। परंतु ध्यान रहे, कुछ प्राणियो मे अंगों की समानता वातावरण की अनुकूलता से भी हो जाती है, जिसको समातर विकास कहते हैं। इस प्रकार की समानता उनकी वशावली तथा जातिवृत्त पर कोई प्रकाश नही डालती। अत. आकार की समानताओ के आधार पर प्राणियो के सबध का निर्णय करते समय इस बात का विचार करना परम आवश्यक है।

उपर्युक्त कठिनाइयो के कारण बहुधा प्राणिविकास तथा जातिवृत्त विषयक जो निष्कर्ष निकलते हैं, वे अस्थायी ही होते हैं। परतु कभी इस प्रकार के दृढ़ प्रमाण भी मिलते है जिनके निष्कर्ष इतने अकाट्य है कि संभवत: उनमे आगे कोई परिवर्तन सुविधा से नही हो सकता। इन सब बातो को दृष्टि मे रखते हुए प्राणियो को दो मुख्य भागो मे विभाजित किया जा सकता है, कशेरुकी (Vertebrata) तथा अकशेरुकी (Invertebrata)। सर्वप्रथम कशेरुकी भाग के जातिवृत्त पर आगे विचार किया जायगा और उन्ही सिद्धातो को प्रयोग में लाते हुए अन्य प्राणियो के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जायगी।

कशेरुकी — इस भाग का सर्वेक्षण करने तथा उसके जीवाश्म का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कशेरुकी का विकास एक विशेष क्रमानुसार हुआ। सर्वप्रथम बिना जबडेवाले (Agnotha) प्राणी, जैसे लैंप्रे (lamprey) एवं मिक्सीन (myxine) उत्पन्न हुए। उसके उपरात मत्स्य श्रेणी एवं उभयचर श्रेणी के प्राणियों की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् सरीसृप (reptiles) श्रेणी और अत मे पक्षी तथा

स्तनधारी श्रेणी का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे जीवाश्म भी पाए गए हैं जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि एक श्रेणी का विकास दूसरी श्रेणी से हुआ। इसलिये यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि विभिन्न श्रेणियाँ एक दूसरे से भली भाँति संबंधित हैं। आर्किआप्टेरिक्स (Archaeopteryx) के जीवाश्म के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा। इसमें, पक्षी होते हुए भी जबड़ों में दाँत, अँगुलियों में नख तथा लंबी कशेरुक युक्त पूँछ विद्यमान है। ये सरीसृप से समानता प्रदर्शित करते हैं। इसमें प्रत्यक्ष है कि कदाचित् पक्षी श्रेणी का विकास सरीसृप से हुआ होगा। इसी प्रकार साइनागनैथस (eynognathus) का जीवाश्म स्तनधारियों तथा सरीसृपों में संबंध स्थापित करता है। यह भी ज्ञात होता है कि एक श्रेणी के प्राणियों में आपस में बहुत कम अंतर पाया जाता है, परंतु विभिन्न श्रेणियों के प्राणियों में एक दूसरे से पर्याप्त अंतर होता है। इसमें यह प्रत्यक्ष है कि विभिन्न श्रेणियों के बीच निःसंदेह अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए होंगे, जिनके कारण उनकी संरचना में धीरे धीरे इतने अधिक अंतर हो गए कि वे एक दूसरे से बिलकुल पृथक् प्रतीत होने लगे, जैसे मत्स्य श्रेणी के प्राणी जलीय तथा मीनपक्षधारी होते हैं और गलफड़ों द्वारा श्वसन करते हैं। इसके विपरीत मत्स्य श्रेणी से विकसित उभयचर में मीनपक्ष के स्थान पर पाद होते हैं। इसी प्रकार पक्षी श्रेणी के पंख तथा डैने एवं स्तनधारियों के स्तन और रोम किसी अन्य श्रेणी में नहीं पाए जाते। इसके अतिरिक्त प्रत्येक शारीरिक श्रेणी के अंतर्गत भी, वातावरण की असमानता के कारण थोड़े बहुत परिवर्तन होने से, उस श्रेणी के प्राणियों में निरंतर भिन्नता होती गई। इस प्रकार प्रत्येक श्रेणी में कई प्रकार के गण बन गए तत्पश्चात् इन गणों में भी रहन सहन की भिन्नता के कारण अनेक छोटे छोटे उपगणों तथा कुलों का निर्माण हुआ। उदाहरणार्थ, स्तनधारियों की उत्पत्ति कदाचित् प्राचीन काल में एक छोटे से कुत्ते के समान प्राणी से हुई। इसके उपरांत कुछ स्तनधारी वनों में शाकाहारी, कुछ मांसाहारी, कुछ चींटीखोर तथा कुछ कीटभक्षी होकर अपना जीवननिर्वाह करने लगे। साथ ही कुछ स्तनधारी जल में तथा कुछ वायु में भ्रमण की चेष्टा करने लगे। अतएव वातावरण के अनुकूल अनेक शारीरिक संरचनाओं में अंतर होते गए और वे अंगूलेटा (Ungulata), मांसाहारीगण (Carnivora) कीटाहारीगण (Insectivora), इडेंटेटा (Edentata), तिमिगण, (Cetacea) तथा चमगादड़गण (Chiroptera) इत्यादि गणों में विभाजित हो गए। फिर प्रत्येक गण में अन्य और भी छोटे छोटे उपगण होते चले गए और विभिन्न प्रकार के स्तनियों का विकास हुआ। अतएव उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर समस्त कशेरुकी प्राणियों के विकास एवं उनके जातिवृत्त को एक वृक्ष के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

अकशेरुकी — इनकी संरचना में कशेरुकी की भाँति कोई मूल समानता नहीं मिलती है। इसके अतिरिक्त, इनके जीवाश्मों का भी अभाव है। इस कारण यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित नहीं किया जा सकता है कि अकशेरुकी के विभिन्न संघों (phyla) का विकास एक वृक्ष की शाखा से हुआ है, परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि ये अनेक स्वतंत्र शाखाओं द्वारा विकसित हुए हैं। कुछ वर्ग तो एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि उनके पारस्परिक संबंध के विषय में कोई भी अनुमान लगाना अत्यंत कठिन है। जहाँ तक विभिन्न वर्गों का प्रश्न है, उनके अंतर्गत वातावरण की अनुकूलता के अनुसार स्तनधारियों के समान कुछ नवीन संरचनाओं का निर्माण हुआ और वे विभिन्न गणों में विभाजित हो गए, जैसा गैस्ट्रोपोडा अथवा इनसेक्टा श्रेणियों के अध्ययन से स्पष्ट है। इसको अनुकूलित विकिरणता (Adaptive radiation) कहते हैं। परंतु जहाँ तक वर्गों के पारस्परिक संबंध का प्रश्न है, पूर्णतया प्रमाण न प्राप्त होने के कारण यही अनुमान लगाया जाता है कि कदाचित अकशेरुकी के विभिन्न वर्ग भी कशेरुकी की भाँति एक दूसरे से अवश्य ही संबंधित रहे होंगे और उनका जातिवृत्त भी एक वृक्ष के ही समान विकसित है। अकशेरुकी के जातिवृत्त के अध्ययन में सबसे जटिल समस्या एक संघ से दूसरे वर्ग के पारस्परिक संबंध का पता लगाने की है। चूँकि अकशेरुकी में उपरोक्त कथनानुसार जीवाश्मविज्ञान (Paleontology) से बिलकुल सहायता नहीं मिल पाती है, इसलिये उनके प्रौढ़ अथवा भ्रूण अवस्था की शारीरिक रचना के प्रमाणों का आश्रय लेना पड़ता है। परंतु अनेक संघों में यह देखा गया है कि प्रौढ़ प्राणियों की संरचना उनके भ्रूणविकास में बिलकुल परिवर्तित हो जाती है, इसलिये उनको भ्रूण अवस्थाओं पर निर्भर करना पड़ता है। भ्रूणों के प्रमाण द्वारा जीवजगत् के विकास का जो अभिलेखन किया गया है, वह इस प्रकार है :

अकशेरुक जगत् का संक्षिप्त अध्ययन करने से सर्वप्रथम यह विदित होता है कि बहुकोशिक प्राणियों का विकास एककोशिकीय जीवधारियों से हुआ है। एककोशिक प्राणियों की एक शाखा, जिसको पाराजोआ (Parazoa) कहते हैं और जिसमें स्पंज इत्यादि आते हैं, अलग हो गई तथा मुख्य शाखा द्वारा मेटाजोआ (Metazoa) प्राणियों का विकास हुआ। ये मेटाजोआ प्राणी प्रौढ़ संरचना के अनुसार दो भागों में विभाजित हो गए (१) द्विभित्ति प्राणी (diploblastic), जिनके शरीर दो सतहों, बाह्यत्वचा (ectoderm) तथा अंतस्त्वचा (endoderm), के बने हैं, जैसे सीलेंटरेटा (Coelenterata) प्राणी तथा (२) शेष सब तीन भित्ति (triploblastic) वाले प्राणी, जिनके शरीर में तीन सतहें (बाह्यत्वचा, अंतस्त्वचा तथा मध्यजनस्तर) होती हैं। तीन भित्तिवाले प्राणियों में कुछ देहगुहारहित (acoelomate) तथा अधिकांश देहगुहायुक्त (coelomate) होते हैं। इसके बाद, केवल ऐनेलिडा (Annelida) तथा आर्थ्रोपोडा (Arthropda) को छोड़कर, प्रौढ़ अवस्था द्वारा उनके संबंध स्थापित करने में तनिक भी सहायता नहीं मिलती है। इसी कारण शेष निष्कर्ष भ्रूण अवस्था के अध्ययन के ऊपर निर्भर किए गए हैं। अतएव तीन भित्तिवाले संघों का विकास उनके आकार के अनुसार दो प्रधान शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है — ट्रोकोफोरेलिया (Trochophoralia), जिनमें ट्रोकोफोर (Trochophore) के समान भ्रूण होता है, तथा प्लुटेलिया (Pleutalia), जिनमें प्लुटियास (pluteas) नामक आकार के भ्रूण पाए जाते हैं। संभवत ट्रोकोफोरेलिया वाली शाखा से अनेक संघ, जैसे मोलस्का (Mollusca), आर्थ्रोपोडा, ऐनेलिडा, इंडोप्रोक्टा (Endoprocta) इत्यादि तथा दूसरी शाखा प्लुटेलिया से एकाइनोडर्मेटा एवं संभवत कॉर्डाटा (Chordata) का उद्गम तथा विकास हुआ। इस प्रकार निःसंदेह समस्त प्राणियों की

उत्पत्ति और विकास हुआ और संभवत. यह है प्राणिजगत् का संक्षिप्त आतिवृत्त, जिसको संक्षिप्त रूप से एक वृक्ष के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। [ह० श० चौ०]

प्राणिविज्ञान (Zoology) विज्ञान की एक शाखा है, जिसमें प्राणियो या जतुओ का अध्ययन होता है। मनुष्य भी एक प्राणी है। प्राणी की परिभाषा कई प्रकार से की गई है। कुछ लोग प्राणी ऐसे जीव को कहते है जो कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा का सृजन तो नही करता, पर जीवनयापन के लिये इन पर निर्भर करता है। इन पदार्थों को प्राणी बाह्य स्रोत से ही प्राप्त करता है। इनके सृजन करनेवाले पादप जाति के पदार्थ होते हैं, जो अकार्बनिक स्रोतो से प्राप्त पदार्थों से इनका सृजन करते है। कुछ लोग प्राणी उन जीवो को कहते हे जिनमे गमनशीलता होती है। ये दोनो ही परिभाषाएँ सब प्राणियो पर लागू नही होती। पादप जाति के कुछ कवक और जीवाणु ऐसे है, जो अपना भोजन बाह्य स्रोतों से प्राप्त करते हैं। कुछ ऐसे प्राणी भी है, जो स्टार्च का सृजन स्वय करते हैं। अत प्राणी और पादप मे विभेद करना कुछ दशाओं मे बडा कठिन हो जाता है। यही कारण है कि प्राणिविज्ञान और पादपविज्ञान का अध्ययन एक समय विज्ञान की एक ही शाखा मे साथ साथ किया जाता था और उसका नाम जैविकी या जीव विज्ञान (Biology) दिया गया है। पर आज ये दोनो शाखाएँ इतनी विकसित हो गई है कि इनका सम्यक् अध्ययन एक साथ करना सभव नही है। अत आजकल प्राणिविज्ञान एव पादपविज्ञान का अध्ययन अलग अलग ही किया जाता है।

प्राणिविज्ञान का अध्ययन मनुष्य के लिये बडे महत्व का है। मनुष्य के चारो ओर नाना प्रकार के जतु रहते है। वह उन्हे देखता है और उसे उनमे बराबर काम पडता है। कुछ जतु मनुष्य के लिये बडे उपयोगी सिद्ध हुए है। अनेक जतु मनुष्य के आहार होते है। जतुओ से हमे दूध प्राप्त होता है। कुछ जतु ऊन प्रदान करते है, जिनसे बहुमूल्य ऊनी वस्त्र तैयार होते है। जतुओ से ही रेशम, मधु, लाख आदि बडी उपयोगी वस्तुएं प्राप्त होती है। जतुओ से ही अधिकाश खेतों की जुताई होती है। बैल, घोडे, खच्चर तथा गदहे इत्यादि परिवहन का काम करते है। कुछ जतु मनुष्य के शत्रु भी है और ये मनुष्य को कष्ट पहुँचाते, फसल नष्ट करते, पीडा देते और कभी कभी मार भी डालते है। अत. प्राणिविज्ञान का अध्ययन हमारे लिये महत्व रखता है।

बौद्धिक विकास के कारण मनुष्य अन्य प्राणियो से भिन्न होता है, पर शारीरिक बनावट और शारीरिक प्रणाली मे अन्य कुछ प्राणियो से बडी समानता रखता है। इन कुछ प्राणियो की इंद्रियाँ और कार्यप्रणाली मनुष्य की इंद्रियों और कार्यप्रणाली से बहुत मिलती जुलती है। इससे अनेक नई ओषधियो के प्रभाव का अध्ययन करने में इन प्राणियों से लाभ उठाया गया है और अनेक नई नई ओषधियो के आविष्कार में सहायता मिली है।

प्राणियो का अध्ययन बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। इसका प्रमाण वे प्राचीन गुफाएं है जिनकी पत्थर की दीवारो पर पशुओ की आकृतियां आज भी पाई जाती है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने ईसा के ३०० वर्ष पूर्व जतुओ पर एक पुस्तक लिखी थी। गैलेना (Galena) एक दूसरे रोमन वैद्य थे, जिन्होंने दूसरी शताब्दी मे पशुओं की अनेक विशेषताओं का बडी स्पष्टता से वर्णन किया है। यूनान और रोम के अन्य कई ग्रंथकारों ने प्रकृतिविज्ञान पर पुस्तकें लिखी है, जिनमे जंतुओ का उल्लेख है। बाद मे लगभग हजार वर्ष तक प्राणिविज्ञान भुला दिया गया था। १६वी सदी मे लोगो का ध्यान फिर इस विज्ञान की ओर आकर्षित हुआ। उस समय चिकित्सा विद्यालयो के अध्यापको का ध्यान इस ओर विशेष रूप से गया और वे इसके अध्ययन मे प्रवृत्त हुए। १७वी तथा १८वी शताब्दी मे इस विज्ञान की विशेष प्रगति हुई। सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार के बाद इसका अध्ययन बहुत व्यापक हो गया। आधुनिक प्राणिविज्ञान की प्राय. इसी समय नीव पड़ी और जतुओ के नामकरण और आकारिकी की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। लिनियस ने 'दि सिस्टम ऑव नेचर' (१७३५ ई०) नामक पुस्तक मे पहले पहल जतुओं के नामकरण का वर्णन किया है। उस समय तक ज्ञात जंतुओं की सख्या बहुत अधिक हो गई थी और उनका वर्गीकरण आवश्यक हो गया था। प्राणिविज्ञान का विस्तार आज बहुत बढ गया है। सम्यक् अध्ययन के लिये इसे कई शाखाओ मे विभाजित करना आवश्यक हो गया है। ऐसे अतर्विभागो मे आकारिकी (Morphology), सूक्ष्मऊतकविज्ञान (Histology), कोशिकाविज्ञान (Cystology), भ्रूणविज्ञान (Embryology), जीवाश्मविज्ञान (Palaeontology), विकृतिविज्ञान (Pathology), वर्गीकरणविज्ञान (Taxology), आनुवाशिकविज्ञान (Genetics), जीवविकास (Evolution), पारिस्थितिकी (Ecology) तथा मनोविज्ञान (Psychology) अधिक महत्व के हैं।

आकारिकी — जतु भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। उनके बाह्य लक्षण, शरीर का आकार, विस्तार, वर्ण, त्वचा, बाल, पर, आंख, कान, पैर तथा अन्य अंग भिन्न भिन्न प्रकार के होते है। अत शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि जतुओ के बाह्य लक्षणो का ज्ञान साधारण बात है। उनकी आतरिक बनावट से ही कुछ विशेष तथ्य की बाते मालूम हो सकती हैं। अत उनकी बनावट के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया गया। जतुओं का चाकुओ और अन्य औजारों से चीरफाड कर, काट छाटकर, अध्ययन शुरू हुआ और सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार और प्रयोग से अनेक बाते मालूम हुई, जिनसे उनके विभाजन मे बडी सहायता मिलती है। जतु कोशिकाओं से बने है। सब जतुओ की कोशिकाएँ एक सी नहीं होती। ऊतको से ही जंतुओ के सब अग उदर, वृक्क आदि बनते है। ऊतक भी एक से नही होते। कुछ जतु एक कोशिका से बने है, इन्हे एककोशिकीय या प्रोटोजोआ (Protozoa) कहते है। इनकी सख्या अपेक्षया थोडी है। अधिक जतु अनेक कोशिकाओ से बने है। इन्हे बहुकोशिकीय या मेटाज़ोआ (Metazoa) कहते है। इनकी सख्या बहुत बडी है। इन जतुओ की आकारिकी के अध्ययन से पता लगता है कि सब जतुओ के प्रतिरूप सीमित किस्म के ही होते है, यद्यपि बाह्यदृष्टि से देखने मे वे बहुत भिन्न मालूम पड़ते है। अधिकाश जंतु रीढ़वाले या कशेरुकी (verterbate) है और अपेक्षया कुछ थोड़े से ही अकशेरुकी या अपृष्ठवशी (invertebrate) है।

सूक्ष्मऊतकविज्ञान — इसके अध्ययन के लिये विभिन्न जतुओ के ऊतको को महीन काटकर, उसी रूप मे अथवा रजकों से अभिरंजित कर, सूक्ष्मदर्शी से निरीक्षण करते है। रजक के उपयोग से कोशिकाएँ

अधिक स्पष्ट हो जाती है पर उससे कोशिकाओं की कोई क्षति नहीं होती। कोशिकाओं को बहुत महीन काटने के लिये (१।१००० मिमी० की मोटाई तक) यंत्र बने है, जिन्हें माइक्रोटोम कहते है। ऐसे अध्ययन से ऊतको को सामान्यत निम्नलिखित चार प्रकार मे विभक्त किया गया है : ४. उपकलाऊतक (Epithelial tissue), २. तत्रिका ऊतक (Nervous tissue), ३. योजीऊतक (Connective tissue) तथा ४. पेशीऊतक (Muscular tissue)।

कोशिकाविज्ञान — इसके अंतर्गत जंतुओ की कोशिकाओ का अध्ययन होता है। इनकी कोशिकाओ मे जीवद्रव्य (protoplasm) रहता है। कुछ कोशिकाएँ एककोशिकीय होती है और कुछ बहुकोशिकीय। जीवद्रव्य सरल पदार्थ नही है। इनमे बडी सूक्ष्म बनावट के अनेक पदार्थ मिले रहते है। कोशिकाओ का आनुवशिकी से बडा घनिष्ट संबंध है। कोशिकाएँ भिन्न भिन्न आकार और विस्तार की होती है। सामान्य कोशिका के दो भाग होते है एक केंद्रक होता है और दूसरा उसको घेरे हुए कोशिकाद्रव्य (cytoplasm) होता है।

भ्रूणविज्ञान — जब शुक्राणुकोशिका से सयोजन कर अडकोशिका उद्दीप्त होती है तब उसका भ्रूणविकास प्रारभ हो जाता है। इससे एक विशिष्ट लक्षण प्रकट होता है। इस प्रक्रिया का जब प्राणिविज्ञानियो ने अनेक जतुओ मे अध्ययन किया, तब उन्हे पता लगा कि सभी जतुओ मे इस प्रक्रिया मे बहुत सादृश्य पाया जाता है। अडो का पहले विदलन होता है। इससे नई कोशिकाएँ गेदो मे बँट जाती है। इसके बाद एक द्विस्तरी पदार्थ गैस्ट्रुला (gastrula) बनता है। इसके बाद एक वाह्य उपकला और एक अतर उपकला (epithelium) बनती है। किसी किसी दशा मे एक ठोस पिड, अतर्जनस्तर (entoderm), भी बनता है। अतर्जनस्तर की उत्पत्ति भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। अधिकाश दशा मे उत्पत्ति अतर्वलन (invagilation) द्वारा, अथवा बाह्य उपकला के भीतर मुडने के कारण होती है। हैकेल (Haekel) तथा कुछ अन्य प्राणिविज्ञानियो का मत है कि प्राथमिक रीति अतर्वलन की रीति है। यदि अन्य कोई रीति है तो वह गौण रीति है और प्राथमिक रीति से ही निकलती है। गेस्ट्रुला अवस्था के स्थापित होने के बाद, बाह्य त्वचा (ectoderm और अतर्जनस्तर के बीच ऊतक बनते है, जिसे मध्य जनस्तर कहते है। जतुओ मे मध्य जनस्तर कई प्रकार के पाए गए है। पर जो बडे महत्व का समझा जाता है वह है आन्त्रगुहा (enterocoele), जिसमे अतर्जनस्तर से कोटरिका (pocket) के ढकेलने से मध्यजनस्तर बनता है। बाह्य चर्म, अतर्जनस्तर और मध्य जनस्तर को जनस्तर (germlayer) कहते है। इसी स्तर से प्रौढ जतुओ के ऊतक और अन्य अंग बनते है। एक पर एक तह के बनने और स्थानातरण द्वारा यह कार्य होता है (देखे **भ्रूण विज्ञान**)।

जीवाश्मविज्ञान — अनेक जंतु ऐसे हैं जो एक समय इस पृथ्वी पर विद्यमान थे। पर वे अब कही कही पाए जाते है। इनके जीवाश्म पृथ्वीस्तरो या चट्टानों मे पाए जाते है। इनसे सबधित बातो के अध्ययन को जीवाश्मविज्ञान कहते है। अध्ययन से पता लगता है कि ये जतु किस युग मे, कितने लाखो या करोडो वर्ष पूर्व विद्यमान थे और वर्तमान युग के कौन कौन जंतु उनसे सबधित कहे जा सकते हैं। उच्च प्राणियो के विकास में कौन कौन अवस्थाएँ हुईं, इनका पता भी जीवाश्म के अध्ययन से बहुत कुछ लगता है। यह विज्ञान भौमिकी से बहुत घनिष्ट संबंध रखता है (देखे **फॉसिलविज्ञान**)।

आनुवंशिक विज्ञान — विज्ञान की इस शाखा का संबंध प्राणियों की अनुवशिकता, विवभिन्नता, परिवर्धन और विकास से है। प्राणियो मे समानता और विभिन्नता का अध्ययन इसी के अंतर्गत होता है। पिता और संतान के गुणों मे कैसा संबंध है, प्रौढो के विशिष्ट गुण अंडो मे कैसे विद्यमान रहते हैं, अंडों के परिवर्धन के साथ साथ प्रौढों मे उनके गुणो का कैसे विकास होता है, इनका अध्ययन, निरीक्षण, प्रायोगिक प्रजनन, भौतिकीय और प्रायोगिक आकारिकी से होता है। जंतुओ से प्राप्त परिणामो का उपयोग मानव-सुजनन-विज्ञान (eugenics) मे भी हुआ है।

विकास — इसके अंतर्गत विभिन्न जंतुओं का विकास होकर आधुनिक रूप कैसे प्राप्त हुआ है, इसका अध्ययन होता है।

पारिस्थितिकी — प्राणी कैसे वातावरण मे रहते है, कैसा वातावरण उनके अनुकूल होता है और कैसा वातावरण प्रतिकूल, इसका अध्ययन पारिस्थितिकी मे होता है। वातावरण के कारक भौतिक हो सकते है अथवा रासायनिक। ताप, प्रकाश, आर्द्रता तथा समुद्री जतुओ के सबध मे समुद्रजल मे लवण की मात्रा, जल की गहराई और जल का दबाव इत्यादि विभिन्न कारक हैं, जिनका अध्ययन इसके अतर्गत आता है। पृथ्वीतल के विभिन्न भागो पर जतु कैसे फैले हुए है, इसका भी अध्ययन इसके अंतर्गत होता है।

जंतुरोग विज्ञान — इसके अतर्गत जतुओ के रोगो का अध्ययन होता है। मानव हित के लिये यह जानना आवश्यक होता है कि जिन जतुओ को हम खाते अथवा जिनसे हम दूध, मक्खन, अडा आदि प्राप्त करते है, वे स्वस्थ है या नही। पशुओ की अस्वस्थता का प्रभाव मानवशरीर पर भी पड सकता है। उनसे बचने के लिये जतुओ के रोगो का अध्ययन बडा महत्व रखता है। रोगो से अनेक जतु मर भी जाते है, जिससे आर्थिक दृष्टि से बहुत बडी क्षति होती है।

मनोविज्ञान — जतुओ का मस्तिष्क कैसे कार्य करता है, उनमे कितनी समझ है, सिखाने से वे कहाँ तक सीख सकते है, इनका मानव तथा अन्य जतुओं के प्रति कैसा व्यवहार होता है, इत्यादि का अध्ययन मनोविज्ञान के अतर्गत होता है। उपर्युक्त बातो के अध्ययन से मनुष्य को बहुत लाभ हो सकता है। कुत्ते के प्रशिक्षण से चोरों, डाकुओं या हत्यारो का पकडना आज बहुत कुछ सुलभ हो गया है। प्रशिक्षण से ही हाथी जगलों मे लकड़ियो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है और सवारी का काम देता है।

वर्गीकरण — प्राणियो की संख्या बहुत अधिक हो गई है। अब तक इनके दो लाख वंशों और १० लाख जातियो का पता लगा है। प्राणियों के अध्ययन के लिये प्राणियों का वर्गीकरण बहुत आवश्यक हो गया है। वर्गीकरण कठिन कार्य है। विभिन्न प्राणिविज्ञानी वर्गीकरण मे एकमत नही हैं। विभिन्न ग्रंथकारों ने विभिन्न प्रकार से जंतुओ का वर्गीकरण किया है। कुछ प्राणी ऐसे हैं जिनको किसी एक वर्ग मे रखना भी कठिन होता है, क्योकि इनके कुछ गुण एक वर्ग के जंतुओ से मिलते है तो कुछ गुण दूसरे वर्ग के जतुओं से। साधारणतया सभी वैज्ञानिक सहमत है कि जतुओं का वर्गीकरण

निम्नलिखित प्रकार से होना चाहिए जिसमे छोटे समूह से प्रारंभ करके क्रमशः बड़े बड़े समूह दिए हैं : १. जाति (species), २. वंश (genus), ३. कुल (family), ४. गण (order), ५ वर्ग (class) तथा ६ संघ या फाइलम (phyllum)। इन विभाजनों के भी अंतर्विभाग है जिन्हें उप (sub), अव या अधः (infra) और अधि (super) जोड़कर जताते हैं।

जाति — जंतुओं का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार के जंतुओं को अलग अलग करके शुरू करते हैं। हम देखते हैं कि गाय समस्त ससार मे प्रायः एक सी होती है और वह घोड़े या भैस से भिन्न होती है। अतः हम गाय को एक जाति मे रखते है, घोड़े और भैस को अलग अलग दूसरी जातियों मे। गाय की जाति घोड़े और भैंस की जातियों से भिन्न है। कुछ जातियों की उपजातियाँ भी है। कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनका एक दूसरे से विभेद करना कठिन होता है।

वंश — कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनकी आकारिकी मे बहुत सादृश्य है, पर बाह्य आकार में विभिन्नता देखी जाती है। इस प्रकार की कई जातियाँ हो सकती है जिनके बाह्य रूप मे अंतर होने पर भी आकारिकी मे सादृश्य हो। ऐसी विभिन्न जातियो को एक वंश के अंतर्गत रखने के लिये उनमे कितनी समानता और कितनी विभिन्नता रखनी चाहिए, इसका निर्णय वैज्ञानिकों पर निर्भर करता है और बहुधा कुछ जातियाँ एक वंश से दूसरे वंश मे बदलती हुई पाई जाती है। पहले ऐसा होना सामान्य बात थी, पर अब इसमें बहुत कुछ स्थिरता आ गई है।

कुल — कुछ ऐसे वंश है जिनके प्राणियो में समानता देखी जाती है। ऐसे विभिन्न वंशवाले जंतुओं को एक स्थान पर एक कुल के अंतर्गत रखते है।

गण — एक ही किस्म की बनावट तथा अन्य सामान्य गुणवाले विभिन्न कुलों के जंतुओं को एक साथ रखने की आवश्यकता पड सकती है। इन्हें जिस वर्ग मे रखते है उसे 'गण' कहते है। कई कुल मिलकर गण बनते है पर कुछ प्राणिविद् कुल और गण को पर्यायवाची शब्द मानते है। प्राणिविद् जंतुओं मे ऐसा विभेद करने के लिये उनमे विशेष अंतर नही पाते, यद्यपि पादपविज्ञान मे ऐसा अंतर स्पष्ट रूप से देखा जाता है।

वर्ग—जंतुओं के उस समूह को कहते है, जिसका पद गण और संघ के बीच का होता है।

संघ — जंतुजगत् का प्रारंभिक विभाजन संघ है। प्रत्येक संघ के प्राणियों की संरचना विशिष्ट होती है जिसके कारण प्रत्येक संघ के प्राणी एक दूसरे मे भिन्न होते है। जंतुजगत् के प्राणियो का विभाजन दो उपजगतों में हुआ है। जो जंतु केवल एक कोशिका के बने हैं उन्हें प्रोटोजोआ (Protozoa) कहते हैं। यह उपजगत् अपेक्षया बहुत छोटा है। जिस जगत् मे सबसे अधिक संख्या में जंतु आते हैं उसे मेटाजोआ (Metazco) कहते है। ये बहुकोशिकाओं के बने होते हैं।

जंतुओं का नामकरण — विभिन्न देशों और विभिन्न भाषाओं में जंतुओं के नाम भिन्न भिन्न होते है। इससे इनके अध्ययन में कठिनता होती है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से नामो मे एकरूपता लाना अत्यावश्यक है। नामो मे एकरूपता लाने का सर्वप्रथम प्रयास लिनीयस (Linnaeus) ने किया। उन्होंने सब जंतुओं को लैटिन नाम दिया। इस नामकरण के अनुसार जंतुओं के नाम दो शब्दों से बने होते हैं। इस प्रणाली को 'द्विपद प्रणाली' (Binomial System) कहते हैं। इसके अनुसार जंतुओं का पहला नाम वंशिक नाम होता है और दूसरा उसका विशिष्ट नाम। वंशिक नाम अंग्रेजी के कैपिटल अक्षर से और दूसरा नाम छोटे अक्षर से लिख जाता है। इससे विभिन्न देशो में विभिन्न नामो से जो अव्यवस्था होती थी, वह दूर हो गई और इस प्रकार नामो मे एकरूपता आ गई। ये वैज्ञानिक नाम आज बड़े महत्व के है और इनसे विभिन्न देशो के वैज्ञानिकों को जंतुओं के अध्ययन में बड़ी सहायता मिली है।

प्रोटोजोआ संघ — प्राय सब ही प्रोटोजोआ बहुत छोटे जंतु होते है और साधारणतया सूक्ष्मदर्शी के सहारे ही देखे जाते हैं। पर कुछ प्रोटोजोआ विकसित होकर निवह (colony) बनते है, तब इन्हे केवल आँखों से देखा जा सकता है। प्रोटोजोआ के ऐसे निवह गदे पानी मे देखे जा सकते है। इनमें कुछ कशाभिका (flagellum) द्वारा, कुछ पक्ष्माभिका (cilia) द्वारा तथा कुछ अन्य साधनो से तैरते हुए पाए जाते है। अधिकाश प्रोटोजोआ परजीवी होते हैं तथा बडे बड़े जीवो पर आश्रित होते है। ये अनेक रोगों, जैसे मलेरिया, निद्रारोग इत्यादि के कारण होते है। इस संघ के अंतर्गत निम्नलिखित वर्ग आते है :

वर्ग–१. फ्लैजेलेटा (Flagellata), वर्ग–२. राइजॉपोडा (Rhizopoda), वर्ग–३ सिलिएटा (Ciliata), वर्ग–४ टेलोस्पोरिडा (Telosporidia), वर्ग–५. नाइडास्पोरिडिया (Cnidasporidia) तथा वर्ग–६ ऐक्निडोस्पोरिडिया (Acnidosporidia)।

पोरिफेरा (Porifera) **संघ** — इस संघ मे स्पंजी जंतु आते है। ये एक स्थान पर बढ़ते है और अनेक कोशिकाओं से बने होते है। इनका शरीर वस्तुतः कोशों का बना होता है, जिनके पार्श्व मे अनेक छोटे छोटे छिद्र (pores) होते हैं। इन छिद्रों से पानी जाता है, इन्हीं से इन्हे भोजन मिलता है। इनमे भोजन के लिये कोई मुख या इंद्रियाँ नही होती। अनेक छोटी छोटी, कड़ी कटिकाओं (spicules) के कारण इनका शरीर कड़ा होता है। इन्ही से इनका पंजर बनता है, जैसा हम स्पंज मे देखते है। इनकी कोशिकाएँ ऊतकों से बनी होती हैं।

सिलेंटरेटा (Coelenterata) **संघ** — इसके अंतर्गत प्रवाल (मूँगा), जेली फिश, आनमोनि (anemones) आदि सरल जंतु आते है। इनका शरीर सामान्य कोशिकाओं से बना होता है। बाह्य भाग और आतर भाग ऐसी कोशिकाओं के सघन स्तरों के बने होते है जो एक दूसरे से भिन्न होते है। यही बनावट अन्य उच्चतर जंतुओं की बनावट का आधार है। आतरिक भाग पाचक क्षेत्र है। सिलेटरेटा मे एक ही सूराख होता है, जो मुख और गुदा दोनो का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त अन्य तीसरा स्तर नही होता, जैसा अधिक परिवर्धित जंतुओं मे पाया जाता है। सिलेटरेटा अक्रिय होते है और यद्यपि ये सक्रिय रूप से तैरते नही है, बहते रहते है। इनके विभिन्न अंग इनके मुख के चारो ओर वृत्ताकार व्यवस्थित रहते है। एक समय इसी के अंतर्गत टिनॉफोरा (Ctenophora) भी रखे जाते थे, पर अब अनेक प्राणिविदों ने इन्हे एक अलग संघ मे रखा है।

प्लैटीहेल्मिंथीज़ संघ (Platyhelminthes) — इसके अंतर्गत चपटे कृमि (flat worms) सदृश अनेक कृमि आते है। इनके शरीर की बनावट अधिक विकसित पाई जाती है। ऐसे चपटे कृमि कुछ तो तालाबों और सरिताओं मे स्वतंत्र रूप से रहते पाए जाते

हैं और कुछ, जैसे पर्णाभ कृमि (flukes), रुधिर पर्णाभ कृमि तथा फीताकृमि (tapeworm) परजीवी होते हैं। इनके शरीर की बनावट सममित होती है, अर्थात् एक आधा दूसरे आधे भाग का दर्पण-बिंब होता है। इनके शरीर मे बाह्य और अंतर त्वचाओं के बीच एक तीसरा स्तर मध्यजनस्तर (mesoderm) होता है।

नेमाटोडा (Nematoda) **संघ** — इस संघ मे छोटे छोटे गोल-कृमि (round worm) आते हैं। ये कई प्रकार के परजीवी होते है। इनके अंतर्गत अंकुश कृमि (hook worm) और ट्राइकिना (trichina) आते है जो मनुष्यों और अन्य उच्च जतुओं की आँत में बहुधा पाए जाते है। इनके शरीर में कुछ ऐसे प्रगतिशील लक्षण पाए जाते है, जो चपटे कृमि मे नही होते। इनकी आहारनली (gut) मे मुख और गुदा अलग अलग होते है। इसी के अंतर्गत गोर्डियेसी (Gordiacea) आते है।

नेमरटिनिया (Nemertinea) **संघ** — इसके अंतर्गत सरल कृमि सदृश समुद्री जंतु आते है। ये अपनी लंबी जीभ सदृश शुडिका (proboscis) फैलाकर अपना भोजन पकड़ते है।

नेमाटोमोर्फा (Nematomorpha) **संघ** — इस संघ के प्राणी रोमकृमि है। ये पतले होते हे और पानी में रहते है।

रोटिफरा (Rotifera) **संघ** — इस संघ के प्राणी सूक्ष्म जतु हैं, जो स्थिर ताजे पानी मे रहते है। इनके सिर पर निकला हुआ एक वृत्त होता है, जिससे ये चक्रधारी कृमि भी कहे जाते है। इन्ही वृत्तों के सहारे ये तैरते है और आहार को मुख मे डाल लेते है। ये सूक्ष्म पदार्थो और सूक्ष्म जतुओं का भक्षण करते है। नर से बच्चे उत्पन्न करने मे सहायता मिलती है, पर नर की सहायता के बिना भी मादा बच्चे उत्पन्न कर सकती है। शुष्कावस्था मे ये अनेक वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। पवन तथा पक्षियों द्वारा दूर दूर तक जा सकते है। एक समय इन जतुओं को ट्रोकिलमेथींज (Trochelmenthes) संघ के अंतर्गत रखा जाता था। अब इनका अपना अलग संघ है।

पॉलिज़ोआ (Polyzoa) **संघ** — इसके अंतर्गत हरितजतु आते है। ये छोटे समुद्री जीव है, जो समुद्रतल पर पादप सदृश निवह बनाकर रहते है। इनकी कुछ जातिया ताजे पानी मे भी पाई जाती है।

ब्रैकियोपोडा (Brachiopoda) **संघ** — इस संघ के प्राणी ताजे पानी मे रहनेवाले जतु हैं, पर समुद्रतल पर भी पाए जाते है। ये कवचो से आच्छादित होते है। इनके कवच मोलस्क के कवच सदृश होते है। इनके पाँच प्रमुख गण होते है और उनकी रचनाओं मे पर्याप्त अतर देखा जाता है।

फोरोनिडी संघ (Phoronidea) — इस संघ के प्राणी समुद्री जतु है, जो बहुत नही पाए जाते। ये नलाकार होते है।

किटोग्नाथा (Chaetognatha) या **बाणकृमि संघ** — इस संघ के प्राणी पतले, पारदर्शक तथा बाण के आकार के समुद्री जीव है।

ऐनेलिडा (Annelida) — इसके प्राणी खंडयुक्त कृमि है। इनमे कशेरुक नही होता, अन्यथा ये बहुत अधिक परिवर्धित जतु है। सामान्य केंचुआ इसी वर्ग का जतु है। समुद्र मे इससे बहुत अधिक परिवर्धित जतु पाए जाते है। जोंक भी इसी संघ का सदस्य है। इनकी विशेषता यह है कि इनका शरीर कई खंडों में विभाजित होता है। प्रत्येक खड पर वलयश्रेणियाँ होती है। प्रत्येक खड मे शरीर की रचना उपस्थित रहती है। इन जतुओं मे मध्यजनस्तर नही होता। इनके शरीर मे एक कोटर विकसित होता है, जिसमे अनेक महत्व के अग स्थित होते है। इनके तंत्रिका तंत्र और रुधिरवाहनी तंत्र सुपरिवर्धित होते है, जो कशेरुकी जीवों और मानव से बहुत भिन्न होते है।

आर्थ्रोपोडा (Arthropoda) **संघ** — इसके अतर्गत संधि पादवाले जतु आते है। ये ऐनेलिडा या इसी प्रकार के अन्य जतुओं से विकसित होकर बने हैं। ये ऐनेलिडा सघ के जंतुओं से बहुत कुछ समानता रखते है। कडे कवच सदृश इनकी त्वचा के कारण इनका शरीर कड़ा होता है। शरीर में अनेक संधियो का होना, इनकी विशेषता है। इस संघ के क्रस्टेशिया (Crustacea) वर्ग के जतु पानी मे रहते है। इसके अतर्गत झींगा मछली (lobtster), चिगट मछली (crayfish), केकडा आदि आते है। इस संघ के ऐरैकनिडा (Arachnida) वर्ग के जतु प्रधानतया स्थलीय है। मकडी, बिच्छू, अश्वनालाकार केकडे आदि इसके अतर्गत आते है। मिरिऐपोडा (Myriapoda) वर्ग के अतर्गत अनेक पैरवाले जतु, जैसे गोजर, शतपदी आदि आते है। इंसेक्टा (Insecta) वर्ग के अतर्गत तीन जोडा पैरवाले और सामान्यत पख वाले जतु आते है। इनकी लगभग ६,००,००० जातियाँ मालूम है। जतुओं मे ये सबसे अधिक विकसित जतु है।

मोलस्का (Mollusca) **संघ** — इस संघ के अधिकाश जतु विभिन्न रूपों के समुद्री प्राणी होते है, पर कुछ ताजे पानी और स्थल पर भी पाए जाते है। इनका शरीर कोमल और प्राय आकारहीन होता है। ये प्रवर (mantle) मे बद रहते हैं। प्रावारग्रंथियाँ स्राव द्वारा कडे कवच का निर्माण करते है। कवच कई प्रकार के होते हैं। कवच के तीन स्तर होते है। पतला बाह्यस्तर कैलसियम कार्बोनेट का बना होता है और मध्यस्तर तथा सबसे भीतरी स्तर मुक्ता सीप का बना होता है।

ये स्क्विड (squid) और ऑक्टोपोडा से मिलते जुलते हे पर उनमें कई लक्षणों मे भिन्न होते है। इनमें खंडीभवन (segmentation) नही होता।

एकाइनोडर्माटा (Echinodermata) **संघ** - इस संघ के अतर्गत अरीय बहि ककाल वाले जतु आते हैं। ताराभीन (starfish), समुद्री अर्चिन (sea-urchin), सैंड डालर्स (sanddollars) इसी के अतर्गत आते है। ये मद चालवाले होते है और साधारणतया समूह मे रहते है। इनके डिंभ द्विपार्श्व सममित होते है, पर वयस्क त्रिज्यात. सममित (radially symmetrical) होते है। इनकी विशेषता यह है कि इनके शरीर मे जल से भरी हुई नलियों की श्रेणियाँ रहती है, जिनसे अनेक पैर निकले रहते है। इन्ही से इनमे गमनशीलता आती है। इनके परिवर्धन से पता लगता है कि ये कॉर्डेटा से न्यूनाधिक संबंधित है।

कॉर्डेटा (Chordata) **संघ** — इस संघ के अतर्गत रीढवाले जतु आते हैं। आद्य किस्म के कुछ जतु भी इसके अतर्गत आते हैं। इन सबकी रचना तथा आकृति प्रगतिशील किस्म की होती है। इनका

विकास ऐनेलिडा और आर्थ्रोपोडा से भिन्न प्रकार से हुआ है। ये द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetical) होते है और अंशन खंडो में विभाजित होते है। इन सबमें गिलछिद्र (gill slits), या कोष्ठ (pouch) होते है, जो जलीय जतुओं मे साँस लेने का कार्य करते है। पृष्ठ भाग पर पृष्ठरज्जु विकसित होते है। ऐनेलिड और आर्थ्रोपोडा मे पृष्ठरज्जु अदर रहते है। इस संघ के जतुओ मे एक लबी नम्य शलाका (rod) होती है, जिसे पृष्ठरज्जु (notochord) कहते है। इसी से इनका शरीर तना हुआ रहता है। इस संघ के निम्नलिखित चार उपसघ अधिक महत्व के हैं :

१. हेमिकॉर्डा (Hemichorda) -- इस उपसघ के प्राणी समुद्री जतु है। इनके दो वर्ग है। देखने में ये ऐनेलिड जैसे लगते है, पर इनकी रचना ऐनेलिड से भिन्न होती है। इनमे कॉर्डेटा के सब लक्षण होते है, पर ये बहुत विकसित नही है। इनके शरीर के अग्र भाग मे शुड रहता है, जिसके आधार पर कॉलर (collar) होते है।

२. यूरोकॉर्डा (Urochorda) --- इस उपसंघ मे कचुक (tunicates) और समुद्री स्क्वर्ट (squirts) आते है। इनमे अनेक गिलछिद्र, तंत्रिकारज्जु और पृष्ठरज्जु होते है।

३ सेफैलोकार्डा (Cephalochorda) -- इस उपसघ के प्राणी छोटे पारभासक समुद्री जतु है। देखने मे मछली जैसे लगते है, पर इनकी रचना अधिक आद्य होती है। इनमे गिलछिद्र, तंत्रिकारज्जु तथा पृष्ठरज्जु, सब होते है। इनके उदाहरण ऐंफिआक्सस (Amphioxus) है।

४ वर्टिब्रेटा (Vertebrata) -- इस उपसघ के अतर्गत रीढवाले जतु आते है। इनमे पृष्ठरज्जु के स्थान मे रीढ होती है। इनका पजर अधिक विकसित होता है और इनके लक्षण (feature) अधिक विकसित होते है। इस उपसघ के प्राणियो को सात वर्गो मे विभक्त किया गया है :

(१) ऐग्नाथा (Agnatha) -- इस वर्ग के अतर्गत बिना जबडे-वाले कशेरुकी आते है। लैंप्री (lamprey), कुहाकिनी मीन (hogfish, cyclostoma) इस वर्ग के प्राणी है।

(२) काण्ड्रिक्थीईज (Chondrichthyes) --- इस वर्ग मे उपास्थियुक्त मीन, हागुर (shark), तनुका (skate) आदि आते है। इनमे जबडे होते है, पर पजर में हड्डी नही होती।

(३) आस्टिइक्थीईज (Osteichthyes) --- इस वर्ग मे हड्डी-वाले विकसित मीन आते है। सामान्य भोज्य मछलियाँ इसी वर्ग की होती है।

(४) ऐंफिबिया (Amphibia) -- इस वर्ग के अतर्गत मेढक, भेक (toad), सलामैडर (salamander) आदि आते है, जो जल और स्थल दोनो पर समान रूप से रहते है। इन कशेरुकियो के पैर विकसित होते है, जिससे ये स्थल पर भी चल सकते है।

(५) रेप्टिलिया (Reptilia) या सरीसृप वर्ग-- इस वर्ग के अंतर्गत कछुआ, छिपकली, साँप और मगर आते है, जो स्थल पर अडे देते है। इनके अडे कवचित होते है।

(६) ऐवीज (Aves) या पक्षिवर्ग --- इस वर्ग के अतर्गत पक्षी आते हैं। ये लोग उड़नेवाले सरीसृपो के वंशज है।

(७) मैमैलिया (Mammalia) या स्तनी वर्ग --- इस वर्ग के अतर्गत मानव और मानव से मिलते जुलते अन्य प्राणी आते है। ये उष्ण रुधिरवाले, बड़े मस्तिष्कवाले जतु है, जिनका शरीर बालो या समूर (fur) से ढँका रहता है। ये बच्चे जनते है और उनका लालन पालन करते है। इसी वर्ग के अतर्गत एक गण प्राइमेटीज (primates), अर्थात् नर-बानर-गण, है, जिसमे नर, बदर, कपि, लीमर आदि रखे गए है। मानव को एक अलग कुल होमिनिडी (Hominidae) में भी रखते है। [फू० स० व०]

प्राणिवैज्ञानिक भूगोल देखे **जंतुओं का विस्तार**।

प्राणिसंग्रहण (Zoological Collecting) दो प्रकार से होता है। एक सग्रह मे जीवित प्राणियो को पकडकर जीवित ही किसी प्राणि-उपवन (zoological garden) मे रखते हैं। जीवित प्राणियो के पकड़ने मे अधिक श्रम लगता है। उन्हे पकडकर उपवन मे रखने से उनके भरण पोषण और देखभाल मे पर्याप्त धन खर्च होता है, इस कारण उपवन का निर्माण राज्यो, या बड़ी बडी नगरपालिकाओ, द्वारा ही सामान्यत होता है। यद्यपि पूर्वकाल मे कुछ ऐसे धनी व्यक्ति भी थे जो शौक से इन प्राणियो को रखकर उनपर धन खर्च करते थे। दूसरे प्रकार के सग्रह मे प्राणियो को मारकर उनका संग्रह करते है। ऐसा सग्रह दो विधियो से होता है। एक विधि मे किसी मृत प्राणी को ऐल्कोहल, फॉर्मेलिन आदि द्रव मे डुबाकर रखते है, ताकि उनका आकार ज्यो का त्यो सुरक्षित बना रहे। इन द्रवो मे मृत प्राणी सडते गलते नही है और पर्याप्त समय तक अपनी प्रकृत अवस्था मे बने रहते है। पर ऐसा छोटे छोटे प्राणियो के साथ ही हो सकता है, क्योंकि इन्हे काच के पात्रो मे रखकर द्रव से भर दिया जाता है। बडे बडे प्राणियो के लिये बडे बडे काचपात्रो की आवश्यकता पडेगी और उसमे अधिक द्रव भी लगेगा। अत उनका सग्रह इस रीति से नहीं होता। पक्षिशावको और अडो को इस प्रकार सुरक्षित रखते हैं। द्रव मे रखे मृत प्राणियों का सग्रह प्राय प्रत्येक प्राणिप्रयोगशाला मे रहता है। इनसे प्राणिविज्ञान के छात्रो के पढने पढाने मे बडी सहायता मिलती है। दूसरी विधि मे मृत प्राणियो की खालो को निकालकर जीवित सदृश व्यवस्थित कर उन्हे सुरक्षित रखते है। मृत प्राणियो को इस प्रकार सुरक्षित और जीवित सदृश व्यवस्थित कर प्रदर्शित करने को चर्मपूरण (Taxidermy) कहते है। मछलियो, उरगो, चिड़ियो तथा स्तनधारियो, जैसे गिलहरी, हिरण, शेर, चीता, रीछ, बदर तथा अन्य जगली प्राणियो को चर्मपूरण द्वारा ही उनकी प्राकृतिक अवस्था मे प्रदर्शित करते है (देखे **चर्मपूरण**, खंड ३, पृ० १७६)।

भिन्न भिन्न वर्ग के प्राणियों के सग्रह के भिन्न भिन्न तरीके है। १८वी शती मे पक्षियों, स्तनधारियो और बडे बडे सरीसृपो के सग्रह की ओर लोगो का विशेष ध्यान गया था। इसके फलस्वरूप ऐसे जतुओ के सग्रह आज अनेक अजायबघरो मे देखे जा सकते है। यह काम १६वी शती के अतिम वर्षो मे शुरू हुआ। ऐसे नमूने तो कुछ सर्वसाधारण के लिये थे और कुछ उन पशुओ पर शोध करनेवालो के लिये थे। ऐसी खालो को सुरक्षित रखने के लिये कुछ पूतिरोधी पदार्थो का उपयोग होता है। साधारणतया सोहागा इस काम के लिये उपयुक्त होता है।

पशु पक्षियों के संग्रह में पहला कदम उनको पकडना है। कुछ तो आसानी से पकड़े जा सकते हैं, पर कुछ सब स्थानो मे सरलता से नहीं देखे जाते और इनके लिये दूर दूर तक यात्रा कर पकड़ने की व्यवस्था करनी पड़ती है। जो मछलियाँ छिछले पानी मे रहती है उनको पकड़ना तो सरल होता है, पर जो समुद्र की भिन्न भिन्न गहराइयों में रहती हैं उनको पकडने मे विशेष प्रयत्न और विशेष उपकरणो की आवश्यकता पडती है। ऐसे अनेक उपकरण बने है। इन्हें ड्रेज या ट्रॉल कहते हैं। ड्रेज लोहे के मजबूत फ्रेम का बना होता है। इसमें मजबूत जाली लगी रहती है। जाली या तो किसी धातु के तार की बनी होती है, अथवा किमी मजबूत डोरी की। नावों से किसी मजबूत डोरी द्वारा यह समुद्र मे लटकाई जाती है। जब आवश्यक गहराई, या समुद्र के तल, पर वह पहुँच जाती है, तब उसका मुँह खोल दिया जाता है और जब उसमे कुछ मछलियाँ, या अन्य जंतु, आ जाते है तब उसे फिर बंद कर ऊपर उठा लिया जाता है। ड्रेज के निचले भाग मे दाँत लगे रहते है, जिससे वह तल को कुछ खुरच भी सकता है। ड्रेज के फ्रेम आयताकार लगभग २ से ५ फुट तक लंबे होते हैं। इनका विस्तार नाव के विस्तार पर निर्भर करता है। ट्रॉल ड्रेज की किस्म का ही होता है, पर इसके पेंदे मे दाँत नही होता और यह तल को खुरचता नही है। ड्रेज से यह अधिक सुविधाजनक होता है। ट्रॉल प्रधानतया तीन प्रकार के होते है - एक बीम (beam) किस्म का, दूसरा ऐगैसिज (Agassiz) किस्म का और तीसरा ऑट्टर (Otter) किस्म का। वैज्ञानिक नमूनों के संग्रह के लिये बीम १० से १५ फुट लंबा होना है, पर खाने के लिये मछलियो के पकडने मे इसका विस्तार बहुत बडा हो सकता है। इसके द्वारा मछलियों के पकड़ने मे पर्याप्त समय लगता है। ३,००० फैदम की गहराई की मछलियों के पकडने मे १२ घंटे तक का समय लग सकता है। छिछले पानी की मछलियों के पकडने के लिये पीटर्सेन ग्रैब (Petersen grab) अधिक सुविधाजनक है और काम मे आता है।

समुद्री जतु दो प्रकार के होते है। कुछ तो धीरे धीरे बहनेवाले होते है। इन्हे प्राणिप्लवक (Zooplanckton) कहते है और कुछ बडे तेज तैरनेवाले होते हैं। इन्हें तरणक (Nekton) कहते हैं। प्राणिप्लवकों का संग्रह अपेक्षया सरल है और वे जल्द जाल मे फँस जाते है और पकड़ लिए जाते हैं। पर तरणक उतने जल्दी जाल मे नही फँसते। इन्हें जाल, महाजाल, अकुश या हारपून द्वारा पकड़ा जाता है।

कुछ ट्रालो मे ऐसे उपकरण भी लगे रहते है जिनसे पता लगता है कि जालो मे कितना पानी बहा है। ऐसे उपकरणो को 'साइक्लोमीटर' (Cyclometer) कहते है। कुछ ट्रॉलो मे ऐसी युक्तियाँ बनी रहती है कि एक ही बार की चेष्टा मे कई गहराई की मछलियाँ पकडी जा सकें। ऐसे ट्रॉल भी बने हैं जिनसे पता लगता है कि किसी निश्चित क्षेत्र मे कितने जल जतु विद्यमान है।

जीव जतुओ को पकड़कर जब तक उन्हे अपने निश्चित जलजीवशाला, प्रयोगशाला, या अजायब घर तक नही पहुँचाया जाता तब तक इन्हें सावधानी से रखने की आवश्यकता पडती है। यदि इसमें सावधानी बरती न जाय तो अधिकाश जतु मरकर नष्ट हो जा सकते हैं। या तो उन्हे जल में रखा जाता है, अथवा जल भरी बालटी में रखकर घास पात से ढँक दिया जाता है। यदि ऐल्कोहल में सुरक्षित रखना है, तो ७० प्रति शत शक्ति वाला ऐल्कोहल अच्छा होता है, यदि फार्मैलिन मे रखना है तो ९५ भाग समुद्रजल में ५ भाग फार्मैलिन मिलाकर उसमे रखते है। [फू० स० व०]

प्रातिशाख्य शब्द का अर्थ है 'प्रति' अर्थात् तत्तत् 'शाखा' से संबंध रखनेवाला शास्त्र अथवा अध्ययन। यहाँ 'शाखा' से अभिप्राय वेदों की शाखाओ से है। वैदिक शाखाओ से संबद्ध विषय अनेक हो सकते थे। उदाहरणार्थ, प्रत्येक वैदिक शाखा से संबद्ध कर्मकांड, आचार आदि की अपनी अपनी परपरा थी। उन सब विषयो से प्रातिशाख्यों का सबध न होकर केवल वैदिक मंत्रो के शुद्ध उच्चारण, वैदिक संहिताओ और उनके पदपाठो आदि के संधिप्रयुक्त वर्णपरिवर्तन अथवा स्वरपरिवर्तन के पारस्परिक सबंध और कभी कभी छदोविचार जैसे विषयो से था।

यहाँ वैदिक शाखाओ के प्रारभ, स्वरूप और प्रवृत्ति को सक्षेप में समझ लेना आवश्यक है।

भारतीय वैदिक संस्कृति के इतिहास में एक समय ऐसा आया जबकि आर्य जाति के मनीषियों ने परपराप्राप्त वैदिक मत्रो को वैदिक सहिताओ के रूप मे सगृहीत किया। उस समय अध्ययनाध्यापन का आधार केवल मौखिक था। गुरु शिष्य की श्रवण परपरा द्वारा ही वैदिक सहिताओ की रक्षा हो सकती थी। देशभेद और कालभेद से वैदिक सहिताओ की क्रमश विभिन्न शाखाएँ हो गई।

वैदिक मत्रो और उनकी संहिताओ को प्रारभ से ही आर्य जाति की पवित्रतम निधि समझा जाता रहा है। उनकी सुरक्षा और अध्ययन की ओर आर्य मनीषियो का सदा से ध्यान रहा है। इसी दृष्टि ने भारत मे वेद के षडगो (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छद, ज्योतिष) को जन्म दिया था।

वैदिक संहिताओ की सुरक्षा और अर्थज्ञान की दृष्टि से ही वैदिक विद्वानो ने तत्तत् सहिताओ के पदपाठ का निर्माण किया। कुछ काल के अनतर क्रमश क्रमपाठ आदि पाठो का भी प्रारभ हुआ।

वेद के षडगो के विकास के साथ साथ प्रत्येक शाखा का यह प्रयत्न रहा कि वह अपनी अपनी परपरा मे वैदिक सहिताओ के शुद्ध उच्चारण की सुरक्षा करे और पदपाठ एव यथासभव क्रमपाठ की सहायता से वेद के प्रत्येक पद के स्वरूप का और संहिता मे होने वाले उन पदो के वर्णपरिवर्तनो और स्वरपरिवर्तनो का यथार्थत. अध्ययन करे। मूलत प्रातिशाख्यो का विषय यही था। कभी कभी छदोविषयक अध्ययन भी प्रातिशाख्य की परिधि मे आ जाता था।

वैदिक शाखाओ के अध्येतृवर्ग 'चरण' कहलाते थे। इन चरणों की विद्वत्सभाओं या विद्यासभाओं को 'परिषद्' (या 'पर्षद्') कहा जाता था। प्रातिशाख्यों की रचना बहुत करके सूत्र शैली मे की जाती थी इसीलिये प्रातिशाख्यो के लिये प्रायेण 'पार्षदसूत्र' का भी व्यवहार प्राचीन ग्रथो में मिलता है।

यास्काचार्य के निरुक्त मे कहा गया है :

> 'पदप्रकृति. सहिता। पदप्रकृतीनि सर्व
> चरणाना पार्षदानि।' (नि० १।१७)

अर्थात्, पदो के आधार पर संहिता रहती है और सब शाखाओं

के प्रातिशाख्यों की प्रवृत्ति पदों को ही संहिता का आधार मानकर हुई है।

इससे यह ध्वनि निकलती है कि प्राचीन काल में सब वैदिक शाखाओं के अपने अपने प्रातिशाख्य रहे होंगे। संभवत वैदिक शाखाओं समान, उनके प्रातिशाख्य भी लुप्त हो गए। वर्तमान उपलब्ध विशिष्ट प्रातिशाख्य नीचे दिए जाते हैं।

उपलब्ध प्रातिशाख्य

(१) शौनकाचार्यकृत ऋग्वेद प्रातिशाख्य—स्पष्टत: इसका संबंध ऋग्वेद की संहिता से है। पर परंपरा के अनुसार इसको ऋग्वेदीय शाकल शाखा की अवांतर शैशिरीय शाखा से संबद्ध बतलाया जाता है। प्रातिशाख्यों में यह सबसे बड़ा प्रातिशाख्य है और कई दृष्टियों से अपना विशेष महत्व रखता है। इसमें छह छह पटलों के तीन अध्याय हैं। जहाँ और प्रातिशाख्य सूत्र शैली में है, वहाँ यह पद्यों में निर्मित है। पर व्याख्याकारों ने पद्यों को टुकड़ों में विभक्त कर सूत्ररूप में ही उनकी व्याख्या की है।

इस प्रातिशाख्य के प्रथम १—१५ अध्यायों में शिक्षा और व्याकरण से संबंधित विषयों (वर्णविवेचन, वर्णोच्चारण के दोष, संहितागत वर्णसंधियाँ, क्रमपाठ आदि) का प्रतिपादन है और अंत के तीन (१६—१८) अध्यायों में छंदों की चर्चा है। छंदों के विषय का प्रतिपादन, यह ध्यान में रखने की बात है, किसी अन्य प्रातिशाख्य में नहीं है। क्रमपाठ का विस्तृत प्रतिपादन (अध्याय १० और ११ में) भी इस प्रातिशाख्य का एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है। इस प्रातिशाख्य पर प्राचीन उवटकृत भाष्य प्रसिद्ध है। इसका प्रोफेसर एम० ए० रेइए (M. A, Regnier) द्वारा किया गया फ्रेंच भाषा में (१८५७-१८५९) तथा प्रो० मैक्सम्यूलर द्वारा किया गया जर्मन भाषा में (१८५६–१८६९) अनुवाद उपलब्ध है।

(२) कात्यायनाचार्य कृत वाजसनेयि प्रातिशाख्य--इसका संबंध शुक्ल यजुर्वेद से है। यह सूत्रशैली में निर्मित है। इसमें आठ अध्याय हैं। प्रातिशाख्यीय विषय के साथ इसमें पदों के स्वर का विधान (अध्याय २ तथा ६) और पदपाठ में अवग्रह के नियम (अध्याय ५) विशेष रूप से दिए गए हैं। इस प्रातिशाख्य का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि इसमें पाणिनि की घु, घ जैसी संज्ञाओं के समान 'सिम्' (=समानाक्ष), 'जित्' (क, ख, च, छ आदि) आदि अनेक कृत्रिम संज्ञाएँ दी हुई हैं। इसके 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' (१।१३४) आदि अनेक सूत्र पाणिनि के सूत्रों से अभिन्न हैं। अन्य अनेक प्राचीन आचार्यों के साथ साथ इनमें शौनक आचार्य का भी उल्लेख है। इसपर भी अन्य टीकाओं के साथ साथ उवट की प्राचीन व्याख्या प्रसिद्ध है। इसका प्रोफेसर ए० वेबर (A Waber) का जर्मन भाषा में अनुवाद (१८५८) उपलब्ध है।

(३) तैत्तिरीय प्रातिशाख्य--इसका संबंध कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से है। यह भी सूत्रशैली में निर्मित है। इसमें २४ अध्याय हैं। सामान्य प्रातिशाख्यीय विषय के साथ साथ इसमें (अध्याय तीन और चार में) पदपाठ की विशेष चर्चा की गई है। इसकी एक विशेषता यह है कि इसमें २० प्राचीन आचार्यों का उल्लेख है। इसकी कई प्राचीन व्याख्याएँ, त्रिभाष्यरत्न प्रसिद्ध है। इसका प्रोफेसर ह्विटनी (W. D. Whitney) कृत अंग्रेजी अनुवाद (१८७१) उपलब्ध है।

(४) अथर्ववेद प्रातिशाख्य अथवा शौनकीय चतुराध्यायिका — इसका आलोचनात्मक संस्करण, अंग्रेजी अनुवाद के सहित, प्रो० ह्विटनी (W. D, Whitney) ने १८६२ में प्रकाशित किया था। इसका संबंध अथर्ववेद की शौनक शाखा से है। यह भी सूत्रशैली में और चार अध्यायों में है।

इनके अतिरिक्त ऋक्तंत्र नाम से एक साम प्रातिशाख्य तथा तीन प्रपाठकों में एक दूसरा अथर्व प्रातिशाख्य भी प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रातिशाख्यों का समय

प्रातिशाख्यों की रचना पाणिनि आचार्य से पूर्वकाल की है। उनकी सारी दृष्टि पाणिनि व्याकरण से पूर्व की दीखती है। हो सकता है, उनके उपलब्ध ग्रंथों पर कहीं कहीं पाणिनि व्याकरण का प्रभाव हो, पर यह बहुत ही कम मात्रा में है। यह स्मरण रखने की बात है कि महाभाष्य में पाणिनीय व्याकरण को सर्ववेदपारिषद शास्त्र कहा है।

प्रातिशाख्यों का महत्व

शिक्षा, व्याकरण (और छंद) के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से और तत्तद् वैदिक संहिताओं के परंपराप्राप्त पाठ की सुरक्षा के लिये भी प्रातिशाख्यों का अत्यंत महत्व है।

प्रातिशाख्यों की परंपरा में ह्रास

यद्यपि प्रातिशाख्यों के आलोचनात्मक अध्ययन और प्रकाशन में इधर विद्वानों ने, विशेषत पाश्चात्य विद्वानों ने, विशेष रुचि दिखलाई है, शताब्दियों से इन ग्रंथों के अध्ययनाध्यापन की परंपरा में ह्रास और शैथिल्य बराबर बढ़ता हुआ प्रतीत होता है। यही कारण है कि प्रातिशाख्यों में और उनकी व्याख्याओं में भी अनेक पाठ अशुद्ध या अस्पष्ट हैं। यही कारण है कि ऋग्वेद संहिता के सायण भाष्य जैसे महान् ग्रंथ में कदाचित् एक बार भी ऋग्वेदप्रातिशाख्य का उल्लेख नहीं है, और कई स्थानों पर अनेक पदों की संधि बलात् पाणिनिसूत्र से सिद्ध करने का यत्न किया गया है।

आवश्यकता है कि प्रातिशाख्यों के प्रकाश में वैदिक संहिताओं का अध्ययन किया जाय। [म० दे० शा०]

प्राथमिक उपचार (First Aid) घायलों और बीमारों की पहली सहायता, अर्थात् प्राथमिक उपचार, की विद्या प्रयोगात्मक चिकित्सा के मूल सिद्धांतों पर निर्भर है। इसका ज्ञान शिक्षित पुरुषों को इस योग्य बनाता है कि वे आकस्मिक दुर्घटना या बीमारी के अवसर पर, चिकित्सक के आने तक या रोगी को सुरक्षित स्थान पर ले जाने तक, उसके जीवन को बचाने, रोगनिवृत्ति में सहायक होने, या घाव की दशा और अधिक निकृष्ट होने से रोकने में उपयुक्त सहायता कर सके।

प्राथमिक उपचार आकस्मिक दुर्घटना के अवसर पर उन वस्तुओं से सहायता करने तक ही सीमित है जो उस समय प्राप्त हो सके।

प्राथमिक उपचार का यह ध्येय नहीं है कि प्राथमिक उपचारक चिकित्सक का स्थान ग्रहण करे। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि चोट पर दुबारा पट्टी बाँधना तथा उसके बाद का दूसरा इलाज प्राथमिक उपचारक की सीमा के बाहर है। प्राथमिक उपचारक का उत्तरदायित्व किसी डाक्टर द्वारा चिकित्सा संबंधी सहायता प्राप्त होने के साथ ही समाप्त हो जाता है, परंतु उसका कुछ देर तक वहाँ रुकना आवश्यक है, क्योंकि डाक्टर को सहायक के रूप मे उसकी आवश्यकता पड़ सकती है।

प्राथमिक उपचारक के गुण — उपयुक्त प्राथमिक उपचार करनेवाले व्यक्ति को १. विवेकी (observant), जिससे वह दुर्घटना के चिह्न पहचान सके; २. व्यवहारकुशल (tactful), जिससे घटना संबंधी जानकारी जल्द से जल्द प्राप्त करते हुए वह रोगी का विश्वास प्राप्त करे; ३. युक्तिपूर्ण (resourceful), जिससे वह निकटतम साधनों का उपयोग कर प्रकृति का सहायक बने; ४ निपुण (dexterous), जिससे वह ऐसे उपायों को काम में लाए कि रोगी को उठाने इत्यादि मे कष्ट न हो; ५ स्पष्टवक्ता (explicit), जिससे वह लोगों की सहायता मे ठीक अगवाई कर सके; ६. विवेचक (discriminator), जिससे गंभीर एवं घातक चोटों को पहचान कर उनका उपचार पहले करे; ७. अध्यवसायी (persevering), जिससे तत्काल सफलता न मिलने पर भी निराश न हो तथा ८. सहानुभूतियुक्त (sympathetic), जिससे रोगी को ढाढ़स दे सके, होना चाहिए।

प्राथमिक उपचार में आवश्यक बातें — १. प्राथमिक उपचारक को आवश्यकतानुसार रोगनिदान करना चाहिए तथा २. घायल को कितनी, कैसी और कहाँ तक सहायता दी जाए, इसपर विचार कराना चाहिए।

रोग या घाव संबंधी आवश्यक बातें — ये निम्नलिखित है : १. रोगी की स्थिति, इसमे रोगी की दशा और स्थिति देखनी चाहिए।

२. चिह्न, लक्षण या वृत्तात, अर्थात् घायल के शरीरगत चिह्न, जैसे सूजन, कुरूपता, रक्तसंचय इत्यादि प्राथमिक उपचारक को अपनी ज्ञानेंद्रियों से पहचानना तथा लक्षण, जैसे पीडा, जडता, घुमरी, प्यास इत्यादि, पर ध्यान देना चाहिए। यदि घायल व्यक्ति होश में हो तो रोग का और वृत्तात उससे, या आसपास के लोगो से, पूछना चाहिए। रोगके वृत्तात के साथ लक्षणो पर विचार करने पर निदान मे बड़ी सहायता मिलती है।

३. कारण · यदि कारण का बोध हो जाय तो उसके फल का बहुत कुछ बोध हो सकता है, परंतु स्मरण रहे कि एक कारण से दो स्थानो पर चोट, अर्थात् दो फल हो सकते है, अथवा एक कारण से या तो स्पष्ट फल हो, या कोई दूसरा फल, जिसका संबंध उस कारण से न हो, हो सकता है। कभी कभी कारण बाद तक अपना काम करता रहता है, जैसे गले में फंदा इत्यादि।

४ घटनास्थल से संबंधित बाते — (क) खतरे का मूल कारण, आग, बिजली का तार, विषैली गैस, केले का छिलका या बिगडा घोड़ा इत्यादि हो सकते हैं, जिसका ज्ञान प्राथमिक उपचारक को प्राप्त करना चाहिए।

(ख) निदान में सहायक बातें, जैसे रक्त के धब्बे, टूटी सीढ़ी, बोतलें तथा ऐसी वस्तुओं को, जिनसे घायल की चोट या रोग से संबंध हो सुरक्षित रखना चाहिए।

(ग) घटनास्थल पर उपलब्ध वस्तुओ का यथोचित उपयोग करना श्रेयस्कर है।

(घ) दोहर, कंबल, छाते इत्यादि से बीमार की धूप या बरसात से रक्षा करनी चाहिए।

(ङ) बीमार को ले जाने के निमित्त प्राथमिक उपचारक को देखना चाहिए कि घटनास्थान पर क्या क्या वस्तुएँ मिल सकती हैं। छाया का स्थान कितनी दूर है, मार्ग की दशा क्या है। रोगी को ले जाने के लिये प्राप्त योग्य सहायता का श्रेष्ठ उपयोग तथा रोगी की पूरी देखभाल करनी चाहिए।

प्राथमिक उपचार के मूल तत्व—१. रोगी में श्वास, नाड़ी इत्यादि जीवनचिह्न न मिलने पर उसे तब तक मृत न समझें जब तक डाक्टर आकर न कह दे।

२– रोगी को तत्काल चोट के कारण से दूर करना चाहिए।

३– जिस स्थान से अत्यधिक रक्तस्राव होता हो उसका पहले उपचार करें।

४–श्वासमार्ग की सभी बाधाएँ दूर करके शुद्ध वायुसंचार की व्यवस्था करें।

५– हर घटना के बाद रोगी की स्तब्धता दूर करने के लिये उसको गरमी पहुँचाएँ। इसके लिये कबल, कोट, तथा गरम पानी की बोतल का प्रयोग करे।

६– घायल को जिस स्थिति मे आराम मिले उसी मे रखें।

७– यदि हड्डी टूटी हो तो उस स्थान को अधिक न हिलाएँ तथा उसी तरह उसे ठीक करने की कोशिश करे।

८–यदि किसी ने विष खाया हो तो उसके प्रतिविष द्वारा विष का नाश करने की व्यवस्था करे।

९–जहाँ तक हो सके, घायल के शरीर पर कसे कपडे केवल ढीले कर दे, उतारने की कोशिश न करे।

१०–जब रोगी कुछ खाने योग्य हो तब उसे चाय, काफी, दूध इत्यादि उत्तेजक पदार्थ पिलाएँ। होश मे लाने के लिये स्मेलिंग साल्ट (smelling salt) सुँघाएँ।

११–प्राथमिक उपचारक को डाक्टर के काम मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए, बल्कि उसके सहायक के रूप में कार्य करना चाहिए।

स्तब्धता (Shock) का प्राथमिक उपचार — इसके अंतर्गत निम्नलिखित उपचार करना चाहिए : १– यदि रक्तस्राव होता हो तो बंद करने का उपाय करे, २– गर्दन, छाती और कमर के कपड़े ढीले करके खूब हवा दें, ३–रोगी को पीठ के बल लिटाकर सिर नीचा एक तरफ करें, ४– रोगी को अच्छी तरह कोट या कंबल से ढकें तथा पैर में गरम पानी की बोतल से सेंक करे, ५– सिर मे चोट न हो तो स्मेलिंग साल्ट सुँघाएँ और होश आने पर गरम तेज चाय अधिक चीनी डालकर पिलाएँ।

अस्थिभंग का प्राथमिक सामान्य उपचार—१– अस्थिभंग

(fracture) वाले स्थान को पटरियों तथा अन्य उपायों से अचल बनाए बिना रोगी को स्थानांतरित न करें।

२–चोट के स्थान से यदि रक्तस्राव हो रहा हो तो प्रथमतः उसका उपचार करें।

३–बड़ी चौकसी के साथ बिना बल लगाए, अंग को यथासाध्य अपने स्वभाविक स्थान पर बैठा दें।

४–चपतियों (splints), पट्टियों (bandages) और लटकानेवाली पट्टियों, अर्थात् झोलों, के प्रयोग से भग्न अस्थिवाले भाग को यथासंभव स्वाभाविक स्थान पर बनाए रखने की चेष्टा करें।

५–जब संशय हो कि हड्डी टूटी है या नहीं, तब भी उपचार उसी भाँति करे जैसा हड्डी टूटने पर होना चाहिए।

मोच (sprains) **का प्राथमिक उपचार**—१. मोच के स्थान को यथासंभव स्थिर अवस्था में रखकर सहारा दें, २. जोड़ को अपनी प्राकृतिक दशा में लाकर उसपर खींचकर पट्टी बाँधें और उसे पानी से तर रखें, तथा ३. इससे भी आराम न मिलने पर पट्टी फिर से खोलकर बाँधें।

रक्तस्राव का प्राथमिक उपचार—१. घायल को हमेशा ऐसे स्थान पर स्थिर रखे जिससे रक्तस्राव का वेग कम रहे; २. अंगों के टूटने की अवस्था को छोड़कर अन्य सभी अवस्थाओं में जिस अंग से रक्तस्राव हो रहा हो उसे ऊँचा रखें; ३. कपड़े हटाकर घाव पर हवा लगने दे तथा रक्तस्राव के भाग को ऊँगली से दबा रखे; ४. बाहरी वस्तु, जैसे शीशा, कपड़े के टुकड़े, बाल आदि, को घाव में से निकाल दें; ५ घाव के आसपास के स्थान पर जीवाणुनाशक तथा बीच में रक्तस्रावविरोधी दवा लगाकर रुई, गाज (gauze) या लिंट (lint) रखकर बाँध देना चाहिए।

अचेतनावस्था का प्राथमिक उपचार — बेहोशी पैदा करनेवाले कारणों से घायल को दूर कर देना तथा अचेतनावस्था के उपचार के साधारण नियमो को यथासभव काम मे लाना चाहिए।

डूबने, फाँसी, गलाघुटने तथा बिजली लगने का प्राथमिक उपचार — डूबे हुए व्यक्ति को कृत्रिम रीति से सर्वप्रथम श्वास कराएँ तथा गीले कपड़े उतारकर उसका शरीर सूखे वस्त्रो में लपेटें। फाँसी लगाए हुए व्यक्ति के नीचे के अंगो को पकड़कर तुरंत शरीर उठा दे, ताकि रस्सी का कसाव कम हो जाय। तब रस्सी काटकर गला छुड़ा दे। फिर कृत्रिम श्वास लिवाएँ। गला घुटने की अवस्था में पीठ पर स्कैपुला (scapula) के बीच में जोरो से मुक्का मारे और फिर गले मे उँगली डालकर उसे वमन कराने की चेष्टा करें। इसी प्रकार विषैली गैसों से दम घुटने पर दरवाजे, खिड़कियाँ, रोशनदान आदि खोलकर गैस बाहर निकाल दें और रोगी को श्वास द्वारा आक्सीजन देने का प्रयास करे। बिजली मारने पर तुरंत बिजली का संबंध तोड़कर रोगी को कृत्रिम श्वास दिलाएँ तथा उत्तेजक पदार्थों का सेवन कराएँ। [प्रि० कु० चौ०]

प्राथमिक स्वास्थ्यकेंद्र अभी कुछ काल पूर्व तक हमारे स्वायत्त-शासन के अधीन ग्रामीण चिकित्सा सेवाएँ तथा कुछ अन्य स्वास्थ्य सेवाएँ भिन्न भिन्न चिकित्सा एवं जनस्वास्थ्य विभागों के अंतर्गत एक दूसरे से संपर्करहित चल रही थीं। इन्हें स्थानीय निकाय अपने करों की अल्प आय से किसी प्रकार चला रहे थे। जनस्वास्थ्य का उत्तरदायित्व लेने पर सरकार के लिये निकट भविष्य में ग्रामीण क्षेत्रों की जनता का स्वास्थ्यस्तर ऊँचा उठाना संभव हुआ है।

शासन द्वारा इस दायित्व को अपनाने के पूर्व चिकित्सा सेवाएँ दूर दूर स्थित कुछ इने गिने चिकित्सालयों के रूप में यत्र तत्र बिखरी थीं, उनके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों की आशिक रोगग्रस्त जनता, लाभान्वित हो रही थी। जनस्वास्थ्य सेवाएँ जिला स्वास्थ्य अधिकारी द्वारा अपने अत्यंत अपर्याप्त कार्यकर्ताओ की सहायता से संक्रामक महामारियों के निराकरण हेतु दौड़ धूप तक ही सीमित थीं। निरोधक सेवाओ तथा स्वास्थ्यवर्धक क्रियात्मक सेवाओ का अस्तित्व नही के बराबर था। आधुनिक धारणा यह है कि स्वास्थ्यसेवाओं में रोग के निदान एवं चिकित्सा के साथ ही रोगी के पुनर्वास एवं रोग के निरोध पर भी ध्यान देना वाछनीय है। दूसरे शब्दों में, स्वास्थ्यसेवा के अंतर्गत व्यक्ति, परिवार तथा समुदाय की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दक्षता की वृद्धि का महत्वपूर्ण कार्य समाविष्ट है।

ग्रामीण क्षेत्रों में उपर्युक्त बहुमुखी सेवाओ की व्यवस्था करनेवाली संस्था को प्राथमिक स्वास्थ्य यूनिट या केंद्र कहते हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य यूनिट या केंद्र की कल्पना सर्वप्रथम सन् १९४६ में भोर (Bhore) कमेटी ने की थी। उक्त कमेटी ने ४०,००० जनसंख्या के क्षेत्र मे दीर्घकालिक चिकित्सासेवा की योजना बनाई थी, जिसमें रोग-मुक्ति और रोगनिरोध दोनों सेवाएँ संमिलित थीं, परंतु यह योजना विश्व-स्वास्थ्य-संगठन द्वारा अपना संविधान और ध्येय घोषित करने तक खटाई मे पडी रही।

संप्रति प्राथमिक स्वास्थ्य इकाई का गठन इस प्रकार है कि विकास-खंड-स्तर पर प्राथमिक स्वास्थ्यकेंद्र के अंतर्गत तीन मातृ-शिशु-कल्याण उपकेंद्र होते हैं। यह इकाई अनुमानतः ६० हजार से एक लाख तक जनता की सेवा करती है, यद्यपि स्वास्थ्यकेंद्रों के कार्यकर्ताओं की वर्तमान निर्धारित सख्या के लिये इतनी बड़ी जनसंख्या की सेवा दुःसाध्य है। योजना आयोग के स्वास्थ्य सदस्यो के अनुसार उपलब्ध प्रशिक्षित कार्यकर्ताओ एवं साधनों की दृष्टि से इसका प्रारंभ ठीक हुआ है। वर्तमान उपकेंद्रो को, जो संप्रति २० से ३० सहस्र जनसख्या की सेवा करते है, अंततोगत्वा स्वतंत्र इकाई मे परिणत करने की योजना हे परंतु यह प्रशिक्षित कार्यकर्ताओ के उपलब्ध होने पर निर्भर करती है।

जिला स्वास्थ्य अधिकारी तथा जिला चिकित्सा अधिकारी (सिविल सर्जन) द्वारा नित्य कार्यव्यवस्था का पर्यवेक्षण किया जाता है। प्राथमिक स्वास्थ्य इकाइयों के कर्मचारी वर्ग का विभाग भिन्न भिन्न प्रदेशो मे भिन्न है, परतु कम से कम एक डाक्टर, एक स्वास्थ्य निरीक्षिका (Health Visitor), एक सामाजिक कार्यकर्ता (Social Worker), एक कपाउंडर, चार चपरासी और एक प्रसाविका (मिड वाइफ) हेड क्वार्टर के प्राथमिक स्वास्थ्यकेंद्र मे तथा तीन तीन प्रसाविकाएँ विभिन्न उपकेंद्रो मे अनिवार्य हैं।

प्रत्येक प्राथमिक स्वास्थ्य यूनिट प्रधानतया चिकित्सा सहायता पर्यावरण स्वच्छता, विद्यालय स्वास्थ्य, मातृ तथा शिशु स्वास्थ्य, संक्रामक रोगो का नियंत्रण, परिवार नियोजन, स्वास्थ्य शिक्षा, जन्म मृत्यु के आकड़ों का संकलन आदि कार्य करती हैं। [न० ना०]

प्रादिला, फ्रांसिस्को (१८४७–१९२१) स्पेनिश चित्रकार। ऐतिहासिक घटनाओं और रोजमर्रा के दृश्यों से उसके अनेक चित्र अनुरंजित हैं। रोम की स्पेनिश एकेडेमी में शिक्षा पाई, तत्पश्चात् उसी संस्था में डाइरेक्टर के पद पर नियुक्ति हुई। लगभग दस वर्ष बाद वह मेड्रिड में प्राडो म्यूजियम का डाइरेक्टर चुन लिया गया, पर साथ ही बर्लिन एकेडेमी का भी संमानित सदस्य बना रहा। शनैः शनैः कलाक्षेत्र में उसने पर्याप्त ख्याति अर्जित की। 'मेड जोना' नामक चित्र पर पेरिस की कलाप्रदर्शनी में उसे स्वर्णपदक प्रदान किया गया। मेड्रिड के मर्गा शाही महल में अनेक ऐतिहासिक युद्धों और दैनिक प्रसंगों—जैसे ग्रानाडा का आत्मसमर्पण, नाले की धोबिन, बाजार हाट की चहल पहल आदि दृश्यांकनों तथा अन्य स्फुट विषयों को लेकर उसने बड़ी कलात्मक सज्जा प्रस्तुत की। उसकी कितनी ही सामयिक चीजें बड़ी लोकप्रिय सिद्ध हुईं। [श० रा० गु०]

प्रादेशिक अशोक के तृतीय शिलालेख में युक्त, राजुक, और प्रादेशिक का उल्लेख मिलता है। राजुक के विषय में चतुर्थ स्तंभलेख में कहा गया है कि वह कई सहस्र व्यक्तियों के ऊपर शासन करते थे। इन तीनों श्रेणियों के शासनाधिकारियों को आदेश दिया गया है कि वे जनता के दुःख सुख का स्वयं ज्ञान प्राप्त करने के हेतु, क्रम से प्रति पाँचवें वर्ष दौरा करें। सम्राट् ने यह भी आदेश दिया है कि वे सब प्रजा के नैतिक उत्थान का प्रयास करें जिससे लौकिक और पारलौकिक यश और कीर्ति मिले। जिस क्रम से इन शासनाधिकारियों का उल्लेख है उससे यह प्रतीत होता है कि प्रादेशिक सबसे उच्च थे। जैसा इसके अर्थ से प्रतीत होता है, प्रादेशिक संपूर्ण प्रदेश के केंद्रीय शासन की ओर से अधिकारी थे। अशोक की शासनव्यवस्था में साम्राज्य को केंद्र के अतिरिक्त चार भागों में विभाजित किया गया था जहाँ पर सम्राट् की ओर से राजकुमार ही शासन करते थे। अतः प्रादेशिक इन राजकुमारों के अधीन ही हो सकते थे। इन्हें 'प्रादेशिक महामात्र' भी कहा गया है और इनकी तुलना जूनागढ़ लेख में उल्लिखित राष्ट्रीयेन से की जा सकती है।

अशोक के लेखों पर व्याख्या करते हुए विद्वानों ने इन अधिकारियों के कर्तव्यों तथा इनकी समानता का उल्लेख किया है। सेनार्ट, कर्न तथा ब्यूलर ने प्रादेशिक को स्थानीय शासक अथवा राज्यपाल माना है, किंतु स्मिथ महोदय इसे जिलाधीश समझते हैं। टॉमस ने इसकी समानता कौटिल्य अर्थशास्त्र में उल्लिखित 'प्रदेष्टृ' से की है जिसका कार्य शासक की ओर से बलिप्रग्रह ('कर' वसूलना अथवा अनुशासनहीनों पर नियंत्रण रखना) 'कंटक शोधन (दंड प्रशासन), चौर मार्गगान (चोरों को पकड़ने का प्रयास तथा अध्यक्ष इत्यादि के कार्यों की देख रेख करना था) इसका स्थान समाहर्तृ तथा गोप, स्थानिक और अध्यक्ष के मध्य में था। हुल्श ने प्रादेशिक की समानता कल्हणराजतरंगिणी (४.१२६) के प्रादेशिकेश्वर से की है। विष्णु पुराण (५.२६) में प्रदेश का उल्लेख मिलता है किंतु इसके अर्थ 'मंत्रणा' अथवा 'आदेश' लिया गया है। अशोक के प्रथम कलिंग लेख (धौली तथा जौगढ़) में प्रादेशिक महामात्र का उल्लेख है। अशोक कालीन प्रादेशिक की समानता वर्तमान आयुक्त (कमिश्नर) से की जा सकती है। [बै० पु०]

प्रादेशिक सेना (Territorial Army) एक या एक से अधिक श्रेणी के सैनिकों का वह संगठन है जिसके सैनिक प्रादेशिक सुरक्षा के लिये संगठित किए जाते हैं। ये सैनिक अपने घरों में रहते हुए समय समय पर सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। इसका मूल स्वरूप लॉर्ड हाल्डेन (Lord Haldane) द्वारा १९०७ ई० में इंग्लैंड में संगठित ब्रिटिश सेना का सहायक विभाग है, जो पुराने 'स्वयंसेवकों' के स्थान पर संगठित किया गया था। प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व यह विदेशसेवा के लिये बाध्य नहीं था, किंतु इसके सभी सैन्यदलों ने स्वेच्छा से भिन्न भिन्न मोर्चों पर युद्ध किया। युद्ध के बाद इस सैन्यदल को प्रादेशिक सेना के रूप में फिर से संगठित किया गया। इसे संसद के नियंत्रण में विदेशसेवा के लिये बाध्य कर दिया गया। सेना के सदस्य प्रति वर्ष पाक्षिक शिविर तथा निर्धारित न्यूनतम कवायद और प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। इंग्लैंड में प्रादेशिक सेना नियमित सेना के निदेशकों के अधीन नियमित सेना की द्वितीय पंक्ति की नकल के रूप में संगठित की जाती है। युद्धकाल में स्थल और समुद्रतट की रक्षा का भार प्रादेशिक सेना पर होता है। इंग्लैंड में प्रादेशिक सेना के अनेक यूनिटों को हवामार यूनिटों में परिणत कर दिया गया है।

भारतीय संविधान सभा द्वारा सितंबर, १९४८ ई० में पारित प्रादेशिक सेना अधिनियम, १९४८, के अनुसार भारत में अक्टूबर, १९४९ ई० में प्रादेशिक सेना स्थापित हुई। इसका उद्देश्य संकटकाल में आतरिक सुरक्षा का दायित्व लेना और आवश्यकता पड़ने पर नियमित सेना को यूनिट (दल) प्रदान करना तथा इस प्रकार नवयुवकों को देशसेवा का अवसर प्रदान करना है। सामान्य श्रमिक से लेकर सुयोग्य प्राविधिज्ञ तक भारत के सभी नागरिक, जो शरीर से समर्थ हों, इसमें भर्ती हो सकते हैं। आयुसीमाएँ १८ और ३५ वर्ष हैं, जो सेवानिवृत्त सैनिकों और प्राविधिज्ञ सिविलियनों के लिये शिथिल की जा सकती है। सरकारी एवं गैरसरकारी संस्थाओं के कर्मचारी भी प्रादेशिक सेना में भर्ती हो सकते हैं। प्रादेशिक सेना आठ प्रदेशों में बँटी है। व्यक्ति अपने प्रदेश की यूनिट में ही भर्ती हो सकता है। प्रादेशिक सेना के कार्य निम्नलिखित हैं :

(१) नियमित सेना को स्थैतिक (static) कर्तव्यों से मुक्त करना और आवश्यकता पड़ने पर सिविल प्रशासन की सहायता करना।

(२) समुद्रतट की रक्षा और हवामार यूनिटों की व्यवस्था करना।

(३) आवश्यकता होने पर नियमित सेना के लिये यूनिटों की व्यवस्था करना।

प्रादेशिक सेना के कार्मिकों को प्रशिक्षण की अवधि में और आह्वान करने पर, नियमित सेना के तदनुरूपी पद का वेतन और भत्ता दिया जाता है। असैनिक नियोक्ता को अनिवार्य रूप से प्रादेशिक सेना से, या उसके प्रशिक्षण से, निवृत्त सदस्य को सिविलियन पद पर पुन: नियुक्त करना आवश्यक होता है। प्रादेशिक सेना के कार्मिकों को कठिन परिश्रम और सराहनीय कार्यों में प्रोत्साहित करने के लिये भविष्य में राष्ट्रीय रक्षा सेना के सैनिक विभाग की यथार्थ रिक्तियों के २५ प्रति शत पद उनके लिये आरक्षित किए जाएँगे। राष्ट्रीय रक्षा

सेना में सफलतापूर्वक प्रशिक्षण क्रम पूरा करने के बाद उन्हे सेना मे नियमित कार्यभार दिया जा सकता है।

प्रादेशिक सेना में भर्ती पाए हुए व्यक्ति या अफसर के लिये भारत की सीमाओं के बाहर सैनिक सेवा करना, यदि केंद्रीय सरकार का व्यापक या विशिष्ट आदेश न हो, तो आवश्यक नही है।

प्रादेशिक सेना के अनेक विभाग है, जैसे कवचित कोर (armoured corps); तोपखाना कोर, जिसमे हवामार और तटरक्षा यूनिटें समिलित है; इजीनियर कोर, जिसमे बदरगाह और रेलवे यूनिटें समिलित है; सकेत कोर, जिसमे डाक तार कोर शामिल है, पैदल सेना; सेना सेवा कोर; सेना चिकित्सा कोर तथा विद्युत और यांत्रिक इजीनियरी का कोर। प्रादेशिक सेना के यूनिट दो प्रकार के है . १–नागरिक और २–प्रांतीय। प्रांतीय यूनिटो मे ग्रामीण अचल के व्यक्ति भर्ती किए जाते है और दो या तीन महीने की अवधि का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। नागरिक यूनिटो मे बडे नगरो के व्यक्तियो को भर्ती किया जाता है। इन्हे साप्ताहिक कवायद पद्धति से शाम के समय, रविवार तथा छुट्टियो मे, एव अधिक से अधिक चार दिनों के शिविरों के माध्यम से प्रशिक्षण दिया जाता है [श० ना० रा०]

प्रायश्चित्त (हिंदू) जिस अनुष्ठान के द्वारा किए हुए पाप का निश्चित रूप से शोधन हो उसे प्रायश्चित्त कहते है। जैसे क्षार से वस्त्र की शुद्धि होती है वैसे ही प्रायश्चित्त से पापी की शुद्धि होती है।

धर्म की व्याख्या करते हुए जैमिनि ने बतलाया है कि वेद द्वारा विहित धर्म एव उससे विरुद्ध अधर्म है। धर्म के आचरण से पुण्य तथा अधर्म के आचरण से पाप होता है। पुण्य से इष्टसाधन एव पाप से अनिष्ट की प्राप्ति होती है।

पाप दस प्रकार कहे गये है ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णास्तेय, गुरुतल्पगमन और इन चतुर्विध पापो के करने वाले पातकी से ससर्ग रखना ये पाँच महापातक है। मातृगमन, भगिनीगमन आदि अतिपातक है। शरणागत का वध, गुरु से द्वेष आदि अनुपातक है। स्त्रीविक्रय, सुतविक्रय आदि उपपातक है। मित्र से कपट करना, ब्राह्मण को पीडा देना आदि जातिभ्रशकरण पातक है। लकड़ी चुराना, पक्षी की हत्या करना आदि मालिनीकरण पातक है। ब्याज से जीविका चलाना, असत्य बोलना आदि अपात्रीकरण पातक है, इत्यादि।

पातकी प्रायश्चित्त का भागी होता है। सर्वप्रथम उसे किए हुए पाप के निमित्त पश्चात्ताप होना चाहिए। अपने पाप का प्रायश्चित्त जानने के लिये उसे परिषद् मे उपस्थित होना चाहिए। मीमासा, न्याय और धर्मशास्त्र के जानकार तीन विद्वानो की परिषद् कही गई है। महापातक का प्रायश्चित्त बतलाते समय राजा की उपस्थिति भी आवश्यक है। देश, काल और पातकी की परिस्थिति के अनुकूल प्रायश्चित्त होना चाहिए। बालक, वृद्ध, स्त्री और आतुर को आधा प्रायश्चित्त विहित है। पाँच वर्ष की अवस्था तक नही है। पाँच से पौने बारह वर्ष तक चौथाई प्रायश्चित्त है और यह प्रायश्चित्त बालक के पिता या गुरु को करना चाहिए। बारह से सोलह वर्ष तक आधा और सोलह से अस्सी वर्ष तक पूरा प्रायश्चित्त अनुष्ठेय है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमश पूरा, आधा, तीन भाग और चौथाई प्रायश्चित्त कर्तव्य है। ब्रह्मचारी को द्विगुणित, वानप्रस्थी को त्रिगुणित और यति को चतुर्गुणित प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रायश्चित्त करने मे विलब करना अनुचित है। आरंभ के पूर्वदिन सविधि क्षौर, स्नान और पंचगव्य का प्राशन करना चाहिए।

पाप की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त रूप मे जप, तप, हवन, दान, उपवास, तीर्थयात्रा तथा प्राजापत्य, चाद्रायण, कृच्छ्र और सातपन प्रभृति व्रत करने का विधान है। उदाहरण रूप पाच महापातको के प्रायश्चित्त इस प्रकार है—ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त—जिस ब्राह्मण की हत्या की गई हो उसकी खोपड़ी के एक भाग का खप्पर बनाकर सर्वदा हाथ मे रखे। दूसरे भाग को बाँस मे लगाकर ध्वजा बनाए और उस ध्वजा को सर्वदा अपने साथ रखे। भिक्षा मे उपलब्ध सिद्धान्न से अपना जीवननिर्वाह करे। जूते एव छाते का उपयोग न करे। ब्रह्मचर्य का पालन करे। इन नियमो का पालन करते हुए १२ वर्ष पर्यंत तीर्थयात्रा करने पर ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा मिलता है। एक ब्राह्मण की अथवा १२ गौओं की प्राणरक्षा करने पर अथवा अश्वमेध याग, अवभृथ स्नान करने पर उपर्युक्त १२ वर्ष की अवधि मे कमी होना सभव है।

जिसने सुरा का पान किया हो उसे सुरा, जल, घृत, गोमूत्र या दूध प्रभृति किसी एक को गरम करके खौलता हुआ पीना चाहिए। और तब तक पान करते रहना चाहिए जब तक प्राण न निकले।

गुरुतल्पगमन प्रायश्चित्त — गुरुपत्नी के साथ सभोग करने पर तपाए हुए लोहे के पलंग पर उसे सोना चाहिए। साथ ही तपाई हुई लोहे की स्त्री की प्रतिकृति का आलिंगन कर प्राणविसर्जन करना चाहिए।

ससर्ग प्रायश्चित्त— महापातक करनेवाले के ससर्ग मे यदि कोई व्यक्ति एक वर्ष पर्यंत रहे तो उसे नियमपूर्वक द्वादशवर्षीय व्रत का पालन करना चाहिए। इस तरह प्रायश्चित्त करने से मानव पाप से मुक्त हो जाता है।

स० ग्रं० – प्रायश्चित्तविवेक (शूलपाणि), प्रायश्चित्तमयूख (नीलकठ), प्रायश्चित्तसार (दलपति), प्रायश्चित्तेंदुशेखर (नागेश)। [म० ला० द्वि०]

ईसाई : जिन कार्यों द्वारा मनुष्य पापाचरण के लिये खेद प्रकट करता है तथा ईश्वर से क्षमा मागता है, उन्हे प्रायश्चित्त कहा जाता है। बाइबिल के पूर्वार्ध मे बहुत से स्थलो पर यहूदियो मे प्रचलित प्रायश्चित्त के इन कार्यों का उल्लेख है—उपवास, विलाप, अपने पापो की स्वीकारोक्ति, शोक के वस्त्र धारण करना, राख मे बैठना आदि।

ईसाइयो का विश्वास है कि ईसा ने क्रूस पर मरकर मनुष्य जाति के सब पापो के लिये प्रायश्चित्त किया है। किंतु ईसा के प्रायश्चित्त से लाभ उठाने के लिये तथा पापक्षमा की प्राप्ति के लिये प्रत्येक मनुष्य को व्यक्तिगत प्रायश्चित्त भी करना चाहिए। ईसाई चर्च की प्रारंभिक शताब्दियो मे प्रायश्चित्त को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। बपतिस्मा के बाद जब कोई ईसाई किसी घोर पाप का अपराधी बन जाता था तो बिशप के सामने अपना पाप स्वीकार करने के बाद उसे काफी समय तक प्रायश्चित्त करना पड़ता था—

पश्चात्ताप के विशेष कपड़े पहनकर उसे पूजा के समय गिरजाघर की एक अलग जगह पर रहना पड़ता था इसके अतिरिक्त उसे उपवास प्रायश्चित्त के कार्य भी पूरे करने पड़ते थे। अंत मे उसे क्षमा मिलती थी और वह फिर यूखारिस्ट सस्कार में सम्मिलित हो सकता था। बारंबार पापस्वीकरण संस्कार ग्रहण करने की प्रथा जब फैलने लगी प्रायश्चित्त को कम कर दिया गया और पश्चात्ताप को अधिक महत्व दिया जाने लगा। प्रायश्चित्त के रूप मे विशेषकर उपवास, भिक्षादान तथा प्रार्थनाएँ करने का आदेश दिया जाता था। आजकल पापस्वीकरण संस्कार के समय पश्चात्तापी को प्रायः कुछ निश्चित प्रार्थनाएँ करने के लिये कहा जाता है (दे० पापस्वीकरण)। [का० बु०]

प्रायोपवेशन जीवन पर्यंत संकल्पपूर्वक आहार का त्याग करके ध्यानस्थ मुद्रा में आसीन होने को प्रायोपवेशन कहा है। भागवत पुराण में उल्लेख है कि पाडववशी राजा परीक्षित ने गंगा किनारे अनशन व्रत स्वीकार किया और समस्त संग छोड़कर वे श्रीकृष्ण के चरणो में लीन हो गए। वायु पुराण के अनुसार इंद्र द्वारा उसके शिष्यों की हत्या किए जाने पर सुकर्मा ने भी प्रायोपवेशन व्रत स्वीकार किया था। [ज० चं० जै०]

प्रार्थनासमाज, जिसकी स्थापना बबई मे ३१ मार्च, १८६७ को हुई, की पृष्ठभूमि १९वी शती के प्रारभ अथवा उससे भी पहले १८वी शती मे हुई कई घटनाओ से बन चुकी थी। अंग्रेजी शिक्षा का प्रवेश और ईसाई मिशनरियों के कार्य, ये दो घटनाएँ उस पृष्ठभूमि के निर्माण मे विशेष सहायक बनी। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से शिक्षित भारतीयो मे अपने सामाजिक और आर्थिक विश्वासों तथा रीति रिवाजो के दोषों और त्रुटियो के प्रति चेतना जगी। ईसाई मिशनरियों ने अनेकानेक लोगो, विशेषतया हिंदुओं, का धर्मपरिवर्तन कर उन्हे ईसाई बना लिया, इससे भी लोगो की आँखे खुल गईं। फिर मिशनरियों ने अपनी कठोर प्रहारी आलोचना द्वारा भी धर्मपरिवर्तन के अनिच्छुक लोगो के विचारो मे बड़ा परिवर्तन ले आ दिया। हिंदू दर्शन के उन नेताओ ने जो इन तत्वो के प्रभाव का अनुभव कर रहे थे, और नवीन ज्ञान से भी परिचित हो रहे थे, सास्कृतिक मूल्यों के आधार पर हिंदू समाज के बौद्धिक और आध्यात्मिक पुनरुत्थान के कार्य का श्रीगणेश किया। हिंदू विचारधारा के इन्ही नेताओं में से कुछ ने प्रार्थनासमाज की स्थापना की।

प्रार्थनासमाज के आदोलन ने, राजा राममोहन राय द्वारा बंगाल में स्थापित ब्रह्मसमाज (१८२८) से प्रेरणा ग्रहण की, और व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के स्वस्थ सुधार के लिये अपनी सारी शक्ति धार्मिक शिक्षा के प्रचार मे अर्पित कर दी। बबई के पश्चात् धीरे धीरे इसका विस्तार पूना, अहमदाबाद, सतारा और अहमदनगर आदि स्थानो में भी हुआ।

प्रार्थनासमाज के प्रमुख प्रकाशस्तंभो में आत्माराम पांडुरंग, वासुदेव बाबाजी नौरगे, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, महादेव गोविंद रानडे, वामन अबाजी मोदक और नारायण गणेश चंदावरकर थे। प्रार्थनासमाज के आलोचकों द्वारा किए गए असत्य प्रचार को मिटाने के लिये इन नेताओं को बहुत संघर्ष करना पड़ा। असत्य प्रचार के अंतर्गत यह कहा जाता था कि प्रार्थनासमाज ईसाई धर्म के अनुकरण पर आधृत है और यह देश के प्राचीन धर्म के विरुद्ध है। प्रार्थनासमाज का उद्देश्य उसके नेताओ के अनुसार प्रार्थना और सेवा द्वारा ईश्वर की पूजा करना था। जैसा नाम से प्रकट है, प्रार्थना ही समाज की आत्मा है। बगाल के ब्रह्मसमाज की भाँति उपनिषदो और भगवद्गीता की शिक्षाएँ प्रार्थनासमाज के उद्देश्य की आधार है किंतु एक बात मे यह ब्रह्मसमाज से भिन्न है, इसमें भारत के, विशेषतया महाराष्ट्र के, मध्यकालीन संतो—ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम—की शिक्षाओं को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

प्रार्थनासमाज ने १९वी शती के नवें दशक मे नारीजागरण की योजनाओ का आरभ किया। आर्य-महिला-समाज की स्थापना (१८८२) उन्हीं योजनाओ का फल है।

१८७८ मे प्रार्थनासमाज द्वारा स्थापित पहला रात्रिविद्यालय जनशिक्षा और प्रौढ़शिक्षा के क्षेत्र मे अग्रणी रहा। वासुदेव बाबाजी नौरगे बालकाश्रम की स्थापना लालशकर उमाशंकर द्वारा पढरपुर मे १८७५ मे हुई यह बालकाश्रम बाद मे प्रार्थनासमाज के सरक्षण मे आ गया। यह अपने ढग की सर्वाधिक प्राचीन और बडी सस्था है, और यह १९७५ मे अपनी शताब्दी पूरी करेगी। प्रार्थनासमाज के सरक्षण मे दो बालकाश्रम और चलते है—एक विले पार्ले (बंबई) मे डी० एन० सिरूर होम और दूसरा सतारा जिले के वाई नामक स्थान मे है।

'दि डिप्रेस्ड क्लास मिशन सोसायटी ऑव इंडिया' नाम की संस्था, जो अछूतोद्धार के लिये प्रसिद्ध है, प्रार्थनासमाज के एक कार्यकर्ता बिट्ठल रामजी शिंदे द्वारा स्थापित हुई।

१९१७ मे प्रार्थनासमाज ने राममोहन अंग्रेजी विद्यालय की स्थापना की। अब इसके सरक्षण से दस से अधिक विद्यालय बबई और उसके आस पास चल रहे है। [जी० एन० च०]

प्रिचर्ड, कैथेरीन सुसन्ना आस्ट्रेलिया की महिला उपन्यासलेखिका कैथेरीन सुसन्ना प्रिचर्ड का जन्म फ़िजी द्वीप मे १८८४ मे हुआ। प्रिचर्ड के उपन्यासो मे श्रमिको के प्रति सहानुभूति विशेष रूप से लक्षित होती है। जीवन के कठोर निर्मम यथार्थ का चित्रण भी वह विशेष मार्मिकता के साथ करती है। उनके कई उपन्यास और कथासग्रह है। विशेष प्रसिद्ध रचनाओ मे 'वर्किंग बुलक्स' (काम करते हुए बैल, १९२६) दक्षिण की ओर इमारती लकड़ी काटकर वेचने का व्यापार करनेवाले प्रदेश की परिस्थियो पर आधारित है। १९२९ मे प्रकाशित 'कूनार्डू' नामक उपन्यास मे उत्तर-पश्चिम के निर्जन चारागाहों की पार्श्वभूमि पर प्रकृति और मानव के सघर्ष का यथार्थवादी चित्र उभरकर सामने आता है। धीरे धीरे कैथेरीन प्रिचर्ड की समाजवाद के प्रति सहानुभूति उन्हें राजनैतिक प्रचार प्रधान उपन्यास लिखने की ओर प्रेरित करने लगी और निम्न तीन उपन्यासो मे सोने की खदानों की खोज और धीरे धीरे व्यापारिक विकास से बढ़नेवाली श्रमिकों की कठिनाइयों और तीव्र होते हुए वर्गविग्रह का चित्र व्यक्त किया गया है : दि रोअरिंग नाइटीज (१९४६), 'गोल्डेन माइल्स' (सुनहरे कोस, १९४८) विंग्ड् सीड्स' (पखवाले बीज, १९५०)। आस्ट्रेलियाई साहित्य में आधुनिक सामाजिक उपन्यास की नींव डालनेवालो में

कैथेरीन प्रिचर्ड का नाम वैन्स पामर और फ्रैंक डेविसन के साथ बहुत आदर से लिया जाता है। उस समय आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों, लंबे चौड़े खेतों, मैदानों और प्राकृतिक शांत जीवन का उपयोग पार्श्ववर्ती परदे के रूप मे लेखकों ने अधिक किया। धीरे धीरे नागरिक सभ्यता के विकास और महानगरों के निर्माण से ग्रामीण अंचल की वह शाति बदलती गई; नए मानव और यंत्र सबंधो ने कई समस्याएँ उपस्थित की। [प्र० मा०]

प्रिटोरिश्रा स्थिति : २५° ३८' द० अ० तथा २८° ११' पू० दे०। यह समुद्रतल से ४,५६३ फुट की ऊँचाई पर ट्रैंसवाल प्रात मे स्थित दक्षणी अफ्रीका सघ की राजधानी है। यह आपीज (Aapies) नामक छोटी नदी के दोनों किनारों पर है। १८५५ ई० में प्रिटोरियस नामक व्यक्ति ने इस नगर को बसाया था। दक्षिण अफ्रीका के युद्ध मे सर चर्चिल इसी नगर में कैद किए गए थे। यहाँ पर एक विश्वविद्यालय भी स्थित है। इस नगर की वर्तमान अनुमानित जनसंख्या ४,२२,५९० (१९६३) है जिसमें लगभग ५० प्रति शत व्यक्ति यूरोपीय वशानुक्रम के हैं। यहाँ पर कई पार्क तथा क्रीड़ास्थल है। इसके मध्य मे एक प्रसिद्ध गिरजाघर है। [रा० ब० सिं०]

प्रियप्रवास 'हरिऔध' जी को काव्यप्रतिष्ठा 'प्रियप्रवास' से मिली। इसका रचनाकाल सन् १९०९ से सन् १९१३ है। इसके पहिले से ही हिंदी कविता मे ब्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली की स्थापना हो गई थी। मैथिलीशरण गुप्त का 'जयद्रथवध' (खडकाव्य) प्रकाशित हो चुका था। फिर भी खडी बोली मे भाषा, छंद और शैली का नवीन प्रयोग किया जा रहा था। 'प्रियप्रवास' भी ऐसा ही काव्यप्रयोग है। यह भिन्न तुकात अथवा अतुकात महाकाव्य है। इसके पूर्व खडी बोली मे महाकाव्य और महाकाव्य के रूप मे अतुकात का अभाव था। हरिऔध जी ने 'प्रियप्रवास' की विस्तृत भूमिका मे अपने महाकाव्य के लिये अतुकात की आवश्यकता और उसके लिये उपयुक्त छद पर विचार किया है। अतुकात उनके लिये 'भाषासौंदर्य' का 'साधन' है। छंद और भाषा के संबध मे उन्होने कहा है—'भिन्न तुकात कविता लिखने के लिये सस्कृत वृत्त बहुत ही उपयुक्त है—कुछ सस्कृत वृत्तो के कारण और अधिकतर मेरी रुचि के कारण इस ग्रथ की भाषा संस्कृतगर्भित है'।

'प्रियप्रवास' यद्यपि सस्कृतबहुल और समासगुंफित है, तथापि इसकी भाषा मे यथास्थान बोलचाल के शब्दो का भी समावेश है। अतुकांत होते हुए भी इसके पदप्रवाह मे प्राय सानुप्रास कविता जैसा संगीत है, छंद और भाषा मे लयप्रवाह है, फिर भी वर्णिक छंद के कारण यत्रतत्र भाषा हिंदी की दृष्टि से कृत्रिम हो गई है, जकड सी गई है।

'प्रियप्रवास' द्विवेदी युग मे प्रकाशित हुआ था। खड़ी बोली की काव्यकला (भाषा, छद, अतुकात, इत्यादि) मे बहुत परिवर्तन हो चुका है। किंतु एक युग बीत जाने पर भी खड़ी बोली के काव्य-विकास मे 'प्रियप्रवास' का ऐतिहासिक महत्व है।

'प्रियप्रवास' विरहकाव्य है। कृष्णकाव्य की परपरा मे होते हुए भी, उससे भिन्न है। 'हरिऔध' जी ने कहा है— मैंने श्री कृष्णचद्र को इस ग्रंथ मे एक महापुरुष की भाँति अंकित किया है, ब्रह्म करके नही। कृष्णचरित को इस प्रकार अंकित किया है जिससे आधुनिक लोग भी सहमत हो सकें।'

महापुरुष के रूप में अंकित होते हुए भी 'प्रियप्रवास' के कृष्ण में वही अलौकिक स्फूर्ति है जो अवतारी ब्रह्मपुरुष मे। कवि ने कृष्ण का चरित्रचित्रण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया है, उनके व्यक्तित्व मे सहानुभूति, व्युत्पन्नमतित्व और कर्मकौशल है।

कृष्ण के चरित्र की तरह 'प्रियप्रवास' की राधा के चरित्र में भी नवीनता है। उसमे विरह की विकलता नही है, व्यथा की गंभीरता है। उसने कृष्ण के कर्मयोग को हृदयगम कर लिया है। कृष्ण के प्रति उसका प्रेम विश्वात्म और उसकी वेदना लोकसेवा बन गई है। प्रेमिका देवी हो गई है, वह कहती है :

आज्ञा भूलूँ न प्रियतम की, विश्व के काम आऊँ
मेरा कौमार-व्रत भव मे पूर्णता प्राप्त होवे।

'प्रियप्रवास' मे यद्यपि कृष्ण महापुरुष के रूप में अंकित हैं, तथापि इसमे उनका यह रूप आनुषंगिक है। वे विशेषत. पारिवारिक और सामाजिक स्वजन है। जैसा पुस्तक के नाम से स्पष्ट है, मुख्य प्रसग है—'प्रियप्रवास', परिवार और समाज के प्रिय कृष्ण का वियोग। अन्य प्रसंग अवातर हैं। यद्यपि वात्सल्य, सख्य और माधुर्य का प्राधान्य है और भाव में लालित्य है, तथापि यथास्थान ओज का भी समावेश है। समग्रत इस महाकाव्य मे वर्णनबाहुल्य और वाग्वैदग्ध्य का आधिक्य है। जहाँ कही सवेदना तथा हार्दिक उद्गीर्णता है, वहाँ रागात्मकता एव मार्मिकता है। विविध ऋतुओ, विविध दृश्यों विविध चित्तवृत्तियो और अनुभूतियों के शब्दचित्र यत्रतत्र बडे सजीव है। [शा० प्रि० द्वि०]

प्रियादास यह नाभाजी कृत भक्तमाल की कवित्तोवाली प्रसिद्ध टीका भक्तिरसबोधिनी के रचयिता है जिसे इन्होने सं० १७६९ में पूर्ण किया था। इनके दीक्षागुरु मनोहरराम चैतन्य सप्रदाय की राधा-रमणी शिष्यपरंपरा मे थे। इनकी अन्य रचनाएँ रसिकमोहिनी (स० १७९४), अनन्यमोहिनी, चाहवेली तथा भक्तसुमिरनी हैं। इनका उपनाम रसरासि था। [ब्र० र० दा०]

प्रीतर मूलत प्रीतर सैनिक उपाधि है। लैटिन नगरों के मजिस्ट्रेटों को यह सर्वोच्च उपाधि प्रदान की जाती थी।

रोमन गणराज्य के अधीन रोमन कांसुल को प्रीतर कहा जाता था। ई० पू० ३६७ के लिसीनियन के अनुसार कासुलो के सहयोगी के रूप मे नए मजिस्ट्रेटो की नियुक्ति की प्रथा शुरू हुई। कासुलो की अपेक्षा इन नए मजिस्ट्रेटो के अधिकार कुछ कम थे। दीवानी के मामलो मे न्याय करने के अधिकार इन्हे प्राप्त थे। इन मजिस्ट्रेटों को नगर (सिटी) प्रीतर कहा जाता था। जब इस प्रकार के प्रीतरो की सख्या बहुत बढ़ गई, सिटी प्रीतरो को और अधिकार देकर उन्हे मुख्य न्यायाधीश बना दिया गया और प्रीतर शब्द बाकी बचे हुए मजिस्ट्रेटो के लिये निश्चित रूप से प्रयुक्त होने लगा। बाद मे इन प्रीतरो की संख्या और बढ़ा दी गई और वे प्रातों के गवर्नरों के रूप मे भी कार्य करने लगे। रोमन गणराज्य के अधीन इन प्रीतरो की अतिम अवस्था यह थी कि एक निश्चित सख्या में प्रीतर चुने जाते थे। ये एक साल तक जज का काम करते थे और बाद मे गवर्नर के रूप मे विभिन्न प्रांतों मे भेज दिए जाते थे। [स० वि०]

प्रीस्टलि, जोज़ेफ़, (Priestley, Joseph; सन् १७३३–१८०४) १८वीं शती के जगत्प्रसिद्ध, अंग्रेज रसायनज्ञ थे, जिन्होने ऑक्सिजन की खोज की थी। इनका जन्म लीड्ज़ के समीप फील्डहेड मे हुआ था। बाल्यकाल में स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण बहुत दिनों तक इनका अध्ययन बंद रहा, और ये इधर उधर व्यापार संबंधी काम करते रहे। बाद को डा० डॉडरिज (Doddridge) द्वारा डेवेंट्री मे स्थापित एक अकादमी मे इन्होंने धर्मशिक्षा प्राप्त की। प्रीस्टलि ने रूढिगत परंपराओं के प्रति आस्था प्रकट न की और अपने निजी ढग पर प्रत्यक्ष और परोक्ष के प्रश्नो पर विचार करना प्रारभ किया। १७५५ ई० मे ये सफक (Suffolk) के एक छोटे से समुदाय के नीडैम मार्केट में पादरी हो गए। यहां इन्होने एक पुस्तक 'दी स्क्रिपचर डॉक्ट्रिन ऑव रेमिशन' लिखी, जिसमे ईसा की मृत्यु और पाप संबंधी प्रचलित विचारो का विरोध किया गया था। १७५८ ई० मे इन्होंने नीडैम अकादमी छोड दी और नैंटविच चले गए। १७६१ ई० में ये वैरिंगटन की एक अकादमी मे भाषाओ के अध्यापक हो गए। यही प्रिस्टलि का साहित्यिक जीवन आरभ हुआ। इनका लदन आना जाना लगा रहता था, जिससे प्रिस्टलि का परिचय फ्रैंकलिन से हो गया। फ्रैंकलिन ने जो सामग्री इन्हे प्रदान की, उसके आधार पर प्रीस्टलि ने १७६७ ई० मे विद्युत् सबधी पुस्तक 'हिस्ट्री ऐंड प्रेजेंट स्टेट ऑव इलेक्ट्रिसिटी' लिखी। इसके बाद ही इनकी प्रकाश सबंधी पुस्तक 'विज़न, लाइट ऐंड कलर्स' (दृष्टि, प्रकाश और रग) प्रकाशित हुई। १७६२ ई० मे इन्होने "भाषा और सर्वमान्य व्याकरण के सिद्धात" पर एक पुस्तक लिखी।

१७६४ ई० मे इन्हे एल–एल० डी० की उपाधि एडिनबरा से मिली और १७६६ ई० मे ये रॉयल सोसायटी के फेलो निर्वाचित हुए। अगले वर्ष ये लीड्ज मे एक गिरजा के पादरी हो गए। यहां इनके घर के निकट शराब बनाने का एक छोटा कारखाना प्रारभ हुआ। प्रीस्टलि ने इस कारखाने मे रुचि लेना प्रारभ किया, जिसके कारण इनका ध्यान रसायन विज्ञान की ओर आकर्षित हुआ। पर प्रमुख वृत्ति अभी साहित्यिक ही थी। १७७३ ई० मे ये लार्ड शेलबर्न के साहित्यिक सहायक नियुक्त हुए और यूरोप की यात्रा की। 'मैटर और स्पिरिट' (प्रकृति और पुरुष) पर एक ग्रथ लिखा, जिसमे प्रकृति मे चेतनता और आत्मा मे जडता, इस प्रकार विरोधी भावो का समन्वय करना चाहा। ये विज्ञान की सत्यता की अपेक्षा बाइबिल की सत्यता मे अधिक आस्था रखते थे। बाद को लॉर्ड शेलबर्न का साथ इन्होने छोड दिया और बर्मिंघम के गिरजे के पादरी बने। यहाँ इन्होंने ईसा मसीह से सबधित विवादास्पद विचारो पर एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम 'हिस्ट्री ऑव अर्ली ओपिनियन्स कन्सर्निंग जीसस क्राइस्ट' है। बर्क की एक पुस्तक 'रिफ्लेक्शन्स ऑन फ्रेंच रेवोल्यूशन' का प्रीस्टलि ने उत्तर लिखा, जिसके परिणामस्वरूप इन्हे फ्रेंच रिपब्लिक का नागरिक बना लिया गया। इस नागरिकता के कारण इनके नगर के लोग बिगड उठे, उन्होंने इनका घर लूट लिया और इनकी पुस्तकें तथा पाडुलिपियाँ जला दी। इसी समय इनके एक बहनोई की मृत्यु हुई, और इन्हे उसकी १०,००० पाउड की संपत्ति मिल गई। इनके स्वतंत्र विचारो ने इन्हे कही चैन से टिकने न दिया। विरुद्ध लोकमत से तंग आकर ये १७९४ ई० मे अमरीका चले गए, जहाँ इनका अच्छा स्वागत हुआ। पेनसिलवेनिया के फिलाडेल्फिया नगर में ६ फरवरी, १८०४ ई० को इनकी मृत्यु हो गई।

प्रीस्टलि ने गैसों पर बहुत काम किया। ये सब प्रयोग इन्होने अवकाश के समय मे किए थे। १७७४ ई० मे इन्होंने छह खंडों मे 'ऑबजर्वेशन्स ऑन डिफरेंट काइंड्स ऑव एयर", अर्थात् विभिन्न प्रकार की हवाओं सबधी परीक्षण विषयक पुस्तक प्रकाशित की। इन्होने अपने प्रयोगो के उपकरणो की स्वय खोज की। प्रीस्टलि ने नई गैसों की भी खोज की और इनमे से जो गैसे पानी मे बहुत विलेय थी, (जैसे अमोनिया और सल्फर डाइऑक्साइड), उन्हे पारे के ऊपर इकट्ठा करने की विधि बताई। ऑक्सिजन की खोज इन्होने १७७४ ई० मे की। लगभग इन्ही दिनो शीले (Scheele) ने भी स्वतत्र रूप से यह गैस स्वीडन मे तैयार की थी। प्रीस्टलि ने पारे के ऑक्साइड पर सूर्य की किरणे १२ इच व्यास के लेस द्वारा केंद्रित की। ऐसा करने पर उन्होने देखा कि एक गैस आसानी से निकल रही है। यह गैस पानी मे नही घुलती थी और इसमे मोमबत्ती जोरो से जलती थी। इन्होने इस गैस के भीतर सांस भी खीची और साँस लेने मे उन्हे सुविधा प्रतीत हुई। इस प्रकार प्रीस्टलि ने ऑक्सिजन की खोज कर डाली। प्रीस्टलि ने नाइट्रिक ऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, सलफ्यूरस अम्ल, कार्बोनिक ऑक्साइड, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और अमोनिया आदि गैसो पर महत्वपूर्ण कार्य किया। [सत्य प्र०]

प्रीस्टली, जे० बी० (ज० १८९४) अंग्रेजी उपन्यासकार, नाटककार एव निबध लेखक। जन्मस्थान ब्रैड-फोर्ड-यार्कशायर, पिता अध्यापक। प्रथम विश्वयुद्ध मे सैनिक कार्य करने के पश्चात् केंब्रिज के ट्रिनिटी कालेज से अंग्रेजी, इतिहास, राजनीति मे विशेष योग्यता। १९२२ से लदन मे रहकर साहित्य की बहुमुखी सेवा। १९२९ मे 'दि गुड कौंनियन' नामक उपन्यास से ख्याति। इसमे सामाजिक दबाव सकट से निकलकर सुदर रगीन जीवन का चित्रण किया गया है। १९३० मे 'एंजिल पेवमेंट' उपन्यास मे कार्यालय कर्मचारियो की अनुचित ढग से पैसा बनाने की प्रवृत्ति का व्यग्यात्मक चित्रण है। 'इंग्लिश जर्नी, लेट दी पिपुल्स सिंग (१९३९) विश्वयुद्ध के अनुभव पर आधारित उपन्यास 'ब्लैक आउट इन ग्रेटले', 'डे लाइट आन सैटरडे' (१९४३) सफल कृतियाँ है। इनके उपन्यासो का चलचित्र विशेष प्रसिद्ध हुआ। वे १९४७-४८ मे अतरराष्ट्रीय थियेटर समेलन के अध्यक्ष थे तथा १९४६-४७ मे इंग्लैंड की ओर से यूनेस्को के प्रतिनिधि। वे स्पष्टवादी, भगवत्परायण, कट्टर अंग्रेज, कुशल वक्ता, समाचारप्रसारक तथा देशभक्त साहित्यकार है। उनकी पुस्तको 'मिड नाइट ऑन दी डेजर्ट', 'रेन अपॉन गार्डस हिल' का अनेक भाषाओ मे अनुवाद हुआ और लाखों प्रतियां बिकी। १९३२ से 'डेजर्स कार्नर' के साथ नाटककार के रूप मे अवतरित हुए। उन्होने नाटक कपनियो का सचालन तथा सफल फिल्म निर्माण किया। वे परपरागत नाटक शैली से हटकर नई प्रकार की शैली को अपनाने में सफल हुए। 'एडेन ऐंड', 'टाइम ऐंड दि कानवेज', 'आई हैव बीन हीयर बिफोर', 'इंसपेक्टर्स काल', 'ड्रैगंस माउथ' इनके सफल नाटक है। 'दि लिंडेन ट्री' में विश्वयुद्ध के पश्चात् मध्यम वर्गीय परिवार की समस्या का चित्रण है। 'एप्स ऐंड एंजिल्स' तथा 'ए फॉल्कि' उनके विशिष्ट निबंध-ग्रंथ हैं। उन्होंने अंग्रेजी उपन्यास का संक्षिप्त इतिहास, 'दि इंगलिश

कॉमिक कैरेक्टर्स' तथा 'मेरिडिथ' के संबंध में साहित्यिक ग्रंथ की रचना की। इनके सभी उपन्यास एवं नाटक आलोचना, व्यंग तथा आमोद से पूर्ण हैं। वे समसामयिक समस्या के सुलझाने के लिये जनता से वर्गवाद, लोभ और संग्रह का अंत चाहते है। 'दि लास्ट ट्रंप' (१९३८) मे पूंजीवाद का चित्रण किया गया है।

[गि० ना० श०]

प्रूधों, पिएर जोसेफ (१८०९-१८६५) फ्रांसीसी अराजकतावादी विचारक। बजासाँन में उत्पन्न हुआ। आर्थिक कठिनाइयो के कारण शिक्षा पूरी न कर सका। बाद मे उसने मुद्रणकला सीखी। विद्याव्यसनी तो था ही, उसने अध्ययन और ज्ञानप्राप्ति के प्रत्येक अवसर का उपयोग किया। १८३८ मे उसकी 'एसे डि ग्रामेयर जेनरेल' नामक भाषाशास्त्र की पुस्तक प्रकाशित हुई। उस पुस्तक पर बजाँसाँन अकादमी ने प्रूधो को तीन वर्ष तक १५०० फ्राक सालाना की वृत्ति प्रदान की। राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन मे प्रूधों की अत्यधिक रुचि रही; १८४० मे उसकी प्रसिद्ध कृति 'ह्वाट इज़ प्रॉपर्टी' प्रकाशित हुई, जिसके प्रथम पृष्ठ पर प्रूधो की प्रधान मान्यता 'सपत्ति चोरी है' अंकित है। इसके पश्चात् उसने दो पुस्तिकाएँ भी लिखी। अतिक्रातिकारी विचारो के आरोप मे उसपर मुकदमा चलाया गया; किंतु न्यायालय ने उसे मुक्त कर दिया। १८४७ मे वह पेरिस चला गया; वहाँ एक मौलिक सुधारवादी के रूप मे विख्यात हुआ। फरवरी, १८४८ की क्राति के पश्चात् उसने एक पत्र निकाला, किंतु राज्य ने उसका प्रकाशन बद करा दिया। कुछ काल के लिये ससदसदस्य भी चुना गया; मगर सक्रिय राजनीति मे मन न लगा पाने के कारण उसने पुन अध्ययन और लेखन को अपनाया। १८४९ मे उसने एक 'बैक ऑव पीपुल' की स्थापना का प्रयास किया, जिसका उद्देश्य ब्याजप्रथा को समाप्त करना और अंततोगत्वा पूंजी का ही उन्मूलन करना था। इस योजना के असफल होने के साथ प्रूधो जेनेवा चला गया। वहाँ से लौटने पर उसे प्रेस नियमो की अवहेलना के अपराध पर तीन वर्ष का कारावास मिला। कारागार से मुक्त होने पर १८५२ मे वह बेल्जियम चला गया, जहाँ उसने लिखने का क्रम जारी रखा।

प्रूधो ने कुल मिलाकर लगभग ४५ पुस्तके लिखी है। राजनीति मे अराजकतावाद के दार्शनिक व्याख्याकारो मे प्रूधो अग्रणी है। उसके अनुसार सपत्तिसचय का कोई औचित्य सिद्ध नही किया जा सकता। श्रमजन्य उत्पादन से श्रमिक को ही अधिकतम लाभ मिलना चाहिए। वह मूल्य के समाजवादी सिद्धात से सहमत था। राज्यहीन समाज के सिद्धात का प्रबल पोषक होने के नाते उसकी मान्यता थी कि व्यक्तिगत सविदा समाज का मुख्य आधार होनी चाहिए।

प्रूधों, पिएर पॉल (१७५८-१८२३) नेपोलियन का दरबारी कलाकार। प्रूधो का जन्म क्लूने मे हुआ था। दीजो अकादमी मे उसने चित्रकला की प्रारंभिक शिक्षा पाई। १७८० मे वह पेरिस चला गया। बर्गंडी का रोम पुरस्कार जीता। वह इटली में भी रहा। वहाँ उसकी कला पर रैफेल, करेज्जिओ तथा लियोनार्दो की कला का यथेष्ट प्रभाव पडा। १७८७ मे वह पेरिस वापस आया और नेपोलियन के दरबार का कलाकार बना। वहाँ उसका मुख्य काम था नेपोलियन की रानियों को चित्रकला सिखाना तथा उनके चित्र बनाना।

गृहसज्जा के चित्र बनाने मे भी उसे विशेष अभिरुचि थी।

[रा० चं० शु०]

प्रूफ संशोधन पुस्तको, निबधों तथा अन्य मुद्रित वस्तुओ को पहले टाइपों से कपोज करना पड़ता है। कंपोज करने में प्रायः गलत टाइप लग जाते है, अत कंपोज की गई सामग्री पहले अशुद्ध रहती है। इनकी छाप लेकर गलत टाइपों के स्थान पर ठीक टाइप लगाने के जो संकेत छाप पर किए जाते हैं उन्हे प्रूफ संशोधन कहते है। मुद्रण के साथ ही प्रूफ संशोधन कला भी भारत मे पश्चिम से आई है। प्रूफ संशोधन के संकेत दो प्रकार के होते हैं : एक तो कुछ विशेष चिह्न होते हैं और दूसरे अंगरेजी के कतिपय अक्षर होते हे, जिनका पृथक् पृथक् तात्पर्य होता है। हिंदी मे अभी तक स्वतत्र प्रूफ सकेतो नही बने हैं। अंग्रेजी के चिह्न ही अभी तक इसके लिये भी व्यवहृत होते है, किंतु हिंदी मे इन चिह्नो से पूरा काम नही चल पाता। हिंदी की मात्राएँ रेफ, हलत, अनुस्वार आदि के लिये अंग्रेजी के प्रूफ संकेतो से काम नहीं चलाया जा सकता। अत यह आवश्यक है कि इनका स्पष्ट उल्लेख हाशिए पर कर दिया जाय।

प्रूफ सशोधन मे सबसे पहले पृष्ठसंख्या, शीर्षक आदि देखकर प्रूफ पढ़ना चाहिए। साकेतिक चिह्न बाएँ हाशिए पर क्रम से बनाना चाहिए और जब इस ओर जगह न रहे, तब दाहिने हाशिए पर उसी क्रम से चिह्न बनाना चाहिए। अच्छा यह होगा कि खड़े बल मे प्रूफ के दो भाग मान लिए जाएँ और बाई ओर वाले आधे भाग के लिये चिह्न बाएँ हाशिए पर और दाहिनी ओर के चिह्न दाएँ हाशिए पर बनाए जाएँ। प्रूफ के ऊपर से रेखा खीचकर फिर हाशिए पर शोधन करने का ढग अच्छा नही है। इससे प्रूफ भद्दा हो जाता है और यदि रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई जाती हैं, तो कपोजीटर के लिये ठीक ठीक शुद्धि करना कठिन हो जाता है। शोधन ऐसी स्याही से करना चाहिए, जो स्पष्ट दिखाई दे। इसके लिये लाल स्याही ठीक रहती है। शोधन में, पेंसिल का उपयोग नही करना चाहिए। शोधन के लिये एक संकेत लिखने के बाद एक खडी रेखा खीचकर तब दूसरा शोधनचिह्न बनाना उचित है। लेख मे जो भी संशोधन किए जाएँ, उनके लिये हाशिए पर साकेतिक चिह्न अवश्य बना दिए जाएँ अन्यथा सशोधन व्यर्थ जायँगे। कपोजीटर केवल हाशिए के चिह्नो के अनुसार शोधन करते है। संकेतों के अतिरिक्त कपोजीटर की सूचना के लिये, जो कुछ लिखा जाय उसे वृत्त से घेर देना चाहिए। शोधन होने के बाद दूसरी बार पुनः पाठ के लिये जो प्रूफ आता है, उसमे केवल पूर्वसशोधन को ही नही देखना चाहिए, अपितु यह भी देखना चाहिए कि एक ही शोधन दो बार तो नही हो गया, या कोई टाइप तो नही निकल गया है, अथवा कोई अचिह्नित टाइप तो नही बदला गया है। साधारणत: प्रूफ तीन बार देखा जाता है। अशुद्धियाँ अधिक होने पर इससे अधिक बार भी देखा जा सकता है। केवल वर्णविन्यास के शोधन से ही प्रूफ सशोधक के कर्तव्य की इतिश्री नही हो जाती। विचारो और भावो की स्पष्टता की ओर भी प्रूफशोधक को लेखक का ध्यान आकर्षित करना चाहिए और संदेहनिवारण के लिये पांडुलिपि सहित प्रूफ को लेखक के पास भेज देना चाहिए। प्रेस की भाषा में इस क्रिया को क्वेरी ठीक करना कहते हैं।

प्रूफ संशोधन के लिये निम्नलिखित चिह्नों का उपयोग किया जाता है :

संकेत	अर्थ
ↄ	टाइप हटा दो या निकाल दो ।
ↄ̲	हटा दो और शेष को जोड़ दो ।
୨	उल्टा लगा है, ठीक करो ।
⊃	अक्षरों को मिलाओ ।
○⁀	वृत्त मे घिरे हुए शब्द या अक्षर का स्थान बदलो ।
¶	नया पैराग्राफ बनाओ ।
,?/	विरामचिह्न दो ।
५५	दो अवतरण चिह्न दो ।
(sp)	संक्षिप्त करो ।
(?)	क्वेरी ठीक करो ।
५५	एक अवतरण चिह्न दो ।
#	जगह करो ।
Eq #	रिक्त स्थान बराबर करो ।
va या v	समान स्थान दो ।
×	टूटा अक्षर बदलो ।
=	एक लाइन मे करो ।
[	बाईं ओर हटाओ ।
]	दाहिनी ओर हटाओ ।
⌐	ऊपर हटाओ ।
⌙	नीचे हटाओ ।
▭	एक एम स्थान छोडो, जैसा नए पैरा के आरभ मे होता है ।
≡ या |||	ऊपर नीचे की पक्तियो को एक सीध मे करो ।
tr	स्थान बदलो ।
w. f.	विजातीय टाइप बदलो ।
en	एक छोटा डैश लगाओ ।
em	एक बडा डैश लगाओ ।
Stet	रहने दो ।
run on	पैरा मत छोडो ।
b f	बडे टाइप लगाओ ।
।	शेष भाग से इस भाग के टाइप छोटे करो ।
⊢ या :	वर्ग या टाइप के स्थान के चिह्नो की ओर ध्यान दो ।
ed >	दो पक्तियो के बीच मे और स्थान करो ।
(	दो पक्तियों के बीच मे जगह कम करो ।
;	अर्धविराम चिह्न लगाओ ।
, या,	अल्पविराम चिह्न लगाओ ।
या ⊙	उपविराम चिह्न लगाओ ।
⁀	युक्ताक्षर लगाओ ।
√	स्थान कम करो ।
ital	इटैलिक टाइप लगाओ ।
rom	रोमन टाइप लगाओ ।
caps	अंग्रेजी के कैपिटल अक्षर लगाओ ।
l. c. या s. c.	अग्रेजी के छोटे अक्षर लगाओ ।
!	सबोधन चिह्न दो ।
?	प्रश्नवाचक चिह्न दो ।
–/ या =/	समासचिह्न लगाओ ।
(/)	लघुकोष्ठक ।
[/]	बड़ा कोष्ठक ।
ा	आकार ।
ि	ह्रस्व इ की मात्रा ।
ी	दीर्घ ई की मात्रा ।
े या (े)	ए की मात्रा ।
ै या (ै)	ऐ की मात्रा ।
(ु)	उकार ।
(ू)	ऊकार ।
⊙ या ं	अनुस्वार ।
:	विसर्ग ।
(्)	हलंत ।
(र्‍)	रेफ ।

[अ० ना० मे०]

प्रूसिक अम्ल (Prussic acid) इसे हाइड्रोजन सायनाइड या हाइड्रोसायनिक अम्ल भी कहते है। यह रगहीन वाष्पशील पदार्थ है, जो बहुत ही विषैला होता है। सन् १७८२ मे के० डब्लू० शेले (K. W. Scheele) ने इसका पता लगाया था और प्रशियन नील (prussian blue) से इसे प्राप्त किया था। यह कुछ पेडो में शर्करावर्गीय पदार्थों के साथ ग्लाइकोसाइड के रूप मे पाया जाता है। कड़ुवे बादाम मे पाए जानेवाले ऐमिग्डालिन (amygdalin) नामक ग्लाइकोसाइड मे यह होता है और ऐमिग्डालिन के जल अपघटन (hydrolysis) से इसे प्राप्त किया जा सकता है।

तैयार करने की विधि — प्रयोगशाला मे इसे प्राप्त करने की विधि यह है १०० मिली० गाढ़ सल्फ्यूरिक अम्ल का उतने ही जल मे ठढा विलयन एक गोल पेंदी के फ्लास्क मे रखे १०० ग्राम पोटैशियम सायनाइड के ऊपर क्रमश डालते है। इस फ्लास्क को एक यू नली से जोड दिया जाता है, जिसमे निर्जलित कैल्सियम क्लोराइड भरा होता है। इस नली से निकलनेवाले वाष्प को एक सघनित्र से ले जाकर द्रवीभूत करके इकट्ठा कर लेते है। सघनित्र मे जल के स्थान पर —१०° से० ताप का, जल मे नमक का, विलयन प्रवाहित करते हैं। यदि प्राप्त अम्ल को और अधिक निर्जलित करना हो, तो उसमे कुछ फॉस्फोरस पेटॉक्साइड डालकर हिलाते है और द्रव का पुन आसवन कर लेते है।

प्रूसिक अम्ल बनाने की व्यावसायिक विधि यह है : २३% सोडियम सायनाइड के जलीय विलयन पर ६६° बौमे सल्फ्यूरिक अम्ल की अभिक्रिया सीसे के स्तर लगे एक जनित्र (generator) के अदर करते है और इस क्रिया द्वारा प्राप्त वाष्पो को सघनित कर इकट्ठा कर लेते है। इस क्रिया के अतर्गत अम्ल की मात्रा को सायनाइड की मात्रा से अधिक रखा जाता है। इस प्रकार प्राप्त द्रव के आंशिक आसवन से लगभग ९८% सांद्रता का प्रूसिक अम्ल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार सोडियम सायनाइड के स्थान पर कैल्सियम सायनाइड लेकर भी इसे प्राप्त किया जा सकता है।

जर्मनी मे इस अम्ल की काफी मात्रा, चुकंदर से बननेवाली शर्करा के उद्योग मे प्राप्त शीरे (molasses) से भी बनाते है।

इन विधियो के अतिरिक्त संश्लेषण द्वारा भी प्रूसिक अम्ल प्राप्त किया जाता है। इसके लिये दो प्रमुख विधियाँ है। पहली विधि मे किसी हाइड्रोकार्बन तथा अमोनिया के मिश्रण का नियंत्रित ऑक्सीकरण किया जाता है। मेथेन, अमोनिया तथा ऑक्सीजन की अल्पमात्रा, (पूर्ण दहन के लिये आवश्यक मात्रा से कम) के मिश्रण को एक तप्त प्लैटिनम-इरीडियम की जाली के ऊपर से प्रवाहित करते है। निम्नलिखित क्रिया के फलस्वरूप प्रूसिक अम्ल प्राप्त हो जाता है :

२ का हा$_४$ + ३ ना हा$_3$ + ३ औ$_२$ → २ हा का ना + ६हा$_२$औ

$$[\ 2\,CH_4 + 3\,NH_3 + 3O_2 \rightarrow 2HCN + 6H_2O\ ]$$
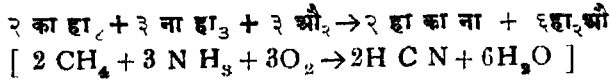
मेथेन के स्थान पर और दूसरे हाइड्रोकार्बन भी प्रयुक्त किए जा सकते है पर मेथेन से अभिक्रिया ज्यादा ठीक होती है।

फार्मेमाइड के निर्जलीकरण (dehydration) द्वारा भी प्रूसिक अम्ल बनाया जा सकता है। वाष्पीकृत फार्मेमाइड को अमोनिया की अधिक मात्रा मे मिश्रित करके उत्प्रेरक, एल्यूमिनियम फॉस्फेट, के ऊपर ३६०° सें० ताप पर प्रवाहित किया जाता है

हा का औ ना हा$_२$ → हा का ना + हा$_२$ औ

$$[\ HCONH_2 \rightarrow HCN + H_2O\ ]$$
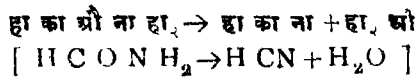
उपर्युक्त समीकरण रासायनिक क्रिया प्रदर्शित करता है। इस प्रकार बने प्रूसिक अम्ल को सोडियम हाइड्रॉक्साइड विलयन में शोषित कर लिया जाता है जिससे वह सोडियम सायनाइड के रूप मे प्राप्त हो जाता है।

भौतिक तथा रासायनिक गुणधर्म — प्रूसिक अम्ल का क्वथनांक २५·७° सें० है। ठंढा करने पर यह बर्फ के समान ठोस के रूप में जम जाता है जिसका द्रवणांक −१४·८° सें० है। जमी अवस्था मे भी यह काफी वाष्पशील होता है। इसके अणु, प्रबल ध्रुवीय आचरणवाले होते है और इस बात मे यह जल से काफी समानता प्रदर्शित करता है। जल की ही तरह यह आयनीकारक विलायक (ionising solvent) भी है। जल तथा अन्य कार्बनिक विलायकों के साथ यह हर अनुपात मे मिश्रणीय है। प्रूसिक अम्ल मे विद्यमान तत्व हाइड्रोजन, कार्बन तथा नाइट्रोजन निम्नलिखित दो संभव प्रकारों से संयुक्त हो सकते है।

हा — का ≡ ना या हा — ना ≡ का

$$[\ H-C\equiv N \text{ or } H-N\equiv C\ ]$$
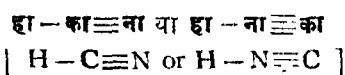
जिनको सामान्य (normal) रूप तथा आइसो (iso) रूप कहते है। डाइजोमेथेन (diazomethane) पर प्रूसिक अम्ल की अभिक्रिया से मेथिल सायनाइड (CH_3CN) तथा मेथिल आयसो सायनाइड (CH_3NC)दोनो प्राप्त होते है। इससे स्पष्ट है कि द्रवित प्रूसिक अम्ल मे ये दोनो रूप एक साथ ही विद्यमान है और ये चल समावयवता (dynamic isomerism) या चलावयवता (tautomerism) प्रदर्शित करते है। जलीय विलयन मे १२° सें० पर प्रूसिक अम्ल का वियोजन स्थिरांक (dissociation constant) $१·३ \times १०^{-९}$ है, जो कार्बनिक अम्ल के वियोजन स्थिरांक का $\frac{१}{३६०}$ ही होता है। अतः स्पष्ट है कि यह बहुत ही दुर्बल अम्ल है।

प्रूसिक अम्ल का बहुलकीकरण — शुद्ध अवस्था मे प्रूसिक अम्ल स्थायी पदार्थ है, जिसे कॉच के बरतन में काफी दिन तक अपरिवर्तित अवस्था में रखा जा सकता है। कुछ क्षारीय पदार्थ, जैसे अमोनिया या सोडियम सायनाइड की उपस्थिति मे अम्ल का बहुलकीकरण क्रमशः प्रारंभ होने लगता है, और इसी क्रिया के फलस्वरूप एक काला सा पदार्थ प्राप्त होता है जिसका रासायनिक संगठन लगभग वही होता है, जो प्रूसिक अम्ल का। इस क्रिया मे पर्याप्त मात्रा मे ऊष्मा निकलती है। साथ ही ऊष्मा व्यवहृत करने से अभिक्रिया का वेग भी बढता है। अतः अधिक मात्रा मे इस पदार्थ का बहुलकीकरण होने से ताप की वृद्धि के साथ साथ विस्फोट हो जाने की भी काफी संभावना रहती है। अम्लीय या जल के साथ अम्ल पैदा कर देनेवाले पदार्थों की उपस्थिति में इस अम्ल को स्थायीकृत (stabilised) बनाया जा सकता है।

रासायनिक क्रियाएँ — इस अम्ल के ऐस्टर साधारण विधि से नही बनाए जा सकते। इसके लिये ऐल्किल हैलाइड या सल्फेट पर सोडियम या पोटैशियम सायनाइड की क्रिया करनी पड़ती है.

मू — है + पो का ना → मू — का ना + पो है

$$[\ R-X + KCN \rightarrow R-CN + KX\ ]$$
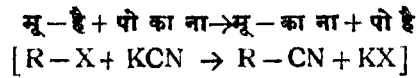
इसके अतिरिक्त ऐल्किल सायनाइड, अम्लो के ऐमाइडो के अनार्द्रीकरण से भी बनाए जा सकते है, जिससे स्पष्ट है कि यह यौगिक सामान्य सायनाइड (normal cyanide) **मू — का ≡ ना** [$R-C\equiv N$] है तथा इनको उन अम्लो का नाइट्राइल भी कहते हे, क्योंकि इनके जलअपघटन से वे अम्ल प्राप्त हो जाते है :

$$\text{मू — का औ ना हा}_२ \xrightarrow{-_२\text{हा}_२\text{ औ}} \text{मू — का} \equiv \text{ना}$$

$$\text{मू — का} \equiv \text{ना} \xrightarrow{_२\text{हा}_२\text{ औ}} \text{मू — का औ औ हा + ना हा}_३$$

$$\left[\begin{array}{l} R-CONH_2 \xrightarrow{-H_2O} R-C\equiv N \\ R-C\equiv N \xrightarrow{2H_2O} R-COOH + NH_3 \end{array}\right]$$
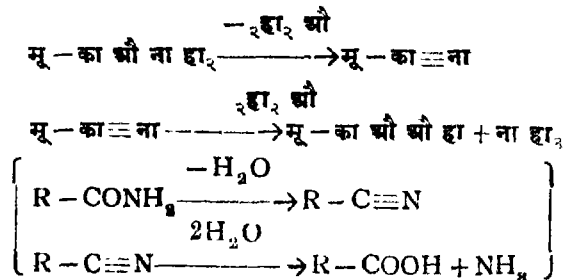
प्रूसिक अम्ल एल्डिहाइडों या कीटोनो से क्रिया करके योगशील पदार्थ (addition products) बनाते है और इन यौगिको का हाइड्रॉक्सी अम्लो के संश्लेषण मे विशेष महत्व है। प्रूसिक अम्ल एथिलीन ऑक्साइड से (उच्च ताप, दाब तथा उत्प्रेरको की उपस्थिति मे) एथिलीन सायनहाइड्रिन बनाता है, जो कुछ उत्प्रेरको की उपस्थिति मे आसुत किए जाने पर जल का एक अणु निकालकर एक यौगिक ऐक्रिलो नाइट्राइल ($CH_2 = CH - CN$) बनाता है। संश्लेषित रबर, रेशे तथा अन्य उद्योगो मे इस यौगिक का विशेष महत्व है। अतः उपर्युक्त क्रिया इस यौगिक के व्यापारिक निर्माण में काम आती है।

$$\underbrace{\text{का हा}_२\text{—का हा}_२}_{[\text{ औ }]} + \text{हा का ना} \rightarrow \text{का हा}_२\text{ औ हा — का हा}_२\text{ का ना}$$

$$\downarrow -\text{हा}_२\text{ औ}$$

$$\text{का हा}_२ = \text{का हा का ना}$$

$$\left[\ \underbrace{CH_2\text{—}CH_2}_{O} + HCN \rightarrow CH_2OH-CH_2CN \xrightarrow{-H_2O} CH_2 = CH\,CN\ \right]$$
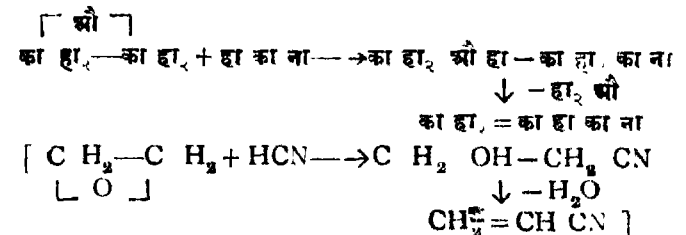
क्लोरीन के साथ प्रूसिक अम्ल की क्रिया से सायनोजन क्लोराइड और इसी प्रकार ब्रोमीन के साथ सायनोजन ब्रोमाइड बनते है,

जो बड़े काम के हैं। अम्लो की उपस्थिति में प्रूसिक अम्ल जल के १ या २ अणु लेकर फार्मेमाइड ($HCONH_2$) या अमोनियम फार्मेट ($HCOONH_4$) बनाता है। तथा इसके जल अपघटन से फ़ार्मिक अम्ल ($HCOOH$) बनता है। इसके हाइड्रोजनीकरण या अपचयन से मेथिल एमिन (CH_3NH_2) बनता है।

धात्विक सायनाइड — अधिकाश अभिक्रियाओ मे सायनाइड मूलक (**—CN**) एकसंयोजी अधात्विक तत्व का सा व्यवहार करता है। जिस प्रकार धातुओ के हैलाइड होते है, उसी प्रकार धातुओं के सायनाइड भी होते है। क्षारीय धातुओ के सायनाइडो, जैसे सोडियम या पोटैशियम सायनाइड मे यह समानता अधिक स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त सायनोजन मूलक जटिल यौगिक (complex compound) भी बनाता है, जैसे पोटैशियम फेरोसायनाइड, [$K_4Fe(CN)_6$]। आठवे वर्ग की धातुओं मे तथा सक्रमण (transitional) धातुओ मे जटिल सायनाइड बनाने की क्षमता बहुत अधिक है।

सोडियम सायनाइड — व्यवसायों मे प्रयुक्त होनेवाले प्रूसिक अम्ल के लवणों मे सोडियम सायनाइड प्रमुख है। शुद्ध अवस्था मे यह कास्टनर (Castner) विधि से धात्विक सोडियम की अमोनिया तथा कोयले पर अभिक्रिया से प्राप्त किया जाता है। इसे, प्रूसिक अम्ल को सोडियम हाइड्रॉक्साइड विलयन मे अवशोषित करके भी बनाया जा सकता है, पर इस प्रकार प्राप्त सोडियम सायनाइड कम शुद्ध होता है। प्राप्त लवण, **सो का ना २हा$_2$औ** [$NaCN, 2H_2O$], जल, ऐल्कोहाल तथा अनार्द्र अमोनिया मे विलेय होता है तथा इसका गलनांक ५६३·७° सें० है। जलीय विलयन मे यह अपघटित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप प्रूसिक अम्ल तथा सोडियम हाइड्रॉक्साइड प्राप्त होते है

सो का ना + हा$_2$ औ → सो औ हा + हा का ना

$$[NaCN + H_2O \rightarrow NaOH + HCN]$$
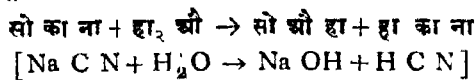
सोडियम सायनाइड के जलीय विलयन के गरम करने पर जल अपघटन से सोडियम फॉर्मेट तथा अमोनिया प्राप्त होते है।

सो का ना + २ हा$_2$ औ → हा का औ औ सो + ना हा$_3$

$$[NaCN + 2H_2O \rightarrow HCOONa + NH_3]$$
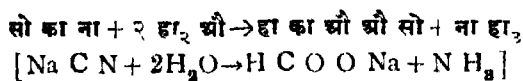
इसी प्रकार पोटैशियम सायनाइड भी प्राप्त हो सकता है। कार्बनिक रसायन की क्रियाओ मे प्रूसिक अम्ल के इन दोनो लवणों का विशेष महत्व है।

कैल्सियम सायनाइड — इस लवण का व्यावसायिक महत्व, कैल्सियम सायनाइड द्वारा इसके निर्माण के कारण बहुत बढ गया है। शुद्ध अवस्था मे यह सफेद चूर्ण के रूप मे होता है और धूमक (Fumigants) के रूप मे इसका बहुत प्रयोग होता है।

कुछ अन्य धात्विक सायनाइड, जैसे क्यूप्रमसायनाइड, सिल्वर-सायनाइड तथा जिंकसायनाइड अनेक व्यवसायो तथा रासायनिक क्रियाओं मे काम आते है।

सकर सायनाइड — पोटैशियम फेरोसायनाइड **पो$_4$ लो(का ना)$_6$** [$K_4Fe(CN)_6$] तथा पोटैशियम फेरीसायनाइड **पो$_3$ लो (का ना)$_6$** [$K_3Fe(CN)_6$] प्रूसिक अम्ल के संकर लवण हैं, जो रासायनिक विश्लेषण मे, प्रशियन नील बनाने में, रजक उद्योगो मे तथा आयरन सायनाइड नील नामक वर्णको (pigments) मे बड़ा महत्व रखते हैं।

प्रूसिक अम्ल की विषैली प्रकृति — प्रूसिक अम्ल तथा इसके लवण, जैसे पोटैशियम सायनाइड, बहुत विषैले पदार्थ हैं तथा बहुत ही कम मात्रा मे भी घातक सिद्ध होते हैं, जो कोशिकीय ऑक्सीकरण क्रिया के अवरोधन के कारण होता है। इस विष के लक्षण शिरोभ्रमण (dizziness), मतली (nausea), लड़खडाना (staggering), बेहोशी तथा अत मे मृत्यु है। इस विष के प्राथमिक उपचार के लिये रोगी को खुली हवा मे लिटाकर गरम रखना चाहिए। यदि सास चल रही हो, तो एक कपड़े मे कुछ बूँदे एमिल नाइट्राइट लेकर नाक मे लगभग ३० सेकड के लिये रखना चाहिए या अमोनिया एरोमेटिक स्पिरिट सुँघाना चाहिए। यदि रोगी को कुछ होश हो तो उसे एक प्रति शत सोडियम थायोसल्फेट या साबुन का जल मुख द्वारा प्रति १५ मिनट मे देना चाहिए, जब तक कि वमन न होने लगे। बेहोश रोगी को मुख से कुछ न देना चाहिए। यह विष इतना तीव्र होता है कि कोई विरला ही बच पाता है और मृत्यु बहुत जल्द हो जाती है।

विनाशी कीट नियंत्रण — साधारण कीटो तथा विनाशी कीटों के नियत्रण के लिये प्रूसिक अम्ल का महत्व सबसे पहले सन् १८८६ मे कैलीफॉर्निया मे नारगी जाति के पेडो मे विनाशीकीट मारक के रूप मे ज्ञात हुआ था। गोदामो, जहाजो, रेलो आदि मे जहाँ सामान इकट्ठा रहता है, इसका उपयोग धूमक के रूप मे किया जाता है। इस कार्य के लिये प्रूसिक अम्ल लोहे के बेलनो मे सचित रहता है। इसके अतिरिक्त अन्य रूपो मे भी इसका उपयोग किया जाता है। कैल्सियम सायनाइड का विनाशीकीट मारक के रूप मे प्रयोग किया जाता है, जो हवा की नमी के द्वारा प्रूसिक अम्ल का वाष्प देता है। चूहे, बिज्जू आदि के मारने मे भी कैल्सियम सायनाइड का प्रयोग करते है। चीटी, दीमक आदि के घोसलो को कैल्सियम सायनाइड द्वारा धूमित करके नष्ट किया जा सकता है। अनाज के गोदामो के धूमीकरण मे भी कैल्सियम सायनाइड का उपयोग होता है। [रा० दा० ति०]

प्रेगल् फ्रिट्ज (Pregl Fritz, सन् १८६९–१९३०) ऑस्ट्रिया वासी रसायनविद् थे। इनका जन्म ऑस्ट्रिया के लाइबाख नगर म हुआ था। इसी नगर मे शिक्षा पाने के उपरांत उन्होने ग्राट्स (Graz) विश्वविद्यालय से एम० डी० की डिग्री प्राप्त की और वहीं के शरीर क्रियात्मक सस्थान मे सहायक प्राध्यापक नियुक्त हो गए। प्रारभ से ही इनका झुकाव रसायन शास्त्र की ओर था तथा पित्ताम्ल सबधी अनुसधानो से इनकी रुचि इस दिशा में बढती गई। सन् १९०४ मे ये जर्मनी गए। वहाँ कुछ समय विल्हेल्म ऑस्टवाल्ट (सन् १८५३-१९३२) की सगति मे भौतिक रसायन का अध्ययन करने के पश्चात् ये बर्लिन गए, जहाँ एमिल फिशर का प्रभाव इनपर पड़ा।

ग्राट्स विश्वविद्यालय मे लौटने पर ये चिकित्सा रसायन सस्थान में प्रोफेसर हो गए तथा इन्होंने ऐल्बुमिनी वस्तुओ और पित्ताम्लो के विश्लेषण का कार्य आरंभ किया। सन् १९१० से १९१३ तक ये इंस्ब्रुक विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर थे। इसी समय इन्होंने सूक्ष्म विश्लेषण (micro analysis) के क्षेत्र मे मार्गदर्शक कार्य किया। कायिकी रसायन सबधी शोधकार्य मे शुद्ध पदार्थ अत्यल्प मात्रा में मिलते थे। इसलिये सूक्ष्म मात्राओ का विश्लेषण करने की ऐसी रीतियो का इन्होंने आविष्कार किया, जिनमे केवल तीन से पाँच मिलिग्राम पदार्थ ही सब

प्रकार की मापों के लिये यथेष्ट होता था। आपने सूक्ष्म विश्लेषण विधियों का एंजाइम, सीरम (serum) एवं पित्त अम्ल संबंधी अनुसंधानों मे खूब उपयोग किया तथा दिखाया कि न्यायालयों के कार्यो मे उपयोगी विश्लेषण के लिये, जिसमे जहरीले ऐल्केलॉइडो की न्यूनातिन्यून मात्राओं का मापन आवश्यक होता है, उनकी विधियो का व्यवहार सापेक्ष सरलता से किया जा सकता है।

रासायनिक सूक्ष्म विश्लेषण की विधियो के विकास ने अकार्बनिक तत्वविश्लेषण की प्रगति मे महत्व का योग दिया। ये विधियाँ शुद्ध विज्ञान, शरीरक्रिया विज्ञान, चिकित्सा तथा उद्योग से सबंधित अनेक प्रकार के अनुसंधानो के क्षेत्र मे अनिवार्य हो गई। प्रेगल् ने तत्वो के समूहो के मापन की कई सूक्ष्म विधियो का तथा एक सुग्राही सूक्ष्ममापी तुला का भी आविष्कार किया। सन् १६१७ मे इन्होने 'अकार्बनिक मात्रामूलक सूक्ष्मविश्लेषण' नामक ग्रंथ जर्मन भाषा मे लिखा, जिसका अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा में भी अनुवाद हुआ। चिकित्सा शास्त्र सबधी कई व्यावहारिक समस्याओ का हल आपने ढूँढ निकाला, जैसे किएवन की उपस्थिति की परीक्षा के लिये ऐल्डर हैल्डैन अपोहन विधि निकाली तथा वृक्को की कार्यक्षमता का पता लगाने के लिये एक सरल रीति का आविष्कार किया।

सूक्ष्म विश्लेषण सबधी इनके कार्य के लिये वियना की ऐकैडेमी ऑव सायस ने सन् १६१४ मे इन्हे लीबेन पुरस्कार देकर समानित किया तथा गटिजेन के विश्वविद्यालय ने समान मे फिलॉसोफी के डाक्टर की उपाधि प्रदान की। सन् १६२३ मे अकार्बनिक पदार्थों के सूक्ष्म विश्लेषण की विधि के आविष्कार के लिये इन्हे रसायनविज्ञान सबधी नोबेल पुरस्कार मिला। [भ० दा० व०]

प्रेत तथा प्रेतसंस्कार प्रेत की कल्पना केवल भारतीय संस्कृति मे ही नही, वरन् ससार के सभी देशों और सस्कृतियो मे पाई जाती है। प्रेत शब्द के अन्य कई समानार्थी शब्द हमारे देश मे प्रचलित है, जैसे भूत, पिशाच, ब्रह्म, चुडैल, दैत्य इत्यादि। यद्यपि इन शब्दो के अर्थो मे थोडा बहुत भेद है तथापि इन सभी के पीछे यह विश्वास है कि शरीरधारियो के देहात के बाद उनकी आत्मा इधर उधर भटकती रहती है। ऐसी आत्माओ को ही प्रेत की सज्ञा दी जाती है। प्रेत शब्द प्र+इत दो शब्दो के सयोग से बना है। इसका अर्थ है 'वह जो चला गया', इसी प्रकार भूत शब्द का अर्थ 'बीता हुआ' होता है। जब किसी मद्यप, पागल, अपराधी या अत्याचारी व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उसके प्रेत को पिशाच कहते है। ब्राह्मण के प्रेत को ब्रह्म तथा स्त्रियो के प्रेत को चुडैल कहा जाता है।

प्रेतकल्पना का मूल आधार जीववाद (Animism) है (दे० 'सर्वात्मवाद')। इसके अनुसार जीव का अस्तित्व शरीर से भिन्न होता है और देहात के पश्चात् वह अदृश्य रूप मे इधर उधर भटकता रहता है। इसे ही प्रेत कहा जाता है। प्रेत का स्वभाव प्राय प्रतिशोधात्मक माना जाता है।

संसार की अन्य संस्कृतियो मे प्रेत संबधी बहुत सी कल्पनाएँ प्रचलित हैं। बैंक द्वीप के रहनेवाले प्रेत को वी (vui) कहते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि वी मे यद्यपि चिंतन शक्ति रहती है तथापि इनमे स्वरूप का अभाव रहता है। ये स्वरूप धारण कर सकते हैं। फिर भी ये अदृश्य ही रहते हैं। मरे हुए व्यक्ति इनका दर्शन कर सकते हैं।

असीरियावासी (Assyrians) प्रेत को एडिमू (Edimmu) कहते है। एडिमू अकाल मृत्यु के कारण बनते हैं। प्रेतो की भाँति एडिमू लोगो को डराते और सताते है। प्रेतपीडित व्यक्तियो को ओझा (Shamans) की सहायता से प्रेतमुक्त किया जाता है। असीरियावासी सात प्रकार के प्रेतो मे विश्वास करते हैं जो निम्नलिखित है :—

१—एडिमू (Edimmu), २—उटुक्कू (Utukku), ३—गालू (Gallu), ४—राबिसू (Rabisu), ५—लील् (Lilu), ६—लिलीतू (Lilitu), ७—आरदतलिली (Ardat Lili)।

चीनी लोग प्रेतो को क्वी (Kwi) कहते है। चीनियों का विश्वास है कि क्वी लोग रात्रि मे घूमते फिरते है। मिस्र मे प्रेतो को बियू या खू (Khu) कहते है। खू बियू की तुलना में अधिक घातक माने जाते है। जापानी लोग प्रेतो को ओनी (Oni) कहते है। उनका विश्वास है कि प्रेतो की तीन आँखे होती है। उनकी जीभ बाहर लपलपाती रहती है और उन्हे केवल आधी रात मे देखा जा सकता है। इस्लाम धर्मावलबियो का विश्वास है कि जिन्न या शैतान योनि होती है। इनकी विशेषता यह है कि ये केवल एक तत्व के बने होते हैं। पारसी लोग प्रेतो को देव और प्रेतिनियो को बूजेज कहते हैं। ये शरीरधारी नही होते। अहरीमन प्रेतो का मुखिया माना जाता है। तिब्बत मे प्रेतो को ईहा (lha) कहते है।

भारतीय पुराणो के अनुसार प्रेतो का रग काला, स्वरूप विकराल और पैर की उँगलियाँ पीछे रहती है। ये नकियाकर बोलते है और इनकी छाया नही पडती। मृत्यु के बाद मनुष्य का केवल लिंग शरीर मात्र रह जाता है। जब उसके लिये पिंड आदि दिया जाता है तो उसे प्रेतशरीर प्राप्त होता है। प्रेतशरीर को भोगशरीर भी कहते है। जब तक किसी व्यक्ति को कर्मानुसार स्वर्ग या नरक नही मिल जाता, तब तक वह प्रेतावस्था मे ही माना जाता है। पौराणिक विश्वास के अनुसार कुछ निषिद्ध कर्मों के कारण ही व्यक्तियो को प्रेतयोनि मे जाना पडता है। निषिद्ध कर्मों मे ब्राह्मण की निंदा, माता पिता का निरादर, कन्याविक्रय, कुरुक्षेत्र मे दान लेना, गोवध करना, चोरी करना, शराब, मट्ठा, दूध, दही आदि का विक्रय करना मुख्य है। ऐसा विश्वास है कि प्रेत लोग मल मूत्र अथवा अन्य अपवित्र वस्तुओ का सेवन करते है और अपवित्र स्थान पर रहते है। उनका मुख सुई की तरह पतला और पेट बहुत भारी होता है। इसलिये वे सर्वदा क्षुधा से पीडित रहते हैं।

डा० बी० एल० आत्रेय के अनुसार प्रेत योनि होती है। उनका विश्वास है कि क्रियाओ की सहायता से मृत आत्माओ का आह्वान विशिष्ट किया जा सकता है (दे० पलाचेट)। आजकल परामनोविज्ञान (Para Psychology) मे प्रेतो के अस्तित्व पर शोध कार्य किए जा रहे हैं। आशा है, इन कार्यो से लोगो को प्रेतो के विषय में विशेष जानकारी हो सकेगी।

प्रेत संस्कार — प्रेत संस्कारो के द्वारा अनेक उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। मृत्यु के बाद पूरक पिंड सस्कार या दसपिंड सस्कार द्वारा प्रेतदेह की उत्पत्ति की जाती है। प्रथम पिंड के द्वारा प्रेत का सिर

बनता है। दूसरे के द्वारा कान, आँख तथा नाक, तीसरे के द्वारा गर्दन, कधा तथा छाती, चौथे के द्वारा मूत्रेंद्रिय, नाभि तथा गुदा, पाँचवे के द्वारा जघा तथा पैर, छठे द्वारा चर्म, सातवें के द्वारा नाडियाँ, आठवें के द्वारा दाँत और बाल, नवे के द्वारा वीर्य तथा दसवें पिड के द्वारा सभी अंगों की पूर्ति होती है। मृत्यु के एक वर्ष बाद सपिंडीकरण संस्कार किया जाता है। इस संस्कार द्वारा मृत व्यक्ति प्रेतदेह का परित्याग करके प्रेतयोनि से मुक्त होता है। प्रेतसंस्कार करने का अधिकार केवल ज्येष्ठ या कनिष्ठ पुत्र तथा पौत्र को होता है। यदि ज्येष्ठ पुत्र न रहे तभी कनिष्ठ पुत्र प्रेतश्राद्ध कर सकता है और कनिष्ठ पुत्र के भी न रहने पर पौत्र प्रेतश्राद्ध कर सकता है। कर्म-विशेष से प्रेतश्राद्ध होने पर भी लोग प्रेतयोनि में बने रहते हैं। ऐसे प्रेतों को भूत कहते है। प्रेतश्राद्ध के लिये कुछ निश्चित तिथियाँ होती है। चैत्र, आश्विन, कृष्ण पक्ष, पितृपक्ष इत्यादि प्रेतश्राद्ध के लिये उपयुक्त तिथियाँ मानी जाती है। पुराणों में प्रेतत्व को दूर करने के लिये कुछ अन्य संस्कार भी बताए गए है जिनमें वृषोत्सर्ग मुख्य है। इस संस्कार को आद्यैकोदिष्ट श्राद्ध भी कहते है। साल भर तक प्रेत के लिये प्रति दिन अन्न तथा जलदान करने को अबुघट श्राद्ध कहते है। इससे भी प्रेतत्व समाप्त होता है।

प्रेतबाधा समाप्त करने के लिये गया में प्रेतशिला पर पिंडदान किया जाता है। हिंदुओं की मान्यता है कि ऐसा करने से प्रेतों का उद्धार हो जाता है और प्रेतबाधा समाप्त हो जाती है। गया में एक प्रेतपर्वत भी है जहाँ पर श्राद्ध करने से प्रेतोद्धार होता है। काशी में पिशाचमोचन नामक स्थान पर प्रेतबाधा से पीडित लोगों को मुक्त किया जाता है।

सं० ग्रं० —हिंदी विश्वकोश (नगेंद्रनाथ वसु) चौदहवा भाग; गरुड पुराण, अग्नि पुराण, श्राद्धविवेक, एनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन ऐंड एथिक्स, इंट्रोडक्शन टु परासाइकोलोजी। [व० त्रि०]

प्रेमचंद (१८८०–१९३६) का जन्म वाराणसी से पाँच मील दूर लमही ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम मुंशी अजायब राय था। वे उसी गाँव के पास डाकखाने में काम करते थे। जहाँ जहाँ उनकी बदली होती थी प्रेमचद भी उनके साथ बालपन में जाया करते थे। उनका आरंभिक जीवन बहुत आर्थिक सकट में बीता। उनकी विधिवत् शिक्षा क्वीस कालेज में हुई। उन्होंने सरकारी स्कूल में अध्यापकी कर ली। कुछ दिनों तक वह सब–डिप्टी इंस्पेक्टर भी रहे। जिस समय इन्होंने महात्मा गाधी के असहयोग आंदोलन के प्रभाव में सरकारी नौकरी छोडी उस समय यह गोरखपुर में नारमल स्कूल के प्रधानाध्यापक थे। १९१९ में इन्होंने प्राइवेट बी० ए० पास किया। इनका विवाह बाल्यकाल में ही हो गया था। किंतु उस पत्नी से यह असंतुष्ट थे इसलिये उसे त्याग दिया और उसी साल सन् १९०५ में शिवरानी देवी से विधवा विवाह किया।

पहले यह उर्दू में लिखा करते थे। उस समय उर्दू के दो बहुत उच्च कोटि के मासिक उत्तर प्रदेश से निकलते थे—कानपुर से 'जमाना' तथा प्रयाग से 'अदीब'। उन्हीं दोनों में इनकी कहानियाँ प्रकाशित होती थी। अदीब' बद हो जाने के बाद से केवल 'जमाना' में इनकी कहानियाँ प्रकाशित होती थीं। पाठकों को इनकी कहानियाँ बहुत रुची। आरंभ में यह अपने असली नाम धनपत राय से कहानियाँ लिखते थे। इनकी पहली कहानी 'संसार का अनमोल रत्न' बताई जाती है जो जमाना में छपी थी। इनका पहला कहानीसंग्रह उर्दू में 'सोजे वतन' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उन कहानियों में ऐसी राष्ट्रीय भावनाएँ व्यक्त की गई थी कि उस समय की विदेशी सरकार को सह्य न हुई। इनको चेतावनी देकर सारी प्रतियाँ उस संग्रह की सरकार ने जब्त कर ली। इन्होंने अपना नाम कहानियाँ लिखने के लिये प्रेमचद रख लिया और उसी नाम से बराबर लिखने लगे। इसी नाम से यह विख्यात हुए और इनका असली नाम लोग भूल गए। रामदास गौड के कहने से इन्होंने हिंदी में लिखना आरंभ किया। पहले उर्दू लिपि में लिखते थे। बाद में अभ्यास हो जाने पर नागरी लिपि में ही लिखने लगे।

सरकारी नौकरी छोडने के बाद यह काशी विद्यापीठ में पढाने लगे। इसके कुछ दिनों बाद कानपुर के 'जमाना' में और उसके बाद ज्ञानमंडल वाराणसी से निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'मर्यादा' के संपादन विभाग में भी इन्होंने काम किया। इसके पश्चात् कुछ दिन तक लखनऊ से निकलनेवाली पत्रिका 'माधुरी' में रूपनारायण पांडे के साथ काम किया। किंतु इनका स्वतंत्र स्वभाव नौकरी के उपयुक्त न था। वाराणसी आकर इन्होंने अपना स्वयं साहित्यिक मासिक 'हंस' का प्रकाशन आरंभ किया। पत्र अच्छा था किंतु बराबर घाटा हो रहा था इसलिये बंद कर देना पडा। 'हंस' के सपादनकाल में ही यह बबई एक फिल्म कपनी में काम करने चले गए। इनके पहले उपन्यास 'सेवासदन' का फिल्म बना। फिल्म असफल रहा और फिल्म जगत् के लिये इन्होंने अपने को अननुकूल पाया। ये दुखी होकर वहाँ से लौट आए और फिर 'हंस' का सपादन करने लगे। 'हंस' बंद हो जाने पर राजनीतिक साप्ताहिक पत्र 'जागरण' का प्रकाशन आरंभ किया। वह भी न चला। इसके पश्चात् इन्होंने केवल उपन्यास लिखना ही अपना कार्यक्रम रखा।

कहानीकार—प्रेमचद ने अपना साहित्यिक जीवन कहानीलेखन से ही आरंभ किया। पहले उनकी कहानियाँ या तो रोमांटिक होती थी या ऐतिहासिक या बँगला और दूसरी देशी विदेशी भाषाओं का अनुवाद। प्रेमचद ने जनजीवन को अपनी कहानियों का आधार बनाया। साधारण गाव के लोगों का जीवन, मध्यवर्गीय लोगों का जीवन, साधारण समाज के पात्र, दिन प्रति दिन की घटनाएँ, यही उनकी कहानी के मुख्य तत्व है। उनकी लोकप्रियता का यही कारण है। कला तथा टेकनीक की दृष्टि से इनकी कहानियाँ किसी भी देशी या विदेशी कहानी के सामने रखी जा सकती है और वे उन्नीस नहीं उतरेंगी। हिंदी कहानी संसार में उन्होंने क्रांति उपस्थित कर दी और हिंदी कहानीलेखन की दृष्टि से वह एकमात्र मूर्धन्य कलाकार बहुत दिनों तक माने जाते रहे। उनके उपन्यासों की श्रेष्ठता के सबध में दो मत हो सकते हैं किंतु जहाँ तक उनकी कहानी की कला का सबध है, उनकी श्रेष्ठता के सबध में दो मत नहीं है। उनकी शैली के अनुगामी हिंदी के सैकडों कहानी लेखक हुए। उनका पहला कहानीसंग्रह 'सप्तसरोज' नाम से १९१७ में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद प्रेमपूर्णिमा १९१८, प्रेमपचीसी १९२३, प्रेमप्रसून १९२४, प्रेमद्वादशी १९२६, प्रेमप्रतिमा तथा प्रेमप्रमोद १९२६, प्रेमतीर्थ १९२९, पाँच फूल, प्रेमचतुर्थी, प्रेमप्रतिज्ञा १९२९, सप्तसुमन, प्रेमपंचमी १९३०, प्रेरणा तथा समरयात्रा १९३२, पंचप्रसून १९३४

प्रेमचंद (पृ० ३०)

फतेहपुर सिकरी (पृ० ५६)

बुलंद दरवाजा

[फोटो : सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ]
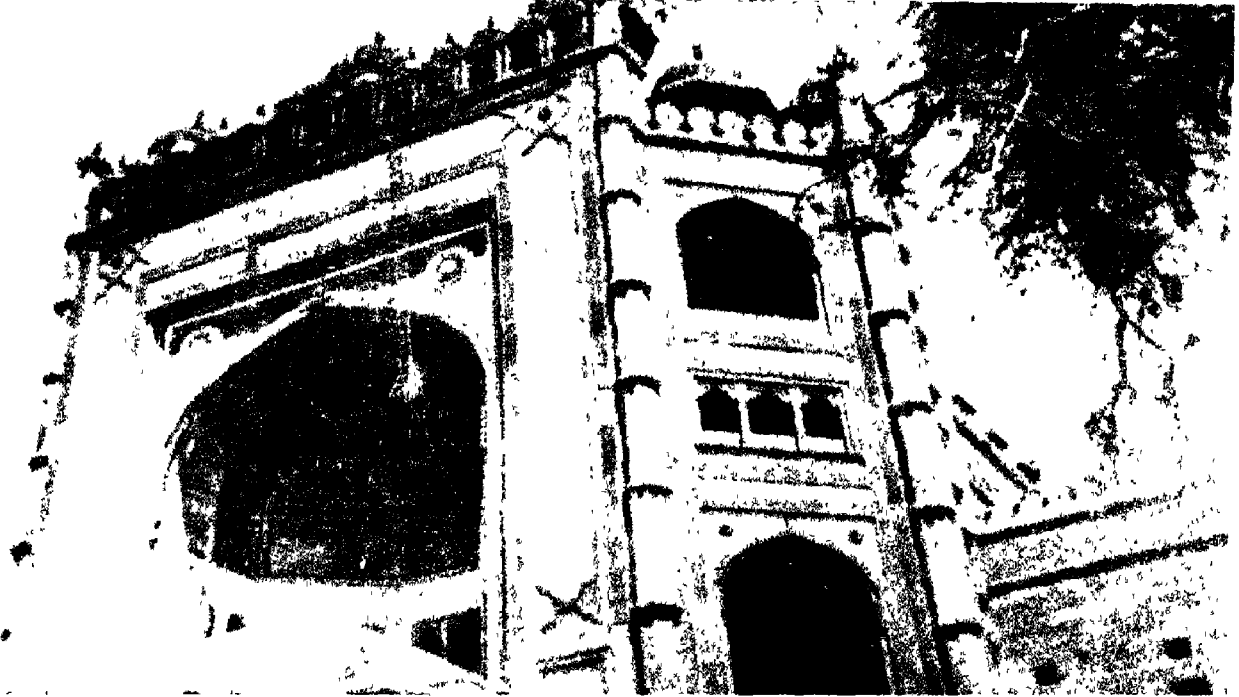
फ्रांस (पृ० १५३-१५६)
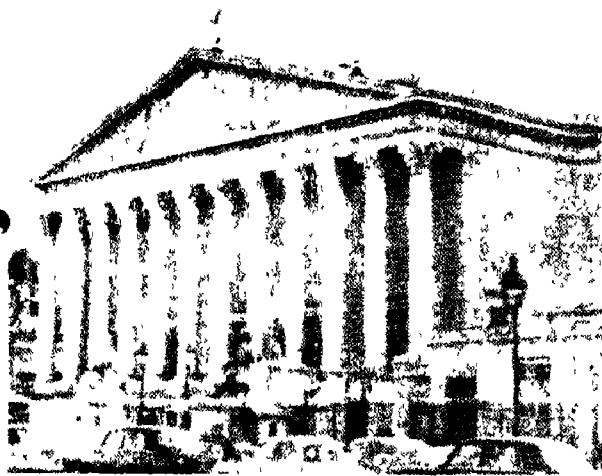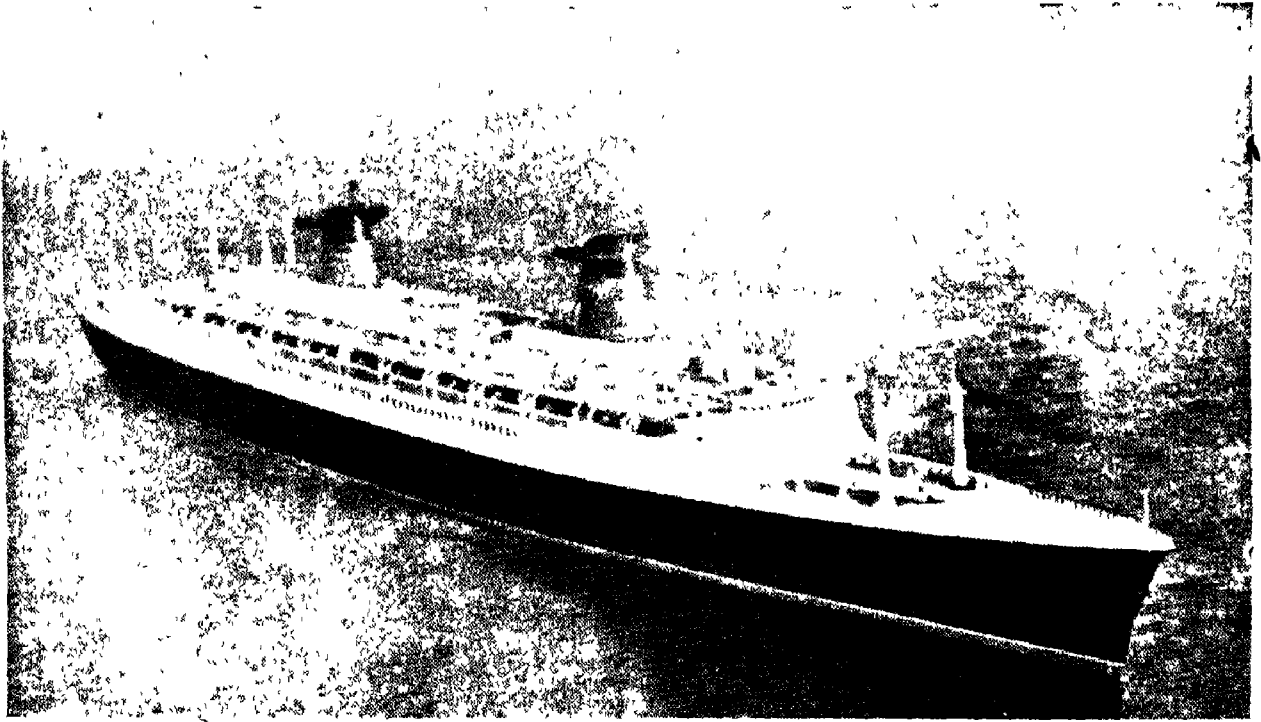
ऊपर—दि ट्रांसएटलांटिक लाइनर 'दि फ्रांस;
नीचे—बाएँ, दि नेशनल असेंबली बूर्बो,
दाहिनी ओर, दि सीनेट, फ्रांस।
[फोटो फ्रेंच दूतावास, नई दिल्ली के सौजन्य से]

और नवजीवन १९३५। इनकी सब कहानियों का संग्रह 'मानसरोवर' नाम से आठ भागों में प्रकाशित हुआ है।

इनकी कहानियों में सजीवता है। पात्रों मे स्वाभाविकता है। कथावस्तु चतुर चित्रकार की भाँति चित्रित है और घटनाएँ ऐसी है जिनसे हमारा समाज परिचित है, उसे कल्पना का सहारा नही लेना पडता।।

उपन्यासकार—प्रेमचद ने उपन्यासों की रचना में भी नई जमीन तोडी। समाज की कुरीतियों, तथा विदेशी शासन की दुर्दशा पर उनका ध्यान गया। इनके पहले इधर कम लोगो का ध्यान गया था। यदि किसी ने कोई इस प्रकार का उपन्यास लिखा भी तो उसकी दृष्टि इतनी गहरी न थी। समस्याओ का इतना गंभीर अध्ययन किसी और हिंदी लेखक ने नही किया था। जिस समय प्रेमचंद ने उपन्यास लिखना आरभ किया, हमारा देश जागरण की करवटें ले रहा था। आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याएँ मुक्त रूप से हमारे सामने थी। इन सब समस्याओ की ओर प्रेमचद की दृष्टि गई और अपने उपन्यासो का उन्हे लक्ष्य बनाया। आलोचको मे इस विषय पर विवाद है कि प्रेमचद यथार्थवादी है या आदर्शवादी। ऐसा जान पडता है कि प्रेमचद आरभ मे आदर्शवादी थे पर धीरे धीरे यथार्थ की ओर उन्मुख होते गए है — और 'गोदान'तक पहुँचते पहुँचते यथार्थवादिता अधिक प्रबल हो गई है। फिर भी उनके उपन्यासो की मुख्य विशेषता आदर्शवादिता ही है। उन्होने जिन समस्याओ को अपने उपन्यासो मे व्यक्त किया है उनका समाधान भी रखा है, यद्यपि प्रत्येक स्थिति मे समाधान उपयुक्त नही है और कही कही असफल भी है।

उनका पहला उपन्यास 'सेवासदन' है। इस सामाजिक उपन्यास मे प्रेमचद की दृष्टि सुधारवादी है। 'सुमन' के जीवन मे सुधार करके उसमे एक आश्रम प्रतिष्ठापित करके उसके जीवन का परिष्कार करते है। 'प्रेमाश्रम' मे गाँवो की द्वद्वमय परिस्थिति का चित्रण किया गया है। अत में आदर्श ग्राम की स्थापना करके प्रेमचद ने यथार्थवादिता का ही परिचय नही दिया है, यहाँ वे कुछ उपदेशक से लगते है। देश की समस्याओ का जहाँ तक सबध है — प्रेमाश्रम मे प्रेमचद आगे बढे है किंतु कला की दृष्टि से सेवासदन अधिक सफल है। 'निर्मला' मे आर्थिक कठिनाइयो के कारण अनमेल विवाह का चित्रण है। इस उपन्यास मे जिस रूप मे निर्मला का चित्रण प्रेमचद ने किया है वह भारतीय नारी के जीवन की दर्दनाक कहानी है। विषम परिस्थिति म भी प्रेमचद ने भारतीय परिवार के निमल चारित्रिक आदर्श की रक्षा की है।

'रगभूमि' उपन्यास सन् १९२५ मे प्रकाशित हुआ। उस समय देश मे सत्याग्रह आरभ हो गया था और साधारण जनता मे तथा किसानो में भी जागृति आरभ हो गई थी। यह उपन्यास गाधीवादी युग का प्रतीक है। इसमे अनेक वर्गों का भी चित्रण है। स्वायत्त शासन पर भी गहरा व्यग है। उस समय के राजनीतिक जीवन की बहुत अच्छी झलक इसमे है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमे प्रेमचंद ने पहले के उपन्यासो की भाँति किसी रामराज्य की स्थापना करके आदर्श नही उपस्थित किया है। इसमे यदि लंबे लंबे वर्णन और कथोपकथन न होते तो यह उपन्यास बहुत ही उच्च कोटि का होता। १९२८ ई० में 'कायाकल्प' उपन्यास लिखा गया। यो तो यह आध्यात्मिक उपन्यास है किंतु इसमें भी राजनीतिक समस्याएँ आ गई हैं। प्रेमचंद का प्रिय विषय किसानो और मजदूरो का संघर्ष भी इसमे आया है। उन दिनों हिंदू मुस्लिम वैमनस्य जोरो पर था और प्रमचद ने दिखाया है कि जब तक ख्वाजा महमूद और यशोदानंद जैसे लोग न होगे, देश का कल्याण न होगा।

सन् १९३० मे 'गबन' उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसका आधार नारी का आभूषणो के प्रति प्रेम है। इसमे एक छोटे मनोवैज्ञानिक प्रश्न को लेकर संपूर्ण जीवन का चित्रण किया गया है। यह भी कहा जा सकता है कि इस उपन्यास मे राजनीतिक और सामाजिक समस्याओ के स्थान पर मनोवैज्ञानिक समस्या का चित्रण है। लड़को का जीवन, पुलिस की धूर्तता, कलकत्ते का नागरिक जीवन, इसमे दिखाया गया है। इसकी घटनाएँ इलाहाबाद तथा कलकत्ता — दो नगरो मे घटित होती हैं। दो कथाओं को एक मे मिलाने का प्रयत्न किया गया है। प्रेमचद का सुधारक रूप इसमे कुछ व्यक्त दिखाई देता है। इस उपन्यास की एक विशेषता यह है कि इसकी सभी नारियाँ अपनी दुर्बलताओ के साथ हमारे सामने प्रकट होती है किंतु ये दुर्बलताएँ कामवासना से प्रेरित नही हैं, अर्थलोलुपता से हैं। किंतु प्रेमचद ने अपनी आदर्शवादिता से प्रेरित होकर इनका चित्रण ऐसा किया है कि अत मे इन नारियो का परिष्कार हो जाता है। कुछ बातो को यदि छोड दिया जाय तो प्रेमचद का यह बहुत उत्कृष्ट उपन्यास है। इसके पश्चात् १९३२ ई० मे 'कर्मभूमि' प्रकाशित हुआ। इस समय भी देश मे सत्याग्रह आदोलन उग्र रूप मे था। उसका प्रभाव तथा अन्य सामाजिक आदोलनों का प्रभाव उस उपन्यास मे स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कृषकों और श्रमिको की दीनता, शिक्षा सस्थाओ की व्यवसायी नीति, जमीदारों की विलासिता, महथो की स्वेच्छाचारिता तथा राजकर्मचारियों का पतन इसमे चित्रित है। सन् १९३१ में हुए गाधी इर्विन समझौते की भी इसम झलक है। सन् १९३० मे इनका प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' प्रकाशित हुआ जिसमे नागरिक तथा ग्रामीण दो कथाएँ मिलाई गई है। नागरिक कथा गौण है। फिर भी दोनो कथाएँ एक दूसरी से इतनी सबद्ध है कि अस्वाभाविक नही जान पडती। यह उपन्यास ग्रामीण जीवन की दीनता और सामाजिक विषमता को प्रदर्शित करता है। इसमे भारतीय राष्ट्र के जागरण का प्रतिबिंब दिखाई देता है। कुछ लोगों का कहना है कि यह उपन्यास इस युग की प्रतिनिधि रचना है। ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधि 'होरी' है। इस उपन्यास मे भी प्रेमचद ने कोई आदर्शवादी समाधान नही उपस्थित किया है।

प्रेमचद का अंतिम उपन्यास 'मगलसूत्र' है जो अपूर्ण है।

प्रेमचद के पात्र व्यक्ति नही है, वे प्रवृत्तियो के प्रतिनिधि है। इनके नारीपात्र अधिक धनी और सफल है। उन्हे हम प्राय आदर्शोन्मुख देखते है।

भाषा — प्रेमचद आरभ मे उर्दू मे ही कहानियाँ लिखते थे। हिंदी मे भी उर्दू की शैली का प्रभाव बना रहा और उर्दू शब्दों का प्रयोग धडल्ले से वह करते रहे। आगे चलकर यह प्रवृत्ति कम होती गई। इनकी भाषा सरल और मुहावरेदार है। लोकजीवन को

लोकभाषा में प्रस्तुत करने के कारण ही वे सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकार हो सके।

सं० ग्रं० — जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' : प्रेमचंद की उपन्यास कला; रामरतन भटनागर : प्रेमचंद : एक अध्ययन; कलाकार प्रेमचंद; शिवरानी देवी . प्रेमचंद घर में। [कृ० प्र० गौ०]

प्रेमानंद के काव्य में गुजरात की आत्मा का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। प्राचीन पौराणिक कथाओं और गुजराती जनता की रुचि के बीच जो कुछ व्यवधान शेष रह गया था उसे प्रेमानंद ने अपनी प्रतिभा एवं अद्वितीय आख्यान-रचना-कौशल द्वारा सर्वथा पूर दिया। मालण, नाकर आदि पूर्ववर्ती गुजराती आख्यानकारों ने जिस पथ का निर्माण किया था प्रेमानद के कृतित्व में वह सर्वाधिक प्रशस्त अवस्था में दृष्टिगत होता है। वे निर्विवाद रूप से गुजराती के श्रेष्ठतम आख्यानकार हैं।

प्रेमानंद मेवाड जाति के चौबीसा ब्राह्मण थे और उनका मूल निवासस्थान वडोदरा या बड़ौदा था। उनके पिता कृष्णराम भट्ट पौराणिक वृत्ति से जीवनयापन करते थे और प्रेमानद को भी उत्तराधिकार में वही वृत्ति मिली। व्यावहारिक दृष्टि से उन्हे पुराण साहित्य का यथेष्ट ज्ञान था। बडौदा से सूरत और वहाँ से प्रवासित होकर नदरवार पहुँचे जहाँ उन्हे देसाई शकरदास का कृपापात्र बनकर अनेक ग्रथ लिखने की सुविधा मिली। राजकृपा पाकर प्रेमानद की काव्य-प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित होती गई। बाद में साधुसग से वैष्णव भावना विशेष रूप से जाग्रत हो उठी, परिणामत 'दशम स्कध' और उसके पश्चात् रचे गए ग्रथो मे राजकृपा का उल्लेख नही मिलता। कवि अनन्य भाव से राम का उपासक बन गया। उसके रणयज्ञ तथा विवेक वणझारो का राम का इष्टदेव की तरह स्मरण किया गया है। मालण की तरह प्रेमानद ने भी कृष्णभक्ति विषयक पदो के अंत मे अपने इष्टदेव राम का ही स्मरण किया है। यही नही, उन्होंने कृष्ण के लिए सीतापति जैसे शब्दो का भी बराबर प्रयोग किया है। प्रेमानंद के गीतिकाव्य का प्रस्फुटन विशेष रूप से उनके भागवत पर आधारित 'दशम स्कंध' मे ही हुआ है।

दशम स्कंध के ५३वें अध्याय के १६५ वें कडवे तक प्रेमानद की रचना है, शेष भाग उनके शिष्य सुदर का रचा हुआ है। इसके अतिरिक्त उनकी कृष्णचरित सबधी अन्य रचनाएँ निम्नलिखित है — 'रुक्मिणीहरण', 'रुक्मिणीहरण ना सलोको', 'बाललीला', 'व्रजवेलि', 'दाणलीला', 'भ्रमरगीता,' 'भ्रमरपचीसी', 'मास' तथा 'सुदामाचरित'। के० का० शास्त्री के अनुसार प्रेमानद की २६ कृतियाँ शकारहित, चार निर्णयरहित तथा १३ ऐसी है जिनकी पाडुलिपियाँ अभी तक अप्राप्य हैं। इनके अतिरिक्त २३ रचनाओ के नाममात्र का उल्लेख अबालाल बुलाकीराम जानी के द्वारा किया गया है। इस प्रकार प्रेमानद की या उनके नाम पर प्रचलित बहुसंख्यक रचनाएँ सामने आती हैं। 'रोषदर्शिका सत्यभामाख्यान', 'पाचालीप्रसन्नाख्यान' तथा 'तपत्याख्यान' नामक तीन नाटकों को प्रेमानंद कृत सिद्ध करने के लिये कुछ विद्वानो ने भरसक प्रयत्न किया पर वे सफल न हुए। शकारहित प्रामाणिक रचनाओं में से पूर्वोल्लिखित रचनाओ के अतिरिक्त जिनका उल्लेख किया जा सकता है उनमे 'ओखाहरण', 'अभिमन्युआख्यान', 'नलाख्यान,' 'चंद्रहासाख्यान', 'मदालसाख्यान,' 'सुधन्वाख्यान,' 'नासिकेतोपाख्यान' आदि आख्यान है। 'हुडी,' 'मामेरु,' तथा 'शामलदास नो' विवाह, नरसी मेहता के जीवन से संबद्ध मुख्य घटनाओं पर आधारित वर्णनात्मक काव्य है। 'वामनकथा', 'विष्णुसहस्रनाम' वैष्णव भाव की द्योतक रचनाएँ हैं। 'फुवडनो 'फजेतो' लोकरुचि की प्रहसनात्मक कृति है। ग्रंथरचना में कवि ने प्रमुख प्रेरणा महाभारत, वाल्मीकि रामायण, भागवत पुराण, मार्कंडेयपुराण तथा अन्य पौराणिक साहित्य से ग्रहण की है। प्रेमानंद में कथाकल्पना की अभूतपूर्व क्षमता थी तथा उनकी वर्णनशक्ति भी अद्वितीय थी।

गुजरात मे विविध ऋतुओ, वारो तथा अवसरो पर उनकी अनेक रचनाओ का नियमित रूप से पाठ किया जाता है जिससे कवि की अत्यधिक लोकप्रियता सिद्ध होती है।

सं० ग्रं० — के० का० शास्त्री प्रेमानद, एक अध्ययन।

[ज० गु०]

प्रेरण (Induction) वस्तुत किसी वस्तु के भाव तथा गुण द्वारा उत्पन्न होनेवाले प्रभाव को कहते है, जब कि दोनो वस्तुओ का सस्पर्श न हो। इस प्रकार जब कोई वस्तु दूसरी वस्तु से अलग होते हुए भी उसपर अपना प्रभाव आरोपित करती है, तब उसे प्रेरण कहा जाता है। विद्युत् इजीनियरी मे तीन प्रकार के प्रेरण प्रभाव होते है ·

१ विद्युत्स्थैतिक प्रेरण (Electrostatic Induction)

२ चुबकीय प्रेरण (Magnetic Induction)

३ विद्युच्चुबकीय प्रेरण (Electromagnetic Induction)

विद्युत्स्थैतिक प्रेरण मे कोई वस्तु, निकटवर्ती विद्युच्चालको पर, आवेश (charge) प्रेरित करती है। जब कोई विद्युत् आवेशित पदार्थ, पृथ्वी से विद्युत्रोधी (insulated) किसी सचालक के निकट आता है, तब चालक के कुछ इलेक्ट्रॉन आवेशित हो जाते हैं और चालक के एक सिरे पर एकत्रित होकर पूरे चालक को ही आवेशित कर देते हैं। यह क्रिया, वास्तव में आवेशित पदार्थ द्वारा प्रेरण मे दूसरे विद्युच्चालकों को आवेशित करने की है और विद्युत्स्थैतिक प्रेरण कहलाती है।

चुंबकीय प्रेरण, चुंबकीय क्षेत्र मे रखे हुए किसी चुंबकीय पदार्थ द्वारा चुबकत्व ग्रहण करने की क्रिया है। यदि कोई चुबकीय पदार्थ किसी दड चुबक (bar magnet) के पास लाया जाए, तो उसके ऊपर भी चुबकीय प्रभाव हो जाएगा।

विद्युच्चुंबकीय प्रेरण, विद्युत् के चुबकीय गुण का उपयोग कर निकटवर्ती चालक मे चुबकीय प्रभाव का प्रेरण करने की क्रिया है। यदि किसी कुंडली मे प्रत्यावर्ती धारा (alternating current) प्रवाहित हो रही हो, तो उसका चुंबकीय क्षेत्र भी धारा के अनुरूप प्रत्यावर्ती प्ररूप का होगा। इस प्रकार चुंबकीय अभिवाह (flux) का रूप भी प्रत्यावर्ती होगा। यह अभिवाह, निकटवर्ती दूसरी कुडली के चालको के साथ संबद्ध होकर अपने प्रत्यावर्ती स्वभाव के अनुरूप ही उनमे विद्युद्वाहक बल या वि० वा० ब० (electromotive force or e. m f) उत्पन्न करता है। फैरेडे के सिद्धात के अनुसार, किसी चालक से संबद्ध अभिवाह मे परिवर्तन, उसमें वि० वा० ब० की उत्पत्ति करता है; जिसका परिमाण,

अभिवाह परिवर्तन की गति के बराबर होता है। इस प्रकार दोनों कुंडलियों मे संस्पर्श न होते हुए भी, और भिन्न परिपथ होते हुए भी, प्रेरण द्वारा दूसरी कुंडली मे वि० वा० ब० की उत्पत्ति हो जाती है और उसका परिपथ पूर्ण होने की दशा मे धारा भी प्रवाहित होने लगती है। इस धारा को दूसरी कुंडली के आर पार एक धारामापी (galvanometer) जोड़कर ज्ञात किया जा सकता है। धारामापी का सकेनक कुडली मे धारा की व्युत्पत्ति का संकेत करता है। प्रेरित वि० वा० ब० को एक सुग्राही विश्लेषण धारामापी (voltameter) द्वारा मापा जा सकता है। यह भी ज्ञात होगा कि वोल्टता का परिमाण, दोनो कुंडलियों की लपेट संख्या (number of turns) के अनुपात मे है। यदि पहली कुंडली में १०० लपेटे हों और दूसरी मे १०००, तो दूसरी कुंडली में प्रेरित वोल्टता पहली कुंडली में आरोपित वोल्टता से १० गुणा अधिक होगी। विद्युत् इंजीनियरी के क्षेत्र में यह सिद्धात बहुत महत्वपूर्ण है और विद्युत् संभरण तंत्र (electric supply system) का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण, परिणामित्र (transformer) इसी सिद्धांत पर आधारित है। इसके द्वारा कम वोल्टता की विद्युत् शक्ति को अधिक वोल्टता पर परिवर्तित कर दूर दूर तक पारेषित किया जाता है और फिर उसी प्रकार उसे कम वोल्टता पर परिवर्तित कर उपयोग मे लाया जा सकता है।

विद्युच्चुंबकीय प्रेरण, दो रूप में हो सकता है। एक तो स्थैतिक रूप मे, जैसा ऊपर कहा गया है, जिसमे दोनो कुडलियाँ स्थैतिक होती हैं और वि० वा० ब० की उत्पत्ति, अभिवाह बंधता (flux linkage) मे परिवर्तन के कारण होती है। ऐसा केवल प्रत्यावर्ती धारा मे ही संभव है। यदि पहली कुडली मे दिष्ट धारा (direct current) प्रवाहित की जाए तो अभिवाह बंधताओं में परिवर्तन का प्रश्न ही
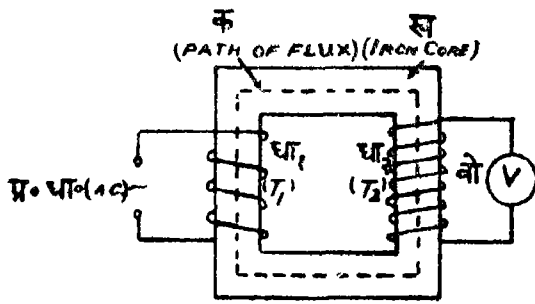
परिणामित्र

इसका कार्य विद्युच्चुंबकीय प्रेरण के सिद्धात पर निर्भर है।

क. फ्लक्स का मार्ग, **ख.** लोह क्रोड, **धा**$_1$ (T_1) प्राथमिक कुंडली, **धा**$_2$ (T_2) द्वितीयक कुडली, प्र० धा० (A. C.) = प्रत्यावर्ती विद्युद्धारा, तथा **वो** (V) वोल्टमीटर।

नही उठता। परंतु अभिवाह की दिशा एवं परिमाण स्थिर होने पर भी यदि चालक चलनशील हो, तो अभिवाह के काटे जाने के फलस्वरूप, उसमें वि० वा० ब० की उत्पत्ति होगी। वस्तुतः, अधिकाश विद्युत् मशीने इसी सिद्धात पर आधारित हैं। यदि कोई चालक किसी चुंबकीय क्षेत्र मे घूमता हो, तो उसमें एक वि० वा० ब० की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार उत्पन्न हुए वि० वा० ब० को गतिकीतः प्रेरित वि० वा० ब० (Dynamically Induced E. M. F.) कहते है और सभी विद्युज्जनित्र, इस सिद्धात पर आधारित हैं।

प्रेरण के सिद्धात पर केवल वि० वा० ब० की ही उत्पत्ति नहीं होती, वरन् एक विभ्रमबल की उत्पत्ति भी हो सकती है। घूर्णी चुंबकीय क्षेत्र मे चालको पर यह बल क्रियाशील होता है, जो उन्हे घुमा सकता है। प्रेरण मोटर स्पष्टतया इसी सिद्धात पर आधारित है। यह सिद्धांत, वस्तुत, विद्युत् ऊर्जा के यात्रिक ऊर्जा में परिवर्तन और यात्रिक ऊर्जा के विद्युत् ऊर्जा मे परिवर्तन को व्यक्त करता है। [रा० कु०]

प्रेरण कुंडली (Induction Coil) कम वोल्टतावाले स्रोत से उच्च वोल्टता प्राप्त करनेवाली एक युक्ति है। इसमे एक क्रोड (core) पर लिपटी दो कुडलियाँ होती हैं, जिन्हे प्राथमिक (primary) और द्वितीयक (secondary) कहते है। प्राथमिक कुंडली मे द्वितीयक की अपेक्षा बहुत कम लपेटे होती हैं। यह कुंडली स्विच (switch) द्वारा एक बैटरी से योजित होती है। यह स्विच संपर्क और विच्छेद (make and break) प्रकार का होता है, जिसमे एक कमानी लगी रहती है। कमानी के सिरे पर नरम लोहे का एक संस्पर्शक होता है। संस्पर्शक का सिरा प्लैटिनम धातु का बना होता है, जिससे बार बार आर्क (arc) बनने पर भी संस्पर्शक क्षत न हो। सामान्य रूप में यह सस्पर्शक दूसरे स्थिर संस्पर्शक से संस्पर्श करता है और इस प्रकार प्राथमिक कुडली का परिपथ पूरा हो जाता है, और उसमे धारा प्रवाहित होती है। धारा प्रवाहित होने से उसके चारो ओर एक क्षेत्र की उत्पत्ति हो जाती है। द्वितीयक कुडली भी इसी क्षेत्र में स्थित है, और इस प्रकार उसके प्रभाव मे है। जब प्राथमिक कुंडली का क्षेत्र काफी बढ जाता है, तब स्विच के नर्म लोहे का सस्पर्शक प्राथमिक कुडली के क्रोड की ओर आकर्षित हो जाता है। क्रोड भी नर्म लोहे का बना होता है। संस्पर्शक के क्रोड की ओर खिंच जाने के कारण, उसका स्थिर सस्पर्शक से सस्पर्श टूट जाता है, और इस प्रकार प्राथमिक कुंडली की धारा का परिपथ पूरा नही रहता। ऐसा होने से उसमे प्रवाहित होनेवाली धारा भी रुक जाती है। वास्तव में धारा एकदम शून्य नही हो जाती, वरन् कुडली के प्रेरकत्व (inductance) के कारण उसमे कुछ काल का विलब होता है। धारा द्वारा उत्पन्न चुबकीय क्षेत्र का भी इसी प्रकार निपात (collapse) हो जाता है। परतु ऐसा होने पर, नर्म लोहे का सस्पर्शक भी, क्रोड का आकर्षण समाप्त हो जाने के कारण, अपनी पुरानी स्थिति पर फेंक दिया जाता है। इसमे वह फिर स्थिर सस्पर्शक से संस्पर्श करने लगता है। इस प्रकार प्राथमिक कुडली की धारा का परिपथ फिर पूर्ण हो जाता है और बैटरी मे धारा फिर प्रवाहित होने लगती है। यह क्रिया बार बार होती रहती है। परिणामस्वरूप, प्राथमिक कुंडली की धारा का परिपथ बार बार बनता और टूटता रहता है। इस कारण उसकी धारा द्वारा उत्पन्न क्षेत्र भी आवर्ती रूप मे बढता घटता रहता है। इस प्रकार, अभिवाह भी दूसरी कुडली की लपेट को आवर्ती रूप में

काटता है और उसमें वि० वा० ब० की उत्पत्ति हो जाती है। चूँकि यह प्रेरित वोल्टता, दोनो कुंडलियों की लपेट संख्या के अनुपात में होती है; अत प्राथमिक वोल्टता कम होने पर भी अति उच्च वोल्टता का प्रेरण हो जाता है। विचारणीय है कि यह क्रिया धारा
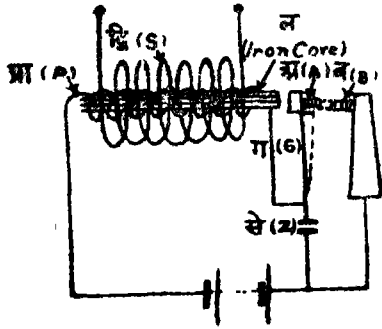
प्रेरण कुंडली

प्रा (P) प्राथमिक कुडली, द्वि (S) द्वितीयक कुडली, ल लोह क्रोड, अ (A) तथा ब (B) चिर तथा स्थिर संस्पर्शक, ग (G) कमानी, तथा से (Z) सधारित्र।

के घटने और बढने के कारण होती है, और यद्यपि बैटरी से स्थिर मान की दिष्ट धारा प्राप्त होती है, तो भी संपर्क विच्छेद स्विच के द्वारा उसे आवर्ती रूप मे प्रवाहित किया जा सकता है।

प्राथमिक एवं द्वितीयक कुंडलियाँ एक ही क्रोड पर, एबोनाइट अथवा और किसी विद्युद्रोधी नलिका पर लपेटी होती है, परतु उनमे कोई योजन नही होता, या तो वे इनेमिल किए तारो से लपेटी होती है, जिसके कारण एक दूसरे से विद्युद्रोधी रहती है; अथवा प्राथमिक के ऊपर एक विद्युद्रोधी नली (insulated sleeve) लगाकर द्वितीयक को लपेट दिया जाता है।

परिपथ के बार बार बनने और टूटने से दोनो सम्पर्शको के बीच आर्क (Arc) उत्पन्न होता है। इससे सम्पर्शको के क्षत होने के अलावा आग का भी भय रहता है। आर्क न होने देने के लिये परिपथ मे एक संधारित्र का प्रयोग किया जाता है, जैसा चित्र मे दिखाया गया है।

प्रेरण द्वारा द्वितीयक कुडली मे उच्च वोल्टता होने का तात्पर्य यह नही कि उसमे शक्ति की वृद्धि हो जाती है। वास्तव मे धारा का मान उसी अनुपात मे कम हो जाता है। इस प्रकार यदि प्राथमिक कुडली मे १२ वोल्ट पर १ एंपीयर धारा ली जा रही हो, तो द्वितीयक कुडली मे १२०० वोल्ट पर केवल $\frac{1}{100}$ एंपीयर धारा ही होगी। वास्तव मे द्वितीयक मे धारा का मान अति अल्प होता है।

प्रेरण कुडली के सिद्धांत पर ही मोटर मे प्रज्वलन कुडली (ignition coil) होती है। उसमे भी किसी बैटरी से प्राप्त ६ या १२ वोल्ट की वोल्टता से द्वितीयक कुडली मे कई हजार वोल्ट की वोल्टता प्राप्त की जाती है, जो प्रज्वलन के लिये आवश्यक होती है। [ग० कु०]

प्रेसबिटरीय चर्च ईसाई समुदायो के संगठन की जो प्रणाली कैलविन के 'सुधार' से चल पड़ी थी उसे प्रेसबिटीरियनिज्म कहते है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कुछ वयोवृद्ध (प्रेसबिटर) पादरी के साथ स्थानीय चर्च का सचालन करते हैं। यूरोप में ऐसे समुदायो को प्रायः रिफार्म्ड कहते है। किंतु स्कॉटलैंड तथा अमरीका में उन्हें प्रेसबिटरीय कहते है। १७वी शताब्दी के अंत तक इंग्लैंड में प्रेसबिटीरियनिज्म का काफी प्रभाव रहा। प्रेसबिटरीय चर्च का प्रधान क्षेत्र स्कॉटलैंड है। वहाँ इस सप्रदाय का १९वी शताब्दी मे पुनर्जागरण हुआ। अमरीका के प्रेसबिटरीय चर्च की सदस्यता लगभग तैंतालीस लाख है (दे० प्रोटस्टैंट धर्म)। [का० बु०]

प्रेस्टन १. **नगर**, स्थिति ५३° ४६' उ० अ० तथा २° ४२' प० दे०। यह इंग्लैंड के लैकाशिर क्षेत्र मे प्रसिद्ध औद्योगिक नगर तथा बदरगाह है। यह सूती तथा रेयन वस्त्र व्यवसाय का प्रमुख केंद्र है। यहाँ वायुयान, मोटरगाडियाँ, औद्योगिक मशीने तथा बिजली के सामान बनते हैं। इस नाम की इंग्लैंड मे एक काउटी बरो भी है जिसका क्षेत्रफल ६,३५७ एकड तथा जनसंख्या १,१२,२०८ (१९६२) थी।

२. **नगर**, स्थिति : ४३° २५' उ० अ० तथा ८०° २०' प० दे०। कैनाडा के ओंटेयरिओ प्रात मे एक औद्योगिक नगर है, जो लकड़ी उद्योग तथा आटे की मिलो के लिये प्रसिद्ध है। स्वास्थ्य का प्रमुख केंद्र भी है। जनसख्या ७,६१९ (१९५१)।

इस नाम के नगर सयुक्त राज्य, अमरीका के कॉनेक्टिकट, मिनिसोटा तथा आइडाहो राज्यो मे भी है। [रा० ब० सि०]

प्रोटीन (Protein) जीवित कोशिकाओ, रक्त तथा अन्य पदार्थों में पाए जानेवाले अधिक अणुभार के पेचीदे पदार्थ है, जो ऐमिनो अम्लो से बने हैं। जीवित कोशिकाओ मे ये बडे महत्व के अवयव है। भिन्न भिन्न जीवो की कोशिकाओं मे भिन्न भिन्न प्रकार के प्रोटीन पाए जाते है। जीवित कोशिकाओ के अधिरसाव मे प्रोटीन नहीं होते है। मिट्टी से नाइट्रेट लेकर पेड पौधे प्रोटीन का निर्माण करते है। पेड़ पौधो से ही प्रोटीन जीवजतुओ म आता है।

सभी प्रोटीनो के सघटन एक से नही होते। सबो मे कार्बन (प्राय ५१%), हाइड्रोजन (प्राय ७%), ऑक्सीजन (प्राय २५%), नाइट्रोजन (प्राय १६%), अधिकाश मे गधक (प्राय ०.८%) और कुछ मे फॉस्फोरस (प्राय ०.४%) रहता है। ये अमोनिया या ऐमिनो अम्लो से बने है। विभिन्न प्रोटीनो म ऐसे लगभग २० ऐमिनो अम्लो का अब तक पता लगा है।

पौधे मिट्टी से नाइट्रेट लेकर उससे प्रोटीन का सृजन करते है। जीवजतु नाइट्रेटो से प्रोटीन का सृजन नहीं करते। पेड़पौधों से प्रोटीन लेकर जीवजतु, जानवर प्रोटीन बनाते है। प्रोटीनो मे उपस्थित प्रमुख ऐमिनो अम्ल है ट्रिप्टोफैन (tryptophan), लाइसीन (lysine), हिस्टीडीन (histidine), सिस्टिन (cystine), टाइरोसीन (tyrosine) और आरजिनिन (arginine)। तनु खनिज अम्लो या एजाइमो से प्रोटीनो का विघटन होकर ऐमिनो अम्ल बनते है।

प्रोटीनो से प्राप्त ऐमिनो अम्लो को चार प्रमुख वर्गो मे विभक्त किया गया है (१) उदासीन ऐमिनो अम्ल, (२) अम्लीय ऐमिनो अम्ल, (३) क्षारीय ऐमिनो अम्ल तथा (४) विषमचक्रीय ऐमिनो अम्ल।

ऐमिनो अम्लों के सघनन से बड़ी बड़ी श्रृंखलावाले प्रोटीन बने

हुए है। ऐसे यौगिको को रसायनशाला में तैयार करने की चेष्टाएँ हुई है। ऐसे कृत्रिम यौगिको को पोलीपेप्टाइड कहते है। अनेक उच्च अणुभार के पालीपेप्टाइड (polypeptide) अब तक तैयार हुए है; जो प्रोटीन की अभिक्रियाएँ भी देते है। इससे प्रोटीन के संघटन के संबध में कोई सदेह नही रह जाता।

वैज्ञानिको ने प्रोटीन का वर्गीकरण उनके संघटन के आधार पर किया है। प्रोटीनो को उन्होंने तीन श्रेणियों मे विभक्त किया है: एक को सरल प्रोटीन, दूसरे को संयुग्मी प्रोटीन तथा तीसरे को व्युत्पन्न प्रोटीन कहते है। सरल प्रोटीनो मे एल्ब्यूमिन (Albumin), ग्लोब्यूलिन (Globulin), ग्लूटेलिन (Glutelin), प्रोलैमिन, (Prolamine), ग्लाइएडिन (Gliadin), एलब्यूमिनायडया या स्क्लेरो-प्रोटीन (Sclero protein), प्रोटेमिन (Protamine) और हिस्टोन (Histone)। सयुग्मी प्रोटीनो मे क्रोमोप्रोटीन, ग्लूको या ग्लाइकोप्रोटीन, न्यूक्लोओ प्रोटीन और फॉस्फोप्रोटीन है। व्युत्पन्न प्रोटीनो मे मेटा प्रोटीन, प्रोटिओज, पेपटोन और पेप्टाइड आते है, जो प्रोटीनो के जल अपघटन से प्राप्त होते है।

मनुष्यो और अन्य जीव जन्तुओं के लिये प्रोटीन महत्वपूर्ण आहार है। इससे शरीर की कोशिकाएँ और ऊतक बनते है। प्रोटीन के अभाव मे शरीर क्षीण हो जाता है और रोगो से आक्रात होने की सभावना बढ जाती है। इससे शरीर मे ऊर्जा भी उत्पन्न होती है। इससे कार्बो-हाइड्रेटो और वसा के पाचन मे सहायता मिलती है। ठढे देशो के व्यक्तियो के आहार मे प्रोटीन की मात्रा अधिक रहनी चाहिए ताकि वे शीत को सहन कर सके। साधारणतया एक युवक के लिये प्रति दिन प्राय १०० ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है। उद्योगधंधो मे भी प्रोटीन का उपयोग होता है। केसीन, सरेस, जिलेटिन सदृश प्रोटीन डिस्टेंपर, बटन, कृत्रिम रेबर इत्यादि के निर्माण मे प्रयुक्त होते है। [स० व०]

प्रोटेस्टैंट धर्म १६वी शताब्दी के प्रारभ मे लूथर के विद्रोह के फलस्वरूप प्रोटेस्टैंट धर्म प्रारंभ हुआ था (दे० चर्च का इतिहास)। लूथर के अनुयायी लूथरन कहलाते है; प्रोटेस्टैंट धर्मावलबियो में उनकी सख्या सर्वाधिक है (दे० लूथर)।

जोहन कैलविन (१५०९-१५६४ ई०) फ्रास के निवासी थे। सन् १५३२ ई० मे प्रोटेस्टेंट बनकर वह स्विट्सरलैंड मे बस गए जहाँ उन्होंने लूथर के सिद्धातो के विकास तथा प्रोटेस्टैंट धर्म के संगठन के कार्य मे असाधारण प्रतिभा प्रदर्शित की। बाइबिल के पूर्वार्ध को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देने के अतिरिक्त उनकी शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता है, उनका पूर्वविधान (प्रीडेस्टिनेशन) नामक सिद्धात। इस सिद्धात के अनुसार ईश्वर ने अनादि काल से मनुष्यों को दो वर्गो मे विभक्त किया है, एक वर्ग मुक्ति पाता है और दूसरा नरक जाता है (दे० आर्मिनियस या कोवस)। केलविन के अनुयायी कैलविनिस्ट कहलाते हैं, वे विशेष रूप से स्वित्सरलैंड, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, स्काटलैंड (दे० प्रेसबिटरीय धर्म), फ्रास (दे० यूगनो) तथा अमरीका मे पाए जाते है, उनकी संख्या लगभग पाँच करोड़ है। ये सब समुदाय एक वर्ल्ड प्रेसबिटरीय एलाइस (World Presbyterian Alliance) के सदस्य है, जिसका केंद्र जेनोवा मे है।

हेनरी सप्तम के राज्यकाल मे इग्लैंड का ईसाई चर्च रोम से अलग होकर चर्च ऑव इंग्लैंड और बाद में एंग्लिकन चर्च कहलाने लगा। (दे० एग्लिकन समुदाय)। एग्लिकन राजधर्म के विरोध मे १६वी शताब्दी मे प्यूरिटनवाद (दे० प्यूरिटनवाद) तथा काग्रगेशनैलिज्म (दे० सामूहिक चर्चवाद) का प्रादुर्भाव हुआ।

उपर्युक्त संप्रदायों के अतिरिक्त बैप्टिस्ट तथा मेथोडिस्ट चर्च सबसे अधिक महत्व रखते है (दे० 'बैप्टिस्ट चर्च,' 'मेथोडिज्म')। प्रोटेस्टैंट धर्म के विषय मे यह प्राय सुनने मे आता है कि वह असंख्य सप्रदायों मे विभक्त है किंतु वास्तव में समस्त प्रोटेस्टैंटो के ६४ प्रति शत पाँच ही संप्रदायों मे समिलित है, अर्थात् लूथरन, कैलविनिस्ट, एंग्लिकन, बैप्टिस्ट और मेथोडिस्ट।

अन्य सभी प्रोटेस्टैंट संप्रदायो का विवरण यहाँ नही दिया जा सकता। मेन्नोनाइट, एड्वेंटिस्ट, यहोवा-साक्षी जैसे बैप्टिस्ट चर्च से सबद्ध स्वतत्र सप्रदायों का तथा मुक्तिसेना का किंचित् परिचय अन्यत्र दिया गया है (दे० बैप्टिस्ट, मुक्तिसेना)। शेष संप्रदायो मे से चार का उल्लेख यहाँ अपेक्षित है।

१७वी शती के मध्य मे जार्ज फॉक्स (George Fox) ने 'सोसाइटी ऑव फ्रेड्स' की स्थापना की थी, जो क्वेकर्स (Quakers) के नाम से विख्यात है। वे लोग पौरोहित्य तथा पूजा का कोई अनुष्ठान नही मानते और अपनी प्रार्थनासभाओ मे मौन रहकर आभ्यंतर ज्योति के प्रादुर्भाव की प्रतीक्षा करते है। इग्लैंड मे अत्याचार सहकर वे अमरीका मे बस गए। आजकल उनकी संख्या दो लाख से कुछ कम है।

सन् १८३० ई० मे यूसुफ स्मिथ ने अमरीका मे 'चर्च ऑव जीसस क्राइस्ट ऑव दि लैट्टर डेस' की स्थापना की। उस सप्रदाय मे स्मिथ द्वारा रचित 'बुक ऑव मोरमन' बाइबिल के बराबर माना जाता है, इससे इसके अनुयायी मोरमस (Mormons) कहलाते है। वे मदिरा, तबाकू, काफी तथा चाय से परहेज करते है। प्रारभ मे वे बहुविवाह भी मानते थे किंतु बाद मे उन्होने उस प्रथा को बद कर दिया। यग (Young) के नेतृत्व में उन्होने ऊता स्टेट को बसाया जिसकी राजधानी साल्ट सिटी (Salt city) इस संप्रदाय का मुख्य केंद्र है। मोरमंस की कुल संख्या लगभग अठारह लाख है।

मेरी बेकर एड्डी ने (सन् १८२१-१९११ ई०) ईसा को एक आध्यात्मिक चिकित्सक के रूप मे देखा। उनका मुख्य सिद्धात यह है कि पाप तथा बीमारी हमारी इद्रियों की माया ही है, जिसे मानसिक चिकित्सा (Mind Cure) द्वारा दूर किया जा सकता है। उन्होंने क्रिस्टियन साइंस नामक सप्रदाय की स्थापना की जिसका अमरीका में आजकल भी काफी प्रभाव है।

पेंतकोस्तल नामक अनेक संप्रदाय २०वी शताब्दी मे प्रारभ हुए हैं। कुल मिलाकर उनकी सदस्यता लगभग एक करोड़ बताई जाती है। पेंतकोस्त पर्व के नाम पर उन सप्रदायो का नाम रखा गया है (दे० पर्व)। भावुकता तथा पवित्र आत्मा के वरदानो का महत्व उन सप्रदायो की प्रधान विशेषता है।

सं० ग्रं० — एम० जे० कोगार : डिवाइड क्रिश्चियनिटी, लदन, १९३९; जे० डिलैनबेर्गेर क्रिश्चियनिटी, न्यूयार्क, १९५४, ई० जी० लिओनार्ड हिस्ट्वार द्यु प्रोटेस्टैंटिज्म। [का० बु०]

प्रोटोजोआ ऐसे प्राणियो का संघ है जिसके सभी प्राणी एककोशिक होते हैं। आकारिकी (morphology) और क्रिया की दृष्टि से इस संघ के प्राणी की कोशिका पूर्ण होती है, अर्थात् एककोशिका जनन, पाचन, श्वसन तथा उत्सर्जन इत्यादि सभी कार्य करती है। प्रोटोजोआ इतने सूक्ष्म होते है कि इन्हे नंगी आँखों से देखना संभव नही है। समुद्री जल मे और बँधे हुए मीठे जल में असख्य प्रोटोजोआ मिलते हैं। ये अकेले या निवह (समूह, colony) मे रहते हैं। प्रोटोजोआओ में ऊतक नही होता। इनकी ऊतकहीनता ही निवह में रहनेवाले कोशिका समुच्चय को मेटाजोआ (metazoa) से पृथक् करती है। अब तक लगभग ३०,००० किस्म के प्रोटोजोआ ज्ञात है।

प्रोटोजोआ मे अलैंगिक एव लैंगिक दोनो प्रकार से जनन क्रिया होती है। अलैंगिक जनन भी दो प्रकार से होता है : (१) सरल द्विविभाजन (simple binary fission) और (२) बहुविभाजन (multiple fission) द्वारा।

(१) सरल द्विविभाजन — इसमे प्रोटोजोआ अनुप्रस्थ या अनुदैर्घ्य रूप मे दो भागो में विभाजित हो जाता है। ये भाग न्यूनाधिक बराबर होते हैं।

(२) बहुविभाजन — इस विभाजन में दो या अधिक प्रोटोजोआ उत्पन्न होते हैं। जनक कोश के केंद्र का बारबार विभाजन होता है और विभक्त हुए खंडो को कोशिकाद्रव घेर लेता है। जब कोशों का बनना पूर्ण हो जाता है, तो कोशिका द्रव फटकर अलग हो जाता है।

लैंगिक जनन भी दो तरह से होता है : (१) संयुग्मन (conjugation) और (२) युग्मकसंलयन (syngamy)

(१) संयुग्मन — इस प्रकार के जनन मे दो प्रोटोजोआओं का अस्थायी संयोग होता है। इस संयोग काल मे केंद्रकीय पदार्थ का विनिमय होता है। बाद में दोनो प्रोटोजोआ पृथक् हो जाते है, प्रत्येक इस क्रिया द्वारा पुनर्युवनित (rejuvenated) हो जाता है। सिलिएटा (ciliata) का जनन संयुग्मन का उदाहरण है (देखें चित्र १.)।

(२) युग्मकसंलयन — इस क्रिया मे युग्मक (gamete) स्थायी रूप से संयोग करते है और केंद्रकीय पदार्थ का संपूर्ण विलयन होता है। विखंडन के परिणामस्वरूप युग्मनज (zygote) उत्पन्न होते है।

संगठन — प्रोटोजोआ के शरीर के मूल घटक केंद्रक (nucleus) और कोशिका द्रव्य (cytoplasm) है। यद्यपि प्रोटोजोआ की अधिकतर स्पीशीज़ मे एक केंद्रक होता है, फिर भी द्विकेंद्रकी एवं बहुकेंद्रकी प्रोटोजोआ भी है। कोशिकाद्रव्य के दो भाग है, बाह्य भाग को बहिःप्रद्रव्य (ectoplasm) और आंतरिक भाग को अंतःप्रद्रव्य (endoplasm) कहते है। बहिःप्रद्रव्य स्वच्छ एव समांग होता है, और यह रक्षात्मक, गमनात्मक एव संवेदात्मक कार्य करता है। बहिःप्रद्रव्य द्वारा पादाभ (pseudopodium) का, कशाभिका (flagella) का तथा सिलिया (cilia) नामक चलन अगक (organelles) का, सकुचनशील रिक्तिका (contractile vacuole) नामक उत्सर्जक अग का, खाद्य रिक्तिका (food vacuole) नामक पाचन अंग का (चित्र २.) एव पुटी (cyst) नामक रक्षात्मक अग का निर्माण होता है।

अंतःप्रद्रव्य विषमाग एवं कणिकामय होता है। इसका कार्य जनन और पोषण करना है। कोशिकाद्रव्य की सतही तह
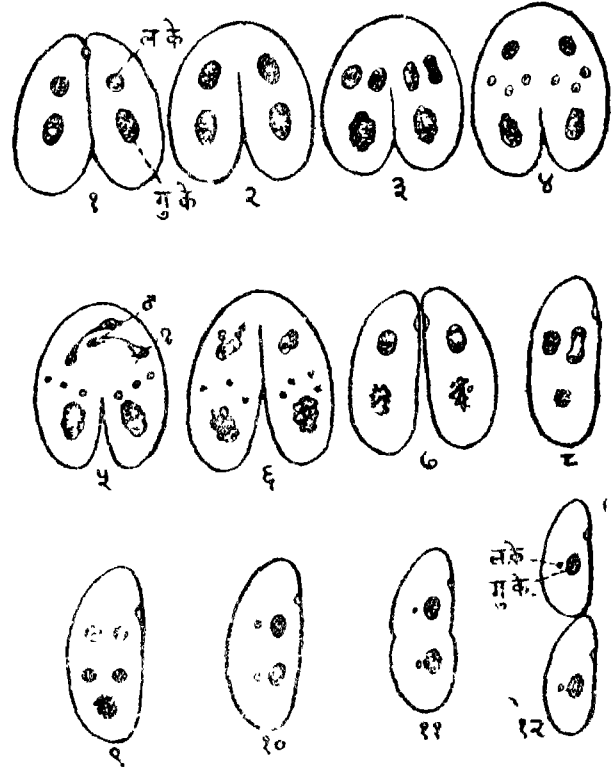
चित्र १. सिलिएटा के संयुग्मन की साधारण विधि

१ अक्ष से युग्मित दो प्राणी, जिनमे लघु केंद्रक सूत्री विभाजन (mitosis) की प्रारंभिक अवस्था मे है; २ प्रथम, समकारी सूत्री विभाजन, ३ द्वितीय, ह्रास सूत्री विभाजन; ४. प्रत्येक जतु के केंद्रकों मे से एक का तृतीय विभाजन, जिससे युग्मकीय केंद्रक बनते हैं; ५. नर ♂ युग्मकीय केंद्रको का आदान प्रदान; ६ युग्मकीय केंद्रकों का सायुज्य, जिससे सिनकेरियन (synkaryon) बनता है और द्विसख्यक अवस्था फिर आ जाती है, ७. सयुग्मी विलग हो जाते है तथा सिनकेरियन का प्रथम विभाजन होता है, ८. सिनकेरियन का द्वितीय विभाजन; ९. सिनकेरियन के दो विभाजनो से चार केंद्रक उत्पन्न होते है तथा पुरातन गुरु केंद्रक का खडन हो जाता है; १० चार केंद्रको मे से दो नए लघु केंद्रको मे तथा अन्य दो नए गुरु केंद्रको मे प्रस्फुटित हो जाते है तथा ११. और १२. पूर्व संयुग्मियो के प्रथम विखंडन से प्रत्येक अनुजात कोशिका को एक लघु तथा एक गुरु केंद्रक प्राप्त होता है और इस प्रकार वर्धी अवस्था पुनः स्थापित हो जाती है। ल० कें० = लघुकेंद्रक, गु० कें० = गुरु केंद्रक, ♂ = नर तथा ♀ मादा।

जीवद्रव्य कला (plasma membrane) कहलाती है। सार्कोडिना (Sarcodina) के अतिरिक्त अन्य प्रोटोजोआ की जीव-

द्रव्य-कला पर एक अन्य कला होती है जिसे तनुत्वक (Pellicle) कहते है।

फोरैमिनिफ़ेरा (Foraminifera) नामक गण के प्रोटोज़ोआ सुरक्षा के लिये अपने ऊपर खोल बनाते हैं। असामान्य स्थिति मे कुछ प्रोटोज़ोआ सुरक्षा कला का निर्माण करते हैं जिसे पुटी (Cysts) कहते हैं। पुटी प्रोटोज़ोआ की प्रतिरोधक अवस्था है। इस अवस्था मे परजीवी प्रोटोज़ोआ भी अपने परपोषी के प्रति प्रभावहीन रहते हैं।

प्रोटोज़ोआ के कोशिका द्रव्य मे पाचन के लिये खाद्य रिक्तिका (food vacuole) और जल तथा अन्य तरल उत्सर्ग को बाहर निकालने के लिये सकुचनशील रिक्तका (contractile vacuole) होते हैं। जिन प्रोटोज़ोआओ में क्लोरोफिल रहता है, उनमे क्लोरोफिल के लिये हरित लबक (chloroplast) या वर्णकी लबक रहता है
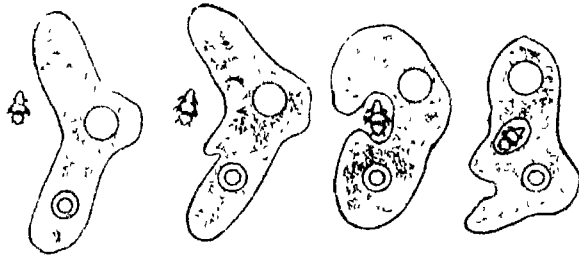
चित्र २. अमीबा का आहारग्रहण

सबसे बाएँ चित्र मे अमीबा आहार के पास पहुँच गया है। बाद के दो चित्रो में अमीबा आहार को घेरता हुआ और अंतिम चित्र में आहार को अपने भीतर लेकर पचाता हुआ दिखाया गया है।

(चित्र ३.)। कुछ प्रोटोजोआओं मे प्रकाशबोध के लिये हैमैटोक्रोम (haematochromes) अथवा विररित या सघनित कैरोटिनाभ वर्णक (carotinoid pigment) कणिकाएँ मिलती है। प्रोटोजोआ में ग्लाइकोजन (glycogen), पैरामाइलोन (paramylon), वाल्यूटिन (volutin) या मेटाक्रोमैटिक (metachromatic) कण तथा तैलबिंदुक (droplet) के रूप मे सुरक्षित खाद्य एकत्र रहता है।

केंद्रक — प्रोटोजोआ की कोशिका की महत्वपूर्ण सरचना केंद्रक है। यह जनन को नियमित तथा अन्य कार्यों को नियंत्रित करता है। कोशिकाद्रव्य के अत प्रद्रव्य मे यह स्थिर रहता है और इसकी संरचना की सहायता से प्रोटोजोआ के जेनरा (genera) और स्पीशीज़ मे अंतर करने मे सहायता मिलती है। प्रटोजोआ मे एक या अधिक केंद्रक होते है।

प्रोटोजोआ मे श्वसन सस्थान नही होता, किंतु ऑक्सीकरण द्वारा ये ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। उत्सर्जन संस्थान की उपस्थिति भी विवादास्पद है। जीवन के लगभग सभी कार्य इसके कोशिकाद्रव्य द्वारा होते हैं। अधिकाश प्रोटोज़ोआ आहार के लिये लघु पौधों, मल और दूसरे प्रोटोजोआओं पर निर्भर करते हैं। परजीवी प्रोटोज़ोआ परपोषी के ऊतकों पर रहते हैं। जिन प्रोटोजोआओं मे क्लोरोप्लास्ट (Chloroplast) होता है, वे पौधो की तरह प्रकाशसश्लेषण से अपना भोजन बनाते है। यूग्लीना (Euglena) और वॉलवॉक्स (volvox) इसके उदाहरण है (चित्र ३.)। कुछ प्रोटोज़ोआ अपने शरीर की
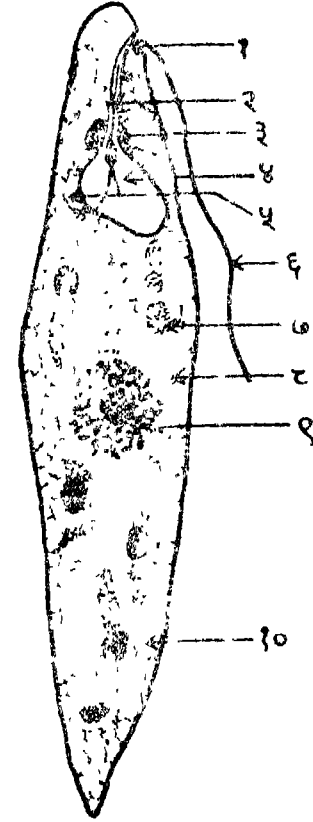
चित्र ३. यूग्लीना ऐजिलिस नामक हरित फ्लैजिलेट

१. कोशिकामुख, २. ग्रासनली, ३. नेत्र स्थान, ४ आगार, ५ संकुचनशील रिक्तका, ६. कशाभ, ७. प्रोभूजक (pyrenoid) ८. हरितलवक (chloroplast), ९. केंद्रक, तथा १०. कोशिका द्रव्य।

सतह द्वारा जल में घुले आहार को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के पोषण को मृतजीवी पोषण (saprozoic nutrition) कहते है। कुछ प्रोटोजोआ परिस्थिति के अनुसार पादपसमभोजी (holophytic) और मृतजीवी मे बदलते रहते हैं, जैसे यूग्लीना का, जो पादपसमभोजी है, यदि अधकार मे रख दिया जाय तो इसका क्लोरोफिल समाप्त हो जाता है और यह मृतजीवी हो जाता है। कुछ प्रोटोजोआ प्राणिसम भोजी (holozoic) होते है, जो प्रग्रहण (capture) तथा अतर्ग्रहण (injestin) द्वारा कार्बनिक पदार्थो को खाते है।

वर्गीकरण — प्रोटोजोआ को गमन करने के आधार पर निम्नलिखित पाँच वर्गों मे बाँटा गया है (१) मैस्टिगोफोरा (Mastigophora) या कशाभिक (Flagellates) — इस वर्ग के प्रोटोज़ोआ मे चाबुक सदृश एक या अधिक कशाभिका रहती है, जो तैरने में सहायता करती है। इस वर्ग के प्रोटोज़ोआ परजीवी, प्राणिसमभोजी एवं पादपसमभोजी होते हैं। (२) सार्कोडिना (Sarcodina) या राइजोपोडा (Rhizopoda) — ये पादाभ (pseudopodium) द्वारा गमन करते तथा भोजन करते है। (३) स्पोरोज़ोआ (Sporozoa)

—इसमे कोई भी चलन अंगक (locomotor organelles) नही रहते, क्योकि इस वर्ग के प्राणी परजीवी जीवन व्यतीत करते है (देखे **परजीवजन्य रोग**)। ये पुटी के अंदर जनन करते है। (४) सिलिएटा (Ciliata) —ये सिलिया के द्वारा भोजन एव गमन करते हैं। सिलिएटा द्विकेंद्रकी होते है, जिनमें से एक दीर्घ केंद्रक तथा दूसरा लघु केंद्रक होता है। इसका संघटन बड़ा विकसित है। (५) सक्टोरिया (Suctoria) — ये शिशु अवस्था मे सिलिया द्वारा और वयस्क होने पर स्पर्शको (tentacles) द्वारा गमन करते है और इन्ही के द्वारा भोजन का अंतर्ग्रहण प्रभावित होता है।

आर्थिक महत्व — प्रोटोजोआ का जैविक एव आर्थिक महत्व है। बहुत बड़ी संख्या मे प्रोटोजोआ पृथ्वी की सतह पर रहते है और ये पृथ्वी की उर्वरता के कारक समझे जाते है। समुद्र मे रहने वाले प्रोटोजोआ समुद्री जीवों के खाने के काम मे आते है। प्राणिसमभोजी प्रोटोजोआ जीवाणुओ का भक्षण कर उनकी सख्या वृद्धि को रोकते हैं। प्रोटोजोआ की कुछ जातिया पानी मे विशिष्ट प्रकार की गधो के कारक हैं। डिनोब्रियान (Dinobryon) पानी मे मछली की तरह की गंध तथा सिन्यूर (Synura) पानी मे पके हुए खीरे या ककड़ी की तरह के गध के कारक है।

सं० ग्रं०—डा० एम० एन० प्रसाद ए टेक्स्ट बुक ऑव इन्वर्टिब्रेटा; इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, इनसाइक्लोपीडिया चैंबर।

[अ० ना० मे०]

प्रोबोसीडिया (Proboscidea) शुडधारी जंतुओ का एक गण है। भारत तथा अफ्रीका मे पाए जानेवाले हाथी 'स्तनपायी' वर्ग के 'शुडी' गण के जतुओ का प्रतिनिधित्व करते है। ये जतु अपने शुंड एवं विशाल शरीर के कारण अन्य जीवित स्तनपायी जंतुओ से भिन्न होते है। परंतु इन्ही जतुओ के सदृश आकारवाले कई विलुप्त जंतुओ के जीवाश्म पूर्व काल से ज्ञात है। उन प्राचीन जतुओ की तुलना अन्य स्तनपायी जतुओं से की जा सकती है। वर्तमान काल के हाथियों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है .

हाथी बहुत ही प्राचीन जतु है। इसकी विशेषताएँ अधिकाशत. इसके दीर्घ आकार से सबधित है। अफ्रीका महादेश के हाथियो की ऊँचाई ११ से १३ फुट तक होती है। अभिलिखित, अधिकतम भार साढे छह टन है। अत अत्यधिक भार एव सरचना की विशालता मे ये सभी स्थलचर जीवित जतुओं मे उत्कृष्ट है।

विशाल शरीर का भार वहन करने के लिये इनकी स्तभ सदृश भुजाएँ अधिक सुदृढ एव स्थूल होती है, जिनके ककाल की बनावट गठी हुई होती है। पैरों के तलवे का अधिकाश (अगुलियो के नीचे और पीछे) गद्दीदार होता है, जो इनके शरीर का अधिकाश भार झेलता है।

इनकी ग्रीवा छोटी होती है, विशाल मस्तक के दोनो पार्श्व मे दो वृहद् कर्ण पल्लव (pinna) तथा नीचे की ओर एक लंबा शुड होता है। शुड नम्य तथा मासल नलों के सदृश एक परिग्राही (prehensile) अंग है, जो किसी भी दिशा मे घूम सकता है। इसके अग्र छोर पर अगुलियो के समान एक या दो रचनाएँ होती हैं, जो एक नए पैसे जैसी क्षुद्र वस्तु को भी सुगमता से उठा सकती है। शुंड मुख (face) के संपूर्ण अग्रभाग, विशेषत. नासा एवं ओष्ठ का ही परिवर्तित रूप है। दोनो नासा छिद्र शुंड के अग्र छोर पर होते है, जिनका संबध शुंड के आधार पर स्थित घ्राणकोष्ठ (olfactory chamber) से दो लंबी नलियो के द्वारा होता है।

अस्थियो के स्थूल एव छिद्रित होने के कारण हाथियो की करोटि (skull) अपेक्षया बहुत छोटे आकार की तथा हल्की होती है। करोटि की सरचना एक उत्तोलक (lever) के समान होती है, फलस्वरूप मस्तक का भार वहन करने के लिये लबी ग्रीवा की आवश्यकता नही होती।

हाथियो के चर्वण दत, डेन्टीन (dentine) की पतली पट्टियो से बने होते हैं, जो दतवल्कल (enamel) से घिरे तथा सीमेंट (cement) से जुड़े होते है। ये पट्टियाँ पीसनेवाले धरातल के ऊपर उभरी होती है। ये दत तथा इनकी पट्टिया क्रमश प्रयोग मे आती है, फलस्वरूप पूर्ण दतपट्टिया एक साथ नही घिस पाती। दाँतों की अधिकतम सख्या २८ होती है, परतु ये इस प्रकार काम मे आते तथा घिसते है कि एक समय मे केवल ८ चर्वण दत ही प्रयोग मे आ पाते है। इसके अतिरिक्त उत्तर कृतक दत (upper incisor teeth) या गज दंत (tusk) दो छोटे दुग्ध दंत (milk tusks) के टूटने के बाद ही प्रगट होते है। दंतवल्कल के द्वारा बने अग्र छोर के अतिरिक्त गज दत के शेष भाग डेंटीन के बने होते है। इनकी वृद्धि आजीवन होती रहती है। वैज्ञानिको के अभिलेखकों मे अफ्रीका के हाथियो के गज दत की अधिकतम लबाई १० फुट ३.४ इंच तथा भार २३६ पाउंड तक मिलता है।

हाथियो के मेरुदड (vertebral column) के ग्रीवा भाग मे छह छोटी छोटी कशेरुकाएँ (vertebrae) तथा पृष्ठ भाग मे १९ से २१ कशेरुकाएँ तक होती है। पृष्ठ भाग की अग्र कशेरुकाओ के तंत्रिकीय कटक (neural spines) अधिक लबे होते है। कटि क्षेत्र (lumber region) मे तीन या चार कशेरुकाएँ होती है, तथा सेक्रम (sacrum) चार कशेरुकाओ के एक साथ जुड जाने से बना होता है। पुच्छीय (caudal) कशेरुकाओ की सख्या तीस के निकट होती है। पसली की अस्थिया (ribs) अधिक लबी होती है, जिनसे विशाल वक्ष (thorax) घिरा रहता है। अस मेखला (shoulder girdle) एक त्रिकोणात्मक स्कधास्थि का बना होता है, जो वक्ष के पार्श्व मे उदग्र रूप से लगा रहता है। प्रगडिका (humerus), अग्र बाहु (fore arm) से अधिक लबी होती है, फलस्वरूप हाथियो की कुहनी (elbow) लबाई मे अश्वो की कलाई (wrist) के कुछ ही ऊपर रहती है। बहि: प्रकोष्ठिक (radius) तथा अत प्रकोष्ठिका (ulna) की रचना विचित्र होती है। उनकी वे सतहे जो मणिबंधिकाओ (carpels) से जुडती है, लगभग बराबर होती है, परतु बहि: प्रकोष्ठिका का अग्र भाग अपेक्षया छोटा एव अत प्रकोष्ठिका के समुख होता है। ये दोनो अस्थियाँ एक दूसरे को काटती हुई पीछे की ओर आती हैं। मणिबधिका की रचना भी असमान होती है, क्योकि मणिबधिकास्थियाँ जिनकी दो पक्तियाँ होती है, एक सीध मे न होकर एक दूसरे के अदर होती है। अगुलियो तथा पादागुलियो के अग्र छोर पर हाथी चलता है परतु हथेली और तलवे के मांसल एवं गद्देदार होने से विशाल शरीर का सपूर्ण भार अगुलियो के छोर पर नही आ पाता।

श्रोणि प्रदेश (pelvis) असाधारण रूप से चौड़ा होता है। श्रोणि (Ilia) चौड़ी होती है, जिसके पश्चभाग से मास पेशियाँ पैरो के साथ जुड़ी होती हैं तथा पार्श्व भाग से देहभित्ति की मासपेशियाँ जुड़ी रहती है। अग्रबाहु के सदृश पैरों के ऊपरी भाग की लंबाई अधिक होती है। गुल्फ (tarsus) मे अनुगुल्फिका (astragalus) भार वहन करने के लिये चौडी होती हैं।

हाथियो के अन्य अगों की आतरिक रचना सामान्य होती है। नासा एव ओष्ठ के द्वारा बने हुए शुंड के अतिरिक्त इनके अन्य अगो मे कोई विशेष परिवर्तन नही होता। फुप्फुसावरणी गुहा (pleural cavity) की अनुपस्थिति इन जतुओं की मुख्य विशेषता है। इनके उदरीय वृषण (abdominal testes), द्विशृंगी गर्भाशय (bicornuate uterus) तथा प्रादेशिक एव परानिकामय अपरा (jonary and desiduate placenta) विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि साइरेनिया (sirenia) गण के जतुओं मे भी ये विशेषताएँ मिलती है। अनुमानत साइरेनिया गण की उत्पत्ति इन्ही प्राचीन शुडी जीवो से हुई है।

इनके मस्तिष्क की रचना प्राचीन कालीन है। अग्र मस्तिष्क, पश्च मस्तिष्क को पूर्ण रूपेण नही ढँक पाता है। आकार की विशालता तथा ऊपरी भाग के आवर्त इसकी मुख्य विशेषताएँ है। इनकी स्मरण शक्ति अद्‌भुत होती है। ये अपने शत्रु, मित्र, तथा अपने शरीर के क्षतो को शीघ्र नही भूलते। प्रिय फलो के परिपक्व होने का समय इन्हे ज्ञात रहता है। प्रशिक्षण के पश्चात् ये कठिन श्रम भी करते हैं। मुख्यत नर अधिक लजीले स्वभाव के होते है। इनकी दृष्टि क्षीण परंतु घ्राण एवं श्रवण शक्ति तीव्र होती है।

प्राचीन शुंडी — अर्वाचीन हाथी शारीरिक रचना मे प्राचीन प्राणियो से सर्वथा भिन्न है। परतु इनका आकार क्रमश कालातर मे विकसित हुआ है। इनके सबसे प्राचीन पूर्वज मोरीथीरियम (आद्य शुडी प्रजाति, Moeritherium) नामक जतु के अवशेष जीवाश्म के रूप मे मिस्र देश मे पाए गए है। ये उत्तर प्रादिनूतन (upper Eocene) के जीव आकार मे छोटे तथा अनुमानत शुड-रहित थे। इनके समक्ष के सभी दत वर्तमान थे, जिनमे ऊपर और नीचे के एक एक जोडे अधिक लबे थे। सभी चर्वण दत अति साधारण आकार के थे। इस प्रकार बाह्य रूप से सर्वथा भिन्न होने पर भी कई दृष्टि मे ये जीव वर्तमान काल के हाथियों के आदि पूर्वज माने गए है।

'मोरीथीरियम' के अधिक विकसित रूप मैस्टोडॉन्स (Mastodons) या **शंकुदंत प्रजाति** के जीवाश्म भी मिस्र देश मे पाए गए है। इनका वृद्धिकाल अल्पनूतन युग (Oligocene) से अत्यतनूतन युग (Pleistocene) के बीच का समय माना गया है। सभी प्राचीन मैस्टोडॉन्स के दोनो जबडों मे गजदत वर्तमान थे। ये गजदत सर्वप्रथम वक्र नही थे। जबडे अधिक बडे तथा अस्थिमय थे, तथा नासा नली लबी थी, परंतु केवल अग्र भाग ही सभवत नम्य था।

इस प्रकार धीरे धीरे जबडे तथा नीचे के गजदत छोटे आकार के तथा ऊपर के गजदंत अधिक वक्र तथा शुड अधिक नम्य होते गए। 'मैस्टोडॉन्स' के अग्राकृति तथा अर्वाचीन हाथियो के मस्तक क्रमशः इसी प्रकार परिवर्तित एव विकसित हुए। प्रारंभिक 'मैस्टोडॉन्स' के चर्वण दंत आकार मे अति साधारण तथा निम्न शिखर-वाले (low crowned) थे। उनकी ऊपरी सतह अधिक उभरी हुई नही थी। परतु आकार की वृद्धि एवं खाद्य पदार्थ में भिन्नता आने से दतविन्यास मे अधिक परिवर्तन आए।

यद्यपि "मैस्टोडॉन्स" का उद्‌भव अफ्रीका महादेश मे हुआ, तथापि ये शीघ्र ही पृथ्वी के अन्य भागो मे प्रसृत हो गए। इस प्रकार मध्य नूतन (Miocene) एव अतिनूतन (Pliocene) युग मे ये सपूर्ण उत्तरी भूक्षेत्र मे तथा अत्यंतनूतन युग मे दक्षिण अमरीका तक फैल गए। अत्यतनूतन युग के प्रारभ मे ही प्राचीन भू क्षेत्र से इनका विनाश हो गया, परतु अमरीका में वर्तमान युग के दस बीस हजार वर्ष पहले तक ये वर्तमान रहे। [का० चं० बो०]

प्रोसिश्रॉन (Procyon) आकाशगंगा के किनारे किनारे मिथुन (Gemini) और मृग (Orion) तारामंडलो के निकट कैनिस माइनर (Canis Minor) नामक तारासमूह का सबसे अधिक कातिमय तारा है। उपर्युक्त तारासमूह जनवरी से मई तक की रातों में सबसे अच्छा दिखाई पडता है और प्रोसिश्रॉन तारा मार्च के आरभ मे ६ बजे रात के लगभग अपने याम्योत्तर पर रहता है। कैनिस मेजर (Canis Major) तारामंडल के लुब्धक (Sirius) और मृग तारामंडल के आर्द्रा (Betelgeuse) तारों के साथ प्रोसिश्रॉन एक विलक्षण त्रिकोण बनाता है, जो नाविको का पथप्रदर्शन करता है।

२० अधिकतम कातिमय तारो मे प्रोसिश्रॉन आठवाँ है। इसका दृष्ट कातिमान ० ५ है, जब कि अधिकतम कातिमय लुब्धक तारे का कातिमान – १ ५८ है। दृष्ट काति के वर्गीकरण मे तारो को ०, १, २, ३ आदि अक दिए जाते है। किसी विशिष्ट अंक का तारा अपने अनुवर्ती तारे की अपेक्षा २ ५१२ गुना कातिमय होता है। प्रोसिश्रॉन ११ प्रकाशवर्ष (६६ लाख करोड मील) की दूरी पर स्थित है। इस तारे के विषुवाश (right ascension) का निर्देशाक ७ घटे ३७ मिनट २२ सेकड और क्रांति (declination) + ५ अश १६ मिनट १६ सेकड है। तारो के बाह्य ताप और उनमे पाए जाने-वाले विभिन्न तत्वो के आधार पर स्पेक्ट्रमी वर्गीकरण मे प्रोसिश्रॉन की गणना एफ (F) वर्ग मे होती है। स्पेक्ट्रम मे धात्विक तत्वो की उपस्थिति के कारण एफ वर्ग के तारो का रग सामान्यत कुछ पीलापन लिए श्वेत होता है। ऐसे तारो के स्पेक्ट्रम सूर्य के स्पेक्ट्रम से समानता रखते हैं। कैल्सियम के कारण स्पेक्ट्रम रेखाओ की तीव्रता विशेष रूप मे प्रबल होती है। कैल्सियम रेखा की वर्धमान तीव्रता के आधार पर एफ वर्ग के तारो को एफ ० से एफ ६ वर्गों मे उपविभाजित किया गया है। इस उपविभाजन मे प्रोसिश्रॉन एफ ४ मे आता है, जिसका बाह्य ताप लगभग ७ ०००° सें० है। यद्यपि प्रोसिश्रॉन सूर्य से समानता रखता है, फिर भी सूर्य से यह बहुत अधिक दीप्त है।

प्रोसिश्रॉन विशेष रूप से इस कारण रोचक है कि लुब्धक (Sirius) की तरह इसका भी एक सहचारी अदृश्य तारा १३वें कातिमान का भी है। लुब्धक और प्रोसिश्रॉन की गति मे अनियमितता के आधार पर प्रसिद्ध खगोलज्ञ बेसेल (Bessel) ने यह निष्कर्ष निकाला कि इनमे से प्रत्येक का एक अदृश्य सहचर अवश्य होना चाहिए जो एक दूसरे की परिक्रमा करते रहते है। प्रोसिश्रॉन की अनियमितता को बेसेल ने १८४० ई० मे प्रेक्षित किया और १८९६ ई०

मे लिक वेधशाला (Lick Observatary) में शीबर्ल (Schaeberle) ने बृहत् अपवर्तक दूरदर्शी की सहायता से प्रोसिऑन के बड़ी निम्न ज्योतिवाले सहचर को खोज निकाला और देखा। ये अदृश्य तारे, जो श्वेतवामन (white dwarfs) वर्ग मे रख गए हैं, खगोल विज्ञान की प्रगति और विकास मे युगातरकारी सिद्ध हुए है। सामान्य तारो की तुलना मे ये बहुत छोटे और अत्यंत सघन है। ये इतने सघन है कि इनके मुट्ठी भर पदार्थ का भार कई टन होता है। [रा० ना० सु०]

प्रौढ़ शिक्षा प्रौढ शिक्षा या सयानों को शिक्षा देने का अर्थ है उन लोगों को शिक्षा देने की व्यवस्था करना जो साधारणतः विद्यालय जाकर पढने की अवस्था में सुविधा न मिलने के कारण या अन्य परिस्थितिवश बीच मे ही पढ़ाई छोड़कर घर का काम या कोई नौकरी या धंधा करने के लिये बाध्य हुए हों या सामाजिक बधनों के कारण निरक्षर रह गए हो (जैसे भारत के कुछ प्रदेशो की कन्याएँ) या पढ़ लिख जाने पर भी जो अपना ज्ञान बढाने के लिये या मनोविनोद के लिये या आवश्यकतावश कोई दूसरी विद्या या कला सीखना चाहते हो। इस दृष्टि से प्रौढ शिक्षा प्राप्त करनेवालो की तीन श्रेणिया हो जाती है :

१ — जिन्होंने किसी भी प्रकार की शिक्षा न तो विद्यालय ही मे पाई, न घर पर ही।

२ — जिन्होंने किसी श्रेणी तक पढकर छोड़ दिया है और पुन सुविधा पाने या आवश्यकता के कारण पुन. उसके आगे पढना उचित समझते हैं।

३ — जो भली भाँति पढ़ लिखकर किसी एक प्रकार के सीखे हुए ज्ञान से जीविका कमा रहे हैं किंतु मनोविनोद, आवश्यकता, प्रेरणा, अध्ययन की इच्छा, अपने व्यवसाय में अधिक कुशलता प्राप्त करने की भावना या दूसरी विद्या सीखकर उसके द्वारा धन कमाने की इच्छा से नई कला या विद्या सीखना चाहते हो जैसे कोई वैद्य मनोविनोद के लिये सगीत सीखना चाहे या कोई साहित्य का पडित अधिक ज्ञान बढाने के लिये नई भाषाएँ सीखना चाहे अथवा सगीत का कोई अध्यापक साहित्य का भी अध्ययन करना चाहे। तात्पर्य यह है कि प्रौढ शिक्षा का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इसके अंतर्गत सब प्रकार का ज्ञान आ जाता है।

प्रौढ़ों को क्या सिखाया जाय — समाजशास्त्रियो का मत है कि किसी भी सभ्य राष्ट्र के प्रत्येक प्रौढ व्यक्ति मे पाँच प्रकार की योग्यता होनी ही चाहिए — (१) भाषा की योग्यता — अपनी भाषा मे बोलने, लिखने, बाँचने और समझने की योग्यता; (२) नागरिकता की योग्यता — अपने गाँव या नगर के राजकर्मचारियो से सबध और व्यवहार जानने, अपने अधिकार और कर्तव्य जानने, परिवार के सदस्यो तथा पास-पडोसवालो के प्रति जाति, धर्म अवस्था आदि का विचार छोड़कर सद्भाव, सहनशीलता, सेवा तथा विनय का भाव बढाने, सड़क, रेल, तार तथा डाक के साधारण नियमो से परिचय प्राप्त करने और विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओ के लिये अपना उचित प्रतिनिधि चुनने की योग्यता; (३) स्वच्छता की योग्यता — अपने शरीर, घर और पास पड़ोस को स्वच्छ और स्वस्थ रखने, आकस्मिक चोट लगने या रोगाक्रांत होने पर तात्कालिक चिकित्सा की व्यवस्था जानने, छुतहे या महामारी रोगों के फैलने पर उनके निराकरण की रीति जानने तथा मादक द्रव्यो के सेवन से दूर रहने की योग्यता; (४) व्यावसायिक योग्यता — अपने गाँव, नगर मे या आसपास के खेत तथा भूमि से उत्पन्न या तैयार हो सकनेवाली वस्तुओं, उनके विक्रय स्थानों, उनके विक्रय से लाभ उठाने की सभावनाओ तथा रीतियों के ज्ञान के साथ अपने आयव्यय का लेखा रखने तथा आय से अधिक व्यय न करने की योग्यता; (५) देशभक्ति का भाव — अपने देश के मान अपमान को अपना मान अपमान समझना और कोई ऐसा काम न करना जिससे अपने देश का अपयश हो या देश की हानि हो।

सयानों की मनोवृत्ति — अशिक्षित प्रौढ को बालक या ज्ञानशून्य नही समझना चाहिए। वह अपने अनुभव तथा सामाजिक सपर्क से बहुत सा व्यावहारिक ज्ञान सचित कर चुका रहता है। उसकी बुद्धि परिपक्व, उसकी विचारधारा नियमित और उसके सस्कार दृढ हो चुके रहते हैं। अत उसकी बुद्धि, उसके विवेक, विचार और सस्कार को माँज देना भर ही प्रौढ शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। निरक्षर प्रौढ को अक्षरज्ञान करा देने पर ही उसकी मेधा और स्मृति स्वयं आवश्यक सामग्री जुटा ले सकती है। निरक्षर, साक्षर या पढे लिखे प्रौढ़ को नया ज्ञान ऐसे ढग से देना चाहिए कि उसे पहले दिन से ही आत्मविश्वास होने लगे कि मैं इस विद्या को शीघ्र सीख लूँगा। प्रौढ होने के कारण उसका सामाजिक स्तर इतना ऊँचा हो गया रहता है कि उसे कक्षा मे बैठाकर बच्चो के समान नही पढाया जा सकता। अत ऐसे उपाय से उसे शिक्षा देनी चाहिए कि वह आत्मसमान के साथ वेग से सीख सके।

प्रौढ़ शिक्षा का क्षेत्र — भारत जैसे देश मे साक्षरता से लेकर उच्च शिक्षा तक सब कुछ प्रौढ शिक्षा के अतर्गत आ जाता है किंतु अमरीका और यूरोप जैसे समृद्ध देशो में व्यावसायिक कुशलता और अपनी आर्थिक सुरक्षा के लिये दूसरी विद्या सीख लेना भी प्रौढ शिक्षा का अग है। इसलिये वहाँ किसानो, श्रमिकों तथा अन्य व्यावसायिक वर्गों के साथ साथ स्वयं पूँजीपतियों ने भी सामान्य जनता को और अपने यहाँ काम करनेवाले श्रमिकों को शिक्षित करने के लिये अनेक योजनाएँ बना रखी है। प्रौढ शिक्षा के अंतर्गत लोगो की व्यक्तिगत कमियाँ पूरी करने के लिये भी शिक्षा दी जा सकती है जैसे ठीक वाचन न कर सकनेवाले को वाचन की शिक्षा, शुद्ध न लिख सकनेवाले को लेखन की शिक्षा, कला और खेल न जाननेवालो को कला और खेल की शिक्षा अथवा सामान्य जन समाज को आध्यात्मिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा। अमरीका मे तो सफल मातापिता बनने की शिक्षा, गृहस्थी चलाने की शिक्षा, वैवाहिक जीवन सुखी रखने आदि की शिक्षा के लिये भी प्रौढ शिक्षाकेंद्र चलाए जा रहे है। नवीन समाजवादी प्रवृत्ति मे यह माना जाने लगा है कि समाज की कुशलता पर ही व्यक्ति की कुशलता निर्भर है, इसी कारण शत्रु के आक्रमण से बचने के लिये उत्पादन के माल की खपत के लिये जनता मे रुचि उत्पन्न करने की शिक्षा आदि सब प्रवृत्तियाँ प्रौढ शिक्षा के अतर्गत आ जाती है। यद्यपि प्रौढ शिक्षा मे लोगो के व्यवहार को बदल देना भी संभव है तथापि मानव मात्र के व्यवहार को प्रभावित करनेवाले समस्त साधन प्रौढ शिक्षा की सीमा मे नही आते।

प्रौढ़ों को कैसे सिखाया जाय — साधारणत कोई प्रौढ उसी समय शिक्षा ग्रहण करता है जब वह कोई मौलिक आवश्यकता समझकर स्वयं शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा करे या किसी प्रेरणा

से उसके मन मे यह इच्छा जगाई जाय। अत, व्याख्यान, प्रवचन, कथा, कीर्तन, लोकगोष्ठी, अच्छे नाटक, पुस्तक, पत्रपत्रिका, रेडियो कार्यक्रम तथा ऐसे चलचित्रो के द्वारा प्रौढ को शिक्षा देने का आयोजन करना चाहिए जो वैज्ञानिक और ऐतिहासिक प्रामाणिकता के अनुसार सटीक हों। इस प्रकार रंगमच और रेडियो से बोले हुए शब्दो से लेकर लिखे हुए शब्दों तक सभी सामग्री प्रौढ शिक्षा का माध्यम बनाई जा सकती है।

प्रौढ शिक्षा की संस्थाएँ — प्रौढ शिक्षा साधारणत. दो प्रकार से दी जाती है,—प्रचार सस्थाओं द्वारा और स्थिर संस्थाओं द्वारा। प्रचार सस्थाओ के अंतर्गत वे सभी व्यावसायिक, सामाजिक या राजकीय संघटन और समितियाँ हैं जो प्रौढों को शिक्षा देने के लिये ही व्यवस्थित कार्यक्रम बनाकर प्रचार करती है और प्रौढो को कुछ सीखने के लिये प्रेरित करती है। स्थिर सस्थाओ के अंतर्गत सभी विद्यालय तथा पुस्तकालय आदि हैं जहाँ व्यक्ति स्वयं जाकर शिक्षा प्राप्त करता है, सस्था की ओर से प्रौढो में प्रचार का कार्य नही होता। इस प्रकार औपचारिक, तथा अनौपचारिक धन कमानेवाली और पारमार्थिक, सार्वजनिक और व्यक्तिगत अनेक सस्थाएँ प्रौढ शिक्षा चला रही है। कुछ लेखको का मत है कि प्रौढ के लिये एक तो उपचारात्मक शिक्षा (रेमिडियल एजुकेशन) होती है जिसमे शिक्षा प्राप्त युवको की व्यक्तिगत या सामूहिक त्रुटियाँ और दोष सुधारे जाते है और दूसरी शुद्ध प्रौढ शिक्षा होती है जिसमे प्रौढो की आवश्यकताओ और रुचियों के अनुकूल शिक्षा दी जाती है। कुछ लेखक, व्यावसायिक शिक्षा को प्रौढ शिक्षा से भिन्न मानते है। इतने भेद होते हुए भी प्रौढ शिक्षा देनेवाली सस्थाओ के अतर्गत सार्वजनिक या व्यक्तिगत विद्यालय, विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, प्रचारमडल, विद्यालयातिरिक्त, आयोजन, गोष्ठियाँ, समितियाँ सग्रहालय, पुस्तकालय, धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाएँ और राजनीतिक दल आदि भी आ जाते है।

स० ग्रं० सीताराम चतुर्वेदी शिक्षा प्रणालियाँ और उनके प्रवर्तक, तथा शिक्षा के नए प्रयोग और विधान (नदकिशोर ऐंड ब्रदर्स, चौक, बनारस), 'अमरीकन एसोसिएशन फॉर ऐडल्ट ऐजुकेशन" द्वारा प्रकाशित ग्रथ, नैशनल ऐडल्ट ऐजुकेशन (यू० एस० ए०) के ऐडल्ट एजुकेशन डिपार्टमेंट द्वारा प्रकाशित ग्रथ, एन० आर० हैरी एसाइक्लोपीडिया ऑव माडर्न एजुकेशन, न्यूयार्क की फिलोसॉफिकल लाइब्रेरी इक० द्वारा प्रकाशित। [सी० च०]

प्लवक (Plankton) वे सभी प्राणी या वनस्पति, जो जल मे जलतरंगो या जलधारा द्वारा प्रवाहित होते रहते है, प्लवक कहलाते है। प्लवको मे गति के लिये चलन अग (locomotive organs) बहुत कम विकसित होते हैं, या उनका पूर्ण अभाव होता है। जल मे गोता लगाने, या ऊपर उठने, की क्षमता उनमे अवश्य विद्यमान होती है। प्लवक सूक्ष्मदर्शी से देखे जानेवाले से लेकर बडे बडे जलीफिश के आकार तक के होते है। प्लवक जलचर तरणक मछली या ह्वेल से भिन्न होते है, क्योंकि पिछले जीवो मे जलधारा के प्रतिकूल गति करने की क्षमता होती है। मछली इत्यादि के शिशु भी प्लवक ही है, क्योकि ऐसी अवस्था मे उनकी भी गति जलधारा पर ही निर्भर करती है। प्लवको की निम्न विशेषताएँ होती है

प्लवको का शरीर न्यूनाधिक पारदर्शी होता है। ये प्राय रंगविहीन, या पीत, बैंगनी, या गुलाबी रग के होते है, यद्यपि कुछ जेलीफिश बहुत भडकीले रग के भी होते है। नियमत रग पर्यावरण (environment) से मिलता जुलता होता है। उनमें अपारदर्शी अस्थिरचनाओ का पूर्णत अभाव होता है। केवल कुछ मे मृदु कैल्सियमी या काचनुमा कवच होता है। साधारण प्लवक त्रिज्यात (radially) सममित होते है।

समुद्री प्लवकों का क्षैतिज प्रसार — यह समुद्र की धाराओ के कारण होता है और समुद्र की धाराएं प्लवको को एक झुंड में रखती है। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, प्लवको मे गोता लगाने और ऊपर उठने की क्षमता होती है। प्लवक बुरे मौसम मे विपरीत परिस्थितियों से बचने और अँधेरे या शांति के लिये जल की गहराई मे गोता लगा लेते है। रात्रि मे, अथवा जब समुद्र शात होता है, सतह पर आ जाते है। इस प्रकार इनमें से अधिकाश दिन में ५० से लेकर १५० फैदम तक की गहराई मे चले जाते है और शात रात्रि मे सतह पर उठ आते हैं।

प्लवक के अतर्गत प्राणी और वनस्पति दोनो ही होते है। अतएव प्राणियो को प्राणिप्लवक (zooplankton) और वनस्पतियो को पादपप्लवक (phytoplankton) कहते है।

सागरो मे पाए जानेवाले प्लवक समुद्री प्लवक या हेलोप्लैंक्टन (Haloplankton) कहलाते है। इनकी सख्या बहुत बडी है और ये नाना प्रकार के होते है। अलवण जल मे पाए जानेवाले प्लवक अलवण जलप्लवक या सरोवरप्लवक (Limnoplankton) कहलाते है। ये प्राय सभी झीलो और नदियों में पाए जाते है।

प्लवक जीवो के अतर्गत प्रोटोज़ोआ श्रेणी के असख्य फोरैमिनिफेरा और रेडियोलेरियन तथा हाइड्रोज़ोआ श्रेणी के जलीफिश और मेड्यूसी के झुंड तथा वनस्पति मे डाइएटम इत्यादि शात समुद्रों में मिलते है। अनेक मोलस्क (mollusc), जैसे टेरोपॉड (Pteropods) या हेटरोपॉड (Heteropods), भी सम्मिलित है, जो ह्वेलास्थि ह्वेल (whalebone whales) के मुख्य आहार होते है। इनके छोटे आकार के कारण ह्वेल इनका बहुलाधिक सख्या मे भक्षण करते है।

सिंधुपंक (oozes) का अधिकाश फोरैमिनिफेरा, रेडियोलेरिया तथा टेरोपॉड के रिक्त कवचो एवम् डाइऐटम जैसे प्लवको का बना होता है। यह सिंधुपंक हजारो वर्ग मीलो में समुद्रतल को आच्छादित किए हुए है। प्लवक पेट्रोलियम के जनक होते है। (देखिए **फोरैमिनिफेरा**)।

इस प्लवक जीव के मृत और मरते हुए अवशेष निरतर समुद्रतल की ओर अग्रसर होते रहते हैं। इनमे से बहुत से रास्ते मे ही समुद्र के गहरे तल में निवास करनेवाले दूसरे प्लवको के आहार बन जाते है। अतएव प्राणिप्लवक केवल समुद्र की ऊपरी सतह में ही सीमित नही होते, बल्कि गहरे तल मे भी पाए जाते है, किंतु पादपप्लवक सूर्य की रोशनी पर निर्भर रहते है, अत वे केवल सूर्य की रोशनी प्राप्त होनेवाली गहराई तक ही पाए जाते है और शेष समुद्र

तल पर वर्षा की बूदों की भाँति निरंतर समुद्री तल पर गिरते रहते हैं। ऊपर से मृत प्लवकों की निरंतर झड़ी को खाने के लिये समुद्र-तल के नाना भाँति के प्राणी भोजन को एकत्र करनेवाले उपकरणों से सज्जित होते हैं। ऐसे कुछ प्राणियों का शरीर पृथ्वी में गड़ा होता है, इनकी बाहें वृक्ष की शाखा या छाते जैसी फैली होती है और ये देखने में वनस्पति प्रतीत होते हैं। अनेक कवच प्राणियों (shell fishes) में छलनी जैसी रचनाएँ होती हैं। समुद्र के सभी प्राणी इन्ही सूक्ष्म प्लवक वनस्पतियों पर निर्वाह करते हैं।

प्लवक जीव स्पष्ट 'मंडल', या समुदायों, मे पाए जाते हैं, यद्यपि स्थैतिक (static) नहीं होते। मंडल की प्रकृति और रचना निरंतर बदलती रहती है। यह इसलिये नहीं कि इनमे तीव्र गति से वृद्धि अथवा कमी होती है, बल्कि ऋतुपरिवर्तन के अनुसार इनके वातावरण मे परिवर्तन होता रहता है और जीवों के बीच परस्पर जटिल परिक्रियाओं के कारण, शिकार और शिकारी का अनुपात विभिन्न भोजन शृंखला में सर्वदा एक समान नहीं रहता। किसी किसी ऋतु में प्लवक प्राय बहुत गहरे चले जाते हैं और ऊपरी सतह से अदृश्य हो जाते है। इनका स्थान दूसरे ले लेते हैं। एक निश्चित अवधि के बाद अनुकूल वातावरण होने पर वे पुनः प्रकट होते हैं।

जे. मूलर (Johannes Muller) ने जब समुद्र की सतह से प्लवकों को प्रथम बार इकट्ठा किया था, तब से लेकर आज तक मूलर की सरल विधि मे कुछ परिवर्तन हो गया है। आजकल प्लवकों को इकट्ठा करने के लिये दो अन्य यंत्रों, 'प्लवक सूचक' (Plankton Indicator), और सतत प्लवक रेकार्डर (Continuous Plankton Recorder) का प्रयोग किया जाता है।

यद्यपि कुछ वर्षों से प्लवकों का आर्थिक दृष्टि से महत्व अनुभव किया गया है, किंतु इनके व्यावहारिक अनुप्रयोग का विकास १९३० ई० से प्रारंभ हुआ है। मछलियो और प्लवको का परस्पर संबंध अटूट है, अतएव प्लवको की सख्या में वृद्धि या न्यूनता पर मछलियों की जनसंख्या भी निर्भर करती है।

प्राणिप्लवक तथा पादपप्लवक दोनों प्रकार के प्लवकों का और भी विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

वास्तविक प्लवक (Real Plankton) — वे सभी प्लवक, जो जल की सतह पर जीवन के प्रारंभ से मृत्यु पर्यंत प्लवक जीवन व्यतीत करते है, वास्तविक प्लवक कहलाते है। इनका वर्णन ऊपर हुआ है।

डिंभ प्लवक (Meroplankton) — इस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग हेकेल (Haeckel) ने नितलीय जीवो (benthonic animals) के लिये किया था, जिनके बच्चों में स्वतंत्र रूप से तैरने की गति तो होती है, किंतु लार्वा अवस्था (larval stage) मे प्लवक होते हैं। डिंभ प्लवक नियमतः बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। इनकी गति की शक्ति बहुत ही कम होती है और ये प्राय सूक्ष्म सूत्रों (cilia) द्वारा गति करते हैं। ऐसे प्लवकों की संख्या इतनी विशाल है कि समुद्र की ऊपरी सतह इनसे ठसाठस भरी होती है और ये आक्रमणकारी प्राणियों के आहार होते है। ये समुद्र में बहुत बड़ी संख्या में अल्प समय तक तैरते रहते हैं, तत्पश्चात् शीघ्र या देर में समुद्रतल में चले जाते हैं। संयोग से वे यदि अनुकूल अधस्तर (substratum) पर गिर जाते हैं, तो नितलीय वयस्क (benthonic adult) में विकसित हो जाते है, किंतु दुर्भाग्य से यदि प्रतिकूल तल पर, अथवा जिस स्थान पर भोजन की कमी होती है, वहाँ पहुँच गए तो वे नष्ट हो जाते हैं।

कूट प्लवक (Pseudoplankton) — यह पारिभाषिक शब्द उन जीवो, जैसे सारगैसम (Sargasum) या गल्फ सी वीड (Gulf Sea Weed), के लिये व्यवहृत होता है जो साधारणतः या जीवन के प्रारंभिक काल मे स्थावर और नितलीय जीव (benthonic organisms) होते है, किंतु बाद मे प्लवक हो जाते है। इस शब्द के अंतर्गत ऐसे वनस्पति या प्राणिशैवाल (algae), हाइड्रॉएड्स (hydroids), या ब्रायोजोआँन (bryozoans) आते हैं. जो स्वयं दूसरे तैरनेवाले सारगैसम, क्रस्टेशिया (crustacea), मोलस्को या अन्य प्राणियों से चिपके होते हैं और स्थावर (sedentary) या विचरनेवाले नितल जीवसमूह (benthos) होते हैं।

सं० ग्रं० — आर. एस. लल : ऑर्गैनिक इवोल्यूशन; सर ऐलिस्टर हार्डी : दि ओपेन सी। [भृ० ना० प्र०]

प्लांक (जन्म : कील, २३ अप्रैल, १८५८; मृत्यु : गाटिंगेन, ४ अक्टूबर, १९४७) मैक्स कार्ल एर्न्स्ट लुडविक प्लाक (Plank) के पिता जुलियस विलहेल्म प्लाक सविधानीय कानून के प्रोफेसर थे। मैक्स प्लाक ने गणित तथा भौतिकी की शिक्षा, पहले म्यूनिख मे और बाद मे बर्लिन मे, किरखॉफ तथा हेल्महोल्ट्स से, प्राप्त की। कदाचित् किरखॉफ के प्रभाव के कारण ही प्लाक ने उष्मागतिकी का विशेष अध्ययन किया और इस विषय मे ही उन्हे पी-एच. डी की डिग्री सन् १८७९ मे मिली। सन् १८८० मे वे म्यूनिख में लेक्चरर नियुक्त हुए। सन् १८८५ मे वे कील मे तथा सन् १८८९ में, किरखॉफ के देहावसान के बाद उन्ही की जगह, बर्लिन मे प्रोफेसर नियुक्त हुए। सन् १९३० मे वे विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित कैसर विलहेल्म संस्था के प्रधान चुने गए। सन् १९१८ मे इन्हे नोबेल पुरस्कार दिया गया एवं सन् १९२६ मे ये लंदन की रॉयल सोसायटी के विदेशी सदस्य चुने गए।

इनका मुख्य कार्य, जिसके कारण वैज्ञानिक संसार मे इन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की, क्वाटम (quantum) का सिद्धात है, जिसे इन्होने सन् १९०० मे प्रतिपादित किया। इसके अनुसार ऊर्जा छोटे छोटे कणो के रूप मे प्रवाहित होती है। इस सिद्धांत के विकास से भौतिकी का स्वरूप ही बदल गया है। प्लाक को पहाड़ों पर चढ़ने तथा पियानो बजाने का शौक था। अक्सर आइन्स्टाइन के वायलिन के साथ वे पियानो बजाते थे।

सं० ग्रं० — प्लांक : साइंटिफिक ऑटोबॉयग्राफी, नेचर, १६१, १३, १९४८। [रा० नि० रा०]

प्लांचेट पान के पत्ते की आकृति का किंतु उससे बड़े आकार का पतली और हलकी तथा चिकनी लकड़ी का बना हुआ एक ऐसा यंत्र जिसमे नोक की ओर पेंसिल फँसाने के लिये एक गोल छेद और पीछे की ओर नीचे दो पहिए लगे होते है। पहियो के द्वारा यह यंत्र ऊपर से थोड़ा सा दबाव और सहारा पाकर चलने लगता है और चलने से पेंसिल द्वारा उस कागज पर जिसके ऊपर वह यंत्र चलता है

निशान बनते रहते हैं। सन् १८५३ में इसका आविष्कार एक फ्रांसीसी आत्मवादी ने किया था। जब कोई माध्यम (मीडियम) अपनी चेतना को शरीर से हटाकर किसी मृत प्राणी द्वारा अपने शरीर को क्रियावान् होने दे और प्लाचेट पर अपना हाथ अथवा उंगलियाँ रख दे तो मृत आत्मा उस हाथ के द्वारा प्लांचेट को चलाने लगती है और उसमे लगी हुई पेंसिल द्वारा जो लिखना चाहती है लिख देती है। माध्यम का शरीर और विशेषतः हाथ अपनी आत्मा के नियंत्रण मे न रहकर मृत आत्मा के नियंत्रण में कुछ काल के लिए आ जाता है और उसके द्वारा मृत आत्मा जो कुछ जीवित प्राणियों को कहना चाहती है कह देती है।

प्लाचेट हाथ रखने पर कुछ देर पीछे चलने लगता है। उसके द्वारा स्पष्ट अक्षरो मे कुछ न कुछ लिखा भी जाता है। प्रश्नों के उत्तर भी लिखे जाते हैं। पर लिखनेवाला वह माध्यम है जिसका हाथ उसपर रखा होता है अथवा उसके द्वारा कोई दूसरी आत्मा
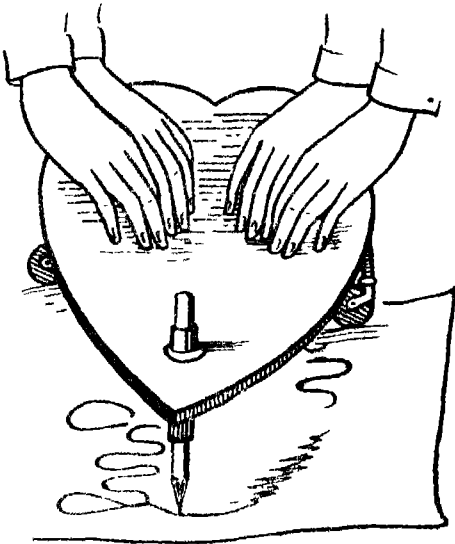
लिखती है—इसका निर्णय करना असंभव नही तो कठिन जरूर है। जान बूझकर तो माध्यम लोग सदा धोखा नहीं देते। अज्ञात रीति से भले ही वे या उनका हाथ प्लाचेट को चलाता हो। पर इसका कोई प्रमाण नही हो सकता कि किसी दूसरी आत्मा द्वारा कुछ लिखा जा रहा है अथवा माध्यम के अचेतन मन अथवा मन के किसी उच्चस्तर द्वारा कुछ लिखा जा रहा है। कभी कभी ऐसी बातें भी लिखी जाती हैं जिनका ज्ञान माध्यम को अपने जीवन मे कभी भी नही हुआ। इस प्रकार का ज्ञान या तो मृत आत्मा के द्वारा व्यक्त होता है या यह भी संभव है कि माध्यम के अज्ञात मन ने ही अपनी अलौकिक और निहित शक्तियों द्वारा ज्ञान को प्राप्त करके किसी मृत आत्मा के बहाने से उसे लेख द्वारा व्यक्त कर दिया हो। अब यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य के अज्ञात मन मे अनेक अलौकिक शक्तियां निहित है जो किसी किसी मानसिक अवस्था में प्रकट हो जाती है। अतएव कुछ लोग यह मानते हैं कि प्लांचेट द्वारा वही ज्ञान हमको प्राप्त होता है जो माध्यम के आंतरिक मन को प्राप्त हो गया है।

प्लाचेट पर कभी कभी इतिहास के महान् मृत व्यक्तियों द्वारा भी बहुत सी बातों का लिखा जाना अनुभव में आया है। आश्चर्य होता है कि वे महान् आत्माएँ क्या प्रत्येक जीवित व्यक्ति के इतने समीप हैं और क्या उनको इतना समय मिलता है कि वे जहाँ तहाँ कभी कभी बिना बुलाए भी पहुंच जाती हैं।

प्लांचेट पर भूत, वर्तमान और भविष्य की बातें लिखी जाती हैं। कभी कभी भविष्यवाणियाँ ठीक भी निकल जाती है। कभी कभी जो बात किसी पास बैठनेवालो और माध्यम को भी मालूम नही वे भी प्लाचेट पर लिखी जाती है। वास्तव मे प्लाचेट एक अद्भुत यंत्र है।

[भी० ला० आ०]

प्लाइवुड परतदार लकड़ी या प्लाइवुड (plywood) उन पतले तख्तों या चादरों को कहते हैं जो लकड़ी की बहुत पतली तीन या अधिक परतों को सरेस आदि से चिपकाकर बनाई जाती हैं। इन परतों मे से एक या अधिक के रेशाकरणों (grain) की दिशा अन्य परतों के रेशों में साधारणत. समकोण बनाती हुई रखी जाती है, जिसका उद्देश्य यह होता है कि लकड़ी की चादर को किसी दिशा में फटने का डर न रहे। बाहरी परतों को मुखपृष्ठ (फेस) कहते है और भीतरी परत को क्रोड (core) कहते है। यदि मुखपृष्ठों के बीच एक से अधिक परतें रहती हैं तो उनको आड़ी परते (cross bands) कहते हैं।

ठोस लकड़ी का गुण प्रत्येक दिशा मे एक समान नही होता। रेशे के अनुदैर्घ्य और अनुप्रस्थ दिशाओं मे लकड़ी के गुणो मे बड़ी भिन्नता होती है। इसलिये लकड़ी के सब कामों में रेशे के ऊपर ध्यान रखना आवश्यक होता है, अन्यथा टिकाऊ और सुदृढ़ काम नहीं बन पाता। रेशे पर से लकड़ी के फटने की प्रवृत्ति से बचने के लिये, जहाँ कही भी संभव या सुविधाजनक होता है, प्लाइवुड का उपयोग किया जाता है।

ऐसा प्लाइवुड बन सकता है जिसमें प्रत्येक दिशा में गुण और दृढ़ता एक समान रहे। यह दृढ़ता अवश्य ही लकड़ी की विशेष दिशा में महत्तम दृढता से कम होती है। प्लाइवुड की काफी लंबी चौड़ी चादरें बन सकती हैं।

साधारणतया दो तरह के प्लाइवुड का अधिक उपयोग होता है, एक तो सब पतली परतों से बना, दूसरा वह जिसमें बीच मे साधारण लकड़ी की मोटी परत होती है।

साधारण संरचनात्मक कामो के लिये, जिनमे प्रत्येक दिशा में महत्तम दृढ़ता और नाप की स्थिरता की आवश्यकता होती है, केवल पतली परतों से बना प्लाइवुड अधिक वाछनीय होता है। उदाहरणतः, ऐसा प्लाइवुड घरों में लगाने, दिलहा (panel) भरने, कुर्सियो के आसन बनाने और माल भेजने की पेटियाँ बनाने के लिये उपयोगी होता है। तीन परतवाले प्लाइवुड मे क्रोड (बिचली परत) को मुखपृष्ठो से कुछ मोटा रखा जाता है, जिसमे सतुलित प्लाइवुड बने और दोनो दिशाओं में दृढता समान हो।

साधारण लकड़ी के मोटे क्रोडवाले प्लाइवुड मे बीच की परत सस्ती लकडी की होती है और मोटी रहती है। इसपर पहले आड़े रेशो की और उसके ऊपर मुखपृष्ठ परते चिपकाई जाती हैं। क्रोड की लकड़ी स्वभावत: बहुत चौड़ी नही मिल पाती। इसलिये क्रोड वस्तुत: लकड़ी की सँकरी धज्जियों से बनाया जाता है। इस सरचना से चारों दिशाओ में वैसी समान दृढता नही आ पाती जैसी केवल पतली परतों से बने प्लाइवुड मे, परंतु फर्निचर बनाने के लिये मोटे क्रोडवाला प्लाइवुड उपयोगी होता है, क्योंकि इसमें गुज्के (dowels) ठीक जा सकते है और बढ़ईगीरी की अन्य क्रियाएँ भी सुगमता से हो सकती हैं।

विशेष कामो के लिये विशेष संरचना का प्लाइवुड भी बना लिया जा सकता है।

प्लाइवुड साधारण लकडी की अपेक्षा अधिक चोट सह सकता है, सुगमता से फटता नही और आवश्यकतानुसार टेढी मेढी आकृतियो का बनाया जा सकता है। इसमे काँटी ठोकी जा सकती है और पेच जड़ा जा सकता है। रेगमाल (sandpaper) से रगडकर यह चिकना किया जा सकता है और लकडी की तरह इसपर पॉलिश भी की जा सकती है।

प्लाइवुड बनाने के लिये लकड़ी की उचित ढग की परतें बनाना आवश्यक है। इसके लिये पहले लकड़ी को पानी मे उचित ताप और उचित समय तक गरम किया जाता है, या उसे भाप से गरम किया जाता है। इससे लकडी नरम हो जाती है और स्वच्छता से कटती है। परत बनाने की तीन प्रमुख रीतिया है . घूमती हुई लकडी से परत तराशना, सपाट लकड़ी से परत तराशना और आरी से चीरना। इनमे से घूमती और सपाट लकड़ियों से परत तराशने की रीतिया ही अधिक महत्वपूर्ण हैं। घूमती लकडी से परत तराशने के लिय लकडी के कुदे को मशीन मे घुमाया जाता है। मशीन मे लबी छुरी रहती है। न्यूनाधिक मात्रा मे लकडी पर दबाव डालने के लिये चापदड (pressure bar) भी रहता है। जैसे जैसे लकडी छिलती जाती है तैसे तैसे छुरी आगे बढती जाती है। छुरी आगे बढने की दर इच्छानुसार घटा बढाकर मोटी या पतली परत निकाली जा सकती है। इस प्रकार लकड़ी के लट्ठे से अटूटी बहुत लबी परत निकलती है। कतरनी से फिर इस परत को इच्छानुसार छोटे टुकडो मे विभक्त कर दिया जाता है।

सपाट तराशन मे लकडी का चौरस कुदा मशीन के नीचे पर कस दिया जाता है और छुरी एक ओर से दूसरी ओर चलकर परत छील देती है। कुछ मशीनो मे छुरी चलती है, कुछ मे कुदे चलाया जाता। प्रत्येक काट मे छुरी कितना नीचे उतरती है, इसके समजन से परतो की मोटाई न्यूनाधिक की जा सकती है। आरे से चिरी हुई परतो का उपयोग बहुत कम होता है।

काटने के बाद परतों को सुखा लिया जाता है और तब उन्हें एक दूसरे मे चिपकाया जाता है।

सुखाने के लिये आधुनिक कारखानो मे यात्रिक शुष्कको (driers) का उपयोग किया जाता है। इनमे या तो परतो को गरम तवो पर से घसीटा जाता है, या उनके चारो ओर तप्त वायु परिसचालित की जाती है।

सरेस से जोडन (glucing) का काम बहुत महत्वपूर्ण है। प्लाइवुड का बढ़िया या घटिया होना बहुत कुछ इसी क्रिया पर निर्भर है। बहुत काल तक दूध से निकले केसीन (casein) का सरेस ही प्रयुक्त होता था, परतु कृत्रिम सरेसो के विकास से, उदाहरणत यूरिया (urea), फिनोल (phenol), मेलामीन (melamine) तथा फॉरमेल्डिहाइड (formaldehyde) के आगमन से, केसीन का प्रयोग कम होता जा रहा है, विशेषकर इसलिये कि केसीन जल और सूक्ष्म जीवाणुओ के आक्रमण को अच्छी तरह सहन नही कर सकता।

कृत्रिम सरेसो के प्रयोग मे साधारणत: अधिक ताप और एक समान दाब की आवश्यकता पडती है। इसलिये प्लाइवुड के आधुनिक कारखानो मे जलसंचालित तप्त पट्ट (प्लैटेन) वाले दाबको (प्रेसो) का उपयोग किया जाता है। साधारण कामो के लिये जहाँ प्लाइवुड आर्द्रता के संपर्क मे बहुत नही आता, यूरिया रेजिन पर्याप्त अच्छा है, परंतु जहाँ अधिक आर्द्रता सहनी पडती है वहाँ फिनोल, रिसॉर्सिनाल और मेलामीन सरेसो का उपयोग किया जाता है। प्लाइवुड कई मेल के बनाए जाते है, जैसे चाय की पेटियो के लिये, व्यवसाय, समुद्री काम और हवाई जहाजो के लिये। इन सब मे परतो की उत्तमता और सरेस की जाति के कारण बड़ी भिन्नता रहती है।

मकान, फर्निचर, गाडी, रेलवे, हवाई जहाज और माल भेजने की पेटियो के बनाने मे प्लाइवुड की बड़ी खपत होती है। अन्य क्षेत्रों मे भी इसकी खपत बढ रही है।

ऐसे भी प्लाइवुड बनते है जिनमे मुखपृष्ठ बहुत अच्छी लकड़ी का रहता है। इनमे रेशे इस प्रकार के रहते है कि देखने मे सुंदर लगता है। ऐसे प्लाइवुड से बनी चीजे बडी सुदर होती है। इस प्रकार के प्लाइवुड की माँग दिनोंदिन बढती जा रही है।

सं० ग्र०—एस० पी० वेनराइट (Wainwright) माडर्न प्लाइ-वुड (१६२७), पेरी (Perry) माडर्न प्लाइवुड (१६४८), कैलीफर्निया वुड्स (१६५१), कॉलमेन (Kollmann) टक्नोलोजी डेस होल्ट्ज़ुस उन्ड डेर होल्ज़वर्कस्टोफ (१६५५)। [धू० ना० प्र०]

प्लाटा, रिओ डे ला (देखे, रिओ डे ला प्लाटा)।

प्लॉवडिफ (Plovdiv) स्थिति ४२° ८' उ० अ० तथा २४° ४४' पू० दे०। यह बल्गेरिया का दूसरे नबर का शहर है। गल्ला, वस्त्र और रासायनिक पदार्थों के उत्पादन का बहुत बड़ा केंद्र है। फिलिप्स नामक व्यक्ति द्वारा ३४१ ई० पू० मे बसाए जाने के कारण प्राचीन समय मे इसका नाम फिलिपापोलिस (Philippopolis) था। यहा बहुत से प्राचीन गिरजाघर तथा मस्जिदें वर्तमान है। एक विश्वविद्यालय भी है। इसकी जनसख्या १,६२,३१६ (१६५६) है। [रा० ब० सि०]

प्लास्टिक (Plastic) के अतर्गत हम उन सभी कृत्रिम रेजिनों तथा कृत्रिम बहुलको (synthetic polymers) को लेते है जो गरम करने पर सुनम्य हो जाते है और ठढा होने पर बड़े ठोस का रूप ले लेते है, अथवा विशेष दशा मे सुनम्य होते है तथा साचे मे ढाले जा सकते है। इनकी उत्पत्ति सरल कार्बनिक रसायनको के बहुलकीकरण तथा संघनन की क्रिया से होती है। कार्बनिक पदार्थों मे ये बृहद बहुलकीकृत अपनी विशेष तनन क्षमता, नम्यता और कठोरपन के लिये अनोखे है और इनकी तुलना प्राकृतिक बहुलको, जैसे रेशम, रुई, रबर, चपड़ा आदि से की जा सकती है। कृत्रिम उपायो से इन प्राकृतिक बहुलको के सदृश पदार्थों का निर्माण संभव हो पाया है। अकार्बनिक क्षेत्र मे हम कुछ ऐसे पदार्थों का उल्लेख कर सकते है जो प्लास्टिको की भाँति व्यवहार करते है। काच गरम करने पर सुनम्य हो जाता है और साँचे मे ढालकर तथा ठढा कर उसे कोई भी स्थायी रूप दिया जा सकता है।

ये प्लास्टिक भौतिक गुणों में अत्यधिक भिन्नता रखते है, चमकीले काले रग से लेकर काच की भांति पारदर्शक तथा श्यान, कठोर या भगुर तक होते है, पर सभी संचककरण किए जाने की क्षमता रखते है। अपने अतुलनीय गुणो के कारण अधिकतर प्लास्टिको का प्रयोग रोधन (insulation) के लिये किया जाता है। पारदर्शक तथा रगहीन प्लास्टिको से लेंस (lens) और वायुयानो की खिड़कियो के पर्दो का निर्माण होता है। ठोस प्लास्टिको का सिर्फ संचककरण ही नही किया जाता, बल्कि वे काटे और मोडे जा सकते है और उनपर पालिश भी की जा सकती है।

संक्षिप्त इतिहास — फ्रास, इंग्लैंड और जर्मनी मे १६वीं शताब्दी के मध्य मे सेल्यूलोज नाइट्रेट बनाया गया। प्रायोगिक महत्व के प्लास्टिक का निर्माण एक अमरीकी नवयुवक, जॉन वेसली हाइयैट (John Wesley Hyatt) द्वारा हुआ (१८६८)। इसका नाम सेलुलॉइड (celluloid) पड़ा। यही पदार्थ प्लास्टिक उद्योग का आधार बना। विशेष और महत्वपूर्ण उपयोगो मे इसकी चादरों का बनाना था। इनका प्रयोग मोटर गाडियो की खिड़कियों मे किया गया। नम्यता तथा प्रतिरोधकता इसके विशेष गुण है, पर प्रकाश से इसका रग नष्ट होने लगता है। बड़ी मात्रा मे इसका प्रयोग फोटोग्राफिक फिल्म, पिनक, बटन, कघे, ब्रुश, मुठियो, महिलाओं की जूतियो की एड़ियो तथा बहुत से शृगार सामानो के लिये किया गया। इसका महान अवगुण इसकी ज्वलनशीलता है।

सेलुलोस एसीटेट की श्रेणी के पहले प्लास्टिक का पेटेंट १९०३ ई० मे आइकेनग्रून और बेकर (A. Eichengrun and T. Becker) द्वारा हुआ। १९२६ ई० मे यह तापसुनम्य (thermoplastic) प्लास्टिको का आधार बना। तब से इसका विस्तृत उपयोग मोटर-गाड़ी उद्योगो, मुठियो, खिलौनो, सूक्ष्मयत्रो आदि के निर्माण के लिये किया गया। आघात सहिष्णुता, चीमड़पन, हल्केपन तथा पारदर्शकता के कारण वायुयान उद्योगो मे इसका उपयोग अनिवार्य हो गया।

लाख और चपड़ा भारत और दक्षिणी एशिया में सीमित मात्रा मे प्राप्त होता है और यह सदियो से मुहर करने, तथा वार्निश और प्रलाक्षारस (lacquers) इत्यादि बनाने के प्रयोग मे लाया जाता है। इसके प्रतिस्थापी की खोज मे डा० बेकलैंड (Dr. Leo H. Bakeland) ने फिनोल फार्मैल्डिहाइड (phenol formaldehyde) रेजिन का आविष्कार किया (१९०७ ई०)। इन्होंने इस रेजिन को बेकलाइट (Bakelite) नाम दिया। इस महान सफलता के साथ ही आधुनिक प्लास्टिको का अध्याय आरभ होता है। १९२३ ई० मे फ्रिट्ज पोलक और कुर्ट रिपर (Fritz Pollock and Kurt Ripper) ने प्रथम यूरिया–फार्मैल्डिहाइड (urea formaldehyde) प्लास्टिक का आविष्कार किया। बहुत से अन्वेषण तथा प्रयोग इन भिन्न भिन्न प्लास्टिको के बनाने तथा इनके विविध उपयोगों पर किए गए और अब इनकी उपयोगिता का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि यदि आज का युग 'प्लास्टिक युग' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

प्लास्टिक का निर्माण — प्लास्टिको का वर्गीकरण मुख्यत दो भागो मे किया जाता है। प्रथम श्रेणी के वे तापदृढ (thermosetting) प्लास्टिक है, जो ताप और दाब से सांचे में ढाले जाते हैं। ये तब तक उष्ण रखे जाते है जब तक कड़े ठोस मे परिवर्तित नहीं हो जाते और तब ठंडे किए जाते हैं। यह क्रिया अनुत्क्रमणीय (irreversible) होती है। दूसरी श्रेणी के तापसुनम्य (thermoplastic) प्लास्टिक है। ये भी ऊष्मा और दाब के ही प्रभाव से सांचे मे ढाले जाते है। ठढा करने पर इनमे दृढता आ जाती है। इसे शीतदृढीकरण (cold set) कहा जा सकता है। इनकी दृढता साधारण ताप पर स्थिर तथा स्थायी होती है। यदि इन्हे फिर गरम किया जाय, तो ये फिर सुनम्य हो जाते है और फिर से सांचे में ढाले जा सकते है, अर्थात् तापदृढीकृत प्लास्टिक के विपरीत इनकी क्रिया उत्क्रमणीय है।

रेजिन या प्लास्टिक शुद्ध रूप मे (१०० प्रति शत) साचे मे ढाले जा सकते है, पर प्रयोग मे बहुत से प्लास्टिको का किसी पूरक (fillers) के साथ संचककरण करते है। तापदृढीकृत प्लास्टिको मे विशेष रूप से पूरकों, जैसे लकडी के महीन बुरादे, सेलुलोस, ऐस्बेस्टस, कार्बन, अभ्रक इत्यादि, का प्रयोग होता है।

तापदृढ प्लास्टिक (Thermosetting Plastics) — इस वर्ग के रेजिनो का बहुलकीकरण तथा संघनन गरम सांचों के भीतर ही होता है और ताप की क्रिया से ही ये अविलेय तथा अगलनीय पदार्थ मे परिवर्तित हो जाते है। इस सचकक्रत ठोस को पुन. ऊष्मा और दाब के प्रभाव से सचकक्रत नही किया जा सकता। इस वर्ग मे बैकेलाइट, यूरिया प्लास्टिक तथा ग्लिप्टल या ऐल्किड रेजिन (alkyd resin) आते है।

ये तापदृढ प्लास्टिक पुन. साचे मे ढाले नही जा सकते। इनका विशेष गुण विलायकों तथा ऊँचे ताप के प्रति अधिक प्रतिरोधकता है। इनका निर्माण दो चरणों मे सपन्न होता है, जिसमें दूसरा अर्थात् साचे मे ढालने का चरण तो कुछ पलो का ही होता है।

फिनोल-ऐल्डिहाइड या बैकेलाइट वर्ग के प्लास्टिक — आधुनिक प्लास्टिको मे इनका निर्माण सर्वप्रथम हुआ। इनकी प्राप्ति फिनोल और ऐल्डिहाइड के सघनन से होती है। प्राय फिनोल और फॉर्मैल्डिहाइड का प्रयोग होता है। द्रव फिनोल को ३० प्रति शत फार्मैल्डिहाइड जल विलयन के साथ बराबर मात्रा मे (भार से) किसी केतली मे रख देते है जिसमे गरम करने तथा प्रक्षोभ की सुविधा रहती है। अभिक्रिया प्रारभ होने तक केतली को गरम किया जाता है। प्राय एक घटे के बाद जब अभिक्रिया पूरी हो जाती है तब उसमें से ऊपरी तह के जल को निकालकर नीचे के पदार्थ को ठोस के रूप मे जमा लेते हैं। ऐबर रग का भगुर ठोस प्राप्त होता है, जो कार्बनिक विलायकों मे विलेय है। इसे 'नोवोलाक' (Novolac) कहते हैं। रासायनिक क्रिया इस प्रकार है

$$\text{(बेंज़ीन वलय)–औहा} + \text{हाकाहाऔ} \rightarrow \text{(बेंज़ीन वलय)–औहा, काहा}_2\text{औहा}$$

$$C_6H_5OH + HCHO \rightarrow C_6H_4(OH)CH_2OH$$

फिनोल — फार्मैल्डिहाइड — हाइड्रॉक्सी बेंजिल ऐलकोहल
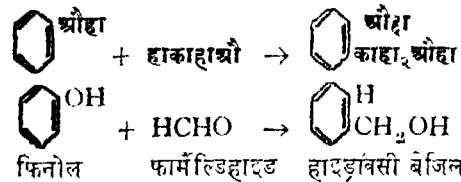
यह क्रिया प्रथम चरण मे सपन्न होती है तथा ये 'नोवलाक' विलेय और गलनीय होते है।

दूसरे चरण में इस 'नोवोलाक' चूर्ण को कुछ पूरक, जैसे लकड़ी का महीन बुरादा, तथा रजक से मिश्रित करके दाब के साथ साचे मे गरम

करते हैं जब हाइड्रॉक्सी बेंजिल ऐल्कोहल (hydroxy benzyl alcohol) का संघनन तथा बहुलकीकरण, ऋजुश्रृंखला के साथ साथ पार्श्वश्रृंखला में भी, होता है और कड़े पदार्थ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के एक संचककरण पदार्थ का संघटन निम्नलिखित है :

रेज़िन या नोवोलाक	४८%	(भार से)
पूरक	४८%	
स्नेहक (lubricant)	१.५%	
त्वरक	१.०%	
रंजक	१.५%	

पूरकों में विशेष रूप से लकड़ी के महीन बुरादे तथा कार्बन का, और भूरे रंग के लिये लोह ऑक्साइड का, प्रयोग होता है। फिनोल-फॉर्मेल्डिहाइड प्लास्टिकों के संचककृत पदार्थों का उपयोग इतना विस्तृत है कि यहाँ पर पूर्ण उल्लेख करना संभव नहीं है। विशेष उल्लेखनीय इसके बने गियर चक्र हैं, जिनका प्रयोग सीमेंट, कागज तथा लोहे के कारखानों में होता है। यहाँ पर यह पानी के स्नेहन से काम करता है। यह सस्ता होता है तथा इसमें कोई ध्वनि नहीं होती। विद्युत् उद्योग में इसका बड़ा उपयोग है।
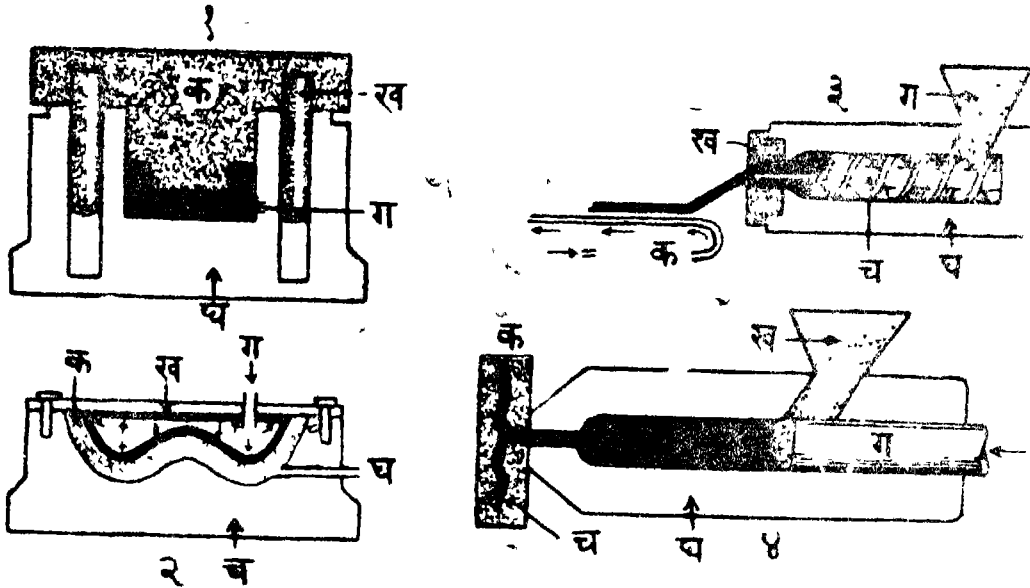
प्लास्टिकों की ढलाई की चार मुख्य विधियाँ

(१) तापस्थापित प्लास्टिक प्रायः संपीडन साँचे में तैयार किए जाते हैं। ढलाईचूर्ण विवर में उँडेला जाता है और मूसल (plunger) द्वारा, जो भारी दाबक का भाग होता है, चूर्ण को इच्छित आकार में लाने के लिये नीचे की ओर दबाया जाता है। **क.** साँचे का मूसल, **ख.** निर्देशक सुई, **ग.** ढला हुआ प्लास्टिक तथा **घ.** साँचे का विवर।

(२) तापस्थापित प्लास्टिक की चद्दरों को गरम दाबक में इच्छित आकार दिया जा सकता है। प्लास्टिक की चद्दर को रबर के थैले के नीचे रखे, इच्छित वक्र आकार के जिग साँचे (Jig mould) पर रखा जाता है, जिसके नीचे एक छिद्र होता है। दाबक को बंद कर थैले को तापक पदार्थ के प्रयोग से फैलने के लिये बाध्य किया जाता है। **क** चद्दर, **ख** रबर की थैली, **ग.** भाप या गरम पानी, **घ.** छिद्र तथा **च.** ठोस जिग साँचा।

(३) तापप्लास्टिक की कुछ वस्तुएँ, जैसे नलिकाएँ, प्रायः बहिर्वेधन (extrusion) दाबक में बनाई जाती हैं। यौगिक दाबक में प्रवेश करता है और उसे एक सूक्ष्मसमंजिनी (endless screw) द्वारा दबाकर गरम कक्ष में ले जाते हैं, जहाँ वह पिघल जाता है। इसके बाद दबाकर वह ठप्पे के द्वार (die opening) से बाहर ढकेल दिया जाता है। इससे पिघले प्लास्टिक को इच्छित आकार प्राप्त हो जाता है। **क.** वाहक, **ख.** ठप्पा या डाइ, **ग.** ढाला जानेवाला प्लास्टिक, **घ.** तापक उपकरण तथा **च.** यान्त्रिक सूक्ष्मसमंजिनी।

(४) संश्लिष्ट तापप्लास्टिक को और सेलुलोजी प्लास्टिकों को अंतःक्षेपण (injection) साँचे से तैयार किया जा सकता है। ढलाईचूर्ण गरम कक्ष में प्रवेश कर, पिघल जाता है। इसे फिर मूसल द्वारा एक द्वार से साँचे में ले जाते हैं, जहाँ वह स्थापित हो जाता है। **क.** साँचा, **ख** ढाला जानेवाला प्लास्टिक, **ग.** मूसल, **घ.** तापक उपकरण तथा **च.** ढला हुआ प्लास्टिक।

यूरिया-फॉर्मैल्डिहाइड, यूरिया ऐमिनोप्लास्टिक — यह यूरिया (१ अणुभार) और फ़ॉर्मैल्डिहाइड (१–१.५ अणुभार) के संघनन से प्राप्त होता है, जो हेक्सामेथिलीन टेट्रामीन (hexamethyelne tetramine) की उपस्थिति मे होता है। अभिक्रिया धीरे धीरे गरम करके प्रारंभ की जाती है और १२०° सें० पर तीव्र हो जाती है। पहले मोनो तथा डाइ मेथिलोल यूरिया का निर्माण होता है :

ना हा$_2$. का औ. ना हा$_2$ + हा का हा औ →
यूरिया फॉर्मैल्डिहाइड
ना हा$_2$ का औ. नाहा. काहा$_2$. औ हा
मोनो मेथिलोल यूरिया

[NH_2. CO. NH_2. + HC HO →
NH_2 CO. NH. CH_2. OH]

ना हा$_2$. का औ. ना हा$_2$ + २ हा का हा औ →
का हा$_2$ औ हा ना हा. का औ ना हा. का हा$_2$. औ हा
डाइमेथिलोल यूरिया

[NH_2. CO. NH_2 + 2HC HO →
CH OH. NH. CO NH CH OH]
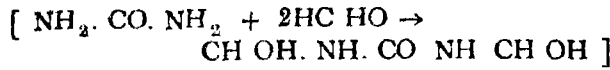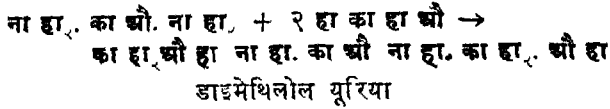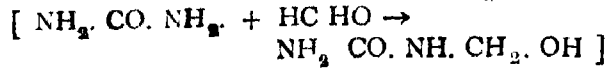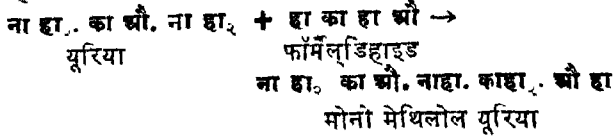
ये दोनों ही द्रव है। इनका संघनन होने लगता है और बहुलकीकरण की दशा प्राप्त होती है। उसी समय गरम करने की क्रिया रोककर इसे ठंढा किया जाता है। इस प्राप्त रेजिन से जल निकाल लिया जाता है और शुद्ध सेलुलोस से मिश्रित किया जाता है। इस मिश्रण को न्यून ताप पर सुखाते है और रंजक भी मिला देते है। अब अगला चरण सांचे के भीतर ताप और दाब से स्थापित करने का होता है। तब यूरिया रेजिन एक कड़े और अनुत्क्रमणीय प्लास्टिक मे दृढ हो जाता है। सेलुलोस पूरक के प्रयोग से पारभासक प्लास्टिक प्राप्त होता है। इसका प्रयोग विशेष रूप से प्रकाश के परावर्तको के लिये होता है। इसकी विशेषता यह है कि इसे कोई भी रग दिया जा सकता है। यूरिया प्लास्टिक दिव्य काच की तरह तलवाने होते हैं और आघात सहने की क्षमता रखते है।

ग्लिप्टल या ऐल्किड रेजिन — कृत्रिम प्लास्टिक मे इनका भी एक वर्ग है। ग्लिसरोल के किसी अम्ल, जैसे थैलिक, आइसोथैलिक, टार्टेरिक, सक्सिनिक, साइट्रिक इत्यादि के साथ संघनन की रीति से इसकी प्राप्ति होती है। यह चमडे की भांति कडा होता है और काफी अवधि तक सांचे मे गरम करने के बाद कडे ठोस मे परिवर्तित होता है। यद्यपि यह भी तापदृढ प्लास्टिक है, पर इसका सचककरण के लिये बहुत कम प्रयोग होता है। इसका उपयोग वार्निश मे तथा ऐस्बेस्टस, अभ्रक इत्यादि के, जिनमे ऊँचे ताप सहने की क्षमता होती है, बधन और स्थिरीकरण मे होता है।

तापसुनम्य रेजिन — इस श्रेणी के प्लास्टिक कार्बनिक विलायको मे विलेय होते है। ये गरम करने पर सुनम्य हो जाते है और किसी भी रूप मे सांचे मे ढाले जा सकते है। बार बार गरम करके इनको भिन्न भिन्न आकृति दी जा सकती है। तुलना के लिये चपडा तथा मोम का उल्लेख किया जा सकता है।

सेलुलॉइड — सेलुलोस नाइट्रेट को कपूर के साथ मिलाकर गरम करने, या साधारण ताप पर भी गूथने से, सैलुलॉइड प्राप्त होता है। एक पुराना सूत्र निम्नलिखित है.

कपूर या कपूर का तेल	२० भाग (भार से)
रेंडी या अलसी तेल	४० भाग ,,
सेलुलोस नाइट्रेट	४० भाग ,,

गरम करने या गूथने के समय उसमें कुछ वर्णक, जैसे जिंक ऑक्साइड, मिला देते हैं। यह गरम पदार्थ आसानी से साँचे में ढाला जा सकता है और एक ठोस और कडी आकृति में परिवर्तित हो जाता है। इसका प्रयोग बहुत से उपयोगी तथा सजावट के सामानो के निर्माण के लिये किया जाता है। यह ज्वलनशील है।

पाईरॉक्सिलिन (pyroxilin) एक विशेष सेलुलोस नाइट्रेट है। इसके और कपूर के मिश्रण से जो प्लास्टिक प्राप्त होता है, उसका मुख्य उपयोग फ़ोटोग्राफ़िक फिल्मो के लिये होता है।

सेलुलोस ऐसीटेट — सेलुलोस ऐसीटेट का उपयोग साधारण प्लास्टिक के स्थान पर किया जाता है, क्योकि यह अज्वलनशील है। सेलुलोस के ऐसिटिलीकरण (acetylation) से सेलुलोस ऐसीटेट प्राप्त होता है। विलायकों तथा सुनम्य कारको के संयोग से इससे प्लास्टिक प्राप्त होता है।

सेलुलोस ऐसीटेट को किसी सुनम्यकारक विलायक और रंजक के साथ गरम करने पर एक सुनम्य पदार्थ प्राप्त होता है। बेलनों से दबा कर अधिक विलायकों को निकाल देते हैं और चादरों के रूप में प्लास्टिक प्राप्त हो जाता है। इसे संचककरण के लिये प्रयोग किया जाता है। सुनम्यकारको मे डाइमेथिल थैलेट, डाइएथिल थैलेट, ट्राइफेनिल फॉस्फेट इत्यादि का प्रयोग करते है। सेलुलोस ऐसीटेट प्लास्टिक स्वच्छ, रंगहीन तथा सभी रंगो मे, पारदर्शक और अपारदर्शक रूप में प्राप्त किए जाते हैं।

मेथिल मेथाक्रिलेट (Methyl Methacrylate) — मेथिल मेथाक्रिलेट प्लास्टिकों का द्वितीय विश्वयुद्ध मे प्लेक्सिग्लास (plexiglas) और लुसाइट (lucite) के नाम से वायुयानो मे प्रयोग हुआ। ये रगहीन, स्वच्छ, न टूटनेवाले तथा मजबूत होते है और कठिनाई से जलते हैं।

ऐसीटोन सायनहाइड्रिन को १००–११०° तक सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ गरम करके और फिर मेथिल ऐलकोहल की अभिक्रिया से मेथिल मेथाक्रिलेट द्रव रूप मे प्राप्त होता है। इसका बहुलकीकरण ताप, प्रकाश तथा सोडियम पेरॉक्साइड के प्रभाव से होता है और कड़ा दानेदार ठोस संचक के लिये तैयार हो जाता है।

इस प्रकार का एक प्लास्टिक, जिसे पर्सपेक्स (perspex) कहते हैं, अत्यत स्वच्छ, निम्न विशिष्ट गुरुत्व (१.१६) वाला होता है। और रचनात्मक (mechanical) तथा विद्युतीय गुणो के लिये उल्लेखनीय है। इसका उपयोग बिजली के समान, टेलीफोन, कृत्रिम दांतो, वायुयानो की सुरक्षित खिडकियो इत्यादि के निर्माण में किया जाता है। किसी भी निश्चित माप के लेंस तुरंत ढाले जा सकते है और इसका प्रयोग प्रलाक्षारसो के लिये भी होता है।

वाइनिल क्लोराइड बहुलक (Vinyl Chloride Polymers) — ये अज्वलनशील तथा अधिक विद्युत् प्रतिरोधक होते है। इनका गलनांक साधारणत काफी ऊँचा होता है। इसलिये इन्हे किसी सुनम्यकारक के साथ गरम करते है। इनका उपयोग रासायनिक उद्योग, जल-प्रतिरोधक चादर तथा नम्य, रोधी तारो के लिये होता है।

वाइनिल ऐसीटेट (Vinyl acetate) — पारद लवण के उत्प्रेरण से यह ८०% उत्पाद मे ऐसेटिलीन और ऐसीटिक अम्ल के संयोग मे प्राप्त होता है।

प्लूटोनियम के शुद्ध रासायनिक यौगिक की प्राप्ति १९४२ ई० में हुई थी। यह पहला धात्विक तत्व है जो केवल संश्लेषण से पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त हुआ था। आज भी इसकी प्राप्ति नाभिकीय रिऐक्टर में ही होती है। प्लूटोनियम बडी अल्प मात्रा मे यूरेनियम अयस्कों, पिचब्लेड और मोनेज़ाइट, मे पाया जाता है। यूरेनियम २३८ पर न्यूट्रॉन द्वारा बम वर्षा से न्यूट्रॉन का अवशोषण कर यह बनता है। ये न्यूट्रान यूरेनियम के स्वत: विखंडन से उत्सर्जित होते है। यह क्रिया नाभिकीय रिऐक्टर में संपन्न होती हैं। यूरेनियम २३८ कुछ न्यूट्रॉन का अवशोषण कर यूरेनियम २३९ बनता है। यह दो उत्तरोत्तर बीटाकणों के उत्सर्जन से प्लूटोनियम २३९ बनाता है। प्लूटोनियम २३९ के बनने पर इसे रासायनिक विधि से अन्य तत्वों से पृथक् करते हैं। यह इतनी अधिक मात्रा मे प्राप्त हो गया है कि इसके यौगिको का विस्तार से अध्ययन हुआ है।

प्लूटोनियम के अनेक यौगिक प्राप्त हुए हैं। इसके तीन ऑक्साइड, प्लूटोनियम मोनोक्साइड, प्लूटोनिमय सेस्क्विऑक्साइड और प्लूटोनियम डाइऑक्साइड महत्व के हैं। इन ऑक्साइडो के सहयोग से ही प्लूटोनियम के हैलाइड और आक्सीहैलाइड प्राप्त हुए हैं। प्लूटोनियम ट्राइफ्लोराइड को छोड़कर अन्य सब हैलाइड आर्द्रताग्राही होते हैं। प्लूटोनियम के कार्बाइड, नाइट्राइड, सिलिसाइड और सल्फाइड भी प्राप्त हुए हैं। ये बहुत ऊँचे ताप पर भी स्थायी होते हैं। प्लूटोनियम के यौगिकों की संख्या आज बहुत अधिक बढ़ गई है और इनके गुण का भी अध्ययन बड़े विस्तार से हुआ है।

प्लूटोनियम के उपयोग — परमाणु ऊर्जा मे प्लूटोनियम २३९ काम आता है। नाभिक रिऐक्टर मे यह ईंधन का कार्य करता है। ऐसे रिऐक्टर यूरेनियम २३८ के साथ मिलकर ऊर्जा उत्पन्न करते हैं और साथ साथ न्यूट्रॉन के अवशोषण से प्लूटोनियम २३९ भी बनता है। प्लूटोनियम २३८ के विखंडन से जो ऊर्जा प्राप्त होती है वह ऊर्जा पूर्ण विखंडन मे प्रति पाउंड १०,०००,००० किलोवाट घंटा ऊष्मा ऊर्जा के बराबर होती है। इस ऊर्जा को ऊष्मा के रूप मे, या विद्युत् के रूप में, परिणत कर सकते है। इससे समस्त ऊर्जा के २० से ३० प्रति शत तक की उपलब्धि हो सकती है। ऊर्जा की उपलब्धि वस्तुत यंत्र की दक्षता पर निर्भर करती है। [फू० स० व०]

प्लूरोन्युमोनिया (Pleuro-pneumonia) प्लूरोन्युमोनिया, जिसे सामान्यतया फुफ्फुस ताऊन (Lung Plague) भी कहते है, ढोरों में अधिक होनेवाला उग्र स्पर्शज रोग है, जो मुख्यतया फुफ्फुस तथा वक्ष की अस्तर कला (lining membrane) को आक्रात करता है। इसके फलस्वरूप एक विशेष प्रकार का खंड एवं खंडशोथ (lobar and lobular pneumonia) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। गोजातीय पशु (bovine animals) के अतिरिक्त यह रोग अन्य पशुओ मे नही प्रसारित होता।

यह रोग अनेक देशों मे, जैसे भारत, चीन, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया तथा यूरोप के बहुत से देशों मे भी होता है। मनुष्यों को जब होता है तब शरीर-विकृति-विज्ञान (pathology) के अंतर्गत होनेवाले मुख्य परिवर्तनो मे फुफ्फुस की आकृति संगमरमर के समान हो जाती है तथा फुफ्फुसावरण (pleura) मे फाइब्रिनस विक्षेप (fibrinous deposit) हो जाता है। कभी कभी वक्षगुहा (cavity of thorax) में अत्यधिक मात्रा में तरल पदार्थों का भी संचय हो जाता है।

लक्षण — प्लूरोन्युमोनिया के प्रमुख लक्षणों में रोगी को ज्वर आता है, क्षुधाहानि, विशेष प्रकार की खाँसी का रुक रुककर वेग, श्वास कष्ट (dyspnoea), नाड़ी एवं श्वासगति में तीव्रता, इत्यादि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। ये सभी लक्षण दो या तीन सप्ताह से लेकर कई मास तक विद्यमान रहते हैं। ऐसी स्थिति में इन रोगियों की परीक्षा करने पर रोगी अत्यधिक कृष एवं कमजोर दिखाई देता है। ओठ और हाथ पैरों मे नीलिमा (cynosis) दिखाई देती है। परिश्रवण (auscultation) परीक्षा से फुफ्फुस के सभी स्थानो में सीटी के समान ध्वनि राल्स (rales) सुनाई देती है तथा कुछ स्थानों पर श्वसनी श्वसन (bronchial breathing) मिलती है। रोगी को कष्ट के साथ पतला, गुलाबी तथा रक्तवर्ण बलगम निकलता है। यह अधिक चिपचिपा नही होता तथा सूक्ष्मदर्शक से परीक्षा करने पर इसमें प्लेग के कीड़े (Past. pestis) मिलते हैं।

जब रोगी को अत्यधिक कंपन के साथ तीव्र ज्वर होता है तब उसकी मृत्यु की अधिक संभावना हो जाती है।

उपचार — इसकी उपयुक्त चिकित्सा प्लेग की चिकित्सा के समान होती है। [प्रि० कु० चौ०]

प्लेग संसार की सबसे पुरानी महामारियों मे है। इसे ताऊन, ब्लैक डेथ, पेस्ट आदि नाम भी दिए गए हैं। मुख्य रूप से यह कृंतक (rodent) प्राणियों का रोग है, जो पाश्चुरेला पेस्टिस नामक जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है। आदमी को यह रोग प्रत्यक्ष संसर्ग अथवा पिस्सू के दंश से लगता है। यह तीव्र गति से बढ़ता है, बुखार तेज और लसीका ग्रंथियाँ स्पर्शासह्य एवं सूजी होती है, रक्तपूतिता की प्रवृत्ति होती है और कभी कभी यह न्यूमोनिया का रूप धारण करता है।

प्लेग महामारियों की कहानी — प्राचीन काल में किसी भी महामारी को प्लेग कहते थे। यह रोग कितना पुराना है इसका अंदाज इससे किया जा सकता है कि एफीरस के रूफुस ने, जो ट्रॉजन युग का चिकित्सक था, 'प्लेग के ब्यूबो' का जिक्र किया है और लिखा है कि यह घातक रोग मिस्र, लीबिया और सीरिया में पाया जाता है। 'बुक ऑव सैमुअल' में इसका उल्लेख है। ईसा पूर्व युग मे ४१ महामारियों के अभिलेख मिलते है। ईसा के समय से सन् १५०० तक १०९ बड़ी महामारियाँ हुईं, जिनमें १४वी शताब्दी की 'ब्लैक डेथ' प्रसिद्ध है। सन् १५०० से १७२० तक विश्वव्यापी महामारियाँ (epidemics) फैलीं। फिर १८वीं और १९वी शताब्दी मे शांति रही। सिर्फ एशिया मे छिटफुट आक्रमण होते रहे। तब सन् १८९४ में हागकांग मे इसने सिर उठाया और जापान, भारत, तुर्की होते हुए सन् १८९६ मे यह रोग रूस जा पहुँचा, सन् १८९८ में अरब, फारस, ऑस्ट्रिया, अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका और हवाई द्वीप तथा सन् १९०० मे इंग्लैंड, अमरीका और ऑस्ट्रेलिया मे इसने तांडव किया। सन् १८९८ से १९१८ तक भारत में इसने एक करोड़ प्राणो की बलि ली। अब पुन संसार में शांति है, केवल छिटफुट आक्रमण के समाचार मिलते हैं।

प्लेग महामारियों के चक्र चलाते रहे हैं। छठी शताब्दी में पचास

वर्षों तक यूरोप में इसका एक दौर चला। समूचे रोमन साम्राज्य में प्लेग बंदरगाहों से प्रारंभ होकर दूरवर्ती नगरों की ओर फैला था। सातवीं शताब्दी में ६६४ से ६८० तक फैली महामारियाँ, जिनका उल्लेख बेडे ने किया है, शायद प्लेग ही थीं। १४वीं शताब्दी में 'काली मौत' के नए दौर प्रारंभ हुए, जिनमें मृत्युसंख्या भयावह थी। प्रथम दौर में अनेक नगरों की दो तिहाई से तीन चौथाई आबादी तक साफ हो गई। कहते हैं, इस चक्र में यूरोप में ढाई करोड़ (अर्थात् कुल आबादी के चौथाई) व्यक्ति मर गए। १६६४-६५ में इतिहासप्रसिद्ध 'ग्रेट प्लेग' का लंदन नगर पर आक्रमण हुआ। लंदन की आबादी साढ़े चार लाख थी, जिसमें से दो तिहाई लोग डरकर भाग गए और बचे लोगों में से ६८,५९६ प्लेग का शिकार हो गए। कहते हैं, इसी के बाद हुए लंदन के बृहत् अग्निकांड ने नगर से प्लेग को निकाल बाहर किया। पर संभवत: यह चमत्कार सन् १७२० में लगाई गई कठोर क्वारंटीन का फल था। इसके बाद भी यूरोप में प्लेग के आक्रमण होते रहे और अंत में सन् १७२० में मार्सेई में ८७,५०० प्राणों की बलि लेकर यह शांत हुआ।

सन् १६७५ से १६८४ तक उत्तरी अफ्रीका, तुर्की, पोलैंड, हंगरी, जर्मनी, आस्ट्रिया में प्लेग का एक नया उत्तराभिमुख दौरा हुआ, जिसमें सन् १६७५ में माल्टा में ११,०००, सन् १६७९ में विएना में ७६,००० और सन् १६८१ में प्राग में ८३,००० प्राणों की आहुति पड़ी। इस चक्र की भीषणता की कल्पना इससे की जा सकती है कि १०,००० की आबादीवाले ड्रेस्डेन नगर में ४,३९७ नागरिक इसके शिकार हो गए।

सन् १८३३ से १८४५ तक मिस्र में प्लेग का तांडव होता रहा। पर इसी समय यूरोप में विज्ञान का सूर्योदय हो रहा था और मिस्र के प्लेग का प्रथम बार अध्ययन किया गया। फ्रेंच वैज्ञानिकों ने बताया कि वास्तव में जितना बताया जाता है यह उतना संक्रामक नहीं है। सन् १८७८ में वाल्गा महामारी से यूरोप सशंक हो उठा और सभी राज्यों ने जाँच आयोग भेजे, जो महामारी समाप्त होने के बाद घटनास्थल पर पहुँचे।

भारत में प्लेग — एक पुरानी कहावत थी कि प्लेग सिंधु नद नहीं पार कर सकता। पर १९वीं शताब्दी में प्लेग ने भारत पर भी आक्रमण किया। सन् १८१५ में तीन वर्ष के अकाल के बाद गुजरात, कच्छ और काठियावाड़ में इसने डेरा डाला, अगले वर्ष हैदराबाद (सिंध) और अहमदाबाद पर चढ़ाई की, सन् १८३६ में पाली (मारवाड़) से चलकर यह मेवाड़ पहुँचा, पर रेगिस्तान की तप्त बालू में अधिक चल न पाया। सन् १८२३ में केदारनाथ (गढ़वाल) में, सन् १८३४ से १८३६ तक उत्तरी भारत के अन्य स्थलों पर आक्रमण हुए और सन् १८४९ में यह दक्षिण की ओर बढ़ा। सन् १८५३ में एक जाँच कमीशन नियुक्त हुआ। सन् १८७६ में एक और आक्रमण हुआ और तब सन् १८९८ से अगले २० वर्षों तक इसने बंबई और बंगाल को हिला डाला।

प्लेग के स्थायी गढ़ अरब, मेसोपोटामिया, कुमाऊँ, हूनान (चीन) पूर्वी तथा मध्य अफ्रीका है। प्लेग की महामारियों की कहानी विश्व इतिहास के साथ पढ़ने पर ज्ञात होता है कि इतिहास की धाराएँ मोड़ने में इस रोग ने कितना बड़ा भाग लिया है।

प्लेगकारक जीवाणु — बैसिलस पेस्टिस (पास्चुरेला पेस्टिस) की खोज सन् १८९४ में हांगकांग में किटा साटो और यर्सिन ने की। आगे के अनुसंधानों ने सिद्ध किया कि यह मुख्यतः कृतक प्राणियों का रोग है। पहले चूहे मरते हैं तब आदमी को रोग लगता है। प्लेग के जीवाणु सरलता से संवर्धनीय हैं और गिनीपिग (guinea pig) तथा अन्य प्रायोगिक पशुओं में रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

प्लेग भूमध्यरेखा के अत्यंत उष्ण प्रदेश को छोड़कर संसार के किसी भी प्रदेश में हो सकता है। कोई भी जाति, या आयु का नरनारी इससे बचा नहीं है। प्लेग हमारे देश में पहले मूस (Rattus norvegicus) को होता है। इससे चूहों (Rattus rattus) को लगता है। पिस्सू (जिनापसेल्ला चियोपिस) इन कृंतकों का रक्तपान करता है। जब चूहे मरते हैं तो प्लेग के जीवाणुओं से भरे पिस्सू चूहे को छोड़कर आदमी की ओर दौड़ते हैं। जब आदमी को पिस्सू काटते हैं, तो दंश में अपने अंदर भरा संक्रामक द्रव्य रक्त में उगल देते हैं। चूहों का मरना आरंभ होने के दो तीन सप्ताह बाद मनुष्यों में प्लेग फैलता है। न्युमोनिक प्लेग का संक्रमण श्वास से निकले जलकणों से लग जाता है और सबसे अधिक संक्रामक होता है। व्यापक अनुसंधान से यह ज्ञात हो चुका है कि लगभग १८० जाति के कृंतक, जिनमें मारमोट, गिलहरी, जरबीले, मूस, चूहे, आदि शामिल हैं, प्लेग से आक्रांत होते हैं और १,४०० में से ७० जातियों के पिस्सू प्लेग संवाहक होते हैं। प्लेग उन्मूलन की यही सबसे कठिन समस्या भी है कि यह जंगली कृतकों का रोग है और मध्य एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका के घने जंगलों में छिपा बैठा है, जहाँ से इसे निकालना कठिन हो रहा है।

प्लेग विकृति — जहाँ पिस्सू काटता है उस स्थल की लसीका ग्रंथि सूज आती है (प्राइमरी ब्यूबो)। तब शरीर की और लसीका ग्रंथियाँ (गिल्टियाँ) सूजती हैं। कभी कभी जीवाणु रक्त में पहुँच जाते हैं और रक्तपूतिता हो जाती है। भीषण प्लेग में गिल्टी निकलने का मौका ही नहीं आता। ये जीवाणु शरीर के प्रमुख अंगों में प्रदाह करते हैं और आहत रक्तवाहिनियों से रक्तस्राव होता है।

लक्षण — प्लेग का उद्भवकाल १ से १२ दिन है। जाड़ा देकर बुखार आता है और अनियमित ढंग से घटता बढ़ता है। मिचली, वमन, हृदयदौर्बल्य तथा अवसन्नता, तिल्ली बढ़ना और रक्तस्रावी दाने निकलना, जिससे शरीर काला पड़ जाता है और रोग का काली मौत नाम सार्थक होता है। इस रोग के नौ रूप ज्ञात हैं : (१) गिल्टीवाला प्लेग (ताऊन, ब्यूबोनिक प्लेग), जिसमें अंगपीड़ा, सहसा आक्रमण, तीव्र ज्वर तथा त्वरित नाड़ी होती है, दो तीन दिन में गिल्टी निकलती है और दो सप्ताह में पक जाती है; (२) रक्तपूतित प्लेग घातक प्रकार है, जिसमें रक्त में जीवाणु वर्तमान होते हैं; (३) न्युमोनिक प्लेग, जिसमें रोग का आक्रमणकेंद्र फेफड़ा होता है। यह अत्यंत घातक प्रकार है और तीन चार दिन में प्राण हर लेता है; (४) आंत्रिक प्लेग; (५) प्रमस्तिष्कीय प्लेग; (६) कोशिका त्वचीय प्लेग, जिसमें त्वचा पर कारबंकल से फोड़े निकल आते हैं, (७) स्फोटकीय प्लेग, जिसमें शरीर में दाने निकलते हैं; (८) गुटिका प्लेग, जिसमें रोग कंठ में होता है तथा (९) अवर्धित प्लेग तथा जो प्लेग का हल्का आक्रमण है और जिसमें केवल गिल्टी निकलती है।

उपचार और रोकथाम — नई ओषधियों के आगमन से पूर्व प्लेग का उपचार था, चूहों का विनाश और चूहे गिरने पर स्थान छोड़

देना। रोकथाम के लिये प्लेग का टीका आज सक्षम है। प्लेग की सवारी जीवाणु, पिस्सू और चूहे के त्रिकोण पर बैठकर चलती है और जीवावसादक से जीवाणु, कीटनाशक (१०% डी०डी० टी०) से पिस्सू, और चूहा विनाशक उपायों से चूहों को मारकर प्लेग का उन्मूलन सभव है। जीवावसादकों मे स्ट्रेप्टोमाइसिन तथा सल्फा ओषधियों मे सल्फाडाइज़ीन और सल्फामेराज़ीन इनके विरुद्ध कारगर है। आधुनिक चिकित्सा ने प्लेग की घातकता नष्टप्राय कर दी है।

[भा० शं० मे०]

प्लेटो दे० 'अफलातून।'

प्लेनटेबुल सर्वेक्षण (Planetable Survey) पटल सर्वेक्षण की बड़ी अनोखी विधि है। सर्वेक्षण की अन्य अधिकाश विधियो मे पृथ्वी की सतह पर विदुओं की माप लेकर, उनका अलग से परिकलन एवं आलेखन (plotting) किया जाता है। सर्वेक्षण हेतु विस्तृत क्षेत्र में प्रत्येक वाछित विंदु की माप लेकर आलेखन करना असाध्य परिश्रम-वाला ही नही असभव भी है। प्लेनटेबुल सर्वेक्षण मे यही असाध्य अध्यवसाय अत्यंत साध्य बन गया है। प्लेनटेबुल सर्वेक्षण की क्रिया ऐसी है कि इसमें पृथ्वी की सतह पर बिना वास्तविक माप लिए विंदुओ की सापेक्ष स्थितियो का सीधा और सही आलेखन हो सकता है। यही इसकी विशेषता है। इसके अतिरिक्त प्रयुक्त उपकरण सस्ते और सरल
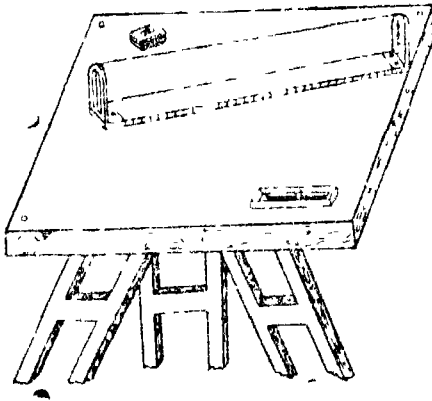
चित्र १. प्लेनटेबुल या पटल

एवं कार्यवाहक सामान्य शिक्षाप्राप्त सर्वेक्षक हो सकता है। इन आकर्षक गुणो के कारण सभी देशो मे इस विधि का व्यापक रूप से प्रयोग होता है।

इस कार्य मे निम्नलिखित उपकरण प्रयुक्त होते है। (१) प्लेन-टेबुल या पटल, (२) तिपाई (stand), (३) दर्श रेखी (sight rule), (४) स्पिरिट लेविल तथा तलमापी (spirit level) तथा (५) चुंबकीय दिक्सूचक (magnetic compass)।

उपकरणों का विवरण — प्लेनटेबुल बनाने के लिये भली प्रकार मौसम के प्रभाव से पकी लकड़ी १२ से १५ सेमी० चौड़ी और दो से तीन सेमी० मोटी पट्टियो को भली प्रकार जोडकर ७५ × ६० या ६० × ५० वर्ग सेमी० का आयताकार प्लेनटेबुल तख्ता तैयार किया जाता है। इसकी एक सतह भली प्रकार छीलकर और रंदकर एकदम समतल कर दी जाती है। दूसरी ओर प्लेनटेबुल के केंद्र पर धातु की एक चकती लगा दी जाती है, जिसमें तिपाई पर कसने के लिये चूड़ियाँ कटी रहती हैं।

तिपाई में तीन पैर पेचों द्वारा सिर से जुड़े रहते हैं। पेच ढोले करके पैर खिसकाए जा सकते हैं और तिपाई का सिर एकदम क्षैतिज किया जा सकता है। तिपाई के सिर के बीचोबीच बने छेद में प्लेनटेबुल कसा जा सकता है। पैरो को खिसकाकर प्लेनटेबुल को भी स्पिरिट लेविल से देखकर क्षैतिज किया जा सकता है। प्लेनटेबुल को कसनेवाले पेच को ढीला करके तख्ते को क्षैतिज तल मे घुमाया जा सकता है और मनचाही स्थिति मे कसकर स्थिर किया जा सकता है।

दर्शरेखी ६० या ७५ सेंमी० लबी, एक सेमी० मोटी और लगभग पाँच सेमी० चौड़ी धातु या लकडी का बना होता है। इसके दोनो लबे किनारे एकदम सीधे और एक ओर को ढालू होते है, जिससे सीधी और सही रेखा खींचना संभव हो सके। दर्शरेखी के दोनों सिरो पर दो दृश्य-वेधिकाएँ या पत्तियाँ (sight vanes) लगी रहती हैं। एक पत्ती के बीच मे एक झिरी (slit) कटी होती है, जिसमें से झाँककर सर्वेक्षक अपने लक्ष्य को देखता है और दूसरी पत्ती के बीच एक धागा (thread) पिरोकर दोनों पत्तियों के सिरों पर तान देता है। एक पत्ती मे कटी झिरी, दूसरे में पिरोया और पत्तियों के सिरो पर तना धागा इस प्रकार रखे जाते है कि वह एक ही समतल में पड़े। जब दर्शरेखी क्षैतिज पटल पर रखा हो तो झिरी और धागा पटल के तल पर लंब होंगे। यदि झिरी से झाँककर धागे से कटता कोई भी दूर का विंदु या वस्तु देखी जाए तो दर्शरेखी प्रेक्षक की स्थिति से उस विंदु या वस्तु की दिशा बताएगा। यदि प्लेनटेबुल पर कागज मढा हो और उसपर प्रेक्षक की स्थिति चिह्नित हो, तो उस समय दर्शरेखी का एकरेखी किनारा प्रेक्षक की कागज पर लगी स्थिति को स्पर्श करता हुआ रखा जाए और झिरी से होकर धागे पर कटती वस्तु या विंदु देखकर दर्शरेखी के स्पर्शी किनारे पर रेखा खीच दी जाए तो वह प्रेक्षक की स्थिति से उस वस्तु या विंदु की दिशारेखा होगी, जिसे किरण (ray) कहते है। यही क्रिया किसी दूसरी स्थिति से दोहराने पर एक ही विंदु की दो स्थितियों से दो किरणें आपस मे कटकर प्रतिच्छेद विंदु (point of intersection) पर उसकी सही मापक्ष स्थिति दे देगी।

चुंबकीय दिक्सूचक एक आयताकार, काच के ढक्कनवाले, पीतल के बक्स मे चुंबक की एक सुई को एक कीली पर आलबित करके बनाते है। प्रयोग न होने पर सुई को आलब से उठाकर स्थिर करने का उपाय भी रहता है। इससे प्लेनटेबुल को प्रत्येक स्थिति पर सही दिशाओ मे रखने मे सहायता मिलती है।

स्पिरिट लेविल — काच की नली मे हलका द्रव भरकर दोनों ओर से ऐसे बद किया जाता है कि उसके अंदर वायु का एक बुलबुला बना रहे। नली का आकार हलका वक्र लिए होता है। इसे धातु की एक चौकोर नली मे ऐसे दृढ बंद करते है कि वक्र नली का उभरा भाग धातु की नली की एक सतह पर कटे छेद से दिखाई पड़ता रहे। इसे स्पिरिट लेविल या तलमापी कहते हैं। यदि स्पिरिट लेविल तिपाई पर कसे चित्रपटल पर रखा जाए और तिपाई के पैर ऐसे जमा दिए जाएँ कि तलमापी को किसी भी दो समकोण दिशाओं में प्लेनटेबुल पर रखने से उसका बुलबुला केंद्रित (centred) रहे

तो प्लेनटेबुल क्षैतिज हो जाता है। प्लेनटेबुल क्षैतिज न होने से विदुओ की खीची गई किरणे प्रधानतः बहुत ऊँचे या नीचे मे स्थित होने से गलत होंगी। अतः विदुओं की सही सापेक्ष स्थितियाँ प्राप्त नही होंगी।

कार्यविधि — वर्गांकित कागज पर सर्वेक्षण हेतु क्षेत्र मे स्थित, ऐसे विदुओं का, जिनके नियामक ज्ञात हों, वांछित पैमाने पर आलेखन कर दिया जाता है। यह कागज प्लेनटेबुल पर मढ दिया जाता है। कागज मढने के कई तरीके है। यदि सर्वेक्षण कार्य बहुत थोड़े समय का हो तो कागज बटन पिनों से तख्ते पर मढ दिया जाता है। यदि एक या दो सप्ताह का सर्वेक्षण हो, जिसमे कागज एकदम स्थिर रहना आवश्यक हो, तो कागज के चारों किनारों पर एक सबल पतले कागज की झालर या मगजी लगाकर, उस झालर के बढे भाग को पटल पर दृढता से चिपका देते है। लबी अवधि तक चलनेवाले सर्वेक्षण, या जिसमें कागज का पूर्णतया स्थिर रहना आवश्यक हो उसमें, कागज को पटल से लगभग १५ सेमी० अधिक लबे और चौडे कपडे पर चिपका देते है। फिर कपडा प्लेनटेबुल की सतह पर दृढता से खीचकर चिपका दिया जाता है। जब कपडे पर चिपका कागज प्लेनटेबुल पर लगाते है तो कागज पर वर्गांकन और नियत्रण विदुओ का आलेखन कागज को पटल पर मढने के बाद करते है।

तदुपरात जिस क्षेत्र मे सर्वेक्षण करना होता है, सर्वेक्षक उसमे स्थित एक ऐसे नियत्रण विदु पर प्लेनटेबुल ले जाता है जो उसके कागज पर अंकित हो। ऐसे विदु को स्टेशन कहते है। स्टेशन के ऊपर तिपाई को उसके पैर फैलाकर लगभग क्षैतिज रखा जाता है और उसपर पटल कस दिया जाता है। उसपर तलमापी को दो क्रमानुगत समकोण स्थितियो मे रखकर तिपाई के पैरो को ऐसे जमाया जाता है कि बुलबुला केंद्रित रहे। इससे प्लेनटेबुल क्षैतिज हो जाता है। इसके बाद दिक्स्थापन किया जाता है।

दिक्स्थापन प्लेनटेबुल की उस दशा को कहते है जब प्लेनटेबुल के चित्र पर अंकित नियत्रण विदुओ को कागज पर जोडनेवाली रेखाएँ उन्ही विदुओ को पृथ्वी पर जोडनेवाली रेखाओ के समानातर हो जाएँ। यह दशा प्राप्त करने के लिये सर्वेक्षक निम्न क्रिया करता है : कल्पना करे, सर्वेक्षक भूमि पर बने **आ** (A) विदु पर खडा है (देखे चित्र २), जिसकी कागज पर लगी **अ** (a) स्थिति है। इसी प्रकार एक दूसरे विदु की भौमिक और आलेखित स्थितियाँ क्रमश **ई** (B) और **इ** (b) हो, तो सर्वेक्षक अपने दर्शरेखी का एक किनारा ऐसे रखता है कि (i) वह **अ** और **इ** पर स्पर्शी रहे, (ii) धागेवाली लक्ष्य-वेधिका **इ** (b) की ओर और झिरी वाली लक्ष्य-वेधिका **अ** (a) की ओर रहे। तब वह प्लेनटेबुल को तिपाई पर ऐसे घुमाता है कि दर्शरेखी की झिरी से **ई** (B) विदु धागे पर कटता दिखाई दे। ऐसी दशा प्राप्त होने पर वह प्लेनटेबुल कस देता है। इस प्रकार पटलचित्र अपनी सही की दिशाओं मे स्थापित हो जाता है। इस दशा मे यदि दर्शरेखी निर्देशक (fiducial) धार सर्वेक्षक की स्थिति **अ** और किसी भी दूसरे आलेखित विदु को स्पर्श करती रखी जाए तो झिरी से देखने पर देखे जानेवाले विदु की भौमिक स्थिति धागे पर कटेगी। यह स्मरणीय है कि झिरी सदैव प्रेक्षक की ओर तथा धागेवाली दृश्यवेधिका देखे गए विदु की ओर रहेगी।
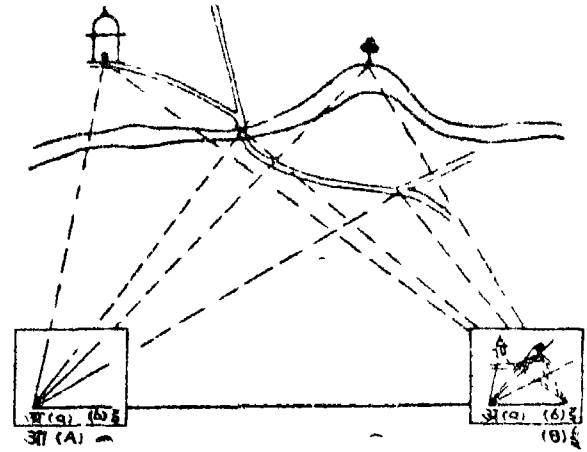
चित्र सं० २.

उपर्युक्त दशा मे पटलचित्र लाकर, सर्वेक्षक अपनी आलेखित स्थिति **अ** विदु पर अपनी पेंसिल के सहारे दर्शरेखी की धार विदु के स्पर्शी रखकर, अन्य विदुओं को झिरी से आगे-वाले झरोखे में धागे पर कटता देखता है और उनकी ओर किरणे खीचता है। ऐसी किरणे वह उन सभी विदुओ की ओर खीचता है जिन्हे वह मानचित्र पर दर्शाना चाहता है, जैसे गाँव, नदी, सडको आदि के मोड और संगम। मोड और संगम विदु ही इसलिये लेता है कि ऋजु भाग तो वह विदु मिलाती रेखाओ से भी बना सकता है। यही क्रिया वह दूसरे स्टेशनो पर दोहराता है। इससे किन्ही भी दो स्टेशनो से दी गई एक ही विदु की किरणे आपस मे कटकर, प्रतिच्छेदन पर विदु की सही सापेक्ष स्थिति दे देगी। यह स्थितियाँ उसी पैमाने पर होंगी जिसपर चाँदो का आलेखन होगा। यह पटलचित्रण की प्रतिच्छेद विधि (method of intersection) कहलाती है। यदि किरण खीचकर, उन्ही विदुओ की क्रमश दूरी नापकर, किरण पर पैमाने से काट दी जाए तो भी सही विदु प्राप्त हो जाता है। इसे सर्वेक्षण की विकिरण (radiation) विधि कहते है। किसी नदी, नहर, मार्ग आदि रेखक चीजो के किनारे स्थित एक स्टेशन से दूर स्थित अदृश्य स्टेशन तक क्रमानुगत किरणे देकर दूरी नापकर, विदु लगाते हुए उनका सर्वेक्षण हो तो उसे चक्रमण (traverse) सर्वेक्षण कहते है।

कटे विदुओं को रेखाओ द्वारा मिलाकर सर्वेक्षक वस्तुओ की आकृतियाँ बना देता है। मानचित्र को देखकर भूमि पर और भूमि से मानचित्र पर बनी वस्तुओ को पहचानने के लिये सांकेतिक चिह्नो का वह प्रयोग करता है, जिससे समान आकृतियो मे भी विभेदन हो सके। उदाहरणार्थ, नहर, सडक, रेलमार्ग आदि के स्थान पर केवल रेखाएँ बनेगी, किंतु सर्वेक्षक उन्हे भिन्न रगो और ढगो से खीचकर दूसरों को समझाने मे समर्थ होता है।

विदुओं के बीच की सापेक्ष ऊँचाइयाँ सर्वेक्षक समोच्च (contour) रेखाओ से प्रदर्शित करता है। इसके लिये पटलचित्रण की क्रिया सर्वोत्तम है। भूमि सामने है और मापन, आलेखन और चित्रण क्रियाएँ

साथ साथ चलती जाती हैं। सापेक्ष ऊँचाइयाँ निकालने के लिये नतिमापी (clinometer) का प्रयोग होता है। इस यत्र से प्रेक्षक
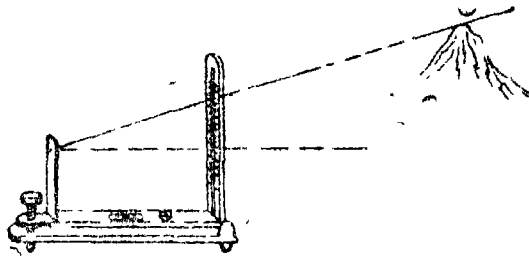
चित्र नं० १.

अपनी स्थिति पर किसी भी दूसरे विंदु की ऊँचाई मे भिन्नता के कारण बने कोण ख (θ) का सीधा स्पर्शज्या (tangent) पढ सकता है। पटलचित्र से उस विंदु की अपने से दूरी द (d) निकाल सकता है और तब उस विंदु की सापेक्ष ऊँचाई द स्प ख (tan θ) निकाल लेता है। इस प्रकार सभी विंदुओ की सापेक्ष ऊँचाइयाँ ज्ञात कर लेता है। सर्वेक्षक की भिन्न भिन्न स्थितियों से निकाली सापेक्ष ऊँचाइयों में एकरूपता रखने के लिये ऊँचाइयाँ किसी आधारतल से नापी जाती है। यह आधारतल सामान्यतः ज्वार भाटे का ध्यान रखकर नापे गये समुद्र का औसत तल माना जाता है। इस तल से समान ऊँचाई पर स्थित विंदुओ को जोड़ती रेखा को समोच्च रेखा कहते है। इसे खींचकर सर्वेक्षक ऊँचाई का आभास कराता है। [गु० ना० दु०]

प्लैटिनम समूह आवर्त सारिणी के आठवें समूह में छह तत्वों का एक समूह है। इस समूह के तत्वो के भौतिक एव रासायनिक गुणो मे बहुत समानता है। इन तत्वो के नाम रूथेनियम (Ruthenium, रु, Ru), रोडियम (Rhodium, **रो**, **Rh**), पैलेडियम (Palladium, **पै**, Pd), ऑस्मियम (Osmiom, **आ**$_{स}$, Os), इरीडियम, (Iridium, इ, Ir) और प्लैटिनम, (Platinum, **प्लै**, **Pt**) है।

बहुत काल तक इन धातुओ के समूह को एक धातु समझकर प्लैटिनम ही कहा जाता रहा है, क्योंकि यह नाम स्पेनी भाषा के प्लैटिनो (Platino) शब्द पर निर्भर है, जिसका अभिप्राय चाँदी है। १६वी शताब्दी मे एक ऐसे श्वेत तत्व का वर्णन किया गया है, जो मेक्सिको की खानों से लाया गया था और जो गलता न था। एक बार स्पेन की सरकार ने इस धातु को इस भय से फेंक देने की आज्ञा दी कि कहीं यह चाँदी मे न मिलाया जाय। १८वी शताब्दी में यूरोप के वैज्ञानिको का इस धातु की ओर ध्यान आकर्पित हुआ। सन् १७५२ में शेफेयर (Schefler) ने अपने अनुसंधानों द्वारा ज्ञात किया कि यह तत्व नाइट्रिक अम्ल से अप्रभावित रहता है, परतु अम्लराज (aqua regia) में विलीन हो जाता है।

१८०३-४ ई० मे कथित प्लैटिनम धातु मे अन्य मिश्रित धातुओं की खोज हुई। रोडियम और पैलेडियम की खोज वुलैस्टन (Wollaston) ने १८०३ ई० मे की और १८०४ ई० में ऑस्मियम (Os) और इरीडियम (Ir) की खोज टेनैंट (Tennant) ने की। रूथेनियम (Ru) अत्यंत विरल होने के कारण उस समय न खोजा जा सका। उसको क्लाउ (Klaus) नामक रूसी वैज्ञानिक ने १८४५ ई० मे खोजा।

उपस्थिति — प्रकृति में प्लैटिनम समूह के तत्व मिश्रित अवस्था में मिलते है। उच्च गुण के होने के कारण बहुधा मुक्त अवस्था में अन्य अयस्कों के साथ मिले रहते हैं। ऑस्मियम और इरीडियम की मिश्रधातु ऑस्मिरीडियम अनेक स्थानो पर समुचित मात्रा में मिलती है। प्लैटिनम-समूह-मिश्रणों मे प्लैटिनम धातु की मात्रा सबसे अधिक रहती है, परंतु कैनाडा और दक्षिणी अमरीका के कुछ अयस्कों मे प्लैटिनम और पैलेडियम की समान मात्रा भी पाई गई। कुछ स्थानों पर इन धातुओ के यौगिक भी मिलते है, जैसे स्पेरीलाइट (Sperrylite, $PtAs_2$) और ब्रेगाइट (Braggite PdS)। प्लैटिनम समूह के मिश्रणो मे ताम्र, स्वर्ण और लौह अशुद्धियों के रूप मे बहुधा उपस्थित रहते हैं। दक्षिण अमरीका, सोवियत संघ, कैनाडा, मेक्सिको और दक्षिणी अफ्रीका इन धातुओं के मुख्य स्रोत हैं।

पृथक्करण — प्लैटिनम समूह की धातुओं की निर्माणविधि की क्रियाएँ गोपनीय रखी जाती है। प्लैटिनम समूह की धातुओ के मुख्य रूप से दो स्रोत है: अयस्क और निकल विशुद्ध करते समय बचे अवसाद। दोनो से ही समुचित मात्रा मे ये धातुएँ मिलती हैं और दोनो शुद्धि क्रियाओं की विधियाँ लगभग समान है। अयस्क को घनत्व पृथक्करण (gravity separation) विधि द्वारा सांद्रित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त संमिश्रण अथवा निकल अवसाद को अम्लराज मे उबालते है, जिससे ऑस्मिरीडियम और कुछ रूथेनियम अविलेय अवस्था मे रह जाते है तथा प्लैटिनम, पैलेडियम, रोडियम और कुछ इरीडियम इस क्रिया द्वारा विलीन हो जाते है। विलयन मे दूधिया चूना (milk of lime) डालने से अपद्रव्य (विशेषकर लौह और ताँबा) तथा इरीडियम, रोडियम, रूथेनियम और कुछ पैलेडियम अवक्षेपित होंगे। बचे विलयन को वाष्पित करने पर धातुओ के क्लोराइड यौगिक प्राप्त होंगे। इन क्लोराइडो को तप्त करने पर अशुद्ध (कुछ पैलेडियम मिश्रित) प्लैटिनम धातु मिलेगी। इसे अम्लराज मे विलीन कर अमोनियम क्लोराइड डालने पर प्लैटिनम, क्लोरोप्लैटिनेट के रूप मे अवक्षेपित हो जाता है। बचे विलयन मे अमोनिया जल के डालने से पैलेडियम के यौगिक

पै(ना हा$_3$)$_2$क्लो$_2$ [$Pd(NH_3)_2Cl_2$]

का अवक्षेप प्राप्त होता है।

विलयन मे दूधिया चूना डालने पर प्राप्त हुए अवक्षेप से अपद्रव्य दूर कर अवक्षेप को अम्लराज में विलीन करते है। विलयन को सांद्रित कर अमोनियम क्लोराइड डालने पर इरीडियम का संकीर्ण यौगिक अवक्षेपित हो जाता है। तत्पश्चात् अमोनिया जल डालने पर पैलेडियम प्राप्त होगा। बचे विलयन को वाष्पित कर तप्त करने से रोडियम रूथेनियम की मिश्रधातु मिलती है। इस मिश्रण को पोटैशियम बाइसलफेट से संगलित करने से रोडियम डाइसलफेट यौगिक बनता है और रूथेनियम धातु अप्रभावित रहती है।

सर्वप्रथम अम्लराज की क्रिया से बचे मिश्रण ऑस्मिरीडियम (ऑस्मियम-इरीडियम की मिश्रधातु) और रूथेनियम को एक ऐसी नलिका में गरम करते हैं जिसके द्वारा ऑक्सीजन का प्रवाह हो रहा

हो। इस क्रिया में ऑस्मियम और रूथेनियम के वाष्पशील ऑक्साइड बनेंगे, जो वाष्पीकृत होकर ठंडे स्थानो में जमा होंगे। इरीडियम नलिका में अप्रभावित रहेगा।

गुणधर्म — इन तत्वों के कुछ भौतिक गुणधर्म निम्नांकित हैं :

संकेत	रूथेनियम Ru	रोडियम Rh	पैलेडियम Pd	ऑस्मियम Os	इरीडियम Ir	प्लैटिनम Pt
परमाणु संख्या	४४	४५	४६	७६	७७	७८
परमाणु भार	१०१·१	१०२·६	१०६·४	१६०·२	१६२·२	१६५·०६
गलनांक डिग्री सें०	२५००	१६६०	१५५२	२७००	२४४३	१७६६
क्वथनांक डिग्री सें०	४६००	४५००	४०००	५५००	५३००	४४१०
घनत्व	१२·४३	१२·५	१२·०	२२·४८	२२·४	२१·४५

इस समूह के तत्वों के गलनांक एवं क्वथनांक उच्च हैं। यह सब तत्व रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस समूह के सारे तत्वो मे उत्प्रेरकता (catalytic activity) का गुण वर्तमान है। प्लैटिनम और पैलेडियम अनेक रासायनिक उद्योगो मे उत्तम उत्प्रेरक सिद्ध हुए हैं।

रूथेनियम — यह श्वेत रंग की कठोर और भंगुर धातु है। इसका चूर्ण मटमैले रंग का होता है, जो ऑक्सीजन में जलकर डाइऑक्साइड (RuO_2) बनाता है। ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में यह निष्क्रिय रहता है और किसी भी अम्ल या अम्लराज से प्रभावित नहीं होता, परंतु वायु की उपस्थिति मे हाइड्रोक्लोरिक अम्ल भी रूथेनियम पर आक्रमण करता है। रूथेनियम का अम्लीय गुण ऊँची संयोजकता मे प्रधान हो जाता है। इसके कारण कॉस्टिक पोटाश और पोटैशियम नाइट्रेट के सगलित मिश्रण द्वारा पोटैशियम रूथेनेट (K_2RuO_4) बनता है। एक अन्य पररूथेनेट ($KRuO_4$) भी ज्ञात है। ऑक्सीजन की उपस्थिति में अम्लराज के प्रभाव से रूथेनियम टेट्राऑक्साइड (RuO_4) बनाया जा सकता है, जो पीले रंग का गलनीय (गलनांक २५.५ सें०) पदार्थ है। १००° सें० पर यह विघटित हो जाता है। रूथेनियम द्वारा अमोनिया साइनाइड, हैलोजन, कार्बन मोनोऑक्साइड आदि से बने अनेक संकर लवण ज्ञात हैं।

रूथेनियम अन्य प्लैटिनम धातुओं को कठोर करने के उपयोग में आता है।

रोडियम — रोडियम श्वेत रंग की तन्य धातु है। गलनांक के लगभग इसकी सतह पर ऑक्सीकरण हो जाता है। सघन धातु पर अम्लों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, परंतु चूर्ण अवस्था में यह सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल और अम्लराज में घुलता है। लाल ताप पर रोडियम ऑक्सीजन से क्रिया कर ऑक्साइड (Rh_2O_3) बनाता है। इसी ताप पर क्लोरीन द्वारा क्लोराइड भी बनता है। पोटैशियम बाइसल्फेट के सगलन द्वारा विलेय रोडियम सल्फेट [$Rh_2(SO_4)_3$] बनता है। रूथेनियम की भाँति रोडियम भी संकीर्ण यौगिक बनाता है।

रोडियम-प्लैटिनम मिश्रधातु द्वारा उच्च गलनांकवाले तार बनाए जाते हैं, जिनका उपयोग भट्ठियों में या उच्चताप तंतुओं (high temperature filaments) में होता है।

पैलेडियम — पैलेडियम, प्लैटिनम की भाँति श्वेत रंग की धातु है, परंतु प्लैटिनम समूह की अन्य धातुओं से कोमल होता है। पैलेडियम में कुछ गैसों (विशेषकर हाइड्रोजन) के अधिधारण (occlusion) का गुण है। चूर्ण अवस्था मे यह अपने आयतन से ७०० गुने से अधिक हाइड्रोजन का अधिधारण कर लेता है। अधिधारित हाइड्रोजन अत्यंत सक्रिय हो जाता है। इस कारण पैलेडियम मे उत्प्रेरक गुण वर्तमान है। पैलेडियम लाल ताप पर ऑक्सीजन के साथ ऑक्साइड (PdO), फ्लुओरीन से फ्लोराइड (PdF_2), क्लोरीन से क्लोराइड ($PdCl_2$) और गंधक से सल्फाइड (PdS) बनाता है।

सांद्र नाइट्रिक अम्ल पैलेडियम को शीघ्र विलीन कर पैलेडियम नाइट्रेट [$Pd(NO_3)_2$] बनाता है। अम्लराज मे पैलेडियम अति सरलता से विलेय होकर क्लोरो पैलेडेट ($PdCl_6''$) आयन बनाता है।

पैलेडियम के अनेक संकर लवण ज्ञात हैं, जिनमे एमीन (amine) समूह [$Pd(NH_3)_4Cl_2$] मुख्य है। डाइमिथाइल ग्लाइऑक्जीम (dimethyl glyoxime) के साथ यह पीले रंग का जटिल अवक्षेप (complex precipitate) बनाता है। यह यौगिक पैलेडियम के विश्लेषण मे उपयोगी है।

पैलेडियम का उपयोग विद्युत् उद्योग में हो रहा है इसके अतिरिक्त दंत मिश्र धातु (dental alloy), निब के अग्रभाग तथा आभूषणो में यह काम आता है। कुछ रासायनिक उद्योगो मे यह उत्प्रेरक का कार्य करता है। पैलेडियम लवण फोटोग्राफी तथा कार्बन मोनोऑक्साइड की पहचान मे भी काम आते है।

ऑस्मियम — ऑस्मियम सबसे गुरु तत्व है। सघन अवस्था में यह हलका नीला श्वेत रंग लिए रहता है, परंतु चूर्ण धातु का रंग गहरा नीला है। यह अत्यंत कठोर, परंतु भंगुर तत्व है। कोई अन्य तत्व ऑस्मियम से उत्तम उत्प्रेरक नहीं है।

ऑस्मियम अत्यंत सरलता से आक्सीजन से क्रिया कर टैट्राऑक्साइड (OsO_4) बनाता है, जो वाष्पशील होता है। इस कारण चूर्ण धातु मे इस ऑक्साइड की गंध सदैव आती रहती है। ऑस्मियम टेट्राऑक्साइड ग्रीज, धूल आदि से अपचयित (reduce) हो डाइऑक्साइड (OsO_2) में परिणत हो जाता है। ऑस्मियम डाइऑक्साइड (OsO_2) काला पदार्थ है, जो वाष्पशील नहीं है। इस कारण ऑस्मियम की नलिका या बोतल की दीवारों तथा ढक्कन पर काली ऑक्साइड सदा जमी रहती है। ऑस्मियम पर अम्लराज की क्रिया द्वारा ऑस्मियम टेट्राऑक्साइड बनता है। सांद्र नाइट्रिक एवं सल्फ्यूरिक अम्ल चूर्ण ऑस्मियम का ऑक्सीकरण कर देते हैं। ऑस्मियम

अमोनिया, हैलोजन तथा अनेक कार्बनिक यौगिकों के साथ द्विगुण लवण तथा संकर लवण बनाता है। ऑस्मियम की मिश्रधातु आभूषणों में, उच्च कोटि की मशीनो के पुर्जों मे तथा निबों के अग्रभाग आदि में काम आती है, क्योंकि यह धातु कठोर एवं संक्षारण प्रतिरोधी होती है।

ऑस्मियम टेट्राऑक्साइड अनेक रासायनिक अभिक्रियाओं मे ऑक्सीकारक एवं उत्प्रेरक का कार्य करता है। जीवविज्ञान मे इसका उपयोग ऊतकों को कठोर बनाने तथा रंगने मे होता है।

इरीडियम — इरीडियम चमकदार श्वेत रंग की अत्यंत कठोर धातु है। सघन अवस्था मे यह अम्लराज मे भी नही घुलता, परंतु चूर्ण धातु अम्लराज में घुलकर क्लोराइड ($IrCl_4$) बनाती है। इरीडियम के ३ तथा ४ संयोजकता के यौगिक मिलते है। इरीडियम मे कुछ अम्लीय गुणप्रधान यौगिक मिलते है, जैसे (K_2IrCl_6) इसके अनेक जटिल यौगिक भी ज्ञात है।

प्लैटिनम को कठोर करने में इरीडियम का मुख्य उपयोग होता है। प्लैटिनम-इरीडियम मिश्रधातु के आदर्श मानक, बाट आदि बनाए जाते हैं। इरीडियम के कुछ यौगिक फोटोग्राफी उद्योग मे काम आते हैं।

प्लैटिनम — प्लैटिनम भूरे-श्वेत रंग की धातु है। विशुद्ध अवस्था में यह घातवर्ध्य तथा तन्य है। चूर्ण अवस्था मे यह हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन का अवशोषण करती है। प्लैटिनम मे उत्तम उत्प्रेरक गुण है। यह आक्सीजन तथा अम्लो से प्रभावित नही होता है। यह केवल अम्लराज मे घुलकर क्लोरोप्लैटिनिक अम्ल (H_2PtCl_6) बनाता है। क्षार पेराक्साइड (alkali peroxide) उच्च ताप पर प्लैटिनम से क्रिया करते हैं। २५०° से० ताप पर इसकी क्लोरीन से प्रतिक्रिया द्वारा प्लैटिनम क्लोराइड ($PtCl_2$) का निर्माण होता है। इसी परिस्थिति मे फ्लोरीन से (PtF_4) बनेगा। उच्च ताप पर गंधक, सिलीनियम और टेल्यूरियम इसपर आक्रमण करते है।

यद्यपि प्लैटिनम अधिकतर तत्वो की तुलना मे निष्क्रिय है, तथापि इसके अनेक यौगिक मिलते है। दो संयोजकतावाले यौगिक प्लैटिनस और चार संयोजकता के प्लैटिनिक कहलाते हैं। प्लैटिनस क्लोराइड ($PtCl_2$) तथा प्लैटिनिक क्लोराइड ($Pt Cl_4$) इसके उदाहरण है। प्लैटिनम के समस्त ऑक्सिजन यौगिक अस्थायी होते हैं।

प्लैटिनम के अनेक सहसंयोजी (co-ordination) यौगिक ज्ञात है, जैसे क्लोरोप्लैटिनस अम्ल (H_2PtCl_4), क्लोरोप्लैटिनिक अम्ल ($H_2Pt Cl_6$)। क्लोरोप्लैटिनिक अम्ल के पोटैशियम लवण ($K_2 Pt Cl_6$) की विलेयता अत्यंत न्यून है। इस कारण यह पोटैशियम विश्लेषण के लिये उत्तम यौगिक सिद्ध हुआ है। बेरियम प्लैटिनोसाइनाइड ($BaPt(CN)_4, 4H_2O$) पीले रंग का चूर्ण है, जिसकी संदीप्ति के गुण के कारण इसे एक्स किरण के परदे (X-ray screens) बनाने के काम मे लाते है। प्लैटिनम अत्यंत उपयोगी धातु है और अनेक वैज्ञानिक तथा औद्योगिक कार्यो मे अपने उच्च गलनांक, न्यून क्रियाशीलता, उत्तम घातवर्ध्यता और तन्यता के कारण काम आता है। इसकी नलिकाएँ, वाल्व, रासायनिक क्रियाओं के उपकरण, विद्युदग्र, तश्तरियाँ, मूषाएँ, बाट आदि वैज्ञानिक कार्यों में प्रति दिन प्रयुक्त होते हैं। उत्प्रेरक के रूप मे प्लैटिनम का उपयोग सल्फ्यूरिक अम्ल उद्योग, अमोनिया से नाइट्रिक अम्ल बनाने में (हाबर विधि), कार्बनिक पदार्थों के हाइड्रोजनीकरण आदि में हो रहा है।

दंतचिकित्सा मे प्लैटिनम बहुत आवश्यक धातु है। इस कार्य के लिये विशुद्ध प्लैटिनम तथा मिश्रधातु दोनों काम आते हैं। अन्य शल्य-चिकित्सा यंत्रों मे भी प्लैटिनम का आवश्यक स्थान है। विद्युत् उद्योगों में प्लैटिनम *यथार्थ प्रतिरोधक (accurate resistance)*, उच्च तापमापी स्विच, वोल्टता नियंत्रक आदि बनाने मे प्रयुक्त हो रहा है।

परंतु समस्त प्लैटिनम की आधी मात्रा आभूषण व्यवसाय में काम आती है। इसको तथा प्लैटिनम-इरीडियम मिश्रधातु को हीरे तथा अन्य रत्नो की जड़ाई के काम मे लाते है। [र० च० क०]

प्लैंटेजनेट (Plantagenet) इंग्लैंड के एक प्रसिद्ध राजवंश का नाम है। इस राजवश ने सन् ११५४ से १३९९ तक राज्य किया। अंजू वंश के जौफरी नामक राजा को यह नाम दिया गया था क्योंकि जौफरी प्लाटाजनिस्टा नाम के फूलों का गुच्छा अपनी टोपी मे लगाया करता था। हेनरी द्वितीय से रिचर्ड तृतीय तक प्लैंटेजनेट राजा कहलाए यद्यपि यार्क के ड्यूक रिचर्ड ने १४६० ई० मे सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग किया था। सन् १४०० मे इस राजवंश की दो शाखाएँ हुईं — एक वंश का नाम लैंकास्टर हुआ और दूसरे वंश का नाम यॉर्क वंश हुआ। इन दोनो वंशो को मिलाकर हेनरी सप्तम ने ट्यूडर वंश की स्थापना की। [शु० ने०]

प्वाइंटर सर एडवर्ड, जान (१८३६-१९१९) अंग्रेजी चित्रकार जिसका जन्म पेरिस मे हुआ। कलासाधना मे जुटे रहकर उसकी बहुमुखी प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं। सज्जाकला मे उसने भित्तिचित्र सज्जा, पच्चीकारी, जड़ाव और रंगीन काच, टाइल और पात्रो पर बारीक चित्रांकन आदि कई किस्म की शिल्पसाधना की। १८८३ मे जलरंगों मे कलाकारो की रायल सोसाइटी मे वह निर्वाचित हुआ। विज्ञान और कला विभाग के संचालक के रूप मे और साउथ केंसिंगटन की राष्ट्रीय कला प्रशिक्षण संस्था मे प्वाइंटर ने स्वयं को एक जबर्दस्त और सफल प्रशासक सिद्ध किया। लंदन की नेशनल गैलरी का वह डायरेक्टर नियुक्त हुआ। वहाँ आकर नेशनल गैलरी के सचित्र 'कैटलाग' का घोर परिश्रम और तल्लीनता से संपादन किया जिसमें संग्रहालय में मौजूद हर कलाकृति को बड़ी ही खूबी से अनुक्रम और चित्रांकित किया गया।

१८९६ में रायल एकेडेमी का वह अध्यक्ष चुना गया और 'नाइट' की उपाधि से संमानित किया गया। १९०२ मे 'बोरोनेट' की विशेष उपाधि प्रदान की गई। कला के माध्यम से चिंतन और प्रौढ़ता के शिखर पर पहुँचकर २६ जुलाई, १९१९ को लंदन में उसकी मृत्यु हुई। [श० रा० गु०]

प्वैंकारे, ऑंरी (Poincare, Henrri; १८५४–१९१२ ई०) — फ्रांसीसी गणितज्ञ का जन्म २९ अप्रैल, १८५४ ई० को नासी में हुआ। १८७९ ई० मे इन्होने पैरिस विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट प्राप्त की। तदुपरात वहीं पहले गणितीय भौतिक शास्त्र और फिर गणितीय खगोल शास्त्र एवं खगोलीय यंत्रविज्ञान के प्रोफेसर रहे। इन्होने गणित, भौतिकी और दर्शन शास्त्र पर अनेक पुस्तकें और

१५०० से भी अधिक शोधपत्र प्रकाशित किए। विज्ञान के दर्शन पर इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें 'ला सियांस ए' लिपोथेस' (La science et l' hypothese) (१६०२ ई०), 'ला वालर द ला सियास' (La Valeur de la science) (१६०५ ई०) और 'सियास ए मेतोद' (Science et me'hode) (१६०८ ई०) हैं, जिनका अनुवाद अनेक भाषाओं मे हो चुका है। शुद्ध गणित की लगभग प्रत्येक शाखा मे इनका कुछ न कुछ योग है, परतु अवकल समीकरणो एवं फलनो के सिद्धात पर इनके आविष्कार और अनुकलों के सिद्धांत में स्वाविष्कृत फुक्सियन (Fuchsian) और थेटा फुक्सियन (theta Fuchsian) फलनो के अनुप्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है। १७ जुलाई, १६१२ ई० को पेरिस मे इनका स्वर्गवास हो गया। [रा० कु०]

प्वेर्टो रीको (Puerto Rico) स्थिति : १८° १० उ० अ० तथा ६६° ३०' प० दे०। यह पश्चिमी द्वीपसमूह का पूर्व में स्थित द्वीप है। इसके उत्तर मे ऐटलैटिक सागर, दक्षिण मे कैरिबिएन सागर, पश्चिम मे मोना पासेज (Monna Passage) तथा पूर्व मे वर्जिन पासेज है। यह लगभग १०० मील लंबा तथा ३५ से ४० मील चौड़ा है। इसका तीन चौथाई भाग पर्वतीय है। तटीय भाग मैदानी तथा नीचा है। यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा ७० इच है। तूफान की पेटी मे आने के कारण जुलाई से अक्टूबर तक तूफान भी आते है। पहले यह संयुक्त राज्य, अमरीका के आधिपत्य मे था, पर १६५२ ई० मे स्वतंत्र हो गया। इसकी जनसख्या २३,८६,५४४ (१६६३) है। यहाँ रोमन कथोलिक धर्म के माननेवाले ज्यादा है। सेनजुआन (जनसख्या ४३,२,३००) इसकी राजधानी है। खनिज कम है तथा इनका उत्खनन भी कम हुआ है। सोना पहाडी क्षेत्र मे निकाला जाता है। थोडी मात्रा में चादी, ताबा, जिप्सम, चूने का पत्थर, केओलिन मिट्टी आदि भी मिलती है। कृषि इस देश की आर्थिक व्यवस्था का आधार है। चीनी, कहवा, तबाकू, दुग्ध से उत्पादित वस्तुओ एव फल तथा सब्जी का उत्पादन अधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ की शराब तथा हस्तकला की चीजे प्रसिद्ध हैं। [रा० ब० सिं०]

फकीर साधारणत. भिखारी, किंतु अरबी मे इसे गनी (संपन्न) के प्रतिकूल समझा जाता है। कुरान की आयत "तुम सब हो फुकरा (फ़कीर का बहुवचन) अल्लाह के, केवल अल्लाह ही गनी है" ने एव हजरत मुहम्मद के कथन "फक्र (दीनता) मेरा गौरव है" ने फकीर के महत्व को इस्लामी साहित्य एव सस्कृति मे अत्यधिक बढा दिया है। उत्कृष्ट सूफी संत अपने लिये 'फ़कीर' का प्रयोग बड़े गौरव से करते थे।

सं० ग्रं० -कुरान, सूरा ३५, आयत १६ [सै० अ० अ० रि०]

फख्रुद्दीन देहलवी, शाह जन्म १७१४ ई० में औरंगाबाद मे हुआ। वे शाह कलीमुल्लाह देहलवी के प्रसिद्ध शिष्य शाह निज़ामुद्दीन के पुत्र थे। शिक्षा दीक्षा के उपरात उन्होने कुछ समय तक शाही सेना मे भी सेवा की किंतु बाद मे दिल्ली पहुँचकर पूरा समय ईश्वर के ध्यान एव शिक्षा दीक्षा मे व्यतीत करने लगे। निज़ामुल अकायद मरजिया, तथा फख्रुल हसन नामक ग्रंथों की रचना की। दीनता, नम्रता एवं सेवाभाव आपके जीवन का लक्ष्य था। आपके प्रभाव से १८वी शती में चिश्तिया निजामिया सिलसिले को दिल्ली मे बड़ी उन्नति प्राप्त हुई। उन्होने जुमे की नमाज़ के खुतबे को हिंदी मे पढ़ने की सलाह दी। हिंदुओ तथा सिखों से भी बड़े प्रेम से मिलते और उन्हें अपने उच्च स्वभाव से प्रभावित करने का प्रयत्न करते थे। ६ मई, १७८५ ई० को उनका देहावसान हुआ और वे ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के मजार के पास दफ़न हुए।

सं० ग्रं० — (फारसी) नूरुद्दीन हुसेनी · फख्रुत्तालेबीन (हस्तलिखित) निजामुलमुल्क मनाकिबे फख्रिया (हस्तलिखित) [सै० अ० अ० रि०]

फड़के, ना० सी० (जन्म १८६४–) कलासम्राट् फडके की शिक्षा पूना मे हुई। ये मेधावी विद्यार्थी थे। १६१७ ई० मे इनका पहला उपन्यास 'अल्ला हो अकबर' प्रकाशित हुआ जो मेरी कॉरेली के 'टेपोरल पावर' उपन्यास के आधार पर रचा गया था। इसी समय इनको दादाभाई नौरोजी की जीवनी लिखने पर बंबई विश्वविद्यालय की ओर से पुरस्कार दिया गया। कलापूर्ण वक्ता होने के कारण इनकी भाषाशैली प्रसादयुक्त है। एम० ए० होते ही ये पूना कालेज मे तर्कशास्त्र के प्राध्यापक बने और इन्होने अंग्रेजी उपन्यास साहित्य का गहरा अध्ययन कर मराठी मे उपन्यासो की रचना करना प्रारंभ किया। इनके अभी तक पचास उपन्यास प्रकाशित हुए और इधर पाँच वर्षों से ये प्रति वर्ष दो उपन्यासो की रचना करते है। इनके ४६ उपन्यासों मे निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय है — जादूगर, दौलत, आशा, प्रवासी, समरभूमि, शाकुतल, झंझावात, उद्धार, शोनान तूफान।

फडके के उपन्यास प्रणयप्रधान एवं कलापूर्ण है। ललित भाषा, युवक युवतियो के मोहक चित्र, प्रेम का सुहावना चित्रण, कथानक का विन्यास और प्रकृति के मनोहर वर्णन से वे ओतप्रोत है। इनमे प्रणयपिपासु, सुखी, विलासी एव सौंदर्यपूर्ण जीवन के आकर्षक चित्र है। लगभग आठ दस उपन्यासो मे भारत के सामयिक राजनीतिक आदोलनो का चित्रण भी किया है। तीन उपन्यासो में नेताजी सुभाषचद्र बोस के पराक्रमों का वर्णन है। यह सब होते हुए भी ये प्रधानतया कलावादी उपन्यासकार है।

इसके अतिरिक्त फडके सफल कहानीकार भी है। अभी तक इनके बीस कहानीसग्रह प्रकाशित हुए है। इसी प्रकार ये निबधकार भी है और सफल जीवनीलेखक भी। इनकी लिखी अभी तक सात जीवनियाँ प्रकाशित हुई है जिनमे दादाभाई नौरोजी, डीवेलरा, लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गाधी की जीवनियाँ विशेष प्रसिद्ध है। इनके १२ प्रबधग्रथ प्रकाशित हुए जिनमे विशेष उल्लेखनीय, प्रतिभा-साधन, वाङ्मयविहार, साहित्य व ससार है। इन्होंने चार समीक्षा ग्रंथ भी लिखे हैं। इन्होंने अपने साहित्यशास्त्रविषयक प्रबधो में 'कला के लिये कला' सिद्धात का तर्कपूर्ण प्रतिपादन किया है।

पश्चिमी साहित्य का मथन कर इन्होंने कला एव सौंदर्यवाद की मराठी मे प्रभावकारी स्थापना की। उपन्यास तथा कहानी की मध्यवर्ती कल्पना, कथानक रचना, पात्र, कथोपकथन रहस्य, योगायोग, उलझन और सुलझाव तथा भाषाशैली इत्यादि पर इन्होंने मौलिक तथा सूक्ष्म विचार प्रकट किए है जो 'प्रतिभा साधन' और 'लघुकथेचे तत्र व मंत्र' दो मौलिक ग्रथों में समाविष्ट है। [भी० गो० दे०]

फतहउल्ला खाँ बहादुर आलमगीरशाही वास्तविक नाम मुहम्मद सादिक। मुगल सम्राट् औरंगजेब के राज्य का एक सरदार। वीरता के लिये इसे फतहउल्ला खाँ की उपाधि मिली। 'सतारा' और 'परली' दुर्गों की विजय में इसका बहुत बडा भाग था। इसके प्रसाद स्वरूप सम्राट् ने इसे उचित पुरस्कार और संमान दिया। परनाला दुर्ग की विजय में इसकी वीरता के लिये बहादुर की पदवी मिली। इसकी वीरता द्वारा जीते जाने के कारण दरदांगढ का नाम सादिकगढ रखा गया। खेलना के युद्ध में इसके सिर और कमर में चोट लगी किंतु शाहजादा बेदारबख्त की सहायता से दुर्ग विजय हो गया और इसे आलमगीरशाही की उपाधि मिली।

कालांतर में काबुल प्रांत के लोहगढ का थानेदार नियुक्त हुआ। बादशाह के राज्य में कुछ दिन जीवित रहने पर इसकी मृत्यु हो गई।

फतहउल्ला शिराजी मीर भारतवर्ष आने के पूर्व ही अपने सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान के लिये प्रसिद्ध था। ईरान के एक लब्धप्रतिष्ठ परिवार से संबंधित था। बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह ने उसे आमंत्रित किया और उसे वकील-ए-मुतलाक (मुख्यमंत्री) के पद पर नियुक्त किया। सुल्तान की मृत्यु हो जाने के पश्चात् अकबर के निमंत्रण पर वह १५८३ ई० में उसके पास चला आया। अकबर उसके पांडित्य से बहुत प्रभावित हुआ और उसे दीवान-ए-सदारत का विभाग सौंप दिया। १५८५ ई० में अमीनुलमुल्क की पदवी के साथ उसे दीवान बना दिया गया जिसका कार्य था राजस्व लेखा का परीक्षण करना तथा चिरकाल के अस्तव्यस्त कार्य को व्यवस्थित करना। वह इस पद पर १५८८ ई० तक कार्य करता रहा। उसी वर्ष कश्मीर में उसकी मृत्यु हो गई।

मीर को ३००० का मनसब प्राप्त था। उसकी बौद्धिक एवं मानसिक विशेषताओं के कारण बादशाह एवं उसके सरदार उसका बडा संमान करते थे। वह आयुर्वेद, गणित, फलित ज्योतिष तथा रसायन विद्या आदि विज्ञान की विविध शाखाओं में अनुपम पांडित्य रखते हुए भी अतीव विनीत था। शिक्षा के प्रसार में उसकी बडी आस्था थी और अवकाश के समय वह अपने सहचर सरदारों के बच्चों को पढाता था। इसके अतिरिक्त उसको एक ऐसे चक्र के आविष्कार का यश प्राप्त है जिसकी गति से अल्प समय में ही १२ तोपों की सफाई की जा सकती थी। उसने एक ऐसे सग्गड का निर्माण किया जिसमें एक आटे की चक्की लगी थी जो सग्गड़ की गति के साथ साथ चलती थी। इसने एक ऐसे दर्पण का भी आविष्कार किया जिसके नजदीक और दूर होने से आकार में वैचित्र्य प्रतीत होता था। अबुलफजल निम्नलिखित शब्दों में उसकी प्रशंसा करता है।

"इसका पांडित्य इतना गंभीर था कि यदि प्राचीन ज्ञान भंडार की पुस्तकें लुप्त भी हो जातीं तो भी वह इसकी चिंता किए बिना ज्ञान नवीन आधार की स्थापना कर सकता था।

सं० ग्रं०—अबुल फजल : अकबरनामा, बेवरिज द्वारा संपादित; अबुल फजल : आइन-ए-अकबरी, सर सैयद अहमद खाँ (दिल्ली) द्वारा संपादित; बदायुनी-मुं तखबुत्तवारीख, खंड २; तारीख-ए-गुल्शन-ए इब्राहीम; निजामुद्दीन, तबकात-ए-अकबरी, खंड २; शाहनवाज खाँ, मआसिरुल उमरा, खंड १; इब्न-ए-हसन, सेंट्रल स्ट्रक्चर ऑव द मुगल एम्पायर; आर० पी० त्रिपाठी : सम ऐस्पेक्ट्स ऑव द मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, इलाहाबाद, १९५६; वी० स्मिथ, अकबर, द ग्रेट मुगल। [इ० हु० सि०]

फतह खाँ मुगल सम्राट् शाहजहाँ के राज्य का एक सरदार। यह मलिक अंबर हब्शी का पुत्र था। पिता की मृत्यु पर निजामशाही का प्रबंधक बनकर फतह खाँ ने मुर्तजा निजामशाह से सारे अधिकार छीन लिए। मुर्तजा ने इसे जुनेर में कारावास में डाल दिया। परंतु यह कारावास से निकल भागा। पकड़े जाने पर यह दौलताबाद में कैद किया गया। परिस्थिति से बाध्य होकर मुर्तजा निजामशाह ने इसे प्रधान मंत्री और सेनापति नियुक्त किया। फतह खाँ ने षड्यंत्र करके १६३८ में मुर्तजा को उन्मत्त घोषित कर पहले कैद में डाल दिया और बाद में उसे मार कर उसके दस वर्षीय पुत्र हुसैन को गद्दी पर आरूढ किया। इसी बीच बीजापुर नरेश आदिलशाह ने दौलताबाद पर अधिकार करने की योजना बनाई। फतह खाँ की अदूरदर्शिता से दौलताबाद दुर्ग आदिलशाह के अधिकार में चला गया। उस समय से इसका मानसिक संतुलन बिगड गया। इसलिये सम्राट् ने कुछ वृत्ति उसे देकर एकांतवास की अनुमति दे दी। यह लाहौर में रहने लगा और वहीं इसकी मृत्यु हुई।

फतेहपुर १ जिला, स्थिति : २५° २६' से २६° १६' उ० अ० तथा ८०° २४' से ८१° २०' पू० दे०। यह दक्षिणी उत्तर प्रदेश में स्थित एक जिला है। इसके पश्चिम में कानपुर, पूर्व में इलाहाबाद, दक्षिण में बाँदा एवं उत्तर में उन्नाव तथा रायबरेली जिले स्थित हैं। इसका कुल क्षेत्रफल १,६२५ वर्ग मील है। इसकी उत्तरी सीमा गंगा और दक्षिणी सीमा यमुना नदी निर्धारित करती है। दोआब के दक्षिण-पूर्वी कोने में स्थित यह एक मैदानी भाग है। यहाँ पर ऊसर भूमि भी पर्याप्त पाई जाती है। गंगा और यमुना के किनारे बहुत खड्ड एवं नाले बन गए हैं जो चारों तरफ बहते हैं तथा भूमि को कृषि के अयोग्य बना देते हैं। पांडु नदी गंगा में तथा नन (Nun) नदी यमुना में गिरती है। यहाँ की जनसंख्या १०,७२,६४० (१९६१) है। जिले के मध्य भाग में कुछ उथली झीलें भी मिलती हैं जो जनवरी, फरवरी तक सूख जाती हैं। यहाँ की मिट्टी में कंकड़ मिलते हैं। महुआ शीशम, नीम, सिरिस, पीपल, इमली, बबूल तथा ढाक के पेड़ पाये जाते हैं। जलवायु उत्तम है तथा पश्चिमी हवाएँ यहाँ पहुँचती हैं लेकिन तेज गति से नहीं। यहाँ वार्षिक वर्षा का औसत ३४ इंच है, तथा प्रति वर्ष की वर्षा में बहुत असमानता रहती है। कृषि में गेहूँ, ज्वार, चना, जौ, धान तथा कपास आदि प्रमुख हैं। खनिजों का यहाँ अभाव है। कपडा बुनना, यहाँ का प्रमुख उद्योग है। बिंदकी प्रमुख व्यापारिक केंद्र है। बाहर से यहाँ धातुएँ, नमक आदि आता है तथा खाद्यान्न, कपास, को बाहर भेजा जाता है। जिले में यातायात का प्रबंध अच्छा है।

२ नगर, स्थिति : २५° ५६' उ० अ० तथा ८०° ५०' पू० दे०। इलाहाबाद से ७३ मील दूर उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित नगर है। यहाँ पर गहनों आदि का काम अधिक होता तथा बाजार भी अच्छा लगता है। यहाँ की जनसंख्या २८३२३ (१९६१) है। यह जिले

के शासन का मुख्य केंद्र है। यहाँ नासिरुद्दीन हैदर का इमामबाड़ा, अकबर के समय की एक मस्जिद, नवाब अब्दुस्समद खाँ का मकबरा, नवाब बाकर अली खाँ की मस्जिद तथा मकबरा प्रसिद्ध इमारतें हैं।

३. स्थिति : २८° उ० अ० तथा ७४° ५८' पू० दे०। इसी नाम का एक नगर राजस्थान के सीकर जिले में भी स्थित है। यहाँ बड़े बड़े धनिकों के मकान हैं। यहाँ की जनसंख्या २७०३६ (१९३१) है।
[र० चं० दु०]

फतेहपुर सिकरी आगरा शहर से २३ मील पर स्थित ऐतिहासिक नगर। सन् १५२७ में यहाँ बाबर से राणा संग्राम का युद्ध हुआ था। १५७० में अकबर ने यहाँ अपनी राजधानी बनाई थी। यहाँ अनेक प्राचीन इमारतें आज भी विद्यमान हैं।

फ़रमान फ़रमान का वास्तविक अर्थ है 'आदेश'। इस शब्द का प्रयोग मुग़ल बादशाहों के हुक्म के लिये होता था। मुगलों के समय में बादशाह के हुक्म को मुंशी लोग कागज पर लिख लेते थे। फिर उसका मसौदा बनाकर उसे साफ लिखकर दीवान के दफ्तर, मीर बख्शी के दफ्तर, वकील के दफ्तर, और खाने सामान के दफ्तरों के दस्तखत होने के लिये भेज दिया करते थे। अंत में मसौदा बादशाह के सामने पेश होता था। बादशाह के इच्छानुसार इसपर या तो "मोहरे उजुक" या "निशाने पंजा" या स्वयं बादशाह का हस्ताक्षर होता था। अकबर का केवल हस्ताक्षर मिलता है। जहांगीर के स्वयं लिखे हुए शेर (पंक्तियाँ) और शाहजहाँ के अपने हाथों से लिखे हुए फ़रमान मिलते हैं।

फ़रमान पर जो मोहर लगती थी, वह पाँच प्रकार की होती थी। फ़रमान के महत्व के मुताबिक ये मोहरें लगाई जाती थीं। इनमें से कुछ चौकोर थी, कुछ गोल और कुछ तिकोनी। जो फ़रमान साधारण रूप से तनख्वाहों, मनसबों (पद संबंधी) और दूसरे कामों के लिये जारी किए जाते थे उनको "फ़रमाने सबती" कहते थे। साधारण फरमानों को "फरमाने ब्याजी" की संज्ञा दी जाती थी। बहुत ही साधारण फरमान जिनपर शाही मोहर की आवश्यकता न होती, उनको "खाने सामान" और "मुशरिफ़े दीवान" की मोहर से जारी किया जाता था और "पर्वाना" के नाम से पुकारा जाता था।

फ़रमान को दोहरा मोड़ दिया जाता था और उसपर एक फीता लपेटकर मोहर लगा दी जाती थी। फ़रमानों को उनके महत्वानुसार अलग अलग अफसरों के सुपुर्द किया जाता था जो उनको निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचाते थे। जिन फ़रमानों की बातों को गुप्त रखना आवश्यक होता, उनको इस प्रकार लपेटा जाता कि कोई पढ़ न सके। इसकी लिखाई किसी जिम्मेदार आदमी के सुपुर्द होती। ऐसे फ़रमान किसी विशेष दूत के हाथ सुरक्षित रूप से भेजे जाते थे।
[मु० अ० अ० अ०]

फ़रिश्ता का असली और पूरा नाम "अबुल कासिम, हिंदु शाह" था। उसका जन्म ९६० हिजरी अर्थात् १५५२-५३ ईसवी में हुआ। उसका पिता, जिसका नाम गुलाम अली था, ईरान से हिंदुस्तान आया और अहमदनगर में बस गया। अहमदनगर दरबार में उसको नौकरी भी मिल गई। वह शाही गारद का कप्तान नियुक्त हुआ। मुरतजा निजामशाह की हत्या के बाद वह अहमदनगर छोड़कर बीजापुर चला गया। यहाँ भी उसे एक महत्वपूर्ण पद प्राप्त हुआ। इब्राहीम आदिल शाह ने अपनी इच्छा प्रकट की कि वह इतिहास लिखे। इस प्रकार उसने इस हुक्म पर "गुलजारे इब्राहीमी"- नामक इतिहास संबंधी पुस्तक लिखी जो १०१५ हिजरी अर्थात् १६०६-१६०७ ई० में समाप्त हुई। इसमें दक्षिण के राज्यों का इतिहास है। इस पुस्तक में वह दूसरे स्थानों के बादशाहों का भी वर्णन करता है। ब्रिग्स (Briggs) ने इस पुस्तक का अनुवाद चार जिल्दों में अंग्रेजी भाषा में किया है।
[मु० अ० अ० अं०]

फरीद (प्रथम) दे० 'फरीदुद्दीन मसऊद गंजे शकर'।

२ फरीद सानी या द्वितीय (१४५०, ५७२ ई०) का असली नाम दीवान इब्राहीम साहब फिबरा था। शेख फरीद, सलीम फरीद, शाह ब्रह्म आदि इनके उपाधि नाम थे। ये गुरुनानक के समकालीन और फरीद शकरगंज की शिष्यपरंपरा में १२वीं पीढ़ी में हुए हैं। मैकलिफ दि सिक्ख रिलिजन, भाग ६, पृ० ३५६-३५७ के अनुसार 'आदि ग्रंथ' में संगृहीत ४ पद और १३० सलोक इन्हीं फरीद सानी के हैं। वर्तमान सिक्ख इतिहासकार पंजाबी साहित्य को अधिक प्राचीन सिद्ध करने के लिये इन्हें फरीद प्रथम की वाणी मानते हैं। कुछ का कहना है कि भाषा और शैली की विभिन्नता से दोनों फरीद की वाणी को अलग अलग पहचाना जा सकता है। जो हो, फरीद के नाम से जो वाणी उपलब्ध है, उसका अपना साहित्यिक महत्व है। कविता सहज और स्वाभाविक है, भाषा ठेठ और सरल है, रूपक घरेलू वातावरण से लिए गए हैं, । छंद अवश्य शिथिल हैं, किंतु उनका संगीत मधुर और प्रभावोत्पादक है। फरीद इस्लामी शरअ के पाबंद रहते हुए भी उदार मानववादी फकीर थे।

सं० ग्रं०—सलोक फ़रीद, खालसा ट्रैक्ट सोसायटी, अमृतसर सलोक, फरीद, सं० मुंशी जैशीराम, इसरार औलिया (में बचन), सं० हजरत बदर दीवान, पाक पट्टन, राहत-उल-कलूब सं० हजरत निजामुद्दीन, दिल्ली।
[हु० दे० बा०]

फरीद कोट १. तहसील, यह पंजाब के भटिंडा जिले में एक तहसील है जिसका क्षेत्रफल ५६२ वर्गमील तथा जनसंख्या २,४२,१०७ (१९६१) थी। यहाँ का धरातल, जो पश्चिम में बालुकामय तथा पूर्व में अधिक उपजाऊ है, समतल है। यहाँ सरहिंद नहर से सिंचाई की सुविधा है।

२. नगर, स्थिति : ३०° ४०' उ० अ० तथा ७४° ४९' पू० दे०। यह उपर्युक्त तहसील में फिरोजपुर से २० मील दक्षिण, रेलमार्ग के किनारे स्थित नगर है। यहाँ पर मंज राजपूत राजा मोकुल्सी द्वारा ७५० वर्ष पूर्व निर्मित एक किला है। यह नगर प्रसिद्ध अनाज की मंडी तथा व्यापारिक केंद्र है। नगर की जनसंख्या २६,७३५ (१९६१) थी।
[सु० चं० श०]

फरीदपुर १. जिला, स्थिति : २२° ५१' से २३° ५५' उ० अ० ८९° १९' से ९०° ३७' पू० दे०। पूर्वी पाकिस्तान का एक जिला है।

पद्मा नदी के किनारे स्थित फरीदपुर नगर जिले का प्रमुख नगर है। इसका नाम फरीद शाह के नाम पर रखा गया है। अधिक वर्षा के कारण यहाँ दलदल रहते हैं। इसका क्षेत्रफल २,८२१ वर्ग मील है। प्रधान उपज धान है। गंगा (पद्मा) नदी यातायात का मुख्य साधन है। अप्रैल से सितंबर का औसत ताप २८° सें० से लेकर जनवरी का कम से कम ताप ११° सें० तक तथा वार्षिक वर्षा का औसत ६६ इंच रहता है।

२. नगर, स्थिति : २८° १३' उ० अ० तथा ७९° ३३' पू० दे०। भारत में उत्तर प्रदेश राज्य के बरेली जिले का एक नगर है जो दिल्ली से बरेली जानेवाले मार्ग पर स्थित है। नगर की स्थापना एक कठेरिया राजपूत ने की थी, बाद में शेख फरीद के नाम पर इसका नामकरण हुआ। फरीद ने रुहेला शासन के समय यहाँ एक किला बनवाया था। इसकी जनसंख्या १३,२७८ (१९६१) है।

[र० चं० दु०]

फरीदाबाद स्थिति : २८° २५' उ० अ० तथा ७७° २५' पू० दे०। वह भारत में पंजाब राज्य के गुड़गाँव जिले में दिल्ली से १६ मील दूर स्थित नगर है। इस नगर की स्थापना सन् १६०७ में जहाँगीर के कोषाध्यक्ष शेख फरीद ने दिल्ली से आगरा जानेवाले मार्ग की रक्षा के लिए की थी। नगरपालिका की स्थापना सन् १८६७ में की गई। यहाँ शिक्षा के लिये भी प्रबंध किया गया है तथा अस्पताल आदि की भी सुविधा है। यहाँ एक बड़ी औद्योगिक बस्ती बसाई गई है जिसमें मोटर टायर, पुस्तक प्रकाशन आदि के कई बड़े बड़े कारखाने स्थापित किये गये हैं।

[सु० च० श०]

फरीदुद्दीन अत्तार फरीदुद्दीन अबू हमीद मुहम्मद बिन इब्राहीम अत्तार (गधी) के नाम से लोकप्रसिद्ध थे। जन्म नीशापुर में स्थित कोकन (कदुकन) नामक ग्राम में ५१३ हि० (१११९ ई०) में हुआ था। उनकी जीवनी के संबंध में जो थोड़ी सी सामग्री मिलती है उससे विदित होता है कि उन्होंने १३ वर्ष मशहद्र में तथा ३९ वर्ष महान् सूफियों की गद्य और पद्य रचनाओं को संगृहीत करने में बिताए थे। वह संगीतप्रेमी और ईश्वरभक्त थे। वह फारसी में कविता भी करते थे। मौलाना जामी के मतानुसार फरीदुद्दीन अत्तार की मस्नवियों और गजलों में एकेश्वरवाद संबंधी जिन रहस्यों और भक्ति के संकेत मिलते है वैसे समकालीन किसी सूफी कवि के यहाँ उपलब्ध नहीं हैं। वह महान् लेखक थे। अपने कथनानुसार उन्होंने ४० रचनाएँ कीं जिनमें २०२,०६० शेर हैं। गद्य की रचनाओं में तजकिरतुल औलिया है जिसमे सूफियों की जीवनियाँ हैं। यह पुस्तक बहुत महत्वपूर्ण है। निकलसन ने संपादित कर इसे प्रकाशित कर दिया है। इसी प्रकार उनका पद्यसंग्रह भी अन्य भाषाओं मे अनूदित हो चुका है। फ्रांसीसी भाषा में 'पदनामा को सील्व स्टिर देसे ने अनूदित करके १८१९ में प्रकाशित किया। मंतिक-अल-तैर को गार्सां द तासी ने १८५७ में संपादित करके फ्रांसीसी में अनूदित किया। उनका 'कुल्लियात' (काव्यसंग्रह) लखनऊ से प्रकाशित हुआ। मंगोलो के हाथों उनकी हत्या हुई। उनके देहावसान की तिथि के संबंध में लेखकों मे मतभेद पाया जाता है। कहते हैं, मृत्यु के समय उनकी अवस्था ११४ वर्ष की थी।

सं० ग्रं० : दौलतशाह समरकंदी, तजकिरत-उल शोहरा (संपादित, ब्रौन १५७); मौलाना अब्दुर्रहमान जामी, नफहातुल, इंस (नवलकिशोर) ५४०-५४१, दारा शिकोह, सफीनतुल औलिया (उर्दू अनुवाद, करांची, १९६१) २२६; मौलाना गुलाम सर्वर, खजीनतुल असफिया (नवलकिशोर १३२० २,२६२-६३ सईद नफीसी जुस्तुजू दर अहवाल व अस्तरी फरीदुद्दीन अत्तारी नीशापूरी (तहरान, १३२०) Encyclopaedia of Islam (New edition, 1960) १, ७५२ व ७५५ अ ब्रौन—A Literary History of Persia (London 1928) २,५८१

[मु० उ०]

फरीदुद्दीन मसऊद गंजे शकर, शेख अथवा बाबा फरीद का जन्म ११७५ ई० के लगभग पंजाब में हुआ। उनका वंशगत संबंध काबुल के बादशाह फर्रुखशाह से था। १८ वर्ष की अवस्था में वे मुल्तान पहुंचे और वहीं ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के संपर्क मे आए और चिश्ती सिलसिले मे दीक्षा प्राप्त की। गुरु के साथ ही मुल्तान से देहली पहुँचे और ईश्वर के ध्यान मे समय व्यतीत करने लगे। गुरु के आदेशानुसार कई दिन के निरंतर रोजे के उपरांत भूख से व्याकुल होकर रोजा खोलते समय कुछ कंकड़ मुँह मे रख लिए जो तुरंत शकर बन गए। गुरु ने यह सुनकर शुभकामना की कि शकर की भाँति तेरी वाणी मीठी हो जायगी। गंजे (चीनी की खान) उपाधि का यही कारण है। देहली में शिक्षा दीक्षा पूरी करने के उपरांत बाबा फरीद ने १९-२० वर्ष तक हिसार जिले के हाँसी नामक कस्बे में निवास किया। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की मृत्यु के उपरांत उनके खलीफा नियुक्त हुए किंतु राजधानी का जीवन उनके शांत स्वभाव के अनुकूल न था अतः कुछ ही दिनों के पश्चात् वे पहले हाँसी, फिर खोतवाल और तदनंतर दीपालपुर से कोई २८ मील दक्षिण पश्चिम की ओर एकांत स्थान अजोधन (पाक पटन) मे निवास करने लगे। अपने जीवन के अंत तक वे यहीं रहे। अजोधन में निर्मित फरीद की समाधि हिंदुस्तान और खुरासान का पवित्र तीर्थस्थल है। यहाँ मुहर्रम की ५ तारीख को उनकी मृत्यु तिथि की स्मृति में एक मेला लगता है। वर्धा जिले मे भी एक पहाड़ी जगह गिरड़ पर उनके नाम पर मेला लगता है।

वे योगियों के संपर्क में भी आए और संभवतः उनसे स्थानीय भाषा मे विचारों का आदान प्रदान होता था। कहा जाता है कि बाबा ने अपने चेलों के लिये हिंदी में जिक्र (जाप) का भी अनुवाद किया। सियरुल औलिया के लेखक अमीर खुर्द ने बाबा द्वारा रचित मुल्तानी भाषा के एक दोहे का भी उल्लेख किया है। ग्रंथ साहब मे शेख फरीद के ११२ 'सलोक' उद्धृत हैं। यद्यपि विषय वही है जिनपर बाबा प्रायः वार्तालाप किया करते थे, तथापि वे बाबा फरीद के किसी चेले की, जो बाबा नानक के संपर्क मे आया, रचना ज्ञात होते हैं। इसी प्रकार फवाउदुस्सालेकीन, असरारुल औलिया एवं राहतुल कुलूब नामक ग्रंथ भी बाबा फरीद की रचना नहीं। बाबा फरीद के शिष्यों में निजामुद्दीन औलिया को अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई। वास्तव में बाबा फरीद के

आध्यात्मिक एवं नैतिक प्रभाव के कारण उनके समकालीनों को इस्लाम के समझाने में बड़ी सुविधा हुई। उनका देहावसान १२६५ ई० में हुआ।

सं० ग्रं०—(फारसी) अमीर हसन सिजज़ी . फुवाएदुल फुआद (लखनऊ, १८८४), सैयिद मुहम्मद बिन मुबारक किरमानी. अमीर खुर्द . सियरुल औलिया (देहली, १८८५), शेख अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी अख्बारुल अख्यारा (देहली, १८९१) [सै० अ० अ० रि०)

फ़र्ग्युसन, जेम्स (१८०८–१८६) डॉ० विलियम फर्ग्युसन के पुत्र जेम्स का जन्म २२ फरवरी, १८०८ को स्कॉटलैंड के आयर नामक स्थान मे हुआ था। इनके पिता सैनिक शल्यचिकित्सक थे। २७ वर्ष की उम्र में नील व्यापार के संबंध मे यह भारत आए और १० वर्ष तक इस व्यापार में लगे रहे। इस काल में इन्हे इतनी आय हो गई थी कि यह चैन से अपना जीवन निर्वाह कर सकते थे। किंतु फिर व्यापार में कुछ घाटा हुआ और जेम्स को अपना कारोबार बंद करना पडा। १८३५–४२ के बीच इन्होंने भारत के विभिन्न प्राचीन स्थानों का भ्रमण किया और भारतीय वास्तुकला के अध्ययन मे उनकी रुचि बढी।

१८४५ मे फर्ग्युसन भारत छोडकर चले गए और वहाँ व्यवसाय के अतिरिक्त उनका गहन अध्ययन आरंभ हुआ। १८४० मे वे रॉयल एशियाटिक सोसायटी के सदस्य बने तथा बाद मे उपसभापति। व्यवसाय हेतु १८५६–५८ के काल मे यह क्रिस्टल पैलेस कंपनी के प्रधान सचिव थे। १८५७ मे इग्लैंड के राजकीय सुरक्षा कमीशन की सदस्यता इन्हें प्राप्त हुई और १८६९ ई० मे निर्माण विभाग के आयुक्त बने। इस पद पर रहकर इन्होने प्राचीन इमारतों का पूर्णतया निरीक्षण किया। अपने ४० वर्ष के अध्ययन तथा निरीक्षण के फलस्वरूप इन्होंने विश्व की स्थापत्यकला और उसके इतिहास संबधी गवेषणात्मक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने अपने भारतीय तथा पूर्वी क्षेत्र के स्थापत्य अध्ययन के प्राक्कथन मे लिखा कि उनके निष्कर्ष अवशेषों को स्वय देखने और क्रमात्मक रूप मे प्रस्तुत करने पर आधारित हैं। १८६७ में उनका 'हिस्ट्री ऑव इडियन ऐड ईस्टर्न आर्किटेक्चर' प्रकाशित हुआ। इसमें अपने विचारों की पुष्टि के लिये उन्होने बहुत से चित्र दिए है। लगभग ३००० चित्रो का पूर्णतया अध्ययन कर उन स्थानो को देखकर, तथा विभिन्न कलाकृतियों की समानता दिखाते हुए उन्होने यह ग्रंथ लिखा जिसके तीन प्रकाशन हो चुके हैं। कालक्रम यह पुरातत्व तथा स्थापत्य का अद्वितीय ग्रंथ था। 'केव टेपुल्स' युग मे नामक दूसरा बडा ग्रथ हैं। फर्ग्युसन ने प्राचीन भारतीय विचारधाराओं को निश्चित रूप देकर उनका गूढ अध्ययन किया। उनका 'ट्री ऐड सर्पेट वर्शिप (वृक्ष तथा नाग पूजा) भी अद्वितीय ग्रथ है। इसमे इस धार्मिक जन विचारधारा का प्रवाह विश्व के विभिन्न कोनों और देशों मे खोजा गया है। स्थापत्य कला पर जिन अन्य ग्रंथों की उन्होने रचना की उनमे निम्न उल्लेखनीय है— 'ए हैंडबुक ऑव आर्किटेक्चर,' 'ए हिस्ट्री ऑव मॉडर्न स्टाइल्स ऑव आर्किटेक्चर', 'ए हिस्ट्री ऑव आर्किटेक्चर इन ऑल कट्रीज' इत्यादि। इंसाइक्लोपीडिया, ऑव रिलिजन ऐड एथिक्स' में भी इनके कई लेख प्रकाशित है, जिनमें मुख्यतया 'आव अजंता' आर्किटेक्चर ऑव टेंपुल्स; फतहपुर सिकरी, मथुरा, जगन्नाथ, जामा मस्जिद, कुतुब मीनार, कांचीपुरम्, तंजोर इत्यादि हैं।

अपने अध्ययन तथा भारतीय कला के अन्वेषण के आधार पर इंग्लैड के इस्टीच्यूट ऑव ब्रिटिश आर्किटेक्ट्स की ओर से फर्ग्युसन को स्वर्णपदक देकर संमानित किया गया। जनवरी ९, १८८६ मे ७८ वर्ष की उम्र में इनका लंदन में देहात हो गया।

स० ग्रं० — डिक्शनरी ऑव इडियन बायोग्राफी। [बै० पु०]

फर्डिनंड प्रथम (जन्म १८६५; मृत्यु १९२७ ई०) रुमानिया का राजा। २४ अगस्त, १८६५ को सिगमैरिंजन (प्रशा) मे जन्म हुआ। यह हाहेनजॉलर्न के प्रिंस लियोपोल्ड का द्वितीय पुत्र था। १८८९ में यह रुमानिया के राजसिंहासन का उत्तराधिकारी बनाया गया। एडिनबरा के डयूक की पुत्री और रानी विक्टोरिया की नतिनी सुंदरी राजकुमारी मेरी से जून, १८९३ में इसका विवाह हुआ।

फर्डिनंड ने अपने को रुमानियन घोषित किया। बाल्कन युद्ध (१९१३) में रूमानियन सेनापति रहा। सेना का पुनर्गठन किया। ११ अक्टूबर, १९१४ को विधिवत राज्याभिषेक हुआ। राष्ट्रीय एकता की रक्षा के लिये जर्मनी के विरुद्ध १९१६ मे युद्ध की घोषणा की। महायुद्ध में पराजित हुआ। मोल्डाविया मे शरण ली और लडाई जारी रखी। मारासेस्टी मे जर्मनों का दृढ प्रतिरोध किया। ७ मई, १९१८ को शांति संधि हुई। बेसरबिया, बुकोविना और ट्रांसिल्वेनिया रुमानिया को मिले। राजपरिवार मोल्डाविया से फिर लौट आया और १५ अक्टूबर, १९२२ को फर्डिनंड का पुन राज्याभिषेक किया गया।

उसने अनेक शासनसुधार किए। बालिग मताधिकार जारी किया। बडी बड़ी जागीरे भंग की। अपनी जायदाद अपने 'किसान सिपाहियो को दे दी। सेना का आधुनिकीकरण किया। रुमानियन यहूदियो को नागरिकता के अधिकार दिए। १९२५ मे अपने पुत्र केरोल को गद्दी के अधिकार से वचित किया और छह साल के अपने पोते माइकेल को अपना वारिस चुना। १९२७ मे २० जुलाई को इसका देहात हो गया।

फर्डिनंड प्रथम महान् — (जन्म, लगभग १००० और मृत्यु, १०६५ ई०) कैस्टील और लेओन (स्पेन) का राजा सांचो ३य का दूसरा पुत्र। १०२८ मे कैस्टील पर प्रभुत्व स्थापित किया। माता के उत्तराधिकारी होने से १०३५ मे राजा बना। स्वतंत्र राज्य स्थापित होने के दो साल बाद पत्नी सांचा के अधिकार से लेओन का राजा बना। पत्नी के भाई बरमूडो को लडाई मे हराया और मारा, और अपने बडे भाई के मरने पर १०५४ मे राज्य का बडा भाग अपने राज्य मे मिला लिया। मूरो के विरुद्ध लडाई लडी। टोलेडो, जारागोजा और सेविल के सामतो ने अधीनता स्वीकार की। १०५६ मे इसने सम्राट् की उपाधि धारण की। स्पेन का यह पहला राजा था जिसने यह पद ग्रहण किया। पोप विक्टर द्वितीय और सम्राट् हेनरी चतुर्थ के विरोध की इसने परवाह न की। होली (पवित्र) रोमन साम्राज्य से स्पेन के पृथक् रहने से स्पेनिश जनता प्रसन्न हुई। १०६५ मे फर्डिनंड मरा और उसका राज्य उसके तीनों पुत्रो मे विभक्त हो गया। दयालुता के लिये यह स्पेन के राजाओ मे प्रसिद्ध है।

फर्डिनंड द्वितीय — लेओंन (स्पेन) का राजा। अल्फोजो सप्तम का कनिष्ठ पुत्र। ११५७ ई० मे गद्दी पर बैठा। मूरो से निरतर संघर्ष करता रहा। पुर्तगाल के राजा को हराया। सन् ११८८ ई० मे इसका देहात हुआ।

फर्डिनंड तृतीय 'संत' — [जन्म, लगभग १२००; मृत्यु, १२५२ ई०] कैस्टीलव लेओंन (स्पेन का राजा। सन् १२१७ ई० मे कैस्टील के राजा हेनरी के देहात के बाद वहाँ का राज्य इसे मिला। पिता अल्फोंजो नवम की मृत्यु (११३१) पर लेओंन का भी राजा बना। मूरो से युद्ध किए। यूवेडा पर अधिकार (१२३४) कर, कोरडोवा (१२३६), जोन (१२४६), और सेविल (१२४८) विजय किए। सेविल को अपनी राजधानी बनाया। लैटिन-गॉथिक विधि का फोरम जूडिकम (फ्यूएरो जुजगो) नाम से संग्रह और संहिताकरण किया। सालमंका विश्वविद्यालय की स्थापना की।

फर्डिनंड चतुर्थ — (जन्म, १२८५; मृत्यु, १३१२ ई०) : १२९५ मे अपने पिता सॉको चतुर्थ के देहात के बाद कैस्टील और लेओंन का राजा। मूरो के साथ लड़ाई की तैयारी के समय अपने तबू मे ही इसका देहात हुआ।

फर्डिनंड प्रथम — [न्यार्या (जस्ट)] जन्म, १३७३; मृत्यु, १४१६ ई०) यह १४१२ से १४१६ तक ऐरागॉन का राजा था।

फर्डिनंड पंचम — कैस्टील (स्पेन) का, और द्वितीय, ऐरागॉन का राजा। जन्म, १४५२ ई० मे, और मृत्यु, १५१६ ई० मे। 'कैथोलिक' उपनाम मे प्रसिद्ध यह जॉन द्वितीय का लडका था। १७ साल की उम्र मे कैस्टील की ईसाबेला से विवाह हुआ। इस विवाह संबध से सयुक्त स्पेन राज्य का निर्माण सभव हुआ। ऐरागॉन, कैटालोनिया और वालेशिया का फर्डिनड राजा था ही; ईसाबेला के भाई, हेनरी चतुर्थ के मरने पर १४७४ में ईसाबेला और फर्डिनड रानी और राजा घोषित किए गए। पतिपत्नी ने मिलकर संयुक्त रूप से राज्य किया। १४७९ मे पिता के मरने पर ऐरागान मिल गया और यूरोप मे स्पेन की शक्ति बढी।

फर्डिनड ने सरदारो को वश मे किया, न्याय का पुन सगठन किया, यातायात व सचार मे उन्नति की। रानी ईसाबेला की कैथोलिको से सहानुभूति थी। अत यहूदी राज्य से निकाल दिए गए। मूरो की भी यही गति हुई। खेती बहुत कुछ मूरो पर निर्भर थी और व्यापार यहूदियो पर। इस धार्मिक नीति के कारण इन दोनो को हानि पहुंची, यद्यपि तत्काल अनुभव नही हुआ। 'ग्रानडा' मूरो का स्पेन में अतिम राज्य शेष रह गया था। १४९२ मे फर्डिनड ने इसको विजय कर स्पेन से मूरो के राज्य का अत कर दिया। १५०३ ई० मे इसने नेपल्स पर अधिकार कर लिया था। १५०८ ई० मे कैब्राई सघ मे सम्मिलित हुआ। १५१२ मे स्पेनिश नवार (Navarre) भी उसने अधिकृत कर लिया। सरदारो के दुर्ग को नष्ट कर शासन का केंद्रीयकरण किया। न्याय तथा शासनव्यवस्था में सुधार किए। पोप सिक्सटस चतुर्थ के निर्देश से १४७८ ई० मे धार्मिक न्यायालय की स्थापना की गई। यहूदियो को बाध्य होकर धर्मपरिवर्तन करना पड़ा। मुसलमानो के सामने एक ही विकल्प था; इस्लाम छोडो या देश छोडो।

फर्डिनड का नाम एक और कारण से भी अविस्मरणीय रहेगा। पत्नी के आग्रह से १४९२ मे कोलबस को नई दुनिया की खोज के लिये भेजा गया। इसने स्पेनिश अमरीकी राज्य की नीव डाली। इसका राज्य पाइरेनीज पर्वतमाला से जिब्राल्टर तक फैल गया। अपने बच्चों की शादियो द्वारा आस पास के राजाओ को मित्र बनाया।

फर्डिनंड षष्ठ—(जन्म, १७१३, मृत्यु, १७५९ ई०) स्पेन का राजा 'एलसैबियो' (विद्वान्) के नाम से प्रसिद्ध, फिलिप पचम का द्वितीय पुत्र। पुर्तगाल की राजकुमारी बारबारा (ब्रगाजा की) से सन् १७२९ ई० मे विवाह हुआ। १७४६ ई० मे राज्यसिहासन पर बैठा। ऐला शापेल की सधि पर १७४८ मे हस्ताक्षर किए।

इसके मत्री ज्ञानी और विद्वान् थे। साहित्य, कला व सस्कृति का पुनरुज्जीवन किया। सन् १७४४ मे ललित कला अकादमी की स्थापना की। शातिप्रिय था। आस्ट्रियन उत्तराधिकार की लड़ाई में शाति कराई। इंगलैंड और फ्रास के अनुरोध करने पर भी सप्तवर्षीय युद्ध से तटस्थ रहा। १७५८ मे इसकी पत्नी का देहात हुआ। इसके बाद से यह बीमार रहने लगा और फिर कभी रोगमुक्त नही हुआ।

फर्डिनंड सप्तम—(जन्म १७८४, मृत्यु १८३३ ई०) स्पेन का राजा। चार्ल्स चतुर्थ तथा मेरिया लुई पर्मा का ज्येष्ठ पुत्र। पिता के राजगद्दी त्यागने पर १९ मार्च १८०८ मे स्पेन का राजा घोषित किया गया। कुछ समय बाद नेपोलियन बोनापार्ट प्रथम ने स्पेन पर आक्रमण किया और इसे सन् १८१३ ई० तक कैद मे रखा। १८१४ मे यह स्पेन लौटा।

प्रायद्वीपी युद्ध की समाप्ति पर यह पुन गद्दी पर बैठा और लोकतंत्रीय ढाँचा कायम रखने का झूठा वचन दिया। यह निर्बल प्रकृति का क्रूर और निरकुश राजा था। स्पेनिश अमरीका हाथ से खो दिया। सैनिक शासन देश मे जारी किया। मरने से तीन मास पहले अपनी ज्येष्ठ पुत्री ईसाबेला द्वितीय को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

फर्डिनंड प्रथम (जन्म, १५०३), मृत्यु, १५६४ ई०। जर्मन सम्राट् व होली रोमन सम्राट। फिलिप प्रथम का पुत्र और सम्राट् चार्ल्स पचम का भाई। सन् १५२१ ई० मे इसने बोहीमिया और हगरी के राजा की पुत्री अन्ना से विवाह किया और अपने स्याल लुई के मरने पर १५२६ मे बोहीमिया और हगरी का राजा बना। १५३८ मे जर्मनो ने भी इसको अपना राजा स्वीकार किया। आस्ट्रिया की रक्षा के लिये इसने तुर्कों से युद्ध किया। तुर्क नरेश सुलेमान द्वितीय से १५४१ मे सधि कर धार्मिक विवादो का निर्णय किया, और बोहीमिया और हगरी की गद्दी के दावेदार अपने प्रतियोगी जोन जापोलिया की शक्ति भी तोड दी। चार्ल्स पचम के बाद होली रोमन सम्राट् कहलाया (१५५६)।

प्रोटेस्टेंटो के प्रति इसकी नीति उदार थी। इसने चर्च मे सुधार करने का यत्न किया पर विफल रहा। चर्च के दोनो भागों मे एकता स्थापित करने का भी प्रयत्न किया। फिलिप द्वितीय की वसीयत से स्पेनिश हैप्सबर्ग का भी राजा हुआ और इस रीति से स्पेनिश अमरीका का भी राजा माना गया। ऑस्ट्रियन हैप्सबर्ग का भी यह प्रमुख हो गया। इसके बाद स्पेन का हैप्सबर्ग वंश, आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग राजवंश से सर्वथा पृथक हो गया। आस्ट्रिया के शासन मे आंतरिक सुधार किए।

फर्डिनंड द्वितीय—(जन्म, १५७८; मृत्यु, १६३७ ई०) रोमन सम्राट् । लर्मव सम्राट् फर्डिनंड प्रथम का पौत्र । प्रोटेस्टेंटो का कट्टर विरोधी था क्योंकि इसकी शिक्षा जेसुइट शिक्षकों द्वारा हुई थी ।

इसका पिता स्टीरिया का आर्कड्यूक चार्ल्स १५९० में मरा, १५९६ में यह स्टीरिया कैरिंथिया और कार्नियोला का शासक बना । १६१७ में बोहीमिया का और १६१८ में हंगरी का राजा बना। प्रोटेस्टेंटो की दमन की नीति के कारण बोहीमिया में विद्रोह हो गया । उन्होंने फर्डिनंड को राजगद्दी से हटाने और उसकी जगह फ्रेडरिक प्रथम को चुनने की घोषणा की । यूरोप में तीस वर्षीय युद्ध शुरू होने का एक कारण यह हुआ । २८ अगस्त, १६१९ को फ्रांकफर्ट में फर्डिनंड होली रोमन सम्राट् चुना गया।

बवेरिया के ड्यूक मैक्सिमिलियन प्रथम की सहायता से इसने कैथोलिक लीग से मैत्री की और इसकी सहायता से फ्रेडरिक को बोहीमिया से निकाल देने में समर्थ हुआ । इसके बाद प्रोटेस्टेंटो का अंत करने का बीड़ा उठाया । १६२४ में फरमान निकाला कि कैथोलिक पादरी के सिवाय और किसी से पूजा न कराई जाय । १६२८ में बोहीमिया से सब प्रोटेस्टेंट पादरी निकाल दिए गए। चर्च से १५५२ के बाद जो जमीनें छीनी गई थीं वे सब उनको वापिस कर दी गईं । आस्ट्रिया में विद्रोह का दमन किया ।

बवेरिया की सहायता से प्रतिक्रांति का समर्थन किया । तीसवर्षीय युद्ध में स्वीडिश गुस्टावस एडाल्फस इसकी सफलता में बाधक हुआ । फर्डिनंड की सहमति से प्राग-शान्ति-सन्धि (१६३५) पर हस्ताक्षर हुए । प्रोटेस्टेंटो को कुचलने में यह सर्वथा विफल रहा । फ्रांस के इस युद्ध में हस्तक्षेप करने के कारण इसकी विजय पाने की आशा जाती रही ।

फर्डिनंड तृतीय (जन्म, १६०८, मृत्यु १६५७ ई०) होली (पवित्र) रोमन सम्राट् । सम्राट् फर्डिनंड द्वितीय का ज्येष्ठ पुत्र । तीसवर्षीय युद्ध में भाग लिया । इसकी शिक्षा भी पिता के समान जेसुइट लोगों की देख रेख में हुई थी । प्रोटेस्टेंटो को धार्मिक स्वतंत्रता देने का विरोधी था ।

फरवरी, १६३७ में पिता के मरने पर राज्यसिंहासन पर बैठा । उससे पहले १६२५ में हंगरी का और १६२७ में बोहीमिया का राजा बन चुका था । १६३४ में वालस्टीन की हत्या हो जाने पर विशाल साम्राज्य की सेना का सेनापति होने का मनोरथ भी इसका पूर्ण हो गया ।

१६३९ में जर्मनों का राजा चुना गया । वेस्टफेलियासंधि (१६४८) से लड़ाई बंद हुई । इटली में फ्रासीसियो से लड़ने के लिये अपनी सेना भेजी । १६५७ में पोलैंड से संधि की । यह विद्वान् और गीतों का रचयिता था ।

फर्डिनंड चतुर्थ—(जन्म, १७५१, मृत्यु १८२५ ई०) नेपल्स का राजा (दो सिसिलियो का प्रथम तथा सिसिली का तृतीय) । स्पेन नरेश चार्ल्स तृतीय का तीसरा लड़का । १७६८ में सम्राज्ञी मैरिया थेरेसा की पुत्री मैरिया कैरोलिना से विवाह । यह पत्नी-भक्त राजा था । १७५९ से १८०६ और १८१५ से १८२५ तक नेपल्स पर, और १७५९-१८२६ तक, फिर १८१६ से १८२५ तक, सिसिली पर राज्य किया । १८०६ से १८१५ तक नेपल्स पर नेपोलियन बोनापार्ट प्रथम के भाई जोसेफ बोनापार्ट ने शासन किया ।

फर्डिनंड को नेपोलिन प्रथम के समय फ्रासीसियो से लड़ना पड़ा और नेपल्स और सिसिली कई बार छोड़ना पड़ा । १७९९ ई० में पार्थेनोपियन (Parthenopean) गणतंत्र की स्थापना की गई थी । नेपोलियन प्रथम ने इसको भी जीता और अपने भाई जोसेफ बोनापार्ट को सौंप दिया (१८०६ ई०) । विएना कांग्रेस ने जोसेफ बोनापार्ट को नेपल्स का राजा मान लिया था । किंतु आस्ट्रिया ने विएना कांग्रेस के निर्णय की अवहेलना की और अपनी सेना इटली भेजी । फ्रेंच सेना हारी । फर्डिनंड ने पुन. अपना खोया राज्य पाया । किंतु जनता को दिया हुआ वचन भंग किया । गणतंत्र की जगह निरंकुश राजतंत्र की स्थापना की । यह निरंकुश और अत्याचारी राजा था । शासन वस्तुत इसकी पत्नी करती थी ।

फर्डिनंड द्वितीय—(जन्म, १८१०; मृत्यु, १८५९ ई०) "बॉम्बा" नाम से प्रसिद्ध दो सिसिलियों का राजा । फ्रांसिस प्रथम का पुत्र । अयोग्य, निकम्मा, क्रूर था । सार्डिनिया के राजा एमैन्युएल प्रथम की कन्या क्रिस्टिना से १८३२ में विवाह किया और आस्ट्रिया के आर्कड्यूक चार्ल्स की लड़की मेरिया थेरेसा से १८३६ में । १८३० में गद्दी पर बैठा । कुछ वैधानिक सुधार किए परंतु यह ज्यादा दिन नहीं टिके । इसकी मान्यता थी कि उसकी इच्छा ही कानून है । विद्रोह हुए, क्रूरता से कुचल दिए गए । अपने ही राज्य के शहरों में बमवर्षा करने में संकोच नहीं किया । इस कारण इसका नाम ही बॉम्बा पड़ गया ।

फर्डिनंड तृतीय—(जन्म, १७६९; मृत्यु, १८२४ ई०) टस्कनी का ग्रांड ड्यूक । सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय का कनिष्ठ पुत्र । पिता की सुधार की नीति को जारी रखा ।

फ्रेंच गणतंत्र को स्वीकार करने के बाद पहली पराजय मिली । फ्लोरेंस पर फ्रेंचो का १७९९ में अधिकार हो गया । किंतु इसी साल पुनः इसको सिंहासन मिल गया । लुनेविले की संधि (१८०१) के अनुसार टस्कनी एट्रूरिया के राज्य में बदल गया । १८१४ में पुन. गद्दी पर बैठा । १८१५ में कुछ समय के लिए गद्दी छोड़नी पड़ी किंतु वाटरलू की लड़ाई के बाद टस्कनी में उसका शासन निर्विघ्न रहा ।

फर्डिनंड प्रथम—(जन्म १८६१; मृत्यु १९४८ ई०), बल्गेरिया का राजा बना १८८७ में । १९०८ में इसने बल्गेरिया को स्वतंत्र घोषित किया ।

यह अत्यंत बुद्धिमान और नीतिनिपुण शासक था । जर्मनों का पक्षपाती होते हुए भी इसने रूस के जार की सहानुभूति प्राप्त की । इसने १९१२ के बाल्कन युद्ध में भाग लिया ।

सर्बिया, ग्रीस, मॉटीनीग्रो और बल्गेरिया को मिलाकर इसने पहला बाल्कन संघ बनाया और तुर्की को पराजित किया किन्तु, विजय की लूट में कम भाग मिलने से ग्रीस और सर्बिया असंतुष्ट रहे । फलतः दूसरा बाल्कन युद्ध प्रारंभ हुआ और इसमें रूमानिया भी सम्मिलित हुआ । बल्गेरिया अकेला ही रहा । १० अगस्त १९१३ की बुखारेस्ट की संधि से बल्गेरिया ने वह सब खो दिया, जो उसने

तुर्की से लड़ाई करके पाया था। बल्गेरिया के राष्ट्रवादी इससे बहुत असंतुष्ट और निराश हुए। प्रतिरोध की भावना उनमे जाग गई।

प्रथम महायुद्ध छिड़ने पर बल्गेरिया पहले तटस्थ रहा। परतु, ४ अक्टूबर, १९१५ को बुखारेस्ट संधि के प्रतिशोध के लिये जर्मन आस्ट्रिया की ओर से लड़ने को मैदान मे आया। मैसीडोनिया और थ्रेस मे विजयी रहा, पर सितंबर, १९१८ मे इसकी सेना हार गई और विरामसधि हुई। ४ अक्टूबर, १९१८ को इसने अपने पुत्र बोरिख के पक्ष मे सिहासन त्याग दिया और कोबर्ग (जर्मनी) मे शरण ली। वही इसका देहात हुआ।

फर्डिनंड प्रथम—(जन्म, १७९३; मृत्यु, १८७५ ई०) आस्ट्रिया का सम्राट्, हगरी का भी राजा (१८३०-१८४५)। फ्रांसिस प्रथम और नेपल्स की मेरिया थेरेसा का ज्येष्ठ पुत्र। बचपन से इसको मृगी के दौरे आते थे और इसका जीवन इस रोग से लड़ते हुए ही बीता

१८३५ मे यह सिहासन पर बैठा, पिता की नीति जारी रखी। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ प्रिंस मेटरनिक इसका प्रधान मंत्री था। छोटे-मोटे अनेक शासनसुधार किए पर जनता को सतोष नही हुआ। १८४८ मे विएना मे भी यूरोप के अन्य स्थानो के समान क्राति की ज्वाला भड़की। फलत: दिसंबर, १८४८ मे सिहासन त्यागने को बाध्य हुआ। फ्रासिस जोसेफ को राज्य देकर यह प्राग चला गया और वही शेष जीवन विताया।

फर्डिनंड प्रथम—(जन्म, १४२३; मृत्यु १४९४ ई०) १४५८ मे नेपल्स का राजा बना। १४६० मे विद्रोहियों द्वारा हराया गया। १४६४ मे पुन. राजसत्ता स्थापित की। १४८० मे तुर्कों से परास्त हुआ किंतु १४८१ मे इसके पुत्र अल्फांसो ने उनपर विजय प्राप्त की। १४८५ मे एक राजविद्रोह दबाया और अपने वचन के विरुद्ध विद्रोहियों का धोखे से वध करा दिया।

फर्डिनंड द्वितीय—(जन्म, १४६९, मृत्यु, १४९६ ई०) फर्डिनड प्रथम का पोता। फ्रांस के चार्ल्स अष्टम से युद्ध करना पड़ा। स्पेनीय सेनानायक कार्डोवा की सहायता से विजय प्राप्त की किंतु थोड़े ही काल तक शासन कर पाया।

फर्डिनंड प्रथम—(जन्म, १३४५; मृत्यु, १३८३ ई०) पुर्तगाल का राजा। अपने पिता पेड्रो के देहात के बाद १३६९ मे केस्टील की गद्दी का एक दावेदार यह भी हुआ। १३७० से १३८२ तक ट्रास्टामारा के हेनरी के साथ लडाई चली जो इसके लिये अत्यंत घातक ठहरी। १३८३ की संधि से लडाई बंद हुई, किंतु उसके बाद यह अधिक नही जिया।

फर्डिनंड द्वितीय—(जन्म, १८१६; मृत्यु, १८८५ ई०) पुर्तगाल का नाम मात्र का राजा। १८३६ मे इसका विवाह पुर्तगाल की रानी से हुआ। रानी की मृत्यु के बाद १८५३ से १८५५ तक यह रीजेंट रहा। १८६९ मे एक अमरीकी महिला से विवाह किया। यह कलाकार भी था।

फर्डिनंड—(जन्म, १५७७; मृत्यु, १६५० ई०) कोलोन का एलेक्टर। बवेरिया के ड्यूक विलियम पचम का पुत्र। यह अपने बड़े भाई बवेरिया के ड्यूक मैक्सिमिलियन प्रथम का समर्थक और प्रोटेस्टेंटों के विरुद्ध उत्तरी जर्मनी मे लड़ाई जारी रखने का पक्षपाती था। तीस वर्षीय युद्ध (१६१९-१६४८) मे भाग लिया। लीज के नागरिकों ने विद्रोह किया। वेस्टफालिया की संधि के कारण उसको अपनी सारी शक्ति विद्रोह को कुचलने मे लगाने का अवसर मिल गया और इसने नागरिको के अनेक विशेषाधिकार छीन लिए।

[अ० कु० वि०]

फर्रुखसियर औरगजेब के पौत्र तथा अजीमुश्शान के पुत्र फर्रुखसियर का मुगल सिहासनारोहण, जहाँदारशाह को आगरा के निकट घमासान युद्ध मे पराजित करने के उपरात, १० जनवरी, १७१३ को हुआ। जुल्फिकार खाँ जैसे सामतो को फाँसी देकर तथा अपने भाई हुमायूँ बख्त और अन्य राजकुमारो को अधा कर उसने अपने राज्याभिषेक पर कलक लगाया। फर्रुखसियर अपने राजपद के लिये सैयद अब्दुल्ला खान और सैयद हुसेन अली खान का विशेष रूप से आभारी था, इसलिये उसने उन्हे ऊँचे मनसब और उपाधियाँ प्रदान करके वजीर और मीर बख्शी बनाया।

किंतु फर्रुखसियर ने सैयद भाइयो को जहाँदारशाह के साथ होनेवाले युद्ध मे साधन बनाकर अब उनके स्थानों पर अपने आदमियो को नियुक्त करना चाहा। यह सघर्ष भयंकर विद्रोह के रूप मे गभीर होता गया और इसके परिणामस्वरूप १७१९ मे वह सैयद बधुओ द्वारा पदच्युत करके अधा बना दिया गया। उसने लगभग सात वर्षों तक शासन किया और ३६ वर्ष की उम्र में उसकी मृत्यु हो गई। उसके शासन के प्रथम वर्ष मे जजिया समाप्त कर दिया गया यद्यपि खालसा के दीवान इनायतुल्लाह के सुझाव पर १७१७ मे पुन. लगा दिया गया। अत मे यह रफीउदरजात द्वारा रोक दिया गया। इस काल मे राजपूत राजाओ से मेलकर उन्हे उच्च पद दिए गए। दिसबर, १७१४ मे जोधपुर के राजा अजीत सिंह को गुजरात का गवर्नर नियुक्त किया। ७ नवबर, १७१९ को उन्हे अजमेर का सूबा मिला। फरवरी, १७१३ मे अबर के राजा जयसिंह को मालवा की सूबेदारी दी गई। उन्होने चूडामन जाट के विरुद्ध एक अभियान का नेतृत्व किया तथा उन्हें मुगल सरकार के साथ सधि करने को विवश किया। बुंदेलों का प्रधान छत्रसाल मुगल सरकार के प्रति स्वामिभक्त था। बहादुरशाह की सेना में वह सिक्खों के विरुद्ध लड़ चुका था। १० मई, १७१२ को पलसूद मे राजा जयसिंह के साथ मिलकर उसने मराठो को बुरी तरह पराजित किया। इस सैनिक सेवा के कारण उसे ६०००-४००० का मनसब प्राप्त हुआ। सिक्खों के विद्रोह ने बहादुर शाह की मृत्यु के पश्चात् उग्र रूप धारण कर लिया था। वह फर्रुखसियर के शासन मे समाप्त किया गया। उनके नेता को तथा अन्य सिक्खो को पकड़कर मार डाला गया। सबसे अधिक महत्वपूर्ण वह सधि थी जिसे हुसेन अली खाँ ने राजा साहू से सम्राट् के विरुद्ध उनका समर्थन प्राप्त करने के लिये की थी। इसकी शर्तों के अनुसार मराठों को दक्षिण मे छह सूबो मे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने की आज्ञा प्रदान की गई। इसके बदले में मराठो ने १६ हजार सैनिकों के साथ सम्राट् की सेवा करना तथा दस लाख रुपया उपहार के रूप मे देना स्वीकार किया था। तथापि फर्रुखसियर ने इस सधि का समर्थन नही किया। इस काल मे औरगजेब द्वारा बिना समाधान के छोड़ी गई अनेक महत्वपूर्ण राजनीतिक समस्याओं का समाधान किया गया तो भी केंद्रीय शक्ति को क्षति पहुँची और शासन व्यवस्था में शिथिलता फैल गई। सैयद अब्दुल्ला खाँ ने खालसा महालो मे भी इजारदारी का आरंभ

कर दिया। लगान वसूली का कार्य सरकारी अधिकारियों के स्थान पर सबसे ऊँची बोली बोलने वालों को दिया गया। यह प्रथा भूमिपतियों और उन सभी मध्यवर्तियों के लिये जिनका भूमि पर कुछ स्वामित्व था, विनाशकारिणी सिद्ध हुई। मनसबदारों को आर्थिक कठिनाइयाँ उठानी पड़ी।

जुलाई, १७१७ में जान सरमन के नेतृत्व में अंग्रेजी दूतावास ने फर्रुखसियर से एक फरमान प्राप्त किया जिसके अनुसार अंग्रेजों को प्रचलित प्रथानुसार तीन हजार रुपये वार्षिक देकर बंगाल में बिना करके आयात और निर्यात व्यापार करने का अधिकार मिला।

सं० ग्रं० — १ खफी खान — मुंतखबुललुबाब; २ कामराज बिन नयन सिंह — इबरत नामा; ३ शिवदास-शाहनामा मुनव्वर क्लाँ, ४ हादीखान कमवार — तज़किरात-उस-सलातीन चगतई; ५ मिर्ज़ा मुहम्मद — इबरत नामा; ६. याह्याखान — तज़किरातुलमुल्क, — ८. रघुबीर सिंह — मालवा इन ट्राजीशन ९ सतीशचंद्र — पार्टी पालिटिक्स ऐट द मुगल कोर्ट; १० सरदेसाई — ए न्यू हिस्ट्री आव द मराठा, भाग प्रथम। [ज० म०]

फर्रुखाबाद १ **जिला**, स्थिति : २६° ४६′ से २७° ४३′ उ० अ० तथा ७९° ८′ से ८०° १′ पू० दे०। यह उत्तर प्रदेश में मध्य तथा कुछ पश्चिम की ओर स्थित जिला है। इसके उत्तर में शाहजहाँपुर एवं हरदोई, दक्षिण में इटावा एवं मैनपुरी, पूर्व में कानपुर तथा पश्चिम में एटा और बदायूँ जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल १,७४५ वर्ग मील तथा जनसंख्या १२,६५,०७१ (१९६१) है। इस जिले में गंगा, काली, ईसान तथा अरिंद आदि नदियाँ बहती है। दोआब के मध्य में स्थित होने के कारण जिले की मिट्टी जलोढ है। उत्तरी भाग बागर है। यहाँ छोटी छोटी कई झीलें है तथा यहाँ की मिट्टी कंकड एवं रेह मिश्रित है। जलवायु शुष्क तथा दोआब में सबसे अधिक स्वास्थ्यप्रद है। जिले का औसत ताप जनवरी में १५° सें० तथा जून में ३५° सें० रहता है एवं वार्षिक वर्षा का औसत लगभग ३३ इंच है। कृषिगत उपजों में गेहूँ, जौ, ज्वार, चना, धान, मक्का, अरहर, बाजरा तथा कपास आदि है। खरबूजों की कृषि विशेष रूप से की जाती है। नहरों की अपेक्षा कूओं से सिंचाई अधिक होती है। यहाँ से शोरा बनाकर बाहर भेजा जाता है। फर्रुखाबाद तथा कन्नौज में कपडे की छपाई का काम अधिक होता है। जरी का काम तथा धातु के बरतन बनाने का काम भी होता है। कन्नौज में इत्र बनाने का उद्योग विकसित है। छपे सूती कपड़े, सुगंधित द्रव्य, धातु के बरतन जिले के बाहर भेजे जाते है। कन्नौज यहाँ का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है।

२ **नगर**, स्थिति : २७° २४′ उ० अ० तथा ७९° ३४′ पू० दे०। उपर्युक्त जिले में उत्तर की ओर, कानपुर से ८७ मील पश्चिम, गंगा के किनारे स्थित नगर है। फतेहगढ तथा फर्रुखाबाद की एक संमिलित नगरपालिका है। फतेहगढ में बंदूक का कारखाना है तथा कपड़े की छपाई, सुनहला गोटा, बरतन तथा तंबू बनाए जाते है। मुसलमानों की संख्या यहाँ अधिक है। इस नगर की स्थापना १७१४ ई० में नवाब मुहम्मद खाँ ने की थी, बाद में मुगल बादशाह फर्रुखसियर के नाम पर इसका नाम पडा। यहाँ नवाब के महल एवं मकबरे के खंडहर है। नगर की जनसंख्या ९४,५४१ (१९६१) है।

फर्श भवन का एक मुख्य अंग है। अच्छे फर्श से भवन की शोभा ही नहीं बढती वरन् उसे आसानी से साफ सुथरा रखा जा सकता है।

फर्श कई प्रकार के होते है तथा इनके निर्माण के मूल्य में भी बहुत अंतर होता है, जैसे कच्चे फर्श और संगमरमर के फर्श के निर्माण-मूल्य में। निम्नलिखित प्रकार के फर्श भारत में अधिकतर उपयोग में आते हैं :

(१) सीमेंट कंक्रीट के फर्श, जिनमें सीमेंट टाइल तथा मोज़ैइक के फर्श भी शामिल है।

(२) काचित टाइल (glazed tiles) के फर्श,

(३) पत्थर के फर्श,

(४) संगमरमर के फर्श,

(५) लकड़ी के फर्श तथा

(६) ईंट और चूने की मिट्टी के फर्श।

फर्श भूमि से थोड़ी ऊँचाई पर, अर्थात् भवन की कुरसी की ऊँचाई पर, बनाए जाते है, जिससे भूमि की नमी से तथा वर्षा में पानी से बचाव हो। कुरसी में मिट्टी की भराई खूब ठोस होनी चाहिए, जिससे बाद में यह मिट्टी बोझ पाकर धँस न जाय, नहीं तो फर्श टूट जाएगा तथा उसमें दरारें पड जाएँगी।

सीमेंट कंक्रीट का फर्श — इस प्रकार के फर्श सबसे अधिक प्रचलित है तथा सुंदर, चिकने और स्वच्छ होते हैं तथा आसानी से धोए जा सकते है। रंगीन सीमेंट तथा काली और सफेद संगमरमर की बजरी डालकर मोज़ैइक या टराजो (Mosaic or Terrazo) फर्श बनते है। रंग तथा विभिन्न तरह की बजरी के संमिश्रण से बड़े सुंदर तथा कई अभिकल्प के फर्श बनाए जा सकते है, जिनपर पॉलिश कर देने से खूब चिकनाई तथा चमक आ जाती है। आजकल अच्छे मकानों में इस तरह के फर्श का उपयोग बहुत बढ गया है।

सीमेंट का फर्श अधिकतर १ इंच से १½ इंच तक मोटा होता है और इसके नीचे ३ इंच मोटी तह चूने की मिट्टी की दी जाती है, जिसे दुरमुट इत्यादि से भली भांति कूटकर ठोस कर देना चाहिए। चूने की मिट्टी के नीचे भी अगर बालू या राख (cinder) की ६ इंच मोटी तह बिछा दी जाय, तो यह नमी को रोकने में काफी सहायक होती है। जहाँ सीलन का बहुत भय हो वहा सीमेंट में उचित मात्रा में पडलो (Pudlo), चीको (Checko), अथवा अन्य नमी रोकनेवाले पेटेंट मसालों का प्रयोग किया जा सकता है।

सीमेंट का फर्श पूरे कमरे में एक साथ न डालकर लगभग ४ फुट × ४ फुट की पटियों के रूप में डालने से कंक्रीट सूखने के समय फर्श के फटने का भय नहीं रहता।

सीमेंट कंक्रीट का पानी जब सूखता है, तब कंक्रीट थोडा सा सिकुडता है, जिससे जगह जगह फर्श के फट जाने की आशंका रहती है। अगर चार पाँच फुट पर फर्श में जोड़ (joints) दे दिए जायँ, तो इन जोड़ों में थोडी सी झिरी बढ जाएगी और टेढ़ी मेढ़ी दरारें नहीं पड़ेगी।

फर्श को फटने से बचाने के लिये कंक्रीट की पकाई (curing)

बहुत आवश्यक है। फर्श डालने के कुछ घंटे के बाद छोटी छोटी मेड़ें बनाकर फर्श के ऊपर पानी भर कर, कम से कम ८-१० दिन तक पकाई करनी चाहिए। अगर संभव हो तो पकाई १५ दिन तक करते रहना चाहिए।

फर्श में जो जोड बनाए जाते हैं, उनके बीच $\frac{1}{16}$ से $\frac{1}{8}$ इंच मोटी ऐल्यूमिनियम या एबोनाइट की पट्टी फर्श की मोटाई के बराबर लगा देने से जोड बहुत साफ और सीधे बनते हैं।

मोज़ैइक या टराज़ो के फर्श के बनाने में, चूने की गिट्टी की तीन इंच मोटी तह के ऊपर $\frac{3}{4}$ इंच या $1\frac{1}{4}$ इंच मोटी सीमेंट कंक्रीट की तह डालनी चाहिए, इसके ऊपर $\frac{1}{4}$ इंच से $\frac{1}{2}$ इंच मोटी १ ३ सीमेंट तथा संगमरमर की बजरी की मिलावट के मसाले की तह समतल रूप से बिछाई जाती है। तीन दिन बाद फर्श की रगड़ाई कार्बोरंडम (carbo-rundum) पत्थर की बटिया से की जाती है। घिसाई पूरी हो जाने के बाद बारीक कार्बोरंडम की बटिया से रगडकर पालिश की जाती है। रंगीन फर्श के लिये बने बनाए रंगीन सीमेंट बाजार में मिलते हैं।

सीमेंट की टाइल बहुत सी फैक्ट्रियाँ बनाती हैं। यह अधिकतर ८ इंच × ८ इंच होती है। चूने की गिट्टीवाले फर्श पर टाइलों को सीमेंट के मसाले द्वारा जड़ दिया जाता है। फिर रगड़ाई और पालिश उसी प्रकार होती है, जैसे मोज़ैइक के फर्श पर।

काचित टाइल का फर्श — पोर्सिलेन (porcelain) मिट्टी को तेज आँच की भट्ठी में पकाकर फिर उसपर विशेष रासायनिक क्रिया द्वारा ग्लेज करने से इस प्रकार के टाइल बनते हैं। ये सफेद अथवा रंगीन अभिकल्प के भी होते हैं। सफेद टाइल अधिकतर स्नानागार इत्यादि में लगाए जाते हैं। मोज़ैइक का उपयोग बढ़ने से इस प्रकार के टाइलों का उपयोग कम होता जा रहा है।

संगमरमर के फर्श — संगमरमर प्राचीन काल से फर्श के लिये उपयोग में आ रहा है। मुख्यत मुगल काल में फर्श तथा भवननिर्माण में इसका प्रयोग बहुत होने लगा था। इटली में भी इसका प्रयोग काफी मात्रा में हुआ है।

संगमरमर की चौड़ी चौड़ी पटियों को विभिन्न नापों में तराश-कर, जमीन में चूने या सीमेंट की गिट्टी के ऊपर जडकर, फर्श बनाया जाता है। काले तथा सफेद संगमरमर की पट्टियाँ एक के बाद एक जडकर, बडे सुंदर नमूने के शतरंजी फर्श बनाए जाते हैं। बड़े बडे महल, मूल्यवान् भवन तथा अस्पतालों के शल्यकक्षों में संगमरमर का विशेषकर उपयोग किया जाता है।

पत्थर का फर्श — बलुआ पत्थर (sandstone), ग्रैनाइट (granite) तथा स्लेट (slate) का उपयोग फर्श बनाने के लिये किया जाता है। बलुआ पत्थर का मुख्य उदाहरण आगरे का लाल पत्थर है जो आगरे, दिल्ली इत्यादि के किलों में मुगलकाल में, प्रचुर मात्रा में इस्तेमाल किया गया। इसपर अच्छा पॉलिश नहीं हो सकता। भारत के दक्षिणी प्रदेशों में ग्रैनाइट खूब मिलता है। यह बहुत कठोर पत्थर है तथा इसको तराशना कठिन और महँगा भी है। यदि ग्रैनाइट पर पॉलिश किया जाय तो यह खूब चिकना तथा चमकदार बनाया जा सकता है। ग्रैनाइट चितकबरा तथा भिन्न भिन्न रंगों का होता है। अत दक्षिण भारत में अच्छे फर्श के लिये इसका उपयोग करते हैं। ग्रैनाइट की मजबूती तथा कठोरता के कारण भारी कारखानों में भी इसका उपयोग करते हैं, जहाँ सीमेंट इत्यादि के फर्श बहुत टिकाऊ नहीं होते। शाहाबादी पत्थर के चौके का फर्श भी काफी प्रसिद्ध है।

ईंट तथा चूने की गिट्टी का फर्श — ईंट का प्रयोग सस्ता फर्श बनाने के लिये किया जाता है। ईंट की पट या खड़ी जुडाई की जाती है। ईंट का फर्श सीमेंट की तरह चिकना तथा समतल और साफ नहीं होता है, पर काफी सस्ता होता है।

चूने की गिट्टी का फर्श पहले बहुत बनता था, पर जैसे जैसे सीमेंट का उपयोग बढ़ता गया, चूने की गिट्टी का फर्श बनना कम होता गया। यह सीमेंट के फर्श की तरह चिकना तथा कड़ा नहीं होता और पानी भी काफी सोख सकता है, अत इसके फटने का भय कम होता है। इसलिये प्राय. इसका उपयोग खुली छत पर फर्श डालने के लिये किया जाता है।

लकड़ी का फर्श — लकड़ी के पटरों या तख्तों को लकड़ी की धरन या लोहे के गर्डर पर जडकर लकडी का फर्श बनाया जाता है। ऐसे फर्श अधिकतर पहाड पर, या ऐसी जगहों पर बनाए जाते हैं जहाँ लकडी सस्ती और अधिक मिलती है। लकडी का फर्श सीमेंट या पत्थर इत्यादि के फर्श की तरह ठंढा नहीं होता, अत इसका उपयोग शीतप्रधान इलाके में प्रचुरता से होता है। ऐसे स्थान पर ठंढी जलवायु के कारण लकडी जल्दी सडती भी नहीं।

लकडी के फर्श के लिये यह आवश्यक है कि उसके नीचे मिट्टी न भरी हो, नहीं तो सीलन से लकडी शीघ्र ही सड जाएगी। धरन के नीचे की जमीन खाली रखी जाती है, जिससे सूखी हवा का संवातन (ventilation) हो सके। लकडी को रदा करके, वार्निश या मोम का पालिश कर देने से लकडी के फर्श की आयु, सुंदरता तथा सफाई बढ जाती है।

पारकेट फर्श (parquet flooring) लकडी के ही फर्श की एक किस्म है, जो बहुत सुंदर लगती है। नाचघरों में लकडी के फर्श के नीचे लोहे के स्प्रिंग लगाकर फर्श को थोडा लचकदार बनाया जाता है। इस प्रकार के फर्श भी काफी महँगे पडते है।

कच्चे फर्श — गाँवों में जहाँ कच्चे मकान बनते हैं, अधिकांश फर्श भी कच्चे ही, अर्थात् मिट्टी के, होते हैं। कच्चे फर्श के बनाने में चिकनी मिट्टी, भूसा तथा गोबर का उपयोग किया जाता है।

कारखानों में फर्श — कारखानों के फर्श मामूली भवन के फर्श की अपेक्षा मजबूत बनाने पडते हैं। आवश्कतानुसार सीमेंट कंक्रीट की तह को कम से कम $1\frac{1}{2}$ इंच से ३ इंच तक मोटा रखना पडता है। जहाँ फर्श पर बहुत भारी बोझ पडे या भारी लोहे के पहियों की गाडियाँ चलें, वहाँ ग्रैनाइट के ब्लॉकों (block) का उपयोग भी किया जाता है, यद्यपि इनपर गाडी के चलने से खडखडाहट तथा शोर बहुत बढ जाता है तथा फर्श की अच्छी सफाई भी नहीं हो पाती। जहाँ अधिक शोर हो वहाँ बिटूमेन (bitumen) का फर्श भी बनाया जा सकता है।

कुछ स्थानों में लिनोलियम का उपयोग भी फर्श के लिये किया जाता है, जैसे रसोई, गैलरी अथवा अन्य स्थानों में। इसके उपयोग से आवाज भी कम होती है। हमारे देश में रेलगाडियों के डिब्बों के फर्श बनाने में अधिकतर लिनोलियम का ही उपयोग होता है। [का० प्र०]

फलन (Function) शब्द का गणित में अर्थ वह व्यंजक (expression), नियम अथवा विधि आदेश (rule) है जिसके अनुसार एक चर (variable) द्वारा, जिसे स्वतंत्र चर (independent variable or argument of the function) कहते है, ग्रहण किए हुए प्रत्येक मान के संगत एक दूसरे चर के, जिसे परतंत्र (dependent) चर कहते है, एक या अधिक मान मिल जाते हैं। उदाहरणत, $2x^2-3x+1$ तथा sin x^3 स्वतंत्र चर x के फलन हैं। x के एक फलन की यह कहकर भी परिभाषा दी जा सकती है कि यदि x परिमेय (rational) है, तो फलन का मान शून्य है और यदि x अपरिमेय है तो फलन का मान १ है। स्वतंत्र चर द्वारा ग्रहण किए हुए मानसमुदाय को फलन का प्रभावक्षेत्र (domain) और परतत्र चर के सगत मानसमुदाय को परास (range) कहते है। यदि प्रभावक्षेत्र के प्रत्येक मान के संगत परास का केवल एक ही मान हो, तो फलन को एकमान (one valued) कहते हैं; किंतु यदि प्रभावक्षेत्र के कुछ या सभी मानो मे से प्रत्येक के संगत परास के एक से अधिक मान हो, तो फलन को बहुमान फलन कहते है। आधुनिक शुद्ध गणित मे फलन की परिभाषा मे केवल एकमान फलनो का ही समावेश होता है जो इस प्रकार है : दो समुदायो अथवा समुच्चयों (sets) A और B पर विचार कीजिए। A से B पर फलन f जिसे f A→B लिखते है वह सबध है, जिसके अनुसार सबंध का प्रभावक्षेत्र सपूर्ण समुच्चय A है और A के एक या अधिक सदस्यो (या अवयवों) के सगत B का एक अद्वितीय सदस्य होता है। A से B का सबध R, जिसे A R B लिखते हैं A और B के कार्तीय गुणनफल का जिसे A×B लिखते है, एक उपसमुच्चय (subset) है। कार्तीय गुणनफल A×B उन सभी क्रमित युग्मो (ordered pair) (a, b) का समुच्चय है, जिसमे a, A का सदस्य है और b, B का सदस्य है। प्रतीक f (x) का प्रयोग B के उस सदस्य को सूचित करने के लिये किया जाता है जो A के सदस्य x का संगत है। इस प्रकार A के एक से अधिक सदस्यों का प्रतिबिंब (image) B का का एक ही सदस्य हो सकता है, किंतु ऐसा विलोमत नही होता, अर्थात् B के कई एक सदस्यों का प्रतिबिंब A का केवल एक सदस्य नही होता। प्रतिबिंब समुच्चय को, जो स्पष्टत B का उपसमुच्चय है, फलन का परास कहते है।

मैपिग और सगतता शब्द भी फलन के समानार्थी हैं। A से B पर मैपिग f तब ऑन्टू (onto) कहलाता है जब B का प्रत्येक सदस्य A के किसी एक अथवा कुछ सदस्यों का प्रतिबिब हो और उसे $f : A \xrightarrow{\text{ऑन्टू}} B$ लिखते है। A से B पर मैपिग f यदि ऑन्टू न हो तो उसे इन्टू कहते हैं और $f : A \xrightarrow{\text{इंटू}} B$ लिखते हैं। A से B पर मैपिग f को एक एक ऑन्टू तब कहते हैं जब A के प्रत्येक सदस्य का B में प्रतिबिब हो तथा B का प्रत्येक सदस्य A के किसी सदस्य का प्रतिबिंब हो और इसे $f : A \xrightarrow[\text{ऑन्टू}]{1\cdot 1} B$ लिखते है। इसी प्रकार A से B पर मैपिग f तब एक एक इंटू कहलाता है जब A के प्रत्येक सदस्य का B में प्रतिबिंब हो और इसे $f : A \xrightarrow[\text{इंटू}]{1\cdot 1} B$ लिखते हैं। शुद्ध गणित की कुछ पीठिकाओं में ऐसी परंपरा है कि मैपिग f को तब एकैक कहते हैं जब वह एक साथ एकैक और ऑन्टू हो। फलन की परिभाषा के इस संशोधन के बावजूद चिरप्रतिष्ठित परिभाषा को अब भी इस कारण स्वीकृत किया जाता है कि गणितीय अनुप्रयोगो मे बहुमान फलन बहुत महत्वपूर्ण होते है।

फलनों के प्रकार

(१) **बहुपद** -- यदि f (x) का रूप

$$a_0 x^n + a_1 x^{n-1} + \ldots + a_{n-1} x + a_n$$

हो, जहाँ n कोई धनात्मक पूर्णांक है और $a_0, a_1, \ldots, a_n$ अचर है तथा $a_0 \neq 0$, तो f (x) को x मे बहुपद (polynomial), अथवा x का परिमेय पूर्णांकी फलन (rational integral function) कहते है।

(२) **परिमेय फलन** — यदि f (x) को दो बहुपदों के अनुपात के रूप मे व्यक्त किया जा सके, तो उसे परिमेय फलन कहते है, जैसे

$$\frac{x^3-7}{3x^4+x-9}$$

(३) **अपरिमेय फलन** — जिन फलनों मे करणिया (surds) होती हैं उन्हे अपरिमेय फलन कहते हैं, जैसे $\sqrt{(x^2+x+1)}+3x$.

(४) **बीजीय फलन** — यदि y = f(x) और x में सबंध निम्नलिखित रूप मे प्रकट किया जा सके,

$$P_0(x)\, y^n + P_1(x)\, y^{n-1} + \ldots + P_{n-1}(x)\, y + P_n(x) = 0,$$

जहाँ n कोई धनात्मक पूर्णांक है और $P_0(x)$, $P_1(x)$,.. P (x) सभी x के बहुपद हैं, तो y को x का बीजीय फलन (algebraic function) कहते हैं।

(५) **बीजातीत फलन** — जो फलन बीजीय नहीं होते, अबीजीय फलन (Transcendental functions) कहलाते है, जैसे $\sin_x$, log x इत्यादि। प्रारंभिक फलन अबीजीय फलनों के सरल उदाहरण है।

(६) **स्पष्ट और अस्पष्ट फलन** — यदि y और x के सबंध को सरलता से y = f (x) के रूप में प्रकट किया जा सके, तो y को x का स्पष्ट फलन कहते है, अन्यथा y को x का अस्पष्ट फलन कहते है और तब x तथा y के सबंध को F (x, y) = 0 के रूप में प्रकट करते हैं।

(७) **प्रारंभिक फलन** — जिस प्रकार के फलनो का ऊपर विवेचन किया गया है उनको दीर्घवृत्तीय (elliptic), बीटा (beta), गामा (gamma) आदि, उच्चतर अबीजीय फलनो से पृथक् करने के लिये, प्रारंभिक फलन (elementary function) कहते है।

यदि वह संबंध, जो y को x के फलन रूप मे व्यक्त करता है, y = f (x) हो, तो उस सबंध को जो x को y के फलन रूप मे व्यक्त करता है, f (x) का प्रतिलोम फलन (inverse function) कहते हैं। प्रतिलोम फलन को प्राय $x = f^{-1}(y)$ के रूप मे लिखते है। $y = x^2$, $x = \sqrt{y}$ एक प्रतिलोम फलनयुग्म का उदाहरण है।

यह बात ध्यान देने की है कि आधुनिक शुद्ध गणित में केवल एकैक मैपिंग मे ही प्रतिलोम मैपिंग की संभावना रहती है।

अब तक कम से कम चिरप्रतिष्ठित परिभाषानुसार केवल एक वास्तविक चर के फलनो का विवेचन किया गया है। कई एक वास्तविक चरो के भी फलनो की कल्पना संभव है। फिर, कम से कम प्रारंभिक रूप के संमिश्र चर (complex variable) के फलनो की भी कल्पना की जा सकती है। संमिश्र चर को $x=u+i\,v$ के रूप में लिखने पर मान ले $f(x)=P(u, v)+i\,Q(u, v)$, जहाँ $P(u, v)$ तथा $Q(u, v)$ दो वास्तविक चरों u, v के फलन है। संमिश्र फलनो के अनुप्रयोग बहुत है (देखे **द्रव बलविज्ञान**)।

फलन का ज्यामितीय निरूपण — एक चर के वास्तविक मानवाले फलन का आलेख इस प्रकार खीचा जा सकता है कि स्वतंत्र चर x को एक ऋजु रेखा के अनुदिश संख्या मापनी के अनुकूल अंकित कर लिया जाय और उसके लंब Y– अक्ष के अनुदिश परतंत्र चर y को अंकित किया जाय। किंतु संमिश्र चर के फलनों के निरूपण में दो समतलों की संगतता काम आती है, क्योकि संमिश्र संख्या सामान्यतया समतल के बिंदु द्वारा निरूपित की जाती है। इस कारण निरूपण इतना सुस्पष्ट नही हो पाता जितना वास्तविक मानवाले फलनो मे।

इतिहास — बहुत समय पहले, सन् १६३७ में ही, देकार्त ने वैश्लेषिक ज्यामिति पर अपनी कृति प्रकाशित की और ऐसे भी व्यक्ति है जो इसमे से फलन सिद्धात (Theory of Function) का विकास प्रस्फुटित होते देखते है, किंतु फलन शब्द सर्वप्रथम सन् १६९४ मे लाइब्निट्स (Leibnitz) की रचनाओं में प्रकट हुआ। लेनर्ड आइलर (L. Euler) ने सन् १७३४ मे पहली बार प्रतीक f (x) का प्रयोग किया। फलन के विकास का श्रेय बहुत कुछ लाग्राज, फूर्ये (Fourier), डीरिक्ले (Dirichlet) आदि गणितज्ञो को है। बाद को फलन सिद्धात दृढ़ आधार पर स्थापित करने का श्रेय ऑगस्टिन लुई कोशी, जॉर्ज रीमाँ और कार्ल वायर्स्ट्रास (सन् १८१५–९७) आदि को है। इस सबंध में जार्ज केंटर (सन् १८४५-१९१८) का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने समूह सिद्धांत (Theory of Aggregates) का प्रतिपादन किया और इसके आधार पर फलन सिद्धात को और भी सुदृढता मिल सकी।

सीमा की संकल्पना — फलन f (x) को, x के किसी मान c की ओर अग्रसर होने पर, सीमा (limit) L वाला तब कहा जाता है जब हरेक धन छोटी से छोटी संख्या ϵ के दिए रहने पर एक ऐसी धन संख्या δ का अस्तित्व हो कि यदि $|x-c|<\delta$ तो $|f(x)-L|<\epsilon$; इस तथ्य की संक्षेप लिपि के लिये संकेतन $\lim_{x\to c} f(x)=L$ प्रयुक्त किया जा सकता है। यह बात समझ लेनी चाहिए कि यदि c पर फलन का मान f (c) है, तो इस मान का सीमा L के अस्तित्व, या स्वय उस सीमा मान से कुछ संबंध नही; उदाहरणतया, यदि $f(x)=x\sin(1/x)$, तो f(o) अर्थहीन है, जबकि $\lim_{x\to 0} x\sin(1/x)=0$।

सांतत्य — फलन f (x) को x=c पर उस दशा मे संतत (continuous) कहा जाता है जब $\lim_{x\to c} f(x)=f(c)$। फलन जिस बिंदु पर संतत नहीं होता, वहाँ वह असंतत कहलाता है। असांतत्य निम्न रूपों मे उत्पन्न हो सकता है :

(i) $\lim_{x\to c} f(x)$ अस्तित्वहीन है, (ii) $\lim_{x\to c} f(x)$ अस्तित्वमय है,

किंतु उसका मान f (c) के बराबर नही। (i) वाले असांतत्य को अनपनेय (irremovable) असांतत्य कहते हैं, जब कि (ii) को अपनेय (removable) असांतत्य कहते हैं, क्योंकि इस स्थिति में विचारणीय बिंदु पर फलन को उपयुक्त मान देकर फलन को संतत बनाया जा सकता है।

अवकलन और समाकलन — फलन f (x) के व्युत्पन्न या अवकलज f(x) की परिभाषा $\lim_{h\to 0} \{f(x+h)-f(x)\}/h$ से दी जाती है। किसी बिंदु c पर व्युत्पाद्य (derivable) होने के लिये आवश्यक है कि f (x) बिंदु पर संतत हो, किंतु यह प्रतिबंध व्युत्पादन के लिये पर्याप्त नही है। वायर्स्ट्रास ने एक ऐसे फलन का उदाहरण दिया जो सभी बिंदुओं पर संतत है, किंतु कही भी व्युत्पाद्य, अर्थात् अवकलनीय (differentiable), नहीं। वह फलन $\sum_{n=0}^{\infty} a^n \cos b^n \pi x$ है, जहाँ b एक विषम संख्या है, $0<a<1$, जहाँ b एक विषम संख्या है, $0<a<1$ और $ab>1+\frac{3}{2}\pi$, यदि $g'(x)=f(x)$, तो फलन g (x) को f (x) का समाकल (integral) कहते हैं। समाकल को प्रतिव्युत्पन्न (antiderivative), अनिश्चित समाकल या पूर्वग (primitive) फलन भी कहते है। समाकलन को अवकलन की विपरीत क्रिया कहते है। अवकलन क्रिया समाकलन क्रिया के पहले होती प्रतीत होती है, किंतु बात उलटी है। कुछ विशिष्ट प्रकार की अनंत श्रेणियो के योग और किसी वक्र तथा दो कोटियो (ordinates) से परिसीमित क्षेत्र का क्षेत्रफल ज्ञात करने के प्रयास में समाकलन की खोज हुई। वास्तविक चरवाले फलन के समाकल की रचनात्मक परिभाषा सबसे पहले रीमॉन (Reimann) ने दी। मान ले f (x) अंतराल $a\leqslant x\leqslant b$ मे परिभाषित है और इस अंतराल का कोई स्वेच्छ विभाजन परिमित खंडों मे, जिनमे दीर्घतम लंबाई L है, किया गया है। प्रत्येक खंड $\triangle_1 x$ में स्वेच्छया कोई बिंदु x_1 चुने और मान $f(x_1)$ को उस खंड की लबाई से गुणा कर योगफल $\sum f(x_1)\triangle_1 x$ ले; यहा खंड $\triangle_1 x$ की लबाई संकेत $\triangle_1 x$ से ही प्रकट की गई है। यदि L के शून्य की ओर अग्रसर होने पर इस योग की परिमित सीमा I है, तो इस सीमा को f (x) का निश्चित समाकल या रीमान समाकल कहते है और लिखते है

$$I=\int_a^b f(x)\,dx \text{ ।}$$

संमिश्र चरों के फलनो का रेखासमाकल (line integral) होता है, जिसका मान कंटूर समाकलन (contour of integration) पर

निर्भर करता है। $\int_c f(x)dx$ कंटूर c के अनुदिश f(x) के समाकल का प्रतीक है।

संमिश्र चर का वैश्लेषिक फलन — संमिश्र चर $z = (x+iy)$ का फलन $f(z)$ बिंदु z_0 पर तब संतत है जब z को z_0 के पर्याप्त समीप लेकर $|f(z) - f(z_0)|$ को कितनी भी लघु निर्दिष्ट धन संख्या ϵ से छोटा बनाया जा सके, अर्थात् ϵ के दिए रहने पर ऐसी संख्या δ चुनी जा सके कि $[f(z) - f(z_0)] < \epsilon$ जब कि $|z - z_0| < \delta|$ फलन $f(z)$ बिंदु z_0 पर तब अवकलनीय या वैश्लेषिक (analytic) है जब $\lim_{z \to z_0} \{f(z) - f(z_0)\}/(z - z_0)$ अस्तित्वमय और कोई परिमित संख्या (भले ही संमिश्र) हो। यदि $f(z) = u(x, y) + i v(x, y)$, जहाँ u और v दोनो x, y के वास्तविक फलन हैं, तो $f(z)$ के अवकलनीय होने के लिये आवश्यक है कि

$$\frac{\partial u}{\partial x} = \frac{\partial v}{\partial y} \text{ और } \frac{\partial u}{\partial y} = -\frac{\partial v}{\partial x},$$

किंतु अवकलनीय होने का पर्याप्त प्रतिबंध यह है कि इन संबंधो के संतुष्ट होने के अतिरिक्त खंडशः अवकलज u_x, u_y v_x, v_y बिंदु (x, y) पर संतत भी हों। जो फलन किसी प्रदेश (region) के प्रत्येक बिंदु पर अवकलनीय होता है, उसे उस प्रदेश में नियमित (regular), या कभी कभी वैश्लेषिक (analytic), कहा जाता है। यदि प्रदेश के कुछ वियुक्त (isolated) बिंदुओं को छोड फलन अन्यत्र वैश्लेषिक हो तो ऐसे फलन को विभश्लेषिक (meromorphic) फलन कहते है। ऐसे फलन कंटूर समाकलन में विशेष उपयोगी होते है।

सं० ग्रं० — इ० डब्लू० हॉब्सन द थ्योरी ऑव फंक्शन ऑव ए रीयल वेरियेबिल ऐंड द थ्योरी ऑव फूरिये सिरीज, खंड १, तीसरा संस्करण (१९२६), खंड २, दूसरा संस्करण (१९२६), पी० फ्रैंकलिन : ए ट्रीटिज ऑन ऐडवान्स्ड कैलकुलस (१९४०); शांति-नारायण ए कोर्स आव मैथमैटिकल ऐनालिसिस (एस चांद ऐंड को, १९४५)। [चं० मो०]

फलानुमेयप्रामाण्यवाद (Pragmatism) अँगरेजी के 'प्रैगमैटिज्म' (Pragmatism) का समानार्थवाची शब्द है और प्रैगमैटिज्म शब्द यूनानी भाषा के 'Pragma' शब्द से, जिसका अर्थ 'क्रिया' या 'कर्म' होता है, बना है। तदनुसार 'फलानुमेय प्रामाण्यवाद' एक ऐसी विचारधारा है जो ज्ञान के सभी क्षेत्रों मे उसके क्रियात्मक प्रभाव या फल को एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण स्थान देती है। इसके अनुसार हमारी सभी वस्तुविषयक धारणाएँ उनके संभव व्यावहारिक परिणामो की ही धारणाएँ होती है। अत किसी भी बात या विचार को सही सही समझने के लिये उसके व्यावहारिक परिणामों की परीक्षा करना आवश्यक है।

यों तो इस सिद्धांत के कतिपय समर्थक इसे यूनानी विचारक प्रोटेगोरस (Protagoras) के 'मनुष्य सब वस्तुओं की माप है' (Man is the measure of all things) — इस कथन से संबंधित करते है, और सुकरात एवं अरस्तू आदि प्राचीन दार्शनिको को भी प्रैगमैटिक विधि के प्रयोक्ता बतलाते है, परतु वस्तुतः यह एक आधुनिक विचारधारा है, और इसके प्रमुख प्रतिपादक हैं अमरीका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक पंडित विलियम जेम्स (१८४२-१९१०) और शिक्षाशास्त्री जॉन ड्युई (John Dewey, १८५९-१९५२) तथा ग्रेट ब्रिटेन के डाक्टर एफ० सी० एस० शिलर (Schiller, १८६४-१९२७)। डा० शिलर ने मानवीयतावाद (Humanism) नामक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है जिसे वास्तव में फलानुमेय प्रामाण्यवाद की एक शाखा ही समझना चाहिए। जेम्स की तो प्रायः सभी कृतियाँ इस विचारधारा पर आधारित है। जेम्स प्राय अध्यात्मवाद के, विशेषतया हेगेलीय अध्यात्मवाद के, कट्टर विरोधी थे। उन्हें प्रयोगप्रिय एव वाह्यवस्तुवादी अमरीकी जनता का वैचारिक प्रतिनिधि कहना अनुचित न होगा। जब वह सत्य के एक ऐसे मापदंड के विचार मे लगे थे जो अध्यात्मवादी मापदड से सर्वथा भिन्न हो, उन्होने जनवरी, सन् १८७८ ई० के 'पौप्युलर साइंस' नामक एक अमरीकी मासिकपत्र मे, चार्ल्स पीअर्स (Charles Pierce) लिखित 'हम अपने विचारो को स्पष्ट कैसे बनाएँ' (How to make our ideas clear) — लेख पढा, और उसमे आधुनिक फलानुमेय प्रामाण्यवाद की मूलभूत रूपरेखा पाकर उन्हे यह विश्वास हो गया कि सत्य या सत्यज्ञान की कसौटी यही है। पीअर्स को, जैसा स्वयं उन्होंने ही कहा है, फलानुमेयप्रामाण्यवाद का समानार्थवाची 'प्रैगमैटिज्म' शब्द और उसका भाव दोनो ही जर्मनी के सुप्रसिद्ध दार्शनिक काट की कृतियो से मिले थे। परंतु इस विचारधारा की प्राचीनता प्रदर्शित करते हुए भी जेम्स ने अपने को विशेष रूप से पीअर्स का ही आभारी माना है और उन्हे दर्शन-जगत् मे आधुनिक फलानुमेयप्रामाण्यवाद का प्रवर्तक कहकर संमानित किया है। जो भी हो, इस सिद्धांत को बल एव प्रख्याति प्रदान करने मे स्वय जेम्स का ही नाम सर्वोपरि उल्लेखनीय है। उनके लिखे हुए 'मनोविज्ञान के सिद्धात' (The Principles of Psychology), 'धार्मिक अनुभव के विविध रूप' (Varieties of Religious Experience), 'फलानुमेयप्रामाण्यवाद' (Pragmatism), 'सत्य का अर्थ' (The Meaning of Truth) और 'नानात्मक विश्व' (A Pluralistic Universe) आदि सभी प्रख्यात ग्रथ इस विचारधारा का समर्थन करते है। उनके न केवल तार्किक (सत्यासत्य सबंधी) विचार ही किंतु मनोवैज्ञानिक एव तात्विक— सभी प्रकार के विचार फलानुमेयप्रामाण्यवादी प्रवृत्ति के सुस्पष्ट प्रतीक है।

जेम्स के अनुसार 'सत्य उन सब बातो का नाम है जो विश्वास के मार्ग मे, तथा निश्चित निर्दिष्टव्य हेतुओं से भी, अपने आपको श्रेष्ठ सिद्ध करती है'। संक्षेप मे, 'सत्य विचार की प्रक्रिया का एक योग्य या उचित उपकरण मात्र होता है, ठीक वैसे ही जैसे 'शुभ' हमारे व्यावहारिक जीवन का एक सफल साधन मात्र, वह किसी भी प्रकार से लाभप्रद और, वस्तुतः, अततोगत्वा तथा सब बातो को ध्यान मे रखने पर लाभदायक है।' जेम्स सत्य को हमारी निजी धारणाओं का नकद मूल्य मानते हैं, वस्तुगत तथ्य नही। उनके अनुसार हम स्वय अपने सत्यो का निर्माण करते है। वे बाह्य वस्तुओं की प्रतिक्रिया मात्र नही, किंतु हमारे प्रयोजनो के साधक हमारे ही विश्वास होते है। हम उन विश्वासो को जो हमे भावात्मक तृप्ति या व्यावहारिक सफलता प्रदान करते हैं सत्य मानने लगते हैं, और इसके विपरीत परिणामवालो को असत्य। अत. हमारे विश्वासो या विचारो का सत्यत्व (या असत्यत्व)

उनके फल या परिणाम द्वारा अनुमेय होता है। उसके स्थापित होने के लिये समय और अनुभव की आवश्यकता होती है। जैसे जैसे हमे किसी विश्वास से व्यवहार में सफलता मिलती जाती है वैसे ही वैसे उसका सत्यत्व भी बढ़ता जाता है। हमारे सीमित अनुभव द्वारा प्रमाणित हमारी किसी भी आस्था को पूर्णतया सत्य कहलाने का अधिकार नही, यहाँ तक कि विज्ञान के तथाकथित प्राकृतिक नियमो को भी पूर्ण रूप से सत्य नही कहा जा सकता। हमे अधिक से अधिक यही कहने का अधिकार है कि जहाँ तक हमारे अब तक के अनुभवों का संबंध है, वे सत्य सिद्ध हुए हैं; परंतु इससे उनकी शाश्वत सत्यता प्रमाणित नही होती। पूर्ण सत्य के लिये पूर्ण अनुभव, जिसका होना कभी संभव नहीं, अपेक्षित है। अत. मानव द्वारा प्रतिपादित कोई भी सत्य, चाहे वह वैज्ञानिक हो चाहे तार्किक, पूर्ण सत्य नही हो सकता। जिन्हे प्राय मनुष्य सिद्ध-सत्य या सिद्धात समझते हैं उन्हे फलानुमेयप्रामाण्यवादी केवल उपकल्पना (Hypothesis) ही मानते हैं। वे बुद्धिवादी तर्कशास्त्र की कडी आलोचना करते हैं और उनके न्यायवाक्य (Syllogism) आदि सिद्धातो को दूषित ठहराते हैं। वे मानवीय विचारो को, बुद्धिवादी तर्कशास्त्रियो की मान्यता के विरुद्ध, सदैव प्रयोजनात्मक मानते है, नि.स्वार्थ नही। ज्ञान के सत्यत्वासत्यत्व के परीक्षण की भारतीय न्यायदर्शन की 'प्रवृत्तिसामर्थ्य व प्रवृत्तिविसवाद' नामक विधि, जिसके अनुसार कार्य मे प्रवृत्त होने पर सफलता प्रदायक ज्ञान को यथार्थ तथा विफलताजनक ज्ञान को अयथार्थ या मिथ्या माना जाता है, इस फलानुमेयप्रामाण्यवादी विधि से मिलती जुलती मालूम होती है। परंतु, साथ ही साथ, 'तद्वति तत्प्रकारकं ज्ञानं यथार्थम्' एवं तदभाववति तत्प्रकारक ज्ञान भ्रम' कहनेवाला कट्टर वस्तुवादी न्यायदर्शन अनुरूपतावाद (Correspondence theory) का समर्थक प्रतीत होता है, जब कि जेम्स आदि पाश्चात्य फलानुमेयप्रामाण्यवादियो ने उसकी कटु आलोचना की है।

जिस प्रकार सत्यासत्य विवेचन मे, उसी प्रकार मानसिक प्रक्रियाओं या विचारो की व्याख्या मे भी फलानुमेयप्रामाण्यवादी हमारी प्रयोजनात्मक क्रियाओ को ही प्रमुख स्थान प्रदान करते हैं। उनके अनुसार, हम न केवल अपने सत्यों का ही किंतु विविध अनुभवो का भी निर्माण करते है। हमारा प्राथमिक अथवा मूलभूत अनुभव एक अविच्छिन्न धारा जैसा होता है और हम स्वप्रयोजनो एवं स्वार्थों से प्रेरित होकर, विश्लेषण तथा चुनाव आदि करने की अपनी मानसिक क्रियाओं द्वारा, उसका विभाजन, विभिन्न पदार्थों तथा उनके पारस्परिक संबंधों के रूप में, कर लिया करते है। इस प्रकार, इनके मनोविज्ञान और लॉक आदि के परमाणुवादी मनोविज्ञान मे, जिसके अनुसार हमारे विचार प्रारंभिक सरल प्रत्ययों के एक यात्रिक ढग से सग्रहीत अनुक्रम माने जाते हैं, मौलिक अंतर है। फलानुमेयप्रामाण्यवादियों की दृष्टि मे परमाणुवादी मनोविज्ञान इसी नाम के भौतिक विज्ञान की नकल है जो वास्तविकता से दूर एवं भ्रामक है।

विश्वासो या विचारों के सत्यत्वासत्यत्व के परीक्षण में फलानुमेयप्रामाण्यवादी विधि स्वीकार करनेवालो में तत्वज्ञान संबंधी मतैक्य नही। फिर भी, यदि किसी तत्वज्ञान को इस विचारधारा का प्रतिरूप कहा जा सकता है तो वह है प्रो० ड्युई द्वारा समर्थित डा० शिलर का 'स्टडीज इन ह्यू मैनिज्म' नामक पुस्तक में प्रतिपादित तात्विक सिद्धात। इसके अनुसार, हम स्वयं ही सदैव एक बडी हद तक और सही अर्थ मे वास्तविकता (Reality) का निर्माण करते रहते है, क्योंकि प्रत्येक तथाकथित यथार्थ वस्तु हमारे तत्संबंधी ज्ञान पर आश्रित रहती है। कोई भी ज्ञात पदार्थ ऐसा नहीं होता जिसका स्वरूप हमारे द्वारा उसके ज्ञात होने से, विशेष रूप से, निर्धारित एवं निर्मित न होता हो। पारमार्थिकता क्या है यह हम नही जानते, और न उसके विषय में, निश्चय रूप से, कुछ कहा ही जा सकता है। परंतु जहाँ तक ज्ञात वास्तविकता (या तथ्यो) का संबंध है यह निश्चय है कि उसका स्वरूप निर्माण, एक अत्यंत महत्वपूर्ण अश मे, हमारे और हमारे उस ज्ञान के ऊपर निर्भर रहता है जिसपर हमारे प्रयोजनों और स्वार्थों की छाप अनिवार्यत लगी रहती है। हमारे तथ्य वे ही होते हैं जिनमें उनकी निर्मापिका मे हमारी इच्छाओं को तृप्त करने की शक्ति या योग्यता होती है। जिस प्रकार सत्य हमारे सफल विश्वास होते हैं उसी प्रकार तथ्य हमारी इच्छाओं को सतुष्टि प्रदान करनेवाले पदार्थ होते है। सक्षेप मे हमारे व्यावहारिक जीवन मे सफल क्रियात्मक प्रभावोत्पादकता को ही, इन विचारकों के अनुसार, तथ्यता या वास्तविकता का लक्षण समझना चाहिए। भारतीय बौद्ध दर्शन की सत् (पदार्थ) की परिभाषा भी, जिसके अनुसार 'सत् वह है जिसमें किसी कार्य को उत्पन्न करने की क्षमता हो', (अर्थ क्रियाकारित्वलक्षण सत्) फलानुमेयप्रामाण्यवादी विचारधारा के अनुकूल प्रतीत होती है, क्योंकि उसमे भी वस्तुओ के सत्त्वासत्त्व, अस्तित्व अनस्तित्व, के निर्धारण मे उनके कार्यरूप फल को ही निर्णायक माना है। परंतु तत्वज्ञान सबंधी अनेक अन्य बातो मे सभी बौद्ध दार्शनिक न तो आपस मे सहमत है और न आधुनिक फलानुमेयप्रामाण्यवादियों के साथ। [रा० सि० नौ०]

फलों की खेती साधारणतया लोगो का यह विचार है कि फलो का उत्पादन लाभप्रद नही होता। इस धारणा के कई कारण है - (१) बाग लगाने से पूर्व प्राय लोग इस बात का सोच विचार नही करते कि स्थानविशेष मे, वहाँ की भूमि और जलवायु के अनुसार, फल की कौन सी किस्म के पेड़ लगाने चाहिए, (२) फलों के पौधो के लगाने की विधि भी उचित नही होती, बिना भूमि को सुधारे प्राय फलो के पेड लगा दिए जाते हैं तथा पेडों का आपस का फासला भी आवश्यकता से कम रखा जाता है और (३) एक बार बाग लगा देने के उपरात बाद मे उसकी देखभाल पर कोई ध्यान नही दिया जाता। खाद और पानी की प्राय कमी रहती है। इन सब कारणों से पेडो की फसल अच्छी नही होती और बाग से कोई लाभ नही होता। यदि उचित ढंग से बाग लगाया जाए और बाद मे भी ठीक देखभाल हो, तो लाभ न होने का कोई कारण नही है।

फलों का बाग लगाने के लिये स्थान चुनते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

१. सदा ऐसे स्थान को बाग लगाने के लिये चुनना चाहिए, जहाँ की भूमि उपजाऊ हो। कंकड़ पत्थरवाली और ऊँची नीची जमीन फल के पेड़ों के लिये उपयुक्त नही होती। क्षारवाली, जिसमें नोना हो, और रेतवाली भूमि भी फल के पेड़ों के लिये खराब होती है।

हलकी दुमट भूमि, जिसमें पानी का निकास अच्छा हो, सब प्रकार के फलों के पेड़ों के लिये उत्तम होती है।

२. पेड़ों की सिंचाई का भी सुप्रबंध होना अत्यंत आवश्यक है। केवल नहर के पानी के भरोसे बड़ा बाग लगा डालना उचित नहीं। आवश्यकता पड़ने पर यदि किसी कारण से नहर का पानी न मिले तो फसल को, या अन्य पेड़ों को, बहुत हानि पहुँचती है। बाग में कम से कम मीठे पानी का एक कूआँ होना अत्यंत आवशयक है। खारा पानी फल के पेडों को प्राय. हानि पहुँचाता है। यदि १५ एकड का बाग लगाना हो और सिंचाई का प्रबंध केवल छह एकड़ का हो, तो बाग पाँच पाँच एकड़ करके तीन या चार बार में लगाना चाहिए, क्योंकि जब पेड बड़े और पुराने हो जाते हैं, तब उनको बहुत अधिक सिंचाई की आवश्यकता नही होती।

३ बाग सदा पक्की सड़क अथवा रेलवे स्टेशन के पास लगाना चाहिए, ताकि बाग की उपज सुविधापूर्वक और समय से बाजार या मंडी में बिकने के लिये पहुँच सके।

शहर से बहुत दूर गाँव के अंदर बाग लगाने से फसलों को मंडी तक पहुँचाने मे बहुत परेशानी होती है और खर्चा तथा समय भी बहुत लगता है। अधिक समय लगने के कारण फल बाजार तक पहुचते पहुँचते खराब होने लगते है।

४ जहाँ तक हो, बाग किसी जगल के पास नही लगाना चाहिए। जगल के पास होने से प्राय. नील गाय, सुअर, हिरन और चिडियाँ आदि से पेडो और फसल को बहुत हानि होती है और उनसे रक्षा करने मे बडी परेशानी होती है तथा अधिक खर्चा होता है।

५ बाग लगाने से पहले एक बात और ध्यान में रखने की यह है कि स्थान ऐसा हो कि आवश्यकता पडने पर आसपास से उचित मजूरी पर मजदूर मिल सके। कभी कभी जरूरत पड़ने पर मजदूर न मिलने से बाग की फसल मारी जाती है।

एक बार बाग के लिये भूमि का चुनाव कर लेने पर उसमे लगाए जानेवाले पेडो की किस्मो का चुनाव करना शेष रह जाता है। इसके लिये निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना चाहिए .

(१) पेडो की किस्में हमेशा भूमि के अनुसार ही चुनना चाहिए। कम उपजाऊ भूमि मे कलमी आम नही लगाना चाहिए। ऐसे स्थान मे अमरूद आदि कठोर किस्मे ही लगानी चाहिए। इसी प्रकार थोड़ी रेह वाली और खराब जमीन में लिसोडा, बेर, आँवला आदि के पेड ही लगाए जा सकते है। पानी ठरहनेवाले स्थान मे तुरसीले फल के पेड, जैसे संतरा, माल्टा, नीबू आदि, नही लगाना चाहिए, क्योंकि पानी से तुरसीले फल के पेड़ो की जड़े गलकर खराब हो जाती हैं। ऐसी जगह अमरूद किसी हद तक लग सकता है। ककडवाली जमीन मे आम नही लगाना चाहिए।

भूमि को देखकर, इन सब बातों का ध्यान रखे विना यदि फल के पेडो की किस्मो का चुनाव किया गया, तो गलत किस्म के पेड लगने से सदा हानि होने की सभावना है।

(२) किस्मों का चुनाव उस स्थान की जलवायु के अनुसार ही करना चाहिए। ठंडे प्रदेशों के पेड, जैसे सेब, खुबानी, नाशपाती आदि, यदि गरम मैदानी भाग में लगाए जायँ, तो उनमें फल आने की आशा नहीं रखनी चाहिए। इसी प्रकार गरम जलवायुवाले फल, जैसे केला, पपीता आदि, पहाडी ठंडे प्रदेशों मे नही लग सकते। अधिक वर्षावाले स्थान में अंगूर नहीं लगता। इसी प्रकार भिन्न किस्म के फल के पेड भिन्न प्रकार की जलवायु चाहते है और फलों के पेड़ों की किस्म हमेशा वहाँ की जलवायु के अनुसार ही चुनना चाहिए।

(३) एक बात का और ध्यान रखना चाहिए कि फल के पेड़ो की वे ही किस्मे लगाना लाभप्रद रहता है जिनके फलो की माँग बाजार मे काफी हो और जिन किस्मों के फलो के दाम बाजार मे अच्छे मिलने की उम्मीद हो। सस्ते रद्दी किस्म के फल के पेड लगाना लाभप्रद नही होता। किस्मों के चुनाव के लिये उद्यान विभाग के कर्मचारियो से राय लेकर बाग लगाना ठीक रहेगा।

जिस भूमि मे बाग लगाना है यदि उसमें पहले से खेती होती रही है, तो उसे ठीक करने में अधिक कठिनाई नही होती। नीचे की भूमि कैसी है, यह जानने के लिये पूरी भूमि में कई जगह पाँच या छह फुट गहरे गड्ढे खोद लेना चाहिए।

सर्वप्रथम भूमि के जगल की सफाई करना चाहिए। बबूल आदि के जंगली पेड़ो और झाडियो को काटना चाहिए। केवल ऊपर से तना काट देने से झाड़ियाँ दोबारा बढ जाती है, इसलिये प्रत्येक पेड और झाड़ी को खोदकर जड़ सहित निकाल देना चाहिए। एक दो छायादार मौके का पेड़ ऐसे स्थान पर, जहाँ माली के रहने की झोपडी आदि डालनी है, छोड भी सकते है। बाद मे आवश्यकता न रहने पर वे काटे जा सकते हैं। जगल की सफाई के बाद भूमि की सतह एक करना आवश्यक है। यदि सतह ठीक नही होती तो सिंचाई करने मे भी असुविधा होती है। सब पेडो मे एक समान पानी नही पहुँचता। वर्षाकाल का पानी भी नीचे स्थान मे भर जाता है और पेड़ों को हानि पहुँचती है। सिंचाई की नालियो की सुविधा देखकर भूमि की सतह ठीक कर लेनी चाहिए। यदि पूरी भूमि का एक सा चौरस करना सभव न हो, तो उसको दो या अधिक भागो मे बाटकर हर भाग को अलग अलग समतल कर लेना चाहिए। पर्वतीय क्षेत्रो मे, जहाँ बडे चौरस मैदान नही होते, इसी प्रकार सीढ़ीदार खेत बनाए जाते है। इसके बाद संभव हो तो पूरे खेत की एक गहरी जुताई कर देनी चाहिए। इससे जमीन भुरभुरी हो जाती है और वर्षा का पानी भी जमीन मे भली प्रकार पहुँचता है। सपाट जमीन मे अधिकतर वर्षा का पानी बह जाता है। यदि सभव हो तो पूरे खेत मे हरी खादवाली फसल, जैसे सनई आदि, बोकर जोत देने से भूमि को अच्छी खाद मिल जाती है। इसके बाद पूरी भूमि मे पेड लगाने के स्थानो मे चिह्न लगा देना चाहिए। भूमि पर चिह्न लगाने से पहले, यदि कागज पर उसका नक्शा बना लिया जाय, तो चिह्न लगाना आसान रहता है और कोई गलती नही होती है। रेखांकन (layout) की कई विधियाँ होती है, जैसे वर्गाकार, षट्भुजाकार, आयताकार आदि। वर्गाकार विधि सुगम और सबसे अधिक प्रचलित है। इस विधि मे पेड से पेड का फासला और लाइन से लाइन का फासला एक समान होता है और आस पास के चार पेडो को सीधी रेखा से मिलाने पर एक वर्ग बन जाता है।

चिह्न लगाना प्रारभ करने से पहले एक सीधी आधारभुजा डाल लेना आवश्यक होता है। यह आधारभुजा आस पास की

पक्की सड़क, अथवा इमारत या पास लगे हुए बाग, के समांतर डाली जा सकती है, अथवा भूमि का आकार देखकर उसके अनुसार डाली जा सकती है। फिर रेखाकन उसी आधार पर आसानी से किया जा सकता।

पेडों को उचित फासले पर लगाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्राय भूमि में अधिक से अधिक पेड लगाने के लालच में लोग पेड पास पास लगा देते। पेड पास पास लगाने से उनको पूरा फैलने की जगह नही मिलती। बढ़ने पर वे आपस में मिल जाते है। घने बाग मे धूप और हवा नही पहुंचती और पेड़ों मे अच्छी फसल नही होती। केवल चोटीवाले भाग में, जहाँ थोडी धूप तथा हवा पहुँचती है, थोडे फल लगते हैं, जिनकी रखवाली करना और तोडना दोनों कठिन होता है। इस कारण पेड़ सदा उचित फासले पर लगाना चाहिए। मुख्य फलो के पेड़ो के फासले निम्नलिखित हैं:

देशी आम — ४०फुट
कलमी आम — ३५ फुट
अमरूद — २५ फुट
नीबू — २० फुट
लीची — ३० फुट
लुकाठ — २५ फुट
पपीता — ८ फुट

पेडो को लगाने के निशान भूमि मे लगा लेने के बाद वहाँ तीन फुट चौड़े तथा तीन फुट गहरे गोल गड्ढे खोद लेने चाहिए। गड्ढे खोदने का काम जून तक कर लेना चाहिए, ताकि वर्षा प्रारंभ होने से पहले गड्ढो की मिट्टी को कम से कम १५ दिन धूप एव हवा लग जाए। गड्ढों की मिट्टी मे से कंकड पत्थर आदि निकालकर उसमें लगभग $\frac{1}{2}$ भाग सड़े गोबर की खाद मिला देना चाहिए। फिर गड्ढे को इसी मिट्टी से भर देना चाहिए। गड्ढो मे पानी भरने से मिट्टी बैठ जाती है, इसलिये गड्ढो को भरते समय मिट्टी की सतह जमीन से लगभग दो इच ऊँची रखनी चाहिए।

जब एक दो बार अच्छी वर्षा हो जाए, तब गड्ढो के बीचोबीच पेड लगा देना चाहिए। पेड लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पेड गड्ढे मे उसी गहराई तक लगे, जितना वह पहले क्यारी या गमले मे लगा था। अधिक गहरा लगा देन मे पेड का तना मिट्टी मे दब जाता है और उसके सडने का अंदेशा रहता है। इसी प्रकार उथला पेड लगाने से उसकी जडें खुल जाती है और पेड को हानि पहुँचती है। यदि वर्षा न हो रही हो तो पेड लगाने के बाद तुरत उसमें पानी देना चाहिए।

पेड सदा किसी विश्वसनीय जगह से लेना चाहिए, चाहे उसका मूल्य कुछ अधिक ही देना पडे। यदि प्रारंभ में गलत किस्मो के पेड लग जाते है, तो बहुत नुकसान होने की संभावना है। फलने पर जब मालूम पडता है कि खराब और गलत किस्मों के पेड लग गए है, उस समय सिवा उन पेडों को निकालकर नए पेड लगाने के और कोई उपाय नही रहता। इस प्रकार काफी समय और रुपया बेकार जाता है। इसलिये काफी खोजबीन करके और ठीक किस्म के पेड ही लगाना चाहिए।

बाग की देखभाल मे निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए :

लू एवं पाले से बचाव — गरम हवाएँ सदा पश्चिम से और ठंडी हवाएँ उत्तर से चलती हैं। इन तेज, गरम और ठंडी हवाओं को रोकने के लिये बाग की उत्तर और पश्चिम दिशा में ऊँचे बढ़नेवाले पेड़ों की घनी पंक्ति लगा देनी चाहिए। इस पंक्ति को विंड ब्रेक (Wind Break) कहते हैं। विंड ब्रेक के लिये शीशम, देशी आम, जामुन आदि लगाते हैं। पेडो का फासला लगभग १०-१५ फुट तक रखते हैं, जिससे वे घने होकर सीधे और लंबे बढते हैं।

लू एवं पाले से छोटे पेडों को बचाने के लिये ग्रीष्म और शीतकाल मे प्रत्येक पेड के चारों ओर फूस की छोटी टट्टी बाँध देते हैं। टट्टी पूर्व दिशा मे खुली रहती है, जिससे पेड़ को धूप और हवा मिलती रहे। टट्टियाँ केवल पेड़ो की उन्ही किस्मों मे बाँधते है जिनको लू एवं पाले से मरने का अंदेशा रहता है, जैसे आम, पपीता, लुकाठ आदि। गरमी और जाडों मे गहरी सिंचाई करने से भी लू और पाले से बचाव होता है।

जंगली जानवरों आदि से रक्षा — बाग मे जगली जानवर, चौपाए आदि को घुसने से रोकने के लिये बाग के चारों ओर बाढ़ लगाना आवश्यक है। इसका एक तरीका यह है कि चारो ओर लगभग तीन फुट गहरी एक खाई खोदी जाए और उसकी मिट्टी बाग के अंदर की ओर खाई के किनारे एक चौडी और ऊँची मेड के रूप मे जमा दी जाए। यह खाई और ऊँची मेड अच्छी रोक बना लेती है। यदि इस मेड के ऊपर थूहर अथवा नागफनी आदि लगा दी जाय तो और भी अधिक रक्षा रहेगी। बाग के चारो ओर काँटेदार घनी भाडी, जैसे करौदा, खट्टा, बबूल आदि भी, लगा सकते है। आजकल काँटेदार तार लगाने का प्रचलन है। यदि छह फुट ऊँचे खभो मे काँटेदार तार की चार लड लगाकर बाग को घेर दिया जाए, तो भी बाग की रक्षा होती है।

फलों को हानि पहुँचानेवाले प्राणी, जैसे पक्षी एव बदर आदि, से रक्षा के लिये आदमी रखना पडता है, जो पटाखे, गुलेल आदि चलाकर फसल की रक्षा करता है।

पेड़ों की कटाई छँटाई — जाडे मे पत्ती गिरानेवाले कुछ पेडों, जैसे फालसा, अजीर, शहतूत आदि, की सालाना कटाई छँटाई करनी पडती है। इनकी छँटाई करने से नई शाखाएं खूब फूटकर निकलती है और इनमे अच्छे और काफी फल लगते है। सालाना कटाई न करने से इनमे केवल गिनी चुनी शाखाएँ निकलती हैं, जिनमे केवल थोड़े से फल लगते है। इनकी कटाई छँटाई उस समय करते है, जब जाडो मे ये पत्ती गिरा देते हैं।

पेड लगाने के बाद प्रारंभ के दो तीन साल तक सभी पेडो को सुंदर और सुदृढ बनाने के लिये कटाई, छँटाई की आवश्यकता होती है। भूमि से लगभग दो तीन फुट की ऊँचाई तक तने को साफ कर लेना चाहिए। तने के ऊपरी भाग मे तीन या चार मजबूत भिन्न भिन्न दिशाओं मे बढती हुई शाखाओ को चुन लेना चाहिए और केवल उनको ही बढने देना चाहिए। अन्य शाखाओं को तने के पास से काट देना चाहिए।

जैसे जैसे पेड बढते जाएँ, उनके थाले बढाते जाना चाहिए। प्रति वर्ष थालो की गोडाई करके उनमे खाद देनी चाहिए। यह कार्य अक्टूबर तथा नवंबर के महीने में करना अच्छा रहता है।

बाग की सफाई का सदा ध्यान रखना चाहिए। जंगली घास फूस साफ करते रहना चाहिए।

उचित सिंचाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए, विशेषकर ग्रीष्म काल और फल लगने के बाद। किसी भी बीमारी अथवा कीड़ों के लगते ही उनको रोकने के लिये उचित दवा का छिड़काव करना चाहिए। [श्री० रा० शु०]

फल्मिनिक अम्ल (Fulminic Acid) सायेनिक अम्ल का समावयवी है। इसका सूत्र **हाऔना=का** [HON=C] है। फल्मिनिक अम्ल असंयुक्त अवस्था में शुद्ध प्राप्य नहीं है। इसका ईथरीय विलयन, इसके सोडियम लवण के जलीय विलयन को सल्फ्यूरिक अम्ल अथवा ऑक्सैलिक अम्ल से अम्लीय बनाकर, ईथर से निष्कर्ष द्वारा प्राप्त किया जाता है। ईथरीय विलयन के ०° सें० पर आसवन करने से वह आसुत ईथर के साथ निकल जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि असंयुक्त फ़ल्मिनिक अम्ल साधारण ताप पर गैस या भाप की अवस्था में रहता है। जलीय तथा ईथरीय विलयनों में इस अम्ल का बहुलकीकरण भिन्न पदार्थों में सुगमता से हो जाता है। फल्मिनिक अम्ल की गंध बहुत कुछ हाइड्रोसायनिक अम्ल के समान होती है। यह अम्ल एवं इसके लवण बहुत विषैले होते हैं।

फल्मिनिक अम्ल के लवण व्यापारिक दृष्टि से महत्व के हैं। इसका पारद लवण **पा(औनाका)₂ हा₂औ**, $[Hg(ONC)_2H_2O]$ प्रारंभिक विस्फोटक एवं अन्य विस्फोटकों के बनाने में प्रयुक्त होता है। पारद का फल्मिनेट आघात, घर्षण और ताप के प्रति अति संवेदी है, अत उसकी जगह लेड ऐज़ाइड को विस्फोटक के रूप मे उपयोग करने की प्रवृत्ति बढ रही है। रजत का फल्मिनिक लवण पारद लवण से भी अधिक विस्फोटक होता है।

पारद फल्मिनेट की आधुनिक निर्माणपद्धति और हॉवर्ड ने जिस क्रिया से उसे सर्वप्रथम १८०० ई० मे पाया था, इनमे विशेष भेद नही है। शवाल्ये (Chevalier) और चांडेलॉन (Chandelon), दोनो की निर्माणपद्धतियो मे समान अभिक्रियाएँ होती हैं। पारद का नाइट्रिक अम्ल मे बनाया हुआ विलयन, उच्च या साधारण ताप पर, ऐल्कोहॉल के अधिक आयतन मे मिलाया जाता है। अभिक्रिया समाप्त होने पर मिश्रण को ठंढा करने के उपरांत पारद फल्मिनेट छान लिया जाता है और जब तक अम्लीय अशुद्धि दूर नही होती, पानी से धोया जाता है। धोए हुए फल्मिनेट को सन की थैलियो मे पानी की सतह के नीचे संग्रहीत करते हैं। इस अवस्था मे इसका रखना-उठाना निरापद है। शुद्ध पारद फल्मिनेट के क्रिस्टल शुभ्र, रेशम की तरह चमकीले और सुई के आकार के होते हैं। ठंढे पानी मे इनके विलयन बनाने की क्षमता अति सीमित होती है (१०० घन सेमी० पानी मे ०·०७ ग्राम)। उबलते हुए पानी मे १ भाग फल्मिनेट १३० भाग जल में विलेय है। फ़ल्मिनेट का स्वाद मधुर धात्विक तथा इसका आपेक्षिक घनत्व ४·४२ है। फ़ल्मिनेट एक अति विषैला पदार्थ है।

पारद फल्मिनेट का विस्फोट १८७° से २००° सें० पर होता है। उसके विस्फोट से कार्बन मोनॉक्साइड, नाइट्रोजन और पारद का वाष्प बनता है। यह प्रारंभिक विस्फोटक के रूप में दोनों प्रकार के, अर्थात् प्रणोदक (propellant) और विभंगक (blasting or fracturing), विस्फोटकों का विस्फोटन करने के लिये उपयोग में लाया जाता है। यह आघात से, जैसे एक बंदूक के कारतूस मे, या ताप पहुंचाने से, जैसे विद्युत् संचालित विस्फोटक से, या दाहक फ्यूज से दागा जा सकता है। इसका विस्फोट इतना प्रचंड होता है कि इसकी तीव्रता को घटाने के लिये पारद फ़ल्मिनेट में पोटैशियम क्लोरेट या ऐंटीमनी सल्फाइड मिश्रित करते हैं।

[रा० हु० स०]

फॉकलैंड (Falkland) स्थिति . ५२° ०' द० अ० तथा ६०° ०' प० दे०। यह दक्षिणी ऐटलैंटिक महासागर में केप हॉर्न से ४०० मील उत्तर-पूर्व स्थित द्वीपों का समूह है। पूर्वी फॉकलैंड तथा पश्चिमी फॉकलैंड दो प्रमुख द्वीपों के अतिरिक्त २०० अन्य द्वीप शामिल हैं, जिनका क्षेत्रफल ४,७०० वर्ग मील तथा जनसंख्या २,१३२ (१९६३) है। स्टैनली (१,०७४) यहाँ की राजधानी है। भेडें पालना तथा ह्वेल का शिकार करना प्रमुख उद्योग हैं। गैलेना (galena) तथा चाँदी धातु मिलती है।

फॉक्स, चार्ल्स जेम्स (१७४९–१८०६) अंग्रेज राजनीतिज्ञ। राजनीतिक कौशल इसे अपने पिता हेनरी फॉक्स से विरासत में मिला था। २० वर्ष की उम्र मे वह संसद का सदस्य बना। कुछ दिन वह प्रधानमंत्री नार्थ के मंत्रिमंडल में कनिष्ठ मंत्री रहा, किंतु अमरीकी युद्ध के दौरान वह बर्क के प्रभाव में आ गया। अगले कुछ वर्षों तक वह शांति और लोकतांत्रिक सुधार आदोलन की अगुआई करता रहा। नार्थ सरकार के पतन के पश्चात् १७८२ में रॉकिंघम ने इसे शेलबर्न के साथ मंत्री नियुक्त किया। किंतु सम्राट् के संवैधानिक अधिकारों को लेकर शेलबर्न से उसके मतभेद बहुत बढ़ गए, और जब रॉकिंघम की मृत्यु के बाद सम्राट् ने शेलबर्न को प्रधान मंत्री पद के लिये चुना, फॉक्स ने त्यागपत्र दे दिया। सम्राट् के अधिकारो पर अधिक नियंत्रण के उद्देश्य से उसने नार्थ से सहयोग किया। नवबर, १७८३ में, फॉक्स ने भारत संबंधी 'बिल' पेश किया। इसका घोर विरोध हुआ और जार्ज तृतीय ने 'हाउस ऑव लार्ड्स' के सदस्यों को कहला भेजा कि जो कोई इसके पक्ष में मतदान देगा वह राजा का शत्रु समझा जायगा। इसका परिणाम यह हुआ कि यह बिल पारित नही हुआ। १८०६ में पिट की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय के लिये फॉक्स सत्तारूढ हुआ। उसने नेपोलियन से शांति संधि करनी चाही, लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। ब्रिटेन मे दासव्यापार पर पूर्ण रोक उसकी उल्लेखनीय सफलता थी। इग्लैंड के 'लिबरल' नेताओं मे फॉक्स का स्थान बहुत ऊँचा है।

फ़ातिमी खिलाफ़त इस्माइली शियाओं ने, जिनका विश्वास था कि दैवी आत्मा इमाम के, जो इमाम जफर सादिक के पुत्र इस्माइल के वंश का था, रूप मे अवतरित हुई थी, अबासिम के रूढ़िवादी सुन्नी खलीफाओं के विरुद्ध 'फातिमी खिलाफत' के नाम से एक संगठन का निर्माण किया। किंतु अधिकतर मुस्लिम जनता सुन्नी थी, जिनका

विश्वास अत्यंत दृढ़ था, इसलिये फ़ातिमी खलीफाओं—इस्माइली शिया वर्ग ने उदारता की नीति अपनाई।

९०९ हिजरी में एक इस्माइली धर्मप्रचारक अबू अब्दुल्ला ने काइरावाँ (ट्रिपोली और ट्यूनिस) के अगलाबी राजवंश को समाप्त कर दिया, और अपने स्वामी माहदी उबैदुल्ला को राज्य नियंत्रित करने के लिये बुलवाया। उबैदुल्ला ने अपने को सच्चा इमाम घोषित कर दिया, किंतु उसी समय इसने अबू अब्दुल्ला की हत्या कर दी और शनै शनैः अपने संप्रदाय के धर्मांध सिद्धांतो का परित्याग करने लगा। उसे विशेष कठिनाई 'जिरामतियों' से हुई जो फातिमियो को अपना इमाम मानते हुए भी सप्रदाय को हानि पहुँचा रहे थे। ९२९ हि० में उन लोगों ने मक्का पर आक्रमण किया, तीर्थयात्रियो को मार डाला, पवित्र काला पत्थर उठा ले गए, और माहदी के प्रकाशित आज्ञापत्र के बावजूद उसकी मृत्यु के ७-८ वर्ष बाद तक उसे नही लौटाया। उसके पश्चात् क्रमश १३ उत्तराधिकारी हुए। प्रारंभिक फातिमियो की सफलता का मुख्य कारण, उनकी सुंदर शासनव्यवस्था थी।

चतुर्थ खलीफा 'मुइज' (९५३–९७५) के नेतृत्व में फातिमियों ने संपूर्ण उत्तरी अफ्रीका पर अपना अधिकार जमा लिया। इदरीशिजियो से मोरक्को छीन लिया गया। फातिमी सेनापति 'जौहर' ने फस्ताब (प्राचीन काहिरा) पर अधिकार कर लिया और 'मुइज़' ने अपनी नई राजधानी 'काहिरा' का निर्माण किया, उसी के समीप अल अजहर नामकी प्रसिद्ध मस्जिद बनवाई। सीरिया सदैव फातिमी और अब्बासी खलीफाओ के मध्य विवाद का विषय रहा।

छठे खलीफा हकीम (९३६–१०२१) के असंगत कार्यों का कारण उसकी मानसिक विक्षिप्तता थी। उसने ईसाइयों और यहूदियो के पूजास्थानो को पूर्णतया नष्ट कर देने का आदेश दे दिया, किंतु उन्हे उच्च पदो पर नियुक्त करना भी जारी रखा, और कुछ समय पश्चात् उन्हे पूजास्थानो के पुर्ननिर्माण की स्वीकृति दे दी। उसने कुत्तो तथा कुछ शाको, जैसे प्याज और लहसुन, के समूलोच्छेदन का अभियान चलाया। उसने पहले, तीन प्रथम पवित्र सुन्नी खलीफाओं के विरुद्ध तिरस्कारपूर्ण शिलालेख खुदवाने की आज्ञा दी, किंतु बाद मे उनको नष्ट करवा दिया। १०१६ की क्राति मे किसी प्रकार उसने अपने को बचा लिया, और कुछ दिन संयत रूप में व्यवहार किया। किंतु हकीम दूसरो को निर्दयता से पीडित करने मे आनंद प्राप्त करता था। १०२० मे उसने अपने सैनिको को काहिरा को, जो उस समय अत्यंत समृद्ध और संपन्न नगर था, नष्ट करने की आज्ञा दी और हकीम की इस कार्य के लिये निषेधात्मक आज्ञा होने के पूर्व आधा नगर लूट लिया गया, तथा लगभग एक तिहाई भाग जल चुका था। तत्पश्चात् वह संभवत रात को अकेले गधे पर चढकर घूमते हुए, जैसी उसकी आदत थी, मार डाला गया। किंतु उसका शव प्राप्त न हो सका, इसलिये उसके अनुयाइयो ने यह प्रचार किया कि वह एक सच्चे 'इमाम' की तरह अंतर्धान हो गया।

नवें खलीफा मुस्तासिर (१०३५–१०९५) के लंबे शासनकाल के अंतर्गत राज्य के टुकडे हो गए। ट्रिपोली और ट्यूनिस के शासक ने अब्बासियों का पक्ष करने की घोषणा कर दी, और फातिमियो का साम्राज्य केवल मिस्र और सीरिया के कुछ भाग तक ही सीमित रह गया।

बाद के खलीफाओं के समय की राज्यक्रांतियों का विवरण यहाँ विस्तार से नही दिया जा सकता। दो फातिमी खलीफाओं की हत्या कर दी गई, और दूसरे मत्रियो द्वारा बंदी बना लिए गए। अंत मे सीरिया के तुर्क शासक नूरुद्दीन ने अपने सेनापति शिरकूह तथा उसके भतीजे और अयूब के पुत्र सलाहुद्दीन को मिस्र विजय के लिये भेजा। फातिमी सेना हार गई और शिरकूह सारी शक्तियो के अधिकार के साथ मत्री (वजीर) नियुक्त हुआ। दो महीने के पश्चात् शिरकूह मर गया; सलाहुद्दीन उसका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। दो वर्ष के पश्चात् नूरुद्दीन ने इस आशय का आदेश जारी किया कि 'जुमा' की प्रार्थनाएँ अब्बासी खलीफाओ के नाम से पढी जानी चाहिए। अतिम फातिमी खलीफा अल अदीद (११६०–११७१) शीघ्र ही मर गया। इस्माइलवाद के सारे प्रभाव देश से समाप्त हो गए। फातिमी खलीफाओ की वशावली सदैव विवाद का विषय रही है और वर्तमान युग मे भी विवाद का समाधान नही हो सका है।

[मो० ह०]

फ़ानी, शौकत अली ख़ाँ का जन्म बदायूँ मे १३ दिसबर, सन् १८७९ ई० को हुआ। आरभिक शिक्षा इन्होने बदायूँ मे प्राप्त की। बचपन से ही यह छिपकर शेर कहने लगे थे। इन्होने गजलों के तीन दीवान प्रस्तुत किए थे, जिनमे एक फारसी का तथा दो उर्दू के थे। इन्होने दो नाटक भी लिखे थे। परतु यह इन रचनाओ की ओर से प्रकृत्या ऐसे बेपरवाह तथा उदासीन रहे कि सारा सग्रह नष्ट हो गया। जो कुछ गजले इनके हितैषियो ने सग्रहीत कर रखी थीं वे ही 'बाकेआते फानी' के नाम से छपीं। इनकी मृत्यु पर एक सग्रह 'इर्फानियाते फानी' के नाम से छपा। फानी ने लखनऊ, आगरा तथा बदायूँ कई स्थानो मे वकालत की, पर कविता की ओर रुचि होने के कारण इनका मन किसी काम मे नही लगता था। अंतिम काल मे यह हैदराबाद चले गए और वहीं सन् १९३० ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

फानी की कविता मे वेदना तथा शोक ही का चित्रण है और उसे पढकर कोई भी प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। कुछ लोगों का कहना है कि फानी की कविता के पाठको के हृदयो पर निराशा का भाव छा जाता है। इसलिये इसे प्रतिक्रियावादी कहना चाहिए। इन्होने जो कुछ लिखा है उसे अच्छी प्रकार अनुभूत करके इतने सुंदर ढग से लिखा है कि उन्हे एक बडा कवि तथा उत्कृष्ट गजल गायक मानना पडता है। गालिब सी उच्चता तथा गंभीरता, मीर सी वेदना तथा चोट और मोमिन सी सरलता फानी की कविता मे अच्छी प्रकार घुली मिली है। प्रेम तथा सूफी भाव इनकी एक विशेषता है।

[र० ज०]

फॉरमोसा (ताइवान) १ द्वीप, स्थिति २३° ३०' उ० अ० तथा १२१° ०' पू० दे०। यह पश्चिमी प्रशात महासागर मे पूर्वी एवं दक्षिणी चीन सागर के मध्य, चीन के फूक्येन प्रात से फॉरमोसा जलडमरूमध्य द्वारा विभक्त, लगभग ६० मील चौडा तथा २२५ मील लबा एक महत्वपूर्ण द्वीप है। स्पेन के नाविको ने इस द्वीप के सुंदर

दृश्यों को देखकर इसका नाम फॉरमोसा रखा, परंतु जापान का आधिपत्य होने पर उन लोगों ने चीनी भाषा में इसका सरकारी नाम 'ताइवान' रखा। यह द्वीप एक बढ़ हुए अंडे के रूप जैसा है, जो उत्तर-उत्तर-पूर्व से दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम की ओर फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल १३,८०८ वर्ग मील तथा जनसंख्या १,१५,११,७२८ (१९६२) है। इस द्वीप के मध्य एवं पूर्व में पर्वतश्रेणियाँ है।

इन पर्वतो की ढाल धीरे धीरे पश्चिम की ओर कम होती चली गई है। पश्चिमी मैदानी भाग इस द्वीप का आर्थिक केंद्र है। यहाँ की जनसख्या भी अधिकतर पश्चिमी और उत्तरी मैदानो मे बसी है।

यह द्वीप कर्क रेखा द्वारा दो भागो में विभक्त हो जाता है और जापान की दो जलधाराओ के बीच मे होने से यहाँ की जलवायु उष्ण कटिबंधीय है। मैदानी भागों मे २१° से० से कम ताप केवल जनवरी के महीने में रहता है। वर्षा का वार्षिक औसत अत्यधिक है तथा यह साल भर समान रूप से होती है, परतु दक्षिणी भाग जाडो मे कुछ सूखा रहता है। विभिन्न प्रकार की धरातलीय अवस्था, गरमी तथा आर्द्रता के कारण यहाँ वनस्पति अधिक उगती है। १,००० फुट से नीचे की भूमि मे अधिकतर अन्न तथा घास उत्पन्न होती है, परतु पहाडी भाग अधिकतर घने जगलो से ढके हुए है। वनो से भिन्न भिन्न उत्पादो की प्राप्ति होती है, परतु सबसे महत्वपूर्ण उत्पाद कपूर है। कृषि की प्रमुख उपजे धान, चाय, गन्ना, शकरकद, जूट, चीनी घास (ramie) एव हल्दी आदि है। इसके अलावा कुछ मात्रा मे मक्का, तबाकू, केला, अनन्नास, कपास तथा सोयाबीन भी उगाया जाता है। यहाँ गाय, घोडे, सूअर तथा मुर्गियाँ पाली जाती है।

आटा पीसने, शक्कर, तबाकू, तेल, स्पिरिट, लोह कर्म, काच, ईंटे तथा साबुन आदि से संबधित उद्योग एवं ऐल्युमिनियम, नमक, इस्पात, सीमेंट, कागज, लकडी, खाद आदि से संबंधित कार्य होते हैं। खनिजो मे सोना, पेट्रोलियम, गैस, अभ्रक, चाँदी, ताँबा तथा कोयले का स्थान प्रमुख है। यहाँ से शक्कर तथा धान का निर्यात किया जाता है। रेलों तथा सड़को की काफी उन्नति हुई है तथा दो वायुमेगाएँ प्राप्त हैं। प्रमुख हवाई अड्डा सुंगशान है। शिक्षा का यहाँ काफी प्रसार है तथा यहाँ के बहुत से विद्यार्थी सयुक्त राज्य, अमरीका मे भी पढते है। यहाँ के मुख्य नगर ताइपे (Taipeh, राजधानी) ताइनान, ताइचुग एव कीलुग है। कीलुंग यहाँ का मुख्य व्यापारिक केद्र एव बदरगाह भी है। फॉरमोसा से लगभग डेढ सौ मील दूर लाल चीन की मुख्य भूमि से सटा हुआ क्वीमाय द्वीप भी इसी के अधिकार मे है, जो पूर्णत एक सैनिक द्वीप है तथा इस द्वीप की जनसख्या ५१,००० है। यह एक उन्नतिशील द्वीप है।

२. **राज्य**, स्थिति . २६° ५' द० अ० तथा ५८° १०' प० दे०। अर्जेटीना के उत्तरी भाग मे पैराग्वे राज्य की सीमा पर, मध्य चाको मे स्थित एक राज्य है। यहाँ का क्षेत्रफल २८,७७८ वर्ग मील तथा जनसख्या २,१२,३०० (१९६०) है। यहाँ की जलवायु उपोष्ण-कटिबधीय है और वर्षा की अवधि लबी है (अक्तूबर से जून तक)। गरमी का औसत ताप ३२° से० तथा जाडो का औसत ताप १७ से० रहता है। यहाँ पर खेती तथा पशुपालन धन के मुख्य स्रोत है, परतु ये दोनो सूखा और बाढ से बुरी तरह प्रभावित होते रहते है। केब्राचो के जगल कीमती लकडी के जंगल है। फॉरमोसा नगर इस राज्य की राजधानी है। [सु० प्र० सि०]

ताइवान (चीन गणराज्य) — पश्चिमी प्रशांत महासागर में २१° ४५' २५" से २५° ३७' ५३" अक्षाश और ११९° १८' १३" से १२२° १०' २५" देशातर रेखाओ के मध्य, चीन की मुख्य भूमि से लगभग १,००० मील दूर स्थित एक द्वीप। इसमे पेगू समूह (Penghu Islands) के ६४ द्वीप और ताइवान समूह के १३ द्वीप भी समिलित है। ताइवान (फारमोसा) का क्षेत्रफल १३,८०८ वर्गमील है। इससे संबद्ध द्वीपो का क्षेत्रफल क्रमश. २८९ वर्गमील और ४९ वर्गमील (पेगू समूह) है। राजधानी ताइपी (Taipei) है।

१९६२ में हुई गणना के अनुसार ताइवान की जनसख्या १,१५,११,७२८ है। आबादी का घनत्व ८३५ व्यक्ति प्रति वर्गमील है।

यहाँ के निवासी मूलत. चीन के फ्यूकियन (Fukien) और क्वागतुंग प्रदेशो से आकर बसे लोगो की सतान है। इनमे ताइवानी वे कहे जाते है, जो यहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व से बसे हुए है। ये ताइवानी लोग दक्षिण चीनी भाषाएँ जिनमें अमाय (Amoy), स्वातोव (Swatow) और हक्का (Hakka) समिलित है, बोलते है। मदारिन (Mandarin) राज्यकार्यो की भाषा है। ५० वर्षीय जापानी शासन के प्रभाव मे लोगो ने जापानी भी सीखी है। आदि-वासी मलय पोलीनेशियाई समूह की बोलियाँ बोलते है।

इतिहास — चीन के प्राचीन इतिहास मे ताइवान का उल्लेख बहुत कम मिलता है। फिर भी प्राप्त प्रमाणो के अनुसार यह ज्ञात होता है कि ताग राजवश (Tang Dynasty) (६१८–९०७) के समय मे चीनी लोग मुख्य भूमि से निकलकर ताइवान मे बसने लगे थे। कुबलई खां के शासनकाल (१२६३-९४) मे निकट के पेस्काडोर्स (pescadores) द्वीपो पर नागरिक प्रशासन की पद्धति आरभ हो गई थी। ताइवान उस समय तक अवश्य मगोलो से अछूता रहा।

जिस समय चीन मे सत्ता मिग वश (१३६८-१६४४ ई०) के हाथ मे थी, कुछ जापानी जलदस्युओ तथा निर्वासित और शरणार्थी

चीनियों ने ताइवान के तटीय प्रदेशों पर, वहाँ के आदिवासियों को हटाकर बलात् अधिकार कर लिया। चीनी दक्षिणी पश्चिमी और जापानी उत्तरी इलाको मे बस गए।

१५१७ में ताइवान में पुर्तगाली पहुँचे, और उसका नाम इला फारमोसा (Ilha Formosa) रक्खा। १६२२ मे व्यापारिक प्रतिस्पर्धा से प्रेरित होकर डचों (हालैंडवासियों) ने पेस्काडोर्स (Pescadores) पर अधिकार कर लिया। दो वर्ष पश्चात् चीनियो ने डच लोगों से सधि की, जिसके अनुसार डचों ने उन द्वीपो से हटकर अपना व्यापारकेंद्र ताइवान बनाया और ताइवान के दक्षिण पश्चिम भाग में फोर्ट जीलाडिया (Fort Zeelandia) और फोर्ट प्राविडेशिया (Fort Providentia) दो स्थान निर्मित किए। धीरे धीरे राजनीतिक दावँ पेंचों से उन्होने सपूर्ण द्वीप पर अपना अधिकार कर लिया।

१७वीं शताब्दी में चीन में मिंग वंश का पतन हुआ, और माचू लोगों ने चिंग वश (१६४४-१९१२ ई०) की स्थापना की। सत्ताच्युत मिंग वंशीय चेंग चेंग कुंग (Cheng Cheng Kung) ने १६६१-६२ में डचों को हटाकर ताइवान में अपना राज्य स्थापित किया। १६८२ में माचुओ ने चेग चेग कुग (Cheng Cheng Kung) के उत्तराधिकारियों से ताइवान भी छीन लिया। सन् १८८३ से १८८६ तक ताइवान फ्यूकियन (Fukien) प्रदेश के प्रशासन मे था। १८८६ मे उसे एक प्रदेश के रूप मे मान्यता मिल गई। प्रशासन की ओर भी चीनी सरकार अधिक ध्यान देने लगी।

१८९५ में चीन-जापान-युद्ध के बाद ताइवान पर जापानियों का झंडा गड़ गया, किंतु द्वीपवासियो ने अपने को जापानियों द्वारा शासित नही माना और ताइवान गणराज्य के लिये सघर्ष करते रहे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जापान ने वहाँ अपने प्रसार के लिये उद्योगीकरण की योजनाएँ चलानी आरंभ की। इनको युद्ध की विभीषिका ने बहुत कुछ समाप्त कर दिया।

काहिरा (१९४३) और पोट्सडम (१९४५) की घोषणाओ के अनुसार सितबर १९४५ में ताइवान पर चीन का अधिकार फिर से मान लिया गया। लेकिन चीनी अधिकारियों के दुर्व्यवहारों से द्वीपवासियो मे व्यापक क्षोभ उत्पन्न हुआ। विद्रोहो का दमन बड़ी नृशंसता से किया गया। जनलाभ के लिये कुछ प्रशासनिक सुधार अवश्य लागू हुए।

इधर चीन मे साम्यवादी आदोलन सफल हो रहा था। अंततोगत्वा च्यांग काई शेक (तत्कालीन राष्ट्रपति) को अपनी नेशनलिस्ट सेनाओ के साथ भागकर ताइवान जाना पड़ा। इस प्रकार ८ दिसबर, १९४९ को चीन की नेशनलिस्ट सरकार का स्थानातरण हुआ।

१९५१ की सेनफ्रासिस्को संधि के अतर्गत जापान ने ताइवान से अपने सारे स्वत्वो की समाप्ति की घोषणा कर दी। दूसरे ही वर्ष ताइपी (Taipei) मे चीन-जापान-संधि-वार्ता हुई। किंतु किसी सधि मे ताइवान पर चीन के नियत्रण का स्पष्ट सकेत नही किया गया। फलत: अब भी ताइवान के वैधानिक अस्तित्व पर प्राय: आपत्तियाँ होती रहती हैं।

अर्थनीति — द्वीप की अर्थव्यवस्था का मुख्य पहलू उद्योगीकरण है। कृषि मे भी यत्रो तथा वैज्ञानिक तरीकों से उत्पादन पर लाभकारी प्रभाव डाला गया है। कपूर, लकड़ी, पेट्रोलियम, अनन्नास और शक्कर मुख्य उद्योग हैं। संपूर्ण भूमि मे २०% जंगल होने के कारण प्राकृतिक वस्तुएँ और साधन यहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। सीमेंट, खनिज और कागज उद्योग भी द्वीप की व्यापारपद्धति पर प्रभाव डालते हैं।

चतुर्वर्षीय योजनाओं द्वारा सभी क्षेत्रो में उन्नति के सफल प्रयास हो रहे हैं। तृतीय योजना (१९६१-६४) मे पूँजी विनियोग की दर उद्योगों में ४५.८%, कृषि मे १६.६%, और यातायात साधनों में १३.१% थी। इनमें निर्यात, शक्ति उत्पादक, कृषि सहायक और भारी उद्योगो को प्राथमिकता दी गई थी। देश की आय के स्रोत राष्ट्रीय बचत (३१%) मूल्यापकर्ष नियोजन (Depreciation Provision) (२९%) विदेशी आर्थिक सहायता और व्यक्तिगत क्षेत्रो के विदेशी व्यापार (२६%) और सयुक्त राज्य अमेरिका के काउटरपार्ट फंड्स (Counterpart Funds) (१४%) हैं।

फारस की खाड़ी स्थिति : २७° ०' उ० अ० तथा ५०° ०' पू० दे०। यह अरब तथा ईरान के मध्य घिरा हुआ सागर है, जो दजला एवं फरात के मुहाने से लगभग ५०० मील मुख्य स्थलखडो से ओमैन राज्य तक फैला है। खाड़ी का क्षेत्रफल ९७,००० वर्ग मील, औसत गहराई ४० से ५० फैदम तथा अधिकतम चौड़ाई २०० मील है। इस खाड़ी मे ज्वारभाटा करीब ९ फुट तक उठता है। यहाँ का जल हिंद महासागर से अधिक खारा है। फारस की खाड़ी मे दजला एवं फरात नदियो का जल ही अधिकाशत गिरता है। इस खाडी मे अच्छे बंदरगाहो की कमी नही है। [मु० प्र० सि०]

फारसी भाषा दे० 'ईरानी भाषा'

फारसी साहित्य फारसी भाषा और साहित्य अपनी मधुरता के लिये प्रसिद्ध है। फारसी ईरान देश की भाषा है, परतु उसका नाम फारसी इस कारण पडा कि फारस के, जो वस्तुत ईरान के एक प्रात का नाम है, निवासियो ने सबसे पहले राजनीतिक उन्नति की। इस कारण लोग सब से पहले इसी प्रात के निवासियों के संपर्क मे आए, अत. उन्होंने सारे देश का नाम पर्सिस रख दिया, जिससे आजकल यूरोपीय भाषाओ मे ईरान का नाम पर्शिया, पेर्स, प्रेजियन आदि पड़ गया।

भाषाओ के आर्य परिवार से फारसी भाषा का सबंध है, जिससे संस्कृत, यूनानी, लैटिन, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि भी सबद्ध है। ईरान शब्द का वास्तविक रूप आर्याना था, जैसा यवन लेखक लिखते है। आर्याना से धीरे धीरे ईरान शब्द बन गया। यवन लेखकों ने आर्याना शब्द का आधुनिक ईरान तथा अफगानिस्तान दोनो के लिये प्रयोग किया है। फारसी आर्य भाषाओ की पूर्वी शाखाओ से संबंध रखती है। इसके प्राचीनतम नमूने पारसियो की धार्मिक पुस्तक अवेस्ता की गाथाओ (मत्रों) में मिलते है। उससे कुछ कम प्राचीन भाषा वह है जो ईरान के सम्राटो द्वारा पहाड़ो, चट्टानो पर खुदाए हुए लेखों में मिलती है। परंतु इन दोनो की भाषाओं में विशेष अंतर नही हैं। अफगानिस्तान की आधुनिक भाषा अर्थात् पश्तो भी उसी समय की एक ईरानी भाषा से निकली है। यह वह समय था जब ईरान और भारत को अलग हुए अधिक समय नहीं हुआ था। प्राचीन ईरानी भाषा, जिसे यूरोपीय लेखक ज़ेंद कहते

हैं, और संस्कृत एक दूसरे से इतनी मिलती जुलती तथा समीप हैं कि अवेस्ता की गाथाओं का अनुवाद वैदिक संस्कृत में शब्द प्रति शब्द तथा छंद प्रति छंद हो सकता है। पढने में यह भाषा पूर्णरूपेण संस्कृत के समाभ ज्ञात होती है। उदाहरणार्थ ईरान के सम्राट् दारा प्रथम के एक शिलालेख के एक वाक्य में कहा गया है 'उता नाहम् उता गौरा फजानम्' अर्थात् मैंने शत्रु की नाक व कान दोनो कटवा दिए। इसी प्रकार एक वाक्य में कहता है कि 'अदम् कारम् पार्सम् उता मादम् फ़ाइरायम् हय उप माम् आह्' अर्थात् मैंने पारसी तथा मीडी सेनाएँ, जो मेरे पास थी, दोनों भेजी। अदम् वही शब्द है जो संस्कृत में अहं है तथा जिसका अर्थ मैं है।

यह परिवार, जिसमें दारा प्रथम आदि थे, हखामनिशी कहलाता है और इसका राज्य सन् ५५९ पूर्वेसा के पहले स्थापित हुआ और सन् ३२६ पूर्वेसा सिकदर द्वारा नष्ट हुआ। यवनो का राज्य भी अधिक समय तक ईरान में स्थिर नही रह सका और शीघ्र ही एक जाति ने, जिसे पार्थियन कहते है, अपना अधिकार ईरान पर जमा लिया। इनको ईरानी भाषा, सस्कृति, धर्म आदि मे कोई अभिरुचि नही थी प्रत्युत वे यूनानी भाषा तथा सस्कृति के प्रेमी थे। इनके समय में ईरानी धार्मिक पुस्तकें आदि बहुत सी नष्ट हो गई। इनके राज्य के अतिम काल मे ईरानी राष्ट्र धर्म मे इनकी कुछ रुचि दिखलाई दी और धार्मिक ग्रंथो को एकत्रित करने का कुछ प्रयास हुआ पर इसी समय देश मे एक दूसरी क्राति उत्पन्न हो गई। एक दूसरे वंश का, जिसे सासानी कहते है, सन् २२६-२८ ई० मे देश पर अधिकार तथा राज्य हो गया। इस वश का राज्य सन् ६४२ ई० तक रहा और मुसलमानो द्वारा नष्ट कर दिया गया। इस युग की फारसी भाषा पहलवी कहलाती है, जो आजकल के फारसी के बहुत समीप है पर पूर्णत एक सी नही है। इस युग मे पारसियो की धार्मिक पुस्तके पुन एकत्रित की गई तथा फारसी धर्म फिर जीवित हो उठा। उस युग की फारसी पहलवी नाम से विख्यात थी पर साथ ही साथ पहलवी एक प्रकार की लिपि का भी नाम है। इस लिपि पर सुरयानी अर्थात् प्राचीन सीरिया की भाषा का बड़ा प्रभाव था। बहुत से शब्द सुरयानी अक्षरो मे लिखे जाते और फारसी में पढे जाते थे। उदाहरण के लिये सुरयानी अक्षरो में 'लखमा' लिखते थे और उसे फारसी नान अर्थात् रोटी पढते थे। जैसे अग्रेजी मे एल० एम० डी० (L. S D) लिखते है और पाउंड, शिलिंग, पेंस पढ़ते है, क्योकि वे लैटिन भाषा के शब्द लिब्राई, सालिदी तथा देनारिई है। इस भाषा मे जो साहित्यिक कार्य हुआ है उसका पर्याप्त भाग अभी तक प्राप्त है।

धार्मिक क्षेत्र मे अवेस्ता की टीका जेद के नाम से लिखी गई है और फिर उस टीका की टीका की गई, जिसका नाम पजेद है। अवेस्ता के और भी अनुवाद पहलवी में हुए। इनके अतिरिक्त धार्मिक विषय पर 'दीनकर्त' नामक पुस्तक रची गई, जिसमे पारसियों की प्रथाओं, इतिहास, आदि पर बहुत कुछ लिखा हुआ है। 'बुंदहिश्न' भी धार्मिक पुस्तक है जो १२वी शती ईसवी मे लिखी गई और जिसका अधिकांश काफी पुराना है। 'दातिस्ताने दीनिक' अथवा धार्मिक उपदेश तीसरा ग्रंथ है, जिसके संबंध में वेस्ट नामक विद्वान् कहता है कि इसका अनुवाद बहुत कठिन है। 'शिकद गुमानिक वीजार' नवी शताब्दी ईसवी के अंत में लिखी गई। इसमे ईसाई, यहूदी, मुसलमान धर्मो ने जो आपत्तियाँ पारसी धर्म पर की हैं उनका उत्तर है। 'मैनोए खिरद' में पारसी धर्म के बारे में ६२ प्रश्नों के उत्तर हैं। 'अर्दविराफ' नामक एक बड़ी आकर्षक पुस्तक है, जिसमें ग्रंथकर्ता के बैजठ, नरक आदि मे सैर करने का वर्णन है, जैसा मुसलमानों में पैगंबर साहब के आकाश पर स्वर्ग नरक का भ्रमण करने का विश्वास है। इटालियन मे दाते नामक कवि की इनफरनो तथा परडाइजो रचनाएँ हैं, जिनमें कवि वर्णन करता है कि किस प्रकार उसने आकाश पर जाकर स्वर्ग तथा नरक की सैर की है। 'मातिगाने गुजस्तक अबालिश' को फ्रासीसी विद्वान् ने परकजेंद, उसके पारसियो द्वारा किए गए फारसी अनुवाद तथा फ्रेंच अनुवाद के साथ सन् १८८३ ई० मे छापा है।

ये सब तो धार्मिक पुस्तकें थी। सासारिक विषयो पर लिखी प्रसिद्ध पुस्तकों मे 'जामास्पनामक' का नाम लिया जा सकता है। इसमे प्राचीन ईरान के बादशाहो की कथाएँ आदि हैं। 'अंदरजे खुसरवे कवातान' में उन आदेशों की चर्चा है, जो ईरान के प्रसिद्ध सम्राट् नौशेरवाँ ने मरते समय दिए थे। 'खुदाई नामक' अर्थात् बादशाहो की किताब मुसलमानों के समय तक थी। इसका अनुवाद अरबी मे भी हुआ है। 'यात्कारे जरीरान' को 'शाहनामए गस्ताश्प' भी कहते हैं। 'कारनामके अरतख्शत्रे पापकान' मे सासानी वंश के सस्थापक अर्दशिर की कथाएँ है। खुसरवे कवातान और उसके गुलाम की कहानी पर भी एक पुस्तक है। यहाँ तक पहलवी साहित्य की विशिष्ट पुस्तकों का उल्लेख हुआ। इनके अतिरिक्त कुछ और छोटी छोटी रचनाएँ है जिनका विवरण नही दिया जा रहा है।

मुसलमानों ने सन् ६४२ ई० मे ईरान विजय किया था और उसके २०० वर्ष बाद तक जो कवि या लेखक हुए वे सब अरबी मे लिखते रहे, पर इसके अनंतर राजनीतिक परिस्थिति बदली। ईरानियो की सहायता से अब्बासियो ने, जो पैगबर साहब के चाचा अब्बास की संतानों मे से थे, बनी अम्मिया को परास्त कर अपना राज्य स्थापित किया तो ईरानियों को पुन. पनपने का अवसर मिला। आरंभ मे अब्बासियो के मत्री ईरानी ही होते थे। अब्बासियो के छठे खलीफा मामूँ की माता ईरानी थी, जिससे स्वभावत. उसे ईरान से प्रेम था और ईरानियो के प्रति महानुभूति भी थी। उसने एक ईरानी को बुखारा, खुरासान आदि का प्रांताध्यक्ष नियत किया। यही सामानी वश का संस्थापक हुआ। इन्ही सामानियो के काल मे फारसी भाषा तथा साहित्य को पुनर्जीवन मिला। एक ओर सामानी वंश स्थापित हुआ और दूसरी ओर अरब शक्ति क्षीण होने लगी तथा ईरानी अपनी खोई हुई स्वतत्रता को प्राप्त करने का पुन: प्रयत्न करने लगे। इनके साथ साथ फारसी भाषा तथा साहित्य की भी उन्नति होने लगी। सामानी युग से भी पहले कुछ कवि ईरान मे हुए पर उनकी कविताएँ बहुत कम प्राप्त है। इसलिये हम उन्हे छोड़कर फारसी साहित्य का आरभ सामानी युग से ही मानेगे। इस युग तक फारसी भाषा बहुत कुछ बदल चुकी थी तथा उसपर अरबी भाषा एवं साहित्य का गंभीर प्रभाव पड चुका था और फारसी अरबी लिपी मे लिखी जाने लगी थी। जैसे जैसे ईरानी मुसलमान होते गए वैसे वैसे पुरानी भाषा छोडते गए। इसी फारसी को इसलाम के बाद की फारसी, इसलामोत्तर काल की फारसी, कहा जाता है और वास्तव में यही वह फारसी है जो अपनी मधुरता तथा सौष्ठव के लिये प्रसिद्ध है।

सामानी युग (सन् ८७४-९९९ ई०) — यह युग फारसी भाषा के साहित्य की वास्तविक उन्नति का समय है। वस्तुत इसी युग मे फारसी के बड़े बडे साहित्यकार उत्पन्न हुए, जिन्होंने आनेवाली पीढ़ियों के कवियों तथा लेखको के लिये मार्ग प्रशस्त किया था। अभी तक जो फारसी साहित्य था वह कविता अर्थात् पद्य तक सीमित था परंतु इस युग मे फारसी गद्य ने भी उन्नति की।

सामानियों के समय का एक प्रसिद्ध कवि अबू शुकूर बलखी है। इसने रुबाई नामक छंद निकाला, जिसने बाद में विशेष उन्नति की। किंतु इस काल का सर्वश्रेष्ठ कवि रूदकी या रूदगी है, जो ईरान का प्रथम महाकवि है। इसका नाम अबू अब्दुल्ला जाफर बिन मुहम्मद है। इसका उपनाम रूदकी है, जो उसके ग्राम के नाम से लिया गया है। कहा जाता है कि वह अंधा था परंतु इस दोष के रहते पर भी वह सामानी बादशाह नसर बिन अहमद को पसंद था। उसकी शैली सरल तथा सुगम है, फिर भी कुछ सीमा तक उसमे 'तकल्लुफ' (संकोच, आडंबर) पाया जाता है, जो बाद की फारसी कविता का विशिष्ट गुण हो गया। रूदकी गायन कला में भी प्रवीणता रखता था। इसने गजलें तथा कसीदे लिखे हैं और वामिक एवं एज़रा नामक एक आख्यानक काव्य भी लिखा है, जिसका मूल पहलवी का है। रूदकी की मृत्यु सन् ९५४ ई० मे हुई। सामानी युग का एक अन्य उल्लेखनीय कवि 'दक़ीकी' है जिसके बारे मे कहा जाता है कि उसने पहले शाहनामा कविताबद्ध करना आरंभ किया था किंतु उसे पूरा करने के पहले ही अपने दास के हाथों मारा गया। धर्म की दृष्टि से दकीकी जरथुस्त्री अर्थात् अग्निपूजक था। मदिरा तथा जरथुस्त्री धर्म की प्रशंसा में उसकी कविता प्रसिद्ध है।

गद्य में लिखित पुस्तकों में से कुछ का विवरण इस प्रकार है :

किताब अजायबुल अल् बर्रो अल् बहर या अजायबुल् बुल्दान में ईरान् के विभिन्न प्रातो का मूल्यवान् विवरण प्राप्त है। किताब हुदूदुल् आल्मरमिन अल्मशरिक् व अल्मगरिब के रचयिता का नाम ज्ञात नही, जैसा उसकी भूमिका से प्रकट है। यह सन् ३७२ हि० की रचना है। किताबुल्अबनिया अन हकायकुल् अदविया पुस्तक ओषधियों पर है। यह अबू मसूर मुवफ्फिक हरवी की रचना कही जाती है। तर्जुमा तारीख तबरी के मूल अरबी ग्रंथ का लेखक मुहम्मद बिन जरीर तबरी है, जिसका अनुवाद फारसी में कई विद्वानो ने मंसूर बिन नूह के आदेश से किया था। तर्जुमा तफसीर तबरी का भी मूल लेखक मुहम्मद बिन जरीर तबरी है और इसका भी फारसी अनुवाद मंसूर बिन नूह के आदेश से कई विद्वानो ने मिलकर किया था।

ग़जनवी युग — सामानी वश का अंत गजनवियो के द्वारा हुआ। गजनवी वंश का सस्थापक अल्पतगी नामक एक तुर्की दास था। उसके बाद उसका दास सुबुक्तगीन गद्दी पर बैठा। इसके बाद इसका बेटा महमूद गजनवी सिंहासन पर आरूढ हुआ। यह विद्या तथा साहित्य का आश्रयदाता था। इसके दरबार मे बडे बड़े कवि तथा विद्वान् एकत्र थे। इस काल मे कसीदा कहने की प्रथा ने बडी उन्नति की। बादशाह के दरबारी कवियो में उन्सुरी, फर्रुखी तथा असुज्दी बहुत प्रसिद्ध हैं, जिन्हे कसीदा कहने मे श्रेय प्राप्त है। सुलतान महमूद के ही समय मे फिरदौसी ने शाहनामा लिखा, जिसमे साठ सहस्र शेर हैं और जो संसार के बड़े युद्धकाव्यो में परिगणित हैं।

इस युग मे गद्य की भी बडी उन्नति हुई। इस काल के प्रसिद्ध विद्वान् अलबेरुनी ने 'अल्तफहीम लावायेल सिनायतुल् तन्जीम' नामक फारसी ग्रंथ ज्योतिष (नजूम) पर लिखा। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि नजूम की सूक्तियाँ अरबी के बदले फारसी मे हैं। प्रसिद्ध हकीम तथा तत्ववेत्ता हकीम इब्न सीना ने दानिशनामा अलाई या हिकमत अलाई फारसी मे लिखा और पूरा प्रयत्न किया कि आध्यात्मिक सिद्धात फारसी मे बनाएँ। इब्ने सीना की अन्य रचनाएँ भी हैं। इसी युग का प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल्-फज्ल बैहिकी है जिसकी प्रसिद्ध रचना तारीखे बैहीकी है। इसकी शैली सुगम तथा प्रसादपूर्ण है। फारसी गद्य की अच्छी से अच्छी रचनाओ में इसकी गिनती है। 'कशफुल् महजूब' फारसी मे सूफी मत की पहली पुस्तक है। इसका लेखक अली बिन उसमान हुज्वीरी गजनवी है, जिसे दाता गजबख्श भी कहते है। इनकी कब्र लाहौर मे है।

सुलतान महमूद सन् १०३० ई० मे मरा। इसके अनतर इसका पुत्र मसऊद गद्दी पर बैठा। इसके समय मे एक तुर्क कबीले ने, जिसका नाम सेल्जुक था, बादशाह को परास्त कर अपना शासन खुरासान तथा ईराक मे स्थापित किया और क्रमश. बहुत उत्कर्ष को पहुँचा। अब इस काल में गजनवी तथा सेलजुकी युग साथ साथ चले। फारसी भाषा तथा साहित्य की उन्नति बराबर होती रही, प्रत्युत गजनवियों तथा सेल्जुकियों की फारसी अन्य देशो मे भी फैलने लगी। इस युग के गद्यलेखको मे से निजामुल्मुल्क तूसी विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योकि यह दो सेलजुकी बादशाहो अल्पअर्सलाँ तथा मलिक शाह के ३० वर्ष तक मंत्री रहे। सासतनाम इनकी प्रसिद्ध रचना है, जिसकी भाषा तथा लेखनशैली सरल तथा सुगम है। इस युग का एक दूसरा गद्यलेखक उन्सुरुल मआली कैकाऊस है, जो तबरिस्तान का शाह था। इसने अपने पुत्र गीलानशाह के लिये एक पुस्तक प्रस्तुत की। बडे मनोरजक ढंग से छोटी कहानियों द्वारा इसने सद्व्यवहार को समझाने का प्रयत्न किया है। एक अन्य उल्लेखनीय पुस्तक 'तर्जाकिरतुल औलिया' है, जिसका प्रणेता प्रसिद्ध सूफी विद्वान् फरीदुद्दीन अत्तार है। यह पुस्तक जनसाधारण मे सूफी मत के प्रचार की दृष्टि से लिखी गई थी। इसमे प्रसिद्ध मुसलमान सूफियो के जीवनचरित्र तथा उनके उपदेश दिए गए है। स्थान स्थान पर कहानियाँ भी दी गई है। भाषा तथा लेखनशैली आकर्षक है। प्रसिद्ध पुस्तक 'कलील व दमन' का, जिसका मूल सस्कृत मे है, इसी काल मे अरबी से फारसी में नसरुल्ला गजनवी ने अनुवाद किया, पर यह सरल एवं सुबोध नही है। इस युग की एक श्रेष्ठ रचना 'चहार मकाला' है, जिसका रचयिता निजामी अरूज्जे समरकंदी है। यह सन् ५५१-५२ हि० की रचना है। भाषा तथा शैली अत्यंत सरल है। इसमे हकीमो, कवियो, ज्योतिर्विदो तथा लेखको के लिये उपदेश है। ग्रंथ के विषयों को किस्सो के द्वारा स्पष्ट किया गया है। इस काल की प्रसिद्ध साहित्यिक पुस्तक 'मुकामात हमीदी' है, जिसका लेखक काजी हमीदुद्दीन बलखी है। यह अरबी के दो विख्यात ग्रथो अर्थात् मुकामात अबुल्फज्ल हमदानी तथा मुकामात हरीरी की नकल है। भाषा अत्यत क्लिष्ट तथा दुरूह है। स्थान स्थान पर अरबी के शब्द तथा शेर अधिकता से आए हैं।

इस युग में पद्य की बड़ी उन्नति हुई किंतु आडंबर अधिक बढ़ गया। कसीदों मे विशेषकर क्लिष्टता तथा दुरूह कल्पनाएँ दृष्टिगोचर

होती हैं। कसीदा कहनेवाले कवियों में खाकानी का नाम ही काफी है, जिसकी मृत्यु सन् ४६४ हि० में हुई। इसके कसीदों में ओज तथा तड़क भड़क बहुत है पर साथ ही साथ क्लिष्टता तथा कल्पना का आडंबर भी अधिक है। इसकी प्रसिद्ध रचना 'तुहफतुल्एराकीन' है। खाकानी के सिवा इस युग के प्रसिद्ध कसीदगो कवि अनवरी, मुइज्जी तथा फारयाबी हैं। इसी समय उमर खय्याम भी हुए जिनकी रुबाइयाँ प्रसिद्ध है और जिनका अनुवाद प्राय. सभी भाषाओं में हो चुका है। उमर खय्याम कवि नही, प्रत्युत ज्योतिषी तथा गणितज्ञ था जो कभी कभी कविता कर लेता था। नासिर खुसरो इस युग का प्रसिद्ध साहित्यकार था, जिसने गद्य पद्य दोनों लिखा है और अच्छा लिखा है। धर्म की दृष्टि से यह इसमाइली था, जो शीओं की एक शाखा है। इसने अपनी साहित्यिक शक्ति को अपने धार्मिक विचारो का प्रचार करने मे विशेष लगाया। पद्य में इसका दीवान रूशनाईनामा तथा सआदतनामा प्रसिद्ध है। गद्य में जादुल्मुसाफिरीन तथा सफरनामा ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। सेल्जुकी युग की प्रमुख विशेषता सूफी ढंग की कविता का उत्कर्ष है। सूफी कवियो मे फरीदुद्दीन अत्तार का विशिष्ट स्थान है, जिनका उल्लेख गद्य लेखकों में पहले किया जा चुका है। उनकी पद्य रचनाओं में मंतिकुत्तैर, इसरारनामा, मुसीबतनामा, इलाहीनामा आदि है। यह सन् ६२७ हि० के लगभग मुगलो द्वारा मारे गए। इस युग के ख्यातिलब्ध कवि निजामी गजवी हैं, जिन्होने सिकंदरनामा नामक मसनवी प्रस्तुत की है। इसमे सिकंदर की कल्पित तथा अवास्तविक कहानियाँ हैं। इन्होने पाच मसनवियाँ खम्सा के नाम से लिखी हैं जिनके नाम मखजनुल् इसरार, खुसरू व शीरी, लैली व मजनूँ, हफ्तपैकर या बहरामनामा है। निजामी को कहानियो को पद्यबद्ध करने में बड़ी निपुणता प्राप्त थी। इन्होने अनेक प्रकार की नई नई उपमाओ आदि का प्रयोग किया है। निजामी का परवर्ती काल के कवियो पर विशेष प्रभाव पडा, जिन्होने इनके समर्थन मे रचनाएँ की। निजामी की मृत्यु सन् १२०३ ई० में हुई।

मुगल युग (मंगोल युग) — चंगेज खाँ तुर्किस्तान के सम्राट् जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ सिंध तक आया। उस समय हिंदुस्तान मे मुसलमानों का राज्य स्थापित हो चुका था। मुगल मुसलमान नही थे। हिंदुस्तान के मुसलमानी राज्य का सौभाग्य था कि हिरात नगर मे, जो आजकल अफगानिस्तान के अंतर्गत है, विद्रोह मच गया और चगेज खाँ उसे दमन करने के लिये वहाँ चला गया। मुगलों (मंगोलो) ने अत मे सन् १२५७ ई० मे बगदाद भी विजय कर लिया और अब्बासी खलीफो का राज्य समाप्त हो गया। हिंदुस्तान का मुसलमानी राज्य मुगलो के हत्याकांड से बचा हुआ था। इस कारण हर स्थान के कवि तथा विद्वान् हिंदुस्तान आकर शरण लेने लगे। इस प्रकार हिंदुस्तान फारसी भाषा तथा साहित्य का एक प्रभावशाली केंद्र बन गया। भारतीय फारसी साहित्य का अपना एक अलग इतिहास है। फारसी के हिंदुस्तानी कवियो मे से केवल अमीर खुसरो का नाम काफी है। गद्यलेखकों मे काजी मिनहज सिराज ने तबकाते नासिरी लिखी, जो इतिहास का एक ग्रंथ है। हिंदुस्तान मे लिखे गए लुबाबुल्लुबाब ग्रंथ का, जो फारसी के कवियो का महत्वपूर्ण तजकिरा (कवि चर्चा) है, रचयिता नूरुद्दीन मुहम्मद औफ़ी यहाँ नासिरुद्दीन कुबाचा तथा उसके अनंतर सुलतान शम्सुद्दीन एलतुतमिश के दरबार मे रहता था।

ईरान मे जो कवि तथा साहित्यकार हो गए हैं उनमे से कुछ प्रसिद्ध ये हैं अलाउद्दीन अल मलिक जुवीनी, जिसकी मृत्यु सन् ६८१ हि० में हुई, इस युग का प्रसिद्ध लेखक है। इनकी पुस्तक तारीख जहाँकुशा विशद ग्रंथ है। इसमें मुगलों के व्यवहार, स्वभाव, शासनपद्धति आदि पर पूरा प्रकाश डाला गया है। इसमें भौगोलिक वृत्तांत भी आया है पर इस ग्रंथ की लेखनशैली मे आडंबर भरा हुआ है। अरबी शब्दों, कहावतो तथा कुरान की आयतों का स्थान स्थान पर प्रयोग होने से जो लोग अरबी भाषा नही जानते वे इस पुस्तक को सरलता से पढ़ नही सकते और न इससे पूरा आनद प्राप्त कर सकते है। गुलिस्ताँ तथा बोस्ताँ के प्रणेता शेख सादी भी इसी युग में हुए। इनकी लेखन शैली अत्यंत सुगम तथा आकर्षक है। गुलिस्ताँ गद्य मे और बोस्ताँ पद्य में है। गुलिस्ताँ के सिवा गद्य मे इनकी अन्य रचनाएँ भी हैं और पद्य में बोस्ताँ के सिवा इनका दीवान भी है, जिसमें कसीदे, गजलें तथा अन्य प्रकार की कविताओं के नमूने भी हैं। शेख सादी की गणना अच्छे गजल कहनेवाले कवियों में की जाती है। तारीख जहाँकुशा के समान एक अन्य पुस्तक तारीख वस्साफ है, जिसका लेखक शिहाबुद्दीन अब्दुल्ला है। यह सन् ६६३ हि० मे शीराज में पैदा हुआ और आठवी शती हिजरी के मध्य तक जीवित रहा। तारीख वस्साफ की शैली आडबर तथा अत्युक्तियों से भरी है किंतु ऐतिहासिक प्रामाणिकता की दृष्टि से अच्छी पुस्तक है। तारीखे जहाँकुशा के बाद की सभी घटनाएँ इसमे आ गई है। इस युग का दूसरा लेखक रशीदुद्दीन फजलुल्लाह जामेउत्तवारीख का ग्रंथकर्ता है। इसकी मृत्यु सन् ७१८ हि० मे हुई। हम्दुल्लाह मुस्तौफी कजवीनी इस युग का एक इतिहासकार है, इसकी पुस्तक का नाम नुजहतुल्कुलूब है। प्रसिद्ध सूफी कवि जलालुद्दीन रूमी ने भी गद्य में पुस्तकें लिखी हैं, जिनमे से कुछ है—'किताब वजीया माफिया,' 'मजालिस' तथा 'मकतूबात'। नसीरुद्दीन तूसी इस काल का प्रसिद्ध विद्वान् तथा साहित्यकार है। इसकी श्रेष्ठ रचनाओ मे तर्कशास्त्र सबंधी 'एसासुल् इक्तबास' है। 'मैयारुल् अशआर' छदशास्त्र पर है। इसको विशिष्ट पुस्तक 'इख्लाके नासिरी' बहुत प्रसिद्ध है। इसकी लेखनशैली कठिन है।

इस युग मे सूफियाना कविता की बड़ी वृद्धि हुई, जिसका कारण मुगलो के आक्रमणो से हर ओर फैली हुई बरबादी थी। इससे ससार की अस्थिरता सबके हृदयों पर जम गई। सूफी मत मे ससार की नश्वरता पर बडा बल दिया जाता है। इस काल के सामाजिक जीवन मे बहुत सी बुराइयाँ आ गई थी, जिनपर इस समय के कवियो ने बहुत लिखा है। इस काल के बडे कवियो मे से जलालुद्दीन रूमी उल्लेख्य हैं। ये सन् १२०७ ई० मे बल्ख मे पैदा हुए और सन् १२७३ ई० मे कौनैन. मे, जो अब तुर्की मे है, मरे। इनकी प्रसिद्ध मसनवी की सूफी ससार मे बड़ी प्रतिष्ठा है और इसे फारसी का कुरान कहा जाता है। मसनवी के सिवा इनका दीवान भी है, जो 'दीवान शम्स तब्रेज' के नाम से प्रसिद्ध है।

इस युग का प्रसिद्ध हँसोड कवि उबेद जाकानी है। कविता की ओट मे अपने समय की सामाजिक कुरीतियो का अच्छा वर्णन इसने

किया है और तुर्कों तथा मुगलों के आक्रमणों से उत्पन्न बुराइयों का विवरण दिया है। सलमान सावजी इस युग का विख्यात कसीदा कहनेवाला कवि है, जो बगदाद के मुगल बादशाहों की प्रशंसा किया करता था। इस युग के सबसे बडे तथा अंतिम कवि हाफिज हैं। हाफिज ने सूफी विचारों तथा प्रेम की अच्छी कल्पनाएँ की हैं। शब्दचयन अत्यंत सुष्ठु तथा मधुर है।

तैमूरी युग — मुगलो (मंगोलों) के अनतर तैमूर तथा उसके अनुयायी यद्यपि मुसलमान थे तथापि अत्याचार तथा नाश के कार्यों मे मुगलो से कम नहीं थे। तैमूर का समय १४वी शती ईसवी से आरंभ होता है और सफवी युग (सन् १४९९ ई०) के प्रारंभ तक चलता है। इस काल में तुर्की भाषा ने ईरान मे प्रबलता प्राप्त की क्योंकि दरबार तथा सेना की भाषा तुर्की थी। फारसी की प्रतिष्ठा घटी तथा साहित्य का भी स्तर गिर गया। बगदाद के मुगलो के अधिकार में चले जाने से अब्बासी खलीफों का अंत हो गया और अरबी का बचा बचाया संमान भी समाप्त हो गया। फारसी भाषा मे रचनाएँ होने लगी। यह कार्य तैमूरी युग मे होता रहा और इस दृष्टि से अवश्य फारसी की उन्नति हुई। इस युग के लेखको ने इतिहासरचना पर विशेष बल दिया। हाफिज आबरू इस युग का प्रसिद्धतम इतिहासकार कहा जा सकता है। इन्होने ससार के साधारण इतिहास पर 'जुब्दतुतवारीख' नामक एक बडा ग्रंथ लिखा है। इसी काल में दो अन्य इतिहासकार निजामी शामी तथा शरफुद्दीन अली यजदी है। इन दोनों की किताब का नाम जफरनामा है। अब्दुर्रज्जाक ने मतलउल सादैन लिखा जिसमें सुलतान अबू सईद के समय से सन् १४७० ई० तक की घटनाएँ दी गई हैं। मीर खोंद ने रौजातुस्सफा लिखा। संसार के आरंभ से सुलतान अबू सईद की मृत्यु (सन् १४७० ई०) तक सारे इस्लामी संसार का इतिहास इसमे दिया गया है।

तैमूरी युग के कवियों मे ये उल्लेखनीय है—कमाल खुजंदी, जिसकी मृत्यु सन् १४०० ई० मे हुई, तथा मुल्ला मुहम्मद सीरी मगरिबी तब्रेजी, कातिबी नैशापुरी, मुईनुद्दीन कासिम अनवर (जो सभवत. सन् १४३४ ई० में मरा) इस युग के दो आकर्षक कवि अबू इसहाक तथा महमूद कारी हैं।

गद्य की दृष्टि से दौलतशाह समरकंदी की पुस्तक 'तजकिरतुश्शोअरा' महत्वपूर्ण है। लेखक ने यह ग्रंथ उस समय के प्रसिद्ध विद्याप्रेमी मंत्री मीर शेर अली नवाई के नाम से लिखा है। मीर शेर अली नवाई, स्वय कवि था। तुर्की मे उसने 'मजाजलिसुन्नफायस' नाम से कवियों का एक वृत्तसग्रह लिखा है, जिसका फारसी मे लतायफनामा के नाम से अनुवाद हुआ है। मीर शेर अली के आश्रितो मे से हुसेन वाएज़ काशिफी है, जिसने प्रसिद्ध पुस्तक सहेली लिखी है। इसकी नकल में हिंदुस्तान में शाहजहाँ के समय में 'बहारे दानिश' लिखी गई, जो बहुत समय तक मदरसो में चलती रही। इसी लेखक की एक और रचना 'इखलाके मुहस्निनी' है, जिसकी लेखनशैली सरल तथा सादी है। वास्तव मे यह पुस्तक, 'इखलाके जलाली' के आदर्श तथा ढंग पर लिखी गई है, जिसका लेखक मुहम्मद बिन असद दव्वानी है। दव्वानी सन् १४०६ ई० मे मरा, इससे इसका भी उल्लेख इसी काल के लेखकों मे किया जा सकता है।

मीर शेर अली ने जिन्हें आश्रय दिया, उनमें मुल्ला अब्दुर्रहमान जामी थे, जो इस युग के सबसे बड़े कवि थे। यह खुरासान के जाम नामक ग्राम में सन् १४१४ ई० में पैदा हुए थे। इन्होंने तीन दीवान ग़जलो के प्रस्तुत किए हैं, जिनमे बहुत से हाफिज के ढंग पर हैं। निजामी के खमसा की चाल पर हप्त औरंग नामक सात मसनवियाँ इन्होने लिखी हैं। इनमे विभिन्न प्रकार के विषय हैं जिसमें सदाचार, तसव्वुफ, प्रेम आदि पर तर्क वितर्क है। गद्य में इनकी प्रसिद्ध रचनाओं मे से 'नफ़हातुल्उंस' है, जिसमें मान्य सूफियो के वृत्त संगृहीत हैं। तसव्वुफ की महत्वपूर्ण पुस्तको में से यह एक है। जामी की एक अन्य पुस्तक बहरिस्ताँ है, जो शेख सादी के गुलिस्ताँ के ढंग पर लिखी गई है। इन्होने अरबी व्याकरण पर 'शरहे जामी' नामक पुस्तक भी लिखी है।

सफवी युग — तैमूर सन् १४०५ ई० में मरा और उसके बाद उसका विस्तृत साम्राज्य विभिन्न सर्दारो मे बँट गया, जो आपस में युद्ध करते रहते थे। ऐसी परिस्थिति एक शती तक रही, जिसके अनंतर सफवी वंश का उदय हुआ। सफवियों ने पूरे ईरान पर शासन किया। इनसे पहले पूरे ईरान पर किसी वंश ने शासन नही किया था। इनके काल मे ईरान ने बड़ी उन्नति की और इन्ही के समय से शीआ धर्म ईरान मे अब तक चला आता है।

इस युग के कवियों में हातिफी जामी है, जो प्रसिद्ध कवि जामी का भाजा था। उसने लैली व मजनूँ तथा खुसरू व शीरी नामक मसनवियाँ तथा एक अन्य युद्ध काव्य तैमूरनामा भी लिखा है, जिसमे तैमूर की विजयो का वर्णन है। फिरदौसी की बहुतो ने नकल की है पर उन सब मे तैमूरनामा को अच्छी सफलता मिली। हातिफी का समकालीन कवि फिगानी था। यह पहले सुलतान हुसेन के दरबार मे था, पर द्वेषियों के कारण तब्रेज चला गया, जहाँ इसका संमान हुआ और इसे 'बाबाए शुअरा' (कवियो या पितामह) की पदवी मिली। फिगानी की विशेषता यह है कि उसने अपने शेरो मे नई नई उपमाएँ तथा शैलियाँ प्रयुक्त की। गजल मे भी अच्छी कुशलता रखता था, जिससे यह छोटा हाफिज कहलाता था। सन् १५१६ या १९ ई० में इसकी मृत्यु हुई।

जामी का शिष्य आसिफी अच्छा कसीदेगो कवि था। इसके समसामयिक अहली शीराजी ने शाह इस्माइल सफवी की प्रशंसा में बडे भव्य कसीदे कहे हैं। इसकी ख्याति का आधार मसनवी 'सेहरे जलाल' है। इसने एक मसनवी 'शमअ व परवाना' भी लिखी है, जिससे उसकी सूफी रुचि प्रकट होती है। अहली का समकालीन हिलाली था, जिसने एक दीवान, एक मसनवी 'शाहो गदा' और एक काव्य 'सिफातुल् आशिकीन' स्मारक रूप मे छोड़ी है। सन् १५२२ ई० मे यह उजबक तुर्क बादशाह के हाथो, जो शीआ धर्म का विरोधी था, मारा गया। इसी समय का दूसरा कवि कासिमी था, जिसने एक शाहनामा प्रस्तुत किया। इसमे इसने शाह इस्माइल की विजयो का वर्णन किया है। मुहतशिम काशी इस काल का सबसे बडा मर्सिया कहनेवाला कवि है।

शाह अब्बास प्रथम सफवी वश का सबसे बड़ा शासक हुआ जो सन् १५८७ ई० मे गद्दी पर बैठा। वह कवियो तथा साहित्यकारों का आश्रयदाता था। इनमें शानी तेहरानी था, जिसे उसने सोने से तौलवा दिया था। शाह अब्बास के हकीम 'शिफाई' ने मसनवियाँ

तथा कसीदे लिखे हैं। 'जुलाली ख्वानसारी' सन १६१५ या १६ में मरा। यह शाह अब्बास के काल का प्रसिद्ध मसनवी रचयिता था। इसने सात मसनवियाँ लिखी, जिन्हें 'सुबग्र सैयारा' (सात नक्षत्र) कहते है।

सफवी शाहो ने शीग्रा मत के प्रचार मे बहुत ध्यान दिया था जिससे अन्य देशो के शीग्रा विद्वान् इनके समय मे ईरान आकर बस गए। इनमें बहाउद्दीन आमिली का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसने शाह अब्बास के आदेश पर शीग्रा नियमो पर 'जामए अब्बासी' नामक पुस्तक लिखी। शाह अब्बास की विजयों के वर्णन में 'कमाली सब्जावारी' ने एक शाहनामा लिखा। इसकंदर बेग मुंशी ने शाह अब्बास की जीवनी 'तारीखे जहाँआराए अब्बासी' मे लिखी है।

इस युग में हिंदुस्तान फारसी साहित्य का अच्छा केंद्र बन गया था। जब ईरान में सफवी वंश शासन कर रहा था, हिंदुस्तान में मुगल वंश का साम्राज्य था, जो विद्या तथा साहित्य का बड़ा आश्रयदाता था। मुगलो के पास जो ऐश्वर्य तथा धन था वह ईरान के सफविरो के पास नही था, इससे ईरान के बहुत से कवि अपना देश त्याग कर भारत चले आए। बाबर ने प्रसिद्ध इतिहासकार मीर खोद के पौत्र खाद मीर को हिंदुस्तान बुलवाया, जहाँ इसने अपना प्रसिद्ध इतिहास 'हबीबुस्सियर' प्रस्तुत किया। इसमे प्राचीनतम काल से आरभ कर शाह इस्माइल की मृत्यु अर्थात् सन् १५२४ ई० तक का ससार का इतिहास दिया गया है। इसकी अन्य रचनाएँ 'खुलासतुल् अखबार', 'दस्तूरुल् वजरार' तथा 'हुमायूँनामा' है।

अकबर की आज्ञा से 'तारीखे अलफी' लिखी गई, जिसमे इसलाम के पैगंबर की मृत्यु के अनंतर एक सहस्र वर्ष तक का इतिहास आया है। अकबर कवियो का बड़ा सत्कार करता था। सुफिकी बुखाराई, जो सन् १५८८ ई० मे मरा, गजल का सुकवि था। हुसेन सनाई मशहदी मसनवी लेखक था। ये दोनों अकबर के दरबार में थे, किंतु अकबरी दरबार का सबसे बडा कवि जमालुद्दीन उर्फी था। यह शीराज मे पैदा हुआ था पर हिंदुस्तान चला आया था। उर्फी के कसीदे प्रसिद्ध हैं, जिनमे कल्पना की समर्थ उड़ानें हैं। उर्फी सन् १५६० ई० मरा। फैजी ने निजामी के 'लैली व मजनूँ' की चाल पर एक हिंदी प्रेमगाथा को 'नलदमन' के नाम से कविताबद्ध किया है। नलदमन मूलत. सस्कृत में नलदयमती है। इसी काल में जुहरी तेहरानी ने हाफिज के ढंग पर साकीनामा मसनवी लिखी है, जिसकी अच्छी प्रसिद्धि है।

अकबर का पुत्र जहांगीर भी विद्वानो तथा गुणियो का आश्रयदाता था और इसने प्रसिद्ध ईरानी कवि कलीम आमिली को अपने दरबार का मलिकुश्शोअरा (कवियो का राजा) नियत किया था। तालिब की कविता का गुण 'नुजरते तश्बीह' तथा 'लुत्फे इस्तेआर' अर्थात् उपमा तथा उत्प्रेक्षा से प्रकट है। 'सायब' जो वस्तुत. तब्रेज के एक परिवार से सबधित था हिंदुस्तान तथा ईरान दोनो देशों के साहित्येतिहास से संबद्ध है। सायब, जामी के बाद ईरान का सर्वश्रेष्ठ कवि है। यह शाहजहाँ के दरबार का कवि था। हिंदुस्तान से लौटकर ईरान चला गया, जहाँ शाह अब्बास द्वितीय ने इसे मलिकुश्शुअरा की पदवी दी। सायब सार १६७७ ई० में मरा। 'फैयाजी' उसका समकालीन था। उसने अपने कसीदो द्वारा शीग्रा इमामो की प्रशंसा की और हजरत हसन व हुसेन का मरसिया कहा है। सफवी युग के अंतकाल मे अबदुल् अल्नजात इस्फहानी हुआ है, जिसकी मृत्यु सन् १७१४ ई० मे हुई थी। इसकी लेखनशैली घटिया तथा बाजारू है परंतु इसकी मसनवी 'गुले कुश्ती' इस दोष से मुक्त है और यह अत्यत लोकप्रिय हुई। प्राय इसी काल में शेख अली हजी कवि हुए, जो ईरान से हिंदुस्तान चले आए थे। प्राचीन परिपाटी के समर्थ कवियों मे इनकी गणना है। इन्होने सात मसनवियाँ तथा चार दीवान लिखे और गद्य मे 'तजकिरतुल् मुआसिरीन' लिखी। इसमें अपने समय के कवियों तथा विद्वानों का वृत्त दिया है और इस कारण यह एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। अपने व्यक्तिगत वृत्तात को 'तजकिरा-तुलअहवाल' मे लिखा है। यह बनारस मे सन् १७६६ ई० मे मरे।

सफवियों के युग की समाप्ति पर जब तक काचार वंश का प्रभुत्व अच्छी प्रकार स्थापित नहीं हुआ, ईरान मे शासन की अस्थिरता का काल रहा। इस काल मे एक बडे साहित्यिक व्यक्तित्व का दर्शन होता है, जो लुत्फ अली आजर है। आजर तुर्की कबीला शामलू मे से थे और इस्फहान मे पैदा हुए। इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना 'आतिशकदा' है, जो सन् १८६०-६६ ई० मे लिखी गई। इसमे आठ सौ से अधिक कवियो का वृत्त दिया गया है। आजर का एक दीवान भी है तथा एक मसनवी 'यूसुफो जुलेखा' भी इन्होने लिखी है।

काचार युग — सफवियो के अनतर अफशारो ने, जिनके राज्य का संस्थापक नादिरशाह अफशार था, तथा जिद वंश ने सन् १७६१ ई० तक राज्य किया। इनके बाद काचारियों का समय आया जो सन् १९२५ ई० तक रहे। फत्ह अली शाह काचार ने सन् १७६७ से सन् १८१६ ई० तक शासन किया। वह कवियो तथा साहित्यकारों का आश्रयदाता था। फत्ह अली 'सबा' उसका मलिकुश्शोअरा था, जिसने फिर्दौसी की शैली पर शहंशाहनामा रचा। फत्ह अली शाह का मत्री खारज अब्दुलवहाब निशात' अच्छा कवि था और उसने एक दीवान प्रस्तुत किया। निशात पत्रलेखन मे अत्यंत कुशल था। इस युग का श्रेष्ठतम कवि मिर्जा हबीबुल्ला 'काआनी' था। इसने प्रशसात्मक कसीदे तथा हजोएँ अच्छी कही है।

काचारियो के युग मे शाह नासिरुद्दीन (सन् १८४८-१८६६ ई०) का विशेष महत्व है। यह स्वयं कवि तथा गद्यलेखक था। इसका सफरनामा बहुत प्रसिद्ध है, जिसमे इसने अपनी यूरोप की यात्रा का वृत्तात तथा अनुभवो का विवरण दिया है। इसकी लेखन शैली सरल तथा रोचक है। नासिरुद्दीन के राज्यकाल का प्रसिद्ध साहित्यकार रिजाकुली खाँ लाल बाशी है, जो श्रेष्ठ कवि था। इसने 'मजमउल् फुसहा' और 'रियाजुलआरिफीन' नामक दो वृत्तसग्रह प्रस्तुत कर फारसी साहित्य की बहुमूल्य सेवा की है। इन दोनो सग्रहो मे आरंभ से लेकर अपने समय तक के कवियो के वृत्त सकलित किए गए हैं और इस दृष्टि से ये बडे महत्वपूर्ण है। रिजाकुली खाँ खीवा (तुर्किस्तान) में अपने देश की ओर से राजदूत था और इसन अपने सफारतनामा नामक पुस्तक मे खीवा की अपनी यात्रा का वर्णन किया है।

काचारियों के राज्यकाल मे यूरोपीय जातियों का आवागमन अच्छी प्रकार आरंभ हो गया था और यूरोप की संस्कृति का प्रभाव ईरान पर पड़ने लगा था। इस कारण शैबानी काशानी की कविता में निराशावाद तथा पूर्ण यथार्थवाद का, जो उस समय के यूरोपीय साहित्यकारो मे विशेष प्रिय विषय हो रहे थे, पूरा प्रभाव है। इसी काल में फारसी भाषा मे नाटक (ड्रामा) लिखने की प्रथा आरभ हुई। मिर्जा जाफ़र कराच. दागी ने तुर्की से कई नाटकों का फारसी में अनुवाद किया। नई शैली के नाटकों के प्रचार के पहले ईरान मे एक प्रकार के धार्मिक खेल खेले जाते थे, जिन्हें ताजिआ कहते थे, जिसमे कर्बला के शहीदो के कष्टो का अभिनय किया जाता था। अब सुशिक्षित लोग इसे पसद नही करते।

इसी काल में यूरोपीय शिक्षा के प्रचार से बादशाहो के शासन की निर्बलता के कारण वैधानिक शासन का आंदोलन आरंभ हुआ। जनता मे नए विचारो के प्रसार के लिये समाचारपत्रो का खूब प्रचार हुआ। कवियो ने जातीय तथा शासकीय कविताएँ लिखना आरभ किया। इस काल मे गद्य की बड़ी उन्नति हुई तथा इसकी लेखन शैली इतनी सरल हो गई कि जनता उसे सहज मे समझ सके, यहाँ तक कि कविता की शैली भी बदल गई। उसमे आडंबर तथा बनावट का स्थान सरलता ने ले लिया। जनता को शासन की बुराइयो से सावधान करने के लिये हाजी जैनुल् आबदीन ने एक कल्पित यात्रा-विवरण 'सियाहतनामा' 'इब्राहीम बेग' के नाम से लिखा, जो सन् १९१० मे प्रकाशित हुआ। उसी साल मे लेखक की मृत्यु हुई। इस काल के प्रसिद्ध कवि पूरे दाऊद, अशरफुद्दीन रुश्ती, मलिकुश्शोअरा अली अकबर देहखुदा, इश्की आदि हैं। इस काल में महिलाओ ने भी कविता तथा साहित्य में बहुत भाग लिया, जिनमें परवीन, एतसामी, परीवश, दुनिया आदि को बडी ख्याति मिली।

पहलवी युग — यह युग सन् १९२५ ई० मे आरंभ हुआ। पहलवी वंश का संस्थापक रिजा खाँ था, जिसने बादशाह हो जाने पर रिजाशाह पहलवी की उपाधि ग्रहण की। यह काल ईरान मे जातीय अर्चना का है। यूरोपीय आचार विचार का प्रभाव बहुत बढ गया। कवियों ने कविता मे यूरोपीय शैली की नकल करने का प्रयत्न किया। सादगी की प्रबलता हुई। जातीय प्रेम के कारण फारसी से अरबी शब्दो को निकालने का प्रयत्न होने लगा, यहाँ तक कि अरबी लिपि त्यागने का आदोलन खड़ा हुआ पर वह अभी तक सफल नही हुआ। इस युग के कवियों मे पूर दाऊद, अली असगर हिकमत, रशीद यासिमी, आरिफ कजवीनी, अब्दुल् अजीम आदि है, जिनमे जातीयता तथा सादगी का बल स्पष्ट है।

सं ग्रं० — ई० जी० ब्राउन : ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑव पर्शिया, ई० जी० ब्राउन : प्रेस ऐंड पोएट्री ऑव मॉडर्न पर्शिया, लेवी : पर्शिअन लिटरेचर, साइक्स ए हिस्ट्री ऑव पर्शिया, दो भाग, ब्राउन पर्शिअन रिवोल्यूशन, प्रोफेसर इसहाक . सुखनवराने ईरान दर अस्रे हाजिर, दो भाग। [र० अ०]

फार्म प्रबंध यह पूर्णत सत्य नही है कि भारत में खेती केवल भरण पोषण के लिये ही की जाती है। अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि खेती भी अन्य वाणिज्य व्यवसाय की तरह से है जिसमे किसान उत्पादन के सिद्धांतो को अपनाता हुआ कुटुंब से बचे हुए उत्पादन को बाजार में ले जाकर बेचता है। इस प्रकार वस्तुओं की कीमतें, विपणन विकास तथा खेती करने के नए नए ढग, सभी किसान की समृद्धि को प्रभावित करते है। इसलिये यह सत्य है कि किसान की समृद्धि मुख्यत: फार्म प्रबध से इतनी जुड़ी हुई है कि यदि वह फार्म प्रबध के सिद्धांतो से भली प्रकार परिचित नही है तथा उनका उपयोग दैनिक कृषिचर्या में नही करता है तो वह कृषि उत्पादन बढाने मे सफल नहीं हो सकता।

फार्म प्रबंध का अर्थ — यद्यपि फार्म एक सामाजिक एवं आर्थिक संस्था है, जिसका विकास शताब्दियो मे हुआ है तथापि फार्म प्रबध विज्ञान का ज्ञान अपेक्षया नया है। इसी कारण इसकी प्रकृति, विस्तार तथा महत्व को यथोचित स्थान नही मिल सका है, और यही कारण है कि इसके अर्थ भी विभिन्न लगाए जाते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि फार्म प्रबध किसान की दैनिक कृषिचर्या की कला है जब कि दूसरे लोग इसे उत्पादन अर्थशास्त्र (Production Economics) या कृषि अर्थशास्त्र (Agricultural Economics) का नाम देते है। कुछ लोग समझते है कि सरकारी फार्मो पर देखभाल करने के लिये नियुक्त क्षेत्र प्रबधक का कार्य ही फार्म प्रबंध है। यद्यपि फार्म प्रबंध की कोई एक ही परिभाषा अभी तक सर्वमान्य नही है, तथापि निम्नलिखित परिभाषा मे लगभग सभी सहमत है

फार्म प्रबंध वह विज्ञान है जिसमे कृषि उत्पादन कारक, जैसे भूमि, श्रम, पूँजी इत्यादि, के उचित सम्मिलन एव प्रक्रियाओ को इस उद्देश्य से व्यावहारिक रूप दिया जाता है कि जिसमे छोटी से छोटी खेती की इकाई की प्रारंभिक क्रिया से भी अधिक से अधिक उत्पादन करके लाभ उठाया जा सके। कृषि व्यवसाय के लिये, कौन कौन सी फसलें बोई जाएँ अथवा उनकी खेती के लिये कितना क्षेत्रफल हो, बोई जानेवाली फसलो मे कौन सी क्रियाएँ अधिक आर्थिक लाभ देंगी, इन सब विषयो का ज्ञान इसी विज्ञान के अतर्गत आता है। किसान अनाज की फसलें बोए या दूधवाले जानवर रखे, इसका निर्णय इसी विज्ञान के आधार पर किया जाता है।

फार्म प्रबध के प्रख्यात विद्वानो द्वारा दी गई कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित है

१ "प्रक्षेत्र प्रबध, कृषि मे व्यावसायिक सिद्धातो का अनुशीलन करना है। इसकी व्याख्या कृषि उद्योग मे सगठन और प्रबध के विज्ञान के रूप मे अधिकतम संभव लाभ पाने के उद्देश्य से की जाती है।"—वारेन

२ "कृषि या किसी दूसरे व्यवसाय मे प्रबध से तात्पर्य मुख्यत उचित समय पर सही निर्णय लेने से लिया जाता है और तब यह देखा जाता है कि निर्णयो का सफलतापूर्वक क्रियान्वन हुआ या नही"। —हडैलसन

फार्म प्रबंध तथा शुद्ध व्यावहारिक विज्ञान है। शुद्ध विज्ञान इसलिये है क्योकि इसमे सिद्धातो की खोज तथा तत्वो के एकत्रीकरण, विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण का अध्ययन किया जाता है और व्यावहारिक विज्ञान इसलिये है क्योकि कृषिक्षेत्र की समस्याओ का निराकरण तथा निर्धारण इसीके विस्तार के अतर्गत आता है।

फार्म प्रबध वह विज्ञान है जिसमे अर्थशास्त्र एव वाणिज्यशास्त्र के सिद्धात खेत को वाणिज्य इकाई मानकर प्रयुक्त किए जाते है।

इसलिये आधुनिक समय में जब प्रत्येक किसान खेत से अधिकतम उत्पादन करके तथा उसे बाजार मे बेचकर अधिकतम शुद्ध लाभ उठाना चाहता है, तब यह आवश्यक है कि वह खेती मे अर्थशास्त्र के उन सब सिद्धांतों का अधिक से अधिक उपयोग करे जिनसे कम से कम व्यय पर अधिक से अधिक आय हो सके।

फार्मों की फसल तथा उनके अतर्गत क्षेत्रफल, फसल को बाजार मे बेचने का समय, खेती बैलो से की जाय या मशीनों से, फसलो को मिलाकर बोया जाय या शुद्ध, कौन कौन से पशु खेत पर रखे जाएँ, दूध, मक्खन या घी के लिये पशुपालन हो अथवा मास या ऊन के लिये, कृषि संबधित इन सभी विषयो का निर्धारण इसी विज्ञान के अतर्गत किया जाता है। फार्म प्रबध के निम्नलिखित संक्षिप्त उद्देश्य है:

१ कृषि उत्पादन के विभिन्न साधनों की आनुपातिक कार्यक्षमता तथा लागत एव आय के पारस्परिक सबधो की खोज करना, इस विज्ञान का सर्वप्रथम उद्देश्य है।

२ अधिक से अधिक शुद्ध लाभ देनेवाली फसलो के उत्पादन तथा पशुपालन की वैज्ञानिक रीतियो के जानने के उद्देश्य से इस विज्ञान का अध्ययन किया जाता है।

३ प्रति एकड फसल उत्पादन की लागत इसी विज्ञान के अतर्गत मालूम की जाती है।

४ फार्म के साधन स्रोतो तथा भूमि का मूल्याकन करना भी इस विज्ञान का उद्देश्य है।

५ फार्म के विभिन्न उद्योगो का तुलनात्मक आर्थिक ज्ञान इसी विज्ञान के द्वारा सभव है।

६ फार्म के आकार के अनुसार भूमि के उपयोगो (land utilisation), फसल प्रतिमान (cropping pattern), पूँजी विनियोग (capital investment) तथा श्रम आदि का नियोजन (planning) एव निर्धारण फार्म प्रबध के अतगत किया जाता है।

फार्म उद्योग के उत्पादन एव शुद्ध लाभ पर नव तकनीकी परिवर्तनो (new technical changes) के प्रभावो का मूल्याकन फार्म प्रबध का मुख्य क्षेत्र है।

फार्म व्यवसाय की कार्यक्षमता बढाने के उपायों तथा साधनो की खोज करने के लिये फार्म के विभिन्न साधनो का अति उत्तम सयोजन तथा उपयोग, अथवा उनका पारस्परिक सबध, इसी विज्ञान के अध्ययन से निश्चित किया जाता है।

सक्षेप मे फार्म प्रबध अध्ययन का निश्चयात्मक उद्देश्य किसानो को यह बताना है कि वे किस प्रकार अपने सीमित साधनो से निम्नलिखित कार्य करे :

(१) अत्यधिक उत्पादन बढावे।

(२) उत्पादन का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करें।

(३) कृषि मे अधिक से अधिक शुद्ध लाभ बढाने के लिये किस प्रकार साधनो का संयोजन करे कि प्रत्येक साधन से पूरा पूरा लाभ उठाया जा सके और कोई साधन बेकार न पडा रहे।

(४) प्रति एकड उत्पादन लागत न्यूनतम हो सके।

फार्म प्रबंध के व्यावहारिक सिद्धांत — औद्योगिक प्रबध मे जिन आर्थिक सिद्धातो का उपयोग किया जाता है लगभग वे ही सिद्धांत फार्म प्रबध मे भी लागू हैं, क्योकि दोनो व्यवसायो का आधारभूत उद्देश्य न्यूनतम व्यय करके अधिकतम आय प्राप्त करना है। फार्म प्रबंध के निम्नलिखित प्रमुख सिद्धात है

१. ह्रासमान प्रतिफल का नियम (Law of Diminihsing Returns) — यह नियम, फार्म के सगठन तथा सचालन दोनो पर लागू होता है। फार्म की प्रत्येक इकाई से अधिकतम सभावित लाभ पाने के लिये यह नियम मार्गदर्शक है। फसल उत्पादन की योजना बनाने, फसलो का चुनाव करने तथा पशु उद्योग वरण करने मे इसकी सहायता आवश्यक है। फार्म का दक्षतापूर्वक सचालन करने मे भी यह नियम अत्यत सहायक है। किसी कृषि प्रक्रिया की इकाई पर कितनी मात्रा तक उर्वरक, श्रम, तथा यत्र आर्थिक लाभ देंगे, इसका निर्णय इसी नियम के आधार पर होता है। इस नियम के अनुसार श्रम और पूँजी की लगातार वृद्धि करते रहने पर भी एक ऐसी इकाई अवश्य आती है जहाँ अतिरिक्त उपज से आय, अतिरिक्त श्रम तथा पूँजी की लागत से, अवश्य ही कम होती है। यह इकाई इस बात की द्योतक है कि अब उर्वरक, श्रम, अथवा यत्र का प्रयोग लाभकारी नही है, इसीलिये इनका आगे प्रयोग नही करना चाहिए। इसी नियम के सहारे वैज्ञानिक फार्म प्रबधक, कृषि की किसी भी प्रक्रिया में उस इकाई के आगे जहाँ कि ह्रासमान प्रतिफल नियम लागू हो जाता है, कोई लागत लगाना उचित नही समझता; क्योकि इस व्यवसाय मे भूमि, जिसका विस्तार संभव नही है, सीमाकारी कारक (limiting factor) है तथा ह्रासमान प्रतिफल नियम अपेक्षया जल्दी लागू हो जाता है।

२. तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत (The Principle of Comparative Advantage)— इस नियम के अनुसार प्रत्येक फार्म, केवल उन्ही फसलो का उत्पादन तथा पशुओ का पालन करता है जिनसे उसे अपेक्षाकृत अधिक लाभ हो। पश्चिमी उत्तर प्रदेश का किसान, जिसके निकट गन्ने की मिल है, गेहू की अपेक्षा गन्ना अधिक बोएगा, क्योकि गेहूँ की अपेक्षा गन्ने मे लाभ अधिक है। इसी प्रकार शहरो के निकटवर्ती गाँव में रहनेवाले किसान, खाद्य पदार्थ जैसे गेहूँ, जौ, चना आदि की खेती करना उतना उचित नही समझते जितना दूध के लिये गाय या भैंस पालना अथवा सब्जी की खेती करना, क्योकि वे निकटवर्ती शहर मे दूध एवं सब्जी बेचकर, खाद्य पदार्थों की अपेक्षा अधिक लाभ उठा सकते है। देश के उन क्षेत्रो मे जहा रुई की मिले है, किसान कपास की खेती तथा जहाँ वनस्पति तेल की मिले है वहाँ मूँगफली की खेती केवल इसी नियम के अतर्गत करता है।

३ प्रतिस्थापन का नियम (Law of Substitution) — यह नियम किसान को फार्म प्रबध के उस विषय पर अति सहायक सिद्ध होता है जहाँ साधनो का इस प्रकार पारस्परिक सयोग किया जाय कि कृषि प्रक्रिया मे कम से कम लागत लगे।

यह निर्णय प्रक्रिया की लागत से आंकी जाती है। जैसे यदि किसी क्षेत्र मे श्रमिको की मजदूरी अथवा बैलो का पालन, ट्रैक्टर की लागत से अधिक है; तो फार्म प्रबंधक अवश्य ही ट्रैक्टर से खेती करना पसद करेगा। इसके विपरीत यदि किसी किसान के कुटुब मे चार मजदूर काम करनेवाले है, तो वह मशीनो का सहारा न लेकर खेती मजदूरो

से ही करवाएगा, क्योंकि घर के मजदूरों पर उसे कोई मजदूरी खर्च नही करनी पडती। यदि किसी खेत की निराई गुड़ाई खुरपी से करने मे दस मजदूरों की आवश्यकता पडती है और इसका खर्चा लगभग १५ रूपए है तथा उसकी अपेक्षा यदि कल्टिवेटर से निराई गुड़ाई करने में केवल तीन रूपए का खर्चा हो, तो अच्छा कृषि प्रबंधक निराई गुडाई की प्रक्रिया कल्टिवेटर से करना पसंद करेगा। इस नियम का सहारा लगभग सभी किसान अपनी खेती की प्रक्रिया में लेते है। जो नही ले पाते हैं, उनकी अपनी कुछ व्यक्तिगत समस्याएँ अथवा कारण होते है।

४. **न्यूनतम लागत संयोजन का सिद्धांत** (Principle of Least Cost Combination) — इस सिद्धात के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों के कृषक एक ही फसल का उत्पादन करने के लिये विभिन्न अनुपातों मे सहायक वस्तुओ का प्रयोग करते हैं। यह उपयोग प्रयुक्त वस्तु के मूल्य पर आधारित होता है। गेहूँ उत्पादन के लिये अमरीका और कैनाडा मे, जहाँ मानव श्रम का मूल्य बहुत अधिक है, मशीनों का प्रयोग किया जाता है, जबकि भारत में, जहाँ कि मानव श्रममूल्य मशीनो की अपेक्षा सस्ता है, मानव श्रम का उपयोग किया जाता है।

५. **समसीमांत प्रतिफल नियम** (Law of Equimarginal Return) — प्रत्येक किसान अपने सीमित साधनों का इस प्रकार विभाजन करना चाहता है कि फार्म व्यवसाय की संपूर्ण इकाई से अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इसलिये इस सिद्धात के अतर्गत किसी साधन का विभाजन इस प्रकार किया जाता है कि प्रत्येक उपयोग से प्राप्त सीमात आय बराबर हो, जैसे मान लें कि किसी किसान को तीन हजार रूपया तीन फसल, गन्ना, गेहूँ एव कपास, के उत्पादन पर व्यय करना है। इनमें से कपास की फसल ऐसी है जिसपर कम खर्च होगा और गन्ने की फसल ऐसी है जिसपर अधिक। यदि कपास से ६५० रुपए लाभ पाने के लिये ५०० रुपये लगाने पड़ते हों तथा गेहूँ एव गन्ना से यही लाभ पाने के लिये क्रमश- एक हजार रुपए एवं १,५०० रुपए लगाने पड़ते हों, तो तीन हजार रूपए की लागत का विभाजन ६५० रुपया समसीमात लाभ पाने के लिये, कपास, गेहूँ तथा गन्ना के उत्पादन पर क्रमश ५०० रुपए, एक हजार रुपए तथा १,५०० रुपए होना चाहिए। विशिष्ट (specialized) अथवा विविध (diversified) खेती में सम सीमात प्रतिफल नियम अधिकतर लागू होता है, जिसमे केवल वही व्यवसाय (enterprize) अपनाए जाते है जिनसे अत्यधिक लाभ प्राप्त हो। यही सिद्धात फसल उत्पादन के लिये आय-व्ययक बनाने मे कृषक का मार्गदर्शक होता है।

फार्म व्यवसाय को यदि सफल बनाना है और यदि उसे औद्योगिक व्यवसाय से टक्कर लेनी है, तो खेती को फार्म प्रबध के आधारभूत सिद्धातो पर चलाना पडेगा। इसमे प्रत्येक इकाई की लागत तथा उससे होनेवाली आय पर, पूरी दृष्टि रखनी होगी, क्योंकि इसी विज्ञान के ज्ञान के आधार पर फार्म मे उपलब्ध साधनो का उचित संयोजन तथा विभिन्न फसलो एवं कृषि कार्यों का संतुलित संयोजन (combination) किया जा सकता है। इसलिये इस समय जब कि देश अन्न सकटकालीन स्थिति में है तथा देश मे पूँजी की कमी है, आवश्यकता इस बात की है कि खेती फार्म प्रबंध के ज्ञान के आधार पर की जाय।

स० ग्रं० — टडन व ढौलिया : प्रक्षेत्र प्रबंध के सिद्धात एवं विधियाँ। [ज० श० ग०]

फार्म भवन कृषि-क्षेत्र-प्रबंध की दृष्टि से संसार की कृषिपद्धतियों को दो वर्गों मे विभक्त कर सकते है। प्रथम प्रणाली मे कृषक तथा अन्य लोग निवासस्थान एक स्थान पर बनाकर रहते हैं तथा अपनी खेती आस पास के खेतों मे करते हैं। ये खेत अधिकतर छोटे छोटे टुकड़ों में फैले रहते हैं तथा कभी कभी एक चक में भी होते हैं। इन एकत्रित निवासस्थानो को ग्राम कहते हैं तथा जिस भूमि पर एक कृपक खेती करता है उसे उसकी जोत कहते हैं। इस प्रकार की कृषि मे जोत पर मकान बनाने का प्रश्न नगण्य रहता है। यदि किसी कृषक के पास कुछ भूमि एक चक मे हुई, तो एक या दो कोठार तथा पशुओ के लिये एक छप्पर या कोठार, जिसे सार कहते हैं, तथा कूआँ निर्माण कर लिया जाता है। अधिकाश निवासस्थान, कोठार आदि, गाँव मे रहते है। भारत तथा बहुत से पूर्वी देशो मे इसी प्रणाली से खेती की जाती है।

द्वितीय कृषिपद्धति मे कृषक के क्षेत्र एक चक मे होते हैं, जिसे कृषिक्षेत्र या फार्म कहा जाता है। इस प्रणाली मे अधिकांश कृषक निवासस्थान तथा अन्य आवश्यक भवन कृषिक्षेत्र पर ही होते है। एक प्रकार से यह प्रणाली प्रथम प्रणाली के विपरीत है, क्योकि इसमे फार्म भवन बिखरे हुए होते है तथा कृषक के खेत एक चक मे होते है। प्रत्येक पद्धति मे कुछ लाभ तथा कुछ हानिया हैं। फार्म के प्रबध की दृष्टि से द्वितीय पद्धति अधिक सुविधाजनक है। प्रथम पद्धति मे, जैसा कहा जा चुका है, कृषिक्षेत्र मे भवननिर्माण का प्रश्न नगण्य है, परतु द्वितीय पद्धति मे यह आवश्यक प्रश्न है।

भवननिर्माण मे निम्नलिखित बाते विचारणीय है :

स्थान का चुनाव — फार्म भवन बनाने के लिये ऐसा स्थान चुनना उपयुक्त होगा जहाँ पर पानी न भरता हो। यह स्थान फार्म के मध्य मे रहने से खेतो तक आने जाने मे सुविधा रहती है, क्योकि मध्य से खेतो तक आने जाने की दूरी कम रहती है, परतु यदि कोई पक्की सडक फार्म के पास हो तो अधिकतर मकानो के लिये उपयुक्त स्थान सडक की ओर ही रखे जाते है। यदि कुछ मकान, कूआँ आदि पहिले से बने हो, तो इसका भी ध्यान रखते है।

स्थान का चुनाव करने के पश्चात् मकानो की सख्या निर्धारित करते है। फार्म यदि व्यापारिक दृष्टि से बनाया गया है, तो केवल अति आवश्यक मकान ही बनाते हैं। शिक्षा, अनुसधान या प्रदर्शन के लिये बनाए गए फार्मों पर भवनो की संख्या अधिक होती है। सख्या निर्धारित हो जाने पर उनके आकार प्रकार का निर्णय करना पडता है। निवासस्थान, श्रमिको के लिये स्थान, आदि बनाने मे कितनी पूँजी लगेगी अथवा लगानी चाहिए, यह भी विचारणीय है, क्योंकि लगी हुई पूँजी के सूद, छीजन, मरम्मत आदि मे खर्च होनेवाले धन का प्रभाव फार्म के लाभ हानि पर पडता है। इसलिये यह निर्णय भी आवश्यक है कि कौन से भवन अधिक दृढ़ और व्ययशील हों तथा कौन से कम व्ययशील। उदाहरण के लिये यदि हो सके तो कोठार पक्का बने, परतु पशुशाला पर अधिक व्यय आवश्यक नहीं है।

जब भवन बहुत से बनाने हो तो विभिन्न प्रकार के भवनों को बहुत सटाकर नही बनाना चाहिए, जिससे उनके समुचित उपयोग करने में असुविधा हो। यदि आवश्यक हो तो सुविधा के लिये कुछ

रिक्त स्थान रखना चाहिए। परंतु प्रयत्न यह होना चाहिए कि यह स्थान आवश्यकता से अधिक न हो, जिसमे अधिक से अधिक भूमि खेती के लिये रहे।

भवनों के आकार प्रकार का निर्णय करने मे जलवायु का ध्यान भी आवश्यक है। उदाहरणार्थ, यदि पछुवाँ हवा अधिक चलती है तो खिडकियाँ पूर्व पश्चिम रखने से सवातन अच्छा होगा, खलिहान ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ पर वायु ओसाई के लिये ठीक लग सके, घरो में वायु से कूडा आदि न आ सके तथा घरो मे आग आदि लगने का भी भय कम रहे; खाद के गड्ढे भी ऐसे स्थान पर हो जहाँ से दुर्गंध आदि निवासस्थान की ओर न आए, तथा कम से कम चौकीदारी मे फार्म की पूजी सुरक्षित रखी जा सके। [दु० शं० ना०]

फॉर्मिक अम्ल लाल चींटियो, शहद की मक्खियों, बिच्छू तथा बर्रो के डको मे पाया जाता है। इन कीडों के काटने या डक मारने पर थोडा अम्ल शरीर मे प्रविष्ट हो जाता है, जिससे वह स्थान फूल जाता है और दर्द करने लगता है। पहले पहल लाल चीटियो (लेटिन नाम 'फॉर्मिका') को पानी के साथ गरम करके, उनका सत खीचने पर उसमे फार्मिक अम्ल मिला पाया गया। इसीलिये अम्ल का नाम 'फॉर्मिक' पडा। यह एकक्षारकी वसा अम्लों की श्रेणी का प्रथम सदस्य है। दूसरे वसा-अम्लों के विपरीत फॉर्मिक अम्ल तथा फॉर्मेट तेज अपचायक होते हैं और अपचयन गुण मे ये ऐल्डिहाइड के समान होते है। यह रजत लवणो को रजत मे, फेह्लिंग विलयन को लाल क्यूप्रस ऑक्साइड मे तथा मरक्यूरिक क्लोराइड को मे मर्करी अपचयित कर देता है। इसका सूत्र **हाकाओओहा** (HCOOH) है। इसे मेथिल ऐल्कोहॉल या फॉर्मेल्डिहाइड के उपचयन द्वारा, ऑक्सैलिक अम्ल को शीघ्रता से गरम करके अथवा ऑक्सैलिक अम्ल को ग्लिसरीन के साथ १००°-११०° सें० तक गरम करके प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग रबड जमाने, रँगाई, चमडा कमाई तथा कार्बनिक संश्लेषण मे होता है।

अजल फार्मिक अम्ल बनाने के लिये, लेड या ताम्र फॉर्मेट के ऊपर १३०° सें० पर हाइड्रोजन सल्फाइड प्रवाहित किया जाता है। सांद्र फॉर्मिक अम्ल को सोडियम फार्मेट के (भार के) ९०% फार्मिक अम्ल मे बने विलयन को सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ आसुत करके बनाया जाता है। यह तीव्र गंधवाला रंगहीन द्रव है। यह किसी भी अनुपात में पानी, ऐल्कोहॉल तथा ईथर मे मिश्र्य है। इसका क्वथनांक १००·८° सें० है। त्वचा पर गिरने पर बहुत जलन होती है और फफोले बन जाते हे। [र० प्र० रा०]

फारवर्ड ब्लाक १९३९ के प्रारभ मे यह स्पष्ट हो गया था कि हिटलर के यूरोप विजय के स्वप्न के कारण विश्व महायुद्ध की संभावना निकट आती जा रही है। भारत मे सुभाषचंद्र बोस, महात्मा गांधी तथा कांग्रेस कार्यसमिति के अनेक सदस्यों के विरोध के बावजूद पुनः कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हो गए। इसपर कार्यसमिति के सभी सदस्यो ने, जिनमे जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल भी थे, कांग्रेस कार्यसमिति से इस्तीफा दे दिया।

त्रिपुरी अधिवेशन मे अपने अध्यक्षीय भाषण में सुभाषचंद्र ने बडी दूरदर्शिता के साथ घोषित किया कि यूरोप में शीघ्र ही साम्राज्यवादी युद्ध आरंभ हो जाएगा और इस अवसर पर अंग्रेजों को छह मास का अल्टिमेटम दे देना चाहिए। उनके इस प्रस्ताव का वर्किंग कमेटी के पूर्वकालीन सदस्यो ने विरोध किया। सुभाष बाबू ने अनुभव किया कि प्रतिकूल परिस्थियो के कारण उनका कांग्रेस अध्यक्ष के पद पर रहना बेमतलब है। अतएव उन्होने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया और कांग्रेस को जनता की स्वतंत्र होने की इच्छा, लोकतंत्र और क्रांति का प्रतीक बनाने के लिये उन्होंने मई, १९३९ मे कांग्रेस के भीतर फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की घोषणा की। सुभाष बाबू ने बतलाया कि फारवर्ड ब्लाक की स्थापना, एक ऐतिहासिक आवश्यकता —सभी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियो के संगठन और अनिवार्य संघर्ष—की पूर्ति के लिये हुई है। उन्होने कहा कि अतरराष्ट्रीय संकट मे ग्रस्त हो जाने के पूर्व कांग्रेस का आंतरिक संकट समाप्त हो जाना चाहिए। वामपथियो का सगठन करना, कांग्रेस मे बहुमत प्राप्त करना और राष्ट्रीय आंदोलन को पुनर्जीवित करना—फारवर्ड ब्लाक के समुख ये तीन प्रश्न थे। फारवर्ड ब्लाक के प्रथम अखिल भारतीय अधिवेशन (बंबई) मे पूर्ण स्वतत्रता और तत्पश्चात् समाजवादी राज्य की स्थापना का उद्देश्य स्वीकार किया गया। ब्रिटिश भारत और देशी राज्यो मे साम्राज्यविरोधी सघर्ष छेड़ने के लिये देशव्यापी स्तर पर तैयारियाँ करने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ, जिससे कि विश्व की परिस्थितियो और संकट का लाभ उठाकर अंग्रेजो से सत्ता छीन ली जाए।

अगस्त, १९३९ मे सुभाष बाबू बंगाल प्रातीय कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षता से हटाए गए। साथ ही उन्हे तीन वर्षो के लिये निर्वाचन द्वारा किसी पद को ग्रहण करने से वंचित कर दिया गया। उन्होने निर्विकार भाव से यह निर्णय स्वीकार कर लिया। सितंबर, १९३९ मे हिटलर के पोलैंड पर आक्रमण और फ्रास तथा ब्रिटेन द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा से सारे यूरोप मे युद्ध की ज्वाला भड़क उठी। गवर्नर-जनरल, लार्ड लिनलिथगो ने एक अध्यादेश जारी करके भारत को 'युद्धरत देश' घोषित कर दिया और देश को उसके नेताओं तथा केंद्रीय और प्रातीय विधायको से औपचारिक परामर्श के बिना ही, साम्राज्यवादी युद्ध मे झोंक दिया। अक्टूबर, १९३९ मे सभी कांग्रेस मंत्रिमडलों ने पदत्याग कर दिया, किंतु कांग्रेस नेतृत्व ने संघर्ष की कारवाई को और आगे नही बढाया। १९३९ के अक्टूबर मे ही नेताजी ने नागपुर मे साम्राज्यवाद विरोधी समेलन आयोजित किया, जिसमे उन्होने कांग्रेस तथा संपूर्ण राष्ट्र को साम्राज्य विरोधी शक्तियों के सगठन का तथा साम्राज्यवादियो के अस्तित्व के उन्मूलन के सकल्प का स्मरण दिलाया। मार्च, १९४० मे फारवर्ड ब्लाक ने रामगढ़ मे समझौता विरोधी समेलन किया। उसमे तय किया गया कि ६ अप्रैल को, राष्ट्रीय सप्ताह के प्रथम दिन (जलियाँवाला बाग के शहीदों की स्मृति मे निश्चित) युद्धप्रयासो और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के कुटिल रूप के विरुद्ध देशव्यापी सत्याग्रह छेड़ दिया जाना चाहिए।

अप्रैल, १९४० मे फारवर्ड ब्लॉक ने जनता से साम्राज्यवादी युद्ध से असहयोग करने तथा अंग्रेजी राज्य को कायम रखने के लिये भारतीय साधनों के शोषण के विरोध की अपील करते हुए राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह छेड़ दिया। सैकडो व्यक्ति जेल मे डाले गए या पीटे गए और जनता को प्रचड दमन का शिकार होना पड़ा। दल के नागपुर अधिवेशन (१९४०) मे सुभाष बाबू ने पुनः रामगढ़ प्रतिज्ञा पर बल

दिया और संघर्ष की तीव्रता के संदर्भ में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट की। नागपुर में ही निश्चित किया गया कि फारवर्ड ब्लॉक भविष्य में मात्र एक मंच न रहकर, एक दल के रूप में कार्य करेगा। ब्लाक द्वारा प्रस्तावित और आयोजित वामपंथी संगठन समिति से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (नैशनल फ्रंट) और रैडिकल डेमाक्रेटिक पार्टी (मानवेंद्रनाथ राय) के अलग होने और यूरोप में बढ़ती हुई युद्धस्थितियों तथा अन्य महाद्वीपों के भी युद्ध की लपेट में आ जाने की संभावनाओं को दृष्टि में रखकर ब्लॉक ने देश में 'कार्यनिर्वाही राष्ट्रीय सरकार, (Provisional National Government) की स्थापना और इसके अंतर्गत विदेशी आक्रमण से समुचित सुरक्षा के लिये नेशनल डिफेंस फोर्स के अविलंब निर्माण की माँग की। संपूर्ण राष्ट्र 'भारतीय जनता के हाथ में सत्ता सौंपो' के उद्घोष के साथ अंतिम विजय के लिये आगे बढ़ चला। संघर्ष और सत्ता के हस्तगत करने के संकल्प के साथ समेलन में यह विचार भी प्रस्तुत किया गया कि प्रत्येक गाँव और कारखाने को पंचायत के माध्यम से स्वावलंबी बनाया जाना चाहिए। ये पंचायत और स्वैच्छिक संगठन ही कार्यनिर्वाही राष्ट्रीय सरकार की माँग के आधार बनें, जिसे सारी सत्ता तुरंत हस्तांतरित कर दी जाय।

ब्लॉक ने दल के रूप में कार्य करने के लिये तय किया कि वह बहुसंख्यक सदस्यता के सहित कांग्रेस के भीतर ही कार्य करेगा। ब्लॉक का उद्देश्य शीघ्रातिशीघ्र भारतीय जनता के सहयोग से राजनीतिक सत्ता पर अधिकार और समाजवादी आधार पर भारत की अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण घोषित किया गया।

नागपुर अधिवेशन के तुरत बाद सुभाषचंद्र बोस जुलाई में गिरफ्तार कर लिए गए। दिसंबर में उनके आमरण अनशन के कारण उन्हें रिहा किया गया।

उसी समय गांधी जी ने भी, सुभाष और फारवर्ड ब्लॉक के आवाहन पर जनता की अनुक्रिया देखकर, अपने विचारों में परिवर्तन किया और अक्तूबर, १९४० में उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह का नारा बुलंद किया। व्यक्तिगत सत्याग्रहियों को जो शपथ लेनी पड़ती थी, वह अंशतः ब्लाक की रामगढ़ घोषणा से मिलती जुलती थी।

जनवरी, १९४१ में सुभाषचंद्र बोस पुलिस और खुफिया विभाग की कड़ी निगरानी के बावजूद अचानक कलकत्ता स्थित अपने निवासस्थान से निकल गए और ३० महीने बाद दक्षिण पूर्व एशिया की युद्धग्रस्त धरती पर अवतरित हुए। वहाँ वे 'नेताजी' के संबोधन के साथ आजाद हिंद की कार्यनिर्वाही सरकार के अध्यक्ष तथा आजाद हिंद फौज के सर्वोच्च सेनापति हुए।

जून, १९४२ में फारवर्ड ब्लॉक अवैध संगठन घोषित कर दिया गया। उसके सदस्य, केवल कुछ भूमिगत हो जानेवालों को छोड़कर, कारागार में डाल दिए गए। प्रायः सभी कांग्रेस नेता यूरोप में युद्ध की स्थिति समाप्त हो जाने पर (मई, १९४५) रिहा कर दिए गए थे, किंतु ब्लॉक के सदस्य जापान के पतन (सितंबर, १९४५) के पश्चात् ही मुक्त किए गए।

युद्ध के पश्चात् फारवर्ड ब्लॉक ने अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित करने का प्रयास किया, किंतु दल के भीतर मतभेद पनपने के कारण यह दो गुटों—सुभाषवादी फारवर्ड ब्लॉक और मार्क्सवादी फारवर्ड ब्लॉक — में बँट गया। गुटबंदी के पूर्व फारवर्ड ब्लॉक ने भारतविभाजन का तीव्र विरोध किया था। भारतविभाजन को ब्लॉक ने अंग्रेजों का भारत और पाकिस्तान को सदा के लिये शक्तिहीन कर देनेवाला षड्यंत्र बताया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ब्लॉक के दोनों गुट सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी का विरोध करते रहे।

१९५३ में सरकार विरोधी शक्तियों को एकत्रित करने की दृष्टि से सुभाषवादी फारवर्ड ब्लॉक ने प्रजासमाजवादी दल में विलयन का निश्चय किया। मार्क्सवादी फारवर्ड ब्लॉक ने अपना अलग अस्तित्व बनाए रखा। यह दल अत्यंत छोटे रूप में अब केवल पश्चिम बंगाल में सीमित रह गया है। [हृ० वि० का०]

फार्स्टर, एडवर्ड मॉर्गन (१८७९) — अंग्रेजी उपन्यासकार और आलोचक। जन्मस्थान, लंदन। शिक्षा कैंब्रिज विश्वविद्यालय में। कैंब्रिज में अपने ट्यूटर, नथानियल वेड, के प्रभाववश प्राचीन ग्रीक और रोमन साहित्य और स्वयं ग्रीस में उसकी रुचि जाग्रत हुई। इसी कारण साहित्यरचना का श्रीगणेश उसने पौराणिक कथाओं की शैली में लिखी हुई कहानियों द्वारा किया, जो बाद में 'दि सेलेशल ओम्नीबस' (१९११) और 'दि इटर्नल मोमेंट' (१९२८) नामक संग्रहों में पुनः प्रकाशित हुई। जब १९०३ में उसके मित्र लाज डिकिंसन तथा वेड इत्यादि ने 'दि इंडिपेंडेंट रिव्यू' की स्थापना की तो वह इसमें स्थायी रूप से लिखने लगा।

इसके उपरांत एक वर्ष उसने इटली और ग्रीस में बिताया। उसका प्रथम उपन्यास 'व्हेयर एंजेल्स फियर टु ट्रेड' (१९०५) इटली में ही लिखा गया। इसके बाद 'दि लांगेस्ट जर्नी' (१९०७) और 'ए रूम विद ए व्यू' (१९०८) प्रकाशित हुए। 'हावर्ड्स एंड' (१९१०) में उसकी प्रतिभा ने पूर्ण परिपक्वता प्राप्त की। अपने सभी उपन्यासों में वह परंपरा और रूढ़ि का आलोचक रहा है।

१९१२ और १९२२ में उसने भारत की यात्रा की। इसी के फलस्वरूप १९२४ में उसका सर्वप्रसिद्ध उपन्यास 'ए पैसेज टु इंडिया' प्रकाशित हुआ। इससे उसकी ख्याति बहुत बढ़ी। राष्ट्रों, जातियों और व्यक्तियों के बीच जो कृत्रिम बाधाएँ खड़ी हो गई हैं उन्हें दूर करने के प्रयत्नों में जो सफलता हाथ लगती है उसी का चित्रण इस उपन्यास में अंग्रेजों और भारतीयों के माध्यम से किया गया है। सामान्य ब्रिटिश जनता को भारतीयों के असंतोष का ज्ञान कराने में इस रचना ने बड़ी सहायता की।

१९२७ में फार्स्टर कैंब्रिज में 'फेलो' नियुक्त हुआ। इसी वर्ष उसने वहाँ 'ऐस्पेक्ट्स ऑव दि नॉवेल' पर भाषण दिए। उपन्यास कला के अध्ययन में इस पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान है।

उसकी कुछ अन्य पुस्तकें हैं—'एबिंजर हार्वेस्ट' (१९३६), 'रीडिंग ऐज यूजुअल' (१९३९), 'नार्डिक ट्वाइलाइट' (१९४०), टू चियर्स फॉर डेमोक्रेसी' (१९५१) जिसमें पहले अलग से प्रकाशित कई रचनाएँ संगृहीत हैं, तथा 'दि हिल ऑव देवी' (१९५३)।

१९३७ में 'रायल सोसायटी ऑव लिटरेचर' ने उसे 'बेंसन पदक' प्रदान किया, और १९५३ में 'कंपैनियन ऑव आनर' की उपाधि प्रदान की गई। [ज० बि० मि०]

फा सिएन (फा हिएन) प्रसिद्ध चीनी बौद्ध यात्री, लेखक तथा अनुवादक। वह पिंगयाग का निवासी था जो वर्तमान शासी प्रदेश मे है। उसने छोटी उम्र मे ही संन्यास ले लिया था। उसने बौद्ध धर्म के सद्विचारो के अनुपालन और संवर्धन मे अपना जीवन बिताया। उसे प्रतीत हुआ कि विनयपिटक का प्राप्य अंश अपूर्ण है, इसलिये उसने भारत जाकर अन्य धार्मिक ग्रंथो की खोज करने का निश्चय किया।

लगभग ६५ वर्ष की उम्र मे कुछ अन्य बंधुओं के साथ, फाहिएन ने सन् ३९९ ई० में चीन से प्रस्थान किया। मध्य एशिया होते हुए सन् ४०२ मे वह उत्तर भारत मे पहुँचा। यात्रा के समय उसने उद्दियान, गाधार, तक्षशिला, उच्छ, मथुरा, वाराणसी, गया आदि का परिदर्शन किया। पाटलिपुत्र मे तीन वर्ष तक अध्ययन करने के बाद दो वर्ष उसने ताम्रलिप्ति मे भी बिताए। यहाँ वह धर्मसिद्धातों की तथा चित्रो की प्रतिलिपि तैयार करता रहा। यहाँ से उसने सिहल की यात्रा की और दो वर्ष वहाँ भी बिताए। फिर वह यवद्वीप (जावा) होते हुए ४१२ मे शातुंग प्रायद्वीप के चिंगचाऊ स्थान मे उतरा। अत्यत वृद्ध हो जाने पर भी वह अपने पवित्र लक्ष्य की ओर अग्रसर होता रहा। चिएन कांग (नैनकिंग) पहुँचकर वह बौद्ध धर्मग्रंथों के अनुवाद के कार्य मे सलग्न हो गया। अन्य विद्वानो के साथ मिलकर उसने कई ग्रथो का अनुवाद किया, जिनमे से मुख्य है—परिनिर्वाण-सूत्र और महासगिका विनय के चीनी अनुवाद। 'फो-कुओ थी' अर्थात् 'बौद्ध देशो का वृत्तात' शीर्षक जो आत्मचरित् उसने लिखा है वह एशियाई देशो के इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। विश्व की अनेक भाषाओं मे इसका अनुवाद किया जा चुका है।

स० ग्र०—फा सिएन फो-कुओ थी; हुई-चिआओ. काओ-सेंग चुआन (प्रमुख बौद्ध सन्यासियों का चरित्र), दि ट्रैवेल्स ऑव फा सिएन, १९५६ मे पुनर्मुद्रित, लंदन)। [ज० प्र०]

फॉसिल या जीवाश्म विज्ञान भौमिकी की वह शाखा है जिसका सबध भौमिकीय युगो के उन प्राणियो और पादपों के अवशेषो से है जो अब भूपर्पटी के शैलो मे ही पाए जाते है। विज्ञान की इस शाखा के विकास के बहुत पहले से आदिमानव को जानकारी मे यह था कि कुछ प्रकार के शैलो में एक विचित्र प्रकार के अवशेष पाए जाते है जो समुद्री जीवो के अनुरूप होते है। ज्ञान के अभाव मे उसने पहले पहल उन अवशेषो को जैविक उत्पत्ति का न समझकर, प्रकृति के विनोद की सामग्री समझ रखा था, जो पृथ्वी के अदर किसी शक्ति के कारण बन गए। परतु शनै शनै ज्ञान की वृद्धि के साथ साथ मनुष्य को इस दिशा में भी अपने विचारो को बदलना पडा और उसने यह पता लगा लिया कि शैलो से पाए जानेवाले अवशेषो के प्राणी किसी न किसी समय मे जीवित जीव थे और वह स्थान जहाँ पर हम आज इन जीवाश्मो को पाते है, भौमिकीय युगो मे समुद्र के गर्भ मे था।

फॉसिल विज्ञान की शाखाएँ और इनका क्षेत्र—फॉसिल विज्ञान कई शाखाओं मे विभक्त किया गया है। सुविधा की दृष्टि से अब यह नियम सा बन गया है कि जब हम फॉसिल विज्ञान शब्द का उपयोग करते है तब हमारा अभिप्राय केवल अकशेरुकी जीवो के फॉसिलो के अध्ययन से होता है, फॉसिल विज्ञान की जिस शाखा के अतर्गत कशेरुक फ़ासिलों का अध्ययन किया जाता है उसे कशेरुकी जीवाश्म विज्ञान कहते हैं; पादप फॉसिलों का अध्ययन एक भिन्न शाखा के अतर्गत किया जाता है जिसे पादपाश्म विज्ञान (Palaeobotany) कहते हैं। आधुनिक समय मे फॉसिल विज्ञान की कुछ अन्य प्रमुख शाखाओ का भी विकास हुआ है, जिनके अध्ययन का क्षेत्र क्रमश: अति लघु जीव और फॉसिल मानव है।

फॉसिल विज्ञान का क्षेत्र बड़ा व्यापक है और उसकी सीमा निश्चित रूप से निर्धारित नही की जा सकती। यदि सैद्धातिक दृष्टि से देखा जाए, तो फॉसिल विज्ञान का अभ्युदय पृथ्वी पर जीव के प्रादुर्भाव के साथ साथ प्रारंभ हो जाता है, परंतु भौमिकीय आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर सपूर्ण जीव के इतिहास के आधे, या उससे भी कम के, जीवो के अभिलेख हमें मिलते है। फॉसिल वैज्ञानिक अन्वेषणों का प्रारंभकाल ऐसे प्राचीनतम प्राप्य फॉसिलो से किया जा सकता है जिनके जैविक गुण जैविकीय आधार पर बतलाए जा सकते है।

फॉसिल विज्ञान की दूसरी सीमा और भी अनिश्चित है, क्योंकि यह निश्चित करना कि किस स्थान पर फॉसिल विज्ञान जैविकी से पृथक् किया जा सकता है, प्राय: असभव सा है, परतु मोटे तौर से फॉसिल का अंत और जैविकी का प्रारंभ अत्यंत-नूतन युग (pleistocene) और आधुनिक युग के सन्धिस्थान से ले सकते है। इस प्रकार से अनिश्चित और सदिग्ध कैंब्रियन-पूर्व महाकल्प प्राणी एवं पादपजात तथा वर्तमान काल के निश्चित तथा अनेक प्रकार के जीवो और पादपो के बीच मे अनेक तथा विभिन्न प्रकार के जीव अवशेष मिलते है, जो जीव पर प्रकाश डालते है। भूपर्पटी के अवसादी शैलों मे मिलनेवाले ये फॉसिल ही, फॉसिल विज्ञान के अध्ययन के आधार है।

फॉसिल विज्ञान और भौमिकी—फॉसिल विज्ञान का भौमिकी, विशेषकर स्तरित-शैल-भौमिकी, से अति घनिष्ठ सबध है। अतीत काल के जीवो के अवशेष स्तरित शैलो मे पाए जाते है। इन शैलो के निर्माण के विषय मे और उनका अनुक्रम स्थापित करने मे उनमे पाए जानेवाले फॉसिल बहुत सहायक सिद्ध हुए है। वास्तव मे बिना फॉसिलो के स्तरित-शैल-भौमिकी का अध्ययन असभव सा है और यही कारण है कि बहुत सी बातो मे स्तरित-शैल-भौमिकी, एक प्रकार से, व्यावहारिक फॉसिल विज्ञान है।

फॉसिल विज्ञान और जैविकी—फॉसिल विज्ञान का जैविकी के साथ घनिष्ठ सबध है। जैविकी के अतर्गत वर्तमान जीवित प्राणियो और पादपो का अध्ययन किया जाता है, जब कि फॉसिल विज्ञान मे भौमिकीय युगो के उन जीवो और पादपो का अध्ययन किया जाता है जो कभी जीवित थे और अब फॉसिल के रूप मे ही प्राप्य है। लेकिन फॉसिल विज्ञान को जैविकी की एक शाखा नही माना जा सकता है, क्योंकि फॉसिल विज्ञान के अध्ययन की सामग्री और उसके संग्रह का ढग जैविकी के अध्ययन की सामग्री और उसके सग्रह के ढग से सर्वथा भिन्न है।

फॉसिल विज्ञान और जातिवृत्त (Phylogeny)—जीवविज्ञानी फॉसिल विज्ञान में इसलिये अत्यधिक अभिरुचि रखते है कि इसका जीवविकास जैसे विषय से निकट संबध है। प्राणियो और पादपो की जातियो का इतिहास अथवा जातिवृत्त, स्तरित शैलो के अनुक्रमित

स्तरों से प्राप्त किए फॉसिलों के अध्ययन के आधार पर अधिक विश्वासपूर्वक अनुरेखित किया जा सकता है। परतु जीवों के अपूर्ण अभिलेख के कारण उनके जातिवृत्त के अनुरेखन में अत्यधिक बाधा पड़ती है, क्योंकि भौमिकीय युगों मे पाए जानेवाले प्राणियो और पादपों मे से कुछ ही, और उनमे से अधिकांश अपूर्ण दशा मे, इन शैलों मे परिरक्षित पाए जाते है। अभिलेख की इस अपूर्णता के बावजूद अनेक जीववर्ग में, जब उनका अनुरेखन शैलो के एक स्तर से दूसरे स्तर मे किया जाता है तब, शनै. शनैः परिवर्तन होने लगते हैं। जब फ़ॉसिलों के प्रतिरूप विभिन्न अनुक्रमित स्तरो से एकत्रित किए जाते है, तब प्रत्यक्ष रूप से दो भिन्न दिखाई पडनेवाली जातियाँ बीच के फॉसिलो द्वारा संबंधित दिखाई पड़ती हैं और निम्नतम स्तर में पाई जानेवाली जाति से लेकर उच्चतम स्तर मे मिलनेवाली जाति तक के बीचवाले स्तरों के फ़ॉसिलो के जीवो में हुए परिवर्तनों को देखा जा सकता है।

फॉसिलों से जातिवृत्त का पता लगाने के लिये, स्तरीय रीति के अतिरिक्त शारीर तथा व्यतिवृत्त (ontogeny) की तुलनात्मक रीतियो का भी प्रयोग किया जा सकता है। अत फॉसिल विज्ञान इस धारणा की पुष्टि करता है कि जीवविकास शनै. शनैः तथा क्रमश होनेवाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप हुआ। इस बात के बताने का भी प्रमाण है कि जीव विकास नियतविकासीय (orthogenetic) था। कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ जीवो के वर्ग मे जीवविकासीय परिवर्तन युग युगातर तक किसी निश्चित दिशा मे हुए और इसके अतिरिक्त ऐसे सबद्ध वर्ग जो एक ही पैतृक उत्पत्ति के है, एक दूसरे से तथा बाह्य दशाओं से बिना प्रभावित हुए, अपने विकास मे समान अवस्थाओ अथवा उनसे मिलती जुलती अवस्थाओ मे से गुजरे, जिससे यह प्रकट हो जाता है कि जीवो के विभिन्न वर्गों मे विकास की दिशा, सर्वसाधारण पूर्वज से पैतृक गुणो द्वारा निश्चित हो जाती है।

फ़ॉसिल विज्ञान और औणिकी (Embryology) — जीवित पादपों और प्राणियों का एककोशिका अडे से ले करके अतिम दशा तक विकास की सपूर्ण अवस्थाओं का अनुरेखन करना, औणिकी और जीववृत्ति के अतर्गत आता है। किसी वर्ग के पादपों और प्राणियों की जातियों का विकास, कम से कम अपनी प्रारभिक अवस्थाओ मे लगभग समान होता है और एक वर्ग के अतर्गत आनेवाले सपूर्ण भ्रूणो मे, किसी एक अवस्था तक एक दूसरे मे, इतनी सदृश्यता होती है वे पृथक् नही किए जा सकते। इस तथ्य ने उन आकारो मे अत्यधिक बंधुत्व प्रगट किया है, जो प्रौढावस्था मे एक दूसरे से अत्यधिक भिन्न होते हैं। इस बात की वास्तविकता कशेरुकियो मे देखने को मिलती है, जिनके भ्रूण प्रारभिक अवस्थाओं मे अति कठिनाई के साथ एक दूसरे से अलग किए जा सकते हैं और जो बहुत धीरे धीरे अपने वर्ग अथवा गण की लाक्षणिक आकृतियों को धारण कर लेते हैं।

इन भ्रूणीय अन्वेषणो के परिणामों का फॉसिल विज्ञान के साथ विशेष संबध है। ऐसे अनेक फॉसिल जानकारी मे है जो अपने में अपने से सबंधित आधुनिक जीवो की तुलना मे भ्रूणीय, अथवा कम से कम डिंभीय, अथवा किशोरावस्था के लक्षण दिखाते हैं। इस प्रकार के आदिम अथवा भ्रूणीय प्रकारों के उदाहरण कशेरुको मे विशेष करके देखने को मिलते हैं, क्योंकि इनमे कंकाल जीवन के अति प्रारभिक काल ही मे अस्मीभूत हो जाते हैं। अतः आधुनिक जीवों की अप्रौढ अवस्थाओं की तुलना सीधे प्रौढ़ फ़ॉसिल से की जा सकती है।

फ़ॉसिल या जीवाश्म — जीवाश्म को अग्रेजी मे फासिल कहते है। इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'फ़ॉसिलस' से है, जिसका अर्थ 'खोदकर प्राप्त की गई वस्तु' होता है। सामान्यत. जीवाश्म शब्द से अतीत काल के भौमिकीय युगों के उन जैव अवशेषों से तात्पर्य है जो पृथ्वी के अवसादी शैलो मे पाए जाते हैं। ये जीवाश्म यह बतलाते है कि वे जैव उद्गम के है तथा अपने में जैविक प्रमाण रखते है।

प्राणियो और पादपो के जीवाश्म बनने के लिये दो बातों की आवश्यकता होती है। पहली आवश्यक बात यह है कि उनमे कंकाल, अथवा किसी प्रकार के कठोर अग, का होना अति आवश्यक है, जो जीवाश्म के रूप मे शैलों मे परिरक्षित रह सके। जीवो के कोमलाग अति शीघ्र विघटित हो जाने के कारण जीवाश्म दशा में परिरक्षित नही रह सकते। भौमिकीय युगो मे पृथ्वी पर ऐसे अनेक जीवों के समुदाय रहते थे जिनके शरीर मे कोई कठोर अग अथवा कंकाल नही था। अत फासिल विज्ञानी ऐसे जीवो के समूहों के अध्ययन से वचित रह जाते है, क्योकि उनका कोई अग जीवाश्म स्वरूप परिरक्षित नही पाया जाता, जिसका अध्ययन किया जा सके। अत. जीवाश्म विज्ञान क्षेत्र उन्ही प्राणियो तथा पादपो के वर्गो तक सीमित है जो फासिल बनने के योग्य थे। दूसरी आवश्यक बात यह है कि ककालो अथवा कठोर अंगो को क्षय और विघटन से बचाने के लिये अवसादो से तुरत ढक जाना चाहिए। थलवासी जीवों के स्थायी समाधिस्थ होने की सभावना अति विरल होती है,
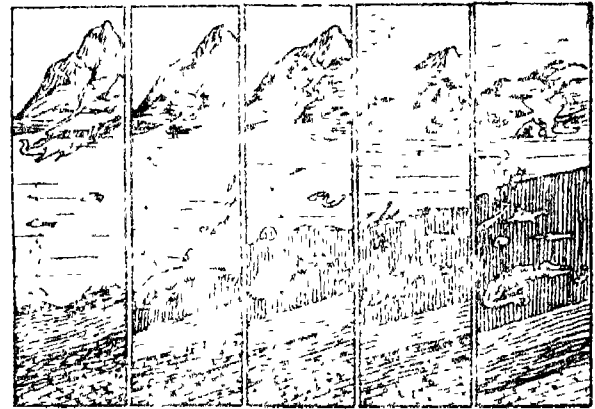
चित्र १.

चित्र मे क्रमशः पृथ्वी का अपक्षरण तथा सागरतल पर मिट्टी के स्तरो का निक्षेप बनना दिखाया गया है। अत्यधिक तथा दीर्घकालीन दाब के कारण, ये निक्षेप शिला मे परिवर्तित हो जाते है और इन शिलाओ मे स्तरो के बनने के समय वर्तमान, प्रारभिक जीवो के कंकाल, कवच आदि सुरक्षित रीति से बंद रह जाते हैं।

क्योकि स्थल पर ऐसे बहुत कम स्थान होते है जहाँ पर अवसाद सतत बहुत बडी मात्रा मे संचित होते रहते हो। बहुत ही कम

परिस्थितियों में थलवासी जीवों के कठोर भाग बालूगिरि के बालू में दबने से अथवा भूस्खलन में दबने के कारण परिरक्षित पाए गए हों। जलवासी जीवों के फॉसिल होने की संभावना अत्यधिक अनुकूल इसलिये होती है कि अवसादन स्थल की अपेक्षा जल में ही बहुत अधिक होता है। इन जलीय अवसादों में भी, ऐसे जलीय अवसादों में जिनका निर्माण समुद्र के गर्भ में होता है, बहुत बड़ी संख्या में जीव अवशेष पाए जाते हैं, क्योंकि समुद्र ही ऐसा स्थल है जहाँ पर अवसादन सबसे अधिक मात्रा में सतत होता रहता है।

विभिन्न वर्गों के जीवों और पादपों के कठोर भागों के आकार और रचना में बहुत भेद होता है। कीटों तथा हाइड्रा (hydra) वर्गों में कठोर भाग ऐसे पदार्थ के होते हैं जिसे काइटिन कहते है, अनेक स्पंज और डायटम (diatom) बालू के बने होते है, कशेरुकी की अस्थियों में मुख्यत कैल्सियम कार्बोनेट और फ़ॉस्फेट होते है, प्रवालों (coral), एकाइनोडर्माटा (Echinodermata), मोलस्का (mollusca) और अनेक अन्य प्राणियों में तथा कुछ पादपों में केल्सियम कार्बोनेट होता है और अन्य पादपों में अधिकांशत काष्ठ ऊतक होते है। इन सब पदार्थों में से काइटिन बड़ी कठिनाई से घुलाया जा सकता है। बालू, जब उसे प्राणी उत्सर्जित करते है, तब बड़ा शीघ्र घुल जाता है। यही कारण है कि बालू के बने कंकाल बडे शीघ्र घुल जाते है। कैल्सियमी कंकालों में चूने का कार्बोनेट ऐसे जल में, जिसमें कार्बोनिक अम्ल होता है, अति शीघ्र घुल जाता है परन्तु विलेयता की मात्रा चूने के कार्बोनेट की मात्रा के अनुसार भिन्न भिन्न होती है। चूर्णीय कंकाल कैल्साइट (calcite) अथवा ऐरेगोनाइट (aragonite) के बने होते है। इनमें से कैल्साइट के कवच ऐरेगोनाइट के कवचों की अपेक्षा अधिक दृढ़ और टिकाऊ होते है। अधिकांश प्राणियों के कवच कैल्साइट अथवा ऐरेगोनाइट के बने होते है।

अवसादी शैलों में परिरक्षित जीवाश्म निम्न प्रकार के होते है .

(१) **संपूर्ण परिरक्षित प्राणी** — ऐसा बहुत विरल होता है कि बिना किसी प्रकार के विघटन के किसी प्राणी का जीवाश्म प्राप्त हो, किन्तु ऐसे परिरक्षित जीवाश्म के उदाहरण मैमथ और राइनोसिरस के जीवाश्म हैं, जो टुंड्रा के हिम में जमे हुए पाए गए हैं।

(२) **प्रायः अपरिवर्तित दशा में परिरक्षित पाए जानेवाले कंकाल** — कभी कभी जब शैलों में केवल कंकाल ही परिरक्षित पाया जाता है तब यह देखा गया है कि वह अपनी पहले जैसी, तब की अवस्था में है जब वह समाधिस्थ हुआ था। परिवर्तन केवल इतना होता है कि फॉसिल दशा में कंकाल से कार्बनिक द्रव्यों का लोप हो जाता है।

(३) **कार्बनीकरण** — कुछ पादपों और कुछ प्राणियों में, जैसे ग्रैप्टोलाइट (graptolite), जिनमें कंकाल काइटिन का बना होता है, मूल द्रव्य कार्बनीकृत हो जाता है। जीव में अपघटन होता है, जिसके फलस्वरूप ऑक्सीजन और नाइट्रोजन का लोप हो जाता है और कार्बन रह जाता है।

(४) **कंकालों का साँचा** — कभी कभी कंकाल या कवच विलीन हो जाते हैं और उनके स्थान पर उनका केवल साँचा रह जाता है। यह इस प्रकार होता है कि कवच के अवसाद से ढक जाने के उपरात, कवच का आतरिक भाग भी अवसादवाले द्रव्य से भर जाता है। इसके उपरात कार्बोनिक अम्ल मिश्रित जल, शैल में रिसता हुआ उस स्थान तक पहुँच जाता है जहाँ पर कवच गडा हुआ रहता है और उसे कैल्सियम के बाइकार्बोनेट के रूप में पूर्णत विलीन कर देता है। इसके परिणामस्वरूप कवच के स्थान पर कवच के आतरिक और बाह्य आकार का केवल एक साँचा देखने को मिलता है। इन दोनों के बीच के स्थान में मूलत कवच था और यदि यह स्थान मोम से भर दिया जाए तो कवच का यथार्थ साँचा मिल जाता है।

(५) **अश्मीभवन** (Petrification) — कभी कभी फॉसिलों में उन जीवों के, जिनके ये फॉसिल हो गए है, सूक्ष्म आकार तक देखने को मिलते हैं। अतर केवल इतना होता है कि कंकालों का मूल द्रव्य किसी खनिज द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है। इस क्रिया को अश्मीभवन कहते हैं। अश्मीभवन का अति उत्तम उदाहरण अश्मीभूत काष्ठ है, जो देखने में बिल्कुल वैसे ही दिखलाई पड़ते हैं जैसा जीवित पादपों का काष्ठ होता है (देखें फलक)। यह परिवर्तन इस प्रकार होता है कि जब आदिकाष्ठ का एक कण हटता है तब उसके स्थान पर तुरंत बालू अथवा अन्य किसी खनिज का एक कण आ जाता है, जिससे काष्ठ का आदि आकार ज्यों का त्यों बना रहता है।

इस विधि से मूल द्रव्य को हटानेवाले मुख्य खनिज ये है · (१) कैल्सियम का कार्बोनेट, (२) बालू, (३) लोहमाक्षिक, (४) लोह ऑक्साइड और (५) कभी कभी केल्सियम का सल्फेट आदि।

(६) **चिह्न** — कभी कभी जीव जन्तुओं के पादचिह्न, बिल, छिद्र आदि शैलों में पाए जाते है। यद्यपि ये जीवजंतुओं के कठोर अंगों के कोई भाग नहीं है और इसलिये इनको फॉसिल नहीं कहा जा सकता, फिर भी ये उतने ही महत्व के समझे जाते है जितने फॉसिल।

जीवाश्मों के उपयोग निम्नलिखित है

(१) **शैलों के सहसंबंध (correlation) में जीवाश्मों का उपयोग** — वे जीव जो आज हमें जीवाश्म के रूप में मिलते हैं, किसी भौमिकीय युग के किसी निश्चित काल में अवश्य ही रहे होंगे। अतः वे हमारे लिये बड़े महत्व के है। विलियम स्मिथ और क्यूव्ये महोदय के, जो स्तरित भौमिकी के जन्मदाता है, समय से ही यह बात भली भाँति विदित है कि अवसादी शैलों में पाए जानेवाले जीवाश्मों और उनके भौमिकीय स्तंभ (column) के स्थान में एक निश्चित संबंध है। यह भली भाँति पता लग चुका है कि शैले जितनी अल्पायु होंगी उतना ही उनमें प्राप्त प्राणी विभिन्न प्रकार के और पादपसमुदाय जटिल होगा, और वे जितनी दीर्घायु होंगी उतना ही सरल और साधारण उनका जीवाश्मसमुदाय होगा। अत शैलों का स्तरीय स्थान निश्चय करने में जीवाश्मों का प्रमुख स्थान है और वे बड़े महत्व के सिद्ध हुए है।

कैंब्रियनपूर्व के प्राचीन शैलों में जीवाश्म नहीं पाए जाते। अत जीवाश्मों के अभाव में जीवाश्मों की सहायता से इन शैलों का सहसंबंध नहीं स्थापित किया जा सकता। इसके लिये अन्य विधियों का उपयोग किया जाता है। कैंब्रियन से लेकर आज तक के भौमिकीय स्तंभ के समस्त मुख्य भागों के प्राणी और पादपों का पता लगा लिया गया है। अत पृथ्वी के किसी भी भाग में इन भागों के सम भागों का पता लगाना अब अपेक्षया सरल है।

(२) **जीवाश्म प्राचीन काल के भूगोल के सूचक** — पुराभूगोल के अंतर्गत, प्राचीन काल के स्थल और समुद्र का विस्तरण, उस काल की सरिताएँ, झील, मैदान, पर्वत आदि आते हैं। किसी विशेष वातावरण के अनुसार ही जीव अपने को स्थिति के अनुकूल कर लेते हैं, यह बात जितनी सच्ची आधुनिक समय में है उतनी ही सच्ची प्रतीत के भौमिकीय युगों में भी थी। अतः जीवाश्मों की सहायता से हम यह पता लगा सकते हैं कि किस स्थान पर डेल्टा, पर्वत, नदी, समुद्रतट, छिछले अथवा गहरे समुद्र थे, क्योंकि स्थल में रहनेवाले जीव, जलवाले जीवों से और जल में रहनेवाले जीवों मे अलवण जलवासी जीव लवण जलवासी जीवों से सर्वथा भिन्न होते हैं।

(३) **जीवाश्म पुराजलवायु के सूचक** — जीवाश्मो की सहायता से भौमिकीय युगों की जलवायु के विषय मे भी किसी सीमा तक अनुमान लगाया जा सकता है। इस दिशा में स्थल पादपों द्वारा प्रदान किए गए प्रमाण विशेष महत्व के होते है, क्योंकि उनका विस्तरण समुद्री जीवों की अपेक्षा अधिकाशत. ताप के अनुसार होता है और वे सरलतापूर्वक जलवायु के अनुसार भिन्न भिन्न भागो में पृथक् किए जा सकते हैं। समुद्री जीवो मे कुछ का विस्तरण जलवायु की दशाओं के अनुसार होता है, जैसे प्रवाल, जो गरम जलवायु मे रहते हैं।

(४) **जीवाश्म जीवविकास के सूचक** — जीवाश्मो ने जीव-विकास के सिद्धात पर बहुत प्रकाश डाला है और बिना जीवाश्मो की सहायता के जीवविकास का अनुरेखण करना असंभव सा है।

जीवाश्म संग्रह का उद्देश्य — जीवाश्मों का संग्रह जीवाश्मीय तथा स्तरित शैल विज्ञान दोनो की दृष्टि से किया जाता है। जीवाश्मों के संग्रह के समय निम्नलिखित बातों का सदैव ध्यान रखना चाहिए :

(१) यदि भौमिकीय रचना अल्पजीवाश्मीय हो तो सब जीवाश्मों का संग्रह करना चाहिए, चाहे वे पूर्ण हो अथवा खडमय। (२) यदि जीवाश्मो का निकालना असभव न हो तो कभी भी पूर्ण जीवाश्मो को छोड न देना चाहिए। उन्हे सुगमता से निकाल लेना चाहिए। (३) ऐसा खंडमय जीवाश्म, जिसमे सविस्तार आकारकीय लक्षण मिलते हो उन अनेक पूर्ण जीवाश्मो से कहीं अधिक महत्व का है, जिनमे आकारकीय लक्षणो का अभाव हो। (४) कभी भी क्षेत्र में जीवाश्मों को पहचानने का प्रयत्न न करना चाहिए। (५) यदि जीवाश्मो का सग्रह स्तरित-शैल-विज्ञान की दृष्टि से किया गया हो तो अलग अलग प्रत्येक रचना से जीवाश्मों का संग्रह आवश्यक है।

जीवाश्म के स्तरित शैलविज्ञानीय स्थान का महत्व — यह निश्चय करना बड़ा महत्वपूर्ण है कि जीवाश्म किस स्तर से संग्रहीत किए गए हैं, क्योंकि बिना यह मालूम किए जीवाश्मों का संग्रह प्राय. अर्थहीन सा हो जाता है। इसका निश्चय सुगमता के साथ जीवाश्म-संग्रह के समय किया जा सकता है। जीवाश्मों के संग्रह के साथ साथ शैलीय रचनाओं के मुख्य मुख्य और विशिष्ट लक्षणो को भी लिख लेना चाहिए।

जीवाश्मसंग्रह के विषय में कुछ प्रमुख बातें — जीवाश्मसंग्रह में जीवाश्म विज्ञानी के लिये एक हलका हथौड़ा, छेनी. छोटी छोटी थैलियाँ और रद्दी कागज बड़े उपयोगी होते हैं।

यदि बड़े बड़े जीवाश्मों की खोज हो, तो सबसे पहले अनावरित स्तरों की ओर ध्यान देना चाहिए। यदि जीवाश्म यहाँ नही दिखाई पड़ते, तो हाल ही में भंग हुए आधार में पाए जाने की संभावना रहती है। यदि कोई जीवाश्म कठोर शैल में लगा हुआ दिखाई पड़े, तो एकाएक निकालने का प्रयास न करना चाहिए बल्कि उसके आसपास के स्थान में दरारों का पता लगा लेना चाहिए। इन दरारों से शैल के वह भाग आसानी से तोड़े जा सकते हैं जिनमें जीवाश्म लगे हुए है। इस प्रकार से जीवाश्मों के निकालते समय इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि शैल पर हथौड़ा, जीवाश्म से जितनी दूर संभव हो, चलाना चाहिए। ऐसा करने से जीवाश्म के टूटने की संभावना कम हो जाती है और शैल सहित जीवाश्म अलग हो जाता है।

यदि फोरैमिनीफेरा (Foraminifera) जैसे छोटे जीवाश्मों का संग्रह करना है, तो इनका एक एक करके संग्रह करना स्पष्टतः असंभव सा है। ऐसी दशा मे अबद्ध शैलो, अथवा शैल नमूनों का ही संग्रह करना उचित होगा। इस प्रकार से लाई गई सामग्री बाद में प्रयोगशाला मे सदलन की जाती है और उसको एक हस्त लेंस से देखने पर उसमें अनेक लघु जीवाश्म दिखाई पड़ते है, जिनको चलनियों की सहायता से आधार से अलग कर सकते हैं।

क्षेत्र मे जीवाश्मो के सग्रह के उपरात प्रत्येक जीवाश्म के साथ एक लेबल (label) लगा देना चाहिए, जिसमे दो बातो का उल्लेख बड़ा आवश्यक होता है : (१) वह यथार्थ स्तर, जिससे जीवाश्म लिया गया है और (२) स्थान का नाम, जहाँ से जीवाश्म का संग्रह किया गया है। ऐसा करने के उपरात जीवाश्म को रद्दी कागज में लपेटकर और डोरे से बाँधकर प्रयोगशाला में लाना चाहिए।

शैल आधार से जीवाश्म के पृथक्करण की विधि — शैल आधार से जीवाश्म निकालने की विधि एक प्रकार की कला है। इस विषय में कोई पक्के नियम नहीं बतलाए जा सकते, क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकार की समस्याएँ सामने आती है। किस विधि से और कैसे जीवाश्म को प्रस्तर से अलग किया जा सकता है, इसको एक अनुभवी जीवाश्म विज्ञानी जीवाश्म को देखकर समझ लेता है। जिन शैल आधारो में जीवाश्म खचित रहते हैं वे मृदु मृदा से लेकर सघन शैल तक होते हैं, जिनकी कठोरता इस्पात के बराबर हो सकती है। जीवाश्म की कठोरता की सीमा में इतना अधिक अतर नही होता। जीवाश्म निकालते समय जीवाश्म विज्ञानी का यह ध्येय होता है कि जीवाश्म को बिना किसी प्रकार क्षति पहुँचाए शैल से पृथक् कर दे।

यदि आधार जीवाश्म की अपेक्षा मृदु प्रकृति का है, तो उसे सुगमतापूर्वक एक बुरुश की सहायता से हटा सकते हैं। यदि जीवाश्म अबद्ध चूनापत्थर मे खचित पाए जाते है, तो उसे भी हम दाँत साफ करनेवाले बुरुश की सहायता से अलग कर सकते हैं। यदि शैल आधार चाक प्रकृति का है तो दत उपकरण में भ्रमित बुरुश की सहायता से उसे अलग कर सकते है।

अन्य अवसरो पर जब जीवाश्म भगुर हो और बड़ी दृढ़ता के साथ शैल के आधार मे जुडे हों तब हथौडे मार मारकर जीवाश्मों का अलग करना कठिन होता है। ऐसी दशा में प्रस्तर को कई बार

गरम करके तुरंत पानी में डाल देने से, जीवाश्मो का प्रस्तर से अलगाव सरलता से हो जाता है। बालू और अन्य चूनेदार शैलो से फोरेमिनीफेरा जैसे जीवाश्मो के निकालने में, शैल को पहले तोड़ लेते है और फिर उसको कई प्रकार की चलनियो में छान लेते है। इससे जीवाश्म शैल भाग से अलग हो जाते हैं। जब शैल कठोर होते है तब दूसरा ढंग उपयोग मे लाया जाता है। शैल को छोटे छोटे टुकड़ों मे तोड़ लेते हैं और फिर उनको इतना गरम करते हैं कि वे पूर्णतः सूख जाएँ और फिर उनको इसी गरम अवस्था मे ही ठंडे पानी में डाल देते हैं। इस प्रकार से कठोर मृदा कीच में अपविघटित हो जाती है और फिर अत में जीवाश्मो को प्रस्तर भाग से धो करके अलग कर लेते हैं।

जब यांत्रिक रीतियों से जीवाश्मो का पृथक्करण संभव नही होता तब रासायनिक विधियाँ प्रयोग मे लाई जाती हैं। इनमें सबसे सरलतम ऋतुक्षरण की विधि है, जो बहुत सी दशाओ मे बिना जीवाश्मो को किसी प्रकार हानि पहुँचाए हुए शैल आधार को अपघटित कर देता है। बहुत ही तनु अम्ल के उपयोग में लाने से यह क्रिया शीघ्र हो जाती है। यहाँ यह बतला देना ठीक होगा कि अम्ल का प्रयोग बडी सावधानी के साथ करना चाहिए, क्योकि अधिकाश जीवाश्मो के पजर चूनेदार होते है और उनपर अम्ल का प्रभाव तुरत होता है।

साधारणत: कॉस्टिक पोटाश ठीक प्रकार का अभिकारक है, जिसका बिना किसी भय के उपयोग कर सकते हैं। इसके छोटे छोटे कणो को सूखी अवस्था में उस सारे शैल आधार पर डाल देते है जिसे हटाना होता है। चूँकि कॉस्टिक पोटाश प्रस्वेद्य (deliquescent) प्रकृति का होता है। अत. यह आधार के अंदर प्रविष्ट कर जाता है और उसको अपघटित कर देता है। यह एकिनोडर्मा (Echinoderma), अथवा मोलस्क, को कोई क्षति नही पहुँचाता। ब्रैकियोपोडा (Brachiopoda) मे इसका उपयोग नही करना चाहिए, क्योकि यह इनके परतदार पजरो में सुगमतापूर्वक प्रविष्ट कर जाता है, जिसके कारण इनकी परतें अलग हो जाती हैं। अंत मे जीवाश्मों को अच्छी प्रकार जल से धो डालना चाहिए।

शेल (shale) जैसे शैलो मे परिरक्षित ग्रैप्टोलाइट (graptolite) और पादप जीवाश्म का पृथक्करण 'स्थानातरण विधि' से किया जाता है। इस पृथक्करण की मुख्य मुख्य बाते निम्नलिखित हैं :

(१) नमूने का वह तल, जिसमे जीवाश्म है, नीचे करके कैनाडा बालसम की सहायता से काच की स्लाइड मे चिपका देते हैं।

(२) शेल का जितना भाग सुगमता से काटा या घिसा जा सकता हो उसे काट अथवा घिस लेते है।

(३) शेल तल को भिगो लेते है और फिर उसको पिघले हुए मोम मे डुबा देते हैं। मोम आर्द्र तल से सुगमता से पृथक् हो जाता है और काच पर कोई रासायनिक क्रिया नही होने देता।

(४) शेल युक्त संपूर्ण जीवाश्म को हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल के अम्लतापक (acid bath) मे रख देते हैं। यह जीवाश्म को तनिक भी क्षति पहुँचाए बिना शेल भाग को गला देता है।

(५) धोने के उपरात पादप अथवा ग्रैप्टोलाइट जीवाश्म को कवर ग्लास से ढँक देना चाहिए।

इस प्रकार से निकाले गए ग्रैप्टोलाइट और कुछ पादप जैसे कोमल जीवाश्मों के आधुनिक जीवो की भाँति सूक्ष्मदर्शी की सहायता से परिच्छेद बनाए जा सकते है। कठोर जीवाश्मो के भी परिच्छेद घिस करके बनाए जा सकते हैं। इसमे घिसते समय नियमित अवधियों पर फोटो लेना पड़ता है। इस विधि मे सबसे बड़ा दोष यह है कि जिस जीवाश्म का परीक्षण इस विधि से किया जाता है वह नष्ट हो जाता है।

जीवाश्मों के पृथक्करण की उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त ब्रैकियोपोडा के बाहुकुतलो (brachial spiral) के अनुरेखन के लिये कुछ विशेष विधियाँ होती है। इन विधियों से ट्राइलोबाइटीज (Trilobites), ऐमोनाइटीज़ (Ammonites) और एकाइनोडरमीज में सीवनरेखा का अनुरेखन भी अति महत्व का कार्य है। यह किसी प्रकार के अभिरजन की सहायता से विशिष्ट बनाया जा सकता है। भारतीय मसि इस कार्य के लिये उत्तम है।

नामपद्धति और वर्गीकरण — जीवाश्मों को निश्चित नाम देना जीवाश्म विज्ञानी के लिये इसलिये महत्व का है कि जीवाश्मो मे वह अधिक यथार्थ विभेद कर सके। जीवाश्मों का नामकरण सामान्यत: उन्ही सिद्धातो पर आधारित है जिनपर प्राणियो का। प्राणि-जगत् अनेक संघों मे विभक्त है और प्रत्येक सघ अनेक वर्गों, गणों, कुलो, वशो और जातियो मे विभक्त है (देखे प्राणिविज्ञान)।

जीवाश्मों के कई प्रकार के प्ररूप होते हैं। यदि अन्वेषक किसी जाति के जीवाश्म के एक प्रतिरूप के आधार पर उस संपूर्ण जाति का वर्णन करता है, तो वह जीवाश्म प्रतिरूप उस जाति का नाम प्ररूप (Holotype) कहलाता है।

यदि किसी एक जाति के नामप्ररूप का निश्चय करने मे अन्वेषक अन्य जीवाश्म नमूनो की सहायता लेता है, तो इन अतिरिक्त नमूनो को पैराटाइप (Paratype) कहते है।

यदि अन्वेषक बिना नामप्ररूप का निश्चय किए ही कई अन्य जीवाश्म नमूनो की सहायता लेता है, तो इन जीवाश्म नमूनो को सहप्ररूप (Cotype) कहते है।

यदि किसी जाति के जीवाश्म का सहप्ररूप उस जाति के प्रारभिक वर्णन के पश्चात् उस जाति का प्ररूप चुन जाता है, तो वह जीवाश्म प्ररूप लेक्टोटाइप (Lectotype) कहलाता है।

जिस प्रकार एक जाति के वर्णन के लिये जीवाश्म नमूने होते है उसी प्रकार एक वश के वर्णन के लिये प्ररूप जाति अथवा समजीनी (genotype) जीवाश्म होते हैं।

यदि कोई अन्वेषक किसी एक नए वश का वर्णन किसी एक विशेष जाति के आधार पर करता है, तो वह जाति उस वश के लिये जेनोहोलोटाइप (genoholotype) हो जाती है।

यदि अन्वेषक नए वश के वर्णन मे ऐसी जातियो की सूची दे देता है जिनको वह यह समझता है कि वे नए वश के अतर्गत आते हैं, तो इन सब जातियो को जेनोसिनटाइप कहते है।

बहुत से जेनोसिनटाइपो मे से बाद में आदि अन्वेषक द्वारा अथवा बाद में किसी अन्य अन्वेषक द्वारा एक जेनोलेक्टोटाइप (genolectotype) छाँटा जा सकता है।

भौमिकीय काल पाँच बृहत भागों मे बँटा हुआ है। ये क्रमश आर्कियोजोइक महाकल्प (Archeozoic Era), प्राग्जीव महाकल्प-(Proterozoic Era), पुराजीवी महाकल्प (Paleozoic Era), मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic Era) और नूतनजीव महाकल्प (Cenozoic Era) है, जिनमे आर्कियोजोइक महाकल्प सबसे प्राचीन है। भौमिकीय काल का इन पाच महाकल्पो मे विभाजन मुख्यत इन महाकल्पो मे मिलनेवाले प्राणियो और पादपो के जीवाश्मो पर ही आधारित है। इनमे से आर्कियोजोइक महाकल्प जीवशून्य था। इस महाकल्प में न किसी प्रकार के जीवजतु और न पौधे ही थे। अत. इस काल के शैलो मे हमको किसी भी प्रकार के जीवाश्म नही मिलते है। प्राग्जीव महाकल्प मे प्रोटोजोआ जैसे अति साधारण प्रकार के जीवजंतु अस्तित्व मे आए। परतु इन साधारण जीवो मे किसी भी प्रकार के कडे भाग के अभाव के कारण वे शैलों मे परिरक्षित न हो सके। अत प्राग्जीव महाकल्प के शैलो मे भी जीवाश्म नही मिलते। अन्य तीनो महाकल्प, अर्थात् पुराजीवी महाकल्प (Palaeozoic) मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic) और नूतनजीवी महाकल्प (Cenozoic) जीवाश्ममय है। इन महाकल्पो के अतर्गत आनेवाले जितने भी छोटे से लेकर बडे तक विभाजन है वे सब पूर्णत उस काल मे पाए जानेवाले जीवो के जीवाश्म पर ही आधारित है। अत हम देखते है कि स्तरित शैलविज्ञानी का काम बिना जीवाश्म विज्ञान की सहायता के नही चल सकता। यही कारण है कि जीवाश्म विज्ञान स्तरित शैलविज्ञान का मेरुदड कहलाता है।

मोटे तौर पर जीवाश्म विज्ञान के आधार पर निम्नलिखित चार मुख्य प्राणी तथा पादप जातीय महाकल्प स्थापित किए जा सकते है

(१) **पूर्व पुराजीवी महाकल्प** - इसके अतर्गत कैंब्रियन (cambrian), ऑर्डोविशन (ordovician) और सिल्यूरियन (silurian) कल्प आते है।

(२) **उत्तर पुराजीवी महाकल्प** -- इसके अतर्गत डिवोनी (devonian), कार्बनी (carboniferous) और परमियन कल्प आते हैं।

(३) मध्यजीवी महाकल्प

(४) नूतनजीव महाकल्प -- अभिनव काल भी इसके अतर्गत है।

१ पूर्व पुराजीवी महाकल्प के प्राणी — प्राय सब प्रमुख अकशेरुकी प्राणियो के प्रतिनिधि जीवाश्म कैंब्रियन स्तरो मे पाए जाते है और उनमे से ट्राइलोबाइट जैसे कुछ प्राणी आदिकैंब्रियन काल मे ही अपेक्षया अधिक विकसित हो चुके थे। अत यह धारणा कि कैंब्रियन स्तरो में पाए जानेवाले सब वर्गों के पूर्वज कैंब्रियन पूर्व काल मे पाए जाते थे, बिलकुल उचित है, यद्यपि उनके अवशेष कैंब्रियन पूर्व शैलो मे नही मिलते। यह कल्पना की जा सकती है कि कैंब्रियन-पूर्व समुद्रा मे सब प्रकार के प्राणी रहते थे, परतु वे सब कोमलागी पूर्वज थे, जिन्होंने अपने अस्तित्व के विषय मे किसी भी प्रकार के चिह्न नही छोडे है। चूँकि सब प्रकार के प्राणी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पौधो पर निर्भर रहते है और पौधो मे ही केवल अकार्बनिक खाद्य पदार्थ के परिपाचन की शक्ति होती है, अत यह भी धारणा उचित प्रतीत होती है कि कैंब्रियन पूर्व काल मे पौधे अस्तित्व मे थे। परतु यह आश्चर्य की बात है कि पौधों के अवशेष पुराजीवी महाकल्प के स्तरा मे नही पाए गए है।

पूर्वपुराजीवी महाकल्प के प्राणीजगत् के मुख्य लक्षणो का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :

(क) पौधो का अभाव था।

(ख) कशेरुकियो का भी अधिकाश रूप मे अभाव रहा। यह अकशेरुकियों का युग था।

(ग) आर्थ्रोपोडा — इसमे ट्राइलोबाइट की अति प्रचुरता थी। अधिकाशत ये उथले जलवासी थे और उनका उपयोग क्षेत्रीय जीवाश्म के रूप मे किया जाता है। इनमे से कुछ गहरे जल के वासी थे, जो या तो बडी बडी आँखोवाले थे, अथवा नेत्रविहीन थे। क्रस्टेशिया (crustacia) विरल थे, किंतु यूरिप्टेरिडा (eurypterida) का सिल्यूरियन कल्प मे बाहुल्य हो गया था।

(घ) मोलस्का (Mollusca) — इसमें गैस्ट्रोपोडा का बाहुल्य था, किंतु लैमलीब्रैंकिया प्रारंभिक प्ररूप मे थे। सेफैलोपोडा का नॉटिलाइट के रुप मे बाहुल्य था।

(च) ब्रैकियोपोडा (Brachiopoda) — इनका कैंब्रियन एव सिल्यूरियन कल्प मे बाहुल्य था। फास्फेटी कवचवाले प्राणी कैल्सियमी कवचवाले प्राणियो की अपेक्षा अधिक थे।

(छ) एकाइनोडर्माटा (Echinodermata) -- आदिम सिस्टिड और क्राइनाइड्स (crinoids) महत्व के थे।

(ज) सीलेन्टेरेटा (Coelenterata) — ग्रैपटोलाइटीज (Graptolites) अति महत्व के थे। वे अधिकाशत गहरे और शात जल के वासी थे।

(झ) पॉरिफेरा (Porifera) — स्पंज महत्व के नही थे।

(ट) प्रोटोजोआ (Protozoa) — यद्यपि रेडियोलेरिया और फोरैमिनीफिरा अति सरल आकार के थे, तथापि वे पूर्व पुराजीव महाकल्प मे महत्व के नही थे।

२ उत्तर पुराजीवी महाकल्प के प्राणी -- यह मत्स्य और पर्णाग समान स्थल पादपो का, जिन्हे टेरिडोस्पर्म्स कहते है, युग था। इनके साथ गोनियोटाइट्स, स्पीरीफेरिड बाहुपाद और रूगोस प्रवाल पाए जाते थे।

(क) पादप — बीजपादप परतु पर्णाग समान टेरिडोस्पर्म्स, इस युग के मध्य कल्प मे महत्व के हो गए थे।

(ख) कशेरुकी — उपर्युक्त महाकल्प डेवोनी कल्प मत्स्यो का कल्प था। अन्य पाए जानेवाले कशेरुकियो में कुछ उभयचर और सरीसृप (Reptile) है, जो उच्चतर स्तरो मे मिलते है।

(ग) संधिपाद प्राणी (Arthropoda) — उपर्युक्त महाकल्प मे ट्राइलोबाइट्स का पतन प्रारभ हुआ और कल्प के अंत तक वे तथा यूरेप्टेरिडिस मृत हो गए, परतु कीटो की वृद्धि हुई।

(घ) मोलस्का — उत्तर पुराजीवीमहाकल्प गोनिएटाइटीज़ (goniatites) का कल्प था। ये इस काल मे अति प्रचुर थे। इनके अतिरिक्त अन्य सीधे अथवा कुंडलाकार ऐमोनाइटीज (Ammonites) भी बहुतायत मे थे, जिनकी सीवनरेखा साधारण प्रकार की थी। नाटिलाइटीज का धीरे धीरे ह्रास प्रारंभ हो गया था।

(च) ब्रैकियोपोडा — उपर्युक्त महाकल्प मे प्रोडक्टिड्स और स्पीरीफरिड्स कहलानेवाले ब्रैकियोपोडा अत्यधिक फूले फले।

(छ) एकाइनोडर्माटा — उत्तरपुराजीव महाकल्प ब्लास्टॉइड्स (Blastoids) का महाकल्प था, जिनके साथ आदिम एकाइनॉइड्स (Echinoids) पाए जाते हैं।

(ज) सीलेंटरेटा — उपर्युक्त महाकल्प में ग्रैप्टोलाइट्स। मृत हो गए। प्रवालों मे रयूगोस प्रवाल अति महत्व के थे।

(झ) प्रोटोजोआ — रेडियोलेरिया और फोरैमिनीफेरा, दोनों पूर्व पुराजीव महाकल्प की अपेक्षा इस कल्प मे अधिक महत्व के हो गए थे।

३ **मध्यजीवी महाकल्प के प्राणी** — मध्यजीवी महाकल्प सरीसृपों और ऐमोनाइटीज का कल्प कहलाता है। इनके साथ बेलेम्नाइटीज (Belemnites) ब्रैकियोपोडा में रिनकोनीलिड्स और प्रवालो की भी प्रधानता थी।

(क) पादप - उपर्युक्त महाकल्प साइकैड्स (cycads) और एकबीजपत्री पादपो का कल्प था। शंकुवृक्ष (conifer) और फर्न (fern) भी मिलते है।

(ख) कशेरुकी — उपर्युक्त महाकल्प में सरीसृपो का अति बाहुल्य था। इस कल्प को सरीसृपों का कल्प कहा जाता है। सरीसृप वायु, जल और स्थलवासी थे। स्तनियों और पक्षियो का प्रादुर्भाव हो गया था परंतु सरीसृपो की तुलना में वे नगण्य तथा अति छोटे आकार के थे और संख्या मे भी बहुत कम थे।

(ग) आर्थ्रोपोडा — ये महत्व के नही थे।

(घ) मोलस्का — लैम्लीब्रैंकिया और गैस्ट्रोपोडा (Gastropoda) का अत्यधिक विकास हुआ। ऐमोनाइटीज और बेलेम्नॉइटीज का मध्यजीवीमहाकल्प के प्राणी जगत् मे सबसे अधिक प्रधानता और बाहुल्य रहा। इनमे एमोनाइटीज अत्यधिक महत्व के थे। इनका उपयोग क्षेत्रीय जीवाश्म के रूप मे होता है। वास्तव मे यह कल्प इन्ही जीवो का कल्प कहलाता है।

(च) ब्रैकियोपोड -- मध्यजीवी महाकल्प मे जिन ब्रैकियोपोडा की प्रधानता थी वे टेरीब्रैटुलिट्स और रिनकोनीलिड्स के अंतर्गत आते है।

(छ) एकाइनोडर्माटा -- मध्यजीवी महाकल्प मे सिर्सटिड्स और ब्लैस्टाइड्स मृत हो गए।

(ज) सीलेंटरेटा (अंतरगुहिका) — इनमें प्रवाल महत्व के थे।

(झ) पॉरिफेरा (porifera) — इनमे स्पंज कभी कभी शैल-निर्माताओं के रूप में प्रसिद्ध थे।

(ट) प्रोटोजोआ — इनमे फोरैमिनीफेरा महत्व के थे।

चित्र २. आद्य विहंग (Archeornis) का जीवाश्म

सरीसृप तथा पक्षियो के बीच की कडी। इस प्राणी के ककाल के अवशेष सन् १८७७ मे पत्थरो के भीतर प्राप्त हुए थे। (ब्रिटिश म्यूजियम से)

नूतनजीव महाकल्प के प्राणी — यह कल्प स्तनियो, पक्षियो, फोरैमिनीफेरो और आवृतबीजी (angiosperms) पादपो का काल था। प्राणी और पादपो के आधार पर हम नूतनजीव महाकल्प को आधुनिक समय से पृथक् नही रख सकते।

(क) पादप — नूतनजीवमहाकल्प मे वर्तमान समय मे पाए जानेवाले द्विबीजपत्री तथा एकबीजपत्री पादप, जिनमे ताड (palm) और उसी के समान अन्य पादप सम्मिलित है, पाए जाते है।

(ख) कशेरुकी --- मध्यजीवीमहाकल्प के विशाल और विख्यात सरीसृपो का अत्यधिक ह्रास और पतन हुआ और इनके बहुत से वर्ग और गण लुप्त हो गए। इनका स्थान स्तनियो ने ले लिया, जो इस नूतनजीव महाकल्प मे अपने विकास की चरम सीमा तक पहुंचे और जिनकी इस कल्प मे प्रधानता थी।

(ग) आर्थ्रोपोडा नूतनजीवमहाकल्प — मे वही आर्थ्रोपोडा मिलते हैं जो आजकल पाए जाते हैं।

(घ) ब्रैकियोपोडा — ये नूतनजीवमहाकल्प मे विरल थे।

(च) मोलस्का — दोनों गैस्ट्रोपोडा और लैम्लीब्रैकिया नूतन-जीवमहाकल्प मे पाए जाते हैं।

(छ) एकाइनोडर्माटा — ये नूतनजीवमहाकल्प मे विरल थे।

(ज) सीलेंटरेटा — नूतनजीवमहाकल्प में शैलमाला बनानेवाले मेडरीपोरेरिया प्रवाल आजकल के समान उष्ण जल मे अत्यधिक फूले फले।

(झ) पॉरिफेरा — ये महत्व के नही थे।

(ट) प्रोटोज़ोआ — नूतनजीवमहाकल्प में फोरैमिनीफेरा अत्यधिक महत्व के है, जिनमे न्यूम्यूलाइटीज की इस कल्प के आदि मे और ग्लोबिजेराइना की वर्तमान समय मे प्रधानता है।

जीवविकासीय प्रमाण — संपूर्ण शैलों के अनुक्रम का क्रम भली भाँति निश्चय हो जाने और उनमे पाए जानेवाले जीवाश्मों की पहचान हो जाने के उपरात यह पता चला कि जीवों के विकास मे शनैः शनैः प्रगति हुई। अति साधारण प्रकार के जीव सबसे पहले प्रकट हुए, जो सबसे प्राचीन अवसादी शैलों मे पाए जाते हैं और इनके उपरात जटिलतर जीव क्रमश. तरुणतर शैलो मे आते गए। इस प्रकार संपूर्ण अकशेरुकी सघों के प्रतिनिधि, जो जीवाश्म रूप मे परिरक्षण योग्य हैं, कैंब्रियन शैलो मे मिलते है, परतु प्रत्येक सघ के अतर्गत पाए जानेवाले जीव अपनी रचना मे प्राय. समान थे और बहुत कम परिवर्तन दिखाते थे। आकारीय आधार पर हम उन्हे अल्पविकसित वंश कह सकते है, परंतु बाद के युगो में पाए
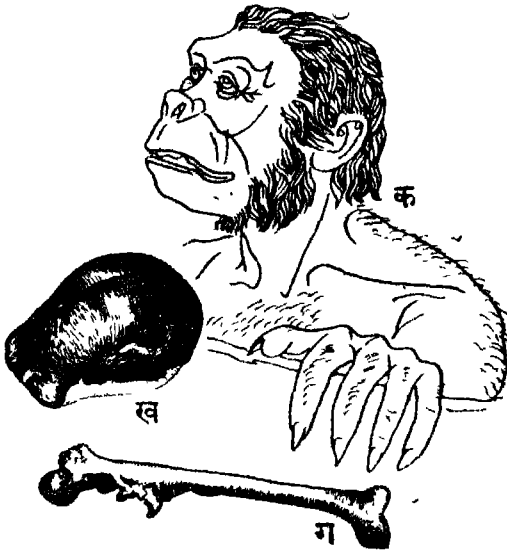
चित्र ३. मनुष्य के पूर्वज का फासिल

क. प्लाइओसीन युग का मनुष्य, जिसकी ख. खोपड़ी तथा ग. टाँग की हड्डी जावा द्वीप में पाई गई और इनसे उसके आकार का अनुमान लगाया गया।

जानेवाले संघों मे से प्रत्येक संघ में मिलनेवाले जीवों की रचना अधिक भिन्न थी और इस तथ्य की पुष्टि किसी सीमा तक वंशों की संख्या में वृद्धि से हो जाती है। कशेरुकियों में रचना के आधार पर आदिम वर्ग समझा जानेवाला साइक्लोसोटोमाटा वर्ग है, जिसका सबसे पहले प्रादुर्भाव हुआ और जिसके उपरांत क्रमशः मत्स्य, उभयचर, सरीसृप, पक्षी और स्तनी आए और ये वर्ग उसी क्रम से प्रकट होते गए जैसा उनकी रचना से आशा की जाती थी। अत. इस प्रकार से भौमिकीय युगो मे जीवों की प्राप्ति का क्रम जीवविकास के सिद्धात की सच्चाई प्रतिपादित करता है, क्योंकि जितने प्राचीनतर शैल होते हैं उतने ही सरल उनके जीव अवशेष होते है और जैसे जैसे भौमिकीय कालसारणी के अनुसार निकटतम शैलों का अध्ययन किया जाता है वैसे वैसे जटिल उनके जीव अवशेष पाए जाते है।

जीवविकासीय सिद्धात का प्रतिपादन करने के लिये घोड़े (अश्व) के विकास का अध्ययन अच्छा उदाहरण है। वह संपूर्ण सामग्री जिस पर घोड़े के विकास का इतिहास आधारित है, उत्तरी अमरीका के तृतीयक शैलो से प्राप्त की गई है। इसके विकास की मुख्य दिशाएँ ये है .

(१) आकार में वृद्धि, (२) गति मे वृद्धि, (३) सिर और ग्रीवा में वृद्धि।

घोडे का सबसे प्राचीनतम जीवाश्म ईओहिपस (Eohippus) है, जो निम्न ईओसीन शैलो मे पाया गया है और जो आकार मे बिल्ली से लेकर लोमड़ी के बराबर था। मध्य ईओसीन का घोड़ा ओरोहिपस (Orohippus) के नाम से जाना जाता है, जो आकार मे ईओहिपस से कुछ ही बडा था। उत्तर ईओसीन का घोडा एपिहिपस (Epihippus) कहलाता है, जिसके विषय मे पूरी जानकारी नही है। मेसोहिपस (Mesohippus) के नाम से प्रचलित घोड़ा, निम्नतर और मध्य ओलिगोसीन शैलो मे मिलता है। यह आकार में भेड के बराबर, या उससे कुछ छोटा, था। मायोहिपस (Miohippus), जो उत्तर ओलिगोसीन और निम्नतर मायोसीन युग मे पाया जाता था, भेड से कुछ ही बड़े आकार का था। पैराहिपस (Parahippus) निम्न मायोसीन युग मे अति प्रचुर था। मध्य मायोसीन का घोडा, मेरिकिपस (Merychippus) कहलाता था, जो पैराहिपस ही के समान था। प्लायोसीन युग का घोड़ा, प्लायोहिपस (Pliohippus) आकार में गधे के बराबर था, पर तृतीयक युग मे मिलनेवाला घोड़ा वर्तमान काल में पाए जानेवाले घोड़े के बराबर था। इस प्रकार हम देखते है कि घोड़े के आकार में धीरे धीरे वृद्धि हुई।

इसी प्रकार घोडे की बाहु और पादो की आतरिक रचना मे परिवर्तन से उसकी गति में वृद्धि हुई। इस परिवर्तन का मुख्य लक्षण *पार्श्व भागो का ह्रास और मध्य अथवा अक्षीय भाग का विस्तार* और वर्धन था, जिससे वह दौड़ते समय दृढता के साथ बोझा संभाल सके। इसी प्रकार कलाई के बीच की हड्डी को छोड़कर अन्य सबका ह्रास हो गया, जिससे कलाई दृढ़ हो गई। इसी प्रकार तीसरे अंगुल की वृद्धि हुई, आस पास के अन्य अंगुल लुप्त हो गए और अंत में केवल वही रह गया।

इसी प्रकार सिर और ग्रीवा में धीरे धीरे वृद्धि हुई, जिससे घोड़ा सुगमता से चर सके। [रा० ना०]

फ़ासिस्टवाद (फ़ासिज़्म) इटली मे बेनितो मुसोलिनी द्वारा संगठित 'फ़ासिओ डि कंबैटिमेंटो' का राजनीतिक आदोलन; मार्च, १९१९ में प्रारंभ हुआ। इसकी प्रेरणा और नाम सिसिली के १९वीं शती के क्रातिकारियों-'फासेज'- से ग्रहण किए गए। मूल रूप में यह आदो-

लन समाजवाद या साम्यवाद के विरुद्ध नहीं, अपितु उदारतावाद के विरुद्ध था। इसका उद्‌भव १९१४ के पूर्व के समाजवादी आंदोलन (सिंडिकैलिज्म) में ही, जो फ्रांसीसी विचारक जार्ज्ज सारेल के दर्शन से प्रभावित था, हो चुका था। सिंडिकैलिस्ट पार्टी उस समय पूँजीवाद और संसदीय राज्य का विरोध कर रही थी। १९१९ में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पार्टी के एक सदस्य मुसोलिनी ने अपने कुछ क्रांतिकारी साथियों के साथ एक नई क्रांति की भूमिका बना डाली। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इटली को संमानित स्थान, गृहनीति मे मजदूरों और सेना का संमान तथा सभी लोकतांत्रिक और संसदीय दलो तथा पद्धतियों का दमन आदि उसके घोषणापत्र के खास नुक्ते थे। प्रथम विश्वयुद्ध मे इटली मित्रराष्ट्रों का पक्ष लेकर लड़ा, और उसमें उसने सैनिक तथा आर्थिक दृष्टियों से बड़ी हानि उठाई। युद्धोत्तर परिस्थितियों ने फासिस्टवादी आदोलन के लिये सुदृढ़ पृष्ठभूमि तैयार की। मुसोलिनी ने अपनी शक्ति बढाने के लिये रोसोनी की नेशनल सिंडिकैलिस्ट पार्टी को भी मिला लिया। क्रांति और पुनरुत्थान के तीखे नारों ने निर्धन जनता को बहुत प्रभावित किया और बहुसंख्यक कृषकों तथा मजदूरो में फ़ासिस्टवाद की जड़ें बड़ी गहराई तक फैल गईं। सिंडिकैलिस्ट पार्टी तब तक कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में उभर चुकी थी, उसे भी मुसोलिनी के क्रूर दमन का शिकार होना पड़ा।

कम्युनिस्टों से निपटने के दौरान अनेक भिन्न भिन्न मनोवृत्तियो के तत्व इस आदोलन में समिलित हुए, जिसके कारण फ़ासिस्टों का कोई संतुलित राजनीतिक दर्शन नही बन पाया। कुछ व्यक्तियों की सनको और प्रतिक्रियावादी दुराग्रहो से ग्रस्त इस आदोलन को इटली की तत्कालीन अनिश्चय और अराजकता की परिस्थितियो से बहुत पोषण मिला। अन्ततोगत्वा २० अक्टूबर, १९२२ को काली कमीजें पहने हुए फ़ासिस्टो ने रोम को घेर लिया तो सम्राट् विक्टर इमैनुएल को विवश होकर मुसोलिनी को मंत्रिमडल बनाने की स्वीकृत देनी पडी। फासिस्टो ने इटली के संविधान में अनेक परिवर्तन किए। ये परिवर्तन, पार्टी और राष्ट्र दोनो को मुसोलिनी के अधिनायकवाद में जकडते चले गए। फासिस्टों का यह निरंकुशतंत्र द्वितीय विश्वयुद्ध तक चला। इस बार मुसोलिनी के नेतृत्व में इटली ने 'धुरी राष्ट्रों' का साथ दिया। जुलाई, १९४३ में 'मित्रराष्ट्रों' ने इटली पर आक्रमण कर दिया। फासिस्टो का भाग्यचक्र बडी तेजी से उलटकर घूम गया। पार्टी की सर्वोच्च समिति के आक्रोशपूर्ण आग्रह पर मुसोलिनी को त्यागपत्र देना पड़ा, और फासिस्ट सरकार का पतन हो गया।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अपने आरंभिक दिनों में फासिस्टवादी आंदोलन का ध्येय राष्ट्र की एकता और शक्ति में वृद्धि करना था। १९१९ और १९२२ के बीच इटली के कानून और व्यवस्था को चुनौती सिंडिकैलिस्ट, कम्युनिस्ट तथा अन्य वामपंथी पार्टियों द्वारा दी जा रही थी। उस समय फासिस्टवाद एक प्रतिक्रियावादी और प्रतिक्रांतिवादी आदोलन ही समझा जाता था। स्पेन, जर्मनी आदि मे भी इसी प्रकृति के आदोलनों ने जन्म लिया और फ़ासिस्टवाद, साम्यवाद के प्रतिपक्ष (एंटीथीसिस) के अर्थ में लिया जाने लगा। १९३५ के पश्चात् हिटलर-मुसोलिनी-संधि से इसके अर्थ में अतिक्रमण और साम्राज्यवाद भी जुड़ गए। युद्ध के दौरान मित्रराष्ट्रों ने फ़ासिज्म को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बदनाम कर दिया।

मुसोलिनी की प्रिय उक्ति थी . फ़ासिज्म निर्यात की वस्तु नहीं है। फिर भी, अनेक देशों में, जहाँ समाजवाद और संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध कुछ तत्व सक्रिय थे, यह आदर्श के रूप में ग्रहण किया गया। इंग्लैंड मे 'ब्रिटिश यूनियन आव फ़ासिस्ट्स' और फ्रास में 'एक्शन फ्रांकाइसे' द्वारा इसकी नीतियों का अनुकरण किया गया। जर्मनी (नात्सी), स्पेन (फैलंगैलिज्म) और दक्षिण अमरीका में इसके सफल प्रयोग हुए। हिटलर तो फ़ासिज्म का कृतज्ञ ही था। नात्सीवाद के अभ्युदय के पूर्व स्पेन के रिवेरा और आस्ट्रिया के डाल्फस को मुसोलिनी का पूरा सहयोग प्राप्त था। सितंबर, १९३७ मे 'बर्लिन–रोम–धुरी' बनने के बाद जर्मनी ने फासिस्टवादी आदोलन की गति को बहुत तेज किया। लेकिन १९४० के बाद अफ्रीका, रूस और बाल्कन राज्यों में इटली की लगातार सैनिक पराजय ने फ़ासिस्टवादी राजनीति को खोखला सिद्ध कर दिया। जुलाई, १९४३ का सिसली पर ऐंग्लो–अमरीकी–आक्रमण फासिस्टवाद पर अंतिम और अंतकारी प्रहार था। [चा० त्रि०]

फ़ॉस्फेट फ़ास्फोरिक अम्ल तथा क्षारो की क्रिया से जो लवण बनते हैं, वे फ़ॉस्फेट कहलाते हैं। यदि ऑर्थोफ़ॉस्फोरिक अम्ल को सोडियम हाइड्रॉक्साइड के साथ मिलाया जाय, तो अम्ल और क्षार के अनुपातों के अनुसार तीन ऑर्थोफॉस्फेट बनेंगे, जो क्रमशः मोनोसोडियम-डाइ-हाइड्रोजन-फॉस्फेट, डाइसोडियम-हाइड्रोजन-फॉस्फेट तथा ट्राइसोडियम फ़ॉस्फेट कहलाते हैं। इन्हें प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक फॉस्फेट भी कहा जाता है। फ़ॉस्फोरिक अम्ल के त्रिक्षारकी होने के कारण तीन प्रकार के लवण फ़ॉस्फेट सभव हैं। इन तीनों प्रकारों मे सोडियम, पोटैशियम तथा अमोनियम के फॉस्फेटों को छोडकर प्राय: अन्य सभी द्विक्षारकी तथा त्रिक्षारकी फॉस्फेट जल मे अविलेय हैं। संपूर्ण मोनोफास्फेट जल मे विलेय होते हैं। प्राय सभी फॉस्फेट सलफ्यूरिक अम्ल, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल, फास्फोरिक अम्ल (सीसा, टिन, पारद तथा बिस्मथ फ़ॉस्फेटो के अतिरिक्त), तथा ऐसीटिक अम्ल (सीसा, ऐलुमिनियम तथा लौह फॉस्फेटों के अतिरिक्त) मे विलेय है। सभी त्रिक्षारकी फॉस्फेट अत्यत क्षारीय होते हैं, द्विक्षारकी कम क्षारीय तथा प्राथमिक फॉस्फेट अल्प अम्लीय होते है। ऑर्थोफॉस्फेटों को संबधित तत्वो के ऑक्साइड, हाइड्रॉक्साइड या कार्बोनेट तथा फॉस्फोरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त किया जाता है। अल्प विलेय फॉस्फेटो को उभय अपघटन से प्राप्त किया जा सकता है। गरम करने पर त्रिक्षारकी फॉस्फेट स्थायी रहते हैं तथा द्विक्षारकी पाइरोफॉस्फेट बनते हैं, जबकि प्राथमिक फॉस्फेटों को गरम करने पर जल की हानि होने से मेटाफॉस्फ़ेट बनते है। पाइरो तथा मेटाफॉस्फेट पानी में अल्प विलेय हैं। क्रिस्टलीय फॉस्फेटो में ऑर्थोफॉस्फेट फा औ$_४^{-३}$ (PO_4^{-3}), पाइरोफॉस्फेट फा$_२$ औ$_७^{-४}$ ($P_2O_7^{-4}$) तथा ट्राइफॉस्फेट फा$_३$ औ$_{१०}^{-५}$ ($P_3O_{10}^{-5}$) प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त टेट्राफ़ॉस्फेट तथा उच्चतर फ़ॉस्फेटों की उपस्थिति भी बताई जाती है, किंतु एक्स-रे तथा रासायनिक विधियों से उनकी पुष्टि नही होती। अक्रिस्टली फॉस्फेटो में काचीय फ़ॉस्फ़ेट बड़े महत्वपूर्ण हैं, जो मेटाफॉस्फेटों को उच्च ताप पर गलाकर फिर मंद गति से ठंडा करने पर प्राप्त होते है। इन्हे चक्रीय फ़ॉस्फेट भी कहा जाता है। ये जलीय विद्युद्विश्लेषण पर ऋणायन उत्पन्न करते हैं।

क्षारों की उपस्थिति में मेटाफॉस्फेट शृंखलाएँ सरलता से टूट जाती है। ऑर्थोफॉस्फेटों का भी जलीय विद्युद्विश्लेषण होता है।

ऑर्थोफास्फेट अमोनियम मालिब्डेट तथा नाइट्रिक अम्ल के साथ गरम किए जाने पर पीले रंग का अवक्षेप बनाते हैं। यह इनकी परीक्षा में सहायक होता है। सिलवर नाइट्रेट के साथ मेटाफॉस्फेट श्वेत अवक्षेपण बनाते हैं, जबकि ऑर्थोफ़ास्फेट पीला। मैग्नीशियम सल्फेट को अमोनियम हाइड्रॉक्साइड के साथ क्षारीय बनाकर जब ऑर्थोफास्फेट के साथ मिश्रित करके गरम किया जाता है, तब एक श्वेत अवक्षेप बनता है, किंतु मेटाफॉस्फेट के साथ कोई अवक्षेप नहीं बनता।

फॉस्फेटों का सर्वाधिक प्रयोग फॉस्फेट उर्वरकों के निर्माण में होता है। प्रकृति में चट्टानीय-फॉस्फेटों में ट्राइकैल्सियम फॉस्फेट पाया जाता है, जिसपर सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से सुपरफॉस्फेट बनाया जाता है। यह उर्वरक के रूप में प्रचुरता से प्रयुक्त होता है। फॉस्फोरिक अम्ल की क्रिया से त्रयगी फॉस्फेट बनता है जो अत्यंत सांद्र फॉस्फेट उर्वरक है। अस्थिनिर्माण तथा अन्य शारीरिक प्रक्रियाओं में फॉस्फेट महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते हैं। ठीक से बीज उत्पादन के लिये पौधों को फॉस्फेट की आवश्यकता पड़ती है। फॉस्फेटों को धातु-पालिशों के बनाने, चीनी के परिष्कार, किण्वीकरण तथा खमीर उत्पादन, पेय पदार्थों के निर्माण तथा पेट्रोल के शोधन के काम में लाया जाता है। सोडियम फॉस्फेट का सर्वाधिक प्रयोग ऊनी तथा सूती वस्त्रों में तेल तथा चिकनाई के दाग छुड़ाने में होता है। रंगाई में डाइसोडियम फॉस्फेट तथा फोटोग्राफी में सोडियम, पोटैशियम तथा चाँदी के फॉस्फेटों का प्रयोग होता है। ट्राइकैल्सियम फॉस्फेट को भोज्य पदार्थ (विशेषतया पावरोटी बनाने में), जल से फ्लोरीन दूर करने, खाने के लवण को शुष्क बनाने तथा चीनी मिट्टी के बरतन बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। ऐलुमिनियम मेटाफॉस्फेट का प्रयोग काच के निर्माण में भी होता है।

सं० ग्रं०—डब्लु० एच० वेगामान 'फॉस्फोरिक ऐसिड; फॉस्फेट तथा फास्फेटिक फर्टिलाइजर (१९५२)। [शि० गो० मि०]

फॉस्फोरस एक तत्व है, जो आवर्त सारणी के पंचम समूह के अ उपवर्ग में आता है। इसका परमाणु भार ३१, परमाणु संख्या १५, संयोजकताएँ ३ तथा ५ और संकेत **फा (P)** है। इस तत्व की खोज सर्वप्रथम हैंबर्ग के निवासी ब्रैंड (Brand) ने १६६९ ई० में की। ब्रैंड ने मूत्र के वाष्पन तथा आसवन से इस तत्व की प्राप्ति की। इस तत्व का फॉस्फोरस नाम पड़ने का कारण यह है कि ग्रीक भाषा में संयुक्त शब्द फॉस्फोरस (फॉस = प्रकाश+फेरो = मैं वहन करता हूँ) का अर्थ होता है 'मैं प्रकाश वहन करता हूँ'। पहले तो यह नाम उन सभी पदार्थों के लिये प्रयुक्त होता था जो अंधकार में चमकते थे, किंतु बाद में यह तत्वविशेष के लिये ही प्रयुक्त होने लगा।

उपस्थिति — यद्यपि यह तत्व प्रकृति में अत्यंत विस्तीर्ण है, तथापि असंयुक्त रूप में कदाचित् ही पाया जाता है, क्योंकि इसकी बंधुता ऑक्सीजन के लिये विशेष होती है। यही कारण है कि फॉस्फोरस शीघ्र ही ऑक्सीकृत होकर ऑक्सीजन के यौगिकों के रूप में, विशेषतया खनिज फॉस्फेटों के रूप में, पाया जाता है। ये खनिज फॉस्फेट मुख्यतया कैल्सियम फॉस्फेट यौगिक में बने होते हैं। इसके अतिरिक्त मिट्टियों, नदियों या सागरों के जलों में भी अल्प मात्रा में फॉस्फोरस यौगिक रूप में वर्तमान रहता है। विभिन्न प्रकार के पौधों तथा सभी पशुओं में इसकी उपस्थिति वांछनीय है। प्रकृति में फॉस्फोरस का एक ऐसा संतुलित चक्र चलता रहता है, जिससे भूमि और पशु-पौधों में पारस्परिक आदान प्रदान बना रहता है। अच्छी फसलों के उत्पादन के लिये भूमि में फॉस्फोरस का होना नितांत आवश्यक है। भूमि की सतह में ०.११ % फॉस्फोरस वर्तमान है और उसमें पाए जानेवाले प्रमुख तत्वों की क्रमसूची में इसका बारहवाँ स्थान है।

अपर रूप (Allotropic forms)— फॉस्फोरस चार अपर रूपों में वर्तमान रह सकता है: पीत या श्वेत फॉस्फोरस, लाल फॉस्फोरस, बैंगनी फॉस्फोरस और श्याम फॉस्फोरस। किंतु इनमें से दो अपर रूप पीत और लाल ही महत्वपूर्ण हैं। जब फॉस्फोरस के वाष्प को संघनित होने दिया जाता है तब पीत फॉस्फोरस बनता है, किंतु गलनांक तक यह अत्यंत अस्थायी रहता है। केवल लाल फॉस्फोरस ही स्थायी होता है। इसकी प्राप्ति पीत फॉस्फोरस को अधिक देर तक प्रकाश में रहने देने या उसमें विद्युन्मोचन कराने, अथवा वायु की अनुपस्थिति में फॉस्फोरस को २५०° से० ताप पर गरम करने से होती है। व्यापारिक स्तर पर लाल फॉस्फोरस का निर्माण पीत फॉस्फोरस को एक बंद बरतन में २४०° से० पर गरम करके किया जाता है। लाल फॉस्फोरस को कुछ लोग अक्रिस्टली फॉस्फोरस भी कहते हैं। इसकी खोज सर्वप्रथम १८४५ ई० में श्रोटर ने की। लाल फॉस्फोरस को ३६०° से० ताप पर बंद नली में अधिक देर तक गरम करते रहने से श्याम फॉस्फोरस बनता है। यह अत्यंत स्थायी रूप है।

पीत फॉस्फोरस ठोस होता है, किंतु हवा में रखते ही उसपर श्वेत पारान्धदर्शी परत पड़ जाती है, जिससे यह रंगहीन अथवा श्वेत फॉस्फोरस कहलाता है। इसे अष्टफलकीय, सामान्य अथवा अधात्वीय फॉस्फोरस भी कहते हैं। यह मोम की भाँति कोमल होने के कारण सरलता से चाकू द्वारा काटा जा सकता है। प्रकाश में खुला रख देने पर लाल फॉस्फोरस के बनने से इसका रंग बदल जाता है। इसका आपेक्षिक घनत्व १.८३, गलनांक ४४.४° से० और क्वथनांक २८७° से० है। खुली तथा आर्द्र हवा में यह शीघ्र ही जल उठता है। ऐसे वातावरण में इसका ज्वलन ताप ३०° से० है, किंतु शुष्क हवा में यह ताप ऊँचा होता है। इस निम्न ज्वलनताप के कारण शरीर की ऊष्मा से ही इसके ज्वलित हो जाने का भय रहता है। इस कारण इसे कभी भी हाथ से नहीं छूना चाहिए। इसी ज्वलनशीलता के कारण इसका संग्रह पानी के भीतर किया जाता है, जिसमें यह अविलेय है। कार्बन डाइ-सल्फाइड में यह पूर्ण रीति से विलेय है। इसके अतिरिक्त ऐल्कोहॉल, ईथर, बेंजीन, ग्लिसरीन, ऐसीटिक अम्ल, क्लोरीन, मेथिल आयोडाइड, स्टियरिक अम्ल तथा तारपीन में भी यह विलेय है।

जब पीत फॉस्फोरस को अँधेरे में छोड़ दिया जाता है, तब उसमें से पीले हरे रंग का प्रकाश निकलता है। यह प्रकाश प्राचीन काल से साधारण जनों को आकर्षित करता रहा है। रात्रि के समय श्मशानों में प्राय: ऐसा प्रकाश देखा जाता है। इस प्रकाश का कारण फॉस्फोरस हाइड्राइड (फास्फ़ीन) का

निर्माण है, जो हवा में ऑक्सीजन के रहने से प्रज्वलित होता रहता है। कुछ लोगों का विचार है कि फ़ॉस्फोरस हवा के ऑक्सीजन के सयोग से त्रि-ऑक्साइड बनाता है और साथ ही साथ ओज़ोन भी बनता है, जो फ़ॉस्फ़ोरस के दहन और प्रकाश में योग देते हैं। खुली हवा मे आर्द्र फॉस्फोरस भी ऑक्सीकृत होता रहता है जिससे श्वेत धूम्र निकलता है, जो लहसुन की तरह महकता है। अधिक ताप पर यह तुरत अग्नि पकड़ लेता है और फॉस्फोरस पेंटॉक्साइड बनाता है। यह क्लोरीन, गंधक, नाइट्रिक अम्ल तथा कॉस्टिक सोडा के साथ क्रिया करके विभिन्न यौगिक बनाता है। यह अत्यंत विषैला होता है।

लाल फॉस्फ़ोरस सिंदूरी लाल रंग का होता है और इस रंग के कारण ही उसका यह नामकरण हुआ है। यह पीले फ़ॉस्फ़ोरस की अपेक्षा कम सक्रिय और साधारण ताप पर अधिक स्थायी होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व २·३ तथा गलनांक ५९०° सें० (४३ वायुमंडल दाब पर) है। २००° सें० के नीचे इसका वाष्पन संभव नही है। अँधेरे मे खुला छोड़ देने पर न तो यह प्रदीप्त होता है और न इसमे किसी प्रकार का परिवर्तन होता है। न तो यह विषैला होता है और न घर्षण से शीघ्र ही ज्वलित होनेवाला। हवा में २६०° से० तक गरम करने पर ही यह आग पकड़ता है।

श्याम रंग के कारण फॉस्फोरस का एक अपर रूप श्याम फ़ॉस्फोरस कहलाता है। इसका आपेक्षिक घनत्व २·७ है, जो सभी अपर रूपो के आपेक्षिक घनत्व से अधिक है। इसका कोई व्यापारिक महत्व नही है।

बैंगनी फॉस्फोरस का आपेक्षिक घनत्व २·३६, गलनाक ६००° से० तथा ज्वलन ताप २६०° सें० है। यह विलायकों में अविलेय है।

पारस्परिक भिन्नताओ के होते हुए भी चारो अपर रूपो के अणुओ मे कोई भेद नही। सभी के समान भार लेकर जलाने पर समभार मे फॉस्फोरस पेंटॉक्साइड बनता है।

निर्माण — पहले जानवरों की अस्थियों से फ़ॉस्फ़ोरस प्राप्त किया जाता था। इस विधि मे जिलेटिन रहित अथवा भूनी हुई अस्थियो को सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ एक बड़े हौज में अभिक्रिया कराने के पश्चात् तरल पदार्थ को छानकर उसे वाष्पीकृत किया जाता है। और जब इस तरल पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व १·४५ हो जाता है, तब इसमें २०% कोयला या जला हुआ पत्थर का कोयला (कोक) मिलाकर इसे छिछले कड़ाहों में गरम किया जाता। जब इसमें छह प्रति शत आर्द्रता रह जाती है, तब इसे बंद मुँह के बरतनों में रखकर भट्ठी में इतना गरम किया जाता है कि लाल हो जाय। इस प्रकार लगातार तीन चार दिनों तक गरम करते रहने से वर्तमान फ़ॉस्फ़ोरस आसुत होकर एक दूसरे बरतन में पानी मे एकत्र होता रहता है, जहाँ से इसे निकालकर पुनरासुत किया जाता है, तब शुद्ध फॉस्फोरस मिलता है। किंतु यह अत्यंत कष्टकारक विधि है। अधिक लागत पर भी इसमें फॉस्फोरस की अत्यंत अल्प प्राप्ति हो पाती है; इसीलिये अब विद्युत् भट्ठियों एवं वात्या-भट्ठियों का प्रयोग होने लगा है और फ़ॉस्फ़ोरस का व्यापारिक निर्माण भी सुगम एवं सस्ता हो गया है। इस नवीन प्रणाली में चट्टानीय फ़ॉस्फेट, सिलिका तथा कार्बन (कोक) के मिश्रण को लेकर भट्ठी में अपचायक वातावरण में पिघलाया जाता है और फिर फॉस्फोरस के वाष्प को एकत्र कर उसे नाना प्रकार के यौगिको में परिवर्तित किया जाता है। इस विधि मे सल्फ्यूरिक अम्ल की आवश्यकता नही पड़ती, साथ ही इससे अधिक फ़ॉस्फोरस की प्राप्ति भी होती है।

फॉस्फोरस का उत्पादन का प्रवाहचित्र

फॉस्फोरस के उत्पादन का प्रवाहचित्र

क. फ़ॉस्फेट; ख. कोक; ग बालू; घ. धान कीप (hoppers); च. ग्रंथिकाकरण भट्ठी; छ. तथा ज. शुष्कीकारक; झ. उपजात कार्बन मोनॉक्साइड गैस, जो ईंधन के काम आती है; ट. विद्युदग्र; ठ. विद्युद्भट्ठी; ड धातुमल तथा लोह फॉस्फ़ोरस; ढ. गैस शोधक; त. संघनित्र; थ. धूल तथा द. फॉस्फोरस संग्रह टकी।

फ़ॉस्फ़ोरस के यौगिक — फॉस्फोरस, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, क्लोरीन, गंधक तथा धातुओ के साथ मिलकर क्रमश: ऑक्साइड, हाइड्राइड, क्लोराइड, सल्फाइड तथा फॉस्फाइड यौगिक बनाता है। ऑक्साइडों को पानी में घुलाने से फास्फोरस के अम्लो की प्राप्ति होती है। ऑक्साइडो मे फ़ॉस्फ़रस पेटॉक्साइड, हाइड्राइड मे फ़ॉस्फ़ीन फा हा$_3$ (PH_3), हेलाइडों मे फॉस्फोरस पेटाक्लोराइड फा क्लो$_5$ (PCl_5) सल्फाइडो मे फॉस्फ़ोरस पेंटासल्फाइड फा$_2$ गं$_5$ या फा$_4$ गं$_{10}$ (P_2S_5 or P_4S_{10}) अधिक महत्व के हैं।

फ़ॉस्फ़ाइड — फॉस्फोरस अनेक धातुओं के संयोग से फ़ॉस्फाइड बनाता है, किंतु गंधक की अपेक्षा धातुओं के लिये इसकी बंधुता कम है। फ़ॉस्फाइडो मे टिन और ताँबे के फ़ॉस्फाइड केवल इन धातुओं और फ़ॉस्फोरस के सयोग से ही बनते हैं। ये फॉस्फाइड पानी या अम्ल के साथ क्रिया करके फ़ॉस्फ़ीन या फॉस्फोनियम लवण बनाते है।

फ़ॉस्फोरस के क्षार — रासायनिक दृष्टि से फॉस्फ़ीन, अमोनिया के सदृश्य है और अमोनियम हाइड्रॉक्साइड की ही भाँति फॉस्फोनियम हाइड्रॉक्साइड नामक क्षार बनता है।

फ़ॉस्फ़ोरस के अम्ल — फ़ॉस्फोरस के आठ अम्ल ज्ञात हैं, जिनमें से पाँच तो फॉस्फ़ोरस ऑक्साइड तथा फॉस्फ़ोरस पेंटॉक्साइड और जल के संगोग से बनते हैं। इसके नाम है: मेटाफॉस्फोरस, फॉस्फ़ोरस, मेटाफ़ॉस्फ़ोरिक, पाइरोफॉस्फोरिक, तथा आर्थोफ़ॉस्फ़ोरिक

अम्ल । इनके अतिरिक्त हाइपोफ़ॉस्फ़ोरस, पाइरोफ़ॉस्फ़ोरस तथा हाइपोफ़ास्फोरिक अम्ल हैं, जो फ़ॉस्फ़ोरस के ऑक्साइडो तथा जल की अभिक्रिया से नहीं प्राप्त होते । इन आठो अम्लों में आर्थो-फ़ॉस्फ़ोरिक अम्ल ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जिसका आण्विक सूत्र, हा$_3$ फा औ$_4$ (H_3PO_4) है । इसके दो अणुओं में से एक अणु जल की हानि होने पर पाइरोफॉस्फोरिक अम्ल हा$_4$ फा$_2$ औ$_7$ ($H_4P_2O_7$) तथा एक ही अणु मे से एक अणु जल हानि से मेटाफ़ॉस्फ़ोरिक अम्ल हा फा औ$_3$ (HPO_3) बनते हैं । फ़ॉस्फ़ोरिक अम्ल त्रिक्षारकी होता है जिसके कारण तीन प्रकार के लवण, प्राथमिक, द्वितीयक तथा त्रितीयक, बनते हैं, जिन्हे फ़ॉस्फेट कहते है (देखे फ़ॉस्फेट) । इस अम्ल का सबसे अधिक उपयोग कृत्रिम खाद या उर्वरको के निर्माण मे होता है ।

इसके अतिरिक्त फ़ॉस्फ़ोरस अनेक यौगिक बनाता है, जैसे हाइपो-फ़ॉस्फेट फ़ॉस्फेट तथा फ़ॉस्फ़ोप्रोटीन आदि ।

प्रयोग — फॉस्फोरस एक आवश्यक तत्व है, जो फ़ॉस्फेट के रूप मे मनुष्यो और पशुओ के अस्थिनिर्माण मे सहायक होता है। स्वास्थ्यरक्षा के लिये आवश्यक है कि शरीर में फॉस्फोरस का संतुलन स्थिर रहे । यही नही, शरीर मे होनेवाली अनेक प्रतिक्रियाओ मे भी फ़ॉस्फ़ोरस का महत्वपूर्ण हाथ रहता है । फ़ॉस्फेट के रूप में फॉस्फोरस का सर्वाधिक प्रयोग भूमि को उपजाऊ बनाने के लिये उर्वरको के रूप मे होता है । अब तो फ़ॉस्फ़ोरस के समस्थानिक फा^{32} (P^{32}) के ज्ञात हो जाने के कारण उसका उपयोग भूमि से पौधो द्वारा फ़ॉस्फेट उर्वरको के अवशोषण अध्ययन में होने लगा है ।

श्वेत अथवा पीत फ़ॉस्फोरस का उपयोग फ़ॉस्फोरस कांस्य, फॉस्फोरस टिन, फ़ॉस्फ़ोरस ताँबा, जैसी मिश्रधातुओ के निर्माण तथा चूहों एवं अन्य हानिकारक कीटाणुओं की रोकथाम के लिये विषैले पदार्थों के बनाने में होना है । युद्ध के समय विस्फोटको एवं धूम्र आवरणों के उत्पादन के लिये भी फॉस्फोरस का उपयोग होता है । पीत फॉस्फोरस अत्यंत विषैला होता है और ०·१ ग्राम से भी मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। इसका धूम्र बड़ा घातक होता है । इससे नाक और जबडे की अस्थियाँ सड जाती है । पहले पीत फॉस्फोरस का सर्वाधिक उपयोग दियासलाई के निर्माण मे होता था और यही कारण है कि दियासलाई के कारखानो में काम करनेवाले कर्मचारी प्राय. उपर्युक्त रोग के शिकार हो जाते थे । जब से पीत फ़ॉस्फोरस के स्थान पर लाल फॉस्फोरस का उपयोग दियासलाई के निर्माण मे होने लगा, इस रोग का अत हो गया है ।

फ़ॉस्फोरस के जिन यौगिकों का महत्वपूर्ण औद्योगिक उपयोग होता है, उनमे फॉस्फोरिक अम्ल तथा उसके व्युत्पन्नो को छोड़कर सल्फाइड तथा क्लोराइड विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । दियासलाई बनाने के लिये फ़ॉस्फोरस सेस्क्वि सल्फाइड फा$_4$ गं$_3$ (P_4S_3) का बडे पैमाने पर उपयोग होता है और फॉस्फोरस पेंटासल्फाइड फा$_4$ गं$_{10}$ (P_4S_{10}) का उपयोग कार्बनिक फॉस्फोरस-गंधक यौगिकों के निर्माण मे होता है । ये यौगिक स्नेहक तैलो के गुणो मे विशिष्टता लाने के लिये प्रयुक्त होते हैं । फॉस्फोरस पेंटाक्लोराइड के उपयोग से ऐल्कोहॉल और कार्बनिक अम्लों को उनके संगत क्लोराइडो मे परिवर्तित किया जाता है । ऑक्सीक्लोराइड का उपयोग रंगों और दवाओं के लिये होता है । युद्ध तथा औद्योगिक उपयोग के अतिरिक्त लाल फ़ॉस्फ़ोरस का सर्वाधिक उपयोग दियासलाइयों के ऊपर की घर्षण सतह के निर्माण मे होता है (देखें दियासलाई) ।

सं० ग्रं० — जे० डब्लू० मेलर : कॉम्प्रीहेन्सिव ट्रिटीज़ ऑन इनऑर्गैनिक ऐंड थ्योरेटिकल केमिस्ट्री । [शि० गो० मि०]

फ़िक्टे, योहान गोट्लिब (१७६२--१८२०) — जर्मनी के सुसाशिया प्रात के रामेनाऊ स्थान पर एक निर्धन कारीगर के परिवार में फ़िक्टे का जन्म हुआ था । उनकी प्रतिभा को देखकर एक धनी व्यक्ति ने उनकी शिक्षा की व्यवस्था कर दी । परतु इस व्यक्ति की शीघ्र ही मृत्यु हो गई और फिक्टे के संघर्षपूर्ण जीवन का प्रारंभ हुआ ।

१८ वर्ष की उम्र मे फिक्टे जेना विश्वविद्यालय मे भरती हुए । अर्थाभाव के कारण बीच बीच मे उनको अपना अध्ययन रोक देना पडता था और गृहशिक्षक के रूप मे कुछ अर्थसंचय करके वे पुनः अपनी पढ़ाई चालू कर देते थे । अध्ययन के प्रति उनकी अटूट लगन थी ।

आरंभ मे उनपर स्पिनोजा के दर्शन का काफी प्रभाव पड़ा । बाद मे लाइपजिक नगर में उन्होंने काट का अध्ययन और अध्यापन आरंभ किया । काट के दर्शन, विशेषत. कांट की "आचारमूलक ज्ञान की परीक्षा" से वे अत्यधिक प्रभावित हुए । सन् १७९१ मे कोनिग्जबर्ग जाकर उन्होने काट से साक्षात् सपर्क स्थापित किया । १७९२ में उनकी प्रथम रचना "श्रुति परीक्षा" (Critique of all Revelation) को देखकर काट अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने फिक्टे की इस रचना के प्रकाशन की व्यवस्था कर दी तथा उन्हे अध्यापक का पद भी दिला दिया ।

इसी काल में फिक्टे ने विवाह किया । उनकी पत्नी कर्मठ और कुशल महिला थी और वे आजीवन फिक्टे की सहगामिनी बनी रही । विवाह के दो वर्ष बाद फिक्टे जेना विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त हुए । विभिन्न विषयों पर उनके कई बहुमूल्य निबंध प्रकाशित होते रहे । उन्होने एक दार्शनिक पत्र का सपादन भी किया । इस पत्र मे एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसपर फिक्टे की टिप्पणी भी थी । उक्त लेख और टिप्पणी को ईर्ष्यावश धर्मविरुद्ध घोषित किया गया । इस काड को लेकर एक भारी आदोलन मचा, फलस्वरूप फिक्टे को जेना विश्वविद्यालय छोड़ देना पड़ा ।

इस बीच फिक्टे को पर्याप्त ख्याति मिल चुकी थी । उनकी विद्वत्ता से लोग प्रभावित थे । जेना से वे बर्लिन चले आए जहाँ उन्होने विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये भरसक प्रयत्न किया । इसमें उन्हें सफलता मिली । यहाँ वे पहले दर्शन विभाग के अध्यक्ष और बाद में १८१० मे विश्वविद्यालय के पहले 'रेक्टर' नियुक्त हुए ।

फिक्टे का गेटे और दाते से भी अच्छा परिचय था । फिक्टे महान् चरित्रवान् दार्शनिक होने के साथ महान् वक्ता और देशभक्त भी थे । जब नेपोलियन की सेना जर्मनी को रौद रही थी, तब फिक्टे ने अपनी शक्तिशालिनी लेखनी और वाणी द्वारा देशप्रेम की उत्कट भावना जगाई और जर्मनी के राष्ट्रत्व को जाग्रत रखा । अंततः फ्रासीसी

सेना को पीछे हटना पड़ा। बर्लिन में २७ जनवरी, १८१४ को इस देशप्रेमी दार्शनिक का देहावसान हुआ।

फिक्टे ने कुछ प्रमुख ग्रंथों की रचना की है .

(१) श्रुतिपरीक्षा (Critique of all Revelation) (२) समस्त ज्ञान के मूलाधार (Foundation of the Whole Science of Knowledge) (३) आचार शास्त्र (Science of Ethics) (४) सुखमय जीवन का मार्ग (Tree of Blessed life),

फिक्टे अपने काल के प्रमुख दार्शनिक रहे हैं। उन्होंने विज्ञानवाद की प्रतिष्ठा की। उनके दर्शन में तीन मुख्य सिद्धांत हैं। प्रथम, स्वप्रकाश परमात्मतत्व (Absolute Ego) ही एक मात्र सत् है और इसके प्रकाश का अर्थ है, इसकी चित् शक्ति या संकल्प शक्ति जो इसी का स्वरूप है। द्वितीय, अपनी चित् शक्ति के कारण यह परमात्मतत्व स्वय को परिच्छिन्न या सीमित करके एक ज्ञाता (Ego) के रूप मे और दूसरी ओर स्वयं को ज्ञेय या अनात्म जगत् (Non Ego) के रूप मे प्रकट करता है। तृतीय, यह परमात्म तत्व ज्ञाता और ज्ञेय के भेद का अतिक्रमण करके जीव और जगत के समन्वयात्मक रूप मे प्रतीत होता है। परमतत्व की इस संकल्प शक्ति से फिक्टे ने त्रिसूत्रीय नियम निकाले है — तादात्म्य (Identity), विरोध (Contradiction), और पर्याप्त कारण (Sufficient Reason)। इनको ही क्रमश सत्ता (Reality), निषेध (Negation), और परिच्छेद या सीमा (Limitation or Determination) कहा जा सकता है।

जीवात्मा शुद्ध द्वैतरूप है, अनात्म जगत् द्वैतरूप है; और परमात्मा विशिष्टाद्वैत रूप है। यही तीनों क्रमशः पक्ष (Thesis), प्रतिपक्ष (Antithesis), और समन्वय (Synthesis) है। वस्तुत. ये तीनो — पक्ष, प्रतिपक्ष और समन्वय परमात्मा की संकल्पशक्ति के ही तीन विभिन्न रूप है।

इस प्रकार काट से हीगेल तक के संक्रमण काल में फिक्टे और शेलिग दो महत्वपूर्ण दार्शनिक कड़ियाँ है, जो काट और हीगल की विचारधाराओं को समन्वयात्मक रूप प्रदान करती है। हीगेल के दर्शन पर फिक्टे के दार्शनिक विचारो की सुस्पष्ट छाप दिखाई पडती है।

सं० ग्र० — सी०सी० एवरेट : फिक्टेज साइंसेज ऑव नालेज, शिकागो, १८८४; आर० अडेमसन : फिक्टे, लंदन, १८८१; [इनकी पुस्तक "डेवलमेंट ऑव माडर्न फिलासफी, एडिनबर्ग ऐंड लदन, १९०८ भी देखे]; एफ० सी ए० स्वीग्लर : हिस्ट्री ऑव फिलासफी, (अनुवाद और टिप्पणी सहित), जे० एच० स्टर्लिंग, एडिनबर्ग, १८६७; टी० कार्लाइल : आन हीरोज, भाषण; ए० लैसन, जे० जी० फिक्टे इन वर्हैलिट्निज जू किर्शे उड स्टाट, बर्लिन, १८६३; एफ जिमर : जे०जी० फ़िक्टेज रेलीजक्सफिलोसाफ़िक, बर्लिन, १८७८। [मु० शु०]

फिजियोक्रेट्स १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, फ्रास मे लुई १५वे के चिकित्सक डा० क्वेस्ने (१६६४-१७७४) के नेतृत्व मे सामाजिक विचारकों का एक ऐसा दल संगठित हुआ जिसने आधुनिक अर्थशास्त्र की नींव डाली। विचारकों के इस दल की प्रमुख मान्यता यह थी कि सभी सामाजिक संबंध निश्चित नियमों से विनियमित होते हैं, समाज की आदर्श व्यवस्था 'प्राकृतिक व्यवस्था' है, एव आर्थिक उत्पादन मे राज्य का हस्तक्षेप 'प्राकृतिक व्यवस्था' को प्राप्त करने मे बाधक है। इन विचारको को, जो अपने को 'अर्थशास्त्री' कहना पसंद करते थे और जिनके अन्य प्रमुख नेता मीराबो, मेर्सिए द ला रिविएर, दिपों द नेमूर, एबे बादो एव तुरगो हैं, समूह रूप मे फिजयोक्रेट्स कहा जाता है। व्युत्पत्ति के अनुसार यह शब्द ग्रीक भाषा के 'फिजिस' (= प्रकृति) और 'क्रेटीन' (= शासन करना) से मिलकर बना है। अतः इसका अर्थ 'प्रकृति का शासन' हुआ। फिजियोक्रेट्स की इस 'प्राकृतिक व्यवस्था' को 'सामाजिक सविदा' के विचारको (हाब्स, लॉक, रूसो) की प्राकृतिक व्यवस्था से भिन्न समझना चाहिए। सविदावादी विचारकों के अनुसार यह व्यवस्था मानव सभ्यता के पहले की व्यवस्था है, परंतु फ़िजियोक्रेट्स के अनुसार 'प्राकृतिक व्यवस्था' वह दैवी एव आदर्श व्यवस्था है जिसे आतरिक अनुभूति के द्वारा केवल सुसंस्कृत लोग ही समझ सकते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वतः एव स्वतंत्र रूप से आर्थिक स्वार्थों की उपलब्धि मे सतत लगा रहे तो 'प्राकृतिक व्यवस्था' प्राप्त हो सकती है; 'प्राकृतिक व्यवस्था' मे तथा व्यक्तिगत स्वार्थों मे सघर्ष नहीं हो सकता क्योंकि दोनों मे ईश्वरीय निर्देश कार्य कर रहे है। व्यक्तिगत सपत्ति की सुरक्षा इस व्यवस्था का दूसरा प्रमुख आधार है। अत व्यक्तिगत संपत्ति को भी वे दैवी संस्था का स्थान देते है, — सर्वश्रेष्ठ राज्य वही है जो इस संस्था को सुरक्षित रखे, और इस कार्य मे केवल राजतंत्र ही सफल हो सकता है। डा० क्वेस्ने समाज को तीन वर्गों मे बाँटते है : (१) उत्पादक वर्ग, (२) अनुत्पादक वर्ग, (३) सपत्तिधारी वर्ग। कृषक उत्पादक वर्ग मे आते हैं, क्योंकि, फिजियोक्रेट्स के अनुसार, केवल कृषि ही लागत पूँजी से अधिक पूँजी का उत्पादन कर सकती है। क्रय विक्रय से एव पदार्थो के स्वरूपपरिवर्तन से पूँजी की वृद्धि नही होती, अत व्यापारी एव निर्माता अनुत्पादक वर्ग है। तीसरा वर्ग भूस्वामियो तथा कुलीनो का है। कृषि उत्पादक है, अत कृषि संबंधी सभी स्वतंत्रताओ के वे कट्टर समर्थक है। कृषि-उपयोगी वस्तुओ एव कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओ के आवागमन एवं व्यापार में पूरी स्वतत्रता होनी चाहिए। परतु व्यापारियो (अनुत्पादको) के पूँजी एकाधिकार पर नियत्रण आवश्यक है क्योंकि यह एकाधिकार कृषि मे पूँजी के विनियोजन मे बाधक बनता है। चूँकि फ़िजियोक्रेट्स कृषि को ही उत्पादक मानते है, अतः भूस्वामियो पर प्रत्यक्ष कर ही उनके अनुसार राज्य की आय का उचित साधन है।

स्पष्ट है कि फिजियोक्रेट्स ने श्रम के आर्थिक मूल्य को नही समझा और नए उदित होनेवाले व्यापारी वर्ग के विरोध मे सामंती व्यवस्था को तथा व्यक्तिगत संपत्ति को स्थिर रखने मे बहुत दूर चले गए (यह ध्यान रखने की बात है कि फ़िजियोक्रेट्स संपत्तिधारी थे तथा सामंती व्यवस्था से संबधित थे)। फिर भी आर्थिक उत्पादन का, करो की व्यवस्था का तथा राज्य के अधिकारो का उन्होंने सूक्ष्म विवेचन किया, जिसका बाद के प्रमुख अर्थशास्त्रियो पर बडा गहरा प्रभाव पड़ा।

सं० ग्रं० — जीड एंड रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनामिक डॉक्ट्रीस। [द० श० व०]

फिटकरी को अंग्रेजी में पोटैश ऐलम या केवल ऐलम भी कहते हैं। यह पोटैशियम सल्फेट और ऐलुमिनियम सल्फेट का द्विलवण है, इसके चतुर्फलकीय क्रिस्टल मे क्रिस्टलीय जल के २४ अणु रहते हैं। इसके क्रिस्टल अत्यंत सरलता से बनते हैं। इसका सूत्र **पो₂ गं औ₄ ऐ₂ (गं औ₄)₃ २४ हा₂ औ** [$K_2SO_4\,Al_2(SO_4)_3\,24\,H_2O$] है।

पहले पहल फिटकरी ऐलम शेल (shale) से बनाई गई थी। यह बड़ी मात्रा में ऐलूनाइट या फिटकरी पत्थर **पो₂ गंऔ₄ ऐ₂ (गंऔ₄)₃ ४ ऐ (औ हा)₃** [$K_2SO_4\,Al_2(SO_4)_3\,4\,Al(OH)_3$] के वायु मे भर्जन, निक्षालन (lixiviation) और क्रिस्टलीकरण से प्राप्त होती है। ऐलूनाइट से प्राप्त ऐलम को रोमन ऐलम भी कहते हैं। ऐलूमिनों फेरिक के विलयन पर पोटैशियम सल्फेट की क्रिया से भी फिटकरी प्राप्त हो सकती है। फेरिक ऑक्साइड के कारण इसका रंग गुलाबी होता है, यद्यपि विलेय लोहा इसमें बिल्कुल नही होता, या केवल लेश मात्र होता है।

पोटैश ऐलम ९२° सें० पर पिघलता है। २००° सें० पर इसका जल निकल जाता है जिससे यह सरंध्र पुंज में परिणत हो जाता है। इसे जली हुई फिटकरी कहते हैं। वायु मे इसके क्रिस्टल प्रस्फुटित होते हैं, जो वायु से अमोनिया का अवशोषण कर क्षारक लवण मे परिवर्तित हो जाते हैं।

फिटकरी का उपयोग कागज उद्योग, रंगसाजी, छींट की छपाई, पेय जल के शोधन और चमड़ा कमाने मे होता है।

ऐलम शब्द जब बहुवचन में प्रयुक्त होता है, तब उससे उन सभी यौगिकों का बोध होता है, जो पोटैश ऐलम से सगठन में समानता रखते हैं। ऐसे यौगिकों में पोटैश का स्थान लिथियम, सोडियम, अमोनियम, रूबीडीयम, सीजियम, टेल्यूरियम धातुएं तथा हाइड्रॉक्सी-लैमिन ना हा₃ औ (NH_4O) एवं चतुर्थक नाइट्रोजन क्षारक ना (का हा₃)₄ [$N(CH_3)_4$] मूलक ले सकते है। ऐलुमिनियम का स्थान क्रोमियम (क्रोम ऐलम), लोहा (लौह ऐलम), मैगनीज, इरीडियम, गैलियम, वैनेडियम, कोबल्ट इत्यादि ले सकते है। विरल मृद धातुएँ ऐलम नही बनती। कुछ यौगिकों में गं औ₄ (SO_4) मूलक में सल्फर का स्थान सिलीनियम ले सकता है।

ऐलम संकर (Complex) यौगिक नही है। पानी मे घुलने पर विलयन में इसके समस्त आयन अलग अलग रहते हैं। यह समरूपीय क्रिस्टल बनाता है। एक लवण के क्रिस्टल पर दूसरे लवण के क्रिस्टल बडी सरलता से बनते है। इसके मिश्रित क्रिस्टल भी बनते हैं और विभिन्न लवणों के स्तरों के क्रिस्टल भी बनते है। बहुत अधिक विलेय होने के कारण सोडियम ऐलम के क्रिस्टल बड़ी कठिनाई से प्राप्त होते हैं। [स० व०]

फिदाई खाँ मुगल सम्राट् जहाँगीर का हिदायतउल्ला नामक एक सेवक। इसके अन्य तीन भाई भी जहाँगीर के कृपापात्र थे। हिदायतउल्ला प्रारंभ मे नाव बेड़े का निरीक्षक नियुक्त हुआ। महाबत खाँ के विद्रोह मे इसने स्वामिभक्ति का सुंदर उदाहरण रखा। झेलम नदी के तट पर इसने विद्रोहियों के दाँत खट्टे कर दिए।

कालांतर में यह बंगाल का शासक इस शर्त पर नियुक्त हुआ, कि दस लाख रुपया प्रति वर्ष भेंट स्वरूप राजकोष में जमा करता रहे। शाहजहाँ के शासनकाल में इसकी प्रतिभा बढती रही। इसका मंसब चारहजारी–३००० सवार का था। इसे जौनपुर की जागीर मिली, और गोरखपुर का फौजदार नियुक्त हुआ। इसके बगाल के शासनकाल में कुछ लोगों ने इसके विरुद्ध सम्राट् से न्यायिक माँग की किंतु शाहजहाँ इसपर कृपालु ही रहा। इसकी वीरता और दूरदर्शिता के लिये, मुगल दरबार से इसे फिदाई खाँ और जान निसार खाँ की उपाधियाँ प्राप्त थीं।

एक अन्य फिदाई खाँ को भी जिसका वास्तविक नाम मीरजरीफ था, और जो शाहजहाँ के सेवकों मे से था, अच्छी सेवाओं के लिये एकहजारी–२०० सवारो का मंसब और फिदाई खा की उपाधि प्राप्त हुई थी।

तीसरा फिदाई खाँ सम्राट् औरंगजेब की सेवा मे था। इसका पूरा नाम फिदाई खाँ मोहम्मद सालह था। इसे भी फिदाई खाँ की उपाधि मिली थी। यह बरेली, ग्वालियर, आगरा और दरभंगा में फौजदार रहा था। इसका मसब तीन हजारी–२५०० का था।

फिनलैंड स्थिति : ५९° ४८′ से ७०° ५′ उ० अ० तथा २०° ३३′ से ३१° ३५′ पू० दे०। यह यूरोप मे रूस और स्वीडन के मध्य मे स्थित एक देश है। सन् १९१७ में रूसी क्रांति के बाद यह स्वतत्र घोषित कर दिया गया था। इसके पश्चिम मे स्वीडन, उत्तर तथा पश्चिम-उत्तर में नॉर्वे, उत्तर-पूर्व मे रूस, दक्षिण मे फिनलैंड की खाडी और पश्चिम मे बोथेनिया की खाडी स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल ३,३७,००९ वर्ग किमी० है। यह १२ प्रातो मे बँटा है।

धरातल — फिनलैंड का दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग सागर-तटीय मैदानो से युक्त है। इसके मध्य भाग में हिमयुग में बनी लगभग ३५,५०० झीलें हैं। सैमा (Saima) सबसे बडी झील है। उत्तरी भाग ऊँचा तथा वनों से ढका है। समुद्री तट कटा फटा तथा छोटे छोटे ३०,००० से भी अधिक द्वीपों से युक्त है।

जलवायु — यहाँ की जलवायु सम है। शीत ऋतु मे यहाँ का ताप हिमाक से नीचे रहता है, किंतु गल्फस्ट्रीम गरम धारा के कारण तट जमने नही पाता। यहाँ की वर्षा का औसत २१ इंच है, जो अधिकांशतः बर्फ के रूप में होती है।

जनसंख्या एवं प्रमुख नगर — यहाँ की जनसख्या ४४,७६,९०० (१९६०) है। हेलसिंकी (Helsinki जनसंख्या ४,६७,३७१) यहाँ की राजधानी है। हेलसिंकी के अलावा आबो, टमीफॉर्स तथा विबार्ग प्रमुख नगर है। फिन्नी और स्वीड यहाँ की प्रमुख भाषाएँ है।

कृषि — कृषि थोडी मात्रा मे अधिकतर समुद्र तट, नदियों की घाटियों तथा झीलो के तटीय प्रदेशो में ही होती है। राई यहाँ की प्रमुख उपज है तथा जौ, आलू, जई, गेहूँ, चुकंदर आदि का भी उत्पादन होता है।

वन — यहाँ की आधी से अधिक भूमि शंकुधारी टैगा नामक वनों से ढंकी है। यूरोप मे सबसे अधिक इमारती लकड़ी यहाँ से प्राप्त होती है। चीड़, स्प्रूस, भूर्ज प्रमुख वृक्ष है।

खनिज — यहाँ पर केवल एक ही स्थान पर थोड़ा लोहा पाया

जाता है। कुछ मात्रा में कोयला, पाइराइट, ताँबा, जिंक, निकल आदि मिलता है। जलशक्ति यहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

उद्योग धंधे — यहाँ प्लाईवुड, कागज, लुग्दी, काष्ठमंड तथा लकड़ी की वस्तुओं का निर्माण होता है। लोहे एवं इस्पात के उद्योग टैंपीयर के पास स्थित हैं। सूती तथा ऊनी कपड़ों का भी निर्माण होता है।

यातायात — कम तथा बिखरी जनसंख्या, असम धरातल तथा कठोर जलवायु के कारण यातायात में कम उन्नति हो पाई है।
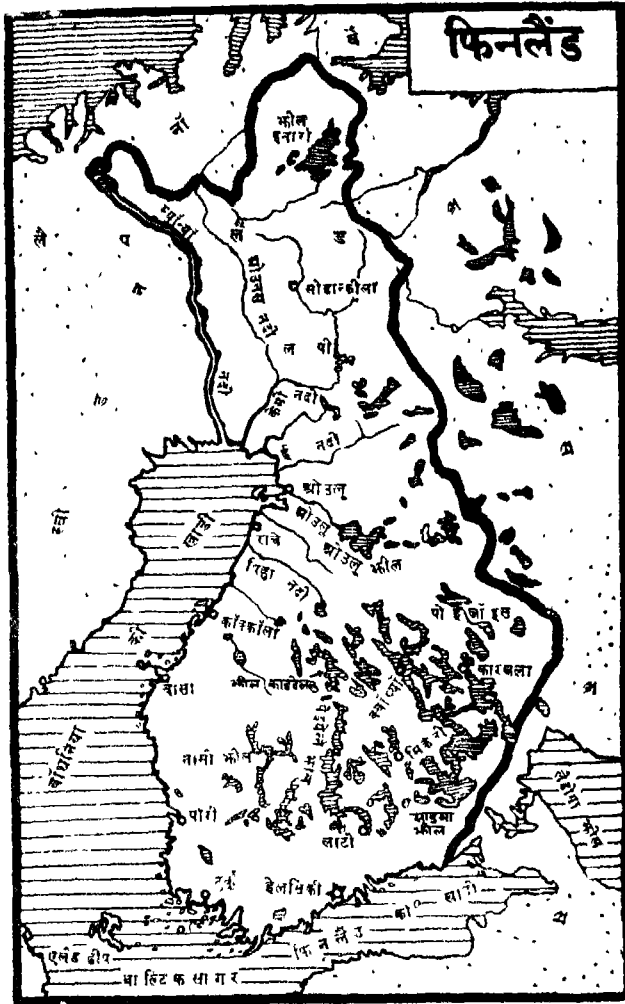
जलमार्गों द्वारा लकड़ी ढुलाई का काम अधिक होता है। केवल दक्षिणी भाग मे यातायात उन्नत है तथा बड़े बडे नगर रेलों से जुड़े हैं।

व्यापार — यहाँ का व्यापार वनों तथा पशुओं पर निर्भर है। मशीने, वस्त्र, खाद्यान्न, खनिज तेल एवं अन्य तेल, धातुओं रसायनकों तथा दवाइयों का आयात होता है तथा टिंबर और इसके उत्पाद, दूध तथा मक्खन, दफ्ती और कागज, लुग्दी, मशीनों आदि का निर्यात प्रमुख है।

जीवजंतु — यहाँ चरागाह अधिक होने से घोड़े, गाएँ, भैसें, भेड़ें, सूअर, मुर्गियाँ आदि पाली जाती है। झीलों में मछलियों का शिकार भी किया जाता है। जंगली जानवरों में समूरधारी जीव मिलते हैं। बारहसिंगा (elk), लोमड़ी एवं बीवर प्रमुख जंतु है।

फ़िनोल वस्तुतः कार्बनिक यौगिकों की एक श्रेणी का नाम है जिसका प्रथम सदस्य सामान्य फ़िनोल या कार्बोलिक अम्ल है। बेंजीन केंद्रक का एक या एक से अधिक हाइड्रोजन जब हाइड्रॉक्सिल समूह से विस्थापित होता है, तब उससे जो उत्पाद प्राप्त होते हैं उसे फिनोल कहते हैं। यदि केंद्रक में एक ही हाइड्रॉक्सिल रहे, तो उसे मोनोहाइ- ड्रिक फिनोल, दो हाइड्रॉक्सिल रहे तो उसे डाइ-हाँइड्रिक फ़िनोल और तीन हाइडॉक्सिल रहे, तो उसे ट्राइहाइड्रिक फ़िनोल कहते हैं। मोनोहाइड्रिक फ़िनोल कोयले और काठ के शुष्क आसवन से बनते हैं। इसी विधि से व्यापार का कार्बोलिक अम्ल प्राप्त होता है। कार्बोलिक अम्ल का आविष्कार पहले पहले रूंगे (Runge) द्वारा १८३४ ई० में हुआ था। १८४० ई० मे लॉरें (Laurent) को अलकतरे मे इसकी उपस्थिति का पता लगा। इसका फिनोल नाम जेरार (Gerhardt) द्वारा १८४३ ई० में दिया गया था। १८६७ ई० मे वुर्टस (Wurts) और केक्यूले (Kekule) द्वारा फ़िनोल बेंजीन से पहले पहल तैयार हुआ था।

फ़िनोल तैयार करने की अनेक विधियाँ मालूम हैं, पर आज फिनोल का व्यापारिक निर्माण अलकतरे या बेंजीन से होता है। अलकतरे के प्रभाजी आसवन से जो अश १७०° से २३०° सें० पर आसुत होता है उसे मध्य तेल या कार्बोलिक तेल कहते हैं। सामान्य फिनोल इसी में नैपथेलीन के साथ मिला हुआ रहता है। दाहक क्षार के तनु विलयन से उपचारित करने से फ़िनोल विलयन मे घुलकर निकल जाता है और नैपथेलीन अविलेय रह जाता है। विलयन के सल्फ्यूरिक अम्ल या कार्बन डाइऑक्साइड द्वारा विघटित करने से फ़िनोल अवक्षिप्त होकर जल से पृथक् हो जाता है।

शुद्ध कार्बोलिक अम्ल सफेद, क्रिस्टलीय, सूच्याकार, ठोस होता है, पर, यह वायु में रखे रहने से पानी का अवशोषण कर द्रव बन जाता है, जिसका रंग पहले गुलाबी पीछे प्रायः काला हो जाता है। इसके क्रिस्टल ४३०° सें० पर पिघलते हैं। यह जल मे कुछ विलेय होता है। इसका जलीय विलयन निस्संक्रामक होता है और घावों तथा सर्जरी के उपकरणों आदि के धोने मे प्रयुक्त होता है। फिनोल की गंध विशिष्ट होती है। यह विषैला होता है। अम्लों के साथ यह एस्टर बनाता है। इसके वाष्प को तप्त (३६०° से ४५०° सें०) थोरियम पर ले जाने से फिनोल ईथर बनता है। फ़िनोल के ईथर सरल या मिश्रित दोनो प्रकार के हो सकते हैं। फ़ॉस्फ़ोरस पेटाक्लोराइड के उपचार से यह क्लोरो बेंजीन बनता है। ब्रोमीन की क्रिया से यह ट्राइब्रोमो फ़िनोल बनता है। यह क्रिया मात्रात्मक होती है और फ़िनोल को अन्य पदार्थों से पृथक करने या फिनोल की मात्रा निर्धारित करने में प्रयुक्त होती है। फ़िनोल सक्रिया यौगिक है। अनेक अभि-कर्मकों के साथ यह यौगिक बनता है। अनेक पदार्थों के संपर्क मे आने से यह विशिष्ट रंग देता है, जिससे यह पहचाना जाता है।

उपयोग — फ़िनोल से सैलिसिलिक अम्ल और उसके एस्टर सैलोल आदि बड़े महत्व के व्यापारिक पदार्थ बनते हैं। इससे पिक्रिक अम्ल भी बनता है, जो एक समय बड़े महत्व का विस्फोटक और रंजक था। कृत्रिम रंजकों के निर्माण में भी कार्बोलिक अम्ल प्रयुक्त होता है। यह बड़े महत्व का निस्संक्रामक है। इससे अनेक जीवाणुनाशक,

कवकनाशक, घासपात नाशक तथा अन्य बहुमूल्य ओषधियाँ आज तैयार होती है। [स० व०]

फ़िरदौसी (अबुल कासिम) का जन्म ९२० ई० मे खुरासान के तूस नामक कस्बे मे हुआ। असदी नामक कवि ने उसे शिक्षा दी और कविता की ओर प्रेरित किया। उसने ईरान के पौराणिक राजाओं के संबंध में उसे एक ग्रंथ दिया जिसके आधार पर फ़िरदौसी ने शाहनामे की रचना की। इसमें ६०,००० शेर है। वह ३५ वर्ष तक इस महान् कार्य में व्यस्त रहा और २५ फरवरी, १०१० ई० को इसे पूरा किया। इस समय वह ८५ वर्ष का हो चुका था। उसने यह काव्य सुल्तान महमूद गज़नवी को समर्पित किया जिसने ९९९ ई० में खुरासान विजय कर लिया था। उसे केवल २० हजार दिरहम प्रदान किए गए। फ़िरदौसी के तन बदन मे आग लग गई। वह अपने देश से हिरात की ओर भागा किंतु भागने से पूर्व एक कविता शाहनामे मे जोड़ गया, जिसमे सुल्तान महमूद की घोर निंदा की गई है। शाहनामे में फ़िरदौसी ने ईरान के पौराणिक बादशाहो की, जिनके कारनामों से वह अत्यधिक प्रभावित था, बड़ी ही प्रशंसा की है। उसकी कविता से प्राचीन ईरान के प्रति उसका प्रेम एवं अरबों के प्रति घृणा का पूरा आभास मिलता है। संभवतः कट्टर मुसलमानों को संतुष्ट करने के लिये उसने बाद में यूसुफ जुलैखा नामक मसनवी लिखी जिसे बवहिद शासक बहाउद्दौला तथा उसके पुत्र सुल्तानुद्दौला को समर्पित किया। तदुपरांत वह अपनी मातृभूमि तूस लौट आया और वही उसकी मृत्यु हुई (४११ हि० १०२०–२१ ई०)। उसकी कब्र ईरान के दर्शनीय स्थानों में है। कहा जाता है, जब उसका जनाज़ा पास के एक गाँव के फाटक से निकल रहा था, एक कारवाँ सुल्तान महमूद के भेजे हुए ६०,००० दीनार लेकर पहुँचा जिनकी कवि को आशा थी। फिरदौसी की पुत्री ने समस्त धन, दान पुण्य मे लगा दिया। शाहनामा की बड़ी ही सुंदर सचित्र हस्तलिपियाँ संसार के बड़े बड़े संग्रहालयो में सुरक्षित है। १८११ ई० मे कलकत्ते से, १८७८ ई० मे पेरिस से और १८७७-१८८४ ई० के बीच लाइडेन से इसके संस्करण प्रकाशित हुए। तदुपरात भारत और ईरान से अनेक संस्करण प्रकाशित हुए। संसार की अनेक भाषाओ मे इसके अनुवाद छप चुके हैं।

सं० ग्रं०—(फारसी) निज़ामी अरूज़ी समरकदी : चहार मकाला, मुहम्मद औफ़ी : लुब्बुल अल्बाब, दौलतशाह समरकदी तज़किर तुश्शुअरा, ब्राउन, ई० जी० : ए लिट्रेरी हिस्ट्री ऑव पर्शिया; ए० जे० आरबरी . क्लासिकल पर्शियन लिट्रेचर। [सै० अ० अ० रि०]

फिरोजपुर १. जिला, स्थिति : २९° ५५' से ३१° ९' उ० अ० तथा ७३° ५२' से ७५° २६' पू० दे०। यह पंजाब राज्य का एक जिला है। इसके उत्तर-पूर्व मे अमृतसर, कपूरथला तथा जालंधर, पूर्व मे लुधियाना, संगरूर, भटिंडा, हिसार, दक्षिण मे गुजरात का गगानगर जिला तथा पश्चिम मे पश्चिमी पाकिस्तान स्थित है। इसका क्षेत्रफल ३,८८२ वर्ग मील तथा जनसंख्या १६,१९,११६ (१९६१) है। पूरी उत्तरी सीमा पर सतलुज नदी बहती है। यहाँ की जलवायु शेष पूर्वी पंजाब के समान ही है, किंतु यहाँ पर बालू के तूफान अधिक आते हैं। वार्षिक औसत वर्षा मुक्तसर में ११ इंच तथा जीरा में २० इंच तक होती है। कृषि में गेहूँ, चना, जौ, ज्वार, बाजरा, मक्का, मोठ तथा कुछ मात्रा में कपास एवं गन्ना भी उगाया जाता है। मोटे कपडे, कंबल आदि की बुनाई की जाती है। चटाइयाँ बनाने का काम भी होता है। खनिजों का यहाँ अभाव है। गेहूँ तथा अन्य खाद्यान्न बाहर भेजे जाते है तथा शक्कर, कपास, धातुएँ, तंबाकू, नमक, धान आदि मँगाए जाते हैं। फिरोजपुर, जीरा, मुक्तसर तथा मोगा जिले के प्रमुख नगर हैं।

२. **नगर**, स्थिति . ३०° ५८' उ० अ० तथा ७४° ३७' पू० दे०। यह जिले का प्रमुख नगर है, जो सतलुज के किनारे स्थित है। किंवदंती के अनुसार नगर की स्थापना फिरोजशाह तृतीय ने की थी। नगर की सड़कें चौड़ी तथा पक्की हैं। यहाँ पर ३६ सिखो की याद मे बना एक सिख मदिर है। इस समय यह प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्र है। नगर मे अनाज का व्यापार अधिक होता है। सैनिक छावनी के कारण इसकी ख्याति अधिक बढ़ गई है। यहाँ भारत का सबसे बड़ा शस्त्रागार एवं ब्रिगेड का मुख्यालय है। यहाँ की जनसंख्या ९७,९३२ (१९६१) है। [सु० च० श०]

फ़िरोज़ाबाद स्थिति : २७° ९' उ० अ० तथा ७८° २३' पू० दे०। यह उत्तर प्रदेश के आगरा जिले का एक नगर तथा तहसील भी है जो आगरा-मैनपुरी सड़क पर स्थित है। नगर मे एक पुरानी मस्जिद, मंदिर, अस्पताल एव गिरजाघर है। अकबर की आज्ञा से १६वी शती मे मलिक फिरोज नामक हिजडे ने नष्ट हुए इस नगर का पुनरुद्धार कराया था। यहाँ रुई से बिनौला अलग करने की छोटी मिले भी है तथा काच की चूड़ियो का काम सबसे अधिक होता है। इसकी जनसंख्या ९८,६११ (१९६१) थी।

फिर्खो, रुडाल्फ (Virchow, Rudolf . सन् १८२१–१९०२) जर्मन विकृतिविज्ञानी तथा राजनीतिज्ञ थे। इनका जन्म पोमेनिया प्रदेश के शिवेल्बीन (Schivelbein) नामक स्थान मे हुआ था।

शिक्षा पूर्ण होने पर सन् १८४३ मे ये चैरिटी अस्पताल मे सहायक सर्जन, सन् १८४६ मे रेक्टर तथा सन् १८४७ मे युनिवर्सिटी के अध्यापक नियुक्त हुए। इसी समय इन्होने राइनहार्ट (Reinhardh) के सहयोग से शरीररचना तथा क्रियाविज्ञान और विकृतिविज्ञान पर एक प्रसिद्ध प्रकाशन आरंभ किया। राइनहार्ट की मृत्यु के पश्चात् ये इसे अकेले प्रकाशित करते रहे। सन् १८४८ मे टाइफस की महामारी के कारणों की जाँच के लिये नियुक्त कमीशन के आप सदस्य थे, किंतु राजनीति मे उग्र विचारो के कारण बर्लिन से निकाल दिए गए। तब वुर्जबर्ग के मेडिकल स्कूल मे इन्होने शरीर-रचना-विज्ञान (anatomy) की शिक्षा देनी आरंभ की, जिससे इस स्कूल को बहुत लाभ हुआ। सन् १८५६ मे आप बर्लिन मे पुनः बुलाए गए। यहाँ विकृति-संबधी संस्थान (Pathological Institute) के निर्देशक के पद पर आपके रहने के फलस्वरूप मौलिक अनुसंधानों की एक निरंतर धारा निकलती रही।

इनके विस्तृत अध्ययनो मे रोगविज्ञान संबंधी अनुसंधान प्रमुख थे। औतिकी (Histology), विकृत शरीर तथा विशिष्ट रोगो से संबंधित आपने महत्व की खोजे की। इन्होंने कोशिका विज्ञान तथा कोश-विकृति-विज्ञान की स्थापना की। सन् १८५८ मे 'सेलुलर पैथोलाजी' नामक आपकी प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशित हुई। इन्होंने

महत्व की अनेक वैज्ञानिक तथा अन्य विषयक पुस्तकें भी लिखी हैं। फिर्खो ने मानव विज्ञान तथा प्रागैतिहासिक वास्तुकला संबंधी अनुसंधान किए तथा इन विषयों पर प्रभावशाली लेख लिखे। सन् १८६२ मे आप प्रशिया की संसद (Lower House) के सदस्य चुने गए। यहाँ इन्होंने फोर्टश्रिट्स पार्टी की स्थापना की। कई वर्ष तक वित्त कमेटी के ये अध्यक्ष रहे तथा प्रशियन बजेट प्रणाली के प्रमुख संस्थापक थे। सन् १८८० मे इन्होने राइखस्टैग मे प्रवेश किया। यहाँ ये विरोधी दल के नेता हो गए तथा बिस्मार्क के प्रबल विरोधी थे। इन्होने बर्लिन की नगरमहापालिका के सदस्य के रूप मे ३० वर्ष तक नगर की सेवा की। इन्हीं की चेष्टाओं से वहाँ वाहित मल का फार्म, जलसंभरण तथा जल निकासी के समुचित प्रबंध हुए। इस परोपकारी वैज्ञानिक की मृत्यु ८१ वर्ष की आयु मे हुई। [भा० शं० मे०]

फिलाडेल्फिया स्थिति : ४०° ०' उ० अ० तथा ७५° १०' प० दे०। संयुक्त राज्य, अमरीका के पेंसिलवेनिया राज्य का सबसे बड़ा, आबादी में देश का तीसरा और औद्योगिक उत्पादन मे चौथा नगर है। उपनिवेश काल मे इस नगर की स्थापना चीज़पीक खाडी पर हुई थी। खाड़ी मे ३० फुट डुबाव तक के जहाज आ सकते हैं और जहाज ऐपेलेचिऐन के दर्रों से होकर पश्चिमी प्रदेश को जा सकते हैं। फिलाडेलफिया मे वाणिज्य, यातायात तथा तटीय उद्योगों, जैसे ऊनी, सूती कपडा बुनना, मशीनें एवं मोटरें बनाना, प्रकाशन एवं मुद्रण, मिट्टी का तेल साफ करना, रासायनिक पदार्थ तथा शक्कर उद्योग इत्यादि की उन्नति हुई है। फिलाडेल्फिया स्वतंत्रता युद्ध का केंद्र रहा है। सन् १७८७ मे देश का विधान भी यही बना था। यह नगर शिक्षा, साहित्य एवं कला का केंद्र रहा है, जिनसे संबंधित कई पुरानी संस्थाएँ भी यहाँ है। यहाँ लगभग २०० थियेटर एव सिनेमा हाल है तथा गिरजाघर, अस्पताल, पुस्तकालय, क्लब आदि भी हैं। नगर की जनसंख्या २०,०२,५१२ (१९६०) है। [प्र० व०]

फिलिप द्वितीय (१५२७-९८) स्पेन का राजा जो सम्राट् पंचम चार्ल्स तथा इजाबेला का पुत्र था। चार्ल्स उसकी शिक्षा का बराबर ध्यान रखता था और इस बात पर बल देता था कि उसे अपने सलाहकारो पर अधिक विश्वास नही करना चाहिए और न आतरिक शासन मे सरदारों के हाथ अधिक शक्ति जाने देनी चाहिए। सन् १५५४ मे चार्ल्स ने इग्लैड की रानी मेरी के साथ उसका विवाह करा दिया। उद्देश्य यह था कि स्पेन, इंग्लैंड तथा नेदरलैंड्स की संमिलित शक्ति से फ्रास का मुकाबला किया जाय। जनवरी, १५५६ में चार्ल्स के राज्यत्याग के बाद फिलिप सिंहासन पर बैठा। स्पेन की जनता मे तो वह यथेष्ट लोकप्रिय था किंतु अन्य जातियों को वह अपने व्यवहार से संतुष्ट न रख सका। फलतः नेदरलैंड मे विद्रोह की आग भड़क उठी। बाद मे रानी मेरी की मृत्यु हो जाने पर इंग्लैंड का शासन एलिजाबेथ के हाथ मे आया। शीघ्र ही फ्रांस की तरह इग्लैंड के साथ भी उसकी तनातनी चलने लगी। इंग्लैंड को हराने के लिये उसने एक शक्तिशाली जहाजी बेड़ा तैयार कराया किंतु कुछ मुठभेड़ों के बाद तूफान में पड़ जाने के कारण वह छिन्न भिन्न हो गया (१५८८)। बार बार विफल होने पर भी फिलिप ने अपनी नीति का परित्याग नही किया। परिणाम यह हुआ कि जब सितंबर, १५९८ में उसकी मृत्यु हुई तब स्पेन का राज्य काफी विखंडित हो चुका था।

फिलिप पंचम (१६८३-१७४६) स्पेन का राजा जिससे वहाँ के बूरबन राजवंश का आरंभ हुआ। वह फ्रास के राजा १४वें लूई का पोता था। उसने फ्रास का उत्तराधिकारी बनने का बहुत प्रयत्न किया किंतु इसमे सफल न हो सका। सन् १७०० ई० में वह स्पेन के राजसिंहासन पर बैठा।

फिलिप चतुर्थ (१२६८-१३१४) फ्रास का राजा जो फिलिप तृतीय तथा उसकी पत्नी इजाबेला का पुत्र था। उसका शासनकाल मध्यकालीन यूरोप के इतिहास मे यथेष्ट प्रसिद्ध है। फ्रास मे राजतंत्र की शक्ति को सुदृढ़ बनाना उसका मुख्य उद्देश्य था। अनेक विघ्न बाधाओं और खतरो का सामना करते हुए भी अपने लक्ष्य पर डटा रहा। राज्य के अधिकारो मे हस्तक्षेप करते देखकर उसने पोप आठवें बोनिफेस का विरोध किया और अंत में १३०३ में उसे गिरफ्तार करा लिया। बोनिफेस किसी तरह उसकी कैद से भाग निकला किंतु, ११ अक्टूबर को उसकी मृत्यु हो गई। फिलिप के आदमियों की कूटनीतिक चालों तथा धन के प्रलोभनों से पाँचवाँ क्लेमेंट नया पोप चुना गया। वह स्वभावतः फ्रेंच नरेश के हाथ की कठपुतली बना रहा और टेंपलर नामक धार्मिक रक्षकों का दमन करने मे उसने फिलिप की सहायता की। सन् १२९४ मे फिलिप्स ने फ्लैंडर्स पर अधिकार कर लेने की चेष्टा की। बाद मे वहाँ के नगरों मे फ्रेंच अधिकारियो के विरुद्ध बलवा हो गया और फिलिप की मृत्यु होने तक वहाँ फ्रास के पाँव मजबूत नहीं हो सके।

फिलिप द्वितीय (३८२–३३६ ई० पू०) मकदूनिया (यूनानी राज्य) का राजा। अपने भतीजे की मृत्यु पर सन् ३५९ ई० पू० में वह स्वयं तख्तनशीन हो गया। उसने थेसली और फोसिस नामक नगरो को जीत लिया और ३३८ ई० पू० मे एथिनियनों तथा थीबनों को पराजित किया। अगले वर्ष उसने यूनानी राज्यों का एक संघ बनाया और ईरान से युद्ध करने की तैयारी शुरू की, किंतु इसी समय उसकी हत्या कर दी गई। सिकंदर महान् इसी का पुत्र था जो फिलिप के बाद राज्याधिकारी हुआ।

फिलिपीन द्वीपसमूह स्थिति . १२° ०' उ० अ० तथा १२३° ०' पू० दे०। यह प्रशात महासागर में १,१५,६०० वर्ग मील क्षेत्र पर फैला हुआ ७'०८३ द्वीपों का एक पुंज है। इस द्वीपसमूह के लगभग ४६६ द्वीप ही ऐसे हैं, जो एक मील या उससे कुछ बड़े विस्तारवाले हैं तथा केवल तिहाई द्वीप ऐसे है जिनका नामकरण हुआ है। लूजॉन तथा मिंडानाओ द्वीप मिलकर समस्त भूभाग के दो तिहाई भाग पर फैले हुए हैं। इन द्वीपो की रचना ज्वालामुखी, मूँगों या पर्तदार श्रेणियों द्वारा हुई है। कुछ महत्वपूर्ण द्वीप निम्नलिखित है : लूजॉन (Luzon), मिंडानाओ (Mindanao), पानाई (Panay), नेग्रोस (Negros), सेबू (Cebu), लेटी (Leyte), सामार (Samar), बोहाल (Bohol), मिंडोरो (Mindoro), मासबाटे (Masbate) तथा पालावान (Palawan)। इस द्वीपसमूह की खोज फर्डीनेंड मैगेलन ने १६ मार्च, १५२१ ई० मे की थी। यह ३ जुलाई, १९४६ ई० तक स्पेन, संयुक्त राज्य अमरीका तथा जापान के अधीन

था, परंतु ४ जुलाई, १९४६ ई० को यह एक गणतंत्र देश हो गया है।

धरातल — इस द्वीपसमूह के मध्य से रीढ़ की हड्डी की तरह एक पर्वतमाला फैली हुई है, जो एशिया की पर्तदार पर्वतमालाओं का एक अग मानी जाती है। यहाँ पर सुप्त एवं जाग्रत
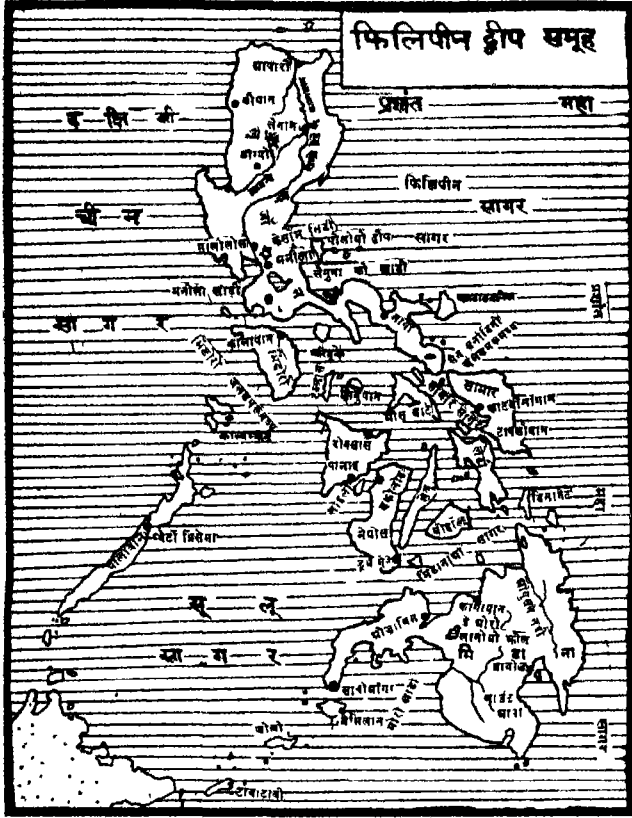
अवस्थाओं में अनेक ज्वालामुखी पर्वत हैं। तटरेखा लगभग ११,५११ मील लंबी है। यहाँ के बहुत से छोटे छोटे द्वीप मूँगे की चट्टानों के बने हैं। मिंडानाओ, सामार तथा लूज़ॉन का पूर्वी समुद्रतट बहुत ऊबड़खाबड, कटाफटा तथा पथरीला है। यह भाग उत्तर-पूर्वी मानसून के समय वर्षा तथा हवा के थपेड़ों से प्रभावित होता है। पालावान, पानाई, मिंडोरो तथा मध्य लूज़ॉन का पश्चिमी किनारा भी उसी तरह ऊबड़खाबड़ है तथा दक्षिण-पश्चिमी मानसून से प्रभावित है।

जलवायु — द्वीपीय प्रदेश होने के कारण यहाँ की जलवायु मुख्यतया सम है। निचले प्रदेशों में उच्चताप तथा उच्च आर्द्रता वर्ष भर रहती है। कभी कभी स्थानीय प्रभावों से प्रभावित हो कर आर्द्रता कम हो जाती है। वार्षिक ताप का उतार चढ़ाव कम होता है। कभी कभी एशिया से आई, ठंढी हवाओं से प्रभावित होने पर यहाँ का ताप १८° सें० से भी कम हो जाता है। वर्षा पूर्वी समुद्रतट पर अधिक होती है, जबकि लगभग आधा पश्चिमी द्वीपसमूह शुष्क रहता है। यहाँ विनाशकारी टाइफून (typhoon) चला करते हैं। जलवायु के विचार से इसे तीन मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है : (१) पूर्वी भाग जहाँ औसत वार्षिक वर्षा १०० इंच से अधिक तथा अधिकांश वर्षा शीतकालीन मानसून द्वारा होती है। ग्रीष्मकालीन मानसून से भी यहाँ थोड़ी वर्षा हो जाती है। (२) पश्चिमी भाग जहाँ ग्रीष्मऋतु में मुख्य वर्षा ६० इंच से अधिक होती है तथा शीत एवं बसंत ऋतुएँ प्रायः शुष्क होती हैं। (३) मध्यवर्ती भाग जहाँ वर्ष भर समान दशाएँ देखने में आती हैं। कोई महीना बिल्कुल शुष्क और हल्की वर्षावाला होता है। यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा ७५ इंच से ८० इंच के भीतर रहती है। इस देश की राजधानी मनीला इसी भाग मे स्थित है।

वन — दक्षिणी भागो मे कठोर लकड़ीवाले सदाबहार वन पाए जाते हैं। इन जगलो मे बाँस, ईंधन एवं इमारती लकड़ियाँ पाई जाती हैं।

कृषि — लगभग संपूर्ण जनसंख्या मे से ६० लाख लोग कृषि में लगे हैं। अधिकाश कृषि लूज़ॉन, सेबू, नेग्रोस, लेटी एवं मिंडानाओ द्वीपो की नदी घाटियो में होती है। यहाँ की सबसे प्रमुख उपज धान है। धान के बाद नारियल, मक्का तथा अबाका का स्थान आता है। वैसे तो गन्ना, अबाका, केला, चुकंदर, तबाकू, कसावा एवं रबर के बागान भी हैं पर इनका कोई विशिष्ट स्थान नही है। यहाँ के फलो मे केला और आम मुख्य हैं। अबाका एक विशिष्ट प्रकार की उपज है एवं केले की जाति का है, इसके तने से प्राप्त रेशे से रस्सियाँ आदि बनाई जाती हैं। मक्का की खेती वर्ष भर में तीन बार होती है। गन्ना लावा द्वारा निर्मित मिट्टी पर बोया जाता है। रबर के बागान ५,००० एकड़ भूभाग पर लगाए गए है।

खनिज — यहाँ के खनिज पदार्थों मे सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा क्रोमियम, सीसा तथा कोयला मुख्य हैं। इसके अतरिक्त जस्ता, यूरेनियम, जिप्सम, ऐसबेस्टस, सिलिका भी प्राप्त होते हैं। स्वर्ण-क्षेत्र लूज़ॉन के उत्तरी और दक्षिणी भागो मे तथा मिंडानाओ और मासबाटे द्वीपो मे फैले हुए हैं। उत्तरी लूज़ॉन मे स्थित बेगुइट जिला सोने का मुख्य उत्पादक क्षेत्र हैं।

उद्योग — औद्योगिक ईंधन की कमी के कारण यहाँ का औद्योगिक विकास नगण्य है तथा जो उद्योग हैं भी वे सभी कृषि पर आधारित हैं, जैसे धान कूटना, चीनी, रबर की वस्तुएँ, जूते बनाना तथा नारियल के सामान आदि। यहाँ चीनी बनाने के बड़े छोटे लगभग ५२ कारखाने हैं तथा धान कूटने की लगभग ३,००० मिलें हैं, जो समस्त द्वीपों पर फैली हुई हैं। नारियल से तेल निकलने का काम भी होता है। उत्तरी लूज़ॉन में सिगार तथा सिगरेट बनाने का उद्योग प्रमुख है। अब इन द्वीपों की उन्नति के लिये नए नए कारखाने, जैसे सूती कपड़ा, काच, प्लाईवुड बनाना तथा सीमेंट आदि उद्योग स्थापित किए जा रहे हैं।

यातायात — यहाँ पर अभी लगभग १,२०० किमी० लंबे रेलमार्ग हैं, जो लूज़ॉन, पानाई तथा सेबू द्वीपों पर फैले हुए हैं। पक्की सड़कों की लंबाई लगभग ३०,००० किमी० है। मनीला नगर चारो ओर से सड़क यातायात से सुव्यवस्थित रूप मे जुड़ा हुआ है। मनीला नगर मे प्रसिद्ध हवाई अड्डा है, जहाँ से पूर्व एवं पश्चिम देशों की ओर वायुयान जाते हैं।

जनसंख्या — यहाँ की जनसंख्या २,७०,८७,६८५ (१९६०) है। पहाड़ी भागों में बहुत कम जनसंख्या निवास करती है। पश्चिमी लूज़ॉन, सेबू, बोहॉल तथा पानाई द्वीप अधिक जनसंख्यावाले क्षेत्र हैं। यहाँ के निवासियों में भारतीय, चीनी, जापानी आदि हैं, पर अधिकतर

फलों की खेती (देखें पृष्ठ ७०)

← अच्छी जाति का अंगूर चख कर पहचाना जाता है।

उत्तम पपीते →

← सिंगापुर का अनानास।

लुकाठ लगी डाली →

फिलाडेल्फिया (देखें पृष्ठ १०३)
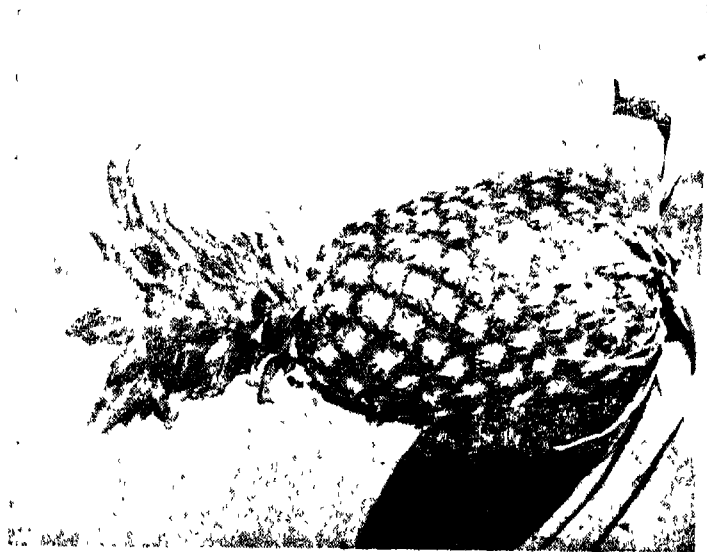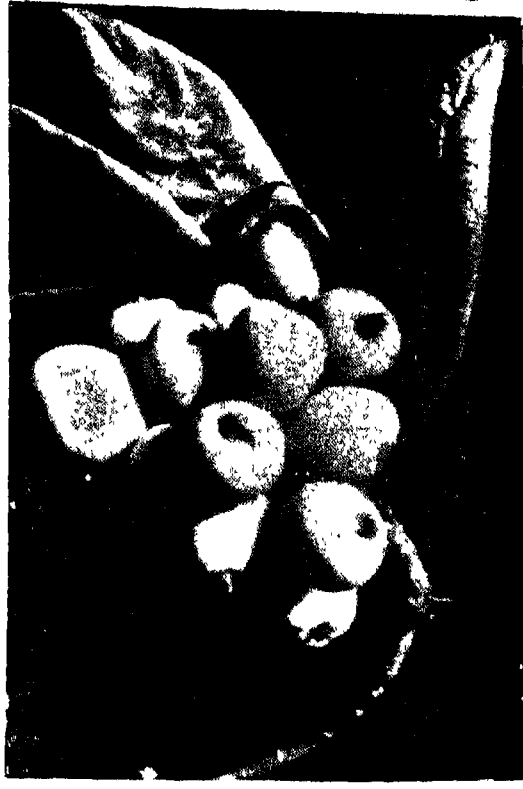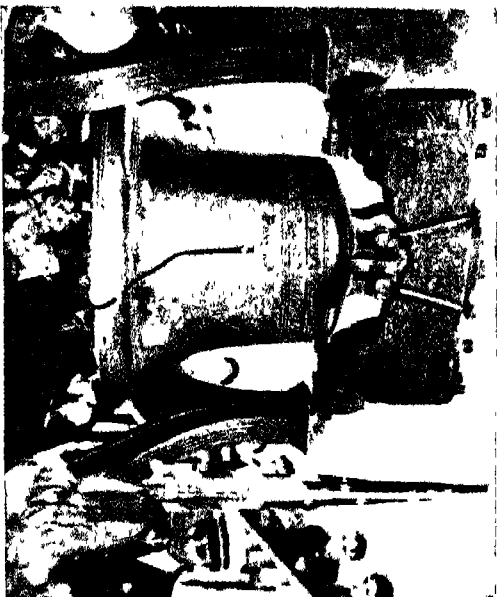
स्वतन्त्रता का घंटा (Liberty Bell)
कॉण्टिनेंटल कांग्रेस द्वारा संयुक्त राज्य, अमरीका, की स्वतंत्रता की घोषणा की जाने पर, यह घंटा सन् १७७६ में बजाया गया था। जुलाई १८३५, में संयुक्त राज्य के सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश की मृत्यु पर जब यह बजाया गया, तो इसमें दरार पड़ गई।
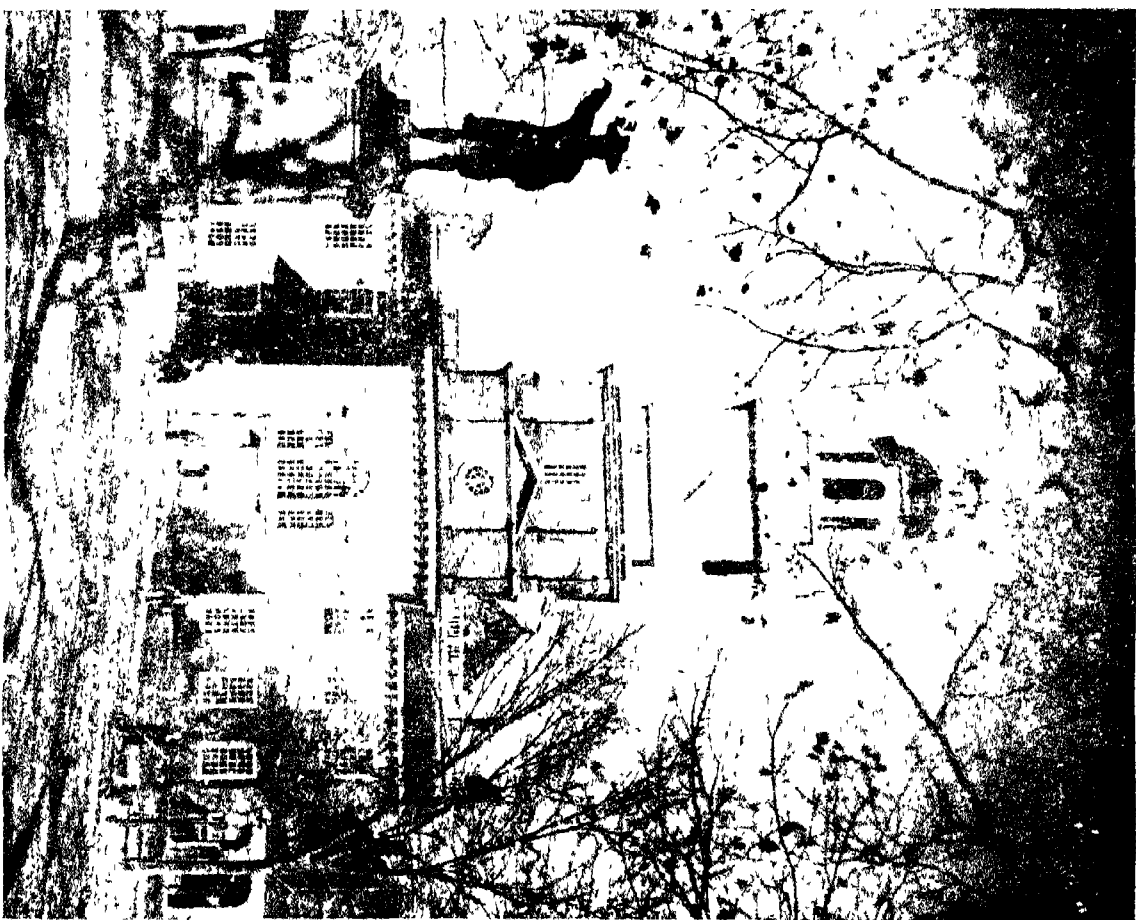
स्वतन्त्रता भवन (Independence Hall)
अमरीका की स्वतन्त्रता के इस मंदिर में स्वतन्त्रता का घंटा रखा है। क्रांति काल के एक नौ सैनिक अफसर, जॉन बैरी, की मूर्ति सम्मुख स्थापित है।

(यू० एस० इन्फॉर्मेशन एजेन्सी के सौजन्य से प्राप्त)

निवासी ईसाई मत को माननेवाले हैं। यहाँ की राष्ट्रीय भाषा टगालोग (Tagalog) है, पर राज्यकाज में अंग्रेजी एवं स्पेनिश भाषाओं का प्रयोग होता है। शिक्षा संस्थाओं मे अंग्रेजी भाषा ही शिक्षा का माध्यम है। यहाँ के मूल निवासी 'एटसरा' नामक असभ्य जाति के लोग हैं, जो नवीन सभ्यता के कट्टर विरोधी हैं। अन्य आदिवासी मोरो, इग्रटे आदि छोटे छोटे नगरों में अपनी वस्तुओ का क्रय विक्रय करने आते हैं।

व्यापार — यहाँ पर उपभोग की वस्तुओं का आयात कम तथा यंत्रों एवं कच्चे माल का आयात अधिक होता है। यहाँ से नारियल का तेल, गोला, मनीला हैंप, अबाका (abaca) टिन, ताँबा, रबर एव सूअर का मांस बाहर जाता है। यंत्रों, मोटरगाड़ियो, कपड़ा तथा मांस आदि का आयात होता है। [वि० रा० सिं०]

फ़िलो प्राचीन काल मे यहूदी धर्म एवं दर्शन का प्रमुख प्रतिपादक और पाश्चात्य संसार का प्रमुख धर्म-दर्शन-शास्त्री। उसका जीवनकाल लगभग ३० ई० पू० से ४० ईसोपरात तक और निवास अलेग्ज़ेंड्रिया मे था।

उसकी अनेक रचनाओ में चार मुख्य थीं — (१) सृष्टि और यहूदियों के मिस्र से गमन के विषय में प्रश्नोत्तरी, (२) सृष्टिव्याख्या, जिसमे पूर्व इजील के सृष्टि विषयक भाग के पात्रों की आत्मा की अवस्थाओ के साध्यवसानात्मक प्रतीक प्रतिपादित किए गए हैं, (३) गैर यहूदियो के लिये मूसवी धर्म की व्याख्या, जिसमें सृष्टिप्रसंग, अब्राहम, आइजक तथा जोजेफ, तीन संतों के जीवनचरित्र द्वारा नीति-प्रतिपादन और एक नियमावली है, (४) मूसा का जीवनचरित्र।

फिलो पूर्व इजील के प्रथम पाँच ग्रंथों को निरपेक्ष अधिकारयुक्त दैवी ग्रंथ और संपूर्ण सत्य के कोश स्वरूप मानता था। उसका विचार था कि यूनानी दार्शनिक विचार मूसा से ही लिए गए होगे और उसने पचग्रथ की सरल कथाओं की साध्यवसानात्मक व्याख्या द्वारा इस विश्वास की पुष्टि का प्रयत्न किया।

वह ईश्वर को पूर्णतया निर्गुण मानता था — शरीर, आत्मा, किसी प्रकार के तत्व, द्रव्य अथवा सायौगिक गुण से परे, प्रकृति, आकृति, बुद्धि, विचार और भाषा के परे तथा शिव एवं सुंदर से भी श्रेष्ठ, साथ ही असीम, नित्य, अपरिवर्तनीय, सरल, स्वतंत्र तथा अपने मे पर्याप्त भी। फिलो का कथन था कि ईश्वर के विषय मे केवल यही कहा जा सकता है कि वह है, यह नही कहा जा सकता कि वह क्या है। मानव आत्मा ईश्वर तक चिंतन से नही, रहस्यपूर्ण आंतरिक प्रकाशात्मक अपरोक्षानुभूति द्वारा ही पहुँच पाती है।

फिलो का विचार था कि ईश्वर स्वयं संसार में क्रियाशील होने से अपवित्र और ससीम हो जाता, अत. कुछ मध्यस्थ आत्माएँ, दिव्य धारणाएँ अथवा शक्तियाँ उसके पार्षदो के रूप में जगत् का निर्माण एव नियत्रण करती है। यह सब विश्वनियंता ईश्वरीय बुद्धि के अंग स्वरूप हैं, ईश्वर के मन के विचारमात्र। फिर भी इनका ईश्वर से अलग अस्तित्व है। श्रेष्ठतम मध्यस्थ ईश्वरीय बुद्धि है, जिसे फ़िलो ने ईश्वर का प्रथम पुत्र, समस्त श्रुति का माध्यम, तथा ईश्वर के दरबार मे संसार का परमपुरोहित कहा है और सृष्टिग्रंथ में कथित ईश्वरीय सृजनात्मक शब्द से अभिन्न बताया है।

परंतु फिलो के मतानुसार ईश्वर से जगत् की व्यवस्थात्मकता मात्र आती है। इसका भौतिक पदार्थ ईश्वर से उत्पन्न नहीं, द्वितीय स्वतंत्र तत्व है। फिर भी उसने इसे रिक्त, निरस्तित्व, अजीव, गतिहीन एवं आकृतिहीन कहा है।

फ़िलो का नीतिसिद्धात भी द्वैतवादी था। वह इंद्रियजन्य पाप स्रोत शरीर को मनुष्य के ईश्वरीय अंग आत्मा के लिये बंदीगृह, कफ़न या कब्र कहता था और ऐंद्रिय प्रवृत्तियो के शमन को ही आदर्श व्यवहार समझता था। परंतु उसके मतानुसार यह मनुष्य की अपनी शक्ति से नहीं, ईश्वर की सहायता से ही सभव है। उसी के फलस्वरूप आनंदावस्था में ईश्वर के दर्शन, व्यक्तिगत चेतना के दिव्य प्रकाश में विलीनता और ऐंद्रिय शरीर से स्थायी मुक्ति की प्राप्ति होती है। जो जीवनकाल मे ऐंद्रिय पदार्थों से विरक्त नही हो पाते, वे मृत्यु के उपरांत दूसरे शरीर में जन्म लेते रहते हैं।

सं० ग्रं०—फिलो : वर्क्स, अनुवादक कोल्सन तथा व्हिटेकर, ६ भाग; वुल्फसन : फिलो, २ भाग; गुडिनफ : ऐन इंट्रोडक्शन टु फिलो; ब्रिह्य : ले जीदे फिलोज़ोफीक ए रेलीजियन द फिलो दालेग्ज़ाद्री; ड्रमंड : फिलो जुडेअस, २ भाग; सीग्फ्रीड : फिलो फौन अलेग्ज़ेंड्रिया। [रा० लूं०]

फ़िलोलाउस पाँचवीं शती ईसवी के उत्तरार्ध मे प्राचीन यूनानी दार्शनिक पिथागोरास का रूमी अनुयायी। इतिहास मे पिथागोरियन विश्वास के अंतिम अनुयायियो मे कई फिलोलाउस के ही शिष्य थे। कहा जाता है, फिलोलाउस को रोम मे निरकुश शासन स्थापित करने का प्रयत्न करने के लिये मृत्युदंड दिया गया। उसे डोरिक भाषा मे **विश्वव्याख्या, आत्मव्याख्या, लय और छंद** तथा **आनंद**, इन चार ग्रंथों का लेखक माना जाता है।

फिलोलाउस को पिथागोरास के सिद्धातो को पहले पहल लिपिबद्ध करने का श्रेय प्राप्त है। यह भी विश्वास किया जाता है कि अफलातून ने फिलोलाउस के ग्रंथो द्वारा ही पिथागोरास के सिद्धातों से परिचित एवं प्रभावित होकर अपने ग्रंथों मे भी उसके गणितात्मक रहस्यवाद से मिलते जुलते कुछ विचारों का समावेश किया था।

फिलोलाउस ने पिथागोरास के सख्यासिद्धात का प्रतिपादन ही नही किया, उसमे अपनी ओर से मौलिक वृद्धि भी की। उसने घन को ज्यामितिक सामंजस्य कहा। इसी से पिथागोरास के अनुयायियों मे हरात्मक मध्यक की धारणा बनी क्योकि घन मे १२ कोर, ६ फलक और ८ कोण होते है, और आठ १२ और ६ के बीच का हरात्मक मध्यक है। उसने सख्या और शब्द के विषय मे प्रयोग भी किए और सगीत स्वर के गणितात्मक विभाजन का प्रयत्न भी किया।

पिथागोरास की विज्ञान संबंधी रुचि की परंपरा को चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र मे बढाते हुए फिलोलाउस ने शरीर पर दो पदार्थों का प्रभाव माना, एक उष्ण पदार्थ और दूसरा शीत पदार्थ। उसने व्यक्ति के स्वास्थ्य को इन दोनो मे उचित अनुपात की स्थापना पर निर्भर समझा। शरीर को मूलत केवल उष्ण तत्व से रचित और शीत को उसमे जन्म के उपरात श्वसन प्रक्रिया द्वारा बाह्य वायु से प्रवेश-प्राप्त कहा।

फिलोलाउस का कथन था कि आत्मा शरीर के पदार्थों के संतुलन का ही नाम है। देह के अंत के साथ आत्मा का भी अंत हो जाता है। अपने विश्वसिद्धांत में उसने अग्नि को विश्व के पवित्र केंद्र पर स्थित बताया और इसी में कर्ता ईश्वर द्वारा मूल अधिनायकत्व स्थापित बताया। उसका सिद्धांत था कि संपूर्ण विश्व और उसकी प्रत्येक वस्तु में असीम और सीमक का मेल है। इसी से ज्ञान संभव होता है। असीम निराकार एवं संख्यारहित होगा। आकार और संख्या के बिना ज्ञान असंभव है। असीम और सीमक भिन्नस्वभाव एवं असंबद्ध होते हैं। इनका मेल सामंजस्य द्वारा संभव हो जाता है। पदार्थों का मूल स्वभाव नित्य है। प्रकृति का पूर्ण ज्ञान मानव बुद्धि से नहीं, दैवी बुद्धि से ही हो सकता है।

सं० ग्रं० — कैथलीन फ्रीमैन दि प्रीसौक्रेटिक फिलौसोफर्स ऐंसिला टु दि प्रीसौक्रेटिक फिलौसोफर्स [रा० लू०]

फ़िशर, एमिल (Fischer, Emil, सन् १८५२–१९१९) जर्मन रसायनज्ञ एवं नोबेल पुरस्कार विजेता। (१९०२ ई०) फिशर अपने समय के कार्बनिक रसायन के सबसे बड़े आचार्य एवं अनुसंधानकर्ता थे। इनका जन्म ९ अक्टूबर, १८५२ ई०, को बॉन के निकट यूस्किर्चेन (Euskirchen) में हुआ था। फिशर ने केकूले (Kekule) तथा बेयर (Baeyer) के अधीन रहकर रसायन विज्ञान का अध्ययन किया। १८९२ ई० में हॉफमैन के अवकाश ग्रहण करने पर फिशर बर्लिन में आचार्य पद पर नियुक्त हुए और मृत्यु पर्यंत यहीं रहे। १५ जुलाई, १९१९ ई०, को इनका देहावसान हो गया।

फिशर ने १८७४ ई० में डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। १८७५ ई० में इन्होंने फेनिल हाइड्रेज़ीन का संश्लेषण किया। यह फेनिल हाइड्रेज़ीन शर्कराओं से संयुक्त होने की क्षमता रखता है और इस प्रकार के ओसाज़ोन बनाता है जिनसे शर्कराओं को पृथक् करने और उन्हें शुद्ध अवस्था में प्राप्त करने में फिशर को बहुत सहायता मिली। इन्होंने प्यूरिन यौगिकों पर कार्य कर यश का अर्जन किया। १९०२ ई० में शर्करा एवं प्यूरिन यौगिकों के महत्वपूर्ण कार्य पर इन्हें नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। इन्होंने कैफीन और थिओब्रोमिन पर कार्य किया। इन्होंने प्रोटीनों से ऐमिनो अम्लों को पृथक् किया, कई प्रकार से इन अम्लों को संश्लेषित किया और कई बहुपेप्टाइडों पर गवेषणा आरंभ की। ये बहुपेप्टाइड, या पॉलिपेप्टाइड, प्रोटीन से मिलते जुलते हैं। जीवन का रहस्य प्रोटीनों पर निर्भर है। इस प्रकार फिशर ने प्रोटीन पर कार्य कर जीवन संबंधी रहस्यों को समझने का एक नया मार्ग निर्देशित कर दिया। इसके बाद इन्होंने टैनिन पर कार्य आरंभ किया। टैनिन की संरचना तथा संश्लेषण का श्रेय फिशर को ही है। कार्बनिक रसायन में इन्होंने जो कार्य किया उससे इनका नाम रसायन वैज्ञानिकों में अमर हो गया है। [सत्य प्र०]

फीजी स्थिति १७° २०′ द० अ० तथा १७९° ०′ पू० दे०। यह प्रशांत महासागर में ब्रिटिश उपनिवेश है, जो ३२२ द्वीपों के मिलने से बना है। इसका क्षेत्रफल ७,०८३ वर्ग मील और जनसंख्या ४,१३,८७२ (१९६१) है। सूवा (Suva) यहाँ की राजधानी है, जिसकी जनसंख्या ३७,३७१ (१९५६) है। वीटि लेवू यहाँ का सबसे प्रमुख द्वीप है, जो ९८ मील लंबा, एवं ६७ मील चौड़ा है। इसके अतिरिक्त वानूआ लेवू, टावेऊनी, काडावू, कोरो, न्गाऊ, ओवालाऊ द्वीप तथा यसावा द्वीपसमूह प्रमुख हैं। बड़े बड़े द्वीप ज्वालामुखी से बने हैं और पहाड़ी हैं। एक चोटी ५,००० फुट तक ऊँची है। द्वीप की औसत ऊँचाई ४,००० फुट है तथा धरातल ऊबड़ खाबड़ है। यहाँ पर उष्ण प्रदेशीय वनस्पति पाई जाती है तथा दक्षिणी द्वीप घने जंगलों से ढँके हुए हैं। इन जंगलों में मूल्यवान् लकड़ी पाई जाती है। द्वीपों का भीतरी भाग उपजाऊ तथा जल से परिपूर्ण है। उत्तर पश्चिमी भाग सूखा एवं गरम तथा दक्षिणी और पूर्वी भाग आर्द्र रहता है। फीजी के आर्द्र क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा का औसत १४४ इंच तक रहता है। बड़ी नदियों में नावों के द्वारा आवागमन होता है। ईख, कपास, कहवा, रबर, नारियल तथा केला बहुतायत से उत्पन्न किया जाता है। यहाँ एक उत्तम बंदरगाह है। यहाँ पर भारतीयों की संख्या अधिक है, जो यहाँ श्रमिकों के रूप में आए थे। [सु० प्र० सिं०]

फीताकृमि या पट्टकृमि (Tapeworm, टेपवर्म) प्लैटीहेल्मिंथीज संघ के सेस्टोडा (Cestoda) वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इनकी आकृति चिपटी पट्टिका की भाँति होती है। इसलिये इनको पट्टकृमि कहते हैं। सेस्टोडा वर्ग में कई पट्टकृमि संमिलित हैं। ये फीते के समान पतले होते हैं। इनकी लंबाई भी भिन्न भिन्न होती है। इनका शरीर कई खंडों से मिलकर बनता है। प्रत्येक खंड एक स्वतंत्र इकाई होता है, जिसमें नर एवं मादा दोनों के पूर्ण जनन अंग होते हैं। इनके नाम विभिन्न डिंभक परपोषी (larval host) के नामानुसार दिए गए हैं। इनका वर्गीकरण मुख्यत: दो भागों में कर सकते हैं (१) प्रौढ़ तथा कृमि, जो मनुष्यों की आँतों में रहता है तथा (२) वे कृमि, जिनके डिंभक मनुष्य के शरीर के विभिन्न भागों में रहते हैं। प्रथम भाग में निम्नलिखित कृमि आते हैं: डाइफिलोबॉथ्रियम लेटम (Diphyllobothrium latum), टीनिया सोलियम (Taenia solium), टीनिया सैजिनाटा (Taenia saginata), टीनिया नाना (Taenia nana) तथा टीनिया डिमिन्यूटा (Taenia diminuta)। पट्टकृमि, जिनके डिंभक मनुष्य के शरीर के विभिन्न भागों में रहते हैं, निम्नलिखित हैं: टीनिया इकाइनोकॉकस (Taenia echinococcus), टीनिया सोलियम (Taenia solium) तथा टीनिया नाना (Taenia nana)।

ये कृमि मनुष्य के क्षुद्र आंत्र (small intestine) में अपने चूषक (sucker) तथा तुंडक (rostellum) की सहायता से अटके रहते हैं। ये अपने पूर्ण शरीर की सहायता से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। इनके शरीर की रचना में निम्नलिखित तीन भाग होते हैं: १. शीर्ष, २. गर्दन तथा ३. शरीर की विभिन्न इकाइयाँ (खंड)।

१ **शीर्ष** (Scolex) — यह शरीर का अग्रिम भाग होता है, जो आँतों में अपने विभिन्न भागों की सहायता से चिपका रहता है। विभिन्न भाग निम्नलिखित है

(क) चूषक — शीर्ष के ऊपर ये आकार में गहरे कटोरे की आकृति के होते हैं (देखें चित्र)।

फिलिपीन द्वीप समूह (देखें पृष्ठ [illegible])
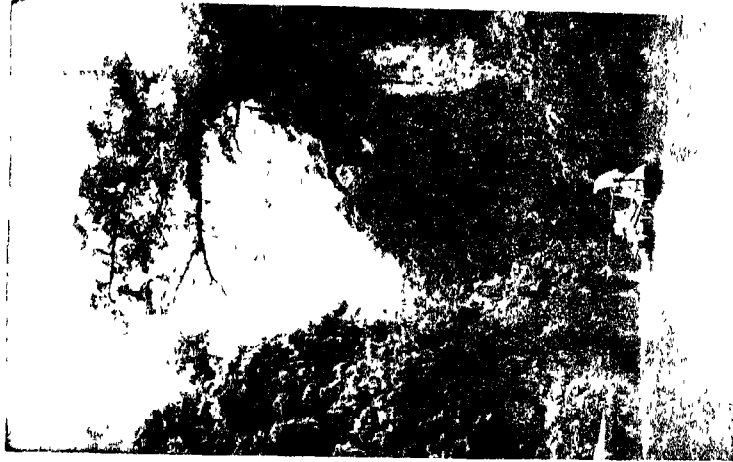
पैगसैंजैन नदकंदर का द्वार
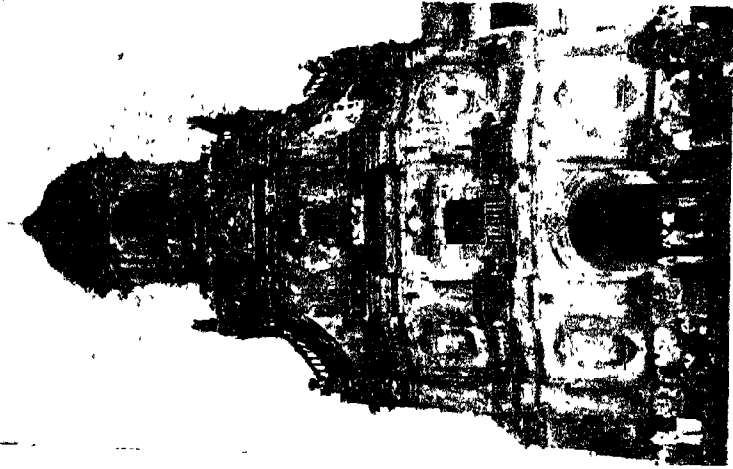
मोरंग नगर का गिरजाघर

मैगेलैन स्मारक,मैक्टैन द्वीप, सेबू

त्वेबा विस्काया का सैलिनास लवण सोता

(फिलिपीन राजदूतावास के सौजन्य से प्राप्त)

जैबोआंगा नगर में पिलार नामक किला

माउटेन नामक सूबे का बाग्यो (Baguio) नगर

मैनिला की टैफ्ट ऐवेन्यू नामक सड़क

बाग्यो नगर का माइन्स विउ पार्क

माउंटेन सूबे में धान के सीढ़ीदार खेत

(फिलिपीन राजदूतावास के सौजन्य से प्राप्त)

(ख) तुंडक — यह शीर्ष के अग्र भाग में चोंच की तरह होता है।

(ग) अंकुशिका (hooklets) — ये एक या दो कतार में तुंडक के ऊपर होते है।

२. गर्दन — यह एक छोटा सा सकीर्णन (constriction) है, जो शीर्ष के पीछे होता है।

३. देहखंड (proglottid) — ये बहुत से होते है। प्रत्येक कृमि मे इनकी संख्या भिन्न भिन्न होती है।

अंडा — इसके दो आवरण होते है एक भ्रूण (ovum) और दूसरा अडकवच, जिसे भ्रूणमर (Embryophore) कहते है।

डिंभक निम्नलिखित दो प्रकार के होते है :

१. पित्ताशय डिंभक — यह थैली (bladder) की तरह होता है और द्रव से भरा रहता है, इसकी भित्ति से शीर्ष आदि बनता है। किसी किसी डिंभक मे सततिविताणय (daughter cyst) होता है।

२ ठोस डिंभक (Solid larva) — यह ठोस होता है और किसी द्रव से भरा नही होता। प्रत्येक कृमि मे कुछ असमानता रहती है। इसका विशेष उल्लेख निम्नलिखित सारणी मे दिया जा रहा है

सेस्टोडा वर्ग के विभिन्न कृमियों का अंतर

पट्टकृमि		टी० सेजिनाटा	टी० नाना	टी० सोलियम	टी० इकोनोकोकस	डाइफिलोब्राथ्रियम लेटम
भोगोलिक स्थान		गोमासाहारी देश	भारत, अफ्रीका मिस्र एव यूरोप	शूकर मासाहारी देश	सभी देशो मे भारत मे भी यदाकदा	यूरोप, अमरीका एव जापान
शरीर के अंदर कृमि का स्थान		छोटी आत्र	छोटी आत्र	छोटी आत्र	छोटी आत्र	छोटी आत्र
शरीर के अंदर डिंभक का स्थान		चवरण पेशियां	आतो का रोमांकुर (विलाई, villi)	जिह्वा, पेशियाँ यदाकदा मस्तिष्क एवं चक्षु	जिगर, यदाकदा शरीर के अदर	साइक्लोप्स (देहगुहा) मत्स्य (Fish) मे पशियाँ एव आत्रयुज
पोषक	आवश्यक	मनुष्य	मनुष्य	मनुष्य	कुत्ता एवं उसकी जाति के जानवर	मनुष्य एव बिल्ली
	अंतःस्थ	गाय एव बैल	मनुष्य, यदाकदा मूषक	शूकर, यदाकदा मनुष्य	मनुष्य, गाय एव शूकर	पहला अत स्थ पोषक साइक्लोप्स, द्वितीय अत स्थ पोषक मत्स्य
कृमि की लंबाई (सेंटीमीटर में)		३६० से १,२००	२ से ४	१५० से ६००	४ से ५ मिलीमीटर	३,००० से ४००
कृमि के खंडों की संख्या		१,२०० से २,०००	१७५ से २२५	८०० से ६००	३ से ५	३,००० से ४,०००
शीर्ष के विशेष भाग	चूषक	४	४	४	४	इसके सिर पर दो अनुदैर्ध्य चूषण खांच होते है (two longitudinal suctorial grooves)
	अंकुशिका	नही होती	२० से ३०, सब एक कतार मे	२६ से २८, दो कतारो मे।	३० से ४०, दो कतारो मे।	

जीवनचक्र — इस वर्ग के कृमियों का जीवनचक्र विभिन्न परपोषियों में पूर्ण होता है। डाइफिलाबॉथियम लेटम कृमि मे तीन, टीनिया नाना में एक एवं अन्य सभी मे दो परपोषियो की आवश्यकता होती है। प्रौढ़ कृमि कशेरुकी की छोटी आँतो में रहता है एवं मध्यस्थ परपोषी (intermediate host) के शरीर मे परजीवी अपनी डिंभक अवस्था में रहता है।

कशेरुकी की छोटी आंत्र से कृमि के अंडे एवं शरीर के खड विष्ठा के साथ बाहर आ जाते है। इस विष्ठा को जब मध्यस्थ परपोषी खाता है, तब वह कृमि के अंडे एवं शरीर के खंड उसके साथ निगल जाता है। पेट में पाचनक्रिया द्वारा अडों के आवरण गल जाते हैं और भ्रूण स्वतंत्र हो जाता है। पेट से ये भ्रूण आंत्रों मे आ जाते
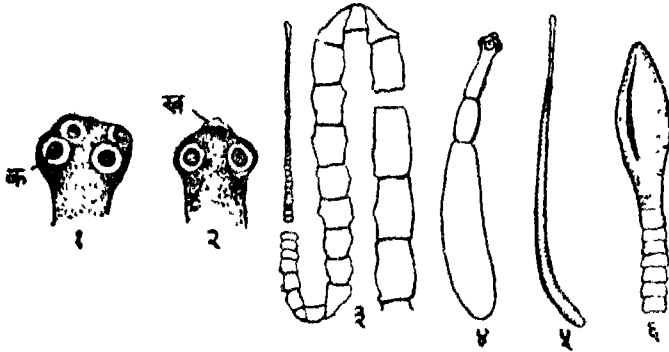
फीता कृमि

१ क. कृमि के सिर मे चूषक, २ ख सिर का हुक, ३. पूर्ण कृमि, ४. कुत्ते मे पाया जानेवाला फीता कृमि, ५ वामन फीता कृमि तथा ६. डा० लेटम नामक कृमि का सिर।

है। ये बहुत ही सक्रिय होते है। भ्रूण अपनी अंकुशिकाओं की सहायता से आंत्रो मे घुस जाता है और वहाँ से रुधिर की नलिकाओ द्वारा शरीर के विभिन्न भागो मे पहुँच जाता है। भ्रूण निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर डिंभक अवस्था मे बढ़ता है। इसकी अकुशिकाएँ समाप्त हो जाती हैं और यह अपने को चारों ओर से एक आवरण द्वारा ढक लेता है। इस अवस्था को पुटीभूत (encysted) कहते है। इस आवरण मे एक द्रव भरा रहता है, इसलिये इसका रूप ब्लैडर कृमि (bladder worm) की तरह का हो जाता है। इसका शीर्ष एव अन्य भाग कोष्ठ की भित्ति से बनते है। अब यह पुटीपुच्छक (cysticercus) कहलाता है। इसके पूर्ण डिंभक की अवस्था तक बढ़ने मे २ से ६ माह तक लगते हैं।

जब मनुष्य पुटी पुच्छक से संक्रमित (infected) कच्चा एवं अधपका मांस खाता है, तब मास के साथ पुटीपुच्छक भी पेट मे चले जाते हैं। पेट मे पुच्छक की भित्ति गल जाती है और शीर्ष बाहर आ जाता है। शीर्ष बहिर्वलन (evagination) की विधि से आँतो की श्लेष्मकला (mucous membrane) में अपनी अकुशिका और चूषक की सहायता से चिपक जाता है। अब ब्लैडर गल जाता है, तत्पश्चात् शीर्ष से शरीर के विभिन्न खंडों की उत्पत्ति होती है और शनै शनै कृमि प्रौढ अवस्था को प्राप्त करता है। कृमि का जीवन कुछ दिवसो से लेकर एक वर्ष तक का होता है।

लक्षण — बहुत से कृमि तो बिना किसी विकार के उत्पन्न किए हुए मनुष्य की आँतों मे रहते हैं। कभी कभी परपोषी उदर एवं आँतों के विकार संबंधी लक्षण बतलाता है, जैसे क्षुधा का कम लगना तथा पेट मे दर्द होना। यह दर्द यदाकदा शूल की भाँति तीव्र होता है। अन्यथा धीमा, मीठा मीठा सा दर्द होता है। कभी कभी दस्त भी होने लगता है। बच्चों में सर दर्द एवं ऐंठन (convulsion) की शिकायत भी हो जाती है। पुरुषों मे मन श्रांति (neurasthenia) के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। डाइफिलोबॉथियम कृमि से रक्तक्षीणता हो जाती है। जब डिंभक मनुष्य के विभिन्न भागो में रहता है, तो उसके लक्षण उसी अंग के विकार से उत्पन्न होते है, जैसे जिगर का बढ जाना एव फुफ्फुस और दिमाग मे विकार पैदा कर देना।

निदान — ऊपर लिखे हुए लक्षणो के रहने पर आँतो मे कृमि की उपस्थिति जानने के लिये निम्न परीक्षाएँ की जाती है :

१ विष्ठा मे कृमि के अडो एव शरीर के विभिन्न खंडो की जाँच,

२ एक्सरे द्वारा शरीर के विभिन्न भागो में डिंभक की उपस्थिति की जाँच,

३ रुधिर मे इयोसिनोफिल (eosinophils) की वृद्धि की जाँच,

४. प्रतिरक्षात्मक अभिक्रिया (immunologic reaction) का प्रदर्शित होना।

उपचार — इसके उपचार मे कई ओषधियो को प्रयोग मे ला सकते हैं, परतु मुख्यत. उपयोगी ओषधियाँ निम्नलिखित हे

१ फिलिसिस मैस (Filicis mas) — इसके सेवन के दो दिन पूर्व, व्रत रखकर बहुत हल्का भोजन करते हैं और सेवन के दिन ३०–३० मिनिम (minim) की चार मात्रा २० मिनिट के अंतर पर देते है। इसके पश्चात् जुलाब दिया जाता है और तत्पश्चात् विष्ठा की जाँच, विष्ठा को चलनी मे छानकर कृमि के अडे एव शरीर के खड के लिये की जाती है।

२ एटेब्रिन (Atebrin) — इसकी एक ग्राम मात्रा एक बार मे ही दी जाती है।

३ जब रक्तक्षीणता होती है तब यकृतनिष्कर्ष (liver extract) देते है।

४ अगर टी० इकाइनोकॉकस का डिंभक मनुष्य के शरीर मे होता है, तो उस व्याधि को उदकोष्ठि या हाइडैटिड सिस्ट (hydatid cyst) कहते हैं और इसका उपचार शल्य चिकित्सा द्वारा होता है।

रोगनिरोधन (Prophylaxis) — फीता कृमि के विकार से बचने का उपाय है, कच्चे एव अधपके मास का उपयोग न करना। पालतू कुत्ता एव उसकी जाति के अन्य जानवरो से दूर ही रहा जाए तो अच्छा है। [ह० बा० मा०]

फ्रीदो प्राचीन यूनानी दर्शन के इतिहास मे सुकरातवादियो के ईलियायी संप्रदाय का संस्थापक। वह पाँचवी शती ई० पू० मे उत्पन्न हुआ था और एलिस नगर का निवासी था। स्पार्टा और एलिस के बीच ४०१-४०० ई० पू० मे हुए युद्ध मे वह दास बना लिया गया था और सुकरात ने उसे दासता से छुड़ाया था। कदाचित् वह बहुत तर्क-

प्रिय था और उसे नीतिशास्त्र में विशेष रुचि थी। विश्वास किया जाता है कि उसने कुछ संवार्ताएँ लिखी थी परंतु उनमें से कोई भी अब उपलब्ध नहीं। उसका मत नैतिक बुद्धिवाद कहा जाता है। सुकरात की भाँति उसने भी ज्ञान को ही सद्गुण माना एवं दर्शन को बुद्धिसगत जीवन का सर्वश्रेष्ठ पथप्रदर्शक बताया। उस समय के बहुत से अन्य चितको की भाँति उसको भी अपने समय का समाज अति पतित अवस्था मे प्रतीत होता था और वह दर्शन का यह प्रकार्य समझता था कि समाज का नैतिक उत्थान संभव करे और उसे सच्ची स्वतत्रता के स्तर पर पहुँचाए।

सुकरात के शिष्यो मे फीदो के महत्व का इससे पता चलता है कि उसके गुरुभाई अफलातून ने अपने ग्रंथ का नाम ही फीदो रखा था। इसमें अफलातून ने अपने अमरत्व सिद्धात का प्रतिपादन किया। आत्मा को शरीर से श्रेष्ठ एवं स्वतत्र, जन्मजन्मातरो मे भी अक्षय, सदासम, अगोचर, शुद्ध, अपने मे ही सतुष्ट, शारीरिक विकारो से मुक्त, तथा नित्य अमूर्त के ध्यान मे रत, अतः सदा ही मरने अर्थात् देहत्याग मे लगी हुई बताया। यह विश्वास भी प्रकट किया कि मृत्यु के साथ आत्मा विद्या के दैवी, अमर, अदृश्य जगत् को प्रयाण कर भ्रांति, मूर्खता, भय, कामवासना आदि से मुक्त हो, सदा के लिये देवताओ के सग के अक्षुण्ण आनद का लाभ उठाती है और जीवन के शुद्ध सत्य प्रत्यय को प्राप्त हो जाती है। परंतु प्राचीन यूनानी व्याकरणशास्त्री राथेनेअस ने लिखा है कि फ़ीदो स्वय अफलातून के इस ग्रथ मे उसके मुख से कहलाई गई वार्ताओं मे अपने मत का यथार्थ चित्रण नही मानता था। फीदो के एक अन्य समकालीन ऐस्किनेस ने भी फीदो शीर्षक मे एक सवार्ता लिखी थी, परतु उसमे व्यक्त विचारो का कुछ पता नही चलता। [रा० लू०]

फीनिक्स (Phoenix) १. नगर, स्थिति ३३° ३०′ उ० अ० तथा ११२° १०′ प० दे०। ऐरिजोना (सयुक्त राज्य) राज्य के मध्य, राज्य का सबसे बडा वितरणकेंद्र एव नगर है। इसके समीपवर्ती सिचित प्रदेश मे लबे रेशे की कपास, एल्फैल्फा घास, नीबू, जैतून, अगूर आदि की कृषि होती है। समुद्र से १,०८० फुट की ऊँचाई पर स्थित नगर १० वर्ग मील मे विस्तृत है तथा काउटी का प्रशासनिक नगर है। नगर की जनसख्या ८,३९,१७० (१९६०) थी।

२ द्वीप, स्थिति ३° ३०′ द० अ० तथा १७१° ०′ प० दे०। मध्य प्रशात महासागर मे १८ वर्ग मील क्षेत्रफल के आठ द्वीप हैं। गुआनो तथा नारियल प्रमुख उपजे है। [मु० प्र० सिं०]

फीनियन्स अंग्रेजी शासन से आयरलैंड की मुक्ति के हेतु निर्मित एक संगठन (ब्रदरहुड)। जॉन ओ महोनी ने १८४८ मे न्यूयार्क मे इसकी नीव डाली। फीनियन ब्रदरहुड का उद्देश्य शस्त्रक्राति और सैनिक कारवाइयों द्वारा आयरलैंड को स्वतत्र करना था। १८६६ मे ब्रदरहुड ने कनाडा पर आक्रमण किया। फीनियन क्रातिकारी आयरलैंड भी गए और विद्रोह की आग भडकानी चाही। विद्रोह सफल नही हुआ। तब उन्होने इग्लैंड की बस्तियो पर बमबारी आरभ की। १८६७ मे उन्होंने क्लर्केनवेल जेल पर धावा बोल दिया, और विस्फोट से उसकी दीवार तोड़ दी। इन उग्र गतिविधियो के बावजूद आंदोलन अधिक दिनों तक जीवित न रह सका; फिर भी, आयरिश स्वतत्रता की चेतना जाग्रत करने मे इनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही।

फीरोजशाह मेहता का जन्म सन् १८४६ मे हुआ था। फीरोजशाह मेरवानजी मेहता अपने समय के उन प्रमुख देशभक्तो मे थे जिन्होने अपनी शिक्षा की समाप्ति इंग्लैड में की। जब आप वकालत के लिये पढ रहे थे, आप दादाभाई नौरोजी के सपर्क मे आए। ईस्ट इंडिया ऐसोसिएशन और लदन इडियन सोसाइटी की सभाओ मे प्राप्त राजनीतिक जीवन के प्रशिक्षण के अवसरो को आपने अपने लिये उपयोगी बनाया।

फीरोजशाह के जीवन के अच्छे वर्ष बबई शहर की म्युनिसपल सरकार की सेवा में व्यतीत हुए। कौसिल मे जो उनका प्रभाव था और अपने सहयोगियो तथा जनता से जो श्रद्धा और आदर उन्हे मिला वह 'बंबई का मुकुटहीन राजा' संबोधन में प्रतिबिंबित होता है। यह कहने मे कोई अतिरजना नही कि बंबई की म्युनिसपल कारपोरेशन का जो वर्तमान सविधान है और उसकी जो कीर्ति तथा मर्यादा स्थापित है वह आपके प्रयत्नो का ही परिणाम है। बंबई विश्वविद्यालय सीनेट के निर्वाचित सदस्यो की प्रतिष्ठा के लिये आपका जो सघर्ष था वह विश्वविद्यालय के साथ आपके घनिष्ठ सबध को सदा याद दिलाता रहेगा।

१८८५ में इडियन नेशनल काग्रेस मे प्रवेश करने के बाद फीरोजशाह ने भारत मे वही काम किया जो दादाभाई ने इंग्लैड मे किया था। बाल्यकाल मे आपको काग्रेस का 'शिशु हरक्यूलिस' कहा जाता था। १९०४ की काग्रेस की स्वागत कमेटी के चेयरमैन के नाते आपने दृढतापूर्वक ब्रिटिश न्याय के प्रति अपना विश्वास घोषित करते हुए कहा कि — 'मै चिरस्थायी ढंग का आशावादी हूं। मै ब्रिटिश शासन को स्वीकार करता हूँ जैसा कि रानाडे ने किया था। आश्चर्यजनक है कि एक छोटा द्वीप संसार के कोने में बसकर अपनी प्रभुता दूर के महाद्वीपो मेंस्थापित किए है। इसे भगवदिच्छा की व्यवस्था मानकर स्वीकार न करना मूर्खता होगी।'

स्पष्टवादी, स्वतंत्र और वाक्पटु फीरोजशाह १८८६ मे बंबई के लेजिस्लेटिव कौसिल के लिये मनोनीत किए गए जहा आपने सबका ध्यान आकृष्ट किया। उन दिनों कौसिल के सदस्यो द्वारा अपने विरोध को प्रकट करने के लिये सभा का बहिष्कार बहुत कम सुनाई पड़ता था। जब बंबई का भूमि रेवन्यू बिल कौसिल मे पेश किया गया, यह देखते हुए कि अनियत्रित शासको के असहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण के प्रति आपका विरोध कोई विशेष फलदायी नही, आपने सभा का बहिष्कार करके महान् सवेदना उत्पन्न कर दी।

इपीरियल कौसिल मे भी फीरोजशाह वाइसराय की कार्यकारिणी समिति के ब्रिटिश सदस्यो से टक्कर लेते थे। इनका विरोध आप दृढतापूर्वक अपने बुद्धिबल से, निंदापूर्ण कटुवचनो और जीतनेवाली हँसी दिल्लगी से करते थे। परंतु अल्पमत मे होने के कारण आप उन्हे पराजित न कर सके।

फीरोजशाह और बबई के राज्यपाल सर जार्ज क्लार्क के बीच सदैव मुठभेड चला करती थी। बाद मे जब लार्ड विलिगटन बबई के राज्यपाल बने, ऐसा सघर्ष न रहा। कहाँ तक फीरोजशाह के मैत्री सबध और वार्ता ने विलिगटन को प्रभावित किया और उन्होंने किस हद तक आपके बहुत दिनो से रुके हुए राजनीतिक

सुधारों की प्रशंसा की, यह नहीं कहा जा सकता। पर अगस्त, १९१७ की महत्वपूर्ण घोषणा के पश्चात् वह सभी कुछ जो कि जनता के लिये और जनता के माध्यम से माँगा गया था, व्यावहारिक रूप में स्वीकृत किया गया। लार्ड विलिंगटन ने फीरोजशाह के सुधार की माँगों का समर्थन जिस प्रकार पर्दे की ओट से किया, उस विषय में वे बड़े ही प्रसन्न थे। बंबई विश्वविद्यालय के चासलर के नाते विलिंगटन ने आपको वाइसचांसलर पद के लिये आमंत्रित किया। दुर्भाग्यवश विश्वविद्यालय के प्रति आपकी स्मरणीय सेवाओं की कद्र बहुत विलंब से हुई क्योंकि अस्वस्थता के कारण आप वाइसचांसलर के पद पर कार्य करने में असमर्थ रहे। आप उस विशेष समावर्तन समारोह में भी भाग ले न सके जो आपको 'डॉक्टर ऑव ला' की उपाधि से विभूषित करने के लिये आयोजित किया गया था। १९१५ की कांग्रेस की रिसेप्शन कमेटी के सभासद के पद से आप अपने मित्र श्री एस० पी० सिन्हा को कांग्रेस प्रेसिडेंट के रूप में स्वागत करने की प्रतीक्षा में थे, पर उस वर्ष की राष्ट्रीय कांग्रेस के सत्रारंभ की निश्चित तिथि के एक सप्ताह पूर्व ही आपका देहांत हो गया।

[ए० म०]

फुंक कैसिमिर (Funk Casimir) पोलैंडवासी, जीवनरसायनज्ञ थे। इनका जन्म वारसा में २३ फरवरी, १८८४ ई० को हुआ। इन्होंने स्विट्जरलैंड के बर्न विश्वविद्यालय, पैरिस के पैस्टर इंस्टिट्यूट और बर्लिन विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। जीवरसायनज्ञ के रूप में इन्होंने अस्पतालों में कार्य किया। ये सन् १९१५ में अमरीका गए और इन्होंने वहाँ की कई अनुसंधानशालाओं में विभिन्न पदों पर कार्य किया।

विटामिन का अन्वेषण और उसकी उपयोगिता को सिद्ध करने के कारण इन्हें प्रसिद्धि मिली। इन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध में ऐड्रीनलिन यौगिक का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन किया तथा मछली के तेल से व्यापारिक स्तर पर विटामिन निकालने की विधि निकाली। १९१७ से १९२३ ई० तक ये एच० ए० मेत्ज अनुसंधानशाला के निर्देशक और न्यूयार्क में कोलंबिया के काय-शल्य-चिकित्सा कॉलेज में प्रवक्ता रहे। १९३६ ई० में संयुक्त राज्य विटामिन कारपोरेशन के सलाहकार पद पर नियुक्त हुए। १९४७ ई० में इन्होंने न्यूयार्क में फुंक फाउंडेशन चिकित्सा अनुसंधान की स्थापना की।

[भो० ना० दा०]

फुँकनी धातु की नली होती है, जिसके द्वारा दहन की गति तीव्र करने के लिये कभी कभी वायु की धारा अग्नि या लौ की ज्वाला में केंद्रित करना आवश्यक होता है। घरों में कोयले या लकड़ी की आग को तीव्र करने के लिये बाँस की खोखली नली, या पाइप के टुकड़े का प्रयोग करते हैं। धातुओं की जुड़ाई या टँकाई में या काच की वस्तु बनाने में फुँकनी का प्रयोग बहुत पुराने समय से होता चला आया है। रासायनिक विश्लेषण में फुँकनी का प्रयोग क्रॉन्स्टेट (Cronstedt) तथा ऐंग्स्ट्रॉम (Angstrom) ने प्रारंभ किया और बेर्गमैन (Bergman), बर्ज़ीलियस (Berzelius) तथा बुंसेन (Bunsen) आदि ने फुँकनी में अनेक सुधार किए।

सबसे प्राचीन तथा साधारण फुँकनी शंक्वाकार पीतल की, लगभग ७ इंच लंबी तथा छोर की ओर समकोण में मुड़ी होकर, एक छोटे गोल रंध्र में समाप्त होती हुई नली के रूप में होती थी, जिसका रंध्रवाला सिरा ज्वाला में तथा लंबा सिरा मुख में लगाते थे। इससे फूँकने के लिये विशेष अभ्यास की आवश्यकता होती है।

फुँकनी की ज्वाला में पदार्थ को रखने के लिये कोयले का टुकड़ा, पेरिस प्लास्टर, काच में लगा प्लैटिनम का तार तथा पॉर्सिलेन काम में लाए जाते हैं। अगलनीय तथा ताप का कुचालक होने के कारण कोयला विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता है। इसके लिये कोयले के संपीडित चारकोल गुटके (compressed charcoal blocks) मिलते हैं, जिनमें पदार्थ रखकर फुँकनी का प्रयोग बहुत अच्छी तरह किया जा सकता है।

मुँह से फूँकनेवाली फुँकनी देर तक प्रयोग करने के लिये तथा तीव्र ज्वाला के लिये उपयुक्त नहीं होती है। इसके लिये वायु की धारा हाथ तथा पैर से चलानेवाली धौंकनियों से, या विद्युत् मोटर की सहायता से, प्राप्त करते हैं।

रासायनिक विश्लेषण में शुष्क परीक्षण तथा पदार्थों को गरम करके गलाने में फुँकनी का विशेष महत्व है। [रा० दा० ति०]

फुकुओका (Fukuoka) स्थिति ३३° ३०' उ० अ० तथा १३० ३०' पू० दे०। जापान के क्यूशू द्वीप का सबसे बड़ा नगर है। हाकाता नगर भी इसी के अंतर्गत आता है। गर्मी में औसत ताप लगभग २१° सें० तथा जाड़े का औसत ताप लगभग ५° सें० रहता है। वर्षा ६० इंच से ८० इंच के बीच होती है। इसके आसपासवाले क्षेत्र में धान, तंबाकू, शकरकंद तथा रेशम उद्योग के लिये शहतूत उगाए जाते हैं। यहाँ जलयान भी बनाए जाते हैं। यह व्यापार का केंद्र बन गया है। इसकी जनसंख्या ६,४७,११५ (१९६०) है। [प्र० प्र०]

फ़ुज़ूली तुर्की का प्रसिद्ध कवि है। इसका वास्तविक नाम मुहम्मद था पर इसने अपने शेरों में अपने आपको फ़ुज़ूली कहा है और अब इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यह बग़दाद के पास हिल्लत या करबला में पैदा हुआ था और इसे ईराक से बाहर जाने का कभी अवसर नहीं मिला। तब भी इसने अनेक विद्याओं में योग्यता प्राप्त कर ली थी। फ़ुज़ूली शीआ धर्म का अनुयायी था और नजफ में हज़रत अली की दरगाह का बहुत समय तक सज्जादनशीन (सर्वाधिकार) था, जहाँ से इसे कालयापन के लिये वृत्ति मिला करती थी, पर यह किसी अज्ञात कारण से बाद में बंद हो गई। इसी समय से यह आर्थिक कष्ट में पड़ गया। ईरान के सफ़वियों का ईराक पर अधिकार हो जाने के अनंतर फ़ुज़ूली शाह इस्माइल, अन्य सफ़वी मंत्रियों तथा उच्च पदाधिकारियों की सेवा में अपनी कविताएँ उपस्थित किया करता था। इसके अनंतर बग़दाद पर उस्मानी तुर्कों का अधिकार होने पर इसने सुलतान सुलेमान आज़म और दूसरे उच्च पदाधिकारियों की सेवा में अपनी कविता उपस्थित करना आरंभ कर दिया। किंतु इसकी आर्थिक परिस्थिति पहले ही जैसी बनी रही और जीवन के बचे हुए दिन दरिद्रता ही में काटने पड़े।

फ़ुज़ूली अरबी तथा फारसी भाषाओं का विद्वान् था और छोटी अवस्था ही से इसकी रुचि कविता की ओर हो गई थी। प्रारंभ में

यह फारसी तथा अरबी भाषाओं में कविता किया करता था पर बाद मे तुर्की भाषा मे भी इसने कविता करना आरभ कर दिया। इसने इन तीनों भाषाओ मे अलग अलग अपने दीवान प्रस्तुत कर लिए थे। इसका सबंध बैयात नामक तुर्की कबीले से था। सभवत इसी कारण इसकी तुर्की कविता की भाषा कुस्तुतुनिया की भाषा से कुछ भिन्न थी। इसने अपनी कविता मे तुर्की भाषा का 'आज़री लहज.' (प्रेम का ढग) प्रयुक्त किया और इसकी कविता की शैली भी ईरानी है। इसने दीवान के सिवा एक मसनवी लैला मजनूँ भी लिखी है। इन दोनो रचनाओं ने तुर्की साहित्येतिहास में इसके लिये एक विशेष स्थान बना दिया है। इसके शेरो मे विशेष कर लौकिक प्रेम के स्थान पर दैवी प्रेम अधिक है जो संभवत. इसके सूफी विचारों की कृपा है। इसका फारसी, तुर्की तथा अरबी गद्य काफी सादा है परतु कसीदो में इसने काव्यकौशल तथा बनावट से काम लिया है।

सं० ग्र० —ई० जी० डब्ल्यू० गिब : ए हिस्ट्री ऑव ओटोमन पोएट्री; एस० लेनपूल : तुर्की, एन० येसिरगिल . फुजूली (इसतंबोल, १९५२); ए० करबाल फुज़ूली (इसत बोल, १९४९) [अ० अ०]

फुटबाल का खेल गेद को पैर से मारकर खेला जाता है। इस खेल मे दो दल होते है और प्रत्येक दल मे ग्यारह ग्यारह खिलाडी। प्रत्येक दल का एक कप्तान होता है। इस खेल का गेद भी फुटबाल कहलाता है। इसका ऊपरी भाग अग्रेजी के अक्षर टी (T) की आकृति की १२ या १३ चमड़े की पट्टियों का बना होता है। यह अदर से खोखला होता है। इस खोखले मे रबर का ब्लैडर होता है, जिसमे हवा भरी जाती है। हवा भरे फुटबाल का भार १४ औस से १६ औस तक होना चाहिए। फुटबाल की बाह्य परिधि २७.५ से २८.५ इच तक होती है। खेल का निर्णायक रेफरी होता है और इसकी सहायता के लिये दो लाइनमैन होते है। खेल मे भाग लेनेवाले दोनों दलों के खिलाड़ियों की वरदी अलग अलग होती है और कमीज के सामने और पीछेवाले भाग पर संख्या पड़ी रहती है।

फुटबाल के खेल का इतिहास अति प्राचीन है। इस बात के प्रमाण मिलते है कि यह खेल ईसा से ५०० वर्ष पूर्व स्पार्टा मे सर्वप्रथम खेला गया था। रोमवासी भी वर्तमान फुटबाल से मिलता जुलता खेल खेलते थे, जिसे वे हार्पेस्टम (Harpsatum) कहते थे। इग्लैंड मे फुटबाल का प्रचलन इतने वेग से बढा कि १३६५ ई० मे एडवर्ड तृतीय ने सेना के लोगों के लिये इसका खेलना निषिद्ध कर दिया, क्योंकि सैनिको की धनुष चलाने की योग्यता मे इस खेल के कारण ह्रास हो रहा था। यह प्रतिबध एलिजाबेथ प्रथम के शासनकाल तक लागू रहा।

१९०६ ई० मे फुटबाल का खेल ओलिंपिक खेलो मे समिलित किया गया और अब लगभग सभी देशों मे इसका प्रचार हो चुका है। ऑस्ट्रिया, डेन्मार्क, स्पेन, पोलैंड एव नीदरलैंड की संमति से एक अतरराष्ट्रीय फुटबाल फेडरेशन भी बनाया गया है।

भारत मे फुटबाल खेल आधिकारिक तौर पर १८८२ ई० के लगभग बगाल मे प्रारभ हुआ था। कलकत्ता क्लब, कुमार टुली, डलहौजी एव कलकत्ता टाउन क्लब आदि खेल सघटनों ने मिलकर इंडियन फुटबाल ऐसोसिएशन (I F. A) नामक संस्था की स्थापना की। यह संस्था आज भी पश्चिमी बगाल में फुटबाल के खेलो का आयोजन करती है। काफी वर्षों तक यह संस्था देश भर में फुटबाल खेल के आयोजन तथा विकास का कार्य करती रही। १९३७ ई० में अखिल भारतीय फुटबाल फेडरेशन की स्थापना हुई, जो आजकल देश भर मे आधिकारिक सघटन माना जाता है। भारत मे पेशेवर खेल की प्रथा नही है, इसलिये यह जूलेस रिमेट कप के खेल मे भाग नही लेता।

कलकत्ता मे फुटबाल खेल का प्रारभ होने के बावजूद देश की सबसे पुरानी फुटबाल प्रतियोगिता दिल्ली मे होती है। १८८८ ई० मे डूरड फुटबाल टूर्नामेंट के मैच प्रारभ हुए। आजकल इस टूर्नामेंट का आयोजन सेना का खेलकूद मडल करता है। एशियाई खेलो में १९५१ तथा १९६२ ई० मे भारत ने फुटबाल मे स्वर्णपदक जीता।

विश्व तथा देश की कुछ प्रमुख फुटबाल प्रतियोगिताओ में विभिन्न वर्षो की विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित हैं :

विश्व फुटबाल कप (जूलेस रिमेट कप) — इस प्रतियोगिता का आयोजन प्रति ४ वर्ष पर होता है। इसकी विजेता टीमों के नाम निम्नलिखित है १९३० यूराग्वे, १९३४ इटली, १९३८ इटली, (बीच मे मैच नही हुए), १९५० यूराग्वे, १९५४ जर्मनी, १९५८ ब्राजील, १९६२ ब्राजील, १९६६ इग्लैंड।

विश्व ओलंपिक फुटबाल — इसका आयोजन प्रति चार वर्ष पर होता है। इसकी विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित हैं : १९३६ इटली, बीच मे दो बार ओलिंपिक नही हुआ, १९४८ स्वीडेन, १९५२ हगरी, १९५६ सोवियत संघ, १९६० यूगोस्लाविया, १९६४ हगरी।

राष्ट्रीय फुटबाल चैंपियनशिप (सतोष ट्राफी) — भारत की राष्ट्रीय फुटबाल प्रतियोगिता १९४१ ई० मे प्रारंभ हुई, जिसमे विभिन्न राज्यों की टीमें खेलती है। आई० एफ० ए० ने अपने एक अध्यक्ष राजा मनमथनाथ चौधरी (सतोष) की स्मृति में १९५२ ई० मे एक शील्ड प्रदान की थी, जो सतोष ट्राफी के नाम से मशहूर है। इसके विजेता निम्नलिखित है .

१९५२ मैसूर, १९५३ बगाल, १९५४ बबई, १९५५ बंगाल, १९५६ हैदराबाद, १९५७ हैदराबाद, १९५८-५९ बगाल, १९६० सेना, १९६१ रेलवे, १९६२ बगाल, १९६३ महाराष्ट्र, १९६४ रेलवे तथा १९६५ आध्र।

डूरैंड फुटबाल कप — इसका प्रारभ १८८२ ई० मे हुआ। इसकी विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित है

१९५० हैदराबाद पुलिस, १९५१-५२ ईस्ट बंगाल, १९५३ मोहन बगान, १९५४ हैदराबाद पुलिस, १९५५ मद्रास रेजिमेंटल सेंटर, १९५६ ईस्टबगाल, १९५७ हैदराबाद पुलिस, १९५८ मद्रास रेजिमेंटल सेंटर, १९५९ मोहन बगान, १९६० मोहनबगान ईस्ट बगाल (सयुक्त विजेता), १९६१ आध्र पुलिस, १९६२ मे चीनी आक्रमण के कारण खेल नही हुआ, १९६३ से ६५ मोहन बगान।

रोवर्स कप, बबई — इसका प्रारभ १८९१ ई० मे हुआ। इसकी विजेता टीमो के नाम निम्नलिखित है .

१९५५ मोहन बगान, १९५६ मोहम्मडन स्पोर्टिंग, १९५७ हैदराबाद पुलिस, १९५८ काल्टैक्स क्लब, बबई, १९५९ मोहम्मडन स्पोर्टिंग, १९६० आध्र पुलिस, १९६१ ई० एम० ई० सेंटर, सिकदराबाद,

१९६२ ईस्ट बंगाल तथा **हैदराबाद पुलिस** (संयुक्त विजेता), **१९६३ आंध्र पुलिस, १९६४ बंगाल नागपुर रेलवे,** १९६५ मफतलाल **ग्रूप, बंबई ।**

आई० एफ० जे० शील्ड, कलकत्ता — इसका प्रारंभ १८९३ ई० **में हुआ ।** इसकी विजेता टीमे निम्नलिखित हैं : १९६० मोहन बगान, **१९६१ मोहन बगान** तथा ईस्ट बंगाल (संयुक्त विजेता), १९६२ **मोहन बगान, १९६३ बी० एन० आर०,** १९६४ मोहन बगान तथा **ईस्ट बंगाल, १९६२ ईस्ट बगाल ।**

अन्य टूर्नामेंट — दिल्ली मे १९४९ से दिल्ली क्लाथ मिल **फुटबाल टूर्नामेंट हो रहा है ।** इसके अतिरिक्त देश भर के विश्वविद्यालयों की टीमों का फुटबाल टूर्नामेट प्रति वर्ष सर आशुतोष मुखर्जी ट्राफी के लिये होता है । इसमे गत २५ वर्षों मे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने सबसे अधिक बार (आठ) और उस्मानिया विश्वविद्यालय ने ४ बार सर्वजेता पद प्राप्त किया है । स्कूली बच्चो की टीमो के लिये दिल्ली मे सुब्रत मुखर्जी कप फुटबाल टूर्नामेंट १९६२ ई० से चल रहा है ।

फुटबाल का मैदान

क एवं **य** गोल रक्षक; **ख** एवं **म.** राइट बैक; **ग.** एवं **भ.** लेफ्ट बैक; **घ.** एवं **फ** सेंटर हाफ; **च.** एवं **ब.** राइट हाफ, **छ** एवं **प.** लेफ्ट हाफ, **ज.** एवं **ध.** आउटसाइड राइट; **झ** एवं **द.** इनसाइड राइट, **ठ** एवं **त** इनसाइड लेफ्ट; **ड.** एवं **ढ** आउटसाइड लेफ्ट तथा **ट** एवं **थ.** सेंटर फारवर्ड ।

फुटबाल का मैदान १०० गज से १३० गज तक लंबा और ५० गज से १०० गज तक चौडा होता है, पर बडे मैच १२० गज लंबे और ८० गज चौड़े मैदान पर खेले जाते है । लबाई की रेखा को टच लाइन (touch line) तथा चौडाई की रेखा को गोल लाइन (goal line) कहते हैं । मैदान के बीच मे एक रेखा खीचकर इसे दो भागों मे बाँट दिया जाता है । इस रेखा को मध्य रेखा या हाफ वे लाइन (half way line) कहते है । हाफ वे लाइन के मध्य मे २० गज व्यास का एक वृत्त खीचा जाता है । मैदान के दोनों भागो में एक समान, गोल लाइन के ठीक बीच मे, ८ गज की दूरी पर दो खंभे, जिन्हे गोल पोस्ट कहते है, गाडे जाते है । प्रत्येक गोल पोस्ट (goal post) की मोटाई ५ इंच तथा ऊँचाई ८ फुट होती है । इन दोनो पोस्टों पर एक क्षैतिज लकडी लगी रहती है । गोल के पीछे जाल लगाया जाता है, जिससे फुटबाल गोल हो जाने पर दूर न निकल जाए ।

गोल लाइन पर दोनो गोल पोस्टो से छह छह गज की दूरी पर समकोण बनाती हुई छह छह गज लंबी दो रेखाएँ खीची जाती हैं और गोल लाइन के समातर २० गज लबी रेखा खीचकर इन्हे मिला देते है । इस क्षेत्र को गोल क्षेत्र कहते है । गोल पोस्टो से १८ गज की दूरी पर दोनो ओर १८ गज लबी रेखाएँ खीची जाती हैं और इन्हे गोल लाइन के समातर रेखा खीचकर मिला देते है । इस क्षेत्र को पेनैल्टी क्षेत्र कहते है । दोनो गोल पोस्टों के मध्य से १२ गज की दूरी पर एक चिह्न लगाते है । इस चिह्न को केंद्र मानकर १० गज अर्धव्यास से एक अर्धवृत्त खीचा जाता है, जो पेनैल्टी क्षेत्र की लबाई पर एक चाप बनाता है । इसे पेनैल्टी चाप कहते है । मैदान मे खीची गई प्रत्येक रेखा पाँच इंच मोटी होती है । मैदान के चारों कोनो पर झडे गाडे जाते है, जिन्हे कॉर्नर फ्लैग (corner flag) कहते है । हाफ वे लाइन पर दोनों ओर टच लाइन से एक एक गज दूरी पर झडे गाडे जाते है । चारों कोनो पर एक गज अर्धव्यास के चौथाई वृत्त खीचे जाते है, जिन्हे कॉर्नर क्षेत्र कहते है । यहाँ खडे होकर कार्नर किक लगाई जाती है ।

खेल आरभ होने से पूर्व दोनो दल के कप्तान टॉस करते हैं । टॉस जीतनेवाले कप्तान को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह पहले किक लगाए, या जिस ओर के मैदान को चाहे ले ले । मैदान का चुनाव होते ही प्रत्येक दल के खिलाडी यथास्थान खडे हो जाते है । प्रत्येक दल मे एक एक गोल रक्षक, राइट बैक, राइट हाफ बैक, लेफ्ट बैक, लेफ्ट हाफ बैक, सेंटर फॉरवर्ड सेंटर हाफ बैक इनसाइड लेफ्ट, इनसाइड राइट, आउटसाइड लेफ्ट तथा आउटसाइड राइट होते है । इनका चुनाव कप्तान खेलने से पूर्व कर लेता है । गोलरक्षक गोल के सामने खडा होता है । राइट बैक एवं लेफ्ट बैक पेनैल्टी क्षेत्र के पास खडे होते है । इनसे आगे हाफ वे लाइन की ओर सेंटर हाफ बैक, लेफ्ट हाफ बैक और राइट हाफ बैक खडे होते है । इनसे आगे इनसाइड लेफ्ट और इनसाइड राइट खडे होते है । हाफ वे लाइन के बिलकुल पास, बीच मे सेंटर फॉरवर्ड और दोनों तरफ आउटसाइड राइट और आउटसाइड लेफ्ट खडे होते है ।

सेंटर फॉरवर्ड, आउटसाइड लेफ्ट, इनसाइड लेफ्ट, आउटसाइड राइट और इनसाइड राइट आक्रमण करनेवाले खिलाडी है, जो विपक्षी के पाले मे जाकर गोल करते हैं । लेफ्ट हाफ बैक, सेंटर हाफ

बैक, लेफ्ट बैक और राइट बैक अपने पाले में रहकर गेंद को गोल तक पहुंचने से रोकते है। गोल रक्षक के अतिरिक्त अन्य कोई खिलाडी गेंद को हाथ से छू नहीं सकता। प्रत्येक खिलाड़ी को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि फुटबाल टच लाइन से बाहर जाए।

फुटबाल का खेल साधारणतया मध्यातर के पूर्व ४५ मिनट तक और मध्यातर के बाद ४५ मिनट तक खेला जाता है। मध्यातर पांच मिनट का होता है। यदि पेनैल्टी किक देनी हो और समय समाप्त हो गया हो तो रेफरी पेनैल्टी किक देने तक खेल जारी रखता है। यदि किसी कारणवश कुछ समय नष्ट हुआ हो, तो रेफरी उतने समय तक खेल बढा देता है। यदि पहले दिन खेल का निर्णय नही होता, तो दूसरे दिन पुन. खेल खेला जाता है, अथवा टॉस द्वारा भी निर्णय लिया जा सकता है।

हाफ वे लाइन पर बने वृत्त मे फुटबाल को बीचो बीच रख दिया जाता है और टॉस जीतनेवाला कप्तान विपक्षी दल के मैदान की ओर किक (kick) लगाता है। यदि किक लगाने पर फुटबाल वृत्त के बाहर नही जाता, तो विपक्षी दल का खिलाडी किक लगाएगा। जब तक फुटबाल को दूसरा खिलाडी छू न ले तब तक पहले किक लगानेवाला खिलाडी दुबारा किक नही लगा सकता। रेफरी द्वारा सीटी बजाने पर ही टॉस जीतनेवाला कप्तान किक करता है। खेल आरंभ करते समय अथवा अन्य किसी प्रकार की किक लगाते समय सभी खिलाडियो को फुटबाल से दस गज की दूरी पर रहना चाहिए।

मध्यातर के बाद दोनो दल अपना अपना पाला बदल लेते है। जिस दल के खिलाडी ने प्रारंभ मे किक लगाकर खेल आरभ किया था, उसके विपक्षी दल का खिलाडी किक लगाकर मध्यातर के बाद खेल आरभ करता है। इस नियम को तोडने पर किक दुबारा लगाई जाती है। यदि किक लगानेवाला खिलाडी विपक्षी दल के खिलाडी के किक लगाने अथवा छूने से पहले पुन: किक लगा देता है, तो विपक्षी दल का खिलाडी जिस स्थान पर नियम भग हुआ है उसी जगह खडा होकर किक लगाएगा। पहली किक लगाने के बाद सीधा गोल नही किया जा सकता है।

यदि किसी कारणवश खेल बीच मे ही रुक जाता है और गेद टच लाइन या गोल लाइन के बाहर नही गई हो, तो उसे पुन आरंभ करने के लिये रेफरी गेद का उसी जगह रख देता है जहाँ वह खेल रुकने के समय थी। जमीन छूते ही गेंद खेल मे समझी जाती है। यदि रेफरी गेद को जमीन पर डाले और इसके पहले कि गेंद जमीन को छूए, कोई खिलाडी गेद को छू देता है, तो रेफरी को गेंद पुन: उसी जगह डालनी होगी। जब तक गेद जमीन को छू न ले, कोई खिलाडी इसे छू नही सकता।

गोल हो जाने पर जिस दल पर गोल हुआ है, उसका खिलाडी मध्य वृत्त मे गेद रखकर विपक्षी दल के पाले की ओर रेफरी के सकेत पर किक लगाता है। यदि खिलाडी गेंद को हाथ से गोल मे फेंकता है, तो गोल नही माना जाता। जिस दल ने अधिक गोल किया हो वही विजेता होता है। यदि दोनो दलों ने बराबर गोल किए हो, अथवा कोई गोल न हुआ हो तो खेल हार जीत का फैसला हुए बिना समाप्त हो जायगा। ऐसे खेल को ड्रा (Draw) खेल कहते है।

यदि गेंद टच लाइन को पूरी तरह से पार कर जाए, चाहे गेंद नीची गई हो या ऊँची, प्रत्येक अवस्था मे इसे खेल से बाहर या आऊट (out) समझा जाता है। गेद टच लाइन से बाहर जिस दल के खिलाडी से गई है, उसके विपक्षी दल का खिलाडी टच लाइन से बाहर उसी जगह जहाँ से गेद बाहर गई है, खड़े होकर, गेद को दोनो हाथो से पकडकर, सिर से ऊपर ले जाकर मैदान मे फेंकता है। इस क्रिया को थ्रो इन (Throw in) कहते हैं।

थ्रो इन करने के लिये खिलाडी को टच लाइन से चार पाँच कदम दूर खडा होना चाहिए। गेद को सिर के पीछे ले जाकर कमर काफी पीछे झुकाकर वेग के साथ एक दो कदम आगे बढ़कर अपने साथियों की तरफ फेंकना चाहिए। थ्रो इन के समय खिलाडी टच लाइन पर झुक सकता है, किंतु इसे छू नही सकता। यदि टच लाइन छू जाती है तो पुन थ्रो इन करना पडता है। थ्रो इन करनेवाला खिलाडी गेद पर उस समय तक किक नही लगा सकता जब तक दूसरा खिलाडी उसे छू न ले। यदि वह नियम भंग करता है तो विपक्षी दल का खिलाडी उसी स्थान से जहाँ नियम भग हुआ है, परोक्ष फ्री किक (indirect free kick) लगाएगा। परोक्ष फ्री किक वह किक है जिसके द्वारा खिलाडी सीधे गोल नही कर सकता है, बल्कि उसे गेंद को दूसरे खिलाडी को देना होता है। जब तक दूसरा खिलाडी उसपर किक न लगाए, गोल नही हो सकता। जब परोक्ष फ्री किक लगाई जाती है, तो विपक्षी दल के सभी खिलाडियो को गेद से दस गज की दूरी पर रहना चाहिए। जब तक गेद २७ या २८ इच तक नही लुढकेगी, खेल मे नही समझी जाएगी।

यदि हमला करनेवाले दल का कोई खिलाडी किक लगाए और गेंद, चाहे ऊँची हो या नीची, गोल पोस्ट के बीच के भाग को छोडकर गोल लाइन को पार कर जाती है, तो वह खेल के बाहर या आउट समझी जाती है। प्रतिरक्षा दल का खिलाडी उस स्थान पर जहाँ से गेद लाइन को पार कर गई है खडे होकर इस प्रकार किक लगाएगा कि गेंद पेनैल्टी क्षेत्र को पार कर जाए। इस किक को गोल किक कहते है। यदि गेद पेनैल्टी क्षेत्र को पार नही करती, तो किक पुन लगाई जाएगी। गोल किक से सीधा गोल नही किया जा सकता। जिस दल का खिलाडी गोल किक लगा रहा हो उसके विपक्षी दल के सब खिलाडी पेनैल्टी क्षेत्र के बाहर खड़े रहते है। किक लगानेवाला खिलाडी तब तक दुबारा किक नही लगाएगा जब तक कि दूसरा खिलाडी किक न लगा ले। यदि गोल किक लगानेवाला खिलाडी दूसरे खिलाडी के किक लगाने से पहले किक लगा देता है तो विपक्षी दल का खिलाडी, जहाँ नियम भग किया गया है उसी जगह पर खडे होकर, परोक्ष फ्री किक लगाता है। गोलरक्षक इस किक को नही लेगा और न हाथ मे लेकर गेद पर किक लगाएगा।

यदि प्रतिरक्षा दल का कोई खिलाडी गोल पोस्टो के बीच के स्थान को छोडकर गेद को किक लगाकर गोल लाइन के बाहर कर देता है, तो आक्रमण करनेवाले दल का खिलाडी कॉर्नर के चौथाई

वृत्त में झंडे के पास खड़े होकर किक लगाता है। इसे कॉर्नर किक कहते हैं। इस किक से सीधा गोल किया जा सकता है। प्रतिरक्षा दल के सभी खिलाड़ी इस समय गेंद से दस गज की दूरी पर खडे रहते हैं। प्रतिरक्षा दल के खिलाडी उस समय तक गेंद से १० गज की दूरी पर खड़े रहेंगे जब तक वह पूरा एक चक्कर न लगा ले, अथवा मैदान में २८ इंच तक लुढ़क न जाए। किक लगानेवाला खिलाड़ी तब तक दुबारा किक नही लगा सकता जब तक कोई दूसरा खिलाड़ी किक न लगा ले। यदि किक लगानेवाला खिलाडी नियम भंग करता है, तो उसके विपक्षी दल का खिलाडी उस स्थान पर, जहाँ पर नियम भग किया जाता है, खडे होकर परोक्ष फ्री किक लगाता है।

यदि हमला करनेवाले दल का खिलाडी गेद से पहले गोल लाइन की ओर पहुँच जाता है तो उसे ऑफसाइड कहते है। इस नियम को जहाँ भंग किया जाता है उसी स्थान पर खडे होकर प्रतिरक्षा दल का खिलाड़ी फ्री किक लगाता है। रेफरी के विचार से यदि आक्रामक खिलाड़ी ऑफसाइड होकर कोई लाभ न उठा रहा हो, विपक्षी खिलाड़ी को अड़चन न डाल रहा हो, अथवा खेल मे बाधा डाल रहा हो, तो उस खिलाड़ी को दंड नही दिया जाता।

यदि कोई खिलाडी निम्नलिखित गलतियाँ करेगा, तो उसे नियम-विरुद्ध या फॉउल (foul) समझा जाता है और गलती करनेवाले खिलाडी के विपक्षी दल के खिलाडी को नियम भग किए गए स्थान पर खड़े होकर फ्री किक लगाने का अधिकार होता है :

१ खिलाडी, विपक्षी खिलाडी को किक लगाए, या किक लगाने का प्रयत्न करे।

२. खिलाडी किसी दूसरे खिलाडी को अड़ंगा लगाकर गिराने का प्रयत्न करे, या उसकी टाँग पर अपनी टाँग मारे।

३ खिलाडी विपक्षी खिलाडी पर कूदे।

४ खिलाडी विपक्षी खिलाडी पर खतरनाक ढग से आक्रमण करे, या धक्का दे।

५. खिलाडी विपक्षी खिलाडी को मारने पीटने का प्रयत्न करे।

६ खिलाडी विपक्षी खिलाडी को पीछे से धक्का देकर गिरा दे।

७ खिलाडी विपक्षी का हाथ पकडकर रोक ले।

८ खिलाडी किसी विपक्षी खिलाड़ी को हाथ से धक्का दे।

९ गोल रक्षक को छोड़कर अन्य कोई खिलाडी गेंद को हाथ से फेंके या उछाले।

यदि उपर्युक्त गलतियाँ प्रतिरक्षा दल का खिलाड़ी जान बूझकर पेनैल्टी क्षेत्र मे करता है तो पेनैल्टी किक की सजा दी जाती है। इसमे विपक्षी दल का खिलाडी प्रतिरक्षक दल के पेनैल्टी क्षेत्र मे खडा होकर किक लगाता है। इस समय किक लगानेवाला खिलाडी और प्रतिरक्षा दल के गोलरक्षक के अतिरिक्त अन्य सभी खिलाडी पेनैल्टी क्षेत्र से बाहर रहते है। गोलरक्षक अपनी गोल लाइन पर तब तक सीधा खड़ा रहेगा जब तक किक न लगाई गई हो। जिस खिलाड़ी की ओर किक लगाई गई हो वह आगे की ओर किक लगाएगा। जब तक गेद को कोई दूसरा खिलाडी छू न ले, पहले किक लगानेवाला खिलाड़ी उसे छू नहीं सकता।

यदि गेंद ने किक के बाद एक चक्कर लगा लिया हो, तो उसे खेल में समझा जाएगा और उससे गोल किया जा सकता है। यदि गेद गोल-रक्षक से टकराकर गोल मे चली जाए तो गोल माना जाता है। यदि पेनैल्टी किक के लिये समय न रहे, तो जितनी देर तक पेनैल्टी किक लगाई जाती है उतनी देर तक खेल को बढा दिया जाता है। यदि बचाव दल नियम भग करता है और गोल नही होता, तो पेनैल्टी किक दुबारा लगाई जाएगी।

यदि कोई खिलाडी निम्नलिखित गलतियाँ करता है, तो उसके विपक्षी दल का खिलाडी जिस स्थान पर गलती की गई है वहाँ खडे होकर फ्री किक लगाता है

१. गेद गोलरक्षक के पास हो और आक्रमण करनेवाला खिलाडी इस प्रकार किक करने का प्रयास करे, जिसे रेफरी खतरनाक समझता हो।

२ गेद काफी दूर रहते हुए भी यदि एक खिलाड़ी दूसरे खिलाडी को कंधे से धक्का दे।

३. कोई खिलाडी, जिसके पास गेद न हो, अपने विपक्षी दल के खिलाडी के सामने खड़े होकर, या अन्य किसी तरह उसके मार्ग मे रुकावट डाले।

४ विपक्षी दल का खिलाडी गोलरक्षक पर हमला करे, या उसे धक्का दे। किंतु, यदि गोलरक्षक के हाथ मे गेद हो, या गोलरक्षक विपक्षी दल के खिलाडी के रास्ते मे अड़चन डाल रहा हो, या गोल-रक्षक गोल क्षेत्र मे बाहर निकल आया हो, तो उसे धक्का दिया जा सकता है।

यदि गोलरक्षक गेंद को हाथ में लेकर गोल से चार कदम से अधिक आगे बढ़ जाता है और गेद को जमीन पर टप्पा नहीं खिलाता, तो विपक्षी दल को उस स्थान पर जहाँ नियम भग किया गया है परोक्ष फ्री किक लगाने का अधिकार होता है।

खिलाडी को निम्नलिखित बातो पर चेतावनी दी जाती है

१ यदि कोई खिलाडी बार बार नियम भग करता है।

२ यदि खिलाडी रेफरी के निर्णयो को नही मानता है।

३ यदि खिलाडी का व्यवहार ठीक न हो।

४ यदि खिलाडी खेल आरभ होने के बाद रेफरी की अनुमति के बिना और बिना खेल रुके खेलना आरभ कर दे।

निम्नलिखित दशाओं मे खिलाडी को मैदान के बाहर निकाला जा सकता है

१ रेफरी द्वारा चेतावनी देने के बाद भी खिलाडी बार बार गलतियाँ करे।

२ खिलाडी गाली गलौज करे, या कोई बहुत बड़ी गलती करे, या रेफरी की राय मे फाउल खेले।

किसी खिलाडी को मैदान से निकालने के कारण यदि खेल रुक गया हो, तो जिस स्थान पर नियम भग किया गया है उसी जगह खडे होकर विपक्षी दल का खिलाडी परोक्ष फ्री किक लगाकर खेल आरभ करेगा।

खेल के प्रारभ होने से लेकर अंत तक खेल के नियमो के पालन कराने का दायित्व रेफरी पर होता है। रेफरी के अधिकार एवं कर्तव्य निम्नलिखित हैं :

१. रेफरी को खेल के नियमों का पालन खिलाड़ियों से कराना पडता है। जिस बात पर कोई विवाद होता है, उसका निर्णय करना होता है। रेफरी का निर्णय अंतिम होता है। खेल के आरभ से लेकर अंत तक उसका निर्णय मान्य होता है।

२ खेल में समय का ध्यान रेफरी रखता है और खेलनेवाले दोनों दलो के गोलो का वह आलेख रखता है। किसी दुर्घटना, अथवा अन्य किसी कारण, से खेल रुकने के कारण जितना समय नष्ट होता है रेफरी उतने अधिक समय तक खेल चालू रखता है।

३. दर्शको के दखल देने के कारण, या अन्य किसी कारण, से यदि रेफरी यह आवश्यक समझे कि खेल बंद कर दिया जाए, तो उसे अधिकार है कि वह खेल बद कर दे। रेफरी को खेल बद करने की सूचना फुटबाल ऐसोसिएशन को देनी पड़ती है।

४. लाइनमैन के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति रेफरी की अनुमति के बिना मैदान मे नही आ सकता।

५ यदि कोई खिलाडी रेफरी की राय मे गंभीर रूप मे घायल हो, तो वह खेल रोककर खिलाडी को मैदान से हटवा देगा और पुन खेल आरभ करवाएगा। यदि खिलाडी गभीर रूप से घायल नही होता, तो गोल या कार्नर होने तक खेल नही रोका जाएगा।

६ यदि कोई खिलाडी बहुत बडी गलती करता है, तो रेफरी को यह अधिकार है कि वह उस खिलाडी को खेल से बाहर कर दे। यदि बार बार चेतावनी देने पर भी खिलाड़ी नहीं मानता है, तो भी रेफरी उसे खेल से बाहर निकाल सकता है।

७ यदि किसी कारणवश खेल रुक गया हो, तो रेफरी को इशारा करके पुन खेल को आरभ करवाना होगा।

८. यदि खिलाडी के बूत नियमानुसार न हो, तो रेफरी खिलाडी को मैदान से बाहर निकाल सकता है।

रेफरी की सहायता के लिये दो लाइनमैन होते है। जिस क्लब के मैदान पर खेल खेला जाता है, वह क्लब इन लाइनमैनों को झडे देता है। इनके निम्नलिखित कर्तव्य है :

१ यह बताना कि कब गेद खेल के बाहर थी।

२ किस दल को कोर्नर किक, या थ्रो इन करने, का अधिकार है

३. नियमो के पालन करवाने मे रेफरी की सहायता करना।

जब रेफरी किसी नियम भग के सबध मे अपना स्पष्ट निर्णय देने मे असमर्थ होता है, तब वह गेद को हवा मे उछालकर फेंक देता है और दोनो ओर के एक एक खिलाडी को बुलाकर गेद के एक या दो टिप्पा लेने के बाद खेलने के लिये कहता है। इस क्रिया को सामान्य गेद या कामन बाल (Common ball) कहते है।

फुटबाल पर किक लगाने पर यदि गेद ऊँची न उछलकर जमीन पर तेजी से एक ओर चली जाए, तो इसे लो ड्राइव (Low drive) कहते है। इस तरह की किक से गेद को एक खिलाडी से दूसरे खिलाड़ी तक पहुँचाने मे तथा गोल करने मे सहायता मिलती है। यदि किक लगाकर, गेद को ऊँची उछाल कर, दूर तक पहुँचा दिया जाता है, तो इसे क्लियरेंस वॉली (Clearance volley) कहते है। विपक्षी खिलाडी के सामने आने पर इस किक द्वारा गेद को दूर तक पहुँचाने मे सहायता मिलती है।

गेद को सिर से मारने को हेडिंग (Heading) कहते हैं। इसमे सिर को पीछे ले जाकर माथे को गेद के ठीक सामने लाकर, सिर को इस तरह रखना चाहिए कि गेद टक्कर खाने पर ४५° का कोण बनाए। टक्कर ऊंचे उछलकर, या खड़े होकर, लगानी चाहिए। यदि कोई गेंद ऊँची आ रही हो, तो खिलाडी उसे सिर से टक्कर मारकर नीचे कर देता है। इसे नीचे की ओर हेडिंग (Heading downward) कहते हैं। इससे खिलाडी गेद को नीची कर, अपने दूसरे साथी के पास पहुँचा देता है और गेद को पैर से खेलना सभव हो जाता है। [अ० ना० मे०]

फुफ्फुसावरणशोथ (Pleurisy) इसमे फुफ्फुसावरण मे शोथ उत्पन्न हो जाता है। फुफ्फुसावरण शोथ के निम्नलिखित प्रकार है.

(१) **शुष्क फुफ्फुसावरण शोथ** — इसमें केवल फुफ्फुसावरण शोथ होता है।

(२) **आर्द्र फुफ्फुसावरण शोथ** — इसमे फुफ्फुसावरण के दोनों स्तरो के शोथ के साथ साथ फुफ्फुसावरण गुहा म तरल पदार्थ का सचय हो जाता है।

(३) **एंपाइमा** (Empyema) — इसमें फुफ्फुसावरण गुहा में सचित तरल पदार्थ पूययुक्त हो जाता है।

रोग उत्पत्ति के कारण — यह रोग मुख्यत सर्दी लगने तथा टी० बी०, न्यूमोनिया, फुफ्फुस के अर्बुद, ब्राकिएक्टैसिस (bronchiactasis), आमवातिक (rhaumatic) उपसर्ग, आन्त्रिक ज्वर, फुफ्फुस विद्रधि (lung abscess) एव कोथ (gangrene) के कारण तथा वक्ष मे किसी भी प्रकार का आघात लगने से होता है।

लक्षण — रोगी को एकाएक वक्ष के आक्रात भाग मे शूल होता है, जो श्वास की गति के साथ तथा खासी एव छींक से तीव्रतर हो जाता है। शुष्क फुफ्फुसावरण शोथ मे शूल फुफ्फुसावरण के दोनो शोथयुक्त स्तरो के आपस में रगड़ के कारण होता है। कभी कभी शूल शोथयुक्त पार्श्व के कंधे, गर्दन, पीठ, पेट इत्यादि स्थानो पर भी होता है। इस रोग मे सूखी, एव कष्टप्रद खासी आती है तथा बलगम बहुत कष्ट से निकलता है। ज्वर १०१° या १०२° फा० तक हो जाता है। वक्ष के विकृत पार्श्व की गति श्वास क्रिया के समय कम होती है तथा रोगी उसी भाग को दबाए उसी करवट पड़ा दिखाई देता है, साथ ही दर्शन मे वह भाग दूसरे की अपेक्षा शोथयुक्त प्रतीत होता है। जैसे जैसे रोग की उग्रता बढ़ती है उसी के अनुसार रोगी का श्वासकष्ट भी बढता जाता है। परिताड़न क्रिया (percussion) मे शुष्क फुफ्फुसावरण शोथ के अदर विकृत पार्श्व अनुनादी रहता है तथा परिश्रवण (auscultation) से विकृत स्थान मे वायु का सचार कम मिलता है। इसी प्रकार आर्द्र फुफ्फुसावरण शोथ मे परिताडन क्रिया से तरल पदार्थ के स्तर से ऊपर का भाग अनुनादी (resonant) रहता है तथा उसके नीचे तरल पदार्थ से युक्त स्थान मद (dull) रहता है। ठीक इसी प्रकार परिश्रवण म तरल पदार्थ के ऊपर के भाग मे श्वसनध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है, परतु नीचे के तरल भाग मे नही सुनाई देती। एपाइमा के लक्षण आर्द्र फुफ्फुसावरण शोथ के समान ही होते है, केवल रोगी मे विषाभक्तता के लक्षण

अधिक होते हैं। रुग्ण पार्श्व का भाग शोथयुक्त प्रतीत होता है तथा उक्त भाग की गर्दन की रक्तवाहिनियों में स्पंदन मिलता है। हाथ की अँगुलियों के नाखून के पास का भाग शोथयुक्त होता है तथा बराबर दुर्गंधमय श्वास आती है।

उपचार — इसमें रोग के कारणों को दूर करते है तथा सूची-वेध द्वारा फुप्फुसावरण से तरल पदार्थ एवं पूय निकालते है।

[प्रि० कु० चौ०]

फूक्येन (Fukien) स्थिति : २५° ५०' उ० अ० तथा ११८° ०' पू० दे०। यह चीन का समुद्रपारीय प्रांत है, जिसके उत्तर में जजियांग (Chekiang) प्रांत, पूर्व में पूर्वी चीन सागर तथा फॉर्मोसा जलडमरूमध्य, दक्षिण में क्वांटुंग (Kwangtung) तथा पश्चिम में जियांग्सी (Kiangsi) प्रांत स्थित है। इसका क्षेत्रफल ४५,८३३ वर्ग मील तथा जनसंख्या अनुमानित १,४६,५०,००० (सन् १९६३) है। इसके समुद्री तट के किनारे लगभग ६०० द्वीप है। यहाँ की सबसे लंबी नदी मिन है, जो ३६० मील लंबी है। वर्षा ७५ इंच होती, जो चीन में सर्वाधिक है। इस प्रांत में मछली मारने का उद्योग प्रमुख है। सागर के किनारे चाय अधिक उगती है। फलों में केला, लीची, नारंगी, टैंगराइन (Tangerines), एवं अंगूर प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त धान, शहतूत, गन्ना, गेहूँ, जौ, तथा कुछ सब्जियाँ भी उगाई जाती है। खनिजों में कोयले, लोह, ताँबे, मोलिब्डेनम, चीनी मिट्टी तथा चाँदी एवं सोने के भंडार भी मिलते हैं। फूचोऊ (Foochow) यहाँ की राजधानी है, जिसकी जनसंख्या ६,२०,००० (सन् १९६३) है।

फूजी स्थिति : ३५° २०' उ० अ० तथा १३८° ३०' पू० दे०। यह जापान के दक्षिण मध्य हॉंशू का एक शांत ज्वालामुखी पर्वत है। इसे फूजियामा या फुजिसान भी कहते है। इसमें सन् १७०७ में अंतिम विस्फोट हुआ था। फूजी जापान का उच्चतम शिखर (१२,३८९ फुट) है तथा यह पूर्ण शंक्वाकार है। इसके मुख (crater) का व्यास २,००० फुट है और गहराई ७,००० फुट है। पर्वत के निचले ढलानों पर जंगल तथा ६०० फुट से ऊपर लावा बिखरा हुआ है। शिखर लगभग पूरे वर्ष हिमाच्छादित रहता है। पर्वत के नीचे पाँच झीलें है। इसी कारण फूजी अपने सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध है और जापानी कला एवं साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है। प्राचीन काल से यह दैवी स्थान भी माना जाता है और आज भी यह महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है। प्रति वर्ष जुलाई तथा अगस्त में बड़ी संख्या में तीर्थयात्री तथा पर्यटक यहाँ आते है।

[प्र० व०]

फूत्कार बाण या ब्लो गन (Blow gun) घातक हथियार है जिसका उपयोग दक्षिण अमरीका, मलय प्रायद्वीप और मलय द्वीपसमूह के बनवासी पशुओं का शिकार करने में करते है। इसके प्रयोग में सफलता बहुत कुछ प्रयोक्ता के छिपे रहने पर निर्भर करती है। यह काठ की सात फुट लंबी नली होती है। मुख पर इसके छेद का बाह्य व्यास एक इंच होता है, जो घटते घटते तुंड पर १/३ इंच का हो जाता है। नली हल्की पर दृढ़ लकड़ी की बनी होती है। ऐसी लकड़ी बहुतायत से मलाया और बोर्नियो में पाई जाती है। लकड़ी ऐसी चुनी जाती है जिसमें गाँठ न हो। लकड़ी की इस नली में लोहे के आठ फुट लंबे छड़ से छेद करते है। छड़ के एक छोर पर काटनेवाला कोर होता है। लकड़ी की बल्ली को सीधा खड़ा रखते हैं। बल्ली पेड़ की शाखा के शिकंजे में बँधी रहती है। छेद करने के लिये दो व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। एक व्यक्ति छेनी को बार बार बल्ली के केंद्र में रखकर धीरे धीरे घुमाता है, दूसरा व्यक्ति काठ की बल्ली में थोड़ा थोड़ा पानी देता रहता है। समस्त बल्ली में छेद करने में आठ से लेकर दस घंटे लगते है। यद्यपि छेनी से बना छेद पर्याप्त चिकना होता है, तथापि उसमें बेंत या खजूर के तने से और पालिश करते है। बल्ली के बाह्य भाग को छीलकर आवश्यक मोटाई का और चिकना बना लेते है।

बोर्नियो में फूत्कार बाण में एक छोटी बरछी भी बाँधते है। ऐसा आक्रांत पशु के क्रोध से अपनी रक्षा के लिये करते है। बरछी की मार से बल्ली कुछ टेढ़ी हो जा सकती है, जिससे निशाना ठीक नहीं बैठ सकता। इस दोष के निराकरण के लिये अंतिम छोर को कुछ टेढ़ा रखते है ताकि बरछे की मार से वह सीधी रहे।

बाण तालकाठ का तथा आठ से लेकर दस इंच तक लंबी चिप्पी का होता है। इसका अंतिम छोर तेज धारवाला होता है। इस बाण को छीलकर धीरे धीरे कम करते हुए ऐसा बना देते है कि अंतिम छोर सिलाई की सूई सा पतला हो जाय। इसका हत्था (butt) शंक्वाकार, कोमल पिथ का लगभग आधा इंच लंबा बना होता है। यह मूल पर उतने ही विस्तार का होता है जितना बल्ली का छेद होता है। नुकीले छोर पर थोड़ी थोड़ी दूर पर लगभग चौथाई इंच कटा हुआ रहता है ताकि वह सरलता से टूट जाय और विषैला अंश आक्रांत स्थान पर ही लगा रहे। बाण के दंड को चीरकर उसमें बाण के सिरे तक चिरौंजी फल को रखकर बाँध देते है। इससे बाण अधिक प्रभावकारी हो जाता है।

बाण का विष स्ट्रिक्नोस या ऐंटियेरिस (Antiaris) जाति के पौधों से प्राप्त होता है। बोर्नियो में इसे इपोह (Ipoh) नामक पेड़ के रस से प्राप्त करते है। यह रस पीले श्वेत रंग का तथा कड़वे स्वाद का होता है। वायु में यह पांडुवर्ण का हो जाता है। विषैला अंश ग्लाइकोसाइड होता है, जो हृदय, पेशी और केंद्रीय तंत्रिका को आक्रांत करता है। पेड़ की छाल को छेदकर रस प्राप्त करते और धीरे धीरे आग पर सुखाते है, जिससे वह काला और सांद्र हो जाता है। प्रयुक्त करते समय उसे गरम पानी में मुलायम बनाकर, बाणों पर लेप चढ़ाकर, फिर आग पर सुखा लेते है। पेड़ से रस निकालने पर प्राय दो मास तक उसकी विषाक्तता बनी रहती है।

फूमैरिक और मलेइक अम्ल यह दोनों समावयवी अम्ल असंतृप्त द्वि-कार्बोक्सिलिक अम्ल श्रेणी के सदस्य हैं। इनका सूत्र है का४ हा४ औ४ ($C_4 H_4 O_4$)। इनके संघटन की विशेषता यह है कि इनमें दो कार्बन परमाणु युग्म बंध से जुड़े हुए है और इसके कारण इनके घटक के सब परमाणु एक धरातल में हो जाते है। फूमैरिक और

मलेइक अम्लों के प्रकार की समावयवी व्यवस्था को ज्यामितीय समावयवता कहते हैं।

फूमैरिक (Fumaric) अम्ल	मलेइक (Maleic) अम्ल
हा—का—का ओ ओ हा	हा—का—का ओ ओ हा
‖	‖
हा ओ ओ का—का—हा	हा—का—का ओ ओ हा
[H—C—COOH ‖ HOOC—C—H]	[H—C—COOH ‖ H—C—COOH]
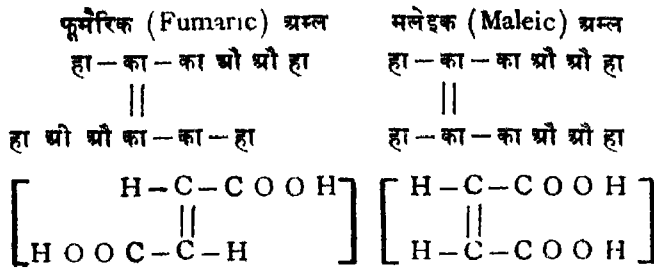
फूमैरिक अम्ल का गलनाक २८७° से० है। ऊष्मा की क्रिया से एवं रासायनिक अभिक्रियाओं द्वारा यह मलेइक अम्ल या मलेइक ऐनहाइड्राइड में बदला जा सकता है। फूमैरिक अम्ल का निर्माण व्यापारिक स्तर पर सश्लेषण द्वारा अथवा किण्वन से किया जाता है। किण्वन विधि से उपयुक्त शर्करा का ६०-७० प्रति शत फूमैरिक अम्ल में बदला जा सकता है। राइज़ोपस निग्रिकैंस (Rhizopus nigricans), अथवा सजातीय फाइकोमाइसीटीज (Phycomycetes) नामक अन्य कवक और कम कार्बनवाली शर्कराएँ, जैसे द्राक्ष शर्करा, फल शर्करा, अपवृत्त शर्करा, यव शर्करा, आदि इस किण्वन में प्रयुक्त होती है।

मलेइक अम्ल का निर्माण बेंज़ीन के वैनेडियम पेटोक्साइड के उत्प्रेरित ऑक्सीकरण द्वारा किया जाता है। यह फूमैरिक अम्ल से भी रासायनिक अभिक्रिया द्वारा बनाया जा सकता है। ऊष्मा की क्रिया से फूमैरिक अम्ल मलेइक ऐनहाइड्राइड मे परिवर्तित होता है, जो एक महत्वपूर्ण कार्बनिक रसायनक है।

मलेइक अम्ल का गलनाक १२५° से० है। यह बडे पैमाने पर सश्लिष्ट रेज़ीन, रोगन, रगलेप, वार्निश और मुद्रण स्याही आदि के निर्माण का एक महत्वपूर्ण अग है। [रा० ह० स०]

फूर्ये, जोसेफ (Fourier, Joseph; १७६८–१८३० ई०) फ्रासीसी गणितज्ञ का जन्म ऑक्सैर मे हुआ। आठ वर्ष की उम्र मे ही ये अनाथ हो गए थे, परतु सौभाग्यवश अपने हितैषियो की सहायता से इन्हे एक सैनिक स्कूल मे प्रवेश मिल गया, जहा इन्होने गणित के अध्ययन मे आशातीत सफलता प्राप्त की और शीघ्र ही एक सैनिक स्कूल मे गणित के प्रोफेसर हो गए। फ्रास की क्राति मे इन्होने सक्रिय भाग लिया और मिस्र पर आक्रमण मे भी नेपोलियन के साथ गए। तदुपरात इन्होने पेरिस मे ताप के विस्तार पर सफल शोध किए, जिनका वर्णन इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'ला थेओरि अनालितिक द ला शालर' (La Theorie Analytique de la Chaleur) मे है। गणितीय भौतिक शास्त्र के निर्धारित सीमात के मानवाले निर्मेयो के (जिनमे आशिक अवकल समीकरण के अनुकलन की आवश्यकता हो) हल की आधुनिक विधियो के लिये, यह मूल पुस्तक है। इसमें प्रसिद्ध 'फूर्ये श्रेणी' का भी वर्णन है। 'सख्यात्मक समीकरण के विश्लेषण' पर भी इन्होने महत्वपूर्ण शोध किए।

स ग्र० — अरागो : जोसेफ फूर्ये (स्मिथसोनियन रिपोर्ट, १८७१)। [रा० कु०]

फूर्ये श्रेणी हम सबसे पहले निम्नलिखित अनंत श्रेणी

$$\left.\begin{array}{l} \frac{1}{2}\text{क}_0 + \sum_{\text{न}=1}^{\infty}(\text{क}_\text{न}\text{ कोज्या नय} + \text{ख}_\text{न}\text{ ज्या नय}) \\ \left[\frac{1}{2}a_0 + \sum_{n=1}^{\infty}(a_n \cos nx + b_n \sin nx)\right] \end{array}\right\} \ldots (1)$$

पर विचार करेंगे, जिसमे सभी क (a) और ख (b) अचर है और य (x) चर है जो $-\infty$ और $+\infty$ के बीच का कोई भी मान ले सकता है। ऐसी श्रेणियो को त्रिकोणमितीय श्रेणियाँ कहते है। मान लीजिए, अब श्रेणी (१) य(x) के सब मानो के लिये अभिसृत होती है और उसका योग फ(य) [f(x)] है। चूँकि य (x) के बदले (य + २ π) [(x + 2π)] रखने पर श्रेणी मे कोई अंतर नहीं आता, इसलिये फलन फ(य) [f(x)] आवर्त है, जिसका आवर्तनाक २π है। यदि हम समीकरण

$$\text{फ}(\text{य}) = \frac{1}{2}\text{क}_0 + \sum_{\text{न}=1}^{\infty}(\text{क}_\text{न}\text{ कोज्या नय} + \text{ख}_\text{न}\text{ ज्या नय})$$

$$\left[f(x) = \frac{1}{2}a_0 + \sum_{n=1}^{\infty}(a_n \cos nx + b_n \sin nx)\right]$$

के दोनो पक्षो को क्रमश कोज्या नय (cos n x) या ज्या नय (sin n x) से गुणा करे और फल का (०,२π) अतराल पर समाकल निकाले तो न (n) के सभी मानो के लिए हमे निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होता है

$$\left.\begin{array}{l} \text{क}_\text{न} = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi}\text{फ}(\text{य})\text{ कोज्या नय ता य}, \\ \text{ख}_\text{न} = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi}\text{फ}(\text{य})\text{ ज्या नय ता य} \\ \left[a_n = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} f(x)\cos nx\, dx,\right. \\ \left.b_n = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} f(x)\sin nx\, dx\right] \end{array}\right\} \ldots (2)$$

समीकरण (२) फलन फ (य) [f(x)] के फूर्ये गुणाक कहलाते है और श्रेणी (१) फ (य) [f(x)] की फूर्ये श्रेणी कहलाती है।

यदि श्रेणी (१) एकरूपत अभिसृत हो, तो उपरिलिखित तर्क सत्य प्रमाणित हो जाता है। फ्रास के गणितज्ञ ज्याँ बाप्तिस्त फूर्ये (Jean Baptiste Fourier) के नाम पर इस श्रेणी का नामकरण हुआ है। फूर्ये का "ताप की चाल का गणितीय सिद्धात" भी इन्ही श्रेणियो पर आधारित है। फूर्ये का अनुसधानपत्र "ऊष्मा का

वैश्लेषिक सिद्धांत" (Theorie Analytique De La Chaleur) सन् १८२२ में प्रकाशित हुआ था, परंतु फूर्ये श्रेणी का आविष्कार अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कंपमान डोरी के प्रश्न के साथ ही हो गया था। इस प्रकार फूर्ये श्रेणी का प्रारंभ गणितीय भौतिकी के प्रश्नो से हुआ और यह श्रेणी अब तक इसके लिये एक महत्वपूर्ण कड़ी बनी हुई है। वास्तव मे फलन को ज्याओ (sines) और कोज्याओं (cosines) की श्रेणी में प्रसारित करके, संमिश्र असतत फलनों का मान निकालने के लिये यह श्रेणी एक गणितीय युक्ति है, जिसके गुणांक प्राय. समाकलन करके परिकलित किए जाते हैं और इस प्रकार प्रसार निर्धारित होता है। ज्वार भाटे से सहचरित आवर्त फलनों के हल, वैद्युतीय धारा, वोल्टता, ताप का अंतरण, संभाविता के सिद्धात और आंशिक अवकल समीकरण, तरंगगति का सिद्धात, (उदाहरणार्थ प्रकाश और ध्वनितरगों की गतियो के सिद्धांत,) तथा दोलक यात्रिक सहति, जैसे कंपमान डोरी, और खगोलीय कक्षाओ आदि, मे फूर्ये श्रेणी बहुधा प्रयुक्त होती है।

गणितीय विश्लेषण मे भी फूर्ये श्रेणी का उतना ही महत्व है। त्रिकोणमितीय (और विशिष्ट रूप से फूर्ये) श्रेणियाँ वैश्लेषिक फलनों के सिद्धात के लिये विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योकि ल = घ^{iय} [$Z = e^{ix}$] रखने पर घात श्रेणी

$$\left.\begin{matrix} \tfrac{1}{2}\text{क}_0 + (\text{क}_1 - \text{र ख}_1)\,\text{ल} + (\text{क}_2 - \text{र ख}_2)\text{ल}^2 + \cdots \\ \left[\tfrac{1}{2} a_0 + (a_1 - ib_1)\, z + (a_2 - ib_2) z^2 + \ldots\ldots\right] \end{matrix}\right\} (३)$$

का वास्तविक अश ही श्रेणी (१) हो जाता है। इस प्रकार त्रिकोणमितीय श्रेणियाँ घात श्रेणियो की वास्तविक अश है और इसलिये ये वास्तविक तथा समिश्र फलनो के बीच एक शृंखला का काम करती है। विविध गणितीय सकल्पनाओ के, जिनमे से कुछ काफी अमूर्त है, ऐतिहासिक विकास और स्पष्टीकरण मे त्रिकोणमितीय श्रेणियो ने बड़ा महत्वपूर्ण योगदान किया है। नीचे कुछ उदाहरण दिए गए है।

अट्ठारहवी शताब्दी के प्रारंभिक काल मे ही फूर्ये श्रेणी के सिद्धात ने गणितीय फलनो की सकल्पना के बारे मे विवाद खड़ा कर दिया। साधारणतया उन दिनो फ(य) [f(x)] को फलन तभी कहा जाता था, जब फ(य) [f(x)] बहुपद, जैसे एक एकाकी वैश्लेषिक व्यंजक, एक घात श्रेणी या एक त्रिकोणमितीय श्रेणी के रूप मे निरूपित हो सकता हो। यदि फ(य) [f (x)] का आलेख स्वेच्छ होता था, जैसे एक बहुपदीय रेखा, तो फ (य) [f(x)] का फलन नही मानते थे। इसलिये बहुतो को आश्चर्य चकित रह जाना पड़ा, जब फूर्ये श्रेणी के आविष्कार ने सिद्ध कर दिया कि ऐसे बहुत से स्वेच्छ आलेख त्रिकोणमितीय श्रेणियो के द्वारा निरूपित हो सकते है और इसलिये इन्हे फलन स्वीकृत किया जाना चाहिए। लबे काल के बाद ही इसका पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण हो पाया और डीरिक्ले (Dirichlet) द्वारा सन् १८३७ मे प्रकाशित एक गवेषणा लेख मे नई सर्वमान्य परिभाषा का सर्वप्रथम सूत्रपात हुआ, जिसमे फूर्ये श्रेणी का विवेचन किया गया था। त्रिकोणमितीय श्रेणी के प्रयोग के दूसरे उदाहरण के रूप मे हम वायरश्ट्रास (Weierstrass) के फलनो का सिद्धात ले सकते है। इन्होने पहली बार एक त्रिकोणमितीय श्रेणी के रूप में एक ऐसे सतत फलन का उदाहरण दिया, जो किसी बिंदु पर भी अवकलनीय नहीं था। समाकलो की संकल्पना के इतिहास मे फूर्ये श्रेणी का प्रभाव एक तीसरा महत्वपूर्ण उदाहरण है। समीकरण (२) के कारण फूर्ये श्रेणी के अध्ययन के लिये समाकलों का ज्ञान पहले से ही होना आवश्यक है। इस कारण यह ध्यान देने योग्य बात है कि रीमान (Riemann) द्वारा समाकल की शास्त्रोक्त परिभाषा सन् १८५४ मे उसके मूल आलेख "किसी फलन की त्रिकोणमितीय श्रेणी द्वारा निरूपणशीलता" (Veber die Darstellbarkeit einer Funcktion durch eine Trigonometrische Reihe) मे प्रतिपादित हुई। एक त्रिकोणमितीय श्रेणी के एक फलन के रूप मे निरूपण की अद्वितीयता पर जार्ज काटर (George Cantor) का एक फल भी इस आलेख द्वारा बहुत प्रभावित होता है।

फूर्ये श्रेणी की अभिसृति और अपसृति — मान लीजिए, श्रेणी (१) के प्रथम (न + १) [(n + 1)] पदो का योग यो$_न$ (य) [S_n (x)] है। समीकरण (२) को प्रयोग मे लाने से हमे फूर्ये श्रेणी के लिये आधारभूत सूत्र

$$\text{यो}_\text{न}(\text{य}) = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} \text{फ}(\text{य}+\text{ट})\,\frac{\text{ज्या}\,(\text{न}+\frac{1}{2})\,\text{ट}}{2\,\text{ज्या}\,\frac{1}{2}\,\text{ट}}\,\text{ता ट}$$

$$\left[S_n(x) = \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} f\,(x+t)\,\frac{\sin\,(\,n+\frac{1}{2}\,)t}{2\,\sin\,\frac{1}{2}\,t}\,dt\right]$$

प्राप्त होता है। अब कुछ शर्तो के साथ यह सिद्ध किया जा सकता है कि यो$_न$(य) [S_n (x)], फ (य) [f (x)] की ओर प्रवृत्त होगा, यदि न (n) अनिश्चित रूप से बढ़े। ऐसे बिंदु य (x) पर, जहाँ फलन फ(य) [f (x)] असतत हो, फूर्ये श्रेणी अभिसृत होती है और उसका योग

$$\tfrac{1}{2}\,\text{फ}\,(\,\text{य}+0\,) + \text{फ}\,(\,\text{य}-0\,)$$

$$\left[\,\tfrac{1}{2}\,f\,(\,x+0\,)\; + \;f\,(\,x-0\,)\,\right]$$

होता है जिसमे फ (य ± ०) [f (x ± 0)], फलन फ (य) [f (x)] की क्रमश दाएँ और बाएँ से बिंदु य (x) पर सीमाएँ है। फूर्ये श्रेणी का योग फ (य) [f (x)] की ओर अभिसृत होने के लिये एक दूसरी शर्त है समाकल

$$\int_0^{\pi}\left|\frac{\text{फ}\,(\,\text{य}+\text{ट}\,)\;+\;\text{फ}\,(\,\text{य}-\text{ट}\,)\;-\;2\text{फ}\,(\text{य})}{\text{ट}}\right|\text{ता ट}$$

$$\left[\int_0^{\pi}\left|\frac{f\,(\,x\,+\,t\,)\;+\;f\,(\,x\,-\,t\,)\;-\;2\,f\,(x)}{t}\right|dt\right]$$

का अभिसृत होना। यह शर्त प्रत्येक ऐसे बिंदु पर सत्य होगी, जहाँ फलन फ (य) [f (x)] अवकलनीय हो। ये शर्ते पर्याप्त मात्र है। सन् १८७२ मे पॉल ड ब्वा-रेमाण्ड (Paul de Bois-Reymond) ने एक ऐसे सतत फलन की रचना की जिसकी फूर्ये श्रेणी कुछ बिंदुओं पर अपसृत होती है और इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि फूर्ये श्रेणी की अभिसृति के लिये फलन का सातत्यमात्र ही पर्याप्त नही है। सन् १९२६ मे कॉलमॉगोरॉफ (Kolmogoroff) ने ऐसे फलोन

का अस्तित्व सिद्ध किया जो लेबेग (Lebesgue) अर्थ में समाकलनीय हैं, किंतु जिनकी फूर्ये श्रेणी सर्वत्र अपसृत होती है।

फूर्ये श्रेणी की संकलनीयता — सन् १६०० में फेयर (Fejer) ने संख्यात्मक मध्यकों के द्वारा यह दिखाया कि एक सतत फलन फ (य) [f (x)] की फूर्ये श्रेणी का संकलन फल फ(य) [f(x)] है। यदि हम योन(य) [S_n(x)] का पूर्व परिभाषित अर्थ ले तो

$$\text{जो}_\text{न}(\text{य}) = \frac{\text{यो}_0(\text{य}) + \text{यो}_1(\text{य}) + \ldots\ldots + \text{यो}_\text{न}(\text{य})}{\text{न}+१}$$

$$\left[\sigma_n(x) = \frac{S_0(x) + S_1(x) + \ldots\ldots + S_n(x)}{n+1}\right]$$

फलन के प्रत्येक सातत्य विंदु पर फ (य) [f (x)] की ओर प्रवृत्त होगा। बाद में लेबेग ने सिद्ध किया कि प्रत्येक समाकलनीय फलन फ (य) [f (x)] के लिये व्यजक जोन (य) [$\sigma_n(x)$] प्रायः सर्वत्र फ (य) [f (x)] की ओर प्रवृत्त होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि फूर्ये श्रेणी की संकलनीयता उसकी अभिसृति से अधिक महत्वपूर्ण है।

पार्सेवाल (Parseval) का सूत्र — यदि हम समीकरण

$$\text{फ}(\text{य}) = \frac{१}{२}\text{क}_0 + \sum_{\text{न}=१}^{\infty}(\text{क}_\text{न}\text{ कोज्या न य} + \text{ख}_\text{न}\text{ ज्या नय})$$

$$\left[f(x) = \frac{1}{2}a_0 + \sum_{n=1}^{\infty}(a_n \cos nx + b_n \sin nx)\right]$$

के दोनों पक्षों का वर्ग करें और फल का ० < य < २π [0 < x < 2π] अतराल मे समाकल निकाले तो हमे पार्सेवाल का सूत्र

$$\frac{१}{\pi}\int_0^{२\pi}\text{फ}^२(\text{य})\text{ता य} = \tfrac{१}{२}\text{क}_0^२ + (\text{क}_१^२ + \text{ख}_१^२) + (\text{क}_२^२ + \text{ख}_२^२)$$

$$\left[\frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} f^2(x)\,d(x) = \tfrac{1}{2}a_0^2 + (a_1^2 + b_1^2) + (a_2^2 + b_2^2) + \ldots\ldots\right]$$

प्राप्त हो जाता है। इस फल की परुष उपपत्ति से ज्ञात होता है कि यह सूत्र ऐसे सभी फलनो फ (य) [f (x)] के लिये सत्य है, यदि फ² (य) [f^2 (x)] समाकलनीय हो। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि फूर्ये गुणाक $\text{क}_0, \text{क}_१, \text{ख}_१, \ldots$ [$a_0, a_1, b_1, \ldots$] ऐसे है कि $\sum(\text{क}_\text{न}^२ + \text{ख}_\text{न}^२)$ [$\sum(a_n^2 + b_n^2)$] सात हैं। रीज़ (Riesz) और फिशर (Fischer) के प्रमेय के अनुसार, यदि किन्ही संख्याओं $\text{क}_0, \text{क}_१, \text{ख}_१, \ldots$ का अनुक्रम दिया हो और श्रेणी $\sum(\text{क}_\text{न}^२ + \text{ख}_\text{न}^२)$ अभिसृत होती हो, तो सदैव एक ऐसा फलन फ (य) [f (x)] प्राप्त किया जा सकता है जिसके फूर्ये गुणाक, संख्याएँ $\text{क}_0, \text{क}_१, \text{ख}_१, \ldots$ हों और फ² (य) [f^2 (x)] समाकलनीय हो। यह फलन अद्वितीय है।

फूर्ये के समाकल — फूर्ये श्रेणी का उपयोग आवर्त फलनों के निरूपण के लिये किया जाता है। अनावर्त फलन फ (य) [f (x)] के अध्ययन के लिये हम फूर्ये समाकल

$$\int_0^{\infty}\{\text{क}(\text{उ})\text{ कोज्या उय} + \text{ख}(\text{उ})\text{ ज्या उय}\}\text{ ता उ}$$

$$\left[\int_0^{\infty}\{a(u)\cos ux + b(u)\sin ux\}\,du\right]$$

का उपयोग करते हैं, जिसमें क(उ) [a(u)] और ख (उ)[b(u)] निम्नलिखित सूत्रों द्वारा परिभाषित होते हैं :

$$\text{क}(\text{उ}) = \frac{१}{\pi}\int_{-\infty}^{\infty}\text{फ}(\text{ट})\text{ कोज्या उट. ताट}$$

$$\text{ख}(\text{उ}) = \frac{१}{\pi}\int_{-\infty}^{\infty}\text{फ}(\text{ट})\text{ ज्या उट. ताट}$$

$$\left[\begin{array}{l} a(u) = \dfrac{1}{\pi}\displaystyle\int_{-\infty}^{\infty} f(t)\cos ut\,.\,dt \\ b(n) = \dfrac{1}{\pi}\displaystyle\int_{-\infty}^{\infty} f(t)\sin ut\,dt. \end{array}\right]$$

क (उ) और ख (उ), फ (उ) के फूर्ये रूपांतर कहे जाते हैं।

[भ० दा० अ०]

फूल या पुष्प तने का एक विकसित अंग है। जिस प्रकार तने पर पत्तियाँ पाई जाती हैं, उसी प्रकार पुष्पासन (Thalamus) के ऊपरी भाग पर पुष्प के अंग रहते हैं। पुष्प में चार अंग होते हैं, जिनमे सबसे बाहर की ओर प्रायः हरे रंग की पखुडियाँ होती हैं, जिन्हे बाह्यदल (sepal) तथा उसके अंदरवाली रंगीन पखुडियों को दल या पखुड़ी (petal) कहते हैं। ये दोनो प्रकार के दल फूल के प्रजनन अंगों को सुरक्षित रखते हैं तथा फूल को आकर्षक बनाते है, जिससे परागण (pollination) में सुविधा होती है। रंगीन पंखुड़ियो के अंदर की तरफ प्रायः दो प्रकार के प्रजनन अग होते हैं। बाहरी भाग में पाए जानेवाला अंग परागकण (pollen grain) बनाता है और उसे
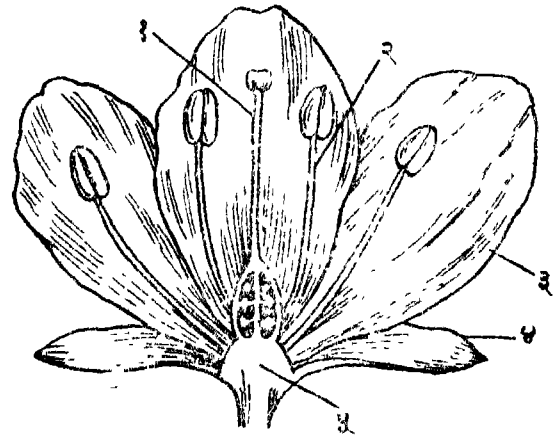
चित्र १. एक संपूर्ण पुष्प

१ अडप (मादा अग), २ पुकेसर (पुमंग), ३. पखुड़ी (दलपुज), ४. बाह्य दल (बाह्य दलपुज में) तथा ५. पुष्पासन।

पुंकेसर (stamen) कहते हैं। फूल के सबसे भीतरी भाग में पाए जानेवाले चौथे अग को स्त्रीकेसर कहते हैं। इसमे बीजाड (ovule) का निर्माण होता है। इन्ही दो अंगो से फल तथा बीज बनता है। जिस फूल में उपर्युक्त चारों प्रकार के अग पाए जाते हैं, उसे पूर्ण पुष्प तथा जिसमे एक भी अग का अभाव रहता है, उसे अपूर्ण पुष्प कहते हैं।

फूल का विकास — फूल का विकास हमारी पृथ्वी पर कब, कहाँ और किस प्रकार के वातावरण मे हुआ, इसका ठीक ठीक पता हमे अभी नही है; पर जो कुछ भी प्रमाण हमारे पास हैं उनसे हम यह कह सकते हैं कि आज से करीब १५ करोड़ वर्ष पूर्व मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic Era) मे पृथ्वी पर उष्णकटिबंधीय प्रदेश में सर्वप्रथम पुष्पधारी पौधों का विकास हुआ था। अभी विद्वानो में इस बात पर भी मतभेद है कि प्रथम पुष्प में चारो प्रकार के अग पाए जाते थे या, किसी अंग का अभाव था। जो विद्वान् ऐसा सोचते हैं कि प्रथम पुष्प पूर्ण था, उनके मत से उभयलिंगी पुष्प, जैसे रैनन-कुलस (Ranunculus), चंपा इत्यादि का विकास पहले हुआ और अपूर्ण पुष्प तथा एकलिंगी नंगे फूल पूर्ण उभयलिंगी पुष्पों से कुछ भागों के लुप्त हो जाने के बाद बने हैं। अत इस मत के अनुयायी रेनेलीस वर्ग के पौधो को विकास की दृष्टि से आदिम तथा अपूर्ण नगे फूलवाले पौधो को अधिक विकसित मानते है। इस मत के विरुद्ध कुछ विद्वानो का मत है कि नंगे अपूर्ण पुष्पधारी पौधों का विकास पहले हुआ। अतः वे 'सैलिक्स' वर्ग के पौधो को आदिम मानते है। प्रथम पुष्प जैसा भी रहा हो उसकी बनावट मे काल की गति के साथ साथ अनेक प्रकार के परिवर्तन होते गए हैं। अब पुष्पधारी पौधों की करीब २,५०,००० जातियाँ पाई जाती हैं। इन पौधो का जातिकरण पुष्प के आकार पर आधारित है।
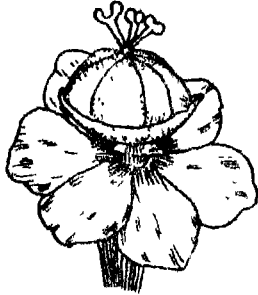
चित्र २. अपूर्ण पुष्प
मादा फूल।

पुष्प के भाग निम्नलिखित हैं

१ फूल की उत्पत्ति तने के शीर्षस्थ (apical), अथवा कक्षीय (axillary) कलिका, के स्थानो मे एक पत्ती के कक्ष से होती है। जिस पत्ती के कक्ष मे पुष्प निकलता है, उसे सहपत्र (Bract) कहते हैं। कुछ पुष्पों में इस पत्ती के अलावा दो और छोटी छोटी पत्तियाँ पाई जाती है, जिन्हे सहपत्रिका (Bracteole) कहते हैं (चित्र ३)। प्राय ये पत्तियाँ हरी होती हैं। पर किन्ही किन्ही फूलो में ये रंगीन भी हो जाती है, जैसे बोगेन-विलिया (Bougainvillea) मे (चित्र ४)। इन पत्तियों का मुख्य कार्य पुष्पकलिका को सुरक्षित रखना है। कभी कभी यह पत्ती वृहदाकार हो जाती है और पूर्ण पुष्पक्रम को ढँक लेती है तथा उसे सुरक्षित रखती है। ऐसी पत्तियो को स्पेथ (Spathe) कहते है, जैसे अरवी तथा ताड में (चित्र ५)।

चित्र ३. फूल में सहपत्रिकाएँ
१. बाह्य दलपुंज तथा २. सहपत्रिकाएँ।

चित्र ४. फूल का सहपत्र
(बोगेनविलिया)
१ पुष्प तथा २. सहपत्र

चित्र ५. अरवी के पुष्पक्रम में स्पेथ
१ स्पेथ (spathe)

पुष्पवृंत या वृंतक (Pedicel) — वह भाग है जिसके सिरे पर पुष्प के विभिन्न भाग पाए जाते है। पुष्पवृंत के जिस भाग से पंखुड़ियाँ निकलती हैं वह पुष्पासन कहलाता है। पुष्पवृंत की आतरिक बनावट तने जैसी होती है। पुष्पासन निम्नलिखित प्रकार के होते है

१. जायागाधर पुष्पासन (Hypogynous thalamus)
२ परिजायागी पुष्पासन (Perigynous thalamus)
३. जायागोपरिक पुष्पासन (Epigynous thalamus)

चित्र ६. जायांगाधर पुष्पासन

चित्र ७. परिजायांगी पुष्पासन
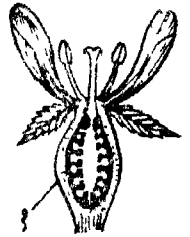
चित्र ८. जायांगोपरिक पुष्पासन

कुछ फूलों मे पुष्पवृंत नही पाया जाता। पर पुष्पासन सभी फूलो मे रहता है। अंजीर, सेब, नासपाती मे तो यह भाग बढ़कर फल का मुख्य अंग बन जाता है।

३. **पुष्प पंखुड़ियाँ** — ये प्राय निम्नलिखित दो प्रकार की होती है.

(अ) सबसे बाहरी पंखुड़ी प्राय. हरी होती है, पर कभी कभी

ये रंगीन भी होती हैं। इन पंखुड़ियों को बाह्य दल (Sepals) और इनके चक्र को बाह्यदलपुंज (Calyx) कहते हैं। यह बाह्यदल फूल की अन्य पंखुड़ियों को सुरक्षित रखता है, विशेषकर तब जब फूल कली की अवस्था में रहता है। यह बाह्यदल प्रायः अलग अलग एक
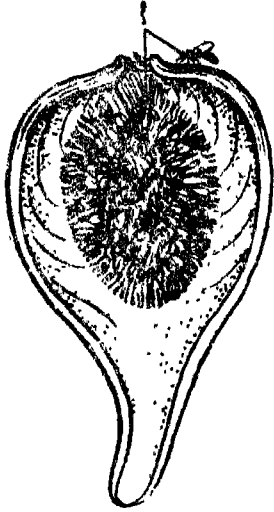
चित्र ९. अंजीर का फल
१. ब्लैस्टोफागा नामक बर्रे।
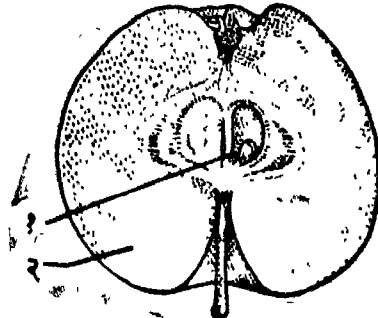
चित्र १०. सेब का फल
१. अंडाशय तथा २. पुष्पासन।

ही दायरे मे पाया जाता है। ऐसी अवस्था में इस पुंज को पृथक् बाह्य दली (Polysepalous) कहते हैं। पर किन्हीं किन्हीं फूलों में बाह्यदल सभी एक दूसरे से मिले होते हैं और ऐसे दलपुंज को संयुक्त बाह्यदली (Gamosepalous) कहते हैं। इन बाह्यदलों की संख्या एकबीजपत्री
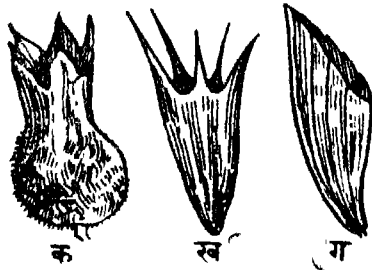
चित्र ११. संयुक्त बाह्यदल के विभिन्न स्वरूप
क. कुंभाकार (urceolate) ख. तथा ग. द्विओष्टी (bilabiate)

वर्ग के पौधों में प्रायः पाँच पाई जाती है। संयुक्त बाह्यदली अवस्था में ये बाह्यदल चित्र ११. में दर्शाए प्रकारों में पाए जाते हैं।

(ब) दूसरे चक्र में पाई जानेवाली पंखुड़ियाँ प्रायः रंगीन होती हैं। इन्हें दल (Petals) तथा इनके चक्र को दलपुंज (Corolla) कहते हैं। ये रंगीन पंखुड़ियाँ प्रायः पुष्प को आकर्षक बनाती हैं, जिससे कीट इत्यादि परागण में सहायक होते हैं। इन पंखुड़ियों से गंध तथा इनकी ग्रंथियों से मीठा रस प्राप्त होता है, जिनके कारण पतिंगे तथा शहद की मक्खियाँ फूल पर आती हैं और परागण क्रिया में सहायक होती हैं। ये पंखुड़ियाँ भी प्रायः अलग अलग, अथवा एक दूसरे से मिली हुई अवस्था में, पाई जाती हैं और इन्हें क्रमशः पृथक्दली (Polypetalous) और संयुक्तदली (Gamopetalous) कहते हैं। इनकी संख्या भी प्रथम वर्ग की पंखुड़ियों के समान एक-बीजपत्री पौधों के पुष्प में प्रायः तीन तथा द्विबीजपत्री पौधों के पुष्प में प्रायः पाँच या इससे भी अधिक होती हैं।

संयुक्तदली अवस्था में ये पंखुडियाँ चित्र १२ (देखें फलक) में दिखाए गए रूपों में पाई जाती हैं।

४. **पुमंग** (Androecium) — तीसरे चक्र मे पाया जानेवाला फूल का भाग पराग का निर्माण करता है, जिसे पुंकेसर कहते हैं
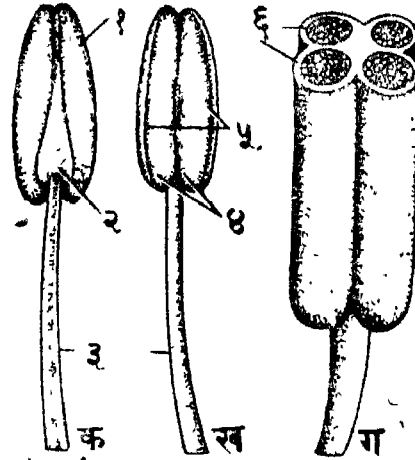
चित्र १३. पुंकेसर के भाग
क. पृष्ठीय दृश्य, ख. अधर दृश्य तथा ग. परागकोश की आड़ी काट का परिवर्तित दृश्य।
१. परागकोश, २. संयोजक, ३. तंतु, ४. परागकोश की पालि, ५ सीवन तथा ६ परागकक्ष।

और इसके समूह को पुमंग कहते हैं। इनका पुतंतु (filament of anther) परागकोश (anther) को ऊपर की तरफ उठाए रखता है, जिससे पराग वितरण मे सुविधा हो। परागकण परागकोश में बनते हैं। जब ये पूर्ण रूप से तैयार हो जाते
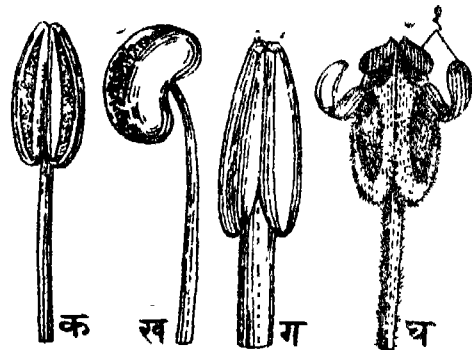
चित्र १४. परागकोश के फटने की विधि
क. अनुदैर्घ्य, ख. अनुप्रस्थ, ग. सरंध्र तथा घ. कपाटीय विधि
१ कपाट।

हैं, तो परागकोश नियमित रूप से फट जाते हैं और पराग निकलने लगता है। यही पराग हवा अथवा कीटो के द्वारा दूसरे

फूलों तक विसरित हो जाता है। परागग्रंथि के फटने का तरीका चित्र १४. में दिखाया गया है।

पुंकेसरों की संख्या भी निश्चित होती है। एकबीजपत्री वर्ग के फूलों में तीन या छह और द्विबीजपत्री वर्ग के फूलों में दो, चार, पाँच, छह, या दस पुकेसर होते हैं। ये अलग अलग अथवा आपस में मिले हुए पाए जाते हैं। कभी कभी पुंकेसर पुष्पासन पर से न निकलकर ऊपर से निकलते हैं और ऐसी अवस्था में इन्हे 'दललग्न'
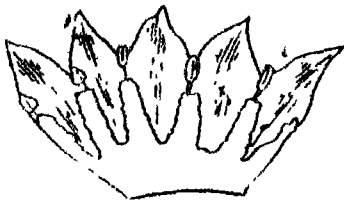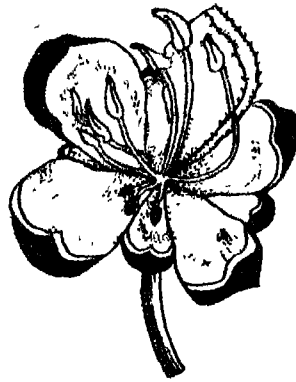
चित्र १५. दललग्न पुंकेसर चित्र १६. बंध्य पुंकेसर

कहते हैं। प्राय एक फूल के सभी पुकेसर एक ही प्रकार के होते है। किन्ही किन्ही फूलो मे कुछ पुकेसर छोटे बड़े होते हैं और कभी कभी तो कुछ मे परागकरण भी नही बनता, तब इन्हे बंध्य पुकेसर (Staminode) कहते है।

गुलाब अथवा कमल के फूलों मे कभी कभी परागकोश रंगीन दलो पर पाए जाते हैं, जिससे इस बात की भी पुष्टि होती है कि पुकेसर की उत्पत्ति दल से हुई। पुकेसर एक दूसरे से निम्नलिखित दो अवस्थाओं मे मिलते है

(अ) पुकेसर (stamen) आपस मे मिले रहते हैं। पर परागकोश अलग अलग रहते है। इस अवस्था को सधी कहते है। गुडहल

चित्र १७. पुंकेसर की नली (गुडहल के फूल मे) चित्र १८. बहुसघी पुंकेसर (नीबू के फूल मे)

(Hibiscus rosasinensis) के फूल में सभी पुंकेसर मिलकर एक नली बनाते है, जो पुकेसरी नली कहलाती है। इस प्रकार की संधी को एकसंधी (Monadelphous) कहते हैं। नीबू के फूल में थोड़े थोड़े पुकेसर मिलकर कई गुच्छे बनाते हैं। ऐसी अवस्था को बहुसधी (Polyadelphous) कहते हैं।

(ब) परागकोश एक दूसरे से मिले होते हैं, पर पुकेसर एक दूसरे से अलग अलग होते है। ऐसी अवस्था को युक्तकोशी (Syngenesious) कहते है। इस प्रकार के पुकेसर सूर्यमुखी के फूल मे मिलते हैं।
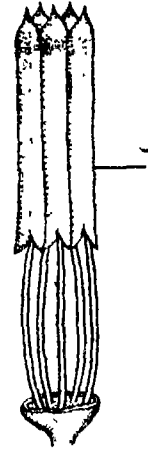
चित्र १९. युक्तकोशी पुकेसर (सूर्यमुखी का पुमग)

(५) जायांग (Gynaeceum) — पुष्प के मध्यवर्ती भाग मे पाया जानेवाला चौथा अंग अंडप (Carpel) कहलाता है। एक से अधिक अडप से जायाग बनता है। एकबीजपत्री वर्ग के पौधो मे प्राय तीन अडप मिलकर जायाग का निर्माण करते हैं। जायाग के अंदर बीजाड (ovule) रहता है, जिससे बीज बनता है। जायांग की बनावट सुराहीनुमा होती है। सब से ऊपरी भाग वर्तिकाग्र (stigma), मध्य का भाग वर्तिका (style) तथा सबस नीचे का फूला हुआ भाग अडाशय (ovary) कहलाता है।

चित्र २०. जायाग के भाग
१. वर्तिकाग्र, २ वर्तिका, ३. अडाशय, ४ बीजाड तथा ५ पुष्पासन।

वर्तिकाग्र कई प्रकार का होता है। कुछ फूलो मे यह गोलाकार गेंद की तरह, कुछ मे चिपटी तश्तरी की तरह और कुछ मे झाडीनुमा तथा रोएँदार होता है (फलक पर चित्र २१ देखे)।
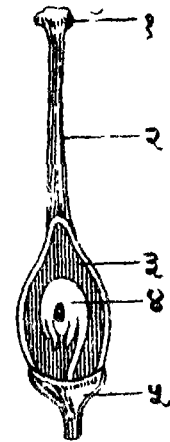
वर्तिकाग्र पर परागकरण जमा हो जाते हैं। वर्तिका तथा वर्तिकाग्र अडाशय के ऊपर ही लगा हुआ दिखलाई पड़ता है। वर्तिकाग्र तथा वर्तिका दोनों ही भाग फल बनाने समय सूख जाते हैं। अडाशय जायाग का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। इसी भाग में बीजाड पाए जाते हैं। अडाशय के भीतर एक अथवा कई बीजांड बीजाडासन के ऊपर लगे रहते है। एक फूल मे अडप जब एक से अधिक रहते है, तो वे निम्नलिखित दो अवस्थाओं में पाए जाते हैं :

(अ) हर एक अंडप अलग अलग पुष्पासन पर लगा रहता है।
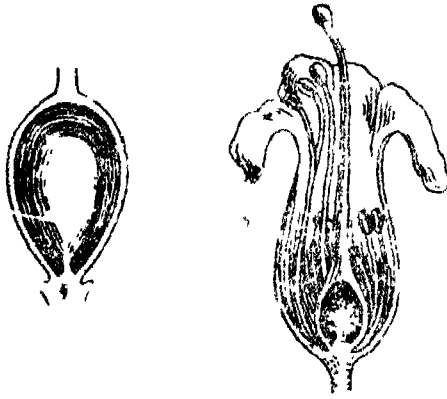
चित्र २२. अंडाशय के भीतरी भाग

ऐसी अवस्था में जायांग वियुक्तांडपी (Apocarpous) कहलाता है। यह अवस्था हमे चंपा के फूल में मिलती है।

चित्र २३. वियुक्तांडपी जायांग

(ब) दो या अधिक अडप आपस मे जुडे रहते हैं। प्रायः अडपों के वर्तिकाग्र, वर्तिकाएँ तथा अडाशय तीनो भाग आपस में एक दूसरे से पूर्ण रूप से जुड जाते है और फूल मे एक संयुक्त जायाग बन जाता है, जिसे युक्ताडपी (Syncarpous) कहते है।
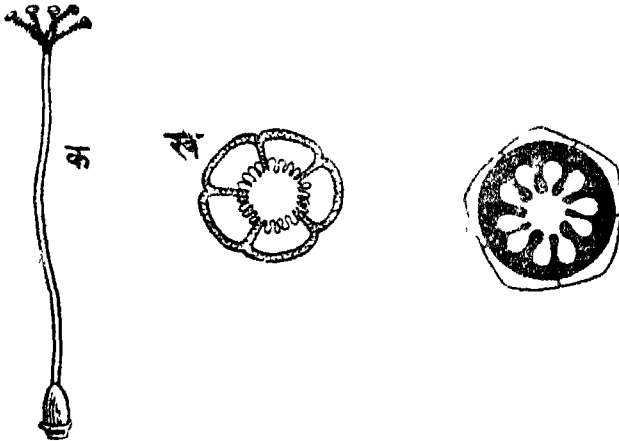
चित्र २४. क. युक्तांडपी, ख. पंचकोश अंडाशय

चित्र २५. युक्ताडपी, एककोशी अंडाशय

कभी कभी अंडाशय में एक ही कोश पाया जाता है, पर प्रायः कोश की संख्या उतनी ही पाई जाती है जितने अंडप आपस मे जुड़कर जायांग बनाते हैं। कुछ फूलों में जायांग का केवल वर्तिकाग्र या वर्तिका-वाला भाग आपस मे जुड़ा रहता है। पर अंडाशय अलग रहते हैं, जैसे मदार के फूल मे।

जब पुष्पासन जायागाधर (hypogynous), अथवा परि-जायागी (perigynous), अवस्था में रहता है, तो जायाग उत्तम कहा जाता है। परंतु जायागो-परिक (epigynous) अवस्था मे जायाग को निम्न कहते है (चित्र ६-८)।

चित्र २६. युक्ताडपी, मदार का जायांग

अडाशय से फल बनता है और उसके अंदर बीज पाए जाते हैं। अत. हम देखते है कि पुष्प मे केवल निम्नलिखित दो अंग ही प्रजनन कार्य करते हैं.

(१) पुकेसर के परागकोश मे परागकरण बनते है। पराग वर्तिकाग्र पर गिरने के बाद अंकुरित होकर नरयुग्मक (male gamete) बनता है। कुछ पुष्प मे केवल पुकेसर पाए जाते हे। उन्हे पुलिगी फूल कहते हैं। परंतु अधिकतर फूलो मे पुकेसर और अडप दोनो ही पाए जाते हैं और ऐसे फूलों को उभयलिंगी पुष्प कहते हैं।

(२) दूसरे प्रकार के प्रजननवाले अग अडप कहलाते है और उनके अंदर बीजाड बनता है। कुछ फूलों मे केवल अंडप पाए जाते हैं और इन्हे मादा पुष्प कहते है। नर और मादा फूल मक्का तथा ताड के वृक्ष पर अलग अलग पाए जाते हैं (फलक पर देखें चित्र २७)।

कुछ पुष्पधारी पौधों मे पुष्प बहुत ही छोटे होते है और इन्हे देखने के लिये लेंस का उपयोग करना पडता है। इस प्रकार के फूल सूर्यमुखी तथा पीपल वर्ग के पौधो मे पाए जाते हैं, परतु कुछ पौधो मे तो काफी बड़े फूल पाए जाते है, जैसे रेफलीसिया के पौधो मे एक फूल लगभग एक मीटर व्यास तक का होता है।

चित्र २८. त्रिज्यासममित पुष्प (गुलाब का फूल)

फूल के आकार— बाहर से देखने पर कुछ फूल सुडौल दिखाई पड़ते हैं और वे लबवत् दो बराबर भागो में किसी भी दिशा से काटे

जा सकते हैं। ऐसे फूलों को त्रिज्यासममित (Actinomorphic) कहते हैं, जैसे कमल या गुलाब के पुष्प।

दूसरे किस्म के फूल, जैसे मटर या डेलकोनियम का फूल केवल दो बराबर भागों में लंबवत् काटे जा सकते हैं। इन्हें एकव्याससममित (Zygomorphic) कहते हैं। तीसरे प्रकार के फूल, जैसे बैजयंती या हल्दी का फूल किसी भी तरह लंबवत् बराबर भागों में नही बाँटे जा सकते। अतः इन्हें बेडौल असममित पुष्प कहते हैं।
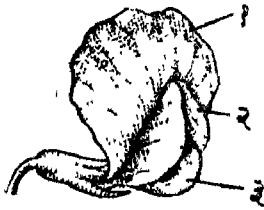
चित्र २९. एकव्याससममित पुष्प
(मटर का फूल)

१. ध्वज (vexillum), २. ऐली (alae) तथा ३. नौतल (carina)

चित्र ३०. असममित फूल
(बैजयंती का फूल)

१. ओष्ठक बंध्यपुकेसर, २.पराग-कोश, ३. स्त्रीकेसर, ४. तथा ५. बंध्यपुकेसर, ६. दल, ७. बाह्यदल-पुंज एवं ८. अंडाशय।

फूल का वर्णन — ऐसे तो फूल का वर्णन उसके रूप, रंग तथा गंध से होता है पर वैज्ञानिक आधार पर हम पुष्पवर्णन में निम्न-लिखित बातो का ध्यान रखते हैं :

(क) सहपत्र — यदि फूल में सहपत्र है, तो उसे सहपत्री और यदि सहपत्र नहीं है तो सहपत्ररहित पुष्प कहेंगे।

(ख) बाह्य आकार — वर्णन किए हुए उपर्युक्त तीनों आकारों में से जो भी आकार हो उसका उल्लेख करेंगे।

(ग) लिंगभेद — नर, मादा अथवा उभयलिंगी जैसा भी पुष्प हो उसका उल्लेख करेंगे।

(घ) पुष्पवृंत — यदि फूल में वृंत है तो उसे वृंतसहित और नही है तो अवृंत कहेंगे।

(च) पुष्पासन — वर्णन किए हुए तीनों प्रकारों में से जो भी आकार हो उसका उल्लेख करेंगे।

(छ) बाह्यदलपुंज — वर्णन किए हुए प्रकारों में से जिस किस्म का हो उसका उल्लेख। कुछ पुष्पों मे बाह्यदलपुंज के अलावा पुष्प के बाहरी भाग मे उसी प्रकार की छोटी छोटी और भी पंखुड़ियाँ पाई जाती है। इन्हें एपिकैलिक्स (Epicalyx) कहते है, जैसे गुड़हल तथा कपास के फूल में। एपिकैलिक्स की सख्या तथा रंग को भी बताना चाहिए।

(ज) दलपुंज— जिस प्रकार बाह्यदलपुंज का वर्णन होता है उसी प्रकार दलपुंज का भी वर्णन होता है।

(झ) पुंमग — इसका उल्लेख उसी प्रकार होगा जैसा आगे वर्णन किया गया है।

(ट) जायाग — इसका वर्णन आगे किया गया है।

इस प्रकार पुष्पवर्णन के पश्चात् उसके नीचे पुष्पचित्र तथा पुष्पसूत्र लिखना चाहिए। पुष्पचित्र से हमे फूल के बाह्य आकार तथा सभी प्रकार की पंखुड़ियो का आपस मे संबंध तथा स्थानभेद का पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाता है। पुष्पवर्णन पूरा तभी होता है, जब पुष्पचित्र के नीचे पुष्पसूत्र दे देते हैं। इसमे कुछ चिह्न तथा अंकों द्वारा ही पुष्प का वर्णन कर देते हैं। चिह्न निम्न प्रकार दर्शाए जाते हैं :

बाह्य आकार {
- ⊕ त्रिज्या सममित
- ·|· एक व्याससममित

लिंग भेद {
- ♂ नरपुष्प
- ♀ मादापुष्प
- ⚥ उभयलिंगी पुष्प

बाह्यदलपुंज — के० कैलिक्स
- ५ सख्या, ५ अलग अलग
- ५ सख्या, ५ आपस मे मिले हुए

दलपुंज — क० करोला
- ५ संख्या, ५ अलग अलग
- ५ संख्या, ५ आपस मे मिले हुए.

पुमंग — ऐ० ऐथर या स्टेमन्स
- ५ संख्या, ५ अलग अलग
- ५ सख्या, ५ आपस मे मिले हुए,
- ९+१ सख्या ९ आपस मे मिले हुए तथा १ अलग
- ५+५ दस पुकेसर अलग अलग दो दायरे मे
- क० ए. दललग्न पुकेसर

जायाग — गा० अंडप
- ५ संख्या ५ अंडप, वियुक्तांडपी
- (५) संख्या ५ अंडप, युक्तांडपी
- (५) संख्या ५ अंडप, युक्तांडपी और निम्न जायांग
- (५) संख्या ५ अंडप, उत्तम जायांग

अभी तक पुष्प के बाह्य रूप का वर्णन किया गया है। अब यह भी बताया जाएगा कि पुष्प में कहाँ और कैसे नर तथा मादा युग्मकों

फूल (देखें पृष्ठ १२१-१२३)
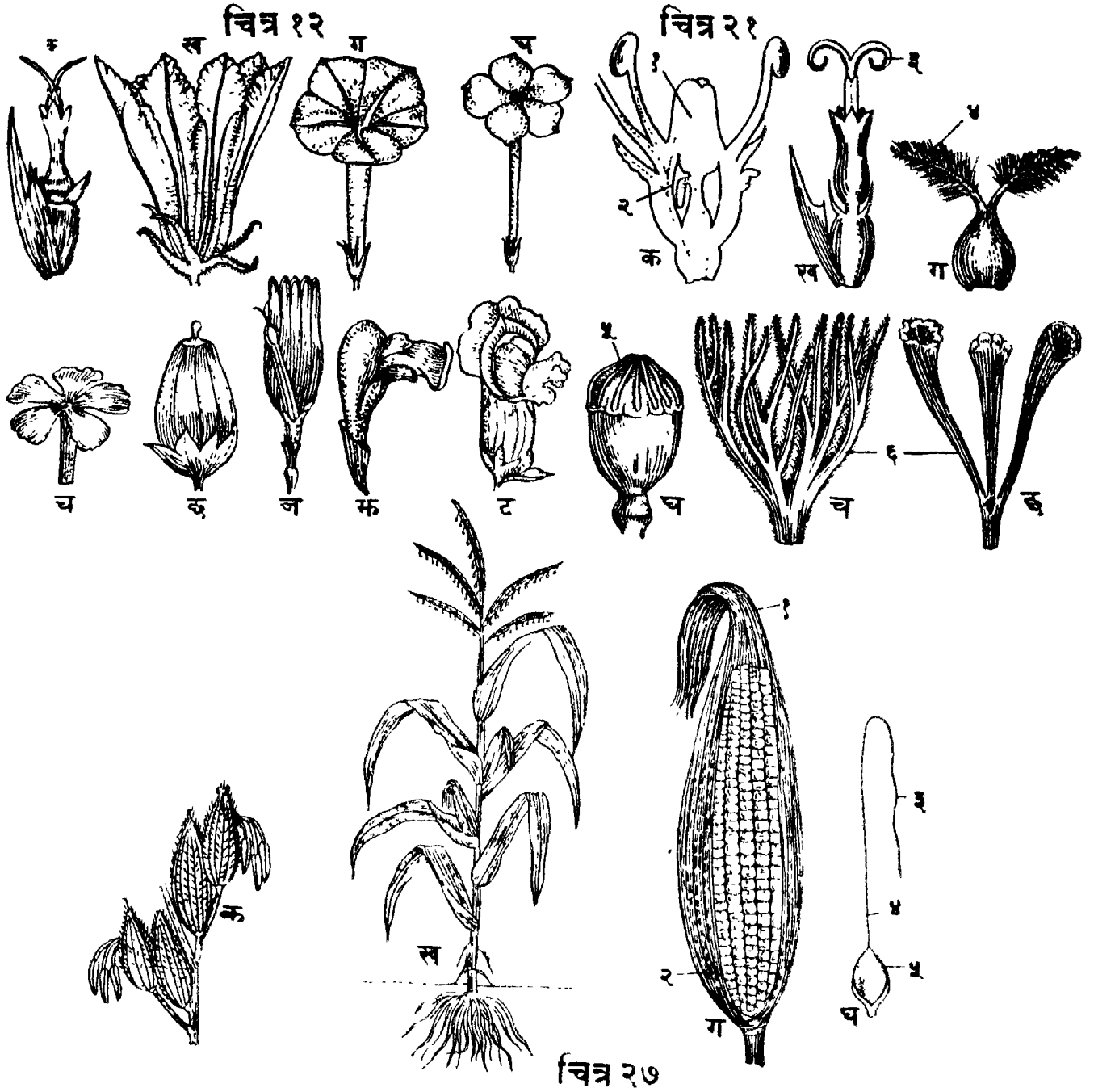
चित्र १२. (देखें पृष्ठ १२१) संयुक्तदली दलपुंज : क. सूर्यमुखी के बिंबपुष्पक में नलिकाकार; ख. कुकरबिटा (Cucurbita) में घंटाकार; ग. आइपोमिया (Ipomea) में कीपाकार, घ. विंका (Vinca) में अधःकटोराकार, च. निक्टैंथीज (Nyctanthes) में चक्राकार; छ. ब्रायोफिलम (Bryophyllum) मे कुंभाकार; ज. गेंदे के अरपुष्पक में जीभिकाकार, झ. ल्यूकस (Leucas) में द्विओष्ठी तथा ट. स्नैपड्रैगन में मुँहबंद।

चित्र २१. (देखें पृष्ठ १२२) विविध वर्तिकाग्र : क. सैंब्यूकस निग्रा (Sambucus nigra) में अवृंत; ख. सूर्यमुखी में द्विशाखित; ग. धान में द्विशाखित तथा पिच्छयुक्त; घ. पोस्ते में रेखित तथा अवृंत; च. बिगोनिया (Begonia) में अत्यधिक शाखित तथा छ. केसर में कीपाकार। १, ३, ४, ५ और ६. वर्तिकाग्र तथा २. अंडाशय।

चित्र २७. (देखें पृष्ठ १२३) नर तथा मादा फूल (मक्का का पौधा). क. युग्मित नर अनुशूकी; ख. मक्का का पौधा; ग. स्त्रीकेसरी पुष्पक्रम तथा घ. मादा पुष्प। १. रेशम, २. स्पेथ, ३. वर्तिकाग्र, ४. वर्तिका और ५. अंडाशय।

का निर्माण होता है और ये दोनों आपस में कैसे संयोग कर फल और बीज बनाते हैं, जिससे वंश बढ़ता है।

परागकण तथा नरयुग्मक का बनना — नवजात पुंकेसर में जब परागकोश बनने लगता है, तब उन ग्रंथियों के अंदर दो प्रकार की कोशिकाएँ पाई जाती हैं : (१) बाहर की तरफ छोटी कोशिकाएँ तथा (२) भीतर की तरफ कुछ बड़ी बड़ी कोशिकाएँ। जो कोशिकाएँ कुछ बड़ी होती हैं, उन्हीं में से हर एक मे चार चार परागकण बनते हैं। हर परागकण में दो केंद्रक और बाहर की तरफ दीवार बन जाती है। इसी अवस्था में परागकोश फटते है और परागकण बाहर निकल आते हैं। ये हवा तथा कीटों द्वारा एक फूल से दूसरे फूल के वर्तिकाग्र तक पहुँच जाते हैं (फलक पर चित्र ३१. देखें)। यहाँ कुछ देर में परागकण की दीवार को फाड़कर एक परागनलिका (pollen tube) निकलती है, जो वर्तिका के अंदर बढ़ने लगती है और जब यह नलिका कुछ बड़ी हो जाती है, तब परागकेसर का एक केंद्रक विभाजित होकर दो नर युग्मक बनता है। अत. हर एक परागकण से दो नर युग्मक बनते हैं (फलक पर चित्र ३२ देखें)।

भ्रूणकोश (Embryosac) का निर्माण — नवजात अंडाशय में एक अथवा अनेक बीजांड पाए जाते हैं। हर एक बीजांड गोलाकार होता है। उसके बाहरी भाग में दो पर्त की दीवार रहती है, जिससे घिरा हुआ अंदर की ओर बीजांडकाय होता है (फलक पर चित्र ३३ देखे)।

शुरू में बीजांडकाय की सभी कोशिकाएँ एक प्रकार की होती है, परंतु कुछ समय बाद प्राय: एककोशिका बड़ी हो जाती है और यह चार कोशिकाओ में विभाजित हो जाती है। इन्ही चारों में से एक कोशिका बढ़ने लगती है और बाकी तीन मर जाती हैं। यही बढ़ती हुई कोशिका भ्रूणकोश बनाती है, जो एक थैले के आकार का हो जाता है। इसका केंद्रक तीन बार विभाजित होकर आठ केंद्रको को बनाता है, जिनमें से एक मादा युग्मक (female gamete) बनाता है (फलक पर चित्र ३४ देखे)।

मादा युग्मक चारो तरफ से बंद अंडाशय में सुरक्षित रहता है, परंतु परागकण परागकोशों से बाहर निकलकर कुछ समय के लिये फूल से एकदम अलग हो जाते हैं और वर्तिकाग्र पर पहुँचने के लिये ये वायु, कीटो अथवा मक्खियो पर आश्रित रहते है। परागकोशों के वर्तिकाग्र पर पहुँचने की क्रिया को परागण (Pollination) कहते हैं।

परागण — पुष्पों में परागण कीटों, शहद की मक्खियो, चिड़ियों तथा जानवरों द्वारा होता है। परागकण इनके द्वारा एक फूल से दूसरे फूल के वर्तिकाग्र तक पहुँचते है। जब एक फूल का पराग उसी फूल के वर्तिकाग्र पर गिरता है, तो उसे स्वयंपरागण (Self-pollination) कहते है। जब दूसरे फूल का पराग किसी और फूल के वर्तिकाग्र पर पड़ता है, तो उसे परपरागण (Cross-pollination) कहते हैं। एक ही जाति के परागकण उसी जाति के वर्तिकाग्र पर गिरने से परागनलिका तथा नरयुग्मक बनते हैं। हर एक किस्म के फूल का परागकण हर किस्म के वर्तिकाग्र पर परागनलिका नहीं बना पाता। ऐसा देखा गया है कि वर्तिकाग्र पर एक प्रकार का रस निकलता है, जो परागकणों को जागृत कर देता है और उनमें से परागनलिका तथा युग्मक बनने लगता है (देखें परागण)।

निषेचन (Fertilization) — जैसा ऊपर बताया गया है, हर एक परागकण से उसकी परागनलिका मे दो नर युग्मक बनते हैं। परागनलिका वर्तिकाग्र से होती हुई अंडाशय में जाती है और उसमे स्थित बीजांड के बीजांडकाय मे से होती हुई भ्रूणकोश के

चित्र ३५. निषेचन
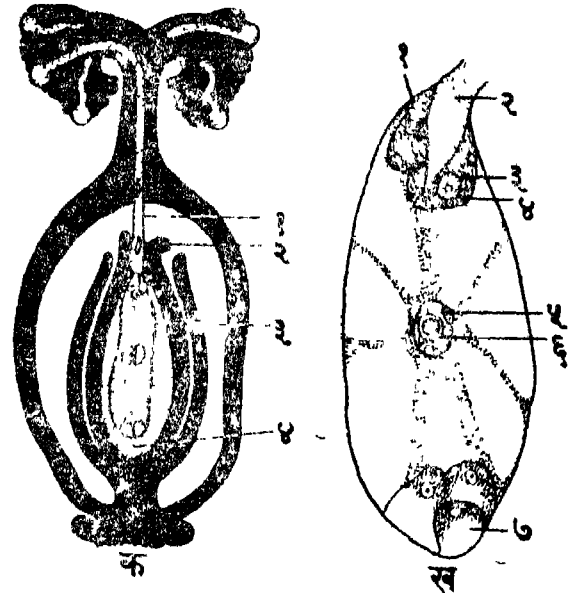
क. अडद्वारी प्रवेश : १.पराग नली, २. बीजांडद्वार, ३. भ्रूणकोश तथा ४. निभाग; ख. निषेचन : १. सहायक कोशिका २. परागनली, ३. तथा ५. युग्मक, ४. अंड, ६. संयुक्त केंद्रक और ७. प्रतिमुख कोशिका।

अंदर घुस जाती है। वहाँ पहुँचने पर नलिका का अग्रिम भाग फूट जाता है और दोनों नर युग्मक भ्रूणकोश में निकल पड़ते हैं। इन दोनो मे से एक नर युग्मक मादा युग्मक से तथा दूसरा दो अन्य केंद्रकों से घुल मिल जाता है। इस प्रकार नर तथा मादा युग्मक आपस मे एक दूसरे से मिलते हैं। इस क्रिया को ही निषेचन कहा जाता है।

अकुरोत्पत्ति तथा फल और बीज का बनना — पुष्प मे परागण के पश्चात् बाहरी पंखुड़ियाँ तथा पुंकेसर मुरझा जाते है। जायाग में वर्तिकाग्र और वर्तिका भी परागनलिका के बाद सूखने लगती है, परंतु पुष्पवृंत, पुष्पासन और अडाशय बढ़ने लगते है। अंडाशय और पुष्पासन बढ़कर फल बन जाते है। अडाशय के अदर बीजांड निषेचन के उपरात बढ़ जाते है और बीज बनाते है।

बीजांड में नर तथा मादा युग्मक के मिलने से युग्मनज बनता है जिससे भ्रूण का निर्माण होता है। दूसरा युग्मक जो बीजांड के दो और केंद्रकों के साथ मिल जाता है उससे बीज के अदर भ्रूणपोष (endosperm) बनता है। भ्रूणपोष से भ्रूण अपना खाना प्राप्त करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुष्प एक ऐसा विकसित भाग है जहाँ नर तथा मादा युग्मक का निर्माण होता है और अनेक क्रियाओ के बाद फल और बीज बनता है।

पुष्प का बनना — पुष्प पौधो पर कब और किस अवस्था मे बनता है, इसका पूर्ण ज्ञान तो हमे अभी नही है, पर कुछ वैज्ञानिको

ने यह दिखलाया है कि पौधों की पूर्ण विकसित पत्तियों में एक प्रकार का हारमोन जिसे 'फ्लोरिजेन' कहते हैं, बनता है। यही पदार्थ तने के ऊपरी भाग की तरफ जाता है और कली को पुष्पकली मे परिवर्तित करता है। यदि फ्लोरिजेन न बने, तो कलियो से शाखाएँ बन जाती है। यह भी कहा जाता है कि फ्लोरिजेन के बनने मे पौधों की आयु तथा वातावरण का भारी प्रभाव पड़ता है। फ्लोरिजेन का बनना दिन की लंबाई पर निर्भर है। इसी से कुछ पौधे गरमी में तथा कुछ जाड़ो मे फूलते हैं और उन्हें दीर्घ तथा क्षीण दिवसीय पौधे कहते हैं। कुछ पौधो के फूलों में दिवस की लबाई का असर नहीं होता और वे साल भर फूलते रहते हैं, अतः उन्हे अनिर्धारित पौधे कहते हैं।

फ्लोरिजेन के अलावा दो, तीन, पाँच, त्रिइंडोबेनजोइक अम्ल से पौधे को सींचने पर पुष्प बनने लगते हैं। कभी कभी तो फूल को मुमाइश में निर्धारित समय पर खिलाने के लिये इस अम्ल का प्रयोग भी करते हैं।

पुष्प का खिलना प्रकाश तथा ताप पर निर्भर करता है। कुछ पुष्प तो हमेशा एक ही समय पर और खास मौसम मे खिलते है। घने विषुवतीय जंगलों में जहाँ बारहो महीने एक सा मौसम रहता है, कुछ पौधे ऐसे हैं जो हर साल एक विशेष महीने में खिलते है। वहाँ के निवासी उन फूलों को देखकर महीने का नाम बता देते है।

कुछ फूल केवल दिन को खिलते हैं, जैसे कमल आदि, और कुछ फूल रात को खिलते है, जैसे कुमुदिनी, तथा कुछ सुबह के समय खिलते है, जैसे शंखपुष्पी और 'पार्टुलाका'। कुछ पौधो में उनके जीवनकाल मे एक ही बार फूल लगता है, जैसे केला तथा बाँस में, और फूलने फलने के बाद वे मर जाते हैं। अतः फूल का खिलना वातावरण पर निर्भर करता है। किन्ही किन्ही फूलों का तो रंग भी क्षार परिवर्तन से सुबह से शाम तक बदलता रहता है।

पुष्पक्रम (Inflorescence) — यदि पुष्प तने की शीर्षस्थ कलिका के स्थान पर मिलता है, तो उसे शीर्षस्थ कहते है। पर जब पुष्प तने के कक्ष पर मिलता है, तो उसे कक्षीय कहते हैं। प्राय कई पुष्प एक ही पुष्पक्रमाक्ष पर पाए जाते है और उन्हे निम्नलिखित प्रकार वर्गीकृत किया जाता है :

(१) पुष्प तने पर शीर्षस्थ कलिका के स्थान पर रहता है और तने का बढ़ाव कक्षीय कलिका से होता है। ऐसे पुष्पक्रम को ससीमाक्षी (Cymose) कहते हैं।

(२) पुष्प तने अथवा डठल पर कक्षीय कलिका के स्थान पर रहता है और तने का बढ़ाव शीर्षस्थ कलिका द्वारा होता है। ऐसे पुष्पक्रम को असीमाक्षी (Racemose) कहते हैं।

(३) जब ऊपर बताए गए दोनों प्रकारों के मिले जुले पुष्पक्रम बनते हैं, तब उसे मिश्रित (Mixed) पुष्पक्रम कहते हैं। इन तीनों पुष्पक्रमो का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है, जो चित्रों द्वारा भी दर्शाया गया है :

१. ससीमाक्षी : (क) पुष्प अकेला तथा शीर्षस्थ, (ख) पुष्प एक से अधिक तथा (ग) एक ही गुच्छ डंठल पर (फलक पर चित्र ३६ देखें)। और (अ) चक्राकार : पुष्पवृंत लबा, पुष्पवृंत संकुचित (फलक चित्र ३७ देखें)।

(ब) वृश्चिकी : डंठल लंबा, डंठल संकुचित (फलक पर चित्र ३८ देखें)।

(स) द्विबाहु ससीमाक्ष : डठल लबा, डठल सकुचित, (फलक पर चित्र ३९ देखें)।

(द) ससीमाक्ष (फलक पर चित्र ४० देखें)।

२. असीमाक्षी . (क) पुष्प अकेला तथा कक्षीय (फलक पर चित्र ४१ देखे।); (ख) सवृंत पुष्प एक साथ असीमाक्ष, समशिख (corymb) तथा पुष्पछत्र (umbel) [फलक पर क्रमशः ४२, ४३ तथा चित्र ४४ देखे]।

(ग) अनेक अवृंत पुष्प एक साथ थोड़े लबे पुष्पक्रमाक्ष पर :

(अ) स्पाइक (spike, फलक पर चित्र ४५ देखें), कैटकिन (catkin, फलक पर चित्र ४६ देखे), स्पैडिक्स (spadix, फलक पर चित्र ४७ देखे)। (ब) गेदाकार (फलक पर चित्र ४८ देखे)।

(घ) बहुअसीमाक्षी (फलक, पर चित्र ४९ देखे) :

(अ) बहुस्पाइक (फलक पर चित्र ५० देखें), (ब) बहुस्पेडिक्स (फलक पर चित्र ५१ देखे) तथा (स) बहुपुष्पछत्र (फलक पर चित्र ५२ देखे)।

३ मिश्रित . पेनिकिल (फलक पर चित्र ५३ देखे)।

फूल का उपयोग — वर्णसंकर पौधो को बनाने के लिये एक पुष्प के परागकण को लेकर दूसरे पुष्प के वर्तिकाग्र पर रखते है। इस प्रकार जो बीज बनता है, उससे हम अच्छे पौधे पाते है। परागण के द्वारा पौधो के कुछ उपयोगी गुणों को हम अपनी भलाई के लिये, एक से दूसरे पौधे मे ला सकते है। इस प्रकार हम अच्छे बीज तथा फल और फूलवाले पौधो को बना सकते है।

पुष्प के प्राय सभी भाग खाद्य, ओषधि, रंग अथवा गध बनाने के काम मे लाए जाते है। बीज तथा फल से तेल निकाला जाता है, जो खाने तथा साबुन आदि बनाने के काम मे आता है। महुआ के दलपुंज को सुखाकर लोग खाते है और उसे पानी मे सडाकर शराब भी बनाते है। गोभी के फूल को खाते है। गुलाब की पखुडियो का गुलकद बनाया जाता है, जो कब्ज की दवा है। केसर और पलास के फूलो से रंग निकलता है। इत्र इत्यादि अनेक फूलों से निकाले जाते है। कही कहीं, तो पुष्प की बड़े पैमाने पर खेती होती है और बेल्जियम तथा हालैंड मे डैफोडिल के फूलो के व्यापार से काफी आमदनी है। हमारे देश मे भी पुष्पो की भारी खपत देवपूजा और सजावट के कार्यों मे होती है।

आदिकाल से ही पुष्प अपनी गध तथा सुदरता के कारण देवता तथा मनुष्य का प्रसन्न करने के हेतु उपयोग मे लाया जाता है। अनेक राष्ट्रो ने पुष्प को राज्यचिह्न के रूप मे मान्यता दी है।

आजकल पुष्प को चिरकाल तक रखने के लिये ऐसे मसालों तथा तरीको का उपयोग करते है कि कोई भी पुष्प काफी समय तक अपने रंग रूप को बनाए रखता है। यदि ताजे पुष्प कागज के डब्बों मे भरकर डीपफ्रीज़ मे −१०° सें० पर रख दिए जाएँ, तो वे लगभग एक साल तक अपने रगरूप को बनाए रखते हैं। ऐसे रखे हुए पुष्प ठढ मे जमे रहते है। जब भी उन्हे पानी में डाल दिया जाता है,

वे थोड़े समय के लिये ताजे हो जाते हैं। पुष्पों को प्लास्टिक ब्लाक में भी सील कर देने से बहुत समय तक ठीक हालत में रखा जा सकता है। पुष्प को कागज से दबाकर संग्रहालयों में रखते हैं। इस प्रकार भी उनका रंग काफी समय तक बना रहता है। नीचे लिखे हुए तरीके से भी हम पुष्प तथा रंगीन फलों को रख सकते है। फॉर्मेलिन (Formalin) के ४ % विलयन में १० % साफ शक्कर मिलाकर उसमे फूल या फल रखे, अथवा नीचे लिखे विलयन को बना ले :

आसुत पानी ४,००० घन सेंमी०
जिंक क्लोराइड २०० ग्राम
फॉर्मेलिन ४० % १०० घन सेंमी०
ग्लिसरीन १०० घन सेमी०

जिंक क्लोराइड को गरम आसुत पानी मे घुलाना चाहिए और छानकर ठंढा हो जाने पर ही उसमें फॉर्मेलिन तथा ग्लिसरीन डालना चाहिए। वनस्पति संग्रहालय (herbarium) में रंगीन फूलों को इन मोम के कागज मे दबाकर रखना चाहिए। इससे उसका रंग अधिक समय तक बना रहता है। पहले तो लोग फूलो के रंगीन चित्र भी बनाकर रखते थे, जिससे उनके रंग रूप का भी आभास होता था। ये चित्र जल अथवा तैल रँगों से रँगे जाते थे और केवल कुछ ही लोग उन्हें बना पाते थे। अब तो रंगीन फिल्म का उपयोग कर फोटोग्राफी द्वारा हम किसी भी पुष्प का चित्र खींचकर रख सकते है। ये चित्र फूल के रूप रंग को भली प्रकार दर्शाते है। पुष्प पशुओं तथा मनुष्यों को आकर्षित करते है। [कै० चं० मि०]

फूल और कसकुट मिश्र धातुएँ है, जो दो से अधिक धातुओं के मेल से बनती है। भारत, चीन, मिस्र और यूनान आदि देशों को इनका ज्ञान बहुत प्राचीन काल से है और प्राचीन खंडहरों की खुदाई में इनके पात्र, हथियार और मूर्तियाँ पाई गई है। धातुओ की विभिन्न मात्राओं के कारण उनके रंग और अन्य गुणो मे विभिन्नता पाई जाती है। पाश्चात्य देशो मे फूल से मिलती जुलती मिश्रधातु को प्यूटर (Peuter) कहते है। फूल वंग और सीस की मिश्रधातु है, पर उसमे कभी कभी ताँबा या पीतल भी मिला रहता है। नीली आभा लिये यह सफेद होता है। प्राचीन काल में गिरजाघरों के घंटे इसी के बनते थे। बाद में अन्य सामान भी बनने लगे। १७ वी और १८वी शताब्दी मे तो इसका उपयोग बहुत व्यापक हो गया था और उस समय या उसके पूर्व के बने अनेक सादे या सुंदर चित्रित प्याले, कलश, गिलास, सुराही, शमादान, मदिराचषक, थाल इत्यादि पाए गए है। एक समय फूल के पात्रो का उपयोग प्रतिष्ठासूचक समझा जाता था और इनका निर्माण अनेक देशो और नगरो में होता था।

भारत मे फूल का अस्तित्व पीतल से पुराना है। यहाँ इसका उत्पादन व्यापक रूप से होता था, पर आज अकलुष इस्पात के बनने के कारण इसका उत्पादन बहुत कम हो गया है और दिन प्रति दिन कम हो रहा है। गाँवों मे भी फूल के बरतनो का विशेष प्रचलन है और भारत के अनेक राज्यो, जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और बंगाल मे इसका उत्पादन होता है।

फूल में ८० प्रति शत सीसा या ताँबा और २० प्रति शत वंग रहता है। इनकी मात्रा मे विभिन्नता के कारण फूल के रंग मे विभिन्नता होती है। इन धातुओं को मिलाकर, ग्रैफाइट की मूषा में गलाकर मिश्रधातु बनाते हैं, जिसे पिंडक (ingot) के रूप में ढाला जाता है। पिंडक को बेलन मिल मे रखकर वृत्ताकार बनाते हैं. जिसकी परिधि ८ इंच से ४८ इंच तक की होती है। सल्फ्यूरिक अम्ल के विलयन के साथ उपचारित कर उसकी सफाई करते हैं। पिंडो को काट काटकर कारीगर सामानो का निर्माण करता है। इसके लिये हाथ का प्रेस या स्वचालित प्रेस प्रयुक्त होता है। हाथ के औजारों से इसपर कार्य होता है। चादरो को पीट पाटकर आवश्यक रूप देते हैं। इस प्रकार बने अपरिष्कृत पात्र को हाथ से, या चरख (हाथ से खींची जानेवाली खराद) से, खुरचकर सुंदर बनाते हैं। खुरचने का औजार उच्चगति इस्पात का बना होता है। साँचा ढलाई से भी फूल के बरतन बनते हैं। इसके लिये साँचा, फर्मा और पैटर्न प्रयुक्त होते है। ऐसे बने बरतन भारी होते हैं और छिलाई, ढलाई में कच्चे माल की अधिक हानि होती है। जहाँ बेलन मिल नही है वहाँ ढलाई के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नही है।

कसकुट, ताँबे और जस्ते की मिश्रधातु है (देखें काँसा)। कसकुट के सामान भी वैसे ही बनते हैं, जैसे फूल और पीतल के।

[शि० शं० कुं०]

फूशुन स्थिति ४१° ५५' उ० अ० तथा १२३° ५५' पू० दे०। यह उत्तर-पूर्वी चीन के लिओऔनिंग प्रदेश में मुकेडेन के पूर्व २० मील की दूरी पर स्थित पूर्वी मंचूरिया का एक प्रमुख नगर है, जिसके विकास मे रूसियो एवं जापानियो का काफी योगदान रहा है। यह चीन का द्वितीय सबसे बडा कोयला उत्पादक केंद्र है। इस कोयले से से मुकेडेन तथा आनशान के धातु एवं अन्य उद्योगो की माँग की पूर्ति होती है। फूशुन स्वयं प्रसिद्ध औद्योगिक केंद्र है, तथा सैनिक दृष्टि से चीन के पाँच नगरो मे से एक है। इसके निकट ही खनिज तेल भी पाया जाता है। सन् १९५४ से चीनी सरकार ने इसके खनिज तेल के उत्पादन की वृद्धि के लिये अनेक सक्रिय कदम उठाए हैं। यहाँ की जनसख्या ९,८५,००० (१९५७) है। इसी नाम का एक नगर चीन के सचवान (Szechwan) प्रांत में भी है।

[ले० रा० सिं०]

फूसान स्थिति ३५° १०' उ० अ० तथा १२९° ०' पू० दे०। यह दक्षिण-पूर्वी कोरिया का प्रसिद्ध नगर एवं बंदरगाह है। सन् १८७६ की संधि के द्वारा यह वस्तुतः जापानी नगर बन गया था तथा इसका समस्त व्यापार जापानियों के हाथों मे चला गया था। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इसे कोरिया की अस्थायी राजधानी भी बनाया गया था। गत वर्षों मे फूसान ने औद्योगिक एवं व्यापारिक क्षेत्रों मे बहुत प्रगति की है। इसके प्रमुख निर्यात चावल, सोयाबीन, कपास, खालें आदि है तथा प्रमुख आयात मशीनरी, औद्योगिक सामान, पेट्रोल तथा नमक आदि है। यहाँ की जनसंख्या ११,६३,६७१ (१९६०) है। [ले० रा० सिं०]

फेडरैल डिस्ट्रिक्ट (Federal District) ऐसे जिले हैं, जो किसी देश की राष्ट्रीय सरकार द्वारा अन्य जिलो से पृथक् नियत कर दिए जाते है। संसार के संघीय राष्ट्रीय सरकारोंवाले देशों मे, केंद्रीय सरकार के तत्वावधान मे ऐसे जिले स्थापित किए जाते है एवं इनमें संघीय राजधानी पृथक् स्थापित की जाती है। भारत में दिल्ली क्षेत्र

वस्तुत: एक फेडरैल डिस्ट्रिक्ट ही है। विभिन्न फेडरैल डिस्ट्रिक्टों का क्षेत्रफल तथा जनसंख्या इस प्रकार है :

क्षेत्र का नाम	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	जनसंख्या
आस्ट्रेलियन कैपिटल क्षेत्र (ऑस्ट्रेलिया)	६११	७३,४५९ (सन् १९६३)
डिस्ट्रिक्ट ऑव कोलंबिया (संयुक्तराज्य, अमरीका)	६१	७,६३,९५६ (सन् १९६३)
ओटावा फेडरैल राजधानी (कैनाडा)		३,४०,१७२ (सन् १९६२)
फेडरैल कैपिटल (ब्येनस आइरिज़) (अर्जेंटीना)	७५	३८,७५,७०० (सन् १९६०)
फेडरैल डिस्ट्रिक्ट (ब्राजिलिया) (ब्राज़िल)	२,२६६	१,४१,७४२ (सन् १९६०)
स्पेशल डिस्ट्रिक्ट (बोगोटा) (कोलंबिया)	६,०३८	२१,२१,६८० (सन् १९६०)
फेडरैल डिस्ट्रिक्ट (काराकास) (वेनिज्वीला)	७४५	१२,५७,५१५ (सन् १९६०)
डिस्ट्रिक्टो फेडरैल (मेक्सिको)	५७९	४८,७०,८७६ (सन् १९६०)
बर्न (स्विट्ज़रलैंड)	२,६८८	६,५२,३०४ (सन् १९६०)

[ले० रा० सिं०]

फेनिल पेय (Aerated water), अथवा कार्बोनेटेड जल, वस्तुत मद्यरहित पेय होते है, जिन्हे विभिन्न दाब पर कार्बोनिक गैस या कार्बन डाइऑक्साइड से कृत्रिम रूप मे संतृप्त किया जाता है। सामान्यत: पेय पदार्थों को लवण, शर्करा तथा स्वादसार एवं सुगंधसार पदार्थों के निश्चित परिमाण को मिश्रित करके बनाया जाता है। फेनिल पेय का प्रयोग औषधों एवं सामान्य पेय पदार्थों दोनों के रूप में होता है। फेनिल पेय को दो वर्गों मे विभाजित किया जाता है : एक वर्ग के फेनिल पेय को सामान्य फेनिल पेय कहते हैं। इसमे सामान्यत: कार्बोनिक अम्ल गैसयुक्त जल तथा अल्प मात्रा में नमक एव अन्य खनिज लवणों का संमिश्रण होता है। सामान्य फेनिल पेय का स्वाद नमक के कारण खारा होता है। इस वर्ग के फेनिल पेय को सामान्य भाषा मे सोडा जल, या खारा पानी, कहा जाता है। स्वाद एवं लवणों की विशेषता के कारण इनमें तथा प्राकृतिक खनिज जल में सादृश्य होता है। वस्तुत. सामान्य फेनिल पेय का निर्माण प्राकृतिक खनिज जल को कृत्रिम रूप में उत्पन्न करने के प्रयासों के कारण संभव हो सका है। दूसरे वर्ग के फेनिल पेय को सामान्य भाषा में लेमनेड जल, या मीठा पानी, अथवा मृदुपेय, कहा जाता है। इसमे कार्बोनेटेड जल के अतिरिक्त सुगंधसार एवं स्वादसार कारकों का विशेष रूप मे प्रयोग होता है तथा अल्प मात्रा में शर्करा अथवा सैकरीन घुला होता है। इसके अतिरिक्त इस वर्ग के फेनिल पेय में प्राकृतिक स्वाद उत्पन्न करने के लिये फल, पुष्प, कंद, मूल एवं पत्तियों के रसों या सारों का प्रयोग होता है। आधुनिक काल में कृत्रिम स्वादसार कारकों का उपयोग अधिकाधिक होने लगा है।

फेनिल पेय को बोतलों मे बंद करने के समय १०० से १२० पाउंड दाब का उपयोग किया जाता है, जिससे बोतल के अंदर ४५ से ५५ पाउड तक दाब उत्पन्न होती है। इस प्रकार के फेनिल पेय की बोतलों के खोलने पर गैस की दाब के कारण बुदबुदन प्रारंभ हो जाता है और पेय से कार्बन डाइऑक्साइड गैस की अधिकांश मात्रा (जल में कुछ घुली हुई गैस को छोड़कर) निकल जाती है। इस क्रिया मे अधिक समय नही लगता। अत. ऐसे पेय पदार्थों की माँग बढ़ गई है जिनसे बुदबुदन की यह क्रिया अधिक समय तक होती रहे और फेनिल पेय के ऊपरी तल पर फेनयुक्त दशा अधिक समय तक बनी रहे। इस दशा को उत्पन्न करने में सैपोनिन नामक वानस्पतिक उत्पाद का प्रयोग किया जाता है। यह पदार्थ वनस्पति एवं पेड पौधो की छाल के निष्कर्ष से प्राप्त होता है तथा इसकी अल्प मात्रा फेनिल पेय मे मिश्रित करने से पेय के ऊपरी तल पर फेनिल दशा अधिक समय तक बनी रहती है। सैपोनिन के ग्लुकोसाइड पदार्थों के कारण इसके उपयोग से हानिकर प्रभाव उत्पन्न हो सकते है। अतः इनका उपयोग सीमित मात्रा मे ही होता है।

फेनिल पेय के कार्बोनीटीकरण की सामान्य रीति में भरे हुए जल मे बल पप की सहायता से कार्बन डाइऑक्साइड को संपीडित किया जाता है। इस रीति का प्रयोग सर्वप्रथम १७९० ई० में पॉल नामक वैज्ञानिक ने फेनिल पेय के व्यापारिक निर्माण के लिये जेनेवा मे किया था। अत फेनिल पेय के निर्माण की इस रीति को जेनेवा-प्रक्रम भी कहा जाता है। निर्माण की यह रीति घान प्रक्रम पर आधारित होने के कारण अधिक सफल नही हो सकी और शीघ्र ही वैज्ञानिकों ने सततप्रक्रम को विकसित कर लिया। व्यापारिक आधार पर सतत प्रक्रम द्वारा फेनिल पेय के निर्माण की रीति की खोज निकालने का श्रेय हैमिल्टन नामक वैज्ञानिक को है। ब्राह्मा नामक वैज्ञानिक ने सततप्रक्रम मे विशेष सुधार किया था। कम लागत तथा छोटे आधार पर फेनिल पेय के व्यापारिक निर्माण में अभी भी घान प्रक्रम का प्रयोग होता है, परंतु बड़े पैमाने पर सतत प्रक्रम का ही प्रयोग होता है। सतत प्रक्रम की स्थापना से निर्माण खर्च में बहुत कमी हो जाती है। फेनिल पेय के निर्माण मे कार्बन-डाइऑक्साइड की आवश्यकता होती है। यह गैस विशेष स्टील, अथवा अन्य धातुओ, के सिलिंडर में उपलब्ध होती है। कुछ उत्पादन केंद्रों में कार्बन डाइऑक्साइड के सिलिंडर के स्थान पर कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस जेनरेटर का उपयोग किया जाता है। इसमें कार्बोनेट अथवा बाइकार्बोनेट पर सलफ्यूरिक अथवा अन्य अम्लो की क्रिया से कार्बन डाइऑक्साइड बनता है। घान प्रक्रम द्वारा फेनिल पेय के निर्माण मे टिन धातु के अस्तर युक्त ताँबे के पात्र, अथवा सिलिंडर का उपयोग किया जाता है। एक साथ प्राय. दो पात्र अथवा दो सिलिंडरो का उपयोग श्रेयस्कर होता है, क्योंकि जब एक पात्र खाली

फूल (देखें पृष्ठ १२६)

पुष्पक्रम की व्यवस्थाएँ

ससीमाक्षी चित्र ३६ वृश्चिकी, चित्र ३७ सोपानक, चित्र ३८ साधारण, चित्र ३९ युग्मशाखन तथा चित्र ४० बहुशाखन।

असीमाक्षी चित्र ४१ एकल पुष्प, चित्र ४२ साधारण, चित्र ४३ समशिख, चित्र ४४ पुष्पछत्र, चित्र ४५ स्पाइक, चित्र ४६ कैटकिन तथा चित्र ४७ स्पैडिक्स।

हो जाता है तब उतने समय में दूसरा पात्र भरकर संपीडन क्रिया के लिये उपलब्ध हो जाता है। इस प्रक्रम में प्रयुक्त होनेवाले पात्र में द्रव तथा गैस को क्षुब्ध अवस्था में बनाए रखने के लिये विशेष प्रकार के क्षुब्धक लगे रहते है। इस रीति से द्रव में कार्बन डाइऑक्साइड का वितरण समान रूप से होता है। सतत प्रक्रम मे द्रव कार्बन डाइऑक्साइड का प्रयोग होता हैं। अधिक दवाव मे कार्बन डाइऑक्साइड सिलिंडर मे द्रव के रूप में उपलब्ध होता है। आजकल बड़े पैमाने पर फेनिल पेय के उत्पादन में स्वचालित मशीनो का उपयोग होता है। इस प्रकार की बोतल भरण मशीन से हजारों की संख्या मे बोतलों में बंद फेनिल पेय प्रति घंटा प्राप्त होता रहता है। फेनिल पेय के निर्माण एवं उपभोग में आजकल आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। ग्रीष्म ऋतु में जल के स्थान पर फेनिल पेय के उपयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है तथा सामाजिक समारोहों में इसका अधिकाधिक उपयोग होने लगा है। सभवत: इसका कारण यह हो सकता है कि फेनिल पेय के निर्माताओं ने विज्ञापनों द्वारा इसकी बिक्री बढ़ाई है। अत: मृदुपेय का व्यवसाय उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। अमरीका में मृदुपेय का उपयोग बहुत अधिक है। भारत में भी इसके उपयोग में बराबर वृद्धि हो रही है।

फेनिल पेय उद्योगो के विकास का इतिहास मनोरंजक है। प्राचीन काल से ही अनेक वैज्ञानिको का प्रयास रहा है कि प्राकृतिक स्रोतो से प्राप्त स्वास्थ्यवर्धक बुदबुद जल का निर्माण कृत्रिम रूप में किया जाय। इन सोतो के जल मे बुदबुदन को अधिक महत्व दिया जाता था। फॉन हेल्मॉण्ट (सन् १५७७–१६४४) ने पहले पहल पता लगाया कि ऐसे जल मे कार्बन डाइऑक्साइड गैस रहती है। ऐसे जल को वायुयुक्त (फेनिल) जल का नाम ग्रेवियेल केनेल ने दिया। जोसेफ ब्लैक नामक रासायनिक चिकित्सक ने सर्वप्रथम प्राकृतिक सोते के गैस अश के लिये "स्थिरवायु" शब्द का प्रयोग किया। इसपर अनुसधान के फलस्वरूप प्राकृतिक सोतो के विशेष गुणयुक्त जल का कृत्रिम निर्माण शुरू हो गया। फेनिल पेय के उद्योग का प्रारभ यही से होता है। १७७२ ई० मे अंग्रेज वैज्ञानिक प्रीस्टले ने "स्थिर वायु द्वारा जल प्राप्त करने को क्रिया" नामक लेख प्रकाशित किया, जिसके आधार पर लदन की रॉयल सोसाइटी ने उन्हे कौपली मेडल द्वारा समानित किया था। स्वीडन के वैज्ञानिक शील्ने तथा फ्रास के वैज्ञानिक लवाज्ये के सतत प्रयत्नो द्वारा यह ज्ञात हो गया कि प्रीस्टले की "स्थिर वायु" कार्बन एवं ऑक्सीजन संयोजित गैस है। ऐसा मालूम होते ही जौन मेरविन नूथ नामक अंग्रेज वैज्ञानिक ने १७७५ ई० में फेनिल पेय के अल्प मात्रा में निर्माण के लिये एक विशेष उपकरण तैयार करने में सफलता प्राप्त की। इस उपकरण में जीन हयासीथ ड मैगेलन के प्रयासों के कारण १७७७ ई० में विशेष सुधार संभव हो सका। १७८१–८३ ई० के बीच हेनरी नामक अंग्रेज वैज्ञानिक ने व्यावसायिक आधार पर फेनिल पेय के उत्पादन की मशीन की योजना की रूपरेखा तैयार की। फिर यूरोप तथा इंग्लैंड के अनेक नगरों में १७८९ ई० से १८२१ ई० के बीच व्यापारिक स्तर पर उत्पादन प्रारंभ हो गया। अमरीका में सर्वप्रथम १८०७ ई० में फेनिल पेय का बोतल भरण कारखाना कनेक्टिकट के न्यू हेवेन नगर में प्रारंभ हुआ। इस प्रकार का एक अन्य कारखाना हार्किस द्वारा फिलाडेल्फिया मे १८०९ ई० में प्रारंभ किया गया। इसके उपरात संसार के अनेक देशों में फेनिल पेय के बड़े बडे कारखाने स्थापित हो गए और इसका उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। (अ० सि०)

फ़ेयरी क्वीन 'फेयरी क्वीन' १६वी शताब्दी के प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि एडमंड स्पेंसर की सर्वोत्तम रचना है। इस ग्रंथ के प्रणयन मे उनका उद्देश्य रूपक के माध्यम से अरस्तू द्वारा वर्णित १२ नैतिक गुणो की महत्ता पर प्रकाश डालना था। पूरी पुस्तक १२ सर्गों मे होती, लेकिन वे केवल छह सर्ग ही पूरा कर पाए। जिन नैतिक गुणो की इन छह सर्गों में चर्चा है वे क्रमश इस प्रकार हैं—धार्मिकता, संयम, सतीत्व या पवित्रता, मित्रता, न्याय और विनम्रता ७वें सर्ग के भी, जिसमें दृढ़ता की महत्ता पर प्रकाश पड़ता, कुछ अंश मिलते हैं।

स्पेंसर की कल्पना मे पुस्तक की योजना इस प्रकार थी—परीलोक की रानी ग्लोरियाना प्रति वर्ष अपने दरबार में एक उत्सव करती है जिसमे रानी की सहायता के आकांक्षी उत्पीडित जीव तथा ऐसे लोगों की सहायता करने के इच्छुक एक साथ एकत्र होते हैं। यह उत्सव साधारणयया १२ दिन चलता है। प्रत्येक को किसी दुखी प्राणी की सहायता के लिये कहा जाता है और इस कार्य मे उसे बहुत सी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं और साहसिक कार्य करने पडते है। 'फेयरी क्वीन' के छ. सर्गों में दी हुई रूपक कहानियाँ ग्लोरियाना के दरबार के एक ऐसे ही उत्सव से संबधित हैं।

स्पेंसर ने 'फेयरी क्वीन' की रचना आयरलैंड में प्रारंभ की और इसके प्रथम तीन सर्ग सन् १५९० मे इग्लैंड में प्रकाशित हुए। उनका मंतव्य रूपकों के सहारे व्यापक ससार तथा प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे चल रहे सत् प्रवृत्तियों और कुप्रवृत्तियो के बीच के संघर्ष को प्रदर्शित करना था। जैसा कि उन्होने सर वाल्टर रैले के नाम अपने पत्र मे घोषित किया, इस पुस्तक का उद्देश्य पाठकों को नैतिकता एवं सदाचरण में शिक्षित करना था।

लेकिन 'फेयरी क्वीन' मे रूपक का सहारा तत्कालीन राजनीति तथा शासन से संबधित व्यक्तियो की चर्चा के लिये भी लिया गया है। परीदेश की रानी ग्लोरियाना के नाम पर कवि महारानी एलिजाबेथ की प्रशस्ति गाता है। इसी प्रकार फेयरी क्वीन के अन्य पात्र भी तत्कालीन राजनीतिक जीवन मे प्रमुख व्यक्तियों के प्रतीक हैं। [तु० ना० सि०]

फेरारा (Ferrara) १. प्रात, यह उत्तरी इटली का एक प्रात है। इसका क्षेत्रफल १,०१९ वर्ग मील है तथा इसमें २० कम्यून (विभाग) है। इसकी उत्तरी सीमा पर पो नदी तथा पूर्वी सीमा पर ऐड्रिएटिक सागर है। यह निम्न, समतल एव दलदली भाग है तथा सागर तल से १५ फुट से अधिक ऊँचा नही है। यहाँ खाद्यान्न, चुकंदर, अंगूर तथा पटुवा की कृषि होती है।

२ नगर, स्थिति ४४° ५०' उ० अ० तथा ११° ३६' पू० दे०। यह इटली के उपर्युक्त प्रांत की राजधानी है जो बोलोन्या – वेनिस मार्ग पर स्थित है। यह ऐतिहासिक नगर है, जहाँ १६वीं शताब्दी के अनेक भवन हैं। यहाँ एक विश्वविद्यालय स्थित है जहाँ कानून, कला एवं विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। यहाँ की जनसंख्या १,५५,१८७ (१९६२) है। [ले० रा० सिं०]

फेरियर, सर डेविड (Ferrier, Sir David, सन् १८४३–१९२८) अंग्रेज तंत्रिकाविद् (Neurologist) थे। इनका जन्म १८४३ ई० में ऐबरडीन के समीप हुआ था। एडनबरो (Edinburg) विश्वविद्यालय से १८७० ई० में इन्होंने एम० डी० की उपाधि प्राप्त की। १८७३ ई० में मस्तिष्क पर विद्युत् प्रभाव संबंधी प्रयोग कर इन्होंने सिद्ध किया कि कॉरटेक्स के किसी विशिष्ट भाग को उत्तेजित करने से शरीर की कोई विशेष पेशी या पेशियों का समूह प्रभावित होता है और कॉरटेक्स के उस भाग को शल्यक्रिया द्वारा निकाल देने पर उस भाग से संबंधित शरीर के अंगों में पक्षाघात हो जाता है। 'मस्तिष्क के कार्य' और 'प्रमस्तिष्कीय रोगों का स्थानीकरण' नामक पुस्तक में फेरियर ने उपर्युक्त प्रयोग का वर्णन किया है। १८८१ ई० में इंटरनैशनल मेडिकल कांग्रेस ने उपर्युक्त अनुसंधान को मान्यता प्रदान की। बाद में इस अनुसंधान के आधार पर अर्बुद की शल्यक्रिया सफलतापूर्वक की गई। ये १८९० ई० में रॉयल सोसाइटी के रॉयल पदक तथा १९११ ई० में सर की पदवी से संमानित हुए। [श्री० ना० दा०]

फेरेसीदिज, सिरोस का (Pherecydes of Syros) ईसा पूर्व छठी अथवा सातवीं शताब्दी का एक यूनानी साइरौस द्वीपनिवासी दार्शनिक एवं धर्मशास्त्री, जिसे 'सप्तऋषियों' में भी गिना गया है और यूनान के दिव्य एवं स्वर्गलोकीय विषयों पर चिंतन करनेवाले प्रथम दार्शनिकों में तो माना ही जाता है। कहा जाता है, वह पिट्टेकस (Pittacus) का शिष्य तथा पाइथागोरस (Pythagoras) का गुरु था। फेरेसीदिज के जीवन के विषय में निश्चित रूप से बहुत कम बातें ज्ञात हैं। कहा जाता है, उसने फोनीसियों (Phonicions) के गुप्त ग्रंथों का अध्ययन किया था, सामोस (Samos), एफेसस (Ephesis), मेसेन (Messene), ओलिंपिया (Olympia), स्पार्टा (Sparta), तथा देल्फी (Delphi) में भ्रमण किया, और थेलिज के साथ पत्रव्यवहार भी किया था। वह एथेंस (Athens) में पाइसिस्ट्रेटस (Peisistratus) के दल में था और एक ओरफियासानुयायी रहस्यवादी समाज का संस्थापक भी था। उसे प्रथम यूनानी गद्यलेखक भी माना जाता है। उसने आयोनी लोकभाषा में देवताओं द्वारा विश्व की उत्पत्ति के विषय पर एक सप्तकक्षीय विश्व (Seven chambered cosmos) नामक ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में आत्मा के अमरत्व एवं पुनर्जन्म के सिद्धांत का प्रथम पाश्चात्य प्रतिपादन है, और आकाश, अग्नि, वायु, जल तथा पृथ्वी को पंच मूलतत्व माननेवाले विज्ञान, रूपक तथा देवताओं की पौराणिक कथा के मिश्रण के रूप में एक दार्शनिक व्याख्या है। फेरेसीदिज को देवताओं के नाम, जन्म, भाषा और जीवन को जानने का दावा था। उसके अनुसार आरंभ में केवल प्रथम कारण अस्तव्यस्तता (Chaos) का अस्तित्व था। अमर देवी थोनी से विवाह के अवसर पर अमर देवता जूस ने उसे एक बड़ा तथा सुंदर वस्त्र भेंट किया। इसपर उसने पृथ्वी, समुद्र और ओगेनोस (Ogenos) का महल काढ़ा हुआ था। जब जूस सृजन करने लगा तब वह काम देवता में रूपांतरित हो गया और उसने विपरीतों को मिलाकर विश्व के सभी पदार्थों में प्रेम, समानता और एकता की उत्पत्ति की। इस कथा में जूस को सृजनात्मक तत्व अग्नि, आकाश अथवा सूर्य समझा जाता है। जूस के वीर्य अर्थात् कालदेव में से, जिसमें सब सृजित भूतों का वास है, नागदेव ओफियोनिअस (Ophioneus) के नेतृत्व में टाइटन जाति का अर्थात् परस्पर विरोधी तत्व–अग्नि, प्राण, तथा जल का उदय बताया गया है। कालांतर में फेरेसीदिज की ख्याति पाइथागोरस की ख्याति से कुछ दब गई। फिर भी, उसके विरोधी तत्वों के रूपकात्मक वर्णन ने प्रसिद्ध दार्शनिक हेराक्लाइटस को विशेष रूप से प्रभावित किया। कदाचित उसकी सप्तकक्षीय विश्व की धारणा से ही प्लातोन् को प्रसिद्ध गुफाओंवाला रूपक सूझा होगा। अरस्तू ने भी फेरेसिदिज को यह कह कर मान्यता दी कि वह केवल धर्मशास्त्री मात्र नहीं था और उसके द्वारा वर्णित जूस सर्वोच्च शुभ का ही प्रतीक था। [रा० मू० लू०]

फेर्मा का अंतिम प्रमेय (Fermat's Last Theorem) — १६३७ ई० में पियरे फेर्मा ने बताया कि शून्य के अतिरिक्त य, र तथा ल ऐसी पूर्ण संख्याएँ नहीं होतीं जो समीकरण

$$य^न + र^न = ल^न \; [x^n + y^n = z^n] \; \ldots (१)$$

को संतुष्ट करें, जब न (n) दो से बड़ी कोई पूर्णसंख्या है, किंतु फेर्मा ने इसकी उपपत्ति नहीं दी। बाद में न = ४ (n = 4) के लिये फेर्मा ने समीकरण (१) की उपपत्ति दी। १७७० ई० में लेनर्ड आइलर ने न = ३ (n = 3) के लिये समीकरण (१) की अपूर्ण उपपत्ति दी। इसके छूटे हुए चरणों को बाद के गणितज्ञों ने पूर्ण किया। १८२३ ई० में एड्रीन एम० लज्हांड्र (Adrien M Legendre) ने सिद्ध कर दिया कि समीकरण

$$य^क + र^क + ल^क = ० \; [x^l + y^l + z^l = 0] \ldots\ldots\ldots (२)$$

में जब क (l) का मान विषम अभाज्य संख्या पाँच है शून्य के अतिरिक्त य (x), र (y) तथा ल (z) के पूर्णांक मान असंभव है। सच में यह प्रमाणित करना सरल नहीं कि समीकरण (१) की उपपत्ति के लिये समीकरण (२) को तीन से बड़ी किसी भी संख्या के लिए सिद्ध कर देना पर्याप्त है, और आगस्टिन एल० काशी (Augustine L. Cauchy) जैसे गणितज्ञ के प्रयास इस दिशा में असफल रहे। सत्य यह है कि ऐसे प्रयासों ने एर्नस्ट ई० कुमर को आदर्श (ideal) संख्याओं की संकल्पना सुझा दी, जो गणितीय धारणाओं में अत्यंत शक्तिशाली और लाभदायक सिद्ध हुई। कुमर इसके आधार पर अत्यंत विस्तीर्ण संख्यात्मक परिकलन द्वारा १०० से कम सभी अभाज्य क (l) के लिये समीकरण (२) की असंभवता स्थापित करने में सफल हुए। १९२६ ई० और १९३६ ई० के बीच हैरी एस० वेंडिवर (Harry S Vandiver) ने कुमर द्वारा दी गई विधियों के विस्तार का उपयोग कर ऐसे परिणाम दिए जो क (l) के ६१९ से कम अभाज्यों के लिये समीकरण (२) की असंभवता स्थापित करने में समर्थ थे।

आगे चलकर इस दशा में समीकरण (२) की दो विशिष्ट स्थितियों पर विचार करने की दिशा में प्रयास हुआ: पहली स्थिति, जब

फूल (देखें पृष्ठ १२६)
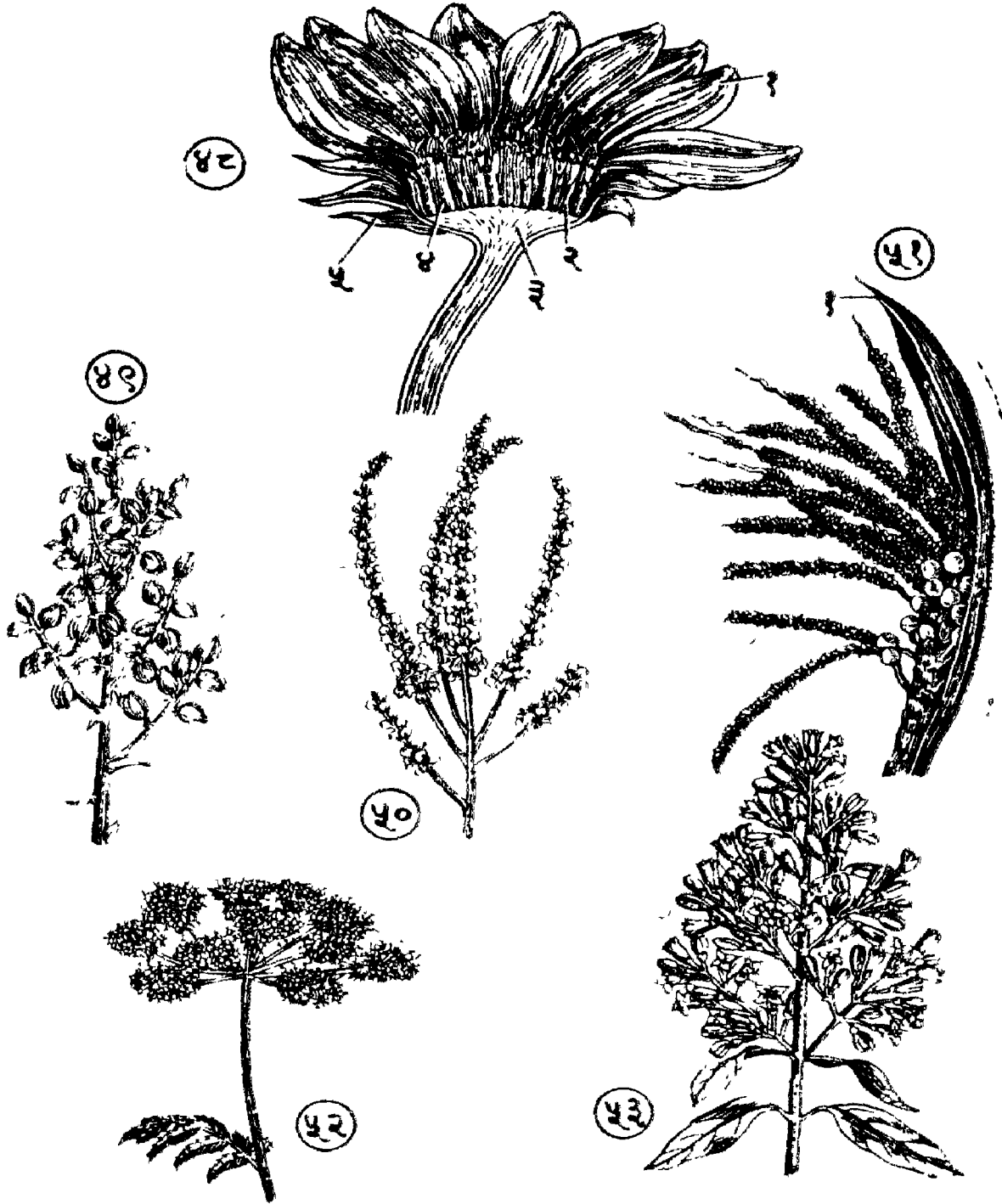
असीमाक्षी पुष्पक्रम

चित्र ४८. गेंदाकार (सूर्यमुखी का मुण्डक) चित्र ४९. बहुअसीमाक्षी (युक्का फिलामेंटोसा का पुष्पगुच्छ), चित्र ५० बहुस्पाइक (पेटोफोरम का पुष्पगुच्छ); चित्र ५१ बहुस्पेडिक्स (नारियल का संयुक्त स्पैडिक्स); चित्र ५२ बहुपुष्पछत्र (किरोफिलम टेमुलम का संयुक्त पुष्पछत्र) तथा चित्र ५३ मिश्रित पेनिकिल (लिगस्ट्रम वल्गारी

य, र, ल (x, y, z) परस्पर तथा क (l) के प्रति अभाज्य हैं और स्थिति दो जब य, र, ल (x, y, z) परस्पर अभाज्य हैं, किंतु उनमे से एक क (l) से विभाज्य है। स्थिति दो के बारे में शोध नही के बराबर हुए हैं, किंतु सर्वांगसमता (congruence) और मॉड (mod) की कल्पनाओं का उपयोग कर स्थिति एक मे पर्याप्त शोध हुआ है। यद्यपि इस स्थिति मे भी पूर्ण रूप से फेर्मा की उक्ति स्थापित नही की जा सकी, तथापि अब तक की गवेषणाओं से फेर्मा के अंतिम प्रमेय की सत्यता प्रकट होती है।

स० ग्र०—एल० ई० डिक्सन' हिस्ट्री ऑव द थ्योरी ऑव नबर्स, खड २ (१९२०); एल० जे० मोर्डेल द लेक्चर्स ऑन फेर्माज लास्ट थ्योरम (१९२१)। [च० मो०]

फेर्मा, पियरे द (Fermat, Pierre De) फ्रासीसी गणितज्ञ थे। इनका जन्म १७ अगस्त, १६०१ ई० को बोमान्ट द लोमाग्ने में हुआ था। फेर्मा अपने अंतिम प्रमेय के कारण अधिक प्रसिद्ध हो गए। इन्होंने अंतिम प्रमेय मे बताया कि $य^n + र^n = ल^n$ $(x^n + y^n = z^n)$ किसी भी धनात्मक पूर्णांक से सतुष्ट नही होता, यदि $n > २$ हो। यद्यपि फेर्मा ने लिखा है कि उन्होंने उपर्युक्त समीकरण सिद्ध कर दिया था किंतु साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि उनकी उपपत्ति मे अशुद्धि है। अभी तक इस समीकरण की शुद्ध उपपत्ति प्राप्त नही हुई है, यद्यपि बहुत से गणितज्ञो ने इसे सिद्ध करने का प्रयास किया है। विश्लेषणात्मक ज्यामिति (analytical geometry) एव प्रायिकता (probability) पर किए गए कार्य के कारण फेर्मा बहुत प्रसिद्ध हैं। १२ जनवरी, १६६५ ई० को इनका देहात हो गया। [अ० ना० मे०]

फेर्मि, एनरिको (Fermi, Enrico, सन् १९०१–१९५४) नोबेल पुरस्कार विजेता एव इटैलियन भौतिक विज्ञानी थे। फेर्मि का जन्म २९ सितबर, १९०१ को रोम शहर मे हुआ। शिक्षा-दीक्षा गटिंगेन एव लाइडेन मे हुई तथा तदुपरात रोम मे भौतिकी के प्राध्यापक नियुक्त हुए।

इन्होने भारी तत्वो के नाभिको को तोडने के सबध मे महत्वपूर्ण शोध कार्य किया तथा सन् १९३४ मे, न्यूट्रॉन की बमबारी द्वारा भारी तत्वो के नाभिकों को तोडने मे सफलता प्राप्त की। इस प्रकार फेर्मि ने तत्वातरण करने मे महत्वपूर्ण कार्य किया। कृत्रिम रेडियो ऐक्टिव पदार्थों का सृजन करने के उपलक्ष्य मे, सन् १९३८ मे, इन्हे नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

ये सन् १९३९ मे कोलबिया विश्वविद्यालय मे भौतिकी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् १९४२ मे इन्हे प्रथम परमाणु भट्टी बनाने में सफलता मिली। नाभिकीय विज्ञान मे आपका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। [अ० प्र० स०]

फेर्री लुइगी (१७२६-१७६५) इटालियन दार्शनिक, जो क्रमश: फ्लोरेंस और रोम में दर्शन का प्रमुख अध्यापक रहा। दर्शन के इतिहासकार के रूप मे उसकी अधिक ख्याति है। जहाँ तक उसके स्वय के दर्शन का प्रश्न है, वह सिमान, सैमियट आदि के मनोविज्ञानवाद और रोमकिनि और गियोबर्टी के आदर्शवाद का समिश्रण है। [श्री० स०]

फेल्सपार शिलानिर्माणकारी खनिजो का सबसे महत्वपूर्ण वर्ग है। सघटन की दृष्टि से ये खनिज पोटैशियम, सोडियम, कैलसियम, तथा बेरियम के ऐलुमिनोसिलिकेट हैं। इस वर्ग के मुख्य खनिज निम्नलिखित है, जिनमे प्रथम के क्रिस्टल एकनताक्ष तथा शेष के त्रिनताक्ष होते है :

नाम	रासायनिक योग
ऑर्थोक्लेज	पो ऐ सि$_3$ ओ$_8$ ($KAlSi_3O_8$)
माइक्रोक्लीन	पो ऐ सि$_3$ ओ$_8$ ($KAlSi_3O_8$)
ऐल्बाइट	सो ऐ सि$_3$ ओ$_8$ ($NaAlSi_3O_8$)
ऐनॉर्थाइट	कै ऐ$_2$ सि$_2$ ओ$_8$ ($CaAl_2Si_2O_8$)

ऐल्बाइट-ऐनॉर्थाइट संघटक एक खनिज माला का निर्माण करते है, जिसे प्लेजिओक्लेस (plagioclase) माला कहते हैं। इस माला के खनिज हैं ऑलिगोक्लेस (oligoclase), एडेजिन (andesine) लैब्राडोराइट (labradorite) तथा बाइटोनाइट (bytownite)। इन खनिजों मे ऐल्बाइट और ऐनॉर्थाइट सघटको की भिन्न भिन्न मात्राएँ रहती है, उदाहरणार्थ लेब्रेडोराइट खनिज में ऐल्वाइट सघटक की प्रति शत मात्रा ३० से ५० तथा ऐनॉर्थाइट सघटक की प्रति शत मात्रा तदनुसार ७० से ५० तक हो सकती है।

फेल्सपार खनिज भिन्न भिन्न रगो मे मिलते हैं। ऑर्थोक्लेज साधारणत सफेद या गुलाबी होता है, माइक्रोक्लीन सफेद या हरा तथा प्लेजिओक्लेस सफेद या भूरे रग के होते है तथा इनपर धारियाँ पडी रहती हैं। इनकी चमक काचोपम या मोतीसम होती है तथा इनमे दो दिशाओं मे विदलन सतह विद्यमान रहती है। इनकी कठोरता ६ से ६.५ तथा आपेक्षिक घनत्व २.६ से २.८ तक है।

फेल्सपार वर्ग के भिन्न भिन्न खनिजो की उपस्थिति पर ही शिलाओं का विभाजन किया जाता है। क्वार्ट्ज ऑर्थोक्लेज, ऐल्बाइट-युक्त शिलाएँ अम्लीय तथा ऐनॉर्थाइट युक्त शिलाएँ क्षारीय शिलाएँ कहलाती है। ऑर्थोक्लेज, माइक्रोक्लीन और ऐल्बाइट के बहुत से आर्थिक उपयोग भी है। इनके सपूर्ण उत्पादन की दो तिहाई मात्रा काच तथा चीनी मिट्टी के उद्योगो मे काम आती है। उच्च श्रेणी का पोटाश फेल्सपार विद्युदवरोधी पदार्थ तथा बनावटी दात बनाने के काम आता है।

यद्यपि फेल्सपार सभी शिलाओं मे विद्यमान रहते हैं, तथापि इनके आर्थिक महत्व के निक्षेप पैगमैटाइट शिलाओं तथा धारियो मे मिलते है। [म० ना० मे०]

फेस (Fes) स्थिति ३४° ५' उ० अ० तथा ४° ५५' प० दे०। फेज या फेस उत्तर-मध्य मोरॉक्को में नदी के किनारे स्थित नगर एव देश की राजधानी है, जो कैसाब्लैंका तथा माराकेश (Marrakesh) के पश्चात् तृतीय बड़ा नगर है। यह राबात से ९० मील पूर्व मे ऐटलांटिक सागर के तट पर सेबू नदी की उपजाऊ घाटी मे स्थित है। यह मुस्लिम सस्कृति का प्रमुख केंद्र है। यहां वार्षिक वर्षा २३ इंच होती है तथा जलवायु उत्तम है। नगर तीन भागो मे विभक्त है। नगर का यूरोपियन भाग आधुनिक तथा सुंदर है। चमड़े तथा धातु का काम, सूती वस्त्र, परदे तथा मिट्टी के बरतन बनाने का काम होता है। यहाँ स्थित फेसू की केरावीन (Karaween)

मस्जिद अफ्रीका की सबसे बड़ी मस्जिद है। कैराबीन विश्वविद्यालय भी यहाँ है। यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर भी है तथा तुर्की टोपी का सर्वप्रथम निर्माण इसी नगर मे हुआ था। इसे मूले इदरीस ने सन् ८०० में स्थापित किया था। यहाँ की जनसख्या २,१६,००० (१९६०) है। [ले० रा० सिं०]

फैजाबाद १. जिला, स्थिति : २६° ९' से २६° ५०' उ० अ० तथा ८१° ४१' से ८३° ८' पू० दे०। यह पूर्वी उत्तर प्रदेश राज्य मे स्थित जिला है। इसके उत्तर में गोंडा तथा बस्ती, पूर्व मे आजमगढ़, दक्षिण में सुल्तानपुर एवं जौनपुर तथा पश्चिम मे बाराबकी जिले है। इसकी उत्तरी सीमा पर घाघरा नदी बहती है। इसका क्षेत्रफल १,७०५ वर्ग मील तथा जनसंख्या १६,३३,३५६ (१९६१) है। घाघरा नदी के अतिरिक्त मजहोई, तिर्वा, विकिया, तोर्नी एवं छोटी सरयू नदियाँ बहती हैं। जलवायु उत्तम है तथा वर्षा ४१ इच तक होती है। यह जिला, १. फैजाबाद, २. अकबरपुर, ३ बीकापुर, एवं ४. टाँडा नामक चार तहसीलों मे बँटा है। फैजाबाद या अयोध्या नगर भारत का प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है। कृषि योग्य मिट्टी होने के कारण धान, गेहूँ, चना, मटर, मसूर, जौ, अरहर तथा कोदो प्रमुख उपज हैं।

२ नगर, स्थिति २६° ४७' उ० अ० तथा ८२° १०' पू० द०। यह जिले का प्रमुख नगर है। फैजाबाद अयोध्या का ही एक भाग है जो वाराणसी से लगभग १२५ मील उत्तर-पश्चिम में घाघरा नदी के किनारे स्थित है। फैजाबाद की जनसख्या अयोध्या सहित ८८,२९६ (१९६१) है। अयोध्या मंदिरो के लिये प्रसिद्ध है (देखें **अयोध्या**)। जब सम्रादत खाँ अवध का गवर्नर बना तो उसने अयोध्या से चार मील पश्चिम एक शिकारगाह की स्थापना की और बाद में इसे प्रात का मुख्यालय बना दिया। अत मे सफदरजग ने इसे फैजाबाद नाम दिया। सन् १७६४ मे बक्सर के युद्ध मे हारने पर तृतीय नवाब शुजाउद्दौला ने लखनऊ छोडकर इसे ही अपना निवासस्थल बनाया था। यहाँ शुजाउद्दौला की पत्नी बहू बेगम का मकबरा, १७५ फुट लबा तथा १४० फुट चौड़ा, फैजाबाद की सबसे सुदर इमारत है। बहू बेगम के मकबरे से दूर शुजाउद्दौला का मकबरा है। इनके अतिरिक्त यहाँ इमामबाड़ा, पुस्तकालय, अस्पताल तथा कई मदिर है।

फैज़ी (शेख अबुल फैज) शेख मुबारक नागौरी के पुत्र एवं शेख अबुल फ़ज़ल के अग्रज। इनका जन्म आगरा मे ९५४ हि० (१५४७ ई०) मे हुआ। पूरी शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की। शेख मुबारक सुन्नी, शिया, महदवी सबसे सहानुभूति रखते थे। फैज़ी तथा अबुल फ़ज़ल इसी दृष्टिकोण के कारण अकबर के राज्यकाल मे सुलह कुल (धार्मिक सहिष्णुता) की नीति को स्पष्ट रूप दे सके। हुमायूँ के पुन: हिंदुस्तान का राज्य प्राप्त कर लेने पर ईरान के अनेक विद्वान भारत पहुँचे। वे शेख मुबारक के मदरसे, आगरा में भी आए। फैज़ी को उनके विचारो से अवगत होने का अवसर मिला। ९७४ हि० (१५६७ ई०) मे फ़ैज़ी शाही दरबार के कवि बने किंतु अभी तक धार्मिक विषयो पर अकबर ने स्वतत्र रूप से निर्णय लेना प्रारंभ नही किया था अत: दरबार के आलिमो के अत्याचार के कारण शेख मुबारक, फ़ैज़ी तथा अबुल फ़ज़ल को कुछ समय तक बड़े कष्ट भोगने पडे। १५७४ ई० में अबुल फज़ल भी दरबार में पहुँचे। उस समय से फैज़ी की भी उन्नति होने लगी। १५७८ ई० मे अकबर ने अपने पुत्र शाहज़ादा मुराद की शिक्षा का भार उनको दिया। १५७९ ई० मे अकबर ने फतहपुर की जामा मस्जिद मे जो खुतबा पढ़ा उसकी रचना फैज़ी ने की थी। ११ फरवरी, १५८८ ई० को उन्हे मलिकुश्शुअरा (कविसम्राट्) की उपाधि प्रदान की गई। अगस्त, १५९१ ई० मे उन्हे खानदेश के राजा अली खा एवं अहमदनगर के बुरहानुलमुल्क के पास राजदूत बनाकर भेजा गया। १ वर्ष ८ माह १४ दिन के बाद वह दरबार मे वापस पहुँचे। दक्षिण से जो पत्र उन्होने अकबर के पास भेजे उन्हे उसके भानजे नूरुद्दीन मुहम्मद अब्दुल्लाह ने लतायफ़े फैज़ी के नाम से सकलित कर दिया है। इन पत्रो से उस समय की सामाजिक एव सांस्कृतिक दशा का बडा अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है तथा ईरान और तूरान के विद्वानो एव अकबर द्वारा विद्वानो के प्रोत्साहन पर प्रकाश पडता है। १५९४ ई० मे उसने निज़ामी गजवी के खम्से (पाँच मसनवियों का सग्रह) के समान पाँच मसनवियों की रचना की योजना बनाई जिसमे निजामी के मखजने असरार के समान मरकजे अदवार की और लैला मजनू के समान नल दमन (राजा नल तथा दमयन्ती की प्रेमकथा) की रचना समाप्त कर ली। नलदमन को उसने स्वय उसी वर्ष अकबर को समर्पित किया। सिकदरनामा के समान, अकबरनामा की रचना की योजना बनाई किंतु केवल गुजरात विजय पर कुछ शेर लिख सका। खुसरो और शीरीं के समान सुलेमान और बिल्कीस तथा हफ्त पैकर के समान हफ्त किश्वर की रचना की भी उसने योजना बनाई थी किंतु उन्हे पूरा न कर सका। १००२ हि० (१५९३ई०) मे उसने कुरान की अरबी म एक टीका लिखी जिसमे केवल ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनके अक्षरो पर बिंदु नही है। फैज़ी की गज़लों का सग्रह (दीवान) भी बड़ा महत्वपूर्ण है। उसके शेरो का लोहा ईरानवाले भी मानते है। उत्साह एव स्वतत्र दार्शनिक विचार, उसके शेरो की मुख्य विशेषता है। उसे धार्मिक सकीर्णता से बहुत घृणा थी और वह दरवेशों, फकीरो तथा सतो से आदरपूर्वक व्यवहार करता था। उसका पुस्तकालय बडा विशाल था। १० सफ़र, १००४ हि० (१५ अक्तूबर, १५९५ई०) को उसकी मृत्यु हो गई।

सं० ग्रं०—(फारसी) अबुल फज़ल **अकबरनामा**; अब्दुल कादिर बदायूनी : **मुंतखबुत्तवारीख**, फरीद भक्खरी . **ज़खीरतुल खवानीन**, शाहनवाज खा . **मआसिरुल उमरा**, (उर्दू) शिब्ली, **शेरुल अजम**। [सै० अ० अ० रि०]

फैराडे, माइकेल अंग्रेज भौतिक विज्ञानी एव रसायनज्ञ थे। इस महान् वैज्ञानिक का जन्म २२ सितंबर, १७९१ ई० को हुआ। इनके पिता बहुत गरीब थे और लुहारी का कार्य करते थे। इन्होने अपना जीवन लदन मे जिल्दसाज की नौकरी से प्रारभ किया। समय मिलने पर रसायन एवं विद्युत् भौतिकी पर पुस्तकें पढते रहते थे। सन् १८१३ ई० मे प्रसिद्ध रसायनज्ञ, सर हंफ्री डेवी, के व्याख्यान सुनने का इन्हे सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन व्याख्यानों पर फैराडे ने टिप्पणियाँ लिखी और डेवी के पास भेजी। सर हफ्री डेवी इन टिप्पणियो से बड़े प्रभावित हुए और अपनी अनुसंधानशाला मे इन्हे अपना सहयोगी बना लिया। फैराडे ने लगन के साथ कार्य

फूल या पुष्प (देखें पृष्ठ ११६–१२७)

संवर्धित ऐस्टर (Astor)
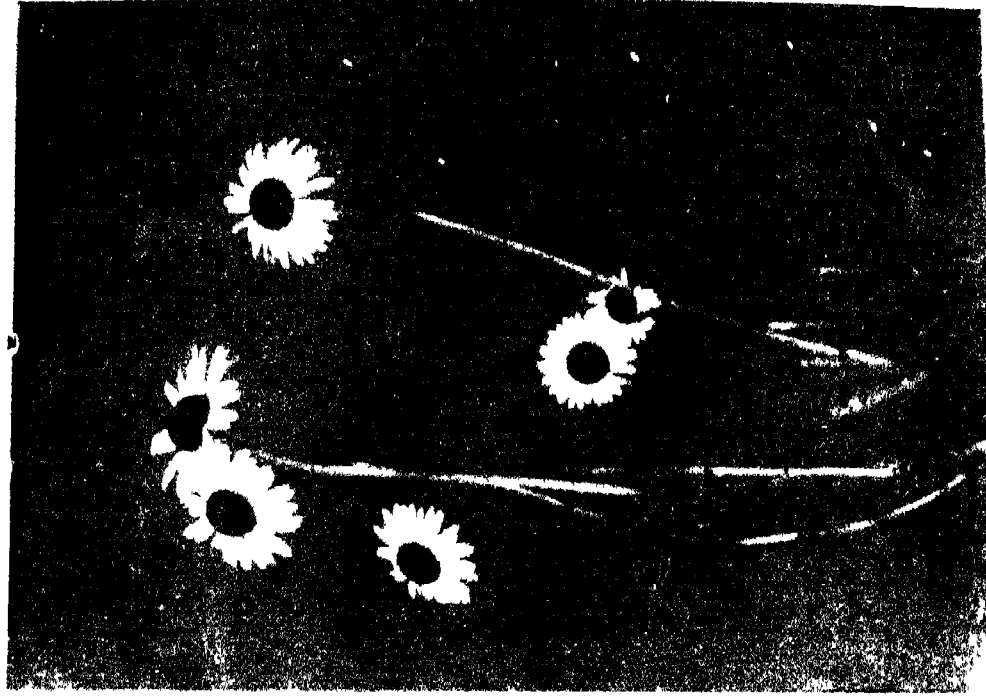
डेज़ी (Daisy)

नस्टर्शियम (Nasturtium)

(अमरीकन म्यूज़ियम ऑव नैचुरल हिस्ट्री के सौजन्य से प्राप्त)

फूल या पुष्प (देखे पृष्ठ ११६–१२७)

सागौन का पुष्पित वृक्ष

किया और निरंतर प्रगति कर सन् १८३३ मे रॉयल इंस्टिट्यूट मे रसायन के प्राध्यापक हो गए।

अपने जीवनकाल मे फैराडे ने अनेक खोजे कीं। सन् १८३१ में विद्युच्चुंबकीय प्रेरण के सिद्धांत की महत्वपूर्ण खोज की। चुंबकीय क्षेत्र मे एक चालक को घुमाकर विद्युत्-वाहक-बल उत्पन्न किया। इस सिद्धांत पर भविष्य में जनित्र (generator) बना तथा आधुनिक विद्युत् इजीनियरी की नीव पडी। इन्होंने विद्युद्विश्लेषण पर महत्वपूर्ण कार्य किए तथा विद्युद्विश्लेषण के नियमो की स्थापना की, जो फैराडे के नियम कहलाते है। विद्युद्विश्लेषण में जिन तकनीकी शब्दो का उपयोग किया जाता है, उनका नामकरण भी फैराडे ने ही किया। क्लोरीन गैस का द्रवीकरण करने मे भी ये सफल हुए। परावैद्युताक, प्राणिविद्युत्, चुंबकीय क्षेत्र में रेखा ध्रुवित प्रकाश का घुमाव, आदि विषयो मे भी फैराडे ने योगदान किया। आपने अनेक पुस्तके लिखी, जिनमे सबसे उपयोगी पुस्तक 'विद्युत् में प्रायोगिक गवेषणाएँ' [Experimental Researches in Electricity] है।

फैराडे जीवन भर अपने कार्य मे रत रहे। ये इतने नम्र थे कि इन्होंने कोई पदवी या उपाधि स्वीकार न की। रायल सोसायटी के अध्यक्ष पद को भी अस्वीकृत कर दिया। धुन एव लगन से कार्य कर, महान् वैज्ञानिक सफलता प्राप्त करने का इससे अच्छा उदाहरण वैज्ञानिक इतिहास मे न मिलेगा। सर हंफ्री डेवी भी फैराडे को अपनी सबसे बडी खोज मानते थे।

इस महान वैज्ञानिक की मृत्यु २५ अगस्त, १८६७ ई० को हुई। [अं० प्र० स०]

फोटोग्राफी या फोटोचित्रण की क्रिया इस तथ्य पर आधारित है कि रजत के अनेक लवण प्रकाश के प्रति अत्यत सुग्राही होते है। ऐसे किसी लवणमडित तल, यथा काच के प्लेट या सेलुलोस की फिल्म, पर प्रकाश पडने पर उस लवण के कणो मे परिवर्तन होता है, जो सामान्य दृष्टि से अलक्ष्य होने पर भी एक विशेष अपचायक विलयन (reducing solution) की क्रिया द्वारा रजत धातुकण में परिणीत होकर स्पष्टतया दृश्य हो जाता है। ऐसे विलयनों को व्यक्तकारी (Developer) कहते है। इस विधि से अपचयित तल मे प्रकाश से प्रभावित क्षेत्र के रजतकण काले हो जाते है और शेष, अर्थात् अप्रभावित रजत लवण कण, अपने धूमिल रग मे यथावत् बने रहते है। इस प्रकार किसी प्रकाशित या प्रदीप्त वस्तु का प्रतिबिब उस तल पर स्पष्ट रूप से मुखरित हो जाता है। इस बिब मे वस्तु का प्रदीप्त अश घोर काला तथा अप्रदीप्त या अल्पप्रदीप्त अश उसकी तुलना मे कम काला दिखलाई पडता है। फोटोग्राफी के प्लेट का तल एक विशेष प्रकार के पायस (emulsion) की पतली परत से आच्छादित रहता है। इस परत मे सिल्वर हैलाइड के अत्यंत सूक्ष्म कण जिलेटीन मे एक समान रूप से वितरित रहते है। यह परत प्राय: $\frac{1}{1000}$ इच से भी अधिक पतली रहती है। ऐसे रजत लवणो मे सर्वाधिक सुग्राही लवण सिल्वर ब्रोमाइड होता है। इसमे थोडा सिल्वर आयोडाइड मिलाकर उपर्युक्त पायस की रचना मे प्रयुक्त किया जाता है। विलयन द्वारा अपचयित या व्यक्त प्लेट को एक अन्य विलयन में डाला जाता है, जो अव्यक्त अथवा अनापचयित सिल्वर हैलाइड कणों को स्वयं में घुलाकर प्लेट से पृथक् कर देता है। इस विलयन को स्थायीकर (Fixer) तथा इस क्रिया को स्थायीकरण (Fixing) कहते है। इसके पश्चात् प्लेट को धोकर सुखा लिया जाता है। प्लेट पर प्राप्त प्रतिबिंब का जो रूप स्थायीकरण के पश्चात् प्राप्त होता है, उसे 'नेगेटिव' (Negative) कहते हैं, क्योकि प्राकाशिक दृष्टि से यह वस्तु के ठीक विपरीत होता है, अर्थात् वस्तु का प्रज्योत अश इसमे काला दिखलाई पड़ता है। इस प्लेट को चित्र प्रक्षेपी लालटेन (projection lantern) के समुख रखकर तथा उसके नीचे सिल्वर क्लोराइड या सिल्वर ब्रोमाइड का पतला लेप चढ़ा कागज रखकर, प्लेट को ऊपर से तीव्र प्रकाश द्वारा आलोकित किया जाता है, जिससे नेगेटिव के बिब भाग से तो प्रकाश रुक जाता है और शेष भाग से प्रकाश पार होकर कागज पर पड़ता है। इस कागज को प्लेट की ही भांति व्यक्त एवं स्थायी करने पर प्रकाशित भाग के रजत कण शेष रह जाते है और अप्रकाशित भाग के जिसपर प्लेट के बिब द्वारा अवरुद्ध होने के कारण प्रकाश नही पड सका, रजत लवण के कण विलयन मे घुलकर कागज से पृथक् हो जाते है। इस प्रकार कागज पर प्राप्त प्रतिबिंब मे आकृति की कृष्णता या धवलता नेगेटिव के प्रतिकूल, अर्थात् मूलवस्तु के अनुकूल, होती है। कागज पर बने इस स्थायी प्रतिबिब को 'पाजिटिव' (Positive) कहते है और यही वस्तु की फोटो छाप (photo print) होती है।

फोटोग्राफी की पद्धति का विकास — सन् १७२७ मे जे० एच० शुल्त्से (J H Schulze) ने यह पता लगाया कि सिल्वर नाइट्रेट प्रकाश द्वारा अत्यंत विलक्षण रूप से प्रभावित होता है। कुछ समय पश्चात् डब्ल्यू० ल्यूइस (W. Luwis) तथा के० डब्ल्यू० शेले (K W. Scheele) ने प्रयोगो द्वारा इस निष्कर्ष की पुष्टि की। कालातर मे सिल्वर क्लोराइड के अपेक्षाकृत अधिक प्रकाश सुग्राही होने का पता चला। इसके कुछ ही वर्ष पूर्व वस्तु का स्पष्ट एव प्रज्योत बिब प्राप्त करने के लिये दो तीन लेसो के सयाग से कैमरे के एक लघु आदिम रूप का निर्माण हो चुका था। इस कैमरे से बननवाले बिब के स्थान पर सिल्वर क्लोराइड मडित कागज लगाकर नीप्से ने सन् १८१६ मे प्रथम फोटोग्राफ प्राप्त किया था, किंतु उसे स्थिर करके एक स्पष्ट 'नेगेटिव' प्राप्त कर सकने मे वे असमर्थ रहे। लगभग दस वर्षों के पश्चात् नीप्से के एक सहकर्मी, डैगरे (Daguerre) ने एक प्रयोग के क्रम मे अचानक यह पता लगाया कि सिल्वर आयोडाइड मंडित कागज पर सघन पारद वाष्प की क्रिया कराकर उसपर कैमरे की सहायता से उत्पन्न प्रकाशीय प्रभाव को बिब के रूप मे देखा जा सकता है। उनके इस आविष्कार को सन् १८३९ मे फ्रास का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। डैगरे विधि मे ताँबे के प्लेट पर चादी चढ़ाकर तथा उसे आयोडीन के धूम मे रखकर आयोडीकृत (iodize) कर लिया जाता था। फिर उसे कैमरे पर आरोहित कर तथा वस्तु के समक्ष व्यक्त (expose) करके पारद वाष्प द्वारा विकसित किया जाता था। इस प्रकार स्थायी बिब की सृष्टि होती थी। फोटो निर्माण की यह विधि उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक डैगरे की पद्धति (Daguerreotype) के नाम से अत्यधिक प्रचलित थी।

इसके कुछ समय पश्चात् ही इग्लैड के फॉक्स टालबो (Fox Talbot) ने सिल्वर आयोडाइड और नाइट्रेट के मिश्रण से प्राप्त

पायस के लेप चढ़े हुए कागज़ पर कैमरे की सहायता से उत्पन्न प्रकाशीय प्रभाव को गैलिक अम्ल द्वारा विकसित कर तथा सोडियम थायोसल्फेट द्वारा स्थायी कराकर स्थायी बिंब के रूप में प्राप्त किया। इस बिंब के प्रकाशीय लक्षण वस्तु के लक्षणों के ठीक विपरीत थे। इसलिये हर्शेल ने इसे नेगेटिव की संज्ञा दी। कागज की पारदर्शिता में वृद्धि करने के लिये उसपर तैल या चिकनाई (जैसे मोम) लगा दिया जाता था। वस्तुत: आधुनिक फोटोग्राफी की दिशा में टालबो की यह पद्धति ही प्रथम चरण थी। कुछ ही समय पश्चात् हर्शेल के परामर्श से काच के प्लेट पर एल्बुमेन चुपड़कर तथा उसपर सिल्वर क्लोराइड या आयोडाइड लगाकर अधिक सुग्राही एवं उपयोगी फोटोग्राफी प्लेट का निर्माण किया गया।

इसके पश्चात् स्कॉट आर्चर (Scott Archer) ने कोलोडियन विलयन का आविष्कार किया, जो पाइरॉक्सिलिन (pyroxyline) में ईथर के विलयन में विलेय आयोडाइड तथा किंचित् ब्रोमाइड के संयोग से बनता था। इस विलयन को काच के प्लेट पर लेपकर और तदुपरांत उसे एक अँधेरे प्रकोष्ठ में सिल्वर नाइट्रेट में निमज्जित कर देने पर, कोलोडियन सिल्वर आयोडाइड (सिल्वर नाइट्रेट युक्त) में परिणत होकर अत्यंत प्रकाशसुग्राही बन जाता था। इस प्लेट को भीगी दशा में कैमरे में आरोपित करके व्यक्त किया जाता था और फिर उसमें से निकालकर पाइरोगैलॉल (pyrogallol) तथा ऐसीटिक अम्ल के मिश्रण द्वारा विकसित एवं सोडियम थायोसल्फेट या पोटैशियम सायनाइड, द्वारा स्थायी किया जाता था। यह पद्धति, तीन चार वर्षों की अल्पावधि में ही लोकप्रियता के शिखर तक पहुँच गई और अपनी पूर्ववर्ती सभी अन्य पद्धतियों को पीछे छोड़ गई। कालांतर में इसमें कुछ सुधार कर भीगे कोलोडियन के स्थान पर कोलोडियन पायस का व्यवहार किया जाने लगा, यद्यपि इससे सुग्राह्यता में कोई वृद्धि नहीं हुई।

१८७१ ई० में आर० एल० मैडॉक्स (R L Maddox) ने कोलोडियन पायस के स्थान पर जिलेटिन का प्रयोग किया और इसके कुछ समय पश्चात् ही अन्य प्रयोगकर्ताओं ने सिल्वर आयोडाइड और सिल्वर ब्रोमाइड के संयोग से उत्तम शुष्क प्लेटों का निर्माण किया। सन् १८७६ तक क्षिप्र शुष्क प्लेटों का निर्माण बड़े पैमाने पर होने लगा था। सन् १९३० तक अनेक व्यापारिक प्रतिष्ठान अत्यंत उत्कृष्ट पायसों की सहायता से अधिकाधिक द्रुत एवं सुग्राही फोटोग्राफी प्लेटों का निर्माण करने लग थे।

सिल्वर हैलाइडों के इन प्लेटों में एक दुर्बलता थी कि ये स्पेक्ट्रम के केवल नीले, बैंगनी एवं पराबैंगनी (ultraviolet) क्षेत्र के लिये ही सुग्राही थे। अन्य वर्ण क्षेत्रों के लिये इनकी सुग्राहिता नगण्य थी। वैज्ञानिकों का ध्यान इन प्लेटों में वर्ण सुग्राहिता (colour sensitivity) उत्पन्न करने की ओर भी आकृष्ट हुआ। इस प्रयोजन की सिद्धि के हेतु प्लेटों को कुछ विशेष प्रकार के रंजकों (dyes) के विलयन में डुबाने के सुझाव प्रस्तुत किए गए। जे० वाटरहाउस नामक वैज्ञानिक ने पता लगाया कि इओसीन (eosin) नामक रंजक द्वारा कोलोडियन पायस अत्यंत शीघ्रता एवं सुगमतापूर्वक वर्णसुग्राही बन जाता है। कालांतर में यही परिणाम जिलेटिन के लिये भी प्राप्त हुआ। प्रयोगों के क्रम में पता चला कि एरिथ्रोसिन (erythrosine) का प्रयोग इओसिन की अपेक्षा अधिक उपयुक्त होता है। वर्ण सुग्राहिता इसमें इओसिन से अधिक होने के कारण काफी समय तक इसका प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जाता रहा। आगे चलकर एथिल रेड (ethyl red) और तदनंतर पाइनासायनोल (pinacyanol) की खोज हुई जो लाल वर्णक्षेत्र में अत्यंत उत्कृष्ट सुग्राहक सिद्ध हुए। आधुनिक फोटोग्राफी के प्लेट साधारणतया पैंक्रोमैटिक (panchromatic) होते हैं, जो संपूर्ण वर्णविस्तार का फोटोग्राफ सरलता से ले लेते हैं। प्रथम पैंक्रोमैटिक प्लेट ईस्टमैन कोडक (Eastman Kodak) ने सन् १९१४ में निर्मित किया था। इन प्लेटों को अधिकाधिक कार्यक्षम बनाने के प्रयास बड़ी तेजी से चलते रहे और सन् १९३० तक अत्यंत उच्चकोटि के क्षिप्र पैंक्रोमैटिक प्लेटों का निर्माण होने लगा था।

काच की प्लेटों के भारीपन एवं भजनशीलता के कारण इनका व्यापक प्रयोग कर सकने में बड़ी कठिनाई होती थी। इसके अतिरिक्त किसी दृश्यावलि का निरंतर फोटोग्राफ इनके द्वारा प्राप्त कर सकना भी एक दु:साध्य कार्य था। इसलिये लंबी फिल्म पट्टिकाओं का निर्माण करने की दिशा में भी अनेक वैज्ञानिक प्रवृत्त हुए। सबसे पहले कागज पर पायस का आलेपन कर तथा उसे लपेट कर, रोल फिल्म (roll films) बनाए गए। इनमें सबसे प्रमुख दोष यह था कि दृश्यांकन के क्रम में इन्हें द्रुतगति से खोलने और लपेटने पर तनाव और ढील की प्रक्रियाओं में ये अक्सर बीच से टूट जाते थे। इसलिये रोल फिल्म बनाने के लिये लचीले पदार्थ की खोज होने लगी और अनेक पदार्थ इस हेतु प्रस्तावित किए गए, जिनमें सेलुलोस ऐसीटेट (cellulose acetate) सर्वाधिक उपयुक्त पदार्थ सिद्ध हुआ। आधुनिक सचल कैमरा तथा चलचित्रों में प्रयुक्त होनेवाले फिल्म इसी पदार्थ से निर्मित होते हैं। एक्स किरणों का फोटोग्राफी के लिये इस फिल्म के दोनों पृष्ठों को पायस से आलेपित कर दिया जाता है, ताकि पायस की सघनता पर्याप्त रहे और एक्स किरणों के लिये पूर्णत पारदर्शी न रहे।

व्यक्तिकरण विलयनों की खोज — जैसा ऊपर कहा जा चुका है, टालबो अथवा कैलो प्रणाली में विकास क्रिया हेतु गैलिक अम्ल का प्रयोग किया जाता था और उसके पश्चात् उसके स्थान पर अपेक्षाकृत अधिक उत्तम एवं तीक्ष्ण व्यक्तिकारी, पाइरोगैलॉल का प्रयोग किया जाने लगा था। इस उत्तरकथित व्यक्तिकारी का प्रयोग करने पर उद्भासन (exposure) काल अपेक्षाकृत कम रखना पड़ता था। सन् १८८४ तक क्षारीय पाइरोगैलॉल का प्रयोग अधिक प्रचलित था, क्योंकि वह जिलेटिन आलेपित प्लेटों के विकास के लिये भी उपयुक्त था। इसके पश्चात् इसका स्थान क्षारीय कार्बोनेटों ने ले लिया था। कालांतर में हाइड्रॉक्विनोन (hydroquinone) हाइड्रॉक्सिल ऐमीन (hydroxylamine), पैराफेनिलीन डाइऐमीन (paraphenylene diamine), पैराटोलुईन डाइऐमीन (para-toluene diamine) जाइलिडीन डाइऐमीन (xylidine diamene) आदि के प्रयोग विकासक रूप में होने लगे। सन् १८९१ में सर्वोत्कृष्ट विकासक मोनोमिथाइल पैराएमिनोफीनॉल (monomethyl para-aminophenol) का, जो मेटॉल (metol) के उपनाम से प्रसिद्ध है, आविष्कार किया गया।

इसी प्रकार 'पाजिटिव' फोटोग्राफ प्राप्त करने के हेतु मुद्रण

(printing) क्रिया के विकासक्रम का भी एक पृथक् इतिहास है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि पहले पहल मुद्रण के हेतु एक कागज पर सिल्वर क्लोराइड तथा सिल्वर नाइट्रेट (अधिक मात्रा मे) के सयोग का आलेपन करके उसके समक्ष प्रदीप्त नेगेटिव रख देने पर वह फोटो कागज पर उतर आता था। किंतु यह प्रिंट सर्वथा अस्पष्ट एव धूमिल होता था। उसे अधिक स्पष्ट करने के लिये उस कागज पर जिलैटिन और एल्ब्युमेन का भी आलेपन कर दिया जाता था। इसके पश्चात् मुद्रित फोटोग्राफ को अधिक कातिमान् बनाने के लिये उस कागज को क्षारीय स्वर्णकुंडिका (alkaline gold bath), अथवा प्लैटिनम कुंडिका, मे रख दिया जाता था और थोड़ी देर के पश्चात् उसे निकालकर सुखा लिया जाता था। यह क्रिया अधिक व्यय एवं श्रमसाध्य होने के कारण विशेष लोकप्रिय नही हो सकी। अत मे सन् १८८३ मे जिलेटिनोक्लोराइड और क्लोरोब्रोमाइड पायस से आलेपित कागज का आविष्कार किया गया। आज भी इन्ही विविध विकसित रूपो का प्रयोग व्यक्तिकारी द्रव्य के रूप में किया जाता है। सपर्क मुद्रण के लिये क्लोराइड प्रकार के और विवर्धन (enlarge ments) के लिये ब्रोमाइड प्रकार के कागज व्यवहृत किए जाते है।

फोटोग्राफी की विभिन्न शाखाएँ

(१) **अव्यवसायी (Amateur) फोटोग्राफी** — फोटोग्राफी के इस प्रकार के उपयोग का क्षेत्र अत्यत व्यापक है। अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिये व्यक्तियो एवं दृश्यावलियो का फोटोग्राफ अव्यवसायी ढग पर लेनेवालो की सख्या बहुत बढ गई है। इसके लिये उपयुक्त 'बॉक्स' कैमरा का निर्माण सर्वप्रथम सन् १७०० मे किया गया था, जिसमे रोल फिल्म प्रयुक्त किया गया था। इस कैमरा का अभी तक इसके
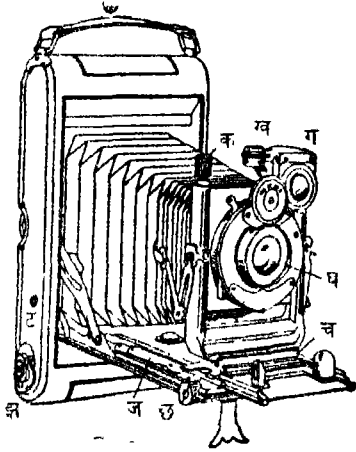
चित्र १. फिल्म के लिए फोल्डिंग कैमरा
क. अग्र भाग को ऊपर उठानेवाला पेच, ख. स्पिरिट लेवल, ग. दृश्यदर्शी, घ लेंस तथा शटर च अग्रभाग की आडी गति तथा छ फोकस करनेवाला पेच, ज. फोकस करने की मापनी, झ. फिल्म लपेटने की चाभी तथा ट तिपाई पर कसने के लिए पेच।

मूल रूप मे ही प्रयोग किया जाता है। अधिकतर ऐसे कैमरे धातु, फायर बोर्ड, या प्लास्टिक के बने होते हैं और उनमे एक रोल फिल्म मे २¼ × ३¼ इंच आकार के आठ चित्र उतारे जा सकते हैं। बॉक्स कैमरा मे ही कुछ सुधार कर तथा अधिक तीक्ष्ण फोकस समजित कर, स्पष्ट बिंब प्राप्त करने तथा उद्भासन काल नियत्रण व्यवस्था सपन्न फोल्डिंग कैमरों का निर्माण किया गया (देखे चित्र १)। अव्यवसायी फोटोग्राफी कैमरा मे प्रयुक्त होने वाले फिल्म भी आजकल विविध प्रकार के मिलने लगे है। मैदानी चित्रो के लिए आर्थोक्रोमैटिक (ortho-chromatic) फिल्मों का प्रयोग किया जाता है। कृत्रिम प्रकाश मे फोटो चित्राकन के लिए क्षिप्र पैक्रोमैटिक फिल्म तथा पर्याप्त आवर्द्धनीय चित्रो के लिए सूक्ष्म कणो वाले (fine-grain) फिल्म मिलते है। इनके अतिरिक्त नेगेटिव तथा उत्क्रमण रगीन फिल्म भी मिलते हैं, जिनसे रंगीन प्रिंट प्राप्त होते है। इतना ही नही, विकास एवं मुद्रण
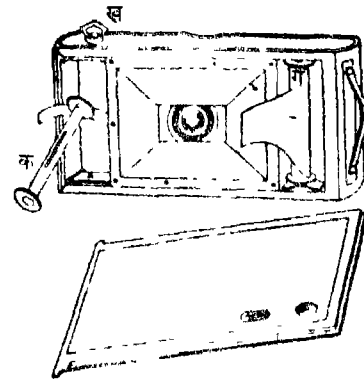
चित्र २ फिल्म को लपेटने की युक्ति
क. फिल्म के स्पूल का खोखा पास के खोडर में रखकर ख. चाभी मे फँसा दिया जाता है तब अनावृत्त फिल्म के स्पूल को विपरीत ओर के खोडर ग में, जैसा दिखाया है, रखकर उसका सिरा क मे फँसा दिया जाता है तथा कैमरे का ढक्कन बद कर दिया जाता है।

के लिये अब व्यवसायी फोटोग्राफरों की कृपा पर निर्भर नही रहना पडता। विकास हेतु आवश्यक रासायनिक द्रव्य उपयुक्त मात्रा मे पैकेटों मे मिलने लगे हैं और प्रिंटिंग के लिय ऐसे उत्कृष्ट कागज भी मिल जाते हैं जिनपर स्पष्ट आवर्द्धित प्रिंट बडी सुगमता से प्राप्त किए जा सकते हैं। आजकल अत्यत सुग्राही पैक्रोमैटिक फिल्मो का निर्माण होने लगा है, जिनपर कृत्रिम प्रकाश द्वारा वस्तु को आलोकित कर, फोटो ले लिया जाता है। यह प्रकाश कैमरा मे ही लगी, सेल चालित विद्युत् व्यवस्था की सहायता से अत्यत तीव्र प्रकाश उत्पन्न करनेवाले क्षणदीप्ति सलग्नी या क्षणदीप्ति बल्बों (flash attachments या flash bulb) के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। ये बल्ब उतने ही क्षणो तक जलते है जितने क्षणो तक उद्भासन देना होता है। इसके बाद ही उनका जीवन समाप्त हो जाता है और साथ ही स्वयचालित द्वारक या शटर भी स्वयमेव बद हो जाता है।

(२) **व्यावसायिक (Professional) फोटोग्राफी** — फोटोग्राफी के विकास के इतिहास के निर्माण मे व्यावसायिक स्तर पर उसका उपयोग कर सकने की चेष्टाओ की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। प्रारंभ में फोटोग्राफी का मुख्य प्रयोजन व्यक्तियो के फोटोग्राफ लेना था। विद्युत्

व्यवस्था चालित प्रकाशस्रोतों का आविष्कार न होने के कारण उन दिनों व्यक्तियों को धूप में खड़ा करके, अथवा अधिकतम विसरित सौर प्रकाश या विशाल परावर्तकों के द्वारा प्रकाशपुंज व्यक्ति की ओर प्रक्षेपित करके, उसे यथावश्यक प्रदीप्ति देकर ही फोटो लिया जाता था। यह क्रिया फोटो खींचने और खिंचवानेवाले, दोनों के ही लिये अत्यंत कष्ट एवं श्रमसाध्य थी। विद्युत् के आविष्कार के उपरांत शक्तिशाली लैंपों से उत्पन्न प्रकाश को उनके पीछे लगे परावर्तकों द्वारा व्यक्ति पर प्रक्षेपित किया जाता है और उस तीव्र आलोक मे व्यक्ति का फोटो कमरे या स्टूडियो मे ही ले लिया जाता है।

व्यापारिक फोटोग्राफी (Commercial Phctography) — व्यावसायिक फोटोग्राफी का प्रयोग व्यापारिक चित्रो के निर्माण हेतु किया जाने लगा है जिनका मुख्य ध्येय व्यापारिक प्रतिष्ठानों द्वारा निर्मित वस्तुओं का लोकार्षक ढंग से विज्ञापन करना होता है। जीवित 'माडेल' से लेकर खाद्यपदार्थो एवं जीवन मे उपयोगी अन्य पदार्थों के ऐसे फोटो लेने के प्रयास किए जाते हैं जिनसे अधिक से अधिक चित्ताकर्षी प्रभाव उत्पन्न हो। इसके लिये वर्ण फोटोग्राफी मे भी दक्ष होने की आवश्यकता पड़ती है। साधारण तौर पर सजीव एवं निर्जीव पदार्थों के चित्रांकन के लिए पृथक फोटो विशेषज्ञ हुआ करते है।

(४) **शैक्षणिक** (Educational) **फोटोग्राफी** — आजकल प्राय सभी नवीन शिक्षण प्रणालियों में श्रव्य-दृश्य (audiovisual) शिक्षण विधियों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इस महत्वपूर्ण कार्य का अवलंबन शिक्षाप्रद वस्तुओं, घटनाओ आदि का बालरुचि के अनुकूल फोटोग्राफ लेने में किया जाता है। इसमें सचल फिल्मांकन भी किया जाता है, ताकि घटनाओं की यथाक्रम चित्रावलि निर्मित हो सके। इसके अतिरिक्त वस्तुओं के सभी चर्चित एव महत्वपूर्ण विवरण स्पष्टतया दृष्टिगोचर हों, इस हेतु उनके विशेष दृष्टिकोणो से फोटोग्राफ लिए जाते हैं।

वैज्ञानिक कार्यों में फोटोग्राफी का प्रयोग

स्पेक्ट्रमलेखन (Spectrography) — विभिन्न पदार्थों के स्पेक्ट्रमो, या वर्णक्रमो का विशद अध्ययन करने के निमित्त उनका फोटोग्राफ लेने के लिये स्पेक्ट्रमदर्शी (spectroscope) से एक कैमरा सलग्न कर दिया जाता है और स्पेक्ट्रम का फोटो ले लिया जाता है। ज्ञातव्य है कि स्पेक्ट्रम विस्तार के तीन मुख्य क्षेत्र होते है: दृश्य, पराबैंगनी तथा अवरक्त। प्रत्येक क्षेत्र के फोटोग्राफ लेने के लिये विशेष प्रकार के प्लेट प्रयुक्त किए जाते है। दृश्य स्पेक्ट्रम के लिये साधारण पैंक्रोमेटिक प्लेट उपयुक्त होते है। निकट पराबैंगनी (near ultraviolet) स्पेक्ट्रम के लिये साधारण नीला सुग्राही प्लेट या फिल्म काम में लाया जाता है। किंतु २,८०० ऑंग्स्ट्रॉम से कम तरंगदैर्ध्य के क्षेत्र मे प्रकाश का अवशोषण जिलेटिन द्वारा इतनी तीव्रता से होता है कि फोटो बन ही नही पाता। इसलिये इस क्षेत्र का फोटो चित्रांकन करने के लिये, प्राय दो विधियो का व्यवहार किया जाता है: (१) प्रतिदीप्ति विधि (fluorescence method), जिसमे वस्तु को पराबैंगनी प्रकाश द्वारा प्रदीप्त किया जाता है और सामान्य फोटोग्राफी की विधि द्वारा ही फोटो लिया जाता है। केवल कैमरा के सामने एक फ़िल्टर (filter) लगा दिया जाता है, जो परावर्तित पराबैंगनी प्रकाश को अवशोषित कर केवल दृश्य प्रतिदीप्ति को ही फिल्म तक पहुँचने देता है, और (२) परावर्तित पराबैंगनी विधि, जिसमे वस्तु पर बैंगनी प्रकाश डाला जाता है और कैमरा के मुख पर एक फिल्टर रख दिया जाता है, जिससे केवल परावर्तित पराबैंगनी प्रकाश ही फिल्म तक पहुँच सकता है। सेनमैन विधि मे तो पायस मे से जिलेटीन प्राय. बिलकुल निकाल दिया जाता है। अवरक्त के लिये विशेष प्रकार के सुग्राहीकृत रंजकों का प्रयोग किया जाता है, जो लगभग १३,००० ऑंग्स्ट्रॉम तक फोटोग्राफी के अभिलेख उत्पन्न कर देते है।

स्पेक्ट्रमलेखी विश्लेषण (Spectrographic analysis) द्वारा निम्नलिखित तथ्यो का ज्ञान किया जाता है (१) किसी पदार्थ में विद्यमान तत्वो की पहचान तथा उसमे उनके समानुपातिक सयोग या मिश्रण का पता लगाना। उस पदार्थ के स्पेक्ट्रम का फोटोग्राफ़ प्राप्त कर, उसमे विभिन्न स्पेक्ट्रम रेखाओ (Spectral lines) की स्थिति एव आपेक्षिक तीव्रताओ के अध्ययन द्वारा इस प्रकार के पदार्थों का गुणात्मक एव परिमाणात्मक विश्लेषण किया जाता है; (२) विभिन्न पदार्थों मे विद्यमान अपद्रव्यो का पता लगाना और उनकी मात्रा उन पदार्थों मे ज्ञात करना। यह विश्लेषण ऐसे बहुत से अपद्रव्यों का पता लगाने के लिये उपयोगी होता है जो सामान्य रासायनिक विधियो से ठीक ठीक नही ज्ञात किए जा सकते; (३) खगोलीय पिंडो की रचना एव उनके अतर मे चल रही गूढ क्रियाओं का अध्ययन उन पिंडो से प्राप्त स्पेक्ट्रम का चित्र प्राप्त करके बडी कुशलता से किया जाता है। इस प्रकार ब्रह्मांड की रचना पर विशद प्रकाश डालनेवाले ज्योतिष के इस उपविभाग को 'ज्योतिर्भौतिकी (Astrophysics) कहते है (देखें, **खगोलीय फोटोग्राफी**)।

अवरक्त फोटोग्राफी — अवरक्त प्रकाश वायुमडलीय धुंध, कोहरा आदि को बडी सुगमता से पार कर जाता है। इसलिये ऐसी स्थिति मे फोटो लेने की समस्या इसी प्रकाश की सहायता से सुलझाई जाती है। इस प्रकाश मे घास तथा अन्य वनस्पतियो का रग हरा न दिखलाई पडकर श्वेत दिखलाई पडता है, क्योंकि इस प्रकाश के लिये क्लोरोफिल पारदर्शी होता है। इस प्रकाश का प्रयोग तप्त पदार्थों के धरातल पर ताप वितरण जानने मे, गहन अधकार मे वस्तुओ को इस प्रकाश से आलोकित कर उनका फोटोग्राफ लेने मे, (चूंकि अवरक्त प्रकाश नेत्रो के लिये अदृश्य होता है। इसलिये अधकार मे इससे प्रकाशित वस्तु नेत्रों के लिये पूर्ववत् अदृश्य ही रहती है), अपराध विज्ञान मे बदले हुए या खराब कर दिए गए कागज पत्रों एव अन्य तत्सदृश पदार्थों का रहस्य जानने मे तथा उन वस्त्रो का फोटोग्राफ लेने के लिये, जिनके गहरे रंग उनके दृश्य परीक्षण मे बाधक सिद्ध होते हैं, किया जाता है। इसका प्रयोग चिकित्सा एवं भेषज के क्षेत्रों मे बड़ा व्यापक एव उपयोगी सिद्ध होता है, क्योंकि अवरक्त किरणों के लिये मानव चर्म पारदर्शी होता है। अतएव अनेक व्याधियों के निदान के लिये अधस्त्वचीय शिराओ (subcutaneous veins) का प्रेक्षण कर उनका सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। वनस्पतिविज्ञान, जीवाश्म विज्ञान आदि के अध्ययन मे शिल्पवैज्ञानिक (technological) तथा औद्योगिक प्रयोजनों के लिये एवं आलेखी

फूल या पुष्प (देखें पृष्ठ ११६-१२७)

इमली पुष्पित

पलाश के फूल

मौलसिरी की पुष्पकलिकाएँ

प्याज के फूल

फैज़ाबाद (देखे पृष्ठ १३२)
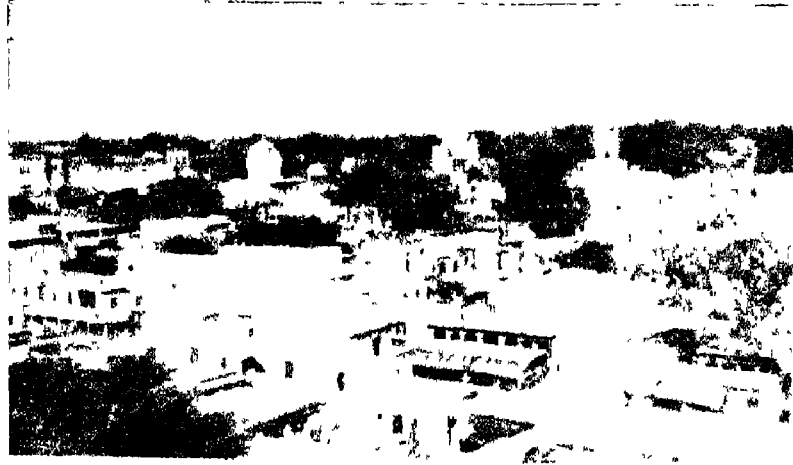
अयोध्या नगर
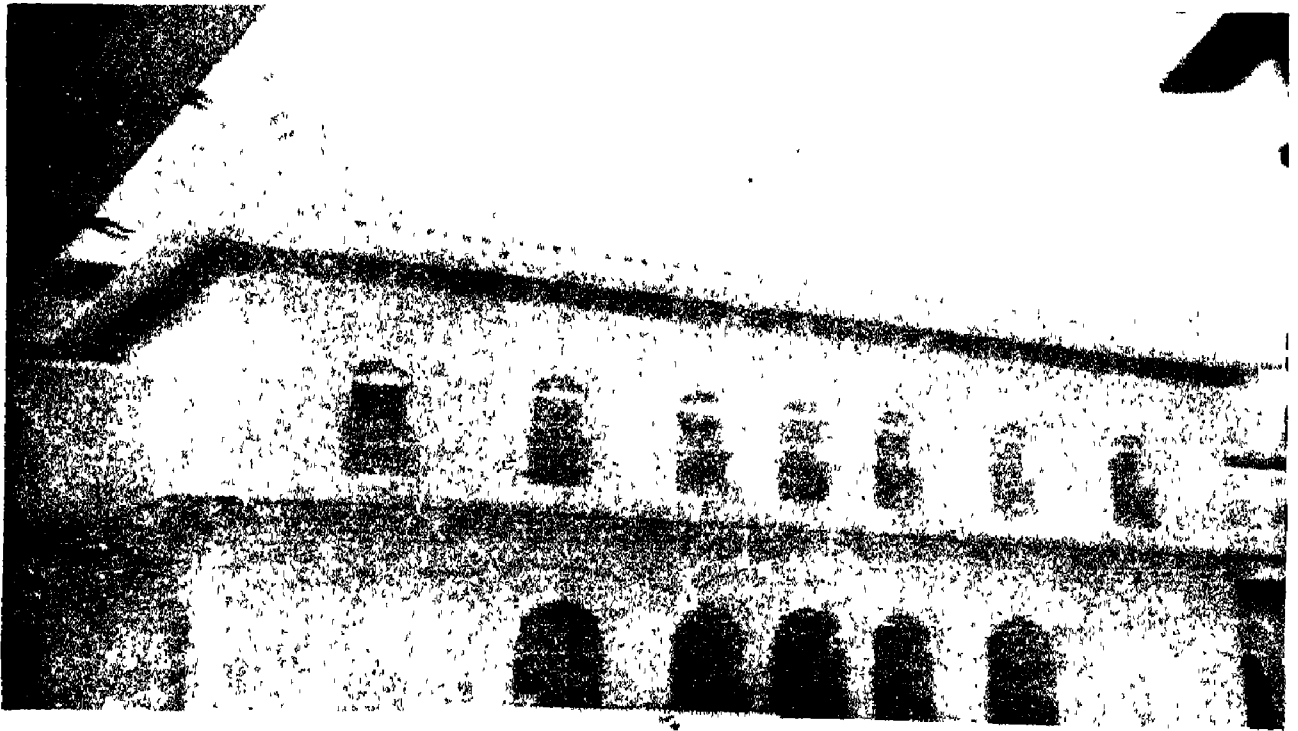
कनक भवन, अयोध्या

(सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, के सौजन्य से)

कला कृतियों (works of graphic art) की मीमांसा करने के हेतु इस प्रकाश का प्रयोग अब व्यापकता की ओर अग्रसर हो रहा है।
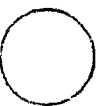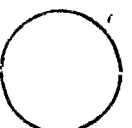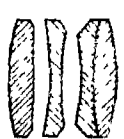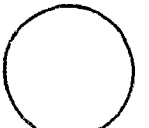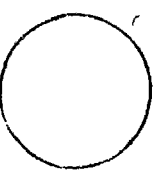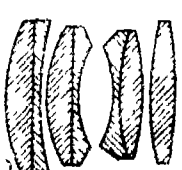
पराबैंगनी — इसका प्रयोग भी बदले गए कागज पत्रों एवं कृतियों, विरूपित अभिलेखों को पढ़ने, नष्टप्राय कला को पुनरुत्पादित करने, अदृश्य लेखों एवं अँगुलियों की छापों को पहचानने एवं ऐसे ही अन्य प्रयोजनों में, जो पदार्थों की प्रतिदीप्ति के गुणों पर अवलंबित रहते है, किया जाता है। चिकित्सा एवं भेषज विज्ञान में भी इसका व्यवहार बढ़ता जा रहा है।

प्रलेख फोटोग्राफी (Document Photography) — दुर्लभ अभिलेखों के तथा ऐसी पांडुलिपियों के, जिन्हें जर्जर हो जाने अथवा अन्य किसी कारण से अधिक समय तक सुरक्षित रख सकना कठिन होता है, फोटोग्राफ लेकर रख लिए जाते है। इस कार्य से निम्नलिखित लाभ होते है. (१) इस प्रकार प्राप्त प्रतिलिपि मे किसी प्रकार की त्रुटि, छूट अथवा अन्य किसी प्रकार का दोष नहीं आने पाता; (२) इससे नष्टप्राय हो रहे अभिलेखों की जीवनरक्षा हो जाती है, (३) फोटोग्राफी द्वारा उन अभिलेखों की अनेक प्रतिलिपियाँ तैयार कर लेने से उनके खो जाने अथवा अन्य कारणों से विनष्ट हो जाने का भय दूर हो जाता है; (४) किसी के जीर्णशीर्ण एवं नष्टप्राय हस्तलेखों को यथारूप सरक्षित करने मे सुविधा होती है और (५) अभिलेखों में निहित नष्टप्राय अभिसूचनाओं के सुरक्षार्थ अत्यत शीघ्रता से पुनरुत्पादित कर सकने, या उनके यत्रतत्र बिखरकर नष्ट हो जाने से बचाने, की यह एक अत्यंत उत्कृष्ट व्यवस्था है।

उच्च क्षिप्रता फोटोग्राफी (High Speed Photography) — अत्यत द्रुत गति से घटनेवाली भौतिक घटनाओं के क्रमों या क्षिप्र घटनाओं के किसी अंश का फोटोग्राफ लेकर अवकाश में उनका धीरता-पूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। इस हेतु अत्यत तीक्ष्ण प्रकाश एवं अत्यल्प उद्भासन काल देना पड़ता है, ताकि स्पष्ट चित्र प्राप्त हो सके।

लेंस के सामर्थ्य की व्याख्या

विभिन्न लेंसों के सापेक्ष आकार	लेंस की जाति	सापेक्ष आवश्यक अनावरण समय	सन्निकट सापेक्ष क्षिप्रता	लेंस के अवयव
	मेनिस्कस		१	
	डबलेट		१३	
	ऐनैस्टिग्मैट, f/८ ८		३	
	ऐनैस्टिग्मैट, f/६ ३		६	
	ऐनैस्टिग्मैट, f/४ ५		११	
	ऐनैस्टिग्मैट स्पेशल f/३.५		१८	
	एक्टार, f/१६		६२	

क्षिप्र फोटोग्राफी निम्नलिखित विधियों से संपन्न की जा सकती है :

(१) एक बार उद्भासन देकर तात्क्षणिक फोटोग्राफी की क्रिया — इस प्रक्रिया के लिये स्थिर प्रदीप्ति एवं क्षिप्र कपाट (shutter) उद्भासन देने की आवश्यकता पड़ती है, जो सर्वोत्कृष्ट यांत्रिक कपाटों द्वारा भी संभव नहीं हो पाता। अतएव इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये चुबकीय प्रकाशिकी, विद्युत् प्रकाशिकी, कपाटों का प्रयोग किया जाता है। इन्हे केर सेल (Kerr cells) भी कहते है। बंदूक से छूटी हुई गोली सदृश अत्यंत वेगगामी वस्तुओं का फोटोग्राफ लेने के लिये छाया फोटोग्राफी की विद्या का अनुसरण किया जाता है, जिसके लिये अत्यल्पावधिक तीव्र प्रकाश का फ्लैश (flash) उन वस्तुओं पर डालना पड़ता हैं। इससे वस्तु की छाया कैमरा की फिल्म या प्लेट पर सीधे स्थापित हो जाती है। इस कार्य की पूर्ति के हेतु निकटस्थ वस्तु के लिये, सामान्य रूप से, विद्युत् स्फुलिंग ही सर्वाधिक उपयुक्त प्रकाशस्रोत होता है और उद्भासन की अवधि प्रायः एक सेकंड के दस लाखवें भाग के बराबर होती है। दूरस्थ वस्तुओ के लिये स्फुलिंग और वस्तु के बीच मे एक सघनित्र लेंस रख दिया जाता है। दूसरी विधि में, जिसे परावर्तित प्रकाश की विधि कहते है, एकल उद्भासन देने के लिये प्रकाशस्रोत के रूप मे गैस विसर्जन लैंप का प्रयोग किया जाता है और उद्भासन अवधि प्राय· एक सेकंड के पचास सहस्रवें अंश के बराबर होती है।

(२) **उच्च क्षिप्रता के श्रेणीबद्ध फोटोग्राफ** — ऐसे फोटोग्राफ चलचित्रों आदि मे लिये जाते है। फोटोग्राफों के श्रेणी क्रम इस प्रकार सुनियोजित होते है कि घटना की निरतरता अपनी पूर्ण स्वाभाविकता के साथ परिलक्षित हो सके। इस प्रक्रिया मे बिंब की प्रगति की निरंतरता के प्रत्यर्थ कुछ विशेष प्रकार की प्रकाशीय युक्तियो (optical devices) की व्यवस्था करनी पड़ती है।

(३) **अल्पावधिक फोटोग्राफ के अनुक्रम** (sequence) — अत्यल्प समयातरों मे फ्लैश बल्बो (Flash bulbs), गैसीय विसर्जन लैंपों तथा क्रमानुसारेण चालित कैमरो के समूहों (groups) द्वारा ये तैयार किए जा सकते हैं। बेल (Bell) प्रयोगशाला द्वारा रिबन फ्रेम कैमरा नामक एक द्रुत चालित कैमरा का निर्माण मूलत राकेटो की उड़ान के प्रारंभिक काल मे उनकी गति का अध्ययन करने के हेतु किया गया था।

(४) किसी अल्पकालिक स्वय आलोकित तथा द्रुत गतिशील वस्तु, यथा विस्फोट आदि, का अध्ययन करने के लिये द्रुत अनुक्रम फोटोग्राफ अत्यत सहायक होते है। इसके लिये व्यवहृत विधियो मे एक अत्यंत द्रुत घूर्णनशील कपाट द्वारा किसी स्थिर या गतिमान् फिल्म पर अल्पकालिक उद्भासन दिया जाता है। ये फिल्मे विस्फोट के मार्ग के अभिलंबवत् एक तल मे स्थित होती है, या एक घूर्णनशील ढोल पर लपेटी रहती हैं। सबल फिल्मो के कैमरे मे, पृथक् फोटोग्राफी की एक शृंखला प्राप्त करने के लिये, द्रुत घूर्णनशील दर्पणो का प्रयोग किया जाता है।

फोटोग्राफी की उपर्युक्त शाखाओ के अतिरिक्त वैज्ञानिक प्रयोजनो मे व्यवहृत विधाओं के और भी अनेक अंग है। ज्योतिषीय, या खगोलीय, फोटोग्राफी द्वारा खगोलीय पिंडो की संरचना, गति एवं अन्य विशेषताओं के संबंध मे जानकारी प्राप्त की जाती है। विभिन्न निर्माणों (भवन, आदि) के अंदर प्रतिबलों (stresses) का अध्ययन करने के लिये उनकी पारदर्शी प्लास्टिक की प्रतिकृतियों (मॉडेल) के फोटोग्राफ लेकर, ध्रुवित एकवर्णी (monochromatic) अध्ययन किया जाता है। उन निर्माणों (structures) में से इस प्रकाश का वर्तन होने पर जो विभिन्न पट्टियाँ (bands) बनती हैं, उनका अध्ययन कर उनके अंदर प्रतिबलो के वितरण की गणना की जाती है। अंतर्जलीय (underwater) फोटोग्राफी की सहायता से सागर की गहराइयों मे पाई जानेवाली वस्तुओं तथा प्राणियों का अध्ययन किया जाता है। इस कार्य के हेतु विशेष प्रकाश व्यवस्था एव जल तथा दबाव रुद्ध कैमरे का प्रयोग किया जाता है।

एक्सकिरण फोटोग्राफी का व्यापक प्रयोग क्रिस्टलविज्ञान (crystallography) तथा चिकित्सा के क्षेत्रो मे किया जाता है। फोटोग्राफी की इस शाखा को विकिरणीचित्रण या रेडियोग्रैफी (Radiography) भी कहते हैं। गामा विकिरणीचित्रण मे ठोस पदार्थों के अंतराल का अध्ययन करने के लिये गामा किरणो का प्रयोग किया जाता है, क्योकि ये किरणे एक्सकिरणो की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र भेदक होती है और ठोस पदार्थो मे काफी गहराई तक अदर घुस जाती है। फोटोग्राफी की एक विशेष वैज्ञानिक उपशाखा सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफी (microphotography) है, जिसके अतर्गत अत्यत सूक्ष्म (microscopic) पदार्थों का अध्ययन परावर्तित या पारगमित प्रकाश मे, अत्यत लघु (miniature) कैमरे की सहायता से, किया जाता है। इन कैमरो मे उच्च द्वारक (aperture) वाले अभिदृश्यको एव उच्च आवर्धन अभिनेत्रों का सयोजन होता है।

नाभिकीय कणों (nuclear particles) की फोटोग्राफी मे विशेष प्रकार के पायसो का प्रयोग किया जाता है, जिनमे सिल्वर ब्रोमाइड का अंश काफी अधिक होता है और अत्यत लघु दाने या ग्रेन, न्यूनतम धुंध (fog) की सभाव्यता तथा इलेक्ट्रानों एव अन्य उच्च गतिवाले आवेशित कणो के पथ चित्रांकित करने के लिये उपयुक्त क्षिप्रता आदि विशेषताएँ विद्यमान होती है। इस विधि से आवेशित कणों की पहचान तथा उनके गुणो का अध्ययन भली प्रकार किया जा सकता है और साथ ही नाभिकीय गणको (nuclear counters) द्वारा प्राप्त परिणामो की यथार्थता का सत्यापन भी किया जा सकता है।

फोटोग्राफी की क्रिया का सिद्धांत — सामान्य फोटोग्राफी की क्रिया द्वारा प्राप्त बिंब सिल्वर के लघु दानो (grain) की एक विशाल संख्या द्वारा निर्मित होता है। ये दाने वस्तुतः उद्भासन क्रिया द्वारा सिल्वर हैलाइड के कणों के अपचयन से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्राप्त बिंब को **गुप्त प्रतिबिंब** (latent image) कहते है, क्योंकि व्यक्तीकरण के पूर्व इनको नग्न नेत्रों से देखना संभव नही होता। उच्च शक्तिसंपन्न सूक्ष्मदर्शियो की सहायता से ही ये देखे जा सकते हैं। ऐसे बिंब की कृष्णता उद्भासन की मात्रा तथा व्यक्तीकरण के परिमाण पर निर्भर करती है। अत्यधिक उद्भासन से प्रकाशिक अपघटन (photolysis) के कारण, सिल्वर हैलाइडो का सिल्वर के दानों के रूप मे अपचयन व्यक्तीकरण के बिना ही हो जाता है। इसे 'प्रिंट आऊट प्रभाव' (Print-out Effect) कहते है और इसका उपयोग मुख्यत. प्रोर्ट्रेट निर्माण क्रिया में प्रूफ-प्रिंट तैयार करने तथा

कतिपय प्रत्यक्ष अनुरेखण (direct trace) अभिलेखी यंत्रों में किया जाता हैं ।

व्यक्तीकरण की क्रिया में, एक उद्भासित दाना पहले अपने तल पर स्थित कुछ बिंदुओं पर ही विकसित होता हुआ परिलक्षित होता है। स्पष्टत: यही वे बिंदु हैं जो प्रकाश द्वारा विशेष रूप से प्रभावित हुए रहते हैं। इस प्रकार गुप्त बिंब कुछ विशेष बिंदुओं पर ही संघनित होता है, जिन्हें मूल पायस के दानों के सुग्राह्यता केंद्र (Centres of sensitivity) कहते है। प्रमाणो से पता चलता है कि ये केंद्र वस्तुत: क्रिस्टल के तल में विद्यमान सिल्वर सल्फाइड के दाग (specks) होते है और गुप्त प्रतिबिंब का निर्माण इन्ही दागों के चतुर्दिक एकत्र सिल्वर धातु के द्वारा होता है। प्रकाश चालन (Photoconductivity) तथा विद्युद्विश्लेषिक चालन (electrolytic conductivity) के आधार पर इसकी व्याख्या सुगमता से की जा सकती है। जब प्रकाश सिल्वर हैलाइड द्वारा अवशोषित होता है, तब कुछ इलेक्ट्रॉन सुलभ हो जाते हैं और उस पदार्थ की विद्युच्चालकता मे वृद्धि कर देते हैं। ये इलेक्ट्रॉन स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण करने मे सक्षम होने पर भी सिल्वर हैलाइडों के सुग्राह्यता केंद्रो पर फँस जाते हैं और वहाँ ऋणावेशों की सृष्टि करते हैं। दूसरी ओर, स्वतंत्र सिल्वर आयन भी भ्रमण करने लगते हैं और इन इलेक्ट्रॉनो की ओर आकृष्ट होकर उनसे सयुक्त हो जाते है तथा उदासीन या अनावेशित (neutral) सिल्वर परमाणु की रचना करते हैं। इस प्रकार दागो की काया वृद्धि होती है और वे इतने विशाल हो जाते हैं कि व्यक्तीकरण क्रिया मे एक नाभिक का कार्य कर सके।

व्यक्तीकरण (Development)— व्यक्तीकरण के हेतु प्राय: दो प्रकार के विकासक द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है :

(१) **भौतिक विकासक द्रव्य** — इनके विलयन में रासायनिक अपचायक एवं सिल्वर यौगिक होते है, ये विकासक सिल्वर हैलाइडो को अपचयित नही करते, अपितु गुप्त प्रतिबिंब पर सिल्वर जमा देते हैं। इस कारण ये व्ययसाध्य हो जाते है, अत. व्यवहार में इनका उपयोग बहुत कम किया जाता है।

(२) **रासायनिक विकासक द्रव्य** — इनमे कोई सिलवर यौगिक नही होता। ये सिलवर हैलाइडो को सिल्वर धातु मे अपचयित कर देते है। सिल्वर हैलाइडो के अपचयन की क्रिया सर्वप्रथम गुप्त प्रतिबिंब के सुग्राह्यता केंद्रो से प्रारंभ होती है, जहाँ से वह चतुर्दिक् बढ़ती जाती है। इस प्रकार विकासक द्रव्य अकार्बनिक या कार्बनिक दोनो किस्म के यौगिक हो सकते हैं। अकार्बनिक मे फेरस ऑक्जेलेट तथा कार्बनिक मे फ़िनॉल (Phenols) और ऐमिनो (amino) वर्ग के यौगिक होते हैं। सन् १८३१ मे ल्युमियर (Lumiere) एवं ऐंडरसन (Anderson) ने विकासको के संबंध में यह नियम प्रतिपादित किया कि इनमें कम से कम दो हाइड्रॉक्सिल वर्ग (hydroxyl group), या दो ऐमिनो वर्ग (amino group), या प्रत्येक का एक एक वर्ग बेंजीन केंद्रक (benzene nucleus) से एक दूसरे के पैरा-(para-) या ऑर्थो-(orthro) स्थितियो में संलग्न होने चाहिए। कुछेक विकासक तो इस नियम का पालन नही करते, किंतु इस नियम का पालन करनेवालो में से कुछ अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण तथा अधिकतर प्रयुक्त होनेवाले विकासकों के नाम इस प्रकार हैं हाइड्रोक्विनोन (hydroquinone), मोनोमिथाईलपैरामिनोफ़िनॉल (monomethylparaminophenol) [उपनाम एलॉन, (elon) मोटॉल (metol)], ऐमिडोल (amidol; 2, 4 diaminophenol), पाइरॉगैलॉल (pyrogallol; 1, 2, 3-hydroxybenzne), और p-फेनिलीन डाइऐमीन (p-phenylenediamene)। सन् १९५१ मे इल्फोर्ड लिमिटेड ने फेनिडोन (phenidone; 1-phenyl-3pyrazolidone) नामक विकासक द्रव्य का निर्माण किया, जो अधिकतर व्यवहार्य अनेक मीटॉल-हाइड्रोक्विनोन विकासकों मे मीटाल (metol) के बड़े अंश को विस्थापित कर सकता है।

साधारणतया प्रयोग किए जानेवाले विकासको के मुख्य घटक निम्नलिखित होते हैं : क्षार या ऐल्कैली (alkali), जो विकास क्रिया को त्वरित करता है। सामान्यत. सोडियम कार्बोनेट या सोडियम मेटाबोरेट तथा सोडियम टेट्राबोरेट, या बोरैक्स (borax) का प्रयोग किया जाता है। केवल ऐमिडोल (amidol) को ही क्रियाशील या प्रभावी होने के लिये किसी क्षार की आवश्यकता नही होती।

विकासक मे सल्फाइड भी एक अनिवार्य घटक होता है, जो विकासक को वायु मे विद्यमान आक्सीजन द्वारा आक्सीकृत होने से बचाता है। इसके अतिरिक्त यह सिल्वर हैलाइडों के अपचयन की क्रिया मे उत्पन्न होनेवाले ऑक्सीकृत उत्पादो से संयुक्त हो जाता है और उनके हस्तक्षेप से व्यक्तीकरण को कुप्रभावित होने से बचाता है।

लक्ष्य में समानता होने पर भी विभिन्न व्यावहारिक विकासक अनेक अर्थो मे परस्पर भिन्न होते हैं। यह भिन्नता मुख्यत: उनके अवयवो की सांद्रता तथा जिन उद्देश्यो के लिये उनका प्रयोग किया जाता है, उनकी विशेषताओ पर निर्भर करती है। व्यक्तीकरण की गति सामान्यत: तापवृद्धि के साथ बढ़ती है, किंतु यह गति विभिन्न विकासकों के लिये भिन्न भिन्न होती है।

जब किसी उद्भासित फिल्म या प्लेट का विकास या व्यक्तीकरण प्रारभ किया जाता है, तब सबसे पहले उनमे कोई परिवर्तन परिलक्षित नही होता। इस अवधि को प्रेरणावधि (Induction period) कहते हैं। इसके पश्चात् ही विकास बडी द्रुत गति से होने लगता है, जिसके कारण उद्भासित क्षेत्र की सघनता बडी तेजी से बढने लगती है, थोडी ही देर मे सघनता वृद्धि की यह गति कम होने लगती है और अंत मे रुक जाती है। इसके बाद विकास क्षेत्र का धूमिल (fog) होना प्रारंभ हो जाता है। यदि विकासक मे अधिक मात्रा में मुक्त ब्रोमाइड न हो, तो धुँधलापन प्रारभ होने के पूर्व घनत्व एवं विकास काल मे पारस्परिक संबंध निम्नलिखित सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :

$$घ = घ_{\infty} \ (१ - e^{-कस})$$
$$[\ D = D_{\infty} \ (1 - e^{-kt})\ ]$$

जहाँ घ (D) वह घनत्व है, जो स (t) समय तक में व्यक्तीकरण से विकसित हो जाता है; $घ_{\infty}$ (D_{∞}) घनत्व की वह चरम सीमा है जो पूर्ण विकास में प्राप्य है तथा क (k) एक स्थिरांक है, जिसे विकास का वेग स्थिरांक (Velocity Constant) कहते है।

विकासोत्तर क्रियाएँ — विकास के पश्चात् प्लेट को स्थायीकरण (fixing), प्रक्षालन, तथा शुष्कन (drying), और आवश्यकता हो तो

अपचयन अथवा तीव्रताकरण (reduction or intensification), **रंग संस्कार** (toning) आदि की क्रियाओं से गुजरना पड़ता है।

स्थायीकरण (fixing) — विकसित फिल्म या प्लेट को विकासक विलयन में से निकालकर सोडियम थायोसल्फेट या हाइपो,
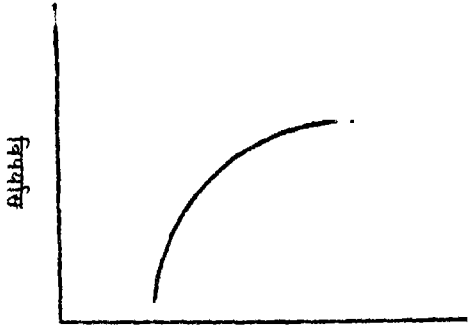
व्यक्तीकरण का समय

चित्र ३.

व्यक्तीकरण (development) के समय के साथ साथ विपर्यास (contrast) की वृद्धि दिखानेवाला वक्र।

अथवा अमोनियम थायोसल्फेट या अमोनियम हाइपो, के जलीय विलयन मे डाल दिया जाता है, जिससे अपरिवर्तित सिल्वर हैलाइड घुलकर फिल्म से पृथक् हो जाता है। प्लेट के साथ चिपके हुए विकासक द्रव्य द्वारा हाइपो को ऑक्सीकृत होने से बचाने के लिये हाइपो मे कुछ सल्फाइट होना चाहिए और प्लेट के साथ हाइपो तक पहुँचनेवाले क्षार के कारण हाइपो मे भी प्लेट के विकास की क्रिया होती रहती है, जिसे रोकने के लिये हाइपो मे कुछ अम्ल देना चाहिए, जो क्षार को उदासीन बना दे। अम्ल के कारण हाइपो में सल्फर के निक्षेपित हो जाने क फलस्वरूप हाइपो की अस्थिरता का परिहार करने के लिये भी सल्फाइट का हाइपो मे होना नितांत आवश्यक है। इस प्रकार स्थायीकर विलयन मे थायोसल्फेट, सल्फाइट तथा ऐसीटिक अम्ल सदृश निर्बल अम्ल का समिश्रण रहता है। कुछ अधिक क्षार होने पर उसे विराम कुडिका (stop bath), या प्रक्षालन कुडिका (rinse bath) द्वारा स्थायीकरण के पहले ही पृथक् कर लिया जाता है। इस कार्य के लिये पानी या तनु ऐसीटिक अम्ल का प्रयोग किया जाता है।

जिलेटिन को नरम होने से रोकने के लिये स्थायीकारी द्रव्य मे कुछ अम्ल कठोरकारी (acid hardener) पदार्थ भी डाल दिए जाते हैं। साधारणत: प्रयुक्त कठोरकारी पदार्थ पोटैशियम और क्रोम ऐलम इत्यादि है। उनकी अम्लीयता को बनाए रखने के लिये उनमे बोरिक अम्ल डाल दिया जाता है।

स्थायीकरण मुख्यत हाइपो की सांद्रता और उसके ताप पर निर्भर करता है। सर्वाधिक द्रुत स्थायीकरण लगभग २० से ४० प्रति शत सांद्रता पर होता है तथा अनुकूलतम ताप ६०° से ७०° फारेनहाइट (१५°—२२° सें०) के मध्य मे है। साधारणतया फिल्म क स्पष्ट होने के उपरात भी उसे हाइपो मे उतने ही समय तक और रखना चाहिए जितनी देर उसे स्पष्ट होने मे लगी हो। प्रिंट को स्थायी (fix) करते समय तो और भी अधिक देर तक रखना चाहिए।

प्रक्षालन — स्थायीकरण के पश्चात् प्लेट या फिल्म को धोया जाता है, ताकि स्थायीकारी लवण तथा उनके सिल्वर हैलाइडो के साथ बने हुए विलेय जटिल मिश्रण उसपर से दूर हो जाएँ। यदि उपर्युक्त लवण नही साफ किए जाते, तो प्लेट को कुछ दिन तक रख देने पर प्रतिबिंब का धीरे धीरे गधकीकरण (sulphurizing) होने लगेगा और यदि वे नही हटाए जाते, तो प्लेट के अनुद्भासित क्षेत्र पर धब्बे दृष्टिगोचर होने लगते है। प्लेट या फिल्म की धुलाई पानी की मंद धारा मे होनी चाहिए और ताप भी १५ से २२° सें० के बीच मे होना चाहिए। इस ताप से ऊपर जिलेटिन के नरम होने और प्लेट से पृथक् होने का भय उत्पन्न हो जाता है। प्रिंट की धुलाई अपेक्षाकृत अधिक शिथिल गति से होती है, क्योंकि कागज के रेशो मे से लवण के कणो को बहिर्गत होने मे कठिनाई होती है। इसलिये प्रिंट की धुलाई के लिये हाइपो प्रतिकारी द्रव्यों का उपयोग वांछनीय है। ऐसे द्रव्यो मे अमोनिया और हाइड्रोजन परोक्साइड प्रमुख है।

शुष्कन — धुली हुई फिल्मों या प्लेटो को उष्ण वायु की मद धारा म सुखा लेना चाहिए। कागज के प्रिंटों को धातु की खोलो पर रखकर हलकी आंच दिखाकर सुखाना चाहिए। ऐसा करते समय कागज का पायसवाला पृष्ठ खोल की धातु स चिपकाने पर फोटोग्राफ मे चमक आ जाती है।

अपचयन एव सघनन या तीव्रताकरण — प्रतिबिंब का घनत्व रासायनिक विधि से कम किया जाता है। इसक लिये सिल्वर के कण को किसी ऑक्सीकारक की सहायता से घुलाकर पृथक् कर लिया जाता है। इस विधि से अपचयन का परिमाण प्रयुक्त ऑक्सीकारक पर निर्भर करता है। इसके विपरीत, सघनन के लिये प्रतिबिंब पर सिल्वर, पारा या अन्य उपयुक्त यौगिक को रासायनिक विधि से जमाया जाता है।

सुग्राह्यतामापन (Sensitometry) — यद्यपि इस शब्द से फोटोग्राफी के पदार्थों की सुग्राह्यता के मापन का ही बोध होता है, तथापि अब व्यवहारत इसमे फोटोग्राफी क प्रतिबिंब निर्माण मे प्रयुक्त सभी अवयवों का मापन समाविष्ट हो गया है। हर्टर (Hurter) और ड्राइफील्ड (Driffield) ने फोटोग्राफी क प्लेट की सुग्राह्यता के मापनार्थ एक विशेष विधि का व्यवहार किया, जो आधुनिक सुग्राह्यतामापन विधियो का मूल आधार है। उन्होंने उद्भासन, विकासन एव उससे प्रभूत सिल्वर निक्षेप (silver deposit) के पारस्परिक सबधो का अध्ययन किया और उसके आधार पर प्लेट पर पडनेवाले प्रकाश की तीव्रता **ती** (I) तथा प्लेट से पारगमित प्रकाश की तीव्रता **ती'** (I') के बीच निम्नलिखित सबध प्राप्त किए :

$$\text{घ} = \text{लघु}\,\frac{\text{ती}}{\text{ती}'},\ \text{या घ} = -\,\text{लघु}\,\frac{\text{ती}'}{\text{ती}}$$

$$\left[\ D = \log\frac{I}{I'},\ \text{or } D = -\log\frac{I'}{I}\ \right]$$

$$\text{पा} = \frac{\text{ती}'}{\text{ती}}\ \text{तथा अ} = \frac{१}{\text{पा}}$$

$$\left[\ T = \frac{I'}{I}\ \text{तथा } O = \frac{1}{T}\ \right]$$

जहाँ (D) = घनत्व, अ (O) = अपारदर्शिता (opacity) और

या (T) प्लेट की पारदर्शिता (transparency) है। उपर्युक्त वैज्ञानिक युगल ने घनत्व एवं उद्भासन के लघुगणक के संबंधों को एक वक्र द्वारा प्रदर्शित किया, जिसे वे लक्षण वक्र (characteristic curve) की संज्ञा देते थे (देखें चित्र ४)। इस वक्र का भाग ब' स' सीधा होने के कारण उद्भासन और घनत्व में सरल समानुपात व्यक्त करता है। इसे यथार्थ उद्भासन (correct exposure) कहते हैं। इस दृष्टि से अब' न्यूनउद्भासित (underexposed) या टो (toe) एवं स'द' अतिउद्भासित (overexposed) या स्कंध (shoulder)
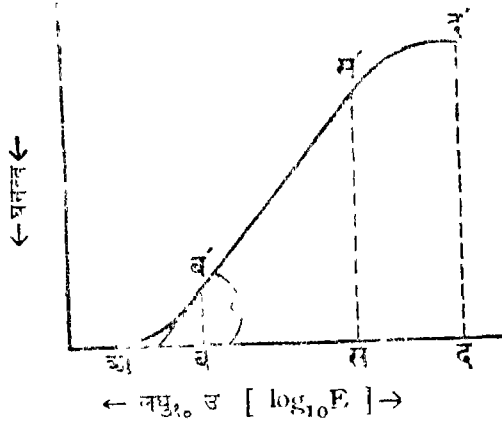
चित्र ४. इमल्शन का लाक्षणिक वक्र

भाग है। ऐसे लक्षण वक्रों का उपयोग मुख्यत फिल्म, प्लेट या कागज की सुग्राह्यता या क्षिप्रता (speed) ज्ञात करने के लिये किया जाता है। इसके अतिरिक्त विपर्यास (contrast), उद्भासन के विस्तार (latitude) और टान (tone) के पुनरुत्पादन का ढंग भी इसकी सहायता से ज्ञात किया जाता है। लक्षण वक्र प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित उपसाधनों की आवश्यकता पड़ती है. (१) ज्ञात तीव्रता एवं स्पेक्ट्रमी गुण का विकिरण उत्पन्न करनेवाला प्रकाशस्रोत, (२) ज्ञात परिमाण के क्रमिक उद्भासनों की शृंखला उत्पन्न कर सकनेवाला एक अधिमिश्रक (modulator), (३) मानक विकासन दशाएँ उत्पन्न करने के लिये व्यवस्था, (४) सटीक घनत्व मापन के लिये साधन, और (५) परिणामों की व्याख्या करने की विधि-व्यवस्था। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यवहार्य प्रकाशस्रोत टंग्स्टन तंतु विद्युत् लैंप (tungsten filament electric lamp) होता है, जो २,३६०° K वर्ण ताप (colour temperature) पर कार्य करता है। इसके साथ ही एक वर्ण निस्यंदक (colour filter) संलग्न होता है, जिसकी सहायता से लगभग माध्य मध्याह्न सौर प्रकाश के सदृश स्पेक्ट्रमी गुणसंपन्न प्रकाश (लगभग ५,४०० K) प्राप्त होता है। सुग्राह्यतामापी में प्रकाशस्रोत एवं उद्भासन अभिमिश्रक संयुक्त रहते है, जिससे सोपानवत् क्रमवृद्धि में, या निरंतर क्रम में, उद्भासन प्रदान किया जा सकता है। सुग्राह्यतामापी या तो तीव्रता पैमाना, या काल पैमाना, यंत्र होते है और इनमें से किसी का प्रयोग इस बात पर निर्भर करता है कि तीव्रता या समय दोनों में से कौन चर तत्व है। उत्तम सुग्राह्यतामापी निरंतर उद्भासन तीव्रता पैमाना प्रकार का ही होता है।

घनत्व सघनतामापी (densitometer) द्वारा मापा जाता है, जिसमें प्रकाश की तीव्रता ध्रुवणकारक (polarising) युक्तियों द्वारा मापी जाती है, यथा मार्टेन का ज्योतिर्मापी (Marten's photometer)। कुछ सघनतामापी तो केवल तुलना करनेवाले यंत्र (comparator) मात्र होते हैं, जिनमें परीक्षणीय सघनता को ज्ञात मान की मानक सघनताओं के साथ तुलना की जाती है। मापन की सुविधा के लिये अनेक नए प्रकार के सघनतामापियों में नेत्रों के बदले प्रकाशविद्युत् सेलों का प्रयोग किया जाता है।

जब प्रकाश किसी नेगेटिव में से होकर गुजरता है, तब उसका कुछ भाग तो पार निकल जाता है और कुछ प्रकीर्ण अथवा विसरित हो जाता है। यदि पारगमित, प्रकीर्ण तथा विसरित प्रकाश अंशों को एकत्र करके सघनता मापी जाय तो प्राप्त परिणाम को विसरित सघनता (diffused density) कहेंगे। केवल पारगमित प्रकाश द्वारा यदि सघनता मापी जाय तो उसे चक्षु दृश्य (specular) सघनता कहेंगे। विसरण सघनता का मान अधिक होता है और चक्षु दृश्य सघनता से वह कोलियर के Q गुणांक (Collier's Q factor) का अनुपात रखता है। कोलियर का यह गुणांक घनत्व के व्युत्क्रमानुपाती होता है और भिन्न भिन्न पायस के लिए इसका मान भी भिन्न भिन्न होता है। सर्वाधिक संतोषजनक एवं पुनरुत्पादनीय विसरक माध्यम एक समाकलन-गोला (integrating sphere) होता है। कागज पर ली हुई छापों (prints) में सघनता परावर्तित प्रकाश द्वारा मापी जानी चाहिए। सामान्य दशाओं में इस प्रकार प्राप्त सघनता निम्नलिखित सूत्र द्वारा व्यक्त की जाती है

$$घ_प = लघु\ १/प \quad [\ D_R = \log 1/R\ ]$$

जहाँ $घ_प$ = परावर्तित प्रकाश से प्राप्त सघनता है

$$और\ प = लघु \left(\frac{कागज\ द्वारा\ परावर्तित\ प्रकाश}{बिंब\ द्वारा\ परावर्तित\ प्रकाश} \right)$$

टोन पुनरुत्पादन (Tone Reproduction) -- इसका तात्पर्य उस मौलिक फोटोग्राफिक पुनरुत्पादन से होता है जो प्रेक्षक के मन में वही संवेदनाएं उत्पन्न करता है, जो मूल दृश्य को देखने से प्रेक्षक में उत्पन्न होती है। यह ज्योतिमयता (luminance) और ज्योतिर्मयता अंतर (luminance differences) तथा फोटोग्राफ में सघनता और सघनतांतरों पर निर्भर करता है। टोन पुनरुत्पादन की यह क्रिया कई बातों पर निर्भर करती है, यथा वस्तु से आगत प्रकाश की तीव्रता, कैमरा में तीव्र अस्थिर प्रकाश (flare light), स्पेक्ट्रमी सुग्राह्यता, उद्भासन, व्यक्तीकरण, नेगेटिव के पदार्थ के लक्षण वक्र की आकृति, मुद्रक तथा आवर्द्धक (enlarger) के प्रकार तथा उनमें तीव्र अस्थिर प्रकाश, प्रिंट के उद्भासन, व्यक्तीकरण, प्रिंट के हेतु प्रयुक्त पदार्थ इत्यादि।

वर्ण फोटोग्राफी (Colour photography) - स्थानाभाव के कारण फोटोग्राफी की इस महत्वपूर्ण एवं सर्वाधिक चित्ताकर्षी विधा पर अधिक विस्तार से लिखना तो संभव नहीं होगा, किंतु कुछ अपेक्षाकृत आवश्यक वृत्तात्मक विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

किसी दृश्यावलि का उसके सहज प्राकृतिक रंगों में ही फोटोचित्र प्राप्त करने की प्रक्रिया सामान्य विचार से अत्यंत दुःसाध्य प्रतीत होती है, क्योंकि प्रकृति रंगों की विविधता का भंडार है और उन सबको

पुनरुत्पादित कर सकने की किसी भी प्रक्रिया में असंख्य रंजकों (dyes) की आवश्यकता पड़ सकती है, किंतु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। किसी भी रंग का प्रकाश तीन प्राथमिक, यथा लाल, हरा और नीला, रंगों के प्रकाश के यथोचित अनुपात मे सयोग द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है। यद्यपि बहुधा इस प्रकार उत्पन्न रंग में प्राकृतिक रंग से पूर्ण सादृश्य नही हो पाता, फिर भी अवशिष्ट अंतर बहुत ही सूक्ष्म होता है। आधुनिक वर्ण फोटोग्राफी की कला पर्याप्त विकसित हो चुकी है। व्यावसायिक स्तर पर चलचित्रों मे व्यवहृत टैक्निकलर प्रक्रिया अत्यंत उत्कृष्ट एवं समुन्नत वर्ण फोटोग्राफी का एक ज्वलंत प्रमाण है। इसकी सफलता इसी तथ्य से प्रगट हो जाती है कि प्रति वर्ष पाँच करोड़ फुट से भी अधिक लंबाई की फ़िल्में इस प्रक्रिया द्वारा तैयार की जाती हैं। इसमे एक ही लेंस से तीन पृथक् नेगेटिव लिए जाते हैं और वे एक ही पॉजिटिव फिल्म के रूप मे परस्पर संयुक्त कर लिए जाते हैं और उसे सामान्य फिल्मो की ही भाँति प्रदर्शित किया जा सकता है।

वर्ण फ़ोटोग्राफी की सर्वोत्कृष्ट प्रक्रिया कोडाक्रोम (Kodachrome) है, जिसका आविष्कार ईस्टमैन कोडैक लेबोरेटरीज ने किया है। यह प्रक्रिया वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तो बहुत जटिल है, किंतु व्यवहार मे अत्यंत सुगम है। इसमे एक विशेष प्रकार की फिल्म का प्रयोग किया जाता है, जिसमें सेलुलोस नाइट्रेट या एसीटेट पर जिलेटिन और पायसो की पाँच अत्यंत पतली तहें एक दूसरी पर स्थापित होती हैं और इन सबकी मोटाई मिलकर भी सामान्य फिल्म की मोटाई से अधिक नही हो पाती। इनका क्रम इस प्रकार होता है : सेलुलोस पर अर्थात् सबसे नीचे, लाल वर्ण सुग्राही पायस की परत होती है और उसके ऊपर जिलेटिन की विशेष प्रकार की पतली परत होती है, जो केवल लाल रंग के प्रकाश को ही पार होने देती है। इसके ऊपर हरा वर्ण सुग्राही पायस की परत होती है, जिसमें से लाल प्रकाश पार हो जाता है, और उसके ऊपर जिलेटिन की ऐसी परत होती है, जो केवल हरे और लाल रंग के ही प्रकाश को पार होने देती है। सबसे ऊपर नीला वर्ण सुग्राही पायस होता है। फिल्म पर आपाती प्रकाश मे विभिन्न वर्णों के प्रकाश की तीव्रता जैसी होती है, उसी के समानुपातिक संमिश्रण से प्रभावित हो कर फिल्म नेगेटिव का निर्माण होता है।

इस क्रिया मे नेगेटिव निर्माण से कही अधिक जटिल कार्य उसका पॉजिटिव रूप में विकास है। चार पृथक एवं क्रमानुसार नियोजित व्यक्तीकरण क्रियाओं एव उनके बीच में अनेक रंजक क्रियाओं (dyeing processes) के अनंतर ही कही जाकर पॉजिटिव बिंबो के तीन सेट एक ही फिल्म पर बनते है, जिनमें सबसे ऊपर पीला, बीच मे मैजेंटा (magenta) और सबसे नीचे नील-हरा (blue green) होता है। ऐसे फिल्मो पर जब श्वेत प्रकाश डाला जाता है तो ये प्राथमिक रंग उचित अनुपातो में परस्पर मिलकर वस्तु के रंगो को पुनरुत्पादित करते हैं। [सु० च० गौ०]

फोटोग्राफी कला (Photographic Art) ललित कलाओं मे चित्रकला का विशेष तथा प्रमुख स्थान है। संगीत श्रवण की इंद्रिय द्वारा तथा चित्रकला दृष्टि की इंद्रिय द्वारा हृदय की तंत्रियो को झंकृत कर आनंद का सृजन करती है। जिस प्रकार चित्रकला (तैलचित्र, रंगीन चित्रकारी, वाटर कलर छायाचित्र आदि) मनुष्य की रचनात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति है, उसी प्रकार फोटोग्राफी भी (काले-सफेद फोटो, रंगीन फोटो, प्रकाशछाया के सामंजस्य वाले फोटो आदि के द्वारा) चित्रकला के समान ही, कला के रूप में विकसित हो चुकी है, क्योंकि इसके द्वारा भी कलाकार अपनी रचनात्मक योग्यताओं की अभिव्यक्ति कर सकता है।

अब फोटोग्राफी कुछ सौभाग्यशालियो की ही कला नहीं, वरन असंख्य लोगो की कला बन गई है। फोटोग्राफीय रूपचित्रण (portraiture) ललित कलाओ की उस सर्वोत्तम विशेषता की श्रेणी मे आता है जिसे मनुष्य की आविष्कारात्मक प्रवृत्ति ने जन्म दिया है।

इस कहावत के बावजूद कि 'फोटोग्राफ कभी झूठ नही बोलता। एक फोटोग्राफ की रेखाओं को बदल देने के लिये बहुत कुछ किया जा सकता है। फोटोग्राफी मे तीन-विमितीय (three dimensional) ससार को दो-विमितियों में प्रदर्शित करना पड़ता है। बिंब तथा वस्तु के आकारो का अनुपात लेंस की फोकस-दूरी के अतिरिक्त लेंस से वस्तु की दूरी पर भी निर्भर करता है। चूंकि वस्तुओ को एक ही समय मे दो आँखो के द्वारा देखा जाता है, इस कारण हमे वस्तु की आँख से दूरी का अंदाज लगाने एवं आँख के पर्दे पर बने इसके बिंब के आकार का अर्थ लगाने मे, सहायता मिलती है। साथ ही वस्तु के ठोसपन (solidity in relief) का आभास हो जाता है। फोटोग्राफ मे सापेक्षिक आकार के अर्थ समझने का ऐसा कोई साधन नही है, इसी लिये कैमरे को ऊपर की ओर बहुत अधिक टेढ़ाकर खीचे गए किसी गगनचुंबी भवन का चित्र भद्दा दिखता है। पर रेखाओ की यह अशुद्धि एक त्रिविम कैमरा (stereoscopic camera = आँखों के समरूप स्थित, दो लेंसोंवाला कैमरा) के द्वारा फोटो खीचने पर लोप हो जाती है। आँख के दृष्टिपटल पर बना बिंब न केवल विकृत अपितु उलटा भी होता है, तो भी अभ्यास के द्वारा हम लोगो ने इस त्रुटि पर ध्यान न देना सीख लिया है।

अपने चित्र को बनाते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दृश्य के एकाकी बिंदु के निरीक्षण तथा एकाकी बिंब से हमारा प्रयास परिसीमित हो जाता है। द्विनेत्रीय दर्शन मे न देखी जा सकनेवाली रेखाओ की त्रुटियो को सदा दूर रखना वाछनीय है।

फोटोग्राफ के संदर्श (perspective) को सुधारने के ढंग — ऊँचे भवनो के फोटोग्राफ मे परिलक्षित त्रुटि को दूर करने के लिये प्लेट या फिल्म को भवन की ऊर्ध्वाधर रेखाओं के समातर तथा लेंस के अक्ष के लबवत् सेट कर देना चाहिए। इसके द्वारा लेंस अक्ष के लबवत् एक तल दूसरे समातर तल मे प्रतिबिंबित हो जाता है, और इसी स्थिति के लिये आधुनिक लेंस बनाए भी जाते है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए दो युक्तियाँ है : एक तो कैमरे के सामने वाले ढाँचे को ऊपर या नीचे करने वाला उत्तोलक (lever) है। इसी ढाँचे में लेंस फँसा रहता है। इस प्रकार फिल्म लेंस-अक्ष के लबवत् भी बनी रहती है तथा विषयवस्तु (subject) के अधिक ऊँचे या अधिक नीचे बिंदु दृश्य-क्षेत्र मे लाए जा सकते है तथा इस प्रकार दृश्य क्षेत्र के किनारे के भागों पर प्रकाश की तीव्रता बढ़ाई घटाई जा सकती है। दूसरी युक्ति एक ऐसे उत्तोलक का उपयोग है, जिसके द्वारा फिल्म को एक क्षैतिज धुरी के चारो ओर घमाया जा

सकता है, पर इसके फलस्वरूप फिल्म लेंस के अक्ष के लंबवत् नहीं रहने पाता तथा फ़ोकस की शुद्धता नष्ट हो जाती है, जिसके कारण द्वारक घटाना पड़ता है ताकि विषयवस्तु की स्पष्टता बनी रहे, पर 'आलोक की तीव्रता' पर कोई प्रभाव नही पड़े।

कुछ अन्य उत्तोलक भी हो सकते हैं, जैसे सामने के ढाँचे को झुकानेवाला तथा पीछे के भाग को झुकाने वाला (swing back), दोनों ही मौजूद हो तो एक उभरता अंग (rising front) के समतुल्य है। इसके द्वारा विषय वस्तु की ऊर्ध्वाधर रेखाओ पर नियंत्रण रखा जा सकता है तथा क्षैतिज रेखाओ पर नियंत्रण के लिये एक अन्य ऐसा उत्तोलक होता है, जो लेंस अथवा फिल्म को एक ऊर्ध्वाधर अक्ष के चारो ओर घुमा सकता है, अथवा क्षैतिजवत् विस्थापित कर सकता है।

लघु (miniature) कैमरो के द्वारा खीचे चित्रो के विकारो को, 'निगेटिव को विवर्धित करते समय 'प्रिंटिंग कागज' को फँसानेवाले फ्रेम को कुछ झुकाकर दूर किया जा सकता है, पर उचित स्पष्टता के लिये द्वारक छोटा रखना पड़ेगा। इस झुकाव का प्रभाव 'विपरीत' दिशा मे त्रुटि डालने के समान है। वैसे अधिक सरल उपाय यह होगा कि 'विवर्धक' (enlarger) मे पश्चझुलन तथा झुकानेवाले लीवर लगे हो।

विवर्धन करने के लिये यदि चित्र को १६ इंच की साधारण दूरी पर रखकर देखना हो, तो आवर्धन या विवर्धन निष्पत्ति (magnification or enlargement ratio) = 16/f, हो जहाँ f लेंस का फोकस है। यदि (लघु कैमरो मे) f = २ इंच हो, तो M = ८ गुणा होगा। यदि १$\frac{3}{8}$ = ११/८ इच फ्रेम की कुल लबाई हो, तो प्रिंट ११ इच लबा होगा। पर व्यावहारिक रूप मे विवर्धित चित्र दो परिचित आकारो ८ × १० इच अथवा ११ × १४ इच में बनाना ही अधिमान्य (preferable) है, ताकि चित्र विषयवस्तु की अनुभूति उचित परिशुद्धता के साथ प्रदर्शित कर सके। इन आकारो की इतनी सर्वप्रियता का कारण यह है कि सुविधानुसार देखने पर यह वही दृष्टिकोण बनाते है जैसे कि अधिकतर कैमरे और इस प्रकार शुद्ध सदर्श की शर्त पूरी कर देते हैं।

यदि विवर्धन ५ × ७ इच के प्रिंट पर होगा तो दृश्यक्षेत्र (तथा दृष्टि-कोण भी) छोटा हो जायगा। दूर के पर्वत अथवा ऊँचे भवनो का चित्र अपनी प्रभावशीलता खो देगा। पर किताबो के चित्र आदि मे यह त्रुटि नहीं रहेगी और उसके ५ × ७ इच, या इससे भी छोटे, चित्र बनाए जा सकते है। इसके लिये लबे फोकस वाले (फलस्वरूप छोटे कोण वाले भी) लेंस (f = ८५ या ६० मिमी०) उपयोग मे लाने चाहिए, जब लघु कैमरा २५ × ३६ मिमी० हो। वही प्रभाव चित्र के केवल कुछ भाग का उपयोग करके, तथा शेष को काटकर भी किया जा सकता है, ताकि वही दृष्टिकोण बने। पर वैसे लंबे f, इस कारण छोटे दृष्टिकोण वाला लेंस, छोटे f, तथा इस कारण अधिक विवर्धन वाले, ताल की अपेक्षा अधिक अच्छे चित्र बनाएगा। छोटे f वाले लघु कैमरो मे लबे f वाले लेंस की तुलना मे। कण तथा पायस की विभेदनक्षमता की सीमा कम होती है।

दृश्यभूमि (landscape) **फोटोग्राफी** — अब तक यह बात मान ली गई थी कि विषयवस्तु का दिग्दर्शन उतनी शुद्धता से कराना है जितनी संभव हो, परंतु सदा इसी बात की कामना नहीं होती। फोटोग्राफर का उद्देश्य यह भी हो सकता है कि विषयवस्तु का सच्चा सीधा वर्णन करने अथवा अर्थ समझाने की अपेक्षा वह स्वयं अपनी कहानी बताना चाहता हो। उदाहरण के रूप मे यदि पहाड़ो को सीधे-सच्चे रूप में प्रदर्शित किया जाय, तो चित्र देखने वालो पर वास्तविक स्थिति का भावात्मक प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि दृष्टिकोण छोटा है। ११ × १४ इच के प्रिंट के लिये आवश्यक फोकस वाले लेंस की अपेक्षा बड़े फोकस वाला लेंस उपयोग में लाकर पर्वत द्वारा बने दृष्टिकोण को विवर्धित किया जा सकता है तथा तुलना के लिये परिचित वस्तुएँ, जैसे वृक्ष, जानवर, मनुष्य आदि, को भी चित्र मे स्थान देकर प्रभाव को तीखा बनाया जा सकता है, ताकि पर्वत और अधिक ऊँचा दिखाई पड़े। दूरस्थ पर्वत तथा निकटस्थ वस्तु के सापेक्षिक आकार पूर्णरूपेण फोटोग्राफर के नियंत्रण मे हैं — पर्वत का आकार लेंस के फोकस द्वारा तथा निकटस्थ वस्तु का आकार कैमरे से दूरी द्वारा निर्धारित होते हैं। उचित संदर्श का चयन परमावश्यक है। होटल, फैक्टरी या समेलन गृह का पर्याप्त छोटे संदर्श द्वारा प्रदर्शन, ताकि वह वास्तविकता से अधिक बड़े या भव्य दिखाई दें, वांछनीय नही है।

एक अन्य बात भी है, जिसके विचार से भी त्रिविमीय संसार को द्विविम में प्रदर्शित करने मे फोटोग्राफ के गुण पर प्रभाव पड़ता है। चूंकि कैमरे से विभिन्न दूरियो की वस्तुएँ लेंस के पीछे विभिन्न दूरियों पर बिंब बनाती है, इस कारण एक तल पर स्थित वस्तुएँ तो साथ साथ फोकस की जा सकती है, पर इस तल से परे या पूर्व स्थित वस्तुएँ फोकस के बाहर तथा धुधली हो जाएँगी। इसी कारण एक त्रिविमीय ठोस वस्तु का चित्रण सतोषजनक नहीं होगा। यद्यपि आँख के द्वारा भी वैसा ही त्रुटिपूर्ण बिंब बनता है, पर चूंकि आँख अपना फोकस बहुत शीघ्रता से बदल लेती है इसलिये यह कुछ क्षणों में ही सारे दृश्य क्षेत्र का सर्वेक्षण कर लेती है और ठोस वस्तु का ब्यौरा (details) जान लेती है। पर यदि बड़े फोटो मे ऐसे समस्त ब्यौरे न आ पाएँ तो उसे एक बड़ा दुर्गुण ही कहा जाएगा।

रूपचित्रण (Portraiture) — कुछ परिस्थितियो में उपर्युक्त दुर्गुण भी एक लाभ सिद्ध होता है, जैसा कि रूप चित्र लेते समय। रूप चित्र लेते समय केवल सीमित दूरियो के परास को ही 'तीखे रूप से' चित्रित करने की आवश्यकता होती है तथा समस्त पृष्ठ-भूमि मे पड़ी सामग्री पूर्णरूपेण फोकस से बाहर फेंकी जा सकती है। ऐसा स्नैपशॉट (snap shot) लेते समय बड़ा द्वारक लेकर किया जा सकता है। पर दृश्यभूमि के चित्रण में जहाँ पर ब्यौरे प्राय अनवरत (continuously) फैले होते हैं, यह प्राय: संभव नही होता कि अवांछनीय सामग्री को बिना अन्य स्थानो मे धुंधलापन लाये पूर्णतया फ़ोकस से बाहर कर दिया जाय।

'फोकस' की गहराई उस दूरी की माप को बताती है, जिससे यदि फिल्म को सही फोकस मे विस्थापित कर दे, तब भी चित्र

साफ, तीखा दिखाई पडनेवाला प्रतिबिंब बनाएगा। इससे अधिक महत्वपूर्ण राशि 'क्षेत्र की गहराई' है जो उन दूरियों के फरक के बराबर है, जिसके अंदर वस्तु स्थित करने से सदा समान तीखेपन का प्रतिबिंब बनेगा। एक लघु कैमरे के लिए १/३ सेकंड तथा एक साधारण कैमरे के लिये ,१/६० सेकंडके पर्दा उद्घाटन काल (exposure time) की आवश्यकता पड़ेगी, ताकि समान दृश्यक्षेत्र की गहराई प्राप्त हो सके। एक लघु कैमरे से रूप चित्र खीचने के लिये ५ इंच फोकस-वाला लेंस श्रेष्ठ रहता है।

विषयवस्तु की व्यवस्था (Arrangement of subject material) — फोटोग्राफर को उस वस्तु या दृश्य का चित्र खीचना पडता है, जो उसके सामने आता है, परंतु उसे एक त्रिविमीय संसार को द्विविम में चित्रित करना पडता है। इस कारण उसको पर्याप्त अधिकार इस बात पर प्राप्त रहता है कि वह निर्णय कर सके कि उसका अंतिम चित्र क्या रूप ग्रहण करेगा। न केवल वह निकटस्थ या दूरस्थ वस्तुओं के सापेक्ष आकारों पर उचित फोकस के चुनाव के द्वारा नियंत्रण रख सकता है, अपितु वह अपने दृष्टिकोण के चुनाव के द्वारा अपनी कृति में विभिन्न वस्तुओं की सापेक्ष स्थिति का भी निर्धारण कर सकता है, विशेषकर निकटस्थ वस्तुओं तथा पृष्ठ-भूमि में स्थित वस्तुओं की स्थिति के बारे में। फोटोग्राफर के लिये उस उचित दृष्टिकोण का निर्णय करना कठिन कर्म है जिससे सर्वोत्तम चित्र प्रस्तुत हो सकता है, यद्यपि व्यक्ति को यह बोध वर्षों के अनुभव एवं अभ्यास से होता है, तो भी 'विषय को तरतीब' देने के कुछ 'गुर' कोई भी सीख सकता है।

एकता (Unity) — चित्र तभी प्रभावकारी हो सकता है, जब उसका कोई उद्देश्य हो, अथवा उसमें कोई संदेश निहित हो। पर कुछ व्यक्त करने के प्रयास में मुख्य विषय से असंबंधित बातों का बहुत अधिक वर्णन अवांछनीय है। चतुर फोटोग्राफर को उचित विषयों को चुनकर, निरर्थक ध्यान खीचने वाली बातों को दबा देना चाहिए। बहुत सी तरकीबों में से सबसे सरल यह है कि अवांछनीय सामग्री को किनारों से काट दिया जाय। यह उद्देश्य दृष्टिकोण को घटाकर प्राप्त किया जा सकता है। कुछ सर्वश्रेष्ठ चित्र इसी प्रकार छोटे कोणों के द्वारा प्राप्त किए गए है। इस काम के लिये लंबे फोकस वाले लेंस, अथवा परिवर्तनीय लेंसों के अकेले तत्व उपयोगी है। प्रतीति सदर्श के नियमों को त्यागकर, सामग्री को एक छोटे कोण में ऐसा फैलाए कि वह संपूर्ण चित्रस्थान को भर ले। कभी कभी तो किसी नेगेटिव के छोटे छोटे भागों को, जिनमें चित्र जैसा महत्व अथवा प्रभाव हो, काटकर तथा परिवर्धित करके सुंदर चित्र बनाए जा सकते है।

विषयसामग्री की स्थिति — सुंदर फोटोग्राफ में केवल एक मुख्य भाव ही छाया रहना चाहिए। यह भाव प्राय कुछ विशेष वस्तुओं, अथवा प्रमुख आकर्षण के क्षेत्रों, के ऊपर ही केंद्रित रहता है। इन क्षेत्रों की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ लोग कहेंगे कि प्रमुख वस्तु को चित्र के केंद्र में स्थित करना चाहिये, पर अनुभव यह सिद्ध कर देगा कि इससे प्रभावकारिता कम हो जायगी। केंद्र तथा किनारे-वाले, दोनों क्षेत्र अपेक्षाकृत कमजोर है और बहुत से अच्छे चित्रों के अध्ययन करने से सिद्ध हो जायगा कि चतुर कलाकार अपनी सबसे प्रमुख वस्तु को नीचे चित्र में दिखाए गए चार बिंदुओं में से एक में स्थित करना चाहेगा। ये बिंदु उन रेखाओं के कटान बिंदुओं पर पडते है जो समस्त चित्र को प्रत्येक दिशा में तीन समान पट्टियों में बाँट देती है। न केवल इन कटान बिंदुओं पर प्रमुख बिंदुओं को प्रभावोत्पादक ढंग से स्थित किया जा सकता है, अपितु चित्र के विभिन्न भागों के लिये स्थान बाटने में इन रेखाओं को सीमारेखा के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में समुद्र का चित्र लेते समय आधा समुद्र एवं आधा आकाश को स्थान देने की अपेक्षा दो तिहाई समुद्र तथा एक तिहाई आकाश (या इसके विपरीत २/३ आकाश व १/३ समुद्र) को स्थान देना अधिक वांछनीय होगा। केवल एक रंगवाले (monochrome) चित्र में चरम उच्च प्रकाश (extreme high light) तथा चरम छायाएँ तरंत ध्यान आकर्षित करती है। इसी कारण फोटोग्राफी का यह एक नियम है कि इन्हें संघटन कृति (composition) के प्रमुख भागों में ही पाया जाना चाहिए। इस काम के लिये सफेद एवं काले दोनों रंग प्रयुक्त हो सकते है।
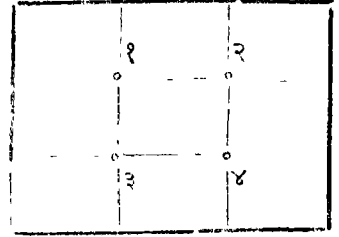
प्रमुख वस्तुओं को स्थित करने के लिये वरीय स्थान १, २, ३, ४.

संतुलन — चित्र में प्रत्येक वस्तु का कुछ भार (weight) होता है, जो चित्र के आकार, टोन (tone) तथा संघटन के महत्व पर निर्भर करता है। इस भार को चित्र के वामार्ध (left half) तथा दक्षिणार्ध (right half) में समुचित रूप से बँटा रहना चाहिए, अन्यथा चित्र में 'संतुलन' न रहेगा। इसके लिये गुर या नियम नहीं बताए जा सकते, पर प्रत्येक फोटोग्राफर को अपने चित्र को इसी दृष्टिकोण से आलोचना करके त्रुटियाँ खोजनी चाहिए। प्राय चित्र में एक तरफ कुछ काट छाँटकर 'विश्रमय' सामग्री की 'मात्रा' का समुचित संतुलन कर, चित्र को सुंदर एवं हृदयग्राही बनाया जा सकता है, क्योंकि प्राय 'अक्ष' या केंद्र से कुछ मिलीमीटर ही 'प्रमुख वस्तु' की मात्रा (mass) खिसका देने पर (एक तराजू के समान ही) उस चित्र की प्रभावोत्पादकता बढ जाती है। इस कार्य में प्रकाशमय तथा अंधकारमय मात्राओं की अक्ष से दूरियां प्रमुख कार्य करती है, पर साथ ही मनोवैज्ञानिक कारणों को भी न भुला देना चाहिए।

चित्र का सर्वेक्षण — चित्र का निरीक्षण करते समय 'उच्च प्रकाश' के स्थान सबसे पहले ध्यान खीचते है। यदि चित्र में समान महत्व के ऐसे बहुत स्थान हुए, तो 'उलझन' उत्पन्न हो जाएगी तथा चित्र बुरा लगेगा। अच्छे चित्रों के समान ही, आँख जब प्रमुख वस्तु पर खिंच जाय, तो चित्रकार को पूरा चित्र दिखाने के लिये सरल पथ [जैसे प्रकाश तथा छाया की 'सीढियों' के द्वारा, अथवा अधिक प्रत्यक्ष रूप में 'पथप्रदर्शक रेखाओं '(leading lines) के द्वारा] प्रदान करना चाहिए। पेड़ के तने, राजपथ, समुद्र के किनारे की रेखा, क्षितिज, या परछाईं का सिरा, चित्र की सैर कराने में आँख का पथप्रदर्शन कर सकते है। जब आँख घूमते घूमते किनारे पहुँच जाय तो उसे वापस लौटा लाने का एक रास्ता भी होना चाहिए, ताकि दृष्टि पर्याप्त समय तक चित्र में ठहरी रह सके।

त्रिभुजाकार रचनाएँ (Triangular Compositions) — एक विधि यह है कि यदि रचना की प्रमुख रेखाएँ मोटे तौर पर एक त्रिभुज बनाती हों, जिसमे एक क्षैतिज (या लगभग क्षैतिज) आधार हो, तो आँख इन्ही रेखाओं के द्वारा विषय सामग्री पर घूमती रहेगी और उसके भटकने का डर न रहेगा। यह रचना रूपचित्रों मे प्रयुक्त होती है। इसमे मुख का कोई प्रमुख भाग त्रिभुज का शीर्ष बनाता है और इसे इतना आलोकित किया जाता है कि नजर तुरत इसपर खिंच जाए।

सुरंग जैसी (tunnel or vista) **रचना तथा सर्पिल रचना** - चित्र के विषय को या तो अंडाकार घेरे (ellipse) मे बनाया जाता है अथवा संपूर्ण सीमा की रेखाओ (margin) के वर्णों (tone) को इतना घटाया जाता है कि आँख के भटकने का डर ही न रहे। इस प्रकार की सुरंग जैसी, या दूर सिमटती हुई, रेखाएँ (जैसे किसी निर्जन वनस्थली मे दूर सिमटती सड़क की रेखाए) चित्र को एक 'गहराई' तथा 'नमनीयता' (plasticity) का भाव प्रदान कर देती है। इसी कारण इनका चित्रण मे विशेष महत्व है। कभी कभी सर्पिल रेखाएँ, जो किसी नदी के किनारे की हो सकती है, सर्पिल पथ के साथ घूमती तथा सीमा बनाती हुई चित्र मे सौंदर्य का सृजन कर सकती है।

विकर्ण जैसी (diagonal) **रचना तथा अभिसारी** (converging) रेखाएँ — विकर्ण जैसी रचना कुछ कम संतोषप्रद, पर संभवत. अधिक प्रयोग मे लाई जानेवाली रचना है। इस रचना मे पथप्रदर्शक रेखाएं बाएं हाथ के ऊपर के कोने से दाहिने हाथ के नीचे के कोने तक विकर्णवत् (diagonally) चलती है और प्राय बहुत कम नीचे के बाएं कोने से ऊपर दाएँ कोने की ओर। यद्यपि ऐसी रचना मे आँख के बाहर चले जाने की संभावना रहती है, तथापि अन्य बिंदुओ की अपेक्षा कोने मे चित्र को छोड देना संभवत इस कारण इतना गंभीर नही है कि चित्र के किनारे वापस लौटने का मार्ग प्रदान करते है। कारण जो भी हो, यह रचना फोटोग्राफरो मे बडी सर्वप्रिय प्रतीत होती है। प्राय विकर्ण मोटे तौर पर चित्र को आकाश तथा अग्रभूमि (foreground) सामग्री मे विभाजित कर देती है। एक अन्य रचना, जिसमे दृष्टि के बाहर चले जाने की संभावना बनी रहती है, अभिसारी रेखाओ की है। इसमे बहुत सी रेखाएं एक आकर्षण केंद्र की ओर अभिसारित होती है और इस प्रकार दृष्टि को बाहर की अपेक्षा अंदर की ओर इन रेखाओं के साथ चलने पर बाध्य कर देती हैं। यह युक्ति प्राय. गलियो या सड़को के दृश्यो में उपयुक्त होती है।

धारण क्षमता — चित्र की प्रभावोत्पादकता कुछ अंशों मे साधारण से अधिक अंतर पर देखे जाने पर ध्यान खीचने की धारण क्षमता (carrying power) द्वारा आँकी जाती है। इस गुण की प्राप्ति के लिये रचना का मुख्य विषयचित्र बडा तथा प्रकाश एव छायावाले बडे बडे भागो के रेखाचित्रो से परिपूर्ण होना चाहिए। इसके लिये फोटोग्राफर को दिन के प्रथम अथवा अंतिम भाग में, जब लंबी छायाएँ पडती हैं तथा छायाएँ व प्रकाश के बडे खंड प्रदान कर देती है, तभी चित्र खीचना चाहिए; केवल उलझाने वाला (जटिल) नमूना, अथवा 'उच्च प्रकाश' के स्थानो की अधिकता ही पर्याप्त नही है। साथ ही उसे यह आदत भी बनानी चाहिए कि 'यथार्थ जीवन' मे निरर्थक, पर द्विविमितीय चित्रकारी मे 'सार्थक' जानेवाले समग्र ब्यौरों का वह निरीक्षण कर सके।

उचित अपचायक के प्रयोग से धुले हुए प्रिंट मे छायाओ की तुलना मे 'उच्च प्रकाश' के स्थानो को अधिक शीघ्रता से दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार आलोक तीव्रता (intensification) की क्रिया द्वारा किसी 'अपूर्ण रूप मे धुले' प्रिंट मे संशोधन व सुधार लाया जा सकता है। इस कार्य के लिये सर्वोत्तम 'क्रोमियम आलोक तीव्रक' (chromium intensifier) है।

रंग संस्कार(Toning) — साधारणतया सबसे अधिक चित्ताकर्षक एकरंगी प्रिंट वह है, जिनका रंग पूर्ण काला (neutral black), भूरा काला अथवा नीला काला होता है। सर्वाधिक चित्ताकर्षक कागज पर छपे प्रिंटो का रंग बिल्कुल सफेद से लेकर पांडु रंग (buff) तक जाता है। प्रिंट के रंग का चुनाव मुख्यतया विषयवस्तु की प्रकृति पर निर्भर करता है - - 'हिमदृश्य' के लिये सफेद कागज पर काले, अथवा नीले काले रंग की आवश्यकता पडती है, जब कि भवन जैसी विषयवस्तु, अथवा रूपचित्र, के लिये पांडु (buff) रंग पर कुछ 'गरम टोन' (warm tones) सुंदर कार्य करेंगे। आजकल कागजो पर ब्रोमाइड तथा क्लोरोब्रोमाइड पायस उपलब्ध है, और वह भी विभिन्न टोन (tones) तथा वर्ण रचना के। इन कागजो पर 'टोन की ऊष्मा' आंशिक रूप मे पायस पर तथा आंशिक रूप मे 'डेवलपर' (developer) पर निर्भर करती है। सबसे नीले टोन ब्रोमाइड पेपर पर ऐमीडोल के प्रयोग द्वारा तथा सबसे 'गरम भूरे काले' टोन क्लोरो ब्रोमाइड पेपरो (जैसे kodalure) पर और D 52 जैसे 'डेवलपरों' के प्रयोग द्वारा प्राप्त होते है। और अधिक गाढ़े रंग विशेष टोनिंग की विधियो (जैसे Gold thiocarbamide toner, Selenium toner, Sulphide toner आदि) के प्रयोग द्वारा इनमें से किसी भी 'पेपर' पर प्राप्त हो सकते हैं। गोल्ड थायो-कार्बामाइड टोनर (Gold thiocarbamide toner) उचित क्लोरोब्रोमाइड पेपर पर काले नीले, स्याही के रंग जैसे, चित्र प्रदान करता है, जो कि 'हिम के दृश्यो' तथा 'समुद्र' के दृश्यों, के लिये बडा उपयुक्त है। पर सिलीनियम टोनर (Selenium toner) भूरे काले से लेकर 'ठंडे भूरे' (sepia) रंगो का सुंदर 'टोन' क्लोराइड तथा क्लोरो ब्रोमाइड पेपरो पर देता है।

इस सिलसिले मे प्रिंटों के लिये वर्णकों की प्रक्रिया, जैसे कार्बन और कार्बो प्रक्रियाएँ, गम बाइक्रोमेट (gum bichromate) तथा ब्रोमाएल का नाम जानना तथा क्रिया विधि सीखना भी वांछनीय है।

कार्टियर ब्रेसन (Cartier Bresson), जो स्वच्छ रूपचित्रांकन का सुदक्ष माना जाता है, कहता है, "मैं खोलने का प्रयास करता हूँ, अर्थ निकालने का नहीं। मै निरीक्षण करता हूँ, पर हस्तक्षेप नही"। वह रूपचित्रण को फोटोग्राफी का सबसे कठिन अंग मानता है। फोटोग्राफर गण कार्टियर ब्रेसन के उपर्युक्त कथन से भी कुछ उपयोगी शिक्षा ग्रहण कर सकते है (देखें फोटोग्राफी)।

[ल० रा० ख०]

फ़ोटोग्रेव्योर (Photogravure) **फोटो की सहायता से किसी तल पर उत्कीर्ण एवं खचित आकृति द्वारा छापने की रीति को कहते हैं। इस रीति से एक पट्ट या बेलन द्वारा, जिसकी सतह पर चित्र या नक्शा (डिजाइन, design)** निक्षारित रहता है, छपे हुए चित्र प्राप्त होते हैं।

जिस विषय का चित्र छापना है उसका पहले फोटो ले लिया जाता है और रूलदार पर्दे से उसे जालदार (reticulated) बना लिया जाता है। उत्कीर्ण आकृति के गड्ढों की गहराई मूल के छाया-घनत्व के अनुसार बदलती है, अर्थात् घनी छाया के स्थान मध्य घनत्ववाले स्थानो से अधिक गहरे होते है और इनमे छापने की रोशनाई भी अधिक आती है। मूल के उज्वल श्वेत भागो के स्थानो पर केवल कागज रहता है। फोटोग्रेव्योर से छापे हुए चित्रो मे गहरी छायावाले स्थान मखमल के सदृश कोमल प्रतीत होते है तथा इनमें साटन के समान चमक पाई जाती है।

छापनेवाली सतह की तैयारी—जिस चित्र को छापना होता है, पहले उसका फोटो-नेगेटिव तैयार किया जाता है। सावधानी से इसका अनुशोधन (retouching) करने के पश्चात् इससे प्रतिवर्तित पॉजिटिव तैयार करते हैं और यदि आवश्यक हुआ तो इसका भी अनुशोधन किया जाता है। तब पॉजिटिव चित्रों को काच के एक पट्ट पर गोद लगे फीतों द्वारा उसी क्रम से लगा दिया जाता है जिसमें उन्हें छापना होता है।

अलग एक ताव कागज पर रंग (साधारणत· लाल रंग) पड़े हुए जेलाटिन के विलयन का लेप लगाते हैं। इसे पोटैसियम बाइक्रोमेट के विलयन में डुबाकर सुग्राही (sensitized) बना देते हैं। तब काच की एक चद्दर पर लगाकर तथा दबाकर इसे सुखा लेते है। इस प्रकार तैयार किए हुए कागज को कार्बन टिशू कहते है। पॉजिटिव चित्रों से कुछ बडा कार्बन टिशू का एक टुकडा काट लिया जाता है और पाजिटिव चित्रो के साथ सटाकर, विशेष प्रकार से बने एक वायवीय मुद्रण चौखटे (pneumatic printing frame) मे इसे रख दिया जाता है तथा इसमें से हवा निकाल ली जाती है। इस प्रकार पॉजिटिव चित्र तथा टिशू चिपककर सट जाते है। इनपर तब प्रकाश की क्रिया कराते हैं। फिर पाजिटिव चित्रो को हटा देते है और विशेष प्रकार से रेखित पर्दे में से टिशू पर दूसरी बार प्रकाश की क्रिया कराते है। रेखित पर्दा फोटोग्राफ के छायाघनो (tones) को अलग अलग विभाजित कर देता है। इससे वह जाल सा बन जाता है, जिसके बिना छपाई हो ही नही सकती। इस पर्दे पर साधारणतया रेखाओ की संख्या १५० या १७५ प्रति वर्ग इच होती है। इसके पश्चात् पूर्वोक्त कार्बन टिशू को पानी मे भिगो देते हैं और तब रासायनिक प्रकार से स्वच्छ किए तथा चिकनाई रहित ताम्रपट्ट या बेलन पर इसे रख देते हैं। फिर टिशू और छापनेवाली सतह के बीच में से सब नमी और हवा निकालने के लिये उसे रबर के बेलन से दबाया जाता है और तब सुखा लिया जाता है।

व्यक्तीकरण (Developing)—इसके लिये उस पट्ट या बेलन को, जिसपर कार्बन टिशू को चपका दिया गया है, पानी की टंकी मे रखकर, लगभग ४०° सें० तक गरम करते हैं तथा साथ साथ पानी को हिलाते जाते हैं, यहाँ तक कि कागज तथा जेलाटिन की परत के विलेय भाग घुलकर निकल जाते है। पॉजिटिव चित्र को पारकर जहाँ प्रकाश कार्बन टिशू पर पूर्ण रूप से गिरा है, वे भाग कड़े तथा अविलेय हो जाते हैं तथा वे भाग, जहाँ प्रकाश भिन्न भिन्न छायाघनों के कारण अधिक या अल्प पड़ा है, अधिक या अल्प विलेय होते हैं।

जब व्यक्तीकरण पूर्ण हो जाता है तब ताम्रपट्ट, या बेलन, को जेलेटिन पटल (फिल्म, film) के शेष अंश सहित जल से निकालकर पूरी तरह सुखा लेते है। यह जेलेटिन पटल, या फिल्म, स्थापक (mordant) का प्रतिरोधक होता है। छापने मे काम आनेवाली सतह के वे भाग जिनको निक्षारित कर निकाल नही देना है, अम्लप्रतिरोधक द्रव्य द्वारा सुरक्षित कर दिए जाते है। इस द्रव्य को हाथ से लेप देते है।

निक्षारण — इस क्रिया के लिये छापनेवाले बेलन को ४५° से ३७° बोमे सांद्रणवाले फेरिक क्लोराइड के विलयन मे रख दिया जाता है। कड़ी हो गई जिलैटिनवाले अम्ल प्रतिरोधक के पतले भागों पर स्थापक का आक्रमण प्रथम होता है तथा मोटे भागों को हलके विलयनों से फिर निक्षारित करना पडता है।

छापने की मशीनें — फोटोग्रेव्योर के लिये जब चौरस पट्ट काम मे लाया जाता है तब छापने की मशीन भी साधारणत. सपाट तल की होती है। इनपर पट्ट चढा दिया जाता है तथा उसपर रोशनाई लगा दी जाती है। एक प्रकार की खुरचनी अनावश्यक रोशनाई को पोछकर हटा देती है और तब छापने की क्रिया होती है। मशीन में कागज चाहे एक बार मे एक ताव दिया जाता है, या वह रील के रूप मे भी रह सकता है।

साधारणत चौरस पट्ट का प्रयोग न कर बेलन का उपयोग किया जाता है। छापने का काम तब घूर्णन (rotary) मशीनो से लिया जाता है। बेलन रोशनाई की नाँद (trough) मे से होकर घूमता है, उसपर की अनावश्यक रोशनाई खुरचनी द्वारा पुँछ जाने के पश्चात्
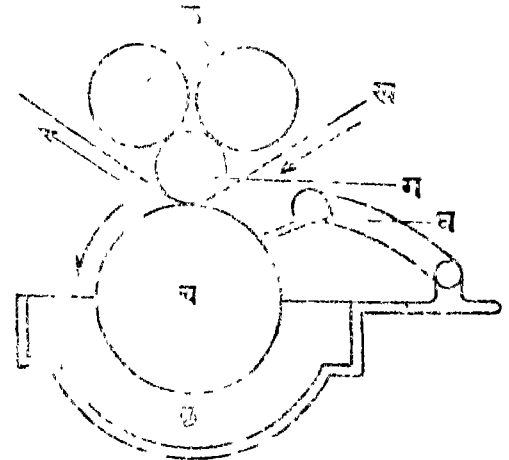
फोटोग्रेव्योर छपाई की मशीन

क दाब डालनेवाले इस्पात के बेलन, ख. कागज, ग. मुद्रित करने वाला रबर का बेलन,, घ उपयोजक खुरचनी, च तांबे की सतह- वाला निक्षारित बेलन तथा छ रोशनाई की नाँद।

रील पर लगा हुआ कागज निक्षारित बेलन और मुद्रण बेलन के बीच से होकर जाता है। इस प्रकार निक्षारित चित्र की छाप कागज़ पर पड़ जाती है। इस रीति से चित्र तथा अक्षर दोनों ही छापे जा सकते हैं। [भ० दा० व०]

फोरम (Forum, लैटिन भाषा का शब्द) व्यापार, न्यायालय, या राजनीतिक विचार संबंधी या विहार और भ्रमण के लिये बनाए हुए स्थान भी फ़ोरम कहलाते थे। रोम में ऐसी अनेक खुली जगहें थीं जो इस प्रकार के सार्वजनिक कार्य के लिए बनाई गई थीं। रोमन लोगों का विशेष ख्यातिप्राप्त फ़ोरम वैलेटाईन तथा कैपिटोलाइन पहाड़ों के बीच की खुली जगह पर स्थित था। यही रोम का राजनीतिक एवं व्यापारिक केंद्र था। इसके इर्द गिर्द सुविख्यात शनिदेव का मंदिर, १८४ ई० पू० का बना हुआ वैसिलिकापोसिया का प्राचीन न्यायालय तथा अन्य महत्वपूर्ण सार्वजनिक भवन थे। कानूनी भाषा में फोरम शब्द न्यायालय का द्योतक हैं। कालांतर से फ़ोरम शब्द के प्रयोग मे अर्थ की भिन्नता दिखलाई देती हैं। आजकल इस शब्द का प्रयोग विचारगोष्ठी या विचारविनिमय के अर्थ में होने लगा है। जब विषयवस्तु पर वैज्ञानिक क्रमानुसार विचार होता है, फ़ोरम शब्द का प्रयोग होता है। इसका प्रचलित अर्थ विचारों के तार्किक अनुसंधान का खुला मंच है। [शु० तै०]

फ़ोरैमिनीफ़ेरा (Foraminifera) अथवा पेट्रोलियम उद्योग का तेल मत्कुण (oil bug), प्रोटोज़ोआ, संघ के वर्ग सार्कोडिन के उपवर्ग राइज़ोपोडा का एक गण है। इस गण के अधिकांश प्राणी प्रायः सभी महासागरों और समुद्र मे सभी गहराइयों में पाए जाते है। इस गण की कुछ जातियाँ अलवण जल मे और बहुत कम जातियाँ नम मिट्टी में पाई जाती है। अधिकाश फोरैमिनीफेरा के शरीर पर एक आवरण होता है, जिसे चोल या कवच (test or shell) कहते है। ये कवच कैल्सीभूत, सिलिकामय, जिलेटिनी अथवा काइटिनी (chitinous) होते है, या बालू के कणों, स्पंज कंटिकाओं (sponge-spicules), त्यक्त कवचो, या अन्य मलबों (debris) के बने होते हैं। कवच का व्यास ०१ मिमी० से लेकर १६० मिमी० तक होता है तथा वे गेंदाकार, अंडाकार, शक्वाकार, नलीदार, सर्पिल (spiral), या अन्य आकार के होते हैं।

कवच के अंदर जीवद्रव्यी पिंड (protoplasmic mass) होता है, जिसमे एक या अनेक केंद्रक होते हैं। कवच एककोष्ठी (unilocular or monothalamus), अथवा श्रेणीबद्ध बहुकोष्ठी (multilocular or polythalmus) और किसी किसी मे द्विरूपी (dimorphic) होते हैं। कवच मे अनेक सूक्ष्म रंध्रों के अतिरिक्त बड़े रंध्र, जिन्हे फोरैमिना (Foramina) कहते है, पाए जाते है। इन्हीं फोरैमिना के कारण इस गण का नाम फोरैमिनीफ़ेरा (Foraminifera) पड़ा है। फ़ोरैमिनीफ़ेरा प्राणी की जीवित अवस्था मे फ़ोरैमिना से होकर लंबे धागे के सदृश पतले और बहुत ही कोमल पादाभ (pseudopoda), जो कभी कभी शाखावत और प्रायः जाल या झिल्ली (web) के समान उलझे होते हैं, बाहर निकलते हैं।

वेलापवर्ती (pelagic) फ़ोरैमिनीफ़ेरा के कवच समुद्रतल में जाकर एकत्र हो जाते हैं और हरितकीचड़ की परत, जिसे सिंधुपंक (ooze) कहते हैं, बन जाती है। वर्तमान समुद्री तल का ४,८०,००,००० वर्ग मील क्षेत्र सिंधुपंक से आच्छादित है। बाली द्वीप के सानोर (Sanoer) नामक स्थान मे बड़े किस्म के फोरैमिनीफ़ेरा के कवच पगडंडियों और सड़कों पर बिछाने के काम आते है।

भूवैज्ञानिक महत्व — अधिकतर खड़िया, चूनापत्थर और संगमरमर फ़ोरैमिनीफ़ेरा के संपूर्ण कवच, अथवा उससे उत्पादित कैल्सियम कार्बोनेट से निर्मित होता है।

कैंब्रियन-पूर्व समुद्रों के तलछटों में फोरैमिनीफेरा का विद्यमान रहना पाया जाता है, किंतु कोयला (coalage), या पेंसिलवेनिअन (Pennsylvanian) युग के पूर्व इनका कोई महत्व नहीं था। आदिनूतन (Eocene) युग में फ़ोरैमिनीफेरा गण आकार, रचना की जटिलता, निक्षेप की मोटाई तथा वितरण में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। हिमालय में एवरेस्ट पर्वत की २२,००० फुट ऊँचाई पर २०० फुट मोटा फोरैमिनीफेरीय चूना पत्थर का शैलस्तर वर्तमान है।

संपूर्ण भूक्षेत्र के २/३ भाग में समुद्री तलछट स्थित है और उसमें फ़ोरैमिनीफेरा के जीवाश्म (fossil) पाए जाते हैं। कालपरिवर्तन के साथ साथ फोरैमिनीफ़ेरा की नई जातियों का आविर्भाव हुआ और कुछ पुरानी जातियाँ विलुप्त हो गई। अतएव किसी अलग हुए क्षेत्र के अलग होने और उसके निर्माण काल में भूवैज्ञानिक समन्वय स्थापित करने में फ़ोरैमिनीफेरा बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

पेट्रोलियम भूविज्ञान में फ़ोरैमिनीफ़ेरा का स्थान महत्वपूर्ण है। पेट्रोलियम के लिये क्षेत्र का वेधन (drilling) करते समय विभिन्न स्तरों से प्राप्त पदार्थों को एकत्र कर प्रयोगशाला में उनकी जाँच की जाती है। यदि जाँच में किसी विशेष प्रकार के फ़ोरैमिनीफेरा के जीवाश्म मिलते हैं, तो उससे यह अनुमान हो जाता है कि वेधन क्षेत्र में पेट्रोलियम विद्यमान है अथवा नहीं।

कवच की आकारिकी (morphology) — फ़ोरैमिनीफेरा का कवच छोटे बिंदु के आकार से लेकर अनेक इंचों के व्यास का हो सकता है। कुछ सीमित समूह के अंतर्गत ऐसे स्पीशीज़ (species) हैं जो समुद्री अमीबों से बड़े होते हैं और काइटिनी झिल्ली या असंस्कृत (primitive) कवच से रक्षित रहते हैं। इस सरल रचना से प्रारंभ कर ऐसे स्पीशीज़ विकसित हुए है जिनमें असंस्कृत कवच के बालू अभ्रक, स्पंज कटिका, अथवा अन्य तलछट पदार्थों से ढकने से, या कैल्सियम कार्बोनेट के घने जमाव के कारण गोलाकार (globular) आकृति बन गई।

ये गोलाकार कवच प्रारंभिक कोष्ठों (chambers), अथवा साधारण बहुखंडीय प्रोलॉकुलस (Proloculus) के सदृश है। ऐसे सरल कवच में एक विसर्पी (meandering), या घुमावदार कोष्ठ बाहर से जुड़ गया, या कुछ कोष्ठ इस प्रकार व्यवस्थित हो गए कि एक लपेटदार शुरूआत (coiled beginning) हो सके और अनेक वलयी (annular) कोष्ठ जुड़ सकें। कवच की ये ही आधारभूत रचनाएँ थीं और इन्हीं से अनेक स्पीशीज़ के चोलों (tests) का प्रादुर्भाव हुआ। किसी कवच में कोष्ठों की संख्या एक या कई सौ हो सकती है। प्रायः अंतस्थ कोष्ठ (terminal chamber) में एक या अनेक रंध्र होते हैं और जब नया कोष्ठ जुड़ता है तब इन रंध्रों से

(foramina) कोष्ठ के बीच आवागमन का मार्ग बन जाता है। एक बृहद समूह के अधिकांश कोष्ठों की दीवारों में सूक्ष्म पादाभीय रंध्र

चित्र १. फ़ोरैमिनीफ़ेरा के कवचों के विविध रूप

१ सैकैमिना (Saccamina), २ बैथीसाइफन (Bathysiphon) क अनावृत अग्रसिरा, ३ रैब्डैमिना (Rhabdammina), ४. हाइपरैमिना (Hyperammina), ५ नोडोसेरिया (Nodosaria), ख इसी की काट, ६ फ्रॉण्डिकुलेरिया (Frondicularia), ग इसकी काट, ७ टेक्स्टुलेरिया (Textularia), घ. इसकी काट, ८ वरनिउलिना (Verneullina), ९ स्पाइरोलॉकुलिना (Spiroloculina), च इसकी काट, १०. टर्नूरिस्पाइरिलिना (Turrispirillina), ११. साइक्लैमिना (Cyclammina), १२ सिउडैस्ट्रॉरिज़ा (Pseudastrorhiza), ऐस्ट्रोरिजा (Astrorhiza), १४ पैवोनिना (Pavonina), १५ डिस्कोस्पाइरुलिना (Discospirulina), १६ कैल्केरिना (Calcarina),, १७ डेंडोफिया (Dendophrya), १८. सैकोरिजा (Saccorhiza), १९ रिजोनुबेकुला (Rhizonubecula) तथा २० नमुलाइट (Nummulite)।

पाए जाते हैं और कुछ ऐसे समूह हैं जिनमें कवच की दीवारों में विस्तृत नहर प्रणाली रहती है।

बहुत सी स्पीशीज का कवच कूटकों (ridges), शूलों (spines), या वृत्तस्कधों (bosses) से अलंकृत रहता है। इस सुंदरता और जटिलता के कारण फोरैमिनीफ़ेरा का अध्ययन बहुत दिनों से हो रहा है। कवचों की, आकृति और सरचना के आधार पर, निम्नलिखित चार समुदायों में विभाजित किया जा सकता है :

(१) काइटिनी — ये केवल प्राणी सीमेंट (animal cement) के होते हैं।

(२) ऐरेनेशस (Aranaceous) — ये अजैव मलबे (inorganic debris) और सीमेंट युक्त होते है।

(३) छिद्री या परफोरेटा (Perforata) — ये कैल्सियम कार्बोनेट के बने होते हैं तथा रध्र से युक्त होते है।

(४) अछिद्री या एपरफोरेटा (Aperforata) — ये कैल्सियम कार्बोनेट के बने होते है और इनमे रंध्र नही होते।

जीवित फ़ोरैमिनीफ़ेरा — अधिकतर जीवित फोरैमिनीफेरा कीचड़, या बालुकामय तलो, या छोटे छोटे पौधो पर रहते है। कुछ थोडे समूह वेलापवर्ती (pelagie) होते हैं और साधारण गहराई मे खुले समुद्र मे पाए जाते हैं। तलीय फोरैमिनीफेरा मे इतनी और इस प्रकार की गति होती है कि अधिकाश फोरमिनीफ़ेरा कुछ इंच के अदर ही जन्म से मृत्युपर्यंत गति कर पाते हैं।

जिन स्पीशीज मे बृहद छिद्र होता है उनके कवच के जीवद्रव्य (protoplasm) में जीवाणु, कशाभिक प्रोटोजोआ, शैवाल के बीजाणु (spores of algae), डायटम (diatoms) तथा जैविक अपरद (detritus) पाए जाते हैं। जब छिद्र इतना लघु होता है कि उनसे होकर बडे बडे खाद्यकण प्रवेश न कर सकें, तब उनका पाचन पादाभो मे विद्यमान किण्वो (ferments) द्वारा होता है

पादाभ कवच के छिद्र के समीपस्थ जीवद्रव्य से, अथवा पादाभ रध्रो से निकलते हैं और क्षीण हो जाते है। जहां अनेकों पादाभ निकलते है वे एकाकार हो जाते हैं, अथवा शाखामिलन (anastomese) होता है। जीवद्रव्य से निर्मित इन ततुओ (filaments) मे निरनर प्रवाह के कारण गति होती रहती है और इस प्रवाह द्वारा खाद्य को पकडने और उसके पाचन का कार्य होता है तथा ठोस या तरल उत्सर्ग का उत्सर्जन (excretion) होता है। यही नही, बल्कि कवच के बाहर आच्छादित जीवद्रव्य के सहयोग से श्वसन का कार्य भी होता है। कवच के अदर जीवद्रव्य के प्रवाह के कारण परिसचरण (circulation) होता है और सभी कोष्ठो मे भोजन इत्यादि पहुँचता रहता है।

फोरैमिनीफेरा का रग उसके कवच के रंग, घनत्व और, कुछ अंश तक, कवच की रचना पर निर्भर करता है। जब कवच की दीवार पारभासी (translucent) होती है तब जीवद्रव्य का हरा, भूरा या लाल रग उसके अंतर्वेश (inclusion) कवच के रंग का प्रमुख कारण होता है। काइटिन (chitin) भूरा होता है और प्राय: कवच को भूरापन प्रदान करता है, अन्यथा वह श्वेत होता है। प्रवालभित्ति (coral reefs) के इर्द गिर्द विविध रगो, जैसे चीनाश्वेत, नारगी, लाल, भूरे और हरे रग से लेकर लैवेंडर और नीले रंग, के चमकीले स्पीशीज पाए जाते हैं। लैवेंडर और नीले रग अपवर्तन के

कारण होते है। गहरे जल मे जो स्पीशीज आंशिक रूप से पारभासी कवचों के साथ पाए जाते है, वे हरे होते है और ऐरेनेसस कवच खोल पदार्थ का रंग ग्रहण कर लेते है, अथवा कणों को जोडनेवाले सीमेंट में विद्यमान लौह लवणों के कारण लाल या भूरे दिखाई पडते है जब कि अनेक स्पीशीज के चूनेदार कवच श्वेत पोर्सिलेन सदृश होते हैं। उष्ण समुद्र के छिछले जलवासी फोरैमिनीफेरा के जीवद्रव्य के अंदर जोओज़ैथेली (Zooxanthellae), जो सहजीवी शैवाल है, पाए जाते है, किंतु उनके स्वर्णिम रंग का प्रभाव फोरैमिनीफेरा के रंग पर बहुत ही कम पड़ता है।

जीवनचक्र (Life-cycle) — अधिकांश फोरैमिनीफेरा के जीवन मे लैंगिक (sexual) और अलैंगिक (asexual) चक्रीय पीढ़ियाँ होती है, जिनसे दो प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते है।

लैंगिक अवस्था मे कशाभिक (flagellated) युग्मक (gametes) जोडे आपस मे मिलते हैं और समागम करते है और इसके फलस्वरूप
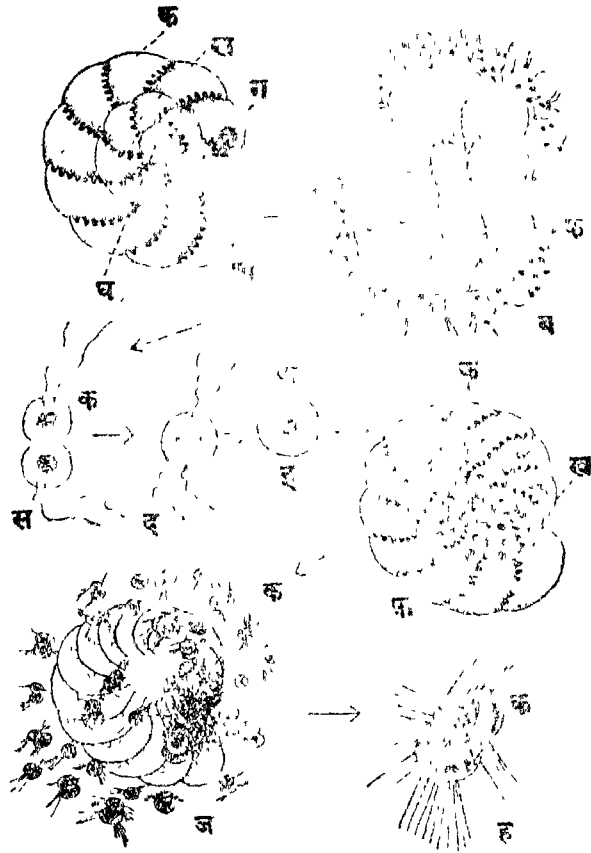
चित्र २. एल्फिडियम (पॉलिस्टोमेला) का जीवनचक्र

अ. दीर्घगोलक रूप . क बाह्यचक्र, ख अंतश्चक्र, ग केंद्रक तथा घ प्रथम कक्ष, ब मे क. युग्मक, स मे क युग्मक, इ मे क. युग्मनज, फ सूक्ष्मगोलक रूप : क प्रथम कक्ष तथा ख केंद्रक, ज मे क लघु अमीबा (amoebulae) तथा ह मे क बाल दीर्घगोलक रूप (तीन कक्ष)।

युग्मनज (zygote), अथवा निषेचन अमीबा (fertilization amaeba) एक गोलाकार कवच मे परिवर्तित हो जाता है। लैंगिक विधि से उत्पन्न प्राणी में कवच का प्रारंभिक कोष्ठ बहुत ही सूक्ष्म होता है। अतएव वे सूक्ष्मगोलीय कवच (microspheric tests) कहलाते है।

अलैंगिक अवस्था (Asexual phase) — अब कि सूक्ष्मगोलीय प्राणी अलैंगिक विधि से प्रजनन करता है। अलैंगिक विधि से केंद्रक का क्रमिक विभाजन होता है और उनकी संख्या पूर्वविद्यमान केंद्रक की चार गुनी हो जाती है। तत्पश्चात् प्रत्येक केंद्रक के चारो तरफ का

चित्र ३. नमुलाइट लीविगेटस की द्विरूपता (Nummulites laevigatus)

क संपूर्ण दीर्घगोलक रूप की काट (× ६) तथा ख सूक्ष्मगोलक रूप की काट के अंश (× ६)।

जीवद्रव्य साधारण पिंड (common mass) से अलग हो जाता है और एककेंद्रक (mononucleate) अमीबा बनाता है। इस प्रकार उत्पन्न अमीबा के प्रारंभिक कोष्ठ बृहत् होते है। अतएव ये दीर्घगोलीय कवच (megaspheric tests) कहलाते है।

जीवनचक्र के लैंगिक अथवा अलैंगिक दोनो ही अवस्थाओं मे अधिकांश स्पीशीज में प्रजनन की परिपक्वता के लिये दो तीन दिनो की आवश्यकता होती है। नया कोष्ठ के जुडने के लिये एक दिन की आवश्यकता होती है और उसके अनेक दिनो बाद दूसरा कोष्ठ जुडता है। इस प्रक्रिया की आयु कुछ सप्ताह से लेकर एक साल या अधिक भी होती है। यह स्पीशीज और ऋतु (season) पर निर्भर करती है और लैंगिक तथा अलैंगिक पीढ़ियों को मिलाकर जीवनचक्र के लिये अनेक सप्ताहो से लेकर दो या अधिक साल तक की आवश्यकता होती है।

पारिस्थितिक संबंध (Ecological relationship) — एक विद्यमान फोरैमिनीफेरा की बहुत सी जातियाँ जो एक विशेष गहराई मे पाई जाती है, और उसी गहराई मे मिलती है। पृथ्वी के इतिहास मे भूतकाल मे भी इसी प्रकार की स्थितियाँ रही है। छिछले जल मे रहनेवाली जातियो का वितरण ताप के नाप के कारण प्राय सीमित होता है। अन्य जातियाँ, ताप के अतिरिक्त अन्य बातो पर, जैसे जल की लवणता, अधस्तर (substratum) की प्रकृति, भोजन की उपलब्धि इत्यादि, पर निर्भर करती है और ये बाते स्वयं जल की गहराई से प्रभावित होती है। इस समूह मे वृद्धि और प्रजनन उपयुक्त भोजन [illegible] पर बहुत अधिक निर्भर करता है। फोरैमिनीफेरा की बहुत सी जातियाँ तृण तथा घास से आच्छादित [illegible] मे भी शामिल होती है और जिस गहराई तक ये पौधे [illegible] तल की प्रकृति और सूर्य विकिरण (solar radiation), [illegible] के [illegible] तथा अक्षांश (latitude) के अनुसार बदलता है, निर्भर करती है।

गहरे जल मे जीवित फोरैमिनीफेरा की संख्या प्रति इकाई क्षेत्र

में कम होती है, किंतु छिछले जल में उनकी संख्या प्रत्येक वर्ग फुट मे सैकड़ों से लेकर हजारों तक होती है।

फ़ोरैमिनीफ़ेरा के कुछ वंश निम्नलिखित हैं :

पॉलिस्टोमेला (Polystomella) — यह समुद्र मे पाए जानेवाले फ़ोरैमिनीफ़ेरा का एक अच्छा उदाहरण है। यह समुद्र के किनारे तल मे पाया जाता है। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर यह एक छोटे घोंघे के
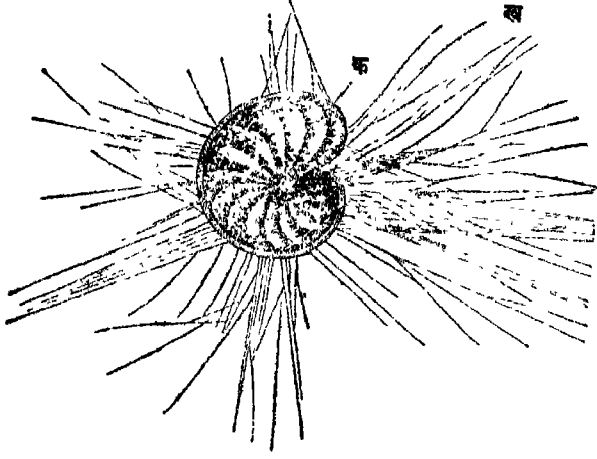
चित्र ४. एल्फिडियम (पॉलिस्टोमेला)
क. कवच तथा ख पादाभ।

छिलके जैसा दिखाई पड़ता है। इसका कवच कडा, अर्धपारदर्शी और कैल्सियमी होता है। इसमे ७ आकृति के प्रकोष्ठ बने होते है। ये प्रकोष्ठ समीपवर्ती, चिपटे और सर्पिल होते हैं। अन्य प्रोटोज़ोआ और डायटम (diatoms) इसके भोजन हैं, जिन्हे यह कवच छिद्र से निकले, बाह्य जीवद्रव्य स्तर से उत्पन्न, लंबे, पतले, शाखावत् और उलझे पादाभ द्वारा पकड़ कर लगभग कवच से बाहर ही पचा लेता है।

पॉलिस्टोमेला के जीवनचक्र मे निरतर पीढी परिवर्तन होता है और उनमें केंद्रीय कोष्ठ के आकार मे द्विरूपता (dimorphism) पाई जाती है।
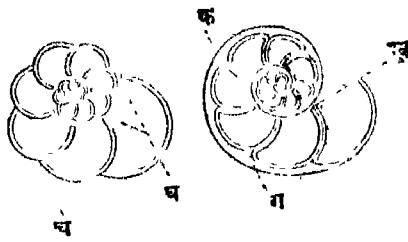
चित्र ५. फोरैमिनीफेरा की रचना (काट चित्र)
क. बहिर्कंकाल, ख. तथा घ अंतिम कक्ष, ग. दो पटलिकाओं के पट तथा च. एक पटलिका का पट।

ग्लोबिजराइना (Globigerina) — फ़ोरैमिनीफ़ेरा का यह वंश बहुत ही व्यापक है। ग्लोबिजराइना बुलायड्स (G. bulloids) विश्वव्यापी समुद्र के छिछले जलवासी स्पीशीज हैं, जो समुद्र के तल की कीचड़ों मे, ३,००० फैदम की गहराई में पाए जाते हैं। मृत प्राणियों के कवच समुद्रतल में बहुत अधिक मात्रा में इकट्ठा होकर एक प्रकार के पक, जिसे सिंधुपक या ग्लोबिजराइना सिंधु पक (Globigerina ooze) कहते है, बना देते हैं। विद्यमान महासागरो का एक तिहाई तल इसी ग्लोबिजराइना सिंधुपंक से आच्छादित है। इनका कवच प्राकृतिक खड़िया का एक प्रमुख संघटक होता है।

माइक्रोग्रोमिया (Microgromia) — सरल रचनावाले फ़ोरैमिनीफ़ेरा मे से माइक्रोग्रोमिया भी एक है। जीवद्रव्य पिंड के अंदर केवल एक केंद्रक (nucleus) और एक संकुचनशील रिक्तिका (vacuole) होती है, जो एक साधारण अंडाकार और काइटिनीय कवच (chitinoid shell) से घिरे होते है। इस कवच (shell) के चौड़े मुख से जीवद्रव्य निकला होता है, जो लंबे, मृदुल सूक्ष्म और विकीर्णक

चित्र ६. माइक्रोग्रोमिया सोशियैलिस
(Microgromia socialis)
अ संपूर्ण निवह, ब एकल जीवक, स, द्विविभंजन, द. लघुकशाभिका, क जालिकापाद, ख सततिजीव ग तथा ज केंद्रक, घ तथा झ संकुचनशील रिक्तिका और च कवच।

रेटीकुलो पाडो (radiating reticulopods) का निर्माण करता है। इसमे दो कशाभिकाएँ (flagella) होती है, जिनकी सहायता से यह जल मे तैरता है।

क्लैमिडोफ्रिस (Chlamydophrys) — इसकी रचना माइक्रोग्रोमिया के सदृश होती है, किंतु यह हानिकारक परोपजीवी के रूप में
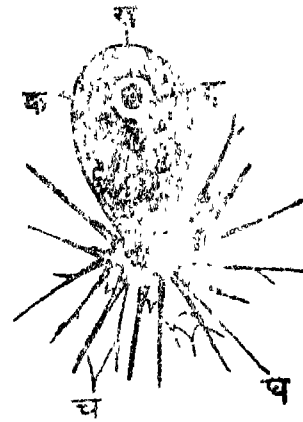
चित्र ७. क्लैमिडोफ्रिस स्टरकोरिया
(Chlamydophrys stercorea)
क कवच, ख. अलकाय, ग केंद्रक, घ. जीवद्रव्य तथा च. जालिका पाद।

मनुष्य, अथवा अन्यस्तनपोषी, की अँतड़ियों में पाया जाता है। इसका कवच नाशपाती की आकृति का और काइटिनायी होता है। कवच के एक छोर पर एक संकीर्ण छिद्र होता है, जिससे होकर जीवद्रव्य निकला होता है और शाखामिलनी रेटिकुलोपोडिया का निर्माण करता है। इसमे अलैंगिक प्रजनन द्विभाजन (binary fission) की विधि से और लैंगिक प्रजनन बहुविभाजन की विधि से होता है।

ऐलोग्रोमिया (Allogromia) --- इसमे छोरीय कवचछिद्र से निकला हुआ जीवद्रव्य कवच के चारों तरफ प्रवाहित होता रहता है,
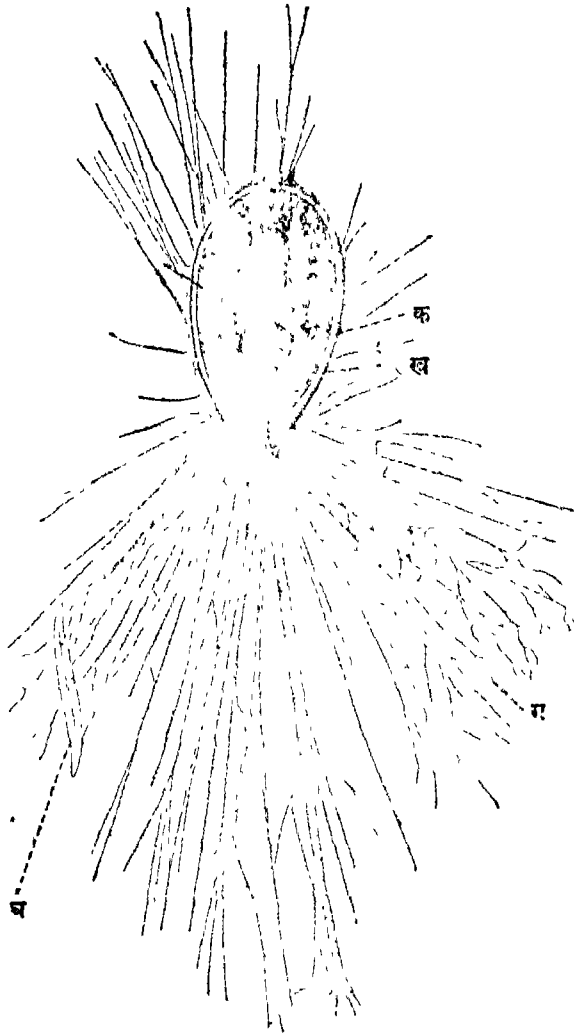
चित्र ८. ऐलोग्रोमिया ओविफॉर्मिस (× २३०)

इसके पादाभ स्वाभाविक, आनुपातिक लबाई से तिहाई छोटे दिखाए गए है।

क. कवच, ख कवच के चतुर्दिक् जीवद्रव्य, ग पादाभ तथा घ पादाभ द्वारा पाशित डायटम।

जिससे कवच जीवद्रव्य के अदर आ जाता है। पादाभ (pseudopodia) विलक्षण रूप से लबे, उलझे हुए और जालिकारूपी (reticulate) होते हैं और शिकार को पकडने और उनका पाचन करने का कार्य करते हैं।

सं० ग्रं०—(१) एंसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (२) बोराडेल, ईस्टहेम, पॉट्स, सांडर्स और जी० ए० करकुट : दि इन्वर्टिब्रेटा (३) आर० एल० कोटपाल : प्रोटोज़ोआ। (भू० ना० प्र०)

फोर्ड, हेनरी (१८६३-१९४७ ई०), अमरीकी मोटर निर्माता, का जन्म मिशिगैन (Michigan) राज्य के डीयरबॉर्न नामक नगर में हुआ था। इनके पिता आयरलैंडवासी थे, किंतु अपने माता पिता तथा अन्य संबंधियो के साथ अमरीका आकर डीयरबॉर्न के आस पास सन् १८४७ में बस गए और खेती करने लगे। हेनरी फोर्ड ने १५ वर्ष की उम्र तक स्कूल मे शिक्षा पाई और वे खेत पर भी काम करते रहे, किंतु इन्हें आरंभ से ही सब प्रकार के यंत्रों के प्रति कुतूहल और आकर्षण रहा। पिता के मना करने पर भी रात मे गुप्त रूप से ये पड़ोसियों तथा अन्य लोगो की घड़ियाँ या अन्य यंत्र लाकर मुफ्त मरम्मत करने में लगे रहते थे।

१६ वर्ष की उम्र में ये घर छोड़कर डिट्रॉइट चले गए। यहाँ कई कारखानों मे काम करके इन्होने यांत्रिक विद्या का ज्ञान प्राप्त किया। सन् १८८६ में ये घर वापस आए, पिता की दी हुई ८० एकड़ भूमि पर बस गए और वही मशीन मरम्मत करने का एक कारखाना खोला। सन् १८८७ मे इनका विवाह हुआ तथा इसी वर्ष इन्होने गैस इजिन और खेतो पर भारी काम करनेवाली मशीन बनाने की एक योजना बनाई, किंतु यंत्रो की ओर विशेष आकर्षण के कारण ये घर पर न टिक सके और फिर डिट्रॉइट चले आए।

सन् १८९० मे इन्होने डिट्रॉइट एडिसन इलेक्ट्रिक कपनी मे काम करना आरंभ किया और सन् १८९३ में पेट्रोल से चलनेवाली पहली गाडी बनाई, जिसमे चार अश्वशक्ति तक उत्पन्न होनी थी और जिसकी गति २५ मील प्रति घंटा थी। सन् १८९३ मे इन्होने दूसरी गाड़ी बनानी प्रारंभ की तथा सन् १८९९ में इलेक्ट्रिक कपनी की नौकरी छोडकर डिट्रॉइट ऑटोमोबाइल कपनी की स्थापना की। फिर इस कंपनी को छोड़कर ये दौड में भाग लेनेवाली गाडियाँ बनाने लगे। इन गाडियो ने कई दौडो मे सफलता पाई, जिससे इनका बड़ा नाम हुआ। इस प्रसिद्धि के कारण ये सन् १९०३ में फोर्ड मोटर कपनी स्थापित करने मे सफल हुए।

प्रथम वर्ष में फोर्ड मोटर कंपनी ने दो सिलिंडर तथा आठ अश्वशक्तिवाली १,७०८ गाडियाँ बनाईं। इनकी बिक्री से कंपनी को शत प्रति शत लाभ हुआ। दूसरे वर्ष ५,००० गाडियाँ बिकीं। फोर्ड इस कपनी के अध्यक्ष हो गए और अत में अन्य हिस्सेदारो को हटाकर अपने एकमात्र पुत्र, एडसेल ब्रायंट फोर्ड (Edsel Bryant Ford), के सहित सपूर्ण कंपनी के मालिक हो गए। इनका उद्देश्य हलकी, तीव्रगामी, दृढ़ किंतु, सस्ती मोटर गाडियो का निर्माण करना था। इसमे सफलता प्राप्त करने के लिये इन्होने मशीन के अगो के मानकीकरण, प्रगामी संयोजन, व्यापक बिक्री तथा ऊँची मजदूरी देने के सिद्धातों को अपनाया। इन्होने खेती के लिये ट्रैक्टर भी बनाए। सन् १९२४ तक इनकी कंपनी ने २० लाख गाडियाँ, ट्रक और ट्रैक्टर बनाए थे, किंतु सन् १९३१ तक इनके सब कारखानो मे निर्मित गाडियों की संख्या दो करोड तक पहुँच गई।

फोर्ड में आदर्शवादिता तथा कट्टरपन का विचित्र संमिश्रण था। ये पुंजोत्पादन के पक्षपाती थे, किंतु इनका यह भी विचार था कि

उद्योग को इस प्रकार विकेंद्रित करना चाहिए कि खेती के साथ साथ कारखानों का काम भी चले। ये ऊँची मजदूरी देने के पक्ष में थे, किंतु मजदूर संघों के घोर विरोधी थे; यहाँ तक कि अपने कारखानों में संघों को पनपने न देने के विचार से ये भेदियों तथा सशस्त्र पुलिस से काम लेते थे। शांति के ये कट्टर पक्षपाती थे, किंतु नाजियों की भाँति ये यहूदी विरोधी थे। बैंकों और महाजनों से भी इनकी नहीं पटती थी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय इन्होंने कुछ प्रभावशाली लोगों को एकत्रित कर "ऑस्कर द्वितीय" नामक शांति पोत पर यूरोप की यात्रा इस विश्वास से की कि यह अभियान युद्ध बंद कराने में समर्थ होगा। यह सब होते हुए भी देहाती जीवन के प्रति पक्षपात तथा अमरीका की विगत रीतियों तथा स्मृतिचिह्नों के प्रति अगाध श्रद्धा रखने के कारण इन्होंने बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की थी।

इनकी गणना संसार के सर्वप्रधान धनपतियों में थी। इन्होंने डीयरबॉर्न में एक औद्योगिक संग्रहालय तथा एडिसन इंस्टिट्यूट ऑव टेक्नॉलोजी की स्थापना की। मृत्यु के पूर्व इन्होंने अपनी संपत्ति का अधिकांश अपने नाम पर स्थापित जनहितैषी संस्था को दे दिया। यह संस्था संसार की लोकोपकारक संस्थाओं में सबसे धनी है। सन् १९४७ में इनकी मृत्यु हुई। अपनी मृत्यु से दो वर्ष पूर्व ही इन्होंने अपने पोते, हेनरी फोर्ड द्वितीय, को कारखाने का अध्यक्ष बना दिया था। [भ० दा० व०]

फौजी कानून फौजी कानून का अर्थ एक ओर तो शासनाधिकारियों की यह स्वीकारोक्ति होती है कि देश या देशविशेष में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जब ताकत का सामना ताकत से करना आवश्यक है, अत: उनके हाथ में ऐसे असामान्य अधिकार होने चाहिए जिनका उपयोग संकट काल की अवधि तक देश के आंतरिक प्रांत में किया जा सके, इस स्थिति में न्यायालयों की प्रक्रिया के स्थान पर कार्यपालिका अथवा सैनिक प्रशासन के आदेशों को ही सर्वाधिक मान्यता प्राप्त हो जाती है। दूसरी ओर फौजी कानून एक कानूनी प्रत्यय या विचार है, जिसके द्वारा नागरिक न्यायालयों ने उन असाधारण अधिकारों के नियंत्रण का प्रयत्न किया है जो कार्यपालिका द्वारा राज्य के नागरिकों पर लागू करने के लिये अधिकृत किए जाते हैं।

इस प्रकार फौजी कानून सैनिक कानून (मिलिटरी लॉ) से, जो सशस्त्र सेनादल के नियंत्रण का विधान कानून होता है, भिन्न है। नागरिक अधिकार के प्रयोग के हेतु जब सशस्त्र सेना से काम लिया जाता है तब सेना नागरिक अधिकारियों के नियंत्रण में ही अपना कार्य करती है और अपराधियों पर साधारण न्यायालयों में विचार होता है। किंतु फौजी कानून में नागरिक अधिकारियों और न्यायालयों के अधिकार स्थगित कर दिए जाते हैं और अपराधियों पर सैनिक आयोग के समक्ष मुकदमा चलाया जाता है।

इंग्लैंड में सम्राट् को संकटकाल घोषित करने का अधिकार नहीं है, किंतु युद्ध के समय कार्यपालिका को संसदीय विधान के अंतर्गत तथा तदनुरूप अधिनियमों के अंतर्गत अनेक व्यवस्थाएँ तथा आदेश प्रसारित करने के व्यापकाधिकार प्राप्त हो जाते हैं। फिर भी, उन अधिकारों का प्रयोग विधानमंडल और न्यायालय के दोहरे नियंत्रण में संपन्न होता है।

अमरीकी विधि में राष्ट्रपति को, कांग्रेसीय कार्रवाई से स्वतंत्र, फौजी कानून घोषित करने का कहाँ तक अधिकार है और उस स्थिति में विधायिका तथा न्यायालयों द्वारा कहाँ तक नियंत्रण किया जा सकता है, यह अब भी विवाद का विषय है तथा इस मामले में कानूनी स्थिति अब भी स्पष्ट नहीं है।

भारत में भी स्पष्ट सांवैधानिक निर्देश के अभाव में यह विवादास्पद है कि फौजी कानून की घोषणा का अधिकारी कौन है। फौजी कानून संबंधी उल्लेख केवल ३४ वीं धारा में है, जो किसी विशेष क्षेत्र में फौजी कानून उठा लिए जाने के बाद क्षतिपूर्ति अधिनियम (ऐक्ट ऑव इंडेम्निटी) की व्यवस्था करती है।

किंतु फौजी कानून से मिलता जुलता ही धारा ३५९ (१) के अंतर्गत राष्ट्रपति का वह अधिकार होना है जिससे वह धारा २१ और २२ के अंतर्गत अधिकारों का न्यायिक निष्पादन स्थगित कर दे सकता है। यह समझा जाता है कि यह मूलत: फौजी कानून का ही रूप है, किंतु प्रतीत होता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने इसे विवाद के लिये छोड़ दिया है (ए० आइ० आर० १९६४)। जो हो, इस संबंध में कोई भी मत अपनाया जाए, संविधान की धारा ३५२ के अंतर्गत संकटकाल की घोषणा का नागरिक अधिकारों पर प्रभाव न्यूनाधिक मात्रा में फौजी कानून जैसा ही है।

इस प्रकार धारा ३५८ के अंतर्गत जब तक संकटकालीन स्थिति कायम रहती है, कार्यपालिका को धारा १९ की व्यवस्थाओं के उल्लंघन का अधिकार रहता है। राष्ट्रपति द्वारा धारा ३५९ (१) के अंतर्गत संकटकालीन स्थिति तथा आदेश में उल्लिखित अवधि तक के लिये दूसरे मौलिक अधिकार भी स्थगित किए जा सकते हैं।

राष्ट्रपति के अधिकार पर केवल इतना ही नियंत्रण होता है कि संकटकाल की घोषणा स्वीकृति के लिये संसद के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए। उस घोषणा को संसद के समक्ष प्रस्तुत करने की कोई निश्चित अवधि नहीं है, और न प्रस्तुत किए जाने पर किसी प्रकार के दंड का विधान ही है, किंतु घोषणा के प्रसारित होने के दो मास पश्चात् वह स्वत: समाप्त हो जाती है। एक घोषणा के समाप्त होने पर फिर दूसरी घोषणा जारी करने में राष्ट्रपति पर कोई प्रतिबंध नहीं है। धारा ३५९ (१) के अंतर्गत जारी किया गया राष्ट्रपति का आदेश संसद के समक्ष यथाशीघ्र प्रस्तुत होना चाहिए। इस प्रस्तुतीकरण के समय का निर्णय करना कार्यपालिका पर छोड़ दिया गया है क्योंकि यदि राष्ट्रपति का आदेश संसद के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाता तो भी उसका प्रभाव कम नहीं होता, और न ही प्रस्तुत करने के अभाव में कोई वैधानिक कार्रवाई की व्यवस्था है।

कुछ समय पूर्व, १९६२ के चीनी आक्रमण के दौरान, राष्ट्रपति ने संविधान की १४, २१ और २२ धाराओं का निष्पादन स्थगित करके संकटकालीन स्थिति की घोषणा की थी। हालाँकि बहुत कुछ सामान्य हो जाने के बाद भी घोषणा को रद्द करने में अत्यधिक विलंब किए जाने पर सार्वजनिक रूप से बड़ी आलोचना हुई थी। इस तथ्य ने संकटकालीन अधिकारों के संबंध में कुछ और संरक्षण लगाने की आवश्यकता प्रगट कर दी है, क्योंकि ऐसा न होने पर कोई भी अविवेकी कार्याधिकारी अपनी सुविधा के लिये संविधान का उन्मूलन

करके फौजी कानून को स्थायी कर दे सकता है। जर्मनी के उस वाइमर संविधान को हम अभी भूले नहीं हैं, जिसके अनुसार कानूनी शासन को स्थायी न बनने देने के लिये तरह तरह की युक्तियों का सहारा लिया गया था। भारत मे भी इस प्रकार की संभावनाओं के प्रति उदासीन रहना उचित न होगा। [ए० च०]

फौलाद मिर्जा मुगल सम्राट् अकबर का एक सेवक सरदार। अकबर ने सर्वप्रथम इसे तूरान का राजदूत बनाकर भेजा। यह सुन्नी मत के संबंध में कट्टर दुराग्रही था। इस धार्मिक द्वेष के कारण उसने तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् मुल्ला अहमद ठट्टवी की हत्या कर दी। इससे क्षुब्ध होकर सम्राट् ने दड स्वरूप इसकी भी हत्या करवा दी।

फ्रमजी कोवासजी बानाजी पारसी समुदाय के नेता फ्रमजी कोवासजी बानाजी का जन्म १७६७ मे हुआ था।

वे समृद्ध व्यापारी और अपने समय के जहाजों के सबसे बड़े ठेकेदार थे। जनकल्याणार्थ अनेक सस्थाओं के उत्थान के लिये आपने खुले दिल से सहायता दी। आप ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने जी० आई० पी० रेलवे कंपनी (अब जो सेंट्रल रेलवे के नाम से जानी जाती है) का हिस्सा खरीदा। आप कॉटन वीविंग ऐंड स्पिनिंग इंडस्ट्रीज और बीमा कंपनियों आदि मे हिस्सा लेनेवालों मे अग्रणी थे। आप बंबई की चेंबर ऑव कॉमर्स के भी सदस्य थे।

इन सब मे महत्वपूर्ण है फ्रमजी का देश की आर्थिक उन्नति मे रुचि लेना जिसके फलस्वरूप आपने कृषि और बागवानी के सुधार मे तत्परता दिखलाई। बंबई की पोवाई एस्टेट का अधिकारी होने का गर्व आपको ही प्राप्त था। यह कई ग्रामों का समिलित रूप था जिसकी उन्नति मे आपकी वैयक्तिक रुचि थी। बंबई के राज्यपाल जॉन मैल्कॉम ने अत्यत प्रसन्नता के साथ आपके उन सुधारों की चर्चा की थी जो आपने उस एस्टेट के लिये किए थे। इस स्थान को उपयोगी और वैभिन्यपूर्ण बनाने के लिये आपने बहुत अधिक पैसा लगाया। अनेक कुएँ खुदवाए, अनेक मकान तथा उत्तम सड़कों का निर्माण करवाया, शहतूत और नील के पौधे रेशम के कीड़ों के लिये लगवाए। इसके अतिरिक्त चीनी की एक उत्तम मिल बनवाई और नील बनाने के लिये आवश्यक भवनों का भी निर्माण करवाया था। आपके जातिगत और विजातीय दोनो ही दान स्मरणीय हैं जिनमें प्रमुख हैं पूजा के स्थानों का निर्माण, कुएँ खुदवाना, गरीब और अकालग्रस्तों की रक्षा, शिक्षण सस्थाओं को अनुदान आदि। जब ८५ वर्ष की आयु मे आपका देहात हो गया, आपको श्रद्धाजलि अर्पित करने के के हेतु सर्वसाधरण की सभा की गई। सर्वसंमति से यह निश्चित किया गया कि आपके नाम से 'फ्रमजी कावासजी संस्था' नामक संस्था स्थापित की जाय जो नागरिकता के क्रियाकलापों के केंद्र रूप मे कार्य करेगी। [रु० म०]

फ्रांस (France) स्थिति : ४०° २१' उ० अ० से ५१° ५' उ० अ० तथा ४° ५२' प० दे० से ७° ३९' पू० दे०। यह यूरोप महाद्वीप का सबसे बड़ा देश है, जो उत्तर में बेल्जियम, लक्सेंबर्ग, पूर्व मे जर्मनी, स्विट्सरलैंड, इटली, दक्षिण-पश्चिम मे स्पेन, पश्चिम मे ऐटलैंटिक सागर, दक्षिण में भूमध्यसागर तथा उत्तर पश्चिम मे इंगलिश चैनल द्वारा घिरा है। इस प्रकार यह तीन ओर सागरों से घिरा है। सुरक्षा की दृष्टि से इसकी स्थिति उत्तम नही है। इसका कुल क्षेत्रफल कॉर्सिका (देखे, कॉर्सिका) आदि द्वीपों सहित २,१२,६८१ वर्ग मील है।

धरातल — यह देश समतल एव साथ साथ पहाड़ी भी है। उत्तर में स्थित पैरिस तथा ऐक्विटेन बेसिन बृहद् मैदान के ही भाग है। पश्चिम की ओर ब्रिटैनी, यूरोप की उत्तर-पश्चिमी, उच्च पेटीवाली भूमि से संबंधित है। पूर्व की ओर प्राचीन चट्टानों के भूखंडों का क्रम मिलता है, जैसे मध्य का पठार तथा आर्डेन (Ardennes) पर्वत। इस देश के दक्षिण में पिरेनीज तथा ऐल्प्स-जूरा पर्वतों का समूह
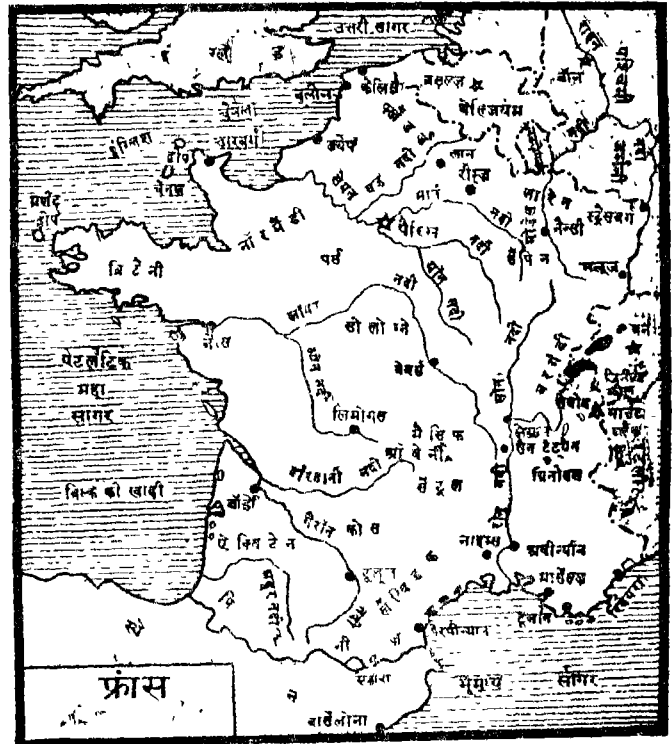
पाया जाता है। इसका दक्षिण-पूर्वी भाग पहाड़ी व ऊबड खाबड है जो ६,००० फुट से भी अधिक ऊँचा है। प्राकृतिक आधार पर इसे आठ भागों मे बाँट सकते है।

१. पैरिस बेसिन — यह देश का अति महत्वपूर्ण भाग है, जो यातायात साधनों द्वारा देश के हर भाग से जुड़ा है। यह बेसिन एक कटोरी के रूप मे है, जो बीच मे गहरा तथा चारो ओर ऊँचा होता गया है। इस भाग को पुन (१) मध्य का बेसिन, (२) शैंपेन एवं बरगंडी के कगार, (३) लोरेन के कगार, (४) पूर्वी प्रदेश तथा रोन घाटी और (५) ल्वार (Loir) प्रदेश तथा नॉरमैंडी, भागो में विभाजित किया गया है।

२ उत्तर-पश्चिमी प्रदेश — यह एक समतल भाग है। यहाँ पर नॉरमैंडी तथा ब्रिटैनी पहाडियाँ अवश्य कुछ ऊँचा नीचा धरातल प्रस्तुत करती है। यहाँ दो समानतर श्रेणियाँ दक्षिण-पश्चिम मे दाउनिनैज खाड़ी के उत्तर-दक्षिण मे फैली है। उत्तरी श्रेणी मॉट्स

डे भारी कहलाती है, जिसका सर्वोच्च शिखर सेंट माईकेल (१,२८५ फुट) है। यही ब्रिटेनी का सबसे ऊँचा भाग है।

३. ऐक्विटेन बेसिन — यह त्रिभुजाकार निम्न भूमि है। इसके सागरतटीय भाग में रेत के टीले मिलते हैं। इसका आतरिक प्रदेश लैंडीज कहलाता है, जो प्राय बंजर सा है।

४ मध्य का पठार — इस भाग की औसत ऊँचाई २,५०० फुट से भी अधिक है। इसकी ऊँचाई दक्षिण-पूर्व को उठती जाती है और रोन की घाटी मे समाप्त हो जाती है। इसकी पूर्वी सीमा पर सेवेन (Cevennes) पर्वत स्थित है। यहाँ क्लेयरमॉन्ट के निकटवर्ती क्षेत्र मे अब भी शंकु के आकार की ७० पहाड़ियाँ है, जिनका उद्गार प्राचीन समय में हुआ था। पुएज डी डोम ज्वालामुखी चोटी सागरतल से ४,८०५ फुट ऊँची है।

५. पूर्वी सीमाप्रदेश — इस प्रदेश में बोज तथा आर्डेन पर्वतों का क्रम फैला है। दोनों के बीच में राइन घाटी स्थित है। बोज पर्वत १७५ मील की लंबाई मे श्रेणी के रूप में फैला है। यहाँ की वर्षा का पानी जमीन के अंदर चला जाता है तथा जमीन के ऊपर धाराएँ कम दिखाई देती हैं।

६. रोन सेओन घाटी — यह मध्य के पठार तथा ऐल्प्स-जूरा-श्रेणियों के मध्य में स्थित है। यह मॉन्टेग्निज डेला कोटि डे ओर, सेओन तथा ल्वार के खड्ड से प्रारंभ होती है और सीन नदी के उद्गम स्थान तक चली जाती है।

७. भूमध्य सागरीय प्रदेश — राइन डेल्टा के पूर्वी भाग मे सीधी खडी चट्टानें सागरतट के पास तक आ गई हैं। मार्सेई के पश्चिम मे अनेक दलदल मिलते हैं। राइन डेल्टा के पश्चिमी तट पर पिरेनीज तक तथा पश्चिम की ओर गैरोनि तक लैंग्विडॉक का प्रसिद्ध क्षेत्र पाया जाता है। इस क्षेत्र को सेवेन की श्रेणी काटती है। इसका तट निम्न तथा रेतीला है।

८ पश्चिमी ऐल्प्स तथा जूरा प्रदेश — फ्रास की दक्षिण-पश्चिमी सीमाएँ पिनाइन, ग्रेनाइन, कोटियान तथा मैरिटाइम ऐल्प्स द्वारा बनी हैं। सवाय पर १५,७७५ फुट ऊँचा माउंट ब्लैंक स्थित है। समुद्र की ओर औसत ऊँचाई बराबर घटती जाती है। इस भाग मे कई प्रमुख दर्रे हैं। जूरा पर्वत फ्रास मे सबसे ऊँचा है। इसकी प्रमुख चोटियाँ क्रेट डिला नीगे (Cret de La Neige) ५,५०० फुट तथा मॉन्ट डि ओर (Mont de Or) ५,६६० फुट हैं।

जलवायु — यहाँ की जलवायु समुद्री है, जिसका प्रभाव सागर से दूर जाने पर कम होता जाता है। यूरोपीय विचार से पश्चिमी तटीय भाग मे निम्न ताप, पर्याप्त वर्षा, शीतल गरमियाँ तथा ठंढी सर्दियाँ जलवायु की विशेषताएँ है। पूर्वी तथा मध्य के भाग मे महाद्वीपीय जलवायु मिलती है, जहाँ ग्रीष्म में गर्मी, पर्याप्त वर्षा एवं सर्दियों में कडी सर्दी पड़ती है। दक्षिणी फ्रास मे, पर्वतीय भागो को छोड़कर शेष मे, भूमध्य सागरीय जलवायु मिलती है, जहाँ ठंडी सर्दियाँ, गरम गरमियाँ तथा कम वर्षा होती है। पैरिस का औसत ताप १०° सें० तथा वर्षा २२ इच है। वर्षा ब्रिटेनी, उत्तरी तटीय भाग तथा पहाड़ी भागो मे अधिक होती है।

कृषि — यहाँ कृषि प्रमुख उद्योग है। यूरोप मे कृषिगत वस्तुओं के निर्यात मे नीदरलैंड्स के बाद इसका ही स्थान है। कृषि योग्य क्षेत्र अधिकांश उत्तरी भाग में स्थित हैं। कृषि मे गेहूँ, जौ, जई, चुकंदर, *पटुआ, आलू तथा अंगूर का स्थान प्रमुख है।*

खनिज — कोयला, लोरेन तथा मध्यवर्ती जिलों में मिलता है। कोयला कम होते हुए भी फ्रास को कोयले मे विश्व में तीसरा स्थान प्राप्त है। इसके अतिरिक्त यहाँ ऐंटिमनी, बॉक्साइट, मैग्नीशियम, पाइराइट तथा टग्स्टन, नमक, पोटैश, फ्लोरस्पार भी मिलता है।

उद्योग — लोरेन तथा मध्यवर्तीय भाग मे स्थित लोह इस्पात उद्योग सबसे प्रमुख उद्योग है। उद्योगो के लिये पिरेनीज तथा ऐल्प्स से पर्याप्त विद्युत् प्राप्त हो जाती है। लील (Lille), ऐलसैस तथा नॉरमैडी मे बाहर से रूई मँगाकर सूती कपडे बनाए जाते हैं। ऊनी वस्त्रों के लिये रूबे (Roubaix) तथा टूरक्वे (Tourcoing) प्रमुख जिले हैं। लेयॉन मे रेशमी कपडा बनता है। इसके अलावा जलयान निर्माण, स्वचालित यत्र, चित्रमय परदे, सुगधित द्रव्य, चीनी मिट्टी के बरतन, शराब, आभूषण, शृगार की वस्तुओ, फीते, लकडी की वस्तुओ, आदि का निर्माण होता है। शराब, इत्र तथा शृगार की वस्तुओ के उत्पादन मे तो फ्रास ने विश्व के अन्य देशो को पीछे छोड दिया है।

जनसंख्या — यहा की जनसंख्या ४,६५,२०,२७१ (१६६२) है। पैरिस यहा का प्रमुख नगर तथा राजधानी है। इसके अतिरिक्त मार्सेई, टूलूज, बॉर्डो, नैत्स, नैन्सी, लील, रूबे आदि प्रमुख नगर हैं। यहाँ की मुख्य भाषा फ्रासीसी है। अधिकाश लोग रोमन कैथोलिक धर्म को मानते है।

वनस्पति — मध्य तथा उत्तरी फ्रास मे बीच, ओक, चीड (बर्च), भूर्ज तथा पोपलर के जगल मिलते हैं। भूमध्य सागरीय क्षेत्र मे अगूर, बेरी तथा अजीर मिलते हैं।

यातायात — फ्रास मे यातायात की उन्नति बहुत अधिक हुई है। यहाँ ५०,००० मील लबे प्रथम श्रेणी के १,६०,००० मील द्वितीय श्रेणी के मार्ग तथा १,८०,००० मील लबी सडकें है। फ्रास के उत्तरी तथा उत्तर-पूर्वीय भाग मे नहरों तथा नदियो का यातायात मे प्रमुख स्थान है। यहा से हवाई मार्ग विश्व के प्रत्येक बडे नगर को जाते हैं तथा चार गैर सरकारी हवाई मार्ग भी हैं। रेडियो, टेलीविजन, डाक सेवा, टेलीफोन तथा टेलीग्राफ की उत्तम सेवाएँ प्राप्त है।

व्यापार — फ्रास खाद्य पदार्थ, खनिज तेल, कोयला, ऊन, फल, कपास, थोरियम, यूरेनियम का आयात एव लौह इस्पात की छड़ें, स्वचालित यत्र, पेट्रोलियम उत्पाद, सूती कपडे तथा हवाई जहाजों का निर्यात करता है।

शिक्षा — ६ से १६ वर्ष के बच्चो के लिये पढना अनिवार्य है तथा उच्चतर शिक्षा तक नि शुल्क शिक्षा दी जाती है। पैरिस, मार्सेई, बजान्सान, बॉर्डो, का, क्लेरमॉन्ट फेराड, दीजॉन, ग्रिनोबिल, लील, लेओन, टूलूज आदि स्थानो पर प्रसिद्ध विश्वविद्यालय हैं।

[उ० सिं०]

इतिहास — इसका प्राचीन नाम गॉल था। यहाँ अनेक जगली जनजातियों के लोग मुख्य रूप से केल्टिक लोग, निवास करते थे। सन् ५७-५१ ई० पू० में जूलियस सीजर ने उन्हें परास्त कर रोमन साम्राज्य मे मिला लिया। वहाँ शीघ्र ही रोमन सभ्यता का प्रसार हो गया। प्रथम शताब्दी के बाद कुछ ही वर्षों मे ईसाई धर्म का प्रचार तेजी से आरंभ हो गया और केल्टिक बोलियों का स्थान लातीनी
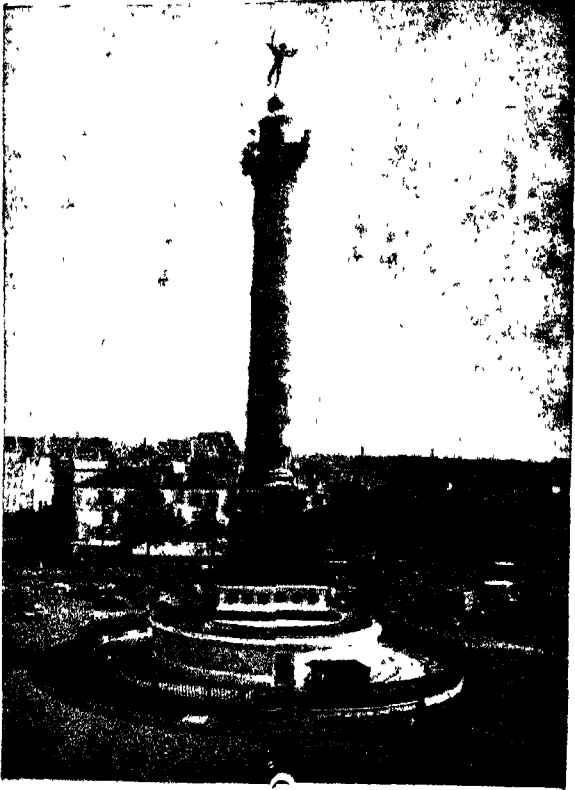
दि प्लेस ड ला बैस्टील
फ्रांस की क्रांति का प्रारंभ स्थान।
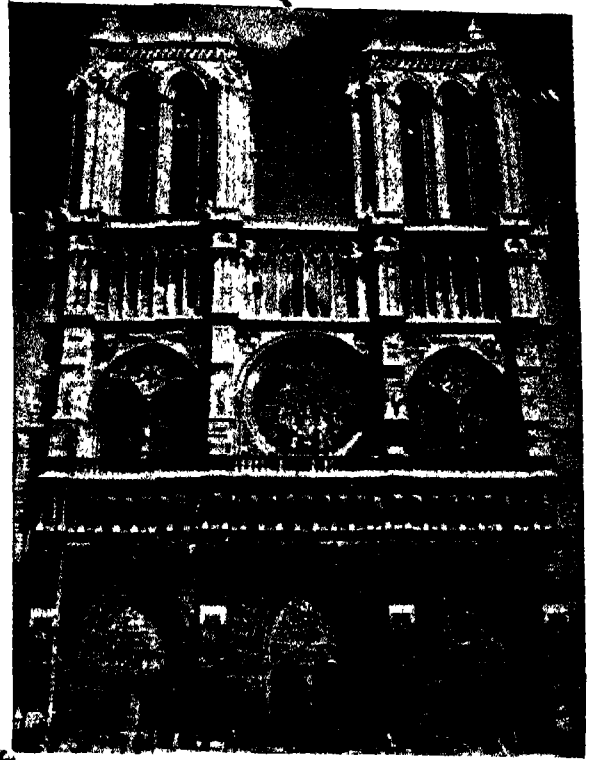
नॉत्र डेम ड पैरिस (Notre Dame de Paris)
१२वीं सदी में निर्मित विश्वप्रसिद्ध गिरजाघर।
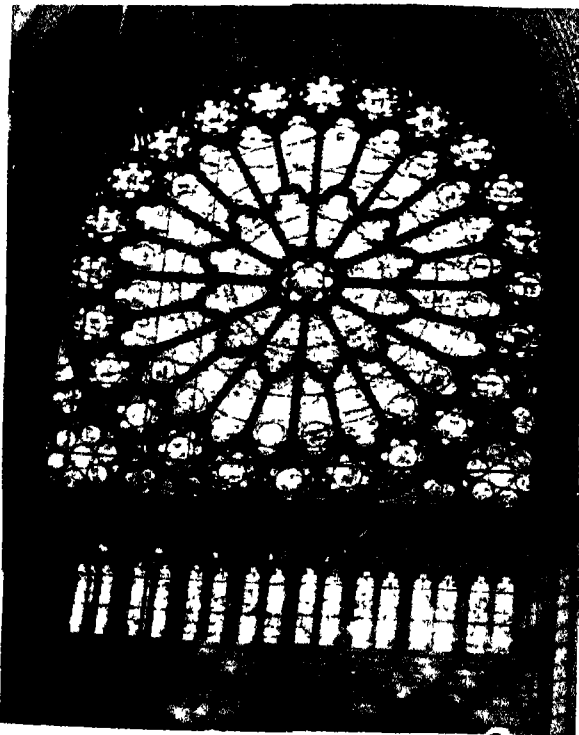
तीस फुट ऊंची, रंगीन शीशों से चित्रित, खिड़की
सेंट डेनिस कैथेड्रल, जहाँ फ्रांस के अनेक राजा और रानियां दफनाई गई हैं।
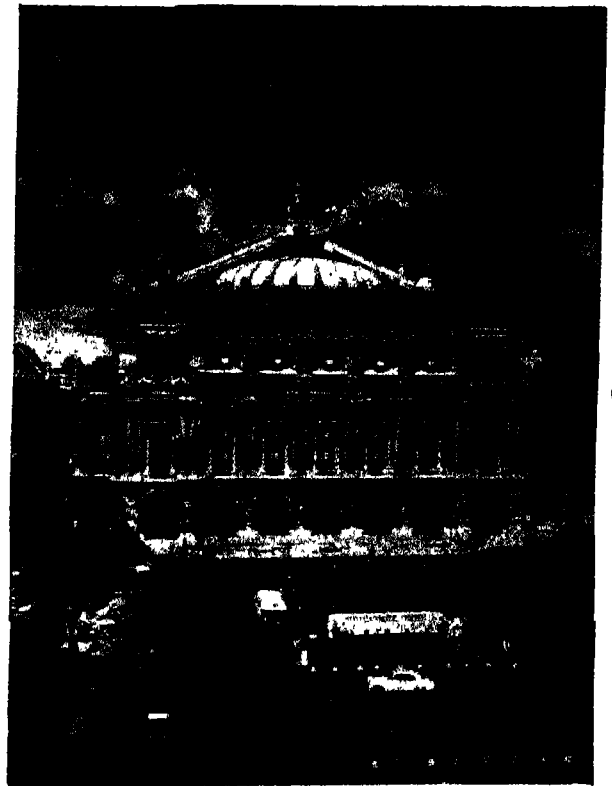
ऑपेरा हाउस, पैरिस
सम्मुख की सड़क का दृश्य।

फ्रांस (देखें पृष्ठ १५३)
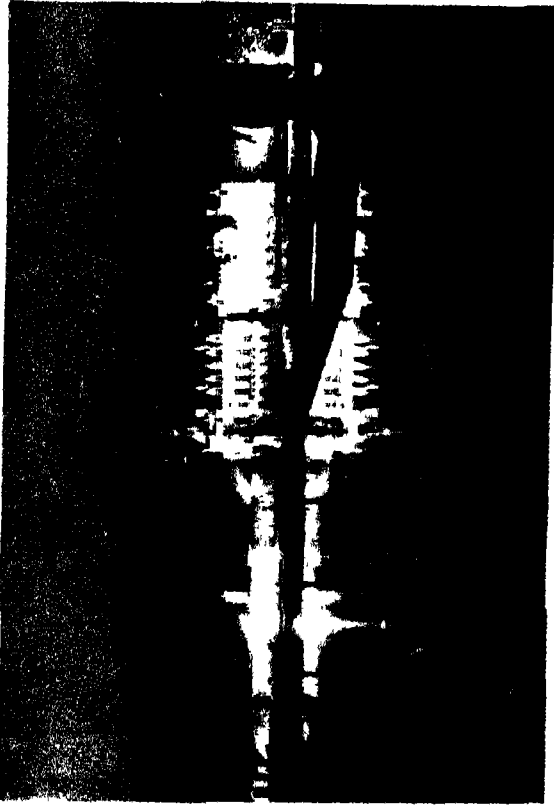
पैरिस के पास, शंतिली (Chantilly) राजभवन
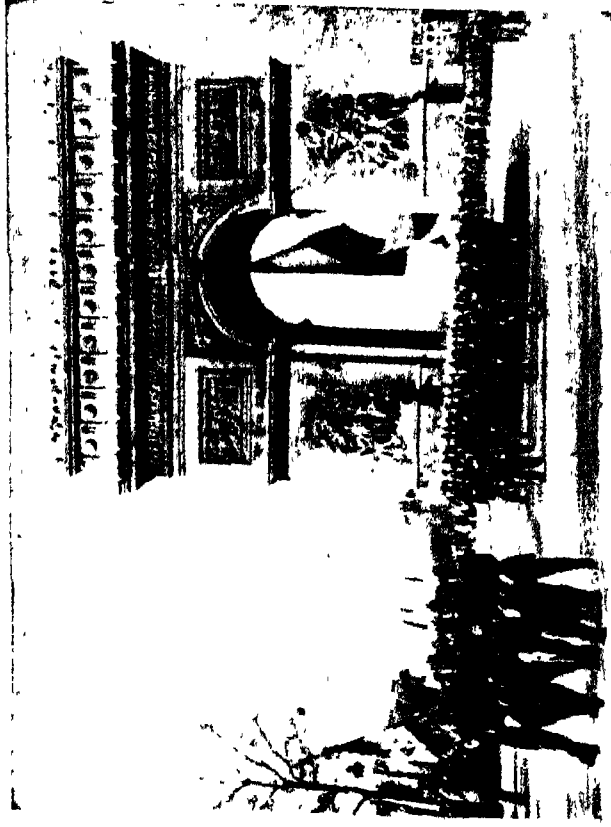
नैपोलियन का बनवाया विजय तोरण (Arch de Triumph)
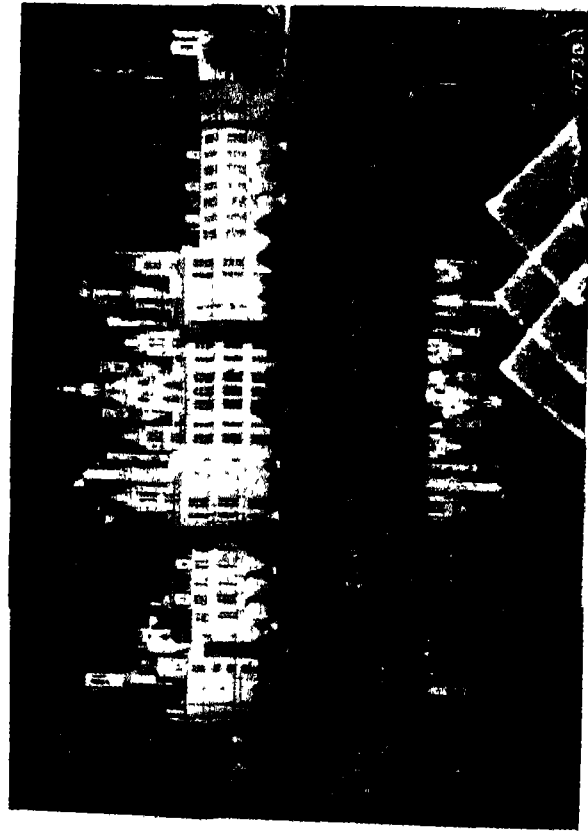
ल्वार की घाटी स्थित शांबोंड (Chambard) राजभवन
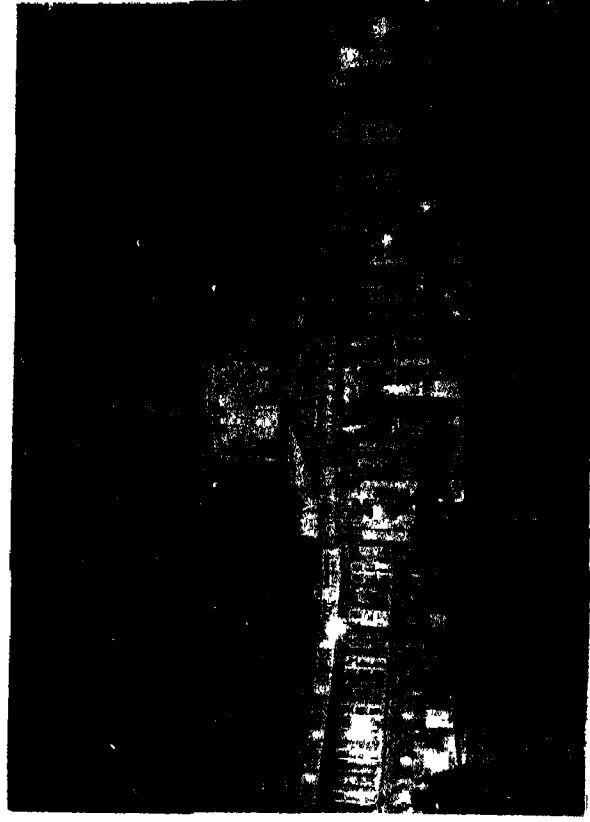
फ्रांस की साहित्य परिषद् (The Academie Francaise)

भाषा ने ले लिया। पाँचवीं शती में जर्मन जातियों ने उसपर आक्रमण किया। उत्तर में फ्रैंक लोग बस गए। इन्हीं का एक नेता क्लोविस था जिसने सन् ४८६ में अन्य लोगों को हरा कर अपना राज्य स्थापित किया और ४९६ ई० में खृष्टीय धर्म मे अभिषिक्त हो गया। उसके उत्तराधिकारियों के समय देश मे पुन अराजकता फैल गई। तब सन् ७३२ में चार्ल्स मार्टेल ने विद्रोहियो का दमन कर शाति और एकता स्थापित की। उसके उत्तराधिकारी पेपिन की मृत्यु (७६८ ई० मे) होने के बाद पेपिन का पुत्र शार्लमान गद्दी पर बैठा। उसने आसपास के क्षेत्रों को जीतकर राज्य का विस्तार बहुत बड़ा दिया, यहाँ तक कि सन् ८०० ई० मे पोप ने उसे पश्चिमी राज्यो का सम्राट् घोषित किया।

शार्लमान के उत्तराधिकारी अयोग्य साबित हुए जिससे साम्राज्य विखंडित होने लगा और उत्तर से नार्समॅन लोगो के हमले शुरू हो गए। ये लोग नार्मडी में बस गए। सन् ९८७ मे शासनसूत्र ह्यू कैपेट के हाथ मे आया किंतु कुछ समय तक उसका राज्य पेरिस नगर के आस पास के क्षेत्र तक ही सीमित रहा। इधर उधर कई सामतों का बोलबाला था जो यथेष्ट शक्तिशाली थे। १३वी शताब्दी तक राजा की शक्ति में क्रमश वृद्धि होती गई किंतु इस बीच शतवर्षीय युद्ध (१३३७–१४५३) के कारण इसमे समय समय पर बाधाएँ भी उपस्थित होती रहीं। जोन ऑफ आर्क नामक देशभक्त महिला ने राजा और उसके सैनिको मे जो उत्साह और स्फूर्ति भर दी थी, उससे सातवे चार्ल्स की मृत्यु (१४६१) तक फ्रास की भूमि पर से अंग्रेजी आधिपत्य समाप्त हो गया। फिर लूई ११वें के शासनकाल मे (१४६१–८३ ई०) सामतो का भी दमन कर दिया गया और बर्गंडी फ्रास मे मिला लिया गया।

आठवे चार्ल्स (१४८३–९८) तथा १२वें लूई (१४९८–१५१५) के शासनकाल मे इटली के विरुद्ध कई लड़ाइयाँ लड़ी गईं जिनका सिलसिला आगे भी जारी रहा। परिणामस्वरूप पश्चिमी यूरोप मे शक्तिवृद्धि के लिये स्पेन के साथ कशमकश आरंभ हो गई। जब फ्रास मे प्रोटेस्टैंट धर्म का जोर बढने लगा कई फ्रेंच सरदारो ने राजनीतिक उद्देश्य से उसे अपना लिया जिससे गृहयुद्ध की आग भड़क उठी। फ्रेंच राजतंत्र स्वदेश मे तो सामान्यत प्रोटेस्टैंट विचारो का दमन करना चाहता था किंतु बाहर स्पेन की ताकत न बढने देने के उद्देश्य से प्रोटेस्टैंटों का समर्थन करता था। नवे चार्ल्स (१५६०–७४) तथा तृतीय हेनरी (१५७४–८९) के राज्यकाल मे गृहयुद्धो के कारण फ्रास को बड़ी क्षति पहुँची। पेरिस कैथालिक मत का गढ बना रहा। सन् १५७२ मे हजारो प्रोटेस्टैंट सेंट बार्थोलोम्यू मे मार डाले गए। निदान चतुर्थ हेनरी (१५८९–१६१०) ने देश मे शाति स्थापित की, धार्मिक सहिष्णुता की घोषणा की और राजा की स्थिति सुदृढ बना दी। एक कैथालिक द्वारा उसकी हत्या हो जाने पर उसका पुत्र १३वाँ लूई गद्दी पर बैठा। उसके मत्री रीशल्यू ने राजा की और राज्य की शक्ति बढ़ाने का काम जारी रखा। तीस वर्षीय युद्ध मे शरीक होकर उसने फ्रांस के लिये अलसेस का क्षेत्र प्राप्त किया और उसे यूरोप का प्रमुख राज्य बना दिया। १३वें लूई की मृत्यु के बाद उसका पुत्र १४वाँ लूई (१६३८–१७१५) पाँच वर्ष की अवस्था मे फ्रास का शासक बना (१६४३)। उसका शासन वस्तुत बालिग होने पर १६६१ ई० मे प्रारंभ हुआ। शुरू मे उसने ऊपरी टीमटाम मे बहुत रुपया फूँक दिया, जब उसने वर्साय के प्रसिद्ध राजप्रासाद का निर्माण कराया। वृद्धावस्था में उसका स्वेच्छाचार बढ़ता गया। उसने विदेशो से युद्ध छेड़ते रहने की नीति अपनाई जिससे देश की सैनिक शक्ति और आर्थिक स्थिति को क्षति पहुँची तथा विदेशी उपनिवेश भी उससे छिन गए। उसके उत्तराधिकारियों १५वे लूई (१७१५-७४) तथा १६वे लूई (१७७४-९३) के समय मे भी राजकोष का अपव्यय बढ़ता गया। जनता मे असंतोष फैलने लगा जिसे वाल्टेयर तथा रूसो की रचनाओं से प्रोत्साहन मिला।

जब राष्ट्रीय ऋण बहुत बढ गया तब लूई १६वें को विवश होकर स्टेट्स-जनरल की बैठक बुलानी पड़ी। सामान्य जनता के प्रतिनिधियों ने अपनी सभा अलग बुलाई और उसे ही राष्ट्रसभा घोषित किया। यहीं से फ्रासीसी क्राति की शुरुआत हुई। सितबर, १७९२ में प्रथम फ्रेंच गणतंत्र उद्घोषित हुआ और २१ जनवरी, १७९३, को लूई १६वें को फाँसी दे दी गई। बाहरी राज्यो के हस्तक्षेप के कारण फ्रास को युद्धसंलग्न होना पड़ा। अत में सत्ता नैपोलियन के हाथ मे आई, जिसने कुछ समय बाद १८०४ में अपने को फ्रास का सम्राट् घोषित किया। वाटरलू की लड़ाई (१८१५ ई०) के बाद शासन फिर बूरबों राजवंश के हाथ मे आ गया। दसवें चार्ल्स ने जब १८३० ई० मे नियत्रित राजतंत्र के स्थान मे निरंकुश शासन स्थापित करने की चेष्टा की, तो तीन दिन की क्राति के बाद उसे हटाकर लूई फिलिप के हाथ में शासन दे दिया गया। सन् १८४८ मे वह भी सिंहासनच्युत कर दिया गया और फ्रास में द्वितीय गणतंत्र की स्थापना हुई। यह गणतंत्र अल्पस्थायी ही हुआ। उसके अध्यक्ष लूई नैपोलियन ने १८५२ में राज्यविप्लव द्वारा अपने आपको तृतीय नैपोलियन के रूप में सम्राट् घोषित करने में सफलता प्राप्त कर ली। उसकी आक्रामक नीति के परिणामस्वरूप प्रशा से युद्ध छिड गया (१८७०–७१), जिसमे फ्रास को गहरी शिकस्त उठानी पडी। तृतीय नैपोलियन का पतन हो गया और तीसरे गणतंत्र की स्थापना की बुनियाद पड़ी।

तृतीय गणतंत्र का संविधान सन् १८७५ में स्वीकृत हुआ। इसने राज्य को चर्च के प्रभाव से पृथक् रखने का वचन दिया और सार्वजनिक पुरुष मताधिकार के आधार पर चुनाव कराया। संविधान का एक बडा दोष यह था कि राष्ट्रपति मात्र कठपुतली जैसा था और कार्यपालिका भी शक्तिहीन थी। इसी से एक मत्रिमंडल के बाद दूसरा मत्रिमंडल बनता था और अत्यंत प्रभावशाली अवर सदन द्वारा पृथक् कर दिया जाता था। फिर भी गणतंत्र ने दृढतापूर्वक उस स्थिति का सामना किया जो वामपंथियो और दक्षिणपंथियो के पारस्परिक झगड़ों के कारण उत्पन्न होती जा रही थी। इस समय तक एशिया तथा अफ्रीका के कतिपय क्षेत्रो पर फ्रास का आधिपत्य स्थापित हो चुका था और प्रभाव तथा राज्यविस्तार की दृष्टि से उसका स्थान ब्रिटेन के बाद दूसरा था।

प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) मे फ्रास को ब्रिटेन तथा अमरीका के साथ मिलकर जर्मनी, आस्ट्रिया तथा तुर्की से युद्ध में सलग्न होना पडा। विजय के परिणामस्वरूप यद्यपि अलसेस तथा लोरेन का औद्योगिक क्षेत्र पुन फ्रांस को मिल गया, फिर भी लडाई मुख्यत फ्रेंच भूमि पर ही लडी गई थी, इसलिये उसकी इतनी अधिक बर्बादी हुई कि वर्षों तक उसकी आर्थिक अवस्था सुधर न सकी। फरवरी, १९३४ में दक्षिण-

पंथियों द्वारा किए गए व्यापक उपद्रवों के कारण वामपंथियों को अपनी ताकत बढ़ाने का अवसर मिल गया। सन् १९३६ के चुनाव में उन्हें सफलता मिली, जिससे लियाँ ब्लुम के नेतृत्व में तथाकथित जनता की सरकार स्थापित की जा सकी। ब्लुम ने युद्ध का सामान तैयार करनेवाले कितने ही उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया और कारखानों में ४० घंटे का सप्ताह अनिवार्य कर दिया। अनुदार या रूढ़िवादी दलों का विरोध बढ़ जाने पर ब्लुम को पदत्याग कर देना पड़ा। एडुअर्ड दलादिये के नेतृत्व में सन् १९३८ में जो नई सरकार बनी उसका समर्थन, हिटलरी कारनामों से आसन्न संकट के कारण वामपंथियों ने भी किया। सितंबर, १९३९ में ब्रिटेन के साथ साथ फ्रांस ने भी जर्मनी से युद्ध की घोषणा कर दी। १९४० की गर्मियों में जब जर्मन सेना ने बेलजियम को ध्वस्त करते हुए पेरिस की ओर अग्रगमन किया तो मार्शल पेताँ की सरकार ने जर्मनी से संधि कर ली। फिर भी फ्रांस के बाहर जर्मनों का विरोध जारी रहा और जनरल डी गॉल के नेतृत्व में अस्थायी सरकार की स्थापना की गई। पेरिस की उन्मुक्ति के बाद डी गाल की सरकार एलजीयर्स से उठकर पैरिस चली गई और ब्रिटेन, अमरीका आदि ने सरकारी तौर से उसे मान्यता प्रदान कर दी।

युद्ध समाप्त होने पर यद्यपि फ्रांस की आर्थिक स्थिति जर्जर हो चुकी थी, फिर भी सक्रिय उद्योग एवं अमरीका की सहायता से उसमें काफी सुधार हो गया। कार्यपालिका के अधिकारों के संबंध में मतभेद हो जाने से १९४६ में डी गाल ने पदत्याग कर दिया। दिसंबर में जो चतुर्थ गणतंत्र स्थापित हुआ, उसमें वही सब कमजोरियाँ थीं जो तृतीय गणतंत्र में थीं। सारा अधिकार राष्ट्रसभा के हाथ में केंद्रित था और विविध राजनीतिक दलों में एकता न हो सकने के कारण कोई भी मंत्रिमंडल स्थायित्व प्राप्त करने में असमर्थ रहा। इसी बीच उत्तर अफ्रीका तथा हिंदचीन में फ्रेंच शासन के विरुद्ध विद्रोह की व्यापकता बढ़ती गई। तब जनरल डी गाल को पुनः प्रधान मंत्री के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। नया संविधान बनाया गया जिसमें कार्यपालिका एवं राष्ट्रपति के हाथ मजबूत करने के लिये विशिष्ट अधिकार दिए गए। मतदाताओं ने अत्यधिक बहुमत से इसका समर्थन किया। नए चुनाव के बाद दिसंबर १९५८ में डी गाल के नेतृत्व में पाँचवें गणतंत्र की स्थापना हुई। सन् १९६१ तक फ्रांसने अपने अधीनस्थ कितने ही देशों को स्वतंत्र कर दिया। वे अब संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य बन गए हैं। आर्थिक उन्नति करने में फ्रांस उनके साथ यथासंभव सहयोग कर रहा है।

फ्रांस, अनातोल (१८४४–१९२४) इनका असली नाम फ्रांसुआ अनातोल थीबो था। अनातोल फ्रांस नाम उन्होंने अपनी साहित्यिक कृतियों के लिये रखा था। उनके पिता पुस्तकविक्रेता थे। अनातोल फ्रांस उपन्यासकार और कथाकार थे। डॉ० जॉनसन के समान वे व्यंग्यपूर्ण प्रहार करने में प्रवीण थे। पैरिस में उनके घर पर भीड़ लगी रहती थी, विशेष रूप से निर्वासित विदेशी आतंकवादियों के लिये उनका घर एक तीर्थ था। अनातोल फ्रांस उदार और प्रगतिशील चिंतक थे। फ्रांसीसी और विदेशी राजनीतिक हलचलों से उनका गहरा संपर्क रहता था। तत्कालीन फ्रांसीसी राजनीति में ड्रेफू के मामले से गहरा संकट उत्पन्न हो गया था। फ्रांस के सभी श्रेष्ठ विचारक और कलाकार ड्रेफू के बचाव के लिये उठ खड़े हुए थे। इनमें जोला और अनातोल फ्रांस ने बहुत दिलचस्पी ली थी।

अनातोल फ्रांस की प्रतिभा विशेष रूप से व्यंग्योन्मुख थी। व्यंग्य के तीव्र प्रहारों से वह पाठक को सभी विषयों पर स्वयं सोचने के लिये बाध्य करते थे। उनकी पहली पुस्तक, 'जोकास्ता एत ला चैट मेग्रर १८७९ में प्रकाशित हुई। १८८१ में उनकी पुस्तक, ला क्राइम डी सिलवेस्तर बोनार्ड' निकली। इस पुस्तक से उपन्यासकार के रूप में अनातोल फ्रांस को बहुत ख्याति मिली। फ्रांस वृद्ध और कोमल, उदारप्राण पात्रों के अंकन में विशेष सिद्धहस्त थे। इसके बाद उनकी अनेक व्यंग्य प्रधान कथाएँ प्रकाशित हुईं, जिनमें 'ताई', 'दि पेंग्विन आइलैंड्स, दि रिवोल्ट ऑव दि एंजेल्स' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। १९२१ ई० में उन्हें साहित्य का नोबेल पुरस्कार दिया गया।

अनातोल फ्रांस की गद्य शैली बड़ी आकर्षक थी। उनके गद्य का प्रवाह सहज और तरल था। उनका व्यंग्य पिछड़े विचारों पर आघात करता था। वे राज्य, धर्म, युद्ध आदि के संबंध में बहुत अग्रगामी विचार रखते थे। राज्यों और धर्म के इतिहास में उनकी बहुत विनाशकारी भूमिका रही है। अपनी व्यंग्यप्रधान कथा, 'दि पेंग्विन आइलैंड्स' में फ्रांस की यही मुख्य स्थापना है। पेंग्विन नाम के जीव ने सभ्यता और संस्कृति का अद्भुत् विकास किया, किंतु अपनी विध्वंसकारी शक्ति से अंत में इस सभ्यता को ही नष्ट कर दिया। मानव इतिहास पर फ्रांस इस कथा में एक विहंगम दृष्टि डालते हैं और आज की परिस्थितियों में उनकी दृष्टि पारदर्शी प्रतीत होती है। 'दि रिवोल्ट ऑव दि एंजेल्स' में फ्रांस लिखते हैं कि संपूर्ण प्रभुता प्राप्त करके कोई भी शक्ति निरंकुश बन जाती है, दैवी शक्ति भी। 'ताई' एलेक्जैन्ड्रिया के जीवन से संबंधित ऐतिहासिक उपन्यास है।

अनातोल फ्रांस की कला की विशेषता अंधविश्वासों, अविवेक और प्रतिगामी विचारधाराओं पर व्यंग्य की कठोर मार है, किंतु जीवन के अनेक कोमल, सुकुमार, बालसुलभ, उदार प्राण क्षण भी हमें निरंतर ऐसे पात्र अपनी कथाओं में अंकित करते हैं, जिनसे मानव स्वभाव और जीवन में मनुष्य की आस्था दृढ़ होती है।

[प्र० च० गु०]

फ्रांसिस प्रथम (१४९४–१५४७) फ्रांस का राजा जो वैलोई के चार्ल्स का पुत्र था। सन् १४९८ में लूई बारहवें के सिंहासनारूढ़ होने पर फ्रांसिस राज्य का संभावित उत्तराधिकारी मान लिया गया। सन् १५१९ में वह रोमन साम्राज्य के सिंहासन के लिए उम्मेदवार बना। इस पद पर चार्ल्स पंचम के चुन लिए जाने पर दोनों नरेशों में जो प्रतिद्वंद्विता प्रारंभ हुई, उसके परिणामस्वरूप १५२१–२९, १५३६–३८ और १५४२–४४ के युद्ध हुए। १५२५ के इटैलियन अभियान में बहादुरी से लड़ने के बाद पेविया नामक स्थान में उसे गहरी शिकस्त उठानी पड़ी। वह बंदी बना लिया गया और अपमानजनक संधिपत्र हस्ताक्षर होने के बाद ही उसे छुटकारा मिला। वह बड़ी ही ढुलमुल नीति और अस्थिर विचारों का व्यक्ति था। उसके शासन काल में राज्य के अधिकारों और शक्ति में वृद्धि हुई। स्टेट्स जनरल (जनता, अमीरों तथा चर्च के प्रतिनिधियों की सभा) की बैठक बुलाई नहीं जाती थी और 'पार्लमेंट' के विरोध की परवाह नहीं की

जाती थी। उसके खर्चीलेपन पर कोई नियंत्रण न था और अपनी प्रेमिकाओं तथा कृपापात्रों को उपहार तथा पेंशन आदि देकर वह मनमाना द्रव्य उड़ाया करता था जिससे प्रजा पर शासन का भार बढ़ता जाता था। वह साहित्यप्रेमी अवश्य था और विद्वानों का आदर करता था जिनमें उसके प्रशसको की कमी न थी।

फ्रांसिस द्वितीय (१७६८--१८३५) पवित्र रोमन साम्राज्य का अंतिम शासक, जो लिओपोल्ड द्वितीय का लड़का था। पिता की मृत्यु के बाद सन् १७९२ में गद्दी पर बैठा। शासन के प्रारभ मे ही उसे फ्रास के साथ युद्ध मे संलग्न होना पडा जिसमें उसकी हार हुई और उसे नेदरलैंड्स तथा लोंबार्डी का क्षेत्र खाली कर देना पडा। शीघ्र ही उसे दूसरी बार फ्रांस से युद्ध करना पडा। इसमें भी उसकी पराजय हुई और उसे राइन नदी के तटवर्ती इलाके से हट जाना पड़ा। तीसरी बार के युद्ध मे भी उसे कुछ और भूभाग से हाथ धोना पडा। अब उसने पवित्र रोम साम्राज्य के शासक की उपाधि छोड दी और अपने आप को फ्रासिस प्रथम के नाम से आस्ट्रिया का सम्राट् घोषित किया। सन् १८१० मे उसने नेपोलियन के साथ अपनी लडकी मेरी लूई का विवाह करना स्वीकार कर लिया, जिससे कुछ समय के लिये उसे लडाइयो और संघर्षो से कुछ अवकाश मिल गया। फिर भी १८१३ मे उसने फिर उन देशो का साथ दिया जो नेपोलियन का विरोध कर रहे थे। १८१५ मे हुई संधियो के परिणामस्वरूप उसे खोए हुए राज्य का बहुत सा भाग वापस मिल गया। इसके बाद मृत्यु पर्यंत वह शातिपूर्वक शासन करता रहा।

फ्रांसिस, असीसी के संत (सन् ११८२-१२२६ ई०) इटली के असीसी नामक नगर के एक धनी व्यापारी के पुत्र थे। असीसी के युवको के नेता के रूप मे, आमोद प्रमोद में अपनी युवावस्था बिताकर वह अपने पूर्व जीवन की निस्सारता समझ गए और अध्यात्म की ओर अभिमुख होकर ईसा का अनुकरण करने लगे। उन्होने अपनी समस्त संपत्ति गरीबो को बाँट दी और अत्यत निर्धनतापूर्वक इस पृथ्वी की वस्तुओ के प्रति परम अनासक्ति मे साधना करने लगे। शीघ्र ही कुछ युवक उनके शिष्य बन गए। सन् १२०९ ई० मे सत फ्रासिस उनके साथ रोम गए जहाँ उनको पोप इन्नोसेसियस (इनोसेंट) तृतीय से एक नया धर्मसंघ चलाने की अनुमति मिली (दे० फ्रासिस्की धर्मसघ)।

सत फ्रासिस का प्रकृतिप्रेम इतना विख्यात है और उनकी इस विशेषता को इतना महत्व दिया जाता है कि बहुत से लोग उनके गभीर रहस्यवाद तथा अत्यत कठिन तपश्चर्या से अनभिज्ञ रह जाते है। इसका कारण यह है कि आध्यात्मिक सिद्धि की पराकाष्ठा पर पहुँच कर संत फ्रासिस ने ईश्वर की सृष्टि का आनदविभोर कवि बना रहना चाहा है। अपने जीवन के अत मे वह अनेक बीमारियो से आक्रात थे और अपने सघ का सचालन दूसरो के हाथ में देने के लिये विवश हो गए थे; फिर भी उन्होने इस दशा मे इस सुदर पृथ्वी के सृष्टिकर्ता की प्रशंसा मे अपने अमर सूर्यस्तव (Canticle of the sun) की रचना की थी। मध्यकालीन समाज पर उनके मनोभाव का अत्यधिक प्रभाव पड़ा और वह प्रभाव आजतक ईसाइयो तथा गैर ईसाइयो पर बना हुआ है।

सं० ग्रं० — जी० के० चेस्टर्टन : सेंट फासिस ऑव आसीसी, लंदन, १९२३। [का० बु०]

फ्रांसिस जेवियर का जन्म ७ अप्रैल, १५०६ ई० को स्पेन मे हुआ था। पुर्तगाल के राजा जॉन तृतीय तथा पोप की सहायता से वे जेसुइट मिशनरी बनाकर ७ अप्रैल, १५४१ ई० को भारत भेजे गए और और ६ मार्च, १५४२ ई० को गोवा पहुँचे जो पुर्तगाल के राजा के अधिकार मे था।

गोवा मे मिशनरी कार्य करने के बाद वे मद्रास तथा त्रावणकोर गए। यहाँ मिशनरी कार्य करने के उपरात वे १५४५ ई० मे मलाया प्रायद्वीप मे ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये रवाना हो गए। उन्होने तीन वर्ष तक मिशनरी कार्य किया।

मलाया प्रायद्वीप में एक जापानी युवक से जिसका नाम हजीरो था, उनकी मुलाकात हुई। सेंट जेवियर के उपदेश से यह युवक प्रभावित हुआ। १५४९ ई० मे सेंट जेवियर इस युवक के साथ पहुँचे। जापानी भाषा न जानते हुए भी उन्होने हजीरों की सहायता से ढाई वर्ष तक प्रचार किया और बहुतो को खिष्टीय धर्म का अनुयायी बनाया।

जापान से वे १५५२ ई० मे गोवा लौटे और कुछ समय के उपरात चीन पहुँचे। वहा दक्षिणी पूर्वी भाग के एक द्वीप में जो मकाओ के समीप है बुखार के कारण उनकी मृत्यु हो गई।

मिशनरी समाज उनको काफी महत्व का स्थान देता और उन्हे आदर तथा समान का पात्र समझता, है क्योंकि वे भक्तिभावपूर्ण और धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य थे। वे सच्चे मिशनरी थे।

सत जेवियर ने केवल दस वर्ष के अल्प मिशनरी समय मे ५२ भिन्न भिन्न राज्यो मे यीशु मसीह का प्रचार किया। कहा जाता है, उन्होने नौ हजार मील के क्षेत्र मे घूम घूमकर प्रचार किया और लाखो लोगो को यीशु मसीह का शिष्य बनाया। [मि० च०]

फ्रांसिस जोजेफ प्रथम (आस्ट्रिया) (जन्म, १८३०; मृत्यु १९१६ ई०) फ्रासिस जोजेफ के पिता का नाम फ्रासिस चार्ल्स था। उसकी शिक्षा धार्मिक वातावरण म बडी कठोरता से हुई। १८४८ ई० की यूरोपीय क्राति के समय उसने रेडेट्स्की के नेतृत्व मे इटली मे सैनिक सेवा की। जब इस क्राति का दमन कर दिया गया तो श्वार्ज़ेन-बर्ग के नेतृत्व मे एक प्रतिक्रियावादी मत्रिमडल बना। उसने फर्डिनड प्रथम को सिहासन छोडने का परामर्श दिया और उसके भतीजे फ्रासिस जोजेफ को सम्राट् बनाया (२ दिसबर, १८४८ ई०)। इस मत्रिमडल ने जर्मनी, इटली और हगरी मे, जो साम्राज्य के भाग थे, दमन का चक्र चलाया और आस्ट्रिया की मगद के अधिकार भी छीन लिये। फ्रासिस जोजेफ ने सारी राजसत्ता अपने हाथ मे ले ली।

असतोष को दूर करने के लिये उसने १८६० ई० मे प्रातीय विधानमडलो को कुछ अधिकार दिए। १८६१ मे उसने केंद्रीय संसद् की स्थापना की जिसको सभी प्रातो से पारित कानूनो को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार दिया। १८६६ ई० मे प्रशा न आस्ट्रिया को पराजित कर दिया। इसके फलस्वरूप प्राय सभी जर्मन प्रात आस्ट्रिया के साम्राज्य से अलग हो गए और स्लैव जाति ने सघीय शासन की स्थापना की माग की। ऐसी दशा मे फ्रासिस जोजेफ ने १८६७ मे हगरी से समझौता किया जिससे उसे आतरिक मामलों में बहुत अधिकार मिल गए।

जब १८७८ ई० में रूस ने टर्की पर अपना आधिपत्य जमाना चाहा तो ब्रिटेन के साथ फ्रांसिस जोजेफ ने भी इसका विरोध किया क्योंकि उसे भय था कि यदि स्लैव जाति को इस प्रकार प्रोत्साहन मिला तो उसका साम्राज्य छिन्न भिन्न हो जायगा। बर्लिन संमेलन में आस्ट्रिया को टर्की के तीन प्रदेश प्रबंध करने के लिये मिले। १९०८ ई० में आस्ट्रिया ने इनमें से दो बोलिविया और हर्जिगोविना को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

१८८०-९० के बीच साम्राज्य के अनेक प्रांतो ने स्वायत्त शासन की माँग की किंतु फ्रांसिस जोजेफ ने उनकी इस माग को स्वीकार न किया। संवैधानिक शासन में उसकी बिलकुल आस्था न थी। साम्राज्य की जातियों को संगठित रखना वह अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझता था। उसी के भतीजे आर्कड्यूक फ्रांसिस फर्डिनंड की १९१४ में हत्या के फलस्वरूप प्रथम विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ। वह जर्मन जाति से पूर्ण सहानुभूति रखता था, अत उसने विश्वयुद्ध मे जर्मनी की पूर्ण सहायता की। [ओ० प्र०]

फ्रांसिस यंगहस्बैंड एक प्रसिद्ध प्रशासक, पर्यटक तथा लेखक। उनका जन्म ३१ मई, १८६३ में अविभक्त भारत के मरी नामक स्थान में हुआ। उन्हें क्लिफटन और सैंडहर्स्ट में शिक्षा प्राप्त हुई और वे १८८२ मे सेना में भरती हुए। १८८६ में वे मुजटग पहाडी पार करके एशिया के उस पार पहुँचे। वे १८९० में भारतीय राजनीतिक विभाग में भेजे गए, जहाँ से वे १९०२ में ब्रिटिश मिशन में भेजे गए, जिसका उद्देश्य दलाई लामा पर रूसी प्रभाव समाप्त करना था। उस मिशन के फलस्वरूप ७ सितंबर, १९०४ को एक संधिपत्र प्रस्तुत हुआ। उन्होने ल्हासा की भौगोलिक स्थिति के संबध मे सही जानकारी दी और यह प्रमाणित किया कि तिब्बती पठार के पश्चिम में मुजटग ही सही जलविभाजन क्षेत्र है। वे मंचूरिया, चीन, तुर्किस्तान आदि स्थानो मे खूब पर्यटन करते रहे। भ्रमण पर उन्होने बहुत सी पुस्तकें लिखी है। [म० गु०]

फ्रांसिस हचेसन (१६९४-१७४६ ई०) अंग्रेजी नीतिदर्शन, प्राचीन साहित्य एवं धर्मशास्त्र का पंडित। उसने पहले डब्लिन मे निजी शिक्षाकेंद्र चलाया और फिर ग्लास्गो विश्वविद्यालय मे नीतिदर्शन का आचार्य रहा। शैफ्ट्सबरी द्वारा प्रतिपादित नैतिक इंद्रिय की धारणा तथा तत्संबधी सौदर्यात्मक अपरोक्षानुभववाद के परिवर्धन के लिये विख्यात हुआ। उसने मन मे संकल्प से स्वतंत्र किसी विचारनिर्धारण तथा सुख दु.ख प्रत्यक्ष को इंद्रिय माना और इंद्रियों में पाँच बाह्य इंद्रियो के अतिरिक्त मन प्रत्यक्ष इंद्रिय चेतना, सौदर्य इंद्रिय, औरो के सुख पर सुखी तथा औरों के दुःख पर दु खी रहनेवाली जनेंद्रिय (जन इंद्रिय), अपने अथवा दूसरो में सद्गुण अथवा अवगुण का प्रत्यक्ष करनेवाली नैतिक इंद्रिय, यश की इंद्रिय, तथा हास्येंद्रिय की गणना की। उसने नैतिक इंद्रिय की सौंदर्य इंद्रिय से उपमा देते हुए कहा कि नैतिक इंद्रिय कर्मों के तथ्यात्मक गुणों से उसी प्रकार प्रभावित होती है जैसे सौंदर्य इंद्रिय पदार्थों के सौंदर्य से, इसलिये उसने उसे नैतिक प्रत्यक्ष, नैतिक रस, नैतिक मूल प्रवृत्ति, नैतिक विवेक, तथा आज्ञारूपी नैतिक अनुमोदन अननुमोदन भी कहा। उसे वास्तविक सद्गुण के ध्यान से सुख की प्राप्ति तथा विस्तृत अनुभव से नैतिक इंद्रिय के विकास में विश्वास था। हचेसन नैतिक इंद्रिय के अतिरिक्त आत्मप्रेम तथा परहित भावना को भी मूल कर्म प्रेरक स्वीकार करता था। परतु आत्मप्रेम को समाज की स्थिति के लिये आवश्यक मानते हुए भी अनुमोदन अथवा अननुमोदन दोनों के अयोग्य समझता था। वह केवल परहित भावना को ही अनुमोदनीय कर्म का उद्गम मानता था। पूर्णतया विकसित नैतिक इंद्रिय का स्वरूप और दैवी लक्ष्य ही आत्मा से जन सुख का दृढ निश्चय कराना बताता था। हचेसन का यह भी कथन था कि आत्मप्रेम तथा परहितभावना का समन्वय प्रकृति मे हो जाता है परंतु आत्मप्रेम, परहितभावना तथा नैतिक इंद्रिय इन तीनों का समन्वय केवल धर्म में होता है।

हचेसन आत्म, संख्या, अवधि (duration), तथा अस्तित्व के प्रत्ययों को अन्य प्रत्येक विचार के साथ विद्यमान कहता था। बाह्य पदार्थों के अस्तित्व मे विश्वास स्वाभाविक मूल प्रवृत्ति समझता था, और विचार को उसकी भाषात्मक अभिव्यक्ति से भिन्न मानता था। उसका मत था कि सौदर्य इंद्रिय प्रतिवर्त है और सौदर्य का सामान्य सत्यों, सामान्य कारणों, तथा नैतिक सिद्धातो एव कर्मो मे भी प्रत्यक्षानुभव किया जा सकता है।

सं० ग्र० — फ्रांसिस हचेसन एन्क्वायरी कर्सानिग ब्यूटी, आर्डर हारमनी ऐंड डिजाइन, एन्क्वायरी कर्सानिग मॉरल गुड ऐंड ईविल; एसे ऑव द नेचर ऐंड कडक्ट ऑव द पैशस ऐंड अफेक्शंस।

[रा० मू० लू०]

फ्रांसिस्की धर्मसंघ १३वी शताब्दी ई० के प्रारंभ मे असीसी के संत फ्रांसिस ने इस धर्मसंघ की स्थापना की थी। संस्थापक के मनोभाव के अनुसार इस संघ मे विशेष रूप से निर्धनता पर बल दिया जाता है। इसके सदस्य अपने मठो मे ध्यान, प्रार्थना तथा तपश्चर्या का जीवन बिताते है; इसके अतिरिक्त वे उपदेश आदि द्वारा अन्य पुरोहितो के काम मे हाथ बँटाते है। धर्मप्रचार के क्षेत्र मे भी उन्होने महत्वपूर्ण सहयोग दिया है और आजकल भी वे ऐसा ही करते हैं। यह रोमन कॉथलिक चर्च का सबसे महत्वपूर्ण धर्मसंघ है (दे० धर्मसंघ)। आजकल इसके सदस्यो की कुल संख्या लगभग ४५,००० है. ये तीन शाखाओ मे विभक्त है — फायर्स माइनर २६,५००, कवेंचुअल्स (३५००) और कैपुचिंस (१५,०००)। [का० बु०]

फ्रांसीसी जर्मन युद्ध फ्रांस और जर्मनी के बीच लगभग १३ महीने तक चलनेवाली लड़ाई (१८७०-१८७१); जिसके परिणाम फ्रांस की पराजय, नेपोलियन राजवंश की सत्ता का अंत तथा तृतीय गणतंत्र की स्थापना और प्रशा के नेतृत्व मे एकीकृत जर्मन राज्य के उदय के रूप में हुए।

लंबे काल से फ्रांस और प्रशा के संबध तनावपूर्ण चले आ रहे थे किंतु जब प्रशा १८६६ मे आस्ट्रिया को जीतकर सारे जर्मनी का नेता बन बैठा तो फ्रांस को उसकी शक्ति से बहुत खतरा महसूस हुआ। युद्ध की स्थिति उस समय उत्पन्न हो गई, जब स्पेन की रानी इजाबेला के राजच्युत होने के बाद जनरल प्रिम ने प्रशा के एक राजकुमार ल्योपोल्ड को स्पेन की गद्दी पर बैठने के लिये आमंत्रित किया। फ्रांस को प्रशा के राजकुमार का स्पेन का राजा बनना,

अपनी सुरक्षा के लिये बहुत खतरनाक लगा। नेपोलियन तृतीय ने प्रशा के राजा से आग्रह किया कि वह स्पेन के मामले से दूर रहे। प्रशा के राजकुमार ने स्पेन की गद्दी से अपना नाम तो वापस ले लिया, किंतु फ्रांसीसी राजदूत का यह आग्रह कि प्रशा का सम्राट् विधिवत् आश्वासन दे कि उसके वंश का कोई व्यक्ति स्पेन का राज्याधिकारी नहीं बनेगा, अस्वीकार कर दिया गया। इसपर जुलाई, १८७० में फ्रांस ने प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और सेनाएँ जर्मन सीमा की ओर बढ़ा दीं। दूसरी ओर यह चुनौती न केवल प्रशा द्वारा वरन् सभी जर्मन राज्यों द्वारा स्वीकार की गई और जर्मन सेनाएँ युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गईं।

युद्ध के आरंभ में फ्रांसीसी सेनाओं ने नेपोलियन तृतीय के नेतृत्व में जर्मन सेना के प्रथम भाग को पीछे हटने के लिये बाध्य कर दिया, किंतु उसके बाद जर्मन सेनाओं ने फ्रांस की एक के बाद एक स्थितियों पर अधिकार करना आरंभ किया। अंत में नेपोलियन तृतीय भी बंदी हो गया। लगातार होनेवाली पराजय से फ्रांस की जनता क्षुब्ध हो उठी, और उसने नेपोलियन को सत्ताच्युत करने की माँग की। ४ सितंबर को फ्रांस गणतंत्र घोषित हुआ। १९ सितंबर को जर्मन सेनाओं ने पेरिस घेर लिया।

जर्मनों ने बहुत दिनों तक पेरिस पर घेरा कायम रखा। नगर भुखमरी की सीमा तक पहुँच गया। नगर पर तीन सप्ताह की लगातार बमबारी ने फ्रांसीसी सरकार को आत्मसमर्पण के लिये विवश कर दिया। २८ जनवरी को अस्थायी संधि हुई। उसमें फ्रांस ने पेरिस के निकटवर्ती सभी किले जर्मनी को सौंप दिए। २० करोड़ फ्रांक हर्जाने के बतौर भी देने पड़े। इसके बाद फ्रांस की असेंबली का चुनाव हुआ और थियेर नवगठित सरकार के अध्यक्ष नियुक्त हुए। उन्होंने वार्साई में जर्मनी के साथ शांतिसंधि में भाग लिया। युद्धविराम के तीन बार बढ़ाए जाने के बाद २६ फरवरी, १८७१ को वार्साई में शांतिसंधि पर हस्ताक्षर किए गए। संधि में फ्रांस पर तीन शर्तें लादी गईं — (१) फ्रांस लोरेन प्रदेश का पाँचवाँ भाग जर्मनी के आधिपत्य में सौंप दे। (२) फ्रांस पाँच अरब फ्रांक की राशि जर्मनी को युद्ध के हर्जाने के बतौर दे। (३) फ्रांस के कुछ विभागों पर जर्मनी का तब तक अधिकार रहेगा जब तक फ्रांस उपर्युक्त राशि जर्मनी को चुकता न करे। फ्रांस की असेंबली ने १ मार्च को इन शर्तों को मान लिया, और उसी दिन जर्मन सेनाओं ने पेरिस में प्रवेश किया। युद्ध के हर्जाने की अंतिम किश्त ५ सितंबर, १८७३ को अदा हुई। १३ सितंबर तक जर्मनी ने फ्रांस का सारा क्षेत्र खाली कर दिया।

फ्रांसेज डाब्ले (१७५२–१८४०) मैडम डाब्ले, जो कुमारी फैनी बर्नी के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं, नॉरफोक के किंग्सलिन नामक स्थान में सन् १७५२ में पैदा हुई थीं। इनके पिता डॉ० बर्नी संगीत के लब्धप्रतिष्ठ मर्मज्ञ थे और फैनी के बचपन ही में लंदन में आकर रहने लगे थे। उनका संपर्क डॉ० जॉन्सन, बर्क तथा रेनॉल्ड्स जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों से था और कालांतर में कुमारी बर्नी भी उसी विशिष्ट गोष्ठी से संबंधित हो गईं। लिखने का प्रेम इनमें बाल्यकाल ही में उदय हुआ परंतु विमाता के विरोध के कारण उन्हें प्रोत्साहन न मिल सका। किंतु आगे चलकर स्वाभाविक प्रवृत्ति की विजय हुई और सन् १७७८ ई० में उन्होंने अपना प्रथम उपन्यास 'इवेलिन, ऑर दि हिस्ट्री ऑव ए यंग लेडीज इंट्रैंस इंटु दि वर्ल्ड' प्रकाशित किया परंतु अपने नाम तथा व्यक्तित्व को गुप्त ही रखा। इस उपन्यास की लोकप्रियता से प्रोत्साहित होकर चार वर्ष पश्चात् उन्होंने 'सिसीलिया, ऑर दि मेम्वायर्स ऑव ऐन ऐअरेस' का प्रकाशन किया। सन् १७८६ में वे साम्राज्ञी चार्लाट के अधीन एक सम्मानित पद पर नियुक्त हुईं और अपने चार वर्षों के अनुभवों को अपनी रोचक डायरी में लेखबद्ध करती रहीं। १७९३ में उन्होंने जेनरल डाब्ले नामक फ्रांसीसी शरणार्थी से विवाह किया और १८०२ से १८१२ तक फ्रांस में कालयापन किया। उनके दो अन्य उपन्यास 'कैमिला' और 'दि वांडरर' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

मैडम डाब्ले का सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास 'इवेलिन' है, क्योंकि इसमें उनकी प्रतिभा का विशिष्ट रूप पाठकों के सामने आता है। इसकी नायिका एक उच्च कुल की साधनहीन नवयुवती है जो परिस्थितियों से विवश होकर लंदन के अपरिचित समाज में प्रवेश करती है और भिन्न भिन्न लोगों के विचित्र रहन सहन, क्रियाकलाप, वेशभूषा तथा आचार विचारों का रोचक चित्र अपने पत्रों में अंकित करती है। उपन्यास की पत्र शैली रिचर्डसन की है परंतु नायिका बहिर्मुखी है और अपने व्यक्तित्व को पृष्ठभूमि में रखती हुई वह अपने चतुर्दिक् बाह्य समाज का स्वरूप चित्रित करती है। उपन्यास-लेखिका का मुख्य उद्देश्य था एक रोचक कहानी का निर्माण करना। दूसरा विशिष्ट गुण जो इस उपन्यास में प्रतिबिंबित है वह है लेखिका की तीव्र निरीक्षण शक्ति जिससे घटनाएँ तथा पात्र सजीव हो उठे हैं। इसके अतिरिक्त, उपन्यास में लेखिका की उस पैनी दृष्टि का भी प्रदर्शन है जो मनुष्यों की त्रुटियों तथा हास्यास्पद विचित्रताओं को सहज ही लक्ष्य कर लेती थी और उनकी लेखनी कुशल चित्रकार की तूलिका के समान उनका समन्वय करके मनोरंजक चित्रों का सृजन करती थी। इस तरह के व्यंग्यात्मक चित्र उसके उपन्यासों में भरे पड़े हैं। उनके दूसरे उपन्यास 'सिसीलिया' में भी इन्हीं गुणों की अभिव्यक्ति हुई है और कथावस्तु भी अनुरूप ही है परंतु सफलता उतनी सर्वांगीण नहीं है। शेष दो उपन्यासों में उन्होंने अपने अनुभवक्षेत्र के बाहर बढ़ने का प्रयास किया और डॉ० जॉन्सन की गंभीर तथा बोझिल शैली को अपनाया, जिसके फलस्वरूप उन्हें सफलता से वंचित होना पड़ा। मैडम डाब्ले के उपन्यासों का महत्व ऐतिहासिक है क्योंकि उनमें स्त्रियों के स्वतंत्र दृष्टिकोण का समावेश है और घरेलू जीवन ही उनका केंद्रबिंदु है। इस तरह से उन्होंने उस परंपरा का श्रीगणेश किया जिसकी पराकाष्ठा जेन आस्टिन की परिपक्व कृतियों में पाई जाती है।

सं० ग्रं०—ए डॉब्सन : फैनी बर्नी १९०३, लार्ड मैकाले : मैडेम डाब्ले हिस्टॉरिकल एसेज, द्वितीय भाग, १८५४, राल्फ बी० सीले : फैनी बर्नी ऐंड हर फ्रेंड्स, १८९०। [वि० रा०]

फ्रॉइसार जाँ (लगभग १३३८–१४१० ई०) आरंभ में वह एक व्यापारी के यहाँ नौकरी किया करता था। बाद में ज्ञान प्राप्त करने की लगन पैदा हुई और उसने नौकरी छोड़ दी। पढ़े लिखों के बीच उसका उठना बैठना आरंभ हो गया। कविता से प्रेम उसे शुरू ही से था, यहाँ बढ़ावा मिला और वह कविता करने लगा। दुनिया घूमने

की चाह पैदा हुई और १८ वर्ष की अवस्था में इंगलैंड पहुँचकर रानी फिलिप्पा के राजदरबारियों मे संमिलित हो गया। वहाँ उसकी प्रशंसा में कविताएँ लिखी। भ्रमण करने की इच्छा हुई। १३६० मे फ्रांस में था। १३६१ में पाँच वर्ष की अनुपस्थिति के बाद फिर इग्लैंड पहुँचा। रानी फिलिप्पा से प्रोत्साहन पाकर स्कॉटलैंड का भ्रमण किया। १३६६ में 'ब्लैक प्रिंस' के साथ फ्रांस गया। १३६८ मे इटली में भ्रमण किया। यूरोप के कई एक राजदरबारो मे रहा। इस प्रकार उसने अपनी 'क्रॉनिकल' नामक पुस्तक के लिये सामग्री एकत्र की। इस पुस्तक मे इसने १३२६ से १४०० ई० तक के युद्धो का वर्णन किया है। उसके कई भाग हैं जो समय समय पर अलग अलग लिखे गए। उसने लड़ाई के संबध में जो लिखा सो है ही, लेकिन भौगोलिक संबंध में भी इस पुस्तक की महत्ता बढ़ जाती है। जिन जिन देशों में वह फिरा, उनका पूर्ण रूप से वर्णन किया है। उसकी पुस्तक के अंतिम भाग में क्रूसेड का भी वर्णन है। [मु० अ० अ० अ०]

फ्राबिशर, सर मार्टिन अंग्रेज नौसैनिक। १५३५ के आस पास यार्कशायर मे उत्पन्न हुआ। भारत के लिये उत्तरी पश्चिमी मार्ग खोजने के उद्देश्य से ७ जून, १५७६ को उसने शेटलैंड द्वीपो के मार्ग से यात्रा प्रारंभ की। समुद्री कठिनाइयों मे उसका एक पोत नष्ट हो गया किंतु उसने साहस के साथ यात्रा जारी रखी, और २८ जुलाई को लैब्राडोर के तट पर पहुँच गया। बूवर द्वीप पर पहुँचने के पश्चात् उसे घर लौटना पडा। मई १५७७ में उसने सोने की खोज मे फ्राबिशर द्वीप की यात्रा की। इस द्वीप का नाम अपनी पहली यात्रा मे फ्राबिशर ने अपने नाम पर रखा था। १५७८ में उसने तीसरी यात्रा की। १५८० मे वह एक शाही पोत का कप्तान तथा १५८५ मे वेस्टइडीज अभियान के समय ड्रेक के मातहत वाइस एडमिरल नियुक्त हुआ। इसके पश्चात् वह स्पेन के विरुद्ध नौसेना के मोर्चों पर रहा। १५८८ मे उसे नाइट घोषित किया गया था। २२ नवंबर, १५९४ को उसका देहांत हुआ।

फ्रीडेल-क्रैफ्ट्स अभिक्रिया (Friedel-Crafts Reaction) बेंजीन वलय मे एक या एक से अधिक हाइड्रोजन परमाणुओ को ऐल्किल या ऐसिल (acyl) समूहो द्वारा प्रतिस्थापित करने की विधि सन् १८७७ मे फ्रीडेल एवं क्रैफ्ट्स ने मालूम की थी, अत यह अभिक्रिया फ्रीडेल-क्रैफ्ट्स अभिक्रिया कहलाती है। इस अभिक्रिया के तीन विभिन्न अंग हैं।

(१) ऐरोमेटिक यौगिक — इसका ऐल्काइलीकरण करना होता है, जिसमे हाइड्रोकार्बन या उनके हेलोजन, हाइड्रॉक्सी, ऐमिनो आदि व्युत्पन्न हो सकते है। विषम चक्रीय यौगिको का भी ऐल्काइलीकरण किया जा सकता है।

(२) ऐल्काइलीकारक (alkylating agent) — यह ऐल्किल हेलाइड, ऐलिफैटिक ऐल्कोहल, ऐलकीन या चक्रीय ऐलकेन (cyclo paraffin) हो सकते है।

(३) उत्प्रेरक (catalyst) — इस अभिक्रिया का सबसे उत्तम उत्प्रेरक निर्जल ऐल्यूमीनियम क्लोराइड है, परतु इसके अतिरिक्त लोह (III), जिंक, टिन (IV) के क्लोराइड, बोरन ट्राइफ्लोराइड, हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल, सल्फ्यूरिक अम्ल तथा फॉस्फरिक अम्ल का उपयोग भी किया जा सकता है।

उदाहरण (क) हाइड्रोकार्बनों के संश्लेषण में

का$_६$ हा$_६$ + का हा$_३$ क्लो —ऐक्लो$_३$→ का$_६$ हा$_५$ का हा$_३$ + हा क्लो

$$\left[C_6H_6 + CH_3Cl \xrightarrow{AlCl_3} C_6H_5.\ CH_3 + HCl \right]$$

का$_६$ हा$_६$ + क्लो का हा$_२$ क्लो + का$_६$ हा$_६$ —ऐक्लो$_३$→ का$_६$ हा$_५$. का हा$_२$. का$_६$ हा$_५$ + २ हाक्लो

$$\left[C_6H_6 + Cl\,CH_2Cl + C_6H_6 \xrightarrow{AlCl_3} C_6H_5\,CH_2.C_6H_5 + 2HCl \right]$$

३ का$_६$ हा$_६$ + का हा क्लो$_३$ —ऐक्लो$_३$→ (का$_६$ हा$_५$)$_३$ काहा + ३ हाक्लो

$$\left[3C_6H_6 + CHCl_3 \xrightarrow{AlCl_3} (C_6H_5)_3CH + 3\,HCl \right]$$

का$_६$ हा$_६$ + मू ओ हा → का$_६$ हा$_५$ मू + हा$_२$ओ

$$[\,C_6H_6 + R\,OH \longrightarrow C_6H_5R + H_2O\,]$$

का$_६$ हा$_६$ + का हा$_२$ का हा$_२$ → का$_६$ हा$_५$ का हा$_२$ का हा$_३$

$$[\,C_6H_6 + CH_2\ CH_2 \longrightarrow C_6H_5\ CH_2\ CH_3\,]$$

का$_६$ हा$_६$ + काहा$_२$—काहा$_२$ (काहा$_२$ वलय) → का$_६$ हा$_५$ · काहा$_२$ काहा$_२$ · काहा$_३$

$$C_6H_6 + \underbrace{CH_2{-}CH_2}_{CH_2} \longrightarrow C_6H_5\cdot CH_2\cdot CH_2\cdot CH_3$$

(ख) ऐल्कोहल के संश्लेषण मे

का$_६$ हा$_६$ + काहा$_२$—काहा$_२$ (ओ वलय) → का$_६$ हा$_५$ काहा$_२$ काहा$_२$ ओ हा

$$C_6H_6 + \underbrace{CH_2{-}CH_2}_{O} \longrightarrow C_6H_5\cdot CH_2\cdot CH_2\cdot OH$$

(ग) ऐल्डीहाइडो के संश्लेषण मे

का$_६$ हा$_६$ + काओ + हाक्लो —ऐ क्लो$_३$→ का$_६$ हा$_५$ काहाओ + हाक्लो

$$\left[C_6H_6 + CO + HCl \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6H_5.CHO + HCl \right]$$

(घ) कीटोनो के संश्लेषण मे

का$_६$ हा$_६$ + काहा$_३$ काओक्लो —ऐ क्लो$_३$→ का$_६$ हा$_५$. काओ काहा$_३$ + हाक्लो

$$\left[C_6H_6 + CH_3COCl \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6H_5.COCH_3 + HCl \right]$$

$$\text{का}_6\text{हा}_6 + \text{का}_6\text{हा}_5\text{काओक्लो} \xrightarrow{\text{ऐ क्लो}_3} \text{का}_6\text{हा}_5 . \text{का ओ} . \text{का}_6\text{हा}_5 + \text{हाक्लो}$$

$$\left[C_6H_6 + C_6H_5COCl \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6H_5 . CO . C_6H_5 + HCl \right]$$

$$२\ \text{का}_6\text{हा}_6 + \text{काओक्लो}_2 \xrightarrow{\text{ऐ क्लो}_3} \text{का}_6\text{हा}_5 . \text{का ओ} \ \text{का}_6\text{हा}_5 + २\ \text{हाक्लो}$$

$$\left[2\,C_6H_6 + COCl_2 \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6H_5COC_6H_5 + 2\,HCl \right]$$

(ङ) अम्लों के सश्लेषण मे

$$\text{का}_6\text{हा}_6 + \text{का ओ क्लो}_2 \xrightarrow{\text{ऐ क्लो}_3} \text{का}_6\text{हा}_5\text{का ओ क्लो} \xrightarrow{\text{हाओहा}} \text{का}_6\text{हा}_5 . \text{का ओ ओ हा}$$

$$\left[C_6H_6 + COCl_2 \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6H_5COCl \xrightarrow{HOH} C_6H_5COOH \right]$$

(च) चक्रीय यौगिकों के सश्लेषण मे

[रासायनिक संरचना चित्र: काहा₂, काहा₂, क्लोकाओ ——ऐक्लो₃——> ... काओ ——हा——> ...]

[रासायनिक संरचना चित्र: CH_2, CH_2, CH_2, ClCO ——$AlCl_3$——> ... CO ——H——> ...]

(छ) क्विनोनों (quinones) के संश्लेषण मे

[रासायनिक संरचना चित्र: क्विनोन संश्लेषण]

इस अभिक्रिया की विशेषताएँ :

(१) क्रियाफल उत्प्रेरक पर निर्भर है।

$$\text{का}_6\text{हा}_5\text{का हा}_3 + \text{का हा}_3\text{क्लो} \xrightarrow{\text{ऐक्लो}_3} \text{का}_6\text{हा}_4(\text{का हा}_3)_2$$
(मेटा)

$$\left[C_6H_5CH_3 + CH_3Cl \xrightarrow{Al\,Cl} C_6H_4(CH_3)_2 \right]$$
(meta)

$$\text{का}_6\text{हा}_5\text{का हा}_3 + \text{का हा}_3\text{क्लो} \xrightarrow{\text{ऐ क्लो}_3} \text{का}_6\text{हा}\left(\text{का हा}\right)_2$$
(पैरा)

$$\left[C_6H_5CH_3 + CH_3Cl \xrightarrow{Al\,Cl_3} C_6H_4(CH_3)_2 \right]$$
(Para)
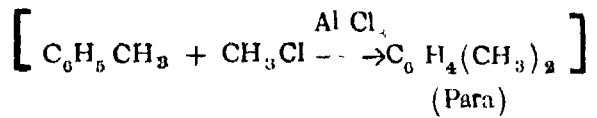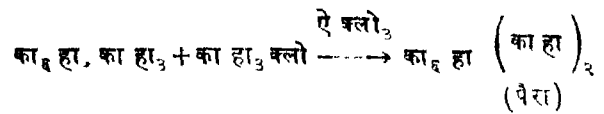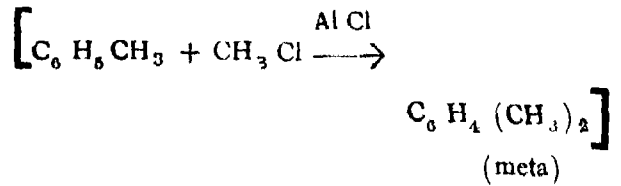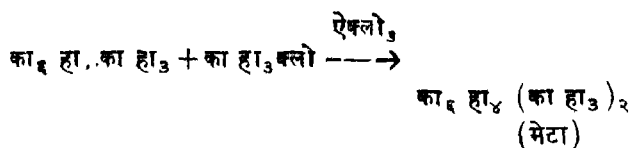
(२) ऐल्किल हैलाइड — इनकी क्रियाशीलता इस प्रकार है।

फ्लोराइड > क्लोराइड > ब्रोमाइड > आयोडाइड

साथ ही

तृतीयक हैलाइड > द्वितीयक हैलाइड > प्राथमिक हैलाइड

(३) विलायक — यदि अभिकारक द्रव रूप में है, तो विलायक की आवश्यकता नही पडती, परंतु ठोस रूप के यौगिकों (जैसे नैफ्थेलीन) के साथ प्रयोग करने के लिये विलायक की आवश्यकता होती है। नाइट्रोबेंजीन, कार्बन डाइसल्फाइड, पेट्रोलियम ईथर अच्छे विलायक है।

(४) ऐल्किल समूहों का समावयवीकरण — इस क्रिया के अन्तर्गत प्राथमिक ऐल्किल हैलाइड द्वितीयक मे तथा द्वितीयक तृतीयक मे परिवर्तित हो जाते है, अत चाहे प्रोपाइल क्लोराइड ले या आइसो-प्रोपाइल क्लोराइड, इन क्रियाओं के फलस्वरूप आइसोप्रोपाइल बेंजीन ही प्राप्त होगा।

$$\text{का}_6\text{हा}_6 + \text{का हा}_3\ \text{का हा}_2\ \text{काहा}_2\ \text{क्लो} \longrightarrow \text{का}_6\text{हा}_5 . \underset{\text{का हा}_3}{\text{का हा}} . \text{का हा}_3$$

$$[C_6H_6 + CH_3CH_2CH_2Cl \longrightarrow C_6H_5\ \underset{CH_3}{CH}.\ CH_3]$$

$$\text{का}_6\text{हा}_6 + \text{काहा}_3\ \underset{\text{क्लो}}{\text{का हा}}\ \text{काहा}_3 \rightarrow \text{का}_6\text{हा}_5\ \underset{\text{का हा}_3}{\text{का हा}}\ \text{का हा}_3$$

$$[C_6H_6 + CH_3\underset{Cl}{CH}CH_3 \rightarrow C_6H_5\underset{CH}{CH_3}CH_3]$$
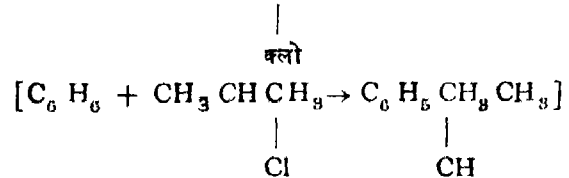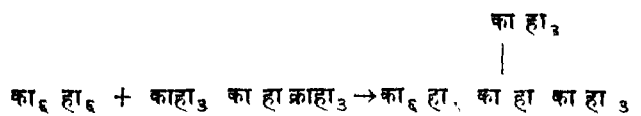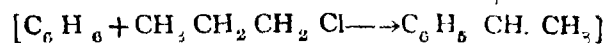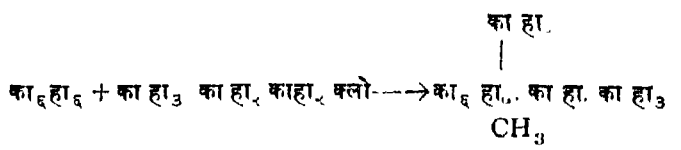
(५) बेंजीन चक्र मे ऑर्थो या पैरा अभिस्थापन करानेवाले समूहो की उपस्थिति मे अभिक्रिया अधिक अच्छे प्रकार से होती है तथा मेटा अभिस्थापन करानेवाले समूहो की उपस्थिति मे यह कम वेग से होती है, या बिलकुल ही अवरुद्ध हो जाती है।

अभिक्रिया का प्रक्रम—

(क) ऐल्किल हेलाइड से :

मू — क्लो . + ऐक्लो$_3$ → {मू — क्लो — ऐक्लो$_3$} →

मू$^+$ + ऐक्लो$_4^-$

$[R-\ddot{Cl}. + AlCl_3 \rightarrow [R-\ddot{Cl}-AlCl_3] \rightarrow R^+ + ACl_4^-]$

हा$^+$ + ऐक्लो$_4^-$ → हाक्लो + ऐक्लो$_3$

$[H^+ + AlCl_4^- \rightarrow HCl + AlCl_3]$

(ख) एल्कोहल से :

मू — औ हा + बो फ्लो$_3$ → {मू — औ — हा} →

मू$^+$ + {हा औ बो फ्लो$_3$}$^-$

$[R-\ddot{O}H + BF_3 \rightarrow [R-\ddot{O}-H] \rightarrow R^+ + [HOBF_3]^-]$

हा$^+$ + {हा औ बो फ्लो$_3$} → हा$_2$ औ + बो फ्लो$_3$

$[H^+ + [HOBF_3] \rightarrow H_2O + BF_3]$

(ग) ऐसिड क्लोराइड से :

मू — का औ क्लो + ऐक्लो$_3$ →

{मू — का औ — क्लो — ऐक्लो$_3$} → मू का औ$^+$ + ऐक्लो$_4^-$

$[R-CO\,Cl + Al\,Cl_3 \rightarrow [R-CO\,Cl-Al\,Cl_3] \rightarrow RCO^+ + AlCl_4^-]$
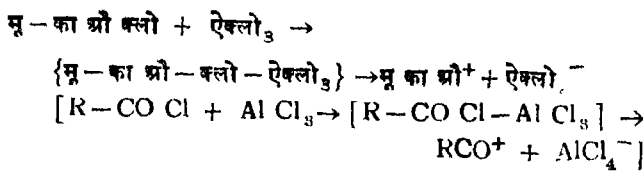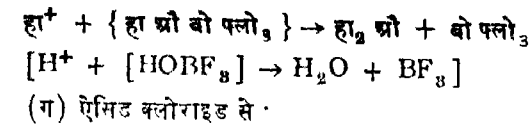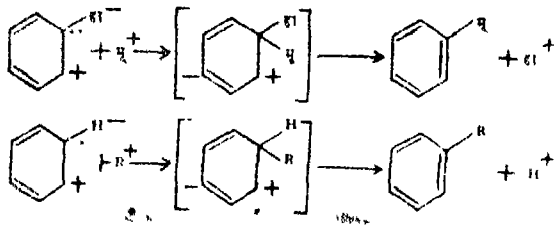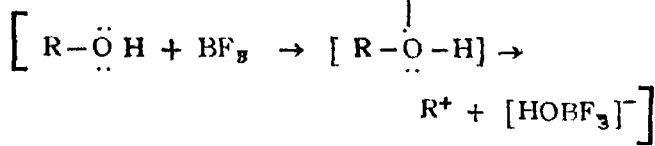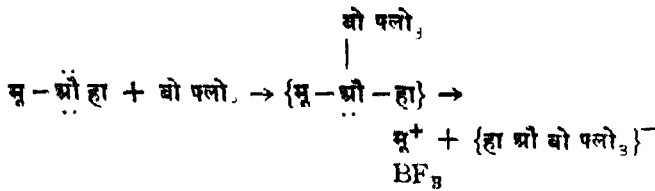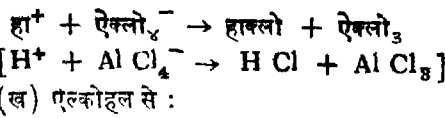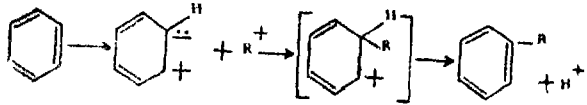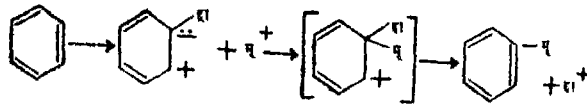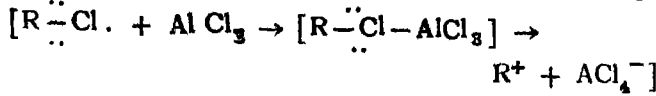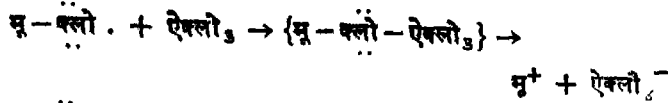
बाकी क्रम (क) के अनुसार होते हैं।

द्विक्षारक अम्लों के ऐनहाइड्राइडों द्वारा फ्रीडल क्रैफ्टस अभिक्रिया — यह क्रिया वसा अम्लों के Ar CO व्युत्पन्नो के संश्लेषण मे विशेष महत्व की है, जैसे
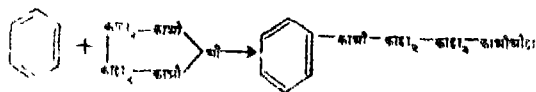
β-ऐरोइल प्रोपिऑनिक अम्ल
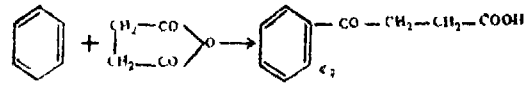
β — aroyl propionic acid.
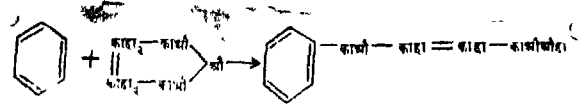
β-ऐरोइल ऐक्रिलिक अम्ल
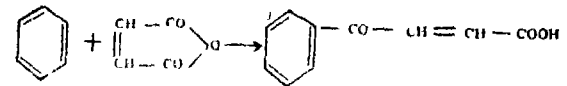
β — aroyl acrylic acid

इन अभिक्रियाओ मे ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बनो के अनेक व्युत्पन्न तथा द्विक्षारक अम्लो के भी व्युत्पन्न लिए जा सकते हैं, जिसके फलस्वरूप अनेक यौगिको का संश्लेषण हो सकता है।

[रा० दा० ति०]

फ्रीड्रिख क्रिश्चियन स्वार्ट्ज (डेनिश हेली जर्मन मिशन) का जन्म २३ नवबर, १७२६ को बर्लिन (जर्मनी) के निकट के ग्राम मे हुआ था। इनकी धार्मिक माता इन्हे बाल्यकाल मे ही अनाथ छोड़कर चली गई परन्तु वह चाहती थी कि फ्रेडेरिक को प्रभु के काम के लिये तैयार किया जाय।

फ्रीड्रिख ने आरभिक शिक्षा समाप्त करने के बाद हेली विश्वविद्यालय (जर्मन) मे प्रवेश किया जहाँ डेनमार्क के राजा, फ्रेडेरिक चतुर्थ की आर्थिक सहायता से विद्यार्थियो को मिशनरी ट्रेनिंग दी जाती थी। विश्वविद्यालय मे पढते समय उनको तमिल भाषा की बाइबिल देखने का अवसर मिला जो प्रेस मे छपने को आई थी। इसे देखकर उनके मन मे एक विशेष भावना जाग्रत हुई जिससे मिशनरी दर्शन प्राप्त हुआ और उन्होंने निश्चय किया कि वे अपना जीवन इसी रूप में लगा देंगे।

वे सन् १७५० में मिशनरी होकर भारत आए और लगातार ४० साल तक बिना स्वदेश लौटे सेवा करते रहे। वे धार्मिक प्रवृत्ति के थे और उत्साह भी काफी था परंतु उनका आचरण अत्यंत सराहनीय और आकर्षक था। भारत में आकर उन्होंने थोडे ही समय मे तमिल सीख ली और सफलतापूर्वक प्रचार करने लगे।

उन्होने भारतीय साहित्य एव धार्मिक ग्रंथो का अध्ययन किया एव हिंदू और मुस्लिम साहित्य तथा धार्मिक विचारो का यथोचित ज्ञान प्राप्त किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वे एक साधारण मिशनरी न रहे जिनका सपर्क केवल जनसाधारण से ही हो। फ्रीड्रिख मुसलमान शासक, राजाओ, उच्च शिक्षित ब्राह्मण तथा हर श्रेणी के अंग्रेजों के आदर और श्रद्धा के पात्र हो गए। वे पूरे दक्षिण भारत में घूम घूमकर हर जाति के लोगो मे प्रचार करते और आराधनालय तथा स्कूल खोलते थे।

उन दिनो मद्रास आदि स्थानो मे अंग्रेजो ने व्यापार आरंभ किया था और राज्य बढाने मे भी लगे थे। मद्रास उनका केंद्र था। दक्षिण मे मुसलमानों का अधिकार था जिससे अंग्रेजों की

कई बार ठन जाया करती थी। स्वार्टज़ का प्रभाव मुसलमान राजाओं पर बहुत गहरा था, अंग्रेजों ने उन्हें अपना राजदूत ठहराया जो कठिनाई के समय राजाओं से संधि और समझौता कराने में अगुवाई करते थे। एक बार हैदर अली ने बगावत कर दी और किसी शर्त पर संधि करने को तैयार न था। उसने कहा 'मैं अंग्रेजों पर भरोसा नहीं करता। फ्रीड्रिख स्वार्टज को मेरे पास लाओ। वह मुझे हर्गिज धोखा नहीं देगा।' इस प्रकार वह देशी राज्यों में विदेशी राजदूत और मैजिस्ट्रेट का सा काम करते थे।

१७६७ तक वे डेनिश हेली मिशन के मातहत काम करते रहे और वहीं से आर्थिक सहायता ग्रहण करते रहे। उसके बाद उनका मुख्य कार्यालय त्राकोबार के बदले त्रिचनापल्ली में हो गया जो अंग्रेजी सैनिक अड्डा था। कुछ काल के बाद वे तंजोर चले गए। तंजोर अंग्रेजों के अधिकार में था। अब उनकी आर्थिक सहायता एस० पी० सी० के० मिशन से आने लगी। दूसरे लोग भी उनकी सहायता किया करते थे जिससे उन्होंने त्रिचनापल्ली का गिर्जाघर बनवाया। उनका असली काम तंजोर में हुआ जहाँ अनाथालय आरंभ किया गया जो हेली मिशन का मुख्य आधार था।

तंजोर के राजा से उनका बहुत घनिष्ठ संबंध था और वे राजा के बड़े विश्वासपात्र थे। राजा की मृत्यु के बाद उनके नाबालिग पुत्र सर्फोजी के रक्षक की जिम्मेवारी इन्हीं को सौंपी गई और इन्होंने पिता की तरह उसका लालन पालन कर उत्तम से उत्तम शिक्षा देकर जीवन के लिये तैयार किया। सर्फोजी के काका संपत्ति और राजकाज की देखरेख के लिये उत्तरदायी ठहराए गए जो लालच में पड़कर राज्य को खुद ही हड़पने की कोशिश करने लगे। अतएव फ्रीड्रिख स्वार्टज़ निरीक्षक ठहराए गए ताकि काका साहब किसी प्रकार की चालाकी न कर सकें। तंजोर में उन्होंने अपने ही धन से जो गिर्जाघर बनवाया वह आज तक ऐंग्लिकन लोगों द्वारा काम में लाया जाता है। जो कुछ सहायता उन्हें प्राप्त होती उसका बहुत थोड़ा अंश वे अपनी सादी रहन सहन एवं खानपान में लगाते और बाकी सब गिर्जे बनाने, स्कूल चलाने तथा मिशन के दूसरे कामों में लगा देते थे, यहाँ तक कि उन्होंने अपनी निजी संपत्ति, जिसके वे वारिस थे, अपनी मृत्यु के बाद मिशन को दे दी।

तंजोर के बाद वे तिन्नेव्हेली गए जो दक्षिण भारत के दक्षिणी हिस्से में है। वहाँ उन्होंने प्रचार किया। कोबार मिशन ने इस क्षेत्र की देखरेख करने से इनकार कर दिया। इन्होंने स्वयं अपने खर्च से एक स्कूल खोला और एक प्रचारक रख दिया जो प्रचार करता और विश्वासियों की सहायता करता था।

७ अगस्त, १७९८ को ४८ साल की अथक सेवा के बाद स्वार्टज़ की मृत्यु हुई।

इसके बाद सन् १८०७ में ईस्ट इंडिया कंपनी ने मद्रास के किला-गिर्जाघर (सेंट मेरी के गिर्जाघर) में एक बहुमूल्य पत्थर पर स्मरण वाक्य लिखकर टाँग दिया :

'वे सबके प्रिय थे और सब उनके प्रिय थे। वे कभी किसी को तुच्छ नहीं समझते थे। यही कारण था कि वे जीवन में बड़े सफल रहे।' [मि० च०]

फ्रूंज़े १. प्रदेश, यह रूस में पश्चिम तथा उत्तर में जाबूल (Dzhambul), आल्माआटा (Alma Ata), पूर्व में इसिककुल (Issykkul), दक्षिण में टिएनशान (Tien-Shan) प्रदेशों से घिरा प्रदेश है। किरगीज़ नामक जाति यहाँ निवास करती है। रेशेदार पौधे, गेहूँ, कपास, चुकंदर तथा तंबाकू की कृषि होती है। पशुपालन के अंतर्गत भेड़ पालने का कार्य काफी विकसित है।

२. नगर, स्थिति : ४२° ५५' उ० अ० तथा ७२° ४७' पू० दे०। यह रूस के किरगीज़िया राज्य की राजधानी है, जो ताशकंद के ३०० मील पूर्व-उत्तर-पूर्व तथा इसिककुल झील के ८८ मील उत्तर-पूर्व, सागरतल से २,०१७ फुट की ऊँचाई पर, ऊपरी चू नदी की एक सहायक नदी के किनारे स्थित है। यहाँ सूती वस्त्र, आटा, चुकंदर, तंबाकू, रेशम, ऊन, खाल तथा मांस से संबंधित उद्योग हैं। नगर का शिलान्यास सन् १८७३ में एक रूसी दुर्ग के साथ हुआ था तथा इनका नाम पिशपेक रखा गया था। बाद में बोलशेविक जनरल एम० पी० फ्रूंज़े के नाम पर इसका नाम फ्रूंज़े रखा गया। सन् १९५१ में एक विश्वविद्यालय तथा सन् १९५४ में किरगिज़िया विज्ञान अकादमी की स्थापना की गई थी। यहाँ की जनसंख्या ३,२६,००० (१९६३) है। [ले० रा० सिं०]

फ्रेंच गिआना स्थिति : ४° ०' उ० अ० तथा ५३° ०' प० दे०। यह दक्षिणी अमरीका के उत्तर-पूर्वी समुद्री तट पर स्थित फ्रांस के अधिकार में एक समुद्रपारीय क्षेत्र है। इसके पश्चिम में डच गिआना तथा पूर्व एवं दक्षिण में ब्राज़िल है। इसका क्षेत्रफल २३,००० वर्ग मील तथा जनसंख्या ३५,००० (१९६३) है। इसकी राजधानी काइएन (Cayenne जनसंख्या, १८,५००) है। कृषि में धान, मक्का, मेनिओक, कोकोआ, केला, गन्ना तथा अनन्नास की पैदावार अधिक होती है। सोना खोदना तथा मत्स्य उद्योग प्रमुख उद्योग हैं। जंगलों से लकड़ी प्राप्त होती है। यहाँ की ८० प्रति शत जनता रोमन कैथोलिक धर्म को मानती है (देखें, गिआना)। [रा० प्र० सिं०]

फ्रेंच गिनी स्थिति : १०° २०' उ० अ० तथा १२° ०' प० दे०। पहले यह अफ्रीका महाद्वीप के पश्चिमी तट पर, फ्रांस के अधिकार में फ्रेंच कॉलोनी के रूप में था। २ अक्टूबर, १९५८ को यह स्वतंत्र घोषित कर दिया गया तथा अब इसका नया नाम केवल 'गिनी' रह गया है (देखें, गिनी)।

फ्रेंच वेस्ट इंडीज़ कैरिबीऐन सागर में स्थित, फ्रांस द्वारा शासित ग्वादलूप (Guadeloupe), मार्टनीक (Martinique), तथा लैसर ऐंटिल्ज़ द्वीपसमूह को कहते हैं। इसके अंतर्गत दो बड़े बड़े द्वीप ही प्रमुख हैं।

१. **ग्वादलूप** — इसका क्षेत्रफल १,५०९ वर्ग किमी० तथा आश्रित प्रदेशों (dependencies) सहित जनसंख्या २,८३,२२३ (१९६१) है। इसमें भी दो द्वीप शामिल हैं, जो एक दूसरे से एक चैनल द्वारा विभक्त हैं। पश्चिमी द्वीप को मुख्य ग्वादलूप कहते हैं इसका प्रमुख नगर बास टेयर (Basse Terre) है। पूर्वी द्वीप को ग्राडटेयर कहते हैं तथा इसका प्रमुख नगर प्वैंटा पीटर है। इनके अतिरिक्त इस द्वीप में पाँच अन्य अधीन राज्य भी शामिल हैं। यहाँ के निवासी पिछड़े हुए हैं तथा यहाँ के प्रमुख उत्पाद केला, शक्कर, रम (शराब),

कॉफी, तथा ककोआ हैं। हवाई यातायात द्वारा यह फ्रांस आदि देशों से जुड़ा है।

२. मार्टनीक — इसका क्षेत्रफल १,१०० वर्ग किमी० तथा जनसंख्या ३,१०,००० (१९६४) है। यह ३४ कम्यूनों में विभक्त है। फॉर द फ्रास यहाँ की राजधानी है, जो प्रमुख व्यापारिक केंद्र भी है। इस नगर की जनसंख्या ६०,६४८ (१९६०) है। यहाँ केला, गन्ना, ककोआ, अनन्नास तथा कॉफी उगाई जाती है। पशुओं मे भेड़, बकरी, सूअर, घोड़े, खच्चर प्रमुख हैं। यहाँ शक्कर तथा रम बनाने एवं अनन्नास से संबंधित उद्योग हैं। जलयातायात तथा वायुयातायात से अन्य देशो से जुड़ा है।

फ्रेंच वेस्टइंडीज मे नवबर से जून तक शुष्क एवं जुलाई से अक्टूबर तक नम मौसम रहता है। नवंबर से मार्च तक व्यापारिक हवाएँ चलती हैं। मार्टनीक की औसत वार्षिक वर्षा २२०·६८ सेंमी० तथा ग्वादलूप की २१८·४४ सेंमी० है। मार्टनीक का औसत वार्षिक ताप २५° से० रहता है। [रा० प्र० सिं०]

फ्रेंच सूडान देखे माली गणतंत्र।

फ्रेंच सोमालीलैंड स्थिति : ११° ३०′ उ० अ० तथा ४२° १५′ पू० दे०। यह फ्रास के अधिकार मे, लाल सागर के प्रवेशद्वार के पास लाल सागर के पश्चिम मे, इथिओपिया एवं सोमालिया के बीच स्थित समुद्रपारीय क्षेत्र (overseas territory) है, जिसका क्षेत्रफल २३,००० वर्ग किमी० एवं जनसंख्या ८२,००० (१९६४) है। जिबूटी (Djibouti, जनसंख्या ४३,०००) यहा की राजधानी तथा बंदरगाह है। उपजाऊ जमीन होते हुए भी पानी की कमी के कारण यहाँ कृषि मे विशेष उन्नति नही हो पाई है। कुछ सब्जियाँ एवं खजूर ही यहाँ की प्रमुख फसलें है। भेड, बकरी, ऊँट एव गधे प्रमुख पशु है। जलयान निर्माण तथा नमक बनाना इस क्षेत्र के प्रमुख उद्योग है। यहा के अधिकाश लोग मुसलमान हैं। [रा० प्र० सिं०]

फ्रेडरिक प्रथम (११२३-११९०) रोमन सम्राट्, सुआबिया के ड्यूक फ्रेडरिक का पुत्र था। ११५२ मे अपने चाचा कॉनरैड तृतीय के उत्तराधिकारी के रूप मे गद्दी पर बैठा। राज्य की स्वतत्रता और फलतोगत्वा संपूर्ण इटली पर प्रभुत्व स्थापित करना उसकी महत्वाकाक्षाएँ थी। ११५४ में उसने इटली पर पहला आक्रमण किया। ११५५ मे रोम मे पोप आद्रियाँ द्वारा सम्राट् के रूप मे अपना अभिषेक करा लिया। ११५८ के दूसरे आक्रमण मे उसने ब्रेसिया और मिला पर अधिकार कर लिया। जर्मनी लौटकर उसने बोहेमिया हथिया लिया और पोलैंड से कर वसूल करने लगा। पोप आद्रियाँ की मृत्यु के पश्चात् उसने अलेक्जेंडर तृतीय के विरुद्ध क्रमश: तीन पोपो को अनधिकारिक रूप मे निर्वाचित कराया। इसपर अलेक्जेंडर तृतीय ने उसे और उसके पोप विक्टर को धर्मच्युत कर दिया। ११६२ मे मिलाँ को उजाड दिया; इसके बाद तो लबार्डी के सभी नगरो ने उसके सामने हथियार डाल दिए। ११७६ मे कोमो में मिलाँ की सेनाओ से बुरी तरह पराजित हुआ। ११८३ मे उसने पोप और लबार्डी के नगरो से सधियाँ कीं। ग्रीस की ओर उसके बढ़ते हुए कदम रोक दिए गए। फिर वह एशिया माइनर की ओर मुड़ा। इसी अभियान मे नदी मे डूबने से उसकी मृत्यु हो गई।

फ्रेडरिक द्वितीय (११९४-१२५०) : रोमन सम्राट्। फ्रेडरिक ने १२२० मे रोम का शाही ताज धारण किया। १२२५ मे उसने येरुसेलम के राजा की कन्या से विवाह किया। १२२८ में मिस्र के सुलतान से संधि करके येरुसेलम पर अधिकार कर लिया। यूरोप लौटकर उसने पोप से सधि कर ली और अपने पुत्र हेनरी के विद्रोह का दमन किया। १२३५ मे फ्रेडरिक ने लंबार्डी के नगरो से युद्ध छेड दिया और अनेक नगर जीत लिए। उसने पोप इनोसेंट चतुर्थ से सधि की, किंतु इनोसेंट ने एक प्रतिद्वंदी धर्मसम्मत सम्राट् की घोषणा कर दी। इटली मे युद्ध जारी रहा जिसमे फ्रेडरिक को पराजित होना पडा। फ्रेडरिक मध्ययुग का एक बुद्धिमान और कुशल शासक था लेकिन उसके इटली प्रेम और समूचे इटली को महान् साम्राज्य के रूप मे देखने के आग्रह से जर्मन जनता को अनेक युद्धो का कष्ट झेलना पड़ा।

फ्रेडरिक विलियम (१६२०–१६८८) ब्रैडेनबर्ग का महान् इलेक्टर (Elector)। १६४० मे गद्दी पर बैठा। पोलैंड और स्वीडन के युद्ध मे उसने बारी बारी से दोनो का समर्थन किया और प्रशा को पोलैंड की अधीनता से मुक्त करा लिया। इस प्रकार उसने ब्रैडेनबर्ग प्रशा को जर्मनी का द्वितीय राज्य बना दिया। कुछ दिनो बाद उसे प्रशा के उन सामतो का दमन करना पड़ा जो प्रशा को पुनः पोलैंड मे मिलाने का षड्यत्र कर रहे थे। फिर भी उसने उनका महत्व और प्राधान्य रहने दिया।

फ्रास के शासक १४वें लुई से शकित होकर १६७२ मे उसने डच प्रजातंत्र से सधि कर ली। अगले वर्ष फ्रास के साथ उसकी सधि हो गई जिससे फ्रास ने वेस्टफेलिया खाली कर देना स्वीकार किया और फ्रेडरिक ने फ्रास के विरोधियो की सहायता न करने का वचन दिया। सन् १६८५ मे उसने हालैंड से पुन मेल मिलाप बढ़ाना शुरू किया और फ्रास से भागे हुए १४ हजार प्रोटेस्टैंटो को अपने यहा शरण दी। उसके बाद दोनो मे फिर तनाव शुरू हो गया जिसमे फ्रेडरिक ने आस्ट्रिया से मित्रता बढा ली। उसने कृषि की उन्नति करने, नहर बनवाने तथा शिक्षा के प्रसार का विशेष प्रयत्न किया।

फ्रेडरिक विलियम प्रथम (१६८८-१७४०) प्रशा का सम्राट् जो १७१३ में राज्यारूढ हुआ। सात वर्ष तक वह लगातार पोमेरैनिया के मामले पर स्वीडन से युद्ध मे उलझा रहा। १७२० मे स्टाकहाम सधि के अनुसार पोमरैनिया का बडा भाग फ्रेडरिक को प्राप्त हो गया। युद्ध के पश्चात् उसने राज्य के आतरिक सुधारो की ओर ध्यान दिया; आर्थिक प्रशासन को सुदृढ करने के लिये उसकी सामयिक योजनाओ ने राज्य को बहुत लाभ पहुचाया। वह परिष्कृत सैनिक रुचियो का व्यक्ति था। उसने सेना मे अनुशासन बढाने की ओर विशेष ध्यान दिया। उसकी मृत्यु के समय प्रशा के राजकोष मे प्रचुर धनराशि थी और सेना मे ८३,००० सैनिक थे।

फ्रेडरिक द्वितीय महान् (जन्म, १७१२, मृत्यु, १७८६ ई०) प्रशा का राजा। फ्रेडरिक विलियम प्रथम का पुत्र था। प्रारभ मे उसके पिता ने उसे केवल सैन्य शिक्षा दिलाने का प्रबध किया, किंतु वह अपने शिक्षकों के प्रभाव से 'सगीत और काव्य मे रुचि लेता था। वस्तुत: उसे जर्मन साहित्य से प्रेम नहीं था, अपितु

वह फासीसी जीवनदर्शन और साहित्य से अधिक रस ग्रहण करता था। स्वभावभिन्नता के कारण फ्रेडरिक विलियम अपने पुत्र फ्रेडरिक पर बहुत रुष्ट रहता था और अनेक प्रकार की यातनाएँ देता था। एक बार वह इंग्लैंड भाग जाने के प्रयत्न मे पकड़ा गया और कारागार मे डाल दिया गया। भागने मे साथ देनेवाले उसके एक मित्र को उसके पिता ने मृत्युदंड दिया। १७४० मे वह गद्दी पर बैठा। रोमन सम्राट् चार्ल्स षष्ठ की मृत्यु (१७४०) के पश्चात् फ्रेडरिक ने साइलेसिया पर १७४१ मे आक्रमण कर मॉलविट्ज, शोतूसित्ज, ब्रेसलाउ, तथा अपर और लोअर साइलेसिया पर अधिकार कर लिया। १७४४ मे उसने बोहेमिया पर आक्रमण कर प्राग पर अधिकार कर लिया। १७४५ मे ड्रेसडेन के शांति समझौते पर हस्ताक्षर किए, और इस प्रकार वह सारी साइलेसियाई भूमि का मालिक बन बैठा।

फ्रेडरिक ने समाजसुधार, कृषि और उद्योगो की उन्नति की ओर बहुत ध्यान दिया। विज्ञान अकादमी की पुनःस्थापना और समृद्धि के लिये उसने विशेष यत्न किए। सैन्य शक्ति बढा ली और सेना को अच्छे उपकरणो से सज्जित किया। इस काल मे उसने लेखनकार्य भी जारी रखा—जिनमे मेमॉयर्स ऑव द हाउस ऑव ब्रैंडेनबर्ग' उल्लेखनीय है। वाल्तेयर से उसकी गाढ़ी मित्रता थी, किंतु बाद मे दोनो मे अनबन हो गई। सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६–१७६३) में उसने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की। ह्यूबर्टस्वर्ग की संधि (१७६३) के अनुसार उसकी शक्ति मे वृद्धि हुई। १७६४ मे उसने रूस से संधि की। पोलैंड के विभाजन (१७७१) मे फ्रेडरिक ने पोलैंड का एक बड़ा भाग हथिया लिया। बवेरिया के इलेक्टर मैक्सिमिलियन जोसेफ तृतीय की मृत्यु (१७७७) के पश्चात् जब बवेरिया मे उत्तराधिकार का संघर्ष छिड़ा, उसी समय १७७८ मे फ्रेडरिक ने बोहेमिया पर पुनः आक्रमण कर दिया और तेशेन (Teschen) की संधि (१७७९) के अनुसार फ्रांकोनिया के कई इलाके ले लिए। १७८५ मे उसने सासोनी और हनोवर के साथ आस्ट्रिया के विरुद्ध जर्मन राज्यो का एक महासंघ निर्मित किया। १७ अगस्त, १७८६ को पोट्सदाम मे उसकी मृत्यु हुई।

फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) १ नगर, स्थिति ५०° ८' उ० अ० तथा ८° ३०' पू० दे०। यह पश्चिमी जर्मनी के हेसी नैसॉ (Hesse Nassau) प्रांत मे, माइन तथा राइन नदियो के संगमस्थल से २५ मील ऊपर, माइन नदी के उत्तरी किनारे पर, कालोन से १०० मील दक्षिण-पूर्व तथा स्टटगार्ट से ९० मील उत्तर, उपजाऊ, समतल तथा चौडी घाटी मे स्थित, जर्मनी का व्यापारिक तथा औद्योगिक नगर है। यह गेटे नामक प्रसिद्ध कवि का जन्मस्थान है। उद्योगो मे भारी एवं हलके यंत्र, वस्त्र निर्माण, विद्युत् यंत्र, रसायनक एवं दवाओ का निर्माण उल्लेखनीय है। इस प्राचीन नगर मे गॉथिक शैली के भवनो मे रोमर नामक नगरभवन, बार्थोलोम्यू कैथेड्रल, सेंट पाल गिरजाघर, गेटे भवन, संग्रहालय, पुस्तकालय तथा आधुनिक भवनो मे फ्रैंकफर्ट हाफ होटल, प्रदर्शन मैदान, थोक बाजार हाल एवं ए० ई० जी० (A E G) बिजली कंपनी का कार्यालय उल्लेखनीय है। द्वितीय विश्वयुद्ध काल मे नगर का अधिकाश ध्वस्त हो गया था। आधुनिक ढंग पर नए नगर का पुनर्निर्माण किया गया है। यहाँ चिकित्सालय, वानस्पतिक संस्थान, कलासंस्थान, रसायन एवं शरीर-रचना-विज्ञान की प्रयोगशालाएँ, चित्र गैलरी एवं कई संग्रहालय तथा महाविद्यालय भी हैं। पामेनगार्डेन मे संसार के सभी भागो से लाकर फूल लगाए गए है। यहाँ का हवाई अड्डा संसार की वायुसेवाओ का बहुत ही महत्वपूर्ण केंद्र है। फ्रैंकफर्ट की जनसंख्या ६,८८,४८२ (१९६१) है।

२. नगर, स्थिति ५२° २१' उ० अ० तथा १४° ३३' पू० दे०। पूर्वी जर्मनी मे भी इस नाम का नगर है, जो ओडर नदी के बाएँ किनारे पर बर्लिन के ५० मील पूर्व-दक्षिण-पूर्व स्थित है। यहाँ रेलगाड़ी, चीनी, यंत्र, वस्त्र, जूता, साबुन, सिगार, साजसज्जा, रसायनक, कागज और धातु की चीजो का निर्माण होता है। साल मे तीन अंतरराष्ट्रीय महत्व के मेले लगते है जिनसे अनाज, पशु और शराब के व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिलता है। राथोस गिरजाघर एवं विश्वविद्यालय प्रसिद्ध हैं। इसकी जनसंख्या ६,६१,०६२ (१९६२) है। [रा० प्र० सि०]

फ्रैंकलिन, बेंजैमिन (Franklin, Benjamin, १७०६ ई०–१७९० ई०) अमरीकी वैज्ञानिक एवं राजनीतिज्ञ थे। इनका जन्म १७ जनवरी, १७०६ को बोस्टन मे हुआ। शिक्षा दीक्षा भी बोस्टन मे हुई। फ्रैंकलिन ने मुद्रण उद्योग से कार्य आरंभ किया एवं धीरे धीरे प्रकाशक बन गए। सन् १७४६ मे विद्युद्विज्ञान के प्रति रुचि जागृत हुई। मेघगर्जन एवं तड़ित् विद्युत् पर अनेक प्रयोग किए। मेघगर्जन के समय पतंग उडाने के इनके प्रयोग प्रसिद्ध है। पतंग के प्रयोगों पर इनके पडोसी इनका मजाक उड़ाया करते थे। इनकी पतंग पर एक नुकीला तार निकला रहता था। पतंग की डोर रेशम की थी। दूसरी ओर पृथ्वी पर एक ताली लटकी रहती थी। ताली की सहायता से इन्होने लीडन जार को आवेशित किया। इस प्रकार इन्होने तड़ित् विद्युत् की जानकारी प्राप्त की एवं तड़ित चालक का आविष्कार किया। तड़ित् चालक के प्रयोग से अनेक इमारतें तड़ित् विद्युत् प्रभाव से धराशायी होने से बच गई। [अ० प्र० स०]

फ्रैंकलिन, सर जॉन (सन् १७८६-१८४७), उत्तर ध्रुवीय प्रदेश के ब्रिटिश, अन्वेषक, का जन्म इंग्लैंड के लिंकनशिर काउंटी के स्पिल्स्बी नामक ग्राम मे हुआ था। इनकी शिक्षा सेंट आइव्ज तथा लाउथ के ग्रामर स्कूलो मे हुई थी।

इन्होने मिडशिपमैन के पद से नौसैनिक जीवन आरंभ किया। सन् १८०१ मे हुए कोपेनहेगेन के युद्ध मे ये उपस्थित थे। इसके पश्चात् ऑस्ट्रेलिया के सागरतट के सर्वेक्षण मे इन्होने सहायता दी। सन् १८१८ मे एच० एम० एस० ट्रेंट नामक पोत के कमांडर के पद पर नियुक्त होकर, इन्होने उत्तरी अमरीका के उत्तर मे कॉपरमाइन नदी से लेकर तर्नागेन अंतरीप तक, तथा सन् १८२५ मे इसी नदी से मैकेंजी नदी तक के सागरतट का अन्वेषण किया। सन् १८४५ मे ये रियर ऐडमिरल के पद पर नियुक्त हुए तथा एरेबस और टेरर नामक पोतो को लेकर बेरिंग जलसंयोजी की दिशा मे अन्वेषण के लिये गए, जहाँ इनके दल का विनाश हो गया। सन् १८५९ मे खोज के लिये भेजे हुए एक दल ने पाया कि उत्तर पश्चिमी मार्ग का पता

लगाने में तो यह अभियान सफल हुआ था, किंतु सर फ्रैंकलिन की सन् १८४७ में वहीं मृत्यु हो गई।

इन्होंने अन्वेषण से संबंधित अपनी यात्राओं के वर्णन की दो पुस्तकें भी लिखी थीं। [भ० दा० व०]

फ्लॉक्स (Phlox) पॉलिमोनियेसी (Polemoniaceae) कुल का एक छोटा सा पौधा है, जिसकी करीब ६० जातियाँ हैं। नीले, गुलाबी, लाल और सफेद रंग के सुंदर फूल के कारण यह वाटिकाओं में लगाया जाता है। फूल दीपिकाकार होते हैं और गुच्छों मे निकलते हैं। इसके उगने के लिये अच्छी प्रकार की मिट्टी एव ठंढे आर्द्र स्थान की आवश्यकता होती है। वाटिकाओं मे बहुधा फ्लॉक्स ड्रमांडाइ (phlox drummondii) लगाया जाता है। शैल उद्यान तथा क्यारियो के किनारे छोटी जातिवाले फ्लॉक्स सुबुलेटा (Phlox subulata), जिसे 'मॉस पिंक' (Moss pink), अथवा ग्राउंड फ्लॉक्स (Ground phlox) कहते है, लगाया जाता है। इस पौधे की अधिकाश जातियाँ एकवर्षी होती हैं, पर फ्लॉक्स पैनीकुलेटा (Phlox paniculata) वर्षानुवर्षी फ्लॉक्स है, जो चार फुट तक ऊँचा होता है। इसमे सफेद अथवा गुलाबी रग के सुंदर फूल लगते हैं। [रा० श्या० म०]

फ्लॉरिडा स्थिति : २४° ३०' से ३१° ०' उ० अ० तथा ७६° ४८' से ८७° ३८' प० दे०। सयुक्त राज्य, अमरीका का एक प्रात है। इसके उत्तर में जॉर्जिया, ऐलबैमा (Alabama), पूर्व मे ऐटलैंटिक महासागर तथा पश्चिम मे मेक्सिको की खाडी स्थित है। इसका क्षेत्रफल ५८,५६० वर्ग मील तथा जनसख्या ४६,५१,५६० (१६६०) है। मियामी यहाँ का सबसे बडा नगर (जनसख्या २,६१,६८८) है। अंगूर, सतरे, तंबाकू, गन्ना तथा मक्का अधिक उत्पन्न की जाती है। मछली उद्योग मे इसका विशेष स्थान है। यहाँ से प्राप्त होनेवाले खनिजो में फ़ॉस्फ़ेट प्रमुख है तथा चूना पत्थर, पेट्रोल, कियोलिन आदि खनिज भी मिलते हैं। उद्योगों मे धातुकर्म, लकडी से संबधित उद्योग, रसायनक, लुगदी, भोजननिर्माण सबधी उद्योग, काफी उन्नति कर गए हैं। शिक्षा के लिय यहाँ पर चार विश्वविद्यालय हैं। इस प्रात को १५१३ ई० मे पोंस द लिआँन नामक स्पेन निवासी ने खोजा था। इसकी राजधानी टैलाहैसी (Tallahassee) है। यह ६७ काउटियो मे विभक्त है। सुवॉनी (Suwannee) यहाँ की प्रमुख नदी है। राज्य की सबसे बड़ी झील ओकी चोबी है, जो ४० मील लबी एव ३० मील चौडी है। यहाँ का जलवायु समशीतोष्ण है तथा महत्तम औसत ताप २७° से० एव औसत वार्षिक वर्षा ५२·८ इच रहती है। यहाँ अनेक नगर एवं दर्शनीय स्थल है।

फ्लीट स्ट्रीट पत्रकारो का मक्का और स्ट्रीट ऑव् इंक (स्याही की स्ट्रीट) के नाम से प्रसिद्ध फ़्लीट स्ट्रीट लदन के पत्रकारो का गढ़ है। वस्तुतः यह केवल लंदन ही नहीं वरन् विश्व के वृहत्तम समाचारपत्रों का केंद्रस्थान है। ब्रिटेन के प्रायः सभी समाचारपत्रो के कार्यालय इसी स्ट्रीट में या इसी के आसपास की स्ट्रीटो मे करीब आधे वर्गमील के घेरे मे बसे हुए हैं। इसके साथ ही साथ विदेशों के अधिकाश समाचारपत्रों के स्थानीय कार्यालय भी इसी स्ट्रीट मे हैं,

ब्रिटिश पत्रकारिता की आत्मा फ़्लीट स्ट्रीट मे बसती है और प्रेस की स्याही फ्लीट स्ट्रीट का खून है। यदि प्रेस की स्याही मिलना बंद हो जाए तो फ्लीट स्ट्रीट का सारा कारबार ठप हो जाए। शायद यही कारण है कि इस स्ट्रीट को 'स्याही की स्ट्रीट' कहा जाता है।

फ्लीट स्ट्रीट का यह नाम आधुनिक काल की देन नही। यह स्ट्रीट १५वी शताब्दी से ही स्याही की स्ट्रीट के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्ट्रीट का वास्तविक इतिहास भी १५वी सदी से प्रारंभ होता है।

१५वी सदी के मध्य मे जर्मनी मे गुटनबर्ग ने आधुनिक मुद्रणकला का आविष्कार किया था। उसके बाद धीरे धीरे यूरोप के अन्य देशो मे भी इस कला का प्रसार हुआ।

इग्लैड मे छापाखाने का जन्म केक्सटन से हुआ। उसने अपना प्रेस फ्लीट स्ट्रीट के पास वेस्टमिस्टर मे खोला था। इसके कुछ ही समय बाद केक्सटन के एक सहयोगी विकिन डि वार्डे ने यहीं पर प्रेस के काम मे आनेवाले सामानो की दूकान खोली थी। यहीं से उसने सर्वप्रथम पुस्तकों के सस्ते सस्करण, पहेलियो की पुस्तके, राजा रानी तथा परियो की कहानियाँ, स्कूलो की पाठ्य पुस्तके और इसी प्रकार की अन्य पुस्तको का प्रकाशन आरंभ किया था। विकिन डि वार्डे की सफलता से प्रभावित होकर धीरे धीरे अन्य लोगों ने भी अन्य स्थानो मे जमा हुआ अपना कारबार हटाकर फ्लीट स्ट्रीट मे जमाया और देखते ही देखते यहाँ कई प्रेस खुल गए।

१७वी सदी मे लदन मे जो भयकर आग लगी थी, उसके पहले फ्लीट स्ट्रीट मे पुस्तकविक्रेताओ तथा प्रकाशको की सख्या अधिक नही थी। उस समय अधिकाश प्रकाशक तथा पुस्तकविक्रेता सेंट पाल गिरजाघर के आसपास बसे हुए थे। आग के परिणामस्वरूप उन्हे वहाँ से हटना पडा और वे भागकर सबसे निकट के स्थान फ्लीट स्ट्रीट मे ही आ बसे। १६४०-४१ मे भी जब लदन मे आग लगी तब बहुत से प्रकाशक एवं मुद्रक अन्य स्थानो से भागकर फ्लीट स्ट्रीट मे ही आए थे। इस प्रकार फ्लीट स्ट्रीट प्रकाशको एवं मुद्रको का गढ बन गया और इसका पहले से ही प्रसिद्ध नाम 'स्याही की स्ट्रीट' और भी अधिक सार्थक हो गया। आजकल प्रेस की जितनी अधिक स्याही का उपयोग फ्लीट स्ट्रीट मे प्रतिदिन होता है, उतनी स्याही ससार के किसी भी देश मे किसी एक स्थान पर प्रयुक्त नही की जाती।

इस स्ट्रीट का नाम फ्लीट नदी के नाम पर पडा। यह नदी आज कल भी है पर दो तीन सदी पूर्व की तुलना मे उसका अब नाम मात्र ही शेष रह गया है।

अपने प्रारंभिक काल मे फ्लीट स्ट्रीट एक छोटी सी गली थी जिसका कोई नाम भी नही जानता था। १३वी सदी के पहले का तो इसका कोई इतिहास भी प्राप्य नही है। वेस्टमिंस्टर का गिरजाघर फ्लीट स्ट्रीट से अधिक दूर नही है। सभवत इसी कारण १३वी सदी के बाद से पादरियो तथा चर्च के अन्य अधिकारियों ने इसके आसपास बसना शुरू किया। उस समय इस स्थान पर पादरियो तथा अन्य लोगो के जो महल थे वे तत्कालीन सरायों तथा धर्मशालाओं का काम देते थे। पादरियो का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वे यात्रियों को अपने घरो मे जगह दे तथा उनका यथायोग्य आदर सत्कार करें।

इसका परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही यह स्थान लुच्चे लफंगों और बदमाशों के अड्डों के लिये प्रसिद्ध हो गया। इसका एक कारण यह भी था कि उस समय के एक कानून के अनुसार पादरियों के घरों मे ठहरे किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार नही किया जा सकता था। अतः अपराधी लोग जान बूझकर पादरियों के घरो में ही ठहरते थे। जब तक पादरियों के इन मठों का अस्तित्व समाप्त नही हो गया तब तक उक्त कानून मे भी परिवर्तन नही हुआ। जिस स्थान पर उस समय पादरियो के निवासस्थान थे वहाँ आजकल 'डेली मेल', 'ईवनिंग न्यूज' तथा अन्य समाचारपत्रो के कार्यालय हैं।

'फ्लीट स्ट्रीट'—इन दो शब्दों के अंतर्गत आसपास की छोटी छोटी स्ट्रीटें भी शामिल हो जाती हैं जो सब मिलकर करीब आधा वर्गमील का क्षेत्र बनाती हैं। फ्लीट स्ट्रीट के ही एक भाग टयूटर स्ट्रीट से 'डेली मेल' तथा 'आब्जर्वर' का प्रकाशन होता है। बोवेरी स्ट्रीट अत्यत ही सँकरी छोटी सी गली है जहाँ दो कारें भी आसानी से आ जा नही सकती, पर इसी स्ट्रीट से ससार मे सर्वाधिक सर्क्युलेशन-वाले रविवासरीय समाचारपत्र 'न्यूज ऑव दी वर्ल्ड' का प्रकाशन होता है। आजकल इस पत्र का औसत सर्क्युलेशन करीब ६५ लाख है।

फ्लीट स्ट्रीट स्थित एक एक पत्र के कार्यालय में करोडो रुपए की पूँजी लगी हुई है। यद्यपि स्थान की कमी के कारण कुछ समाचार-पत्रो के कार्यालय फ्लीट स्ट्रीट मे नही हैं, तथापि अधिकाश के कार्यालय फ्लीट स्ट्रीट या इसके आसपास ही है। इसी का यह परिणाम है कि विदेशी समाचारपत्रो के स्थानीय प्रतिनिधियो को किसी भी विषय पर ब्रिटेन के समाचारपत्रो की राय शीघ्र ही मालूम हो जाती है। और आज शाम का कोई समाचार कल सुबह तक ससार के प्रायः सभी देशो के समाचार पत्रो मे ब्रिटेन के समाचारपत्रो की टिप्पणी के साथ प्रकाशित हो जाता है।

फ्लीट स्ट्रीट से केवल समाचारपत्र ही प्रकाशित नही होते। लदन से प्रकाशित होनेवाली सेकडो साप्ताहिक एव मासिक पत्रिकाओ का प्रकाशन एव मुद्रण स्थान भी फ्लीट स्ट्रीट ही है। विश्वप्रसिद्ध हास्य साप्ताहिक 'पंच' का कार्यालय भी यही है। लदन से प्रकाशित होनेवाली प्रायः सभी महिलोपयोगी पत्रिकाओ के कार्यालय भी यही हैं।

किसी भी पत्रकार के लिये फ्लीट स्ट्रीट का महत्व मक्का से कम नही। जिस प्रकार प्रत्येक मुसलमान अपने जीवन मे कम से कम एक बार मक्का जाने की इच्छा रखता है, उसी प्रकार संसार के प्राय. प्रत्येक देश के छोटे बड़े पत्रकार की भी यह इच्छा रहती है कि वह अपने जीवन का कुछ समय फ्लीट स्ट्रीट मे बिताए। वस्तुत फ्लीट से ही आधुनिक पत्रकारिता का जन्म हुआ है। पत्रकारिता के क्षेत्र मे समय समय पर जो नए प्रयोग होते है उनमे से अधिकाश का आरंभ फ्लीट स्ट्रीट से ही होता है।

इस रहस्य का पता लगाना बडा मुश्किल होगा कि आखिर लदन के अधिकाश समाचारपत्र फ्लीट स्ट्रीट से ही क्यो चिपके हुए हैं। लंदन के अन्य क्षेत्रो मे भी बडे बडे और आधुनिकतम प्रेस हैं, स्थान की भी वहां ऐसी कमी नही है, फिर भी पत्रपत्रिकाओ के संचालक वहाँ न जाकर फ्लीट स्ट्रीट मे ही आना पसंद करते हैं। वैसे तो इसके कई कारण बताए जा सकते हैं पर एक प्रमुख कारण यह जान पड़ता है कि फ्लीट स्ट्रीट वेस्टमिंस्टर के पास है। वेस्टमिंस्टर मे ही संसद भवन हैं। अतः राजनीति के केंद्र के पास समाचारपत्रो के कार्यालयों का होना स्वाभाविक ही है।

१५वीं सदी से ही फ्लीट स्ट्रीट लेखको एवं साहित्यकारो को भी आकर्षित करती रही। प्रसिद्ध अंग्रेज कवि मिल्टन, लेखक डा० जानसन, चार्ल्स डिकेंस, आलिवर गोल्डस्मिथ, ड्राइडन आदि अनेक साहित्यकारो का फ्लीट स्ट्रीट से कुछ न कुछ सबंध रहा है।

[म० रा० जै०]

फ्लुओरीन (Fluorine) आवर्त सारणी (periodic table) के सप्तसमूह का प्रथम तत्व है, जिसमें सर्वाधिक अधातु गुण वर्तमान हैं। इसका एक स्थिर समस्थानिक (भारसख्या १६) प्राप्त है और तीन रेडियोऐक्टिव समस्थानिक (भारसख्या १७, १८ और २०) कृत्रिम साधनो से बनाए गए हैं। इस तत्व को १८८६ ई० मे मॉयसाँ ने पृथक् किया। अत्यत क्रियाशील तत्व होने के कारण इसको मुक्त अवस्था मे बनाना अत्यत कठिन कार्य था। मॉयसाँ ने विशुद्ध हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तथा पोटैशियम फ्लुओराइड के मिश्रण के वैद्युत् अपघटन द्वारा यह तत्व प्राप्त किया था।

फ्लुओरीन मुक्त अवस्था मे नही पाया जाता। इसके यौगिक कैलसियम फ्लुओराइड, कैफ्लु$_2$ (CaF_2), और क्रायोलाइड, सो$_3$ ऐ फ्लु$_6$ ($Na_3 Al F_6$) अनेक स्थानो पर मिलते हैं।

फ्लुओरीन का निर्माण मॉयसाँ विधि द्वारा किया जाता है। प्लैटिनम इरीडियम मिश्रधातु का बना यू (U) के आकार का विद्युत् अपघटनी सेल (cell) लिया जाता है, जिसके विद्युदग्र भी इसी मिश्रधातु के बने रहते है। हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल मे पोटैशियम फ्लुओराइड विलयित कर – २३° सें० पर सेल मे अपघटन करने से धनाग्र पर फ्लुओरीन मुक्त होगी। मुक्त फ्लुओरीन को विशुद्ध करने के हेतु प्लैटिनम के ठढे बरतन तथा सोडियम फ्लुओराइड की नलिकाओ द्वारा प्रवाहित किया जाता है।

फ्लुओरीन के कुछ भौतिक गुण निम्नाकित हैं :

संकेत	फ्लु (F)
परमाणुसख्या	९
परमाणुभार	१९
गलनाक	–२२३ सें०
क्वथनाक	–१८८° सें०
आपेक्षिक घनत्व	–१·२६५
परमाणु व्यास	१·३६ ऐंगस्ट्रॉम

फ्लुओरीन समस्त तत्वो मे अपेक्षाकृत सर्वाधिक क्रियाशील पदार्थ है। हाइड्रोजन के साथ यह न्यून ताप पर भी विस्फोट के साथ सयुक्त हो जाता है।

हाइड्रोफ्लुओरिक अम्ल अथवा हाइड्रोजन फ्लुओराइड हाफ्लु (H F) अथवा हा$_2$फ्लु$_2$ ($H_2 F_2$) अत्यत विषैला पदार्थ है। इसका विशुद्ध यौगिक विद्युत् का कुचालक है। इसका जलीय विलयन तीव्र आम्लिक गुण युक्त होता है। यह काच पर क्रिया कर सिलिकन फ्लुओराइड बनाता है। इस गुण के कारण इसका उपयोग काच पर

निशान बनाने में होता है। हाइड्रोफ्लुओरिक अम्ल के लवण फ्लुओराइड कहलाते है। कुछ फ्लुओराइड जल मे विलेय होते हैं।

फ्लुओरीन का उपयोग कीटमारक के रूप मे होता है। इसके कुछ यौगिक, जैसे यूरेनियम फ्लुओराइड, परमाणु ऊर्जा प्रयोगो मे प्रयुक्त होते हैं। फ्लुओरीन के अनेक कार्बनिक यौगिक प्रशीतन उद्योग तथा प्लास्टिक उद्योग मे काम आते हैं। [र० च० क०]

फ्लेचर गाइल्स १ (१५४६–१६११) अंग्रेज कवि; जन्मस्थान वैटफोर्ड। एटन मे प्रारंभिक शिक्षा, केंब्रिज विश्वविद्यालय से स्नातक। १५८५ मे फ्लेचर संसद् सदस्य बने। कूटनीतिक मडल के सदस्य के रूप मे उन्होंने स्कॉटलैंड, जर्मनी, रूस आदि स्थानों का भ्रमण किया। १६०१ मे एसेक्स को अपमानित करने का दोष रैले पर लगाने के कारण उन्हें कारावास मिला।

फ्लेचर ने रूस के सबंध मे अपने अनुभवो का सकलन संलन 'ऑव दि एसे ऑन कॉमनवेल्थ' पुस्तक मे किया जिसमे वहाँ की भौगोलिक स्थिति, सरकार, कानून, युद्धकला, धर्म तथा समाज का विशद वर्णन किया गया है। इनकी ख्याति 'लिसिया पोयम्स' ऑव लव' १५९३ नामक पुस्तक से विशेष रूप से हुई। [गि० ना० श०]

२ **फ्लेचर गाइल्स** (१५८४–१६२३) फ्लेचर प्रथम का पुत्र तथा अंग्रेज कवि। वेस्टमिंस्टर तथा ट्रिनिटी कॉलेज केंब्रिज मे शिक्षा। महारानी एलिजबेथ की मृत्यु पर 'सारोज ज्वाय' १६०३ में लिखी। इनमे वक्तृता की अद्भुत क्षमता थी। सेंट मेरी गिरजा मे उनका उपदेश विशेष प्रसिद्ध था। कहा जाता है, बेकन ने उन्हें 'एल्डर्टन' का पादरी बनाया। उनकी अन्तिम धार्मिक पुस्तक 'दि रिवार्ड ऑव दि फेथफुल' १६२३ में प्रकाशित हुई। जिस पुस्तक ने उनकी ख्याति मे विशेष योगदान दिया वह 'क्राइस्ट्स विक्ट्री इन हेवन इन अर्थ ओवर ऐंड आफ्टर डेथ' १६१० में प्रकाशित हुई। इनकी कविता के माधुर्य से मिल्टन इतना प्रभावित हुआ कि अपने पैराडाइज रिगेंड मे उसका अनुकरण किया। यह कविता सुदरता, ध्वनि, और माधुर्य के साथ ही साथ उपदेशात्मक होने के कारण विशेष लोकप्रिय न हो सकी। वे ग्रीक भाषा के विद्वान् थे और अंग्रेज कवि स्पेंसर के पूर्ण भक्त। 'फेयरी क्वीन' के आधार पर लिखित यह पुस्तक चार भागो मे विभक्त है। पहले मे न्याय और दया, दूसरे मे 'पेन ग्लो रैंटो' तीसरे मे ईसा की फाँसी और चौथे मे स्वर्ग का वर्णन है। समृद्ध कल्पना, भाषा की सजावट तथा माधुर्य का इसमे पूर्ण सम्मिश्रण है। 'प्री रेफेलाइट मूवमेंट' से प्रभावित होने के कारण प्राकृतिक सौंदर्य तथा शब्दसंगीत का प्राचुर्य है। धार्मिक तत्वो पर रूपक लिखनेवाले कवियो मे यह प्रथम श्रेणी मे आते हैं। [गि० ना० श०]

फ्लेमिंग, सर जान एंब्रोस (१८४९–१९४५ ई०) अंग्रेज भौतिक विज्ञानी थे। इनका जन्म २९ नवबर, १८४९ को लैंकैस्टर मे हुआ था। शिक्षा दीक्षा लदन एव कैंब्रिज मे हुई।

ये १८८५ से १९२६ ई० तक लंदन में विद्युत् इंजीनियरी के प्राध्यापक रहे। ड्यूअर (Dewar) के सहयोग से इन्होंने कम ताप पर विद्युत् प्रतिरोध का अध्ययन किया। विद्युत् लट्टू एव विद्युत् प्रकाश पर महत्वपूर्ण खोजे की। तापायनिक वाल्व का आविष्कार इनकी सबसे महत्वपूर्ण देन है। इस खोज ने इलेक्ट्रॉनिक भौतिकी मे क्रांति मचा दी। विद्युत् पर इन्होंने अनेको पुस्तके लिखी। इनकी मृत्यु सन् १९४५ में हुई। [अ० प्र० स०]

फ्लैम्स्टीड (Flamsteed), **जॉन** (सन् १६४६–१७१९), इंग्लैंड के इस प्रथम राज ज्योतिषी का जन्म डर्बी नगर के निकट हुआ था। बुरे स्वास्थ्य के कारण इन्हें पाठशाला की पढाई छोड़नी पड़ी, किंतु रुग्णावस्था मे ही इन्होने गणित ज्योतिष का अध्ययन आरंभ किया। जो भी पुस्तके इन्हे मिली, इन्होने पढ डाली तथा निरीक्षण और मापयत्रो का निर्माण भी आरभ कर दिया। सन् १६७० मे चंद्रमा से तारो की युति (conjunction), की गणना संबधी आपके लेख के प्रकाशन से वैज्ञानिको मे आपको मान मिला।

इसी वर्ष इन्होने जीजस कालेज मे नाम लिखाया तथा आइजक न्यूटन से इनका परिचय हुआ। चार वर्ष मे इन्होंने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। ग्रहो के वास्तविक तथा आभासी व्यासों पर सन् १६७३ मे इनके लिखे लेख से न्यूटन को अपने प्रसिद्ध ग्रंथ प्रिंसिपिया के तृतीय खड के लिए तथ्य मिले तथा हॉरक के चंद्रमा सबधी मत के लिये इन्होने गणितीय आधार दिए। समुद्र मे जहाजो पर भोगांश ज्ञात करने की प्रस्तावित पद्धति पर विचार करने का कार्य सौंपे जाने पर, फ्लैम्स्टीड ने मत दिया कि प्रणाली सिद्धांततः तो ठीक है, किंतु तारो और चंद्रमा की स्थितियो का पर्याप्त यथार्थता से ज्ञान न होने के कारण फल ठीक नहीं निकलते। फलतः ग्रीनिच मे राजकीय वेधशाला की सन् १६७५ मे स्थापना हुई और फ्लैम्स्टीड कुल सौ पाउड वार्षिक वृत्ति पर प्रथम राजकीय ज्योतिषी नियुक्त हुए।

निरुत्साहित करनेवाली परिस्थितियो से घिरे रहने पर भी इन्होने ४४ वर्ष तक अत्यत अध्यवसाय और परिश्रम से इस वेधशाला मे कार्य किया। निरीक्षण और मापन की इन्होंने अनेक उन्नत रीतियाँ निकाली। ये छोटी से छोटी बातो पर सतर्कतापूर्वक ध्यान देते थे। हिस्टोरिया सीलेस्टिस ब्रिटैनिका (३ खड), जिनमे इनके प्रेक्षणफल दिए है, और इनकी लिखी ३,००० तारो की महत् सारणी इनके सहायक, ऐब्रैहम शार्प, ने इनकी मृत्यु के पश्चात् पूरी की। चार वर्ष बाद ऐटलैस सीलेस्टिस नामक उच्च कोटि का इनका अन्य ग्रथ प्रकाशित हुआ। [भ० दा० व०]

फ्लोबेर गुस्ताव फ्रेंच उपन्यास लेखक गुस्ताव फ्लोबेर (१८२१–८०) का जन्म रूआँ में १२ दिसबर, सन् १८२१ को हुआ था। आपके पिता सर्जन थे। ११ वर्ष की अवस्था मे आप साहित्य की ओर प्रवृत्त हुए। आप पेरिस मे कानून का अध्ययन करने लगे, किंतु सन् १८४५ मे पिता की मृत्यु के पश्चात् रूआँ लौट आए और अपने पैतृक निवासस्थान पर रहने लगे जहाँ ८ मई, सन् १८८० को आपका शरीरांत हुआ। दो या तीन प्रेमव्यापार; पिरेनीज, कार्सिका, ब्रिटेन, यूनान, मिस्र तथा फिलिस्तीन की यात्राएँ, और पैरिस के संक्षिप्त अनेक अवलोकन आपके जीवन की बाह्य घटनाएँ थी। साहित्यसेवा के लिये ही उनका जीवन था। वे लज्जाशील, स्पर्शकातर, स्वाभिमानी साहित्यसेवी थे।

यथार्थवाद के ह्रासकाल मे भी फ्रेंच यथार्थवादी संप्रदाय के नेता के रूप मे फ्लोबेर की प्रतिष्ठा थी। आप गोतिये के शिष्य और ह्यूगो के प्रशसक थे। गाकूर बधु, जोला, दादे और मोपासाँ आपके

शिष्य थे। आप स्वच्छंदतावादी (रोमैंटिस्ट) तथा यथार्थवादी थे। कल्पना की अधिकता, प्राच्य, विदेशी, भयानक तथा अतीत के प्रति आकर्षण एवं मध्यवर्ग के प्रति घृणा के कारण आप स्वच्छंदतावादी, और व्यक्तित्वशून्यता, स्वानुभूतिव्यंजना, प्रामाणिकतानुराग के आग्रह के कारण यथार्थवादी थे। आपकी कला सयत थी। आप स्वच्छदतावादियों की अत्यधिक निजी पूर्वधारणा से मुक्त थे।

आपके उपन्यास शैली के आदर्श हैं। उनमे प्रतिपाद्य विषय एवं उसके स्वरूप मे पूर्ण एकरूपता है जो शेक्सपीयर मे भी सदैव नही रही। फ्लोबेर ने मूर्तिमत्ता, शब्दौचित्य और एकरूपता के लिये कठिन परिश्रम किया। आप 'कला के लिये कला' सिद्धात के प्रवर्तक थे। आपके मतानुसार कला जीवन की सार्थकता है और कला से इतर वस्तुएँ मृगमरीचिका मात्र है। आपकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'मादाम बोवारी' (१८५७)है। 'सालामबो' (१८६२) मे कार्थेज के सुदर पुनर्निर्माण एवं उसकी सभ्यता का चित्रण है। यह एक व्यक्तित्वशून्य सिनेमा फिल्म है। 'लेदुकाशिग्रॉं सानतिमाताल' (१८७३) आपकी युवावस्था की स्मृतियों एवं राजनीतिक प्रश्न संबंधी चिताओ पर आधारित है। 'ला तानाशिग्रादसे आंत्वान' के तीन संशोधित एवं परिवर्धित सस्करण क्रमश सन् १८४६, १८५६ और १८७२ मे प्रकाशित हुए। यह आपके कलात्मक विकास एवं चिंतनशीलता का परिचायक है। 'अ काँत सिम्प्' सरल हृदय की छोटी सी कहानी है, 'बुव्हार ए पेकुशे' आपके निधनोपरात प्रकाशित अपूर्ण उपन्यास है।

[मु० मु० दे०]

फ्लोरस्पार (Fluorspar) या फ्लोराइट (Ca F_2) हलके हरे, पीले या बैंगनी रग मे तथा अधिकतर घन आकृति मे मिलता है। इसकी चमक काच के समान होती है। कठोरता ४ तथा आपेक्षिक घनत्व ३ २ है। इस खनिज का विशेष गुण है प्रतिदीप्ति (Fluorescence)।

कम ताप पर पिघलने के कारण इस खनिज का उपयोग लोह उद्योग मे मल को बहाकर निकालने के लिये होता है। विश्व का लगभग तीन प्रति शत फ्लोराइट चीनी मिट्टी उद्योग मे प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त फ्लोराइट का उपयोग बहुत से रासायनिक पदार्थ, जैसे हाइड्रोफ्लोरिक एसिड आदि बनाने के काम मे होता है।

यद्यपि यह खनिज अल्प मात्रा मे बिहार, राजस्थान आदि प्रदेशों की शिलाओ मे विद्यमान है, तथापि इसके आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण निक्षेप मध्य प्रदेश मे डोगरगढ से १४ मील की दूरी पर है। यहाँ ६० फुट की गहराई तक इस खनिज का भंडार एक लाख टन से अधिक अनुमानित किया गया है। 		[म० ना० मे०]

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (१८३८-१८६४) बंगला के प्रख्यात उपन्यासकार और गद्यकार। रवीद्रनाथ ठाकुर के पूर्ववर्ती साहित्यकारों मे अन्यतम स्थान है। प्रेसीडेसी कालेज से बी० ए० की उपाधि लेनेवाले ये पहले भारतीय थे। शिक्षासमाप्ति के तुरत बाद डिप्टी मजिस्ट्रेट पद पर इनकी नियुक्ति हो गई। कुछ काल तक बगाल सरकार के सचिव पद पर भी रहे। रायबहादुर और सी० आई० ई० की उपाधियाँ पाई।

इनका पहला उपन्यास 'राजमोहन की पत्नी' (राजमोहन्स वाइफ) अग्रेजी में प्रकाशित हुआ (१८६४)। १८६५ मे पहला बँगला उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' छपा, जो बगाल मे मुगल विजय के काल की रोमास कथा है। इसके बाद इन्होंने दर्जनो ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासो का सृजन किया, जिनमे 'राजसिंह', 'सीताराम' और 'चद्रशेखर' (ऐतिहासिक) तथा 'विषवृक्ष' और 'कृष्णकांतेर विल' (सामाजिक) विशेष उल्लेखनीय हैं। 'कपालकुडला' रोमास और कल्पना की दृष्टि से अनूठी कृति है। 'आनदमठ' मे राष्ट्रीय चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति है, जिसका गीत 'वंदेमातरम्' भारत का राष्ट्रीय गीत माना गया। १८७२ मे उन्होंने 'वगदर्शन' नामक एक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया, जो चार वर्ष तक चला। इस पत्र ने बँगला साहित्य को एक नई दिशा देने का काम किया।

अपनी सशक्त औपन्यासिक कृतियो के माध्यम से बकिम बाबू ने जनसाधारण को इतिहास का रूमानी चित्र खीचकर चमत्कृत किया। भारतीय राष्ट्रीय चेतना के जागरण मे इनकी लेखनी का योगदान स्तुत्य है। उनकी कृतियों का देश की प्राय सभी भाषाओ मे अनुवाद हुआ है।

बँगला भाषा तथा साहित्य भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं की तरह बँगला भाषा का भी उत्पत्तिकाल सन् १,००० ई० के आस पास माना जा सकता है। अपभ्रंश से या मगध की भाषा से पृथक् रूप ग्रहण करने के बाद से ही उसम गीतो और पदो की रचना होने लगी थी। जैसे जैसे वह जनता के भावो और विचारों को अभिव्यक्त करने का साधन बनती गई, उसमे विविध रचनाओ, काव्यग्रथो तथा दर्शन, धर्म आदि विषयक कृतियो का समावेश होता गया, यहाँ तक कि आज भारतीय भाषाओ मे उसे यथेष्ट ऊँचा स्थान प्राप्त हो गया है।

बँगला लिपि नागरी लिपि से कुछ कुछ भिन्न होती हुई भी दोनों मे थोडा बहुत साम्य भी है। हिंदी की तरह उसमे भी १४ स्वर तथा ३३ व्यजन हैं। बँगला मे 'व' का उच्चारण प्राय 'ब' की तरह (कभी कभी 'उ' की तरह या 'भ' की तरह) किया जाता है और आत्मा, लक्ष्मी, महाशय आदि शब्द आत्ताँ, लक्खी, मोशाय जैसे उच्चरित होते है।

साहित्य

बँगला भाषा का साहित्य स्थूल रूप से तीन भागो में बाँटा जा सकता है — १ प्राचीन (९५०-१,२०० ई०), २. मध्य कालीन (१,२००-१,८०० ई०) तथा ३ आधुनिक—(१,८०० के बाद)। प्रारभिक साहित्य बंगाल के जीवन तथा उसके गुण-दोष-विवेचन की दृष्टि से ही अधिक महत्वपूर्ण है। चडीदास, कृत्तिवास, मालाधर, पिपलाई, लोचनदास, ज्ञानदास, कविककण, मुकुदराम, कृष्णदास, काशीराम दास, भारतचदराय, गुणाकर आदि कवि इसी काल में हुए हैं।

१. प्राचीन बंगला साहित्य (९५० से १२०० ई० तक)

भारत के अन्य विद्वानो की तरह बगाल के भी विद्वान् संस्कृत की रचनाओ को ही विशेष महत्व देते थे। उनकी दृष्टि मे वही "अमर भारती" का पद सुशोभित कर सकती थी। बोलचाल की भाषा को वे परिवर्तनशील और अस्थायी मानते थे। किंतु जनसाधारण तो

अपने विचारों और भावों को प्रकट करने के लिये उसी भाषा को पसंद कर सकते थे जो उनके हृदय के अधिक निकट हो। उसी भाषा में वे उपदेश और शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। पुरातन बंगाल में इस तरह की दो भाषाएँ प्रचलित थी—एक तो स्थानीय भाषा, जिसे हम प्राचीन बँगला कह सकते हैं, दूसरी अखिल भारतीय जन साहित्यिक भाषा, जो सामान्यत समूचे उत्तर भारत मे समभी जा सकती थी। इसे नागर या शौरसेनी अपभ्रंश कह सकते है जो मोटे तौर से पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब तथा राजस्थान की भाषा थी। सामान्य जनता के लिये इन दोनो भाषाओं मे थोड़ा सा साहित्य विद्यमान था। प्रेम और भक्ति के गीत, कहावते और लोकगीत मातृभाषा मे पाए जाते थे। बौद्ध तथा हिंदू धर्म के उपदेशक जनता मे प्रचार करने के लिये जो रचनाएँ तैयार करते थे वे प्राय. पुरानी बँगला तथा नागर अपभ्रश, दोनो मे होती थी।

पुरातन बँगला की उपलब्ध रचनाओ मे ४७ चर्यापद विशेष महत्व के है। ये प्राय. आठ (या कुछ अधिक) पक्तियों के रहस्यमय गीत है जिनका सबंध महायान बौद्धधर्म तथा नाथपथ, दोनो से सबद्ध गुप्त संप्रदाय से है। इनका सामान्य बाहरी अर्थ तो प्राय यों ही समझ मे आ जाता है और गूढ अर्थ भी साथ की संस्कृत टीका की सहायता से, जो इस सग्रह के साथ ही श्री हरप्रसाद शास्त्री को प्राप्त हुई थी, समझा जा सकता है। इन गीतों या पद्यो मे 'कवित्व' नाम की चीज तो नही है किंतु जीवन की एकाध झलक अवश्य किसी किसी में देख पडती है। इससे मिलती जुलती कुछ अन्य पद्यात्मक रचनाएँ नेपाल से भी डा० प्रबोधचद्र बागची तथा राहुल साकृत्यायन आदि को प्राप्त हुई थी'।

१२वी शताब्दी के अन्त तक पुरातन बँगला मे यथेष्ट साहित्य तैयार हो चुका था जिससे उस समय के एक बगाली कवि ने यह गर्वोक्ति की थी "लोग जैसे गगा मे स्नान करने से पवित्र हो जाते हैं, वैसे ही वे 'बगाल वाणी' मे स्नात होकर हो सकते है।" किंतु दुर्भाग्य-वश उक्त ४७ चर्यापदो तथा थोडे से गीतो या पदो के सिवा उस काल की अन्य बहुत ही कम रचनाएँ आज उपलब्ध है।

गीतगोविंद के रचयिता जयदेव बंगाल के हिंदू राजा लक्ष्मण सेन (लगभग ११८० ई०) के शासनकाल मे विद्यमान थे। राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन करनेवाले इस सुदर काव्य मे २४ गीत है जो अतुकात न होकर, सबके सब तुकात है। सस्कृत मे प्राय तुकात नही मिलता। यह तो अपभ्रश या नवोदित भारतीय आर्य भाषाओ की विशेषता है। कुछ विद्वानो का मत है कि इन पदो की रचना मूलत पुरानी बँगला मे या अपभ्रंश मे की गई थी और फिर उनमे थोडा परिवर्तन कर सस्कृत के अनुरूप बना दिया गया। इस तरह जयदेव पुरातन बगाल के प्रसिद्ध कवि माने जा सकते है जिन्होने सस्कृत के अतिरिक्त सभवतः पुरानी बँगला मे भी रचना की। जो हो, बगाल के कितने ही परगामी कवियो को उनसे प्रेरणा मिली, इसमे संदेह नही।

२. मध्यकालीन बंगला साहित्य (१,२०० से १,८०० ई० तक) पुरानी बँगला में कोई बडा प्रबंध काव्य रचा गया हो, इसका कोई प्रमाण नही मिलता। उस समय ऐसी रचनाएँ बंगाल में भी प्रायः अपभ्रंश मे ही होती थी। जो हो, मिथिला (बिहार) के प्रसिद्ध कवि विद्यापति ने जब प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य (कीर्तिलता) की रचना की (लगभग १,४१० ई०) तब उन्होने भी इसका प्रणयन अपनी मातृभाषा मैथिली मे न कर अपभ्रश मे ही किया, यद्यपि बीच बीच मे इसमे मैथिल शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। १५वीं शती तथा विशेष रूप से १६वी शती से ही बडे प्रबध काव्यों एव वर्णनात्मक रचनाओ का निर्माण प्रारभ हुआ, उदाहरणार्थ आदर्श नारी बिहुला और उसके पति लखीधर की कथा, कालकेतु और फुल्लरा का कथानक, इत्यादि।

सन् १२०३ मे पश्चिमी बगाल पर तुर्कों का आक्रमण हुआ। व्यापक लूटमार, अपहरण, हत्याकाड, महलो तथा पुस्तकालयों के विनाश तथा बलात् धर्मपरिवर्तन की बाढ सी आ गई। ऐसा समय साहित्यिक विकास के अनुकूल हो ही कैसे सकता था। उदार रुख अपनानेवाले सूफी प्रचारको के आगमन मे अभी देर थी।

(क) सक्रमणकालीन साहित्य (१२००–१३५०) — इस समय की साहित्यिक रचनाओ के कोई विशिष्ट प्रामाणिक ग्रथ नही बताए जा सकते। पुराने गायको और लोकगीतकारो मे बिहुला आदि की जो कथाएँ प्रचलित थी, उन्ही के आधार पर कुछ अज्ञात कवियो ने रचनाएँ प्रस्तुत की जिन्हें बगला के प्रारंभिक प्रबध काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। इसी अवधि में बँगला भाषी मुसलिम आबादी का उद्भव हुआ और उसमे क्रमश वृद्धि होती गई। तुर्क आक्रमणकारियो मे से बहुतो ने बगाल की स्त्रियो से ही विवाह कर लिया और धीरे धीरे 'यहा की भाषा, रहन सहन आदि को' अपना लिया। तुर्की को वे भूल ही गए और अरबी केवल धर्म कर्म की भाषा रह गई। बगाल मे हिंदू जमींदारो और सामतो की ही व्यवस्था अभी प्रचलित थी, फलत मुसलिम विचारो और पद्धतियो का जनजीवन पर अभी दृष्टिगोचर होने योग्य विशेष प्रभाव नही पडने पाया था।

(ख) प्रारभ का मध्यकालीन साहित्य (१३५० से १६०० तक) कुछ काल के अनतर बगाल मे शांति स्थापित होने पर जब फिर सस्कृत के अध्ययन, प्रचार आदि की सुविधा प्राप्त हुई तब शिक्षा और साहित्य का मानो प्राथमिक पुनर्जागरण प्रारभ हुआ जो बाद मे भक्तिसाधना के प्रभाव से अधिक परिपुष्ट हुआ। माध्यमिक बगला के प्रथम महाकवि, जिनके सबध मे हमे कुछ जानकारी है, सभवत कृत्तिवास ओझा थे (जन्म लगभग १३९९ ई०)। सस्कृत रामायण को बँगला मे प्रस्तुत करनेवाले (लगभग १४१८ ई०) वे पहले लोकप्रिय कवि थे जिन्होने राम का चित्रण वाल्मीकि की तरह शुद्ध मानव और वीर पुरुष के रूप मे न कर भगवान् के करुणामय अवतार के रूप मे किया जिसकी ओर सीधी सादी भक्तिमय जनता का हृदय सहज भाव से आकर्षित हो सकता था। इसी तरह कृष्णगाथा का वर्णन उसी शताब्दी मे (१४७५ ई०) मालाधर बसु ने किया। यह भागवत पुराण पर आधारित है।

बिहुला की कथा, जो विवाह की प्रथम रात्रि मे ही मनसा देवी द्वारा प्रेषित सर्प के द्वारा पति के डसे जाने पर विधवा हो गई थी और जिसने बडी बडी कठिनाइयाँ झेलकर देवताओ को तथा मनसा देवी को भी प्रसन्न कर पति को पुन जीवित करा लेने मे सफलता प्राप्त की थी, पतिव्रता नारी के प्रेम और साहस की वह अपूर्व परिकल्पना

है जिसका आविर्भाव कभी किसी भारतीय मस्तिष्क मे हुआ हो। यह कथा शायद मुसलमानों के आगमन के पहले से ही प्रचलित थी किंतु उसपर आधारित प्रथम कथाकाव्य बंगला मे १५वी शती मे रचे गए। इनमे से एक के रचयिता विजयगुप्त और दूसरी के विप्रदास पिपलाई माने जाते है।

पूर्वमाध्यमिक बँगला के एक प्रसिद्ध कवि चडीदास माने जाते हैं। इनके नाम से कोई १२०० पद या कविताएँ प्रचलित है। उनकी भाषा, शैली आदि मे इतना अतर है कि वे एक ही व्यक्ति द्वारा रचित नही जान पडती। ऐसा प्रतीत होता है कि माध्यमिक बंगला मे इस नाम के कम से कम तीन कवि हुए। पहले चडीदास (अनंत बडु चडीदास) श्रीकृष्णकीर्तन के प्रणेता थे जो चैतन्य के पहले, लगभग १४०० ई० मे, विद्यमान थे। दूसरे चडीदास द्विज चडीदास थे जो चैतन्य के बाद मे या उत्तर काल मे हुए। इन्होने ही राधा कृष्ण के प्रेमविषयक उन अधिकाश गीतों की रचना की जिनसे चडीदास को इतनी लोकप्रसिद्धि प्राप्त हुई। तीसरे चडीदास दीन चडीदास हुए जो सग्रह के तीन चौथाई भाग के रचयिता प्रतीत होते है। चडीदास की कीर्ति के मुख्य आधार प्रथम दो चडीदास ही थे, इसमें सदेह नहीं जान पडता।

१५वी शताब्दी मे बंगाल पर तुर्क तथा पठान सुलतानो का शासन था पर उनमे यथेष्ट बगालीपन आ गया था और वे बंगला साहित्य के समर्थक बन गए थे। ऐसा एक शासक हुसेनशाह था (१४९३-१५१९)। उसने चटगाव के अपने सूबदार और पुत्र नासिरुद्दीन नसरत के द्वारा महाभारत का अनुवाद बंगला मे करवाया। यह रचना 'पाडवविजय' के नाम से कवीद्र द्वारा प्रस्तुत की गई थी।

इसी समय प्रसिद्ध वैष्णव कवि चैतन्य का आविर्भाव हुआ (१४८६–१५३३)। समसामयिक कवियों और विचारको पर उनका गहरा प्रभाव पडा। उनके आविर्भाव और मृत्यु के उपरात सतो तथा भक्तो के जीवनचरित्रो के निर्माण की परपरा चल पडी। इनमे से कुछ ये है — वृदावनदास कृत चैतन्यभागवत (लग० १५७३), लोचनदास कृत चैतन्यमगल, जयानद का चैतन्यमगल तथा कृष्णदास कविरत्न का चैतन्यचरितामृत (लग० १५८१)। कृष्ण और राधा के दिव्य प्रेम सबधी बहुत से गीत और पद भी इस समय रचे गए। बगाल के इस वैष्णव गीत साहित्य पर मिथिला के विद्यापति का भी यथेष्ट प्रभाव पडा जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

इसी समय के लगभग बँगला पर 'ब्रजबुलि' का भी प्रभाव पडा। मिथिला का राज्य मुसलिम आक्रमणो से प्राय अछूता रहा। बगाल के कितने ही शिक्षार्थी स्मृति, न्याय, दर्शन आदि का अध्ययन करने वहाँ जाया करते थे। मिथिला के सस्कृत के विद्वान् अपनी मातृभाषा मे भी रचना करते थे। स्वय विद्यापति ने सस्कृत मे ग्रथरचना की किंतु मैथिली मे भी उन्होंने बहुत सुदर प्रेमगीतो का निर्माण किया। उनके ये गीत बगाल मे बडे लोकप्रिय हुए और उनके अनुकरण मे यहाँ भी रचना होने लगी। बकिमचद्र तथा रवीद्रनाथ ठाकुर तक ने इस तरह के गीतों की रचना की।

वैष्णव प्रेमगीतकार के रूप मे जयदेव कवि की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। उनके बाद बडुचडीदास तथा चैतन्य के अनुयायी आते है। इनमें उड़ीसा के एक क्षत्रप रामानद थे जिन्होनें सस्कृत मे भी रचना की। गोविंददास कविराज (१५१२-९) ने ब्रजबुलि मे कितने ही सुदर गीत प्रस्तुत किये। बर्दवान जिले के कविरजन विद्यापति ने भी ब्रजबुलि मे प्रेमगीत लिखे जिनके कारण वे 'छोटे विद्यापति' के नाम से प्रसिद्ध हुए। १६वी शती के दो कवियो ने कालकेतु और उसकी स्त्री फुल्लरा तथा धनपति और उसके पुत्र श्रीमत के आख्यान की रचना की जिसमे चडी या दुर्गादेवी की महिमा वर्णित की गई। कविकंकण मुकुददास चक्रवर्ती ने चडीकाव्य बनाया जो आज भी लोकप्रिय है। इसमे तत्कालीन बंगला जीवन की अच्छी झलक देख पड़ती है। पद्यलेखक होते हुए भी वे एक तरह से बकिमचद्र तथा शरच्चंद्र चटर्जी के पूर्वग माने जा सकते है।

(ग) उत्तरकालीन माध्यमिक बंगला साहित्य (१६००–१८००)— वैष्णव गीतकारो तथा जीवनी लेखको की परपरा १७ वी शती मे चलती रही। जीवनीलेखकों मे ईशान नागर (१५६८) और नित्यानद (१६०० ई०) के बाद यदुनदनदास (कर्णानद के लेखक, १६०७), राजवल्लभ (कृति मुरलीविलास), मनोहरदास (१६५२, कृति 'अनुरागवल्ली') तथा घनश्याम चक्रवर्ती (कृति, भक्तिरत्नाकर तथा नरोत्तमविलास) का नाम लिया जा सकता है। गीतलेखकों की सख्या २०० से अधिक है। वैष्णव विद्वानो तथा कवियो ने इनके कई संग्रह तैयार किए थे जिनमें से वैष्णवदास (१७७० ई०) का 'पदकल्पतरु' विशेष प्रसिद्ध है। इसमे १७० कवियो द्वारा रचित ३१०१ पद प्राप्त है।

इसी समय कुछ धार्मिक ढग की कथाएँ भी लिखी गईं। इनमे रूपराम कृत धर्ममंगल विशेष प्रसिद्ध है जिसमे लाऊसैन के साहसिक कार्यों का वर्णन है। इस कथा के ढग पर मानिक गागुलि तथा घनराम चक्रवर्ती ने भी रचनाएँ प्रस्तुत की। एक और कथानक जिसके आधार पर १७ वी, १८ वी शती मे रचनाएँ प्रस्तुत की गईं, राजा गोपीचंद का है। वे राजा मानिकचद्र के पुत्र थे। जब वे गद्दी पर बैठे तो उनकी माता मयनामती को पता चला कि उनके पुत्र को राजपाट तथा स्त्री का परित्याग कर योगी बन जाना चाहिए, नहीं तो उनकी अकालमृत्यु की सभावना है। अत माता के आदेश से उन्हे ऐसा ही करना पड़ा। भवानीदासकृत 'मयनामतिर गान' तथा दुर्लभ मलिक की रचना 'गोविंदचद्र गीत' इसी कथानक पर आधारित है।

बिहुला की कथा पर १८वी शती मे भी प्रबन्ध काव्य वशीदास, केतकादासतथा क्षेमानद इत्यादि द्वारा—रचे गए। आल्हा के ढग पर कुछ वीरकाव्य या गाथाकाव्य भी १७वी शती मे रचे गए। इनका एक सग्रह अग्रेजी अनुवाद सहित दिनेशचद्र सेन ने तैयार किया जो कलकत्ता वि० विद्यालय द्वारा प्रकाशित किया गया। इसी समय बगाली मुसलमान लेखको ने अरबी और फारसी की प्रेम तथा धर्म कथाएँ बगला मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न आरभ किया। इन कवियो ने उस समय के उपलब्ध बँगला साहित्य का ही अध्ययन नहीं किया वरन् सस्कृत, अरबी तथा फारसी के ग्रथो का भी अनुशीलन किया। उन्होने अवधी या कोशली से मिलती जुलती एक और भाषा—गोहारी या गोआरी—भी सीखी। इसी तरह पूर्वी हिंदी के क्षेत्र से जो सूफी

मुसलमान पूर्वी बंगाल पहुँचे, वे अपने साथ नागरी वर्णमाला भी लेते गए। सिलहट के मुसलमान कवि बहुत दिनो तक इसी 'सिलेट नागरी' लिपि में बँगला लिखते रहे। उस समय के कुछ मुसलमान कवि ये हैं—दौलत काजी, जिसने 'लोरचदा' या 'सती मैना' शीर्षक प्रेमकाव्य लिखा, कुरेशी मागन ठाकुर जिसने 'चद्रावती' की रचना की, मुहम्मद खाँ, जिसकी दो रचनाएँ (मौतुलहुसेन तथा केयामत-नामा) प्रसिद्ध हैं; तथा अब्दुल नबी जिसने बडी सुदर शैली में 'आमीर हामजा' का प्रणयन किया। इनके सिवा १७वी शती के एक और प्रसिद्ध मुसलिम कवि आलाओल है जिनकी कृति 'पद्मावती' (१६५१) यथेष्ट लोकप्रिय रही। यह हिंदी कवि मलिक मुहम्मद जायसी की इसी नाम की रचना का रूपातर है। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—सैफुल मुल्क बदीउज्जमाँ (सहस्त्ररजनीचरित्र के आधार पर रचित प्रेमकाव्य), हफ्त पैकार, सिकंदरनामा तथा तोहफा।

१७वीं शती के तीन हिंदू कवियो — काशीरामदास, जिन्होने महाभारत का अनुवाद बंगला पद्य मे किया, उनके बडे भाई कृष्ण-किंकर, जिन्होने श्रीकृष्णविलास बनाया, तथा जगन्नाथमंगल के लेखक गदाधर।

१८वी शती के कुछ प्रसिद्ध कवि ये है — रामप्रसाद सेन (मृत्यु १७७५) जिनके दुर्गा सबधी गीत आज भी लोकप्रिय है, भारतचद्र, जिनका 'अन्नदामगल' (या कालिकामगल) काव्य बँगला की एक परिष्कृत रचना है; राजा जयनारायण, जिन्होने पद्मपुराण के काशीखंड का बँगला मे अनुवाद किया और उस समय के बनारस का बहुत ही मनोरजक विवरण उसमे समाविष्ट कर दिया। इस काल में हलके फुलके गीतो तथा समस्यापूर्ति के रूप मे लिखे गए सद्य.प्रस्तुत पद्यों का काफी जोर रहा। कुछ मुसलमान कवियों ने मुहर्रम तथा कर्बला के संबध मे रचनाएँ प्रस्तुत की (मुहर्रम पर्व या जंगनामा हायत मुहम्मद, नसरुल्ला खाँ तथा याकूब अली द्वारा रचित)। लैला मजनू पर दौलत वजीर बहराम ने लिखा और मुहम्मद साहब के जीवन पर भी ग्रंथ प्रस्तुत किए गए।

बँगला गद्य के कुछ नमूने सन् १५५० के बाद पत्रो तथा दस्तावेजो के रूप मे उपलब्ध हैं। कैथलिक धर्म सबधी कई रचनाएँ पोर्तगाली तथा अन्य पादरियो द्वारा प्रस्तुत की गई और १७७८ मे नथेनियल ब्रासी हलहद ने बगला व्याकरण तैयार कर प्रकाशित किया। १७९९ में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के बाद बाइबिल के अनुवाद तथा बँगला गद्य मे अन्य ग्रंथ तैयार कराने का उपक्रम किया गया।

(३) आधुनिक बंगला साहित्य (१८०० से १९५० तक)।

१९वी सदी मे अंग्रेजी भाषा के प्रसार और सस्कृत के नवीन अध्ययन से बँगला के लेखको मे नए जागरण और उत्साह की लहर सी दौड़ गई। एक ओर जहाँ कपनी सरकार के अधिकारी बँगला सीखने के इच्छुक अंग्रेज कर्मचारियो के लिये बँगला की पाठ्य पुस्तकें तैयार करा रहे थे और बेपतिस्त मिशन के पादरी कृत्तिवासीय रामायण का प्रकाशन तथा बाइबिल आदि का बँगला अनुवाद प्रस्तुत कराने का प्रयत्न कर रहे थे, वहाँ दूसरी ओर बंगाली लेखक भी गद्य-ग्रथ-लेखन की ओर ध्यान देने लगे थे। रामराम बसु ने राजा प्रतापादित्य की जीवनी लिखी और मृत्युंजय विद्यालंकार ने बँगला में 'पुरुष-परीक्षा' लिखी। १८१८ मे 'समाचारदर्पण' नामक साप्ताहिक के प्रकाशन से बँगला पत्रकारता की भी नीव पड़ी।

राजा राममोहन राय ने भारतीयो के 'आधुनिक' बनने पर बल दिया। उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना की। उन्होने कतिपय उप-निषदो का बँगला अनुवाद तैयार किया। अंग्रेजी मे बँगला व्याकरण (१८२६) लिखा और अपने धार्मिक तथा सामाजिक विचारो के प्रचारार्थ बँगला और अंग्रेजी, दोनो मे छोटी छोटी पुस्तिकाएँ लिखी। इसी समय राजा राधाकात देव ने 'शब्दकल्पद्रुम' नामक संस्कृत कोष तैयार किया और भवानीचरण बनर्जी ने कलकतिया समाज पर व्यंग्यात्मक रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

प्रारंभिक गद्यलेखको की भाषा, प्रचलित सस्कृत शब्दो के प्रयोग के कारण, कुछ कठिन थी किंतु १८५० के लगभग अधिक सरल और प्रभावपूर्ण शैली का प्रचलन आरभ हो गया। ईश्वरचद्र विद्या-सागर, प्यारीचद मित्र आदि का इसमे विशेष हाथ था। विद्यासागर ने अंग्रेजी तथा सस्कृत ग्रथो का अनुवाद बँगला मे किया और गद्य की सुदर, सरल शैली का विकास किया। प्यारीचद मित्र ने 'आलालेर घरेर दुलाल' नामक सामाजिक उपन्यास लिखा (१८-५८)। अक्षयकुमार दत्त ने विविध विषयो पर कई निबध लिखे। अन्य गद्यलेखक थे — राजनारायण बसु, ताराशकर तर्करत्न (जिन्होने 'कादबरी' का सक्षिप्त रूपातर बँगला मे प्रस्तुत किया) तथा तारकनाथ गागुलि (जिन्होंने प्रथम यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास 'स्वर्णलता' प्रकाशित किया)।

माइकेल मधुसूदन दत्त को हम उस समय के 'युवक बगाल' का प्रतिनिधि मान सकते है जिसके हृदय मे अन्य युवकों की तरह आत्म-विकास तथा आत्माभिव्यक्ति का बहुत सीमित अवकाश ही हिंदू समाज मे मिलने के कारण एक प्रकार का असतोष सा व्याप्त हो उठा था। इसका एक विशेष कारण उनका अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी साहित्य के सपर्क मे आना था। ईसाई धर्म मे अभिषिक्त होने के बाद मधु-सूदन ने पहले अंग्रेजी मे, फिर बँगला मे लिखना आरभ किया। उन्होने भारतीय विषयों पर ही लेखनी चलाई पर उन्हे युरोपीय ढग पर सँवारा, सजाया। उनकी मुख्य रचनाएँ है — मेघनादवध काव्य, वीरागना काव्य तथा व्रजागना काव्य। उन्होने बगला मे अनुप्रासहीन कविता का प्रचलन किया और इटैलियन सोनेट की तरह चतुर्दशपदियो की भी रचना की।

बकिमचद्र चट्टोपाध्याय रवीद्रनाथ ठाकुर के आगमन के पूर्व बँगला के सर्वश्रेष्ठ लेखक माने जाते है। उनका साहित्यिक जीवन अंग्रेजी मे लिखित 'राजमोहन की स्त्री' नामक उपन्यास (१८६४) से आरंभ होता है। बँगला मे पहला उपन्यास उन्होंने दुर्गेशनदिनी (१८६५) के नाम से लिखा। इसके बाद उन्होने एक दर्जन से अधिक सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इनके कारण बँगला साहित्य मे उन्हे स्थायी स्थान प्राप्त हो गया और आधुनिक भारत के विचारशील लेखकों तथा चितकों मे उनकी गणना होने लगी। १८७२ मे उन्होने 'बगदर्शन' नामक साहित्यिक पत्र निकाला जिसने बँगला साहित्य को नया मोड़ दिया। उनके ऐतिहासिक उपन्यासो में राजसिह, सीताराम, तथा चद्रशेखर मुख्य है। सामा-

जिक उपन्यासों में 'विषवृक्ष' तथा 'कृष्णकांतेर विल का स्थान ऊँचा है। उनका 'कपालकुंडला' शुद्ध प्रेम और कल्पना का उत्कृष्ट नमूना माना जा सकता है। 'आनदमठ' प्रसिद्ध राजनीतिक उपन्यास है जिसका 'वदेमातरम्' गीत चिरकाल तक भारत का राष्ट्रीयगान माना जाता रहा और आज भी इस रूप मे इसका समादर है। उनके उपन्यासो तथा अन्य रचनाओं का भारत की प्राय. सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

एक और प्रसिद्ध व्यक्ति जिसे भारत के पुनर्जागरण में मुख्य स्थान प्राप्त है, स्वामी विवेकानद है। भारत की गरीब जनता ('दरिद्र-नारायण') की सेवा ही उनका लक्ष्य था। उन्होंने अमरीका और यूरोप जाकर अपने प्रभावकारी भाषणो द्वारा हिंदू धर्म का ऐसा विशद विवेचन उपस्थित किया कि उसे पश्चिमी देशों में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई। बँगला तथा अंग्रेजी, दोनो के वे प्रभावशील लेखक थे। रंगलाल बद्योपाध्याय ने राजपूतों की वीरगाथाओं के आधार पर 'पद्मिनी' (१८५८), कर्मदेवी (१८६२) तथा सूरसुदरी (१८६८) की रचना की। कालिदास के 'कुमारसभव' का बँगला अनुवाद भी उन्होंने प्रस्तुत किया।

बँगला नाटकों का उदय १८७० के आसपास माना जा सकता है, यद्यपि इसके पहले भी इस दिशा मे कुछ प्रयास किया जा चुका था। बगाल मे पहले एक तरह के धार्मिक नाटक प्रचलित थे जिन्हे 'यात्रा' नाटक कहते थे। इनमें दृश्य और पर्दे नही होते थे, गायन और वाद्य की प्रधानता होती थी। एक रूसी नागरिक जेरासिम लेबदेव ने १७९५ मे कलकत्ता आकर बँगला की प्रथम नाट्यशाला स्थापित की, जो चली नही। सस्कृत नाटको के सिवा अंग्रेजी नाटको तथा कलकत्ते मे स्थापित अंग्रेजी रगमच से बँगला लेखकों को प्रेरणा मिली। दीनबधु मित्र ने कई सुखान्त नाटक लिखे। उनके एक नाटक नीलदर्पण (१८६०) मे निलहे गोरो के उत्पीडन का मार्मिक चित्रण हुआ था जिससे इस प्रथा की बुराइयां दूर करने मे सहायता मिली।

राजा राजेद्रलाल मित्र (१८२२–९१) इतिहासलेखक और प्रथम बंगाली पुरातत्वज्ञ थे। भूदेव मुखोपाध्याय (१८२५–९४) शिक्षाशास्त्री, गद्यलेखक और पत्रकार थे। समाज और सस्कृति के सरक्षण तथा पुनरुद्धार सबधी उनके लेखो का आज भी यथेष्ट महत्व है। कालीप्रसन्न सिंह कट्टर हिंदू समाज के एक और प्रगतिशील लेखक थे। उन्होंने महाभारत का बँगला गद्य मे तथा संस्कृत के दो नाटको का भी अनुवाद किया। उन्होने कलकत्ते की बोलचाल की बंगला मे 'हुतोम पेचार नक्शा' नामक रचना प्रस्तुत की जिसमे उस समय के कलकतिया समाज का अच्छा चित्रण किया गया था। बँगला के प्रतिष्ठित साहित्य मे इसकी गणना है। हेमचद्र बंदोपाध्याय (१८३८–१९०३) ने शेक्सपियर के दो नाटकों रोमियो और जूलियट तथा टेंपेस्ट का बँगला मे अनुवाद किया। मेघनादवध से प्रोत्साहित होकर उन्होंने 'वृत्तसहार' नामक महाकाव्य की रचना की। नवीनचद्र सेन (१८४७–१९०९) ने कुरुक्षेत्र, रैवतक तथा प्रभास नाटक बनाए तथा बुद्ध, ईसा और चैतन्य के जीवन पर अमिताभ, खीष्ट तथा अमृताभ नामक लबी कविताएँ लिखी। पलासीर युद्ध तथा रगमती और भानुमती के भी लेखक वही थे। पाँच खडों मे अपनी जीवनी "आमार जीवन" भी उन्होने लिखी।

रवीद्रनाथ ठाकुर के सबसे बड़े भाई द्विजेंद्रनाथ ठाकुर (१८४०–१९२६) कवि, संगीतज्ञ तथा दर्शनशास्त्री थे। उनकी प्रसिद्ध रचना 'स्वप्नप्रयाण' है। रवीद्रनाथ के एक और बडे भाई ज्योतीद्रनाथ ठाकुर थे। उनके लिखे चार नाटक बडे लोकप्रिय थे — पुरुविक्रम, सरोजिनी, आशुमती तथा स्वप्नमयी। उन्होने फ्रेंच भाषा, अंग्रेजी तथा मराठी से भी कई ग्रंथों का अनुवाद किया।

रमेशचंद्र दत्त ने ऋग्वेद का बँगला अनुवाद किया। भारतीय अर्थ शास्त्र के भी वे लेखक थे और उन्होने कई उपन्यास भी लिखे — १. राजपूत जीवनसध्या, २. महाराष्ट्र जीवनसध्या; ३ माधवी कंकण; ४. संसार, तथा ५ समाज। इनके समसामयिक गिरीशचंद्र घोष बँगला के महान् नाटककार थे। उन्होने ९० नाटक, प्रहसन आदि लिखे, जिनमे से कुछ ये है — बिल्वमगल, प्रफुल्ल, पाडव गौरव, बुद्धदेवचरित, चैतन्य लीला, सिराजुद्दौला, अशोक, हारानिधि, शकराचार्य. शास्ति की शाति। शेक्सपियर के मेकबेथ नाटक का बँगला अनुवाद भी उन्होने किया। अमृतलाल बसु भी गिरीश-चद्र घोष की तरह अभिनेता नाटककार थे। हास्य रस से पूर्ण उनके नाटक तथा प्रहसन बँगला भाषियो मे काफी लोकप्रिय है। वे बगाल के मोलिए कहलाते थे, जिस तरह गिरीशचद्र बगाली शेक्सपियर माने जाते थे।

हास्यरस के दो और बँगला लेखक इस समय हुए — त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय (१८४७–१९१९), उपन्यासकार तथा लघुकथा लेखक और इद्रनाथ बदोपाध्याय (१८४९–१९११), निबधलेखक तथा व्यग्यकार।

सस्कृत और इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् हरप्रसाद शास्त्री (१८५३–१९३१) का उल्लेख पहले ४७ चर्यापद के सिलसिले मे किया जा चुका है। वे उपन्यासकार और अच्छे निबधलेखक भी थे। उनके दो उपन्यास है—'बेणेर मेये' तथा 'काचनमाला'। भारतीय साहित्य, धर्म तथा सभ्यता के सबध मे उनके लेख विशेष महत्वपूर्ण हैं। उनका लिखा 'वाल्मीकिर जय' नामक गद्यकाव्य बडी सुदर और प्रभावोत्पादक बंगला मे लिखा गया है।

राष्ट्रीय आदोलन की शुरुआत १८५७ के आसपास हो चुकी थी। १८८५ मे राष्ट्रीय महासभा की स्थापना से इसे बल मिला और १९०५ मे लार्ड कर्जन द्वारा किए गए बगाल के विभाजन ने इसमे आग फूंक दी। स्वदेशी का जोर बढा और भाषा तथा साहित्य पर भी इसका गहरा प्रभाव पडा। सन् १९१३ मे रवीद्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिलने से बगाल तथा भारत मे राष्ट्रीय भावना की प्रबलता बढ गई और बँगला साहित्य मे एक नए युग का आरभ हुआ जिसे हम 'रवीद्रनाथ युग' की संज्ञा दे सकते हैं।

रवीद्रनाथ ठाकुर (१८६१–१९४१) मे महान् लेखक होने के लक्षण शुरू से ही देख पडने लगे थे। क्या कविता और क्या नाटक, उपन्यास और लघु कथा, निबंध और आलोचना, सभी मे उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने नया चमत्कार उत्पन्न कर दिया। उनके विचारो और शैली ने बँगला साहित्य को मानो नया मोड दे दिया। व्यापक दृष्टि और गहरी भावना से संपृक्त उत्कृष्ट सौंदर्य तथा अज्ञात की रहस्यमय अनुभूति उनकी रचनाओ मे स्थान स्थान पर अभिव्यक्त होती देख पड़ती है। गीत रचनाकार के रूप में वे अद्वितीय

हैं। प्रेम, प्रकृति, ईश्वर और मानव पर लिखे गए उनके गीतों की सख्या २०७ से ऊपर है। ये गीत परमात्मा और आधिदैविक शक्ति की रहस्यमय भावना से ओतप्रोत हैं, इस कारण संसार के महान् रहस्यवादी लेखकों मे उनकी गणना की जाती है। उनके निबध स्वस्थ चितन एवं सुस्पष्ट विवेचन के लिये प्रसिद्ध है। वे बुद्धिपरक भी हैं तथा कल्पनाप्रधान भी, यार्थार्थिक भी है और काव्यमय भी। इनके उपन्यास तथा लघुकथाएँ तथ्यात्मक, नाटकीयता पूर्ण एव अतंर्दृष्टि प्रेरक हैं। वे अंतरराष्ट्रीयता एवं मानव एकता के बराबर समर्थक रहे हैं। उन्होने अथक रूप से इस बात का प्रयत्न किया कि भारत अपनी गौरवपूर्ण प्राचीन बातों की रक्षा करते हुए भी विश्व के अन्य देशो से एकता स्थापित करने के लिये तत्पर रहे।

रवींद्रनाथ के समसामयिक लेखकों मे कितने ही विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके नाम है—१. गोविंदचंद्रदास, कवि; २ देवेंद्रनाथ सेन, कवि; ३ अक्षयकुमार बडाल, कवि; ४. श्रीमती कामिनी राय, कवयित्री, ५. श्रीमती सुवर्णकुमारी देवी, कवयित्री; ६ अक्षयकुमार मैत्रेय, इतिहासलेखक; ७. रामेंद्रसु दर त्रिवेदी, निबधलेखक, वैज्ञानिक एव दर्शनशास्त्री; ८. प्रभातकुमार मुखर्जी, उपन्यासकार तथा लघुकथा लेखक; ९. द्विजेंद्रलाल राय, कवि तथा नाटककार (दे० द्विजेंद्रलाल राय); १० क्षीरोदचद्र विद्याविनोद, लगभग ५० नाटको के प्रणेता, ११ राखालदास बंद्योपाध्याय, इतिहासकार और ऐतिहासिक उपन्यासो के लेखक, १२ रामानद चटर्जी, सुप्रसिद्ध पत्रकार जिन्होने ४० वर्ष तक माडर्न रिव्यू तथा बँगला प्रवासी का सपादन किया, १३. जलधर सेन, उपन्यासलेखक तथा पत्रकार; १४. श्रीमती निरुपमा देवी तथा १५ श्रीमती अनुरूपा देवी, सामाजिक उपन्यासो की लेखिका।

आधुनिक बँगला के सर्वप्रसिद्ध उपन्यासकार शरच्चद्र चटर्जी (१८७६–१९३८) माने जाते है। सरल और सुदर भाषा मे लिखे गए इनके कुछ उपन्यास ये है- श्रीकात, गृहदाह, पल्ली समाज, देना पावना, देवदास, चद्रनाथ, चरित्रहीन, शेष प्रश्न आदि (दे० शरच्चद्र)।

यद्यपि समस्त बँगाल प्रदेश मे परिनिष्ठित बँगला का ही साहित्य मे विशेष प्रयोग होता है, फिर भी बहुत से ग्रथ कलकत्ता तथा आस पास की बोलचाल की भाषा मे लिखे गए है तथा लिखे जा रहे है। उपन्यासो मे, रंगमच पर तथा रेडियो और सिनेमा मे उसका प्रयोग बहुलता से होता है। पिछले ३०–३५ वर्ष मे, रवींद्रयुग की प्रधानता होते हुए भी, कितने ही युवक लेखको ने नग्न यथार्थवाद के पथ पर चलने का प्रयत्न किया, यद्यपि इसमे अब यथेष्ट शिथिलता आ गई है। इसके बाद कुछ लेखकों मे समाजवाद तथा साम्यवाद (कम्यूनिज्म) की भी प्रवृत्ति देख पडी। इसी तरह अंग्रेजी तथा रूसी साहित्य का भी बहुत कुछ प्रभाव बँगला लेखको पर पडा। किंतु वर्तमान बँगला साहित्य में कथासाहित्य की ही विशेष प्रधानता है, जिसका लक्ष्य मानव जीवन और मानव स्वभाव का सम्यग् रूप से चित्रण करना ही है। कितने ही लेखक रवींद्र तथा शरद् बाबू की परंपरा पर चलने का प्रयत्न कर रहे है। कुछ के नाम ये है—(कवियो मे) जतींद्रमोहन बागची, करुणानिधान बंद्योपाध्याय, कुमुदरंजन मलिक, कालिदास राय, मोहितलाल मजूमदार, श्रीमती राधारानी देवी, अमिय चक्रवर्ती प्रेमेंद्र मित्र, सुधींद्रनाथ दत्त, विमलचद्र घोष, विष्णु दे, इत्यादि। गद्यलेखको मे इनके नाम लिए जा सकते हैं—ताराशकर बैनर्जी, विभूतिभूषण बैनर्जी (पथेर पाचाली, आरण्यक के लेखक जिन्होने बगाल के ग्राम्य जीवन का चित्रण किया है), राजशेखर वसु (हास्य कथालेखक), आनदशकर राय, डा० बलाईचाँद मुखर्जी, सतीनाथ भादुडी, मानिक बैनर्जी, शैलजानद मुखर्जी, प्रथमनाथ बसु, नरेंद्र मित्र, गौरीशंकर भट्टाचार्य, समरेश वसु, वाजिद अली, बुद्धदेव, काजी अब्दुल वदूद, नरेंद्रदेव, डा० सुकुमार सेन, गोपाल हालदार, श्रीमती शातादेवी, सीतादेवी, अवधूत, इत्यादि।

यहाँ श्री अवनींद्रनाथ ठाकुर (१८७१–१९५१) का भी उल्लेख कर देना चाहिए। उन्होने कितनी ही पुस्तकें बालकों की दृष्टि से लिखी और उनकी चित्रसज्जा स्वय प्रस्तुत की। ये पुस्तके कल्पनात्मक साहित्य के अन्य प्रेमियो के लिये भी अत्यत रोचक हैं। उन्होने कुछ छोटे छोटे नाटक भी लिखे और कला पर कुछ गभीर निबध भी प्रकाशित किए। इसी तरह योगी अरविंद घोष का भी नाम यहाँ लिया जाना चाहिए जिनकी महत्वपूर्ण रचनाओ से बँगला साहित्य की श्रीवृद्धि मे सहायता मिली।

यद्यपि विभाजन के पूर्व कुछ मुसलिम राजनीतिज्ञो की राय थी कि बंगला मे मुसलिम भावनाओ से प्रेरित स्वतत्र मुसलिम साहित्य का विकास होना चाहिए किंतु श्रेष्ठ मुसलिम लेखकों ने भाषा मे इस तरह के पार्थक्य की कभी कल्पना नही की, भले ही कुछ लेखको ने अपनी कृतियो मे हिंदुओं की अपेक्षा अधिक अरबी फारसी शब्दो का प्रयोग करना शुरू कर दिया। पुराने मुसलिम कवियो मे कैकोबाद अधिक प्रसिद्ध है और उपन्यासलेखको मे मशरफ हुसेन का नाम लिया जा सकता है जिनके जगनामा की तर्ज पर लिखित 'विषाद सिधु' के एक दर्जन से अधिक सस्करण प्रकाशित हो चुके है। शिक्षित मुसलिम समाज मे कितने ही लेखक उपन्यास, कहानी, आलोचना तथा निबध लिखने मे ख्याति प्राप्त कर रहे है। उपन्यासकार काजी अब्दुल वदूद का नाम ऊपर लिया जा चुका है। उन्होने रवींद्र साहित्य पर विवेचनात्मक पुस्तक लिखने के बाद गटे पर भी एक ग्रथ दो खडो मे प्रकाशित किया। केंद्रीय सरकार के पूर्वकालीन वैज्ञानिक अनुसधान मंत्री हुमायूँ कबीर बँगला के प्रतिभावान् कवि तथा अच्छे गद्यलेखक है। कुछ अन्य मुसलिम लेखको के नाम ये है—(कवि) गुलाम मुस्तफा, अब्दुल कादिर, बदे अली, फारुख अहमद, एहसान हबीब आदि; (गद्यलेखक) डा० मुहम्मद शहीदुल्ला, अबू सैयिद अयूब, मुताहर हुसेन चौधरी, श्रीमती शमसुन नहर, अबुल मंसूर अहमद, अबुल फजल, महबूबुल आलम। विभाजन के बाद यद्यपि पाकिस्तान सरकार ने प्रयत्न किया कि पूर्वी बगाल के मुसलमान अपनी भाषा अरबी लिपि में लिखने लगे, पर इसमे सफलता नही मिली। मुसलिम छात्रो तथा अन्य लोगो ने इस प्रयत्न का तथा बगालियो पर उर्दू लादने का जोरदार विरोध किया। बंगला की उन्नति पर वहाँ इसका क्या प्रभाव पडेगा, इसका उत्तर भविष्य ही देगा। अभी इस सबध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

[सु० कु० चा०]

बंगाल के नवाब १७०७ मे औरंगजेब के देहात के बाद केंद्रीय मुगल सत्ता का क्रमश ह्रास होने लगा। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य के विभिन्न भागो मे केंद्र से पृथक् हो जाने की प्रवृति प्रकट होने लगी और बाद के मुगल बादशाह नाम के

शासक रह गए। प्रांतीय सूबेदार वस्तुतः उनसे स्वतन्त्र हो गए और मुगल बादशाहों के प्रति उनकी निष्ठा मात्र सैद्धांतिक रह गई। तभी से बंगाल के नवाब भी सभी व्यावहारिक कार्यों के लिये अपने को स्वतन्त्र समझने लगे।

मुर्शिद कुली ज्फर खाँ, जिसे औरंगजेब ने १७०० में बंगाल का दीवान नियुक्त किया था, १७१३ में बंगाल का नायब सूबेदार और १७१७ में सूबेदार बन बैठा। वह बंगाल की राजधानी ढाका से मुर्शिदाबाद हटा ले गया। वह शक्तिशाली और योग्य प्रशासक था। उसने आदेशों का पालन सख्ती से कराया। जमींदारों से लगान वसूली के लिये उसने कड़ी कार्रवाई की और अंग्रेज व्यापारियों को भी चुंगी की वही रकम अदा करने के लिये मजबूर कर दिया जो भारतीय व्यापारी देते थे। उसके शासन के समय "बंगाल की जनता ने राहत की साँस ली और उसे सुख समृद्धि का अवसर मिला।"

१७२७ में मुर्शिदकुली के देहांत के बाद उसका दामाद शुजाउद्दीन मुहम्मद खाँ बंगाल का नवाब हुआ। उसके शासनकाल में बिहार का सूबा, जिसकी पूर्वी सीमा ईस्टर्न रेलवे लूप पर स्थित साहबगंज के निकटस्थ तेलियागढ़ी तक पहुंच चुकी थी, शाहंशाह मुहम्मद शाह द्वारा १७३३ में बंगाल के सूबा से जोड़ दिया गया और अलीवर्दी को बिहार का डिप्टी गवर्नर बनाकर भेजा गया। उसने यूरोपीय व्यापारियों पर अपना शासन कड़ाई से लागू किया। १८वीं शताब्दी के कुछ भारतीय लेखकों के अनुसार उसके शासन-काल में बंगाल में शांति और समृद्धि व्याप्त थी। १३ मार्च, १७३९ को उसके देहांत के बाद उसका लड़का सरफराज बंगाल का मसनद-दार बना। सरफराज में न तो वह योग्यता थी और न वह चरित्र-बल ही था जिससे किसी राज्य का शासन कर पाना संभव होता है। उसे अपनी अयोग्यता की भारी कीमत चुकानी पड़ी। उसे गद्दी तो छोड़नी ही पड़ी अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा।

उसकी नालायकी का फायदा उठाकर और उसके भाई हाजी अहमद का प्रोत्साहन पाकर बिहार के डिप्टी गवर्नर अलीवर्दी ने एक बड़ी फौज के साथ बंगाल के लिये कूच कर दिया और १० अप्रैल, १७४० को राजमहल के निकटवर्ती गिरिया में हुई पहली ही लड़ाई में उसे हराकर बंगाल, बिहार और उड़ीसा की मसनद पर कब्जा कर लिया। शैशव में ही अनेक विपत्तियाँ झेल लेने के कारण अलीवर्दी का चरित्र इतना पक्का बन चुका था कि वह अपने वैयक्तिक जीवन में बुराइयों से मुक्त रहा और उसमें एक अच्छे शासक के गुण विकसित हो गए। गुलाम हुसेन नामक एक समसामयिक इतिहासकार ने उसके बारे में लिखा है कि 'वह एक बुद्धिमान, कुशाग्रबुद्धि और दिलेर सिपाही था। शायद ही कोई ऐसे गुण हों जो उसमें न रहे हों।' उसने प्रांत के यूरोपीय व्यापारियों पर प्रभावकारी नियन्त्रण कायम रखने के लिये भरसक कुछ भी उठा न रखा। उसने उनके व्यापार को प्रोत्साहन दिया और उनके प्रति उसकी कोई दमनात्मक प्रवृत्ति भी नहीं थी, फिर भी कभी परिस्थितियों से बाध्य होकर उसे उनसे धन वसूल करना पड़ता था। उसे अपने अधिकांश शासनकाल में विश्रांति और शांति नहीं मिल सकी क्योंकि १७४२ से ही बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर मराठा आक्रमण का सिलसिला बराबर जारी रहा और उसके दो अफगान सेनापतियों ने भी उसके खिलाफ बगावत कर दी थी। अंत में उसने मई या जून, १७५१ में मराठों से संधि कर ली जिसके अनुसार उसने बंगाल से १२ लाख रुपया चौथ देना स्वीकार कर लिया और उड़ीसा के एक भाग का लगान वसूल करने का अधिकार भी उन्हें दे दिया। बंगाल की सीमा जालेश्वर के निकट स्वर्णरेखा नदी तक निर्धारित कर दी गई और मराठों से यह समझौता हो गया कि वे भविष्य में इसका उल्लंघन न करेंगे।

अलीवर्दी ९ (अथवा १०) अप्रैल, १७५६ को इस संसार से विदा हो गया और उसके प्रिय पौत्र तथा उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला ने शासन का भार संभाला। उसने शीघ्र ही शहमतजंग की पत्नी घसीटी बेगम और पूर्णिया के गवर्नर शौकतजंग जैसे अपने प्रतिद्वंद्वी रिश्तेदारों की मक्कार हरकतों और साजिशों को नाकामयाब कर दिया। उसने घसीटी बेगम को शीघ्रता और शांति के साथ अपने राजमहल में बुला लिया और उसकी संपत्ति पर कब्जा कर लिया। शौकत जंग अक्टूबर, १७५६ में मनिहारी में हुई लड़ाई में सिराजुद्दौला द्वारा परास्त कर दिया गया और मारा गया।

किंतु इसी बीच अंग्रेजों के साथ उसके संबंध शत्रुतापूर्ण हो गए। इसके मूल में दोनों के स्वार्थों की टक्कर थी। सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों की कुछ हरकतों को प्रांत के शासक के रूप में अपनी प्रभुसत्ता के लिये हानिकारक समझा और इनके विरुद्ध प्रतिवाद किया। उसने अंग्रेजों पर तीन विशेष आरोप किए। (१) उन्होंने बिना उसकी अनुमति के कलकत्ता में किलेबंदी शुरू की है और उसको मजबूत बनाया है, (२) दस्तकों के अधिकार का दुरुपयोग किया है अर्थात् कंपनी के मुक्त व्यापार का उपयोग अपने निजी व्यापार के लिये किया है, और (३) नवाब के विरुद्ध आचरण करनेवाले उसके अधिकारियों को आश्रय दिया है। समसामयिक दस्तावेजों की सतर्क परीक्षा से यह सिद्ध हो गया है कि इन तीनों अभियोगों में से कोई भी अभियोग निराधार नहीं था।

दोनों में अनिवार्य संघर्ष शीघ्र ही शुरू हो गया। ४ जून, १७५६ को सिराजुद्दौला के सिपाहियों ने मुर्शिदाबाद के निकट कासिमबाजार स्थित अंग्रेजी फैक्टरी पर कब्जा कर लिया। इसके बाद २० जून को नवाब ने कलकत्ता पर भी अधिकार कर लिया। नवाब की फौजों ने जिस समय कलकत्ता पर घेरा डाल रखा था कुछ अंग्रेज सिपाही गिरफ्तार कर लिए गए और यह भी संभव है कि कुछ लोग हताहत भी हुए हों किंतु कालकोठरी (ब्लैक होल) के संबंध में प्रचलित हॉलवेल की उस कहानी पर, जिसके अनुसार बहुसंख्यक अंग्रेज मार डाले गए थे, आधुनिक लेखकों ने ठोस आधार पर संदेह व्यक्त किया है। जनवरी, १७५७ में मद्रास से ऐडमिरल वाटसन और कर्नल क्लाइव के नेतृत्व में पर्याप्त कुमक आ जाने के बाद अंग्रेजों ने पुनः कलकत्ता पर अधिकार कर लिया। ९ फरवरी, १७५७ को नवाब ने अंग्रेजों से एक संधि की जिसकी शर्तें कंपनी के लिये सम्मानजनक तो थीं ही, लाभदायक भी थीं।

कुछ ही महीनों में नवाब को क्रूर नियति का शिकार बनना पड़ा। मार्च, १७५७ में अंग्रेजों ने चंद्रनगर स्थित फ्रांसीसी फैक्टरी पर कब्जा कर लेने के बाद फ्रांसीसियों को, जो अंग्रेजों के खिलाफ नवाब के सहज मित्र थे, बंगाल से निकाल बाहर किया और प्रधान सेनापति

मीर जाफर तथा दुर्लभराम जैसे नवाब के प्रमुख सैनिक और नागरिक प्रशासनाधिकारी, प्रांत के प्रमुख महाजन जगत सेठ तथा कुछ अन्य लोगों ने उसके विरुद्ध अंग्रेजों से मिलकर एक षड्यंत्र रचा जिसे २० जून को अंतिम रूप दे दिया गया। उन्होंने सिराजुद्दौला को हटाकर बंगाल की गद्दी पर मीर जाफर को बैठाने का निश्चय किया। क्लाइव ने शीघ्र ही नवाब के विरूद्ध अभियान शुरू कर दिया और २२ जून की मध्यरात्रि में भागीरथी के तट पर स्थित प्लासी की अमराई मे अपनी फौजों के साथ आ धमका। उस समय सिराजुद्दौला भी वहीं डेरा डाले हुए था। इसी स्थान पर २३ जून को जो लड़ाई हुई उसका निर्णय पूरी तरह अंग्रेजों के पक्ष मे चला गया क्योंकि इस लडाई मे नवाब को उन्ही लोगों ने बुरी तरह धोखा दे दिया जिनसे निष्ठा पाने का वह दावेदार था। जिस समय नवाब दोस्तों और सहायकों की खोज मे बिहार की ओर भागा जा रहा था राजमहल के पास रास्ते में ही उसे एक मुसलमान फकीर ने पहचान लिया। फकीर की उससे पुरानी अदावत थी। उसने नवाब का पता उसके दुश्मनों को दे दिया। नवाब को मुर्शिदाबाद घसीट लाया गया जहाँ २ या ३ जुलाई, १७५५ को उसकी नृशंस हत्या कर दी गई।

मीर जाफर को शीघ्र ही बगाल का मसनद दे दिया गया किंतु वह प्रशासन के लिये सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुआ। उसने अंग्रेजों का विश्वास खो दिया। उन्होंने १७६० मे उसे गद्दी से हटा दिया और उसके स्थान पर उसके दामाद मीर कासिम को बैठा दिया। मीर कासिम योग्य शासक था किंतु बगाल के आतरिक व्यापार के नियमन और अपने प्रभुत्व को प्रभावकर ढंग से क्रियान्वित करने के लिये उसने जो प्रयत्न किए उससे अंग्रेजो के साथ उसका संघर्ष छिड गया। उसे कई मुठभेडो में मात खानी पड़ी। अंत मे १७६३ मे उसने बिहार छोड़ दिया। इसके बाद उसने दिल्ली के सम्राट् शाह आलम द्वितीय तथा अवध के नवाब शुजाउद्दौला के सहयोग से अपनी खोई हुई शक्ति को पुन: प्राप्त करने का प्रयत्न किया किंतु उसका यह प्रयत्न भी विफल हो गया क्योंकि २३ अक्टूबर, १७६४ को बक्सर की लड़ाई मे उसके मित्रों की समिलित शक्ति पूरी तरह परास्त हो गई। बक्सर युद्ध भारतीय इतिहास का एक निर्णायक युद्ध है क्योंकि इसने प्लासी युद्ध के परिणामो की पूर्ति करके अंग्रेजो को बंगाल, बिहार और उड़ीसा का वास्तविक प्रभु बना दिया। अगस्त, १७६५ मे सम्राट् शाह आलम ने उन्हे जो दीवानी प्रदान की उससे उनकी इस वास्तविक स्थिति को कानूनी मान्यता भी प्राप्त हो गई। इस दीवानी से अंग्रेजों को लगान वसूली और नागरिक न्याय करने के अधिकार हासिल हो गए। मीर जाफर के लड़के और उत्तराधिकारी नजीम-उद्दौला ने २० फरवरी, १७६५ को ही अंग्रेजो से एक ऐसा समझौता कर लिया था जिससे पूरी तरह से उसके हाथ कट चुके थे और गद्दी पर उसका किसी तरह का कोई अधिकार नहीं रह गया था। इसके बाद बंगाल के नवाब, प्रशासकीय अधिकार के समस्त लक्षणों से वंचित होकर अंग्रेजों के अधीन हो गए और वस्तुत. उनके बंदियो जैसा जीवन बिताने लगे। [का० कि० द०]

बंदरगाह समुद्रतट पर जलयानो को आश्रय देनेवाले स्थलों को, जहाँ जलयान रुक सकें, नवीन जलयानो का निर्माण और मरम्मत हो सके, जलयान झंझावातो से सुरक्षित रखे जा सकें तथा जहाँ अंतर्देशीय तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक जलयान विभिन्न सामग्रियों का आदान प्रदान कर सकें, बंदरगाह कहते हैं। ये देश के लिये बाहरी द्वार का भी काम देते हैं।

जल यातायात की प्रगति के साथ साथ व्यापार तथा पोत सुरक्षा के लिये बंदरगाह बराबर विकसित होते गए। अतः बंदरगाहों का इतिहास जल यातायात के उत्थान और पतन के साथ संबद्ध है। प्राचीन काल मे टाइर, सिकंदरिया तथा रोडेश प्रमुख भूमध्य-सागरीय बंदरगाह थे। रोम तथा यूनान के ऐतिहासिक युग में उद्योग एव सुरक्षा के दृष्टिकोण से बदरगाहों की उन्नति हुई, क्योकि नाविको की विचरणशीलता की दृष्टि से यह युग प्रमुख था। यूरोप मे प्राचीन काल से ही अनेक प्राकृतिक बंदरगाह थे जिनका बडे, चौड़े तथा अधिक भारवाले जलयानो एवं मालवाही पोतो के आविष्कार के साथ साथ समयानुकूल नवीनीकरण होता गया। बंदरगाहो को नया स्वरूप देने का सर्वप्रथम प्रयास इंग्लैंड मे किया गया जो १८ वीं शताब्दी मे अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। बनावट के अनुसार बंदरगाह दो प्रकार के होते है: १. प्राकृतिक तथा २. कृत्रिम।

प्राकृतिक बंदरगाह — प्राकृतिक बंदरगाह प्राय: खाड़ियों, ज्वार-नद मुख, पश्चजल तथा परिवेष्ठित खाडियो पर निर्मित होते है। यहाँ बिना किसी बाह्य बनावट या उपलब्धियों के ही जलयानों का गमनागमन सुलभ होता है। प्राचीन काल के प्राय. सभी बंदरगाह इसी श्रेणी के हुआ करते थे। अब इस युग मे इसके अतर्गत कुछ नई सुविधाएँ भी जैसे तलेटी की सफाई, गोदी निर्माण आदि अंतर्निहित हैं। इस प्रकार के प्रमुख बदरगाह कराची, बबई, हागकाग, पोर्टमथ, सिडनी, सैनफ्रैंसिसको, न्यूयार्क, मिलफोर्ड, वेल्स आदि हैं। इनमे से न्यूयार्क सर्वप्रमुख बदरगाह है। इसकी विशेषताएँ अधिक पानी की गहराई तथा फैलाव, आवागमन सुलभता एव सुरक्षा है। प्राकृतिक ज्वारनदमुख पर बसे टेम्स, मरसे तथा यागटीसी बदरगाह उल्लेखनीय है। ऐसे भी बंदरगाह है, जो प्राकृतिक एव मानवनिर्मित प्रयासो के सम्मिश्रण से बने है, जैसे प्लाइमथ एवं टेबुल बे बंदरगाह।

कृत्रिम बंदरगाह — कृत्रिम बंदरगाह वे हैं जो समुद्रतट पर तंग अवरोध प्रणाली के अतर्गत कृत्रिम खाडी, पश्चजल या घाट का निर्माण कर बनाए जाते है। ये पूर्ण रूप से बनावटी होते हैं तथा
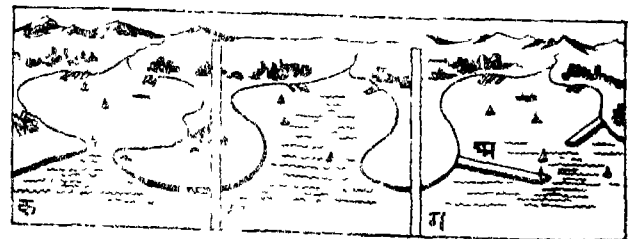
तीन प्रकार के बंदरगाह

क. भूमि से घिरा; ख. असुरक्षित तथा ग. कृत्रिम।

खुले समुद्र में बनाए जाते हैं। इसके अंतर्गत नए नए उपकरणों, यत्रों एवं इंजीनियरिंग द्वारा अच्छे तग अवरोध बनाए जाते हैं, जैसे मद्रास बंदरगाह मे। पश्च जल उस झील को कहते हैं, जो एक पतले

गहरे जलमार्ग द्वारा समुद्र से मिला होता है। इसके द्वारा निर्मित प्रमुख कृत्रिम बंदरगाह लॉस ऐंजेलेस है। लॉस ऐंजेलेस तथा उससे संबंधित सैन पेड्रो एवं लाग बीच को मिलाकर एक प्रमुख तरंगरोध बंदरगाह का निर्माण किया गया है, जो छोटे ज्वारों एवं झंझावातों में समुद्र तक सुरक्षित रहता है।

प्राकृतिक संरचना के अनुसार भी बंदरगाहों का विभाजन किया जा सकता है, जैसे १. पश्चजल द्वारा निर्मित; २. घाट या जेटी द्वारा निर्मित; ३ ज्वार नदमुख द्वारा निर्मित; ४. परिवेष्टित खाड़ी द्वारा निर्मित, ५. तंरगरोध द्वारा निर्मित (अ) जो समुद्रतट से समुद्र के भीतर तक बनाए गए हों; (ब) जो समुद्रतट के समांतर बनाए गए हो; (स) जो खाडियो के एक या दो निकले हुए भागो से लगा बना हो। ६. पूर्व विरचित बंदरगाह; ७. जहाँ क्रम से फैले हुए अनेक द्वीप तरंगरोध का कार्य करें।

कार्यानुसार भी बंदरगाह कई प्रकार के होते हैं, जैसे १. व्यापारिक बंदरगाह, २ नौसेना के बंदरगाह; ३. मत्स्य उद्योग के लिये बने बदरगाह तथा ४. जलयानों के आश्रय हेतु बने बंदरगाह।

व्यापारिक बंदरगाहों के कार्यकलाप तीन प्रकार के होते हैं:

क टर्मिनल (terminal) बंदरगाह — इस तरह के बंदरगाह व्यापारिक जलमार्गों के अंत मे स्थित होते हैं, यहाँ जलयान उस विशेष बंदरगाह की तथा वहाँ के पृष्ठ प्रदेशो की ही सामग्री चढ़ाता या उतारता है, जैसे अमरीका मे स्थित न्यूयार्क बदरगाह।

ख ऐंट्रेपॉट (entrepot) बंदरगाह — बहुत से बंदरगाह ऐसे है जिनका कार्य अन्य बदरगाहो के बीच मध्यस्थ जैसा होता है, इसे मध्यस्थ बंदरगाह कहते हैं। यहाँ माल को उतारकर दूसरे जलयानों मे चढ़ाना, मालखाने में सामान जमा करना अथवा उस माल के परिवर्तित होने पर बाहर भेजना आदि कार्य होते हैं। दक्षिण पूर्व एशिया मे सिगापुर एक महत्वपूर्ण ऐंट्रेपॉट बंदरगाह है, जो विश्व को कच्चे पदार्थों का निर्यात करता है। हागकांग बंदरगाह के कार्य भी इसी प्रकार के है। द्वितीय विश्वमहायुद्ध के समय लंदन बदरगाह का भी इसी प्रकार का कार्यकलाप हो गया था। इस दरगाह मे विश्व के हर कोने से सामान आते थे, जो बाद मे दूसरे जलयानो द्वारा छोटी छोटी संख्या में उत्तर पश्चिमी यूरोप के देशों को निर्यात किए जाते थे, उस समय लदन बदरगाह भी एक ऐंट्रेपॉट बदरगाह के समान था।

स. मुक्त बंदरगाह — इसके अंतर्गत जलयान अपने सामान एक निश्चित चहारदीवारी के भीतर उतार सकते हैं जिसे मुक्त क्षेत्र (freezone) कहते है। यहाँ पर सामान भंडार गृहो मे निःशुल्क रखे जाते है। माल का स्वरूप बदला जाता है या नए रूप मे लाया जाता है। अब माल का विक्रय होता है अथवा विदेशो को दूसरे जलयानो द्वारा निर्यात किया जाता है। इन वस्तुओं के ऊपर किसी प्रकार का कर उसी समय लगता है, जब सामान मुक्त क्षेत्र की चहारदीवारी से निकलकर किसी नगर को जाते हैं। यहाँ की विशेषता यह है कि मुफ्त मे ही तथा बिना किसी प्रकार का कर चुकाए ही मध्यस्थ विनिमय हो जाता है और कर आदि केवल एक बार ही मुक्त क्षेत्र से निकलने पर लगता है। अदन, हांगकाग, काडला ऐसे ही बंदरगाह हैं।

बंदरगाहों के उद्भव और विकास — बदरगाह अंतरदेशीय व्यापार-मार्गों का एक संगमस्थल है, जहाँ स्वदेशी एवं विदेशी वस्तुओं का आदान प्रदान होता है। इस व्यापार की अधिकता या कमी उस बंदरगाह की विशेषताओं के ऊपर निर्भर करती है। अतः एक सुरक्षित तथा अच्छे बंदरगाह की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :

१ समुद्रतट की गहराई अधिक हो जिससे बड़े बड़े जहाज समुद्रतट तक पहुँच सकें, अन्यथा जहाजों को दूर समुद्र मे ही रुकना पड़ेगा और वहाँ से छोटे छोटे स्टीमरो द्वारा व्यापारिक वस्तुओ का आदान प्रदान करना पड़ेगा। इससे व्यय बढ़ जाएगा और अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाएँगी।

२. तट से समुद्र मे फैला तरंगरोध हो जो बंदरगाह के निमित्त काफी लंबी चौडी खाड़ी का निर्माण करे, जिससे वहाँ कई जहाज एक साथ ठहर सकें तथा माल चढाया और उतारा जा सके। इससे यह भी लाभ होगा कि झंझावातों, चक्रवातों एवं आँधियों से, यहाँ खड़े जलयानों की सुरक्षा हो सकेगी।

३. ज्वारनदमुख द्वारा बने बंदरगाह पर ज्वार भाटा का काफी तेज होना आवश्यक है, जिससे बडे बड़े जहाज भीतर तक जा सकें और निकल सके तथा साथ ही साथ नदियो द्वारा जमा की गई बालू तथा मिट्टी की सफाई होती रहे, अन्यथा पेटा को बराबर साफ करने के लिये यंत्रो आदि का उपयोग करना होगा।

४ बंदरगाह का अथवा आस पास की जलवायु इतनी ठंढी न हो कि तटवर्ती समुद्र जम जाता हो अथवा पास के प्रदेशों से प्रायः हिमखड बहकर बंदरगाह के मार्ग को असुरक्षित करते हो।

५ बंदरगाह का पृष्ठ प्रदेश उपजाऊ तथा सघन जनसंख्यावाला होना चाहिए। बदरगाह पृष्ठ प्रदेश के नगरों से रेलो तथा पक्की सड़कों के जाल द्वारा सबंधित हो ताकि आयात एवं निर्यात की वस्तुओ को सुगमता पूर्वक बाँटा और इकट्ठा किया जा सके। पृष्ठ प्रदेश जितना ही विस्तृत, उत्पादक तथा सघन होगा, बदरगाह उतना ही समृद्धशाली एव बृहद् होगा।

६. बदरगाह अगर किसी मुख्य व्यापारिक जलमार्ग पर स्थित हो तो उसका विकास तेजी के साथ होता है।

विश्व मे ऐसे अनेक प्राकृतिक बंदरगाह हैं जिनकी उन्नति उपर्युक्त सुविधाओ के अभाव मे नही हो सकी है, जैसे पश्चिमी कैनाडा, ऐलैस्का, नार्वे तथा दक्षिणी चिली मे स्थित अनेक बदरगाह जिनका पृष्ठ प्रदेश मुख्य रूप से अनुपजाऊ तथा कम जनसंख्यावाला है और जलवायु ठढा है जिससे बदरगाह वर्ष भर व्यापार के लिये खुले नही रहते तथा वस्तुओ की माग की कमी के कारण आयात और निर्यात की वस्तुएँ कम होती हैं।

तरंगरोध — तरगरोध तेज जल के वेग को तथा समुद्र में उत्पन्न झंझावातो को रोकने का कार्य करता है और इस प्रकार यह एक बनावटी चट्टान का कार्य करता है। इसका उपयोग समुद्र की जलतरंग, नदियों की तलेटी मे जमा हो रहे गाद (silt) और समुद्रतट पर जमा हो रहे, बालू के ढेर को रोकने के लिये किया जाता है। तरगरोध का निर्माण इस प्रकार से होना चाहिए जिससे उसके द्वारा अधिकतम प्रलयकारी जलप्रवाहों को अवरुद्ध किया जा सके। इसके साथ ही साथ वहाँ समुद्रतल गहरा रहे तथा जल, वायु

एवं ज्वार भाटा द्वारा अधिकतम लाभ हो सके। जलतरंगों का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि वायु के समुद्रतट पर तेज या मध्यम गतिवाली जलतरंगें पैदा होती हैं। यही नहीं, बल्कि जल तरंगों का अधिक विस्तृत या संकुचित होना इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ वायु की गति क्या है, वह कितना रास्ता तय करके आ रही है तथा उस हवा की दिशा किस ओर है। अधिक प्रभावशाली जल प्रवाह में तारतम्य होता है। जलप्रवाह की अत्यधिक ऊँचाई समुद्रतट से दूरी के ऊपर आश्रित है। तरंगरोध तीन प्रकार के होते है: १. अनगढ़े पत्थर के टीले, २. ऊर्ध्वाधर टीले, तथा ३ मिश्रित टीले।

१. अनगढ़े पत्थर के टीले — ये टीले छोटे बड़े पत्थरो के टुकडो को एक के ऊपर एक जमाकर बनाए जाते हैं तथा इनकी ऊपरी सतह पर बहुत बड़े बड़े पत्थर के टुकड़े होते है, जो जलधाराओं द्वारा नहीं बहाए जा सकते। ऐसे टीले का उपयोग उन स्थलो पर होता है, जहाँ पर समुद्र का तल समान तथा सुदृढ़ नहीं होता तथा जहाँ समुद्र का पानी छिछला होता है। प्राकृतिक तथा उपयुक्त पत्थरों के न होने के कारण ऊपरी पट्टी कंक्रीट द्वारा बनाई जाती है। एक उपयुक्त रेखाकन के अंतर्गत तरगरोध के चारों ओर स्थायी तथा खडी ढाल एवं ऊपर बड़े बड़े पत्थर के ढेर टोपीनुमा जमाकर दिए जाते हैं जो जलतरंगों द्वारा नही हटाए जा सकते।

२. ऊर्ध्वाधर टीले — ये टीले तरंगरोध के लिये वहाँ प्रयुक्त होते है, जहाँ पर साधारणतया समुद्र की गहराई अधिक होती है तथा जहाँ समुद्रतल सुदृढ़ होता है। इसका निर्माण चाहे ईंटो अथवा कक्रीट या प्रबलित कायसों (reinforced caissions) द्वारा, जो बालू अथवा बजरी से भरे होते हैं, किया जाता है। कभी कभी ये इस्पात, लकडी या कक्रीट द्वारा भी बनाए जाते हैं।

३. मिश्रित टीले — जहाँ तट के समुद्रतल की बनावट में दृढ़ तथा कमजोर दोनो प्रकार के अविकसित समुद्रतल का समिश्रण होता है, वहाँ किसी एक प्रकार के तरंगरोध का उपयोग नही किया जा सकता, बल्कि दोनो तरह की संरचनाओ को मिलाकर तरगरोध का निर्माण किया जाता है, जिसको मिश्रित टीले के नाम से पुकारा जाता है।

जलयान गोदी — गोदी वह स्थान है जहाँ पर जलयान आकर आश्रय पाते हैं और जहाँ पर जहाजों का निर्माण, सफाई, मरम्मत आदि की जाती है। ये दो प्रकार की होती हैं —: अ सूखी गोदी तथा ब सजल गोदी।

अ. सूखी गोदी — यह अधिकतर जहाजों के निर्माण, मरम्मत तथा अन्य प्रकार के निर्माण हेतु काम मे लाई जाती है। यह भी दो प्रकार की होती है— १. शुष्क गोदी तथा २. तिरती गोदी।

१ शुष्क गोदी बेसिन के आकार की होती है जिसके भीतर से पानी सरलता से बाहर किया जा सकता है और इस प्रकार जहाजो का निर्माण, मरम्मत आदि शुष्क समुद्र गोदी में किया जा सकता है।

प्राचीन काल मे समुद्रतट पर बेसिन की तरह खुदाई की जाती थी, फिर उसमे जहाज को लाया जाता था, मुहाने पर ऊँची दीवार बना दी जाती थी और फिर उसके अंदर का पानी पंप द्वारा बाहर निकाल दिया जाता था। इसी से शायद प्राचीन नाविकों ने इसे शुष्क गोदी कहा है। १९वीं तथा २०वीं शताब्दी में इसमें महान् परिवर्तन हुए और अब आधुनिक तरह की शुष्क गोदियाँ हैं जिनमें पानी भरने और निकालने का नवीनतम प्रयोग हो रहा है। साथ ही इन यंत्रों की क्षमता, जल्द मरम्मत, क्रेन तथा यंत्रचालित प्रवेशद्वार की वजह से कम समय मे अधिकतम कार्य किया जा रहा है। इनका निर्माण समुद्रतट की स्थिति, मिट्टी एवं वहाँ प्राप्त होनेवाली वस्तुओ के ऊपर निर्भर करता है, इसके लिये निम्न बातें होनी आवश्यक है . (क) शुष्क गोदी की लबाई चौडाई तथा गहराई अधिक होनी चाहिए जिससे उसके अंतर्गत बड़े से बड़ा जहाज सुगमतापूर्वक आ जा सके, (ख) गोदी सुदृढ़ हो जो जहाज के भार को वहन कर सके, (ग) चारों ओर इतना स्थान हो जिससे सुगमतापूर्वक जहाज से माल उतारा एव चढाया जा सके तथा (घ) जल का दबाव अधिक न हो, या उसे वहन करने के लिये समुद्र की तलेटी को सुदृढ़ बनाया जा सकता हो। १९वी शताब्दी के आरंभ काल मे इस प्रकार के निर्माण मे कई वर्ष लग जाते थे, अत्यधिक धन व्यय होता था, इस तरह से यह एक बहुत बडा निर्माण कार्य होता था। धीरे धीरे समय के अनुसार एव आवश्यकता की तीव्रता ने नए नए आविष्कारो को जन्म दिया और २०वी शताब्दी में इनका बनाया जाना सरल कार्य हो गया। दूसरे महायुद्ध के समय में अमरीका ने दो शुष्क गोदियों का निर्माण किया जिनकी लंबाई १,१०० फुट, चौडाई १३४ फुट तथा गहराई ३८ फुट थी।

२. तिरती गोदी के अंतर्गत ऐसा प्रबंध होता है कि मरंमत, सफाई आदि के लिये जहाज को पूर्ण रूप से हवा मे क्रेनों द्वारा उठा लिया जाता है। तिरती गोदी की आकृति यू (U) आकार की होती है, समय पडने पर भीतरी दबाव द्वारा गोदी मे पानी भर दिया जाता है और आवश्यकता समाप्त होने पर पप द्वारा पानी बाहर निकाल दिया जाता है। इसके अदर सर्वप्रथम छोटे छोटे जलयान ही लाए जाते थे पर अब हर तरह के जलयानो के लिये विशेष रूप की गोदियाँ है। १९ वी शताब्दी मे लकड़ी द्वारा निर्मित तिरती गोदी का आविष्कार किया गया और ये इतनी अधिक प्रचलन मे आई कि अब इनका उपयोग अमरीका मे व्यापारिक जलयानों के लिये किया जाता है। जैसे जैसे अच्छी लकड़ियाँ दुर्लभ होती गईं, आविष्कार होते गए और अब उनकी जगह इस्पात तथा कांक्रीट ने ले ली है। द्वितीय विश्वमहायुद्ध के समय मे तिरती गोदी का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ, क्योकि इनके द्वारा यह सरल था कि कम से कम समय म जहाजो की मरमत आदि के अधिक से अधिक कार्य, हो जाते थे।

ब. सजल गोदी समुद्र मे तैरती रहती है और जहाजों के आगमन के साथ ही तुरंत काम मे लाई जाती है जिससे जहाजों में माल उतारने और चढाने का कार्य सुगम हो जाता है। यह गोदी दो प्रकार की होती है, (१) खुली तथा (२) बद। इनका प्रयोग वहाँ अधिक होता है, जहाँ ज्वार भाटा मे अधिक अतर होता है।

खुली प्रकार की गोदी का निर्माण तथा उपयोग सरल है और इनका उपयोग मुख्यतया अमरीका में होता है, जैसे न्यूयार्क तथा सैनफ्रांसिसको में। यूरोप तथा इंग्लैंड मे अनेक सजल गोदियाँ हैं,

जिन्हें अनेक जलपाशों द्वारा विभक्त कर दिया गया है और जिनमे पानी का चढ़ाव या उतार समयानुकूल बदला जा सकता है। इस तरह की गोदी को बंद या बेसिन गोदी कहते हैं। इसमे प्रवेशद्वार के फाटक द्वारा भीतर और बाहर के जल की सतह को समान ऊँचाई पर लाया जाता है। ब्रसल्ज एवं साउथैप्टन बंदरगाहो में इसी प्रकार की गोदियाँ हैं।

सजल गोदी की संरचना दो प्रकार की होती है : १. वे संरचनाएँ जिनका निर्माण समुद्रतट के समातर किया जाता है, उन्हे उपांत या घाट कहते हैं तथा २. वे संरचनाएँ जो समुद्र के भीतर निकली हुई बनाई जाती हैं, उन्हे स्तंभ कहते हैं।

भारत के बंदरगाह — हमारे देश के ६,४०० किलोमीटर लंबे समुद्रतट पर लगभग २०० बदरगाह हैं। इनमें से छह प्रथम श्रेणी के, २२ मध्यम श्रेणी के तथा १४३ छोटे और शेष अनुपयुक्त बदरगाह है। समुद्रतट के कम कटे फटे होने के कारण हमारे यहाँ अच्छे बदरगाहों की कमी है। कलकत्ता, बंबई, मद्रास तथा कोचीन बदरगाह प्राचीन काल से ही विश्वव्यापार मे अपना स्थान बना चुके है। भारतीय व्यापार की प्रगति एव उन्नति के साथ साथ कुछ नए बंदरगाहों का उदय हुआ जिसमे पूर्वी तट पर विशाखापत्तनम् एवं पश्चिमी तट पर काडला प्रमुख है। काडला बदरगाह के बन जाने से, कराची बदरगाह, के पाकिस्तान मे चले जाने के कारण हुई कमी की पूर्ति हो गई। इसके अतिरिक्त कोकनाडा, कालीकट, कोभीकोड, मगलुरु, पाडेचेरी, मछलीपत्तनम् (मसली पत्तनम्), तूतीकोरीन, नागा पत्तनम्, कारीकल, भावनगर, ओखा, सूरयु, पोरबदर तथा मर्मागोवा मुख्य बदरगाह हैं। भारत का मुख्य व्यापार कलकत्ता, कोचीन, काडला, मद्रास तथा विशाखापत्तनम् द्वारा होता है। बबई सर्वप्रमुख बंदरगाह है जो सबसे अधिक आयात की गई सामग्रियो तथा आने जानेवाले यात्रियो का अधिकतम भार वहन करता है। आयात की तुलना मे यहाँ से निर्यात कम होता है। कलकत्ता मे आयात और निर्यात समान है परतु यात्रियो के दृष्टिकोण से यह कम महत्वपूर्ण है जिससे भारत मे इसका द्वितीय स्थान है। बबई प्रति वर्ष सबसे अधिक जलयानो को आश्रय प्रदान करता है। यात्रियो के गमनागमन मे काडला का दूसरा स्थान है।

बबई भारत का एक प्रसिद्ध प्राकृतिक बदरगाह है, जहाँ पर झंझावातों से जलयानो की सुरक्षा, गहरा समुद्रतट तथा अत्यत समृद्धिशाली पृष्ठप्रदेश है। यह बदरगाह तीन ओर से स्थल द्वारा घिरा हुआ है। यहाँ का पोताश्रय १५ मील लबा तथा ५ मील चौड़ा है। यहाँ जलविद्युत् की सुलभता ने कोयले की कमी को समाप्त कर दिया है अत बबई से लगभग ७० मील दूर तक सभी रेलगाड़ियाँ विद्युत् द्वारा चलाई जाती हैं। यहाँ का मुख्य आयात खाद्यान्न, सूती कपड़े, मशीन, लोहा, इस्पात, मिट्टी का तेल एव रग है। यहाँ का मुख्य निर्यात रुई, तिलहन, ऊन, चमड़ा तथा मैंगनीज है।

कलकत्ता भारत के पूर्वी तट का एक महत्वपूर्ण बंदरगाह है, जो हुगली नदी पर, उत्तर मे रामपुर तथा दक्षिण मे बजबज तक फैला हुआ है। इस विस्तार में अनेक जेटी, गोदाम तथा शुष्क गोदी है। नदी पर स्थित होने के कारण इसकी सतह मे निरंतर रेत तथा कीचड़ जमा होता रहता है जिसको हटाने के लिये यंत्रों का उपयोग किया जाता है। बड़े बड़े जलयान ज्वार के समय ही बंदरगाह तक पहुँच पाते हैं। उपर्युक्त असुविधाओ के अतिरिक्त वहाँ पर अच्छे बदरगाह की सभी विशेषताएँ निहित हैं। यहाँ से लगभग ३६० लाख टन वस्तुओ का आयात एवं निर्यात होता है। आयात होनेवाली वस्तुओ मे खाद्यान्न, लोहा, इस्पात, पेट्रोल, मशीने एवं सीमेट हैं। निर्यात होनेवाली वस्तुओ मे कोयला, चाय, तथा लोहा मुख्य हैं।

विशाखापत्तनम्, भारत का द्वितीय प्राकृतिक तथा जलयान निर्माण का एकमात्र बदरगाह है। यह एक नवीन बदरगाह है, जो कलकत्ता एवं मद्रास बदरगाहो के लगभग मध्य मे स्थित है तथा जिसकी स्थापना का मुख्य कारण पृष्ठप्रदेश मे मैंगनीज की प्राप्ति है। यहाँ जलयानों के निर्माण के लिये सुरक्षित एव सुलभ गोदी की बहुलता है। यों तो इसका पृष्ठप्रदेश अर्धविकसित है फिर भी यह बड़ा महत्वपूर्ण बंदरगाह है, तथा गोदीबाड़े की स्थापना से इसकी महत्ता और भी बढ़ गई है। देश के महत्वपूर्ण बदरगाहो मे इसका पाँचवा स्थान है। यहाँ से मैंगनीज, चमड़ा, तिलहन तथा खली बाहर भेजी जाती है तथा सूती कपडे, लोहे का सामान, लकड़ी, मशीन एवं दवाएँ आयात की जाती हैं।

मद्रास एक कृत्रिम बंदरगाह है। यहाँ समुद्र को दो ओर से पक्के बाँधों द्वारा बाँधकर लगभग २०० एकड़ क्षेत्रफल का एक घेरा बना दिया गया है, जहाँ जल की गहराई लगभग ३० फुट तक रहती है। इसमे १५ जलयान एक साथ ठहर सकते है। यहाँ से रुई, तंबाकू, कच्चा लोहा, चमड़ा निर्यात किया जाता है। पेट्रोल, कागज, रसायनक एवं काच का आयात होता है। समुद्रतट के छिछले होने के कारण तथा पृष्ठप्रदेश मे औद्योगिक विकास की शून्यता के कारण यह एक अच्छा एवं प्रसिद्ध बंदरगाह नहीं हो पाया है। धीरे धीरे यह पत्तन भी उन्नति की ओर प्रगति कर रहा है।

कोचीन एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक बदरगाह है। यहाँ पर समुद्र तट के समातर प्राकृतिक तरगरोध की सुविधा है। इसकी विशेषता यह भी है कि यह अदन से बंबई की अपेक्षा ३०० मील निकट पड़ता है, अत. पूर्व जानेवाले जलयान बबई की अपेक्षा यहाँ आना अधिक पसद करते हैं। प्रतिवर्ष यहाँ आने वाले जलयानों की संख्या मे निरतर वृद्धि होती जा रही है। यहाँ से रबर, चाय, कहवा, नारियल, काजू तथा गरम मसाले बाहर भेजे जाते हैं तथा चावल, गेहूँ, मशीन, रसायनक और सूती कपड़े आदि बाहर से मंगाएँ जाते हैं।

काडला बंदरगाह का निर्माण देश विभाजन के फलस्वरूप १९४७ ई० मे हुआ जब कराची बंदरगाह, पश्चिमी पाकिस्तान मे चला गया। भौगोलिक स्थिति की विशेषता के कारण इसने कराची की कमी को पूर्णरूपेण समाप्त कर दिया। काडला बंदरगाह वर्तमान युग का नवीनतम साज सज्जाओ से युक्त एक उन्नतिशील आधुनिक बदरगाह है। यहाँ की सबसे बडी असुविधा यह है कि यह बंदरगाह भूचाल की पेटी में पडता है। अतः इस असुविधा को समाप्त करने के लिये भूकंप प्रभाव से रहित भवनो का निर्माण किया जा रहा है जिससे भूकंप का प्रकोप कम हो सके। [वि० रा० सिं०]

बंदा (सिंह) बहादुर बंदा बैरागी का जन्म कश्मीर के पुंछ जिले के रजौरी क्षेत्र में १६७० ई०, विक्रम संवत् १७२७, कार्तिक शुक्ल १३ को हुआ था। वह राजपूतों के भरद्वाज गोत्र से सबद्ध था और उसका

नाम लक्ष्मणदेव था। १५ वर्ष की उम्र में वह जानकीप्रसाद नाम के एक बैरागी का शिष्य हुआ और उसका नाम माधोदास पड़ा। अनंतर वह रामदास बैरागी का शिष्य हुआ और कुछ समय तक पंचवटी (नासिक) में रहा। यहाँ एक औघडनाथ से योग की शिक्षा प्राप्त कर वह पूर्व की ओर दक्षिण के नंदेर क्षेत्र को चला गया जहाँ गोदावरी के तट पर उसने एक आश्रम की स्थापना की।

३ सितंबर, १७०८ ई० को नंदेर में सिक्खों के दसवें गुरु, गुरु गोविंदसिंह ने इस आश्रम को देखा और उसे सिक्ख बनाकर उसका नाम बंदासिंह रख दिया। पंजाब में सिक्खों की दारुण यातना तथा गुरु गोविंदसिंह के सात और नौ वर्ष के शिशुओं की नृशंस हत्या ने उसे अत्यंत विचलित कर दिया। गुरु गोविंदसिंह के आदेश से ही वह पंजाब आया और सिक्खों के सहयोग से मुगल अधिकारियों को पराजित करने में सफल हुआ। मई, १७१० में उसने सरहिंद को जीत लिया और सतलज नदी के दक्षिण में सिक्ख राज्य की स्थापना की। उसने खालसा के नाम से शासन किया और गुरुओं के नाम के सिक्के चलवाए।

बंदासिंह के नेतृत्व में, सिक्खों के इस नवीन राज्य में व्यक्ति व्यक्ति में भेदभाव न रहा और निम्न से निम्न वर्ग का व्यक्ति शासन में उच्च पद का अधिकारी बना। परंतु उसका राज्य थोड़े दिनों तक ही रहा। बादशाह बहादुरशाह ने स्वयं चढ़ाई कर इसे परास्त किया और १० दिसंबर, १७१० ई० को सिक्खों के कत्लआम का आदेश दिया।

बंदासिंह ने अपने राज्य के एक बड़े भाग पर फिर से अधिकार कर लिया और इसे उत्तरपूर्व तथा पहाड़ी क्षेत्रों की ओर लाहौर और अमृतसर की सीमा तक विस्तृत कर लिया। १७१५ ई० के प्रारंभ में बादशाह फर्रुखसियर की शाही फौज ने अब्दुस् समद खाँ के नेतृत्व में उसे गुरुदासपुर जिले के धारीवाल क्षेत्र के निकट गुरुदासनंगल गाँव में कई मास तक घेर रखा। खाद्य सामग्री के अभाव के कारण उसने ७ दिसंबर को आत्मसमर्पण कर दिया। फरवरी १७१६ को ७९४ सिक्खों के साथ वह दिल्ली लाया गया जहाँ ५ मार्च से १३ मार्च तक प्रति दिन १०० की संख्या में सिक्खों को फाँसी दी गई। १६ जून को बादशाह फर्रुखसियर के आदेश से बंदासिंह तथा उसके मुख्य अधिकारियों के काटकर टुकड़े टुकड़े कर दिए गए।

उसने अति प्राचीन जमींदारी प्रथा का अंत कर दिया था तथा कृषकों को बड़े बड़े जागीरदारों और जमींदारों की दासता से मुक्त कर दिया था। वह सांप्रदायिकता की संकीर्ण भावनाओं से परे था। मुसलमानों को राज्य में पूर्ण धार्मिक स्वातंत्र्य दिया गया था। पाँच हजार मुसलमान भी उसकी सेना में थे। बंदासिंह ने यह घोषणा कर दी थी कि वह किसी प्रकार भी मुसलमानों को क्षति नहीं पहुँचाएगा और वे सिक्ख सेना में अपनी नमाज और खुतबा पढ़ने में स्वतंत्र होंगे। [ग० सि०]

बंधक किसी ऋण के भुगतान अथवा किसी वादे की पूर्ति के लिये प्रतिभूति (सिक्योरिटी) स्वरूप जब किसी वस्तु का उपनिधान (बेलमेंट) किया जाता है तब उसे बंधक कहते हैं। आधि अथवा आधि भी बंधक के ही पर्याय हैं। बंधक उपनिधान में उपनिधाता को आधायक अथवा बंधककर्ता तथा उपनिहिती को आधिमान अथवा बंधक रखनेवाला कहा जाता है। बंधक में वस्तु का हस्तांतरण आवश्यक है। किसी संपत्ति को गिरवी रखने के लिये अथवा धारणाधिकार (लियन) के लिये वस्तु का हस्तांतरण आवश्यक नहीं होता। लेकिन यह हस्तांतरण वास्तविक ही हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रलक्षित हस्तांतरण भी पर्याप्त है।

बंधक रखी जानेवाली वस्तु का स्वामी तो उस वस्तु को बंधक रख ही सकता है; उसके अतिरिक्त व्यापारी अधिकर्ता भी यदि उसके पास स्वामी की रजामंदी से वह वस्तु अथवा उस वस्तु के कागजात हों वह अपने सामान्य व्यापारिक अधिकार क्षेत्र में उस वस्तु अथवा कागजात को उसी प्रकार बंधक रख सकता है मानो उस वस्तु के स्वामी ने उसे यह अधिकार दिया हो। अधिकर्ता (मर्केंटाइल एजेंट) तथा कागजात (डाकूमेंट्स ऑव टाइटिल) का अर्थ भारतीय वस्तु-विक्रय-विधि, १९३० के अनुसार ही लिया जायगा।

इसी प्रकार यदि आधायक या बंधककर्ता के पास किसी की वस्तु किसी विवर्ज्य संविदा (वायडेबिल कंट्रैक्ट) के अधीन उपलब्ध है और भारतीय संविदा विधि की धारा १९ अ के अंतर्गत वह संविदा रद नहीं की गई है तब भी उस वस्तु का बंधक रखना वैध माना जाता है।

आधिमान अथवा बंधक रखनेवाले को उस बंधक वस्तु को केवल ऋण की अदायगी अथवा वादे की पूर्ति तक ही रखने का अधिकार नहीं है वरन् उस ऋण पर जमा हुए ब्याज तथा उस वस्तु को सुरक्षित रखने के लिये किए गए व्यय तथा अप्रत्याशित व्यय की अदायगी के लिये भी रखे रहने का अधिकार होता है। बंधककर्ता यदि ऋण की अदायगी अथवा वादे की पूर्ति निश्चित समय के भीतर नहीं करता तो बंधक रखनेवाले को दो अधिकार उपलब्ध हो जाते हैं। वह ऋण की अदायगी अथवा वादे की पूर्ति के लिये दावा करने के साथ उस वस्तु को अतिरिक्त सुरक्षा के रूप में रखे रह सकता है। या वह उस वस्तु को, बंधककर्ता को उपयुक्त सूचना देने के बाद बेचकर अपने ऋण का भुगतान कर सकता है। यदि वस्तु का मूल्य कम हो तो बकाये की अदायगी का भार बंधककर्ता पर कायम रहता है और यदि वस्तु का मूल्य अधिक प्राप्त होता है तो वह अतिरिक्त धन बंधककर्ता को अदा कर दिया जाता है।

बंधक रखी वस्तु को यदि कोई तीसरा पक्ष कोई क्षति पहुँचाता है तो बंधक रखनेवाला व्यक्ति उस तीसरे पक्ष के विरुद्ध उसी प्रकार कार्यवाही कर सकता है जिस प्रकार वस्तु का वास्तविक स्वामी कर सकता है। [गो० कृ० अ०]

बंबई स्थिति १८° ५५' उ० अ० तथा ७२° ५४' पू० दे०। ब्रिटिश राज्यकाल में बंबई भारत का एक प्रांत था जिसके अंतर्गत आज के महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों के कुछ जिले थे। भारत के स्वतंत्र होने पर बंबई राज्य बना और उसकी राजधानी बंबई रही। सन् १९६० में बंबई राज्य को महाराष्ट्र और गुजरात दो राज्यों में बाँट दिया गया। अब बंबई महाराष्ट्र की राजधानी है। यह कलकत्ते के बाद भारत का सबसे बड़ा नगर है, जो पश्चिमी घाट पहाड़ की ढाल के पास कई छोटे छोटे द्वीपों से निर्मित प्रायद्वीप पर स्थित है। इसके तीन ओर समुद्र है। इसकी जनसंख्या ४१,५२,०५६ (१९६१) है। यहाँ मराठी, हिंदी,

बंदरगाह (देखें पृष्ठ १७६)

बंबई का बंदरगाह
भारत का पश्चिमी मुख्य जलद्वार।
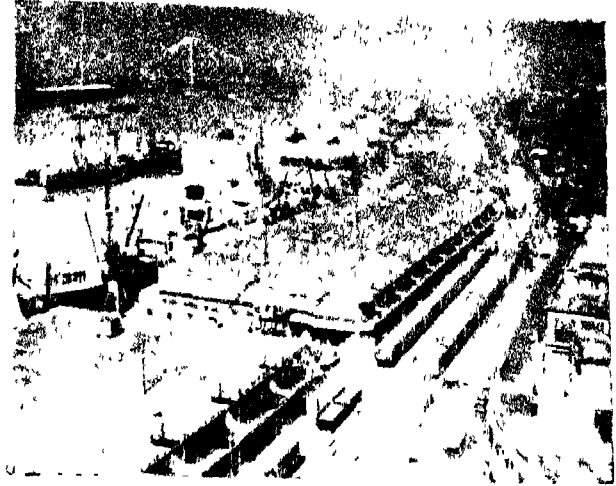
कलकत्ता का बंदरगाह
पृष्ठ मे २,१५० फुट लंबा हावड़ा पुल दो खंभो पर टिका है।

विशाखपत्तनम् की शुष्क गोदी बेसिन
पश्चजल द्वारा जलयान प्रविष्ट होता दिखाई पड़ रहा है।

विशाखपत्तनम् का विहगम दृश्य
भारत का यह नवीन प्राकृतिक बंदरगाह है।

बंबई (देखें पृष्ठ १८०)
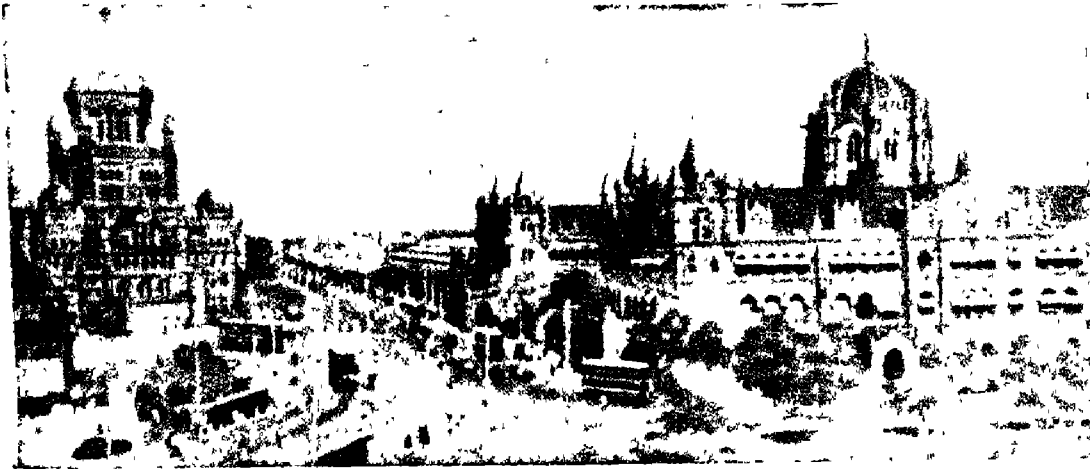
बंबई नगर महापालिका भवन तथा विक्टोरिया टर्मिनस
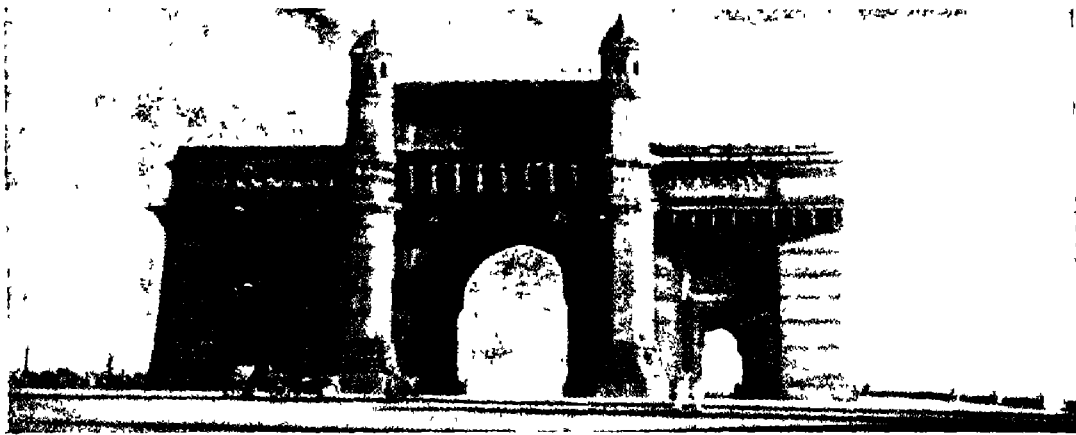
भारत का द्वार (The Gateway of India)

सागर तट की सड़क (Marine Drive)

गुजराती, उर्दू तथा ५० अन्य भाषाएँ बोली जाती है। सभी द्वीप पुलो द्वारा आपस में संबद्ध हैं। बंबई का वार्षिक औसत ताप लगभग २६° सें० रहता है। मई माह सबसे गरम तथा जनवरी माह सबसे ठंडा रहता है। वर्षा का वार्षिक औसत लगभग १२५ इंच रहता है जो अधिकांश जून से सितंबर तक होती है। जनसंख्या तथा व्यापार मे कलकत्ते के बाद भारत मे इसका दूसरा स्थान है। यह बृहत्, स्वच्छ एवं आधुनिक नगर है, जहाँ चौडी सडके, सुंदर पार्क, शानदार इमारते एवं संग्रहालय हैं। यहाँ एल्फिंस्टन कालेज, बंबई विश्वविद्यालय, ग्रांट मेडिकल कालेज, इंस्टिट्यूट ऑव साइंस, विक्टोरिया जुबली टेक्नीकल इंस्टिट्यूट, जी० एस० मेडिकल कालेज प्रसिद्ध हैं। सेंट्रल रेलवे टर्मिनल तथा ताजमहल होटल दर्शनीय इमारते है। यहाँ बस एवं ट्राम की उन्नत व्यवस्था है। शांताक्रूज एक आधुनिक तथा अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है। बंबई दो लंबे तथा पतले प्रायद्वीपों पर बसा है, जिनमे से एक फोर्ट प्रायद्वीप है जो कोलाबा प्वाइंट पर समाप्त होता है और दूसरा पश्चिमी या मालाबार प्रायद्वीप है जहाँ सुंदर भवन, बगीचे तथा बैक बे एवं बीच कैंडी नामक दो सुंदर समुद्र तट है। मालाबार हिल के ऊपर पारसियो का साइलेंस मंदिर तथा सुंदर हैंगिंग गार्डेन है। बंबई का उद्योग मे भी प्रमुख स्थान है। भारत मे फिल्म निर्माण का यह सबसे बडा केंद्र है। यहाँ सूती कपड़े की मिले, रेलवे वर्कशॉप, तेलशोधक कारखाने, भेषजीय फैक्टरियां, गोदाम, मुद्रणालय, चमड़े तथा ऊनी कपड़े की मिले तथा गोदी बाडा आदि है। नगर की जलपूर्ति नगर से ६५ मील दूर स्थित तंसा (Tansa) तथा एक अन्य जलभंडार द्वारा की जाती है। पश्चिमी घाट पहाड़ से बहनेवाली छोटी छोटी नदियों से पर्याप्त जलविद्युत् प्राप्त हो जाती है। यहाँ के बंदरगाह ने बंबई की उन्नति मे अधिक योग दिया है। यह बंदरगाह लगभग १५ मील लंबा और नौ मील चौडा है। नगर के आसपास की भूमि बड़ी उपजाऊ होने के कारण कपास के उत्पादन के लिये सर्वोत्तम है अत. कपास की कृषि बडे परिमाण में होती है। इस नगर का अनेक ऐतिहासिक घटनाओ से भी अपनी वृद्धि मे सहायता मिली है। व्यापारिक केंद्र के साथ साथ इसके बंदरगाह की युद्ध की सामग्री के यातायात से बहुत अधिक वृद्धि हुई है। बंबई बंदरगाह से पूर्व की ओर छह मील पर एलिफेंटा नामक टापू है। टापू की प्रसिद्धि लावा चट्टानो म काटे गए गुफा मंदिर के कारण है (देखे एलिफेंटा)।

इतिहास — ऐसा कहा जाता है कि बंबई की स्थापना १३वी शताब्दी मे हुई, जब आव्रजक आकर यहाँ बसे थे। उस समय के स्वतंत्र शासक राजा बिंब ने आव्रजको को बसाने मे उत्साह दिखाया था। १३४८ ई० में गुजरात के मुसलमानो ने इसपर अधिकार कर लिया था। १५३४ ई० मे बंबई के द्वीप पुर्तगाल के अधीन चले गए थे। १६६२ ई० में जब पुर्तगाल की राजकुमारी का विवाह इंग्लैंड के चार्ल्स द्वितीय के साथ हुआ तब पुर्तगाल के अधीन बंबई का व्यापारिक केंद्र तथा समीप के दो द्वीप अंग्रेजो को दहेज मे दे दिए गए। अंग्रेज शासको से ईस्ट इंडिया कंपनी ने १० पाउंड वार्षिक कर पर इन द्वीपो को ले लिया। उसी व्यापारिक केंद्र पर आधुनिक बंबई नगर बसा, और तब से बराबर उन्नति करता हुआ अपनी इस स्थिति मे आ गया है।

बक्सर स्थिति : २५° ३४' उ० अ० तथा ८३° ५८' पू० दे०। यह भारत मे बिहार राज्य के शाहाबाद नामक जिले मे गंगा नदी के दक्षिणी तट पर स्थित एक नगर और प्रखंड है। पटने से लगभग ७५ मील पश्चिम और मुगलसराय से ६० मील पूर्व मे पूर्वी रेलवे लाइन के किनारे स्थित है। यह एक व्यापारिक नगर भी है। यहाँ बिहार का एक प्रमुख कारागृह है जिसमे अपराधी लोग कपडा आदि बुनते और अन्य उद्योगों मे लगे रहते है। सुप्रसिद्ध बक्सर की लड़ाई शुजाउद्दौला और कासिम अली खाँ की तथा अंग्रेज मेजर मुनरो की सेनाओ के बीच यहाँ ही १७६४ ई० मे लड़ी गई थी जिसमे अंग्रेजो की विजय हुई। इस युद्ध मे शुजाउद्दौला और कासिम अली खाँ के लगभग २,००० सैनिक डूब गए या मारे गए थे। कार्तिक पूर्णिमा को यहा बडा मेला लगता है, जिसमे लाखो व्यक्ति इकट्ठे होते है। इसकी जनसंख्या २३,०६८ (१९६१) है।

बगदाद (Baghdad) स्थिति ३३° २०' उ० अ० तथा ४४° २५' पू० दे०। इराक मे फारस की खाडी से २५० मील दूर, दजला नदी के किनारे, सागरतल से १२० फुट की ऊँचाई पर स्थित, इराक की राजधानी एवं सबसे बडा नगर है। यह नगर ४,००० वर्ष पहले पश्चिमी यूरोप और सुदूर पूर्व के देशो के बीच, समुद्री मार्ग के आविष्कार के पहले कारवाँ मार्ग का प्रसिद्ध केंद्र था तथा नदी के किनारे इसकी स्थिति व्यापारिक महत्व रखती थी। मेसोपोटेमिया के उपजाऊ भाग मे स्थित बगदाद वास्तव मे शांति और समृद्धि का केंद्र था। ९वी शताब्दी के प्रारंभिक वर्षो मे यह अपने चरमोत्कर्ष पर था। उस समय यहाँ प्रबुद्ध खलीफा की छत्रछाया मे धनी व्यापारी एवं विद्वान लोग फले फूले। रेशमी वस्त्र एवं विशाल खपरैल के भवनो के लिये प्रसिद्ध बगदाद इस्लाम धर्म का केंद्र रहा है। यहाँ का औसत ताप लगभग २३° सें० तथा वार्षिक वर्षा सात इंच है, अत यहाँ खजूर तथा झाडियो के कुंज अधिक मिलते है।

बगदाद का वास्तविक पतन १२५८ ई० मे शुरू होता है, जब हलाकू नामक मंगोल ने मेसोपोटेमिया पर अधिकार कर इस्लामी सभ्यता को नष्ट कर दिया। इसने धीरे धीरे सिंचाई प्रणाली को भी छिन्न भिन्न करके उपजाऊ कृषिक्षेत्र को स्टेप्स या घास के मैदान मे परिवर्तित कर दिया। इस काल से लेकर प्रारंभिक २०वी शताब्दी तक के कुछ समय को छोड़कर बगदाद कभी भी स्वतंत्र राजधानी नही रहा है।

यहाँ हिनैदी मे एक बहुत बडा हवाई अड्डा बनाया गया जिससे काहिरा एवं बसरा संबद्ध थे। बाद मे इसका इंग्लैंड, भारत और सुदूर पूर्व से भी वायुसंबध हो गया। वर्तमान समय म संसार की सभी प्रमुख वायुसेवाएँ यहाँ से होकर जाती है। तुर्की तक रेलमार्ग बन जाने से इसका संपर्क सीधे भूमध्यसागर से हो गया। इस प्रकार आवागमन के साधनो के विकास के कारण २० वी शताब्दी मे बगदाद पुन. अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त कर मध्य पूर्व का प्रसिद्ध नगर हो गया। यहाँ से दरियो, ऊन, गोंद, खजूर और पशुचर्म का निर्यात तथा कपास और चाय का आयात करके पुनर्निर्यात करते है।

यहाँ चिकित्सा, कला, कानून, इंजीनियरिंग, सैन्यशास्त्र आदि की शिक्षा का उचित प्रबंध है। यहाँ प्रसिद्ध पुरातत्व संग्रहालय है। नगर की

जनसंख्या १०,८६,००० (१९५७) है। नगर के पुराने भाग मे मिट्टी के मकान, पतली तथा धूल भरी सड़कें देखने को मिलती हैं। आधुनिक भाग दर्शनीय है। यहाँ सुंदर सुदर मसजिदें एव बाजार है।
[रा० प्र० सिं०]

बच्छनाभ या ऐकोनाइट (Aconite) रैननकुलेसी (Ranunculaceae) या बटरकप (Buttercup) कुल का पौधा है। यह उत्तरी गोलार्ध का देशज है। इसकी लगभग १०० जातियाँ ज्ञात हैं। भारत में भी इसकी कुछ जातियाँ पाई जाती हैं। ऐकोनाइट बहुत ही विषैला होता है। इसकी जडो, पत्तों, बीजो और कभी कभी फूलों मे भी विष रहता है। इसके फूलो का रंग बैंगनी-नीला से लेकर पीला और सफेद तक होता है, कुछ फूल द्विरंगी भी होते हैं। फूलों की सुंदर और टोप के आकार के होने के कारण बच्छनाभ के पेड़ उद्यानों की शोभा बढ़ाने के लिये लगाए जाते हैं।

बच्छनाभ का व्यवहार औषधियों मे भी होता है। इसका लेप तंत्रिका शूल (Neuralgia) और आमवात (rhumatic pain) मे प्रयुक्त होता है। अतः यह पीड़ाहारी होता है। मुखसेवन से यह स्वेदनकारी होता है। अत: ज्वर में शरीर के ताप को कम

बच्छनाभ (× ½)

करता है, पर इसकी मात्रा बडी अल्प रहती है, अन्यथा यह घातक हो सकता है। इसकी जड़ों से टिंचर तैयार होता है और उस टिंचर का एक बार मे पाँच बूंद से अधिक का व्यवहार नहीं किया जाता। अति विषाक्त होने के कारण इसके व्यवहार मे बडी सावधानी बरती जाती है। डाक्टर की अनुमति के विना इसका व्यवहार नहीं करना चाहिए। जो ऐकोनाइट ओषधि के लिये व्यवहृत होता है वह ऐकोनाइट नैपेलस (Aconite napellus) कहलाता है।

इसके विष का कारण एक ऐल्कलॉयड है, जिसका नाम एकोनिटिन (aconitin) दिया गया है। यह शुद्धावस्था मे प्राप्त किया गया है और इसकी संरचना भी मालूम कर ली गई है।

बटाला स्थिति : ३०° ४९' उ० अ० तथा ७५° १२' पू० दे०। यह भारत में पंजाब राज्य के गुरदासपुर नामक जिले मे, गुरदासपुर नगर से २० मील दूर स्थित नगर है। यहाँ की जनसंख्या ५१,३०० (१९६१) है। १४६५ ई० में लाहौर के गवर्नर तातार खाँ के द्वारा प्रदत्त भूमि पर भट्टी राजपूत, राय रामदेव ने इसकी स्थापना की थी। यहाँ एक प्रसिद्ध तालाब, शमशेर खाँ का मकबरा तथा रणजीतसिंह के पुत्र शेरसिंह के द्वारा बनवाई 'अनारकली' इमारत काफी प्रसिद्ध हैं। नगर का मध्य भाग आस पास की भूमि से ऊँचा है। यहाँ कपास, रेशम, साबुन, चमड़े और पीतल से सामान बनाए जाते है। गलीचे एवं ऊनी कबल, शॉल आदि भी बुने जाते हैं। अनाज एव चीनी का व्यापार होता है।

बड़ौदा या बड़ोदरा १ जिला, यह भारत के गुजरात राज्य का जिला है, जिसका क्षेत्रफल २,९६१ वर्ग मील तथा जनसंख्या १५,२७,३२६ (१९६१) है। इसके उत्तर मे पंचमहाल, दक्षिण तथा पश्चिम मे भरुच, पूर्व मे झाबुआ, दक्षिण पूर्व मे धुलिया एवं उत्तर पश्चिम मे खेड़ा जिले स्थित है। भारत की स्वतन्त्रता के पूर्व यह एक देशी रियासत थी। मानसूनी, गरम एव नम जलवायु के अतर्गत होते हुए भी समुद्री प्रभाव के कारण यह सम दशा मे रहता है। कृषि म ज्वार, बाजरा, कपास, तिलहन आदि उगाए जाते है। खनिजो मे लोहा तथा मैंगनीज मिलते है।

२. नगर, स्थिति : २२° ०' उ० अ० तथा ७३° १६' पू० दे०। बड़ौदा जिले मे बबई से २४५ मील उत्तर, विश्वामित्री नदी पर एक औद्योगिक तथा व्यापारिक नगर है। अहमदाबाद यहाँ से ६२ मील दूर है। यह सूती वस्त्र, रसायनक और चीनी मिट्टी के बरतनो के अतिरिक्त दुग्ध उद्योग के लिये भी प्रसिद्ध है। यहाँ कपड़े की अनेक मिले है। इसकी जनसंख्या २,९८,३९८ (१९६१) है। इसी नाम का एक नगर भारत मे मध्यप्रदेश राज्य के मुरेना जिले मे दक्षिण-पश्चिम कोने पर स्थित है।
[रा० स० ख०]

बढ़ई (Carpenter) भारत मे वर्णव्यवस्था बहुत प्राचीन काल से चल रही है। अपने कार्य के अनुसार ही जातियो की उत्पत्ति हुई है। लोहे के काम करनेवाले लोहार तथा लकडी के काम करने वाले बढ़ई कहलाए। ये प्राचीन काल से समाज के प्रमुख अंग रहे है। घर की आवश्यक काष्ठ की वस्तुएँ बढई द्वारा बनाई जाती है। इन वस्तुओ मे चारपाई, तख्त, पीढ़ा, कुर्सी, मचिया, आलमारी, हल, चौकठ, बाजू, खिडकी, दरवाजे तथा घर मे लगनेवाली कड़ियाँ इत्यादि संमिलित है। प्राचीन व्यवस्था के अनुसार बढ़ई जीवननिर्वाह के लिये वार्षिक वृत्ति पाते थे। इनको मजदूरी के रूप मे विभिन्न त्योहारों पर भोजन, फसल कटने पर अनाज तथा विशेष अवसरों पर कपड़े तथा अन्य सहायता दी जाती थी। इनका परिवार काम करानेवाले घराने से आजन्म संबंधित रहता था। आवश्यकता पडने पर इनके अतिरिक्त कोई और व्यक्ति काम नही कर सकता था। पर अब नकद मजदूरी देकर कार्य कराने की प्रथा चल पडी है।

ये लोग विश्वकर्मा भगवान् की पूजा करते हैं। इस सुअवसर पर ये अपने सभी यंत्र, औजार तथा मशीन साफ करके रखते हैं। घर की सफाई करते हैं। हवन इत्यादि करते हैं। कहते हैं, ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की तथा विश्वकर्मा ने शिल्पों की। प्राचीन काल मे उड़न खटोला, पुष्पक विमान, उड़नेवाला घोड़ा, बाण तथा

तरकस और विभिन्न प्रकार के रथ इत्यादि का विवरण मिलता है जिससे पता चलता है कि काष्ठ के कार्य करनेवाले अत्यंत निपुण थे। इनकी कार्यकुशलता वर्तमान समय के शिल्पियों से ऊँची थी। पटना के निकट बुलंदी बाग में मौर्य काल के बने खंभे दरवाजे अच्छी हालत मे मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि प्राचीन काल में काष्ठ शुष्कन तथा काष्ठ परिरक्षण निपुणता से किया जाता था। भारत के विभिन्न स्थानों पर जैसे वाराणसी में लकड़ी की खरादी, हुई वस्तुएँ, बरेली में लकड़ी के घरेलू सामान तथा मेज, कुर्सी, आलमारी इत्यादि सहारनपुर में चित्रकारीयुक्त वस्तुएँ, मेरठ तथा देहरादून में खेल के सामान, श्रीनगर में क्रिकेट के बल्ले तथा अन्य खेल के सामान, मैनपुरी में तारकशी का काम, नगीना तथा धामपुर मे नक्काशी का काम, रुडकी मे ज्यामितीय यंत्र तथा लखनऊ मे विभिन्न खिलौने बनते तथा हाथीदाँत का काम होता है।

वर्तमान समय में बढईगीरी की शिक्षा आधुनिक ढंग से देने के लिये बरेली तथा इलाहाबाद मे बड़े बड़े विद्यालय हैं, जहाँ इससे संबंधित विभिन्न शिल्पो की शिक्षा दी जाती हैं। बढ़ई आधुनिक यंत्रों के उपयोग से लाभ उठा सकें, इसके लिये गाँव गाँव में सचल विद्यालय भी खोले गए हैं। [अ० उ०]

बढ़ईगीरी (Carpentry) सभ्यता के विकास मे काष्ठ का महत्वपूर्ण योग रहा है। प्राचीन काल से ही काष्ठ का उपयोग किसी न किसी प्रकार होता रहा। जैसे जैसे सभ्यता बढ़ती गई काष्ठ का उपयोग भी बढता गया। यहाँ तक कि पिछले दो महायुद्धो में काष्ठ सबधित अनेक उद्योग स्थापित हो गए और लोहे तथा धातुओं के स्थान पर काष्ठ का ही उपयोग होने लगा।

संसार में लगभग ३१५ करोड़ एकड़ भूमि पर जंगल है। भारत मे अपेक्षाकृत जंगलों की कमी है। हमारे देश मे उपलब्ध ८० प्रति शत से अधिक लकडी जलाने के काम आती है। भारत मे लगभग २,७५० आरा मशीनें हैं जिनसे ८० करोड घनफुट लकडी चीरी जाती है। दियासलाई बनाने के लगभग १३८ कारखाने हैं जिनमे छह करोड घनफुट कोमल लकडियो की खपत होती है। लगभग ६६ प्लाइवुड बनाने के कारखाने हैं जिनकी वार्षिक उत्पत्ति २४० करोड वर्ग फुट है। पेंसिल बनाने के १७ कारखाने हैं जिनमें ४५ लाख ग्रोस पेंसिल बनाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त कत्था तथा गोद बनाने के कारखाने भी है।

इस प्रकार बढ़ईगिरी का काम विभिन्न प्रकार के कारखानों मे किया जाता है, इस कार्य के लिये मुख्य सामग्री काष्ठ है। भारत मे काष्ठ की कमी के कारण इस कार्य के विस्तार में बाधा पहुँच रही है।

काष्ठ दो प्रकार का होता है: पहला कठोर काष्ठ तथा दूसरा कोमल काष्ठ। कठोर काष्ठ सुदृढ होता है, कोमल काष्ठ साधारण उपयोग में आता है। कठोर काष्ठवाले वृक्षों का विवरण निम्नलिखित है :

शीशम — यह हमारे देश का प्रसिद्ध काष्ठ है जो सभी प्रकार की काष्ठ की सामग्री बनाने के काम आता है। प्राय: मैदानी भागो के सभी स्थानो पर मिलता है। इसका प्रति घनफुट भार २५ सेर के लगभग होता है। इसपर पॉलिश का काम भी अच्छा होता है।

सागौन — यह प्रत्येक भाँति के घरेलू सामान, रेल के डिब्बे एवं पानी के जहाज मे तथा अन्य उपयोगों में आता है। पानी पड़ने से इसकी लकड़ी खराब नही होती। इसपर पॉलिश भी बहुत अच्छा चढ़ता है। इसका प्रति घनफुट भार २४ सेर के लगभग होता है।

हल्दू — इसका रंग हल्दी की भाँति होता है। खराद के काम तथा काष्ठ सामग्री के भीतरी भागों मे इसका उपयोग करते हैं। पालिश का काम भी इसपर अच्छा होता है। इसका प्रति घनफुट भार लगभग २१ सेर होता है।

देवदार — इसमें गध होती है जिससे कीड़े तथा दीमक इत्यादि नहीं लगती। इसके बने रेलवे स्लीपर अच्छे होते हैं।

आम — प्राय: हमारे देश के सभी स्थानो मे पाया जाता है। दरवाजे, खिड़की, तख्त तथा काष्ठ की साधारण वस्तुएँ इससे बनाई जाती हैं।

अखरोट — यह बहुत अच्छी लकड़ी है। इसके बंदूक के कुंदे बनाए जाते हैं।

कोमल काष्ठ की लकडियाँ चीड़, कैल, सेमल, तुन तथा बोरंग इत्यादि हैं। कोमल लकड़ियो से खिलौने, सामान भेजने की पेटियाँ इत्यादि बनाई जाती हैं।

विदेशी काष्ठ मे पाइन, पीली पाइन, पिच पाइन, स्प्रुस फर, हेमलाक, लार्च, लाल सेडार अलडर तथा पेपिल है। ऐश, वाल्सा, वेवुड वासवुड, बीचवुड, बर्च, ब्लैकवुड, बॉक्सवुड, सेडार, चेरी, चेस्टनट, इबोनी, एल्म, गाबून, ग्रीन हर्ट, हिकोरी, होले हासे, जरारू, लेरूल, लाइम, महोगनी, मैपिल, ओक, ओलिव, पिपर, प्लम, वालनट, रोजवुड, सपेले, सटिनवुड, सेकामैर तथा वीलौवुड इत्यादि काष्ठ शिल्प मे प्रयुक्त होते है। इनसे विभिन्न प्रकार की काष्ठ सामग्री तथा खेल के सामान इत्यादि बनाए जाते हैं।

काष्ठ प्राय लट्ठे की आकृति मे मिलता है। लट्ठे को तख्ते के रूप मे परिवर्तित करते हैं। तख्तो को छोटे छोटे टुकडो मे काटकर उपयोग के योग्य बनाते हैं। लट्ठे मे तख्ते निकालने मे ३० से ४० प्रति शत लकड़ी नष्ट होती है। तख्ते से छोटे छोटे टुकड़े निकालने मे ६ से ३० प्रति शत तक लकडी नष्ट होती है। रदा तथा आरों से काष्ठ सामग्री बनाते समय २ से ५ प्रति शत तक लकड़ी नष्ट होती है। इस प्रकार लट्ठे से सामग्री तैयार होने पर आधी ही लकडी उपयोग मे रह जाती है। लट्ठे मे तख्ते निकालते समय लकडी के खोखले, गाँठ, फटे तथा सडे गले भागो को भी अलग कर लेते है। लट्ठे से तख्ते निकालने मे भी विभिन्न रीतियाँ अपनाई जाती हैं, जिनमें साधारण चिरान, जिसमे तख्ते एक दूसरे के समानातर होते हैं, विशेष उल्लेखनीय है। सुंदर तथा अलंकृत रेशेवाले तख्ते निकालने के लिये चौथाई लट्ठे के मध्य भाग से स्पर्शरेखा बनाते हुए चीरते हैं। लकडी की दृढता चिरान पर निर्भर करती है।

चीरने के पश्चात् काष्ठ को सुखाकर उपयोग मे लाते हैं। लकड़ी के सुखाने के लिये दो रीतियो का उपयोग करते हैं: पहली प्राकृतिक तथा दूसरी कृत्रिम। प्राकृतिक रीति मे हवा द्वारा लकड़ी सुखाते है। इसके लिये उचित स्थान तथा चट्टा बनाने की आवश्यकता होती है। तख्ते। टेढ़े न हों इसका तथा वायुवहन का पूरा पूरा ध्यान रखते हैं। कृत्रिम

रीति में बंद कमरे मे भाप की गरमी तथा वायुवहन का प्रबंध करते है। यह प्रबंध बिजली द्वारा करते हैं। इस ढंग से इच्छानुसार गरमी तथा नमी तख्तो पर छोड़ी जा सकती है तथा तख्ते शीघ्र सूखते हैं। हवा द्वारा लकड़ी सुखाने मे व्यय कम पड़ता है, परंतु कृत्रिम रीति से व्यय अधिक पड़ता है और इसके लिये मशीन से पत्र लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इन दोनो रीतियो से तख्ते सुखाने में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। शुष्कन के समय चट्टा लगाने के ढंग की जाँच तथा विभिन्न खराबियो से रक्षा करने मे सावधानी करनी चाहिए। १० से १५ प्रति शत तक नमी रह जाने पर लकडी को सूखी हुई समझना चाहिए।

सूख जाने पर तख्तों पर काष्ठ परिरक्षी लगा देना चाहिए। इससे तख्ते के भीतर के कीड़े मर जाते हैं तथा भविष्य मे कीड़ो का आक्रमण भी नहीं होता। परिक्षण कई ढंग से किया जाता है। इसके लिये तख्तो पर ब्रुश से जहरीले रासायनिक पदार्थों का लेप करते हैं या परिरक्षी से भरी टंकी मे तख्तो को डुबा देते हैं जिससे काष्ठ परिरक्षी लकड़ी के भीतर पहुँच जाय। विभिन्न स्थानो पर विभिन्न प्रकार के काष्ठ परिरक्षी का उपयोग करते हैं। लकडी की कमी के कारण काष्ठ परिरक्षण का विशेष महत्व है। हमारे देश मे प्राचीन काल से काष्ठ का उपचार रासायनिक पदार्थों द्वारा किया जा रहा है। पटना के निकट बुलंदी बाग के क्षेत्र म खुदाई से प्राप्त बरामदो, चौक बाजू तथा दरवाजो को देखने से पता चलता है कि ये मौर्यकाल के बने हुए हैं। इनपर दीमक तथा कीडे लगने और सड़ने गलने के चिह्न भी नही है। इससे पता चलता है कि प्राचीन काल मे काष्ठ परिरक्षण बड़ी सावधानी से किया जाता था।

परिरक्षण के पश्चात् काष्ठ उपयोग के योग्य हो जाता है। इसके लिये निम्नांकित औजारो की आवश्यकता होती है:

सीधे रेशे में काटनेवाली बड़ी आरी (Rip saw) — यह आरी चार इंच तक मोटी लकड़ी काट सकती है।

सीधे रेशे में काटनेवाली छोटी आरी (Panel saw) — यह आरी प्राय मोटे तख्ते काट सकती है।

रेशे के विरुद्ध काटनेवाली आरी (Cross cut saw) — इससे तख्तो को रेशे के विरुद्ध काटते हैं।

विभिन्न प्रकार की आरियाँ — इसके अंतर्गत चूल काटने की आरी, जोड बनानेवाली तथा गोलाई मे काटनेवाली आरियाँ आती है।

रंदा — लकडी को रदा करने के लिये सबसे पहले बडा रंदा (jack plane) उपयोग मे लाते है। इसके पश्चात् चिकना करने के लिये छोटा रदा (smoothing plane) प्रयुक्त करते हैं। गोलाई मे रंदा करने, झिरी निकालने तथा गोलागलता बनाने के लिये अलग अलग प्रकार के रंदे प्रयुक्त किए जाते है।

लकड़ी की जाँच — इसके लिये गुनिया, स्केल, सीधी लकडी तथा खतकश इत्यादि उपयोग मे आते हैं।

छिद्रकरना — इसके लिये कई प्रकार के बरमे उपयोग में आते हैं जिनको ब्रेस तथा छोटा बरमा (Handdril) कहते हैं। इनमे कई प्रकार के तथा विभिन्न नाप के बरमे के फल बाँधकर प्रयुक्त कर सकते है।

लकड़ी छीलना — इसके लिये कई प्रकार की रुखानियाँ (chisels) होती है। गोलाई की रुखानियाँ गोलाई मे काटती है। काष्ठ कलाकृति मे पतली पतली तथा कई आकृतियो की रुखानियाँ प्रयुक्त होती है।

अन्य औजार तथा यंत्र — चोट देने के लिये मुँगरी तथा हथौड़े का उपयोग करते हैं। पेचकस से पेच कसते हैं। जोड़ो को कसने के लिये शिकंजो का उपयोग होता है। ये कई नाप तथा आकृति के होते हैं। उपयोग के अनुसार इनको विभिन्न स्थानो पर काम मे लाते हैं। औजारो को तेज करने के लिये कई प्रकार के शाण होते है। इसपर तेज करने के बाद औजार को सिल्ली पर तेज करते हैं। इन औजारों के अतिरिक्त रंदा करने के लिये बेंच हुक तथा गोल लकड़ी बनाने के लिये लकडी के ठीहे होते है। ऊपर बताए गए औजार हाथ द्वारा प्रयुक्त किए जाते है। इनके अतिरिक्त लट्ठे से तख्ता चीरने, रंदा करने छेद करने तथा जोड बनाने की मशीनें भी होती हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है

बड़ा आरा (Band saw) — आकृति काटने तथा लट्ठा चिरने के काम आता है।

वृत्ताकार आरा (Circular saw) — बराबर चौड़ाई के टुकड़े काटने के काम आता है।

रंदा मशीन (Planing machine) — इस मशीन पर रंदा करते हैं।

छेद करने की मशीन (Boring machine) — इसपर चूल के लिये छेद करते है।

चूल बनाने की मशीन (Tenoning machine) — इससे चूल बनाते है।

गोला गलता बनाने की मशीन (Moulding machine) — इससे गोला गल्ता बनाते है।

खराद मशीन (Lathe) — इसपर खराद का काम करते हैं।

लट्ठा चीरने की मशीन (Log saw) — इस मशीन से एक ही बार मे लट्ठे से अलग अलग मोटाई के तख्ते निकाल सकते हैं।

इसी प्रकार रेगमाल करने की मशीन, छेद करने की मशीन इत्यादि भी होती हैं। इनके उपयोग से उत्पादन अधिक हो सकता है।

जोड़ — काष्ठ कला मे विभिन्न प्रकार के जोडो का भी उपयोग होता है जिनमे अर्ध चढ जोड, चूल तथा छिद्र जोड, डमरुआ जोड, तथा लंबाई बढ़ानेवाले जोड प्रमुख है। ये जोड विभिन्न प्रकार के होते हैं आवश्यकतानुसार इनका उपयोग विभिन्न स्थानों पर करते हैं। इन जोडो के उपयोग से काष्ठ सामग्री टिकाऊ रहती है।

काष्ठ सामग्री बनाते समय उनकी उपयोगिता पर विशेष ध्यान देते हैं। मनुष्य के उपयोग की सामग्री मनुष्य की नाप के अनुसार होती है। अत. ऐसी सामग्री की औसत माप नियत कर दी जाती हैं। अभिकल्प के अनुसार सामग्री की माप घटा बढ़ा सकते हैं। कुछ आवश्यक सामग्रियो की औसत मापे नीचे दी जा रही है:

काष्ठ सामग्रियों की औसत मापें

	खाना खाने की कुर्सी	सोनेवाले कमरे की कुर्सी	आराम कुर्सी
बैठक की ऊँचाई	१८"	१६"–१७"	१४"–१८"
पिछले पाए की ऊँचाई	३२"–३८"	३१"–३६"	३१"–३६"
सामना	१८"–२२"	१७"–१९"	१८"–२२"
पीछा	१५"–१७"	१४"–१६"	१७"–१९"
बैठक की गहराई	१५"–२०"	१४"–१६"	१९"–२४"

	लंबाई	चौड़ाई	ऊँचाई
लिखने की मेज	३६"–६०"	१८"–३३"	२८"–३०"
चाय मेज	१८"–२७"	१२"–१८"	१४"–२२"
शृंगार मेज	२४"–५४"	१७"–२१"	२४"–३२"
खाना खाने की मेज	३६"–७२"	३३"–४२"	२९"–३०"
विभिन्न प्रयोजन की मेज	१८"–२७"	१२"–१८"	२१"–१८"

	ऊँचाई	लंबाई	गहराई
कपड़ा रखने की आलमारी	७२"–७६"	३०"–६०"	१७"–२२"
कपड़ा रखने की छोटी आलमारी	३०"–४२"	२४"–३६"	१६"–१८"

काष्ठ सामग्री की विभिन्न नाप रखते समय इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि प्रत्येक भाग का अनुपात ठीक हो, जिससे वस्तु देखने मे अच्छी मालूम हो। इसी प्रकार तकिएदार चारपाई की माप नीचे दी जा रही है :

	लंबाई	चौड़ाई	सिरहाने तकिए की ऊँचाई	पैताने तकिए की ऊँचाई
माप 'अ'–	६'–६"	३'–०"	३'–०"	२'–९"
माप 'ब'–	६'–६"	३'–३"	३'–३"	३'–०"
माप 'स'–	६'–६"	३'–६"	३'–६"	३'–३"
माप 'द'–	६'–६"	३'–९"	३'–६"	३'–०"
माप 'य'–	६'–६"	४'–०"	३'–६"	३'–३"

मनुष्य की औसत लंबाई ६'–६" रखकर उपर्युक्त मापे निर्धारित की गई है। इसी प्रकार कागज रखने के पात्र निम्नांकित माप के हो सकते हैं :

लंबाई	चौड़ाई (भीतर की माप)	
२४"	२०"	गहराई ३" से ५" तक
२२"	१८"	
२०"	१६"	
१८"	२४"	

इसी प्रकार विभिन्न अवस्था के बच्चों के उपयोग के लिये ढालूदार मेज की माप नीचे दी जा रही है ·

ढालूदार मेज (School desk)

	लंबाई	चौड़ाई	पीछे की ऊँचाई	सामने की ऊँचाई
माप 'अ'–	२'–०"	१'–५½"	२'–७"	२'–४½"
माप 'ब'–	२'–०"	१'–५½"	२'–५¾"	२'–३½"
माप 'स'	१'–११"	१'–५½"	२'–५"	२'–२½"
माप 'द'–	१'–१०"	१'–५½"	२'–४"	२'–२½"

विभिन्न उम्र के बच्चों के उपयोग के लिये मेज की ऊँचाई मे विशेष अंतर हो जाता है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का अभिकल्प बनाते समय कुछ प्रमुख बातो को ध्यान में रखते हैं।

वस्तुओं को बनाते समय उनमे यथोचित जोड़, सरेस तथा धातु सामग्री के उपयोग का विशेष ध्यान देते हैं। इन धातुओं मे कील, पेंच, कब्जे, इमिलिया, कुंडा, दरवाजे तथा दराज मे लगनेवाले विभिन्न प्रकार के ताले, बोल्ट तथा हत्थे इत्यादि होते हैं। इनका अभिकल्पन तथा धातु का निर्वाचन वस्तु, जिसमे लगाना है, उसके अनुसार किया जाता है।

काष्ठ सामग्री के तैयार हो जाने पर उस पर उचित रंग लगाने की भी आवश्यकता पड़ती है। अच्छी लकड़ियो के बने हुए सामान पर सादा रग चढ़ाते हैं। इससे काष्ठ के प्राकृतिक रेशे चमकने लगते है। यह रग स्पिरिट तथा चपड़ा डालकर मिलाते हैं। एक बोतल स्पिरिट मे आधा पाव चपड़ा डालते है। मिश्रण को थोड़ी देर धूप मे रखने से चपड़ा गल जाता है। यह रंग तैयार हो गया। काष्ठ सामग्री को रेगमाल से अच्छी प्रकार सफाई करके रेशे भरने के लिये चाक मिट्टी मे थोड़ा सरेस डालकर लगा देते है। जब मिट्टी सूख जाय तब रेगमाल से इसे साफ कर देते हैं। इसके पश्चात् यह रंग लगाने के लिये तैयार हो जाता है। बने हुए रग को कपड़े के अंदर रूई रखकर बनाई गई कपड़े की पोटली से लगाते हैं। बार बार रग सूखने पर रेगमाल से घिसते जाते हैं। इस प्रकार तीन चार बार रग लगाते हैं जिससे धरातल पर चमक आ जाती है। यदि किसी विशेष रंग मे रगना हो तो वैसा ही रग स्पिरिट मे मिला देते हैं।

आम, नीम, देवदार तथा अन्य सस्ती लकड़ियों पर वार्निश या पेंट लगाते है। इनसे धरातल पर रग की सतह जम जाती है। रग करने से धरातल चिकना तथा चमकीला हो जाता है तथा कीड़ों का प्रकोप नही होता। काष्ठ के छिद्र बंद हो जाने के कारण उसपर गरमी तथा नमी का प्रभाव कम पड़ता है तथा वस्तु के जीवन मे वृद्धि हो जाती है।

बनी हुई काष्ट सामग्री को वर्ष मे एक बार रग कर लेने से उसकी चमक नई हो जाती है तथा कीड़ो या अन्य खराबियो से रक्षा हो जाती है। इसके लिये सितबर या अक्टूबर का महीना अच्छा रहेगा।

देश के वर्तमान काष्ठशिल्प पर विदेशियो का प्रभाव अधिक है। सबसे पहले डच तथा पुर्तगालियो का प्रभाव पड़ा। सन् १६०० में

अंग्रेजी काल की छाप पड़ी। मुगलकाल १५०५ ई० से १७३९ ई० तक रहा। इस समय की बनी हुई वस्तुएँ भी मिश्रित अभिकल्प की हैं।

प्राचीन काल की बहुत सी वस्तुएँ विभिन्न अजायबघरों मे रखी हुई हैं जिनको देखकर पता चलता है कि भारत की काष्ठकला और देशों से अधिक उन्नति पर थी तथा इसके कार्य करनेवाले निपुण थे। विभिन्न प्रकार के कार्य करने के लिये विभिन्न प्रकार के उन्नत यंत्र भी बने हैं। बढ़ईगीरी की शिक्षा के भी विभिन्न केंद्र स्थापित हैं, जिन्हें देखकर कहा जा सकता है कि इस कला का भविष्य उज्वल है। [अ० उ०]

बदरीनाथ स्थिति : ३०° ४४' उ० अ० तथा ७९° ३०' पू० दे०। यह भारत के उत्तर प्रदेश राज्य मे स्थित चमोली जिले का नगर एवं हिंदुओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। इस नाम की मध्य हिमालय में एक चोटी भी है, जो सागरतल से २३,२१० फुट ऊँची है। इसी के समीप स्थित हिमनदों से अलकनंदा एवं अन्य कई छोटी छोटी धाराएँ निकलती है। अलकनंदा के दाहिने किनारे पर बदरीनाथ की बस्ती है। बस्ती में केवल कुछ मकान बने हैं, जिनमें अधिकाश धर्मशालाएँ है। दूकानो मे कपडा, बरतन, मेवे, मसाले, पूड़ियाँ, मिठाइयाँ, अनाज, आलु, चीनी, मिश्री एवं कई पहाड़ी वस्तुएँ बिकती है। यहाँ हजारों यात्री प्रति वर्ष आते है। यहाँ पर कई बडे बडे झरने, डाकखाने एवं राजाओं के सदावर्त हैं।

जाड़ों में चारों तरफ पर्वत के ऊपर बर्फ जमी रहती है। इसके पूर्व और पश्चिमवाले पहाड़ो को लोग जय और विजय कहते हैं। पर्वतो के बीच में सागरतल से १०,४०० फुट ऊँचा एवं उत्तर से दक्षिण को ढालू एक मैदान है। इसी मैदान पर अलकनदा बहती है तथा बदरीनाथ की बस्ती है। बस्ती के उत्तर मे अलकनदा नदी के दाएँ किनारे पर बदरीनाथ जी का पत्थर का बना ४५ फुट ऊँचा मदिर है, जिसके चारों ओर तीन तीन द्वार है। मदिर पर सुनहला कलश है। मदिर मे एक हाथ ऊँची बदरीनाथ (विष्णु) जी की द्विभुज श्यामल मूर्ति स्थापित है। इनके पास ही लक्ष्मी जी, नर नारायण, नारद, गणेश, कुबेर, गरुड और चाँदी के उद्धव हैं। कहा जाता है, बदरीनारायण पहले गुप्तरूप मे थे, नवीं शती मे बदरीनारायण की मूर्ति को शकराचार्य ने नदी मे पाया था, उन्हीं ने मदिर बनाकर उसमें मूर्ति को स्थापित किया था। यहाँ का फाटक निश्चित समय पर दिन रात मे तीन बार खुलता है। फाटक के आगे तप्त कुंड और अलकनंदा हैं तथा पास ही मे लक्ष्मी जी का मदिर बना है।

बदरिकाश्रम मे ऋषिगगा, कूर्मधारा, प्रह्लादधारा, तप्तकुंड और नारदकुंड से मिलकर बना एक पंचतीर्थ है। ऋषिगगा मदिर से ½ मील दूर है। मदिर से कुछ दक्षिण की ओर दीवार पर कूर्म का मुँह बना है जिसमे होकर तीन हाथ लंबे और दो हाथ चौडे एक हौज मे पानी गिरता है जो कूर्मधारा कहलाती है। तप्तकुंड का पानी गरम होने से इसे तप्तकुंड कहते हैं। यहाँ स्थित नारदशिला, वाराहशिला, मार्कंडेयशिला, नृसिंहशिला और गरुडशिला को पंचशिला कहते हैं। बदरीनाथ के मदिर से लगभग ४०० गज उत्तर की ओर अलकनदा के दाहिने किनारे पर ब्रह्मकपाली चट्टान है जिसपर बैठकर यात्रीगण पितरो को पिंडदान करते हैं।

बदरीनाथ भट्ट का जन्म आगरे के गोकुलपुरा नामक मुहल्ले में संवत् १९४८ वि० को चैत्र शुक्ल तृतीया को हुआ था। आपके पिता पं० रामेश्वर भट्ट हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। घर पर अध्ययन करने के पश्चात् आगरा कालेज से आपने दसवीं कक्षा पास की। अध्ययन के अतिरिक्त आप फुटबाल तथा क्रिकेट के भी अच्छे खिलाड़ी थे।

स्वदेशी आदोलनो का भट्ट जी पर व्यापक प्रभाव पडा और वह देशभक्ति की ओर उन्मुख हो गए। सन् १९११ ई० मे इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास की। आपने डिग्री लेने के पश्चात् एक वर्ष तक कानून का भी अध्ययन किया परंतु उस ओर इनका मन अधिक नहीं रमा। आप बलवत राजपूत कालेज मे अध्यापक हो गए और आपने हिंदी मे लिखना पढना प्रारभ कर दिया। आगरा नागरीप्रचारिणी सभा के प्रमुख कार्यकर्ता के रूप मे भी आपने कार्य किया। इसी समय आपकी मैत्री प० सत्यनारायण कविरत्न से हुई। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से आपने 'सरस्वती' मे लिखना प्रारभ किया। 'सरस्वती' मे भट्ट जी के साहित्यिक लेख तथा 'मर्यादा' और 'प्रताप' मे आपके राजनीतिक लेख प्रकाशित होते थे। आपका हास्य और व्यग्य बडा मर्मस्पर्शी होता था। 'प्रताप' मे आप गोलमालकारिणी सभा की कार्यवाही तथा आगरे से प्रकाशित होनेवाले 'सैनिक' मे हलचलकारिणी सभा के अतर्गत हास्य तथा व्यग लिखा करते थे।

अधविश्वास और भाषा विषयक दकियानूसी विचारवाले व्यक्तियो की इन्होने सदैव ही खबर ली। यह खडी बोली के समर्थक थे और ब्रजभाषा के प्रेमी। इसी समय इन्हे सगीत की रुचि हुई। इन्होने आगरे के प्रसिद्ध गायक गुलाम अब्बास से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। सगीत की शिक्षा का उपयोग इन्होने गीत लिखने मे किया है। भट्ट जी के समय मे पारसी थियेट्रिकल कपनियो का बोलबाला था। पारसी रगमच के लिये लिखे गए नाटको का स्तर बहुत ही नीचा था। हिंदी का अपना रगमच हो, यह इस मत के पक्षपाती थे। इन्होंने शुद्ध हिंदी मे कुरु-वन-दहन नामक नाटक (रामभूषण प्रेस, आगरा से प्रकाशित) का निर्माण किया। इस नाटक का हिंदी जगत् म स्वागत हुआ। उत्साहित होकर भट्ट जी ने अन्य नाटकों एव प्रहसनो की रचना की। सन् १९१६ ई० मे द्विवेदी जी की आज्ञा से आप इंडियन प्रेस, प्रयाग मे कार्य करने के लिये चले गए। इडियन प्रेस मे रहकर भट्ट जी ने वहाँ के हिंदी विभाग मे अनेक सुधार किए और बालको के लिये एक सचित्र मासिक 'बालसखा' का सपादन कराया। बाल साहित्य सबधी यह पत्रिका हिंदी जगत् मे महत्वपूर्ण है। १९१८ ई० मे प्रयाग मे कुभ पडा। इस अवसर पर भट्ट जी की भेट साधु सतो से हुई और इसका इनके जीवन पर व्यापक प्रभाव पडा। इनकी रहन सहन मे सरलता आ गई और वेदात के अध्ययन की ओर इनकी अभिरुचि हुई। अस्वस्थ रहने और नेत्रकष्ट के कारण १९१९ मे इन्होने इडियन प्रेस का कार्य छोड दिया। प्रयाग से नौकरी छोड़ आपने देशाटन किया। आगरे आकर 'सुधारक' पत्र का सपादन किया।

सन् १९२२ मे लखनऊ विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और भट्ट जी हिंदी के प्रथम प्राध्यापक होकर लखनऊ आए। लखनऊ मे ही उनका शेष जीवन व्यतीत हुआ। लखनऊ मे भट्ट जी का संपर्क

'माधुरी' संपादक मुंशी प्रेमचंद, पं० कृष्णबिहारी मिश्र तथा पं० रूपनारायण पाडेय से हुआ। माधुरी मे प्राय: आपकी समालोचनाएँ छपती थी। १ मई, सन् १९३४ ई० को आपका स्वर्गवास हो गया। भट्ट जी का जीवन दृढ सकल्प तथा आत्मसमान के भाव से ओतप्रोत था। वह मनुष्य पहले थे, कवि नाटककार और आलोचक बाद मे। [गि० च० त्रि०]

बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमघन' भारतेंदु मडल के उज्वलतम नक्षत्र 'प्रेमघन' जी पं० गुरुचरणलाल उपाध्याय के पुत्र थे। गुरुचरणलाल उपाध्याय, कर्मनिष्ठ तथा विद्यानुरागी ब्राह्मण थे। सस्कृत भाषा के प्रचार प्रसार मे आपने तन-मन-धन से योगदान किया। इस तपस्वी एव विद्याप्रेमी ब्राह्मण के उपाध्याय जी ज्येष्ठ पुत्र थे। आप सरयूपारीण ब्राह्मण कुलोद्भूत भारद्वाज गोत्रीय खोरिया उपाध्याय थे। आपका जन्म भाद्र कृष्णा षष्ठी, संवत् १९१२ को दात्तापुर नामक ग्राम मे हुआ था। इनकी माता ने मीरजापुर मे हिंदी अक्षरो का ज्ञान कराया। फारसी की शिक्षा का आरंभ भी घर पर करा दिया गया। अंग्रेजी शिक्षा के लिये आप गोडा (अवध) भेजे गए। यहा आपका सपर्क अयोध्यानरेश महाराज सर प्रतापनारायण सिंह (ददुआ साहेब), महाराज उदयनारायण सिंह, लाला त्रिलोकी नाथ प्रभृत ताल्लुकेदारो से हुआ। इस ससर्गज गुण से आपको मृगया, गजसचालन, निशानेबाजी, घोडसवारी आदि ताल्लुकदारी शौको मे रुचि हुई। उच्च शिक्षा पाने के लिये सवत् १९२४ मे फैजाबाद चले आए। पैत्रिक व्यवसाय और रियासत के प्रबध के लिये मीरजापुर आ जाना पडा।

चौधरी गुरुचरणलाल विद्याव्यसनी थे। उन्होने अंग्रेजी हिंदी और फारसी के साथ ही साथ सस्कृत की शिक्षा की व्यवस्था की तथा प० रामानद पाठक को अभिभावक शिक्षक नियुक्त किया। पाठक जी काव्यमर्मी एव रसज्ञ थे। इनके साहचर्य से कविता मे रुचि हुई। उन्ही के उत्साह और प्रेरणा से पद्यरचना करने लगे। सपन्नता और यौवन के सधिकाल मे आपका झुकाव सगीत की ओर हुआ और ताल, लय, राग, रागिनी का आपको परिज्ञान हो गया विशेषत: इसलिये कि वे रसिक व्यक्ति थे और रागरग मे अपने को लिप्त कर सके थे। सवत् १९२८ मे कलकत्ते से अस्वस्थ होकर आए और लबी बीमारी मे फंस गए। इसी बीमारी के दौरान मे आपकी प० इद्र नारायण सागलू से मैत्री हुई। सागलू जी शायरी करते थे और अपने मित्रो को शायरी करने के लिये प्रेरित भी करते। इस सगत से नज्मो और गजलो की ओर रुचि हुई। उर्दू फारसी का आपको गहरा ज्ञान था ही। अस्तु, इन रचनाओ के लिये 'अब्र' (तखल्लुस) उपनाम रखकर गजल, नज्म, और शेरो की रचना करने लगे। सागलू के माध्यम से आपकी भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र से मैत्री का सूत्रपात हुआ। धीरे धीरे यह मैत्री इतनी प्रगाढ हुई कि भारतेदु जी के रग मे प्रेमघन जी पूर्णतया पग गए, यहां तक कि रचनाशक्ति, जीवनपद्धति और वेशभूषा से भी भारतेंदु जीवन अपना लिया।

वि० स० १९३० मे प्रेमघन जी ने 'सद्धर्म सभा' तथा १९३१ वि० सं० 'रसिक समाज' की मीरजापुर मे स्थापना की। सवत् १९३३ वि० मे 'कवि-वचन-सुधा' प्रकाशित हुई जिसमे इनकी कृतियों का प्रकाशन होता। उसका स्मरण चौधरी जी की मीरजापुर की कोठी का धूलिधूसरित नृत्यकक्ष आज भी कराता है। ग्रथ प्रकाशन की सुविधा के लिये इसी कोठी मे आनदकादबिनी मुद्रणालय खोला गया। सवत् १९३८ मे 'आनदकादंबिनी' नामक मासिक पत्रिका की प्रथम माला प्रकाशित हुई। सवत् १९४९ मे नागरी नीरद नामक साप्ताहिक का सपादन और प्रकाशन आरभ किया। प्रेमघन जी के साथ आचार्य रामचद्र शुक्ल का पारिवारिक-सा सबध था। शुक्ल जी शहर के रमईपट्टी मुहल्ले मे रहते थे और लन्दन मिशन स्कूल मे ड्राइंग मास्टर थे। आनद कादबिनी प्रेस मे छपाई भी देख लेते थे। चौधरी बधुओ की सत्प्रेरणा और साहचर्य से अयोध्यानरेश ने युगप्रसिद्ध छदशास्त्र और रसग्रथ रस-कुसुमाकर की रचना करवाई। रसकुसुमाकर की व्याख्याशैली, सकलन, भाव, भाषा, चित्र चित्रण मे आज तक इस बेजोड ग्रथ को चुनौती देने मे कोई रचना समर्थ नही हो सकी है यद्यपि यह ग्रथ निजी व्यय पर निजी प्रसारण के लिये मुद्रित हुआ था। भारतेंदु जी की आयु ३४ वर्ष की थी। मित्र प्रेमघन जी ने इससे पूरी दूनी आयु पाई यानी ६८ वर्ष की अवस्था मे फाल्गुन शुक्ल १४, सवत् १९७८ को आपकी इहलीला समाप्त हो गई।

प्रेमघन जी आधुनिक हिंदी के आविर्भाव काल मे उत्पन्न हुए थे। उनके अनेक सममामयिक थे जिन्होने हिंदी को हिंदी का रूप देने मे संपूर्ण योगदान किया। इनमे प्रमुख प्रतापनारायण मिश्र, पडित अबिकादत्त व्यास, पं० सुधाकर द्विवेदी, प० गोविंद नारायण मिश्र, प० बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, बाबू राधाकृष्णदास, प० किशोरीलाल गोस्वामी तथा रामकृष्ण वर्मा प्रभृत साहित्यिक थे।

कृतित्व — प्रेमघन की रचनाओ का क्रमश. तीन खडो मे विभाजन किया जाता है: १. प्रबंध काव्य २ सगीत काव्य ३. स्फुट निबध। वे कवि ही नही उच्च कोटि के गद्यलेखक और नाटककार भी थे। गद्य मे निबध, आलोचना, नाटक, प्रहसन, लिखकर अपनी साहित्यिक प्रतिभा का बड़ी पटुता से निर्वाह किया है। आपकी गद्य रचनाओं मे हास परिहास का पुटपाक होता था। कथोपकथन शैली का आपके 'दिल्ली दरबार मे मित्रमडली के यार' मे देहलवी उर्दू का फारसी शब्दो से सयुक्त चुस्त मुहावरेदार भाषा का अच्छा नमूना है। गद्य मे खडी बोली के शब्दो का प्रयोग (सस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्द) आलकारिक योजना के साथ प्रयुक्त हुआ। प्रेमघन की गद्यशैली की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि खडी बोली गद्य के वे प्रथम आचार्य थे। समालोच्य पुस्तक के विषयो का अच्छी तरह विवेचन करके उसके विस्तृत निरूपण की चाल उन्होने चलाई (रामचद्र शुक्ल)।

उन्होने कई नाटक लिखे हैं जिनमे 'भारत सौभाग्य' १८८८ मे कांग्रेस महाधिवेशन के अवसर पर खेले जाने के लिय लिखा गया था।

प्रेमघन का काव्यक्षेत्र विस्तृत था। वे ब्रजभाषा को कविता की भाषा मानते थे। प्रेमघन ने जिस प्रकार खडी बोली का परिमाजन किया उनके काव्य से स्पष्ट है। 'बेसुरी तान' शीर्षक लेख मे आपने भारतेदु की आलोचना करने मे भी चूक न की। प्रेमघन की

कृतियों का संकलन उनके पौत्र दिनेशनारायण उपाध्याय ने किया है जिसका 'प्रेमघन सर्वस्व' नाम से हिंदी साहित्य समेलन ने दो भागों में प्रकाशन किया है। प्रेमघन हिंदी साहित्य समेलन के तृतीय कलकत्ता अधिवेशन के सभापति (सं० १९१२) मनोनीत हुए थे।

कृतियाँ — (१) भारत सौभाग्य (२) प्रयाग रामागमन, संगीत सुधासरोवर, भारत भाग्योदय काव्य।

गद्य पद्य के अलावा आपने लोकगीतात्मक कजली, होली, चैता आदि की रचना भी की है जो ठेठ भावप्रवण मीरजापुरी भाषा के अच्छे नमूने हैं और सभवतः आज तक बेजोड़ भी। कजली कादंबिनी में कजलियों का संग्रह है। प्रेमघन जी का स्मरण हिंदी साहित्य के प्रथम उत्थान का स्मरण है। [श्री० ना० पा०]

बदायूँ १. जिला, स्थिति : २७° ४०' से २८° २९' उ० अ० तथा ७८° १६' से ७९° ३१' पू० दे०। यह भारत के पश्चिमी उत्तर प्रदेश में स्थित जिला है। इसका क्षेत्रफल १,९९८ वर्ग मील तथा जनसख्या १४,११,६५७ (१९६१) है। इसके दक्षिण में एटा तथा अलीगढ़, पश्चिम में बुलंदशहर, पश्चिमोत्तर में मुरादाबाद, उत्तर में बरेली तथा पूर्व में शाहजहाँपुर एवं फर्रुखाबाद जिले हैं। यह एक निम्न, समतल तथा उपजाऊ प्रदेश है। लगभग चार से पाँच मील चौड़ी बालू की रिज (ridge) उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर फैली है। सोत, महावा, गंगा, रामगंगा आदि नदियाँ बहती है। यहाँ का जलवायु ठंढा तथा नम रहता है। वार्षिक वर्षा का औसत ३४ इंच है। अति उपजाऊ तथा सिंचाई की आवश्यकता कम होने के कारण कृषि अच्छी होती है। गेहूँ, ज्वार मुख्य फसलों के अतिरिक्त गन्ना, धान, जौ, बाजरा भी अधिक पैदा होता है। शक्कर के शोधन के कार्य के अतिरिक्त सूती कपड़ा बुनना, बढ़ईगीरी, पीतल का काम, बरतन बनाने का काम भी किया जाता है। कृषि उत्पाद, जैसे शक्कर, अनाज आदि को बाहर भेजा जाता तथा कपड़ा, नमक एवं धातु को मँगाया जाता है। पहले यहाँ नील का कार्य अधिक किया जाता था।

२ नगर, स्थिति २८° २' उ० अ० तथा ७९° ७' पू० दे०। उपर्युक्त जिले के मध्य पूर्वी भाग में सोत (Sot) नदी से एक मील पूर्व, बरेली से मथुरा जानेवाले मार्ग पर स्थित नगर है। इसकी जनसख्या ५८,७७० (१९६१) है। नगर नए एवं पुराने दो भागों में बँटा है। यहाँ पर एक बहुत ही मजबूत किले के खंडहर मिलते है तथा शमशुद्दीन इल्तुतमिश द्वारा बनवाई एक गुबद के आकार वाली जामा मस्जिद भी है, जो यहाँ के एक बड़े हिंदू मंदिर को तोडकर उसी से प्राप्त सामग्री से बनाई गई थी। यह प्रसिद्ध इतिहासकार अब्दुलकादिर बदायूँनी का जन्म स्थान भी है।

बद्धांत्र (Intestinal obstructions) अन्नमार्ग लगभग २५ फुट लंबी एक नली है जिसका कार्य खाद्यपदार्थ को इकट्ठा करना, पचाना, सूक्ष्म रूपों में विभाजित कर रक्त तक पहुँचा देना एवं निरर्थक अंश को निष्कासित करना है। बद्धांत्र यह दशा है जब किसी कारणवश आंत्रमार्ग में रुकावट आ जाती है। इससे उदर शूल, वमन तथा कब्ज आदि लक्षण प्रकट होते है। उचित चिकित्सा के अभाव में यह रोग घातक सिद्ध हो सकता है।

कारण — (१) सिकुड़न (stricture) — दो प्रकार का होता है, जन्मजात और अर्जित। जन्मजात — गर्भावस्था में ही जब आंत्र का कुछ हिस्सा बंद रह जाय या अंतिम भाग में छिद्र
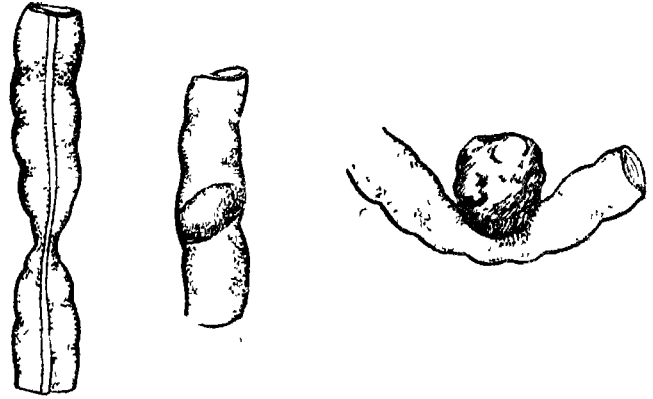
अ सिकुड़न ब बाह्य पदार्थ स बाहरी दबाव
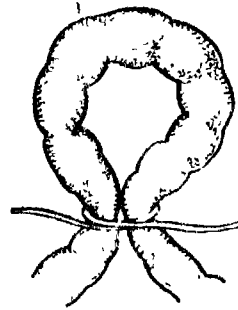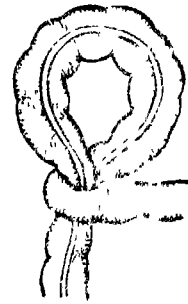
द आसंजक बंध इ अपनी आंत्र योजनी के अक्ष पर ऐंठी हुई आंत्र

चित्र १

का अभाव हो। अर्जित — चोट, शोथ, अर्बुद, क्षय अथवा अन्य रोग के कारण जब आंत्र मार्ग में सिकुड़न हो जाय (चित्र १ अ)।

(२) **बाह्य पदार्थ** — आंत्रमार्ग में जब मल जम जाय या पित्त की थैली की अश्मरी (stone) के कारण रुकावट हो (चित्र १ ब)।

(३) **बाहरी दबाव** — उदर के भीतर जब किसी अर्बुद के दबाव के कारण आंत्रमार्ग अवरुद्ध हो जाय (चित्र १ स)।

(४) **आसंजक बंध** — इसमें बंध शल्यक्रिया अथवा उंडुक, पित्ताशय आदि के प्रदाह के कारण उत्पन्न होते हैं (चित्र १ द)।

(५) **हर्निया या आँत उतरना** — इसमें आंत्र का कुछ हिस्सा वक्षण, आंत्र योजनी, मध्यच्छद या किसी अन्य छिद्र द्वारा बाहर आ जाता है तथा छिद्र की कसावट के कारण वापस नहीं जा पाता।

(६) **ऐंठन** — आंत्र का कुछ हिस्सा जब अपनी आंत्रयोजनी पर ही ऐंठ जाय तथा आंत्रमार्ग अवरुद्ध हो जाय। इसे वालवुलस (volvulus) कहते है (चित्र १ इ)।

(७) **अंतराधान** (Intussusception) — जब छोटी आंत्र का एक हिस्सा किसी कारणवश अपने पास के हिस्से के भीतर घुस जाय (देखें चित्र २)।

(८) अन्य कारण — उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त भी कुछ जन्मजात या अर्जित कारण बद्धांत्र उत्पन्न कर सकते हैं।

चित्र २. आँत्र का अंतराधान
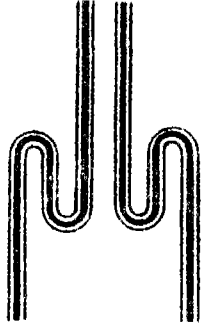
(६) इलियस (Ileus) — इस दशा में किसी स्नायुरोग अथवा लवण असंतुलन, जैसे पोटैशियम क्लोराइड या सोडियम की कमी के कारण आंत्र की गति रुक जाती है।

(१०) रक्तसंचार में रुकावट — आंत्रशिरा अथवा धमनी में रक्त जम जाने से आंत्र कार्य करना बंद कर देता है।

लक्षण तथा चिह्न — बद्धांत्र के लक्षण एवं चिह्न रुकावट के कारणों, स्थान और समय पर निर्भर करते हैं। यदि इस रुकावट के साथ ही रक्तसंचार भी रुक गया है, तो उसे स्ट्रैंगुलेटेड या रक्तावरोध बद्धांत्र कहते हैं।

सर्वप्रथम पेट में रह रहकर शूल होता है। पेट में गुड़गुड़ाहट सुनाई पड़ सकती है। आंत्र ध्वनि तीव्र हो जाती है। ऊपरी आंत्र की रुकावट में वमन जल्दी प्रारंभ होता है, निचले भाग की रुकावट में बाद में। अधिक वमन होने से रक्त से जल तथा लवण निकल जाते हैं जिससे जिह्वा सूखती है, आँखें धँस जाती हैं, नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है, तथा स्पर्श मुश्किल से महसूस होता है, त्वचा की संकुचनशीलता कम हो जाती है।

निचली आंत्र की रुकावट में पेट का फूलना अधिक होता है, क्योंकि वायु तथा जल वमन द्वारा नहीं निकल पाते। पेट पर अँगुली रखकर दूसरे हाथ की अँगुली से ठोकने से वायु का पता लगता है। ऐक्स-रे द्वारा भी आंत्र की रुकावट का पता लग सकता है।

कोष्ठबद्ध बद्धांत्र का विशेष लक्षण है, ऐसी कब्जियत जिसमें अपान वायु तक न निकले।

रक्तावरोध होने पर ठंढी चिपचिपी त्वचा, तीव्र किंतु हल्की नाड़ी, सूखी गंदी जिह्वा, रक्तभार में कमी, लगातार दर्द आदि लक्षण भी मिलते हैं। अधिक देर तक रक्तावरोध होने से आंत्र का उतना हिस्सा निर्जीव हो जाता है। उदर के स्पर्श से अत्यंत पीड़ा होती है।

चिकित्सा — चिकित्सा प्रारंभ करने के पूर्व तीन बातों का उत्तर पा लेना आवश्यक है (१) क्या बद्धांत्र है ? (२) क्या रक्तावरोध भी है ? तथा (३) रुकावट किस स्थान पर है ?

चिकित्सा का उद्देश्य रुकावट दूर कर आंत्रमार्ग को बनाए रखना है। इसके लिये शल्यक्रिया की आवश्यकता पड़ती है, किंतु जब अत्यधिक वमन के कारण शरीर से जल तथा लवण निकल जाते हैं तब पहले शिरा में नमकयुक्त जल पर्याप्त मात्रा में इंजेक्शन द्वारा पहुँचाना आवश्यक है।

वमन तथा पेट फूलना रोकने के लिये रबर की लंबी नली, जैसे राइल्स ट्यूब, नाक या मुँह द्वारा आमाशय के भीतर पहुँचा दी जाती है तथा इसमें से पिचकारी द्वारा द्रव खींचकर बाहर निकालते हैं।

पहले बद्धांत्र की चिकित्सा के लिये लंबी रबर की नली मुँह द्वारा आमाशय तथा उसके आगे क्षुद्रांत्र में डाली जाती थी और उसमें से वायु तथा द्रव पदार्थ बाहर निकाले जाते थे। किंतु इसमें कई घंटे लग जाते हैं तथा सफलता निश्चित नहीं होती।

शल्यक्रिया द्वारा रोगी को बेहोश करने के बाद उदर खोला जाता है तथा वहाँ रुकावट का जो कारण मिलता है, उसे दूर किया जाता है। ऐंठन ठीक की जाती है, आसंजक बंध काटा जाता है। यदि रक्तावरोध के कारण आंत्र का कुछ हिस्सा निर्जीव हो जाता है, तो उसे भी काटकर बाहर निकालना पड़ता है तथा दोनों सिरों को जोड़ दिया जाता है। शिरा में आवश्यकता पड़ने पर अतिरिक्त रक्त भी दूसरे स्वस्थ व्यक्ति से लेकर पहुँचाया जाता है। [गो० दा० अ०]

बद्रीनाथ प्रसाद सुप्रसिद्ध गणितज्ञ, का जन्म १२ जनवरी, १८६६ ई० को जिला आजमगढ़ के मुहम्मदाबाद गोहना ग्राम के एक समृद्ध परिवार में हुआ था। इनकी पढ़ाई अपने ग्राम मुहम्मदाबाद, सीवान (सारन), पटना और वाराणसी में हुई। पटना विश्वविद्यालय से सन् १९१९ में बी० एस-सी० उत्तीर्ण कर इन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से एम० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। लिवरपूल विश्वविद्यालय से १९३१ ई० में पी-एच० डी० की और १९३२ ई० में पैरिस विश्वविद्यालय से स्टेट डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। लिवरपूल और पैरिस विश्वविद्यालयों में सुप्रसिद्ध गणितज्ञों के अधीन इन्होंने अध्ययन और अनुसंधान कार्य संपन्न किया था। ये हिंदू विश्वविद्यालय में सुप्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ डा० गणेश प्रसाद के प्रिय शिष्यों में से थे और उनके अधीन इन्होंने वास्तविक चरवाले फलनों के सिद्धांतों तथा श्रेणियों, विशेषतया फूर्ये श्रेणी, तथा उनसे संबद्ध अन्य श्रेणियों की, आकलनीयता पर गवेषणा की। इंग्लैंड में अपने एक प्रोफेसर के साथ आबेल आकलनीयता की निरपेक्ष विधि ज्ञात करने तथा उपयोग करने का समान बँटाने का श्रेय प्राप्त किया। दो वर्ष (१९२२-२४) तक हिंदू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहने के पश्चात् ४ जुलाई, १९२४ ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय चले गए, जहाँ लेक्चरर, रीडर, प्रोफेसर तथा गणित विभाग के अध्यक्ष पद पर रहे। बीच में दो वर्षों के लिये ये पटना कालेज में भी गणित के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष पद पर चले गए थे। इन्होंने भारत के बाहर अनेक देशों की यात्रा की थी। विज्ञान के नैशनल इंस्टिट्यूट तथा नैशनल एकेडेमी के ये पुराने फेलो थे। इंडियन मैथेमैटिकल सोसायटी और विज्ञान परिषद् के अध्यक्ष थे। भारतीय विज्ञान काँग्रेस के पुराने सदस्य और उत्साही कार्यकर्ता थे। १९४५ ई० में गणित तथा सांख्यिकी अनुभाग की अध्यक्षता भी आपने की थी। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के ५३वें अधिवेशन (१९६५) के प्रधान अध्यक्ष रहे। भारत सरकार ने इन्हें पद्मभूषण की उपाधि से १९६३ ई० में विभूषित किया था और १९६४ ई० में

संसद् राज्य सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। १८ जनवरी, १९६६ ई० को हृदयगति बंद हो जाने से आपकी सहसा मृत्यु हो गई।

[फू० म० व०]

बन्यन, जॉन (१६२८-१६८८) का जीवन एक ऐसे विनम्र एव कृतसंकल्प व्यक्ति की कहानी है जिसने अपनी आत्मा के आदेशन का अनुसरण किया, परंतु कठोर संसार में जहाँ व्यवहारवाद एव विधान धार्मिक जीवन तथा आचार का निर्धारण करते हैं, यातनाएँ झेलीं। व्यवसाय से ठठेर तथा एक पीतल के व्यवसायी के पुत्र बन्यन का जन्म बेडफ़ोर्ड के निकट एलैस्टो में नवबर, १६२८ मे हुआ। उन्हे गाँव के विद्यालय में थोड़ी शिक्षा मिली तथा १६ वर्ष की अल्पावस्था मे इंग्लैंड में राजपक्ष तथा ससदीयपक्ष के बीच होनेवाले गृहयुद्ध में भाग लेना पड़ा। वह ससदीय दल मे संमिलित हुए तथा तीन वर्ष तक (१६४४-१६४७) न्यूपोर्ट पैग्नाल में सेवारत रहे। १६५३ मे बेडफ़ोर्ड में वे एक स्थानीय नॉन-कन्फ़र्मिस्ट दल (विरोधीदल) मे संमिलित हुए तथा आजीवन एक विरोधी तथा निर्भय धर्मोपदेशक रहे। ससद् के विभिन्न अधिनियम, अनुज्ञप्ति तथा प्रचलित धर्म के उपदेशों तथा सिद्धांतो से समनुरूपता के बिना धर्मोपदेश का निषेध करते थे। बन्यन ने इन दोनों निषधाज्ञाओं का उल्लंघन किया तथा उन्हें १६६० मे बेडफोर्ड के बंदीगृह मे १२ वर्ष के दीर्घ कारावास का दंड मिला। १६७२ मे क्षमादान द्वारा मुक्त होने पर उन्हे धर्मोपदेश की अनुज्ञप्ति मिली तथा वे बेडफोर्ड के गिरजाघर मे पादरी हो गए। १६७५ मे शासन मे परिवर्तन के कारण वे पुन अपने धार्मिक विचारो के लिये बंदी किए गए तथा छह मास हेतु कारावासित किए गए। बेडफोर्ड बंदीगृह मे ही उन्होंने अपने महान् ग्रंथ '**पिलग्रिम्स प्रोग्रेस**' का प्रथम भाग लिखा जो मुक्ति के अन्वेषक ईसा के एक अनुयायी की कहानी है। परीक्षा, यातना तथा **पिलग्रिम्स प्रोग्रेस** के अतिरिक्त अन्य पुस्तको के महत्वपूर्ण लेखकत्व के जीवन के उपरात अगस्त, १६८८ मे लंदन मे उनका निधन हुआ।

उनके साहित्यिक ग्रंथ उनके जीवन तथा आत्मा की अनश्वर प्रतिमूर्ति है। १६६६ मे अपना आध्यात्मिक आत्मचरित् '**ग्रेस एबाउन्डिंग**' (पूर्ण शीर्षक है **ग्रेस एबाउन्डिंग टु दि चीफ ऑव सिनर्स**) यह पुस्तक उनके अपवित्र यौवन, उनके पाप तथा नैराश्य एव उनके उद्धार में प्रभु की दया का मुक्त अकन है। कॉल्विनवादीय अथवा असमनुरूप सिद्धांतों से मिश्रित मनोवैज्ञानिक अनुभवो से प्राय: उनका प्रत्येक ग्रंथ प्रतिवेधित है। उन्होंने **दि होली सिटी** (१६६५), **ग्रेस एबाउन्डिंग** (१६६६), **दि पिलग्रिम्स प्रोग्रेस** भाग १, १६७८ मे तथा भाग २, १६८४ में प्रकाशित, **दि लाइफ़ ऐंड डेथ ऑव मिस्टर बैडमैन** (१६८०), **दि होली वार** (१६८२) तथा **दि हेवेनली फ़ुटमैन**, मरणोत्तर प्रकाशित (१६८२) लिखा। जॉन बन्यन की कृतियों का सकलन तथा सपादन एच० स्टेबिंग द्वारा १८५९ मे हुआ तथा १६३२ मे एफ० एम० हैरिसन ने जॉन बन्यन के ग्रंथो की अनुक्रमणिका संपादित की।

जॉन बन्यन की प्रमुख कृतियाँ स्वरूप मे प्रतीकात्मक एव रूढिवादी प्यूरिटन परपरानुरूप हैं। उनमे क्रिश्चियन, मिस्टर वर्ल्डली वाइज मैन, मिसेज डिफिडेंस, जायंट डिसपेयर, मैडम वैटन, माई लार्ड हेट गुड तथा मिस्टर स्टैडफास्ट' सदृश पात्र है। इन पात्रो का चित्रण नाटकीय सजीवता के साथ हुआ है तथा वे समकालीन इंग्लैंड के वस्तुजगत् मे विचरण करते है। सुपरिचित स्थानीय सस्थापनो मे वे अपने साहसिक कार्यों मे जीते जागते से प्रतीत होते हैं तथा बोलचाल की भाषा मे सभाषण करते है। कथानक, पात्र तथा कथोपकथन ऐसी शैली मे गुफित है जो उपन्यास के स्वरूप के अति निकट पहुँचती है। गद्य शैली दैनिक जीवन के ओजपूर्ण, सहज शब्दभडार से युक्त बाइबिल के प्रकार की है। यह सरल गद्य का सुपरिचित उदाहरण है जो स्पष्टता मे ड्राइडेन की शैली के निकट है। कलात्मक चयन तथा परिचित चित्रों द्वारा वह अपनी आवेगजन्य अवस्थितियो तथा धार्मिक अनुभवो को पाठक की चेतना मे बलात् प्रविष्ट करने मे सफलता प्राप्त करता है।

बन्यन बुद्धिवादी नही थे। वे महान् आग्रह तथा वैयक्तिक प्रज्ञा के साथ परपरागत प्यूरिटन शैली में लिखते थे यथा आर्थर डेंट के 'प्लेनमैन्स पाथवे टु हेवेन' (१६११) तथा रिचर्ड बर्नार्ड की प्रतीकात्मक गद्य कृति 'दि आइल ऑव मैन' (१६२६) मे है। वह अपने परिकल्पेशन तथा सिद्धात सद्भाव एव प्राकृत सारल्य के साथ समुचित करते हैं। वे अध्यात्मवादी के उच्च स्वर तथा उद्धरणकर्ता के निम्न तल म विचरण कर सकते थे परतु वे बीच की शैली — अथवा ई० एम० डब्ल्यू० टिल्याड के शब्दों मे 'वैयक्तिक धार्मिक अनुभव तथा आसपास दिखाई पड़नेवाली सुपरिचित वस्तुओ के बीच की मध्यभूमि'—मे नही लिख सकते थे। एकमात्र पुस्तक जिसमें वह इस मध्यभूमि पर पादस्थापन कर सके है 'दि होली वार' (१६८२) है तथा पिलग्रिम्स प्रोग्रेस के कुछ अश।

[ए० पी० ओ०]

बपतिस्मा बाइबिल मे लिखा है कि ईसा ने अपने स्वर्गारोहण के पूर्व अपने शिष्यों से कहा था — मुझे स्वर्ग और पृथ्वी का पूरा अधिकार दिया गया है। इसलिये जाओ, सब मनुष्यो को शिष्य बनाकर उन्हे पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम पर बपतिस्मा दो (मत्ती २८,१८–१९)। इसके आधार पर क्वेकर्स (Quakers) तथा मुक्तिसेना को छोड़कर सभी ईसाई सप्रदायो म बपतिस्मा अर्थात् दीक्षास्नान का सस्कार प्रचलित है। प्रारभ ही से ईसा के शिष्यों ने विश्वासियो का बपतिस्मा द्वारा आदिपाप तथा सभी स्वीकृत पापो मे छुटकारा दिलाया है। मनुष्य चर्च का सदस्य बनकर ईसा के साथ रहस्यात्मक ढग से सयुक्त हो जाता है और उसम एक आध्यात्मिक नवजीवन (सैंक्टिफाइंग ग्रेस, पवित्रकारी कृपा) का सचार हो जाता है। यदि बपतिस्मा उचित रीति से दिया गया है तो उसे नही दुहराया जा सकता। पुरोहित ही प्राय. यह सस्कार कराता है किंतु आवश्यकता पड़ने पर कोई भी उसे सपन्न कर सकता है। मान्यता की तीन शर्ते है . (१) बपतिस्मा पानेवाले के सिर पर पानी उँडेलना अथवा उसका सारा शरीर पानी मे डुबाना (कुछ प्रोटेस्टैंट सप्रदायो मे जल छिडक दिया जाता है; चर्च के प्रारभ म पूरा शरीर डुबोने की प्रथा अधिक प्रचलित थी); (२) बपतिस्मा के शब्दो का उच्चारण (मै तुमको पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम पर बपतिस्मा देता हूँ), (३) सस्कार सपन्न करनेवाले का अभिप्राय कि मै ईसा के इच्छानुसार बपतिस्मा देना चाहता हूँ और जो ग्रहण करनेवाला वयस्क हो उसे ईसा पर विश्वास, अपने पापो पर पश्चात्ताप तथा सस्कार ग्रहण करने

का अभिप्राय होना चाहिए। बेप्टिस्ट तथा मेनोनाइट संप्रदायों में बच्चों को दिया हुआ बपतिस्मा मान्य नहीं होता। (दे० बैप्टिस्ट चर्च)। [का० बु०]

बप्पा रावल बप्पा या बापा वास्तव मे व्यक्तिवाचक शब्द नही है, अपितु जिस तरह 'बापू' शब्द महात्मा गाधी के लिये रूढ हो चुका है, उसी तरह आदरसूचक 'बापा' शब्द भी मेवाड़ के एक नृपविशेष के लिये प्रयुक्त होता रहा है। गुहिल वंशी राजा कालभोज का ही दूसरा नाम बापा मानने मे कुछ एतिहासिक असंगति नही होती। इसके प्रजासंरक्षण, देशरक्षण आदि कामो से प्रभावित होकर ही संभवत जनता ने इसे बापा पदवी से विभूषित किया था। महाराणा कुंभा के समय मे रचित एकलिंग माहात्म्य मे किसी प्राचीन ग्रंथ या प्रशस्ति के आधार पर बापा का समय संवत् ८१० (सन् ७५३) ई० दिया है। एक दूसरे एकलिंग माहात्म्य से सिद्ध है कि यह बापा के राज्यत्याग का समय था। यदि बापा का राज्यकाल ३० साल का रखा जाय तो वह सन् ७२३ के लगभग गद्दी पर बैठा होगा। उससे पहले भी उसके वंश के कुछ प्रतापी राजा मेवाड मे हो चुके थे, किंतु बापा का व्यक्तित्व उन सबसे बढकर था। चित्तौड का मजबूत दुर्ग उस समय तक मोरी वंश के राजाओ के हाथ मे था। परंपरा से यह प्रसिद्ध है कि हारीत ऋषि की कृपा से बापा ने मानमोरी को मारकर इस दुर्ग को हस्तगत किया। टॉड को यही राजा मानका वि० सं० ७७० (सन् ७१३ ई०) का एक शिलालेख मिला था जो सिद्ध करता है कि बापा और मानमोरी के समय मे विशेष अंतर नही है।

चित्तौड पर अधिकार करना कोई आसान काम न था; किंतु हमारा अनुमान है कि बापा की विशेष प्रसिद्धि अरबो से सफल युद्ध करने के कारण हुई। सन् ७१२ ई० मे मुहम्मद कासिम से सिंध को जीता। उसके बाद अरबो ने चारो ओर धावे करने शुरू किए। उन्होंने चावडो, मौर्यों, सैंधवो, कच्छेल्लों और गूर्जरों को हराया। मारवाड, मालवा, मेवाड, गुजरात आदि सब भूभागो मे उनकी सेनाएँ छा गई। इस भयंकर कालाग्नि से बचाने के लिये ईश्वर ने राजस्थान को कुछ महान् व्यक्ति दिए जिनमे विशेष रूप से प्रतिहार सम्राट् नागभट प्रथम और बापा रावल के नाम उल्लेख्य है। नागभट प्रथम ने अरबो को पश्चिमी राजस्थान और मालवे से मार भगाया। बापा ने यही कार्य मेवाड और उसके आसपास के प्रदेश के लिये किया। मौर्य (मोरी) शायद इसी अरब आक्रमण से जर्जर हो गए हो। बापा ने वह कार्य किया जो मोरी करने मे असमर्थ थे, और साथ ही चित्तौड पर भी अधिकार कर लिया। बापा रावल के मुस्लिम देशो पर विजय की अनेक दंतकथाएँ अरबो की पराजय की इस सच्ची घटना से उत्पन्न हुई होगी।

डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अजमेर के सोने के सिक्के को बापा रावल का माना है। इसका तोल ११५ ग्रेन (६५¾ रत्ती) है। इस सिक्के मे सामने की ओर ऊपर के हिस्से मे माला के नीचे श्री बोप्प लेख है। बाईं ओर त्रिशूल है, और उसकी दाहिनी तरफ वेदी पर शिवलिंग बना है। इसके दाहिनी ओर नंदी शिवलिंग की ओर मुख किए बैठा है। शिवलिंग और नंदी के नीचे दंडवत् करते हुए एक पुरुष की आकृति है। पीछे की तरफ चमर, सूर्य, और छत्र के चिह्न हैं। इन सबके नीचे दाहिनी ओर मुख किए एक गौ खड़ी है और उसी के पास दूध पीता हुआ बछड़ा है। ये सब चिह्न बापा रावल की शिवभक्ति और उसके जीवन की कुछ घटनाओ से संबद्ध हैं।

सं० ग्रं० — गौरीशंकर हीराचंद ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, पहली जिल्द; जी० सी० रायचौधरी हिस्ट्री ऑव मेवाड। [द० श०]

बफालो (Buffalo) १. स्थिति : ४२° ५३' उ० अ० तथा ७८° ५५' प० दे०। यह संयुक्त राज्य, अमरीका के न्यूयॉर्क राज्य की इयरी काउंटी मे जनसंख्या की दृष्टि से राज्य का द्वितीय बडा नगर है, जो इयरी झील के पूर्वी तट पर, न्यूयॉर्क से रेल द्वारा ३६६ मील दूर स्थित है। सर्वप्रथम फ्रांसीसी व्यापारी सी० जानकेयर (C Joncair) ने १७५८ ई० मे इयरी झील और बफालो नाले के संगम पर व्यापारिक बस्तियाँ स्थापित की थी। यहाँ कई प्रसिद्ध भवन हैं। जोजेफ इलिकॉट ने वाशिंगटन डी० सी० के ढंग पर नगर की योजना बनाई। इसकी जनसंख्या ५,३२,७५९ (१९६०) है। १८२५ ई० मे इयरी नहर के खुलने से लौह एवं इस्पात, रसायनक, ओषधियाँ, मोटर, मशीन, खाद्यवस्तुएँ, वस्त्र, विद्युत्सामग्री तथा वायुयाननिर्माण उद्योगो की तीव्र प्रगति हुई। यहाँ ११ प्रमुख रेल लाइनें आकर मिलती हैं।

२ स्थिति ४४° २५' उ० अ० तथा १०६° ५०' प० दे०।

वायोमिंग (संयुक्तराज्य) मे बफालो वायोमिंग रेल लाइन पर पशुपालन और ऊन का केंद्र है। इसी नाम के नगर संयुक्त राज्य, अमरीका के मिनिसोटा, मोटाना मे भी है। [भै० ना० सि०]

बभ्रुवाहन चित्रवाहन की पुत्री चित्रागदा से उत्पन्न अर्जुन के पुत्र जो अपने नाना की मृत्यु के बाद मणिपुर के राजा बने। युधिष्ठिर के अश्वमेध अश्व को पकड लेने पर अर्जुन से इनका घोर युद्ध हुआ जिसमे यह विजयी हुए। किंतु माता के आग्रह पर इन्होने मृतसंजीवक मणि द्वारा समरभूमि मे अचेत पडे अर्जुन को चैतन्य किया और अश्व को उन्हे लौटाते हुए यह अपनी माताओं—चित्रागदा और उलूपी के साथ युधिष्ठिर के यज्ञ मे समिलित हुए (जैमि०, अश्व०, ३७, २१-४०; महा०, आश्व०, ७९-९०)। [श्या० ति०]

बरखुरदार, खान आलम मिर्जा मुगलसम्राट् अकबर के दरबार मे एक छोटा मसबदार। इसके पूर्वज तैमूरवंश के पुराने सेवक थे। राजकुमार सलीम के विशेष स्नेह के कारण यह कोराबेगी पद पर नियुक्त हुआ। सलीम जब जहाँगीर होकर सम्राट् हुआ, इसे खान आलम की प्रतिष्ठित उपाधि मिली। यह राजदूत के रूप मे ईरान भेजा गया। ईरान का शाह अब्बास सफवी इसके व्यक्तिगत गुणो से इसको बहुत स्नेह की दृष्टि से देखता था। मिर्जा को इसने लगभग व्यक्तिगत सहयोगी और अंतरंग का स्थान दे रखा था। जब ईरान से लौटकर यह जहाँगीर से मिला तो सफल राजदूत होने के पुरस्कार में इसे पाँच हजारी ३००० सवार का मसब मिला।

शाहजहाँ के शासनकाल मे छह हजारी ५००० सवार के मसब के साथ बिहार का सूबेदार नियुक्त हुआ। १६३२ के लगभग वह इस सेवा से निवृत्त हुआ। अफीम के व्यसन के कारण सम्राट ने इसे अवकाश प्रदान किया। आगरे मे कुछ दिन के निवास के बाद यह मर गया।

बरगंडी (Burgundy) स्थिति : ४७° ०' उ० अ० तथा ४° ४०' पू० दे०। यह पूर्व मध्यवर्ती फ्रांस का क्षेत्र है, जिसके अंतर्गत कोट-डी-ओर, सेओन एट ल्वायॉर, न, एवं ऐन 'डिपार्टमेंट (विभाग) आते हैं। ओडर और विस्चुला नदियों की घाटियों मे रहनेवाली जर्मन जनजाति ने (बरगंडियन) ४० ई० में अलमनी लोगों से युद्ध के कारण दक्षिणी फ्रांस के गौल मे शरण ली और ४११ ई० में बरगंडी राज्य की नीव डाली थी। इसका वर्तमान क्षेत्रफल ६,००० वर्ग मील है। अंगूर उत्पादन मुख्य उद्यम है। मास, दुग्धसामग्री एवं मछली और घोंघा पकडना अन्य उद्योग हैं। यहाँ बननेवाली मदिरा शताब्दियों से विश्वविख्यात है। [भै० ना० सि०]

बरगद, बर, बट या वट मोरेसी (Moraceae) या शहतूत कुल का पेड़ है। इसका वैज्ञानिक नाम 'फिकस वेनगैलेंसिस (Ficus bengalensis) और अंग्रेजी नाम बेनियन ट्री (Banyan tree) है। बेनियन इसलिये नाम पडा कि जब अंग्रेज इधर आए तो उन्होंने देखा कि इस पेड के नीचे बैठकर बनिए अपना कारबार करते थे। हिंदू लोग इस वृक्ष को पूजनीय मानते है। इसके दर्शन स्पर्श तथा सेवा करने से पाप दूर होता तथा दु ख और व्याधि नष्ट होती है, अत इस वृक्ष के रोपण और ग्रीष्म काल मे इसकी जड मे पानी देने से पुण्यसंचय होता है, ऐसा मानते है।

उत्तर से दक्षिण तक समस्त भारत मे वट वृक्ष उत्पन्न होते देखा जाता है। इसकी शाखाओं से बरोह निकलकर जमीन पर

बरगद का पत्ता और फल

पहुँचकर स्तंभ का रूप ले लेती हैं। इससे पेड़ का विस्तार बहुत जल्द बढ़ जाता है। भारत मे बरगद के दो सबसे बड़े पेड कलकत्ते के निकट शिवपुर के राजकीय उपवन में और महाराष्ट्र के सतारा उपवन मे हैं। शिवपुर के वटवृक्ष की मूल जड का घेरा ४२ फुट और अन्य छोटे छोटे २३० स्तंभ है। इनकी शाखा प्रशाखाओं की छाया लगभग १००० फुट की परिधि मे फैली हुई है। सतारा के वट वृक्ष, 'कबीर वट', की परिधि १,५८७ फुट और उत्तर दक्षिण ५६५ फुट और पूरब पश्चिम ४४२ फुट है। लका मे एक वट वृक्ष है, जिसमे ३५० बडे और ३,००० छोटे छोटे स्तंभ है।

बरगद की छाया घनी, बडी शीतल और ग्रीष्म काल मे आनंद-प्रद होती है। इसकी छाया मे सकडो, हजारो व्यक्ति एक साथ बैठ सकते है। बरगद के फल पीपल के फल सदृश छोटे छोटे होते हैं। साधारणतया ये फल खाए नही जाते पर दुर्भिक्ष के समय इसके फल पर लोग निर्वाह कर सकते है। इसकी लकडी कोमल और सरंध्र होती है। अत. केवल जलावन के काम मे आती है। इसके पेड से सफेद रस निकलता है जिससे एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ तैयार होता है जिसका उपयोग बहेलिये चिडियो के फँसाने मे करते है। इसके रस (आक्षीर), छाल, और पत्तो का उपयोग आयुर्वेदीय औषधियो मे अनेक रोगो के निवारण मे होता है। इसके पत्तो को जानवर, विशेषत बकरियाँ, बड़ी रुचि से खाती है। वृक्ष पर लाख के कीड़े बैठाए जा सकते हैं जिससे लाख प्राप्त हो सकती है।

बरतॉले, क्लॉड लुई (Berthollet, Claude Louis) का जन्म १७४८ ई० मे इटली के सावाइ क्षेत्र मे हुआ और ट्यूरिन मे इन्होंने औषध विज्ञान की शिक्षा पाई। १७७२ ई० मे इन्होंने पैरिस मे रसायन शास्त्र का अध्ययन आरंभ किया। उन दिनों १७६४ ई० में इकोल पॉलिटेकनिक मे ये प्रोफेसर हो गए। इनके व्याख्यान दुर्बोध होते थे, १७६८ ई० मे ये नेपोलियन के साथ मिस्र गए, जहाँ इन्होने नील नदी के मुहाने पर सोडियम कार्बोनेट का सग्रह देखा। विचार करने पर इन्हे विश्वास हो गया कि समुद्र लवणीय जल (सोडियम क्लाराइड) और चूने के पत्थर (कैल्सियम कार्बोनेट) की निरतर क्रिया मे यह बना होगा। इस प्रकार की क्रियाओ के सबध मे इन्होंने 'द्रव्य अनुपाती क्रिया का नियम' (law of mass action) प्रतिपादित किया, जो रसायन विज्ञान का महत्वपूर्ण नियम है। इन्होंने अपने इन विचारो को 'स्टैटिक किमिक (Statique chimique) नामक ग्रथ के दो खडो मे प्रकाशित किया। बरतॉले रसायन विज्ञान मे मान्य स्थिर अनुपात के नियम को नही मानते थे।

बरतॉले ने अमोनिया के सगठन पर १७८५ ई० मे क्लोरिन, हाइपोक्लोराइट और क्लोरेट पर १७८५-८७ ई० मे एव क्लोरीन के विरजक प्रभाव पर काम किया। इन्होंने १७८७ ई० मे यह प्रदर्शित किया कि प्रूसिक अम्ल के यौगिक मे हाइड्रोजन, कार्बन और नाइट्रोजन तो हैं, पर ऑक्सीजन नही है। इसी वर्ष इन्होंने साइऐनोजन क्लोराइड पर भी काम किया। बरतॉले ने प्रदर्शित किया कि हाइड्रोजन सल्फाइड मे अम्लीय गुण हैं। इन्होने १७६६ ई० मे हाइड्रोजन परसल्फाइड की संरचना पर काम किया। प्रूसिक अम्ल और हाइड्रोजन सल्फाइड के अम्लीय गुणो को प्रदर्शित करके बरतॉले ने सिद्ध कर दिया कि अम्लो मे ऑक्सीजन का होना आवश्यक नही है। बरतॉले ने अपने युग मे रसायन के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य किया।

फ्रांस की राज्यक्राति के अवसर पर गोलाबारूद के लिये शोरे की आवश्यकता थी। इसे प्राप्त करने की विधियो मे सुधार करने

के निमित्त जो कमीशन बना था उसके बरतॉले अध्यक्ष थे। बरतॉले ने ही सर्वप्रथम पोटैसियम क्लोरेट नामक यौगिक की खोज की। लोहे को अयस्कों मे से तैयार करने की विधियों के कमीशन के भी वे सदस्य रहे। १७९२ ई० में वे फ्रांस की टकसाल के निदेशक बनाए गए। कृषि और कला की ससदो मे भी वे १७९४ ई० मे पार्षद रहे। पैरिस पॉलिटेक्निक और नॉर्मल स्कूल में वे रसायन अध्यापक थे ही। बरतॉले की मृत्यु कष्टदायक रोग से पैरिस मे ६ नवबर, १८२२ ई० को हुई। [सत्य० प्र०]

बरनी (ज़ियाउद्दीन) का जन्म सुल्तान बलबन के राज्यकाल मे १२८५-८६ ई० में हुआ। उसका नाना, सिपहसालार हुसामुद्दीन, बलबन का बहुत बड़ा विश्वासपात्र था। उसके पिता मुईदुलमुल्क तथा उसके चाचा अलाउलमुल्क को सुल्तान जलालुद्दीन खलजी तथा सुल्तान अलाउद्दीन खलजी के राज्यकाल मे बडा संमान प्राप्त था। ज़ियाउद्दीन बरनी ने अपनी बाल्यावस्था मे अपने समकालीन बडे बड़े विद्वानो से शिक्षा प्राप्त की थी। वह शेख निज़ामुद्दीन औलिया का भक्त था। अमीर खुसरो का बडा घनिष्ठ मित्र था। अन्य समकालीन विद्वानो एव कलाकारो से भी वह भली भाँति परिचित था। सुल्तान फीरोज़ तुगलक के राज्यकाल मे उसे अपने शत्रुओ के कारण बड़े कष्ट भोगने पडे। वह बडी ही दीनावस्था को प्राप्त हो गया। कुछ समय तक उसने बदीगृह के भी कष्ट भोगे। उसने अपने समस्त ग्रथो की रचना सुल्तान फीरोज के राज्यकाल मे ही की, किंतु उसे कोई भी प्रोत्साहन न मिला और बडी ही शोचनीय दशा मे, ७० वर्ष की अवस्था मे उसकी मृत्यु हुई। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के राज्यकाल मे उसकी बडी उन्नति हुई। सभवत. वह सुल्तान का नदीम (सहचर) था। आलिमो तथा सूफिया से सपर्क स्थापित करने मे उसकी सेवाओ से बडा लाभ उठाया जाता होगा। बड़े बडे अमीर एव पदाधिकारी उसके द्वारा अपने प्रार्थनापत्र सुल्तान की सेवा मे प्रस्तुत करते थे। देवगिरि की विजय की बधाई फीरोज शाह, मलिक कबीर तथा अहमद अयाज ने उसी के द्वारा सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक की सेवा मे प्रेषित की।

उसकी रचनाओं मे तारीखे फीरोजशाही का बडा महत्व है। इसकी प्रस्तावना मे उसने इतिहास की विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए इतिहासकार के कर्तव्य का भी उल्लेख किया है। इस इतिहास मे उसने सुल्तान बलबन के राज्यकाल से लेकर सुल्तान फीरोज के राज्यकाल के प्रथम छह वर्षो तक का इतिहास लिखा है। बरनी अपने इतिहास द्वारा अपने समकालीन उच्च वर्ग का पथप्रदर्शन करना तथा अपने समकालीन सुल्तान फ़ीरोज शाह के समक्ष एक आदर्श रखना चाहता था। यद्यपि उसकी जानकारी के साधन बड़े ही महत्वपूर्ण थे तथापि उसके इतिहास से लाभ उठाने के लिये तथा बलबन, सुल्तान जलालुद्दीन खलजी, सुल्तान अलाउद्दीन खलजी एवं सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के विचार जो उसने उद्धृत किए हैं, भली भाँति समझने के लिये बरनी की धार्मिक कट्टरता एव उसके राजनीतिक सिद्धातो को सामने रखना परमावश्यक है। फतावाये जहाँदारी नामक ग्रंथ मे, जो अभी तक प्रकाशित नही हुआ है, उसके राजनीतिक सिद्धांतो पर बडा ही विशद प्रकाश पड़ता है। सहीफये नाते मुहम्मदी की भी, जिसमे हजरत मुहम्मद की जीवनी एवं उनके गुणो का उल्लेख है, केवल एक ही प्रति प्राप्त है। प्रारभिक अब्बासी खलीफाओ के प्रसिद्ध वज़ीरो का भी इतिहास उसने लिखा है जो प्रकाशित हो चुका है।

सं ग्रं — उसकी रचनाओ के अतिरिक्त रिज़वी, सै० अ० अ०; आदि तुर्ककालीन भारत, खलजी कालीन भारत, तुगलक कालीन भारत भाग १, २ (अलीगढ यूनीवर्सिटी) [सै० अ० अ० रि०]

बरबैंक ल्यूथर (Burbank Luther, सन् १८४९-१९२६) प्रसिद्ध अमरीकी पादप प्रजनक का जन्म मैसचुसेट्स राज्य के लैकैस्टर नामक नगर मे हुआ था। इन्होने पब्लिक स्कूल और लैकैस्टर ऐकैडमी मे शिक्षा पाई तथा कृषिफार्म पर वनस्पतियों के सबध मे विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया। जतुओ के विनयन (domestication) तथा पादपों के दमन से उनमें विविधता उत्पन्न करने के सबध मे डार्विन के विचारों ने इनके जीवन को एक नया मोड़ दे दिया और ये पादप प्रजनन के कार्य में जुट गए।

सर्वप्रथम इन्होने एक नए प्रकार के आलू का विकास किया, जो इन्ही के नाम पर प्रसिद्ध हुआ। सन् १८७५ तक लूनेनबर्ग (मैसैचुसेट्स) के फार्म पर अनुसधानो मे लगे रहने के बाद ये कैलिफॉर्निया राज्य के सैंटारोज़ा नामक स्थान मे बस गए, जहाँ ये ५० वर्षो तक निरंतर फलो, फूलो, शाको, अन्नो और घासो की विविध नई जातियो के उत्पादन मे लगे रहे। इन्होने अपने प्रयोगो के सिलसिले मे लाखो पौधे उगाए। इनका उद्देश्य वैज्ञानिक खोज न था। वे केवल अधिक उपयोगी फल और सुंदर फूल उत्पन्न करना चाहते थे, जिसमे उन्हे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। लोग इन्हे वनस्पतियो का जादूगर कहते थे।

आगे चलकर स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय मे ये विकासवाद के लेक्चरर नियुक्त हुए। इन्होने अपने कार्य से संबधित दो ग्रथ तथा उत्पादित नई जातियो की वनस्पतियो की वर्णनात्मक सूची भी प्रकाशित की थी, जो बड़े काम की है। [भ० दा० व०]

बरम्यूडा (Bermuda) या सोमर्स द्वीपसमूह, स्थिति : ३२° ४५′ उ० अ० तथा ६५° ०′ प० दे०। उत्तरी ऐटलैंटिक सागर में नॉर्थ कैरोलिना के केप हैटरैस से ५७० मील पूर्व स्थित, ब्रिटेन अधिकृत लगभग ३०० द्वीपो का समूह है, जो २२ मील लबे चद्राकार में फैला है। इन द्वीपो का क्षेत्रफल २१ वर्ग मील है। सबसे प्रमुख द्वीप ग्रेट बरम्यूडा है, जो १४ मील लबा है तथा यहाँ की राजधानी, हैमिल्टन इसी पर स्थित है। यहाँ का अधिक से अधिक ताप ३४.४° सें० तथा कम से कम ताप लगभग ७° सें० एव औसत वर्षा ५८ इंच है। स्पेन निवासी जुआन बरम्यूडेज़ ने १५०३ ई० मे इसका पता लगाया और इसका नामकरण किया। समूह के २० द्वीपो पर मनुष्य रहते है, जिनकी संख्या ३७,४०३ (१९५०) है। [भै० ना० सिं०]

बराज नदी के जलस्तर को ऊँचा उठाकर उसकी धारा को नहर की ओर आकृष्ट करने के लिये जो अवरोध बनाए जाते है उनमे से कुछ बराज भी कहलाते है। यह शब्द मूलत अंग्रेजी शब्द बार (bar) यानी रोक पर आधारित है।

बराज ऐसे अवरोध कहलाते हैं जिनके जलप्लावन का स्तर

लगभग नदी की तली पर होता है। पानी को ऊँचा उठाने तथा पलटने के लिये नदी की पूरी चौड़ाई में पाए और फाटक लगे रहते हैं और उनके संचालन के लिये बहुधा एक पुल भी बना रहता है।

बाढ़ के समय फाटकों को जलतल से ऊपर यानी बाढ के स्तर से भी ऊँचा उठाया जा सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि (१) बराज बनाने से बाढ़ के स्तर मे कोई विशेष अतर नही पडता और बाढ़ का पानी नदी से सामान्य रूप से निकल जाता है; (२) फाटकों के सुचारु रूप से सचालन द्वारा बराज के नदी के भाग को बहुत कुछ नियंत्रण मे रखा जा सकता है तथा (३) रेत के टापू बनना तथा आडी धाराएँ उत्पन्न होना रोका जा सकता है, जिनसे नहरों में पानी प्रविष्ट करने मे बहुधा कठिनाई होती रहती है।

बहुधा बराज नदी के बहाव से समकोण पर बनाए जाते हैं। पूरी चौड़ाई मे पाए तथा फाटक होने के कारण बराज के ऊपर होकर सडक, अथवा रेल के पुल भी, कुछ ही अतिरिक्त व्यय से बनाए जा सकते हैं। जहाँ बराज के ये लाभ हैं, वहाँ असुविधा यह है कि अन्य प्रकार के अवरोधों से लागत मे बराज महँगे होते हैं।

वर्ष के जिस भाग मे नदी मे जल की मात्रा नहर के लिये आवश्यक निस्सार से भी कम होती है उसमे बराज के सारे फाटक बद कर दिए जाते हैं। इस प्रकार पानी जमा होकर तालाब जैसा बन जाता है और जल का स्तर सरोवर स्तर (pond level) तक हो जाने पर पानी नहर मे चलने लगता है।

बराज की एक प्रतिरूपी आडी काट चित्र १. मे दी गई है।
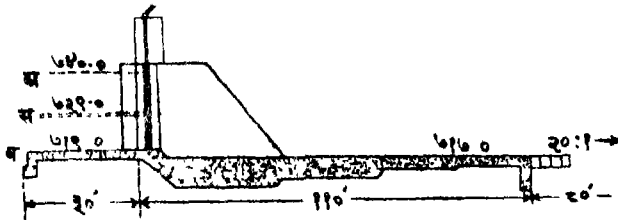
चित्र १. बनबसा बराज, उत्तर प्रदेश, की प्रतिरूपी आड़ी काट अ अधिकतम बाढ स्तर, **ब.** बराज फर्श, स्तर तथा स. सरोवर स्तर

यह आडी काट उत्तर प्रदेश मे स्थित बनवसा बराज की है, जिसमे फर्श के ऊपर कोई टक्कर (crest) नहीं है। वैसे बराज मे जहाँ तहाँ छोटी टक्करें भी दी जाती हैं।

निर्माण की दृष्टि से बराज के विशेष भाग और उनका विवरण निम्नलिखित है :

(१) **बराज फर्श** (Barrage Floor) — सामान्यत बराज के ऊपर व नीचे की ओर के जलस्तर मे कुछ अतर होता है, जिसके कारण फर्श की नीव के नीचे प्रवाह होना सभव है। रेतीली मिट्टी पर बने बराजों मे यह प्रवाह कभी इतना तेज हो सकता है कि जल के साथ मिट्टी के कण भी चलायमान होकर निकलने लगें और नीव खोखली होकर फर्श बैठ जाए। फर्श की लबाई इस तथ्य को ध्यान मे रखकर अभिकल्पित की जाती है। इसके अतिरिक्त फर्श की मोटाई भी पानी के ऊपर की ओर दाब के लिये पर्याप्त होनी आवश्यक है।

रेतीली मिट्टी पर बराज के अभिकल्प का मूल सिद्धांत यह है कि निकासी छोर पर पानी के रिसन का वेग इतना न हो कि उसके साथ बालू के कण बह निकलें। इस समस्या के समाधान के लिये पहले ब्लाइ (Bligh) तथा लेन (Lane) के सिद्धांतों का प्रयोग किया जाता था और अब खोसला का सिद्धात, जो भारत मे बने बहुत से बराजों तथा बांधो की असफलताओ के कारणों की खोज करके निकाला गया है, प्रयोग मे आता है। रूस और अमरीका मे भी इस सबध मे काफी अनुसधान हुए है और हो रहे हैं।

बाढ द्वारा फर्श के ऊपर और नीचे की ओर उत्पन्न होनेवाले गड्ढो (scour holes) से बचाने के लिये फर्श से ऊपर तथा नीचे की ओर कक्रीट के ब्लॉक, अथवा बडे बडे पत्थर, बिछा दिए जाते हैं, जिनका हर साल निरीक्षण तथा पूर्ति करना आवश्यक है।

२ **बराज दर** (Barrage Bays) — बराज मे एक छोर से दूसरे तक थोडी थोडी दूर पर पाए बनकर उनके बीच मे लोहे के फाटक लगा दिए जाते है। पायो के बीच के इन दरो मे से नहर की ओरवाले कुछ दरो को छोडकर शेष बराज दर कहलाते है। बराज दरो मे फर्श या टक्कर का स्तर लगभग नदी की तली के औसत स्तर पर ही होता है।

३ **बराज फाटक** (Barrage gates) — बराज के फाटकों के लिये आवश्यक है कि उनके द्वारा नहर म निस्सार का नियंत्रण ठीक तौर से हो सके और बाढ के समय वे जल्दी से उठाए जा सके। फाटक की चौडाई ४० से ६० फुट तक की होती है और वह निम्नलिखित बातो पर निर्भर रहती है

क पायो, फाटको, फाटक सचालन यत्रों तथा पुल इत्यादि की कुल लागत कम से कम हो।

ख बाढ मे बहकर आनेवाले पेड इत्यादि आसानी से निकल जाएँ। बहुधा बराज के फाटक इस्पात के बनाए जाते है और टक्कर से पूर्ण सरोवर स्तर तक ऊँचे होते है।

पायो मे बने इस्पात के खाँचे मे ये फाटक लगाए जाते हैं। सबसे निचला भाग पानी की पूरी गहराई के बराबर के दबाव के लिये अभिकल्पित किया जाता है। यह दबाव पानी की गहराई कम होने के साथ साथ ऊपरी भाग के लिये कम होता जाता है।

फाटक इस्पात की चादर का होता है, जिसके पीछे गर्डर रिविट द्वारा, या वैल्डिंग द्वारा, जुडे होते है। पायो की ओर वाले किनारों पर पहिये लगे होते है और रबर की विशेष सील होती हैं ताकि पानी चूकर निकल न सके। फाटक के नीचेवाले किनारे पर भी रबर सील होती है, ताकि जिस समय फाटक बद हो तब भी पानी न चू सके।

फाटक उठाने और गिराने के लिये ऊपर यंत्र लगा होता है और रस्से के दूसरे छोर पर सतुलित करने के लिये एक प्रतितोलक भार (counterweight) लगा होता है। इस प्रकार भारी से भारी फाटक को उठाने के लिये यत्र को केवल दो आदमी चला सकते हैं।

४ **तलकपाट दर** (Undersluice Bays) — नहर की ओरवाले कुछ दर, जिनके फर्श या टक्कर (crest) का स्तर लगभग नदी के सबसे गहरे भाग के बराबर होता है, तलकपाट दर कहलाते हैं।

बराज के इस भाग के सामने गाद जमा हो जाने से नहर में पूरा निस्सार भेज सकना यदा कदा असंभव हो जाता है। इसलिये तलकपाट के फाटक खोलकर जमी हुई गाद को बहाते रहना आवश्यक है। तलकपाट इन निम्नलिखित उद्देश्यो की पूर्ति करते हैं :

(क) नहर शीर्ष के पास नदी की सुव्यवस्थित धारा बनाए रखते हैं, जिससे नदी मे न्यूनतम निस्सार के समय भी नहर की ओर धारा पलटने मे कठिनाई नही होती।

(ख) नहर शीर्ष के सामने जमनेवाली गाद बहाई जा सकती है।

५ **मत्स्यसोपान** (Fish Ladder) — बड़ी नदियों मे भिन्न भिन्न प्रकार की मछलियाँ पाई जाती है, जिनमें से कुछ प्रवासी भी होती है। प्रवासी मछलियाँ ऋतुओ के अनुसार नदी के एक भाग से दूसरे भाग की ओर आती जाती रहती हैं। भारत मे सामान्यत. प्रवासी मछलियाँ जाडा आरंभ होने पर पहाड़ से मैदान की ओर आती हैं और वर्षा आरंभ होने से पहले लौटने लगती हैं।

मछलियो के इस आवागमन के लिये बराज में मत्स्य सोपान बनाना आवश्यक है, अन्यथा बड़ी संख्या मे ये मछलियाँ नष्ट हो सकती हैं।

मछलियाँ १० – १२ फुट प्रति सेकंड के वेग से बहनेवाली धारा की विपरीत दिशा में सुगमता से तैर सकती है, इसलिये मत्स्य सोपान के अभिकल्प मे इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि धारा का वेग इससे अधिक न हो। मत्स्यसोपान सामान्यत बराज दरों तथा तलकपाट दरो के बीच मे बनाए जाते है, क्योकि तलकपाट दरो के पास ही नदी की गहरी धारा बहती है।

६ **विभाजक दीवारें** (Divide Walls) — तलकपाट दरो और बराज दरों को अलग करने के लिये, तथा यदि बराज अधिक चौड़ा हो तो, बराज दरों के बीच बीच मे भी लबी विभाजक दीवारे या पुश्ते बना दिए जाते हैं। बराज से ऊपर की ओर ये दीवारें नहर शीर्ष से कुछ आगे तक जाती हैं और नीचे की ओर पक्के फर्श के आगे पडनेवाले ब्लॉको आदि के अंत तक। विभाजक दीवार बनाने के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

(क) बराज दरो तथा तलकपाट दरो के फर्श स्तरो मे असमानता होने के कारण यह उन्हे अलग करने मे सहायक होती है।

(ख) आड़े बहावो को बराज से दूर रखने मे सहायक होती है।

(ग) नहर शीर्ष के समीप एक शात सरोवर स्वरूप जल संचय नदी की धारा से अलग बनाती है, ताकि गाद को वहाँ छोड़कर स्वच्छ जल नहर मे प्रवेश कर सके।

(घ) तलकपाट खोलने पर यह बहाव को थोटी ही चौड़ाई मे सीमित करती है ताकि गाद बहने योग्य तीव्र गति उत्पन्न हो सके।

विभाजक दीवारें सामान्यत कंक्रीट अथवा चिनाई की बनाई जाती हैं ये ऊपर से पाँच सात फुट चौडी होती हैं और नीचे की ओर आवश्यकतानुसार चौड़ी की जाती हैं। अभिकल्प के समय निम्नलिखित दो दशाओं को ध्यान मे रखना आवश्यक है :

(क) तलकपाट की ओर पूर्ण सरोवर स्तर (full pond level) तक गाद भरी है और नदी में जल निम्न स्तर पर है या नहीं।

(ख) बाढ़ के समय विभाजक दीवार के दोनो ओर के जलस्तर मे तीन फुट का अंतर हो।

७. **नहर-शीर्ष-नियामक** (Canal Head Regulator) — आवश्यकतानुसार नहर में निस्सार को नियंत्रित करना, बाढ़ के समय नहर को बंद करना तथा नहर में जानेवाले जल मे गाद की मात्रा पर नियंत्रण करना — मुख्यत इन उद्देश्यो के लिये नहर-शीर्ष-नियामक का अभिकल्प किया जाता है।

गाद पर नियंत्रण रखने के लिये नहर शीर्ष की टक्कर तलकपाट की टक्कर से कम से कम चार फुट ऊँची होनी चाहिए और यदि बराज में गाद अपवर्जक (silt excluder) भी बनाना हो, तो छह सात फुट ऊँची होनी चाहिए।

नहर शीर्ष की टक्कर तथा बराज के सरोवरस्तर के अंतर से प्रति फुट जलमार्ग के लिये निस्सार का हिसाब लगाया जा सकता है और नहर के पूर्ण निस्सार (full discharge) के लिये आवश्यक जलमार्ग की चौड़ाई निकाली जा सकती है। यह कही कही नहर की चौडाई से अधिक भी हो सकता है, जिसको नहर की सामान्य चौड़ाई से पुश्तो द्वारा मिलाया जाता हैं।
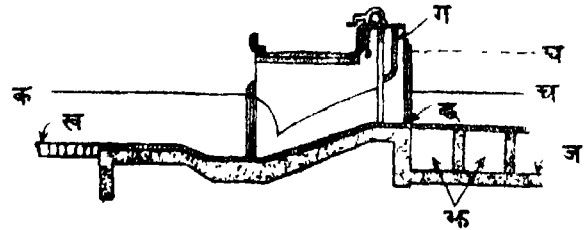
चित्र २. नहर-शीर्ष-नियामक की प्रतिरूपी आकृति

क नहर का पूर्ण विस्तार, ख. नहर की तली, ग. वक्ष दीवार, घ. अधिकतम बाढ़ स्तर, च. सरोवर-स्तर, छ. टक्कर, ज. तलकपाट-फर्श तथा झ. गाद अपवर्जक सुरगें।

निस्सार नियंत्रण करने के लिये इसमे २०–२५ फुट तक चौड़े दर बनाकर फाटक लगाए जाते हैं। नहर-शीर्ष-नियामक की एक प्रतिरूपी आकृति चित्र २. मे दी गई है।

८ **उफान बाँध** (Afflux Bunds) — बराज के ऊपर व नीचे की ओर, बाढ़ के अधिकतम स्तर से लगभग चार छह फुट ऊँचे, उफान बाँध दोनो किनारों पर बनाए जाते है, जो नदी के किनारे किनारे इतनी दूर तक ले जाए जाते है कि बराज के आस पास की आबादी और भूमि जलमग्न न हो और बराज को छोड कर दूसरे मार्ग पर नदी के बहने की संभावना न हो। ये बाँध स्थानीय मिट्टी के ही बनाए जाते है और मजबूती के लिये ऊपर से आवश्यकतानुसार पत्थर जड़ दिए जाते हैं।

९. **पुल** (Bridges) — बराज के पायो पर कम से कम एक पुल तो अवश्य ही होता है, जिसपर से फाटको को उठानेवाले यत्रो को चलाने के लिये आया जाया जा सकता है। यदि बराज के पास से कोई महत्वपूर्ण सड़क अथवा रेलवे लाइन जाती हो और आवश्यक हो, तो इसके पायो को थोड़ा और बढ़ाकर सड़क अथवा रेल का पुल भी बनाया जा सकता है।

१०. नदी नियंत्रण संबंधी कार्य (River Training Work) -- बराज के ऊपर तथा नीचे नदी सीधी ही बहती रहे और घूम कर बराज से हट कर न बहने लगे, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये नियामक बाँध (guide bunds) बनाए जाते है। इसके अतिरिक्त बराज के ऊपर की ओर सीमात बाँध (marginal bunds) बनाए जाते है। ये सीमांत बाँध वहाँ तक बनाने आवश्यक हैं जहाँ तक नये बाढ-स्तर का असर जाता है और तटो का स्तर काफी ऊँचा मिल जाता है। इन सीमात बाँधों के बचाव के लिये छोटे छोटे बाँध या ठोकर (spurs) सीमात बाँधो से नदी की ओर निकाले जाते हैं, जिनसे नदी का प्रवाह सीमांत बांधो से दूर नदी के बीच में ही रहे।

संसार मे बहुत से देशों में भिन्न भिन्न आकार तथा अभिकल्प के बराज बने हुए हैं। भारत मे विभाजन के पूर्व सिंध मे सक्कर बराज का निर्माण हुआ। उत्तर प्रदेश में शारदा नदी पर बनबसा पर एक बडा बराज प्रथम महायुद्ध के बाद बनाया गया, जहाँ से शारदा नहर निकलती है। बाद मे इस नहर पर पनबिजलीघर भी बनाया गया है।

इधर पंचवर्षीय योजनाओ के अंतर्गत बहुत से बराज भारत के भिन्न भिन्न भागो मे बनाए जा रहे है, जैसे विहार प्रदेश म सोन
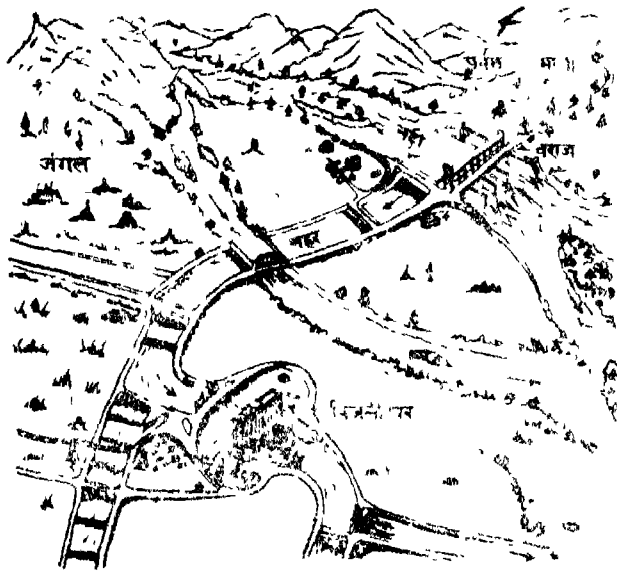
चित्र ३. शारदा बराज का विहंगम दृश्य

नदी पर पुराने वीयर की जगह नए बराज का निर्माण हुआ है। बंगाल मे फराका पर गगा नदी पर एक महान् बराज बन रहा है। दामोदर घाटी योजना के अतर्गत दुर्गापुर के समीप बडा बराज बना है। यमुना पर डाकपत्थर (देहरादून) मे एक बराज का निर्माण पनबिजलीघरों के सचालन के हेतु हुआ है।

इनके अतिरिक्त छोटे बडे बहुत से बराज बने हुए है, अथवा बन रहे है। यह स्पष्ट है कि विकास के लिये नदी मे स्थित अवरोधों को बराज मे बदल देना सही कदम है। इसी कारण पचवर्षीय योजनाओ के अतर्गत नदी नियमन के इस सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया गया है और इतनी प्रगति हुई है। [बा० ना०]

बरुंडी (Burundi) मध्य अफ्रीका में, भूमध्यरेखा के कुछ दक्षिण में टैंगैन्यिका झील के किनारे स्थित एक स्वतंत्र राष्ट्र है। इसके उत्तर मे रूआंडा, दक्षिण एवं पूर्व मे टैंगैन्यिका तथा पश्चिम मे कागो है। इसका क्षेत्रफल १०,७४७ वर्ग मील तथा जनसंख्या २३,८३,७२४ (१९६१) थी। यहाँ की जलवायु उष्णकटिबंधीय है। यहाँ की प्रमुख भाषाएँ फ्रेंच तथा किरुंडी हैं। यहाँ की राजधानी ऊसुंबरा है। सन् १९६२ मे स्वतत्रताप्राप्ति के पहले यह रूआंडा ऊरुंडी के बेल्जियन यू० एन० ट्रस्ट टेरिटरी का भाग था। कृषि प्रमुख उद्योग है। इसके अतर्गत कॉफी तथा कपास उगाया जाता है। उद्योगो तथा रेलो की कम उन्नति हुई है। यहाँ सडकें तथा एक अतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है। शिक्षा नि शुल्क है।

बरेलवी, सैय्यद अहमद शहीद जन्म रायबरेली जिले मे १२०१ हि० (१७८६ ई०) मे हुआ। पढने लिखने मे उन्हें रुचि न थी। युवावस्था मे पिता की मृत्यु के कारण वह लखनऊ और वहाँ से दिल्ली पहुँचे। वहाँ वह शाह वलीउल्लाह के पुत्र शाह अब्दुल अजीज तथा शाह अब्दुल कादिर के शिष्य हो गए। दो साल वहा रह-कर लगभग २२ वर्ष की अवस्था मे वह रायबरेली लौट आए किंतु दो वर्ष बाद मालवा पहुँचकर अमीर खाँ पिंडारी की सेना के सवारो मे भरती हो गए और गोरिल्ला युद्ध की कला सीखी। १८१७ ई० मे अमीर खाँ द्वारा अग्रेजो से सधि करने तथा टोंक का नवाब बन जाने के कारण वह दिल्ली लौट आए। शाह अब्दुल अजीज ने अपने भतीजे शाह इस्माईल शहीद और अपने जामाता मौलवी अब्दुल हयी को इनका शिष्य बना दिया। वह हिंदुस्तान के सुन्नियों के उन धार्मिक एव सामाजिक दोषो को दूर करने पर कटिबद्ध हुए जो उनके विचार से हिंदुओं एव ईरानियो के कुप्रभाव के परिणामस्वरूप थे। विधवाओ के विवाह पर उन्होने बडा जोर दिया। मुहर्रम, ताजिया और सूफी मतो की कब्रो के आदर-समान से, उनकी राय म, इस्लाम तबाह हो रहा था। वे इन खराबियो के विरुद्ध जिहाद करने के लिए खड़े हो गए। बहुत से सुन्नी मुसलमान जिनकी आर्थिक दशा अग्रेजो के शासन काल मे बिगड गई थी, धर्म सँभालने के उद्देश्य से इनके सहायक हो गए। १८२१ ई० मे वह कलकत्ता होते हुए १८२२ ई० मे मक्का पहुँचे। वहाँ उनका वहाबी नेताओ से भी सपर्क हुआ। सूफी मत का अब्दुल वह्हाब खडन कर चुके थे, सैय्यद उसे किसी भी दशा मे छोड नही सकते थे। अत जिन सुधारो के लिये वह कमर कस चुके थे, उन्हें आगे बढाने के अतिरिक्त वह वहाबियो से अधिक न सीख सके। किंतु वहाबियो के केताल (हिंसा द्वारा शरीअत के शुद्धतम रूप का प्रचार) के समान जेहाद का झडा हिंदुस्तान आकर ऊँचा किया। १८२४ ई० मे वह हिंदुस्तान लौट आए। शाह अब्दुल अजीज भारतवर्ष को दारुल हर्ब अथवा वह स्थान घोषित कर चुके थे जिसमे मुसलमानो के लिये कोई शाति नही। इसकी व्याख्या सैयद ने अपने एक पत्र मे इस प्रकार की है -- 'हिंद तथा फिरंग के काफिरो ने हिंदुस्तान पर अधिकार जमा लिया है। अत: इसे उन लोगो के हाथ से छुडाना सभी मुसलमानो के लिये अनिवार्य है।' उनके शिष्य मौलाना इस्माईल शहीद ने अमीर खाँ के उत्तराधिकारी वजीरुद्दौला को फटकारते हुए लिखा --

'यह न समझना चाहिए कि हमारे गुरु इतनी ही सेना से लाहौर से कलकत्ता तक विजय कर लेंगे अपितु उनकी सेना मे नित्य प्रति वृद्धि होती रहेगी। उदाहरण के लिये नादिरशाह ने एक साधारण स्थिति से उन्नति करके किस प्रकार हिंदुस्तान पर अधिकार जमा लिया था।

जनवरी, १८२६ ई० मे वह हिंदुस्तान से सिखो तथा फिरगियों की सत्ता समाप्त करने के लिये हिंदुस्तानी मुसलमानो की एक सेना लेकर भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा की ओर चल खड़े हुए। दिसबर, १८२६ ई० मे नवशहरा पहुँचकर राजा रणजीत सिह को चुनौती दी। जनवरी, १८२७ ई० को इस्लाम का शुद्धतम रूप स्थापित करने के लिये इमाम की उपाधि धारण कर ली। हिरात, बुखारा तथा आसपास के शासकों के कान खड़े हुए। क़बीलो मे विधवा विवाह के प्रचार तथा उनके उत्साही हिंदुस्तानी मुसलमानो का विरोध होने लगा। पेशावर के यारमुहम्मद ने रणजीतसिह से मिलकर मुजाहिदो का मुकाबला किया। कबीलो तथा सैयद साहब के सहायको मे छोटी मोटी अनेक झड़पे हुई। ६ मई, १८३१ ई० को बालाकोट के युद्ध मे शेर सिह की सेना ने सैय्यद के जिहाद आंदोलन को बुरी तरह कुचल कर उनकी हत्या कर दी। उनके शव को जला डाला। शाह इस्माईल भी इसी युद्ध मे मारे गए और इस आदोलन का एक रूप समाप्त हो गया।

स० ग्र०—(फारसी) सैयद अहमद शहीद के पत्र (ब्रिटिश म्यूजियम), मख्जने अहमदी (ब्रि० म्यू०), फतावाए शाह अब्दुल अजीज, (उर्दू) सैयद अबुल हसन अली नदवी **सिराते मुस्तकीम**; सैयद साहब की रचनाओ तथा अन्य ग्रथो की सूची के लिये देखिए; गुलाम रसूल मेहर, **सैयद अहमद शहीद**। [म० अ० अ० रि०]

बरेली १ जिला, स्थिति २८° १' से २८° ५४' उ० अ० तथा ७८° ५८' से ७९° ४७' पू०दे०। यह उत्तर प्रदेश का जिला है जो उत्तर मे नैनीताल, पूर्व मे पीलीभीत और शाहजहाँपुर, दक्षिण मे शाहजहाँपुर, और बदायूँ तथा पश्चिम मे बदायूँ से घिरा हुआ है। यहाँ की जमीन मे जलसतह काफी ऊपर है। रामगगा प्रमुख नदी है। बास के कुज गाँवो मे अधिक मिलते है। यहाँ का जलवायु अस्वास्थ्यकर है। वार्षिक वर्षा ४४" है। यहाँ की जनसख्या १४,७८,४६० (१९६१) तथा क्षेत्रफल १,५९१ वर्ग मील है। कृषि दक्षिणी भाग मे अधिक होती है, जिसमे धान गेहूँ, चना, बाजरा, मक्का, गन्ना आदि पैदा होते है।

२ नगर, स्थिति २८° २२' उ० अ० तथा ७९° २४' पू० दे०। पहले इसे बाँसबरेली कहा जाता था। यहाँ के निवासियो द्वारा अब भी यह इसी नाम मे पुकारा जाता है। यह उस पठार पर स्थित है जो रामगगा की ओर क्रमश ऊँचा होता जाता है। नगर के समीप आइजटनगर का तथा रबर और दियासलाई के कारखाने हैं। पक्के मकान तथा चित्रकारीयुक्त मकान, हफीज रहमत खाँ का मकबरा, डफरिन अस्पताल, कारागृह आदि यहाँ की विशेषताएँ हैं। उद्योगों मे काष्ठ, बेत तथा चीनी उद्योग मुख्य हैं। यहाँ की जनसख्या २,५४,४०६ (१९६१) थी।

बरोक (Baroque) बरोक एक पारिभाषिक शब्द है जिसका प्रयोग यूरोप की उस व्यापक कलाप्रवृत्ति को प्रदर्शित करने के लिये किया जाता है जो १६वी, १७वी तथा १८वी शताब्दी के पूर्वार्ध तक वहाँ के कलाजगत् मे प्रतिष्ठित रही। इस शब्द की व्युत्पत्ति स्पेनी भाषा के 'बैरुको' शब्द से है जिसका अर्थ होता है—एक बड़ा और बेडौल मोती। बरोक वस्तुत. एक प्रतीक है, उस कलाप्रवृत्ति का जो अपने रूप मे विशाल तथा सिद्धात मे स्वच्छद और बधनमुक्त है। बरोक कला प्रकृति की अनगढता की अनुगामिनी है। १८वी शताब्दी मे चलकर इसे 'रोकाको' की सज्ञा प्रदान की गई।

स्थापत्य सबधी बरोक कलाकारो मे लोरेजो, बरनीनी (१५९८–१६८०) तथा फासिस्को बोरोमिनी की गणना है; मूर्तिकारो मे लोरेजो बरनीनी; चित्रकारो मे पिएट्रो बर्टीनी दी कोर्टोना (१५९६–१६६९) की। [गु० त्रि०]

बरौनी कुछ वर्ष पूर्व तक बरौनी पूर्वोत्तर रेलवे का एक सामान्य जकशन स्टेशन मात्र था, पर आज यहाँ एक बहुत बडा औद्योगिक नगर बस गया है। इस नगर के बसने का कारण पेट्रोलियम तेल के शोध करने का कारखाना है। इस कारखाने का पहला क्रम ४२ करोड रुपए लागत से बन चुका हे और जुलाई, १९६४, से चालू भी हो गया है। इसके लिये कच्चा तेल नहरकटिया और मोरेन से आता है। सार्वजनिक क्षेत्र मे यह दूसरी परिष्करणशाला है। पहला शोध कारखाना असम के नूनमाट्टी मे है, जिसकी धारिता ७,५०,००० टन है और जो १९६२ ई० की पहली जनवरी को चालू हो गया था। बरौनी सयत्र मे दस लाख टन तेल का परिष्कार हो सकता है। पेट्रोलियम की माँग इधर बहुत बढ गई है और दिन दिन बढ रही है। १९६२ ई० मे ७६ करोड़, १९६३ ई० मे लगभग ८८ करोड और १९६४ ई० मे १०४५ करोड रुपए का कच्चा तेल और अन्य उत्पाद बाहर से भारत मे आए। कच्चा तेल नहरकटिया और मोरान मे निकाला जाता है। वहाँ से १६ इंच व्यास के नल द्वारा २७० मील चलकर गवहाटी आता है और गवहाटी से १४ इंच व्यास के नल द्वारा ४५० मील चलकर बरौनी पहुंचता है। इस कारखाने की स्थापना मे रूस ने सहायता दी है। इसके लिये १९५९ ई० मे भारत और रूस के बीच सधि हुई थी और इसका अतिम रूप १९६१ ई० मे निश्चित हुआ था। रूस ने मशीनो और विशेषज्ञो से सहायता दी। इसके लिये सोवियत सरकार ने १३.५० करोड रुपए का ऋण दिया है। ऋण को १२ वर्ष मे बराबर किश्तो मे अदा करना है। इस कारखाने का विस्तार भी हो रहा है। यह कारखाना लगभग ८३० एकड भूमि मे फैला हुआ है। इसमे २० लाख टन तेल का शोधन प्रति वर्ष हो सकता है। तेल के अतिरिक्त वायुयान के लिए पेट्रोल, पेट्रोलियम गैस, स्नेहक, बिटुमिन और कोक भी उत्पाद के रूप मे प्राप्त होते हैं। यहाँ वायुमडलीय दबाव और निर्वात दोनो अवस्थाओ मे कच्चे तेल का आसवन होता है और उससे प्राप्त उत्पादो के परिष्कार की पूर्ण व्यवस्था है। कच्चे और परिष्कृत तेलो के रखने के लिये बहुत बडी बडी टंकियाँ बनी हुई है, जिनमे एक मास तक उत्पाद रखे जा सकते है। इसके साथ साथ अनेक दूसरे कारखाने भी यहाँ खुल रहे है, जिनमे मे एक कारखाना उर्वरक तैयार करने का और दूसरा पेट्रो-कैमिकल्स तैयार करने का है।

बर्कले, जार्ज (१६८५-१७५३) बर्कले का जन्म १२ मार्च, १६८५ को डाइसर्ट, फिलकैनी (आयरलैंड) में हुआ था। ११ वर्ष की उम्र में इन्होंने फिलकैनी स्कूल में प्रवेश किया और चार वर्ष उपरात ये ट्रिनिटी कालेज (डबलिन) चले गए। वहाँ अंडरग्रेजुएट, ग्रेजुएट, फेलो और ट्यूटर रहे। सन् १७१३ मे लदन चले गए। वहाँ स्विफ्ट, स्टील, एडीसन और पोप से उनका परिचय हुआ। उन्होंने आठ वर्ष इग्लैंड और यूरोप का भ्रमण करने मे व्यतीत किए। भ्रमण से लौटने पर वह पहले ड्रोमोर और फिर डेरी के डीन पद पर प्रतिष्ठित हुए। सेवा और परोपकार की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और अमरीका चले गए। किंतु इंग्लैंड की सरकार से स्वीकृत धन भी न मिलने पर वह निराश होकर अपने देश लौट आए। १७३४ मे उन्होने क्लोन का बिशप बनना स्वीकार कर लिया और उसी साधारण पद पर रहकर दार्शनिक चिंतन करते रहे। समय समय पर उन्होने लेख और पुस्तकें लिखीं और उन्हे प्रकाशित कराया। वृद्धावस्था में बर्कले विश्राम हेतु आक्सफोर्ड चले गए और कुछ महीनों बाद वहीं उनकी मृत्यु हो गई।

बर्कले ने अपनी मुख्य रचनाएँ जीवन के प्रारंभिक काल मे ही की थी। 'ऐन एसे टुवर्ड्स ए न्यू थ्यारी ऑव विजन' (१७०६), 'ट्रीटीज कन्सर्निंग दि प्रिंसिपल्स ऑव ह्यूमन नॉलिज' (१७१०), 'थ्री डायलॉग्स बिटवीन हेलस ऐंड फिलोनस' (१७१३), 'डी मोटू' (१७२०) 'अल्सीफ्रोन' अथवा 'मायनूट फिलासफर' (१७३२) और सीरिस : 'ए चेन ऑव फिलासोफिकल रिफ्लेक्शंस' (१७४४) नामक ग्रंथ लिखे।

ज्ञानमीमासा पर विचार करते हुए बर्कले इस निर्णय पर पहुँचे कि अमूर्त प्रत्यय का कोई अस्तित्व नही है। अनुभव मे आनेवाली वस्तुओ के सामान्य गुणों का सकेत करनेवाले शब्द केवल नाम है। उनसे किसी वास्तविक सत्ता का बोध नही होता है। हमारे अनुभव में जो ज्ञान आता है वह विशेष का ही होता है। शब्द तो प्रत्ययो के प्रतीक मात्र है। शब्द को ही प्रत्यय मान लेना भारी भूल है। बर्कले के मत में अमूर्त प्रत्यय या सामान्य केवल नाम है (दे० 'ज्ञानमीमासा')।

बर्कले ने अपने पूर्वगामी दार्शनिक जॉन लॉक के अनुभववाद को अधिक प्रकर्ष प्रदान किया। लॉक ने एक ऐसे आधार की सत्ता मानी थी जिसमे भौतिक वस्तुओ के गुण अवस्थित रहते है। उसका प्रत्यक्ष अनुभव नही होता, फिर भी उसका अस्तित्व अवश्य है। बर्कले ने इसे स्वीकार नही किया। लॉक का विश्वास था कि भूल या मुख्य गुणों की सत्ता द्रष्टा से स्वतत्र और भिन्न है, इसलिये उन गुणो का अवलब द्रव भी बाहर होना चाहिए। बर्कले ने युक्ति द्वारा प्राथमिक और द्वितीयक गुणो के भेद का खडन किया और सभी गुणों को मनस्-अवलंबित सिद्ध करने का प्रयत्न किया। अत उन्होने पदार्थ या वस्तु का भी स्वतत्र अस्तित्व स्वीकार नही किया।

बर्कले का यह कथन प्रसिद्ध है कि 'अस्तित्व का अर्थ है प्रतीति का विषय होना।' कोई वस्तु है, इसका यही आशय है कि कोई व्यक्ति (आत्मा या परमात्मा) उसे देखता, सुनता या अन्य रूप से उसका अनुभव करता है। जो वस्तु अनुभव मे नही आती उसकी सत्ता का कोई प्रमाण नही है। यदि अनुभव का परीक्षण किया जाय तो ज्ञात होगा कि हमारे प्रत्यय ही अनुभव के विषय है। इसलिये प्रत्यय और प्रत्यय का अधिष्ठान दो का ही अस्तित्व स्वीकार किया जा सकता है। लॉक के विपरीत बर्कले प्रत्यय को वस्तु जगत् की प्रतिलिपि नही मानते है।

निष्क्रिय प्रत्ययो के अतिरिक्त बर्कले एक क्रियाशील पदार्थ अर्थात् आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार करते हैं। आत्मा के द्वारा अनुभव ग्रहण किए जाते हैं और वेदनाओं की प्रतीति होती है। आत्मा का विशेष प्रकार से अतर्बोध प्राप्त होना है।

यद्यपि ससार की वस्तुओ की भाँति ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव नही होता है तथापि बिशप होने के नाते बर्कले ईश्वर की सत्ता मानते हैं। हमारे मनस् ने प्रत्ययों का एक विशेष क्रम से उत्पन्न होने का कारण ईश्वर ही है। ईश्वर आत्मरूप है। वह हमारी आत्मा मे प्रत्यय उत्पन्न करता है। ईश्वर की सत्ता को मानकर बर्कले ने अपनी दार्शनिक पद्धति को सर्वाहंवाद के गड्ढे मे गिरने से बचा लिया है। [हृ० ना० मि०]

बर्कनहेड, लॉर्ड — प्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ इसका पूरा नाम फ्रेडरिक एडविन स्मिथ था। इसका जन्म १२ जुलाई, सन् १८७२ को बर्कनहेड मे हुआ था और मृत्यु ३० सितबर, १९३० को हुई। अपने जीवनयापन के लिये फ्रेडरिक ने सन् १८९९ मे वकालत आरंभ की। कुछ दिन 'ग्रेज इन' मे कार्य करने के बाद सन् १९०६ मे वह वॉल्टन मे पार्लमेंट का सदस्य चुना गया। बर्कनहेड की ख्याति बढती ही जा रही थी। उसकी योग्यता के पुरस्कार स्वरूप सन् १९११ मे उसे प्रिवी काउंसिल का सदस्य चुना गया। सन् १९१९ मे उसे लार्ड चासलर बनने का अवसर प्राप्त हुआ। उसे अनुदारवादियो की 'शैडो कैबिनेट' का सदस्य स्वीकार कर लिया गया था।

इस समय आयरलैंड मे बड़ी अशाति फैली थी। वहाँ के मामलो की देखभाल करने के लिये एडवर्ड कारसन को नियुक्त किया गया। बर्कनहेड कारसन का प्रमुख सहकारी था। अल्सटर मे अशाति दबाने के सबंध मे बर्कनहेड ने कारसन की काफी सहायता की। प्रथम महायुद्ध का आरभ होते ही आयरलैंड का प्रश्न ठढा पड गया।

इसके बाद बर्कनहेड ने 'प्रेस ब्यूरो' को सँभालने का कार्य स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् वह भारतीय सेनाओ के साथ फ्रास चला गया और वहाँ सैनिक कानून के अतर्गत प्रशासन चलाने मे उसने अपूर्व योग्यता दिखाई। सन् १९१५ मे वह फ्रास से वापस बुलाकर 'सॉलिसिटर जनरल' बना दिया गया। उसके बाद कारसन के पद की अवधि समाप्त होने पर वह 'एटर्नी जनरल' बना दिया गया। इसी वर्ष (१९१५) उसे 'नाइट' की उपाधि दी गई। सन् १९१८ के चुनाव के बाद वह लॉर्ड चासलर बना दिया गया तथा उसे 'वाईकाउंट बर्कनहेड' की उपाधि दी गई। यह समान प्राप्त होने के कुछ समय पश्चात् उसे 'अर्ल' बना दिया गया और वह 'लॉर्ड बर्कनहेड' हो गया। [मि० च० पा०]

बर्गसाँ, हेनरी (१८५९-१९४१) फ्रांस का प्रतिभावान् यहूदी दार्शनिक, अध्यापक, लेखक तथा वक्ता। वह पेरिस के 'रूये लामार्तिन' नामक स्थान पर, १८ अक्तूबर, १८५९ ई० को पैदा हुआ था।

नौ वर्ष की उम्र में, अपने घर के समीप, 'लिकी कांदॉर्से' नामक विद्यालय मे पढ़ने गया। १८ वर्ष की उम्र तक वहाँ उसने विज्ञान, गणित और साहित्य का अध्ययन कर 'बचलर' की उपाधि प्राप्त की। उसकी प्रतिभा के लक्षण यही से प्रकट होने लगे थे। विद्यालय छोड़ने के वर्ष उसने गणित प्रतियोगिता में भाग लेकर, किसी समस्या का इतना अच्छा हल दिया था कि उसके अध्यापको ने उसे 'एनल्स द मैथमेतिक' मे प्रकाशित किया।

उक्त विद्यालय छोड़ने पर, वह उच्चस्तरीय अध्ययन के लिये, 'इकोले नार्मेल सुपीरियोर' मे भर्ती हुआ। साहित्य और विज्ञान मे समान रुचि के कारण, वहाँ उसने दर्शन विषय लिया। इससे उसे फ्रास के तीन जाने माने दार्शनिको से शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग मिला। ये दर्शन के इतिहास मे प्रसिद्ध आदर्शवादी रैवायर्जाँ, बोत्रों तथा जूल्स लैकेलिए थे। इनके संपर्क से उसे पदार्थवाद के विरुद्ध आदर्शवादी, अथवा प्रत्ययवादी तर्कों का ज्ञान हुआ। इसी समय उसने यूनानी दार्शनिको का अध्ययन किया, जिससे उसे पता चला कि दर्शन का द्वद्व प्राचीन काल से चला आ रहा है। हेराक्लाइटस (५३५-४७५ ई० पू०) तथा जीनो (जन्म, ४८९ ई० पू०) ने उसका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। हैराक्लाइटस गति को ससार का मौलिक नियम मानता था। जीनो वही स्थान स्थिरता को देता है। हेराक्लाइटस की नदी निरंतर बहती रहती है; उसमे कोई दो बार पैर नही डाल सकता। जीनो के लिये, उसके गुरु पार्मेनाइडीज की बताई हुई सत्ता एक सी रहती है; न कुछ बदलता है, न पैदा होता है, न नष्ट होता है। यही से हेनरी बर्गसाँ का माथा ठनका और उसने दर्शन तथा विज्ञान का गहन अध्ययन जारी रखने का सकल्प किया।

अपने इसी सकल्प के अनुरूप, 'इकोले नार्मेल' की शिक्षा समाप्त कर, वह अध्यापक के रूप मे, 'लिकी ऐंजर्स' गया, जहाँ वह दो वर्ष रहा। फिर 'क्लेयरमाट' मे अध्यापनकार्य करने चला गया। अब उसके विचारो मे प्रौढ़ता आने लगी थी और 'क्लेयरमाट' के विद्यार्थी उसके सुबोध एवं सरस व्याख्यानो से बहुत प्रभावित थे। हँसने के कारणो पर उसका वह सार्वजनिक भाषण, जो १९०० में 'हास्य' (ले रायर) शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ, 'क्लेयरमाट' के अध्यापनकाल मे ही दिया गया था। यही उसने ल्यूक्रेटियस के ग्रंथ का संपादन करते हुए, भूमिका मे काव्य और दर्शन के संबंधो पर समुचित विचार प्रस्तुत कर यह स्पष्ट कर दिया था कि वह केवल कक्षा के दायरे मे घिरा हुआ दार्शनिक न था।

सन् १८८९ मे, उसने अपना शोध लेख 'लेस दॉन्नीज इमीजिएत्स् दे ला काशियंस' प्रस्तुत किया और 'दॉक्तियर-एस्-लेतर्स' की उपाधि प्राप्त की। ग्रंथ के रूप मे, उसका उक्त लेख, १८८९ में प्रकाशित हुआ। १९१० मे 'टाइम ऐंड फ्री विल' नाम से प्रकाशित पुस्तक इसी का अनुवाद है। इसी ग्रथ से बर्गसाँ का दृष्टिकोण दर्शन जिज्ञासुओ एवं सामान्य पाठकों के सामने आने लगा। उसने अनेकता (मल्टि-प्लिसिटी), सत्ताकाल (ड्यूरेशन) तथा चेतना (काशसनेस) के दो दो पहलू प्रस्तुत किए। सामान्यतः, अनेकता संख्यात्मक प्रतीत होती है, किंतु बर्गसाँ ने बताया कि आतरिक अनुभवों की अनेकता संख्यात्मक या परिमाणात्मक न होकर गुणात्मक ही हो सकती है। इसी प्रकार, सत्ताकाल अथवा वह समय जिसमें घटनाएँ घटित होती हैं निरवयव, अथवा एकरस (होमोजीनियस) मालूम होता है, किंतु वह सावयव है। प्रतीत निरवयवता का कारण बुद्धि है,जो घुले मिले अवयवों को अलग करके देखती है। चेतना की व्याख्या करते हुए उसने कहा कि वह चेतना, जो पृथक् अवस्थाओं मे विभाजित रहती है, सतही चेतना है। सत्य चेतना उससे नीचे रहती है। उसे क्षणों मे नहीं बाँटा जा सकता।

उक्त ग्रंथ के प्रकाशन से, हेनरी बर्गसाँ की ओर तत्कालीन विचारको का ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्हे लगा कि काट के बाद, वह दर्शन की मौलिक समस्याओ पर एक नवीन दृष्टि डालने जा रहा था। इसी प्रभाव के फलस्वरूप, १८९८ मे उसे 'इकोले नार्मेल' मे स्थान मिला। उसी वर्ष, 'मैतियर एत मेम्वायर' प्रकाशित कर उसने अपनी नियुक्ति को उचित सिद्ध किया। बर्गसाँ का यह ग्रंथ १९११ में 'मैटर ऐंड मेमोरी' नाम से अंग्रेजी में छपा। इसमे स्मृतिदोषों के अध्ययन के आधार पर, उसने 'मन और पदार्थ' के द्वैत की समस्या सरल करने का प्रयत्न किया। आधुनिक दर्शन की यह गहन समस्या थी। रीने द कार्ते (१५९६-१६५०) से लेकर इमैनुएल काट (१७२४-१८०४) तक सभी दार्शनिक माथापच्ची करते चले आ रहे थे, किंतु विवाद का अंत काट के इस कथन से हुआ था कि मन और पदार्थ, अथवा प्रकृति मे ज्ञाता ज्ञेय संबध है, किंतु मन बुद्धि के द्वारा जानता है और बुद्धि के जानने के कुछ बँधे हुए तरीके हैं। इसलिये, वह अपनी ज्ञेय वस्तुओ को विद्रूप कर देती है। इससे व्यवहार और परमार्थ का भेद बराबर बना रहता है।

बर्गसाँ ने काट के मत को आशिक रूप से स्वीकार किया। उसने यह माना कि बुद्धि आतरिक सत्य को देश मे रखकर ही जानती है। वह वस्तुओं का चारों ओर से निरीक्षण करती है और उनके विविध पक्षों का, एक एक कर परिगणन करती है। तब, सभी पक्षों को मिलाकर पूर्ण का चित्र बनाना चाहती है। ज्ञान की यह विधि पर्याप्त नही है, क्योकि प्रकृति का सत्य स्थिर नही, प्रवहमान सत्य है। वह एक निरतर परिवर्तन है, जो प्रति क्षण नवीनताएँ उद्घाटित करता रहता है। प्रकृति निर्जीव पदार्थ नही, वह जीवन से ओतप्रोत है। पदार्थ वह लावा है, जिसे उफनाती हुई जीवनशक्ति बाहर फेंक देती है। प्रकृति का सार यही जीवनशक्ति है, जो एक निरतरता है। स्मृति के छिछले अध्ययन मे भूत और वर्तमान का अतर सिद्ध होता है, किंतु सूक्ष्म अध्ययन से मालूम होता है कि स्मृति भूत के केवल उन अंशो को ही प्रस्तुत करती है, जो वर्तमान क्रिया के लिये आवश्यक हैं। संपूर्ण सत्य का ज्ञान अतर्दृष्टि से होता है, जो जीवन की धारा की ही भाँति प्रवहमान अनुभव है, अपरोक्षानुभूति है, सहानुभूतिक ज्ञान है।

बर्गसाँ की ख्याति और बढ़ी। काट के मत से उत्पन्न अज्ञेयता को उसने अवास्तविक सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। सन् १९०० ई० मे, उसे 'कालेज द फ्रास' मे यूनानी दर्शन का अध्यापक नियुक्त किया गया। वही कुछ समय बाद, वह प्रसिद्ध दार्शनिक एवं समाजशास्त्री, टार्डी के स्थान पर, आधुनिक दर्शन का अध्यापक हुआ। अब, वह एक नवीन जीवनदर्शन का प्रणेता समझा जाने लगा था। उसके दार्शनिक लेख फ्रास से बाहर भी छप रहे थे। पूरे यूरोप की शिक्षित जनता उन्हें पढ़ रही थी।

सात वर्ष बाद, १९०७ में बर्गसाँ की अति प्रसिद्ध पुस्तक 'एल एवोल्यूशन क्रियेत्रिस' छपी। इसका अंग्रेजी अनुवाद, 'क्रिएटिव एवोल्यूशन' १९११ मे प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक मे, उसने उसी दर्शन को, जिसे वह समय एवं स्मृति संबंधी समस्याओं के विवेचन से पिछले ग्रंथों मे प्रतिपादित कर चुका था, जैविक विकास के विस्तृत अध्ययन के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। निष्कर्ष नवीन न होने पर भी, पुस्तक बहुत रुचिकर है, जीव जंतुओं के प्रचुर उदाहरण पुस्तक को मानव मन के बहुत समीप ला देते हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद, १४ वर्ष बर्गसाँ अध्यापन के अतिरिक्त, यूरोप और अमरीका के विभिन्न नगरो मे, समय समय पर, भाषण देता रहा। सन् १९२१ मे, उसने कालेज से इस्तीफा दे दिया। किंतु 'आनरेरी अध्यापक के रूप मे कालेज से उसका संबध सन् १९४० तक बना रहा। वह अब सार्वजनिकहित के कार्यों मे अधिक रुचि लेने लगा था। कई अंतरराष्ट्रीय सहयोग समितियो मे उसने काम किया। सन् १९२७ मे उसे साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। किंतु इसके बाद, कुछ वर्षों तक वह ऐसी चुप्पी साध गया कि लोगों ने समझा वह अपना काम समाप्त कर चुका था।

एकाएक, सन् १९३२ मे, 'लेस् दिअक्स् सोर्सेज द ला मोरेल एत द ला रेलीजन' पुस्तक प्रकाशित हुई और तब पता चला कि वह मौन साध कर धर्म और नैतिकता की समस्याओ पर विचार कर रहा था। इस प्रसंग में भी उसने अपनी दर्शनवाली नीति से काम लिया। उसने दिखाया कि दो तरह के धर्म है, दो तरह की नैतिकता है। 'बंद' समाजो मे धर्म और नैतिकता एक बाहरी दबाव है, किंतु 'खुले' समाजो मे, वह स्वतंत्र मानव का आचरण है, रचनात्मक सहजता है।

लगभग सन् १९३३ से बर्गसाँ का कैथलिक धर्म की ओर झुकाव जाहिर होने लगा था। फ्रांस के धर्माधिकारी उसे हेय दृष्टि से देखते थे। फ्रांस की सरकार यहूदियों के प्रति द्वेषपूर्ण नीति से काम लेने लगी थी। बर्गसाँ चाहता तो वह फ्रांसीसी-यहूदी समस्या से अलग बना रहता, क्योंकि उसके सम्मान के अनुरूप, सरकार उसके प्रति अपनी नीति शिथिल करने के लिये तैयार थी। किंतु बर्गसाँ ने अत्याचारियो का साथ देने के बजाय उत्पीड़ितो मे रहना पसद किया। सन् १९४० मे जब 'विशी' सरकार ने यहूदियो को अपने पद त्याग देने का आदेश दिया, तो बर्गसाँ ने भी 'कालेज द फ्रांस' से अपने नाममात्र के सबंध को तोड लिया। फिर उसी वर्ष, दिसबर मे, जब यहूदियो को अपने नाम पजीकृत कराने का आदेश दिया गया, तो वह भी, एक साधारण यहूदी की भाँति, रजिस्ट्रेशन आफिस के सामने कई घंटे तक अपनी पारी आने की प्रतीक्षा करता रहा। बर्गसाँ की आयु इस समय ८१ वर्ष थी। वह दिसंबर की कड़ी सर्दी बर्दाश्त न कर सका। कई दिन तक वह चारपाई पर पड़ा रहा और ४ जनवरी, सन् १९४१ को उसका देहावसान हो गया। किंतु उसका दर्शन यूरोपीय कहानियो और उपन्यासो मे अब भी जीवित है और अंग्रेज़ी के माध्यम से उसे हम भी जानते हैं।

वह किसी नवीन सप्रदाय का जन्मदाता न था। पर प्रचलित व्याख्याओ को एकांगी और अपर्याप्त दिखाकर उसने भावी चिंतन का मार्ग प्रशस्त करने की चेष्टा कर बहुत बड़ा काम किया था। बुद्धिवादियों को उसने बताया कि उनके विश्लेषण मात्र व्यावहारिक एव सतही थे। उन्हे अपरोक्षानुभव, अंतर्दृष्टि, अथवा सहानुभूतिक ज्ञान से काम लेने की आवश्यकता थी। यथार्थवादियों को बताया कि उन्हे बाह्य पदार्थ ही नही, प्रकृति की जीवनीशक्ति या अपने आंतरिक अनुभवों को भी महत्व देना चाहिए और अधिक महत्व देना चाहिए। हेराक्लाइटस और विलियम जेम्स को एक साथ रखकर, उसने बाह्य और आंतरिक प्रवाह की एकता स्थापित करते हुए अपने निरंतरता के सिद्धांत से, जीवनधारा या चेतना की धारा के क्षणों को विलग होने से बचा लिया। सचमुच उसने इतना ही कहा कि एक जीवन क्षण निरंतर नवीन होता रहता है और उसे हम आंतरिक अनुभव मे पा सकते है। उसके दर्शन का सार 'इंट्रोडक्शन टु मेटा-फिजिक्स' से ग्रहण किया जा सकता है। यह उसके एक लेख का अनुवाद है, जो १९०३ मे 'रिव्यू द मेताफिजिक' मे छपा था।

[शि० श०]

बर्ज़ीलियस, जॉन्स जैकब (Berzelius, Jöns Jacob, Baron; सन् १७७९-१८४८) स्वीडन निवासी रसायनज्ञ थे। इनका जन्म वैफवरसुंडा (Vafversunda) स्थान पर हुआ था। इन्होने उपसाला विश्वविद्यालय मे अध्ययन किया। १८०२ ई० मे स्टॉकहोम विश्वविद्यालय मे औषध रसायन और वनस्पति विज्ञान के सहायक अध्यापक तथा १८०७ ई० मे इन विषयों के प्रोफेसर नियुक्त हुए। स्टॉकहोम के चिरुगिको मेडिकल इंस्टिट्यूट (Chirugico Medical Institute) मे ये रसायन विज्ञान के प्रोफेसर हो गए। यहा इन्होने अपनी एक छोटी सी प्रयोगशाला खोल रखी थी, जिसमे इन्होने अपना अनुसधान कार्य आरभ किया और शिष्यो को प्रोत्साहित करने लगे। १८१८ ई० मे ये स्टॉकहोम अकादमी के स्थायी सचिव नियुक्त हुए। १८३२ ई० मे इन्होने अवकाश ग्रहणकर ग्रथलेखन प्रारभ किया। १८३५ ई० मे राजा चार्ल्स चतुर्दश ने इन्हे बैरन की उपाधि दी।

बर्ज़ीलियस का कार्य विविध क्षेत्रो मे है। इनकी हार्दिक आकाक्षा परमाणुवाद की सस्थापना थी। वे चाहते थे कि रसायन शास्त्र की प्रत्येक शाखा मे द्वैत भाव प्रचलित हो जाय। इन्होने सयोजी भार निकालने के यथार्थ प्रयत्न किए तथा रसायनशास्त्र की विश्लेषण और परीक्षण पद्धतियो मे सुधार किए। इन्होने प्रदर्शित किया कि रासायनिक अनुपातो के नियम कार्बनिक पदार्थो और खनिजो मे भी लागू होते हैं। इन्होने १८०३ ई० मे सीरिया और सीरियम की, १८१७ ई० मे सेलीनियम की एवं १८२८ ई० मे थोरियम की खोज की। १८१० ई० में सिलिकन, १८२४ ई० मे जिर्कोनियम और १८२५ ई० में टाइटेनियम, तत्वावस्था मे प्राप्त किए। टाइटेनियम, ज़िर्कोनियम, थोरियम, क्रोमियम, मॉलिब्डेनम, टंगस्टन, यूरेनियम, वैनेडियम आदि दुर्लभ धातुओ के यौगिकों पर बर्ज़ीलियस ने विस्तृत कार्य किया। १८११ ई० मे बर्ज़ीलियस ने कार्बनिक यौगिको के नामकरण एव संकेतसूत्रो की पद्धति प्रचलित की, जो बहुत कुछ अब भी मान्य है। १८१२ ई० मे इन्होने अपना विद्युत् रासायनिक सिद्धांत (द्वैत सिद्धात) प्रतिपादित किया। इसके अनुसार प्रत्येक लवण या यौगिक के दो भाग होते हैं, एक ऋणात्मक और दूसरा धनात्मक

अथवा एक अम्लीय और दूसरा क्षारीय भाग। १८१७ ई० मे बर्ज़ीलियस ने तत्वों के यथार्थ परमाणुभारों की एक तालिका तैयार की, जिसमें १८२६ ई० मे इन्होंने कुछ और सुधार किए।

१८०७ ई० में बर्ज़ीलियस ने सैरकोलैक्टिक अम्ल की, १८३२ ई० में रैसेमिक अम्ल की और १८३५ ई० मे पाइरूविक अम्ल की खोज की। अन्य अनेक कार्बनिक यौगिकों पर भी उन्होंने कार्य किया। १८३१ ई० मे इन्होंने समावयवता, बहुअवयवता और मितावयवता के भदों को प्रदर्शित किया। १८३४ ई० मे किण्वन क्रिया के संबंध मे संपर्क सिद्धात प्रस्तुत किया। बर्जीलियस ने रसायनशालाओं के उपकरणो मे भी सुधार किया। रबर की नलियों, जल-ऊष्मकों, और भारात्मक निस्यद पत्रों (फिल्टर पेपरों) का प्रचलन इन्होंने ही किया। विश्लेषण विधियों में सुहागा परीक्षण, कोबॉल्ट परीक्षण और धमनी या ब्लोपाइप वाले परीक्षणों के लिये भी हम बर्ज़ीलियस के ऋणी हैं। जब तक वह जीवित रहे रसायनशास्त्र के क्षेत्र मे उनका नेतृत्व बराबर माना जाता रहा। [सत्य० प्र०]

बर्टन, रिचर्ड फ्रांसिस, सर (Burton, Richard Francis, Sir, सन् १८२१-१८९०) ब्रिटेन के प्रसिद्ध समन्वेषक तथा पौर्वात्यविद्या शास्त्री का जन्म बर्हम हाउस, हर्टफोर्डशिर, इंग्लैंड में हुआ था। इनकी शिक्षा दीक्षा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे हुई। १८४२ ई० मे वे सर चार्ल्स नेपियर के अधीन ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में भर्ती हो गए और उन्हे भारत भेज दिया गया।

सन् १८५३ में पठान के वेष मे उन्होंने अरब का भ्रमण किया, जिसका वृत्तात उन्होने अपनी पुस्तक **'एल मदीना तथा मक्का की धार्मिक यात्रा का व्यक्तिगत निबंध'** (सन् १८५५) मे दिया है। जॉन हैनिंग स्पेक के साथ वे सोमालीलैंड गए। हरर नगर में पहुँचनेवाले वे प्रथम श्वेत आदमी थे। सन् १८५६ मे वे अफ्रीका लौटे और स्पेक के साथ नील नदी के स्रोत तथा टागान्यिका झील का पता लगाने के लिये यात्रा की, जिसका वर्णन **'भूमध्यरेखीय अफ्रीका के झील प्रदेश'** (सन् १८६२) मे उन्होने किया है। पश्चिमी अफ्रीका में जब वे ब्रिटिश राजदूत थे (सन् १८६१-६५) उन्होने बियाफ्रा की खाड़ी (Bight of Biafra), कैमरून्स तथा डहोमी क्षेत्रों की खोज की। तदनंतर ब्राज़ील, दमिश्क, आयरलैंड, ट्रिएस्ट आदि क्षेत्रो एवं स्थानों पर रहकर भ्रमण एवं अन्वेषण संबंधी प्रचुर अनुभव प्राप्त किए। इन्होने लगभग ५० पुस्तकें लिखी हैं। इनकी पुस्तक 'अरब की हजार रातें और एक रात' (सन् १८८५-१८८८) अलिफ लैला का अविकल अंगरेजी अनुवाद है। [का० ना० सि०]

बर्टलो, पी० ई० एम० (Berthelot, P. E. M. १८२७-१९०७ ई०) फ्रांसीसी रसायनज्ञ थे। इनका जन्म पैरिस मे हुआ था। इन्होंने पहले इतिहास और दर्शन का अध्ययन किया, फिर विज्ञान की ओर इनकी रुचि बढ़ी। सन् १८५१ में अध्यापक हो गए और शोधकार्य करते रहे। सन् १८५४ में इन्होंने डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। सन् १८५९ में कार्बनिक रसायन के प्रोफेसर नियुक्त हुए और इसके छह वर्ष बाद कॉलेज ऑव फ्रास के अध्यक्ष भी हो गए। पैस्टर की मृत्यु के अनंतर ये ऐकैडमी ऑव सायंसेज़ के स्थायी सचिव बने रहे।

बर्टलो ने कार्बनिक यौगिको के संश्लेषण के संबंध में अत्यंत महत्व पूर्ण कार्य किए। इनके पहले वैज्ञानिको की यह धारणा थी कि प्रयोगशाला में कार्बनिक यौगिकों का निर्माण बिना जैवक्रिया (vital activity) के असंभव है, किंतु इन्होंने हाइड्रोकार्बन, वसा, शर्करा तथा अन्य यौगिक बनाकर यह सिद्ध कर दिया कि ये सामान्य विधियों से तैयार किए जा सकते हैं। कार्बनिक यौगिकों से संबंधित इनके अनेक शोधपत्र प्रकाशित हुए।

इन्होने कुछ समय तक विस्फोटकों पर भी कार्य किया। सन् १८७०-७१ मे ये फ्रास की वैज्ञानिक सुरक्षा समिति के अध्यक्ष भी रहे।

इन्होने अपने जीवन के अंतिम वर्ष रसायन शास्त्र के इतिहास लिखने मे व्यतीत किये। इन्होंने कीमियागरी (alchemy) पर पाई जानेवाली प्राचीन ग्रीक तथा अरबी की पुस्तकों का अनुवाद भी कराया और उन्हे कलेक्शन ऑव एंशेंट ग्रीक केमिस्ट्स (Collection of Ancient Greek Chemists) नाम से सन् १८८७-८८ मे प्रकाशित किया। इन्होंने और भी पुस्तकें लिखी, जिनमे सायस एट फिलॉसोफ़ी (Science et Philosophie) सन् १८८६ मे तथा ला रिवोल्यूशन शिमिक लेवॉज़ये (La Revolution Chimique Lavoisier) सन् १८९० में लिखी गई, अत्यंत प्रसिद्ध हैं। [शि० गो० मि०]

बर्द्धमान १ जिला, स्थिति : २२° ५६' से २३° ५३' उ० अ० तथा ८६° ४८' से ८८° २५' पू० दे०। यह भारत के पश्चिमी बगाल राज्य मे स्थित एक जिला एव उपमडल हैं। इसका क्षेत्रफल २,७१६ वर्ग मील तथा जनसख्या ३०,८२,८४६ (१९६१) है। इसके पूर्व में नदिया, दक्षिण मे हुगली, पश्चिम मे बाँकुड़ा, और उत्तर मे बीरभूम जिले स्थित हैं। जिले का लगभग आधा भाग मैदान रूप मे है। भागीरथी नदी के पूर्वी भाग की मिट्टी दलदली है। रानीगज की कोयले की खानें इसी जिले मे स्थित हैं। कोयलेवाला क्षेत्र बगाल का प्रसिद्ध औद्योगिक क्षेत्र है। यहाँ की मुख्य नदियाँ दामोदर, द्वारकेश्वर, खरी, अजय आदि हैं, जो भागीरथी नदी मे मिलती हैं। वार्षिक वर्षा का औसत ५४ इच है। दामोदर नदी की बाढ़ से कई बार यहाँ जन, धन की क्षति हो चुकी है। मिट्टी अति उपजाऊ होने से मुख्य फसल धान के अतिरिक्त मक्का, आलू, गन्ना, तिलहन, दलहन आदि भी पैदा होते हैं। सिंचाई का उत्तम प्रबध है। खनिजों मे चीनी मिट्टी और कोयला प्रमुख हैं तथा रानीगज के उत्तर मे बाराल के पास लोहा बहुत बडी मात्रा में निकाला जाता है। इस जिले मे रेशमी कपडा तथा खनिजों से संबंधित विस्तृत उद्योग हैं। इस जिले के मुख्य नगर बर्द्धमान, रानीगंज, आसनसोल, कालना एव काटवा आदि हैं।

२ नगर, स्थिति : २३°१४' उ० अ० तथा ८७°५१' पू० दे०। उपर्युक्त जिले मे बाँका नदी के किनारे स्थित एक नगर है। यहाँ की जनसंख्या १,०८,२२४ (१९६१) है। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यकर नहीं है। यह जिले का केंद्र है। छुरी, काँटे बनाने तथा

तेल पेरने के कारखाने हैं। इतिहास में इसका स्थान प्रमुख रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में इस नगर ने काफी प्रगति की है।

बर्न (Bern) १. प्रांत, स्थिति . ४६° ५१' उ० अ० तथा ७° ३५' पू० दे०। यह स्विट्सरलैंड का, जनसंख्या की दृष्टि से, द्वितीय बड़ा कैंटन (प्रांत) है। इसका क्षेत्रफल २,६५७ वर्ग मील है, जिसमे १०० वर्ग मील पर हिमनद है। जनसंख्या ८,८९,५२३ (१९६०) थी। कैंटन के मध्यवर्ती भाग मे ऐल्प्स की पाद पहाड़ियाँ है, जो दक्षिण में फैले हुए उत्तुंग शिखरोवाले बर्नीज ऐल्प्स की अपेक्षा समतल हैं। बर्न राजधानी के अतिरिक्त बीने (Bienne), बुर्गडार्फ, डैलस्बर्ग आदि यहाँ के प्रमुख नगर हैं। प्रशासकीय दृष्टि से यह ३० जिलो मे विभक्त है। पशु चराना, मक्खन बनाना, शराब बनाना, लकड़ी का काम, घड़ियाँ तथा मिट्टी के बरतन बनाना प्रमुख उद्योग है।

२. नगर, बर्न कैंटन मे, सागरतल से १,८०० फुट की ऊँचाई पर एक प्रायद्वीप पर आर नदी के पास स्थित एक नगर है। उसकी जनसंख्या १,६६,१०० (१९६१) थी। यहाँ के पुस्तकालय, पुरातत्व संग्रहालय, विश्वविद्यालय प्रसिद्ध हैं। यह स्विट्सरलैंड की राजधानी तथा राजनीतिक केंद्र है। यहाँ मशीनो तथा चॉकलेटो का निर्माण होता है। [हृ० शं० गु०]

बर्न्स, रॉबर्ट स्कॉटलैंड के कवियों मे सबसे महान् रॉबर्ट बर्न्स का जन्म २५ जनवरी, सन् १७५९ को एल्लोवे नामक स्थान पर हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा बिल्कुल अल्प एवं अनियमित थी, किंतु पुस्तके पढने मे वह बहुत तन्मय रहते थे और १६ वर्ष की अवस्था मे ही उस समय प्रचलित ललित शिक्षा के अनेक तत्वो को वह ग्रहण कर चुके थे। उनके ऊपर पड़े प्रारंभिक प्रभावों के अंतर्गत कहानियों, विरहो और गीतो का नाम लिया जा सकता है। सन् १७८१ मे बर्न्स ने अपने भाई के साथ एक छोटे फॉर्म की व्यवस्था की किंतु उसका परिणाम अत्यंत दुःखद सिद्ध हुआ और अपनी असफलता का कटु अनुभव कर अपनी मातृभूमि छोड़ वह जमैका जाने के लिये उद्यत हुए। किंतु यात्रा के लिये उनके पास धन नही था, एतदर्थ उन्होंने १७८६ ई० मे अपनी कविताओ का प्रसिद्ध और अमूल्य किलमार्नाक संस्करण प्रकाशित कराया जिससे उनकी प्रशंसा बहुत बढ़ गई। दूसरे संस्करण के प्रकाशनार्थ वह एडिनबरा गए जहाँ साहित्यिक केंद्रों के प्रवर विद्वानो ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। उनके इस दूसरे संस्करण से उन्हें धन की अच्छी प्राप्ति हुई, फलतः उन्होने एलिसलैंड का फार्म हस्तगत कर लिया, जहाँ वे अपनी पत्नी जीन आर्मर के साथ सन् १७८८ से रहने लगे। सन् १७८९ मे उनकी नियुक्ति आबकारी विभाग के कार्यकर्ता के पद पर हुई। किंतु दूसरी बार भी कृषि मे असफलता मिलने पर वह डम्फ्रीज चले गए जहाँ उन्होंने अपने आबकारी वेतन पर ही जीवनयापन करना निश्चय किया। उनका वेतन ७० पौंड वार्षिक से अधिक न हो सका। युवावस्था के प्रारंभ मे ही वह नारीसौंदर्य के प्रति जागरूक थे। स्वास्थ्य और सौभाग्य मे पूर्णत क्षीण रॉबर्ट बर्न्स का जीवन ३७ वर्ष तक बहुत अस्तव्यस्त रहा। गठिया ज्वर के कारण २१ जुलाई, १७९६ को उनकी मृत्यु हो गई।

बर्न्स की काव्यकृतियों मे 'टैम ओ' शाटर' शीर्षक एक कथा, 'दी काटर्स सैटर्डे नाइट' नामक एक वर्णनात्मक बृहद् कविता, दो सौ से अधिक ही अनेक प्रकार के गीत और विपुल संख्या में लिखे उनके छोटे काव्यपत्र, व्यंगात्मक कविताएँ, चुटकुले, शोकगीत तथा अन्य प्रकार के विविध पद्य सम्मिलित है। टैम ओ' शाटर, जैसा बर्न्स ने स्वयं कहा है, उनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। कविता अलंकृत भाषा मे लिखी हुई अत्यंत सुंदर प्रेमकथा है। यह हास्य और मानवता के तत्वो से ओतप्रोत है। उनकी सबसे लोकप्रिय रचना 'दी काटर्स सटर्डे नाइट' उनके पिता विलियम बर्न्स का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करती है। किस प्रकार एक सच्चरित्र व्यक्ति अपना गार्हस्थ्य जीवन परम आनंद और प्रतिष्ठा से व्यतीत करता है—यही इस कविता की विषयवस्तु है। उसमे स्कॉटलैंड के कृषको और उनके जीवन का चित्रण प्रभावोत्पादक हुआ है। उनका सबसे महत्वपूर्ण पत्र 'एपिस्ल टु डि लैपरेक' है, जिसमे सटन का संबंध बंधुत्व तथा मानवता के अविच्छिन्न सौहार्द से है। बायरन के सदृश बर्न्स दो महान् रोमांटिक व्यंग्य कवियों मे एक है। उनकी सबसे श्रेष्ठ व्यंग्यात्मक कविताएँ 'दि होली फेअर' तथा 'होली विलीज प्रेयर' है जिनमे प्रथम धार्मिक और सामाजिक व्यंग्य पर आधारित श्रेष्ठ कृति है और दूसरी एक तीक्ष्ण एवं मर्मांतक व्यंग्य कलाकृति है जिसमे धार्मिक पाखंड पर प्रहार किया गया है। 'दि जॉली बेगर्स' उनकी अति नाटकीय एवं कल्पनाप्रधान रचना है जिसमे निरुद्देश्य घुमक्कड़ो का वर्णन है। आर्नल्ड के मतानुसार इस कविता मे गंभीरता, सत्य तथा ओज का वह प्रदर्शन है जिसका उदाहरण केवल शेक्सपीयर और अरिस्तोफानिज की कृतियों मे ही उपलब्ध हो सकता है।

स्वाभाविक एवं प्रवाहयुक्त गीतकार के रूप मे बर्न्स का स्थान साहित्य, इंग्लैंड अथवा यूरोप मे सर्वश्रेष्ठ है। उनका 'ए मैंस ए मैन फार ए दैट' मानवता का गान है। इसमे स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व की क्रांतिकारी पुकार है।

बर्न्स के अधिकांश पद्य कभी कभी समयानुसार भाषा की कृत्रिमता का प्रदर्शन करते हुए भी ओजपूर्ण एवं गठित है और प्रारंभ से लेकर अंत तक सौंदर्य तथा मानवीय तत्वो के अनूठे गुणो से परिपूर्ण है। [बृ० मो० सा०]

बर्फ जल के ठोस रूप को कहा जाता है। बर्फ जल के समान रंगरहित, रवेदार ठोस है जो ०° से० ताप के ऊपर पिघलकर जल मे परिणत हो जाती है। जल के समान ही गहराई पाने पर ठोस बर्फ का रंग नीला, अथवा हरापन लिए हुए नीला, होता है, जैसी बर्फ की शिलाएँ (icebergs) तथा बर्फ से ढकी हुई पर्वतमालाएँ दिखाई देती है। बर्फ का घनत्व ०.९१७ ग्राम प्रति घन सेमी० होता है। इस हलकेपन के कारण ही समुद्र मे तैरती हुई बर्फ की शिलाओ का १/१० भाग जल की सतह के ऊपर दिखाई देता है तथा ९/१० भाग जल की सतह के अंदर छिपा रहता है।

बर्फ प्राय कई रूपो मे मिलती है, जैसे प्रशीतन (refrigeration) क्रिया की सहायता से जमाई गई बर्फ, पहाड़ो पर वर्षा के रूप मे गिरनेवाली बर्फ, शीत प्रदेशों मे समुद्र की सतह पर जमी हुई बर्फ तथा बर्फ की शिलाओ, अर्थात् ग्लेशियर, के रूप मे। ऐसा अनुमान है कि पृथ्वी पर लगभग २,२०,००,००० घन किलोमीटर

बर्फ मिलती है, जो यदि किसी तरह पिघल जाय तो ससार के महासागरो की सतह ५० मीटर ऊँची उठ जाय। सौभाग्य से ऐसी स्थिति आने की कोई आशंका नही दिखाई देती। इस बर्फ की मात्रा का ८७ प्रति शत ऐंटार्कटिक महाद्वीप पर, १२ प्रति शत उत्तरी आर्कटिक क्षेत्र मे तथा शेष १ प्रति शत भाग पृथ्वी के अन्य भागों म पहाड़ो पर जमी हुई बर्फ के रूप मे पाया जाता है।

बर्फ के अंदर हवा के बुलबुले रह जाने के कारण उसका रग सफेद दिखाई देने लगता है। बर्फ का एक विशेष गुण यह है कि दबाव बढ़ने पर इसका गलनाक (melting point) कम होता जाता है। १३४ वायुमंडलीय दबाव पर बरफ – १° से० तापमान पर पिघल जाती है। इस गुण के कारण ही बर्फ की शिला स्वय अपने भार के कारण नीचे पेंदे मे निरतर पिघलती जाती है। यदि एक तार को बर्फ के टुकड़े पर दबाया जाय, तो तार बर्फ के टुकडे से पार हो जायगा किंतु टुकडा कटेगा नही। क्योकि भार जैसे ही हट जाता है, पिघलती हुई बर्फ स्वय पुन जम जाती है। १ वायुमडल दबाव, अर्थात् १५ पौंड प्रति वर्ग फुट के दबाव से बर्फ का गलनाक ०.००७५° से० कम होता जाता है।

साधारणत. बर्फ का एक ही रवेदार रूप पाया जाता है, जो छह पहला होता है। अत्यधिक दबाव (२,००० वायुमडल दबाव से ऊपर) पर उसके कई रवेदार रूप मिलते है। बेरवेदार (amorphous) रूप भी पाया जाता है। इन असाधारण रवेदार रूपों में बर्फ का घनत्व भी १ ग्राम प्रति घन सेंमी० से अधिक होता है। बर्फ की गलन ऊष्मा (heat of fusion) ७९.८ कैलोरी प्रति ग्राम होती है।

प्रकृति एवं उद्योग दोनो मे ही बर्फ के अनेक उपयोग है। प्राकृतिक बर्फ से ही नदियो को जल मिलता है। पहाडो की शिलाएँ टूट टूटकर उपजाऊ बारीक मिट्टी मे परिणत होती रहती है। समुद्र के जल की सतह मौसम बदलने के साथ साथ कम अथवा अधिक नही हो पाती। औद्योगिक उपयोग के लिये जल को प्रशीतनक्रिया द्वारा जमाकर बर्फ बनाई जाती है। इस प्रकार तैयार की गई बर्फ का प्रयाग ठंढे पेय बनाने मे, दूध या मलाई की बर्फ जमाने मे तथा खाद्य पदार्थों के परिरक्षण के लिये किया जाता है। बर्फ के ताप, अर्थात् ०° से०, पर फल, तरकारियाँ, साग, मछली, अडा तथा अन्य इसी प्रकार सडनेवाले खाद्य पदार्थ पर्याप्त लंबे समय तक सुरक्षित ताजे रखे जा सकते है। अस्पतालो मे भी बर्फ का उपयोग बहुत होता है।

प्रयोगशाला मे तरल पदार्थों को जमाने के लिये बर्फ को नमक या शोरे के साथ मिलाकर प्रशीतन मिश्रण (freezing mixture) के रूप मे प्रयोग किया जाता है। बर्फ के साथ नमक मिलाने पर इस मिश्रण का ताप – १०° से० हो जाता है, और शोरा मिलाने पर यह ताप –३०° से० तक गिर जाता है।

ठोस कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) को 'शुष्क बर्फ' (dry ice) कहते हैं। इस शुष्क बर्फ मे जल तनिक भी नही रहता, केवल कार्बन डाइऑक्साइड रहता है। इसका ताप – ८०° से० होता है, जिसका उपयोग प्रयोगशालाओं मे रासायनिक क्रियाओं मे किया जाता है।

वायुमंडल मे जल के वाष्प को बर्फ के रूप मे परिणत कर कृत्रिम वर्षा कराने के लिये कुछ ऐसे रासायनिक वाष्प कणो का उपयोग किया जाता है जिनपर वाष्पकण शीघ्र बर्फ के रूप मे जमकर भारी होने के कारण आकाश की ऊपरी सतह से नीचे गिरने लगते है और पृथ्वी की सतह के पास आते आते जल की बूँदो मे बदल जाते है। इस प्रकार 'कृत्रिम वर्षा' होने लगती है। इस क्रिया के लिये सिल्वर आयोडाइड (silver iodide) के वाष्प का उपयोग किया जाता है। [न० द० मि०]

बर्बरा, संत एक प्राचीन परपरा के अनुसार संत बर्बरा के विधर्मी पिता ने उन्हे एक बुर्ज मे कैद कर दिया था जिसमे वह सन् २०६ ई० मे शहीद बन गईं। वह शिल्पियों की सरक्षिका है और उनका पर्व ४ दिसबर को मनाया जाता है। [का० बु०]

बर्मा स्थिति : ९° ५५' से २८° ३०' उ० अ० तथा ९२° १०' से १०१° ९' पू० दे०। यह दक्षिण-पूर्वी एशिया का एक देश है। इसके उत्तर मे भारत एवं चीन, पूर्व मे थाईलैंड (स्याम), लाओस, चीन और पश्चिम मे भारत, पूर्वी पाकिस्तान तथा बगाल की खाड़ी है। इसके सागरतट की लबाई १,२०० मील है। इसका क्षेत्रफल २,६१,७८९ वर्ग मील है।

धरातल — धरातल के आधार पर इसे चार भागो मे बाँटा जा सकता है : १ उत्तरी तथा पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र — यह ६,००० से २०,००० फुट तक ऊँचा है। इसमें बंगाल की खाड़ी तथा आराकान
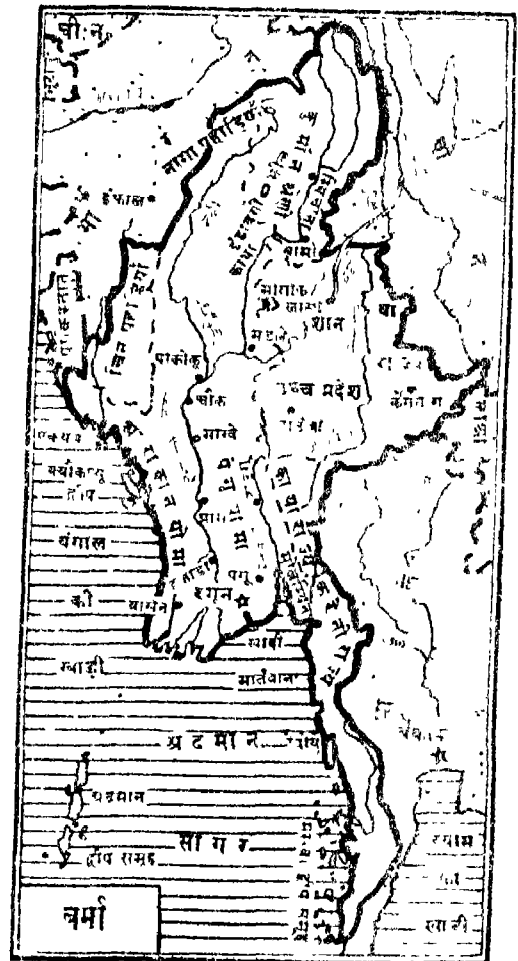
योमा पर्वत के मध्य की आराकान पट्टी भी शामिल है। २. पूर्व का शान उच्च प्रदेश — यह लगभग ३,००० फुट तक ऊँचा एक पठार है जो दक्षिण में टेनैसरिम योमा तक फैला है। ३. मध्य बर्मा — यह देश का मुख्य कृषिप्रदेश है जो पूर्व में सैलवीन तथा पश्चिम में इरावदी तथा इसकी सहायक चिंद्विन आदि नदियों से घिरा है। ४. दक्षिण में इरावदी तथा सितांग नदियों का डेल्टा प्रदेश — इरावदी तथा सितांग की निम्न घाटी काफी उपजाऊ है। डेल्टा प्रदेश लगभग १०,००० वर्ग मील में फैला है। यह विश्व के बड़े धान उत्पादक क्षेत्रों में से एक है तथा यहाँ कई प्रसिद्ध बंदरगाह भी स्थित हैं। इरावदी नदी मैदान के पश्चिमी भाग से बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

जलवायु — यहाँ की जलवायु उष्णकटिबंधीय है जिसमें तीन ऋतुएँ होती हैं : प्रथम, वर्षा ऋतु, जो मध्य मई से मध्य अक्टूबर तक रहती है; द्वितीय, ग्रीष्म ऋतु, जो अप्रैल से मई तथा अक्टूबर से नवंबर तक रहती है। तृतीय, जाड़े की ऋतु, जो दिसंबर से मार्च तक रहती है। मानसून के मौसम में ऊपरी बर्मा में २०० इंच तथा दक्षिण में स्थित रंगून में १०० इंच तक वर्षा होती है। मध्य के शुष्क भाग में २५ से ३५ इंच वर्षा होती है। निम्न बर्मा का जाड़े का ताप १५.५° सें० तथा गरमी का ताप ३८° सें० तक रहता है। मध्य बर्मा में गरमी का ताप निम्न बर्मा के जाड़े के ताप से अधिक तथा गरमी के ताप से कम हो जाता है।

वनस्पति — यहाँ २,००० प्रकार के जंगली वृक्ष एवं ६,००० प्रकार के अन्य पौधे मिलते हैं। सदाबहार जंगलों में महोगनी, गटापार्चा, बाँस तथा पतझड़वाले जंगलों में सागौन, साल, आबनूस, आम, तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में कटीले वृक्ष एवं झाड़ियाँ मिलती हैं। डेल्टाई क्षेत्र में मैनग्रोव वन एवं पहाड़ी प्रदेशों में ऊँचाई के अनुसार सदाबहार, पतझड़वाले, मिश्रित तथा कोणधारी वन पाए जाते हैं।

जीवजंतु — यहाँ पाए जानेवाले जीवजंतु असम के समकक्ष हैं। घने जंगलों में हाथी, जंगली भैंसे, शेर, चीता, गैंडा, भालू, हरिण तथा बंदर पाए जाते हैं। इनके अलावा मगरमच्छ, नाग तथा २०० प्रकार के पक्षी पाए जाते हैं। पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंसे, बकरियाँ, सूअर तथा भेड़ें प्रमुख हैं।

कृषि — इरावदी, चिंद्विन, तथा सितांग नदियों की घाटियाँ मुख्य कृषि क्षेत्र हैं। लगभग २/३ भाग में धान एवं शेष में तिल, दलहन, मटर, ज्वार बाजरा, कपास, जूट, तंबाकू एवं ईख की खेती होती है।

खनिज—इरावदी घाटी के पेगूयोमा क्षेत्र में खनिज तेल मिलता है जिसकी सफाई रंगून के तेलशोधक केंद्रों पर की जाती है। अन्य खनिजों में सोना, सीसा, ताँबा, जस्ता, चाँदी, कोबाल्ट, टंगस्टन एवं चूने का पत्थर और नीलम प्रमुख हैं।

उद्योग धंधे — यहाँ के मुख्य उद्योग कृषि, वन एवं खनिजों पर आधारित हैं जिसमें धान कूटना, मछली पकड़ना, लकड़ी काटना, रेशमी वस्त्र उद्योग प्रमुख हैं। अन्य उद्योगों में सूती वस्त्र, सीमेंट, चीनी, चाय, इस्पात एवं वस्त्र उद्योग आदि आते हैं। निजी क्षेत्र के उद्योगों में सिगरेट बनाना, आटा पीसना, सघनित दुग्ध, बिस्कुट एवं मिठाइयाँ बनाना, तेल पेरना, तंबाकू संबंधी काम करना, गलीचे तथा, कपड़ा बुनना, तथा रँगना, हौजरी का सामान बनाना, छाता, दियासलाई, साबुन, बरतन, प्लास्टिक के सामान बनाना प्रमुख है।

जनसंख्या — यहाँ की जनसंख्या २,१०,००,००० (अनुमानित १९६३) है। यहाँ की प्रमुख भाषा बर्मी है। अंग्रेजी का प्रयोग भी होता है। रंगून, मैंडले तथा मोलम्यिन यहाँ के प्रमुख नगर हैं। रंगून बर्मा की राजधानी, शैक्षिक एवं व्यापारिक केंद्र है। बौद्ध धर्म यहाँ का प्रधान धर्म है। इनके अतिरिक्त ईसाई, हिंदू एवं मुसलमान भी रहते हैं।

शिक्षा — स्वतंत्रता के उपरांत यहाँ की शिक्षाप्रणाली में विकास हुआ है। स्कूल शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम बर्मी भाषा है। रंगून एवं मैंडले विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा दी जाती है जिसमें कृषि विज्ञान, चिकित्सा, वनशिक्षा भी संमिलित है। इनके अलावा यहाँ अनेकों महाविद्यालय हैं।

यातायात — यहाँ रेलमार्गों, सड़कों का काफी विकास हुआ है। इरावदी तथा चिंद्विन नदियों में ९०० और ३९० मील के अलावा ६० मील लंबी नौका-संचालन-योग्य नहरें हैं। रंगून से हांगकांग, कलकत्ता, जकार्ता, सिंगापुर आदि के लिये हवाई मार्ग हैं।

व्यापार — यहाँ का मुख्य निर्यात चावल, पेट्रोल, सागौन, कपास आदि है जिनके बदले विदेशों से कपड़ा, मशीनें, कोयला, लोहा, दवा आदि का आयात होता है। रंगून व्यापारिक केंद्र है।

इतिहास — बर्मा का क्रमबद्ध इतिहास सन् १०४४ ई० में मध्य बर्मा के 'मियन वंश' के अनावरहता के शासनकाल से प्रारंभ होता है जो मार्कोपोलो के यात्रासस्मरण में भी उल्लिखित है। सन् १२८७ में कुबला खाँ के आक्रमण के फलस्वरूप वंश का विनाश हो गया। ५०० वर्षों तक राज्य छोटे छोटे टुकड़ों में बँटा रहा। सन् १७५४ ई० में अलोंगपाया (अलोंपरा) ने शान एवं मान साम्राज्यों को जीतकर 'बर्मी वंश' की स्थापना की जो १९वीं शताब्दी तक रहा।

बर्मा में ब्रिटिश शासन स्थापना की तीन अवस्थाएँ हैं। सन् १८२६ ई० में प्रथम बर्मायुद्ध में अंग्रेजों ने आराकान तथा टेनैसरिम पर अधिकार प्राप्त किया। सन् १८५२ ई० में दूसरे युद्ध के फलस्वरूप बर्मा का दक्षिणी भाग इनके अधीन हो गया तथा १८८६ ई० में संपूर्ण बर्मा पर इनका अधिकार हो गया और इसे ब्रिटिश भारतीय शासनातर्गत रखा गया।

तदुपरांत सन् १९४८ ई० तक का इतिहास स्वतंत्रता संग्राम का है। सन् १९३७ ई० में इसने स्वतंत्रता प्राप्त की तथा १७ अक्टूबर १९४७ के संधिपत्र के अनुसार ४ जनवरी, १९४८ को गणराज्य घोषित किया गया। [सु० न० प्र०]

बर्मिंघैम (Birmingham) स्थिति : ५२° ३०' उ० अ० तथा १° ५५' प० दे०। यह इंग्लैंड के वारविकशिर में उत्तर-पश्चिम में, लंदन से रेल द्वारा ११३ मील दूर उत्तर-पश्चिम, स्थित काउंटी, बरो तथा इंग्लैंड के मुख्य औद्योगिक नगरों में से एक है। इस काउंटी का क्षेत्रफल ७९९ वर्ग मील है तथा जनसंख्या ११,०५,६५१ (१९६१) है। १८वीं शताब्दी में यह नगर पूर्णत: औद्योगिक नगर में परिवर्तित हो गया। इस नगर के निकटवर्ती भाग में कोयले तथा लोहे की खानों का भंडार

है जिससे इसको औद्योगिक नगर बनने मे सुविधा मिली है। यह नगर मोटर साइकिल, बिजली के सामान, ताँबे और ऐलुमिनियम के पाईप, चॉकलेट, रसायन, काच तथा प्लास्टिक के सामान, पिन, स्क्रू तथा रबर के समान बनाने का मुख्य केंद्र है। [दी० आ० ब०]

२. स्थिति ३३° ४०' उ०अ० तथा ८६°५०' प० दे०। सयुक्त राज्य, अमरीका के ऐलबैमा राज्य का सबसे बडा नगर है। यह जेफरसन काउटी की काउंटी सीट भी है। इसकी जनसंख्या ३,४०,८८७ (१९६०) है। यह एक प्रमुख औद्योगिक नगर है। यहाँ खनिजो से संबधित उद्योग अधिक होते है। इस्पात उद्योग अधिक उन्नत है। रेल की पटरियाँ, तार, कारें, स्टोव, कोयले की खानों मे प्रयुक्त मशीनें, ईंट, सीमेट, लकडी तथा सूती सामान, रबर के टायर, रसायन आदि के उद्योग भी होते है।

बर्मी भाषा और साहित्य बर्मी भाषा एक स्वतंत्र भाषा है जो आर्य एवं चीनी भाषा परिवार के बीच में तिब्बती-ब्राह्मी नाम से प्रसिद्ध है। तिब्बती-ब्राह्मी भाषापरिवार मे भी बर्मी शाखा एवं तिब्बती शाखा — ये प्रकार है। बर्मी भाषा मे चीनी भाषा की तरह कुछ शब्द अयोगात्मक होते है तथा आर्यभाषाओ की तरह उसमें कुछ शब्द योगात्मक भी होते है। आजकल की बर्मी भाषा मे पालि भाषा के प्रभाव से ३३ व्यजन और १२ स्वर माने जाते है। वस्तुत: बर्मी बोली मे वर्ग के चतुर्थ अक्षर तथा सपूर्ण दंत्य वर्ग नहीं होता, इसीलिये प्राय बर्मी मे वर्ग के तृतीय एवं चतुर्थ अक्षरो का समान उच्चारण तथा मूर्धन्य एवं दत्य वर्गों के अक्षरों का भी समान रूप से उच्चारण होता है। वैदिक संस्कृत एवं पालि मे प्रयुक्त 'ळ' का बर्मी साहित्य मे प्रयोग किए जाने पर भी वह बोली मे नही होता। बर्मी भाषा मे जो ६४ स्वर होते है उन्हें ६४ 'कारात' भी कहते है। इन स्वरों के बल पर ही संसार की भाषाओं का उच्चारण बर्मी भाषा मे लिखा जा सकता है।

बर्मी भाषा स्वतत्र बर्मा की राज्यभाषा है। यह मुख्य रूप से ब्रह्मदेश मे बोली जाती है। असम, मणिपुर एवं अडमान निकोबार द्वीपो मे भी कुछ लोग इस भाषा का प्रयोग करते हैं।

अन्य देशो की भाँति बर्मा का भी अपना साहित्य है जो अपने मे पूर्ण एव समृद्ध है। बर्मी साहित्य का अभ्युदय प्राय: काव्यकला को प्रोत्साहन देनेवाले राजाओं के दरबार मे हुआ है इसलिये बर्मी साहित्य के मानवी कवियो का सबध वैभवशाली महीपालों के साथ स्थापित है। राजसी वातावरण मे अभ्युदय एव प्रसार पाने के कारण बर्मी साहित्य अत्यत सुश्लिष्ट तथा प्रभावशाली हो गया है।

बर्मी साहित्य के अतर्गत बुद्धवचन (त्रिपिटक), अट्टकथा तथा टीका ग्रंथो के अनुवाद समिलित है। बर्मी भाषा मे गद्य और पद्य दोनों प्रकार की साहित्यविधाएँ मौलिक रूप से मिलती हैं। इसमें आयुर्वेदिक ग्रंथों के अनुवाद भी हैं। पालि साहित्य के प्रभाव से इसकी शैली भारतीय है तथा बोली अपनी है। पालि के पारिभाषिक तथा मौलिक शब्द इस भाषा में बर्मीकृत रूप में पाए जाते हैं। रस, छंद और अलकारो की योजना पालि एवं संस्कृत से प्रभावित है।

बर्मी साहित्य के विकास को दृष्टि मे रखकर विद्वानों ने इसे नौ कालों मे विभाजित किया है, जिसमें प्रत्येक युग के साहित्य की अपनी विशेषता है।

(१) **पगन युग** (ई०११००-१२९७) इस युग के साहित्य का ज्ञान शिलालेखो द्वारा होता है, जिनकी रचना सरल तथा अलकारविहीन है। उस काल मे मिलनेवाला सबसे प्राचीन शिलालेख म्यज़ेटी है जिसको १११२ ई० मे राजकुमार नामक एक राजकुमार ने खुदवाया था। उसमें बर्मी भाषा के अतिरिक्त पालि, मून, प्यू, इन तीन भाषाओं का प्रयोग भी मिलता है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि उस काल में उन भाषाओं का भी प्रचलन था। उसके बाद १२२४ ई० का भी एक शिलालेख मिलता है जिसको अनंतसूरिय (अनंतसूर्य) दपति ने खुदवाया था। इसको शिन् पिन् बोधि शिलालेख कहते हैं। तदनतर राजकुमारी थिगथू का मिन नैन् लेख, तथा महारानी फ्वासो का शिलालेख भी उल्लेखनीय है। भाषा और भाव की दृष्टि से पहले शिलालेखो की अपेक्षा पीछे के शिलालेख अच्छे हैं।

यद्यपि इस युग मे गद्यपद्यात्मक साहित्य शास्त्र की उपलब्धि नही होती, फिर भी इनका निर्माण अवश्य होने लगा था, क्योकि अनतसूर्य का काव्य आज भी बर्मा मे प्रचलित है। बर्मी राजाओ द्वारा त्रिपिटक का अधिक अध्ययन होने से बर्मी साहित्य पर पालि का अत्यधिक प्रभाव पडने लगा।

(२) **पिय युग** (१२९८-१३६४ ई०) इस युग मे बर्मी साहित्य की उन्नति पगन् युग से अधिक हुई। त्रिपिटक का अध्ययन अधिक होने से बर्मी साहित्य मे रस, अलकार आदि पालि से सीधे प्रविष्ट होने लगे। दर्शन का विवेचन होने से साहित्य मे गभीरता भी आने लगी। इस युग मे चतुरगबल नामक मत्री का काव्य अलकार और रस दोनो ही दृष्टियों मे पगन् युग से अधिक उन्नत है।

इस युग में भी शिलालेख मिलते हैं जो पगन् युग के शिलालेखों की अपेक्षा भाषा की दृष्टि से अधिक समृद्ध है।

(३) **अव युग** (१३६४–१५३८) इस युग को बर्मी साहित्य का स्वर्णकाल कहा जाता है। जिस प्रकार कालिदास आदि सस्कृत के कवियो ने अपनी रचना का आधार रामायण और महाभारत आदि को बनाया, उसी प्रकार बर्मी साहित्यकारो ने अपनी काव्यरचनाओ का आधार पालि साहित्य को बनाया। इसी समय महाकाव्य, खडकाव्य एव नाटक आदि अनेक नवीन साहित्यविधाओ का निर्माण हुआ। इनका साहित्य हृदय की अनुभूतियो का प्रतीक है तथा भाव की गरिमा के कारण पद मे भी लालित्य एव मधुरिमा आ गई है। इस युग के साहित्यकारो मे भिक्षु ही अधिक है। हिंदी साहित्य मे संत कवियों की तरह भिक्षुओ ने बर्मी साहित्य पर आधिपत्य कर लिया है। भिक्षु कवियो मे शिन् महासीलवश, शिन् उत्तमजो, शिन् तेजोसार एवं शिन् महारट्ठसार आदि प्रसिद्ध हैं।

(४) **केतुमती युग** (१५३०-१५९७) यह बर्मी साहित्य के विस्तार और प्रसार का युग है। इस समय युद्ध का वातावरण रहने के कारण अभियान गीतों की प्रचुर मात्रा मे रचना हुई है। नवदे, बलाबलं और नतायित आदि इस युग के प्रसिद्ध कवि है। केतुमती की विजय एव अव की पराजय हो जाने से सभी कवि केतुमती मे ही पाए जाते हैं।

(५) **द्वितीय अवयुग (१५६७-१७५०)** इस काल मे पालि जातकों के आधार पर महाकाव्यो एवं खंडकाव्यों के साथ ही संवाद आदि का भी निर्माण हुआ। सब रचनाएँ बौद्ध धर्म सबधी ही हुईं। इस युग के वरामिसंघनाथ का 'मणिकुडल' नामक कथासाहित्य बर्मी कथाग्रंथों मे सबसे अच्छा माना जाता है। यह कथा संस्कृत की कादंबरी की तरह समासबहुल और अलकारयुक्त है। समास का आधिक्य होने पर भी प्रचलित शब्दो का ही यथास्थान प्रयोग किए जाने से वह साधारण व्यक्तियो के लिये भी सुबोध है। इस युग मे पद्यात्मक रचनाओं के अतिरिक्त बौद्ध धर्मशास्त्रो का प्रणयन एवं मनुसार नाम से मनुस्मृति का अनुवाद भी हुआ। इस युग मे पदेश-राजा नामक राज्यमत्री का साहित्य अत्यत प्रसिद्ध है।

(६) **रतनासिंघ युग (१७५१-१८८५) (कुंमो)** इस युग में भिक्षु कवियो का अभाव सा है, इस कारण इसमे नई साहित्य शैली विकसित हुई और उसमे भाव की अपेक्षा रस को अधिक महत्व दिया जाने लगा। राजाओ की स्तुति प्रचुर मात्रा मे हुई। रतु (ऋतु) नामक नए काव्यो का प्रादुर्भाव हुआ। इसमे प्राय. प्रकृतिवर्णन का ही आधिक्य होता है। इस युग मे 'ऊ ओ' एक प्रसिद्ध कवि हुए जो १५ वर्ष की अवस्था से ही साहित्य का निर्माण करने लगे। मिहमूर, नदमूर, और लैवें सुदर का रतु अत्यत लोकप्रिय हुआ। उसमे प्रकृति का चित्रण बहुत सफलता से किया गया है।

(७) **अमरपूर युग (१८८६-१६००)** इस युग मे बडे बडे कवि उत्पन्न हुए है। इनमे 'ऊ तो' का नाम उल्लेखनीय है। उन्होने 'रामरकन्' की रचना की है। इस समय बर्मी म पान राम के आधार पर पाँच प्रकार की रामायण मिलती है, यथा हिंदू राम, जातक राम, समत्रा राम, श्याम राम और बर्मी राम। इनमे से जातक राम बोधिसत्व राम है और राम सस्कृत के रामायण से लिए गए राम है। यहा ऊ तो ने अपने रामरकन् का निर्माण सुमात्रा और श्याम राम के रामायण के आधार पर किया। इस रामरकन् का आज तक बर्मी साहित्य मे एक प्रसिद्ध रचना के रूप मे पठन पाठन किया जाता है। इस युग म ऊ जा, ऊ ओमास और ऊ मा आदि के नाम उल्लेखनीय है। स्त्री साहित्यकारों की बहुलता भी इसमे है।

(८) **मडले युग (१६००-१६४०)** इस युग का साहित्य भी राजाओ से सबधित है। अनक भाषाओ से अनुवाद भी इस युग मे हुए। कवियो मे ऊ पुन्य का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। उन्होंने अपनी बहुमुखी लेखनी से अनेक प्रकार के साहित्य का सृजन किया। उनके नाटक लोकप्रिय है। भाषा, शैली, भाव आदि की दृष्टि से उनका साहित्य अत्यत ऊँचा माना जाता है। इसलिये आधुनिक आलोचकों ने उन्हे बर्मी कालिदास एव शेक्सपीयर का नाम दिया है।

(९) **आधुनिक युग (१६४१-)**। इस युग मे अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से नवीन कथासाहित्य का निर्माण होने लगा जो प्राचीन धर्मकथाओ से भिन्न है। कविताओ मे भी क्रांतिकारी भावनाएँ आ गईं। जैसे जैसे मानव का विचार परिवर्तित होता जा रहा है, वैसे वैसे ही कवियो की शैली मे परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इस युग मे मिन् थुवन् (मिन् स्वर्ण) ने छदमुक्त कविता का निर्माण किया है। इन्हे आरभ मे अनेक आलोचकों का सामना करना पड़ा किंतु बाद मे सभी इनका अनुकरण करने लगे। इस युग में जौजी, इवेतायी, नुयिन्, बमो बोन्त्, तिन्ते, तैतो, जेय, यन् ओ आदि कवि, कवयित्री एव साहित्यकार उल्लेखनीय हैं। [भ० रे० ध०]

बर्मी युद्ध बर्मा पर अधिकार स्थापित करने के लिये अंग्रेजो ने तीन युद्ध किए। पहला युद्ध लार्ड एमहर्स्ट के शासनकाल मे हुआ। इसके प्रमुख कारण थे बगाल की पूर्वी सीमा पर बर्मी साम्राज्य विस्तार, प्रवासियो द्वारा अराकान मे लूट मार तथा आसाम और मणिपुर वापस लेने के प्रयत्न, सीमा सबधी झगडे, तथा कचार मे बर्मी सेना का प्रवेश। युद्ध की घोषणा करने मे बगाल की सरकार के उद्देश्य थे —(१) बर्मा के भय से बगाल को सुरक्षित करना (२) बर्मा की शक्ति क्षीण करके उसे नीचा दिखाना, (३) व्यापक व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करना तथा (४) ब्रिटिश साम्राज्य का प्रसार करना। यह युद्ध १८२४ से १८२६ तक चला। तीन सेनाएं स्थल मार्ग से आसाम, कचार, मणिपुर तथा अराकान की ओर और एक जलमार्ग द्वारा रगून की ओर भेजी गईं।

प्रारम मे अराकान को छोड़कर सभी जगह म कुछ सफलता मिली, पर वर्षा ऋतु मे अनेक कठिनाइयों तथा असफलताओ का सामना करना पडा। १८२५ के अत तक आसाम, मणिपुर तथा अराकान से बर्मी सेनाएं खदेड दी गई, पीगू और तेनासरिम पर अधिकार कर लिया गया तथा बर्मी सेनापति महाबदूला मारा गया। फरवरी १८२६ तक ब्रिटिश सेना राजधानी आवा के निकट तक पहुंच गई। विवश होकर बर्मा के सम्राट् को यादाबू में अपमानजनक सधि करनी पडी। परिणामत आसाम, अराकान और तेनासरिम ब्रिटिश साम्राज्य मे मिले; मणिपुर स्वतंत्र राज्य बना, अंग्रेजों को एक करोड़ रुपया हर्जाना मिला, आवा मे ब्रिटिश रेजिडेंट रहने लगा, तथा रत्नपुर की सधि द्वारा विशेष व्यापारिक सुविधाएं मिलीं। इस युद्ध की हानियों तथा अव्यवस्था के कारण एमहर्स्ट की कटु आलोचना हुई।

यादाबू की सधि की शर्तों का पालन न होने के कारण १८४० मे अंग्रेजो को बर्मा से अपनी रेजिडेंसी हटा लेनी पडी। उनके व्यापार मे भी यथेष्ट वृद्धि न हो सकी। उधर रगून के असतुष्ट अंग्रेज व्यापारियो ने लार्ड डलहौजी के पास बर्मी सरकार के विरुद्ध अतिरजित शिकायतें भजी। डलहौजी ने इन्हें सच मानकर समुद्री सैनिक अफसर लैंबर्ट को रगून भेजा। उसने अपने अभिमान और हठ से समस्या को सुलझाने की अपेक्षा अधिक पेचीदा बना दिया। बर्मी गवर्नर के व्यवहार से असतुष्ट होकर उसने बंदरगाह पर गोलाबारी कर दी और कलकत्ते वापस आकर डलहौजी को युद्ध करने की सलाह दी। पीगू प्रात तथा रगून के बंदरगाह पर अंग्रेजो की दृष्टि पहले से ही थी। इसलिये गवर्नर जनरल ने अल्टिमेटम देकर बिना युद्ध की घोषणा किए ही १८५२ मे युद्ध छेड़ दिया और बिना संधि किए केवल एक घोषणा द्वारा धमकी देकर बर्मा के सबसे अधिक समृद्धिशाली प्रात पीगू को ब्रिटिश साम्राज्य मे मिला लिया। यह द्वितीय बर्मा युद्ध अनुचित और अन्यायपूर्ण था। इससे बर्मा एक स्थलीय राज्य रह

गया। उसके वैदेशिक संबंध अंग्रेजों की इच्छा पर अवलंबित हो गए। आतरिक क्रांति द्वारा पैगन को हटाकर मिंडन सम्राट् बना।

३३ वर्ष बाद १८८५ मे लार्ड डफरिन के शासनकाल में तृतीय बर्मी युद्ध हुआ। इसके उद्देश्य थे (१) उत्तरी बर्मा पर बढते हुए फ्रांसीसी प्रभाव को हटाना, (२) सारे बर्मा को ब्रिटिश साम्राज्य मे मिलाकर दक्षिण चीन से सपर्क स्थापित करना तथा (३) बर्मा के व्यापार और तेल पर अधिकार करना। बाबे-बर्मा ट्रेडिंग कारपोरेशन की समस्याओं को सुलझाने के बहाने युद्ध छेड दिया गया। सम्राट् थीबो को बदी बनाकर अग्रेजो ने स्वतत्र बर्मा का अस्तित्व मिटा दिया। विजित प्रदेशों को नियत्रण मे लाने मे पाँच वर्ष लगे। इस प्रकार बर्मा भारत का एक प्रात बन गया।

[ही० ला० गु०]

बर्लिन स्थिति ५२° ३२′ उ० अ० तथा १३° २४′ पू० दे०। सन् १८७१ मे लेकर १९४५ ई० तक जर्मनी की राजधानी था। इसके पहले यह होएन्ज़ॉलर्न (Hohenzollern) का प्रमुख स्थान रहा। यह उत्तर-पूर्वी जर्मनी मे बाल्टिक सागर के तट से ११० मील अदर की ओर एल्ब और ओडर नदियो के बीच स्प्री नदी के दोनो किनारो पर बसा हुआ है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व बर्लिन एक बडा समृद्धि-शाली और सब प्रकार से उन्नत नगर था। यूरोप मे लदन और पैरिस के बाद इसी का स्थान था। पर द्वितीय विश्वयुद्ध के समय (१९४५ ई०) नगर मे इतना अधिक परिवर्तन हुआ कि इसका सारा ढाँचा ही बदल गया। यह मुख्यत दो भागो में विभाजित हो गया है—एक पश्चिमी बर्लिन और दूसरा पूर्वी बर्लिन। पश्चिमी बर्लिन वस्तुत पश्चिमी जर्मनी के फेडरैल रिपब्लिक की राजधानी के रूप मे है और इसपर संयुक्त राज्य अमरीका, ग्रेटब्रिटेन तथा फ्रास का सयुक्त अधिकार है। पूर्वी बर्लिन पूर्णतया पूर्वी जर्मनी के डेमोक्रेटिक रिपब्लिक के अतर्गत हो गया है तथा वास्तव मे यह रूस की सरक्षकता मे है।

यूरोपीय स्तर पर बर्लिन एक नया नगर माना जाता है। इसका विकास प्रारभ मे काल्न (Kalln) और बर्लिन (Berlin) नामक दो गावो मे शुरू हुआ। बर्लिन स्प्री नदी के दक्षिण मे तथा काल्न उत्तर मे नदी की दोनो भुजाओ द्वारा निर्मित टापू पर विकसित हुआ। इन दोनो नगरो के नियम एवं प्रशासन पहले बिलकुल अलग अलग थे, फिर भी दोनो सन् १३०७ से सामान्य कार्यपालिका के अंतर्गत रहे। आगे चलकर सन् १७०९ ई० मे ये दोनों पूरी तरह सयुक्त हो गए।

थोडे समय बाद पूर्व एव उत्तर-पूर्व के व्यापार के लिये इन दोनो नगरो की स्थिति अत्यत महत्वपूर्ण प्रतीत हुई और इस दृष्टि से इनकी बडी उन्नति हुई। सामरिक दृष्टि से भी इसका स्थान अद्वितीय समझा गया। इस प्रकार तीव्र व्यापारिक उन्नति के कारण जर्मनी के प्रगतिशील उत्तरी नगरो से इसका सबध होना आवश्यक हो गया और अत मे अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिये यह हैसियाटिक लीग (Hansiatic league) मे सम्मिलित हो गया। फिर तो विभिन्न वातावरण एव परिस्थितियो मे बर्लिन शनै. शनै: विकसित होता रहा।

१९वीं शताब्दी के प्रारंभ में बर्लिन में बहुत सी आंतरिक एवं बाह्य गडबडियाँ हुईं जिनके कारण इस नगर की उन्नति में बाधाएँ उत्पन्न हुईं। आगे चलकर फिर वह उपयुक्त अवसर आया जब नगर की उन्नति भली प्रकार हुई। सन् १८६० से लेकर सन् १९२० तक बर्लिन की सीमा मे कोई परिवर्तन नही हुआ, यद्यपि सन् १९१२ ई० मे प्रमुख नगर एवं उसके आस पास के क्षेत्रो की एक संस्था का निर्माण हुआ और इसमे सम्मिलित सपूर्ण क्षेत्रो को विशाल बर्लिन के नाम से संबोधित किया गया। इस सस्था का उद्देश्य सडकों, रेलो तथा भवन योजनाओ पर सामान्य नियत्रण रखना, आतरिक सुरक्षा कायम करना एव जगलो तथा भवननिर्माण के लिये जमीन उपलब्ध करना था। इसके शीघ्र ही पश्चात् फिर कुछ सुधार करना आवश्यक प्रतीत हुआ। सन् १९२० मे बर्लिन मे एक नई नगर-पालिका स्थापित की गई जिसमे सभी पडोसी क्षेत्रो को प्रभावकारी उन्नति की दृष्टि से एक प्रशासन के अतर्गत रखा गया। इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व जर्मनी के इतिहास मे बर्लिन का विकास चरमोत्कर्ष पर रहा।

सन् १९४५ के पहले नगर की अवस्था को दृष्टिगत करते हुए यह देखा गया कि नगर के पश्चिमी भाग की ओर रहने के लिये मकान बनाए गए थे अर्थात् इसी भाग मे लोग बसे। उत्तर-पश्चिमी भाग मे शैक्षणिक, वैज्ञानिक, एव मिलिटरी (सैनिक) सस्थाओं का विकास हुआ। उत्तरी भाग मे यत्रो के कार्य उन्नत हुए। उत्तर-पूर्वी भाग ऊनी सामान के निर्माण के लिये प्रसिद्ध हुआ। पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी भाग मे रँगाई, फर्नीचर, धातु आदि के उद्योग पनपे और दक्षिणी भाग रेल के उद्योग के लिये प्रसिद्ध हुआ। राजधानी का सामाजिक कार्यालय सबधी जीवन रायल पैलेस से लेकर ब्रैंडेनबर्गर टॉर तक अटरडेन लिंडेन पर केंद्रित हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय बर्लिन की दशा बिलकुल खराब हो गई और यह बुरी तरह तहस नहस हो गया। जैसा ऊपर कहा गया है, यह कई भागो मे विभाजित हो गया और विभिन्न शक्तियो ने इसपर अपना प्रभुत्व जमा लिया। वास्तव मे इस समय यह नगर राजनीतिक खींचा तानी का विषय बन गया था। फिर भी द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद से विभिन्न खडो मे होते हुए भी बर्लिन ने फिर उन्नति करना प्रारंभ किया परतु वह अपनी पुरानी स्थिति मे अब भी नही आ सका है।

बर्लिन मे यातायात तथा सदेशवाहन को देखने से पता चलता है कि पश्चिमी बर्लिन मे वायुयान द्वारा आना जाना बहुत अधिक होता है। घेरे के बाद अधिकतर विदेशी भ्रमणकारी वायुयानो द्वारा यहाँ आते जाते रहे है। यहाँ के स्थानीय उद्योग धधो की निर्मित वस्तुएँ वायुयानो द्वारा ही बाहर भेजी जाती रही है। वैसे सामान्यत रेल द्वारा भी यातायात प्रचलित है। कभी कभी सोवियत सरकार द्वारा कुछ बातो को लेकर बीच बीच मे विघ्न बाधाएँ उत्पन्न हो जाया करती है। पूर्वी क्षेत्र मे द्रुतगामी रेलें पूर्वी जर्मनी तथा मध्य यूरोप के अन्य भागो म पूर्व, पश्चिम रेल यातायात के अतर्गत, खूब प्रचलित है। जो भी हो, इतना अवश्य है कि विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियो के कारण बर्लिन मे यातायात बहुत बाधापूर्ण रहा है। बर्लिन मे एक भाग से दूसरे भाग

के बीच यातायात सेवा प्रचलित है परंतु विभागीय सीमाओं पर रेलगाड़ियाँ बदलनी पड़ती हैं। नित्य पूर्वी बर्लिन के लोग पश्चिम बर्लिन में दूकानदारी आदि कार्य करने के लिये जाते रहते हैं। वास्तव में देखा जाय तो पूर्वी तथा पश्चिमी जर्मनी की समस्या ने बर्लिन के व्यापारिक महत्व को कम कर दिया है, विशेषकर जलयातायात के मामले में।

सन् १९४५ के पहले बर्लिन नगर जर्मनी का प्रसिद्ध व्यापारिक, इंश्योरेंस, बैंकिंग एवं ब्रोकरेज केंद्र रहा। साथ ही असंख्य विशाल भवनों के कार्यालय भी रहे। उद्योग धंधों के मामलों में भी यह नगर बेजोड़ रहा और हर प्रकार के वैज्ञानिक उपकरण, बिजली के सामान, मशीनें, मोटरें, वस्त्र, वायुयान, मशीनों के औजार, टर्बाइन, ट्रैक्टर, लेंस आदि बनाने में यूरोप में इसका प्रमुख स्थान रहा। सन् १९४५ के बाद से बर्लिन ने अपनी आर्थिक क्षमता को फिर से कायम करने की कोशिश की परंतु यहाँ की विचित्र कठिन राजनीतिक परिस्थितियों ने पश्चिम बर्लिन को काफी पंगु बना दिया जिससे बेरोजगारी की समस्या काफी बढ़ गई। फिर भी आजकल की स्थिति को देखते हुए बर्लिन ने काफी हद तक अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत किया है।

जनसंख्या की दृष्टि से पूर्वी बर्लिन एवं पश्चिमी बर्लिन की जनसंख्या में काफी परिवर्तन हुआ है। सन् १९३९ में बर्लिन की जनसंख्या ४३,३२,२४२ थी जो १९४६ ई० में ३१,८०,३०३ हो गई। १९४५ ई० के बाद पूर्वी बर्लिन से कम से कम १० लाख व्यक्ति पश्चिम बर्लिन में आए। पश्चिम बर्लिन की अनुमानित जनसंख्या २१,९८,००० और पूर्वी बर्लिन की १,२०,२,००० (१९५३) है। [रा० स० ख०]

बलदेव उपनाम 'द्विज बलदेव'। ज० कार्तिक वदी १२, सं० १८९७ वि०, ग्राम मातूपुर जिला सीतापुर। पिता ब्रजलाल अवस्थी कृषिकर्मी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। 'द्विज बलदेव' ने प्रारंभ में ज्योतिष, कर्मकांड, और व्याकरण की शिक्षा ली किंतु काव्यरचना में प्रवृत्त होने के कारण काशी के स्वामी निजानंद सरस्वती से ३२ वर्ष की उम्र में काव्यशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की। रामपुर, मथुरा (जि० सीतापुर) तथा इटौंजा (जि० लखनऊ) के राजा इनके आश्रयदाता थे जिनके नाम पर इन्होंने ग्रंथों की रचनाएँ कीं। इन राजाओं से इन्हें पर्याप्त भूमि, धन और वाहन की प्राप्ति हुई। कविता ही इनकी जीवनवृत्ति थी। इनके पुत्र गंगाधर, 'द्विजगंग' भी अच्छी कविता करते थे। 'द्विज बलदेव' में प्रखर कवित्वप्रतिभा थी। अपने समृद्ध आशुकवित्व के बल पर समस्यापूर्तियाँ बड़ी जल्दी और अच्छी करते थे। इसीलिये समस्यापूर्ति के संबंध में 'द्विज बलदेव' की गर्वोक्ति थी—'देहि जो समस्या तापै कबित बनाऊँ चट, कलम रुकै तो कर कलम कराइए'।

रचनाएँ—'प्रतापविनोद' (र० का० सं० १९२६), 'शृंगार-सुधाकर' (सं० १९३०), 'मुक्तमाल'; 'रागाट्याम' और समस्या-प्रकाश' (सं० १९३१-३२); 'शृंगार-सरोज' (सं० १९५०); 'हीरा जुबिली और चंद्रकला काव्य' (सं० १९५३); 'प्रेमतरंग' (सं० १९५८); 'बलदेव विचारार्क' (सं० १९६२)। अंतिम ग्रंथ का अधिकांश गद्य में है जिसमें कवि ने विविध विषयों पर अपने विचार प्रकट किए हैं। [रा० फे० त्रि०]

बल्देव विद्याभूषण उड़ीसा के अंतर्गत बालेश्वर जिला के रेमुना के पास एक ग्राम में इनका जन्म हुआ। चिल्का झील के तटस्थ एक बस्ती में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की तथा वेदाध्ययन के लिये महीशुर गए। इसी समय इन्होंने माध्व सप्रदाय में दीक्षा ली। इसके अनंतर संन्यास ग्रहण कर पुरी गए और वहाँ के पंडितसमाज को परास्त किया। रसिकानंद प्रभु के प्रशिष्य श्री राधादामोदर से षटसंदर्भ पढ़कर उन्हीं के शिष्य हो गए। विरक्त वैष्णव होने पर गोविंददास नाम हुआ। पुरी से नवद्वीप होते हुए यह वृंदावन चले आए और वहाँ भक्ति-रस-तत्व की शिक्षा ली। उस समय वृंदावन जयपुर नरेश जयसिंह द्वितीय के प्रभावक्षेत्र में था, जिन्हें गौड़ीय सप्रदाय के विरुद्ध यह कहकर भड़का दिया गया कि यह मत अवैदिक था। इसपर जयपुर में वैष्णव समाज बुलाया गया। इन्होंने स्वसंप्रदाय तथा परकीयावाद को वेदानुकूल प्रतिपादित किया और ब्रह्मसूत्र पर गोविंद भाष्य प्रस्तुत किया। गलता में गोपाल विग्रह प्रतिष्ठापित किया, जो मंदिर अद्यापि वर्तमान है। इन्होंने बहुत सी टीकाएँ तथा मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत कर चैतन्यसाहित्य की विशेष सेवा की है। इनका समय सं० १७५० से सं० १८४० के मध्य है।

[बु० र० दा०]

बलबन, गयासुद्दीन जाति से इलबारी तुर्क था। उसकी जन्मतिथि का पता नहीं। उसका पिता उच्च श्रेणी का सरदार था। बाल्यकाल में ही मंगोलों ने उसे पकड़कर बगदाद के बाजार में दास के रूप में बेच दिया। भाग्यचक्र उसको भारतवर्ष लाया। सुल्तान इल्तुत्मिश ने उसपर दया करके उसे मोल ले लिया। स्वामिभक्ति और सेवा-भाव के फलस्वरूप वह निरंतर उन्नति करता गया, यहाँ तक कि सुलतान ने उसे चेहलगन के दल में सम्मिलित कर लिया। रज़िया के राज्यकाल में उसकी नियुक्ति अमीरे शिकार के पद पर हुई। बहराम ने उसको रेवाड़ी तथा हांसी के क्षेत्र प्रदान किए। सं० १२४५ ई० में मंगोलों से लोहा लेकर अपने सामरिक गुण का प्रमाण दिया। आगामी वर्ष जब नासिरुद्दीन महमूद सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसने बलबन को मुख्य मंत्री के पद पर आसीन किया। २० वर्ष तक उसने इस उत्तरदायित्व को निबाहा। इस अवधि में उसके समक्ष जटिल समस्याएँ प्रस्तुत हुईं तथा एक अवसर पर उसे अपमानित भी होना पड़ा, परंतु उसने न तो साहस ही छोड़ा और न दृढ़ संकल्प। वह निरंतर उन्नति की दिशा में ही अग्रसर रहा। उसने आंतरिक विद्रोहों का दमन किया और बाह्य आक्रमणों को असफल। सं० १२४६ में दुआबे के हिंदू जमींदारों की उद्दंडता का दमन किया। तत्पश्चात् कालिंजर व कड़ा के प्रदेशों पर अधिकार जमाया। प्रसन्न होकर सं० १२४९ ई० में सुल्तान ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ किया और उसको नायब सुल्तान की उपाधि प्रदान की। सं० १२५२ ई० में उसने ग्वालियर, चंदेरी और मालवा पर अभियान किए। प्रतिद्वंद्वियों की ईर्ष्या और द्वेष के कारण एक वर्ष तक वह पद-च्युत रहा परंतु शासन व्यवस्था को बिगड़ती देखकर सुल्तान ने विवश होकर उसे बहाल कर दिया। दुबारा कार्यभार सँभालने के पश्चात् उसने उद्दंड अमीरों को नियंत्रित करने का प्रयास किया। सं० १२५५ ई० में सुल्तान के सौतेले पिता कतलुग खाँ के विद्रोह को दबाया। सं० १२५७ ई० में मंगोलों के आक्रमण को रोका। सं० १२५९ ई०

में मेवात क्षेत्र के बागियों का नाश किया। १२६० ई० से लेकर १२६६ ई० तक की उसकी कृतियों का इतिहास प्राप्त नहीं।

नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु के पश्चात् बिना किसी विरोध के बलबन ने मुकुट धारण कर लिया। उसने २० वर्ष तक राज्य किया। सुल्तान के रूप में उसने जिस बुद्धिमत्ता, कार्यकुशलता तथा निर्भीकता का परिचय दिया, इतिहासकारों ने उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। शासनपद्धति को उसने नवीन साँचे में ढाला और उसको मूलत लौकिक बनाने का प्रयास किया। वह मुसलमान विद्वानों का आदर तो करता था लेकिन राजकीय कार्यों में उनको हस्तक्षेप नहीं करने देता था। उसका न्याय पक्षपात रहित और उसका दंड अत्यंत कठोर था, इसी कारण उसकी शासनव्यवस्था को लोह रक्त की व्यवस्था कहकर संबोधित किया जाता है। वास्तव में इस समय ऐसी ही व्यवस्था की आवश्यकता थी।

बलबन ने मंगोलों के आक्रमणों की रोकथाम करने के उद्देश्य से सीमांत क्षेत्र में सुदृढ़ दुर्गों का निर्माण किया और इन दुर्गों में साहसी योद्धाओं को नियुक्त किया। उसने मेवात, दोआब और कटेहर के विद्रोहियों को आतंकित किया। जब तुगरिल ने बंगाल में स्वतंत्रता की घोषणा कर दी तब सुल्तान ने स्वयं वहाँ पहुँचकर निर्दयता से उस विद्रोह का दमन किया। साम्राज्यविस्तार करने की उसकी नीति न थी, उसके विपरीत उसका अडिग विश्वास साम्राज्य के संगठन में था। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु के उसने उमराव वर्ग को अपने नियंत्रण में रखा एवं सुलतान के पद और प्रतिष्ठा को गौरवमय बनाया। उसका कहना था कि 'सुलतान का हृदय दैवी अनुकंपा की एक विशेष निधि है, इस कारण उसका अस्तित्व अद्वितीय है।' उसने सिजदा एवं पायबोस की पद्धति को चलाया। उसका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि उसको देखते ही लोग संज्ञाहीन हो जाते थे। उसका भय व्यापक था। उसने सेना का भी सुधार किया, दुर्बल और वृद्ध सेनानायकों को हटाकर उनकी जगह वीर एवं साहसी जवानों को नियुक्त किया। वह तुर्क जाति के एकाधिकार का प्रतिपालक था, अतः उच्च पदों से अतुर्क लोगों को उसने हटा दिया। कीर्ति और यश प्राप्त कर वह सं० १२८७ ई० के मध्य परलोक सिधारा।

[ब० प्र० स०]

बलभद्र (बलराम) पांचरात्र शास्त्रों के अनुसार बलराम भगवान् वासुदेव के व्यूह या स्वरूप है। उनका कृष्ण के अग्रज और शेष का अवतार होना ब्राह्मण धर्म को अभिमत है। जैनों के मत में उनका संबंध तीर्थंकर नेमिनाथ से है। बलराम या संकर्षण का पूजन बहुत पहले से चला आ रहा था, पर इनकी सर्वप्राचीन मूर्तियाँ मथुरा और ग्वालियर के क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं। ये शुंगकालीन हैं। कुषाणकालीन बलराम की मूर्तियों में कुछ व्यूह मूर्तियाँ अर्थात् विष्णु के समान चतुर्भुज प्रतिमायें हैं, और कुछ उनके शेष से संबंधित होने की पृष्ठभूमि पर बनाई गई हैं। ऐसी मूर्तियों में वे द्विभुज है और उनका मस्तक मंगलचिह्नों से शोभित सर्पफणों से अलकृत है। बलराम का दाहिना हाथ अभयमुद्रा में उठा हुआ है और बाएँ में मदिरा का चषक है। बहुधा मूर्तियों के पीछे की ओर सर्प का आभोग दिखलाया गया है। कुषाण काल के मध्य में ही व्यूहमूर्तियों का और अवतारमूर्तियों का भेद समाप्तप्राय हो गया था, परिणामत बलराम की ऐसी मूर्तियाँ भी बनने लगी जिनमें नागफणाओं के साथ ही उन्हें हल मूसल से युक्त दिखलाया जाने लगा। गुप्तकाल में बलराम की मूर्तियों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उनके द्विभुज और चतुर्भुज दोनों रूप चलते थे। कभी कभी उनका एक ही कुंडल पहने रहना 'बृहत्संहिता' से अनुमोदित था। स्वतंत्र रूप के अतिरिक्त बलराम तीर्थंकर नेमिनाथ के साथ, देवी एकानंशा के साथ, कभी दशावतारों की पंक्ति में दिखलाई पड़ते हैं।

कुषाण और गुप्तकाल की कुछ मूर्तियों में बलराम को सिंहशीर्ष से युक्त हल पकड़े हुए अथवा सिंहकुंडल पहिने हुए दिखलाया गया है। इनका सिंह से संबंध कदाचित् जैन परंपरा पर आधारित है।

मध्यकाल में पहुँचते पहुँचते ब्रज क्षेत्र के अतिरिक्त — जहाँ कुषाणकालीन मदिरा पीने वाले द्विभुज बलराम मूर्तियों की परंपरा ही चलती रही — बलराम की प्रतिमा का स्वरूप बहुत कुछ स्थिर हो गया। हल, मुसल तथा मद्यपात्र धारण करनेवाले सर्पफणाओं से सुशोभित बलदेव बहुधा समपद स्थिति में अथवा कभी एक घुटने को किंचित झुकाकर खड़े दिखलाई पड़ते हैं। कभी कभी रेवती भी साथ में रहती हैं। [नी० पु० जो०]

बलभद्र या बलराम श्रीकृष्ण के सौतेले बड़े भाई थे जो रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बलराम, हलधर, हलायुध, संकर्षण आदि इनके अनेक नाम है। बलभद्र के सगे सात भाई और एक बहन सुभद्रा थी जिन्हें चित्रा भी कहते हैं। इनका ब्याह रैवत की कन्या रेवती से हुआ था। दे० 'रेवती'। कहते हैं, रेवती २१ हाथ लंबी थी और बलभद्र जी ने अपने हल से खींचकर इन्हें छोटी किया था।

इन्हें नागराज अनंत का अंश कहा जाता है और इनके पराक्रम की अनेक कथाएँ पुराणों में वर्णित हैं। ये गदायुद्ध में विशेष प्रवीण थे। दुर्योधन इनका ही शिष्य था। इसी से कई बार इन्होंने जरासंध को पराजित किया था। श्रीकृष्ण के पुत्र शांब जब दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा का हरण करते समय कौरव सेना द्वारा बंदी कर लिए गए तो बलभद्र ने ही उन्हें छुड़ाया था। स्यमंतक मणि लाने के समय भी ये श्रीकृष्ण के साथ गए थे। मृत्यु के समय इनके मुँह से एक बड़ा साँप निकला और प्रभास के समुद्र में प्रवेश कर गया था। [रा० द्वि०]

बलरामपुर स्थिति : २७° २६' उ० अ० तथा ८२° ११' पू० दे०। भारत में उत्तर प्रदेश राज्य के गोंडा जिले में, राप्ती नदी के दो मील दक्षिण स्थित एक नगर है। यह पुरानी बलरामपुर रियासत की राजधानी भी रह चुका है। प्रधान बस्ती के दक्षिण में सुवावान नदी बहती है। नगर का नाम यहाँ के एक पुराने ताल्लुकेदार राजा बलरामदास के नाम पर है। नगर अधिक पुराना नहीं है। महाराजा दिग्विजय सिंह के समय में इसने काफी उन्नति की। रेलवे स्टेशन से महाविद्यालय तक सड़क के किनारे की इमारतें नियोजित ढंग से बनी हैं। राजा साहब का पुराना महल (सिटी पैलेस), महाविद्यालय तथा उसमें स्थापित महाराजा दिग्विजय सिंह एवं पाटेश्वरीप्रसाद की मूर्तियाँ, नीलबाग महल, राज अतिथिगृह आदि दर्शनीय हैं। अस्पताल तथा उपजिलाधीश आदि के कार्यालय हैं। यह

औद्योगिक तथा व्यापारिक नगर है, जहाँ गल्ले की मंडी, बिजलीघर और चीनी का कारखाना है। इसकी जनसंख्या ३१,७७६ (१९६१) है।
[सु० चं० श०]

बलविज्ञान पिंडों की गति, गत्युत्पादक बलों और विरामावस्था-वाले पिंड पर लगे हुए बलों के संतुलन का विवरण देता है। इसका अंग्रेजी समानार्थी शब्द मिकैनिक्स (Mechanics) मशीन शब्द से संबद्ध है, जिसका अर्थ यंत्र है। इसलिये कुछ लेखक बलविज्ञान को यांत्रिकी भी कह देते हैं, किंतु सामान्यतया यांत्रिकी को अनुप्रयुक्त बलविज्ञान कहा जाता है और इसमे प्रत्यास्थता, द्रवयांत्रिकी, वायुगतिविज्ञान, क्षेपणविज्ञान, यंत्रकला, पदार्थ सामर्थ्य आदि का समावेश होता है।

सैद्धांतिक बलविज्ञान के दो संबद्ध अंग है : गतिविज्ञान और स्थितिविज्ञान। गतिविज्ञान का अंग्रेजी पर्यायवाची 'डाइनैमिक्स' है। ग्रीक भाषा मे डाइनैमिक्स का अर्थ शक्ति है; इस कारण गति-विज्ञान मे पिंडों की उस गति का विवेचन होता है जो उनपर लगे हुए बलो के कारण होती है, और इस रूप में इसे बलगतिविज्ञान (Kinetics) कहते है। गति के परिमाण और विवरणवाले विषय को शुद्ध गतिविज्ञान (Kinematics) कहते हैं। स्थिति-विज्ञान मे विरामावस्थावाले पिंडो पर लगे हुए संतुलित बलो का विवेचन होता है। यह विवेचन अब गतिविज्ञान के नियमों के आधार पर किया जाता है, यद्यपि ऐसा करना अनिवार्य नही है।

गतिविज्ञान के दो आधार हो सकते हैं : (१) प्रयोगात्मक तथा (२) स्वयंसिद्ध (axiomatic)। यूक्लिडीय रेखागणित मे स्वयंतथ्यो की भाँति गतिविज्ञान मे 'गति के नियम' हैं (देखें, **गति के नियम**)। ऐसा माना जाता है कि ये नियम प्रयोग द्वारा सिद्ध किए जा सकते है। वैसे तो किसी भी सैद्धांतिक 'नियम' के यथार्थ सत्यापन मे क्रियात्मक बाधाओं के कारण कठिनाइयाँ होती है, किंतु गतिविज्ञान के नियमों का सत्यापन तो 'चक्रक युक्तिवाद' के समान है, क्योंकि यदि उदाहरणत इस नियम का कि 'किसी बल के न लगे रहने पर पिंड ऋजु रेखा मे समान वेग से चलता रहता है' सत्यापन किया जाय, तो ऐसे पिंड का निर्धारण करना ही जिसपर कोई बल न लगा हो, प्राय असंभव है। ऐटवुड यंत्र मे चिकनी घिरनी पर से जाती हुई भारहीन डोर के सिरो पर दो समान भार के पिंड बंधे रहते है। यदि एक पिंड को डोर की दिशा मे चला दिया जाता है, तो दूसरा पिंड समान वेग से डोर की दिशा मे चलता दिखाई देता है। वास्तव मे वेग का थोड़ा मंदन अवश्य होता है। यदि मंदन का कारण घर्षण मान भी लें, तो भी यह प्रयोग नियम का सत्यापन नही करता, क्योंकि पिंड नितांत रूप से बलमुक्त नही है; दो बल तो उसपर लगे ही हैं और गति के नियमों का उपयोग कर के ही इन बलो को 'संतुलित' माना जाता है।

सत्यापन की कठिनाई से बचने के लिये गति के नियमो को स्वयं-सिद्ध माना जाता है, जिन्हे न तो सिद्ध करना आवश्यक है, न ऐसा करना संभव ही है। इन सब नियमो के आधार पर जो परिणाम मिलते हैं, उनकी हम वास्तविक पिंडो की गति से तुलना कर सकते है। यदि इस प्रकार सत्यापन नही होता, तो सभी नियम इकट्ठा त्याज्य होंगे, नियमो की अलग अलग परीक्षा नही की जा सकती। इस कसौटी पर न्यूटन के नियम बड़े अंश तक सत्य हैं। इनकी महत्ता यह भी है कि विश्व मे पिंडों की गति का वर्णन (न कि व्याख्या) ये अत्यंत ही सरल रूप मे करते हैं। इनसे पूर्व कोपरनिकस ने सूर्य के सापेक्ष ग्रहो की गति का वर्णन टॉलिमी के पृथ्वी सापेक्ष वर्णन की तुलना मे निश्चित रूप से अधिक सरल कर दिया था।

शुद्ध गतिविज्ञान

चाल — मोटर कार, रेलगाड़ी आदि की चाल की संकल्पना से हम दैनिक जीवन मे परिचित है। समय के सापेक्ष दूरी बदलने की दर को चाल कहते है। जब कहा जाता है कि गाड़ी की चाल ३० मील प्रति घंटा है, तब उसका अर्थ यह है कि गाड़ी इस तेजी से चल रही है कि यदि इसी प्रकार चलती रही तो वह १ घंटे मे ३० मील, १ मिनट मे ½ मील और १ सेकंड मे ४४ फुट की दूरी तय करेगी। यदि चाल अचर नही है, तो हम केवल यह कह सकते है कि गाडी १ घंटे मे स्थूल रूप से ३० मील और १ सेकंड मे संनिकटतः ४४ फुट चलेगी। इस प्रकार जितना ही लघु समय का अंतराल (**स** घंटे) होगा उतना ही संनिकट मान इस अंतराल मे तय की हुई दूरी (**द** मील) का मिलेगा। इस प्रकार यदि किसी क्षण चाल **च** मील प्रति घंटा है, तो सूत्र

$$द = च स, \text{ अर्थात् } च = द/स$$

उतना ही संनिकटतः सत्य होगा जितना छोटा **स** है। अवकल गणित की भाषा मे

$$च = ता\, द/ता\, स \qquad \cdots\cdots \quad (१)$$

अर्थात् चाल **च** तय की हुई दूरी **द** का **स** के सापेक्ष अवकलज है।

दूरी समय लेखाचित्र — प्राय सभी मोटरगाडियों और रेलगाड़ियो मे एक उपकरणिका ऐसी लगी रहती है जिसमे चली हुई दूरी किसी भी क्षण पढ़ी जा सकती है। यदि दूरी के साथ समय भी पढ़ लिया जाय, तो लेखाचित्रीय निरूपण के सिद्धांतो के अनुसार हम ऐसे बिंदु अंकित कर सकते है जो **स** और **द** के संगत मानो को प्रकट करते है। यदि ऐसे बहुत से बिंदु अंकित किए जायें और उन्हे एक सतत वक्र मे मिला दिया जाय, तो यह वक्र पूरे प्रेक्षणकाल के लिये **स** और **द** का संबंध निरूपित करता है। ऐसे वक्र को समय-दूरी, अर्थात् स-द, लेखाचित्र कहते है।

चित्र १.

यदि वक्र पर **ब** कोई बिंदु है, और बल **स** अक्ष पर लंब है, तो दूरी **अ ल** से निरूपित समय पर गाडी **ल ब** से निरूपित दूरी पर होगी। इसी प्रकार वक्र पर एक अन्य बिंदु **म** से **स** अक्ष पर लंब **म ख** है तो समय **ल ख** मे गाड़ी की औसत चाल
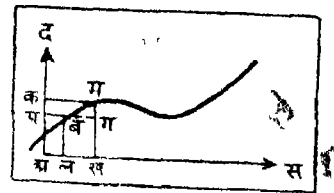
$$\frac{\text{दूरी } कप \text{ अथवा } मग}{\text{समय } लख \text{ अथवा } बग}$$

अर्थात् चाल रेखा **बम** की प्रवणता से मापी जाती है।

यदि चाल अचर है, तो वक्र के प्रत्येक खंड की प्रवणता अचर होगी। इसलिये वक्र ऋजुरेखीय होगा। यदि चाल चर है, तो **म** बिंदु **ब** के जितने अधिक समीप होगा उतना ही अधिक संनिकट चाल का मान

प्रवणता से मिलेगा। सीमावस्था में बम बिंदु ब पर वक्र का स्पर्शी होगा। इस प्रकार चाल की माप स—द लेखाचित्र की प्रवणता से प्राप्त होती है। यदि स के फलन रूप मे द के ज्ञात न होने के कारण सूत्र (१) का उपयोग न किया जा सकता हो, तो लेखाचित्रीय विधियों से चाल का अनुमान लगाया जा सकता है।

सूत्र (१) का अर्थ है कि $द = \int च\, तास$

अर्थात् दूरी द चाल च का स के सापेक्ष समाकलन कर, दूरी द प्राप्त की जा सकती है।

यदि च (स का) ऐसा फलन न हो जिसका समाकलन ज्ञात फलनों के पदों मे सभव हो, तो लेखाचित्रीय विधि से सनिकट समाकलन किया जा सकता है (देखें **समाकलन**)। वस्तुत स—द लेखाचित्र मे वक्र के 'नीचे' का क्षेत्रफल, समुचित माप सबंध के अनुसार, दूरी द का द्योतक है।

त्वरण — जब चाल बदलती है तब समय के सापेक्ष उसकी वृद्धि की दर को त्वरण कहते हैं। उदाहरणत, यदि ५ सेकंड के कालातर मे गाड़ी की चाल ३० फुट प्रति सेकड मे बढकर ४० फुट प्रति सेकड हो जाती है, तो इस काल मे चाल मे वृद्धि १० फुट प्रति सेकड है और औसत चालवृद्धि की दर, अर्थात् त्वरण १०÷५, अर्थात् २ फुट प्रति सेकंड है। यदि कालातर स मे चाल में वृद्धि च होती है, तो औसत त्वरण = च/स। ज्यो ज्यो स लघु होता जाता है, यह भिन्न त्वरण का उत्तरोत्तर सनिकटतर मान देता है। अवकलन गणित की भाषा मे

$$त्वरण\ त = ता\ च/ता\ स = ता^2\ द/ता\ स^2।$$

और $$च = \int त\ ता\ स।$$

इस प्रकार च—स के लेखाचित्र मे समुचित माप सबंध के अनुसार किसी बिंदु पर त्वरण उस बिंदु पर स्पर्शी की प्रवणता से निरूपित होता है और किसी कालातर मे चाल मे वृद्धि उस लेखाचित्र के नीचेवाले क्षेत्रफल से।

वेग — चाल और त्वरण की विवेचना मे हमने गाडी के पथ पर ध्यान नही दिया है। समय स मे जो दूरी द गाडी ने तय की वह पथ के किसी स्थिर बिंदु से नापी गई दूरी है। यदि पथ कोई वक्र बद है, तो जब गाड़ी प्रस्थान स्थिति के समीप आ जाएगी तब उसकी दूरी वही मानी जाएगी जो उसने तय की है। इस प्रकार चाल और त्वरण की परिभाषाओं में पथ के निर्दिष्ट होने के कारण दिशा पर ध्यान नही दिया गया। किंतु यदि पथ अंकित न हो, जैसे समुद्र पर जहाज का पथ, तो निर्देशांक ज्यामिति की भांति किसी क्षण पर जहाज की स्थिति बताने के लिये दो निर्देशाक्ष चुनने होंगे। मान लीजिए ये किसी स्थिर बिंदु अ से उत्तर और पूर्व दिशा मे खीची गई रेखाएँ अउ और अप है। यदि पथ वक्र मथ है, ब इस पर कोई बिंदु है, ब ल अक्ष अ प पर लंब है और ब की स्थिति (य, र) है जहाँ य = अल और र = लब (देखें **चित्र २.**)
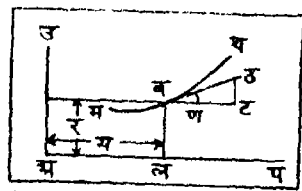
चित्र २.

तो पूर्व दिशा मे बिंदु का वेग $व_1 =$ य की वृद्धि की दर और उत्तर दिशा में बिंदु का वेग $व_2 =$ र की वृद्धि की दर।

$$(१)\ के\ अनुसार\ व_1 = \frac{ताय}{तास},\ व_2 = \frac{तार}{तास} \quad \ldots\ldots(२)$$

ब पर (जहाज की) गति की वास्तविक दिशा स्पर्शी बठ के अनुदिश है और ब पर जहाज की चाल को दिशा बठ मे जहाज का वेग कहते हैं। वस्तुतः वेग चाल के प्रकार की एक राशि है, किंतु इसमे दिशा भी बताई जाती है। समीकरण (२) मे $व_1$ को पूरब दिशा का वेग और $व_2$ को उत्तर दिशा का वेग कहा जाता है।

वेगों का संघटन और विघटन — बिंदु ब पर जहाज का वेग दो वेगो $व_1$ और $व_2$ के सयोजन से बना है और यदि $व_1$ तथा $व_2$ ज्ञात हैं, तो वास्तविक वेग की दिशा तथा माप दोनों निर्धारित हो जाती हैं। अभीष्ट संबंध ज्ञात करने के लिये मान लें कि जहाज ब से आगे उसी चर वेग से चलता है जो उसका ब पर था, तो जहाज का पथ ऋजुरेखीय होगा और समय स मे वह बिंदु ठ पर पहुंचेगा, जहाँ

$$ब\ ठ = स\ व$$

पूर्व दिशा मैं वेग $व_1$ से समय स मे जहाज दूरी $बट = सव_1$ तय करता है; इसी प्रकार उत्तर दिशा मे दूरी $टठ = स\ व_2$। इसलिये

$$\frac{व_1}{व} = \frac{बट}{बठ} = कोज्या\ ण;\quad \frac{व_2}{व} = \frac{टठ}{बठ} = ज्या\ ण,$$

अर्थात् $$व_1 = व\ कोज्या\ ण,\ व_2 = व\ ज्या\ ण \quad \ldots\ \ldots\ \ldots\ (३)$$

७. समांतर चतुर्भुज नियम — $व_1$ तथा $व_2$ वेग व के वियोजित अंश कहलाते हैं; $व_1$ पूरब दिशा का और $व_2$ उत्तर दिशा का। वेग व को वेगो $व_1$ और $व_2$ का परिणामी कहते है। समुचित माप सबध पर $व_1$ और $व_2$ को आयत की भुजाओं से निरूपित करने पर परिणामी वेग व आयत के विकर्ण से निरूपित होता है (देखें **चित्र ३.**) यदि वेग $व_1$, और $व_2$ लंब दिशाओं मे न हों, तो उनका परिणामी दिशा तथा परिमाण मे उस समातर चतुर्भुज के विकर्ण से निरूपित होता है जिसकी भुजाएँ दिए हुए वेगो को निरूपित करती है। यह वेगों का समातर चतुर्भुज नियम है। यदि दो वेगो $व_1$ तथा $व_2$ के बीच कोण ण है और उनके परिणामी व तथा $व_1$ के बीच कोण ञ है तो त्रिकोणमिति से स्पष्ट है (देखें **चित्र ४.**) कि

चित्र ३.

$$व = \sqrt{(व_1^2 + व_2^2 + 2व_1.\ व_2\ कोज्या\ ण)}$$

$$ज्या\ ञ = व\ ज्या\ ण\ /\ (व_1 + व_2\ कोज्या\ ण)$$
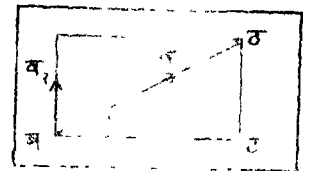
इन सूत्रो से परिणामी वेग व की माप तथा दिशा दोनों ज्ञात हो जाती है। $व_1$, $व_2$ वेग व के घटक कहलाते है। वेग व घटकों $व_1$, $व_2$ और कोणो ण तथा ञ मे निम्नलिखित सबध है.

$$\frac{व}{ज्या\ ण} = \frac{व_1}{ज्या\ (ण - ञ)} = \frac{व_2}{ज्या\ ञ}$$

इन समीकरणों से राशियों ब, $ब_1$, $ब_2$, ग तथा ञ मे से तीन के ज्ञात होने पर शेष दो निर्धारित किए जा सकते हैं।

त्वरणों के संयोजन के लिये भी इसी प्रकार का समातर चतुर्भुज नियम है। ऊपर के सूत्रों मे व को त्वरण और $ब_1$ तथा $ब_2$ को घटक त्वरण मानना होगा।
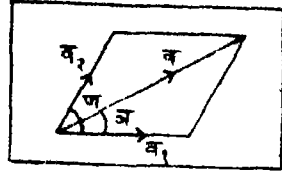
चित्र ४.

समतल पर गतिमान बिंदु का वेग दो निर्दिष्ट दिशाओं के घटको मे निर्धारित हो जाता है, किंतु त्रिविमितीय आकाश मे गतिमान पिंड (जैसे वायुयान) का वेग तीन दिशाओ मे उसके घटक दिए रहने पर निर्धारित होता है। दिशा और माप मे परिणामी, उस समातर फलकी के विकर्ण से निरूपित होता है जिसकी भुजाएँ दिए हुए घटको को माप तथा दिशा मे निरूपित करती हैं। विकर्ण तथा भुजाएँ विचाराधीन बिंदु से होकर जानी चाहिए। यह समातर चतुर्भुज नियम का त्रिविमितीयकरण है और सदिश नियम के नाम से प्रसिद्ध है।

गतिविज्ञान

गतिविज्ञान का मुख्य रूप से ध्येय परस्पर क्रिया मे प्रभावित दो या अधिक पिंडो की अधिक गति का शोध करना है। यह परस्पर क्रिया उनके सघट्ट के कारण, जैसे दो बिलियर्ड की गेदो के, अथवा उनके परस्पर आकर्षण के कारण, जैसे सूर्य और पृथ्वी के बीच, हो सकती है। न्यूटन का अनुसरण करते हुए हम इस क्रिया को बल कहते हैं। हरेक पिंड दूसरे पिंड पर बल लगाता है। एक पिंड पर बल आरोपित मानने से दूसरे पिंड की उपेक्षा की जा सकती है। इस प्रकार बल की सकल्पना अत्यत सुविधाजनक है, क्योकि हमे सदा ही पिंडो की सापेक्ष गति जाननी होती है। उदाहरणत, यदि पृथ्वी पर फेंके हुए पिंड की गति ज्ञात करना अभीष्ट है, तो पृथ्वी और पिंड की परस्पर क्रिया के स्थान मे पृथ्वी के आकर्षण-बल की सकल्पना के फलस्वरूप पिंड पर ऊर्ध्वाधर अधोमुखी त्वरण ग मानकर गति ज्ञात की जा सकती है। किंतु बल की सकल्पना अनिवार्य नही, इसके बिना भी गतिशोध किया जा सकता है।

न्यूटन के गतिनियमो बलो और उनके प्रभावो के बीच गृहीत संबंध है, जिनमे कोई असामजस्य नही है और इनका विशेष गुण यह है कि ये आकाशीय पिंडो की गति की व्याख्या करते हैं (देखे गति के नियम)।

न्यूटन का प्रथम नियम — प्रथम नियम इस प्रश्न का उत्तर देता है कि बिना बल लगे पिंड की क्या गति होगी। नियम यह है कि बाहर से लगे हुए किसी बल द्वारा प्रेरित होने पर ही कोई पिंड विरामावस्था को, या सीधी रेखा में अचर वेग से चलने की अवस्था को, छोडता है; अन्यथा वह या तो विरामावस्था में पडा रहता है, या सीधी रेखा मे अचर वेग से चलता रहता है। इस नियम को जडता नियम भी कहते है। इसे सर्वप्रथम गैलिलियो ने न्यूटन की प्रिंसिपिया नामक पुस्तक प्रकाशित होने से ५० वर्ष पूर्व, १६३८ मे, प्रस्तुत किया। विरामावस्था से अर्थ यह है कि अवकाश मे तीन स्थिर अक्षों — अ य, अ र, अ ल — के सापेक्ष स्थित पिंड के निर्देशको य, र, ल, मे कालांतर मे कोई भी नही बदलता। लेकिन स्थिर अक्ष क्या है, यह न बता सकने की कठिनाई न्यूटनीय मीमासा मे अवश्य है। सैद्धातिक दृष्टिकोण से किन्ही स्थिर अक्षो की कल्पना कर गतिविज्ञान का प्रतिपादन किया जा सकता है और क्रियात्मक रूप से यदि स्थिर तारो के सापेक्ष अस्थिर अक्ष मान लिए जायँ, तो वास्तविक गतियो के निर्धारण मे कोई अनुपेक्षणीय त्रुटि नही आती।

प्राय देखा जाता है कि मोटर गाडी आदि को ऋजु रेखा मे अचर वेग से चलाने के लिये भी बल लगाना पडता है। यह बात प्रथम गति नियम की विरोधी है, पर इसका कारण यह है कि पिंड जिस माध्यम (समतल, वायु आदि) मे चलता है उसके द्वारा अवश्य ही कुछ न कुछ बल घर्षण के रूप मे लगा रहता है और इस प्रतिरोधी बल के निराकरण के लिये ही बाह्य बल की आवश्यकता पड़ती है।

न्यूटन का द्वितीय नियम — दूसरा नियम यह बताता है कि बल लगाने पर पिंड का वेग किस प्रकार बदलता है। नियम यह है कि गतिपरिवर्तन आरोपित बल के समानुपात मे और उसी दिशा मे होता है जिसमे आरोपित बल लगा है। गतिपरिवर्तन का अर्थ हमारी भाषा मे त्वरण से है। गतिपरिवर्तन के स्थान मे आगे चलकर 'सवेग वृद्धि की दर' कहकर नियम को स्पष्ट कर दिया गया है। सवेग पिंड के द्रव्यमान और वेग के गुणनफल को कहते है। इस नियम के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि

$$ब = द्र \; त \quad \dots \quad \dots \quad (४)$$

जहाँ ब = बल, द्र = पिंड का द्रव्यमान और त = पिंड का त्वरण है। इस नियम के साथ एक आधारभूत नियम, बलो का स्वातत्र्य, जोडने पर यह निष्कर्ष मिलता है कि यदि पिंड पर कई एक बल लगे हो, तो प्रत्येक अपनी दिशा मे, अपनी माप के समानुपात मे, पिंड मे त्वरण उत्पन्न करेगा। इन सब त्वरणो का परिणामी त्वरण वही होगा जो बलो का परिणामी बल पिंड मे उत्पन्न करता। दूसरे शब्दों मे, बलो का परिणामी बल भी सदिश नियम से प्राप्त किया जा सकता है। पिंड के द्रव्यमान को उसकी जडता की माप भी मानते है।

न्यूटन का तृतीय नियम — जैसा पहले बताया जा चुका है, बल दो पिंडो की परस्पर क्रिया का एक पहलू है। यदि पिंड ग की क्रिया के कारण पिंड क पर कोई बल ब लगता है, तो इसी क्रिया के कारण पिंड ख पर भी यही बल लगेगा। न्यूटन का तृतीय नियम यह है कि प्रत्येक क्रिया के लिये ठीक उसी के बराबर और प्रतिकूल दिशा मे प्रतिक्रिया विद्यमान रहती है। इन तीन नियमों के साथ गुरुत्व नियम (यह कि दूर स्थित दो पिंडो के बीच एक आकर्षण बल रहता है) मिला देने पर न्यूटनीय गतिविज्ञान का निर्माण होता है।

माप एकक — समीकरण (४) से बल मापने का एकक मिलता है। यदि द्र और त एकक माप के है, तो पिंड पर लगा बल भी एकक माप का होगा। फु० पा० से० पद्धति मे द्रव्यमान का एकक १ पाउड, त्वरण का १ फुट प्रति सेकंड प्रति सेकंड है और बल का एकक १ पाउंडल है; अर्थात् १ पाउडल वह बल है जो १ पाउड द्रव्यमानवाले पिंड मे १ फुट प्रति सेकड का त्वरण उत्पन्न करता है। सें० ग्रा० से० पद्धति मे १ डाइन बल का एकक है, अर्थात् १ डाइन वह बल है जो १ ग्राम द्रव्यमानवाले पिंड मे १ सेंटीमीटर प्रति सेकंड

प्रति सेकंड का त्वरण उत्पन्न करता है। डाइन और पाउंडल बल के परम एकक हैं, क्योंकि ये समय और स्थान के अनुसार नही बदलते। प्रत्युत वह बल जो १ पाउंड द्रव्यमानवाले पिंड मे गुरुत्वीय त्वरण **ग** (जो लगभग ३२.२ फुट प्रति सेकंड प्रति सेकंड है) उत्पन्न करता है, १ पाउंड भार कहलाता है। इस प्रकार

१ पाउंड भार = ग पाउंडल

से० ग्रा० से० पद्धति में गुरुत्वीय त्वरण का मान लगभग ९८१ सेंटीमीटर प्रति सेकंड है। इसलिये

१ ग्राम भार = लगभग ९८१ डाइन।

वैज्ञानिक कार्य मे परम एकक पाउंडल और डाइन का उपयोग किया जाता है, किंतु इंजीनियरी आदि मे पाउंड भार आदि का उपयोग होता है। ध्यान रखना चाहिए कि पाउंड भार ऊँचाई के अनुसार कम होता जाता है।

गतिनियमों के परिणाम

आवेग और संवेग — द्वितीय नियम से यह संबंध मिलता है कि

$$ब = \frac{ता\,(द्रव)}{ता\,स} \quad \text{अर्थात्} \quad \int ब\, ता\, स = द्र\, व,$$

जहां द्र द्रव्यमान के किसी पिंड पर लगा हुआ **बल ब** है और पिंड का वेग **व** है। यदि **बल** के समय **स$_१$** तक लगने के कारण संवेग (द्र व) मे बदलकर (द्र व)$_१$ हो जाता है, तो

$$\int_{०}^{स_१} ब\, ता\, स = (द्र\, व)_१ - (द्र\, व)_० \qquad \cdots\cdots (५)$$

इस संबंध मे बाएं पक्षवाले समाकल को **बल** का, समय **स$_१$** तक का, आवेग कहते है। इस प्रकार **बल** का आवेग संवेग वृद्धि से मापा जाता है। यदि **बल** अचर है, अथवा समय **स$_०$** लघु है, तो समाकल का मान = **ब स$_०$**। तदनुसार ऐसे **बल** को आवेगी **बल** कहते है जो माप मे बडा हो और थोडे समय के लिये लगा हो, जिससे गुणनफल **ब स$_०$** परिमित माप का हो।

यदि किसी बल **ब** के (अक्षो के अनुदिश) विघटित अंश **ब$_१$, ब$_२$** तथा **ब$_३$** है और यह द्रव्यमान द्र वाले पिंड पर, जिसके वेग **व** के विघटित अंश व$_१$, व$_२$ तथा व$_३$ है, लगा है तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि विघटित अंश ब$_१$ का आवेग य अक्ष के अनुदिश संवेग **द्रव$_१$** के परिवर्तन के बराबर है। इस प्रकार वेग की भाँति संवेग, सदिश-नियम के अनुसार, संयोजित और विघटित किया जा सकता है। समीकरण (५) जैसा समीकरण एक दूसरे पिंड के लिये

$$\int_{०}^{स_१} ब'\, ता\, स = (द्र'\, व')_१ - (द्र'\, व')_०$$

है। इसे समीकरण (५) मे जोडने पर दो पिंडो पर लगे संपूर्ण **बल ब + ब'** के आवेग से उत्पन्न संवेगपरिवर्तन की मात्रा मिलती है। यदि **ब** और **ब'** दो पिंडो की परस्पर क्रियाएँ हैं, तो न्यूटन के तृतीय नियम से **ब + ब' = ०**, इसलिये संवेगपरिवर्तन शून्य है। यह संघट्ट का एक नियम है। दूसरा नियम कि 'संघट्ट से पूर्व एक पिंड का दूसरे के सापेक्ष संघट्ट की दिशा मे वेग, संघट्ट के बादवाले सापेक्ष वेग से विपरीत दिशा मे और एक निश्चित अनुपात मे, होता है, प्रयोग से प्राप्त किया गया है।

यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि किसी भी दिशा मे द्रव्य संहति के संपूर्ण संवेग पर इसके संघटक द्रव्यमानो की परस्पर क्रियाओ का कोई प्रभाव नही पडता। यह रेखीय संवेग की अविनाशिता का नियम है। द्रव्यमान के संपूर्ण संवेग मे किसी दिशा मे परिवर्तन उसपर लगे हुए बलों के आवेग के बराबर होता है। यह रेखीय संवेग का नियम है।

इस बात के आधार पर कि किसी पिंड के कणो की परस्पर क्रियाओ का (बीजीय) योग शून्य है, यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी पिंड (अथवा पिंडसमूह) के द्रव्यमान केंद्र की गति के लिये समीकरण उस कण की गति के समीकरण जैसे होते है, जो उस केंद्र पर स्थित है, पिंड के बराबर द्रव्यमान का है और जिसपर वे ही बल लगे है, जो पिंड पर बाहर से लगे है।

कार्य और ऊर्जा — चूँकि य अक्ष के अनुदिश त्वरण

$$त_१ = \frac{ता\, व_१}{ता\, स} = \frac{ता\, व_१}{ता\, य} \times \frac{ता\, य}{ता\, स} = व_१ \frac{ता\, व_१}{ता\, स}$$

इसलिये **य** अक्ष के अनुदिश गति समीकरण का निम्न रूप मिलता है:

$$ब_१ = म\, त_१ = म\, व_१ \frac{ता\, व_१}{ता\, स}$$

$$\text{अर्थात्} \int_{०}^{*} ब_१\, ताय = \int_{०}^{*} म\, व_१\, ताय_१$$

$$= \left[\frac{१}{२} म\, व_१^२\right]_{*} - \left[\frac{१}{२} म\, व_१^२\right]_{०} \cdots (६)$$

जहां ० तथा * क्रमानुसार विस्थापन के आरम्भ तथा अंत के द्योतक हैं और यह मान लिया गया कि द्रव्यमान म अचर है। राशि १/२ म **व**^{२} को पिंड की गतिज ऊर्जा कहते हैं। र और ल अक्षो के अनुदिशवाले समीकरण जोडने पर हम देखेंगे कि

$$\int_{०}^{*} (ब_१\, ताय + ब_२\, तार + ब_३\, ताल)$$

$$= \left[\frac{१}{२} म\, व^२\right]_{*} - \left[\frac{१}{२} म\, व^२\right]_{०} \cdots (७)$$

यदि हम केवल **य** अक्ष के ही अनुदिश गति तक सीमित रहें और **ब$_१$** को अचर माने, तो समीकरण (६) यह बताता है कि विस्थापन मे गतिज ऊर्जा की वृद्धि **ब$_१$** (य$_*$ − य$_०$), अर्थात् बल द्वारा किए गए कार्य, के बराबर होती है। जब बल सदा विस्थापन की दिशा मे नही लगा रहता है, तो जैसा नीचे समझाया गया है, समीकरण (७) के बाएं पक्ष का समाकलन बल द्वारा किए गए कार्य का द्योतक है और बल द्वारा किया गया कार्य गतिज ऊर्जा की वृद्धि के बराबर है।

मान लें **क, ख** पिंड की दो समीप की स्थितियां है, तो **कख** के लघु होने के कारण हम पिंड पर लगे बल **ब** को अचर मान सकते है। यदि बल की दिशा **क ख** (अर्थात् **क** पर के स्पर्शी) से कोण **ण** बनाती है, तो **बल ब** का विघटित अंश **क ख** के अनुदिश **ब** कोज्या **ण** है और यह दूरी **कख** तक विस्थापित होने पर **कख, ब** कोज्या **ण**
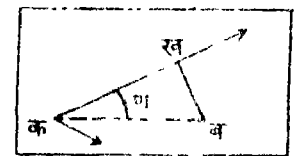
चित्र ५

के बराबर कार्य करेगा। दूसरा विघटित अंश कख से लंब दिशा मे होने के कारण कुछ भी कार्य नही करेगा। साथ ही यदि अक्षों के अनुदिश कख के विघटित अंश ताय, तार, ताल, है और ब के $ब_1$, $ब_2$, $ब_3$ है, तो अवकल ज्यामिति से

कख. ब कोज्या ग = $ब_1$ **ताय** + $ब_2$ **तार** + $ब_3$ **ताल।**

इस राशि के समाकलन से अभीष्ट कार्य की मात्रा मिल जाती है।

संवेग घूर्ण — निर्दिष्ट अक्ष के परित किसी पिंड का संवेग घूर्ण (moment of momentum) उसके संवेग और उस न्यूनतम दूरी का गुणनफल है जो अक्ष और पिंड की परिणामी गति की रेखा के बीच है (यह न्यूनतम दूरी अक्ष और गतिरेखा दोनो पर लंब है)। यदि गतिरेखा अक्ष से लंब दिशा मे है, तो यह दूरी गतिरेखा की उस बिंदु से लंबवत् दूरी है जिसमे अक्ष गतिरेखा से जानेवाले और अक्ष पर लंब समतल को काटता है। अन्य शब्दों में, किसी पिंड का एक बिंदु के परितः संवेगाघूर्ण पिंड के संवेग और गतिरेखा पर उस बिंदु से खींचे गए लंब का गुणनफल है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी अक्ष के परित द्रव्यमान के संवेगाघूर्ण पर उसके संघटक द्रव्यमानो की परस्पर क्रियाओं का कोई प्रभाव नहीं पडता (संवेगाघूर्ण अविनाशिता नियम) और संवेगाघूर्ण में परिवर्तन पिंड पर लगे हुए बलो के उस अक्ष के परित संमिलित आघूर्ण के बराबर है (संवेगाघूर्ण नियम)।

दृढ़ पिंड के लिये गतिसमीकरण — ऐसे पिंड को दृढ कहते हैं जिसके घटक कणों के बीच की दूरी सदा अपरिवर्तित रहती है। अवकाश मे बलों से प्रेरित पिंड की गति के ६ समीकरण होते हैं — तीन निर्देशाक्षों की दिशाओं मे संवेग-नियम से और तीन इन अक्षों के परित आघूर्ण लेने पर संवेगाघूर्ण नियम से प्राप्त होते है। इनके हल से पिंड की हर क्षण पर गति ज्ञात हो जाती है।

बलकेंद्र के परितः पथ

पृथ्वी के सापेक्ष आकाशीय पिंडों की गति की व्याख्या करने के हेतु न्यूटन ने अपनी गतिविज्ञान पद्धति का विकास किया। उनकी व्याख्या का आधार गुरुत्वाकर्षण की कल्पना है। दो पिंडों के बीच आकर्षण एक दूसरे पर विपरीत दिशाओं मे क्रिया करता है, इसलिये उनका द्रव्यमान-केंद्र (centre of mass) परस्पर आकर्षण के होते हुए भी, अन्य किसी बल की अनुपस्थिति मे, ऋजु रेखा मे अचर वेग से चलेगा। यह द्रव्यमान-केंद्र दोनों पिंडों को मिलानेवाली ऋजु रेखा पर स्थित रहता है। इसलिये द्रव्यमान-केंद्र के सापेक्ष गतिशोध मे दूसरे पिंड पर ध्यान न देकर केवल केंद्र की ओर आकर्षणबल को मान लेना काफी है। द्रव्यमान-केंद्र को आकर्षण केंद्र मानने मे सुविधा रहती है। पिंड पर केवल आकर्षण बल लगने के कारण आकर्षण केंद्र के परित उसके संवेग का आघूर्ण और उसकी गतिज ऊर्जा तथा आकर्षण द्वारा किए गए कार्य का योग, दोनो सदा अचर रहते हैं। आकर्षण बल दूरी के वर्ग के प्रतिलोमानुपात मे होने पर पिंड के पथ का दीर्घवृत्त, परवलय अथवा अतिपरवलय होना इस बात पर निर्भर है कि किसी बिंदु पर पिंड का वेग $\sqrt{(२ क / अ)}$ से कम है, या इसके बराबर है, या इससे अधिक है। यहाँ अ पिंड की आकर्षण केंद्र से दूरी है और क आकर्षण बल की माप $क/अ^2$ का स्थिराक है। इन पथो की एक नाभि आकर्षण केंद्र पर स्थित रहती है।

यद्यपि आकर्षण बल हर जोडे कणों के बीच होता है, किंतु आकर्षण सिद्धात के ये महत्वपूर्ण परिणाम है कि दो ऐसे ठोस या रिक्त गोलों मे जिनमे से प्रत्येक का घनत्व केंद्र से निश्चित दूरी पर एकसा है, आकर्षण वही होता है जो द्रव्यमानो मे उनके बराबर और केंद्रों पर स्थित कणो मे, जब आकर्षण नियम दूरी-वर्ग के प्रतिलोमानुपात का है। सूर्य का द्रव्यमान पृथ्वी या अन्य ग्रहों की अपेक्षा इतना अधिक है कि किसी भी ग्रह की गतिशोध मे सूर्य और ग्रह के द्रव्यमान-केंद्र को सूर्य में ही स्थित मानने से त्रुटि उपेक्षणीय होती है। यदि ग्रहो के परस्पर आकर्षण बलो को भी गणना मे संमिलित किया जाय, तो ग्रहों की गति और अधिक यथार्थता से ज्ञात हो जाती है।

स्थितिविज्ञान

स्थितिविज्ञान मे उन बलो का विवेचन होता है जिनके लगे रहने पर भी पिंड विरामावस्था मे रहता है। विरामावस्था के पिंड का किसी भी दिशा मे परिणामी त्वरण शून्य है। चूंकि द्रव्यमान द्र मे प्रत्येक त्वरण त, न्यूटन के द्वितीय नियम के अनुसार बल द्रत के कारण है, इन बलो का परिणामी बल शून्य है। अतएव स्थितिविज्ञान मे संतुलित बलो का विवेचन होता है। यह भी स्पष्ट है कि त्वरणों की भांति बलो मे भी सदिश नियम, विशिष्ट समांतर चतुर्भुज नियम, लागू है।

१९. बल बहुभुज — बल बहुभुज नियम यह है कि यदि किसी कण पर लगे बल दिशा और माप मे क्रमानुसार किसी (बद्ध) बहुभुज की भुजाओं से निरूपित हो सकें, तो बल संतुलित होंगे। मान लें कण अ पर लगे बल दिशा और माप मे $अब_1$, $अब_2$ ... से निरूपित होते है। समांतर चतुर्भुज नियम से माप तथा दिशा मे बलो $अब_1$ और $अब_2$ का परिणामी $अप_1$ से निरूपित होगा, जहाँ $अ, ब_1, प_1, ब_2$ एक समांतर चतुर्भुज है, अर्थात् सदिश संकेतन में, $अब_1 + अब_2 = अप_1$। इस प्रकार पहले बल को निरूपित करने के लिये $अब_1$ और दूसरे बल के निरूपण हेतु $ब_1 प_1$ खींचने से बिंदु $प_1$ मिल जाता है। अब यदि तीसरा बल $अब_3$ कण पर लगा है, तो तीनों बलों का
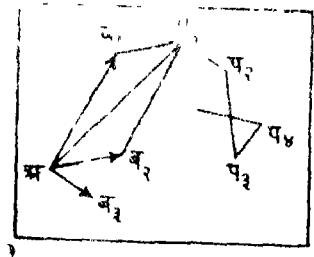
चित्र ६.

परिणामी $अप_1$ और $अब_3$ का परिणामी होगा। पूर्वोक्त अनुसार यह परिणामी $अप_2$ है, जहां $प_1 प_2$ ($अब_3$ के बराबर और समांतर) तीसरे बल का निरूपण करती हुई खींची गई है। यह प्रक्रम कितने ही बलो के लिये दोहराया जा सकता है। हमें $प_1$, $प_2$, ...आदि बिंदु मिलते है और क्रमिक परिणामी $अप_1$, $अप_2$, आदि से निरूपित

होते हैं। संतुलन के लिये सब बलों का परिणामी शून्य होगा। इसलिये इस प्रकार अंत में प्राप्त बिंदु अ से संपाती होना चाहिए, अर्थात् यदि किसी संतुलित अवस्था में कण पर लगे बलों का निरूपण अ ब$_1$, ब$_1$ प$_1$, प$_1$ प$_2$, द्वारा करें तो ये एक बंद बहुभुज की भुजाएँ होंगी। यही बल बहुभुज नियम है। आवश्यक नहीं कि बहुभुज एक समतल में स्थित हो, और बल किसी भी क्रम में लिए जा सकते हैं।

स्पष्ट है कि दो बल तभी संतुलित होंगे जब वे बराबर और एक ही ऋजुरेखा में, किंतु विपरीत दिशाओं में लगे हों।

बल त्रिभुज — तीन बलों के लिये बल बहुभुज नियम का यह रूप हो जाता है : यदि किसी कण पर लगे तीन बल एक त्रिभुज की भुजाओं से दिशा तथा माप में निरूपित होते हैं, तो बल संतुलित हैं। यदि कण पर लगे तीन बल त्रिभुज अ ब$_1$ प$_1$ की भुजाओं से निरूपित हैं, तो बल अ ब$_1$, अ ब$_2$ तथा अ ब$_3$ संतुलित होंगे, जहाँ अ ब$_2$, ब$_1$ प$_1$ के समांतर तथा बराबर है और अ रेखा प$_1$ ब$_3$ का मध्यबिंदु है। बल त्रिभुज नियम से ये बल संतुलित हैं। साथ ही △ अब$_1$ प$_1$ से (देखें चित्र ७)
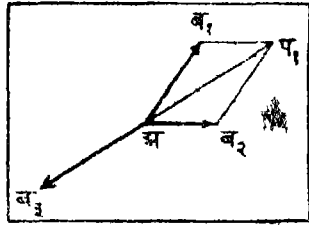
चित्र ७.

अब$_1$: ब$_1$प$_1$: प$_1$अ = ज्या अप$_1$ब$_1$: ज्या ब$_1$अप$_1$: ज्या अब$_1$प$_1$

= ज्या प$_1$ अ ब$_3$: ज्या अ प$_1$ ब$_2$: ज्या अ प$_1$ ब$_3$

अर्थात् $$\frac{\text{ब}_1}{\text{ज्या ब}_2\ \text{अ ब}_3} = \frac{\text{ब}_2}{\text{ज्या ब}_3\ \text{अ ब}_1} = \frac{\text{ब}_3}{\text{ज्या ब}_1\ \text{अ ब}_2}$$

इस प्रकार प्रत्येक बल शेष दो बलों के बीच के कोण की ज्या का समानुपाती है। यह परिणाम लामी (Lamy) के प्रमेय के नाम से विख्यात है।

बल-संचरणशीलता — यदि एक दृढ़ पिंड के किसी बिंदु पर कोई बल लगा है, तो हम उस बल की क्रियारेखा में किसी भी अन्य बिंदु पर उस बल को लगा हुआ मान सकते हैं, यह बल संचरणशीलता का नियम है। इसके तुल्य दूसरा नियम यह है कि एक ही क्रियारेखावाले ऐसे दो बल जो माप में समान, किंतु दिशा में विपरीत हों, एक दूसरे को निष्क्रिय अर्थात् संतुलित कर देते हैं। इन नियमों में एक को स्वयंसिद्ध मान दूसरे को सिद्ध किया जा सकता है। बल संचरणशीलता के कारण बल की क्रियारेखा और उसकी माप तथा दिशा का जानना काफी है, क्रियाबिंदु को जानने की आवश्यकता नहीं है। इस कारण किसी दृढ़ पिंड के संतुलन पर विचार करने के लिये बलों के क्रियाबिंदु का महत्व नहीं रहता और केवल बलों के संतुलन की परीक्षा करना पर्याप्त है।

समांतर बल — दो समांतर बलों का परिणामी बल ज्ञात करने के लिये सदिश नियम अनुपयोगी है। बलसंचरणशीलता और समांतर-चतुर्भुज नियमों के द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि दो एकदिश (अर्थात् एक ही दिशा में लगे) समांतर बलों ब$_1$ और ब$_2$ का परिणामी बल उनके एकदिश और समांतर ब$_1$ + ब$_2$ माप का बल है, जिसकी क्रियारेखा इन बलों की (समांतर) क्रियारेखाओं के बीच किसी भी तिर्यक रेखा को ब$_2$: ब$_1$ के अनुपात में विभाजित करती है (चित्र ८ में कद : दख = ब$_2$: ब$_1$)। यदि बल असमान तथा एकदिश नहीं हैं अर्थात विपरीत हैं (मान लें, उनमें ब$_2$ बड़ा है), तो परिणामी बल उनके समांतर और बड़े के एकदिश ब$_2$ − ब$_1$ माप का बल है, जिसकी क्रियारेखा दिए हुए बलों की (समांतर) क्रियारेखाओं के बीच किसी भी तिर्यक्रेखा को बाह्यत ब$_2$: ब$_1$ के अनुपात में काटती है

चित्र ८. चित्र ९.
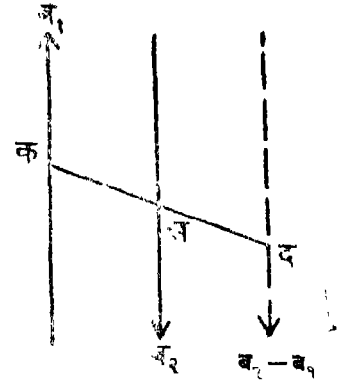
(चित्र ९ में कद : खद = ब$_2$: ब$_1$)। यदि बल समांतर, और माप में समान हैं किंतु विपरीत दिशा में, तो बलों का परिणामी कोई बल नहीं होता; वे मिलकर एक बलयुग्म (couple) बनाते हैं, जिसका आघूर्ण उन बलों की क्रियारेखाओं के बीच की दूरी को बल की माप से गुणा करने पर प्राप्त होता है। चित्र १० में बलयुग्म का आघूर्ण = ब × द। संवेग के आघूर्ण जैसी परिभाषा बल के आघूर्ण की भी है। बिंदु प के प्रति बल ब का आघूर्ण = ब × पल (देखें चित्र ११), जहाँ प ल बिंदु प से बल की क्रियारेखा पर खींचा गया लंब है। चित्र ११ में बल प के परित वामावर्त दिशा में घुमाने की चेष्टा करता है, इसलिये उसका आघूर्ण धनात्मक है। इसी प्रकार चित्र १० वाले बलयुग्म का आघूर्ण ऋणात्मक है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि समतलीय बलों का उनके समतल
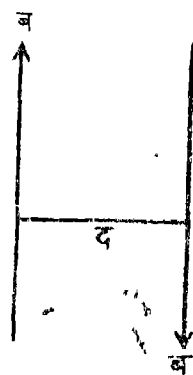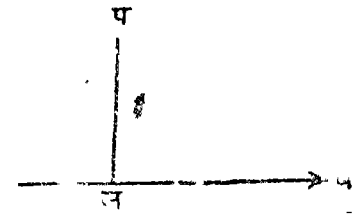
चित्र १०. चित्र ११.

में स्थित किसी बिंदु के परित सम्मिलित आघूर्ण वही है जो अकेले उनके परिणामी का (बलयुग्म के बलों का उसके समतल में स्थित किसी भी बिंदु के परित आघूर्ण सदा वही रहता है जो बलयुग्म का)।

गुरुत्वकेंद्र — किसी पिंड का भार वह बल है जिससे पृथ्वी उसे अपनी ओर आकर्षित करती है। यह भार उन सब बलों का परिणामी है जिन्हें पृथ्वी उस पिंड के प्रत्येक कण पर अलग अलग लगाती है। यदि पिंड बहुत बड़ा नहीं है, तो ये बल प्रायः समांतर हैं

और उनका परिणामी बल पिंड के एक विशेष बिंदु से होकर जाता है, चाहे पिंड को किसी भी स्थिति में रखा जाय। इस बिंदु को पिंड का गुरुत्वकेंद्र कहते हैं। कारण यह है कि यदि दो समांतर बल $ब_1$ और $ब_2$ क्रमानुसार बिंदु क और ख पर लगे हैं (देखें चित्र ८), तो उनका परिणामी बिंदु द से होकर जायगा। बलों और क ख के बीच के कोण का बिंदु द की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क और ख पर लगे बलों का बलकेंद्र द है। अब द पर बल $ब_1 + ब_2$ और तीसरे किसी बिंदु ग पर एकदिश समांतर बल $ब_3$ का बलकेंद्र एक निश्चित बिंदु घ होगा। इस प्रकार एक एक करके गणना करने पर सभी कणों के भारों का संमिलित बलकेंद्र ज्ञात हो जायगा।

बिंदुओं $य_म, र_म, ल_म$ पर ($म = १, २, \cdots, प$) स्थित भार $द्र_म$ के कणों का गुरुत्व केंद्र $\bar{य}, \bar{र}, \bar{ल}$, है, जहाँ

$$\bar{य}\ (द्र_1 + द्र_2 + \cdots + द्र_प) = य_1 द्र_1 + य_2 द्र_2 + \ldots + य_प द्र_प,$$

इत्यादि और यदि $द्र_म$ कणों के द्रव्यमान हैं तो $\bar{य}, \bar{र}, \bar{ल}$ कणों का द्रव्यमान केंद्र अथवा द्रव्यकेंद्र कहलाता है। चूँकि पिंड के विभिन्न कणों पर गुरुत्वत्वरण लगभग समान ही है, द्रव्यमान केंद्र सामान्यतया वही होता है जो गुरुत्वकेंद्र।

बलों का संतुलन — अवकाश में किसी दृढ़ पिंड की गति के छह समीकरणों के सगत पिंड के संतुलन के लिये भी छह समीकरण हैं, जो गति समीकरणों में त्वरणों को शून्य रखने पर प्राप्त होते हैं। यदि सभी बल एक समतल में है, तो केवल तीन समीकरण रह जाते हैं — बलों का किन्हीं दो दिशाओं में संमिलित विघटित अंशों का और एक बिंदु के परित: संमिलित आघूर्णों का अलग अलग शून्य होना। यदि पिंड पर केवल तीन बल लगे हैं, तो संतुलन के लिये इनकी क्रियारेखाओं का एक ही समतल में तथा एक बिंदुगामी होना और लामी के प्रमेय को संतुष्ट करना आवश्यक एवं पर्याप्त है।

गुरुत्वकेंद्र की संकल्पना से दृढ़ पिंडों के संतुलन की परीक्षा करने में विशेष सहायता मिलती है। उदाहरणत:, यह सिद्ध किया जा सकता है कि यदि एक समान घनत्व (अर्थात् समांग) त्रिभुजीय पटल के शीर्षों को तीन व्यक्ति अपने अपने कंधों पर रखे हों, तो तीनों पर बराबर दबाव पड़ेगा; यदि समांग डोर दो बिंदुओं से लटकी हो तो वह रज्जुवक्र का रूप धारण करेगी, यदि डोर का घनत्व इस प्रकार है कि उसके वे टुकड़े बराबर भार के हैं जिनका किसी क्षैतिज समतल पर प्रक्षेप एक ही लंबाई का है, तो डोर परवलय का रूप धारण करेगी। घर्षण नियमों के अनुसार (देखें **घर्षण**) यह सिद्ध किया जा सकता है कि यदि सीढ़ी रुक्ष फर्श पर चिक्कण दीवार से लगी सीमांत संतुलन में खड़ी है, तो कोई व्यक्ति उसपर आधी ऊँचाई से ऊपर बिना टेक लगाए नहीं चढ़ सकता। अंत में, चलते हुए व्यक्ति के चरणों पर घर्षण के क्रिया करने की दिशा, जैसा कि गोल समांतर पहियों पर रखे हुए पटरे पर चलकर देखा जा सकता है, पिछले पैर पर आगे की ओर और अगले पैर पर पीछे की ओर होती है।

गतिशोध में स्थितिविज्ञान — डि एलेंबर्ट ने १७४३ ई० में अपनी पुस्तक 'ट्रेट दि डाइनैमीक' में यह नियम बताया कि किसी गतिवान पिंड पर कार्यकारी बल निकाय उसपर लगे बाह्य बल निकाय के तुल्य है। यदि पिंड में द्रव्यमान द्र के किसी कण का त्वरण त है, तो त्वरण की दिशा में उसपर लगे एक कार्यकारी बल द्रत की कल्पना की जा सकती है। पिंड के सभी कणों पर ऐसे कार्यकारी बलों के विपरीत बल और बाह्य बल संतुलन में
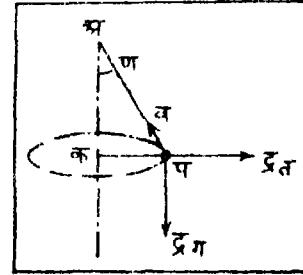
चित्र १२.

रहते है। इस संतुलन की परीक्षा स्थितिविज्ञान के नियमों द्वारा की जा सकती है। उदाहरणत, मान लें कि भारहीन डोर के एक सिरे पर द्रव्यमान द्र का पिंड बँधा है, दूसरा सिरा एक स्थिर बिंदु अ से बँधा है और डोर अचर कोणीय वेग से घुमाई जा रही है। यदि पिंड के केंद्र क की ओर त्वरण त है, तो उसपर कार्यकारी बल के विपरीत बल द्रत दिशा क प में है और तीन बल व, द्रत, द्रग, संतुलन में है, जहाँ व डोर का तनाव और द्रग पिंड का भार है। यदि ∠ क अ प = ण, तो लामी प्रमेय से

$$व = द्र ग/ज्या (९०° + ण) = द्रत/ज्या (१८०° - ण)$$

अर्थात् $व = द्र ग$ व्युकों ण, $त = ग$ स्प ण।

यदि पिंड त्रिज्या अ के वृत्त में च चक्कर प्रति सेकंड लगा रहा है, तो $त = अ (२π च)^2$ और $ण = स्प^{-1} (४π^2 च^2 अ/ग)$।

सं० ग्रं० - ए ई एच लव 'थियोरेटिकल मिकैनिक्स', एच. लैंब : 'स्टैटिक्स, डाइनैमिक्स ऐंड हायर मिकैनिक्स, तथा गोरखप्रसाद और हरिश्चंद्र गुप्त 'गतिविज्ञान', 'स्थिति विज्ञान', पोथीशाला, इलाहाबाद। [ह० च० गु०]

बलि इसके दो रूप है। वैदिक पंचमहायज्ञ के अंतर्गत जो भूतयज्ञ है, वे धर्मशास्त्र में बलि या बलिहरण या भूतबलि शब्द से अभिहित होते है। दूसरा पशु आदि का बलिदान है। 'वैश्वदेव' कर्म करने के समय जो अन्नभाग अलग रख लिया जाता है, वह प्रथमोक्त बलि है। यह अन्न भाग देवयज्ञ के लक्ष्यभूत देव के प्रति एवं जल, वृक्ष, गृहपशु तथा रुद्र आदि देवताओं के प्रति उत्सृष्ट (समर्पित) होता है। गृह्यसूत्रों में इस कर्म का सविस्तार प्रतिपादन है। बलि रूप अन्नभाग अग्नि में छोड़ा नहीं जाता, बल्कि भूमि में फेंक दिया जाता है। इस प्रक्षेप क्रिया के विषय में मतभेद है।

स्मार्त पूजा में पूजोपकरण (जिससे देवता की पूजा की जाती है) भी बलि कहलाता है (बलि पूजोपहार स्यात्)। यह बलि भी देव के प्रति उत्सृष्ट होती है।

देवता के उद्देश्य से छाग आदि पशुओं का जो हनन किया जाता है वह 'बलिदान' कहलाता है (बलि = एतादृश उत्सर्ग योग्य पशु)। तंत्र आदि में महिष, छाग, गोधिका, शूकर, कृष्ण-

सार, शरभ, हरि (वानर) आदि अनेक पशुओं को 'बलि' के रूप मे माना गया है। इक्षु, कूष्मांड आदि नानाविध उद्‌भिद और फल भी बलिदानार्ह माने गए हैं।

बलि के विषय में अनेक विधिनिषेध हैं। बलि को बलिदानकाल में पूर्वाभिमुख रखना चाहिए और खंडधारी बलिदानकारी उत्तराभिमुख रहेगा — यह प्रसिद्ध नियम है। बलि योग्य पशु के भी अनेक स्वरूप लक्षण कहे गए हैं।

पंचमहायज्ञ के अंतर्गत बलि के कई अवातर भेद कहे गए है — आवश्यक बलि, काम्यबलि आदि इस प्रसंग मे ज्ञातव्य हैं। कई आचार्यों ने छागादि पशुओ के हनन को तामसपक्षीय कर्म माना है, यद्यपि तत्र मे ऐसे वचन भी हैं जिनसे पशुबलिदान को सात्विक भी माना गया है (दे० गायत्रीतंत्र)। कुछ ऐसी पूजाएँ हैं जिनमें पशुबलिदान अवश्य अनुष्ठेय होता है।

वीरतत्र, भावचूडामणि, यामल, तंत्रचूडामणि, प्राणतोषणी, महानिर्वाणतत्र, मातृकाभदतत्र, वैष्णवीतत्र, कृत्यमहार्णव, बृहन्नीलतत्र, आदि ग्रंथों मे बलिदान (विशेषकर पशुबलिदान) सबधी चर्चा है। (दे० 'यज्ञ') [रा० श० भ०]

बलि — (१) सप्तचिरजीवियो में से एक, पुराणप्रसिद्ध विष्णुभक्त, दानवीर, महान् योद्धा, विरोचनपुत्र दैत्यराज बलि वैरोचन जिसकी राजधानी महाबलिपुर थी। इसके छलपूर्वक परास्त करने के लिये विष्णु का वामनावतार हुआ था (दे० वामन)। इसने दैत्यगुरु शुक्राचार्य की प्रेरणा से देवो को विजित कर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया और वहाँ धर्मशासन स्थापित किया। समुद्रमंथन से प्राप्त रत्नो के लिये जब देवासुर सग्राम छिडा और इद्र द्वारा वज्राहत होने पर भी बलि शुक्राचार्य के मंत्रबल से पुनः जीवित हुआ तब इसने विश्वजित् और शत अश्वमेध यज्ञो का सपादन कर समस्त स्वर्ग पर अधिकार जमा लिया। कालातर मे जब यह अंतिम अश्वमेध यज्ञ का समापन कर रहा था, तब दान के लिये वामन रूप मे ब्राह्मण वेशधारी विष्णु उपस्थित हुए। शुक्राचार्य के सावधान करने पर भी बलि दान से विमुख न हुआ। वामन ने तीन पग भूमि दान मे माँगी और सकल्प पूरा होते ही विशाल रूप धारण कर प्रथम दो पगो मे पृथ्वी और स्वर्ग को नाप लिया। शेष दान के लिये बलि ने अपना मस्तक नपवा दिया

(२) बलि वैरोचन के अतिरिक्त बलिनामधारी अनेक पौराणिक व्यक्तियो मे कुछ ये हैं—युधिष्ठिर की राजसभा का एक विद्वान् ऋषि, आध्रवंशीय राजा, शिवावतारों में से एक अवतार, सुनपसपुत्र जो आनवदेश का राजा था। [श्या० ति०]

बलिया १. जिला, स्थिति : २५° ४६' उ० अ० तथा ८४° १२' पू० दे०। यह भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के सुदूर पूर्व मे स्थित जिला है। इसका संपूर्ण क्षेत्रफल १,१८३ वर्ग मील है। यहाँ पर गंगा, छोटी सरयू एवं घाघरा नदियाँ बहती हैं। जलवायु उत्तम है एवं गरमियाँ गरम तथा सर्दियाँ ठंढी हुआ करती हैं। वर्षा का औसत ४० से ५० इंच तक रहता है। वसंत तथा पतझड़ का मौसम गरम तथा नम रहता है। यह कृषिप्रधान क्षेत्र है। धान, जौ, चना एवं गेहूँ मुख्य रूप से उगाए जाते हैं। कुछ मात्रा में ईख, सरसो राई, मक्का एवं शाक भाजी की कृषि भी की जाती है। इस जिले की जनसंख्या १३,३५,८६३ (१९६१) है।

२ नगर, स्थिति २५° ४४' उ० अ० तथा ८४° १०' पू० दे०। यह बलिया जिले के दक्षिण मे गगा के उत्तरी किनारे पर, जहाँ घाघरा नदी आकर गंगा से मिलती है, उसके ठीक १४ मील पश्चिम की ओर स्थित नगर है। यह जिले का मुख्य नगर एव शासन संबंधी कार्यों का केंद्र है। यहाँ बाजार की सुविधा भी है। चीनी बनाने एवं स्थानीय कृषियत्रो से सबधित उद्योग होते है। कुक्कुट पालन भी होता है। इस नगर की जनसख्या ३८,२१६ (१९६१) है। यहाँ से घी एवं तिलहन बाहर भेजा जाता तथा बाहर से चावल, धातुएँ, नमक आदि मँगाए जाते है।

बलुआ पत्थर ऐसी दृढ शिला है जो मुख्यतया बालू के कणों का दबाव पाकर जम जाने से बनती है और किसी योजक पदार्थ से जुड़ी होती है। बालू के समान इसकी रचना मे भी अनेक पदार्थ विभिन्न मात्रा मे हो सकते हैं, किंतु इसमे अधिकाश स्फटिक ही होता है। जिस शिला मे बालू के बहुत बडे बडे दाने मिलते हैं, उसे मिश्रपिंडाश्म, और जिसमे छोटे छोटे दाने होते है उसे बालुमय शैल या मृत्तमय शैल कहते हैं।

बलुआ पत्थर मे वे ही धात्विक तत्व होते हैं, जो बालू मे। स्फटिक की बहुतायत होती है, जिसके साथ प्राय फेलसपार तथा कभी कभी श्वेत अभ्रक भी होता है। कभी कभी पत्थर की विभिन्न परतों के बीच मे अभ्रक की तह सी जमी हुई मालूम पड़ती है। खान से पत्थर निकालने मे इस तह का महत्वपूर्ण योगदान है। इसी के कारण पत्थर की पतली परते निकाली जा सकती हैं, जो फर्श बनाने के काम आती हैं। योजक पदार्थ प्राय बारीक कैल्सिडोनी सिलिका होता है, किंतु कभी कभी मूल स्फटिक भी योजक का काम करता है। ऐसी दशा मे शिला स्फटिक जैसी तैयार होती है। कैलसाइट, ग्लॉकोनाइट, लौह ऑक्साइड, कार्बनीय पदार्थ और अन्य अनेक प्रकार के पदार्थ भी जोड़ने का काम करते है, तथा अपना अपना विशिष्ट रंग प्रदान करते हैं, जैसे ग्लॉकोनाइट (glauconite) वाली शिलाएँ हरी, और लोहेवाली लाल, भूरी या धूसर होती है। जब योजक पदार्थ चिकनी मिट्टी होता है, तब शिला प्राय: श्वेत या धूसर वर्ण की होती है और अत्यत दृढता से जमी हुई होती है।

शुद्ध बलुआ पत्थर मे ९९ % तक सिलिका हो सकता है। मुलायम पत्थर पीसकर बालू बनाने के काम आता है, किंतु जो बहुत दृढ़ता से पत्थर जमा होता है, उसकी ईंटे बना ली जाती हैं। यह भट्टियो तथा अँगीठियों मे अस्तर लगाने के काम आती हैं, क्योंकि सिलिका अत्यंत तापसह होता है। गैनिस्टर (ganister) शिला इसी प्रकार की होती है। अत्यत दृढ़तापूर्वक जमे कुछ कम शुद्ध पत्थर सिल, बट्टे और चक्कियाँ बनाने के काम आते है।

बलुआ पत्थर दानेदार और छिद्रल होता है, इसलिये इसपर अच्छी पॉलिश नही की जा सकती और न बारीक काम हो सकता है, पर मोटी गढाई तथा कटाई साफ और सच्ची हो सकती है। इसलिये

इमारतों में इसका बहुविध उपयोग होता है। आगरे का लाल पत्थर मुसलमानों के जमाने से ही महत्वपूर्ण इमारतों मे लगाने के लिये दूर दूर तक भेजा जाता है। अब भी संगीन चिनाई में सफेद और लाल बलुआ पत्थर ही मुख्यतया प्रयुक्त होते हैं। ये प्रायः खानों से खोदकर और कभी कभी सुरंग लगाकर निकाले जाते हैं। पन्ना का सफेद पत्थर फर्शी चौकों के रूप में दूर दूर तक भेजा जाता है। इसके १०,१०, १२,१२ फुट तक के चौके निकाले जा सकते हैं। पतले चौके छत पर खपरैल की भाँति छाए जाते हैं। १० से १२ फुट पाट तक की छतों में इसकी धरनें भी रखी जाती हैं, किंतु छतों पर इस प्रकार इसका उपयोग, ढुलाई मँहगी होने के कारण, निकटस्थ क्षेत्रों तक ही सीमित है। जहाँ दूसरा अधिक कठोर पत्थर सुविधापूर्वक नहीं मिलता, वहाँ सड़कों के लिये और कंक्रीट के लिये इसकी गिट्टी भी बनाई जाती है।

छिद्रल होने से इसकी परतों में भूमिगत जल एकत्र हो जाता है, अतः ये महत्वपूर्ण जलस्रोत होती हैं। [वि० प्र० गु०]

बलूचिस्तान स्थिति : २७° ३०' उ० अ० तथा ६५° ०' पू० दे०। यह पश्चिमी पाकिस्तान का एक भाग है जिसकी सीमाएँ ईरान तथा अफगानिस्तान से मिलती हैं। इसका क्षेत्रफल १,३४,००२ वर्ग मील तथा जनसंख्या ११,५४,१६७ (१९५१) है। इसमें कलात, लास बेला, खरान और मकरान राज्य शामिल हैं। क्वेटा यहाँ की राजधानी है। यह भाग प्रायः शुष्क और पहाड़ी है। उत्तरी भाग मे सुलैमान पर्वतश्रेणी १२,००० फुट तक ऊँची है जो उत्तर से दक्षिण को चली गई है। बोलन दर्रा क्वेटा के लिये तथा मूला दर्रा कलात के लिये दरवाजे का काम करता है। यहाँ सैकड़ो मील लंबा रेगिस्तान फैला है। गरमी मे तट के पास मरुस्थल का ताप बहुत अधिक रहता है। ऊँट, भेड़, बकरियाँ पाली जाती हैं। जहाँ पानी मिल जाता है वहाँ धान, छुहारा, अंगूर, नाशपाती तथा आड़ू आदि उगाया जाता है। ऊँचे भागो मे गेहूँ, जौ, मक्का और घास उगती है। पठारी भाग में कोयला, क्रोमाइट तथा जिप्सम खनिज मिलते हैं। यहाँ की बलूची जाति के नाम पर ही इसका नाम पड़ा है। [शि० मं० सि०]

बलोच भाषा और साहित्य बलोच भाषा पाकिस्तान की ग्रामीण (इलाकाई) भाषा है, जो बलोचिस्तान के सिवा सिंध, पंजाब, ईरान तथा अफगानिस्तान के भी कुछ भागों मे बोली जाती है। इसकी दो शाखाएँ हैं, एक मकरानी है जो पश्चिमी तथा दक्षिण-पश्चिम मे ईरान की ओर की बोलचाल की भाषा है और दूसरी सुलेमानी है, जो उत्तर और उत्तर-पूर्व अर्थात् सिंध तथा पंजाब के ग्रामों मे बोली जाती है। बलोच भाषा नई फारसी से बहुत मिलती जुलती है। इसके लगभग आधे शब्द ऐसे हैं जो फारसी भाषा के शब्दों के बिगडे हुए रूप हैं या साहित्यिक फारसी के शब्दों के अनुसार हैं। भाषाविज्ञों का यह भी कथन है कि बलोच भाषा फारसी से निकली हुई नहीं, प्रत्युत एक अलग प्राचीन भाषा है, जो अनेक रूपों मे पुरानी फारसी के स्थान पर ज़ेंद या पुरानी बाख्त्री से विशेष मिलती है। इस भाषा में इस समय फारसी के सिवा सिंधी, अरबी तथा ब्राहुई ही नहीं उर्दू भाषा के भी शब्द मिलते हैं।

बलोच भाषा का गद्य साहित्य इस समय केवल किस्से कहानियों ही तक सीमित है पर इसका पद्य साहित्य अधिक विस्तृत तथा उन्नत है। बलोच कविता के आरंभिक काल में केवल लोकगीत थे। परंतु बलोच इतिहास के सबसे बड़े व्यक्तित्ववाले मीर चाकर खाँ 'रिंद' ने सन् १४८७ ई० में गद्दी पर बैठने के अनंतर बलोच कविता में युद्ध विषयक गीतों का आरंभ किया और मीर गवाहिराम, लाशारी, नौद बंदग, बेबर्ग, शह मुरीद, हानी, शाहदाद, माहनाज़, उमरखाँ नोहानी, बालाच और दूदा आदि ने लंबी युद्धीय कविताएँ लिखीं तथा सजीव साहित्य उत्पन्न कर बलोच साहित्य को उत्कर्ष पर पहुँचाया। इन युद्धीय कविताओं की रचना की प्रेरक बलोच जाति के इतिहास की वही घटनाएँ थी जो उस काल मे घटित हुई थीं; जैसे, रिंद तथा लाशारी कबीलो का ३० वर्षीय संघर्ष, हानी-शह मुरीद के अमर प्रेम की विशद कहानी, बेबर्ग तथा गिरानाज़ का आख्यान, शाहदाद तथा माहनाज़ की विरहकथा, हुमायूँ की मित्रता के कारण पानीपत के युद्ध में शाहदाद तथा उसके अनुयायियों की वीरता एवं साहस, जुसूर तथा गयूर बालाच की एकनामता (संमी) के लिये बेबर्ग पुसर के विरुद्ध युद्ध तथा इसी प्रकार की अन्य घटनाओ ने ऐसी उच्च कोटि की युद्धीय कविता को जन्म दिया, जो फारसी के छंदशास्त्र (अरूज़) की कठिनाइयों से खाली है पर वेदना, उल्लास तथा प्रभावोत्पादकता मे अनुपम है। अब तक ये मेलों तथा महफिलो मे बड़ी रुचि के साथ पढ़ी तथा सुनी जाती है।

१८वी शती ईसवी मे बलोच भाषा मे ऐसी प्रेमकविता का प्रचार हुआ, जिसमे सौंदर्य तथा प्रेम भरा है तथा केश, कपोल व अधर की गाथा है। इस काल की कविता सौंदर्य की स्वच्छ अनुभूति तथा प्रेमिका से दूर रहनेवाले दु खी हृदय की कहानी है जो बलोच प्रवृत्ति के भावों का आदर्श भी है। प्रेमगीतो का सबसे प्रसिद्ध कवि जाम दरक माना जाता है जो मीर नसीर खाँ नूरी का सभाकवि था और बलोच शासक ने इसे 'शाअरो का शाअर' (कवियो का कवि) की उपाधि दी थी। इसने स्वय जितने गीतो और कविताओ की रचना की उन सबमें सुंदर मुखों, काले केशो, मेहदी लगी लाल उँगलियों, मुक्तावली से दाँतों, कटार सी भौहों, रंग बिरंग के आँचलों तथा सुगंधित पल्लो के ही उल्लेख मिलते हैं। पर इस काल के सभी कवि लौकिक प्रेमिका की खोज में व्यस्त नही हैं। यह अवश्य है कि वे एक चलती फिरती तथा दिखाई देनेवाली प्रेमिका की खोज मे निकलते है पर ऐसा भी होता है कि वे ऐसी लौकिक प्रेमिका की खोज करते हुए वास्तविक (हकीकी) प्रेमिका को पा लेते है। जब कभी ऐसा होता है, सासारिक कविता सूफी कविता की सीमाओं को छूती हुई दिखलाई पड़ती है। इस काल के प्रसिद्ध कवियों में तवक्कुली, मुल्ला फ़ाज़िल सीमक, मुल्ला करीमदाद, इज्ज़त पंजगोरी, मुल्ला बहराम, मुल्ला कासिम तथा मलिक दीनार के नाम अग्रगण्य हैं।

१९वी शती ईसवी के अंत में तथा २०वी शती के आरंभ में अंग्रेज बलोचिस्तान मे अपने साथ केवल नई शासनविधि ही नही ले गए प्रत्युत उन्होने पर्वतों, रेगिस्तानों तथा घाटियों की भूमि में एक नई सभ्यता की नींव डाली। इनकी विद्याओं तथा कलाओं के प्रदर्शन से बलोच साहित्य का स्वरूप भी प्रभावित हुआ। बलोच

कवियों ने कल्पना के नए रूप अपनाए। जैसूर ने ऐसी कविताएँ लिखीं जिनमें नए शब्द तथा नई योजना थी। आजाद जमालदीनी ने अंग्रेजो की शक्ति में जाति तथा देश की अवनति समझी। मुहम्मद हुसेन उनका ने मोटरों तथा कारों के पहियों के नीचे दरिद्रों की इच्छाओं का खून होते देखा। जवाँ साल ने अधार्मिक विचारों के प्रकाशन की रोक थाम के लिये प्रशंसात्मक तथा व्यावहारिक कविताएँ प्रस्तुत की। रहम अली बज्जाज भी अंग्रेजों के बलोचिस्तान में आगमन से भविष्य में होने वाले प्रभाव से अपरिचित न रह सके और उनकी शैली तथा भाषा में विशेष परिवर्तन हो गया। अब ऐसी कविताएँ की जाने लगीं जिनमें बलोचों को उनके बीते गौरव का स्मरण दिलाया गया, स्वतंत्रता देवी की प्रशंसा में गीत कहे गए और जनसाधारण को स्वातंत्र्य युद्ध के लिये तैयार किया गया। निरंतर युद्ध के अनंतर सन् १९४७ ई० में जब स्वतंत्रता मिली पाकिस्तान की दूसरी प्रांतीय भाषाओं के समान बलोच भाषा की भी उन्नति हुई। रेडियो पाकिस्तान क्वेटा के स्थापित होने से बलोची कवियों तथा गद्य लेखकों का उत्साह बढ़ा और नए लेखकों का एक पूरा मंडल मैदान में आ उतरा।

इस समय मुहम्मद हुसेन उनका, आजाद जमालदीनी और गुल खाँ नसीर यद्यपि पुराने लेखक हैं, तथापि वे विचारो तथा अभिव्यंजना की दृष्टि से नए लेखकों मे आ मिलते हैं। नए लेखकों में मुराद साहिर, इसहाक शमीम, अब्दुर्रहीम साबिर, अहमद जहीर, जहूर शाह हाशिमी, अनवर क़हतानी, मलिक सईद, अहमद जिगर, शौकत हसरत, अकबर बलोच, नागुमान, दोस्तमुहम्मद बेकस, आजिज़, रौनक बलोच तथा अताशाद उल्लेखनीय हैं जो नए वास्तविक (नफिसयाती) ढंग को अपनाने और विद्या संबंधी नए अनुभव करने मे निर्भीक हैं।

स० ग्रं० — एच. राम कृत बलूचीनामा, लाहौर, सन् १८८१ ई०; जी० डब्ल्यू० गिलवर्ट्सन : दि बलोची लैंग्वेज, हर्फोर्ड, सन् १९२६ ई०। [न० अ० अ०]

बल्गेरिया स्थिति : ४४° १३' से ४१° १४' उ० अ० तथा २२° २२' से २८° ३७' पू० दे। यह यूरोप महाद्वीप का एक स्वतंत्र राष्ट्र है। इसका क्षेत्रफल ४२, ८१८ वर्ग मील है। २३६ मील तक काला सागर इसकी सीमा बनाता है। इसके उत्तर मे रोमानिया, दक्षिण-पूर्व मे टर्की, दक्षिण-पश्चिम मे ग्रीस तथा पश्चिम मे युगोस्लाविया देश हैं। इसके मध्य बालकन श्रेणी फैली है। यहाँ की जनसंख्या ८०,४६,००० (१९६२) है। सोफिया जनसंख्या (६,८८,४५४) यहाँ की राजधानी व प्रमुख नगर है। यहाँ के निम्न भागो मे जनवरी का ताप ०° सें० से २° सें० के बीच तथा जुलाई का ताप २२° सें० से २४° सें० के बीच रहता है, किंतु पर्वतो पर ठंढ कुछ अधिक पडती है। यहाँ की औसत वर्षा २५ इंच है। कुल भूमि की ८६.१ प्रति शत भूमि कृषि योग्य है। तंबाकू, सूर्यमुखी, कपास, चुकंदर, सोयाबीन प्रमुख फसलें है। इसके अतिरिक्त सब्जियाँ, फल, अंगूर तथा खाद्यान्न भी उगाए जाते हैं। काले सागर मे मत्स्य उद्योग भी होता है। यहाँ का गुलाब विश्वप्रसिद्ध है।

खनिजों में कोयले का स्थान महत्वपूर्ण है। अन्य खनिजों में पैट्रोलियम, लोहा, ताँबा, सीसा, जस्ता, मैंगनीज, क्रोम, पाइराइट तथा सोना प्रमुख हैं। उद्योगों मे खाद्य वस्तुओं संबंधी उद्योग के अतिरिक्त सूती कपड़ा, इस्पात मशीनें, रसायनक बनाना तथा धातुकर्म आदि प्रमुख उद्योग हैं। यहाँ से डिब्बाबंद फल,
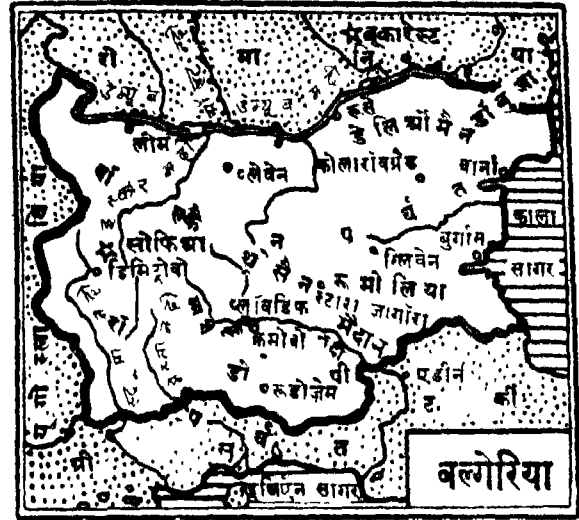
तंबाकू एवं कृषि संबंधी उत्पादों का निर्यात तथा कच्चा सामान, पैट्रोलियम, ट्रैक्टर, अन्य कृषि संबंधी मशीनों एवं बिजली के सामानों का आयात होता है। शिक्षा का काफी प्रसार हो रहा है। बल्गेरियन प्रमुख भाषा है। यहाँ की अधिकांश जनता ईसाई (बल्गेरियन आर्थोडोक्स चर्च) धर्म को मानती है। इनके अलावा मुसलमान तथा यहूदी भी रहते हैं। यहाँ सडकों, रेलों, हवाई मार्गों की भी काफी प्रगति हुई है। सोफिया के अतिरिक्त बुर्गास, वार्ना, प्लॉवडिफ, प्लेवेन, रूसे, स्लिवेन तथा स्टाराज़ागोरा आदि प्रमुख नगर हैं। [दी० ना० ब०]

बल्लारि (Bellary) १. जिला, स्थिति : १४° २८' से १५° ५८' उ० अ० तथा ७५° ४०' से ७७° ३८' पू० दे०। यह भारत के मैसूर राज्य मे स्थित एक जिला है। इसके पूर्व में कर्नूल, दक्षिण-पूर्व में अनंतपुर, दक्षिण मे चित्रदुर्ग, पश्चिम में धारवाड़ तथा उत्तर में रायचूर जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल ३,८२५ वर्ग मील तथा जनसंख्या ६,१५,२६१ (१९६१) है। यह सागर तल से १,००० से २,००० फुट तक ऊँचा है। इसकी उत्तरी सीमा पर तुंगभद्रा नदी बहती है। जिले की उत्तरी सीमा पर ही तुंगभद्रा बाँध बनाया गया है। यहाँ की काली मिट्टी मे कपास अधिक उगाई जाती है। इसके अतिरिक्त चोलम (cholam), गन्ना, धान, तथा कोरा (korra) प्रमुख फस्लें हैं।

२. नगर, स्थिति : १५° ९' उ० अ० तथा ७६° ५१' पू० दे०। उपर्युक्त जिले मे स्थित प्रसिद्ध नगर है। यह एक फौजी छावनी भी है। जलवायु गरम, शुष्क किंतु स्वास्थ्यकर है। मद्रास रेल द्वारा यहाँ से ३०५ मील दूर है। यहाँ फेस हिल, फोर्ट हिल पहाड़ियाँ तथा एक प्रसिद्ध दुर्ग है। यहाँ की जनसंख्या ८५,६७३ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

बवेरिया (Bavaria) स्थिति : ४९° ५' उ० अ० तथा ११° ३०' पू० दे०। यह जर्मन (पश्चिमी) फेडरैल रिपब्लिक का एक राज्य

(lander) है जो उत्तर-पूर्व में चेकोस्लोवाकिया, दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण में ऑस्ट्रिया, पश्चिम में वूरटेमवेर्ग और बादेन उत्तर-पश्चिम में हेजी तथा उत्तर में थुरिंजिया एवं सैक्सोनी से घिरा है। इसका क्षेत्रफल २७,११६ वर्ग मील तथा जनसंख्या ६५,६२,१०० (१६६१) है। इसमें सात जिले शामिल हैं। मेन तथा डैन्यूब यहाँ की प्रमुख नदियाँ हैं। दोनों नदियाँ लुडविग नहर द्वारा आपस मे मिली हैं। यहाँ की त्सुखस्पित्से (Zugspitze) ६,७२१ फुट ऊँची चोटी है, जो यहाँ की सर्वोच्च चोटी है। चेकोस्लोवाकिया की सीमा की ओर प्रसिद्ध बोहेमियन जंगल मिलते हैं। उद्योग की अपेक्षा कृषि अधिक उन्नतिशील है। खाद्यान्न, आलू, फल तथा हॉप (hop) एक प्रकार की लता) प्रमुख उपजें हैं। पर्वतीय भाग में पशुपालन होता है तथा वनो में भी काफी जनसंख्या व्यस्त है। खनिजों में लिगनाइट, ग्रेफाइट, नमक तथा कच्चा लोहा मिलता है। कुछ मात्रा में चीनी मिट्टी, चिकनी मिट्टी, पारा, ताँबा, मैंगनीज, संगमरमर, कोबाल्ट एवं जिप्सम के भंडार भी हैं। यहाँ के प्रमुख उद्योग लोह इस्पात, सूती कपड़ा, चश्मे, वैज्ञानिक उपकरण, खिलौने, काच के सामान, रसायनक, सिगार, कागज तथा फर्नीचर से संबधित हैं। यूरोप का सबसे बडा बालबेयरिंग का कारखाना यहीं पर है। रेलों का अच्छा प्रबंध है। यहाँ के कई नगरों में अनेक विश्वविद्यालय हैं। [उ० कु० मि०]

बसई (बेसीन) की संधि मराठा प्रदेश के राजाओ के आपस मे जो संघर्ष चल रहे थे उनमे पूना के निकट हृदप्सर स्थान पर बाजीराव द्वितीय को यशवंतराव होल्कर ने पराजित किया। पेशवा बाजीराव भाग कर बसई पहुँचे और ब्रिटिश सत्ता से शरण माँगी। पेशवा को शरण देना ब्रिटिश सत्ता ने सहर्ष स्वीकार किया परंतु इसके लिये बाजीराव को अपमानजनक शर्तों पर संधि करनी पडी। यह संधि ३१ दिसंबर, १८०२ को हुई। इसके अनुसार पेशवा को अपने यहाँ ब्रिटिश सेना की एक टुकडी रखने और खर्चे के लिये २६ लाख रुपए की वार्षिक आय का अपना इलाका ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप देने पर सहमत होना पड़ा।

संधि की एक शर्त यह भी थी कि अन्य राज्य से अपने संबधो और व्यवहार के मामलो मे पेशवा ईस्ट इंडिया कंपनी के आदेशानुसार काम करेंगे। इस प्रकार मराठा स्वतंत्रता इस संधि के परिणाम-स्वरूप ब्रिटिश सत्ता के हाथो बिक गई। [पी० एम० जे०]

बसरा स्थिति : ३०° ३०' उ० अ० तथा ४७° ५०' पू० दे०। यह इराक का तीसरा सबसे बड़ा नगर एव महत्वपूर्ण बंदरगाह है। यह बसरा राज्य की राजधानी भी है। फारस की खाडी से ७५ मील दूर तथा बगदाद से २८० मील दूर दक्षिण-पूर्वी भाग मे दजला और फरात नदियों के मुहाने पर बसा हुआ है। ६३६ ईसा बाद इस शहर को सर्वप्रथम खलीफा उमर ने बसाया था। "अरेबियन नाइट्स" नामक पुस्तक मे इसकी संस्कृति, कला, तथा वाणिज्य के विषय मे बड़ा सुंदर वर्णन किया गया है। सन् १८६८ मे तुर्कों के अधिकार करने पर इस नगर की अवनति होनी गई। लेकिन ब्रिटेन का अधिकार जब प्रथम विश्वयुद्ध मे हुआ उस समय उन्होने इसको एक अच्छा बंदरगाह बनाया और कुछ ही समय मे यह इराक का एक महत्वपूर्ण बंदरगाह बन गया। यहाँ ज्वार के समय २६ फुट ऊपर तक पानी चढता है। बसरा से देश की ६० प्रति शत वस्तुओं का निर्यात किया जाता है। यहाँ से ऊन, कपास, खजूर, तेल, गोंद, गलीचे तथा जानवर निर्यात किए जाते हैं। जनसंख्या में अधिकांश अरब, यहूदी, अमरीकी, ईरानी तथा भारतीय हैं। जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल जनसंख्या २,३५,२०६ (१६६१) है। [दी० ना० ब०]

बसोपिएर फ्रांस्वाद (१५७६-१६४६) फ्रास के राजा हेनरी चतुर्थ का यह एक दरबारी और अंतरंग मित्र था। यह बहुत जल्दी राजदरबार की विलासिता में निमग्न हो गया। १६०० मे सेवॉय के तथा १६०३ मे तुर्कों के विरुद्ध हंगरी मे इसने युद्ध मे भाग लिया। ह्यूगोनोट के विप्लव मे उनके दमनकार्य मे इसने विशेष शौर्य का परिचय दिया। लंदन, स्पेन, स्विटजरलैंड आदि मे यह दूत बना कर भेजा गया था। परंतु सभी जगह यह असफल राजदूत घोषित हुआ। रिशलू की शक्ति के सहार के लिये एक षड्यंत्र फ्रास मे रचा गया था। उसमे बसोपिएर अकारण ही फँस गया। अतः रिशलू के द्वारा यह बैस्टील के किले मे (१६३१-१६४३) बंद रहा। वहाँ पर इसने अपनी आत्मकथा और संस्मरण लिखे। यह उस काल के इतिहास के लिये अमूल्य स्रोत है। [शु० ते०]

बस्तर स्थिति १७° ४६' से २०° १४' उ० अ० तथा ८०° १५' से ८२° १५' पू० द०। यह भारत के मध्य प्रदेश राज्य मे स्थित एक दक्षिणी जिला है जिसका क्षेत्रफल १५,१२४ वर्ग मील तथा जनसंख्या ११,६७,५०१ (१६६१) है। इसके उत्तर मे दुर्ग, उत्तर-पूर्व मे रायपुर, पश्चिम मे चादा, पूर्व मे कोरापुट तथा दक्षिण मे पूर्वी गोदावरी जिले हैं। यह पहले एक देशी रियासत था। इसका अधिकांश भाग कृषि के अयोग्य है। यहाँ जगल अधिक है जिनमे गोंड एवं अन्य आदिवासी जातियाँ निवास करती हैं। जगलो मे टीक तथा साल के पेड़ प्रमुख है। यहाँ की स्थानातरित कृषि मे धान तथा कुछ मात्रा मे ज्वार, बाजरा पैदा कर लिया जाता है। इद्रावती यहाँ की प्रमुख नदी है। चित्राकोट मे कई झरने भी है। जगदलपुर, बीजापुर, कांकेर, कोडागाव, भानुप्रतापपुर आदि प्रमुख नगर है। यहाँ के आदिवासी जगलो से लकडियाँ, लाख, मोम, शहद, चमडा साफ करने तथा रंगने के पदार्थ आदि इकट्ठे करते रहते है। खनिज पदार्थों मे लोहा, अभ्रक महत्वपूर्ण है। [रा० स० ख०]

बस्ती १. जिला, स्थिति २६° ५२' उ० अ० तथा ८२° ५५' पू० दे०। यह भारत मे पूर्वी उत्तर प्रदेश राज्य का एक जिला है। इसके पूर्व मे गोरखपुर, दक्षिण मे फैजाबाद, पश्चिम मे गोंडा एव उत्तर मे नेपाल की दक्षिणी सीमा पडती है। इसका संपूर्ण क्षेत्रफल २,८२१ वर्ग मील तथा जनसंख्या २६,२७,०६१ (१६६१) है। यहाँ पर राप्ती, कुआनो, बान, मनोरामा, आमी (अनोमा) आदि नदियाँ बहती हैं। यहाँ की ढाल या नदियों का बहाव दक्षिण-पूर्व की ओर है। नेपाल की सीमा से राप्ती तक के भाग में शेष जिले से अधिक वर्षा होती है। यहाँ बखिरा, चदो, पथरा आदि कई झीलें हैं। इसके उत्तरी एव मध्यवर्ती भाग में जगल पाए जाते हैं, जिनमें जंगली सूअर, नीलगाय, भेडिये आदि जानवर मिलते हैं। यहाँ का जलवायु नम तथा केवल वर्षाऋतु के अंतिम

बदरीनाथ (देखे पृष्ठ १८६)
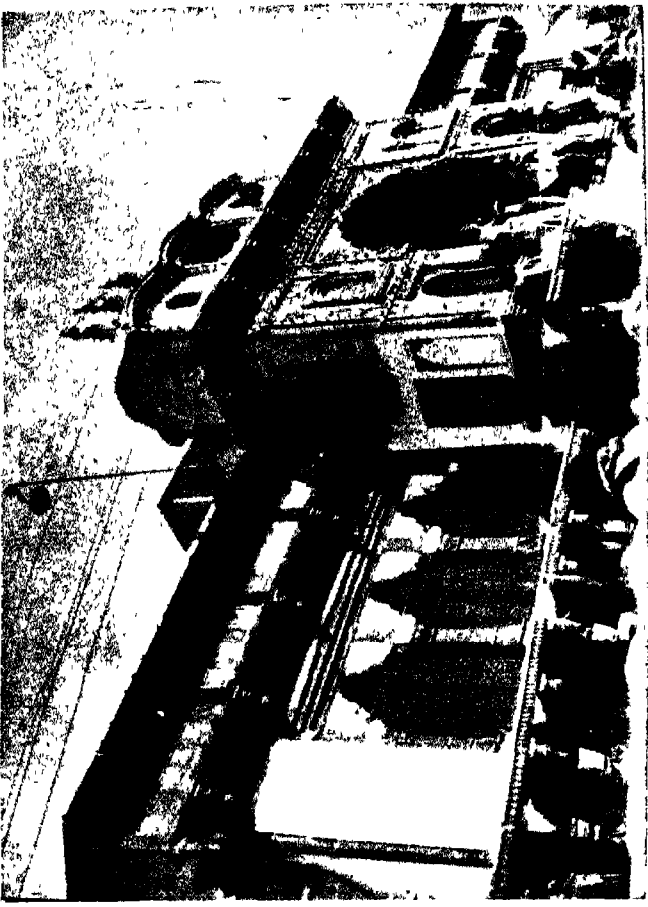
बदरीनाथ से हिमालय की गिरिमाला का दर्शन

[फोटो : चन्द्रधर त्रिपाठी, आई० ए० एस०, डिब्रुगढ़, असम]

बदरीनाथ का मंदिर

बराज (देखे पृष्ठ १६३)
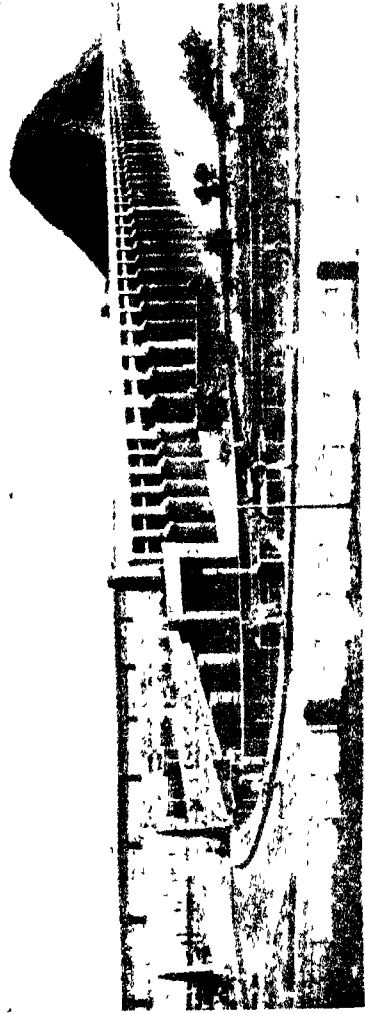
कृष्णा बराज

यह बराज विजयवाड़ा, कृष्णा जिला (आंध्र प्रदेश) में स्थित है।

बल्गेरिया (देखें पृष्ठ २१६)

लोक गीत गान

सोफिया का ऐलेक्जेंडर नेव्सकी स्क्वायर

समुद्रतट का आनंद

जल क्रीड़ा मग्न

समय को छोड़कर साल भर स्वास्थ्यप्रद रहता है। वार्षिक वर्षा ४६ इंच होती है। उपजाऊ भूमि तथा अच्छी जलवायु के कारण गन्ना, धान, गेहूँ तथा जौ अधिक उगाया जाता है। उद्योगों में करघा उद्योग तथा चीनी का परिष्करण प्रमुख है। मोटा सूती कपड़ा, पीतल के बरतन एवं छींट का कपडा बनाने का काम भी होता है। यहाँ से चावल, चीनी, तिलहन तथा चमड़ा बाहर भेजा जाता तथा कपडा, धातुएँ, नमक, कपास एव तंबाकू मँगाया जाता है। डुमरियागज, बाँसी, हरैया, बस्ती, शोहरतगढ, बानी, मेंहदावल आदि यहाँ के प्रमुख नगर हैं।

२. नगर, स्थिति : २६° ४७' उ० अ० तथा ८२° ४३' पू० दे। यह जिले के मध्य मे कुछ दक्षिण की ओर गोरखपुर – फैजाबाद उत्तर-पूर्वी रेलमार्ग पर स्थित नगर है। इसके पास ही कुआनो नदी बहती है। जिले का यह प्रमुख नगर, बाजार एव शासनकेंद्र है। यहाँ कुछ व्यापार भी किया जाता है। इसकी जनसख्या ३८,४०३ (१६६१) है। [सु० चं० श०]

बहमनी राजवंश दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के विरुद्ध दक्खिनी अमीरो के सफल विद्रोह के पश्चात् दक्खिन मे इस वश के १८ सुल्तानों ने १३४७ से १५२६ तक शासन किया। इनमे से आठ ने अपनी राजधानी गुलबर्ग रखी और शेष ने बीदर। इनके इतिहास की अधिकाश अवधि मे इनका राज्य दक्खिन के पठारी प्रदेश तक सीमित था। इनका आधिपत्य पश्चिमी समुद्री तट के दाबल और चाउल नामक बंदरगाहो पर रहा, किंतु गोवा को इन्हे अनेक बार जीतना पड़ा। कृष्णा और तुंगभद्रा का उपजाऊ दोआब बहमनी और विजयनगर के मध्य वैसे ही झगड़े का कारण बना रहा जैसे यह पश्चिमी चालुक्यो और राष्ट्रकूटो तथा यादवो और होयसलो के मध्य रहा था। यह सघर्ष अधिकतर अनवरत रूप से चलता रहा तथा दोनो सेनाएँ सर्वदा आमने सामने सघर्ष करती रही। उत्तर मे मालवा के सुल्तान की राजधानी मध्य प्रदेश स्थित शादियाबाद –माडू के साथ लगातार सघर्ष चलता रहा। १४६१-६२ मे मालवा के महमूद खिलजी, उडीसा के गजपतिराज कपिलेंद्र या कपिलेश्वर के साथ सीधे बीदर तक आगे बढ़े। नवयुवक राजा निजामुद्दीन अहमद तृतीय को भागकर फिरोजाबाद मे शरण लेनी पड़ी। आजकल इस नगर के खडहर भीमा नदी के तट पर विद्यमान है। महमूद गावा की कूटनीति से गुजरात के सुल्तान ने हस्तक्षेप किया जिसस बहमनी राज्य की रक्षा हुई।

यद्यपि अलाउद्दीन हसन बहमनशाह इस राजवश का संस्थापक था, फिर भी इसका सगठन उसके पुत्र मुहम्मद प्रथम ने किया था। केंद्रीय सरकार का विभाजन नागरिक (असैनिक), सैनिक और न्याय विभागों में किया गया था। नागरिक सरकार के प्रधान अधिकारी वकील या प्रधानमत्री, वज़ीर या मत्री तथा दबीर या सचिव थे। न्याय विभाग के पदाधिकारी, काज़ी या न्यायाधीश और मुफ्ती या इस्लाम के धर्मशास्त्री होते थे। नगरों की शांति और सुरक्षा की सुव्यवस्था कोतवाल या पुलिस कमिश्नर तथा मुहतासिब या जन सदाचार अधिकारी करते थे। साम्राज्य, चार अतराफों या राज्यों मे विभाजित किया गया था। इन चारों राज्यों के केंद्र गुलबर्ग, दौलताबाद, बरार और बीदर थे। (जिलों या) जनपदों के नागरिक और सैनिक प्रशासन के लिये तरफदार या राज्यपाल मौलिक रूप से उत्तरदायी थे।

महमूद गावाँ के मत्रित्वकाल में साम्राज्य के विस्तार के साथ साथ यह आवश्यक हो गया कि इसका पुनर्विभाजन उतने प्रदेशो मे किया जाए जितने से उचित प्रशासनिक व्यवस्था लागू की जा सके। इसलिये महमूद गावां ने पुराने चार राज्यों मे से गुलबर्ग, बीजापुर, दौलताबाद, जुनेर, गाविल, महूर, वारंगल, और राजमुंद्री नामक आठ प्रदेशो का निर्माण किया। तरफदारो का प्रभुत्व बहुत कम कर दिया गया और प्रत्येक तरफ के अतर्गत किलेदारो अथवा दुर्गो के सैनिक अधिकारियो को सीधे राजा के प्रति उत्तरदायी कर दिया गया। इसके अतिरिक्त मनसबदार होते थे जो भिन्न भिन्न सैनिक छावनियो मे रहनेवाले सैनिको को वेतन देने के अधिकारी होते थे। इन्हें अपनी जागीरो से प्राप्त होनेवाली धनराशि के आय और व्यय का विवरण प्रस्तुत करना पडता था। महमूद गावा ने प्रत्येक प्रदेश मे एक बड़ा भूभाग शाही रियासत के रूप मे निर्दिष्ट कर दिया। दक्षिण मे मुख्य रूप से फारस वासियो तथा फारसी बोलनेवाले मध्य एशिया वासी अफाकियो के आक्रमण के साथ साथ एक समस्या उठ खडी हुई जिसने तनाव और वर्ग सघर्ष का बीज वपन किया। तुगलक साम्राज्य से दक्खिन के पृथक होने के साथ साथ यहाँ इस्लाम धर्म संबंधी आस्थानो के मर्मज्ञो, समुद्र पार से आए व्यापारियो, विभिन्न कलाकारो एवं शिल्पियो, कवियो और साहित्यकारो का अतरागमन हुआ। खिलजी और तुगलक कालीन विजयों के पश्चात् अनेक लोग उत्तर से आकर दक्खिन मे बस गए। सन् १४२४ मे राजधानी गुलबर्ग से बीदर स्थानातरित हुई। इसके पहले ही सामंतवादी प्रशासन के दो वर्गों मे सघर्ष छिड गया था। सघर्ष के अनेक परिणामो मे से एक यह था कि महमूद गावा के विरुद्ध अवैध षड्यत्र रचा गया तथा अप्रैल १४८१ मे खुले दरबार मे उसका छलपूर्ण वध हुआ।

महमूद गावा के वध के साथ साथ उसके द्वारा आरभ किए गए सुधारो का अत हो गया। एक प्रतिक्रिया हुई और तरफदार पहले की अपेक्षा अधिक अधिकार तथा प्रभुत्व का उपभोग करने लगे। बड़े तरफदारों मे एक प्रकार का गृहयुद्ध आरंभ हो गया, जिनका परिणाम यह हुआ कि १५वी शताब्दी का अत होते होते स्वायत्तशासन सपन्न राज्यपालो द्वारा प्रशासित अहमदनगर, बीजापुर, बरार, बीदर और गोलकुडा नामक पाँच प्रदेशो की स्थापना हुई। बहमनी वश के ह्रास तथा अंतिम विलोपन के साथ ये राज्य स्वतत्र हो गए और इन्होने अपनी स्वतत्रता एव संस्कृति को तब तक सुरक्षित रखा जब तक वे पूर्ण रूप से मुगल साम्राज्य द्वारा हडप नही लिए गए। दक्खिन मे बहमनी शासन द्वारा जीवन के विभिन्न पक्षो मे अनेक महत्वपूर्ण नवीनताओ और परिवर्तनों की स्थापना की गई। अदोनी के घेरे के समय १३६६ ई० मे ही बंदूकों और बारूदो द्वारा संचालित अनेक आग्नेयास्त्रो का प्रयोग किया गया। इसके कारण सुरक्षा और किलेबदी की संपूर्ण परिकल्पना मे क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। विदेशी शत्रुओ के आक्रमणों से बचने के लिये साम्राज्य के चारो ओर किलेबंदी की गई। इसके अंतर्निहित महत्व के अतिरिक्त गुलबर्ग का किला वहाँ की अनुपम जामा मस्जिद के लिये प्रसिद्ध है। इस मस्जिद का निर्माण १३६७ मे हुआ और इसका संपूर्ण छतदार क्षेत्रफल २१६ × १७६ फुट है। ढालुआँ दीवालोवाली तुगलकी शैली के स्थान पर

धीरे धीरे पर्शियन शैली का आगमन हुआ। बीदर के किले में हमें पारसी मटचिनिया खपड़े की सजावट उपलब्ध है तथा सिंह और उदय होते हुए सूर्य की पर्शियन चित्रोंवाली सजावट तख्तमहल मे मिलती है। बीदर के स्वाभिमान का प्रतीक महमूद गावाँ का महान् मदरसा है, जिसकी अवशिष्ट ऊँची मीनार, बहुत बड़े हाल, पुस्तकालय, खपड़े की सजावट और मस्जिद आदि वस्तुएँ महामंत्री की ज्ञानप्रियता के स्मारक हैं।

बहमनी शासकों की सांस्कृतिक उपलब्धियों का सरसरी विवरण भी महान् सूफियों द्वारा जनजीवन पर डाले गए प्रभाव के उल्लेख के बिना पूरा नहीं हो सकता। तुग़लक़ साम्राजय की द्वितीय राजधानी दौलताबाद में स्थापित होने के पश्चात् इस नगर ने अनेक सूफियो को आकृष्ट किया था जिनकी कब्रें इस बड़े चट्टानी किले की दीवारों के आस पास बिखरी हुई हैं। शेख सिराजुद्दीन जुनैदी अलाउद्दीन हसन बहमन शाह का शिक्षक था। यह कहा जाता है, मुहम्मद प्रथम के राज्यारोहण के अवसर पर शेख ने कुछ मोटा कपड़ा मँगवाया और उसी कपड़े की एक क़मीज़, एक पगड़ी और एक कमरबंद बनवाए। उसी समय से भविष्य मे यही बहमनी वंश के राज्यतिलक के अवसर की पोशाक बन गई। बहमनी दक्खिन का सबसे प्रसिद्ध सूफ़ी संत हज़रत गेसू दराज़ बंदानवाज़ था। वह दिल्ली से गुलबर्गा ८० चांद्र वर्ष की उतरती अवस्था मे १४१३ मे आया था। वह दक्खिन के रहस्यवादी जीवन का केंद्र था, और जब कुछ वर्षों के पश्चात् वह मरा तो उसका मकबरा न केवल मुसलमानो के लिये, बल्कि हिंदुओं के लिये भी उपासना और भक्ति संबंधी क्रियाकलापो का केंद्र हो गया। दक्खिनी वास्तुकला के इस अनुपम निदर्शन का विकास फीरोज़शाह बहमनी के शासनकाल मे हुआ था। दक्खिन के सभी समुदायों के लोग उसकी जयती आज भी मनाते हैं।

इन सूफी संतों के खानकाह विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के मिलनस्थल हो गए। यह बड़ी रोचक बात है कि प्रारभ मे दक्खिनी कही जानेवाली नई संपर्कभाषा का प्रथम आभास हम सूफी पुस्तिकाओं जैसे मिराजुल आशिकीन गक्कीनामाह, शिकारनामाह इत्यादि के साहित्यिक वेश मे पाते हैं। [ए० के० शे०]

बहराइच १. जिला, स्थिति . २७° ३८' उ० अ० तथा ८१° ५०' पू० दे०। यह भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में उत्तर-पूर्व की ओर स्थित जिला है। इसके उत्तर में नेपाल देश, पूर्व मे गोंडा, दक्षिण में सीतापुर एवं बाराबकी, पश्चिम में लखीमपुर खीरी जिले स्थित हैं। इसकी पश्चिमी सीमा घाघरा नदी द्वारा निर्धारित होती है। इसका क्षेत्रफल २,६२० वर्ग मील है। इसको तीन भागों मे बाँटा जा सकता है १. मध्य का उच्च पठार २. पश्चिम का बड़ा घाघरा का मैदान जो कि पठार से लगभग ४०० फुट नीचा है। ३. पूर्व की ओर राप्ती का छोटा मैदान। उत्तर की ओर हिमालय की ढालें वनों से ढँकी हैं। दक्षिण की ओर शुष्कता बढ़ती जाती व जलधाराएँ भी समाप्त हो जाती हैं और अंत मे यह भाग गंगा के मैदान के रूप मे बदल जाता है। राप्ती, घाघरा आदि नदियाँ बहती हैं। यह कृषिप्रधान जिला है तथा लकड़ी (टिंबर) मे धनी है। इसकी जनसंख्या १४,६६,६२६ (१९६१) है।

२. नगर, स्थिति : २७° ३४' उ० अ० तथा ८१° ३६' पू० दे०। यह बहराइच जिले के मध्य भाग में स्थित है। इसके किनारे सरयू नदी बहती है। यह मुसलमानों का तीर्थस्थान है। सईद सालार मस ऊद का मकबरा भी यहीं है जो मस ऊद की मृत्यु के दो शताब्दी बाद, सूर्यमंदिर की जगह पर ही बनाया गया था। इसकी जनसंख्या ५६,०३३ (१९६१) है। यहाँ से नेपाल को जाने का मार्ग होने के कारण व्यापार में काफी उन्नति हो गई है। अनाज, चीनी, लकडी, तंबाकू आदि का व्यापार होता है। यहाँ एक छोटी सी औद्योगिक पट्टी भी है, जहाँ पर अधिकाश उद्योग स्थापित हैं।

बहरुल उलूम मुल्ला अब्दुल अली (पुत्र) मुल्ला निजामुद्दीन (पुत्र) कुतुबुद्दीन सिहालवी। (जन्म–१७३१ ई०) फ़िरंगी महल लखनऊ के उत्कृष्ट विद्वान् थे। रामपुर, बुहार (बर्दवान, बंगाल) तथा कर्नाटक के नवाब मुहम्मद अली खाँ की सेवा मे रहे। बहरुल उलूम (विद्यासागर) की उपाधि वहीं से प्राप्त की। १३ अगस्त, १८१० ई० को मद्रास मे देहावसान हुआ। वे इब्ने अरबी की शिक्षा से बड़े प्रभावित थे। उनकी रचनाओं मे मौलाना रूमी की मसनवी की टीका (लखनऊ १८७३, तीन जिल्द, फ़ारसी) सर्वश्रेष्ठ है। दर्शनशास्त्र एवं धर्मशास्त्र सबधी अनेक ग्रंथों की फारसी तथा अरबी मे मौलना ने रचना की।

सं० ग्रं०— रहमान अली . तज़किरए उलमाए हिंद (लखनऊ, १९१४ फारसी)। [सं० अ० अ० रि०]

बहलोल दे० लोदी वंश।

बहाउद्दीन, क़ुतुब आलम मख्दूम जहानिया सयद जलालुद्दीन के पौत्र थे। वह तथा उनके पुत्र मझन, शाह आलम गुजरात के बड़े प्रसिद्ध सूफी सत समझे जाते है। उनकी मृत्यु दिसबर, १४५३ ई० मे हुई थी। उनका मकबरा अहमदाबाद से तीन कास पर तबवा मे है।

सं० ग्रं०—अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी . अख्बारुल अख्यार (देहली, १९१४, फारसी)। [सं० अ० अ० रि०]

बहाउद्दीन जकरिया (जन्म लगभग ११८२–८३ ई० मुल्तान के निकट कोट करोर) भारतवर्ष मे सुहरवर्दी सिलसिले के संस्थापक शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी (मृत्यु – लगभग १२३४ ई०) के प्रसिद्ध शिष्य थे। १२०० ई० के लगभग शेख बहाउद्दीन ने मुल्तान मे खानक़ाह की स्थापना कर, शिक्षा दीक्षा प्रारभ कर दी। सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश, जिसने उन्हे शेखुल इस्लाम की उपाधि प्रदान की, इनका बहुत बड़ा भक्त था। उच्च कोटि के सूफी होने के बावजूद वे बडे वैभव से जोवन व्यतीत करते और समकालीन सुल्तानो की सहायता करते रहते थे। नुजहतुल अरवाह के लेखक मीर हुसेनी सादात और लमआत के रचयिता फख्रुद्दीन एराकी जिन्होंने सूफी मत की बड़ी उदार व्याख्या की, इनके शिष्य थे। उनका निधन २१ दिसबर, १२६२ ई० को मुल्तान मे हुआ। उनका मकबरा बड़ा भव्य है।

सं० ग्रं०— जमाली कंबोह . सियरुल आरेफ़ीन (देहली, १८९३ ई०, फारसी)। [सं० अ० अ० रि०]

बहाउद्दीन जुहैर, अबुलफ़ज़ल प्रख्यात अरबी कवि। १७ फरवरी, ११८६ को मक्का मे उत्पन्न हुआ। युवावस्था में क़ूस (उत्तरी मिस्र) जाकर कुरान का अध्ययन किया। १२२७ के आसपास वह काहिरा मे

सुलतान-अल-कामिल के पुत्र अल-सालीह अय्यूब की सेवा में नियुक्त हुआ, और सीरिया तथा उत्तरी मेसोपोटामिया पर आक्रमण के समय (१२३२) उसके साथ रहा। अल-कामिल की मृत्यु के पश्चात् अल-नासिर दाउद नाम के एक संबंधी ने षड्यंत्र करके अल-सालीह को कारागार में डाल दिया (१२३९)। जुहैर ने स्वामी की सकटापन्न स्थिति में उसका साथ दिया। अल-सालीह ने मिस्र का शासन सँभालते ही जुहैर को अपना मंत्री नियुक्त किया। काहिरा में ही १२५८ मे इसकी मृत्यु हो गई। इसका 'दीवान' उपलब्ध है। पामर ने परिष्कृत संस्करण में 'दीवान' का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है। सगीतपूर्ण कोमलकात पदावली उसकी कविता की प्रमुख विशेषता है। संपूर्ण काव्य मे उत्कृष्ट भावभूमि, शब्दविन्यास, शैली और अलंकार एक प्रतिभासंपन्न कलाकार का परिचय देते हैं।

बहाउद्दीन, नक्शबंद इस नाम पर तुर्किस्तान के प्रसिद्ध सूफी सिलसिले, सिलसलए ख्वाजगान का नाम नक्शबंदी सिलसिला पड़ा। उनका जन्म मार्च-अप्रैल, १३१७ ई० में बुखारा के समीप एक गाँव में हुआ। बाबा कुलाल एव ख्वाजा अब्दुल खालिक गुजदवानी से सूफी मत की दीक्षा ली। तत्कालीन मध्य एशिया की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उथल पुथल के कारण उनकी शिक्षा मे पर्याप्त कट्टरपन पाया जाता है। उन्होंने समा (सूफियों का सगीत एवं नृत्य) का उत्साहपूर्वक विरोध किया। मुगलों में तीमूर नक्शबंदी सिलसिले की शिक्षा से बडा प्रभावित था। इसी कारण भारतवर्ष में बाबर के समय से नक्शबदी सिलसिले की बड़ी उन्नति हुई।

सं० ग्रं०—फखरुद्दीन अली बिन हुसेन वाइज काशीफ़ी : रशहाते ऐनुल हयात (लखनऊ, १८९०, फारसी); सैयद अतहर अब्बास रिजवी : मुसलिम रिवाइवलिस्ट मूवमेंट्स इन नार्दर्न इंडिया इन द सिक्सटीथ ऐंड सेवेंटीश सेंचुरीज (आगरा, १९६५)।

[सै० अ० अ० रि०]

बहादुरशाह (१७७५-१८६२) दिल्ली के अंतिम मुगल सम्राट्। पिता अकबर शाह की मृत्यु के बाद १८३७ ई० में सिंहासन पर बैठे ये नाम मात्र के ही शासक थे। वास्तविक राज्याधिकार अंग्रेजो के हाथ मे था तथा दक्षिण मे मरहटो की शक्ति बढती जा रही थी। ये फारसी के अच्छे विद्वान् थे और उर्दू में प्रभावोत्पादक कविता भी करते थे। इनके रचित कई 'दीवान' उपलब्ध हैं। कविता की ओर अधिक झुकाव होने के कारण राजकार्यों की ओर यथेष्ट ध्यान नही देते थे। सन् १८५७ के स्वातंत्र्ययुद्ध मे इन्होने नेतृत्व ग्रहण किया, इसलिये युद्धसमाप्ति पर अंग्रेज शासकों ने इन्हे कैद कर लिया और जहाज में बैठाकर परिवार सहित रंगून को भेज दिया। वहीं अंग्रेजों की नजरबंदी में सन् १८६२ में इनका देहांत हो गया।

बहादुरशाह गुजरात का (१५०६-१५३७) १४०४ ई० में गुजरात के गवर्नर जफर खाँ ने मुजफ्फर शाह की उपाधि धारण की तथा वहाँ एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। १५११ ई० मे मुजफ्फर शाह द्वितीय वहाँ का शासक हुआ। इसके आठ पुत्र थे, जिनमे बहादुर सबसे योग्य तथा महत्वाकाक्षी था। १५२६ ई० मे मुजफ्फर शाह की मृत्यु हो गई। इस समय बहादुर दिल्ली में था। वहाँ भी वह अफगानों में जनप्रिय हो गया था तथा कुछ उमरा इब्राहिम लोदी के स्थान पर उसे उद्दी पर बैठाना चाहते थे। पानीपत के प्रथम युद्ध को उसने दूर से देखा था। मुगलों की सफलता ने उसे इतना भयभीत कर दिया कि मुगलों से युद्ध करने का उसे कभी साहस नहीं हुआ। पिता की मृत्यु के पश्चात् बड़ा भाई सिकंदर गद्दी पर बैठा किंतु कुछ ही दिनों मे वह मार डाला गया। उमराओं के निमंत्रण पर बहादुर गुजरात आया और बिना किसी कठिनाई के जुलाई, १५२६ ई० मे गुजरात का शासक बन गया।

बहादुरशाह लगभग ११ वर्ष गुजरात का शासक रहा (जुलाई १५२६ से फरवरी १५३७ ई० तक)। इस बीच अपनी योग्यता तथा शासन प्रबंध से उसने इतना यश प्राप्त कर लिया कि आज भी गुजरात के प्रमुख शासकों में उसकी गणना होती है। उसने एक शक्तिशाली सेना—विशेषतया तोपखाना—संगठित किया। हिंदुओं के साथ उसका बर्ताव अच्छा था। उसने अपने महल, हाथियों इत्यादि के संस्कृत नाम दिए। वह संस्कृत और कला का भी पोषक था। उसका शासन संगठित था।

बहादुर महत्वाकांक्षी था। उसने शीघ्र ही चंदेरी, भीलसा तथा रायसीन पर अधिकार कर लिया। १५३२-३३ मे उसने राजपुताने में प्रवेश किया तथा चित्तौड़ का घेरा डाला। इसी समय हुमायूँ के ग्वालियर आने से उसने चित्तौड़ से संधि कर ली। बहादुरशाह की दृष्टि दिल्ली पर थी। उसकी सेना तथा विशेषतया तोपखाना शक्तिशाली था। गुजरात के शासकों का कोष अपार था। बहादुर ने दिल्ली पर अधिकार करने की योजना बनाई। उसने ऐसे लोगों को जो मुगल दरबार से असंतुष्ट थे शरण दी। इनमे सुल्तान आलम खाँ अलाउद्दीन लोदी, तातार खाँ तथा मुहम्मद जमान मिर्जा प्रमुख थे। शरणार्थियो के प्रश्नपर हुमायूँ तथा बहादुर शाह मे पत्रव्यवहार हुआ किंतु बहादुर शाह उन्हें वापिस करने को तैयार नही हुआ। इनके नेतृत्व मे बहादुर शाह ने मुगल साम्राज्य पर तीन तरफ से आक्रमण करने की एक महान् योजना बनाई। किंतु इसमें सफलता नही मिली।

जिस समय बहादुरशाह चित्तौड को घेरे हुए था उसी समय हुमायूँ ने गुजरात पर आक्रमण कर दिया। बहादुर चित्तौड विजय कर गुजरात की तरफ रवाना हुआ, मार्ग में मन्दसौर के निकट दोनों सेनाएँ एक दूसरे के सामने डटी रही। बहादुर शाह को संदेह हुआ कि उसके प्रमुख सेना नायक मुगलो से मिलें हैं। रात को वह मंदसौर से भाग कर माडू चला गया। मुगलो के वहाँ पहुँचने के पश्चात् वहाँ से भागकर चपानीर और वहाँ से डियू चला गया। पूरे गुजरात पर मुगलो का अधिकार हो गया। बहादुर शाह ने मुगलों की सेना का खुलकर एक स्थान पर भी सामना नहीं किया। इसका प्रमुख कारण कदाचित् पानीपत के प्रथम युद्ध मे प्रदर्शित मुगलों की योग्यता थी।

मुगल गुजरात पर शासन न कर सके। मुगल राजकुमार अस्करी की मूर्खता तथा बहादुरशाह की जनप्रियता से गुजरात की जनता ने विद्रोह कर दिया और मुगलों को गुजरात से भाग जाना पड़ा। इस विद्रोह मे हिंदू तथा मुसलमान सभी ने सहयोग दिया। डियू से लौटकर बहादुरशाह ने गुजरात पर अधिकार कर लिया।

जब तक शक्ति हाथ में थी बहादुरशाह ने पुर्तगालियों को दूर रखा। अपने निष्कासन के समय अपनी विवशता में उसे उनसे संधि करनी पड़ी। फरवरी, १५३७ ई० में बिना पूर्वसूचना के तथा बिना सुरक्षा के प्रबंध के अपने उमरावों के मना करने पर भी बहादुर पुर्तगाली गवर्नर से मिलने गया। वहाँ उसे धोखा देकर पुर्तगालियों ने मार डाला और उसकी लाश समुद्र में फेंक दी। बहुत दिनों तक लोगों को उसकी मृत्यु पर विश्वास नहीं हुआ तथा कई वर्ष तक उसके प्रकट होने की सूचनाएँ मिलती रहीं।

बहादुरशाह ऐसे जनप्रिय शासक मध्ययुग में नहीं हुए हैं। गद्दी पर बैठने के समय उसकी अवस्था २० वर्ष की थी और मृत्यु के समय वह ३१ वर्ष का था। इस बीच इतिहास में उसने जो स्थान बना लिया वैसा सौभाग्य कम लोगों को प्राप्त होता है।

[ह० शं० श्री०]

बहामा द्वीपसमूह स्थिति : २४° ४०' उ० अ० तथा ७४° ०' प० दे०। संयुक्त राज्य, अमरीका के फ्लोरिडा प्रायद्वीप से लेकर दक्षिण-पूर्व में हेटी तक फैले द्वीपों का एक समूह है। इस द्वीपसमूह के अंतर्गत कुल २६ द्वीप, ६६१ नीची सतह या मूँगे के द्वीप और २,३८७ चट्टानी द्वीप आते हैं। द्वीपसमूह का क्षेत्रफल लगभग ४,४०४ वर्ग मील है। यह द्वीपसमूह समशीतोष्ण कटिबंध में पड़ता है। औसत वार्षिक वर्षा लगभग ३८ इंच है। जाड़े का औसत ताप लगभग २२° सें० तथा गरमी का औसत ताप ३०° सें० है। गल्फस्ट्रीम धारा के प्रभाव के कारण अक्सर कोहरा छा जाया करता है। यहाँ का अधिकांश भू भाग चूने के पत्थर से बना है। कैट द्वीप पर सबसे ऊँची चोटी (४०० फुट) है। गहरे समुद्र में मछली मारने का काम अधिक होता है। इस द्वीपसमूह के मुख्य निर्यात मछली, टमाटर, नमक, लुगदी तथा सीसल (sisal) हैं। मुख्य आय के स्रोत विदेशी पर्यटक हैं। इग्लैंड के लोग सर्वप्रथम १६०० ई० के लगभग न्यू प्राविडेंस द्वीप पर आकर बसे थे। इस द्वीपसमूह का मुख्य द्वीप न्यू प्रॉविडेंस है। अन्य मुख्य द्वीप ग्रैंड बहामा, बड़ा ऐबाको, छोटा ऐबाको ऐंड्रॉस, एलूथेरा, सैन सैल्वाडॉर हैं। नैसॉ इस द्वीपसमूह की राजधानी है। इस द्वीपसमूह की कुल जनसंख्या १,०६,६७७ (१९६१), है, जिसमें ८० प्रति शत लोग भारतीय तथा हब्शी हैं। [उ० कु० सिं०]

बहावलपुर स्थिति नगर, २८° ५५' उ० अ० तथा ७१° ३०' पू० दे०। यह एक डिवीजन तथा नगर है जो पश्चिमी पाकिस्तान में सतलुज नदी के बाएँ ओर प्राचीन पंजाब तथा सिंध के मध्य में स्थित है। इस डिविजन का क्षेत्रफल ३२,४४३ वर्ग मील तथा जनसंख्या ३२,०५,००० (१९६१) है। बहावलपुर शहर इस राज्य की राजधानी है जो सतलुज नदी के बाएँ किनारे पर स्थित है। १८ वीं शताब्दी में यह स्वतंत्र राज्य था। दोनों महायुद्धों में इस राज्य का सहयोग काफी रहा है। इस राज्य में नदी के किनारे के भाग को छोड़कर पहले सारा भूभाग उजाड़ था परंतु सिंचाई का प्रबंध हो जाने के कारण खेती का विस्तार लगभग पूरे प्रदेश में हो गया है।

[उ० कु० सिं०]

बहुछिद्रिल फोड़ा (कार्बंकल, Carbuncle) वास्तव में अधस्त्वक ऊतक का कोथ होता है, किंतु ऊपर से इसकी आकृति एक विस्तृत विद्रधि या फोड़े के समान होती है, जिसके चर्म में बहुत से छिद्र होते हैं। इन छिद्रों से गाढे पूय की बूँदें निकलती रहती हैं। इसका कारण स्टैफिलोकॉकस ऑरियस (staphylococus aureus) जीवाणु होता है, जो चर्म के नीचे के ऊतकों में कोथ उत्पन्न कर देता है। छेदन करने पर पूतिवस्तु (slough) के स्तर प्रकट होते हैं, जिनको काटकर निकालना पड़ता है। धीरे धीरे मृत ऊतकों के ये स्तर पूय में परिणत हो जाते हैं।

चिकित्सा — पेनिसिलीन के इंजेक्शनों से प्राय: रोग दब जाता है। अधिक पूतिवस्तु के बन जाने पर क्रूस (×) के आकार का छेदन करके, चर्म भागों को चिमटी से उठाकर, उनके नीचे से पूतिवस्तु को काटकर निकाल दिया जाता है और मैग्नीशियम सल्फेट ४५, ग्लिसरीन ५५ और कार्बोलिक ऐसिड ०.५ भाग के अवलेह का लेप लगाने से व्रण स्वच्छ हो जाता है। इसके पश्चात् उसका साधारण व्रण की भाँति उपचार किया जाता है।

सं० ग्रं० — स्टर्लिंग शरीर क्रिया विज्ञान; हॉवेल : शरीर क्रिया विज्ञान। [मु० स्व० व०]

बहुत्ववाद (Pluralism) यह पद उस दार्शनिक विचारधारा का द्योतक है जो विश्व को अनेक स्वतंत्र इकाइयों से निर्मित मानती है तथा समस्त सत्ता को एक अथवा दो अंतिम तत्वों में घटाने के प्रयास को निरर्थक समझती है। महत्वपूर्ण होने के कारण संख्या का प्रश्न सत्ताशास्त्रीय सिद्धांतों को एकत्ववादी तथा अनेकत्ववादी श्रेणियों में विभाजित करता है। कतिपय दार्शनिक सत्ता को मुख्यतया एक इकाई अथवा सहति मानते हैं परंतु अन्य स्पष्टतया दृष्टिगोचर होनेवाले विविध एवं असंख्य गुणों के कारण तत्वों की बहुलता में विश्वास करते हैं।

यद्यपि बहुत्ववाद का अर्थनिर्धारण दुष्कर है तथापि इसका प्रचलित अर्थ शाब्दिक व्युत्पत्ति के अनुकूल है और प्राय: निश्चित सा है। गुणात्मक अर्थ में बहुत्ववाद सत्ता को अनेक गुणयुक्त पदार्थों से निर्मित मानता है तथा परिमाणात्मक अर्थ में इससे अपेक्षाकृत स्वतंत्र, पदार्थयुक्त स्व-स्थित इकाइयों को सत्ता माननेवाले सिद्धांतों का बोध होता है जिनके अनुसार वस्तुएँ विशेषण न होकर पदार्थमय अस्तित्व वाली हैं। सत्ता के अनेक घटकों की प्रकृति को न तो भौतिक और न आध्यात्मिक माननेवाला सिद्धांत 'उदासीन बहुत्ववाद' है।

भारतीय दार्शनिक परंपरा में कणाद का वैशेषिक परमाणुवाद सर्वोत्कृष्ट है। यह 'अणुवादी बहुत्ववाद' पृथ्वी, जल, वायु तथा तेज के नित्य, अपरिवर्तनशील तथा अविभाज्य परमाणुओं का आकाश के साथ मिलकर विश्व का निर्माण करना मानता है। प्रकार-भेद-युक्त ये परमाणु प्राथमिक तथा द्वैयतिक गुणों एवं कर्मों के आश्रय हैं। अदृष्ट शक्ति से प्रेरित गतिहीन परमाणु आत्माओं के धर्माधर्म फलभोग हेतु सृजन में रत होकर अनित्य संघात प्रस्तुत करते हैं जो प्रयोजन सिद्धि के पश्चात् प्रलय में वियोजित होकर निष्क्रिय हो जाते हैं।

'परमाणुवादी अणुवाद' का अन्य उदाहरण जैन दर्शन प्रस्तुत करता है जो परमाणुओं में प्रकारभेद नहीं मानता। मात्रा-भेद-युक्त अविभाज्य एवं शाश्वत परमाणु अनित्य गुणों से युक्त विविध

पदार्थों का निर्माण करते हैं। चार्वाक दर्शन भी पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि सदृश प्रत्यक्ष भूतो से विश्वनिर्माण मानकर जड़वादी अनेकत्ववाद प्रस्तुत करता है।

परतु अनेक निष्क्रिय परमाणु असत् कार्यवादी सिद्धात के अनुसार प्रपच का निर्माण नही कर सकते अत ये मत समीचीन नही हैं।

पाश्चात्य दार्शनिक जगत् मे एपीडाक्लिज, डिमाक्रिटस तथा प्लैटो विशेष उल्लेखनीय हैं। 'भौतिक बहुत्ववाद के प्रवर्तक डिमाक्रिटस शून्य मे निष्प्रयोजन भ्रमण करते हुए असख्य गतिशील परमाणुओ के प्रकृति के नियमानुसार आकस्मिक मिलन को सृष्टि का हेतु मानते हैं। प्रेरणाहीन सूक्ष्म परमाणुओ की यात्रिक प्रक्रिया मनस् की भी व्याख्या करती है अत. यह 'नास्तिक बहुतत्ववाद है।'

स्वतंत्र, स्वस्थित एव प्रयोजनरहित असख्य परमाणु सहयोग, समायोजन, सामजस्य, सौंदर्य तथा संकल्पस्वातत्र्य को नही समझा सकते। अत विविधता एव अनेकत्व को अक्षुण्ण रखकर सृष्टि सृजन, क्रम व्यवस्था इत्यादि की नैतिक एव आध्यात्मिक व्याख्या लाइब्निज बर्कले तथा मेकटेगार्ट ने की। भौतिक परमाणुओ मे ईश्वर द्वारा व्यवस्था आस्तिक बहुत्ववादियो ने स्वीकार की।

लाइब्निज ने अनेक आध्यात्मिक, स्वयक्रियाशील, अप्रसारित, गवाक्षहीन, व्यक्तिगत अद्वितीयतायुक्त, अतिम, विभिन्न चेतनायुक्त तथा अत आध्यात्मिक चिद् विदु शक्तिप्रयोग के कारण बाह्य दर्शक को प्रसरित जगत् की प्रतीति कराते हैं। प्रमुख चिद् विदु द्वारा 'पूर्व स्थापित सामजस्य' की परिकल्पना स्वकेंद्रित चिद्-विदुओ मे सामजस्य की व्याख्या करती है।

प्राचीन बहुत्ववाद विश्व को सामजस्यपूर्ण तथा स्वस्थित इकाई तो मानता ही था परतु वैज्ञानिक खोजो से अभिभूत नव्य बहुत्ववाद विश्व की अनेकानेक भिन्नताओ, विचित्रताओ, विरोधो तथा बेसुरेपनो, पर मुग्ध है। विलियम जेम्स 'बहुत्ववादी जगत्' मे वस्तुओ की पृथक्ता, भिन्नता, स्वस्थिरता, स्वतत्रता, विचित्रता, अनिश्चितता, स्वच्छदता, अनेकता एव अस्तव्यस्तता पर बल देता है। नव्य वस्तुवाद अनेक भौतिक तथा मानसिक वस्तुओ के साथ सबधो, सिद्धातो, न्याय, सौदर्य जैसी देश-काल से परे वस्तुओ के अस्तित्व को स्वीकार करता है। इस वस्तुवादी-बहुत्ववाद ने पुदगल-जनित एवं विकासवादी कठिनाइयो से भी मुक्त किया है तथा सकल्पस्वातत्र्य, प्रयोजन, रचनात्मक मूल्य एव ईश्वर का भी अस्तित्व स्वीकार किया है, यद्यपि यह चेतना की उचित व्याख्या नही कर पाया है और न रचनात्मक सश्लेषण के उद्गम का 'स्वरूप' ही निर्धारित कर पाया है। [रा० भ० क०]

बहुदेववाद ईश्वरीय सत्ता मे विश्वास रखनेवाले एकदेववादी या बहुदेववादी हो सकते है। एक ईश्वर मे निष्ठा रखने वाले एकदेववादियो के विपरीत बहुदेववादी अनेक देवताओं की सत्ता मे विश्वास रखते है तथा उनकी पूजा करते हैं। इन दोनो के बीच की एक समन्वयात्मक स्थिति भी हो सकती है। अनेक देवताओ की सत्ता मे विश्वास रखते हुए भी उन्हे एक ही परम शक्ति की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ माना जा सकता है।

हिंदू धर्म के इतिहास में इन तीनो प्रकार की मान्यताओं के उदाहरण मिलते हैं। वैदिक युग के प्रारंभ मे अनेक देवताओं की उपासना करने का प्रचलन था। ऋग्वेद मे अनेक देवो की भव्य स्तुतियो का बाहुल्य है। देव का अर्थ है द्युतिमान्। देव प्रकृति की विशाल शक्तियो को द्युतिमान् या प्रकाशित करते हैं। सभवतः चमत्कारपूर्ण और विस्मयजनक प्रकृति के दृश्य और घटनाएँ देखकर वैदिक युग के ऋषियो ने उन्हे 'देव' का अभिधान प्रदान किया। ये देव तीन प्रकार के — आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक है। वेदो मे इन तीनों प्रकार के देवो की उपासना की गई है। अग्नि, मरुत, इद्र, सविता आदि प्रधान देवता है। वैदिक युग के उत्तर काल मे इन सब देवो के पीछे निहित एक परम शक्ति की उद्भावना कर ली गई थी।

> इद्र मित्रं वरुणमग्नि माहु
> रथो दिव्य स सुपर्णो गुरुत्वात्
> एकं सद्विप्रा बहुधा वदति
> अग्नि यम मातरिश्वानमाहु:
> —ऋ० १।१६४।४६

उपनिषदो की रचना के पूर्व ऋषियो ने एक परम शक्ति की प्रधानता स्वीकार कर ली थी किंतु प्रचलन बहुदेववाद का ही था। उपनिषत्काल मे विभिन्न देवताओ का गौरव कम हो गया। ऋषि उनकी उपासना से पराङ्मुख हो गए। अनेक देवताओ की सत्ता का खडन करके यज्ञ करने की परपरा का उच्छेद नही किया किंतु ब्रह्मचितन को उन्होने सर्वोपरि अवश्य माना और ब्रह्मविद्या का प्रचार किया अत यह स्पष्ट रूप से एकदेववादी युग कहा जा सकता है।

पौराणिक युग मे स्थिति कुछ भिन्न हो जाती है। स्कद पुराण मे अठारह पुराणो के नाम आते है। इन सब मे भिन्न भिन्न देवताओं की प्रधानता प्रतिपादित की गई है। जिस पुराण मे विष्णु को सर्वोपरि देव कहा गया है उसमे अन्य देवताओ को विष्णु के आराधक रूप मे प्रस्तुत किया गया है। शिवपुराण मे शिव ही सर्वोच्च देवता हो जाते है और अन्य सब देवता उन्ही की उपासना करते है। इस प्रकार पुराण युग मे अनेक देवताओ की मान्यता रहते हुए भी उनमे से किसी एक देवता को प्रधान मान कर उपासना करने की पद्धति रही है। अत यह भी एक प्रकार का बहुदेववाद ही है।

यही स्थिति थोड़े बहुत हेर फेर से तुलसी, सूर, चैतन्य, रामकृष्ण आदि के प्रतिपादित धर्मों मे भी रही है। यह पौराणिक युग के बहुदेववाद का ही परिमार्जित रूप था। अब भी हिंदू समाज के सास्कृतिक कार्यक्रमो मे बहुदेववाद की मान्यता प्रचलित है। केवल तार्किक ज्ञान की गहनता मे जानेवाले लोग ही एकदेववाद या अद्वैतवाद की भावभूमि पर पहुँचते है।

भारतेतर देशो मे भी बहुदेववाद का प्रचलन रहा है। ईसाई धर्म मे ट्रिनिटी का विश्वास बहुदेववाद का ही एक रूप है। प्राचीन यूनान मे भी अनेक देवताओ की उपासना की जाती थी। सुकरात पर आरोप लगाए गए थे कि वह राष्ट्र के देवताओं की सत्ता

अस्वीकार करता है, अपने नए देवताओं की स्थापना करता है और अपने क्रांतिकारी विचारों से नवयुवकों को पथभ्रष्ट करता है। सुकरात के पहले भी देवताओं का विरोध किया जा रहा था। इससे यह निष्कर्ष स्पष्टत: निकाला जा सकता है कि वहाँ बहुदेववाद प्रचलित था।

इस बात पर विवाद हो सकता है कि पहले बहुदेववाद की अवधारणा उत्पन्न हुई या एकदेववाद की। प्राय: विद्वानों का विचार है कि मनुष्य को आदिकाल में अपने आसपास अपने से प्रबल एक अनिश्चित शक्ति का आभास मिला होगा। उस समय अभिव्यंजना शक्ति पर्याप्त समर्थ न हो सकने के कारण उसका कोई नामनिर्देश न किया जा सका। उस समय एकदेववाद या बहुदेववाद का प्रश्न नहीं था। किंतु जीवन के सुख दु:खों, अनुकूल प्रतिकूल वातावरण और प्रकृति के कोप एवं वरदानों ने उन शक्तियों के सामने श्रद्धावनत कर दिया जिनपर उसका जीवन अवलंबित था। उस काल मे मनुष्य की अभिव्यंजना की असमर्थता के कारण किसी अनिर्दिष्ट शक्ति को तो नाम न दिया जा सका किंतु सूर्य, चंद्र, बादल, बिजली, सागर, सरिता आदि रूप और आकार मे दिखाई देनेवाली शक्तियों को नाम देना पड़ा और इस प्रकार बहुदेववाद की स्थापना हो गई।

जो लोग एकदेववाद के पूर्व बहुदेववाद का प्रचलन मानते हैं, उनका तर्क है कि आदिकाल मे मनुष्य प्रकृति के रहस्य नही समझता था। उसे प्रकृति के मूल तत्वों के गुण ज्ञात नही थे। अत: वह स्वभाव से अपने व्यक्तित्व की ही भाँति प्रकृति की विशाल वस्तुओं को सचेतन सत्ता मानने लगा। अपने से अधिक शक्तिशाली प्रकृति की शक्तियों के सामने वह श्रद्धानत होकर उनकी अभ्यर्थना करने लगा। इस प्रकार बहुदेववाद आदिकाल से ही प्रचलित हो चला था।

इसके अतिरिक्त कुछ लोगों का यह विचार है कि प्रारंभ मे अनेक आत्माओं की मान्यता स्वीकार की गई। कुछ लोग उन आत्माओं की पूजा करते रहे और कुछ उनकी उपेक्षा करते रहे। वैयक्तिक और अनिश्चित आत्माओं के बजाय अवैयक्तिक और निश्चित नामरूपवाले देवताओं की अवधारणा अधिक सुगम होने के कारण लोगों का झुकाव देवताओं की ओर सहज ही हो गया। इस प्रकार बहुआत्मवाद के बाद बहुदेववाद का प्रचलन हो गया। यह विकास कालक्रम मे भले ही न हुआ हो, किंतु तार्किक चिंतन की प्रकिया में अवश्य ही हुआ होगा।

विलियम जेम्स का कथन है कि बहुदेववाद साधारण लोगों का धर्म सदा से रहा है, और अब भी है। इसे धर्मविरुद्ध तो नही कहा जा सकता, क्योंकि धार्मिक भावना के उदय होने मे यह एक आवश्यक स्थिति होती है, किंतु अनेक देवताओं की सत्ता आधुनिक वस्तुवादियों द्वारा जब तक आवश्यक सिद्ध नहीं की जाती बहुदेववाद की जड़ मजबूत नही हो सकती। विचारगांभीर्य बढ़ते ही इसने अपना स्थान खो दिया। पश्चिम में ईसाई मत ने शिक्षित लोगों को ईश्वर की हिब्रू अवधारणा मानने को राजी कर लिया, परिणामत: बहुदेववादी विचार की मान्यता कम होती गई। यूनान में भी यही हुआ। भारत में भी वेदांत के सामने बहुदेववादी सिद्धांत दुर्बल हो गया। बहुदेववाद का खंडन भले ही न किया गया हो किंतु वह पिछड़ गया। दर्शन और धर्म के तार्किक चिंतकों ने इसका समर्थन नही किया।

[ह० ना० मि०]

बहुपद (Polynomial) प्रारंभिक बीजगणित में + और − चिह्नों से संबद्ध कई एक पदों के व्यंजक (expression) को कहते हैं, यथा

$$३क + २ख - ५ग \quad (3a+2b-5c)$$

पदों की संख्या के अनुसार इसके विशिष्ट उपनाम एकपद (monomial), द्विपद (binomial), आदि होते हैं। उच्चतर गणित में बहुपद का विशिष्ट उपयोग ऐसे व्यंजक के लिये होता है जिसके पदों मे किसी एक चर राशि, या एक से अधिक चर राशियों, के शून्य अथवा धन पूर्णांक घात आरोह या अवरोह क्रम मे हो, यथा

$$३य + \sqrt{२}\,य^{२} - \tfrac{१}{४}\,य^{४} \quad (3x + \sqrt{2}\,x^{2} - \tfrac{1}{4}x^{4}) \quad \ldots (१)$$

$$-६\,य^{६}र + ५\pi\,य^{२}र^{२} - कय \quad (-6x^{6}y + 5\pi x^{2}y^{2} - a\,x) \quad (२)$$

व्यंजक (१) य [x] का बहुपद है और (२) य, र [x, y] का तथा क [a] उसमे अचर (constant) है। यदि य [x] के स्थान में सर्वत्र कोई अन्य व्यंजक, मान लें, लघु य [log x] रख दिया जाय, तो नया व्यंजक लघु य [log x] का व्यंजक कहलाएगा। पदों के घातों मे से महत्तम को बहुपद का घात (डिग्री) कहते हैं। यदि एक से अधिक चर राशियाँ हों, तो विभिन्न पदों में चर राशियों के घातों के योगफलों मे से महत्तम को बहुपद का घात कहते हैं। इस प्रकार बहुपद (१) का घात ४ है और (२) का ७। ऐसा भी कहा जाता है कि बहुपद (२) य [x] मे छठे घात का और र [y] मे द्वितीय घात का है।

दो बहुपदों का योगफल, अंतर और गुणनफल बहुपद ही होता है, किंतु उनका भागफल बहुपद नहीं होता। दो बहुपदों के भागफल को, जिनमें एक संख्यामात्र भी हो सकता है, परिमेय फलन (rational function) कहते हैं। चर य [x] मे घात म (m) का व्यापक बहुपद यह है :

$$क_{०}\,य^{म} + क_{१}\,य^{म-१} + \ldots + क_{म},\; क_{०} \neq ०$$

$$[a_{0}\,x^{m} + a_{1}\,x^{m-1} + \ldots + a_{m},\; a_{0} \neq 0]$$

बीजगणित का एक मौलिक प्रमेय यह है कि यदि फ (य) चर राशि य मे घात म का बहुपद है, तो बहुपद समीकरण फ (य) = ० के सदा म मूल होते है। ये मूल संमिश्र (complex) भी हो सकते हैं और संपाती (coincident) भी।

यदि फ (य) = ० का कोई मूल $क_{१}$ है तो बहुपद फ (य) मे य − $क_{१}$ का भाग पूरा चला जाता है और भागफल मे एक बहुपद $फ_{१}$(य) घात म − १ का प्राप्त होता है। अब बहुपद समीकरण $फ_{१}$(य) = ० के म − १ मूल होंगे और यदि इसका एक मूल य − $क_{२}$ है (यह भी संभव है कि $क_{२} = क_{१}$), तो फिर $फ_{१}$ (य) मे य − $क_{२}$ का भाग पूरा चला जायगा। इस प्रकार यदि $क_{१}, क_{२}, \cdots क_{र}$ विभिन्न मूल हैं, तो

$$\left.\begin{array}{l} फ(य) = क_{०}\,(य-क_{१})^{ब_{१}}\,(य-क_{२})^{ब_{२}} \ldots (य-क_{र})^{ब_{र}} \\ {[F(x) = a_{0}\,(x-a_{1})^{b_{1}}\,(x-a_{2})^{b_{2}} \ldots (x-a_{r})^{b_{r}}]} \end{array}\right\} (३)$$

जहाँ $ब_{१}$ मूल $क_{१}$ की बहुलता है, इत्यादि और $ब_{१} + ब_{२} + \cdots + ब_{र} = म$। यह एक महत्वपूर्ण प्रमेय है कि फ (य) का गुणनखंडन (३) अद्वितीय होता हैं।

यदि हम फ (य) के गुणांकों और गुणनखंडों में प्रयुक्त संख्याओं पर यह प्रतिबंध लगा दें कि वे किसी अमुक क्षेत्र की होंगी, तो मूलों

का अस्तित्व अवश्यंभावी नहीं रहता (देखें बीजगणित)। इतना अवश्य है कि यदि बहुपद का गुणनखडन हो सकेगा, तो गुणनखंड अद्वितीय होंगे।

विभिन्न शाखाओं में बहुपद का उपयोग — त्रिकोणमिति का एक महत्वपूर्ण प्रमेय यह है कि यदि म कोई धनात्मक पूर्णांक है, तो कोज्या मय की अभिव्यक्ति कोज्या य के म घातवाले बहुपद के रूप में की जा सकती है, यथा

कोज्या २य = २ कोज्या^{२}य–१, कोज्या ३य = ४ कोज्या^{३}य–३ कोज्या य

ज्या मय के बारे में प्रमेय यह है कि यदि म विषम है तो ज्या मय की अभिव्यक्ति ज्या य के म वें घात के बहुपद के रूप मे की जा सकती है और यदि म सम है तो ज्या म य/कोज्या य की अभिव्यक्ति ज्या य के म – १ वें घात के बहुपद के रूप में होगी, यथा

ज्या ३य = ३ ज्या य — ४ ज्या^{3} य,

ज्या ४ य = ४ कोज्या य (ज्या य – २ ज्या ^{3} य)।

वैश्लेषिक ज्यामिति मे वक्रो का अध्ययन उन्हे दो चरो के बहुपद समीकरण द्वारा निरूपित कर किया जाता है। इसी प्रकार तलो के अध्ययन के लिये तीन चरवाले बहुपद समीकरणों की सहायता ली जाती है [देखे **विश्लेषणीय ज्यामिति**]। स्वेच्छ घात के बहुपद समीकरणो से निरूपित वक्रो और तलो का अध्ययन बीजीय ज्यामिति मे किया जाता है।

दो या अधिक चरो के ऐसे बहुपद को, जिसके प्रत्येक पद मे चरो के घातो का योगफल समान हो, समघात बहुपद, या केवल समघात, कहते हैं; उदाहरणत.

क $य_१^२$ + ख $य_२^२$ + ग $य_३^२$ + २ च $य_२ य_३$ + २ छ $य_३ य_१$ + २ ज $य_१ य_२$ चर $य_१, य_२, य_३$ मे द्विघात है। आधुनिक बीजगणित में इन समघातो के रूपातरण का और इन रूपातरणो से सबधित निश्चर (invariant) और सहपरिवर्त (covariant) के सिद्धातो का प्रमुख स्थान है और इनके अनेकों उपयोग हैं।

कलन मे एक चरवाले बहुपद अत्यत सरल वर्ग के फलन हैं, क्योंकि इनके अवकलन तथा समाकलन के नियम विशेष रूप से सरल है और हर स्थिति मे फल एक बहुपद होता है। आधुनिक फलन सिद्धात मे प्रत्येक बहुपद अपने चरो का एक सतत और वेश्लेपिक फलन होता है। इस सिद्धात मे एक महत्वपूर्ण प्रमेय यह है कि यदि समिश्र चर का कोई फलन चर के प्रत्येक परिमित मान के लिये वैश्लेपिक है, तो वह एक बहुपद ही होगा और यदि चर के अपरिमित होने पर भी फलन परिमित रहता है, तो वह केवल एक अचर है।

अन्य उपयोग — बहुपदो का उपयोग संनिकटन के लिये भी होता है। प्रारभिक विश्लेषण के मानक फलन, मैकलॉरिन अथवा टेलर प्रमेय के अनुसार, घात श्रेणी द्वारा निरूपित किए जा सकते है। कार्ल वायर्स्ट्रास ने १८८५ ई० मे सिद्ध किया था कि कोई भी सतत फलन किसी भी कोटि की यथार्थता तक एक समान सनिकटन के साथ बहुपद द्वारा निरूपित किया जा सकता है।

विशिष्ट बहुपद — किसी फलन को व्यक्त करने के लिये य, $य^२$, ...के अतिरिक्त अन्य बहुपद समुदाय भी हैं। उदाहरणत:, जब (१ – २ तय + $य^२$)$^{-१/२}$ का प्रसार त की घात श्रेणी मे किया जाता है तो $त^म$ का गुणक (जो घात म का बहुपद है) कोटि म वाला लजांड्र (Legendre) बहुपद कहलाता है। किन्हीं दो विभिन्न कोटियों के लजांड्र बहुपदों के गुणनफल का समाकल – १ से १ तक शून्य होता है। इन बहुपदो का उपयोग अनुप्रयुक्त गणित मे बहुलता से होता है। इसी प्रकार हर्माइट बहुपदो का, जो $ई^{-\frac{१}{२}य^२}$ के अवकलनो से प्राप्त होते है, सांख्यिकी मे उपयोग होता है।

अंतर्वेशन समूचा ही बहुपद द्वारा सनिकटीकरण पर आधारित है। म (m) दिए हुए मानो का उपयोग करनेवाले अतर्वेशन सूत्र के आधार में इन मानों को ग्रहण करनेवाले म – १ घात के बहुपद की कल्पना निहित होती है। [देखे अतर्वेशन]।

सं० ग्रं० — एर्डली, मेगनस · हायर ट्रांसडेंटल फक्शस (१९५३); तथा टी एम. मैक्रॉबर्ट : फक्शस ऑव ए कॉम्प्लेक्स वेरिएबिल (१९५४)। [ह० च० गु०]

बहुभुज (Polygon) किसी समतल मे न > २ (n > 2) बिंदुओं को जोड़नेवाली न (n) रेखाओं से बनी बद आकृति को कहते है। बिंदुओ को शीर्ष और रेखाओं को बहुभुज की भुजाएँ कहते हैं। तीन रेखाएँ (और तीन अतष्कोण) होने पर इसे त्रिभुज, चार रेखाएँ (और चार अतष्कोण) होने पर चतुर्भुज, और इसी प्रकार इससे अधिक रेखाएँ और अतष्कोण होने पर पचभुज, षड्भुज, सप्तभुज, अष्टभुज इत्यादि कहते है। जब एक बहुभुज के कोण दूसरे के कोणों के बराबर और भुजाएँ दूसरे की भुजाओ की समानुपाती हो, तो बहुभुज समरूप बहुभुज कहलाते हैं। यदि केवल कोण ही बराबर हो, तो समान कोणिक कहलाते है। जब किसी बहुभुज की सब भुजाएँ और सब अतष्कोण परस्पर समान हो, तो उसे समबहुभुज कहते हैं। प्रत्येक समबहुभुज का एक परिवृत्त और एक अतर्वृत्त खीचा जा सकता है। इसका विलोम कि यदि किसी षड्भुज का परिवृत्त या अतर्वृत्त हो तो वह समबहुभुज है, सत्य नही है, क्योकि किसी वृत्त पर कई बिंदुओं को मिलाने से बहुभुज बनता है, जो समबहुभुज नही है। इसी प्रकार यदि किसी वृत्त की कई स्पर्शरेखाएँ खीची जाएँ, तो वे भी बहुभुज बनाती हैं, परतु यह समबहुभुज नही होगा। यदि कोई रेखा बहुभुज को दो बिंदुओ पर काट सके, तो उसे उत्तल कहा जाता है और यदि कोई रेखा बहुभुज को चार या अधिक बिंदुओ पर काट सके तो उसे अवतल कहते है।

उत्तल बहुभुज मे प्रत्येक अतष्कोण दो समकोण से छोटा होता है, परतु अवतल मे कोई कोण दो समकोण से बडा हो सकता है। न (n) भुजाओ के उत्तल बहुभुज के सब अतष्कोणों का योग २ न – ४ (2n – 4) समकोण होता है। यदि उसकी भुजाएँ क्रमश: बढ़ाई जाएँ, तो बहिष्कोणों का योग ४ समकोण होता है। अवतल बहुभुज के विषय मे कोई ऐसी बात नही कही जा सकती। यदि समबहुभुज की भुजा की लबाई स (s) हो, तो अतर्वृत्त की त्रिज्या स/२ कोस्प १८०°/न (s/2 cot 180°/n) होगी और परिवृत्त की त्रिज्या स/२ व्युज्या १८०°/न (s/2 cosec 108°/n होगी। समबहुभुज मे दो भुजाओ के बीच का कोण π (न–२)/न [π (n–2)/n] रेडियन का होता है।

यदि किसी बहुभुज के केंद्र से उसकी भुजाओ की दूरी ल (a) हो, तो उसकी परिमिति २लन स्प १८०°/न (2an tan 180°/n),

उसका क्षेत्रफल ½ अनस (1/2 ans) तथा विकर्णों की संख्या न (न–३)/२ [n (n–3)/२] होती है।

ऐसे समबहुभुज जिनका उपयोग किसी समतल को पूरा पूरा ढकने के लिये हो सकता है, वे हैं : समबाहुत्रिभुज, वर्ग, और समषड्भुज, क्योंकि इनके अंतष्कोण ४ समकोण को पूरा पूरा बाँट देते है।

गणितीय विश्लेषण मे किसी सतत वक्र की लबाई उस बद या खुले बहुभुज की भुजाओं के योग के सीमात मान के बराबर होती है जो वक्र पर बिंदुओं को मिलाने से बनता है। इसी प्रकार किसी वक्र से सीमित क्षेत्रफल भी उसमे बनाए हुए बहुभुज के क्षेत्रफल की ऊपरी सीमा होती है, या निचली, जबकि वक्र बहुभुज के अदर हो।

[भ० ला० श०]

बहुरूपदर्शक (Kaleidoscope) यह उपकरण प्रकाश के परावर्तन सिद्धात पर बना हुआ है और खिलौने के रूप मे प्रचलित है। डेविड ब्रूस्टर (David Brewster) ने १८१५ ई० मे इसे आधुनिक रूप में बनाया था। ब्रूस्टर से लगभग १०० वर्ष पूर्व आर० ब्रैडले (R. Bradley) ने एक ऐसा ही यत्र बनाया था, जिसे अभिकल्प बनानेवाले काम मे लाया करते थे।

यदि दो समतल दर्पण एक दूसरे से क° का कोण बना रहे हो, तो उनके संमुख रखी हुई किसी वस्तु के (३६०/क – १) प्रतिबिंब बनते हैं। इसी सिद्धात का उपयोग करके बहुरूपदर्शक बनाए जाते हैं। साधारण बहुरूपदर्शक १½ इच व्यासवाली लगभग ८ इच लंबी खोखली नली का बना होता है। नली के भीतर काच के ८ इच लबे तीन पतले प्लेट इस प्रकार रखे रहते हैं कि वे एक दूसरे से ६०° का कोण बनाते रहे। नली का एक सिरा काच की दो गोल चकतियो से बद रहता है और दूसरे सिरे पर केवल छोटा-सा छिद्र होता है। ये चकतियाँ एक दूसरी से लगभग ½ इच दूर होती है। बाहरी चकती अल्प-पारदर्शक तथा भीतरी पूर्णत पारदर्शक होती है। इनके बीच मे रगीन काच के कुछ छोटे छोटे टुकड़े डाल दिए जाते हैं। दूसरे सिरे के गोल छेद से देखने पर इन रगीन टुकडो के प्रतिबिंबो से बनी हुई सुंदर आकृति (pattern) दिखाई देती है। नली को गोलाई मे घुमाने से टुकडो की स्थिति बदलती जाती है और उससे नई नई आकृतियाँ दिखाई पड़ती है।
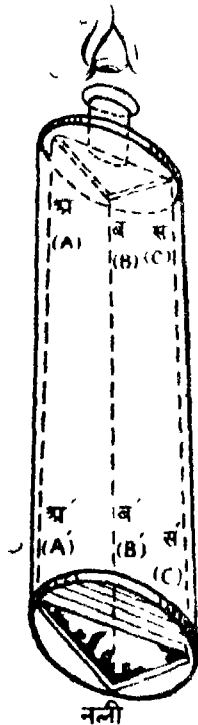
चित्र १. बहुरूपदर्शक

ब्रूस्टर का बहुरूपदर्शक साधारण बहुरूपदर्शक से कुछ भिन्न होता है। इसमे तीन लबे प्लेट के स्थान पर तीन लब दर्पण लिए जाते हैं और छिद्र के स्थान पर एक लेस लगाया जाता है, जिसे नेत्रिका

चित्र २. बहुरूपदर्शक मे बनी डिज़ाइन

(eyepiece) कहते है। लेस और रगीन टुकडो के बीच की दूरी इतनी रखी जाती है कि उनका प्रतिबिंब स्पष्ट दृष्टि (distinct vision) की न्यूनतम दूरी पर बने। यह दूरी लगभग २५ सेमी० होती है। अच्छे बहुरूपदर्शक मे दो नलियाँ एक दूसरी के भीतर इस प्रकार लगी रहती है कि उन्हे सरकाकर नेत्रिका और टुकडो के बीच की दूरी ठीक की जा सके।

बहुरूपदर्शक मे तीनों दर्पणो का पारस्परिक झुकाव तीनो कोनो पर ६०° होता है, अत रगीन टुकडो के कुल १५ प्रतिबिंब तीन कोनो पर, पाँच पाँच के समूह मे बनते है। इनसे बना हुआ अभिकल्प (design) बडा सुदर होता है। आजकल बहुकोणीय बहुरूपदर्शक भी बनने लगे है। इनमे तीन से अधिक दर्पण प्रयुक्त होते है।

[अ० कु० ति०]

बहुलकीकरण (Polymerisation) कार्बनिक रसायन मे प्रारंभ से ही उस विधि को जिसमे यौगिक पदार्थ के दो या अधिक अणु मिलकर एक दूसरा ऐसा अणु या बहुलक (polymer) बनाएं जिसका प्रति शत सगठन वही हो जो मूल पदार्थ एकलक (monomer) का था, तथा उसका अणुभार एकलक के अणुभार का बहुगुण हो, बहुलकीकरण कहते है।

अनेक द्विबध या त्रिबधवाले कार्बनिक यौगिक मे गरम करने या केवल रखने पर ही योगशील बहुलकीकरण (addition polymerisation) हो जाता है। इस प्रक्रिया द्वारा मूल वाष्पशील पदार्थ कम वाष्पशील द्रव या ठोस के रूप मे बदले जा सकते हैं। कुछ बहुलको मे एकलक के केवल दो या तीन ही अणु होते है, परतु अधिकाश मे इनकी सख्या बहुत अधिक होती है। कुछ एकलक एक से अधिक प्रकार के बहुलक बनाते हैं तथा कुछ बहुलक गरम करने पर एकलको मे परिवर्तित हो जाते हैं।

एथिलीन तथा उसके व्युत्पन्नों का बहुलकीकरण योगशील बहुलकीकरण का उदाहरण है तथा बहुत ही प्राविधिक महत्व रखता है। एथिलीन एक गैस है पर इसके अनेक अणुओं के संयुक्त होने से पॉलिएथिलीन (polyethylene) नामक बहुलक प्राप्त होता है, जो एक बहुत ही उपयोगी पदार्थ है। इसी प्रकार स्टाइरीन (styrene) एक रंगहीन तीव्र गंधवाला द्रव है। कुछ दिन रखने या १००° सें० तक गरम करने पर, इसका बहुलकीकरण हो जाता है। पहले एक गाढ़ा द्रव प्राप्त होता है और अंत में एक स्वच्छ गंधहीन, चमकदार, ठोस पदार्थ प्राप्त हो जाता है, जिसे पॉलीस्टाइरीन (polystyrene) कहते हैं। इसे (का$_6$ हा$_5$ का हा = काहा$_2$)$_n$ [$(C_6H_5CH = CH_2)_n$] सूत्र द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं, जहाँ पर न (n) की संख्या हजारों में है। कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जिनकी उपस्थिति में बहुलकीकरण क्रिया केवल कुछ मिनटों में ही संपन्न हो जाती है। ऐसे पदार्थों को प्रारंभक (initiator) कहते हैं। इस प्रकार स्टाइरीन के बहुलकीकरण में एक प्रति शत से भी कम मात्रा में बेंज्वायल परॉक्साइड (benzoyl peroxide) मिला देने से कुछ मिनटों के अंदर ही पॉलीस्टाइरीन प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार की अभिक्रियाएँ शृंखला अभिक्रियाओं (chain reactions) द्वारा संपन्न होती हैं और इनमें मुक्त मूलक (free radical), जो प्रारंभक के विघटन से बनते हैं, क्रिया को पूरा करते हैं। इस प्रकार यदि प्रारंभक के विघटन से मू (R) मुक्त मूलक बने, तो वह द्विबंध से योग करके एक बड़ा अणु बनाता है, जिसमें भी स्वतंत्र बंध होते हैं।

मू — + काहा = काहा का$_6$ हा$_5$ ⟶ मू — काहा$_2$ — काहा — का$_6$ हा$_5$

$$[R- + CH_2 = CH\ C_6H_5 \longrightarrow R-CH_2-CH-C_6H_5]$$

मुक्तमूलक स्टाइरीन बड़ा अणु
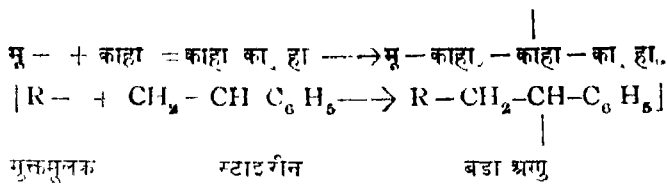
यह क्रिया फिर आगे चलती है और अणु का आकार क्रमश बढ़ता जाता है।

यदि दो एकलकों का बहुलकीकरण एक साथ मिला कर किया जाय, तो बहुलक के प्रत्येक अणु में दोनों एकलक भी उपस्थित हो सकते हैं। इस प्रकार से प्राप्त बहुलक को सहबहुलक (copolymer) कहते हैं। बहुलकीकरण उद्योग से प्राप्त अधिकांश बहुलक सहबहुलक ही होते हैं।

आइसोप्रीन (isoprene), आइसोब्यूटिलीन (isobutylene), मेथिलमेथैक्रिलेट (methylmethacrylate), विनिल क्लोराइड (vinyl chloride), विनिल ऐसीटेट (vinyl acetate), ऐक्राइलो नाइट्राइल (acrylonitrile) आदि एकलक, अनेक प्रकार के कपड़े, रबर आदि बनाने में काम आते हैं।

संघनन बहुलकीकरण (condensation polymerisation) विधि द्वारा भी उच्च अणुभारवाले बहुलक बनाए जाते हैं, जिनके बनने की क्रिया में जल, या अन्य साधारण अणु, निकलते भी हैं। इस विधि द्वारा पॉलिएस्टर (polyester), या पॉलिऐमाइड (polyamide) प्रकार के बहुलक बनते हैं जिनमें

—काऔ—औ ($-CO-O$), या **—काऔनाहा—** ($-CONH-$) की पुनरावर्तित इकाइयाँ (repeating units) होती हैं। इस प्रकार एडिपिक अम्ल (adipic acid) तथा हेक्सामेथिलीन टेट्राऐमीन (hexamethylene tetramine) को २००° सें० तक गरम करने से नाइलोन (nylon) बहुलक बनता है जिसमें

— का औ — (का हा$_2$)$_4$ **— का औ — ना हा** (का हा$_2$)$_6$ **— ना हा —**

$$[-CO-(CH_2)_4-CO-NH(CH_2)_6-NH-]$$
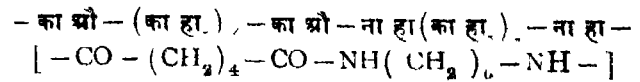
की पुनरावर्तित इकाइयाँ रहती हैं। [रा० दा० ति०]

बहुवाद (राजनीति) राज्य की कल्पना ने अनंत वाद विवाद को जन्म दिया है, और यह अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि जब तक 'एक विश्व' की कल्पना सिद्ध नहीं होती तब तक राज्य ही मनुष्य द्वारा उद्भूत सर्वाधिक सविलयक, सर्वाधिक व्यापक और सबसे शक्तिशाली ढंग का सामाजिक संगठन है। राज्य का विशिष्ट गुण उसकी प्रभुसत्ता है जो व्याख्या के अनुसार, निरंकुश और निरपेक्ष है तथा विलक्षण और संपूर्ण रूप से अपने भूभाग तथा नागरिकों पर छाई रहती है। इस प्रकार बोदिन, ग्रोटियस, हॉब्स और ऑस्टिन आदि विचारकों तथा विधिविशारदों ने राज्य को एक आधार पर स्थित किया है और इस बात पर जोर दिया है कि विधिनिर्माण करनेवाला और उसके अतिक्रमण को दंड देनेवाला राज्य, नैतिक और क्रियात्मक रूप से, अपनी सीमा के अंतर्गत सब लोगों से संपूर्ण निष्ठा का दावा करता है और उसे प्राप्त करता है। अधिकारों का एकमात्र और पूर्ण प्रभुत्वयुक्त आधार होने के नाते राज्य के इस अनोखे स्वरूप से स्पष्ट हो जाता है कि विधिविशारदों ने क्यों राज्य के एकवादी सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

इस एकवाद के विपरीत अपेक्षाकृत आधुनिक काल में बहुवाद के विचार का उद्गम हुआ है। यह शब्द उन मतों पर लागू किया जाता है जो संभवत: विभिन्न रीतियों से राज्य की प्रभुसत्ता की परंपरागत कल्पना का विरोध करते हैं। जर्मनी में ओटो फान गियर्क, फ्रांस में दुगुई और दुर्खीम, इंग्लैंड में फिगिस, लास्की और जी० डी० एच० कोल के बीच अपनी अपनी धारणाओं को लेकर कुछ मतभेद है किंतु राज्य के परंपरागत विचार में कुछ न्यूनताएँ और त्रुटियाँ हैं, इस संबंध में वे एकमत हैं। उनकी दृष्टि में विधिविहित प्रभुसत्ता की कल्पना बिलकुल औपचारिक तथा प्राविधिक है और राजनीतिक दर्शन के हेतु बहुत ही "अनुर्वर" एवं "अपरिणामोत्पादक" है। वे इस बात पर जोर देते हैं कि राज्य के अंतर्गत अनेक छोटे-छोटे तथा अधिक विशिष्ट संगठन हैं जो अधिकारों, हितों, और जनजीवन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उन्हें राज्य के अधीन और आश्रित मात्र नहीं सोचा जा सकता और न सोचना चाहिए। बहुवादी लोग वे हैं जो अतिशय केंद्रीयकरण के सिद्धांत और पद्धति के विरुद्ध होनेवाले विद्रोह का प्रतिनिधित्व करते हैं। किसी सीमा तक वे उस सुविवेचित परिकल्पना का द्योतन करते हैं जो विकेंद्रीकरण की दिशा में प्रवृत्त आधुनिक विचारधाराओं का समर्थन करती है। नैतिक स्तर पर भी वे व्यक्ति के संबंध में यह आशंका व्यक्त करते हैं कि वह राज्यचक्र के नीचे दबा या ध्वस्त न कर दिया जाय।

विधि और न्यायालयों के कार्यों के संबंध में दुगुई गंभीरतापूर्वक चिंतित था और उसने उनके लिये राज्य में स्वतंत्र स्थिति का प्रतिपादन किया। फिगिस ने चर्चों के और संगठित पड़ोसी संप्रदायों के अधिकारों

के संदर्भ में अधिक विचार किया, दुर्खीम ने यह बात स्पष्ट की कि आधुनिक औद्योगिक समाज किस प्रकार अत्यंत जटिल हो गया है और बड़े बड़े धंधे और औद्योगिक समूह कुछ दशाओं मे उन स्थानीय क्षेत्र समूहों से अधिक महत्वपूर्ण हैं जिनके आधार पर राज्य का ढाँचा खड़ा हुआ है। मेटलैंड ने गियर्के के संघों के विधिमूलक इतिहास पर दिए विचारों की व्याख्या की। प्रत्येक संघ की सामूहिक इच्छा रहती है जो उसके व्यक्तिगत सदस्यों से स्पष्टत विशिष्ट होती है और अखंड समूहों की भाँति उनके अधिकार और कर्तव्य रहते हैं जिनका महत्व राज्य कम नहीं कर सकता। ब्रिटिश बहुवादियों ने सामान्यत इस बात पर जोर दिया है कि चर्च, पेशेवर संगठन, ट्रेड यूनियन, संचालकों के संघटन, स्थानीय समुदाय, आदि किसी भी समाज मे समान और महत्वपूर्ण समूह होते है, जब कि राज्य का कार्य उन्हे संगठित करना और उनमें समन्वय स्थापित करना रहता है, न कि उनपर प्रभुता जमाना और उन्हें आदेश देना। कानून जब स्वतंत्र संघटन का अधिकार स्वीकार करता है और इस प्रकार के संघटनों के विशेषाधिकारों और कार्याधिकारों को मान्यता देता है, तो ऐसी दशा में उस सीमा तक राज्य अपनी प्रभुसत्ता खो देता है। कभी कभी एकवादी सिद्धांत पर आक्षेप अधिक व्यापक और जोरदार हो जाता है। ट्रेड यूनियन के अधिकारों मे अपनी विशेष रुचि के कारण लास्की कभी कभी ऐसी स्थिति का तर्क उपस्थित करता है जहाँ यह लगता है कि व्यक्ति का अपना अंत करण ही एकमात्र न्यायसमत प्रभुसत्ताधारी और कानून का वास्तविक स्रोत हो सकता है।

बहुवादी लोगों की स्थिति मे यह कमजोरी है कि कोई चाहे या न चाहे, राज्य "सामाजिक जीवन का अत्यधिक सर्वसम्मिलष्ट प्रकार" रहता है। उपर्युक्त समूह वास्तव में राज्य से स्वतन्त्र नही रह सकते। संघटनों के एक दूसरे से और उनके अपने सदस्यों म संबधों को समंजित करने और समन्वित करने की आवश्यकता होती है। न्याय के समक्ष सबकी समानता की गारंटी देनी होगी और समूह द्वारा व्यक्ति पर संभावित अत्याचार के विरुद्ध व्यवस्था करनी होगी। इस प्रकार के कार्य केवल राज्य द्वारा किए जा सकते है। संस्थाओं की सुव्यवस्था के लिये राज्य को प्राय. क्रियाशील रहना होगा। राज्य के अधिकार मूलभूत और संरक्षित मात्र नही होते; उन्हे प्राय अत्यंत प्रत्यक्ष, तात्कालिक और प्रभावपूर्ण होना पड़ता है। किंतु शक्तियों के अतिकेंद्रीकरण के विरुद्ध सावधान कर देने के लिये बहुवादी प्रशंसा के पात्र हैं। व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं के बीच सुखद साम्य बनाए रखने के लिये न तो शुद्ध एकवाद और न शुद्ध बहुवाद, बल्कि दोनों का संतुलन आवश्यक है। [ही० ना० मु०]

बहुला देवासुर संग्राम मे कार्तिकेय की एक सहचरी जिनकी गणना कल्याणकारिणी मातृकाओं मे है। इनका वर्णन महाभारत में है। २-- मानस पर्वत पर रहनेवाली एक देवी जिसके पास मुनि मेधातिथि ने ब्रह्मा के परामर्श से अपनी कन्या अरुंधती को शिक्षा ग्रहण करने के लिये रखा था। ३--भद्रदेश के शाकल नगर निवासी सोमशर्मा नामक वणिक् की माता जिसकी कथा वामनपुराण मे है। ४-- बभ्रु की कन्या जिसका विवाह राजा उत्तानपाद के पुत्र उत्तम से हुआ था और जिसकी कथा मार्कंडेय पुराण मे दी है। ५-- प्रसिद्ध गऊ जो वृंदावन के बहुला वन में रहती थी और जिसके सिंह के साथ सत्यपालन की कथा पुराणों में आई है। इसी गाय के नाम पर भादो तथा माघ बदी चौथ को व्रत किया जाता है और इन दोनों दिनों को बहुला चौथ कहते हैं। [रा० द्वि०]

बहुलाश्व जनकवंशीय राजा धृति के पुत्र। ये कृति के पिता थे जो महात्मा जनक के वंश के अंतिम राजा हुए। इस नाम के सूर्यवंशी राजा निकुंभ के एक पुत्र भी हुए है जो कृशाश्व के पिता थे। मिथिलापति बहुलाश्व के अनुरोध पर नारद जी ने उन्हे श्रीकृष्ण लीला एव माहात्म्य का कीर्तन सुनाया था। इनकी कथा बृहद्-धर्मपुराण तथा श्रीमद्भागवत मे दी गई है। [रा० द्वि०]

बाँकुड़ा १. जिला, स्थिति : २२° ३८′ से २३° ३८′ उ० अ० तथा ८६° ३६′ से ८७° ४६′ पू० दे०। यह भारत के पश्चिमी बंगाल राज्य का जिला है। इसका क्षेत्रफल २,६५३ वर्ग मील तथा जनसंख्या १६,६४,५१३ (१९६१) है। इसके पश्चिम मे पुरुलिया, दक्षिण मे मेदनीपुर, पूर्व एव पूर्वोत्तर मे हुगली एव बर्द्धमान जिले स्थित है। छोटा नागपुर पठार की पूर्वी श्रेणी यहाँ फैली है। यहाँ की प्रमुख नदी दामोदर उत्तरी सीमा बनाती है। निम्न वार्षिक ताप लगभग २७° सें० तथा वार्षिक वर्षा का औसत ५६ इंच रहता है। पूर्व मे जलोढ़ मिट्टी होने से भूमि उपजाऊ है। धान मुख्य फसल के अतिरिक्त ईख, मक्का, तिलहन, दलहन, गेहूँ, पाट, कपास, आदि पैदा किए जाते है। रेशम कातना, रेशमी एव सूती कपडे बुनना, ताँबे का काम एव लाख के उद्योग प्रमुख है। बाँकुड़ा, विष्णुपुर, एव बीरसिंहपुर मे टसर रेशम बनाया जाता है। आयात मे चावल, पीतल का सामान, रेशमी सामान आदि तथा बाहर जानेवाली चीजो मे तंबाकू, नमक, कपास आदि प्रमुख है। यहाँ के प्रमुख नगर बाँकुड़ा, विष्णुपुर, बीरसिंहपुर, बरजोरा, राजग्राम, सोनामुखी आदि है।

२. नगर, स्थिति २३° १४′ उ० अ० तथा ८७° ४′ पू० दे०। यह बाँकुड़ा जिले मे धालकिशोर नदी के उत्तरी किनारे पर बसा है। यहाँ की जनसंख्या ६२,८३३ (१९६१) है। ऐसा कहा जाता है कि इसका नाम यहाँ के प्राचीन निवासी बंकू राय के नाम पर पडा। यहाँ की जलवायु शुष्क एव स्वास्थ्यप्रद है। यह ग्रैंड ट्रंक मार्ग पर स्थित है। व्यापार मे इसका स्थान प्रमुख है। उद्योगो मे तेल पेरना, ईंटे बनाना, दरी एव कपड़ा बुनना, बाँस एव बेंत का काम करना प्रमुख है। [सु० च० श०]

बाँज (Oak) फागेसिई (Fagaceae) कुल के क्वेर्कस (quercus) गण का एक पेड है। इसकी लगभग २०० किस्में ज्ञात है, जिनमे कुछ की लकडियाँ बडी मजबूत और रेशे सघन होते हैं। इस कारण ऐसी लकडियाँ निर्माणकाष्ठ के रूप मे बहुत अधिक व्यवहृत होती है। यह पेड अनेक देशों, पूरब मे मलयेशिया और चीन से लेकर हिमालय और काकेशस क्षेत्र होते हुए, सिसिली से लेकर उत्तर ध्रुवीय क्षेत्र तक मे पाया जाता है। उत्तरी अमरीका मे भी यह उपजता है। शोभा के लिये इसके पेड उद्यानो और सड़को पर लगाए जाते हैं। पेड़ की पहचान इसके पत्तो और फलो से होती है। इसके पत्ते खाँचेदार होते है। इसका फल सामान्यत. गोलाकार और ऊपर की ओर नुकीला होता है। नीचे प्याले के ऐसे अनेक सहचक्र (involucral) शल्क (scale)

लगे रहते हैं। इनके फल को बाँज फल (acorn) कहते हैं। कुछ बाँज फल मीठे होते हैं और कुछ कड़ए। कुछ बाँज फल खाए जाते
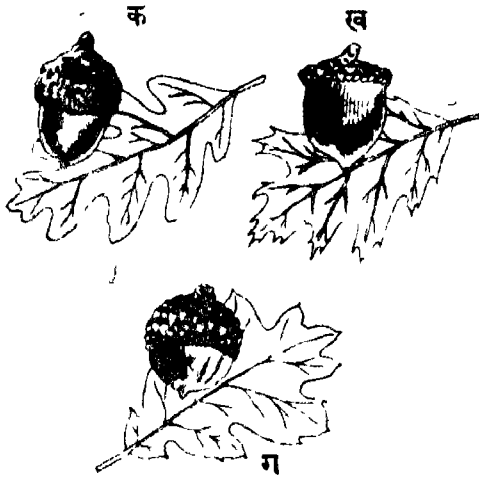
बाज (Oak)

क. सफेद बाँज, ख. लाल बाँज तथा ग. काले बाँज का फल और पत्तियाँ

हैं और कुछ से टैनिन प्राप्त होता है, जो चमडा पकाने मे काम आता है। बाँज के फल सूअरो को भी खिलाए जाते हैं। खाने के लिये फलों को उबालकर, सुखाकर और आटा बनाकर केक बनाते हैं। उबालने से टैनिन निकल जाता है।

बाँज का पेड धीरे धीरे बढ़ता है। प्राय २० वर्ष पुराना होने पर उसमे फल लगते हैं। पेड दो से तीन सौ वर्षों तक जीवित रहता है। इसकी ऊँचाई साधारणतया १०० से १५० फुट और घेरा ३ से ८ फुट तक होता है। कुछ बाँज सफेद होते हैं, कुछ लाल या काले। कुछ बाँजो से कॉर्क भी प्राप्त होता है। सफेद और लाल दोनो बाज अमरीका मे उपजते हैं। भारत के हिमालय में केवल लाल या कृष्ण बाँज उपजता है। बाँज का काष्ठ ६०० वर्षों तक अच्छी स्थिति मे पाया गया है। काष्ठ सुंदर होता है और उससे बने फर्नीचर उत्कृष्ट कोटि के होते है। एक समय जहाजो के बनाने मे बाँज का काष्ठ ही प्रयुक्त होता था। अब तो उसके स्थान में इस्पात प्रयुक्त होने लगा है। [फू० स० व०]

बाँदा १ जिला, स्थिति : २५° ३०' उ०अ० तथा ८०° २६' पू०दे०। यह भारत के दक्षिणी उत्तर प्रदेश राज्य मे स्थित जिला है। इसके उत्तर मे फतेहपुर, पश्चिम मे हमीरपुर, दक्षिण मे मध्यप्रदेश एवं पूर्व में इलाहाबाद जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल २,६५० वर्ग मील है। यहाँ की भूमि ऊँची नीची है जिसमे वर्षा ऋतु मे दलदल बन जाते हैं। दक्षिण-पूर्व की ओर विंध्य पर्वत की शृंखला शुरू हो जाती है जो ५०० फुट से ऊँची नही है। काली मिट्टी मे गेहूँ, ज्वार, बाजरा, दलहन, धान, कपास, तिलहन के अलावा अन्य खाद्यान्न भी पैदा होते हैं। जलवायु शुष्क है तथा वर्षा कम होती है। यहाँ की जनसख्या ६,५३,७३१ (१९६१) है। कर्वी, मानिकपुर एवं बाँदा मुख्य नगर हैं।

२. नगर, स्थिति : २५° २८' उ० अ० तथा ८०° २०' पू० दे०। यह बाँदा जिले में ठीक पश्चिम की ओर फतेहपुर-सागर मार्ग पर स्थित है। इसके पश्चिम मे केन नदी बहती है। यहाँ की जनसंख्या ३७,७४४ (१९६१) है। यह जिले का सबसे बड़ा नगर तथा शासन का केंद्र है। कपास से संबधित कार्य अधिक होता है। यहाँ पर अंतिम नवाब अली बहादुर की बनवाई प्रसिद्ध मस्जिद है। बाँदा से एक मील दूर भूरागढ़ मे किले के खंडहर अब भी विद्यमान है। यहाँ सुलेमानी पत्थर से कई प्रकार की वस्तुएँ बनती है।

बांडुंग स्थिति : ६° ३६' द० अ० तथा १०७° ४८' पू० दे०। हिंदेशिया के पश्चिमी जावा मे स्थित प्राइऐंगन (Priangan) रेजिडेंसी की राजधानी है, जो एक पठार के उत्तरी किनारे पर समुद्रतल से २,३४६ फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ की चौड़ी सड़कें और पश्चिमी ढग के बने भवन नगर की आधुनिकता का परिचय देते हैं। मरदेका और द्विवर्ना यहाँ के दो मुख्य सार्वजनिक भवन हैं, जहाँ सन् १९५५ में हुए एशियाई अफ्रीकी संमेलन मे अफ्रीका और एशिया के २० से अधिक राष्ट्रों ने भाग लिया था। यहाँ की जनसंख्या ९,७२,६०० (१९६१) है। कपड़ा बुनना यहाँ का मुख्य उद्योग है। यहाँ पर कुनैन बनाने का एक बृहद् कारखाना है, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले ससार का ८० प्रति शत कुनैन बनाता था। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यप्रद एवं ठंढी है। बिजली एवं टेलीफोन का उत्तम प्रबध है। कई गिरजाघर, सुंदर होटल, अस्पताल, बाजार, पार्क आदि हैं। इसके पास ही पहाडी दृश्य एव कई झरने देखने को मिलते है। [ओ० सिं०]

बाँध (Dam) सामान्यत उन रोधो को कहते हैं जो नदियो के प्रवाह को मोडने, उनके जल का सचय करने, अथवा पनबिजली उत्पादन के लिये बनाए जाते हैं।

बाँधो द्वारा जल का संचय बहुत से उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है। उनमे से कुछ निम्नलिखित है.

१ आमोद प्रमोद, अथवा अन्य उपयोगो के निमित्त जलाशय बनाने के लिये।

२ नदियो का प्रवाह कम या बद हो जाने पर सिंचाई तथा अन्य उपयोगो के लिये।

३ बाढ के समय जलसंचय करके बाढ की विनाशकता को कम करने के लिये।

प्राचीन समय से ही सिंचाई तथा अन्य उपयोगों के निमित्त जल एकत्रित करने के लिये मिट्टी एव चिनाई के बाँध बनाए जाते रहे हैं। इनके द्वारा वर्षा ऋतु मे जल एकत्रित करके वर्ष के शेष भाग में नियमित परिमाण मे जल उपलब्ध हो सकता है। प्राचीन बाँधों के उदाहरण भारत, मिस्र, इटली, उत्तरी अफ्रीका आदि देशो मे बडी संख्या में मिलते हैं।

अधिकतर सिंचाई के लिये तथा पनबिजली के उत्पादन हेतु भी उन सभी देशो में जहाँ बाध के विकास के लिये आवश्यक साधन तथा परिस्थिति उपलब्ध है, २०वी शताब्दी मे बडे बड़े बाँध बनाए गए हैं।

प्राचीन बाँधो के निर्माण मे व्यय का विचार नही रखा जाता था। नए बाँधो के अभिकल्प तथा निर्माण में बहुत प्रगति हुई है

और कम से कम व्यय द्वारा अधिक से अधिक लाभ उठाने के उद्देश्य से कितने ही प्रकार के नए तरीके निकाले गए है तथा अनेक गवेषणाएँ की जा रही हैं।

बाँधों के आकल्प मुख्यत निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित किए जा सकते हैं .

१. मिट्टी के बांध, २ पत्थर के बाध, ३. चिनाई के ठोस बाँध, ४. चिनाई के खोखले बाध, ५ इस्पाती बाँध, ६. काष्ठ बाध, तथा ७. मेहराबी बाँध।

पहली तीन किस्मे प्राचीन समय से प्रचलित हैं। शेष का प्रचलन १९वी तथा २०वी शताब्दी मे हुआ है। किस स्थान पर, किस प्रकार का, कितना ऊँचा बाध बनाया जाए, यह उस स्थान की आकृति एव भौमिकी, सामग्री की उपलब्धता तथा अनुमानित व्यय पर निर्भर करता है।

काष्ठ तथा इस्पाती बाँधो को छोडकर अन्य सभी प्रकार के बाँध यदि ठीक से बनाए जाएँ, तो वे स्थायी होते हैं। विभिन्न बाँधो का वर्णन निम्नलिखित है .

मिट्टी के बाँध — ऐसे बाँध वे है जो मिट्टी के भराव के होते हैं। इनको उन स्थानो पर बनाना उपयुक्त है, जहाँ मिट्टी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो और बाढ का पानी निकालने के लिये पक्की ढाल बनाने की सुगमता हो। ऐसे स्थानो पर जहा चिनाई के ऊँचे बाँधो की नीव के लिये भूमि उपयुक्त न हो, मिट्टी के बांध विशेष रूप से उपयोगी होते है।

मिट्टी के बांधो की दृढता तथा सुरक्षा निम्नलिखित बातो पर निर्भर होती है

१ बाढ के पानी के निकास के लिये पर्याप्त क्षमता की पक्की ढाल होनी चाहिए, अन्यथा बांध के ऊपर से जल बहने पर मिट्टी कट सकती है और बाध के टूटने का भय हो जाता है।

भारत के कुछ बाँधों की तालिका

बाँध का नाम	प्रात या राज्य	बाँधो की किस्म	अधिकतम ऊँचाई (फुट)	लंबाई (फुट)	जलसचय मात्रा (लाख एकड-फुट)	बिजली उत्पादन (हजार कि० वा०)	सिंचित क्षेत्र (लाख एकड)
कोयना	महाराष्ट्र	कक्रीट	२८०	२,८००	२२ ५०	९००	—
गाधी सागर	मध्यप्रदेश	पत्थर की चिनाई	२०४	१,६८५	६२ ८०	९२	११·००
तुगभद्रा	मैसूर	चिनाई तथा कक्रीट	१६२	८,०२४	३० ५९	१२६	२ ६८
नागार्जुन सागर	आध्र प्रदेश	चिनाई	४०९	४,७५६	९१ ८०	—	२० ००
		मिट्टी	८५	१०,५७०			
भाखडा	पजाब	कंक्रीट	७४०	१,७००	८० ००	१,२०४	३० ३०
मयूराक्षी	प० बगाल	चिनाई	१५५	२,०१०	५·००	४	६ १०
मद्दूर	मद्रास	,,	२१४	५,३००	—	२००	—
राणाप्रताप सागर	राजस्थान	,,	१५०	३,७५०	२३ ५०	१२८	३ ००
रिहद	उत्तरप्रदेश	कक्रीट	३०५	३,६००	८० ००	३००	—
शरावती	मैसूर	चिनाई	२०१	९,०२०	३५ ८०	८९१	—
हीराकुड	उडीसा	चिनाई तथा कक्रीट	२००	३,७६८	६६.००	४२७	६ ००
		मिट्टी	१९५	११,९८०			

चित्र १.
मिट्टी के बांध की एक आड़ी काट

चित्र २.
चिनाई बांध की एक आड़ी काट
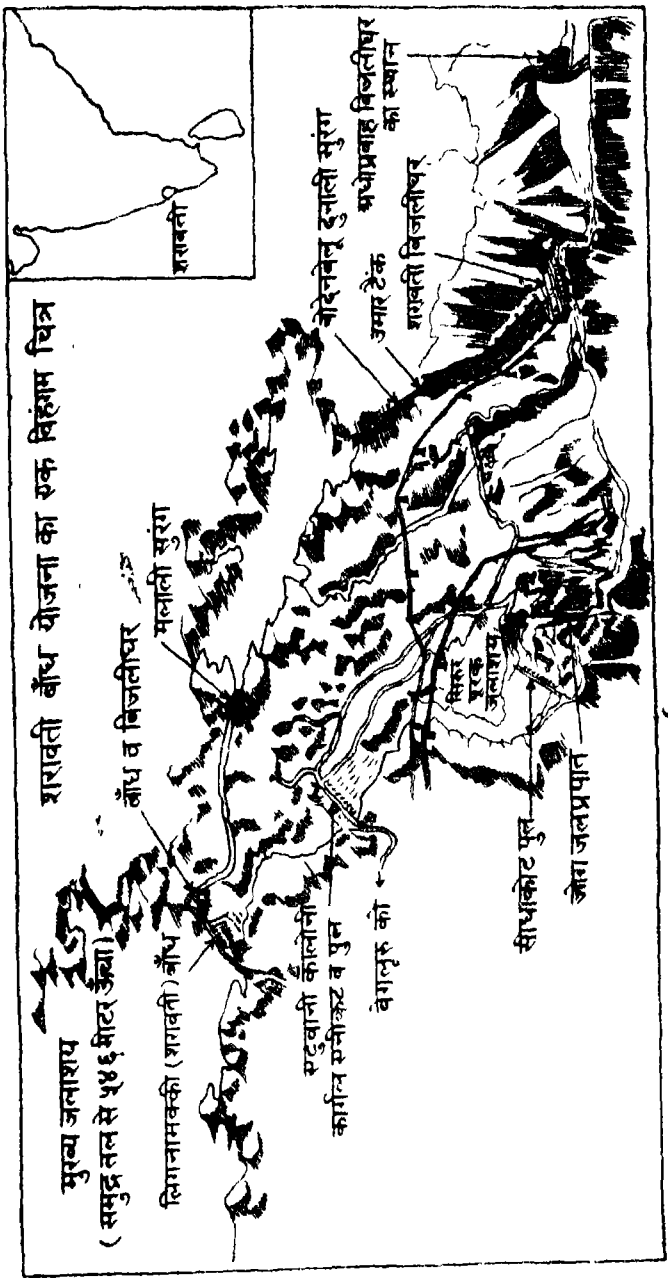
चित्र ३.

बाँध (देखें पृष्ठ २३१)
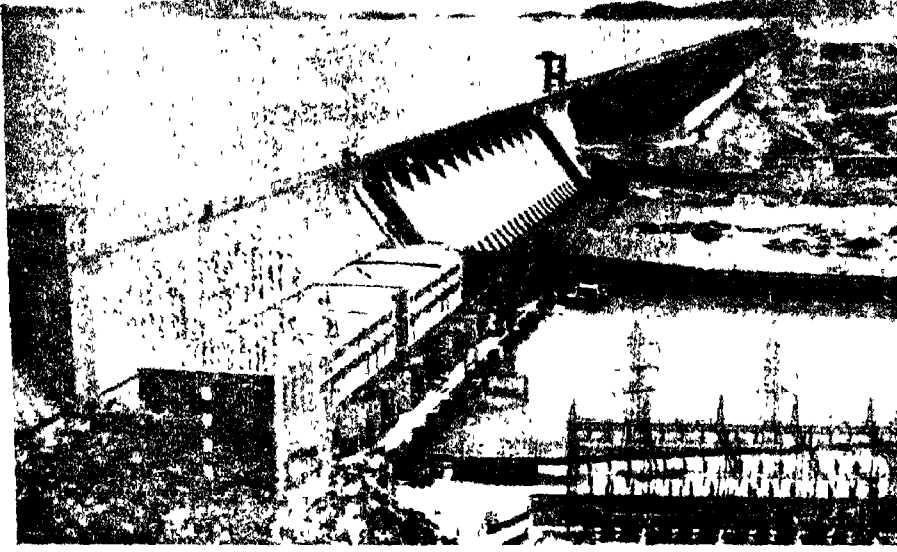
← —बहुप्रयोजनीय हीराकुड बाँध, संबलपुर।
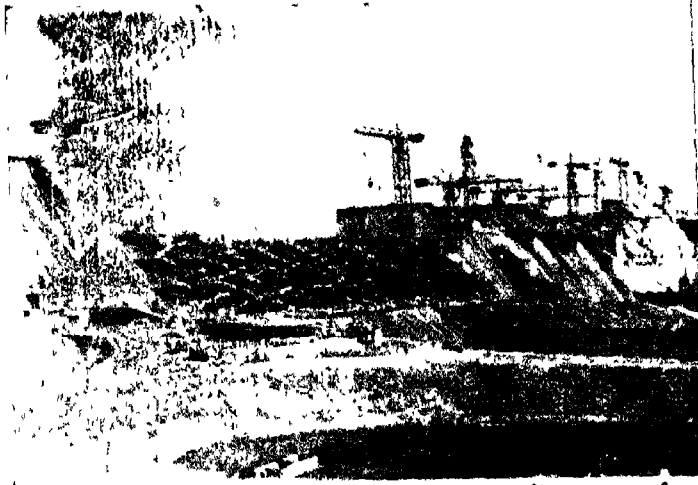
← —नागार्जुन सागर बाँध (निर्माण काल में) नलगोंडा (आन्ध्र प्रदेश)

← —मध्य पेन्नार योजना, अनन्तपुर (आंध्र प्रदेश)

२. बाँध के नीचे से या बीच से रिसाव इतना कम हो कि वह उन मिट्टी के कणों को चलायमान न कर सके जिनके ऊपर बाँध आधारित है, अथवा जो उसके भराव मे स्थित हैं। रिसाव कम करने के लिये अविच्छिन्न, अपारगम्य मिट्टी का क्रोड (continuous impervious earth core) बाँध के अंतर्गत बना दिया जाता है। रिसाव को हानिरहित तरीके से निकालने के लिये बाँध के निचले भाग मे छोटे बड़े पत्थरो के छन्ना आवरण (filter blanket) से भरी नालियाँ बना दी जाती है, या अन्य तरीके काम मे लाए जाते हैं।

३ बाँध की ढाल ऐसी होनी चाहिए कि नीव की मिट्टी अधिकतम भार को सहन कर सके तथा गीली होने पर बैठने न लगे। ढाल निर्माण में प्रयुक्त होनेवाली मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर होती है। कमजोर मिट्टी के लिये अधिक ढाल की आवश्यकता पड़ती है।

४ बाँध की दोनों ढालो का वर्षा के पानी तथा लहरों द्वारा होनेवाली क्षति से सुरक्षित होना आवश्यक है। जलाशय की ओरवाली, अथवा ऊर्ध्व प्रवाह की, ढाल पर पत्थर के टुकड़े आदि से तथा दूसरी ओरवाली, अथवा अधोप्रवाह की ढाल पर, घास अथवा छोटे पत्थरों को लगाकर बाँध को दृढता प्रदान की जाती है।

बाँध बनाने के लिये मिट्टी की तहे डाली जाती हैं और उनको विशेष प्रकार के बेलनो द्वारा कूटकर ठोस बनाया जाता है। किसी किसी स्थान पर मिट्टी को पानी मे घुलाकर नलकों द्वारा डाला जाता है। मिट्टी बैठ जाने पर पानी निथारकर निकाल दिया जाता है (देखे फलक)।

पत्थर के बाँध (Rock fill Dams) — ये बाँध पत्थर के छोटे तथा बड़े टुकड़ो के भराव से बनते हैं। खदान मे चट्टानों को उतने बड़े टुकड़ो मे तोड़ा जाता है जितने बडे आसानी से उठाकर ले जाए जा सकते हो। पत्थरो को बाँध मे भरते समय पर्याप्त मात्रा मे पानी भी डाला जाता है, ताकि जितने पत्थर बैठने है, पहले ही बैठ जाएँ।

मिट्टी के बाँधो के समान इस प्रकार के बाँधों मे भी पक्की-ढाल अलग से बनाई जाती है। आम तौर पर बाढ का पानी निकालने के लिये चट्टान काटकर ही एक निकास बना दिया जाता है। ऐसे बाँध वही पर बन सकते हैं जहाँ पत्थर समुचित मात्रा मे उपलब्ध हो।

अपारगम्यता संपन्न करने के लिये मिट्टी का एक पतला क्रोड (core), या ऊर्ध्व प्रवाह ढाल पर मिट्टी की तह या कंक्रीट की पटिया, डाल दी जाती है। कंक्रीट की पटिया डालते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि वह पत्थरो के बैठने से न टूटे।

मिट्टी के बाँध की तुलना मे पत्थर के बाँधो की ढाल अधिक खड़ी होती है।

ठोस चिनाई के बाँध — ये बाँध कंक्रीट की चिनाई से और इस्पात की छडो के प्रबलन से रहित बनाए जाते हैं। इन बाँधों की ऊर्ध्व प्रवाह की ढाल सीधी खड़ी, अथवा थोडी सी तिरछी, होती है। बाँध को विचलित करने मे बहुधा निम्नलिखित कारक प्रबल कारण होते हैं :

(१) पानी की दाब, (२) गाद की दाब, (३) पानी के तल पर जमे हिम की दाब, (४) भूकंप एवं (५) बाँध तथा उसकी नीव के अंदर रिसनेवाले पानी का उत्प्लावक (upthrust) दबाव।

बाँध का तथा उसके ऊपर आए हुए जल का भार ही बाँध को स्थायित्व प्रदान करता है और इसी भार के कारण यह उलटने या खिमकने से बचता है। नीव की दृढता तथा उसका खुरदरापन भी बाँध के स्थायित्व में सहायक होते है। अत्यधिक ऊँचे बाँधो के पेंदे काफी चौड़े बनाए जाते हैं, ताकि संपीडक प्रतिबल (compressive stress) स्थिरता की सीमा मे ही रहे।

यद्यपि ठोस चिनाई के बाँध सहस्रो वर्षों से बनाए जाते रहे हैं, तथापि इनका वैज्ञानिक अभिकल्प १९ वी शताब्दी म श्री डब्ल्यू० जे० एम० रैंकिन तथा अन्य वैज्ञानिको ने ही बनाया, जिसके द्वारा बाँध के पेंदे की चौडाई तथा ऊँचाई का अनुपात ३ व ४ से घटाकर १ से भी कम किया जा सका है।

इस प्रकार के बाँध लगभग सभी स्थानों के लिये उपयुक्त हैं, परंतु ६५ फुट से अधिक ऊँचाई होने पर नीव के लिये चट्टान होना आवश्यक है।

अधिक ऊँचे बाँधों मे रिसाव की मात्रा कम करने के लिये नीव मे छेद करके उसमे सीमेट के घोल अथवा अन्य कोई सामग्री गच कर, एक ग्राउट का पर्दा बना दिया जाता है। इसके उपरात नीव पर पानी का उत्प्लावक दबाव कम करने के लिये, नीव मे छेदो की एक लाइन और बनाई जाती है, ताकि उसमे से जल का निकास होता रहे। ये जल निकास छिद्र ग्राउट पर्दे के अधोप्रवाह होते है (देखे फलक)।

ऐसे बाँधो का स्थायित्व निम्नलिखित बातो पर निर्भर है :

१. किसी भी क्षैतिज समतल पर तनाव (tension) नही होना चाहिए। यह तब होता है जब फलित बल उस क्षैतिज समतल के बीचवाले तिहाई भाग से पार होता है।

२. घर्षण एव अपरूपण (shear) प्रतिरोध बाध को खिसकने से रोकने के लिये पर्याप्त होने चाहिए।

३. संपीडक प्रतिबल स्थिरता की सीमा म होना चाहिए। सीमेट कंक्रीट के बहुत बडे बडे बाँधो को बनाते समय इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि कंक्रीट का ताप कम होने पर सिकुडन के कारण जो दरारे पडती है, वे कम से कम हो। आज के युग मे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये निम्नलिखित तरीके काम में लाए जाते हैं :

(१) आवश्यक बल प्रदान करने के लिये कंक्रीट मे कम से कम सीमेट का उपयोग किया जाए।

(२) कंक्रीट ४ से ५ फुट तक की परतो मे डाली जाए।

(३) कंक्रीट को बाँध मे भरने के बाद उसका ताप कम करने के लिये ठंढा करने का प्रबंध किया जाए, जैसा भाखड़ा बाँध (पंजाब) मे किया गया था। कंक्रीट को डालने के पहले भी ठढा किया जा सकता है, जैसा रिहद बाँध (उत्तर प्रदेश) पर किया गया था।

ऐसे बाँधो मे बाढ का पानी निकालने के लिये पक्की ढाल बाँध

के साथ ही होती है। ढाल बाँध से कुछ नीची रखी जाती है और इसकी ढालवाँ सतह ऐसी बनाई जाती है कि पानी कम से कम उथल-पुथलकर निकल जाए।

पक्की ढाल के नीचे की ओर पानी द्वारा कटाव रोकने के लिये अधिकांश बाँधों में पानी को शांत करनेवाला थाला (stilling basin) बनाया जाता है।

चिनाई के खोखले बाँध — इस प्रकार के बाँधों में कंक्रीट या पत्थर की चिनाई के बहुत से पुश्ते होते हैं, जिनके ऊपर से सबलन कंक्रीट का फर्श, या मेहराबवाला फर्श, ढाल में डाला जाता है। पानी का भार इसी फर्श द्वारा पुश्ते पर आता है। ऐसे बाँध की पक्की ढाल में अधोप्रवाह की ओर भी पुश्तों पर एक फर्श डाला जाता है जिसके ऊपर से होकर बाढ का पानी बहता है। इस प्रकार का बाँध महँगा पड़ता है, क्योंकि इसमें सबलन के लिये लोहा तथा कंक्रीट के लिये फर्मे लगाने का खर्च अधिक होता है। ये बाँध ऐसे स्थानों के लिये उपयुक्त होते हैं जहाँ कंक्रीट बनाने की सामग्री महँगी पड़ती हो और फर्मे सस्ते बनते हों।

काष्ठ तथा इस्पाती बाँध — बाँधों के ये प्रकार कम महत्व के हैं। इनका अभिकल्प खोखले बाँधों के समान ही होता है। काष्ठ के बाँधों में काष्ठ के ढाँचे बनाकर उनमें पत्थर भर दिए जाते हैं। ये छोटे छोटे बाँधों के लिये ही उपयुक्त हैं और कॉफर-डैम के लिये उपयोग में आते हैं।

मेहराबी बाँध — ऐसे बाँध पानी के अधिकतर भार को दोनों ओर के पायों पर स्थानांतरित कर देते है। इसके साथ ही साथ बाँध के पेंदे पर भी कुछ भार आता है। इस प्रकार के बाँधों के अभिकल्प बहुत पेचीदा होते हैं। इस प्रकार के बाँध बहुत कम बने हैं, क्योंकि ये ऐसे स्थानों के ही लिये उपयुक्त हैं, जहाँ घाटी की चौड़ाई बाँध की ऊँचाई से भी कम हो।

बाँधों का अभिकल्प तथा निर्माण आज के विकासयुग में बड़ा महत्वपूर्ण विषय है। बड़े बाँधों के संबंध में संसार के विभिन्न भागों में बड़ी खोजबीन हो रही है।

बड़े बाँध के संबंध में एक अंतरराष्ट्रीय संघ भी है। इसकी एक महत्वपूर्ण सभा भारत में १९५१ ई० में हुई थी। उसके बाद ही भारत में बाँध निर्माण में बड़ी प्रगति हुई है।

भारत में बड़े बाँधों की गणना में भाखड़ा, नागार्जुन सागर, तुंगभद्रा, हीराकुड, कोयना, रिहंद, शरावती आदि आ जाते हैं। इनका निर्माण आधुनिक प्रणालियों से ही हुआ है और भारत के नवविकास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। दामोदर घाटी योजना के अंतर्गत बाँधों की एक शृंखला है, जिसके द्वारा बाढ की रोकथाम के अतिरिक्त बहुमुखी विकास की बड़ी बड़ी योजनाएँ उस क्षेत्र में चलाई जा रही है। आधुनिक युग में बाँधों के ऊपर किसी राष्ट्र या देश की आर्थिक व्यवस्था बहुत कुछ निर्भर हो जाती है। इस दिशा में संसार के विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी प्रगति हो रही है।

कभी कभी बाँधों के टूट जाने से बड़ी क्षति भी हुई है। दुर्घटना तो सभी क्षेत्रों में हो सकती है, किंतु बाँध बन जाने से नदियों के प्राकृतिक चलन में जो परिवर्तन हो जाता है, उसके दुष्परिणामों को दूर करने के लिये भी बहुत कुछ काम करना पड़ता है। बाँधों द्वारा जलसंचय करना विकासशील क्षेत्रों के लिये अनिवार्य सा हो गया है। [बा० ना०]

बाँस ग्रामिनीई (Gramineae) कुल की एक अत्यंत उपयोगी घास है, जो भारत के प्रत्येक क्षेत्र में पाई जाती है। बाँस एक सामूहिक शब्द है, जिसमें अनेक जातियाँ सम्मिलित हैं। मुख्य जातियाँ, बैंब्यूसा (Bambusa), डेंड्रोकैलैमस (नर बाँस) (Dendrocalamus) आदि हैं। बैंब्यूसा शब्द मराठी बैंबू का लैटिन नाम है। इसके लगभग २४ वंश भारत में पाए जाते हैं।

भारत में पाए जानेवाले विभिन्न प्रकार के बाँसों का वर्गीकरण डा० ब्रैडिस ने प्रकंद के अनुसार इस प्रकार किया है :

(अ) कुछ में भूमिगत प्रकंद (rhizome) छोटा और मोटा होता है। शाखाएँ सामूहिक रूप से निकलती हैं। उपर्युक्त प्रकंद-वाले बाँस निम्नलिखित हैं

१. बैंब्यूसा अरंडिनेसी (Bambusa arundinacea) — हिंदी में इसे वेदुर बाँस कहते हैं। यह मध्य तथा दक्षिण-पश्चिम भारत एवं बर्मा में बहुतायत से पाया जानेवाला काँटेदार बाँस है। ३० से ५० फुट तक ऊँची शाखाएँ ३० से १०० के समूह में पाई जाती है। बौद्ध लेखों तथा भारतीय ओषधि ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है।

२. बैंब्यूसा स्पायनोसा — बंगाल, असम तथा बर्मा का काँटेदार बाँस है, जिसकी खेती उत्तरी-पश्चिमी भारत में की जाती है। हिंदी में इसे बिहार बाँस कहते हैं।

३. बैंब्यूसा टुल्ला — बंगाल का मुख्य बाँस है, जिसे हिंदी में पेका बाँस कहते हैं।

४ बैंब्यूसा वलगैरिस (Bambusa vulgaris) — पीली एवं हरी धारीवाला बाँस है, जो पूरे भारत में पाया जाता है।

५. डेंड्रोकैलैमस के अनेक वंश, जो शिवालिक पहाड़ियों तथा हिमालय के उत्तर पश्चिमी भागों और पश्चिमी घाट पर बहुतायत से पाए जाते हैं।

(ब) कुछ बाँसों में प्रकंद भूमि के नीचे ही फैलता है। यह लंबा और पतला होता है तथा इसमें एक एक करके शाखाएँ निकलती हैं। ऐसे प्रकंदवाले बाँस निम्नलिखित हैं

(१) बैंब्यूसा नूटैंस (Babusa nutans) — यह बाँस ५,००० से ७,००० फुट की ऊँचाई पर, नेपाल, सिक्किम, असम तथा भूटान में होता है। इसकी लकड़ी बहुत उपयोगी होती है।

(२) मैलोकेना (Melocanna) — यह बाँस पूर्वी बंगाल एवं बर्मा में बहुतायत से पाया जाता है।

तना — बाँस का सबसे उपयोगी भाग तना है। उष्ण कटिबंध में बाँस बड़े बड़े समूहों में पाया जाता है। बाँस के तने से नई नई शाखाएँ निरंतर बाहर की ओर निकलकर इसके घेरे को बढ़ाती हैं, किंतु समशीतोष्ण एवं शीतकटिबंध में यह समूह अपेक्षाकृत छोटा होता है तथा तनों की लंबाई ही बढ़ती है। तनों की लंबाई ३० से १५० फुट तक एवं चौड़ाई १/४ इंच से लेकर एक फुट तक होती है। तना में पर्व (internode), पर्वसंधि (node) से जुड़ा रहता है। किसी किसी में पूरा तना ठोस ही रहता है। नीचे के दो तिहाई भाग में

कोई टहनी नही होती। नई शाखाओं के ऊपर पत्तियों की संरचना देखकर ही विभिन्न बाँसो की पहचान होती है। पहले तीन माह मे शाखाएँ औसत रूप से तीन इच प्रति दिन बढ़ती हैं, इसके बाद इनमे नीचे से ऊपर की ओर लगभग १० से ५० इच तक तना बनता है।

तने की मजबूती उसमे एकत्रित सिलिका तथा उसकी मोटाई पर निर्भर है। पानी मे बहुत दिन तक बाँस खराब नही होते और कीड़ो के कारण नष्ट होने की संभावना रहती है।

बाँस के फूल एव फल — बास का जीवन १ से ५० वर्ष तक होता है, जब तक कि फूल नही खिलते। फूल बहुत ही छोटे, रगहीन, बिना डठल के, छोटे छोटे गुच्छो मे पाए जाते हैं। सबसे पहले एक फूल में तीन चार, छोटे, सूखे तुष (glume) पाए जाते है। इनके बाद नाव के आकार का अतपुष्पकवच (palea) होता है। छह पुकेसर (stamens) होते है। अडाशय (ovary) के ऊपरी भाग पर बहुत छोटे छोटे बाल होते हैं। इसमे एक ही दाना बनता है। साधारणत बाँस तभी फूलता है जब सूखे के कारण
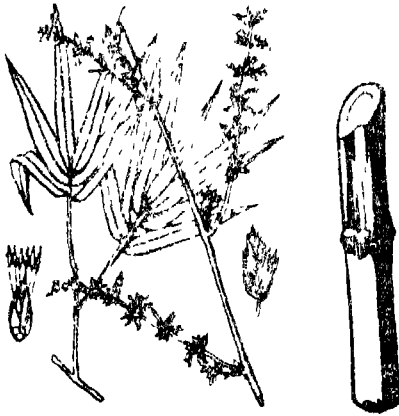
भारतीय बाँस

सकीर्ण पत्तियों सहित टहनी, पुष्पक्रम तथा तना

खेती मारी जाती है और दुर्भिक्ष पड़ता है। शुष्क एव गरम हवा के कारण पत्तियो के स्थान पर कलियां खिलती है। फूल खिलने पर पत्तियाँ झड जाती है। बहुत से बाँस एक वर्ष मे फूलते है। ऐसे कुछ बाँस नीलगिरि की पहाड़ियो पर मिलते है। भारत मे अधिकाश बाँस सामूहिक तथा सामयिक रूप से फूलते हैं। इसके बाद ही बाँस का जीवन समाप्त हो जाता है। सूखे तने गिरकर रास्ता बद कर देते हैं। अगले वर्ष वर्षा के बाद बीजो से नई कलमें फूट पडती है और जगल फिर हरा हो जाता है। यदि फूल खिलने का समय ज्ञात हो, तो काट छाँटकर खिलना रोका जा सकता है। प्रत्येक बाँस मे ४ से २० सेर तक जो या चावल के समान फल लगते है। जब भी ये लगते है, चावल की अपेक्षा सस्ते बिकते हैं। १८१२ ई० के उड़ीसा दुर्भिक्ष मे ये गरीब जनता का आहार तथा जीवन रक्षक रहे।

बाँस की खेती — बाँस बीजों मे धीरे धीरे उगता है। मिट्टी मे आने के प्रथम सप्ताह मे ही बीज उगना आरंभ कर देता है। कुछ बाँसो मे वृक्ष पर दो छोटे छोटे अकुर निकलते है। १० से १२ वर्षों के बाद काम लायक बाँस तैयार होते है। भारत मे दाब कलम के द्वारा इनकी उपज की जाती है। अधपके तनों का निचला भाग, तीन इंच लबाई में, थोड़ा पर्वसधि (node) के नीचे काटकर, वर्षा शुरू होने के बाद लगा देते हैं। यदि इसमे प्रकद का भी अश हो तो अति उत्तम है। इसके निचले भाग से नई नई जड़े निकलती है।

बाँस का कागज — कागज बनाने के लिये बाँस उपयोगी साधन है, जिससे बहुत ही कम देखभाल के साथ साथ बहुत अधिक मात्रा मे कागज बनाया जा सकता है। इस क्रिया मे बहुत सी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती है। फिर भी बाँस का कागज बनाना चीन एव भारत का प्राचीन उद्योग है। चीन मे बाँस के छोटे बडे गर्भो भागो से कागज बनाया जाता है। इसके लिये पत्तियो को छाँटकर, तन को छोटे छोटे टुकडों मे काटकर, पानी से भरे पोखरो मे चूने के सग तीन चार माह सडाया जाता है, जिसके बाद उसे बडी बडी घूमती हुई ओखलियों मे गूंधकर, साफ किया जाता है। इस लुग्दी को आवश्यकतानुसार रसायनक डालकर सफेद या रगीन बना लेते है और फिर गरम तवों पर दबाते तथा सुखाते है।

वंशलोचन — विशेषत बैब्यूसा अरनूडिनेसी के पर्व मे पाई जानेवाली, यह पथरीली वस्तु सफेद या हलके नीले रग की होती है। अरबी मे इसे तबाशीर कहते है। यूनानी ग्रथो मे इसका उल्लेख मिलता है। भारतवासी प्राचीन काल से दवा की तरह इसका उपयोग करते रहे हैं। यह ठढा तथा बलवर्धक होता है। वायुदोष तथा दिल एव फेफड़े की तरह तरह की बीमारियो मे इसका प्रयोग होता है। बुखार मे इससे प्यास दूर होती है। बाँस की नई शाखाओं मे रस एकत्रित होने पर वशलोचन बनता है और तब इसमे सुगध निकलती है।

वशलोचन से एक चूर्ण भी बनता है, जो मदाग्नि के लिये विशेष उपयोगी है। इसमे ८ भाग वशलोचन, १० भाग पीपर, १० भाग रूमी मस्तगी तथा १२ भाग छोटी इलायची रहती है। चूर्ण को शहद के साथ मिलाकर खाने और दूध पीने से बहुत शीघ्र स्वास्थ्यलाभ होता है।

बाँस के अन्य उपयोग — छोटी छोटी टहनियो तथा पत्तियों को डालकर उबाला गया पानी, बच्चा होने के बाद पट की सफाई के लिये जानवरों को दिया जाता है। जहा पर डाक्टरी औजार उपलब्ध नहीं होते, बाँस के तनों एव पत्तियों को काट छाँटकर सफाई करके खपच्चियो का उपयोग किया जाता है। बाँस का खोखला तना अपग लोगो का सहारा है। इसके खुले भाग मे पैर टिका दिया जाता है। बाँस की खपच्चियो को तरह तरह की चटाइयाँ, कुर्सी, टेबुल, चारपाई एव अन्य वस्तुएँ बिनने के काम मे लाया जाता है। मछली पकड़ने का काटा, डलिया आदि बाँस से ही बनाए जाते है। मकान बनाने तथा पुल बाधने के लिये यह अत्यत उपयोगी है। इससे तरह तरह की वस्तुएं बनाई जाती है, जैसे चम्मच, चाकू, चावल पकाने का बरतन। नागा लोगो मे पूजा के अवसर पर इसी का बरतन काम मे लाया जाता है। इसमे खेती के औजार, ऊन तथा सूत कातने की तकली बनाई जाती है। छोटी छोटी तख्तियाँ पानी मे बहाकर, उनमे मछली पकड़ने का काम लिया जाता है। बाँस से तीर, धनुष, भाले आदि लडाई के सामान तैयार किए जाते थे। पुराने समय मे बाँस की काँटेदार झाडियो से किलो की रक्षा की जाती थी। पैनगिस नामक एक तेज धारवाली

छोटी वस्तु से दुश्मनों के प्राण लिए जा सकते हैं। इससे तरह तरह के बाजे, जैसे बाँसुरी, वॉयलिन, नागा लोगों का ज्यूर्स हार्प एवं मलाया का ऑकलाग बनाया जाता है। एशिया में इसकी लकड़ी बहुत उपयोगी मानी जाती है और छोटी छोटी घरेलू वस्तुओं से लेकर मकान बनाने तक के काम आती है। बाँस का प्ररोह (young shoot) खाया जाता और इसका अचार तथा मुरब्बा भी बनता है।

बाँस के रोग — सिर्टोट्रैकेलस लांजिपेस नाम के कीड़े से बाँस की नई नई शाखाओं को बहुत क्षति पहुँचती है। [सा० जा०]

बाँसवाड़ा १. जिला, स्थिति २३° ३३' उ० अ० तथा ७४° २७' पू० दे०। यह भारत के राजस्थान राज्य का एक जिला है। इसका क्षेत्रफल १,९४६ वर्ग मील तथा जनसंख्या ४,७५,२४५ (१९६१) है। इसके उत्तर-पूर्व में चित्तूरगढ, पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम मे दुर्गापुर व उदयपुर, दक्षिण-पश्चिम मे पचमहल, पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व मे रतलाम एवं झाबुआ जिले है। इसकी मुख्य नदी माही है। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यकर नही है तथा वार्षिक औसत वर्षा ३८ इंच होती है। कृषि मे मक्का, धान, गेहूँ, जौ, चना तथा गन्ना का प्रमुख स्थान है। उद्योगो मे मोटा कपड़ा बनाना, लाख की चूड़ियाँ तथा लकड़ी के खिलौने बनाना प्रमुख है।

२. नगर, स्थिति २३° ३३' उ० अ० तथा ७४° २७' पू० दे। बाँसवाड़ा जिले मे नामली एवं रतलाम रेलवे स्टेशनो से ४२ मील दूर स्थित, जगमल द्वारा स्थापित नगर है। जगमल के किले के खंडहर अभी विद्यमान है। यह ऐतिहासिक नगर है तथा प्राचीन दीवार से घिरा है। इसकी जनसंख्या १९,५६६ (१९६१) है।

[दी० ना० ब०]

बाईआ (Bahia) या सैल्वाडॉर, १. राज्य, स्थिति : १३° ०' द० अ० तथा ३८° ३०' प० दे०। दक्षिणी अमरीका मे ब्राज़िल का एक राज्य है। इसका अधिकांश पर्वतीय है। इसका क्षेत्रफल १,६४,६०१ वर्ग मील तथा जनसंख्या ५९,९०,६०५ (१९६०) है। भीतरी प्रदेश की जलवायु गरम और शुष्क है। यहाँ की राजधानी सैल्वाडॉर (बाईआ) है। मुख्य व्यवसाय पशुपालन है। कुछ भागो मे गन्ना, कपास, तंबाकू और फलो की कृषि होती है।

२. नगर, बाईआ राज्य की राजधानी तथा प्रमुख नगर है। इसे सैल्वाडॉर भी कहते है। यहाँ का ताप २६° सें० और वार्षिक वर्षा ५२ इंच है। यहाँ से तंबाकू, काफी, चीनी, रबर, हीरे, रेंडी के तेल आदि का निर्यात होता है। इसकी जनसंख्या ६,५५,७३५ (१९६०) है। [ओ० सिं०]

बाइआे ब्लांका स्थिति ३८° ३५' द० अ० तथा ६२° १३' प० दे०। दक्षिणी अमरीका मे अर्जेंटीना देश के ब्यूनस एयरिज प्रांत के दक्षिणी भाग मे, नपोस्ता नदी के किनारे स्थित नगर है। ब्यूनस एयरिज के दक्षिणी जनपदो का यह प्रमुख एवं प्राकृतिक बंदरगाह है। इसने सन् १८८५ मे प्रथम रेलमार्ग आरंभ हो जाने के बाद तीव्र प्रगति की। नगर का समीपवर्ती भाग निम्न तथा दलदली है। यहाँ का पानी खारा होने से स्वास्थ्य के लिये उत्तम नही है। व्यापारिक महत्व की दृष्टि से यह ब्यूनस एयरिज के समकक्ष ही है। इसकी जनसंख्या १,२१,००० (१९५०) है। [ओ० सिं०]

बाइकाल झील स्थिति ५३° ०' उ० अ० तथा १०८° ०' पू० दे०। पूर्वी साइबेरिया मे संसार की छठी सबसे बड़ी और प्राचीनतम (२ करोड़ वर्ष पूर्व बनी हुई) झील है, जो ३६० मील लंबी, २० से ५३ मील चौड़ी तथा अधिकतम गहराई लगभग ५, ७१० फुट है। यह विश्व की सबसे गहरी झील है। इसके मीठे एवं निर्मल जल में सील एवं अन्य बड़ी बड़ी मछलियाँ पाई जाती हैं। इसमे लगभग ३०० छोटी बडी नदियाँ गिरती है। जब दिसबर और जनवरी से लेकर आधे मई तक इसके ऊपर लगभग एक मीटर मोटी बर्फ की परत जम जाती है, तब इसके ऊपर से लिस्टविनिचिनोई (Listvinichnoe) से मिसोवाया को मार्ग जाता है। इस झील के अंदर कई द्वीप भी हैं जिनमे ओलखन सबसे बड़ा है। इसके पश्चिमी किनारे का प्रमुख बंदरगाह लिस्टविनिचिनोई है। यह झील सागरतल से १,६०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। इसका तल घटता बढता रहता है। इसका प्रवाहक्षेत्र लगभग ६,५०,००० वर्ग किमी० है। इस झील के आसपास के स्थान बडे मनोरम है जहाँ पेड़ पौधो का बाहुल्य है। यहाँ १,८०० जातियों के पेड पौधे और अनेक समूरवाले जतु पाए जाते है। [ओ० सिं०]

बाइबिल ईसाइयों का प्रसिद्ध धर्मग्रंथ। इसके दो भाग है — पूर्वविधान (ओल्ड टेस्टामेंट) और नवविधान (न्यू टेस्टामेंट)। बाइबिल का पूर्वार्ध अर्थात् पूर्वविधान यहूदियो का भी धर्मग्रंथ है। बाइबिल ईश्वरप्रेरित (इंस्पायर्ड) है किंतु उसे अपौरुषेय नही कहा जा सकता। ईश्वर ने बाइबिल के विभिन्न लेखको को इस प्रकार प्रेरित किया है कि वे ईश्वरकृत होते हुए भी उनकी अपनी रचनाएँ भी कही जा सकती हैं। ईश्वर ने बोलकर उनसे बाइबिल नही लिखवाई। वे अवश्य ही ईश्वर की प्रेरणा से लिखने मे प्रवृत्त हुए किंतु उन्होने अपनी संस्कृति, शैली तथा विचारधारा की विशेषताओं के अनुसार ही उसे लिखा है। अत बाइबिल ईश्वरीय प्रेरणा तथा मानवीय परिश्रम दोनो का सम्मिलित परिणाम है।

मानव जाति तथा यहूदियो के लिये ईश्वर ने जो कुछ किया और इसके प्रति मनुष्य की जो प्रतिक्रिया हुई उसका इतिहास और विवरण ही बाइबिल का वर्ण्य विषय है। बाइबिल गूढ दार्शनिक सत्यो का सकलन नही है बल्कि इसमे दिखलाया गया है कि ईश्वर ने मानव जाति की मुक्ति का क्या प्रबंध किया है। वास्तव मे बाइबिल ईश्वरीय मुक्तिविधान के कार्यान्वयन का इतिहास है जो ओल्ड टेस्टामेंट मे प्रारभ होकर ईसा के द्वारा न्यू टेस्टामेंट मे सपादित हुआ है (दे० ईसामसीह)। अत बाइबिल के दोनो भागो मे घनिष्ठ सबध है। ओल्ड टेस्टामेंट की घटनाओं द्वारा ईसा के जीवन की घटनाओ की पृष्ठभूमि तैयार की गई है। न्यू टेस्टामेंट मे दिखलाया गया है कि मुक्तिविधान किस प्रकार ईसा के व्यक्तित्व, चमत्कारो, शिक्षा, मरण तथा पुनरुत्थान द्वारा सपन्न हुआ है; किस प्रकार ईसा ने चर्च की स्थापना की (दे० चर्च) और इस चर्च ने अपने प्रारंभिक विकास मे ईसा के जीवन की घटनाओ को किस दृष्टि से देखा है और उनमे से क्या निष्कर्ष निकाला है।

बाइबिल मे प्रसंगवश लौकिक ज्ञान विज्ञान संबंधी बातें भी आ गई है; उनपर तात्कालिक धारणाओं की पूरी छाप है क्योंकि

बाइबिल उनके विषय में शायद ही कोई निर्देश देना चाहती है। मानव जाति के इतिहास की ईश्वरीय व्याख्या प्रस्तुत करना और धर्म एवं मुक्ति को समझना, यही बाइबिल का प्रधान उद्देश्य है, बाइबिल की तत्संबंधी शिक्षा मे कोई भ्रांति नही हो सकती। उसमे अनेक स्थलो पर मनुष्यो के पापाचरण का भी वर्णन मिलता है। ऐसा आचरण अनुकरणीय आदर्श के रूप मे नही प्रस्तुत हुआ है किंतु उसके द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य कितने कलुषित हैं और उनको ईश्वर की मुक्ति की कितनी आवश्यकता है।

विषयसूची · बाइबिल कुल मिलाकर ७२ ग्रंथो का संकलन है — पूर्वविधान मे ४५ तथा नवविधान मे २७ ग्रथ हैं। पूर्वविधान की सामग्री इस प्रकार है — (१) ऐतिहासिक ग्रथ पेंतातुख, जोसुए अथवा यहोशू, न्यायाधीश, रूथ, सामुएल, राजा, पुरावृत्त (पैरालियोमेनोन), एज्रा (एस्ड्रास), नेहेमिया, एस्तर, तोबियास, यूदिथ, मकाबी (दे० पेंतातुख, उत्पत्तिग्रंथ, सामुएल, एज्रा, एस्तेर)। (२) शिक्षाप्रधान ग्रंथ — इय्योब (दे० इय्योब), भजनसहिता (दे० दाऊद,) नीतिवचन, उपदेशक (एल्केसिआस्तेस श्रेष्ठगीत (दे० सुलेमान), प्रज्ञा, एल्केसियास्तिकम अथवा सिराह। (३) नबियो के ग्रथ यशयाह, जेरेमिया, विलापगीत, बारूह, एजेकिएल, अथवा यहेजकेल, दानिएल और बारह गौण नबी अर्थात् ओसेआ अथवा होशे, जोएल, योएल आमोस, ओबद्याह, योना, मिकेयाह, नाहूम, हाबाकुक, सोफोनिया, हग्गै, जाकारिआ, मलाकी (दे० नबी, एलियाह, यशयाह, जेरेमिया, आमोस, नाहूम, ओबद्याह) नवविधान के प्रथम पांच ग्रथ ऐतिहासिक है अर्थात् चारों सुसमाचार (गास्पेल, दे० सुसमाचार) तथा ऐक्ट्स आव दि एपोसल्स (ईसा के पट्ट शिष्यो के कार्य। अंतिम ग्रथ एपोकालिप्स (Apocalypse) (प्रकाशना) कहलाता है। इसमे सुसमाचार लेखक सत योहन प्रतीकात्मक शैली मे चर्च के भविष्य तथा मुक्तिविधान की परिणति का चित्र अंकित करते है। नवविधान के शेष २१ ग्रथ शिक्षा प्रधान है, अर्थात् संत पाल के १४ पत्र (दे० सत पाल), सतपीटर के दो पत्र, सुसमाचार लेखक सत योहन के तीन पत्र, सत याकूब (दे० याकूब) और सत जूद का एक एक पत्र। संत पाल के पत्र या तो किसी स्थानविशेष के निवासियो के लिये लिखे गए है (कोरिंथियों तथा थेस्सालुनीकियो के नाम दो दो पत्र; रोमियो, एफिसियो, फिलिपियो और कुलिसियो के नाम एक एक पत्र) या किसी व्यक्तिविशेष को (तिमोथी के नाम दो और तितुस तथा फिलेमोन के नाम एक एक पत्र)। इब्रानियो के नाम जो पत्र बाइबिल मे संमिलित हैं, इनकी प्रामाणिकता के विषय मे सदेह नही है किंतु सत पाल के विचारो से प्रभावित होते हुए भी इनका लेखक कोई दूसरा ही होगा।

बाइबिल के प्रामाणिक ग्रथो की उपर्युक्त सूची मे से पूर्वविधान के कुछ ग्रंथ इब्रानी बाइबिल मे संमिलित नही थे, अर्थात् तोबियास, यूदिथ, मकाबी, प्रज्ञा सिराह और दानिएल एव एस्तेर के कुछ अश। यहूदी और बहुत से प्रोटेस्टैंट सप्रदाय इन ग्रंथो को अप्रमाणित मानकर अपनी बाइबिल मे स्थान नही देते।

भाषा और रचनाकाल : प्राय समस्त पूर्वविधान की मूल भाषा इब्रानी है (दे० इब्रानी भाषा और साहित्य)। अनेक ग्रंथ यूनानी भाषा मे तथा थोड़े से अश अरामेयिक (इब्रानी बोलचाल) मे लिखे गए हैं। समस्त नवविधान की भाषा कोइने नामक यूनानी बोलचाल है।

बाइबिल का रचनाकाल १४०० ई० पू० से सन् १०० ई० तक माना जाता है। इसके बहुसख्यक लेखको मे से मूसा सबसे प्राचीन हैं, उन्होने लगभग १४०० ई० पू० मे पूर्वविधान का कुछ अश लिखा था (दे० मूसा)। पूर्वविधान की अधिकाश रचनाएं ८०० ई० पू० और १०० ई० पू० के बीच की हैं। समस्त नवविधान ५० वर्ष की अवधि मे लिखा गया है अर्थात् सन् ५० ई० से सन् १०० ई० तक।

बाइबिल मे जो ग्रंथ समिलित किए गए है वे एक ही शैली में नही, अनेक शैलियों में लिखे गए है— इसमे लोककथाएँ, काव्य और भजन, उपदेश और नीतिकथाएँ आदि अनेक प्रकार के साहित्यिक रूप पाए जाते हैं। अध्ययन तथा व्याख्यान करते समय प्रत्येक अश की अपनी शैली का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है।

अनुवाद — शताब्दियो से बाइबिल के अनुवाद का कार्य चला आ रहा है। इसराएली लोग इब्रानी बाइबिल का छायानुवाद अरामेयिक बोलचाल मे किया करते थे। सिकदरिया के यहूदियो ने दूसरी शताब्दी ई० पू० मे इब्रानी बाइबिल का यूनानी अनुवाद किया था जो सेप्टुआजिंट (सप्तति) के नाम से विख्यात है। लगभग सन् ४०० ई० मे सत जेरोम ने समस्त बाइबिल का लैटिन अनुवाद प्रस्तुत किया था जो वुलगाता (प्रचलित पाठ) कहलाता है और शताब्दियो तक बाइबिल का सर्वाधिक प्रचलित रूप रहा है। आधुनिक काल मे इब्रानी तथा यूनानी मूल के आधार पर सहस्र से भी अधिक भाषाओ मे बाइबिल का अनुवाद हुआ है। पूर्वविधान का सर्वोत्तम प्रामाणिक इब्रानी पाठ किटूल द्वारा (सन् १९३७ ई०) तथा यूनानी पाठ राल्फस द्वारा (१९१८ ई०) प्रस्तुत किया गया है। नव विधान के अनेक उत्तम प्रामाणिक यूनानी पाठ मिलते है, जैसे टिशनडार्फ, वेस्टकोट होर्ट, नेस्टले, वोगेल्स, मेर्क और सोटर के सस्करण।

यूनानी बाइबिल की प्राचीन हस्तलिपियों का विवरण इस प्रकार है — (१) वाटिकानुस (चौथी श० ई०; रोम मे सुरक्षित); (२) सिनाइटिकुस (चौथी श० ई०, ब्रिटिश म्यूजियम); (३) एलेक्सेंड्रिकुस (पाँचवी श० ई०, ब्रिटिश म्यूजियम); (४) एफ्राएम (पाँचवी श० ई०; पेरिस का लुव्र म्यूजियम)। इसके अतिरिक्त १५ सपूर्ण तथा ४००० से अधिक आंशिक नवविधान की यूनानी हस्तलिपियाँ प्राप्त हैं जिनका लिपिकाल सन् २०० ई० तथा ७०० ई० के बीच है। नवविधान की प्राचीनतम हस्तलिपि सन् २१४ ई० का पैपीरस चेस्टर बीटी है। अंग्रेजी भाषा के निम्नलिखित अनुवाद सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं— आँथोराइज्ड वर्शन अथवा किंग जेम्स बाइबिल (सन् १६११ ई०), डूए वर्शन (१६०९ ई०); कान्फ्राटर्निटी वर्शन (१९४१ ई०) आर० ए० नौक्स बाइबिल (१९४४ ई०); न्यू इंग्लिश बाइबिल (१९६१ ई०)। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में प्रोटेस्टैंट मिशनरी कैरे ने बाइबिल का हिंदी अनुवाद तैयार किया था; 'धर्मशास्त्र' के नाम से इसके बहुत से सस्करण छप चुके हैं और उसमे सशोधन भी होता रहा है (बाइबिल सोसायटी, इलाहाबाद)। रोमन काथलिक ईसाइयों की ओर से बाइबिल का संपूर्ण हिंदी अनुवाद हाल मे छपा है (धर्मग्रंथ, इलाहाबाद, १९६४ ई०)

व्याख्या : बाइबिल ईश्वर प्रेरित भी है और साधारण मनुष्यों की रचना भी है; अतः इसकी व्याख्या में इस दोहरे कर्तृत्व का ध्यान रखना आवश्यक है।

मनुष्य की कृति होने के कारण अन्य लौकिक साहित्य की तरह बाइबिल का अध्ययन किया जाना चाहिए; अतः (१) पाठानुसंधान के नियमों के अनुसार शुद्ध पाठ का निर्धारण करना है, (२) परोक्ष एवं प्रत्यक्ष संदर्भ के अनुसार शब्दों तथा वाक्यों का अर्थ लगाना है; (३) इस कार्य में समानांतर रचनाओं, प्राचीन अनुवादों तथा प्रामाणिक व्याख्याओं का सहारा लेना है, और (४) विभिन्न लेखकों के समय, स्थान, शैली तथा उद्देश्य का ध्यान रखना है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाइबिल के व्याख्याता के लिये बाइबिल में उल्लिखित देशों की विस्तृत जानकारी के अतिरिक्त भाषाविज्ञान, इतिहास, भूगोल, पुरातत्व, धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन जैसी अनेक सहायक विधाएँ अत्यंत आवश्यक है।

बाइबिल ईश्वर की प्रेरणा से लिखी गई है, अतः इसकी व्याख्या करते समय (१) इसके धार्मिक उद्देश्य की रक्षा होनी चाहिए, (२) इसकी शिक्षा निर्भ्रांत सिद्ध हो जानी चाहिए क्योंकि ईश्वर भ्रांति नहीं सिखला सकता, (३) धर्म तथा नैतिकता के प्रश्नों के विषय में ईसा (ईश्वर) द्वारा स्थापित चर्च की आधिकारिक व्याख्या दी जानी चाहिए। (४) प्रत्येक व्याख्या का ईसाई धर्म के सामूहिक सत्य के साथ सामंजस्य रखना चाहिए।

उपर्युक्त नियमों के दोहरे पक्ष का संतुलन रखना आवश्यक है। चर्च की परंपरा के अनुसार ही बाइबिल की वैज्ञानिक व्याख्या सार्थक हो सकती है।

सं० ग्रं० — एनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी ऑव दि बाइबिल, न्यूयार्क, १९६३। [आ० बे०]

बाइबिल, अँग्रेजी साहित्य में — भौगोलिक दृष्टि से बाइबिल का प्रभाव बहुत ही विस्तृत है। शायद यह एक आकस्मिकता हो। मूलतः एक दमित जनता के धर्म के रूप में ईसाइयत अनेक परीक्षणों के पश्चात् अपने विजितों का धर्म बनी।

बाइबिल का प्राचीन धर्मनियम (टेस्टामेंट) आध्यात्मिकता की दृष्टि से कुरान और इस्लाम से संयुक्त है और एक चुने हुए विशिष्ट जनसमूह से संबद्ध है। मूसा अथवा ईसा, अब्राहम या सुलेमान मुस्लिमों में श्रद्धेय नाम है। बाइबिल इनसे भिन्न है। यह कई ग्रंथों का निचोड़ है। यह यहूदी जनता की समूची कहानी है, और शायद प्राचीन लोगों में यहूदियों के अनुभव सर्वाधिक वैविध्यपूर्ण है। यह ऐसी जाति थी जो खूँखार कबीलों में घिरी थी और जो स्वयं भी कम खूँखार न थी। कभी कभी उन्हें नीचा दिखाया गया, विजित किया गया और गुलाम भी बनाया गया। इस जाति ने कभी अपने शत्रुओं को विजित किया तथा उनकी शक्ति आजमाई, फिर भूमिसात् कर डाला (सैमुअल परिच्छेद ८ २)।

यह एक ऐसी ही जनता की आकांक्षा और प्रेरणा तथा जय और पराजय है जिसका वर्णन बाइबिल में अद्भुत सजीवता के साथ किया गया है। उसने हमें अपने अब्राहम और मूसा जैसे महान् नेताओं, दाऊद और सुलेमान जैसे महान् राजाओं तथा महान् अवतारों के विषय में ज्ञान कराया है जिन्होंने समय समय पर उत्पन्न होकर अपने दृढ़ वचनों द्वारा अनुचित मार्ग पर आरूढ़ जनता को टोका। सेवानोरोला तक तो यही क्रम रहा है। उन्होंने उनकी हिंसापरायण वृत्ति को स्वयं भोग लिया, आलस्य और क्रूरता की निंदा की जिसकी ओर जनता स्वभावतः अभिमुख थी। बाइबिल (प्राचीन धर्मनियम) ने अब्राहम सरीखे रक्तपिपासु, भयंकर हिंसक राजाओं और असभ्य रानियों के विषय में भी दर्शाया है। यह जनता की ऐतिहासिक घटनाओं और तिथियों की संहिता है। किसी ग्रंथ की अपरिहार्य लघु सीमाओं में यह वस्तुतः एक जातीय इतिहास होते हुए भी आश्चर्यचकित कर देनेवाले सत्यों से परिपूर्ण है।

प्राचीन धर्मनियम की समाप्ति के साथ उसमें एक आकस्मिक परिवर्तन होता दिखाई देता है। इतिहास वही रहता है किंतु उसकी प्रकृति बदल जाती है। यहूदियों का भयंकर ईश्वर हटा दिया जाता है और कल्पना में भारतीय ढंग का एक स्नेही ईश्वर उभड़ आता है। कदाचित् एक ऐसी ही प्रवृत्ति के प्रथम धुँधले चित्र स्वयं प्राचीन धर्मनियम के हृदयदेश के मध्य कुछ अवतारों में, विशेषकर इसयाह आदि में पाए जाते है।

किंतु ईश्वर के संबंध में यह इस्रानियों की कोई आनुपातिक कल्पना नहीं है। उनकी भावना नेत्र के लिये नेत्र की थी। लेकिन जब ईसा ने उनसे कहा कि वे उनके दाएँ गाल पर थप्पड़ जमानेवाले के सामने अपना बायाँ गाल भी फेर दें, वे ऐसे क्रांतिकारी दर्शन और हिंसा के निपट अस्वीकार की बात न समझ सके। इस प्रकार उन्होंने इस नवीन धार्मिक धारणा के लेखक को अमान्य घोषित कर दिया और अंततः उन्हें सूली दे दी। किंतु उस दिन गलगोथा नामक स्थान पर क्रास से प्रवाहित रक्तबिंदुओं की धारा ने एक नए धर्म को जन्म दिया। ईसाई जन उसको अपने लिये जैसे एक प्रतीक रूप में देखते हैं और ईसा के वचनों का उपदेश देते है। इस प्रकार, बुनियादी तौर पर धैर्य और प्रेम ने त्वरा और घृणा पर विजय प्राप्त की। कोई नहीं सोचता था कि रोम के अंदर गुप्त तथा सुसज्जित कंदराओं या कुटियों में मिले सामवेत रूप से मंद उच्चारित गायन में संमिलित होनेवाले लोग, जो पहले भयंकर रोमन पर्वों की जमातों के मनोरंजनार्थ ही उपयुक्त थे, एक न एक दिन केवल रोम की राजकीय शक्ति को ही नहीं हिला देंगे, अपितु आगामी दिनों में एक महत्तर और अधिक गौरवशाली रोम जैसे सनातन नगर का निर्माण करेंगे।

फिर ईसाई लोग क्रोम रूपी शस्त्र से सुसज्जित होकर तमाम रोम में फैल गए। यद्यपि यहाँ वह रोमन सैन्यदल नहीं था बल्कि तालपत्रों से युक्त पादरी और भिक्षापात्र लिए संत थे, जो हजारों की संख्या में हँसते हँसते मृत्यु की भेंट चढ़ गए, उन्होंने यूरोप के विकराल और असभ्य जनों के बीच बाइबिल के संदेशों का प्रचार किया। बाइबिल (नवीन धर्मनियम) के शब्दों ने उन असभ्यों को आंशिक रूप से सभ्य बनाया।

इस प्रकार चर्च या ईसाई धर्म संस्थान कम से कम हजार वर्षों तक, अपनी संपूर्ण व्याप्ति के साथ यूरोप के मन पर अधिकार किए रहा। यहाँ तक कि साधारण से साधारण आचार अथवा विचार-कल्पना पर भी ईसाइयत की छाप रखनी पड़ती थी। किंतु वही चर्च

जो मूलतः अत्याचार और दमन के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये विकसित हुआ था, अब स्वयं जुल्म और निरंकुशता का सबसे बड़ा वाहक यंत्र बन गया।

पुनः बाइबिल जनता को संकटमुक्त करने के लिये आगे आई। यह अपने आप में एक विरोधाभास है। जब चर्च अपनी असीम शक्ति के कारण मान्य हो गया था और पादरियों ने क्रॉस को विस्मृत कर दिया तथा महंत लोग अनुचित लाभ उठाने लगे थे जनता बेदाँव होकर पुनः ईश्वरी वचनों को ढूँढने लगी।

मूल रूप से इब्रानी और अरामेइक में (जिसमें संभवतः नवीन धर्म नियम के कुछ अंश ग्रीक में लिखे गये थे) लिखी जाकर यह ४०० ई० में सेंट जेरोम जी द्वारा लैटिन में अनूदित हुई और यह प्रामाणिक अनुवाद रोमन कैथोलिक गिरजाघरों द्वारा उपयोग में लाया गया। किंतु लैटिन सर्वसामान्य लोगों की भाषा न थी, दूसरे ईसाई धर्मगुरु भाषाओं या फूहड़ बोलियों में हुए बाइबिल के अनुवादों से बहुत चिढ़ते थे।

यह केवल इसीलिये ही नहीं कि ईसाई धर्मगुरु अपने विशेषाधिकार की स्थिति बनाए रखना चाहते थे, यद्यपि वहाँ इसकी अधिकता थी, वे डरते यह थे कि कहीं बोलचाल की भाषा में अनूदित होने से उसके वचन ईश्वरीय वचनों की शक्ति और आशय न खो दें। केवल एक चिरपरिचित मुहावरा पूज्य भाव और भक्ति को उत्तेजित करनेवाला अत्युत्तम माध्यम नहीं है अथवा अनिवार्य रूप से गहन सत्यों का सर्वोपरि संप्रेषक नहीं है।

किसी न किसी प्रकार चर्च के दुराचरण से ही धर्म और धार्मिक संस्थान में नया संघर्ष आरंभ हो गया। इस अवधि में, साथ ही साथ भूमध्यसागर के पूर्वी तटों पर एक नई शक्ति का उदय हो रहा था, और इस्लाम के उमड़ते ज्वार के पूर्व अनेक ईसाई मतावलंबी पश्चिम की ओर बढ़ते आए थे। यद्यपि वास्तविक पुनर्जागरण कई दशकों बाद आया तथापि ईसाई धर्म के ये विद्वान् और उपासक उसके अग्रदूत थे। उन्होंने लोगों को अनिर्दिष्ट उत्तेजनाओं से भर दिया।

इंग्लैंड में पहले पहल अपनी आवाज बुलंद करनेवाले 'लोलार्ड' थे। यह एक संप्रदाय था जो जनता में ईसा मसीह के उपदेशों की शिक्षा देता था और चर्च तथा मठ के विचार का विरोध करता था। उनका नेता विक्लिफ अद्भुत साहस और पांडित्यसंपन्न व्यक्ति था। उसने अनुभव किया कि विचारपरिवर्तन के लिये लोगों का ईसा के उपदेशवचनों की जानकारी आवश्यक है। इसके लिये जनभाषा में बाइबिल का अनुवाद आवश्यक हो गया। इस प्रकार उस काल की नवीन चेतना विक्लिफ की आवाज में ध्वनित हुई।

विक्लिफ उस समय हुआ था जब अंग्रेजी गद्य में बाइबिल के पूर्ण ऐश्वर्य और सौंदर्य को अभिव्यक्त करने की बहुत ही कम शक्ति थी। इसका अपना अनुवाद बहुत ही रूक्ष है। शायद अंग्रेजी बोलचाल के संगीत के लिये उसके पास कान ही नहीं था। इब्रानी पद्य की कुछ अपनी निजी विशेषताओं के कारण उसके मूल संस्करण में एक ऐसी भव्यता भी थी और प्रयोग से कहीं अधिक महत्व हिब्रूवाली बाइबिल के शब्दसौंदर्य का था जो कुछ प्राचीन अनुवादों में सहज ही खो गया था। वाक्यखंड में संज्ञा का एक विशेष स्थान होता है और विभक्तियों की आज जैसी अनिवार्यता उस समय थी भी नहीं, क्योंकि यह एक महान् वास्तविक कल्पना थी जो यहूदियों की अपनी थी तथा शब्दों के प्रति उनका संवेदन मर्मस्पर्शी था।

इस प्रकार कुछ शब्दों में ही सामर्थ्य और तीव्रता होती थी क्योंकि वे शब्द लागू न होकर बीज रूप में होते थे। इसके अतिरिक्त प्राचीन धर्मनियम की विषयवस्तु व्यापक रूप से सुगम है। विषयवस्तु के रुचिकर होने और अल्प-समय-साध्य होने के गुणों के कारण इसकी गाथाएं, वर्णन, नाट्यगीतियाँ (जाब की पुस्तक) भविष्यवाणियाँ, सूक्तियाँ, लघु कथाएँ (रूथ के अध्ययन की कथा) सभी ने मिलकर एक सावयव आकार-प्रकार धारण कर लिया था। अंत में नवीन धर्म नियम (न्यू टेस्टामेंट) में ईसा के वचन हैं। अतः उन्हें समझने में थोड़ी भी चूक अथवा भ्रम हो जाने पर न केवल उलझन ही बढ़ जाती है बल्कि संपूर्ण आशय ही भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये इसमें आश्चर्य नहीं कि गिरजाघरों ने अनुवादों को उचित नहीं समझा।

फिर भी विलियम टिंडेल ने बाइबिल के अंग्रेजी अनुवाद का प्रथम प्रामाणिक प्रयास किया। उसने मूल इतालीय (इटैलियन) संस्करण का उपयोग किया जो पंद्रहवीं शताब्दी में इटली में तैयार किया गया था तथा चौदहवीं शताब्दी में किए गए विक्लिफ के अनुवाद का सहारा भी लिया था। अनुवाद के लिये उसने सरलतम आंग्ल शब्दों को चुना और इस प्रकार जनसाधारण की भाषा से नैकट्य स्थापित करते हुए अपना अनुवाद प्रस्तुत किया (१५२५)। टिंडेल ने इरेस्मस और लूथर (१५२२-३२) और ज्विग्ली (१५२४-२९) के ज़्यूरिख संस्करण का भी उपयोग किया था। फिर भी टिंडेल की सहजता कहीं कहीं अटपटे प्रयोगों से संबद्ध थी। किंतु टिंडेल की बाइबिल के निकट होकर ही कवरडेल एक महान् धर्मोपदेशक था। वह टिंडेल की स्पष्टता को निबाहने में सफल हुआ है किंतु उसने उसे वाग्मीयता से भर दिया है। इसी नाते वह गद्य का असाधारण शिल्पी सिद्ध हो जाता है।

कवरडेल के पश्चात् सन् १६११ तक इस दिशा में कई प्रयास किए गए। सात वर्षों के अथक परिश्रम से प्रामाणिक संस्करण प्रस्तुत हुआ। ४७ विद्वानों, बिशपों ने लैंसलॉट ऐंड्रूज की अध्यक्षता में, वेस्टमिंस्टर के दो विश्वविद्यालयों में, इस कार्य को तीन खंडों में पूरा किया।

विद्वानों ने बुद्धिमत्तापूर्वक टिंडल की स्पष्टता और कवरडेल की लयात्मक वाक्पटुता को काफी हद तक छोड़ दिया। उन्होंने अन्य अनुवादों से भी सहायता ली और इस प्रकार अपने प्रामाणिक अनुवाद को एक सुव्यवस्थित सौंदर्य तथा संगीतात्मक स्वर माधुरी प्रदान की जिसका अंग्रेजी भाषा में दुबारा पाया जाना संभव नहीं है। इससे केवल यही भर नहीं हुआ कि उसमें इब्रानी का सहज सौंदर्य और तात्विक शक्ति अक्षुण्ण रही बल्कि उचित शब्दों में, उसे एक 'चित्रात्मक' और गीतात्मक गुण प्राप्त हो गया जो अत्युत्तम अंग्रेजी प्रतिभा का परिणाम है। यह जनता की बोली में घुलमिल गया है। विद्वानों का कहना है कि उसके ९३ % शब्द अंग्रेजी के हैं। उसका शब्द कभी भी प्राप्त या सीखा हुआ नहीं है तथा अनुवाद में गृहीत शब्द बिलकुल ही नहीं है।

आशय का स्पष्ट होना जरूरी भी था क्योंकि ईश्वरी पुस्तक माने

जाने वाले ग्रंथ में दुरुहता की कोई गुंजायश नहीं होनी चाहिए थी। यद्यपि शैली बोलचाल की ही होनी आवश्यक थी ताकि लोग समझ सकें, तथापि गँवारूपन के लिये बिलकुल ही स्थान न था। फिर, शब्दों का सरल होना भी जरूरी था और यथाअवसर सौंदर्य तथा संयम भी अपेक्षित था। प्रामाणिक अनुवाद में इन सभी गुणों का प्राचुर्य था। [र० ना० दे०]

बाइसिकिल ग़रीब आदमियों का घोड़ा समझी जाती है। यूरोपीय देशों मे बाइसिकिल के प्रयोग का विचार लोगो के दिमाग मे १८वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे ही आ चुका था, लेकिन इसे मूर्त्तरूप पैरिस नगर के एक कारीगर ने सन् १८१६ मे सर्वप्रथम दिया। उस यत्र को हॉबी हॉर्स, अर्थात् काठ का घोडा, कहते थे। पैर से घुमाए जानेवाले क्रैंकों (पैडल) युक्त पहिए का आविष्कार सन् १८६५ ई० में पैरिस निवासी लालेमे (Lallement) ने किया। इस यंत्र को वेलॉसिपीड (velociped) कहते थे (चित्र १)। इसपर चढ़नेवाले को बेहद थकावट हो जाती थी। अतः इसे हाडतोड
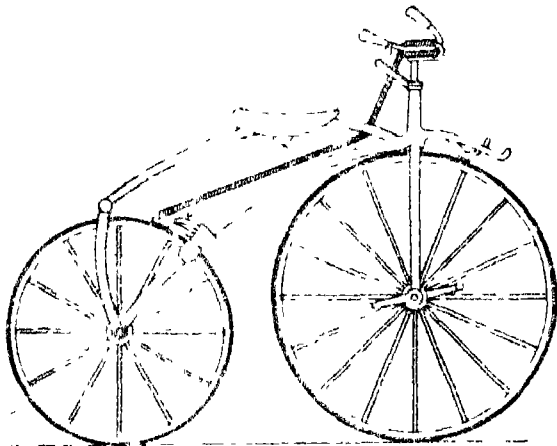
चित्र १

(bone shaker) भी कहने लगे। इसकी सवारी, लोकप्रिय हो जाने के कारण, इसकी बढ़ती माँग को देखकर इंग्लैंड, फ्रास और
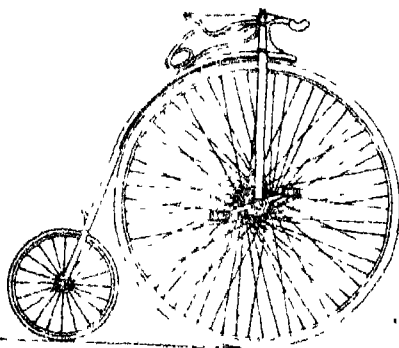
चित्र २.

अमरीका के यत्रनिर्माताओं ने इसमे अनेक महत्वपूर्ण सुधार कर सन् १८७२ में एक सुंदर रूप दे दिया, जिसमे लोहे की पतली पट्टी के तानयुक्त पहिए लगाए गए थे (चित्र २.)। इसमे आगे का पहिया ३० इंच से लेकर ६४ इच व्यास तक और पीछे का पहिया लगभग १२ इंच व्यास का होता था। इसमे क्रैंकों के अतिरिक्त गोली के बेयरिंग और ब्रेक भी लगाए गए थे।

चित्र ३. में आधुनिक बाइसिकिल का एक नमूना दिखाया है। आजकल सभी देशों तथा भारत मे भी जो बाइसिकिलें बनाई
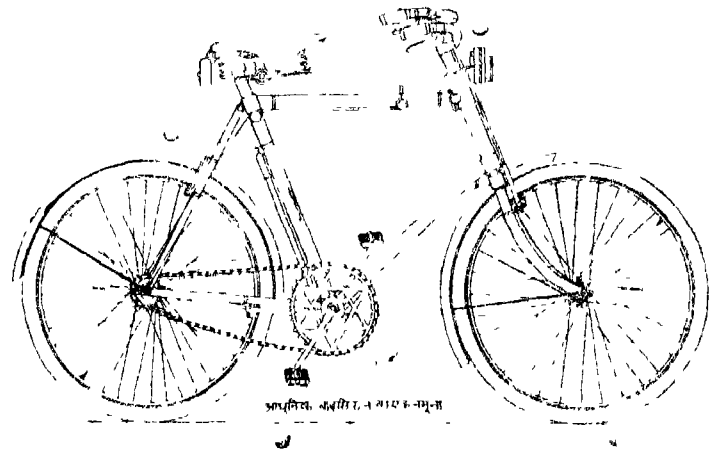
चित्र ३

जाती हैं, वे सब मानक विशिष्टियों (standard specifications) के अनुसार ही होती हैं। बाइसिकिल के विभिन्न भाग निम्नलिखित है :

फ्रेम — बाइसिकिल का सबसे महत्वपूर्ण अंग उसका फ्रेम है। फ्रेम की बनावट ऐसी होनी चाहिए कि उसपर लगनेवाले पुर्जे अपना काम कुशलतापूर्वक कर सके। बाइसिकिल की तिकोनी फ्रेम और आगे तथा पीछे के चिमटे खोखली, गोल नलियो से बनाए जाते है। फिर उन्हे फ्रेम के कोनों पर उचित प्रकार के ब्रैकेटो मे फँसाकर झाल दिया जाता है। तिकोनी फ्रेम के बनाने मे ध्यान रखा जाता है कि उसकी नलियो की मध्य रेखाएँ एक ही समतल मे रहे। फ्रेम में लगा आगे का स्टियरिंग सिरा (steering head), उसपर लगनेवाले हैंडिल का डठल और आगे के चिमटे के डठल की मध्य रेखाएँ एक दूसरी पर सपाती (coincident) होनी चाहिए। दोनो तरफ के चिमटो की भुजाएँ भी उनकी मध्य रेखा से सममित तथा समातर होनी चाहिए। चक्को की मध्य रेखा चिमटो की मध्य रेखा पर सपाती होनी चाहिए, अन्यथा बाइसिकिल सतुलित रहकर सीधी नही चल सकेगी।

पहिया — पहियों में आजकल नाभि (hub) की स्पर्शीय दिशा में अरे लगाने का रिवाज है। स्पर्शीय अरे, पहिए के घेरे (rim) पर भ्रामक बल भली प्रकार से डाल सकते हैं। प्रत्येक दो आसन्न अरे कैंचीनुमा लगकर, हब की फ्लैंज (flange) से स्पर्शीय दिशा मे झुके रहते हैं। चित्र ४. और ५. मे क्रम से, पीछे और आगे के पहियों में अरे लगाने का क्रम समझाया है। पीछे के पहिए मे ४० और अगले मे ३२ अरे लगते है, अत. उसी के अनुसार उनके घेरो मे छेद बनाए जाते हैं और हबो की प्रत्येक फ्लैंज मे घेरे की आधी सख्या मे छेद बनाए जाते हैं। चित्र मे भीतर से बाहर की तरफ पिरोए जानेवाले

अरे को का$_1$, का$_2$, आदि अक्षरों से और बाहर से भीतर की तरफ पिरोए जानेवाले अरों को क$_1$, क$_2$ आदि से चिह्नित किया गया है।
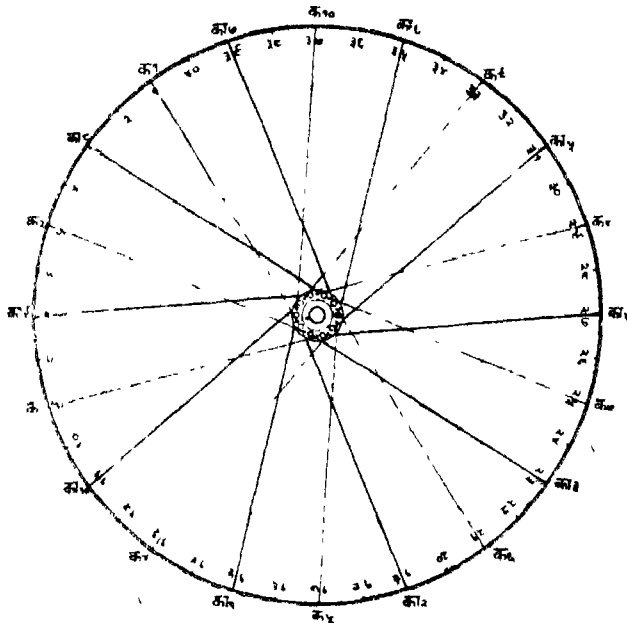
चित्र ४.

चित्रो को देखने से पता चलेगा कि क$_1$ और का$_1$ चिह्नित अरों के पारस्परिक झुकाव मे, घेरे पर कितने छेदों का अंतर रहता है। चक्का तैयार करते समय व्यासाभिमुख आठ अरों को पहले लगाकर
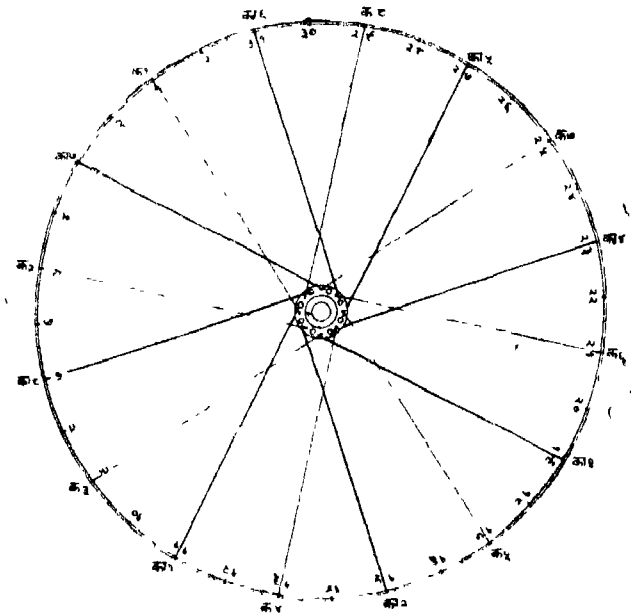
चित्र ५.

सही कर लेते हैं, फिर शेष अरों को उसी क्रम से भरते जाते हैं। चित्रों मे हब की बाईं तरफ की फ्लैंज में ही अरे लगाकर दिखाए गए हैं, जो क्रम से घेरे पर विषम संख्यांकित छेदों मे ही बैठे हैं। सम संख्यांकित छेदों में दाहिनी तरफ की फ्लैंज के अरे बैठेंगे, अतः उनके स्थानों को खाली दिखाया गया है।

तार से बने अरे सदैव तनाव की स्थिति में रहने के कारण तान कहलाते हैं। प्रयोग करते समय भी पहियों के अरो की समय समय पर परीक्षा करते रहना चाहिए, कोई अरा ढीला और कोई अधिक तनाव मे नही होना चाहिए। उँगली से बजाकर सबको देखा जाए तो उनमे एक सी आवाज निकलनी चाहिए, अन्यथा पहिए टेढ़े होकर अरे टूटने लगेंगे। उन्हें कसने का काम घेरे पर लगी निपलों को उचित दिशा मे घुमाकर किया जा सकता है।

बॉलबेयरिंग — बाइसिकिल के अच्छी प्रकार काम कर सकने के लिये उसके बॉल बेयरिंगों की तरफ ध्यान देते रहना आवश्यक है। यदि किसी बेयरिंग मे से जरा भी आवाज निकलती हो तो अवश्य ही उसमे कोई खराबी है। उसे खोलकर उसके दोनो तरफ की गोलियो की गिनती कर, कपड़े से पोछकर साफ चमका लीजिए। यदि कोई गोली टूटी, चटखी या घिस गई हो तो उसे बदल दीजिए, फिर उसकी कटोरी (ball-race) के वलयाकार खाँचे तथा कोनों
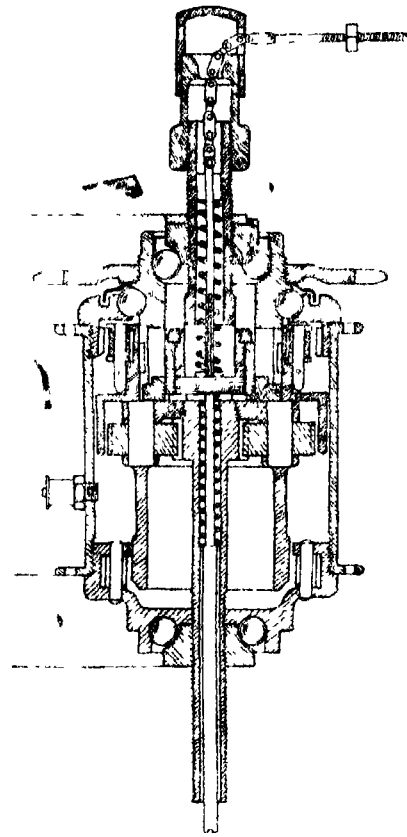
चित्र ६.

को देखिए। वे घिसे, कटे, या खुरदरे न हों। यदि खराब हों, तो उन्हें भी बदल दीजिए। यदि उपर्युक्त कोई ऐब न हो तथा गोलियाँ भी एक ही संख्या में तथा समान नाप की हों, तो उसमे तेल की कमी

समझनी चाहिए। बेयरिंग के किसी भी भाग मे किसी भी प्रकार का कचरा या कीचड तो होना ही नही चाहिए।

बहुचाल मुक्त गीअर नाभि (hub) — यह पिछले पहिए में लगाई जाती है, जिसके द्वारा सवार अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार बाइसिकिल की चाल के अनुपात को बदल सके। आजकल
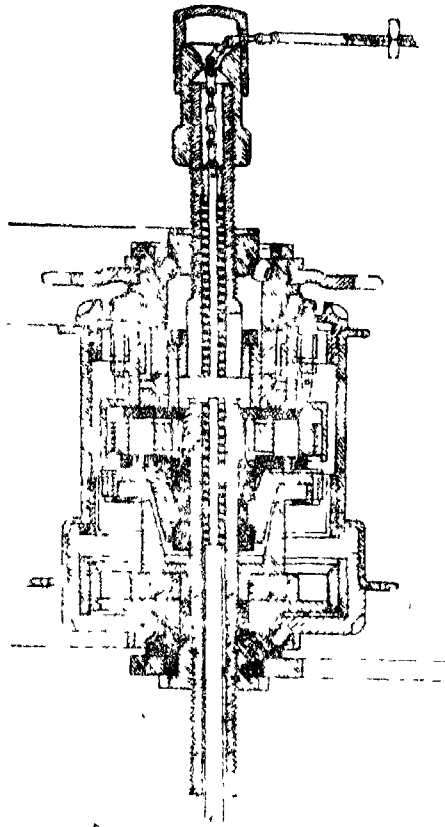
पैडल ब्रेकयुक्त तीन चालयुक्त नाभि

चित्र ७

तीन चाल देनेवाले गीअर हबो का अधिक प्रचार है। ऐसी गीअर नाभि भी बनाई जाती है कि पीछे को, अर्थात् उलटा, पैडल चलाने से ब्रेक लग जाता है। चित्र ६. और ७ मे स्टरमी आर्चर गिअर्स
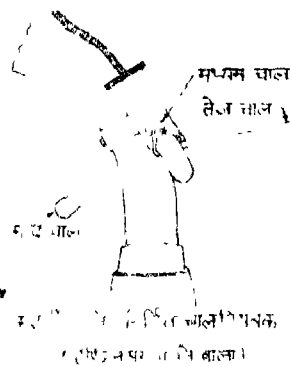
चित्र ८.

लि० (Sturmey Archer Gears Ltd.) द्वारा बनाई तीन चालयुक्त और पैडल ब्रेकयुक्त गीअर नाभियो की बनावट काट चित्रों द्वारा क्रमश. दिखाई गई है। चाल बदलने के लिये जजीर चक्र और नाभि के बीच की चाल के अनुपात को, नाभि की धुरी के मध्य
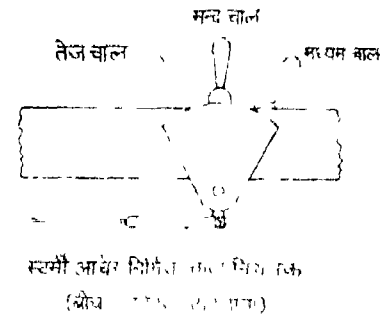
चित्र ९

लगी बारीक कडियोवाली एक जजीर को खीचकर बदल दिया जाता है। इसे खीचने से नाभि के भीतर लगे गिअरो (gears) की स्थिति बदल जाती है। जजीर को खीचने का काम तो सवार अपने लिवरो द्वारा जोर लगाकर करता है, लेकिन वापस लौटाने की क्रिया नाभि के भीतर लगी कमानी द्वारा स्वत ही हो जाती है। चित्र ८ और ९. मे क्रमश हैंडिल पर लगनेवाले और बीच के डंडे पर लगनेवाले लिवरो का विन्यास दिखाया गया है। चित्र ७. को देखने से मालूम होगा कि उसी नाभि मे कुछ और पुर्जे जोड देने से पैडल से ब्रेक लगाने का भी प्रबंध हो जाता है। चित्रो मे बाई तरफ लगे कोन का समायोजन करने से भीतर के अन्य सब बेयरिंग स्वत ही समायोजित हो जाते है। नाभि के पुर्जे खोलने के लिये, पहले बाएँ हाथ का कोन खोलकर, फिर दाहिने हाथ की तरफ लगी गोलियो की रिंग खोलनी चाहिए।

मुक्त चक्र (Free wheel) — पीछे के चक्के पर इसके लगा देने से सवार जब चाहे पैर चलाना बंद कर सकता है, फिर भी वह पहिया आजादी से घूमता रह सकता है। यह दो प्रकार का होता है,
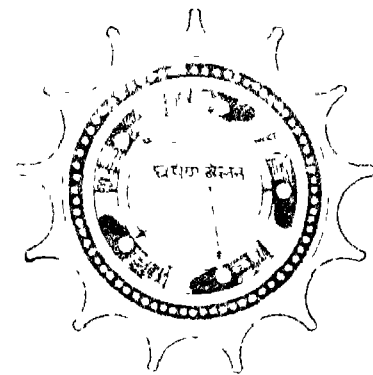
घर्षण बेलन युक्त मुक्त चक्र

चित्र १०.

एक तो घर्षण बेलन युक्त (चित्र १०.) और दूसरा रैचेट दांत युक्त (चित्र ११.)। प्रत्येक मुक्त चक्र मे यह गुण होना चाहिए कि भीतरी पुर्जों के अटक जाने से पैडल की जजीर पर खिचाव न पैदा हो और दुबारा जब पैडल चलाए जाएँ तब भीतरी पुर्जे एक दम आपस मे जुटकर काम करने लगे और फिसले नही। साथ ही चक्र की बनावट धूल और पानी के लिये अभेद्य होनी चाहिए। आज-

कल रैचेट दाँत युक्त मुक्त चक्र का ही अधिक प्रचलन है (चित्र ११.)। इसके घेरे की भीतरी परिधि पर रैचेट के दाँत कटे हैं, जिनमे यथास्थान लगाए कुत्ते (pawls) अटककर, पैडल की जजीर के माध्यम से सवार द्वारा दिए हुए खिंचाव को पहिए की नाभि पर
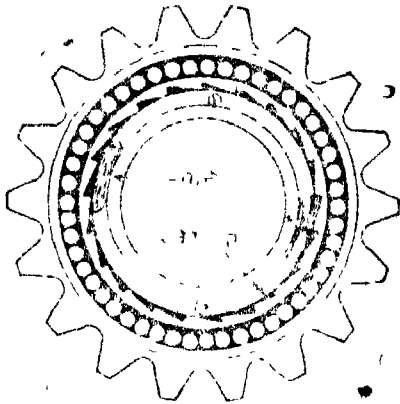
कुत्ते और रैचेट दांत युक्त मुक्त चक्र

चित्र ११.

पारेषित कर देते है। पैडल न चलाना बद करने पर ही जजीर ठहर जाती है तथा वे कुत्ते कमानी के जोर से रैचेट के दाँतो मे बारी बारी से गिरते हैं, जिससे 'कटकट' की आवाज होती है।

यदि दुबारा चलाने पर मुक्त चक्र फिसलने लगे, अथवा जाम हो जाए, तो उसे ठीक करने की पहली तरकीब यह है कि उसमे मिट्टी का तेल खूब भरकर पहिए को खाली घुमाया जाए, जब वह सब तेल निकल चुके तब उसमे स्नेहन तेल दे दिया जाए। यदि ऐब दूर न हो, तो चक्र के ढक्कन को खोल कर देखना चाहिए कि कही कुत्ते घिस तो नही गए है, अथवा उनकी कमानियाँ ही टूट गई हो। फिर उसे भीतर से बिलकुल साफ कर टूटे पुर्जे या गोलियाँ नई बदलकर, ढक्कन की चूड़ियाँ सावधानी से सीधी कस देनी चाहिए।

हवाई टायर — टायर को पहिए के घेरे पर जमाए रखने के लिये इसके दोनो किनारो पर या तो इस्पात के तारयुक्त, अथवा रबर की ही, कठोर गोठ बना दी जाती है, जो चक्के के घेरे के मुड़े हुए
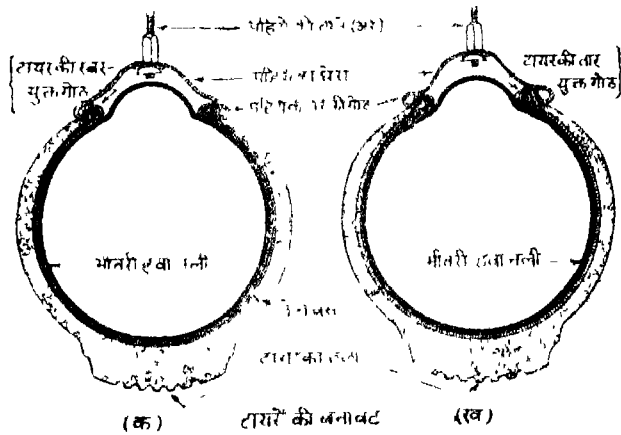
चित्र १२.

किनारे के नीचे दबकर अटकी रहती हैं (चित्र १२ क. तथा ख.) और भीतरी रबर नली मे हवा भर देने से टायर तनकर यथास्थान बैठ जाता है।

भीतरी नली मे इतनी ही दाब से हवा भरनी चाहिए जिससे टायर सवार का बोझा सह ले और पहिए का घेरा सडक के कंकड़ पत्थरों से नही टकराए, अन्यथा नली के कुचले जाने और टायर के कट जाने का डर रहेगा। आवश्यकता से अधिक हवा भर देने से टायर का लचीलापन कम होकर बाइसिकल सड़क पर उछलती हुई चलती है, लेकिन आवश्यक मात्रा मे कसकर हवा भर देने से पहिए का व्यास अपनी सीमा तक बढ़ जाता है, और अच्छी सडक पर चलते समय पैडल से कम मात्रा मे शक्ति लगानी पड़ती है।

वाल्व — भीतरी नली मे हवा भरने के लिये वुड के हवा वाल्व का बहुधा प्रयोग होता है, जिसकी बनावट चित्र १३ मे स्पष्ट दिखाई गई है। रबर का वाल्व ट्यूब फटा, कुचला और सड़ा गला
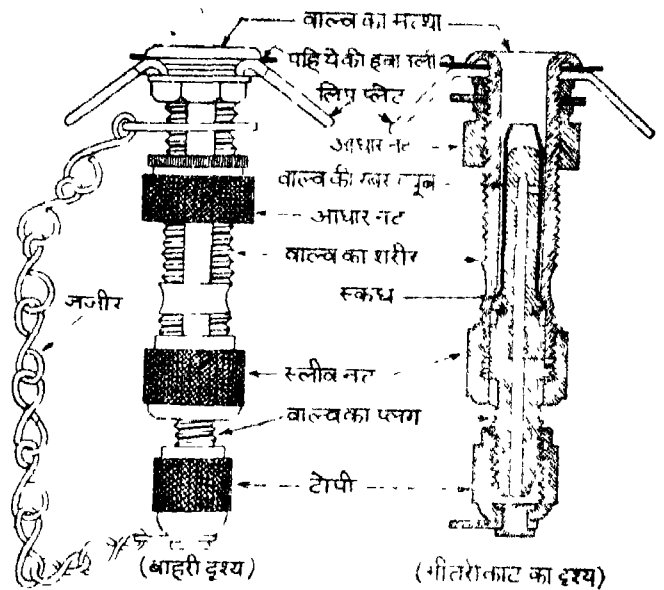
चित्र १३.

नही होना चाहिए। वाल्व के प्लग के ऊपरी सिरे पर लगनेवाली टोपी सदैव लगी रहनी चाहिए। वाल्व का आधार नट घेरे पर सख्ती से कसा रहना चाहिए। वाल्व का प्लग, रबर के वाल्व ट्यूब सहित बिना रुकावट के प्रविष्ट होकर, खाँचो मे बैठ जाना चाहिए।

पैडल क्रैंक — पैडल क्रैंको को उनकी धुरी मे कॉटरो (cotters) द्वारा ही जोड़ा जाता है। बाइसिकिल के गिरने, अथवा दुर्घटना के कारण, यदि क्रैंक या धुरी टेढ़ी हो जाएँ, तो क्रैंको को जुदा करने के लिये, उनपर लगे कॉटर के नट को खोलकर, कॉटर के चूड़ीदार सिरे को हथौड़े से ठोक कर कॉटर को निकाल लेना चाहिए, लेकिन ध्यान रहे कि चूड़ियाँ खराब न हो जाएँ। क्रैंक के वक्ष (boss) के नीचे लोहे की कोई लाग लगाकर ही कॉटर ठोकना चाहिए, अन्यथा क्रैंक धुरी या बॉल बेयरिंग पर झटका पहुँचेगा। खराबी के कारण यदि दोनो क्रैंक एक सीध मे न हो, तो कॉटर के चपटे भाग को रेतकर, या पलटकर, समंजित कर देना चाहिए। यदि क्रैंक अपनी धुरी

पर ढीला हो, तो कॉटर को अधिक गहराई तक ठोकने से भी काम बन जाता है। बहुत दिनों तक ढीले कॉटर से ही बाइसिकिल चलाते रहने से कॉटर और क्रैंक का छेद, दोनों ही, कट जाते हैं तथा धुरी का खाँचा भी बिगड़ जाता है। अतः नया कॉटर बदलना ही अच्छा रहता है। बाइसिकिल के गिरने से अकसर पैडल पिन भी टेढ़ी हो जाती है। ऐसी हालत में पैडल के बाहर की तरफ वाले बेयरिंग की टोपी उतारकर, उसका समंजक कोन निकालकर गोलियाँ हाथ में ले लेनी चाहिए। फिर पैडल की फ्रेम को सरकाकर, भीतरवाले बेयरिंग की गोलियाँ भी सम्हालकर ले लेनी चाहिए, ऐसा करने पर पैडल निकल आएगा और पैडलपिन ही क्रैंक मे लगी रह जाएगी। उसका निरीक्षण कर तथा गुनियाँ में सीधा कर, पैडल को यथापूर्व बाँध देना चाहिए।

चालक जंजीर — यह जंजीर छोटी छोटी पत्तीनुमा कड़ियो, बेलनों और रिवटों (revets) द्वारा बनाई जाती है। इसे साफ कर, तेल की चिकनाई देकर और उसके खिंचाव को समंजित कर ठीक हालत में रखना चाहिए। जंजीर के रिवटीय जोड़ों के ढीले होने तथा बेलनो के घिस जाने से उसकी समग्र लंबाई बढ़ जाया करती है। पैडल के दंतचक्र के दाँतों का पिच (pitch) तो बदलता नही, अतः जंजीर चक्र से उतर कर तकलीफ देती है। इसकी पहिचान यह है कि चक्र पर चढ़ी हुई जंजीर के स्पर्शचाप (arc of contact) के बीच मे, उसे अँगूठे और तर्जनी से पकड़कर बाहर की तरफ खींचा जाए। यदि जंजीर लगभग ⅛ इंच ही खिंचती है, तब तो ठीक है और यदि ½ इंच तक खिंच जाती है तो अवश्य ही घिसकर ढीली हो गई होगी। अतः बदल देनी चाहिए।

हाथ के ब्रेक — पहियों के घेरो पर दबाव डालनेवाले हस्त-चालित ब्रेकों की कार्यप्रणाली लीवर और डंडों के संबंध पर आधारित होती है। बाउडन (Bowden) के ब्रेक, इस्पात की लचीली नली में लगे एक असंपीड्य तार के खिंचाव पर आधारित होते हैं। ब्रेकों को छुड़ाने के लिये कमानी काम करती है। ब्रेक, सुरक्षा का प्रधान उपकरण है, अत: ब्रेक के डंडे सुसमंजित रहने चाहिए, अर्थात् ऐसे रहने चाहिए कि वे अरों या टायरों मे न अटके। डंडे मजबूत होने के साथ साथ सरलता से जोड़ो पर घूमनेवाले होने चाहिए। देखने मे अच्छे और पुर्जे साफ सुथरे भी रहने चाहिए।

सं० ग्रं० — स्टोरी ऑव इन्वेंशन्स। [ओं० ना० श०]

बाउट्स डियेरिक (१४१५-७५) नेदरलैंड का प्रसिद्ध चित्रकार। हार्लेम नामक नगर में उत्पन्न हुआ था पर लोवें को उसने अपना कार्यक्षेत्र बनाया। उसकी कला रोजर वाँ देर वीदे की कला से अत्यंत प्रभावित थी। उसके बनाए बहुत कम चित्र प्राप्त हैं जिनमें 'फ़ाइव मिस्टिक मील्स' तथा 'जस्टिस ऑव दि एंपरर ओटो' अति प्रसिद्ध है। उसके चित्रो मे चित्रित पात्र भावशून्य लगते है लेकिन उनके पीछे चित्रित प्राकृतिक दृश्य बड़े ही प्रभावशाली हैं। पेड़, पत्ती तथा प्रकाशचित्रण में उसे विशेष दक्षता प्राप्त थी। वह बड़ी बारीकी से अपने चित्रों मे रंग रेखाएँ उभारता था। उसकी व्यंजना-शक्ति भी अद्वितीय थी। [रां० चं० शु०]

बाउमैन, सर विलियम (सन् १७८५-१८५३) अमरीकन शरीर-क्रिया-वैज्ञानिक थे। इनका जन्म कृषक परिवार में हुआ था। यह कुशाग्रबुद्धि बालक आगे चलकर प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुआ। चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा इन्होंने वैयक्तिक रूप से एक चिकित्सक से पाई और वरमांट राज्य की तृतीय मेडिकल सोसायटी से चिकित्सावृत्ति का लाइसेंस प्राप्त किया। बाद मे ये अमरीकी सेवा मे सर्जन पद पर नियुक्त हो गए।

शरीररचना और उसके कार्य से संबंधित अनेक बातें उन दिनों अज्ञात थी। बाउमैन ने अनुसंधान किया और बताया कि आमाशय के पाचक रस क्या कार्य करते हैं और कब तथा किन अवस्थाओं में यह रस नही बनता। बाउमैन ने पाचन के रासायनिक रूप की सप्रमाण स्थापना की। इन कार्यों की उनके शोधप्रबंध "एक्सपेरिमेंट्स ऐंड आब्जरवेशंस" मे विस्तार से चर्चा है। शरीर-क्रिया-विज्ञान मे बाउमैन का अनुदान महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने प्रयोग और अवलोकन को नई दिशा प्रदान की। [भा० शं० मे०]

बाक़ी (सन् १५२६-१६०० ई०) सोलहवीं शती का एक प्रसिद्ध तुर्क कवि। इसका पूरा नाम महमूद अब्दुल् बाकी था और इसका जन्मस्थान कुस्तुंतुनिया (इस्तांबोल) है। यह दरिद्र घराने का व्यक्ति था किंतु इसको उस समय के प्रसिद्ध विद्वानो से शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिला और तुर्की के उच्च कोटि के साहित्यकारों एवं कवियों का सत्संग भी। १८-१९ वर्ष ही की अवस्था मे इस्तांबोल के प्रसिद्ध कवियों में इसकी गणना होने लगी। सन् १५५५ ई० में जब सुलतान सुलेमान आज़म ईरान की चढ़ाई से लौट आया, बाक़ी ने उसके ऐश्वर्य पर बड़ा उल्लासपूर्ण एक प्रशंसात्मक कसीदा उसके समक्ष उपस्थित किया। सुलतान इसे सुनकर इतना प्रभावित हुआ कि उसने बाकी से अपनी कविताओं पर 'नज़ीरिए' लिखने का आदेश दिया। इस प्रकार इसकी पहुँच दरबार तथा उच्च कोटि के समाज तक सहज मे हो गई। सुलतान की इस कृपा से स्वयं इसके मित्रगण भी जलने लगे परंतु यह तुर्की का सबसे बड़ा कवि माना जाने लगा और इसकी प्रसिद्धि बड़ी शीघ्रता से पूरे राज्य ही में नहीं, प्रत्युत हिंदुस्तान तक फैल गई।

सुलतान सुलेमान की विशेष कृपा से बाकी को उसकी निकट पार्श्ववर्तिता प्राप्त हो गई थी। इस कारण सुलतान की मृत्यु का इसपर बड़ा प्रभाव पड़ा और इसी प्रभाव के कारण इसने सुलतान की स्मृति मे एक मरसिया लिखा, जो इसकी श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। बाकी अरबी तथा फारसी का भी विद्वान् था। इसने अरबी की बहुत सी पुस्तकों का तुर्की में अनुवाद भी किया है और फारसी भाषा में कविता भी की है। परंतु इसकी सर्वाधिक जनप्रियता तुर्की की कविता ही के कारण हुई है और इसको उस युग के कवियों की प्रथम श्रेणी ही में स्थान नहीं दिया गया है, प्रत्युत तुर्की के ग़ज़ल गायकों का सिरताज भी कहा गया है। गजलों के सिवा इसके कसीदे तथा मरसिए भी काव्यदृष्टि से पूर्णता तक पहुँचे हुए है। यद्यपि इसने अपने अनेक पूर्ववर्तियों की कविता से लाभ उठाया है तथापि अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को भी बनाए रखा है।

सं० ग्रं० — ई. जे डब्ल्यू. गिब्ब : ए हिस्ट्री ऑव ओटोमन पोएट्री; एन. येसिरगिल : बाक़ी (इस्तांबोल, १९५३), आर, ड्रेरक : बाक़ी का दीवान (लाइडेन, १९११)। [अ० अ०]

बाक़ी बिल्लाह ख्वाजा अब्दुल बाकी का जन्म काबुल मे १५६३-६४ ई० में हुआ। काबुल में शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे लाहौर गए और फिर कश्मीर में शेख बाबा वाली (मृ० १५६२ ई०) की सेवा में रहे। वहाँ से समरकंद के अमकना नामक ग्राम में मौलाना ख्वाजगी से नक्शबंदी सिलसिले मे दीक्षा प्राप्त की। थोड़े दिन बाद लाहौर और फिर देहली पहुँचे। ३० नवंबर, १६०३ ई० को देहली में इनकी मृत्यु हो गई। उनके आगमन के पूर्व नक्शबंदी सिलसिले की भारत में पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी। उनके शिष्यो मे ख्वाजा हुसामुद्दीन, शेख ताजुद्दीन संभली एवं शेख अलहदाद अपनी उदारता के लिये बडे प्रसिद्ध थे किंतु उनके शिष्य शेख अहमद सरहिंदी ने इस्लाम की शिक्षाओं का बडा संकीर्ण रूप प्रस्तुत किया। ख्वाजा बाकी बिल्लाह के पुत्र ख्वाजा कलाँ एवं ख्वाजा खुर्द, जो क्रमश शाहजहाँ एवं औरंगजेब के राज्यकाल में बडे प्रसिद्ध हुए, उदारता के ही प्रतीक रहे।

स० ग्रं० — मुहम्मद हाशिम बदख्शानी : जुबदतुल मकामात (लखनऊ, १८८५, फारसी); बद्रुद्दीन सरहिंदी : हज़रातुल कुदस (ह० लि०, रामपुर, रजा पुस्तकालय, फारसी); मुस्लिम रिवाइवलिस्ट मूवमेंट्स इन नार्दर्न इंडिया इन द सिक्सटींथ ऐंड सेवेंटीथ सेंचुरीज (आगरा, १९६५)। [सै० अ० अ० रि०]

बाकूनिन, मिखाइल अलेक्जेंद्रोविच (१८१४-१८७६) रूसी अराज्यवादी (अराजकतावादी) विचारक। प्रारंभिक शिक्षा सत पीतर्सबर्ग सैनिक विद्यालय मे हुई। १८३२ से १८३८ तक वह शाही सेना मे रहा। बाद मे उसने सेना से त्यागपत्र दे दिया और मास्को तथा बर्लिन विश्वविद्यालयो मे दर्शन का अध्ययन किया। १८४३ मे वह पेरिस गया; जहाँ उसने पोलैंड के क्रांतिकारियो से संपर्क स्थापित किया। स्विटजरलैंड मे भी वह साम्यवादी और समाजवादी आदोलनों मे सक्रिय रहा। १८४७ में जार के आदेश पर रूस न लौटने के कारण राजाज्ञा द्वारा उसकी संपत्ति जब्त कर ली गई। उसी वर्ष उसकी पोलिश और रूसी जनता द्वारा मिलकर रूसी सरकार समाप्त करने की अपील पर जार ने फ्रांस सरकार से बाकूनिन के फ्रांस से निकाल देने की माँग की। अगले दो वर्षो तक वह बर्लिन, प्राग और ड्रेसडेन मे क्रांतिकारी आदोलनों मे भाग लेता रहा। इन क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण उसे मृत्युदड देने की घोषणा की गई। १८५१ में वह गिरफ्तार करके रूस के हाथों सौंप दिया गया।

जार ने बाद मे उसके मृत्युदंड को आजीवन कारावास मे परिवर्तित कर दिया और १८५५ मे उसे साइबेरिया मे नजरबंद किया गया। १८६० में वह एक अमरीकी जहाज द्वारा जापान भाग गया, और वहाँ से अमरीका होते हुए १८६१ मे लदन पहुँचा। मार्क्स और एंजेल्स से मिलकर १८६६ मे 'सोशलिस्ट डेमाक्रेटिक एलाएंस' की स्थापना की, बाद मे वह संस्था इंटरनेशनल वर्किंगमेंस एसोसिएशन' मे संमिलित हो गई। १८७२ मे वह अपने अत्यधिक उग्र विचारों के कारण फ़र्स्ट इंटरनेशनल से निकाल दिया गया।

बाकूनिन अपने राजनीतिक दर्शन में पूर्णतया अराज्यवादी था। राज्य का उन्मूलन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता उसके समग्र चिंतन के प्रबल पक्ष थे। इटली और स्पेन में उसका मत बहुत फैला। रूस मे उसका प्रभाव निहिलिज्म के नाम से प्रसरित हुआ। 'गॉड ऐंड द स्टेट' उसकी महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध कृति है। १८७३ मे सक्रिय जीवन से संन्यास लेकर वह स्विट्जरलैंड चला गया और मृत्यु पर्यंत वहीं रहा।

बाकू स्थिति : ४१° २१' उ० अ० तथा ४९° ४१' पू० दे०। यह रूस के आजर बाइजान प्रजातंत्र की राजधानी तथा इस देश मे पेट्रोलियम के उद्योग का प्रमुख केंद्र है। यह अप्शेरॉन प्रायद्वीप में दक्षिणी कैस्पिएन सागर की एक अर्धचंद्राकार खाड़ी के सिरे पर स्थित है। इस प्रदेश के तेल क्षेत्रों के कारण ही रूस को विश्व के प्रमुख खनिज तेल उत्पादक देशों मे विशेष स्थान प्राप्त है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से द्वितीय बाकू नामक खनिज तेल उत्पादक क्षेत्र मे बाकू से अधिक खनिज तेल की उत्पत्ति हो रही है। द्वितीय बाकू की स्थिति वॉल्गा नदी और यूरैल पर्वत के बीच मे है। तेल शोधन के अतिरिक्त यहाँ सूती एव इस्पात मिलें, रसायनक एवं जलयान के कारखाने भी हैं। पारसी लोगों का यह तीर्थस्थान है। इसकी जनसंख्या १०,६७,००० (१९६२) है। [वि० कु० अ०]

बॉक्सिग या मुक्केबाजी भारत मे आदिकाल से विभिन्न रूपों में प्रचलित है और यह प्रतिद्वंद्विता की सर्वाधिक प्राचीन परंपराओं मे से एक समझी जाती है। जबरदस्त घूंसो द्वारा एक दूसरे को पराजित करने की इस शैली का प्रादुर्भाव तब से हुआ था, जब मनुष्य के पास संघर्ष के साधन नही थे।

घूंसेबाजी (बॉक्सिग) का स्वरूप खेल कूद के रूप में १९वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे प्रकट हुआ, यद्यपि प्राचीन रोमन साम्राज्य मे मुक्केबाजी मनोरंजन का साधन माना जाता था। उस समय के मुक्केबाज हाथ मे धातु से बने दस्ताने पहनकर लड़ते थे और साम्राज्य की ओर से उन्हे यथाविधि पुरस्कार एवं धन दिया जाता था। साम्राज्य के पतन के साथ साथ इस ढंग का खेल भी विलीन हो गया।

१८वी शताब्दी मे इंग्लैंड मे भी मुक्केबाजी का प्रचलन था और प्रतिद्वंद्वी हाथ मे बिना दस्ताना पहन लड़ते थे। इन प्रतिद्वंद्विताओं पर शर्तें लगती थी और भारी धनराशि पुरस्कार मे विजेता को प्राप्त होती थी। इस प्रकार की घूंसेबाजी के सर्वप्रथम सर्वजेता (चैंपियन) इंग्लैंड के जेम्स फिग माने जाते है।

सन् १८६५ मे क्वींसबरी के डगलस (अष्टम) ने बॉक्सिग के नियम तैयार कराए जिन्हे संपूर्ण ब्रिटेन मे १८८९ ई० के लगभग पूर्ण मान्यता प्राप्त हुई। ये नियम ही वर्तमान बॉक्सिग के आधार है। बाद मे समयपरिवर्तन के साथ साथ नियमो का विकास होता गया। "क्वीसबरी" नियमो के कारण घूंसेबाजी का खतरनाक स्वरूप समाप्त हो गया और हाथ मे दस्ताना पहनकर तीन तीन मिनट के चक्र (राउंड) मे लड़ने की प्रणाली और अखाड़े मे एक प्रतिद्वंद्वी के धराशायी होने पर एक से १० तक की गिनती गिनने तक न उठने पर उसे पराजित घोषित करने के नियम से बॉक्सिग को संयत खेल की दिशा प्राप्त हुई। फिर भी अनेक वर्षों तक धनलोभ के कारण घूंसेबाजी में भयंकर द्वंद्व की प्रथा विराजमान रही। इन्ही कारणों से घूंसेबाजी मे लोग बराबर मरते रहे। २४ अप्रैल, १९०१ को इंग्लैंड के नैशनल स्पोर्टिंग क्लब द्वारा आयोजित एक बॉक्सिग मे जैक राबर्ट्स ने बिल स्मिथ को इतना मारा कि स्मिथ की मृत्यु हो गई।

इसके बाद ब्रिटेन में पहली बार पेशेवर घूँसेबाजी के साथ साथ शौकिया घूँसेबाजी (अमेच्योर बॉक्सिग) की प्रथा का प्रारभ हुआ।

उधर अमरीका में बॉक्सिग को कई वर्षों तक गैरकानूनी घोषित किया गया था, किंतु १८६६ ई० मे न्यूयॉर्क राज्य ने घूँसेबाजी के नियमों का प्रचलन किया। सन् १९३० मे अमरीका मे भी शौकिया घूँसेबाजी की प्रथा शुरू हुई, यद्यपि आज भी धनलोभ से अमरीका मे पेशेवर घूँसेबाजी सर्वाधिक लोकप्रिय बनी हुई है।

बॉक्सिग के मूल नियमों के कारण प्रतिद्वंद्वियों के स्तर निश्चित किए गए और प्रत्येक को अपने वजन के अनुरूप घूँसेबाज से ही लड़ने की सुविधा प्राप्त हुई। पेशेवर बॉक्सिग मे आज भी हेवी वेट कहलानेवाली घूँसेबाजी मे इस नियम का कोई पालन नही होता और अपने को विश्व का सर्वश्रेष्ठ घूँसेबाज साबित करने के लिये तथा साथ ही धन से मालामाल होने के लालच में घूँसेबाज वजन का बंधन न मानकर लड़ता है।

२०वी शताब्दी में जब शौकिया बॉक्सिग की प्रथा प्रचलन मे आई तो इसमे क्वीसबरी के वजनों के आठ वर्गों के स्थान पर १० वर्ग रखे गए : फ्लाई (११२ पाउड), बैंटम (११९ पा०), फेदर (१२६ पा०), लाइट वेलटर (१४० पा०), वेलटर (१४८ पा०) लाइट मिडिल (१५६ पा०), मिडिल (१६५ पा०), लाइट हेवी (१७८ पाउड तक); हैवी (१७८ पाउड से ऊपर)। शौकिया बॉक्सिग मे दो वजन वर्ग की सख्या बढाने का मुख्य उद्देश्य घूँसेबाजो तथा उदीयमान प्रतिद्वंद्वियों को प्रोत्साहन देना था।

विश्व ओलपिक खेलो मे बॉक्सिग पहली बार (सेट लुईस, अमरीका) १९०४ ई० मे शामिल की गई। इसके नियम वही थे जो शौकिया घूँसेबाजी के लिये प्रचलित थे।

बीच मे एक गद्देदार अखाडा होना है, जो १२ से २० फुट तक की लंबाई चौडाई के चौकोर रूप मे बना होता है। अखाडे के चारो ओर रस्सी से घेरा कर दिया जाता है। यह घेरा दो या तीन रस्से से बनाया जाता है। घेरे का ऊपरी भाग गद्दे से चार या पाँच फुट से अधिक ऊँचा नही होता। इस घेरे के दो विपरीत कोनो पर कुछ गद्दे देकर घूँसेबाजो को आराम से खडे होने का स्थान रखा जाता है। आधुनिक बॉक्सिग के अखाडे ऊपर से ढँके रहते है और बिजली के प्रकाश से अखाडा जगमग कर दिया जाता है।

घूँसेबाज के हाथो मे जो दस्ताने होते हैं उनमे से प्रत्येक का वजन छह औंस से अधिक नहीं होना चाहिए। घूँसेबाज का मुख्य वार हमेशा प्रतिस्पर्धी के चेहरे पर ही, खासकर कनपटी या आँख के बगल मे, होता है, जिससे प्रतिस्पर्धी को धराशायी होने मे विलब नहीं लगता।

जब कोई घूँसेबाज वार के बाद अखाडे मे गिर पडता है, तो निर्णायक गिनती शुरू करता है और उस समय दूसरा घूँसेबाज बिना कोई हलचल किए दूर रस्से के पास खड़ा रहता है। १० की गिनती (लगभग १० सेकेंड) के बाद भी यदि गिरा हुआ घूँसेबाज उठकर खडा नहीं हो जाता, तो उसे पराजित घोषित कर दिया जाता है।

घूँसेबाजी मे तीन तीन मिनट के राउंड होते हैं। तीन मिनट तक घूँसेबाजी के बावजूद यदि कोई परास्त न हो, तो एक मिनट विश्राम का समय देकर पुन तीन मिनट का चक्र प्रारंभ होता है। इस तरह दोनो मे से किसी एक घूँसेबाज के धराशायी होने तक चक्र का क्रम चालू रहता है। पेशेवर तथा शौकिया बॉक्सिग के लिये इन चक्रों की सीमा अलग अलग बाँध दी गई है। आम तौर पर १५ चक्र से अधिक लडाई नही होती और तब तक यदि कोई घूँसेबाज परास्त नही होता तो भिडंत को अनिर्णीत घोषित किया जाता है।

अमरीका मे जो पेशेवर घूँसेबाजी होती है, उसके लिये चक्र आदि के अन्य नियम तो अलग है, पर घूँसेबाजी के मूल नियम यही हैं।

विश्व मे पेशेवर घूँसेबाजी का सर्वाधिक प्रचलन हेवी वेट शाखा का है। इस वर्ग मे जो घूँसेबाज विजेता होता है, उसे ही घूँसेबाज विश्वजेता (बॉक्सिग चैंपियन) की पदवी से विभूषित किया जाता है। इस वर्ग मे सर्वप्रथम हेवी वेट चैंपियन जेम्स जे० कॉरबेट (१८०२ से १८९७ ई०) थे। इससे पूर्व बिना दस्ताना पहने जो घूँसेबाजी होती थी, उसमे जान एल० सुलिवैन १८८२ से १८९२ ई० तक विश्वजेता रहे।

आधुनिक पेशेवर घूँसेबाजी मे सबसे अधिक वर्षों तक विश्वजेता होने का सम्मान अमरीका के जियो लुइस (Jeo Louis) को प्राप्त है। आप १९३७ से १९४९ ई० तक हेवी वेट के विश्वविजेता घूँसेबाज (पेशेवर) थे। सन् १९५१ से हेवी वेट के विश्व विजेता घूँसेबाज इस प्रकार है जियो वालकट (सन् १९५१-५२) रॉकी मारसियानो (सन् १९५२-५६), फ्लॉयड पैटरसन (सन १९५६-५९) और बाद मे सन् १९६० से ६२ तक भी; इनगेमर जॉनसन (सन् १९५९ से ६०); सोनी लिस्टन (सन् १९६२), कैसियस क्ले (सन् १९६२ मे)।

एक विश्वविजेता से उपाधि छीनने के लिये घूँसेबाज को उसे दो बार परास्त करना पडता है और तभी उसे विश्व चैंपियन की उपाधि मिलती है। सन् १९६२ के विश्व हेवी वेट सर्वजेता सोनी लिस्टन को क्ले ने तीन बार हराया, फिर क्ले ने चुनौती देनेवाले पैटरसन, बॉब मूर, ब्रायन लडन आदि घूँसेबाजो को एक एक कर परास्त किया और १९६६ ई० तक अपनी उपाधि कायम रखी।

घूँसेबाजी के हर प्रकार के नियम के बावजूद १९६२ ई० में अमरीका मे एक भिडत मे ग्रिफिथ नामक घूंसेबाज ने इतना भयानक प्रहार किया था कि उसके नीग्रो प्रतिद्वद्वी बेनी किड पैरट की मृत्यु १३ दिनो तक बेहोश रहने के बाद हो गई। उसके बाद पेशेवर घूंसेबाजी पर प्रतिबंध लगाने की चतुर्दिक् माँग हुई, परंतु धनलोलुप अमरीका मे पेशेवर घूंसेबाजी की धूम आज भी मची हुई है।

१९६४ ई० मे टोकियो विश्व ओलिपिक मे जो घूंसेबाजी की प्रतियोगिता हुई थी उसमे स्वर्णपदक इस प्रकार जीते गए थे : सोवियत रूस ३, पोलैंड ३, इटली २, जापान १, अमरीका १।

भारत और बॉक्सिग — यह सतोष की बात है कि भारत में घूंसेबाजी की पेशेवर प्रथा अभी नही आई है। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद भारत मे भी बॉक्सिग के प्रोत्साहन के लिये कार्यक्रम प्रारंभ किए गए। घूँसेबाजी को सर्वाधिक सरक्षण सेना की ओर से प्रा

बाँध (देखें पृष्ठ २३१)

रिहद बांध, मिर्जापुर।

माताटीला बांध, झाँसी।

(देखें पृष्ठ २३५)

नौ: बजाने से जोन फुल्मर रस्सियों के बाहर
इस मुठभेड़ में विश्व का मिडिलवेट चैंपियन, डिक टाइगर, जीता।
(लास वेगास, नेवादा; अक्तूबर, १९६२)
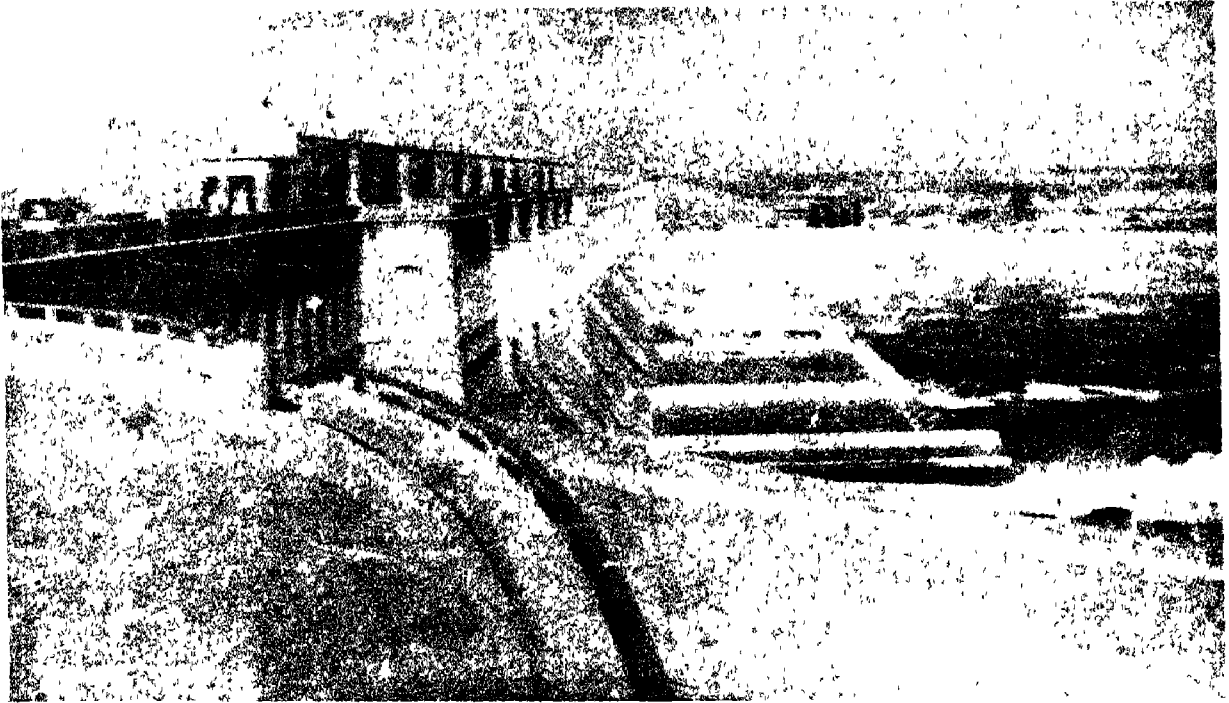
सॉनी लिस्टन और जोरा फोली
तीसरी पारी में लिस्टन ने फोली को २८ सेकंड में हराया
(डेनवर, कॉलैरेडो; जुलाई, १९६०)।

फ्लॉयड पैटर्सन की हार के तीन दृश्य
दाहिने मुक्के से फ्लॉयड को डगमगा कर, हेवीवेट चैंपियन, सॉनी लिस्टन,
ने तुरत बाएँ की मार से फ्लॉयड को गिरा दिया।

हुआ । सेना मे ही पहली बार शौकिया घूँसेबाजी के नियमों द्वारा प्रतियोगिता होने लगी ।

बाद मे इंडियन ऐमैचर बॉक्सिंग फेडरेशन तथा विभिन्न राज्यों मे घूँसेबाजी संघों की स्थापना के बाद भारत मे बॉक्सिंग टूर्नामेंट का सिलसिला प्रारंभ हुआ। सन् १६६६ ई० में १३वीं राष्ट्रीय घूँसेबाजी प्रतियोगिता (National Boxing Championship) आसनसोल में हुई है। इसके पूर्व जो १२ राष्ट्रीय प्रतियोगिताएँ हुई थी, उन सभी में सेना के घूँसेबाजों ने कमाल दिखाए थे और सेना को सर्वजेता होने का श्रेय प्राप्त होता आ रहा है ।

अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में भारत को बॉक्सिंग मे सर्वप्रथम सफलता सन् १६६२ के चतुर्थ एशियाई खेलो में (जकार्ता मे) प्राप्त हुई, जब हेवी वेट के शौकिया घूंसेबाज, पद्मबहादुर मल, ने अपने वज़न की प्रतियोगिता में स्वर्णपदक ही प्राप्त नही किया, अपितु सर्वोत्तम घूँसेबाज होने का एक और स्वर्णपदक भी जीता । [म० खा०]

बाघ (Tiger) पैंथरा टाइग्रिस (Panthera tigris) फेलिडी कुल (Family Felidae) का प्रसिद्ध, मांसभक्षी, स्तनपायी जीव है। यह जंगल का राजा कहा जाता है। सिंह को छोडकर यह सब जानवरो से अधिक बलवान् और खूँखार होता है। चेहरा बिल्लियो जैसा गोल, नाक से पूंछ के सिरे तक औसत लंबाई १० फुट, मादा कुछ छोटी, शरीर का ऊपरी भाग बादामी, जिसपर खड़ी, काली धारियाँ होती है तथा प्रत्येक की धारियो मे अंतर होता है। पेट और टाँगो के भीतर का हिस्सा तथा गाल और आँखों के ऊपर की चित्तियाँ सफेद होती हैं ।

यह एशिया के घने जंगलो का निवासी है। उत्तर मे आमूर, दक्षिण मे सुमात्रा और जावा, पश्चिम मे जॉर्जिया और पूर्व मे सखालीन तक, तथा यूरोप के दक्षिणी भागो के जंगलो मे भी यह पाया जाता है ।

इसका मुख्य भोजन गाय, बैल, हिरन, सूअर और मोर हैं। कुछ बाघ नरभक्षी भी होते है। मादा दो मे छह तक, लेकिन प्रायः दो मे तीन तक बच्चे जनती है। यह बच्चो को बहुत प्यार करती है और उन्हे शिकार खेलना सिखाती है । [मु० सि०]

बॉजनिया एवं हर्ट्सेगोवीना (Bosnia and Herzegovina) स्थिति : ४४° ४०' उ० अ० तथा १७° ०' पू० दे० । यह यूगोस्लाविया के मध्य मे स्थित संघीय इकाई (Federal unit) है। इसका क्षेत्रफल ५१,१२६ वर्ग मील तथा जनसख्या ३२,७७,६४८ (१६६१) है। पहले यह हंगरी तथा ऑस्ट्रिया का एक प्रांत भी रह चुका है। सारायेवो (Sarajevo) यहाँ की राजधानी है ।

[वि० कु० अ०]

बाज़बहादुर शेरशाह सूर द्वारा नियुक्त मालवा के सूबेदार शुजाअत खाँ अथवा सजावल खाँ का ज्येष्ठ पुत्र । उसका असली नाम बयाजीद था। सन् १५५५ ई० मे अपने पिता की मृत्यु होने पर वह 'बाज-बहादुर' नाम से मालवा की राजगद्दी पर बैठा और मालवा प्रदेश के सभी भागों पर अधिकार कर तथा स्वयं को मालवा का सुल्तान घोषित कर उसने अपने नाम से खुतबा भी पढवाया। तब गढ़ा प्रदेश को भी जीतकर अपने राज्य मे मिलाने के उद्देश्य से उसने गढ़ा पर चढाई की, परंतु वहाँ की रानी दुर्गावती से उसे परास्त होना पड़ा। इस प्रकार पराजित होकर जब बाजबहादुर मालवा लौटा तो उसने अपना सारा ध्यान मदिरापान और गायन वादन में ही लगा दिया। तब मालवा में गायन वादन कलाओ का बहुत प्रचार था और उनकी विशेष उन्नति हो रही थी। बाजबहादुर स्वयं भी इन कलाओं में पूर्ण पारंगत था। अतः अनेकानेक गायक नर्तकियो को एकत्र कर उन्हें वह उनकी शिक्षा देने लगा। इसी समय रूपमती के प्रति बाजबहादुर का अत्यंत प्रेम हो गया। रूपमती स्वयं भी बहुत ही सुंदर और गायन वादन कला मे पूर्णतया प्रवीण थी। एक दूसरे के प्रेम में लीन दोनो हिंदी प्रेमकाव्य की रचना करते और उन्हे गाते थे। उनके कई गीत तथा दोनों के सौंदर्य और प्रेम की अनेक कहानियाँ अब तक मालवा निवासियो मे प्रचलित है।

उधर दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ अकबर ने मालवा को जीतने के लिये सन् १५६१ ई० मे अहमद खाँ कोका के सेनापतित्व में मुगल सैना भेजी। बाजबहादुर तब सारंगपुर मे ही था और मुगल सेना के बहुत पास पहुँच जाने पर ही उसे मुगल चढ़ाई का पता लगा। बाजबहादुर ने डटकर मुगल सेना का सामना किया। मार्च २६, १५६१ ई० को लडाई हुई, जिसमे मुगल सेना विजयी हुई। बाज-बहादुर खानदेश भाग गया और मालवा पर मुगलो का अधिकार हो गया। अहमद खाँ रूपमती को अपनाने को तत्पर हुआ, परंतु जब रूपमती को यह बात मालूम हुई तब प्रेम के कारण रूपमती ने विष खाकर बाजबहादुर के नाम पर जान दे दी।

बाजबहादुर अब खानदेश और मालवा के बीच घूमने लगा। उधर अकबर ने पीर मुहम्मद खाँ शेरवानी को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। बाजबहादुर ने मालवा पर आक्रमण किया परतु एक बार वह विफल रहा। तब उसने खानदेश के सुलतान मीरान मुबारक शाह की सहायता प्राप्त कर बुरहानपुर लूटकर वापस लौटते हुए पीर मुहम्मद पर आक्रमण किया। नर्मदा के दक्षिणी तट पर हुए इस युद्ध मे पराजित होकर पीर मुहम्मद को भागना पड़ा। राह मे घोडे पर नर्मदा नदी पार करते समय पीर मुहम्मद गिरकर नदी मे डूब गया। तब अन्य सारे मुगल सेनानायक अपनी अपनी सेनाओ के साथ वापस आगरा लौट गए और सन् १५६२ ई० मे मालवा पर पुनः बाज-बहादुर का अधिकार हो गया ।

परतु कुछ ही समय बाद अकबर ने अब्दुल्ला खाँ उजबक के नेतृत्व मे मुगल सेना मालवा भेजी। तब बाजबहादुर स्वयं ही मालवा छोडकर दक्षिण की ओर भाग गया। पहाडी घाटियो मे यत्र-तत्र भटकते रहने के बाद वह कुछ समय तक बगलाना के जमींदार भेरजी के पास रहा। वहाँ से वह चगेज खाँ और शेर खाँ गुजराती की शरण मे गुजरात गया। उसने कुछ समय दक्षिण में निज़ाम-उल्-मुल्क के पास भी बिताया। तदनतर वह मेवाड के राणा उदयसिंह की शरण मे चला गया।

अकबर चाहता था कि बाजबहादुर उनके दरबार मे चला आए, अत उसे अपने पास लिवा लाने के लिये अकबर ने हसन खाँ खजानची को दो बार बाजबहादुर के पास भेजा और अत में सन् १५७० ई० मे बाजबहादुर अकबर के शाही दरबार में जा पहुँचा। प्रारंभ में उसे एक हजारी जात व सवार का मनसब मिला, जो आगे

बढ़ते बढ़ते दो हजारी जात और सवार का हो गया था। बाजबहादुर की गणना अकबर के मनसबदारों तथा गायकों दोनों में ही होती थी। बाजबहादुर की मृत्यु का ठीक सन्-संवत् ज्ञात नहीं, परंतु सन् १५९२ ई० से पहिले अवश्य ही उसकी मृत्यु हो गई थी। बाजबहादुर और रूपमती के मकबरे के अवशेष सारंगपुर के तालाब के बीच में आज भी विद्यमान हैं।

मांडू में बाजबहादुर ने रेवाकुंड और रूपमती का महल बनवाए थे तथा पुराने राजप्रासाद को सुधारकर बढाया और सुशोभित किया था, जो तब से बाजबहादुर का महल कहलाता है।

सं० ग्रं० — ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद कृत तबकात -इ-अकबरी, भाग २ – ३; बदायूनी कृत मुंतखब – उत् – तवारीख, भाग २; अबुल फजल कृत अकबरनामा; अबुल फजल कृत आईन –इ– अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, संशोधित संस्करण, भाग १; तारीख-इ– फरिश्ता; मासिर – उल् – उमरा; याजदानी कृत माडू। [र० सिं०]

बाजीप्रभु देशपांडे मराठों के इतिहास में बाजी प्रभु का महत्वपूर्ण स्थान है। वे एक नामी वीर थे। बाजी के पिताजी, हिरडस, मावल के देश कुलकर्णी थे। बाजी की वीरता को देखकर ही महाराज शिवाजी ने उनको अपनी युद्धसेना मे उच्चपद पर रखा। ई० स० १६४८ से १६४९ तक उन्होने शिवाजी के साथ रहकर पुरदर, कोंडाणा और राजापुर के किले जीतने मे भरसक मदद की। बाजी प्रभु ने रोहिडा किले को मजबूत किया और आसपास के किलो को भी सुदृढ़ किया। इससे वीर बाजी ही मावलो का जबरदस्त कार्यकर्ता समझा जाने लगा। इस प्रांत में उसका प्रभुत्व हो गया और लोग उसका संमान करने लगे। ई० सन् १६५५ मे जावली के मोर्चे मे और इसके बाद डेढ दो वर्षों में मावला के किले को जीतने में तथा किलों की मरम्मत करने मे बाजी ने खूब परिश्रम किया। ई० सन् १६५९ के नवंबर की दस तारीख को अफ़जलखाँ की मृत्यु होने के बाद पार नामक वन मे आदिलशाही छावनी का नाश भी बाजी ने बडी कौशल से किया और स्वराज्य का विस्तार करने मे शिवाजी की सहायता की। ई० सन् १६६० मे मोगल, आदिलशाह और सिद्दीकी इत्यादि ने शिवाजी को चारों तरफ से घेरने का प्रयत्न किया। पन्हाला किला से निकल भागना शिवाजी के लिये अत्यंत कठिन हो गया। इस समय बाजीप्रभु ने उनकी सहायता की। शिवाजी को आधी सेना देकर स्वयं बाजी घोड की घाटी के दरवाजे मे डटा रहा। तीन चार घटों तक घनघोर युद्ध हुआ। बाजी प्रभु ने बडी वीरता दिखाई। उसका बड़ा भाई फुलाजी इस युद्ध मे मारा गया। बहुत सी सेना भी मारी गई। घायल होकर भी बाजी अपनी सेना को प्रोत्साहित करता रहा। जब शिवाजी रोगणा पहुँचे तो उन्होने तोप की आवाज से बाजी प्रभु को गढ़ में अपने सकुशल प्रवेश की सूचना दी। तोप की आवाज सुनकर स्वामी के कर्तव्य को पूरा करने के साथ १४ जुलाई, १६६० ई० को इस महान् वीर ने मृत्यु की गोद मे सदा के लिये शरण ली [भी० गो० दे०]

बाजीराव—दे० पेशवा।

बॉटलिंक, आटो फॉन (१८१५-१९०४) बॉटलिंक १९वी शताब्दी के प्रकाड पंडित थे जिन्होंने संस्कृत साहित्य का विधिपूर्वक अध्ययन करके, वर्षों के परिश्रम के पश्चात् एक विशाल शब्दकोश सात भागों मे प्रकाशित किया। यह आज भी अद्वितीय ग्रंथ है। ३० मई, १८१५ को इनका जन्म रूस के लेनिनग्राद नगर में हुआ था। बर्लिन तथा बॉन मे उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। बॉन उस समय यूरोप मे संस्कृत का बडा केंद्र था। बर्लिन में फ्रांसिस बॉप नामक संस्कृत विद्वान् भी इनके गुरु थे। विद्वानों के साथ संसर्ग तथा वातावरण के प्रभाव ने इनके अध्ययन को नया मोड़ दिया।

यद्यपि आरंभ से विश्वविद्यालय मे इनका विषय अरबी तथा फारसी था, तथापि यह संस्कृत की ओर झुके और आगे चलकर इसी विषय को लेकर इन्हें विश्वख्याति मिली। १८४० मे इन्होंने 'ग्रामेर संस्कृत' नामक ग्रंथ लिखा जो पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' पर आधारित था। १८४३ मे इसी विषय को लेकर इनका विस्तृत ग्रंथ 'पाणिनि ग्रामेटिक' प्रकाशित हुआ जिसमें सूत्रों पर सरल जर्मन भाषा मे टीका की गई है। इनका एक ग्रंथ फ्रांसीसी मे 'डिजरटेशियाँ सर ला एक्सेट संस्कृत' नाम से प्रकाशित हुआ, और फिर जर्मन में कालिदास के शाकुतल का अनुवाद मूल सहित निकला। १८११ मे 'क्रिस्टोमैथिए संस्कृत' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इनका संस्कृत वार्टरबुख १८५२ से ७५ तक के कठिन परिश्रम का प्रयास है। इसमें इनका हाथ रॉथ तथा वेबर ने बँटाया था। इस ग्रंथ मे प्रत्येक शब्द की पूर्ण रूप से व्याख्या की गई है तथा संपूर्ण संस्कृत साहित्य मे जहाँ भी उसका उल्लेख है, अंकित कर दिया गया है। इसमे मूल ग्रंथों मे उनको सरलता से ढूंढ़ा जा सकता है। सन् १९०४ मे जर्मनी के लाइपजिग नगर मे इस विद्वान् का देहात हो गया।

सं० ग्र० — वकलैंड : डिक्शनरी ऑव इंडियन बायोग्राफी; इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका। [बै० पु०]

बाटेविया १. यूरोप मे इस नाम का एक देश था जहाँ प्राचीन बाटवी जाति के लोग रहते थे। सन् १७९५ से लेकर १८०६ ई० तक इसका बाटेविया नाम रहा, बाद मे लातीनी भाषा मे इसका नाम हॉलैंड कर दिया गया, जो बदलकर अब नीदरलैंड्स कर दिया गया। (देखें नीदरलैंड्स)। २. हिंदेशिया की राजधानी जकार्ता का पुराना नाम है। ३. सयुक्त राज्य, अमरीका, का एक नगर है, जो शिकागो से ३५ मील पूर्व में है। ४. न्यूयॉर्क (संयुक्त राज्य, अमरीका) का नगर है, जो रोचेस्टर से ३३ मील दक्षिण-पश्चिम में है।

बाड़मेर १. जिला, यह भारत के राजस्थान राज्य का एक जिला है। इसके उत्तर में जैसलमेर, उत्तर-पूर्व मे जोधपुर, दक्षिण मे जालोर तथा पश्चिम में पश्चिमी पाकिस्तान स्थित है। इसका क्षेत्रफल १०,१७० वर्ग मील तथा जनसंख्या ६,४६,६७४ (सन् १९६१) है।

२. नगर, स्थिति : २५° ४५' उ० अ० तथा ७१° २३' पू० दे०। उपर्युक्त जिले का एक प्रमुख नगर है। इसकी स्थापना राजा बाहद ने की थी। अतः पहले इसका नाम बाहदमेर था जो बाद मे बाड़मेर हो गया। इसकी जनसंख्या २७,६०० (१९६३) है।

बाढ़ तथा बाढ़ नियंत्रण किसी नदी की सामान्य जल अवधि के बाहर जब पानी बहने लगता है तो कहते हैं नदी मे बाढ़ आई। इस

कथन का आशय स्पष्ट है कि सामान्य मात्रा से अधिक जल जब नदी या नाले में बहता है तब उससे नदी के तटों पर स्थित तथा आसपास की नीची भूमि जलमग्न हो जाती है, जिससे धन तथा जीवन दोनों की हानि होती है।

ज्यों ज्यों मनुष्य अपनी विस्तारक चेष्टाओं के अंतर्गत नदियों के सामान्य बहावक्षेत्र मे हस्तक्षेप करता है, त्यों त्यों उसको बाढ निवारण हेतु यथानुकूल आयोजन करना आवश्यक हो जाता है। अत इस विकासयुग मे जब मानव की जनसंख्या दिन प्रति दिन बढ रही है, बाढ तथा बाढ नियंत्रण का विषय प्राय: सभी देशो में मानव बुद्धि तथा सतर्कता को एक चुनौती देता दीखता है।

भारत नदियों का देश है। नदियो से जहाँ अनेक लाभ हैं वहाँ इनमे जब बाढ़ आ जाती है तब भयंकर विनाश भी होता है, और कई बार प्रलयकारी दृश्य उपस्थित हो जाते हैं। भारत मे बाढ़ो द्वारा जो क्षति प्रति वर्ष होती है, उसका सन् १९५३ से १९६३ के आँकडों से निकाला गया अनुमानत. मूल्यांकन भिन्न राज्यों मे इस प्रकार है :

राज्य	वार्षिक औसत हानि (हजार रुपया)
१ आंध्र प्रदेश	४,७७७
२. असम	४६,२५२
३. बिहार	१,१६,४१८
४. महाराष्ट्र तथा गुजरात	८,६६४
५ जम्मू कश्मीर	७१७
६. केरल	६३६
७ मध्य प्रदेश	२५१
८. मद्रास	१,१५६
९ मैसूर	४३८
१०. उडीसा	४६,१०६
११. पजाब	१,१२,७७९
१२ राजस्थान	६,१३५
१३. उत्तर प्रदेश	१,६२,६१०
१४ पश्चिमी बंगाल	७३,१०२
१५. देहली	२,७६७
१६ हिमाचल प्रदेश	३,३७६
१७ मनीपुर	३१९
१८. त्रिपुरा	६१५

बाढ निवारण की समस्या बडी ही जटिल है। यथार्थ में पूर्ण बाढ निवारण तो संभव नही, केवल बाढ़ो का नियंत्रण ही हो सकता है। बाढवाले क्षेत्रो मे विविध प्रकार की समस्याएँ सामने आती हैं। कही तो नदियाँ अपने तटों को लाँघकर तटीय क्षेत्रों को जलमग्न कर देती हैं, जिससे सपत्ति की क्षति ही नही होती, वरन् उससे भी अधिक चिंताजनक बात, समाज के सामान्य जीवन मे उथल पुथल, हो जाती है तथा कृषिक्षेत्रो में अधिक पानी भर जाने के कारण उत्पादन कम हो जाता है।

कही ऐसा होता है कि नदी में पानी बढ जाने के कारण निकटवर्ती क्षेत्रों में दूर-दूर तक पानी की निकासी रुक जाती है और वे क्षेत्र तब तक जलमग्न रहते हैं, जब तक नदी का जलस्तर नीचा नहीं हो जाता। यदि साथ ही वर्षा भी भारी हुई, तो उन क्षेत्रों मे पानी के रुकने के कारण बड़ी हानि हो जाती है। कई स्थानों पर बाढ़ के समय नदियाँ अपने किनारो का कटाव करती है, जिसके कारण अच्छी उपजाऊ भूमि बेकार हो जाती है, अथवा कुछ आबादी के क्षेत्र भी कटाव के कारण नष्ट हो जाते है।

समुद्रतटीय क्षेत्रों मे बाढ़ का प्रकोप बहुधा समुद्र के ज्वारभाटे के वेग से, अथवा तूफान आदि से, होता है। कुछ क्षेत्रो में नदियों की धारा में रेत जम जाने से, अथवा अन्य कारणो से, जलमार्ग संकुचित हो जाने पर बाढ़ का प्रकोप बढ़ जाता है और समीपस्थ क्षेत्रो मे उसके कारण बड़ी क्षति होती है।

बाढो की समस्या के समाधान मे बाढ से सबधित आँकडों का अध्ययन तो अनिवार्य है ही, साथ ही आवश्यकता इस बात की भी है कि बाढ़ से संबधित निर्माण का कार्य ठीक से किया जाए, अथवा उसकी देखभाल उचित रूप से हो। थोडी ढीलढाल से भी काम बिगड सकता है, जिसके परिणाम जीवनघातक ही नही वरन आर्थिक दृष्टि से भी बहुत ही असह्य हो सकते है। अत यह आवश्यक है कि बाढ सबधी योजनाएँ बनाने का तथा उनमे सबधित कार्यों का संपादन बडी सतर्कता और सावधानी से हो।

शताब्दियों से होती आई विनाशकारी लीलाओ का निर्मूलन थोडे ही समय मे सभव नही है। इसके अतिरिक्त बाढ नियंत्रण के लिये दिए गए सुझाव भी सदैव पूर्ण रूप से सार्थक सिद्ध नही हो पाते। प्रकृति साधारणतया ऐसी असंख्य परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देती है जिनके विषय मे पहले से कुछ कहा नही जा सकता। अतएव बाढ़ नियंत्रण योजनाओ से जो कुछ भी हम प्राप्त कर सकते हैं, वह है केवल हानियों और क्षतियो मे कमी। बाढप्रदत्त समस्याओ का सर्वथा निर्मूलन नही हो सकता।

चार क्षेत्र — भारत की बाढ सबधी समस्याओ के अध्ययन हेतु देश को निम्नलिखित चार भागो मे विभाजित किया जा सकता है :

(१) उत्तर-पश्चिम की नदियो का क्षेत्र, (२) गंगा नदी का क्षेत्र, (३) ब्रह्मपुत्र नदी का क्षेत्र और (४) दक्षिणी पठार का क्षेत्र।

इन क्षेत्रो की प्राकृतिक बनावट एक दूसरे से भिन्न है। उत्तर पश्चिम क्षेत्र की नदियाँ हिमालय से, अथवा अपने अतरग क्षेत्र से, निकलकर अरब सागर की ओर बहती हैं। इन क्षेत्रो म वर्षा अधिक नही होती, फिर भी यदा कदा बहुत से क्षेत्र बाढ से ग्रस्त हो जाते हैं। इसका एक विशेष कारण यह है कि इन क्षेत्रो मे कम वर्षा होने के कारण नदियो मे जल निकासी का मार्ग सकुचित हो जाता है तथा भूतल मे ढाल भी कम होती है। अतएव एकाएक पानी पड़ने पर कभी कभी भारी बाढ आ जाती है।

गंगा नदी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और बहुत सी सहायक नदियाँ इसके साथ मिलकर बहुत बडे कृषि योग्य क्षेत्र को जलप्लावित करती हैं। कुछ नदियाँ हिमालय से निकलती हैं और कुछ मध्य भारत स्थित पर्वतश्रेणियो से निकलती हैं। गंगा नदी के क्षेत्र मे बाढ़ों का प्रकोप विशेपकर हिमालय मे लगी तराई और उससे लगे दक्षिण के उपजाऊ मैदानों में बहुधा होता रहता है।

तीसरा क्षेत्र ब्रह्मपुत्र नदी का है। इस क्षेत्र में प्राय हर वर्ष नदी के तटों को पार करके पानी बहुत फैल जाता है। यहाँ की कृषि का ढंग तथा साधारण जीवनयापन इन परिस्थितियो के अनुसार ही ढला है। दक्षिणी क्षेत्र में नदियाँ विशेषकर वर्षा के जल से ही बाढ़-ग्रस्त होती हैं। इस क्षेत्र मे यदा कदा बाढ आती रहती है और 'डेल्टा' मे पानी का फैलाव बहुधा होता ही रहता है। यहाँ की कृषि-प्रणाली भी इसके ऊपर ही आधारित है।

आंकड़ों का संकलन — बाढ नियंत्रण योजनाएँ आर्थिक तथा इंजीनियरी दृष्टि से तभी सफल हो सकती है जब बाढपीडित क्षेत्रों की नदियो की जलविज्ञान तथा स्थलाकृति विज्ञान सबधी जाँच (hydrology and topography) का गहन अध्ययन किया जाए। इस विषय मे सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि नदी के विशेष प्रवेश्य स्थानो पर बाढ के बहाव का सही अनुमान लगाया जाए। इसके अतिरिक्त स्थल से संबधित ऐसे आंकडो का भी एकत्र करना आवश्यक है जिनका उपयोग विस्तृत क्षेत्रो मे बाढ के बहाव का अनुमान लगाने मे किया जा सके।

भारत के अधिकतर क्षेत्रो के ऐसे आंकडे प्राप्य नही है। इस ओर कुछ प्रगति हुई है, लेकिन इन आंकडो को इकट्ठा करने मे बरसो लगेंगे, तभी आशंकित बाढो के विषय म निश्चित रूप से उनकी मात्रा और समयांतर का संकेत मिल सकेगा। ऐसे उद्देश्य की पूर्ति के लिये किसी केंद्रीय व्यवस्था पर ही उत्तरदायित्व होना चाहिए, जो इन आंकडों को आधुनिक प्रणाली से संकलित कर सके। सकलन के बाद इन आंकडो का एकीकरण तथा विश्लेषण भी समुचित रूप से होना आवश्यक है।

जलविज्ञान सबधी अध्ययन मे भिन्न भिन्न प्रदेशो और समीपवर्ती देशो की सहायता अथवा सहयोग की आवश्यकता होती है, विशेषकर उन क्षेत्रो की जिनमे होकर हमारी नदियाँ बहती हैं। इसी कारण अपने देश मे राज्यो के सहयोग से नदीनिस्सरण आंकडों को इकट्ठा करने का कार्य बडा महत्वपूर्ण समझा गया है। केवल बाढ नियंत्रण की दृष्टि से ही नहीं, वरन् समस्त प्राप्त जल साधनो के पूर्णरूपेण उपयोग के विचार से भी यह कार्य अनिवार्य है।

उदाहरणार्थ, भूटान के समीपवर्ती कतिपय क्षेत्रो मे हिमालय की कुछ नदियो के लिये निस्सरणद्योतक यंत्र तथा वालू निरीक्षण केंद्र बना दिए गए है। इस वायुजलमापक यंत्रकेंद्र के सस्थापन का कार्य भूटान सरकार के सहयोग से हुआ है। वहाँ पर बेतार के तार के केंद्र है, जिनसे असम और पश्चिमी बंगाल मे बाढ नियत्रण अधिकारियो को सूचना दे दी जाती है। इस प्रकार की सूचना का प्रबंध देश के अन्य बाढग्रस्त क्षेत्रो मे भी किया जा रहा है। ऐसी सूचनाओ द्वारा बाढनियंत्रण, अथवा बाढ-निवारण, तो नही हो सकेगा, किंतु बाढो द्वारा होनेवाली क्षति मे कमी अवश्य की जा सकेगी।

इस सबध मे मैदानो, खेतो, जंगलो और बेकार भूमि की भिन्न-भिन्न सामाजिक, आर्थिक स्थितियों और विकास कार्यों पर विचार करना भी आवश्यक है। जैसे-जैसे भूमि का विकास होता जाता है, वैसे वैसे क्षेत्रो की शकल बदल जाती है। जो क्षेत्र आज बाढों के रोकने मे सहायक होते हैं वे ही कुछ समय बाद बाढ़ के बढ़ाव मे योग देते हैं।

इसलिये यह स्पष्ट है कि प्रगतिशील देश में बाढों का अनुमान एक भिन्न दृष्टिकोण से ही लगाया जा सकता है। हमे अपनी खोजबीन द्वारा यह जानना होगा कि आगामी बरसो मे क्षेत्रों के विकसित हो जाने के पश्चात् वर्षा से गिरे पानी के बहाव मे किस मात्रा मे बढोतरी होगी। इसको दृष्टि मे रखते हुए ही हम बाढ नियंत्रण के हेतु किए जानेवाले कार्यों की उचित योजना बना सकते है।

क्षेत्रीय आयोग और नियंत्रण बोर्ड — राजकीय और प्रशासकीय सीमाएँ भी यदाकदा नदी सबधी योजनाओ मे बाधा उपस्थित करती है। ब्रह्मपुत्र, गगा, उत्तर-पश्चिमी नदी, तथा मध्य भारत मे क्षेत्रीय, आयोग बनाए गए हैं। ये क्षेत्रीय आयोग भिन्न भिन्न बाढ़ नियंत्रण बोर्डों से परामर्श करके बाढ सबधी सारी समस्याओ का समाधान करते है।

बहुधा ऐसा होता है कि बाढ सबधी समस्याएँ बाढ के समय, या उसके तत्काल बाद, ही उग्र रूप से सामने आती है। जब बाढ़ की बला टल जाती है तब अन्य बडी योजनाओं के अतर्गत बाढ की समस्याएँ भी समा जाती हैं और उनकी ओर यथोचित ध्यान नही दिया जाता। अतएव जहाँ बाढो द्वारा जान और माल की क्षति प्रति वर्ष होती रहती है वहाँ की समस्याओ का समाधान क्षेत्रीय आयोग तथा बाढ नियत्रण बोर्डों की देखरेख मे ही होना चाहिए।

भूमिसरक्षण — बहुधा यह कहा जाता है कि भूमिसंरक्षण यदि उचित रूप से किया जाए, तो बाढो की मात्रा और प्रवेग मे कमी हो सकती है। ऐसा कहना साधारण बाढो के सबध मे उपयुक्त हो सकता है, किंतु जहाँ बडी बाढे आ जाती है वहाँ छोटी मोटी भूमिसरक्षण योजनाएँ काम नही कर सकती। फिर भी भूमिसरक्षण एक बडा महत्वपूर्ण कार्य है और हमारे देश मे यह किया जाना आवश्यक है। इस दिशा मे ऐसे नियम बनने चाहिए जिनसे भूमिसरक्षण योजनाओ का सहयोग बाढ निवारण योजनाओ को यथानुकूल मिल सके।

यद्यपि बाढ सबधी योजनाएँ बहुधा अनुभवी अधिकारियो के समक्ष रखी जाती है और काफी सोचने विचारने के बाद उनका निर्माण किया जाता है, फिर भी नदी घाटियो मे बहुत सी ऐसी अज्ञात बाते सामने आती है, जिनका समाधान गणित और अनुभव से नही हो पाता। अतएव यह आवश्यक होता है कि बाढ सबधी समस्याएँ नदी घाटियो के छोटे या बडे माडल बनाकर, अध्ययन हेतु गवेषणा केंद्रों के सुपुर्द की जाएँ।

पश्चिमी देशो मे तथा हमारे देश मे भी माडल के अध्ययन करने का चलन है। ऐसा करने से कभी कभी लाखो रुपए की बचत हो जाती है। साथ ही योजना सबधी कार्य भी सुचारु रूप से संपन्न हो जाते है। हमारे देश मे ऐसे गवेषणाकेंद्र प्राय सभी प्रातो मे है। एक केंद्रीय गवेषणाकेंद्र पूना के समीप खडकवासला मे है। इस केंद्र पर ब्रह्मपुत्र नदी का बडा मॉडल बनाया गया था। उसपर अध्ययन किए जाने के पश्चात ही उस घाटी मे अनेक शहरो के बचाव के लिये बाढ से सबंधित कार्य किए गए है।

जनता का सहयोग — अन्य सार्वजनिक कार्यों की अपेक्षा बाढ सबधी योजनाओ मे जनता के सहयोग की आवश्यकता अधिक होती है। यदि थोड़ा थोड़ा करके भी प्रत्येक व्यक्ति बाढ निवारण

हेतु अपने खेत, खलिहान, गाँव तथा कस्बो में काम करे तो इस काम की मात्रा बहुत हो जाती है; किंतु ऐसा होता नही है।

इसके विपरीत बहुत सी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं, जहाँ सार्वजनिक कार्य बाढ़ो को बढ़ावा देते हैं। ऐसी स्थितियो मे बाढ़ निवारण योजनाओ का समन्वय अन्य योजनाओ के साथ इस रूप से होना चाहिए कि उनकी पूर्ति बाढो मे वृद्धि न करे और यदि वृद्धि हो भी तो उससे मुक्ति का मार्ग साथ साथ ही निकल सके। बाढ़ सबंधित योजनाएँ सिचाई, यातायात, रेलवे तथा जलप्रदाय आदि जितने भी कार्य हैं, उन सबसे कही न कही सबधित होती है।

यह सब होते हुए भी हमे इस बात से सतर्क रहना है कि नियत्रण तथा निवारण के कार्य मे प्रकृति के साथ हमारा सदा द्वंद्व रहेगा। प्रकृति से मोर्चा लेना साधारण काम नही है। अतएव यह स्पष्ट है कि बाढ निवारण तथा नियत्रण के हेतु व्यय करने मे हमे सकोच नही करना चाहिए। वैसे तो जल का उचित मात्रा मे संवरण तथा उसका सदुपयोग हमारे देश के विकास के लिये अति आवश्यक है। ऐसे सवरण द्वारा भूमिसरक्षण भी हो जाता है।

बाढ सबंधी योजनाओ के अतर्गत सिचाई तथा पनबिजली योजनाएँ भी आती है। इसी कारण बाढ़ निवारण तथा नियत्रण योजनाएँ बहुधा बहुमुखी होती है और उनमे धन भी बड़ी मात्रा मे व्यय होता है। इसके अतिरिक्त इन योजनाओ के सपन्न होने मे समय भी लगता है और जल्दबाजी करने मे तो कभी कभी लाभ के बजाय हानि हो जाती है।

बाढ तथा बाढ़ नियत्रण का विषय कृषि के विकास, जलसाधना के उपयोग, यातायात, स्वास्थ्य तथा बहुत से अन्य सामाजिक विषयो से उलझा रहता है। उदाहरणार्थ, बाढ निकल जाने के बाद, बहुधा बाढ-ग्रस्त क्षेत्र मे बहुत-सी बीमारियाँ फैलने लगती है। प्रशासन के ऊपर उस समय भारी उत्तरदायित्व यह आ पड़ता है कि बीमारियो की रोकथाम यथासमय हो जाय।

इसके अतिरिक्त बाढो द्वारा बहुधा सड़क, रेल, तार आदि, यातायात के साधनो मे भी रुकावट पड जाती है। उनके पुन सचालन का कार्य भी प्रशासन को करना पड़ता है। कृषि योग्य भूमि के जलमग्न रहने से कृषि की तो हानि होती ही है, प्रशासन को भी इस दिशा मे बड़ा काम करना पड़ता है, जिससे कृषको की कठिनाइयाँ कम हो सकें।

बाढ निवारण हेतु बहुत से क्षेत्रो मे अतिरिक्त नालो का तथा कही कही बाँधो का प्रबध भी किया जाता है, किंतु इन दोनो साधनो के कारण प्रकृति की स्थायी रूपरेखा मे परिवर्तन होता है और इसके परिणामो को दूर करने के लिये समुचित साधन जुटाने पड़ते है। अमरीका जैसे देश मे भी बाढ तथा बाढ नियत्रण की समस्या का स्थायी हल अभी तक नही निकल पाया है।

यह समस्या सदा से जटिल रही है और जटिल रहेगी। सभवतया मनुष्य को बाढों के साथ साथ रहना सीखना पड़ेगा, जैसा युग युगातरो से मानव करता आया है। वास्तव मे तो ससार, मे बहुत सी उर्वर भूमि बाढ़ो की ही देन है। बाढ़ो से भूमि की उर्वरता का संरक्षण भी होता है। अत, बाढ़ तथा बाढ़ नियंत्रण की समस्या का समाधान इस दृष्टि से करना होता है कि लाभ और हानि दोनो को मिलाकर लाभ शेष रह जाय। इसके अतिरिक्त और कोई उपचार मानव के लिये कल्याणकारी सिद्ध नहीं हो सकता। [बा० ना०]

बाणासुर अशना से उत्पन्न, असुरराज बलि वैरोचन के सौ पुत्रो मे सबसे ज्येष्ठ, शिवपार्षद, परमपराक्रमी योद्धा और पताललोक का प्रसिद्ध असुरराज जिसे महाकाल, सहस्रबाहु तथा भूतराज भी कहा गया है। शोणपुरी, शोणितपुर अथवा लोहितपुर इसकी राजधानी थी। असुरो के उत्पात से त्रस्त ऋषियो की रक्षा के क्रम से शकर ने अपने तीन फलवाले बाण से असुरो की विख्यात तीनो पुरियो को बेध दिया तथा अग्निदेव ने उन्हे भस्म करना प्रारभ किया तो इसने पूजा से शकर को अनुकूल कर अपनी राजधानी बचा ली थी (मत्स्य०, १८७-८८; ह० पु०, २।११६-२८; पद्म०, स्व०, १४-१५)। फिर इसने शकरपुत्र बनने की इच्छा से घोर तपस्या की। प्रसन्न होकर शिव ने इसे कार्तिकेय के जन्मस्थान का अधिपति बनाया था (ह० पु० २।११६-२२)। शिव के ताडवनृत्य मे भाग लेने से शकर ने प्रसन्न होकर इसकी रक्षा का बीड़ा उठाया था।

उषा अनिरुद्ध की पुराणप्रसिद्ध प्रेमकथा की नायिका इसी की कन्या थी। स्वप्नदर्शन द्वारा कृष्णपुत्र अनिरुद्ध के प्रति पूर्वराग उत्पन्न होने पर इसने चित्रलेखा (दे० 'चित्रलेखा') की सहायता से उसे अपने महल मे उठवा मंगाया और दोनो एक साथ छिपकर रहने लगे। किंतु भेद खुल जाने पर दोनो बाण के बंदी हुए। इधर कृष्ण को इसका पता चला तो उन्होने बाण पर आक्रमण कर दिया। भीषण युद्ध हुआ, यहाँ तक कि इसी मे एक दाँत टूट जाने से गणेश 'एकदंत' हो गए। अत मे कृष्ण ने बाण को मार डालने के लिये सुदर्शन चक्र उठाया किंतु पार्वती के हस्तक्षेप तथा आग्रह पर केवल अहकार चूर करने के निमित्त इसके हाथो मे से दो (पद्म०, ३।२।५०) अथवा चार (भाग० पु०, १०।६३।४९) को छोडकर शेष सभी काट डाले। फिर उन्होंने उषा अनिरुद्ध का विवाह समानपूर्वक द्वारका मे संपन्न कराया (दे० 'अनिरुद्ध')। [श्या० ति०]

बातिक (देखे छीट छपाई)

बादशाह कुली खाँ मुगल सम्राट् औरगजेब के राज्य का योग्य सरदार और सैनिक, जो तहव्वुर खा के नाम से प्रसिद्ध था। औरगजेब ने इसे अजमेर का फौजदार नियुक्त किया। राजपूतो के विद्रोह के समय तहव्वुर ने अपनी वीरता का परिचय दिया। राजपूतो के माडल दुर्ग पर अधिकार करने के प्रसादस्वरूप इसे बादशाह कुली खा की उपाधि दी गई। राजपूतो ने राजकुमार मुहम्मद अकबर और बादशाह कुली खा को अपने पक्ष में मिलाकर विद्रोह के लिये उत्साहित किया। इस विद्रोह मे पहले तो बादशाह कुली खाँ सम्मिलित हुआ किंतु बाद मे वह स्वय औरगजेब से मिलने गया, और वहीं इसकी हत्या कर दी गई।

बादाम का पेड होता है और इसके बीज या नट (nut) को भी बादाम कहते है। बादाम पश्चिम एशिया, बारबरी और मोरक्को का देशज हैं। पर अब यह अनेक देशो, जैसे फ्रास, इटली, स्पेन, पोर्तुगाल,

उत्तरी अफ्रीका, अमरीका के कैलिफॉर्निया, तुर्किस्तान और भूमध्यसागरीय देशों मे उपजाया जाता है। कश्मीर, पंजाब के पहाड़ी भागों और अफगानिस्तान में भी बादाम पैदा होता है। भारत का बादाम अच्छे किस्म का नहीं होता।

बादाम दो प्रकार का होता है। एक मीठा और दूसरा कड़वा। मीठे बादाम का लैटिन नाम प्रूनस ऐमिग्डैलस (Prunusamygdalus) एल्सिस और कड़वे बादाम का लैटिन नाम प्रूनस ऐमिग्डैलस ऐमारा है। यह रोजेसीई (Rosaceae) या ऐमिगडैली (Amygdalae) कुल का पोधा है। कडवा बादाम मोरक्को, ऐल्जीरिया और कैलिफॉर्निया में अधिकता से होता है। मीठे बादाम के फूल का रंग सुदर, लाल गुलाबी होता है और कड़वे बादाम का

बादाम के पत्ते, फूल, फल तथा बीज

फूल सफेद होता है। इन दोनों के वृक्ष मध्यम कद के होते हैं। कोई कोई २५ से ३० फुट तक ऊँचा होता है। रूस में एक बौने किस्म का बादाम उपजता है, जिसका पौधा केवल ४ फुट के लगभग होता है। पत्ते भूरे रग के होते है। फागुन तथा चैत्र मासों मे पेड फूल देते हैं। फूलों की सुंदरता के कारण वृक्ष बहुधा बगीचों मे लगाए जाते हैं। इसका फल लंबा, चिपटा दो दालोवाला होता है, जो पतले भूरे रग के आवरण से ढँका रहता है। फल के पक जाने पर दो ऊपरी सतह, जिन्हे बाह्यफलभित्ति (epicarp) और मध्यफलभित्ति (mesocarp) कहते है, फटकर अलग हो जाते है, किंतु अत फलभित्ति (endocarp) निकोना भूरे रग का कड़ा छिलका बन जाता है, जिसके अंदर बीज ढँका रहता है। मीठे बादाम मे यह छिलका कडा और मोटा होता है, पर कड़वे बादाम मे यह पतला या शीघ्र टूटनेवाला होता है।

मीठे बादाम की गिरी भोज्य पदार्थ है। कच्ची या नमक के साथ यह भूनकर खाई जाती है और मिठाई, पेस्ट्री इत्यादि बनाने के काम में आती है। इसमे तेल होता है। तेल दो प्रकार का होता है। एक स्थिर तेल, जो दोनों प्रकार के बादामो मे होता है और दूसरा वाष्पशील तेल, जो केवल कडवे बादाम से प्राप्त होता है। तेल के अतिरिक्त बादाम में प्रोटीन और खनिज लवण होते हैं, जो पोषण की दृष्टि से बड़े महत्व के है।

बादाम का औसत सघटन इस प्रकार है .

घटक	प्रति शत मात्रा
तेल	४१·०१
पानी	२७·७२
प्रोटीन	१६ ५०
नाइट्रोजन रहित	१०·२०
कार्बनिक पदार्थ	२·८०
तंतु	१·७७
राख	१००·००

राख मे कैल्सियम, पोटैशियम, लोहा, फॉस्फेट आदि रहते हैं। विटामिन ए और बी भी फल मे पाए गए हैं। भोज्य पदार्थों मे बादाम का महत्व प्रोटीन के कारण होता है। मास और मछलियो से भी अधिक प्रोटीन इसमे रहता है। वानस्पतिक और अन्न प्रोटीनों से इसका प्रोटीन अधिक सुपाच्य होता है। [सा० जा०]

बादाम का तेल इस तेल को ब्रिटिश फार्मेकोपिया में ओलियम एमिग्डैली (Oleum amygdalae) कहते हैं। यह बादाम की गिरी से प्राप्त होता है। गिरी को कोल्हू मे पेरकर, अथवा विलायकों द्वारा, तेल को अलग करते हैं। तेल की मात्रा मीठे बादाम मे ४५% से ५५ % और कडवे बादाम मे ३५ % से ४४ % हो सकती है। बादाम का तेल अशुष्कनीय स्थिर तेल है। यह हलके पीले रंग का होता है। इसकी गंध विशेष प्रकार की होती है। निष्कर्षण द्वारा प्राप्त तेल कुछ मैले रंग का होता है। इस तेल के विशिष्ट गुण इस प्रकार हैं :

आपेक्षिक घनत्व (१५°/१५° सें०)	०.९१४-०.९२१
हिमाक	–१५° से –२०° सें०
साबुनीकरण मान	१८३.३ – २०७.६
आयोडीन मान	०.५ – ३.५
राइकर्ट माइकैल मान	०.५

यह जल में अविलेय, ऐल्कोहॉल में अल्प विलेय और ईथर, क्लोरोफार्म तथा बेंजीन मे सहज विलेय है। इसमे मुख्यत ओलिइक, लिनोलेइक (५.९७ %) के अतिरिक्त, सतृप्त अम्लो में मिरिस्टिक और पामिटिक अम्ल कुछ रहते है। सूक्ष्म मशीनो के लिये स्नेहक तेल के निर्माण, ओषधियो, चेहरे की के क्रीमों तथा बिस्कुट या अन्य मिठाइयो के बनाने मे यह प्रयुक्त होता है।

कड़ए बादाम से स्थिर तेल के अतिरिक्त ०.५ % से ७ % तक वाष्पशील तेल भी प्राप्त होता है। स्थिर तेल निकाल लेने पर जो अवशिष्ट अश बच जाता है उसका पानी के साथ सपेषण करते है। अवशिष्ट अश में एमिग्डैलिन नामक ग्लूकोसाइड रहता है और उसमे एक एजाइम इमल्सिन रहता है। जल की उपस्थिति मे इमल्सिन एमिग्डैलिन का विघटन कर ग्लूकोज, बेजल्डीहाइड और हाइड्रोसायनिक अम्ल मुक्त करता है। इस प्रकार से प्राप्त उत्पाद के आसवन से वाष्पशील तेल प्राप्त होता है, जिसमें बेंजल्डीहाइड और हाइड्रोसायनिक अम्ल दोनो रहते हैं। आसुत को चूने और फेरस सल्फेट के साथ उपचारित करने से हाइड्रोसायनिक अम्ल निकाला जा सकता है। बेंजल्डीहाइड के कारण आसुत में विशेष गंध होती है। इस गंध के कारण ही सगंध तेल के रूप मे इसका व्यवहार होता है। ऐसे तेल के विशेष गुण निम्नलिखित हैं :

गुण	हाइड्रोसायनिक अम्ल सहित तेल	हाइड्रोसायनिक अम्ल रहित तेल
रंग	बिना रंग का, पर रखने पर धीरे धीरे पीला हो जाता है	बिना रंग का, पर रखने पर धीरे धीरे पीला हो जाता है।
आ० घ० (१५° सें०)	१·०४५ – १·०७०	१·०५० – १·०५५
ध्रुवण घूर्णकता (optical activity)	कभी कभी थोड़ा दक्षिणावर्त ०·६ पर	निष्क्रिय
अम्ल मात्रा	२%, ४%, तथा अधिकतम ११%	०–०·५%
ऐल्कोहल में विलेयता	७०% मे; बराबर या दूनी मात्रा ६०% मे ढाई गुना	दूना तथा अधिक भी ६०% में
अपवर्तनांक	१·५३३—१·५४४	१·५४२—१·५४६
ऑक्सीकरण	कम	शीघ्र होता है
उपयोग	ओषधियो मे	वासक के रूप मे

[ल० शं० शु०]

बॉन स्थिति : ५०° ४३′ उ० अ० तथा ७° ६′ पू० दे०। यह पश्चिमी जर्मन गणतंत्र राज्य की राजधानी है, जो कोलोन से १७ मील दक्षिण मे स्थित है। सन् १८०१ मे यह नगर फ्रास के अधिकार मे था और सन् १८१५ मे प्रशा के अधीन रहा। यहाँ १३वीं शती का बना मुन्स्टर गिरजाघर है। अन्य इमारतो मे वेधशाला, प्राचीन वस्तुओं का सग्रहालय तथा सन् १८१८ मे स्थापित विश्वविद्यालय है। यहाँ चीनी मिट्टी, रसायनक, मूती वस्त्र तथा चमड़े इत्यादि का सामान तैयार करने के कारखाने हैं। इसकी जनसख्या १,४३,८८३ (सन् १९६१) है।

बाबर नाम, जहिरुद्दनि मुहम्मद; उपनाम, बाबर। इसका जन्म शुक्रवार १४ फरवरी, सन् १४८३ ई० को मध्य एशिया स्थित फरगना राज्य में हुआ। यह प्रसिद्ध विजेता तैमूर का वंशज था। अपने पिता उमर शेख मिर्जा के अकस्मात् देहावसान के उपरांत १२ वर्ष की अल्पावस्था मे ही वह सिंहासनारूढ़ हुआ और उसके जीवन के अगले ३६ वर्ष कठिनाइयों से ही संघर्ष करते बीते। परंतु विषम से विषम परिस्थिति में भी उसने कभी न तो धैर्य का ही त्याग किया और न आत्मबल का। वह वीर योद्धा ही न था बल्कि तेजस्वी कवि भी था। प्रकृति के इस अनुपम पुजारी ने अपनी भावनाओं को अपनी आत्मकथा तुजुके बाबरी मे बहुत ही हृदयस्पर्शी शब्दो मे अभिव्यक्त किया है।

सत्तारूढ़ होने के पश्चात् लगभग १० वर्ष तक वह स्वदेश मे ही अपने भाग्य की परीक्षा करता रहा। महत्वाकाक्षा उसमें कूट कूटकर भरी थी। तैमूर उसके जीवन का आदर्श था जिसको कार्यान्वित करने के उद्देश्य से उसने दो बार समरकद पर अधिकार किया। परंतु प्रतिकूल वातावरण के कारण वहा उसका अस्तित्व स्थायी रूप ग्रहण न कर सका। अंत मे अपने रौद्र शत्रु शैबानी खाँ उजबेक द्वारा पराजित होकर उसे अपने देश को त्यागना पडा और अपनी सुरक्षा के लिये विजेता से सौदा करना पडा। अतः उसने अपनी बहन ख्वानजादा बेगम का विवाह अपने शत्रु के साथ कर दिया। बाबर ने इस अपमानजनक घटना का अपनी आत्मकथा मे सकेत नही किया है।

समरकंद से वहिर्गमन के पश्चात् उसके जीवन का द्वितीय अध्याय प्रारंभ हुआ। उसके आगामी २० वर्ष काबुल प्रदेश में व्यतीत हुए। इस अवधि मे संचित अनुभव एव अनुकूल परिस्थितियो ने उसके अस्तित्व को दृढता प्रदान की। अब वह एक घुमक्कड़ योद्धा न रहा। वह एक राज्य का स्वामी बन गया था। ईरान के शाह के संदेश से प्रोत्साहित होकर उसने सन् १५१० मे समरकंद अधिकृत करने की अपनी इच्छा को अंतिम बार पूरा किया। परतु पूर्व ही के समान अबकी बार भी उसकी सफलता अस्थायी ही रही। यद्यपि स्वदेशविजय की लालसा उसे आजीवन व्याकुल करती रही, तथापि इसका वास्तविक रूप स्वप्न के स्तर से आगे न बढ सका। विवश होकर उसने काबुल के निकटवर्ती स्थानों पर ही अपनी सत्ता प्रसारित करने मे अपना हित देखा। उसने इसी बीच कई बार भारत की सीमा पर भी प्रयाण किया परतु काबुल के राज्यकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना है बाबर का अरगूनो को हटाकर कांधार पर (सन् १५२२ मे) अधिकार करना। इसके फलस्वरूप यद्यपि मुगल-ईरान के द्वंद की जड़ तो पड़ी, परतु मध्य एशिया मे बाबर की धाक जम गई।

काबुल की समस्याओ मे व्यस्त रहते हुए भी बाबर निकटवर्ती राज्यो की राजनीतिक परिस्थितियो के प्रति सतर्क रहता था। साम्राज्य प्रसार उसकी जन्मजात अभिलाषा थी। काबुल जैसे लघु राज्य से उसकी तुष्टि असंभव थी। अत सन् १५१९ मे उसने दो बार भारत की सीमा तक प्रयाण किया। इसी वर्ष उसने अपने प्रतिनिधि मुल्ला मुर्शिद को पजाब प्रांत की माँग लेकर लोदी सुलतान इब्राहीम के पास भेजा। परंतु इसको रास्ते मे ही रोक लिया गया। सन् १५२० ई० मे उसने तीसरी बार भारत की ओर प्रयाण किया और भेरा होता हुआ वह सियालकोट तक पहुँच गया। यद्यपि इस अवसर पर उसका लक्ष्य लाहौर था परंतु अरगूनो के उत्पात की सूचना पाकर वह अपनी योजना अधूरी छोड़कर काबुल लौट गया।

शीघ्र ही भारत में लोदी साम्राज्य की नीव डगमगाने लगी। उद्दंड और दंभी अमीर सुलतान की नियंत्रात्मक कार्रवाइयों से ऊब उठे। कुछ ने तो देश के अंदर ही उपद्रव आरंभ कर दिया और अन्य ने अपना पक्ष दृढ़ करने के उद्देश्य से बाहर से सहायता प्राप्त करने की योजना बनाई। इनमें से दो के नाम उल्लेखनीय है, सुलतान इब्राहीम का चचा आलम खाँ और पंजाब का राज्याध्यक्ष दौलत खाँ। दोनों ने बाबर को आमंत्रित किया। बाबर तो ऐसे अवसर की बाट ही जोह रहा था। अतः १५२४ ई० में उसने चौथी बार भारत पर आक्रमण किया। खैबर के दर्रे से निकलकर वह झेलम और चिनाव को पार करता हुआ लाहौर के सनिकट आ पहुँचा। यहाँ जब वह शाही सेना को पराजित कर चुका तब दौलत खाँ ने आकर उससे भेंट की। आपस में मतभेद हो जाने के कारण बाबर ने दौलत खाँ और उसके पुत्र गाजी खाँ को बंदी बना लिया, अत उनकी जागीरें को दिलावर खाँ को देकर वह काबुल लौट गया।

बाबर को अब भारत की परिस्थिति का पूरा ज्ञान हो गया था, अतः पूरी तैयारी करके अब वह विजयश्री प्राप्ति के ध्येय से अंतिम बार आया। इस अवसर पर उसे मेवाड नरेश राणा संग्राम सिंह की ओर से भी निमंत्रण मिला था। सन् १५२५ मे पानीपत के मैदान में घमासान युद्ध हुआ। अपने तोपखाने एवं बंदूकधारी सैनिकों की सहायता से उसने इब्राहीम लोदी की विशाल सेना को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस अपूर्व विजय ने उसकी प्रतिष्ठा मे वृद्धि की। अब वह एक विशाल राज्य का स्वामी बन गया। फिर भी उसे अभी अनेक विरोधियों का सामना करना था।

संग्राम सिंह की यह धारणा कि इब्राहीम लोदी को परास्त करके बाबर पुन काबुल वापस चला जाएगा भ्रामक सिद्ध हुई। अत अब राणा अत्यंत विक्षुब्ध हो उठा और मैदान मे आ डटा। राजपूतों की वीरता और युद्ध-कौशल-गाथाओं ने बाबर के सैनिकों को उत्तेजित कर दिया था मगर वह अपने संकल्प मे अविचल रहा। सैनिकों को उत्तेजित करने के लिये उसने धर्म की दुहाई दी और स्वयं मदिरा-पान त्याग की शपथ ली। फरवरी, १५२७ ई० मे कन्वाहा के मैदान मे उसने अपनी सेना के व्यूह की रचना उसी प्रकार की जैसी पानीपत के युद्ध के समय की थी। अनेक राजपूत वीर मारे गए और संग्राम घायल होकर मैदान से चला गया। बाबर की विजय हुई। राजपूतों की प्रतिष्ठा को गहन क्षति हुई। ग्रीष्म ऋतु के आगमन के कारण विजयी मुगल सम्राट् मेवात अधिकृत करने के पश्चात् आगरा लौट आया।

सुअवसर पाते ही बाबर ने उन अफगान सरदारों से संघर्ष किया जो गंगा के किनारे कन्नौज के निकट उपद्रव की योजना बना रहे थे। सन् १५२८ मे यह शत्रुदल भाग निकला। बंगाल नरेश की सहायता प्राप्त करके इन शत्रुओं ने पुन सिर उठाया। सन् १५२९ मे बाबर ने गंगा और घाघरा के संगम पर इनका मुकाबला किया एवं बंगाल अफगान संयुक्त सेना को पराजित किया।

अथक परिश्रम के फलस्वरूप मुगल सम्राट् का स्वास्थ्य बिगडने लगा। जब उसके ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ को इसकी सूचना प्राप्त हुई तब वह बदख्शाँ से चलकर तीव्र गति से आगरा पहुँचा। सम्राट् का स्वास्थ्य सुधरने लगा था और चिंता की कोई बात न रह गई थी। यह देखकर हुमायूँ ने संभल की ओर प्रस्थान किया परंतु रास्ते मे ही वह रोगग्रस्त हो गया। उसकी दशा संशययुक्त हो गई और उसको दिल्ली आगरा लाया गया। इस अवसर पर उसके पिता ने अद्भुत बलिदान देकर अपने जीवन की बाजी लगा दी। परंतु यह किंवदंती पूर्णरूपेण भ्रमात्मक है कि हुमायूँ के स्वस्थ होते ही बाबर के जीवन का अंत हो गया और पुत्र के रोग को पिता ने ग्रहण कर लिया। उसका स्वास्थ्य तो पहले से ही गिर रहा था अत. २६ दिसंबर, १५३० को उसका देहावसान हो गया। भारत मे मुगल साम्राज्य की नींव डालने और राजनीति को एक नया मोड देने का उसको श्रेय प्राप्त है। १६वीं शताब्दी का वह अनुपम विजेता कहलाता है। उसका स्मारक काबुल मे है।

बाबर ने नौ विवाह किए जिनमे उसके १८ संतानें उत्पन्न हुईं। हुमायूँ की माँ माहम बेगम ही उसके अधिक प्रेम की पात्री थी।

[ब० प्र० स०]

बाबा कर्तारसिंह (सन् १८८६-१९६१) भारतीय रसायनज्ञ का जन्म पंजाब के अमृतसर जिले के वैरोवाल नामक स्थान मे हुआ था। आप सिखों के तीसरे गुरु अमरदास जी के वंशज थे। आपके पिता का नाम कर्नल बाबा श्री जीवनसिंह तथा माता का श्रीमती प्रेमकौर था। बाबा कर्तारसिंह ने पहले केंब्रिज विश्वविद्यालय के डाउनिंग कालेज मे तथा बाद मे सेंट एंड्रूज तथा केंब्रिज मे शिक्षा पाई। आपको सन् १९११ मे डब्लिन विश्वविद्यालय से तथा सन् १९४१ मे केंब्रिज से डॉक्टरेट की उपाधियाँ मिलीं।

आप सन् १९१० मे ढाका कालिज, ढाका, मे रसायन के प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए और सन् १९१८ तक इस पद पर रहे। इसी वर्ष आपका चुनाव इंडियन एडुकेशनल सर्विस के लिये हो गया और आपकी नियुक्ति गवर्नमेंट कालिज, लाहौर, मे हुई। यहाँ से सन् १९२१ मे आप पटना कालिज मे आए तथा बाद मे सन् १९२१ से ३६ तक रवेनशॉ कालिज, कटक सन् १९३६ से १९४० तक सायंस कालेज, पटना, तथा सन् १९४० से सेवानिवृत्त होने तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे रसायन के प्रोफेसर और उस विभाग के अध्यक्ष रहे। सेवानिवृत्त होने के पश्चात् आपने कई वर्षों तक बनारस हिंदू युनिवर्सिटी मे नि शुल्क सेवा की।

त्रिविम रसायन (Sterochemistry), वानस्पतिक उत्पादों के रसायन तथा कार्बनिक रसायन के अनेक विषयों पर अनुसंधान कर आपने लगभग अस्सी मौलिक गवेषणापत्र प्रकाशित किए, जिससे आपको देश और विदेश की अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं, जैसे इंग्लैंड की केमिकल सोसायटी, फैरेडे सोसायटी आदि, ने सम्मानित कर अपना सदस्य निर्वाचित किया। सन् १९३१ और १९३२ मे आप इंडियन केमिकल सोसायटी के प्रेसिडेंट, सन् १९३४ से १९४१ तक इंडियन एकैडेमी ऑव सायंसेज, बैंगलोर, तथा सन् १९१९-२० मे लाहौर फिलॉसॉफिकल सोसायटी के प्रेसिडेंट रहे। सन् १९२० के इंडियन सायंस कांग्रेस की रसायन परिषद् के आप अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे।

विज्ञान के सिवाय सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र मे भी आपने महत्व की सेवाएँ की। सन् १९३६ से ४१ तक आप सिख धर्म संस्थान, तख्त हरमंदिर जी, पटना, की निरीक्षक समिति के अध्यक्ष रहे।

[भ० दा० व० [

बाबा ताहिर ११वीं शती ई० के मध्य में हुए फारसी के उत्कृष्ट कवि, बाबा ताहिर के निवासस्थान एवं जीवनकाल की घटनाओं के विषय में बड़ा मतभेद है, किंतु वे संभवत. अधिकतर हमदान एवं लुरिस्तान में निवास करते रहे। उनकी रचनाओं में रुबाइयाँ, जिनसे उनके स्वच्छंद जीवन की झाँकी प्राप्त होती है, बड़ी प्रसिद्ध हैं। उनकी लोकोक्तियाँ गूढ़ दार्शनिक विचारों से परिपूर्ण है

सं० ग्रं० — बाबा ताहिर : रुबाइयाँ। [मै० अ० अ० रि०]

बामियाँ काबुल से उत्तर पश्चिम मे प्राचीन तक्षशिला-बैक्ट्रिया मार्ग पर बामियाँ के भग्नावशेष आज भी अपने गौरव के प्रतीक हैं। युवान् च्वाङ् ने फन-येन-न (बामियाँ) राज्य का उल्लेख किया है। उसके अनुसार इसका क्षेत्र पश्चिम से पूर्व २००० ली (लगभग ३३४ मी०) और उत्तर से दक्षिण ३०० ली (५० मी०) था। इसकी राजधानी छह-सात ली अथवा एक मील के घेरे मे थी। यहाँ के निवासियों की रहन सहन तुषार देशवासियो जैसी थी। उनकी रुचि मुख्यतया बौद्ध धर्म मे थी। यहाँ पर कोई १० विहार थे जिनमे १०० भिक्षु रहते थे जो लोकोत्तरवादी संप्रदाय से संबधित थे। नगर के उत्तर-पूर्व मे पहाड़ी की ढाल पर कोई १४०-१५० फी० ऊँची बुद्धप्रतिमा थी। वहाँ से दो मील की दूरी पर एक विहार में बुद्ध की महापरिनिर्वाण दशा मे एक बड़ी मूर्ति थी। युवान् च्वाङ् के कथनानुसार दक्षिण पश्चिम में ३४ मील की दूरी पर एक बौद्ध संघाराम था जहाँ बुद्ध का एक दाँत सुरक्षित रखा था।

इस वृत्तांत की पुष्टि अफगानिस्तान मे हिंदूकुश पहाड़ी तथा बामियाँ एवं वहाँ की विशाल मूर्तियो से होती है। एक मील की लंबाई में चट्टान के दोनों छोर पर क्रमश. १२० तथा ११५ फी० ऊँची बुद्ध की मूर्तियाँ है। छोटी मूर्ति गंधार कला की प्रतीत होती है। वस्त्रभूषा के आधार पर इसकी तिथि ईसवी की दूसरी तीसरी शताब्दी मानी जा सकती है। बड़ी मूर्ति का निर्माण लगभग १०० वर्ष बाद हुआ। इनके पीछे आलों की छतों मे चित्रकला के भी अंश मिले है। इनको ससानी, भारतीय तथा मध्य एशिया से संबधित वर्गों में रखा गया है। बामियाँ के चित्र अजंता की ६वीं तथा १०वीं गुफाओं के चित्रों तथा मीरन (मध्य-एशिया) की कला से मिलते जुलते हैं।

यद्यपि चिंगेज खाँ ने बामियाँ और वहाँ के निवासियों का पूर्णतया अंत कर दिया तथापि बुद्ध की इन प्रतिमाओं का उल्लेख 'आईन ए अकबरी' में भी मिलता है। कहा जाता है, प्रथम अफगान युद्ध के अंग्रेज बंदी सैनिकों को यहाँ रखा गया था।

सं० ग्रं० — हाकिन . आँतिक्यूरे बुद्धिक बदामियाँ; ए गाइड डु विजितयो सिटी आर्कियोलाजिक द बामियाँ (दोनों फ्रासीसी मे), बील बुद्धिस्ट रेकार्ड्स ऑव दी वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग १; ईसाइक्लोपीडिया ऑव आर्ट। [बै० पु०]

बायरन, जॉर्ज गॉर्डन प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि। उनका जन्म २२ जनवरी, सन् १७८८ ई० को लदन मे हुआ। उनके पिता जॉन बायरन सेना के कप्तान और बहुत ही दुराचारी थे। उनकी माता कैथरीन गोर्डन ऐबर्डीनशायर की उत्तराधिकारिणी थी। उनके पिता ने उनकी माता की सारी संपत्ति दुराचार में लुटा दी, यद्यपि उनकी अपनी संपत्ति कुछ भी नहीं थी, और उनके पिता के चाचा ने, जिनके वह उत्तराधिकारी थे, परिवार की सब जायदाद बुरे कामों में नष्ट कर दी। बेचारे बायरन के हाथ कुछ न लगा। उनकी शिक्षा सार्वजनिक विद्यालय हैरो तथा केंब्रिज विश्वविद्यालय मे हुई।

सन् १८०७ मे, जब बायरन की अवस्था केवल २० वर्ष की थी, उनका एक निरर्थक काव्यग्रंथ 'ऑवर्स ऑव आइडिलनेस' प्रकाशित हुआ। 'एडिनबरा रिव्यू' ने इसका बहुत मजाक उड़ाया और बड़ी कड़ी आलोचना की। किंतु बायरन चुप रहनेवाले व्यक्ति नहीं थे, उन्होने अपने व्यंग्यात्मक काव्य 'इंग्लिश बार्ड्स ऐंड स्कॉच रिव्यूअर्स' मे, जो सन् १८०९ मे प्रकाशित हुआ, इस कटु आलोचना का मुँहतोड़ जवाब दिया। इसके बाद वह भूमध्यसागरीय प्रदेशों का पर्यटन करने चले गए और १८११ ई० मे घर लौटने पर अपने साथ 'चाइल्ड हैरोल्ड' के प्रथम दो सर्ग लाए जो सन् १८१२ मे प्रकाशित हुए। ये सर्ग इतने लोकप्रिय हुए कि बायरन का नाम समाज और साहित्य मे सब जगह फैल गया और सब लोगों के हृदय मे उनके प्रति अत्यंत प्रशंसा तथा आदर का भाव उमड़ पड़ा। १८१३ ई० मे लेकर १८१५ ई० तक उनकी कथात्मक काव्यरचनाएँ 'दि ब्राइड ऑव एबीडौस,' 'दि कोर्सेयर', 'लारा,' 'दि सीज़ ऑव कॉरिंथ', और 'पेरिज़िना' -- प्रकाशित हुईं।

१८१५ ई० मे बायरन का विवाह ऐन इज़ाबेल्ला मिल्कबैंक से हुआ जो एक सुप्रसिद्ध और धनाढ्य परिवार की महिला थी। किंतु एक वर्ष उपरांत बायरन के चरित्रहीन व्यवहार के कारण वे उन्हें छोड़कर सदैव के लिये अपने मायके चली गईं। इस दुर्घटना के कारण सारा इंग्लैंड बायरन के प्रति क्रोध और घृणा के भाव से क्षुब्ध हो उठा। इससे वह स्वदेश छोड़कर स्विटज़रलैंड चले गए जहाँ वह शैली परिवार मे कुछ समय रहे। वहाँ से वह वेनिस चले गए और लगभग दो वर्ष तक वहीं रहे। वेनिस मे काउंटेस ग्विचोली से उनका प्रेम हो गया। तदुपरांत वे पीसा तथा जेनिवा गए और १८२४ ई० मे वह यूनानियों के स्वतंत्रता युद्ध मे यथाशक्ति सहायता करने के हेतु मिसोलोंगी पहुँचे। यूनानियों ने उनका एक राजा के समान स्वागत किया। उन्होंने भी तन, मन, धन से उनकी सहायता की किंतु उसी वर्ष उनका देहांत हो गया।

१८१५ ई० से लेकर १८२४ ई० तक बायरन ने अनेक प्रकार की काव्यरचनाएँ कीं — छोटी छोटी गीतात्मक कविताएँ जो १८१५ मे 'हिब्रू मेलोडीज़' के नाम से प्रकाशित हुईं, 'चाइल्ड हेरोल्ड' के अंतिम दो सर्ग, जो पहले दो सर्गों से भी अधिक उत्तम हुए, बहुत से नाटक जिनमे से 'मैन्फ्रीड' तथा 'सार्डेनापलस' सबसे उत्कृष्ट हैं। किंतु उनका कोई नाटक रंगमंच के उपयुक्त नहीं है, यद्यपि उनकी काव्यशैली पर्याप्त ओजस्विनी है, दो गीतकाव्य 'दि ड्रीम' तथा 'डार्कनेस' उनकी गीतात्मक कविताओं मे सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी अंतिम और सबसे अच्छी कथात्मक रचना 'मेज़प्पा' है।

यद्यपि सभी प्रकार के काव्य मे बायरन का अपना स्थान है, तथापि उनकी प्रतिभा मुख्यत वर्णनात्मक, कथात्मक तथा उपहासात्मक थी। उनकी कथात्मक कविताएँ इतनी लोकप्रिय हुई कि सर वाल्टर स्काट ने कविता मे कहानियाँ लिखना बंद कर दिया और

उपन्यासों की सृष्टि करने लगे। उनके ऐतिहासिक स्थानों अथवा घटनाओं और पात्रों के वर्णन अद्वितीय हैं। इसी कारण उनके 'चाइल्ड हेरोल्ड' नामक काव्यग्रंथ की अत्यंत ख्याति हुई और उनका प्रभाव संपूर्ण यूरोप के कवियों पर पड़ा। बायरन की उपहासात्मक प्रतिभा विलक्षण थी और उन्होंने विविध उपहास-कृतियों की रचना की जिनमें सबसे महत्वपूर्ण 'डान जुअन' है। यह ग्रंथ उपहासात्मक महाकाव्य है, किंतु कदाचित् शांत रस के अतिरिक्त कोई भी ऐसा रस नहीं है जो इसमें विद्यमान न हो। अंग्रेजी काव्य में जो भी उपहासात्मक रचनाएँ हैं उनमें इसका स्थान सबसे ऊँचा है। शुद्ध काव्यदृष्टि से बायरन बहुत बड़े कवि नहीं हैं और उनमें विचारशक्ति की न्यूनता भी खटकती है, किंतु समवेदना तथा अपने वासनामय उद्गारों और हार्दिक भावनाओं को व्यक्त करने में वे अनुपम हैं और संसार के स्वतंत्रतावादी कवियों में उनका ऊँचा स्थान है। [अ० मो० सा०]

बॉयलर यूरोप के इतिहास में बायलरों का उल्लेख यूनान और रोम के साम्राज्यों के समय से ही देखने में आ रहा है, लेकिन उनका आधुनिक रूप में विकास बहुत धीरे धीरे हुआ है। शक्ति उत्पादन करने के लिये वाष्प का उपयोग १९वीं शताब्दी से आरंभ हुआ, लेकिन जब ट्रेविथिक (Trevithick) ने उच्च दाब के वाष्प का उपयोग अपने इंजनों में किया, इससे पहले बॉयलर का कौन सा अंग कितना मजबूत और किस धातु का हो इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। आज से २०० वर्ष पहले जो लोग किसी भी काम के लिये बॉयलर बनाते थे, वे या तो अपने उपलब्ध साधनों और सुविधा के अनुसार, अथवा जहाँ उसे बैठाना है उस जगह के अनुसार, उसकी आकृति बना लेते थे। आरंभ में बॉयलर ताँबे की चादरों से और बाद में पिटवें लोहे से बनाने लगे।

मजबूती और दाब सहन करने की दृष्टि से बॉयलर की सर्वोत्तम आकृति गोल ही होनी चाहिए, लेकिन इसे बिलकुल सही बनाने, स्थिरतापूर्वक टिकाकर बैठाने और आग की गरमी को अधिक से अधिक मात्रा में पानी तक पहुँचाकर पानी को वाष्प बनाने में बड़ी झंझटें और कठिनाइयाँ पड़ती है। मजबूती की दृष्टि से गोलाकार के बाद दूसरी सबसे उत्तम आकृति बेलन है। अत जब से वाष्प का उपयोग शक्ति उत्पादन के लिये होने लगा तब से बायलर बेलनाकार ही बनाए जाते हैं, चाहे वे अकेले एक ही ढोल के रूप में हों अथवा अनेक ढोलों के संयुक्त रूप में, अथवा ढोलों और अनेक नलियों के संयुक्त रूप में। बॉयलरों के बनाने और संचालन के निमित्त, जनता की सुरक्षा और बॉयलरों की कार्यक्षमता की दृष्टि से एक अलग शास्त्र ही बन गया है, जिसके कुछ आवश्यक वैज्ञानिक नियम राज्यों के विधान में भी आ गए हैं। इनका पालन करने के लिये बॉयलरों का प्रत्येक प्रयोगकर्ता बाध्य है।

अग्नि-नलिका बॉयलर (Firetube Boiler) — बॉयलरों को उनकी बनावट के अनुसार दो मुख्य वर्गों में बाँटा जाता है: (१) अग्नि-नलिका ढोलाकार बॉयलर तथा (२) जल-नलिका बायलर। अग्नि-नलिका बॉयलरों में कॉर्निश बॉयलर सबसे पुराने प्रकार का है। इसकी बनावट बहुत ही सरल होती है, जिसके कारण यह आजकल भी काम में आता है। इसमें एक ही धूम्रवाहिनी नलिका होती है, जिसके आगे के भाग में भट्ठी बनी होती है। आजकल यह बॉयलर छोटी बड़ी कई मापों में बनाया जाता है। इसकी छोटी से छोटी माप व्यास में चार फुट और लंबाई में १० फुट होती है
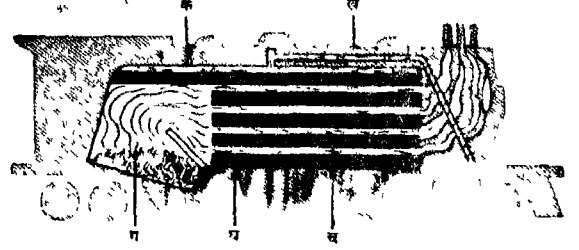
चित्र १. रेल के इंजिन का अग्नि-नलिका बॉयलर

क. भाप, ख. भाप नली, ग. अग्नि, घ जल तथा च. अग्निनलिका।

और बड़ी से बड़ी माप ६ फुट ६ इंच व्यास में तथा लंबाई में २४ फुट होती है। इसमें एक ही भट्ठी और धूम्रवाहिनी होती है, अतः बड़ी माप के बॉयलर में कोयला ठीक प्रकार से नहीं जल पाता और उसके वृहद् आकार के अनुपात से उसका तप्त धरातल भी कम रहता है। इसलिये कॉर्निश प्रकार के बॉयलर में दो भट्ठियाँ बराबर बराबर बना देने से वही लैंकाशायर बॉयलर कहलाने लगता है। इनकी अन्य बनावटें एक सी ही होती हैं। छोटे से छोटे लंकाशायर बॉयलर का व्यास ५ फुट, ६ इंच और लंबाई १६ फुट होती है, तथा बड़े से बड़े का व्यास १० फुट और लबाई ३० फुट होती है। अनेक बार इसमें तीन भट्ठियाँ भी बना दी जाती हैं। कॉर्निश और लैंकाशायर बॉयलरों में साधारणतया वाष्प की दाब १८० पाउंड प्रति वर्ग इंच तक होती है। इन दोनों प्रकार के बॉयलरों को अंत प्रज्वलित बॉयलर भी कह सकते हैं, वैसे तो इनमें अग्नि की ज्वालाएँ भट्ठी के पीछे की तरफ से घूमकर बॉयलर को बाहर की तरफ से भी तपाती हैं।

बहुनलिका बॉयलर (Multitubular boiler) — कॉर्निश और लैंकाशायर बॉयलरों में एक से अधिक भट्ठी और बड़े बड़े व्यास की धूम्रवाहिनी लगा देने पर भी उनका तप्त धरातल इच्छानुसार नहीं बढ़ने पाता। अत इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कई प्रकार के बॉयलरों में बड़ी अग्निनलिकाएँ लगाने के बदले छोटे व्यास की अनेक धूम्रनलिकाएँ लगा दी जाती हैं, जिनके कारण बॉयलर बहुनलिका बॉयलर कहलाते हैं। यह बाह्यत: प्रज्वलित (externally fired) और अंत: प्रज्वलित (internally fired), दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। बाह्यत प्रज्वलित बॉयलर उन वन्य प्रधान क्षेत्रों में काम में लाए जाते हैं जहाँ जंगलों में ही लकड़ी चीरने की आरा मशीनें बैठाई जाती हैं। ये आकार में काफी छोटे और हलके होने के कारण सुवाह्य होते है। इस कारण इन्हें ले जाकर ईंटों की बुनियादी भट्ठी पर रख कर काम चलाया जा सकता है। अंत प्रज्वलित बॉयलरों के ढोल के भीतर ही एक अथवा दो अग्नि-नलिकाकार भट्ठी बनाकर और उनका प्रज्वलन कक्ष ईंटों की बुनियाद में बनाकर, पीछे की तरफ से गरम गैसों को धूम्र-नलिकाओं में से आगे की तरफ लौटा कर चिमनी में से निकाल दिया जाता है। यह बॉयलर ड्राइबैक नाम से प्रसिद्ध है। बायलरों में से "एलिर्कट", अथवा "टिस्चबीन" (Tischbein) नामक बायलर का

यूरोप में अधिक उपयोग होता है। इसमें दो अथवा अधिक ढोल एक दूसरे के ऊपर नीचे लगे रहते हैं और उनका परस्पर संबंध बड़े व्यास के छोटे नलों द्वारा होता है। ऊपरवाले ढोल में पतली नलिकाएँ चाहे लगी हो या नहीं, लेकिन नीचेवाले ढोल में अवश्य ही भट्ठी और पतली पतली धूमनलिकाएँ होती हैं। इसी प्रकार के बॉयलर का परिष्कृत रूप जहाजी कामों के लिये भी बनाया गया है, जिसे **स्कॉच बॉयलर** कहते हैं। इसमें उपर्युक्त बॉयलरों के सब गुणों का समावेश हो गया है। लेकिन इसका प्रज्वलनकक्ष पूर्णतया बॉयलर के भीतर ही है, अतः इसमे किसी प्रकार की ईंटों की चिनाई नहीं करनी पड़ती। पंप आदि चलाने के छोटे कामों के लिये जो अंतःप्रज्वलित बॉयलर बनाए जाते हैं, वे बहुधा **खड़े बॉयलर** होते हैं। इन्हे **कॉकरन बॉयलर** कहते हैं। ऐसे खड़े बॉयलर में मोटी मोटी दो जलनलियाँ लगी होती हैं, जिन्हें गैलोवे ट्यूब कहते हैं। जलनलियों के लाभों का वर्णन आगे किया गया है। **रेल इंजन का बॉयलर** अंत प्रज्वलित अग्निनालयुक्त ही है, लेकिन इसकी भट्ठी मे आजकल २-४ जलनलिकाएँ लगाने का भी रिवाज हो गया है।

जलनलिका बॉयलर (Water-tube Boiler) — इस प्रकार के बॉयलरो मे छोटे आकार के खड़े बॉयलरो को छोड कर, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, अन्य सब जलनलिका बॉयलर बाह्यतः प्रज्वलित होते हैं। इन्हे बहुधा तीन श्रेणियों मे विभाजित किया जाता है: (१) जिनमें जलप्रवाही नलिकाएँ क्षितिज तल से झुकी हुई रहती है, (२) जिनमे जलनलिकाएँ ऊर्ध्वाधर तल से झुकी रहती हैं और (३) बलात् प्रवाही नलिकाएँ, जिनमें किसी भी दिशा में लगाई जा सकती है। प्रथम दो श्रेणियों में तो जल का प्रवाह स्वतः ही गरमी की परिवहनक्रिया द्वारा होता रहता है, लेकिन तृतीय श्रेणी के बॉयलरों मे किसी पप की सहायता से बलपूर्वक प्रवाह चालू रखा जाता है। सभी जलनलिकायुक्त, वाह्यत.प्रज्वलित बॉयलरों मे ऊपर
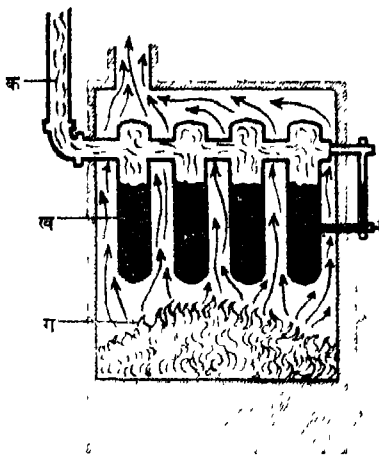
चित्र २. जलनलिका बॉयलर

क. भाप, ख. जलनलिका तथा ग. अग्नि।

और नीचे क्रमशः वाष्प और पानी के ढोल रहते है, जिन्हें परस्पर छोटी अथवा बडी व्यास की जलनलिकाओं से संबंधित कर एक अथवा अधिक संख्या में लगा दिया जाता हैं। ऊपरवाले ढोलों मे वाष्प, अथवा पानी और वाष्प, दोनो का मिश्रण रहता है और नीचेवाले ढोल मे केवल पानी, और कभी कभी गाढ़ा पानी और कीचड भी रहता है। इस ढोल को मड ड्रम (mud drum) भी कहते हैं। विभिन्न ढोलों की नलिकाओं के पारस्परिक सबध में विविधता रहने के कारण इन बॉयलरों के कई वर्ग बन जाते हैं।

आड़ी जलनलिकायुक्त बॉयलरो मे **बैबकॉक-विलकॉक्स बॉयलर** सर्वोत्तम समझा जाता है। इसमें चार इंच व्यास की नलिकाओं की श्रेणियाँ हेडरों (headers) मे दोनों तरफ से लगाकर, उनके सिरों को फुला दिया जाता है और फिर इन हेडरों के ऊपर की तरफ लगी चार इंच व्यास की ही, लेकिन कम लबाई की, नालियों को उसी प्रकार से बैठ कर, उनके ऊपरी सिरो को वाष्प ढोल में बैठाकर, नीचे की नलिकाश्रेणियो के पूरे जाल को ढोल से आगे और पीछे की ओर से संबंधित कर दिया जाता है। पीछेवाले हेडरों का संबंध, नीचे की ओर से पंकसंग्राहक (mudbox) से कर दिया जाता है, जिसमे बॉयलर के काम करते समय कीचड और बहुत गाढा पानी इकट्ठा हो जाता है जो सुविधानुसार बाहर निकाल दिया जाता है। स्थलीय बॉयलरों में वाष्प पानी के ढोल को नलियो की लंबाई की दिशा में रखा जाता है और जहाजी बॉयलरो मे आडा भी रख सकते हैं।

निक्लाउज़ी (Niclausee) **बॉयलर** — पूर्ववर्णित जलनलिका बॉयलर से इसमे दो भिन्नताएँ है। इस बॉयलर की नलियों का बाहरी व्यास लगभग २$\frac{1}{2}$ इंच होता है और वे छह छह इंचो के अंतर पर हेडरो से एक ही ओर से जुडी हैं और उनका मुडा हुआ भाग अधर मे लटकता रहता है, जिस कारण पानी का प्रवाह एक ही दिशा में होता है। इन पतली पतली नलियों के बीच एक क्षेत्रीय नली (field tube) और होती है, जिससे नलियो को एक श्रेणी में से बहकर आया हुआ पानी क्षेत्रीय नली मे जाकर, फिर दूसरी श्रेणी में प्रविष्ट हो जाता है। इस बॉयलर का उपयोग कारखानों के अलावा जहाजी कामो में अधिक होता है। फ्रांस के जहाजी बेड़ों मे इसका अधिक प्रचार है। जर्मनी में भी जहाजी कर्मों के लिये इसी से मिलता जुलता एक बॉयलर बनाया गया था, जिसे दुर्र (Durr) बॉयलर कहते है।

स्टर्लिंग (Stirling) **बॉयलर** — इस बॉयलर मे दो अथवा तीन वाष्पढोल ऊपर की तरफ और दो अथवा एक पानी का ढोल नीचे लगाकर उन्हें मुडी हुई जलनलिकाओ द्वारा जोड़ दिया जाता है। जब ऊपर और नीचे के समान सख्यावाले ढोलों को सीधी जलनलिकाओ द्वारा जोडा जाता है तब उसे ऐल्फा (Alpha) बॉयलर कहते हैं। सीधी जलनलिकाएँ लगाने से कई लाभ होते हैं: प्रथम तो वायु का व्यारोध (baffle) बडी सरलता से किया जा सकता है; दूसरे सीधी नलिकाओं को आवश्यकतानुसार जिस लंबाई की भी चाहें काटकर लगाया जा सकता है, अत. स्टॉक में फालतू नलियाँ नही रखनी पडती, तीसरे परीक्षा करते समय नलियो की परीक्षा ढोल के भीतर घुसकर सरलता से की जा सकती है और उन्हें बदला भी जा सकता है।

यारो और थॉर्नक्राफ्ट (Yarrow and Thorncraft) — इन बॉयलरों की गिनती जहाजी बॉयलरो मे होती है, जो ऊर्ध्वाधर नलियों

के लिये प्रसिद्ध हैं। इसकी सब जलनलिकाएँ सीधी ही हैं और नीचे के ढोल बेलनाकार होने के बदले डी (D) आकार के हैं। थॉर्नक्रॉफ्ट बॉयलर में बाहर की तरफ रहनेवाली नलिकाश्रेणी कुछ धनुषाकार मुड़ी होती है।

उच्चदाब वाष्पजनित्र (High Pressure Steam Generators) — आजकल औद्योगिक क्षेत्र में इंजनों, टरबाइनों तथा अन्य प्रकार के यंत्रों और प्रक्रियाओं में वाष्प का खर्चा इतना अधिक होता है कि साधारण बॉयलर उस आवश्यकता को पूरी करने में असमर्थ रहते हैं। यारो और स्टर्लिंग बॉयलर, जिनका हमने ऊपर वर्णन किया है, थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ बड़े कारखानों और बिजली घरों के लिये कुछ अधिक उपयोगी तो हो गए, क्योंकि सुधार करने से उनमें कोयले की बुकनी, तेल और लोहा गलाने की भट्ठियों से खारिज होनेवाली गैसें भी जलाई जाने लगीं। फिर भी वे आधुनिक क्षेत्रों में पिछड़ गए, क्योंकि जहाजी कामों के लिये तो ५७५ पाउंड प्रति वर्ग इंच दाब का वाष्प, जिसका ऊँचा ताप ३९९° सें० हो, काफी समझा जाता है। यदि यारो और स्टर्लिंग बॉयलरों में दो लाख पाउंड वाष्प उक्त दाब और ताप पर प्रति घंटा भी बना दें, तो इसे काफी समझा जाता है, लेकिन स्थलीय कारखानों और बिजली घरों में १,००० पाउंड प्रति वर्ग इंच और कभी कभी इससे ऊँचे दाब का वाष्प भी पाँच लाख पाउंड प्रति घंटा से भी अधिक मात्रा में खर्च हो जाता है। अतः ढोल और जलनलिकायुक्त बॉयलरों के बदले अधिकतर जलनलिकायुक्त कुछ ऐसे उपकरण बनाए जाने लगे हैं, जिनमें ढोल तो नाममात्र के लिये वाष्प संचित करने के निमित्त ही लगाया जाता है। इनकी और पुराने बॉयलरों की आकृति में अब कोई समानता नहीं रही, अतः इन्हें भापजनित्र (Steam Generator) ही कहते हैं। भापजनित्र में विशुद्ध आसुत जल का पंपों के बल से पतली पतली नलियों में परिवहन और उन्हीं में वाष्पीकरण भी होता है। इस प्रकार के बॉयलरों का प्रज्वलनकक्ष एक बड़ी कोठरी के रूप मे बनाया जाता है, जिसकी दीवारें अग्निसह ईंटों की बनाकर उनके सहारे भीतर की तरफ जलनलिकाओं का अस्तर (lining) लगा दिया जाता है जो भट्ठी की ज्वालाओं में से विकिरण द्वारा आई हुई गरमी के एक बहुत बड़े अंश को सोख लेता है और शेष गरमी यथापूर्व तिरछी जलनलिकाओं और बॉयलर के ढोलों द्वारा अवशोषित होती है।

इसी प्रकार के बुड वाष्पजनित्र नामक एक भीमकर्मा वाष्पजनित्र में कोयले की बुकनी जलाई जाती है। इसकी रचना और निर्माण न्यूयॉर्क की कांबश्चन इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन और लंदन की कांबश्चन जेनरेटर कंपनियो ने मिलकर किया है। यह ८०० पाउंड प्रति वर्ग इंच की दाब पर ७५ हजार पाउंड से लेकर चार लाख पाउंड प्रति घंटा वाष्प का उत्पादन करनेवाला बनाया जा सकता है। इसकी भट्ठी कोठरीनुमा होती है, जिसकी दीवारों के चारों ओर अनाच्छादित जलनलिकाओं की एक परत लगी रहती है। इस प्रज्वलनकक्ष के चारों कोनों पर, नीचे की ओर, कोयले की बुकनी संपीडित गरम हवा से मिश्रित कर, बलपूर्वक फुहारों द्वारा छोड़ी जाती है। एकदम प्रज्वलित होकर बड़ी भीषण अग्नि के बवंडर के रूप में जलती हुई गैस ऊपर को उठती है और उस प्रज्वलन कक्ष की छत के समीप नलियों के मध्य में से होती हुई प्राथमिक अतितापक (primary superheater) के क्षेत्र में प्रवेश कर और वहाँ से परावर्तित होकर, अवमंदक द्वार (damper door) में से होती हुई अतितापक में प्रवेश करती है, जिसमें से नीचे की दिशा में बहती हुई गैस वायुतापक में घूमकर ऊपर उठती है। यदि मितोपयोजक (economiser) लगा हो, तो गैस उसमें से होती हुई चिमनी मे से बाहर निकल जाती है।

बलकृत संचालित वाष्पजनित्र (Forced Circulation Steam Generators) — इस प्रकार के वाष्पजनित्र कम से कम जगह घेरते हैं, किंतु अधिक से अधिक शक्तिशाली वाष्प का उत्पादन कर सकते हैं। इनमे एटमॉस् (Atmos), बेनसन् (Benson), लामॉण्ट (La mont), लॉफलर (Loffler), सुल्जर मोनोट्यूब (Sulzer monotube) और विलॉक्स (Velox) प्रसिद्ध हैं। इन्हें भी दो श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है।

लॉफलर, लामॉण्ट और विलोक्स की गिनती एक श्रेणी में होती है और बेन्सन तथा सुल्जर मोनोट्यूब की गिनती दूसरी श्रेणी में होती है।

लामॉएट वाष्पजनित्र इंग्लैंड के बुल्वर हैंपटन की जॉन टॉम्सन कपनी ने परा उच्चदाब (ultra high pressure) का वाष्प तैयार करने के लिये बनाया है, जो इग्लैड के ही कई बिजली घरों में १,००० पाउंड प्रति वर्ग इंच दाब का वाष्प तैयार करता है, लेकिन इसकी बनावट में ऐसी कोई बात नही जिसके कारण उसमें निम्नदाब का वाष्प पैदा कर उपयोग मे न लाया जा सके। इस वाष्पजनित्र में कोयले की बुकनी अथवा तेल ईंधन का उपयोग किया जा सकता है। वाष्पजनित्र का मुख्य भाग वाष्प और जलसंग्राहक ढोल है, जिसमें से पानी अपने गुरुत्व के कारण नीचे लगे पपों में जाता है। यह पंप इस पानी को मुलायम इस्पात की बनी जलवितरक शीर्षिकाओं में मुख्य ढोलक की दाब से लगभग ३५ पाउंड प्रति वर्ग इंच की अतिरिक्त दाब पर, भेज देते हैं। इन शीर्षिकाओं की संख्या वाष्पजनित्र की रचना और सामर्थ्य के अनुसार कम या ज्यादा भी हो सकती है। यदि वाष्पजनित्र निम्न कोटि की दाब पर काम करता है, तब तो शीर्षिकाओं की काट आयताकार बनाई जाती हैं और यदि उच्च दाब पर काम करता है तो शीर्षिकाओं की काट गोल बनाई जाती है। शीर्षिकाओं मे पहुँचने पर पानी वाष्पीकरण नलिकाओं मे जाता है, जिनका मुंह शीर्षिकाओं के भीतर छुच्छियों के रूप मे इस प्रकार ठीक हिसाब से बनाया जाता है कि उनमें उतना ही पानी प्रविष्ट हो सके जितनी मात्रा में वह नली गरमी का शोषण कर सकती है। प्रत्येक छुच्छी मे कई छोटे छोटे छेद होते है, जिनमे से छनकर पानी जाता है। छुच्छियों में जो भी पानी जाता है उसे पहले रासायनिक रीति से मृदु और वायुरहित कर दिया जाता है, जिससे नलियों मे से गुजरते समय उसका वाष्प बनता ही जाता है। वाष्प की दाब ऊँची होने के कारण विशिष्ट आयतन भी कम होता है और उस तरल का वेग भी बहुत ऊँचा होता है, अतः अन्य साधारण बायलरों के समान बुलबुले नहीं उठते और इस वाष्प तथा पानी का घनीभूत मिश्रण बनकर ढोल में वापस लौट आता है।

ढोल मे जाकर, पानी का भाग तो नीचे की ओर इकट्ठा होकर फिर पंप मे पहुँचता है और वाष्प ऊपरी भाग में इकट्ठा हो, उसके ऊपर की ओर से दूसरी नली में होकर अतितापक (superheater) में पहुँचता है। अतितापक में वाष्प अधिक गरम

हो जाता है, जहाँ से उपयोग के लिये वह निष्कासन वाल्व द्वारा निकाल लिया जाता है। जितना वाष्प खर्च होता है, उसके बराबर के पानी की कमी पूरी करने के लिये एक दूसरा पंप मितोपयोजक के माध्यम से ढोल में ताजा भरणजल पहुँचाता रहता है। नलियों में पानी की जो मात्रा पंप के द्वारा चक्कर खाती रहती है, उसका बहुत थोड़ा सा ही अंश भरणजल के रूप में आता है। अत: उस पंप के ऊपर पड़नेवाले भार में कोई अंतर नहीं पड़ता और सदा वह एक सी गति से ही चलता रहता है। इस पंप के चलाने में वाष्पजनित्र द्वारा उत्पन्न शक्ति की लगभग ०.५ % शक्ति ही खर्च होती है। यह पंप पखुड़ी चक्रयुक्त अपकेंद्रिक ही होता है और इसकी बनावट इतनी मजबूत होती है कि वह जनित्र की पूरी दाब सह सकता है। अत जलपरिभ्रमण के लिये एक ही पंप काफी होता है, लेकिन अधिक सावधानी बरतने के लिये दो पंप लगा दिए जाते हैं। प्रथम पंप तो बिजली से चलाया जाता है और दूसरा वाष्प टरबाइन द्वारा। जब प्रथम पंप खराब हो जाता है तब नलों मे जो दाबभिन्नता उत्पन्न होती है वह गेज से मालूम हो जाती है। इस समय इन नलों से सबधित भिन्नक दाब रिले (differential pressure relay) स्वयं चैतन्य होकर, टरबाइन के वाष्प वाल्व को खोल देता है, जिससे दूसरा पप भी स्वयं चल पड़ता है।

रेल इंजनो के वाष्पजनित्र में पराउच्च दाब का प्रयोग पिछले ३० वर्षों से हो रहा है। इनमे श्मिट (Schmidt) प्रकार का वाष्पित्र होता है, जिसमे पर्किस के आवृत्त चक्र के अनुसार वाष्प बनाया जाता है। कुछ वाष्पित्र लोफलर श्वार्टज़कॉफ़ (Loffler-schwartzkopff) के सिद्धातानुसार काम करते हैं।

बॉयलर संबंधी अन्य बातें

भरणजल (Feed Water) — वाष्पोत्पादन के लिये प्रयुक्त होनेवाला जल मृदु और शुद्ध होना चाहिए, अन्यथा बॉयलर की कुशलता और जीवन कम हो जाता है। भरणजल का ताप २०° सें०, या ४०° सें०, या इसके ऊपर भी रह सकता है।

छोटे बॉयलर से अधिक वाष्प प्राप्त करने के लिये जल का अतितापन (superheating) किया जा सकता है। अतितापन के और भी लाभ हैं।

ईंधन — बॉयलर मे कोई भी ईंधन ठोस, द्रव और गैसीय, जो सुविधा से प्राप्त हो, उपयुक्त हो सकता है, यद्यपि इनके ऊष्मीय मान विभिन्न होते हैं। साधारणतया कोयला, पेट्रोलियम, लकड़ी तथा गैसें प्रयुक्त होती है (देखें ईंधन)।

बॉयलरों की भट्ठियाँ — भिन्न भिन्न ईंधनो के विचार से भट्ठियाँ भिन्न भिन्न किस्म, आकार और विस्तार की होती हैं। भट्ठियो में ईंधन के प्रवेश के पूर्व ईंधन के तप्त करने का भी प्रबध रहता है। इससे भट्ठियों की कुशलता बढ़ जाती है। छोटी छोटी भट्ठियों में ईंधन हाथ से डाला जाता है, पर बड़ी बड़ी भट्ठियों मे ईंधन डालने की यान्त्रिक युक्तियाँ रहती हैं।

सं० ग्रं० — लॉफलर : एज ऑव हाई प्रेशर स्टीम।

[ओ० ना० श०]

बॉयल, रॉबर्ट (Robert Boyle १६२७-१६९१ ई०) आधुनिक रसायनशास्त्र का प्रवर्तक, अपने युग के महान् वैज्ञानिकों में से एक, लंदन की प्रसिद्ध रॉयल सोसायटी का संस्थापक तथा कॉर्क के अर्ल की १४वीं संतान था। बॉयल का जन्म आयरलैंड के मुंस्टर प्रदेश के लिसमोर कासिल में हुआ था। घर पर इन्होंने लैटिन और फ्रेंच भाषाएँ सीखीं और ईटन में तीन वर्ष अध्ययन किया। १६३८ ई० में इन्होंने फ्रांस की यात्रा की और लगभग एक वर्ष जेनेवा में भी अध्ययन किया। फ्लोरेंस में इन्होंने गैलिलियो के ग्रंथों का अध्ययन किया। १६४४ ई० में जब ये इंग्लैंड पहुँचे, तो इनकी मित्रता कई वैज्ञानिकों से हो गई। ये लोग एक छोटी सी गोष्ठी के रूप में, और बाद को ऑक्सफोर्ड मे, विचार विनिमय किया करते थे। यह गोष्ठी ही आज की जगत्-प्रसिद्ध रॉयल सोसायटी है। १६४६ ई० से बॉयल का सारा समय वैज्ञानिक प्रयोगों में बीतने लगा। १६५४ ई० के बाद ये ऑक्सफोर्ड में रहे और यहाँ इनका परिचय अनेक विचारकों एवं विद्वानों से हुआ। १४ वर्ष ऑक्सफोर्ड में रहकर, इन्होंने वायु पंपों पर विविध प्रयोग किए और वायु के गुणों का अच्छा अध्ययन किया। वायु में ध्वनि की गति पर भी काम किया। बॉयल के लेखों मे इन प्रयोगों का विस्तृत वर्णन है। धर्मसाहित्य में भी इनकी रुचि थी और इस संबंध में भी इन्होंने लेख लिखे। इन्होंने अपने खर्च से कई भाषाओं मे बाइबिल का अनुवाद कराया और ईसाई मत के प्रसार के लिये बहुत सा धन भी दिया।

रॉबर्ट बॉयल की सर्वप्रथम प्रकाशित वैज्ञानिक पुस्तक "न्यू एक्सपेरिमेंट्स, फिज़िको मिकैनिकल, टचिंग द स्प्रिंग ऑव एयर ऐंड इट्स एफेक्ट्स", वायु के संकोच और प्रसार के सबंध में है। १६६३ ई० में रॉयल सोसायटी की विधिपूर्वक स्थापना हुई। बॉयल इस समय इस संस्था के सदस्य मात्र थे। बॉयल ने इस संस्था से प्रकाशित शोधपत्रिका "फिलोसॉफिकल ट्रैंजैक्शन्स" में अनेक लेख लिखे और १६८० ई० में ये इस संस्था के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। पर शपथ-संबंधी कुछ मतभेद के कारण इन्होंने यह पद ग्रहण करना अस्वीकार किया। कुछ दिनों बॉयल की रुचि कीमियागिरी में भी रही और अधम धातुओं को उत्तम धातुओं मे परिवर्त्तित करने के संबंध में भी इन्होंने कुछ प्रयोग किए। चतुर्थ हेनरी ने कीमियागिरी के विरुद्ध कुछ कानून बना रखे थे। बॉयल के यत्न से ये कानून १६८९ ई० में उठा लिए गए।

बॉयल ने तत्वों की प्रथम वैज्ञानिक परिभाषा दी और बताया कि अरस्तू के बताए गए तत्वों, अथवा कीमियाईगरों के तत्वों (पारा, गंधक और लवण) मे से कोई भी वस्तु तत्व नहीं है, क्योंकि जिन पिंडों में (जैसे धातुओं में) इनका होना बताया जाता है उनमें से ये निकाले नहीं जा सकते। तत्वों के संबंध में १६६१ ई० में बॉयल ने एक महत्वपूर्ण पुस्तिका लिखी "दी स्केप्टिकल केमिस्ट"। रसायन प्रयोगशाला में प्रचलित कई विधियों का बॉयल ने आविष्कार किया, जैसे कम दाब पर आसवन। बॉयल के गैस संबंधी नियम, उसके दहन संबंधी प्रयोग, हवा में धातुओं के जलने पर प्रयोग, पदार्थों पर ऊष्मा का प्रभाव, अम्ल और क्षारों के लक्षण और उनके संबंध में प्रयोग, ये सब युगप्रवर्तक प्रयोग थे जिन्होंने आधुनिक रसायन को जन्म दिया। बॉयल ने द्रव्य के कणवाद का प्रचलन किया, जिसकी अभिव्यक्ति डाल्टन के परमाणुवाद में हुई। उनके अन्य कार्य मिश्रधातु, फॉस्फोरस, मेथिल ऐलकोहल

(वुड स्पिरिट), फॉस्फोरिक अम्ल, चाँदी के लवणों पर प्रकाश का प्रभाव आदि विषयक हैं ।

बॉयल जीवन भर अविवाहित रहे । बेकन के तत्वदर्शन में उन्हें बड़ी आस्था थी । अमर वैज्ञानिकों में उनकी आज तक गणना होती है । १६६० ई० के बाद से उनका स्वास्थ्य गिरने लगा, किंतु रसायन संबंधी कार्य इस समय भी बंद न हुआ । १६९१ ई० मे इनका देहांत हो गया । [सत्य० प्र०]

बारकपुर स्थिति : २२° ४६' उ० अ० तथा ८८° २१' पू० दे० । यह भारत में पश्चिमी बंगाल के २४ परगना जिले में हुगली नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित नगर है । इसकी जनसंख्या ६३,७७८ (१९६१) है । यह उत्तरी एवं दक्षिणी दो भागो में बँटा है । सेना की टुकड़ियो के निवास के कारण इसका नाम बारकपुर पड़ा । यहाँ के आदि निवासी इसे चानक (Chanak) कहते हैं । प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का, जिसे अंग्रेज इंडियन म्यूटिनी कहते हैं, सूत्रपात इसी स्थान से हुआ था, जब मंगल पांडेय नामक सैनिक ने गाय और सूअर की चर्बी लगे कारतूसों के प्रयोग के विरोध मे अंग्रेज अफसरो पर २९ मार्च, १८५७ ई० को गोली चलाई । यहाँ इस समय भी एक राइफल फैक्ट्री है ।

बारथलम्यू जिगेनबल्ग का जन्म १७ जून, १६८३ ई० को पुलसनित्ज, इग्लैंड में हुआ था । उच्च शिक्षा के लिये वे हेली विश्वविद्यालय भेजे गए ।

बारथलम्यू और उनके साथी हेनरी प्लुत्शो को धर्मप्रचार के लिये भारत जाने की आज्ञा दी गई । कई मास की कठिन यात्रा के बाद १७०५ के अंत मे वे ट्रांकोबार पहुँचे । उन्होंने वहाँ के गवर्नर से भेंट करने की इजाजत माँगी । जिगेनबल्ग को किसी प्रकार टिकने की आज्ञा मिल गई परंतु प्लुत्शो को इजाजत नही मिली । उन्हे दूसरी जगह जाना पड़ा । यह दोनो डेनिश हेली मिशन के मिश्नरी थे जिन्होंने धर्मप्रचार का कार्य भारत मे आरंभ किया ।

अब जिगेनबल्ग के लिये भारतीय भाषा सीखना आवश्यक था । उन्होंने एक प्रायमरी शाला के शिक्षक से दोस्ती की जिससे बालको की पहली कक्षा उनके कमरे मे बैठने लगी । जिगेनबल्ग भी विद्यार्थियो के साथ बैठ जाते और जब बालक रेत पर अँगुली से अक्षर लिखते वे भी उनकी नकल करते और उसी प्रकार का रूप बनाते थे । इस प्रकार कुछ समय मे उन्होंने वर्णमाला के सब अक्षर सीख लिए । इसके बाद उन्होंने एक ब्राह्मण से मित्रता की जो थोड़ी बहुत अंग्रेजी भी जानते थे । उन ब्राह्मण महाशय की सहायता से उन्होने आठ माह में तमिल भाषा का यथोचित ज्ञान प्राप्त कर लिया ।

उन दिनों गुलामी की प्रथा वर्तमान थी । कुछ यूरोपीय लोग भी गुलाम रखते थे । जिगेनबल्ग ने उन्हे प्रति दिन दो घंटे सिखाने का काम शुरू किया । एक साल के अंदर ही पाँच व्यक्तियों ने विश्वास किया और बपतिस्मा पाया ।

जिगेनबल्ग ने अपने ही पैसे से एक गिर्जाघर बनवाया और उसके अर्पण के समय तमिल और पोर्तुगीज भाषा में उपदेश दिए । अब वे दौरा कर व्यक्तिगत प्रचार करने लगे ।

दो वर्ष में ही वे तमिल भाषा उतनी सरलता और स्वाभाविकता से बोल सकते थे जितनी निज जर्मन भाषा । उन्होंने तमिल भाषा का व्याकरण तैयार किया और गद्य तथा पद्य में दो अलग अलग किताबें लिखीं । उन्होंने कई किताबों का तमिल पद्य में अनुवाद भी किया । सन् १७११ मे उन्होने नए नियम (न्यू टेस्टामेंट) का गद्य पद्य मे अलग अलग अनुवाद किया । भारतीय भाषा मे बाइबिल का यह सर्वप्रथम अनुवाद था । उन्होंने कई अन्य पुस्तकें भी लिखीं ।

१७१५ ई० में शारीरिक अस्वस्थता के कारण वे स्वदेश लौट गए । चार वर्ष बाद वे पुन भारत आए और अपने क्षेत्र मे कार्य करने लगे परंतु उनका स्वास्थ्य पुनः खराब हो गया और ६ मई, १७४१ ई० को भारत मे ही उनका प्राणांत हो गया । [मि० च०]

बारबेडोज स्थिति १३° ०' उ० अ० तथा ५९° ३०' प० दे० । यह पश्चिमी द्वीपसमूह (वेस्ट इंडीज) का पूर्वी द्वीप है जो ३० नवंबर १९६६ ई० को स्वतंत्र घोषित कर दिया गया है । यह त्रिकोणाकार द्वीप २१ मील लंबा तथा १४½ मील चौड़ा है । इसका क्षेत्रफल १६६ वर्ग मील है । कार्लाइल की खाड़ी पर स्थित ब्रिजटाउन नगर यहाँ की राजधानी है । यह द्वीप प्रवालभित्तियों से घिरा है । यहाँ की सबसे ऊँची चोटी हिलेबी १,१०४ फुट ऊँची है । वार्षिक वर्षा ६१ इंच होती है तथा ताप ३०° सें० एवं जलवायु उत्तम है । कृषि मे गन्ना और कपास प्रमुख उपजें हैं । यहाँ जटाधारी बरगद के पेड़ अधिक होने से इसे जटाधारी द्वीप (बारबेडोज) कहते हैं । इसकी जनसख्या २,४१,७०६ (सन् १९६१) है । चारो ओर अच्छे यातायात के साधनों से यह अन्य भागों द्वारा जुड़ा है । [श्री कृ० चं० ख०]

बारमूला १ जिला, यह भारत के जम्मू कश्मीर का एक जिला है । इसकी जनसंख्या ६,०४,६५९ (१९६१) है । इसके उत्तर मे मुजफ्फराबाद, वजारत, गिलगत, पूर्व मे लद्दाख, दक्षिण मे श्रीनगर तथा पश्चिम मे मुजफ्फराबाद एव पुंछ जिले स्थित है ।

२. नगर, स्थिति : ३४° १३' उ० अ० तथा ७४° २३' पू० दे० । यह जम्मू कश्मीर राज्य मे एक प्रसिद्ध नगर है । नगर की जनसंख्या १९,८५४ (१९६१) है । कश्मीर में यह एक नदी के किनारे स्थित होने के कारण व्यापार मे थोड़ी उन्नति कर गया है । यहाँ से श्रीनगर को एक सडक जाती है । नगर के पूर्वी सिरे पर उत्तम पुल बना है । अधिकांश निवासी दूकानदार तथा व्यापारी हैं । यहाँ भूचाल अधिक आया करते हैं । जेहलम नदी के दाहिने किनारे पर बसे पुराने नगर बारहमूला के नाम पर ही इसका नाम 'बारमूला' पड़ा हे ।

बाराबंकी १. जिला, स्थिति : २६° ५५' उ० अ० तथा ८१° २०' पू० दे० । भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के मध्य मे घाघरा नदी के दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित है । इसके पूर्व में फैजाबाद, दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम मे रायबरेली एवं लखनऊ, उत्तर मे गोंडा, बहराइच एवं उत्तर-पश्चिम मे सीतापुर जिले हैं । इसकी उत्तरी सीमा घाघरा नदी द्वारा निर्धारित है । यहाँ का कुल क्षेत्रफल १,७१४ वर्ग मील तथा जनसंख्या १४,१४,५४७ (१९६१) है । इसकी ढाल उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर है । जिले के ऊपरी भाग की मिट्टी रेतीली एव दक्षिणी

भाग की चिकनी एवं उपजाऊ है। सिंचाई का उत्तम प्रबंध है। यहाँ की वार्षिक वर्षा का औसत ४० इंच है। चौका के पश्चिम तथा घाघरा के दक्षिण में जलोढ मिट्टी होने से वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य समय मे भी अच्छी कृषि हो जाती है। जिले का मध्य भाग या कल्याणी नदी की घाटी कृषि के लिये सर्वोत्तम है। धान, चना, गेहूँ, दलहन, कोदो, ज्वार, बाजरा, जौ, मटर, मसूर, गन्ना, आदि का कृषि मे प्रमुख स्थान है। उद्योगों मे सूती कपड़ा सूती कंबल बनाना तथा कपड़े की छपाई का काम प्रसिद्ध है। शक्कर, पीतल के बरतन, धातु की अन्य वस्तुएँ जैसे ताले, सरौते तथा फर्नीचर का काम भी होता है। नवाबगंज, बहरामघाट, तथा बाराबकी प्रमुख नगर हैं।

२. नगर, स्थिति : २६° ५६' उ० अ० तथा ८१° १२' पू० दे०। यह जिले के मध्य मे, कुछ पूर्व की ओर, लखनऊ-फैजाबाद मार्ग पर स्थित है। जिले के शासन का मुख्य केंद्र है। हाथकरघा यहाँ का मुख्य उद्योग है। चीनी एवं कपास का व्यापार भी होता है। यहाँ की जनसंख्या ३४,३३४ (१९६१) है।

बारी १. प्रांत, स्थिति : ४१° ६' उ० अ० तथा १६° ५२' पू० दे०। यह इटली का एक प्रात है। इसमे ४७ कम्यून (विभाग) हैं तथा इसका क्षेत्रफल १,९८० वर्ग मील और जनसंख्या १०,००,००० (१९५१) है। ऑफाटो यहाँ की प्रमुख नदी है। वर्षा का औसत २० से ३२ इंच तक रहता है। जनसख्या सघन है। कृषि यहाँ का प्रमुख उद्योग है। इटली के बादाम उत्पादन में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। मर्जियन पहाड़ियों पर चरागाह एवं जंगल हैं तथा कुछ खाद्यान्न भी उगाए जाते हैं। जैतून, अंगूर तथा बादाम के पेड़ सर्वत्र मिलते है। जैतून का तेल निकालना, शराब बनाना तथा फलो की डिब्बाबंदी करना प्रमुख उद्योग है। बारी, बारलेटा, मॉलफेटा, बिशेल्ये, एड्रिया एव कोराटो प्रमुख नगर है।

२. नगर, स्थिति : ४१° ८' उ० अ० तथा १६° ५२' पू० दे०। बारी प्रांत मे, ब्रिडिजी नगर से ६९ मील उत्तर-पश्चिम स्थित अपूलिया क्षेत्र का प्रसिद्ध बंदरगाह है। यह बारी प्रात की राजधानी तथा व्यापारिक नगर है। इटली का अधिकाश सागरीय व्यापार इसी बदरगाह से होता है। नगर का उत्तरी भाग नया तथा दक्षिणी भाग पुराना है। यहाँ खाद्य पदार्थ बनाने एवं अन्य कई प्रकार के कारखाने हैं। नार्मन किला, गिरजाघर तथा विश्वविद्यालय दर्शनीय हैं। जनसख्या २,७१,००० (१९५१) है। [श्री ना० सिं०]

बारीन (Bahrein) स्थिति २६° ०' उ० अ० तथा ५०° ३५' पू० दे०। यह फारस की खाड़ी में, कॉतॉर के पश्चिमी तट की ओर स्थित द्वीपों का समूह तथा ब्रिटेन की सुरक्षा के अतर्गत एक स्वतंत्र राष्ट्र है। इन द्वीपो का कुल क्षेत्रफल २३१ वर्ग मील है। बारीन द्वीप, सबसे बड़ा, ३० मील लबा एवं १० मील चौडा है। इस द्वीप के उत्तर-पूर्व मे चार मील लंबा मुहर्रक द्वीप है जो मोटर मार्ग द्वारा बारीन द्वीप से जुडा है। अन्य द्वीपों मे कोई भी द्वीप चार मील से अधिक लंबा नही है। यहाँ की कुल जनसंख्या १,५१,००० (१९६१) है। मैनैमा (६२,०००) यहाँ की राजधानी है तथा इनके अतिरिक्त मुहर्रक (३२,२७९) और रीफा प्रमुख नगर हैं। अधिकांश लोग मुसलमान हैं। यहाँ ऊनी कपड़े बनाना, मोती निकालना, नावें तथा चटाइयाँ बनाना प्रमुख उद्योग हैं। जमीन अनुपजाऊ तथा जलवायु शुष्क होने से कृषि अधिक उन्नत नहीं हो पाई है। कुछ तरकारियाँ, छुहारा तथा नीबू आदि फल उगा लिए जाते है। यहाँ का सबसे बडा उद्योग पेट्रोलियम निकालना है। तेल उत्पादन के लिये यह विश्वप्रसिद्ध है। मध्य पूर्व एशिया का दूसरा सबसे बड़ा तेलशोधक कारखाना यहीं है। साउदी अरब से पाइपो द्वारा तेल शोधन के लिये यहाँ लाया जाता है। खजूर प्रमुख पेड़ तथा ऊँट प्रमुख पशु है। यह अंतर्राष्ट्रीय हवाई मार्ग का केंद्र है। सभी राष्ट्रों की कपनियो के जहाज यहाँ से होकर गुजरते है। [श्री ना० सिं०]

बारूद अर्थात् गन पाउडर को काला बारूद (black powder) भी कहते हैं। इसका आविष्कार कब हुआ, इसका ठीक ठीक पता नही लगता, पर ऐसा मालूम होता है कि ईसा के पूर्व काल मे चीनियो को बारूद की जानकारी थी। रौजर बेकन (सन् १२१४-१२९४) के लेखों मे बारूद का उल्लेख मिलता है, पर प्रतीत होता है कि बारूद के प्रणोदक गुणों का उनको पता नही था। बेकन के समय तक बारूद का एक आवश्यक अवयव शोरा शुद्ध रूप मे प्राप्य नही था। १३वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के शस्त्रों मे प्रक्षेप्य फेकने मे इसके प्रयोग का पता लगता है। बेकन ने जिस बारूद का उल्लेख किया है उसमें शोरा ४१.२ और कोयला तथा गधक प्रत्येक २९.४ प्रति शत मात्रा मे रहते थे। ऐसे बारूद की प्रबलता निकृष्ट कोटि की होती थी। पीछे बारूद के अवयवों मे शोरा, कोयला और गधक का अनुपात क्रमश: ७४.६४,१३.५१ और ११.८५ प्रति शत कर दिया गया।

बारूद मे इन तीनो अवयवों का चूर्ण रहता है। यह चूर्ण प्रारंभ मे हाथ से पीसकर बनाया जाता था, पर बाद मे दलनेवाली मशीन का प्रयोग शुरू हुआ। ये मशीनें घोड़ो या पानी से चलती थी। इनके स्थान पर बाद मे स्टैंपिंग मशीन का उपयोग शुरू हुआ, पर यह निरापद नही था। पहले जो चूर्ण बनते थे वे तीनो अवयवों के चूर्णों को मिलाकर बनते थे। ऐसे चूरे को तोपो मे भली भाँति न तो बहुत कसा जा सकता था और न ढीला ही छोड़ा जा सकता था। इस कठिनता को दूर करने के लिये १५वी शताब्दी में चूरे को दानेदार रूप मे प्राप्त करने का प्रयत्न हुआ। चूरे मे ऐलकोहल, या मूत्र, मिलाकर उसे दानेदार बनाया जाता था। मद्यसेवी का मूत्र इसके लिये सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। इससे बने दाने अधिक शक्तिशाली होते थे। दाने विभिन्न आकार के होते थे और चालकर उन्हें अलग अलग किया जाता था। बड़े दाने तोपो मे और छोटे दाने बंदूकों मे इस्तेमाल होते थे।

पीछे अवयवों को शुद्ध रूप मे प्राप्त कर उनसे बारूद बनाने मे और उन्हें दानेदार बनाने मे विशेष सुधार हुआ। अच्छा कोयला भी अब बनने लगा था। उसे भूरा या कोको कोयला कहते थे और यह राई (rye) नामक अनाज के पुआल से बनाया जाता था। पर एतदर्थ पुआल को पूरा पूरा तपाते नही थे। सामान्य बारूद मे अवयवो का अनुपात निम्नलिखित रखते थे। शोरा ७५ प्रति शत, कोयला १५ प्रति शत और गंधक १० प्रति शत। नए मिश्रण मे इनकी आपेक्षिक मात्रा क्रमश: ८०, १६, ३ रहती थी तथा एक भाग जल का भी रहता था। ऐसा बारूद बहुत सफल सिद्ध हुआ।

स्टैंपिंग मशीन के उपयोग में, जैसा ऊपर कहा गया है, खतरे का भय था। इसके स्थान में चक्र या ह्वील मिल (Wheel Mill) का प्रयोग शुरू हुआ। आजकल भी चक्र या ह्वील मिल का उन्नत रूप ही प्रयुक्त होता है। इसमें एक क्षैतिज ईषा (shaft) रहती है, जो ऊर्ध्वाधर स्पिंडल (spindle) के घूमने से घूमती है। स्पिंडल में लोहे के दो भारी चक्र जुड़े रहते हैं, जिनका भार १० से १२ टन तक और व्यास छह फुट होता है। एक बार में लगभग ३०० पाउंड द्रव्य पीसा जाता है। पानी डालकर उसे गीला रखते हैं। पिसाई चार से लेकर पाँच घंटे में संपन्न होती है। फिर वह दबाया जाता है। प्रति वर्ग इंच पर ३,००० से ४,००० पाउंड दबाव रहता है। ऐसे उत्पाद का घनत्व १·७४ से १·८० तक होता है। इसे फिर तोड़कर विभिन्न विस्तार के दाने प्राप्त करते हैं। इस विधि में समय कुछ अधिक लगता था। अतः अब इसमें कुछ और सुधार किया गया है। दो लोहे के कक्ष, ड्रम के आकार के रहते हैं। एक में शोरा गंधक और दूसरे में कोयला गंधक काँसे की गेंदों के द्वारा पीसा जाता है। चार घंटे मे विभिन्न अवयव पूर्ण रूप से चूर्ण हो जाते हैं। दोनों कक्षों से चूर्ण को निकालकर, तीसरे ताँबे के ड्रम में रखकर, काठ की गेंदों से दो घंटे तक पीसते हैं, जिससे एकसम चूर्ण बन जाता है। इस विधि को बेलननाल (rolling barrel) विधि कहते हैं। [स० व०]

बॉर्डो (Bordeaux) स्थिति : ४४° ५०′ उ० अ० तथा ०° ३६″ प० दे०। दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस का चौथा सबसे बड़ा, प्रसिद्ध नगर, बंदरगाह एव जिरोंड (Gironde) प्रशासकीय विभाग की राजधानी है जो गरॉन नदी के बाएँ किनारे पर, पैरिस से ३५६ मील दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम तथा टूलूज़ से १५६ मील उत्तर-पश्चिम ऐटलैंटिक महासागर से ६० मील दूर, स्थित है। नगर के समीप अनाज, तंबाकू, तरकारी, फल तथा अंगूर की उपज होती है। अंगूर से उच्च कोटि की बॉर्डो नामक शराब के लिये यह नगर प्रसिद्ध है। बॉर्डो में जलयान, युद्धपोत, रेलगाड़ी के डिब्बे, इंजीनियरी यंत्र, प्रशीतन यंत्र, विद्युत् एवं सूक्ष्म यंत्र, जूते, शराब निर्माण से संबंधित वस्तुओं, जैसे बोतल, कार्क एवं डिब्बे तथा बहुत से रसायनको का निर्माण होता है। इनके अतिरिक्त लोहा और ताँबा की ढलाई, तंबाकू रूपांतरण एवं फल और सब्जियों को डिब्बों मे बंद करने का काम होता है। तेलशोधन कारखाना भी यहाँ है।

यहाँ विश्वविद्यालय, व्यापारिक एवं तकनीकी विद्यालय, जलविज्ञान संस्थान, वेधशाला, वायुसेना कार्यालय तथा ब्रिटेन एवं संयुक्त राज्य, अमरीका के वाणिज्य दूतावास हैं। बॉर्डो में बहुत से संग्रहालय, प्रमुख गिरिजाघर, बड़े पादरी का आवास, वानस्पतिक उपवन, न्यायालय, चैंबर ऑव कामर्स, प्रसारण केंद्र एवं कई चिकित्सालय हैं। यह रेल, सड़क, वायुमार्ग, जलमार्ग आदि का केंद्र है। यहाँ का बंदरगाह आठ मील लंबा और औसतन ५५० गज चौड़ा है। व्यापार मे भी इसका प्रमुख स्थान है। नगर की जनसंख्या २,५४,१२२ (१९६२) है। [रा० प्र० सिं०]

बार्नाबास, संत साइप्रेस का एक ईसाई यहूदी, जो चर्च के प्रारंभिक काल में येरूसलेम में बड़ा क्रियाशील था (दे० ऐक्ट्स ऑव दि एपोसल्स, अध्याय ४)। संत पाल के धर्मपरिवर्तन के बाद संत बार्नाबास ने येरूसलेम के ईसाइयों से उनका परिचय करा दिया। बाद में उन्होंने संत पाल को अंतिओक में बुलाया और वह संत पाल की प्रथम मिशनरी यात्रा में उनका साथी रहा।

सं० ग्रं० — एनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी ऑव दि बाइबिल, न्यूयार्क, १९६३। [आ० वे०]

बार्नेट, एल० डी० (१८७२–१९६०) प्राचीन भारत के इतिहासज्ञ तथा अभिलेख विशेषज्ञ। बार्नेट का जन्म २१ अक्टूबर, १८७२ को लिवरपूल मे हुआ था। शिक्षा मैनचेस्टर, लिवरपूल तथा कैंब्रिज के ट्रिनिटी कालेज मे हुई। वह प्रथम श्रेणी मे ट्राइपस में उत्तीर्ण हुए तथा कुलपति स्वर्णपदक प्राप्त किया। इसके बाद दो वर्ष तक उन्होंने हले तथा बर्लिन मे शिक्षा प्राप्त की। १८९९ मे इंग्लैंड लौटने पर कैंब्रिज से एम. ए. तथा एक वर्ष बाद 'डॉक्टर ऑव लेटर्स' की डिग्री प्राप्त की। १८९९ से लगभग ६० वर्ष तक उनका संस्कृत भाषा, तथा प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति ही अध्ययन अध्यापन का क्षेत्र रहा। ब्रिटिश संग्रहालय मे वह सर्वप्रथम सयुक्त रक्षक के पद पर नियुक्त हुए। यहाँ उनका कार्य प्राचीन भारतीय प्रकाशित तथा अप्रकाशित ग्रंथो की सूची बनाना था। इसके पश्चात् १९०८ मे वह वहीं पर रक्षक के पद पर नियुक्त हुए। १९१७ से वह स्कूल ऑव ओरएंटयल स्टडीज मे अल्प समय के लिये संस्कृत, भारतीय इतिहास तथा प्राचीन अभिलेख के अध्यापक नियुक्त हुए, और ७६ वर्ष की उम्र तक इसी पद पर काम करते रहे। ब्रिटिश संग्रहालय से इनका मृत्युकाल तक सपर्क बना रहा। १९५९ मे वहाँ इनकी हीरक जयती मनाई गई जो उनकी संग्रहालय की ६० वर्ष की सेवा की प्रतीक थी। २८ जनवरी, १९६० को उनका लंडन मे देहात हो गया। इनके प्रकाशित ग्रथो मे संग्रहालय की संस्कृत, पालि, तथा प्राकृत की ग्रंथसूची (१९०८), 'एंटीक्विटीज ऑव इंडिया' (१९०३) तथा 'एपीग्राफ़िया इंडिका' मे लगभग १०० लेख हैं। [बै० पु०]

बार्बिट्यूरिक अम्ल और बार्बिट्यूरेट बार्बिटयूरिक अम्ल वस्तुत मैलोनिक अम्ल का यूरीड है। साधारणतया यह मैलोनिक क्लोराइड या मैलोनिक एस्टर, के यूरिया के साथ सघनन से प्राप्त होता है :

```
नाहा₂      काओओका₂हा₅                      नाहा — काओ
 |                                          |       |
काओ  +  काहा₂        — का₂हा₅ओहा—→          काओ     काहा₂
 |        |                                 |       |
नाहा₂    काओओका₂हा₅                        नाहा — काओ
यूरिया   मैलोनिक एस्टर                      बार्बिटयूरिक अम्ल
```

$$\begin{array}{l} NH_2 \\ | \\ CO \\ | \\ NH_2 \end{array} + \begin{array}{l} COOC_2H_5 \\ | \\ CH_2 \\ | \\ COOC_2H_5 \end{array} \xrightarrow{-\,C_2H_5OH} \begin{array}{l} NH — CO \\ |\qquad\ | \\ CO\quad\ CH_2 \\ |\qquad\ | \\ NH — CO \end{array}$$
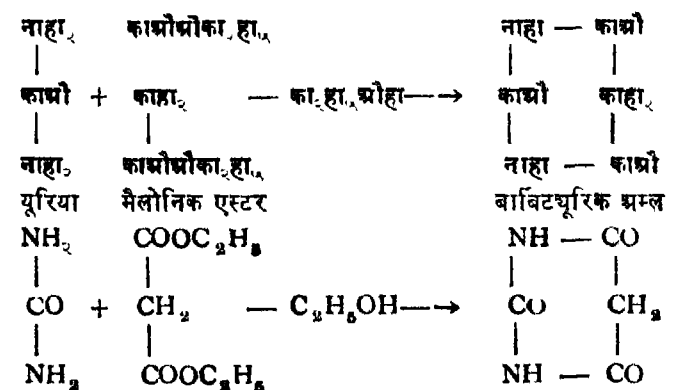
बार्बिटयूरिक अम्ल के सुंदर क्रिस्टल बनते हैं तथा यह जल में विलेय होता है। इसका जलीय विलयन प्रबल अम्लीय होता है। इस यौगिक मे मैलोनिक अम्ल के मेथिलीन समूह का हाइड्रोजन बड़ी सरलता से विस्थापित होकर अनेक यौगिक बनाता है, जो सैद्धांतिक

और व्यावहारिक, दोनों दृष्टियों से महत्व के हैं। नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से यह नाइट्रोबार्बिट्यूरिक अम्ल (Uramil) हो जाता है। इससे स्यूडोयूरिक अम्ल प्राप्त होता है, जिसका उपयोग यूरिया के संश्लेषण में हुआ है। इसके ऐल्किल संजात बड़े प्रभावशाली शामक (sedative) या निद्रापक (hypnotic) हैं, जिनका व्यवहार आज व्यापक रूप से ओषधियों में होता है। ऐसी ओषधियाँ विरोनल, प्रोपोनल, डायल, लुमिनल इत्यादि क्रमश: डाइएथिल बार्बिटयूरिक अम्ल, डाइप्रोपिल बार्बिटयूरिक अम्ल, डाइएलिल बार्बिटयूरिक अम्ल, फेनिल-एथिल बार्बिटयूरिक अम्ल इत्यादि हैं :

```
नाहा — काओ                 नाहा — काओ
 |      |                   |      |
काओ    का(का२हा५)२         काओ    का(का३हा७)२
 |      |                   |      |
नाहा — काओ                 नाहा — काओ
   विरोनल                     प्रोपोनल
NH — CO                    NH — CO
 |    |                     |    |
CO   C(C2 H5)2             CO   C(C3 H7)2
 |    |                     |    |
NH — CO                    NH — CO

ना हा — का ओ                      ना हा — का ओ
 |       |                         |       |
काओ    का (काहा२ = काहा काहा२)२    काओ    का : का६हा५
 |       |                         |      | का२ हा५
नाहा — काओ                        नाहा — काओ
  डायल                               लुमिनल
N H — C O                         N H — C O
 |     |                           |     |
CO    C(CH2 = CH. CH2)2           CO    C.C6H5
 |     |                           |    | C2H5
N H — का ओ                        N H — CO.
```

[स० व०]
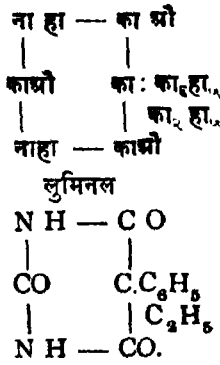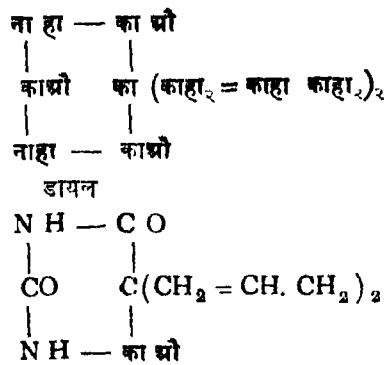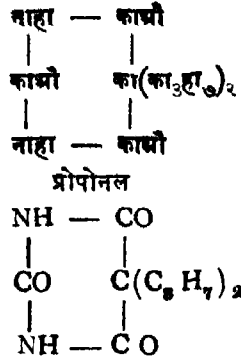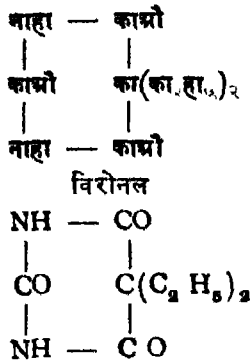
बार्लो, सर जार्ज आपकी नियुक्ति सन् १७७८ ई० में हुई तथा सन् १७७९ मे आप कलकत्ते आए। आते ही आपको गया के कलेक्टर श्री ला का सहायक होकर कार्य करना पड़ा। आपकी सहायता से गया शीघ्र ही बंगाल का समृद्ध भाग बन गया। सन् १७८७ में लार्ड कार्नवालिस ने आपको बनारस की व्यापारिक स्थिति की जाँच करने के लिये भेजा था। अगले साल आप राजस्व विभाग में उपसचिव बनाए गए जहाँ से आपने बंगाल के स्थायी प्रबंध को पूरा कराया। इससे आप सर जान शोर तथा लार्ड कार्नवालिस के अत्यंत निकट हो गए। गवर्नरजनरल बनने पर सर जान शोर ने आपको प्रधान सचिव बना दिया। लार्ड वेलेजली के समय में भी आप सन् १८०१ ईसवी तक इसी पद पर रहे। सन १८०१ मे आप सुप्रीम कौंसिल के सदस्य बने। इस पद पर रहकर आपने लार्ड वेलेजली की विदेशी नीति का जोरदार समर्थन किया। अक्टूबर, १८०५ में लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु पर आप गवर्नरजनरल बने परतु आपने लार्ड वेलेजली की विस्तारवादी नीति का अनुसरण नही किया। लार्ड मेंटकाफ के शब्दों में आप बड़े संकीर्ण और संकुचित विचारों के व्यक्ति थे। सन् १८०७ में आपको मद्रास का गवर्नर बनाया गया। आपने यहाँ की प्रसिद्ध रैयतवारी प्रथा को हटाकर एक प्रकार की जमींदारी प्रथा चलाई। परंतु आपने अपने दुर्व्यवहार के कारण सेना तथा अन्य अफसरों को कुपित कर दिया जिसके फलस्वरूप सेना में बहुत बड़ा विद्रोह हो गया जो बड़ी कठिनाई से शांत किया जा सका। सन् १८१२ ईस्वी में आपको वापस बुला लिया गया और सन १८४७ में आपकी मृत्यु हुई। आप बड़े योग्य आफिसर थे पर संकट की घड़ियों पर काबू पाना आपके सामर्थ्य के बाहर था। [जि० ना० वा०]

बार्सेलोना (Barcelona) १. प्रांत, यह स्पेन का एक प्रांत है। इसके पूर्व में हैरोना प्रांत, पश्चिम मे लेरिदा एवं टेरागोना, उत्तर की ओर सिएरा डेल केड़ी स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल २,९४२ वर्ग मील तथा जनसंख्या २८,७७,९६६ (१९६१) है। लोब्रीगेट (Llobregat) यहाँ की प्रमुख नदी है। श्रेणियों के मध्य तथा नदियों की घाटियों में खाद्यान्न, अंगूर, फल एवं सब्जियाँ आदि उगाई जाती हैं। सागरतटीय मैदानों में विशेष रूप से खट्टे फल उगाए जाते हैं। स्पेन का यह प्रमुख औद्योगिक प्रांत है। यह प्रांत अच्छी सड़कों तथा रेल मार्गों से पूर्ण है। बार्सेलोना के अतिरिक्त अन्य कई उत्तम बंदरगाह भी हैं।

२. नगर, स्थिति : ४१° ३०' उ० अ० तथा २° १०' पू० दे०। मैड्रिड से ३३० मील उत्तर-पूर्व, भूमध्यसागर के किनारे बार्सेलोना प्रांत मे स्थित स्पेन का द्वितीय सबसे बड़ा नगर एवं बार्सेलोना प्रांत की राजधानी, बदरगाह तथा व्यापारिक एवं औद्योगिक केंद्र है। यहाँ की जलवायु भूमध्यसागरीय है। वसंत ऋतु में औसत वर्षा २२ इंच तक होती है। धातु संबंधी उद्योग, ऊनी एवं रेशमी कपड़े, रसायनक, कागज, छपाई, एवं मशीनों आदि से संबंधित उद्योग होते हैं। रेलों तथा सड़कों का जाल सा बिछा है। इसका नाम हामिल्कार बार्सा के नाम पर पड़ा। यहाँ १३वीं शती का गिरजाघर, महल, पुस्तकालय तथा विश्वविद्यालय दर्शनीय हैं। इस नगर की जनसंख्या १५,५७,८६३ (१९६१) है।

३. दक्षिणी अमरीका के वेनिजवीला देश में नेवेरी नदी के किनारे समुद्र से तीन मील की दूरी पर एक बंदरगाह है। इसके पड़ोस में कोयले एवं नमक की खानें हैं। कुछ व्यापार भी होता है।

[श्री कृ० चं० ख०]

बाल स्तनधारी प्राणियों के बाह्य चर्म का उद्वर्ध (outer growth) है। कीटों के शरीर पर जो तंतुमय उद्वर्ध होते हैं, उन्हें भी बाल कहते हैं। बाल कोमल से लेकर रुखड़ा, कड़ा (जैसे सूअर का) और नुकीला तक (जैसे साहिल का) होता है। बाल की बनावट पक्षियों के परों या सरीसृप के शल्कों से बिलकुल भिन्न होती है। स्तनधारियों में ह्वेल के शरीर पर सबसे कम बाल होता है। कुछ वयस्क ह्वेल के शरीर पर तो बाल बिल्कुल होता ही नहीं। मनुष्यों में सबसे घना बाल सिर पर होता है। बाल शरीर को सर्दी और गरमी से बचाता है। शरीर के अन्य भागों पर बड़े सूक्ष्म छोटे छोटे रोएँ होते है। पलकों, हथेली, तलवे तथा अँगुलियों और अँगूठों के नीचे के भाग पर बाल नहीं होते। प्रागैतिहासिक काल में मनुष्यों का शरीर झबरे बालों से ढँका रहता था। पर सभ्य मनुष्य के शरीर पर झबरे बाल नहीं होते। इसलिये वह वस्त्र धारण कर अपने शरीर की सर्दी और गरमी से रक्षा करता है। मनुष्य के कुछ भागों में, हारमोन

के स्राव बनने पर ही बाल उगते हैं, जैसे ओठों पर, काँखों में, लिंगोपरि भागों में इत्यादि।

मनुष्यों के लिये बालों के अनेक उपयोग हैं। घोड़ों और बैलो के बाल गद्दों मे भरे जाते हैं। कुछ बालों से वार्निश लेपने के बुरुश, दाँत साफ करने के बुरुश तथा चित्रकारी के बुरुश बनते हैं। छोटे छोटे बाल सीमेंट मे मिलाकर गृहनिर्माण में प्रयुक्त होते हैं। लंबे लंबे बालों से कपड़े बुने जाते हैं। ऐसे कपड़े कोट बनाने में लाइनिंग के रूप में काम आते हैं। भेड़ों और कुछ बकरियों से ऊन प्राप्त होते हैं। इनका उपयोग कंबलों और ऊनी वस्त्रों के निर्माण मे होता है। ऊँटो और कुछ किस्म के खरगोशों के बाल से भी कपडे बुने जाते है। कुछ पशुओं के बाल बड़े कोमल होते हैं और समूर (फर) के रूप मे व्यवहृत होते है।

बाल की संरचना — चमड़े के बाहर बाल का जो अंश रहता है, उसे काड (shaft) कहते हैं। काड के तीन भाग होते हैं सबसे बाहर रहनेवाले भाग को क्यूटिकल (cuticle) कहते है। क्यूटिकल के नीचे एक कडा प्रस्तर रहता है, जिसे वल्कुट (cortex) कहते हैं तथा वल्कुट के नीचे के मध्य के भाग को मध्यांश (medulla) कहते है। चमड़े के अंदर रहनेवाले बाल के भाग को मूल (root) कहते हैं। बाल के बढने से मूल धीरे धीरे काड मे बदलता जाता है। भिन्न भिन्न जतुओ मे बाल की वृद्धि भिन्न भिन्न दर से होती है। साधारणत.
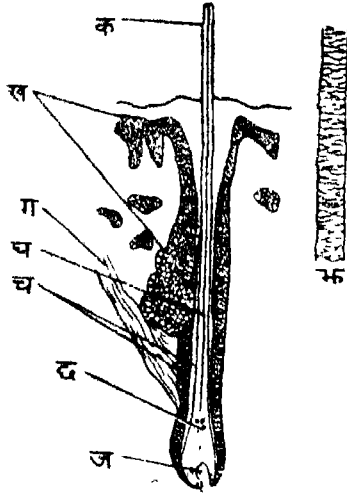
रोमपुटक की अनुदैर्घ्य काट

क. रोमकाड, ख. बाह्य त्वचा का मैलपीगी स्तर, ग. ऊर्ध्व पीली(pili) घ. मध्याश, च. बाह्य तथा आंतरिक मूलाच्छद, छ. मूल अथवा रोमघुंडी तथा ज. पैपिला (papilla)।

कहा जा सकता है कि एक मास में बाल आधा इंच, या एक वर्ष मे पाँच से छह इच बढ़ता है। मूल एक गड्ढे में होता है, जिसे पुटक (follicle) कहते हैं। पुटक से ही बाल निकलता है। एक पुटक से एक बाल, या एक से अधिक बाल, निकल सकते हैं। पुटक नासपाती के आकार की पैपिला में बना होता है। यह पैपिला चर्म का होता है। पैपिला और पुटक के संगम पर ही बाल बनता है। पैपिला रुधिरवाहिनी से संबद्ध होता है। इसी से मूल को वे सब वस्तुएँ प्राप्त होती हैं जिनसे बाल का निर्माण और उसकी वृद्धि होती है। जब तक पैपिला और पुटक नष्ट नहीं होते बाल बढ़ता रहता है। खोपड़ी के बाल दो से छह वर्षों तक जीवित रहते हैं। इसके बाद वे झड़ जाते हैं और उनके स्थान पर नए बाल जमते हैं। यह क्रम वयस्क काल तक चलता रहता है। बाल क्यो झड़ जाता है और उसके स्थान पर नया बाल क्यों नही उगता, इसका कारण अभी तक ठीक समझ में नहीं आया है। कुछ लोग तो खोपड़ी के रोगों के कारण गंजे हो जाते हैं।

किरणन द्वारा भी कुछ लोग बहुधा अस्थायी रूप से गंजे हो जाते हैं। अंत.स्रावी ग्रंथियो के स्राव की कमी, वंशागत कारणों तथा जीर्णन से भी बाल झड जाते है। अपौष्टिक आहार के अभाव मे बाल शुष्क और द्युतिहीन (dull) होकर कुछ झड़ सकते है, पर सामान्य गंजेपन का यह कारण नही है।

बाल का रंग — वर्णको के कारण बाल काला, भूरा, या लाल हो सकता है। यह वर्णक वल्कुट की कोशिकाओ मे निक्षिप्त होता है। बाल क्यो सफेद हो जाता है, इसका कारण ज्ञात नही है। यह संभव है कि उम्र के बढने, रुग्णता, चिंता, शोक, आघात, और कुछ विटामिनों की कमी से ऐसा होता हो। डाक्टरों का मत है बाल का सफेद होना वंशागत होता है।

बाल प्रधानत. निम्नलिखित चार प्रकार के होते हैं :

१. आदिवासियों (ऑस्ट्रेलिया और भारत के आदिवासी अपवाद हैं) और हबशियो के बाल छोटे छोटे, कुंचित और घुँघराले होते है। इन्हे ऊनी बालवाले भी कहते हैं। इन बालो के अनुप्रस्थ परिच्छेद दीर्घवृत्तीय, या वृक्क के आकार के होते हैं। इन बालो का रंग सदा ही काला स्याह होता है। ऐसे बाल दो प्रकार के होते है। मेलानीशियाई और अधिकाश हबशियो के बाल अपेक्षया लंबे और उनके घूँघर बड़े होते हैं। कुछ आदिवासियो और हबशियों के बाल छोटे और उनके घूँघर छोटे होते हैं।

२. पीत जातियों (चीनियों, मंगोलों) और अमरीकी इंडियनों के बाल सीधे, लंबे, अकुंचित और रुखडे होते हैं। इनके बालों के अनुप्रस्थ परिच्छेद गोलाकार होते है और उनके मध्यांश या मज्जा का विभेद सरलता से किया जा सकता है। इन बालो का रंग भी बिना अपवाद के काला होता है।

३ यूरोपवालों के बाल लहरदार, घुँघराले, चिकने और रेशम से मुलायम होते हैं। बाल का अनुप्रस्थ परिच्छेद अंडाभ होता है। इनमे मध्यांश नलाकार होता है। इनका रंग काला, भूरा, लाल, अथवा सन के रेशे सा होता है। भारतीयों के बालों के रंग भी इसी के अंतर्गत आते हैं।

४. कुछ लोगों के बाल घुँघराले, हबशियों के बालों से मिलते जुलते होते हैं। इन्हें अंग्रेजी में फ्रिजी (frizzy) बालवाले कहते हैं। ऐसे बाल ऑस्ट्रेलियन, आदिवासी न्यूबियन और मुलाट्टो (mulatto) लोगों के होते हैं।

उत्तर यूरोपवालो के बालों के रंग हलके होते हैं और दक्षिण यूरोपवालों के गाढ़े। साधारणतया सीधा बाल अधिक लंबा होता है और ऊनवाला बाल सबसे कम लंबा होता है। लहरदार बालों

का स्थान मध्यम है। आॅस्ट्रेलियन और टैसमैनियनो के शरीर पर सबसे अधिक बाल होते हैं। पीत जातियों के शरीर पर सबसे कम बाल होते हैं। कुछ पीत जाति के लोगो को तो दाढ़ी कदाचित् ही होती है।

बालो की सुंदरता बहुत कुछ व्यक्ति के स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। शिरोवल्क (scalp) की स्वच्छता रुधिर परिसंचारण पर निर्भर करती है। यदि रुधिर परिसंचारण मे कोई बाधा पहुँचती है तो बालो को पोषण नही मिलता। इससे बाल कमजोर और आभाहीन हो जाते है। स्वस्थ रहन सहन, बाह्य कसरत, उपयुक्त आहार तथा मानसिक सुखशांति का बालों के सौदर्य और स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव पड़ता है। शिरोवल्क को प्रति दिन कम से कम एक बार थपथपाकर मालिश करना अच्छा है। सिर मे कघी करने, या बुरुश से झाड़ने से भी सिर की मालिश हो जाती है। इससे शिरोवल्क मे रुधिर परिसंचारण होने से बाल मुलायम और चमकदार हो जाते हैं।

बालो का, विशेषतः महिलाओं के बालों का, सजाना एक कला है। कुछ जातियाँ इस कला मे बडी निपुण हैं। सब देशों की महिलाएँ अपने अपने ढग से अपने बालो को सजाती है। [फू० स० व०]

बालकृष्ण भट्ट जन्म प्रयाग के अहियापुर मुहल्ले मे गौतम गोत्रीय मालवीय ब्राह्मण परिवार मे ३ जून, १८४४ ई० (आषाढ़ कृष्ण द्वितीया, सं० १९०१ वि०) को हुआ। पिता बेनीप्रसाद भट्ट व्यवसायी थे। माता पार्वतीदेवी पढी लिखी धर्मपरायणा महिला थीं। प्रारंभिक शिक्षा यमुना मिशन स्कूल, प्रयाग मे हुई। लालन पालन ननिहाल मे हुआ। वहीं रहकर भट्ट जी ने शिक्षा प्राप्त की। भट्ट जी की प्रखर बुद्धि और जिज्ञासु प्रवृत्ति देखकर विद्यालय के एक अध्यापक पादरी डेविड इनको बहुत चाहते और इनकी सहायता करते थे। पर आप तिलक लगाकर विद्यालय जाते थे इसलिये पादरी खीझते भी थे। स्कूली शिक्षा सन् १८६७-६८ में समाप्त कर घर मे ही स्वतंत्र रूप से हिंदी, अंग्रेजी, बँगला, फारसी आदि भाषाओं का अध्ययन किया। बाद में डेविड पादरी के अनुरोध से मिशन स्कूल मे सन् १८६९ से २५ रुपए मासिक पर अध्यापकी करने लगे। पर वहाँ धार्मिक विवाद के कारण नौकरी छोड दी।

यद्यपि विवाह सन् १८५६ मे ही हो गया था तथापि इनकी पत्नी (रमा देवी) नए घर मे सन् १८६४ मे आईं। २५ रु० मासिक पानेवाले भट्ट जी निखट्टू समझ लिए गए थे। मिशन स्कूल से त्यागपत्र के बाद आर्थिक कष्ट ने और भी आ घेरा। इसी बीच सितंबर १८७७ ई० से 'हिंदी प्रदीप' का संपादन संचालन भी आपने शुरू किया। आपने कायस्थ पाठशाला के संस्कृत प्रधानाध्यापक पद पर २० वर्ष तक अध्यापन के बाद सन् १९०८ में अपनी निर्भीक राष्ट्रीयता के कारण विद्यालय से त्यागपत्र दे दिया। फिर आपने कालाकाँकर से निकलनेवाले 'सम्राट्' साप्ताहिक पत्र का संपादन आरंभ किया। चार महीने बाद मतवैभिन्य के कारण आप छोड़कर चले आए। सन् १९१० में काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आमंत्रण पर आपने सभा से तैयार हो रहे हिंदी शब्दसागर के सहायक संपादक का कार्यभार स्वीकार किया। कुछ समय तक काशी मे कोश विभाग मे कार्य करने के बाद प्रधान संपादक बाबू श्यामसुंदर दास से कुछ अनबन हो जाने के कारण सन् १९१३ मे कोश विभाग से त्यागपत्र दे दिया। अप्रैल, १९१४ मे बीमार पड़े और २० जुलाई, १९१४ (श्रावण कृष्ण १३, सं० १९७१) को प्रयाग में उनकी मृत्यु हुई।

भट्ट जी मूलतः पत्रकार थे। 'हिंदी प्रदीप' इनका जीवनसर्वस्व था। सितंबर १८७७ में 'हिंदी प्रदीप' का प्रकाशन हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र मे क्रांतिकारी कदम था। भट्ट जी की कुशल संपादनकला, निर्भीक राष्ट्रीयता, प्रखर बौद्धिकता और सबसे बढ़कर उनकी हिंदी-सेवा तथा जनमतनिर्माण का आंदोलन 'हिंदी प्रदीप' का सारतत्व है। अनेक प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कठिनाइयो का सामना करते हुए 'हिंदी प्रदीप' ब्रिटिश सरकार की नीति, असामाजिक तत्वों, अज्ञानता, दरिद्रता और सामाजिक कुरीतियों के साथ ३३ वर्षों तक अनवरत लोहा लेता रहा। भट्ट जी ने अनेक शैलियों में अनेक प्रकार के रोचक ललित निबंध लिखे हैं। भट्ट जी के पाँच निबंधसंग्रह प्राप्त हैं — साहित्य सुमन, भट्ट निबंधावली भाग — १ और २ तथा भट्ट निबंध माला भाग — १ और २।

भट्ट जी के कुल आठ उपन्यास प्राप्त हैं — १. रहस्यकथा, २. गुप्त बैरी ३ उचित दक्षिणा, ४ नूतन ब्रह्मचारी, ५. सद्भाव का अभाव, ६. सौ अजान एक सुजान, ७. हमारी घड़ी, तथा ८. रसातल यात्रा। इनका एक अनूदित उपन्यास 'बृहत्कथा' भी है।

भट्ट जी ने कुल १९ नाटको और प्रहसनों का प्रणयन किया है — विषयानुसार उनकी नाट्य रचनाएँ निम्नांकित हैं — (क) **राजनीतिक** — (१) भारतवर्ष और कलि, (२) इंग्लैंडेश्वरी और भारत जननी, (३) दो दूरदेशी, (४) हिंदुस्तान और अफगानिस्तान और (५) एक रोगी और वैद्य। (ख) **सामाजिक** — (१) शिक्षादान, (२) नई रोशनी का विष, (३) पतित पंचम, (४) आचार विडंबन, (५) कट्टर सूम की नकल। (ग) **पौराणिक** — (१) बृहन्नला, (२) सीता वनवास, (३) दमयंती स्वयंवर, (४) मेघनादवध, (५) किरातार्जुनीय। (घ) **ऐतिहासिक** — चंद्रसेन, पद्मावती (अनूदित)।

भट्ट जी हिंदी गद्य साहित्य की बहुत समर्थ शैली के प्रतिष्ठापक थे। इन्होने विविध शैलियो मे निबंधों की रचना की है जिससे हिंदी की शैली का रूप विकसित हुआ। [म० भ०]

बालकल्याण के अंतर्गत बालोपकारी उन सभी कार्यों का समावेश होता है जो भ्रूणकाल से लेकर प्राक्शिक्षावय तक के बालकों के सर्वांगपूर्ण विकास तथा वृद्धि मे सहायक होते हैं और शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र मे उनके व्यक्तित्व के इष्टतम विकास के सभी संभव साधन उपलब्ध कराकर, उनके जीवन मे उत्साह, आनंद और आशा का संचार करते हैं। इसमे बालक के माता पिता, शिक्षक, चिकित्सक, मनोविज्ञानी, समाज-सुधारक, विचारक आदि, समाज के सभी वर्गों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है।

बालक देश की अमूल्य निधि हैं। उसकी प्रतिभा का उपयुक्त समय पर देशहित मे सदुपयोग करना तभी संभव है जब उचित

लालन पालन और भरण पोषण से नवजात शिशु को पूर्ण समर्थ बनाया जाय। निर्धन, अशिक्षित और साधनहीन माता पिता बालकल्याण का भार वहन नहीं कर सकते। इस कारण सभी बालको के व्यापक हित के लिये समाज तथा सरकार का निरंतर क्रियाशील रहना आवश्यक है।

अंतरराष्ट्रीय बालकल्याण संघ द्वारा जिनेवा मे की गई "बालकों के अधिकार" संबंधी घोषणा इस प्रकार है :

"सभी राष्ट्रों के पुरुष तथा स्त्रियाँ, यह जानते हुए कि मानव अपने सर्वोत्तम देश के लिये बालक का चिर ऋणी है, यह घोषित करते हैं और सब प्रकार से अपना दायित्व पूर्ण करने का कर्तव्य स्वीकार करते हैं कि :

१. जातीय, राष्ट्रीय तथा धार्मिक मान्यताओं से परे बालक का संरक्षण होना चाहिए।

२. परिवार के अस्तित्व के लिये बालक की देखरेख आवश्यक है।

३. भौतिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास के आवश्यक साधन बालक को प्राप्त होने चाहिए।

४. भूखे बालक के भोजन, रोगी की उपचर्या, शारीरिक तथा मानसिक विवशता युक्त (handicapped) की सहायता, दुस्समंजित (maladjusted) के पुन: शिक्षण तथा अनाथ और अनाश्रित के लिये आश्रय तथा भरण पोषण की व्यवस्था होनी चाहिए।

५. संकट काल में बालक को सर्वप्रथम सहायता मिलनी चाहिए।

६. समाजकल्याण तथा समाज-सुरक्षा-योजना के सभी लाभ बालक को उपलब्ध होने चाहिए। उसे ऐसी सुशिक्षा मिलनी चाहिए जिससे वह उपयुक्त समय पर जीविकोपार्जन के लिये समर्थ हो सके। उसे सभी प्रकार के शोषणों से सुरक्षित कर देना चाहिए।

७. बालक का लालन पालन इस धारणा से हो कि उसकी प्रतिभा जनता के सेवार्थ प्रयुक्त होगी।

भारत को भी बालकों के उपर्युक्त अधिकार पूर्णत. मान्य हैं और भारतीय संविधान में शिशुओ और किशोरो के शोषण तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण की व्यवस्था है। इन अधिकारो के लिये बालकों की न्यूनतम माँगों का स्पष्टीकरण इस प्रकार करना ठीक होगा :

१. आनुवंशिकता (heredity) — माता तथा पिता दोनो के पूर्वजों में वशागत शारीरिक तथा मानसिक असामान्यता (abnormality) का अभाव तथा उनमें श्रेष्ठ गुणों की प्रधानता हो।

२. जन्मपूर्व — स्वस्थ माता हो, जिसे अनुकूलतम आहार मिलता रहा हो और जिसमें श्रम, विश्राम तथा मानसिक शाति का समीचीन संतुलन हो।

३. जन्मकाल — दुर्घटनारहित सामान्य (normal) प्रसव हो, जिसमें अत्यधिक संज्ञाहारी उपचार (sedation) तथा शीघ्र, अथवा विलंबित प्रसव के बुद्धिहीन प्रयासों का अभाव हो।

४. पोषण — स्तनपान और पर्याप्त मात्रा में कैल्सियम, विटामिन तथा उपयुक्त प्रोटीनयुक्त संतुलित और स्वास्थ्यप्रद आहार हो, जिसमें आवश्यकतानुसार सी तथा डी विटामिनों का आधिक्य हो।

५. अंतःस्रावी हारमोन — सभी अंतःस्रावी ग्रंथियों का सामान्य व्यापार हो।

६. पारिवारिक जीवन — दायित्वपूर्ण तथा विवेकशील माता पिता का प्रचुर मात्रा मे वात्सल्य प्रेम, संरक्षण द्वारा अभयदान और उत्साहवर्धक समर्थन निरंतर प्राप्त हो। बालक के मन में अपने प्रति परिवार का स्नेहपात्र, संतुष्ट, उपयोगी और मान्य सदस्य होने की तीव्र भावना हो। सद्भाव और ममतापूर्ण वातावरण हो।

७ चरित्र तथा नैतिक प्रशिक्षण — बालक के अनुकरण योग्य सत्यता, ममता, विश्वासपात्रता, दायित्व तथा उदारतापूर्ण परस्पर व्यवहार का परिवार मे चलन हो।

८ शिक्षण — बालक की भावी आवश्यकताओ की पूर्तिकारक तथा उसकी अभिरुचि और क्षमता के अनुकूल शिक्षा की सुविधा हो।

बालकल्याण का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य बालको का स्वास्थ्य संवर्धन तथा स्वास्थ्य संरक्षण है। रोग का अभाव मात्र ही पूर्ण स्वास्थ्य का लक्षण नही है। चिकित्सालयों में बालरोगों के निदान की तथा चिकित्सा संबंधी सुविधाएँ बढाई जा रही हैं। यह कार्य उचित अवश्य है, किंतु बाल-स्वास्थ्य-संवर्धन एवं संरक्षण के अभाव में केवल चिकित्सा द्वारा ही समस्या दूर नही की जा सकती। निरोधसाध्य रोगो की रोकथाम रोगोपचार से अधिक श्रेयस्कर है। केवल रोगी बालक की ही नही, किंतु नीरोग बालको की भी उचित देखरेख द्वारा उनके सामान्य स्वास्थ्य मे स्वल्प विकार उत्पन्न होते ही भावी रोग की संभावना का विचार कर, रोगकारक स्थिति मे तत्काल सुधार कर, रोगरोधन की व्यवस्था आवश्यक है। ऐसा न करने से निरोधसाध्य रोग बढकर व्यवसाध्य, कष्टसाध्य और कभी कभी असाध्य हो जाता है।

बालक के लिये अपार कष्ट सहना मातृत्व का अपूर्व गौरव है। बालक के लालन पालन तथा भरण पोषण मे माता को जो त्याग और तपस्या करनी पड़ती है, उसका दुष्प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर अवश्य पड़ता है और अंत मे बालक की भी स्वास्थ्यहानि होती है। इस कारण स्वास्थ्य की दृष्टि से मातृकल्याण और बालकल्याण एक ही समस्या के दो अन्योन्याश्रित रूप हैं। मातृस्वास्थ्य के लिये जो सगठन आवश्यक है, प्राय वही बालस्वास्थ्य का कार्य करता है। केवल रोग चिकित्सा के क्षेत्र मे बड़े बड़े चिकित्सालयों मे बालरोग तथा स्त्रीरोग के लिये अलग अलग विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है।

बालकल्याण का कार्य मुख्यत. नगरो मे ही होता है, पर इसे अब ग्रामों मे भी बढाया जा रहा है। ग्रामो के हजारों प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों मे कई हजार मातृत्व तथा बालकल्याण केंद्र स्थापित किए गए हैं, जिनमें प्रशिक्षित स्वास्थ्यचर (Health Visitor), धातृ अथवा प्रसवसेविका (Midwives), लोक-स्वास्थ्य-उपचारिका (Public Health Nurses), समाजसेवक आदि की सहायता से प्रसवपूर्व, प्रसवकालिक तथा प्रसवोत्तर अवस्था में गर्भिणी, गर्भ नवजात शिशु, वर्धनशील बालक तथा जच्चा की विशेष देखरेख और आवश्यक चिकित्सा की व्यवस्था की जाती है। गर्भिणी को रहन सहन, आहार, परिश्रम, व्यायाम, विश्राम, निद्रा और स्वच्छता

विषयक जानकारी कराई जाती है। प्रसव की चिंता, भय, विडंबना आदि से उत्पन्न मानसिक अशांति को यथासंभव दूर कर, गर्भिणी को आश्वस्त किया जाता है। दुर्बलता, रक्तक्षीणता, रक्तविषाक्तता तथा अन्य विकारों को दूर करने के उपाय किए जाते हैं। खनिज विटामिन और मूल्यवान प्रोटीनयुक्त, पोषक आहार का प्रबंध किया जाता है। निर्धन स्त्रियों को दूध तथा अन्य आवश्यक सामग्री बाँटी जाती है। इस प्रकार गर्भिणी के स्वास्थ्यसुधार से गर्भस्थित बालक के उपयुक्त भरण पोषण की संभावना दृढ़ की जाती है। गर्भपात, अपरिणत प्रसव (premature delivery) तथा प्रसवकालिक दुर्घटनाओं की रोकथाम कर, जच्चा तथा नवजात के लिये स्वास्थ्योचित सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। परिवारनियोजन भी परोक्ष रूप से इस कार्य में सहायक है।

चिकित्सकों, चिकित्सालयों और स्वास्थ्याधिकारियों से बालकल्याण केंद्र का घनिष्ट संपर्क स्थापित किया जाता है, जिससे आवश्यकता पड़ने पर रोग का उपचार हो सके और संक्रामक रोगो से बालक की रक्षा की जा सके। अशिक्षित दाइयों को शिक्षा दी जाती है और उनके द्वारा किया जानेवाला प्रसवकर्म यथासभव दोषरहित कराया जाता है।

वृद्धिगत बालक की समय समय पर स्वास्थ्यपरीक्षा की जाती है। देह की वृद्धि, आहार, पुष्टि, शिक्षण, स्वभाव, निद्रा, शौच, स्नान, वस्त्रधारण, खेलकूद, आमोदप्रमोद, बुद्धिविकास, स्वच्छता, आदि की स्वास्थ्यचर्चा द्वारा व्यवस्था की जाती है और माता पिताओं को उचित परामर्श देकर बालक की वृद्धि तथा विकास सतोषजनक रीति से कराया जाता है। औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रमिक माताओं की सतानो की प्रशिक्षित उपचारिका द्वारा देख रेख के लिये शिशु पोषणशालाएँ (creche) स्थापित की जाती हैं। उपचारक पाठशालाओं (nursery schools) का प्रबंध किया जाता है, जहाँ छोटे छोटे बालको को मनोरंजन सहित शील और सदाचारयुक्त शिक्षण दिया जाता है। यदि उम्र के अनुसार बालक की आहार संबंधी स्वास्थ्यानुकूल प्रवृत्ति बढ़ती जाती है, शौचादि के सबंध मे स्वच्छता की ओर रुझान होने लगता है, स्वास्थ्योचित कार्य वह स्वभावत करने लगता है तथा हँसता खेलता, प्रसन्नचित्त और संतुष्ट रहता है, तो समझना चाहिए कि बालक का ऐसा जीवन बीमा हो गया जो ऊँची दर से बीमा किस्त देने पर भी संभव नही।

अनाथ और निराश्रित बालको के लिये अनाथालय का प्रबंध किया जाता है, किंतु ममतापूर्ण कौटुबिक वातावरण के अभाव मे वहाँ बालको का लालन पालन संतोषजनक रीति से नही हो सकता। उन्हें पोष्य पुत्रों की तरह पालने के लिये परिवारों मे देने का प्रयास करना चाहिए। अंध, बधिर, मूक, अपांग, विकलांग, विक्षिप्त, जडमूर्ख, और रोगी बालकों की समस्या अत्यत कठिन है। उनके लिये उपचार, पुन.शिक्षण अथवा पुनर्वास का प्रबंध करना आवश्यक है। उनको निस्सहाय नही छोड़ा जा सकता। समाजसेवको को सरकार की सहायता से कुमार्गी और दुराचारी बालकों का उद्धार करने का प्रयास करना चाहिए। संततिनिरोध द्वारा इस प्रकार के बालकों को उत्पन्न करने का का कोई समाजस्वीकृत ढंग अपनाना वांछनीय प्रतीत होता है।

बालकल्याण के क्षेत्र में अनेक प्रतिष्ठित संस्थाएँ कार्य कर रही है। भारतीय रेडक्रॉस सोसायटी, भारतीय बालकल्याण परिषद् (मई, १९५२ से), कस्तूरबा गांधी स्मारक निधि, केंद्रीय समाजकल्याण बोर्ड (अगस्त, १९५३ से) और प्रदेशों में उसकी अनेक शाखाएँ संघटित रूप मे इस कार्य मे संलग्न हैं। अंतरराष्ट्रीय बालकल्याण संघ और संयुक्त राष्ट्र की अंतरराष्ट्रीय आपातिक निधि तथा विश्वस्वास्थ्य संघ से भी यथेष्ट सहायता मिलती है, जिसके फलस्वरूप बालकों की अस्वस्थता तथा मृत्युदर में आशाप्रद सुधार हो रहा है। भारत मे सन् १९२० में प्रति सहस्र जीवित जात बालकों मे से एक वर्ष की उम्र प्राप्त करने के पूर्व १९५ की मृत्यु हुई थी। यह बाल-मृत्यु-दर सन् १९३५ में १६४, सन् १९४५ में १५२ तथा सन् १९५५ में ११० तक घट गई थी। यह सुधार संतोषजनक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उन्नत देशों की अपेक्षा यह अनुपात अत्यधिक है।

बालक देश की वास्तविक दशा का साकार रूप हैं। उनकी वर्तमान दुरवस्था देश के लिये कलंक रूप है। भावी जनशक्ति का संचारकेंद्र होने के कारण बालको के इष्टतम कल्याण के लिये भरसक प्रयत्न करने मे ही राष्ट्र का परम कल्याण है। प्रत्येक वर्ष जनमत जाग्रत करने लिये भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री नेहरू की जन्मतिथि (१४ नवंबर) को बालदिवस मनाया जाता है, जिससे इस कार्य में प्रगति होती है। सामाजिक न्याय तथा मानवता के आग्रह के अनुसार प्रत्येक बालक अपने कल्याण के लिये सरक्षण एव स्वास्थ्य रूपी पैतृक धरोहर का अधिकारी है और सभी से वात्सल्यपूर्ण सद्व्यवहार की मौन याचना करता है। असमर्थ बालक को पूर्णत. समर्थ कर अपने परपरागत दायित्व का भार उतारना प्रत्येक का कर्तव्य ही नही वरन् जातिप्रजायन (race propagation) से संबद्ध जीवन का लक्ष्य है। बालक के लालन पालन, भरण पोषण, शिक्षण, आदि के लिये असमर्थ या अयोग्य दंपतियों द्वारा संतानोत्पत्ति करना, केवल विवेकहीन और दायित्वरहित कुकर्म ही नही है. वरन् जैविक दृष्टि से यह मूलत मंद विषाक्तन द्वारा बालहत्या का अनैतिक प्रयास है।

स० ग्रं० — पब्लिकेशंस ऑव् यूनाइटेड नेशन्स चिल्ड्रेंस इमर्जेंसी फंड,
,, ,, ,, वर्ड हेल्थ आर्गेनाइज़ेशन,
,, ,, चाइल्ड वेलफेयर एक्सपर्ट कमेटी।
[भ० श० या०]

बालमनोविज्ञान और बालविकास मनोविज्ञान की वह शाखा बालमनोविज्ञान है, जिसमें गर्भावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के मनुष्य के मानसिक विकास का अध्ययन किया जाता है। जहाँ सामान्य मनोविज्ञान प्रौढ़ व्यक्तियो की मानसिक क्रियाओं का वर्णन करता और उनको वैज्ञानिक ढग से समझाने की चेष्टा करता है, वहाँ बालमनोविज्ञान, बालकों की मानसिक क्रियाओं का वर्णन करता और उन्हें समझाने का प्रयत्न करता है। बालमनोविज्ञान एक नवीनतम विद्या है। यद्यपि १९वी शताब्दी में भी बालको के भली प्रकार से लालन पालन और शिक्षण के लिये बालमनोविज्ञान की आवश्यकता संसार के प्रमुख विद्वानों ने अनुभव की थी, तथापि इसका अधिक विकास २०वी शताब्दी में ही, बालशिक्षण के महत्व के साथ साथ, हुआ है। हरबर्ट स्पेन्सर ने इस बात पर जोर दिया है कि प्रत्येक नागरिक की शिक्षा मे बालमनोविज्ञान की शिक्षा अनिवार्य होनी

चाहिए। बालमनोविज्ञान के ज्ञान के बिना सफल गृहस्थ जीवन व्यतीत नही किया जा सकता। इसके पूर्व रूसो ने भी १८वीं शताब्दी में बालक की योग्य शिक्षा के लिये बालमनोविज्ञान की आवश्यकता बताई थी और कुछ अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर बालक के मनोविकास के संबंध में अपनी 'एमील' नामक पुस्तक में लिखा है, परंतु रूसो जैसे विद्वानो के विचार वैज्ञानिक प्रयोगों पर आधारित नही थे। बालकों के शारीरिक और मानसिक विकास का वैज्ञानिक ढग से अध्ययन पिछले ८० वर्षों से ही हो रहा है।

बालमनोविज्ञान का प्रारंभिक अध्ययन फ्रांस में हुआ। पैरिस के पीकाट महाशय ने बालमनोविज्ञान के लिये 'थॉट ऐंड लैंगुएज ऑव दी चाइल्ड' नामक पुस्तक के रूप में अपनी मौलिक देन दी। इसी समय मंदबुद्धि बच्चों की परख करने के लिये डा० बिने ने बुद्धिमापक परीक्षाएँ निकालीं। बिने ने जिस काम की शुरुआत की वह बालमनोविज्ञान और शिक्षा के विकास के लिये बड़ा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। बुद्धिमापक परीक्षाओं का अनेक प्रकार का विकास संसार के भिन्न भिन्न देशों मे हुआ और इनका उपयोग अब संसार के प्रायः सभी देशों में होने लगा है।

जर्मनी के विद्वानो ने बालक के सीखने की प्रक्रियाओ पर अनेक प्रयोग किए और सीखने की क्रिया के गूढ रहस्य को समझाने के मौलिक सिद्धातों का अन्वेषण किया। इन विद्वानों ने बालमन और पशुमन की सीखने की प्रणाली में समानता दिखलाने की चेष्टा की है और यह बताने का प्रयास किया है कि जो मानसिक विकास बंदर और बनमानुष से प्रारंभ होता है, वह मानव जीवन मे जारी रहता है।

यूरोप के विद्वानों की अधिकतर खोजों का उपयोग इंग्लैंड की शिक्षा के क्षेत्र मे किया गया है। यहाँ बुद्धिमापक परीक्षाओं का विशेष विकास हुआ। बालक की भिन्न भिन्न योग्यताओं मे आपसी संबंध क्या है, यह जानने की चेष्टा की गई। इस दिशा मे सीयरमैन और टॉमसन के प्रयोग अत्यत महत्व के है। इसके अतिरिक्त असाधारण बालकों के विषय मे जानकारी की गई और उनकी उचित शिक्षा तथा सुधार के लिये महत्व के सिद्धात निर्धारित किए गए। डा० सिल्डवर्ट का अपराधी बालको का अध्ययन महत्व की देन है। डा० होमरलेन के अपराधी बालकों के सुधार सबधी प्रयोग भी महत्व के हैं।

बालमनोविज्ञान संबधी व्यापक कार्य अमरीका के विद्वानो के प्रयास से हुआ है। जो काम सीमित रूप से दूसरे देशो मे किया गया, वह सुसंगठित और विस्तृत ढग से अमरीका में हुआ है। अमरीका में आज भी सेकड़ों विद्वान् बालक के विकास की भिन्न भिन्न दशाओं का अध्ययन अनेक वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में कर रहे है। डा० स्टेनले हाल ने किशोर बालको का जैसा अध्ययन किया है, वैसा ससार मे दूसरी जगह नही हुआ। उनकी 'ऐडोलेसेंस' नामक पुस्तक बालमनोविज्ञान के लिये महत्व की देन है। आज मैकार्थी, गुडएनफ़, आदि विद्वान् बच्चो के क्रियाकलापों पर अनेक प्रकार के अध्ययन कर रहे हैं।

बालमनोविज्ञान को विधियाँ — बालमनोविज्ञान की प्राय. वे ही विधियाँ हैं, जो सामान्य मनोविज्ञान की हैं। बालमनोविज्ञान में बाहरी निरीक्षण को अधिक महत्व दिया जाता है। बालकों के व्यवहार का एक निरीक्षण अनायास ढंग से किया जाता है और दूसरा विशेष नियमों के अनुसार। बालमनोविज्ञान के दत्तों (data) को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित उपायों को काम मे लाया जाता है: सुव्यवस्थित वैज्ञानिक निरीक्षण, प्रयोग, जीवनियों का अध्ययन, डायरी लेखन, प्रश्नावली, अंतर्दर्शन और मनोविश्लेषण। बालकों के व्यवहार से संबंधित बाते कई स्थानो से प्राप्त होती हैं — माता पिता और शिक्षक बालकों के व्यवहारों को प्रति दिन देखते हैं, अतएव उनसे उनके विकास के बारे मे बहुत कुछ जाना जा सकता है। यदि उन्हें बालव्यवहार के निरीक्षण की ट्रेनिंग दे दी जाय, तो उनका कथन बहुत उपयोगी हो जाता है। बालमनोविज्ञान के विशेषज्ञ अपने बच्चो के व्यवहारो की बचपन से दिनचर्या लिखते रहते हैं। इनकी ये डायरियाँ बडी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। कुछ महापुरुषों ने अपने बालकाल संबंधी अनुभव अपनी जीवनियो मे लिखे हैं और कुछ लोगो के बचपन की बातें उनके मित्रो ने, अथवा उनपर श्रद्धा या स्नेह करनेवालों ने, लिखी हैं। इन जीवनियो से भी अच्छी सामग्री इकट्ठी हो जाती है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने प्रश्नावलियाँ बनाकर माता पिता तथा शिक्षकों से उपयोगी जानकारी प्राप्त की है। बहुत सी बातें बालको से प्रश्न पूछकर भी ज्ञात की जाती है। इसके अतिरिक्त विशेष मनोवैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा महत्व के दत्त इकट्ठा किए जाते है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के लिये विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय मे बालको की सीखने की प्रक्रिया, उनकी स्मरणशक्ति और बुद्धि के विकास पर अनेक महत्व के प्रयोग हो रहे हैं। बालव्यवहार और बालविकास सबधी अनेक उपयोगी बातें बच्चो के डाक्टरो से तथा बाल सुधार गृहों से भी मिलती हैं। बच्चो के शारीरिक विकास की बाते विशेषकर डाक्टरो से ही ज्ञात होती है।

यह स्पष्ट है कि बालमनोविज्ञान के निर्माण मे शिक्षको, डाक्टरों, समाजशास्त्रियो द्वारा, सभी की सहायता की आवश्यकता होती है। मनोवैज्ञानिको ने बालकों की योग्यताओ, रुचियो, जीवन के मूल्यो तथा सामाजिकता की बातो की जानकारी करने के लिये विशेष प्रकार के परीक्षण बनाए है। बालको के क्रियाकलापो का विशेष निरीक्षण करने के लिये एक ऐसे कमरे का भी उपयोग किया जाता है जिसमे पारदर्शकता केवल एक ओर होती है। इससे मनोवैज्ञानिक बालक की क्रियाओं को बालक की जानकारी के बिना देखता रहता है। इस प्रकार का देखना बालक के स्वाभाविक व्यवहार के अध्ययन के लिये आवश्यक होता है। बालव्यवहार और उसके भाषाविकास के अध्ययन के लिये चलचित्रो, और टेप रिकार्डों का भी उपयोग किया जाता है। इनसे मनोवैज्ञानिक बालक की एक बार की हुई क्रियाओं का, अथवा एक समय की बातचीत का, अपनी फुरसत मे अध्ययन कर लेता है। इन प्रयुक्तियो के कारण याददाश्त की सामान्य भूले नही होती।

बालमनोविज्ञान में बालको का अध्ययन दो प्रकार से होता है। एक व्यक्तिगत बालकों का, शैशवावस्था से लेकर किशोरावस्था तक विभिन्न परिस्थितियो में, और दूसरा कई बालकों का एक ही परिस्थिति मे विभिन्न समय में निरीक्षण करके। पहले प्रकार का अध्ययन अक्षांश अध्ययन कहा जाता है और दूसरा दशांश। पहले प्रकार के अध्ययन से जो दत्त इकठ्ठा किए जाते हैं, वे अधिक विश्वसनीय होते हैं, परतु अनेक बालको के विकासमय जीवन की बातों की व्यक्तिगत

जानकारी करना अत्यंत कठिन होता है। जिन बालकों का अध्ययन किया जाता है, उनका स्थानपरिवर्तन प्राय: हो जाता है, अतएव इस प्रकार दत्त इकट्ठा करना कठिन होता है। अतएव दूसरे प्रकार से ही अध्ययन करके मनोविज्ञान की विशेष प्रगति हुई है। अनेक प्रकार के प्रयोग कई बालकों को एक ही जगह पर लेकर किए जाते हैं। विभिन्न अवस्थाओं में बालकों का निरीक्षण तथा उनपर प्रयोग करके वैज्ञानिक दत्त इकट्ठे किए जाते हैं। इस प्रकार संपूर्ण बालविकास का चित्र हमारे सामने आता है। कुछ अधूरी बातों की पूर्ति कल्पना से कर ली जाती है।

बालविकास — बालविकास के अध्ययन के लिये बालजीवन निम्नलिखित सात विभागो मे विभक्त कर लिया जाता है : (१) गर्भवासी, (२) नवजात शिशु, (३) एक वर्षीय शिशु, (४) डगमगाकर चलनेवाला, (५) पाठशालारोही, (६) कैशोरोन्मुख तथा (७) किशोर। रूसो महोदय ने बालकों की तीन अवस्थाओं की कल्पना की थी : शैशवावस्था, जो एक वर्ष से पाँच वर्ष तक रहती है, बाल्यावस्था जो पाँच वर्ष से १२ वष तक रहती है और किशोरावस्था जो १२ वर्ष से २० वर्ष तक रहती है। आधुनिक मनोविश्लेषण विज्ञान के विशेषज्ञों ने रूसो की उक्त कल्पना का समर्थन बालक की कामवासना के विकास के आधार पर किया है। मनोविश्लेपण वैज्ञानिक बालक के मानसिक विकास मे उसकी ज्ञानात्मक शक्तियों की प्रधानता न मानकर भावों की ही प्रधानता मानते है। मनुष्य के भावो के विकास के साथ ही उसकी अन्य मानसिक शक्तियों का विकास होता है। भाव वासना का सहगामी तत्व है। मनुष्य की मूल अथवा मुख्य वासना कामवासना है। अतएव जैसे जैसे उसका विकास होता है वैसे वैसे बालक का मानसिक विकास होता है।

मनोविश्लेपकों के कथनानुसार बालक का वासनात्मक विकास पाच वर्ष की अवस्था मे ही हो जाता है। इसके बाद उसकी कामवासना अंतर्हित हो जाती है। वह तेरह वर्ष मे फिर से जाग्रत होती है और इस बार जाग्रत होकर सदा बढती ही रहती है। इसके कारण बालक का किशोर जीवन बडे महत्व का होता है। इसके पूर्व के जीवन मे बालक का भावात्मक विकास रुक जाता है, परतु उसका शारीरिक और बौद्धिक विकास जारी रहता है। किशोरावस्था मे बालक का सभी प्रकार का विकास पूर्णरूपेण होता है।

उपर्युक्त बालमनोविकास की कल्पना एकागी दिखाई देती है। अतएव बालमनोविज्ञान में विशेष रुचि रखने वाले मनोवैज्ञानिको ने बालको का सीधा निरीक्षण करके और उनके व्यवहारों के विषय में प्रयोग करके, जो निष्कर्ष निकाले वे अधिक महत्व के हैं। उन्होंने अपने दत्त उपर्युक्त सात विभागों मे रखना अधिक उचित समझा है।

गर्भवासी बालक — सभी प्राणियो का शारीरिक विकास उनकी गर्भावस्था से ही होता है। इस विकास में दो प्रमुख बाते काम करती हैं, एक प्राकृतिक परिपक्वता और दूसरी सीखने की सहज वृत्ति। अंतर केवल इतना ही है कि जहाँ दूसरे प्राणियो के जीवनविकास में प्राकृतिक परिपक्वता का अधिक महत्व रहता है, वहाँ बालक के विकास में सीखने की प्रधानता रहती है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि जब बालक माँ के गर्भ मे दो ही महीने का रहता है तभी से सीखने लगता है। पर उसके सीखने की जानकारी इस समय करना कठिन होता है।

गर्भावस्था में बालक के सीखने की क्रिया की जानकारी के लिये मनोवैज्ञानिकों ने विशेष प्रकार के यंत्रों का आविष्कार किया है। उसके क्रियाकलापों को जानने के लिये एक्स किरण का उपयोग किया जाता है। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह तोडने की क्रिया जब वह गर्भ में था, तभी सीख ली थी। वह चक्रव्यूह को वहीं तक तोड सका जहाँ तक उसने गर्भ में तोड़ना सीखा था। जिस बालक की माँ को गर्भावस्था में सदा भयभीत रखा जाता है, वह बालक डरपोक होता है। संसार के लडाकू लोग ऐसी माताओं की सतान थे जिन्हें गर्भावस्था में युद्ध का जीवन व्यतीत करना पड़ा था। नेपोलियन और शिवा जी की माताओं का जीवन ऐसा ही था। इसी तरह रेलवे क्वार्टर मे रहनेवाले कर्मचारियो के बच्चे गर्भस्थ अवस्था से ही रेल की गडगडाहट, सीटी आदि सुनने के आदी हो जाते हैं।

नवजात शिशु — नवजात शिशु जन्म लेते ही रोता है। यह शुभ सूचक है। यदि बच्चा अस्वस्थ है, तो उसके मुँह से रोने की आवाज नही निकलती। पैदा होने के कुछ ही घटों बाद उसे भूख लगती है। यदि इस बच्चे के मुँह में माँ का स्तन दे दिया जाय, तो वह दूध खीचने लगता है। यदि बच्चे को दो तीन दिन तक माँ के स्तन से दूध न पिलाया जाय, तो वह माँ के स्तन से दूध खीचना ही भूल जाता है। माँ का दूध भी स्तन को बालक के मुंह मे डाले बिना नही निकलता।

नवजात शिशु को दुःख सुख की अनुभूति दो तीन वर्ष के बालक जैसी नही होती। नवजात शिशु एक साल तक काफी रोता है, परतु उसकी आँख से आँसू नही निकलता। नवजात शिशु की बहुत थोडी सवेदनाएँ होती हैं। जोर की आवाज उसे चौकाती है और तेज प्रकाश भी सवेदना उत्पन्न करता है, परतु रंग के विषय मे उसकी सवेदना स्पष्ट नही होती। नवजात शिशु की भावात्मक अनुभूतियाँ भी सीमित होती है। वह मुस्कुराता तो है, परंतु यह नही कहा जा सकता कि आनद की अनुभूतियो के कारण वह मुस्कराता है। वह २० घटे तक सोता रहता है। उसका अधिक सोना ही स्वास्थ्यवर्धक है। नवजात शिशु अधिकतर सहज क्रियाएँ ही करता है।

एक साल का बालक — एक साल का बालक अपने और बाहरी वातावरण मे भेद करना सीख लेता है। वह अपना हाथ पैर और सिर आवश्यकता के अनुसार इधर उधर चलाता है। वह खड़े होने की चेष्टा करता है और यदि कोई हाथ पकडकर उसे चलाए, तो वह चलने की भी चेष्टा करता है। बालक के अदर हर एक पदार्थ को छूने की, उठाने की एव मुँह तक ले जाने की बाध्य प्रेरणा रहती है। वह स्वावलबी बनने की चेष्टा करता है। वह स्वार्थी रहता है। यदि कोई चीज उसे दी जाय, तो वह प्रसन्नता प्रदर्शित करता है और यदि उसे छीन लिया जाय तो वह रोने लगता है। एक और दो वर्ष के बीच बच्चा भाषा का ज्ञान प्राप्त करना प्रारभ कर देता है। वह एक दो शब्द भी सीख जाता है।

दो वर्षीय बालक—दो वर्ष का बालक अपने वातावरण में सदा खोज करता रहता है। वह इधर उधर दौड़ता, कूदता फांदता, गिरता रहता है। वह सीढ़ियों पर चढने की चेष्टा करता है। सीढ़ियाँ चढ़ लेता है, लेकिन उतरने मे लुढ़क जाता है। वह अब

कप से दूध पी लेता है और चम्मच को काम में ला सकता है। जब उसे कपड़े पहनाए जाते है, तब वह कपड़े पहनाने मे बड़ों की मदद करता है। तस्वीर देखकर वह वस्तुओं का नाम बताता है और दो चार शब्द की कविता कह लेता है। दो से चार वर्ष की अवस्था में बच्चे का शब्दकोश ३०० शब्दों का हो जाता है। तीन वर्ष तक का बालक अपने आपके बारे मे संज्ञा शब्द से ही बोध करता है, सर्वनाम से नही। वह अपना नाम जानता है। वह यह भी बता सकता है कि वह लड़का है या लड़की। शब्दों का उच्चारण बड़ा ही फूहर रहता है। इन बच्चों की शब्दावली विलक्षण प्रकार की होती है। जिनशब्दों का वे उच्चारण नही कर सकते, उनके बदले मे वे दूसरे शब्द काम में ले आते हैं। पानी के लिये मम्मा कहते हैं, चिड़िया को चू चू और कुत्ते को तू तू कहते हैं। उन्हें अपने भावों को सँभालने की शक्ति नही रहती। वे सभी चीजें अपने ही लिये चाहते हैं। यदि कोई व्यक्ति उनसे कोई वस्तु छीन ले, तो वे बहुत ही क्रुद्ध हो जाते हैं। दो से पाँच वर्ष का शिशु सभी बातें सीखता है। वह १० घंटे प्रति दिन चलता रहता है। ऐसा बालक सामाजिकता प्रदर्शित नहीं करता और बच्चो मे रुचि न दिखाकर बड़ों मे रुचि दिखाता है। बच्चों के साथ खेलने में वह सहयोग नही दिखाता, वरन् उनका अनुकरण मात्र करता है। वह व्यक्तियो मे रुचि न रखकर वस्तुओ से रुचि रखता है और अच्छी लगनेवाली वस्तु दूसरो से छीन लेता है।

इस उम्र के बच्चो की भावात्मक अनुभूतियाँ पर्याप्त रहती है। वह दुःख पाने पर तेजी से रोता है और कभी कभी बडा ही तूफान मचाता है, जैसे पैर पटकना और सिर पीटना। उसमे दूसरो के भावों को समझने की शक्ति नही रहती और न उनके प्रति वह सहानुभूति ही दिखाता है। यदि वह किसी बच्चे को रोते हुए देखता है, तो वह परेशानी की मुद्रा में उसे देखता रहता है, स्वयं नही रोने लगता। शिशु के भय बहुत थोडे होते है। तीक्ष्ण आवाज तथा नीचे गिरने से वह डरता है। इसी प्रकार आगतुकों से और नई चीजों से वह डरता है, परंतु वह बहुत से डरावने जानवरों से नहीं डरता। यदि उसे सर्प से डरवाया न जाय, तो वह उसे पकड़ने दौडेगा। शिशु को अनेक डर कुशिक्षा के द्वारा प्राप्त होते हैं।

छह वर्ष का बालक — जन्म से लेकर पाँच वर्ष तक की अवस्था **शैशव अवस्था** कही जाती है। छह वर्ष की अवस्था से ही बाल्यकाल माना गया है। बाल्यकाल स्कूल जाने की अवस्था है। यह काल १०, ११ वर्ष तक माना गया है। बाल्यकाल मे बालक अपने शरीर की परवाह ठीक प्रकार से कर सकता है और दूसरो के साथ ठीक व्यवहार कर लेता है। वह चलते चलते अचानक गिर नही पड़ता। ऊँची जगहों पर चढ जाता है और वहाँ से उतर आता है। इस काल मे बालको को कूदना, फाँदना, दौडना, सभी बातों मे मजा आता है। जहाँ शिशु अपनी उँगलियो का ठीक से उपयोग नहीं कर पाता, वहाँ बालक उनसे बहुत कुछ काम ले सकता है। वह अपने कपडे, जूते स्वयं पहन सकता है। बालों मे कंघी कर सकता है और स्वयं स्नान कर सकता है। इन सब कामों को वह बड़े लोगों से सदा सीखता रहता है।

पाँच वर्ष के शिशु में खेलने की प्रवृत्ति होती है। वह अनेक प्रकार की वस्तुएँ खेल के लिये चाहता है। ऐसे बच्चो के लिये मैकिनो, और प्लैस्टिसीन अथवा गीली मिट्टी बहुत उपयोगी होती है। वह अनेक प्रकार की चित्रकारी करता है। अब वह जो चित्र बनाता है, वे प्रायः सार्थक होते हैं।

छह वर्ष की उम्र तक बच्चे का बौद्धिक विकास काफी हो जाता है। वह गिनती का अर्थ समझने लगता है। २० तक गिनती सरलता से गिन लेता है और २० पदार्थों को गिन भी लेता है। पाँच वर्ष की अवस्था तक बच्चे को पहाड़े का अर्थ नही आता। जो भी उसे रटाया जाय वह रट लेता है। इस समय बच्चा पुस्तक पढ़ने की चेष्टा करता है, परंतु उसका बहुत कुछ पढ़ना सार्थक नहीं होता। उसका शब्दकोश २,५०० शब्दों का हो जाता है। उसकी भाषा मे केवल सरल वाक्य नही रहते, वरन् मिश्रित और जटिल वाक्य भी रहते हैं। भाषा के विकास के साथ साथ उसके विचारों में भी पर्याप्त विकास होता है। इस उम्र का बालक कालबोधक शब्दो को ठीक से काम मे लाता है। उसका कार्य कारण के आधार पर सोचना अभी विकसित नही होता।

इस उम्र मे बालक की भावनाएँ काफी विकसित हो जाती हैं। वह प्रसन्नता, क्रोध, भय, निराशा आदि भावो को स्पष्ट रूप से और प्राय ठीक ढंग से व्यक्त करता है। यदि कोई उसे चिढा दे, या कोई उसकी चीज छीन ले, तो वह उसे मारने की चेष्टा करता है। बालक के इस काल के भय उसके जीवन मे बडा महत्व रखते है। यदि किसी बालक का पिता क्रोधी हुआ और वह बात बात मे बच्चे को डाँटता रहा, तो बालक सदा के लिये डरपोक बन जाता है। और यदि बालक मे कोई प्रतिभा हुई, तो उसके मन मे पिता के प्रति और भी मानसिक ग्रंथि बन जाती है।

बाल्यकाल आदतों के डालने का काल है। पाँच और दस वर्ष के बीच बालक मे अनेक प्रकार की भली और बुरी आदते पड जाती है। अभिभावकों पर ही इन आदतो के डालने की जिम्मेदारी रहती है। जैसा वे उसे बनाते है, वैसा वह बन जाता है। यदि किसी बालक को भूत प्रेत की कहानियाँ इस समय सुनाई जाएँ, तो वह जीवन भर के लिये डरपोक बन जाता है।

बाल्यकाल मे बच्चे को भयभीत करनेवाली वस्तुओं की संख्या बढ जाती है। अब वह अचानक तेज आवाज सुनकर तथा ऊँचे स्थानो पर जाने से तो नही डरता, परंतु अंधकार मे जाने से तथा अकेले रहने से, बडे बडे जानवरो से तथा नवागतुको से डरने लगता है। इसके कल्पित डर बहुत से हो जाते हैं। वह भूत प्रेत से तो डरता ही है। वह डाकुओ और चोरो के नाम से भी डरता है।

बाल्यकाल मे बच्चे को आत्मप्रकाशन की उतनी स्वतंत्रता नही रहती जितनी उसे पहले रहती है। उसे स्कूल जाना पड़ता है और मास्टर की निगरानी मे रहना पडता है। वहाँ उसे शीलवान बनना पड़ता है। यह शील दिखाऊ होता है। इसका बदला वह घर पर चुकाता है। स्कूल से लौटकर वह माँ के सामने बहुत सी शैतानी करता है।

छह से दस वर्ष के बीच के बालक के सामाजिक भाव काफी विकसित हो जाते हैं। वह लड़के और लड़की दोनों से मिलता जुलता है, परंतु उसके अधिक मित्र अपने ही समानलिंग के बालकों

में होते हैं। लड़के लड़कियों को प्रायः मूर्ख समझते हैं और लड़कियाँ लडको को उद्दंड तथा फूहड़ समझती हैं। लडके और लडकियों के खेलों में अब भिन्नता आ जाती है। लडकियाँ गुडियो, चूल्हे चक्की आदि से खेलती हैं और लड़के नाव, गेंद, तीर कमान, पैर-गाडी आदि से खेलते हैं।

इस काल में बालक के चुने हुए मित्र रहते हैं। वह इन्ही के पास रहना अधिक पसंद करता है। यदि उन्हे कोई मारे पीटे तो वह उन्हे बचाने की कोशिश करता है। वह उन्हे अपने खाने पीने की चीजे भी देता हैं, परन्तु यह मित्रता सदा बदलती रहती है। इस प्रकार बालक का अनेक लोगों से प्यार करने का अभ्यास हो जाता है। उसके सामाजिक भावों का प्रसार भी इसी मित्रता के भावों के प्रसार के साथ होता रहता है।

छह से दस वर्ष के बालक मे भले और बुरे का विवेक उत्पन्न हो जाता है। उसमे साधारणत आत्मनियंत्रण की शक्ति का उदय हो जाता है। बडों के द्वारा प्रोत्साहित होने पर बालक मे आत्म नियंत्रण की शक्ति बढती जाती है। यही समय है जब कि बालक मे नैतिक आचरण का बीजारोपण होता है। अत्यत लाड में रहनेवाले बालक की नैतिक बुद्धि सुप्त बनी रहती है, अथवा वह प्रारंभ से ही विकृत हो जाती है। इसी प्रकार अधिक ताडना मे रखे गए बालक मे झूठा शिष्टाचार आ जाता है। उसमे भले बुरे को पहचानने की क्षमता ही नही रहती। आदतो के वशीभूत होकर ऐसे बालक भला आचरण करना सीख लेते हैं, पर इन आदतों का आधार भय रहता है।

किशोरपूर्वावस्था — यह अवस्था १० से १३ वर्ष की अवस्था है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार यह अवस्था भावो के अंतर्हित होने की अवस्था कहलाती है। इस काल मे बालक अपनी शारीरिक और बौद्धिक प्रगति तो करता है, परतु भावो की दृष्टि से उसका अधिक विकास नही होता। इस अवस्था मे लडकों की अपेक्षा लड़कियाँ अधिक तीव्रता से बढती हैं। उनका भाषाज्ञान अधिक हो जाता है। उनकी शारीरिक वृद्धि भी लडकों की अपेक्षा अधिक होती है। अब लडके और लडकियो का भेद सभी बातो मे स्पष्ट होने लगता है।

बालक इस काल मे दूसरों के प्रति पहले जैसी सहानुभूति नही दिखाता। वह दूसरो को चिढाने तथा तंग करने मे आनद का अनुभव करता है। उसे अब साहस के काम की कहानियाँ अधिक पसंद आती हैं। वह कल्पना मे विचरण करना आरंभ कर देता है।

इस समय बच्चे गरोह मे रहना पसद करते हैं। लडके और लडकियो के खेल भिन्न भिन्न हो जाते हैं और उनके आचरण के नियमों मे भी भेद हो जाता है। इनके खेलों मे शारीरिक क्रियाएँ अधिक होती हैं। लड़के बाइसिकिल चलाना, बढईगीरी करना, कूदना, उछलना और तैरना सीखना चाहते हैं और लडकियाँ रस्सी कूदना, नाचना, गाना, हारमोनियम बजाना और रेडियो सुनना पसंद करती हैं।

इस काल में बच्चो की नैतिक बुद्धि जाग्रत नही रहती। वे बहुत से अनुचित व्यवहार भी कर डालते हैं। कुछ बालकों मे चोरी की आदते लग जाती है, परंतु अभिभावकों को इससे डरना नही चाहिए। बालकों की नैतिक धारणाओं को ठीक करने के लिये उन्हे उचित वातावरण उपस्थित करना चाहिए। इस काल में बालक के सबसे महत्व के शिक्षक उसके माता पिता नहीं, वरन् समवयस्क बालक रहते हैं। वह गिरोह में रहना पसद करता है। उसे गरोह से अलग तो करना नही चाहिए, पर गरोह के बालको के बारे मे उसके अभिभावकों को जानकारी रखनी चाहिए। मनुष्य की नैतिकता का विकास उसकी सामाजिकता के साथ साथ होता है और उसके सामाजिक भाव ही उसे अनेक कामो में लगाते हैं।

इस काल में बालक का पर्याप्त बौद्धिक विकास होता है। उसका शब्दकोश काफी बढ़ जाता है। इसमे आठ दस हजार शब्द आ जाते हैं। उसके वाक्य भी अब अधिक लबे होते हैं। इनमे छह शब्द तक रहते हैं। इस काल में बालक बहादुरी के कारनामों वाली, जादू की और दूसरे देशों के बच्चो के वृत्तातवाली पुस्तकें पढना चाहता है। वह जानना चाहता है कि दूसरे देश के लोग कैसे रहते है और क्या करते है। अतएव इस काल में बच्चों को ऐतिहासिक तथा भौगोलिक कहानियाँ सुनाना, उनके मानसिक विकास के लिये उपयुक्त होता है। इस समय बच्चे लिखना सीखने लगते हैं, परंतु उनके लिखने मे गलतियाँ बहुत होती हैं। उनके अक्षर सुंदर नही होते और विराम चिह्न आदि का लिखते समय उन्हे ज्ञान नही रहता। लिखने में सुधार करना इस समय नितात आवश्यक है। जो पाठशालाएँ इस काल मे बालको की लेखनशैली पर ध्यान नही देती वे जीवन भर के लिये बालक को इस दिशा में निकम्मा बना देती है। लेखनशैली और अक्षरों को सुंदर बनाने की बालक में रुचि इसी काल में पैदा की जा सकती है। मनुष्य की लेखनशैली का उसके चरित्र पर गहरा प्रभाव पडता है। लेखन की सावधानी चरित्र की सावधानी बन जाती है। अतएव इस काल मे बालकों की लेखनशैली पर ध्यान रखना नितांत आवश्यक है।

किशोरावस्था — किशोरावस्था मनुष्य के जीवन का वसंतकाल माना गया है। यह काल बारह से उन्नीस वर्ष तक रहता है, परंतु किसी किसी व्यक्ति मे यह बाईस वर्ष तक चला जाता है। यह काल भी सभी प्रकार की मानसिक शक्तियो के विकास का समय है। भावों के विकास के साथ साथ बालक की कल्पना का विकास होता है। उसमे सभी प्रकार के सौंदर्य की रुचि उत्पन्न होती है और बालक इसी समय नए नए और ऊँचे ऊँचे आदर्शों को अपनाता है। बालक भविष्य मे जो कुछ होता है, उसकी पूरी रूपरेखा उसकी किशोरावस्था मे बन जाती है। जिस बालक ने धन कमाने का स्वप्न देखा, वह अपने जीवन मे धन कमाने मे लगता है। इसी प्रकार जिस बालक के मन मे कविता और कला के प्रति लगन हो जाती है, वह इन्ही मे महानता प्राप्त करने की चेष्टा करता और इनमे सफलता प्राप्त करना ही वह जीवन की सफलता मानता है। जो बालक किशोरावस्था मे समाज सुधारक और नेतागिरी के स्वप्न देखते है, वे आगे चलकर इन बातों मे आगे बढते है।

पश्चिम मे किशोर अवस्था का विशेष अध्ययन कई मनोवैज्ञानिकों ने किया है। किशोर अवस्था काम भावना के विकास की अवस्था है। कामवासना के कारण ही बालक अपने में नवशक्ति का अनुभव करता है। वह सौंदर्य का उपासक तथा महानता का पुजारी बनता है। उसी से उसे बहादुरी के काम करने की प्रेरणा मिलती है।

किशोर अवस्था शारीरिक परिपक्वता की अवस्था है। इस अवस्था में बच्चे की हड्डियों मे दृढ़ता आती है; भूख काफी लगती है। कामुकता की अनुभूति बालक को १३ वर्ष से ही होने लगती है। इसका कारण उसके शरीर मे स्थित ग्रंथियों का स्राव होता है। अतएव बहुत से किशोर बालक अनेक प्रकार की कामुक क्रियाएँ अनायास ही करने लगते हैं। जब पहले पहल बड़े लोगों को इसकी जानकारी होती है तो वे चौंक से जाते हैं। आधुनिक मनोविश्लेषण विज्ञान ने बालक की किशोर अवस्था की कामचेष्टा को स्वाभाविक बताकर, अभिभावकों के अकारण भय का निराकरण किया है। ये चेष्टाएँ बालक के शारीरिक विकास के सहज परिणाम है। किशोरावस्था की स्वार्थपरता कभी कभी प्रौढ़ अवस्था तक बनी रह जाती है। किशोरावस्था का विकास होते समय, किशोर को अपने ही समान लिंग के बालक से विशेष प्रेम होता है। यह जब अधिक प्रबल होता है, तो समलिंगी कामक्रियाएँ भी होने लगती है। बालक की समलिंगी कामक्रियाएँ सामाजिक भावना के प्रतिकूल होती है, इसलिये वह आत्मग्लानि का अनुभव करता है। अतः वह समाज के सामने निर्भीक होकर नही आता। समलिंगी प्रेम के दमन के कारण मानसिक ग्रंथि मनुष्य मे पैरानोइया नामक पागलपन उत्पन्न करती है। इस पागलपन मे मनुष्य एक ओर अपने आपको अत्यत महान् व्यक्ति मानने लगता है और दूसरी ओर अपने ही साथियो को शत्रु रूप मे देखने लगता है। ऐसी ग्रंथियाँ हिटलर और उसके साथियो में थी, जिसके कारण वे दूसरे राष्ट्रों की उन्नति नही देख सकते थे। इसी के परिणामस्वरूप द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा।

किशोर बालक उपर्युक्त मन स्थितियों को पार करके, विषमलिंगी प्रेम अपने मे विकसित करता है और फिर प्रौढ़ अवस्था आने पर एक विषमलिंगी व्यक्ति को अपना प्रेमकेंद्र बना लेता है, जिसके साथ वह अपना जीवन व्यतीत करता है।

कामवासना के विकास के साथ साथ मनुष्य के भावों का विकास भी होता है। किशोर बालक के भावोद्वेग बहुत तीव्र होते है। वह अपने प्रेम अथवा श्रद्धा की वस्तु के लिये सभी कुछ त्याग करने को तैयार हो जाता है। इस काल मे किशोर बालकों को कला और कविता में लगाना लाभप्रद होता है। ये काम बालक को समाजोपयोगी बनाते हैं।

किशोर बालक सदा असाधारण काम करना चाहता है। वह दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। जब तक वह इस कार्य में सफल होता है, अपने जीवन को सार्थक मानता है और जब इसमे वह असफल हो जाता है तो वह अपने जीवन को नीरस एवं अर्थहीन मानने लगता है। किशोर बालक में डींग मारने की प्रवृत्ति भी अत्यधिक होती है। वह सदा नए नए प्रयोग करना चाहता है। इसके लिये दूर दूर तक घूमने में उसकी बड़ी रुचि रहती है।

किशोर बालक का बौद्धिक विकास पर्याप्त होता है। उसकी चिंतन शक्ति अच्छी होती है। इसके कारण उसे पर्याप्त बौद्धिक कार्य देना आवश्यक होता है। किशोर बालक में अभिनय करने, भाषण देने तथा लेख लिखने की सहज रुचि होती है। अतएव कुशल शिक्षक इन साधनों द्वारा किशोर का बौद्धिक विकास करते हैं।

किशोर बालक की सामाजिक भावना प्रबल होती है। वह समाज में संमानित रहकर ही जीना चाहता है। वह अपने अभिभावकों से भी संमान की आशा करता है। उसके साथ १०, १२ वर्ष के बालकों जैसा व्यवहार करने से, उसमे द्वेष की मानसिक ग्रंथियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे उसकी शक्ति दुर्बल हो जाती है और अनेक प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

बालक का जीवन दो नियमों के अनुसार विकसित होता है, एक सहज परिपक्वता का नियम और दूसरा सीखने का नियम। बालक के समुचित विकास के लिये, हमे उसे जल्दी जल्दी कुछ भी न सिखाना चाहिए। सीखने का कार्य अच्छा तभी होता है जब वह सहज रूप से होता है। बालक जब सहज रूप से अपनी सभी मानसिक अवस्थाएँ पार करता है तभी वह स्वस्थ और योग्य नागरिक बनता है। कोई भी व्यक्ति न तो एकाएक बुद्धिमान होता है और न परोपकारी बनता है। उसकी बुद्धि अनुभव की वृद्धि के साथ विकसित होती है और उसमें परोपकार, दयालुता तथा बहादुरी के गुण धीरे धीरे ही आते हैं। उसकी इच्छाओं का विकास क्रमिक होता है। पहले उसकी न्यून कोटि की इच्छाएँ जाग्रत होती हैं और जब इनकी समुचित रूप से तृप्ति होती है तभी उच्च कोटि की इच्छाओ का आविर्भाव होता है। यह मानसिक परिपक्वता के नियम के अनुसार है। ऐसे ही व्यक्ति के चरित्र मे स्थायी सद्गुणो का विकास होता है और ऐसा ही व्यक्ति अपने कार्यों से समाज को स्थायी लाभ पहुँचाता है। [ला० रा० शु०]

बालमुकुंद गुप्त, जन्म गुड़ियानी गाँव, रोहतक मे १८६५ ई०(कार्तिक शुक्ल ४, सं० १९२२ वि०) मे हुआ। पिता का नाम था पूरनमल। गाँव मे उर्दू और फारसी की प्रारंभिक शिक्षा के बाद १८८६ ई० में पंजाब विश्वविद्यालय से मिडिल परीक्षा प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप मे उत्तीर्ण। विद्यार्थी जीवन से ही उर्दू पत्रों में लेख लिखने लगे। झभझर (जिला रोहतक) के 'रिफाहे आम' अखबार और मथुरा के 'मथुरा समाचार' उर्दू मासिको मे पं० दीनदयालु शर्मा के सहयोगी रहने के बाद १८८६ ई० मे चुनार के उर्दू अखबार 'अखबारे चुनार' के दो वर्ष संपादक रहे। १८८८ से १८८९ तक लाहौर के उर्दू पत्र 'कोहेनूर' का संपादन किया। उर्दू के नामी लेखको मे आपकी गणना होने लगी। १८८९ ई० मे महामना मालवीय जी के अनुरोध पर पर कालाकाँकर (अवध) के हिंदी दैनिक 'हिंदोस्थान' के सहकारी संपादक हुए जहाँ तीन वर्ष रहे। यहाँ पं० प्रतापनारायण मिश्र के संपर्क से हिंदी के पुराने साहित्य का अध्ययन किया और उन्हें अपना काव्यगुरु स्वीकार किया। 'गवर्नमेंट के विरुद्ध कड़ा' लिखने पर वहाँ से हटा दिए गए। अपने घर गुड़ियानी मे रहकर मुरादाबाद के 'भारत प्रताप' उर्दू मासिक का संपादन किया और कुछ हिंदी तथा बँगला पुस्तकों का उर्दू मे अनुवाद किया। अंग्रेजी का इसी बीच अध्ययन करते रहे। १८९३ मे 'हिंदी बंगवासी' के सहायक संपादक होकर कलकत्ता गए और छह वर्ष तक काम करके नीति सबंधी मतभेद के कारण इस्तीफा दे दिया। १८९९ में 'भारतमित्र' कलकत्ता के संपादक हुए और मृत्यु पर्यंत इस पद पर रहे। मृत्यु १८ सितंबर, १९०७ ई० को दिल्ली मे हुई। 'भारतमित्र' मे आपके प्रौढ़ संपादकीय जीवन का निखार हुआ। भाषा, साहित्य और राजनीति के सजग प्रहरी रहे। देशभक्ति की

भावना इनमें सर्वोपरि थी। भाषा के प्रश्न पर 'सरस्वती' संपादक, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी से इनकी नोंक झोंक, लार्ड कर्जन की शासन नीति की व्यंग्यपूर्ण और चुटीली आलोचनायुक्त 'शिवशंभु के चिट्ठे' और उर्दूवालों के हिंदी विरोध के प्रत्युत्तर में 'उर्दू बीबी के नाम चिट्ठी' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लेखनशैली सरल, व्यंग्यपूर्ण, मुहावरेदार और हृदयग्राही होती थी। पैनी राजनीतिक सूझ और पत्रकार की निर्भीकता तथा तेजस्विता इनमें कूट कूट कर भरी थी। उर्दू और हिंदी अखबारों का इतिहास लिखने के अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर आपकी आठ मौलिक और अनुवादित पुस्तकें हैं।

[ब० प्र० मि०]

बालरोग विज्ञान (Pediatrics) या कौमारभृत्य को भारतीय चिकित्सक ईसा से ६०० वर्ष पूर्व आयुर्वेद के अष्टांगों में एक महत्वपूर्ण अंग के रूप मे मानते थे। कौमारभृत्य के अंतर्गत प्रसूतितंत्र, स्त्रीरोगविज्ञान तथा बालरोग विज्ञान आते थे। इस वैज्ञानिक युग मे विज्ञान में क्रांतिकारी प्रगति के साथ साथ चिकित्साशास्त्र के ज्ञानभंडार के अतिवर्धित होने से ये तीनों शास्त्र पृथक् पृथक् महत्वपूर्ण हो गए हैं। कौमारभृत्य विषय पर स्वतंत्र आर्ष ग्रंथ केवल काश्यपसंहिता ही उपलब्ध हुआ है। इस ग्रंथ का प्रतिसंस्कर्ता वृद्धिजीवक, जो कौमारतंत्र का विशेषज्ञ माना जाता था, शल्य विशेषज्ञ जीवक से नितांत भिन्न है। कौमारभृत्य के अंतर्गत कुमार का पोषण, रक्षण, उसकी परिचारिका या धात्री, दुग्ध या आहार जन्य विकार, शारीरिक विकृतियाँ, गृहजन्य बाधा एवं औपसर्गिक रोग तथा आगंतुक रोगों का विवरण एवं चिकित्सा वर्णित हैं। इसी के अंतर्गत बालस्वास्थ्य का वर्णन उपलब्ध होता है।

यदि आधुनिक चिकित्सापद्धति के इतिहास का अवलोकन किया जाय, तो ज्ञात होता है कि बालरोग विज्ञान नामक कोई स्वतंत्र शास्त्र १९वीं शताब्दी के अंत तक नहीं था तथा बालक युवक का ही लघुरूप माना जाता था। सर्वप्रथम १८९९ ई० में किंग्स कालेज चिकित्सालय, लदन, मे बालरोग विशेषज्ञ पृथक् रखा गया। इस समय शिशुओं की मृत्यु दर २०% से ४०% तक पहुँच चुकी थी। २०वीं शताब्दी मे क्रांतिकारी अनुसंधानों, पर्याप्त अध्ययन एवं जनस्वास्थ्य के सिद्धांतों की सहायता से शिशु-मृत्यु-दर पहले से १० प्रति शत कम होने लगी। इसके पश्चात् भी वैज्ञानिकों को संतोष नहीं हुआ है और वे मृत्यु दर को कम करने के उपायों के अनुसंधान में लगे हुए हैं। आधुनिक चिकित्सक बालक की वृद्धि एवं विकास को एक युवा पुरुष से भिन्न मानते हैं और कुमार को शरीररचना विज्ञान, शरीरक्रिया विज्ञान, मानस विज्ञान एवं रोग क्षमता के दृष्टिकोण से युवा से भिन्न मानते हैं। बालक की शरीरक्रिया में बराबर परिवर्तन होते रहते हैं, जो उसके स्वास्थ्य के लिये अत्यंत अनुकूल एवं आवश्यक हैं। इसके साथ साथ स्वास्थ्य विज्ञान, पोषण विज्ञान, रोगक्षमता विज्ञान, भ्रूण विज्ञान, सूक्ष्मजीव विज्ञान, महामारी विज्ञान एवं स्वच्छता विज्ञान के संबंध में हो रहे अनुसंधानों से चिकित्साक्षेत्र मे बड़ी उन्नति हुई है। नवीन औषधियों की खोज से, निदान के तरीकों में हुए परिवर्तनों से, रसचिकित्सा तथा कुमार शल्यविज्ञान के द्वारा व्याधियों पर पर्याप्त विजय प्राप्त कर ली गई है। इन समस्त कारणों से कौमारभृत्य, या कौमारतंत्र, आजकल एक विशेष विज्ञान माना जाने लगा है।

शिशुओं, बालकों और कुमारों मे जो रोग उत्पन्न होते हैं, उन्हे कारण के अनुसार, अथवा जिस संस्थान विशेष का आश्रय ग्रहण कर उत्पन्न होते हैं तदनुसार, वर्गीकृत किया जाता है। ये रोग बालकों की वृद्धि पर प्रभाव डालते हैं। अत. उन कारणों का जो गर्भाधान से लेकर पूर्ण अभिवृद्धि तक प्रभावशील होते हैं, अध्ययन इस शास्त्र के अंतर्गत आता है; उदाहरणार्थ, आनुवंशिकता, गर्भिणी रोग एवं पोषण तथा प्रसवजन्य रोग।

बालरोगों का वर्गीकरण एवं विवरण निम्नलिखित है :

(१) **आनुवंशिक** — (क) पैतृक और मातृक, (ख) प्रसवपूर्व तथा (ग) प्रसवज।

उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न होनेवाले मुख्य रोग निम्नलिखित हैं :

(अ) हीमोफिलिया (haemophilia) (ब) गर्भज रक्तनाल कोशिकाप्रसु रोग, (स) पारिवारिक सावधिक अंगघात तथा मस्तिष्क विकार एवं ऐलर्जी रोग, जैसे एक्जीमा और श्वसनीगत श्वास रोग आदि हैं।

(२) **सहज रोग** — बालक माता के गर्भ मे रहते हुए माता पिता के रोगों से ग्रसित हो जाता है, जैसे फिरंग। इतना ही नहीं, व्याधियों से गर्भ की ठीक वृद्धि नहीं होती और कुछ विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं जैसे :

(क) सहज मोतियाबिंद, (ख) हृत्विकृत रचना तथा (ग) विकलांगता।

(३) **प्रसवकाल में होनेवाले मुख्य रोग** — (क) श्वासावरोध, (ख) मस्तिष्क रक्तस्राव, (ग) मृदुअस्थिभग्न तथा (घ) पेशीघात हैं। ये रोग प्रसवकाल मे शिशु के लिये घातक हो जाते है या निम्नलिखित उपद्रवों को पैदा करते हैं। (अ) अवरुद्ध मानसिक वृद्धि, (ब) मिर्गी तथा (स) मस्तिष्क घात।

इनके अतिरिक्त बालमृत्यु, दुर्घटनाओं और विषाक्त भोजन एवं सर्पदंश से होती है। इनका कारण शिक्षा की कमी, लापरवाही आदि है। अत ऐसी मृत्यु को रोका जा सकता है।

बच्चों की वृद्धि के लिये एवं स्वच्छता के लिये पोषक आहार अत्यंत आवश्यक है। यह बालक की लंबाई, आकार, वजन तथा वय पर निर्भर करता है। पोषक आहार मे (१) प्रोटीन, (२) आवश्यक ऐमीनो ऐसिड, (३) वसा, (४) कार्बोहाइड्रेट, (५) विटामिन, (६) जल तथा (७) खनिज द्रव्य अत्यंत आवश्यक हैं।

इसके पश्चात् अपोषणज रोग तथा आंतरिक रोग आते हैं :

(४) अपोषणज रोग — प्रोटीन की कमी से शरीर की वृद्धि, रक्त प्रोटीन का निर्माण तथा नई वस्तुओं का निर्माण रुक जाता है। कार्बोहाइड्रेट की कमी से शरीर में काम करने की शक्ति घट जाती है। खनिज द्रव्यों की कमी से अस्थि का निर्माण, हार्मोनों का निर्माण, एंजाइमो का निर्माण, शरीरवृद्धि, रक्तरंजन तथा अन्य रासायनिक क्रियाएँ अवरुद्ध हो जाती है। रक्त तथा शरीर के द्रवों का क्षार-अम्ल-संतुलन बिगड़ने से अतिसार, वृक्क रोग, वमन रोग, वमन एवं कमजोरी आदि रोग

होते हैं। इस प्रकार विटामिन ए की कमी से त्वक् शुष्कता, रात्र्यंधता होती है। विटामिन बी की कमी से कई रोग होते हैं। विटामिन बी के कई प्रभेद हैं। थाइमीन की कमी से बेरी बेरी रोग, राइबोफ्लैविन की कमी से मुँह और आँतों में व्रण तथा निकोटिनिक अम्ल की कमी से रक्तवाहिनियों के रोग होते हैं। पाइरिडिक्सीन वमन रोकता है। कैल्सियम पैंटोथिनेट की कमी से हाथ, पैर मे जलन होती है तथा नियासीन की कमी से पेलेग्रा रोग होता है। विटामिन डी की कमी से रिकेट होता है। विटामिन सी की कमी से स्कर्वी रोग होता है। विटामिन के की कमी से रक्तस्रावी रोग हो जाता है (देखें, विटामिन)। यदि भोजन में दूध, मास, अडे, मछली, फलरस, हरी सब्जियाँ तथा लवण हों एवं जलहीनता न हो, तो विटामिन की कमी से होनेवाले रोग नही होते। जल पर्याप्त मात्रा में मिलने पर त्वक् शुष्कता, प्यास, अंतःस्रावों की उत्पत्ति मे अवरोध तथा रक्तपरिसम्वरण मे बाधा नही हो पाती।

इनके अतिरिक्त कुछ वैकारिक जीवाणु तथा परजीवी कृमियो के कारण भी रोग उत्पन्न होते हैं, जिन्हे औपसर्गिक रोग कहते हैं। ये रोग निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं :

(५) **औपसर्गिक रोग** — क जीवाणुजन्य रोग, ख. विषाणुजन्य रोग, ग. रिकेट्सियल (rickesial) रोग, घ माइकोटिक रोग तथा च. परजीवीजन्य रोग।

मुख्यत. संक्रामक रोगों मे मसूरिका, कर्णफेर, कुकुरखाँसी, रोहिणी, स्कार्लेट ज्वर, शैशविक अंगघात, चेचक, चिकन पॉक्स, आँख दुखना, कान बहना आदि आते हैं। इनमें कुछ जीवाणुओ से तथा कुछ विषाणुओं से उत्पन्न होते हैं। टिटैनस, न्यूमोनिया तथा कुछ रोगो को, जैसे डिफ्थीरिया या रोहिणी (C. diphtheria), हूपिंग कफ (H. pertusis), स्माल पॉक्स आदि को टीके द्वारा रोका जा सकता है। इन रोगो की चिकित्सा इनके प्रतिजीवविष (antitoxin), प्रतिजैविको (antibiotics), टॉक्सॉइड्म (toxoids), मानविक गामा ग्लोबिन आदि से की जाती है। टिटैनस प्रतिसीरम से रोका जा सकता है।

बाल्यावस्था मे श्वसन संस्थान में होनेवाले रोग निम्नलिखित होते हैं : (क) सर्दी जुकाम, (ख) शैशविक विषाणुज न्यूमोनिया, (ग) इन्फ्लुएंजा तथा (घ) एटिपिकल न्यूमोनिया। ये सब रोग विशेष वाइरस से उत्पन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त (अ) बैक्टीरियल न्यूमोनिया भयानक बालरोग है, परंतु आधुनिक सल्फा ओषधियो तथा-प्रतिजैविकी (पेनिसीलीन, टेरामाइसीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन) से पराजित कर लिया गया है, (ब) बालकों में यक्ष्मा (tuberculosis) भी होता है। यह बी० सी० जी० के टीके एवं अच्छे पोषण तथा शुद्ध वातावरण से रोका जा सकता है। स्ट्रेप्टोमाइसीन, पैराऐमाइनो सैलिसिलिक अम्ल, तथा आइसो निकोटिनिक ऐसिड हाइड्रेसाइड से यक्ष्मा रोग से मुक्त किया जा सकता है। इन ओषधियों के साथ साथ कैल्सियम, विटामिन डी आदि भी दिया जाता है।

बालको मे सिफलिस रोग न हो, इसके लिये बालक उत्पन्न होने से पहले ही रोगी माता को पेनिसिलीन पर्याप्त मात्रा मे देकर इस रोग को रोका जा सकता है।

इसी प्रकार बच्चों में होनेवाले कुछ और रोग भी हैं, जिन्हें पेनिसिलीन स्ट्रेप्टोमाइसीन, टेरामाइसीन, क्लोरोमाइसिटीन, के द्वारा रोका जा सकता है। कुछ रोग, जैसे (क) मस्तिष्कवरण शोथ (meningitis) (ख) लसपर्वशोथ (lymph adenitis), स्ट्रेप्टोकोकाय, मेनिंगोकोकाय, न्यूमोकोकाय आदि, जीवाणुओ के उपसर्ग से होते हैं। टाइफॉइड तथा गनोरिया भी क्लोरोमाइसीन, पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन आदि, से अच्छे होते हैं। मलेरिया क्विनाइन, पेल्यूड्रीन, निवाक्विन आदि से अच्छा होता है।

कुछ रोगों को, जैसे हृदय की रक्तवाहिनियो के और अन्नवह स्रोतस के रोगो को, तथा तंत्रिका संस्थान एवं हाथ पैर इत्यादि की सहज विकृतियो को शल्य चिकित्सा से ठीक किया जा सकता है।

कुमारो मे रूमैटिक ज्वर भी पाया जाता है। इसका ठीक कारण अभी अज्ञात है, परंतु इसे सैलिसिलेट, ए० सी० टी० एच० और कॉर्टिसोन से ठीक किया जाता है।

चिकित्सा जगत् मे हारमोन चिकित्सा द्वारा एडोक्राइन ग्रंथिज रोगो का उन्मूलन किया जाता है। एडोक्राइन ग्रंथिज रोग निम्नलिखित हैं (क) डायाबीटिज मेलाइटस, (ख) एकाएक होनेवाली शर्कराहीनता, (ग) डायाबीटिज इसिपिडस, (घ) पेराथाइरॉइडजन्य टिटेनी, (ङ) ऐड्रिनलजन्य रोग, (च) अति ऐड्रिनलजन्य रोग, (छ) पिट्यूटरी हीनता जन्य रोग, (ज) थाईराइड हीनताजन्य रोग तथा (झ) यौन ग्रंथिज रोग।

बालको मे मानसिक, भावुकताजन्य, तथा सामाजिक विषयक असतुलित अवस्थाओ से होनेवाले रोगो का महत्व दैहिक व्याधियो से कम नहीं है। इसके लिये मानसिक स्वस्थता और मन कायिक चिकित्सा की सहायता द्वारा बालको के मानसिक विकास की अभिवृद्धि की जा सकती है। बालको के घातक रोगो मे टिटैनस, डिफ्थीरिया, यक्ष्मा, मनेन्जाइटिस, एन्सेफलाइटिस, न्यूमोनिया, बाल यकृतशोथ आदि है।

[ल० श० वि० तथा प्र० ति०]

बालश्रम और बालश्रमिक का अस्तित्व ससार मे प्राचीन काल से ही रहा है। जो माता पिता अपने बाल बच्चो का पालन पोषण नही कर पाते, उन्हे बच्चो को किसी धनी परिवार मे नौकर बना देना पड़ता है। देहात मे बहुत से गरीब बच्चे पशु चराने का काम प्राचीन काल से करते आए है। उन दिनो जब एक गिरोह दूसरे गिरोह पर आक्रमण करता था, तब जीतनेवाला गिरोह पराजित गिरोह की स्त्रियो और बच्चो को लूट लिया करता था। फिर ये स्त्रियाँ सेविकाएँ और बच्चे गुलाम बना लिए जाते थे। यूनान देश मे यह गुलाम प्रथा प्रचलित थी। मुसलमान धर्म के साथ साथ गुलामी की प्रथा भी बढी। गुलामो से सभी प्रकार के काम कराए जाते थे। किसी प्रकार का अपराध हो जाने पर, मालिक द्वारा उन्हे मृत्यु दंड तक दे दिया जाता था। इसे कोई भी सभ्य व्यक्ति बुरा नही समझता था।

सभ्यता के विकास के साथ गुलाम बच्चो का भी जीवन सुधरता गया। उदार मनोवृत्ति के लोग अपने घर के श्रमिक बालको के प्रति भला व्यवहार करने लगे। कभी कभी वे गुलाम बालक को अपनी सपत्ति का भी स्वामी बना देते थे, या अपनी बेटी की शादी उससे कर देते थे। साधारणतः, देहात के लोग बालश्रमिकों पर अत्याचार

नहीं करते थे। यदि कोई पिता अपने पुत्र को किसी कारीगर के यहाँ काम सीखने के लिये रख देता, तो ये कारीगर प्रायः ध्यान से उन्हें कारीगरी की बातें सिखाते थे। अतः बालश्रमिको के जीवन के सुधार के विषय पर शिक्षित जनता का ध्यान नही गया, परतु जब आधुनिक सभ्यता के विकास में मशीन युग आया तथा मशीनों के द्वारा सचालित बड़े बड़े कारखाने चलने लगे, तो बालश्रमिकों पर होनेवाले अत्याचारों की ओर शिक्षित समाज का विशेष ध्यान गया।

मशीन युग में बालश्रम — मशीन युग हृदयहीन है। मशीन का मालिक थोड़े समय में अधिक सामान तैयार कराना चाहता है। वह चाहता है कि उसकी मशीन खाली न रहे और जिस प्रकार तेजी के साथ मशीन काम करती है उसी प्रकार मनुष्य भी बिना रुकावट के काम करता रहे। कारखाना मनुष्य को भी मशीन बना देता है। यहाँ मानवता को स्थान नही रहता। उम्र का कोई विचार नही रखा जाता। यदि कोई बच्चा कारखाने का कोई भी कार्य कर सकता है, तो उसे वह काम दे दिया जाता है। कारखाने के बहुत से कार्यों मे बुद्धि की आवश्यकता ही नही पड़ती, अतएव ऐसे काम बच्चो से कराए जाते हैं। केवल उनको इतनी शिक्षा दे दी जाती है कि वे उसकी देखभाल कर सकें। कुछ सहृदय मालिक इन बच्चों को भी प्रशिक्षण दे देते हैं, जिससे वे सावधानी-वाले कार्य भी कर सकें। परतु इस प्रकार के मालिक कम ही होते हैं। इसलिये कारखानो के युग में बच्चो के साथ सहृदयता का व्यवहार हो, इसकी आवश्यकता का अनुभव समाज सुधारको ने किया।

बालश्रम कानून — बालश्रमिको के जीवन के सुधार की माँग पहले पहल इंग्लैंड मे हुई। इग्लैंड ही पहला यूरोपीय देश है जिसमें कल कारखानो का विकास हुआ और जहाँ बालश्रमिकों का अधिक से अधिक उपयोग होता रहा। बालश्रम सबधी कानून बनने के पूर्व आठ से बारह वर्ष तक के बच्चो से भी आठ दस घटे तक काम कराया जाता था। बालश्रम संबधी पहला कानून इंग्लैड मे सन् १८०२ मे बना। इसका उद्देश्य सूती मिलो मे बालको से अति श्रम कराने में रुकावट डालना था। किंतु कानून बनने से ही किसी वर्ग पर अत्याचार होना नही बद हो जाता। इसके लिये पर्याप्त जनशिक्षा तथा प्रबल जनमत की आवश्यकता होती है। यह जनमत बीस वर्षों मे तैयार हुआ। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् १८१६ मे एक कानून पास किया, जिसके अनुसार सूती मिलो मे कार्य करनेवाले बालको की उम्र कम से कम नौ वर्ष निर्धारित की गई। किंतु नियम का पालन कराने के लिये यथोचित व्यवस्था न होने के कारण, वह ठीक से कारखानो पर लागू न हो सका। अतएव सन् १८३३ मे ब्रिटिश पार्लियामेंट ने फिर बालश्रम शोषण को रोकने के लिये एक फैक्ट्री ऐक्ट पास किया। इस फैक्ट्री ऐक्ट के अनुसार बालश्रमिक को अनेक प्रकार की सुविधाएँ दी गई और कानून का पालन कराने के लिये निरीक्षण की व्यवस्था की गई। धीरे धीरे श्रमजीवी बच्चों के जीवन में अधिकाधिक सुधार होता गया। जिस प्रकार का कार्य बालश्रमिक का जीवन सुधारने के लिये इग्लैंड में हुआ, उसी प्रकार का कार्य यूरोप के अन्य कल कारखानेवाले देशों में भी हुआ।

अंतरराष्ट्रीय बालश्रम — १६वीं शताब्दी के मध्यकाल तक यूरोप के प्रायः सभी देश कल कारखानों से संपन्न हो गए। अतएव बालश्रमिक की रक्षा का प्रश्न सपूर्ण यूरोप के लिये महत्वपूर्ण बन गया। सन् १८६० मे अंतरराष्ट्रीय श्रम संमेलन जर्मन सरकार के आमंत्रण पर बर्लिन में हुआ। इसमे यूरोप की चौदह सरकारों ने अपने प्रतिनिधि भेजे। इस संमेलन में बालश्रम संबधी अनेक बातों पर विचार विमर्श हुआ। किंतु विभिन्न देशों के प्रतिनिधि एक मत न हो सके। सन् १६०० मे श्रम कानून बनवाने के लिये एक अतरराष्ट्रीय संघ निर्मित हुआ। इसका मुख्य केंद्र स्विट्सरलैंड के बासले नगर में स्थापित हुआ तथा यूरोप के १६ देशो मे इसकी शाखाएँ फैली। इस सस्था ने लगभग २० वर्ष तक बालश्रम संबधी कानून बनने की आवश्यकता का प्रचार अपने समेलनो, लेखों और पुस्तिकाओं द्वारा किया। प्रथम विश्वयुद्ध का अत होने पर १६१६ ई० की सधि मे सस्था यह व्यवस्था करवाने मे सफल हुई कि बालको का अनुचित शोषण न हो। इसके कुछ ही समय बाद अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना हुई, जो राष्ट्रसघ के अंतर्गत २० वर्ष तक काम करता रहा।

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने १६१६ ई० मे बालश्रमिक की उम्र कम से कम १४ वर्ष हो, इस आशय का कानून बनाने पर जोर दिया। बाद मे १६३७ ई० में यूरोपीय बालकों के लिये १५ साल, जापान के बालको के लिये १४ साल तथा भारतीय बालको के लिये १३ साल का नियम बनाया गया। इस संस्था की भिन्न भिन्न सभाओं में कल कारखानों के अतिरिक्त दूसरे संस्थानों मे कार्य करनेवाले बालको की उम्र १४ वर्ष रखी गई, जो आगे चलकर १५ वर्ष कर दी गई। इसी अतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने बालकों को खतरनाक तथा अस्वास्थ्यकर कामो से, तथा रात में काम करने से रोकने के लिये नियम बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया और इसमे सफलता भी प्राप्त की। अतरराष्ट्रीय श्रम संगठन सभी कल कारखानो मे काम करनेवाले लोगों की सुविधा के लिये यूरोप की विभिन्न सरकारों द्वारा नियम बनवाता रहता है। सन् १६३६ तक यूरोप की १५ सरकारो ने कारखानों मे काम करनेवालो की उम्र कम से कम १४ वर्ष कर दी। परंतु प्रथम विश्वयुद्ध के कारण कुछ समय तक बालश्रम सबंधी नियमों का पालन न हो सका। विश्वयुद्ध के बाद सभी क्षेत्रों मे बालश्रमिक के जीवन मे सुधार हुआ।

अतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने ऐसे अनेक नियम विभिन्न देशो की सरकारों से बनवाए जो बच्चो का खतरनाक, अस्वास्थ्यकर अथवा अनैतिक कार्यों मे उपयोग करने से रोकते हैं। जो लड़के पढने की क्षमता रखते थे, उनको कारखानों मे कार्य करने से रोकने के लिये भी नियम बनवाए गए। कितने ही देशों की सरकारो ने १८ वर्ष से कम उम्र के बालकों का रात मे काम करना गैरकानूनी घोषित कर दिया। इन कानूनो की देखभाल के लिये निरीक्षक नियुक्त किए। निरीक्षण का कार्य सरल करने के लिये कारखानो के मालिकों को आज्ञा दी जाती है कि वे १६ वर्ष तथा १८ वर्ष के सभी बालकों की पंजिका रखें और इसमे उनकी जन्मतिथि स्पष्टतः दिखाई जाय यह भी दिखाया जाय कि वे किस प्रकार के काम मे लगे हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने कृषि में काम करनेवाले बालको के

रक्षार्थ भी अनेक प्रकार के नियम बनवाने की चेष्टा की। इन व्यवसायों में १४ वर्ष से कम के बालकों को काम करने से रोका गया है। अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन ने न केवल बालश्रम शोषण को ही अनेक प्रकार से रोका वरन् उसने कल कारखानों में उच्च स्तर के कार्य करने के लिये बालकों की प्रौद्योगिक शिक्षा का भी प्रबंध कराया। इसलिये इस संस्था का कार्य नकारात्मक ही न होकर विधेयात्मक भी है। एक सामान्य योग्यता के बालक को यदि नित्य-प्रति अच्छे और जटिल कार्य करने की शिक्षा मिलती जाय, तो वह सामान्य श्रमिक की श्रेणी से उठकर कुशल कारीगर या मिस्त्री बन सकता है, परंतु इसके लिये देश की सरकारों को नियम बनाना होता है कि कारखानों में कार्य करनेवाले होनहार बालकों को उचित व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा दी जाय और उनसे केवल कुली की तरह काम न लिया जाय।

सोवियत रूस का प्रयोग — बालश्रमिक का जीवनस्तर ऊँचा उठाने के लिये रूस ने नया प्रयोग किया। रूस की शिक्षाप्रणाली ने पाठशाला जानेवाले प्रत्येक विद्यार्थी के लिये किसी न किसी प्रकार के श्रम मे भाग लेना अनिवार्य कर दिया, चाहे बालक धनी हो या गरीब घर का। उसके पाठ्यक्रम मे श्रम को उतना ही महत्व दिया गया जितना बौद्धिक विकास और लौकिक सेवा को। जिस प्रकार के कार्य करने की आदत बच्चों मे प्रारंभ से ही पड़ जाती है, वही कार्य उन्हें रोचक बन जाता है और वे उसे जीवन भर लगन के साथ करते हैं। रूस का सारा राज्यविधान श्रमजीविको के रक्षार्थ ही बना है। रूस विभिन्न प्रकार के वर्गों का अस्तित्व ही मिटा देता है। अतः बालश्रमिक का वहाँ पर संमान का स्थान है। प्रत्येक बालक को अपने योग्यतानुसार कार्य दिया जाता है। बालकों की शिक्षा और उन्हें काम देने का भार सरकार ने अपने ऊपर ले लिया है। अतएव वहाँ बालश्रमिक पर उतने अत्याचार नही होते जितने दूसरे कल कारखानोंवाले देशो मे हुआ करते हैं।

सभ्यता का विकास समाज से सभी प्रकार के शोषणों को समाप्त करने की दिशा मे होता रहा है। समाज के कल्याणकर्ता ही सोचते हैं कि एक समय धनी और गरीब का, श्रमिक और मालिक का, बुद्धिजीवी और श्रमजीवी का सभी प्रकार का भेदभाव मिट जाएगा। यह भेदभाव उचित बालशिक्षा के द्वारा मिटाया जा सकता है। अत, अब ससार की प्रगतिशील शिक्षाप्रणालियों मे प्रारंभ से ही सभी वर्गों के बच्चो से श्रम कराया जाता है। महात्मा गाधी द्वारा निर्मित भारत की प्राथमिक शिक्षाप्रणाली के आलोचको ने इसपर केवल यही आपत्ति निकाली कि इसके द्वारा बालश्रमिकों का शोषण होता है। परतु यदि इस प्रणाली केसबंध मे भली भाँति विचार किया जाय तो पता चलेगा कि इसका उद्देश्य सभी प्रकार के श्रम को समाज मे संमानित बनाना तथा बालश्रम का शोषण न होने देकर उसे आनददायक रूप प्रदान करना है। श्रम के द्वारा शिक्षा, यही प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य है। श्रम का रूप देश काल के अनुसार बदलता रहेगा, किंतु श्रम और शिक्षा का भेद जितना ही मिटेगा बालश्रम का उतना ही कम शोषण होगा।

[ला० रा० शु०]

भारत में बालश्रमिक — अन्य देशों की तरह भारत में भी बालकों से श्रम कराने का रिवाज किसी न किसी रूप में लंबे समय से चला आ रहा है। प्राचीन काल में वे अपने संरक्षकों के साथ खेतों और उनके निजी व्यवसायों में सहायक हुआ करते थे। भापशक्ति का आविष्कार होने से जब नगरो और कोयला क्षेत्रों में फैक्टरियाँ खड़ी हुईं, तो उनमें बालक भी काम करने लगे।

आधुनिक औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप तथा अधिक मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति के कारण अनेक देशों की तरह भारत में भी बाल श्रमिकों की संख्या तेजी से बढी है। सन् १९५२ में श्रम ब्यूरो की जाँच के अनुसार यहाँ के कारखानों में बाल मजदूरों की संख्या ६१५९ थी, जिसमें आसाम, बिहार, मद्रास और पश्चिम बंगाल मे उनकी संख्या अन्य प्रदेशों से अधिक थी। ये अधितकर रसायन, रसायन पदार्थ, खाद्य, अधातु, खनिज पदार्थ तथा तंबाकू उद्योगो में कार्य करते थे।

भारत मे बाल मजदूरो की रक्षा के लिये सन् १८८१ मे विधान बना था किंतु वह उन्ही कारखानों पर लागू होता था जिनमें कर्मचारियो की संख्या १०० या उससे अधिक थी। इसके अतिरिक्त सन् १९३३ का 'बाल (श्रम अनुबध) अधिनियम' तथा सन् १९३८ का 'बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम' भी है जिनसे बाल मजदूरों के ऊपर अधिक बोझ को रोकने तथा उनकी सुरक्षा की व्यवस्था की गई है।

फैक्टरी अधिनियम के अंतर्गत बालक की नौकरी के लिये न्यून-तम अवस्था १४ वर्ष, खान अधिनियम के अंतर्गत १५ वर्ष और उद्यान श्रमिक अधिनियम के अंतर्गत १२ वर्ष है। १८ वर्ष से कम उम्र के बालकों को फैक्टरियों, खानो अथवा चाय आदि के बागो मे तब तक नौकरी नही मिल सकती जब तक उनके पास कार्य सबधी शारीरिक दक्षता का डाक्टरी प्रमाणपत्र न हो। 'बाल नौकरी अधिनियम' (एम्प्लॉयमेंट आव चिल्ड्रेन ऐक्ट) के अनुसार, कोई भी बालक, जिसकी उम्र १५ वर्ष से कम है, उन काम धधो मे नही लगाया जा सकता जिनका संबंध रेल द्वारा डाक, माल या यात्री भेजने से हो, अथवा जिनका संबध बदरगाहो मे माल लादने उतारने के काम से हो। बीडी बनाने, गलीचा बुनने, सीमेंट, कपडा और दियासलाई आदि के कारखानो मे १४ वर्ष से कम उम्र के बालको को काम पर नही लगाया जा सकता। राज्यो द्वारा भी कानून लागू किए गए हैं जिनके अतर्गग १२ से १४ वर्ष की उम्र के बालको को नौकर रखना वर्जित है।

फैक्टरी तथा खान अधिनियमों द्वारा बालकों को ४½ घंटे प्रति-दिन काम करने की छूट मिली है। 'उद्यान श्रमिक अधिनियमो' के अतर्गत ४० घंटे प्रति सप्ताह काम करने की व्यवस्था है। रात मे बालको से काम लेना मना है।

फैक्टरियो और चाय आदि के बागो मे बालको को १२ महीने की नौकरी मे प्रति १५ दिन के बाद एक दिन की सवेतन छुट्टी का अधिकार हो जाता है, जबकि वयस्क प्रति २० दिन की नौकरी के बाद एक दिन की सवेतन छुट्टी प्राप्त करने का अधिकारी होता है। १९३३ के बाल अधिनियम के अतर्गत लिखित या मौखिक, स्पष्ट या अंतर्भुक्त ऐसा कोई भी करार रद्द माना जाएगा जिसके द्वारा १५ वर्ष की उम्र से कम बालक के श्रम को किसी लाभ या धनराशि के बदले में बंधक रखा जाता है। केवल ऐसे करार जिससे बालक को

हानि न पहुँचे तथा उसकी सेवा के योग्य उसे उचित मजदूरी मिल जाए और एक सप्ताह की पूर्वसूचना पर उसे समाप्त किया जा सके तो उसे गैरकानूनी नहीं माना जाएगा। [पु० वा०]

बालसंस्तंभ (Infantile Paralysis), या बालपक्षाघात, जिसे पोलियो (Poliomyelitis) तथा पोलियो एसेफ़लाइटिस (Polioencephalitis) भी कहते हैं, एक उग्र स्वरूप का बच्चों में होनेवाला रोग है, जिसमे मेरुरज्जु (spinal cord) के अग्रशृंग (anterior horn) तथा उसके अंदर स्थित धूसर वस्तु में अपभ्रंशन (degenaration) हो जाता है और इसके कारण चालकपक्षाघात (motor paralysis) हो जाता है।

कारण — इस रोग का औपसर्गिक कारण एक प्रकार का विषाणु (virus) होता है, जो कफ, मल, मूत्र, दूषित जल तथा खाद्य पदार्थों मे विद्यमान रहता है, मक्खियों एवं वायु द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रसारित होता है तथा दो से पाँच वर्ष की उम्र के बालको को ही आक्रांत करता है। लडकियों से अधिक यह लड़को मे हुआ करता है तथा वसंत एवं ग्रीष्मऋतु में इसकी बहुलता हो जाती है। जिन बालको को कम अवस्था मे ही टॉसिल का शल्यकर्म कराना पड़ जाता है उन्हे यह रोग होने की सभावना और अधिक होती है।

इस रोग का उपसर्ग होने के ४ से १२ दिन के पश्चात् लक्षण प्रकट हुआ करते है। सर्वप्रथम बच्चो मे शिरशूल, वमन, ज्वर, अनिद्रा, चिडचिड़ापन, सर और गर्दन पर तनाव तथा गले में घाव के लक्षण दिखाई देते हैं। इन लक्षणो के प्रकटन के दो दिनो के पश्चात् इस रोग के सर्वव्यापी लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हे दो वर्गों मे विभाजित किया जाता है; (१) पक्षाघातीय (Paralytic) (२) अपक्षाघातीय (Non-paralytic)

अपक्षाघातीय अवस्था — यह अवस्था तभी उत्पन्न होती है जब इसका उपसर्ग अग्रशृग कोशिकाओ (horn cells) तक ही पहुँचकर रुक जाता है। इसके प्रमुख लक्षण मे रोगी एकाएक सर, गरदन, हाथ पैर तथा पीठ मे दर्द बताता है। उसको वमन, विरेचन तथा मांसपेशियो मे आक्षेप होता है। ज्वर १०३° तक हो जाता है तथा मस्तिष्क आवरण मे तानिका क्षोभ (meningeal irritation) होता है।

पक्षाघातीय अवस्था—यह अवस्था अपक्षाघातीय अवस्था के तत्काल बाद ही आरंभ हो जाती है, जिसके अंतर्गत ऐच्छिक मासपेशियाँ पक्षाघातग्रस्त हो जाती हैं। इसमे मुख्यत: पैर आक्रात होते हैं। इसको लोअर मोटर न्यूरॉन पक्षाघात (Lower Motor Neurone Paralysis) कहते है, जो आगे चलकर स्तब्धसक्थि संस्तंभ (spastic paraplegia) का रूप ग्रहण कर लेता है। कभी कभी एक पैर और एक हाथ आक्रात हो जाता है। गरदन एव पीठ की मासपेशियो मे ऐंठन (spasm) होती है, तथा रोगी को कोष्ठबद्धता रहती है। वैसे तो शरीर की समस्त मासपेशियो को छूने, अथवा संधियों मे हलचल पैदा होने, के कारण तीव्र वेदना होती है।

प्रकार — उपर्युक्त स्पाइनल तंत्रिका किस्म (spinal nerve type) के अतिरिक्त इस रोग के और भी प्रकार होते हैं :

(क) मस्तिष्क वृंत (Brain Stem) किस्म — इसमें मस्तिष्क की सातवीं; छठी और तीसरी तंत्रिका मुख्य रूप से आक्रांत होती हैं, जिसके फलस्वरूप रोगी को भोजन निगलने तथा साँस लेने मे कष्ट होता है एवं हृदय की गति की अनियमितता हो जाती है।

(ख) न्यूराइटी (Neuritic) किस्म — इसके अतर्गत हाथ और पैर मे उग्र स्वरूप का दर्द होता है। इसमे कुछ घंटों मे श्वासगत मासपेशी का पक्षाघात होता है और रोगी की मृत्यु हो जाती है।

(ग) अनुमस्तिष्क (Cerebellar) किस्म — इसमें रोगी को अत्यंत तीव्र शिरशूल, भ्रमि (vertigo) वमन तथा वाणी संबंधी विकार हो जाता है।

(घ) सेरेब्रल (Cerebral) किस्म — इसका प्रारंभ सर्वांग आक्षेप के रूप में होता है, जो कई घंटों तक रहता है और अंत मे इसके कारण अर्धांग पक्षाघात (hemiplegia) तथा सक्थि संस्तंभ (paraplegia) होता है। साथ ही साथ अनेक प्रकार के मानसिक विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं।

उपद्रव — इसमे आक्रात मांसपेशियाँ स्थायी रूप से पक्षाघातग्रस्त हो जाती हैं। इस रोग के मृदु आक्रमण के अंतर्गत रीढ की हड्डी से या तो एक तरफ शरीर का झुकाव हो जाता है, जिसे स्कोलियोसिस (Scoliosis), कहते है, अथवा आगे की तरफ झुकाव हो जाता है, जिसे काइफोसिस (kyphosis) कहते है। आक्रात भाग की हड्डियाँ सुचारु रूप से नहीं बढ़ती तथा हाथ पैर की हड्डियाँ टेढी हो जाती हैं। मासपेशियाँ अंत मे अत्यधिक कमजोर हो जाती है।

उपचार — डा० शाक ने इसके प्रतिरोधात्मक उपचार के निमित्त एक प्रकार की वैक्सीन (vaccine) का आविष्कार किया है, जिसका अंत पेशी इंजेक्शन के रूप में प्रयोग करते है। अन्य उपचार के अंतर्गत खाद्य एवं पेय पदार्थों को मक्खियो एव इसी प्रकार के अन्य जीवों से दूर रखना चाहिए और इसके लिये डी० डी० टी० का प्रयोग अत्यत लाभकारी है। स्कूल मे तथा बोर्डिंग हाउस मे अधिकतर बच्चे आक्रात होते है, इसके लिये उनका किसी भी प्रकार से पृथक्करण आवश्यक है। रोगग्रस्त बालक को ज्वर उतरने के बाद कम से कम तीन सप्ताह तक अलग रखना चाहिए। उसके मल मूत्र तथा शरीर से निकले अन्य उपसर्ग की सफाई रखना चाहिए। अन्य ओषधिजन्य उपचार के लिये किसी योग्य चिकित्सक की राय लेना उत्तम है। [प्रि० कु० चौ०]

बालाघाट १. जिला, स्थिति : २१° १९' से २२° २४' उ० अ० तथा ७९° ३९' से ८१° ३' पू० दे०। यह भारत के मध्य प्रदेश राज्य में एक जिला है। इसका क्षेत्रफल ३,५७३ वर्ग मील तथा जनसख्या ८,०६,७०२ (१९६१) है। इसके उत्तर मे मडला, पूर्व मे दुर्ग, दक्षिण में भंडारा, तथा पश्चिम मे सिवनी जिले स्थित है। सतपुड़ा पठार का पूर्वी भाग इस जिले मे पड़ता है। इसे छत्तीसगढ़ के मैदान से मैकाल पर्वतश्रेणी अलग करती है। लगभग २/३ भाग पहाड़ियों से भरा है। रायगढ़ का पठार लगभग २,००० फुट ऊँचा है।

मानसून के समय वातावरण मे नमी आ जाती है। बैहर प्रदेश में वर्षा घनघोर होती है। वैसे, जिले की औसत वर्षा ६२ इंच रहती है। यहाँ की प्रमुख उपज धान है। इसके अलावा कोदो, कुटकी, गेहूँ,

उड़द, चना, आदि भी उगाए जाते हैं। यहाँ सूती कपड़े, चूड़ियाँ, पीतल के बरतन तथा मिट्टी के तेल के कनस्तरों से चलनी आदि वस्तुओं को बनाने का काम होता है। यातायात तथा शिक्षा मे भी बालाघाट का नाम प्रमुख है।

२. नगर, स्थिति : २१° ४९' उ० अ० तथा ८०° १२' पू० दे०। बालाघाट जिले में स्थित एक नगर है, जो रेलवे मार्ग के किनारे बसा हुआ है। यह बबई से ६२६ मील तथा गोंदिया रेलवे जकशन से २५ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ से वेनगगा नदी की दूरी दो मील है। नगर के पास ही एक मैंगनीज की खान है। वस्तु उत्पादन मे इसका विशेष महत्व नही है, किंतु कुछ व्यापार होता है। जनसंख्या १८,६६० (१६६१) है।

३. पर्वत, यह आंध्रप्रदेश में हैदराबाद के पश्चिम मे स्थित एक पर्वतश्रेणी है जिसकी लबाई २०० मील तथा चौड़ाई तीन से छह मील तक है। बाहुकूटों द्वारा यह टुकड़ो मे बँट गया है। [र० चं० दु०]

बालाजी आवजी चिटनवीस बालाजी के पिताजी आबाजी हरी मजुमदार उपनाम चित्रे ग्यारह वर्षों तक जंजीरा मे बावजी खाँ हब्शी के मुख्य कारबारी थे। बावजी खाँ की मृत्यु के बाद उसके पुत्रो ने आबाजी को मारकर समुद्र मे फेंक दिया। आबाजी के बालाजी आदि चार पुत्र थे। उनके मामा ने उनका लालन पालन किया।

सन् १६४७-१६४८ के लगभग जब शिवाजी ने स्वराज्य स्थापना की क्रांति की धूम मचाई तो बालाजी ने उसमे संमिलित होने का अपना निश्चय शिवाजी को एक पत्र लिखकर प्रकट किया। उसके सुंदर अक्षर, लेखनकौशल और विशेषत: उसमे जो स्वराज निष्ठा प्रदर्शित हुई थी उसको पढ़कर शिवाजी बालाजी और उसके भाई तथा माताजी को अपने साथ ले गए। बालाजी की सेवा देखकर शिवाजी ने ता० १६ अगस्त, सन् १६६२ को चिटनीस का कार्यभार उन्हे सौंपा। बालाजी को हमेशा शिवाजी के साथ रहना पड़ता था। जब सन् १६६६ ई० मे शिवाजी आगरा मे कैद हुए तो उनको मुक्त कराने की बालाजी ने भरसक चेष्टा की। राजकीय दफ्तर का काम तो बालाजी करते ही थे किंतु वकालत का काम भी वे बड़ी सफाई के साथ करते थे। जजीरा के सिद्दी के प्रकरण मे बालाजी की स्पष्टता तथा एकनिष्ठा प्रशसनीय थी। ता० १३ अक्टूबर, सन् १६४७ को बालाजी को पालकी का संमान मिला। बालाजी की लेखनशैली सरल तथा स्पष्ट थी जिससे राजकीय मामलो मे कभी गडबडी नही होती थी। वे सच्चे स्वामीसेवक थे। बालाजी की स्मृति अत्यत तीव्र थी। वे एक सफल राजनीतिज्ञ थे। मराठो के इतिहास मे बालाजी एकनिष्ठता के प्रतीक हैं। मोडी लिपि को सरल, स्पष्ट करने मे भी वे अग्रगन्य हैं। महाराज शिवाजी की दु:खद मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र संभाजी ने अकारण आशंकित होकर इस एकनिष्ठ राजसेवक को बड़ी क्रूरता से मरवा दिया। [भी० गो० दे०]

बालाजी बाजीराव दे० 'पेशवा'।

बालाजी विश्वनाथ राव दे० 'पेशवा'।

बालि वाराह कल्प के तेरहवें द्वापर मे महादेव जी बालि नाम से गंधमादन पर्वत के बालखिल्याश्रम मे अवतीर्ण हुए थे। यह कथा वायु पुराण आदि कई ग्रंथों मे है। दूसरे बालि तारा के पति किष्किंधा के राजा थे जिनका वध रामचंद्र जी ने किया। इनके पिता ऋक्षराज का जन्म ब्रह्मा की अश्रुधारा से हुआ था और इनका पुत्र अंगद था जिसने लंका मे अपने पराक्रम का प्रदर्शन किया। तारा वानरपति सुषेण की कन्या थी। संभवत: इसी कारण मायावी नामक राक्षस से बालि का बैर बढा था। [रा० द्वि०]

बाली १. द्वीप, स्थिति ८° २०' उ० अ० तथा ११५° ०' पू० दे०। यह हिंदेशिया का एक द्वीप एव प्रात है जो पश्चिम मे बाली जलसंयोजक द्वारा जावा से तथा लॉम्बॉक जलसयोजक द्वारा लॉम्बॉक से विभक्त है। सन् १५६७ मे एक डच नाविक ने इसका पता लगाया था। यह यव द्वीप के पूर्व मे बाली सागर तथा हिंद महासागर के बीच मे स्थित है। यह लगभग ९३ मील लबा तथा ५७ मील चौडा है। इसका क्षेत्रफल २,६०५ वर्ग मील है। इस द्वीप के मध्यवर्ती भाग मे ज्वालामुखी पर्वतो से सबधित बहुत सी झीलें तथा पर्वतो की चोटियाँ है। इसके उत्तरी तथा दक्षिणी निचले भागो मे उपजाऊ मिट्टी पाई जाती है। बाली द्वीप के पश्चिमी भाग मे जनसख्या कम है। तटरेखा अच्छी न होने के कारण यहाँ पर अच्छे बदरगाह नही है। लोगो का मुख्य उद्यम मछली पकडना तथा कृषि करना है। धान, नारियल, कहवा तथा तबाकू यहाँ की मुख्य फसलें है। किसी समय हिंदू सस्कृति यहाँ पर पूर्ण उन्नति पर थी। अब भी जनता रामलीला पूर्ण उत्साह के साथ करती है। यहाँ की राजधानी तथा मुख्य नगर सिंगाराजा (Singaradga जनसख्या १२,३४५) है। [शि० म० सि०]

२ नगर, स्थिति : २२° ३९' उ० अ० तथा ८८° २१' पू० दे०। यह भारत मे पश्चिमी बंगाल के हावड़ा जिले मे हुगली नदी के दाएँ किनारे पर, कलकत्ता से लगभग तीन मील उत्तर, स्थित एक प्रसिद्ध एवं धनी नगर है। यह विलिंगटन पुल के पश्चिमी सिरे के पास स्थित है, जो हुगली को पार करता है। यह एक औद्योगिक नगर है जहाँ कई वर्कशॉप तथा छोटे छोटे कारखाने है, जिनमे कागज बनाना प्रमुख है। द्वितीय विश्व महायुद्ध मे दक्षिण-पूर्व एशिया कमान का फोटो टोह केंद्र तथा सयुक्त राज्य का वायु कोर (Air Corps) का आठवाँ फोटोग्रुप स्टेशन यहीं था। इसकी जनसख्या १,३०,८६६ (१६६१) है। रेलो एव सडको मे इसने काफी उन्नति कर ली है।

बालू चट्टानें और अन्य धात्विक पदार्थ विविध प्राकृतिक और अप्राकृतिक साधनो से टूट फूटकर बजरी, बालू, गाद या चिकनी मिट्टी का रूप ले लेते है। यदि टुकड़े बड़े हुए तो बजरी, और यदि छोटे हुए तो कणों, के विस्तार के हिसाब से उन्हें क्रमश: बालू, गाद या चिकनी मिट्टी कहते है। अमरीका मे ०.०६ से २ मिमी० तक के और यूरोप मे ०.०२ से २ मिमी० तक के कण बालू कहलाते हैं। भारतीय मानकों के अनुसार भारतीय मानक छननी सं० ४८० (०.२ इंच) से गुजर जानेवाले कण बालू मे हो सकते हैं। इस सीमा के अंदर छोटे बड़े सभी प्रकार के कण उसमें होने चाहिए। इंजीनियरी मे ऐसा बालू महत्वपूर्ण है। छोटे बड़े कणों का अनुमान सूक्ष्मता मापाक द्वारा लगाया जाता है। बालू की एक निश्चित तोल भारतीय मानक छननी सं० ४८०, २७०, १२०, ६०, ३० और १५ (अर्थात् ब्रिटिश

मानक छननी ०·२ इंच, और सं० ७, १४, २५, ५२ १००) में से छानी जाती है। प्रत्येक छननी से न निकल सकनेवाला अंश जोड़ लिया जाता है, जो सूक्ष्मता मापाक कहलाता है। महीन बालू का सूक्ष्मता मापाक १·० से २·५ के बीच होना चाहिए। इससे अधिक हो तो वह मोटा बालू कहलाता है।

यद्यपि पृथ्वी की पपड़ी में पाए जानेवाले सभी प्रकार के पदार्थ, जिनसे चट्टानें बना करती हैं, बालू मे पाए जाते हैं, किंतु प्रायः उनमे से थोड़े पदार्थों की ही बहुलता बालू में रहती है। अत्यंत व्यापक रूप से मिलनेवाला पदार्थ स्फटिक है, क्योंकि यह चट्टानो मे बहुत होता है और अत्यंत कठोर एवं विदरणरहित होता है, जिससे इसके कण सरलता से पिसकर बहुत बारीक नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त यह पानी मे घुलता नही, न विघटित ही होता है। कही कही बालू मे अन्य अनेक पदार्थों के साथ फेल्स्पार, चूनेदार पदार्थ, खनिज लोह और ज्वालामुखी काच आदि भी बहुतायत से पाए जाते हैं। अधिकाश स्फटिक-बालू मे थोड़ा बहुत फेल्स्पार तो होता ही है। श्वेत अभ्रक के छोटे छोटे टुकड़े भी प्रायः बालू में मिलते हैं, क्योंकि यह नरम तथा भंगुर होते हुए भी बहुत धीरे धीरे विघटित होता है।

इन सामान्य पदार्थो के अतिरिक्त कुछ भारी पदार्थ भी, जिनसे चट्टाने बना करती है, जैसे तामड़ा, टूरमैलिन, जर्कन, रूटाइल, पुखराज, पाइरॉक्सीन और ऐंफिबोल आदि थोड़ी बहुत मात्रा में सभी प्रकार की बालू मे रहते हैं। कहीं कहीं समुद्रतट पर, या नदियो मे, धाराप्रवाह के कारण हलके पदार्थ बह जाते हैं और ये भारी पदार्थ अधिक मात्रा मे एकत्र हो जाते है। ये आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण निक्षेप कहलाते है। इन्ही मे नियारिये तथा हीरे या अन्य मणियाँ सोना, प्लैटिनम, राँगा, मोनजाइट या अन्य खनिज जिनके मिलने की संभावना होती है, खोजा करते हैं।

मृद्भाड — काँच और सिलिकेट उद्योग मे सिलिका के रूप मे अत्यंत शुद्ध स्फटिक-बालू की बड़ी मात्रा मे आवश्यकता होती है। विविध प्रकार की भट्टियो मे अस्तर करने के लिये भी ऐसा ही बालू लगता है। ढलाई के कारखानो मे जिस मिट्टी से साँचे बनाये जाते हैं, उसमे भी यही बालू मिला रहता है और इसके कण चिकनी मिट्टी द्वारा परस्पर बँधे रहते है।

स्फटिक कण कठोर और विदरण रहित होते हैं। अतः स्फटिक-बालू अपघर्षक बनाने के लिये भी बहुत काम आता है। तामड़ा बालू भी इस काम के लिये अत्यत उपयुक्त है, यद्यपि यह बहुत अधिक नही पाया जाता।

साधारण बालू के और भी अनेक उपयोग हैं, जिनमे मुख्यतया चिनाई का मसाला और कंक्रीट के उपादान के रूप में इसका उपयोग उल्लेखनीय है। चूना या सीमेंट बालू के कणो को परस्पर जोडकर, एक कठोर संहति बना देते हैं, जिसपर मसाला या कंक्रीट की सामर्थ्य बहुत अंशो तक निर्भर होती है। निर्माण सामग्री के रूप मे बालू का और भी उपयोग है, जैसे फर्शों या नीवो के नीचे बिछाना, छत पर चूना कंक्रीट के नीचे अलगाव परत के रूप में बिछाना तथा सडको पर छाना देना आदि। ईंटें बनाने के लिये भी मिट्टी मे बारीक बालू होना चाहिए।

धरती की पपड़ी में बालू की परतें एक और दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। अंतर्भौम जल इन्ही परतो मे भरा रहता है, जो कुएँ खोदने पर, या नलकूप गलाने पर, उपलब्ध होता है और हमारी जल संभरण समस्या का समाधान संभव बनाता है। मिट्टी के साथ मिला हुआ बालू ही उसकी जल शोषण क्षमता का आधार है, क्योंकि चिकनी मिट्टी की परत पानी नही धारण कर सकती। खेतों मे थोड़ी ही गहराई पर चिकनी मिट्टी होने से भूमि ऊसर हो जाती है। कुछ परिमाण में बालू मिश्रित मिट्टी, जो दुमट कहलाती है, खेती के लिये अच्छी होती है। [वि० प्र० गु०]

बालूमक्षिका ज्वर (Sandfly Fever) इसे फ्लिबॉटोमस ज्वर या पापाटेसाइ ज्वर भी कहते है। यह रोग अत्यत सूक्ष्म विषाणु द्वारा होता है, जो फिल्टर के पार जा सकता है। यह तीव्र ज्वर संक्रामक होता है तथा अत्यंत दौर्बल्य छोड जाता है। फ्लिबॉटोमस पापाटेसाइ (Phlebotomus papatascii) नामक बालू की मादा मक्खी इसके विषाणु के वाहन का कार्य करती है।

यह ज्वर पूर्वी गोलार्ध के नम प्रदेशों, विशेषकर भूमध्यसागर के आसपास, भारत के कुछ हिस्सों आदि, मे विशेष रूप से फैला है। इस मक्खी की प्रजनन ऋतु के बाद ग्रीष्म मे यह रोग अधिक फैलता है।

मादा बालूमक्खी जब इस रोग से पीड़ित व्यक्ति का रक्तपान करती है, तब इस ज्वर के विषाणु रक्त के साथ मक्खी के उदर मे प्रविष्ट हो जाते हैं, जहाँ सात से दस दिनो के अंदर इनका उद्भवन होता है तथा इसके बाद वह बालूमक्खी जीवन पर्यंत रोगवाहिनी बनी रहती है। रोगी के रक्त मे ये विषाणु सदैव नही रहते। केवल रोग के लक्षण प्रकट होने के ४८ घंटे पूर्व से २४ घंटे बाद तक रहते हैं।

यह रोगवाहक मक्खी, जब किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटती है तब इन विषाणुओं का एक समूह उसकी त्वचा के भीतर प्रविष्ट हो जाता है। वहाँ ये विषाणु शरीर की रक्षक सेना से लडते है तथा अपनी सख्यावृद्धि करते है। लगभग ढाई से पाँच दिनो के पश्चात् व्यक्ति को यकायक सुस्ती, दौर्बल्य, चक्कर आना तथा उदर मे कष्ट बोध होने लगता है। दूसरे दिन ठंढक के साथ ज्वर तीव्रता से १०२° से १०५° फारेनहाइट (३८° सें० से ४०·५०° सें०) तक पहुँचता है। मस्तक के अग्र भाग मे अत्यत तीव्र पीडा, नेत्रगोलको के पार्श्व मे पीडा, मासपेशियो तथा जोडो मे दर्द, रक्ताभ मुखमंडल तथा तीव्र नाडीगति आदि, लक्षण ज्वर प्रकट हो जाते है। साधारणतया दो दिनों के पश्चात् उतर जाता है, किंतु अत्यत शैथिल्य और दौर्बल्य छोड जाता है। कुछ दिनो या सप्ताहों के पश्चात् व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ होता है।

यह ज्वर घातक नही होता। चिकित्सा भी कोई विशेष नहीं, केवल लाक्षणिक ही है।

बालूमक्खी का नाश, उसके संपर्क से बचाव तथा रोगी का उचित पृथक्करण ही इस रोग से बचाव के साधन हैं। यह मक्खी अत्यंत सूक्ष्म होती है तथा मनुष्यों के निवास के पास ही पौधों, दरारो तथा अँधेरे स्थानो मे अंडे देती है। इन अंडों मे लार्वा उत्पन्न होते हैं, जो ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभ मे मक्खी का रूप धारण कर लेते हैं। यह मक्खी केवल सूर्यास्त के पश्चात् तथा सूर्योदय के

पूर्व ही रक्तपान करती हैं तथा धरती के पास ही रहती है। ऊपरी खंड के शयनकक्ष कुछ सुरक्षित होते हैं। मसहरी अत्यंत बारीक जाली की होनी चाहिए। डाइमेथिल थैलेट, डाइब्यूटिल थैलेट, बेंज़ील बेंज़ीएट आदि औषधियाँ अनावृत त्वचा पर लगाने से भी मक्खी दूर रहती है। दीवारों आदि पर डी० डी० टी० के छिड़काव द्वारा रोगी के पास बालूमक्खी को पहुँचने से रोकना रोग से बचाव के लिये आवश्यक है। [गो० दा० श०]

बालेश्वर (बालासोर Balasore) १. जिला, स्थिति : २०° ४४' से २१° ५७' उ० अ० तथा ८६° १६' से ८७° ३१' पू० दे०। यह भारत के उड़ीसा राज्य में एक जिला है। इसके उत्तर-पूर्व में मेदिनीपुर, उत्तरी और पश्चिमी सीमा पर मयूरभंज, नीलगिरि एवं केंदुझरगढ (क्योझर), दक्षिण में वैतरणी नदी तथा पूर्व की ओर बंगाल की खाडी इसकी सीमा बनाती है। यह जिला सागर एवं पूर्वीघाट पहाड के बीच में स्थित है। यहाँ पर जलोढ़ मिट्टी मिलती है। यह उत्तर मे ३० मील तथा दक्षिण मे ४० मील तक चौड़ी पट्टी के रूप में है। समुद्र के किनारे वाली करीब तीन मील चौडी पट्टी नमकीन एवं कृषि के अयोग्य है। पश्चिमी भाग भी जंगली एवं अनुपजाऊ है। स्वर्णरेखा, सारथा, पाँचपारा, हासकुरा आदि नदियाँ बहती हैं। इसका क्षेत्रफल २,५०० वर्ग मील एवं जनसंख्या १४,१५,९२३ (१९६१) है। इसका मध्य भाग उपजाऊ है जहाँ धान की फसल प्रमुख है। धान साल मे तीन बार पैदा किया जाता है। चटाई, सूती कपड़ा एव पीतल के बरतन बनाना प्रमुख उद्योग हैं।

२. नगर, स्थिति : २१° ३०' उ० अ० तथा ८६° ५६' पू० दे०। बालेश्वर जिले में बूढाबलंग नामक नदी के किनारे नदी के मुहाने से १५ मील ऊपर बसा नगर है। यहाँ से सागर सिर्फ छह मील दूर पड़ता है। जनसख्या ३३,९३१ (१९६१) है। इसका नाम महादेव बाणेश्वर के नाम पर पडा है। अंग्रेजी कपनी एवं औरंगजेब का युद्ध यहीं हुआ था। इतिहास में इसका काफी नाम रहा है।

बॉल्कन प्रायद्वीप (Balkan peninsula) स्थिति : ४४° ०' से ३६° ०' उ० अ० तथा १८° ०' से २८° ०' पू० दे०। दक्षिणी यूरोप का यह सबसे पूर्वी प्रायद्वीप है। इसके पूर्व में कालासागर, इजिऐन सागर, मारमारा सागर, दक्षिण में भूमध्यसागर, पश्चिम मे इयोनियन तथा एड्रिऐटिक सागर हैं तथा उत्तर में सावा, कृपा और डैन्यूब नदियाँ बहती हैं। इस प्रकार संपूर्ण ऐल्बेनिया, यूनान, बल्गेरिया, यूगोस्लाविया और रूमानियाँ के कुछ भाग को बॉल्कन प्रायद्वीप कहा जाता है। उपर्युक्त छह देशो को बॉल्कन स्टेट भी कहा जाता है। यह पहाड़ी क्षेत्र है तथा इसकी मुख्य पर्वतमालाएँ डिनैरिक ऐल्प्स, बॉल्कन पर्वत तथा रोडोपे पर्वत हैं। यहाँ की मुख्य नदियाँ मोरावा, वारदार, स्ट्रूमा (Struma), मेस्ता तथा मैरित्सा है। जलवायु महाद्वीपीय है परंतु एड्रिऐटिक, इयोनियन तथा इजिऐन समुद्रों के तट पर रूमसागरीय जलवायु पाई जाती है, यह संपूर्ण क्षेत्र कृषिप्रधान है। इसके अलावा यहाँ पर लोहा, कोयला, मैंगनीज, ताँबा, जस्ता तथा सीस आदि के कीमती खनिज भी पाए जाते हैं। यहाँ पर अनेक मानव जातियाँ बसी हुई हैं। [श्री कु० चं० ख०]

बाल्कन युद्ध सन् १९१२ में रूस और फ्रांस में यह समझौता हो गया कि यदि बाल्कन प्रायद्वीप के प्रश्न पर जर्मनी अथवा ऑस्ट्रिया रूस से युद्ध करेंगे तो फास रूस के साथ रहेगा। फ्रांसीसी सहायता का आश्वासन मिल जाने पर बाल्कन प्रायद्वीप मे रूस बेरोक टोक हस्तक्षेप करने लगा। रूस के उकसाने पर चार बाल्कन राज्यों ने मिलकर सन् १९१२ मे गुप्त रूप से एक समझौता किया। ये राज्य थे यूनान, बल्गेरिया, माटीनीग्रो तथा सर्विया। इस समय टर्की निर्बल हो गया था और वहाँ आतरिक अशाति फैली हुई थी। बाल्कन राज्यों के समझौते का उद्देश्य यह था कि वे टर्की से युद्ध करके उसके शासन को यूरोप से समाप्त कर दें, इसके बाद जीते हुए क्षेत्रों को आपस में बाँट लें। मैसीडोनिया पर इन राज्यो की लोलुप दृष्टि विशेष रूप से थी। इसलिये इस समझौते मे यह भी स्पष्ट कर लिया गया था कि टर्की की पराजय के पश्चात् मैसीडोनिया के प्रदेशों को किस प्रकार विभक्त किया जायगा। यह निश्चित हो गया था कि मैसीडोनिया का प्रमुख भाग बलगेरिया को दिया जायगा तथा अल्बानिया सर्विया को दे दिया जायगा।

यह समझौता हो जाने पर बाल्कन राज्यों ने एक बहाना लेकर टर्की के विरुद्ध १७ अक्टूबर, १९१२ को युद्ध की घोषणा कर दी। इन राज्यो का कहना था कि मैसीडोनिया मे ईसाइयों के साथ बडा क्रूर अत्याचार हो रहा है। अतः वे मैसीडोनिया को टर्की के घृणित शासन से मुक्त करना चाहते हैं। उन्होने टर्की से मैसीडोनिया में सुधार करने को कहा पर टर्की के इन्कार करने पर युद्ध प्रारंभ हो गया। तुर्की सेना बुरी तरह हार गई और बाल्कन राज्यों को आशातीत सफलता मिली। मॉटीनीग्रो तथा सर्विया की सेनाओं ने अल्बानिया पर अपना अधिकार कर लिया। यूनानी सेनाओं ने एड्रियानोपल के प्रसिद्ध दुर्ग को तुर्कों से छीन लिया। बलगेरियन सेना थ्रेस पर आक्रमण करके प्रमुख तुर्क सेना पर विजय प्राप्त करती हुई कास्टैंटिनोपल के बहुत निकट पहुँच गई। इस समय टर्की के सामने एक ही रास्ता था। उधर यूरोप के अन्य राज्य टर्की की दशा पर चिंतित हो रहे थे। उन्होने हस्तक्षेप करके टर्की तथा बाल्कन राज्यों मे एक अस्थायी सधि करवा दी। तत्पश्चात् दोनो पक्षों के प्रतिनिधि स्थायी संधि करने के लिये लंदन मे एकत्रित हुए। बाल्कन राज्यो की संधि की शर्तें टर्की के लिये बडी मँहगी थी। उनको स्वीकार करने पर टर्की का यूरोप से अस्तित्व ही मिट जाता। इसपर तरुण तुर्क दल के नेतृत्व मे तुर्कों ने पुन युद्ध छेड दिया। पर इस बार तुर्कों की और बुरी तरह हार हुई और वे अपने तीन और बडे दुर्गों से हाथ धो बैठे। हताश होकर टर्की के सुल्तान ने सधि का प्रस्ताव किया।

एक बार पुनः दोनों पक्षों के प्रतिनिधि १९१३ में संधि करने के लिये लंदन मे एकत्रित हुए। ३० मई, सन् १९१३ को लंदन की संधि हो गई जिसके द्वारा प्रथम बाल्कन युद्ध समाप्त हो गया : टर्की को क्रीट तथा अन्य यूरोपीय क्षेत्रों से वंचित कर दिया गया और ऑटोमन साम्राज्य केवल कास्टैंटिनोपल तथा उसके आसपास के कुछ भाग तक ही सीमित रह गया। पर इस प्रकार छीने गए प्रदेशों का आपस में बँटवारा करने के संबंध मे बाल्कन राज्यो मे परस्पर मतभेद हो गया।

द्वितीय बाल्कन युद्ध — यह कहना जरा कठिन है कि द्वितीय बाल्कन युद्ध का उत्तरदायित्व किसपर था। इसमे सदेह नहीं कि इस युद्ध में ऑस्ट्रिया तथा इटली जैसे बड़े देशों का हाथ था। बाल्कन युद्धों से पूर्व जो समझौता हुआ था उसके अनुसार सर्बिया को अलबानिया मिल जाना चाहिए था। पर ऑस्ट्रिया किसी मूल्य पर सर्बिया के अधीन अलबानिया नहीं होने देना चाहता था। इसका कारण यह था कि बोस्निया तथा हर्जेगोविना की आबादी मुख्यत यूगोस्लाव तथा सर्बों की थी। सर्बिया के साथ मिलकर ये प्रदेश एक शक्तिशाली यूगोस्लाव राज्य का निर्माण करना चाह रहे थे। यदि ऐसा हो जाता तो सर्बिया की शक्ति बढ़ जाती जो ऑस्ट्रिया के लिये अहितकर थी। फिर, अलबानिया पर अधिकार प्राप्त करने से सर्बिया की पहुँच एड्रियाटिक तक हो जाती। वास्तव में ऑस्ट्रिया की दृष्टि स्वय अलबानिया पर जमी थी। इसीलिये प्रयत्न करके ऑस्ट्रिया ने अलबानिया को एक पृथक् राज्य घोषित करवा दिया।

अलबानिया के पृथक् अस्तित्व के फलस्वरूप मैसीडोनिया का विभाजन और भी दुष्कर प्रतीत होने लगा। अब सर्बिया ने यह इच्छा प्रकट की कि अलबानिया न मिलने पर उसे मैसीडोनिया में अधिक भाग मिलना चाहिए। पर इस संबंध मे सर्बिया तथा बलगेरिया परस्पर सहमत न हो सके। जब यह मामला शातिपूर्वक न सुलझ सका तब दोनों शक्तियो ने बलप्रयोग करने का निश्चय किया। २९ जून, १९१३ को बलगेरिया ने सर्बिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। इस युद्ध को द्वितीय बाल्कन युद्ध की संज्ञा दी जाती है। इस युद्ध में यूनान, रूमानिया तथा माटीनीग्रो ने बलगेरिया के विरुद्ध सर्बिया का साथ दिया। अपने खोए हुए प्रदेशो का कुछ भाग मिल जाने की आशा मे टर्की ने भी बलगेरिया के विरुद्ध बाल्कन राज्यों की सहायता की। विवश होकर बलगेरिया ने संधि की प्रार्थना की।

दोनो पक्षो के प्रतिनिधियों ने रूमानिया की राजधानी बुखारेस्ट मे १० अगस्त, १९१३ को एक सधि की। इस संधि के कारण बलगेरिया की बड़ी मानहानि हुई। संधि के द्वारा सर्बिया तथा माटीनीग्रो ने बहुत से प्रदेश प्राप्त किए। यूनान ने भी सैलोनिका प्रदेश पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इस विभाजन के बाद मैसीडोनिया का बचा हुआ भाग ही बलगेरिया को मिल सका। इस प्रकार द्वितीय बाल्कन युद्ध समाप्त हुआ।

बुखारेस्ट की संधि द्वारा बाल्कन राज्यो मे कुछ समय के लिये शाति स्थापित हो गई। बाल्कन युद्धो के फलस्वरूप सर्बिया तथा यूनान सर्वाधिक लाभान्वित हुए। इन युद्धों का एक बड़ा परिणाम यह हुआ कि यूरोप मे तुर्की साम्राज्य लगभग समाप्त हो गया, और बाल्कन प्रायद्वीप मे ईसाई राज्यों का परिवर्धन प्रारंभ हो गया। यह कहना अनुचित होगा कि उपर्युक्त युद्धों से बाल्कन समस्या शांत हो गई। द्वितीय बाल्कन युद्ध के द्वारा बाल्कन राज्यों मे राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई जिसका विस्फोटक परिणाम था प्रथम महायुद्ध। [मि० चं० पां०]

बाल्काश (Balkhash) स्थिति : ४६° ०' उ० अ० तथा ७४° ५०' पू० दे०। यह एशियाई रूस के पूर्वी कजाक प्रजातंत्र मे अराल झील से लगभग १,००० मील पूर्व, एक विशाल अर्धचंद्राकार खारे पानी की झील है। यह लगभग ३०० मील लंबी, चार से ५० मील तक चौड़ी तथा ३५ से ६५ फुट तक गहरी है। इसका क्षेत्रफल ६,७०० वर्ग मील तथा सागरतल से ऊँचाई ९०० फुट है। ईली, आस्क् और लेप्सा आदि नदियाँ इसमे गिरती हैं, किंतु इस झील से कोई नदी निकलती नही। यह रेगिस्तानी भाग मे स्थित है। इसका पूर्व तटीय भाग खारी मिट्टी का प्रदेश है। इसके तटों पर मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। उत्तरी किनारे पर ताँबे की खाने हैं, एवं बाल्काश नगर मे ताँबा गलाने का काम भी होता है। [श्री कृ० चं० ख०]

बॉल्टिक सागर स्थिति : ५६° ०' उ० अ० तथा २०° ०' पू० दे०। यह उत्तरी यूरोप के डेनमार्क, जर्मनी, पोलैंड, रूस, फिनलैंड और स्वीडन देशो से घिरा सागर है। इसका क्षेत्रफल १,६६,००० वर्ग मील है। यह ९३० मील लबा तथा ५० से ४२५ मील तक चौड़ा है। गोटलैंड तथा स्वीडन के बीच इसकी अधिकतम गहराई १,३८० फुट है किंतु औसत गहराई २१९ फुट है। ज्वार भी इसमे अधिक ऊँचा नही आता। ओडर, विश्चुला, नीमेन, मोटाला आदि छोटी बड़ी लगभग २५० नदियाँ इसमे गिरती है। खारेपन की मात्रा कम रहती है क्योंकि नदियों के पानी मे क्षारो की कमी है। उच्च अक्षांश, उथला जल, कम खारापन तथा लघु ज्वार होने के कारण यह लगभग पाँच माह बर्फ से ढका रहता है। इसके मध्य जीलैंड, फ्यूनन, बॉर्नहॉल्म, समसो एवं ला लैंड के अतिरिक्त कई अन्य छोटे बड़े द्वीप हैं जिनका क्षेत्रफल १२,००० वर्ग मील है। इनमे से कुछ द्वीप डेनमार्क के अधिकार में हैं। इसमें बॉथनियाँ, फिनलैंड, राइगा तथा डैंजिग नामक चार बड़ी खाड़ियाँ हैं। बॉल्टिक सागर को गोटा नहर द्वारा उत्तरी सागर से मिला दिया गया है। लेनिनग्रैड, रीगा, टैलिन, हेलसिंकी, स्टॉकहोम, डैंजिग एवं कोपेनहेगेन आदि बॉल्टिक सागर के प्रमुख बंदरगाह हैं। [शि० मं० सिं०]

बॉल्टिमोर (Baltimore) स्थिति : ३९° १८' उ० अ० एवं ७६° ३७' प० दे०। संयुक्त राज्य, अमरीका के मेरीलैंड राज्य का प्रमुख नगर है, जो वाशिंगटन से ३५ मील उत्तर-पूर्व तथा फिलाडेलफिया से ९० मील पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम पटैप्सको नदी पर स्थित है। इसकी स्थापना लार्ड बॉल्टिमोर ने की थी। यह मेरीलैंड का सबसे बड़ा एवं सयुक्त राज्य का द्वितीय बड़ा बंदरगाह है। यह व्यापारिक, औद्योगिक, प्रशासकीय एवं गमनागमन का तथा शैक्षणिक केंद्र भी है। रेल, सड़क एव वायुमार्गों द्वारा देश के विभिन्न भागो तथा दूसरे देशों से संबद्ध है। बंदरगाह का पोताश्रय विस्तृत है। इसके समीप में ही अन्य औद्योगिक जिले हैं। यहाँ धातु और कोयला उतारने चढ़ाने के घाट तथा जलयान निर्माण एवं मरम्मत करने के कारखाने है। समीप ही स्पैरो प्वाइंट में विशाल जलयान निर्माण तथा देश का सबसे बड़ा इस्पात निर्माण का कारखाना है। यह विदेशी लौह धातुओं के आयात का प्रधान बंदरगाह है। आयात की मुख्य वस्तुएँ क्रोम, जस्ता, मैंगनीज, चीनी, खनिज तेल, रबर, कहवा, चाय, गरम मसाला, कार्क, उष्णकटिबधीय फल, गरी का गोला, उर्वरक एवं काष्ठमड हैं। निर्यात की वस्तुओं में अनाज, आटा, कोयला, लोहा, इस्पात, सीमेंट, यंत्र और मोटरगाड़ियाँ उल्लेखनीय है। बॉल्टिमोर मे यत्र, ट्रैक्टर, मोटर, रेल के सामान, रसायनक, टिन के डिब्बे, दवा, उर्वरक

साबुन, शीशे की वस्तुएँ, वैज्ञानिक एवं विद्युत् यंत्र, वायुयान, वस्त्र, कागज, प्रकाशन एवं मुद्रण यंत्र बनाने तथा चीनी निर्माण के कारखाने और ताँबा गलाने का एक विशाल संयंत्र, खनिज तेल शोधन एवं कहवा तथा मांस को डिब्बों में भरने के कारखाने हैं। जॉन हार्पकिंस विश्वविद्यालय एवं चिकित्सालय तथा दवा, कानून, दंतविज्ञान, भैषजकी विद्यालय, मेरीलैंड विश्वविद्यालय के कुछ विभाग, सेंट मेरी विश्वविद्यालय, कई संग्रहालय, राष्ट्रीय स्मारक एवं गिरजाघर हैं। वेस्टमिस्टर चर्चयार्ड में एडगर ऐलेन पो की कब्र है। प्रैट पुस्तकालय, वास्तुकला विद्यालय एवं अंधों के लिये प्रशिक्षणालय भी महत्वपूर्ण हैं। राज्यीय बंदी-सुधार-गृह तथा बहुत से उद्यान एवं संगीत विद्यालय यहाँ हैं। इस नगर का क्षेत्रफल ६१.६३ वर्ग मील तथा जनसंख्या ९,३६,०२४ (१९६०) है। [रा० प्र० सिं०]

बाल्ड्विन, स्टैन्ले का जन्म वुस्टरशायर के ब्यूडले नगर में ३ अगस्त, १८६७ को हुआ। संपन्न माता पिता का वह एकमात्र पुत्र था। हैरो के प्रसिद्ध स्कूल में अध्ययन के बाद १८८५ में कैंब्रिज विश्वविद्यालय में उसका प्रवेश हुआ और वहीं से १८८८ मे उसने बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। अध्ययन के बाद वह पिता की इंजीनियरिंग फर्म बाल्डविन लिमिटेड के काम मे हाथ बँटाने लगा और १८९२ में पश्चिमी वुस्टरशायर से पिता के पार्लमेंट का सदस्य चुने जाने के बाद उसने फर्म का सारा काम सँभाल लिया। इस वर्ष ही उसका विवाह हुआ। १९०६ मे किडरमिस्टर से पार्लमेंट की सदस्यता प्राप्ति के प्रयत्न में वह असफल रहा किंतु अपने क्षेत्र मे पैरिश और काउंटी कौंसिलों के सदस्य तथा मैजिस्ट्रेट के रूप मे सार्वजनिक और सरकारी कार्यों का उसने अनुभव कर लिया था।

१९०८ में पिता की मृत्यु के बाद पिता के क्षेत्र से ही वह निर्विरोध पार्लमेंट मे पहुँच गया और १९३७ तक निरतर सदस्य चुना जाता रहा। पिता पुत्र दोनों अनुदार (कंजर्वेटिव) दल के सदस्य थे। पार्लमेंट में उसका पहला भाषण १९०८ के कोयला खान के मजदूरों के बिल के विरोध मे हुआ। अगले आठ वर्षों मे कम अवसरों पर ही उसने पार्लमेंट मे अपने विचार व्यक्त किए। १९१६ मे युद्ध मंत्रिमंडल बनने पर वित्तमंत्री (चासलर ऑव दि ऐक्सचेकर) बोनर ला ने उसको निजी संसदीय सचिव नियुक्त किया। जून, १९१७ मे उसे कोष विभाग के संयुक्त अर्थमंत्री का कार्य सौंपा गया। १९१८ के चुनाव के बाद भी वह इस पद पर बना रहा। युद्धऋण मे उत्पन्न आर्थिक संकट मे १९१९ मे उसने १,५०,००० पौंड के अपने ऋण से सरकार को मुक्त कर दिया। छद्म नाम से अन्य ऋणदाता श्रीमंतों से भी ऐसा करने की अपील की। १९२० मे वह प्रिवीकौंसिल का सदस्य बनाया गया और अप्रैल, १९२१ मे वह लॉयड जॉर्ज के सयुक्त दलीय मंत्रिमंडल मे व्यापार बोर्ड का अध्यक्ष नियुक्त हुआ।

१९२२ के चुनाव के अवसर पर उसने संयुक्त दलीय सरकार की समाप्ति और अनुदार दल के स्वतत्र रूप से निर्वाचन मे भाग लेने का समर्थन किया। अनुदार दल के सदस्यों को पार्लमेंट में बहुमत प्राप्त हुआ। १३ वर्षों के बाद बोनर ला के नेतृत्व में गठित अनुदार दल के मंत्रिमंडल में बाल्डविन वित्तमंत्री नियुक्त हुआ। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के युद्धऋण के भुगतान के संबंध में समझौता इस पद पर रहते उसका महत्वपूर्ण कार्य था। अस्वस्थता के कारण बोनर ला के प्रधान मंत्री के पद से हट जाने के बाद २२ मई, १९२३ से बाल्डविन इस पद पर नियुक्त हुआ। बढ़ती हुई बेरोजगारी को दूर करने की संरक्षणात्मक प्रशुल्क की उसकी योजना को देश का समर्थन नहीं मिला। इस प्रश्न पर हुए नवंबर के निर्वाचन के अनुसार दल की स्थिति कमजोर हो गई। जनवरी, १९२४ मे उदार (लिबरल) और मजदूर (लेबर) दलो के सदस्यो के मतों से पार्लमेंट मे हारने पर बाल्डविन ने इस्तीफा दे दिया।

मजदूर दल के नेता मैकडॉनल्ड का मत्रिमंडल भी रूस संबंधी नीति के विरोध के कारण नौ मास मे ही अपदस्थ हो गया। नए चुनाव मे अनुदार दल को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। नवबर में बाल्डविन दूसरी बार प्रधान मंत्री नियुक्त हुआ और जून, १९२९ तक इस पद पर रहा। १९२६ मे द्वितीय साम्राज्य समेलन की उसने अध्यक्षता की और ब्रिटेन के स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशो का साम्राज्य के अंतर्गत बराबरी का दर्जा घोषित किया। १९२७ मे उसने राजकुमार के साथ कैनाडा की यात्रा की। लोकार्नो समझौता, स्थानीय स्वशासन, वयस्क मताधिकार, पेंशन और बिजली संबधी कानून तथा लगभग पाँच लाख आवासो का निर्माण उसके कार्यकाल की उपलब्धियाँ हैं। पर बेरोजगारी और व्यापार की मंदी को दूर करने के उसके प्रयत्न असफल रहे। मई, १९२९ के चुनाव मे लॉयड ज.र्ज के शब्दो मे 'निश्चेष्ट, गुम और बाँझ' सरकार हार गई। मजदूर दल का दूसरा मंत्रिमंडल बना, पर बेरोजगारी दूर करने के प्रश्न पर दल के सदस्यों में मतभेद के कारण यह मत्रिमडल अगस्त, १९३१ में भग हो गया। मैकडॉनल्ड के ही नेतृत्व मे गठित संयुक्त दलीय राष्ट्रीय मत्रिमंडल में बाल्डविन को कौंसिल का लार्ड प्रेसीडेंट बनाया गया। अपने दल के प्रभावशाली सदस्यो के विरोध की उपेक्षा कर १९३१ मे साइमन कमीशन की भारतीय सविधान सबधी रिपोर्ट का उसने गोलमेज संमेलन मे समर्थन किया। कमीशन की नियुक्ति उसके प्रधान मत्रित्व काल मे १९२७ मे हुई थी।

दुर्बल स्वास्थ्य के कारण मई, १९३५ मे मैकडॉनल्ड प्रधान मत्री के पद से हट गया। एक मास बाद बाल्डविन ने तीसरी बार इस पद का भार सँभाला और इस वर्ष ही पार्लमेंट मे इंडिया ऐक्ट पारित कराया। नात्सी जर्मनी के तुष्टिकरण की अपनी नीति मे वह असफल रहा और देश के शस्त्रीकरण की योजना उसको अपनानी पड़ी। सम्राट् ऐडवर्ड अष्टम के विवाह के प्रश्न से उत्पन्न सकट मे १९३६ के अंतिम महीनो मे उसने अपूर्व दृढ़ता दिखाई। एडवर्ड ने राज्यत्याग किया। नए सम्राट् जॉर्ज षष्ठ के राज्यारोहण के बाद बाल्ड्विन ने २८ मई, १९३७ को राज्य की सेवा से अवकाश ले लिया। सम्राट् ने ब्यूड्ले के अर्ल की उपाधि से उसे संमानित किया। जीवन के शेष वर्ष उसने रेडियो श्रवण, समाचारपत्रों और पुस्तको के अध्ययन मे घर पर ही बिताए। सितंबर, १९४२ मे उसने अपने विवाह की स्वर्ण जयती मनाई। पत्नी की मृत्यु के दो वर्ष बाद, १४ दिसंबर, १९४७ को उसका देहावसान हुआ। पत्नी की समाधि के समीप ही निजी गिरजाघर में उसके शव को समाधि दी गई।

१९२१ और १९३१ के बीच बाल्डविन सेंट ऐंड्रूज और कैंब्रिज विश्वविद्यालयों का चांसलर और ऐडिनबरा तथा ग्लासगो विश्व-

विद्यालयों का लॉर्डरैक्टर भी रहा। कई विषयों पर उसने पुस्तकें लिखी। क्लैसिक्स ऐंड दी प्लेन मैन; ऑन इंग्लैंड ऐंड दी अदर ऐसेज, १६२६; अवर इनहैरिटैंस (भाषण संग्रह), १६२८; दिस टॉर्च ऑव फ्रीडम; पीस ऐंड गुडविल इन इंडस्ट्री, १६३५; सर्विस ऑव अवर लाइव्ज़ १६३७, और ऐन इंटरप्रेटर ऑव इग्लैंड १६३६ उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं। [त्रि० पं०]

बाल्फर, आर्थर जेम्स (१८४८ - १६३०) अंग्रेज राजनीतिज्ञ और दार्शनिक। कैंब्रिज में शिक्षा प्राप्त की। १८७४ मे हाउस ऑव कामन्स का सदस्य निर्वाचित हुआ। १८७८ से १८८८ तक वह विदेश विभाग में अपने चाचा मार्क्विस ऑव सैलिसबरी का निजी सचिव रहा और उसके साथ बर्लिन संधि मे भाग लिया। १८७६ में उसकी पुस्तक 'ए डिफेंस ऑव् फिलसॉफ़िक डाउट' प्रकाशित हुई। १८८५ के आम चुनाव मे वह ईस्ट मैनचेस्टर का प्रतिनिधि चुना गया, और १६०६ तक इसी क्षेत्र का प्रतिनिधि रहा। १८८६ मे वह स्कॉटलैंड का सचिव और १८८७ मे आयरलैंड का प्रधान सचिव बनाया गया। लार्ड सैलिसबरी के त्यागपत्र देने के पश्चात् वह जुलाई, १६०२ मे इंग्लैंड का प्रधान मंत्री नियुक्त हुआ; इस पद पर वह दिसंबर, १६०५ तक रहा। १६०६ के निर्वाचन मे उसकी पार्टी हार गई। वह स्वयं भी पराजित हो गया। उपनिर्वाचन मे लंदन नगर से चुना गया और १६११ तक सदन मे विरोधी दल का नेता रहा। तदनंतर वह दार्शनिक लेखन मे व्यस्त हो गया। १६१४ मे उसकी प्रसिद्ध कृति 'थीज़म ऐंड ह्यूमैनिज़म प्रकाशित हुई।

जून, १६१५ मे, हर्बर्ट हेनरी ऐस्क्विथ के मंत्रिमंडल में संमिलित होने के लिये आमंत्रित किया गया और विंस्टन चर्चिल के बाद लार्ड ऑव् एडमिरैलटी का पद सँभाला। १६१६ मे लॉयड जार्ज के प्रधान मंत्रित्व मे गठित मंत्रिमडल मे वह विदेशमंत्री नियुक्त हुआ।

बाल्फर १६२० मे लीग ऑव नेशंस असेंबली में और १६२१–२२ मे 'वाशिंगटन नेवल डिसार्ममेंट कॉन्फरेंस' मे इंग्लैंड का प्रधान प्रतिनिधि था।

बाल्फर, सर जेम्स सेशन्स कोर्ट (स्कॉटलैंड) के लार्ड प्रेसीडेंट थे। इनके पिता का नाम सर माईकेल बाल्फर था। १५४७ ई० मे सेंट एंड्रूज के किले पर फ्रास का कब्जा हो जाने पर नॉक्स के साथ बाल्फर भी बदी बनाकर फ्रास भेज दिए गए। दो वर्ष बाद अपने सिद्धांतों का गला घोंटने पर उनको मुक्ति प्राप्त हुई। स्कॉटलैंड पुन: वापस आने पर उन्होने प्रत्येक दल से सबंध स्थापित किया, प्रत्येक से संबंध विच्छेद किया, फिर भी प्रत्येक दल से लाभान्वित हुए। मॉरटन के रीजेंट बनने पर, किसी भाँति बाल्फर उसके कृपाभाजन बन गए। मॉरटन के आदेशानुसार उन्होने कानून का एक साधारणीकरण "प्रैक्टिक्स ऑव स्काट ला" नाम से तैयार किया; किंतु इसके एकमेव प्रणेता होने मे बाल्फर के संबंध में संदेह किया जाता है। स्कॉटलैंड मे अपना जीवन असुरक्षित पाकर, सन् १५७३ मे बाल्फर फ्रास चले गए। १५८३ ई० मे उनकी मृत्यु हो गई। [ला० सि०]

बाल्सम कुछ पेड़ पौधों से नि:स्राव (exude) निकलता है। कुछ से तो स्वत: निकलता है और कुछ से छेवने या काटने से निकलता है। इनमें से कुछ नि:स्रावों को बाल्सम कहते हैं। बाल्सम में रेज़िन, अल्प मात्रा में गोंद, कुछ वाष्पशील तेल और विभिन्न मात्राओं में सौरभिक अम्ल और उनके एस्टर रहते हैं। यदि नि:स्राव मे वाष्पशील तेल की मात्रा अधिक और ठोस सौरभिक अम्ल की मात्रा बिलकुल न हो तो ऐसे नि.स्राव को 'ओलिओरेज़िन' कहते हैं।

बाल्सम साधारणतया श्यान द्रव, अथवा अर्ध ठोस, होता है। इसमें विशेष सौरभ होता है और तीक्ष्ण, पर कुछ रुचिकर स्वाद होता है। सौरभ प्रदान करनेवाले पदार्थ बेंज़ोइक, सिनेमिक और इसी प्रकार के अन्य कार्बनिक अम्ल और उनके एस्टर हैं। बाल्सम कई प्रकार के होते हैं, जिनमे बेंज़ोइन (लोबान), पेरू बाल्सम, स्टोरैक्स, टोलूबाल्सम, जैबोरिया, कैनाडा बाल्सम और कोपैबा बाल्सम महत्व के हैं।

बेंज़ोइन — बेंज़ोइन को अरबी भाषा में लोबान तथा संस्कृत मे देवधूप कहते हैं। यह पेड़ों से प्राप्त होता है। ये पेड़ कोरिया, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों मे पाए जाते हैं। व्यापार का लोबान कोरिया, सुमात्रा, पलेम्बांग, पाडाग और पेनांग बाल्सम के नामो से ख्यात है। सब बाल्सम सँगठन मे एक से नही होते। उनमे विभिन्नता पाई जाती है।

बेंज़ोइन पेड़ो से स्वत नही निकलता। पेड़ों के तनों को कुल्हाड़ी से गहरा काटने से जो कटाव बन जाता है, उससे बाल्सम निकलकर इकट्ठा होता है। पर्याप्त कठोर हो जाने पर इसका निर्यात होता है। छोटे छोटे टुकड़ों अथवा कुंदों में यह बाहर भेजा जाता है। अच्छे किस्म के बाल्सम में मंद, रुचिकर गंध होती है। निम्न कोटि के सुमात्रा बेंज़ोइन को 'पेनांग बेंज़ोइन, कहते हैं। पलेम्बाग बेंज़ोइन भी सुमात्रा से ही आता है। ये बेंज़ोइन धूप के लिये उपयुक्त होते हैं।

व्यापार के बेंज़ोइन में बहुत से बाह्य पदार्थ मिले रहते हैं। यदि उसमे कोई मिलावट न हो, तो गंध और ऐल्कोहॉल मे विलेयता उसकी पहचान है।

बेंज़ोइन मे प्राय: २० प्रति शत सिनेमिक अम्ल और १० से १५ प्रति शत बेंज़ोइक अम्ल, प्रधानतया एस्टर के रूप में, रहते हैं। इनके अतिरिक्त स्टाइरिन, वेनिलिन, फिनोल - प्रोपील सिनेमेट, सिनेमिल सिनेमेट, बेंज़ोरेसिनोल सिनेमेट, बेंज़ल्डीहाइड और बेंज़ीन (लेश) रहते हैं। कोरिया के बेंज़ोइन मे सिनेमिक अम्ल बिलकुल नहीं होता।

ओषधियों मे प्रयुक्त होनेवाले बाल्सम में निम्नलिखित विशेषताएँ रहनी चाहिए :

१. इसमे असंयुक्त बाल्सेमिक अम्ल १६ प्रति शत से कम और २६ प्रति शत से अधिक नहीं रहना चाहिए।

२. समस्त बाल्सेमिक अम्ल ३० प्रति शत से कम और ६० प्रति शत से अधिक नही रहना चाहिए।

३. ६० प्रति शत ऐल्कोहॉल से निकर्षण के बाद १००° सें० पर सूखा अवशिष्ट अंश २० प्रति शत से अधिक नहीं रहना चाहिए।

४. ऐल्कोहॉल में विलेय अंश का अम्लमान ११५–१६३, एस्टर-मान ४७–८३ और साबुनीकरण मान १६६–२२३ रहना चाहिए। राख की प्रतिशतता दो से अधिक नही रहनी चाहिए।

बेंजोइन का उपयोग ओषधियो और सुगंधित द्रव्यों के निर्माण में होता है।

पेरू बाल्सम — यह भूरे रंग का छोए जैसा श्यान द्रव है। इसमें प्रबल रुचिकर और बाल्सम सी गंध होती है। सुगंधित द्रव्यो के निर्माण और अल्प मात्रा में ओषधियों में इसका उपयोग होता है। इससे नकली ऐंबर भी बनता है। इसका आपेक्षिक घनत्व १.१४ से १.१७ और अपवर्तनांक १.५८० से १.५८६ है। इसमें बाल्सम एस्टर ५३ प्रति शत से कम नहीं रहना चाहिए।

पेड़ की छाल को झुलसाने के बाद बाल्सम निकलता है, जो तने मे लपेटे कपड़ों में इकट्ठा होता है। इस कपड़े के निचोड़ने से बाल्सम प्राप्त होता है। जल के साथ उबालने से इसका शोधन होता है।

स्टोरैक्स — टर्की देश में एक पेड़ होता है, जिसके छेवने या पीटने से बाल्सम निकलता है। यह पारांध, धूसर रंग का श्यान द्रव होता है, जिसमे पेड़ की कुछ छाल मिली रहती है। इसमे २० से ३० प्रति शत जल रहता है। ओषधियो मे इसका व्यवहार होता है। ब्रिटिश फार्माकोपिया के अनुसार इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ रहनी चाहिए: जल ऊष्मक पर एक घंटा सुखाने पर जो नमूना प्राप्त होता है, उसमें ३० प्रति शत बाल्समिक अम्ल रहना चाहिए। जल ऊष्मक पर सुखाने से ५ प्रति शत से अधिक का ह्रास नहीं होना चाहिए। सूखे नमूने का अम्लमान ५५ से ८०, एस्टरमान १०० से १३२ और साबुनीकरण मान १७० से २०० रहना चाहिए।

टोलू बाल्सम — वेनिज्वीला, एक्वाडॉर और ब्राजील मे पाए जाने वाले एक पेड के तने से यह बाल्सम प्राप्त होता है। यह कोमल, पर दृढ़, रेज़िन सा पदार्थ है, जो रखने पर कड़ा और जाड़े मे भंगुर हो जाता है। इसका स्वाद खट्टा और गंध रुचिकर होती है। सुगंधित द्रव्यो के निर्माण मे इसका व्यवहार होता है। गंधों के स्थायीकारक के रूप मे यह काम आता है। इसमे १० से १५ प्रति शत असंयुक्त सिनेमिक अम्ल और सात से दस प्रति शत असंयुक्त बेंजोइक अम्ल रहता है। सिनेमिक और बेंजोइक अम्लो के बेंजील एस्टर इसमे आठ प्रति शत तक रहते है। वेनिलिन का लेश रहता है। यह ऐल्कोहॉल, बेंज़ीन, क्लोरोफॉर्म, ईथर और ग्लेशियल ऐसीटिक अम्ल मे विलेय होता है।

जैंथॉरिया (Xanthorrhoea) **बाल्सम** — ऑस्ट्रेलिया मे एक पेड होता है, जिससे यह बाल्सम निकलता है। इस बाल्सम को 'ऐकेरायड' (acaroid) रेज़िन भी कहते हैं। यह लाल और पीला, दो रंग का होता है। इसमें सुगंध होती है और सुगंधित द्रव्यो के निर्माण मे बेंजोइन, स्टोरैक्स और टोलू बाल्सम के स्थान मे प्रयुक्त हो सकता है। यह धूप के लिये भी व्यवहृत होता है और मोहर के सस्ते चपड़े के निर्माण मे काम आता है। दोनों रंग के बाल्सम एक ही संगठन के होते हैं। अवयवो की विभिन्नता से रंग मे अंतर आ जाता है। एक मे सिनेमिक अम्ल रहता और दूसरे मे पाराकुमेरिक अम्ल। इससे पिक्रिक अम्ल बन सकता है।

कैनाडा और कोपेबा बाल्सम का वर्णन रेज़िन प्रकरण मे मिलेगा। [फू० स० व०]

बॉसपोरस (Bosporus) स्थिति : ४१° १०' उ० अ० तथा २९° १०' पू० दे०। यह एशिया एवं यूरोप के मध्य, उत्तर-पूर्व में कालासागर और दक्षिण-पश्चिम मे मारमारा (Marmara) सागर को मिलानेवाला जलडमरूमध्य है। कुछ दूर तक यह यूरोप तथा एशिया को विभाजित करता है। यह लगभग १८ मील लंबा, दो से एक तिहाई मील तक चौड़ा तथा २० फैदम से ६६ फैदम तक गहरा है। कालासागर से मारमारा सागर की ओर एक धारा पाँच मील प्रति घंटा की गति से चलती है तथा इसके विपरीत भी एक जलधारा चलती है जो काफी धीमी है। यह सदा बहनेवाले जलाशय की तरह है। यह महत्वपूर्ण जलमार्ग भी है। कालासागर से भूमध्यसागर की तरफ होनेवाले सारे व्यापार का नियंत्रण इस मार्ग द्वारा होता है। इसी महत्व के कारण यह क्षेत्र पूर्वी यूरोप की राजनीति का बहुत महत्वपूर्ण केंद्र हो गया है। [उ० कु० सिं०]

बासूतोलैंड (देखें, लेसोथो)।

बास्तील मूलत. प्रतिरक्षा अथवा आक्रमण से बचाव के लिये बनाया गया कोई भी दुर्ग। फ्रांसीसी शब्द बास्तिर अर्थात् बनाना से व्युत्पन्न हुआ है। पेरिस की कई एक पुरानी इमारते बास्तील नाम से जानी जाती रही हैं। सेंट ऐंतायन की इमारत के द्वार पर दो विशाल गुंबद थे जिन्हे चार्ल्स चतुर्थ के समय मे परिवर्धित करके आठ गुंबद बना दिए गए। ये सभी एक मोटी दीवार द्वारा एक दूसरे से संयुक्त थे और इनके चारों ओर चौड़ी खाई थी। इस किस्म के अन्य दुर्गों के निर्माण के बाद केवल इसी सेंट ऐंतायन के दुर्ग को ही बास्तील कहा जाने लगा। इस दुर्ग का फ्रांस के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान है। चार्ल्स सप्तम के विरोधी शत्रुओं ने इसी मे रहकर उसका सामना किया था और अंतत रसद समाप्त होने के बाद ही समर्पण किया। सन् १५८८ मे गाइज़ के ड्यूक ने इसपर अधिकार किया। हेनरी चतुर्थ ने तो इसे अपना कोषागार भी बनाया। सन् १६४९ से १६५१ तक यह फ्रांडे की सेनाओं के अधिकार मे रहा। बास्तील का प्रयोग सामान्यत राजकीय कैदखाने के रूप मे किया जाता रहा है। प्रारंभ मे यहाँ राजनीतिक अपराधी ही रखे जाते थे पर बाद मे इसकी स्थिति किले की अपेक्षा जेल की ही अधिक हो गई, इसलिये सामान्य कैदियों को भी यही कैद किया जाने लगा। लुई १२वें के समय तक तो यह पूरी तरह जेल के रूप मे ही परिवर्तित हो गया। प्राय. ऐसे कैदी भी यहाँ आते थे जो किसी प्रभावशाली व्यक्ति की कुदृष्टि के शिकार हो जाते थे। ऐसे कैदी बिना किसी न्यायविचार के वर्षों यातनाएँ झेलते थे। सरकार के आलोचकों को यहाँ विशेष रूप से कठोरता के साथ कैद किया जाता था। सन् १७८९ की राज्यक्रांति के समय इसीलिये क्रांतिकारियो ने इसपर आक्रमण किया था कि इसमे तमाम ऐसे कैदी थे जो सरकार की आलोचना करने के कारण ही यातनाएँ झेल रहे थे। क्रांतिकारियो ने इसे पूर्णत ध्वस्त कर दिया। राजनीतिक कैदियों को सजाएँ राजा की इच्छा पर ही प्राय. निर्भर करती थी। बास्तील मे कैद किए जानेवाले कुछ विश्वविख्यात व्यक्तियों मे से वाल्तेयर, निकोलस फुके, कोंत द लैली आदि प्रमुख हैं।

[मु० रा०]

बॉस्वेल, जेम्स (१७४०–१७९५) अंग्रेजी जीवनी लेखक। जन्मस्थान एडिनबरा, स्कॉटलैंड। एडिनबरा, ग्लासगो और यूट्रेक्ट विश्वविद्यालयों में कानून का अध्ययन किया, परंतु अनिच्छापूर्वक, क्योंकि इसकी महत्वाकांक्षा साहित्यिक अथवा राजनीतिक क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त करने की थी। १७६३ में लंदन की अपनी दूसरी यात्रा पर वह पहली बार डॉ० जॉन्सन (१७०९–८४) से मिला और उसके शक्तिशाली व्यक्तित्व से ऐसा प्रभावित हुआ कि उसकी जीवनी लिखने का निश्चय कर लिया। प्रारंभ से ही वह इस बात के लिये सचेष्ट हो गया कि जीवनी के लिये हर संभव सामग्री एकत्रित कर ले, तथा अपनी उपस्थिति में जानसन द्वारा कही गई, हर बात को हूबहू लिख ले। १७६५–६६ में यूरोप भ्रमण के दौरान कॉर्सिका में उसका परिचय जनरल पाओली से हुआ। कॉर्सिका के स्वातंत्र्य युद्ध में उसने ऐसी दिलचस्पी ली कि वह जनरल पाओलो का आजीवन मित्र बन गया। १७६८ में उसने 'ऐन अकाउट ऑव कॉर्सिका' भी प्रकाशित की जिसका यूरोप की कई भाषाओं में अनुवाद हुआ। इसकी लोकप्रियता के कारण यूरोप में उसे 'मिस्टर कॉर्सिका बास्वेल' कहा जाता था। महान विभूतियों के प्रति अपने आकर्षण के कारण वह रूसो और वॉल्तेर से भी मिला, परंतु जीवनी लिखने के लिये सबसे उपयुक्त विषय उसे जॉन्सन में ही मिला। १७७३ में वह जॉन्सन के 'लिटरेरी क्लब' का सदस्य चुना गया। इसी वर्ष वह जॉन्सन को स्कॉटलैंड तथा हेब्रिडीज द्वीपों के भ्रमण पर ले गया। इस यात्रा के वृत्तांत 'दि जर्नल ऑव ए टुअर टु दि हेब्रिडीज' (१७८५) को उसकी महान् जीवनी की अभ्यासभूमि माना जा सकता है। १७९१ में प्रकाशित होते ही 'दि लाइफ ऑव सैमुएल जॉन्सन, एल-एल० डी०' को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई वह अभी तक कम नहीं हुई। इसे न केवल अंग्रेजी साहित्य बल्कि विश्वसाहित्य की महानतम जीवनी माना गया है। यद्यपि यह सही है कि बॉस्वेल की अभूतपूर्व सफलता काफी हद तक जॉन्सन के आकर्षक व्यक्तित्व पर आधारित थी, तथापि इसमें संदेह नहीं कि उसकी साहित्यिक प्रतिभा अत्यंत उच्च कोटि की थी।

[ज० बि० मि०]

बाहरी मार्ग (Byepass) या उपमार्ग नगरों के भीड़वाले क्षेत्रों, या अन्य ऐसी रुकावटों, को छोड़कर धुर (through) यातायात के सीधा निकल जाने के लिये बनाए जाते हैं। जब किसी नगर, पुर या ग्राम के बीचोबीच कोई धुर सड़क गुजरती है, तो इस सड़क पर चलनेवाले भारी यातायात से उस नगर के व्यवसायियों और अन्य लोगों को बड़ी असुविधा होती है। कभी कभी बड़ी दुर्घटनाएँ भी हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त उस धुर सड़क की यातायात वहन सामर्थ्य (एक घंटे में अधिकतम गाड़ियाँ गुजरने की संख्या) सड़क के उस भीड़वाले खंड के कारण घट जाती हैं। इसलिये उस सड़क के उपयोग पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और धुर जानेवाली गाड़ियों का बहुत समय नष्ट होता है। इसलिये ऐसी अवस्थाओं में बाहरी मार्ग की आवश्यकता प्रतीत होती है और उसके बन जाने के बाद उपर्युक्त कमियाँ दूर हो जाती हैं। बाहरी मार्ग का निर्माण धुर जानेवाले यातायात और उस भीड़वाले क्षेत्र दोनों के लिये ही हितकर होता है। अमरीका में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि बड़ी सड़कों पर होनेवाले यातायात के ८५ से ९० प्रति शत लोगों को राह में पड़नेवाले नगर में कोई कार्य नहीं होता। उसके बहुत थोड़े से अंश को नगर में से निकलकर जाने की आवश्यकता होती है। बाहरी मार्ग अधिकतर नगर की बाहरी सीमा के गिर्द ही बनाए जाते हैं, जिससे उसपर स्थानीय यातायात का कम से कम प्रभाव पड़े। प्रायः बाहरी मार्ग की लंबाई उस सड़क की नगर के बीचों बीच पड़नेवाली लंबाई से कहीं अधिक होती है। इसलिये उसके बनाने की लागत बहुत बैठती है। बाहरी मार्ग तभी बनाना चाहिये, जब धन लगाने से पहले लागत और लाभ का अध्ययन कर लिया जाए और उससे बाहरी मार्ग बनाना उचित सिद्ध हो।

बाहरी मार्ग की चौड़ाई और अन्य मानक वही होने चाहिए जो खुले प्रदेश में गुजरनेवाली उस प्रकार की सड़क के हों। चाहे पिछले प्रकार की सड़क पर एक गलीवाला ही यानमार्ग हो, बाहरी मार्ग पर दो गली वाला यानमार्ग ही बनाना चाहिए, क्योंकि बड़े नगरों और पुरों के पड़ोस में बने बाहरी मार्गों पर यातायात भारी होता है।

अब भारत में राष्ट्रीय मार्गों के साथ बाहरी मार्ग अधिकतर बनाए जा रहे हैं, जिससे यातायात की गति में रुकावट न हो।

[ज० मि० त्रे०]

बाह्य प्रत्यक्षवाद ज्ञानमीमांसा के इस सिद्धांत के अनुसार बाह्य वस्तु का ज्ञान अनुमान से नहीं वरन् प्रत्यक्ष प्राप्त होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान संभव माने बिना अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यदि बाह्य वस्तु का प्रत्यक्ष कभी न हुआ हो, तो मानसिक प्रतिरूपों से बाह्य वस्तु का अस्तित्व सिद्ध ही नहीं हो सकता। इसलिये बाह्य वस्तु का ज्ञान अनिवार्य रूप से प्रत्यक्ष ही होता है। इंद्रियों के द्वारा जो कुछ दिखाई या सुनाई पड़ता है, बाह्य वस्तुएँ वैसी ही होती हैं।

भारत में बौद्ध दर्शन की वैभाषिक शाखा के प्रवर्तक इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। वे बाह्य वस्तु और मन दोनों का अस्तित्व मानते हैं। मन में बाह्य वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान इंद्रियों के माध्यम से होता है। इंद्रियाँ बाह्य जगत् के साथ संपर्क में आकर उससे एक प्रकार का संस्कार प्राप्त करती हैं। वे उन संस्कारों के साथ चित्त को प्रबुद्ध कर उसमें चेतना उत्पन्न कर देती हैं। तभी चित्त में संसार के ज्ञान का उदय होता है। जो वस्तु इंद्रियग्राह्य नहीं है, उसे मन भी नहीं जान सकता। अतः इंद्रियातीत वस्तुओं की सत्ता (जैसे आत्मा) वैभाषिकों को स्वीकार नहीं है।

पश्चिम में आधुनिक नव्यवस्तुवादी (नियो रियलिस्ट) भी बाह्यप्रत्यक्षवाद का समर्थन करते हैं। वस्तुवादी विचारधारा नई नहीं है और न बाह्यप्रत्यक्षवाद। मनुष्य स्वभाव से ही इस सिद्धांत को आदि काल से मानता आ रहा है। अरस्तू के दर्शन में इसके तत्व उपलब्ध हैं। संत टॉमस एक्विनस ने १३वीं शताब्दी में इसका पुनः प्रतिपादन किया। आधुनिक युग में बाह्यप्रत्यक्षवादी विचारधारा जर्मनी में उदित हुई। वहाँ वस्तुवादी दार्शनिक फ्रेंज ब्रेटानो, एलेक्जेंडर मीनाग, एडमंड हुसरल आदि ने बाह्य-प्रत्यक्षवाद का समर्थन किया। उनसे प्रभावित इंग्लैंड के दार्शनिक जी० ई० मूर, बर्ट्रेंड रसेल आदि ने भी इस सिद्धांत को स्वीकार किया। इसके उपरांत अमरीका तथा अन्य अनेक देशों में इसके अनुयायी पैदा हो गए। आजकल इसके समर्थकों की संख्या बहुत अधिक है। [हृ० ना० मि०]

बाह्यानुमेयवाद यह ज्ञानमीमांसा का एक सिद्धांत है। इसके अनुसार संसार का, बाह्य वस्तुओं का, ज्ञान वस्तुजनित मानसिक आकारों के अनुमान द्वारा प्राप्त होता है। हमें न तो बाह्य वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और न भ्रमवश अपनी मानसिक अवस्था ही बाह्य वस्तु के सदृश प्रतीत होती है। मन और बाह्य वस्तु दोनों की सत्ता है। बाह्य वस्तु के अनुरूप मन में आकार उत्पन्न होते हैं। उन आकारों से ही बाह्य वस्तु के स्वरूप का अनुमान लगता है।

भारत में बौद्ध दर्शन की सौत्रांतिक शाखा के प्रवर्तक इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार ज्ञान के चार प्रत्यय हैं — आलंबन, समनंतर, अधिपति और सहकारी। बाह्य वस्तु ज्ञान का आलंबन कारण है। मानसिक आकृतियाँ उन्हीं से निर्मित होती हैं। ज्ञान के अव्यवहित पूर्ववर्ती मानसिक अवस्था से उत्पन्न चेतना समनंतर कारण है। इसके बिना ज्ञान की प्रतीति हो ही नही सकती है। इंद्रियाँ अधिपति कारण है। हमें स्पर्शज्ञान प्राप्त होता है या अन्य कोई, यह इंद्रियों पर ही निर्भर है। प्रकाश, दूरत्व आदि सहकारी कारण है। इन चार कारणों या प्रत्ययों के उपस्थित होने पर ही किसी वस्तु का ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्ष नहीं है। प्रत्यक्ष तो केवल मानसिक प्रत्यय है। उनसे बाह्य वस्तुओं का अनुमानित ज्ञान होता है।

पश्चिम में बाह्य अनुमेयवाद के समतुल्य लॉक जैसे दार्शनिको का 'प्रत्ययो का प्रतिकृति सिद्धात' ध्यातव्य है। उसके अनुसार मन और वस्तु दोनों की सत्ता है। वस्तुएँ स्वच्छ पट्टिका (टेबुला रासा) जैसे मन पर अपनी प्रतिकृति उत्पन्न करती हैं। इन्हीं प्रतिकृतियो के ज्ञान को हम निश्चयात्मक कह सकते है। उनके परे यथार्थ क्या है यह जानने का कोई निश्चित साधन नही है। मानसिक प्रतिकृतियों के ज्ञान से ही बाह्य वस्तुओ का अनुमान लगाया जा सकता है।

आधुनिक युग का विवेचनात्मक वस्तुवाद (क्रिटिकल रियलिज्म) भी बहुत कुछ बाह्य अनुमेयवाद का समर्थन करता है। इस सिद्धात के प्रतिपादक प्रधानत: अमरीका के दार्शनिक ड्रेक, लवज्वाय, प्रेट. रोजर्स, सांतायना, सैलर्स, स्ट्रांग आदि है। [हृ० ना० मि०]

बिंदुसार मौर्य सम्राट् चंद्रगुप्त का उत्तराधिकारी। स्ट्राबो के अनुसार सैंड्रोकोट्टस (चंद्रगुप्त) के बाद अमित्रोकोटिज उत्तराधिकारी हुआ जिसे एथेनेइयस ने अमित्रोकातिस (सं० अमित्रघात) कहा है। जैन ग्रंथ राजावलिकथे में उसे सिंहसेन कहा गया है। बिंदुसार नाम हमें पुराणों में प्राप्त होता है। चंद्रगुप्त के उत्तराधिकारी के रूप में वही नाम स्वीकार कर लिया गया है। पुराणों के अतिरिक्त परंपरा में प्राप्त नामों से उसके विजयी होने की ध्वनि मिलती है। संभवत: चाणक्य चंद्रगुप्त के बाद भी महामंत्री बना रहा और तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने बताया कि उसने पूरे भारत की एकता कायम की। ऐसा मानने पर प्रतीत होता है कि बिंदुसार ने कुछ देश विजय भी किए। इसी आधार पर कुछ विद्वानों के अनुसार बिंदुसार ने दक्षिण पर विजय प्राप्त की। किंतु यह समीचीन नही प्रतीत होता। 'दिव्यावदान' के अनुसार तक्षशिला मे राज्य के प्रति प्रतिक्रिया हुई। उसे शात करने के लिये बिंदुसार ने वहाँ अपने लड़के अशोक को कुमारामात्य बनाकर भेजा। जब वह वहाँ पहुँचा, लोगों ने कहा कि हम न बिंदुसार से विरोध करते हैं न राजकुमार से ही, हम केवल दुष्ट मत्रियो के प्रति विरोध प्रदर्शित करते हैं। बिंदुसार की विजयो को पुष्ट करने अथवा खंडित करने के लिये कुछ भी प्रमाण उपलब्ध नही है।

इतना अवश्य प्रतीत होता है कि उसने राज्य पर अधिकार बनाए रखने का प्रयास किया। सीरिया के सम्राट् से इसके राजत्व काल मे भी मित्रता कायम रही। मेगस्थनीज का उत्तराधिकारी डाईमेकस सीरिया के सम्राट् का दूत बनकर बिंदुसार के दरबार मे रहता था। प्लिनी के अनुसार मिस्र के सम्राट् टॉलमी फिलाडेल्फ़स (२८५–२४७ ई० पू०) ने भी अपना राजदूत भारतीय नरेश के दरबार मे भेजा था, यद्यपि स्पष्ट नही होता कि यह नरेश बिंदुसार ही था। एथेनियस ने सीरिया के सम्राट् अतिओकस प्रथम सोटर तथा बिंदुसार के पत्रव्यवहार का उल्लेख किया है। राजा अमित्रघात ने अंतिओकस से अपने देश से शराब, तथा सोफिस्ट खरीदकर भेजने के लिये प्रार्थना की थी। उत्तर मे कहा गया था कि हम आपके पास शराब भेज सकेंगे किंतु यूनानी विधान के अनुसार सोफिस्ट का विक्रय नही होता।

बिंदुसार के कई लड़के थे। अशोक के पाँचवे शिलालेख मे मिलता है कि उसके अनेक भाई बहिन थे। सबका नाम नही मिलता। 'दिव्यावदान' मे केवल सुसीम तथा विगतशोक इन दो का नाम मिलता है। सिंहली परपरा मे उन्हे सुमन तथा तिष्य कहा गया है। कुछ विद्वान् इस प्रकार अशोक के चार भाइयों की कल्पना करते हैं। जैन परपरा के अनुसार बिंदुसार की माता का नाम दुर्धरा था।

[चं० भा० पा०]

बिकिनी स्थिति : १२° ०' उ० अ० तथा १६५° ३०' पू० दे०। प्रशात महासागर मे हवाई द्वीप के दक्षिण-पश्चिम स्थित मार्शल द्वीप समूह के उत्तर-पश्चिमी भाग का एक प्रवालद्वीपीय वलय है। इसमे लगभग १७० वर्ग मील मे फैले २७ द्वीप शामिल है। यहाँ पर सन् १९४६ मे संयुक्त राज्य, अमरीका द्वारा अणुबम के दो ऐतिहासिक परीक्षण किए गए थे। परीक्षण के पूर्व यहाँ के निवासियो को अन्यत्र भेज दिया गया था। परीक्षण के परिणामस्वरूप यहाँ का प्राणिजीवन तथा वनस्पतिजीवन प्राय. संपूर्ण नष्ट हो गया है।

बिच्छू आर्थ्रोपोडा (Arthropoda) संघ का साँस लेनेवाला ऐरैक्निड (मकडी) है। इसकी अनेक जातिया है, जिनमे आपसी अंतर बहुत मामूली हैं। यहाँ बूथस (Buthus) वंश का विवरण दिया जा रहा है, जो लगभग सभी जातियो पर घटता है।

बाह्य लक्षण — बिच्छू का शरीर लबा, संकरा और परिवर्ती रंगो का होता है। शरीर दो भागो का बना होता है, एक छोटा अग्र भाग शिरोवक्ष या अग्रकाय (cephalothorax, prosoma) और दूसरा लंबा पश्चभाग, उदर (abdomen, opisthosoma) है। शिरोवक्ष एक पृष्ठवर्म (carapace) से पृष्ठत: आच्छादित रहता है, जिसके लगभग मध्य मे एक जोड़ा बड़ी आँखें और उसके अग्र पार्श्विक क्षेत्र में अनेक जोड़ा छोटी आँखें होती है। उदर का अगला चौडा भाग मध्यकाय (Mesosoma) सात खडों का बना होता है। प्रत्येक खंड ऊपर पृष्ठक (tergum) से और नीचे उरोस्थि (sternum)

से प्रावृत होता है। ये दोनों पार्श्वतः एक दूसरे से कोमल त्वचा द्वारा जुड़े होते हैं।

पश्चकाय (metasoma) उदर का पश्च, सँकरा भाग है जिसमें पाँच खंड होते हैं। जीवित प्राणियों में पश्चकाय का अंतिम भाग, जो पुच्छ है, स्वभावतः पीठ पर मुड़ा होता है। इसके अंतिम
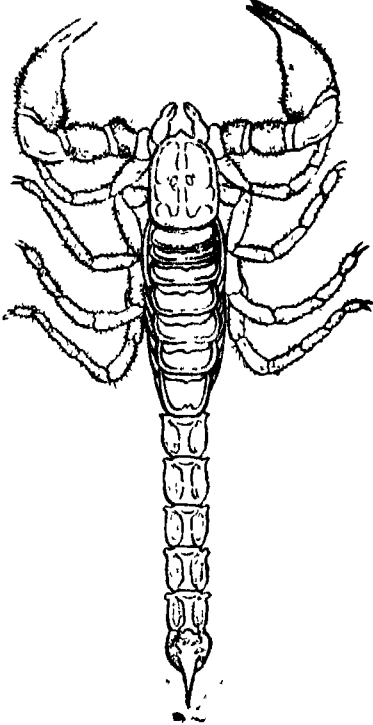
बिच्छू

खंड से अंतस्थ उपाग (appendage) संधिबद्ध (articulated) होता है और पुच्छीय मेरुदंड (caudal spine) आधार पर फूला और शीर्ष पर, जहाँ विषग्रंथियो की वाहिनियाँ खुलती हैं, नुकीला होता है। अतिम खड के अधर पृष्ठ (ventral surface) पर डंक के ठीक सामने गुदा द्वार स्थित होता है। मुख एक छोटा सा छिद्र है, जो अग्रकाय के अगले सिरे पर अधरत· स्थित होता है। मुख पर लैब्रम (labrum) छाया रहता है।

अग्रकाय के उपांग — ये छह जोड़ा हैं। कीलिसैराएँ (chelicerae) अग्रतम उपांग हैं और ये शिकार के अध्यावरण (integument) को फाड़ने के काम में आते हैं। प्रत्येक कीलिसैरा तीन जोडोवाला होता है और कीला (chela) पर समाप्त होता है। पश्चस्पर्शक (Pedipalps) द्वितीय जोडा होने के कारण आक्रमण करने तथा पकड़ने के समर्थ साधन सिद्ध होते हैं।

चलने के काम आनेवाले चारो पैर रचना की दृष्टि से एक से हैं और शिरोवक्ष की बगल मे देह से जुड़े हैं। पहले दो जोड़े के आधारिक (basal) खंड इस प्रकार रूपानरित हुए हैं कि वे लगभग जबड़े की तरह काम कर सकें।

मध्यकाय के उपांग — मध्यकाय के प्रथम खंड की उरोस्थि (sternum) पर जननागी प्रच्छद ढक्कन (genital operculum) पाया जाता है, जो दरार (cleft) से विभाजित, कोमल, मध्यस्थ, गोल पालि (lobe) है। इसके आधार पर जननांगी वाहिनी का मुँह होता है। दूसरे खंड की उरोस्थि से दो कंघीनुमा पेक्टिन (pectins) जुड़े होते हैं। क्रिया की दृष्टि से ये स्पर्शक (tactile) हैं।

मध्यकाय के तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठे खंडों की उरोस्थियाँ बहुत चौड़ी होती हैं और प्रत्येक पर दो तिर्यक् रेखाछिद्र (oblique slits) रहते हैं, जिन्हें दृक्बिंदु (stigmata) कहते हैं। ये फुफ्फुसी कोश (Pulmonary sacs) में पाए जाते हैं। शेष मध्यकायिक तथा मेटासोमा के खंड उपांगविहीन होते हैं।

अंतःकंकाल — शिरोवक्ष के अग्र मे अनेक प्रक्रियाओं का एक काइटिनी (chitinous) प्लेट है, जिससे विभिन्नदिशाओं से आनेवाली पेशियाँ जुड़ी होती हैं। इस काइटिनी प्लेट को एंडोस्टर्नाइट (Endosternite) कहते हैं।

पाचकतंत्र — आहारनाल (alimentary canal) एक सीधी नली है, जो मुँह से गुदा तक जाती है। इसे चार प्रधान भागों में विभक्त किया जा सकता है : (१) मुखपूर्वी कोटर (preoral cavity), (२) अग्रांत्र (foregut) या मुखपथ (stomadaeum), (३) मध्यांत्र (midgut) या मेसेंटरॉन (mesenteron) और (४) पश्चांत्र या गुदपथ (proctodaeum) या पाचन की प्रक्रिया मे उदर ग्रंथियाँ और हेपैटोपैंक्रिम्रस (hepato-pancreas) सहचरित अग (organs) होते हैं।

परिसंचरण तंत्र — बिच्छू का परिसंचरण तंत्र सुविकसित होता है। इसमे नलिकाकार ऑस्टिएट (ostiate), हृदय, धमनियाँ, शिराएँ और कोटर (sinuses) हैं। रक्त रंगहीन तरल के रूप में नीली छटा से युक्त होता है, जो उसमे घुले हीमोसायनिन रंगद्रव्य के कारण होती है। इसमे असख्य केंद्रिकित (nucleated) कणिकाएँ होती हैं।

श्वसन अंग — तीसरे से छठे मध्यकायिक खड के अधर पार्श्वक बगल मे चार जोड़ा पुस्त-फुफ्फुस (booklungs) स्थित होते हैं। प्रत्येक पुस्त-फुफ्फुस (१) फुफ्फुस कोष्ठ, जिसमे खोखली पटलिकाएँ होती हैं तथा जिनमे रक्त प्रवाहित होता है, (२) वायुपरिकोष्ठ (atsium) और (३) बाहर की ओर खुलनेवाले दृग्बिंदु (stigma) का बना होता है।

बिच्छू की श्वसन क्रियाविधि मे शरीर की पृष्ठपार्श्वीय (dorso lateral) पेशियों की सक्रियता के कारण फुफ्फुस का तालबद्ध संकुचन और शिथिलन (contraction & relaxation) होता है। बिच्छू मे पुस्तफुफ्फुस के अतिरिक्त अन्य श्वसन अगों का अभाव है। त्वक्श्वसन (cutaneous respiration) नही होता।

उत्सर्जन तंत्र — बिच्छू मे तीन भिन्न अंगों से उत्सर्जन की क्रिया होती है : (१) एक जोडा मैलपीगी नलिकाएँ (Malpighian tubules), जिनका रग भूरा होता है, (२) एक जोडा श्रोणि ग्रंथियाँ (coxal glands) तथा (३) एक यकृत अथवा हेपैटोपैंक्रिम्रस (Hepato-pancreas)।

जननतंत्र — नर मादा के लिंग अलग अलग होते हैं। नर मादा की अपेक्षा छोटा होता है और उसका उदर अपेक्षाकृत सँकरा होता है। नर के पश्चस्पर्शक प्रायः अपेक्षाकृत लंबे और अंगुलियाँ छोटी

और पुष्ट होती हैं। नर की दुम प्रायः मादा की अपेक्षा लंबी होती है। जननिक प्रच्छद (genital operculum) सदैव दो आवरकों (flaps) का बना होता है।

नर के वृषण (testes) में आड़ी शाखाओं से जुड़ी हुई दो जोड़ा अनुदैर्घ्य नलियाँ होती हैं। प्रत्येक वृषण, एक मध्यस्थ शुक्रवाहक (median vas deferens) से जुड़ा होता है, जिसका अंतस्थ भाग सहायक ग्रंथि (accessory gland) युक्त और द्विशिश्न (double penis) के रूप में रूपांतरित होता है। वृषण का अंतस्थ सिरा प्रच्छद ढक्कन (operculum) के ठीक पीछे होता है।

मादा में तीन अनुदैर्घ्य नलियों का एक अयुग्मित अंडाशय (ovary) होता है, जिसमें आड़ी योजक शाखाएँ होती हैं। अंडवाहिनियाँ (oviduct) प्रच्छद ढक्कन पर खुलती हैं।

तंत्रिकातंत्र — केंद्रीय तंत्रिकातंत्र में मस्तिष्क, अधर-तंत्रिका-रज्जु (ventral nerve cord) और तंत्रिकाएँ होती हैं। आँख और पेक्टिन (pectins) विशिष्ट संवेदी अंग हैं।

विषग्रंथि — बिच्छू में एक जोड़ा विषग्रंथियाँ होती है, जो पुच्छखंड (telson) की तुंबिका (ampulla) में अगल बगल रहती हैं। इनकी पेशियाँ मजबूत होती हैं और विषग्रंथियों की वाहिकाएँ दंश के सिरे पर खुलती है।

विष स्वादहीन, गंधहीन और अल्पश्यान (viscous) तरल है। यह पानी, नमकीन विलयन और ग्लिसरीन में विलेय है। पर ऐल्कोहॉल और ईथर में नहीं घुलता। बिच्छू बिना छेड़े डंक नहीं मारते। मनुष्यों पर विष का घातक प्रभाव नहीं पड़ता और स्वयं बिच्छू पर भी कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता।

स्वभाव — पथरीले स्थान और बलुई मिट्टी बिच्छू के प्राकृतिक आवास हैं। ये प्रायः विदरिकाओं (crevices) और चपटे पत्थरों के नीचे पाए जाते हैं। ये स्वभावतः अकेले रहते हैं, पर वर्षाऋतु के आरंभ में पत्थरों के नीचे बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। ये मक्खियों, तिलचट्टों और अन्य कीटों पर निर्वाह करनेवाले परभक्षी हैं और अपने शिकार के शरीर से सिर्फ तरल पदार्थ चूसते हैं। चूसने की क्रिया में दो घंटे से अधिक समय लग जाता है। इनमें स्वजातिभक्षण भी होता है। चलते समय ये अपने पश्चस्पर्शकों को, जो स्पर्शक और परिग्राही (Prehensile) अंग का कार्य करते हैं, क्षैतिज रखते हैं। शरीर, पैरों पर उठा होता है, दुम पीठ पर आगे की ओर मुड़ी होती है और डंक पीठ पर नीचे की ओर झुका रहता है। बिच्छुओं का स्पर्शज्ञान विकसित और दृष्टि अत्यल्प होती है।

ये सजीव प्रजक (viviparous) हैं। नवजात शिशु माता की पीठ पर रहते हैं। प्रजनन वर्षाऋतु के गरम दिनों में होता है। संगम के समय नर और मादा दुम उलझाकर कामदनृत्य (nuptial dance) करते हैं। नर अपने पश्चस्पर्शक से मादा का पश्चस्पर्शक पकड़कर, आगे पीछे की ओर चलता है और मादा प्रायः स्वेच्छा से उसका साथ देती है। वे घंटों गोलाई में घूमते रहते हैं। अंत में नर मादा को पकड़े हुए ही, एक उपयुक्त पत्थर के नीचे गड्ढा खोदता है और फिर दोनों उसमें चले जाते हैं। संगम के उपरांत मादा नर को निगल जाती है।

वितरण — बूथस (Buthus) वंश ध्रुवीय और आर्कटिक क्षेत्र, इथियोपियाई क्षेत्र, जावेरी, चीन, भारत तथा भूमध्यसागरीय देशों में सर्वत्र पाया जाता है। यह भारत में मध्यप्रदेश, दक्षिण भारत एवं संपूर्ण पश्चिम भारत में पाया जाता है। बर्मा, लंका और पश्चिमी घाट के दक्षिण में मलाबार तट में नहीं पाया जाता, यद्यपि कोंकण में पाया जाता है। [रा० चं० स०]

बिजनौर १ जिला, स्थिति : २९° २७′ उ० अ० तथा ७८° ११′ पू० दे०। यह भारत में उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित है। इसका क्षेत्रफल १,८९९ वर्ग मील तथा जनसंख्या ११,९०,९८७ (१९६१) है। इसके पश्चिम में मुजफ्फरनगर तथा मेरठ, दक्षिण में मुरादाबाद, उत्तर में कोटद्वार तथा पूर्व में नैनीताल आदि जिले स्थित हैं। इसकी पश्चिमी सीमा गंगा नदी बनाती है। भूमि समतल तथा उत्तर की ओर क्रमशः १,३४२ फुट तक ऊँची होकर हिमालय में मिल जाती है। गंगा, खोह एवं रामगंगा नदियाँ बहती हैं। गंगा की सहायक नदी मालिन के किनारे के दृश्य कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में मिलते हैं। यहाँ की जलवायु ठंढी एवं उत्तम है। उत्तम जलप्रवाह के कारण मलेरिया का प्रकोप नहीं होता। वार्षिक वर्षा का औसत ४४ इंच है। मध्य का निम्न प्रदेश अति उपजाऊ है तथा पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा सिंचाई की भी सुविधा अधिक है। पश्चिम का उच्च प्रदेश रेतीला होने पर भी उपजाऊ है। कृषि में चावल, गेहूँ, जौ, बाजरा, चना, गन्ना, कपास, तिलहन प्रमुख हैं। उद्योगों में चीनी बनाना तथा मोटा सूती कपड़ा बनाना प्रमुख है। बिजनौर में जनेऊ तथा नगीना में रस्सी बनाने का काम होता है। व्यापार के मुख्य केंद्र शिवहारा, धामपुर, नगीना, नजीबाबाद एवं बिजनौर आदि हैं। यातायात के साधनों का भी काफी विकास हुआ है।

२ नगर, स्थिति : २९° २२′ उ० अ० तथा ७८° ८′ पू० दे०। पश्चिमी बिजनौर जिले में, गंगा नदी से लगभग तीन मील पूर्व की ओर, नगीना रेलवे स्टेशन से १९ मील दूर स्थित जिले का सबसे प्रमुख नगर है। यहाँ चीनी का व्यापार अधिक होता है। चाकू एवं जनेऊ भी बनाए जाते हैं। यहाँ की जनसंख्या ३३,२२१ (१९६१) है। [र० चं० दु०]

बिज़्मार्क द्वीपसमूह स्थिति ४° ०′ द० अ० तथा १५०° ०′ पू० दे०। दक्षिणी प्रशांत महासागर में, न्यूगिनी के उत्तर-पूर्व घोड़े के खुर के आकार में स्थित द्वीपों का समूह है। इसमें ऐडमिरैल्टी, मुसाऊ, न्यूआयरलैंड, न्यूब्रिटेन आदि द्वीप शामिल हैं। इनका क्षेत्रफल १९,६५० वर्ग मील है। यहाँ की राजधानी रबौल है। नारियल, आम, केला, काकाओ (cacao), काफी, चाय तथा रबर आदि प्रमुख फसलें हैं। अधिकांश द्वीप पहाड़ी हैं। जलवायु उष्ण एवं आर्द्र है।

बिट्ठलदास गौड़, राजा राजा गोपालदास गौड़ का दूसरा पुत्र। मुगल सम्राट् शाहजहाँ के प्रारंभिक काल में तीन हजारी १५०० सवार का मसबदार हुआ। जुझारसिंह के विद्रोह करने पर यह खानजहाँ लोदी के साथ उसके दमन को नियुक्त हुआ। किंतु जब खानजहाँ लोदी ने ही विद्रोह के चिह्न प्रकट किए, तो उसके दमन का भी कार्य इसे सौंपा गया। राजा गजसिंह के सहायक के रूप में इसने खानजहाँ लोदी के दाँत खट्टे किए।

इसके बाद सम्राट् ने इसे क्रमशः रणथंभोर का दुर्गाध्यक्ष और अजमेर में फौजदार नियुक्त किया। परेंदः दुर्ग के घेरे में राजकुमार मुहम्मद शुजा के साथ रहा। जब दुर्ग विजित नहीं हो पाया, तो इसे पुनः अजमेर में रखा गया। दक्षिण मे शाह जी भोंसला का विद्रोह दबाने के लिये सम्राट् ने इसे भी भेजा था। उसके पश्चात् यह आगरे का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त हुआ। इसका मंसब पाँच हजारी सवार का कर दिया गया, और यह राजकुमार मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ पर आक्रमण करने को नियुक्त हुआ। बलख विजय के अनंतर यह वहाँ से राजकुमार के साथ लौट आया। राजकुमार औरंगजेब के साथ कांधार के काजिलबाशों के विरुद्ध युद्ध में इसने यश प्राप्त किया। जीवन के अंतिम समय मे यह अपने प्रांत लौट गया और वहीं १६५१ ई० मे इसकी मृत्यु हुई।

बिन्यन, रॉबर्ट लारेंस (१८६९-१९४३) अंग्रेज कवि, चित्र तथा वास्तुकला विशेषज्ञ; जन्मस्थान लैंकेस्टर। सेंट पाल स्कूल तथा ट्रिनिटी कालेज मे शिक्षा। 'परसीफ़ोन' नामक कविता पर न्यूडीगेट पुरस्कार (१८९०); १९२९-३० जापान का भ्रमण; १९३३-३४ में अमरीका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय मे कविता पढ़ाने के लिये चार्ल्स इलियट नॉर्टन प्रोफेसर; १९४० में एथेंस विश्वविद्यालय मे अंग्रेजी साहित्य के बायरन प्रोफेसर।

बिन्यन ने अंग्रेजी चित्रकला तथा जापानी काष्ठकला की सूचना पूर्ण सूची प्रकाशित करके पूर्व और पश्चिम की कला का समन्वय किया। वे चित्रकला के विशेषज्ञ थे। 'पेंटिंग इन दि फ़ार ईस्ट' १९०८ में प्रकाशित किया। कवि के रूप मे अनेक गीतकाव्य उनकी ख्याति में सहायक हुए। उनकी कविताएँ 'फ़ॉर दि फालेन' (१९१४) दि आइडाल्स (१९२८) अंग्रेजी साहित्य में विशेष प्रसिद्ध हुई। वे पद्यनाटक को पुन रंगमंच पर लाने के समर्थक थे। इस प्रकार के कई नाटक लिखे जिनमें 'एटिला' (१९०७), 'आर्थर' (१९२३), 'दि यग किंग' (१९२४) आदि है। वे काव्य को वक्तृता का अग बनाना चाहते थे। वे युद्ध को सभ्यता का विनाशक मानते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध से वे इतने दुःखी हुए कि एकाकी जीवन व्यतीत करते हुए महाकवि दाँते की रचना का अनुवाद करना आरंभ किया। उन्होंने कविता मे शब्दचयन और ध्वनि पर विशेष ध्यान रखा। वे भाषा को एकता, सौंदर्य और कला का साधन मानते थे। उन्होंने भारत की भावना और विचार को पक्षपात रहित होकर पश्चिमी देशों में पहुँचाया। वे भारत के सच्चे मित्र थे। वे अन्याय और अत्याचार के विरोधी थे, सत्य, सौंदर्य तथा पवित्रता के समर्थक। उनकी कविता वर्ड्सवर्थ तथा आर्नाल्ड से प्रभावित है। [गि० ना० श०]

बिन्ह डिन्ह (Binh Dinh) स्थिति : १३° ५५' उ० अ० तथा १०९° ७' पू० दे०। दक्षिणी वियतनाम में ह्यू से २१० मील दक्षिण-पूर्व, पूर्वी समुद्रतट से कुछ ही दूर स्थित एक नगर है। नगर के समीपस्थ भाग में धान, सेमवर्गीय फलियाँ, बंदगोभी, शकरकंद, नारियल, सुपाड़ी तथा चाय पैदा की जाती है। रेशम का धंधा नगर का प्रमुख उद्योग है। नगर की जनसंख्या १,६०,००० (१९४९) है।

बिल विविध प्रकार के लेख्यो के लिये यह शब्द प्रयुक्त किया जाता है। यह अंग्रेजी शब्द है, किंतु अब इसका प्रयोग भारतीय भाषाओं में होने लगा है। न्याय, व्यापार और विधि से संबंधित विषयों के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। न्याय में अभियोग चलाने से पहले कानूनी सलाह देनेवाले सॉलिसिटर द्वारा मुवक्किल को दी हुई व्यय की सूची को बिल ऑव कास्ट कहते हैं। व्यापार मे विक्रय की हुई वस्तुओं की, मूल्यों सहित सूची को बिल कहते हैं। बिल का विधेयक के अर्थ में प्रयोग संसद द्वारा पारित विधि के संबंध में भी किया जाता है। इंग्लैंड की संसद ही संसदीय पद्धति की जन्मदात्री है। इंग्लैंड के राजा हेनरी षष्ठ के काल से पहले राजनियम बनाने की प्रथा दूसरे प्रकार की थी। पार्लमेंट राजा के पास प्रार्थनापत्र भेजती थी कि राजा अमुक नियम बनाए। परंतु धीरे धीरे राजनियम बनाने का अधिकार ब्रिटिश संसद् ने अपने हाथ में लेना शुरू किया और ब्रिटिश संसद ही पूर्णतया विधि बनाने की अधिकारिणी हो गई। इस प्रथा का अनुसरण संसार की सभी विधायिनी सभाओं ने किया है। बिल या विधेयक एक प्रस्ताव होता है जिसे विधि का स्वरूप देना होता है। कुछ देशों में, जैसे इंग्लैंड या भारत में, विधेयकों की दो श्रेणियाँ होती हैं— सार्वजनिक तथा असार्वजनिक विधेयक। इसके अतिरिक्त यदि कोई विधेयक सरकार द्वारा प्रेषित होता है तो उसे सरकारी विधेयक कहते हैं। सरकारी विधेयक दो प्रकार के होते हैं सामान्य सार्वजनिक विधेयक तथा धन विधेयक। पर जब ससद का कोई साधारण सदस्य सार्वजनिक विधेयक प्रस्तुत करता है तब इसे प्राइवेट सदस्य का सार्वजनिक विधेयक कहते हैं। सार्वजनिक तथा असार्वजनिक विधेयकों को पारित करने की प्रक्रिया में अंतर होता है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका मे सार्वजनिक या असार्वजनिक विधेयक जैसे भेद नहीं हैं। साधारणतया संसद के दोनों सदनो में समान कार्यविधि की व्यवस्था होती है। प्रत्येक विधेयक को कानून बनने से पहले प्रत्येक सदन में अलग अलग पाच स्थितियो से गुजरना पड़ता है और उसके तीन वाचन (Reading) होते हैं। पाँचो स्थितियाँ इस प्रकार हैं पहला वाचन, दूसरा वाचन, प्रवर समिति की स्थिति, प्रतिवेदन काल (report stage) तथा तीसरा वाचन। जब दोनों सदनों में इन पाँचों स्थितियों से विधेयक गुजर कर बहुमत से प्रत्येक सदन में पारित हो जाता है तब विधेयक सर्वोच्च कार्यपालिका के हस्ताक्षर के लिये भजा जाता है। सर्वोच्च कार्यपालिका की अनुमति के बिना कोई विधेयक कानून नही बन सकता। अतः किसी भी विधेयक को विधि में परिणत होने के लिये सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि वह दोनो सभाओं द्वारा स्वीकृत हो। इसके उपरांत सर्वोच्च कार्य-पालिका की, हस्ताक्षर सहित, स्वीकृत भी अनिवार्य है। [शु० ते०]

बिलासपुर १. जिला, स्थिति : २१° ३७' से २३° ७' उ० अ० तथा ८१° १२' से ८३° ४०' पू० दे०। भारत मे मध्य प्रदेश राज्य का जिला है जो उत्तर मे सरगुजा, पूर्व मे रायगढ़, दक्षिण मे रायपुर एवं दुर्ग तथा पश्चिम और उत्तर-पश्चिम में मंडला एवं शहडोल से घिरा है। इसका क्षेत्रफल ७,६१५ वर्ग मील तथा जनसंख्या २०,२१,७६३ (१९६१) है। यहाँ पर एक २,०० फुट तक ऊँचा पठार है। २५ मील तक महानदी बहकर अन्य जिलों मे चली जाती

है। यहाँ की जलवायु उत्तम नहीं है। बिलासपुर नगर की औसत वर्षा ५० इंच है। मिट्टी का अधिकांश काली या कंकड़ युक्त मिट्टी से बना है। धान के अलावा गेहूँ, कोदो, तिलहन, दलहन, एवं गन्ने की कृषि होती है। खनिजों में कुछ मात्रा में लोहा, कोयला, सोना तथा अभ्रक मिलता है। सूती कपड़ा, धातु के बरतन, दियासलाई आदि बनाने का काम होता है।

२. नगर, स्थिति : २२° ५' उ० अ० तथा ८२° १०' पू० दे०। मध्यप्रदेश के बिलासपुर जिले मे स्थित नगर है। इसके समीप ही अर्पा नदी बहती है। टसर रेशम तथा सूती कपडा बनाना यहाँ के प्रमुख उद्योग हैं। इसकी जनसंख्या ८६,७०७ (१९६१) है।

३ जिला, स्थिति : ३१° १९' उ० अ० तथा ७६° ५०' पू० दे०। भारत के केंद्र शासित हिमाचल प्रदेश में जिला है। पहले यह एक देशी रियासत था। इसका क्षेत्रफल ४४८ वर्ग मील तथा जनसंख्या १,५८,८०६ (१९६१) है। इसी जिले में बिलासपुर नाम का नगर भी है जिसकी जनसंख्या ७,४२४ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

बिलियर्ड (Billiard) घर के अंदर मेज पर तीन रंगीन गेंदों तथा छड़ी से खेला जानेवाला खेल है, जो दो खिलाड़ियों के मध्य खेला जाता है। मेज की लंबाई १२ फुट और चौड़ाई ६ फुट १·५ इंच तथा ऊँचाई २ फुट ९·५ इंच से २ फुट १०·५ इंच तक होती है। मेज की सतह स्लेट की बनी होती है, जिसपर ऊनी कपडा कसकर चढ़ा रहता है। सतह के किनारे चारों ओर कड़ी लकड़ी का चौखटा लगा रहता है, जिसमें भीतर की ओर रबर का ढालुआँ किनारा बनाया जाता है। इसकी मोटाई १·५ इंच से दो इंच तक होती है। इस प्रकार खेलने के क्षेत्र की लंबाई ११ फुट ८ इंच से ११ फुट ९ इंच तक तथा चौड़ाई ५ फुट ९·५ इंच से ५ फुट १०·५ इंच तक रह जाती है। मेज मे कुल छह थैलियाँ (pockets) रहती हैं। इनमें से चार, चार कोनों पर तथा दो लंबाई के मध्य मे दोनों ओर बनाई जाती हैं। इन थैलियों के मुँह का व्यास गेंद के व्यास के अनुरूप रहता है। इस खेल का डंडा क्यू (cue) कहलाता है। इसकी लंबाई ३ फुट से ४ फुट १० इंच तक एवं उसके नुकीले सिरे का व्यास ३/१० इंच से २/५ इंच तक होता है। इसकी नोक पर चमड़े की टोपी एवं उसपर खडिया मिट्टी लगा दी जाती है। इसकी मुठिया के, जो हाथ से पकडी जाती है, सिरे का व्यास १ इंच से कुछ अधिक होता है। यह छड़ी ऐश (ash) नामक लकड़ी की बनी होती है।

इस खेल की गेंदों का व्यास २$\frac{1}{16}$ से २$\frac{3}{32}$ इंच तक होता है। ये आजकल क्रिस्टलेट (crystalate) की बनती हैं, जब कि पहले ये हाथीदाँत की बनाई जाती थी। गेंदों में से एक लाल रंग की, दूसरी सफेद तथा तीसरी एक काले बिंदुवाली होती है, जिसे स्पॉटेड बॉल (spotted ball) कहते हैं। गेंदों का आकार बिलकुल गोल तथा उनका भार और माप बिलकुल बराबर होनी चाहिए। लाल गेंद दोनों खिलाड़ी खेलते हैं तथा अन्य दोनों गेंदों के लिये टॉस (toss) की व्यवस्था है।

क्रीड़ाक्षेत्र में अंकित होनेवाली रेखाओं में सबसे पहले मेज के एक सिरे से २९ इंच की दूरी पर मेज की चौड़ाई की ओर एक रेखा खींची जाती है, जिसे बॉक लाइन (baulk line) कहते हैं। बॉक लाइन के केंद्र से ११·५ इंच की दूरी पर भीतर की ओर एक अर्धवृत्त खींचा जाता है, जिसको डी (D) कहते हैं। मेज के दूसरे सिरे पर चौड़ाईवाली रेखा के मध्य से ठीक १२$\frac{3}{4}$ इंच की दूरी पर भीतर की ओर एक छोटा सा चिह्न (चित्र मे क) रहता है, जिसे बिलियर्ड स्पॉट (billiard spot) कहते हैं। क्षेत्र के केंद्र में एक अन्य बिंदु ख रहता है, जिसे सेंटर स्पॉट (centre spot) कहते हैं, तथा साथ ही बिलियर्ड स्पॉट तथा सेंटर स्पॉट के ठीक मध्य मे एक बिंदु (ख) रहता है, जिसे पिरामिड स्पॉट (pyramid spot) कहते हैं। ये बिंदु या तो रेशम के छोटे टुकड़ों से, या खड़िया मिट्टी से, चिह्नित किए जाते है।

खेल प्रारंभ करने के लिये 'टॉस' तथा टूस्ट्रिंग (to string) द्वारा प्रथम एवं द्वितीय खिलाड़ी का निर्धारण होता है। इस खेल में
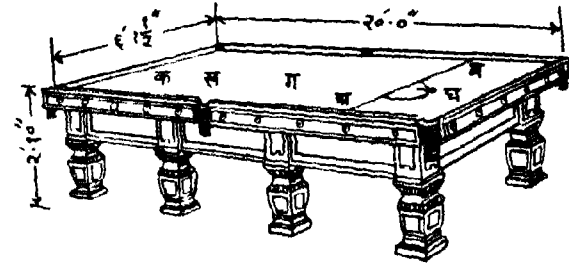
बिलियर्ड की मेज

क. बिलियर्ड स्पॉट, ख पिरामिड स्पॉट, ग सेंटर स्पॉट, घ. डी तथा अब बॉक लाइन।

हार जीत का निर्धारण अंकों से या समय निश्चित करके किया जाता है।

किसी भी खिलाडी द्वारा अंक प्राप्त करने की मुख्यतया निम्नलिखित तीन विधियाँ हैं :

(१) जब किसी भी खिलाडी द्वारा चोट (strike) की हुई गेंद विरोधी की गेंद एवं लाल गेंद मे साथ ही टक्कर लगा दे तब खिलाडी को दो अंक प्राप्त होता है तथा इस खेल को कैनन (cannon) कहते हैं।

(२) घाटे की चाल या लूजिंग हैजड्र्स (Losing Hazards) — छडी से मारी गई गेंद यदि किसी गेंद से टकराकर थैली में चली जाय, तो इसे घाटे की चाल कहते हैं। यदि वह गेंद विरोधी के सफेद गेंद को टक्कर मारकर थैली मे चली जाती है, तो दो अंक, तथा लाल गेंद को टक्कर मारकर थैली मे चला जाता है, तो तीन अंक, प्राप्त होते हैं।

(३) विजय की चाल या विनिंग हैजड्‌र्स (Winning Hazards) — यदि खिलाड़ी अपनी चोट की हुई गेंद से, जिसे क्यू बाल भी कहते हैं, विरोधी की गेंद को, जिसे ऑब्जेक्ट बॉल (object ball) भी कहते है, थैली (pocket) मे डाल दे, तो खिलाड़ी को दो अंक, तथा यदि लाल गेंद को थैली मे प्रविष्ट करा दे, तो उसे तीन अंक, प्राप्त होते हैं।

लूजिंग हैजर्ड तथा विनिंग हैजर्ड नाम पड़ने का कारण केवल इतना है कि लूजिंग हैजर्ड में अपनी गेंद थैली में चली जाती है,

जिससे अपनी पारी समाप्त हो जाती है, तथा विनिंग हैज़र्ड में विरोधी की गेंद थैली में जाती है, जिससे स्वयं को चोट करने का पुनः मौका मिलता है। इनके अलावा भी कुछ अन्य संभावनाएँ हैं, जो अचानक उठ खड़ी होती हैं, जैसे कैनन के साथ भी लूज़िंग हैज़र्ड्स या विनिंग हैज़र्ड्स का होना। ऐसी अवस्था मे यदि खिलाड़ी कैनन के साथ लूज़िंग हैज़र्ड्स या विनिंग हैज़र्ड्स बनाता है, तो उसे कैनन का दो अंक तथा हैज़र्ड का भी दो अंक प्राप्त होता है। कैनन के साथ हैज़र्ड्स बनाते समय यदि 'लाल गेंद' को चोट करें, तो उसका तीन अंक होता है। ऐसे ही कभी कभी खिलाड़ी कैनन के साथ अपनी गेंद को लाल गेंद के पीछे चोट कराकर, पुन. उसे अपनी बॉक रेखा के अंदर लौटा लेता है, तो उसको छह अंक मिल जाते हैं।

५०, या ५० से अधिक, अंक प्राप्त करने पर रेफरी (referee) जब किसी खिलाड़ी को समय देता है, तो उसे ब्रेक (break) कहते हैं। यदि खिलाड़ी विरोधी की गेद को थैली मे डाल देता है, तो खेल उस समय तक रुक जाता है जब तक विरोधी अपनी गेद लेकर पुनः न खेलना प्रारंभ कर दे। लेकिन इसके ठीक विपरीत यदि खिलाड़ी लाल गेंद को थैली मे डाल दे, तो उसे पुन. निकालकर खेल प्रारंभ हो जाता है। गेंद पर चोट करनेवाला खिलाडी स्ट्राइकर (Striker) तथा दूसरा खिलाडी नॉनस्ट्राइकर (Non-striker) कहलाता है।

खिलाड़ी अपना अंक न बनते देख झूठी चोट भी करते हैं। और अपनी गेंद को हलकी चोट लगाकर रेखा मे पुन लौटा लेते है। इससे यह लाभ होता है कि विरोधी का कोई लाभ नही हो पाता। इस खेल मे झूठी चोट के साथ ही सुरक्षात्मक चोट (defensive shot) भी की जाती है। उस चोट को भी, जिससे अपनी गेंद और लाल गेंद को एक ऐसे स्थान में कर दिया जाए कि विरोधी अंक न बना सके, सुरक्षात्मक चोट कहते हैं।

जब खिलाड़ी जान बूझकर अपनी गेद को थैली मे डाल देता है, जिससे विरोधी को कैनन इत्यादि बनाने का मौका न मिले, तो उसे रन-ए-कू (run a coup) कहते है। यह भी एक चाल है कि रन-ए-कू से विरोधी की 'रेड बाल' पर चोट करना पड़ेगा, जिसे वह कर नही सकता।

खेल का प्रारंभ 'बॉक एरिया' से किया जाता है। खिलाड़ी को गेंद 'बॉक एरिया' से किसी भी तरफ मार करने की छूट है तथा बाहर मारना आवश्यक भी है। जैसे गोल होने पर फुटबाल या हाकी में गेंद केंद्र मे लाया जाता है, वैसे ही बिलियर्ड खेल का आरंभ बॉक एरिया से ही किया जाता है।

लाल गेंद यदि थैली मे चली जाती है, तो उसे पुन. निकालकर बिलियर्ड स्पॉट पर रखते हैं, पर यदि वहाँ पर कोई गेद है तो उसे पिरामिड स्पॉट पर रखा जाता है। यदि लाल गेंद को दो बार थैली में डाल दिया जाय, तो उसे निकालकर सेंटर स्पॉट पर रखा जाता है। यदि सेंटर स्पॉट पर कोई गेंद हो, तो उसे 'पिरामिड स्पॉट' पर रखा जाता है। यदि गेद उछलकर मेज से नीचे गिर जाय, तो उसे 'फाउल' (foul) समझा जाता है। जब गेंद नीचे गिर जाती है तो लाल गेंद को बिलियर्ड स्पॉट पर तथा सफेद गेद को सेंटर स्पॉट पर रखा जाता है।

जितनी बार खिलाड़ी की गेंद, जिसे क्यू बॉल भी कहा जाता है, थैली में प्रवेश करती है, उतनी बार दूसरा खिलाड़ी खेल घ या डी (D) से प्रारंभ करता है। जब कोई खिलाड़ी अंक नहीं बना पाता, तो अवसर दूसरे को दिया जाता है। झूठी चाल सभी खिलाड़ी चल सकते हैं, पर एक को लगातार दो झूठी चाल चलने की अनुमति नहीं है। हर एक झूठी चाल पर एक अंक विरोधी के अंक में जोड़ दिया जाता है।

खेल में होनेवाले नियमभंग निम्नलिखित हैं :

१. 'क्यू' से गेंद को ढकेलना नियमविरुद्ध (foul) है।

२. गेंद को उछालकर मेज से नीचे ले जाना नियमविरुद्ध है।

३. दोनों पैरों को फर्श से उछालकर खेलना गलत है।

४. जब तक खेली गई गेंदें स्थिर न हो जायें, तब तक चोट करना नियमविरुद्ध है।

५. यदि गेंद क्यू टिप (cue tip) के अलावा क्यू के अन्य किसी भाग से छू जाय, या शरीर के किसी भाग से छू जाय, या कपड़े इत्यादि से छू जाय, तो इन दशाओं में खेल नियमविरुद्ध समझा जायगा।

६. यदि खिलाडी अपनी गेद से बॉक रेखा के अंदर ही चोट करे, तो यह नियमविरुद्ध है।

७. चोट करने के पहले खिलाड़ी द्वारा गेंद को क्यू की नोक से हिलाना डुलाना नियमविरुद्ध है।

८. अपनी गेंद से ही खेलना चाहिए। दूसरे खिलाडी की गेंद से खेलना नियमविरुद्ध है।

९. गेंद को चिह्नित (spotted), अर्थात् उचित स्थान पर, रखने का तात्पर्य है सफेद बाल को क्रीडाक्षेत्र के केंद्र में रखना तथा लाल गेंद को बिलियर्ड स्पॉट पर रखना। इसके विपरीत किया गया कार्य नियमविरुद्ध माना जाता है।

१० गेंद को 'स्ट्राइक' (strike) करके कोई भी अंक न प्राप्त करने से एक अंक का पेनाल्टी (penalty) तथा रन ए कू (run a coup) करने से तीन अंक का पेनाल्टी देना पड़ता है।

११. यदि 'लाइन बॉल' (line ball), अर्थात् गेंद, बॉक रेखा के अंदर लाइन पर हो, तो खिलाड़ी उसे सीधा नहीं खेल सकता, क्योंकि वह बॉक रेखा के अंदर समझी जाती है। उसके लिये कोई परोक्ष कैनन या हैज़र्ड बनाना आवश्यक है।

१२. किसी भी खिलाड़ी को लगातार ३५ कैनन से अधिक नही बनाना चाहिए। परोक्ष कैनन या हैज़र्ड बनाना आवश्यक है।

१३ जब खिलाड़ी अपनी गेद से विपक्षी की गेद को छूता है और अक नही प्राप्त कर पाता, तो उसे स्पॉटेड (spotted) कर देना पडता है।

१४. जब रेफरी चाल गलत बता दे, तो दूसरे को वहीं से खेलना चाहिए, अथवा रेफरी से पूछकर स्पॉटेड करके खेले, यह खिलाड़ी की इच्छा की बात है।

१५ जब गेंद क्रीड़ाक्षेत्र मे पडी हो, तो 'क्यू बॉल' तथा ऑबजेक्ट बॉल, या रेड बॉल मे, १२ इंच से १५ इच की दूरी होनी चाहिए।

१६. एक खिलाड़ी को २५ हैज़र्ड्स से अधिक बनाने का अधिकार

नहीं है। यदि उसकी आखिरी मार के साथ विपक्षी 'कू' खेलता है, तो उसे अधिकार है कि वह पुनः हेज़र्ड बनावे।

सभी खेलों की भाँति इस खेल में भी एक रेफरी या निर्णायक होता है। खेल के नियमों का पालन कराना, गेंद को थैली से निकालकर स्पॉटेड (spotted) करना, खिलाड़ी को विश्राम देना, उसकी गेंद अंत मे उसे देना, स्कोर (score) बोलना तथा खिलाडी की हर गलती को बतलाना निर्णायक का मुख्य कार्य है। रेफरी सहायता के लिये 'मार्कर' भी रख लेता है, जो 'स्कोर बोर्ड' देखता है। रेफरी अपने निर्णय मे दर्शकों से भी सहायता ले सकता है। [भा० सि० गौ०]

बिल्फ़िगेर, जार्ज बर्नहार्ड (१६९३-१७५०) जर्मन दार्शनिक, गणितज्ञ एवं राजनयिक, जो वोल्फ से बड़ा प्रभावित था। हाल यूनिवर्सिटी में अध्यापन के पश्चात् उसे ड्यूक चार्ल्स एलेक्ज़ेंडर ने प्रिवी काउंसिलर बनाया। ड्यूक की मृत्यु के बाद, रिजेंसी कौंसिल के सदस्य के रूप में शिक्षा, धर्म, कृषि और वाणिज्य मे उसका प्रबंध अत्यंत सफल रहा, और सही अर्थों में वह राज्य का प्रमुख बन गया। [श्री० स०]

बिल्ली मांसभक्षी गण (order Carnivora) के फीलिडी कुल (family Felidae) का स्तनपायी जीव है। यह संसार के प्रायः सभी भागों में जंगली और पालतू अवस्था में पाई जाती है। यह एशिया में बोर्नियो के आगे नही पाई जाती और ऑस्ट्रेलिया तथा मैडागैस्कर में भी नही दिखाई पड़ती।

सब देशों की बिल्लियों का स्वभाव एक जैसा ही होता है और वे सब अपना मारा हुआ शिकार ही खाती हैं। छोटे मोटे जानवर,
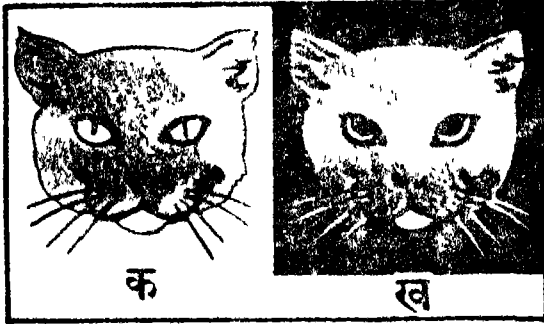
चित्र १. बिल्ली की आँखें

क. दिन मे तथा, ख रात में।

चिड़ियाँ, चूहे, सरीसृप, मेढक, मछली और कीड़े मकोडे इनके मुख्य भोजन हैं। पालतू बिल्लियाँ दूध, दही और पनीर भी बड़े स्वाद से खाती हैं।

फीलिडी कुल बहुत विस्तृत कुल है। इसमें सिंह (lion), जैग्वार (jaguar), बाघ (tiger), तेंदुआ (leopard), स्याहगोश (caracal), तेंदुआ बिल्ली (leopard cat), प्यूमा (puma), चीता सिकमार (marbled cat), शाह (snow leopard), लमचित्ता (clouded leopard), बाघदशा (fishing cat) आदि, बहुत से मांसभक्षी जीव आते हैं। तेज पंजे और नुकीले कुकुरदंत इनकी विशेषताएँ हैं।

बिल्लियाँ सबसे पहले मिस्र देश मे, अन्नसंग्रह को चूहों से बचाने के लिये, ईसा के ३,००० वर्ष पूर्व पालतू की गई। मनुष्यों के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होने पर, मिस्र मे इन्हे एक देवता का स्वरूप
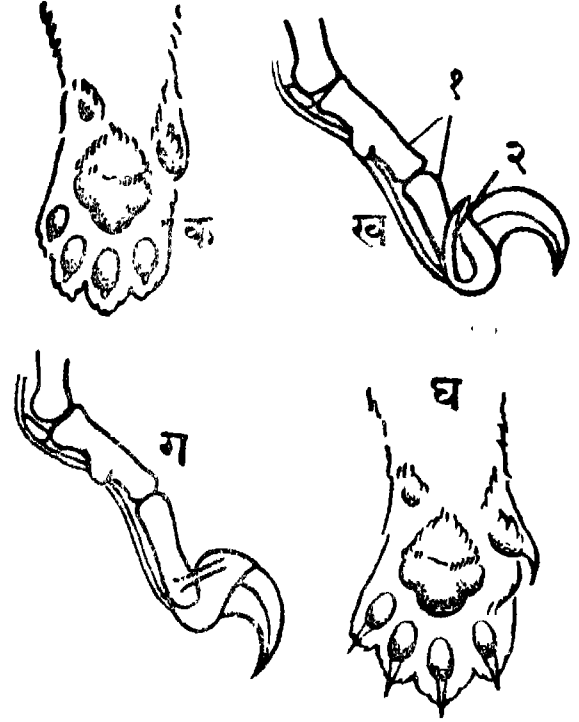
चित्र २. बिल्ली के पंजों की क्रिया

क आच्छन्न नखो से युक्त अगला पंजा, ख पंजे के आच्छन्न होने पर नखो की स्थिति (१. हड्डियाँ तथा २. कंडरा, अर्थात् tendon), ग. पजे के फैलने पर नख की स्थिति तथा घ. निकले हुए नखो से युक्त अगला पजा।

दे दिया गया। अफ्रीका की जंगली बिल्ली (Felis lybica) को मिस्र मे पालतू बनाया गया। यह सिलेटी रंग की बिल्ली थी और इसके शरीर पर काली धारियाँ और धब्बे थे। इसके बाल छोटे और दुम का सिरा काला रहता था।

मिस्र से ये पालतू बिल्लियाँ अन्य सभ्य देशों मे फैलीं, जहाँ इनसे और यूरोप की जगली बिल्लियों (Felis selvestris) के मेल से एक नई जाति निकली। इन बिल्लियों की दुम और शरीर पर के बाल लंबे होने लगे। मिस्र देश की पालतू बिल्लियाँ व्यापारियों के द्वारा इटली पहुँचीं और वहाँ से ये सारे यूरोप में फैल गईं।

पालतू बिल्लियों की इतनी अधिक जातियाँ नही होतीं जितनी हम कुत्तों मे पाते हैं और न कुत्तों की तरह इनकी गतियों में भेद ही रहता है। इनको हम दो मुख्य भागों में बाँट सकते हैं : १. छोटे बालोंवाली बिल्लियाँ तथा २. बड़े बालोंवाली बिल्लियाँ।

छोटे बालोंवाली बिल्लियाँ यूरोप, एशिया और अफ्रीका में फैली हुई हैं, लेकिन बड़े बालोंवाली बिल्लियाँ केवल ईरान, अफगानिस्तान तथा इनके पड़ोसी देशों में ही पाई जाती हैं।

बड़े बालोंवाली बिल्लियाँ भी अंगोरा (Angora) और ईरानी (Persian), इन दो जातियों में विभक्त हैं। अंगोरा बिल्लियो के बाल ईरानी बिल्लियों से बड़े और मुलायम होते हैं और इनका मुँह भी गोल न होकर लंबोतरा रहता है। ईरानी बिल्लियों का मुँह गोल रहता है और इनकी दुम का सिरा झबरा रहता है। यूरोप और अमरीका में ईरानी बिल्लियाँ अंगोरा बिल्लियों से अधिक संख्या में दिखाई पड़ती हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये बिल्लियाँ मध्य एशिया के फीलीस मैनुल (Felis manul) वंश की जंगली बिल्ली से पालतू की गई हैं।

मैंक्स (Manx), या बिना दुम की बिल्लियाँ, मलाया और फिलिपीन्स आदि पूर्वी देशों में उसी तरह फैली हुई हैं जिस प्रकार यूरोप मे ईरानी बिल्लियाँ। इनके दुम के स्थान पर बालों का गुच्छा सा रहता है, लेकिन उसमें हड्डी नहीं रहती। हमारे देश की पालतू बिल्लियाँ बहुत कुछ अफ्रीका की जंगली बिल्लियों जैसी होती हैं और इनके सिलेटी बदन पर काली धारियाँ और धब्बे पड़े रहते हैं। ये शायद यहाँ की जंगली बिल्ली (Felis constantina ornata) से पालतू की गई हैं।

ऐबिसिनिया की बिल्लियो का रंग खैरा और दुम का सिरा काला होता है, लेकिन इनके शरीर पर न तो काली धारियाँ ही रहती हैं और न धब्बे ही। इनके बाल छोटे और कान बड़े होते है।

स्याम देश की बिल्लियाँ भी यूरोप और अमरीका मे काफी संख्या मे फैली हुई हैं। इनका रंग हलका भूरा या सदली रहता है। चेहरा, कान, दुम और पंजे कलछौह, या गाढ़े कत्थई रहते हैं। आँखें पीली या नीली, सर बड़ा और लबोतरा और शरीर के बाल छोटे होते है।

अपने छोटे बालो के कारण स्याम देश की बिल्लियाँ ज्यादा पसंद की जाती हैं, क्योंकि बड़े बालोंवाली अंगोरा और ईरानी बिल्लियों के मुकाबले इनका पालना आसान होता है। [सु० मि०]

बिल्वमंगल, ठाकुर 'लीलाशुक' नामांतर से प्रसिद्ध कृष्णकर्णामृत, कृष्णबालचरित, कृष्णाह्निक कौमुदी, गोविंदस्तोत्र, बालकृष्ण क्रीडा काव्य, बिल्वमंगल स्तोत्र, गोविंद दामोदरस्तव आदि संस्कृत स्तोत्र एवं काव्यग्रंथों के प्रणेता, दाक्षिणात्य ब्राह्मण तथा कृष्णभक्त कवि थे।

प्रवाद है कि बाल्यावस्था मे धनी पिता की मृत्यु के बाद ये युवाकाल मे विपुल संपत्ति के उत्तराधिकारी होने के कारण उच्छृंखल तथा अनुशासनहीन हो गए और चिंतामणि नामक वेश्या से प्रेम करने लगे। ये उसमे इतने आसक्त थे कि वर्षाकाल में घनी वृष्टि और भयंकर बाढ़ की परवाह न कर लकड़ी के भ्रम मे अधजले मुर्दे के सहारे, इन्होंने कृष्णवेण्वा नदी को पार किया और द्वार बंद पा भवन के पीछे लटकते साँप की पूँछ को रस्सी समझ और उसके सहारे चढ़कर वेश्या का साक्षात्कार किया। सब कुछ जानने के बाद उसने इन्हें बहुत धिक्कारा जिससे इनके मन में कृष्ण के प्रति सख्य भाव के साथ विवेकपूर्ण वैराग्य उत्पन्न हुआ। यहाँ से लौटकर इन्होंने सोमगिरि से कृष्णमंत्र की दीक्षा ली और कृष्णप्रेम में उन्मत्त रहते हुए भगवद्दर्शन की इच्छा से वृंदावन की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में एक वणिक् सुंदरी को देख कामासक्त हुए और द्वार पर पहुँच इन्होंने उसके पति से उस स्त्री को आँख भर देखने की इच्छा प्रकट की। वणिक ने साधु की इच्छा पूरी की। तत्पश्चात् ग्लानिवश उस स्त्री से सुई लेकर इन्होंने अपनी आँखे फोड ली और कृष्णप्रेम के गीत गाते हुए वृंदावन की राह ली। ये दोनों कथाएँ गोस्वामी तुलसीदास तथा सूरदास के संबंध मे प्रचलित किंवदंतियो से मिलती जुलती हैं। भक्तमाल के अनुसार कृष्ण ने इन्हें नेत्रदान देकर युगलरूप में दर्शन दिया था। कहते हैं, वे इन्हें गोपवेश मे भोजन कराते थे।

[श्या० ति०]

बिवा (Biwa) स्थिति : ३५° १५' उ० अ० तथा १३६° ४५' पू० दे०। दक्षिण हॉन्शू (जापान) मे क्योटो से सात मील उत्तर-पूर्व स्थित एक झील है जो ४० मील लंबी और सात मील चौडी है। इसका क्षेत्रफल १८० वर्ग मील है। यह जापान की सबसे बडी तथा सुंदर झील है। इस झील से एक नहर क्योटो तक निकाली गई है जहाँ पर जलविद्युत् उत्पन्न की जाती है। बिवा झील से सात मील की दूरी पर क्योटो नगर है, जो १८६८ ई० तक जापान की राजधानी भी रहा है। झील के आसपास की भूमि ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रही है। यहाँ की प्राकृतिक बनावट अति सुंदर है, अतः यह एक विश्रामस्थल भी है। [श्रीकृ० च० ख०]

बिशप ईसाई धर्म के प्रारंभ से विभिन्न स्थानीय समुदायों का शासन एक ही अध्यक्ष के हाथ में था, द्वितीय शताब्दी के प्रारंभिक दशकों से उसी पदाधिकारी के लिये 'बिशप' शब्द का प्रयोग होने लगा। रोमन काथलिक धर्म, प्राच्य चर्च तथा ऐंग्लिकन समुदाय मे बिशप ईसा के पट्टशिष्यों (एपोसल्स) के उत्तराधिकारी माने जाते हैं; वे पौरोहित्य संस्कार की परिपूर्णता प्राप्त कर चुके होते है और दूसरो को भी पुरोहित बना सकते हैं (दे० पुरोहित)। कई लूथरन तथा प्रोटेस्टैंट संप्रदायों में भी बिशप की उपाधि प्रचलित है किंतु वहाँ बिशप तथा साधारण पुरोहित, सभी समान रूप से सुसमाचार के सेवक माने जाते हैं; बिशप की प्रतिष्ठा केवल इसमें है कि वह चर्च का प्रशासन करते है। रोमन काथलिक चर्च मे माना जाता है कि ईसा ने अपने शिष्यो मे से बारह पट्टशिष्यो को चुनकर तथा उन्हे विशेषाधिकार प्रदान कर बिशप का पद ठहराया है, अत अपने अभिषेक द्वारा बिशप को भी वे ही अधिकार प्राप्त हो जाते है और वह ईसा के इच्छानुसार विश्व भर के बिशपो तथा पोप से संयुक्त रहकर पोप के नाम पर नही अपितु ईसा द्वारा प्रदत्त अधिकार के बल पर अपनी प्रजा का आध्यात्मिक संचालन करते हैं (दे० पोप)। [का० बु०]

बिस्मथ (Bismuth) बिस्मथ आवर्त सारणी के पंचम मुख्य समूह का तत्व है। इसका केवल एक स्थिर समस्थानिक (isotope) प्राप्त है, जिसकी द्रव्यमान संख्या २०९ है, यद्यपि यूरेनियम और थोरियम अयस्कों में इसके रेडियोऐक्टिव (radioactive) समस्थानिक मिलते हैं। इनके नाम क्रमश. रेडियम ई (Ra E, द्रव्यमान संख्या २१०), ऐक्टीनियम-सी (Ac C, द्रव्यमान संख्या २११), थोरियम-सी (Th C, द्रव्यमान संख्या २१२) तथा रेडियम-सी (Ra C, द्रव्यमान संख्या २१४) है। इनके अतिरिक्त

प्रयोगों द्वारा इसके कृत्रिम पाँच अल्पजीवी समस्थानिक भी बनाए गए हैं, जिनकी द्रव्यमान संख्याएँ १९९, २००, २०४, २०६ और २१३ हैं।

बिस्मथ तत्व की पहचान सोलहवीं शताब्दी में पैरासेल्सस तथा अग्रिकोला ने की थी। सन् १७३९ में पोप नामक वैज्ञानिक ने इसके गुणों का अध्ययन किया। इसकी क्रियाओं का सम्यक् रूप से सर्वप्रथम अध्ययन १७८० ई० में बर्गमैन ने किया था। बिस्मथ का नाम जर्मन शब्द वाइज़मुथ (Weissmuth) पर आधारित है, जिसका अर्थ श्वेत पदार्थ है।

उपस्थिति एवं उत्पादन — पृथ्वी की सतह पर बिस्मथ की अनुमानित मात्रा लगभग १० प्रति शत है। कभी कभी यह मुक्त अवस्था में भी मिलता है। बिस्मथ के मुख्य अयस्क बिस्मथिनाइट बि$_2$ गं$_3$ (Bi_2S_3); बिस्मथाइट, (बिऔ)$_2$ काऔ$_3$हा$_2$औ [$(BiO)_2 CO_3 . H_2O$] और बिस्माइट, बि$_2$औ$_3$३हा$_2$औ ($Bi_2O_3 . 3 H_2O$) हैं। दक्षिण अमरीका के बोलीविया और पेरू में इसके अयस्क पाए जाते हैं। ऑस्ट्रेलिया, कैनाडा, स्पेन और मध्य यूरोप में भी इसके अयस्क प्राप्य हैं।

बिस्मथ प्राप्त करने की अनेक विधियाँ ज्ञात हैं। प्राकृतिक बिस्मथ को झुकी हुई पाइपों में गरम करने पर उसका द्रवीकरण हो जाता है। द्रव बिस्मथ बह जाता है और अशुद्धियाँ पाइप में चिपकी रहती है। ऑक्साइड अथवा सल्फाइड अयस्क में कोबल्ट, निकेल ताम्र, लौह, रजत, सीस, वंग, सेलीनियम आदि अशुद्धियाँ वर्तमान रहती हैं। अयस्क को भून (roast) कर अपचायक पदार्थ, जैसे लकड़ी का कोयला अथवा लौह, के साथ गरम करते हैं। इस क्रिया में गालक (flux) पदार्थ भी मिलाए जाते हैं, जैसे चूना, सोडा, सोडियम सल्फेट, फ्लोरस्पार आदि। बिस्मथ द्रव अवस्था में मुक्त होकर नीचे बैठ जाता है। इसे शुद्ध करने के लिये नाइट्रिक अम्ल द्वारा प्रक्रिया की जाती है। प्राप्त बिस्मथ नाइट्रेट के जल अपघटन द्वारा बिस्मथ ऑक्सिनाइट्रेट का अवक्षेप प्राप्त होता है। अवक्षेप निस्तापन (calcination) से विशुद्ध बिस्मथ ऑक्साइड प्राप्त होता है। इसका कार्बन द्वारा अपचयन करके विशुद्ध धातु मिलती है। सीसे के विद्युत् अपघटन क्रिया द्वारा विशुद्धीकरण करने पर बची धनाग्र अवपक (anode slime) से भी बिस्मथ प्राप्त होता है।

गुण — बिस्मथ हलका लाल रंग लिए, भुरभुरे गुणवाली धातु है। इसमें धात्विक चमक होती है, जिसपर वायु में ऑक्साइड की हलकी परत जम जाती है। इसके कुछ गुण निम्नांकित हैं : संकेत बि (Bi), परमाणु संख्या ८३, परमाणु भार २०८.९८, गलनांक २७१.३० सें०, क्वथनांक १,४२० सें०, घनत्व ९.८ ग्राम प्रति घ० सेमी०, परमाणु व्यास ३.६४ ऐंग्स्ट्रॉम (A°) तथा विद्युत्प्रतिरोधकता १०६.८ माइक्रोओहम् सेंमी०।

बिस्मथ वायु में गरम करने पर जलकर बिस्मथ ऑक्साइड, बि$_2$ औ$_3$, ($Bi_2 O_3$), बनाएगा। यह हैलोजन तत्वों से क्रिया कर यौगिक बनाता है। खनिज अम्लों में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल इसपर शिथिलता से क्रिया करता है। गरम सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया द्वारा बिस्मथ सल्फेट बनेगा और सल्फर डाइऑक्साइड, गंऔ$_2$ (SO_2), मुक्त होगा। नाइट्रिक अम्ल की क्रिया द्वारा बिस्मथ नाइट्रेट, बि (ना औ$_3$)$_3$ [$Bi(NO_3)_3$] बनता है। अम्लीय अथवा क्षारीय विलयन में धनाग्र पर बिस्मथ का ऑक्सीकरण हो जाता है। बिस्मथ की हाइड्रोजन से कोई प्रत्यक्ष क्रिया नहीं होती। क्षारीय धातुओं (जैसे सोडियम, पोटैसियम, मैग्नीशियम, कैल्सियम आदि) से बिस्मथ यौगिक बनाता है। इन यौगिकों के भौतिक गुण धातु के यौगिकों के गुण से होते हैं।

बिस्मथ अधिकतर त्रिसंयोजी यौगिक बनाता है। पंचसंयोजी यौगिकों में इसके ऑक्सीकारक गुण रहते है।

यौगिक — हाइड्रोजन के साथ बिस्मथ त्रिहाइड्राइड, बिहा$_3$ (BH_3) यौगिक ज्ञात है। इसको बिस्मथीन भी कहते हैं। यह अस्थिर गैस है, जिसका १६०° सें० पर शीघ्र विघटन होकर बिस्मथ का दर्पण बन जाता है।

सामान्य अम्लीय विलयन में बिस्मथिल आयन, [बि(औ हा)$_2$]$^+$ [$Bi(OH)_2$]$^+$ वर्तमान रहते है। यह अनेक धनायनों (anions) के साथ क्रिया कर अवक्षेप बनाते है। इसलिये बिस्मथ लवण तनु विलयन में जल अपघट्य हो ऑक्सीलवण के अवक्षेप देते हैं।

ऑक्साइड — बिस्मथ के चार ऑक्साइड ज्ञात हैं. मोनोऑक्साइड, बिऔ (BiO), ट्राइऑक्साइड, बि$_2$औ$_3$ ($Bi_2 O_3$), टेट्राऑक्साइड, बि$_2$ औ$_4$ (Bi_2O_4) और पेंटॉक्साइड, बि$_2$औ$_5$ ($Bi_2 O_5$), ज्ञात हैं। बिस्मथ ऑक्सेलेट को गरम करने पर बिऔ (BiO) प्राप्त होता है। ट्राइऑक्साइड का क्षारीय विलयन क्लोरीन द्वारा ऑक्सीकरण से जलयुक्त बिस्मथ पेंटॉक्साइड बनाता है। बिस्मथ पेंटॉक्साइड पर नाइट्रिक अम्ल की क्रिया करने पर भूरे रंग का बिस्मथ टेट्राऑक्साइड बनेगा। यह सामान्यत अम्लीय या क्षारीय विलयन में अविलेय है। अम्ल की उपस्थिति में यह ऑक्सीकारक गुण प्रदर्शित करता है।

हैलाइड — बिस्मथ के हैलोजन यौगिकों की अनेक संयोजकताएँ हैं। क्लोरीन या ब्रोमीन से बिस्मथ की कम मात्रा में क्रिया के फलस्वरूप द्विक्लोराइड, बिक्लो$_2$ ($BiCl_2$), या द्विब्रोमाइड, बिब्रो$_2$ (BiB_2), बनेंगे। बिस्मथ द्विआयोडाइड, बिआ$_2$ (BiI_2) भी ज्ञात है। त्रिसंयोजक अवस्था में फ्लोराइड, बिफ्लो ($Bi F_3$), क्लोराइड बिक्लो$_3$ ($BiCl_3$), ब्रोमाइड बि ब्रो$_3$ ($BiBr_3$) और आयोडाइड बि आ$_3$ (BiI_3) भी ज्ञात है। बिस्मथ की क्लोरीन, ब्रोमीन अथवा आयोडीन से प्रत्यक्ष क्रिया द्वारा त्रियौगिक बनते हैं। ये जल द्वारा शीघ्र जल अपघटित हो ऑक्सी यौगिक, जैसे बिऔक्लो (BiOCl) बनाते हैं। पंचसंयोजिक अवस्था में पेंटाफ्लोराइड, बिफ्लो$_5$ ($Bi F_5$), तथा ऑक्सीफ्लोराइड ($BiOF_3$) बनाए गए हैं।

सल्फाइड — बिस्मथ ट्राइसल्फाइड, बि$_2$गं$_3$ (Bi_2S_3), अनेक अपरूपीरूपातरण (allotropic modifications) में मिलता है। सामान्यत: यह भूरे या काले रूप में बनता है। बिस्मथ और गंधक के संमिश्रण को उच्च दाब पर गरम करने से यह तैयार किया जा सकता है। बिस्मथ के त्रिसंयोजी विलयन में हाइड्रोजन सल्फाइड की क्रिया से भी यह बनेगा।

बिस्मथेट — मेटाबिस्मथिक अम्ल, हाबिऔ$_3$ ($HBiO_3$), के लवण बिस्मथेट कहलाते हैं। सोडियम बिस्मथेट वैश्लेषिक रसायन में ऑक्सीकारक के रूप में प्रयुक्त होता है। पोटैशियम बिस्मथेट, पोबिऔ$_3$ ($KBiO_3$), लाल रंग का पदार्थ है, जो कॉस्टिक पोटाश में बिस्मथ

ट्राइग्रॉक्साइड के निलंब (suspension) में क्लोरीन प्रवाहित करने पर, अवक्षेपित हो जाता है। बिस्मथेट यौगिक विशुद्ध अवस्था मे नहीं मिलते।

बिस्मथ के कार्बनिक यौगिक — बिस्मथ के भी कार्बनिक यौगिक मिलते हैं। ग्रिगनार्ड यौगिकों की बिस्मथ क्लोराइड पर क्रिया द्वारा बि मू$_3$ (Bi R_3) समूह के यौगिक बनते हैं (R कार्बनिक मूलक)। सामान्यतः ये तरल पदार्थ होते हैं, जिनका वायु मे विस्फोट द्वारा ऑक्सीकरण हो जाता है। पंचसयोजी रूप मे मू$_3$बि य$_2$ (R_3 Bi X_2) प्रकार के भी यौगिक बनाए जा सकते हैं, जिनमें य (X) विद्यु-ऋणात्मक (electronegative) परमाणु या समूह रहता है।

उपयोग — बिस्मथ का उपयोग मुख्यतः मिश्रधातु (alloys) बनाने में होता है। इसकी अनेक मिश्रधातुओं का गलनाक नीचे ताप पर होता है और वे सरलता से ढाले जा सकते हैं। इसका उपयोग सुरक्षा डाट (safety plug), गैस बेलन, सोल्डर, समपात अवगाह (constant temperature bath) आदि बनाने मे होता है। उच्च ताप मापने के थर्मोपाइल मे बिस्मथ मिश्रधातु के कतिपय उपयोग हुए हैं।

इसके अतिरिक बिस्मथ यौगिक ओषधि के रूप मे प्रयुक्त होते हैं। बिस्मथ ट्राइआॅक्साइड काच तथा चीनी मिट्टी के उद्योग मे काम आता है। बिस्मथ को रेडियोऐक्टिव प्रयोगो मे भी काम मे लाते है।

दैहिकीय प्रभाव — बिस्मथ के हाइड्रॉक्साइड, कार्बोनेट, क्लोराइड आदि चर्मरोगों की चिकित्सा में काम आते है। इनमें कुछ कृमिनाशक (antiseptic) गुण वर्तमान है। इसी कारण ये कुछ आंतरिक रोगो, जैसे पेचिश, गैस्ट्रिक अल्सर आदि, मे लाभदायक होते है। एक्स विकिरण द्वारा आँत के चित्र लेने मे बिस्मथ यौगिकों का उपयोग होता है। सिफलिस के उपचार मे बिस्मथ धातु, या बिस्मथ सैलिसिलेट, के इजेक्शन से लाभ पहुँचता है।

बिस्मथ लवण आंतो द्वारा बहुत कम मात्रा मे अवशोषित होते है। इस कारण इनका शरीर पर नही के बराबर हानिकारक प्रभाव पडता हैं। बिस्मथ यौगिको के विषकारी प्रभाव उसमे उपस्थित आर्सेनिक या टेल्यूरियम की अशुद्धि के कारण होते हैं, परंतु चोट आदि के घावो पर बिस्मथ यौगिको का विषकारी प्रभाव हो सकता है। बिस्मथ यौगिकों के इंजेक्शन भी हानिकारक सिद्ध होते हैं। इनके फलस्वरूप मसूडों, जीभ और गले में घाव, या मुख पर काले चिह्न आदि उत्पन्न हो जाते है। ऐसे चिह्नों के उत्पन्न होने पर बिस्मथ यौगिकों का उपयोग बंद कर देना चाहिए। [र० चं० क०]

बिस्मार्क ओटो एडुअर्ड लिओपोल्ड (१८१५-९८), जर्मन राजनेता, जन्म शून हौसेन मे १ अप्रैल, १८१५ को। गार्टिजेन तथा बर्लिन में कानून का अध्ययन किया। बाद में कुछ समय के लिये नागरिक तथा सैनिक सेवा में नियुक्त हुआ। १८४७ ई० मे वह प्रशा की विधान सभा का सदस्य बना। १८४८-४९ की क्राति के समय उसने राजा के 'दिव्य अधिकार' का जोरों से समर्थन किया। सन् १८५१ मे वह फ्रैंकफर्ट की संघीय सभा मे प्रशा का प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया। वहाँ उसने जर्मनी मे आस्ट्रिया के आधिपत्य का कड़ा विरोध किया और प्रशा को समान अधिकार देने पर बल दिया। आठ वर्ष फ्रैंकफर्ट में रहने के बाद १८५९ में वह रूस में राजदूत नियुक्त हुआ। १८६२ मे वह पैरिस में राजदूत बनाया गया और उसी वर्ष सेना के विस्तार के प्रश्न पर संसदीय संकट उपस्थित होने पर वह परराष्ट्रमंत्री तथा प्रधान मंत्री के पद पर नियुक्त किया गया। सेना के पुनर्गठन की स्वीकृति प्राप्त करने तथा बजट पास कराने मे जब उसे सफलता नही मिली तो उसने पार्लमेंट से बिना पूछे ही कार्य करना प्रारंभ किया और जनता से वह टैक्स भी वसूल करता रहा। यह 'संघर्ष' अभी चल ही रहा था कि श्लेजविग होल्सटीन के प्रभुत्व का प्रश्न पुनः उठ खड़ा हुआ। जर्मन राष्ट्रीयता की भावना से लाभ उठाकर बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के सहयोग से डेनमार्क पर हमला कर दिया और दोनो ने मिलकर इस क्षेत्र को अपने राज्य मे मिला लिया (१८६४)।

दो वर्ष बाद बिस्मार्क ने आस्ट्रिया से भी सघर्ष छेड़ दिया। युद्ध मे आस्ट्रिया की पराजय हुई और उसे जर्मनी से हट जाना पड़ा। अब बिस्मार्क के नेतृत्व मे जर्मनी के सभी उत्तरस्थ राज्यों को मिलाकर उत्तरी जर्मन सघराज्य की स्थापना हुई। जर्मनी की इस शक्तिवृद्धि से फास आतंकित हो उठा। स्पेन की गद्दी के उत्तराधिकार के प्रश्न पर फास जर्मनी में तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गई और अंत मे १८७० मे दोनो के बीच युद्ध ठन गया (दे० **फ्रांसीसी-जर्मन युद्ध**)। फास की हार हुई और उसे अलससलोरेन का प्रांत तथा भारी हर्जाना देकर जर्मनी से संधि करनी पडी। १८७१ में नए जर्मन राज्य की घोषणा कर दी गई। इस नवस्थापित राज्य को सुसंगठित और प्रबल बनाना ही अब बिस्मार्क का प्रधान लक्ष्य बन गया। इसी दृष्टि से उसने आस्ट्रिया और इटली से मिलकर एक त्रिराष्ट्र सधि की। पोप की 'अमोघ' सत्ता का खतरा कम करने के लिये उसने कैथलिकों के शक्तिरोध के लिये कई कानून बनाए और समाजवादी आंदोलन के दमन का भी प्रयत्न किया। इसमे उसे अधिक सफलता नही मिली। साम्राज्य मे तनाव और असतोष की स्थिति उत्पन्न हो गई। अततोगत्वा सन् १८९० मे नए जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय से मतभेद उत्पन्न हो जाने के कारण उसने पदत्याग कर दिया।

बिहार यह भारत संघ के अतर्गत एक राज्य है। ब्रिटिश काल मे बंगाल प्रात का यह एक भाग था। १९११ ई० मे दिल्ली दरबार की एक घोषणा से यह बंगाल प्रात से अलग होकर उडीसा के साथ मिलकर बिहार और उड़ीसा नामक अलग प्रात बना। १९३५ ई० मे बिहार उडीसा से अलग होकर एक नया प्रात बना। यह उत्तर मे नेपाल से लेकर दक्षिण-पूर्व मे उडीसा तक तथा पूर्व मे पश्चिमी बंगाल से लेकर पश्चिम मे उत्तर प्रदेश तक फैला हुआ है। छोटा नागपुर भी इसी के अतर्गत है। बिहार राज्य का क्षेत्रफल ६७,१९८ वर्ग मील तथा जनसंख्या ४,६४,५७,०४२ (१९६१) है।

बौद्ध मठों को एक समय बिहार कहते थे। इन्ही बिहारों की उपस्थिति एवं अधिकता के कारण एक स्थान का नाम बिहार पड़ा, जो बिहार की राजधानी पटना से ६४ किमी० पूर्व में स्थित है और आज भी उसको बिहार शरीफ कहते हैं, जो पटना जिले का एक उपमडल भी है। संभवत. आठवी शती में नगर का नाम

बिहार पड़ा था। पाल शासकों के राज्यकाल में बिहार शरीफ उनकी राजधानी था। मुस्लिम शासनकाल में १६वीं शती तक यह राजधानी रहा, फिर राजधानी बिहार शरीफ से हटकर पटना चली गई। बिहार राज्य में आज १७ जिले हैं, जिनमें पटना, भागलपुर, गया, जमशेदपुर और राँची प्रमुख हैं। गंगा नदी द्वारा बिहार राज्य दो
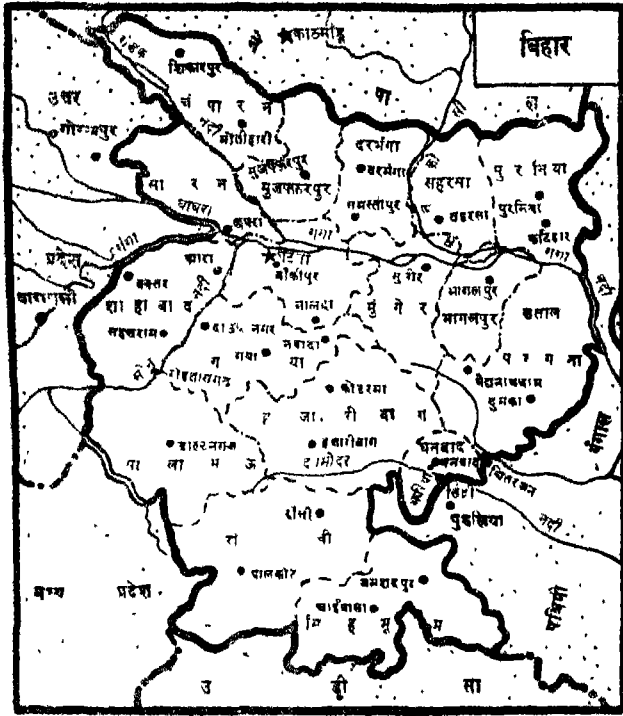
भागों मे बँटा हुआ है। गंगा नदी के उत्तरी भाग को उत्तरी बिहार और गंगा नदी के दक्षिणी भाग को दक्षिणी बिहार कहते हैं। उत्तरी बिहार की भूमि सपाट और बडी उपजाऊ है तथा यह भाग अधिक घना बसा हुआ है। दक्षिणी बिहार का अधिकाश भाग पहाडी है पर यह बहुमूल्य खनिजों से भरा है। छोटा नागपुर इसी भाग में है।

अधिवासी — बिहार के अधिवासी आर्य, पीत और कुछ हबशी प्रकार के है। यहाँ के उच्च हिंदू और उच्च मुसलमान आर्य जाति के हैं। चंपारन जिले के मंगर और थारू, मुजफ्फरपुर के नेवार, पुरनिया जिले के कोच, पालिम और गंगाइयो मे पीत रुधिर का होना स्पष्ट रूप से मालूम पड़ता है। राँची और सताल परगने के जिलो के आदिवासियो मे हबशियो के कुछ विशिष्ट लक्षण पाए जाते हैं। यद्यपि कुछ लोगों का मत है कि ये आस्ट्रेलिया के आदिवासियों से अधिक मिलते जुलते हैं। बिहार के आदिवासियो में संताल, ओरॉव, मुडा, हो, खोंड, खरिया, भुइयाँ और पहाड़ियाँ महत्व के हैं।

भाषा—बिहार की भाषा हिंदी, बंगाली एवं उर्दू है। शुद्ध हिंदी यद्यपि कही बोली नहीं जाती, केवल पुस्तकों मे ही पढ़ी जाती है। यहाँ की प्रमुख बोलियाँ भोजपुरी, मैथिली और मगही हैं। मैथिली, मिथला में बोली जाती है। भोजपुरी बिहार के पश्चिमी भाग में और मगही बिहार के दक्षिणी भाग में बोली जाती है। इनमें मैथिली सबसे अधिक समृद्धिशाली है और विद्यापति के पदों ने मैथिली को बहुत ऊँचा स्थान प्रदान किया है। छोटा नागपुर के कुरमी लोग कूर्माली बोली बोलते हैं। डा० विश्वनाथप्रसाद ने सिद्ध किया है कि कूर्माली हिंदी का ही रूपांतर है। यद्यपि कुछ बंगालवाले इसे बंगाली का ही एक रूपातर मानते हैं। बिहार के आदिवासी स्थानीय बोलियों के साथ साथ अपनी बोलियाँ भी बोलते हैं। विभिन्न आदिवासियों की बोली भिन्न भिन्न है। इनकी बोलियों को संताली, मुंदारी, मलहरा, गोंड़ी आदि नामों से पुकारते हैं।

जलवायु — बिहार के कुछ भागों में बहुत अधिक गरमी पड़ती है तथा कुछ भाग ठंढे रहते हैं। बिहार में गया का ताप सबसे ऊँचा रहता है जो कभी कभी ४८° सें० तक पहुँच जाता है पर साधारणतया ग्रीष्मकाल में ताप ४०° सें० के लगभग रहता है। निम्नतम ताप शीतकाल मे चार या पाँच डिग्री सें० तक पहुँच जाता है। छोटा नागपुर के कुछ स्थानों का ताप सामान्यतया ३८° सें० से ऊपर नहीं जाता। औसत वर्षा ५० इंच होती है। छोटा नागपुर की औसत वर्षा ५३ इंच के लगभग है।

पेड़ पौधे—बिहार में उष्ण देशों के सभी पेड़ उगते हुए पाए गए हैं। यहाँ आम, महुआ, जामुन, बेल, नीम, पीपल, बेर, बड, पाकर, बबूल, साल तथा शीशम के पेड प्रचुरता से उगते हैं। कृषि मे ईख धान, गेहूँ, जौ, चना, मटर, अरहर, मूँग, मक्का, सावाँ, कोदो, मड़ुआ, खेसारी, चीना, उड़द, कुटकी, तिल, कुसुम, सरसों, राई तथा तीसी आदि का प्रमुख स्थान है।

खनिज—बिहार खनिजो के भडार से भरा पडा है। कोयले के अतिरिक्त लौह खनिज, ऐलम, ऐपेटाइट, ऐंटीमनी, आर्सेनिक, ऐस्बेस्टस, बेराइटीज, बौक्साइट, क्रोमाइट, चीनी मिट्टी, अग्निसह मिट्टी, चूना पत्थर, बालूपत्थर, ताँबा, कोरंडम, ग्रेफाइट, गैलेना, मैगनीज, अभ्रक, गेरू, टंगस्टन, यूरेनियम, केनाइट तथा शील खडी (soapstone) आदि अनेक खनिज भिन्न भिन्न स्थानो पर पाए जाते है। यहाँ का अभ्रक जगत्प्रसिद्ध है।

उद्योग-धंधे—बिहार मे पहले उद्योग धंधो की कमी थी, पर अब अनेक उद्योग धंधे सफलता से चल रहे हैं। जमशेदपुर का लोहे का कारखाना एशिया का संभवत सबसे बडा कारखाना है। राँची मे हैवी इंजीनियरिंग कारखाना, बरौनी का तेल शोधन कारखाना, डालमियानगर का कागज का कारखाना, सिंद्री का उर्वरक कारखाना, गोमियाँ का विस्फोटक निर्माण का कारखाना, डालमियानगर तथा पलामू जिले मे सीमेंट के कारखाने हैं। चीनी के अनेक कारखाने बिहार में हैं। चीनी के उत्पादन मे उत्तर प्रदेश के बाद बिहार का ही स्थान आता है।

तीर्थस्थान—बिहार मे अनेक तीर्थ स्थान हैं। हिंदुओं के लिये गया का विष्णुपद मंदिर, वैद्यनाथधाम का शिवलिंग मंदिर ऐसे तीर्थस्थान हैं, जहाँ भारत के कोने कोने से लाखों की संख्या में तीर्थ यात्री आते है। समस्त भारत मे गया ही एक स्थान है, जहाँ पितरों को पिंडदान करने पर मुक्ति मिल जाती है, अत: लाखों मनुष्य इसके लिये आश्विन मास के पितृ (कृष्ण) पक्ष में इकट्ठे होते हैं और पिंडदान देते हैं। इसके अतिरिक्त सोनपुर का हरिहर मंदिर भी पवित्र तीर्थस्थान है जहाँ कार्तिक पूर्णिमा को पशुओं का एक बड़ा मेला लगता है। यह मेला लगभग एक मास तक चलता है तथा एशिया खंड

का सबसे बड़ा मेला है जिसमें हजारों की संख्या में हाथी, घोड़े, गाय, भैंस, तथा बैल बिक्री के लिये आते हैं। बौद्धों के लिये बुद्धगया और राजगिरि पवित्र स्थान हैं। प्रति वर्ष जापान, थाइलैंड, वियतनाम, कंबोडिया, तिब्बत और नेपाल तथा यूरोप से लाखों बौद्ध तीर्थयात्री यहाँ आते हैं। वैशाली, पावापुरी और पारसनाथ जैनियों के प्रसिद्ध धार्मिक स्थान हैं। वैशाली में जैनियों के तीर्थंकर महावीर का जन्म हुआ था तथा पावापुरी में उन्होंने अपना पार्थिव शरीर त्यागा था। पारसनाथ पहाडी पर तीर्थंकर पारसनाथ का मंदिर है जहाँ रहकर वे तपस्या करते थे और चतुर्मास व्यतीत करते थे।

पटना नगर में सिखों का प्रसिद्ध गुरुद्वारा 'हरिहर मंदिर' है जहाँ सिखों के दसवें गुरु गोविंदसिंह का जन्म हुआ था और यही पर उन्होने अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था। इस मंदिर मे गुरु गोविंद सिंह जी के स्मृतिचिह्न रखे हुए हैं।

ऐतिहासिक स्थान — बिहार में ऐतिहासिक महत्व के स्थान बहुत बडी संख्या मे हैं, जिनमे राजगिरि, नालंदा, बुद्धगया, सहसराम, बराबर पहाडी, वैशाली, सुल्तानगंज, कहलगाँव, राजमहल, पटने के खंडहर एवं मुंगेर का किला प्रसिद्ध है।

शिक्षा — बिहार के अलग राज्य बनने के समय यहाँ स्कूलो की संख्या बहुत कम थी। बाद में उनकी संख्या बढ़ने लगी तथा स्वतत्रताप्राप्ति के बाद तो बडी तेजी से बढ़ी। आज बिहार मे उच्च विद्यालयो की संख्या लगभग १,५०० से ऊपर है। प्रारंभ में बिहार के सब महाविद्यालय कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबंधित थे। १९१६ ई० मे बिहार विश्वविद्यालय कानून पारित हुआ और उसके फलस्वरूप १९१७ ई० मे पटना विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। पटना विश्वविद्यालय का काम बढ जाने से एक दूसरे विश्वविद्यालय की स्थापना की आवश्यकता मालूम हुई। अतः सन् १९५२ मे बिहार विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। उस समय इस विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालयो की संख्या लगभग ६० थी, जो शीघ्र ही बढ़कर ९० से अधिक हो गई। इन महाविद्यालयों की समुचित व्यवस्था के लिये कुछ अन्य विश्वविद्यालयो की स्थापना की गई, इनमे भागलपुर विश्वविद्यालय (१९६०), राँची विश्वविद्यालय (१९६०), मगध विश्वविद्यालय (गया मे, १९६१) तथा दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय (१९६१) की स्थापना हुई है। इनके अतिरिक्त जैन दर्शन के अध्ययन के लिये नालदा अनुसंधान संस्थान की स्थापना हुई। बिहार मे तीन महत्वपूर्ण अनुसंधान प्रयोगशालाएँ हैं : जियाल गोडे की ईंधन राष्ट्रीय प्रयोगशाला, जमशेदपुर की धातुकर्म राष्ट्रीय प्रयोगशाला तथा नामकुम (राँची) का लाख अनुसधान संस्थान। [फू० स० व०]

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् भारतीय स्वाधीनता की सिद्धि के बाद की राज्य सरकार ने बिहार विधान सभा द्वारा, सन् १९४८ ई० मे स्वीकृत एक संकल्प के परिणामस्वरूप 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' की स्थापना राष्ट्रभाषा हिंदी की सर्वांगीण समृद्धि की सिद्धि के पवित्र उद्देश्य से सन् १९५० ई० के जुलाई मास के मध्य मे की और इसका उद्घाटन समारोह, ११ मार्च, सन् १९५१ ई० के दिन बिहार के तत्कालीन राज्यपाल, महामहिम माधव श्रीहरि अणे की गौरवपूर्ण अध्यक्षता में, संपन्न हुआ। हिंदी की आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में बिहार राज्य सरकार के संकल्प का यह संस्थान मूर्तरूप है।

परिषद् के सामने दस उद्देश्य हैं : (१) हिंदी के अभावों की पूर्ति करनेवाले ग्रथों का प्रकाशन, (२) प्राचीन पांडुलिपियों का शोध और अनुशीलन, (३) लोकसाहित्य का संग्रह और प्रकाशन, (४) लोकभाषा विशेषज्ञों की भाषणमाला का आयोजन, (५) पुरस्कार प्रदान कर साहित्यिकों को संमानित और प्रोत्साहित करना, (६) हिंदी निबंध प्रतियोगिता मे सफल छात्र छात्राओं को पुरस्कृत करना, (७) महत्वपूर्ण प्रकाशन के लिये साहित्यिक सस्थाओं को अनुदान (८) साहित्यिक शोध के लिये अनुसंधान पुस्तकालय संचालित करना, (९) देश विदेश की प्रमुख भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों के हिंदी अनुवाद द्वारा राष्ट्रभाषा साहित्य को समृद्ध करना और (१०) विभिन्न विषयो के विशिष्ट विद्वानों को व्याख्यान के लिये आमंत्रित करना तथा उनके भाषणों को संपादित ग्रंथाकार कराकर प्रकाशित करना।

अब तक परिषद् के १२ वार्षिकोत्सव संपन्न हुए हैं, जिनमे क्रमश: निम्नलिखित मनीषी विद्वान् और हिंदी के उन्नायक सभापति पद को अलंकृत कर चुके है। डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह, डॉ० धीरेंद्र वर्मा, आचार्य नरेंद्रदेव, श्री उच्छंगराय नवलशंकर ढेबर, डॉ० संपूर्णानंद, श्री कुमार गंगानंद सिंह, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, सेठ गोविंददास, आचार्य काका साहेब कालेलकर, डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', महामहिम अनंतशयनम आयंगर और डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।

अबतक हिंदी निबंध प्रतियोगिता में साहित्य विषयक पुरस्कार से २४, राजनीति विषयक १६, वाणिज्य व्यवसाय विषयक ९, अर्थशास्त्र विषयक १६, विज्ञान विषयक १८, मनोविज्ञान विषयक ८, भूगोल विषयक ७, कृषि विषयक ९, चिकित्साविज्ञान विषयक ५, अभियंत्रण कला विषयक ६, इतिहास विषयक २ और दर्शन विषयक २, छात्र पुरस्कृत हुए हैं।

साहित्यरचना तथा मुद्रण प्रकाशन में रत साहित्यिक संस्थाओं को मौलिक ग्रथों के प्रकाशनार्थ आर्थिक अनुदान दिया जाता है। अबतक २९ संस्थाओं को कुल ५१,६६२ रु० दिए गए है।

विविध भाषाओं, क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य पर ३७ विद्वानों के भाषण हुए हैं, जो ग्रंथाकार दो खंडों में प्रकाशित हैं।

परिषद् के प्रकाशन विभाग के तत्वावधान में अमूल्य और महत्वपूर्ण साहित्यिक शोध कृतियों का प्रकाशन होता है। अबतक ९४ महत्वपूर्ण प्रकाशन हो चुके हैं, जिन्हें अनेकानेक मूर्धन्य विद्वानों ने मुक्त कंठ से सराहा है। परिषद् के कृतिकारों मे म० म० गोपीनाथ कविराज, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डॉ० विनयमोहन शर्मा, पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, आचार्य नरेंद्रदेव आदि के नाम सादर उल्लेख्य हैं। इन कृतियों में साहित्य अकादमी पुरस्कार से रचनाएँ पुरस्कृत हुई हैं। परिषद् से प्रकाशित होनेवाली साहित्य संस्कृति-प्रधान त्रैमासिक 'परिषद् पत्रिका'

ने शोध और अनुसंधान के लिये नए साहित्यिक वातायन का उद्घाटन किया है।

प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथशोध विभाग के तत्वावधान में अब तक ३६८१ प्राचीन पांडुलिपियाँ संगृहीत हुई हैं। छह खंडों में 'प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण' प्रकाशित हुआ है। साथ ही 'दरिया ग्रंथावली, 'संतमत का सरभंग संप्रदाय', 'हरिचरित' का प्रकाशन इस विभाग का मुख्य अवदान है।

लोकभाषा अनुसंधान विभाग परिषद् का मुख्य शोध विभाग है। विभाग की ओर से 'कृषिकोश' तथा 'लोकगाथा परिचय', लोकसाहित्य आकर प्रकाशित हुआ है।

'कहावत कोश,' 'अंगिका संस्कारगीत,' 'भोजपुरी संस्कारगीत' के प्रकाशन में हाथ लगा हुआ है।

विद्यापति विभाग द्वारा विद्यापति के संबंध में अनुसंधान चल रहा है। विद्यापति की प्रामाणिक पदावलियों का संचयन, संपादन तथा आलोचन इस विभाग की विशेषता है। 'विद्यापति पदावली' का प्रथम खंड प्रकाशित हो चुका है।

भारतीय अब्दकोश विभाग द्वारा हिंदी अब्दकोश का निर्माण प्रामाणिक विद्वन्मडली के संपादकत्व मे तत्परता के साथ होता है। अब तक शकाब्द १८८२, १८८३, १८८४, १८८५ प्रकाशित हुआ है।

इस समय परिषद् के अनुसंधान पुस्तकालय में कुल १३,६१६ ग्रंथो तथा २,६१४ महत्वपूर्ण दुर्लभ पत्र पत्रिकाओं की फाइलें संकलित हुई हैं। पुस्तकालय में विश्वविद्यालय के अनुसंधित्सु प्राध्यापक तथा छात्र लाभान्वित होते है।

परिषद् की गौरववृद्धि की चर्चा में इसके आद्यसंचालक पद्मभूषण आचार्य शिवपूजन सहाय का नाम चिरस्मरणीय है। परिषद् बिहार सरकार के अधीन पूर्णत सरकारी प्रतिष्ठान है, जिसमे शोध और प्रकाशन की मुख्यता है। इसके संचालन के लिये संचालकमंडल तथा समिति सरकार द्वारा गठित है। [मु० ना० मि०]

बिहार शरीफ स्थिति · २५° ११' उ० अ० तथा ८५° ३१' पू० दे०। यह भारत मे बिहार राज्य के मध्य भाग में, एवं पटना नगर से लगभग ३० मील दक्षिण पूर्व, पंचान नदी के किनारे स्थित, पटना जिले का एक प्रसिद्ध उपमंडल एवं नगर है। यहाँ लगभग ४५ से ६० इंच तक वर्षा होती है तथा सर्दियाँ स्वच्छ, ठंढी तथा शुष्क रहती हैं। यह धान, जौ, मक्का, चना, गन्ना, आलू एवं तिलहन के उत्पादक क्षेत्र मे स्थित होने के कारण बाजार बन गया है। बहुत समय तक यह मगध की राजधानी भी रहा है। प्राचीन काल मे भगवान् बुद्ध ने यहाँ पर उपदेश दिए थे। बुद्धकालीन भग्नावशेष देखने से मालूम होता है कि यह नगर काफी पुराना है। यहाँ कई मस्जिदें एवं मकबरे हैं जिनमे सरीफुद्दीन मकदूम का मकबरा प्रसिद्ध है। यहाँ से कुछ ही मील दक्षिण-पूर्व नालंदा स्थान है, जहाँ बौद्धकाल मे एक बड़ा विश्वविद्यालय स्थित था, जिसमें सुदूर भारत से ही नहीं चीन और तिब्बत से भी बौद्ध धर्म और भारतीय दर्शन की शिक्षा प्राप्त करने के लिये छात्र आते थे। यहाँ के खंडहरों मे प्राप्त प्राचीन वस्तुओं का एक संग्रहालय स्थापित हुआ है और बौद्ध धर्म के अध्ययन और अनुसंधान के लिये पाली संस्थान की स्थापना भी यहाँ हुई है। इसके निदेशक पाली के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री जगदीश कश्यप हैं। इसकी जनसंख्या ७८,५८१ (१९६१) है।

बिहारीलाल (सं० १६६०-१७२०) हिंदी साहित्य विकास के रीति काल मे मुक्तकठ से श्लाघ्य बिहारीलाल 'बिहारी' नाम से ही स्मरणीय हैं। इन्होने कोई विशेष उपनाम अपना नहीं रखा केवल अपना यही नाम रखा है यथा—'यहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल।'

बिहारी दोहासिद्ध कवि, छदरचना विचार से, और शृंगाररससिद्ध रस रचना विचार से, ठहरते हैं। इन्होने दोहा छंद रचना मे अप्रतिम सफलता प्राप्त की है और केवल इसी छंद मे रचना की है। कुछ सोरठे भी लिखे हैं, सोरठा वस्तुत. दोहे का उलटा हुआ छंद ही है। भावविचार से इन दोनो छंदों का पृथक् प्रयोग किया जाता है। मुक्तक रचना के लिये, विशेषतया संक्षिप्तता के साथ भावगांभीर्य रखने के हेतु यह छंद सर्वथा समीचीन है।

इनकी प्रसिद्ध मुक्तक रचना सतसई (सप्तशती) के नाम से लोकप्रिय हैं, जिसमे ७०० से ऊपर दोहे है। कतिपय दोहे सदिग्ध भी माने जाते हैं। यों सभी दोहे सुदर और सराहनीय हैं तथापि तनिक विचारपूर्वक बारीकी से देखने पर लगभग २०० दोहे अति उत्कृष्ट ठहरते हैं। सतसई को तीन मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं—नीति विषयक, भक्ति और अध्यात्म भाव परक, तथा शृंगारपरक इनमें से शृंगारात्मक भाग अधिक है। कलाचमत्कार सर्वत्र चातुर्य के साथ प्राप्त होता है।

शृंगारात्मक भाग मे रूपाग सौदर्य, सौदर्योपकरण, नायक-नायिकाभेद तथा हाव, भाव, विलास का कथन किया गया है। नायक-नायिकानिरूपण भी मुख्यत तीन रूपो मे मिलता है—प्रथम रूप मे नायक कृष्ण और नायिका राधा हैं। इनका चित्रण करते हुए धार्मिक और दार्शनिक विचार को ध्यान मे रखा गया है इसलिये इसमे गूढार्थ व्यजना प्रधान है, और आध्यात्मिक रहस्य तथा धर्ममर्म निहित है; द्वितीय रूप में राधा और कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख नही किया गया किंतु उनके आभास की प्रदीप्ति दी गई है और कल्पनादर्श रूप रौचिर्य रचकर आदर्श चित्र विचित्र व्यजना के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। इससे इसमे लौकिक वासना का विलास नही मिलता। तृतीय रूप मे लोकसमव नायक नायिका का स्पष्ट चित्र है। इसमे भी कल्पना कला कौशल और कवि परंपरागत आदर्शों का पुट पूर्ण रूप मे प्राप्त होता है। नितांत लौकिक रूप बहुत ही न्यून और बहुत ही कम है।

'सतसई' के मुक्तक दोहो को क्रमबद्ध करने के प्रयास किए गए हैं, २५ प्रकार के क्रम कहे जाते हैं जिनमे से १४ प्रकार के क्रम देखे गए हैं शेष ११ प्रकार के क्रम जिन टीकाओं मे है, वे प्राप्त नहीं। किंतु कोई निश्चित क्रम नहीं दिया जा सका। वस्तुत बात यह जान पड़ती है कि ये दोहे समय समय पर मुक्तक रूप में ही रचे गए, फिर चुन चुनकर एकत्रित कर संकलित कर दिए गए। केवल मंगलाचरणात्मक दोहो के विषय में भी इसी से विचार वैचित्र्य है। यदि 'मेरी भव बाधा हरौ' इस दोहे को प्रथम मंगलाचरणात्मक अर्थात् केवल राधोपासक होने का विचार स्पष्ट होता है और यदि 'मोर मुकुट कटि काछिनि'—इस दोहे को लें, तो केवल एक विशेष बानकवाली

कृष्णमूर्ति ही बिहारी की अभीष्टोपास्य मूर्ति मुख्य ठहरती है — बिहारी वस्तुतः कृष्णोपासक थे, यह स्पष्ट है।

सतसई के देखने से स्पष्ट होता है कि बिहारी के लिये काव्य में रस और अलंकार चातुर्य चमत्कार तथा कथन कौशल दोनों ही अनिवार्यविषयक हैं। उनके दोहों को दो वर्गों मे इस प्रकार भी रख सकते है, एक वर्ग में वे दोहे आएँगे जिनमें रस रीचियं का प्राबल्य है और रसात्मकता का ही विशेष ध्यान रखा गया है। अलंकार चमत्कार इनमें भी है किंतु विशेष प्रधान नहीं, वरन् रस परिपोषकता और भावोत्कर्षकता के लिये ही सहायक रूप में यह है।

दूसरे वर्ग में वे दोहे हैं जिनमें रसात्मकता को विशेषता नहीं दी गई वरन् अलंकार चमत्कार और वचनचातुरी अथवा कथन-कला-कौशल को ही प्रधानता दी गई है। किसी विशेष अलंकार को उक्ति-वैचित्र्य के साथ सफलता से निबाहा गया है। इस प्रकार देखते हुए भी यह मानना पड़ता है कि अलकार चमत्कार को कही नितात भुलाया भी नही गया। रस को उत्कर्ष देते हुए भी अलंकार कौशल का अपकर्ष भी नही होने दिया गया। इस प्रकार कहना चाहिए कि बिहारी रसालकारसिद्ध कवि थे; रससिद्ध ही नहीं।

नीति विषयक दोहो मे वस्तुत. सरसता रखना कठिन होता है, उनमे उक्तिऔचित्य और वचनवक्रता के साथ चारु चातुर्य चमत्कार ही प्रभावोत्पादक और ध्यानाकर्षण मे सहायक होता है। यह बात नीत्यात्मक दोहो मे स्पष्ट रूप से मिलती है। फिर भी बिहारी ने इनमें सरसता का सराहनीय प्रयास किया है।

ऐसी ही बात दार्शनिक सिद्धातों और धार्मिक भाव मर्मों के भी प्रस्तुत करने मे आती है क्योकि उनमे अपनी विरसता स्वभावतः रहती है। फिर भी बिहारी ने उन्हे सरसता के साथ प्रस्तुत करने मे सफलता पाई है।

भक्ति के हार्दिक भाव बहुत ही कम दोहो मे दिखाई पड़ते हैं, समयावस्था विशेष मे बिहारी के भावुक हृदय मे भक्तिभावना का उदय हुआ और उसकी अभिव्यक्ति भी हुई। बिहारी मे दैन्य भाव का प्राधान्य नही, वे प्रभु प्रार्थना करते हैं, किंतु अति हीन होकर नही। प्रभु की इच्छा को ही मुख्य मानकर विनय करते हैं।

मूलभाव बिहारी ने अपने पूर्ववर्ती सिद्ध कविवरो की मुक्तक रचनाओ, जैसे आर्यासप्तशती, गाथा सप्तशती, अमरुकशतक आदि से लिए है — कहीं उन भावो को काट छाँटकर सु दर रूप दिया है, कही कुछ उन्नत किया है और कहीं ज्यो का त्यों ही सा रखा है। सौदर्य यह है कि दीर्घ भावों को संक्षिप्त रूप में रम्यता के साथ अपनी छाप छोड़ते हुए रखने का सफल प्रयास किया गया है।

'सतसई' पर अनेक कवियो और लेखको ने टीकाएँ लिखी। कुल ५४ टीकाएँ मुख्य रूप से प्राप्त हुई हैं। रत्नाकर जी की टीका एक प्रकार से अंतिम टीका है, यह सर्वांग सु दर है। सतसई के अनुवाद भी संस्कृत, उर्दू (फारसी) आदि में हुए हैं और कतिपय कवियों ने सतसई के दोहो को स्पष्ट करते हुए कुंडलिया आदि छदों के द्वारा विशिष्टीकृत किया है। अन्य पूर्वापरवर्ती कवियों के साथ भावसाम्य भी प्रकट किया गया है। कुछ टीकाएँ फारसी और संस्कृत में लिखी गई हैं। टीकाकारों ने सतसई में दोहो के क्रम भी अपने अपने विचार से रखे हैं। साथ ही दोहों की संख्या भी न्यूनाधिक दी है। यह नितांत निश्चित नही कि कुल कितने दोहे रचे गए थे। संभव है, जो सतसई मे आए वे चुनकर आए कुल दोहे ७०० से कहीं अधिक रचे गए होंगे। सारे जीवन में बिहारी ने इतने ही दोहे रचे हों, यह सर्वथा मान्य नहीं ठहरता।

'सतसई' मे ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा ही उस समय उत्तर भारत की एक सर्वमान्य तथा सर्व-कवि-संमानित ग्राह्य काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी। इसका प्रचार और प्रसार इतना हो चुका था कि इसमे अनेकरूपता का आ जाना सहज संभव था। बिहारी ने इसे एकरूपता के साथ रखने का स्तुत्य सफल प्रयास किया और इसे निश्चित साहित्यिक रूप में रख दिया। इससे ब्रजभाषा मँजकर निखर उठी।

'सतसई' पर कतिपय आलोचकों ने अपनी आलोचनाएँ लिखी हैं। रीति काव्य से ही इसकी आलोचना चलती आ रही है। प्रथम कवियों ने सतसई की मार्मिक विशेषता को साकेतिक रूप से सूचित करते हुए दोहे और छद लिखे। उर्दू के शायरों ने भी इसी प्रकार किया। यथा :

> सतसइया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
> देखत मैं छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।।
> × × ×
> बिहारी की बलागत और ब्रजभाषा की शीरीनी,
> हमे तारीफ़ करने के लिये मजबूर करती हैं।।
> × × ×

इस प्रकार की कितनी ही उक्तियाँ प्रचलित हैं। विस्तृत रूप मे सतसई पर आलोचनात्मक पुस्तकें भी इधर कई लिखी गई हैं। साथ ही आधुनिक काल मे इसकी कई टीकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। इनकी तुलना विशेष रूप से कविवर देव से की गई और एक ओर देव को, दूसरी ओर बिहारी को बढकर सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया। दो पुस्तकें, 'देव और बिहारी' पं० कृष्णबिहारी मिश्र लिखित तथा 'बिहारी और देव' लाला भगवानदीन लिखित उल्लेखनीय हैं। रत्नाकर जी के द्वारा संपादित 'बिहारी रत्नाकर' नामक टीका और 'कविवर बिहारी' नामक आलोचनात्मक विवेचन विशेष रूप में अवलोकनीय और प्रामाणिक हैं। [रा० शं० शु०]

बिहारीलाल भट्ट जन्म आश्विन शुक्ला विजयदशमी, सं० १९४६ वि० को बु देलखड के अंतर्गत बिजावर मे हुआ। इस ब्रह्मभट्ट वंश में कवि होते ही आए थे। पितामह दिलीप, जो अच्छे कवि थे, की देखरेख में बिहारीलाल का बाल्यकाल बीता और उन्ही के द्वारा इन्हे प्रारंभिक शिक्षा भी मिली। बिजावर राज्य के मुसाहिब हनुमतप्रसाद बिहारीलाल के काव्यगुरु थे। दस वर्ष की अवस्था से ही ये काव्यरचना करने लगे थे। बिजावरनरेश सावंतसिह जू देव इनके आश्रयदाता थे। उन्होंने इनकी जीविका का भी समुचित प्रबंध किया था। इसके अतिरिक्त ओरछा, पन्ना, चरखारी, अजयगढ़, छतरपुर और धौलपुर के राजाओं ने भी इनका यथोचित संमान किया था।

तीन वर्ष के सतत् परिश्रम और अपने आश्रयदाता सावंतसिंह जू देव की आज्ञा से बिहारीलाल ने 'साहित्यसागर' संज्ञक प्रसिद्ध

रीतिबद्ध दशांग काव्य की रचना की। इसमें दो खंड, १५ तरंग, ६०० पृष्ठ और लगभग २,००० छंद हैं जिसमें लक्षण ग्रंथों की परिपाटीविहित पद्धति पर ही साहित्यिक लक्षण, काव्यलक्षण, काव्यकारण, काव्यप्रयोजन, गुण, वृत्ति, शब्दशक्ति, तुक, रसांग नायक-नायिका-भेद, अलंकार, दोष, चित्रकाव्य, निर्वाण और दान आदि का वर्णन भेदोपभेदों के साथ किया गया है। लक्षण उदाहरण पद्यबद्ध ही दिए गए हैं।

कवि की दृष्टि में अध्यात्म का विशेष महत्व है। उसके विचार से 'कवि उस (भगवत्) की कला का कलेवर है जहाँ से मनुष्य की वाणी का प्रभाव जीवों पर पड़ने लगता है। वहाँ से वह मनुष्य कवि कोटि में जाता है।' उसकी मान्यता है कि कवि चार प्रकार के होते हैं—(१) ब्रह्मकोटि, (२) ईशकोटि, (३) जीवकोटि और (४) विश्वकोटि। तपोपूत और ब्रह्मसाक्षात्कारी वाल्मीकि व्यासादि कवि ब्रह्म कोटि, मलरहित अंत:करणवाले और ईश्वरसाक्षात्कारी कवि चंद, सूर, तुलसी आदि कवि ईशकोटि, दिव्यरूप का जिनको लक्ष्य रहता है और जीव जिनकी वाणी के वशवर्ती हैं, वे भूषण आदि कवि जीवकोटि और धर्मशास्त्र-बल-सपन्न एवं विद्या साहित्यादि साक्षात्कारी तथा जगत्जाग्रतकारी कवि विश्वकोटि मे आते है।

नायिकाभेद में अध्यात्म तत्व की प्रतिष्ठा करने और उसके क्रम में एकसूत्रता तथा शृंखलाबद्धता के लिये उन्होंने अपने 'साहित्य-सागर' में नवीन प्रयास किए हैं, जैसे, एक नायिका उत्कठिता है, गमन करने पर वही अभिसारिका हुई, पुन संकेत पर विप्रलब्धा योग से वही विप्रलब्ध हुई, इत्यादि। चित्रकाव्य मे भी कुछ नवीनता है। इस प्रवृत्ति के अन्य कवियो की भाँति शृंगार ही उनका भी प्रमुख वर्ण्यविषय था।

सं० ग्रं० — बिहारीलाल भट्ट : 'साहित्य सागर (प्रथम व द्वितीय भाग) गंगा फाइन आर्ट प्रेस, लखनऊ, सं० १९९४; 'हिंदी साहित्य कोश' भा० २, ज्ञानमंडल लिमिटेड, संपादक डॉ० धीरेंद्र वर्मा तथा अन्य वाराणसी, स० २०२०; डॉ० भगीरथ मिश्र, हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास' लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, सं० २०१५।

[रा० फे० त्रि०]

बीकानेर १. जिला, स्थिति : २७° ७' से २९° ३' उ० अ० तथा ७१° ५३' से ७४° १५' पू० दे०। यह भारत के राजस्थान राज्य का एक जिला है। इसके उत्तर में गंगानगर, पूर्व में चूरू, दक्षिण में जोधपुर, दक्षिण-पूर्व में नागौर, दक्षिण-पश्चिम मे जैसलमेर तथा पश्चिम में पश्चिमी पाकिस्तान स्थित है। इसका क्षेत्रफल १०,५६१ वर्ग मील तथा जनसंख्या ४,४४,५१५ (१९६१) है। पहले यह एक रियासत था। जिले का संपूर्ण भाग मरुस्थली है एवं बालुकास्तूपों से परिपूर्ण है। यहाँ लूनकरनसर में प्राकृतिक तथा सुजानगढ़ के पास एक कृत्रिम झील है। जलवायु शुष्क किंतु स्वास्थ्यप्रद है। मई, जून माह मे गरम हवाएँ तेजी के साथ चलती हैं। धूलभरे बवडर भी अधिक चला करते हैं। बीकानेर नगर का औसत ताप लगभग २७° सें० तथा संपूर्ण जिले की औसत वर्षा केवल १२ इंच है। यहाँ वनस्पति का अभाव है। कृषि में ज्वार, बाजरा, गेहूँ, जौ एवं चना की फसलें प्रमुख हैं। यहाँ के उद्योगों में ऊनी गलीचे, हाथीदाँत की चूड़ियाँ, चीनी मिट्टी के बरतन एवं मशकें आदि बनाना प्रमुख हैं। खनिजों में कोयला, ताँबा, चूना तथा नमक आदि मिलते हैं।

२. नगर, स्थिति : २८° उ० अ० तथा ७३° १८' पू० दे०। बीकानेर जिले की राजधानी एवं प्रमुख नगर है। यह मरुस्थल के बीचोबीच एक झील के पास, दिल्ली से ४६३ कि मी० पश्चिम में स्थित है। इस नगर की स्थापना १४८८ ई० में एक राठौर राजपूत बीका (राव जोधा के छठे पुत्र) ने की थी। इन्ही के नाम पर इसका नाम भी पड़ा। नगर में कई ऊँचे मकान, मंदिर एवं एक विशाल किला है। राजा रायसिंह का बनवाया बडा एव आधुनिक किला, नगर के कोटद्वार से ३०० गज की दूरी पर है। इसके अतिरिक्त लालगढ़, विक्टोरिया मेमोरियल क्लब, गंगा कचहरी, लक्ष्मीनाथ मंदिर एवं अजायबघर दर्शनीय हैं। नगर मे श्वेत मिश्री, ऊनी शाल, लोइयाँ, चटाइयाँ एवं कंबल बनाने का कार्य होता है। नगर की जनसंख्या १,५०,६३४ (१९६१) है। [सु० च० श०]

बीजगणित (Algebra) गणित की उस शाखा को कहते है जिसमे संख्याओ के गुणों और उनके पारस्परिक संबंधों का विवेचन सामान्य प्रतीको (symbols) द्वारा किया जाता है। ये प्रतीक अधिकांशत अक्षर (a, b, c,..., x, y, z) और सक्रिया चिह्न (operation signs) (+, −, ×,..) और सबंधसूचक चिह्न (=, >, <...) होते हैं। उदाहरणत', $x^2 + 3x = 28$ का अर्थ है, 'कोई ऐसी संख्या x है, जिसके वर्ग मे यदि उसका तीन गुना जोड़ दिया जाय, तो फल २८ मिलता है, बीजगणितीय प्रतीको और सख्याओ का उपयोग न केवल गणित मे किंतु विज्ञान की विभिन्न शाखाओ मे होने लगा है। व्यापक अर्थ मे बीजगणित मे निम्नलिखित विषयों का विवेचन संमिलित होता है :

समीकरण (equation), बहुपद (polynomial), वितत भिन्न (continued fraction), श्रेणी (series), सख्या अनुक्रम (sequence of numbers), सारणिक (determinant), समघात (form), नए प्रकार की सख्याएँ, जैसे सख्यायुग्म, मैट्रिक्स।

इतिहास — ६२८ ई० के लगभग भारतीय गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त द्वारा लिखे 'बीजगणित' नामक ग्रंथ के आधार पर विषय का नाम बीजगणित पडा। इसमे बीजों, अर्थात् मूलभूत अवयवो, से परिकलन (calculation) किया जाता है। बाद मे १२वी शताब्दी मे भास्कर ने भी बीजगणित पर एक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की। ८२५ ई० के आसपास मुहम्मद इब्नमूसा अल ख्वारिज्मी ने बगदाद मे अपने एक ग्रंथ का नाम अलजब्र व अल मुकाबला रखा। अलजब्र अरबी का शब्द है तथा मुकाबला फारसी का और दोनों का अर्थ समीकरण या उससे संबधित है। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के नाम पर ही यूरोप में इस विषय का नाम ऐलजेबरा पड़ा। चीनी भाषा मे इसके लिये ट्मैन-यूं (अर्थात दैवी अवयव), जापानी मे किगेन-सी हो (अर्थात् अज्ञातबोधी), इटाली मे आर्स मेग्ना (अर्थात् महान कला) प्रयुक्त हुआ। इनके अतिरिक्त भी अन्य नाम हैं, जो विषय की पुरातनता के द्योतक हैं।

यदि समस्यासाधन हेतु वैज्ञानिक ढंग से की गई अटकलबाजी को मान्यता देना स्वीकार हो, तो २,००० वर्ष ई० पू० और उससे

भी पहले बीजगणित के प्रादुर्भाव का संकेत मिलता है। यदि शब्दगत समीकरण व्याख्या को और धनमूल वाले सरल समीकरणों के ज्यामितीय आरेखों पर अवलंबित हल को मान्यता दी जाय, तो कहना होगा कि ३०० ई० पू० में यूक्लिड और ऐलेक्जेंड्रिया स्कूल को बीजगणित का ज्ञान था। १६वीं शताब्दी में मुद्रण कला के विकास और रुडोल्फ, राबर्ट रेकार्ड, रेफ़िल नोबेली तथा क्रेवियस आदि विद्वानों के प्रयासो से इस विषय ने व्यापकीकृत अंकगणित का रूप धारण कर लिया और १७वीं शताब्दी में प्रतीक पद्धति के परिपूर्ण हो जाने पर बीजगणित का विकास बहुत जोरो से हुआ। संक्षेप में बीजगणित के विकास मे उसकी विषय सीमा इन स्तरों से विस्तृत होती गई: (१) लगभग १,८०० ई० पू० से २७५ ई० तक के काल में संख्या संबंधी पहेलियों का हल, बिना किसी प्रतीक-पद्धति की सहायता के, किया जाना; (२) दिए हुए क्षेत्रफल का वर्ग ज्यामितीय विधि से खीचना; (३) स्थूल प्रतीक पद्धति का विकास; (४) समीकरणों का अधिक तर्कयुक्त विवेचन ८००-१२०० ई० तक; (५) १६वीं शताब्दी में द्विघात और त्रिघात समीकरणो के साधन हेतु सिद्धात का प्रतिपादन; (६) सुस्पष्ट और सुविधामय प्रतीक पद्धति का विकास तथा (७) १८०० ई० से अमूर्त बीजगणित का विकास।

संख्याएँ — वस्तुओं के गिनने में जो संख्याएँ प्रयुक्त होती हैं प्राकृतिक संख्याएँ (natural numbers) कहलाती है। अन्य संख्याओं को कृत्रिम संख्याएँ (artificial numbers) कहते हैं। कृत्रिम संख्याओं का अध्ययन अंकगणित मे ही आरभ हो जाता है, किंतु वहाँ केवल भिन्नो का ज्ञान पर्याप्त होता है। बीजगणित मे ऋण संख्याओं, अपरिमेय, बीजातीत, मिश्र आदि संख्याओं का विवेचन आवश्यक हो जाता है।

बीजीय व्यंजक — २a का अर्थ है $a+a$, अर्थात् a का दुगुना। व्यापक रूप से, यदि m कोई धन पूर्ण संख्या है, तो ma का अर्थ है a का m गुना। ma को m और a का गुणनफल भी कहते हैं।

a^2 का अर्थ है $a \times a$; a^3 का अर्थ है $a \times a \times a$। व्यापक रूप से, यदि m कोई धन पूर्ण संख्या है तो a^m का अर्थ है

$a \times a \times \ldots m$ बार।

a^m मे m को घात (exponent) और a को आधार (base) कहते है। आगे चलकर ma और a^m के अर्थ विस्तृत कर उन स्थितियों में भी बताए जाते हैं जब m ऋण, भिन्न, अपरिमेय आदि कोई भी संख्या हो। सामान्य संख्याओ के प्रतीक एक या अधिक अक्षरों और किसी संख्या के गुणनफल को पद (term) कहते हैं, जैसे $3a^2 b, -4a, x$ (अर्थात् 1x)। कई एक पदों के योगफल को बीजीय व्यंजक (algebraic expression) कहते हैं। पूर्वोक्त तीन पदोंवाला व्यंजक $3a^2 b-4a+x$ है। यहाँ 4a के पहले + चिह्न लगाना व्यर्थ था। अकेले पद को एकपद व्यंजक (monomial), दो पदोंवाले व्यंजक को द्विपद (binomial), तीन पदवाले को त्रिपद (trinomial) कहते हैं। एक से अधिक पदवाले व्यंजक को बहुपद (polynomial) कहते हैं। दो या अधिक पदों के गुणनफल से एक पद ही प्राप्त होता है। गुणा किया जानेवाला प्रत्येक पद गुणनफलवाले पद का गुणनखंड (factor) कहलाता है।

वैसे तो पद के किसी एक गुणनखंड का गुणांक (coefficient) शेष गुणनखंडों का गुणनफल है, जैसे $3a^3 b^2$ में a^3 का गुणांक $3b^2$ कहा जा सकता है, किंतु प्रथा आरंभवाले गुणनखंडों के गुणनफल को शेष खंडों के गुणनफल का गुणाक मानने की है। इस प्रकार b^2 का गुणांक $3a^3$ है, $a^3 b^2$ का गुणाक 3 है। यदि गुणांक संख्यामात्र हो, तो उसे संख्यात्मक गुणांक कहते हैं। कोष्ठको मे बंद कर व्यंजक को एक पद की भाँति प्रयुक्त किया जा सकता है। (देखें, **फलन और गुणनखंड**)।

प्रारंभिक संक्रियाएँ — बहुपदो पर सामान्य सक्रियाओं, योग, व्यवकलन, गुणन तथा विभाजन-के अतिरिक्त गुणनखंडन, घातक्रिया (involution), वर्गमूल निर्धारण, दो या अधिक बहुपदो के लघुतम समापवर्त्य तथा महत्तम समापवर्तक ज्ञात करने की विधियाँ प्रारंभिक बीजगणित की पुस्तकों मे अच्छी तरह समझाई रहती हैं (देखें **बहुपद**)। अनुपात और गुणनखंड व्यापक अर्थ में सभी प्रकार की संख्याओं के लिये प्रयुक्त होते है।

समीकरण — समता मुख्यत: तीन प्रकार की होती हैं: (१) $3+2=5$ संख्याओ का संबंध है। (२) $x+2x=3x$ ऐसा संबंध है जो x के सभी मानो के लिये सत्य है; इसे सर्वसमिका (identity) कहते है। (३) $x+3=2$ ऐसी समता है जो x के केवल एक ही मान (वस्तुत. -1) के लिये सत्य है; इसे समीकरण (equation) कहते है। प्राय: सर्वसमिका मे उसका समीकरण से विभेद स्पष्ट करने के लिये, चिह्न = के स्थान मे तुल्यचिह्न $\equiv$ का प्रयोग किया जाता है। एकधात और द्विघात समीकरणों का हल डायफेंटस ने लगभग २५० ई० मे दिया था (देखें **डायोफेंटीय समीकरण**)। भारत मे आर्यभट्ट ने ४७६ ई० मे द्विघात समीकरण का हल मौलिक रूप से दिया।

प्रारंभिक श्रेढियाँ — मध्यकालीन युग मे समांतर (arithmetic), गुणोत्तर, आदि श्रेढियो के अध्ययन की ओर काफी रुचि थी। इसी कारण इन श्रेढियों का संकलन (योगफल ज्ञात करना) प्रारंभिक बीजगणित का रोचक विषय है। उदाहरणार्थ दो सूत्र लीजिए:

$$1+2+3+\ldots m \text{ पदो तक } = \tfrac{1}{2} m\,(m+1)$$
$$1^2+2^2+3^2+\ldots m \text{ पदो तक } = \tfrac{1}{6} m\,(m+1)(2m+1)$$

गुणोत्तर श्रेढी का अध्ययन हमे अनत श्रेणियो के अध्ययन पर ले जाता है। तब सीमा आदि महत्वपूर्ण सकल्पनाएँ आवश्यक हो जाती है और अवकलन तथा समाकलन बोधगम्य हो जाते है।

बीजगणित का महत्व — अंकगणित की अपेक्षा अधिक प्रतीको का प्रयोग कर, कम श्रम से अत्यंत व्यापक फल प्राप्त करना बीजगणित की उपलब्धि है। इसीलिये बीजगणित को भाषा की आशुलिपि (short hand) कहते हैं। फ्रांसीसी गणितज्ञ बर्टेंड (सन् १८२२-१९००) के अनुसार बीजगणित मे सक्रियाओ और परिकल्पनात्मक क्रिया कलाप का अध्ययन, जिन संख्याओ पर वे प्रयोज्य होती हैं उनसे स्वतंत्र रहकर किया जाता है। यही इस विज्ञान की विशेषता है। विज्ञान की साधना मे बीजगणित का अध्ययन आवश्यक है। सूत्रों के रूप में तो बीजगणित की अनिवार्यता तुरंत प्रकट हो जाती है।

व्यापकीकरण और अमूर्त बीजगणित — बीजगणित व्यापकीकृत अंकगणित है और व्यापकीकरण की क्रिया बीजगणित के उत्तरोत्तर विकास में जारी रहती है। प्रारंभिक बीजगणित में ही ab, a^m, $a^m . a^n$, $(a^m)^n$ आदि के अर्थों को व्यापक कर a, b, m, n के सभी मानों के लिये निश्चित अर्थवाला बना दिया जाता है। यह सब $\sqrt{(-१)}$ राशि की कल्पना के कारण ही संभव हुआ। दुर्भाग्य से इस राशि को काल्पनिक मान लिया गया और इसके अंग्रेजी अनुवाद (imaginary) का पहला अक्षर i इसका प्रतीक बना। जब १७ वीं और १८ वीं शताब्दी मे समस्या साधन हेतु i को इतना अधिक उपयोगी पाया गया, तो इसकी प्रकृति की ओर ध्यान गया। इसे संख्या न माने जाने पर, अमूर्त रूप से इसे संख्यायुग्मों पर कुछ स्वेच्छ संक्रियाओं का प्रतीक माना गया और मूर्त रूप से इसकी ज्यामितीय व्याख्या 'समतल में समकोण तक घुमाओ' दी गई। इन व्याख्याओं से प्रेरणा हुई कि क्यों न 'i' जैसे अन्य प्रतीक खोजे जायें। इसी प्रयास में सन् १८४३ में हैमिल्टन ने त्रिविमी घूर्णन के संदर्भ मे क्वार्टनियंस i और j का आविष्कार किया और बताया कि ij = −ji। यह अत्यंत महत्वपूर्ण खोज थी, क्योकि अब तक के बीजगणित मे सदा ही ab = ba था। अब गणितज्ञों ने नाना प्रकार की 'अतिसंमिश्र संख्याओं' और संक्रिया प्रतीकों की खोज कर डाली। अंततः यह प्रश्न उठता ही था कि क्यो न साधारण संख्याओं के स्थान मे किन्ही प्रतीको को लेकर और उनके संयोजन के नियम निर्धारित कर, विशेष प्रकार के बीजगणित की रचना की जाय।

इस प्रकार सदिश और मैट्रिक्स (या व्यूह) बीजगणित की रचना हुई। बीजगणित की मूलभूत संक्रियाओ के व्यापकीकरण से नाना प्रकार के बीजीय तंत्र (algebraic systems) मिलते हैं। इन तत्रों मे अवयवो के संयोजन (combination) संबंधी अलग अलग नियम होते हैं, जिनसे अन्य अवयव बनते हैं। चूंकि इन तंत्रों के अध्ययन मे इस बात की विशेष महत्ता नही होती कि अवयव वास्तव मे क्या हैं, बल्कि उनमे नियमों की प्राथमिकता होती है। इसलिये इन तत्रों को अमूर्त बीजगणित (abstract algebra) की संज्ञा दी गई है।

अमूर्त तंत्रों के कुछ उदाहरण देने के लिये किसी संक्रिया * के प्रति निम्न संकल्पनाएँ आवश्यक है—१ **अवगुंठन** (Closure) : यदि किसी समुच्चय के कोई दो अवयव (elements) a और b हों, तो a*b भी उसी समुच्चय का अवयव है। २. **क्रमविनिमेयता** (Commutativity) : a*b = b*a। ३ **साहचर्य नियम** (Associativity) : यदि a, b, c, समुच्चय के अवयव हो, तो (a*b)*c = a* (b*c)। ४ सर्वसमिका (identity) का अस्तित्व : समुच्चय मे ऐसा अवयव e हो कि a*c = c*a = a.। ५. **प्रतिलोम** (inverse) का अस्तित्व. समुच्चय में किसी भी अवयव a के संगत ऐसा अवयव a^{-1} हो कि $a * a^{-1} = a^{-1} * a = e$.। ६ पहली संक्रिया और दूसरी संक्रिया के प्रति **वितरण नियम** a⌒(b*c) = (a⌒b) * (a⌒c) और ६' (b*c) ⌒a = (b⌒a) * (c⌒a)

किसी समुच्चय को संक्रिया * के प्रति ग्रुप (या संघ) तब कहते है जब उसमें गुणधर्म १, ३, ४, ५ हों। यदि गुणधर्म २ भी हो तो उसे क्रम विनिमेयी, अथवा आबेली ग्रुप कहते हैं (देखें संघ) दो संक्रियाओं * और ⌒ के प्रति समुच्चय को रिंग तब कहा जाता है जब पहली के प्रति पाँचों गुणधर्म १ से ५ तक हों, दूसरी के प्रति १, ३. और संमिलितत: दोनों के प्रति ६, ६' हो। ऐसी रिंग को फील्ड कहते हैं, जिसमे दूसरी संक्रिया के प्रति गुणधर्म २ तथा ४ हो और पहली संक्रिया के सर्वसमक (अर्थात् $a*a^{-1}$) को छोड़ अन्य हरेक अवयव का प्रतिलोम दूसरी संक्रिया के प्रति हो। उदाहरणतया, जोड़ और गुणन संक्रियाओ के प्रति (१) शून्य समेत सभी पूर्णसंख्याओ का सम्मुच्चय रिंग है (२) सभी परिमेय संख्याओं का, अथवा वास्तविक संख्याओ का, अथवा समिश्र संख्याओ का सम्मुच्चय फील्ड है।

गणित की अन्य शाखाओं में विशिष्ट समस्याओं के हल करने के प्रयास मे कई नए बीजीय तंत्रो का प्रादुर्भाव हुआ। अवकल समीकरणों के वर्गीकरण प्रयास मे ली ग्रुप का आविष्कार हुआ। इसी प्रकार स्थिति विश्लेषण (topology) की कुछ समस्याओं ने होमोलोजिकल बीजगणित को जन्म दिया। १८५० ई० के लगभग बूल ने सांकेतिक बीजगणित का विकास किया जिसका अब महत्वपूर्ण प्रयोग टेलीफोन परिपथ और इलेक्ट्रोनिक परिकलन यत्र के अभिकल्पन मे हुआ है।

१८०० ई० से पहले गणित का सरोकार मुख्यत दो सामान्य समझ बूझ की संकल्पनाओ, सख्या और आकृति से था। १९वी शताब्दी के आरंभ में दो नए विचारो ने गणित के क्षेत्र को एकदम विस्तृत कर दिया पहला यह कि गणित का व्यवहार केवल सख्याओ और आकृतियों के लिये ही नही, वरन् किन्ही भी वस्तुओ के लिये किया जा सकता है। दूसरे विचार के अनुसार अमूर्त्तीकरण की प्रक्रिया को और आगे बढाकर, गणित को केवल तर्कयुक्त विधान माना जाने लगा, जिसका किसी वस्तुविशेष से कोई सरोकार न था। पहला विचार वैज्ञानिको को उपयोगी लगा और दूसरा शुद्ध गणितज्ञ को, जिसके लिये गणित केवल सुदर प्रतिरूपो का अध्ययन मात्र रह गया। इन दो दृष्टिकोणो मे कोई वास्तविक विरोधाभास नही, क्योंकि प्राय. सुदर प्रतिरूप भौतिक प्रकृति मे ठीक बैठते है और वैज्ञानिक द्वारा प्रकृति मे पाए गए गणितीय प्रतिरूप प्राय सुदर होते हैं।

बीजीय ज्यामिति — गणित की वह शाखा है जिसमे बीजीय समीकरणों की सहायता से आरेखो और चित्रो के गुणधर्मों का विवेचन किया जाता है।

स० ग्रं० — ज्योर्ज क्रस्टल : ऐलजेबरा (ब्लैक, १८८९); डी० ई० स्मिथ हिस्ट्री ऑफ मैथमैटिक्स, बोस्टन (१९२५); एम० बोके . हायर ऐलजेबरा (मैकमिलन, १९०७)। [ह० च० गु०]

बीजलेखन किसी संदेश के इस प्रकार लिखे जाने को कहते है कि प्राप्त संदेश का अर्थ केवल वही समझ पाए जिसके पास उसकी कुंजी हो। यह गुप्तलेख विद्या (cryptography) द्वारा संभव होता है। इस विद्या का प्रयोग हजारों वर्ष से होता आ रहा है।

इतिहास — प्राय. प्रत्येक प्राचीन देश में गुह्य बातों को गुप्त रखने के लिये बीजों, कूटों अथवा प्रतीको का उपयोग होता रहा है। भारत के पुरातन इतिहास तथा साहित्य मे भी गुप्तलेखन के अनेक दृष्टांत उपस्थित हैं। प्राचीन मिस्र में मंदिरो के पुजारी गुप्तलेखन के लिये चित्रों या चित्र भाषा का प्रयोग करते थे, जिसका अर्थ केवल मंदिरों के सेवक ही समझते थे। यूरोप में रोम के सीज़र तथा अन्य

अधिकारियों के बीजलेखन द्वारा संदेश भेजने के उल्लेख हैं। कई शताब्दी पश्चात्, जब यूरोप के विभिन्न दरबारों में स्थित राजनीतिज्ञ बहुधा षड्यंत्रों और गुप्त योजनाओं की तैयारी में लगे रहते थे, तब गुप्त लेखन का बहुत प्रचार हुआ तथा विरोधियों ने ऐसे बीजलेखों के अर्थ ढूंढ़ निकालने की विधियों का आविष्कार किया। आगे जब अपेक्षाकृत शांति का समय आया तथा संदेशवाहकों को पकड़कर उनसे पत्रादि छीने जाने का भय न रहा, तब गुप्तलेखन की प्रणालियों का प्रयोग भी कम हो गया, किंतु प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने पर इस विद्या की प्रगति में भी ज्वार आया। इस युद्ध में स्थल, जल और वायुसेनाओं द्वारा बेतार से संदेशों का भेजा जाना आवश्यक था, किंतु इन संदेशों को मित्र और शत्रु दोनों ही रेडियोग्राही यंत्रों की सहायता से सुन सकते थे। अतएव ऐसे बीजों (ciphers) और कूटों (codes) द्वारा संदेश भेजे जाने लगे, जिनकी कुजी का ज्ञाता ही केवल संदेश का अर्थ समझ सकता था। विपक्षियों ने तब इन गुप्त संदेशों का अर्थ ढूंढ़ निकालने की चेष्टाएँ प्रारंभ की और अनेक बार इसमे सफलता प्राप्त की। इस प्रकार प्रत्येक देश के युद्ध विभाग मे बीजांक और कूट अनुभाग स्थापित हुए, जो बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण गुप्तलेख विद्या में अभूतपूर्व प्रगति हुई।

उपयोगिता—कुछ सप्रदाय, गुप्त समितियाँ तथा अपराधी वृत्ति के लोग विविध प्रकार के सरल अथवा कठिन बीजांको और कूटों का प्रयोग करते हैं। लडके भी गुप्त सदेशो को भेजने के लिये किसी न किसी प्रकार के बीजलेखन का आविष्कार कर लेते है। इस कला का उपयोग पशुओं को चिह्नित करने तथा व्यक्तिगत सदेशों मे भी होता है। व्यापार मे संदेशो को तार द्वारा भेजने की सुविधा के लिये छोटा रूप देने तथा गुप्त रखने के लिये बृहत् बीज और कूट कोशों का निर्माण हुआ है। विभिन्न देशो की सरकारों ने राजनयिक तथा सैनिक सदेश भेजने और अन्य गुप्त कार्यो के लिये अनेक जटिल, तथा विपक्षियों के लिये असाध्य, बीजलेखन प्रणालियाँ तैयार की हैं, जिनका विस्तृत उपयोग होता है। युद्धावस्था मे ऐसे बीजाकों तथा कूटो के बिना काम चल ही नही सकता।

बीजलेखन की रीतियाँ — बीजाकों के निर्माण के लिये संदेश के शब्दों को अन्य शब्दों या चिह्नो मे परिणत कर देते हैं। इससे वही मनुष्य सदेश को समझ सकता है जिसके पास उसकी कुजी होती है। सबसे सरल रीति मे संदेश के अक्षरों को थोडा हेर फेर के साथ लिख देते हैं; जैसे "**जब तक मैं न लिखूं तुम घर न आना**' को यदि दाहिने से बाएँ लिखा जाय, तो इसका कूट रूप होगा। '**नाआ न रघ मतु खूंलि न मैं कत बज**' इसी के तीन तीन अक्षरों को साथ मिलाकर लिखें और अनुस्वार उड़ा दें, तो यह होगा : '**नाआन रघम तुखूलि नमैक तबज**'।

यदि उपर्युक्त मूल संदेश के विषम संख्यावाले अक्षरों को ऊपर एक लाइन में और सम संख्यावालो को उसके नीचे लिख लिया जाय तो मिलेगा :

ज	त	मै	लि	तु	घ	न	ना
ब	क	न	खूं	म	र	आ	

तीन तीन अक्षरों का समूह लेने पर बीज संदेश होगा "**जतमै लितुघ ननाब कनखूं मरआ**", जो मूल संदेश से सर्वथा भिन्न है। उपर्युक्त रीति के विपरीत, विषम संख्यावाले अक्षरों को नीचे और सम संख्या वालों को ऊपर भी लिखा जा सकता हैं। यदि संदेश लंबा हो, तो उसे तीन अथवा अधिक पंक्तियो में लिख सकते हैं। जैसे संदेश "पचास ऊँटों का कारवाँ कल रवाना होगा।" को चार पंक्तियों मे निम्न प्रकार से लिख लेते हैं

	१	२	३	४
१	प	चा	स	ऊँ
२	टों	का	का	र
३	वां	क	ल	र
४	वा	ना	हो	गा

उपरिलिखित से प्रतिलेखन तैयार करने की कई रीतियाँ हो सकती हैं। दाहिने स्तंभ से बाएँ और तथा नीचे से ऊपर को लिखने पर, बीजलेख होगा :

गाररऊँ होलकास नाककाचा वावांटोप

यदि मात्राओं का प्रयोग न करें तो इसका रूप "**गररउ हलकस नककच ववटप**" हो जाता है, जिसे भेद जाननेवाला मनुष्य थोड़े प्रयत्न से समझ ले सकता है; किंतु अन्य के लिये यह निरर्थक होता है।

बीजांको की रचना की अन्य सरल रीति प्रतिस्थापन सारणी का निर्माण करना है। वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर एक अन्य अक्षर में बदल दिया जाता है, जैसे क = च, ख = म, ग = र इत्यादि। इस प्रकार की एक सूची तैयार कर, पूर्ण सदेश को नए अक्षरों मे लिख देने पर, बीज लेखन पूरा हो जाता है। इस संदेश को कुंजी जाननेवाले मनुष्य के सिवाय अन्य लोग नही जान सकते। हिंदी मे बीजलेखन तैयार करने के लिये स्वरों मे से केवल मुख्य पाँच, अर्थात् अ इ उ ए तथा ओ, को लेने तथा मात्राओं और कुछ व्यंजनो को छोड़ देने से सरलता हो जाती है। नीचे के दृष्टात मे व्यजन ङ, ञ, ण, न, श तथा ष को छोड देते हैं और इनका काम इनसे मिलते जुलते अक्षर म, स और ख से लेते हैं। एक कूट शब्द ले लिया जाता है, जैसे **परबल** तथा इसे वर्णमाला के अन्य अक्षरो के साथ निम्नलिखित दो तरीकों से सजा सकते हैं :

प	र	ब	ल
अ	इ	उ	ए
ओ	क	ख	ग
घ	च	छ	ज
झ	ट	ठ	ड
ढ	त	थ	द
ध	फ	भ	भ
म	ल	स	ह

(१)

प	र	ब	ल	अ	इ	उ	ए
ओ	क	ख	ग	घ	च	छ	ज
झ	ट	ठ	ड	ढ	त	थ	द
ध	फ	ब	भ	म	ल	स	ह

(२)

मान लीजिए जो संदेस भेजना है वह यो है "**पचास ऊँट का कारवाँ कल रवाना होगा**, जिसकी मात्राएँ इत्यादि हटाने पर रूप होता है : **पचस उट क करव कल रवन हग**। अब इस सदेश को दो अक्षरों के समूह मे विभाजित कर लेते है : पच सउ टक **कर वक लर वन हग**। उपरिलिखित सारणियों मे प्रथम दो अक्षरो को सीधी रेखा से जोड़ने पर जिस आयत का कर्ण बनता है, उसके अन्य दोनों विपरीत सिरों

पर पड़नेवाले अक्षर पूर्वअक्षरों के स्थान पर लिख दिए जाते हैं। एक ही (१) आड़ी या (२) खड़ी पंक्ति में पड़नेवाले अक्षरों के स्थान पर, सारणी में उनके (१) बाद अथवा (२) नीचे आनेवाले अक्षर दिए जाते है। यदि दाहिने स्तंभ या (२) अंतिम पंक्ति में संदेश का अक्षर पड़ता है, तो (१) बाएँ पड़नेवाला या (२) ऊपर की पंक्ति में पड़नेवाला अक्षर उसके स्थान पर लिख दिया जाता है। इन नियमों के अनुसार प्रथम सारणी मे संदेश का बीज लेखन होगा :

रथ हुए तत्र चइ रख सव पस सख (१)

तथा द्वितीय सारणी से होगा :

इम्रो हुए फट टक रख अव अब अभ (२)

तीन तीन या चार चार अक्षरों को मिलाकर लिखने से उक्त बीजलेखों की क्लिष्टता कुछ बढ़ जाएगी।

बीजलेखन अक्षरों में न होकर शब्दों मे हो सकते हैं। इस आधार पर शब्दकोशों से चुने हुए शब्द लेकर प्रत्येक शब्द से एक पूर्ण विचार को जताने का काम लिया जाता है। ऐसे कूट शब्दों का प्रयोग व्यापारिक संदेशो मे बहुधा किया जाता है, क्योंकि इससे लबा संदेश गिने गिनाए शब्दों मे व्यक्त किया जा सकता है। बीजाकों में कृत्रिम अक्षरो, विशेष चिह्नों, अंकों आदि का प्रयोग कर उनकी जटिलता बढ़ा दी जाती है। चक्र बीजाक (wheel cipher), रज्जु बीजाक (string cipher), वृत्त बीजांक (circle cipher) तथा अन्य अनेक गुप्तलेखन रीतियो का वर्णन बीजलेखन सबंधी पुस्तकों मे दिया है। अब संदेशों को बीजाकों मे विविध रीतियो से परिवर्तित करनेवाले यंत्रो का भी आविष्कार हुआ है, जिनसे बहुत थोड़े समय मे लंबे संदेशो के ऐसे बीजलेख तैयार हो जाते हैं जिनके अर्थ का पता लगाने की विधि निकालना असंभव है। सैनिक तथा राजनयिक सदेशो के लिये अत्यावश्यक है कि विरोधी उन्हें न जान पाए, क्योंकि एक छोटी सी बात के प्रकट हो जाने के भी भयकर प्रतिफल हो सकते हैं। इस कार्य के लिये बीजलेखी यत्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। व्यापारिक कार्यों के लिये टेलेक्रिप्टॉन (Telekrypton) नामक एक यत्र प्राप्य है, जिसके द्वारा भेजे जानेवाले सदेश का बीजलेखन तथा तार से प्राप्त बीज से सदेश का पुनर्लेखन अपने आप हो जाता है तथा वह अतिशीघ्रता के साथ छपता भी जाता है। [भ० दा० व०]

बीजापुर १. जिला, स्थिति : १६° ५०' उ० अ० तथा ७५° ४०' पू० दे०। यह भारत के मैसूर राज्य मे स्थित जिला है, जिसके उत्तर में महाराष्ट्र राज्य, पूर्व मे गुलबर्गा, दक्षिण में रायचूर एवं धारवाड तथा पश्चिम में बेलगाँव जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल ६,५६४ वर्ग मील तथा जनसख्या १६,६०,१७८ (१९६१) है। कृष्णा यहाँ की प्रमुख नदी है तथा उत्तर-पूर्वी सीमा पर भीमा नदी बहती है। मार्च एव अप्रैल का अधिकतम ताप लगभग ४३° सें० तथा सबसे अधिक ठंडे मास जनवरी का ताप लगभग २५° सें० तक पहुँच जाता है। बीजापुर नगर की औसत वार्षिक वर्षा २४ इंच है। यहाँ प्राप्त काली एवं लाल मिट्टी मे ज्वार, बाजरा, गेहूँ दलहन, कपास तथा तिलहन की कृषि होती है।

२. नगर, स्थिति : १६° ४९' उ० अ० तथा ७५° ४३' पू० दे०। बीजापुर जिले में, बंबई से ३५० मील दक्षिण-पूर्व स्थित नगर है। पठारी भाग मे स्थित होने के कारण इसकी जलवायु शुष्क एवं स्वास्थ्यकर है। बीजापुर का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक है। यहाँ प्राचीन महलो के खडहर, मस्जिद, मकबरे आदि हैं। यहाँ मोहम्मद आदिलशाह का मकबरा (गोल गुबज) है, जिसके ऊपर संसार का द्वितीय विशालतम गुबज है। नगर मे अनाज तथा पशुओं का व्यापार अधिक होता है। इसकी जनसंख्या ७४,८५४ (१९६१) है। गुजरात राज्य के महेसाणा जिले में भी इसी नाम का एक नगर है। [रा० स० ख०]

इतिहास — जब १५ वी शती में बहमनी राज्य पाँच स्वतंत्र राज्यों मे विभक्त हुआ तो बीजापुर में आदिलशाही राजवंश सत्तारूढ हुआ (दे० बीजापुर का आदिलशाही राजवंश)। १६८६ में औरंगजेब ने इस वंश का अंत कर दिया। १७२४ मे निजाम ने दक्षिण में स्वतंत्र राज्य कायम करते हुए बीजापुर भी ले लिया। १७६० में इसे पेशवा ने छीन लिया। पेशवा का पतन होते ही १८१८ में अंग्रेजों ने इसे हथिया कर सतारा के राजा को सौंप दिया। उत्तराधिकार के झगड़े से तग आकर अग्रेजी सरकार ने सतारा राज्य को सरकारी सपत्ति घोषित कर दिया। (१८४८)। १८८५ मे बीजापुर जिले का प्रशासकीय केंद्र बना दिया गया। स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात् यह मैसूर राज्य का एक जिला हो गया।

बीजापुर का आदिलशाही राजवंश (१४८९-१६८६) इस राजवश का संस्थापक यूसुफ आदिल खाँ (१४८९-१५१०) था। इसके संबंध मे फरिश्ता का दावा है कि वह कुस्तुतुनिया के आटोमन राजघराने की शाही वशपरंपरा का था। यूसुफ का पालन पोषण ईरान के सवाह में हुआ था। वहाँ से वह १४६० के लगभग बहमनी दरबार मे आया और बहमनी वजीर महमूद गावां का सेवक बन गया। ऐसी साधारण स्थिति से उन्नति करता हुआ वह एक दिन बीजापुर डिबीजन का गवर्नर (तरफदार) बन गया। जब बहमनी राज्य के विघटन के लक्षण दिखाई देने लगे तब यूशुफ आदिल खां ने, बरार के फतुल्ला इमाद उल् मुल्क के उदाहरण का अनुसरण करते हुए, १४९० मे अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। यूसुफ आदिल शाह ने अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों मे अपने नवसस्थापित राज्य का विस्तार किया और उसे सुदृढ़ बनाया। इस सिलसिले मे गुलबर्गा के दस्तूर दीनार और गोआ के बहादुर गिलानी के साथ उसका संघर्ष हुआ और उसने उनका निर्दलन कर उनके भूभाग बीजापुर में मिला दिए। शासन के अंतिम वर्ष (१५१०) के फरवरी मास में पुर्तगालियों ने गोआ पर कब्जा कर लिया किंतु यूसुफ ने उसी वर्ष मई मे उनसे गोआ को फिर छीन लिया। इसके बाद कुछ ही महीनों मे यूसुफ आदिल शाह मर गया (लगभग अक्तूबर १५१०) और पुर्तगालियों ने उसके पुत्र और उत्तराधिकारी इस्माइल से पुनः नवंबर १५१० मे गोआ वापस ले लिया। यूसुफ आदिल शाह पहला भारतीय शासक था जिसने शिया धर्म स्वीकार किया।

यूसुफ के बाद आठ आदिलशाही सुलतानों ने बीजापुर पर शासन किया :

इस्माइल आदिल शाह, १५१०-१५३४; मल्लू आदिल शाह, १५३४ (अपदस्थ); इब्राहीम आदिल शाह प्रथम, इस्माइल का पुत्र,

१५३४-१५५८; अली आदिल शाह प्रथम, इब्राहीम का पुत्र, १५५८-१५८०; इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय, अली प्रथम के भाई तहमस्प का पुत्र, १५८०-१६२७; मुहम्मद आदिल शाह, इब्राहीम द्वितीय का पुत्र १६२७-१६५६; अली आदिल शाह द्वितीय, मुहम्मद का पुत्र १६५६-१६७२; और सिकंदर आदिल शाह, अली द्वितीय का पुत्र १६७२-१६८६।

बीजापुर का सोलहवीं शताब्दी का इतिहास उत्तराधिकार में प्राप्त राज्यों के पारस्परिक तथा विजयनगर के साथ निरंतर होनेवाले युद्धों का इतिहास है। इन तमाम शत्रुतापूर्ण संघर्षों के तात्कालिक कारण तो नगण्य ही हुआ करते थे किंतु इनके मूल मे किसी न किसी रूप मे शक्तिसंतुलन स्थापित करने की भावना भी रहती थी। जब दक्खिन के सुलतानों की सुरक्षा के लिये विजयनगर से गंभीर संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई तो इन सुलतानों ने मिलकर उस राज्य के खिलाफ रहने का निश्चय किया और उन्होंने जनवरी, १५६५ में रक्षास तागाडू, जिसे भ्रमवश तालीकोट कहा जाता है, को लड़ाई में उसे जबर्दस्त हार दी। इससे बीजापुर को दक्षिण की ओर राज्य विस्तार करने और उस क्षेत्र में स्थित हीरे की खानों की ओर बढने का मौका मिला। इसी शताब्दी के आरंभ मे १५४६-१५४८ के बीच गोआ के पुर्तगालियो ने बीजापुर के आंतरिक सकटो से लाभ उठाकर गोआ से सटे हुए बारदेज और सालसेट जिलों पर कब्जा कर लिया। १५७० में पुर्तगालियों को गोआ और चाउल से निकाल बाहर करने का एक विफल प्रयत्न हुआ।

सोलहवी शताब्दी के अंत में अकबर ने दक्खिनी सुलतानों की सल्तनतो के खिलाफ कूटनीतिक आक्रमण शुरू किया और अली प्रथम के शासनकाल मे बीजापुर की ओर भी उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। मुगल शाहंशाह ने दो कूटनीतिक प्रतिनिधिमंडल बीजापुर भेजे और आदिलशाही दरबार मे उनका स्वागत हुआ। उत्तर से आए हुए इस खतरे का सामना करने में इब्राहीम द्वितीय ने नेतृत्व प्रदान किया और एक संघीय शासनव्यवस्था के निर्माण का प्रयत्न किया किंतु इस दिशा में किये गये उसके सारे प्रयत्न बेकार चले गए, क्योकि बरार मे जनवरी, १५९७ में हुई सोमपेठ की लड़ाई में बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुडा की समिलित सैन्यशक्ति मुगलों द्वारा परास्त कर दी गई। मलिक अंबर के उत्थान के बाद इब्राहीम ने इस निजामशाही राजपुरुष को मुगलों का बढ़ाव रोकने में कुछ समय तक बड़ी मदद दी किंतु इन दोनों में आगे चलकर इतना तीव्र मतभेद पैदा हो गया कि इब्राहीम ने मलिक अंबर के विरुद्ध मुगलों से दोस्ती कर ली। अहमदनगर के निकटस्थ भाटवाड़ी मे हुई लड़ाई (१६२४) मे इब्राहीम और मुगलो की संमिलित सैन्यशक्ति को करारी हार खानी पड़ी।

शाहजहाँ ने १६३६ में निजामशाही राज्य के बचे खुचे अवशेषों को अंतिम रूप से समाप्त कर दिया जिसके फलस्वरूप बीजापुर के लिये मुगल खतरा उग्र हो उठा किंतु मुगल समर्थक आदिल शाही राजनेता मुस्तफा खाँ ने शाहजहाँ से ऐसा समझौता कर लिया जिससे बीजापुर से सटे हुए अस्तंगत निजामशाही राज्य के क्षेत्रों में बीजापुर को भी एक हिस्सा मिल गया। इसके बदले में मुहम्मद शाह को मुगलों की प्रभुसत्ता स्वीकार करनी पड़ी और शाहंशाह को पेशकश देना मंजूर करना पड़ा। शांति का यह समझौता २० वर्षों तक कायम रहा और बीजापुर को दक्षिण में राज्यविस्तार करने का मौका मिल गया जिसके फलस्वरूप १६५६ में बीजापुर का राज्य विस्तार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। वह अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक विस्तृत आधे प्रायद्वीप में फैल गया।

इन्हीं २० वर्षों की अवधि में शिवाजी का भी उत्थान हुआ। उन्होने १६४६ से ही आदिलशाही क्षेत्र के इलाकों को एक एक करके अधिकार में लाना शुरू कर दिया और अंत मे कोंकण तथा पूर्वी और पश्चिमी घाटो के ऊपर स्थित बहुत बड़े भूभाग पर कब्जा कर लिया। उन्होने एक हद तक मुगलों के विरुद्ध बीजापुर को सहायता भी दी किंतु उनका प्रमुख उद्देश्य अपने लिये एक नए राज्य का निर्माण कर लेना था जिसमे वे सफल हुए।

१६५३ में औरंगजेब दक्खिन के मुगल प्रांत का शासक (गवर्नर) नियुक्त हुआ। उसने बीजापुर के प्रति जो नीति अख्तियार की उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह आदिल शाही और कुतुब शाही दोनों राज्यों को समाप्त कर देने पर तुला हुआ था। मुगलों की निरंतर बढ़ती हुई माँग को संतुष्ट करने के लिये बीजापुर को एक एक करके अपने अनेक जिले दे डालने पड़े। बीजापुर का बाल नरेश सिकंदर आदिल शाह शिवाजी के निर्दलन के लिये औरंगजेब को किसी प्रकार की सैनिक सहायता देने की स्थिति मे नही था। इससे औरंगजेब को बीजापुर के विरुद्ध युद्ध छेड़ने और अंततः आदिलशाही राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लेने का अच्छा खासा बहाना मिल गया। १३ सितंबर, १६८६ में सिकंदर आदिलशाह ने औरंगजेब के सामने आत्मसमर्पण कर दिया और आदिलशाही राजवंश समाप्त हो गया।

इस राजवंश का सांस्कृतिक अवदान भी कोई कम महत्वपूर्ण नही है। इब्राहीम रोजा और गोल गुंबज दो अत्यधिक प्रसिद्ध इमारत है और इब्राहीम द्वितीय के दरबार मे लिखी गई महान् ऐतिहासिक कृति का मध्यकालीन भारत के सामान्य इतिहास ग्रंथों मे निश्चय ही प्रथम स्थान है। आदिल शाही सुलतान सामान्यतः प्रबुद्ध थे और संगीत का महान् प्रेमी इब्राहीम द्वितीय अपने को अबलाबली और जगद्गुरु कहने मे गर्व का अनुभव करता था। [पी० एम० जे०]

बीड़ १. जिला, स्थिति : १८° २८' उ० अ० से १९° २७' उ० अ० तथा ७४° ५४' पू० दे० से ७६° ५७' पू० दे०। यह भारत के महाराष्ट्र राज्य का एक जिला है। इसका क्षेत्रफल ४,२६८ वर्ग मील तथा जनसंख्या १०,०१,४६६ (१९६१) है। इसके उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में औरंगाबाद तथा परभणी, दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व में उस्मानाबाद तथा पश्चिम मे अहमदनगर जिले हैं। उत्तरी सीमा पर गोदावरी नदी बहती है। यहाँ की वार्षिक वर्षा ३० इंच है। जलवायु उष्ण तथा स्वास्थ्यप्रद है। यहाँ की मिट्टी रेगर तथा काली है जिसमे कपास, ज्वार, चना, गेहूँ, बाजरा, दलहन तथा तिलहन उगाए जाते हैं। बीड़, गेवराई, मंजलेगाँव प्रसिद्ध नगर हैं।

२. नगर, स्थिति : १८° ५९' उ० अ० तथा ७४° ४९' पू० दे०। यह बीड़ जिले का प्रमुख नगर है जो बेंदसूरा (Bendsura) नदी

के किनारे स्थित है। शाहजहाँ के समय में इसके समीप शाही फौज से बीजापुर एवं अहमदनगर की फौजों में कई युद्ध हुए थे। यहाँ चमड़े का काम अधिक होता है। इस की जनसंख्या ३३,०६६ (१९६१) है। [च० प्र० स०]

बीदर १. जिला, स्थिति : १७° ३०' से १८° ५१' उ० अ० तथा ७६° ३०' से ७७° ५१' पू० दे०। यह भारत के उत्तर-पूर्वी मैसूर राज्य का एक जिला है, जिसके उत्तर में नादेड़ तथा उस्मानाबाद, पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम मे उस्मानाबाद, दक्षिण में गुलबर्गा तथा पूर्व में मेदक जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल २,११६ वर्ग मील तथा जनसंख्या ६,६३,१७२ (१९६१) है। इसके मध्य में २,३५० फुट ऊँचा पठार है। यहाँ का जलवायु शुष्क तथा स्वास्थ्यप्रद है। वर्षा का वार्षिक औसत ३७ इंच है। कृषि मे ज्वार, गेहूँ, धान, बाजरा, कपास तथा तिलहन उगाए जाते हैं।

२. नगर, स्थिति: १७° ५५' उ० अ० तथा ७७° ३२' पू० दे०। बीदर जिले मे पूर्व की ओर, ऊँचे पठार पर स्थित व्यापारिक, ऐतिहासिक तथा संपन्न नगर है (दे० बीदर की बरीदशाही)। यहाँ कई मंदिर तथा मस्जिदें हैं। यहाँ की जनसंख्या ३२,४२० (१९६१) है। [रा० स० ख०]

बीदर की बरीदशाही (१४८७-१६१९) इस शासक वंश का संस्थापक मलिक कासिम बरीद, तुर्की गुलाम था जो मुहम्मद शाह बहमनी के सेवक के रूप में काम करता था। यह बहुत ही बुद्धिमान् और सुसंस्कृत था और बढ़ते बढ़ते बीदर का कोतवाल बन गया। अपनी सैनिक क्षमता का सिक्का जमाकर यह पतनोन्मुख बहमनी राज्य का प्रधान मंत्री हो गया। शिहाबुद्दीन महमूद से लेकर कलीमुल्लाह तक सारे बहमनी सुलतान केवल नाम के शासक थे, सत्ता के असली मालिक कासिम बरीद (मृत्यु १५०४) और उसका पुत्र अमीर बरीद (१५०४-१५४३) थे। अंतिम बहमनी सुलतान कलीमुल्लाह के बीदर से भाग जाने के पश्चात् अमीर बरीद सर्वोच्च शासक बन बैठा। कासिम बरीद और अमीर दोनो अपने स्वार्थों की पूर्ति और उत्तराधिकारी राज्यों पर अपना प्रभुत्व बढ़ाने के लिये बहमनी सुलतानों का नाम लेते थे, किंतु बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगर ने उनकी दाल नहीं गलने दी। महमूदशाह बहमनी ने बीजापुर के इस्माइल आदिलशाह से अपील की कि वह बीदर में अमीर बरीद के प्रभुत्व को समाप्त करे, किंतु ऐसा कदम उठाने मे इस्माइल को अन्य उत्तराधिकारी राज्यो के बीजापुर के विरुद्ध हो जाने का खतरा जान पड़ा। बीजापुर की बढती हुई शक्ति से डरकर अमीर बरीद ने अहमदनगर और गोलकुंडा को उस राज्य के विरोधी बना देने की अनेक चालें चली, किंतु उसके षड्यंत्र सफल नही हुए। उसकी एक राज्य को दूसरे राज्य से लडाने की चालों के कारण ही उसे 'दक्षिण की लोमड़ी' कहा जाता था। उसने विजयनगर के कृष्णदेवराय को आदिल शाही राज्य पर आक्रमण करने और रायचूर दोआब पर कब्जा करने के लिये उकसाया (१५१२)। बीजापुर के प्रतिरक्षक कमाल खाँ को भी उभारा कि वह अबोध राजा इस्माइल को हटाकर गद्दी पर अधिकार कर ले। उसने अहमदनगर और गोलकुंडा को मिलाकर बहमनी सुलतान के नाम पर बीजापुर पर आक्रमण कर दिया किंतु बीजापुर के सेनापति असद खाँ की सैनिक चातुरी से संयुक्त सेनाएँ पराजित हो गई (१५१४)। इस्माइल आदिलशाह ने संपूर्ण सत्ता ग्रहण करने पर अमीर बरीद को अच्छा सबक सिखाया। १५२६ के आसपास उसने बीदर पर आक्रमण कर दिया और उदगीर किले के निकट अमीर बीदर को पकड़ लिया। इस्माइल ने पहले उसकी हत्या कर देने का आदेश दिया किंतु असद खाँ के हस्तक्षेप पर उसकी जान बची। बीदर पर इस्माइल का अधिकार हो गया किंतु दूसरे वर्ष (१५३०) अमीर बरीद को ससंमान बीदर भेज दिया गया। लेकिन इस उदारता के व्यवहार से भी बरीद का बीजापुर से मैत्री संबंध स्थापित नही हुआ और दक्षिणी राजनीति में पूर्ववत शरारत जारी रही। कल्याणी और काधार पर बीजापुर अपना अधिकार मानता था और दोनो जिले उसमे संमिलित हो गए। अमीर बरीद १५४३ मे मर गया।

रंगीन महल और अपने शानदार मकबरे के निर्माता अली बरीद (१५४३-१५७९), ने लंबे समय तक राज्य किया और बरीदशाही के राजाओं मे उसने पहले पहल 'शाह' की उपाधि धारण की। निजामशाही के शासको से कुछ समय तक उसके संबंध तनावपूर्ण रहे। लेकिन वह विजयनगर के विरुद्ध मुस्लिम राज्यों के संघ में समिलित हो गया और सयुक्त सेनाओं के बाएँ बाजू का कमांडर बनाया गया। १५७८-७९ में मुर्तजा निजामशाह ने बीदर पर आक्रमण कर दिया और अलीबरीद ने बीजापुर के अली प्रथम की सहायता से अपनी रक्षा की।

बरीदशाही के पतन का आरंभ अली बरीद शाह प्रथम की मृत्यु (१५७९) के बाद से माना जा सकता है। उसके पुत्र इब्राहीम ने, जो उसका उत्तराधिकारी बना, सात वर्षों तक राज्य किया (१५७९-१५८६) और उसके बाद उसका भाई कासिम बरीद द्वितीय १५८६ से १५८९ तक गद्दी पर रहा। कासिम बरीद के युवक पुत्र मिर्जा अली बरीद ने बहुत न्यून अवधि तक शासन किया। उसे परिवार के ही सबधी ने गद्दी से हटा दिया और स्वयं अमीर बीदर शाह द्वितीय के नाम से राजा बन गया। उसके उत्तराधिकारी के रूप में मिर्जा अमीर बरीदशाह का नाम बीदर के एक अभिलेख में मिलता है। इसी मिर्जा वली अमीर बरीद शाह के राज्यकाल में १६१९ मे बीदर बीजापुर मे मिला लिया गया।

कुछ अत्यंत सुदर निर्मित भवन बरीद शाहों की याद दिलाते हैं। उनके द्वारा प्रचलित की हुई मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं।

[पी० एम० जो०]

बीमा बीमा शब्द फारसी से आया है। भावार्थ है, जिम्मेदारी लेना। डा० रघुवीर ने इसका अनुवाद किया है आगोप। उसका अंग्रेजी पर्याय 'इंश्योरेंस' (Insurance) है। बीमा एक प्रकार का अनुबंध—ठेका है। दो या अधिक व्यक्तियों में ऐसा समझौता जो कानूनी रूप से लागू किया जा सके, अनुबंध कहलाता है। बीमा अनुबंध का व्यापक अर्थ है कि बीमापत्र (पॉलिसी) में वर्णित घटना के घटित होने पर बीमा करनेवाला एक निश्चित धनराशि बीमा करानेवाले व्यक्ति को प्रदान करता है। बीमा करानेवाला जो सामयिक प्रव्याजि (बीमाकिस्त, प्रीमीयम) बीमा करनेवाले को देता रहता है वही इस अनुबंध का प्रतिदेय है।

जुआ खेलने या बाजी लगाने में भी दो व्यक्ति यही समझौता करते हैं कि अमुक घटना घटित होने पर दूसरा व्यक्ति अमुक धनराशि अदा करेगा। लेकिन उसे बीमा नहीं कहा जा सकता क्योंकि स्वयं उस घटना के घटित होने या न होने में उस बाजी लगानेवाले का कोई स्वतंत्र हित नहीं होता। अस्तु, बीमा अनुबंध के लिये सामान्य अनुबंध के तत्वों के साथ साथ बीमाहित (Insurable Interest) का अस्तित्व आवश्यक है। उदाहरणार्थ क के जीवन का बीमा कोई अजनबी व्यक्ति ख नहीं करा सकता क्योंकि क के जीवित रहने या न रहने में ख का कोई स्वतंत्र हित नहीं है। लेकिन यदि ख क की पत्नी हो तो क के जीवित रहने मे ख का हित निहित होने से ख द्वारा क के जीवन का बीमा करना नियमानुकूल होगा।

बीमा हित का अर्थ व्यापक है। पति पत्नी के जीवित रहने में एक दूसरे का हित तो स्पष्ट ही है। कर्जदार के जीवन में महाजन का हित भी वैसा ही मान्य है। इसी प्रकार सपत्ति बीमा के लिये बीमाहित उस सपत्ति के स्वामी को तो है ही। यह हित उस व्यक्ति को भी उपलब्ध हो जाता है, जिसे किसी अनुबंध के अंतर्गत कोई संपत्ति उपलब्ध होती है। यही नहीं, संपत्ति पर कब्जा मात्र होने से, भले ही वह कब्जा गैरकानूनी हो, बीमाहित उपलब्ध हो जाता है। उदाहरणार्थ अगर किसी दिवालिए के पास उसके कब्जे मे कोई संपत्ति है, भले ही वह अधिकार स्वत गैरकानूनी हो क्योंकि दिवाला निकलने के बाद उसकी सारी संपत्ति पर अधिकारी अभिहस्तांकिनी का अधिकार हो जाता है—किंतु उस सपत्ति का बीमा कराने के लिये उस दिवालिए को भी अधिकारी मान लिया जाता है। किसी अनुबंध द्वारा बीमा हित उत्पन्न होने का आधार उत्तरदायित्व अथवा हित दोनो हो सकते हैं। उदाहरणार्थ जब कोई व्यक्ति कोई मकान किराए पर लेता है तो उस मकान की हिफाजत का कोई उत्तरदायित्व उस पर नही होता लेकिन चूंकि उस अनुबंध से किराएदार को सुरक्षा की सुविधा उपलब्धि होती है अतः उस मकान की सुरक्षा के बीमे के लिये भी उस किराएदार को बीमा हित उपलब्ध हो जाता है।

बीमा अनुबंध के लिये बीमा हित की आवश्यकता उक्त अनुबध की वैधता आंकने के लिये तो है ही, क्षतिपूर्ति के नियमो का पालन करने के लिये भी यह आवश्यक है। इस सबध मे अंग्रेजी विधि (नियम) और भारतीय विधि मे कुछ अतर है। अंग्रेजी विधि के अनुसार (समुद्र बीमा विधि १६०६ और जीवन बीमा विधि १७७४) आगोप्य हित का वस्तुत. अस्तित्व आवश्यक है। किंतु भारतीय विधि मे ऐसा नहीं है। भारतीय अनुबंध विधि की धारा ३० के अनुसार चूंकि जुआ या शर्त बाजी आदि के समझौते अवैध करार दिए गए हैं इसलिये बीमाहित का अस्तित्व वस्तुत. न भी हो किंतु उसे उपलब्ध करने की उचित आधार पर आशा हो तो भी वह बीमा अनुबंध की वैधता के लिये पर्याप्त है।

बीमा अनुबंध का दूसरा प्रमुख आधार सद्भाव एवं निष्कपटता है। अत यह आवश्यक है कि दोनो पक्ष (बीमा करनेवाला तथा बीमा करानेवाला) बीमा विषयक सभी तथ्य प्रगट कर दे। प्रगट कर देने का अर्थ यही है कि जान बूझकर कुछ छिपाया न जाय। यदि कोई सार तथ्य प्रगट न किया गया हो तो दूसरा पक्ष उक्त अनुबंध से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

इस संबंध में भी अंग्रेजी और भारतीय विधि नियमों में कुछ अंतर है। भारतीय बीमा विधि की धारा ४५ के अनुसार जाल बीमा में अनजाने में, जानबूझकर तथा बेईमानी की इच्छा से यदि कोई गलतबयानी हो जाय तो वह क्षम्य मानी गई है। लेकिन सामान्य विधि (अंग्रेजी कानून) के अनुसार अनजाने मे भी कोई गलतबयानी उस अनुबंध को प्रभावित कर देती है।

बीमा के अनुबंध दो प्रकार की श्रेणियों मे विभाजित किए जा सकते हैं। वे अनुबंध जिनमें क्षतिपूर्ति का उत्तरदायित्व होता है और वे जिनमें क्षतिपूर्ति का प्रश्न नही होता वरन् एक निश्चित धनराशि अदा करने का अनुबंध होता है। क्षतिपूर्ति विषयक बीमा सामुद्रीय (मैरीन इंश्योरेंस) भी हो सकता है और गैरसामुद्रीय भी। पहले का उदाहरण समुद्र द्वारा विदेशों को भेजे जानेवाले समान की सुरक्षा का बीमा है और दूसरे का उदाहरण अग्निभय अथवा मोटर का बीमा है। क्षतिपूर्ति के अनुबंध में केवल क्षति की पूर्ति की जाती है। यदि एक ही वस्तु का बीमा एक से अधिक स्थानों (बीमा संस्थानों) में है तो भी बीमा करानेवाले को क्षतिपूर्ति की ही धनराशि उपलब्ध होती है। हाँ, वे बीमा कंपनियाँ आपस मे अदायगी की धनराशि का भाग निश्चित कर लेती हैं। क्षतिपूर्ति अनुबंध का यह सिद्धांत जीवन बीमा तथा दुर्घटना बीमा पर लागू नही होता। अत. जीवन बीमा तथा दुर्घटना बीमा कितनी भी धनराशि के लिये किया गया है बीमा करानेवाले को (यदि वह जीवित है) अथवा उसके मनोनीत व्यक्ति को वह पूरी रकम उपलब्ध होती है।

बीमा सिद्धांत का इतिहास समुद्र व्यापार के प्रारंभ से ही संबंधित है। अपने आदि रूप मे क्षतिपूर्ति का बीमा सिद्धात सहकारिता के सिद्धात पर आधारित था जिसे 'जेनरल एवेरेज' कहा जाता था। समुद्र में तूफान के समय अथवा अन्य खतरों के समय कभी कभी यह आवश्यक हो जाता था कि जहाज तथा अन्य सामान की रक्षा के लिये कुछ सामान समुद्र मे फेंक कर जहाज को हलका कर लिया जाय। इस प्रकार होनेवाली हानि उस व्यापार योजना में भाग लेनेवाले सभी हित आनुपातिक रूप से वहन कर लेते थे। यही सहकारिता का सिद्धात क्रमशः बीमा के रूप मे पनपा।

समुद्र बीमा अनुबंध में केवल एक खतरे के विरुद्ध बीमा नहीं किया जाता वरन् उसमें उन सभी खतरो का उल्लेख होता है जो समुद्र-यात्रा मे संभाव्य है। ध्यान रहे कि बीमा करने के उपयुक्त वही खतरे माने जाते हैं जो संभाव्य हैं। ऐसी यात्रा में जो हानियाँ निश्चित हैं, जैसे पशु आदि का बीमार हो जाना अथवा फल आदि का सड़ जाना इत्यादि, उनका बीमा नही किया जाता।

समुद्र बीमा की एक शर्त यह भी है कि उक्त अनुबंध लिखित हो अर्थात् बीमापत्र उक्त बीमा अनुबंध का पूर्ण प्रमाण माना जाता हैं। समुद्र बीमा चूंकि क्षतिपूर्ति का अनुबंध है अत बीमा करानेवाले के वक्तव्य वस्तुत सत्य होने चाहिए। साथ ही यदि बीमा करानेवाले ने यह तथ्य प्रगट नही किया हैं कि पहले उक्त बीमा करने से किसी ने इनकार कर दिया था तो भी उसका उस अनुबंध की वैधता पर कोई प्रभाव नही पड़ता। अन्य प्रकार के बीमा संबंधों में पहले की अस्वीकृतियाँ छिपाना उस अनुबंध को अवैध करार देने के लिये पर्याप्त है।

क्षतिपूर्ति के बीमा तथा अन्य प्रकार के बीमा अनुबंध का एक और अंतर ध्यान देने योग्य है। जान बीमा में बीमा हित का अस्तित्व बीमा कराने के समय होना आवश्यक है, भले ही बीमे में वर्णित घटना घटित होने के समय वह हित रहे या न रहे। उदाहरणार्थ क अपनी पुत्री के विवाह के लिये यदि पंद्रह वर्ष की अवधि का बीमा करा रहा है तो 'क' की पुत्री का अस्तित्व बीमा कराने के समय आवश्यक है। उस १५ वर्ष की अवधि के पूर्व ही क की पुत्री की मृत्यु भले ही हो चुकी हो, किंतु वह धनराशि क को प्राप्त हो जायगी। लेकिन अगर क की पुत्री का जन्म नहीं हुआ है तो उक्त प्रकार के बीमा अनुबंध के लिये आवश्यक बीमा हित वर्तमान न होने से क उक्त प्रकार का बीमा नही करा सकता। इसके विपरीत क्षतिपूर्ति के बीमा अनुबंध पर बीमा हित बीमा कराने के समय वर्तमान हो या न हो लेकिन उक्त क्षति घटित होने के समय धनराशि चाहनेवाले मे उक्त बीमा हित व्यस्त होना आवश्यक है। उदाहरण के लिये क ने अपने मकान का अग्नि बीमा कराया और उस बीमे के चालू रहते हुए वह मकान ब को बेच दिया। बिक्री होने के दूसरे दिन उस मकान मे आग लग गई। ऐसी स्थिति में क द्वारा कराया गया बीमा यद्यपि चालू है, फिर भी उस मकान में क का बीमा हित न रहने के कारण उक्त बीमा अनुबंध के आधार पर क्षतिपूर्ति का दावा ब नही कर सकता है क्योकि क्षति होने के समय मकान के साथ साथ मकान का बीमा हित भी ब मे व्यक्त हो चुका है। इसी सिद्धांत का एक निष्कर्ष यह भी है कि जो वस्तु क्षतिग्रस्त हुई है उसका मूल्याकन बीमा कराए जाने के समय के मूल्य पर नहीं वरन् क्षति घटित होने के समय के मूल्य के आधार पर ही किया जाता है।

अग्नि बीमा — जैसा कहा जा चुका है, अग्नि बीमा क्षतिपूर्ति का अनुबंध है अर्थात् जो धनराशि बीमापत्र पर अंकित है वह अवश्य मिल जाएगी, ऐमा नही वरन् उस सीमा तक क्षतिपूर्ति हो सकेगी। अग्नि बीमा अनुबध यद्यपि किसी न किसी संपत्ति के सबध मे ही होता है, फिर भी वह व्यक्तिगत अनुबंध ही है अर्थात् उक्त सपत्ति के स्वामी अथवा उस संपत्ति मे बीमा हित रखनेवाले व्यक्ति को उस अनुबंध द्वारा क्षतिपूर्ति से आश्वस्त किया जाता है। अतः अगर बीमा करानेवाले को किसी संपत्ति मे स्वामित्व अथवा अन्य प्रकार का कोई ऐसा अधिकार नही है जिससे उसे बीमा हित उपलब्ध होता हो तो वह बीमा करा लेने के बाद भी अनुबंध का लाभ नही उठा सकता।

संपत्ति का स्वामित्व बदलने पर यद्यपि बीमा हित हस्तांतरित हो जाता है किंतु बीमा अनुबंध अंग्रेजी कानून के अनुसार स्वतः हस्तांतरित नहीं होता। यदि सपत्ति विक्रय के साथ साथ तत्संबधी अनुबंध लाभ भी हस्तांतरित करना अभिप्रेत हो तो भी बीमा करने वाले की अनुमति आवश्यक है। भारतीय विधि में ऐसा नही है। स्थिर सपत्ति हस्तांतरण विधि की धारा ४६ और १३३ के अनुसार कोई विपरीत अनुबंध के अभाव में संपत्ति प्राप्तकर्ता बीमा अनुबंध का लाभ क्षतिपूर्ति के लिये माँग सकता है। एक ही वस्तु में एक से अधिक लोगों को कुछ कुछ अधिकार उपलब्ध हो सकते हैं एवं उनके विभिन्न प्रकार के बीमा हित हो सकते है। अतः वे सब अपने हितों के आधार पर उस एक की संपत्ति पर अनेक बीमे करा सकते हैं।

अग्नि बीमा अनुबंध पर क्षतिपूर्ति का दावा करने के लिये यह आवश्यक है कि क्षति का निकट कारण अग्नि ही हो और अग्नि का अर्थ है कि चिनगारी निकली हो (अंग्रेजी में इसे इग्नीशन Ignition कहते हैं)। किसी वस्तु के अत्यधिक दबाव के कारण वस्तु का झुलस जाना आग लगना नही माना जाता। बिजली गिरने से होनेवाली हानि पर 'चिनगारी लगने' की अनिवार्यता का नियम लागू नहीं होता। विस्फोट द्वारा हुई हानि अग्नि से हानि नहीं कहलाती, भले ही वह विस्फोट अग्नि से ही हुआ तो। इसका आधार यह है कि हानि का निकट (Proximate cause) कारण अग्नि ही होना चाहिए। इसी प्रकार अग्नि लगने से उत्पन्न स्थिति में किसी तीसरे पक्ष द्वारा किए गए कृत्यों से उत्पन्न हानि भी अग्नि हानि मे शामिल नहीं की जाती। लेकिन अग्नि अथवा जलहानि की सीमा का निर्धारण अग्नि बुझने के तुरंत बाद ही नहीं किया जाता वरन् उस समय किया जाता है जब उक्त बीमा संपत्ति बीमा करानेवाले को सौंपी जाती है।

अग्नि बीमा अनुबंध तीन प्रकार के होते हैं :

१–मूल्यांकित अथवा अमूल्याकित

२–संपूर्ण तथा अनिश्चित

३–निर्धारित तथा औसत

मूल्याकित बीमा अनुबध में यदि संपत्ति पूर्ण नष्ट हो जाय तो बीमा पत्र पर लिखित धनराशि बीमा करनेवाले को अनिवार्य रूप से देनी पडती है। अमूल्याकित बीमा अनुबंध मे यदि पूर्ण संपत्ति नष्ट हो जाय तो उक्त सपत्ति का मूल्यांकन उस समय किया जाता है। संपूर्ण तथा अनिश्चित अग्नि बीमा अनुबध मे वस्तुओं की सूची नही दी जाती वरन् अग्नि से हानिभय का बीमा सामान्य रूप मे किया जाता है। निर्धारित अग्नि बीमा अनुबंध मे धनराशि निर्धारित बीमा पत्र पर लिखी रहती है। औसत अग्नि बीमा अनुबंध मे आनुपातिक क्षतिपूर्ति की जाती है: अग्नि बीमा अनुबध मे पुनस्थापन (Restoration or Restitution), औसत (average) तथा भागदारी (Partial liability) सिद्धात लागू होते है।

जान बीमा — जान बीमा का प्रारभ भी समुद्री बीमा के प्राय साथ ही हुआ क्योंकि व्यापारिक यात्रा पर जानेवाले पोतों के मालिकों को जहाँ पोत नष्ट होने की संभावनाओ के विरुद्ध प्रबंध करने की चिंता थी, वही उन जहाजों के कप्तानो का जीवन भी उतना ही मूल्यवान था। साथ ही जब कारीगरों के संघों की स्थापना होने लगी और जन्म मृत्यु के लेखे रहने के साथ साथ आयु सीमा के औसत निकालने के नियमो की स्थापना की जा सकी तो जान बीमा अनुबध का भी काफी प्रसार हो सका। लेकिन उस समय के बीमा पत्रो की शर्तें काफी कठिन होती थी। अमरीकी गृहयुद्ध के पूर्व के जान बीमा अनुबध की शर्तों के अनुसार बीमा पत्र का कोई अर्पण मूल्य (Surrender value) नही होता था। बीमे पर कोई कर्ज नहीं मिल सकता था। बीमा प्रव्याजि (प्रीमियम) अदा करने के लिये अतिरिक्त समय (Grace period) नहीं मिलता था तथा आत्महत्या, द्वंद्वयुद्ध अथवा समुद्रयात्रा करने पर बीमा अवैध करार दे दिया जाता था।

जान बीमा दो व्यक्तियों—बीमा करानेवाले और बीमा करने-वाले—के बीच ऐसा अनुबंध है जिसके अनुसार बीमा करानेवाला

निश्चित अवधि तक सामयिक अदायगियों के बदले एक निश्चित धनराशि प्राप्त करने का वचन लेता है और बीमा करानेवाला उन निर्धारित अदायगियों के बदले एक निश्चित रकम निश्चित समय पर अदा करने का वचन देता है। अन्य प्रकार के बीमा अनुबंधों और जान बीमा अनुबंध का अंतर यही है कि यह केवल मानव जीवन से संबंधित है और बीमा अनुबध का प्रकार अथवा रूप कुछ भी हो उसमें मूल शर्त यही होती है कि अनुबंध के चालू रहने के काल में यदि बीमा करानेवाले की मृत्यु हो जायगी तो बीमा करनेवाला बीमापत्र पर लिखित धनराशि अदा करेगा। मृत्यु का कारण केवल दो स्थितियों में ही इस अनुबध को समाप्त कर सकता है। एक, यदि बीमा कराने वाले के ही किसी गैरकानूनी कृत्य द्वारा उसकी मृत्यु हुई हो। दो, यदि बीमा करानेवाले की मृत्यु ऐसे कारणों से हुई हो जिन्हें बीमापत्र मे बाद कर दिया गया है। इस विषय पर अंग्रेजी विधि और भारतीय विधि में कुछ अंतर है। भारत में आत्महत्या का प्रयत्न करना तो अपराध है किंतु आत्महत्या अपराध नहीं है अत: आत्महत्या करने पर ऐसा ही बीमा अनुबंध समाप्त किया जा सकता है जिसके बीमापत्र मे यह शर्त लिखित हो। अंग्रेजी विधि ने आत्महत्या का विषय पहली श्रेणी मे आता है।

जान बीमा मे मिलनेवाली धनराशि बीमा करनेवाले पर कर्ज माना गया है। इसलिये सपत्ति-हस्तातरण-विधि (T. P. A.) की धारा तीन के अतर्गत यह 'संपत्ति' की श्रेणी मे आ जाता है तथा उक्त विधि की धारा १३० के अनुसार इसका हस्तातरण किया जा सकता था। अब जान बीमा की धनराशि के हस्तातरण की व्यवस्था बीमा विधि की धारा ३८ व ३९ मे की गई है। उक्त धनराशि का हस्तातरण अभिहस्ताकन (assignment) द्वारा भी किया सकता है (धारा ३८) और नामाकन (nomination) द्वारा भी (३९)। अभिहस्ताकन मे बीमा करानेवाला उस बीमा अनुबध से उत्पन्न अपने अधिकारो एवं हितो को दूसरे को हस्तातरित कर देता है। नामाकन का अर्थ केवल यह है कि बीमा करानेवाले की मृत्यु पर यदि नामाकित व्यक्ति जीवित हो तो बीमे की धनराशि उसे उपलब्ध हो जाय। नामाकन बिना सूचना के बदला जा सकता है। यदि नामाकित व्यक्ति की मृत्यु पहले हो जाय तो बीमा करानेवाले को ही धनराशि पाने का अधिकार पुन: प्राप्त हो जाता है। अभिहस्तांकन मे ऐसा नही है। यदि एक बार बीमा अनुबंध के अधिकार अभिहस्ताकित कर दिए गए तो उसकी पूर्व अनुमति के बिना दूसरा अभिहस्ताकन नही किया जा सकता। यदि बीमा करानेवाले के पहले अभिहस्तांकित की मृत्यु हो जाय तो वे अधिकार बीमा करानेवाले को वापस नही मिलते वरन् उस मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारियों को उपलब्ध हो जाते हैं।

दुर्घटना बीमा अनुबंध के अंतर्गत दो प्रकार की परिस्थितियाँ आ सकती हैं। एक, दुर्घटनावश दूसरों की क्षतिपूर्ति करने का भार तथा दो, दुर्घटनावश स्वयं अथवा स्वसंपत्ति को होनेवाली हानि। अमरीका मे इसे कैजुएल्टी इंश्योरेंस कहते हैं। अंग्रेजी विधि मे इसे क्षतिपूर्ति बीमा की श्रेणी में रखा जाता है। भारतीय बीमा विधि में ये प्रकार स्वीकार नहीं किए गए हैं वरन् यहाँ का विभाजन जान बीमा तथा सामान्य बीमा मे किया गया है। अतः उपर्युक्त वर्णित दो परिस्थितियों में बादवाली परिस्थिति जान बीमा की श्रेणी में आती है। इस प्रकार की दुर्घटनाओं का बीमा मोटर सवारी विधि (१९३०) तथा विमान वाहन विधि (Air navigation act १९३४) के अंतर्गत अनिवार्य कर दिया गया है ताकि क्षतिग्रस्त के हितों की रक्षा हो सके। [जी० के० अ०]

बीमा विज्ञान (Insurance and Actuarial Science) केवल बीमे का साधारण ज्ञान नहीं है, अपितु यह गणित, रसायन आदि अन्य विज्ञानों की तरह ही एक विशेष प्रकार का विज्ञान है, जिसकी उन्नति विशेष रूप से बीमे के संबंध मे हुई है। इसका समुचित उपयोग जीवन बीमा मे ही होता है, यद्यपि कुछ न कुछ उपयोग अन्य स्थलों में भी हो सकता है।

इस विज्ञान की आधार भित्ति विशेषकर प्रायिकता (Probability) तथा सांख्यिकीय विज्ञान (Statistical science) है। गणित की उन शाखाओं को जिनका उपयोग इस विज्ञान मे होता है, बीमा गणित (Acturial mathematics) कहा जा सकता है। इसी प्रकार सांख्यिकी की उस शाखा को जिसका उपयोग इस विज्ञान में होना है बीमा सांख्यिकी (Actuarial statistics) कह सकते हैं।

भूत और वर्तमान काल के आँकड़ों के आधार पर बीमाविज्ञ हमे बतलाता है कि प्रति सेकंड एक मनुष्य मर जाता है। इस प्रकार हर समय ही कोई न कोई मर रहा होता है। तब भी हम अपने दैनिक कार्यों मे कभी इस विचार को पास फटकने नहीं देते। यदि हम हर समय या अधिकाश समय यही सोचते रहे कि कहीं अगले क्षण हमें काल का ग्रास न बनना पडे, तो जीवन दूभर एवं निराशामय हो जाएगा। ऐसा क्यो है? इसलिये कि हम सभी मे कुछ न कुछ 'बीमाविज्ञ' का अंश विद्यमान है। एक दिन मे शायद २५ हजार मनुष्यों मे से एक के मरने की बारी आती हो, अतः स्वाभाविक है हर एक अपने को २४,९९९ मे समझता है। इस हिसाब से कह सकते हैं कि एक मनुष्य को अगले चौबीस घटों मे मृत्यु की संभावना २५ हजार मे एक, या १/२५००० = ०.०००० ४, बार है और चौबीस घटे जीवित रहने की संभावना ०.९९९९६ बार है। दोनो मिलकर निश्चित ही पूरा एक होना चाहिए, क्योंकि जीवित रहने या न रहने के सिवा तीसरा कोई मार्ग नही है।

उपर्युक्त गणना मे सब मनुष्यो को एकसा मृत्युशील माना गया है, पर वास्तव में ऐसा नही है। किस प्रकार के मनुष्यों को एक जैसा माना जाए, और किस प्रकार के मनुष्यों को इनसे भिन्न और कितना भिन्न माना जाए, ये सब जटिल प्रश्न है और इनको हल करना बीमाविज्ञ का काम है। और तो और, जब कोई व्यक्ति जीवनवृत्ति (life annuity) के लिये आवेदनपत्र देता है, तो उसकी मर्त्यता कम मानी जाती है, और जब वही व्यक्ति जीवन बीमे का प्रस्ताव रखता है तब बहुधा उसकी डाक्टरी परीक्षा की जाती है और फिर भी 'मर्त्यता' कुछ अधिक मानी जाती है।

मान लीजिए सनई एक २० वर्षीय स्वस्थ युवक है। उसके व्यवसाय, वंशपरंपरा, रहन सहन आदि सब का विचार कर बीमा विज्ञ ने यह निश्चित किया कि एक वर्ष मे सनई जैसे एक हजार व्यक्तियों

में से दो के मरने की आशा है, तो हम कहेंगे कि मर्त्यता की वार्षिक दर हजार में दो, अथवा ०·००२, है।

बीमाविज्ञ आँकड़ों के आधार पर एक श्रेणी विशेष या समूह के लिये भविष्यवाणी करते हैं। उन्हे किसी व्यक्तिविशेष मे कोई रुचि नहीं होती। वे मरनेवाले व्यक्तियों के परिवार की सहायता करना चाहते हैं। इसके लिये उन्होंने बीमा योजनाएँ बनाई हैं। वे अर्जक युवकों को कहते हैं, "हमारी किसी जीवन बीमा योजना मे बीमा करा लो। असमय में मरनेवालों का भला होगा, जीनेवालों का भी भला होगा।" जीवन बीमा तथा अन्य प्रकार के बीमों मे यह बड़ा अंतर है कि अन्य बीमों में जिस वस्तु का बीमा होता है उसके नष्ट होने पर, मिलनेवाले बीमाधन से वही वस्तु फिर प्राप्त हो सकती है। उसमें बीमाकृत वस्तु का मूल्य होता है, किंतु जीवन का मूल्य नहीं होता। जीवन का बीमा गारटी के रूप मे नही हो सकता। जीवन लौटाया नही जा सकता। बीमाधन से अर्जक व्यक्ति की मृत्यु से उसके आश्रितों को होनेवाली आर्थिक हानि को दूर या कम किया जा सकता है। यही काम प्रत्येक जीवन बीमा योजना करती है। सनई चाहे बीमा कराने के तीन महीने बाद ही क्यो न मर जाय, उसके आश्रितो को पूरा बीमा धन मिलेगा।

बीमाविज्ञ जानते है कि थोड़े से लोगो का बीमा करने से भविष्यवाणी के अंकों और वास्तविक अंको मे अंतर अधिक हो सकता है, पर बड़े पैमाने पर बीमा करने से भविष्यवाणी अधिक सही उतरती है। इसलिये किसी भी बीमायोग्य व्यक्ति को बिना बीमा कराए छोड़ना नही चाहिए। साथ ही बीमाविज्ञ यह भी जानते हैं कि अस्वस्थ मनुष्य अधिक सुगमता से बीमा कराने को तैयार हो जाते हैं तथा इस प्रकार के ही लोग सुगमता से बड़ी रकमो का बीमा प्रस्ताव करते हैं। अतएव बड़ी धनराशि तथा अधिक उम्रवाले लोगो के बीमा प्रस्तावो के संबंध मे वे विशेष सावधानी रखते हैं तथा उचित डाक्टरी परीक्षा की सलाह भी देते है।

बड़े पैमाने पर बीमे का काम करने से बीमाकृत जनसमूह से बहुत बड़ी धनराशि आती है। भारतीय जीवन बीमा निगम (L. I. C. I) की इस प्रकार लगभग ३५ लाख रुपए प्रति दिन की आय है। इतनी बड़ी धनराशि से अच्छा सूद कमाया जा सकता है। जीवन बीमा निगम के पास लगभग सात अरब रुपयो की धनराशि है, जिससे ब्याज आदि के रूप मे लगभग ३० करोड़ रुपये वार्षिक प्राप्त होते हैं। इतनी बड़ी धनराशि से राष्ट्र की बड़ी सेवा होती है। इस धनराशि का एक बड़ा भाग, सरकारों के पास सूद पर जमा किया जाता है, जिसका पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित करने मे उपयोग होता है। साथ ही उपर्युक्त धनराशि से निजी व्यवसायो को भी पूंजी प्राप्त होती है। बड़े पैमाने पर काम करने मे बड़ी मेहनत और बड़े संगठन की भी आवश्यकता है। इसके प्रबंध मे बड़ा व्यय भी होता है। जीवन बीमा निगम का वार्षिक व्यय ३५ करोड़ रुपए है।

बीमाविज्ञ मर्त्यता, भविष्य मे कमाया जानेवाला ब्याज और होनेवाली आय तथा बीमे के लिये आवश्यक संगठन पर होनेवाले व्यय आदि पर ध्यान रखते हैं। ये सभी पहले से ठीक ठीक निश्चित नही किए जा सकते, फिर भी भूत, वर्तमान और समाज की दशा आदि देखकर यथासंभव सही अनुमान लग जाता है। इन्हीं सब बातों पर विचारकर बीमा किस्त निर्धारित की जाती है।

किसी बीमा संस्था की अतुल धनराशि को ही देखकर उसकी आर्थिक दशा का अनुमान नही किया जा सकता। जो शुल्क बीमाकृत व्यक्तियो से प्राप्त होता रहता है, उसका अधिकाश उन्हे या उनके आश्रितों को कई वर्षों बाद बीमा धन के रूप मे लौटाया जाता है। एक नई बीमा सस्था या तेजी से वृद्धि करनेवाली बीमा सस्था के पास आर्थिक दशा खराब होने पर भी अपार धन राशि होगी, अतः मूल्याकन के रूप मे बीमाविज्ञ का अंकुश सस्था पर न हो तो प्रबधकों को बढती हुई धनराशि को लुटा देने का प्रलोभन हो सकता है। इसलिये बीमाविज्ञ को समय समय पर जीवनांकिक मूल्याकन करना पड़ता है।

बीमाविज्ञ बनने के लिये गणित की योग्यता बहुत अच्छी होनी चाहिए। बीमाविज्ञ को किसी भी प्रश्न पर विचार करते समय, उसे हर पक्ष से देखना होता है। उसे सांख्यिकी का अच्छा ज्ञान तथा व्यावहारिक अर्थशास्त्र का भी कुछ ज्ञान प्राप्त करना होता है। बीमा विज्ञान की शिक्षा एक उत्तम प्रकार की शिक्षा है और मनुष्य को किसी भी स्थल मे योग्यतापूर्वक काम करने मे सहायता देती है।

गणित का एक स्नातक लगभग छह वर्षों मे यह योग्यता प्राप्त कर सकता है। कुछ पहले ही बीमा गणित का अध्ययन प्रारंभ करने से वह और जल्दी भी योग्यता प्राप्त कर सकता है। इस समय भारत मे लगभग १३० पूर्ण बीमाविज्ञ (F. I. A.) हैं। इस समय बीमाविज्ञ ६०० रु० से प्रारभ कर २० वर्षों म १,६०० रु० मासिक वेतन पर पहुचने की आशा कर सकते है। वे प्राय. तेजी से उन्नति कर शीघ्र ही सर्वोच्च पदो पर पहुँच सकते है। [ओं० प्र०]

बीम्स, जॉन (१८३७–१९०२ ई०) — का जन्म २१ जून, १८३७ को हुआ। वे रेवरेंड टॉमस बीम्स के पुत्र थे। उन्होने मर्चंट टेलर्स स्कूल और हेलीबरी (१८५६-५७) मे शिक्षा प्राप्त की। १८५८ मे वे भारत आए और १८५९-६१ मे आई० सी० एस० अफसर के रूप मे पजाब मे कार्य किया।

तत्पश्चात् उनकी नियुक्ति लोअर बगाल मे हुई। वे कमिश्नर और बोर्ड ऑव रेवन्यू के सदस्य रहे।

बीम्स अपने समय के एक प्रसिद्ध प्राच्यविद्याविशारद थे। उनके ग्रंथ अब भी उपयोगी सिद्ध होते हैं। उनकी सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रमुख रचना 'ए कपैरेटिव ग्रामर ऑव दि आर्यन लैंग्वेजेज़' (१८७२-९०) है। इसके अतिरिक्त 'आउटलाइंस ऑव इंडियन फाइलालॉजी' (१८६७) और 'बगाली व्याकरण' (१८९१) उनकी दो अन्य रचनाएँ हैं। १८६९ मे बीम्स ने सर एच० इलियट कृत 'सप्लीमेंटल ग्लौसरी ऑव इंडियन टर्म्स' का संपादन किया। उनके भाषा संबंधी तथा अन्य खोजपूर्ण लेख 'जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बेंगाल', 'इंपीरियल' और एशियाटिक क्वार्टर्ली रिव्यूज़' मे प्रकाशित हुए हैं। मई, १९०२ में उनकी मृत्यु हो गई। [ल० सा० वा०]

बीरबल साहनी (सन् १८९१-१९४९) अंतरराष्ट्रीय ख्याति के भारतीय वनस्पतिविज्ञानविद् थे। इनका जन्म १४ नवबर, १८९१

ई० को शाहपुर जिले के भेड़ा गाँव में हुआ था। इनके पिता रुचिराम साहनी रसायन के प्राध्यापक थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा लाहौर में हुई, जहाँ से स्नातकोत्तर शिक्षा के लिये ये केंब्रिज गए और अन्वेषण कार्य भी वहीं शुरू किया। इनको १९१९ ई० में लंदन विश्वविद्यालय से और १९२९ ई० में केंब्रिज विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० की उपाधि मिली थी। भारत लौट आने पर ये पहले हिंदू विश्व विद्यालय में वनस्पति विज्ञान के प्राध्यापक नियुक्त हुए। १९३९ ई० में ये रॉयल सोसायटी ऑव लंदन के सदस्य (एफ० आर० एस०) चुने गए और कई वर्षों तक सायंस कांग्रेस और नैशनल ऐकेडेमी ऑव सायंसेज के अध्यक्ष रहे। इनके अनुसधान फॉसिल पौधों पर सबसे अधिक हैं। इन्होंने एक फॉसिल 'पेंटोजाइली' की खोज की, जो राजमहल पहाड़ियों में मिला था। इसका दूसरा नमूना अभी तक कहीं नहीं मिला है। हिंदू विश्वविद्यालय से डा० साहनी लाहौर विश्वविद्यालय गए, जहाँ से लखनऊ में आकर इन्होंने २० वर्ष तक अध्यापन और अन्वेषण कार्य किया। ये अनेक विदेशी वैज्ञानिक संस्थाओं के सदस्य थे। लखनऊ में डा० साहनी ने पैलिओबोटैनिक इंस्टिट्यूट की स्थापना की, जिसका उद्घाटन पं० जवाहरलाल ने १९४९ ई० के अप्रैल में किया था। पैलिओबोटैनिक इंस्टिट्यूट के उद्घाटन के बाद शीघ्र ही साहनी महोदय की मृत्यु हो गई। इन्होंने वनस्पति विज्ञान पर पुस्तकें लिखी हैं और इनके अनेक प्रबंध संसार के भिन्न भिन्न वैज्ञानिक जर्नलों में प्रकाशित हुए हैं। डा० साहनी केवल वैज्ञानिक ही नहीं थे, वरन् चित्रकला और संगीत के भी प्रेमी थे। भारतीय सायंस कांग्रेस ने इनके सम्मान में 'बीरबल साहनी पदक' की स्थापना की है, जो भारत के सर्वश्रेष्ठ वनस्पति वैज्ञानिक को दिया जाता है। इनके छात्रों ने अनेक नए पौधों का नाम साहनी के नाम पर रखकर इनके नाम को अमर बनाए रखने का प्रयत्न किया है।

[फू० स० व०]

बीरभूम स्थिति २३° ३३' से २४° ३५' उ० अ० तथा ८७° १०' से ८८° २' पू० दे०। यह भारत के पश्चिमी बंगाल राज्य का एक जिला है। इसका क्षेत्रफल १,७५७ वर्ग मील तथा जनसंख्या १४,४६,१५८ (१९६१) है। इसके पश्चिम में संताल परगना (बिहार), उत्तर में मालदह, पूर्व में मुर्शिदाबाद तथा दक्षिण में वर्धमान जिले स्थित हैं। छोटा नागपुर पठार का पूर्वी किनारा यहाँ तक फैला है। दक्षिण-पूर्व की तरफ जलोढ़ मिट्टी के मैदान तथा पश्चिम की ओर ऊँची ऊँची कटक (रिज) पहाड़ियाँ मिलती हैं। जलप्रवाह दक्षिण-पूर्व की ओर है। मोर, अजय, हिंगला, ब्राह्मणी एवं द्वारिका आदि नदियाँ बहती हैं। कोई भी नदी नाव चलाने योग्य नहीं है। पूर्व की ओर धान की कृषि अधिक होती है। पश्चिमी भाग बीहड़ तथा अनुपजाऊ है। धान के अलावा मक्का, चना, गन्ना आदि भी पैदा किया जाता है। जलवायु शुष्क रहती है। वार्षिक वर्षा का औसत ५७ इंच है। अत. नदियों में बाढ़ अधिक आती है। अजय नदी के किनारे कुछ मात्रा में कोयला तथा पश्चिम की ओर लोहा मिलता है। इसके अलावा चूना पत्थर, अभ्रक, चीनी मिट्टी, बालू पत्थर आदि भी मिलता है। रामपुर, इलाम बाजार, अलुंदा, सूरी आदि में सूती कपड़ा तथा विष्णुपुर, करिधा, तांतिपार आदि में रेशमी कपड़ा बुना जाता है। पूर्व में रेशम उद्योग काफी महत्वपूर्ण है।

बी० सी० जी० बैसिलस कालमेट गेरैं (Bacillns Calmette-Girerin) का संक्षिप्त नाम है। यह एक वैक्सीन है, जो सजीव किंतु विषहीन क्षय जीवाणुओं से तैयार किया जाता है। नीरोग व्यक्तियों को क्षय रोग से बचाने में यह वैक्सीन प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

बी० सी० जी० का जन्म — पैस्टर ने सिद्ध किया था कि जीवाणु जब एक पशु से दूसरे पशु के शरीर में जाते हैं तब उनकी विषमयता बढ़ती है और इसके विपरीत कृत्रिम संवर्धनों में वे क्रमश: विषहीन होते जाते हैं। इसी आधार पर पैस्टर के शिष्य और फ्रांस में लील स्थित पैस्टर इंस्टिट्यूट के निदेशक अलबर्ट कालमेट ने पशु चिकित्सा विशेषज्ञ कामिल गेरैन् के सहयोग से सन् १९०३ में अनुसंधान आरंभ किए। सन् १९०६ में कालमेट ने सिद्ध किया कि शरीर में क्षय प्रतिरोध की क्षमता विषहीन जीवाणुओं की उपस्थिति पर निर्भर रहती है। अतएव अब ऐसा जीवाणु, जो विषहीन हो और साथ ही जिसके पैतृक गुण वैसे ही रहें तैयार करने का काम होने लगा। १९०८ ई० में विषहरण की विधि ज्ञात हुई और अनुसंधान बी. सी. जी. निर्माण की ओर प्रवृत्त हुआ। विष भरे बोवाइन क्षय जीवाणुओं का ग्लिसरीनयुक्त वृषभपित्त में उबाले आलू पर संवर्धन आरंभ किया गया। २३ दिन तक निरंतर संवर्धन करने पर, जीवाणुओं की विषमयता कम होने लगी। अनेक कठिनाइयों और प्रथम महायुद्ध की छाया में, विषम परिस्थितियों के बावजूद, कालमेट और गेरैन् ने संवर्धन का क्रम अटूट रखा, हर तीसरे हफ्ते नया संवर्धन और नई पीढ़ी की विषमयता की जाँच होती रही। याद रहे कि इस प्रयोग में एक बड़ी कठिनाई यह थी कि कहीं क्रम टूटा तो पुन. शुरू से चलना पड़ेगा। अन्ततोगत्वा १३ वर्ष और २३० अनवरत संवर्धनों के बाद, सन् १९२१ में नए जीवाणु का जन्म हुआ, जो क्षय का जीवाणु होते हुए भी विषहीन था तथा रोग उत्पन्न करने में असमर्थ था।

बी० सी० जी० के प्रयोग — पहले पशुओं पर प्रयोग किए गए, जो सफल रहे। तब चैरिटी हॉस्पिटल, पैरिस के बालरोग विशेषज्ञ, डाक्टर वीलहाले, ने साहस किया और एक क्षयग्रस्त माता के नवजात शिशु को जन्म के तीसरे, पाँचवें और सातवें दिन मुख से छह मिलीग्राम बी० सी० जी० खिलाया गया। तीन महीने के बाद भी बच्चे को हानि नहीं हुई, उल्टे वह तपेदिक से भी बचा रहा। फिर तो १९२१ के बाद सैकड़ों बच्चों को सफलतापूर्वक बी० सी० जी० खिलाया गया।

१९३० ई० में ल्युबेक में भीषण दुर्घटना हो गई। यहाँ पर २४२ बच्चों को बी० सी० जी० दिया गया और इनमें से ६८ मर गए। बड़ा बावेला मचा। अंत में न्यायिक जाँच हुई और ल्युबेक के दो डाक्टर, बी सी. जी. के साथ असावधानी के कारण विषभरे क्षय जीवाणु मिला देने के, दोषी पाए गए। अगले २० वर्षों में बी० सी० जी का जितना अध्ययन और प्रयोगात्मक परीक्षण हुआ उतना शायद ही किसी ओषधि का हुआ होगा। अब यह सिद्ध हो चुका है कि यह हानिरहित सफल टीका है और टीका लगवानेवालों में से ८० % को चार पाँच वर्ष तक सुरक्षित रखता है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद इसे पूर्ण मान्यता प्राप्त हुई। अनेक देशों ने यह टीका लगवाना कानूनन अनिवार्य कर दिया है। संसार की ५० से

अधिक प्रयोगशालाओं मे यह टीका बनता है और २० करोड़ से अधिक लोगों को टीका लग चुका है।

भारत में बी० सी० जी० का टीका मद्रास के निकट गिंडी नामक स्थान पर बनता है और समूचे दक्षिण-पूर्व एशिया को भेजा जाता है। हमारे देश मे अब तक १५ करोड़ से अधिक लोगों की परीक्षा हो चुकी है और पाँच करोड़ से अधिक लोगों को टीका लग चुका है।

बी० सी० जी० का टीका लगाने से पूर्व ट्यूबर्क्युलिन परीक्षा करते हैं और यदि परीक्षाफल निगेटिव रहा तो बी० सी० जी० की सुई लगाते हैं। [भा० शं० मे०]

बुंदेलखंड बुंदेला राजपूत शासकों द्वारा शासित भारत का वह भूभाग जिसके उत्तर मे यमुना, पश्चिम और उत्तर मे चंबल नदी, दक्षिण में नर्मदा नदी तथा जबलपुर जिले का कुछ भाग तथा पूर्व में बघेलखंड, मिर्जापुर, विन्ध्याचल पर्वतमाला है। इसमे सागर, दमोह, जबलपुर जिले का कुछ भाग, हमीरपुर, जालौन, झाँसी, बांदा, आदि जिले तथा स्वतंत्र भारत के पहले के देशी राज्य पन्ना, छतरपुर, ओरछा, दतिया, समथर, अजयगढ़, बिजावर, चरखारी, बिहट, सरीला, •आलीपुरा, गरौली आदि शामिल थे। यह क्षेत्र अधिकांश में पहाड़ी तथा अधित्यकामय है। बेतवा, धसान, वीरमा, केन, बागई आदि यहाँ की मुख्य नदियाँ हैं। गेहूँ, चना, मूँग आदि की अच्छी उपज यहाँ होती है और हीरे, लोहे, ताँबे, कोयले आदि की खानें भी यत्रतत्र बिखरी हुई हैं। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग २१,५०० वर्ग मील तथा आबादी १६०१ मे ३७,६४,००० थी। देशी राज्यों वाला अनुभाग अब चरखारी, पन्ना, छतरपुर, दतिया आदि नवस्थापित जिलो अथवा आस पास के अन्य जिलो मे बाँट दिया गया है।

इतिहास — कहते हैं, पहले यहाँ गोंड राजाओं का राज्य था। बाद मे चंदेल वंशीय राजपूतों ने उन्हे परास्त कर अपनी सत्ता स्थापित की। यह भी प्रवाद है कि इसके कुछ भाग (संभवत. उत्तर एवं पश्चिम मे स्थित) पर गहरवार राजपूतों का शासन था। इनके बाद परिहारो और फिर चंदेलो का राज्य हुआ। बुंदेलखंड भूखंड का प्रथम शासक कतिपय अभिलेखो के अनुसार, नानिक या नन्नुक कहा जाता है। वह संभवत. नवीं शती के प्रारंभ मे हुआ। चौथा राजा राहिल (८६०-६१०) था। इसने राज्य की सीमा का विस्तार किया और महोबा मे राहिल्यसागर का निर्माण कराया। प्रारंभ के चंदेल राजाओं मे धंग (६५०-६६) अधिक शक्तिशाली था। उसने लाहौर के जयपाल को गजनी पर आक्रमण करने मे (६७८ ई०) सहायता दी थी। उसके उत्तराधिकारी गंडा (नंदराय ६६६-१०२५ ई०) ने भी गजनवी के विरुद्ध अभियान मे जयपाल को सहायता प्रदान की थी। कीर्तिवर्मा (१०४६–११००) ग्यारहवाँ राजा था, जिसके पुत्र सल्लक्षण चेदिनरेश कर्ण को पराजित किया। उसने महोबा मे कीरतसागर का और अजयगढ़ मे कई भवनों का निर्माण कराया। मदनवर्मा (११३०-६५) १५वाँ शासक था जिसने चंदेलों की राज्यसीमा बढ़ाई, चेदि राज्य पर पुन: सत्ता स्थापित की और गुजरात को भी जीता। इसके बाद परमर्दिदेव या परमाल (११६५-१२०३) राजा हुआ जिसे ११८२ ई० में दिल्ली के शासक पृथ्वीराज के हाथ शिकस्त खानी पड़ी। कालिंजर, खजराहो, महोबा, अजयगढ़ आदि में चंदेलों के प्रसिद्ध गढ़ थे। अभिलेखों में इस भूभाग का नाम जीजाकभुक्ति भी मिलता है, जिसका लघु रूप जिझोति है।

बुंदेला राजपूत — बुंदेला राजा अपने को गहरवार वंशी पंचम के वंशज मानते हैं जिसने देवी के सामने आत्मबलि देने की चेष्टा की थी। शुरू मे उनकी सत्ता संभवत: मऊ के आस पास स्थापित हुई, फिर उन्होंने कालिंजर, कालपी आदि पर भी अधिकार कर लिया। १५०७ ई० के लगभग रुद्रप्रताप शासनारूढ़ हुआ। १५४५ में शेरशाह सूर ने कालिंजर पर आक्रमण किया और वहीं उसका प्राणांत हुआ। अंतिम चंदेल राजा कीरत सिंह इसलाम शाह द्वारा मार डाला गया। १५६६ में मुगल सम्राट् अकबर ने कालिंजर पर अधिकार कर लिया। ओरछा नरेश वीरसिंह देव ने शाहजादा सलीम के कहने से अबुल फजल की हत्या के षड्यंत्र मे भाग लिया जिससे उसे अकबर का कोपभाजन बनना पड़ा। महोबा नरेश चंपत राय ने विद्रोह में वीरसिंह देव का साथ दिया। चंपत राय के पुत्र छत्रसाल ने शाही सेनाओ को कई बार परास्त किया और राज्य की सीमा बहुत बढा ली। १७२३ मे मुहम्मद खाँ बंगश का आक्रमण होने पर छत्रसाल को मराठो से मदद माँगनी पडी। मुहम्मद खाँ की पराजय हुई और जीत के उपलक्ष्य मे छत्रसाल ने झाँसी तथा जालौन का क्षेत्र पेशवा को उपहार मे दे दिया। सन् १७७६ में मराठो से युद्ध होने पर अंग्रेजी सेनाएँ पहली बार बुंदेलखंड मे घुसी पर उन्होने किसी भाग पर अधिकार नही किया। बाद मे युद्ध द्वारा, संधियों द्वारा तथा स्वत्व समाप्ति (लैप्स) की नीति द्वारा अंग्रेजो ने क्रमश: अनेक स्थानो पर अधिकार कर लिया और बचे हुए राज्यो को भी संरक्षण तथा ब्रिटिश प्रभुत्व स्वीकार करने के लिये विवश कर दिया गया। देश के स्वतंत्र होने पर यहाँ की रियासतो का विलयन मध्यप्रदेश या उत्तर प्रदेश मे कर दिया गया।

बुकनैन, जार्ज (१५०६-१५८२) स्कॉट लेखक। शिक्षा डंबार्टन स्कूल तथा पैरिस स्कूल मे हुई। सेंट ऐंड्रूज विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा पैरिस से एम० ए०। विद्यार्थीकाल से लैटिन कविता लिखना आरंभ किया। वे पैरिस आए और वहाँ तीन वर्ष तक लैटिन शिक्षक का कार्य करते रहे। उनके चार दु:खात नाटक 'मिडिया', 'एलसेसटिस', यूनूपीडट से अनुवादित तथा 'जेफ्था' व बैप्टिस्ट मौलिक रचनाएँ हैं जो विद्यार्थियो द्वारा अभिनीत करने के लिये लिखी गईं। प्रसिद्ध निबंधकार मातेन उनका इसी समय का शिष्य था।

पुर्तगाल मे नवस्थापित कालेज के प्राचार्य रूप में आने के तुरंत बाद अपने धार्मिक विचारों के कारण मठ मे बंदी बना लिए गए। यहाँ उन्होने बाइबिल की प्रार्थनाओं का लैटिन मे अनुवाद किया जो १६ वीं शताब्दी तक स्कॉटलैंड में पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता रहा। 'लेनोरा' नामक काव्य भी यहीं लिखा गया। १५६२ में स्कॉटलैंड की रानी मेरी के शिक्षक नियुक्त हुए पर लॉर्ड डार्नले की हत्या के बाद उन्होंने मेरी के विरुद्ध 'डिटेक्शिया' नामक पुस्तक लिखकर यूरोप में उसके अभियोग का प्रचार किया तथा 'कैस्केट लेटर्स' उसी द्वारा लिखे जाने का समर्थन किया। जेम्स छठे के पक्ष में रानी द्वारा गद्दी त्यागने पर पाँच वर्ष तक जेम्स के शिक्षक रहे। १५७६ में संसद के अधिकारी

हुए। 'डीजुरे रेनी एमिड स्कॉट्स' (१५७०) लिखकर उन्होंने जनता को राजा की शक्ति का आधार बताया और रानी मेरी के प्रति किए गए बर्ताव का समर्थन किया। संसद् द्वारा इसका विरोध हुआ और यह पुस्तक ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय द्वारा जलाई भी गई। १५८२ में 'रेरम स्कॉट केरम हिस्ट्रिया' नामक स्कॉटलैंड का इतिहास लिखा।

लैटिन भाषा मे रचना करने के कारण वे विशेष जनप्रिय और अमर न हो सके। इस भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था और वे सच्चे अर्थ मे कवि थे। पाँच खंडों में 'डी स्फेरा' काव्य लिखकर उन्होंने कोपरनिकस के मुकाबले टॉलेमी के ज्योतिष सिद्धातों का समर्थन किया। वे स्वतत्र विचारक, स्पष्टवादी व्यक्ति तथा सफल साहित्यिक थे। सारा यूरोप उन्हे प्रथम श्रेणी का कवि मानता था। १९०६ मे सारे स्कॉटलैंड मे उनकी शताब्दी बड़े धूमधाम से मनाई गई थी।

[गि० ना० श०]

बुक्क १४वी सदी के पूर्वार्ध मे दक्षिण भारत में तुगभद्रा नदी के किनारे विजयनगर राज्य की स्थापना हुई थी जिसके संस्थापक बुक्क तथा उसके ज्येष्ठ भ्राता हरिहर का नाम इतिहास मे विख्यात है। सगम नामक व्यक्ति के पाँच पुत्रों मे इन्ही दोनो की प्रधानता थी। प्रारंभिक जीवन मे वारंगल के शासक प्रतापरुद्र द्वितीय के अधीन पदाधिकारी थे। उत्तर भारत से आक्रमणकारी मुसलमानी सेना ने वारंगल पर चढ़ाई की, अत दोनो भ्राता (हरिहर एवं बुक्क) कांपिलि चले गए। १३२७ ई० में बुक्क बदी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया और इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर दिल्ली सुल्तान का विश्वासपात्र बन गया। दक्षिण लौटने पर भारतीय जीवन का ह्रास देखकर बुक्क ने पुन हिंदू धर्म स्वीकार किया और विजयनगर की स्थापना मे हरिहर का सहयोगी रहा। ज्येष्ठ भ्राता द्वारा उत्तराधिकारी घोषित होने पर १३५७ ई० मे विजयनगर राज्य की बागडोर बुक्क के हाथों मे आई। उसने बीस वर्षो तक अथक परिश्रम से शासन किया। पूर्व शासक से अधिक भूभाग पर उसका प्रभुत्व विस्तृत था।

शांति स्थापित होने पर राजा बुक्क ने आदर्श मार्ग पर शासन व्यवस्थित किया। मंत्रियों की सहायता से हिंदूधर्म मे नवजीवन का सचार किया। इसने कुमार कंपण को भेजकर मदुरा से मुसलमानों को निकाल भगाया जिसका वर्णन कपण की पत्नी गगादेवी ने 'मदुरा विजयम्' मे मार्मिक शब्दों मे किया है। बुक्क स्वयं शैव होकर सभी मतो का समादर करता रहा। इसकी सरक्षता मे विद्वत् मंडली ने सायण के नेतृत्व मे वैदिक सहिता, ब्राह्मण तथा आरण्यक पर टीका लिखकर महान् कार्य किया। अपने शासन काल मे (१३५७-१३७७ ई०) बुक्क प्रथम ने चीन देश को राजदूत भी भेजा जो स्मरणीय घटना थी। अनेक गुणो से युक्त होने के कारण माधवाचार्य ने जैमिनी न्यायमाला में बुक्क की निम्न प्रशसा की है:

जार्गात श्रुतिमत्प्रसंग चरित:
श्री बुक्कण क्ष्मापति:।

[वा० उ०]

बुखनेर लुडविग (१८२४-१८९९) जर्मन दार्शनिक तथा चिकित्सक, जिसने यूनिवर्सिटी के अपने अध्यापनकाल मे प्रसिद्ध पुस्तक 'शक्ति और पदार्थ' की रचना की। वह अपनी अति भौतिकवादी विचारधारा के लिये बदनाम था, जिसके कारण अंततः उसे यूनिवर्सिटी का अध्यापक पद छोडना पड़ा।

[श्री० स०]

बुखारा स्थिति: ३९° ५०' उ० अ० तथा ६४° १०' पू० दे०। यह मध्य तथा दक्षिण-पश्चिमी सोवियत संघ के उजबेक सोवियत सोशलिस्ट गणतंत्र का, समरकंद नगर से १४२ मील पश्चिम, नखलिस्तान मे स्थित प्रसिद्ध व्यापारिक नगर है। बुखारा से कुछ मील दक्षिण-पूर्व मे स्थित कागान एक नया नगर है, जिसे कभी कभी न्यू बुखारा भी कहते हैं। पहले से ही बुखारा मुस्लिम धर्म तथा संस्कृति का प्रसिद्ध केंद्र है। सन् १९२४ मे यह रूस के अधिकार में आया। यह आठ, नौ मील के घेरे में एक ऊँची चारदीवारी से घिरा है जिसमे ११ दरवाजे हैं। मीर अरब की मस्जिद सबसे प्रसिद्ध मस्जिद है। कबल, रेशमी एव ऊनी कपडे तथा तलवार आदि बनाने के उद्योग यहाँ होते हैं। रेगिस्तानी जलवायु होने के कारण यहाँ पर दिन मे तेज धूप तथा रात्रि मे अधिक शीत पड़ती है। निकटवर्ती क्षेत्र मे अखरोट, मेवा, अंगूर, तबाकू तथा विभिन्न प्रकार के फूलों के बगीचे हैं। इसकी जनसंख्या ६०,००० (१९५१) है।

[श्रीकृ० चं० ख०]

बुखारी, सहीह मुहम्मद-अल-बुखारी (पुत्र) इस्माईल (जन्म, जुलाई ८१० ई०) ने बाल्यावस्था में हजरत मुहम्मद की हदीसों (कथन एव जीवनकाल की घटनाओ का सग्रह) का ज्ञान प्राप्त कर, हिजाज, खुरासान एव मिस्र मे घूम घूमकर हदीसे एकत्र की। उनमे से चुनकर ७३९७ हदीसे इसनाद (सूत्रो) सहित संकलित की। यह ग्रंथ सहीह के नाम से विख्यात है। समस्त हदीसें ९७ भागो मे तथा ३४५० अध्यायो मे विभाजित है। कुरान के उपरात सहीह बुखारी ही सुन्नी मुसलमानो का सबसे अधिक प्रामाणिक धर्मग्रंथ हैं। इस ग्रथ पर अनेक टीकाएँ भी लिखी गईं।

सं० ग्रं० — ब्रोकमान: गेश्चिश्ते देर अरबिशेन लितरेत्यूर फान सी० बी० (बर्लिन, १८९८-१९०२), खड एक।

[सै० अ० अ० रि०]

बुडापेस्ट स्थिति: ४७° २९' उ० अ० तथा १९° ५' पू० दे०। हगरी के मध्य-उत्तरी भाग मे डैन्यूब नदी के दोनो किनारों पर स्थित, देश की राजधानी एवं सबसे बडा नगर है। यह चार बस्तियो बुडा, पेस्ट, ओ बुडा एव कोबान्या से मिलकर बना है। पुराना बुडा नदी के पश्चिमी पहाडी किनारे पर बसा है। यहाँ नदीतल से ४०० फुट की ऊँचाई पर एक किला बना है। पूर्वी निचले किनारे पर स्थित पेस्ट पुराना व्यापारकेंद्र है। बुडापेस्ट, माजार संस्कृति का केंद्र है। यहाँ बुडापेस्ट विश्वविद्यालय तथा टेक्निकल विश्वविद्यालय प्रसिद्ध हैं। यह देश के मध्य भाग में स्थित होने के कारण यातायात मार्गों तथा व्यापार का प्रमुख केंद्र बन गया है। अनाज, गाय, बैल,

ऊन और चमड़े का व्यापार होता है। आटा पीसने, कपड़ा बुनने, मशीनरी और रसायनक के उद्योग होते हैं। बुडा एवं पेस्ट को मिलाने के लिये नदी पर कई पुल बने हैं। इसकी जनसंख्या १८,०७,००० (१९६०) है। यहाँ बाग, बगीचे, पार्क, अस्पताल, क्रीडास्थल, सुंदर भवन, एवं गिरजाघर आदि हैं। [दी० ना० ब०]

बुद्ध और बौद्ध धर्म **बौद्ध धर्म की खोज**— पिछली शताब्दी के सांस्कृतिक जागरण का एक परिणाम था बौद्धधर्म के विषय मे आधुनिक जानकारी का विकास। भारतीयों के लिये यह एक विलुप्त गौरव और महिमा का प्रत्यभिज्ञान था, पाश्चात्य देशों के लिये अपूर्व उपलब्धि। दक्षिण, मध्य और पूर्व एशिया के बौद्ध देशों के लिये भी विद्या और साहित्य के इस उद्धार ने नवीन परिष्कार और प्रगति की ओर संकेत किया। टर्नर और फाउसबाल, चाइल्डर्स और ओल्देनबर्ग, राइज डेविड्स और श्रीमती राइज डेविड्स, धर्मानंद कोसंबी और वरुआ, एवं अन्यान्य विद्वानो के यत्न से पालि भाषा का परिशीलन अपने आधुनिक रूप में प्रकाश और विकसित हुआ। बर्नूफ, कर्न, मैक्समूलर और सिलवाँ लेवी, हरप्रसाद शास्त्री और राजेंद्रलाल मित्र आदि के प्रयत्नों से लुप्त प्राय बौद्ध संस्कृत साहित्य का पुनरुद्धार संपन्न हुआ। क्सोमा द कोरोस, शरच्चंद्र दास और विद्याभूषण, पूसे और श्चेरबात्स्की आदि ने तिब्बती भाषा, बौद्ध न्याय, सर्वास्तिवादी अभिधर्म आदि के आधुनिक ज्ञान का विस्तार किया। प्रिंसेप, कनिंघम और मार्शल, स्टाइन, फ्यूशेर और कुमारस्वामी आदि विद्वानो ने बौद्ध पुरातत्व और कलावशेषों की खोज और समय का दिक्प्रदर्शन किया। नाना भाषाओं और पुरातत्व के गहन परिशीलन के द्वारा शताधिक वर्षों के इस आधुनिक प्रयास ने बौद्ध धर्म की जानकारी को एक विशाल और जटिल कलेवर प्रदान किया है एवं इस तथ्य को प्रदर्शित किया है कि बौद्ध धर्म का सार और सार्थकता अपने में कितनी व्यापकता और सूक्ष्मता रखते है।

बुद्ध का जन्म और युग—प्रचलित सिंहली परपरा के अनुसार भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण ई० पू० ५४४ मे मानना चाहिए। इसी मान्यता के अनुसार मई १९५६ मे निर्वाण से २५०० वर्षों की पूर्ति स्वीकार की गई। दूसरी ओर, बुद्ध बिबिसार और अजातशत्रु के समकालीन थे एवं उनके परिनिर्वाण से २१८ वर्ष पश्चात् अशोक का राज्याभिषेक हुआ। ये तथ्य परिनिर्वाण को ई० पू० पाँचवी शताब्दी के प्रथम पाद मे रखते हैं और इस सभावना का 'कैंटनीज डॉटेड रिकार्ड' से समर्थन होता है। इतिहासकार प्राय. इसी मत को स्वीकार करते है।

छठी शताब्दी ई० पू० को विश्वइतिहास का जागरणकाल कहना अयुक्त न होगा। भारतीय इतिहास के परिवेश मे इस समय तक आर्यों के प्रारंभिक सचार और सनिवेश का युग समाप्त हो चुका था एवं विभिन्न 'जनों' के स्थान पर 'जनपद' व्यवस्थित थे। छठी शताब्दी के पूर्वार्ध को 'षोडश महाजनपदों' का युग कहा गया है। राजाधीन और गणाधीन इन जनपदों की पारस्परिक संघर्ष भविष्य की एकता की ओर ले जा रहा था। आर्यो से पूर्ववर्ती विशाल सिंधु सभ्यता लुप्त हो चुकी थी किंतु उसकी अवशिष्ट परंपराओं के आर्य समाज मे क्रमश. आत्मसात्करण की प्रक्रिया अभी जारी थी। वैदिक युग में आर्य एवं आर्येतर सांस्कृतिक परंपराओं का परस्पर समन्वय भारतीय इतिहास की निर्णायक घटनाओं में है। जहाँ इस प्रक्रिया से एक ओर चातुर्वर्ण्य का विकास और आर्यभाषा से परिवर्तन हुआ, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक क्षेत्र मे महत्वपूर्ण नई प्रवृत्तियों का जन्म हुआ।

बुद्ध का युग गहन विचारमंथन का युग था जब कि नाना ब्राह्मण और श्रमण अपने विभिन्न मतों का प्रतिपादन करते थे और बुद्ध की खोज एवं उपदेश का संबंध इन प्रचलित विचारधाराओ से स्थापित करने का यत्न इतिहासकार के लिये स्वाभाविक है। एक मत के अनुसार जो विचारधारा उपनिषदो मे उपलब्ध होती है उसी का एक विकास बौद्धधर्म मे देखना चाहिए। किंतु यह स्मरणीय है कि उस युग मे 'ब्राह्मण' और 'श्रमण' का पार्थक्य निर्विवाद था, यहाँ तक कि पतंजलि ने 'येषा च विरोध: शाश्वतिक. इस पाणिनीय सूत्र की व्याख्या के प्रसग मे 'अहिनकुलम्' के समान 'ब्राह्मण श्रमणम्' का उदाहरण दिया है। अत पूर्वोक्त मत के अनुसार बौद्ध धर्म के मूल को ब्राह्मण विचारधारा के अंतर्गत किंतु श्रमणबाह्य मानना पड़ेगा, जो प्रमाणविरुद्ध है, अथवा श्रमण विचारधारा को ही वैदिक ब्राह्मण विचारधारा के साथ मूल संलग्न मानना पडेगा, जो कि कम से कम जैन धर्म की अवैदिकता के अब निर्विवाद होने के कारण अस्वीकार्य है। एक स्वतत्र क्षत्रिय परपरा की उद्भावना असिद्ध है। यह सत्य है कि उपनिषदो मे, गीता मे, और बौद्ध एव जैन आगमो मे अनेक क्षत्रिय शासक दार्शनिक चर्चा मे भाग ग्रहण करते हैं किंतु उनके मत नाना है एवं उन्हे वैदिक धर्म के अतर्भूत अथवा श्रमण धर्म के अतर्भूत किया जा सकता है। अत ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि महाश्रमण भगवान् बुद्ध को मूलत: श्रमण समुदाय एव परपरा के अंतर्गत मानना चाहिए तथापि यह स्वीकार करने मे कोई दोष नही है कि कुछ दिशाओ मे उनके प्रतिपादन और उपनिषदो मे प्रवृत्तिसाम्य से उनपर वैदिक प्रभाव सूचित होता है।

वैदिक धर्म मूलत प्रवृत्तिमार्गी था, श्रमण सप्रदाय निवृत्तिमार्गी। निवृत्ति का प्राधान्य ससारवाद के अभ्युपगम पर आश्रित था। पक्षातर मे प्राचीन वैदक धर्म मे ससारवाद अविदित था। उपनिषदो मे ज्ञानचर्चा के साथ कुछ स्थलो पर ससारवाद आभासित है। इस कारण यह प्राय प्रतिपादित किया गया है कि उपनिषदों के इन स्थलो से ही निवृत्तिपरक धाराओ का उद्गम मानना चाहिए। अर्थात् सांख्य और योग, जैन और बौद्ध धर्म सभी का मूल उत्स उपनिषदो मे ही कही न कही खोजना चाहिए। इस धारणा के पीछे यह विश्वास है कि बुद्ध से पूर्वतर युग का अथवा प्रतिनिधि चितन उपनिषदों मे सगृहीत है। वस्तुत. इस प्रकार की ऐतिहासिक परिस्थितियों मे अनुपलब्धि से अभाव सिद्ध नही होता अत ऐसे 'आर्ग्युमेंटम् एक्स सिलेन्शियो' को हेत्वाभास ही मानना चाहिए। दूसरी ओर, जैन और बौद्ध सभी अपना वैदिक ऋण मानने के स्थान पर अपना अपना आगम स्वातंत्र्य ही घोषित करते है। पुरातात्विकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि आर्य वैदिक परंपरा के पूर्व और अतिरिक्त एक सभ्यता की परंपरा ई० पू० तृतीय और द्वितीय सहस्राब्दियों मे भारत मे विदित थी अतएव विभिन्न श्रमण परपराओ का अवैदिक अथवा आर्येतरीय मूल अब असंभव नहीं लगता। इस संभाव्यता के कारण

बाघ (देखें पृष्ठ २४७)

पानी पीता बाघ

बाघ के बच्चे

बुडापेस्ट (देखें पृष्ठ ११३)
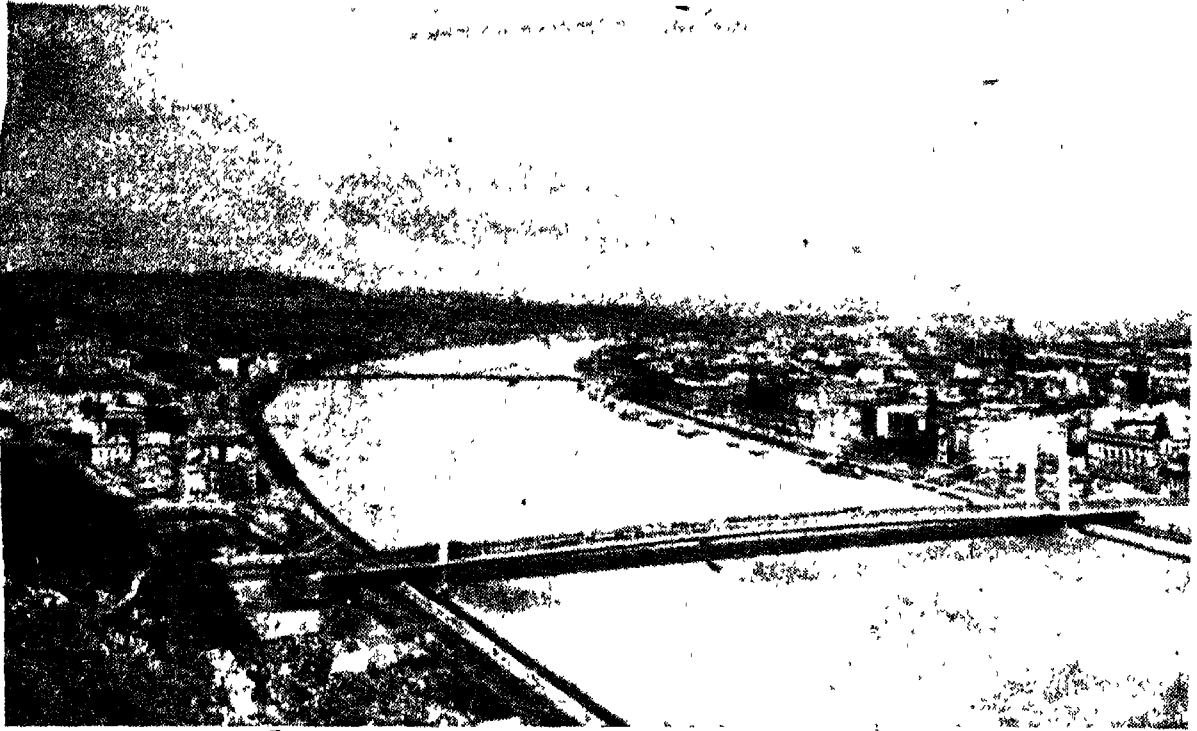
बुडापेस्ट नगर का दृश्य
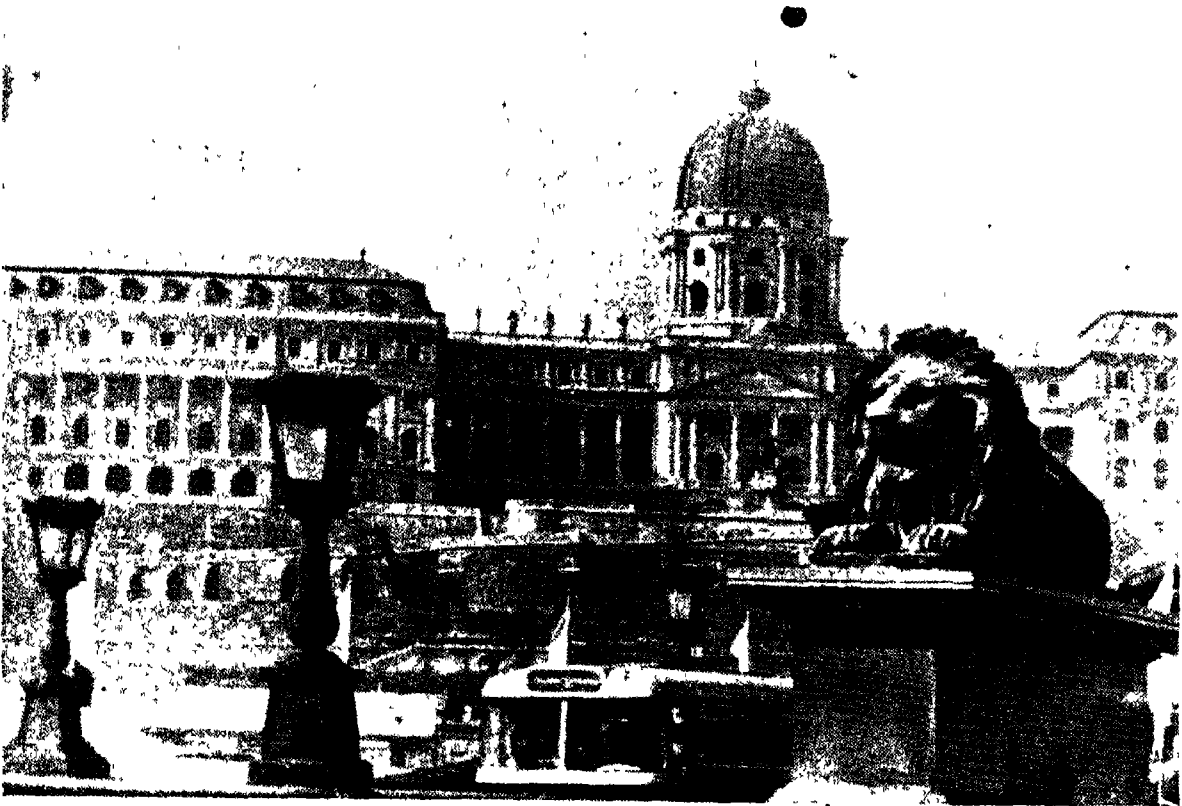
बुडा का राजभवन

इन परंपराओं के मूल की अवैदिकता आपाततः तत्तद् आगमसिद्ध है और इसके प्रमाणतः निराकरण का भार प्रतिवादी पर स्थिर होता है। जहाँ तक उपनिषदों में उपलब्ध 'संसारवाद' अथवा 'साख्य' आदि के मूल का प्रश्न है, यह संभव है कि स्वयं उपनिषदों पर धारांतर का प्रभाव कल्पनीय है। फलतः जहाँ पहले बौद्ध धर्म का वैदिक मूल प्रायः सर्वसंमत था वहाँ अब पुरातात्विक और ऐतिहासिक खोज के परिप्रेक्ष्य मे इस मत को संदिग्ध कहना होगा। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि बौद्ध धर्म पर वैदिक प्रभाव सदिग्ध है। वस्तुतः यद्यपि भगवान् बुद्ध की पर्येषणा श्रमण पृष्ठभूमि मे प्रारब्ध और सबोधि मे पर्यवसित हुई, तथापि उनका तत्वप्रतिपादन अथवा देशना तत्कालीन श्रमण अभ्युपागमों को बुद्धिस्थ करने पर ही समझी जा सकती है।

वैदिक चिंतन मे जगत् के मूल तत्व की खोज तीन मुख्य दिशाओं मे की गई। एक ओर पुरुष को जगत् का कर्त्ता माना गया। दूसरी ओर जल, वायु आदि तत्वों मे से किसी एक को जगत् का मूल उपादान कहा गया। इस दिशा मे पारमार्थिक तत्व की कल्पना सत् अथवा असत् के रूप मे भी की गई। तीसरी दिशा मे जागतिक परिवर्तनो की नियमवत्ता देखकर ऋत और धर्म की उद्भावना की गई। पुरुष के स्वरूप पर विचार करते हुए क्रमश. शरीर, इंद्रियाँ, वाक्, प्राण, मन एव ज्ञान को उसके मौलिक स्वरूप का परिचायक माना गया। अंततः यह निश्चित किया गया कि पुरुष अथवा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, एक सत् ही जगत् का उपादान और ब्रह्म पदवाच्य है, और आत्मा एवं ब्रह्म ज्ञान एव सत् परस्पर अभिन्न हैं। यही औपनिषदिक आत्माद्वैत अथवा ब्रह्माद्वैत का सिद्धात है। कुछ स्थलो पर आत्मा या ब्रह्म को अनिर्वचनीय एवं सत् और असत् के परे भी कहा गया है।

उपनिषदो मे आभासित धर्म का सिद्धात प्रचलित कर्मवाद के साथ अनायास सश्लिष्ट हो गया क्योंकि कर्म-फल-नियम ही मानव जीवन एव सृष्टि का गभीरतम नियामक कहा जा सकता था। इस सिद्धात का विशद और विस्तृत प्रतिपादन उन नाना श्रमण सप्रदायो मे देखा जा सकता था जिनके मतो का उल्लेख प्राचीन बौद्ध और जैन आगमो मे प्राप्त होता है। दीघनिकाय के सुविदित सामंजफल सुत्तत के अनुसार पूर्ण काश्यप, प्रकुध कात्यायन, अजित केशकबली, सजय बेलट्ठिपुत्र, गोशाल एव निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्र बुद्ध के समकालीन प्रसिद्ध श्रमण परिव्राजक गणाचार्य थे। अन्यत्र कालवाद, स्वभाववाद नियतिवाद, अज्ञानवाद, अक्रियावाद, क्रियावाद, शाश्वतवाद उच्छेदवाद आदि दृष्टियो का उल्लेख प्राप्त होता है। अधिकाश विचारक जीव के जन्म से जन्मातर संसरण को दु.खात्मक और कर्म-फल-नियम के द्वारा व्यवस्थित मानते थे किंतु जीव, कर्म और मोक्ष के साधन के विषय मे प्रचुर और जटिल मतभेद था। ब्राह्मण और श्रमण विचारकों द्वारा प्रतिपादित परमार्थ और व्यवहार संबंधी इन धारणाओं और प्रवृत्तियो के परिवेश मे ही भगवान् बुद्ध ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया।

बुद्ध की जीवनी—बुद्ध के जीवन के विषय मे प्रामाणिक सामग्री विरल है। इस प्रसंग मे उपलब्ध अधिकाश वृत्तात एवं कथानक परवर्ती एवं भक्तिप्रधान रचनाएँ हैं। प्राचीनतम सामग्री मे पालि त्रिपिटक के कुछ स्थलों पर उपलब्ध बुद्ध की पर्येषणा, सबोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन एवं महापरिनिर्वाण के अल्प विवरण उल्लेख्य हैं। यह स्मरणीय है कि दीघनिकाय के महापदानसुत्तंत से सिद्ध होता है कि इसी अवस्था में बौद्धगण का आग्रह भगवान् बुद्ध के जीवनचरित के विस्तृत ऐतिहासिक सग्रह मे न होकर उसमे एक 'धर्मता' अथवा सब बुद्धो के लिये एक अनिवार्य और नियत क्रम को प्रदर्शित कर सकने मे था। इस कारण गौतम बुद्ध के जीवनी साहित्य मे ऐतिहासिक स्मृति बुद्धत्व के आदर्श से प्रेरित कल्पनाप्रतानों से वैसे ही आच्छन्न हो गई जैसे चातुर्मास्य मे अरण्यपथ। बुद्ध की जीवनी के आधुनिक विवरण प्राय. पालि की निदानकथा अथवा संस्कृत के महावस्तु, ललितविस्तर एवं अश्वघोष कृत बुद्धचरित पर आधारित होते है। किंतु इन विवरणों की ऐतिहासिकता वहीं तक स्वीकार की जा सकती है जहाँ तक उनके लिये प्राचीनतर समर्थन उपलब्ध हों। यह उल्लेख्य है कि एक नवीन मत के अनुसार मूल विनय मे बुद्ध की जीवनी और विनय के नियम, दोनों एक ही संश्लिष्ट विवरण के अंग थे। यह मत सर्वथा प्रमाणित न होने पर भी सभाव्य है।

ई० पू० ५६३ के लगभग शाक्यो की राजधानी कपिलवस्तु के निकट लुंबिनी वन मे भगवान् बुद्ध का जन्म प्रसिद्ध है। वर्तमान नेपाल राज्य के अंतर्गत यह स्थान भारत की सीमा से आजकल पाँच मील दूर है। यहाँ पर प्राप्त अशोक के रुम्मिनदेई स्तभलेख से ज्ञात होता है 'हिद बुधे जाते ति।' सुत्तनिपात मे शाक्यो को हिमालय के निकट कोशल मे रहनेवाले गौतम गोत्र के क्षत्रिय कहा गया है। कोशलराज के अधीन होते हुए भी शाक्य जनपद स्वयं एक गणराज्य था। कदाचित् इस गण के पारिषद् अथवा प्रमुख राजशब्दोपजीवी होते थे। इस प्रकार के 'राजा' शुद्धोदन बुद्ध के पिता एव मायादेवी उनकी माता प्रसिद्ध है। जन्म के पाँचवे दिन बुद्ध को 'सिद्धार्थ' नाम दिया गया और जन्मसप्ताह मे ही माता के देहात के कारण उनका पालन पोषण उनकी मौसी एवं विमाता महाप्रजापती गौतमी द्वारा हुआ। बुद्ध के शैशव के विषय मे प्राचीन सूचना अत्यंत अल्प है। सिद्धार्थ के बत्तीस महापुरुषलक्षणो को देखकर असित ऋषि ने उनके बुद्धत्व की भविष्यवाणी की, इसके अनेकत्र वर्णन मिलते है। ऐसे ही कहा जाता है कि एक दिन जामुन की छाँह मे उन्हे सहज रूप मे प्रथम ध्यान की उपलब्धि हुई थी। दूसरी ओर ललित-विस्तर आदि ग्रंथो मे उनके शैशव का चमत्कारपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। ललितविस्तर के अनुसार जब सिद्धार्थ को देवायतन ले जाया गया देवप्रतिमाओं ने स्वयं उठकर उन्हे प्रणाम किया, उनके शरीर पर सब स्वर्णाभरण मलिन प्रतीत होते थे, लिपिशिक्षक आचार्य विश्वामित्र को उन्होंने ६४ लिपियों का नाम लेकर और गणक महामात्र अर्जुन को परमाणु-रजः-प्रवेशानुगत गणना के विवरण से विस्मय मे डाल दिया, और नाना शिल्प, अस्त्रविद्या, एवं कलाओ मे सहज-निष्णात सिद्धार्थ का दंडपाणि की पुत्री गोपा के साथ परिणय सपन्न हुआ। पालि आकरों के अनुसार सिद्धार्थ की पत्नी सुप्रबुद्ध की कन्या थी और उसका नाम 'भद्दकच्चाना' भद्रकात्यायनी, यशोधरा, बिंबा, अथवा बिंबासुंदरी था। विनय में उसे केवल राहुलमाता कहा गया है। बुद्धचरित मे यशोधरा नाम दिया गया है। सिद्धार्थ के प्रव्रजित होने की भविष्यवाणी से भयभीत होकर शुद्धोदन ने उनके लिए तीन विशिष्ट प्रासाद बनवाए — ग्रैष्मिक, वार्षिक, एवं हैमंतिक। इन्हें रम्य, सुरम्य और शुभ की संज्ञा भी दी गई है। इन प्रासादो

में सिद्धार्थ को व्याधि और जरा मरण से दूर एक कृत्रिम, नित्य मनोरम लोक में रखा गया जहाँ संगीत, यौवन और सौंदर्य का अक्षत साम्राज्य था। किंतु देवताओं की प्रेरणा से सिद्धार्थ को उद्यानयात्रा मे व्याधि, जरा, मरण और परिव्राजक के दर्शन हुए और उनके चित्त मे प्रव्रज्या का संकल्प विरूढ हुआ। इस प्रकार के विवरण की अत्युक्ति और चमत्कारिता उसके आक्षरिक सत्य पर सदेह उत्पन्न करती है। यह निश्चित है कि सिद्धार्थ के मन मे संवेग संसार के अनिवार्य दुःख पर विचार करने से उत्पन्न हुआ। उनकी ध्यानप्रवणता ने, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, इस दुःख की अनुभूति को एक गभीर सत्य के रूप मे प्रकट किया होगा। निदानकथा के अनुसार इसी समय उन्होंने पुत्रजन्म का सवाद सुना और नवजात को राहुल नाम मिला। उसी अवसर पर प्रासाद की ओर जाते हुए सिद्धार्थ की शोभा से मुग्ध होकर कृशा गौतमी ने उनकी प्रशसा मे एक प्रसिद्ध गाथा कही जिसमें निर्वृत (प्रशांत) शब्द आता है। सिद्धार्थ को इस गाथा में गुरुवाक्य के समान गभीर आध्यात्मिक सकेत उपलब्ध हुआ :

> निब्बुता नून सा माता निब्बुतो नून सो पिता।
> निब्बुता नून सा नारी यस्सायमीदिसो पती ति॥

निशीथ के अंधकार में सोती हुई पत्नी और पुत्र को छोड़कर सिद्धार्थ कंथक पर आरूढ हो नगर से और कुटुबजीवन से निष्क्रांत हुए। उस समय सिद्धार्थ २९ वर्ष के थे।

निदानकथा के अनुसार रात भर मे शाक्य, कोलिय और मल्ल (राम ग्राम) इन तीन राज्यों को पार कर सिद्धार्थ ३० योजन की दूरी पर अनोमा नाम की नदी के तट पर पहुँचे। वहीं उन्होने प्रव्रज्या के उपयुक्त वेश धारण किया और छदक को विदा कर स्वय अपनी अनुत्तर शाति की पर्येषणा की ओर अग्रसर हुए। आर्य पर्येषणा के प्रसग मे सिद्धार्थ अनेक तपस्वियो से विशेषत आलार (आराड़) कालाम एव उद्रक (रुद्रक) से मिले। ललितविस्तर मे अराड कालाम का स्थान वैशाली कहा गया है जबकि अश्वघोष के बुद्धचरित मे उसे विन्ध्य कोष्ठवासी बताया गया है। पालि निकायो से विदित होता है कि कालाम ने बोधिसत्व को 'आकिंचन्यायतन' नाम की 'अरूप समापत्ति' सिखाई। अश्वघोष ने कालाम के सिद्धातों का साख्य से सादृश्य प्रदर्शित किया है। ललित विस्तर मे रुद्रक का आश्रम राजगृह के निकट कहा गया है। रुद्रक के 'नैवसज्ञानासज्ञायतन' के उपदेश से भी बोधिसत्व असतुष्ट रहे। राजगृह मे उनका मगधराज बिंबिसार से साक्षात्कार सुत्त-निपात के पब्बज्जसुत्त, ललितविस्तर और बुद्धचरित मे वर्णित है। गया मे बोधिसत्व ने यह विचार किया कि जैसे गीली अरणियो से अग्नि उत्पन्न नहीं हो सकती, ऐसे ही भोगो मे स्पृहा रहते हुए ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती। अतएव उरुविल्व के निकट सेनापति ग्राम मे नैरंजना के तटवर्ती रमणीय प्रदेश मे उन्होने कठोर तपश्चर्या (प्रधान) का निश्चय किया। किंतु अंततोगत्वा उन्होने तप को व्यर्थ समझकर छोड़ दिया। इसपर उनके साथी कौडिन्य आदि पंचवर्गीय परिव्राजको ने उन्हे तपोभ्रष्ट निश्चित कर त्याग दिया। बोधिसत्व ने अब शैशव मे अनुभूत ध्यानाभ्यास का स्मरण कर ध्यान के द्वारा ज्ञानप्राप्ति का यत्न किया। इस ध्यानकाल मे उन्हे मार सेना का सामना करना पड़ा, यह प्राचीन ग्रंथो में उल्लिखित है। स्पष्ट ही मार धर्षण को काम और मृत्यु पर विजय का प्रतीकात्मक विवरण समझना चाहिए। आर्य पर्येषणा के छठे वर्ष के पूरे होने पर वैशाखी पूर्णिमा को बोधिसत्व ने सबोधि प्राप्त की। रात्रि के प्रथम याम मे उन्होने पूर्वजन्मो की स्मृति रूपी प्रथम विद्या, द्वितीय याम मे दिव्य चक्षु और तृतीय याम मे प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान प्राप्त किया। एक मत से इसके समानातर ही सर्वधर्माभिसमय रूप सर्वाकारक प्रज्ञा अथवा सबोधि का उदय हुआ।

सबोधि के अनतर बुद्ध के प्रथम वचनो के विषय मे विभिन्न परंपराएँ हैं जिनमे बुद्धघोष के द्वारा समर्थित 'अनेक जाति संसार सधाविस्सं पुनप्पुन' आदि गाथाएँ विशेषत उल्लेखनीय हैं। सबोधि की गभीरता के कारण बुद्ध के मन मे उसके उपदेश के प्रति उदासीनता स्वाभाविक थी। ससारी जीव उस गभीर सत्य को कैसे समझ पाएँगे जो अत्यत सूक्ष्म और अतर्क्य है? बुद्ध की इस अनभिरुचि पर ब्रह्मा ने उनसे धर्मचक्र-प्रवर्तन का अनुरोध किया जिसपर दुःखमग्न ससारियो को देखते हुए बुद्ध ने उन्हे विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे पाया।

बुद्ध के लिये किसी वास्तविक सशय अथवा अभिरुचि के उदय का प्रश्न नही था। किंतु यह धर्मता के अनुरूप ही था कि देशना के पूर्व संसारियो के प्रतिनिधि के रूप मे महाब्रह्मा बुद्ध से देशना के लिये याचना करें। इस प्रकार ब्रह्मयाचन के प्रसग से प्रज्ञानुवर्तिता एव उपदेश की विनेयापेक्षता सूचित होती है।

सारनाथ के ऋषिपत्तन मृगदाव मे भगवान् बुद्ध ने पचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देकर धर्मचक्रप्रवर्तन किया। इस प्रथम उपदेश मे दो अतों का परिवर्जन और मध्यमा प्रतिपदा की आश्रयणीयता बताई गई है। इन पचवर्गीयो के अनतर श्रेष्ठिपुत्र यश और उसके सबधी एव मित्र सद्धर्म मे दीक्षित हुए। इस प्रकार बुद्ध के अतिरिक्त ६० और अर्हत् उस समय थे जिन्हे बुद्ध ने नाना दिशाओ मे प्रचारार्थ भेजा और वे स्वय उरुवेला के सेनानिगम की ओर प्रस्थित हुए। मार्ग मे ३० भद्र-वर्गीय कुमारो को उपदेश देते हुए उरुवेला मे उन्होंने तीन जटिल काश्यपो को उनके एक सहस्र अनुयायियो के साथ चमत्कार और उपदेश के द्वारा धर्म मे दीक्षित किया। इसके पश्चात् राजगृह जाकर उन्होने मगधराज बिंबिसार को धर्म का उपदेश दिया। बिंबिसार ने वेणुवन नामक उद्यान भिक्षुसघ को उपहार में दिया। राजगृह मे ही सजय नाम के परिव्राजक के दो शिष्य कोलित और उपतिष्य सद्धर्म मे दीक्षित होकर मौद्गल्यायन और सारिपुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। विनय के महावग्ग में दिया हुआ सबोधि के बाद की घटनाओ का क्रमबद्ध विवरण यहाँ पूरा हो जाता है।

उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध ने प्रति वर्ष जहाँ वर्षावास व्यतीत किया उन स्थानो की सूची बौद्ध परपरा मे रक्षित है और इस प्रकार है—पहला वर्षावास वाराणसी मे, दूसरा-चौथा राजगृह मे, पाँचवाँ वैशाली मे, छठा मकुल गिरि मे, सातवाँ तावतिंस (त्रयस्त्रिंश) लोक मे, आठवाँ सुसुमार गिरि के निकट भर्ग प्रदेश में, नवाँ कौशाबी मे, दसवा पारिलेय्यक वन मे, ग्यारहवाँ नालाग्राम मे, बारहवाँ वेरंज मे, तेरहवाँ

चालियगिरि में, चौदहवाँ श्रावस्ती मे, पद्रहवाँ कपिलवस्तु मे, सोलहवाँ आलवी में, सत्रहवाँ राजगृह में, अठारहवाँ चालियगिरि में, उन्नीसवाँ राजगृह में, इसके अनंतर श्रावस्ती में। इस प्रकार अस्सी वर्ष की आयु तक बुद्ध धर्म का प्रचार करते हुए उत्तर प्रदेश और बिहार के जनपदो मे घूमते रहे। श्रावस्ती मे उनका सर्वाधिक निवास हुआ और उसके बाद राजगृह, वैशाली और कपिलवस्तु मे।

कोशल मे राजा प्रसेनजित् और रानी मल्लिका बुद्ध मे श्रद्धालु थे। श्रेष्ठियों मे कोटिपति अनाथपिंडक और विशाखा उपासक बने और उन्होने श्रावस्ती मे सघ को क्रमश. जेतवन विहार और पूर्वाराम मृगारमातृ प्रासाद का दान किया। अग्निक भारद्वाज, पुष्कर सादी आदि कोसल के अनेक ब्राह्मणो ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार किया। शाक्यगण पहले बुद्ध के अनुकूल नही थे किंतु फिर चमत्कार देखकर उनकी रुचि परिवर्तित हुई। यद्यपि बुद्ध स्वय वैशाली के गणराज्य के विशेष प्रशंसक थे, तथापि वहाँ निर्ग्रंथों के अधिक प्रभाव के कारण सद्धर्म का प्रचार सकुचित रहा। मगध मे बिंबिसार की अनुकूलता कदाचित् सद्धर्म के प्रसार मे विशेष सहायक थी क्योंकि यह विदित होता है कि यहाँ के अनेक श्रेष्ठी और गृहपति बौद्ध उपासक बने। यह उल्लेख्य है कि महाप्रजापती गौतमी और आनंद के आग्रह से भगवान् बुद्ध ने स्त्रियो को भी संघ मे स्थान दिया।

प्रसिद्ध महापरिनिर्वाण सूत्र मे परवर्ती परिवर्तनों के बावजूद बुद्ध की अंतिम पदयात्रा का मार्मिक विवरण प्राप्त होता है। बुद्ध उस समय राजगृह मे थे जब मगधराज अजातशत्रु वृजि जनपद पर आक्रमण करना चाहता था। राजगृह से बुद्ध पाटलि ग्राम होते हुए गंगा पार कर वैशाली पहुँचे जहाँ प्रसिद्ध गणिका आम्रपाली ने उनको भिक्षुसघ के साथ भोजन कराया। इस समय परिनिर्वाण के तीन मास शेष थे। वेलुवग्राम मे भगवान् ने वर्षावास व्यतीत किया। यहाँ वे अत्यंत रुग्ण हुए और आनद को यह शंका हुई कि सघ से कहे बिना ही कहीं उनका परिनिर्वाण न हो जाए। इसपर बुद्ध ने कहा 'भिक्षुसंघ मुझसे क्या चाहता है? मैंने धर्म का निश्शेष उपदेश कर दिया है···मेरी यह इच्छा नहीं है कि मै सघ का नेतृत्व करता रहूँ···अब मै अस्सी वर्ष का वृद्ध हूँ···तुम्हें चाहिए कि 'अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा अनंजसरणा धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्जसरणा'। वैशाली से भगवान् भंडग्राम और भोगनगर होते हुए पावा पहुँचे। वहाँ चुद कम्मारपुत्त के आतिथ्य ग्रहण मे 'सूकर मद्दव' खाने से उन्हे यंत्रणामय रक्तातिसार उत्पन्न हुआ। रुग्णावस्था मे ही उन्होने कुशीनगर की ओर प्रस्थान किया और हिरण्यवती नदी पार कर वे शालवन मे दो शालवृक्षो के बीच लेट गए। सुभद्र परिव्राजक को उन्होने उपदेश दिया और भिक्षुओ से कहा कि उनके अनतर धर्म ही संघ का शास्ता रहेगा। छोटे मोटे शिक्षापदों में परिवर्तन करने की अनुमति भी इन्होने सघ को दी और छन्न भिक्षु पर ब्रह्मदंड का विधान किया। पालि परंपरा के अनुसार भगवान् के अंतिम शब्द थे 'वयधम्मा संखारा अप्पमादेन सपादेथाति।'

परंपरा के अनुसार बुद्ध प्रातः शरीर परिकर्म के अनंतर भिक्षाचर्या के समय तक एकात आसन मे बैठते थे। भिक्षाचर्या कभी अकेले, कभी भिक्षुसंघ के साथ करते थे। श्रद्धालुओं के निमत्रण पर उनके यहाँ भोजन करते एवं उपदेश देते थे। लौटने पर भिक्षुओं को उपदेश देते और फिर मुहूर्त भर विश्राम कर दर्शनार्थियों को उपदेश करते। सायं स्नान ध्यान के अनतर भिक्षुओं की समस्याएँ हल करते, रात्रि के मध्यम याम मे देवताओं के प्रश्नो के उत्तर देते, और रात्रि के अंतिम याम मे कुछ चंक्रमण और कुछ विश्राम कर बुद्ध चक्षु से लोकावलोकन करते थे।

भगवान् बुद्ध को प्राचीन सदर्भों मे ध्यानशील तथा मौन और एकात के प्रेमी कहा गया है। उनकी दया और बुद्धिस्वातत्र्य विश्व-विदित हैं। वे अधश्रद्धा के कट्टर विरोधी थे और प्रत्यात्मवेदनीय सत्य का उपदेश करते थे। उनकी देशना में जातिवाद और कर्मकांड का स्थान नहीं था। विद्या और आचरण से सपन्न पुरुष को ही वे सच्चा ब्राह्मण मानते थे, आभ्यंतरिक ज्योति को ही वास्तविक अग्नि और परसेवा को ही पारमार्थिक अर्चन। इसी कारण उनकी देशना समाज के सभी वर्गों के लिये ग्राह्य थी और बौद्धिकता, नैतिकता एवं आध्यात्मिकता की प्रगति मे एक विशिष्ट नया चरण थी।

बुद्ध देशना — भगवान् बुद्ध की मूल देशना क्या थी, इसपर प्रचुर विवाद है। स्वय बौद्धो मे कालातर मे नाना सप्रदायो का जन्म और विकास हुआ और वे सभी अपने को बुद्ध से अनुप्राणित मानते हैं। बुद्धवचन भी विभिन्न सप्रदायो मे समान रूप से संरक्षित नहीं है। और फिर जितना उनके नाम से संरक्षित है, विभिन्न भाषाओ और सप्रदायो मे, हीनयान और महायान मे, उन सब को बुद्धप्रोक्त कोई भी इतिहासकार नहीं मान सकता। स्पष्ट ही बुद्धवचन के संग्रह और सरक्षण मे नाना परिवर्तन और परिवर्धन अवश्य स्वीकार करने होंगे और उसके निष्पन्न रूप को एक दीर्घकालीन विकास का परिणाम मानने के अतिरिक्त ऐतिहासिक आलोचना के समक्ष और युक्तियुक्त विकल्प नहीं है। महायानियों ने इस समस्या के हल के लिये एक ओर दो या तीन धर्मचक्रप्रवर्तनो की कल्पना की और दूसरी ओर 'विनयभेदान् देशनाभेद' इस सिद्धात की कल्पना की। अर्थात् भगवान् बुद्ध ने स्वयं उपायकौशल्य से नाना प्रकार की धर्म देशना की। अधिकाश आधुनिक विद्वान् पालि त्रिपिटक के अंतर्गत विनय और सुत्त पिटको मे सगृहीत सिद्धातों को मूल बुद्धदेशना मान लेते है। कुछ विद्वान् सर्वास्तिवाद अथवा महायान के साराश को मूल देशना स्वीकार करना चाहते हैं। अन्य विद्वान् मूल ग्रथों के ऐतिहासिक विश्लेषण से प्रारभिक और उत्तर-कालीन सिद्धातो मे अधिकाधिक विवेक करना चाहते है, जिसके विपरीत कुछ अन्य विद्वान् इस प्रकार के विवेक के प्रयास को प्रायः असभव समझते हैं। मतभेद होने पर भी नाना साप्रदायिक और ऐतिहासिक परिवर्तनो के पीछे मूल देशना की खोज नितात आवश्यक है क्योंकि इस मूल संलग्नता पर ही आध्यात्मिक प्रामाणिकता निर्भर है।

भगवान् बुद्ध ने प्रचलित मागधी भाषा मे उपदेश दिए और सबको इसकी अनुमति दी कि वे उपदेशो को अपनी अपनी बोली (निरुत्ति) मे याद रखें। ऐसी स्थिति मे बौद्ध धर्म के प्रादेशिक प्रसार के साथ यह अनिवार्य था कि बुद्धवचन के क्रमश अनेक संग्रह प्रस्तुत हो जाएँ। इनमे केवल पालि का सग्रह ही अब पूर्ण है। अन्य संग्रहो के कुछ अंश मूल रूप मे एवं कुछ अनुवादो मे ही मिलते हैं। इस प्रकार पालि त्रिपिटिक का महत्व निर्विवाद है। इसकी

प्राचीनता भी असंदिग्ध है क्योंकि ई० पू० प्रथम शताब्दी मे इसको सुदूर सिंहल में लिपिबद्ध कर दिया गया था। तथापि यह स्वीकार करना कठिन है कि पालि मागधी है, साथ ही अभिधर्म पिटक की बुद्धोत्तरकालीनता आधुनिक विद्वानों में प्राय: निर्विवाद है। श्रीमती राइज डेविड्स तथा फ्राउवाल्नर आदि की खोजों से प्रतीत होता है कि विनय एवं सुत्त पिटकों में प्राचीन और अर्वाचीन अंशो का भद सर्वदा उपेक्षणीय है। उदाहरण के लिये विनय मे प्रातिमोक्ष प्राचीन है, संगीति विवरण अपेक्षाकृत अर्वाचीन, सुत्तपिटक में सुत्तनिपात के अट्ठक और पारायण वग्ग प्राचीन हैं, दीघ का महापदान सुत्त अपेक्षाकृत अर्वाचीन। यह कल्पना करना अयुक्त न होगा कि भगवान् बुद्ध ने गंभीर आध्यात्मिक सत्य की ओर सरल, व्यावहारिक और मार्मिक रीति से परिस्थिति के अनुकूल संकेत किया और इन सांकेतिक उक्तियों के संग्रह, व्याख्या, परिभाषा, वर्गीकरण आदि के द्वारा नाना सांप्रदायिक सिद्धांतों का विकास हुआ।

बुद्ध के युग में अनेक श्रमण परिव्राजक संसार को एक दु.खमय चक्र मानते थे। इस दृष्टि से बुद्ध सहमत थे और अनित्य ससार के द्वंद्वात्मक दु.ख से मुक्त होकर आत्यंतिक शाति को उन्होने स्वय अपनी पर्येषणा का लक्ष्य बनाया। ध्यान के द्वारा उन्होंने धर्मरूप परम सत्य का साक्षात्कार अथवा सबोधि की प्राप्ति की। यह पारमार्थिक धर्म तर्क का अगोचर था और उसके दो रूप निर्दिष्ट है—प्रतीत्यसमुत्पाद और निर्वाण। प्रतीत्यसमुत्पाद मे दु.ख प्रपंच की परतंत्रता सकेतित है और निर्वाण मे परम शाति। अनित्य और परतंत्र नाम रूप (चित्त और शरीर) को आत्मस्वरूप समझना ही मूल अविद्या है और उसी से तृष्णा एव कर्म द्वारा संसार-चक्र अनवरत गतिशील रहता है। इसके विपरीत शील अथवा सत्कर्म, वैराग्य, एवं प्रज्ञा ससार की हेतुपरपरा के निराकरण द्वारा निर्वाण की ओर ले जाते हैं। प्रज्ञा साक्षात्कारात्मक होती है। चार आर्य सत्यो मे मूलत यही सदेश प्रतिपादित है।

एक ओर भगवान् बुद्ध ने कर्मतत्व को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा चित्तप्रसूत बताकर यह प्रदर्शित कर दिया कि संसारवृक्ष का बीज मन ही है—'मनोपुब्बगमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया' और दूसरी ओर मन की अनित्यता और परतंत्रता के द्वारा उसकी अनात्मता और हेयता का उन्होंने स्पष्ट प्रतिपादन कर दिया। ससार चित्त मे प्रतिष्ठित है और चित्त दु:ख, अनित्य एव अनात्म के लक्षणो से परिगृहीत। मूलत. चित्त मे नैरात्म्य बोध के द्वारा चित्तोपशम ही निर्वाण है।

प्रथम आर्य सत्य की मीमासा करते हुए बौद्धों ने त्रिविधदु:खता का प्रतिपादन किया है—दु:ख दु.खता जो संवेदनात्मक स्थूल दु:ख है, परिणाम दु.खता जो कि सुख के अन्यथाभाव से व्यक्त होती है, एवं संस्कारदु.खता जो संस्कारों की संचलनात्मकता है। इस सस्कार-दु.खता के कारण ही 'सर्वं दु:खम्' इस लक्षण का कही भी व्यभिचार नहीं होता। दु.ख के सूक्ष्म एवं विराट् रूप का सम्यग्बोध आध्यात्मिक संवेदनशीलता के विकसित होने पर ही संभव होता है। बौद्धो के अनुसार दु:ख सत्य का साक्षात्कार होने पर पृथग्जन की स्थिति छूटकर आर्यत्व का उन्मेष होता है।

द्वितीय आर्य सत्य प्रतीत्यसमुत्पाद ही है। प्रतीत्यसमुत्पाद की अनेक प्राचीन और नवीन व्याख्याएँ हैं। कुछ व्याख्याकारों ने प्रतीत्य-समुत्पाद का मर्म कार्य-कारण-भाव का बोध एवं उसका आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रयोग बताया है। अविद्या-संस्कार-विज्ञान-नाम-रूप-षडायतन-स्पर्श-वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरा, मरण इन द्वादश निदानों अथवा कारणों की परंपरा प्रतीत्यसमुत्पाद है। एक अन्य व्याख्या के अनुसार प्रतीत्यसमुत्पाद शाश्वत और उच्छेद सदृश परस्पर विरुद्ध अंतो का वर्जन करनेवाली मध्यम प्रतिपद् है। इस मध्यम प्रतिपद् का अर्थ एक ओर जगत् की प्रवाहरूपता किया गया है और दूसरी ओर सभी वस्तुओं की अन्योन्यापेक्षता अथवा स्वभावशून्यता बताया गया है। स्पष्ट ही इन और अन्य अनेक व्याख्याओ मे एक मूल अविश्लिष्ट भाव का विविध विकास देखा जाता है।

तृतीय आर्य सत्य दु:खनिरोध है। यहाँ पर यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या निर्वाण एक अभावमात्र है ? कुछ सौत्रातिको को छोड़कर अन्य बौद्ध सप्रदायों मे निर्वाण को भाव रूप नही स्वीकार किया गया है। स्थविरवादी निर्वाण को भावरूप मानते हैं, वैभाषिक धर्म-स्वभाव रूप, योगाचार तथता स्वरूप, और माध्यमिक चतुष्कोटि विनिर्मुक्त शून्य स्वरूप। इतना निस्सदेह है कि निर्वाण मे दु:ख, क्लेश कर्म और अविद्या का अभाव है। निर्वाण परम शात और परम अर्थ है, असस्कृत, निर्विकार और अनिर्वचनीय है। आध्यात्मिक साधना मे जैसे जैसे चित्त शुद्ध, प्रभास्वर और शात होता जाता है वैसे वैसे ही वह निर्वाण के अभिमुख होता है। इस साधनानिरत चित्तसतति की अंतिम अवस्था अथवा लक्ष्यप्राप्ति का पूर्वावस्थाओं अथवा संतति सबध स्थापित कर सकना सभव प्रतीत नही होता। इस कठिनाई को दूर करने के लिये अनेक उपायो का आविष्कार किया गया था, तथा वैभाषिको के द्वारा 'प्राप्ति' और 'अप्राप्ति' नाम के विशिष्ट धर्मों की कल्पना। वस्तुत: अंतिम अवस्था मे अनिर्वचनीयता के आश्रय के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

प्राय: निर्वाण की भावाभावता का प्रश्न साभिप्राय होता है। पुद्गलवादियों के अतिरिक्त अन्य बौद्ध सप्रदायो मे आत्मा अथवा जीव की सत्ता का सर्वथा तिरस्कार बुद्ध का अभीष्ट माना गया है। प्राय इस प्रकार का आत्मातत्व तथा नैरात्म्यवाद बौद्ध दृष्टि की विशेषता बनाई जाती है। बौद्ध दर्शन में आत्मा के स्थान पर पाच स्कंधो का अनित्य सघात स्वीकार किया जाता है। पांच स्कध है—रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा एवं सस्कार। स्कध सतति का पूर्वापद संबध प्रतीत्य समुत्पाद अथवा हेतु प्रत्यय के अधीन है। अनुभव के घटक इन अनेक और अनित्य तत्वो मे कोई भी ऐसा स्थिर और समान तत्व नही है जिसे आत्मा माना जा सके। ऐसी स्थिति मे कर्ता और भोक्ता के बिना ही कर्म और भोग की सत्ता माननी होगी। अथवा यह कहना चाहिए कि कर्म और भोग मे ही कर्तृत्व और भोक्तृत्व को प्रतिभासित या अध्यास्त मानना होगा। स्मृति एवं प्रत्यभिज्ञान को समझाने के लिये इस दर्शन मे केवल सस्कार अथवा वासना को पर्याप्त समझा गया। इस प्रकार के नैरात्म्य के स्वीकार करने पर निर्वाण अनुभव के अभाव के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ? सांख्य, योग और वेदात मे चित्तनिरोध होने पर आत्मा स्वरूप प्रतिष्ठित होती है, अर्थात् अज्ञान की निवृत्ति होने पर आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। जैन दर्शन मे कर्मनिवृत्ति होने पर जीव को अपने पारमार्थिक स्वरूप और शक्ति की उपलब्धि होती है। प्रश्न यह है कि अनात्मवादी बौद्ध

दर्शन में अज्ञान अथवा चित्त की निवृत्ति पर क्या शेष रहता है ? निर्वाण प्राप्त किसे होता है ? इसका एक उत्तर यह है कि सर्वं दुःखम् को मान लेने पर निश्शेषता को ही श्रेयसी मानना चाहिए, यद्यपि इससे असंतुष्ट होकर वात्सीपुत्रीय योगाचार संप्रदायों में 'पुद्गल' अथवा 'आलय विज्ञान' के नाम से एक आत्मवत् तत्व की कल्पना की गई। नागार्जुन का कहना है 'आत्मेत्यपि देशितंप्रज्ञपितमनात्मेत्यपि। बुद्धैरात्मा न चानात्मा कश्चिदित्यपि देशितम्।' यहाँ इस तथ्य की ओर संकेत है कि प्राचीन बौद्ध आगम में आत्मविषयक उक्तियाँ सब एकरस नहीं हैं। इस उक्तिभेद पर सूक्ष्मता से विचार कर कुछ आधुनिक विद्वानों ने यह मत प्रतिपादित किया है कि स्वयं बुद्ध ने स्वयं अनात्म तत्वों का अनात्मत्व बनाया था न कि आत्मा का अनस्तित्व। उन्होंने यह कहीं नहीं कहा कि आत्मा है ही नहीं। उन्होंने केवल यह कहा कि रूप, विज्ञान, आदि स्कंध आत्मा नहीं है। अर्थात् बुद्ध का आत्मप्रतिषेध वास्तव मे अहंकारप्रतिषेध के तुल्य है। आत्मा का स्कधों मे अभिप्रेत अभाव अन्योन्याभाव है न कि आत्मा का सर्वत्र अत्यंताभाव। इसी कारण बुद्ध ने संयुत्तनिकाय मे स्पष्ट पूछे जाने पर भी आत्मा का प्रतिषेध नहीं किया, और न तथागत का मृत्यु के अनतर अभाव बताया। यह स्मरणीय है कि आत्मा के अनंत और अपरिच्छिन्न होने के कारण उन्होंने उसके अस्तित्व का भी स्थापन नहीं किया क्योंकि साधारण अनुभव मे 'अस्ति' और नास्ति' पद परिच्छिन्न गोचर में ही सार्थक होते हैं। इस दृष्टि से आत्मा और निर्वाण पर बुद्ध के गंभीर अभिप्राय को शाश्वत और उच्छेद से परे एक अतर्क्य माध्यमिक प्रतिपद् मानना चाहिए। यही उनके आर्य मौन से पूरी तरह समजस हो सकता है।

चतुर्थ आर्यसत्य या निरोधगामिनी प्रतिपद् प्राय आर्य अष्टांगिक मार्ग से अभिन्न प्रतिपादित है। अष्टागिक मार्ग के अंग हैं—सम्यक् दृष्टि, ०सकल्प, ०वाक्, ०कर्मात, ०आजीव, ०यायाम, ०स्मृति और ०समाधि। वस्तुत यह अष्टक बोधपाक्षिक धर्मों का सग्रह विशेष है। प्राय ३७ बोधिपाक्षिक धर्म उल्लिखित है। प्रकारातर से शील, समाधि और प्रज्ञा, इन तीन मे आध्यात्मिक साधन सगृहीत हो जाता है। बुद्धघोष ने 'विसुद्धिमग्गो' मे इसी क्रम का आश्रय लिया है। यह स्मरणीय है कि जिस क्रम से दुःख उत्पन्न होता है उसके विपरीत क्रम से वह आपातत निरुद्ध होता है। दुःख की कारणपरंपरा है अविद्या–क्लेश-कर्म जिसमे उत्तरोत्तर स्थूल है। दुःख निवृत्ति की परपरा मे पहले शील के द्वारा कर्म का विशोधन होता है, फिर समाधि अथवा भावना के द्वारा क्लेशप्रहाण, और फिर प्रज्ञा अथवा साक्षात्कार के द्वारा अविद्या का अपाकरण। यह अवधेय है कि शीलाभ्यास के पूर्व ही सम्यग्दृष्टि आवश्यक है। सम्यग्दृष्टि स्वय परोक्षज्ञानरूपा है किंतु साधन की दिग्दर्शिका है। शील और समाधि दोनों ही सयम के रूप हैं—स्थूल और सूक्ष्म, पहले से कर्म का परिष्कार होता है, दूसरे से क्लेशों का तनूकरण। शील मे सफलता समाधि को सरल बनाती है, समाधि मे सफलता शील को पूर्णता प्रदान करती है। समाधि मे पूर्णता होने पर सम्यग्दृष्टि का स्थान प्रज्ञा ले लेती है।

पटिसंभिदामग्ग के अनुसार शील चेतना है, शील चैतसिक है, शील संवर है, शील अव्यतिक्रम है। उपासकों के लिये पाच-शील उपदिष्ट हैं, अनुपसंपन्न श्रामणेरों के लिये दशशील विहित है, उपसंपन्न भिक्षु के लिये प्रातिमोक्ष संवर आदि प्रज्ञप्त हैं। पंचशील में अहिंसा, अस्तेय, सत्य, अव्यभिचार और मद्यानुपसेवन संगृहीत है। यह स्मरणीय है कि पंचशील पंच विरतियों के रूप में अभिहित है, यथा प्राणातिपात से विरति, अदत्तादान से विरति इत्यादि। सिगालोवाद सुत्तंत आदि मे उपासक धर्म का और अधिक विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है।

प्रव्रज्या प्राप्त करने पर भिक्षु श्रामणेर कहलाता था और उसे एक उपाध्याय एव आचार्य के निश्रय मे रहना पडता था। उसके लिये शील मे १० विरतियाँ या वर्जनाएँ सगृहीत हैं—प्राणघात से, चोरी से, अब्रह्मचर्य से, झूठ से, शराब और नशीली वस्तुओं से, विकाल-भोजन से, नाच, गाना बजाना, और तमाशा देखने से, माला, गध, विलेपन और अलकरण से, ऊँची शय्या और बहुमूल्य शय्या से, और सोना चाँदी ग्रहण करने से। पिंडपात, चीवर, शयनासन, ग्लान प्रत्यय भेषज्य भिक्षु के चार निश्रय कहलाते हैं। इनमे क्रमशः अतिरिक्त लाभ की अनुमति भिक्षुजीवन और सघ की समृद्धि में प्रगति सूचित करती है। भिक्षु जीवन और संगठन के नियम विनयपिटक मे सगृहीत है। इनका भी एक विकास अनुमेय है। प्रारंभिक अवस्था मे भिक्षुओं के एकात जीवन पर अत्यधिक जोर था। पीछे क्रमशः आवासिक जीवन पल्लवित हुआ। चातुर्दिश संघ प्रायः तीन योजन से अनधिक सीमा के अनेक स्थानीय सघारामों मे विभक्त था जिनमे गणतंत्र की प्रणाली से कार्यनिर्वाह होता था। एकत्रित भिक्षुसमूह मे ऐकमत्य, उद्वाहिका, शलाकाग्रहण, अथवा बहुमत से निश्चय पर पहुँचा जाता था।

भिक्षु उपोसथ के लिये प्रतिपक्ष एकत्र होते थे और उस अवसर पर प्रातिमोक्ष का पाठ किया जाता था। प्रातिमोक्ष के आठ विभाग हैं—पाराजिक, संघावशेष, अनियत, नैसर्गिक पातयंतिक, पातयंतिक, प्रतिदेशनीय, शैक्ष एव अधिकरण शमथ। इनके अतर्गत नियमों की सख्या सब संप्रदायो मे समान नही है। किंतु यह संख्याभेद मुख्यतः शैक्ष धर्मो के परिगणन मे है। शेष वर्गों मे संख्या प्रायः समान है और प्राचीन 'दियड्ढसिक्खापदसत' के उल्लेख से समंजस है। प्रत्येक वर्ग के पाठ के बाद सबसे तीन बार पूछा जाता था 'क्या आप लोग इन दोषो से शुद्ध है ?' अपराधी भिक्षु अपने व्यतिक्रम की आदेशना करते थे और उनपर उचित प्रायश्चित्त अथवा दंड की व्यवस्था की जाती थी। वर्षावास के अपने नियम थे और उनके अनतर प्रवारणा नाम का पर्व होता था।

संगीतियाँ और निकाय—बौद्ध परंपरा के अनुसार परिनिर्वाण के अनतर ही राजगृह मे प्रथम सगीति हुई थी और इस अवसर पर विनय और धर्म का संग्रह किया गया था। इस संगीति की ऐतिहासिकता पर इतिहासकारों में प्रचुर विवाद रहा है किंतु इस विषय की खोज की वर्तमान अवस्था को इस सगीति की ऐतिहासिकता के अनुकूल कहना होगा, तथापि यह सदिग्ध रहता है कि इस अवसर पर कौन कौन से सदर्भ संगृहीत हुए। दूसरी संगीति परिनिर्वाण से सौ वर्ष पश्चात् वैशाली में हुई जब कि महावंस के अनुसार मगध का राजा कालाशोक था। इस समय सद्धर्म अवंती से वैशाली और मथुरा से कौशांबी तक फैला हुआ था। सगीति वैशाली के भिक्षुओं के द्वारा प्रचारित १० वस्तुओं के निर्णय के लिये हुई थी। ये १०

वस्तुएँ इस प्रकार थीं—शृंगि-लवण-कल्प, द्वि-अंगुल-कल्प, ग्रामांतर-कल्प, आवास-कल्प, अनुमत-कल्प, आचीर्ण-कल्प, अमथित-कल्प, जलोगीपान-कल्प, अदशक-कल्प, जातरूप-रजत-कल्प। इन कल्पों को वज्जिपुत्तक भिक्षु विहित मानते थे और उन्होंने आयुष्मान् यश के विरोध का तिरस्कार किया। इसपर यश के प्रयत्न से वैशाली में ७०० पूर्वी और पश्चिमी भिक्षुओं की संगीति हुई जिसमें दसों वस्तुओं को विनयविरुद्ध ठहराया गया। दीपवंस के अनुसार वज्जिपुत्तकों ने इस निर्णय को स्वीकार न कर स्थविर अर्हतों के बिना एक अन्य 'महासंगीति' की, यद्यपि यह स्मरणीय है कि इस प्रकार का विवरण किसी विनय में उपलब्ध नहीं होता। कदाचित् दूसरी संगीति के अनंतर किसी समय महासांघिकों का विकास एवं संघभेद का प्रादुर्भाव मानना चाहिए।

दूसरी संगीति से अशोक तक के अंतराल में १८ विभिन्न बौद्ध संप्रदायों का आविर्भाव बताया गया है। इन संप्रदायों के आविर्भाव का क्रम सांप्रदायिक परंपराओं में भिन्न भिन्न रूप से दिया गया है। उदाहरण के लिये दीपवंस के अनुसार पहले महासांघिक पृथक् हुए। उनसे कालांतर में एकब्बोहारिक और गोकुलिक, गोकुलिकों से पञ्ञत्तिवादी, बाहुलिक और चेतियवादी। दूसरी ओर थेरवादियों से महिंसासक और वज्जिपुत्तक निकले। वज्जिपुत्तकों से धम्मुत्तरिय, भद्दयानिक, छन्नगरिक, एवं संमितीय, तथा महिंसासकों से धम्मगुत्तिक, एवं सब्बत्थिवादी, सब्बत्थिवादियों से कस्सपिक, उनसे संकतिक, और संकतिकों से सुत्तवादी। यह विवरण थेरवादियों की दृष्टि से है। दूसरी ओर सर्वास्तिवादियों की दृष्टि वसुमित्र के समयभेदोपरचनचक्र में संगृहीत है। इसके अनुसार महासांघिक तीन शाखाओं में विभक्त हुए। एकव्यावहारिक, लोकोत्तरवादी एवं कौक्कुलिक। पीछे उनसे बहुश्रुतीय और प्रज्ञप्तिवादियों का आविर्भाव हुआ, तथा बुद्धाब्द के दूसरे शतक के समाप्त होते उनसे चैत्यशैल, अपरशैल और उत्तरशैल शाखाएँ निकलीं। दूसरी ओर स्थविरवादी सर्वास्तिवादी अथवा हेतुवादी, तथा मूलस्थविरवादी निकायों में विभक्त हुए। मूल स्थविर ही हैमवत कहलाए। पीछे सर्वास्तिवादियों से वात्सीपुत्रीय, महीशासक, काश्यपीय, एवं सौत्रांतिकों का आविर्भाव हुआ। वात्सीपुत्रीयों में धर्मोत्तरीय, भद्रयाणीय, सम्मतीय, एवं षण्णागरिक निकाय उत्पन्न हुए, तथा महीशासकों से धर्मगुप्तों का आविर्भाव हुआ। इन और अन्य सूचियों को देखने से इतना निश्चित होता ही है कि कुछ प्रमुख नैकायिक धाराएँ दूसरी बुद्धाब्द शती में प्रकट हुईं। इनमें महासांघिकों के अनुसार बुद्ध और बोधिसत्वों का जन्म सर्वथा लोकोत्तर होता है। बुद्ध का स्वभाव और सब धर्म लोकोत्तर हैं। उनका लोकवत् प्रतीयमान व्यवहार केवल लोकानुवर्तन हैं। उनकी रूपकाय, आयु और प्रभाव अमित हैं। उनकी देह अनास्रव धर्मों से निर्मित है। वे शाश्वत समाधि में स्थित रहते हैं और उनके शब्द केवल प्रतीत होते हैं। महासांघिक प्रकृतिभास्वर चित्त को असंस्कृत धर्म मानते थे। त्रिपिटक के अतिरिक्त उनमें संयुक्त पिटक और धारणीपिटक भी विदित थे। यह प्रायः स्वीकार किया जाता है कि महासांघिक धारा ने महायान के आविर्भाव में विशेष भाग ग्रहण किया। महासांघिकों का आग्रह एक ओर बुद्ध और बोधिसत्व की अलौकिकता पर था, दूसरी ओर अर्हतों की परिहाणीयता पर। उनकी एक शाखा का नाम ही लोकोत्तरवादी था और इनका एक प्रमुख ग्रंथ 'महावस्तु' सुविदित महासांघिक, वात्सीपुत्रीय, सर्वास्तिवादी एवं स्थविरवादी, ये चार प्रमुखतम निकाय थे। युवान् च्वांग ने इनके विहार बामियाँ में पाए थे और तारानाथ ने उनकी पाल युग में सत्ता सूचित की है। आंध्रदेश में महासांघिकों का विशेष विकास हुआ। अमरावती और नागार्जुनीकोण्ड के अभिलेखों में उनके 'चैत्यक', 'पूर्वशैलीय', 'अपरशैलीय' आदि निकायों के नाम मिलते हैं। महासांघिकों के इन प्रभेदों को बुद्धघोष ने भी 'अंधक' अथवा आंध्रक कहा है।

वात्सीपुत्रीयों की कई शाखाओं के नाम मथुरा और अपरांत के अभिलेखों में उपलब्ध होते हैं। युवान् च्वांग ने उनके विहार प्रधानतया पश्चिम में देखे थे और इत्सिंग के विवरण से इसका समर्थन होता है। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध शाखा सम्मितीयों की थी। वात्सीपुत्रीयों का मुख्य सिद्धांत पुद्गलवाद था। उनका कहना था कि पुद्गल न स्कंधों से भिन्न है न अभिन्न। आगम के प्रसिद्ध भारहार सूत्र का इस संप्रदाय में विशेष आदर था। कथावत्थु में सर्वप्रथम पुद्गलवाद का खंडन मिलता है और यह विचारपूर्वक प्रतिपादित किया गया है कि यह प्रथम पुद्गलकथा निस्संदेह कथावत्थु के प्राचीनतम अंशों में है।

परंपरा के अनुसार कथावत्थु की रचना मोग्गलिपुत्त तिस्स ने अशोककालीन तृतीय बौद्ध संगीति के अवसर पर की थी। सिंहली परंपरा अपने को मूल और प्रामाणिक स्थविरवाद की परंपरा मानती है जिसे अशोक के प्रयत्नों ने सिंहल तक पहुँचाकर प्रतिष्ठित किया। इस परंपरा के अनुसार अशोक ने अपने समय में संघ की दुरवस्था देखकर मोग्गलिपुत्त तिस्स की प्रमुखता में पाटलिपुत्र में एक संगीति का आयोजन किया जिसमें स्थविरवाद (विभज्यवाद) की स्थापना हुई तथा अन्य विरोधी मतों का खंडन किया गया। संघ से उन भिक्षुओं का भी निष्कासन हुआ जिनकी दृष्टि एवं शील अशुद्ध थे। इस प्रकार अशोक के प्रयत्नों से संघ पुनः शुद्ध एवं समग्र हुआ। परंपरा के अनुसार अशोक ने धर्मप्रचार के लिये नाना विहार, एवं स्तूप बनवाए। साथ ही मोग्गलिपुत्त के नेतृत्व में संघ ने नाना दिशाओं में धर्म के प्रचार के लिये विशेष व्यक्तियों को भेजा। कश्मीर गंधार के लिये मज्झन्तिक भेजे गए, महिषमंडल के लिये महादेव, वनवासी के लिये रक्खित, अपरांत के लिये योनक धम्मरक्खित, महारट्ठ के लिये महाधम्मरक्खित, यवनों में महारक्खित, हिमवत्प्रदेश में मज्झिम, काश्यपगोत्र, मूलदेव, सहदेव और दुंदुभिस्सर, सुवर्णभूमि में सोण और उत्तर, ताम्रपर्णी में महेंद्र, 'इट्ठिय', उत्तिय, सबल और भद्दसाल। यह उल्लेखनीय है कि साँची और सोनारी के स्तूपों से प्राप्त अभिलेखों में 'सत्पुरुष मौद्गलीपुत्र', हैमवत दुंदुभिस्वर, सत्पुरुष मध्यम, एवं 'सर्वहैमवताचार्य काश्यपगोत्र' के नाम उपलब्ध होते हैं जिससे इस साहित्यिक परंपरा का समर्थन होता है। दूसरी ओर अशोक के अपने अभिलेखों में तृतीय संगीति का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता। अशोक जिस धर्म के प्रचार का सतत उल्लेख करता है उसे बौद्ध धर्म मानना भी सरल नहीं है। अशोक का धर्म आपाततः सब धर्मों का सार ही प्रतीत होता है। इस कारण इतिहासकारों की यह प्रापित उक्ति कि अशोक के प्रयत्नों से मगध का एक स्थानीय धर्म विश्व धर्म बन गया, अयुक्त प्रतीत होती है। बौद्ध धर्म का प्रसार मूलतः

बुद्ध और बौद्ध धर्म (पृ० ३१४-३२४)

बुद्ध प्रतिमा (नागार्जुनीकोंड)
[फोटो : सूचना एवं जन संपर्क विभाग, आंध्र प्रदेश, हैदराबाद]

बुद्ध प्रतिमा . स्वर्ण जटित कांस्य (नालंदा)
[फोटो : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, जनपथ, नई दिल्ली]

बुद्ध प्रतिमा (सारनाथ के चीनी मंदिर में अवस्थित)
[फोटो : चंद्रधर त्रिपाठी, आई० ए० एम०, डिब्रूगढ, असम]

बड़ौदा (पृ० १८२)

सुरसागर तलाव, बड़ोदरा (बड़ौदा)

[फोटो : सूचना एवं संपर्क विभाग गुजरात, अहमदाबाद]

ब्रिटिश सग्रहालय (पृ० ४०३–४०४)

[फोटो : मेजर बी० पी० सी० ब्रिजवाटर, सेक्रेटरी ब्रिटिश म्यूजियम के सौजन्य से]

ब्रिटिश म्यूजियम लंदन का उक्त भवन ग्रेट रसेल स्ट्रीट में अवस्थित है जो सुप्रसिद्ध वास्तुविद् सर रॉबर्ट स्मर्क की परिकल्पना के अनुसार १८५२ ई० में बनकर तैयार हुआ।

स्वयं संघ के प्रयत्नों का परिणाम था, यद्यपि इस प्रक्रिया में एकाधिक महान् शासकों ने उचित योगदान दिया।

पालि त्रिपिटक सिंहल में राजा वट्टगामणि के समय प्रथम शताब्दी ई० पू० में लिपिबद्ध किया गया। परंपरा के अनुसार महेंद्र अपने साथ अट्ठकथाएँ भी लाए थे और ये भी इसी समय लिखी गईं। ये सिंहली भाषा में कई शताब्दियों तक उपलब्ध थीं और उन्हीं के आधार पर बुद्धघोष ने अपनी प्रसिद्ध पालि अट्ठकथाएँ लिखीं। स्थविरवादी अभिधर्म और आचार्यों के अनुसार सत्य धर्मात्मक है। धर्म नाना और पृथक् पृथक् हैं। प्रत्येक अपने प्रतिविशिष्ट स्वभाव को धारण करता है और हेतु प्रत्यय से धारित होता है। आचार्य अनिरुद्ध के अनुसार रूप, चित्त, चैत्त और निर्वाण, ये चार धर्मों के मुख्य प्रकार हैं। चैत्त धर्मों में वेदना, संज्ञा एवं संस्कार संगृहीत हैं। इस प्रकार यह विभाजन प्राचीन पंच स्कंध और असंस्कृत का ही परिष्कृत रूप है। संस्कार स्कंध का विशेष विस्तार किया गया। चित्त का अकुशल, कुशल और अव्याकृत, यह त्रिविध मौलिक विभाजन किया गया। लोभ, द्वेष और मोह अकुशल मूल हैं। कुशल चित्त चतुर्विध है—कामावचर रूपावचर अरूपावचर और लोकोत्तर। अव्याकृत चित्त द्विविध है विपाक और क्रिया। धम्मसंगणि में कुल ८९ प्रकार के चित्तों का विवरण है। पट्ठानप्पकरण में धर्मों का कार्य-कारण-भाव की दृष्टि से अभिसंबंध आलोचित किया गया है और २४ प्रकार के पच्चयों (प्रत्ययों) का विवरण दिया गया है। यदि यह विश्लेषण ज्ञान मीमांसा और तर्क की दृष्टि से महत्वपूर्ण है तो मनोविज्ञान की दृष्टि से वीथिचित्त आदि का विश्लेषण एक अपूर्व गंभीरता और सूक्ष्मता प्रकट करता है। इस प्रकार के विश्लेषण में चित्त की प्रक्रियाओं का नियत अवस्थाक्रम प्रदर्शित किया गया है। जिस प्रकार अशोक और तृतीय संगीति स्थविरवाद के इतिहास के महत्वपूर्ण अंग हैं, इसी प्रकार कनिष्क और चतुर्थ संगीति सर्वास्तिवाद के इतिहास में महत्वपूर्ण हैं। अशोक और मिलिंद (मेनैंडर) के तुल्य ही कनिष्क का नाम बौद्ध इतिहास में जाज्वल्यमान है। इस चतुर्थ संगीति के अध्यक्ष पार्श्व थे जो कनिष्क द्वारा स्थापित पुरुषपुर के आश्चर्य महाविहार के थे। संगीति का स्थान कश्मीर का कुंडलवन विहार अथवा जालंधर का कुवन बताया गया है। इस संगीति में पार्श्व के साथ ५०० अर्हत् और वसुमित्र के साथ ५०० बोधिसत्वों का भागग्रहण कहा गया है। किंतु बोधिसत्वों का इस प्रसंग में उल्लेख अधिक विश्वास्य नहीं प्रतीत होता। तृतीय संगीति के विरुद्ध इस संगीति में सभी अष्टादश निकायों की प्रामाणिकता का स्वीकार बताया गया है। संगीति का सबसे महत्वपूर्ण और स्थायी कार्य 'अभिधर्म महाविभाषा' की रचना थी।

सर्वास्तिवादियों के दो भेद प्रसिद्ध हैं — वैभाषिक और सौत्रांतिक विभाषा के अनुयायी वैभाषिक कहलाते थे। धर्मत्रात, घोषक, वसुमित्र एवं बुद्धदेव वैभाषिक कहलाते थे। इनमें घोषक तुषारजातीय थे। यह उल्लेख है कि वैभाषिकों के दो मुख्य प्रभेद थे काश्मीर वैभाषिक और पाश्चात्य वैभाषिक जिनका केंद्र गंधार में था। सर्वास्तिवाद का मंथन कर आचार्य वसुबंधु ने अपना जगत्प्रसिद्ध 'अभिधर्मकोश' रचा। वसुबंधु का कालनिर्णय प्रचुर विवाद का विषय रहा है। दो वसुबंधुओं की सत्ता को अब सिद्ध मानना चाहिए किंतु यह सिद्ध नहीं है कि इनमें एक महायानी आचार्य विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि का रचयिता था और दूसरा कोश का। मुख्य वसुबंधु को पाँचवी शताब्दी में रखना ही प्रमाणसंगत प्रतीत होता है।

सर्वास्तिवादियों का मुख्य सिद्धांत था 'सर्वमस्ति'। वैभाषिकों के अनुसार इसका अर्थ था सब धर्मों की त्रैयध्विक सत्ता का स्वीकार। अर्थात् अतीत और अनागत धर्मों के अस्तित्व का अभ्युपगम। आपाततः यह मत सांख्यों के परिणामवाद एवं प्रवाहनित्यता के सिद्धांत सदृश है। किंतु वैभाषिक संस्कृत लक्षणों के स्वीकार से शाश्वत प्रसंग का निवारण करते थे। संस्कृत लक्षण चार हैं—उत्पाद, स्थिति, व्यय, एवं निरोध या अनित्यता। ये आपाततः विरुद्ध होने पर भी वस्तुतः सहकारी हैं। त्रैयध्विक द्रव्य सत्ता के साथ अध्व भेद स्थापित करने के लिये अनेक मत उद्भावित किए गए जिनमें वसुमित्र के अवस्थान्यथात्व को वसुबंधु ने शोभन कहा है। वैभाषिकों के विरुद्ध सौत्रांतिकों का कहना था कि 'सर्व' शब्द से 'द्वादशायतन' समझना चाहिए।

वैभाषिक संस्कृत धर्मों में रूप, चित्त, चैत्त और चित्तविप्रयुक्त संस्कार गिनते थे। इनके अतिरिक्त वे तीन असंस्कृत धर्म स्वीकार करते थे, आकाश, प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध। इन सब धर्मों के कार्य-कारण-भाव के विश्लेषण के द्वारा चार प्रत्यय, छह हेतु एवं पाँच फल निर्धारित किए गए।

यशोमित्र ने सौत्रांतिकों के नामार्थ पर कहा है 'ये सूत्रप्रामाणिका न तु शास्त्रप्रामाणिकास्ते सौत्रांतिकाः।' युवान्-च्वांग ने कुमारलब्ध (कुमारलात) को सौत्रांतिक संप्रदाय का प्रवर्तक बताया है। कुमारलब्ध तक्षशिलावासी थे और अश्वघोष, नागार्जुन एवं आर्यदेव के समकालीन प्रसिद्ध हैं। भारतीय दर्शन के विकास में सौत्रांतिकों की सूक्ष्म समीक्षा अत्यंत सहायक सिद्ध हुई। वैभाषिकों के द्वारा स्वीकृत पंचधर्मों में सौत्रांतिक असंस्कृत को निरोधमात्र एवं चित्तविप्रयुक्त को प्रज्ञप्तिमात्र मानते थे। रूप उनके मत से अनुमेय हो जाता है। इस प्रकार चित्त और चैत्त ही निश्चित और प्रमुख तत्व हो जाते हैं। वे एक सूक्ष्म और एकरस मनोविज्ञान की सत्ता मानते थे। इस प्रकार सौत्रांतिकों के सिद्धांतों ने विज्ञानवाद एवं बौद्ध न्याय, दोनों का ही मार्ग प्रशस्त किया।

महायान — हीनयान और महायान, इनका इस प्रकार नामकरण एवं भेद महायान की कल्पना है। हीनयान को श्रावकयान भी कहा गया है, महायान को एकयान अग्रयान, बोधिसत्वयान एवं बुद्धयान भी। यानभेद महायानसूत्रों में आविर्भूत और महायान-शास्त्रों में सविस्तर प्रतिपादित हुआ है। नागार्जुन के अनुसार बुद्ध ने अपनी वास्तविक देशना अधिकारी बोधिसत्वों को दी थी, उनकी प्रकट देशना न्यून अधिकारियों के लिये अर्हद्विषयक थी। इस प्रकार यानभेद का आधार अधिकारभेद एवं लक्ष्यभेद था। महायान के सिद्धांत-पक्ष में बुद्धत्व, शून्यता एवं चित्तमात्रता प्रधान हैं, साधन-पक्ष में बोधिसत्वचर्या जिसमें पारमिताएँ और भूमियाँ महत्वपूर्ण हैं।

हीनयानी का लक्ष्य केवल अपने लिये अर्हत्व की प्राप्ति है। महायानी का लक्ष्य सब प्राणियों के उद्धार के लिये बुद्धत्व की

प्राप्ति है। यही महायान की लक्ष्यगत महत्ता है और इसके अनुकूल प्रणिधान की योग्यता ही महायानी का उच्चाधिकार है। पुद्गल-शून्यता के बोध से क्लेशावरण का क्षय हो जाता है और इस प्रकार अर्हत्व प्राप्त होता है। किंतु इस साधन से ज्ञेयावरण के न हटने के कारण सर्वज्ञता अथवा बुद्धत्व की प्राप्ति नहीं होती। बुद्धत्व के लिये सर्वप्रथम अशेष प्राणियों के कल्याण के लिये बोधिप्राप्ति का संकल्प आवश्यक है। इस बोधिचित्त प्रणिधान के अनंतर नाना भूमियों मे पारमिताओं का साधन किया जाता है। अत मे धर्मशून्यता के बोध से बुद्धत्व की प्राप्ति होती है।

महायान में बोधिसत्वचर्या की तीन मुख्य अवस्थाएँ हैं जिनमे पहली प्रकृतिचर्या द्विविध है, गोत्रभूमि एवं अधिमुक्तिचर्या। गोत्र वास्तव में एक प्रकार का स्वभाव एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति है जिसका पूर्वकर्म के प्रभाव से निर्माण होता है। यही प्रकारांतर से 'अधिकार' का मूल है। दूसरी अवस्था बोधिसत्व भूमियों की है (दे० दशभूमीश्वर)।

महायान की उत्पत्ति के कारण, ऐतिहासिक क्रम एवं देश काल के विषय मे ऐकमत्य नहीं है। महायानियों ने अपनी दृष्टि की प्रामाणिकता एवं मूल संलग्नता के पक्ष मे अनेक युक्तियाँ दी हैं। उनका कहना है कि वास्तविक बुद्ध देशना का लक्षण, जो विनय और सूत्र में उपलब्ध हो तथा धर्मता के अविरुद्ध हो, महायान मे ही है। यहाँ वे 'विनय' और 'सूत्र' से माहायानिक आगम को ही लेते थे। इस मत के विरोधी—और इनमें अधिकांश आधुनिक इतिहासकार संमिलित हैं—माहायानिक आगम को बुद्धवचन नही मान पाते क्योकि उनकी उपलब्धि बुद्ध के युग के बहुत बाद मे होती है। किंतु सूक्ष्म परीक्षा से यह दिखलाया जा सकता है कि कुछ प्रधान माहायानिक सिद्धांत बीज रूप से प्राचीन आगमों मे भी संकेतित हैं। और फिर बुद्धवचन का अभिप्राय समझने मे धर्मता का आनुलोम्य उपेक्ष्य नही हो सकता और महायान के पक्ष मे कहना होगा कि उसने बुद्ध के अपने जीवन और साधन को सबके लिये आदर्श बता कर अपना एक अनिवार्य मूल प्रकट किया है। सैद्धांतिक विस्तार और अभिधान की दृष्टि से वास्तव मे बुद्ध देशना को पूर्णत. 'हीनयान' अथवा 'महायान' कह सकना कठिन है। अवश्य ही 'हीनयान' का विकास पहले हुआ किंतु उसके कुछ प्राचीन संप्रदायों मे ऐसे सिद्धांत एवं प्रवृत्तियाँ थीं जो क्रमश विकसित होकर महायान मे परिणत हुईं। इनमे महासांघिक और सर्वास्तिवादी सप्रदाय उल्लेख्य हैं।

महायान के उत्पत्ति स्थल के विषय में अष्टसाहस्रिका की प्रसिद्ध उक्ति महासांघिकों के आंध्र केंद्र की ओर संकेत करती है। ई० शताब्दी के मध्य तक प्रज्ञापारमिता का चीनी अनुवाद, एवं प्राय. उस समय तक उसपर नागार्जुन का विशाल प्रज्ञापारमिताशास्त्र निबद्ध हो चुके थे। सुदूर पूर्व तक यह प्रसार और इतना शास्त्रीय विकास महायान की उत्पत्ति संभवत ई० पू० प्रथम शताब्दी मे सूचित करता है। महायान-सूत्र-राशि कितनी विशाल है इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि महाव्युत्पत्ति में १०५ सूत्रों के नाम दिए गए हैं, शिक्षासमुच्चय में प्राय: १०० सूत्रग्रंथों से उद्धरण प्राप्त होते हैं, नंजियों के चीनी त्रिपिटक मे सात वर्गों में विभक्त ५४१ महायानसूत्रों का उल्लेख है। अधिकांश महायान साहित्य अपने मूल रूप में लुप्त हो चुका है तथापि आधुनिक खोज ने अनेक महत्वपूर्ण सूत्रों को प्रकाशित किया है। इनमें अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुंडरीक, ललितविस्तर, लंकावतार, सुवर्णप्रभास, गंडव्यूह, समाधिराज, सुखावतीव्यूह, कारंडव्यूह, आदि विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। उनमें अष्टसाहस्रिका संभवत: प्राचीनतम है और माहायानिक शून्यता का प्रतिपादन करती है। सद्धर्मपुंडरीक में बुद्ध का ऐश्वर्य, उपायकौशल से यान-भेद एवं बुद्ध-भक्ति का प्रतिपादन मिलता है। लंकावतार योगाचार की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।

महायान का शास्त्रीय रूप एवं प्रचार सर्वाधिक ऋणी आचार्य नागार्जुन का है। उनके विषय मे नाना ऐतिहासिक विवाद हैं किंतु यह निश्चित है कि वे दाक्षिणात्य थे एवं एक प्रसिद्ध राजा के समकालीन थे जो सभवत ई० दूसरी शताब्दी का था। उनके अनेक प्रसिद्ध ग्रंथो मे माध्यमिक कारिकाएँ मूर्धन्य हैं। इसमे शून्यता को प्रतीत्यसमुत्पाद और मध्यम प्रतिपद् से अभिन्न बताया गया है। धर्मों की परतंत्रता और परापेक्षता ही उनकी निस्स्वभावता का द्योतन करती है। यह निस्स्वभावता न भावरूप है, न अभावरूप। शून्यवाद परमार्थ की निर्विकल्पता और अनिर्वचनीयता सूचित करता है। इस मत की स्थापना केवल पर मत के प्रतिषेध के द्वारा की जा सकती है। नागार्जुन इसका विस्तारश प्रतिपादन करते हैं कि किसी भी वस्तु की सत्यता स्वीकार करने पर अपरिहार्य रूप से विरोध प्रसक्त होता है। इस तर्क प्रणाली को प्रसगापादन या प्रासगिक कहते हैं। नागार्जुन के अनतर शून्यवाद के प्रमुख प्रतिपादकों मे आर्यदेव, भावविवेक, बुद्धपालित एवं चद्रकीर्ति के नाम उल्लेखनीय हैं।

योगाचार और विज्ञानवाद को प्राय समानार्थक माना जाता है। यह कहना अधिक सही होगा कि महायान सूत्रों मे एव मैत्रेयनाथ एवं असग की कृतियो मे योगाचार एक आध्यात्मिक दर्शन के रूप मे प्रकट होता है। वसुबंधु एव परवर्ती आचार्यों के दार्शनिक प्रतिपादनों मे इसे विज्ञानवाद की आस्था का समुचित विषय मानना चाहिए। योगाचार के मूल सूत्रो मे संधिनिर्मोचन, लंकावतार एव घनव्यूह उल्लेख्य हैं। इनमें जगत् को स्वप्नवत् विज्ञानधारा में अध्यस्त माना गया है। इनमे पहले सात प्रवृत्तिविज्ञान हैं जिनका आलयविज्ञान से तरंग और सागर सा संबध है क्योंकि आलय मे प्रवृत्ति के बीज एवं संस्कार संनिहित रहते हैं।

मैत्रेयनाथ को अब प्राय: ऐतिहासिक महापुरुष स्वीकार किया जाता है। तारानाथ और बुदोन के अनुसार असंग ने मैत्रेय से पाँच शास्त्र प्राप्त किए—अभिसमयालंकार, सूत्रालंकार, मध्यांतविभंग, धर्मधर्मताविभंग एवं महायानोत्तरतंत्र। इनमें से पहले दो प्रसिद्ध ग्रंथों मे बोधिसत्वचर्या के रूप में योगाचार की पद्धति एवं अवस्थाओं का सविस्तर विवरण है। असंग पुरुषपुर के एक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे और वसुबंधु के अग्रज थे। उनके ग्रंथों में योगाचारभूमिशास्त्र सबसे प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि असंग के प्रयत्नों से वसुबंधु ने महायान स्वीकार किया। परमार्थ एवं युवान् च्वांग की गणना से एवं विक्रमादित्य एवं बालादित्य के के समकालीन होने से वसुबंधु का समय पाँचवीं शताब्दी ही स्थिर होता है। वसुबंधु ने विज्ञानवाद को शुद्ध तर्कभूमि में उपनीत किया।

दिङ्नाग ने इस न्यायानुसारिता को आगे बढ़ाकर बौद्ध न्याय को सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। न्यायदर्शन के आचार्यों से शास्त्रार्थ के प्रसंग मे बौद्ध न्याय की अपूर्व प्रगति हुई तथा वह धर्मकीर्ति की कृतियों में अपने सर्वोच्च शिखर को प्राप्त हुआ। धर्मकीर्ति को 'भारतीय कांट' कहा गया है।

जहाँ एक ओर बौद्ध न्याय एवं न्यायानुसारी दर्शन का विकास हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर बौद्धों मे तंत्र शास्त्र की प्रगति भी निश्चित प्रकाश में आई। बौद्ध तांत्रिक परंपरा के अनुसार तथागत ने धान्यकटक में वज्रयान के लिए तृतीय धर्म चक्र प्रवर्तन किया था। धान्यकटक के उल्लेख से सूचित होता है कि वज्रयान का मूल भी महासांघिकों मे ही खोजना चाहिए। इस प्रसंग में उनके रूप और रूपकाय विषयक मत, धारणीपिटक का स्वीकार, एवं वैतुल्यकों के द्वारा आभिप्रायिक मिथुनचर्या का स्वीकार लक्षणीय है। असंग की कृतियो में परावृत्ति एवं अभिसंधि के सिद्धांत स्पष्टत. तांत्रिक प्रतीत होते हैं। प्राचीनतम उपलब्ध तंत्र मंजुश्रीमूलकल्प एवं गुह्यसमाज है। तारानाथ के अनुसार ३०० वर्ष तक गुप्त रहकर तांत्रिक परंपरा प्रकाश में आई और धर्मकीर्ति के पश्चात्, विशेष रूप से पाल युग में, उसका अधिकाधिक प्रचार हुआ।

अद्वयवज्र के अनुसार महायान के दो प्रभेद हैं—पारमितानय और मंत्रनय। इनमे मन्त्रनय की व्याख्या योगाचार और माध्यमिक स्थिति से होती है। मंत्रनय ही बौद्ध तंत्र अथवा वज्रयान का प्राण है। वज्रयान मे प्रज्ञा एवं उपाय की युगनद्ध सत्ता को ही परमार्थ मानते हैं। इन्ही प्रज्ञा और उपाय को वज्र और पद्म भी कहते हैं। प्रकारांतर से यही तथागत का स्वरूप है और कार्य वाक्चित्त वज्रधर कहा गया है जिनसे पंचस्कंधो के अधिष्ठाता पाँच 'ध्यानी' बुद्ध निस्सृत होते हैं। इन बुद्धों के साथ उनकी 'शक्तियाँ' एवं बोधिसत्व मिलकर 'कुल' निष्पन्न होते हैं जिनके व्यवस्थापन से 'तथागत मंडल' बनता है। बोधिचित्त के उत्पादन के अनंतर मंडल मे अद्वैतभावना से शक्ति सहचरित उपासना ही तांत्रिक उपासना है।

बौद्ध धर्म का ह्रास—फाहियान (३९९-४१४), सुंग युन (४१८-२१), युवान्-च्वांग, (६२९--४५), इत्सिंग (६७१-९५) व्ही-चू (७२६-२९) और इ-कुंग (७५१-९०) के विवरणों से बौद्ध धर्म के मध्य एशिया और भारत मे क्रमिक ह्रास की सूचना मिलती है, जिसकी अन्य साहित्यिक और पुरातात्विक साक्ष्य से पुष्टि होती है। लक्षणीय है कि अनेक बौद्ध सूत्रो मे सद्धर्म की अवधि ५०० अथवा १००० अथवा १५०० वर्ष बताई गई है। कपिलवस्तु श्रावस्ती, गया एवं वैशाली मे ह्रास गुप्त युग मे ही लक्ष्य था। गंधार और उड्डियान मे हूणों के कारण सद्धर्म की क्षति हुई प्रतीत होती है। युवान् च्वांग ने पूर्वी दक्षिणापथ मे बौद्ध धर्म को लुप्तप्राय देखा। इ-त्सिंग ने अपने समय मे केवल चार संप्रदायो को भारत में प्रचारित पाया-महासांघिक, स्थविर, मूलसर्वास्तिवादी एवं सम्मतीय। विहारों में हीनयानी और महायानी मिले जुले थे। सिंध में बौद्ध धर्म अरब शासन के युग मे क्रमशः क्षीण और लुप्त हुआ। गंधार और उड्डियान में वज्रयान और मंत्रयान के प्रभाव से बौद्ध धर्म का आठवीं शताब्दी में कुछ उज्जीवन ज्ञात होता है किंतु अलबेरूनी के समय तक तुर्की प्रभाव से वह ज्योति लुप्त हो गई थी। कश्मीर में उसका लोप वहाँ भी इसलाम के प्रभुत्व की स्थापना से ही मानना चाहिए। पश्चिमी एवं मध्य भारत मे बौद्ध धर्म का लोप राजकीय उपेक्षा एवं ब्राह्मण तथा जैन धर्मों के प्रसार के कारण प्रतीत होता है। मध्यप्रदेश मे गुप्तकाल से ही क्रमिक ह्रास देखा जा सकता है जिसका कारण राजकीय पोषण का अभाव ही प्रतीत होता है। मगध और पूर्व देश में परम सौगत पाल नरेशो की छत्रछाया में बौद्ध धर्म और उसके शिक्षाकेंद्र नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी, अपनी ख्याति के चरम शिखर पर पहुँचे। इस प्रदेश मे सद्धर्म का ह्रास तुर्की विजय के कारण हुआ। यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म के ह्रासका मे मुख्य कारण उसका अपने को लौकिक सामाजिक जीवन का अनिवार्य अग न बना सकना था। इस कारण ऐसा प्रतीत होता है कि राजकीय उपेक्षा अथवा विरोध से विहारो के संकटग्रस्त होने पर उपासकों मे सद्धर्म अनायास लुप्त होने लगता था। यह स्मरणीय है कि उदयनाचार्य के अनुसार ऐसा कोई सप्रदाय न था जो सावृत कहकर भी वैदिक क्रियाओं के अनुष्ठान को स्वीकार न करता हो। उपासकों के लिये बौद्ध धर्म केवल शील अथवा ऐसी भक्ति के रूप मे था जिसे ब्राह्मण धर्म से मूलत. पृथक् कर सकना जनता के लिये उतना ही कठिन था जितना शून्यता एवं नैरात्म्य के सिद्धातों को समझ सकना। कदाचित् आजकल की कर्मकांडविमुख एवं बुद्धिवादिनी जनता के लिये शील, प्रज्ञा एवं समाधि का धर्म पहले की अपेक्षा अधिक उपयुक्त हो।

सं० ग्रं० —शिंसौ हानायामा : बिब्लियोग्राफ़ी ऑन बुद्धिज्म, १९६१। किंतु इसमे प्राय: द्वितीय महायुद्ध से पूर्व के प्रकाशन ही सूचित हैं। विंटरनित्स : हिस्ट्री ऑव इंडियन लिट्रेचर, जि० २, कलकत्ता, १९३३; हेल्ड, दॉइचे : बिब्लियोग्राफी देस बुद्धिस्मस : लाइ-पजिग, १९१६, मार्च : ए बुद्धिस्ट बिब्लियोग्राफी, लंडन, १९३५, बिब्लियोग्राफी ऑव इंडियन आर्कियोलॉजी (लाइडेन) विंटरनित्स, पूर्वोद्धृत, पृ० ४०७ और आगे जहाँ एतत्संबधी साहित्य संकेतित है। कैंब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया, जि० १; रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया; फ़िक . सोशल आर्गनाइजेशन इन नॉर्थईस्टर्न इंडिया इन दि एज ऑव बुद्ध; टी० डब्लू० राइज डेविड्स : बुद्धिस्ट इंडिया; बी सी ला : इंडिया इन अर्ली बुद्धिस्ट ऐंड जैन लिटरेचर,, जे० सी० जैन : एशेंट इंडिया ऐज़डिपिक्टेड इन जैन कैनन इत्यादि। कीथ : दि रिलिजन ऐंड फ़िलॉसफ़ी ऑव दि वेदज ऐंड दि उपनिषद्ज, मैकडॉनेल ऐंड कीथ . वैदिक इंडेक्स, ओल्देनबर्ग, दि रिलिगियोन देस वद, दि लेर देर उपनिषदेन उंद दी आर्फ़ेंगे देस बुद्धिस्मस, बुद्धजाइन लेबेन जाइन लेर जाइन गेमाइंदे, बरुआ : हिस्ट्री ऑव प्री बुद्धिस्टिक इंडियन फिलॉसफ़ी; श्रादेर : उबेर देन ताद देर इंदिशेन फिलॉसफ़ी त्सुर त्साइत महावीरज उंद बुद्धज; पांडे : ओरिजिंस ऑव बुद्धिज्म। ललितविस्तर (हाल, १९०२, १९०८), महावस्तु (पैरिस १८८२-९७), बुद्धचरित (आक्सफोर्ड, १८९३); निदानकथा आदि के अतिरिक्त, रॉकहिल: दि लाइफ ऑव बुद्ध (कैगन पाल); ई० एच० ब्रूस्टर : दि लाइफ ऑव गौतम दि बुद्ध; एफ० बिगेंडेट : लाइफ़

और लेजेंड ऑव गौतम दि बुद्ध ऑव दि बर्मीज; एस० बील, रोमैंटिक लेजेंड ऑव शाक्य बुद्ध; राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या, ओल्देनबर्ग, बुद्ध; कर्न : मैन्युएल ऑव बुद्धिज्म; मिसेज राइज डेविड्स, शाक्य, मललसेकर, डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, फ्राउवाल्नर, दि अर्लियेस्ट विनय ऐंड दि बिगिनिंग्ज ऑव बुद्धिस्ट लिटरेचर, नलिनाक्ष दत्त, अर्ली मौनेस्टिक बुद्धिज्म।

पालि त्रिपिटक, ४० जि० (देवनागरी में नालंदा संस्करण), रोज़ेनबर्ग, दि प्रॉब्लेम देर बुद्धिस्तिशेन फिलासफी (१९२४); मिसेज राइज डेविड्स, व्हाट वाज दि ओरिजिनल गॉस्पेल इन बुद्धिज्म; टी० डब्लू० राइज डेविड्स, हिब्बर्ट लेक्चर्स, अमेरिकन लेक्चर्स; विधुशेखर भट्टाचार्य, बेसिक कंसेप्शन ऑव बुद्धिज्म, पांडेय बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पा चाउ, कंपेरेटिव स्टडी ऑव दि प्रातिमोक्ष; फ्राउवाल्नर, दि अर्लियेस्ट विनय ऐंड दि बिगिनिंग्स ऑव बुद्धिस्ट लिटरेचर, अकानुमा, दि कंपेरेटिव कैटेलॉग ऑव चाइनीज आगमज ऐंड पालि निकायज; गाइगर, धम्म उन्द ब्रह्म, कुमारस्वामी हिन्दुइज्म ऐन्ड बुद्धिज्म, राधाकृष्णन्, इन्डियन फिलॉसॉफी; जि० १, टामस, दि हिस्ट्री ऑव बुद्धिस्ट थॉट, कीथ, बुद्धिस्ट थॉट इन इंडिया, वासिलियेफ, देर बुद्धिस्मस, कर्न, लिस्त्वार दु बुदिधज्म, पूसें, वे दु निर्वाण, ल दोग्म ए ला फिलॉसफी दु बुद्धिज्म, बुद्धिज्म ओर्वाजिनियों सुर लिस्त्वार दला दौगमातीक, आदेर, जे० पी० टी० एस०, १९०४-५)।

कथावत्थु (सं० जगदीश कश्यप), कथावत्थु-अट्ठकथा (सं० मीनयेव) मसुदा, ओरिजिन ऐन्ड डॉक्ट्रिन्स ऑव दि अर्ली इंडियन बुद्धिस्ट स्कूल्स (समयभेदोपरचनचक्र); दीपवंस (सं० ओल्दनबर्ग); महावंस (सं० गोइगर); विसुद्धिमग्गो (सं० कोसंबि), अभिधम्मत्थसंगहो (सं० कोसंबि), अभिधर्मकोश (फ्रेंच अनुवाद पूसें द्वारा, जिसका आचार्य नरेंद्रदेव के द्वारा हिंदी अनुवाद अंशत प्रकाशित हुआ है), यशोमित्र, अभिधर्मकोशव्याख्या (सं० वोगिहारा), सुकुमार दत्त, फ़ाइव हंड्रेड ईयर्स ऑव बुद्धिज्म, नलिनाक्ष दत्त, अर्ली मोनैस्टिक बुद्धिज्म, जि० २, वालेज़ेर, दी सेक्तेन देस आल्तेन बुद्धिस्मस, बारो, ले सेक्त बुद्धीक दु पेति वेहिकूल, लामोत, इस्त्वार दु बुद्धिज्म आन्द्या, ओबर मिलर (अनु०) बुदोन कृत सद्धर्म का इतिहास, शीफनर (अनु०) तारानाथ का भारत मे सद्धर्म का इतिहास लेगी अनु० फ़ाहियान (फ़ाश्येन) का यात्रा विवरण, वाटर्स (अनु०) युवान्च्वाग यात्राविवरण, जगदीश कश्यप, दि फिलॉसफी ऑव अभिधम्म, मिसेज राइज डेविड्स, दि बर्थ ऑव इन्डियन साइकालॉजी ऐंड इट्स डेवलपमेंट इन बुद्धिज्म, सोगेन, सिस्टम्ज ऑव बुद्धिस्ट थॉट, गुन्थर, फिलॉसफी ऐन्ड साइकोलॉजी इन दि अभिधर्म, ससाकि, स्टडी ऑव अभिधर्म फिलॉसफी।

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता (सं० राजेंद्रलाल मित्र), लंकावतारसूत्र (सं० नंजियो), सद्धर्मपुंडरीक (सं० दत्त), मध्यमकवृत्ति (सं० पूसें), सूत्रालंकार (सं० लेवि), विंशिका एवं त्रिंशिका (सं० लेवि) प्रमाणवार्तिक (सं० नोलि, सं० सांकृत्यायन), शिक्षासमुच्चय, बोधिचर्यावतार (बिब्लियोथिका इंडिका), तत्वसंग्रह (सं० कृष्णमाचार्य), गुह्यसमाज (सं० भट्टाचार्य), हेवज्रतंत्र (सं० स्नेलग्रोव), नैंजियो, कैटलाग ऑव दि चाइनीज ट्रांसलेशन ऑव दि बुद्धिस्ट त्रिपिटक (ऑक्सफर्ड, १८८३) नलिनाक्ष दत्त, ऐस्पेक्ट्स ऑव महायान, सुजुकि, आउट लाइन्स ऑव महायान, स्टडीज इन दि लंकावतार सूत्र, हरदयाल, बोधिसत्व डॉक्ट्रिन, श्चरबात्स्की, दि कन्सेप्शन ऑव बुद्धिस्ट निर्वाण, बुद्धिस्ट लॉजिक, मुकर्जी दि बुद्धिस्ट फिलॉसॉफी ऑव यूनिवर्सल फ्लक्स, मेक्गवर्न, इंट्रोडक्शन टु महायान बुद्धिज्म, मैन्युएल ऑव बुद्धिस्ट फिलॉसफी, आचार्य नरेंद्रदेव, बौद्ध धर्म दर्शन।

हरप्रसाद शास्त्री बौद्ध गान ओ दोहा, बागची, दोहा कोश, सांकृत्यायन, दोहा कोश, तकाकुसु (अनु०), इ चिंग का भारत और मलय प्रायद्वीप में सद्धर्म का विवरण, तारानाथ (अनु० शीफनर) पूर्वोक्त, विद्याभूषण, हिस्ट्री ऑव दि मेडिइवल स्कूल ऑव इंडियन लॉजिक, मजुमदार (सं०) हिस्ट्री ऑव बंगाल, जि० १, मित्र, डिक्लाइन ऑव बुद्धिज्म इन इंडिया। [गो० च० पा]

बुद्धघोष पालि साहित्य के एक महान् बौद्धाचार्य। बुद्धघोसुप्पत्ति सद्धम्मसंगह, गंधवंश और शासन वंश में बुद्धघोष का जीवन-चरित्र विस्तार से मिलता है, किंतु ये रचनाएँ १४वीं से १९वीं शती तक की है। इनसे पूर्व का एकमात्र महावंश के चूलवंश नामक उत्तर भाग का ३७वाँ परिच्छेद ऐसा है जिसकी २१५ से २४६ गाथाओं में बुद्धघोष का जीवनवृत्त पाया जाता है। यद्यपि इसकी रचना धर्मकीर्ति नामक भिक्षु द्वारा १३वीं शती में की गई है, तथापि वह किसी अविच्छिन्न श्रुतिपरंपरा के आधार पर लिखा गया प्रतीत होता है। इसके अनुसार बुद्धघोष का जन्म विहार प्रदेश के अंतर्गत गया में बोधिवृक्ष के समीप ही कहीं हुआ था। बालक प्रतिभाशाली था, और उसने अल्पावस्था में ही वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया, योग का भी अभ्यास किया फिर वह अपनी ज्ञानवृद्धि के लिये देश में परिभ्रमण व विद्वानों से वादविवाद करने लगा। एक बार वह रात्रिविश्राम के लिये किसी बौद्धविहार में पहुँच गया। वहाँ रेवत नामक स्थविर से वाद में पराजित होकर उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। तत्पश्चात् उन्होंने त्रिपिटक का अध्ययन किया। उनकी असाधारण प्रतिभा एवं बौद्धधर्म में श्रद्धा से प्रभावित होकर बौद्ध संघ ने उन्हें बुद्धघोष की पदवी प्रदान की। उसी विहार में रहकर उन्होंने 'ज्ञानोदय' नामक ग्रंथ भी रचा। यह ग्रंथ अभी तक मिला नहीं है। तत्पश्चात् उन्होंने अभिधम्मपिटक के प्रथम भाग धम्मसंगणि पर अट्ठसालिनी नामक टीका लिखी। उन्होंने त्रिपिटक की अट्ठकथा लिखना भी प्रारंभ किया। उनके गुरु रेवत ने उन्हें बतलाया कि भारत में केवल लंका से मूल पालि त्रिपिटक ही आ सकता है, उनकी महास्थविर महेंद्र द्वारा संकलित अट्ठकथाएँ सिंहली भाषा में लंका द्वीप में विद्यमान हैं। अतएव तुम्हें वहीं जाकर उनको सुनना चाहिए और फिर उनका मागधी भाषा में अनुवाद करना चाहिए। तदनुसार बुद्धघोष लंका गए। उस समय वहाँ महानाम राजा का राज्य था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अनुराधपुर के महाविहार में संघपाल नामक स्थविर से सिंहली अट्ठकथाओं और स्थविरवाद की परंपरा का श्रवण किया। बुद्धघोष को निश्चय हो गया कि धर्म के अधिनायक बुद्ध का वही अभिप्राय है।

उन्होंने वहाँ के भिक्षुसंघ से अट्टकथाओं का मागधी रूपांतर करने का अपना अभिप्राय प्रकट किया। इसपर संघ ने उनकी योग्यता की परीक्षा करने के लिये 'अंतो जटा, बाहि जटा' आदि दो प्राचीन गाथाएँ देकर उनकी व्याख्या करने को कहा। बुद्धघोष ने उनकी व्याख्या रूप बिसुद्धिमग्ग की रचना की, जिसे देख संघ अति प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें भावी बुद्ध मैत्रेय का अवतार माना। तत्पश्चात् उन्होंने अनुराधपुर के ही ग्रंथकार विहार में बैठकर सिंहली अट्टकथाओं का मागधी रूपांतर पूरा किया, और तत्पश्चात् भारत लौट आए।

इस जीवनवृत्त में जो यह उल्लेख पाया जाता है कि बुद्धघोष राजा महानाम के शासनकाल में लंका पहुँचे थे, उससे उनके काल का निर्णय हो जाता है, क्योंकि महानाम का शासनकाल ई० की चौथी शती का प्रारंभिक भाग सुनिश्चित है। अतएव यही समय बुद्धघोष की रचनाओं का माना गया है। बिसुद्धिमग्ग में अंत में उल्लेख है कि मोरंड खेटक निवासी बुद्धघोष ने बिसुद्धमग्ग की रचना की। उसी प्रकार मज्झिमनिकाय की अट्टकथा में उसके मयूर सुत्त पट्टण में रहते हुए बुद्धमित्र नामक स्थविर की प्रार्थना से लिखे जाने का उल्लेख मिलता है। अगुत्तरनिकाय की अट्टकथाओं में उल्लेख है कि उन्होंने उसे स्थविर ज्योतिपाल की प्रार्थना से कांचीपुर आदि स्थानों में रहते हुए लिखा। इन उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी अट्टकथाएँ लंका में नहीं, बल्कि भारत में, संभवत: दक्षिण प्रदेश में, लिखी गई थी। कंबोडिया में एक बुद्धघोष विहार नामक अति प्राचीन स्थान है, तथा वहाँ के लोगों का विश्वास है कि वहीं पर उनका निर्वाण हुआ था और उसी स्मृति में वह विहार बना।

बुद्धघोष द्वारा रचित माने जानेवाले ग्रंथ निम्न प्रकार है

१. बिसुद्धिमग्ग में संयुक्त निकाय की 'अंतो जटा' आदि दो गाथाओं की व्याख्या दार्शनिक रूप से की गई है। इस ग्रंथ की बौद्ध संप्रदाय में बड़ी प्रतिष्ठा है।

२. **सामंत पासादिका**—विनयपिटक की अट्टकथा,

३ **कखावितरणी**— विनयपिटक के एक खंड पातिमोक्ख की अट्टकथा,

४. **सुमंगलविलासिनी**—दीघनिकाय की अट्टकथा,

५ **पपंचसूदनी**— मज्झिमनिकाय की अट्टकथा,

६. **सारत्थपकासिनी**— संयुत्तनिकाय अट्ठकथा,

७. **मनोरथपूरणी**— अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा,

८. **परमत्थजोतिका**— खुद्दकनिकाय के खुद्दकपाठ एवं सुत्तनिपात की अट्टकथा,

९. धम्मपद-अट्टकथा,

१०. जातक-अट्ठवण्णना,

११. अट्ठशालिनी-अभिधम्मपिटक के धम्मसंगणि की अट्ठकथा,

११. संमोहविनोदनी—विभंग की अट्टकथा,

१३. पचप्पकरण अट्ठकथा— अभिधम्मपिटक के कथावत्थु, पुग्गल पण्णति, धातुकथा, यमक और पट्ठाण इन पांच खंडों पर की टीका है।

इस प्रकार बुद्धघोष ने पालि में सर्वप्रथम अट्ठकथाओं की रचना की है। पालि त्रिपिटक के जिन अंशो पर उन्होंने अट्ठकथाएँ नहीं लिखी थी, उनपर बुद्धदत्त और धर्मपाल ने तथा आनंद आदि अन्य भिक्षुओं ने अट्ठकथाएं लिखकर पालि त्रिपिटक के विस्तृत व्याख्यान का कार्य पूरा किया। [ही० ला० जै०]

बुद्धिवाद बुद्धिवाद के अनुसार, सत्य की खोज में बुद्धि प्रमुख अस्त्र और अंतिम अधिकार है। ज्ञान के किसी भाग में भी बुद्धि के अधिकार से बड़ा कोई अन्य अधिकार विद्यमान नहीं। यह दावा धर्म और ज्ञानमीमांसा के क्षेत्रों में विशेष रूप से विवाद का विषय बनता रहा है।

ईसाई मत में धर्म की नींव विश्वास पर रखी गई है। जो सत्य ईश्वर की ओर से आविष्कृत हुए हैं, वे मान्य हैं, चाहे वे बुद्धि की पहुँच के बाहर हों, उसके प्रतिकूल भी हों। १८ वी शती में, इंग्लैंड में कुछ विचारकों ने धर्म को दैवी आविष्कार के बजाय मानव चिंतन की नींव पर खड़ा करने का यत्न किया। आरंभ में अलौकिक या प्रकृतिविरुद्ध सिद्धांत उनके आक्रमण के विषय बने, इसके बाद ऐसी घटनाओं की बारी आई, जिन्हें ऐतिहासिक खोज ने असत्य बताया, और अंत में कहा गया कि जिस जीवनव्यवस्था को ईसाइयत आदर्श व्यवस्था के रूप में उपस्थित करती है, वह स्वीकृति के योग्य नहीं। टौलैंड, चब्ब और बोलिंगब्रोक बुद्धिवाद के इन तीनों स्वरूपों के प्रतिनिधि तथा प्रसारक थे।

ज्ञानमीमांसा में बुद्धिवाद और अनुभववाद का विरोध है। अनुभववाद के अनुसार, मनुष्य का मन एक कोरी तख्ती है, जिसपर अनेक प्रकार के बाह्य प्रभाव अंकित होते हैं, हमारा सारा ज्ञान बाहर से प्राप्त होता है। इसके विपरीत, बुद्धिवाद कहता है कि सारा ज्ञान अंदर से उपजता है। जो कुछ इंद्रियों के द्वारा प्राप्त होता है, उसे प्लेटो ने केवल 'संमति' का पद दिया। बुद्धिवाद के अनुसार गणित सत्य ज्ञान का नमूना है। गणित की नींव लक्षणों और स्वयंसिद्ध धारणाओं पर होती है, और ये दोनों मन की कृतियाँ हैं। आधुनिक काल में, डेकार्ट ने निर्मल और स्पष्ट प्रत्ययों को सत्य की कसौटी बताया। स्पिनोजा ने अपनी विख्यात पुस्तक 'नीति' को रेखागणित का आकार दिया। वह कुछ परिभाषाओं और स्वत:सिद्ध धारणाओं से आरंभ करता है, और प्रत्येक साध्य को उपयोगी उपपत्ति से प्रमाणित करता है।

[दी० च०]

बुनाई की प्रक्रिया नम्य पदार्थों की दो या अधिक कतारों का समकोण पर संग्रथन है। इसमें अनुदैर्घ्य कतार को ताना (warp) तथा अनुप्रस्थ को बाना (waft) कहते हैं। यहाँ पर बुनाई, बुनाई उद्योग के एक अंग से संबंधित है। नमदीय, वलित, जालदार, होजरी तथा लैस (lace) के वस्त्रों की बुनाई इस विषय के अंतर्गत नहीं आती। नमदा बनाने के लिये ऊन या बाल ताप, आर्द्रता तथा घर्षण के संयुक्त प्रभाव से जमाया जाता है। वलित या उसके समान गुथी बुनावट के वस्त्रों में डोरे एक ही कतार में अंतर्ग्रथित होते हैं। इसी प्रकार लैस की बुनाई में डोरों के एक समूह को दूसरे समूह के बीच से तथा चारों ओर घुमाकर बुना जाता है।

इतिहास — मानव नूतन प्रस्तरयुग से ही वस्त्र बुनकर पहनता

रहा है। वह सन के रेशे से मोटे किस्म का कपड़ा बुनना उसी युग में सीख चुका था। प्राचीन मिस्र में लिनेन के कपड़े बनाने की कला पर्याप्त उन्नति कर चुकी थी। लगभग २,००० वर्ष ई० पू० चीनियों ने रेशम के कीड़ों से रेशम निकालने तथा उससे कपड़ा बुनने की विधियों के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली थी और लगभग उसी समय भारत के लोगों को कपास से सूत कातने तथा उससे वस्त्र बुनने की जानकारी प्राप्त हो गई थी। यूनान तथा रोम के प्राचीन अभिलेखों से पता चलता है कि वहाँ पर ऊनी, सूती रेशमी तथा लिनेन के कपड़ो की बुनाई काफी विकसित थी। विविधताप्रेमी मानव ने कताई बुनाई के आविष्कार के साथ ही विभिन्न प्रकार के वस्त्र बुनने की कई नई विधियों का आविष्कार किया। साधारण संरचना के कपडो में विविधता लाने के लिये भिन्न भिन्न रंगों के सूत, विभिन्न प्रकार के पदार्थ अलग अलग, या एक साथ, या संग्रथन की विभिन्न योजनाओं का उपयोग किया जाता रहा है। मध्ययुग या नवयुग मे लोग कुगढ़, या ग्राम्य करघों पर घरों में कपड़ा बुना करते थे। गृहिणी घर भर के लिये कपड़ा बुनती थी। १७वीं शताब्दी के अंतिम चरण में स्पिनिंग जेनी (Spinning jenny) नामक एक मशीन का आविष्कार हुआ, जो पादपों के रेशे तथा पशुओ के बालो से भी रेशे तैयार करती थी। इसके कुछ वर्षों के बाद विश्वप्रसिद्ध औद्योगिक क्रांति हुई। इसके परिणामस्वरूप बिजली से चलनेवाले करघों का प्रचलन अत्यधिक बढ़ गया। १९वीं शताब्दी में और उसके बाद अब तो मुख्यतः व्यापारिक कारखानों मे कपड़े की बुनाई होने लगी है।

बुनाई की संरचना तथा अभिकल्प — कपड़े की बुनाई का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है : समूह (१) — इस समूह में वे सभी कपड़े आते हैं जो एक ताना तथा एक बाना के प्रयोग से बुने गए हों, जब कि तैयार कपड़े मे सभी ताने तथा बाने आपस मे समांतर रहते और एक दूसरे को ऊपर नीचे काटते हैं। समूह (२) — इसमे तीन प्रकार की बुनाई आती है क दो ताने तथा एक बाने, या दो बाने तथा एक ताने से की गई बुनाई; ख दो या अधिक विशिष्ट बुनावट का कपडा, जो एक ही साथ दो या अधिक ताने या बाने से निर्मित है, जैसे दो, तीन या अधिक ऐंटनवाले सूत से बने कपडों (ply cloth) मे होता है, ग ऐसी बुनाई, जिससे बने कपड़ों में दो या अधिक ताने और बाने इस तरह से विभक्त हों कि केवल एक प्रकार का तंतुविन्यास हो, जैसा करघे से बने चित्रित पर्दे के कपड़े मे होता है। समूह (३) — इसमे रोएँदार कपड़ा आता है। तैयार वस्त्र के मूल आधार से ताने या बाने मे से इसका एक भाग निकलता है, जैसे मखमल, नकली मखमल, प्लश या रोएँदार कालीन इत्यादि। समूह (४) — इसके अंतर्गत वे सभी वस्त्र आते हैं जिनमे ताने का एक हिस्सा अंशतः या पूर्णत दूसरे हिस्से के चारों और ऐंठा जाता है, जैसे गॉज (gauze) तथा फालर में।

कपड़े की संरचना और बुनाई द्वारा उसका अलंकरण, आकल्पी द्वारा एक वर्गाकार कागज पर पहले से ही तैयार कर लिया जाता है। प्रत्येक वर्ग की खड़ी रेखा ताने का तथा क्षैतिज रेखा बाने का प्रतिनिधित्व करती है। जब दो या अधिक ताने तथा बाने कपड़ा बुनने में प्रयुक्त होते हैं, तब उनकी कार्यविधि को दर्शाने के लिये अभिकल्प मे भिन्न रंगों तथा चिह्नों का उपयोग करते हैं।

समूह १. — इस समूह के वस्त्र, सूत के रंग तथा धागों को विभक्त करने की योजना (scheme of intersecting) द्वारा प्रभावित होते हैं। इस समूह का सबसे महत्वपूर्ण वस्त्र सादा कपड़ा है, जिसमें ताने तथा बाने के सूत एक दूसरे के बराबर मोटे तथा समीप होते हैं और एकांतरतः एक दूसरे के ऊपर तथा नीचे से गुजरते हैं। इस तरह से निर्मित कपडो मे सजावट या अलकरण सामान्यतः नही होती। अलकरण के लिये ताने तथा बाने के मोटे तथा पतले धागे एकातरत. प्रयुक्त होते हैं, जिससे कपड़े की ऊपरी सतह नालीदार या झुर्रीदार हो जाती है और निचली सतह सादी ही रहती है, जैसे पॉप्लिन या ऐसा कपड़ा, जिसपर डोरियाँ उभरी हों। दुसूती बुनाई के कपड़े (twill) की अत्यधिक उपयोगिता के कारण सादा कपड़े के बाद उसका दूसरा स्थान है। दुसूती बुनाई मे तिरछे उभरे हुए चिह्न बनते हैं, जिन्हे डोरियाँ (ribs) कहते है। ये ताना तथा बाना द्वारा प्रतिच्छेदन के समय छोड़े हुए स्थान के कारण होती है। दुसूती बुनाई की बढिया या घटिया किस्म ताने बाने की विभक्तीकरण की योजना पर निर्भर रहती है। साटन या नकली साटन और ब्रोकेड की बुनाई भी इसी समूह के अंतर्गत आती है।

समूह २ — इसके अंतर्गत पृष्ठीय (backed), उत्क्रमणीय (reversible) तथा उन कपडो की बुनाई आती है जिनमे अलकरण के लिये कुछ अतिरिक्त वस्तुएँ भी लगी रहती हैं। पुरुषो के पहनने के कपड़े अधिकतर उलटी (backed) बुनावट के होते है, जिसका उद्देश्य ऊपरी सतह मे बिना कोई परिवर्तन किए पतले विन्यास के कपड़े को वजनी तथा मोटा बनाना होता है। ताने या बाने का उपयोग उलटी बुनाई मे होता है। यदि उलटी बुनाई मे ताने का उपयोग होता है, तो दो तानों की पक्तियो के साथ बाने की एक पंक्ति रहती है और यदि बाने का उपयोग होता है तो ताने की एक पक्ति तथा बाने की दो पक्तियो का उपयोग होता है। ऊपरी सतहवाली बनावट पृष्ठीय बनावट पर अध्यारोपित होती है, परतु ऊपरी सतह के धागो का नीचे वाले धागो से एक एक का, या दो एक का, अनुपात होता है। ऊपरी सतह की बुनाई मे किसी प्रकार की गड़बडी न होने देने के लिये केवल उन्ही धागों को उल्टी बुनावट (backing) मे प्रयोग करते है, जो सतहवाले धागों से छिप जाते हैं।

उत्क्रमणीय (reversible) बुनावट मे या तो विभिन्न रंगीन बानों की दो पक्तियाँ, या तानो के धागो की एक पक्ति, इस तरह से रहती है कि दोनो ओर की सतह के चित्र एक ही जैसे हो। उन कपड़ो मे जिनपर सूत के अतिरिक्त अन्य वस्तुओ (बाल, फर आदि) की सहायता से बुनने के समय चित्र बुना जाता है, ताने या बाने की दो पंक्तियाँ तथा दूसरी वस्तुओ की एक पंक्ति रहती है। इस प्रकार की बुनाई उत्क्रमणीय, या एकतरफा, बुनावट के कपड़े प्रस्तुत करती है। मिश्रित बुनावट के कपड़ों मे निश्चित रूप से दो भिन्न भिन्न विन्यास होते है, जिन्हे देखने पर ऐसा मालूम होता है मानो वे अलग अलग करघो पर बुने गए हो।

समूह ३. — इस समूह में रोएँदार वस्त्रों की बुनाई आती है। रोएँदार कपड़ों की बुनाई में ताने तथा बाने की स्थिति भिन्न होती है। ऊपर जो बुनाई के तरीके बताए गए हैं, उनमें ताने तथा बाने के धागे समांतर अनुदैर्ध्य तथा अनुप्रस्थ रेखाओं में होते हैं, परंतु रोएँदार कपड़े मे ताने तथा बाने का एक भाग कपड़े की सतह से समकोण पर स्थित होता है। इस प्रकार की बुनाई में यदि बाने के धागों की दो पंक्तियाँ होती हैं, तो एक ताने की पंक्ति के साथ आधार का दृढ विन्यास बनाती है तथा दूसरी आधार के साथ समान अंतराल पर बँधी रहती हैं, जो बाद मे एक विशेष प्रकार के चाकू से काटी जाती हैं, ताकि रोएँ तैयार हो जाएँ और बुरुश की तरह की, या गुच्छेदार रोएँ की, एक सतह तैयार हो जाय। कालीन भी इसी तरीके से बनाए जाते हैं। मखमल या नकली मखमल बनाने के लिये ताने की दो पंक्तियाँ तथा बाने की एक पक्ति का उपयोग होता है (देखें **मखमल या नकली मखमल**)।

समूह ४. — इस समूह के अंतर्गत गॉज की तरह के वस्त्र आते हैं, जिनमें ताने के धागे एक दूसरे से मिलाकर बँटे जाते हैं। इस समूह के अतर्गत झालर जैसे वस्त्रों की बुनाई आती है। इसमें ताने के धागे अनुप्रस्थ रखे जाते है, जिमसे वस्त्रो मे कसीदाकारी हो सके। इस प्रकार की बुनावट में पर्दों के लिये, या सजावट के अन्य कार्यों में प्रयुक्त होनेवाले, कपड़े भी आते है। यद्यपि इस तरह की बुनाई के कपड़े जालीदार या पतले होते हैं, तथापि इसमे जितना सूत लगा है तथा सूत की जो किस्म प्रयुक्त हुई है उसकी तुलना मे ये अधिक मजबूत होते हैं। [प्र० कु० पा०]

बुनियाद दीवार, खंभे तथा भवन और पुलों के आधारस्तंभो का भार उनकी नीव, अथवा बुनियाद द्वारा पृथ्वी पर वितरित किया जाता है। अत: निर्माण कार्य मे बुनियाद, बहुत महत्वपूर्ण अग है। अगर बुनियाद कमजोर हो, तो पूरे भवन, अथवा पुल, के भारवाहन की शक्ति बहुत कम हो जाती है। अगर बुनियाद एक बार कमजोर रह गई, तो बाद मे उसे सुधारना प्राय असभव सा ही हो जाता है। अत बुनियाद का अभिकल्प बहुत दक्षता से बनाना चाहिए।

नीव का विशेष प्रयोजन यह है कि वह ऊपर के भार को बराबर से भूमि पर इस प्रकार वितरित करे कि वहाँ की मिट्टी (अथवा चट्टान) पर उसकी भारधारी क्षमता से अधिक बोझ न पडे, नही तो मिट्टी के बैठने से भवन इत्यादि मे दरार पडने का भय रहता है। नीव के अभिकल्प के लिये विभिन्न प्रकार की मिट्टी, अथवा चट्टानों, की भारधारी क्षमता का ज्ञान आवश्यक है। निम्नलिखित सारणी मे भिन्न भिन्न प्रकार की मिट्टियों की भारधारी क्षमता दी गई है —

नोट — १. पृथ्वी की सतह से गहराई जितनी बढ़ेगी, साधारणत. मिट्टी की भारधारी क्षमता भी गहराई के हिसाब से बढ़ती जाएगी।

२. साधारणत. पानी की नमी से मिट्टी की भारधारी क्षमता कुछ कम हो जाती है। इसीलिये अधिकतर भवनों की नीव जमीन से कम से कम तीन चार फुट गहरी रखी जाती है, जिससे वर्षा में नमी का असर इस गहराई पर बहुत कम हो जाता है।

ऐसी ज़मीन की जहाँ पानी भरा रहता है, भारधारी क्षमता औसत से थोड़ी कम लेनी चाहिए। बड़े भवन तथा पुल इत्यादि के लिये मिट्टी की पूरी जाँच मिट्टी जाँचनेवाली किसी प्रयोगशाला द्वारा करा लेनी चाहिए।

सारिणी

क्रमांक	जमीन की किस्म	भारधारी क्षमता (टन प्रति वर्ग फुट)
१	काली मिट्टी	½ से ¾
२	रेतीली मिट्टी	¾ से १
३	रवेदार ककड और बालू मिश्रित मिट्टी	१½ से २
४	नम, साधारण रूप से कसी हुई मिट्टी	१ से १½
५	सूखी चिकनी मिट्टी	२ से ३
६	बहुत कडी चिकनी मिट्टी	३ से ४
७	बारीक बालुकामिश्रित मिट्टी	१ से २
८	दृढीभूत बालू (compact sand)	३ से ४
९	मोटी बालूदार मिट्टी (coarse sand)	१½ से २
१०	चट्टान	१०
११	कठोर चट्टान	१२ से १५
१२	बहुत कठोर चट्टान	२० से ३०

नींव की डिजाइन — नीव की डिजाइन में सबसे आवश्यक इसकी चौड़ाई है, जिसके द्वारा नीव पर आनेवाले कुल बोझ को वह जमीन पर इस प्रकार फैला दे कि जमीन पर भार उसकी सहनशक्ति से अधिक न हो।

अगर जमीन की भारधारी क्षमता (अथवा सहनशक्ति) 'स' है तथा कुल भार (नीव के भार को भी लेकर) नीव की प्रति फुट लंबाई पर 'भ' है, तो नींव की चौड़ाई 'च' निम्नलिखित समीकरण से निकाली जा सकती है :

$$च = \frac{भ}{स}$$

नीव की गहराई — यह रैंकिन के निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त की जा सकती है .

$$गहराई\ ग = \frac{स}{ग}\left(\frac{१ - ज्या\ \theta}{१ + ज्या\ \theta}\right)$$

इसमे स = जमीन की भारधारी क्षमता, अ = ईंट अथवा पत्थर या कंक्रीट का, जिससे नीव बनेगी, प्रति वर्ग फुट भार तथा θ = वह कोण, जिसमे मिट्टी अपने आप प्राकृतिक ढंग से हो जाती है (angle of repose of soil)।

प्राय: भवननिर्माण में उपर्युक्त सूत्र द्वारा जो नींव की गहराई आएगी, वह बहुत थोड़ी होगी। साधारण मिट्टी मे नीव अधिकतर तीन, चार फुट गहरी रखी जाती है।

साधारणत: भवननिर्माण मे तल मे चूना या सीमेंट कंक्रीट और उसके ऊपर ईंट की चुनाई की नीव में बुनियाद को फैलाने के लिये

ईंट की चुनाई के हर रद्दे में २½" का खसका छोड़कर बनाया जाता है जैसा चित्र में नीचे दिखाया गया है।

इस प्रकार की नीव के अतिरिक्त प्रबलित सीमेंट कंक्रीट (reinforced cement concrete), झँझरीदार नीव (grillage foundation), बेड़ेदार नीव (raft foundation) तथा उलटी डाट की नीव (reversed arch foundation) इत्यादि भी नीव के भिन्न भिन्न प्रकार हैं। यहाँ पर उनका पूरा विवरण देना संभव नहीं है।
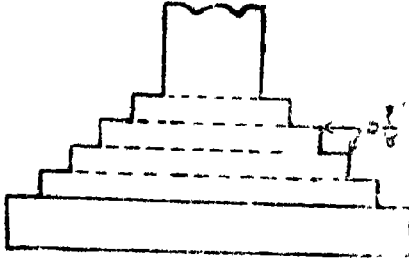
ऊँचे भवन, चिमनी तथा पुल इत्यादि की नीव रचना मे हवा, भूचाल इत्यादि द्वारा जो क्षैतिज दबाव पड़ता है उसका भी विचार करना पड़ता है।

कई मंजिलवाले भवन (sky scrapers) तथा बड़े पुल या मीनारो की नीव के लिये कुएँ तथा लट्ठो (Piles) का प्रयोग किया जाता है। लट्ठे लकडी, लोहे की धरन अथवा प्रबलित सीमेंट कंक्रीट के हो सकते है और लट्ठे ठोंकने के लिये भाप अथवा संपीडित वायु (compressed air) से चलनेवाले लट्ठा ठोकने के सयंत्रो का प्रयोग किया जाता है। [का० प्र०]

बुन्सेन ज्वालक या बुन्सेन बर्नर (Bunsen Burner) एक विशेष प्रकार का गैस ज्वालक है। गैस को जलाने से पूर्व इसमे हवा की एक निश्चित मात्रा मिलाने की युक्ति होती है। ऐसा करने के लिये इसमे एक नली रहती है, जिसके आधार के पास पार्श्व मे हवा आने के लिये छिद्र होते हैं। गैस नीचे की ओर से आती है। यदि गैस और हवा का ठीक अनुपात मे मिश्रण हो, तो यह मिश्रण जलने पर तप्त, किंतु ज्योतिहीन तथा निर्धूम ज्वाला देता है। बुंसेन ज्वाला प्राप्त करने के लिये गैस और हवा का, आयतन के अनुसार, लगभग ३.१ का अनुपात होना चाहिए। इस प्रकार की ज्वाला के भीतरी निचले क्षेत्र मे जलवाष्प, कार्बन मॉनोक्साइड, नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड तथा हाइड्रोजन का मिश्रण रहता है। ज्वाला के बाह्य दहन क्षेत्र मे गैस और नाइट्रोजन पहुँचती है। गैस हवा की अधिक मात्रा के आने पर जल उठती है। ज्वाला और धौंकनी की सहायता से संगलन, अवकरण और ऑक्सीकरण की क्रियाएँ संभव हैं। कुछ धात्विक लवण इस रंगहीन ज्वाला को विशिष्ट रंग देते हैं।

इस प्रकार के ज्वालक के आविष्कार का श्रेय बुन्सेन को दिया जाता है, परंतु बाद की खोजों से पता चला है कि इसका वास्तविक डिज़ाइन पीटर डेसगा (Peter Desdga) ने बनाया था और इनसे भी बहुत पूर्व इसी सिद्धांत पर माइकेल फैरेडे ने एक समंजनीय
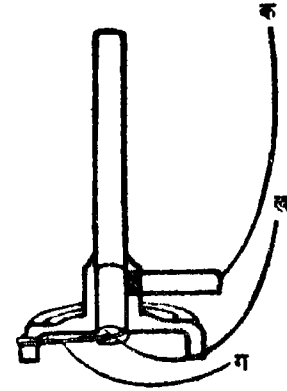
चित्र १. मार्शल का बुन्सेन ज्वालक

गैस को जलाने के पूर्व सही अनुपात मे उसके साथ वायु मिलाई जाती है, जिससे उच्च तापवाली ज्योतिहीन ज्वाला प्राप्त होती है। क. गैस, ख वायु तथा ग नियंत्रक।

ज्वालक बनाया था। बुन्सेन ज्वाला उत्पन्न करने के इस सिद्धात पर बने आज करोडो ज्वालक प्रयोगशालाओ मे काम मे आ रहे हैं।

हवा और गैस के मिश्रण और नियंत्रण की अलग अलग विधियों के कारण बुंसेन ज्वालक के अनेक भेद हो गए हैं, जिनमे ऊष्मा कम या अधिक और ज्वाला छोटी या बडी होती है। इनमे मेकर ज्वालक
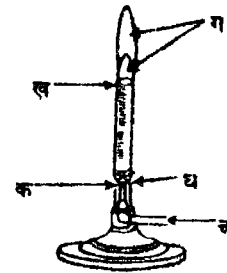
चित्र २. अन्य बुन्सेन ज्वालक

क जेट (jet), ख. तुंड, ग ज्वाला शंकु, घ. वायु-प्रवेश तथा च. गैस प्रवेश।

और फिशर ज्वालक (Fisher burner) अधिक प्रसिद्ध हैं। मार्शल ज्वालक मे (देखे चित्र १) केंद्रीय गैस जेट संबंधी त्रुटियो को दूर करने के लिये गैस को पार्श्व से और हवा को नीचे से नली मे प्रवेश कराते हैं। इसके नीचे की ओर एक नियंत्रक होता है। कोयला गैस, तैल गैस और ऐसेटिलीन गैस को जलाने के लिये भी बुन्सेन ज्वालक बनाए जाते है। [च० ला० गु०]

बुन्सेन, रॉबर्ट विल्हेल्म (Bunsen, Robert Wilhelm, १८११-१८९९ ई०) जर्मन रसायनज्ञ तथा सीज़ियम और रुबिडियम तत्वों के प्रसिद्ध आविष्कारक थे। इनका जन्म पश्चिमी जर्मनी के गटिंगेन नगर में हुआ था। यहीं के विश्वविद्यालय से इन्होंने १८३१ ई० मे स्नातक

उपाधि पाई। १८३३ ई० में ये गटिंगेन में प्राइवेट डोजो (Private Dozente) हो गए और १८३६ ई० मे कैसल मे वलर (Wohler) के स्थान पर टेकनिकल स्कूल मे नियुक्त हो गए। १८३९ ई० मे मार्बुर्ग विश्वविद्यालय मे ये ऐसोशिएट प्रोफेसर और फिर १८४१ ई० मे वही पर रसायन के प्रोफेसर नियुक्त हुए। १८४६ ई० मे ये एक वैज्ञानिक अभियान में आइसलैंड गए। इसके बाद ये एक वर्ष ब्रेसलों में अध्यापक रहकर १८५२ ई० में हाईडेलबर्ग विश्वविद्यालय मे रसायन के प्रोफेसर नियुक्त हुए। यही से १८८९ ई० मे इन्होंने ७८ वर्ष की उम्र में अवकाश ग्रहण किया।

बुन्सेन का सर्वप्रथम कार्य तो कैकोडिल मूलकों (cacodyl radicals) पर हुआ था। आर्सेनिक से तैयार किए गए प्रसिद्ध कार्बनिक यौगिको मे इस मूलक की खोज बुन्सेन ने की। कार्बनिक रसायन के क्षेत्र मे बुन्सेन का यही एकमात्र कार्य है, पर १८४६ ई० के बाद से बुन्सेन भौतिक रसायन और अकार्बनिक रसायन के विशेषज्ञ बन गए और इनके समस्त अनुसधान इन्ही क्षेत्रो मे हैं। प्रयोगों के करने मे ये बड़े दक्ष थे। केवल सैद्धातिक कार्यों मे इनकी रुचि न थी। इन्होंने एक नए प्रकार का वोल्टीय सेल बनाया, जो बुन्सेन सेल के नाम से अब भी प्रसिद्ध है। प्रयोगशालाओं मे काम आनेवाले ज्वालको या बर्नरो मे बुन्सेन बर्नर के नाम से सभी परिचित है। गैस विश्लेषण की विधियो मे भी इन्होने संशोधन प्रस्तुत किए। खनिजो के परीक्षण की शुष्क विधियाँ इन्होंने प्रचलित की, जिनमें से ज्वालापरीक्षण को विशेष महत्व मिला। जी आर. किर्खहाफ (Kirchoff) के साथ इन्होने स्पेक्ट्रम विश्लेषण पर युगानकारी कार्य आरभ किया, जिसपर आधुनिक स्पेक्ट्रम-विज्ञान की नींव पड़ी। १८३० ई० मे इनकी पुस्तक 'स्पेक्ट्रल विश्लेषण द्वारा रासायनिक विश्लेषण' विषय पर प्रकाशित हुई। इस स्पेक्ट्रम विश्लेषण द्वारा ही १८६१ ई० मे बुन्सेन रुबिडियम और सीजियम तत्वो की खोज मे सफल हुए, क्योंकि इन तत्वो के लवण स्पेक्ट्रम मे पृथक् रेखाएँ देते थे। क्षार और कोयले के सयोग से १८४७ ई० मे बुन्सेन ने सायनाइड भी तैयार किया था। बुन्सेन न केवल प्रसिद्ध अनुसधान कर्ता थे, अपितु वे सफल अध्यापक भी थे। [सत्य० प्र०]

बुरंजी अहोम राज्य सभा के पुरातत्व लेखो का सकलन बुरंजी मे हुआ है। आरभ मे अहोम भाषा मे इनकी रचना होती थी, कालातर मे असमिया भाषा इन ऐतिहासिक लेखो की माध्यम हुई। इसमे राज्य की प्रमुख घटनाओ, युद्ध, सधि, राज्यघोषणा, राजदूत तथा राज्यपालो के विविध कार्य, शिष्टमंडल का आदान प्रदान आदि का उल्लेख प्राप्त होता है — राजा तथा मत्री के दैनिक कार्यो के विवरण पर भी प्रकाश डाला गया है। असम प्रदेश मे इनके अनेक बृहदाकार खड प्राप्त हुए है। राजा अथवा राज्य के उच्चपदस्थ अधिकारी के निर्देशानुसार शासनतत्र से पूर्ण परिचित विद्वान् अथवा शासन के योग्य पदाधिकारी इनकी रचना करते थे। घटनाओ का चित्रण सरल एव स्पष्ट भाषा मे किया गया है, इन कृतियो की भाषा मे अलकारिकता का अभाव है। सोलहवीं शती के आरंभ से उन्नीसवी शती के अत तक इनका आलेखन होता रहा। बुरंजी राष्ट्रीय असमिया साहित्य का अभिन्न अग है। गदाधर सिंह के राजत्वकाल में पुरनि असम बुरंजी का निर्माण हुआ जिसका संपादन हेमचंद्र गोस्वामी ने किया है। पूर्वी असम की भाषा मे इन बुरजियों की रचना हुई है।

सं० ग्रं० — हरकात बरूआ, असम बुरंजी; दंडधाई असम बुरंजी; ढुंगखुंगिया बुरंजी; कछारी बुरंजी, जयतिया बुरजी; त्रिपुरा बुरजी, असम बुरजी; पुरनि असम बुरंजी। [ला० शु०]

बुरहानपुर स्थिति : २१° १८' उ० अ० तथा ७६° १४' पू० दे०। यह भारत के मध्य प्रदेश राज्य में पूर्वी निमाड जिले का एक नगर है जो रेलवे लाइन के किनारे, बंबई से पूर्व मे लगभग ३१० मील की दूरी पर स्थित है। इसके दक्षिणी भाग से होकर ताप्ती नदी बहती है। इस नगर की स्थापना १४०० ई० मे नासिर खाँ द्वारा की गई थी। यह कपास के निर्यात का एक केंद्र है। कपास साफ करने के कारखाने हैं। यहाँ के लोगों के हस्तकला उद्योगों में सोने चाँदी के तारो से काम किये हुए रेशमी कपड़ों का उत्पादन प्रमुख है। अन्य लघु उद्योगों मे सजानेवाले फ्रास्टेड शीशे के रंगीन ग्लोबो का उत्पादन महत्वपूर्ण है। इसकी जनसंख्या ८२,०९० (१९६१) है। [रा० स० ख०]

बुर्सा (Bursa) १. प्रात, यह उत्तर-पश्चिमी टर्की का एक प्रात है। इसका क्षेत्रफल ५,२४३ वर्ग मील तथा जनसख्या ६,५६,०९९ (१९६०) है। यहाँ का जलवायु मृदु (mild) है। जनवरी सर्वाधिक ठंढा माह है तथा वार्षिक औसत वर्षा २५ से ३५ इंच होती है। कृषि मे सब्जियाँ, खाद्यान्न, कपास, तंबाकू, पोस्ता तथा तिलहन प्रमुख है।

२ नगर, स्थिति : ४०° १५' उ० अ० तथा २९° ५' पू० दे०। यह नगर मारमारा सागर पर स्थित मुडान्या बंदरगाह से १८ मील दक्षिण-पूर्व स्थित बुर्सा प्रात की राजधानी है। इसकी जनसख्या १,५३,५७४ (१९६०) हैं। धनी एवं कृषिप्रधान क्षेत्र का केंद्रीय बाजार है। यहाँ का रेशम, कालीन और ऊन का उद्योग तथा सोने चाँदी का काम उन्नति पर है। तेल, फल और शराब का व्यापार होता है। इस नगर को आग एव भूचाल ने बडी क्षति पहुँचाई है। यहाँ अनेक सुदर प्राचीन मस्जिदें हैं जिनमे से ग्रीन मस्जिद और बेजाजित प्रथम की मस्जिद विशेष उल्लेखनीय है। इस नगर को ब्रुसा (Brusa) भी कहा जाता है। गरम जल के सोते तथा ओलंपस पर्वत पास में होने के कारण भ्रमणार्थी अधिक आते हैं। [श्रीकृ० चं० ख०]

बुर्हानुद्दीन गरीब अर्थात् शैख मुहम्मद बिन नूरुद्दीन मुहम्मद, शैख जलालुद्दीन अहमद नुमानी हाँसवी के भांजे और शैख निजामुद्दीन औलिया के पट्ट शिष्यों और खलीफाओ मे थे। ६५४।१२५६ मे हाँसी मे जन्म हुआ। प्रारंभिक वर्ष हाँसी मे बिताए, तत्पश्चात् शिक्षा प्राप्त करने के लिये दिल्ली गए और यहाँ फ़िक़ह, उसूल और अरबी का अध्ययन किया। तदुपरांत शैख निजामुद्दीन औलिया से दीक्षित हुए और उनके जीवनकाल तक यही रहे। उन्होंने उस समय देवगिरि के लिए प्रस्थान किया जब १३२७ ई० मे मुहम्मद बिन तुगलक ने दिल्ली के सूफियों, उलिमा और अन्य व्यक्तियों को अपनी नवीन राजधानी

दौलताबाद में जाकर बसने और इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिए बलपूर्वक भेजा था। इस समय वह बूढ़े हो चले थे। देवगिरि में वह जीवन के अंतिम समय तक रहे। इसमें संदेह नही कि उन्होंने दकन में इस्लाम धर्म और इस्लामी संस्कृति के प्रसार मे प्रशंसनीय कार्य किया और भारी संख्या में ऐसे शिष्य बनाए जिन्होने उनके स्वर्गवास के उपरांत इस कार्य को आगे बढ़ाया। हम्माद बिन इमाद काशानी ने उनके 'मल्फ़ूज़ात' को अहसनुल अक़वाल के नाम से संगृहीत किया था। इसके अध्ययन से मालूम होता है कि वह अपने शिष्यों के आध्यात्मिक शिक्षण के लिए कितने प्रयत्नशील थे। समा (सूफी संगीत) के प्रति उनकी अत्यधिक अभिरुचि थी तथा विशेष रूप से संगीत सुनते और आनंदमग्न होकर नाचते भी थे। उनके संगीत के सभासद 'बुर्हानी' कहलाते थे। बुर्हानपुर नगर उन्हीं के नाम पर बसाया गया था क्योंकि उन्होंने नसीरुद्दीन फ़ारूक़ी (८०१-८४१।१३६६-१४३७) को सिंहासनारूढ़ होने का आशीर्वाद दिया था। इस वंश के शासक उनमे बड़ी आस्था रखते थे और उनकी समाधि से जागीर लगा दी थी। वार्षिक उत्सव के समय दूर दूर से आस्थावान् दर्शनार्थी आते थे। अब इस अवसर पर वहाँ मेला लगता है। उनकी समाधि के घेरे मे सम्राट् औरंगजेब और निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह प्रथम की भी कब्रें हैं। दारा शिकोह भी उनकी समाधि पर गया था। ११ सफर ७३५।८ सितंबर, १३३७ अथवा ७४१।१३४०-४१ मे उनकी मृत्यु हुई।

सं० ग्रं० — मुहम्मद किर्मानी सेरुल औलिया (दिल्ली) २७६-२८२; अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी : अख़्बारुल अख़ियार (उर्दू अनुवाद, करांची, १६६३) १७३-१७५; दारा शिकोह : सफ़ीनतुल औलिया (उर्दू अनुवाद, करांची, १६६१) पृ० १३६; मौलवी गुलाम सर्वर : ख़ज़ीनतुल अस्फ़िया (नवलकिशोर) १,३४६-३२८; मुहम्मद क़ासिम हिन्दू शाह फ़रिश्ता : तारीख़ें फरिश्ता (मूल ग्रंथ) (नवल किशोर) (मकाला शशुभ) २७६, मकाला दुआज़्दहुम, ४००-४०१, मुहम्मद गौसी मंदवी : गुलज़ारे अब्रार (उर्दू अनुवाद, आगरा; १३२६) ६०, शैख मुहम्मद इक्राम आबे कौसर (करांची १६५२) ४१२-४१४, खलीक अहमद निज़ामी : तारीख़ें मशायख़ें चिश्त (दिल्ली, १६५३), २०४-२०६, एनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम (न्यू एडीशन, लदन, १६६०) १, १३२८-१३२६)। [मु० उ०]

बुलंदशहर १. जिला, स्थिति : २८° २८' उ० अ० तथा ७७° ५८' पू० दे०। यह भारत मे उत्तर प्रदेश राज्य के ठीक पश्चिम मे स्थित है। पूर्व मे गगा नदी व पश्चिम में यमुना नदी इसकी सीमा बनाती है। इसके उत्तर मे मेरठ तथा दक्षिण मे अलीगढ़ जिले हैं। पश्चिम मे राजस्थान राज्य पड़ता है। इसका क्षेत्रफल १,८८७ वर्ग मील तथा जनसंख्या १७,३७,३६७ (१६६१) है। यहाँ की भूमि उर्वर एवं समतल है। गगा की नहर से सिंचाई और यातायात दोनों का काम लिया जाता है। निम्न गंगा नहर का प्रधान कार्यालय नरोरा स्थान पर है। वर्षा का वार्षिक औसत २६ इच रहता है। पूर्व की ओर पश्चिम से अधिक वर्षा होती है। कहीं कहीं मिट्टी मे रेह होने से ऊसर बन गए हैं। कुछ स्थानों पर अहीर तथा जाटों के परिश्रम से भूमि कृषि योग्य कर ली गई है। यहाँ की मुख्य उपजें गेहूँ, चना, मक्का, जौ, ज्वार, बाजरा, कपास एवं गन्ना आदि हैं। सूत कातने, कपड़े बनाने का काम जहाँगीराबाद में, बरतनों का काम खुर्जा, लकड़ी का काम बुलंदशहर व शिकारपुर मे होता है। काच से चूड़ियाँ, बोतलें आदि भी बनती हैं। करघे से कपड़ा बुना जाता है। अनूपशहर, खुर्जा, बुलंदशहर प्रमुख नगर हैं। यातायात का काफी विकाश हो गया है।

२. नगर, स्थिति : २८° १५' उ० अ० तथा ७७° ५२' पू० दे०। यह बुलंदशहर जिले के ठीक मध्य मे ग्राड ट्रंक रोड पर, चोला स्टेशन से १० मील पूर्व की ओर, काली नदी के पूर्व मे स्थित है। यह एक व्यापारिक शहर है, जो जिले के बाजार का केंद्र भी है। इसकी जनसंख्या ४४,१६३ (१६६१) है। इसका प्राचीन नाम बरन था। [र० चं० दु०]

बुलडोज़र मिट्टी को इधर से उधर हटानेवाली मशीनें हैं। लगभग सन् १६२४ से निर्माण कार्य शीघ्रतापूर्वक करने मे ये मशीनें सहायक होती रही हैं। अनेक प्रकार के कठिन काम करने मे इनका उपयोग हो सकता है।

बुलडोज़र का प्रमुख अवयव इस्पात का बना हुआ एक फल होता है, जो ढकेलता है और काटता है। यह एक इस्पात के ढाँचे मे लगा है तथा यह ढाँचा एक कर्षित्र (ट्रैक्टर) के ढाँचे मे कील से जुड़ा रहता है। कर्षित्र मे रबर टायर के भारी पहिए, या सगल पहिएदार माला (निरतर पट्टी चक्र, caterpillar tracks), लगे रहते हैं। फल आकार मे वक्र चंद्रमा सा होता है और कर्षित्र की चाल की दिशा से समकोण बनाता हुआ लगाया जाता है। कर्षित्र की अश्वशक्ति ६५ से १६० तक तथा फल की लबाई ८ से ११ फुट तक होती है। जब फल का समंजन इस प्रकार किया जा सके कि वह कर्षित्र की चाल की दिशा तथा क्षैतिज रेखा के साथ कोई भी कोण बना सके, तो मशीन कोणडोज़र कहलाती है।

इस मशीन से मिट्टी, गिट्टी, रोड़े, गोलाश्म (boulders) आदि के ढेर खिसकाए और समतल किए जाते है। यह नालियाँ भरने और ठोस भूमि काटकर बराबर करने के भी काम आती है। इससे सड़क के स्तर निर्माण के लिये कटाई और निर्माणस्थल की सफाई भी की जाती है। बाल उखाड़ने, पेड़ों तथा ऐसी ही अन्य बाधाएँ हटाने के लिये इसका उपयोग होता है। इस प्रकार इससे किए जानेवाले कार्यो की विविधता महत्वपूर्ण है।

कोणडोज़र सड़क में ढाल बनाने तथा उसके मध्य मे उभार देने के काम आता है और इसके फल को क्षैतिज करके इससे मिट्टी भी हटाई जा सकती है। पहाड़ी की एक तरफ मे कटाई करने के लिये कोणडोज़र आदर्श मशीन है।

जब डपर या लारियाँ ढेर की ढेर मिट्टी आदि उलटती है, तब उसे फैलाकर बराबर करने के लिये बुलडोज़र सबसे अधिक सुविधाजनक मशीन है। इसी प्रकार ये सड़कों तथा बाँधो के लिये भराव करने मे उपयोगी होते हैं। यदि फासला २०० फुट से अधिक हो, तो बिना डपर या लारी की सहायता के ही डोज़र से भराई की जा सकती है। काम अच्छा और सस्ता करने के लिये, इसके चलाने में निपुणता तथा अभ्यास होना अनिवार्य है। पहाड़ो मे काम करते समय जहाँ तक सभव हो, डोज़र का प्रयोग मिट्टी नीचे की ओर ढकेलने के लिये करना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार काम अधिक होता है और सस्ता

बुलडोजर (देखें पृष्ठ १२०)
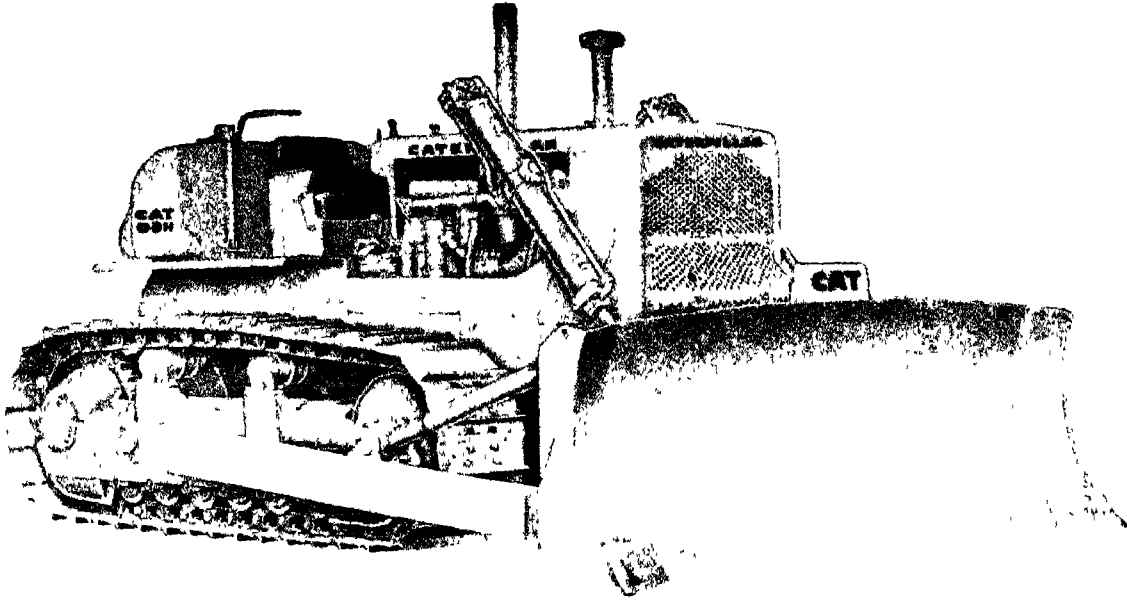
संगलोवार पहियोंवाले ट्रैक्टर के साथ बुलडोज़र
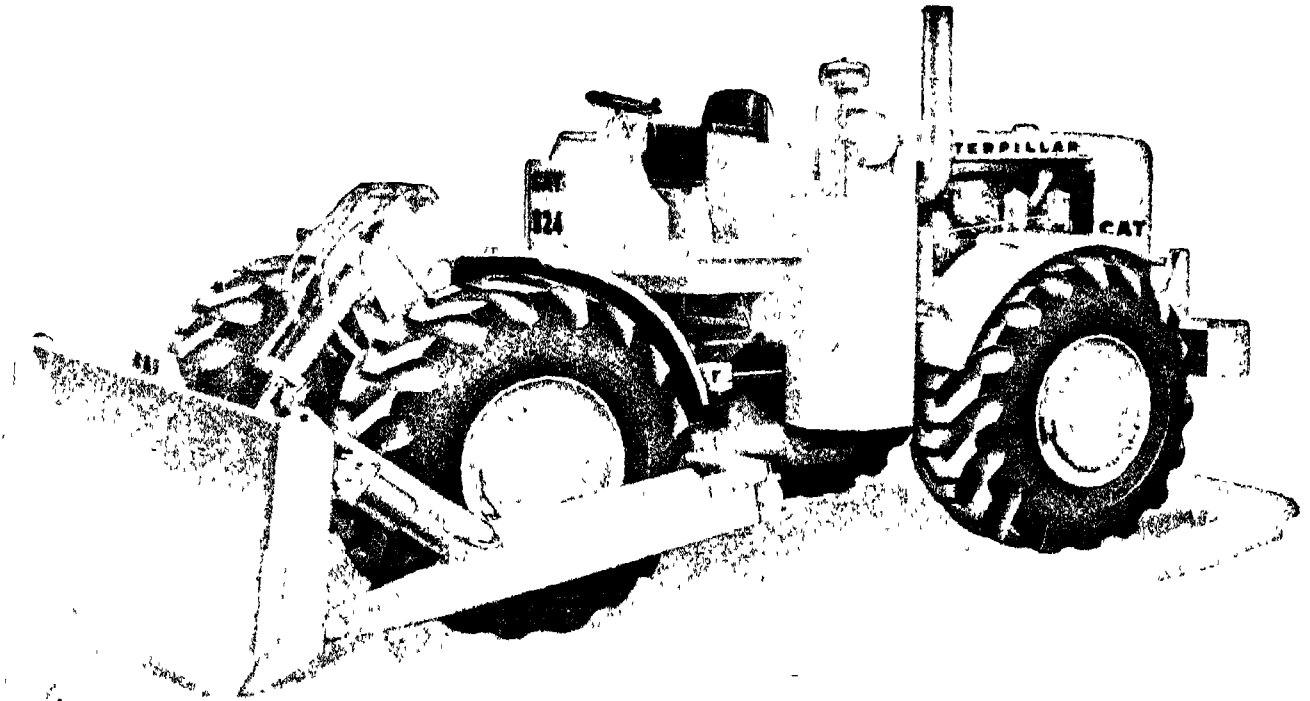
भारी टायर के पहियोंवाले ट्रैक्टर के साथ बुलडोज़र

बेरूत (देखें पृष्ठ ३५२)

बेरूत का बंदरगाह

समुद्र से रास बेरूत का दृश्य

बेरूत का [illegible]
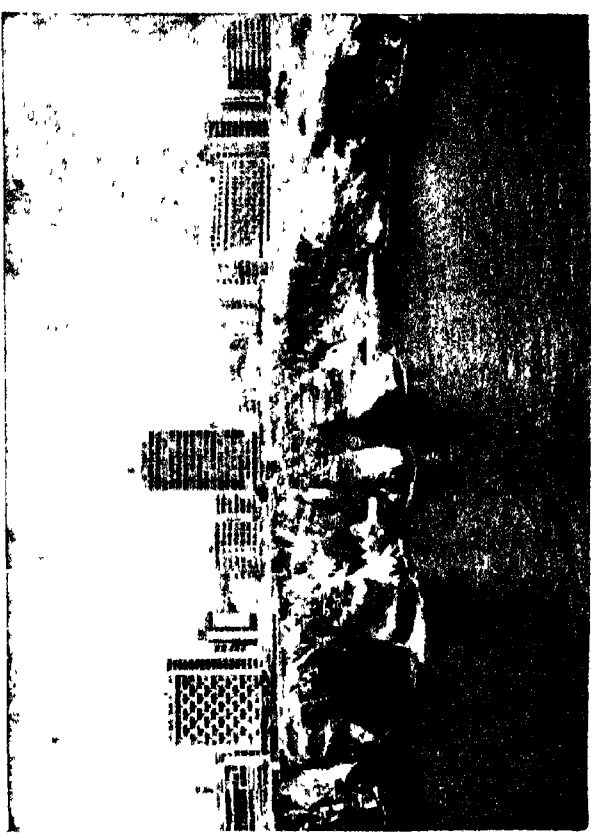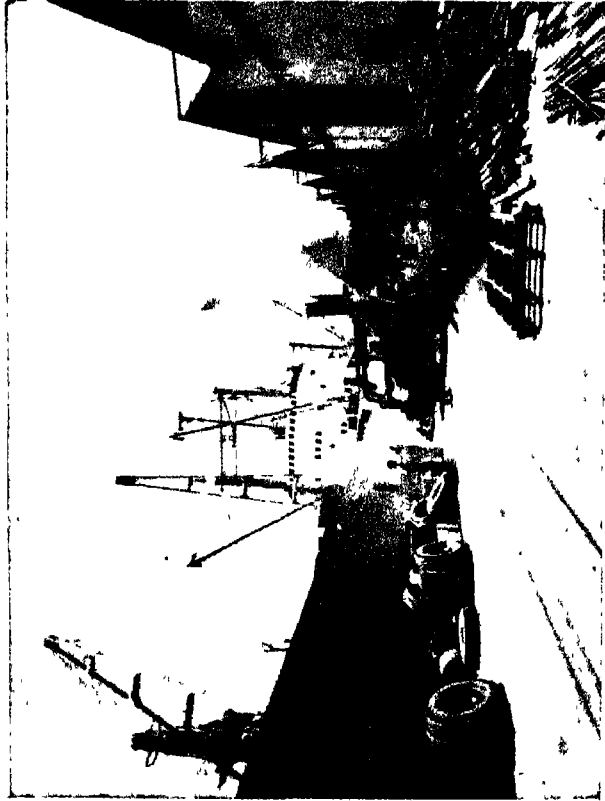
भी पड़ता है। स्थान समतल करने के लिये फल नीचा करके कर्षित्र उलटा चलाया जाता है। मिट्टी आगे खिसकाने के लिये फल का समंजन इस प्रकार करना चाहिए कि मशीन चलाने में न अवरोध हो, और न संगलमाला (tracks) ही फिसले। [ज० मि० श्रे०]

बुलबुल शाखाशायी गण के पिकनोनॉटिडी कुल (Pycnonotidae) का पक्षी है, जो प्रसिद्ध गायक पक्षी 'बुलबुल हजारदास्ताँ' से एक दम भिन्न है। ये कीड़े मकोड़े और फल फूल खानेवाले पक्षी हैं। ये अपनी मीठी बोली के लिये नहीं, बल्कि लड़ने की आदत के कारण शौकीनों द्वारा पाले जाते हैं। ये कलछौंह भूरे मटमैले या गंदे पीले और हरे रंग के पक्षी हैं, जो अपने पतले शरीर, लंबी दुम और उठी हुई चोटी के कारण बड़ी आसानी से पहचान लिए जाते है। इनकी कई जातियाँ हमारे देश मे मिलती हैं, जिनमे 'गुलदुम बुलबुल' सबसे प्रसिद्ध है। इसे लोग लड़ाने के लिये पालते है और पिंजड़े में नहीं, बल्कि लोहे के एक टी (T) शक्ल के चक्कस पर बिठाए रहते हैं। इनके पेट में एक पेटी बाँध दी जाती है, जो एक लंबी डोरी के सहारे चक्कस में बँधी रहती है।

भारत मे पाई जानेवाली बुलबुल की कुछ प्रसिद्ध जातियाँ निम्नलिखित हैं: १ गुलदुम (red vented) बुलबुल, २. सिपाही (red whiskered) बुलबुल, ३ मछरिया (white browed) बुलबुल, ४. पीला (yellow browed) बुलबुल तथा ५. काँगडा (white checked) बुलबुल। [सु० सिं०]

बुल्डाना १ जिला, भारत के महाराष्ट्र राज्य का एक जिला है। इसके पूर्व मे अकोला, दक्षिण-पूर्व मे परभणी, दक्षिण-पश्चिम मे औरंगाबाद, पश्चिम मे जलगाँव तथा उत्तर मे मध्य प्रदेश राज्य का पूर्वी निमाड जिला है। इसका क्षेत्रफल ३,७५१ वर्ग मील तथा जनसख्या १०,५६,६६८ (१९६१) है। यहाँ की जलवायु साधारण, नम तथा गरम है। वर्षा का औसत २० से ३० इंच रहता है।

२ नगर, स्थिति : २०° ३२' उ० अ० तथा ७६° १४' पू० दे०। बुल्डाना जिले का प्रमुख नगर है। इसकी सागर तल से ऊँचाई २,१९० फुट है। इसके निकट ही पेनगगा नदी बहती है। जिले का यह सबसे ठढा व मनोहारी स्थल है। यहाँ की जनसंख्या १५,९८५ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

बुल्लेशाह, सैयद, मीर, (१६८०–१७५३ ई०) पजाब के सर्वप्रसिद्ध सूफी फकीर और कवि। जन्मस्थान पंडोक, इलाका लाहौर। पिता का नाम मुहम्मद दरवेश। कसूर (जिला लाहौर) में रहकर सूफी औलियाओं से शिक्षा ग्रहण की और वहीं अपनी साधना पूरी की। लाहौर आकर सूफी वली हजरत शाह इनायत को अपना गुरु (पीर) बनाया। गुरु मौन व्रत में विश्वास रखते और ये हाल मे आकर मसूर की तरह चिल्लाते, गाते और नाचते थे। इस पर गुरु ने इन्हे निकाल दिया। गुरु के विरह में इन्होंने अनेक मर्मस्पर्शी काफियाँ लिखीं। इनकी श्रद्धा, दृढता, तल्लीनता और भावुकता देखकर गुरु ने इन्हे पुनः अंगीकार कर लिया। पीर की मृत्यु के उपरात ये ३० वर्ष गद्दी पर रहे। इनायत शाह की गुरुपरंपरा शाह मुहम्मद गौस ग्वालियरी से जा मिलती है। ये कादिरी शत्तारी संप्रदाय के नेता थे।

बुल्लेशाह की गणना पंजाबी साहित्य के महान् कवियों में होती है। इन्होंने काफियाँ, सीहर्फियाँ, चौबैतियाँ, गंढाँ, दोहड़े, अठवारा बारहमाह आदि अनेक विधाओं में काव्यरचना की। इनकी सर्वाधिक ख्याति काफियों के कारण है जो पंजाब के शिक्षित, अशिक्षित, सिक्ख, हिंदू, मुसलमान सभी वर्गों में प्रचलित हैं। काफियाँ कबीर और नानक ने भी लिखी हैं और बाद के कवियों ने अनुकरण किया; किंतु बुल्लेशाह की काफियों की सी संगीतात्मकता, विषय और शैली की स्पष्टता, प्रखरता और प्रभावोत्पादकता, उनका घरेलू वातावरण, भाषा का ठेठपन और चुटीलापन अन्यत्र दुर्लभ है। इनमें वैराग्य, प्रेम, तौहीद (एकेश्वरवाद), तरीकत (उपासना), मार्फत (सिद्धि) और मानवतावाद का स्वर स्पष्ट है। इनकी अन्य कृतियों में भाषा का हिंदवी रूप भी प्राप्त होता है। बुल्लेशाह बहुत पढ़े लिखे नही जान पडते। उनका कहना है कि 'अलिफ' से अल्लाह मिल जाता है; और उसके आगे चलने की आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है। बुल्लेशाह की कृतियाँ विशेषतया ढाडी चारणों और कव्वालों के पास है। कुछ संग्रह प्रकाशित हुए हैं, पर वे अधूरे हैं।

सं० ग्रं० अनवर रोहतकी : कानूने इश्क, लाहौर; मुफ्ती सरवर लाहौरी : खजीनातुल आसफिया; बुल्लेशाह, पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर, १९३०। [ह० बा०]

बुश्मन भाषाएँ दे० 'अफ्रीकी भाषाएँ'।

बूर्सिगो, ज्हाँ बैप्तिस्त (जोजेफ दिउदोने) (सन् १८०२–१८८७) फ्रांसीसी कृषि वैज्ञानिक का जन्म पैरिस मे हुआ। प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात् इन्होंने सेंट एटीन स्थित माइनिंग स्कूल में वैज्ञानिक एवं रासायनिक दक्षता प्राप्त की। २० वर्ष की ही उम्र मे इन्हे दक्षिणी अमरीका में उत्खनन इंजीनियर का पद प्राप्त हुआ, जहाँ १० वर्षों से अधिक समय तक रहे और भूविज्ञान, खनिज विज्ञान आदि पर अनेक शोध निबंध लिखे। साथ ही कृषि संबंधी अनेक निरीक्षण भी करते रहे। फ्रांस लौटने पर कुछ समय तक लीओ मे रसायन शिक्षक रहे। अपनी पत्नी के कारण ऐल्सेस के पास बेशेलब्रान में भूमि संपत्ति के प्रति रुचि बढी, तो इस भूमि पर इन्होने क्षेत्रपरीक्षण प्रारभ कर दिए। ये प्रयोग बीजो के उगते समय उनकी संरचना, पौधों द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्वांगीकरण, फसलों के हेरफेर, उर्वरकों के उपयोग, बाड़े की खाद की सुरक्षा, दुग्ध के उत्पादन एवं उसकी संरचना पर चारे के प्रभाव तथा कृषि संबंधी अन्य व्यावहारिक विषयों से संबद्ध थे। इन क्षेत्रप्रयोगों के साथ साथ इन्होंने नियंत्रित दशा मे प्रयोगशाला में भी ऐसे ही प्रयोग किए और प्राप्त परिणामों को सन् १८३६ के पश्चात् लगातार "एनाल्स द शिमी ए द फिजीक" (Annales de chimic et de physique) में प्रकाशित करते रहे। बूर्सिगों के इन परिणामों के प्रकाशन के साथ ही कृषिरसायन के क्षेत्र में नवीन युग का सूत्रपात हुआ। यही कारण है कि सर जॉन रसेल ने (सन् १९३६) इन्हें ऐसी विधि का जनक कहा है जिसके द्वारा नवीन कृषिविज्ञान का प्रारंभ हुआ।

इस पुस्तक में इन्होंने मिट्टियों, पौधों, उर्वरकों, फसलों के

हेरफेर, पशुओं के चारों, पशुपालन, जलवायु, वायुमंडल इत्यादि के संबंध में विस्तार से वर्णन किया है। इन्होंने ही पहले पहल प्रयोग करके सिद्ध किया कि द्विदलीय फसलों के बोने से मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है तथा गेहूँ, जई सदृश फसलों के बोने से नाइट्रोजन की मात्रा की वृद्धि नही होती।

इन्होंने जानवरों को दिए गए चारे तथा मलमूत्र के विश्लेषणों द्वारा स्वांगीकृत नाइट्रोजन का पता लगाया और इस प्रकार बचत तालिका (balance sheet) प्रणाली को जन्म दिया। कंपोस्ट बनाने के संबंध में भी इनके विचार अत्यंत सारगर्भित थे। नाइट्रोजन ही कंपोस्ट का प्राण है, अतः उसे पानी मे घुलने से बचाने का पूरा प्रयत्न होना चाहिए।

सन् १८४८-१८५२ तक राजनीतिक जीवन बिताने के पश्चात्, ये पुनः अध्यापन एवं शोधकार्य में लग गए। इन शोधों के विवरण सन् १८६० से १८८४ के बीच प्रकाशित "ऐग्रोनोमी, शिमी ऐग्रिकोल एट फ़िजिऑलोजी" (Agronomie, chimie Agricole et physiologie) के सात खंडों में प्रकाशित हुए। [शि० गो० मि०]

बुसी (१७१८–१७८५ ई०) बुसी फ्रास का यशस्वी सेनानायक तथा सफल कूटनीतिज्ञ था। प्रथम कर्नाटक युद्ध के समय वह लाबूर्दने के साथ पॉडिचेरी पहुँचा। अंबर के युद्ध (१७४८) मे वह डूप्ले का विश्वासपात्र बना।

डूप्ले की साम्राज्य-निर्माण-योजना कार्यान्वित करने मे बुसी ने विशेष कौशल दिखाया। इससे भारत में फ्रांसीसियों की प्रतिष्ठा बढ़ी। १७५० मे जिजी की विजय बुसी की पहली सफलता थी। १७५१ में पाँडिचेरी से औरंगाबाद तक उसका प्रयाण तथा मार्ग में मुजफ्फरजग की मृत्यु के बाद सलाबतजंग को निजाम घोषित करके आंतरिक तथा बाह्य शत्रुओं से उसे सुरक्षित बनाना उसकी बड़ी सफलता थी। इससे दक्षिण भारत मे फ्रासीसियो की धाक जम गई, सैनिक खर्च के लिये उन्हे उत्तरी सरकार के जिले मिले, डूप्ले को कृष्णा नदी के दक्षिण के प्रदेश की सूबेदारी मिली; तथा अंग्रेजों की सभी चालें विफल हुईं।

तृतीय कर्नाटक युद्ध के समय बुसी को हैदराबाद से वापस बुलाया गया। फलतः फ्रांसीसी प्रभाव वहाँ से जाता रहा तथा उत्तरी सरकार प्रदेश उनसे छिन गया। मद्रास के घेरे तथा वाडीवाश के युद्ध मे बुसी ने लैली को हार्दिक सहायता दी। सन् १७६० ई० मे अग्रेजो ने उसे बंदी बना लिया और संधि हो जाने पर फ्रास भेज दिया।

सन् १७८३ ई० मे वह पुनः भारत आया और कुदालोर मे उसने अंग्रेजो से रक्षात्मक युद्ध किया। युद्ध समाप्त होने पर उसे भारत में फ्रासीसियो का भविष्य निराशाजनक प्रतीत हुआ। १७८५ में उसका देहांत हो गया। [ही० ला० गु०]

बुस्तानी, अल (१८१९–८३) : मेरन जाति का लेबनानी साहित्य पंडित। अमरीकी मिशनरियों के संपर्क में आकर वह ऐबे मे अध्यापक हुआ। उसने अली स्मिथ के बाइबिल के अरबी अनुवाद में सहायक का कार्य किया। इसके लिये उसको इब्रानी, यूनानी, सीरियाई और लैटिन भाषाएँ भी सीखनी पड़ी। वह अंग्रेजी, फ्रांसीसी और इतालीय भाषाओं का भी विद्वान् था। उसने एक विस्तृत अरबी शब्दकोश का भी संपादन किया। उसका दूसरा संपादित ग्रंथ 'दायरात अल-म-आरिफ' (विश्वकोश) भी बहुत प्रसिद्ध है। १८६० में, मुसलमानों और ईसाइयो के बीच गृहयुद्ध के दौरान अपने पत्र 'नफीर सूरीया' के माध्यम से सद्भावना और सुमति का सदेश प्रचारित किया। अपने जीवन भर बुस्तानी सहिष्णुता और देशभक्ति के मूल्यो का प्रचार करता रहा।

बूँदी १ जिला, यह भारत के राजस्थान राज्य का एक जिला है, जो आठवी शती से भारत के स्वतंत्र होने के दो वर्ष बाद तक हाडा वंशीय नरेशो के अधीन देशी राज्य था। इसके उत्तर में टोंक, पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व मे कोटा, पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम मे भीलवाडा जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल २,१४८ वर्ग मील तथा जनसंख्या ३,३८,०१० (१९६१) है। कृषि मे मक्का, ज्वार, मूँग, गेहूँ, जौ, चना एवं तिलहन आदि उगाए जाते हैं। खनिजो में कही कही चूना पत्थर प्राप्त किया जाता है।

२ नगर, स्थिति २५° ३०' उ० अ० तथा ७५° ४५' पू० दे०। बूंदी जिले का प्रमुख नगर एव शासन का केंद्र है। इसका नाम बूदा नामक एक कबीला सरदार के नाम पर पडा है। यह अजमेर नगर से लगभग १०० मील दक्षिण पूर्व मे स्थित है तथा दर्शनीय स्थल है। यहाँ का मुख्य बाजार शहर की सपूर्ण लबाई मे फैला हुआ है। यहाँ के राजमहल से और ऊपर तारागढ नामक किला है और यहाँ की पहाडी का स्पर (spur) एक बडे सुदर छतरी का काम करता है जिसे सूरज (sundome) कहते है। इनके अतिरिक्त उत्तर-पश्चिम मे फूलसागर, उत्तर-पूर्व मे जेतसागर (इसके किनारे सुखमहल है) एवं सार बाग आदि दर्शनीय स्थल हैं। नगर की जनसंख्या २६,४७८ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

बूकारेस्ट (Bucharest) स्थिति ४४° २५' उ० अ० तथा २६° १०' पू० दे०। डिबॉवीत्सा नदी के किनारे, दक्षिणी रोमानिया मे स्थित रोमानिया की राजधानी है। इसकी जनसंख्या १२,२६,१३५ (१९६१) है। यह व्यापारिक महत्व का नगर है। आधुनिक इमारतें, पार्क, चौडी सडकें, विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा गिरजाघर आदि के कारण इसे पूर्वी पैरिस कहा जाता है। यहाँ आटा पीसने, मिट्टी का तेल साफ करने, चमड़ा कमाने, कपडा बुनने, रसायनक, साबुन, कागज तथा औजार बनाने के उद्योग होते है।

बूगैंडा (Buganda) स्थिति . २° ५३' द० अ० तथा २९° १४' पू० दे०। यह युगैंडा (पूर्वी अफ्रीका) का एक प्रात है जो आंग्ल रक्षित राज्य के दक्षिण-मध्यवर्तीय भाग को घेरे हुए है और टैंगैन्यीका झील इसकी दक्षिणी सीमा बनाती है। इसकी राजधानी कपाला है। १९६२ ई० मे यह ब्रिटिश रक्षित राज्य से पूर्णत स्वतंत्र हो गया है। इसका क्षेत्रफल लगभग २५,६३१ वर्ग मील तथा जनसख्या १८,८१,१४९ (१९५९) है। मुख्य निवासी बूगैंडा नीग्रो हैं जो बंटू भाषा बोलते है। यहाँ पर घने जगल है जिनमे उष्णकटिबधीय जीवजंतु तथा वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। ऊँचे क्षेत्रों मे कपास पैदा की जाती है जो मुख्य व्यापारिक फसल है। [श्रीकृ० चं० ख०]

बूकारेस्ट (पृ० ३३२)
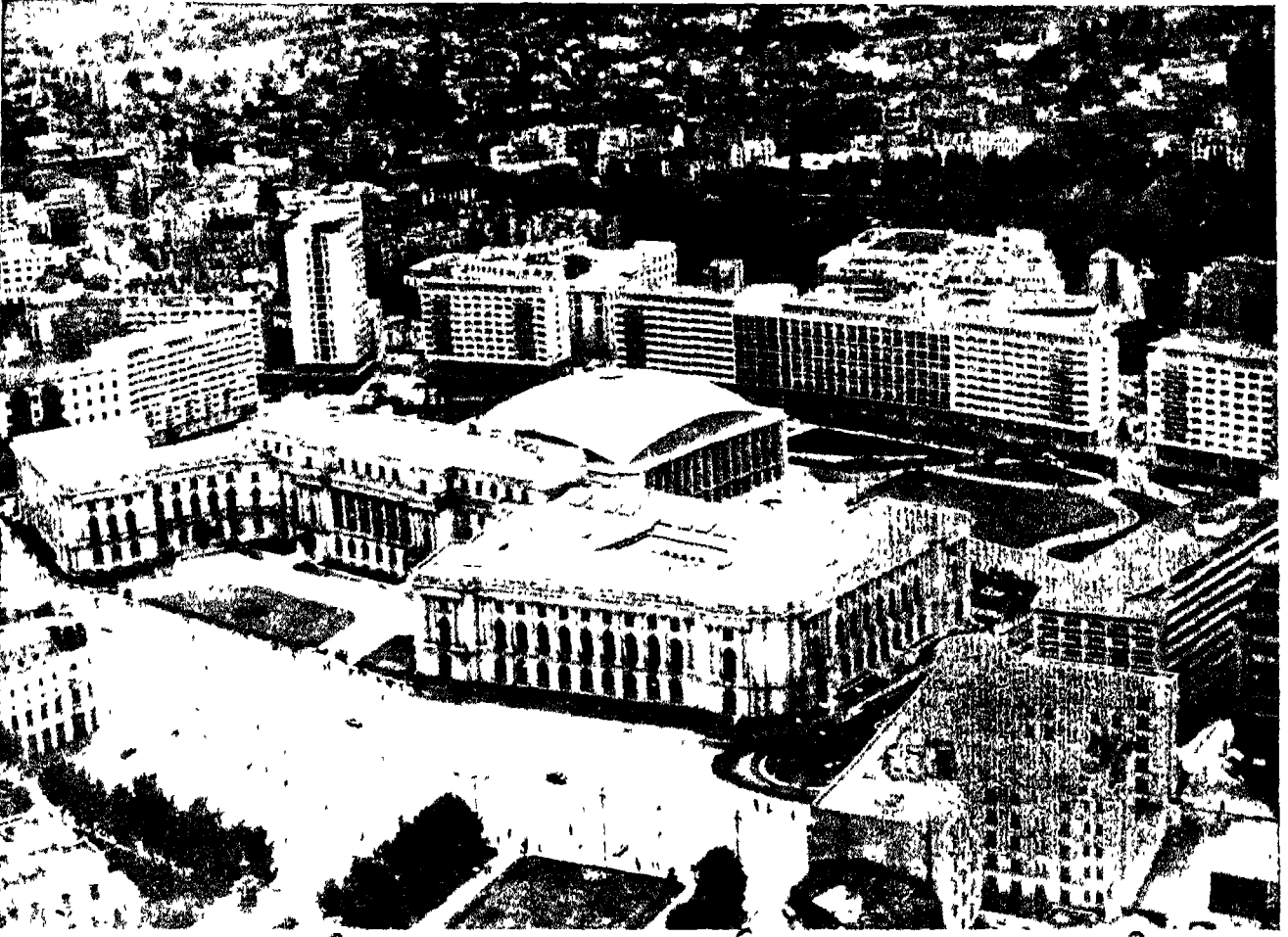
[फोटो : रोमानियाई दूतावास, नई दिल्ली के सौजन्य से]

रिपब्लिक स्क्वायर

[फोटो · रोमानियाई दूतावास, नई दिल्ली के सौजन्य से]

बूकारेस्ट विश्वविद्यालय

बुकारेस्ट (पृ० ३३२)

चित्र १.

चित्र २
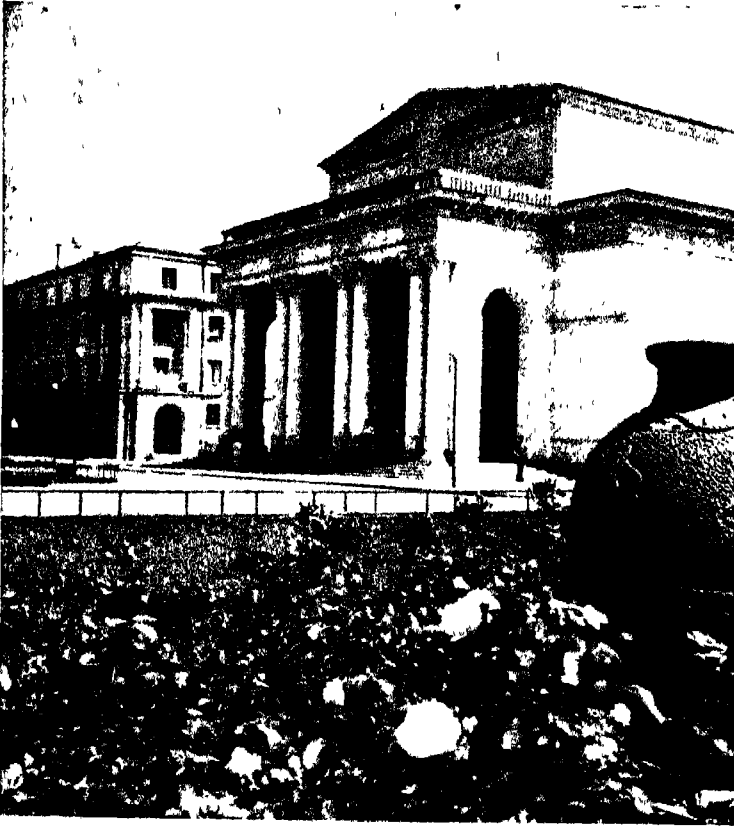
चित्र ३

१ दि स्टेट ऑपेरा हाउस
२ अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा
३ अभिनव सिनेमा-गृह
[फोटो : रौमानियाई दूतावास, नई दिल्ली के सौजन्य से]

बूमरैंग (Boomerang) एक प्रकार का अस्त्र है, जिसका उपयोग प्राचीन मिस्र निवासी युद्ध और शिकार के लिये करते थे और ऑस्ट्रेलिया के आदिवासी आज भी इसी रूप में इसका उपयोग करते हैं। इसकी दो किस्में १. प्रत्यावर्त्य (return) बूमरैंग तथा २. अप्रत्यावर्त्य (nonreturn) बूमरैंग हैं। इन दोनों किस्मों की आकृति हँसिया की तरह होती है और ये दोनो ही लकड़ी की बनाई जाती हैं। भारत मे इस्पात तथा हाथी दाँत का भी उपयोग इनके बनाने मे होता है। इनकी लंबाई ६ इंच से ४ फुट, चौड़ाई लंबाई की १/१२ तथा मोटाई चौड़ाई का १/६ होती है। प्रत्यावर्त्य बूमरैंग की दोनों भुजाओं के मध्य ७०° से १२०° तक का कोण होता है, किंतु ऑस्ट्रेलिया मे व्यवहृत होने वाले प्रत्यावर्त्य बूमरैंग की दोनों भुजाओं के मध्य ६०° का कोण, विस्तार १८" से २४" तक तथा कुल भार
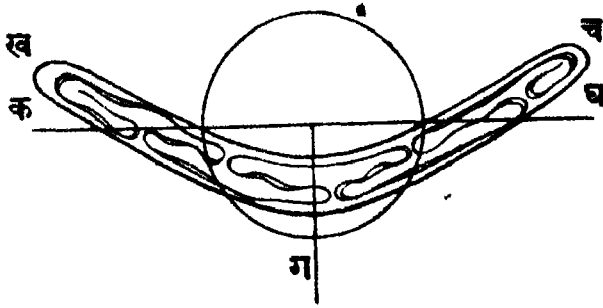
बूमरैंग

ख और घ मिरे केंद्र के तल से ऊपर तथा क और च नीचे रहते है।

८ औंस होता है। दोनों भुजाओं के केंद्र से जानेवाले कल्पित धरातल को आधार मानकर दोनो भुजाओं को २° से ३° तक ऐंठकर तिरछा कर दिया जाता है। अप्रत्यावर्त्य बूमरैंग का तिरछापन प्रत्यावर्त्य की विपरीत दिशा मे होता है। बूमरैंग की उडान तिरछेपन पर ही निर्भर करती है। प्रत्यावर्त्य बूमरैंग को सीधा पकड़कर पृथ्वी के समानर दिशा मे फेंकते हैं और फेंकते समय यथासंभव घूर्णन (rotation) दिया जाता है। ३० गज या अधिक दूरी तक सीधा जाने के बाद, यह बाँई ओर झुककर हवा मे १५० फुट तक ऊपर उठता है और ५० गज के व्याम का वृत्त बनाकर पाँच चक्कर लेने के बाद, यह फेंकनेवाले के पास वापस लौट आता है। अप्रत्यावर्त्य बूमरैंग को प्रत्यावर्त्य करने के लिये ४५° का कोण बनाते हुए फेंका जाता है, जो बहुत दूरी तक जाता है। सिद्धहस्त व्यक्ति के हाथ मे जाकर यह एक घातक अस्त्र हो जाता है। यह फेंकनेवाले तथा लक्ष्य दोनो के लिये घातक हो सकता है। [अ० ना० मे०]

बूरहावे, हेरमान (Boerhaave, Hermann, सन् १६६८-१७३८), डच चिकित्साविद, का जन्म लाइडन (Leiden) के निकट वूरहूट (Voorhout) में हुआ था। लाइडन में शरीरक्रिया विज्ञान और हार्डरविक में आपने चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। लाइडन के विश्वविद्यालय में आप वनस्पति तथा चिकित्सा शास्त्रों के प्राध्यापक, विश्वविद्यालय के रेक्टर तथा व्यावहारिक चिकित्सा एवं रसायन विज्ञान के प्रोफेसर रहे।

१७वी शताब्दी तक चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई केवल पुस्तकों तक ही सीमित रहती थी। रोगी से उसका कोई संबंध नही रहता था। सन् १६३६ मे लाइडन मे प्रथम बार रोगी की शैय्या के पास खड़े होकर अध्ययन का प्रारंभ हुआ तथा बूरहावे को इस प्रकार के प्रथम महान् अध्यापक होने का श्रेय प्राप्त है। इन्होने इस क्षेत्र मे इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की कि चीन के एक अधिकारी द्वारा लिखा पत्र, जिसपर पते के स्थान पर केवल 'सेवा में यशस्वी बूरहावे, यूरोप के चिकित्सक' लिखा था, भेजा गया और वह सीधे बूरहावे के पास जा पहुँचा। उनके शिष्यों मे पीटर महान् भी थे। चिकित्सा शास्त्र के अध्यापन के आधुनिक तरीकों का आरंभ बूरहावे से हुआ।

ये 'इंस्टिट्यूशोस मेडिसि' (सन् १७०८), एफोरेज्मी डी काग्नो-सेंडिस एट क्यूरंडिस (सन् १७०६), जिसपर जेराडं फॉन स्वीटेन ने पाँच खंडो मे टीका लिखी थी, तथा अन्य महत्व की पुस्तकों के प्रणेता भी थे। [भा० श० मे०]

बृहत्त्रयी (संस्कृत महाकाव्य) इस त्रयी के अंतर्गत तीन महाकाव्य आते हैं—'किरातार्जुनीय' 'शिशुपालवध' और 'नैषधीयचरित'। भामह और दंडी द्वारा परिभाषित महाकाव्य लक्षण की रूढ़ियों के अनुरूप निर्मित होनेवाले मध्ययुग के अलंकरण प्रधान संस्कृत महाकाव्यों मे ये तीनों कृतियाँ अत्यंत विख्यात और प्रतिष्ठाभाजन बनी। कालिदास के काव्यों मे कथावस्तु की प्रवाहमयी जो गतिमत्ता है, मानवमन के भावपक्ष की जो सहज, पर प्रभावकारी अभिव्यक्ति है, इतिवृत्ति के चित्रफलक (कैन्वैस) की जो व्यापकता है—इन काव्यों मे उनकी अवहेलना लक्षित होती है। छोटे छोटे वर्ण्य वृत्तों को लेकर महाकाव्य रूढ़ियों के विस्तृत वर्णनो और कलात्मक, आलंकारिक और शास्त्रीय उक्तियों एवं चमत्कारमयी अभिव्यक्तियों द्वारा काव्य की आकारमूर्ति को इनमे विस्तार मिला है। किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित मे इन प्रवृत्तियों का क्रमश. अधिकाधिक विकास होता गया है। इसी से कुछ पंडित, इस हर्षवर्धनोत्तर संस्कृत साहित्य को काव्यसर्जन की दृष्टि से 'ह्रासोन्मुखयुगीन' मानते हैं। परंतु कलापक्षीय काव्यपरंपरा की रूढ रीतियो का पक्ष इन काव्यो मे बड़े उत्कर्ष के साथ प्रकट हुआ। इन काव्यो मे भाषा की कलात्मकता, शब्दार्थलंकारो के गुंफन द्वारा उक्तिगत चमत्कारसर्जन, चित्र और श्लिष्ट काव्यविधान का सायास कौशल, विविध विहारकेलियों और वर्णनों का संग्रथन आदि काव्य के रूढ़रूप और कलापक्षीय प्रौढता के निदर्शक है। इनमे शृंगाररस की वैलासिक परिधि के वर्णनो का रंग असंदिग्ध रूप से पर्याप्त चटकीला है। हृदय के भावप्रेरित, अनुभूतिबोध की सहज की अपेक्षा, वासनामूलक ऐंद्रिय विलासिता का अधिक उद्वेलन है। फिर पांडित्य की प्रौढता, उक्ति की प्रगल्भता और अभिव्यक्तिशिल्प की शक्तिमत्ता ने इनकी काव्यप्रतिभा को दीप्तिमय बना दिया है। साहित्यक्षेत्र का पंडित बनने के लिये इनका अध्ययन अनिवार्य माना गया है।

किरातार्जुनीय — बृहत्त्रयी के महाकाव्यों में रचनाकालक्रम की दृष्टि से यह सर्वप्रथम और आकार की दृष्टि से लघुतम है। इसके निर्माता भारवि ने अपने काव्य मे स्ववृत्तपरिचयात्मक कुछ भी नही लिखा है। महाकवि के रूप में प्रसिद्धि का एकमात्र आधार किरातार्जुनीय ही है। प्रामाणिक ऐतिहासिक विवरण उनके विषय मे अन्यत्र भी अनुपलब्ध है। ६३४ ई० मे उत्कीर्ण 'आयोहूल' (ऐहोल)

शिलालेख के उल्लेख और दंडी की 'अवंतिसुंदरीकथा' के संकेत से अनुमान किया जाता है कि 'भारवि' परमशैव और दाक्षिणात्य कवि थे। पुलकेशी द्वितीय के अनुज, राजा विष्णुवर्धन के राजसभा पंडित थे और ६०० ई० के आसपास विद्यमान थे। किरातार्जुनीय काव्य की महाभारत से गृहीत कथावस्तु प्रकृत्या छोटी है—भाइयों सहित युधिष्ठिर द्वैत वनवास कर रहे थे। उसे किरातवेशी गुप्तचर दुर्योधन की शासननीति का विवरण मिला। अपने (पांडवों के) आगामी कर्तव्यपथ के निर्धारणार्थ भीम, द्रौपदी सहित वे विचार करने लगे। उसी समय महर्षि व्यास ने आकर पथप्रदर्शन किया। तदनुसार दिव्यास्त्र लाभार्थ इंद्रकील पर्वत पर जाकर अर्जुन घोर तपस्या करते हैं। इंद्र द्वारा प्रेषित स्वर्गाप्सराओं से भी तपोभंग नहीं होता। प्रसन्न इंद्र के प्रकट होकर प्रेरणा देने पर वे तपस्या करते हैं। उसमें अंतराय बनकर एक दानव, शूकर रूप में आकर आक्रमण करता है। किरातवेषधारी महादेव पहले अर्जुन की रक्षा करते हैं, तदनंतर परीक्षायुद्ध में अर्जुन की वीरता पर प्रसन्न होकर अजेय दिव्यास्त्र का वरदान देते है। यहीं काव्य समाप्त होता है। इस काव्य का आरंभ श्री शब्द से है। कलात्मक अलंकरणवाली काव्यशैली के अनुसरी इस काव्य में शब्द और अर्थ उभयमूलक अलंकारों का चमत्कार, वर्ण और शब्द पर आधृत चित्रकाव्यता, अप्रस्तुत विधान का कल्पनापरक ललित संयोजन आदि उत्कृष्ट रूप में शिल्पित हैं, राजनीति और व्यवहारनीति के उपदेश, प्रभावपूर्ण संवाद, आदि से इस काव्य का निर्माणशिल्प अत्यंत सज्जित है। दंडी के महाकाव्य लक्षण की अनुसरप्रेरणावश इसमें ऋतु, पर्वत, नदी, सूर्योदय, सूर्यास्त आदि के कल्पनाप्रसूत वर्णन हैं। शृंगार रस की विविध केलियों और प्रसंगो के कामशास्त्रीय विवरणचित्रों द्वारा लघुकथावस्तु वाले इस काव्य मे पर्याप्त विस्तार हुआ है। इसका मुख्य अंगी 'रस' वीर है। फिर भी शृंगार के विलासपरक संदर्भ इसमें बड़े आसंजन से वर्णित हैं। साधर्म्यमूलक उपमा उत्प्रेक्षादि अलंकारों की योजना में उत्कृष्ट कला प्रकट होती है। इस काव्य में लक्षित अर्थगौरव की बडी प्रशंसा हुई है। भावपक्ष का सहज प्रवाह कलापक्ष की अपेक्षा गौण होने पर भी 'वीर', 'शृंगार' आदि के संदर्भ में अच्छे ढंग से निर्वाहित है। वाल्मीकि और कालिदास की सहजानुभूति का अबाधितविलास न रहने पर भी काव्य मे वर्णनलालित्य का अभाव नही है। यह काव्य निश्चय ही अलकृत काव्य-रचना-शैली का है। इसमे बुद्धि और हृदय, शृंगाररसिकता और राजनीति कुशलता, वर्णननैपुण्य और कलात्मक चमत्कार एक साथ मिलते है। इसकी काव्यसंपत्ति अपने ढंग की अनूठी है। परंतु शिशुपाल वध में किरातार्जुनीय की अपेक्षा सब दृष्टियो से उत्कर्ष योग अधिक है।

शिशुपालवध—(माघ महाकाव्य) संस्कृत के कवि प्रशस्तिपरक सुभाषितोक्ति के अनुसार माघ कवि के इस महाकाव्य मे कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव और दंडी (या श्रीहर्ष) का पदलालित्य तीनो एकत्र समन्वित हैं। कालिदास का भावप्रवाह, भारवि का कलानैपुण्य और भट्टिकार के व्याकरणपांडित्य के एकत्र योग से उसका उत्कर्ष बढ़ गया है। पाणिनीय संस्कृत की मुहावरेदार भाषा के प्रयोग नैपुण्य में शिशुपाल वध भट्टि काव्य से भी श्रेष्ठ है। भावह्रासोन्मुखी अलंकृतकाव्ययुगीन संस्कृत काव्यों में सर्वाधिक प्रिय माघकाव्य को पथप्रदर्शक और आदर्श मान लिया गया था। माघ के एकमात्र उपलब्ध इस महाकाव्य पर उनकी युगांतस्थायी कीर्ति अवलंबित है। 'भोजप्रबंध', 'प्रबंधचिंतामणि' तथा 'शिशुपालवध' के अंत मे उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर इनका जीवनवृत्त संकलित है। गुर्जरातर्गत किसी प्रांत के शासक 'धर्मनाभ' (वर्मनाम या वर्मलात) नामक राजा के यहाँ इनके दादा सुप्रभदेव प्रधान मंत्री थे। पिता का नाम दत्तक था। वे बड़े विद्वान् और दानशील थे। प्रस्तुत महाकवि का जन्म भीनमाल मे और अत्यंत संपन्न परिवार मे हुआ था। इनका शैशव और यौवन—वैभव और विलास मे बीता था। नागर रसिको की विलासचर्या और रसभोग की प्रकृति का इन्हें पूर्ण परिचय और अनुभव था। माघदंपति अत्यंत दानी और कृपालु थे। दान मे अपना सब कुछ वितरित करने से इनका वार्धक्य अर्थदारिद्रय से कष्टमय बीता। इनका विद्यमानकाल अधिकांश विद्वानों ने सातवी शताब्दी का उत्तरार्ध माना है। शिशुपालवध की रचना—जनश्रुतियो मे कहा जाता है—किरातार्जुनीय के अनुकरण पर हुई थी। एकाक्षर द्व्यक्षरवाले पद्यादि तथा चित्रबंधात्मक शब्दचित्र काव्य भी यहाँ हैं और आरंभिक दो सर्गों मे राजनीतिक मंत्रणा भी। स्पष्ट ही इसपर भारविकाव्य की प्रतिच्छाया है। परंतु अलंकृत-काव्य-रचना-कौशल तथा प्रकृत्यादि के वर्णन की दृष्टि से किरातार्जुनीय की अपेक्षा शिशुपालवध बहुत उत्कृष्ट है। इसके वर्णन पांडित्यपूर्ण, अलंकृत और रूढ़िसवलित होने पर भी बडे सप्राण हैं। उनमे कवि के प्रत्यक्ष निरीक्षण और राग की सजीवता है। किरातकाव्यतुल्य अलकृतवर्णन की शैली पर चलकर भी इसके विषयवर्णनो मे भावतरलता, अभिव्यंजनशैली की प्रौढता, मूर्त्तप्रत्यक्षीकरण, समर्थ अलंकारविधान आदि से यह काव्य अत्यंत सरस और प्रौढ कहा जाता है। परतु इसकी भी महाभारत गृहीत मूल कथा लघु है जो वर्णनविस्तार से स्फीतकलेवर हो गई है। अत्याचार और बल से त्रस्त त्रैलोक्य की दशा नारद से सुनकर कृष्ण, बलराम और उद्धव ने मंत्रणा की और पाडवो के राजसूय यज्ञ मे जाने का निश्चय किया। तृतीय सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक यात्रा, विश्राम आदि अवातर प्रसंगो और विहारकेलियो का ऐसा वर्णन है जहाँ इतिवृत्त के निर्वाह का पूरा अभाव है। चौदहवे से लेकर बीसवे सर्ग तक युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ तथा कृष्ण और शिशुपाल के युद्ध एव तत्संबद्ध अवातर प्रसगों का कलात्मक और अलंकृत वर्णन है। यह काव्य भी मुख्यतः वीर रस का है पर शृंगार की केलियो और विलास की वासनात्मक मधुरिमा से सपन्न। परतु वीर रस से संपृक्त वर्णन भी इसमे बडे जीवत और प्रभावशाली है। मूल कथा, १, २, १४ तथा २० संख्यक सर्गों में ही (अवातर वर्णनो के रहने पर भी) मुख्यतः है। परंतु शृंगारी वर्णनो मे—विशेषत विभावानुभावों के अंकन में संश्लिष्ट चित्र सजीव और गतिमय हैं। उनका प्रकृतिवर्णन भी अप्रस्तुत विधानो के अलकरणभार से बोझिल होकर भी सरस है। वे स्वभावोक्ति और प्रौढोक्ति द्विविध निर्माण के निष्णात शिल्पी हैं। कुल मिलाकर शिशुपालवध अपने ढंग का उत्कृष्टतम काव्य है जिसका प्रभावमय कवित्व और वैदुग्य बेजोड़ है।

नैषधीय चरित — अलंकृत काव्यरचना शैली की प्रधानतावाले माघोत्तरयुगी कवियों द्वारा निर्मित काव्यों में अलंकरण प्रधानता, प्रौढ़ोक्ति कल्पना से प्रेरित वर्णन प्रसंगों की स्फीतता तथा पांडित्यलब्ध ज्ञानगरिष्ठता अतिसंयोजन आदि की प्रवृत्ति बढ़ी। उस रुचि का पूर्ण

उत्कर्ष श्रीहर्ष के नैषधीय चरित (या जिसे केवल 'नैषध' भी कहते हैं) मे देखा जा सकता है। बृहत्त्रयी के इस बृहत्तम महाकाव्य का महाकवि, न्याय, मीमांसा, योगशास्त्र आदि का उद्भट विद्वान् था और था तार्किक पद्धति का महान् अद्वैत वेदांती। नैषध में शास्त्रीय वैदुष्य और कल्पना की अत्युच्च उड़ान, आद्यंत देखने को मिलती है। (कवि का जीवनवृत्त, समय, ग्रंथपरिचय आदि दे० 'श्रीहर्ष')। इस महाकाव्य का मूल आधार है 'महाभारत' का 'नलोपाख्यान'। मूल कथा के मूल रूप मे यथावश्यक परिवर्तन भी यत्रतत्र किया गया है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इस पुराणकथा की लोकप्रियता ने बड़े प्राचीन काल से ही इसे लोककथा बना दिया है। इस कारण कवि ने वहाँ से भी कुछ तत्व लिए। यह महाकाव्य आद्यंत शृंगारी है। पूर्वराग, विरह, हंस का दूतकर्म, स्वयंवर, नल-दमयंती-विवाह, दंपति का प्रथम समागम और अष्टयामचर्या तथा सयोगविलास की खंडकाव्यीय कथावस्तु को कवि के वर्णनचित्रों और कल्पनाजन्य वैदुष्य-विलास ने अत्यंत बृहदाकार बना दिया है। शृंगारपरिकर के वर्ण्य-चित्रो ने भी उस विस्तारण मे योग दिया है। अपनी कल्पना की उडान के बल से पडित कवि द्वारा एक ही चित्र को नई नई अप्रस्तुत योजनाओ द्वारा अनेक रूपो मे विस्तार के साथ रखा गया है। लगता है, एक प्रस्तुत को एक के बाद एक इतर अप्रस्तुतो द्वारा आकलित करने मे कवि की प्रज्ञा थकती ही नही। प्रकृतिजगत् के स्वभावोक्तिपथ रूपचित्राकन, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, श्लेष आदि अर्थालंकारों की समर्थयोजना, अनुप्रासयमक, शब्दश्लेष, शब्दचित्रादि चमत्कारों का साधिकार प्रयोग और शब्दकोश के विनियोग प्रयोग की अद्भुत क्षमता, शास्त्रीय पक्षों का मार्मिक, प्रौढ और समीचीन नियोजन, कल्पनाओ और भावचित्रों का समुचित निवेशन, प्रथम-समागम-कालीन मुग्धनववधू की मनःस्थिति, लज्जा और उत्कठा का सजीव अकन, अलकरण और चमत्कार की अलकृत काव्यशैली का अनायास उद्भावन और अपने पदलालित्य आदि के कारण इस काव्य का संस्कृत की पडितमंडली में आज तक निरंतर अभूतपूर्व समादर होता चला आ रहा है। माघ कवि से भी अधिक श्रीहर्ष ने इसे काव्यबाधक पाडित्यप्रदर्शन के योग से बहुत बढा दिया है जिससे लघुकथानकवाला काव्य अति बृहत् हो गया है। शृगारी विलासो और मुख्यत सयोग केलियो के कुशलशिल्पी और रसिक नागरो की विलासवृत्तियों के अंकन मे आसंजनशील होकर भी कवि के दार्शनिक वैदुष्य के कारण काव्य मे स्थान स्थान पर रुक्षता बढ गई। पुनरुक्ति, च्युतसंस्कृति आदि अनेक दोष भी यत्र तत्र ढूँढ़े जा सकते हैं। परंतु इनके रहते पर भी अपनी भव्यता और उदात्तता, कल्पनाशीलता और वैदुष्यमत्ता, पदलालित्य और अर्थ-प्रौढता के कारण महाकाव्य मे कलाकार की अद्भुत प्रतिभा चमक उठी है, अलकारमडित होने पर भी उसकी क्रीडा में सहज विलास है। उसमे प्रौढ शास्त्रीयता और कल्पनामनोहर भव्यता है। बृहत्त्रयी के तीनो महाकाव्यों का अध्ययन पंडितों के लिये आज भी परमावश्यक माना जाता है। [क० प० त्रि०]

बृहदारण्यक उपनिषद् जो शुक्लयजुर्वेद से संबंधित है अद्वैत वेदात और संन्यासनिष्ठा का प्रतिपादक है। उपनिषदों में सर्वाधिक बृहदाकार इसके ६ अध्याय, ४७ ब्राह्मण और प्रलंबित ४३५ पदों का शांति पाठ 'ॐ पूर्णमद' इत्यादि है और ब्रह्मा इसकी संप्रदाय परंपरा के प्रवर्तक हैं।

इस उपनिषद् का ब्रह्मनिरूपणात्मक अधिकांश उन व्याख्याओं का समुच्चय है जिनसे अजातशत्रु ने गार्ग्य बालाकि की, जैवलि प्रवाहण ने श्वेतकेतु की, याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी और जनक की तथा जनक के यज्ञ मे समवेत गार्गी और जारत्कारव आर्तभाग इत्यादि आठ मनीषियों की ब्रह्मजिज्ञासा निवृत्त की थी।

इस उपनिषद् के अनुसार सृष्टि के पहले केवल ब्रह्म था। वह अव्याकृत था। उसने अहंकार किया जिससे उसने व्याकृत सृष्टि उत्पन्न की; दो पैरवाले, चार पैरवाले, पुर उसने बनाए और उनमें पक्षी बनकर पैठ गया। उसने अपनी माया से बहुत रूप धारण किए और इस प्रकार नाना रूप से भासमान ब्रह्माड की रचना करके उसमे नखाग्र से शिखा तक अनुप्रविष्ट हो गया। शरीर में जो आत्मा है वही ब्रह्माड मे व्याप्त है और हमें जो नाना प्रकार का भान होता है वह ब्रह्म रूप है। पृथिवी, जल, और अग्नि उसी के मूर्त एवं वायु तथा आकाश अमूर्त रूप हैं।

स्त्री, संतान अथवा जिस किसी से मनुष्य प्रेम करता है वह वस्तुत. अपने लिये करता है। अस्तु, यह आत्मा क्या है, इसे ढूंढना चाहिए, ज्ञानियों से इसके विषय मे सुनना, इसका मनन करना और समाधि मे साक्षात्कार करना ही परम पुरुषार्थ है।

'चक्षुर्वै सत्यम्' अर्थात् आँख देखी बात सत्य मानने की लोकधारणा के विचार से जगत् सत्य है, परंतु वह प्रत्यक्षत: अनित्य और परिवर्तनशील है और निश्चय ही उसके मूल में स्थित तत्व नित्य और अविकारी है। अतएव मूल तत्व को 'सत्य का सत्य' अथवा अमृत कहते है। नाशवान् 'सत्य' से अमृत ढँका हुआ है।

अज्ञान अर्थात् आत्मस्वरूप को न जानने के कारण मनुष्य संसार के नाना प्रकार के व्यापारो मे लिपटा हुआ सासारिक वित्त आदि नाशवान् पदार्थों से अक्षय सुख की व्यर्थ आशा करता है। कामनामय होने से जिस उद्देश्य की वह कामना करता है तद्रूप हो जाता है; पुण्य कर्मों से पुण्यवान् और पाप कर्मों से पापी होता और मृत्यु काल मे उसके प्राण उत्क्रमण करके कर्मानुसार मृत्युलोक, पितृलोक अथवा देवलोक प्राप्त करते हैं। जिस देवता की वह उपासना करता है मानो उसी का पशु हो जाता है। यह अज्ञान आत्मा की 'महती विनष्टि, (सब से बड़ी क्षति) है।

आत्मा और ब्रह्म एक है। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नही है। जिसे नानात्व दिखता है वह मृत्यु से मृत्यु की ओर बढता है। आत्मा महान्, अनंत, अपार, अविनाशी, अनुच्छित्तिधर्मा और विज्ञानघन है। नमक की डली पानी मे घुल जाने पर एकरस हो जाने से जैसे नमक और पानी का अभेद हो जाता है ब्रह्मात्मैक्य तद्रूप अभेदात्मक है। जिस समय साधक को यह अपरोक्षानुभूति हो जाती है कि मैं ब्रह्म हूँ और भूतात्माएँ और मैं एक हूं उसके द्रष्टा और दृष्टि, ज्ञाता और ज्ञेय इत्यादि भेद विलीन हो जाते हैं, और वह 'ब्रह्म भवतिय एव वेद,—ब्रह्मभूत हो जाता है। उसके प्राण उत्क्रमण नही करते, वह यही जीवन्मुक्त हो जाता है। वह विधि निषेध के परे है। उसे संन्यास लेकर भैक्ष्यचर्या करनी चाहिए। यह ज्ञान की परमावधि,

आत्मा की परम गति और परमानंद है जिसका अंश प्राणियों का जीवनस्रोत है।

यह शोक-मोह-रहित, विज्वर और विलक्षण आनंद की स्थिति है जिससे ब्रह्म को 'विज्ञानमानंदंब्रह्म' कहा गया है। यह स्वरूप मन और इंद्रियों के अगोचर और केवल समाधि मे प्रत्यक्षानुभूति का विषय एवं नामरूप से परे होने के कारण, ब्रह्म का 'नेति नेति' शब्दों द्वारा अंतिम निर्देश है।

आत्मसाक्षात्कार के लिये वेदानुवचन, यज्ञ, दान और तपोपवासादि से चित्तशुद्धि करके सूर्य, चंद्र, विद्युत्, आकाश, वायु, जल इत्यादि अथवा प्राणरूप से ब्रह्म की उपासना का निर्देश करते हुए आत्मचिंतन सर्वश्रेष्ठ उपासना बतलाई गई है। [च० त्रि०]

बृहद्रथ इस नाम के कई व्यक्तियो का उल्लेख वैदिक तथा पुराणेतिहास ग्रंथों में हुआ है जो निम्नांकित है :

(१) पुराकालीन व्यक्ति की स्थिति से बृहद्रथ का सबसे प्राचीन उल्लेख ऋग्वेद (१.३६-१८) मे दो बार नववास्त्व के साथ हुआ है जो इंद्र से पराजित होकर मारा गया था (ऋ० १०।४६।६)।

(२) चेदिराज उपरिचर वसु का पुत्र, जरासध का पिता जो मगध का राजा और महान् योद्धा था (महा०, आदि०, ५७।२९; सभा०, १६।१२)।

(३) विदेहराज देवराति जिसने, समस्त ब्रह्मज्ञानियो से श्रेष्ठ जानकर, याज्ञवल्क्य से तत्वज्ञान का उपदेश ग्रहण किया था।

(४) अंग जनपद का दानवीर राजा जो परशुराम द्वारा क्षत्रिय संहार के समय गोलागूल की कृपा से रक्षित हुआ था।

(५) एक पौराणिक राजा जो पृथुलाक्ष (भा० पु०), बृहत्कर्मन् (वायु०) अथवा भद्ररथ (विष्णु०) का पुत्र था।

अन्य अनेक पौराणिक व्यक्ति इसी नाम से संबोधित हैं जो एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं जैसे, (क) इदुमती के पति, एक राजा (स्कद० ६।१।३७), (ख) सूक्ष्म नामक दैत्य के अश से उत्पन्न महाभारतकालीन राजा, (ग) कौरव सेना का एक योद्धा, (घ) तिमिराजा का पुत्र, (ड) शतधन्वन् का पुत्र जो मौर्यवंश का अतिम राजा था, (च) मैत्रायणी उपनिषद् मे चर्चित एक ब्रह्मज्ञानी आदि।

[श्या० ति०]

बृहन्नला दे० अर्जुन।

बृहस्पति ऋग्वेद मे बृहस्पति का अनेक जगह उल्लेख मिलता है। ये एक तपस्वी ऋषि थे। इन्हे तीक्ष्णशृंग भी कहा गया है। धनुष बाण और सोने का परशु इनके हथियार थे और ताम्र रग के घोडे इनके रथ में जोते जाते थे।

बृहस्पति को अत्यंत पराक्रमी बताया जाता है। इंद्र को पराजित कर इन्होने उनसे गायों को छुड़ाया था। युद्ध में अजेय होने के कारण योद्धा लोग इनकी प्रार्थना करते थे। ये अत्यत परोपकारी थे जो शुद्धाचरणवाले व्यक्ति को सकटों से छुड़ाते थे। इन्हे गृहपुरोहित भी कहा गया है, इनके बिना यज्ञयाग सफल नही होते।

वेदोत्तर साहित्य मे बृहस्पति को देवताओं का पुरोहित माना गया है। ये अगिरा ऋषि की सुरूपा नाम की पत्नी से पैदा हुए थे। तारा और शुभा इनकी दो पत्नियाँ थीं। एक बार सोम (चंद्रमा) तारा को उठा ले गया। इसपर बृहस्पति और सोम में युद्ध ठन गया। अंत में ब्रह्मा के हस्तक्षेप करने पर सोम ने बृहस्पति की पत्नी को लौटाया। तारा ने बुध को जन्म दिया जो चद्रवंशी राजाओं का पूर्वज कहलाया।

महाभारत के अनुसार बृहस्पति के संवर्त और उतथ्य नाम के दो भाई थे। सवर्त के साथ बृहस्पति का हमेशा झगडा रहता था। पद्मपुराण के अनुसार देवों और दानवों के युद्ध मे जब देव पराजित हो गए और दानव देवों को कष्ट देने लगे तो बृहस्पति ने शुक्राचार्य का रूप धारणकर दानवो का मर्दन किया और नास्तिक मत का प्रचार कर उन्हें धर्मभ्रष्ट किया।

बृहस्पति ने धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और वास्तुशास्त्र पर ग्रंथ लिखे। आजकल ८० श्लोक प्रमाण उनकी एक स्मृति उपलब्ध है।

सं० ग्रं० — सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, प्राचीन चरित्रकोश (मराठी)। [ज० चं० जै०]

२. शुक्र और कभी कभी मंगल को छोडकर, सबसे कातिमय ग्रह है। सौर परिवार मे सूर्य को छोड यह अन्य सभी सदस्यो से बडा है। पृथ्वी के आकार के १,४१० गोले बृहस्पति मे समा सकते हैं। सौर परिवार के अन्य सभी सदस्यो की अपेक्षा इसका द्रव्यमान अधिक है। इसका द्रव्यमान पृथ्वी से ३१८ गुना है। इसका विषुव व्यास ८८,७०० मील और ध्रुवीय व्यास ८२,८०० मील है। ध्रुवो पर चपटा होने के कारण यह दीर्घवृत्ताकार है। यह ११८६ वर्ष मे एक बार सूर्य की परिक्रमा करता है। दूरदर्शक से देखने पर बृहस्पति का पृष्ठ विषुवत् के समातर, कातिमय और काले बादलो जैसे कटिबध से अकित जान पडता है। इस कटिबध का आकार और अक्षाश परिवर्तनशील है। इन तथ्यो से प्रकट है कि हम बृहस्पति का ठोस पृष्ठ नही देख पाते। हमे मेघ दिखाई पडते है और ये ग्रह के ०·४१ काशानुपात (albedo) के उत्तरदायी है। दूरदर्शक प्रेक्षण से प्रकट होता है कि बृहस्पति के चिह्न मडलक (disc) के आड़े चलते है जिससे ज्ञात होता है कि बृहस्पति का बृहद विश्व अपनी धुरी पर घूम रहा है। यह नौ घंटे ५० मिनट मे असाधारण वेग से घूर्णन करता है, जिससे उसका वायुमडल अत्यंत प्रक्षुब्ध हो जाता है। घूर्णन के वेग मे अक्षाश के साथ परिवर्तन होता है। लगभग २०° दक्षिण अक्षाश पर लाल रग का एक विशाल अडाकार चिप्पा बृहस्पति के पृष्ठ का असाधारण लक्षण है। यह चिप्पा २०,००० मील लंबा और ६,००० मील चौड़ा है। चिप्पा स्थिर नही है। यह पृष्ठ पर घूर्णन करता है, किंतु इसका आकार लगभग एक ही रहता है। स्पेक्ट्रम अध्ययनो से ग्रह के ऊपरी वायुमडल मे हाइड्रोजन, अमोनिया, हीलियम और मिथेन के बहुत बड़े परिमाण मे अस्तित्व का सकेत प्राप्त होता है। बृहस्पति के ज्ञात उपग्रहो की सख्या १२ है। १६१० ई० मे गैलिलिओ ने बृहस्पति के चार चंद्रो का पता लगाया था। इनमे से कुछ उपग्रह बुधग्रह के बराबर हैं। १२ उपग्रहों में से चार बृहस्पति के चारो ओर विपरीत दिशा में चलते हैं। सभव है, ये बृहस्पति के प्रभाव मे क्षुद्र बंदीकृत ग्रह हों। [मं० म० प०]

बेंगलूरु (Bangalore) १. जिला, भारत के मैसूर राज्य का एक जिला है जिसका क्षेत्रफल ३,०८१ वर्ग मील तथा जनसंख्या २५,०४,४६२ (१९६१) है। पश्चिम के पहाड़ी क्षेत्र की जलवायु अस्वास्थ्यकर है। यहाँ की औसत वर्षा ३५ इंच है। इसकी ऊँचाई समुद्रतल से ३,११३ फुट है। जलवायु समशीतोष्ण है।

२. नगर, स्थिति : १२° ५९' उ० अ० तथा ७७° ४०' पू० दे०। मैसूर राज्य की राजधानी तथा प्रसिद्ध नगर है। यह मद्रास से २१९ मील दूर स्थित है। यह कावेरी तथा इसकी सहायक कब्बनी नदी के दोआब मे बसा हुआ है। क्षेत्रफल लगभग २५ वर्ग मील है।

बेंगलूरु भारतीय एयर फोर्स का प्रधान केंद्र है। एक समय अंग्रेजी सैनिकों की यह एक बड़ी छावनी थी। नगर के पश्चिमी भाग में ऊनी, सूती और रेशमी वस्त्र, तेल, साबुन, ईंट बनाने का उद्योग, दक्षिणी भाग मे रेशम के कीड़े पालने का व्यवसाय और दक्षिण-पश्चिमी भाग की ओर शराब निर्माण का कार्य अधिक होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ सिटी स्टेशन के निकट लोकोमोटिव एवं लोहे की ढलाई तथा छावनी स्टेशन के पास काफी साफ करने तथा खाद तैयार करने के धंधे होते है। टाटा द्वारा विज्ञान के अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण संस्थान, इंडियन इंस्टिट्यूट ऑव सायंस की स्थापना बेंगलूरु मे ही हुई है जिसमें वैज्ञानिक विषयों पर बड़े महत्व के आविष्कार हुए और हो रहे हैं। यहाँ की प्रयोगशाला बड़ी सुसज्जित है। पुस्तकालय भी बहुत बड़ा है। भौतिकविद् रामन की व्यक्तिक प्रयोगशाला भी यही है जिसमें अनेक वैज्ञानिक भौतिकी पर शोधकार्य कर रहे हैं। [रा० स० ख०]

बेंजामिन याकूब का कनिष्ठ पुत्र (दे० याकूब)। यूसुफ ने अपने भाइयों की परीक्षा लेने के उद्देश्य से उन्हे आदेश दिया कि वे बेंजामिन को मिस्र से उनके पास ले आवें (दे० उत्पत्ति ग्रंथ ४२, ४)। बेंजामिन इसराएल राज्य के बारह वंशों मे से एक के प्रवर्तक हैं। बेंजामिन वंश यूदा (येरूसलेम) के उत्तर में बस गया, उसका इतिहास यूदावंश से घनिष्ठ संबंध रखता है। संत पाल बेंजामिन वंशी थे। [आ० वे०]

बेंज़ीन (Benzene) हाइड्रोकार्बन है तथा इसका सूत्र का६हा६ (C_6H_6) है। कोयले के शुष्क आसवन से अलकतरा तथा अलकतरे के प्रभाजी (fractional) आसवन से बेंज़ीन बड़ी मात्रा मे तैयार होता है। प्रदीपन गैस से प्राप्त तेल से फैराडे ने १८२५ ई० मे सर्वप्रथम इसे प्राप्त किया था। मिटशरले ने १८३४ ई० मे बेंज़ोइक अम्ल से इसे प्राप्त किया और इसका नाम बेंज़ीन रखा। अलकतरे मे इसकी उपस्थिति का पता पहले पहल १८४५ ई० मे हॉफमैन (Hoffmann) ने लगाया था। जर्मनी में बेंज़ीन को बेंज़ोल कहते हैं। बेंज़ीन कार्बन और हाइड्रोजन का एक यौगिक, हाइड्रोकार्बन, है। यह वर्णहीन और प्रबल अपवर्तक द्रव है। इसका क्वथनांक ८०° सें०, ठोस बनने का ताप ५.५° सें० और घनत्व ०° सें० पर ०.८९९ है। इसकी गंध ऐरोमैटिक और स्वाद विशिष्ट होता है। जल में यह बड़ा अल्प विलेय, ऐल्कोहॉल मे अधिक विलेय तथा ईथर और कार्बन डाइसल्फाइड में सब अनुपातों मे विलेय है। विलायक के रूप मे रबर, गोंद, वसा, गंधक और रेज़िन के घुलाने में प्रचुरता से प्रयुक्त होता है। जलते समय इससे धुँआँ निकलता है। रसायनतः यह सक्रिय होता है। क्लोरीन से दो प्रकार का यौगिक बनता है : एक योगशील और दूसरा प्रतिस्थापित यौगिक। सल्फ्यूरिक अम्ल से बेंज़ीन सल्फोनिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल से नाइट्रो बेंज़ीन और ओज़ोन से बेंज़ीन ट्राइओज़ोनाइड, का६हा६ (ओ३)३, [$C_6H_6(O_3)_3$] बनता है। अवकरण से बेंज़ीन साइक्लो हेक्सेन बनता है।

विलायक के अतिरिक्त, बेंज़ीन बड़ी मात्रा में ऐनिलीन, कृत्रिम प्रक्षालक, कृमिनाशक, डी. डी. टी., फ़िनोल (जिससे प्लास्टिक बनते हैं), इत्यादि के निर्माण में प्रयुक्त होता है। मोटर इंजन के लिये पेट्रोल में कुछ बेंज़ीन मिलाने से पेट्रोल की उत्कृष्टता बढ़ जाती है।

संरचना — बेंज़ीन में छह कार्बन परमाणु और छह हाइड्रोजन परमाणु हैं, अतः इसका अणुसूत्र का६ हा६ (C_6H_6) है। केकुले ने १८६५ ई० मे पहले पहल सिद्ध किया कि इसके छह कार्बन परमाणु एक वलय के रूप में विद्यमान हैं, जिसको बेंज़ीन वलय की संज्ञा दी गई है। प्रत्येक कार्बन परमाणु एक बंध से हाइड्रोजन से और दो से अन्य
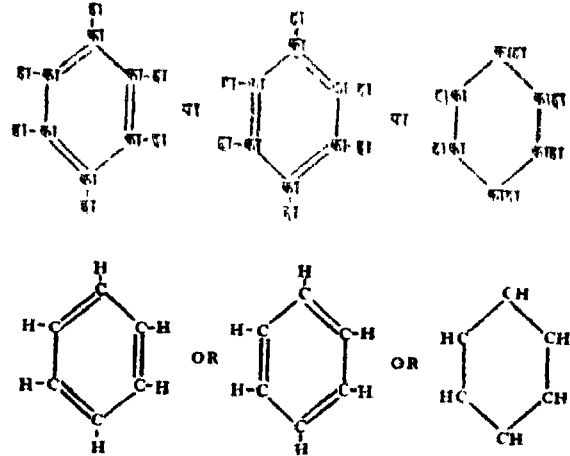
बेंज़ीन

निकटवर्ती कार्बन परमाणुओ से सबद्ध रहता है। कार्बन का चौथा बंध युग्म बंध के रूप मे उपस्थित माना गया है। ऐसे संरचनासूत्र से बेंज़ीन के गुणों की व्याख्या बड़ी सरलता से हो जाती हैं। ऊपर दिया हुआ यह सूत्र प्रायः सर्वमान्य है।

बेंज़ीन की प्राप्ति के लिये अलकतरे को इस्पात के भभकों मे आसुत करते हैं। जो आसुत ९०° सें० और १७०° सें० के बीच प्राप्त होता है, उसे हलका तेल कहते हैं। पानी से हलका होने के कारण यह हलका कहा है। हलके तेल को पहले सोडियम हाइड्रॉक्साइड के जलीय विलयन जाता से धोकर अम्लो को निकाल लेते हैं। फिर सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल से धोकर क्षारों को निकाल लेते हैं। इसके बाद प्रभाजी स्तंभ की सहायता से प्रभाजन कर बेंज़ीन को पृथक् करते हैं। यही व्यापार का बेंज़ीन है। इसमे अब भी कुछ अपद्रव्य, थायोफीन और अन्य हाइड्रोकार्बन मिले रहते हैं। सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा उपचार के बाद उत्पाद के क्रिस्टलीकरण से शुद्ध बेंज़ीन प्राप्त होता है। [स० व०]

बेंज़ौल्डिहाइड (Benzaldehyde) को बेंज़ीन कारबोनल (Benzene carbonal) तथा कडवा बादाम का तेल (Oil of bitter almonds) भी कहते हैं। इसका सूत्र का६हा५. काहाओ ($C_6H_5.CHO$) है। यह कडवे बादाम में स्थित ग्लूकोसाइड, ऐमिग्डालिन (Amygdalin), में विद्यमान रहता है और इसके जलीय

विश्लेषण द्वारा ग्लूकोज तथा हाइड्रोसायनिक अम्ल के साथ प्राप्त किया जा सकता है। यह एक रंगहीन द्रव है, जिसकी गंध कड़वे बादाम से मिलती जुलती है। यह पानी में बहुत कम घुलता है, परंतु ऐलकोहॉल और ईथर में सहज विलेय है। यह पानी की भाप के साथ वाष्पशील है। दीर्घ काल तक बोतलों में रखे रहने पर, यह बहुधा हवा से ऑक्सीकृत हो जाने से बेंजोइक अम्ल मे परिणत हो जाता है। इसका क्वथनांक १७९° सें० है। बेंजैल्डिहाइड की रासायनिक क्रियाशीलता असाधारण है। इसी कारण इसका कार्बनिक उद्योगों में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इसका वार्षिक उत्पादन २० लाख पाउंड से अधिक कूता गया है। इसके निर्माण की अनेक विधियाँ हैं, जिनमे निम्नलिखित प्रमुख हैं : (१) लोहचूर्ण उत्प्रेरक की उपस्थिति मे १००° सें० ताप पर बेंजाइल क्लोराइड के जलीय विश्लेषण द्वारा; (२) ताम्र या सीस नाइट्रेट के जलीय विलयन के साथ कार्बन डाइऑक्साइड के प्रवाह में बेंजाइल क्लोराइड के क्वथन से; (३) वाष्प या द्रव अवस्था में टालूईन के ऑक्सीकरण से, जो नाइट्रोजन से तनूकृत हुवा द्वारा ५००° सें० ताप पर मैंगनीज, मोलिब्डेनम तथा जरकोनियम ऑक्साइड के उत्प्रेरण से साध्य है; (४) मैंगनीज डाइऑक्साइड और ६५% सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा ४०° सें० पर टालूईन के द्रव अवस्था में ऑक्सीकरण द्वारा तथा (५) उच्च दबाव पर (९० वायुमंडलीय दाब पर) ऐल्युमिनियम क्लोराइड उत्प्रेरित कार्बन मोनोक्साइड, बेंजीन और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की अभिक्रिया द्वारा। इन विधियो में विधि चार और पाँच विशेष महत्व की हैं।

बेंजैल्डिहाइड शिफ-अभिकर्मक के साथ गुलाबी या लाल रंग देता है। यह अमोनियामय रजत नाइट्रेट के अवकरण से चाँदी मुक्त करता है। इसका स्वत. ऑक्सीकरण (auto-oxidation) हवा से सहज ही हो जाता है और इस अभिक्रिया में परबेनजोइक अम्ल मध्यस्थ का कार्य करता है।

दूसरे ऐल्डिहाइडों के समान यह सोडियम बाइसल्फाइट तथा पोटैशियम सायनाइड के साथ योगशील यौगिक और हाइड्रॉक्सिल ऐमिन तथा फेनिल हाइड्रेजिन के साथ संघनन यौगिक बनाता है। तनु क्षारीय विलयन के साथ कैनिजारो अभिक्रिया (Cannizaro reaction) से यह बेंजोइक अम्ल तथा बेंजाइल ऐल्कोहॉल में परिणत होता है। रासायनिक संश्लेषण मे इसकी क्लैसेन (Claisen), पर्किन (Perkin), बेंजोइन कंडेंसेशन आदि अभिक्रियाएँ और फिनोल (phenols) तथा तृतीय ऐमिनो (tertiary amines) से संघनन विशेष महत्व रखता है। इनके द्वारा अनेकानेक रंजक ओषधियाँ और रासायनिक मध्यस्थ पदार्थों का निर्माण किया जाता है। बेंजैल्डिहाइड का प्रयोग कुछ मात्रा में वासक (flavourging) और सुगंधित पदार्थों के निर्माण में भी किया जाता है। [रा० हृ० स०]

बेंजोइक अम्ल (Benzoic Acid) ऐरोमेटिक कार्बोक्सिलिक अम्ल है। यह हलके, रंगहीन, चमकदार, क्रिस्टलीय चूर्ण के रूप मे प्राप्य है। इसका सूत्र का$_6$हा$_5$. काओओहा (C_6H_5. COOH), गलनांक १२२·४° सें० और क्वथनांक २५०° सें० है। जल मे अल्प विलेय, किंतु ईथर और ऐल्कोहॉल में अपेक्षाकृत सुगमता से विलेय है।

बेंजोइक अम्ल प्रकृति में स्वतंत्र रूप से, या संयुक्त अवस्था मे लोबान (Gum benzoin) में और कई प्रकार के बाल्समों में पाया जाता है। औद्योगिक स्तर पर व्यापारिक बेंजोइक अम्ल का निर्माण अनेक विधियों से किया जाता है, जैसे (१) बेंजो-ट्राइक्लोराइड का$_6$हा$_5$. काक्लो$_3$ (C_6H_5, CCl_3) के जलविश्लेषण से, जिसमें लोहचूर्ण और चूना उत्प्रेरक के रूप मे प्रयुक्त होते हैं, (२) भाप और जिंक ऑक्साइड की उपस्थिति मे थैलिक ऐनहाइड्राइड से थैलिक अम्ल बनाकर, उसका डीकार्बोक्सिलेशन से तथा (३) मैंगनीज डाइऑक्साइड एवं सल्फ्यूरिक अम्ल से, या कोबाल्ट उत्प्रेरक के समक्ष हवा से, टॉलूईन के ऑक्सीकरण से।

इस अम्ल की रासायनिक सक्रियता अपेक्षाकृत कम होने के कारण रासायनिक संश्लेषण में उसकी उपादेयता सीमित है। इसके सीधे (प्रत्यक्ष) क्लोरीकरण से पैरा-क्लोरोबेंजोइक अम्ल और अल्प मात्रा में २,५- और ३, ४- डाइक्लोरो बेंजोइक अम्ल बनाए जाते हैं। सल्फ्यूरिक और नाइट्रिक अम्लों के मिश्रण द्वारा सीधा नाइट्रेशन करने से साधारण ताप पर मेटा-नाइट्रो-बेंजोइक अम्ल और ऊँचे ताप पर ३, ५- डाइनाइट्रोबेंजोइक अम्ल बनते हैं।

बेंजोइक अम्ल तंबाकू संसाधन (curing) के लिये और छींट छपाई (calicoprinting) में प्रयुक्त होता है। इसके अनेक संजात, जैसे सोडियम बेंजोएट, एस्टर और बेंजोइल क्लोराइड महत्व के और उपयोगी पदार्थ हैं। सोडियम बेंजोएट ओषधि मे प्रयुक्त होता है। इसका अधिक महत्व का उपयोग खाद्य पदार्थों के परिरक्षण मे है। चटनियो, अचार, मुरब्बे, फल फूलो के रस, शरबत आदि तथा डिब्बे और बोतलो मे बंद परिरक्षित आहारो को सड़ने, किण्वन और खराब होने से बचाने के लिये उनके साथ थोड़ी मात्रा में सोडियम बेंजोएट डाला जाता है और इसके इस उपयोग मे वैधानिक आपत्ति भी नहीं है। फॉर्मैल्डिहाइड, सोडियम मेटाबाइसल्फाइट और बोरिक अम्ल इत्यादि आपत्तिजनक खाद्य परिरक्षको से यह श्रेष्ठ है और शरीर के लिये हानिकारक भी नही है। शरीर से इसका उत्सर्जन हिप्यूरिक अम्ल, का$_6$हा$_5$ का ओ.नाहा. का हा$_2$ काओओहा (C_6H_5. CO NH CH_2. COOH) के रूप मे होता है। सोडियम बेंजोएट के ऊपर बताए गए उपयोग, इसकी अणुजीवो की वृद्धि-निरोध क्षमता पर निर्भर है, इसलिये यह भेषजीय निर्माणो मे और सौदर्यप्रसाधनो मे भी प्रयुक्त होता है।

बेंजोइक अम्ल के एस्टर सुगंधित होते हैं और सुगंध (इत्र, तेल इत्यादि) तथा ओषधिनिर्माण मे प्रयुक्त होते है। बेंजिल बेंजोएट इस समूह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पदार्थ है और उद्वेष्टरोधी (antispasmodic) तथा पूतिरोधी (antiseptic) ओषधियाँ और सुगंधित प्रसाधन बनाने मे प्रयुक्त होता है।

बेंजोइल क्लोराइड, का$_6$ हा$_5$. काओ. क्लो (C_6 H_5. CO. Cl), बेंजोइक अम्ल का संजात है। यह सोडियम बेंजोएट, या बेंजोइक अम्ल से फॉस्फोरस पेंटाक्लोराइड की अभिक्रिया द्वारा बनाया जाता है। संश्लेषणात्मक रासायनिक क्रियाओं मे इसका महत्वपूर्ण योगदान है और रासायनिक प्रयोगशालाओं में अभिकर्मक के रूप मे विशेष रूप से उपयोगी है। [रा० हृ० स०]

बेंटिक, लार्ड विलियम जन्म, १७७४ ई०; मृत्यु, १८३९। तृतीय ड्यूक ऑव पोर्टलैंड का द्वितीय पुत्र विलियम बेंटिक १४ सितंबर,

१७७४ को जन्मा था। वह सरल, शिष्ट, तथा प्रगतिशील व्यक्ति था। १७ वर्ष की अवस्था में उसने सेना में प्रवेश किया (१७९१); तथा १७९३ में वह लेफ्टिनेंट कर्नल के पद पर नियुक्त हुआ। उसने फ्लैंडर्स मे युद्ध, में भाग लिया (१७९४)। उत्तरी इटली और स्विट्जरलैंड मे मार्शल सुवारों (Suwarrow) के सैनिक अभियान में वह इग्लैंड के सैनिक प्रतिनिधि के रूप में संमिलित हुआ। १८०३ मे उसने लेडी मेरी अचेसन (Acheson) से विवाह किया। विवाह के तीन महीने बाद वह मदरास का गवर्नर नियुक्त हुआ। बेल्लोर मे सिपाही विद्रोह के कारण उसे पदत्याग करना पड़ा (१८०७)। तदनतर, उसने कोरुन्ना (Corunna) के युद्ध मे भाग लिया; सर आर्थर वेलेजली के नेतृत्व में पुर्तगाल मे लड़ा; तथा सिसिली मे अंगरेजी सेना का नायकत्व ग्रहण किया। १८१९ मे उसने मदरास मे गवर्नर नियुक्त होने के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। परंतु १८२७ मे वह भारत का गवर्नर-जनरल निर्णीत हुआ।

बेंटिक के पदारोहण के समय ईस्ट इंडिया कंपनी के चीनी व्यवसाय के एकाधिकार की समाप्ति की आशंका मे, तथा बर्मा में युद्ध मे अत्यधिक व्यय के कारण इंग्लैंड मे कंपनी के अधिकारियों ने मितव्ययिता की नीति निर्धारित कर दी तथा बाह्य नीति मे तटस्थता की नीति का अनुमोदन किया। मितव्ययिता का उत्तरदायित्व बेंटिक ने इतनी दक्षता से निभाया कि जब उसके आगमन के समय राजकोष मे प्राय एक करोड रुपए का घाटा था, प्रस्थान के समय प्राय: दो करोड़ रुपए का राजकोष मे आधिक्य था। भारतीय सेना के अधिकारियो का आधा-भत्ता बंद कर देने के कारण वह अंगरेज समुदाय मे अलोकप्रिय प्रमाणित हुआ। तीनों प्रातों के सैनिक सस्थापनो मे कटौतियाँ की तथा प्रातीय अपील और सरकिट के न्यायालयो को समाप्त कर दिया। असैनिक संस्थापनों मे भी उसने छटनी की। उसका सबसे महत्वपूर्ण तथा प्रगतिशील सुधार भारतीयों को पहली बार उच्चतर प्रशासकीय पदों पर नियुक्त करना था।

बाह्य क्षेत्र मे बेंटिक ने सिंध के अमीरो से संधि द्वारा (१८३२) सिंधु नदी मे भारतीय व्यापार का प्रवेश स्थापित किया। तटस्थता की नीति ग्रहण करने पर भी मैसूर तथा कुर्ग राज्यो को उनकी आतरिक अव्यवस्था के कारण ब्रिटिश साम्राज्य मे संमिलित कर लिया।

भारतीय इतिहास मे बेंटिक का समाननीय स्थान उसके प्रगतिशील सामाजिक सुधारो के कारण है। वास्तव मे, उसी के शासनकाल से भारतीय आधुनिकीकरण का सूत्रपात हुआ। इसमे उसे एक ओर चार्ल्स मेटकाफ़ से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, तथा दूसरी ओर आधुनिक भारतीयता के जनक राजा राममोहन राय से। उसने सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। ठगी का समूलोच्छेदन किया। वह प्रेस की स्वतन्त्रता का भी समर्थक था। उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य मैकाले की सहायता से अंगरेजी को शिक्षा का माध्यम तथा राजभाषा निर्मित करना था। बेंटिक ने गंगा पर प्रथम वाष्प पोत भी चालू किया था। उसका बंबई तथा सुएज (Suez) के मध्य वाष्प पोत के आवागमन का प्रस्ताव १८४३ मे कार्यान्वित हो सका। २० मार्च, १८३५ को उसने भारत छोड़ा। १७ जून, १८३९ को पेरिस मे उसकी मृत्यु हुई।

[रा० ना०]

बेंथम, जेरेमी (१७४८-१८३२) प्रसिद्ध दार्शनिक तथा विधि-सुधारक। सन् १७७६ मे उसकी 'शासन पर स्फुट विचार' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें उसने यह मत व्यक्त किया कि किसी भी कानून की उपयोगिता की कसौटी यह है कि जिन लोगों से उसका संबंध हो, उनके आनंद, हित और सुख की अधिक से अधिक वृद्धि वह करे। उसकी दूसरी पुस्तक 'आचार और विधान (कानून) के सिद्धांत' १७८९ मे निकली जिसमे उसके उपयोगितावाद का सार मर्म संनिहित है। उसने इस बात पर बल दिया कि 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख' ही प्रत्येक विधान का लक्ष्य होना चाहिए (दे० उपयोगितावाद)। 'उपयोगिता' का सिद्धात वह अर्थशास्त्र मे भी लागू करना चाहता था। उसका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति को, किसी भी तरह के प्रतिबंध के बिना, अपना हित संपन्न करने की स्वतंत्रता रहनी चाहिए। सूदखोरी के समर्थन मे उसने एक पुस्तक 'डिफेंस ऑव यूज़री' सन् १७८७ मे लिखी थी। उसने गरीबों संबंधी कानून (पूअर लॉ) मे सुधार करने के लिये जो सुझाव दिए, उन्हीं के आधार पर सन् १८३४ मे उसमे कई संशोधन किए गए। पालियमेट मे सुधार कराने के सबंध मे भी उसने एक पुस्तक लिखी थी (१८१७)। इसमे उसने सुझाव दिया था कि मतदान का अधिकार प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को मिलना चाहिए और चुनाव प्रति वर्ष किया जाना चाहिए। उसने बंदीगृहो के सुधार पर भी बल दिया और १८२५ मे 'दंड और पुरस्कार' शीर्षक एक पुस्तक लिखी।

बेकन, फ्रांसिस (१५६१-१६२६) अंग्रेज राजनीतिज्ञ, दार्शनिक और लेखक। रानी एलिज़बेथ के राज्य में उसके परिवार का बड़ा प्रभाव था। कैंब्रिज और ग्रेज इन में शिक्षा प्राप्त की। १५७७ मे वह फ्रांस स्थित अंग्रेजी दूतावास मे नियुक्त हुआ, किंतु पिता सर निकोलस बेकन की मृत्यु के पश्चात् १५७९ मे वापस लौट आया। उसने वकालत का पेशा अपनाने के लिये कानून का अध्ययन किया। प्रारंभ से ही उसकी रुचि सक्रिय राजनीतिक जीवन मे थी। १५८४ मे वह ब्रिटिश लोकसभा का सदस्य निर्वाचित हुआ। ससद की, जिसमे वह १६१४ तक रहा, कार्यप्रणाली मे उसका योगदान अत्यत महत्वपूर्ण रहा। समय समय पर वह महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्नो पर एलिज़बेथ को निष्पक्ष समतियाँ देता रहा। कहते हैं, अगर उसकी समतियाँ उस समय मान ली गई होती तो बाद मे शाही और संसदीय अधिकारों के बीच होनेवाले विवाद उठे ही न होते। सब कुछ होते हुए भी उसकी योग्यता का ठीक ठीक मूल्यांकन नही हुआ। लार्ड बर्ले ने उसे अपने पुत्र के मार्ग में बाधक मानकर सदा उसका विरोध किया। रानी एलिज़बेथ ने भी उसका समर्थन नही किया क्योंकि उसने शाही आवश्यकता के लिये संसदीय धनानुदान का विरोध किया था। १५९२ के लगभग वह अपने भाई एथोनी के साथ अर्ल ऑव एसेक्स का राजनीतिक सलाहकार नियुक्त हुआ। किंतु १६०१ मे, जब एसेक्स ने लंदन की जनता को विद्रोह के लिये भड़काया तो बेकन ने रानी के वकील की हैसियत से एसेक्स को राजद्रोह के अपराध मे दंड दिलाया।

वह एलिज़बेथ के राज्य में किसी महत्वपूर्ण पद पर नही रहा, किंतु जेम्स प्रथम के राजा होने पर उसका भाग्य चमका। वह १६०७ में सॉलिसिटर जनरल, १६१३ मे अटार्नी जनरल और १६१८ में लार्ड

चांसलर नियुक्त हुआ। १६०३ में नाइट और १६१८ में बेरन वेरुलम की उपाधियों से विभूषित किया गया। उसके बाद बेकन ने पतन के दिन देखे। उसपर घूसखोरी और पद के दुरुपयोग का आरोप लगाया गया। उसने आरोप स्वीकार करते हुए यह दलील दी कि उपहारों ने उसके निर्णयों को कभी प्रभावित नहीं किया। बेकन अपने पद से हटा दिया गया। जीवन के शेष दिन उसने संन्यास में बिताए।

राजनीतिक और कानूनी मामलों में व्यस्त रहते हुए भी वह विज्ञान और दर्शन में गंभीर रुचि रखता था। उसकी साहित्यिक कृतियों में उसकी व्यावहारिक मनोवृत्ति दिखाई देती है। 'एसेज' उसके २८ वर्षों की अवधि में लिखे गए ५८ निबंधों का संग्रह है। संक्षेप, सूत्रात्मकता और चित्ताकर्षक रूपक उसकी शैली की विशेषताएँ थीं। 'डि सैपिएंशिया वेटेरम' (१६०९) (द विज़डम ऑव् द एंशिएंट्स (१६१९), और हिस्ट्री ऑव् द रेन ऑव् हेनरी सेवेन्थ (१६२२) नामक उसकी कृतियाँ ऐतिहासिक और राजनीतिक विषयों में सूक्ष्म अनुसंधान बुद्धि और विश्लेषण प्रतिभा का परिचय देती है। दार्शनिक कृतियों मे 'इंस्टारेशियो मैग्ना' (Instauratio Magna) और 'नोवम आर्गेनम' (Novum Organum) उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'दि एडवांसमेंट आव लर्निंग' और 'डि आगमेंटिस साइंशिएरम' ज्ञानमीमांसा पर विस्तृत रचनाएँ है।

वस्तुतः उसने वैज्ञानिक या दार्शनिक सिद्धांतो में कोई बहुत मौलिक योगदान नही किया। उसका महत्व वैज्ञानिक अन्वेषण मे विशेष दिशा की अपेक्षा सहज प्रभाव ग्रहण करने पर बल देने में है। उसने जीवन में केवल एक वैज्ञानिक प्रयोग किया—यह परीक्षण करने के लिये कि शीत, वस्तु या जीवन के ह्रास को कहाँ तक रोकता है एक कुक्कुटशावक को बर्फ मे बंद कर दिया। परीक्षण का पूरा प्रभाव बेकन नहीं देख पाया, और इसी के दौरान शीत के प्रभाव से उसकी मृत्यु हो गई।

बेकारी एक विशेष अवस्था को, जब देश मे कार्य करनेवाली जनशक्ति अधिक होती हैं किंतु काम करने के लिये राजी होते हुए भी बहुतो को प्रचलित मजदूरी पर कार्य नही मिलता, बेकारी की संज्ञा दी जाती है। ऐसे व्यक्तियों का जो मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से कार्य करने के योग्य और इच्छुक हैं परतु जिन्हे प्रचलित मजदूरी पर कार्य नहीं मिलता, उन्हे बेकार कहा जाता है। कार्य प्राप्त करने की इच्छा के संबंध मे अनेक विचार हैं। विशेषकर प्रतिदिन कार्य करने के घंटे, मजदूरी की दरे तथा मनुष्य की स्वस्थ दशाओं आदि पर विचार करने के पश्चात् ही कार्य करने की इच्छा के संबंध में निश्चित रूप से जाना जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि किसी उद्योग मे कार्य करने के सामान्य घंटे आठ हैं परंतु एक व्यक्ति नौ घंटे कार्य करने की क्षमता रखता है, ऐसी परिस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति प्रति दिन एक घटा बेकार रहता है। बेकारी का सीधा तात्पर्य निष्क्रियता नहीं होता। उदाहरणार्थ—यदि व्यक्ति रात्रि मे सोता है तो उसे बेकार नही कहा जा सकता है।

इसी प्रकार मजदूरी की दर से तात्पर्य प्रचलित मजदूरी की दर से है और मजदूरी प्राप्त करने की इच्छा का अर्थ प्रचलित मजदूरी की दरों पर कार्य करने की इच्छा है। यदि कोई व्यक्ति उसी समय काम करना चाहे जब प्रचलित मजदूरी की दर पंद्रह रुपए प्रतिदिन हो और उस समय काम करने से इन्कार कर दे जब प्रचलित मजदूरी बारह रुपए प्रतिदिन हो, ऐसे व्यक्ति को बेकार अथवा बेकारी की अवस्था से त्रस्त नही कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त ऐसे भी व्यक्ति को बेकार अथवा बेकारी से त्रस्त नही कह सकते जो कार्य तो करना चाहता है परंतु बीमारी के कारण कार्य नहीं कर पाता। बालक, रोगी, वृद्ध तथा असहाय लोगों को 'रोजगार अयोग्य' (unemployables) तथा साधु, पीर, भिखमंगे तथा कार्य न करनेवाले जमीदार, सामंत आदि व्यक्तियों को पराश्रयी कहा जा सकता है।

बेकारी का अस्तित्व श्रम की माँग और उसकी पूर्ति के बीच स्थिर अनुपात पर निर्भर करता है। बेकारी के दो भेद हैं—असंतुलनात्मक (फ्रिक्शनल) तथा ऐच्छिक (वालटरी)। असंतुलनात्मक बेकारी श्रम की माँग मे परिवर्तन के कारण होती है। ऐच्छिक बेकारी का प्रादुर्भाव उस समय होता है जब मजदूर अपनी वास्तविक मजदूरी में कटौती को स्वीकार नही करता। समग्रतः बेकारी श्रम की माँग और पूर्ति के बीच असतुलित स्थिति का प्रतिफल है।

प्रोफेसर जे० एम० कीन्स 'अनैच्छिक बेकारी' को भी बेकारी का भेद मानते हैं। 'अनैच्छिक बेकारी' की परिभाषा करते हुए उन्होंने लिखा है—'जब कोई व्यक्ति प्रचलित वास्तविक मजदूरी से कम वास्तविक मजदूरी पर कार्य करने के लिये तैयार हो जाता है, चाहे वह कम नकद मजदूरी स्वीकार करने के लिये तैयार न हो, तब इस अवस्था को अनैच्छिक बेकारी कहते है।'

यदि कोई व्यक्ति किसी उत्पादक व्यवसाय मे कार्य करता है तो इसका यह अर्थ नही है कि वह बेकार नही है। ऐसे व्यक्तियों को पूर्णरूपेण रोजगार में लगा हुआ नहीं माना जाता जो आंशिक रूप से ही कार्य मे लगे हैं, अथवा उच्च कार्य की क्षमता रखते हुए भी निम्न प्रकार के लाभकारी व्यवसायो में कार्य करते हैं।

सन् १६१६ ई० में अंतरराष्ट्रीय श्रमसंमेलन के वाशिंगटन अधिवेशन ने बेकारी अभिसमय (unemployment convention) संबंधी एक प्रस्ताव स्वीकार किया था जिसमे कहा गया था कि केंद्रीय सत्ता के नियंत्रण में प्रत्येक देश मे सरकारी कामदिलाऊ अभिकरण स्थापित किए जाएँ। सन् १६३१ ई० में भारत राजकीय श्रम के आयोग (Royal Commission on Labour) ने बेकारी की समस्या पर विचार किया और निष्कर्ष रूप मे कहा कि बेकारी की समस्या विकट रूप धारण कर चुकी है। यद्यपि भारत ने अंतरराष्ट्रीय श्रमसंघ का 'बेकारी संबधी' समझौता सन् १६२१ ई० मे स्वीकार कर लिया था परंतु इसके कार्यान्वियन मे उसे दो दशक से भी अधिक का समय लग गया।

सन् १६३५ के गवर्नमेंट आव इंडिया ऐक्ट मे बेकारी (बेरोजगारी) प्रातीय विषय के रूप में ग्रहण की गई। परंतु द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने के बाद युद्धरत तथा फैक्टरियों में काम करनेवाले कामगारो को फिर से काम पर लगाने की समस्या उठ खड़ी हुई। १६४२-१६४४ मे देश के विभिन्न भागों में कामदिलाऊ कार्यालय खोले गए परंतु कामदिलाऊ कार्यालयों की व्यवस्था के बारे में केंद्रीकरण तथा समन्वय का अनुभव किया गया। अतः एक पुनर्वास तथा नियोजन निदेशालय (Directorate of Resettlement and Employment) की स्थापना की गई है। [पु० बा०]

बेगूसराय १. उपमंडल, स्थिति : २५° १५' उ० अ० तथा ८५° ४७' पू० दे०। भारत के बिहार राज्य में मुंगेर जिले का एक उपमंडल है। इसका क्षेत्रफल ७१५ वर्ग मील तथा जनसंख्या ६,५४,७२७ (१९६१) है।

२. नगर, स्थिति : २५° २६' उ० अ० तथा ८६° ६' पू० दे०। बिहार के मुंगेर जिले का एक नगर है जो पूर्वोत्तर रेलवे के बरौनी-कटिहार-खंड का रेलवे स्टेशन भी है। यह रेल मार्ग द्वारा बरौनी से १६ किमी० दूर है। इसकी जनसख्या २७,३४६ (१९६१) है।

[सु० चं० श०]

बेचुआनालैंड (देखें, बोत्सवाना)।

बेतवा नदी यह उत्तरी भारत मे उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश राज्यों में बहनेवाली नदी है। भोपाल के दक्षिण-पश्चिम कुमरी गाँव के पास से निकलकर यह उत्तर-पूर्व की ओर बहती हुई भिलसा जिले में प्रवेश करती है। इसके बाद उत्तर प्रदेश के झाँसी जिले को मध्य प्रदेश से अलग करती हुई तथा झाँसी जिले को पश्चिम से पूर्व पार कर पुन: मध्य प्रदेश के टीकमगढ जिले के उत्तर-पश्चिमी कोने में प्रवेश करती है, जहाँ से फिर उत्तर प्रदेश में प्रवेश कर यमुना मे मिल जाती है। यह कहीं भी नौगम्य नही है। इसे पार करने के लिये कई बड़े बड़े पुल हैं। झाँसी से १५ मील दूर इसपर एक बाँध भी बनाया गया है, जहाँ से बेतवा नहर निकाली गई है। धसान, पावन, जमनी आदि इसकी सहायक नदियाँ हैं। यह लगभग ३६० मील लंबी है।

[रा० स० ख०]

बेतारी तारसंचार विद्युच्चुबकीय तरंगों के उत्पादन एवं संप्रेषण संबंधी हर्ट्ज के प्रयोग (देखें, विद्युच्चुंबकीय तरंगें) के लगभग छह वर्षों के अनंतर, सन् १८९४ मे, सर ऑलिवर लॉज नामक वैज्ञानिक ने बेतार के तार द्वारा संकेतप्रेषण का सर्वप्रथम सफल प्रयोग किया और सन् १८९७ ई० के लगभग प्रेषक एवं संग्राहक परिपथों के समस्वरण (tuning) का सिद्धात प्रतिपादित किया। सन् १८९४ मे ही गूलिएल्मो मारकोनी (Gulielmo Marconi) नामक इंजीनियर ने बोलोन्या (Bologna) मे बेतार के तार द्वारा वार्ताविहन का सफल प्रदर्शन किया और १८९९ ई० मे इंग्लिश चैनेल के उस पार बेतार का संकेत प्रेषित करने मे सफलता प्राप्त की। सन् १९०१ मे मारकोनी ने न्यूफाउडलैंड के सेंट जॉन्ज नगर मे एक पतग से एरियल लटकाकर इंग्लैंड मे कॉर्नवॉल के पोल्धू नामक स्थान से प्रेषित सिगनलों को ग्रहण किया।

मारकोनी द्वारा व्यवहृत व्यवस्था ऐतिहासिक एवं आधुनिक बेतार के तार की यांत्रिक प्रणाली के आद्य रूप में अप्रतिम महत्व की है। इसे नीचे चित्र १. में प्रदर्शित किया गया है। इसमें प्रत्येक बार कुंजी बंद करने पर रमकॉर्फ कुंडली (Rhumkorff's coil), या स्फुलिंग कुंडली, से उच्च विभव के स्पंदनों (pulses) की एक तरंगावलि (train) उत्पन्न होती है। प्रत्येक ऐसे स्पंदन (pulse) से प्लेट ग का विभव बढ़ता है और अंत मे स्फुलिंग अंतराल (spark gap) च में स्फुलिंग विसर्जन होता है। प्लेट ग और पृथ्वी के बीच होनेवाला विसर्जन दोलनी (oscillatory) होता है और इसकी आवृत्ति दोनों के बीच स्थित ऊर्ध्वाधर तार की धारिता और प्रेरकत्व (inductance) पर निर्भर करती है। इसे निम्नलिखित सूत्र द्वारा व्यक्त किया जाता है, जहाँ आ (f) दोलन की आवृत्ति, ल (L) प्रेरकत्व तथा धा (C) धारिता है :

$$\text{आ} = \frac{1}{2\pi\sqrt{\text{ल धा}}} \left[f = \frac{1}{2\pi\sqrt{LC}} \right]$$

तार में इस प्रकार उत्पन्न दोलनी विद्युद्धारा से विद्युच्चुंबकीय ऊर्जा का विकिरण होता है। इससे दोलनी धारा की प्रबलता भी अत्यंत द्रुत गति से कम होती जाती है और प्लेट ग की वोल्टता भी अपना पुनरुत्थान होने तक अत्यंत
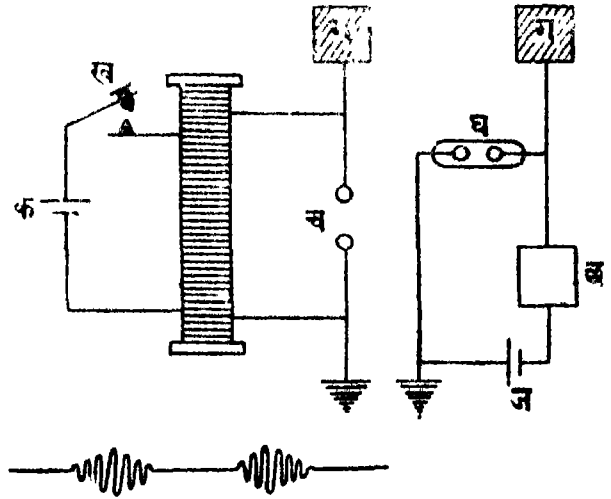
चित्र १.

क्षीणप्राय रह जाती है। इससे उत्पन्न तरंगों का रूप चित्र १. मे नीचे प्रदर्शित है। चित्र २. मे प्रदर्शित संयंत्र प्रणाली भी उपर्युक्त प्रणाली की ही भाँति कार्य करती है, किंतु इसमें प्रेषित्र एवं ग्राही के साथ एक एक समस्वरित परिपथ भी संबद्ध है। प्रेषित्र में संधनित्र ग प्रेरकत्व च और स्फुलिंग
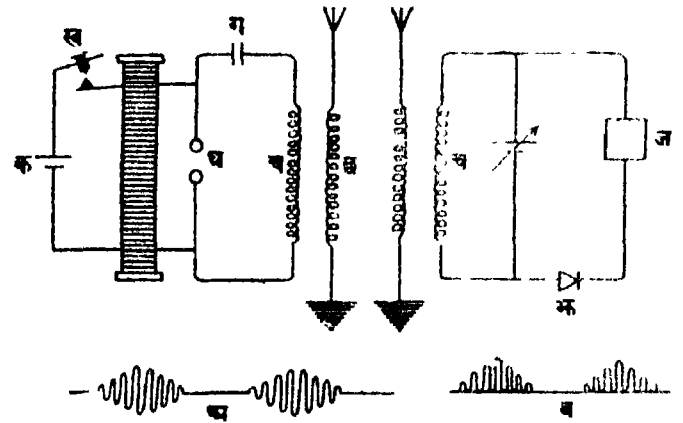
चित्र २.

अंतराल घ भी संमिलित है। इसमें दोलनी धारा उत्पन्न होती है, किंतु मुख्य विकिरण सीधे इस परिपथ से नहीं, अपितु च और ग युक्त तथा आ (f) आवृत्ति के लिये अनुनाद करनेवाले समस्वरित परिपथ से होता है। इस

प्रणाली के ग्राही तंत्र में एक संसूचक (detector) भी होता है, जो आपाती प्रत्यावर्ती धारा को सरल संकेत धारा में परिणित कर देता है। ज्ञातव्य है कि कुछ वर्षों के उपरांत फ्लेमिंग ने डायोड वाल्व (diode valve) का आविष्कार किया, जिसने इस साधारण संसूचक का स्थान ले लिया, और उसके बाद ही ली डेफॉरेस्ट ने ट्रायोड वाल्व (triode valve) का आविष्कार किया, जो दोलनी धारा उत्पादन के लिये रमकॉर्फ कुंडली एवं स्फुलिंग अंतराल के स्थान पर जनित्र के लिये प्रयुक्त होने लगा।

बेतार का तार प्रेषण — बेतार के तार द्वारा वार्तावहन, या संकेत संचार, की प्रक्रिया के तीन मुख्य अंग होते हैं : (१) बेतार के तार तरंगों (या रेडियो तरंगों) का उत्पादन एवं प्रेषण, (२) तरंगों का दिक् में गमन या संचरण और (३) रेडियो तरंगों का अभिग्रहण (reception)। तरंगों का उत्पादन एवं प्रेषण करनेवाली यंत्र-प्रणाली को बेतार प्रेषित्र (wireless transmitter) कहते हैं। संचरणोपरांत ये तरंगें एक ग्राही (receiver) में संगृहीत होती हैं। यह संपूर्ण प्रक्रिया अत्यंत जटिल होती है। इसका सामान्य विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

बेतार तरंगों का उत्पादन एवं प्रेषण — बेतार का तार प्रेषित्र विद्युत् की अत्यंत द्रुत, दोलनी गति उत्पन्न करनेवाली एक यंत्र-व्यवस्था होती है, जिससे दिक् में विद्युत्तरंगों की उत्पत्ति होती है। इस व्यवस्था के तीन मुख्य भाग होते हैं : (१) उच्च आवृत्ति के दोलन उत्पन्न करनेवाला एक जनित्र (generator), (२) दोलनों का कुंजीयन (keying) अथवा अधिमिश्रण (modulation) करने का एक साधन, तथा (३) इस प्रकार उत्पन्न दोलनों को अभीष्ट शक्तिस्तर तक प्रवर्धित करने का उपयुक्त साधन। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, प्रारंभ में स्फुलिंग प्रेषित्र (spark transmitter) का प्रयोग किया जाता था, किंतु १९४१ ई० में एक अंतरराष्ट्रीय अनुबंध द्वारा स्फुलिंग प्रेषित्रों का प्रयोग निषिद्ध मान लिया गया। उनका स्थान वाल्व संयंत्रित एवं क्रिस्टल संयंत्रित दोलकों ने ले लिया। कहीं कहीं आर्क संयंत्रित दोलकों का भी प्रयोग अभी तक किया जा रहा है।

हर्ट्ज द्वारा प्राप्त परिमाणों का विस्तृत गणितीय विवेचन करने पर ज्ञात होता है कि एक ऐसे वैद्युत द्विक् (electric doublet) से, जिसके वैद्युत आघूर्ण (electric moment) में आवर्ती परिवर्तन होता रहता है, र (r) दूरी पर स्थित ऊर्ध्वाधर विद्युच्चालक तक पहुँचनेवाला विद्युद्बल निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात होता है

$$ब = \frac{१२० \pi \, ध_{a} \, ह_{a}}{र \, त} \left[E = \frac{120\pi \, i_s h_s}{r \lambda} \right] \cdots (१)$$

यहाँ $ह_a$ (h_s) = चालक की लंबाई, $ध_a$ (i_s) = चालक में प्रवाहित होनेवाली प्रत्यावर्ती धारा का आयाम (amplitude) तथा त (λ) = धारा की कोणीय आवृत्ति है। समीकरण (१) में $ध_a$ (i_s), $ह_a$ (h_s), र (r) और त (λ) मीटरों में व्यक्त किए गए हैं और ब (E) वोल्ट प्रति मीटर में व्यक्त किया गया है। इसे व्यावहारिक प्रेषणसूत्र कहते हैं। प्रेषित्र में उपर्युक्त चालक को एरियल (aerial) कहा जाता है। सूत्र (१) से स्पष्ट है कि एरियल की ऊँचाई (h_s) $ह_a$, जितनी ही अधिक होगी, और आवृत्ति, १/त ($1/\lambda$) जितनी ही अधिक होगी, उतना ही अधिक विद्युद्बल उस एरियल में कार्यशील होगा। ऐसा स्थिर विद्युद्ग्राही ऊर्ध्वाधर एरियल वस्तुतः एक ऊर्ध्वाधर तार मात्र होता है, जिसका शीर्ष लंबा एवं चौरस होता है (चित्र ३.)। ऑलिवर लॉज द्वारा प्रवर्तित विधानुसार इसमें एक प्रेरकत्व ल (L) का भी समावेश कर लिया जाता है, जिसके कारण यह व्यवस्था दोलनकारी हो जाती है। इससे उस परिपथ में अवमंदित विद्युद्दोलकों के ह्रास की दर में कमी होने के अतिरिक्त परिपथ की स्वाभाविक आवृत्ति के समजन के एक सुगम उपाय का भी समावेश हो जाता है। प्रेषण के लिये दीर्घकालिक दोलन उत्पन्न करनेवाले एक तापायनिक (thermionic) वाल्व द्वारा इसे ऊर्जित करते हैं। एरियल में अधिकतम धारा उत्पन्न करने के लिये परिपथ की स्वाभाविक आवृत्ति, दोलन
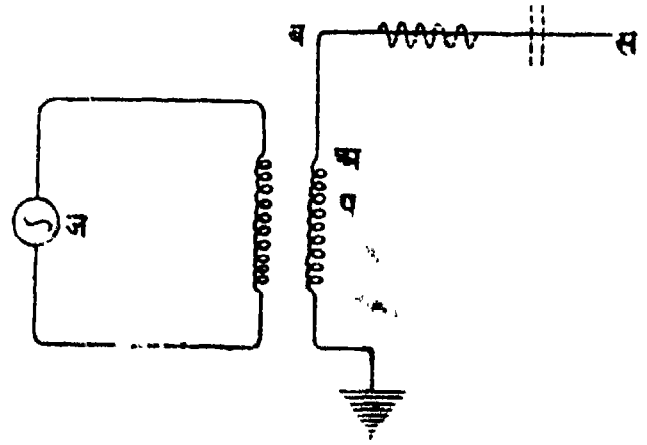
चित्र ३.

उत्पन्न करनेवाले उपर्युक्त वाल्व के दोलन की आवृत्ति के बराबर होनी चाहिए। व्यवहार में एरियल के समग्र ऊर्ध्वाधर भाग अ ब में विद्युद्धारा प्रायः स्थिर रहती है, किंतु क्षैतिज भाग ब स में धारा की प्रबलता तथा पृथ्वी के सापेक्ष विभव का मान लंबाई की ओर बदलता जाता है। इसके अतिरिक्त, इस अंश का प्रेरकत्व, धारिता और प्रतिरोध इसकी संपूर्ण लंबाई में वितरित रहते हैं और इस संपूर्ण भाग के लिये इनके मान दोलन की आवृत्ति पर निर्भर करते हैं। बेतार प्रेषित्र के लिये उपयुक्त एरियल का चयन करते समय उसके प्रतिरोध, प्रेरकत्व एवं धारिता के लिये उसकी स्वाभाविक आवृत्ति एवं उससे उत्पन्न तरंगदैर्घ्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक होता है। गणितीय विश्लेषण से इनके लिये निम्नलिखित व्यंजक प्राप्त होते हैं.

$$\text{स्वाभाविक आवृत्ति, आ} = \frac{१०६^{६}}{२\pi \sqrt{\left(ल + \frac{ल_{o}}{३} \right) धा_{o}}}$$

$$\left[f = \frac{106^{6}}{2\pi \sqrt{\left(L + \frac{L_o}{3} \right) C_o}} \right]$$

एवं तरंग लंबाई, त = १८८४ $\sqrt{\left(ल + \frac{ल_0}{३}\right) धा_0}$,

$$\left[\ \lambda = 1884 \sqrt{\left(L + \frac{L_0}{3}\right)C_0}\ \right],$$

जहाँ ल (L) ऊर्ध्वाधर भाग में निहित प्रेरकत्व है, ल$_0$ (L$_0$) तथा धा$_0$ (C$_0$) क्षैतिज भाग ब स के क्रमशः प्रेरकत्व एवं धारिता हैं। एरियल परिपथ का संपूर्ण प्रतिरोध वस्तुतः चार प्रतिरोधों का योग होता है, जो क्रमशः क्षैतिज भाग का प्रतिरोध, कुंडली प का प्रतिरोध, विकिरण प्रतिरोध एवं ऊर्ध्वाधर भाग का प्रतिरोध है। विकिरण प्रतिरोध, तरंगों के रूप में ऊर्जा के विकिरण के कारण प्रतिरोध में होनेवाली वृद्धि है, जो परिमाण में उस प्रतिरोध के बराबर होती है जिसे ऊर्ध्वाधर भाग में रखने पर, उसके द्वारा उतनी ही ऊर्जा का अवशोषण होता जितनी ऊर्जा तरंग के रूप मे विकिरित होती है। उपर्युक्त दृष्टांत में प्रदर्शित चौरस शीर्ष एरियल के लिये विकिरण प्रतिरोध का मान निम्नलिखित होता है :

$$१५८० \frac{ह_{ग}^2}{ल^2} \left(1580 \frac{h_s^2}{\lambda^2} \right) \text{ ओम।}$$

बेतार तरंगों का संग्रहण — उपर्युक्त प्रेषित्र प्रणाली द्वारा उत्सर्जित विद्युत्तरंगों के कारण र (r) दूरी पर स्थित, ह$_r$ (h$_r$) ऊँचाई के सग्राही एरियल के किसी बिंदु पर ब. ह$_r$ (E h$_r$) वोल्ट का विद्युद्वाहक बल (electromotive force) उत्पन्न होता है। यहाँ ब (E) उस प्रेषित्र द्वारा उत्पन्न विद्युत् क्षेत्र की तीव्रता है जो सूत्र (१) द्वारा व्यक्त होता है। इस संग्राही एरियल को एक प्रेरकत्व की सहायता से आगत विद्युत् की आवृत्ति के लिये समस्वरित किया जा सकता है। अनुनाद की दशा मे संगृहीत संकेतधारा सग्राही एरियल मे विद्युद्धारा के रूप मे नहीं, अपितु इसी प्रेरकत्व के सिरों के बीच उत्पन्न विद्युद्वाहक बल के रूप मे, संसूचित (detect) हो सकती है। इसे एक विभव प्रवर्धक (potential amplifier), यथा तापायनिक वाल्व प्रवर्धक, द्वारा प्रवधित कर क्रिस्टलीय या वाल्व संसूचक मे प्रविष्ट किया जाता है। इस प्रकार यह उस क्रिस्टल परिपथ या वाल्व के धनाग्र परिपथ मे सरल धारा में रूपातरित हो जाता है और टेलीफोन या धारामापी (galvanometer) की सहायता से अपना अस्तित्वबोध कराता है।

दिशात्मक एरियल (Directive Aerial) — उपर्युक्त व्यवस्था मे किंचित् सुधार कर उसे दिशात्मक एरियल में भी परिणत किया जा सकता है। यदि खुले तार के स्थान पर एक बंद कुंडली या पाशकुंडली (loop) का प्रयोग एरियल के रूप मे किया जाय (चित्र ४, अ ब द स), तो दोनों ऊर्ध्वाधर भुजाओं में उत्पन्न विद्युद्वाहक बलों की कलाओं मे अंतर होने के कारण एक परिणामी विद्युद्बल, ब$_r$ (E$_r$), उस कुंडली में कार्य करने लगेगा, जिसका परिमाण निम्नलिखित सूत्र द्वारा प्रकट होता है .

$$ब_r = \frac{२३६८ \text{ अ न घ}_r ह_r}{त^2 र}, \quad \left[E_r = \frac{2368 \text{ A N } i_r h_s}{\lambda^2 r} \right],$$

यहाँ अ (A) कुंडली का क्षेत्रफल तथा न (N) उसमें तार के चक्करों की संख्या है। अनुनाद (resonance) की दशा में इससे एक दोलनी
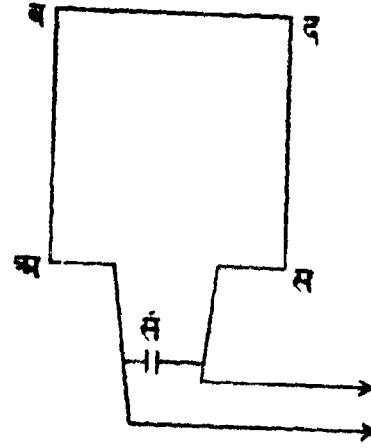
चित्र ४.

धारा घ$_r$ (i$_r$) उत्पन्न हो जाती है, जिसका मान निम्नलिखित सूत्र द्वारा व्यक्त होता है :

$$घ_r = \frac{२३६८ \text{ अ न घ}_r ह_r}{प त^2 र}, \quad \left[i_r = \frac{2368 \text{ A N } i_s h_s}{R \lambda^2 r} \right],$$

जहाँ प(R) उस कुंडली का प्रभावकारी प्रतिरोध है। ऐसे एरियल को एक संधनित्र, स (C) की सहायता से समस्वरित किया जाता है, जिसके दोनों सिरों के बीच उत्पन्न दोलनी विभव के रूप में संकेत पुनरुत्पादित होता है। इस विभव का आयाम $\frac{घ_r}{२\pi \text{ आ धा}}$ $\left[\frac{i_r}{2\pi f c}\right]$ के बराबर होता है। इस एरियल के अक्ष की लबवत् दिशा मे आनेवाली तरंगों से इसमे अधिकतम संकेत तीव्रता उत्पन्न होती है और अक्ष की ही दिशा मे आनेवाली तरंगों से शून्य या न्यूनतम संकेततीव्रता उत्पन्न होती है।

बेतार के तार मे मोर्स संकेत (Morse signal) भेजने के लिये प्रायः दो विधियों का व्यवहार किया जाता है : एक मे तो विराम के लिये शून्य आयाम (amplitude) के तथा डॉट (dot) एवं डैश (dash) के लिये नियत आयामों के संकेत प्रेषित किए जाते हैं। शून्य आयाम के संकेत को अंतरण अंतराल (spacing interval) तथा डॉट और डैश के संकेतो को चिह्नन अंतराल (marking interval) कहते हैं। दूसरी विधि मे अंतरण अंतरालों मे चिह्नन अवधि की अपेक्षा भिन्न तरंग लंबाई की तरंगें प्रेषित की जाती हैं, किंतु ग्राही को ऐसा समस्वरित किया जाता है कि वह चिह्नन अंतराल की ही तरंगों को ग्रहण कर सके।

तरंगों का संचरण या दिग्भ्रमण — बेतार के तार की तरंगो के दिक् मे संचरण की प्रक्रिया का अध्ययन करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान मे रखना पड़ता है :

१ दीर्घ तरंगों के संचरण पर विचार करते समय निम्नलिखित बातें विशेष रूप से विचारणीय होती हैं : (अ) लघु दूरियों तक संचरण, जिनके लिये पृथ्वी को प्राय. समतल माना जा सकता है तथा (ब) दीर्घ दूरियों तक संचरण, जिनके लिये पृथ्वी की वक्रता को भी ध्यान मे रखना पड़ता है।

२. लघु तरंगों का संचरण — इन तरंगों की लंबाई २०० मीटर से कम होती है और इनके संचरण की प्रक्रिया और दिशाएँ दीर्घ तरंगों के संचरण से सर्वथा भिन्न होती हैं।

३. तरंगसंचरण के लिये रात और दिन की दशाएँ बहुधा भिन्न होती हैं। लघु तरंगों के संचरण मे इन दिशाओं का प्रभाव उल्लेखनीय होता है।

लघु दूरी तक बेतार का तार प्रेषण — बेतार के संकेतों को थोड़ी दूर तक प्रेषित करने में सागरपार और स्थलपार दशाओं मे अंतर होता है। सागरपार प्रेषण में प्रेषित संकेतधारा तथा दूरी का गुणनफल दूरी बढ़ने के साथ घटता है। रात्रि में यह परिवर्तन अधिक अनियमित हो जाता है और दूरी बढ़ने के साथ साथ अनियमितता भी बढ़ती जाती है। लगभग १०० से १५० मील की दूरी पर प्राप्त संकेतों की तीव्रता रात्रि में शून्य से लेकर दिवसीय मान की दूनी तक हो सकती है। अधिक दूरियों पर रात्रि के समय संकेतों की तीव्रता दिन की तुलना में कहीं अधिक बढ़ जाती है।

रेडियो संकेतों में यह परिवर्तन समझने के लिये यह जान लेना आवश्यक है कि प्रेषित्र से ग्राही तक रेडियो तरंगें वायुमंडल के आयनोस्फ़ियर क्षेत्र के केनेली हेवीसाइड स्तर (Kennely heaviside layer) से परावर्तित होकर पहुँचती हैं (चित्र ५.)। जैसा चित्र से प्रदर्शित है, प्रेषित्र से तरंगें आयनोस्फ़ियर की ओर जाती हैं। इन्हें वायुमंडलीय किरण कहते हैं। दूसरी किरण धरती के समांतर ही जाती है। इसे भूमिकिरण कहते हैं। जब वायुमंडलीय किरण आयनोस्फ़ियर से परावर्तित होकर ग्राही पर उसी कला में पहुँचती है जिसमें भूमिकिरण पहुँचती है, तब संकेत की तीव्रता अधिकतम
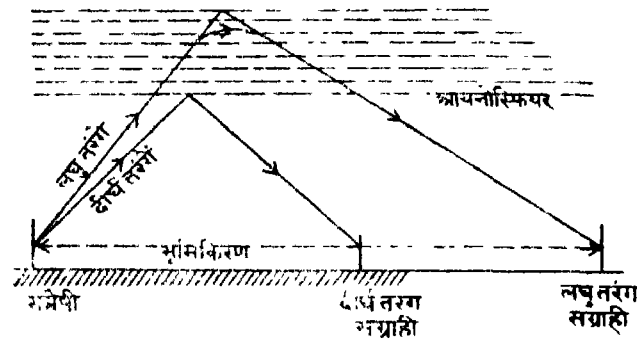
चित्र ५.

होती है। दिन के समय आयनोस्फीयर का निम्नतम स्तर काफी नीचे तक आ जाता है और रात्रि में यह ऊपर चला जाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि आयनोस्फ़ियर में वायु के आयनीकरण की क्रिया सूर्य की किरणों से प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न तरंगदैर्घ्यों का परावर्तन आयनोस्फियर की विभिन्न सतहों से होता है। सामान्यत: अधिक लंबी तरंगों का परावर्तन उसकी निचली सतहों से और लघु तरंगों का परावर्तन ऊपर की सतहों से होता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अधिक दूरी तक रेडियो संकेतों के प्रेषण के लिये लघु तरंगों का उपयोग ही समीचीन होता है, क्योंकि ये ऊपरी सतहों से परावर्तित होने के कारण बहुत दूर तक, ऊर्जा का अधिक ह्रास हुए बिना ही, पहुँच सकती हैं। यह तथ्य चित्र ५. से स्पष्ट हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर विभिन्न दूरियों पर रेडियो संकेतों की धूमिलता का स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

कम दूरियों (यथा ५० मील) पर भूमिकिरण सीधे ग्राही तक पहुँच जाती है, जिससे रेडियो संकेतो की तीव्रता प्राय: अपरिवर्तित रहती है, क्योंकि इसकी तीव्रता दिन और रात के समय समान रहती है। अधिक दूरियों (यथा १०० से १५० मील) पर, रात्रि में अपरिवर्ती भूमि किरण के साथ साथ प्राय: उसी तीव्रता की वायुमंडलीय किरणें भी ग्राही तक पहुँचती हैं। चूँकि ये अधोगामी तरंगें तीव्रता और कला, दोनों मे ही, भूमिकिरणों से भिन्न होती हैं, इसलिये भूमिकिरणों के साथ इनके संयोजन से उत्पन्न परिणामी संकेतों की तीव्रता शून्य से लेकर अहर्मान (daytime value) की दूनी तक हो सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि दोनों किरणें विपरीत या समान कलाओं मे संयोजित होती हैं। और भी अधिक दूरियों पर भूमि किरणों की तीव्रता बहुत घट जाती है। इस कारण प्राप्त होनेवाले संकेत पूर्णतया अधोगामी (परावर्तित) वायुमंडलीय किरणों के कारण ही उत्पन्न होते हैं। फलस्वरूप इनकी तीव्रता में परिवर्तन तो पर्याप्त सीमा तक हो सकता है, किंतु संकेत पूर्णतया लुप्त नहीं हो सकता। भिन्न भिन्न तरग लबाइयों के लिये वह दूरी, जिसपर समान तीव्रतावाली वायुमंडलीय एवं भूमिकिरणें पहुँच सकती हैं, भिन्न भिन्न होती है। लगभग १,६०० मीटर तरंगदैर्घ्य वाली तरंगों के लिये यह दूरी रात्रि में प्राय: ४८० से ६४० किलोमीटर तक होती है, पर १०० मीटरवाली तरंगो के लिये यह दूरी केवल १६० किलोमीटर के ही लगभग होती है।

दिशात्मक एरियलों (directive aerials) के द्वारा प्राप्त होनेवाले सकेतो मे भी रात्रि और दिन का अतर स्पष्ट परिलक्षित होता है। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, ऐसे एरियलो को घुमाकर ऐसी स्थिति मे लाया जाता है कि उनके द्वारा गृहीत संकेतों की तीव्रता अधिकतम हो। उस दशा में इस एरियल का अक्ष आगत तरगो की दिशा के लंबवत् होता है। दिन मे तो यह ठीक परिणाम देता है, किंतु रात्रि मे ६० अंश तक की त्रुटि हो जाती है।

दीर्घ-दूरी रेडियो-तरंग-प्रेषण — ऊपर बतलाया जा चुका है कि मारकोनी ने सन् १६०१ मे ही ऐटलैंटिक महासागर के पार तक बेतार के तार का सकेत भेजने मे सफलता प्राप्त की थी, किंतु इसका स्पष्टीकरण हर्ट्ज के विवेचन के आधार पर प्राप्त प्रेषणसूत्र (१) द्वारा नही हो सका। इसलिये उपयुक्त सूत्र की प्राप्ति के प्रयत्न होते रहे। सन् १६१० में ऑस्टिन ने दीर्घ दूरी तक रेडियो-तरंग-प्रेषण का सुविस्तृत अध्ययन किया और र (r) दूरी पर किसी एरियल पर उत्पन्न विद्युद्बल के लिये निम्नलिखित संशोधित सूत्र प्राप्त किया :

$$ब = \frac{३७७\ ध_स\ इ_स}{र\ त} . e^{-(०\cdot००१५\ र/\sqrt{त})}$$

$$\left[E = \frac{377\ i_s\ h_s}{r\lambda} e^{-(0.0015r/\sqrt{\lambda})}\right],$$

जहाँ घातांकीय पद (exponential term) को अवशोषण पद (absorption term) कहा जाता है। यह सूत्र केवल दिन के समय

तरंगप्रेषण के लिये व्यवहृत होता है तथा केवल लगभग ४०० किमी० के लिये ही सत्य सिद्ध होता है। फुलर (Fuller) ने इस सूत्र मे उपयुक्त संशोधन करने की चेष्टा की और अंत में अधिक दूरी तथा अधिक लंबाई की तरंगों के लिये अहर्निश व्यवहार्य, व्यापक सूत्र

$$ब = \frac{३७७ध_स ह_स}{र त} \sqrt{\frac{\theta}{ज्या\ \theta}}\ e^{-(०\cdot००४५\ र/\sqrt{त})}$$

$$\left[E = \frac{377\ i_s h_s}{r\lambda} \sqrt{\frac{\theta}{\sin\ \theta}}\ e^{-(0\cdot0045\ r/\sqrt{\lambda})}\right]$$

का प्रतिपादन किया, जिसमें θ प्रेषक एवं अभिग्राही केंद्रों के बीच भू-केंद्रिक कोण (geocentric angle), अर्थात् पृथ्वी के केंद्र से दोनों स्थानो को मिलानेवाली रेखाओं के बीच बननेवाला कोण, है।

हर्ट्ज के प्रारंभिक प्रयोगों से यह अनुमान किया जाता था कि दीर्घ लंबाई की तरंगें अधिक दूर तक बेतार वार्तावहन के लिये अधिक उपयुक्त होती हैं, किंतु तापायनिक वाल्वों का आविष्कार होने पर लघुतरंगो के साथ प्रयोग किए गए, जिनसे निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हुए : (१) लघु तरंगें बहुत अधिक दूरी तक, बिना अधिक ऊर्जाक्षीणन (attenuation) हुए ही, संचरित हो सकती हैं। इस कारण ऐसी तरंगो मे अभीष्ट संकेतों के सफल संचरण के लिये निम्नशक्ति के प्रेषी केंद्रों (low power transmitting stations) की स्थापना की ही आवश्यकता पडती है; (२) यद्यपि लघु तरंगो के संकेतों की तीव्रता अल्प दूरी तक दूरी में वृद्धि के साथ घटती है, किंतु एक निश्चित दूरी पार करने के पश्चात् इन संकेतो की तीव्रता दूरी बढने के साथ बढती जाती है। इस विशिष्ट, या निश्चित, दूरी को मूकांतराल (Skip distance) कहते हैं। यह दूरी सामान्यतया तरंग लंबाई, त (λ) के व्युत्क्रमानुपाती होती है। इसलिये लघु तरंगो के लिये इनका मान काफी अधिक होता है; (३) लघु तरंगों के लिये ऐसी अनुकूलतम (optimum) दूरियो के दो मान होते हैं : एक दिन के समय तरंगसंचरण के लिये और दूसरा रात्रि के समय के लिये। इसलिये इनके समिलित प्रयोग से वार्तावहन का क्रम अहर्निश कुशलता-पूर्वक चलाया जा सकता है।

विकिरणों को अधिक प्रभावी एवं शक्तिशाली बनाने के लिये उन्हें एक पुंज के रूप मे संघनित करने के उद्देश्य से, सर्वप्रथम मारकोनी कंपनी के इंजीनियरो ने तथा उनके पश्चात् फ्रैंकलिन ने, नए प्रकार के एरियल के निर्माण किए। इन एरियलों मे समांतर ऊर्ध्वाधर तारों का एक फ्रेम प्रयुक्त किया गया था और उसके पीछे ठीक ऐसा ही एक अन्य फ्रेम भी रखा जाता था। इस पृष्ठस्थ फ्रेम को परावर्तक पर्दा (Reflecting Screen) कहा जाता था। इस व्यवस्था के दो लाभ हैं (१) पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र से विद्युत्तरंगशक्ति का एकत्रीकरण, जिससे आपाती संकेतो की तीव्रता बढ़ जाती है, और (२) अन्य अवांछनीय संकेतों का परावर्तक द्वारा निस्यंदीकरण, जिससे वांछित संकेत अन्य संकेतो द्वारा व्यतिकृत न हो सकें।

सौर प्रभाव (Solar Influence) — ऑस्टिन ने सर्वप्रथम पता लगाया था कि सौर सक्रियता से भी बेतार की तरंगें प्रभावित होती हैं। जिन दिनों सूर्य के धब्बे (sunspots) अधिक दिखलाई पड़ते हैं, उन दिनों रेडियो संकेतों की तीव्रता अपेक्षाकृत कम होती है। चुंबकीय तूफानों के दिनों मे भी संकेतों की तीव्रता अन्य दिनों की अपेक्षा भिन्न हो जाती है। देखा गया है कि ऐसे दिनों में लघु तरंग संकेत निर्बल एवं दीर्घ तरंगसंकेत प्रबल हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि सौर सक्रियता के कारण वायुमंडल के आयनोस्फ़ियर मे आयनीकरण का परिमाण बढ जाता है। इस कारण उसमें होकर ऊपर तक जाने और वहाँ से परावर्तित होकर (और यह परावर्तन भी पूर्ण परावर्तन की ही भाँति वायुमंडलीय किरणों के विरल माध्यम मे प्रवेश करने पर मुडने की क्रमिक क्रिया द्वारा होता है) आनेवाली तरंगों का बहुत कुछ अवशोषण वायुमंडलीय परतों में हो जाता है। इसलिये दीर्घ तरंगें तो, वायुमंडल के निम्नतम स्तरो से परावर्तित होने के कारण, प्राय: अप्रभावित रहती हैं, किंतु लघु तरगों का काफी अंश अवशोषित हो जाता है। ऑस्टिन ने '११ वर्षीय चक्र' (11 year cycle) के अनुसार भी रेडियो संकेतों की तीव्रता में परिवर्तन का अध्ययन किया और यह पता लगाया कि दीर्घ तरंगों का परावर्तन करनेवाले वायुमंडलीय स्तर की विशिष्ट विद्युच्चालकता अधिकतम सूर्यकलंक के दिनों मे न्यूनतम कलंको के दिनों की अपेक्षा १·५ गुना अधिक होती है।

वार्तावहन के लिये बेतार के तार का प्रयोग — यह कहने की आवश्यकता नही है कि वार्तावहन के लिये उपयोगिता की दृष्टि से बेतार के तार का महत्व अप्रतिम है। दूरस्थ केंद्रों के बीच, विशेषकर समुद्रपार वार्तावहन के लिये, यह सागरगर्भी तार के केबुलों की अपेक्षा अधिक सुगम, सस्ता एव उपयोगी साधन है। इसके लिये प्रेषित्र एवं अभिग्राही केंद्रों का निर्माण अपेक्षाकृत कम व्ययसाध्य है, क्योंकि सागर-गर्भी केबुलो को दीर्घ दूरियो तक बिछाने में अत्यधिक धनराशि व्यय होती है। इसके अतिरिक्त एक और सबसे बड़ा लाभ यह भी है कि रेडियो तरंग प्रेषित्र से चतुर्दिक् समान रूप से विकीर्ण होती है। इसलिये आवश्यक ग्राही उपकरण की व्यवस्था होने पर इस विधि से प्रेषित सूचना, समाचार, अथवा वक्तव्य संसार के भिन्न भिन्न भागों में एक साथ प्राप्त किए जा सकते हैं। संकटग्रस्त जहाजों से बेतार के तार द्वारा अपनी रक्षा के लिये की गई गुहार इस प्रकार चारों ओर बिखरती है और उनके समीपस्थ जहाज तथा अन्य यान उनकी सहायता के लिये तुरंत दौड पडते हैं। इसके अतिरिक्त बेतार के तार द्वारा दूर से चित्र, फोटोग्राफ, पत्रादि, लेखों की प्रतिलिपियाँ अति शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रेषित की जाती हैं।

एक कठिनाई, जिसका सामना सागरगर्भी केबुलो के उपयोग में करना पडता है, यह है कि यदि उनमे कही क्षरण (leakage) होता है, या वे कही टूट जाते हैं, तो उनका पता लगाना अथवा मरम्मत कर सकना बड़ा कठिन एव अधिक समय मे संपन्न होनेवाला कार्य होता है। इसके लिये टूटे हुए केबुल के पार्श्व में एक अन्य केबुल बिछा-कर उसे वार्तावहन के लिये प्रयुक्त करने और उसके बाद ही क्षतिग्रस्त केबुल की मरम्मत करने की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसी कठिनाई को हल करने के लिये अब प्रत्येक केबुल का प्रतिरूप (duplicate) भी साथ ही बिछाया जाता है, किंतु बेतार के प्रेषित्र या ग्राही सेट के क्षतिग्रस्त होने पर उसकी मरम्मत करने मे, या उसके स्थान पर दूसरे सेट की स्थापना मे, कोई ऐसी कठिनाई नही झेलनी पड़ती।

बेतार के तार से समाचार या संवादप्रेषण में भी एक बड़ी कठिनाई यह होती है कि प्रेषित संवाद की गोपनीयता की रक्षा नहीं की जा सकती। ऐसा संवाद कहीं भी और किसी भी उपयुक्त ग्राही द्वारा सुना जा सकता है। इसलिये बड़े बड़े समाचार अभिकरणों अथवा समाचारपत्रों के प्रतिनिधि अपने समाचारों को बेतार के तार से न भेजकर साधारण तार द्वारा ही भेजना ठीक समझते हैं, अन्यथा वे समाचार उनके अभिकरण या पत्र द्वारा ही पहले न प्रकाशित होकर उसे ग्रहण करनेवाले अन्य अभिकरणों या पत्रों द्वारा लगभग उसी समय प्रकाशित हो सकते हैं।

अंतरराष्ट्रीय समझौता — चूँकि बेतार के तार के प्रेषित्र एवं ग्राही केंद्र विश्व भर में फैले हुए हैं, इसलिये यह संभव है कि विभिन्न केंद्रों से एक समय में एक ही तरंगदैर्घ्य, अथवा आवृत्ति, का प्रेषण होने पर वे ग्राही केंद्रों पर एक दूसरे को आवृत्त या व्यतिक्रत कर लें। इससे बड़ी कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिये १९०६ ई० मे बर्लिन के तथा १९१२ ई० में लंदन के अंतरराष्ट्रीय समेलनो मे प्रत्येक देश के बेतार के तार केंद्रों तथा जहाजों आदि से प्रेषित होनेवाली तरंगों की लंबाइयाँ निश्चित कर दी गई हैं तथा इसकी मान्यता के लिये संसार के प्राय. सभी प्रमुख देशो द्वारा एक समझौते पर हस्ताक्षर कराया गया। विभिन्न सेवाओ एव प्रयोजनों के लिये, दीर्घ एवं लघु तरगों द्वारा प्रेषणीय सकेतो की आवृत्तियाँ एवं तरंग लबाइयाँ निश्चित कर दी गई है।

सागरीय यानो मे भी बेतार के तार का व्यापक उपयोग होता है। सन् १९१४ के 'मेरीन कन्वेन्शन' में यह निश्चय किया गया कि ऐसे सभी जलयानों में, जिनमें ५० या इससे अधिक यात्रियो का वहन होता हो, बेतार के तार के प्रेषित्र एवं ग्राही यंत्रों की स्थापना अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। इसके साथ ही प्रत्येक यान मे बेतार के तार की एक अतिरिक्त संचारी व्यवस्था भी होनी चाहिए, जिसका प्रयोग मुख्य व्यवस्था के निष्क्रिय होने, या क्षतिग्रस्त होने, पर किया जा सके। आधुनिक जलयानों में बेतार के तार के स्थान पर अब रेडियो टेलीफोन का उपयोग बढ रहा है।

दिशाबोध (Direction Finding) — युद्धकाल की आवश्यकता से प्रेरित हो कर, प्राय सभी बड़े देशों के बंदरगाहों एव उड्डयन केंद्रो पर दिशानिर्देशक एव दिशान्वेषी सयत्रो की भी स्थापना की गई है। इनमे शक्तिशाली प्रेषित्र एव ग्राही के अतिरिक्त दिशात्मक एरियल भी होते है। ये एरियल घूर्णनशील होते हैं। बदरगाह या हवाई अड्डे से अपनी ओर आनेवाले यानो के साथ बेतार के तार के सकेतो का आदान प्रदान होता है और इन स्थानो पर स्थित एरियल को घुमा कर उनके अक्ष को ऐसी दिशा मे लाया जाता है कि यान से आनेवाले सकेत तीव्रतम प्राप्त हों। इससे यान की गमन की दिशा बंदरगाह या अड्डे के किस ओर है, ज्ञात हो जाती है। कुहरे या धुध से ढके वातावरण में इन यानों को इस विधि से यथावश्यक दिशा निर्देश प्रदान किया जा सकता है। बहुधा ऐसा भी होता है कि ऐसे एरियल यान में ही होते है और बंदरगाह या हवाई अड्डे से आनेवाले सकेतों की सहायता से वे स्वयं अपनी उचित दिशा का निर्धारण कर लेते हैं। कुछ विशेष प्रकार के घूर्णनशील एरियल भूमि पर स्थित, एक निश्चित केंद्र पर कुछ विशेष प्रकार के मोर्स संकेत प्रेषित करते हुए निरतर घूर्णन करते रहते हैं और कुछ मानक स्थितियो मे वे विशेष संकेत प्रेषित करते है। यानो में स्थित ग्राही उन सकेतों को ग्रहण करते हैं और उनकी सहायता से अपनी स्थिति का ज्ञान करते है। इन एरियलो का व्यापक उपयोग द्वितीय विश्वयुद्ध में आविष्कृत रेडार तंत्र मे किया गया था। फ्रास के तट से ध्वनिहीन 'वी' जेट वायुयानो के इंग्लैंड की ओर निरतर प्रहारात्मक उड़ानों से इंग्लैंड आतंकित हो गया था। दिन मे तो इन्हें देख सकना किसी प्रकार संभव भी था, किंतु रात्रि के समय, अथवा कुहरे या धुध से आच्छादित आकाश मे, इनकी गतिविधि पर दृष्टि रखना संभव नही था। ऐसे समय में इग्लैंड के तट से इन्ही एरियलो द्वारा बेतार के तार के सकेत चतुर्दिक् प्रेषित किए जाते थे और इन्ही एरियलों के निकट ग्राही यत्र भी स्थापित किए गए थे। यदि शत्रु का कोई विमान तट की ओर आता था, तो इन सकेतो का द्रुत गति से परावर्तन होता था, जिसे ग्राही यंत्र व्यक्त करता था। उस विमान की गति, दिशा, स्थिति आदि इस प्रकार ज्ञात करके उसे प्रहार का लक्ष्य बनाया जा सकता था।

[सु० चं० गो०]

बेतिया (Bettiah) १ उपमडल, स्थिति : २६° ३६' से २७° ३१' उ० अ० तथा ८३° ५०' से ८४° ४६' पू० दे०। भारत के बिहार राज्य मे चपारन जिले का एक उपमंडल (सबडिविजन) है। इसका क्षेत्रफल १,९९७ वर्ग मील तथा जनसख्या १३,२८,९८० (१९६१) है। पहले यह एक जमींदारी थी। इसका उत्तरी भाग ऊबड खाबड़ तथा दक्षिणी भाग समतल तथा उर्वर है।

२. नगर, स्थिति : २६° ४८' उ० अ० तथा ८४° ३०' पू० दे०। बिहार के चपारन जिले मे, हरहा नदी की प्राचीन तलहटी मे स्थित, उपर्युक्त उपमडल का प्रमुख नगर है। यह मुजफ्फरपुर से १२४ किमी० दूर है तथा पहले बेतिया जमींदारी की राजधानी था। यहाँ के महाराजा का महल दर्शनीय है। जनसख्या ३९,९९० (१९६१) है। [सु० चं० श०]

बेनी प्रवीन वास्तविक नाम बेनीदीन वाजपेयी था। ये संभवत: लखनऊ के निवासी थे। इनकी सुख्यात रचना 'नवरसतरग' है। इसमे दिए गए विवरण से ज्ञात होता है कि इसकी रचना सन् १८१७ ई० मे नवलकृष्ण की प्रशसा मे की गई थी। नवलकृष्ण अवध के नवाब गाजीउद्दीन हैदर के दीवान राजा दयाकृष्ण के आत्मज थे। इनका एक अन्य ग्रथ 'नानारावप्रकाश' है। यह अलंकार ग्रंथ है जिसकी रचना उस समय की गई थी जब उन्हे कुछ समय तक बिठूर निवासी नानाराव पेशवा के आश्रय मे रहना पडा था। इनकी गणना रीतिकालीन सरस कवियों मे की जा सकती है।

बेनी बंदीजन रायबरेली जिले के बेती नामक स्थान के निवासी और अवध के वजीर महाराज टिकैतराय के दरबारी कवि थे। शिवसिंह सेंगर के मतानुसार ये स० १८९२ वि० मे पर्याप्त वृद्ध होकर मरे थे। 'टिकैतराय प्रकाश' (अथवा 'अलकारशिरोमणि'), 'रसविलास' और अनेक भँडौवो की रचना इस कवि ने की है। इनके अतिरिक्त खोज रिपोर्ट से कवि की 'यशलहरी' नामक एक अन्य रचना का पता चला है जिसका रचनाकाल सं० १८५० वि० है। 'मिश्रबंधुविनोद' और खोज विवरणों के अनुसार 'रसविलास'

का रचनाकाल सं० १८७५ वि० है। यह प्रमुख रूप से रसातर्गत नायिका-नायक-भेद का विवेचन करनेवाला ग्रंथ है। कवित्व और शास्त्रीय दोनों दृष्टियों से यह महत्वपूर्ण रीतिग्रंथ है। यह ग्रंथ पद्माकर कृत 'जगद्विनोद' के आकार का है। भँड़ौवा कवि के कृतित्व में अनूठे स्थान का अधिकारी है। इनसे उसको पर्याप्त ख्याति और प्रसिद्धि मिली है। इस कवि के भँडौवों का एक संग्रह भारतजीवन प्रेस, काशी में हुआ था। यशलहरी में नाना देवी देवताओं का गुणानुवाद किया गया है।

इससे पूर्व भँड़ौवा शैली की रचनाओं की स्थिति नहीं देखी गई थी। भँड़ौवा हास्योत्पादक मनोरंजनप्रधान रचना होती है, जिसे उर्दू में 'हजो' और अंग्रेजी मे 'सटायर' कहते हैं। इससे किसी व्यक्ति, वस्तु आदि की निंदा अथवा प्रशंसा दोनों की जा सकती है। दयाराम के आमो, लखनऊ के ललकदास और किसी से पाई हुई रजाई की इस शैली मे अच्छी खिल्ली उड़ाई गई है। ये प्रसंग बड़े रोचक बन पड़े हैं और प्रायः इनकी ऐसी रचनाएँ प्राचीन काव्यरसिको की जबान पर होती है। सुकुमार भावव्यंजना और कलागत वैशिष्ट्य के भी दर्शन कवि की रचनाओं में होते है। [रा० के० त्रि०]

बेरहमपुर स्थिति : १९° १८' उ० अ० तथा ८४° ४८' पू० दे०। यह भारत मे उड़ीसा राज्य के गंजाम जिले में, मद्रास से कलकत्ता जानेवाले मार्ग पर, कलकत्ता से ३७४ मील दूर स्थित नगर है। इस की जनसंख्या ७६,९३१ (१९६१) है। यह जिले का सबसे बड़ा नगर तथा शासन का प्रमुख केंद्र है। नगर का आधा पूर्वी भाग जो 'भापुर' (Bhapur) कहलाता है, काफी स्वच्छ व सुंदर है। पश्चिमी आधा भाग पाट-बेरहमपुर कहलाता है। पहिले यही पाट बेरहमपुर प्रमुख गाँव था, जो बाद मे नगर बना। यह काफी घना बसा है। प्रमुख उद्योग रेशम बुनना, टसर रेशम से विभिन्न रंगों के वस्त्र बनाना, चीनी बनाना आदि है।

बेराइट (Barite) **या बराइटीज़** (Barytes) यह खनिज आँर्थोरोंबिक समुदाय मे क्रिस्टलीकृत होता है। इसका रासायनिक सूत्र बेगओ$_4$ ($BaSO_4$) है। इसका रंग सफेद या लाल, चमक काचोपम, कठोरता ३-३·५ तथा आपेक्षिक घनत्व ४·५ होता है।

बेराइट से सफेद वर्णक तैयार किया जाता है। तेल के कूँए खोदते समय गैस को रोकने के लिये बेराइट का प्रयोग होता है। इससे अन्य रसायनक तैयार किए जाते हैं, जिनका उपयोग अनेक कामों मे होता है।

यह खनिज अधिकतर चूने की शिलाओं में धारियो मे मिलता है। धात्विक निक्षेपो के साथ भी यह खनिज पाया जाता है। इंग्लैंड मे वैस्टमोरलैंड काउंटी की सीसे की खदान से बेराइट का एक सौ पाउंड भार का एक क्रिस्टल उपलब्ध हुआ है। भारत मे आंध्र प्रदेश बेराइट का सबसे बड़ा उत्पादक है। लगभग ९० प्रति शत बेराइट यहाँ के कर्नूल और कुडप्पा जिलो से प्राप्त होता है। बेराइट के अन्य महत्वपूर्ण निक्षेप राजस्थान मे अलवर के निकट हैं। [म० ना० मे०]

बेरार (बरार) का इमादशाही राजवंश (१४८७-१५७४)। इसकी स्थापना फतहउल्ला इमादुलमुल्क नामक व्यक्ति द्वारा की गई थी जो पहले हिंदू था। वह बहमनी दरबार का अमीर बन गया और जब १४८७ ई० में उसने स्वतंत्र होने की घोषणा की तब वह बरार का तरफदार था। फतहउल्ला इमादशाह (१४८७-१५०४) तथा सीधी वंशपरंपरा में उसके दो उत्तराधिकारियों ने [अलाउद्दीन इमादशाह (१५०४-२९) तथा दरिया इमादशाह (१५२९-६२)] बीजापुर राज्य के साथ सामान्यतः मित्रतापूर्ण व्यवहार किया और दक्षिण के सुलतानो में चल रहे आपसी झगड़ो मे नरमी पर बल देने का प्रयत्न किया। बरार के सुलतानों से अहमदनगर के निजाम शाहों का, जो उनके पड़ोसी थे, पथरी नामक इलाके के संबध मे बराबर झगड़ा चलता था। यह दोनो राज्यो की सीमा पर स्थित था और इसपर बरार का अधिकार था। अहमद निजामशाह का पिता मलिक हसन भी मुसलिम धर्म मे दीक्षित होने के पहले हिंदू था। उसका (मलिक हसन का) पिता पथरी का कुलकर्णी था। यही कारण है कि इस स्थान के लिये उनके दिल मे गहरी मुहब्बत हो, क्योकि यह उनकी पितृभूमि थी।

बीदर के महमूदशाह बहमनी ने अमीर बरीद की अधीनता से छुटकारा पाने के लिये अलाउद्दीन इमाद से सहायता माँगी। बुर्हान निजामशाह ने अमीर बरीद का साथ दिया जिससे बरार के सुल्तान को शिकस्त खानी पड़ी। निजामशाह ने अब पथरी के लिये दावा किया और सैनिक मुठभेड़ के बाद उसपर अधिकार कर लिया (१५१८ ई०)। अलाउद्दीन इमादशाह ने दुबारा उसे छीन लिया किंतु वह फिर उसके हाथ से निकल गया (१५२७)। अमीर बरीद की मदद से बुर्हान निजामशाह ने बरार पर आक्रमण कर दिया। अलाउद्दीन ने गुजरात के बहादुरशाह से सहायता की याचना की। इसपर बहादुरशाह ने निजामशाही राज्य पर हमला बोल दिया और अहमदनगर पर कब्जा कर लिया। अलाउद्दीन ने इस शर्त पर अपने मित्र का साथ छोड़ देना स्वीकार किया कि पथरी का इलाका बरार को लौटा दिया जाय। बुर्हान ने इसका वचन दिया किंतु बहादुर के वापस जाते ही उसने इसका पालन नहीं किया, इसलिये बरार और अहमदनगर का झगड़ा जारी रहा।

सन् १५३२ में बीजापुर तथा अहमदनगर का आपसी मतभेद दूर हो गया और उनमें एक संधि हुई जिसके अनुसार बुर्हान निजामशाह को बरार के विरुद्ध आक्रमणात्मक नीति अपनाने की छूट दे दी गई। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र दरियाशाह १५२९ ई० मे बरार की राजधानी एलिचपुर मे गद्दी पर बैठा। अपनी स्थिति सुरक्षित बनाए रखने के लिये उसने कुछ लोगों से दोस्ती का गठबंधन करने की नीति अपनाई। दक्षिण के राज्यो की अस्थिर राजनीति के कारण उसके लिये बीजापुर को अहमदनगर की मित्रता से हाथ खींच लेने के लिये राजी करने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। कुछ वर्षों के बाद संबधों की इस अस्थिरता से दरिया इमादशाह और हुसेन निजामशाह मे मित्रता हो गई और वे बीजापुर के अली आदिलशाह प्रथम के विरोधी बन गए, जिसने हुसेन के खिलाफ विजयनगर के राम राजा से सहायता की याचना की थी। आक्रमण करनेवाली बीजापुर तथा विजयनगर की संमिलित सेनाओं का मुकाबिला करने के लिये दरिया इमादशाह ने निजामशाह के सहायतार्थ अपने सेनापति जहाँगीर खाँ को भेजा। आक्रमणकारियो के सामने हुसेन की सेना ठहर न सकी और उसे अपमानजनक शर्तों पर संधि कर लेनी पड़ी। इसके अनुसार

उसे इमादशाही सेनापति जहाँगीर खाँ की हत्या करा देने के लिये राजी होना पड़ा, जो हुसेन का मित्र होने की वजह से आक्रामकों के लिये भारी चिंता का कारण था (१५६१)। इस घटना से दरिया इमादशाह को बड़ा धक्का लगा जिससे शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई (१५६२)।

दरिया इमादशाह के बाद उसका बालक पुत्र बुर्हान गद्दी पर बैठा और राज्य का पूरा अधिकार इमादशाही सेनापति तूफल खाँ के हाथ में आ गया। जहाँगीर खाँ की राजनीतिक हत्या संबंधी हुसेन निजामशाह के व्यवहार से क्षुब्ध होकर तूफल खाँ ने हुसेन निजामशाह के खिलाफ दुबारा कार्रवाई करने मे बीजापुर तथा विजयनगर का साथ दिया। अंत में जब विजयनगर से निपट लेने के लिये मुसलिम राज्यो का सघ बनाया गया, तब बरार के शासकों ने इसमें संमिलित होने से इनकार कर दिया, क्योंकि जहाँगीर खाँ की हत्या को वे अभी तक भुला नही सके थे। इस बीच तूफल खाँ ने बालक सुलतान बुर्हान इमादशाह को अलग कर (१५६२) सारे अधिकार अपने हाथ मे ले लिए और वह अपना पृथक् राजवंश स्थापित करने की बात सोचने लगा। ऐसा वह कर नही सका, क्योंकि सन् १५६५ में विजयनगर पर मुसलमानो की विजय के बाद अहमदनगर के मुर्तजा निजामशाह ने तूफलख खां के शासन का खात्मा करने का निश्चय कर लिया। विजयनगर की समाप्ति के बाद अब बीजापुर तथा गोलकुंडा के लिये दक्षिण मे राज्यविस्तार की काफी गुंजाइश हो गई। उधर निजामशाही राज्य ने भी उत्तर मे अपनी सत्ता का विस्तार करने का प्रयत्न किया और बरार पर आक्रमण करने की नीति अपनाकर मुर्तजा निजामशाह ने तूफल खाँ के शासन का अंत कर बरार को अपने राज्य मे मिला लिया (१५७४)। [पी० एम० जे०]

बेरिंग, विटस (Bering, Vitus, सन् १६८१–१७४१) डेनमार्क निवासी, सुप्रसिद्ध समुद्रयात्री तथा समन्वेषक थे। इनका जन्म होरसेंस, जटलैंड, डेनमार्क मे हुआ था तथा बेरिंग द्वीप मे इन्होंने स्वदेशी नौसेना के सदस्य के रूप मे १७०३ ई० मे पूर्वी द्वीपसमूह (आधुनिक हिंदेशिया) की यात्रा की। १७०४ ई० मे ये रूसी नौसेना मे भरती हो गए। रूस के तत्कालीन सम्राट्, पीटर महान्, ने एशिया तथा अमरीका महादेश स्थल द्वारा जुड़े हुए हैं अथवा नहीं, इसका पता लगाने के लिये बेरिंग को नियुक्त किया। बेरिंग ने ५, फरवरी १७२५ मे सेंट पीटर्सबर्ग (आधुनिक लेनिनग्राड) से अभियान किया और १७२८ मे कैमचैटका नदी के दक्षिण से होते हुए, साइबेरिया के उत्तर-पूर्व समुद्री तट पर ६७° उत्तर अक्षांश तक गए। अमरीका एव एशिया स्थल द्वारा नही जुड़े हैं, इस बात का पता लगाकर सन् १७३० मे बेरिंग लौट आए। इस यात्रा से संतुष्ट न होने के कारण इन्होंने दूसरी यात्रा की स्वीकृति प्राप्त की। इनकी इस यात्रा के दो जहाज, 'सेंट पीटर' तथा 'सेंट पॉल', ६ अक्टूबर १७४०, को पेट्रोपाव्लोव्स्क पहुँचे। ४ जून, १७४१, को वहाँ से रवाना होने पर, बेरिंग दक्षिण-पूर्व की ओर 'गामालैंड' की खोज मे निष्फल भटकते हुए कयाक (Kayak) द्वीप पहुँच गए। इस प्रकार ये पूर्व दिशा से अमरीका पहुँचने में सफल हुए। लौटते समय ये बीमार पड़ गए और इनका जहाज भी घने कुहरे में पथभ्रष्ट हो गया। फलतः, उस अभियान दल को कैमचैटका के समीप स्थित एक निर्वसित द्वीप पर, जिसे उनके नाम पर अब बेरिंग द्वीप कहते हैं, नौ महीने तक रुकना पड़ा। वहीं बेरिंग की मृत्यु हो गई। [का० ना० सिं०]

बेरिंग सागर (Bering sea) स्थिति : ५८° ०' उ० अ० तथा १६७° ०' पू० दे०। अलैस्का और पूर्वी साइबेरिया के मध्य स्थित प्रशात महासागर का उत्तरी भाग है। इसकी दक्षिणी सीमा अलैस्का के चाप एवं अलूशन (Aleutian) द्वीपों द्वारा निर्धारित होती है। इसका क्षेत्रफल ८,८६,००० वर्ग मील है। इसका नाम इसके अन्वेषक विटस बेरिंग के नाम पर पड़ा है, जिन्होंने इसकी खोज सन् १७२८ मे की थी। उत्तर मे यह ५६ मील चौड़े बेरिंग जलसंयोजक द्वारा आर्कटिक सागर से मिल जाता है। उत्तर-पूर्व मे यह कम गहरा तथा दक्षिण-पश्चिम मे अधिक गहरा (लगभग ४,००० मीटर) है। जलसंयोजक के मध्य मे डायोमीड द्वीप है जिनमे ग्रेट डायोमीड द्वीप मे रूसी तथा लिटिल डायोमीड द्वीप मे अमरीकी सैनिक चौकियाँ हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई द्वीप हैं। गरमी की ऋतु मे कोहरे के कारण जलयातायात मे बाधा पड़ती है। जाड़ो मे उत्तरी भाग का जल ठंढ की अधिकता के कारण जम जाता है, किंतु सेंटलॉरेंस द्वीप जून के अंत तक खुला रहता है। अलैस्का तट के किनारे उत्तर की ओर तथा साइबेरिया तट के किनारे दक्षिण की ओर एक एक धारा चलती है। बेरिंग जलसयोजक से होकर अंतरराष्ट्रीय तिथिरेखा गुजरती है। अत इसके दोनो तटों पर पचाग सदैव पृथक् दिन दर्शाते है। [न० प्र०]

बेरियम (Barium) कैलसियम समूह का तत्व है। खनिज बेराइट इसका पहला खनिज था, जिसकी ओर सन् १६०२ मे बोलोन के एक चर्मकार बी० केसिओरोलस का ध्यान गया। उसने देखा कि यह पदार्थ दहनशील पदार्थ के साथ जलने पर स्फुरदीप्त होता है। इसी कारण इसको बोलोनी फॉस्फोरस भी कहा जाता है। सन् १७७४ मे के० डब्ल्यू शीले ने पाइरोल्यूसाइट खनिज की जाँच करते समय एक नई मृदा मालूम की, जिसे टी० ओ० बर्गमैन (Bergman) ने भारी मृदा (Terra Ponderosa) कहा। सन् १७७९ मे लुई बर्नार्ड गितो द मोरवा (Louis Bernard Guyton de Morvean) ने इसे बेरोट (Barote) नाम दिया, जिसे लवाज़िये (Lavoisier) ने बदलकर बेराइटा कर दिया। आज भी इस मृदा के लिये यह नाम प्रचलित है। ग्रीक शब्द बेरस (Barus) से, जिसका अर्थ भारी है, यह बना है। बाद मे मालूम हुआ कि यह एक नई धातु का ऑक्साइड है। इसी के नाम पर इस धातु को बेरियम कहा जाने लगा।

बेरियम धातु प्रकृति मे शुद्ध रूप मे नही मिलती। इसके प्रसिद्ध खनिज कार्बोनेट लवण, अर्थात् विदराइट (witherite), और सल्फेट लवण, अर्थात् बराइटीज़ के रूप मे मिलते हैं। थोड़ी मात्रा में यह धातु बेराइटो कैल्साइट, बेराइटो सेलिसटाइन और अन्य सिलिकेट लवणों में भी मिलती है। सिलोमेलेन (Psilomelane), अर्थात् बेरियम मैंगनेटाइट, भी इसका एक खनिज है। भारत मे बराइटीज खनिज बहुत पाया जाता है। मद्रास के कर्नूल और अलवर क्षेत्र इसके लिये प्रसिद्ध हैं।

बेरियम का ऑक्सीजन के प्रति इतना आकर्षण है कि शुद्ध धातु को प्राप्त करना बड़ा कठिन हो गया है। सन् १८०८ मे डेवी ने बेरियम

संरस तैयार किया। इस संरस को सुखाकर, और फिर इसके पारे का आसवन कर बेरियम धातु तैयार की। इस विधि में दो कठिनाइयाँ आती हैं। एक तो संरस में पानी पूर्णतः सुखा लेना आवश्यक है, दूसरे ऊँचे ताप पर भी बेरियम से पारा पूर्णतः अलग नहीं होता। सन् १९०१ में गुंट्ज़ (Gunts) ने १,२००° सें० पर बेरियम ऑक्साइड का ऐल्यूमिनियम चूर्ण द्वारा अपचयन करके बेरियम प्राप्त किया। इसी ताप पर सी० मैटिग्नॉन (Matignon) ने निर्वात मे फेरोसिलिकन (९५ प्रति शत सिलिकन) के साथ अपचयित कर ९८.५ प्रति शत शुद्ध बेरियम का आसवन किया। आज भी ये ही विधियाँ प्रयोग में आती है।

बेरियम सफेद नरम धातु है। इसका परमाणुभार १३७.३७, परमाणु क्रमांक ५६, घनत्व ३.७८, गलनांक ८५०° सें० और क्वथनांक १,५३७° सें० है। इसकी संयोजकताएँ दो हैं। एक ही श्रेणी के यौगिक बनाता है। पानी में विलेय है और हाइड्रॉक्साइड बनाता है। क्षारों और अम्लों में विलेय है। बेंज़ीन और हाइड्रोकार्बनों में अविलेय है। इसके चूर्ण को हवा मे छोड दें तो यह जल उठता है। यह सीसे के समान आघातवर्धनीय है। ऐल्कोहॉल के साथ यह बेरियम ऐथॉक्साइड बनाता है। केल्सियम से इस बात मे भिन्न है।

प्राकृत कार्बोनेट पर नाइट्रिक अम्ल की अभिक्रिया से नाइट्रेट बनता है। नाइट्रेट अधिक ताप पर बेराइट, अर्थात् बेरियम मॉनोऑक्साइड बे औ (BaO), मे बदल जाता है। इसको हवा मे धीरे से गरम करने पर यह बेरियम डाइऑक्साइड मे बे औ₂ ($Ba O_2$) मे बदल जाता है। डाइऑक्साइड को अधिक ताप पर गरम करने से आक्सीजन और बेरियम मोनो-ऑक्साइड मिलता है। इस अभिक्रिया का प्रयोग ऑक्सीजन बनाने की ब्रिन विधि मे किया जाता है। इसका एक तीसरा ऑक्साइड बेरियम सबऑक्साइड, बे₂औ (Ba_2O), भी मिलता है।

बेराइटा पानी मे विलेय होकर हाइड्रॉक्साइड देता है। इसके विलयन की उपयोगिता अनुमापन मे है, क्योंकि यह कार्बन डाइऑक्साइड से सदा मुक्त रहता है। जो कुछ कार्बन डाइऑक्साइड गैस अवशोषित हुई, वह अविलेय बेरियम कार्बोनेट बनकर पृथक् हो जाती है। यह विशेषता अन्य क्षारीय विलयनो, जैसे दाहक सोडा और ऐमोनिया, में नहीं है। इसका उपयोग चीनी के साफ करने के लिये भी होता है।

किसी भी सल्फेट विलयन मे किसी बेरियम लवण का विलयन डालने से बेरियम सल्फेट का सफेद अवक्षेप मिलता है। इसी गुणधर्म के कारण बेरियम के विलेय लवण, विशेष तौर पर बेरियम क्लोराइड, का सलफ्यूरिक अम्ल और सल्फेट लवणों की जाँच के लिये प्रयोग होता है। वर्णक उद्योग में बेरियम सल्फेट का अधिक उपयोग होता है। ब्लांक फिक्से (Blanc Fixe) और लिथोपोन (Lithopone) इसके प्रसिद्ध वर्णक हैं। बेरियम कार्बोनेट और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की अभिक्रिया से बेरियम क्लोराइड बनता है। बेरियम के विलेय लवणों में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसके विलेय लवण विषैले होते हैं।

सभी बेरियम लवण बुंसन ज्वाला को हरा रंग देते हैं। इसके विलेय लवण कैल्सियम सल्फेट के साथ सफेद अवक्षेप देते हैं और पोटैशियम क्रोमेट के विलयन के साथ बेरियम क्रोमेट का पीला अवक्षेप देते हैं।

सं० ग्रं० — सत्यप्रकाश : अकार्बनिक रसायन। [च० ला० गु०]

बेरिल या वैडूर्य (Beryl) आधुनिक युग का महत्वपूर्ण खनिज है। इसका सूत्र बे₃ ऐ₂ (सि औ₃)₆ [$Be_3 Al_2 (Si O_3)_6$] है। इससे बेरिलियम धातु निकाली जाती है, जो हलकी किंतु कठोर तथा दृढ होती है। अत इसका उपयोग वायुयानों मे किया जाता है। अन्य धातुओं के साथ इसकी अनेक मिश्रधातुएँ तैयार की जाती हैं, जो विद्युत्, कैमरा आदि उद्योगो मे काम आती हैं। बेरिल की पारदर्शक किस्म को 'पन्ना' कहते हैं, जो एक रत्न पत्थर है तथा जिसका उपयोग आभूषणो मे किया जाता है।

बेरिल खनिज को क्षेत्र में सरलता से पहचाना जा सकता है। यह षट्कोणीय समुदाय मे क्रिस्टलीकृत होता है तथा इसके क्रिस्टल प्रिज्मीय होते हैं। इसका रंग नीला, हरा, या हल्का पीला होता है। कभी कभी यह सफेद रंग में भी मिलता है। इसकी टूट शंखाभ (conchoidal), कठोरता ७.५ से ८ तथा आपेक्षिक घनत्व २.७ है।

बेरिल के आर्थिक निक्षेप पेग्मेटाइट शिलाओं मे मिलते हैं। भारत में यह खनिज राजस्थान, बिहार तथा नेलोर की पेग्मेटाइट शिलाओं से प्राप्त किया जाता है। विश्व मे बेरिल उत्पादन मे भारत का स्थान दूसरा है। परमाणवीय महत्व का होने के कारण इसके उत्पादन आँकडे गोपनीय है। [म० ना० मे०]

बेरिलियम (Beryllium) आवर्त सारणी के द्वितीय समूह का पहला तत्व है। इसका केवल एक स्थिर समस्थानिक पाया गया है, जिसकी द्रव्यमान सख्या नौ है, परतु द्रव्यमान सख्या सात, आठ और १० वाले अस्थिर समस्थानिक कृत्रिम विधियों से निर्मित हुए हैं।

१७९८ ई० मे सर्वप्रथम वोक्लें (Vauquelin) ने बेरिलियम को बेरिल अयस्क से पृथक् किया, जिसके आधार पर इसका नाम बेरिलियम रखा गया। इसके विलेय लवण मीठे स्वाद के होते है। इस कारण इसका नाम ग्लुसिनम (Glucinum) भी रखा गया था, परतु अब यह नाम लुप्त हो गया है। १८२८ ई० मे सर्वप्रथम वलर (Wohler) ने बेरिलियम धातु तैयार की।

पन्ना और वेरूज (aquamarine) बेरिलियम के यौगिक हैं, जो पुरातन काल से रत्न के रूप मे अपनाए गए हैं। अनेकों ऐसे खनिज पदार्थ ज्ञात हैं, जिनमें बेरिलियम संयुक्त अवस्था मे रहता है, परंतु केवल बेरिल, बे₃ ऐ₂ सि₆ औ₁₈ ($Be_3 Al_2 Si_6 O_{18}$), ही एक अयस्क है, जिससे बेरिलियम निकाला जाता है। अन्य स्रोतो से बेरिलियम प्राप्त करना बहुत मँहगा पडता है। भारत में ऐसा बेरिल, जो बेरिलियम निर्माण के लिये उत्तम सिद्ध हुआ है, अजमेर, बिहार राज्य तथा मद्रास राज्य मे मिलता है।

निर्माण — सर्वप्रथम बेरिल अयस्क को कैलसियम, अथवा सोडियम कार्बोनेट, के साथ संगलित करते हैं। तत्पश्चात् सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ उच्च ताप पर गरम जल मे घुलाते हैं। विलयन से ऐल्यूमिनियम को अमोनियम एलम (alum) के रूप में क्रिस्टलीकृत किया जाता है।

बचे विलयन से बेरिलियम सल्फेट के क्रिस्टल प्राप्त हो जाएँगे, जिसे जलाने पर बेरिलियम ऑक्साइड प्राप्त होगा।

बेरिलियम ऑक्साइड के कार्बन द्वारा विद्युत् भट्ठी में अपचयन से बेरिलियम धातु प्राप्त हो सकती है, परंतु विशुद्ध धातु प्राप्त करने के लिये बेरिलियम क्लोराइड, बे॰क्लो॰ ($BeCl_2$) और सोडियम क्लोराइड, सोक्लो (NaCl) के संगलित मिश्रण का वैद्युत अपघटन (electrolysis) करते हैं।

गुणधर्म — बेरिलियम हल्की, चमकदार, श्वेत रंग की कठोर धातु है। इसमें इस्पात की सी प्रत्यास्थता है। इसमें एक्स विकिरण (X–rays) ऐल्यूमिनियम से १७ गुना अधिक प्रवेश कर सकता है। बेरिलियम धातु में ध्वनि का वेग इस्पात से ढाई गुना अधिक (१२,६०० मीटर प्रति सेकंड) है। इसके कुछ भौतिक स्थिरांक निम्नांकित हैं :

संकेत बे॰ (Be), परमाणुसंख्या ४, परमाणुभार ९·०१२ गलनांक १,२८०° सें०, क्वथनांक २,७७०° सें०, घनत्व १·८६ ग्राम प्रति घ० सेंमी०, परमाणुव्यास २·२५ ऐंग्स्ट्रॉम (A°), विद्युत प्रतिरोधकता ५·८८ माइक्रोओम सेमी० तथा आयनीकरण विभव ९·३२० इवो०।

रासायनिक अभिक्रियाओं में बेरिलियम की समानता मैग्नीशियम तथा ऐल्यूमिनियम दोनों से है। इस कारण इस समानता को विकर्ण सममिति (diagonal symmetry) कहते हैं। बेरिलियम में मैग्नीशियम से कम, परंतु ऐल्यूमिनियम से अधिक, धातुगुण हैं। ऐल्यूमिनियम की भाँति बेरिलियम को वायु में गरम करने पर, उसकी सतह पर ऑक्साइड की पतली परत जम जाती है, जो ऑक्सीजन के अधिक आक्रमण को रोकती है। बेरिलियम धातु अम्लों द्वारा घुल जाती है, परंतु उसके लवण शीघ्र जलविश्लेषित होते हैं। बेरिलियम धातु हैलोजन तत्वों से उच्च ताप पर अभिक्रिया कर, यौगिक बनाती है। १,२००° सें० ताप पर बेरिलियम कार्बन और नाइट्रोजन से अभिक्रिया करता है।

यौगिक — बेरिलियम दो संयोजकता के यौगिक बनाता है। बेरिलियम की ऑक्सीजन से अभिक्रिया द्वारा बेरिलियम ऑक्साइड बे॰ओ (BeO) बनेगा। यह उच्च गलनांक (२,५५० सें०) का ऊष्मसह (refractory) पदार्थ है। इसका अपचयन करना कठिन कार्य है। इन गुणों के कारण इसका उपयोग प्रकाश उद्योग में प्रदीप्त दीपकों (fluorescent lamps) के बनाने में होता रहा है, परंतु विषैला होने के कारण इसका उपयोग कम हो गया है। बेरिलियम ऑक्साइड की मूषाएँ बनाई जाती हैं, जो मजबूत, निष्क्रिय और उच्च ताप को सहन कर सकती हैं। बेरिलियम ऑक्साइड अम्लों में घुलकर लवण बनाता है। बेरिलियम लवण में अमोनिया मिलाने पर, बेरिलियम हाइड्रॉक्साइड, बे॰ (ओ हा)₂ [$Be(OH)_2$] अवक्षेपित होता है, जो बेरिलियम लवण के विलयन में घुल सकता है। इस कारण हाइड्रॉक्साइड को अवक्षेपित करने के लिये अधिक मात्रा में अमोनिया की आवश्यकता पड़ती है। बेरिलियम ऑक्साइड तथा हाइड्रॉक्साइड ये दोनों ही सांद्र क्षार विलयन में विलेय होकर, सो॰बे॰ओ॰ (Na_2BeO_2), रूप के यौगिक बनाते हैं। इसको उबालने या तनु करने पर, फिर हाइड्रॉक्साइड अवक्षेपित हो जाता है।

बेरिलियम नाइट्रेट, बे॰ (ना ओ॰)₂ [$(BeNO_3)_2$], और सल्फेट, बे॰ गं ओ॰. ४ हा॰ओ ($BeSO_4 . 4H_2O$), बेरिलियम ऑक्साइड पर नाइट्रिक अम्ल या सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त होते हैं।

बेरिलियम लवण विलयन में अमोनियम कार्बोनेट, (ना हा॰)₂ का ओ॰ [$(NH_4)_2CO_3$], डालने पर बेरिलियम कार्बोनेट का अवक्षेप प्राप्त होगा, जो अधिक अमोनियम कार्बोनेट मिश्रित करने पर अमोनियम बेरिलियम का द्विगुण (double) कार्बोनेट बनेगा जो विलेय है।

बेरिलियम, कार्बन की उच्च ताप पर अभिक्रिया द्वारा, बेरिलियम कार्बाइड, बे॰का (Be_2C), बनाता है, जो जलवाष्प से मंद गति से अभिकृत होता है। गरम बेरिलियम धातु पर हाइड्रोजन क्लोराइड, हाक्लो (HCl), प्रवाहित करने पर बेरिलियम क्लोराइड बनता है। बेरिलियम के अन्य हैलाइड भी ज्ञात हैं।

बेरिलियम के अनेक कार्बनिक यौगिक बनाए गए हैं। ऐसीटिक अम्ल की बेरिलियम हाइड्रॉक्साइड पर अभिक्रिया से क्षारीय बेरिलियम ऐसीटेट, (का हा॰ काओओ॰) बे॰ ओ [$(CH_3COO)_6Be_4O$] बनता है, जो जल में अविलेय है, परंतु अनेक कार्बनिक विलायक (ऐल्कोहॉल, ईथर, क्लोरोफार्म, ऐसीटिक अम्ल) में विलेय है। इसी प्रकार प्रोपियोनेट, ब्यूटिरेट भी निर्मित हुए हैं।

बेरिलियम यौगिक विषैला पदार्थ है। इसका वाष्प तथा चूर्ण की धूल आँख, कान, नाक आदि की झिल्ली को और श्वासनलिका को हानि पहुँचाती है। इस कारण अनेक उद्योगों में इनका उपयोग बंद कर दिया गया है।

उपयोग — एक्स-रे उपकरणों में बेरिलियम के गवाक्ष (window) प्रयुक्त हो रहे हैं।

बेरिलियम अनेक मिश्रधातुओं में काम आता है। जंगरोधी इस्पात में १ प्रति शत बेरिलियम की सूक्ष्म मात्रा मिलाने पर, उससे बना हुआ स्प्रिंग अत्यंत कठोर हो जाता है। बेरिलियम-ताम्र मिश्रधातु का स्प्रिंग बनाने में बहुत उपयोग हो रहा है। यह स्प्रिंग संक्षारण प्रतिरोधी तथा टिकाऊ होता है। अन्य धातुओं में बेरिलियम की सूक्ष्म मात्रा (०·००५ प्रति शत) मिलाने पर, वे ऑक्सीकरण प्रतिरोधी (oxidation resistant) हो जाते हैं।

परमाणु ऊर्जा में बेरिलियम का उपयोग बढ़ रहा है। त्वरक यंत्रों अथवा साइक्लोट्रॉन में बेरिलियम लक्ष्य (target) द्वारा न्यूट्रॉन दंड (beams) उत्पन्न किए जाते हैं। बेरिलियम न्यूट्रॉन द्वारा प्रभावित नहीं होता, परंतु उसका वेग कम कर सकता है। इस कारण इसका उपयोग परमाणु रिऐक्टर (atomic reactor) में न्यूट्रॉन मंदकन (moderation) के लिये होना प्रारंभ हो गया है। पहले इस कार्य के लिये ग्रैफाइट का उपयोग होता था, परंतु कम परमाणु भार के कारण बेरिलियम इस कार्य में ग्रैफाइट से अधिक क्षमतावान् है। ऐसा अनुमान है कि भविष्य में परमाणु ऊर्जा कार्यों में बेरिलियम का उपयोग और भी बढ़ेगा। [र० च० क०]

विरल धातु, बेरिलियम मुख्यतः आग्नेय शिलाओं में प्रारंभिक सहखनिज (accessory) की भाँति प्राप्त होती है। प्रकृति में लगभग २७ बेरिलियममय खनिज हैं, किंतु आर्थिक स्तर पर केवल बेरिल

ही ऐसा अयस्क है जिसमें सर्वाधिक मात्रा में बेरिलियम ऑक्साइड की मात्रा (१४ %) होती है। इसमें भी केवल ५ % बेरिलियम होता है। भारतीय बेरिल खनिज में ऑक्साइड का अनुपात ११ से १३ % होता है।

भारत में बेरिल का वितरण — भारत मे बेरिल विपुल मात्रा मे वितरित है। यह कैंब्रियन पूर्व युग के ग्रैनाइटों (granites) तथा नाइसो (gneisses) की पेग्मेटाइटी पिंडों (pegmatitic bodies) मे प्राप्त होता है। अधिक उत्पादक बेरिल निक्षेप बिहार के हजारीबाग, कोडरमा तथा गया क्षेत्रों में, दक्षिणी और पूर्वी राजस्थान के अनेक भागो में तथा मद्रास के कोयंपुत्तुर और आंध्र के नेल्लूरु जिले मे मिलते हैं। विशालतम स्तंभी (columnar) बेरिल क्रिस्टलों (crystals) का, जिनकी ऊँचाई १५ से २० फुट, चौड़ाई ४ फुट तथा भार १० से २० टन तक होता है, खनन राजस्थान की कुछ खानों से किया गया है। हरे एवं नीले वर्ण का बेरिल सर्वाधिक सामान्य है, यद्यपि यह अनेक अन्य वर्णों मे भी प्राप्य है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व भारत में बेरिल का उत्पादन अत्यंत अल्प था, किंतु १९४६ ई० के पश्चात् कुछ वर्षों तक इसका उत्पादन २,००० से ३,००० टन तक रहा और आजकल यह १,००० और २,००० टनों के बीच घटता बढता रहता है।

योजनाएँ और भविष्य — एक विशाल प्रारंभिक तथा प्रायोगिक संयंत्र, जिससे आणविक शुद्धता का बेरिलियम ऑक्साइड प्राप्त किया जा सके तथा इसको ईंटो के आकार का बनाया जा सके, स्थापित किया जा रहा है। इस संयत्र की उत्पादन क्षमता प्रतिवर्ष लगभग १५ टन बेरिलियम ऑक्साइड की ईंटें होगी।

भू-भौतिकीय एवं भू-रासायनिक परीक्षणों द्वारा ही पृथ्वी के गर्त मे छिपी हुई पेग्मेटाइट शिलाओं की वास्तविक स्थिति ज्ञात हो सकती है। वर्तमान समय मे भी बेरिल के भंडार प्रचुर एवं पर्याप्त हैं। सौभाग्य से भारत मे बेरिल का खनन अभ्रक-उत्पादन से बँधा हुआ है, अतः जब तक भारत, अभ्रक-उत्पादन मे विश्व का अग्रगण्य, देश रहेगा तब तब बेरिल उत्पादन भी सह उद्योग की भाँति उन्नत ही रहेगा। [वि० सा० दू०]

बेरी बेरी विटामिन बी$_1$ की कमी से उत्पन्न कुपोषणजन्य रोग है। इसे पॉलिन्यूराइटिस इंडेमिका, हाइड्रॉप्स ऐस्थमैटिक्स, काके, बारबियर्स आदि नामो से भी जानते हैं। संसार के जिन क्षेत्रों में चावल मुख्य आहार है, उनमें यह रोग विशेष रूप से पाया जाता है। इस रोग की विशेषताएँ है : (१) रक्तसंकुलताजन्य हृदय की विफलता और शोथ (आर्द्र बेरीबेरी) तथा (२) सममित बहुतंत्रिका शोथ, विशेषकर पैरों मे, जो आगे चलकर अपक्षयी पक्षाघात, संवेदनहीनता और चाल मे गतिभंगता लाता है (शुष्क बेरीबेरी)। तीव्र तथा उपतीव्र रूपो मे यदि उचित मात्रा मे आंत्रेतर, रवेदार विटामिन बी$_1$ रोग की प्रारंभिक अवस्था मे दिया जाय, तो लाभ होता है, पर जीर्ण बेरी बेरी का उपचार उतना संतोषजनक नही है।

रोग कारण — विटामिन वर्ग में बी$_1$ तंत्रिकाशोथ अवरोधी होता है और यह उसना चावल, कुटे और कम पालिश किए चावल में वर्तमान होता है। मशीन से पॉलिश करने में भूसी के साथ चावल के दाने का परिस्तर और अंकुर भी निकल जाता है और इसी भाग में बी$_1$ प्रचुर मात्रा में होता है। पालिश किया चावल, सफेद आटा और चीनी मे विटामिन बी$_1$ नहीं होता। मारमाइट खमीर, अंकुरित दालों, सूखे मेवों और बीजों मे बी$_1$ बहुत मिलता है। अब संश्लिष्ट बी$_1$ भी प्राप्य है। बी$_1$ से शरीर मे को-कार्बोक्सिलेज़ बनता है, जो कार्बोहाइड्रेट के चयापचय मे उत्पन्न पाइरूविक अम्ल को ऑक्सीकरण द्वारा हटाता है। रक्त तथा ऊतियों मे पाइरूविक अम्ल की मात्रा बढ़ने पर बेरीबेरी उत्पन्न होता है। यह बात रक्त में इस अम्ल की मात्रा जाँचने से स्पष्ट हो जाती है। इसकी सामान्य मात्रा ०.४ से ०.६ मिलीग्राम प्रति शत है, जबकि बेरीबेरी मे यह मात्रा बढ़कर १ से ७ मिलिग्राम प्रति शत तक हो जाती है। इस दशा मे यदि पाँच मिलीग्राम बी$_1$ दे दिया जाय, तो १० से १५ घंटे में अम्ल की मात्रा घटकर सामान्य स्तर पर आ जाती है। बी$_1$ का अवशोषण शीघ्र होता है और सीमित मात्रा मे यकृत, हृदय तथा वृक्क मे इसका संचय होता है। इसी कारण कमी के कुछ ही सप्ताह बाद रोग उत्पन्न होता है।

विकृति — आर्द्र बेरीबेरी मे ग्रहणी और आमाशय के निम्न भाग की श्लैश्मिक कला मे तीव्र रक्तसंकुलता होती है और कभी कभी इससे छोटे छोटे रक्तस्राव भी होते हैं। परिधितंत्रिकाओं मे अपकर्ष होता है। हृदय की मांसपेशियो मे अपकर्षी परिवर्तन दिखाई पडते हैं, विशेषकर दाईं ओर जहाँ वसीय अपकर्ष होता है। अपकर्ष के कारण यकृत का रूप जायफल सा हो जाता है। कोमल ऊतकों में शोथ तथा सीरस गुहाओं मे निस्सरण होता है।

लक्षण — विटामिन बी$_1$ की क्षीणता प्रारंभ होने के दो तीन मास बाद बेरी बेरी के लक्षण प्रकट होते हैं . बहुतंत्रिकाशोथ, धडकन के दौरे, दुःश्वास तथा दुर्बलता। रोग जिस तंत्रिका को पकडता है उसी के अनुसार अन्य लक्षण प्रकट होते है। बेरी बेरी बार बार हो सकती है।

प्रकार — (१) सूक्ष्म (ऐंबुलेटरी) इसमे रोगी सचल रहता है। पैर सुन्न होना, विभिन्न स्थलो का संवेदनाशून्य होना तथा जानु झटके मे कमी इसके लक्षण है और आहार में बी$_1$ युक्त भोजन का समावेश होने से रोग गायब हो जाता है।

(२) **तीव्र विस्फोटक बेरी बेरी**। यह सहसा प्रारंभ होती है। भूख बंद हो जाती है, उदर के ऊपरी भाग मे कष्ट, मिचली, वमन, पैरों के सामने के हिस्से मे संवेदनशून्यता और विकृत संवेदन, संकुलता-जन्य हृदयविफलता, पक्षाघात और तीव्र हृदयविफलता के कारण कुछ घंटों से लेकर कुछ ही दिनो तक के अंदर मृत्यु।

(३) **उपतीव्र या आर्द्र बेरी बेरी** इसमे विकृत संवेदन हाथ में भारीपन, जानु झटके मे आरंभ मे तेजी और तब शिथिलता या पूर्ण रूप से अभाव। पिंडली मे स्पर्शासह्यता, संवेदना का कुंद होना, प्रतिसंवेदन या संवेदनशून्यता, दुर्बलता, उठकर खडे होने की असमर्थता, पैरो पर शोथ, दुःश्वास, श्वासाल्पता, धड़कन आदि लक्षण होते हैं।

(४) **जीर्ण या शुष्क बेरी बेरी** — इसमें शोथ नही होता, पाचन

की गड़बड़ी भी नहीं मिलती, पर मांसपेशियाँ दुर्बल होकर सूखने लगती हैं। हृदय में क्षुब्धता, हाथ पैर में शून्यता, पिंडली में ऐंठन और पैर बर्फ से ठंढे रहते हैं। बैठने पर उठकर खड़ा होना कठिन होता है। वैसे पैर की एँडी झूल जा सकती है, या बड़े ऊँचे डग की चाल हो जाती है।

(५) **बच्चों की बेरी बेरी** : माता में बी, के अभाव से।

(६) **गौण बेरी बेरी** : अन्य रोगों, यथा पाचनयंत्र के दोष, शराबीपन, पैलाग्रा, गर्भावस्था, मधुमेह, ज्वर आदि, के फलस्वरूप होती है।

(७) **सहयोगी बेरी बेरी** : सर्वविटामिनहीनता, या व्यापक पोषणहीनता-जन्य रोगों मे इसका भी हिस्सा रहता है।

निदान — लक्षणों, पोषण के इतिहास, सावधानी से रोगी की परीक्षा एवं मूत्र मे विटामिन बी, की मात्रा देखकर, इसका निदान किया जाता है।

उपचार — बेरी बेरी न हो, इसके लिये उचित पोषण तथा बेरी बेरी जनक रुग्णावस्थाओं मे अतिरिक्त मात्रा मे बी, देना आवश्यक है। चिकित्सा है, बी, के अभाव की पूर्ति, और इसके लिये रवेदार विटामिन बी, के इंजेक्शन लगाते हैं। [भा० शं० मे०]

बेरूत (Beirut) स्थिति : ३३° ५३' उ० अ० तथा ३५° ३१' पू० दे०। लेबनान गणतंत्र की राजधानी एवं प्रसिद्ध बंदरगाह तथा लिवैंट क्षेत्र का प्रमुख नगर है। यहाँ की जलवायु रूमसागरीय है। त्रिभुजाकार यह नगर रमणीक स्थल पर बसा है। आधुनिक होटल, गिरजाघर, मस्जिदें तथा नाइटक्लबों की अधिकता है। यह मध्य पूर्व देशो का प्रमुख धार्मिक, सांस्कृतिक और व्यापारिक केंद्र है। अमरीकी, फ्रांसीसी, अरबी तथा राजकीय चार प्रमुख विश्वविद्यालय हैं। तटीय रेलमार्ग द्वारा अन्य प्रसिद्ध नगरों से रेल द्वारा जुड़ा है। यहाँ अंतरराष्ट्रीय वायुअड्डा भी है। इतिहास में भी इसका काफी महत्व है। यहाँ से रेशम, ऊन, गोंद, फल, तथा पशुओं से प्राप्त होनेवाले पदार्थों का निर्यात होता है। रेशम उत्पादन यहाँ का प्रधान धंधा है। इसकी जनसख्या ५,००,००० (१९६३) है। [रा० प्र० सिं०]

बेर्तोलोमो बेनेतो (१४८०–१५५५) इस इतालीय चित्रकार ने वेनिस के जेनेती वेलिना से कलाशिक्षा ग्रहण की। कुछ समय क्रेमोना मे रहे; लेकिन फेर्रारा मे काम करते रहे। वेनिस स्थित 'मेदोना' का चित्र और बेर्गामो म्यूजियम मे रखा सुंदर नैसर्गिक पृष्ठभूमि पर बच्चे के साथ मेदोना का चित्र इसी काल का है। बाद के चित्रो मे विशेषत व्यक्तिचित्रों पर कलाकार मिलने के चित्रो का प्रभाव है। उनके रंग चमकदार पर सुसंगत हैं। आकार ठोस, सूक्ष्म और सशक्त हैं। महिलाओ के व्यक्तिचित्रों की रचना मे उनकी मौलिकता है। नेशनल आर्ट गेलरी लदन, फिजा विलियम म्यूजियम, मिलन और बुडापेस्ट की आर्ट गेलरियों मे इनके बनाए चित्र हैं। [भा० स०]

बेर्तोलौत्जी फ्रांसेस्को (१७२५–१८१५) फ्लोरेंस के समीप एक देहात में इस इतालीय कलाकार का जन्म हुआ। पिता चाँदी के बर्तनों पर खुदाई करते थे। चित्रकला की ओर बेर्तोलौत्जी की रुचि अधिक होने पर भी पिता ने उन्हें वेनिस के जोजेफ वैग्नर के पास खुदाई की कला सीखने भेज दिया। वे कुछ दिन रोम में रहे, वहाँ उन्होंने सान नील्स की नवीन कथा से सबंधित कुछ तश्तरियाँ बनाईं। जार्ज तृतीय के आश्रय से वे सन् १७६४ में लंदन में स्थायी हो गए तथा वहाँ वे रॉयल अकादमी के सदस्य भी रहे। सन् १८०२ में पुर्तगीज राजकुमार रीजेंट ने उन्हे लिस्बन मे बुलाकर 'एनग्रेविंग स्कूल' का अधीक्षक बना दिया। वे अत तक वहीं रहे। [भा० स०]

बेर्नूलि (Bernoulli) स्विट्जरलैंड के बाजेल स्थान का प्रसिद्ध परिवार था, जिसमें एक शताब्दी मे आठ गणितज्ञों ने जन्म लिया। इनमे से निम्नलिखित तीन अत्यंत महत्वपूर्ण हैं :

(१) जेम्स बेर्नूलि (James Bernoulli, १६५४–१७०५ ई०) — बाजेल मे १६८७ ई० से मृत्युपर्यंत गणित के प्रोफेसर थे। लाइब्निट्ज-कलन की सहायता से इन्होने समकोणाक्ष एवं कोणीय नियामकों मे वक्रतीय त्रिज्या का सूत्र और तुल्यकालिक वक्रों पर लाइब्निट्ज के साध्य का हल दिया। इन्होंने रज्जुवक्र बेर्नूली के लैमनिस्केट एवं लघुगणकीय सर्पिल पर अनेक पेचीदे साध्यों का आविष्कार किया। १६९६ ई० मे इन्होंने प्रसिद्ध 'तुल्य परिमिति के साध्यों' की उपस्थापना की और १७०१ ई० मे स्वयं ही उसका हल भी उपस्थित किया। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'आर्स कॉन्जेक्तांदी' (Ars Conjectandi) इनकी मृत्यु के आठ वर्ष पश्चात् चार खंडों मे, प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम खड मे टीका सहित हाइगेन्स का संभाव्यता पर लेख, द्वितीय खड मे सचय एवं क्रमसचय, तृतीय खंड में संभाव्यता के साध्यों के हल और चतुर्थ खड मे प्रसिद्ध बेर्नूली प्रमेय हैं।

(२) जॉन बेर्नूलि (John Bernoulli, १६६७–१७४८ ई०) — दस वर्ष तक ग्रोनिंगन में, और फिर अपने भाई जेम्स की मृत्यु के उपरांत बाजेल मे, गणित के प्रोफेसर रहे। गणित में चलराशि कलन को इनकी अपूर्व देन है। इन्होंने घातीय कलन, द्रुततमावपात रेखा और परिणम्य घनत्व की एक तह से गुजरनेवाली किरण के पथ से इस रेखा का एक उत्तम संबंध स्थापित किया। इसके अतिरिक्त इन्होने अनिर्णीत रूप $\frac{0}{0}$ का मान ज्ञात करने की विधि का अन्वेषण किया, त्रिकोणमिति के साध्यो को वैश्लेषिक ढग से हल करने का प्रयत्न किया और प्रक्षेपपथ का अध्ययन किया। इनको पैरिस की विज्ञान अकादमी ने अनेक पारितोषिक प्रदान किए थे।

डेनियल बेर्नूलि (Daniel Bernoulli, १७००–१७८२ ई०) — जॉन बेर्नूलि के पुत्र थे। ये आरभ मे पीटर्सबर्ग अकादमी में गणित के, तदुपरात बाजेल विश्वविद्यालय मे प्रयोगात्मक तत्वज्ञान के, प्रोफेसर रहे। इनका गणित संबंधी प्रथम प्रकाशन रिकेटी द्वारा प्रस्तावित अवकल समीकरण का हल था। इन्होने द्रवगतिविज्ञान पर महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की। उत्क्रम त्रिकोणमितीय फलन के लिये इन्होंने ही सर्वप्रथम एक उचित संकेत का प्रयोग किया। संभाव्यता पर इनके अन्वेषण महत्वपूर्ण हैं। इसमे इन्होंने चलन कलन का भी प्रयोग किया। यह नैतिक प्रत्याशा (Moral expectation) के सिद्धांत के जन्मदाता थे, जिसके द्वारा इन्होने तथाकथित 'पीटर्सबर्ग समस्या' का हल दिया। परंतु आजकल इस सिद्धात का प्रयोग कोई नही करता। पैरिस की विज्ञान अकादमी ने इन्हे दस पारितोषिक प्रदान किए थे। [रा० कु०]

बेर्नूलि संख्याएँ यह नाम भिन्नों की एक श्रेणी को दिया जाता है, जैसे १/६, १/३०, १/४२, १/३०, ५/६६...आदि, जिसको क्रम

से $ब_1, ब_2, ब_3, ब_4, ब_5\ldots$, [$B_1, B_2, B_3, B_4, B_5\ldots$], या उचित समझा जाय तो $ब_2$, $ब_4$, [B_2, B_4,] आदि चिह्नों से दर्शाया जाता है।

जेकब बेर्नुलि (Jacob Bernoulli) ने इस श्रेणी का प्रतिपादन किया था तथा उन्होंने इसका उपयोग प्रथम य (x) पूर्णांकों के न (n) घातों का योग निकालने के लिये निम्न प्रकार से किया :

$$यो_न = १ + २^न + \ldots + य^न =$$

$$\frac{य}{न+१} + \frac{य}{२} - \frac{न}{२} ब_१ य^{न-१} + \frac{न\ (न-१)\ (न-२)}{४\,!} . ब\ य^{न-३}$$

$$[\ S_n = 1 + 2^n + \cdots + x^n =\ ]$$

$$\frac{x}{n+1} + \frac{x}{2} - \frac{n}{2} B_1\, x^{n-1} + \frac{n\ (n-1)\ (n-2)}{4\,!} . Bx^{n-3} \ldots$$

इन संख्याओं का उपयोग संख्याओं के सिद्धांत, अंतरकलन तथा निश्चित समाकलों के सिद्धांत से संबंधित गणितीय निर्धारणों में किया जाता है।

$\frac{य}{ई^य-१}$ $\left[\frac{x}{e^x-1} \right]$ के प्रसार में गुणांकों के सदृश भी इनका उपयोग होता है। [म० दा० व०]

बेल (बाल) प्रधान बाबुली देवता, जिसका अनेक जातियों में अनेक देवतापरक अर्थों में उपयोग हुआ है। सामी बाबुली भाषा में 'बेल' का अर्थ होता था, स्वामी। बेल विशेषतः प्रजनन और उपज का देवता था, वैसे बाबुलियों मे उसका आदर देवराज के रूप में होता था। बाबुल और निकटवर्ती नगरों में बेल के अनेक मंदिर थे जिनमें उसकी मूर्तियाँ थीं। उसके स्वामी अथवा शीर्षस्थ होने से ही इब्रानी मे 'बाल' का अर्थ केश या केशयुक्त पुरुष हुआ। बाल का अर्थ इब्रानी मे, पंख, पक्षयुक्त प्राणी और बाण या बाणयुक्त व्यक्ति अर्थात् तीरदाज भी है।

बाइबिल मे 'बाल' का उपयोग स्वामी अथवा पंख के विशेषण के रूप मे अनेक बार हुआ है। जब तक बाबुलियों का प्रभाव यहूदियों, फिनीशियों आदि पर रहा, उन्होंने इस शब्द का देवार्थ में प्रयोग किया और इसी कारण बाइबिल की पुरानी पोथी मे इसका बार बार उल्लेख हुआ है। फिर उसी साधन और अनुष्ठान क्रियाओं के माध्यम से दक्षिण-पूर्वी यूरोपीय देशों मे भी उर्वरता की देवी आश्तोरोथ (आस्तार्ते, ईश्तर) के साथ साथ (जिससे ग्रीकों और रोमनों की प्रेमदेवियाँ आफ्रोदीती और वीनस जनमीं) बाल की पूजा का श्रीगणेश हुआ। इसी प्रकार कार्थेजी (फिनीशी) हानिबाल और हस्द्रुबाल मे भी उसी देवता का नाम ध्वनित है। खत्तियों (मिस्री फराउन रामसेजकालीन) में भी बाल की आराधना हुई और मिस्र में बाल तथा अस्तार्ते दोनो पूजे गए। बाल ने फिर ग्रीकों में 'बेलोस्' का रूप लिया जिसका एक रूप स्वयं जिअस, दूसरा हेरेक्लीज माना गया। असीरिया ने बाबुल की जब सारी सांस्कृतिक संपदा अपना ली तो बेल उसका भी आराध्य बना। [भ० श० उ०]

बेल, अलेक्जैंडर ग्राहम (सन् १८४७–१९२२) स्कॉट-अमरीकी वैज्ञानिक थे। इन्होंने एडिनबरा, लंदन एवं जर्मनी में शिक्षा प्राप्त की। सन् १८७१ में ये कैनाडा की एक मूक एवं बधिर पाठशाला में शिक्षक हो गए। थोड़े दिन बाद, बोस्टन विश्वविद्यालय मे वाक् कायिकी (Vocal physiology) के प्रोफेसर नियुक्त हुए तथा अपने पिता द्वारा चलाई हुई शिक्षाप्रणाली से मूकों एवं बधिरों को शिक्षा देते रहे। हेडेलबर्ग विश्वविद्यालय ने, महत्वपूर्ण खोजों के लिये, आपको एम० डी० की उपाधि देकर संमानित किया।

सन् १८७६ में बेल ने अपने टेलीफोन का प्रदर्शन कर सारे संसार को आश्चर्यचकित कर दिया। मानवीय ध्वनि को विद्युत् मे परिवर्तित एवं प्रसारित करने का यह पहला प्रयोग था। बेल का टेलीफोन, बेल ग्राही यंत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इस यंत्र में ग्राही एवं प्रेषक यंत्र एक ही प्रकार के थे। एडिसन द्वारा निर्मित, कार्बन प्रेषक यंत्र का अब अधिकांश मे उपयोग किया जाता है। बेल के दूसरे महत्वपूर्ण आविष्कार, फोटोफोन एवं ग्रामोफोन, क्रमशः सन् १८८० एवं १८८७ मे हुए।

बेल ने मूक एवं बधिर मनुष्यों के लिये महान् कार्य किए और उनकी शिक्षा के लिये मुक्तहस्त से दान दिया। [भ० प्र०]

बेलगाँव (Belgaum) १. जिला, स्थिति : १५° २२' से १६° ५८' उ० अ० तथा ७४° २' से ७५° २५' पू० दे०। यह भारत के मैसूर राज्य का एक जिला है। इसके पूर्व मे बीजापुर, दक्षिण मे धारवाड़, उत्तरी कन्नड़, दक्षिण-पश्चिम में गोवा, उत्तर मे सांगली तथा उत्तर-पश्चिम मे कोल्हापुर एवं रत्नागिरि जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल ६,३३२ वर्ग मील तथा जनसंख्या १६,८३,८११ (१९६१) है। यहाँ कृष्णा, घाटप्रभा, मालप्रभा आदि नदियाँ बहती हैं तथा यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यप्रद तथा आनंददायक है। जनवरी का ताप लगभग ११° सें० तथा मई का ताप लगभग ३८° सें० रहता है। वर्षा का औसत लगभग ५० इंच है। यहाँ की काली तथा लाल मिट्टियों में कपास, दलहन, तिलहन, ज्वार, बाजरा, धान, गेहूँ आदि उगते हैं।

२. नगर, स्थिति : १५° ५१' उ० अ० तथा ७४° ३१' पू० दे०। बेलगाँव जिले का एक नगर है जो सागरतल से लगभग २,५०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ एक प्रसिद्ध किला है जिसमें दो जैन मंदिर हैं। असद खाँ की दरगाह तथा साफा मस्जिद दर्शनीय है। यहाँ फौजी छावनी भी है। नमक, सूखी मछलियाँ, खजूर, नारियल एवं नारियल की जटा का व्यापार होता है। करघा और सूती वस्त्रों का उद्योग प्रमुख है। इसकी जनसंख्या १,४६,७९० (१९६१) है। [रा० स० ख०]

बेलग्रेड (Belgrade) स्थिति : ४४° ५०' उ० अ० तथा २०° ३७' पू० दे०। यूगोस्लाविया मे जाग्रेब नगर से २३० मील दक्षिण-पूर्व, डैन्यूब तथा सावा नदियों के संगमस्थल पर, मध्य यूरोप से इस्तंबूल जानेवाले मार्ग पर स्थित, यूगोस्लाविया की राजधानी एवं प्रमुख व्यापारिक नगर है। यहाँ गरमी का ताप १५° सें० तथा जाड़े का ताप हिमांक से नीचे रहता है एवं वर्षा का औसत २५ इंच है। उद्योगो मे कम प्रगति हुई है, फिर भी लोहा, शराब, जूते, शक्कर, मिठाइयाँ, साबुन, चीनी मिट्टी के बरतन, कपड़े बनाने तथा गोश्त को डिब्बों में बंद करने का काम होता है। शीशा तथा

उत्तम कोयले की खानें पास ही में स्थित हैं। यह रेल, सड़क एवं वायुमार्गों का प्रमुख केंद्र है। फिल्मों का निर्माण भी किया जाता है। विश्वविद्यालय के अतिरिक्त सैनिक अकादमी तथा बहुत से विद्यालय हैं। यहाँ बड़े पादरी का आवास, दूतावास, संसद भवन, राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा वनस्पति उद्यान देखने योग्य हैं। डैन्यूब नदी पर एक मील लंबे बने पुल द्वारा यह पांसेवो नगर से जुड़ा है। १४वीं शताब्दी में यह सर्बिया के अधीन होने पर उसकी राजधानी भी रहा है। इसकी जनसंख्या ५,६८,३४६ (१९६१) है। [रा० प्र० सिं०]

बेलज़ेबब फिलिस्तीन जाति का देवता। यहूदियों में 'बेलज़ेबब' शब्द की तीन प्रकार से व्युत्पत्ति दी जाती थी (अधिकतर उपहास करने के उद्देश्य से)। (१) बेलज़ेबेल, उर्वरक का देवता, (२) बेलज़ेबुब, मक्खियों का देवता, (३) बेलज़ेबुल, नरक का देवता। फरीसियों ने ईसा पर यह आरोप लगाया कि वह बेलज़ेबब की सहायता से चमत्कार दिखलाते हैं। (मार्क ३,२२)। ईसा ने शैतान को और बेलज़ेबब को अभिन्न माना है (मत्ती, १२,१६)।

सं० ग्रं० — बाइबिल डिक्शनरी, शिकागो, १९६०। [आ० वे०]

बेलन (Cylinder) प्राचीन काल में ऐसा विचार था कि यदि एक आयत इस प्रकार घुमाया जाय कि एक भुजा स्थिर रहे, तो दूसरी समांतर भुजा एक पृष्ठ बनाती है जिसे बेलन कहते हैं। स्थिर भुजा को अक्ष कहते हैं और दूसरी समांतर भुजा को जनक रेखा। ऐसे बेलन को लंबवृत्तीय बेलन कहते हैं। मान लीजिए कखगघ कोई आयत है (चित्र १), जो रेखा कख पर घुमाया जाता है, तो कख अक्ष है और घग जनक रेखा है। भुजा खग एक वृत्त बनाती है जिसका केंद्र ख है। वृत्त गचज तथा घछझ बेलन के सिरे हैं। जब घूमनेवाली भुजा सिरों पर लंब न हो, तब इसका एक व्यापक रूप प्राप्त होता है (देखें चित्र २)। सिरे इस स्थिति में भी वृत्त बनाते हैं, जिनके केंद्र अक्ष पर हैं। इन सिरों की लांबिक दूरी बेलन की ऊँचाई कहलाती है। यदि

चित्र (१)

लंबवृत्तीय बेलन (चित्र १) को किसी ऐसे समतल से काटा जाय जो अक्ष पर लंब न हो, तो परिच्छेद दीर्घवृत्त होता है। सिरों पर इसका प्रक्षेप वृत्त होता है और यदि बेलन (चित्र २) को किसी ऐसे समतल से काटा जाय जो अक्ष पर लंब हो, तो परिच्छेद दीर्घवृत्त होता है। यदि बेलन की त्रिज्या त्र (r) हो और ऊँचाई ऊ (h) हो, तो लंबवृत्तीय बेलन के सिरों का क्षेत्रफल πत्र² (πr^2) होता है। इसके पृष्ठ का क्षेत्रफल २π त्र ऊ ($2\pi r h$) तथा इसका घनफल πत्र²ऊ ($\pi r^2 h$) होता है।
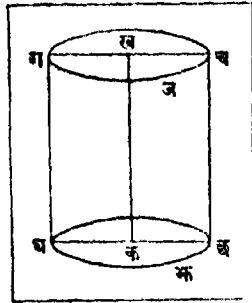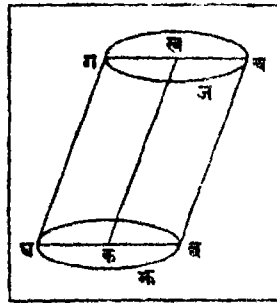
चित्र (२)

गणितज्ञ आर्कमिडीज़ ने, जिसका जन्म ईसा से २२५ वर्ष पूर्व हुआ था, यह ज्ञात किया था कि एक ही आधार और समान ऊँचाई के अर्धगोले, शंकु और बेलन के घनफल में १:२:३ का अनुपात होता है। परंतु आजकल बेलन का अर्थ बहुत व्यापक हो गया है। यदि एक रेखा का एक सिरा किसी वक्र पर चले और रेखा स्वयं अपनी मूल स्थिति के समांतर रहे तो इस प्रकार बना हुआ पृष्ठ बेलन कहलाता है (चित्र ३)। रेखा को जनक रेखा और वक्र को नियता कहते हैं। ऐसा पृष्ठ यदि किसी जनक रेखा के सहारे काट दिया जाय, तो वह एक समतल पर बिना मोड़े तोड़े फैलाया जा सकता है। इसीलिये ऐसे पृष्ठ को विकासनीय पृष्ठ कहते हैं। यदि नियता एक वृत्त हो, तो पृष्ठ को वृत्तीय बेलन कहते हैं। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, यदि नियता एक दीर्घवृत्त है, तो पृष्ठ को दीर्घवृत्तीय बेलन

चित्र ३

कहते हैं। यदि नियता परवलय या अतिपरवलय हो, तो बेलन को परवलयिक या अतिपरवलयिक बेलन कहते हैं। यदि जनक रेखा सिरे के समतल पर लंब हो तो इसे लंब बेलन कहते हैं। दोनों सिरे समान और समरूप वक्र होते हैं।
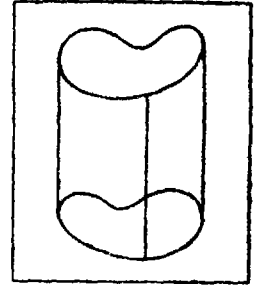
बेलन की एक दूसरी परिभाषा भी दी जा सकती है। यदि कोई नियता अपने समांतर किसी रेखा के सहारे चले, तो इस प्रकार बना हुआ पृष्ठ बेलन कहलाता है। यदि नियता सकेंद्र है, तो जिस रेखा में केंद्र चलता है वह बेलन का अक्ष कहलाती है। यदि अक्ष में होकर जानेवाला कोई समतल खींचें, तो यह बेलन को समांतर चतुर्भुज में काटता है। यदि बेलन लंबवृत्तीय है, तो चतुर्भुज आयत हो जाता है।

यदि किसी शंकु का शीर्ष अनंत पर स्थित हो, तो शंकु बेलन हो जाता है। इस विचार से बहुत से शांकवों के सीमांत रूप ज्ञात हो सकते हैं।

लंबवृत्तीय बेलन का प्रयोग आजकल प्राथमिक मोटरों, पंपों, इत्यादि बहुत सी मशीनों में किया जाता है, जिनके विषय में जानकारी बहुत सी मशीन संबंधी पुस्तकों से प्राप्त हो सकती है। [भ० ला० श०]

बेला (Violin) तारवाले वाद्ययंत्रों, जैसे सारंगी, सितार आदि, में बेला सबसे छोटा, परंतु ऊँचे तारत्ववाला वाद्ययंत्र है। इसमें एक विशेष प्रकार की अनुनाद मंजूषा होती है, जिसके ऊपर से भिन्न भिन्न मोटाई के चार तार एक सेतु से होकर जाते हैं। तारों का तनाव घूमती हुई खूँटियों द्वारा ठीक किया जाता है।

प्रत्येक तार से जो मूल स्वर उत्पन्न होता है, उसकी आवृत्ति ४३५ होती है। दूसरे प्रकार के स्वरों को पैदा करने के लिये तारों की लंबाई को घटाया बढ़ाया जाता है। एक धनु को तारों पर दायें बायें घुमाकर तारों में कंपन उत्पन्न किया जाता है। इस धनु के दोनों सिरे घोड़े के बालों से बंधे होते हैं। इस वाद्ययंत्र की विशेषता यह है कि इसमें केवल चार ही तार होते हैं।

बेला के नियम बहुत ही जटिल हैं। उनके बारे में यही कहा जा सकता है कि वे ध्वनि के परिचित सिद्धांतों पर आधारित हैं। तारों

की लंबाई और तनाव में परिवर्तन कर उनसे भिन्न भिन्न प्रकार के स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। वादक की कुशलता इस बात में है कि वह आवश्यकतानुसार तारों की लंबाई और तनाव मे परिवर्तन कर सके।

तारों से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे अनुनाद मंजूषा प्रबल बनाती है। तारों द्वारा उत्पन्न जटिल कंपनों को अनुनाद मंजूषा किस प्रकार अभिवर्धित करेगी, यह कई बातों पर निर्भर है। इनमें से कुछ प्रमुख बातें ये हैं : भागों मे अनुनाद मंजूषा के पत्तरों की विभिन्न मोटाई, मजूषा के भीतरी भाग का आकार और विस्तार, उन ध्वनि रंध्रों का आकार और विस्तार जिनमे से होकर मंजूषा की भीतरी वायु के कंपन बाहरी वायु तक पहुँचते हैं। जिस लकड़ी से बेला का निर्माण होता है, उसके लचीलेपन और अन्य गुणो का भी बहुत प्रभाव पडता है।

बेला के स्वरों की विशेषता का रहस्य इस बात मे है कि उसके मूल स्वरों में बहुत से संनादी स्वर मिश्रित होते हैं। बेला के तार बहुत हल्के होते हैं, जिसके कारण बहुत ऊँचे तारत्ववाले संनादी स्वर उत्पन्न होते हैं। इन संनादी स्वरों के कारण ध्वनि उजागर हो उठती है। परंतु ताँत (gut) का न्यून लचीलापन इन सनादी स्वरों को शीघ्र ही मंद कर देता है, जिससे अंततोगत्वा ध्वनि की रूक्षता समाप्त हो जाती है।

बेला के आरंभिक निर्माताओ मे इटली के इन व्यक्तियों के नाम उल्लेखनीय है गास्पर दा सालो गियोवानी, पाओलो मेगिनी, ग्योविटा रोदियानो। निकोलस अमिती (सन् १५९६–१६८४) ने इसमे कुछ सुधार किए और उसके शिष्य एंटिनियो (सन् १६४४–१७३७) ने इसे वह रूप दिया जो आज तक चला आ रहा है। स्ट्रादिवेरी ने बेला का जो नमूना बनाया था और जो १७वीं शताब्दी से अब तक चला आ रहा है, उसका विवरण इस प्रकार है : लंबाई १४ इच, ऊपर की चौडाई ६$\frac{11}{16}$ इंच, नीचे की चौडाई ८$\frac{3}{8}$ इंच, ऊपर की ऊँचाई १$\frac{3}{16}$ इंच, नीचे की ऊचाई १$\frac{1}{32}$ इंच।

इसके अलावा जेकोब स्टेनर ने एक बेला बनाया, जिसकी नकल इंग्लैंड और जर्मनी ने १८वीं सदी तक की। उसके बाद इसका प्रयोग क्रीमोना बेला के आने से कम हो गया।

बेला बनानेवाले अंग्रेजो को तीन समुदायों मे विभक्त किया जा सकता है : (१) प्राचीन बेला बनानेवाले, जिनमे रेमान, फेफीलोन, बारक, नॉरमन आदि हैं; (२) स्टेनर के अनुयायी, जिनमें स्मिथ, बैरट, क्रौसहिल, नोरेस आदि हैं और (३) क्रीमोना बेला बनानेवाले, जिनमे वैट्स, कार्टर, पार्कर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बेला बनानेवाले फ्रांसीसियों मे निकोलस, स्लिवेस्त्री आदि का उल्लेख किया जा सकता है। [कृ० नं० दु०]

बेल्जियम स्थिति : ५१° ३० उ० अ० तथा ५° ०' पू० दे०। यूरोप महाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी किनारे पर स्थित एक देश है। इसका क्षेत्रफल ११,११३ वर्ग मील है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत के हिमाचल प्रदेश से कुछ बड़ा है। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्व में नीदरलैंड्स, पूर्व और दक्षिण-पूर्व में जर्मनी एवं लक्सेमबर्ग, दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में उत्तरी सागर स्थित है। घनी जनसंख्या एवं पुरानी सभ्यता इस देश की विशेषताएँ हैं।

प्राकृतिक दशाएँ — बेल्जियम को तीन प्राकृतिक भागों मे बाँटा जा सकता है : १ फ्लैंडर्ज और कैंपाइन—सागरतट के बाँधों और बालुकास्तूपों के पूर्व मे सागर सतह के निचले हिस्से को पोल्डर कहते हैं। छिछले समुद्र में बाँध लगाकर पवन चक्कियों द्वारा पानी को
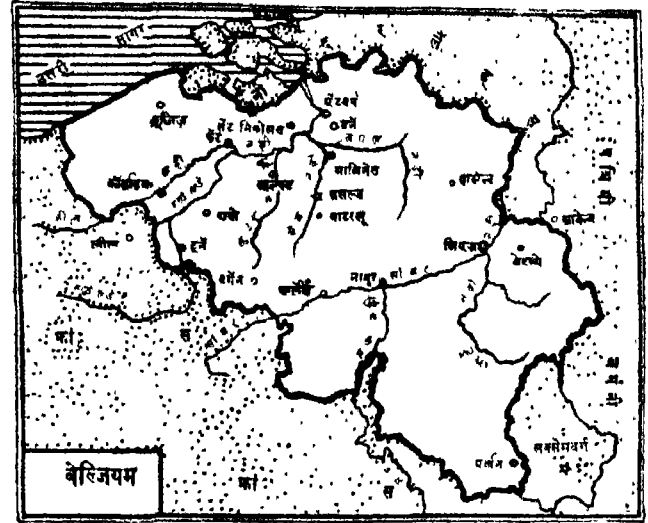
बाहर समुद्र में निकालकर यह भूमि प्राप्त की गई है। इसके दक्षिण-पूर्व की समतल भूमि को फ्लैंडर्ज कहते है। बेल्जियम का उत्तर-पूर्वी (कैंपाइन) क्षेत्र मुख्यत: बंजर है। २. बीच का मैदान और निचला पठार—यह पहले विभाग के दक्षिण-पूर्व मे है। यहाँ की मिट्टी काफी उपजाऊ है। बेल्जियम के प्रधान नगर यही पर स्थित हैं। ३. दक्षिण-पूर्व का आर्डेन (Ardennes) प्रदेश—यह जंगलो से भरा क्षेत्र है जो १,००० से २,००० फुट तक ऊँचा है।

यहाँ की नदियों मे मज, साम्र, स्खेल्डे, एवं लीस प्रमुख है जो दक्षिण-पूर्व में फ्रांस से निकलकर उत्तर-पश्चिम दिशा मे बहती हुई नीदरलैंड्स में जाकर उत्तरी सागर मे गिर जाती है।

जलवायु — यहाँ की जलवायु सम है, न जाडों में अधिक सरदी और न गरमी मे अधिक गरमी ही पड़ती है। यहाँ का औसत ताप १०° सें० है। जाडे मे ताप हिमांक एवं गरमी मे २१° सें० तक शायद ही पहुँचता है। वार्षिक वर्षा का औसत ३५ इंच है। यहाँ पतझड़ मे पाए जानेवाले तथा कोणधारी दोनों प्रकार के पेड़ मिलते हैं।

जनसंख्या — बेल्जियम की जनसंख्या लगभग ९२,५१,००० (१९६२) है। यह यूरोप मे नीदरलैंड्स के बाद सबसे घनी जनसंख्यावाला देश है। ब्रसल्ज़, ईस्ट फ्लैंडर्ज, वेस्ट फ्लैंडर्ज, लिएज, ब्राबँट, एनो (Hainaut), लिबर्ग, चार्लराय तथा नामुर यहाँ के प्रसिद्ध नगर हैं।

कृषि — देश की ६० प्रति शत भूमि पर खेती होती है। जौ, गेहूँ, जई, आलू और चुकंदर यहाँ की प्रधान उपजें हैं। कृषि का तरीका उन्नत है। चरागाह अधिक होने के कारण खासकर दूध देनेवाले पशु अधिक पाले जाते हैं।

उद्योग — यह औद्योगिक देश है। कुशल कारीगर, घनी जनसंख्या तथा उत्तम यातायात आदि औद्योगिक उन्नति के प्रमुख कारण हैं। लोहा, इस्पात तथा कपड़े बनाने के उद्योग प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त, रसायनक, जस्ता, चमड़े के सामान तथा शराब बनाने के उद्योग भी होते हैं। ऐंटवर्प में हीरा तराशा जाता है।

खनिज — यहाँ का प्रधान खनिज कोयला है किंतु खुदाई खर्च अधिक होने के कारण उत्पादन कम होता जा रहा है। कोयला, सांब्र और मज़ा नदियों की घाटियों तथा कैंपाइन प्रदेश में मिलता है।

यातायात — बेल्जियम में यातायात का जाल संसार के सब देशों से घना है। ऐंटवर्प विश्व के प्रसिद्ध बंदरगाहों में से है। यहाँ हवाई यातायात, टेलिफोन, बेतार के तार तथा टेलिविजन का काफी विस्तार हुआ है।

इतिहास — देश का नामकरण यहाँ के प्राचीन केल्टिक निवासियों बेलजे (Belgae) के नाम पर हुआ है। जूलियस सीजर ने ५१ ई० पू० में इस इलाके को जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया था। तब से करीब पाँच शताब्दियों तक यह रोमन साम्राज्य में रहा। तब से करीब १४ वीं शताब्दी तक देश छोटी छोटी रियासतों में बँटा रहा तथा लड़ाइयाँ होती रहीं। लेकिन मध्ययुग मे कम्यूनों का विकास हुआ तथा धीरे धीरे संपन्नता आने लगी और १४वी-१५वी शताब्दी में तो फ्लैंडर्स को 'पश्चिमी यूरोप का आर्थिक केंद्र' कहा जाता था। १३८४ मे यह इलाका बरगंडी के राजा फिलिप द बोल्ड को दहेज में मिला जिसने एकतंत्र राज्य की नीव डाली। बाद मे शाही विवाहों द्वारा बेल्जियम (१५७७ ई० में) आस्ट्रिया में और फिर स्पेन में मिल गया।

१६वीं शताब्दी से १८३० ई० तक बेल्जियम पड़ोसी देशों की अंतरराष्ट्रीय राजनीति में उपहार स्वरूप था। सन् १७१३ में यह आस्ट्रिया के और १७९७ में फ्रांस के अधीन चला गया। नेपोलियन के पतन के बाद वियना कॉंग्रेस के निर्णयानुसार यह नेदरलैंड का एक प्रांत बन गया परंतु भाषा, धर्म, रहन सहन तथा रीति रिवाजों की भिन्नता के कारण बेल्जियमवालों ने रोजियर के नेतृत्व में आजादी की घोषणा कर दी। २१ जुलाई, १८३१ को संविधान के अनुसार राजकुमार ल्योपोल्ड को राजगद्दी पर बैठाया गया। इसी तिथि को वहाँ स्वतंत्रतादिवस मनाया जाता है। ल्योपोल्ड प्रथम ने देश को संगठित कर नियमित शासनव्यवस्था की नीव डाली।

ल्योपोल्ड द्वितीय ने अफ्रीका मे कॉंगो फ्री स्टेट या बेलजियन कांगो की स्थापना की। १९१४ में जर्मनी ने चढ़ाई कर फ्लैंडर्स के उत्तर पश्चिम के छोटे से इलाके को छोड़कर सारे बेल्जियम पर अधिकार कर लिया। पर बाद में यह फिर स्वतंत्र हो गया।

१० मई, १९४० ई० की चढ़ाई मे जर्मनी ने बेल्जियम को फिर जीत लिया। पर ३ सितंबर, १९४४ ई० को मित्रराष्ट्रों ने इसको आजाद कर दिया। १९४५ ई० में राजकुमार चार्ल्स राजा बनाया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बेल्जियम तीव्र गति से उन्नति करने लगा। १९४२ ई० में इसने नेदरलैंड और लक्जेमबर्ग के साथ मिलकर बेनेलक्स (बेल्जियम नेदरलैंड लक्जेमबर्ग) चुंगी संघ का संघटन किया। १९४९ ई० में यह उत्तरी अटलांटिक संधि संघ (नाटो) का सदस्य बना। १९५७ में पश्चिमी यूरोप के पाँच देशों के साथ यह यूरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय का तथा १९५७ ई० में यूरोपीय साझा बाजार का सदस्य बना। कुल मिलाकर देश इन संघों और समुदायों की सहायता से काफी उन्नति कर रहा है। १९६० ई० मे तो इसने बेल्जियम कांगो के उपनिवेश को भी आजाद कर दिया है हालांकि इससे इसको कुछ आर्थिक क्षति हुई है। [नं० प्र० सिं०]

बेल्फास्ट १. नगर, स्थिति : ५४° ३५' उ० अ० तथा ५° ५६' प० दे०। उत्तरी आयरलैंड में, आयरिश सागर से १२ मील दूर, लागन नदी के मुहाने पर, डबलिन नगर से ११३ मील उत्तर-पूर्व में स्थित आयरलैंड की राजधानी, बंदरगाह, रेलों का केंद्र तथा अल्स्टर प्रांत का सबसे बड़ा नगर है। यह लागन नदी के दोनों किनारों पर बसा है। यहाँ लिनैन का उद्योग बहुत उन्नत है, इसके अतिरिक्त मलमल, सूती कपड़े, तंबाकू तथा रस्सा बनाना, हवाई जहाज तथा इंजीनियरिंग संबंधी काम होता है। वानस्पतिक उद्यान, संग्रहालय, विश्वविद्यालय तथा आर्ट गैलरी देखने योग्य है। द्वितीय महायुद्ध मे यहाँ कई बार बमवर्षा की गई थी। इसका हवाई संपर्क बर्मिघैम, ग्लास्गो, लिवरपूल, तथा लंदन से है। यहाँ का प्रमुख हवाई अड्डा बेलफास्ट पहाड़ी के पीछे है तथा एक छोटा अड्डा नगर के समीप मे भी है। इसकी जनसंख्या ४,१३,९०० (१९६२) है।

२. नगर, स्थिति : २४° ३०' उ० अ० तथा ६९° ०' प० दे०। संयुक्त राज्य, अमरीका की वाल्डो काउंटी मे, सागर के किनारे पेनॉबस्कॉट खाड़ी पर, बैंगॉर नगर से ६९ मील दक्षिण स्थित एक नगर है। सुंदर भवनों के लिये यह नगर प्रसिद्ध है। इन भवनों मे ब्लैसडेल मैंसन (Blaisdell mansion), स्टीफेंसन टेवर्न, जोसन हाउस, फील्ड होम प्रसिद्ध हैं। लकड़ी काटने का उद्योग तथा बड़े स्तर पर मत्स्य उद्योग होता है। इसकी जनसंख्या ५,९६० (१९५०) है। इसी नाम के नगर संयुक्त राज्य, अमरीका के न्यूयॉर्क राज्य तथा न्यूजीलैंड एवं ट्रंसवाल मे भी हैं। [सु० प्र० सिं०]

बेवेरिज, विलियम हेनरी जन्म, १८७९। राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री तथा प्रशासक। सामाजिक सुधारों मे अभिरुचि। १९०८ में सिविल सेवा में नियुक्ति। प्रथम महायुद्धकाल मे इसने इंग्लैंड की राशनिंग प्रणाली का संगठन किया लायड जार्ज का सहायक तथा १९०६ से व्यापार परिषद् का सदस्य रहा। श्रम का निर्देशक। १९३७ मे कमर्शल यूनिवर्सिटी कालेज, आक्सफोर्ड, का प्रधान (मास्टर) नियुक्त। १९३४ से १९४४ तक बेकारी बीमा समिति का सभापति तथा सामाजिक सुरक्षा एवं संबंधित सेवाओं के लिये अतरविभाग समिति का प्रधान। १९४२ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। योजना के अंतर्गत इसने सभी ब्रिटिश नागरिकों के लिये जन्म से मृत्यु तक सामाजिक सुरक्षा की सिफारिश की। पार्लिमेंट ने उसकी सिफारिशों को कार्यरूप देने के लिये अनेक ऐक्ट पास किए। सामाजिक सुरक्षा के इतिहास में उसका स्थान अमर है। [उ० ना० पां०]

बेवरिज, हेनरी (१८३७-१९२९) उसका दादा नानबाई था, और पिता, हेनरी बेवरिज, क्रमशः पादरी, बैरिस्टर, दिवालिया और भाड़े का लेखक रहा। उसकी पुस्तक, कॉम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑव इंडिया

तीन जिल्दों में १८६२ में छपी। अतः, शैशवकाल से ही हेनरी बेवरिज (छोटा) घर में भारत की चर्चा सुनता रहता था।

शिक्षा क्वींज कालेज, बेलफास्ट में हुई। भारतीय सिविल सर्विस की तृतीय परीक्षा में वह सर्वप्रथम रहा, और १८५७ में भारत आया। यहीं १८७५ में उसने अपनी दूसरी पत्नी ऐनेट (१८४२–१९२९) से शादी की। बंगाल की सिविल सर्विस के न्याय विभाग में ३५ वर्ष सेवा करने के बाद १८९२ में बिना हाईकोर्ट का जज बने, उसने अवकाश ग्रहण कर लिया। तरक्की न पाने का एक कारण यह था कि उसे भारत तथा भारतवासियों से शुरू से ही सहानुभूति थी। १८८८ में भारतीय सेवाओं के लिये इंग्लैंड से आए आयोग के संमुख गवाही में उसने इस बात को न्यायसंगत बताया था कि इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा इंग्लैंड में नहीं होनी चाहिए। वह धर्म में भी अधिक विश्वास नहीं रखता था।

अवकाश ग्रहण करने के बाद हेनरी और उसकी धर्मपत्नी ऐनेट ने भारतीय इतिहास के अध्ययन में ही सारा समय लगाया। ऐनेट ने पचास वर्ष की उम्र मे अपने पति के प्रोत्साहन से फारसी सीखी और गुलबदन बेगम के हुमायूँनामा का अंग्रेजी मे अनुवाद (१९०२) किया, और बाद में बाबरनामा का तुर्की से अनुवाद (१९२२)। हेनरी की प्रथम पुस्तक, हिस्ट्री ऑव बाकरगंज १८७६ में छपी, ट्रायल ऑव नंदकुमार १८८६ में। १९११ में उसके मआसिर-उल-उमरा (खंड १) का अंग्रेजी अनुवाद एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल ने छापा, और तुजुक-ए-जहाँगीरी का संशोधित संस्करण १९०९–१९१४ के बीच। उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य अबुलफज़ल के अकबरनामा का अंग्रेजी अनुवाद है। यह कार्य उसने १४ वर्ष के परिश्रम के बाद १९२९ में पूरा किया, और एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल ने इसे १९३९ मे छापा।

इसके अलावा बेवरिज के कतिपय लेख कलकत्ता रिव्यू, एशियाटिक *रिव्यू, जर्नल ऑव दी रायल एशियाटिक सोसायटी और एशियाटिक* सोसायटी ऑव बंगाल मे छपे। १८९९ मे हस्तलिखित पुस्तकों की खोज मे वह दुबारा भारत आया। मृत्यु, ८ नवंबर, १९२९ को इंग्लैंड में हुई। [स० चं०]

बेसारेबिया (Bessarabia) स्थिति : ४६° २०' उ० अ० तथा २९° ०' पू० दे०। यह सोवियत मॉल्डेविया और यूक्रेनिएन प्रजातंत्र का एक अंग है। पहले यह उत्तर-पूर्वी रोमानिया का एक प्रांत था। इसके उत्तर और पूर्व में नीस्टर, पश्चिम में प्रूत, दक्षिण मे डैन्यूब नदियाँ तथा दक्षिण-पूर्व मे काला सागर है। इसके उत्तर-पश्चिम मे कार्पेथिऐन पर्वत है। कृषि तथा पशुपालन प्रमुख उद्योग हैं। कारखानों की कमी है। कृषि में मक्का, गेहूँ, तंबाकू और अंगूर प्रमुख फसलें हैं। इसका क्षेत्रफल १८,०३५ वर्ग मील तथा जनसंख्या २५,२६,६७१ (१९४१) है। [सु० प्र० सिं०]

बेहराम जी मलाबारी प्रसिद्ध समाजसुधारक, बेहराम जी ने स्त्री समाज को मुक्ति दिलाना अपने जीवन का सिद्धांत बना लिया था। भारतीयता के प्रति होते हुए अन्याय या अधर्म के विरुद्ध दादाभाई नौरोजी की लड़ाई में वह उनके दाहिने हाथ सदृश थे। वह दिनशॉ वाचा के पत्रकार जीवन और सार्वजनिक जीवन के मार्गदर्शक थे, भारतीय राजाओं की कुशल चाहनेवाले तथा उनके ऐडवोकेट थे। भारतीय जनता में और ब्रिटिश शासकों में भी उन्हें सामयिक विषयों पर लेखनी उठानेवाले अपरिमित बुद्धिसंपन्न व्यक्ति की प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त एक मेधावी कवि, लेखक, विद्वान् और दार्शनिक के रूप में भी उनकी प्रसिद्धि थी क्योंकि वे जनसमूह की अवस्था में सुधार लाने की भावना से प्रेरित थे। आप शासकों और शासितों के बीच तथा पूर्व और पश्चिम के बीच संबंध जोड़नेवाली कड़ी के सदृश थे, जिनके आदर्श उन्नत थे, जो देशभक्ति की तीव्र भावना से प्रेरित थे, जिनके प्रयास स्वार्थरहित थे और जो शांत तथा मौन तरीके से समाजसेवा में रत थे। वह अपने को कोलाहलपूर्ण राजनीति से प्रायः दूर रखते थे।

'इंडियन स्पेक्टेटर' नामक आपकी साप्ताहिक पत्रिका का काफी अच्छा प्रचार था। उसकी आवाज ब्रिटिश साम्राज्य की कौंसिल में और फ्रांस तथा अमरीका के पत्रकार संसार में भी प्रविष्ट होती थी। यद्यपि आर्थिक दृष्टि से उसे असफलता ही मिली, फिर भी मलाबारी इससे निराश नही हुए। उन्होने पत्रकारिता को कभी आय का जरिए अथवा व्यापार के रूप मे नहीं देखा। आपका हृदय सदैव गरीबों के साथ था और आपका लक्ष्य था उनका उद्धार और देश का पुनर्निर्माण। आप क्रियाशील राजीतिज्ञ नहीं थे किंतु आप परोपकारी नागरिक थे जिनके अपने पृथक और अविच्छिन्न नागरिक और राजनीतिक क्रियाकलाप थे। इस तरह की सर्वविदित घटनाओं में दादाभाई के (*वायस ऑव इंडिया*) 'भारत की आवाज' के प्रकाशन के आत्मत्याग से भरे हुए कार्य मे सहयोग देना महत्वपूर्ण है। यह भावना दादाभाई से ही उत्पन्न हुई थी। इंग्लैंड के आपके दीर्घकालीन निवास ने इस भावना से आपको प्रेरित किया कि भारत के कल्याण के प्रति और न्यायपूर्ण सुनवाई के लिये यह आवश्यक है कि 'पब्लिक ओपीनियन' के समकक्ष कोई एक मासिक पत्रिका इंग्लैंड मे ही प्रकाशित करवाई जाय। यद्यपि दादाभाई स्वयं ही इंग्लैंड में भारत की आवाज बन गए थे तथापि आपने सोचा कि अपनी आवाज को बुलंद बनाने के लिये ब्रिटिश जनता को अपनी आवश्यकताओं की स्पष्ट रूपरेखा दिखाने के लिये और भारतीय जनता की भावनाओं और इच्छाओं को पूर्ण रूप से उन्हें विदित कराने के लिये ऐसे किसी पत्र का प्रकाशन आवश्यक है। इसलिये दादाभाई ने जब इसका प्रस्ताव किया तो मलाबारी ने उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। 'वायस ऑव इंडिया' का पहला अंक पहली तारीख, सन् १८८३ को प्रकाशित हुआ। दादाभाई ने उसकी आर्थिक रूप से सहायता की तथा मलाबारी ने दादाभाई की अनुपस्थिति मे उसे चलाने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया। आर्थिक कठिनाई के कारण १८९० की पहली जनवरी से 'वायस' को 'इंडियन स्पेक्टेटर' के साथ मिला दिया गया।

इंडियन नेशनल कांग्रेस के सत्रारंभ के पश्चात् आपने राष्ट्रीय आंदोलन के लिये सहयोग प्राप्त करने मे दादाभाई की सहायता की। आप कांग्रेस के सदस्य न थे और न हो सकते थे, क्योंकि आपने अपने को उस गोल में नहीं शामिल किया, यद्यपि कांग्रेस के दृष्टिकोण और क्रियाकलापों से आप पूर्ण रूप से सहमत थे। आप स्वयं अपने विषय में कहते हैं :

"मैं किसी एक गुट में प्रवेश नहीं कर सकता।" 'इंडियन स्पेक्टेटर' में आपने कहा है "एक गोलाई में कार्य करो। कांग्रेस आंदोलन अपने स्थूल रूप में मेरे जीवन के स्वप्नों में से एक है···लेकिन तुम यदि मुझे उसके बाहरी प्रतीकों पर गिरने और उसकी पूजा करने के लिये कहो···उसका भारी मंच और वार्षिक दृश्य, उसके प्रस्ताव और बहुसंख्यक मत···इन सबके गौरव को अस्वीकार करता हूँ। मैं ऐसा नहीं कर सकता, परंतु ऐसा करने के लिये आपसे झगड़ा नहीं करूँगा। यदि एक शब्द मे कहा जाय, यद्यपि मैं प्रकृति से कांग्रेस को प्रयोग में लाने के लिये अयोग्य हूँ, सदैव उसके द्वारा अपने को प्रयोग में लाने के लिये तैयार रहूँगा।"

स्वतंत्रता के लिये राष्ट्रीय सघर्ष में सहायता प्रदान करने के लिये जो लोग आगे आए उनमे दक्षिण अफ्रीका के पारसियों में रुस्तम प्रमुख हैं जिनके क्रियाशील सहयोग और उत्साह का गांधी जी ने उदाहरण दिया था। भारत मे एस० आर० बोमनजी, जहाँगीर बोमनजी पेटिट, बी० पी० वाडिया, बरजोरजी बरूचा और नारीमन गांधी जी के असहयोग आदोलन प्रारंभ करने के पूर्व होम रूल लीग के प्रमुख समर्थकों में थे। गांधी युग की पारसी आकृतियों मे प्रमुख और रुचिपूर्ण थी वे कुछ पारसी स्त्रियाँ जो उनके सिद्धांतों के अनुकूल अपने को निरूपित करके दिखलाती थीं। असहयोग और सत्याग्रह की उन समर्थक स्त्रियों मे दादाभाई की चार पोतियाँ प्रमुख थीं जिनका नाम क्रमशः गोसप बहन, नरगिस, पेरिन और खुरशीद था। अन्य लोगो मे जैजी पेटिट, मिस्थू बहन पेटिट और मैडम बिचैजी काया प्रमुख और उल्लेखनीय हैं।

बरजोर जी बरूचा प्रमुख व्यक्ति थे जिन्होंने पारसी राजकीय सभा की स्थापना की और जिन्होंने नवयुवक और नवयुवतियों के मित्र, दार्शनिक और पथप्रदर्शक के रूप मे कार्य किया और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये जिसने राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किया। उन नवयुवकों मे, जिन्होंने नागपुर झंडा सत्याग्रह मे बरजोरजी का अनुसरण किया, नारीमन, प्रो० रुस्तम चौकसी थे जो अब टाटा संस और रुस्तम के डाइरेक्टरो मे एक तथा कानूनी सलाहकार और लिखित पत्रों को प्रमाणित करनेवाले अफसरों मे हैं। [रु० म०]

बैंक, इंग्लैंड का यह बैंक इग्लैंड का केंद्रीय बैंक है। अंशधारियों के बैंक के रूप मे इसकी स्थापना पार्लिमेंट के एक विशिष्ट कानून द्वारा सन् १६९४ मे हुई थी। सन् १९४६ में सरकार ने एक कानून द्वारा इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया।

बैंक के प्रबंधसंचालन के लिये एक प्रबंधकारिणी समिति है जिसे 'कोर्ट' कहते हैं। कोर्ट मे एक गवर्नर, एक डिप्टी गवर्नर तथा १६ संचालक होते हैं। इन सबकी नियुक्ति इंग्लैंड की महारानी द्वारा की जाती है। गवर्नर तथा डिप्टी गवर्नर की कार्यावधि पांच वर्ष और संचालकों की कार्यावधि चार वर्ष होती है पर इन्हें पुनः नियुक्त भी किया जा सकता है। 'कोर्ट' की बैठक प्रति सप्ताह सामान्यत गुरुवार को होनी अनिवार्य है और तभी बैंक दर की घोषणा की जाती है।

आतरिक व्यवस्था के लिये बैंक का कार्य अनेक विभागों में विभक्त है। प्रत्येक विभाग की व्यवस्था विभागाध्यक्ष के अतिरिक्त प्रबंध संचालकों तथा गवर्नर और डिप्टी गवर्नर के अधीन होती है। बैंक के लगभग ७,००० कर्मचारी उसकी दैनिक कार्यवाही सँभालते हैं। निरीक्षण एवं कार्यान्वन के हेतु बैंक में कई स्थायी समितियाँ हैं जिनमें से प्रत्येक को बैंक की क्रियाओ का नीतिनिर्धारण संबंधी भार सँभालना पड़ता है। ट्रेजरी समिति (Treasury Committee) सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थायी समिति है जिसमे गवर्नर, डिप्टी गवर्नर तथा 'कोर्ट' द्वारा निर्वाचित पाँच संचालक सदस्य होते हैं। बैंक की केंद्रीय बैंकिग संबंधी नीति का निर्धारण ट्रेजरी समिति की स्वीकृति द्वारा ही होता है।

देश का केंद्रीय बैंक होने के कारण, बैंक ऑव इंग्लैंड सरकार का बैंकर, एजेंट तथा परामर्शदाता है। सरकारी कोष इसी बैंक में जमा रहता तथा सार्वजनिक ऋण की व्यवस्था भी इसी बैंक के अधीन है। देश में नोट जारी करने का एकाधिकार भी इसी बैंक को प्राप्त है। बैंक ऑव इग्लैंड देश में 'बैंको के बैंक' के रूप में भी काम करता है। देश के अन्य बैंक अपने अपने लेखे बैंक ऑव इंग्लैड में खोलते तथा उनमे निर्धारित राशि जमा करते हैं जिससे केंद्रीय बैंक को देश में प्रत्यय नियन्त्रण (Credit Control) का एक साधन मिल जाता है और वह समय पर इन बैंको की सहायता भी कर सकता है। इसी प्रकार देश के कटौती गृह (Discount Houses), जो लंदन मुद्रामंडी की अपनी विशेषता है, इसी बैंक मे अपने अपने लेखे खोलकर राशि जमा रखते और आवश्यकतानुसार ऋण लेते हैं। इन कटौती गृहों के लिये बैंक ऑव इंग्लैड 'अंतिम ऋणदाता' (Lender of Last Resort) का काम करता है। देश की मुद्रामंडी के साथ सरकार का संपर्क बैंक ऑव इग्लैड के माध्यम द्वारा ही बना रहता है। मौद्रिक एवं साख संबधी कोई भी सरकारी नीति एवं निर्णय इसी बैंक के माध्यम द्वारा देश के बैंको तक पहुँचता है।

अन्य देशो के साथ इग्लैंड की सरकार के मौद्रिक संबधों के सदर्भ मे भी बैंक ऑव इंग्लैंड कुछ महत्वपूर्ण योग देता है, जैसे, विनिमय समकारी लेखे (Exchange Equalization Accounts)का सचालन विदेशी विनिमय की व्यवस्था, स्टर्लिंग क्षेत्रीय तथा अन्य देशो के केंद्रीय बैंको के साथ संपर्क रखना तथा अतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सस्थाओ मे इंग्लैंड का प्रतिनिधित्व करना। बैंक ऑव इग्लैंड अपने देश की मौद्रिक प्रणाली का निर्माता, प्रबंधक एव संरक्षक है। [गि० प्र० गु०]

बैंक तथा बैंककार्य आर्थिक आयोजन के वर्तमान युग में कृषि, उद्योग एव व्यापार के विकास के लिये बैंक एवं बैंकिग व्यवस्था एक अनिवार्य आवश्यकता मानी जाने लगी है। बैंक उस सस्था को कहते है जो जनता से धनराशि जमा करने तथा जनता को ऋण देने का काम करती है। लोग अपनी अपनी बचत राशि को सुरक्षा की दृष्टि से अथवा ब्याज कमाने के हेतु इन संस्थाओं मे जमा करते और आवश्यकतानुसार समय समय पर निकालते रहते हैं। बैंक इस प्रकार जमा से प्राप्त राशि को व्यापारियों एवं व्यवसायियो को ऋण देकर ब्याज कमाते हैं। राशि जमा रखने तथा ऋण प्रदान करने के अतिरिक्त बैंक अन्य काम भी करते हैं जैसे, सुरक्षा के लिये लोगो से उनके आभूषणादि बहुमूल्य वस्तुएँ जमा रखना, अपने ग्राहकों के लिये उनके चेकों का संग्रहण करना, व्यापारिक बिलों की कटौती करना, एजेंसी का काम करना, गुप्त रीति से ग्राहको की आर्थिक स्थिति की जानकारी लेना देना। अतः बैंक केवल मुद्रा का लेन देन ही नहीं करते वरन् साख का

व्यवहार भी करते हैं। इसीलिये बैंक को साख का सृजनकर्ता भी कहा जाता है। भारतीय बैंकिंग कंपनी कानून, १९४९ के अंतर्गत बैंक की परिभाषा निम्न शब्दों में दी गई है :

ऋण देना और विनियोग के लिये सामान्य जनता से राशि जमा करना तथा चेकों, ड्राफ्टों तथा आदेशों द्वारा माँगने पर उस राशि का भुगतान करना बैंकिंग व्यवसाय कहलाता है और इस व्यवसाय को करनेवाली संस्था बैंक कहलाती है।

ईसा से दो हजार वर्ष पहले भी राशि उधार लेने देने की प्रथा प्रचलित थी। मनुस्मृति मे व्याज के बदले राशि उधार देने का पर्याप्त संकेत मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी इस बात का पता चलता है कि प्राचीन काल में साहूकारी का नियम था परंतु व्याज की दर एवं राशि वसूल करने के नियम आज जैसे न थे। मध्य एशिया में हुंडी का प्रयोग १२वीं शती के आसपास होने लगा जबकि विदेशी व्यापार का क्षेत्र बढ़ने लगा और एक स्थान से दूसरे स्थान पर धन या राशि (रकम) भेजने की आवश्यकता हुई। मुगल सम्राटों ने धनी महाजनों और साहूकारों को करवसूली के अधिकार सौंपे और उन्हें स्थान स्थान पर कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। जनसाधारण अपनी बचत राशि को इन महाजनों के पास जमा करते और जमा राशि पर महाजन व्याज भी देते थे। आवश्यकता पडने पर लोग इन्ही महाजनों से राशि उधार लेते थे जिसपर उन्हे व्याज देना पडता था। इस प्रकार आधुनिक बैंकों का प्रारंभ होने के पूर्व महाजन ही बैंकिंग का काम करता था, जिसके पास धन राशि जमा की जाती थी और रुपया उधार भी मिलता था।

अंगरेजो ने अपनी व्यापारिक एवं मौद्रिक आवश्यकताओं के लिये एजेंसी गृह और ज्वाइन्ट स्टाक बैंक स्थापित किए। १८वीं शताब्दी के अंत मे औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप इंग्लैंड और यूरोप मे व्यापार की वृद्धि हुई और वहाँ नए नए व्यापारिक बैंक बनते गए। भारत में भी सन् १८०६ मे बैंक ऑव कलकत्ता स्थापित हुआ तथा इसके पश्चात् सन् १८४० तथा सन् १८४३ मे क्रमशः बैंक ऑव बंबई और बैंक ऑव मद्रास स्थापित किए गए। ये तीन प्रेसीडेंसी बैंक विदेशी पूँजी और संचालन से चलाए गए थे और इनका काम ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापार मे सहायता करना था। इसी काल मे सन् १८४४ मे बैंक चार्टर ऐक्ट के अनुसार इंग्लैंड मे बैंक ऑव इंग्लैंड बनाया गया। अंशधारियों का बैंक भारत में सीमित देनदारी के आधार पर सबसे पहले सन् १८८१ में 'अवध कमर्शियल बैंक' बनाया गया। यद्यपि इससे पहले भी इलाहाबाद बैंक और एलायस बैंक ऑव शिमला बन चुके थे परंतु ये दोनों बैंक विदेशी प्रबंध में थे। इसके पश्चात् व्यावसायिक बैंकों की संख्या बढती गई। सन् १९०६ से लेकर सन् १९१३ तक बैंकों में काफी वृद्धि हुई। भारत के प्रसिद्ध बैंक, जैसे बैंक ऑव इंडिया, सेंट्रल बैंक ऑव इंडिया, बैंक ऑव बडौदा इसी बीच स्थापित हुए। परंतु सन् १९१३ के बाद बैंकों का संकटकाल आया जिसमे अनेक बैंक बंद करने पड़े। सन् १९१३-१७ के बीच भारत में लगभग ६० बैंकों को अपना व्यवसाय बंद करना पड़ा। प्रथम महायुद्ध समाप्त होने पर बैंकों की स्थिति मे पुनः सुधार हुआ। सन् १९२१ मे भारत के तीनों प्रेसीडेंसी बैंकों को मिलाकर इंपीरियल बैंक ऑव इंडिया बनाया गया। यह एक सरकारी बैंक था पर जनता के साथ भी लेनदेन करता था। १ अप्रैल, १९३५ को भारत मे रिजर्व बैंक ऑव इंडिया की स्थापना की गई।

द्वितीय युद्धकाल में अनेक नए नए बैंक खोले गए। भारत का युनाइटेड कमर्शियल बैंक इसी काल मे बनाया गया। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् बैंकिंग व्यवसाय में कुछ शिथिलता आने लगी। बैंकिंग कानूनों में परिवर्तन संशोधन किए जाने लगे ताकि बैंको के प्रबंध संचालन मे कुशलता एवं मितव्ययिता आ जाय। भारत का बैंकिंग कंपनी कानून सन् १९४९ मे पास किया गया। भारत मे रिजर्व बैंक ऑव इंडिया तथा इंपीरियल बैंक ऑव इंडिया का राष्ट्रीयकरण क्रमशः सन् १९४९ और सन् १९५५ मे कर लिया गया।

बैंक की क्रियाओं और सेवाओं को चार वर्गों मे बाँटा जा सकता है : (१) जनता से राशि लेकर जमा करना, (२) जनता को ऋण तथा अग्रिम धन देना, (३) ग्राहकों के लिये एजेंट बनकर काम करना, (४) विविध सेवाएँ करना।

राशि जमा करने में बैंक प्राय तीन प्रकार के लेखे खोलते हैं : (१) चल लेखे, (२) स्थिर लेखे, (३) बचत लेखे। चल लेखे मे जमा राशि बैंक को जमाकर्ता की माँग पर किसी समय भी भुगतान करनी पड़ती है। अत. इसे बैंक की 'माँग देनदारी' भी कहते हैं। स्थिर लेखो मे एक निश्चित अवधि के लिये राशि जमा की जाती है जो अवधि समाप्त होने से पहले नही निकाली जा सकती। यदि कोई जमाकर्ता स्थिर लेखे मे जमा अपनी राशि को अवधि पूर्ण होने से पूर्व निकालना चाहे तो उसे राशि पर व्याज नही मिलता। इस प्रकार की जमा राशि को बैंक 'काल देनदारी' कहते है। तीसरे प्रकार की जमा बचत लेखे मे की जाती है। बचत लेखे मे निर्धारित सीमा से अधिक राशि जमा नही की जा सकती। इस प्रकार के लेखे कम आयवाले लोगों की बचत को प्रोत्साहन देने के लिये खोले जाते हैं। कभी कभी विशेष कार्यों के लिये विशेष प्रकार के लेखे भी खोले जाते हैं। उदाहरणार्थ, विवाह के लिये धनराशि संग्रह के हेतु विवाह लेखा, शिक्षा के लिये राशि संग्रह करने के हेतु शिक्षा लेखा आदि।

बैंक द्वारा ऋण तथा अग्रिम कई रूपो मे दिए जाते हैं : (१) सामान्य ऋण एवं अग्रिम राशि स्वीकृत करके, (२) अधिविकर्ष द्वारा, (३) नकद साख के रूप मे, (४) बिलों की कटौती करके। बैंक अपने ग्राहकों और अन्य विश्वसनीय व्यक्तियो तथा संस्थाओ को केवल व्यवसाय एवं उत्पादन संबंधी कार्यों के लिये ऋण देते हैं। ऋण देते समय बैंक ऋणयाचक के नाम से एक लेखा खोलकर उसमे ऋणराशि जमा कर देते हैं जिसके बल पर ऋणयाचक आवश्यकतानुसार समय समय पर चेक लिखकर राशि लेता रहता है। इससे बैंक को सकल ऋणराशि एक साथ ही ऋणयाचक को दे देने की आवश्यकता नही होती जिससे बैंक का हानिभय कम हो जाता है। ऋण वैयक्तिक साख तथा माल की जमानत पर स्वीकृत किए जाते हैं। अधिविकर्ष द्वारा ऋण देने मे बैंक अपने जमाकर्ता को उसके चल तथा बचत लेखों मे जमा राशि से अधिक राशि निकालने का अधिकार दे देता है। पर ऐसा अधिकार प्राप्त करने से पूर्व ग्राहक को अपने बैंक के साथ अधिविकर्ष की राशि, उसकी

अवधि, ब्याज की दर आदि मामलों पर निश्चित समझौता करना पड़ता है। बैंक व्यावसायिक माल की जमानत पर तथा ऋणपत्रों और साखपत्रों की साख पर भी ऋण देते हैं। माल को अपने गोदामों में रखकर या व्यापारियों के गोदामों में अपना ताला लगाकर उसकी जमानत पर ऋण दिए जाते हैं। पर इस प्रकार ऋण देने से पहले बैंक माल के वास्तविक मूल्य पर छूट लगा लेते हैं।

बिलों की कटौती द्वारा भी बैंक से ऋण प्राप्त किया जा सकता है। कोई भी मालविक्रेता अपने खरीदार के नाम विनिमय बिल लिखकर उसपर उसकी स्वीकृति प्राप्त करके किसी बैंक से उस स्वीकृत बिल की कटौती करा लेता है। कटौती करने पर बैंक अपना कमीशन काटकर बिल की शेष राशि बिलधारक को दे देता है और फिर बिल की अवधि समाप्त होने पर उसे बिल के स्वीकृतिकर्ता से पूरी राशि मिल जाती है। इस प्रकार दिया गया ऋण प्रायः अल्पकालीन होता है।

बैंक अपने ग्राहको के लिये एजेंसी का काम भी करता है। एजेंसी संबंधी क्रियाएँ इस प्रकार हैं: ग्राहकों के लिये बिलों, चेकों तथा ऋणपत्रों की राशि वसूल करना तथा उनकी ओर से चुकाए जानेवाले बिलों, चेकों तथा ऋणपत्रों का भुगतान करना, किसी व्यक्ति अथवा संस्था को नियमित रूप से एक निश्चित राशि भुगताना, बीमा कंपनियों को प्रव्याजि (बीमा की किश्त) की राशि चुकाना, सरकार को ग्राहकों की ओर से आयकर चुकाना तथा उनकी ओर से मालगुजारी चुकाने की व्यवस्था करना, कंपनी के अंशों पर लाभांश तथा ऋणपत्रों पर ब्याज वसूल करना और सरकारी सिक्यूरिटियों का क्रय विक्रय करना, तथा उनके सलाहकार और प्रतिनिधि की हैसियत से काम करना।

साराश यह कि बैंक देश की बिखरी और निठल्ली संपत्ति को केंद्रित करके देश में उत्पादन के कार्यों मे लगाते हैं जिससे पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है और उत्पादन की प्रगति में सहायता मिलती है।

एक ही बैंक के लिये व्यापार, वाणिज्य, उद्योग तथा कृषि की समुचित वित्तव्यवस्था करना असंभव नही तो कठिन अवश्य होता है। अतएव विशिष्ट कार्यों के लिये अलग अलग बैंक स्थापित किए जाते हैं जैसे व्यापारिक बैंक, कृषि बैंक, औद्योगिक बैंक, विदेशी विनिमय बैंक तथा बचत बैंक। इन सब प्रकार के बैंकों को नियमपूर्वक चलाने तथा उनमें पारस्परिक तालमेल बनाए रखने के लिये केंद्रीय बैंक होता है जो देश भर की बैंकिंग व्यवस्था का संचालन करता है।

बैंकिंग व्यवहार मे बैंक और ग्राहक का सबंध प्राय. तीन प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है: (१) लेनदार का संबंध, (१) प्रधान एवं प्रतिनिधि का संबंध, (३) न्यासी एवं प्रत्याशी का संबंध। जब बैंक मे ग्राहक की राशि जमा हो, जिसका भुगतान बैंक को ग्राहक के माँगने पर करना पड़े तो बैंक ग्राहक का देनदार और ग्राहक बैंक का लेनदार होता है। पर कभी कभी यह संबंध विपरीत भी हो जाता है। जब ग्राहक बैंक से ऋण ले अथवा अपने लेखे में जमा राशि से अधिक राशि निकाले तो बैंक ग्राहक का लेनदार और ग्राहक उसका देनदार बन जाता है। सामान्य व्यवहार मे देनदार को, ऋण की अवधि बीतने पर, राशि का भुगतान लौटाना ही होता है चाहे उसकी माँग लेनदार की ओर से हो अथवा न हो। पर बैंक एक ऐसा देनदार होता है जो अपने पास जमा की हुई राशि को ग्राहक के माँगने पर ही लौटाता है, अन्यथा नहीं। पर यदि ग्राहक बैंक का देनदार हुआ तो उसे ऋण का भुगतान अवधि बीतने पर बैंक के माँगने पर व न माँगने पर भी करना होता है। बैंक द्वारा जमा रूप में लिए हुए ऋणों के साथ अन्य सामान्य ऋणों की भाँति 'काल मर्यादा नियम' लागू नही होता। ग्राहक के लेखे में राशि कितने ही समय तक जमा रह सकती है।

बैंक एक ही ग्राहक के विभिन्न लेखों को एकत्र मानकर अपना ऋण वसूल कर सकता है पर ग्राहक बैंक मे अपने विभिन्न लेखों को एकत्र मानकर राशि भुगतान करने के लिये बैंक को विवश नहीं कर सकता।

बैंक को ग्राहक से सामान्य लेनदेन मे आई हुई राशि अथवा सिक्यूरिटियों पर स्वत्व ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है। बैंक को ग्राहक की उन सिक्यूरिटियों पर, राशि पर तथा वस्तुओं पर ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है जो उसके पास किसी विशिष्ट उद्देश्य के हेतु न आई हों वरन् बैंकिंग लेनदेन के सामान्य क्रम मे प्राप्त हुई हों। ग्रहणाधिकार के अंतर्गत आई हुई वस्तुओं को बैंक बेचकर ग्राहक द्वारा ऋण का भुगतान न होने पर, अपनी ऋणराशि वसूल कर सकता है।

जिस समय बैंक अपने ग्राहक के आदेश से उसके लेखे पर सिक्यूरिटियों का क्रय विक्रय करता है, उसके लेखे पर आयकर, भूमिकर, बीमा की प्रव्याजि का (प्रीमियम), चंदा आदि की राशि का भुगतान करता है तो उस स्थिति मे बैंक ग्राहक के प्रतिनिधि के रूप मे काम करता है।

जब तक ग्राहक की धरोहर बैंक के पास रखी रहती है तब तक बैंक ग्राहक का न्यासी तथा ग्राहक बैंक का प्रत्याशी कहलाता है। प्रत्याशी के रूप मे काम करते हुए बैंक को अपने प्रत्याशी के द्वारा जमा की हुई वस्तुओ को बडी सावधानी और सुरक्षा के साथ रखना आवश्यक होता है। इस सेवा के लिये बैंक ग्राहकों से कुछ शुल्क वसूल करते हैं।

बैंक मूलतः साख का लेनदेन करते हैं—साख पर जनता से उनकी अतिरेक बचत राशि जमा लेते और उस जमा राशि को अन्य ऋणयाचकों को ऋण रूप मे उधार देते है। इस प्रकार राशि के लेनदेन के क्रम मे बैंक साख का सृजन करते और साख के सृजनकर्ता कहे जाते हैं। साख की सृजनक्रिया मे जमा, कटौती तथा निर्गमन ये तीन कार्य संनिहित होते हैं। जब बैंक किसी व्यक्ति या संस्था को ऋण स्वीकृत करता है तो वह सामान्यतः ऋणराशि नकद रूप मे एक साथ ही नहीं देता वरन् ऋणराशि को ऋण माँगनेवाले का लेखा खोलकर उसमे जमा कर लेता है और ऋणयाचक को अधिकार दे दिया जाता है कि वह अपने आवश्यतानुसार चेक लिखकर ऋणराशि निकालता रहे। इस प्रकार एक ओर ऋण स्वीकृत किया जाता है तो दूसरी ओर उसी ऋण की राशि से जमा बना ली जाती है। अतः ऋण जमा को जन्म देते हैं।

जब बैंक अपनी जमा राशि में से ग्राहकों को ऋण देता है तो उस समय जमा ऋण की जन्मदात्री होती है और जब बैंक

ऋण स्वीकृत करने में जमा का निर्माण करते हैं, तो उस समय ऋण जमा के जन्मदाता बन जाते हैं। साख सृजन की तीसरी विधि है बैंक नोट निर्गमन द्वारा। पर यह अधिकार केवल देश के केंद्रीय बैंक को ही मिला होता है।

प्रत्येक बैंक अपनी साख सृजन नीति मे स्वतंत्र होता है तो भी उसे अपनी साख निर्माण की क्षमता मर्यादित करने के लिये अपने पास रखा जानेवाला नकद कोष, केंद्रीय बैंको के पास जमा बैंकों का कोष, बैंकों के पास जमा धात्विक कोष, ऋण याचकों की साख, और देश की सामान्य आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति का ध्यान रखना पड़ता है।

जनता से धन राशि जमा कराने में बैंक दो प्रकार का दायित्व अपने ऊपर लेता है—(१) माँग देनदारी, (२) काल देनदारी। माँग देनदारी का भुगतान बैंक को जमाकर्ताओं की वैधानिक माँग होने पर, किसी समय भी करना पड़ता है, और काल देनदारी का भुगतान सामान्यत. निश्चित अवधि समाप्त होने पर करना होता है।

ऐसी स्थिति मे बैंक अपने पास जमा कुल राशि को ऋण याचकों को उधार नही दे सकता क्योंकि उसे यह भय रहता है कि न मालुम कब जमाकर्ता माँग करके अपनी राशि लेने आ जाए। अत: ऋण देने से पूर्व बैंक अपने पास कोष मे कुछ नकद राशि बचाकर रख लेता है जिससे समय आने पर उसमें से जमाकर्ताओं की माँग पूरी करता रहे। यह राशि बैंक का नकद कोष कहलाता है। कोई कोई बैंक नकद कोष अपने पास भी रखते हैं और केंद्रीय बैंक में भी जमा करा देते है ताकि आवश्यकता पड़ने पर वहाँ से राशि लेकर जमाकर्ताओ की माँग पूरी कर सकें। नकद कोष बैंक की साख बनाए रखने मे सहायक होता है। नकद कोष बैंक की रक्षा की 'प्रथम पंक्ति' कहा जाता है। किसी भी समय नकद कोष की राशि निम्न परिस्थितियो पर निर्भर होती है :

(अ) वैधानिक निर्णय, (आ) जमाकर्ताओं की औसत जमाराशि, (इ) लोगो की बैंकिंग आदत तथा प्रवृत्ति, (ई) ग्राहको की सामान्य प्रकृति, (उ) स्थानीय प्रथा एवं परिस्थितियाँ, (ऊ) मुद्रामंडी की व्यवस्था (ऋ) व्यापारिक परिस्थितियाँ अथवा (ॠ) देश मे समाशोधन गृह की सुविधाएँ। उक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त नकद कोष की मात्रा बैंक अधिकारियों के पूर्व अनुभव, उनकी दूरदर्शिता तथा उस देश की व्यापारिक स्थिति पर निर्भर होती है।

बैंक को जमाकर्ताओं से जो राशि प्राप्त होती है उसे वह दूसरों को उधार देकर व्याज वसूल करता है। इस व्याज की राशि मे से कुछ भाग वह जमाकर्ताओं को उनकी जमा राशि पर व्याज स्वरूप देकर शेष राशि वह अपने पास बचा लेता है। बैंक को अपनी सकल जमा राशि मे से कुछ भाग नकद कोष के रूप में रखकर शेष राशि का सावधानी से विनियोग करना आवश्यक होता है।

बैंक की विनियोग नीति भिन्न भिन्न देशों में, भिन्न भिन्न अवसरो पर और विभिन्न बैंकों के साथ भिन्न भिन्न होती है। प्रत्येक बैंक के लिये अपनी विनियोग नीति निर्धारित करते समय कई बातो का विचार करना आवश्यक होता है। बैंक की राशि का विनियोग इस प्रकार हो कि आवश्यकता होने पर उसे रोकड़ राशि मे बदलवाया जा सके, विनियोजित मूलधन सुरक्षित रहे, विनियोगों से संतोषजनक आय भी मिले, धनराशि का विनियोग किसी एक ही उद्योग व्यापार मे न किया जाय, बैंक की राशि किसी व्यक्तिविशेष को ही ऋण के रूप मे न दी जाय, जमानतों का भली भाँति निरीक्षण कर लिया जाय, जमानत, जिसपर राशि विनियोजित की जा रही है, तरल, सुरक्षित और लाभप्रद हो, और यदि कभी किसी जमानत मे मूल्य का ह्रास होने लगे तो ऋणी से तुरंत अन्य जमानत लेकर उस ह्रास को पूरा किया जा सके।

सामान्यत बैंक दो प्रकार से अपनी राशि का विनियोग किया करते हैं : (१) व्यवसाय संचालन के लिये भूगृहादि, फर्नीचर आदि वस्तुएँ खरीदकर। इससे बैंक को कोई आय नही मिलती। (२) अल्पकालीन ऋण देकर, बिलों की कटौती करके तथा सिक्यूरिटियों का क्रय विक्रय करके। इनसे बैंक को आय होती और लाभ मिलता है। लाभ कमाने के लिये बैंक अपनी राशि का विनियोग अल्पकालीन ऋण देकर, बिलो का क्रय करके तथा उनकी कटौती करके, विनियोग पत्र तथा अन्य सिक्यूरिटियों का क्रय करके, अथवा ऋण तथा अग्रिम स्वीकार करके करते हैं। बैंक द्वारा मान्य जमानतें अचल संपत्ति से संबद्ध अथवा वैयक्तिक हो सकती हैं।

सापार्श्विक जमानत ऋण लेनेवाले व्यक्ति की वैयक्तिक साख के अतिरिक्त माल अथवा माल के संबंध मे अधिकारपत्र के रूप मे हो सकती है। इसमे सामान्यत तीन अधिकार होते हैं-(१) स्वत्व ग्रहणाधिकार, (२) प्राधि, और (३) बधक। ग्रहणाधिकार के अंतर्गत बैंक को अधिकार होता है कि यदि ऋणी ऋण का भुगतान न करे तो वह ऋणी द्वारा रखी गई जमानत को अपने अधिकार मे रख ले। बैंक को इस जमानत को बेचने का अधिकार नही होता और यदि वह ऐसा करना ही चाहे तो उसे न्यायालय से तत्संबंधी आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक होता है। प्राधि मे जमानत का स्वामित्व बैंक के नाम पर हस्तानरित हो जाता है पर उस वस्तु पर अधिकार ऋणी का ही होता है। बंधक के अंतर्गत बैंक को जमानत पर ग्रहणाधिकार करने और फिर उसे उचित सूचना देकर बेचने का भी अधिकार होता है। सापार्श्विक जमानत मे व्यावसायिक माल तथा माल संबंधी अधिकारपत्र, जीवनबीमा पत्र तथा स्टाक एक्सचेंज पर बिकनेवाली सिक्यूरिटियाँ होती हैं। सामान्यत बैंक अचल संपत्ति की साख पर ऋण नही देते।

वैयक्तिक जमानत अथवा गारटी दो प्रकार की हो सकती है : (१) विशिष्ट राशि के लिये, (२) संपूर्ण राशि के लिये। विशिष्ट गारंटी के अंतर्गत गारटी करनेवाला व्यक्ति किसी विशिष्ट एव निश्चित राशि की गारटी कर देता है। संपूर्ण गारंटी के अतिरिक्त ऋण की सकल राशि की गारंटी की जाती है और उसका दायित्व सकल राशि के लिये होता है। गारटी लिखित अथवा मौखिक दी जा सकती है। गारंटी लेते समय बैंक को गारंटी करनेवाले व्यक्ति की साख एव आर्थिक स्थिति की भली भाँति पड़ताल कर लेना आवश्यक है जिससे भविष्य में किसी प्रकार की हानि की संभावना न रहे। बैंक की सफलता अधिकांश में उसके प्रबधको एवं संचालको पर निर्भर होती है। [गि० प्र० गु०]

बैंका (Bangka या Banka) १. द्वीप, स्थिति : २° ११' द० अ० तथा १०६° ०' पू० दे०। यह हिंदेशिया के अंतर्गत, सुमात्रा द्वीप के उत्तर-पूर्व में स्थित सुमात्रा द्वीप से बैंका जलडमरूमध्य द्वारा विभक्त लगभग १३८ मील लंबा तथा ६२ मील चौड़ा द्वीप है जिसका धरातल ऊबड़ खाबड़ तथा क्षेत्रफल २,७६० वर्ग मील है। यहाँ की सरकार की आय का प्रमुख साधन टिन का विशाल भंडार है। टिन के अतिरिक्त जस्ता, लोहा एवं ताँबा भी खोदा जाता है। कृषि में धान, कॉफी, जायफल, खैर, कालीमिर्च तथा नारियल का स्थान प्रमुख है। पांकालपिनैंग तथा मुंटोक प्रमुख नगर हैं। इसकी जनसंख्या २,५१,६३९ (१९६१) है।

२. द्वीप, स्थिति : ७३° ३०' उ० अ० तथा २०° ०' प० दे०। कैनाडा के उत्तर में आर्कटिक महासागर मे स्थित आर्कटिक द्वीपसमूह का पश्चिमी द्वीप है जो २५० मील लबा तथा २२५ मील चौडा है। इसका संपूर्ण भाग पहाड़ी है। इसकी खोज सर राबर्ट मैक क्लूअर ने सन् १८५१ मे की थी।

३. दक्षिणी अमरीका मे कोलंबिया तट के सामने ५० मील लबा एक द्वीप है।

४. न्यूहैब्रिज के उत्तर मे गाउआ, वानुआ, वालुआ, लावा आदि छोटे छोटे द्वीपो का समूह है जिनका क्षेत्रफल ३०६ वर्ग मील है।

[सु० प्र० सिं०]

बैंकॉक स्थिति : १३° ४५' उ० अ० तथा १००° ३५' पू० दे०। स्याम की खाड़ी से १५ मील दूर, मीनाम नदी के मुहाने पर स्थित थाईलैंड (स्याम) की राजधानी तथा बंदरगाह है। यह देश का सबसे बडा, सुदर तथा अनूठा नगर है। इस नगर को 'पूर्व का वेनिस' भी कहते है, क्योकि यहाँ अनेक नहरें एवं नदियाँ हैं जिनसे यातायात का कार्य होता है। पानी पर तैरनेवाले अनेक घर भी बने है जिन पर लोग स्थायी रूप से रहते हैं। थाईलैंड का लगभग ३० प्रति शत से ऊपर व्यापार यही से होता है। यह रेलमार्ग तथा उद्योगो का भी केंद्र है। यहाँ का हवाई अड्डा दक्षिण-पूर्व एशिया का प्रमुख अड्डा है। संयुक्त राज्य सगठन की अनेक सस्थाएं पूर्वी देशो के लिये यहाँ काम करती है। १७६९ ई० से यह थाईलैंड की राजधानी रहा है। बौद्ध धर्म यहाँ का प्रधान धर्म है तथा इसके सैकडों मदिर हैं, जिनमे से कुछ अति प्राचीन तथा भव्य हैं। एक मंदिर मे मरकत की बनी बुद्ध की मूर्ति है एवं इस मंदिर का निर्माण १७८५ ई० में राजमहल के अदर हुआ था और उसी समय मूर्ति की स्थापना भी हुई थी। मूर्ति के अलकार और रत्नो को साल मे तीन बार बदला जाता है। बैंकॉक के आस पास धान अधिक उगता है। धान की कुटाई बैंकॉक मे ही होती है। यहाँ से चावल बड़ी मात्रा में जलयानो द्वारा बाहर भेजा जाता है। धान के अतिरिक्त नारियल, रबर, तबाकू, मक्का और साग सब्जियाँ भी उगाई जाती हैं। चावल की मिलो के अतिरिक्त विद्युत् उत्पादन के कारखाने और लकड़ी चीरने के कारखाने भी है। यहाँ की टीक लकड़ी बहुत प्रसिद्ध है। कुछ सीमेंट और वस्त्र भी बनते हैं। यहाँ प्राचीन और अर्वाचीन सस्कृति का संमिश्रण मिलता है। नगर मे चीनियों के अलावा बरमी, कबोडियन और अनामी भी रहते हैं। इसकी जनसंख्या २३,००,००० (१९६०) है।

[सु० प्र० सिं०]

बैंगन भारत का देशज है। प्राचीन काल से भारत में इसकी खेती होती आ रही है। ऊँचे भागों को छोड़कर समस्त भारत में यह उगाया जाता है। बैंगन तुषारग्राही है। मौसम के बाद बोने से फसल अच्छी नहीं उगती। बैंगन ऐसे पौधे का फल है जो २ से ३ फुट ऊँचा खड़ा उगता है। फल बैंगनी या हरापन लिए हुए पीले रंग का, या सफेद होता है और कई आकार मे, गोल, अंडाकार, या सेब के आकार का और लबा तथा बड़े से बडा फुटबाल गेंद सा हो सकता है। लंबाई मे एक फुट तक का हो सकता है।

बैंगन महीन, समृद्ध, भली भाँति जलोत्सारित, बलुई दुमट मिट्टी मे अच्छा उपजता है। पौधों को खेत मे बैठाने के पूर्व मिट्टी मे सड़ी गोबर की खाद तथा अमोनियम सल्फेट उर्वरक प्रयुक्त किया जा सकता है। प्रति एकड़ चार गाडी राख भी डाली जा सकती है।

साधारण तौर पर बैंगन की तीन बोआई हो सकती है : (१) जून जुलाई मे बीज डाला जा सकता है और पौधे जब ६" ऊँचे हो जाएँ तब खेत मे रोपा जा सकता है। ११५ से १२० दिनों में फल लगने लगता है। फल का लगना कम हो जाने पर कभी कभी छँटाई करने से, नए प्ररोह निकलने और उनपर फिर फल लगने लगता है। (२) फरवरी में बीज बोने से वर्षा ऋतु मे पौधे फल देने लगते हैं। (३) नवबर की रोपाई से फल फरवरी मे लगने लगते हैं। जाड़े मे पौधों की वृद्धि कम होती है।

पहली बोआई सबसे अच्छी है और उससे अधिकतम फल प्राप्त होता है। प्रति एकड औसत उपज १००–१५० मन हो सकती है।

बैंगन कई प्रकार के, छोटे से लेकर बड़े तक गोल और लबे भी, होते हैं : गोल गहरा बैंगनी, लबा बैंगनी, लबा हरा, गोल हरा, हरापन लिए हुए सफेद, सफेद, छोटा गोल बैंगनी रगवाला, वामन बैंगन, ब्लैकब्यूटी (Black Beauty), गोल गहरे रग वाला, मुक्तकेशी, रामनगर बैंगन, गुच्छे वाले बैंगन आदि आदि। बैंगन सोलेनेसी (Solanaceae) कुल के सोलेनम मेलोगना (Solanum melongena) के अतर्गत आता है। इसके विभिन्न किस्म वेरएसक्युलेटम (var-esculantum), वेर सर्पेटिनम (var-sarpentinum) और वेर डिप्रेस्सम (var-depressum) जातियों के है। फल के पकने मे काफी समय लगता है। अत बीज की प्राप्ति के लिये किसी फल को चुनकर, उसमे कुछ चिह्न लगाकर, पकने के लिये छोड देना चाहिए।

बैंगन के रोग और उनकी रोकथाम — (१) बैंगन के फल और प्ररोह छिद्रक : ल्युसिनोड आर्बोनेलिस (Leucinodes orbonalis) एक पतिगा होता है, जिसकी सूडी (caterpillar) छोटे तनो और फलो मे छेद कर अदर चली जाती है। इससे पेड मुरझाकर सूख जाते है। फल खाने योग्य नही रह जाता और कभी कभी सड जाता है। इसकी रोकथाम के लिये रोगग्रस्त तनों को तुरंत काटकर हटा देना और उसे जला देना चाहिए। रोपनी के पहले यदि पौधों पर कृमिनाशक धूल छिडक दी जाय, तो उससे भी सूडी का असर नही होता। एक मास के अतराल पर फसल पर कृमिनाशक ओषधि का छिड़काव करना चाहिए। छिडकाव के पूर्व रोगग्रस्त भाग को काटकर, निकालकर जला देना चाहिए। बैंगन की फसल के समाप्त हो जाने पर उसके ठूँठ मे आग लगाकर जला देना चाहिए और एक वर्ष तक उसमें बैंगन की फसल न बोनी चाहिए।

(२) बैंगन के तने का छिद्रक : यूजोफेरा पार्टिसेला (Euzophera perticella) नामक पतिंगे की सूँडी तने में छेद कर प्रवेश कर जाती और उसका गूदा खाती है, जिससे पौधों का बढ़ना रुक जाता और आक्रांत भाग सूख जाता है। इसके निवारण का उपाय भी वही है जो ऊपर दिया हुआ है।

(३) एपिलेछुआ बीटल्स (Epilachua beetles) नामक जंतु पौधों की नई और प्रौढ पत्तियों को खाते हैं। इनकी रोकथाम के लिये पौधों के आकार के अनुसार ५ प्रति शत बी० एच० सी० धूलन का प्रति एकड़ १० से २० पाउंड की दर से, अथवा 'पाइरोडस्ट ४,०००' का प्रति एकड़ १०–१५ पाउंड की दर से छिड़काव किया जा सकता है। [य० रा० मे०]

बैंड स्पेक्ट्रम (Band Spectrum) जब किसी पदार्थ को विद्युत् या ऊष्मा शक्ति देकर उत्तेजित किया जाता है तब उससे विभिन्न वर्ण की रश्मियाँ (radiations) निकलने लगती हैं। स्पेक्ट्रोग्राफ की सहायता से इनका स्पेक्ट्रम प्राप्त किया जा सकता है। यदि पदार्थ को इतनी ऊर्जा दी जाय कि उसके अणु उत्तेजित हो जायँ, किंतु वे टूटकर परमाणुओं मे परिवर्तित न हों, तो उनसे उत्सर्जित रश्मियों के स्पेक्ट्रम मे विभिन्न वर्ण की छोटी छोटी पट्टियाँ, या बैंड, पाए जाते है। ऐसे स्पेक्ट्रम को बैंड स्पेक्ट्रम कहते हैं। यदि पदार्थ को बहुत अधिक ऊर्जा दी जाय तो अणु टूट जाते हैं और पदार्थ के परमाणु उत्तेजित हो जाते हैं। उत्तेजित परमाणुओ से जो स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है, उसमे विभिन्न वर्ण की रेखाएँ पाई जाती हैं। यह स्पेक्ट्रम बैंड स्पेक्ट्रम से सर्वथा भिन्न होता है। बैंड स्पेक्ट्रम अणुओ से प्राप्त होता है। अत इसे आणविक स्पेक्ट्रम भी कहते हैं। ऐसे स्पेक्ट्रम मे प्रत्येक पट्टी या बैंड का एक किनारा अधिक प्रखर दिखाई देता है। इस किनारे को बैंड शीर्ष (band head) कहते हैं। बैंड शीर्ष से परे पट्टी की प्रखरता क्रमशः घटती जाती है और दूसरा किनारा बनने से पूर्व ही बहुधा अगले बैंड का शीर्ष आ जाता है, या इस बैंड की प्रखरता शून्य हो जाती है। यदि प्रखरता घटने का क्रम दीर्घ तरग से लघु तरंग की ओर होता है, तो बैंड को बैंगनी अवक्रमित (violet degraded) और यदि यह क्रम लघु से दीर्घ तरग की ओर होता है, तो बैंड को लाल अवक्रमित (red degraded) कहते हैं। अच्छे स्पेक्ट्रॉस्कोप से देखने पर ज्ञात होता है कि प्रत्येक बैंड अनेक सूक्ष्म रेखाओ का क्रमिक समुदाय होता है। शीर्ष की ओर ये रेखाएँ अत्यधिक सघन होती जाती है और पूँछ की ओर क्रमश विरल होती जाती है।

बैंड स्पेक्ट्रम मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है, अवशोषण स्पेक्ट्रम (absorption spectrum) और उत्सर्जन स्पेक्ट्रम (emission spectrum)। पदार्थ के वाष्प को उचित ताप और दाब पर किसी नली मे बंद कर दिया जाय और उसमे से अविरल रश्मियाँ भेजी जायँ, तो वाष्प द्वारा कुछ रश्मियाँ अवशोषित हो जाती है। किसी पदार्थ का वाष्प अत्यंत उच्च ताप पर जिन रश्मियो को उत्सर्जित कर सकता है उन्ही रश्मियों को वह कम ताप पर अवशोषित करता है। अतः नली से बाहर आनेवाली रश्मियो के अविरल स्पेक्ट्रम मे काले काले बैंड पाए जाते हैं। ऐसे स्पेक्ट्रम को अवशोषण स्पेक्ट्रम कहा जाता है। बहुत सी गैसों मे कम दाब पर विद्युद्विसर्जन कराने से भी बैंड स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। इन्हें उत्सर्जन स्पेक्ट्रम कहते हैं। ठोस और द्रव पदार्थों से अवशोषण और उत्सर्जन बैंड स्पेक्ट्रम प्राप्त करने के लिये उन्हें वाष्प के रूप मे परिवर्तित किया जाता है। बहुत से पदार्थ पराबैंगनी किरणों के प्रभाव से चमकने लगते हैं और उनसे दृश्य प्रकाश निकलने लगता है। इसे प्रतिदीप्ति और स्फुरदीप्ति कहते हैं। इन विधियों द्वारा भी बैंड स्पेक्ट्रम प्राप्त किए जाते हैं।

स्पेक्ट्रम में बैंड व्यवस्था — सर्वप्रथम १८८५ ई० मे डिलांड्रे (Deslandres) ने आणविक स्पेक्ट्रम के बैंडशीर्षों की तरंग-संख्याओं को सूत्रबद्ध करने का प्रयत्न किया और उन्हे नियमानुकूल सजाने के लिये एक सारणी बनाई, जिसको डिलांड्रे सारणी (Deslandres table) कहते हैं। स्पेक्ट्रम के जिन बैंडशीर्षों की तरंग संख्याएँ एक ही सारणी मे रखी जा सकती हैं, वे सभी बैंड मिलकर एक बैंडप्रणाली (band system) बनाते है। प्रत्येक प्रणाली में बैंडों के छोटे छोटे समूह पाए जाते है। इन्हे डिलांड्रे सारणी की किसी एक ही पंक्ति या एक ही कॉलम मे भरा जा सकता है। इन छोटे समूहों को बैंड अनुक्रम (Band sequences) कहते हैं। प्रत्येक बैंड अनेक रेखाओं का क्रमिक समुदाय होता है। अधिक विक्षेपण तथा विभेदनक्षमतावाले स्पेक्ट्रोग्राफ से किसी बैंड का फोटो लेने पर ये रेखाएँ स्पष्ट हो जाती है और इन्हे दो, या दो से अधिक, श्रेणियों मे सूत्रबद्ध किया जा सकता है। जिन द्विपरमाणुक अणुओं के परमाणु हल्के होते है, उनके बैंड की रेखाएँ अपेक्षाकृत विरल होती हैं। भारी अणुओ के बैंड स्पेक्ट्रम क्रमशः क्लिष्ट होते जाते हैं और उनके प्रत्येक बैंड की रेखाएँ बहुधा दर्जनों श्रेणियो मे बाँटी जा सकती हैं।

सैद्धांतिक विवेचन — बैंड स्पेक्ट्रम अणुओ की उत्तेजना से प्राप्त होते हैं। द्विपरमाणुक अणुओं के स्पेक्ट्रम की रचना बहुपरमाणुक अणुओ के स्पेक्ट्रमो की अपेक्षा अधिक सरलतापूर्वक समझी जा सकती है। जिस प्रकार परमाणुओं के न्यूक्लियस के चारो ओर इलेक्ट्रॉन घूमते रहते हैं, उसी प्रकार अणु मे भी इलेक्ट्रॉनो की नियत कक्षाएँ होती हैं, जिनमे ये भ्रमण करते रहते हैं। प्रत्येक कक्षा मे इनकी संख्या नियत रहती है। सबसे अंतिम कक्षा के इलेक्ट्रॉन अधिक स्वतंत्र होते हैं। उन्हे ऑप्टिकल इलेक्ट्रॉन भी कहा जाता है। इलेक्ट्रॉनों के कोणीय आवेग के कारण परमाणु मे इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा पाई जाती है। किसी इलेक्ट्रॉन के कोणीय आवेग का मान $\frac{h}{2\pi}, \frac{2h}{2\pi}, \frac{3h}{2\pi}$ या $\frac{\Lambda h}{2\pi}$ ही हो सकता है। इन मूल्यों के अतिरिक्त अन्य मान के कोणीय आवेग असंभव है। इस अनुबंध या शर्त को क्वांटम अनुबंध (Quantum Condition) कहते है। Λ को कोणीय आवेग की क्वांटम संख्या कहते है। इसी के आधार पर अणु की इलेक्ट्रॉनिक स्थितियों का भिन्न भिन्न नाम रख दिया गया है। यदि $\Lambda = 0, 1, 2, 3, \ldots$ हो तो इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा स्थितियों (energy states) का नाम क्रमशः $\Sigma, \pi, \Delta, \phi \ldots$ होता है। किसी अणु की इलेक्ट्रॉनिक स्थितियो की संख्या ऑप्टिक इलेक्ट्रानों की संख्या पर निर्भर करती है। बहुधा एक से अधिक ऊर्जास्थितियाँ पाई जाती हैं, किंतु इनमे जिस स्थिति का ऊर्जामान सबसे कम होता है, अधिकाश अणु सामान्य ताप पर उसी

स्थिति में रहते हैं। जब ऊष्मा, या विद्युच्छक्ति, या किसी अन्य प्रभाव से कोई ऑप्टिकल इलेक्ट्रॉन उत्तेजित हो जाता है तब वह अगली उच्चतर ऊर्जास्थिति मे चला जाता है। परंतु शीघ्र ही वह पहली स्थिति में वापस आ जाता है। इलेक्ट्रॉन के उच्चतर ऊर्जास्थिति मे संक्रमण (transition) करने से, दोनो स्थितियों के अंतर के बराबर ऊर्जा विकीर्ण होती है। इसी ऊर्जा से स्पेक्ट्रम बनता है। यदि निम्न ऊर्जास्थिति मे अणु की इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा E और अगली स्थिति मे E' हो, तो इलेक्ट्रॉन के संक्रमण से ($E' - E = h\nu$) ऊर्जा उत्सर्जित होती है।

प्रत्येक इलेक्ट्रॉन अपनी धुरी पर भी लट्टू की भाँति नाचता है। इस गति को चक्रण (spin) कहते हैं। चक्रण के कोणीय आवेग का मान $\pm \frac{1}{2} \cdot h/2\pi$ होता है। इस आवेग के कारण अणु की प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक स्थिति द्विधा' 'त्रिधा'...पाई जाती है, अर्थात् एक ऊर्जा स्थिति के अत्यंत पास पास एक या दो और स्थितियाँ भी पाई जाती हैं। इन द्विधा, त्रिधा, आदि स्थितियो को Σ, π,.. आदि चिह्नो के शीर्ष पर बाईं ओर छोटे से अंक द्वारा व्यक्त कर दिया जाता है, जैसे $^2\Sigma$, $^3\triangle$, $^2\phi$ इत्यादि।

अणु मे इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा के अतिरिक्त कपनजन्य ऊर्जा और घूर्णनजन्य ऊर्जा भी होती है। अणु के दोनो परमाणु सरल आवर्त गति मे कंपन करते रहते हैं। इसमे अणु मे कपनजन्य ऊर्जा पाई जाती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अणु अपने गुरुत्वकेंद्र से जानेवाले किसी अक्ष पर घूर्णन भी करता है। इसके कारण अणु में घूर्णनजन्य ऊर्जा होती है। इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा का मान बहुत अधिक होता है। कपनजन्य ऊर्जा का मान उससे कम और घूर्णनजन्य ऊर्जा का मान सबसे कम होता है। जिस प्रकार इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा के सभी मान संभव नहीं होते, उसी प्रकार कपन और घूर्णनजनित ऊर्जा के भी सभी मान संभव नहा है। इस तथ्य को ऊर्जा का क्वांटीकरण (quantization) कहा जाता है।

अणु की विभिन्न ऊर्जास्थितियो को तरगसख्या (Wave number) से व्यक्त किया जाता है और प्रत्येक स्थिति को ऊर्जास्तर (Energy level) कहते है। सभी प्रकार के स्तरो को क्षैतिज रेखाओ द्वारा भिन्न भिन्न ऊँचाई पर व्यक्त किया जाता है। इससे स्पेक्ट्रम की रचना समझने मे सुविधा होती है। ऐसे लेखाचित्रो को ऊर्जास्तर चित्र कहते हैं।

अत्यत कम ताप पर अणु मे केवल घूर्णनजनित ऊर्जा ही पाई जाती है, अत: निम्न ताप पर केवल रेखाएँ मिलती है। घूर्णन ऊर्जास्तरो को निम्नलिखित सूत्र से व्यक्त किया जाता है : $F = BJ\ (J+1)$, जहाँ F घूर्णनजन्य ऊर्जा का मान तरगसख्याओ मे है, B स्थिर राशि है तथा J घूर्णन की क्वाटम सख्या है, जो Λ की भाँति विभिन्न घूर्णन कोणीय आवेग का मान $h/2\pi$ के गुणकों मे व्यक्त करती है। जब अणु एक घूर्णन ऊर्जास्तर से दूसरे घूर्णन ऊर्जास्तर पर संक्रमण करता है, तब संबद्ध ऊर्जास्तरो के अतर के बराबर ऊर्जा उत्सर्जित, या अवशोषित, होती है और उसकी आवृत्ति (frequency) तरग संख्या के रूप में निम्न सूत्र से व्यक्त होती है :

$$\nu = F'' - F' = B'J'\ (J'+1) - B''J''\ (J''+1)\ ।$$

कपनजन्य ऊर्जा को $G\ (v) = w\ (v + \frac{1}{2})$ से व्यक्त करते हैं, किंतु जब घूर्णन और कंपन साथ साथ होते है, जैसा वास्तव मे पाया ही जाता है, तो $G\ (v) = w_e\ (v+\frac{1}{2}) - w_e\ x_e\ (v+\frac{1}{2})^2 + \ldots$ से कंपनजन्य ऊर्जा का मान व्यक्त किया जाता है। इन सूत्रों मे w या w_e किसी इलेक्ट्रॉनिक स्थिति मे अणु की मूल कपनावृत्ति (fundamental frequency) है और v कपन की क्वाटम संख्या है।

जब अणु को ऊष्मा या विद्युच्छक्ति देकर उत्तेजित किया जाता है, तब उसकी सभी प्रकार की ऊर्जास्थितियो मे परिवर्तन होता है और विभिन्न स्थितियों मे सक्रमण होने से पूरा स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। घूर्णन की ऊर्जास्थितियों मे सक्रमण होने से प्रत्येक बैंड की रेखाएँ बनती है, कपनजन्य ऊर्जा स्थितियो के संक्रमण से बैंड समुदाय बनते है और जितने बैंड किन्ही दो नियत इलेक्ट्रॉनिक स्थितियो के संक्रमण से सबद्ध होते है, वे सब मिलकर एक बैंडप्रणाली बनाते है।

अणु का भार ज्यो ज्यों बढता जाता है, घूर्णन सरचना (rotational structure) क्लिष्ट होती जाती है। तीन या चार परमाणुवाले अणुओ की घूर्णन सरचना अत्यत क्लिष्ट होती है। वैज्ञानिकों ने बहुत से ऐसे अणुओ की घूर्णन सरचना का अध्ययन करने मे सफलता प्राप्त की है। बहुपरमाणुक अणुओं की घूर्णन संरचना का अध्ययन अब तक सभव नही हो सका है। बेंजीन अणु मे १२ परमाणु होते है। हाल ही मे इसकी घूर्णन संरचना का अध्ययन सन् १९५३ मे स्टायशेफ (B Stoicheff) द्वारा किया गया है। बहुपरमाणुक अणुओ के कपनजन्य स्पेक्ट्रम प्राप्त करना भी प्राय असुविधाजनक होता है, क्योकि अधिक ऊर्जा पाने पर वे टूटकर परमाणुओ और छोटे अणुओ मे परिवर्तित हो जाते है। बहुधा रमन प्रभाव द्वारा और इंफ्रारेड तथा अवशोषण स्पेक्ट्रम लेकर इनका अध्ययन किया जाता है।

बैंड स्पेक्ट्रम के अध्ययन से अणुओ की सीमात इलेक्ट्रॉनिक सरचना (periferal electronic structure) का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। रेखाओं की दीप्ति तथा अन्य गुणो के आधार पर स्रोत का ताप ज्ञात किया जा सकता है। बैंड स्पेक्ट्रम के अध्ययन से समस्थानिक परमाणुओ का पता लगाना सुविधाजनक होता है। बैंड स्पेक्ट्रम की घूर्णन सरचना के अध्ययन से न्यूक्लियस का चक्रण भी ज्ञात किया जा सकता है। [अ० कु० ति०]

बैडमिंटन खेल का विकास और प्रचलन भारत से ही हुआ है, यद्यपि यह कहा जाता था कि सन् १८६० के पूर्व यह खेल इंग्लैंड के ग्लास्टरशिर नामक स्थान पर ड्यूक ऑव ब्यूफोर्ट के सरक्षण मे प्रारंभ हुआ।

बैडमिंटन मुख्यत. कमरे के अंदर (indoor) खेला जानेवाला खेल है। बैडमिंटन हाल की ऊँचाई बीच मे २५ फुट से अधिक होनी चाहिए। पक्षियो के पंखो से बना चिड़ियानुमा फूल टेनिस के सदृश बल्ले से खेला जाता है। एक इंच व्यास के गठे हुए काग के चतुर्दिक १६ कलहसी के पर एक दूसरे मे गोलाई से इस तरह गुंथे होते है कि ऊपर की ओर खुलकर इसका व्यास २½ इंच हो जाता है। चिड़िया (shuttlecock) की लंबाई ३½ इंच होती है और जो रैकेट (racket) उपयोग मे लाया जाता है, उसका भार ५½

आउंस से अधिक नहीं होना चाहिए। यह खेल दो अथवा चार खिलाड़ियों के बीच खेला जाता है। जब एकल (Singles) के मैच होते हैं, तो खेल का मैदान (court) ४४ फुट लंबा तथा १७ फुट चौडा रहता है। युगल खेल के समय मैदान २० फुट चौडा कर दिया जाता है। मैदान के बीचो बीच २½ फुट चौड़ा जाल रहता है, जो दो पक्षों को विभक्त करता है। यह जाल ५ फुट ऊँचाई पर बाँधा जाता है।

प्रारंभ मे जाल के निकट रैकेट घुमाकर टॉस किया जाता है और जीतनेवाले खिलाड़ी को मैदान का कोई भाग, अथवा सर्विस, चुनने का मौका मिलता है। चिड़िया के कागवाले भाग को रैकेट से मारा जाता है। सर्विस के समय चिड़िया जाल को स्पर्श किए बिना ऊपर से जानी चाहिए और सर्विस करनेवाले खिलाडी का अगला पैर उठा हुआ न हो। साथ ही निशाना मारने पर चिड़िया विपक्ष कोर्ट की सर्विस लाइन के बाद ही गिरनी चाहिए, अन्यथा दोनो स्थितियो मे नियमानुसार सर्विस समाप्त मानी जायगी।

जिसके पक्ष मे सर्विस मिलती है, वह खिलाडी खेल प्रारंभ करता है। रैकेट से चिड़िया को दूसरे पक्ष की ओर मारा जाता है और यदि विपक्षी खिलाड़ी रैकेट से मारकर चिड़िया लौटाने मे विफल हो जाता है, या चिड़िया जाल से टकराकर विपक्षी क्षेत्र मे ही गिर जाती है, तो उसके लिये सर्विस करनेवाले खिलाडी को एक अंक मिलता है। यदि गलती सर्विस करनेवाले खिलाडी की हो, तो सर्विस दूसरे खिलाडी को मिल जाती है। युगल (Doubles), खेलो मे एक ओर के दोनो खिलाडियो को बारी बारी से सर्विस मिलती है।

इस प्रकार अंक उसी खिलाड़ी को मिलता है जिसकी सर्विस के समय विपक्षी खिलाड़ी गलती करता है। जब किसी खिलाडी के १५ अंक हो जाते है, तब उसे विजयी घोषित किया जाता है। महिलाओं तथा बच्चो के खेलो मे अधिकाशत विजयी अंक ११ होता है। यदि दोनो प्रतिद्वंद्वियो के अंक १४-१४ हैं, तो विजय तब तक नही होगी जब तक एक खिलाडी लगातार दो अंक प्राप्त न कर ले। कही कहीं विजयी अंक २१ माना गया है।

पहले बैडमिंटन खेल मे 'वुड' का नियम था, अर्थात् रैकेट की लकड़ीवाले भाग से निशाना लगने पर वह अनियमित माना जाता था और विपक्ष को एक अंक मिलता था, पर अब यह नियम समाप्त कर बैडमिंटन के खेल को सरल बना दिया गया है।

भारत मे इस शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारंभ मे 'बैडमिंटन ऐसोसिएशन ऑव इंडिया' की स्थापना के बाद, इस खेल को महत्व प्राप्त हुआ और १९३४ ई० से राष्ट्रीय बैडमिंटन प्रतियोगिता शुरू हुई, जो प्रति वर्ष दिसंबर के आस पास होती है। इस प्रतियोगिता में पुरुष एकल तथा महिला एकल स्पर्धा मे जो विजेता होता है, उसे राष्ट्रीय सर्वजेता (National Champion) कहा जाता है।

राष्ट्रीय सर्वजेता : (१९६५) दिनेश खन्ना, (१९६४) सुरेश गोयल, (१९६३) सुरेश गोयल; (१९६२) सुरेश गोयल; (१९६१) नंदू नाटेकर; (१९६०) नंदू नाटेकर, (१९५९) अर्लेलैंड कोप्स, (१९५८) नंदू नाटेकर; तथा (१९५५ से १९५७) तक त्रिलोक नाथ सेठ।

१९४४ ई० से विभिन्न राज्यों के बीच अंतरराज्य बैडमिंटन प्रतियोगिता प्रारंभ हुई। पुरुषों के वर्ग में जो राज्य विजयी होता है उसे रहमतुल्ला कप और महिलाओं के वर्ग मे विजयी टीम को चड्ढा कप मिलता है।

बैडमिंटन को विधिवत् अंतरराष्ट्रीय स्वरूप १९३४ ई० में प्राप्त हुआ, जब इंटरनैशनल बैडमिंटन फेडरेशन की स्थापना हुई। आज इस फेडरेशन मे भारत सहित लगभग ५० देश सदस्य हैं। इस फेडरेशन ने विश्वयुद्ध के बाद १९४८ ई० मे पहले अंतरराष्ट्रीय प्रतिनिधि टूर्नामेंट का आयोजन किया, जो टामस कप (Thomas Cup) के नाम से आज प्रसिद्ध है। १९३९ ई० मे फेडरेशन के तत्कालीन अध्यक्ष सर जॉर्ज टॉमस ने एक कप प्रदान किया था। इस टूर्नामेंट मे पुरुषो के ही खेल होते हैं। १९५६ ई० मे महिलाओं के लिये अलग से अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता का प्रारंभ यूबर कप के लिये हुआ। इसमे अब तक अमरीका ही सदा विजेता रहा है।

टॉमस कप के खेल प्रति दो वर्ष पर होते है। हर मैच मे ५ एकल तथा ४ युगल खेल होते है। संख्या काफी हो जाने से इन्हें अमरीका, एशिया, ऑस्ट्रेलिया तथा यूरोप इन चार क्षेत्रो मे बाँट दिया गया हैं। टॉमस कप के अब तक विजेता इस प्रकार है :

सन् १९४८-४९ मलाया; सन् १९५१-५२ मलाया, सन् १९५४-५५ मलाया; सन् १९५७-५८ इंडोनीशिया; सन् १९६०-६१ इंडोनीशिया; सन् १९६३-६४ इंडोनीशिया।

प्रथम एशियाई बैडमिंटन चैंपियनशिप १९६५ ई० मे लखनऊ मे हुई थी, जिसमे पंजाब के दिनेश खन्ना एकल विजेता (Single's champion) हुए थे। [म० खा०]

बैतूल १ जिला, स्थिति : २१° २२' से २२° २३' उ० अ० तथा ७७° ११' से ७८° ३४' पू० दे०। यह भारत के मध्यप्रदेश राज्य का एक जिला है। इसके दक्षिण मे महाराष्ट्र का अमरावती, पूर्व मे छिंदवाड़ा, उत्तर मे होशंगाबाद, पश्चिम और उत्तर-पश्चिम मे पूर्वी निमाड़ जिला है। इसका क्षेत्रफल ३,८८४ वर्ग मील तथा जनसंख्या ५,६०,४१२ (१९६१) है। यहाँ का धरातल पठारी है। जलवायु ठंडा व स्वास्थ्यप्रद है। वर्षा का वार्षिक औसत ४६ इंच है। कृषि मे कोदो, कुटकी, गेहूँ, ज्वार, तिल आदि का उत्पादन होता है। उद्योगो मे कोई विशेष प्रगति नही हुई है।

२. नगर, स्थिति २१° ५२' उ० अ० तथा ७७° ५६' पू० दे०। बैतूल जिले मे बाडनूर से तीन मील दूर इटारसी नागपुर रेलमार्ग पर स्थित नगर है। इसकी जनसंख्या १६,८६० (१९६१) है। बाडनूर के कारण इस नगर की प्रगति कम हो गई है। यहाँ बरतन बनाना, सोने, चाँदी का काम, लाख की चूड़ियों का छोटे पैमाने पर काम होता है। [रा० स० ख०]

बैथर्स्ट (Bathurst) १. द्वीप, यह आस्ट्रेलिया के टीमॉर समुद्र मे उत्तर मध्यवर्ती किनारे पर एवं मेलविल द्वीप के ठीक पश्चिम मे स्थित द्वीप है। दक्षिण मे क्लेरेंस जलडमरूमध्य द्वारा यह द्वीप मुख्य भूमि से अलग हो गया है। इसकी चौडाई ४५ मील तथा क्षेत्रफल ७८६ वर्ग मील है। यहाँ पर मेंग्रोव के जंगल है।

२. द्वीप, यह कैनाडा के उत्तर-पश्चिम मे आर्कटिक महासागर पर स्थित, पारी द्वीपसमूह का एक द्वीप है जो १६० मील लंबा

और ५०-१०० मील चौड़ा है। १८१६ ई० में सर विलियम इडवर्ड पारी ने इस द्वीप की खोज की थी। इसका समुद्रतट कटा फटा है। तथा कहीं कहीं गहरी घाटियाँ भी हैं। उत्तर-पूर्वी कैनाडा में भी इसी नाम का एक नगर है।

३. आस्ट्रेलिया के न्यूसाउथवेल्स मे माक्वेर नदी के किनारे एक नगर है जहाँ ताँबा एवं सोना खोदने, गेहूँ उगाने, भेड़ पालने का काम होता है।

४. अफीका में गैबिया द्वीप के मुहाने पर स्थित गैबिया की राजधानी है। यहाँ से मूंगफली, गरी और मोम का निर्यात होता है।

५. आर्कटिक सागर की एक खाड़ी है। [श्रीकृ० चं० ख०]

बैनर्जी, गुरुदास का जन्म २६ जनवरी १८४४ को कलकत्ता में हुआ। आपकी शिक्षा कलकत्ता के हेयर स्कूल, प्रेसीडेंसी कालेज और कलकत्ता विश्वविद्यालय में हुई। गणित विषय मे एम० ए० (१८६४ में) और बी० एल० (१८६५ में) परीक्षाएँ पास कीं। एम० ए० परीक्षा में स्वर्णपदक भी प्राप्त किया। पहले आप बहरामपुर कालेज में कानून विषय के प्राध्यापक हुए किंतु १८७२ से कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। १८७६ मे कानून विषय मे डाक्टरेट की उपाधि अर्जित की। १८७८ में आप कलकत्ता विश्वविद्यालय मे 'टैगोर ला प्रोफेसर' नियुक्त हुए और इस रूप में आपने 'हिंदू विवाह कानून और स्त्रीधन' विषय पर व्याख्यान दिए। आप १८७९ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'फेलो' चुने गए और १८८७ मे बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य बनाए गए। १८८८ मे आप कलकत्ता हाईकोर्ट के जज नियुक्त हुए। १८९०-१८९३ तक आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर रहे। सन् १९०२ मे 'इंडियन यूनिवर्सिटीज कमीशन' के सदस्य बनाए गए। सन् १९०४ मे आपने सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण किया और उसी वर्ष आपको नाइटहुड ('सर') की उपाधि प्रदान की गई। आपने 'ए फ्यू थाट्स आन एजूकेशन' नामक ग्रंथ की रचना की।

बैनर्जी, सुरेंद्रनाथ इनका जन्म बंगाल के एक उच्च ब्राह्मण कुल में सन् १८४८ मे हुआ था। बी० ए० पास करने के पश्चात् सुरेंद्रनाथ आई० सी० एस० की प्रतियोगिता मे प्रविष्ट हुए और सफल हो गए। उन्हे इस नौकरी के मिलने में कई अड़चनों का सामना करना पडा, क्योंकि अंग्रेज वास्तव मे भारतीयो को इंडियन सिविल सर्विस मे स्थान नहीं देना चाहते थे। पर अंत मे उन्हे स्थान मिल गया। वह पहले भारतीय थे जिन्हे इंडियन सिविल सर्विस में नियुक्त किया गया था। वह कुछ दिन ही नौकरी कर पाए थे कि उन्हे एक भूल पर नौकरी से निकाल दिया गया। सुरेंद्रनाथ के नौकरी से अलग हो जाने से उनका स्वयं लाभ हुआ; साथ ही उनके राजनीति में प्रवेश करने से देश का भी हित हुआ।

वह शिक्षा के कार्यों मे काफी रुचि लेते थे। सन् १८८२ मे उन्होंने एक कॉलेज की स्थापना की। इस समय भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में विचार प्रकट करने के लिये शिक्षित भारतीयों की कोई संस्था न थी। सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने इस कमी का अनुभव किया और सन् १८७६ मे 'इंडियन एसोसिएशन' को जन्म दिया।

सुरेंद्रनाथ एक ओजस्वी तथा अजेय वक्ता थे। उनका भाषा लालित्य, उत्कृष्ट भावुकता, मौलिक कल्पना तथा सीधे हृदय से निकले उद्गार लोगों को प्रभावित किए बिना न रहते थे। उनके बारे में सर हेनरी कॉटन ने कहा था कि अपनी वक्तृत्व शक्ति से वह मुल्तान से चटगाँव तक विद्रोह की ज्वाला भड़का सकते थे। उनकी स्मरणशक्ति विलक्षण थी। बड़े बड़े भाषणों अथवा पुस्तक के पृष्ठो को जैसा का तैसा दुहरा देना उनके लिये कोई विशेष बात न थी।

सन् १८८५ मे सुरेंद्रनाथ तथा ऐलेन ऑक्टेवियन ह्यूम ने मिलकर 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' को जन्म दिया। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की सूचना मे ह्यूम तथा सुरेंद्रनाथ दोनो के हस्ताक्षर थे, यद्यपि सुरेंद्रनाथ इस अधिवेशन मे भाग न ले सके थे। सुरेंद्रनाथ का कांग्रेस से लगभग ४० वर्ष तक संबंध रहा। दो बार सन् १८९५ तथा १९०२ मे वह कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। सन् १९१८ मे इस देशभक्त ने कांग्रेस छोड दी और 'नैशनल लिबरल फेडरेशन' की स्थापना की। माटेग्यू चेम्सफर्ड सुधारों के बाद जब प्रांतो मे द्विविध शासन प्रणाली आरंभ हुई तब बंगाल प्रांत मे सुरेंद्रनाथ मंत्री बने। सरकार ने इन्हे 'नाइट' की उपाधि दी।

राष्ट्रीय आंदोलन के संबध मे सुरेंद्रनाथ ने प्रशंसनीय कार्य किया। कांग्रेस के अध्यक्ष पद से दिए गए उनके भाषणों की इंग्लैंड के विद्वानो ने भूरि भूरि प्रशंसा की। अपने तर्कों से वह विरोधियों को भी अपने पक्ष मे करने की क्षमता रखते थे। सन् १९०५ के कर्जन द्वारा किए गए बंग विभाजन ने सुरेंद्रनाथ को अच्छा अवसर प्रदान किया। बंगाल विभाजन के विरुद्ध देशव्यापी आंदोलन शुरू हो गया। सुरेंद्रनाथ इस आंदोलन के सर्वप्रिय नेता थे। बंगाल विभाजन के विरुद्ध उन्होंने बंगाल विधान परिषद् मे एक ऐतिहासिक भाषण किया जिसमे उन्होने विभाजन का डटकर विरोध किया। इस समय देश मे स्वदेशी आंदोलन तथा बहिष्कार का बडा जोर था। सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने स्वदेशी का समर्थन किया। वह बहिष्कार के पक्ष मे थे पर वह उग्रवादियों की नीति तथा अराजकता फैलाने से सहमत नही थे। उनके राजनीतिक कार्यों के कारण उन्हे राष्ट्रीय आंदोलन का जनक कहा जाता है।

सुरेंद्रनाथ बनर्जी इटली के देशभक्त मात्सीनी के विचारो से काफी प्रभावित हुए। सुरेंद्रनाथ चाहते थे कि बंगाल के नवयुवक अपनी शक्ति का विकास करके भारत का नवनिर्माण करें। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्होने मात्सीनी के क्रांतिकारी आदर्शों को त्यागकर वैधानिकता का मार्ग पकडा और भारतीयो को नि:स्वार्थ भाव से देश की सेवा करने का संदेश दिया। इसी समय इंडियन सिविल सर्विस के लिये भारतीयो की अवस्था २१ से घटाकर १९ वर्ष कर दी गई। भारतीय नवयुवकों से १९ वर्ष की अवस्था मे सिविल सर्विस की प्रतियोगिता मे सफलतापूर्वक भाग लेने की आशा करना व्यर्थ था। इसका अर्थ हुआ कि व्यावहारिक रूप से सिविल सर्विस मे भारतीयो का प्रवेश निषिद्ध हो गया। इस निश्चय के विरुद्ध भारतीय जनमत को तैयार करने के लिये 'इंडियन ऐसोसिएशन' ने सुरेंद्रनाथ को नियुक्त किया। सुरेंद्रनाथ ने लाहौर, अमृतसर, आगरा, इलाहाबाद, दिल्ली, अलीगढ़, कानपुर आदि स्थानो पर सभाएँ कीं जिनमे उन्हे आशातीत सफलता मिली। इन सभाओं मे उन्होंने भारतीय एकता तथा सिविल सर्विस के विषयों पर ओजपूर्ण भाषण दिए।

राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये सुरेंद्रनाथ केवल वैधानिक आंदोलन का ही सहारा लेना पसद करते थे। वह उदारवादी विचारधारा के थे। वह इस पक्ष मे थे कि भारत सरकार मे भारतीयों को अधिकाधिक प्रतिनिधित्व दिया जाय। वह देश की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्षपाती नहीं थे। वह चाहते थे कि भारतीय अंग्रेजों के प्रति अपनी स्वामिभक्ति बनाए रखें। इग्लैंड की पार्लमेंट को वह बहुत पवित्र वस्तु समझते थे क्योंकि वह लोकतंत्रात्मक संस्थाओं की जननी है। वह चाहते थे कि अंग्रेज भारत मे लोकतंत्रात्मक शासन का विकास करें। उनका विश्वास था कि अंग्रेजों ने भारतीय हित मे कई कार्य किए हैं। उन्होंने भारत मे स्वशासन की शिक्षा देने का श्रीगणेश किया, भारतीयों का चरित्र उन्नत किया, भारत की सामाजिक बुराइयो को दूर किया तथा अंग्रेजी सभ्यता के सारे गुणों को भारत मे बिखरा दिया। सुरेंद्रनाथ के विचार से अंग्रेजी सभ्यता संसार की सर्वश्रेष्ठ सभ्यता थी। उनकी कृति 'ए नेशन इन द मेकिंग' मे उनके जीवन का विस्तृत वर्णन मिलता है। [मि० चं० पा०]

बैप्टिस्ट चर्च सन् १५२५ ई० मे स्विट्जरलैंड मे एक सप्रदाय का प्रचलन हुआ जिसमे माना जाता था कि बच्चों को दिया हुआ बपतिस्मा अमान्य है, अतः उसके अनुयायी पुन बपतिस्मा लेते थे। इसलिये उन्हे अनाबैप्टिस्ट (पुन. बपतिस्मा देनेवाले) का नाम दिया गया। इस संप्रदाय की दो शाखाएँ थी, एक उग्रवादी (जो बलप्रयोग का भी सहारा लेती थी, शीघ्र ही विलुप्त हो गई) और दूसरी शातिवादी। मेन्नो सिमंस (सन् १४९६–१५६१) के नेतृत्व मे शातिवादी अनाबैप्टिस्ट संप्रदाय का काफी प्रचार हुआ। इससे उसके सदस्य प्राय. मेन्नोनाइट कहलाते हैं। आजकल उसके अनुयायी चार लाख से अधिक हैं। अमरीका मे उसके सदस्य लगभग दो लाख है।

सन् १६०२ ई० मे ऐंग्लिकन राजधर्म अस्वीकार कर कुछ अंग्रेज जान स्मिथ के नेतृत्व मे हॉलैंड मे बस गए। वहाँ वे मेन्नोनाइट सप्रदाय से प्रभावित होकर बच्चो का बपतिस्मा अस्वीकार करने लगे। सन् १६१२ ई० मे टामस हेलविस के नेतृत्व मे इग्लैंड लौटकर उन्होने बैप्टिस्ट चर्च की स्थापना की। वयस्क होने पर ही बपतिस्मा की मान्यता के अतिरिक्त इस चर्च मे बाइबिल को धर्म का एकमात्र आधार माना जाता है तथा इसपर बहुत बल दिया जाता है कि सरकार को नितांत धर्मनिरपेक्ष होना चाहिए। विलियम कैरे (Carey) के धर्मप्रचार आदोलन के फलस्वरूप सन् १७९२ ई० मे बैप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटी की स्थापना हुई जिसने मिशन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य किया है। ब्रिटेन मे आजकल तीन लाख से अधिक बैप्टिस्ट चर्च के वयस्क सदस्य है। अमरीका मे बैप्टिस्ट चर्च की स्थापना रोजर विलियम्स (१६४०–१६८३) द्वारा हुई थी। वहाँ उसे अपूर्व सफलता मिली है, आजकल उसकी सदस्यता दो करोड से भी अधिक है।

एड्वेंटिस्ट (adventist) सप्रदाय का प्रचलन १९वी शताब्दी पूर्वार्ध मे हुआ था, उस सप्रदाय से सेवेंथ डे एवेंड्टिस्ट (seventh day adventist) सन् १८६० ई० मे अलग हो गए। बपतिस्मा के विषय मे उनका सिद्धात बैप्टिस्ट चर्च के अनुसार है। इसके अतिरिक्त वे इतवार के स्थान पर शनिवार को पवित्र मानते है, मदिरा तथा तंबाकू से परहेज करते हैं और अपनी आमदनी का दशमांश चर्च को प्रदान करते हैं। उनका विश्वास है कि अंत में ईश्वर शैतान को, नरकदूतों को तथा मुक्ति से वंचित लोगों को नष्ट कर देगा। अमरीका में यह संप्रदाय विशेष रूप से सक्रिय है; वह मिशन क्षेत्रों मे बहुत से अस्पतालो का सचालन करता है। दुनिया भर मे उसके लगभग दस लाख सदस्य है।

सन् १८७२ ई० मे चार्ल्स टी० रसल ने येहोवा साक्षी (Jehovah's witnesses) नामक सप्रदाय का प्रवर्तन किया। एड्वेंटिस्ट विचारधारा से प्रभावित इस सप्रदाय की अपनी विशेषताएँ है, अर्थात् रोमन काथलिक चर्च का विरोध, आत्मा के अमरत्व, ईसा के ईश्वरत्व तथा त्रित्व के सिद्धात का अस्वीकरण। यह संप्रदाय दुनिया भर मे फैला हुआ है किंतु अमरीका मे उसकी सदस्यता सर्वाधिक (२,८६,०००) है। [का० बु०]

बैफिन १. खाड़ी, उत्तरी ऐटलैंटिक महासागर मे, पूर्व की ओर ग्रीनलैंड पश्चिम की ओर उत्तर-पश्चिमी राज्यो के बीच ८०० मील लंबी और २८० मील चौडी एक खाड़ी है। सन् १६१६ में विलियम बैफिन ने इसकी खोज की थी। डेविस जलसंयोजक इसे ऐटलैंटिक महासागर से जोडता है। स्मिथ जॉन्स तथा लैंकास्टर सागर संधियाँ इसे आर्कटिक सागर से मिलाती है। इसके खड़े किनारों पर हिमाच्छादित पर्वत हैं। आर्कटिक की बर्फ बहकर यहाँ आती है तथा बैफिन द्वीप तक चली जाती है। लैब्राडॉर धारा जो इसके मध्य से गुजरती है, इन हिम शिलाओ को इस ओर बहा लाती है। अतः नौकाचालन मे बाधा पडती है। खाडी की गहराई १,२०० फुट से ६,००० फुट तक है। अनुपजाऊ एवं कटी फटी तटरेखावाले क्षेत्र मे समूरवाले पशु मिलते है।

२. द्वीप, स्थिति . ६८° ०' उ० अ० तथा ७७° ०' प० दे०। कैनाडा के लैब्राडॉर तट के पास एक द्वीप है जो कैनाडा का सबसे बड़ा आर्कटिक द्वीप है। यह लगभग ६०० मील उत्तर से दक्षिण लबा तथा २०० से ३०० मील पूर्व से पश्चिम चौडा है। इसका क्षेत्रफल लगभग २,००,००० वर्ग मील है। पूर्वी तट पर १०,००० फुट तक ऊँची पर्वतीय चोटियाँ है। यहाँ बड़े बड़े हिमनद पाए जाते है। दक्षिणी भाग लगभग २,५०० फुट ऊँचा, पहाड़ी तथा निर्जन है। उत्तर-पश्चिमी भाग १,००० फुट तक ऊँचा एक मैदानी भाग है। दक्षिणी, पूर्वी और उत्तरी तटो पर एस्किमो लोगों की बस्तियाँ, फर-विक्रय-केंद्र, मौसम विज्ञान स्टेशन तथा ईसाई मिशनरियाँ स्थित है। [रा० प्र० सिं०]

बैफिन, विलियम (Baffin, William, १५८४ – १६२२ ई०) अंगरेज समन्वेषक तथा नौयात्री थे। बैफिन बडे साहसी पुरुष थे। भारत तथा एशिया के पूर्वी द्वीपो तक पहुँचने के लिये उत्तर पश्चिम समुद्री मार्ग की खोज पर निकले 'पेशेंस' (Patience) नामक जहाज पर एक चालक के रूप मे इन्होंने सन् १६१२ मे ग्रीनलैंड के पश्चिमी तट की यात्रा की। इग्लैंड लौटकर, सन् १६१३ तथा १६१४ मे, मस्कवॉय कपनी द्वारा सचालित मधुआ जहाजी बेड़े के प्रधान चालक के रूप मे इन्होंने स्पिट्जबर्जेन के समुद्री क्षेत्र का भ्रमण किया। उत्तर पश्चिम पथ को खोज निकालने की धुन में ये

१६१५ ई० मे पुनः 'डिस्कवरी' नामक जहाज लेकर पश्चिम की ओर रवाना हो गए। इस यात्रा में इन्होंने हडसन का जल मुहाना तथा साउथम्टन द्वीप के पूर्वी तट का समन्वेषण किया। अक्षांश निर्धारण तथा समुद्री ज्वार संबंधी इनके आलेख सूक्ष्म एव महत्वपूर्ण है। १६१६ ई० मे ये डेविस जल मुहाने की ओर बड़े और स्थल खड मे प्रविष्ट उस विस्तृत समुद्री भाग को खोज निकाला। इसे इनके नाम पर बैफिन की खाड़ी कहते हैं। इन्होने कई जलक्षेत्रों का पता लगाकर उनके नामकरण किए, जैसे स्मिथ साउड, लकास्टर साउड तथा जोन्स साउंड।

लौटने पर इन्होंने ईस्ट इंडिया कपनी की नौकरी कर ली तथा लालसागर और ईरान की खाडी मे विशद मापन कार्य किए। होरमुज के निकट स्थित किश्म द्वीप पर आक्रमण के समय घायल होने के कारण, इनकी मृत्यु हो गई। चद्रमा की प्रदक्षिणा की सहायता से समुद्र पर देशांतरों को निर्धारित करनेवाले ये प्रथम उल्लेखनीय व्यक्ति हैं। [का० ना० सिं०]

बैबिलोनिया (बाबुल) ईराक, जिसे प्राचीन ग्रीक द्वाब, नदियों के बीच का देश, मैसोपोटामिया कहते थे, कभी प्राचीनतम मानव सभ्यताओं की क्रीड़ाभूमि था। दजला और फरात की इसी घाटी मे दोनों नदियों के बीच सुमेरी बाबुली और असूरी सस्कृतियाँ फली फूलीं। यदि हम नदियो की इस घाटी को उत्तर और दक्षिण के दो भागों मे बांट दें तो उत्तरी भाग प्राचीन असुर देश होगा, असीरिया, और दक्षिणी बाबुल होगा, बैबिलोनिया। असीरिया अधिकतर दजला के उत्तर का देश था। असीरिया और बाबिलोनिया अपने साम्राज्य काल मे स्वाभाविक ही अपनी प्राकृतिक सीमाएँ लाघ गए थे। सुमेर या सुमेरिया नदियों के बीच उनके मुहानो के पास दक्षिण बैबिलोनिया की सीमा मे ही अवस्थित था और अधिकतर सागरवर्ती था। (दे० इराक)

प्राचीन काल मे बैबिलोनिया की पूर्वी सीमा दक्षिण-पश्चिम के एलाम राज्य और फारस की खाडी से लगी थी और उत्तरी असीरिया से, और उसके दक्षिण और पश्चिम अरब का मेरु प्रसार चलता चला गया था। इस देश के प्रधान नगर राजधानी बाबुल (संस्कृत, बावेरु) के अतिरिक्त, निप्पुर एरेख (उरूक, आधुनिक वर्का), लार्सा, ऊर, एरिदु और बोर्सिप्पा थे। बैबिलोनिया का विस्तार उस स्थल से प्रारभ होता था जहाँ फरात और दजला की शाखा बात-एल-हैय का संगम है। उसके दक्षिण-पश्चिम जैसे रेगिस्तान फैला था वैसे ही उत्तर-पूर्व पठारी भूमि थी। और इन दोनो के बीच की भूमि बैबिलोनिया, प्राचीन आक्रमणशील जातियो का प्यारा शिनार का मैदान, सर्वथा पर्वतहीन था, नदियों के बीच की उनके तटो की भूमि या उनसे निकली नहरो से सीची जानेवाली धरती असाधारण उपजाऊ है। अन्न छोड आवश्यकता की सभी वस्तुएँ बाबुली बाहर से मँगाते थे—पत्थर अरब और असीरिया से, लकडी लेबनान से, सोना, चाँदी और सीसा (रांगा) लघु एशिया से, और तांबा अरब और फारस से। असूरिया का देश इससे भिन्न था, दजला के पूर्व कुर्दिस्तान के पहाड़ों तक फैला, चार चार धाराओ से सिक्त, ससार के रुचिरतम देशो में से एक, जहाँ गेहूँ और जौ के खेत लहराते थे, और अगूरी बेलों के प्रसार के बीच बीच जैतून और आडू के जंगल थे। मरुविस्तार के कारण ही प्राचीन बैबिलोनिया मे नहरों का बड़ा माहात्म्य था और महान् राजाओ के महत्तम अभियानों में उनका निर्माण माना जाता था।

प्राचीन काल मे बैबिलोनिया का नाम सुमेर (प्राचीन ग्रीको का सुमेरिया) और अक्काद (अक्कादिया) था। बाद में सामी राजाओ के शासनकाल मे, विशेषत. हम्मुराबी के समय, जब बाबुल साम्राज्य की राजधानी और प्रधान नगर बना उसी के नाम से देश की संज्ञा प्रसिद्ध हुई। कस्सी राजाओ के समय उस देश का नाम 'कार्दुनियाश' था। सुमेरी नगरराज्य और अक्कादी साम्राज्य वहाँ उठे और गिरे और असूरी, अमुर्री, खत्ती, हुर्री, कस्सी, खल्दी और ईरानी आर्यों की महत्वाकाक्षा ने उसे अपनी क्रीड़ाभूमि बनाया। ७० साल तक वहाँ बाइबिल की प्राचीन पोथी के यहूदी नबियों ने अपनी तपश्चर्या का बदी जीवन बिताया और अपनी धर्मपुस्तक के पाँच प्राचीनतम पुनीततम भाग, 'पेंतुतुख', लिखे। बाइबिल का नाम ही उस प्राचीन देश की राजधानी बाबुल से पडा। सही ग्रीक 'बिब्लस' से बाइबिल की उत्पत्ति मानी जाती है, पर स्वयं पुस्तकार्थक शब्द 'बिब्लस्' की व्युत्पत्ति भी तो मूलत उन्ही बाबुली ईंटों से सबधित है जिनपर सुमेरी अक्कादी कीलनुमा लिखावट में पुस्तकें खुदी थी और जिस आधार से प्राचीन ग्रीक वर्णमाला की मूल इब्रानी और फिनीशी वर्णमालाएँ उठी।

बैबिलोनिया के इतिहास के प्रधानत चार अग हैं, अशेमी सुमेरी, शेमी अक्कादी, साम्राज्यवादी शेमी असूरी, और खल्दी। सागरवर्ती और नदियो के मुहाने की दलदल पर प्रायः ४००० ई० पू० मे ही गाँव बसने लगे थे, जैसा अल उबैद और वर्का की खुदाइयो से प्रकट होता है। इसके बाद ही ३५०० ई० पू० के लगभग सुमेरी सभ्यता ने वहाँ की भूमि मे अपनी जडे फेकना शुरू किया। उन अद्भुत और प्राचीन लिपियो मे सबसे महत्वपूर्ण कीलाक्षरी लिपि का सुमेरियो ने आविष्कार किया जिसमे सारे प्रधान और गौण सुमेरी, अक्कादी, असूरी, खत्ती, हुर्री ग्रथ और हजारों राजनीतिक तथा व्यावसायिक अभिलेख सहस्राब्दियो, ई० पू० प्रायः ३५०० और दूसरी सदी ईसवी के बीच, लिखे जाते रहे। इनका क्षेत्रविस्तार पूरब मे पाकिस्तानी पंजाब (अशोकीय खरोष्ठी के रूप मे) और फारस (एलामी, अरमई और फारसी के रूप मे), पश्चिम मे लघु एशिया-अनातोलिया तक, फिर दक्षिण में एरेब-येमेन से उत्तर मे अरमीनिया- उरार्तु (आरारात) और कुर्दिस्तान (कास्पियन सागर) तक था। इस लिपि के प्राचीनतम चित्रलिपिप्राय जल-प्रलय-पूर्व के अभिलेख वर्का (एरेख) में मिले हैं, जो ३००० ई० पू० से भी पहले के हैं।

इस गैरशेमी सभ्यता की सामग्री ऊर और लगाश की खुदाइयो से मिली है। इस सभ्यता की बागडोर सुमेरी पुरोहितों के हाथ में थी। वे ही राजनीति और धर्म दोनों मे प्रबल थे। वे एक प्रकार से पुरोहित राजा थे। इससे प्रगट होता है कि पहले शायद एक ही व्यक्ति पूजा और शासन दोनो कार्य करता था, पीछे दोनों कृत्य अलग अलग हो गए। राज्य का सबसे महान व्यक्ति 'लुगाल' कहलाता था, जो धरा पर देवताओ का प्रतिनिधि माना जाता था। सुमेरियों का धर्म बहुदेववादी था और उनके अनेक देवता थे, परतु वे मिस्री देवताओं की भाँति सर्प, मार्जार, मगर, नदी आदि के प्रतीक न थे, स्वर्ग, नरक

आदि के थे। प्रत्येक नगर का अपना देवता था जो सृष्टि का कर्ता और पालक समझा जाता था। जब एक नगर दूसरे पर आक्रमण कर विजयी हो जाता था वह विजित नगर के देवता को आचारभ्रष्ट कर उसके स्थान पर अपने नगर का देवता प्रतिष्ठित करता था। इस प्रकार राजनीतिक उत्कर्ष के साथ साथ नगरो के देवता भी बदलते और चढते गिरते रहते थे। जब नगरराज्यो की सत्ता उठ चली और साम्राज्य स्थापित होने लगे, देवताओं का भी एक केंद्र या प्रधान देवता हुआ या अन्य देवता उसी एक के अंग समझे जाने लगे। सुमेरियो का यह प्रधान देवता अनु था, स्वर्ग का देवता। इसके देववर्ग में तूफान के देवता एन्लिल का स्थान देवराज अनु के बाद दूसरा था। निप्पुर मे इस एन्लिल की विशेष पूजा होती थी। इसी ने जलप्रलय के अवसर पर सुमेरी विश्वास के अनुसार, तूफान चलाया था जिसके परिणामस्वरूप आकाश मेघो से आच्छन्न हो गया था और पृथ्वी पर अधकार छा गया था और अनत जलवृष्टि होने लगी थी। सुमेरियो के मदिर उन ईटों के बने ठोस मेचनुमा पिरामिडों से मिलते जुलते विशाल आधारो पर बनते थे। इनको जग्गुरत कहते थे।

मारी (फरात की उपरली घाटी) से प्राप्त अभिलेखो से प्रकट होता है कि सभी जातियाँ मेसोपोतामिया मे अत्यत प्राचीन काल मे बस चुकी थी। धीरे धीरे अपने पराक्रम से उन्होने प्रदेशो पर अधिकार करना शुरू किया और ई० पू० २४वी सदी मे वे असामान्य प्रबल हो गई। अगली दो सदियो ल० २३६०–२१८० ई० पू० में पहला शेमी अक्कादी राजवंश मेसोपोतामिया मे अनिवार्य रूप से प्रतिष्ठित हो गया। इस अक्कादी साम्राज्य का आरभयिता सारगोन (शरूकिन) था। उस राजवश ने पश्चिमी एशिया के अधिकतर भागो पर अनातोलिया तक राज किया, यद्यपि सास्कृति क्षेत्र मे सत्ता सुमेरी भाषा, धर्म और कला की ही थी।

ई० पू० २१८० के लगभग अक्कादी राजकुल का अंत हो गया। उसका अत जाग्रोस पहाडो की बर्बर गुती जाति ने किया। इससे सुमेर को एक लाभ हुआ, उसे साँस लेने की फुरसत मिली और उसकी चेतना को नई साँस मिली। ऊर के तृतीय राजवंश (ल० २०६०–१९५० ई० पू०) ने शीघ्र राजनीतिक पासा पलट दिया और उसने जिस साम्राज्य का निर्माण किया वह शक्ति अथवा सीमा म अक्कादी साम्राज्य से किसी मात्रा मे कम न था। उस राजवंश के पहले राजा उर नम्मू ने बैबिलोनिया की प्राचीनतम कानून पद्धति घोषित की, २००० ई० पू० से भी पूर्व। ऊर के पिछले राजाओ के लगाश स्थित प्रतिनिधि शासक अपने भवननिर्माण, लंबे सुमेरी अभिलेखो और मंदिर निर्माण कार्य के लिये विशेष प्रसिद्ध हुए।

१९०० ई० पू० के आसपास दजला फरात के द्वाब मे एक नई राजनीतिक स्थिति का प्रादुर्भाव हुआ। वहाँ के राज्यो पर अमुरी (पश्चिमी शेमी) सत्ता प्रतिष्ठित हुई। लारसा, एश्नुम्ना, मारी, बरबुल सर्वत्र अमुरी राजकुल राज्य करने लगे। ये सारे राज्य एक दूसरे से सर्वथा स्वतत्र बराबर चलते रहते थे और शक्ति के लिय निरतर कशमकश होती रहती थी। इस कशमकश के अंत मे जो शक्ति सर्वोपरि सिद्ध हुई वह बाबुल की थी। वहाँ के पहले राजकुल के छठे राजा हम्मुराबी (१७२८–१६८६ ई० पू०) ने लारसा के एलामी राजा रिमसिन तथा द्वाब के अपने अन्य प्रतिस्पर्धियो पर सपूर्ण विजय प्राप्त कर बैबिलोनिया मे नई उदीयमान शक्ति का साका चलाया। हम्मुराबी ने विजय इतनी की कि उसकी एक सीमा ईरान, दूसरी भूमध्यसागर से जा लगी, पर उससे भी महत्व की जो उसने बात की वह थी एक नई और सुविस्तृत दडनीति और नई कानून व्यवस्था जिसकी घोषणा पत्थर के स्तभ पर खुदी हमे प्राप्त हुई है और जो उस सुदूर काल के पश्चिमी एशिया के इतिहास, अपराध और उसके दडविधान पर इतना प्रकाश डालती है। वह ससार के सभी प्राचीन पद्धतिबद्ध दंडविधानो से भी प्राचीनतर है। हम्मुराबी के शासन ने जिस शक्ति वातावरण की प्रतिष्ठा की वह बाबुली विज्ञान और ज्ञान के इतिहास मे स्वर्णयुग उतार लाया। कीलनुमा लिपि मे उस काल सर्वथा नए चिह्नो का आविष्कार हुआ और सुमेरी तथा अक्कादी दोनों मे कोश रचे गए। बाबुली ज्योतिषियो ने विशेषत ग्रहो की गति का अध्ययन कर उनको स्थायी पुस्तको मे अंकित करना शुरू किया और नक्षत्रो की सूची प्रस्तुत की। निश्चय ही इसका आरभ फलित ज्योतिष, भविष्यकथन, जादू आदि से हुआ पर उससे धीरे धीरे विज्ञान को लाभ हुआ और अन्य विश्वासों के पार गणित की ठोस दीवार पर पडितो की नजर टिकी। हमे राशिचक्र, चौबीस घटो के दिन रात, और वृत्त मे ३६० डिग्री गिनने की पद्धति देने का श्रेय उन बाबुलियो को ही है जिन्होने (क्वाड्रेटिक इक्वेशन) द्विघात समीकरण को काल्पनिक स्थिति से हल करने का मार्ग बताया।

अगले डेढ़ सौ वर्षों मे दजला फरात की राजनीति ने करवट ली। सामी शक्ति को उसने प्राय: सर्वत्र पराभूत कर दिया। सर्वत्र गैरशेमी जातियाँ विजयिनी हुईं। खत्तियो के राजा मुसिलि ने अनातोलिया से आकर (ल० १५३० ई० पू०) बाबुल को नष्ट कर दिया। उधर उत्तर मे हूर्रियों और भारतीय आर्यों मितन्नियों ने असूरिया पर अधिकार कर वहाँ अपना नया राज्य स्थापित किया। प्राय: तभी गैरशेमी कस्सियो ने बाबुल मे प्रवेश कर वहाँ अपने राजकुल की प्रतिष्ठा की और प्राय ४०० साल राज किया। उत्तरी असूरिया मे मितन्नी चिरकालिक सत्ता नही भोग सके और ई० पू० १४वी सदी के मध्य उनके दुर्बल होते ही असुर राजाओ ने सिर उठाया और शक्ति सचित की। जब जब उन्हे अवसर मिला और उन्हे उनके उत्तरी पश्चिमी शत्रुओ ने दम लेने दिया, तब तब उन्होने बेबिलोनिया पर आघात किए। एलाम बाबुल का पारस्परिक शत्रु था। वह भी इस बीच प्रबल हो गया था और उसके राजाओ ने बार बार बाबुल पर चढाई कर उसका पराभव किया। बाबुल के इस निरतर पतन के इतिहास मे बस एक अपवाद हुआ जब ईसिन के दूसरे राजवश के राजा ने बूखदनेज्जार प्रथम ने १२वी सदी ई० पू० के अत मे एलाम को भी परास्त किया और असूरिया को भी अपनी सीमा के भीतर रहने को बाध्य किया।

असूरिया का सूर्य १०७५ से ९२५ ई० पू० तक प्राय: निस्तेज रहा पर बैबिलोनिया को उसका लाभ न हुआ। क्योकि उसके भाग्याकाश मे एक दूसरी शेमी जाति का इस बीच उदय हो आया था। इसी आरामाई जाति के एक राजा ने ११वी सदी ई० पू०

बाबुल की गद्दी पर अधिकार कर लिया। उधर खल्दी जातियों ने फारस की खाडी की तटवर्ती भूमि से उठकर बाबुल और निकटवर्ती जनपदों में बसना शुरू कर दिया था। ई० पू० आठवीं सदी तक वे पूर्णत: उस भूभाग में बस चुकी थीं। बाबुल पर दुतरफी मार कुछ काल से लगातार पड़ रही थी। सदियों से उसपर विदेशियो का शासन रहा था और प्राय: डेढ़ सौ साल बाद उसके प्रबल पड़ोसी असूरिया ने फिर गतिशील होने के लक्षण ई० पू० दसवीं सदी के अंत में प्रकट किए। परिणाम यह हुआ कि बार बार खल्दियो को भगाकर उसने सदियों बाबुल की राजनीति को यथेष्ट दिशा दी। पर अंत मे खल्दी उसे हटाकर वहाँ अपना स्वत्व स्थापित करने में सफल हुए।

उस बाबुली-खल्दी-असूरी संघर्ष का अस्थायी अंत शत्रुओं को परास्त कर असूरी सम्राट् तिगलाथ पिलेजेर तृतीय ने किया जब उसने ७२६ ई० पू० मे अपने को बाबुल का राजा घोषित किया पर आरामाई राजा आें और असुरों से युद्ध ठना का ठना रह गया। और असूरी सम्राट् सारगोन द्वितीय के शासनकाल मे बित याकिन के आरामाई राजा मार्दुक अपाल इद्दिना (बाइबिल का मेरोदाख बलःदान) ने बाबुल पर अधिकार कर एलाम की सहायता से १२ साल तक असूरी शक्ति से सफल संघर्ष किया। कुछ साल बाद यह सघर्ष अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया और असूरिया ने बाबुल का ६८९ ई० पू० मे विध्वंस कर उसके देवता मार्दुक की मूर्ति हर ली। पर बाबुल फिर जी उठा जब असूरी सम्राट् एसारउद्दीन ने उसका नवनिर्माण कर उसे नवजीवन दान दिया और उसकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् कर दी। पर मरते मरते वह बाबुल के संहार का बीज फिर भी बोता गया। उसने अपने साम्राज्य के दो भाग कर बड़े बेटे असुरबनिपाल को स्वदेश दे दिया और छोटे बेटे शमाश-शुभ-उकिन को बाबुल गृहयुद्ध के परिणामस्वरूप बड़े भाई ने ६४८ ई० पू० में बाबुल का फिर सहार कर डाला। असुरबनिपाल की मृत्यु के पश्चात् नि:संदेह बाबुल की गोटी लाल हुई। वहाँ की गद्दी पर खल्दियों का अधिकार हो गया था और उसके खल्दी राजा नाबोपोलस्सार ने फारस के मीदी राजाओं से समझौता कर असूरी साम्राज्य को मिटा दिया।

प्राय. ७५ वर्ष बाबुल फिर ऐश्वर्य की चोटी पर चढा रहा। उस काल अपना चरम उत्कर्ष उसने खल्दी सम्राट् ने बूखदनेज्जार द्वितीय के शासनकाल (६०४-५६२ ई० पू०) मे प्राप्त किया। एक नया बाबुली साम्राज्य अब स्थापित हुआ, राजनीतिक सास्कृतिक दोनो दिशाओं मे। ने बूखदनेज्जार की पहली चिरस्मरणीय विजय उसे दूर उत्तर में फरात के तीर ६०५ ई० पू० मे उन मिस्री सेनाओ पर प्राप्त हुई जो असुरों की सहायता के लिये कारखेमिश मे इकट्ठी हुई। फिर तो बाबुल का अधिकार समूचे सीरिया और फिलिस्तीन पर मिस्री सीमा तक स्थापित हो गया। ने बूखदनेज्जार की सेनाओं ने एक और सिलीशिया, दूसरी ओर मिस्र पर चोट की। इस्रायल को तो उस सम्राट् ने रौद ही डाला। ५८७ ई० पू० में जुदा और जुरूसलम को नष्ट कर उसने यहूदी (इस्रायली) नबियों की उस सत्तर साल की कैद का आरंभ किया जो इतिहास में बाबुली कैद के नाम से विख्यात है।

अपने अभिलेखों मे बूखदनेज्जार ने अपने धार्मिक और सांस्कृतिक कृत्यों का विशेष उल्लेख किया है। उनके अनुसार उसने मार्दुक के मंदिर का बाबुल मे फिर से निर्माण किया। अपने जगत्प्रसिद्ध उस 'अवलंबित उद्यान' की रचना की जिसे ग्रीकों ने संसार के सात आश्चर्यों में गिना। नेबूखदनेज्जार के शांतिकाल में भी हम्मुराबी के शासनकाल की ही भाँति गणित और फलित ज्योतिष का बाबुल मे प्रभूत विकास हुआ।

पर बाबुल के ऐश्वर्य के दिन अब इने गिने ही रह गए थे। राजा नबोनिदुस के बेटे बेलशज्जार के पापों के परिणामस्वरूप, बाइबिल की पुरानी पोथी का कलाम है, एक हाथ निकला और उसने उसके जशन के हाल की दीवार पर लिख दिया—मेने मेने तेकेल उफासीन —तुला पर तुम तुल चुके। बड़े हल्के सिद्ध हुए (अंत निकट है, सावधान) और ५२९ ई० पू० मे हखमनी सम्राट् कुरूष महान् के समुख बिना लड़ाई लड़े बाबुल ने आत्मसमर्पण कर दिया। कुरूष ने बाबुल की जान बख्श यहूदी नबियों को मुक्त कर दिया। परंतु नगर ने ५१४ मे सम्राट् दारा महान (५२१-४८५ ई० पू०) के विरुद्ध विद्रोह किया और दारा ने उसकी प्राचीरें गिरवा दी।

सिकंदर ने ई० पू० चौथी सदी मे बाबुल को अपने पूर्वी साम्राज्य की राजधानी बनाना निश्चित किया परंतु उसकी अकाल मृत्यु ने नगर की उस आशा पर भी पानी फेर दिया। ग्रीक शासनकाल में उसका ह्रास निरंतर होता गया क्योंकि उस सत्ता का एक केंद्र सीरिया में अंतिओक था, दूसरा आमू की घाटी मे बाख्त्री। धीरे धीरे ईसा के जन्म से पहले ही अभाग्य की छाया का उसपर अनुमान कर नगर के निवासियों ने बाबुल तज दिया। जिस नगर ने सहस्राब्दियों राजनीति मे साका चलाया था और जिसकी संस्कृति इब्रानी और ग्रीक के माध्यम से यूरोपीय संस्कृति मे आज भी अनेकांश मे बीजरूप मे बैठी है वह बाबुल आज वीरान पडा है।

बाबुली सभ्यता—बाबुली सभ्यता का अंतरंग—उसके धर्म और साहित्य का—सुमेरी संस्कृति द्वारा निर्मित हुआ था और अनेकांश मे हमें उस सभ्यता का ज्ञान मूल के अध्ययन से होगा। पर चूँकि सुमेरी राजनीति का विस्तार या उसके सौदागरों की पहुँच सीमित थी, उसे प्रचार के माध्यम की आवश्यकता थी। वह माध्यम बैबिलोनिया ने अपने धार्मिक प्रतिनिधान और उत्साह तथा राजनीतिक फैलाव द्वारा प्रस्तुत किया था जैसे वही कार्य असूरिया ने अपनी राजनीति और व्यापारी वर्ग द्वारा संपन्न किया। जहाँ जहाँ बाबुली राजनीति, देवता और धर्म, साहित्य और लिपि तथा असूरी शास्त्र और सौदागर पहुँचे वहाँ वहाँ सुमेर की सभ्यता प्रचरित हुई। सुमेर से बाबुल ने लिया और बाबुल से असुर ने और असुरो से फिनीशिया, अनातोलिया, उगारीत सबने पाया। सुमेर स्वयं तो जाति और रक्त की दृष्टि से गैरशेमी था, पर कस्सियों, खत्तियों और मितन्नियो को छोड़ उसके सभी प्रचारक शेमी थे। पर इन शेमी जातियों ने सुमेर की संस्कृति और सभ्यता अपनाने मे किसी प्रकार की आपत्ति न की। वस्तुत उसकी संस्कृति की रक्षा, विकास और प्रचार शेमी बाबुल ने उसी प्रकार किया जैसे आर्य ग्रीस के साहित्य, दर्शन और विज्ञान की रक्षा, विकास और प्रचार पिछले युगों मे शेमी अरबों ने किया।

सुमेर और बाबुल के इसी घने संपर्क का यह परिणाम हुआ कि आज हम सुमेरी और बाबुली देवताओं मे विशेष पहचान नहीं कर

पाते। आज जो बाबुली देवताओं की संख्या हमे उपलब्ध है उसमें से कौन देव सुमेरी, कौन बाबुली है, यह कह सकना कठिन है। विद्वानों का मत है कि जिन देवों की पत्नियाँ या देवियों के पति नही हैं वे सुमेरी देवता है, शेष बाबुली। उनका कहना है कि बाबुली देवता बेल (या बाल) संभवतः सुमेरी एंलिल का प्रतिनिधि है, जैसे ग्रामाश उतू का। बाबुली देवराज मार्दुक को प्रायः सभी मूल रूप में सुमेरी देवता स्वीकार करते हैं, वैसे ही बिजली और तूफान के देवता रमान या अदाद को शुद्ध बाबुली (शेमी)। शेमी देवियों में प्रधान बेल की पत्नी, मार्दुक की पत्नी सार्पनीतुम, और नर्गाल की पत्नी लाज थी। आनूनीतुम मूल में संभवतः बाबुली शेमी थी और ईश्तर सीरियाई अथवा कनानाई। इन देवियों की पूजा के लिये क्लीव पुजारी नियत थे और अधिकतर मंदिरों में देवदासियाँ देवकार्य संपन्न करती थी।

बाबुली देवपरिवार बड़ा था और देवताओ की मूर्तियाँ बनती थी। वस्तुतः आर्यों और इस्रायलियो को छोड़ तब की प्रायः सभी जातियाँ, शेमी और गैरशेमी, मूर्तिपूजा करती थी। यह मूर्तिपूजा हजरत मुहम्मद के प्रादुर्भाव काल तक उस भूखंड मे प्रचलित रही। बाबुली देवता सृष्टि के विविध अंगों के स्वामी थे, उनके अपने अपने देव कर्तव्य थे। देवराज मार्दुक इंद्र वृत्र की भाँति अकाल के दैत्य तियामत को जलमोक्ष के लिये वज्र मारता था। बाबुलियो मे भी स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल के प्रति विश्वास प्रचलित थे। उन्होने सुमेरी देवताओ के साथ ही उनकी कीलनुमा लिपि और साहित्य भी अपना लिए। सुमेरियों के जलप्रलय गिल्गमेश आदि वीरकाव्य और अनुश्रुतियाँ उनकी लिपि की ही भाँति बाबुलियो ने अपनी कर ली और साहित्यकथाओ तथा लिपि दोनो मे पर्याप्त और आकर्षक परिवर्तन कर उन्होने अन्यत्र उनका प्रचलन किया। उनमे देवताओं के अतिरिक्त साँडो की भी पूजा होती थी।

बाबुली इतिहास से प्रकट है १७वीं १६वीं से पर्याप्त पूर्व बाबुल मे धनुष बाण का उपयोग होने लगा था और रथों के साथ अब घुड़सवारो पर भी सैन्य संगठन मे कुछ बल दिया जाने लगा था। सम्राट् हम्मुराबी के प्रसिद्ध अभिलेख से प्रमाणित है कि गणित और फलित ज्योतिष का प्रचार था और अन्न नदियो के अतिरिक्त नहरो द्वारा सींची भूमि मे उपजाया जाता था। टैक्स और लगान वस्तुओ या अन्न के रूप मे दिए जाते थे और व्यापार का क्षेत्र बड़ा था। यद्यपि सिक्के अभी नही चले थे, व्यवसाय वस्तुपरिवर्तन द्वारा होता था, बाट बटखरे प्रयुक्त होते थे और मूल्य चाँदी के वजन (शेकेल) मे आँका जाना था, स्वतंत्र मजदूरो की स्थिति दासो से बदतर थी क्योंकि उन्हे मात्र भोजन मिलता था, स्वामी की संरक्षा उपलब्ध न थी। दासो की रक्षा कानून करता था। राजा द्वारा नियुक्त न्यायाधीश देश मे अभियान करते और न्याय का वितरण करते थे। भूमि पर अधिकतर राजा या मंदिरो का स्वत्व था। मर्द सिर पर लंबे बाल और दाढ़ी रखते थे। उनका लिबास लंबा होता था।

हम्मुराबी का विधान, जो आज भी उपलब्ध है और पैरिस के लुव्र-संग्रहालय मे सुरक्षित है, बाबुली जीवन का प्रतिबिंब है और उसके संबंध मे अनंत सामग्री प्रस्तुत करता है। सामाजिक और कानूनी दृष्टि से वह असाधारण महत्व का है। उस काल के बर्बर राजनीतिक जीवन को देखते हुए लगता है कि हम्मुराबी द्वारा उद्घोषित और प्रवर्धित बाबुली कानून साधारणतः न्यायसंमत था। सम्राट् ने अपने कानून में नारी के प्रति विशेष उदारता दिखाई। सुमेरी सभ्यता में नारी को तलाक का अधिकार न था पर हम्मुराबी के कानून के अनुसार पत्नी को तलाक देनेवाले पति को उसका वैवाहिक धन लौटाने के अतिरिक्त उसका और उसके बच्चो का निर्वाह करना पड़ता था। पत्नी को ही बच्चे रखने का भी अधिकार होता था। उसे संपत्ति, गृह, दास सब रखने और न्यायालय मे अपनी वकालत करने का अधिकार प्राप्त था। देवदासियों को विशेष अधिकार प्राप्त थे और बाबुली धर्म में मंदिरवर्ती वेश्यावृत्ति धार्मिक नियम सा बन गई थी। बाबुली मुकदमे काफी लड़ते थे। मुकदमे अधिकतर भूमि के अधिकार, उसकी बिक्री और पट्टे संबंधी होते थे। बिक्री और पट्टों का कार्य ईंट या पत्थर पर लिखकर, साक्षियों का साक्ष्य अंकित कर मुहर छापकर संपन्न किया जाता था।

सं० ग्रं० — आर० डब्ल्यू० रॉजर्स : ए हिस्ट्री ऑव बैबिलोनिया ऐंड असीरिया, न्यूयार्क, १९१५; एच० आर० हाल : दि एशेंट हिस्ट्री ऑव दि नियर ईस्ट; त्रिपाठी, रामप्रसाद . विश्व इतिहास (प्राचीन), हिंदी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ। [भ० श० उ०]

बैरगेन (Bergen) स्थिति : ६०° २३' उ० अ० और ५° २०' पू० दे०। ओस्लो के बाद नॉर्वे का दूसरा बड़ा बंदरगाह एवं नगर है जो ओस्लो से १९० मील पश्चिम-उत्तर-पश्चिम रेलमार्ग पर स्थित है। इसके सुरक्षित पोताश्रय के पीछे ८००–१,६०० फुट ऊँची पहाड़ियाँ हैं। नॉर्वे के मध्यकालीन राजाओ के किले एवं प्रासाद अभी विद्यमान है। यहाँ की जलवायु आनंददायक एवं बहुत आर्द्र है। वर्षा का औसत ८९ इंच है। १९४० ई० के जर्मन आक्रमण और तुरत द्वितीय विश्वयुद्ध के उपद्रवों मे बैरगेन किसी भी नॉर्वे के नगर की अपेक्षा बहुत ही अधिक बमवर्षा और अग्नि का शिकार हुआ अतः बहुत से भागों को फिर से बनाया गया है। यहाँ कई चौक तथा बाजार है। समुद्रतट पर स्थित मछली बाजार सब से बड़ा बाजार है। इस नगर मे मछली के तेल, यंत्र, जलयान, शराब, वस्त्र, लौह इस्पात, साबुन, साज सज्जा, कागज, पियानो, रस्सी, सिगरेट, चीनी मिट्टी के बरतन, काच, चमड़े और बिजली की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। यहाँ से न्यूकासल, राटरडैम, हैंबर्ग और न्यूयॉर्क को जलयान जाते है। बैरगेन मे कई लेखक, नाटककार एवं कवि पैदा हो चुके हैं। यहाँ विश्वविद्यालय के अतिरिक्त उच्च अध्ययन के लिये कई महाविद्यालय हैं जिनमे संगीत समुद्री एकैडमी, ऋतुविज्ञान एवं भौगोलिक संस्थान तथा वाणिज्य महाविद्यालय उल्लेखनीय हैं। यहाँ के प्रसिद्ध भवनो मे सेंट मैरी एवं बैरगेन का बड़ा गिरजाघर, पुरातत्वीय, औद्योगिक एवं मत्स्यीय संग्रहालय, बैरगेनहूस का किला तथा एक भोजशाला दर्शनीय हैं। यहाँ थिएटर, पुस्तकालय, वेधशाला तथा कला-प्रदर्शन-कक्ष भी हैं। सुंदर प्राकृतिक छटावाले क्षेत्र के बीच मे होने के कारण यह पर्यटको का एक प्रसिद्ध केंद्र है जहाँ आसानी से जाया जा सकता है। इस नगर की जनसंख्या १,१६,५५५ (१९६३) है।

[रा० प्र० सिं०]

बैरामजी जीजाभाई जीजाभाई परिवार के संस्थापक, जो जनसेवा तथा विश्वप्रेम के लिये प्रसिद्ध थे, सूरत जिले के इलाव गाँव से सन् १७२९ मे बंबई आए थे। आपकी सबसे प्रसिद्ध संतति बैरामजी

जीजाभाई थे। बैंकों, रेलवे संस्थाओं और रूई के स्पिनिंग और वीविंग मिल के डाइरेक्टर होने के साथ ही आप बंबई प्रांत के वाणिज्य जीवन के प्रधान प्रेरक थे।

उन दिनों न्यायाधीशों की बेंच ही म्युनिसपल सरकार की देखरेख और नियंत्रण के लिये उत्तरदायी थी। बैरामजी १८५५ में न्यायाधीश नियुक्त हुए। १८६७ में आप बबई विश्वविद्यालय के फेलो रूप में नियुक्त हुए और बंबई की लेजिस्लेटिव कौंसिल के अतिरिक्त सदस्य बनाए गए। यहाँ आपने जनता की रुचि के अनुकूल पथप्रदर्शक के रूप में समान प्राप्त किया। उस समय जो बिल विचार विमर्श के लिये आए उनमें एक था अन्नों पर नगरकर लगाना। बैरामजी ने उसका घोर विरोध किया और जनता की भावनाओं को उत्साहपूर्वक सबके संमुख पेश किया। उनका कहना था कि यदि अतिरिक्त रेवन्यू लगाने की आवश्यकता ही है तो स्पिरिट तथा उत्तेजक पेय पदार्थों पर कर लगाया जाय बनिस्पत इसके कि आधा पेट भोजन मात्र करनेवाली जनसंख्या के भोजन पर लगाया जाय।

वाणिज्य और राजनीतिक जीवन से संबधित उनके कार्य और प्रयास जैसे ध्यान देने योग्य है वैसे ही बैरामजी के अनेक उपकार तथा दान दक्षिणाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। आपकी आर्थिक सहायताओं और दानों में सबसे महत्वपूर्ण है, गरीब पारसी बच्चों की निःशुल्क शिक्षा के लिये एक संस्था की स्थापना हेतु ३,५०,००० के मूल्य के सरकारी कागजों का दान। आप से पर्याप्त रूप में दान प्राप्त करनेवाले जातीय पक्षपात रहित संस्थाओं में प्रमुख हैं अहमदाबाद और पूना का सरकारी मेडिकल स्कूल, थाना का हाईस्कूल, और भीवादी का ऐंग्लोवर्नाक्यूलर स्कूल। बंबई का नेटिव जेनरल पुस्तकालय, अलेक्जाडरा नेटिव गर्ल्स इंगलिश इंस्टीट्यूशन और विक्टोरिया व एडवर्ड म्यूजियम तथा पिंजरापोल आपकी उदारता व अनुग्रह के भागी थे। [रु० म०]

बैबियरी, जोवनी फ्रांचेस्को (१५९१–१६६६) ऐतिहासिक चित्र बनानेवाले, इटली के इस चित्रकार का जन्म बोलोग्ना के पास सेंतो में हुआ।

बोलोग्नीज चित्रशैली के चित्रकार बेडेट्टो गेनरी के कलामानिध्य में वे १७ वर्ष की उम्र में आए। उनकी कलाप्रगति ने गुरु को पीछे छोड़ दिया। सन् १६१५ में उन्होंने बोलोग्ना को छोड़ दिया। चित्रकार काराक्की तथा काराबाज्जिओ के चित्रों से बाद में प्रभावित होने पर भी कुछ चित्रों में समकालीन चित्रकार गुइदी के चित्रों का प्रभाव है। उन्होंने ढाई सौ से कम चित्र नहीं बनाए। उसमें से १०६ चित्र विभिन्न चर्चों में बने है। उन्होंने अपना सबसे सुंदर चित्र 'सान पेत्रोनिला' शीर्षक का रोम के १५वें ग्रेगरी के लिये विशेष रूप से बनाया था।

पावलो अतानिओ बैबियरी इनके भाई थे, जिन्होंने वस्तु तथा प्राणियों के चित्रांकन में प्रसिद्धि पाई। [भा० स०]

बैलिऐरिक (Balearic) स्थिति : ३९° ३०' उ० अ० तथा ३° ०' पू० दे०। स्पेन के पूर्व में, पश्चिमी भूमध्य महासागर में स्थित द्वीपों का समूह है जिसमें मैलोर्का (१,३५० वर्ग मील), मेनोर्का (२९३ वर्ग मील), इबिज़ा (२३० वर्ग मील) तथा फॉर्मेंटेरा (३८ वर्ग मील) के अतिरिक्त अन्य छोटे छोटे द्वीप शामिल हैं। इसका कुल क्षेत्रफल १,९३६ वर्ग मील है। यहाँ भूमध्यसागरीय जलवायु पाई जाती है। ग्रीष्म काल में वर्षा नहीं होती। यहाँ फलों के बगीचे लगाए गए हैं। अंगूर, जैतून, बादाम और अजीर मुख्य उपजे है। कुछ खाद्यान्न भी उगाए जाते है, किंतु सिंचाई की कठिनाई के कारण उनका महत्व कम है। कुछ पशु भी पाले जाते हैं किंतु अच्छे चरागाहों का अभाव है। भेड़ें अधिक संख्या में पाली जाती हैं। इनसे दूध प्राप्त होता है। खनिज पदार्थों में लिग्नाइट और समुद्री नमक उल्लेखनीय है। कोक और सीमेंट बनाने का व्यवसाय भी होता है। यहाँ से निर्यात होनेवाली वस्तुओं में सूअर, भेड़ तथा फल है। [न० प्र०]

बैशकिरिया या बैशकिर स्थिति : ५४° उ० अ० तथा ५७° ५०' पू० दे०। यह आॅटोनोमस सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक है जो १९१९ ई० में बनी थी। यह यूराल पर्वत क्षेत्र के दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। इसका क्षेत्रफल ५४,२२३ वर्ग मील तथा जनसंख्या ३३,३५,००० (१९६१) है। यहाँ के २४ प्रति शत निवासी बैशकिर मुसलमान है जो बैशकिरी भाषा बोलते हैं। यहाँ की भूमि ३,९०० से ५,२३० फुट तक ऊँची है। पठार की औसत ऊँचाई १,००० फुट है। अधिकाश भाग जगलों से घिरा है। जगलों में घोड़े व अन्य मवेशी मिलते है तथा पश्चिमी भाग में गेहूँ, राई, कुट्टू, जौ, तीसी, सूर्यमुखी, सनई, अन्य घासें तथा चुकंदर की पैदावार होती है। जाड़े में नदियाँ जम जाती है और ताप ०° से० से नीचे गिर जाता है। यहाँ ताँबे की खानें है तथा पेट्रोलियम भी निकाला जाता है। इसकी राजधानी उफा है जहाँ मशीन बनाने, लकड़ी के काम और तेल साफ करने का काम होता है। [वि० मु०]

बैसिलेरिएसिई (Bacillariaceae) यह काई वर्ग का एक कुल है, जिसके अतर्गत डायटम (diatoms) आते हैं। इसके प्रतिनिधि एक-कोशिकीय, अनेक आकार प्रकार तथा रूप के होते हैं। जैसे सामान्य बहुमूर्तिदर्शी (kaleidoscope) में काच के छोटे छोटे टुकड़े अनेक रूप के दिखाई देते हैं उन्हीं रूपों के सदृश ये डायटम समूह भी होते हैं। प्रत्येक डायटम की कोशिका प्रचुर सिलिकायुक्त तथा इस बनावट की होती है मानो दो पेट्री डिश एक दूसरे में सटकर बद रखे हों। प्रत्येक डायटम की जब ऊपरी तह से परीक्षा की जाती है, तो इसकी द्विपार्श्विक (bilateral), या अरीय, सममिति (radial symmetry) के चिह्न स्पष्ट प्रतीत होते हैं। कोशिका के भीतर एक अथवा अनेक, विविध आकार के भूरे पीले से वर्णकीलवक (chromatophores) होते हैं। कोशिका के बाह्य तक्षण (sculpturing) के आधार पर डायटमों का वर्गीकरण होता है। प्रत्येक डायटम की दोनों कोशिकाभित्तियाँ, आंतरिक प्ररस सहित, फ्रसट्यूल (frustule) कहलाती है। ऊपरी कोशिकाभित्ति एपीथीका तथा भीतरी हाइपोथीका कहलाती है और दोनों का सिलिकामय भाग लगभग चौड़े वाल्व का होता है, जिसके फ्लैंज (flange) सदृश उपांत (margin) संयोजी बैंड (connecting band) या सिंगुलम (cingulum) से लगे होते है। यह सयोजी बैंड वाल्व के साथ प्रायः अच्छे प्रकार से जुड़ा होता है। कभी कभी एक से अधिक भी संयोजी बैंड होते हैं। ये आंतरीय बैंड कहलाते है। फ्रस्ट्यूल को वाल्व की छोर से देखने पर वाल्व तल

(valve view) तथा संयोजी बैंड की ओर से देखने पर वलयीतल (girdle view) दिखाई देता है। कूपिन (Coupin) के मतानुसार वह पदार्थ जिसके द्वारा फस्ट्यूल सिलिकामय हो जाता है, ऐल्यूमिनियम सिलिकेट है। पियरसाल (Pearsall सन् १९२३) के मतानुसार जल माध्यम मे सिलिकेट लवणो की प्रचुरता से प्रजनन मे सहायता होती है। वाल्व मे जो सिलिकीय पदार्थ एकत्रित होता है, वह केंद्रिक डायटम मे एक केंद्रीय बिंदु के चारों ओर अरीय सममित होता है। पिन्नेट डायटमो मे अक्षीय पट्टिका (axial strip) से यह द्विपार्श्व सममित या असममित (asymmetrical) हो सकता है। कुछ समुद्री केंद्रिक डायटमो मे तक्षरण पर्याप्त खुरदुरा सा होता है। यह विशेषत: यत्र तत्र गर्तरोम (areoles) के कारण होता है। इन गर्तरोमो मे बारीक खडी नाल रूपी (vertical canals) छिद्र (pores) होते हैं। कुछ पिन्नेलीज (Pennales) डायटमो मे एक या अधिक सत्य छिद्र (perforations) हो सकते है, जो गेमाइनहार्ट (Gemeinhardt, सन् १९२६) के अनुसार मध्य (median) अथवा ध्रुवीय होते हैं। ये पतले स्थल, जिन्हे पकटी (Punctae) कहते हैं, कतारों मे

केंद्रिक डायटम के सिलिकामय कवच

क. वाल्व दृश्य; ख. मेलोसिरा वैरिएंस (Melosira Varians); ग. मेखलादृश्य, जिसमे बीजाणुवर्धक का निर्माण दिखाया गया है; घ. ऐक्टिनोसाइक्लस अंडयुलेटस (Actinocyclus undulatus), च मेलोसिरा वैरिएंस (Melosira Varians), छ मेखलादृश्य तथा ज. ट्राइसिरेशियम फेवस (Triceratium Favus)।

विन्यस्त तथा वाल्व की लंबाई के साथ जाती हुई लबायमान पट्टिका, जिसे अक्षीय क्षेत्र (Axial field) कह सकते है, द्विपार्श्विक रूप मे होते हैं। यह अक्षीय क्षेत्र बनावट में सम हो सकते है, अथवा इनमे एक लंबी झिरी, राफे (Raphe), हो सकती है। लबी झिरी से रहित अक्षीय क्षेत्र कूट राफे (Pseudoraphe) कहलाता है। एक फस्ट्यूल के दोनों वाल्व के अक्षीय क्षेत्र प्राय: समान होते है, यद्यपि कुछ जेनेरा में एक मे राफे हो सकता है तथा दूसरे मे कूट राफे। प्रत्येक राफे के मध्य मे भित्ति के स्थूलन से एक केंद्रीय ग्रंथि (central nodule) बन जाती है और दोनो सिरो पर प्राय: ध्रुवग्रंथियाँ (polar nodules) भी होती हैं।

फस्ट्यूल के भीतर प्रोटोप्लास्ट (protoplast) मे सर्वप्रथम साइटोप्लाज्म (cytoplasm) की एक तह होती है, जिसमे एक या अनेक वर्णकरण होते हैं। साइटोप्लाज्म के और भीतर एक स्पष्ट रिक्तिका (vacuole) तथा इस रिक्तिका के मध्यभाग के कुछ साइटोप्लाज्म मे एक गोल सा नाभिक स्थित रहता है। वर्णकरण अनेक प्रकार के हो सकते हैं। इन्ही मे पाइरीनाएड मौजूद होते है, अथवा नही भी होते। वर्णकरण प्राय. सुनहरे रग के होते हैं। सुरक्षित भोज्य सामग्री प्राय वसा है। राफे से युक्त डायटम गतिशील होते है। इनकी गति लबे अक्ष पर झटके से होती है। ये झटके एक के बाद एक होते हैं। कुछ आगे बढ जाने पर वैसे ही एक झटके से डायटम रुक जाता है और पुन: पीछे की ओर आता है। मुलर (१८८९, १८९६ ई०) के मतानुसार डायटम की यह गति साइटोप्लाज्म मे धाराओं (streaming cytoplasm) के कारण होती है। डायटम मे कोशिकाविभाजन भी होता है। इस क्रिया मे दो सतति कोशिकाएँ (daughter cells) निर्मित हो जाती है, जो आपस मे स्वभावत. छोटी बड़ी होती हैं। नाभिकविभाजन के साथ ही वर्णकरण भी विभाजित होते हैं। कोशिका विभाजन के फलस्वरूप एक अनुजात प्रोटोप्लास्ट का अंश इपीथिका के भीतर रहता है और दूसरा हाइपोथीका मे। इसके उपरात प्रत्येक सतति अश मे दूसरी ओर की कोशिकाभित्ति निर्मित होकर, दो नए डायटम तैयार हो जाते हैं। अनुमान किया जा सकता है कि नवनिर्मित आधा भाग सदैव हाइपोथीका होगा तथा पुराना अवशिष्ट भाग चाहे वह पहले एपीथिका रहा हो या हाइपोथीका, इस नए डायटम मे सदैव एपीथीका होगा। इससे एक कल्पना यह भी की जा सकती है कि इस प्रकार प्रत्येक विभाजन के फलस्वरूप कोशिकाएँ धीरे धीरे आकार मे छोटी होती जाएँगी (इसे मैकडानल्ड-फिटजर नियम भी कहते है) परतु अमल मे आगे चलकर छोटे आकार की नवीन कोशिकाएँ ऑक्सोस्पोर (auxospores) बनकर, पुन. प्रारंभिक आकार की कोशिकाओ को उत्पन्न कर देती है। पिन्नेलीज वर्ग मे ये आक्सोस्पोर दो कोशिकाओ के सयुग्मन से बनते है। दो कोशिकाओ के सयुग्मन से दो आक्सोस्पोर बन जाएँ, या दो कोशिकाएँ आपस मे एक चोल मे सट जाए और प्रत्येक बिना संयुग्मन के ही एक एक आक्सोस्पोर निर्मित कर दे, अथवा केवल एक कोशिका से एक आक्सोस्पोर बन जाय, या एक कोशिका से दो आक्सोस्पोर भी बन जा सकते है। सेंट्रेलीज वर्ग मे लघु बीजाणु (microspers) भी उत्पन्न होते हैं। इनकी सख्या एक कोशिका के भीतर ४, ८, १६ के क्रम से १२८ तक हो सकती है। कार्सटेन (१९०४ ई०) एव श्मिट (१९२३ ई०) के अनुसार इन लघु बीजाणुओ का निर्माण साइटोप्लाज्म मे खचन और फिर विभाजन के फलस्वरूप होता है। गाइटलर (१९५२ ई०) के मतानुसार यह क्रिया अर्धसूत्रण (meiosis) पर आधारित है। इन लघु बीजाणुओ मे कशाभ (flagella) भी होते हैं। अनेक केंद्रिक डायटमो मे मोटी

भित्तियुक्त एक और प्रकार के बीजाणु होते हैं, जिन्हें स्टैटोस्पोर (Statospores) कहते हैं।

डायटमों का वर्गीकरण मुख्यतः शुट (Schutt, १८९६ ई०) के वर्गीकरण के आधार पर ही हुआ है। इसमे मुख्य तथ्य कोशिका-तक्षण की विभिन्नता है। फॉसिल रूप मे डायटम बहुसंख्या मे प्राप्त होते हैं, यहाँ तक कि इस पुंज को डायटम मृत्तिका (diatomaceous earth) की संज्ञा दी गई है। इन फॉसिल डायटमों के लिये भी यह वर्गीकरण उपयुक्त है। अधिकाश फॉसिल डायटम क्रिटेशस युग के पूर्व के नही हैं। इनकी प्रचुर सख्या एवं मात्रा सेंटामैरिया ऑएल फील्ड्स, कैलिफॉर्निया मे प्राप्त हुई है। ये फॉसिल ७०० फुट मोटी तहों मे व्याप्त हैं, जो मीलो लबी चली गई हैं। फॉसिल डायटमों की मिट्टी व्यावसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। चाँदी की पॉलिश करने मे यह उपयोगी है एवं द्रव नाइट्रोग्लिसरिन को सोखने के लिये भी उपयुक्त है, जिससे डायनेमाइट अधिक सुरक्षा से स्थानांतरित किया जा सकता है। आज लगभग ६०% डायटम मृत्तिका चीनी परिष्करण-शालाओ मे द्रवो को छानने के काम मे आती है। इसके अतिरिक्त इस मृत्तिका का उपयोग किसी अंश तक पेट तथा वारनिश आदि के निर्माण मे भी होता है। वात्या भट्ठियो मे, जहाँ ताप अत्यधिक होता है, डायटम मृत्तिका ऊष्मारोधी के रूप मे भी प्रयुक्त की जाती है। सामान्य ताप तो क्या ६००° सें० ताप तक यह ऊष्मारोधी के रूप मे पूर्णत सफल रहती है। [वि० भा० शु०]

बोएक्लीन, आर्नल्ड (१८२७–१९०१) कुशल दृश्य चित्रकार। आर्नल्ड बोएक्लीन सन् १८२७ मे बासली मे उत्पन्न हुए थे। ब्रूसेल्स मे रहकर उन्होंने प्रसिद्ध डच कलाकारो के चित्रो की अनुकृति की। इससे काफी धन प्राप्त हुआ और वे पैरिस चले आए। १८४८ के आदोलन काल मे वह वही रहे और उसका उनकी कला पर काफी प्रभाव पडा है। उनके प्रत्येक चित्र मे भय, निराशा और अंधेरा का कुहरा सा छाया रहता था। 'मृत्यु का द्वीप' (आइलैंड ऑव द डेड) उनका बहुचर्चित चित्र है। अपने जीवनकाल मे उन्हे उतनी प्रशसा न प्राप्त हो सकी जितना मृत्यु के पश्चात्। फ्लोरेन्स के पास फियेसोल नामक स्थान पर सन् १९०१ मे वह परलोक सिधार गए।

[रा० च० शु०]

बोखुम (Bochum) स्थिति ५०° २८' उ० अ० तथा ७° १२' पू० दे०। पश्चिमी मध्य जर्मनी के वेस्टफेलिया प्रदेश मे एसेन से नौ मील पूर्व एवं डॉर्टमुट से ११ मील उत्तर-पश्चिम तथा पश्चिमी जर्मनी की राजधानी बॉन के दक्षिण मे लगभग ५० मील की दूरी पर स्थित नगर है। यह राइन नदी की सहायक नदी पर बसा हुआ है। औद्योगिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। यहाँ लोहा, इस्पात आदि का उद्योग होता है। यंत्र तथा जस्ते भी बनते हे। यहाँ की जनसंख्या ३,४२,४०० (१९६१) है। [बि० मु०]

बोगी (Bogie), वाहनों के आगे और पीछेवाले धुरों के बीच का फासला जितना ही कम रखा जावे, उतना ही, पहियों की कोरों मे घर्षण और पहियों के रेल से उतरने का खतरा बिना पैदा किए, सुरक्षापूर्वक रेलवाहनो के यातायात के लिये, अच्छा है। लेकिन आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये, लबे वाहन बनाना और भौगोलिक परिस्थितियो के कारण रेलमार्ग में कम त्रिज्या के मोड बनाना भी कई जगहो पर अनिवार्य हो जाता है। अतः लबे वाहनो की इस असुविधा को दूर करने के लिये सन् १८१२ ई० मे इंग्लैंड के विलियम चैपमैन नामक एक रेल इंजन निर्माता ने, इंजनों में लगाने के उद्देश्य से, एक चौपहिया बोगी की अभिकल्पना की, जिसके धुरों का स्थिर फासला लगभग ६ फुट था। यातायात के इंजनो मे इस प्रयुक्ति का सफलतापूर्वक प्रयोग १८३३ ई० से आरंभ हुआ। १८४४ ई० मे इग्लैंड के जोजेफ राइट नामक इंजीनियर ने अपने बनाए सवारी वाहन के नीचे दो बोगियाँ लगाकर उसका पेटेंट करवाया। सन् १८७४ के बाद तो अमरीका और इग्लैंड दोनो देशो मे बोगीयुक्त वाहन काफी सख्या मे बनने लगे। बहुत बडे वाहनो के लिये तीन धुरों, अर्थात् ६ पहियो, की बोगियाँ भी अब बनाई जाती है।

मूलत बोगी दो धुरोंवाले, चार पहियों के, ठेले के रूप मे होती है। इसके ऊपरी तल के बीच मे एक बडा छेद बना होता है, जिसमे वाहन के नीचे की तरफ स्थिरता से जडी हुई चूलनुमा एक ऊर्ध्वाधर कीलक फँस जाती है और रेलपथ के मोडो पर वह समग्र ठेला ही उस चूल के सहारे आवश्यकतानुसार थोडा घूम जाता है और रेल पथ का सीधा भाग आते ही वह ठेला फिर वापस सीधा हो जाता है। इस सब क्रिया म मुख्य वाहन का ऊपर वाला ढाँचा सीधा रहता है। बोगी के उक्त ढाँचे पर, जो टेढ़ा सीधा होकर चलता रहता है, प्राय आकुंचन (bucketing) और पार्श्व विकृतियाँ (racking strains) काफी मात्रा मे पडा करती है। अत. इसे समुचित प्रकार से दृढ बनाना पडता है। वाहनो की बोगियो के ढाँचो को तो उसी शैली के अनुसार बनाया जाता है जिसमे उन वाहनो के निचले ढाँचे (Under frames) बनाए जाते है और इजनो की बोगिया इंजनो के फ्रेम की शैली के अनुसार बनाई जाती है।

चित्र १ (देखे फलक) मे सवारी तथा मालगाडियो की बोगी का पार्श्व, सामने तथा प्लान के दृश्य दिखाकर, उसकी पूरी बनावट दिखाई है। इसके विभिन्न भागो को रिवेट द्वारा अथवा वेल्डिंग से जोडते हैं। फिर उचित प्रकार की भट्ठियो मे तपाकर आतरिक विकृतियाँ दूर कर लेते है। बोगी का केंद्रीय कीलक (pivot) भी दो भागो मे बनाया जाता है, जिसका ऊपरी भाग तो गाडी की निचली फ्रेम के आडे अवयवो मे स्थिरता से जड़ दिया जाता है और निचला भाग बोगी के ढाँचे की आडी स्लाइड मे सरकता रहता है। दोनो के संपर्कतलो मे से एक को अवतल (concave) और दूसरे को उसी के अनुरूप उत्तल (convex) बनाते हैं। कीलक के निचले भाग की सतह पर तेल की झिरिया काटकर, उनमे तेल या ग्रीज भर देते है, जिससे उनके बीच घर्षण कम हो जाता है। इन दोनो के केंद्र मे छेद करके एक मोटी पिन भी फँसा देते है, जिससे गाडी के उछलकर चलते समय वे अलग न हो जाएँ। बोगी की आड़ी स्लाइड की सतहो पर भी ग्रीज आदि लगाने का प्रबध किया जाता है।

इजन की बोगियाँ — चित्र २. (देखे फलक) में इजन के एक बोगी की बनावट पार्श्व और बीच मे से आडी काट करके दो दृश्यों मे दिखाई है। इसमे बोगी के फ्रेम प्लेट उसी प्लेट मे से बनाए जाते है जिससे कि इजन का फ्रेम बनता है। इसमें इस्पात के बने दो बेयरिंग कास्टिंग,
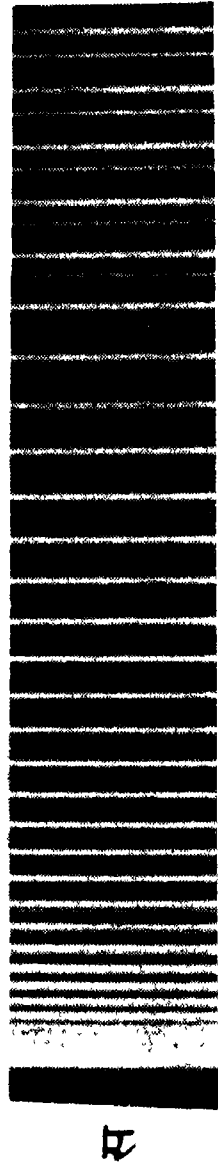
बोगी (देखें पृष्ठ ३७४)

चित्र २

बिसल ट्रक

सामने के दृश्य की आधी काट

पार्श्व दृश्य

अनुविक्षेप (प्लान) दृश्य

चित्र ३.

रेडियल एक्सल बॉक्स
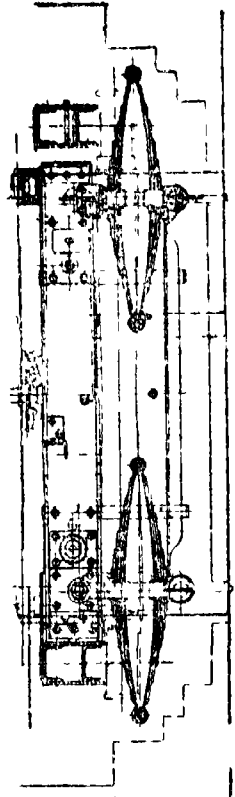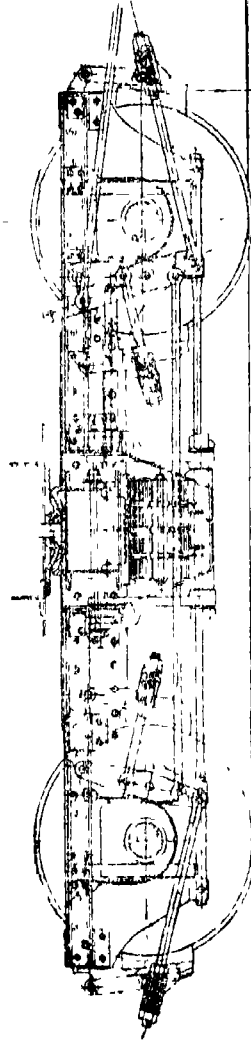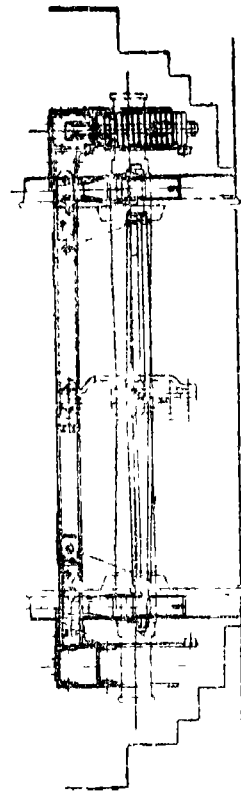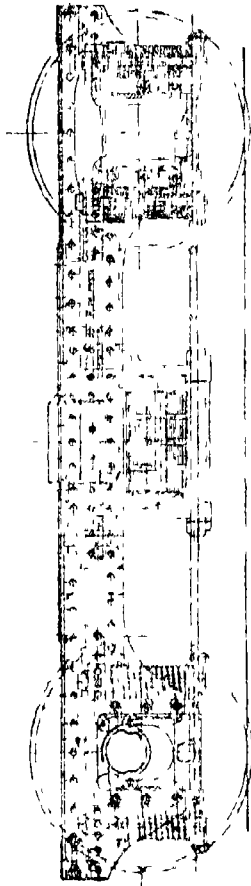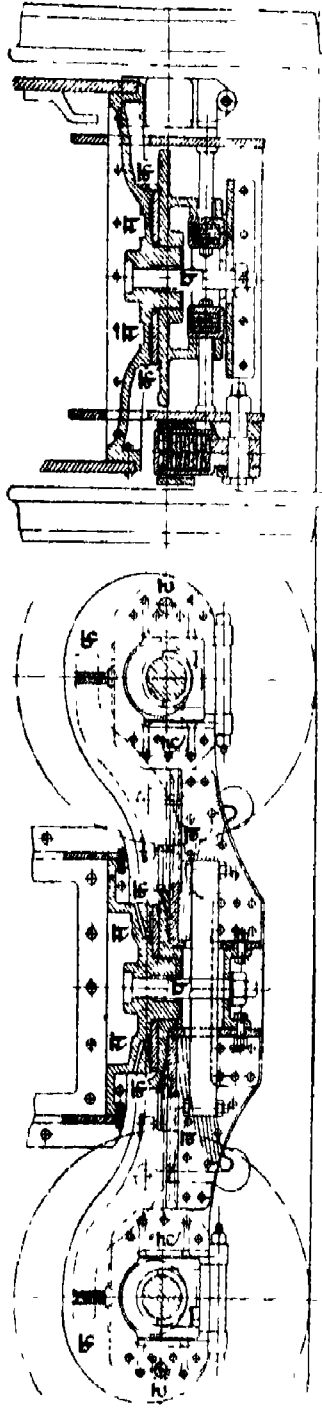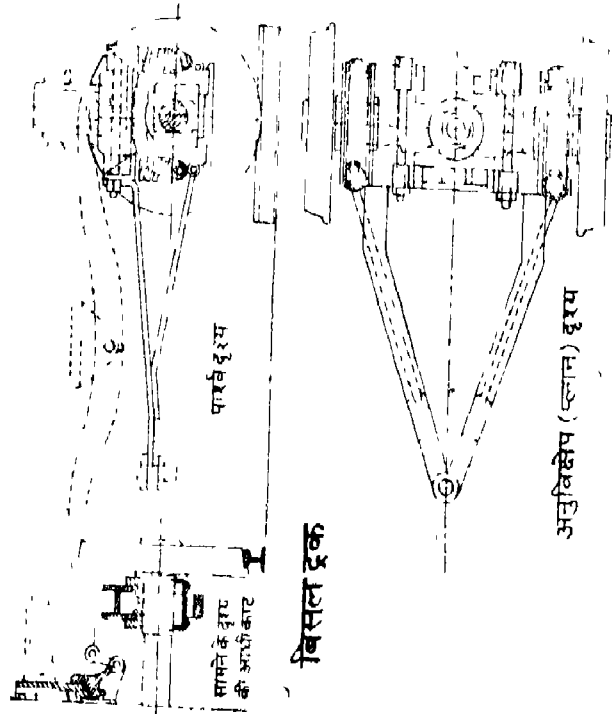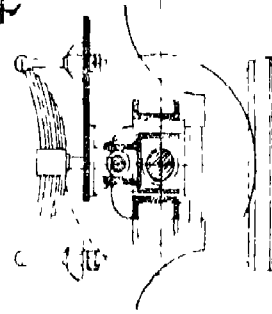
चित्र ४

दोनों फ्रेम प्लेटों के बीच में लगभग १०" के फासले से समांतर जड दिए जाते हैं। इनकी दूरी बोगी की मध्य रेखा से बराबर रहती है, जिससे वे केंद्रीय कास्टिंग 'क' के निचले भाग के लिये मार्गदर्शिका (guide) का काम कर सकें, क्योंकि वह इन्ही के ऊपर टिककर, बगलियो मे एक सीमा के भीतर भीतर सरकता है। अतः इन बेयरिंग कास्टिंगों के रूप मे जो मार्गदर्शिका बनती है, उसकी लबाई लगभग दो फुट और चौड़ाई दोनों तरफ ६ इच के लगभग होती है। केंद्रीय कास्टिंग क मे बने छेदों तथा खाँचों द्वारा इनपर तेल की चिकनाई फैलती रहती है। केंद्रीय कास्टिंग के ऊपरी भाग को गोल थालीनुमा चौरस खरादकर बना देते है, जिसमे पीतल का बना थालीनुमा ही एक अस्तर (liner) लगभग १ फुट ६ इंच व्यास तथा ¾" मोटा लगा दिया जाता है, जो सैडल प्लेट स और उपर्युक्त कास्टिंग क के बीच दबा रहता है। इजन का सैडल प्लेट स, जो ढले इस्पात से ही बनाया जाता है, अपनी फ्लेंजों के द्वारा, इजन के मुख्य फ्रेम प्लेटों मे ⅞" व्यास के, सही सही खरादे हुए, टाइट फिट बोल्टों द्वारा स्थिरता से कस दिया जाता है। सैडल प्लेट स का निचला भाग भी थाली के रूप मे सही सही खराद कर पीतल के उपर्युक्त घर्षण वाशर (अस्तर) पर टिकाव खाने योग्य बनाया जाता है। इनके बीच मे रहनेवाली कम से कम ६" व्यास की बेलनाकार चूल भी सही खरादकर ऐसी बनाते है कि वह घर्षण वाशर और केंद्रीय कास्टिंग क के मध्य मे बने तथा सही सही बोर किए छेद मे से होकर लगभग १०" नीचे निकल आती है। इस प्रकार की मजबूत बनी चूल के सहारे से ही बोगी का ढला रेलपथ के मोडो पर आवश्यकतानुसार घूम जाता है। रास्ते मे चलते समय, रेल पथ की स्वल्प ऊँचाई निचाई के कारण, जब इजन कुछ उछलता है, उस समय यह चूल कही निकल न जाए इसलिये इसके केंद्र मे भी एक छेद बनाकर, उसमे एक मजबूत पिन प फँसा दी जाती है और नीचे की तरफ से उसे एक मजबूत नट और वाशर द्वारा कस देते है। कई इजनो मे उक्त चूल और पिन एकागी ही बनाई जाती है। चित्र मे ट चिह्नित दो मोटे स्टे (stay) भी लगे दिखाए है, जिनसे बोगी की फ्रेम को और भी अधिक दृढ़ता प्राप्त होती है। चित्र मे ह एक्सल बक्सो के हॉर्न स्टे, ब बेयरिंग कमानी और फ, उनका भार पारेषक बीम है, जिसके सिरो के माध्यम से इंजन का बोझ ऐक्सल के बक्सो पर पडता है। चित्र मे दाहिने हाथ की तरफ बने काट के दृश्य मे, एक एक मोटी छडों मे, जो ब्रैकटों के द्वारा स्थिरता से चूल के दोनों तरफ थमी हुई है, रबर की गद्दीनुमा कमानियाँ पिरो दी गई है। इनका काम रास्ते की मोडो पर चूल के एक तरफ सरक जाने के बाद, सीधा रास्ता आने पर, उसे फिर से मध्य में लाना होता है।

जब रेल इजनो के आगे के भाग मे अधिक बोझा नही होता, अथवा जगह की कमी के कारण चौपहिया बोगी नही लग सकती तब उसके बदले मे एक धुरेवाली बोगी ही लगाते है। चित्र ३. (देखें फलक) मे तिकोने फ्रेमवाली बोगी की बनावट तीन दृश्यो मे दिखाई है, जिसे बिसल ट्रक (Bissel truck) भी कहते है। इस तिकोने फ्रेम के शीर्ष को एक मजबूत पिन द्वारा, इजन की मुख्य फ्रेम के आड़े स्टे के नीचे की तरफ स्थिरता से अटका देते है, जिसपर यह अशत घूमती रहती है।

रेलमार्ग की मोड़ों पर, इंजन के चक्कों के स्थिर आधार को लचीलापन देने का एक तरीका त्रिज्यीय ऐक्सल बक्स (Radial axle box) का प्रयोग करना भी है। इसकी बनावट चित्र ४. (देखें फलक) मे दिखाई है। इसकी क्रिया पूर्वोक्त बोगियों के सिद्धात से सर्वथा भिन्न है, क्योंकि इसके धुरे पर लगे ऐक्सल बक्स ही अपनी वक्र गाइडों मे, मोड आने पर, स्वयं तिरछे हो जाते है। अत. मध्यरेखा के दोनो तरफ इनकी पार्श्विक चाल (Sideplay), लगभग १¼" रखना होता है।

बिसल ट्रक मे रेडियल ऐक्सल बक्सों की अपेक्षा घर्षण कम होता है, क्योंकि बिसल ट्रक की स्विग लिंकें, रेडियल बक्सों की अपेक्षा, रास्ते की मोड़ों पर तिरछी होते समय कम मात्रा मे प्रतिरोध उपस्थित करती है। रेडियल ऐक्सल बक्सो की त्रिज्यीय गाइडों मे तथा उसकी कमानियो द्वारा काफी प्रतिरोध प्रस्तुत होता है। अतः कई लोग रेडियल ऐक्सल बक्सो को इजन के पिछले भाग मे ही लगाना पसद करते हैं। बिसल ट्रक मे यह दोष है कि उसकी कड़ियाँ अपनी अपनी पिनों मे काफी ढीली रहती हैं, क्योंकि घूमते समय उनमे काफी मरोड बल पडता है। अतः उसकी चाल मे स्थिरता कम रहती है; वैसे तो उसके ऊपर लगा प्रतिकारी दड (compensating beam) स्थिरता बनाए रखने मे काफी सहायक होता है।

सं० ग्र०—लेनीस रेलवे कैरेज ऐंड वैगन इन थ्योरी ऐंड प्रैक्टिस [ओ० ना० श०]

बोगोटा १ नगर, स्थिति ४° ४०' उ० अ० तथा ७४° १५' प० दे०। सागर तल से ८,५०० फुट ऊँचे पठार पर स्थित, कोलबिया की राजधानी एव सबसे बडा नगर है। यहाँ का जलवायु आर्द्र है। सन् १५३८ मे ही यह नवीन दुनिया का एक सास्कृतिक केंद्र था। यहाँ की नैशनल यूनिवर्सिटी मे चिकित्सा, कानून, राजनीति, इजीनियरिंग तथा शिक्षण सबंधी विभाग है। नगर के प्रमुख क्षेत्र (प्लाज़ा बोलिवर) मे राष्ट्रपतिभवन, साइमन बोलिवर का गृह तथा अन्य प्रसिद्ध भवन है। फुजा नदी के ऊपरी भाग मे एक सहायक सन फ्रासिस्को नदी बहती है जो नगर से होकर गुजरती है। इसके पडोस मे पशुपालन होता है तथा खेती की जाती है। यह अपने सार्वजनिक स्थलो, पार्कों तथा बगीचो के लिये प्रसिद्ध है। नगर भर मे वैज्ञानिक, आविष्कारको, देशभक्तो, दार्शनिको तथा राष्ट्रपतियो की मूर्तियाँ लगी हैं। अच्छे होटल, सुंदर दूकाने भी है। उद्योगो मे कपडे, सिगरेट, काच एवं चमडे का सामान, चॉकलेट, साबुन, दियासलाई, सीमेंट, आटा शराब तथा खाद्य पदार्थों का निर्माण होता है। इसकी जनसख्या १४,८७,००० (१९६४) है।

२ इसी नाम का एक नगर न्यूयॉर्क के उत्तर-पश्चिम न्यूजर्जी के बर्गेन प्रदेश मे है।

३ इस नाम की एक नदी है जो कोलबिया के मध्यवर्ती पठार से निकलकर, १६० मील बहने के बाद मैग्डालीना मे मिल जाती है। [बि० मु०]

बोजांके, बर्नार्ड (१८४८–१९२३) प्रत्ययवादी बोजाके के अनुसार मनुष्य का अपूर्ण, असबधित एव सामजस्यविहीन अनुभव सदैव पूर्णता की प्राप्ति की चेष्टा करता रहता है। सीमित अनुभवों का विरोध

सदा होता रहता है। सीमित आत्मा में विरोध को मिटाने तथा समता और पूर्णता प्राप्त की प्रेरणा वर्तमान रहती है। इस प्रकार मनुष्य की अंतर्हित प्रवृत्ति पूर्णता की प्राप्ति की अनवरत चेष्टा करती रहती है। यह सर्वांगीण, परिपूर्ण अनुभव ही बोजांके के अनुसार पूर्ण (Absolute) वास्तविकता है। यह स्वत: परिपूर्ण है और पूर्णतया सामंजस्यपूर्ण व्यष्टि है। बोजांके ने इसे ही 'चिरंतन सत्य' (Concrete Universal मूर्त सामान्य) माना है।

'चिरंतन सत्य' की तुलना 'गुणात्मक सत्य' (Abstract universal अमूर्त सामान्य) से की गई है। 'गुणात्मक सत्य' शुद्ध तादात्म्य है। इसमें विभिन्नताएँ नाममात्र को भी नही हैं। यहाँ सामंजस्य नही है। यह शून्य है। इस प्रकार का भ्रामक गुणात्मक स्वभाव 'पूर्ण वास्तविकता' आंतरिक (Absolute) का नही हो सकता। दर असल 'चिरंतन सत्य' वही है जो अपने में 'अनेकता' को 'एकता' मे पिरोता है, फिर भी उसमे विभिन्नताएँ विद्यमान रहती है। अत. बोजांके के अनुसार 'पूर्ण वास्तविकता' 'चिरंतन सत्य' है। यह सिद्धात ब्रैडले के 'पूर्ण वास्तविकता' के विचार का ही प्रसार है। [जे० एन०म०]

बोत्सवाना (बेचुआनालैंड) स्थिति . २३° ०' द० अ० तथा २४° ०' पू० दे०। दक्षिणी अफ्रीका मे केप प्रात के उत्तर मे ट्रैंसवाल, उत्तरी रोडीजिया तथा दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका से घिरा एक राज्य है, जो सन् १८९५ मे ब्रिटिश संरक्षण मे आया था, किंतु सितंबर, १९६६ मे स्वतंत्र हो गया। इसका क्षेत्रफल २,२२,००० वर्ग मील तथा जनसख्या ३,२०,६७५ (१९५६) है। सागरतल से इसकी ऊँचाई ३,००० फुट है। यहाँ की जलवायु शुष्क है। ग्रीष्म काल मे औसत वर्षा २० इंच होती है। अकाल बहुधा पडता है। वर्षा में नगामी, मकरीकारी तथा ओकोवांगो झीलो मे पानी भर जाता है। । दक्षिणी भाग कालाहारी मरुस्थल का ही एक भाग है। अनुकूल भाग मे मक्का, लोबिया तथा सोरघम, बाजरा एवं गेहूँ उगाया जाता है। कुछ लोग पशुपालन तथा स्वर्ण की खानो मे काम करते हैं। बटू जाति प्रमुख है जिनकी राजधानी सेरोए है। मेफेकिंग, बचुआनालैंड की प्रधान राजधानी है। सोना, मैंगनीज, एस्बेस्टस खनिज मिलते है। सडकों का अभाव है। [दी० ना० ब०]

बोन (Bone) १ विभाग, यह ऐल्जिरिया का एक विभाग है। इसका क्षेत्रफल २५,३६७ वर्ग किमी० तथा जनसख्या ७,६१,००० (१९६०) है।

२ नगर, स्थिति . ३६° ५५' उ० अ० तथा ७° ४४' पू० दे०। यह ऐल्जिरिया के कॉन्सटाटीन राज्य मे, कॉन्सटाटीन नगर से ७० मील उत्तर पूर्व मे स्थित नगर एवं बदरगाह है। यहाँ का पोत उद्योग बहुत महत्वपूर्ण है। सातवी शताब्दी मे अरबों द्वारा बोन का निर्माण हुआ। इसपर क्रमश: इटली, स्पेन तथा ऐल्जिरिया का अधिकार रह चुका है। यहाँ से लोहा, जस्ता तथा ऊन का निर्यात होता है। द्वितीय विश्व महायुद्ध मे यह युद्ध का अड्डा था। नगर की जनसंख्या १,६४,००० (१९६०) है। [श्रीकृ० च० ख०]

बोन, सर म्योरहेड (१८७६–१९५३) भवनो तथा बदरगाहो पर की गई खुदाई की कारीगरी (Engraving) से यह अंग्रेज कलाकार काफी प्रसिद्ध हुए। चित्रकारी तथा धातु पर की खुदाई की कला का अध्ययन ग्लास्गो स्कूल ऑव आर्ट मे कर वे लदन मे बस गए थे। प्रथम महायुद्ध मे वे नौसेना के कलाकार तथा द्वितीय महायुद्ध में सेनाधिकारियो के साथ कलाधिकारी रहे। सन् १९३७ मे उन्हे 'नाइट' का राजसमान प्राप्त हुआ। इनकी कृतियाँ ब्रिटिश म्यूजियम मे हैं। [भा० स०]

बोपदेव विद्वान्, कवि, वैद्य और वैयाकरण ग्रंथकार थे। ये १३वी शती मे हुए थे। ये देवगिरि के यादव राजाओं के यहाँ थे। यादवों के प्रसिद्ध विद्वान् मत्री हेमाद्रि पत (हेमाड पत) का उन्हे आश्रय था। 'मुक्ताफल' और 'हरिलीला' नामक ग्रथो की इन्होने रचना की। हरिलीला मे सपूर्ण भागवत सक्षेप मे आया है। उन्होने 'मुक्तबोध' नामक संस्कृत व्याकरण भी लिखा।

बोपदेव यादवो के समकालीन, सहकारी, पडित और भक्त थे। कहते है, वे विदर्भ के निवासी थे। उन्होने प्रचुर और बहुविध ग्रथो की रचना की। उन्होने व्याकरण, वैद्यशास्त्र, ज्योतिष, साहित्यशास्त्र और अध्यात्म पर उपयुक्त ग्रंथो का प्रणयन करके अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होने भागवत पर हरिलीला, मुक्ताफल, परमहंसप्रिया और मुकुट नामक चार भाष्यग्रथो की सरस रचना की। उन्होंने मराठी मे भाष्यग्रथ लेखनशैली का श्रीगणेश किया। [गो० दे०]

बोर, नील्स हेनरिक डेविड (Bohr, Niels Henrik David) परमाणु सरचना सबधी कार्य के लिये विख्यात, अमर, भौतिकी वैज्ञानिक का जन्म ७ अक्टूबर, १८८५ ई० को कोपेनहेगेन मे हुआ था। इनके पिता यहाँ के विश्वविद्यालय मे शरीरक्रिया विज्ञान के प्राध्यापक थे। १९०३ ई० मे ये कोपनहेगन विश्वविद्यालय मे भर्ती हुए। १९११ मे डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की। डॉक्टर की उपाधि के लिये इन्होने धातुओ के गुण और इलेक्ट्रानीय सिद्धात पर काम किया था। १९११ ई० मे बोर ने कैंब्रिज प्रयोगशाला मे जे० जे० टॉमसन के निरीक्षण मे तथा १९१२ ई० मे मैंचेस्टर मे प्रो० रदरफोर्ड की अध्यक्षता मे अनुसधान किए। १९१३–१४ ई० मे ये कोपेनहेगेन विश्वविद्यालय मे भौतिकी के लेक्चरर तथा १९१४–१९१६ ई० तक मैंचेस्टर मे गणितीय भौतिकी के रीडर रहे। १९१६ ई० मे इनकी नियुक्ति कोपेनहेगेन मे सैद्धातिक भौतिकी के प्रोफेसर के पद पर हुई। १९२० ई० मे एक नया इस्टिट्यूट सैद्धातिक भौतिकी का बना, जिसके ये अध्यक्ष बनाए गए।

बोर को १९२२ ई० मे परमाणु संरचना और परमाणुओ से निकले विकिरण के सबध मे नोबेल पुरस्कार मिला। रदरफोर्ड ने परमाणु के भीतर विद्यमान न्यूक्लिअस, या धनात्मक नाभिक, की कल्पना प्रस्तुत की थी। बोर ने १९१३ ई० मे यह बताया कि इस नाभिक के चारों ओर ईलेक्ट्रॉन उसी प्रकार चक्कर लगाते हैं, जैसे सूर्य के चारो ओर ग्रह। जब ये इलेक्ट्रॉन एक परिधि से दूसरी परिधि पर जाते हैं, तो दोनो परिधियो से संबध रखनेवाली ऊर्जाओ मे जितना अंतर पड़ता है, उतनी ऊर्जा विकिरण के रूप में प्राप्त होती है। बोर की इस कल्पना ने परमाणु सरचना के क्षेत्र मे नया युग आरंभ किया।

बोर की प्रयोगशाला मे परमाणुविच्छेद संबधी कार्य भी हुए। १५ जनवरी, १९३९ ई० को बोर की इस प्रयोगशाला मे प्रो० हान

(Hahn), लिसे माइटनर (Lise Meitner) और फ्रिश के परमाणु विखडन संबधी सफल प्रयोगो की पुष्टि की। इसी वर्ष बोर द्वितीय महायुद्ध से पीड़ित होकर सयुक्त राज्य, अमरीका, पहुंच गए थे। बोर को परमाणु विखडन की महत्ता स्पष्ट हो गई और इन्होने अमरीका के वैज्ञानिकों को इस कार्य को व्यावहारिक रूप देने के लिये प्रेरित किया। २६ जनवरी, १९३९ ई० को बोर ने वाशिंगटन मे सैद्धांतिक भौतिकी की एक कॉन्फ्रेंस मे वैज्ञानिकों को परमाणु विखडन से प्राप्त ऊर्जा के उपयोग के लिये सघटित किया। फर्मी आदि विख्यात वैज्ञानिको के सहयोग से अंत में वे सफल प्रयोग हम लोगो के समक्ष आए, जिन्होंने परमाणु बम को जन्म दिया। बोर मार्च, १९३९ ई० को डेनमार्क लौटे। परमाणु बम प्रयोग की प्रेरणाएँ अमरीकी सरकार ने बोर और आइन्सटाइन से पाईं, जिनके फलस्वरूप ६ अगस्त, १९४५ ई० को हिरोशिमा इस बम का सर्वप्रथम शिकार हुआ।

बोर ससार के मूर्धन्य वैज्ञानिको में माने जाते रहे हैं और सैद्धांतिक भौतिकी के ये प्रकाड पडित थे। ससार के सभी देशों ने बोर को समानित किया। अनेक विश्वविद्यालयो ने इन्हे डॉक्टर की उपाधि भेट कर अपने को गौरवान्वित किया। १८ अक्तूबर, १९६२ ई० को नीलस बोर की मृत्यु हो गई। [सत्य० प्र०]

बोराइड (Borides) बोरॉन के धातु यौगिको को कहते है। ये कठोर पदार्थ है, जिनकी क्रिस्टलीय सरचना धातु जैसी होती है। इनके रासायनिक सूत्र सयोजकता के नियमो से बद्ध नही होते। शुद्ध धातु की अपेक्षा बोराइड अधिक कठोर, तथा निष्क्रिय होते हैं। इनके गलनांक तथा विद्युत् प्रतिरोधकता धातु की अपेक्षा ऊँची होती है। बोराइड की रचना अनेक प्रकार की होती है। कुछ बोराइडो मे धातु के परमाणुओं के विन्यास (arrangement) के मध्य मे बोरॉन के परमाणु स्थान स्थान पर जड़े रहते हैं, कुछ मे इसके प्रतिकूल रचना रहती है और अन्य बोराइडों की सरचना इन दोनों संरचनाओ का मध्यमान होती है।

अधिकतर बोराइड धातु और बोरॉन की पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप बनते हैं। कुछ बोरॉन ऑक्साइड और धातु के ऑक्साइड, अथवा लवण, तथा किसी अपचायक पदार्थ के मिश्रण की क्रिया से भी बन सकते है। इन क्रियाओ के लिये १,०००° से २,०००° सें० का ताप आवश्यक है। इस ताप के लिये विद्युत् भट्ठी ही उपयोगी होती है, जिसमे अक्रिय गैस का वातावरण रहना आवश्यक है, अन्यथा ऑक्साइड बनने का डर रहता है। कभी कभी अपचायक पदार्थ के स्थान पर फ्लोराइड प्रयोग करने पर सरलता से बोराइड बनता है। इन क्रियाओ के पश्चात् भट्ठी मे चूर्ण के रूप मे बोरॉन तत्व बच रहता है। इसे नाइट्रिक अम्ल द्वारा घुला लिया जाता है।

एक्स-किरण द्वारा परीक्षण से धातु के बोराइडों को हम कई श्रेणियो मे विभाजित कर सकते हैं :

(१) धा$_2$ बो (M_2B) श्रेणी, जिसमे धातु और बोरॉन के परमाणुओं का अनुपात २:१ होता है। ऐसे बोराइड टैंटेलम, टग्स्टन, मोलिब्डेनम, मैंगनीज, लौह, कोबाल्ट और निकल के हैं।

(२) धा$_3$ बो$_2$ (M_3B_2) श्रेणी, जिसमे धातु और बोरॉन का अनुपात ३:२ है। ऐसे बोराइड मैग्नीशियम और बेरीलियम के हैं।

(३) धा बो (M B) श्रेणी, जिसमे धातु और बोरॉन के परमाणुओं का अनुपात १:१ है। इसके अंतर्गत मैंगनीज, लौह, कोबाल्ट, मोलिब्डिनम, टग्स्टन, नियोबियम, टैंटेलम और क्रोमियम के बोराइड हैं।

(४) धा$_3$ बो$_4$ (M_3B_4) श्रेणी, जिसमे धातु और बोरॉन के परमाणुओं का अनुपात ३:४ है। इसके अतर्गत क्रोमियम, मैंगनीज, नियोबियम और टैंटेलम के बोराइड है। इस समूह मे पहले की अपेक्षा अधिक कठोरता रहती है।

(५) धाबो$_2$ (MB_2) श्रेणी, जिसमे धातु और बोरॉन के परमाणुओ का अनुपात १:२ है। इस श्रेणी मे ऐल्यूमिनियम, मैग्नीशियम, वैनेडियम, नियोबियम, टैंटेलम, टाइटेनियम, जर्कोनियम, क्रोमियम और मोलिब्डेनम के बोराइड हैं।

(६) धा$_2$ बो$_5$ (M_2B_5) श्रेणी, जिसमे धातु और बोरॉन के परमाणुओ का अनुपात २:५ है। इस श्रेणी मे मोलिब्डेनम और टग्स्टन के बोराइड हैं।

(७) धाबो$_6$ (MB_6) श्रेणी, जिसमे धातु और बोरॉन का अनुपात १:६ है। इसके अंतर्गत कैल्सियम, बेरियम, स्ट्राशियम, ईट्रियम तथा लैंथेनम के बोराइड और अन्य विरल मृदा तत्व तथा थोरियम बोराइड है। ये बोराइड सबसे कठोर और कम धातुगुण के होते हैं।

(८) धाबो$_{12}$ (MB_{12}) श्रेणी, जिसके अतर्गत यूरेनियम बोराइड है।

बोराइड बड़े उपयोगी पदार्थ है। कैल्सियम बोराइड इस्पात उद्योग मे काम आता है। बोराइड की कठोरता का उपयोग खराद उपकरणों मे बहुत होता है। मैग्नीशियम बोराइड, बोरॉन हाइड्राइड या बोरॉन के निर्माण मे उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त बेरीलियम, ऐल्यूमिनियम, सीरियम, लौह, निकल तथा मैंगनीज़ बोराइड भी तनु अम्लो से क्रिया कर बोरॉन मुक्त करते हैं। [र० चं० क०]

बोरॉन (Boron) आवर्त सारणी के तृतीय समूह का प्रथम तत्व है। इसके दो स्थिर समस्थानिक ज्ञात है, जिनकी द्रव्यमान सख्या १० और ११ है। इसका एक रेडियोऐक्टिव समस्थानिक (द्रव्यमान सख्या १२) कृत्रिम विधियो से निर्मित हुआ है।

प्राचीन काल से बोरॉन के एक यौगिक का उपयोग होता आया है। लगभग २,५०० वर्ष पूर्व लिखी सुश्रुतसहिता मे टंकण क्षार, अथवा सुहागा, का उल्लेख आया है, जिसके अनेक उपयोग औषधि मे बताए गए हैं। इसको धातुकर्म मे भी प्रयुक्त किया जाता था। बोरॉन तत्व का उत्पादन सर्वप्रथम सन् १८०८ मे गेलुसेक एवं थेनार्ड ने किया। उसी वर्ष डेवी ने भी इस धातु का उत्पादन किया तथा बोरॉन नाम प्रस्तावित किया।

बोरॉन सक्रिय तत्व होने के कारण असयुक्त अवस्था मे नही पाया जाता, परंतु अनेक ऑक्सीजन यौगिको के रूप मे पाया जाता है। बोरैक्स, अथवा सुहागा, सो$_2$ बो$_4$ औ$_7$, १० हा$_2$औ ($Na_2B_4O_7 \cdot 10H_2O$), इसका प्रमुख यौगिक है, जिसका सबसे बड़ा स्रोत

अमरीका का कैलिफॉर्निया प्रदेश है। बोरैक्स पहले भारत में तिब्बत प्रदेश से आता था, परंतु अब पूर्वी कश्मीर में भी इसका स्रोत ज्ञात है। इसके अतिरिक्त केरनाइट (Kernite), सो$_2$बो$_4$ओ$_7$, ४ हा$_2$ओ ($Na_2B_4O_7 \cdot 4H_2O$), भी इसका आवश्यक स्रोत है।

गेलुसैक ने बोरान ऑक्साइड, बो$_2$ ओ$_3$ (B_2O_3), का पोटैशियम द्वारा अपचयन कर बोरॉन तत्व प्राप्त किया था। पोटैशियम बोरोफ्लोराइड के सोडियम द्वारा अपचयन से भी बोरॉन को तैयार कर सकते हैं। कुछ क्रियाओं मे बोरॉन क्लोराइड अथवा ब्रोमाइड का हाइड्रोजन द्वारा अपचयन करते हैं। इसमे हाइड्रोजन को उत्तेजित करने के लिये विद्युच्चाप की आवश्यकता पडती है।

औद्योगिक मात्रा मे बोरॉन तैयार करने की विधि इस प्रकार है : बोरॉन ऑक्साइड, मैग्नीशियम ऑक्साइड और मैग्नीशियम फ्लोराइड के संमिश्रण को लेकर उसके मध्य दिष्ट (direct) विद्युद्धारा प्रवाहित करते है। इस क्रिया का ताप १,१००° सें० रहता है, जिससे सारा समिश्रण सगलित अवस्था मे रहे। इस प्रकार शुद्ध बोरॉन प्राप्त होता है।

गुणधर्म — शुद्ध बोरॉन का रग, चूर्ण अवस्था मे, काला रहता है, परतु क्रिस्टलीय बोरान चमकदार पारदर्शी पदार्थ है तथा हीरे की भाँति कठोर होता है। इसके कुछ भौतिक गुणधर्म निम्नांकित है

संकेत बो (B), परमाणुसख्या ५, परमाणुभार १०.८२, गलनांक २,३०० सें०, क्वथनांक २,५५०° से०, घनत्व २.४५ ग्राम प्रति घन सेंमी०, विद्युत्प्रतिरोधकता १०^{8}×१० ओम सेमी० (०° सें० पर) तथा आयनीकरण विभव ८.२९६ इवो०। धातुओ के विपरीत, बोरॉन की विद्युत्प्रतिरोधकता उच्च ताप पर शीघ्रता से घटती है।

बोरॉन और सिलिकन के गुणो मे बहुत समानता है, यद्यपि दोनो आवर्तसारणी के विभिन्न समूहो मे हैं। इस समानता को वर्णीय सममिति (diagonal symmetry) कहेगे। सामान्य ताप पर बोरोन प्राय अप्रभावित रहता है। साद्र नाइट्रिक अम्ल चूर्ण बोरान को मध्यम गति से बोरिक अम्ल मे परिवर्तित करता है। फ्लोरीन बोरॉन से सामान्य ताप पर क्रिया करता है, फ्लोरीन ४००° से० पर और ब्रोमीन ७००° से० पर। उच्च ताप (लगभग ७००° से०) पर, बोरॉन ऑक्सीजन मे तीव्र वेग से जलता है। ६००° से० पर यह जलवाष्प से क्रिया कर बोरॉन ऑक्साइड और गधक के साथ बोरॉन सल्फाइड बनाता है। विद्युच्चाप के मध्य बोरॉन कार्बन से मिलकर बोरॉन कार्बाइड, बो$_6$ का (B_6C), बनाता है, जो अत्यत कठोर पदार्थ है। अत्यत उच्च ताप पर बोरॉन और नाइट्रोजन से अभिक्रिया द्वारा बोरॉन नाइट्राइड, बोना (BN), बनता है। बोरॉन नाइट्राइड के क्रिस्टल हीरे से भी कठोर होते हैं। इस प्रकार अब हीरे से भी कठोर पदार्थ कृत्रिम विधि से बनाया जा चुका है।

बोरॉन मे अधातु गुण विशेष है परतु इसके कुछ धातुगुणवाले यौगिक भी ज्ञात है, जैसे बोरॉन बाइसल्फेट, बो(हागंओ$_4$)$_3$ [$B(HSO_4)_3$] और बोरॉन फॉस्फेट, बो फा ओ$_4$ (BPO_4)। बोरॉन के हैलोजन तत्वो के साथ निर्मित यौगिको के गुणविशेष हैं। ये यौगिक शीघ्र जलविश्लेषित होते हैं। यद्यपि इन यौगिको मे बोरॉन तीन संयोजकता प्रदर्शित करता है तथापि उसमे चार सह सयोजकता (covalency) की प्रवृत्ति रहती है, जैसे बोफ्लो$_4^-$ (BF_4^-) आयन का निर्माण।

बोरॉन के अनेक कार्बनिक व्युत्पन्न भी बनाए गए हैं, जो ग्रियनार्ड अभिकर्मक की परपरा के है।

बोरॉन के हाइड्राइड — मैग्नीशियम बोराइड हाइड्रक्लोरिक अम्ल, हाक्लो (H Cl), मे प्रक्रिया कर बोरॉन हाइड्राइड मुक्त करता है। बोरॉन के अनेक हाइड्राइड ज्ञात हैं।

बोरॉन यौगिको के सरचनात्मक सूत्र बनाने मे कठिनाई ज्ञात हुई, क्योकि बोरॉन परमाणु मे केवल तीन सयोजकता इलेक्ट्रॉन है, जिनसे चार रासायनिक बंध बनना आवश्यक था। लुइस की सयोजकता के इलेक्ट्रॉनीय सिद्धात के अनुसार इनकी सतोषजनक सरचनाएँ नही बन सकती थी, परतु अब क्वांटम यांत्रिकी पर आधारित सिद्धात द्वारा इनकी सरचना की पहेली सुलझ गई है। इसके अनुसार दो इलेक्ट्रॉन युग्म दो परमाणुओ की अपेक्षा अधिक परमाणुओ के बीच मे भागीदार हो सकते हैं। [र० च० क०]

बोरिक अम्ल हा$_3$बोओ$_3$ (Boric Acid, H_3BO_3) पृथ्वी मे सभी जगह एव जीवशरीर मे न्यून मात्रा मे उपस्थित रहता है। अनेक खनिज जलो मे यह अधिक मात्रा मे विलीन रहता है। होमबर्ग ने १७०२ ई० मे सर्वप्रथम इसे सुहागे पर सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया द्वारा निर्मित किया।

ज्वालामुखी जलों, या गरम स्रोतो, के जल के वाष्पीकरण से बोरिक अम्ल प्राप्त हो सकता है, पर आजकल इसे गरम साद्र बोरैक्स के विलयन पर साद्र सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त किया जाता है :

बोरैक्स + सल्फ्यूरिक अम्ल + ५ जल = ४ बोरिक अम्ल + सोडियम सल्फेट

$$[Na_2B_4O_7 + H_2SO_4 + 5H_2O = 4B(OH)_3 + Na_2SO_4]$$

न्यून ताप पर बोरिक अम्ल की विलेयता बहुत कम है। इस कारण विलयन को ठढा करने पर बोरिक अम्ल के श्वेत क्रिस्टल निकल आते है।

गुणधर्म — बोरिक अम्ल श्वेत पट्टिकाओ मे क्रिस्टलीकृत होता है, जो छूने पर कोमल और साबुन जैसी ज्ञात होती है। इसकी ०° से० ताप पर जलविलेयता २.६ प्रति शत, २५° से० पर ६.२७ प्रति शत और १०७° सें० पर ३७ प्रति शत है।

१००° से० ताप पर बोरिक अम्ल अनार्द्र होकर मेटाबोरिक अम्ल बनता है

$$\text{बोरिक अम्ल} \xrightarrow{१०० \text{ से०}} \text{मेटाबोरिक अम्ल} + \text{जल}$$

$$[H_3BO_3 \xrightarrow{100° C} HBO_2 + H_2O]$$
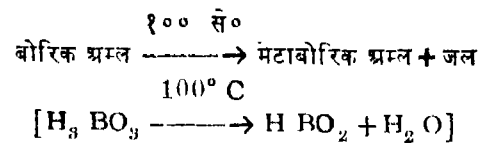
अधिक उच्च ताप पर बोरॉन ऑक्साइड बन जाता है। बोरिक अम्ल एक दुर्बल अम्ल है और केवल एकक्षारकी (monobasic) अम्ल की प्रतिक्रियाएँ देता है। ऐसा अनुमान है कि बोरिक अम्ल जलविलयन में जलयोजित (hydrated) रूप में रहता है, जिसके फलस्वरूप केवल एक हाइड्रोजन आयन या प्रोटॉन मुक्त होता है।

बो (औ हा)$_3$ + हा$_2$ औ = बो (औ हा)$_4^-$ + हा$^+$
$$[B(OH)_3 + H_2O = B(OH)_4^- + H^+]$$
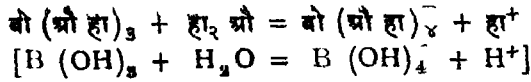
बोरिक अम्ल की दुर्बलता के कारण उसका क्षार के साथ अनुमापन (titration) नही हो सकता, परंतु उसके विलयन में ग्लिसरीन या मैनीटॉल डालने से उसके अम्लीय गुण में वृद्धि हो जाती है, और तब उसका क्षार विलयन के साथ अनुमापन हो सकता है। सामान्य बोरिक अम्ल के गुण स्थिर नही होते, परंतु मेटाबोरिक, सोबोऔ$_2$ ($NaBO_2$) तथा अन्य अतर्वर्ती (intermediate) बोरिक अम्लो के लवण ज्ञात है। इनमे बोरैक्स या सुहागा, सो$_2$बो$_4$औ$_7$, १०हा$_2$औ ($Na_2B_4O_7$, $10H_2O$), अत्यत उपयोगी लवण है। यह टेट्राबोरिक अम्ल, हा$_2$बो$_4$औ$_7$ ($H_2B_4O_7$) का लवण है, जो स्वयं असयुक्त अवस्था मे प्राप्त नही होता। जलविलयन मे जलअपघटन (hydrolysis) के कारण इसमे क्षारगुण प्रधान हो जाता है, जिससे पीएच (pH) लगभग ९ रहता है। इस कारण बोरैक्स का विलयन उभय प्रतिरोधी (buffer) के रूप मे उपयोग मे आता है।

बोरिक अम्ल के अनेक कार्बनिक व्युत्पन्न ज्ञात हैं, जिनके द्वारा बोरॉन के कार्बनिक परपरा के यौगिक प्राप्त हो सकते हैं।

उपयोग — बोरिक अम्ल जीवाणुनाशक पदार्थ है और चिकित्सा मे काम आता है। यह खाद्य पदार्थों मे जीवाणुओं की रोकथाम कर सकता है, परतु स्वय इसमे कुछ विषैले गुण होने के कारण इसके खाद्य सबधी उपयोगो पर रोक लगा दी गई है। लकडी पर चमक तथा कपडो के ज्वाला प्रतिरोधी बनाने के यह काम आता है। इसको निकल के विद्युल्लेपन (electroplating) कार्य के विलयन मे भी डालते है। इसका उपयोग ऊष्मा प्रतिरोधी काच बनाने मे हो रहा है। चीनी मिट्टी के बरतनो मे चमक लाने के लिये बोरिक अम्ल तथा बोरेट यौगिको का पुरातन काल से उपयोग होता आया है। बोरॉन सर्वदा मिट्टी मे सूक्ष्म मात्रा मे उपस्थित रहता है। यह पौधो की वृद्धि के लिये आवश्यक तत्व है। जिस भूमि मे बोरान की मात्रा कम हो गई हो, उसमे बोरिक अम्ल डालने से पौधो की समुचित वृद्धि होती है। बोरिक अम्ल हल्दी से क्रिया कर तीव्र लाल रंग देता है, जो इसके विश्लेषण के लिये उपयोगी है। [र० चं० क०]

बोर्नियो (Borneo) स्थिति ७° ०' से ४° २०' द० अ० तथा १०८° ५३' से ११९° २२' पू० दे०। प्रशात महासागर मे स्थित पूर्वी द्वीपसमूह का, विषुवत् रेखा के दोनो ओर स्थित एवं विश्व का तीसरा सबसे बड़ा द्वीप है। यह उत्तर मे दक्षिणी चीन सागर, पूर्व उत्तर मे सेलेबीज सागर, दक्षिण मे जावा सागर एव दक्षिण-पश्चिम मे कारिमाटा जलडमरूमध्य से घिरा है। यह ८८५ मील लबा तथा ६०० मील चौड़ा है। यहाँ के पर्वतो की ऊँचाई लगभग ६,००० फुट तक है। उत्तरी बोर्नियो मे किनिबालू चोटी १३,४५५ फुट ऊँची है। दक्षिण-पूर्वी मानसून हवाओ मे स्थित होने के कारण १०० इंच से २०० इच तक वर्षा होती है। यहाँ की जलवायु गरम तथा नम है। औसत ताप २७° सें० रहता है। निचले भागों मे दलदल तथा पहाड़ी भागो मे बन हैं। कापुआस, सेरोजान, कटिगन, बारीटो, मोहकम, काजान तथा राजन आदि प्रमुख नदियाँ बहती हैं। यह राजनीतिक दृष्टि से चार भागों मे बँटा है :

१. सारावाक — मलेशिया के अंतर्गत बोर्नियो द्वीप का उत्तरी भाग है। इसका क्षेत्रफल लगभग ४८,२५० वर्ग मील तथा सागरतट ४५० मील लंबा है। इसमे कई नाव्य नदियाँ बहती है। इसकी जनसख्या ७,९९,०३४ (१९६१) है। यहाँ का प्रमुख नगर एवं राजधानी कुचिंग (जनसख्या ५०,६७९) है जो सारावाक नदी के किनारे, सागर से १८ मील अदर की ओर स्थित है। रेजेंग नदी के ८० मील ऊपर स्थित मिरी (१३,५००) भी एक प्रमुख नगर है। कृषि में धान, साबूदाना तथा काली मिर्च का उत्पादन किया जाता है। रबर, लकडी तथा तेल का बड़ी मात्रा मे उत्पादन एव निर्यात किया जाता है। खनिजो मे सोना, बॉक्साइट मिलता है तथा कोयले के भंडार का भी पता चला है। यातायात के साधनों की विशेष उन्नति नही हुई है। रेले बिल्कुल नही हैं। सड़के ही यातायात का साधन हैं।

२. ब्रूनेई — यह सारावाक के मलेशियन प्रांत तथा द्वीप के उत्तरी तट के मध्य मे स्थित है। इसका क्षेत्रफल लगभग २,२२६ वर्ग मील एवं सागरतट १०० मील लबा है। इसकी जनसंख्या ९०,००० (१९६२) है। ब्रूनेई (जनसख्या ११,०००) यहाँ की राजधानी है जो ब्रूनेई नदी से नौ मील ऊपर स्थित है। यहाँ की जलवायु उष्ण कटिबधीय है जिसपर समुद्र का प्रभाव भी पडता है। रातें ठडी होती हैं। यहाँ की भाषा मलय तथा अंग्रेजी है। शिक्षा का काफी प्रसार है। यहाँ का प्रमुख उद्योग खनिज तेल पर आधारित है जिसमे ३/४ जनसख्या लगी हुई है। घरेलू तौर पर नावें बनाना, कपडे बुनना पीतल, चाँदी के सामान बनाना प्रमुख है। लकडी का निर्यात किया जाता है। उपजो मे रबर, धान, जेलूटोंग (Jelutong) तथा साबूदाना प्रमुख हैं। पेट्रोलियम अधिकाशत. सागर के किनारे मिलता है। लूटॉन्ग मे तेल शोधन होता है। यातायात मे सडक मार्ग, हवाई मार्ग एवं जल मार्ग प्रमुख हैं।

३. कालीमेंटन (या हिंदेशियाई बोर्नियो) — यह द्वीप के दक्षिणी भाग मे स्थित है तथा हिंदेशिया के अतर्गत आता है। इसका क्षेत्रफल २,०८,३०० वर्ग मील तथा जनसख्या ४१,०१,००० (१९६२) है। इसमें समूचे द्वीप का २/३ से अधिक भाग है। यह पर्वतीय भाग है। इसके दक्षिणी भाग मे अनेक नौगम्य नदियाँ बहती हैं। इस भाग की जलवायु मुख्यतया भूमध्यरेखीय है जो गरम एव नम रहती है। ऊंचे भागो मे रात मे ठढक रहती है। मैदानों मे ताप २०° से ० तक रहता है। अधिकाश भागो मे सदाबहार जंगल पाए जाते है। इन जगलो मे हाथी, हरिण, गैंडा एव जगली साँड रहते है। कृषि मे धान, मक्का, कसावा एवं ककबर आदि प्रमुख है। कृषि मे धीरे धीरे उन्नति की जा रही है। तंबाकू, रबर, कहवा तथा नारियल भी उत्पन्न किए जाते है। खनिज पदार्थों मे पेट्रोलियम, सोना, हीरा तथा कोयला प्रमुख हैं। इस भाग मे आदिवासी अधिक निवास करते है। अभी तक यह एक अविकसित भाग है। [श्रीना० सि०]

४. उत्तरी बोर्नियो—देखें, नॉर्थ बोर्नियो।

बोलत्सानो (Bolzano) १ प्रात, स्थिति ४६° ३०' उ० अ० तथा ११° २०' पू० दे०। यह उत्तरी इटली का एक प्रात है। इसका क्षेत्रफल २,७३५ वर्ग मील है। यह प्रदेश पहाडी तथा जगलो से घिरा

हुआ है। यहाँ अनेक खनिज पाए जाते हैं जिनमें लोहा, एल्यूमिनियम और एँटीमनी प्रमुख हैं।

२. नगर, स्थिति : ४६° ३०' उ० अ० तथा ११° २०' पू० दे०। यह बोलत्सानो प्रदेश की राजधानी है जो इसार्को (Isarco) और एडिजे (Adige) नदियों के संगम पर, सागरतल से ८६५ फुट की ऊँचाई पर पर्वतों से घिरे रमणीक स्थल पर बसा है। जर्मनी से इटली आनेवाले ब्रेनर मार्ग पर स्थित होने के कारण यह व्यापार के लिये बहुत महत्व का नगर बन गया है। इसकी जनसंख्या ७६,६०० (१९६१) है। [वि० मु०]

बोलपुर स्थिति २३° ४०' उ०अ० तथा ८७° ४२' पू० दे०। भारत मे पश्चिमी बंगाल राज्य के बीरभूम जिले मे, हावड़ा से ९९ मील उत्तर-पश्चिम की ओर एक नगर है। इसकी जनसख्या २३,३५५ (१९६१) है। सन् १९२१ मे श्री रवींद्रनाथ ठाकुर ने एक ग्रामविद्यालय की स्थापना के लिये इस स्थान को चुना था जिसके फलस्वरूप शांतिनिकेतन की स्थापना हुई और वृक्षो की छाया मे शिक्षण कार्य प्रारंभ हुआ जो आज भी बहुत कुछ वैसा ही होता है, यद्यपि प्रयोगशालाओ के लिये अब इमारते बन गई है। यहाँ बडी बडी इमारतें नही है। स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद यह सस्था विश्वभारती विश्वविद्यालय के रूप मे विकसित हुई जहाँ ग्रामोद्योग, चित्रकला, मूर्तिकला, गायन, नृत्य-कला एव विभिन्न भारतीय भाषाओ के अतिरिक्त चीनी, जापानी जर्मन, फ्रासीसी आदि विदेशी भाषाओ के अध्ययन की विशेष व्यवस्था है। इस विश्वविद्यालय के कुलपति रवींद्रनाथ ठाकुर, जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री यथासमय रह चुके है। इस सस्था मे भारत के विभिन्न भागो से ही नही वरन् विदेशो से भी शिक्षार्थी एकत्र होते हैं और अपने ज्ञान की वृद्धि करते हैं। [रा० स० ख०]

बोलशेविक पार्टी रूसी सोशल डेमाक्रेटिक लेबर पार्टी का वह पक्ष बोलशेविक पार्टी कहलाया, जो दूसरे पक्ष से अपेक्षाकृत अधिक उग्र था और बुर्जुआवर्ग के विरुद्ध सीधी क्रांति मे विश्वास रखता था। १८९८ मे नौ मार्क्सवादियो ने मिस्क मे रूसी सोशल डेमॉक्रेटिक पार्टी की स्थापना की थी। वस्तुत. रूस में मार्क्सवादी आदोलन की शृखला 'श्रमिक-मुक्ति-सघर्ष संघ' (यूनिअन फॉर द स्ट्रगल फॉर इमैंसिपेशन ऑव लेबर) की स्थापना के साथ १८८३ मे आरभ हो गई थी। इस संगठन का प्राथमिक लक्ष्य औद्योगिक श्रमिको मे मार्क्स और एंजेल्स के दर्शन का प्रचार करना था। १८९० के पश्चात् रूस के प्राय सभी मुख्य औद्योगिक केद्रो—मास्को, कीएव और एकातिरीनो-स्लाव—मे इस क्रातिकारी आंदोलन की जडे गहराई से पैठ गई। शुरू से ही इस आदोलन को सुधारवादी अर्थशास्त्रियो और ऐसे पक्षो से संघर्ष करना पडा जो (१) श्रमिक आंदोलन को आर्थिक समाधान तक ही सीमित रखना चाहते थे और (२) तत्कालीन उदारवादी बुर्जुआ आदोलन से समझौता कर लेना चाहते थे।

२०वी सदी के आरंभ मे निकोलाई लेनिन, जो सोशल डिमॉ-क्रेटिक लेबर पार्टी का सर्वाधिक प्रभावशाली नेता था, पार्टी के मुखपत्र इस्क्रा (चिनगारी) का प्रधान संपादक था। पार्टी के द्वितीय अधिवेशन (ब्रूसेल्स और लंदन, जुलाई-अगस्त, १९०३) में सदस्यों में फूट पड़ गई और उसके दो भाग. बोलशिस्त्वो बहुमत और मेन्शिस्त्वो (अल्पमत) हो गए। बाद मे दोनों बोलशेविक और मेनशेविक कहलाए, जिनका नेतृत्व क्रमश: लेनिन और मार्तोव कर रहे थे। इस समय ट्राट्स्की बडे ढीले ढाले तरीके से मेनशेविकों से जुडा हुआ था। १९०३ की फूट नीति के प्रश्न पर नही, अपितु सगठन के प्रश्न पर हुई थी। बाद मे दोनो के बीच प्रक्रियात्मक मतभेद भी पनपे। फिर भी, फूट के बावजूद दोनों पक्ष सोशल डेमॉ-क्रेटिक लेबर पार्टी के अधिवेशनों मे भाग लेते रहे। पार्टी के प्राग अधिवेशन (१९१८) मे बोलशेविको ने एक निर्णयात्मक कदम उठाकर मेनशेविकों को पार्टी से निकाल दिया। बोलशेविको ने बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध सीधे संघर्ष और सर्वहारा के अधिनायकवाद का नारा दिया था। दूसरी ओर मेनशेविक क्रमिक परिवर्तन और संसदीय तथा सवैधानिक पद्धतियो द्वारा जार की एकशाही समाप्त करने के पक्षपाती थे। मार्च, १९१७ मे बोलशेविक पर्टी ने अपना संघर्ष छेडने की अतिम घोषणा कर दी। सपूर्ण क्राति (नवबर, १९१७) के बाद बोल-शेविक पार्टी का नाम कम्युनिस्ट पार्टी हो गया और उसके बाद के रूस का इतिहास ही पार्टी का इतिहास है।

भारत मे बोलशेविक पार्टी की स्थापना वर्तमान शती के पाँचवे दशक मे कुछ मार्क्सवादी-लेनिनवादी तत्वो ने की थी। इसके सस्थापक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से विलग होनेवाले लोग थे। सहकारी खेती, पूर्ण नागरिक आजादी, मुफ्त शिक्षा, विदेशी पूँजी की जब्ती, बुनियादी उद्योगो — बैंक और बीमा—का राष्ट्रीयकरण, समाजवादी देशो से विशेष संबंध और व्यापार, भारत पाक एकता और राष्ट्रमडल से सबंध विच्छेद पार्टी की नीति के अग है। पार्टी आरभ से बगाल मे ही सीमित रही और अब तो इसका अस्तित्व केवल कलकत्ता नगर मे ही सिमटकर रह गया है। [ना० त्रि०]

बोलिवार १ विभाग, कोलंबिया का एक विभाग है जिसका क्षेत्रफल १३,९४८ वर्ग मील तथा जनसंख्या ८,२६,००० (अनुमानित १९६४) है। यह कैरिबीएन सागर के किनारे स्थित है। जलवायु गरम तथा आर्द्र है। इसकी राजधानी कार्टजीना (१,९७,०००) यहाँ का प्रमुख व्यापारिक नगर है।

२. राज्य, स्थिति . ८° ५' उ० अ० तथा ६३° ३०' प० दे०। यह वेनिज्वीला का एक आतरिक राज्य है। इसका क्षेत्रफल ९१,८९२ वर्ग मील तथा जनसंख्या २,५४,६१० (अनुमानित १९६४) है। यह ओरिनोको नदी के किनारे स्थित है। इसकी राजधानी स्यूदाद बोलीवार (Cuidad Bolivar) है जो ओरिनोको नदी के मुहाने से २८० मील ऊपर स्थित है। लकडी, खनिज तथा खाले प्रमुख उत्पादन हैं। कैरोनी नदी पर जलविद्युत् बनाई जाती है।

३ प्रात, इसी नाम का एक प्रात एक्वाडॉर मे है। इसका क्षेत्रफल १,१५९ वर्ग मील तथा जनसंख्या, १,४७,४०० (१९६०) है। यह अर्धविकसित वनाच्छादित प्रदेश है। इसकी राजधानी ग्वाराडा है। [पु० क०]

बोलिविया स्थिति : १७° ६' द० अ० तथा ६४° ०' प० दे०। यह दक्षिणी अमरीका का एक अंतरस्थलीय प्रजातंत्र है। इसका क्षेत्रफल ४,२४,१६० वर्ग मील तथा जनसंख्या ३५,०९,००० (१९६१) है। इसके पश्चिम मे चिली एवं पेरू, उत्तर एवं पूर्व मे ब्राज़िल तथा दक्षिण

बोरिक अम्ल (देखें पृष्ठ ३७८)

बोरिक अम्ल का कारखाना

बिल्ली (देखे पृष्ठ २९२)

वन बिलाव
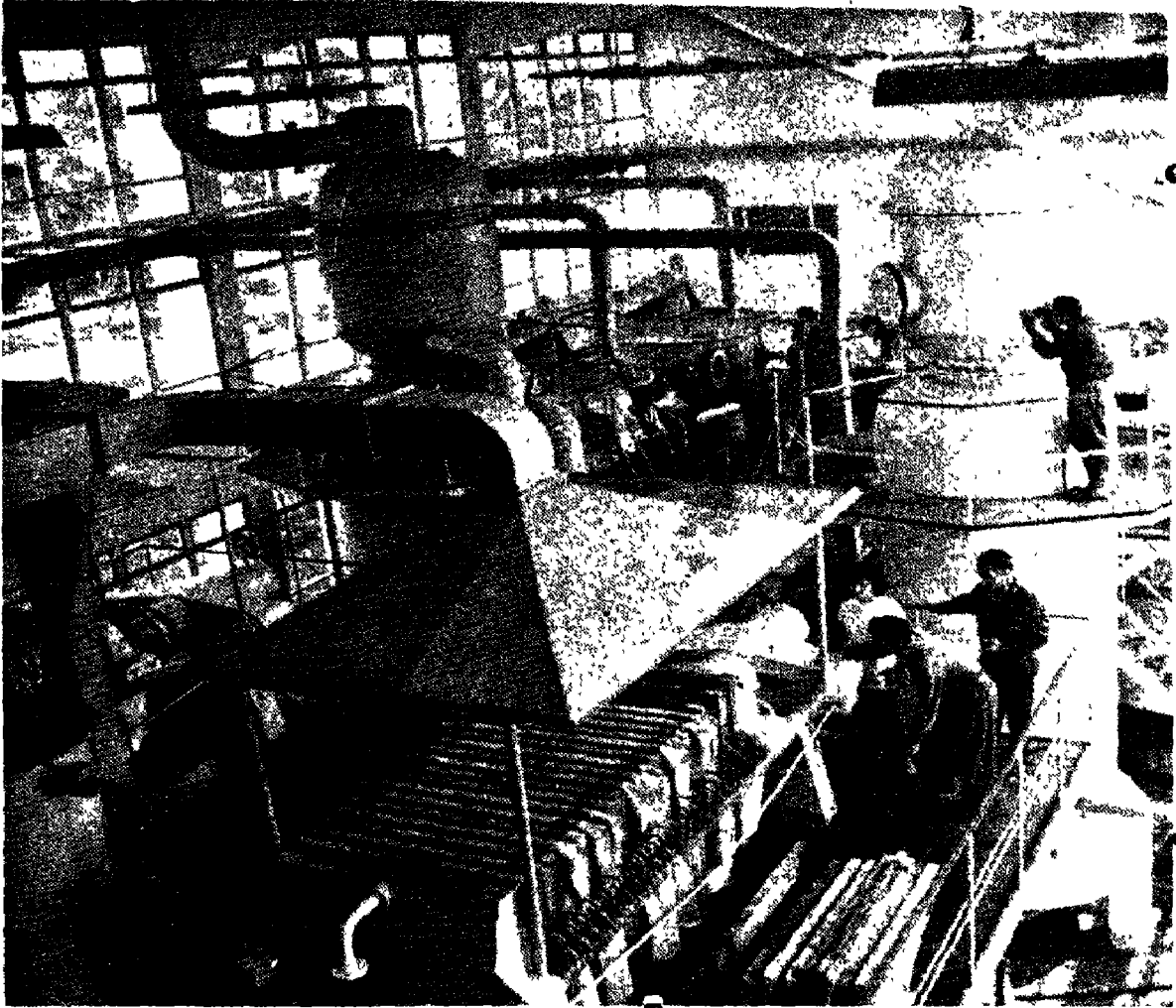
बोलपुर (पृष्ठ ३८०)
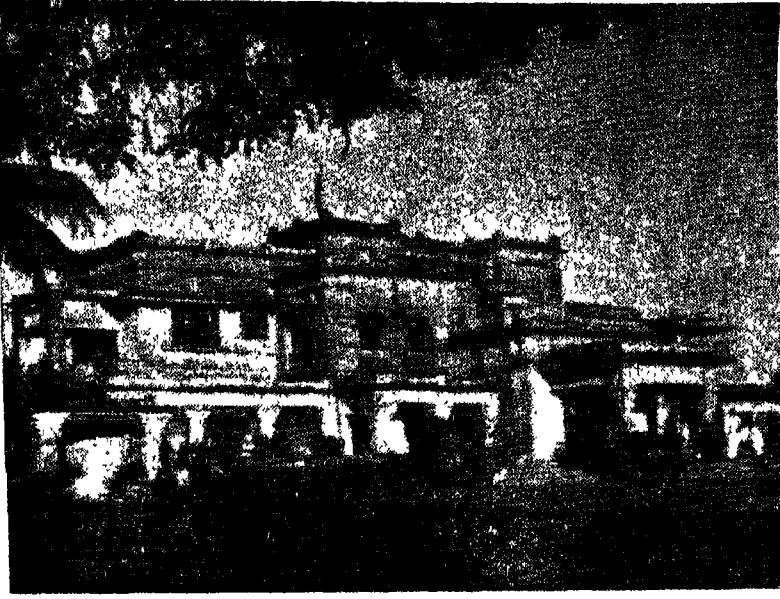
ऊपर से नीचे :

उत्तरायण, शांतिनिकेतन;

शांतिनतोल, शांतिनिकेतन;

प्रारंभिक शिक्षण, शांतिनिकेतन

[फोटो सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, पश्चिमी बंग राज्य सरकार, कलकत्ता ।]

में पैराग्वे एवं अर्जेंटीना देश स्थित हैं। इसका एक तिहाई भाग पर्वतीय तथा दो तिहाई भाग मैदानी है। इसके पश्चिमी भाग में पश्चिमी और पूर्वी कार्दियेरा पर्वत हैं। इन दोनों के बीच के पठार पर सागरतल से १२,५०७ फुट की ऊँचाई पर टिटिकाका झील तथा १२,१२० फुट की ऊँचाई पर पोग्रोपो झील है। वर्षा का औसत ३० से ५० इंच है तथा औसत ताप २५° सें० रहता है। वैसे यहाँ की जलवायु ऊँचाई के द्वारा प्रभावित है। उच्च पठारी प्यूना प्रदेश मे वनस्पति की कमी है एवं निचले भागों मे उष्ण कटिबंधीय वन हैं। ऊँचे प्यूना प्रदेश मे ग्वानाको, अल्पाका, लामा तथा विकूना आदि पशु मिलते हैं।

बोलिविया के पहाडी भाग मे खनिज अधिक मिलते है। पोटोसी और ओरूरो क्षेत्र में संसार की १५% टिन मिलती है। ताँबा, सीसा, जस्ता, ऐंटीमनी तथा टंगस्टन भी निकाला जाता है। पूर्व की ओर पेट्रोलियम का महत्व बढ़ रहा है। कृषि मे मक्का, गेहूँ, जौ, धान, तथा आलू की कृषि की जाती है। पूर्वी प्रात मे कोकोआ, गन्ना, कपास तथा कहवा आदि उगाया जाता है। यहाँ का प्रधान धर्म रोमन कैथलिक तथा भाषा स्पेनिश है। सात से १४ वर्ष की उम्र तक के बालकों की शिक्षा मुफ्त तथा अनिवार्य है। उद्योगों में चमड़े का काम, सीमेंट, काच, लकडी, फर्नीचर संबंधी कार्य होते हैं तथा भवननिर्माण संबंधी वस्तुएँ बनती हैं। रेलों, सडकों की भी व्यवस्था है तथा डाक व्यवस्था भी उत्तम है। हवाई यातायात द्वारा सयुक्त राज्य आदि देशों से जुडा है। प्रशासकीय दृष्टि से यह नौ विभागो मे विभक्त है। ला पास (जनसख्या ३,४७,३९४) यहाँ का प्रसिद्ध नगर तथा राजधानी है। अन्य प्रमुख नगरो मे सूके, कोचाबाबा, ओरूरो, सेंटाक्रूज़, पोटोसी, टारीहा, ट्रिनिडैड तथा कोबिजा है। [आ० स्व० जौ०]

बोली विज्ञान (Dialectology) भाषाविज्ञान की एक शाखा जो बोलियो को भौगोलिक वितरण और व्याकरण की दृष्टि से अपने अध्ययन का लक्ष्य बनाती है। भौगोलिक वितरण पर विचार करते हुए सामाजिक वर्गों, जातीय स्तरो, व्यावसायिक वैविध्यों और धार्मिक, सास्कृतिक विशेषताओ का भी ध्यान रखा जाता है। व्याकरणिक शब्द आधुनिक शब्दावली के अनुसार ध्वनि : ध्वनिग्राम (Phone : Phoneme), पद . पदग्राम (Morph Morpheme) तथा वाक्यस्तर के सभी भाषीय रूपों का प्रतिनिधि है। इन सब के अतिरिक्त बोली विज्ञान का एक लक्ष्य और भी है जिसे कोशविज्ञान (lexicology) का अंग माना जाता है। इसमे विभिन्न बोलियों के शब्दों को ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन (Phonetic Transcription) मे संगृहीत कर उनकी सकेतसीमा (Referent Range) स्पष्ट की जाती है।

भाषा और बोली के बीच की भेदकरेखा 'परस्पर बोधगम्यता' के अनुसार निर्धारित की जाती है। इस बोधगम्यता के चार स्तर होते है — (१) पूर्ण बोधगम्यता, (२) अपूर्ण बोधगम्यता, (३) आशिक बोधगम्यता, (४) शून्य बोधगम्यता। बोधगम्यता के इन्हीं स्तरों के आधार पर व्यक्तिबोली, उपबोली, बोली तथा भाषा की पृथक् कोटियाँ वर्गीकृत होती है। पूर्ण बोधगम्यता एक बोली क्षेत्र के रहनेवाले व्यक्तियों की प्राय: समान वाक्प्रवृत्ति का संकेत देती है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान की आधुनिकतम मान्यता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की वाक्प्रवृत्ति पूर्णतया समान नही होती। किंतु यह असमानता इतनी स्थूल नही होती कि वे एक दूसरे की बात न समझ सकें। इस प्रकार व्यक्तिगत वाक्प्रवृत्तियों का समन्वित रूप व्यक्तिबोली है और व्यक्तिबोलियों का समन्वित रूप उपबोली तथा उपबोलियों का समन्वित रूप बोली है। इसी प्रकार बोलियों की समन्वित इकाई भाषा है। उपर्युक्त धारणा से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति बोली और भाषा के बीच बोधगम्यता के ही विविध स्तर सक्रिय होते हैं। भाषा के अध्ययन मे अधिकतर उपबोली के स्तर तक विचार किया जाता है किंतु बोली के सदर्भ मे व्यक्तिबोलियो का भी महत्व होता है। भाषीय स्तर पर व्यक्तिबोली एवं उपबोली का एक युग्म होता है और बोली तथा भाषा का दूसरा। जिस प्रकार बोली और भाषा या भाषाओ के सीमावर्ती क्षेत्रो में रूपवैशिष्ट्य होते हुए भी एक दूसरे को समझना सरल होता है, उसी प्रकार या उससे भी अधिक बोधगम्यता बोली या उपबोली की सीमाओ पर होती है। सीमावर्ती क्षेत्रों मे पाई जानेवाली ऐसी बोधगम्यता के कारण ही भाषा और बोली या बोली या उपबोली के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नही खीची जा सकती।

एक भाषीय क्षेत्र मे स्थानीय भेदो के अध्ययन को ब्लूमफील्ड ने बोली भूगोल का नाम देते हुए उसे तुलनात्मक विधा की उपलब्धियों का पूरक भी कहा है। बोलियो के अध्ययन को बोली एटलस के रूप मे प्रस्तुत करना सर्वाधिक प्रचलित है। बोली क्षेत्र के ये एटलस मानचित्रो के ऐसे सकलन हैं जिनपर भाषीय रूपवैशिष्टयो को स्थानीय वितरण के आधार पर समरूप रेखाओ (Isoglosses) के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। विस्तृत रूपवैशिष्ट्यों को इन मानचित्रो पर प्रदर्शित नही किया जा सकता। केवल भेदक रूप ही प्रदर्शित किए जाते है। इसीलिये कितने ही लोग बोली व्याकरण, बोलियो का सीमानिर्धारण, कोशसकलन और तुलनात्मक, ऐतिहासिक निष्कर्षों को ही बोली विज्ञान का साध्य मानते हैं। एटलसो को भाषा भूगोल से सबद्ध मानकर उसे बोली विज्ञान से पृथक् कर देते है।

समरूप रेखाओ द्वारा विभक्त क्षेत्र तीन होते हैं :

(१) अवशेष क्षेत्र (Relic Area) ऐसे क्षेत्र जहाँ के रहनेवाले आर्थिक दृष्टि से अविकसित होते हैं और जहाँ की भौगोलिक स्थिति ऐसी हो कि आसानी से पहुँच पाना कठिन हो, उन क्षेत्रो मे प्राचीनतम रूप मिल सकते है। दूसरे लोग इन स्थानो के रूपो को प्राय: हेय मानते है।

(२) आकर्षण क्षेत्र (Focal Area) — इन क्षेत्रों मे आर्थिक या औद्योगिक दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण केंद्र होना है। यही केंद्र नए रूपो की उद्भावना का स्रोत होता है। इसीलिये समरूप रेखाओ का झुकाव भी केंद्राभिमुख होता है।

(३) सक्रमण क्षेत्र — ऐसे क्षेत्रो मे रूपो का एकविध प्रयोग नही मिलता। समरूप रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई जाती है या उनके बीच का अतर अधिक होता है।

आकर्षण क्षेत्रों के बारे मे यह कहा जा सकता है कि इनके रूप इस क्षेत्र में बहुत पहले से प्रचलित रहे होंगे और उन्होने अपने

प्रतिद्वंद्वी शब्दो को व्यवहार की स्थिति से निकालकर पूरे क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया होगा। अवशेष क्षेत्र के रूप सब से पुराने माने जाते हैं और संक्रमण क्षेत्रवाले रूप इस बात का संकेत देते हैं कि किसी व्यवहारगत पुराने रूप के ऊपर किसी नए रूप को प्राथमिकता मिल रही है।

बोलियो के ऐसे अध्ययन का सूत्रपात १९वीं शती के पहले चरण मे श्मेलर से हुआ था। १८७३ मे स्कीट ने 'इंग्लिश डायलेक्टॉलॉजी सोसाइटी' की स्थापना की और एटलस बनाने का भी प्रयास किया। १८७६ मे जार्ज वेंकर ने ४० वाक्यो की प्रश्नावली को पूरे जर्मन राज्य की ४०,००० से भी अधिक स्थानीय बोलियो मे रूपांतरित कराया। १८९६ से १९०८ के बीच एडमंड एदमॉट के सहयोग से गिलेरो ने फ्रांस का महत्वपूर्ण एटलस प्रस्तुत किया। इसी प्रकार स्वाविया और इटली के भी एटलस प्रकाशित हुए। १९३९-४३ के बीच हंस कुरैथ के निर्देशन मे अमरीका और कैनाडा के भाषीय एटलस की पहली किश्त न्यू इग्लैंड के एटलस के रूप मे प्रकाशित हुई। इधर रूस, चीन और जापान मे भी इस तरह के प्रयास हो रहे है। भारत में इस शती के पहले चरण मे किया गया ग्रियर्सन का भाषा सर्वेक्षण अपनी तरह का अकेला प्रयास है।

सं० ग्रं० — ब्लूमफील्ड लैंग्वेज चार्ल्स एफ० हाकेट ए कोर्स इन मॉडर्न लिंग्विस्टिक्स। [र० ना० श०]

बोलोन्या (Bologna) १ प्रांत, यह उत्तर मध्य इटली मे एमील्या क्षेत्र का एक प्रांत है। इसका क्षेत्रफल १,४२९ वर्ग मील है। इसके उत्तर मे पो नदी का मैदान है तथा दक्षिण मे ऐपिनाइज़ पर्वत है। इस प्रांत मे रैनो, साटेर्नो आदि नदियाँ बहती हैं। कृषि तथा पशुपालन प्रमुख उद्योग हैं। यहा की राजधानी बोलोन्या नगर है।

२ नगर, स्थिति ४४° ३०' उ० अ० तथा ११° २०' पू० दे०। बोलोन्या प्रांत का प्रमुख नगर है जो उत्तम जलवायु मे तथा उपजाऊ भूमि पर स्थित है। यह प्रमुख औद्योगिक नगर है जहाँ रेशमी कपडे तथा मखमल उद्योग अधिक होता है। यह एक ऊँची चारदीवारी से घिरा है। यहाँ अनेक महल तथा गिरजाघरों के अतिरिक्त दो झुके हुए बुर्ज है जिनमे से एक ३२० फुट ऊँचा है तथा इसका झुकाव चार फुट है। लगभग १३० पुराने गिरजाघर भी है। यहाँ का विश्वविद्यालय १२वीं शती मे स्थापित किया गया था। इसकी जनसंख्या ४,४१,१४३ (१९६१) है। [पु० क०]

बोस, सुभाषचंद्र भारतीय स्वाधीनता संग्राम के उन महारथियो मे एक हैं जिनका नाम इतिहास मे सदैव अमर रहेगा। द्वितीय विश्व-महायुद्ध के समय दक्षिण पूर्व एशिया के रणप्रांगण मे आजाद हिंद फौज का संगठन करके और 'जयहिंद' तथा 'दिल्ली चलो' के नारे बुलंद करके उन्होने अपना 'नेता जी' उपनाम सार्थक कर दिया। अपने शौर्य और संगठनशक्ति द्वारा दलित मानवता का उद्धार करनेवाली शिवाजी, वाशिंगटन, गैरीबाल्डी, कमाल अतातुर्क और ट्राट्स्की जैसी विश्व की अमर विभूतियों की कोटि मे नेता जी सुभाषचंद्र बोस का नाम सहज ही गिनाया जा सकता है। महात्मा गाधी के 'भारत छोडो' आंदोलन को नेता जी ने अपनी आजाद हिंद फौज के कार्यकलापों द्वारा बहुत शक्तिशाली बनाया, जिसका संगठन करने मे उनके इस आह्वान ने — मुझे खून दो! मैं तुम्हे आजादी दूंगा!! जादू जैसा कमाल दिखाया।

सुभाष बाबू का जन्म २३ जनवरी, १८९७ को कटक मे हुआ। उनके पिता श्री जानकीनाथ बोस कटक के प्रमुख वकील थे और माता प्रभावती देवी थी। वे अत्यंत मेधावी किंतु साथ ही उद्दंड विद्यार्थी थे। स्वदेश मे ही स्कूल और कालेज की पढाई समाप्त करके वे लंदन मे १९२० मे आइ० सी० एस० परीक्षा मे बैठे और उसमे सफल हुए। किंतु प्रशिक्षण अवधि मे ही उन्होने इस ऊँची नौकरी से इस्तीफा दे दिया। इंग्लैंड से स्वदेश वापस आकर वे सीधे महात्मा गाधी के पास गए, जिन्होने भारत मे ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध देशव्यापी असहयोग आंदोलन उसी समय प्रारंभ किया था। सुभाष बाबू उस समय २४ वर्ष के नवयुवक थे और महात्मा गाधी की पारखी राजनीतिक दृष्टि ने नवयुवक सुभाष के हृदय मे उद्दीप्त देशभक्ति की लगन को पहचान लिया। गाधी जी के आदेशानुसार सुभाष बाबू बगाल के महान् नेता देशबधु चित्तरंजनदास से मिले और पहली ही भेंट मे उनको अपना राजनीतिक गुरु मान लिया। दास बाबू भी अपने इस शिष्य से बहुत प्रभावित हुए और विनोद मे उन्हे 'यंग ओल्ड मैन' कहा करते थे।

सुभाषचंद्र बोस ने १९२१ मे कलकत्ता मे प्रिंस ऑव् वेल्स का पूर्ण बहिष्कार करने मे पहली बार अपनी संगठनशक्ति का परिचय दिया। जिस अवधि मे देशबधु चित्तरंजन दास कलकत्ता के मेयर थे, सुभाष बाबू ने नगर के निगम चीफ एक्जिक्यूटिव अफसर की हैसियत से प्रशासक शक्ति और अतिशय कार्यक्षमता का प्रशंसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। अंगरेजी सरकार ने उनकी गतिविधियो से भयभीत होकर उन्हे माडले जेल मे नजरबद कर दिया। उनपर यह आरोप लगाया गया कि वे बगाल के आतंकवादियो के प्रति सक्रिय सहानुभूति रखते है। १९२० के अंत मे शारीरिक अस्वस्थता के कारण सुभाष बाबू को बिना शर्त रिहा कर दिया गया। परंतु गिरे हुए स्वास्थ्य के बावजूद वे राजनीति मे सक्रिय भाग लेने लगे—अपना सारा समय वे युवको के संगठन और ट्रेड यूनियन आंदोलन मे देते थे।

जब १९२८ मे मोतीलाल नेहरू समिति ने देश की स्वाधीनता के संबध मे 'डोमिनियन स्टेटस' के पक्ष मे प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस ने उसका तीखा विरोध किया और इस बात पर बल दिया कि वे पूर्ण स्वतंत्रता के अतिरिक्त किसी भी स्थिति को मान लेने के पक्ष मे नही है। फलत 'इंडिपेंडेंस लीग' की स्थापना की घोषणा कर दी गई, और भारत के संविधान को पूर्ण स्वतंत्रता पर आधारित करने के लिये पूरे वेग से आंदोलन छेड दिया गया। कलकत्ता काग्रेस (१९१७) मे, जिसकी अध्यक्षता मोतीलाल नेहरू ने की थी, नेहरू कमेटी की सिफारिशो की स्वीकृति के हेतु प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव पर जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस ने मिलते जुलते संशोधन पेश किए थे। उनका लक्ष्य, भारत के लिये डोमिनियन स्टेटस के प्रस्ताव को अमान्य करना था जो सर्वदलीय संमेलन मे निर्मित संविधान मे संमिलित किया गया था। यद्यपि सुभाष बाबू इसमे तत्काल सफल नही हुए, तथापि वे, बिना निराश हुए, काग्रेस अधिवेशन के पश्चात् अपने प्रयत्नो मे लगे रहे।

कलकत्ता कांग्रेस में अंग्रेजी सरकार को दिए गए एक वर्षीय अल्टीमेटम से देश मे जोश की लहर फैल गई थी और लाहौर कांग्रेस मे, जो १६२६ मे रावी के तट पर जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे हुआ, एक प्रस्ताव पारित करके यह स्पष्ट घोषणा की गई थी कि कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य है, जिसमे ब्रिटेन से संबधविच्छेद का भी भाव संमिलित है। इस प्रकार वह अभियान, जिसमें सुभाषचंद्र बोस ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी, लाहौर मे सफल हुआ। इसके तुरत बाद इडिपेडेंस लीग विघटित कर दी गई क्योकि इसका उद्देश्य पूरा हो चुका था। इस प्रकार १६२०-१६३० की अवधि मे सुभाषचद्र बोस कांग्रेस युवक सगठन और ट्रेड यूनियन मे सुधारवादी परिवर्तन लाने का काम कर रहे थे, जिससे कांग्रेस भारतीय जनता, खेतो और कारखानों मे जूझनेवाले श्रमिको पर आधारित हो सकी। यह एक ऐसा कदम था जिसने कांग्रेस को सघर्ष-पथ पर और आगे बढाया।

गाधी जी के १६३० के सत्याग्रह ने सुभाष को घनघोर सघर्ष मे झोंक दिया। सरकार ने पहले की तरह उन्हे पुन: जेल मे बद कर दिया। उसी समय उनका स्वास्थ्य इतना खराब हो गया कि सरकार को उन्हे स्वास्थ्यलाभ करने के लिये यूरोप जाने की स्वीकृति देनी पड़ी। विदेश मे उन्होने भारत और यूरोप के बीच सास्कृतिक और राजनीतिक सबध दृढ करने की दृष्टि से अनेक यूरोपीय राजधानियो मे विचारकेद्र स्थापित किए। कांग्रेस पार्टी ने अभी तक इस प्रकार के काम की ओर ध्यान नही दिया था और सुभाष उन पहले लोगो मे थे, जिन्होने द्रुत गति से परिवर्तनशील और परस्पर आश्रित ससार मे इस तरह के प्रचार पर बल दिया।

वे अपने कुछ मित्रो के आग्रह पर कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन (१६३६) मे भाग लेने के लिये भारत लौटे, किंतु स्वदेश की धरती पर कदम रखते ही उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया। उनकी गिरफ्तारी का देशव्यापी विरोध हुआ। केंद्रीय धारासभा मे कांग्रेस पार्टी के तत्कालीन नेता श्रीभूलाभाई देसाई ने सदन मे कार्यस्थगन का प्रस्ताव रखा। उसका विरोध करते हुए सरकारी प्रवक्ता ने कहा था—सुभाष बोस जैसा तीक्ष्णबुद्धि और सगठनक्षमता का व्यक्ति किसी भी राज्य के लिये खतरनाक होगा। सुभाष बाबू जेल मे पुन बीमार पड गए, और उनका स्वास्थ्य तेजी से गिर गया। १६३७ के आम चुनाव 'गवर्नमेंट आंव इडिया ऐक्ट', १६३५ के अतर्गत हुए। इसके पश्चात् ११ राज्यो म से ७ मे कांग्रेस मत्रिमडल बनने पर सुभाष बाबू तुरत रिहा कर दिए गए। उसके बाद कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन (१६३८) मे वे सर्वसमति से अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

सुभाष बाबू अपने लक्ष्यो के लिये एक दृढसकल्प क्रातिकारी तो थे, किंतु लक्ष्यप्राप्ति की प्रक्रिया के सबध मे दुराग्रही नही थे। उनकी दृष्टि मे सफलता के लिये सगठन अनिवार्य रूप से आवश्यक था और अनुशासित एकता ही लक्ष्य तक पहुँचानेवाला मार्ग थी। किसी निश्चित समय मे किसी एक तरीके का महत्व वे आंतरिक तथा अतर्राष्ट्रीय परिस्थितियो के सदर्भ मे आंकते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान देश मे तथा देश के बाहर उनकी इस नीति और दाँव पेच का अच्छा प्रमाण मिला। हरिपुरा अधिवेशन (फरवरी, १६३८) मे उनका अध्यक्षीय भाषण कांग्रेस की समयोचित नीतियो की स्पष्टता की दृष्टि से उल्लेखनीय था, और किसी हद तक कांग्रेस के भीतर फारवर्ड ब्लाक मे अभ्युदय की ओर सकेत करता था। एक वर्ष बाद फारवर्ड ब्लाक बन भी गया।

कांग्रेस अध्यक्षो मे सुभाष पहले व्यक्ति थे, जिन्होने देश की उन्नति की योजना का ठोस प्रस्ताव प्रस्तुत किया, और कुछ महीनो के बाद ही उन्होने राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना करके अपने विचार को कार्यरूप दिया। हरिपुरा अधिवेशन मे उन्होने कहा था 'योजना आयोग के परामर्श पर राज्य उत्पादन और वितरण दोनो मे संपूर्ण कृषि और उद्योग के क्रमिक समाजीकरण का व्यापक कार्यक्रम बनाएगा।'

हरिपुरा कांग्रेस के बाद के वर्ष मे अतरराष्ट्रीय परिस्थिति बहुत ही बिगड गई। यूरोप के सपूर्ण अतरिक्ष मे युद्ध के बादल छा गए। ऐसे ही उत्तेजनाच्छन्न वातावरण मे कांग्रेस का त्रिपुरी अधिवेशन हुआ (१६३६)।

कांग्रेस के इतिहास मे प्रथम बार अध्यक्षपद के लिये खुला निर्वाचन हुआ। सुभाषचन्द्र बोस और डा० पट्टाभि सीतारामय्या इस पद के लिये प्रत्याशी थे। डा० सीतारामय्या को गाधी जी और कांग्रेस हाई कमान का समर्थन प्राप्त था। दोनो प्रत्याशियो के बीच विवाद इस प्रस्ताव पर था कि भारत के लिये सघ-शासन योजना के आधार पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद से समझौता किया जाय या नही। सुभाष ने बिगड़ती हुई अतर्राष्ट्रीय परिस्थितियो और युद्ध की निश्चितता की सभावना के सदर्भ मे इस प्रस्ताव की निंदा की थी।

सुभाष पुन निर्वाचित हो गए, परतु दुर्भाग्य से उनके निर्वाचन से पार्टी में एक सकट पैदा हो गया, जो कांग्रेस के इतिहास मे अपना सानी नही रखता। गाधी जी ने सुभाष की इस जीत को स्वय अपनी हार माना। गाधी जी की इस प्रतिक्रिया के अनुसार कार्यसमिति के सभी सदस्यो ने समिति से यह कहकर त्यागपत्र दे दिया कि वे सुभाष बाबू के कार्यक्रम और नीतियो के मार्ग मे बाधक नही बनना चाहते।

रोगशय्या पर पडे पडे उन्होने अपना अध्यक्षीय भाषण लिखा। शक्तिक्षीणता के कारण वे खुले अधिवेशन मे भाग नही ले पाए और उनका भाषण उनके बडे भाई शरत्चद्र बोस ने पढा। भाषण मे उन्होने अगले छह मास के भीतर ससार मे साम्राज्यवादी युद्ध छिड जाने की भविष्यवाणी की और कहा था कि उसी समय भारत के स्वराज्य की माँग उपस्थित करके छह महीने का तत्सबधी अल्टिमेटम अंग्रेजी सरकार को देना चाहिए। किंतु तत्कालीन कार्यसमिति ने उनके अल्टिमेटम के प्रस्ताव का विरोध किया। तीन वर्ष पश्चात् अगस्त, १६४२ मे महात्मा गाधी और उनके साथियो ने उसके महत्व को समझा।

आल इडिया कांग्रेस कमटी के कलकत्ता अधिवेशन (अप्रैल,१६३६) मे सुभाष बाबू ने कांग्रेस अध्यक्ष बने रहने की व्यर्थता समझकर त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेस को स्वतत्रता की लोक इच्छा का प्रतीक बनाने के लिये उसका लोकतत्रीकरण और पुनर्नवीकरण करने के निमित्त उन्होने मई, १६३६ मे कांग्रेस के अतर्गत फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की घोषणा की। तदनुसार जून, १६३६ मे उनके नेतृत्व मे वामपंथी एकता समिति की स्थापना हुई जिसमे कांग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी

कम्युनिस्ट पार्टी (राष्ट्रीय मोर्चा), एम० एन० राय की रेडिकल डिमोक्रेटिक पार्टी, कई ट्रेड यूनियन संगठन तथा किसान सभाएँ और नवजात फारवर्ड ब्लाक के प्रतिनिधि संमिलित थे। इस समिति के प्रथम अखिल भारतीय संमेलन में, जो बंबई मे हुआ, पूर्ण स्वतंत्रता तथा स्वतंत्रता के पश्चात् समाजवादी राज्य की स्थापना के लक्ष्य स्वीकार किए गए।

अप्रैल, १९४० में फारवर्ड ब्लाक के आह्वान पर भारत मे देशव्यापी सत्याग्रह छिड़ गया। सत्याग्रह की इस लहर से सुभाष बाबू को बड़ा ही उत्साह मिला और उसके नागपुर अधिवेशन मे फारवर्ड ब्लॉक को एक स्वतंत्र दल के रूप मे घोषित कर दिया गया। अब वह कांग्रेस के भीतर प्रगतिशील तत्वों का मंच मात्र नही था।

जुलाई, १९४० मे हालवेल स्मारक विरोधी सत्याग्रह के दौरान बंगाल सरकार ने उनको भारतरक्षा कानून के अंतर्गत गिरफ्तार किया। उन्हे उनके घर में नजरबंद कर दिया गया। जनवरी, १९४१ में वे भाग निकले, और पेशावर, काबुल तथा मास्को होते हुए बर्लिन पहुँच गए। बर्लिन मे नेता जी हिटलर से मिले और भारत की स्वाधीनता समस्या पर उससे वार्ता की। जनवरी, १९४२ में नेता जी ने जर्मनी मे 'स्वतंत्र भारत स्वयसेवक दल' की स्थापना की जिसमें अधिकतर सैनिक भारतीय युद्धबंदी थ। वे बर्लिन रेडियो से नियमित रूप से अपना भाषण प्रसारित करते थे, जिससे भारत में विशेष उत्साह की लहर फैली।

१९४२ में जब अंग्रेजी, फ्रांसीसी और डच साम्राज्यवाद पूर्वी एशिया मे जापानी ब्लित्जक्रीग के मुकाबले चूर चूर हो गया तो नेता जी को लगा जैसे उनके कूद पडने का समय आ गया। जर्मन और जापानी सेनाओं के सहयोग से वे १९४३ के आरंभ मे जर्मनी से रवाना हो गए, और हंबर्ग से पेनाग तक पनडुब्बी मे बैठकर तीन मास की कठिन यात्रा के पश्चात् वे टोकियो पहुँचे। वहाँ से २ जुलाई, १९४३ को वे सिंगापुर पहुँच गए।

दो दिन बाद ४ जुलाई को उन्हे रासबिहारी बोस ने दक्षिण पूर्व एशिया में चलाए जानेवाले भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व सौंप दिया। नेता जी ने आजाद हिंद फौज का सगठन किया। भारत की अस्थायी सरकार का गठन वहीं हुआ, जिसके वे अध्यक्ष बनाए गए। दिसबर मे अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह स्वतत्र करा लिए गए, जिनके नाम शहीद और स्वराज द्वीपसमूह रखे गए। जनवरी, १९४४ मे आजादहिंद फौज का मुख्य कार्यालय रंगून लाया गया। अपनी मातृभूमि की ओर निरतर बढ़ते हुए आजादहिंद फौज ने बर्मा की सीमा पार कर १८ मार्च, १९४४ को भारत की धरती पर पैर रखे।

सैनिकों को अपनी जन्मभूमि का दर्शन करके असीम प्रसन्नता हुई, उन्होंने प्रेमविह्वल होकर भारतमाता की मिट्टी को चूमा। वह बहादुर सेना तब कोहिमा और इंफाल की ओर बढ़ी। 'जयहिंद' और 'नेता जी जिंदाबाद' के गगनभेदी नारो के साथ स्वतंत्र भारत का झंडा वहाँ फहराया गया। किंतु हिरोशिमा और नागासाकी पर अमरीकी बमवर्षा ने जापान को हथियार डालने पर मजबूर कर दिया और आजाद हिंद फौज को पीछे हटना पड़ा।

१८ अगस्त, १९४५ को फारमोसा के ताइपेह नामक स्थान में वायुयान दुर्घटना मे नेता जी की मृत्यु का समाचार मिला। निर्भय योद्धा, कर्मवादी दार्शनिक और विलक्षण राजनीतिज्ञ नेता जी उस समय ५० वर्ष के भी नही थे। [ह० वि० का०]

बोस्टन स्थिति . ४२° २०' उ० अ० तथा ७१° ३' प० दे०। संयुक्त राज्य, अमरीका के मासाचुसेट्स राज्य की राजधानी तथा न्यूइंग्लैंड का सबसे बडा नगर है। यह न्यूयॉर्क नगर से वायुयान द्वारा १८८ मील दूर है एवं औद्योगिक, व्यावसायिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा चिकित्सा एवं शोधकार्य का केंद्र है। जनवरी का औसत ताप – १·१° सें० तथा जुलाई का औसत ताप लगभग २२° सें० तथा औसत वर्षा ३९ इंच होती है। मिस्टिक नदी शीतकाल मे हिम से मुक्त रहती है अत. बंदरगाह के लिये रास्ता खुला रहता है। यहाँ का बंदरगाह बहुत उन्नत अवस्था मे है। २२१ फुट ऊँचा बंकर हिल मोनूमेंट (Bunker Hill Monument), हिस्टोरिकल सोसायटी तथा संग्रहालय दर्शनीय हैं। यह बेंजामिन फ्रैंकलिन, पो तथा इमर्सन की जन्मभूमि है। यहाँ कई विश्वविद्यालय हैं। पूर्वी बोस्टन मे एक बड़ा अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है। इसकी जनसंख्या ६,९७,१९७ (१९६०) है। [पु० कु०]

बोहरा पश्चिम भारत की व्यापारी जातिविशेष। इस शब्द का अर्थ ही है व्यापारी या महाजन जो सभवत. सस्कृत 'व्यावहारिक' से व्युत्पन्न है। इस जाति के अधिकाश लोग, वर्तमान सहस्राब्दी की आरंभिक शताब्दियों मे, इस्माइलियों द्वारा इस्लाम धर्म मे परिवर्तित प्राय. हिंदू व्यापारियो की सतान हैं जिनमे यमनी अरबो के रक्त का मिश्रण है। वैसे इनमे से कुछ, अरब और मिस्र से आए मुसलमानो को अपना पूर्वज मानते हैं। मुस्लिम धर्मावलंबी बोहरा दो भागों मे विभक्त हैं— व्यापार करनेवाले बहुसख्यक भाग के लोग शिया है और खेतिहर अल्पसख्यक सुन्नी हैं। सन् १५३९ के पश्चात् इस्माइली बोहराओं का धर्माध्यक्ष यमन से आकर भारत मे बस गया। सन् १५८८ के पश्चात् इनमे फूट पड गई। गुजराती बोहराओ और इस्माइली बोहराओ ने भिन्न भिन्न धर्माध्यक्षो का समर्थन किया। इस प्रकार सुलेमानी और दाऊदी बोहराओ के अलग अलग केंद्र बड़ौदा और सूरत मे बने। सुन्नियों के 'काजी' के समान 'आमिल' सुलेमानी बोहरा सप्रदाय का पौरोहित्य कर्म कराते हैं। बोहरा लोग प्राय अपनी जमात तक सीमित हैं और अन्य मुस्लिम सप्रदायो से वैवाहिक संबध नही करते। दाऊदी बोहरा अली और नागोशिया दो फिरको मे बँटे हैं। नागोशिया मासभक्षण को गर्हित समझते है। सिंध, गुजरात और बंबई के मुस्लिमबहुल बोहरा जाति के अतिरिक्त उत्तरप्रदेश और पंजाब के बोहरा हिंदू हैं। मेरठ कमिश्नरी के बोहरा अपने को गौड ब्राह्मण और कुमाऊँ के बोहरा अपने को खसिया राजपूत कहते हैं। औरंगजेब की धार्मिक नीति के परिणामस्वरूप गुजरात के इस्माइली बोहराओं का निर्दयतापूर्वक दमन किया गया था क्योंकि वे इस्लाम के कट्टर पक्षपाती न होकर उदार दृष्टिकोण रखते थे। उनके उपदेशक सत पकड लिए गए और उनके अनुयायिओ को सुन्नी शिक्षाओ के लिये बाध्य किया गया। यही दशा खोजाओ की भी हुई जिससे वे विद्रोही होकर भडोंच को तब तक दबाए रहे जब तक भयकर कत्लेआम मे वे मौत के घाट नही उतार दिए गए।

सं० ग्रं० — एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, खंड १, १९६६; हटन : कास्ट इन इंडिया; विलियम क्रुक : दि ट्राइब्स ऐंड कास्टस

बोस, सुभाषचंद्र (पृ० ३८२-३८४)

[फ़ोटो : प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो, नई दिल्ली]

ग्रॉव नार्थ-वेस्ट प्राविंसेज ऐंड ग्रवध, खंड १; कैंब्रिज हिस्ट्री ग्रॉव इंडिया, खड ४। [श्या० ति०]

बोहीमिग्रा (Bohemia) यह चैकोस्लोवाकिया का एक क्षेत्र है जिसमें मॉरेविया तथा सायलेसिया शामिल हैं। इसका क्षेत्रफल २०,००० वर्ग मील तथा जनसंख्या ५६,४७,००० (१६४७) है। यह एक टूटा फूटा ग्रायताकार पठार है, जिसकी ऊँचाई ५०० फुट से २,००० फुट के बीच है। यह उत्तर-पश्चिम, उत्तर एवं पूर्व में सूडेटन (Sudeten) की एक श्रेणी से तथा दक्षिण-पश्चिम में बोहमेरवाल्ड से घिरा है। जलवायु विषम है। यहाँ एल्ब तथा उसकी सहायक विल्टावा नदी बहती है एवं बहुत से कृत्रिम तालाब भी हैं। नदी तट की मिट्टी बहुत उपजाऊ है। कृषि मे गेहूँ, गन्ना, चुकदर, जो, जई, ग्रौर ग्रालू की खेती होती है। फलों के बहुत से बगीचे भी हैं। उत्तर-पश्चिम भाग मे पशु पाले जाते हैं। कोयला ग्रौर लिगनाइट यहाँ के मुख्य खनिज हैं जिनकी सहायता से यहाँ ग्रौद्योगीकरण हुग्रा है। इनके ग्रतिरिक्त चाँदी, सोना, टिन, ग्रेफाइट, तथा बहुमूल्य रत्न प्रमुख खनिज है। यातायात के साधन ग्रच्छे होने के कारण इसका संबंध मुख्य नगरों से है। यहाँ धातु के सामान, सूती कपडे, चमड़े का सामान, मशीनें, रसायनक तथा पेंसिल बनाने का कार्य होता है। [पु० क०]

बौक्साइट (Bauxite), ऐ, ग्रो, २ हा ग्रो ($Al_2O_3\ 2H_2O$) यह पत्थर सर्वप्रथम फ्रास में लेस बौक्स के निकट मिला था। इसी ग्राधार पर इस खनिज का नाम बौक्साइट पडा। इसी खनिज से विश्व का ग्रधिकाश ऐल्यूमिनियम निकाला जाता है। इसका रंग सफेद या भूरा होता है। सामान्यत इसमे लोहे का ग्रश विद्यमान रहता है। लोहे की मात्रा पर निर्भर इसका रग गुलाबी या लाल होता है। खदान से निकलने पर यह इतना मुलायम होता है कि हाथ से टूट जाता है, पर वायुमंडल के संपर्क मे ग्राने पर इसकी कठोरता बढ़ जाती है। इसकी ग्राकृति मटर के दानो के समान होती है, ग्रत इसको पहचानने मे कभी कठिनाई नही होती। इसका ग्रापेक्षिक घनत्व २०से २·६ तक है।

बौक्साइट का निर्माण पृथ्वी की सतह पर, या उसके निकट मिट्टी तथा ऐल्यूमिनियम धनी, ग्राग्नेय शिलाग्रों के विघटन से होता है। बौक्साइट पठारो के ऊपरी भागो मे, पटलाकार पहाड़ियो में तथा चूने की शिलाग्रो मे ग्रनियमित समुदायो मे मिलता है। भारत मे इसके निक्षेप बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, मद्रास तथा कश्मीर मे है। [म० ना० मे०]

बौदले, चार्ल्स (१८२१–१८६७) फ्रास का एक ग्रतिप्रसिद्ध कवि तथा प्रतीकवादी ग्रादोलन का ग्रग्रदूत। ग्राधुनिक कविता को उसने बहुत बडे ग्रश तक प्रभावित किया है। पेरिस के संपन्न परिवार मे जन्म लिया। बचपन मे ही उसके पिता की मृत्यु हो गई, ग्रौर उसकी माँ ने पुनर्विवाह कर लिया। माँ के पुनर्विवाह का भावुक बालक बौदले पर गहरा प्रभाव पडा जिससे परिवार के साथ उसका संबंध तनावपूर्ण हो गया। १८५७ मे उसने ग्रपनी १०० कविताग्रों के संकलन 'फ्लावर्ज ग्रॉव एविल' का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया। दूसरे संस्करण (१८६१) मे उसने इसमे ३२ कविताएँ ग्रौर जोड दी। न्यायालय के एक निर्णय के ग्रनुसार छह कविताएँ प्रथम सस्करण से उसे निकाल देनी पडी। उसके गद्यगीतो का सकलन 'शार्ट प्रोज पोएम्स' के नाम से उसकी मृत्यु के पश्चात् १८६६ में प्रकाशित हुग्रा।

बौदले ने ग्रंत समय तक दु.खपूर्ण जीवन ही बिताया। ग्रार्थिक कठिनाइयो, विषम स्वास्थ्य ग्रौर पराजय की कुंठा ने उसके विषाद को ग्रधिक गहरा कर दिया था। उसकी कविताग्रों मे एक नई गीति-व्यंजना ग्रभिव्यक्त हुई। वेदना, निर्वासन, कालसंक्रमण ग्रौर पवित्रता तथा सौदर्य के ग्रप्राप्य ग्रादर्श से उत्पन्न उद्वेग उसकी कविता मे प्रधान विषय थे। वह कविता मे विशेष ग्राकर्षण उत्पन्न करने के लिये जब तब ग्रप्रचलित शब्दों का प्रयोग करता था, किंतु प्रायः वह साधारण शब्दों के प्रयोग मे ही ग्रपनी गभीर भावुकता से ग्रसामान्य चमत्कार भर देता था। उसके काव्यचित्रो की मौलिकता ग्रौर गहनता ग्रतुलनीय है। उसने भिन्न भिन्न सवेदनाग्रों के संयोग से प्रतीको का विस्तार किया है। उसका एक ग्रत्यंत प्रसिद्ध सानेट 'करेसपाडेंस' ग्रनेक तत्त्ववादी प्रतीको से व्यक्त होनेवाली प्रकृति की व्यापक एकरूपता पर बल देता है।

ब्रंज़विक (Brunswick) स्थिति : ५२° १६' उ० ग्र० तथा १०° ३१' पू० दे०। यह पश्चिमी जर्मनी के लोग्रर सैक्सनी भाग मे ग्रोकर नदी के किनारे स्थित एक नगर है। पहले यह इसी नाम के प्रात की राजधानी था। द्वितीय विश्व महायुद्ध मे इसे बडी क्षति उठानी पडी थी। यह एक बडा ग्रौद्योगिक केंद्र है जहाँ वाद्य ग्रौर विद्युत् संयंत्र बनाते हैं। इसकी जनसंख्या २,४५,०२७ (१९६१) है। इसी नाम के नगर जॉर्जिया (संयुक्त राज्य), कंबरलैंड काउटी (इंग्लैंड) तथा ग्रोहायो (संयुक्त राज्य) मे भी हैं। [हृ० श० गु०]

ब्रजनिधि (संवत् १८२१–१८६०) जयपुर नरेश प्रतापसिंह का काव्यप्रयुक्त उपनाम। प्रतापसिंह १४ वर्ष की ग्रवस्था मे सिंहासनारूढ हो गए थे। युद्धो मे ग्रत्यधिक व्यस्त एव रोगो से ग्रस्त रहन पर भी इन्होने ग्रपने ग्रल्प जीवन मे लगभग १४०० वृत्तो का प्रणयन किया। लोकविश्रुत है कि महाराज परम भागवत थे।

भक्ति-रस-तरग ग्रथवा मन की उमग मे वे जो पद, रेखते ग्रथवा छंद रचते थे, उन्हे उसी दिन या ग्रगले दिन ग्रपने इष्टदेव गोविंददेव तथा ठाकुर ब्रजनिधि महाराज को समर्पित करते थे। कम से कम पाँच वृत्त नित्य भेंट करने का उनका नियम था।

उनकी २२ रचनाएँ उपलब्ध हैं। किंतु सोरठ ख्याल, (३६ चरण की एक लघु रचना) उनके किसी पदसंग्रह का ही एक ग्रंश दिखाई पडती है। २२ रचनाएँ, जिनका निजी स्वतंत्र ग्रस्तित्व है, काल क्रम से इस प्रकार हैं : (क) सवत् १८४८ विरचित—प्रेमप्रकाश, फाग रग, प्रीतिलता,। (ख) सवत् १८४६ प्रणीत—सुहागरैनि। (ग) १८५० लिखित—विरहसरिता, रेखतासग्रह, स्नेहबिहार। (घ) संवत् १८५१ रचित—रमक-जमक-बतीसी, प्रीतिपचीसी, ब्रज-शृगार। (ङ) संवत् १८५२ कृत—सनेहसग्राम, नीतिमंजरी, शृगार-मंजरी, वैराग्यमंजरी, (च) रगचौपड, (संवत् १८५३)। (छ) प्रेमपंथ, दुखहरनवेलि, रास का रेखता, श्रीब्रजनिधिमुक्तावली, ब्रजनिधि-पद-सग्रह, तथा हरिपदसंग्रह, इन शीर्षक छह कृतियों

का रचनाकाल कवि ने नहीं दिया है। संख्या में २२ होने के कारण इन्हे 'प्रथबाईसी' कहते थे।

तीनो मंजरियाँ भर्तृहरि के शतकत्रय, क्रमश: 'नीतिशतक', 'शृंगार-शतक' एवं 'वैराग्यशतक' का ब्रजभाषा मे पद्यानुवाद हैं। अन्य रचनाओ मे राधा गोविंद तथा ब्रजनिधि की भक्ति, उनका लीला-विहार, विरहव्यथा, उद्धव के प्रति गोपियो की उक्तियाँ, कुब्जा की निंदा, कवि का दैन्य एवं भक्तिसपृक्त मनोभाव दर्शाए गए है। वस्तुत कृष्ण राधा का वैभवसपन्न रूप, नीति के पद तथा चौपड़ का खेल, स्नेह सग्राम तथा यत्र तत्र शस्त्रास्त्रो की उपमाएँ जहाँ ब्रजनिधि की राजोचित प्रवृत्तियां प्रदर्शित करती हैं, वहाँ कृष्ण के नटवर रूप के प्रति आकर्षण के ब्रजरज, यमुना, गोकुल, मथुरा-निवास उनकी अनन्य भक्ति के परिचायक हैं। शात रस के अतिरिक्त इन रचनाओ मे वात्सल्य, शृंगार और हास्य रस के सुदर उदाहरण मिलते हैं।

ब्रजनिधि की पदरचनाएं राग-ताल-बद्ध हैं। वे स्वय भी संगीत-प्रेमी थे। इस दिशा मे उनके उस्ताद थे चाँदखाँ उर्फ दलखाँजी, जो बुधप्रकाश के नाम से प्रसिद्ध है। अन्यत्र दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, कुडलियाँ, छप्पै, चौपाई, बरवै, रेखता प्रयुक्त हुए है। उनके काव्य मे अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष प्रभृति अलकार अनायास ही आ गए हैं। 'रमक-जमक-बतीसी' मे यमक की बानगी विशेष दर्शनीय है।

कवि ने अधिकतर ब्रजभाषा का प्रयोग किया है किंतु कई एक पद राजस्थानी और पजाबी मे भी है।

ब्रजनिधि ने अपने काव्य मे अपने पूर्ववर्ती एव समकालिक कवियो के लगभग १०० पद भी सगृहीत किए है। घनआनद और नागरीदास का इनपर स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। कई एक कवि आपके आश्रित थे। विश्वेश्वर महाशब्दे, बुधप्रकाश, भारती, रसपुज, रसराज आदि विद्वानो ने आपकी प्रेरणा से सगीत, ज्योतिष, वैद्यक और काव्य-ग्रंथो का प्रणयन भी किया। फारसी के 'आइने अकबरी' और दीवान-ए-हाफिज' का भी हिंदी अनुवाद हुआ।

प्रतापसिंह ब्रजनिधि ने भवननिर्माण मे भी विशेष रुचि दिखाई। चद्रमहल के कई विशाल भवन रिधसिधपोल, बड़ा दीवानखाना, गोविंद जी के पिछाड़ी का हौज, हवामहल, गोवर्धननाथ, ब्रजराज-बिहारी, ठाकुर ब्रजनिधि तथा मदनमोहन जी के मंदिर आपके स्थापत्य कलाप्रेम के द्योतक है।

स० ग्र० — पुरोहित हरिनारायण शर्मा (सकलित) ब्रजनिधि ग्रथावली (नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथमावृत्ति स० १९९०)। [न० क०]

ब्रजबुलि उस काव्यभाषा का नाम है जिसका उपयोग उत्तर भारत के पूर्वी प्रदेशों अर्थात् मिथिला, बगाल, आसाम तथा उड़ीसा के भक्त कवि प्रधान रूप से कृष्ण की लीलाओ के वर्णन के लिये करते रहे हैं। नेपाल मे भी ब्रजबुलि मे लिखे कुछ काव्य तथा नाटक-ग्रथ मिले है। इस काव्यभाषा का उपयोग शताब्दियों तक होता रहा है। ईसवी सन् की १५वी शताब्दी से लेकर १९वी शताब्दी तक इस काव्यभाषा मे लिखे पद मिलते हैं।

यद्यपि 'ब्रजबुलि साहित्य' की लंबी परंपरा रही है, फिर भ 'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग ईसवी सन् की १९वी शताब्दी में मिलत है। इस शब्द का प्रयोग अभी तक केवल बंगाली कवि ईश्वरचंद्र गु की रचना में ही मिला है।

'ब्रजबुलि' शब्द की व्युत्पत्ति तथा ब्रजबुलि भाषा की उत्पत्ति क लेकर विद्वानो मे बहुत मतभेद है। यहाँ एक बात को स्पष्ट कर दे आवश्यक है कि ब्रजबुलि, ब्रजभाषा नही है। व्याकरण सबधी दोन की अपनी अपनी अलग अलग विशेषताएं है, वैसे भाषातत्व की दृ से यह स्वीकार किया जाता है कि ब्रजबुलि का सबंध ब्रजभाषा है। ब्रजबुलि के पदो मे ब्रजभाषा के शब्दो का प्रयोग अधिक देख को मिलता है।

ब्रजबुलि की उत्पत्ति अवहट्ठ से हुई। अवहट्ठ संबधी थोड़ी स जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। कालक्रम से अपभ्रंश साहित्य की भाषा बन चुका था, इसे परिनिष्ठित अपभ्रंश कह सक है। यह परिनिष्ठित अपभ्रंश उत्तर भारत मे राजस्थान से अस तक काव्यभाषा का रूप ले चुका था। लेकिन यहाँ यह भूल नह जाना चाहिए कि अपभ्रंश के विकास के साथ साथ विभिन्न क्षेत्रो क बोलियो का भी विकास हो रहा था और बाद मे चलकर उन बोलिय मे भी साहित्य की रचना होने लगी। इस प्रकार परवर्ती अपभ्रं और विभिन्न प्रदेशो की विकसित बोलियो के बीच जो अपभ्रंश क रूप था और जिसका उपयोग साहित्य रचना के लिये किया गय उसे ही अवहट्ठ कहा गया है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने बतलाय है कि शौरसेनी अपभ्रंश अर्थात् अवहट्ठ मध्यदेश के अलावा बगाल आदि प्रदेशो मे भी काव्यभाषा के रूप मे अपना आधिपत्य जमा हुए था। यहा एक बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि यद्यपि अवहट्ठ काव्यभाषा के रूप मे ग्रहण किया गया था फिर भ यह स्वाभाविक था कि प्रात विशेष की छाप उसपर लगती, इसीलिए काव्यभाषा होने पर भी विभिन्न अचलो के शब्द, प्रकाशनभंगी आदि को हम उसमे प्रत्यक्ष करते है।

'ब्रजबुलि' शब्द की व्युत्पत्ति के सबध मे कुछ लोगों ने अनुमान लगाया है कि 'ब्रजावली बोलि' का रूपातर 'ब्रजाली बुलि' मे हुआ और 'ब्रजाली बुलि' से 'ब्रजबुलि' बना। यह क्लिष्ट कल्पना है वास्तव मे अधिक तर्कसगत यह लगता है कि इस भाषा मे कृष्ण की लीलाओ का वर्णन है अतएव कृष्ण की लीलाभूमि 'ब्रज' के साथ इसका सबध जोड़ इस भाषा को 'ब्रजबोली' समझा गया होगा जो बगला के उच्चारण की विशिष्टता के कारण 'ब्रजबुलि' बन गया होगा।

ब्रजबुलि मे लिखे पद मिथिला, बंगाल, असम और उड़ीसा मे पाए गए है। असमी साहित्य मे ब्रजबुलि का प्रमुख स्थान है। असम की ब्रजबुलि की रचनाओ मे असमी भाषा का स्वभावत समिश्रण है। असम के वैष्णव भक्त कवियो मे दास्य भाव की प्रधानता है। वे ब्रज से अधिक प्रभावित थे। बगाल तथा उड़ीसा के भक्त कवियों मे भी कहीं कहीं दास्य भाव के दर्शन होते है लेकिन उनमे सख्य और मधुर भाव की प्रधानता है। बगाल और उड़ीसा का वैष्णव-भक्ति-साहित्य राधा और कृष्ण की लीलाओ से ओतप्रोत है, लेकिन असमी के ब्रजबुलि साहित्य मे राधा को वैसा स्थान नहीं दिया गया है। मिथिला

मे विद्यापति के पदों मे राधा की प्रमुखता है। ब्रजबुलि के कुछ नाटक भी मिले है लेकिन ये नाटक केवल नेपाल और असम मे ही प्राप्त हुए है। बंगाल या उड़ीसा मे ब्रजबुलि के नाटक अभी तक नही मिले है।

असम के भक्त कवियो मे शकरदेव (१४४९ ई०–१५६८ ई०) तथा उनके शिष्य माधवदेव (१४९८ ई०–१५९६ ई०) का मुख्य स्थान है। असम के जनजीवन तथा साहित्य पर शकरदेव तथा उनके अनुयायियो का गहरा प्रभाव पड़ा। ब्रजबुलि को इन लोगो ने अपने प्रचार का साधन बनाया। उड़ीसा के भक्त कवियो मे राय रामानंद का प्रमुख स्थान था। ये उड़ीसा के गजपति राजा प्रताप रुद्र (राजत्वकाल १५०४ ई०–१५३२ ई०) के एक उच्च अधिकारी थे। महाप्रभु चैतन्य और राय रामानद के मिलन का जो वर्णन चैतन्य सप्रदाय के कृष्णदास कविराज ने 'चैतन्य चरितामृत' म किया है उससे पता चलता है कि मधुर भक्ति के रहस्यो से दोनो पूर्ण परिचित थे। उड़ीसा के अन्य कवियो मे प्रतापरुद्र, माधवीदासी, राय चपति के नाम आते है।

बगाल मे गौडीय वैष्णव संप्रदाय के भक्त कवियो की सख्या बहुत अधिक है। उनमे कुछ के नाम यो हैं. यशोराज खान (१६वी शताब्दी का प्रारभ), मुरारि गुप्त (१६वी शती का प्रारभ), वासुदेव घोष, रामानद बसु, द्विज हरिदास, परमानददास, ज्ञानदास (१५३० ई० के लगभग इनका जन्म हुआ), नरोत्तमदास, कृष्णदास कविराज, गोविददास कविराज। ब्रजबुलि के अतिम श्रेष्ठ कवि के रूप मे रवीद्रनाथ ठाकुर का नाम लिया जा सकता है। उनकी 'भानुसिह ठाकुरेर पदावली' सन् १८८६ ई० मे प्रकाशित हुई। ब्रजबुलि के पद, भाषा और भाव की दृष्टि से अत्यत मधुर है।

[रा० पू० ति०]

ब्रजभाषा मूलत ब्रजक्षेत्र की बोली है। (श्रीमद्भागवत के रचनाकाल म 'ब्रज' शब्द क्षेत्रवाची हो गया था—भाग० १०।१।१०)। विक्रम की १३वी शताब्दी से लेकर २०वी शताब्दी तक भारत के मध्य देश की साहित्यिक भाषा रहने के कारण ब्रज की इस जनपदीय बोली ने अपने उत्थान एव विकास के साथ आदरार्थ 'भाषा' नाम प्राप्त किया और 'ब्रजबोली' नाम से नही, अपितु 'ब्रजभाषा' नाम से विख्यात हुई। अपने विशुद्ध रूप मे यह आज भी आगरा, धौलपुर, मथुरा और अलीगढ जिलो मे बोली जाती है। इसे हम केंद्रीय ब्रजभाषा के नाम से भी पुकार सकते है। केंद्रीय ब्रजभाषा क्षेत्र के उत्तर पश्चिम की ओर बुलदशहर जिले की उत्तरी पट्टी से इसमे खड़ी बोली की लटक आने लगती है। उत्तरी-पूर्वी जिलों अर्थात् बदायूँ और एटा जिलो मे इसपर कन्नौजी का प्रभाव प्रारंभ हो जाता है। डा० धीरेंद्र वर्मा 'कन्नौजी' को ब्रजभाषा का ही एक रूप मानते है। दक्षिण की ओर ग्वालियर म पहुँचकर इसमे बुंदेली की झलक आने लगती है। पश्चिम की ओर गुडगाँवा तथा भरतपुर का क्षेत्र राजस्थानी से प्रभावित है।

भारतीय आर्यभाषाओ की परपरा मे विकसित होनेवाली 'ब्रजभाषा' शौरसेनी अपभ्रंश की कोख से जन्मी है। जनपदीय जीवन के प्रभाव से ब्रजभाषा के कई रूप हमे दृष्टिगोचर होते हैं। किंतु थोड़े से अंतर के साथ उनमें एकरूपता की स्पष्ट झलक हमें देखने को मिलती है।

ब्रजभाषा की अपनी रूपगत प्रकृति औकारात है अर्थात् इसकी एकवचनीय पुंलिंग सज्ञाएँ तथा विशेषण प्राय औकारात होते हैं; जैसे खुरपौ, यामरौ, माँझौ आदि सज्ञा शब्द औकारांत है। इसी प्रकार कारौ, गोरौ, सांवरौ आदि विशेषण पद औकारात हैं। क्रिया का सामान्य भूतकालिक एकवचन पुंलिग रूप भी ब्रजभाषा मे प्रमुखरूपेण औकारात ही रहता है। यह बात अलग है कि उसके कुछ क्षेत्रो मे 'य्' श्रुति का आगम भी पाया जाता है। जिला अलीगढ़ की तहसील कोल की बोली मे सामान्य भूतकालीन रूप 'य्' श्रुति से रहित मिलता है, लेकिन जिला मथुरा तथा दक्षिणी बुलदशहर की तहसीलो मे 'य्' श्रुति अवश्य पाई जाती है। जैसे :

"कारौ छोरा बोलौ"—(कोल, जिला अलीगढ)।
"कारौ छोरा बोल्यौ"—(माट जिला मथुरा)
"कारौ लौडा बोल्यौ"—(बरन, जिला बुलदशहर)।

कन्नोजी की अपनी प्रकृति ओकारात है। सज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के रूपों मे ब्रजभाषा जहाँ औकारातता लेकर चलती है वहाँ कन्नौजी ओकारातता का अनुसरण करती है। जिला अलीगढ की जनपदीय ब्रजभाषा मे यदि हम कहे कि—"कारौ छोरा बोलौ" (= काला लडका बोला) तो इसे ही कन्नौजी मे कहेंगे कि—"कारो लरिका बोलो। भविष्यत्कालीन क्रिया कन्नौजी मे तिङ्तरूपिणी होती है, लेकिन ब्रजभाषा मे वह कृदतरूपिणी पाई जाती है। यदि हम 'लडका जाएगा' और 'लडकी जाएगी' वाक्यो को कन्नौजी तथा ब्रजभाषा मे रूपातरित करके बोलें तो निम्नाकित रूप प्रदान करेंगे

कन्नौजी मे—(१) लरिका जइहै।
(२) बिटिया जइहै।
ब्रजभाषा में—(१) छोरा जाइगौ।
(२) छोरी जाइगी।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा के सामान्य भविष्यत् काल रूप म क्रिया कर्ता के लिग के अनुसार परिवर्तित होती है, जब कि कन्नौजी मे एकरूप रहती है।

इसके अतिरिक्त कन्नौजी मे अवधी की भाँति विवृत्ति (Hiatus) की प्रवृत्ति भी पाई जाती है जिसका ब्रजभाषा म अभाव है। कन्नौजी के सज्ञा, सर्वनाम आदि वाक्यपदो मे सधिराहित्य प्राय. मिलता है, किंतु ब्रजभाषा मे वे पद सधिगत अवस्था मे मिलते हैं। उदाहरण

(१) कन्नौजी—"बउ गओ" (= वह गया)।
(२) ब्रजभाषा—"बो गयौ" (= वह गया)।

उपर्युक्त वाक्यो के सर्वनाम पद 'बउ' तथा 'बो' मे सधिराहित्य तथा सधि की अवस्थाएँ दोनो भाषाओ की प्रकृतियो को स्पष्ट करती है।

ब्रजभाषा क्षेत्र की भाषागत विभिन्नता को दृष्टि मे रखते हुए हम उसका विभाजन निम्नाकित रूप मे कर सकते हैं :

(१) केंद्रीय ब्रज अर्थात् आदर्श ब्रजभाषा — अलीगढ़, मथुरा तथा

पश्चिमी आगरे की ब्रजभाषा को 'आदर्श ब्रजभाषा' नाम दिया जा सकता है।

(२) बुंदेली प्रभावित ब्रजभाषा—ग्वालियर के उत्तर पश्चिम मे बोली जानेवाली भाषा को यह नाम प्रदान किया जा सकता है।

(३) राजस्थान की जयपुरी से प्रभावित ब्रजभाषा—यह भरतपुर तथा उसके दक्षिणी भाग मे बोली जाती है।

(४) सिकरवाड़ी ब्रजभाषा—ब्रजभाषा का यह रूप ग्वालियर के उत्तर पूर्व के अंचल मे प्रचलित है जहाँ सिकरवाड राजपूतो की बस्तियाँ पाई जाती हैं।

(५) जादोबाटी ब्रजभाषा—करौली के क्षेत्र तथा चंबल नदी के मैदान मे बोली जानेवाली ब्रजभाषा को 'जादौबारी' नाम से पुकारा गया है। यहाँ जादौ (यादव) राजपूतों की बस्तियाँ हैं।

(६) कन्नौजी से प्रभावित ब्रजभाषा—जिला एटा तथा तहसील अनूपशहर एवं अतरौली की भाषा कन्नौजी से प्रभावित है।

ब्रजभाषी क्षेत्र की जनपदीय ब्रजभाषा का रूप पश्चिम से पूर्व की ओर कैसा होता चला गया है, इसके लिये निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

जिला गुड़गाँवा में—"तमासो देखने कू गए। आपस् मैं झगरो हो रह्यौ हो। तब गानो बंद हो गयो।"

जिला बुलंदशहर में—"लौंडा गाँम् कू आयौ और बहू सू बोल्यौ कै मैं नौकरी कू जाङ्गौ।"

जिला अलीगढ़ में—"छोरा गाँम् कूँ आयौ औरु बऊ ते बोलौ (बोल्यौ) कै मैं नौक्री कूँ जाङ्गो।"

जिला एटा मे—"छोरा गाँम् कूँ आओ और बऊ ते बोलो कै मैं नौक्री कूँ जाउँगो।"

इसी प्रकार उत्तर से दक्षिण की ओर का परिवर्तन द्रष्टव्य है—

जिला अलीगढ़ मे—"गु छोरा मेरे घर् ते चलौ गयौ।"

जिला मथुरा में—"बु छोरा मेरे घर् तें चल्यौ गयौ।"

जिला आगरा मे—"मुकतौ रुपइया अपनी बदयरि कूँ भेजि दयौ।"

ग्वालियर (पश्चिमी भाग) मे—'बाने एक् बोकरा पाल लओ। तब वो आनद मे रैबे लगो।"

जब से गोकुल वल्लभ संप्रदाय का केंद्र बना, ब्रजभाषा मे कृष्ण विषयक साहित्य लिखा जाने लगा। इसी के प्रभाव से ब्रज की बोली साहित्यिक भाषा बन गई। भक्तिकाल के प्रसिद्ध महाकवि महात्मा सूरदास से लेकर आधुनिक काल के विख्यात कवि श्री वियोगी हरि तक ब्रजभाषा मे प्रबंध काव्य तथा मुक्तक काव्य समय समय पर रचे जाते रहे।

सं० ग्रं०—डॉ० ग्रियर्सन, जी० ए० : मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिंदोस्तान (एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, १८८९), आचार्य रामचंद्र शुक्ल : बुद्धचरित की भूमिका एवं हिंदी साहित्य का इतिहास (ना० प्र० सभा, वाराणसी); डॉ० धीरेंद्र वर्मा . 'ले लांग दि ब्रज' हिंदी भाषा और लिपि। [अं० प्र० सु०]

ब्रज संस्कृति ब्रज संस्कृति का एक नित्यनमस्कृत पुराना अर्थ—'चौरासी कोस' मे फैली उस भूमि विशेष के साथ जुड चुका था, जिसकी परिधि पूर्व मे एटा जिला, फर्रुखाबाद, जालौन आदि, पश्चिम मे जयपुर, अलवर, भरतपुर, उत्तर मे जिला गुड़गाँवाँ, दिल्ली, तथा दक्षिण मे आगरा, करौली, धौलपुर (राजस्थान), और चंबल पार ग्वालियर के कुछ भू-भाग तक फैली हुई है। पहले यह 'विंशतिर्योजनानाच' (वाराह पु०) कहा जाता था। बाद मे .

> 'इत बरहद, उत सोनहद', सूरसेन उत ग्राम।
> ब्रज चौरासी कोस मम, मथुरा मंडल धाम॥

रूप से नित्य नित्य अभिवंदित किया जाने लगा, जहाँ आदि-शंकराचार्य के कथनानुसार 'अजन्मा' 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' (भागवत) ने जन्म लेकर नए नए रूपो मे अपनी ललित लीलाएँ रची थी।

ब्रजभूमि का पुराना नाम 'शूर जनपद' कहा गया है। उत्तरापथ के संपूर्ण जनपदो के मध्य यह जनपद स्वर्णमुद्रिका मे जडे सुंदर रत्न, अथवा वृत्त रूप कुरु, पांचाल, मत्स्यादि महाप्रतापी जनपदो से घिरा कमलकोश मे सुशोभित ओसबिंदु जैसा दर्शनीय रहा है।

शूर जनपद प्रेरणात्मक संस्कृतियों से एक महान् जनपद बन गया था और उसके राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की मधुर छाप उसके अगल बगलवाले जनपदो पर ही नही, भारत के आयत जनपदो पर भी पडी। इसके तीन व्यापक कारण थे धर्म, कला तथा शूर जनपद की भाषासुंदरता। धर्म के क्षेत्र मे शूर जनपद की अमोघ देन है 'अपने से विपरीत धर्मो की समन्वय भावना, जो आगे चलकर 'भागवती' दृष्टि मे खिली। वासुदेव श्रीकृष्ण को उसने 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य संभवामि युगे युगे' गीतोक्त महाविष्णु का प्रतीक ही नही, 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' रूप मे कहा, माना तथा वंदना की और उन्हे मध्य मे रखकर अनेक देव देवियो को गुमज्जित किया। शूर जनपद मे पहले जो 'नाग, मातृका तथा दक्षपूजनो की सारहीन व्यवस्था थी उसे ब्रज संस्कृति ने अति ऊँचा उठाकर सरस बनाया। फलत शूर जनपद के 'गिरि, इंद्र तथा नदी महो को, 'गोवर्धन, इंद्र' और 'स्याम संग स्याम ह्वै रही 'श्री जमुनं' (छीतस्वामी) को अर्चनादि की अति मधुर लोकरंजनी भावना से युक्त किया, उन्हे 'उत्सव' रूप दिया। यह 'सत्यज्य सर्वविषयान् तव पादमूलं' (भागवत) रूप समन्वय भावना के गहरे रंग म रँगी ब्रज की महती देन है, यह श्रीमद् भागवत के अनुसार है तथा ब्रज के कण कण मे बिंध रही है। साथ ही वह 'गंगा, यमुना, सरस्वती रूपेण 'ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन धर्मो के साथ एकरूप हो एक दूसरे का हितसवर्धन करती हुई नित्य नए रूप से ब्रज मे बह रही है, आगे बढ रही है। तद्गत् कला और संस्कृति ने उस सुंदर लोक की सृष्टि की जिसमें धर्म की उदात्त साधना के निःश्छल दर्शनो के साथ मानव अंगों के सुंदरतम रूपों की कलात्मक अभिव्यक्ति प्रस्फुटित होती है। और जिसे ब्रज जनपद के अंतर्द्रष्टा शिल्पियो ने अपनी गहरी आत्मनिष्ठा के साथ लगन से उकेरा है तथा विश्व मे उच्च स्थान प्राप्त कराया है। इस ब्रज संस्कृति की एक कलासमन्वित मधुर झलक उस समय देखी जा सकती है, जब भगवान् श्री कृष्ण अपने बड़े भाई बलदेव जी तथा गोपकुमारो के साथ ध्वजवज्रांकुश''' चर्चित चरणो से ब्रजराजधानी मथुरापुरी को निरखने पधारे थे। उस समय नानादेववंदित 'तीन लोक ते न्यारी प्यारी वेदन गाई (लोकगीत)

मथुरा कलारूपेण अनंत वैभवशालिनी थी, जैसा भागवतकार व्यास-पुत्र श्रीशुक मुनि कहते हैं, यथा :

'मथुरा के विशाल सिंहद्वार तथा नागरिकों के गृहद्वार सब स्फटिक मणि से बने हुए थे और उनमे स्वर्ण के रत्नखचित किवाड शोभा दे रहे थे। घर घर मे बँधे बंदनवार स्वर्ण पत्रावलि संयुक्त थे तथा नगरी के चौराहे स्वर्णविभूषित थे। धनियों के दरवाजे, उनके छज्जे तथा बाहर बैठने के चबूतरे सभी बहुमूल्य मणियों से मुखरित होने के कारण चमचमा रहे थे और वहाँ अनेक शुक, सारिका एव हंसादि शुभ पक्षी अपने अपने अनुरूप रसपूर्ण ढग से कलरव करते हुए नाच रहे थे। आस पास बाग बगीचों से मथुरा नगरी अति सुशोभित हो रही थी। गृहद्वार केलावृक्षों के खंभो से शोभित तथा बहुमूल्य रेशमी वस्त्रो से आच्छादित एव फूल माला तथा नारियल से अलंकृत और दधि चंदन से चर्चित स्वर्णकलश से मंडित थे। सुगंधित धूप तथा दीपो के जलने के कारण उसके धूएँ से मथुरा अति उल्लासमयी नगरी जैसी थी, इत्यादि (भागवत १०।४०।२०—२३)।

अत: ब्रज की अनेकविध समुन्नत संस्कृति को इस भागवत अवतरण से नमन किया जा सकता है, और उसकी मीठी झलक, यत्किंचित ही सही, उसकी वास्तुकला मे निर्निमेष निरखी जा सकती है।

ब्रज संस्कृति मे 'रासनृत्य', नारायणगीत एव वशीवादनकला ने भी चार चाँद लगाए (दे० भा०—१०।२९।१-९)। इन तीनो कलात्मक संस्कृतियो की परंपरा ब्रज मे अति प्राचीन है। ब्रज के सास्कृतिक जीवन को इन तीनो ने बहुत अधिक प्रभावित किया है। प्राचीन नारायणगीतों की गायिकी की परपरा जो ध्रुपद गायिकी के रूपो मे आगे बढी उसमे ब्रज के संगीत कलाकारों जैसे—महाकवि एवं गायक सूरदास प्रभृति अष्टछाप के भक्त तथा सुसंगीतज्ञ कवि, इनके चौसठ (६४) सुगायक अगी कवि, पडितराज जगन्नाथ राजा आसकरण, रसखान, कृष्णजीवन लच्छीराम, घोंघी, रामदास इत्यादि, श्रीहरिदास, हित हरिवंश, व्यास जी, चाचा वृंदावनदास, श्रीभट्ट, विट्ठलविपुल, ललितकिशोरी, तानसेन, आदि अनेक हिंदू मुस्लिम संगीतसाधको ने प्रचुर हाथ बँटाया। ध्रुपद गायिकी को सुमधुर बनाते हुए उसको चार 'डागौर, पागौर, खँडहार, दुंढहार नामांकित स्वरजटित परिधि बनाकर सुरक्षित किया। धमार, ख्याल, दादरा, टप्पा, ठुमरी, लावनी गायिकी को चमत्कृत करने के लिये उसे भाव और भाषा दी, जो आज तक फल फूल रही है। प्रमाणस्वरूप ब्रज के भारतविख्यात गायक नित्यस्मरणीय श्री गणेशलाल जी चतुर्वेदी (प्रख्यात सगीतज्ञ स्व० विष्णु दिगंबर के संगीतगुरु), श्री चंदन जी चौबे के नाम लिए जा सकते हैं। वादकों में श्री गणेश जी, उस्ताद लालन जी, इत्यादि भी नहीं भुलाए जा सकते। ब्रज मे जब इन सबकी संगीत महफिले जुडती थी उसके सभी जड़-जंगम-जीव प्रभावित होते थे। पत्ते पत्ते से मादक स्वर फूटते थे। मनुष्य जीवन के उल्लेखनीय मनोरम त्रिविध उपायो का भी भगवान् कृष्ण की इस खेलनभूमि मे समान महत्व रहा। कृष्ण-भ्राता बलराम के हलधर रूप द्वारा 'गोवंश रक्षा तथा उसके वर्धन के साथ कृषिरक्षा एवं प्राच्य उदीच्य के बीच वाणिज्यव्यवस्था आदि ब्रज-जन-संस्कृति की विशेषता रही है, जिससे प्रभावित होकर 'पाटलिपुत्र, कौशाबी तथा साकेत आदि के वणिक् टोल ब्रज राजधानी मथुरा आते जाते रहते थे। कपिशा, तक्षशिला तथा शाकल का व्यापारी वर्ग भी आता था और ब्रज की वस्तुओ से अपनी अपनी वस्तुओ का विनिमय कर लौट जाता था। इसी तरह विदेशी आक्रांताओं की सस्कृति का प्रभाव भी ब्रज-जन-जीवन पर पडा तथा उसे ब्रज जनपद ने सुंदर ढंग से अपनाया, और उसे अपना जैसा रूप देकर अपना ही बना लिया था। ब्रज संस्कृति का विधान विशुद्ध भारतीय था, जिसे सजाने सँवारने तथा चमकदार बनाने के लिये विदेशी सस्कृति को जरी के सूत्र रूप से काम मे लाया गया और इस प्रकार विदेशी सास्कृतिक अभिप्रायो को अपने अलकरणो से सजाकर एक रूप दिया, जैसे डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के कथनानुसार 'यूनानी चिरप्रवृत्ति सुरापान' को कैलाशीवासी कुबेर और उनके यक्षसमुदाय के 'मधुपान' रूप मे बदल देना, ईरानी सूर्यपूजा को भारतीय सूर्यपूजा मे घुला मिलाकर अपना बना लेना इत्यादि।

ब्रज की चित्रकला ब्रजेश्वरी कीर्तिकुमारी राधिका की साँझी निर्माणलीला से पुष्पित मानी जाती है, जिसके नाना गुण अष्टछाप के विभिन्न कवियो ने नाना रूप से गाए है। बाद मे यह ब्रज के ग्राम्य जीवन मे उतरी और बिखरी तथा गाय भैंस के गोबर से गुंफित हुई। अत: आश्विन मास के प्रथम पक्ष के सपूर्ण दिनो में वह क्रमश. बीरन-बेटी-डोला, चौपड़, गौर बैठना, छबरिया, खजूर पखा, बारह द्वारो, नौ नारियल, दस पान आदि बृहद्रूपेण चित्रित की जाती है। यह गाय भैंस के गोबर से बनी अनुपम कला मधुर और चित्ताकर्षक होती है।

साँझी का दूसरा रूप नाना-रग-रजित है, जिसे ब्रज के बाहर गुजरात, महाराष्ट्र प्रदेशो मे रगोली या रांगोली कहा जाता है। यह वहाँ गृहकला के रूप मे काफी मुखरित है। मथुरा मे इस कला की पराकाष्ठा है। भीखा चौबे का साँझा (चौबे जी हर स्त्रीलिंग शब्द को पुल्लिंग बनाकर बोलते थे जिससे काफी हास्योत्पादन होता था), सरबर सुलतान, कृष्ण गगा, द्वारकाधीश मंदिर की साँझियाँ अत्यत स्वाभाविक और कलापूर्ण बनती थी—विशेषकर स्वामीघाट (मथुरा) की। इन सुंदर मनोहर साँझियो मे कागजो के कलेजे कतर कतर-कर बीस बीस खाके के मूल साँचो के अनुसार साँझी पृष्ठभूमि से लेकर उसके विविध रगो के खिलते चुनाव, रगो की हलकी भारी उडाने तथा बादले की यथास्थान चमक देकर साँच की उठान तथा मिलान सब कुछ अद्भुत होता है। गोबरगठित ब्रज की साँझी कला अब भी ब्रजबालाओ के हाथो मे खिलकर उसके नए पुराने रूपो को मिला रही है।

ब्रज साँझीकला के दो खिलते हुए रूप और मुखर है, जो फूलों एव फूल पत्तो तथा केला वृक्ष के विविध अगो (गाभो) से सँजोए जाते है। फूल, फूल की पखुडियों तथा कोमल हरे पीले पत्तो की मनोहर कलात्मक काट छाँट के बाद सबको चित्र के कल्पित मानदंड लकडी की वा ईंट माटी की छोटी बडी चौकियाँ बनाकर तथा उनपर बराबर का मोटा कपडा बिछा पानी तथा आलपीनों के सहारे सँजोना सब कुछ दर्शनीय होता है। ब्रज मे केले के वृक्ष से,

उसके विविध अंगों से और भी कलात्मक वस्तुएँ, जैसे हिंडोरा, बँगला, मकान, इत्यादि भी सँवारे जाते हैं। इनमे जाली के कटाव, फूलो का उभार, हल्के, भारी रंगों का उतार चढ़ाव प्रशंनीय होता है।

ब्रज चित्रकला का मूल, राजस्थानी चित्रकला है, किंतु उसकी उपत्यका मे तद्भूत उठक बैठक अपनी है। यथास्थान गहरे हल्के रंगो का चुनाव, अंग अंग का रेखाकन आदि सभी उसके अपने हैं। उदाहरण नही मिलते, जो भी मिलते है उनमे 'गोवर्धन' मे बनी भरतपुर राजाओ की मृत्यु-स्मारक-छत्रियाँ, दीग के महल, मथुरा के प्रसिद्ध द्वारिकाधीश मंदिर के मडप के, जिसे एक अनाडी शासक ने अब घिनौना रूप दे दिया है, भित्तिचित्र ब्रज की चित्रकला के दर्शनीय स्थल विशेष है। ब्रज संस्कृति कोटा, बूंदी, जोधपुर (राजस्थान) की चित्रकला पर भी खिलती दीखती है, कृष्णगढ़ शैली पर बरस पडी है, क्योंकि इनका आधार ब्रजेश्वरी राधा तथा भगवान् कृष्ण की नाना लीलाएँ रहा। ब्रजभूत रागरंजन भी इनका विषय रहा। पहाडी (कांगडा) कलम पर इसका उज्ज्वल प्रकाश पड़ा और वह कृष्ण लीलामय होने के कारण खिल उठा। उसके रग रेशे रसभीने बन गए और जन जन के प्राण हो गए।

ब्रज संस्कृति का समुन्नत सगीत-सुधा-भाड 'रसिया' लोकगान माना जाता है, जिसमे उसके जनजीवन का कण कण घुला है। वस्तुत रसिया, अपने नाम और अर्थ के अनुसार रसपूर्ण लोक-साहित्य है, जिसके बोल बोल मे लोकजीवन की स्वच्छ मिश्री मिली हुई है। ब्रज लोकगीत 'रसिया' कोई अतीत वस्तु नही जनजीवन के संपूर्ण पूर्वापर बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक गति-विधियो का निखरा लेखा जोखा है। अत उसे निरखे परखे बिना ब्रज संस्कृति के वास्तविक इतिहास का निर्माण या निर्णय करना खोखला ही माना जायगा, क्योंकि उसका उलझाव 'नृशास्त्र, समाजशास्त्र, भाषा और साहित्यशास्त्र, तद्गत इतिहास, तथा पुरातत्व से घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। ब्रज का 'रसिया साहित्य' उसके तीज त्योहारो एवं अपनी हँसी खुशी की तथा कारुण्य की वह खुली किताब है, जिसमे उसके आचरण व्यवहारो का हिसाब किताब सुदर टाइपो मे लोकजीवन की नाना प्रवृत्तियो तथा अभिव्यक्तियो की चमकीली स्याही से छपा है। साथ ही वह रसो का रसविरगा निरतर प्रवाही ऐसा झरना है, जो रसमयुक्त सामाजिक रसरीतियो की मर्यादा की गतिविधि का उल्लघन करने से भी नही चूकता। उसके सुरीले स्वर जब तब चचल होकर जनजीवन की यथार्थ भित्तियों पर ऐसा मनभावना कुठाराघात करते है कि उसे देख सुनकर कभी कभी सकोच सा होने लगता है। वह आघात बडा सरस और मधुर होता है, और उसकी सर्वांगीण सुदरता का प्रतीक बन जाता है तथा उसके हृदय से श्रद्धा के साथ उठनेवाले शाश्वत स्वरो के उठान को सुदर बनाता हुआ चार चाद लगा देता है। 'रसिया' सगीत ब्रजजनो के आनदविभोर मन की वह वाणी है जिसका धरातल नित नित का नया बननेवाला जीवन है। अत रसिया साहित्य ब्रज के लोकजीवन का रसविशेष है और उसकी परपरा अखड है तथा वह ब्रज के वातावरण मे नए नए रूपो मे तैरता रहता है एवं अपनी समय समय की कुठाओ को बनाता, सँवारता तथा सजाता विविध रंगों मे बदलता रहता है। ब्रज का 'रसिया गान' समय समय की गूदी लेकर अपनी 'टेक' (पूर्व प्रथम पक्ति) मे ही लुभावना बनकर लोगो के हृदय का हार बन जाता है, पर जब वह अपने अतराओं कड़ियों (पंक्तियों) से पनपकर मचलता हुआ रसानंद बिखेरता और व्यग्य बरसाता है तब उसे 'कहते नही, सुनते ही बनता है।'

ब्रज अन्य ललित कलाओ, विशेषकर 'मूर्ति' तथा 'वास्तु' कलाओ का केंद्र भी रहा है। ई० पू० सातवीं शती से १२वी शती तक ब्रज कला ने अगणित विहार, मदिर, महल, स्तूप इत्यादि निर्मित किए और कराए जो सुँदरता मे अपना जोड नही रखते। अच्छे अच्छे कलाविद् उन्हे देखते और कहते 'ये मनुष्यकृत नही, देवनिर्मित है।' मथुरा मे उपस्थित वाराह भगवान्, पद्मनाभ, मथुरानाथ इत्यादि की मूर्तियाँ इस कथित दायरे मे नही अटती। वे जैन बौद्ध काल की सजावट से पहले की अर्थात् इन कालो से पूर्व ब्राह्मणकाल की परिधि मे प्रवेश करती हुई सी जान पडती है। ब्रजकला का स्वर्णयुग 'कुषाण काल' से प्रारभ होकर 'गुप्त काल' तक फैला हुआ दीखता है। उसने 'मुगल काल' की उँगली पकड उसे भी अपना जमा इतिहासप्रसिद्ध बनाया। ब्रज संस्कृति तथा कला का फैलाव पूरे भारतवर्ष पर आतुरता के साथ छा गया था। शक, पल्लव, यवनादि आक्रामक जो भी यहाँ आए सबके सब ब्रज की संस्कृति और कला पर मुग्ध हो उसके सवर्धन मे तन मन धन से पूर्ण सहयोग देने लगे। यही नही, ब्रज कला तथा संस्कृति के प्रति वे इतने अधिक आकर्षित हुए कि उन्होने भारतीय धर्म स्वीकार कर अपने तद्वत नाम वासुदेव, इद्राग्निदत्त, सुदाम' इत्यादि रख लिए, जैसा उनके सिक्को से जाना जाता है।

[ज० ला० व०]

ब्रयांस्क (Bryansk) स्थिति ५३° १५' उ० अ० तथा ३४° २०' पू० दे०। सोवियत संघ का एक क्षेत्र है। जिसका क्षेत्रफल १३,००० वर्गमील तथा जनसंख्या १८,५०,००० इसकी राजधानी ब्रयास्क नगर है। लकडी का व्यापार यहा का प्रमुख उद्योग है। आलू, राई, पटुआ, जौ, चुकदर, गेहू, तबाकू मुख्य उपजें है। ब्रयास्क तथा बोल्त्स्क मे मशीने बनती है और सीमेंट्री मे सीमेंट बनता है। [पु० क०]

ब्रसल्ज स्थिति ५०° ५१' उ० अ० तथा ४° २१' पू० दे०। यह बेल्जियम के मध्य मे ब्राबेंट प्रात मे ऐंटवर्प (आनवेरस Anveres) से २६ मील दक्षिण सीन नदी के किनारे तथा ऐंटवर्प को शार्लेरा (Charleroi) से मिलानेवाली नहर पर स्थित, बेल्जियम की राजधानी तथा प्रसिद्ध औद्योगिक नगर है। इसका निचला भाग पुराना तथा ऊपरी भाग नया है। यहाँ सेंट माइकेल एवं सेंट गुडुले (Gudule) के गिरजाघर, नॉट्रे डैम डेस विक्टॉयर्स (Notre Dam des victoires) का गिरजाघर, ग्राड प्लेस, राजा का महल, आधुनिक आर्ट सग्रहालय, ससदभवन दर्शनीय है। यहा विश्वविद्यालय है, तथा सुदर पार्क भी है। वाटरलू का प्रसिद्ध युद्धक्षेत्र यहा से ९½ मील दक्षिण मे है। यह हवाई मार्ग द्वारा बर्लिन, पैरिस, लदन, न्यूयार्क, काहिरा, तेहरान, ट्रिपोली आदि से सबद्ध है। फीते, दरियाँ, कपडे, फर्नीचर, रसायनक, साबुन, पदे, विद्युत् सयत्र आदि बनाने का काम होता है। उपनगरो सहित इसकी जनसंख्या १०,१६,५४३ (१९६१) है। [पु० क०]

ब्रह्मगुप्त ये आबू पर्वत तथा लुणी नदी के बीच स्थित, भिनमाल नामक ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम जिष्णु था। इनका जन्म

णक सवत् ५२० मे हुआ था। इन्होने प्राचीन ब्रह्म. पितामह सिद्धात के आधार पर ब्रह्म स्फुट सिद्धात तथा खड खाद्य नामक करण ग्रंथ लिखे, जिनका अनुवाद अरबी भाषा में, अनुमानत खलीफा मंसूर के समय, सिधिद और अल अकरंद के नाम से हुआ। इनका एक अन्य ग्रथ ध्यान ग्रहोपदेश नाम का भी है। इन ग्रथों के कुछ परिणामों का विश्वगणित मे अपूर्व स्थान है।

इनकी सबसे महत्वपूर्ण देन चक्रीय चतुर्भुज संबंधी प्रमेय हैं। इन्होने चक्रीय चतुर्भुज के क्षेत्रफल निकालने के सूत्र :

$$\sqrt{(स - क)(स - ख)(स - ग)(स - घ)}$$

$$\left[\sqrt{(s-a)(s-b)(s-c)(s-d)}\right]$$

का अविष्कार किया और सिद्ध किया कि यदि किसी चक्रीय चतुर्भुज की भुजाएँ क (a), ख (b), ग (c), घ (d) और विकर्ण य (x) तथा र (y) हो, तो

$$य = \sqrt{\left(\frac{क घ + ख ग}{क ग + ग घ}\right)(क ग + ख घ)} \quad \text{और}$$

$$र = \sqrt{\left(\frac{क ख + ग घ}{क घ + ख ग}\right)(क ग + ख घ)}$$

$$\left[x = \sqrt{\left(\frac{ad + bc}{ab + cd}\right)(ac + bd)} \quad \text{तथा} \right.$$

$$\left. y = \sqrt{\left(\frac{ab + cd}{ad + bc}\right)(ac + bd)} \right]$$

ब्रह्मगुप्त अनावर्त वितत भिन्नो के सिद्धात से परिचित थे। इन्होने एक घातीय अनिर्णीत समीकरण का पूर्णांको मे व्यापक हल दिया, जो आधुनिक पुस्तकों मे इसी रूप मे पाया जाता है, और अनिर्णीत वर्ग समीकरण, का र² + १ = य², [$K y^2 + 1 = x^2$], को भी हल करने का प्रयत्न किया।

इनका वर्षमान अन्य सिद्धातो के वर्षमानो से कम और सूक्ष्म है। ये अच्छे वेधकर्ता थे और इन्होने वेधो के अनुकूल भगणो की कल्पना की है। प्रसिद्ध गणित ज्योतिषी, भास्कराचार्य, ने अपने सिद्धात शिरोमणि नामक ग्रथ के लिये ब्रह्मस्फुट सिद्धात को आधार माना है और बहुत स्थानो पर इनकी विद्वत्ता की प्रशसा की है।

[रा० कु० तथा मु० ला० श०]

ब्रह्मपुत्र नदी तिब्बत तथा उत्तर-पूर्वी भारत मे बहती है। उपयोगिता की दृष्टि से इसका स्थान ससार की प्रमुख नदियो मे है। इसकी कुल लबाई १,८०० मील है और इसके सपर्क मे आनेवाला क्षेत्र ३,६१,२०० वर्ग मील है। तिब्बत मे इसे सापो नदी कहते है। सापो का उदगम क्षेत्र सिधु और सतलुज के उदगम स्थल के पास ही है। असम की घाटी मे इसका बहाव तेज रहता है। असम की घाटी मे ४५० मील दक्षिण-पश्चिम बहने के बाद यह गारो पहाडियो का चक्कर लगाती हुई ठीक दक्षिण की ओर बहती है। असम घाटी को छोडने के बाद इसमे धरला और तिस्ता नामक नदियाँ बिलमारी के दक्षिण-पश्चिम मे इसके दाहिने किनारे पर मिलती हैं। यह नदी सागर से करीब ८०० मील उत्तर मे डिब्रूगढ तक नौगम्य है अत इस भाग मे नावे चला करती हैं। इसके दाहिने किनारे पर सिराजगंज, (जूट का प्रमुख केंद्र) धुबुरी, तेजपुर, विश्वनाथ तथा बाये किनारे पर गोआलपाड़ा, गोहाटी, सिलघाट, डिब्रूगढ आदि नगर स्थित है।

ब्रह्मसमाज ब्रह्मसमाज का इतिहास मूलत उस आध्यात्मिक आदोलन की कहानी है जो १९वी शताब्दी के नवजाग्रत भारत की विशेषता थी। इस आंदोलन ने स्वतत्रता की सर्वव्यापी भावना का सूत्रपात किया एव जनसाधारण के बौद्धिक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन को नवीन रूप प्रदान किया। वस्तुत. ब्रह्मसमाज के विश्वासों एवं सिद्धातो ने न केवल विगत १३० वर्षों मे भारतीय विचारधारा को ही नवीन मोड दिया, अपितु भारतीय राष्ट्रीय एकीकरण, अंतरराष्ट्रीयता एवं मानवता के उदय की भी अभिवृद्धि की।

१८वी शती के अत मे भारत पाश्चात्य प्रभावो एव राष्ट्रीय रूढ़िवादिता के चतुष्पथ पर खडा था। शक्तियों के इस सघर्ष के फलस्वरूप एक नवीन गतिशीलता का उदय हुआ जो सुधार के उस युग का प्रतीक थी जिसका शुभारभ पथान्वेषक एवं भारतीय नवजाग्रति के प्रथम अग्रदूत राजा राममोहन राय के आगमन के साथ हुआ। राजा राममोहन राय ने ईश्वरीय ऐक्य 'एकमेवाद्वितीयम्' परमात्मा के पितृमयत्व एव तज्जन्य मानवमात्र के भ्रातृत्व का संदेश दिया। इस सुदृढ तथा विस्तृत आधार पर ब्रह्मसमाज के सर्वव्यापी धर्म के उत्कृष्ट भवन का निर्माण हुआ।

राममोहन राय का जन्म पश्चिम बगाल के राधानगर ग्राम मे २२ मई, १७७२ ई० को हुआ था। उनके पिता रमाकात राय सभ्रात ब्राह्मण थे। इसलामी एव हिंदू धर्मग्रथो के मूलरूप मे अध्ययन के फलस्वरूप राममोहन राय ने मूर्तिपूजा का परित्याग कर एकेश्वरवाद स्वीकार किया। जन्मजात सत्यान्वेषक होने के नाते उन्होने लगभग तीन वर्ष सुदूर तिब्बत मे बौद्धधर्म के परिज्ञानार्थ व्यतीत किए। ईस्ट इडिया कपनी की सेवा मे रहकर राममोहन राय ने ईसाई धर्म का अध्ययन किया तथा अग्रज मर्तोपियो से उनका सपर्क हुआ। राममोहन राय की प्रथम पुस्तक 'तुहफातुल मुवाहदीन' (एकेश्वर वादियो के लिये एक उपहार) ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि एक ईश्वर मे विश्वास सभी धर्मों का सार है। उन्होने हिंदू एव ईसाई उभय रूढ़िवादिता के विरुद्ध सफल सघर्ष किया। राममोहन राय के अनन्य जीवन का सर्वोपरि कार्य था २३ जनवरी, (माघ ११), १८३० को ब्रह्मसमाज की स्थापना, सगुण ब्रह्म की उपासना का प्रथम सर्वोपरि मदिर। यहीं से नवीन धार्मिक आदोलन का जन्म होता है। राममोहन राय का स्वर्गवास २७ सितबर, १८३३ को ब्रिस्टल, इग्लैंड मे हुआ जहाँ वे सामाजिक तथा राजनीतिक उद्देश्य से गए थे।

राममोहन राय द्वारा प्रवर्तित एकमेवाद्वितीय ब्रह्म की जाति, धर्म तथा निरपेक्ष उपासना ने प्रिंस द्वारिकानाथ के आत्मज महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर (१८१७-१९०५) पर अति गभीर प्रभाव डाला। देवेंद्रनाथ ने ही ब्रह्मसमाज को प्रथम सिद्धात प्रदान किए तथा ध्यानगम्य उपनिषदीय पवित्रता के अभ्यास का सूत्रपात किया।

प्रथमाचार्य देवेंद्रनाथ की उपासनाविधि इस प्रकार प्रधानतः उपनिषदीय थी। प्रेममय ईश्वर के अनुग्रह से प्राप्त अनुभूतिगम्य आत्मसाक्षात्कार उनका महत्वपूर्ण योग था। उन्होंने आध्यात्मिक साधना हेतु एक संस्था तत्वबोधिनी सभा का आरंभ किया। तत्वबोधिनी पत्रिका, सभा की प्रमुख पत्रिका के रूप मे, बहुतो के लिये प्रेरणा का स्रोत बनी। देवेंद्रनाथ के नेतृत्व मे एक अपूर्व निर्णय लिया गया कि वेद अच्युत नहीं हैं तथा तर्क एव अतःकरण को सर्वोपरि प्रमाण मानना है। ब्रह्मसमाज ने प्रचार का तथा समाजसुधार का कार्य अपने हाथ में लिया। ब्रह्मसमाज के अंतर्गत केशवचंद्र सेन के आगमन के साथ द्रुत गति से प्रसार पानेवाले इस आध्यात्मिक आंदोलन के सबसे गतिशील अध्याय का आरंभ हुआ।

केशवचंद्र का जन्म १९ नवबर, १८३८ को कलकत्ता मे हुआ। उनके पिता प्यारेमोहन प्रसिद्ध वैष्णव एवं विद्वान दीवान रामकमल के पुत्र थे। बाल्यावस्था से ही केशवचंद्र का उच्च आध्यात्मिक जीवन था। महर्षि ने उचित ही उन्हे ब्रह्मानद की सज्ञा दी तथा उन्हे समाज का आचार्य बनाया। केशवचद्र के आकर्षक व्यक्तित्व ने ब्रह्मसमाज आदोलन को स्फूर्ति प्रदान की। उन्होंने भारत के शैक्षिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक पुनर्जनन मे चिरस्थायी योग दिया। केशवचंद्र के सतत अग्रगामी दृष्टिकोण एव क्रियाकलापों के साथ साथ चल सकना देवेंद्रनाथ के लिये कठिन था, यद्यपि दोनो महानुभावो की भावना मे सदैव मतैक्य था। १८६६ मे केशवचंद्र ने भारतवर्षीय ब्रह्मसमाज की स्थापना की। इसपर देवेंद्रनाथ ने अपने समाज का नाम आदि ब्रह्मसमाज रख दिया।

केशवचद्र के प्रेरक नेतृत्व मे भारत का ब्रह्मसमाज देश की एक महती शक्ति बन गया। इसकी विस्तृताधारीय सर्वव्याप्ति की अभिव्यक्ति 'श्लोकसग्रह' मे हुई जो एक अपूर्व सग्रह है तथा सभी राष्ट्रों एव सभी युगों के धर्मग्रथो मे अपने प्रकार की प्रथम कृति है। सर्वांग उपासना की दीक्षा केशवचद्र द्वारा दी गई जिसके भीतर उद्‌बोधन, आराधना, ध्यान, साधारण प्रार्थना, तथा शातिवाचन, पाठ एवं उपदेश प्रार्थना का समावेश है। सभी भक्तों के लिये यह उनका अमूल्य दान है।

धर्मतत्व ने तत्कालीन दार्शनिक विचारधारा को नवीन रूप दिया। १८७० मे केशवचंद्र ने इग्लैंड की यात्रा की। इस यात्रा से पूर्व तथा पश्चिम एक दूसरे के निकट आए तथा अंतरराष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ। १८७५ मे केशवचंद्र ने ईश्वर के नवीन स्वरूप —नव विधान समरूप धर्म (औपचारिक रूप से १८८० मे घोषित) नवीन धर्म की सपूर्णता (ससिद्धि) का संदेश दिया। अपनी नवसंहिता मे केशवचद्र ने इस विश्वधर्म का प्रतिपादन इस प्रकार किया .

हमारा विश्वास विश्वधर्म है जो समस्त प्राचीन ज्ञान का संरक्षक है एवं जिसमे समस्त आधुनिक विज्ञान ग्राह्य है, जो सभी धर्म गुरुओ तथा संतो मे एकरूपता, सभी धर्मग्रथो मे एकता एवं समस्त रूपो मे सातत्य स्वीकार करता है, जिसमे उन सभी का परित्याग है जो पार्थक्य तथा विभाजन उत्पन्न करते हैं एवं जिसमें सदैव एकता तथा शाति की अभिवृद्धि है, जो तर्क तथा विश्वास योग्य तथा भक्ति, तपश्चर्या और समाजधर्म को उनके उच्चतम रूपों में समरूपता प्रदान करता है एवं जो कालांतर मे सभी राष्ट्रों तथा धर्मों को एक राज्य तथा एक परिवार का रूप दे सकेगा।

केशवचद्र का विधान (दैवी संव्यवहार विधि), आदेश (साकार ब्रह्म की प्रत्यक्ष प्रेरणा), तथा साधुसमागम (संतों तथा धर्मगुरुओं से आध्यात्मिक संयोग) पर विशेष बल देना ब्रह्मसमाजियों के एक दलविशेष को, जो नितात तर्कवादी एव कट्टर विधानवादी था, अच्छा न लगा। यह तथा केशवचद्र की पुत्री के कूचबिहार के महाराज के साथ विवाह विषयक मतभेद विघटन के कारण बने, जिसका परिणाम यह हुआ कि पडित शिवनाथ शास्त्री के सशक्त नेतृत्व में १८७८ में साधारण ब्रह्मसमाज की स्थापना हुई। इस समाज ने कालातर में देश के सामाजिक एव शैक्षिक विकास मे बड़ा योग दिया। केशवचंद्र १८८४ मे दिवंगत हुए।

इन समाजों मे सैद्धातिक मतभेद शनै. शनैः कम होते गए हैं। आज 'आर्य, 'भारतवर्षीय' अथवा 'नवविधान' तथा 'साधारण' समाजों के बीच, जिनकी शाखाएँ समस्त भारत मे फैली हैं, अपेक्षाकृत अधिक अवबोध तथा सहकारिता है।

इस सर्वव्यापी आध्यात्मिक आदोलन के दर्शन तथा साहित्य की चरम परिणति महर्षि देवेंद्रनाथ के आत्मज विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर (१८६१-१९४१) की सुंदरतम कृतियो मे हुई। रवींद्रनाथ ने विशेषतया अपने श्रेष्ठतम एवं अनुकरणीय ब्रह्मसगीत के द्वारा एकरूपता तथा विश्वप्रेम का सदेश सुनाया।

इस प्रकार ब्रह्मसमाज अथवा निरतरोद्विकासी धर्मसश्लेषण हमे अपेक्षाकृत कम समय मे एक ब्रह्म, एक विश्व तथा एक मानवता के वाछित लक्ष्य के निकट पहुँचाने मे समर्थ हो सका है। [प्र० ब०]

ब्रह्मांड अनादिकाल से सृष्टि की उत्पत्ति, जीवो के निर्माण एव ब्रह्माड की रचना मानव के लिये रहस्यपूर्ण तथा कौतूहल के विषय रहे हैं। सृष्टि की उत्पत्ति और ब्रह्माड की रचना के साथ विभिन्न देशो मे अनेक पुराकथाएँ (Myths) जुडी हुई हैं। कालातर मे लोगो ने इसे धार्मिक एवं दार्शनिक रूप देने का प्रयत्न किया और सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ साथ मानव का अन्वेषक मन इसकी तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक परिभाषा देने मे भी सफल हुआ है।

बैबीलोनिया — यहाँ की एक पुराकथा बहुत प्रसिद्ध है। समुद्र के किनारे हरिद्रु बंदरगाह मे अटशू स्थान पर "ई" (इया) देवता रहता था, जो गहराई का प्रतीक था। अंधकार और अशाति के दैत्यराज 'टियामट्' ने वहाँ अत्याचार अनाचार मचा रखा था। 'बेलमेरोडाक' नामक देवता ने टियामट् दानव को दो टुकड़ो मे काट डाला। एक टुकडे से आकाश की और दूसरे से पृथ्वी की रचना हुई। तब पृथ्वी पर मनुष्य का सृजन किया गया, ताकि शाति और धर्म की रक्षा हो सके।

मिस्र—मिस्र मे भी ब्रह्माड की रचना के संबध में कई पुराकथाएँ प्रचलित हैं। आकाश अथवा स्वर्ग 'नट' और पृथ्वी 'सेब' जब संयोग के बाद अलग हुए, तो उन्होंने 'रा' अथवा 'शू' (सूर्य) की सृष्टि की। कुछ लोगों ने 'रा' को दैवी गऊ, 'नट' का बछड़ा माना है और एक अन्य मतानुसार 'शू' की उत्पत्ति अंडे से मानी गई है।

यूनान — यूनानी विचारकों ने ब्रह्मांड की रचना को दार्शनिक

रूप देने का प्रयत्न किया है। थेलस ने जल को सारे प्राकृत जगत् का आदि मत कहा। एनैक्सिमिनीज ने जगत् की उत्पत्ति का कारण वायु में देखना चाहा। पाइथागोरस ने संख्या को विश्व का मूलतत्व बयान किया। हिरैक्लाइटस ने अग्नि को जल और वायु दोनो से बलिष्ठ और व्यापक कहा। उसके मतानुसार अग्नि विश्व का मूलतत्व है—एनैक्सेगोरस ने कहा कि सूर्य जलता हुआ पत्थर है, और चद्रमा मिट्टी का बना है। पदार्थों की उत्पत्ति परमाणुओ का संयोग है, और उनका विनाश परमाणुओं का वियोग है।

प्लेटो के विचार से सृष्टिरचना एक स्रष्टा की क्रिया है। वह प्रकृति को प्रत्ययो का रूप देता है। इस क्रिया के पूर्व प्रकृति आकार-रहित और अभेद होती है। प्लेटो की मूल प्रकृति साख्य के अव्यक्त से मिलती है। साख्य मे अव्यक्त पुरुष की दृष्टि मे अव्यक्त बनता है; और प्लेटो के विचार से यह स्रष्टा की क्रिया का फल है।

अरस्तू ने दृश्यजगत् को दो भागों मे बाँटा। पहला भाग चंद्रमा से नीचे और दूसरा चद्रमा से ऊपर। चंद्रमा से नीचे का भाग पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि, इन चार तत्वों का बना है। ये चारो तत्व चार विविध गुण—सर्दी' गर्मी, तरी और खुश्की है। इन गुणो के वियोग और नए संयोगो से पृथ्वी आदि तत्व एक दूसरे मे बदल सकते हैं।

चद्रमा से ऊपर विश्व के दूसरे भाग मे द्युलोक है, जिसमे वे चारो तत्व विद्यमान नही है। वहाँ केवल पाँचवाँ तत्व आकाश विद्यमान है। इसमे कोई परिवर्तन नहीं होता और इसकी गति निरतर चक्राकार होती रहती है।

ईसाई मत — ब्रह्माड की रचना के सबध मे धार्मिक मत भी प्रचलित हैं। ईसाई मत के अनुसार आरभ मे 'गॉड', ईश्वर आदि तत्व थे। वे इसराइल के परमात्मा 'जावेह' थे। 'उन्होने पानी को अपनी हथेली से नापा और स्वर्ग को अपने हाथो मे बाँध लिया। उन्होने पृथ्वी की धूल को मुट्ठी मे लेकर पर्वतों की रचना की। वही पृथ्वी के केंद्र मे विद्यमान हैं। वे स्वर्ग का पर्दा उठाते हैं, प्रकाश और अधकार का निर्माण करते हैं, शाति और बुराइयो का निर्माण करते है - वे यह सब करते है।'

ईसामसीह ने ईश्वर को 'पृथ्वी और स्वर्ग का स्वामी' कहा है।

मुस्लिम मत — कुरानशरीफ के सुप्रसिद्ध टीकाकार जमाहशारी और बैदावी के अनुसार खुदा का तख्त बहिश्त और जमीन से पहले विद्यमान था। उसके नीचे से धुआँ उठा और पानी के ऊपर छा गया। पानी सूख गया। इससे जमीन बन गई और धुएँ से बहिश्त का निर्माण हुआ। बहिश्त का निर्माण जुमेरात को हुआ; चाँद, सूरज सितारो की सृष्टि जुमा को हुई; और इसी शाम को आदम का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् आदम और हव्वा के सयोग से सृष्टि का विकास हुआ।

भारतीय — भारत मे पहली बार सृष्टि की उत्पत्ति को धार्मिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा गया। वैदिककाल मे संसार को तीन भागो मे बाँटा गया—पृथ्वी, वायु और आकाश अथवा स्वर्ग। पृथ्वी और स्वर्ग में देवपुत्र निवास करते थे। इद्र, अग्नि, रुद्र, सोम आदि देवताओ ने सृष्टिरचना की। उन्होने दक्ष और अदिति को उत्पन्न किया, और इन दोनो के सयोग से सृष्टि का विकास हुआ। दक्ष पुरुष और अदिति नारी के ससर्ग से सृष्टि का निर्माण हुआ। (ऋग्वेद, पुरुष सूक्त, १०, ९०)।

ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् काल मे इसी तथ्य को घुमा फिराकर कहा गया। पृथ्वी, वायु और आकाश को 'भू:, भुव: और स्व:, नाम से सबोधित किया गया है। ये तीन लोक थे। कालातर मे इन तीन लोको के स्थान पर सात लोको की कल्पना की गई— 'मह:, जन:, तपस् और सत्यम्' लोक उपर्युक्त लोको मे जोड़ दिए गए। 'अभ:' जल को स्वर्ग धारण करता है। पृथ्वी नीचे जल है, और वहाँ भी सप्तलोक है—अतल, पाताल, वितल, सुतल, रसातल, महातल, और तलातल।

पृथ्वी शेषनाग के सिर पर अथवा कच्छप की पीठ पर स्थित है। दसो दिशाओ मे दिक्‌पाल उसे साधे हुए हैं।

पुराणों मे इस परिकल्पना को दूसरा रूप दिया गया। स्रष्टा ईश्वर को ब्रह्म, नारायण, विष्णु और शभु शिव कहा गया। ब्रह्म से ही ब्रह्माड की उत्पत्ति हुई है। तमस अधकार और जल से हिरण्यगर्भ अथवा पुरुष की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के सात मानसपुत्र मारीचि आदि हुए। अदिति के ससर्ग से इन मानसपुत्रो ने सृष्टि का निर्माण किया। सृष्टि का विनाश प्रलयकाल मे होता है। इस प्रकार सृष्टि और प्रलय का चक्र कल्प, मन्वतर और युगो मे चलता रहता है। दे० 'प्रलय।'

सृष्टि की उत्पत्ति का एक रूप साख्य दर्शन मे भी मिलता है। इस क्षेत्र मे—इसे सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रयास कहा जा सकता है। यह विकासवाद के नाम से प्रचलित है। 'नित्य-शुद्ध-बुद्ध-स्वभाव बहुत्व' पुरुष और मूलाप्रकृति प्रसवधर्मी त्रिगुणात्मिका' प्रकृति के 'सान्निध्य-माध्यम' से निम्नलिखित तत्वो की उत्पत्ति होती है —
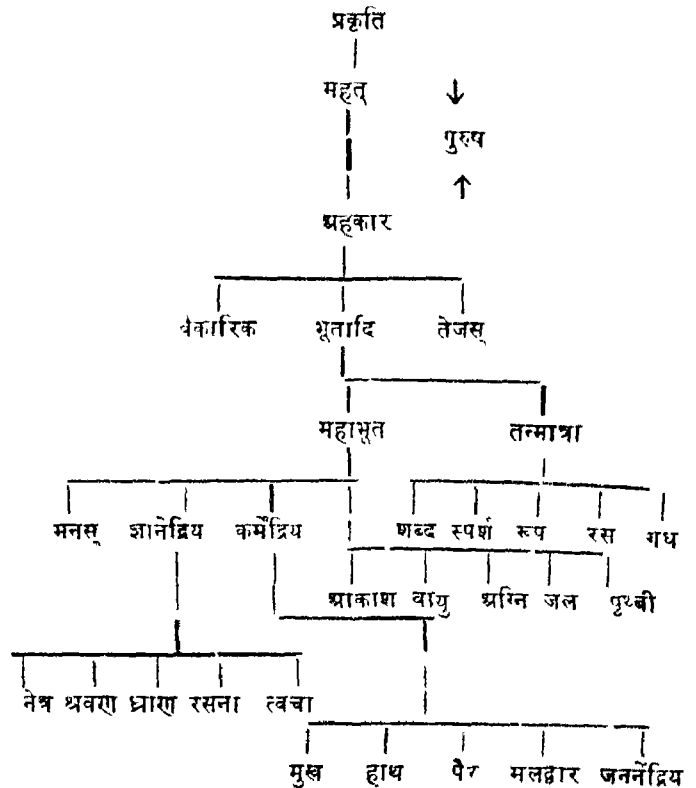
इस प्रकार सांख्य का विकासवाद परमाणुओं का अंधसंयोग मात्र नहीं, वह प्रयोजनवादी है।

इसके अतिरिक्त बौद्धदर्शन और जैनदर्शनों में भी ब्रह्मांड और सृष्टि की कल्पना की गई है, किंतु वह सनातन पौराणिक एवं पुराकथाओं की पुनरावृत्ति मात्र है।

ब्रह्मांड की रचना के विषय में एक पक्ष वैज्ञानिक पक्ष भी है। सुदूर अतीत के न जाने किस युग से जिज्ञासुओं और मनीषियों की प्रश्नवाचक मुद्रा चाँद सितारों के गली कूचों में गर्दिश करती हुई यह जानने की कोशिश करती रही है कि सृष्टि का मूलरूप क्या है? क्या है यह ब्रह्मांड? गैलिलियो, लाइबनीत्ज, जीस और एडिंग्टन ने अपने अनुसार ब्रह्मांड की उत्पत्ति और सृष्टि के आदि क्रम पर विचार व्यक्त किए। अभी कुछ समय पूर्व तक इस संबंध में आइंस्टाइन का विचार सर्वमान्य था। इसके अनुसार ब्रह्मांड निरंतर फैल रहा है। पर गत दस वर्षों में रेडियो-नक्षत्र-विद्या की खोजी आँख ने कुछ ऐसे करिश्मे देखे, जो आइंस्टाइन के इस सिद्धांत से कतई मेल नहीं खाते। रेडियो दूरदर्शियों की साक्षी के कथनानुसार ब्रह्मांड की निश्चित सीमाओं के भीतर ही नए लोकों और विश्वों का निर्माण हो रहा है। इन अवलोकनों के सूक्ष्म परिणामों की भी आइंस्टाइन के सिद्धांत में गुंजाइश नहीं बल्कि उन्होंने उल्टे इस सिद्धांत में संदेह पैदा किए हैं।

इस प्रकार रेडियो दूरदर्शियों के प्रयोग ने सृष्टिसिद्धांत के क्षेत्र में एक अभाव, एक शून्य को पैदा कर दिया। इस अभाव की पूर्ति अभी हाल में डॉ० नार्लीकर के उस सिद्धांत से हुई, जो उन्होंने प्रो० हायल के साथ प्रतिपादित किया है।

अंग्रेज वैज्ञानिक फ्रेड हायल तथा रेडियो ज्योतिर्विद मार्टिन राइल, एलन सैंडेज आदि ब्रह्मांड की सतत गतिशीलता के प्रतिपादक हैं। दे० 'ब्रह्मांडोत्पत्ति'।

सं० ग्रं० — एल० डब्लु० किंग : द सेवेन टैबलेट्स आव क्रिएशन, १९०२, द फ्री प्रेस, न्यूयार्क, थियरीज आॅव द यूनिवर्स, मिल्टन के० म्युनिट्ज द्वारा संपादित, १९६५। [मु० गु०]

ब्रह्मांडोत्पत्ति (Cosmogony) से उन सिद्धांतों, उपकल्पनाओं या अनुमानों से अभिप्राय है जो संपूर्ण विश्व, या ब्रह्मांड, अथवा उसके किसी अंश, सौरमंडल, तारामंडल आदि के उद्गम और विकास की अवस्थाओं की व्याख्या करते हैं। ब्रह्मांडोत्पत्ति का विश्व के स्वरूप से घनिष्ठ संबंध है। अति प्राचीन काल में लोग पृथ्वी को ही ऐसे ब्रह्मांड का मुख्य अंश समझते थे जिसमें सूर्य, चंद्र तथा तारे प्रकाश के लिये निर्मित थे, अथवा सूर्य, चंद्र, तारे आदि देव स्वरूप थे, जो पृथ्वीवासियों के रक्षक तथा पूज्य थे। अतएव प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में मुख्यतया पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में अनेक कल्पनाएँ हैं। इनके साथ ही सूर्य, चंद्र तथा तारों का कुछ संबंध जोड़ा गया है। ज्योतिष के ज्ञान में वृद्धि तथा वेध के उपकरणों में परिशुद्धता आने पर, जैसे जैसे ब्रह्मांड के स्वरूप के विषय में जन धारणाओं में परिवर्तन होता गया वैसे वैसे ब्रह्मांडोत्पत्ति के सिद्धांत भी बदलते गए।

ब्रह्मांडोत्पत्ति के प्रारंभिक सिद्धांत — आज से दो या तीन शताब्दी पूर्व ज्योतिष विद्या का क्षेत्र सौर परिवार तक सीमित था। अत: उस समय ब्रह्मांडोत्पत्ति का विषय भी सौर परिवार की उत्पत्ति तक सीमित था। ऐतिहासिक दृष्टि से वैज्ञानिक ढंग से ब्रह्मांडोत्पत्ति का अध्ययन फ्रांसीसी वैज्ञानिक जॉर्जेस द बुफान (Georges de Buffon) की उस परिकल्पना (hypothesis) से हुआ जिसमें उन्होंने ग्रहों की सृष्टि को पास से गुजरते हुए, किसी धूमकेतु के सूर्य से टकरा जाने के कारण टूटे हुए द्रव्यों के संघटन से बताया। किंतु उससे कुछ समय बाद एक नीहारिका से सूर्य तथा उसके परिवार के जन्म की परिकल्पना को महत्व मिल गया। इसका प्रतिपादन दो प्रसिद्ध विद्वानों ने स्वतंत्र रूप से किया। इनमें एक थे जर्मनी के दार्शनिक, इमेनुअल कांट (Immanuel Kant, १७२४-१८०४ ई०) तथा दूसरे थे फ्रांसीसी गणितज्ञ, पियरी साइमन द लाप्लास (Pierre Simon de Laplace, १७४९-१८२७ ई०)। कांट-लाप्लास परिकल्पना के आधार पर सूर्य तथा सौर परिवार की उत्पत्ति गैस तथा धूल के एक मेघ, अथवा मूलरूप में नीहारिकाकार द्रव्यसमवाय से हुई। यह नीहारिका मंदगति से घूर्णन कर रही थी। इसके भीतरी भागों में अनियमित विक्षोभात्मक (Turbulent) गतियाँ थीं। जब यह द्रव्य न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के अनुसार सिकुड़ने लगा तब अक्ष के चारों ओर इसकी घूर्णन गति में तीव्रता आने लगी। उस अवस्था में मंद घूर्णनवाले द्रव्य केंद्र की ओर एकत्रित होते गए, जिनसे सूर्य का जन्म हुआ तथा उत्तरोत्तर तीव्र घूर्णन गति के द्रव्यसमवाय एकत्रित होकर ग्रहों के रूप में उसकी परिक्रमा करने लगे। सौर परिवार की उत्पत्ति का यह सिद्धांत १९वीं शताब्दी के अंत तक मान्य रहा, किंतु १९वीं शताब्दी के अंतिम चरण में प्रसिद्ध अंग्रेज, भौतिकीविज्ञानी, क्लार्क मैक्सवेल (Clark Maxwell), ने शनि के वलयों संबंधी अपने सिद्धांत का, नीहारिका द्वारा सौर परिवार के जन्म के सिद्धान्त पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि केंद्रीय पिंड, सूर्य, के चारों ओर घूर्णन करते हुए ग्रहमूलक द्रव्यसमुदायों के वलयों में ही रहने की संभावना थी, वे कभी भी ग्रहों के रूप में संघटित नहीं हो सकते थे।

मैक्सवेल द्वारा सौर परिवार की उत्पत्ति की नीहारिकामूलक परिकल्पना के खंडित हो जाने के पश्चात्, सौर परिवार की उत्पत्ति का कारण ज्वारभाटा उपकल्पना (Tidal hypothesis) तथा टक्कर की उपकल्पना मानी गई। ज्वारभाटा की उपकल्पना के अनुसार, अतिदूर भूतकाल में कोई विशाल तारा सूर्य के पास से अति वेग से गुजरा, जिसके कारण सूर्य पिंड में भयंकर ज्वार भाटा उठा और सूर्य के द्रव्य की बहुत सी मात्रा सूर्य के चारों ओर फैल गई। तारे के चले जाने के पश्चात्, उस द्रव्यमात्रा का अधिकांश पुन: सूर्य में आ गिरा, किंतु शेष द्रव्यमात्रा अंशों में जमकर ग्रहों में परिवर्तित हो गई। टक्कर की उपकल्पना के अनुसार सूर्य अथवा इस कल्पना के अनुसार युग्मतारा, की किसी तारे से अथवा अपने सहचर से टक्कर हो जाने के कारण बिखरी हुई द्रव्यमात्रा से ग्रहों का जन्म हुआ। ज्वारभाटा उपकल्पना के प्रवर्तक थे भौतिकीविद, सर जेम्स जीन्स (Sir Games Geans) तथा हेरॉल्ड जेफ्रीज (Herold Jeffreys)। इन सिद्धांतों के अनुसार ग्रहों से पूर्ववर्ती सूर्य की कल्पना की गई थी, जो जँचती न थी तथा ये सिद्धांत ग्रहों के कोणीय वेग के कारण को भी यथार्थ व्याख्या नहीं कर पाते थे। अत: ये उपकल्पनाएँ मान्य न हो सकीं।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् कार्ल फॉन विजाकर (Carl von

Wizsacker) ने संशोधित रूप मे पुन: काट-लाप्लास-उपकल्पना को उपस्थित किया। उन्होंने क्लार्क-मैक्सवेल की शका को निराधार बताया, क्योंकि मूल सौर गैस मेघ के मूलतत्व, जो प्राय हाइड्रोजन तथा हीलियम थे, शनि के मूलतत्वो से भिन्न थे। अतएव वे ग्रह रूप मे संघटित हो सकते थे। इन्ही के अनुयायी डच अमरीकी ज्योतिषी, जी० पी० कुइपर (G. P. Kuiper), ने यह सिद्ध किया कि ग्रहों की भी रचना लगभग उसी समय हुई जब सूर्य अपने स्वरूप के निर्माण की अवस्था मे था। सूर्य के प्रकाश के दबाव के कारण, सूर्य के निकटवर्ती ग्रहो के तल की हीलियम तथा हाइड्रोजन मूलक हलकी गैसें उड जाने से, इनमे भारी तत्वो का आधिक्य है यह उपकल्पना अब प्राय मान्यता प्राप्त कर चुकी है।

वर्तमान शताब्दी के प्रारंभ मे वेध के शक्तिशाली यंत्रो की उपलब्धि से विश्व के स्वरूप की मूलभूत धारणाओं मे महान् परिवर्तन हो गया। ज्योतिषियो ने इन यत्रो की सहायता से तारा पद्धति से ऊपर उठकर विश्व के नए सदस्यो के बारे मे ज्ञान प्राप्त करना शुरू किया। ये थे गैसमेघ, तारान्तर्वर्ती गैस तथा धूल, नीहारिकाएँ, तारागुच्छ और आकाश गगाएँ। इन अध्ययनो से यह सिद्ध हो गया कि हमारी अपनी तारापद्धति सूर्य केंद्रिक है। हमारी आकाशगंगा स्वय मे एक विश्वद्वीप है। विश्व मे इस प्रकार के अनेक विश्वद्वीप है, जिनकी संख्या अरबो मे है तथा ये आकाशद्वीप हमारे दूरदर्शियो की पहुँच की अन्तिम सीमाओ तक भी दिखलाई देते हैं। तब सबसे पहले यह प्रश्न उठा कि विश्व की सीमा क्या है। बिना इस प्रश्न के उत्तर के हम विश्व के सभी विश्वद्वीपो की उत्पत्ति का ज्ञान नही प्राप्त कर सकते थे।

ब्रह्मांडोत्पत्ति का व्यापक अध्ययन वर्तमान शताब्दी के प्रारंभ से शुरू होता है, जब प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टाइन के सापेक्षवाद के समीकरणो का व्यापक प्रयोग अतिदूरवर्ती खगोलीय पिंडो पर किया गया तथा इनसे ब्रह्मांड (cosmos) को जानने का प्रयत्न किया गया। ब्रह्मांडोत्पत्ति का वही सिद्धात वैज्ञानिक हो सकता है जो ब्रह्मांडरूप, उसके दैर्ध्य विस्तार, उसके घनत्व तथा पडो की गतियो से मेल खाता हो। सर्वप्रथम आइन्स्टाइन ने बद, अनतगोलाकृति ब्रह्मांड की कल्पना की, किंतु इस कल्पना का विस्तारशील ब्रह्मांड के सिद्धात से मेल न होने के कारण, इसे मान्यता न मिल सकी।

विस्तारशील ब्रह्मांड — ब्रह्मांडोत्पत्ति के आधुनिक सिद्धात विस्तारशील ब्रह्मांड के सिद्धात से अत्यत प्रभावित हुए हैं। इसके प्रवर्तक अमरीकी वैज्ञानिक हबल हैं। उन्होने वर्तमान शताब्दी के दूसरे दशक मे माउट विलसन वेधशाला मे अति दूरवर्ती आकाशगगाओ के स्पेक्ट्रमो का अध्ययन किया और देखा कि उनकी रेखाएँ स्पेक्ट्रम के लाल छोर की ओर स्थानातरित है। इसपर उन्होंने डॉपलर के नियम से ज्ञात किया कि ये आकाशगगाएँ हमसे अपसरण कर रही हैं। इन अध्ययनो से उन्हे यह भी पता चला कि ज्यो ज्यो आकाशगंगाओ की दूरी हमसे बढ रही है, त्यो त्यों इनका अपसरण वेग भी बढ रहा है, जो प्राय उनकी हमसे दूरी का अनुपाती है। इससे उन्होंने यह सिद्ध किया कि ब्रह्मांड विस्तारशील है।

मूल द्रव्यपिंड के विस्फोट से ब्रह्मांडोत्पत्ति — विस्तारशील विश्व की कल्पना से तालमेल खाते हुए ब्रह्मांडोत्पत्ति के सिद्धात को सर्वप्रथम बेल्जियम के ज्योतिषी ऐबि लमैत्र (Abbe Lemaitre) ने महाद्रव्याणु विस्फोट के कारण बताया। इसी से मिलते जुलते सिद्धात के परिष्कृत रूप को जॉर्ज वाशिगटन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० जॉर्ज गेमो ने अपने सहयोगियो राल्फ अल्फर, आर० सी० हरमैन, जे० एस० स्मार्ट, एनरिको फेर्मी तथा ऐटनी टर्केविच की सहायता से अपनी १९५१ ई० मे प्रकाशित पुस्तक, क्रियेशन ऑव यूनिवर्स, मे प्रतिपादित किया है। उसका साराश यह है कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति के आरभ मे विश्व का सारा मूलद्रव्य एक विशाल पिंड (primeval atom) के रूप मे था, जिसे डा० गेमौ ने 'ईलम' नाम दिया है। उस समय उस मूल द्रव्य का घनत्व अत्यधिक था, जो सभवत $१०^{१४}$ प्रति घन सेंटीमीटर था। अत्यधिक दबाव (pressure) के कारण उसका भीतरी ताप अरबो अंशो मे था। दबाव के अत्यधिक हो हो जाने से मूलद्रव्य के पिड मे विस्फोट हो गया और परिणाम स्वरूप मूलद्रव्य चारो ओर फैलने लगा। विस्फोट के एक घटे के बाद विश्व का ताप २,५०,००,००,०००° था। ज्यो ज्यो मूल द्रव्य फैलता गया, त्यों त्यो ब्रह्मांड का ताप कम होता गया। ब्रह्मांड के प्रसरण के आरभ होने के २५,००,००,००० वर्षों के पश्चात् विश्व का ताप इस प्रकार का हो गया कि उसमे विभिन्न प्रकार के हमारे परिचित द्रव्यो के अणुओ का और मूल द्रव्य के बड़े बडे भागो मे गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रो का जन्म होने लगा उस समय मूलद्रव्य के बडे बडे विशाल भाग गोलाकार गैस के मेघ सरीखे थ। ये ही कालातर मे ब्रह्मांड की बडी इकाइयो, आकाशगगाओ,—मे परिणत हो गए, किंतु उनके भीतरी भागो मे भी अणुओ की विक्षुब्ध गतियो (turbulent motions) के कारण उनके भीतर भी गैसमेघो के छोटे छोटे गोलाकार खड बन गए, जिनके अपने गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र बन गए। इन गैसमेघो के आकार के अनुसार, कालातर मे द्रव्य के सकुचित होने पर, इनमे तारो तथा तारागुच्छो आदि का जन्म हुआ। तारो के पास बिखरा हुआ द्रव्य छोटे छोटे ग्रहो मे परिवर्तित हो गया। डा० गेमो के अनुसार विश्वनिर्माण की इस क्रिया मे मुश्किल से आधा घटा लगा होगा। इन आकाशगंगा पद्धतियो मे दो तरह का वेग था : एक तो विस्फोटजनित, जिससे ये विस्फोटबिंदु से उत्तरोत्तर दूर होती रही और होती जा रही हैं, तथा दूसरा उनकी तारापद्धतियो का अपनी नियत अक्ष रेखा के प्रति घूर्णन था। घूर्णन की गति के कारण आकाशगगाओ के स्वरूपो मे सर्पिल, दीर्घगोलाकार आदि परिवर्तन हुए। इस सिद्धात के अनुसार विश्व के निर्माण का अर्थ है, जो लगभग चार अरब पूर्व हुआ था, और उसकी इति भी है जो अब से लगभग दस अरब वर्ष के आसन्न होगी। उस समय आकाशगगाएँ, एक दूसरे से हटती हुई, अनत मे विलीन हो जाएँगी और प्रत्येक आकाशगगा के तारे ठढ होकर मृत हो जाएंगे। न प्रकाश होगा न गति होगी। ब्रह्मांड मे एक पूर्ण विराम आ जायगा।

ब्रह्मांड की आयु का सिद्धात — ब्रह्मांड की आयु से, विश्व के वर्तमान स्वरूप तक विकसित होने मे लगनेवाले काल से अभिप्राय है। इसका अध्ययन करने के लिये वैज्ञानिको ने विश्व के विभिन्न सदस्यो की आयु का अध्ययन किया है। यूरेनियम धातु के सीसे (lead) मे बदलने तथा समुद्र के वर्तमान क्षार की मात्रा आदि से पृथ्वी की वर्तमान आयु को ज्ञात किया गया है। चद्रमा के पृथ्वी से अपसरण वेग (लगभग ५ इंच प्रति वर्ष) द्वारा चद्रमा की आयु को

ज्ञात किया गया है, क्योंकि चंद्रमा का जन्म पृथ्वी के ऐटलांटिक समुद्र से हुआ था और वह अब हमसे लगभग २,३६,००० मील दूर हट गया है। सूर्य मे उपलब्ध हाइड्रोजन की मात्रा से सूर्य की वर्तमान आयु का ज्ञान किया गया है। तारों के ऊर्जास्रोतों, हाइड्रोजन भडारों, के अध्ययन से उनकी आयु का भी अध्ययन किया गया हैं। डा० गेमों के अनुसार इन सबसे एक ही निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति प्रायः ५ अरब वर्ष पूर्व हुई। हबल के स्थिरांक द्वारा भी ब्रह्मांड की आयु लगभग इतनी ही ठहरती है।

स्थिर स्थिति का विश्व (Steady State of Universe)—इस सिद्धांत के मुख्य प्रतिपादक है गोल्ड, बांडी तथा फ्रेड हॉयल। इन लोगों ने विस्फोट सिद्धांत के विरुद्ध निम्नलिखित आपत्तियाँ की है :

(१) विस्फोट होने का कोई वेधोपलब्ध प्रमाण नही है, सिवाय इसके कि विश्व विस्तारशील है। विश्व की विस्तारशीलता की व्याख्या अन्य विधियो से भी सभव है यथा विश्व का सतत सृजन। (२) विभिन्न आकाशगंगाओ, उनके क्रम तथा क्रम के तारों मे भारी तत्वों की विभिन्नता की भी व्याख्या इससे ठीक नही हो सकती। (३) हमें विश्व के विस्तार की व्याख्या के लिये विस्फोटकालिक स्थितियो पर निर्भर रहना पड़ेगा। (४) विश्व के विस्तार के साथ द्रव्य के अनत में विलीन होने से, दृश्य विश्व अपने द्रव्य की कुछ निश्चित मात्रा खो देगा। तब गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रों मे महान् परिवर्तन आ जाने से विश्व की स्थिति विचित्र हो जायगी। (५) साथ ही साथ वेध से ऐसी आकाशगंगाओ का भी पता चला है जिनकी आयु विस्फोट सिद्धात की विश्वायु से बहुत अधिक है। फ्रेड हॉयल के अनुसार इन सब समस्याओं का हल यही मानने मे है कि विश्व में सतत निर्माण होता रहता है। संपूर्ण विश्व का न तो प्रारंभ ही निश्चित किया जा सकता है और न अंत ही। विश्व की विस्तारशीलता के कारण जितना पदार्थ हमारे दृश्य विश्व से अनत की ओर चला जाता है, उतना ही पदार्थ निर्मित होता रहता है। इस प्रकार आकाशगंगाओ तथा तारकपद्धतियो का सतत निर्माण क्रम चालू रहता है।

किंतु कुछ दिन हुए इस सिद्धांत पर स्वय फ्रेड हॉयल को ही संदेह होने के आभास मिले हैं। इसलिये विश्व की उत्पत्ति का अभी कोई सर्वमान्य सिद्धांत स्थिर नही हो सका है। ब्रह्मांडोत्पत्ति के सिद्धांत को स्थिर करने के लिये हमे ब्रह्मांड की आकृति तथा ब्रह्मांड के औसत घनत्व का यथार्थ ज्ञान अत्यंत अपेक्षित है। हमारे साधनों के सीमित होने के कारण, अभी इनका निश्चित रूप से ज्ञान नहीं हो पाया है। अब हम लोग रेडियो दूरदर्शियो की सहायता से ब्रह्मांड की गहराइयों को जानने का प्रयास कर रहे हैं। आशा है, निकट भविष्य में मनुष्य प्रकृति के गूढ़तम रहस्य ब्रह्मांड की उत्पत्ति की थाह पा लेगा। [मु० ला० श०]

ब्रांडी (Brandy) सामान्यत फलों के किण्वित रसो से प्राप्त आसुत को ब्रांडी कहते हैं। यदि किसी अन्य फल का उल्लेख न हो, तो ब्रांडी का आशय अंगूर के रस से प्राप्त आसुत से होता है। ब्राडी मे उस फलविशेष की विशेषताएँ, जिसके रस से वह तैयार की गई हो, बहुत कुछ विद्यमान रहती हैं, परंतु आसवन की क्रिया में सुवास (flavour) नष्ट हो जाती है। किसी अन्य फल के किण्वित रस से प्राप्त आसुत में ब्रांडी के साथ उस फलविशेष का नाम जोड़ दिया जाता है, जैसे सेब की ब्राडी (apple brandy), अखरोट की ब्रांडी (apricot brandy) आदि। इसके अतिरिक्त कभी कभी भौगोलिक क्षेत्र से प्राप्त अंगूर के आधार पर भी ब्राडी का नाम रखा जाता है, जैसे फ्रांस के प्रांतविशेष मे उत्पन्न होनेवाली अंगूर से प्राप्त ब्रांडी, कोन्येक ब्राडी (cognac brandy) के नाम से प्रसिद्ध है। ब्राडी मे ऐल्कोहल की मात्रा आयतन के अनुसार ८५ % से कम होती है।

आसुत मदिरा मे अंगूर की ब्राडी, अथवा केवल ब्राडी, संभवतः प्राचीनतम है। आदिकाल मे अगूर के किण्वित रस का प्रयोग ऐल्कोहॉलीय मदिरा के रूप मे होता था, परतु दसवी या ग्यारहवी शताब्दी मे आसवन के द्वारा इससे जीवन-जल (water of life) की प्राप्ति हुई, जो ब्राडी के वाछनीय गुणो का आधार बना। ब्राडी की उत्पत्ति फ्रास मे मानी जाती है, परतु आजकल प्रत्येक देश मे, जहाँ अगूर उत्पन्न होता है, ब्राडी बनाई जाती है। ससार की सर्वाधिक प्रसिद्ध ब्राडी फ्रास के शारात (Charente) तथा हौटे शारात (Haute charente) नामक दो प्रातो से प्राप्त होती है। इन क्षेत्रो से उत्पन्न ब्राडी के लिये कोन्येक ब्राडी शब्द सुरक्षित रखा गया है। कोन्येक नगर शारात प्रात की राजधानी है। फ्रास के इस क्षेत्र की जलवायु खाने योग्य अंगूर के उत्पादन के लिये अनुरूप नही है, क्योकि इस क्षेत्र मे जिस किस्म का अगूर उपजता है उसमे अम्ल की मात्रा अधिक रहती है, जिससे अगूर बहुत खट्टा होता है। अगूर का यह अम्ल किण्वन की क्रिया मे एक विशेष प्रकार के तीव्र सुवासित एस्टर को उत्पन्न करता है। आसवन से यह एस्टर भी आसुत मे आ जाता है और प्राप्त ब्राडी इस एस्टर से सुवासित होती है, जो कोन्येक ब्राडी की विशेषता है।

ब्राडी का आसवन घट भभको (pot still) मे दो या तीन क्रमबद्ध आसवन मे होता है। अच्छी आसुत ब्राडी को ओक वृक्षो की लकडी से बने पीपो म रखा जाता है। नए पीपो का प्रयोग ताजी आसुत ब्राडी के लिये किया जाता है तथा नए पीपो मे रखी हुई ब्राडी का पुन आसवन करके, पुराने पीपो मे रखा जाता है। इस प्रकार के पीपो मे कई वर्ष तक रखने के बाद अच्छी ब्राडी प्राप्त होती है।

अन्य फलो के रस से प्राप्त ब्राडी मे उन फलों का विशेष महत्व है जो पर्वतो पर अथवा अधिक ऊँचाई के स्थानो पर उपजते है तथा जिनमे तीव्र सुवास होती है। इस प्रकार की ब्राडी मे स्विट्सरलैंड तथा जर्मनी के ब्लैक फॉरेस्ट क्षेत्र से प्राप्त चेरी-ब्राडी (cherry-brandy) कर्शवासेर (kirschwasser) के नाम से तथा यूगोस्लाविया की बादाम ब्राडी (prune brandy) स्लिवोविक्स (slivovicks) नाम से प्रसिद्ध है। परिणाम मे ब्राडी का उत्पादन संसार मे मदिरा उत्पादन मे दूसरे स्थान पर आता है। ह्विस्की को छोडकर अन्य ऐल्कोहॉलीय पेय मे इसका उत्पादन सर्वाधिक है तथा यह लोकप्रिय पेय केवल मदिरा के रूप मे ही नही वरन् जीवनजल के रूप मे घायल तथा बीमारों की रक्षा मे भी प्रयुक्त होता है। [अ० सि०]

ब्राइट, जान (१८११ - १८८९) अंग्रेज राजनीतिज्ञ, जिसका जन्म लंकाशायर की रोकडेल बस्ती के समीप ग्रीन बैंक मे १६ नवंबर,

१८११ को हुआ। इसके पिता जेकब ब्राइट ने इसके जन्म से दो वर्ष पूर्व रोकडेल मे सूती मिल की स्थापना की थी। ब्राइट की प्रारंभिक शिक्षा घर के समीप एक बोर्डिंग स्कूल मे हुई। उसने एक्वर्थ, पार्क और न्यूटन के स्कूलो मे भी अध्ययन किया। उच्च शिक्षा वह प्राप्त न कर सका। १६ वर्ष की उम्र मे वह पिता के व्यवसाय मे संमिलित हुआ और फिर उसका साझेदार बन गया। १८३३ मे उसके प्रयत्न से एक साहित्यिक संस्था की स्थापना हुई। इसमे दिए गए अपने भाषणो के प्रभाव से उसको अपनी वाक्शक्ति की जानकारी हुई जिसका उसने उत्तरोत्तर उपयोग किया। १८३८ मे अनाज कानून के विरोध मे रोकडेल मे दिए गए उसके तथ्ययुक्त और तर्कपूर्ण भाषण ने उसके प्रभाव मे वृद्धि की। अगले वर्ष मैंचेस्टर मे एंटीकार्न ला लीग (अनाज कानून विरोधी संघ) की स्थापना मे ब्राइट का विशेष हाथ था। इस प्रजापीडक कानून की समाप्ति के लिये संघ के प्रमुख नेता कौबडेन के साथ ब्राइट ने अथक परिश्रम किया। १८४६ मे दल के प्रधानमंत्री राबर्ट पील ने इस कानून को उठा लिया। इसी वर्ष संघ को भी समाप्त कर दिया गया।

ब्राइट अबाध व्यापार का समर्थक था। १८४३ मे डरहम से निर्विरोध निर्वाचित होकर वह पार्लमेंट मे पहुँच गया था। वहाँ उसने शासन मे उदार सिद्धांतो के व्यवहार, आवश्यक आर्थिक सुधार और अनाज कानून को समाप्ति के पक्ष मे मत व्यक्त किया। श्रमिको के काम के घंटो के सीमित करने और धर्माधिकारियो द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा के नियंत्रण के प्रस्तावो का उसने पार्लमेंट मे विरोध किया। उसने दोषपूर्ण निर्वाचन प्रणाली के सुधार के लिये कार्य किया। वह शांतिवादी था। रूस के विरुद्ध क्रीमिया की लड़ाई मे इंग्लैंड के सहयोग का उसने उग्र विरोध किया किंतु उसके क्षेत्र ने उसके विरोध का समर्थन नहीं किया। उन्होने रूस का एजेंट कहकर ब्राइट को बदनाम किया और नगर की सडको पर उसके पुतले जलाए। १८५७ के चुनाव मे मैंचेस्टर से यह और काबडेन दोनों ही हार गए। किंतु अगले ही वर्ष दूसरे औद्योगिक नगर बर्मिघम से उसका निर्विरोध चुनाव हो गया। ब्राइट जीवन के अंतिम दिन तक पार्लमेंट का सदस्य रहा। बर्मिघम नगर ने प्रत्येक चुनाव मे उसको अपना प्रतिनिधि निर्वाचित किया। फरवरी, १८५८ मे षड्यंत्र संबंधी सरकारी कानून का ब्राइट ने उग्र विरोध किया। कानून स्वीकृत न हो सका। प्रधान मंत्री पामर्स्टन को पदत्याग करना पड़ा। इंग्लैंड मे यहूदियो का पार्लमेंट मे प्रवेश निषिद्ध था। उनके प्रतिबंधो को हटाने का ब्राइट ने समर्थन किया। जुलाई, १८५८ मे यहूदियो को पार्लमेंट का सदस्य बनने की सुविधा प्राप्त हो गई। भारत मे ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की समाप्ति और इंग्लैंड की सरकार द्वारा उस देश के शासन का उसने समर्थन किया। १८५९ से १८६७ तक ब्राइट ने पार्लमेंट के सुधार के पक्ष मे लोकमत तैयार करने के लिये अनवरत परिश्रम किया। सुधार संबंधी प्रस्तावो का उसने प्रत्येक अवसर पर पार्लमेंट मे समर्थन किया। १८६७ मे सुधारविरोधी अनुदार दल की सरकार को ही इस संबंध का कानून बनाना पड़ा।

ब्राइट के कार्य अपने देश तक ही सीमित न थे। दासत्व के विरुद्ध संघर्षरत अमरीका के उत्तरी राज्यों का भी उसने समर्थन किया। भारतवासियो की स्थिति मे सुधार के लिये भी उसने प्रयत्न किया। १८६८ मे उदार दल की सरकार बनने पर प्रधान मंत्री ग्लैडस्टन ने ब्राइट को व्यापार बोर्ड का अध्यक्ष नियुक्त किया। इस पद के कार्यकाल मे ब्राइटन ने आयरलैंड के धर्म और भूमि के मामलों मे प्रधान मंत्री के निर्णयो का समर्थन किया। अस्वस्थता के कारण दिसंबर १८७० मे उसने अपना पद त्याग दिया। पर अगस्त, १८७३ मे लंकास्टर की डची के चांसलर के रूप मे उसको फिर मंत्रिमंडल मे स्थान प्राप्त हो गया। १८७४ के चुनाव में अनुदार दल की बहुमत से विजय हुई किंतु ब्राइट उस वर्ष भी मैंचेस्टर से निर्विरोध निर्वाचित हुआ। यूरोप के पूर्वी राज्यो के संबंध मे ग्लैडस्टन की सरकार विरोधी नीति का उसने समर्थन किया, १८८० के चुनाव मे उदार दल की विजय होने पर प्रधान मंत्री ग्लैडस्टन ने ब्राइट को दूसरी बार लंकास्टर की डची के चांसलर के पद पर नियुक्त किया। वह दो वर्ष ही इस पद पर रहा। मिस्र में हस्तक्षेप की मंत्रिमंडल की नीति उसे ग्राह्य न थी। अलेग्जेंड्रिया पर गोलाबारी के बाद १५ जुलाई, १८८२ को उसने यह पद त्याग दिया और भविष्य मे कोई सरकारी पद न ग्रहण किया। आयरलैंड को स्वशासन का अधिकार देने के ग्लैडस्टन के प्रस्ताव का उसने विरोध किया। इस प्रश्न पर दल के सदस्यो मे मतभेद कराने में ब्राइट का प्रमुख हाथ था किंतु अनुदार दल के प्रभाव की वृद्धि, उस दल के हाथ में शासनसूत्र जाने, दल के द्वारा व्यापार-संरक्षण-नीति के उपयोग तथा साम्राज्य विस्तार की नीति अपनाये जाने से जीवन के अंतिम वर्षों मे वह दु:खी रहा। उसके अंत के पाँच मास शैय्या पर ही बीते। २७ मार्च, १८८९ को उसकी मृत्यु हो गई। राजनीतिक जीवन के स्तर को ऊँचा करने के लिये ब्राइट निरंतर प्रयत्नशील रहा। इंग्लैंड के महान् पुरुषो मे उसका स्थान है।

ब्राइस, जेम्स (१८३८-१९२२) यह कुशल राजनीतिज्ञ, कानून मे प्रवीण तथा ख्यातिप्राप्त इतिहासकार था। सन् १८६७ ई० मे इसने वकालत करना प्रारंभ किया। आक्सफर्ड मे दीवानी कानून का प्राध्यापक सन् १८७० से १८९३ ई० तक रहा। यह अपनी बौद्धिक क्षमता एवं राजनीतिक कार्यक्षमता के लिये उदारवादी दल का विचारक माना जाने लगा। सन् १८८० ई० मे ससद का सदस्य बना। विदेशी विभाग का उपसचिव तथा व्यापारिक समिति का सभापति रहा। १९०५ मे आयरलैंड का सचिव बनाया गया। १९०७ से १९१३ तक यह राजदूत बनाकर सयुक्त राष्ट्र अमरीका भेजा गया। वह अपनी विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध है। इसने 'अमरीका का गणतंत्र' १८८८ मे; 'धर्मशास्त्र का इतिहास' १९०१ मे; 'समकालीन मनीषियो की आत्मकथा' आदि अनेक ग्रंथ लिखे। देश विदेश के विश्वविद्यालयों ने इसे इसकी विद्वत्ता के लिये उपाधियाँ दी। १८९४ मे यह रायल सोसायटी का सभासद बनाया गया और १९०७ मे ब्रिटिश एकाडेमी का प्रधान। [शु० ते०]

ब्राउनी गति (Brownian Movement) यदि काच के बरतन मे पानी रखकर उसकी परीक्षा की जाय, तो स्थिर अवस्था मे वह तरल समाग, विच्छिन्न तथा गतिहीन प्रतीत होता है। किंतु यदि इस जल मे कोई चूर्ण पदार्थ डालकर द्रव को हिला दिया जाय, तो उस पदार्थ के अति सूक्ष्म कण विभिन्न दिशाओ मे गति करते प्रतीत होते हैं और कुछ समय बाद जब सब कण पूर्ण रूप से प्रसरित हो जाएँगे तब द्रव स्थिर सा लगेगा। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर विदित होगा कि

पूर्ण पदार्थ के कण निरंतर इधर उधर तीव्र गति से चलते रहते है और उनकी गति यदृच्छ (haphazard) तथा अनियमित है। इस प्रकार की गति का अध्ययन १८२७ ई० में ब्राउन महोदय ने किया था। अत. इसे उनके नाम से सबधित करके ब्राउनी गति कहते हैं।

जल के अतिरिक्त अन्य द्रवो मे भी इस प्रकार की गति देखी जा सकती है, परंतु यह गति उन द्रवो की श्यानता (viscosity) के व्युत्क्रमानुपाती (inversely proportional) होगी। ज्यों ज्यों कणों के आकार को कम किया जाता है यह गति बढती जाती है। इस गुण को ब्राउन ने इस गति की खोज करने के साथ ही बताया था। तापवृद्धि से गति भी बढती जाती है।

इस गति की एक विशेषता यह है कि यह कभी रुकती नही, निरंतर होती रहती है। २०वी शताब्दी मे वैज्ञानिक पेरै (Perrin) ने ब्राउनी गति पर विस्तृत कार्य किया और अपने प्रयोगो के फलस्वरूप ग्रामाणु में उपस्थित अणुओं की सख्या ज्ञात की। उस समय तक गतिज विज्ञान कल्पना मात्र था, परतु पेरै के प्रयोगो द्वारा उसे परीक्षण पुष्टि मिली।

कोलॉइडी (colloidal) विलयनों की अतिसूक्ष्मदर्शी (ultra-microscope) द्वारा परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि इनमे भी कण निरंतर गतिवान रहते है। थोडी देर तक ये सीधी रेखा मे चलते हैं, फिर एक दम दिशा बदलकर दूसरी ओर सीधी रेखा मे जाते हैं, और इसी प्रकार थोडी थोड़ी देर बाद ये अपना मार्ग बदलते रहते है। वाइनर (Weiner) ने १८६३ ई० मे यह प्रदर्शित किया कि कोलॉइडी कणो की यह गति उनके रासायनिक स्वभाव पर नही निर्भर करती, किंतु यदि कणो का आकार कम कर दिया जाय तो गति मे वृद्धि हो जाती है। ब्राउनी गति अणुओ की गति के कारण होती है। माध्यम के अणुओ से टक्करें खाकर कोलॉइडी कण विभिन्न दिशाओं मे गति करते हैं। [रा० दा० ति०]

ब्रॉक, सर टॉमस (१८४७–१९२२) रॉयल अकादमी के आजीवन सदस्य तथा प्रसिद्ध अंग्रेज शिल्पकार ब्रॉक द्वारा बनाई गई लॉर्ड सिडेनहम की कृति बंबई मे है। लीड्स के मध्यवर्ती चौराहे पर घोड़े पर सवार एडवर्ड की प्रतिकृति १९०१ मे इन्होंने बनाई थी। उसी साल इन्होने बकिंघम राजभवन के सामने रानी विक्टोरिया की स्मृति मे शिल्पाकृति बनाई, जिसपर उन्हे राजा से 'कमिशन' का संमान मिला। उनकी कृतियाँ सुदर है। उनके बनाए व्यक्तिशिल्प भावनाओं की कोमलता, सशक्तता, सयम, सुरुचि एव अलकारपूर्ण रचना के उदाहरण हैं। शिल्पकार फोले का प्रभाव प्रारभ के कुछ दिनो तक इनकी कृतियो पर रहा। [भा० स०]

ब्राज़िल स्थिति ५° ०' उ० अ० से ३४° ०' द० अ० तथा ३५° ०' प० दे० से ७४° ०' प० दे०। दक्षिणी अमरीका के उत्तर-पूर्व मे स्थित दक्षिणी अमरीका का सबसे बडा तथा रूस, कैनाडा, चीन, सयुक्त राज्य अमरीका के बाद विश्व का पाँचवाँ सबसे बडा देश है। इसका क्षेत्रफल ३२,८६,१११ वर्ग मील है। इसके उत्तर-पूर्व, पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व में ऐटलैंटिक महासागर ४,६०० मील की समुद्री रेखा बनाता है। इसके पश्चिम मे पेरू, बोलिविया, दक्षिण-पश्चिम मे पैराग्वे, अर्जेंटीना तथा यूरुग्वे, उत्तर-पश्चिम में कोलबिया, वेनिज्वीला, गिआना आदि हैं। यह २२ राज्यों मे विभक्त है।

धरातल — ब्राज़िल के उत्तरी भाग मे ऐमेज़ॉन तथा उसकी सहायक नदियो का बेसिन विस्तृत है। इस बेसिन के उत्तर मे गिआना का उच्च प्रदेश है। ब्राज़िलियन उच्च प्रदेश १,००० से ३,००० फुट तक ऊँचा है। ऐमेज़ॉन, जापूरा, पूरूस, माडियरा, टापा जॉस, शिङ्गू तथा साउन फ्रैंसीशकू प्रमुख नदियाँ हैं।

जलवायु — यहाँ की जलवायु उष्ण कटिबंधीय है। वैसे जलवायु में बड़ी विभिन्नता मिलती है। सबसे ठढा समय मई से सितबर तथा सबसे गरम समय दिसबर से मार्च तक रहता है। औसत वार्षिक वर्षा ४० इंच है तथा ऐमेज़ॉन की घाटी मे वर्षा ८० इच तक हो जाती है। रीओ डे जानेरो मे सबसे गरम मास का औसत ताप लगभग २६° सें० तथा सबसे ठडे मास का औसत ताप लगभग २०° सें० रहता है।

जनसंख्या — यहाँ की जनसख्या ७,०७,६६,३५२ (१९६०) है। यहाँ का सबसे बडा नगर साउम पौलू है। इसके अन्य प्रसिद्ध नगर ब्रेसिलिया (राजधानी), रीओ डे जानेरो, सेल्वाडॉर, रेसीफे, बेलेम आदि है। यहाँ के लोगो की प्रमुख भाषा पुर्तगाली है, तथा प्रमुख धर्म रोमन कैथलिक (ईसाई) है।

यातायात — रेलो, सडको तथा वायुमार्ग मे काफी प्रगति हुई है। नदियो द्वारा यातायात की काफी सुविधा है। लगभग १५ बदरगाह उन्नत अवस्था मे है।

कृषि — ब्राज़िल कृषिप्रधान देश है। केला, सेम (bean), केस्टर बीन (caster bean), कहवा तथा धान के उत्पादन मे विश्व में इसका प्रथम तथा कोकोआ मे द्वितीय स्थान (सन् १९५६) है। इनके अतिरिक्त मक्का, गन्ना, कपास तथा गेहूँ भी पैदा होता है। वनो से प्राप्त उपजों मे रबर, अखरोट, रेशा, मोम तथा इमारती लकडी प्रमुख हैं। कृषि विशेषकर पूर्वी भाग मे होती है।

खनिज — खनिजो मे यह धनी है। मीना जेराइस मे सोना मिलता है। इसके अतिरिक्त बेरीलियम, क्रोम, ग्रेफाइट, मैग्नेसाइट, अभ्रक स्फटिक, थोरियम, टिटेनियम, जिरकोनियम, बॉक्साइट, ताँबा, सोना, जस्ता, सीसा, टिन आदि खनिज प्राप्त होते है। हीरे जवाहरात यहाँ के प्रमुख खनिज है।

उद्योग — उद्योगो मे यह देश उन्नति कर रहा है। सूती वस्त्र एव लौह इस्पात उद्योग प्रमुख है। रीओ, साउम पौलू, मीना जेराइस, वाल्टा रेडोडा उद्योगो के प्रमुख केंद्र हैं। यहाँ रबर बनाने के कारखाने भी हैं। इसके अतिरिक्त जूता, चमडा, सिगरेट आदि के उद्योग उन्नति कर रहे हैं। साउम पौलू सूती कपड़े का सबसे बडा केंद्र है।

शिक्षा — सात से ११ वर्ष के बच्चो की शिक्षा अनिवार्य तथा नि शुल्क है। वैसे शिक्षा मे कोई विशेष उन्नति नहीं हो पाई है। रीओ डे जानेरो, मीना जेराइस, साउम पौलू, रीओ ग्रैंडे दो सूल, बाईआ, रेसीफे, पाराना तथा ब्रेसिलिया मे विश्वविद्यालय हैं। इनके अतिरिक्त अन्य स्थानो पर भी टेक्निकल, कृषि सबधी तथा वैज्ञानिक शिक्षा दी जाती है। [आ० स्व० जौ०]

ब्रातिस्लावा (Bratislava) स्थिति ४८° १०' उ० अ० तथा १७° ७' पू० दे०। यह दक्षिणी मध्य चैकोस्लोवेकिया मे, विएना से

ब्राजिल (देखें पृष्ठ ३९८)

माटु ग्रोसु (Mato Grosso) की दलदल मे चौपाए

रीग्रो डे जानेरो का प्रासा पेरिस नामक चौक

बाईग्रा (Bahia) का इतापुग्रा सागरतट

पोर्टो ग्रालेग्रे नगर का वायव्य दृश्य

गौयास तथा मीना ज्हेराइस के मध्य ग्रद्भुत जलप्रपात

टेरेसोपॉलिस, रीग्रो डे जानेरो

ब्राजिल (देखें पृष्ठ ३६८)

सौं पौलू नगर की एक सड़क

१८ वी शती की कला के नमूने
मीना ज्हेराइस स्थित पैगबरो की सेलखड़ी की मूर्तियाँ
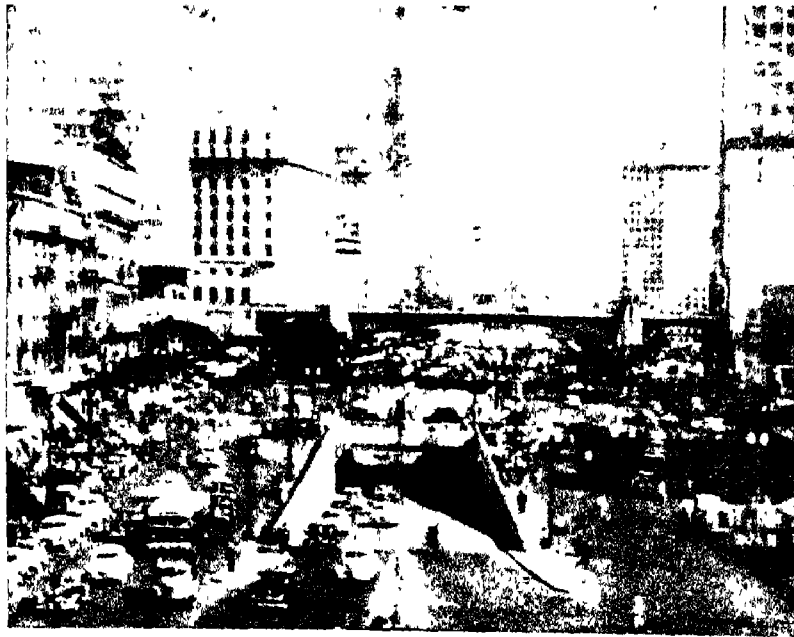
सौ पौलू (Sao Paulo) नगर का दृश्य

लगभग ३५ मील पूर्व, डैन्यूब नदी के किनारे, स्लोवेकिया प्रदेश की राजधानी है। सन् १५४१ मे यह हंगरी की राजधानी था। यह उपजाऊ मैदान तथा औद्योगिक क्षेत्र के बीच मे स्थित है। कई सुंदर पार्क तथा भवन, पुराने तथा आधुनिक गिरजाघर, नगरपालिका भवन, एक आधुनिक अस्पताल, स्लोवेक विश्वविद्यालय, राज्य बीमा हेडक्वार्टर्स आदि ने नगर की उन्नति मे योग दिया है। उत्तम वायुमार्ग द्वारा अन्य नगरों से जुड़ा है। उद्योगों मे लोहा-इस्पात-उद्योग, सूती कपडा उद्योग, रसायनक, खाद्य संसाधन (processing), कागज, लकड़ी का काम तथा विद्युत संबंधी काम होते हैं। इसकी जनसंख्या २,४२,००० (१९६१) है। [नि० कौ०]

ब्राबैंट १. प्रात, स्थिति : ४९° १५' उ० अ० तथा ५° २०' पू० दे०। यह बेल्जियम का एक प्रात है। इसे नीदरलैंड्स के उत्तरी ब्राबैंट से अलग करने के लिये दक्षिणी ब्राबैंट भी कहा जाता है। इसका क्षेत्रफल १,२६७ वर्ग मील तथा जनसंख्या १९,९२,४५८ (१९६१) है। इसके उत्तर मे ऐंटवर्प, पश्चिम में लिबर्ग तथा लिएज, दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम मे नामुर तथा एनो (Hainaut) तथा पश्चिम मे पूर्वी फ्लैडर्ज प्रांत हैं। यहाँ ४०० फुट ऊँचा एक उपजाऊ पठार है। डायले, डेमर, सेन आदि नदियाँ बहती हैं। यहाँ कृषि मे खाद्यान्न, फल, चुकदर, पटुवा तथा तबाकू प्रमुख उपजे है। उद्योगो मे सूती कपडा, मलमल, फीता, कागज बनाना तथा खान मे खुदाई एवं चमडा शोधन का कार्य भी होता है। देश की राजधानी ब्रसल्ज इसी प्रात मे है। वाटरलू यहाँ का प्रमुख ऐतिहासिक स्थल है।

२ प्रात, इसी नाम का प्रात नीदरलैंड्स में है इसे उत्तरी ब्राबैंट भी कहते है। इसका क्षेत्रफल १,९२१ वर्ग मील तथा जनसंख्या १०,८७,३६० (१९४२) है। इसके पश्चिम मे उत्तरी सागर, उत्तर मे दक्षिणी नीदरलैंड्स, पूर्व मे लिबर्ग तथा दक्षिण मे बेल्जियम है। ब्रेडा, टिलबर्ग, हेलमड आदि प्रमुख नगर हैं। इसकी राजधानी हर्टोजिनबोस (Hertogenbosch) है। पशुपालन प्रमुख उद्योग है। उद्योगों में सिगार, लोहा, सूती कपडा, जूता तथा जलयान उद्योग प्रमुख हैं। यातायात के अच्छे साधन है। [नि० कौ०]

ब्रामांते, लात्सारी (१४४४–१५१४) इटली के प्रसिद्ध वास्तुशिल्पी ब्रामाते का असली नाम डोनेटो दि अग्नेलो था। उनका जन्म उरबिनो के मॉन्ते आस्द्रुअल मे हुआ। वे चित्रकार के रूप मे भी जाने जाते रहे। उनकी चित्राकृतियो से पता लगता है कि उन्होने शायद चित्रकार मॉन्तेना, पियरो देला फाचेस्का तथा विसेंसो फोपा से कलाशिक्षा ग्रहण की। रोम मे रह कर उन्होने अनेक छोटे छोटे भवननिर्माण का कार्य किया। उनमे पोप के लिये बनाया हुआ चासेदी का महल तथा सान पियेमो–अ–मॉन्तेरिओ मे बना गोल मंदिर प्रसिद्ध हैं। [भा० स०]

ब्रामा का संपीडक प्रेस (Bramah's press) यह द्रवचालित प्रेस (दाबक) पैस्कैल के द्रव-दाब-संबंधी नियम के आधार पर बनाया गया है। इसे नीचे चित्र में दिखलाया गया है। पिस्टन च को हत्थे द्वारा ऊपर नीचे चलाया जाता है, छोटे बेलन का वाल्व छ खुल जाता है और बड़े बेलन घ का वाल्व बंद हो जाता है। इससे छोटे बेलन में, आंशिक निर्वात हो जाने के कारण, हौज से पानी खिचकर भर जाता है। पिस्टन च को नीचे दबाने पर वाल्व छ बंद
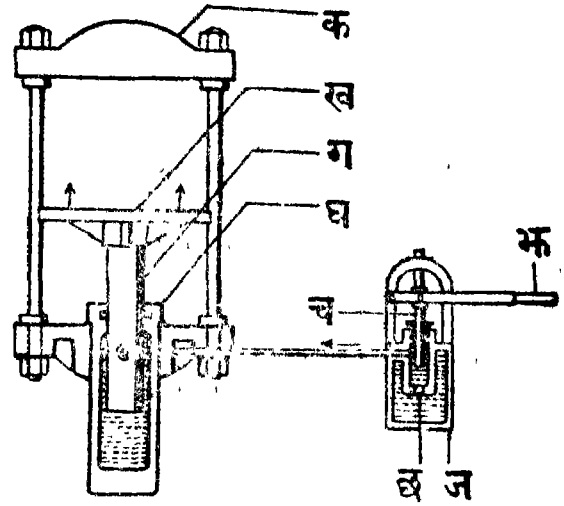
ब्रामा प्रेस

क शीर्ष, ख मंच (ploten), ग दबानेवाला दंड, घ बड़ा बेलन, च पिस्टन, छ छोटे बेलन का वाल्व, ज पप तथा झ पप चलानेवाला हत्था।

हो जाता है और बडे बेलन का वाल्व खुल जाता है। इससे बड़े बेलन मे पानी भर जाता है और दबानेवाले दड ग को ऊपर की ओर दबाता है। यह दड ऊपर उठकर मच ख को ऊपर उठाता है। मंच और प्रेस की छत के बीच रूई, कागज इत्यादि के गट्ठर, जिन्हे दबाना होता है, रख दिए जाते है। मच के ऊपर उठने से उनका आयतन कम हो जाता है। तब उनके बडल आसानी से बाधे जा सकते हैं। [सु० चं० गो०]

ब्रायोफाइटा (Bryophyta) वनस्पति जगत् का एक बड़ा वर्ग है। यह ससार के हर भूभाग मे पाया जाता है, परतु यह मनुष्य के लिये किसी विशेष उपयोग का नही है। वैज्ञानिक प्राय. इस एक मत के ही है कि यह वर्ग हरे शैवाल से उत्पन्न हुआ होगा। इस मत की पूरी तरह पुष्टि किसी फॉसिल से नही हो सकी है। पौधों के वर्गीकरण मे ब्रायोफाइटा का स्थान शैवाल (Algae) और टेरिडोफाइटा (Pteridophyta) के बीच मे आता है। इस वर्ग मे लगभग ६०० वश और २३,००० जातियाँ है।

ब्रायोफाइटा को आरभ मे दो भागो मे बाँटा जाता था (१) हिपैटिमी (Hepaticae) और (२) मसाइ (Musci); परंतु बीसवी शताब्दी के शुरू से ही ऐंथोसिरोटेलीज (Anthocerotales) को हिपैटिमी से अलग एक स्वतत्र उपवर्ग ऐंथोसिरोटी (Anthocerotae) मे रखा जाने लगा है। अधिकांश वैज्ञानिक ब्रायोफाइटा को तीन उपवर्गों में बाँटते है। ये हैं : (क) हिपैटिसी या हिपैटिकॉप्सिडा (Hepaticopsida), (ख) ऐंथोसिरोटी, या ऐंथोसिरोटॉप्सिडा (Anthocerotopsida) और (ग) मसाइ (Musci) या ब्रायॉप्सिडा (Bryopsida)।

(क) हिपैटिकॉप्सिडा — इसमे लगभग २२५ वश और ८,५००

जातियाँ पाई जाती हैं। इस उपवर्ग में युग्मकोद्भिद (Gametophyte) चपटा और पृष्ठाधारी रूप से विभेदित (dorsiventrally differentiated) होता है या फिर तने और पत्तियों जैसे आकार धारण करता है। पौधे के चाप काटने से अंदर के ऊतक या तो एक ही प्रकार के होते हैं, या फिर ऊपर और नीचे के ऊतक भिन्न रूप के होते हैं और भिन्न कार्य करते हैं। चपटे हिपैटिसी में नीचे के भाग से, जो मिट्टी या चट्टान से लगा होता है, पतले बाल जैसे मूलाभास या राइजॉयड (rhizoid) निकलते है, जो जल और लवण सोखते हैं। इनके अतिरिक्त बैंगनी रंग के शल्क-पत्र (scales) निकलते हैं, जो पौधे को मिट्टी से जकड़कर रखते हैं।

इस उपवर्ग को सामान्यतः चार गण (orders) मे विभाजित किया जाता है। ये हैं : (१) स्फीरोकारपेलीज (Sphaerocarpales), (२) मार्केन्शिएलीज (Marchantiales), (३) जगरमैनिएलीज (Jungermanniales) और (४) कैलोब्रियेलीज (Calobryales)।

(१) स्फ़ीरोकॉर्पेलीज गण मे दो कुल हैं : (अ) स्फ़ीरोकॉर्पेसीई (Sphaerocarpaceae), जिसमे दो प्रजातियाँ स्फीरोकार्पस (Sphaerocarpus) और जीओथैलस (Geothallus) हैं। ये द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetrical) होते है और एक ही प्रकार के होते हैं। (ब) रियलेसी (Riellaceae) कुल मे केवल एक ही वंश रियला (Riella) है, जिसकी १७ जातियाँ विश्व मे पाई जाती हैं। भारत मे केवल दो जातियाँ हैं · रि० इंडिका (R. indica) जो लाहौर के निकट पहले पाई गई थी और रि० विश्वनाथी (R vishwanathii), जो चकिया के पास लतीफशाह झील (जिला वाराणसी) मे ही केवल पाई जाती है।

(२) मार्केन्शिएलीज — यह एक मुख्य गण है, जिसमे चपटे पौधे पृथ्वी पर उगते हैं और ऊपर के ऊतक हरे होते हैं। इनमे हवा रहने की जगह रहती है और ये मुख्यत. भोजन बनाते है तथा नीचे के ऊतक तैयार भोजन संचय करते हैं। इस गण मे करीब ३० या ३२ वंश तथा लगभग ४०० जातियाँ पाई जाती हैं, जिन्हें पाँच कुल मे रखा जाता है। ये कुल है (१) रिक्सिऐसीई (Ricciaceae), (२) कॉरसिनिएसीई (Corsiniaceae), (३)

चित्र १. रिक्सिया

टारजिओनिएसीई (Targioniaceae), (४) मॉनोक्लिआएसीई (Monocleaceae) और (५) मार्केन्शिएसीई (Marchantiacae)। मुख्य वंश रिक्सिया (Riccia) और मार्केन्शिया (Marchantia), टारजिओनिया (Targionia), आदि है।

रिक्सिया की करीब १३० जातियाँ नम भूमि, पेड़ के तने, चट्टानो, इत्यादि पर उगती हैं। इसकी एक जाति रि० फ्लूइटैंस (R fluitans) तो जल में रहती है। भारत मे रिक्सिया की कई जातियाँ पाई जाती है, जिनमे से रि० हिमालयेन्सिस (R. himalayensis) ६,००० फुट और रि० रोबस्टा (R. robusta) तो १३,००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती हैं। इनमे अन्य जातियो या वंशों की भाँति लैंगिक तथा अलैंगिक प्रजनन होते हैं।

मार्केन्शिया (Marchantia) की बहुत सी जातियाँ भारत के पहाड़ो पर, मुख्यत हिमालय पर्वत पर, पाई जाती हैं। दो जातियो का तो नाम ही मार्केन्शिया नेपालेनासिस और मा०
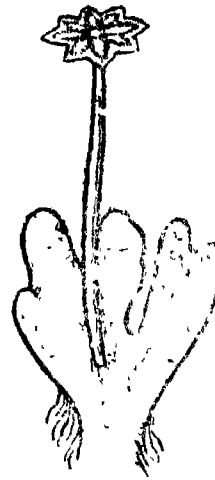
चित्र २ मार्केन्शिया (नर पौधा)
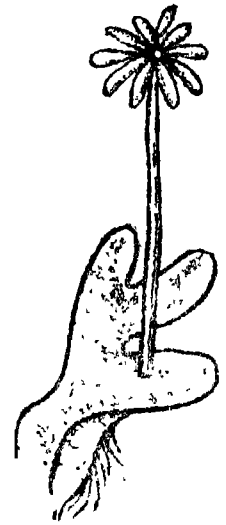
चित्र ३. मार्केन्शिया (मादा पौधा)

सिमलाना है। मार्केन्शिया मे एक प्रकार की प्याली जैसा जेमा कप (Gemma Cup) होता है, जिसमे कई छोटे छोटे जेमा निकलते है। ये प्रजनन के कार्य के लिये विशेष प्रकार के साधन हैं।

(३) जगरमैनिएलीज (Gungermanniales) लगभग १६० वंश और ८,००० जातियोवाला एक गण है। ये पौधे अधिकांश गरम तथा अधिक वर्षावाले भूभाग मे पाए जाते है और अधिकांश तने एवं पत्तियों से युक्त होते है। जगरमैनिएलीज को दो उपगणों मे बांटा गया है . (अ) मेट्सजीरिनीई (Metzgerineae) या ऐनेएक्रोगाइनस जगरमैनिएलीज (Anaehrogynous jungermanniales) और (ब) जंगरमैनिनीई (Gungermannineae)
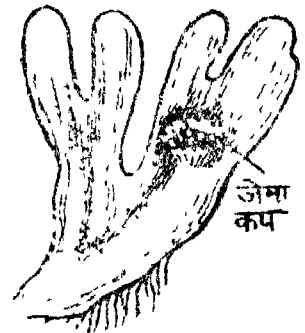
चित्र ४. मार्केन्शिया (अलैगिक प्रजनन)

या एक्रोगाइनस जंगरमैनिएलीज़ (Achrogynous Jungermanniales) :

(अ) मेट्सजीरिनीई में लगभग २० वंश और ५०० जातियाँ हैं, जिन्हें पाँच या छह कुलों में रखा जाता है। प्रमुख पौधे पेलिया (Pellia), रिकार्डिया (Riccardia), फॉसॉम्ब्रोनिया (Fossombronia), इत्यादि हैं। रिकार्डिया की लगभग एक दर्जन जातियाँ भारत मे पाई जाती हैं। इन जातियों के आकार और कभी कभी रंग भी बहुत भिन्न होते हैं।

(ब) जगरमैनीनीई के हर पौधे पत्तीयुक्त होते हैं और इसके लगभग १८० वश और ७,५०० जातियाँ पाई जाती हैं। इनमें कुछ प्रमुख पौधों के नाम इस प्रकार हैं : पोरेला या मैडोथीका (Porella or Madotheca), फ्रुलानिया (Frullania), शिफनेरिया (Schiffneria), सेफालोज़िएला (Cephaloziella), इत्यादि। पोरेला की लगभग १८० जातियाँ हैं। इनमे २१ हिमालय पर्वत पर उगती हैं। कुछ और दक्षिण भारत मे भी पाई जाती हैं।

(ख) ऐंथोसिरोटॉप्सिडा — इसमें पौधे बहुत ही साधारण और पृष्ठाधरी रूप से विभेदित (dorsiventrally differentiated) होते हैं, पर मध्यशिरा (mid rib) नहीं होती। इस उपवर्ग में एक ही गण ऐंथोसिरोटेलीज़ है, जिसमे पाँच या छह वश और लगभग ३०० जातियाँ हैं। इनमे ऐंथोसिरोस (Anthoceros) और नोटोथिलस (Notothylas) प्रमुख वंश हैं। ये पौधे संसार के
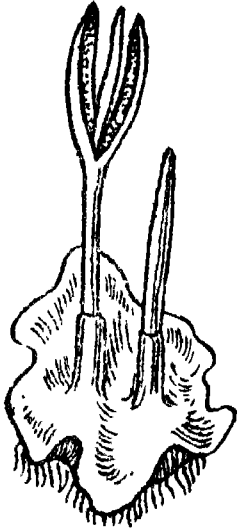
चित्र ५. ऐंथोसिरोस (स्पोरोफाइट के साथ)
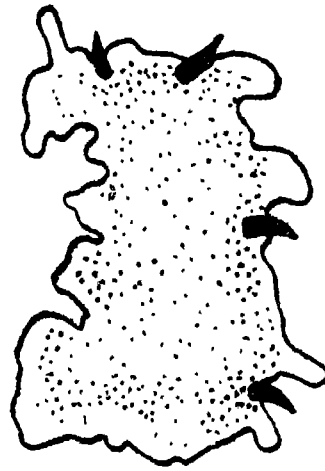
चित्र ६. नोटोथिलस

कई भागों मे पाए जाते हैं। भारत मे यह हिमालय की तराई तथा पर्वत पर और कुछ जातियाँ नीचे मैदान मे भी पाई जाती हैं।

(ग) ब्रायॉप्सिडा या मसाइ — यह एक बृहत् उपवर्ग है, जिसमें लगभग ६६० वंश और १४,५०० जातियाँ हैं। इन्हें कभी कभी केवल मॉस या हरिता भी कहते हैं। ये मिट्टी, पत्थर या चट्टान, जल, सूखती लकडी, या पेड़ की डालियों पर और मकान तथा दीवार पर उगते हैं। मॉस की अनेक जातियों को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जाता है :

(१) स्फैग्नोब्रिया (Sphagnobrya), या स्फैग्नेलीज़ (Sphagnales); (२) ऐंड्रियोब्रिया (Andreaeobrya), या ऐंड्रिएलीज़ (Andreaeales), और (३) यूब्रिया (Eubrya), या यूब्रिएलीज़ (Eubryales), या केवल ब्राइएलीज़ (Bryales).

(१) स्फैग्नोब्रिया मे एक ही वंश स्फैग्नम (Sphagnum) है, जिसकी कुल ३३५ जातियाँ पाई जाती हैं। यह अधिकांश दलदली
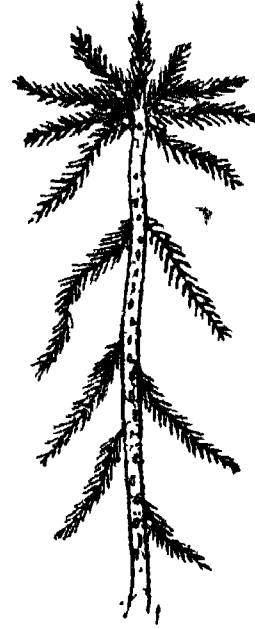
चित्र ७. स्फैग्नम
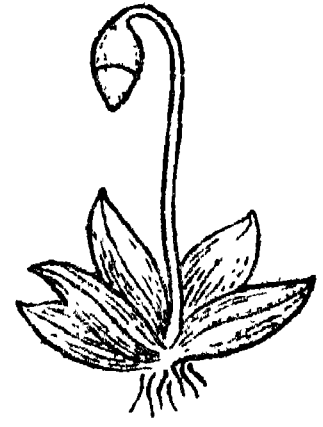
चित्र ८. फ्यूनेरिया

या छिछले तालाबों मे काफी घने रूप से उगता है। इसके मरने पर एक प्रकार का खास दलदल बनता है, जिसे पीट (peat) कहते हैं। इसका आकार पतली रस्सी की तरह तथा रंग हरा होता है। इसमे से बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं और तने पतली, छोटी पत्तियों से युक्त होते हैं।

(२) ऐंड्रियोब्रिया मे केवल दो वंश ऐंड्रीया (Andrea) और न्यूरोलोमा (Neuroloma) हैं। ऐंड्रीया काफी विस्तृत वंश है और इसकी कुल १५० जातियाँ हैं। न्यूरोलोमा की सिर्फ एक ही जाति है।

(३) यूब्रिया मे लगभग ६५० वंश तथा १४,००० जातियाँ हैं, जिन्हें लगभग १५ गणों मे रखा जाता है। इस वर्ग के पौधे पृथ्वी के हर भाग मे, उत्तर से लेकर भूमध्यरेखीय वनों तक मे, तालाब, झरने, दलदली मिट्टी, चट्टान, पेड़ के तने या शाखा पर, दीवार या मकान की छत पर, या अन्य नम स्थानो पर उगते हैं। कुछ जातियाँ तो सूखे या कम प्रकाशित स्थानो पर भी उगती हैं। इनमे युग्मकोद्भिद दो प्रकार के होते हैं . एक तो प्रोटोनिमा (Protonema), जो पतला होता है जैसा पृथ्वी में रहता है और कुछ शाखाओं मे विभाजित होता रहता है और दूसरा वह जिसकी

प्रजनन शाखाएँ इस प्रोटोनिमा से निकल कर ऊपर हवा मे आ जाती हैं और हरी पत्तियों से युक्त होती हैं। ये भोजन का निर्माण करती हैं और शाखाओं के ऊपर लैंगिक प्रजनन हेतु नर प्रजननाग, अथवा मादा प्रजननाग, के गुच्छे बनाती है। इनमे या तो पुंधानी (Antheridia), या योनिका (Archegonia) बनती है। यूब्रिया को लगभग १५ गणों और ८० कुलो मे विभाजित किया गया है। इसमे फ्यूनेरिया (Funaria), बारबुला (Barbula), नीयम (Mnium), पॉलीट्राइकम (Polytrichum), डाइक्रेनेला (Dicranella), बक्सबॉमिया (Buxbaumia), स्प्लैकनम (Splachnum), इत्यादि मुख्य वश है।

मूलांग, जो पतले धागे जैसा होता है, जल तथा लवण मिट्टी से लेता है तथा जड़ के सभी कार्य करता है। पत्तियो द्वारा भोजन का निर्माण इन पदार्थों तथा कार्बन डाइऑक्साइड की मदद से पत्तियों मे होता है। गर्भाधान के पश्चात् युग्मनज (zygote) बढता है और एक प्रकार के नए पीढी के बीजाणु उद्भिद, (Sporophyte) को जन्म देता है। यह अपने सभी भोजन इत्यादि के लिये युग्मकोद्भिद पर ही निर्भर रहता है। बीजाणु उद्भिद के ऊपरी भाग को सपुटिक (Capsule) कहते है। इसमे असंख्य बीजाणु (spores) बनते हैं, जो झड़ जाने पर मिट्टी मे गिर जाते हैं और एक सिरे से फिर प्रोटोनिया और नए पौधे को जन्म देते हैं। [रा० श्या० अ०]

ब्रिज (Bridge) ताश का खेल है। इस खेल का इतिहास लगभग चार सौ वर्ष पुराना है। ताश के खेल में यह विकसित खेल समझा जाता है। यह साधारणतया विश्व के सभी देशो मे खेला जाता है। ब्रिज के कुछ प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं (अ) कॉण्ट्रैक्ट (Contract), (ब) पिवॉट (Pivot), (स) प्रोग्रेसिव (Progressive), (द) डुप्लिकेट (Duplicate), (य) कट थ्रोट (Cut throat), (र) टोर्ई (Towie), (ल) हनीमून (Honeymoon), तथा (म) ऑक्शन (Auction)।

'कॉण्ट्रैक्ट ब्रिज' का खेल ताश के ५२ पत्तो से खेला जाता है। हुकुम (Spades) के पत्ते का दर्जा सबसे ऊँचा रखा जाता है। पान (Heart), ईंटा (Diamond) तथा चिड़िया (Club) का दर्जा क्रमश. एक दूसरे से छोटा होता जाता है। यद्यपि हुकुम के पत्ते का दर्जा सबसे ऊँचा है, तब भी सर बनाते समय रग (trump) घोषित किया जाता है। पत्तो को बाएँ हाथ के खिलाडी से बाँटना आरंभ किया जाता है। इस खेल के चारो खिलाड़ी फेटकर, उलटे रखे हुए पत्तो मे से पत्ते खीचते हैं। जिन दो के पत्ते क्रम से बडे होंगे, वे ही दो साथी होंगे, शेष दो एक साथ। बाँटनेवाला सब को क्रम से एक एक पत्ता देगा। इस तरह प्रत्येक को कुल १३ पत्ते ही मिलेंगे। अधिक से अधिक हाथ बनाने की बोली होती है। अधिक से अधिक बोलनेवाला ही रग बोलता है। रग बोलनेवाला अपने साथी का सारा पत्ता खुला हुआ अपनी मेज पर रख लेता है और उसकी चाल भी स्वय चलता है। यदि ऐसा हुआ कि १३, १३ सर बनाने की दोनों तरफ से घोषणा हो जाती है, तो उसमे हुकुम, पान, ईंटा तथा चिड़िया के स्तर से निश्चय किया जाता है। छह हाथ बनाना अनिवार्य है। १२ हाथ या सर बनाने को 'स्माल स्लैम' तथा १३ हाथ बनाने को 'ग्रैंड स्लैम' कहते हैं। इसकी घोषणा पहले ही करनी पडती है। हार जीत का निर्णय अधिक या कम हाथ बनाने पर, या सर के पत्ते के अको के आधार पर किया जाता है।

पिवॉट ब्रिज — इस प्रकार के ब्रिज में चार या अधिक खिलाडी भी खेल सकते है, पर एक केंद्र बन जाता है और सारा खेल उसी केंद्र को धुरी मानकर चलता रहता है। एक खिलाड़ी हर बाजी मे हारता जाएगा, अर्थात् हर हालत मे खेलनेवाले चार ही होगे। इस खेल मे ऐसी व्यवस्था है कि चार से अधिक खिलाडी यदि आ जायें, तो उनको भी खिलाया जा सकता है। प्रत्येक खिलाडी, हर एक के साथ परिवर्तित केंद्र बन, खेलने का अवसर प्राप्त करता है।

प्रोग्रेसिव ब्रिज — इस प्रकार के ब्रिज मे आठ खिलाडी, या उससे भी अधिक, चार चार के जोडे मे खेलते हैं। पत्ते १३, १३ के हिसाब से सभी खिलाडियो के लिये होते हैं। यह खेल 'प्रोग्रेसिव' इसलिये माना जाता है कि हारनेवाले पीछे की मेज पर तथा जीतनेवाले आगे की मेज पर बढने जाते है। अपने खेल की उत्कृष्टता के साथ वे एक दूसरे से अग्रसर होते रहते हैं।

डुप्लिकेट ब्रिज — इस खेल की विशेषता यह है कि एक ही तरह के पत्ते दो या दो से अधिक खिलाडी को दिए जाते हैं तथा देखा जाता है कि कौन अच्छे अक प्राप्त कर लेता है। इसमे खेल की चतुरता ही प्रमुख है।

कट थ्रोट ब्रिज — इस प्रकार के ब्रिज मे खिलाडी खेल मे एक दूसरे के साथी बनकर नही, बल्कि विरोधी बनकर अपना अपना सर या अक बनाते है। यदि खिलाडी चाहे, तो एक दूसरे के साथ होकर भी खेल सकते है। इसकी दूसरी शाखा मे तीन खिलाड़ी भी खेल सकते है।

टोई ब्रिज — इस प्रकार के ब्रिज मे खिलाडी सक्रिय (active) तथा निष्क्रिय (inactive), दो तरह के, माने जाते है। तीन खिलाड़ियो के खेलने की व्यवस्था है। यदि एक और आ जाय तो उसे निष्क्रिय खिलाड़ी माना जाएगा। इसमे एक दूसरे का हाथ बिगाड़कर आगे बढने की प्रवृत्ति रहती है।

हनीमून ब्रिज — यह खेल दो खिलाडियो मे ही खेला जाता है। यह दांपत्य जीवन का उत्कृष्टतम खेल समझा जाता है। पत्ते कुल चार स्थान पर बाटे जाएँगे, पर खेले जाएँगे दो ही एक साथ। उनको खेल लेने के पश्चात् दो काल्पनिक साथियो के शेष बँटे हुए पत्ते भी खेले जाएँगे।

ऑक्शन ब्रिज — इस खेल मे बिना रग बोले भी खेलते है। अको की बोली ही प्रधान है। इसमे तथा कॉण्ट्रैक्ट ब्रिज मे बहुत मामूली अंतर है। [भा० सिं० गौ०]

ब्रिज़बेन (Brisbane) स्थिति : २७° २५' द० अ० तथा १५२° ५४' पू० दे०। यह उत्तर-पूर्वी आस्ट्रेलिया मे दक्षिण-पूर्वी क्वीज़लैंड की राजधानी है एवं सिडनी से ५०० मील उत्तर मे ब्रिज़बेन नदी के किनारे, मुहाने से १४ मील ऊपर स्थित है। यहाँ की जलवायु उपोष्ण है। औसत ताप लगभग २५° सें० तथा वार्षिक औसत वर्षा ४५ इंच है। कृषि, पशुपालन एवं खनन क्षेत्र के बीच स्थित इस नगर मे यत्र, वस्त्र, अस्त्र शस्त्र, लौह इस्पात, मोटर गाड़ियाँ, जलयान

एवं लकड़ी तथा चमड़े की वस्तुओं का निर्माण होता है। निर्यात की मुख्य वस्तुएँ मांस, पशुचर्म, ऊन, चीनी, सोना कोयला, मक्का एव दुग्धपदार्थ है। यह एक विस्तृत, सुनिर्मित एवं सुनियोजित नगर है जहाँ खेलकूद एव मनोरंजन की व्यापक सुविधाएँ है। यह क्वींजलैंड का सबसे बड़ा एव उन्नत बंदरगाह है। इसकी जनसख्या ६,३५,५०० (१६६२) है। [रा० प्र० सि०]

ब्रिजेज, राबर्ट (१८४४-१९३०) के जीवन तथा उनकी साहित्यिक कृतियो मे समता इस बात की है कि दोनो मे मौलिक तत्व शांति है। उनके जीवन की रोचक घटनाएँ भौतिक नही अपितु साहित्यिक हैं। उनके जीवन का आरभ चिकित्सक के व्यवसाय से हुआ परतु उनका स्वाभाविक झुकाव सदैव साहित्य की ओर रहा और सन् १८८२ मे अपने व्यवसाय को त्याग कर उन्होने साहित्यसेवा मे ही जीवन अर्पित कर दिया। उनकी कला इतनी उच्च कोटि की थी कि वे अपने जीवन मे कभी भी लोकप्रिय लेखक न हो सके, परतु उनकी साहित्यसाधना बराबर चलती रही, यद्यपि ख्यातिप्राप्ति के लिये उन्होने कभी भी प्रयत्न नहीं किया। १८७३ और १८९६ के बीच उन्होने अनेक फुटकल कविताओं का सृजन किया, जिनका सकलन 'शार्टर पोएम्स' के नाम से हुआ। १८७६ मे 'ग्रोथ ऑव लव' का प्रकाशन हुआ जो बाद को काफी सवर्धित किया गया। इन शृखलाबद्ध सानटो मे उन्होने वैज्ञानिक विचार के विरुद्ध कला के महत्व का प्रतिपादन किया है। इसके बाद कुछ पौराणिक कथाओं का आश्रय लेकर उन्होने लबी काव्यगाथाओं का निर्माण किया—प्रोमेथियम्स दि फायरगिवर (१८८३) और 'ईरास ऐंड साइकी' (१८८५)। इसके साथ ही साथ उनके गीत काव्यो की रचना भी जारी रही और इन्हीं काव्यों मे उनकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित होती रही। इसके पश्चात् १० वर्ष तक उन्होंने पद्य-नाटको का निर्माण करने का असफल प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप नीरो, दि रिटर्न ऑव यूलीसीज तथा दोमतर का सृजन हुआ।

महाकवि मिल्टन के छदसिद्धाती का गहरा अध्ययन करने के पश्चात् उन्होने 'मिल्टन्स प्रोसोडी' नामक समीक्षाग्रथ प्रकाशित किया। उनका छदप्रयोग भी चलता रहा और उन्होने प्राचीन तथा आधुनिक प्रणालियो का समन्वय करने का वर्षो तक लगातार प्रयत्न किया। उनकी साधना मनीषियों की पैनी दृष्टि से छिपी न रह सकी और सन् १९१३ मे 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से इन्हे विभूषित कर इग्लैंड की सरकार ने अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया। ब्रिजेज के व्यापक अध्ययन, विस्तृत अनुभव तथा दार्शनिक गरिमा एव काव्य-कला-मर्मज्ञता का पूर्ण समावेश उनके दीर्घकाय तथा गभीर काव्य 'दि टेस्टामेंट ऑव ब्यूटी' (१९२९) मे हुआ है, जो अपने युग का सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक काव्य माना गया था। परतु वर्तमानकालीन समीक्षको का कहना है कि इस लबे काव्य के कुछ अश ही उत्कृष्ट है, समस्त कविता सर्वांग सफल, सुदर तथा सुगठित नही है। ब्रिजेज की सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय कविताएं उनके गीतकाव्य मे है और इन्ही पर उनके स्थायी यश की भित्ति स्थिर रहेगी। परतु इनके गीतकाव्यो में नैसर्गिक गायक के भावोद्गार तथा अनियंत्रित उत्साह, उल्लास अथवा आतरिक रुदन नही है। यद्यपि यह महाकवि कीट्स की कविता से काफी प्रभावित रहे, तथापि इनका विशेष ध्यान कीट्स के कलापक्ष की ही ओर गया, भावों को उन्होंने सदैव मर्यादा तथा अनुशासन की सीमा के अतर्गत ही रखा। इसी कारण एक समालोचक ने कहा है कि ब्रिजेज की सर्वोत्कृष्ट कृतियों मे वह सौदर्य है जो बसंत के प्रभात मे निहित रहता है, वह प्रभात जिसमे रजत की धवल कांति है परतु उष्णता की रक्तिम आभा नही है।

ब्रिजेज सौंदर्य के उपासक थे। इनका आनंद दार्शनिक तथा साहित्य अथवा सौंदर्य पुजारी का था जो हृदयातर को अलौकिक करता था परतु अशात करने मे असमर्थ था। इन्ही गुणो के कारण इनके गीतकाव्य, जैसे 'लंडनस्नो', 'दि नाइटिंगेल्स', 'दि वॉयस ऑव नेचर' इत्यादि इतने सर्वप्रिय हैं।

स० ग्र० — एफ० ई० ब्रैट . रॉबर्ट ब्रिजेज—ए क्रिटिकल स्टडी, (१९१४), जी० एस० गार्डन : राबर्ट ब्रिजेज् (१९३२) एडवर्ड टॉम्सन . रॉबर्ट ब्रिजेज (१९४४)। [वि० रा०]

ब्रिटिश संग्रहालय (ब्रिटिश म्यूजियम) हास स्लोन (१६६०-१७५३) के वसीयतनामे के अनुसार उनकी पुस्तको, पाडुलिपियों एवं प्राकृतिक इतिहास की सामग्रियो के सपूर्ण सग्रह से, उनकी पुत्रियो को २०,००० पौंड देकर राष्ट्रीय पुस्तकालय एवं इतिहास तथा कला का सग्रहालय स्थापित किया गया। स्लोन तत्कालीन नवजागरण काल के प्रमुख सग्रहकर्ताओं मे से एक थे। उन्होने एक नए प्रकार की सस्था की रूपरेखा के विषय मे सोचा था, वह थी ब्रिटिश राष्ट्र के निमित्त एक जनसामान्य के उपयोग के लिये सग्रहालय जो उनके ही शब्दो मे, 'जितना सभव हो सके उसे उपयोगी बनाया जाय, वह लोगो की जिज्ञासाओं को शात कर सके और विभिन्न जानकारियो एव ज्ञान की अभिवृद्धि मे सहायक हो।' स्लोन की मृत्यु के दो मास बाद पार्लिमेंट के एक विशेष अधिनियम द्वारा उनके दान को मान्य कर लिया गया और एक व्यवस्थापिका समिति गठित की गई। इस व्यवस्थापिका समिति को सर रॉबर्ट काटन (१५७१-१६३१) के पुस्तकालय एव प्राच्य वस्तुओं के सग्रह की व्यवस्था का भार भी सौंप दिया गया जो १७०७ से जनसामान्य के उपयोग के लिये उपलब्ध था। इस व्यवस्थापिका समिति को हार्लियन पाडुलिपि सग्रह को खरीदने का अधिकार भी दिया गया जिसके लिये धनसग्रह लाटरी द्वारा किया गया था। दो वर्ष बाद जार्ज द्वितीय द्वारा पुराना राजकीय पुस्तकालय दान मे प्राप्त हुआ और साथ ही यहा प्रकाशित पुस्तको की प्रतियाँ आवश्यक रूप से जमा कराई जाने लगी। १७५९ की १५ जनवरी को ब्रिटिश सग्रहालय खोला गया। यद्यपि प्रवेश निशुल्क था, तथापि कुछ ही पाठको को पुस्तकालय मे प्रवेश की सुविधा प्रदान की गई। पर्यटको को भीतर घूमने के लिये पारपत्र की व्यवस्था की गई थी और उन्हे एक अधिकारी भीतर घुमाता था। यह व्यवस्था क्रमश. ढीली होती गई और १८७९ मे प्रवेश हेतु सभी प्रकार का प्रतिबध समाप्त कर दिया गया।

सग्रहालय की प्रगति इतनी शीघ्रता से हो रही थी कि माटेग्यू भवन शीघ्र ही छोटा पड़ गया। १९वी शती के प्रारभ मे आसपास के बगीचे में कई प्रसार किए गए और १८२७ मे सर राबर्ट स्मिक ने प्रथम स्थायी योगदान किंग्स पुस्तकालय के रूप मे किया जिसमे

जार्ज तृतीय की पुस्तकों को रखा गया। १९वीं शती के मध्य तक मांटेग्यू भवन वस्तुतः एक समबाहु चतुर्भुज के आकार के नए भवन में स्थानांतरित कर दिया गया जो संग्रहालय के लिये अधिक उपयुक्त था। पुस्तकालय के परिवर्धन के साथ ही १८५७ में नए भवन के प्रांगण में एक भवन बनाया गया जिसके केंद्र में एक वाचनालय एवं उसके चारों ओर गोलाई में पुस्तकें रखने के स्थान बनाए गए। १८८४ में निर्मित ह्वाइट प्रखंड संग्रहालय के पूर्वी भाग में निर्मित किया गया और १९१४ में एडवर्ड सप्तम वीथियों को जन-सामान्य के लिये खोल दिया गया। १९०५ में कोलिनडेल में समाचार-पत्र संग्रहालय बनवाया गया जिसके लिये एक विशेष वाचनालय १९३२ में बनवाया गया।

प्रारंभिक संग्रह की प्रवृत्ति कुछ ऐसी बहुमुखी थी कि संग्रहालय में विकास की अनेक संभावनाएँ थीं। संग्रहालय का रूप दान, संग्रहालय द्वारा आयोजित खोज कार्यों एवं खरीदों से क्रमशः वृद्धि पाता रहा। खरीदों आदि के लिये व्यवस्थापिका समिति को १८३४ से ही धनराशि प्राप्त हो रही थी। प्रारंभ में ब्रिटिश संग्रहालय को तीन विस्तृत विभागों में संयोजित किया गया—छपी पुस्तकों, पाडुलिपियों एवं प्राकृतिक और कृत्रिम उत्पादनों के विभाग। १८०८ में तीसरा विभाग प्राकृतिक इतिहास एवं प्राच्य वस्तुओं के उपविभाग में बाँट दिया गया और १८८३ में प्राकृतिक इतिहास विभाग दक्षिण कैंसिंग्टन में बने नए भवन में भेज दिया गया।

वर्तमान समय में संग्रहालय के कुल ११ विभिन्न विभाग हैं जिनमें से तीन पुस्तकालय के विभाग हैं। सर्वप्रथम छपी पुस्तकों का खंड है जहाँ संपूर्णतः ब्रिटिश पुस्तकों एवं चुनी हुई विदेशी पुस्तकों का संग्रह है जो विभिन्न विषयों से संबंधित है। यही विभाग १९६६ में स्थापित हुए विज्ञान एवं अन्वेषणों के लिये राष्ट्रीय संदर्भ पुस्तकालय एवं राजकीय पत्र-पत्रिका-गृह की भी देखरेख करता है। पाडुलिपियों से संबंधित विभाग पाश्चात्य भाषाओं में सभी विषयों पर लिखी गई पुस्तकों एवं साथ ही उन पुस्तकों से भी संबंधित है जो एशियाई देशों से संबंधित हैं। उन दो विभागों में से प्राच्य पुस्तकों की छपी एवं पांडुलिपि प्रतियों के संग्रह का विभाग १८६७ और १८९२ के बीच अस्तित्व में आया। यह विभाग संदर्भ पुस्तकालय के रूप में प्राच्य अध्ययन करनेवाले लोगों की सेवा उन पुस्तकों एवं पांडुलिपियों द्वारा करता है जो एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका की भाषाओं में हैं और रोमन लिपि में नहीं लिखी गई हैं। प्राचीन वस्तुएँ पाँच विभिन्न विभागों में हैं—मिस्रीय, पश्चिम एशियाई (सुमेर, बैबिलोन एवं असीरिया के इतिहास का परिचय देनेवाला विभाग), यूनानी एवं रोमीय, ब्रिटेनीय तथा मध्यकालीन विभाग जिसमें सुदूरपूर्व एवं दक्षिणी एशिया के नवप्रस्तरकाल एवं इसलामीय जगत् की ७वीं शती के काल तक की वस्तुएँ संगृहीत हैं। संग्रहालय में छापे एवं चित्र; सिक्कों, पदक एवं मुद्राशास्त्र संबंधी विभाग भी हैं। संग्रहालय के लिये उससे संबंधित एवं शोध-प्रयोगशाला है जो सभी पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों की सेवा करती है। अभी हाल में ब्रिटिश संग्रहालय की सेवाओं में प्रगति हुई है जिससे यह संग्रहालय विभिन्न विभागों से लगे हुए वाचनालय, विद्वानों के भाषणों के आयोजन, पथप्रदर्शक पुस्तिकाएँ, प्रदर्शनियाँ, फ़ोटोग्राफ़ी की सुविधाएँ, विद्यार्थी कक्षों में विशेष विषयों से संबंधित सूचनाएं एवं मार्गदर्शन प्राप्त करने की सुविधाएँ आदि प्रदान करता है। [ए० गौ०]

ब्रिस्टल स्थिति : ५१° २६' उ० अ० तथा २° ३५' प० दे०। पश्चिमी इंग्लैंड में इसी नाम की काउंटी में स्थित नगर है जो ऐवन नदी के मुहाने से छह मील ऊपर स्थित है। तबाकू, अनाज, केला आदि फल, मिट्टी का तेल, इमारती लकड़ी, तिलहन, जस्ता, रसायनक और शराब का व्यापार होता है। सिगरेट, चॉकलेट हवाई जहाज, मोटर साइकिल, चीनी आदि के उद्योग होते हैं। चिड़ियाघर, गरम चश्मे आदि दर्शनीय हैं। यह उत्तम बंदरगाह भी है। लंदन से यह ११८ मील पश्चिम में स्थित है। इसकी जनसंख्या ४,३६,००० (१९६१) है। इसी नाम के नगर संयुक्त राज्य, अमरीका की हर्टफर्ड एवं वाशिंगटन काउंटियों में भी है। [नि० कौ०]

ब्रुकलिन (Brooklyn) स्थिति : ४०° ४५' उ० अ० तथा ७३° ५८' प० दे०। संयुक्त राज्य, अमरीका, में न्यूयॉर्क काउंटी का एक प्रसिद्ध नगर है। यहाँ सेना के पडाव हैं तथा यातायात का आधुनिकतम प्रबंध है। कपड़े, जूते, रसायनक, विद्युत् संयंत्र तथा लकडी, काच, चमडा, धातु, कागज से निर्मित वस्तुएँ बनाना प्रमुख उद्योग है। बरो सहित इसकी जनसंख्या २६,२७,३१९ (१९६०) है।

ब्रूनेल, आइसैंबार्ड किंगडम (Brunel, Isambard Kingdom, सन् १८०६–१८५९), अंग्रेज इंजीनियर, सर मा० आ० ब्रूनेल के पुत्र थे। इनका जन्म पोर्ट्समथ में हुआ था और पैरिस में इन्होंने शिक्षा पाई। जब १९ वर्ष के थे, ये टेम्स नदी के नीचे बननेवाली सुरंग के आवासी इंजीनियर नियुक्त हुए।

२४ वर्ष की उम्र में ये रॉयल सोसायटी के सदस्य चुने गए। क्लिफ्टन उपनगर में ऐवन (Avon) नदी पर इन्होंने पुल की योजना बनाई तथा लंदन में टेम्स नदी पर एक झूला पुल बनाया। सन् १८३३ में २७ वर्ष की अल्पावस्था में ब्रूनेल प्रस्तावित ग्रेट वेस्टर्न रेलवे के इंजीनियर नियुक्त हुए। तब तक रेल की पटरियाँ कम चौड़ी होती थीं। इन्होंने सात फुट चौड़ी, बड़ी पटरियों की रेल चलाई। कॉर्नवेल प्रदेश के साल्टऐश नगर में टेमर नदी पर इन्होंने 'रॉयल ऐल्बर्ट ब्रिज' नामक पुल बनाया।

समुद्र पर भाप द्वारा जहाज चलाने के विकास में ब्रूनेल ने प्रमुख भाग लिया। अध महासागर के आर पार नियमित रूप से यात्रा के लिये 'ग्रेट वेस्टर्न' तथा 'ग्रेट ब्रिटेन' नामक दो जहाज बनाए। इनमें से 'ग्रेट ब्रिटेन' में, जिसकी प्रथम यात्रा सन् १८४५ में हुई थी, तीन विशेषताएँ थीं। यह न केवल विश्व का तत्कालीन सबसे बड़ा जहाज था, वरन् लोहे का बना सर्वप्रथम ऐसा जहाज था जिसमें स्क्रू नोदक (screw propeller) का प्रयोग किया गया था। इसके पश्चात् इन्होंने 'ग्रेट ईस्टर्न' नामक इससे भी बड़ा जहाज बनाया, जिसका जलावतरण सन् १८५८ में हुआ।

ब्रूनेल ने अनेक गोदियों (docks) और पायों (piers) का भी निर्माण किया, बड़ी तोपों के निर्माण में उन्नति की तथा

तोपों के लिये युद्धोपयोगी तैरता हुआ परिवहन बनाया। अनेक अन्य इंजीनियरी के महत् कार्यों का श्रेय भी इन्हे प्राप्त है।

[भ० दा० व०]

ब्रूनेल, सर मार्क आइसँबार्ड सर मार्क आइसँबार्ड (Brunel, Sir Marc Isambard, सन् १७६९–१८४९), आविष्कारक तथा इंजीनियर का जन्म फ्रास देश के रूप्राँ (Rouen) नामक नगर के पास हुआ था। छह वर्ष तक इन्होने फ्रांस की नौसेना मे सेवा की। तत्पश्चात् सन् १७९३ मे फ्रास मे क्राति के दंगों के कारण ये अमरीका चले गए। न्यूयॉर्क मे बॉवरी थियेटर का पुनर्निर्माण इनकी देखरेख मे हुआ तथा इन्होने यहाँ की आयुधशाला तथा तोप के कारखाने में अपनी आविष्कृत और सुकल्पित मशीनें लगाई।

सन् १७९९ मे ये इग्लैंड गए। यहाँ की गवर्नमेंट के संमुख इन्होने जहाजों में लगनेवाली लकड़ी को मशीनो से कार्ययोग्य बनाने का प्रस्ताव रखा, जो स्वीकृत हो गया। इस काम के लिये इन्होंने अनेक यान्त्रिक औजारो का आविष्कार किया तथा लकड़ी चीरने और उसे झुकाने की उन्नत मशीनें बनाईं। भाप की शक्ति से जहाज चलाने के प्रयत्नो मे भी आपने भाग लिया। सन् १८१४ मे रॉयल सोसायटी के सदस्य चुने गए। सन् १८१६ मे इन्होने मोजे और बनियाइन बनानेवाली अपनी गोल मशीन का एकस्व प्राप्त किया। सूत के गोले बनाने, आलेखो की प्रतिलिपि तैयार करने, लकडी के छोटे बक्स तथा कीले बनाने, पन्नी तैयार करने और छापने के लिये उन्नत प्रकार के स्टीरिओटाइप पट्टों के निर्माण संबंधी आविष्कार भी किए।

रूआँ, सेंट पीटर्सबर्ग तथा बूर्बा द्वीप पर पुल, झूला पुल तथा लिवरपूल पत्तन के लिये जल पर तैरते हुए अवतरण मंच की योजनाएँ बनाने का श्रेय भी इन्ही को है। सन् १८२४ मे टेम्स नदी के नीचे सुरग खोदकर, एक किनारे से दूसरे किनारे तक मार्ग बनाने का कार्य इन्ही के निर्देश मे आरंभ हुआ। इस सुरंग के बनने में २० वर्ष लगे।

फ्रास की सरकार ने इन्हें लीजन ऑव ऑनर का पदक प्रदान किया तथा इंग्लैंड मे इन्हे नाइट की उपाधि मिली।

[भ० दा० व०]

ब्रेक (रोधक) यंत्रविद्या मे प्राकृतिक शक्तियों को नियोजित कर, इच्छित प्रकार की गति और त्वरण प्राप्त कर, उससे उपयोगी काम लेने से भी अधिक महत्व का काम इच्छित समय पर उचित प्रकार से उनकी गति और त्वरण का अवरोध करना है। गति और त्वरण का अवरोध करने के लिये मुख्य यंत्र के साथ जो उपयत्र लगाया जाता है, उसे ही ब्रेक कहते हैं। सही काम करने की दृष्टि से, और राजकीय नियमों के अनुसार सुरक्षा की दृष्टि से भी, प्रत्येक चलनेवाले यंत्र के साथ ब्रेक का होना आवश्यक है। अवरोधक यंत्र को क्रियाशील करने के लिये भी कई प्रकार की यान्त्रिक और प्राकृतिक शक्तियो का उपयोग किया जाता है और इन उपयंत्रो मे अनेक प्रकार की यांत्रिक प्रयुक्तियाँ भी काम मे लाई जाती हैं। इन भिन्नताओं के कारण ब्रेकों का वर्गीकरण निम्नलिखित तीन कोटियो में किया जाता है :

(१) **पट्टा ब्रेक** — इसमे एक लचीला पट्टा ब्रेक ढोल पर लपेट कर कसने से घर्षण के कारण गत्यवरोध होता है।

(२) **गुटका ब्रेक** — इसमें वृत्त खंडाकार गुटके लीवरों के सहारे से लटकाकर, पहिए या ढोल की परिधि के संपर्क में लाए जाते हैं।

(३) **अक्षीय ब्रेक** — जो ब्रेक पहिए अथवा ढोल पर लगाने के बदले मुख्य धुरे अथवा उसके समातर रहनेवाले अंगों पर लगाए जाते हैं, उन्हे अक्षीय ब्रेक (Axial brake) कहते है। इन्ही के अन्य नाम भारीय (load) ब्रेक, सुरक्षा (safety), स्वचल (automatic) और यांत्रिक (mechanical) ब्रेक भी हैं। इनकी रचना इस प्रकार की होती है जिससे गत्यवरोधक बल धुरे पर पड़नेवाले बलआघूर्ण (torque) के अनुपात से होता है, जैसा बिजली और हाथ से चलाए जानेवाले क्रेनों में। जब बिजली की चालक शक्ति, अथवा हाथ का बल, अकस्मात् निर्बल पड़ जाय, तो इस प्रकार के ब्रेक के द्वारा लटकता हुआ बोझा वहीं का वही रुक जाता है। इसी कारण इस ब्रेक को स्वचल कहते है, लेकिन यह उस प्रकार का स्वचल ब्रेक नही है जैसा रेलगाड़ियों में स्वत: ही लग जाता है।

लगभग सभी प्रकार के ब्रेकों मे गत्यवरोध का कारण ढोल, पहिए, अथवा धुरे आदि, के साथ होनेवाला घर्षण ही है, लेकिन सिलिंडर और पिस्टन की शक्ति से चलनेवाले इंजन और यंत्रों मे यदि पिस्टन की दूसरी तरफ भी कार्यकारी माध्यम (working medium), यथा वाष्प, या संपीडित हवा, या गैस, पहुँचा दिया जाय, तब भी उस यत्र की गति का अवरोधन हो जाता है। ऐसा ब्रेक घर्षणहीन ब्रेक कहलाता है। गत्यात्मक (Dynamic) ब्रेको की गिनती भी इसी कोटि में होती है, उदाहरणत: यंत्र को गति देनेवाले बिजली के मोटर को कुछ क्षणो के लिये यदि डायनामो मे परिवर्तित कर दिया जाय, तो चालित यंत्र की गति का अवरोध हो जाता है।

चित्र १. में पट्टाब्रेको की रचना कई प्रकार से दिखाई गई है। पट्टों के दो सिरो मे से एक सिरा क्ष तो स्थिर और दूसरा सिरा य गतिशील
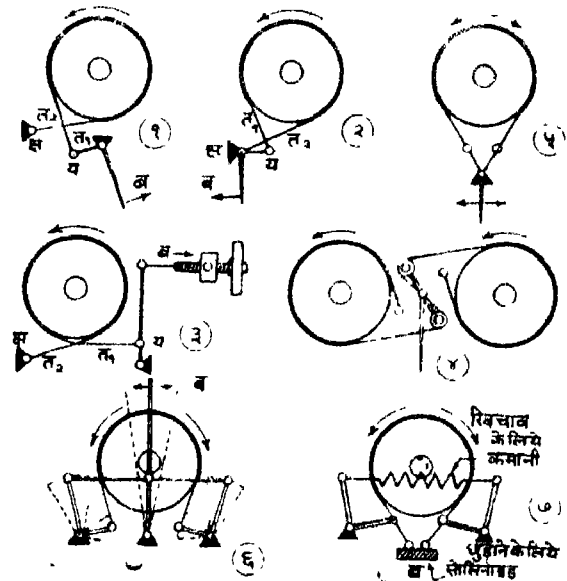
चित्र १.

होता है, जिसे लीवर द्वारा खींचकर ताना जाता है। इन दोनों में तनाव की तीव्रता भिन्न भिन्न हुआ करती है, जो निम्न सूत्रों में $त_1$

[T_1] और $\text{त}_२$ [T_2] द्वारा व्यक्त की गई है; जब कि ढोल दक्षिणावर्त दिशा मे घूमता है। जब वह वामावर्त घूमता है, तब क्ष पर $\text{त}_२$ [T_2] और य पर $\text{त}_१$ [T_1] तनाव होगा।

यदि ब (F) = लिवर पर लगनेवाला बल पाउंडो मे, द (P) = ब्रेकढोल की परिधि पर लगनेवाला स्पर्शीय बल पाउडो मे, उ (e) = नेपीरियन लघुगणक का आधार = २·७१८२८, μ = पट्टे और ब्रेकढोल के बीच का घर्षण गुणाक, θ = पट्टे और ब्रेकढोल के बीच का संपर्क कोण रेडियनों मे, तो

$$\text{त}_१ = \text{द} \frac{१}{\text{उ}^{\mu\theta} - १} \quad \left[T_1 = P \frac{1}{e^{\mu\theta} - 1}\right] \text{ और}$$

$$\text{त}_२ = \text{द} \frac{\text{उ}^{\mu\theta}}{\text{उ}^{\mu\theta} - १} \quad \left[T_2 = P \frac{e^{\mu\theta}}{e^{\mu\theta} - 1}\right]$$

ब और द का मान लीवर के सिद्धात की सहायता से गणना द्वारा निकाल लिया जाता है। निम्न सारणी मे μ का मान विभिन्न परिस्थितियो के अनुसार दिया गया है :

घर्षक पदार्थों का नाम	गति के समय घर्षण गुणाक (μ)		
	सूखी सतह	गीली सतह	तेल से चिकनी सतह
ऐस्बस्टस और धातु का चक्का	०·३७	—	०·२० से ०·२५ तक
इस्पात और ढलवाँ लोहा	०·१५ से ०·२४ तक	०·३१	०·२०
चमडा और ढलवाँ लोहा या इस्पात	—	१·२७	१·०१ से १·२७ तक
लकडी और ढलवाँ लोहा या इस्पात	०·२० से ०·६२ तक	०·२४	०·२०

गुटकेयुक्त ब्रेक - चित्र २ मे इस प्रकार की चार आकृतियां दिखाई है जिनमे से प्रथम तीन तो साधारण प्रकार के गुटके है, केवल
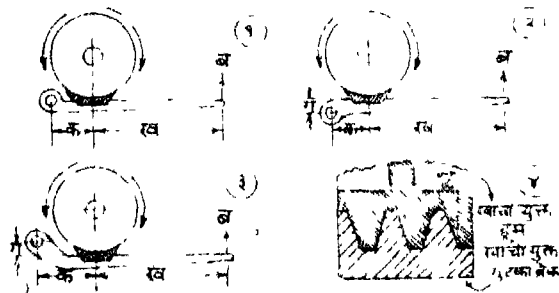
चित्र २

आलब की स्थितियो मे भिन्नता है, और चौथा खाँचेयुक्त गुटका है। इनके द्वारा ढोल पर लगनेवाले बल की गणना निम्न सूत्रों की सहायता से की जा सकती है। इन सूत्रो मे यदि ब [F] = लीवर के सिरे पर लगनेवाला बल पाउडो मे, द [P] = ढोल की परिधि पर लगनेवाला स्पर्शीय बल पाउंडों मे, μ = गुटके और ढोल के बीच घर्षण गुणाक, तो क, ख और ग चिह्नित लिवर के भाग यदि क्रमशः A, B और C द्वारा अंकित किए जाएं तो प्रथम आकृति मे दोनो दिशाओ मे घूमते समय

$$\text{ब} = \text{द} \frac{\text{ख}}{\text{क} + \text{ख}} \times \frac{१}{\mu} = \frac{\text{द ख}}{\text{क} + \text{ख}} \left(\frac{१}{\mu}\right)$$

$$\left[F = P \frac{B}{A + B} \times \frac{1}{\mu} = \frac{P B}{A + B} \left(\frac{1}{\mu}\right)\right]।$$

द्वितीय आकृति मे दक्षिणावर्त घूमते समय

$$\text{ब} = \frac{\frac{\text{द ख}}{\mu} - \text{द ग}}{\text{क} + \text{ख}} = \frac{\text{द ख}}{\text{क} + \text{ख}} \left(\frac{१}{\mu} - \frac{\text{ग}}{\text{ख}}\right)$$

$$\left[F = \frac{\frac{P B}{\mu} - P C}{A + B} = \frac{P B}{A + B} \left(\frac{1}{\mu} - \frac{C}{B}\right)\right]।$$

यही वामावर्त घूमते समय

$$\text{ब} = \frac{\frac{\text{द ख}}{\mu} + \text{द ग}}{\text{क} + \text{ख}} = \frac{\text{द ख}}{\text{क} + \text{ख}} \left(\frac{१}{\mu} + \frac{\text{ग}}{\text{ख}}\right)$$

$$\left[F = \frac{\frac{P B}{\mu} + P C}{A + B} = \frac{P B}{A + B} \left(\frac{1}{\mu} + \frac{C}{B}\right)\right]।$$

तृतीय आकृति मे दक्षिणावर्त घूमते समय

$$\text{ब} = \frac{\frac{\text{द ख}}{\mu} + \text{द ग}}{\text{क} + \text{ख}} = \frac{\text{द ख}}{\text{क} + \text{ख}} \left(\frac{१}{\mu} + \frac{\text{ग}}{\text{ख}}\right)$$

$$\left[F = \frac{\frac{P B}{\mu} + P C}{A + B} = \frac{P B}{A + B} \left(\frac{1}{\mu} + \frac{C}{B}\right)\right]।$$

यही वामावर्त घूमते समय

$$\text{ब} = \frac{\frac{\text{द ख}}{\mu} - \text{द ग}}{\text{क} + \text{ख}} = \frac{\text{द ख}}{\text{क} + \text{ख}} \left(\frac{१}{\mu} - \frac{\text{ग}}{\text{ख}}\right)$$

$$\left[F = \frac{\frac{P B}{\mu} - P C}{A + B} = \frac{P B}{A + B} \left(\frac{1}{\mu} + \frac{C}{B}\right)\right]।$$

चौथी आकृति के अनुसार यदि गुटके मे खाँचे बने हो, तो

$$\text{घर्षण गुणाक} = \frac{\mu}{\text{ज्या } \alpha + \mu \text{ कोज्या } \alpha} \quad \left[\frac{\mu}{\sin \alpha + \mu \cos \alpha}\right]$$

होगा, जिसमे α खाँचो के कोण का आधा समझना चाहिए और फिर आलब की भिन्नता के अनुसार उपर्युक्त सूत्र ही लागू होगे।

स्वचल तथा सुरक्षा ब्रेक — चित्र ३ मे वेस्टन ब्रेक की बनावट दिखाई गई है, जो प्राय क्रेनो मे लगाया जाता है। चित्र मे क दाँतदार पहिया है जो धुरे पर ढीला लगा है। उसके बाएँ हब पर, धुरे के समकोण तल मे, एक सर्पिल खाँचा बना है और फिरें के दाहिने सिरे को समतल बना दिया है, जो घर्षक चकलियो, च, के संपर्क मे रहता है। कॉलर घ को धुरे पर चाबी द्वारा पक्का बैठाकर, उसके दाहिने सिरे पर भी सर्पिल खाँचा बना दिया है, जो फिरें के खाँचे से मिल

जाता है और इसके भी बाई तरफ एक चिरा हुआ वाशर छ लगा देते है, जो बगल से आनेवाले दाब को सह लेता है। घर्षण चकलियों के दाहिनी तरफ एक फ्लैंज, ख, धुरे पर ढीला लगा है, जिसकी परिधि के दाहिने किनारे पर रैचेट के काँटेनुमा दाँत बने हैं, जिनके घूमते समय काँटा ग अटककर चलता है। किर्रे क और फ्लैंज ख में भीतर की ओर सरकनेवाली दाँतेदार दो चाबियाँ, ल और य, क्रमश: लगी है, जिनके लिये घर्षण चकलियों में भी खाँचे कटे हैं, जिस कारण प्रत्येक चकली की गति अपनी पडोसी चकली की गति की उलटी दिशा में होती है। एकांतर चकलियाँ दो भिन्न धातुओं की बनाई जाती हैं, यथा एक पीतल की तो दूसरी इस्पात की, तीसरी पीतल की और चौथी इस्पात की। चित्र मे चार ही चकलियाँ दिखाई गई है, जिनके द्वारा पाँच घर्षण तल बन जाते है। जब बोझा उठाया जाता है, तब तो धुरे के घूमने की दिशा वामावर्त होती है, किंतु उतारते समय दक्षिणावर्त होती है। अत बोझा
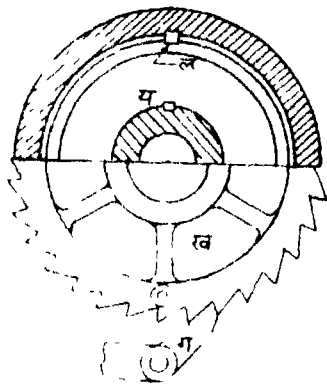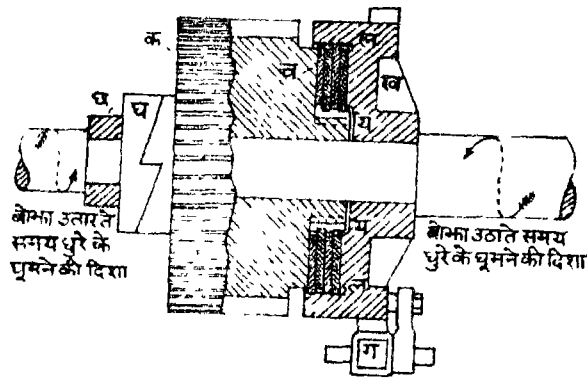
चित्र ३

उठाते समय तो काँटा ग फ्लैंज के दाँतो मे नही अटकता, लेकिन उतारते समय अटकने लगता है। धुरे के जिस भाग पर क और ख लगाए जाते है, उस भाग का व्यास कम कर दिया जाता है, जिससे ख के दाहिनी तरफ भी एक स्कंध बन जाता है, जो इन सब पुर्जो को बगल से दाब पडने पर सरकने नही देता।

संक्षेप मे इस ब्रेक की क्रिया निम्न प्रकार से होती हैं : बोझा उठाते समय जब किर्रे क पर भार आता है, तब उसकी प्रवृत्ति तो दक्षिणावर्त घूमने की और धुरे की वामावर्त घूमने की होती है, लेकिन कॉलर घ धुरे पर पक्का लगा होने के कारण उसके साथ वामावर्त ही घूमेगा, जिससे उन दोनो के सर्पिल खाँचे सरक कर और जाम होकर, क को ख फ्लैंज की तरफ ढकेल देगे। इस कारण पुर्जे घ, क, ख और ख आपस मे जुटकर ठोस हो जाएँगे और बोझा उठाते समय किर्रा क भी धुरे के साथ ही वामावर्त घूमने लगेगा। बोझा उतारते समय आरंभ मे तो सब पुर्जे जुटकर ठोस हो जाने के कारण उनकी प्रवृत्ति दक्षिणावर्त घूमने की ही होती है, लेकिन ख पर बने रैचट के दाँत और काँटा ग इसका विरोध करते हैं, जिससे क और घ के बीच का सर्पिल खुल जाता है और ऐसा होते ही भार के कारण किर्रा क सरलता से दक्षिणावर्त घूमने लगता है। लेकिन यह गति धुरे की विरोधी दिशा मे होने के कारण सर्पिल फिर चल पडता है, जिससे चकलियों मे घर्षण उत्पन्न होकर फिर सब पुर्जे ठोस होकर रुक जाते हैं और भार नीचे उतर आता, अर्थात् ब्रेक लग जाता है। इस ब्रेक यंत्र की बनावट इस प्रकार की होती है कि यदि क्रेन के मुख्य चालक से शक्ति निरंतर मिलती रहे, तो यह ब्रेक अत्यंत सूक्ष्म समय के अंतरों मे स्वत ही पकड़ता और छोडता रहेगा और बोझा बिना किसी झटके के धीरे धीरे नीचे उतरता रहेगा, और ज्यों ही मुख्य शक्ति ने धुरे को चलाना बंद किया, त्यो ही यह ब्रेक बोझे को जकडकर पकड लेगा, अर्थात् वह नीचे नही उतरेगा।

विद्युच्चालित ब्रेक -- इनका उपयोग क्रेनो और अन्य प्रकार के यंत्रों को चलानेवाले बिजली के मोटरो की रफ्तार को बद करने तथा रोकने के लिये किया जाता है। यह मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं (१) परिनालिका (solenoid) चालित घर्षण ब्रेक, जिनमे घर्षण उत्पन्न करनेवाले भागो पर नियंत्रण विद्युच्चुबको द्वारा किया जाता है। अतत ये ब्रेक भी यांत्रिक क्रिया द्वारा कार्य करते हैं। ये भी बनावट के अनुसार तीन प्रकार के होते है, यथा गुटकेयुक्त, पट्टयुक्त और चकली युक्त। ब्रेक का ढोल किसी भी दिशा मे चले, गुटको द्वारा बडी स्थिरता से उसका गत्यवरोध होता है। पट्टयुक्त ब्रेको मे गुटके-युक्त ब्रेको की अपेक्षा शक्ति कम लगानी पडती है, लेकिन इसके द्वारा एक ही दिशा में गत्यवरोध अच्छा होता है और दूसरी दिशा मे कमजोर पड जाता है। चकलीयुक्त ब्रेक मे घर्षण चकलियाँ, धुरे पर लगी चकलियो से रगड खाती है, जो कमानियो की ताकत से दबाई जाती है लेकिन उन्हे छुडाने के लिये परिनालिका की चुबकीय शक्ति का उपयोग करना होता है। यह ब्रेक दोनो दिशाओं मे घूमते समय अपना प्रभाव डालता है और अधिक विश्वसनीय भी है। पट्टयुक्त ब्रेको म साधारण उपयोग के समय तो चुबक का भार ही काम करता है और उन्हे छुडाने के लिये चुबक का खिचाव। खुलने और बंद होनेवाले पुलो को उठाने और वापस बैठाने के लिये यदि इस प्रकार के ब्रेक का उपयोग किया जाय, तो पुल की स्थिति बदलने के कारण संपूर्ण ब्रेक यंत्र ही टेढा तिरछा हो जाता है। ऐसी हालत मे केवल चुबक का भार ब्रेको को पकडने की शक्ति देने मे असमर्थ रहता है। अत इसके साथ कमानियों का भी उपयोग करना पडता है।

ब्रेक के लिये चुबक और उसकी कुडलियाँ -- जहाँ दिष्ट धारा (D. C) का उपयोग किया जाता है, वहाँ चकलीयुक्त ब्रेकों मे परि-नालिका प्रकार का, और पट्टयुक्त तथा गुटके युक्त ब्रेको मे अश्वनाल नुमा चुबक का, उपयोग होता है, लेकिन जहाँ प्रत्यावर्त (A. C.)

धारा प्रयुक्त होती है वहाँ सब प्रकार के ब्रेकों में परिनालिका चुंबक का ही प्रायः उपयोग होता है। लेकिन उस परिनालिका का कोर परतयुक्त बनाना होता है। दिष्ट धारा के चुंबक का कुंडलीकरण नियंत्रक यंत्र की बनावट के आवश्यकतानुसार श्रेणी में, अथवा पार्श्ववाही रखा जा सकता है। प्रायः एक ही नियंत्रक यंत्र द्वारा मोटर और ब्रेक, दोनों ही को शक्ति दी जाती है। अतः ऐसा प्रबंध किया जाता है कि ज्यों ही चालक मोटर को शक्ति देना बंद किया जाय, त्यों ही ब्रेकों में शक्ति का आवेश होकर ब्रेक स्वतः ही लग जाएँ और जब मोटर को पुनः शक्ति दी जाए तो ब्रेक स्वतः ही छुट जाएँ। ऐसी योजना मे कुंडलियाँ श्रेणी में लगाई जाती हैं। जहाँ प्रत्यावर्त धारा का उपयोग होता है वहाँ चुंबकीय कुंडलियाँ सदैव पार्श्ववाही पद्धति के अनुसार लगाई जाती हैं।

परिनालिका ब्रेक की क्षमता सदैव बोझ को थामने और गति मंदन में प्रयुक्त होनेवाले बलआघूर्ण (torque) के रूप में व्यक्त की जाती है। गणना करते समय पूर्ण भार वहन करने के निमित्त चालक मोटर में जो बलआघूर्ण होता है, उसका यह कुछ प्रति शत अंश रूप मे लिया जाता है, जिसका सूत्र निम्न प्रकार है :

$$\text{बलआघूर्ण} = \frac{\text{५२५०} \times \text{मोटर की अश्वशक्ति}}{\text{मोटर के चक्कर प्रति मिनट}} \text{ फुट पाउंड मे}$$

$$\left[\text{Torque} = \frac{5250 \times \text{HP of motor}}{\text{R.P.M. of motor}} \text{ foot lbs}\right]$$

अनुभव से देखा गया है कि गतिमंदन के लिये, संपूर्ण भारवाही बलआघूर्ण का यह २० से २०० % तक होता है। जहाँ क्रेन आदि मे पूरे भार को एक दम बीच मे ही लटकता हुआ रोकना होता है, वहाँ १०० % से २०० % तक बलआघूर्ण लगा देना होता है। छापेखाने के यंत्रों में जहाँ कागज के फट जाने का डर रहता है २० से २५ % तक ही बल लगाया जाता है और यातायात वाहनो में ५० % तक लगाया जाता है।

गत्यात्मक ब्रेक (Dynamic Brake) — जब किसी दिष्टधारा के पार्श्व कुंडलीयुक्त मोटर का पार्श्वपथ क्षेत्र (shunt field) उत्तेजित रहता है, उसी समय यदि उसे किसी अन्य चालक माध्यम द्वारा चालित रखा जाय, जैसे उसी के आर्मेचर (armature) के सवेग अथवा उससे संबंधित अन्य यंत्रों के संवेग द्वारा, तो वह मोटर उस समय डायनामो का काम करने लगता है, क्योंकि उस समय मोटर का आत्र मुख्य शक्तिस्रोत से असंबद्ध होकर धारानियंत्रक (rheostat) से संबंधित हो जाता है, जिससे वह मोटर की गति का अवरोध उसी प्रकार करने लगता है जिस प्रकार डायनामो अपने चालक इजन की गति का अवरोध करता है। प्रत्यावर्त्त धारा के मोटरो से जब इस प्रकार का काम लिया जाता है, तब उसके तारो का सबध प्रत्यावर्त्त डायनामो के समान ही कर दिया जाता है। प्रायः प्रेरक मोटर (induction motor) का उत्तेजन निम्न वोल्टता की दिष्टधारा से किया जाता है और रोटर को (rotor) धारा नियंत्रक से सबद्ध कर देते हैं। ऐसा करने से मोटर की चाल का नियत्रण धारा नियंत्रक में होने वाले प्रतिरोध की मात्रा से ठीक वैसे ही हो जाता है जैसा दिष्ट धारा के प्रयोग मे होता है।

गत्यात्मक पुनर्योजी (Dynamic Regensrative) प्रणाली के ब्रेको के लगते समय जो यांत्रिक ऊर्जा का शोषण होता है. वह धारा नियंत्रक में नष्ट हो जाने के बदले स्थिर वोल्टीय प्रणाली को वापस लौट जाता है। इस प्रणाली मे दिष्ट, अथवा प्रत्यावर्त्त, किसी भी प्रकार की धारा का उपयोग किया जा सकता। कई ब्रेक यंत्रो में गत्यात्मक और पुनर्योजी, दोनों ही प्रकार की प्रणालियों का मिश्रित उपयोग होता है।

मोटर गाड़ियों का ब्रेक — मोटरगाडियों मे पैर से दबाकर चलाए जानेवाले विशुद्ध यांत्रिक ब्रेक और द्रवचालित, दोनों ही प्रकार के, ब्रेकों का उपयोग किया जाता है। चित्र ४. में एक ड्रम क गाड़ी के
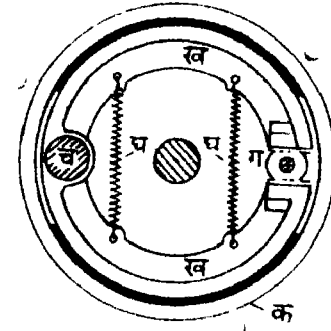
चित्र ४

प्रत्येक चक्के के साथ लगाया जाता है, जिसके भीतर की ओर अर्ध वृत्ताकार दो ब्रेक गुटके, ख, लीवर के रूप मे लगाए जाते हैं, जिनके बाइँ तरफ के सिरे तो कब्जे च के रूप में एक दूसरे से जुडे हैं और दाहिनी ओर के सिरों के बीच मे एक अंडाकार कैम ग लगा है। ड्राइवर द्वारा पैडल दबाए जाने पर, कैम अपनी धुरी पर घूमकर, अपने बड़े व्यास से लीवरों के सिरो को ढकेलकर अधिक दूर कर देता है, जिससे लीवरों की अर्धवृत्ताकार परिधि ड्रम के भीतरी भाग मे रगड खाकर गत्यवरोध करती है। पैडल की दाब ढीली होते ही कमानी के जोर से कैम उलटा घूम जाता है, जिससे लीवर ढीले पड जाते हैं और लीवरो से संबधित कमानियाँ, घ, उन्हे भीतर की तरफ खीचकर ड्रम की परिधि से अलग कर देती हैं।

द्रव चालित ब्रेक — यह उपर्युक्त वर्णित ड्रम मे ही लगाया जाता है, (देखें चित्र ५.)। इसमे लीवरों को ड्रम की परिधि पर दबाने के लिये कैम के बदले एक दुमुहा सिलिंडर, घ, लगा है, जिसमे दोनों ओर १$\frac{1}{4}$ इच व्यास के दो पिस्टन लगे हैं। द्रव दाब उत्पादन और पारेषण करनेवाला प्रधान सिलिंडर इंजन के पास लगा होता है, जिसमें अंडी का तेल और ईथर आदि का मिश्रण पूरा पूरा भरा रहता है। यह बड़ी मजबूत तथा लचीली नलियों द्वारा उपर्युक्त ड्रम के सिलिंडरो तक पहुँचता है। ड्राइवर द्वारा पैडल दबाए जाने पर, मुख्य सिलिंडरों में लगभग $\frac{1}{2}$ वर्ग इंच क्षेत्र का एक छोटा पिस्टन उसमे भरे द्रव को दबाता है, लेकिन यह द्रव असपीड्य होने के कारण उस दाब को ड्रम में लगे सिलिंडरों तक पारेषित कर, उसके पिस्टनों को चलाकर लीवरो और परिधि के बीच घर्षण द्वारा गत्यवरोध करता है। पैर के साधारण दबाव से सिलिंडरों मे १०० पाउड प्रति वर्ग इंच तक

दाब उत्पन्न होती है और आवश्यकता के समय अधिक जोर से दबाने पर ३५० पाउंड प्रति वर्ग इंच तक हो जाती है।

ट्राम गाड़ियों मे हाथ के बल से, संपीडित वायु के बल से और विद्युच्चालित तीन प्रकार के ब्रेक लगाए जाते हैं। प्रथम और अंतिम प्रकार के ब्रेकों का वर्णन तो ऊपर हो ही चुका है, संपीडित वायु चालित ब्रेकों के सिद्धांत का वर्णन रेलगाड़ियो के संबंध में अभी आगे किया जाएगा।

चित्र ५.

रेलगाड़ी के ब्रेक — इंजनों और प्रत्येक वाहन में जो ब्रेक लगाए जाते हैं वे संपीडित वाष्प, हवा, अथवा निर्वात या हस्तशक्ति चालित हुआ करते है। संपीडित हवा तथा निर्वात के कारण चलनेवाले ब्रेक स्वयंचालित होते हैं, जो रेलगाड़ियों के वफर संयोजकों के टूट जाने या
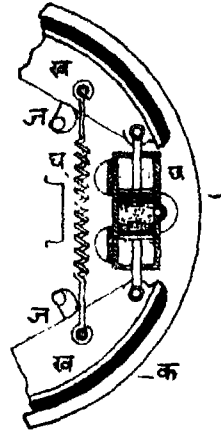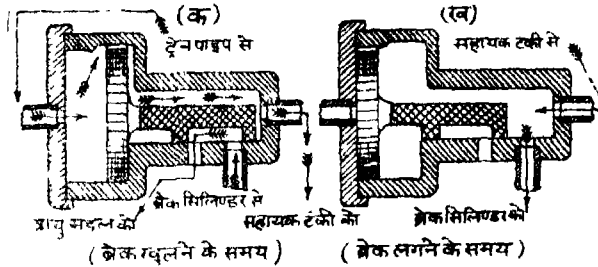
चित्र ६.

असंबंधित हो जाने पर, जब ट्रेन के दो भाग हो जाते हैं, स्वतः ही सब वाहनों में लगकर ट्रेन के दोनों खंडों को रोक देते हैं। प्रत्येक इंजन और अलहदा वैगनों तथा विशेष प्रकार के सवारी डिब्बों में हाथ ब्रेक तो अवश्य ही होता है, जिससे इंजन की शक्ति के अभाव में, यार्ड (yard) में उन्हें इच्छित स्थान पर रोक दिया जाय और ढाल अथवा वायु के झोंकों के कारण लुढ़ककर वे चल न पड़ें। इंजनों और उनके साथ लगनेवाली कोयले और पानी की टंकियों में हाथ के अतिरिक्त वाष्पचालित ब्रेक भी लगाया जाता है, जिसके ब्रेक सिलिंडर मे जाकर उसके पिस्टन को दबाते हैं। इससे लीवरों की सहायता से ब्रेक गुटके चक्कों को पकड़ लेते हैं।
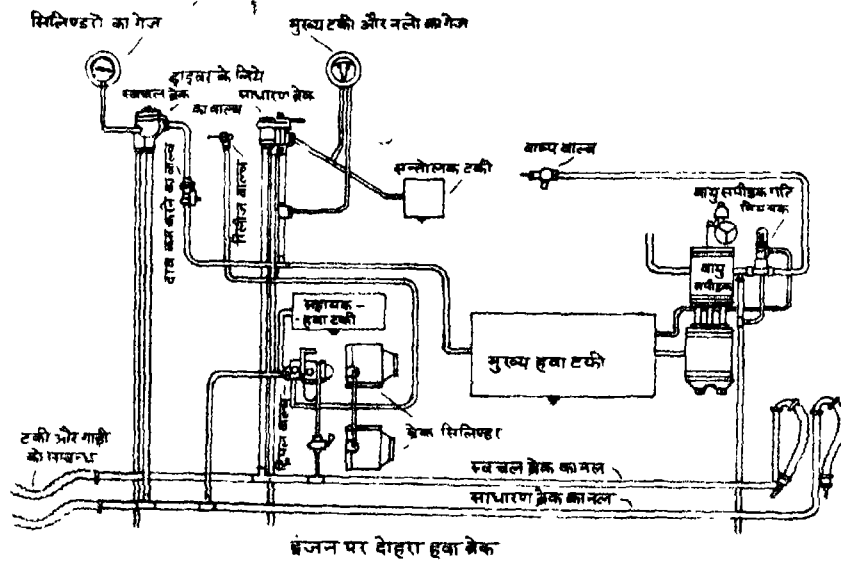
वेस्टिंगहाउस का संपीडित हवा ब्रेक — यह इंजन सहित पूरी रेलगाड़ी में काम करता है। यदि रेलगाड़ी को चलाने के लिये वाष्प इंजन हो, तो उसके बॉयलर के वाष्प से, और बिजली के इंजन मे मोटर द्वारा, एक वायुसंपीडक पंप चलाया जाता है, जिसमें इंजन पर लगी एक बड़ी मुख्य टंकी में ६० से १०० पाउंड प्रति वर्ग इंच की दाब से हवा भर दी जाती है। इंजन के पीछे चलनेवाली गाड़ियो में भी एक एक छोटी सहायक टंकी लगा दी जाती है, जिसमें लगभग १२ से १५ घन फुट तक स्थान रहता है। इंजन रेलगाड़ी मे जुत जाने पर इंजन की मुख्य टंकी में से दबी हवा को ट्रेन पाइप में छोड़ दिया जाता है, जो पाइप की शाखाओं में से होती हुई सहायक टंकी में भर जाती है, लेकिन गाड़ी मे लगे ब्रेक सिलिंडरों में यह हवा केवल उसी समय पहुँचती है जब ब्रेक लगाना आवश्यक होता है। इंजन मे ड्राइवर के ब्रेक नियंत्रक वाल्व के निकट ही भरण (feed) वाल्व लगा होता है, जिसके माध्यम से गाड़ी के चलने की हालत मे उसकी सब टंकी आदि मे ७० पाउंड प्रति वर्ग इंच के लगभग हवा की दाब बनी रहती है। जब ड्राइवर अपनी इच्छा से ब्रेक लगाना चाहता है, अथवा कोई बिगाड़ होने के कारण जब स्वतः ही ब्रेक लगने लगते हैं, उस समय ट्रेन पाइप की हवा किसी न किसी मार्ग से, चाहे वह ड्राइवर अथवा गार्ड का ब्रेक वाल्व हो अथवा कोई अन्य मार्ग हो, वायुमंडल मे निकलने लगती है, जिससे ट्रेन पाइप की हवा की दाब घटते ही सब गाड़ियों मे लगे ट्रिपल वाल्वों के पिस्टन सरक जाते हैं (देखें चित्र ६.)। इससे प्रत्येक गाड़ी की टंकियों मे भरी हुई दबी हवा ब्रेक सिलिंडरों मे जाकर उनके पिस्टनों को ताकत से सरका देती है, जिससे लीवरो के जरिए ब्रेक गुटके चक्कों को पकड़ लेते हैं। ब्रेकों को छुड़ाने के लिये इंजन की मुख्य टंकी मे से दबी हवा फिर से ट्रेन पाइप मे भर दी जाती है, जिससे उसमें दबाव बढ़ जाने से ट्रिपल वाल्वों के पिस्टन अपने पुराने स्थानों पर लौट आते

चित्र ७.

हैं। इससे ब्रेक सिलिंडरों में भरी दबी हवा का मार्ग ट्रिपल वाल्व के माध्यम से वायुमंडल मे खुल जाता है और ब्रेक छूट जाते हैं। चित्र ७. में सांकेतिक रूप से इंजन में लगनेवाले दोहरे ब्रेक के उपकरणों का प्रबंध दिखाया गया है।

निर्वात ब्रेक जिन गाड़ियों मे लगा होता है उनके प्रत्येक वाहन में चित्र ८. जैसा एक सिलिंडर लगा होता है, जिसमे एक सरकता हुआ पोला पिस्टन उसे दो वायुरोधी (airtight) भागों में बाँट देता है। जिस समय गाड़ियाँ बेकार खड़ी होती हैं, उस समय सिलिंडर मे पिस्टन के दोनों तरफ साधारण हवा भरी रहती है और पिस्टन अपने बोझ से नीचे की तरफ बैठा रहता है। गाड़ियो को इंजन मे जोत देने पर, ट्रेन पाइपों के माध्यम से उन सब सिलिंडरों को इंजन मे लगे वायुनिष्कासक यंत्र (ejector) से संबंधित कर देते हैं और बॉयलर की वाष्प की द्रुतगामिनी धारा की सहायता से वह यंत्र समग्र गाड़ियों के ट्रेन

चित्र ८

पाइप और उससे संबंधित सिलिंडरों की हवा को चूषण क्रिया द्वारा बाहर फेंककर, उनमें २२ इंच तक का निर्वातन कर देता है। निर्वातन के समय भी पिस्टन के दोनों ओर निर्वात हो जाने के कारण, वह यथापूर्व अपने बोझे से नीचे ही बैठा रहता है। जब ब्रेक लगाना होता है, उस समय ड्राइवर अपने वाल्व, अथवा गार्ड अपने वाल्व, के द्वारा, अथवा यात्री लोग जंजीर खींचकर, एक छोटे वाल्व द्वारा ट्रेन पाइप मे हवा को प्रविष्ट करवा देते हैं। इससे वह पाइप की शाखाओं मे से होती हुई ब्रेक सिलिंडरों में पिस्टनों के नीचे की ओर पहुँच जाती है। उसके ऊपर की ओर जाने के रास्ते में एक गोलीनुमा वाल्व लगा रहता है, जो हवा के दबाव से बंद हो जाता है, और हवा के ऊपर न जा सकने के कारण पिस्टन के ऊपर निर्वात बना रहता है। अत नीचे से वायुमंडल की हवा उसे ऊपर उठा देती है, जिससे पिस्टन दंड से संबंधित ब्रेक गुटकों के चक्कों को पकड़ लेते हैं। ब्रेकों को छुड़ाने के लिये फिर से निर्वात करने पर, जब पिस्टन के नीचे आई हुई हवा निकल जाती है, तब पिस्टन के दोनो ओर एक सी दाब होने के कारण अपने बोझे से वह नीचे बैठ जाता है और ब्रेक छूट जाते हैं।

सं० ग्रं० — मिकैनिकल इंजीनियरिंग, भाग १, मैशिनरी पब्लिशिंग कंपनी, न्यूयार्क; २ ब्रेक पावर, लोकोमोटिव पब्लिशिंग कंपनी, लंदन। [ओं० ना० श०]

ब्रेडले, फ्रैंसिस हरबर्ट (१८४६–१९२४ ई०) ब्रेडले का जन्म ३० जनवरी, १८४६ को गालसबरी, ब्रेकनाक (इंग्लैंड) मे हुआ था। उन्होंने यूनिवर्सिटी कालेज ऑक्सफोर्ड में शिक्षा पाई और सन् १८७६ में 'फेलो ऑव मार्टन' हो गए। जून, १९२४ मे वे विशिष्ट पुरुषो की श्रेणी (आर्डर ऑव मेरिट) में लिए गए और उसी वर्ष १८ सितंबर को उनकी मृत्यु हो गई। उनको आंग्ल अध्यात्मवादियों मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण और ख्यातिप्राप्त दार्शनिक माना जाता है। उनकी तर्कनापद्धति के कारण उन्हें आधुनिक दर्शन का जीनो भी कहा जाता है। उन्होंने इतनी तीक्ष्ण विवेचनात्मक पद्धति अपनाई है और विचारो को इतने अधिक सूक्ष्म और मौलिक रूप से प्रस्तुत किया है कि आज तक उन्हें अपने ढंग का अकेला दार्शनिक माना जाता है। उनका युक्तिवाद भारतीय बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन और वेदांती श्रीहर्ष की तर्कनापद्धति का नवीन संस्करण मालूम होता है।

ब्रेडले का प्रथम महत्वपूर्ण ग्रंथ 'ऐथीकल स्टडीज़' है। उसके उपरांत उन्होंने 'दी प्रिंसिपिल ऑव लाजिक', 'एपियरेंस ऐंड रियलिटी', 'एसेज़ आन ट्रुथ ऐंड रियलटी', 'दी प्रिसपोजीशन ऑव क्रिटिकल हिस्ट्री' तथा 'मिस्टर सिजविक्स हिडोनिज़्म' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ भी लिखे हैं। 'ऐपियरेंस ऐंड रियलिटी' का हिंदी रूपांतर 'आभास और सत्' नाम से हिंदी समिति (उ० प्र० सरकार) द्वारा प्रकाशित हुआ है।

'एथीकल स्टडीज़' (१८७६) मे मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व की उपलब्धि, संसार से उसका सामंजस्य और अनंत सत्ता से उसका तादात्म्य वांछनीय बताया गया है। उसमे उपयोगितावाद (यूटीलिटेरियनिज़्म) का खंडन कर सर्वसामान्य, स्वशासित तथा आत्मोपम शुभेच्छा (गुडविल) अर्जित करने का समर्थन किया गया है।

'दी प्रिंसिपिल ऑव लाजिक' (१८८३) में मिल द्वारा पूर्वस्थापित तार्किक सिद्धांतों की सीमाएँ और न्यूनताएँ दिखाई गई हैं और विशेष रूप से उनके अनुमान के सहचारी (ऐशोसेसनिस्ट) सिद्धांत का खंडन किया गया है। यही नहीं, न्यायशास्त्र के अध्येताओं को उसमे नवीन सामग्री भी प्राप्त होती है।

ब्रेडले का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'एपियरेंस ऐंड रियलिटी' (१८९३) है। यह उनके दार्शनिक चिंतन का सार है। इसी विषय पर उन्होंने

'ऐसेज़ ग्रान ट्रुथ ऐंड रियलिटी' (१९१४) नामक ग्रंथ भी लिखा है। उनके अनुसार हमें निरपेक्ष का ज्ञान निश्चित और वास्तविक होता है किंतु यह भी निश्चय है कि उसकी अनुभूति अपूर्ण ही है। सत् को समझने के लिये उन्मेषनी अंतर्दृष्टि होनी चाहिए। जिस अनुभव के द्वारा सत् का बोध होता है वह केवल बुद्धिविवेचन या विचार नहीं है बल्कि संकल्प और भावना भी उसमे संमिलित है। सत् का विचार करने की अनेक पद्धतियों की ब्रेडले ने परीक्षा की और देखा कि वे सब आत्मव्याघातपूर्ण हैं। आत्मव्याघातपूर्ण वस्तु को आभास ही समझना चाहिए क्योंकि अंतिम सत् में स्वयं कोई विरोध नहीं हो सकता है। विचार करना ही विवेचन करना है, विवेचन करना ही आलोचना करना है और आलोचना करना ही सत्य का कोई मापदड प्रयोग करना है। ब्रेडले के अनुसार सत्य का मापदंड यही है कि अंतिम सत् स्वयंविरोधी नहीं हो सकता। प्रधान और अप्रधान गुण, द्रव्य और विशेषण, संबंध और गुण, दिक् और काल, गति और परिवर्तन, कारणता और क्रिया, आत्मा और अपने आपमे वस्तुएँ—इन सब की विवेचना करके ब्रेडले इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि इन सब प्रकार से विचार करने में स्वयं व्याघात है। इसके विपरीत निरपेक्ष सत् संगतस्वरूप, एक, व्यक्तिगत, मूर्त, चेतन अनुभवरूप, अविभाज्य, पूर्ण और परम है। उसमे दुःख के ऊपर सुख का संतुलन है। दुःख के अस्तित्व को अस्वीकार तो नहीं किया जा सकता क्योंकि उसकी अनुभूति तो होती है किंतु सुख के साथ उसकी मात्रा क्षीण होती रहती है। अंत मे दुःख से सुख की मात्रा ही अधिक होती है। निरपेक्ष सत् को ईश्वर कह सकते हैं किंतु वह धर्मप्रतिपादित ईश्वर नहीं है। धर्म के अंतर्गत मनुष्य और ईश्वर के बीच एक संबंध है। यह संबंध आत्मविरोधी है। निरपेक्ष सत् मे आंशिकता नहीं है क्योंकि वह पूर्ण है। आभास मे आंशिक सत् है। वह सर्वथा भ्रांत और त्याज्य नहीं है। चूँकि पूर्ण सामंजस्ययुक्त ही पूर्ण, यथार्थ और सत् है अतः न्यूनतर सामंजस्ययुक्त वस्तुएँ आंशिक सत् कही जा सकती हैं। दो प्रस्तुत आभासो मे से एक, जो अधिक विस्तृत अथवा अधिक समन्वयशील है, अधिक वास्तविक है। जो तथ्य परम सत् मे परिणत होने के लिये पुनर्व्यवस्था तथा वृद्धि की कम अपेक्षा रखता है, वह अधिक वास्तविक और अधिक सत् है। [हृ० ना० मि०]

ब्रैंग्वीन, सर फ्रैंक (१८६७–१९५६) वेल्स का लोकप्रिय चित्रकार, ब्रैंग्वीन ने अधिकतर दीवार पर चित्र (म्यूरल) बनाए है। वह एक ही चित्र मे तमाम आकृतियाँ चित्रित करता था। चित्र बड़े ही रंग बिरंगे हैं। १९१९ मे उसे राजकीय कलाकार का पद मिला। १९४१ मे उसे 'नाइटहुड' (सर) का खिताब मिला। उसके बनाए चित्र स्किनर्स हाल, रायल एक्सचेंज, लायड्स रजिस्टर लदन मे है तथा कोर्ट हाउस, क्लीवलैंड, ओहाय, मिज़ूरी स्टेट कैपिटल तथा न्यूयार्क के रॉकफेलर सेंटर मे मिलते हैं। हाउस ऑव लार्ड्स के गिल्ड हाल तथा स्वान सी मे भी उसके चित्र हैं। फ्रांस मे उसके चित्रों का एक पूरा संग्रहालय ही है। ब्रूजेज, जहाँ वह उत्पन्न हुआ था, तथा आरेंज (फ्रांस) मे भी उसके चित्र मिलते हैं। [रा० चं० शु०]

ब्रैकियोपोडा (Brachiopoda) अकशेरुकी प्राणियों का संघ है जिसके सभी सदस्य समुद्री प्राणी हैं। इस संघ के प्राणी द्विकपाटी (bivalve) कवच (shell), अखंड (unsegmented) देहगुहा, द्विपार्श्वी (bilateral) तथा स्पर्शकयुक्त मुख खाँचा (buccal groove) वाले हैं। ये द्विपार्श्व, असममित प्राणी हैं।

कवच—ब्रैकियोपोडा का शरीर द्विकपाटी कवच के अंदर बंद रहता है। ये कवच क्रमशः पृष्ठ (dorsal) तथा अधर (ventral) कपाट कहलाते हैं (चित्र १)। पृष्ठकपाट छोटा होता है। टेरिब्रैचला (Terebratula) तथा वाल्डहाइमिया (Waldheimia) वंश के प्राणियों मे अधर कपाट प्रायः लंबा होता है और चोंच की
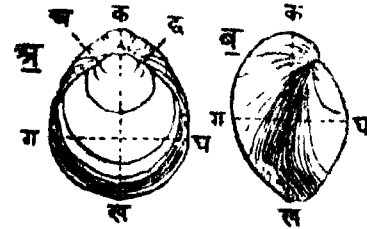
चित्र १. टेरिब्रैचला सेमिग्लोबोसा

अ पृष्ठ कपाट : क-ख लंबाई, ग-घ चौड़ाई तथा च-छ हिंज रेखा; ब अधर कपाट : क-ख लंबाई तथा ग-घ मोटाई (½ ×)

तरह पीछे की ओर बढ़ा रहता है। इस चोंच को ककुद (umbo) कहते हैं। वृंत के लिये ककुद छिद्रित रहता है। वृंत के द्वारा प्राणी पत्थर या चट्टान से जुड़ा रहता है। क्रेनिया (Crania) वंश के प्राणियों में वृंत नहीं होता, क्योंकि इस वंश के प्राणियो का अधर कपाट चट्टान से जुड़ा रहता है।

प्रत्येक कपाट सगत प्रावार फ्लैप (mantle flap) से प्रच्छन्न रहता है। प्रावार उपकला (mantle epithelium) सूक्ष्म पैपिली (papillae) के रूप मे वृद्धि करती है और कवच के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाती है। पैपिली जिन कोशिकाओं के बने होते हैं, वे कोशिकाएँ प्रायः सूक्ष्म शाखन प्ररूप की होती हैं। कवच की वृद्धि पैपिली पर निर्भर रहती है। प्रत्येक कवच का बाह्यस्तर कार्बनिक पदार्थ का बना होता है। इस स्तर के नीचे शुद्ध कैल्सियम कार्बोनेट का पतला स्तर रहता है तथा कैल्सियमी एवं आंशिक कार्बनिक पदार्थों का बना मोटा आंतर प्रिज़मीय स्तर (prismatic layer) रहता है। कवच के कपाट पेशी तंत्र द्वारा खुलते और बंद होते हैं। हिंज (hinge) रेखा पीछे और प्रावार गुहिका (mantle cavity) आगे होती है।

लोफोफोर (Lophophore) — कवच को खोल देने पर दिखाई पड़ता है कि अधिकांश स्थान एक जटिल रचनावाले अंग ने घेर रखा है, जिसे लोफोफोर कहते है। लोफोफोर के अनुप्रस्थ खाँचे मे मुँह स्थित रहता है। यह खाँचा पृष्ठ मे सतत ओष्ठ द्वारा तथा अधर में स्पर्शकों की पंक्ति द्वारा घिरा रहता है। खाँचा बहुत बड़ा रहता है और इसके दोनो किनारे दो बाहुओं का रूप ले लेते है। ये बाहु प्रायः सर्पिल वलित रहती हैं। स्पर्शक (tentacle) लंबे होते है और कवच की दरार से बाहर निकल सकते हैं। स्पर्शक और प्रावार की सतह पर स्थित पक्ष्माभिकाएँ (cilia) अपनी कशाघाती गति (lashing movement) द्वारा लोफ़ोफ़ोर की दो बाहुओं के सामने दूसरी ओर

अंदर जानेवाली जल की दो धाराएँ उत्पन्न करती हैं। बाहर निकलनेवाली जल की धारा दोनों बाहुओं के मध्य में होती है। कवच के अंदर उपर्युक्त दोनों जलधाराओं में से प्रत्येक लोफ़ोफ़ोर के स्पर्शकों के मध्य में जाती है, जहाँ पानी मे तैरते हुए हलके खाद्य पदार्थ छन
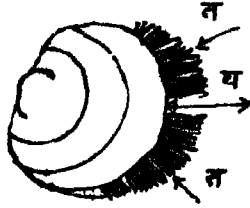
चित्र २. क्रेनिया (Crania)
(स्पर्शकों से भोजन ग्रहण करते हुए)
त. अंदर जाता हुआ, जल तथा खाद्य और थ. जल का निर्गम

जाते हैं। ये पदार्थ दूसरी पक्ष्माभिका द्वारा मुँह के खाँचे में और वहाँ से मुँह मे जाते हैं। भारी पदार्थ अधर प्रावारपालि पर रह जाते हैं और बाहर जानेवाली जलधारा द्वारा बाहर चले जाते हैं।

पाचक तंत्र — मुंह पक्ष्माभिकामय (ciliated) आहारनाल मे खुलता है। आहारनाल की आकृति वी (v) की तरह होती है और इसमें थैली (sac) के आकार का आमाशय समिलित है। आमाशय मे शाखित नलियोंवाली पाचक ग्रंथियाँ खुलती है, जिनकी गुहा में अधिकाश पाचन होता है। आंत्र सीधी नली की तरह का होता है। वाल्डहाइमिया मे आंत्र अंत मे पूर्ण बंद रहता है (चित्र ३.)। लेकिन क्रेनिया
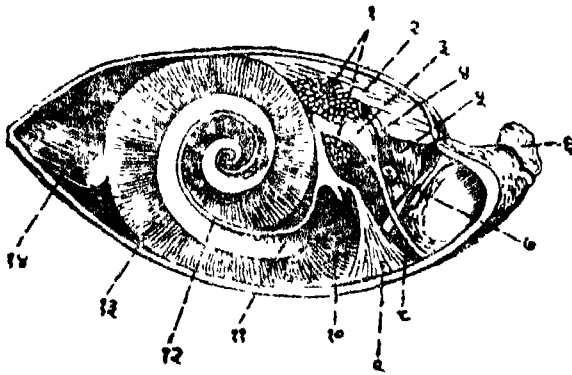
चित्र ३ वाल्डहाइमिया (Waldheimia) की अनुदैर्घ्य काट
१. पाचक ग्रंथि, २. कवच (shell) पर उर्ध्वाधर कटक, ३. आमाशय, ४. हृदय, ५. पेशी, ६. वृंत, ७. वृक्क मुख, ८. आंत्र, ९. देहभित्ति, १०. मुँह, ११. लोफ़ोफ़ोर, १२. लोफ़ोफ़ोर का ओष्ठ, १३. स्पर्शक तथा १४. अंतस्थ स्पर्शक।

और लिंगुला में गुदा रहती है (देखें चित्र ४. अ)। देहगुहा विस्तृत होती है तथा अधरापृष्ठी (dorsoventral) आंत्रयोजनी (mesentery) द्वारा दाहिने और बाएँ, दो भागों, मे बँटी रहती है। अनुप्रस्थ आंत्रयोजनी भी होती है। यह लोफोफोर तथा स्पर्शक में जाती है और प्रावार में प्रावार कोटर (pallial sinus) के रूप में जाती है।

जनन अंग — नर मादा प्राय: अलग अलग होते हैं। कुछ प्राणी उभयलिंगी (hermaphrodite) भी होते हैं। जनन अंग देहगुहा की उपकला से आंत्र के पास विकसित होते हैं। जनन ग्रंथियाँ मोटी, पीली पट्टी की तरह दिखाई पड़ती हैं। परिपक्व लिंगकोशिकाएँ देहगुहा में मुक्त होकर वृक्क से बाहर जाती हैं। कुछ वंशों में अंडों के विकास का प्रथम चरण वृक्क के पास स्थित भ्रूणधानियों (brood pouch) मे पूरा होता है। यही वृक्क उत्सर्जन का भी कार्य करता है। ये वृक्क एक जोडा या कभी कभी दो जोड़ा होते हैं। अधिकाश ब्रैकियोपोडा मे निषेचन माता पिता के कवच के बाहर होता है।

परिवहन तंत्र — यह अल्प विकसित होता है। पृष्ठ आंत्र योजनी मे एक अनुदैर्घ्य वाहिनी होती है, जिसके एक क्षेत्र मे संकुचनशील आशय (contractile vesicle) होता है। यह आशय हृदय कहलाता है और *आमाशय* के पृष्ठ की ओर रहता है। अनेक *वाहिनियाँ*, जो आगे मुँह की ओर पीछे प्रावार एवं जनन अंगों की ओर जाती है, अंत मे पूर्ण बद हो जाती हैं। रक्त रंगहीन होता है।

तंत्रिका तंत्र — परिग्रसनी (circumoesophageal) संयोजी द्वारा संयोजित अधिग्रसिका (supraoesophageal) तथा अधोग्रासनली गुच्छिका (suboesophageal ganglion) क्रमश: मुँह के सामने और पीछे रहती है। अधोग्रासनली से निकली तंत्रिकाएँ बाहु, पृष्ठप्रावार पालि अभिवर्तनी (adductor) पेशियो तथा दो छोटी छोटी गुच्छिकाओ मे जाती है। इन गुच्छिकाओ से निकली तंत्रिकाएँ वृंत (peduncle) तथा अधरप्रावार पालि मे जाती हैं। सभी गुच्छिकाएँ एवं परियोजियाँ (commissures) बाह्य त्वचा के निरतर संपर्क मे रहती है। प्रत्येक स्पर्शक मे भी तंत्रिका जाती है। ब्रैकियोपोडा में किसी विशेष ज्ञानेंद्रिय की उपस्थिति ज्ञात नही है।

विकास — ब्रैकियोपोडा के लार्वा स्वतंत्र रूप से तैरते है। लार्वा के तीन खंड होते हैं: (१) अग्र (२) मध्य तथा (३) पश्च। अग्रखंड ट्रोपोस्फियर (trophosphere) के मुखपूर्वी खंड की तरह होता है। मध्य भाग मे प्रावार की दो पालियाँ होती हैं, जो प्रारंभिक होती हैं। पश्च भाग प्रावार पालि से छिपा रहता है और यह वृंत मे परिवर्तित हो जाता है। प्रावार पालियो मे से शूक (chaetae) के चार पूल निकलते हैं (देखें चित्र ४.)। बाद मे ये पालियाँ अग्र खंड को घेरने के लिये आगे की ओर मुड जाती हैं। अब अग्र खंड से लोफ़ोफोर का विकास प्रारंभ होता है। कवच कपाट प्रावार पालियों पर बनने लगता है, जबकि पश्चखंड वृंत्त के रूप मे वृद्धि करता है। देहगुहा एक जोड़ा कोष्ठ (pouch), या एक कोष्ठ, के रूप मे आद्यांत्र (archenteron) से विकसित होती है। प्राय: विदलन (cleavage) अरीय (radial) होता है, किंतु एक स्पीशीज मे सर्पिल विदलन भी होता है।

सामान्य विशेषताएँ — ब्रैकियोपोडा कैंब्रियन (cambrian) काल से ही समुद्र की तली मे निवास करते हैं, किंतु उस काल मे ये दूर तक नहीं फैले थे। पुराजीवी महाकल्प (Palaeozoic era) की चट्टानों में ब्रैकियोपोडा के ४५६ वंश तथा मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic era) की चट्टानों में १७७ वंश मिलते हैं। ये वंश उस समय के अकशेरुकी संसार के महत्वपूर्ण जंतुसमुदाय थे। ब्रैकियोपोडा के ७०

वंश, जिनमें लगभग २२५ स्पीशीज हैं, वर्तमान काल में मिलते हैं। आधुनिक लिंगुला (Lingula) वंश तथा ऑर्डोविशन कल्प के लिंगुला सर्वसम हैं। ५० करोड़ वर्ष पुराने इस वंश को ज्ञात प्राणियों का सबसे पुराना वंश होने का गौरव प्राप्त है। अधिकांश वर्तमान ब्रैंकियोपोडा उथले जल मे रहते हैं और कुछ गहरे जल में। फॉसिल के रूप में प्राप्त प्राणियों के कवचों के विस्तार, अलंकरण (ornamentation) तथा आकृतियाँ विभिन्न होती हैं। जीवित ब्रैंकियोपोडाओं के कवच हरे, लाल भूरे या सफेद होते हैं। इन कवचों पर अरीय या संकेंद्रीय चिह्न होते हैं। ये कवच चिकने, या शिरायुक्त (costate), या शूलयुक्त होते हैं।
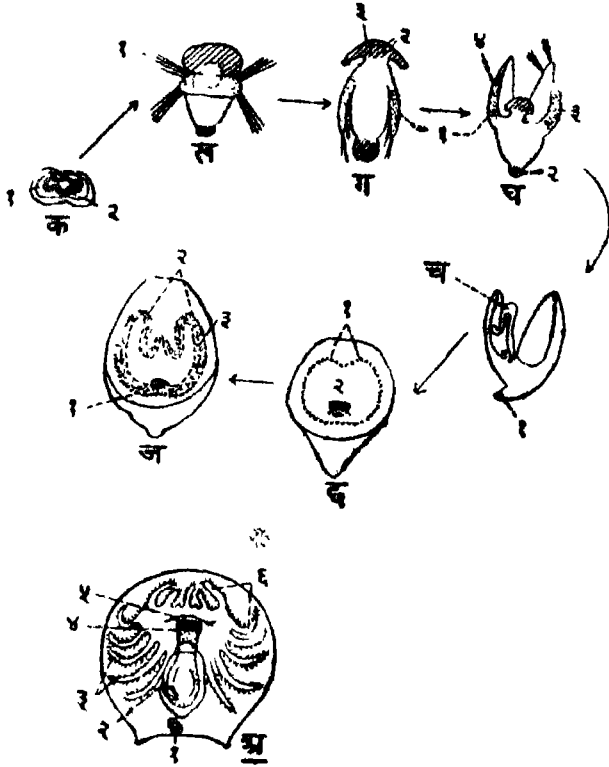
चित्र ४ ब्रैंकियोपोडा का विकास

क. गैस्ट्रुला भवन (gastrulation) के अंत के समय के लार्वा की काट : १. देहगुहा तथा २. आहार नाल; ख. तीन खंडों में बँटा हुआ लार्वा : १. शूक; ग. चर लार्वा : १. प्रावारपालि, २. आँखें तथा ३. मूलपूर्वी खंड; घ. उत्थित प्रावारपालि : १. प्रावारपालि, २. वृंत, ३. अधर कपाट तथा ४. पृष्ठीय कपाट; च. लोफोफोर का विकास : १. वृंत; छ. पृष्ठीय कपाट का आतरिक दृश्य : १. स्पर्शक तथा २ ओष्ठ; ज. लोफोफ़ोर के विकास में बाद की अवस्था : १. मुंह २. स्पर्शक तथा ३. बाहु।

अ लिंगुला (lingula) के लार्वा के पृष्ठीय कपाट का आंतरिक दृश्य : १. वृंत, २. गुदा, ३. स्पर्शक, ४. मुँह, ५. पृष्ठीय ओष्ठ तथा ५. स्पर्शक।

वर्गीकरण — ब्रैंकियोपोडा संघ दो वर्गों में विभक्त है : (१) इनआर्टिकुलेटा (Inarticulata), या ईकार्डिनीज़ (Ecardines), तथा आर्टिकुलेटा (Articulata)।

इनआर्टिकुलेटा — इस वर्ग के प्राणी के दोनों कवच लगभग समान होते हैं। कवच में हिंज नही होता। ये दोनों कवच पेशी से बँधे होते हैं तथा इनकी गठन शृंगी होती है। इनमें गुदा रहती है। लिंगुला तथा क्रेनिया इसके वर्तमान वंश है। लिंगुला हिंद महासागर तथा प्रशांत महासागर में मिलते हैं। लिंगुला पंक में बिल बनाकर रहना पसंद करता है।

आर्टिकुलेटा वर्ग — इस वर्ग के प्राणियों के दोनों कवच असमान होते हैं। इसमे वृंत के लिये ककुद (umbo) रहता है तथा हिंज भी रहता है। गुदा नहीं होती। इसके वर्तमान जीवित वंश वाल्डहाइमिया तथा टेरिब्रैचला हैं।

सं० ग्रं०—जी. ए. केयरकट : द इनवर्टिब्रेटा (चतुर्थ खंड); डा० एस० एन० प्रसाद : ए टेक्स्ट बुक ऑव इनवर्टिब्रेट जोऑलोजी।

[अ० ना० मे०]

ब्रैग (Bragg) १. सर विलियम हेनरी, ओ० एम० (सन् १८६२-१९४२), ब्रिटिश भौतिकीविद्, का जन्म इंग्लैंड के कंबरलैंड काउंटी मे स्थित विग्टन नामक ग्राम मे हुआ था। आपकी शिक्षा कैंब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज में पूर्ण हुई तथा आप ऐडिलेड (दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया) मे गणित तथा भौतिकी के प्रोफेसर नियुक्त हुए।

यहाँ इन्होंने रेडियोऐक्टिवता पर अनुसंधान आरंभ किए। इन अनुसंधानो से ये प्रसिद्ध हो गए। सन् १९०९ मे आप लीड्स मे कैवेंडिश प्रोफेसर तथा सन् १९१५ मे लंदन युनिवर्सिटी के क्वेन प्रोफेसर नियुक्त हुए। अपने पुत्र सर विलियम लॉरेंस ब्रैग के सहयोग से आपने एक्स-रे-स्पेक्ट्रोमीटर का विकास किया तथा इस यंत्र की सहायता से परमाणुओं और क्रिस्टलो के विन्यासो को स्पष्ट किया। सन् १९१५ मे इन्हे तथा इनके उपर्युक्त पुत्र को सयुक्त रूप से भौतिकी का नोबेल पुरस्कार और कोलंबिया विश्वविद्यालय का बारनर्ड स्वर्णपदक प्रदान किया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय पनडुब्बी नावों का पता लगाने की समस्याओ के संबध मे ब्रिटिश नौसेना को आपने सहायता दी। आप सन् १९२८-२९ मे ब्रिटिश ऐसोसिएशन फॉर दि ऐडवान्समेंट ऑव सायंस के तथा सन् १९३५-४० तक रॉयल सोसायटी के प्रेसिडेंट थे। रेडियोऐक्टिविटी तथा क्रिस्टल विज्ञान पर अनेक प्रकाशनो के सिवाय ध्वनि, प्रकाश तथा प्रकृति सबधी आपके अन्य ग्रंथ भी हैं।

ब्रैग, २. सर विलियम लॉरेंस (१८९०-१) पूर्वचर्चित ब्रैग के पुत्र थे। इनका जन्म ऐडिलेड (ऑस्ट्रेलिया) मे हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा इसी नगर मे पाने के पश्चात् सन् १९१६ मे आप कैंब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज के फैलो हो गए।

अपने पिता के साथ एक्स-रे-स्पेक्ट्रोमीटर की सहायता से आपने अनेक प्रकार के क्रिस्टलों की रचना की खोज की। इस कार्य के लिये इन्हें और इनके पिता को सयुक्त रूप से भौतिकी का नोबेल पुरस्कार तथा बारनर्ड स्वर्णपदक मिले। सन् १९१९ से १९३७ तक आप विक्टोरिया विश्वविद्यालय (मैंचेस्टर) मे भौतिकी के लैंगवर्दी

प्रोफेसर तथा सन् १९३७-३८ में नैशनल फिजिकल लेबोरेटरी के निदेशक थे तथा सन् १९३८ में कैंब्रिज विश्वविद्यालय में प्रायोगिक भौतिकी के कैवेंडिश प्रोफेसर नियुक्त हुए।

क्रिस्टल संरचना पर आपने कई एक महत्व के निबंध लिखे हैं। विद्युत्, क्रिस्टलों की संरचना तथा खनिजों की परमाणवीय संरचना पर भी आपने पुस्तकें लिखी हैं। [भ० दा० व०]

ब्रोंनो इल (आंजेलो ऐलोरी, १५०३–७२) फ्लोरेंटाइन चित्रकार, पांटोर्मो का शिष्य आंजेलो ब्रोंनो ग्रैंड ड्यूक ऑव टस्कनी का दरबारी कलाकार था। वह अपने समय का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति चित्रकार (पोर्ट्रेट पेंटर) था। माइकेल आंजेलो की कला का इस पर विशेष प्रभाव था। इसके व्यक्तिचित्रो की आकृतियों मे एक अमानुषिक भव्यता प्रतिलक्षित होती है। उसके धार्मिक चित्र अधिकतर वर्णनात्मक हैं। 'वीनस', 'क्यूपिड', 'टाइम ऐंड फाली' शीर्षक चित्रों में कुछ कुछ नग्नता और अश्लीलता भी दृष्टिगोचर होती है। उसके बनाए अधिकतर चित्र फ्लोरेंस मे ही है। कुछ ऐंटवर्प, बर्लिन, बोस्टन, शिकागो, सिनसिनाटी, डेट्राएट, लंदन, मैड्रिड, मिलान, न्यूयार्क, ओटावा, आक्सफोर्ड, पेरिस, पीसा, रोम, वियना, वाशिंगटन तथा वोर्सेस्टर मास में हैं। [रा० चं० शु०]

ब्रोमीन (Bromine) ब्रोमीन आवर्तसारणी (periodic table) के सप्तम मुख्य समूह का तत्व है और सामान्य ताप पर केवल यही अधातु द्रव अवस्था मे रहती है। इसके दो स्थिर समस्थानिक (isotopes) प्राप्य हैं, जिनकी द्रव्यमान संख्याएँ ७९ और ८१ है। इसके अतिरिक्त इस तत्व के ११ रेडीयोऐक्टिव (radioactive) समस्थानिक निर्मित हुए हैं, जिनकी द्रव्यमान संख्याएँ ७५, ७६, ७७, ७८, ८०, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६ और ८८ हैं।

फ्रांस के वैज्ञानिक बैलार्ड ने ब्रोमीन की १८२६ ई० मे खोज की। इसकी तीक्ष्ण गध, के कारण ही उसने इसका नाम ब्रोमीन रखा, जिसका अर्थ यूनानी भाषा मे दुर्गंध होता है।

ब्रोमीन सक्रिय तत्व होने के कारण मुक्त अवस्था मे नही मिलता। इसके मुख्य यौगिक सोडियम, पोटैशियम और मैग्नीशियम के ब्रोमाइड नामक स्थान मे हैं। जर्मनी के स्टासफुर्ट (Stassfurt) इसके यौगिक बहुत मात्रा मे उपस्थित हैं। समुद्रतल भी इसका उत्तम स्रोत है। कुछ जलजीव एवं वनस्पति पदार्थों मे ब्रोमीन यौगिक विद्यमान है।

निर्माण — समुद्र के एक लाख भाग मे केवल ७ भाग ब्रोमीन यौगिक के रूप मे उपस्थित है, परंतु समुद्र के अनंत विस्तार के कारण उससे ब्रोमीन निकालना लाभकारी है, इस विधि मे चार दशाएँ है :

(१) क्लोरीन की आक्सीकारक अभिक्रिया द्वारा ब्रोमीन की मुक्ति।

(२) वायु द्वारा विलयन से ब्रोमीन को निकालना।

(३) क्षारीय कार्बोनेट विलयन द्वारा ब्रोमीन का अवशोषण।

(४) सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा विलयन से ब्रोमीन तत्व की मुक्ति।

इस क्रिया द्वारा प्राप्त ब्रोमीन को आसवन (distillation) द्वारा शुद्ध करते हैं।

गुणधर्म — ब्रोमीन गहरा लाल रंग लिए तीक्ष्ण गंध का द्रव है। इसके वाष्प का रग लाली लिए भूरा होता है। इसका संकेत ब्रो (Br), परमाणुसंख्या ३५, परमाणु भार ७९·९०९, गलनांक ७·२° से०, क्वथनांक ५८° से०, घनत्व ३·१२ ग्रा० प्रति घन सेंमी०, परमाणुव्यास २·२६ ऐंग्स्ट्रॉम A° तथा आयनीकरण विभव ११·८४ इवो० है। ब्रोमीन जल की अपेक्षा कुछ कार्बनिक द्रवों मे अधिक विलेय है।

ब्रोमीन के रासायनिक गुण क्लोरीन और आयोडीन के मध्य मे हैं। यह तीव्र ऑक्सीकारक पदार्थ है और अनेक तत्वो और यौगिको से रासायनिक क्रिया करता है। ब्रोमीन और हाइड्रोजन उच्च ताप पर विस्फोट के साथ क्रिया करते है तथा हाइड्रोजन ब्रोमाइड बनाते हैं, जिसमे अम्लीय (acidic) गुण हैं। प्रकाश मे ब्रोमीन का विलयन आक्सीकारक और विरजन (bleaching) गुण रखता है। इस क्रिया मे हाइपोब्रोमस अम्ल, हा ब्रो औ (H Br O), का निर्माण होता है, जो अस्थिर होने के कारण आक्सीजन मुक्त करता है।

ब्रो₂ + २ हा₂ औ = हाब्रो + हाब्रोऔ

$$Br_2 + 2\,H_2O = HBr + HBrO$$

२ हाब्रोऔ = २ हाब्रो + औ

$$2\,HBrO = 2\,HBr + O$$
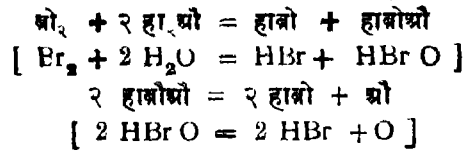
ब्रोमिन अनेक कार्बनिक पदार्थों से क्रिया कर व्युत्पन्न बनाता है।

हाइड्रोब्रोमिक अम्ल, हाब्रो (H Br), ब्रोमिक के अतिरिक्त ब्रोमीन अनेक ऑक्सीजन अम्ल बनाती है, जैसे हाइपोब्रोमस अम्ल, हाब्रोऔ (HBrO), ब्रोमस अम्ल, हाब्रोऔ₂ ($HBrO_2$)। इन अम्लो के लवण प्राप्त है, जो रासायनिक क्रियाओ मे उपयोगी हुए हैं। ब्रोमीन के अन्य हैलोजन तत्वो के साथ यौगिक प्राप्त है, जैसे, ब्रोक्लो (BrCl) ब्रोफ्लो₃ (BrF_3), ब्रोफ्लो₅ (BrF_5), आब्रो (IBr) आदि। ऑक्सीजन के साथ इसके तीन यौगिक प्राप्त हैं : ब्रो₂औ (Br_2O), ब्रोऔ₂ (BrO_2) और ब्रो औ₃ (BrO_3)। गधक के साथ ग₂ब्रो₂ (S_2Br_2) यौगिक भी बनता है।

उपयोग — कार्बनिक व्युत्पन्नो के बनाने मे ब्रोमीन का बहुत उपयोग हुआ है। एथीलीन ब्रोमाइड, का₂हा₄ ब्रो₂ ($C_2H_4\,Br_2$) पेट्रोल उद्योग मे ऐंटिनॉक (antiknock) के रूप मे बहुत आवश्यक यौगिक है। अनेक कीटमारको के निर्माण मे ब्रोमीन का उपयोग होता है। ब्रोमीन के कुछ यौगिक, जैसे पोटैशियम ब्रोमाइड, ओषधि के रूप मे और फोटोग्राफी क्रिया मे काम आते है। सिलवर ब्रोमाइड, रब्रो (AgBr), प्रकाशसवेदी (photosensitive) होने के कारण फोटोग्राफी प्लेट एव कागज बनाने मे बहुत मात्रा मे काम आता है।

ब्रोमीन विषैला पदार्थ है। इसका वाष्प, आँख, नाक, तथा गले को हानि पहुँचाता है। चर्म पर गिरने पर यह ऊतको को नष्ट करता है। इस कारण इसके उपयोग मे बहुत सावधानी रखनी चाहिए। [र० चं० क०]

ब्लॉक बनाना आधुनिक पुस्तकों मे दो प्रकार के चित्र छपते हैं, एक तो रेखाचित्र और दूसरे बिंदुचित्र। इनके ब्लाकों को क्रमशः लाइन ब्लॉक और हाफटोन ब्लॉक कहते हैं। लाइन ब्लॉकों से एकरंगी रेखाएँ तथा धब्बे आते हैं, जिनके रग की गहराई एक सी ही

होती है। हाफटोन ब्लॉकों से रंग के हलके और गहरे कई दरजे के टोन (tone) फोटो के जैसे आते हैं। हाफटोन ब्लॉक भी दो प्रकार के होते हैं, एकरंगे और बहुरंगे। आजकल प्रयुक्त सभी प्रकार के ब्लॉक फोटो की विधि से बनाए जाते हैं, क्योंकि हाथ से इनका बनाना कठिन है, और फिर वे इतने सुंदर भी नहीं बनते। उपर्युक्त आधुनिक विधि से ब्लॉक बनाने में कुछ यंत्रों तथा उपकरणों की आवश्यकता होती है, जिनका ब्योरा संक्षेप में इस प्रकार है :

१ कैमरा — इस कैमरे की बनावट चित्र १. में दिखाई है,
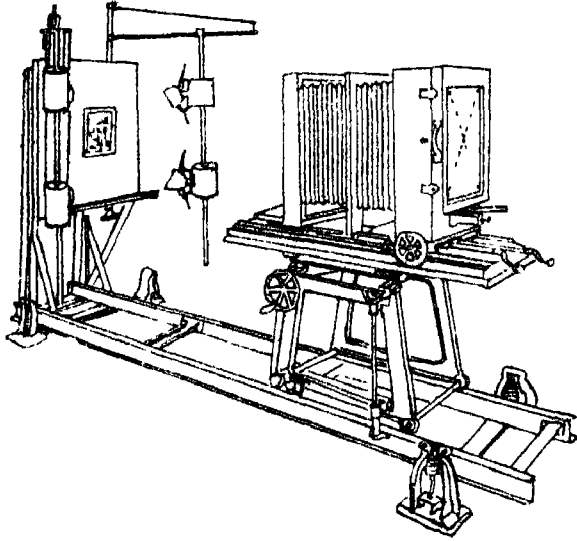
चित्र १ कैमरे का रेखाचित्र

जिसके स्टैंड का फ्रेम नीचे की तरफ से दो लंबे रेलों के रूप में होता है, जो स्प्रिंगदार चार पायों पर रखा रहता है।

२. निक्षारण (Etching) मशीन — ब्लॉक बनाने के सुग्राही
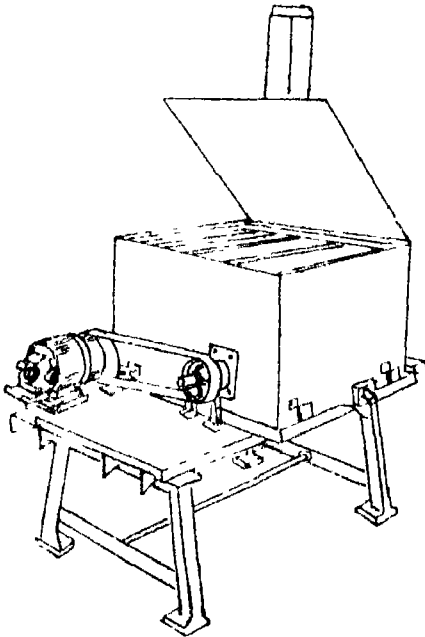
चित्र २. निक्षारण मशीन

प्लेट पर चित्र छाप लेने के बाद, उसे अम्ल से निक्षारण द्वारा उत्कीर्णित किया जाता है। यह काम फोटोग्राफी की तश्तरियों (dish) में प्लेट पर तनु अम्ल का विलयन डालकर और उन्हें हिल हिलाकर भी किया जा सकता है, लेकिन चित्र २. में दिखाई गई मशीन की टंकी में ब्लॉक के प्लेट को रखकर तथा एक नाप तक अम्ल भरकर, ढकना बंद करने के बाद, मोटर चला देने से एक घूमती हुई फिरकी के अपकेंद्रण द्वारा अम्ल के छींटे उस प्लेट पर उछल उछलकर इस प्रकार गिरते हैं कि मिनटों में ही उससे ब्लाक की रेखाएँ और बिंदियाँ बहुत स्पष्ट उभर आती हैं।

३. वैक्युअम प्रिंटिंग फ्रेम — चित्र के नेगेटिव से धातु के सुग्राही प्लेट पर चित्र छापने के लिये फोटोग्राफरों का साधारण प्रिंटिंग फ्रेम भी काम में आ सकता है, लेकिन उसमें कमानियों का दबाव सब
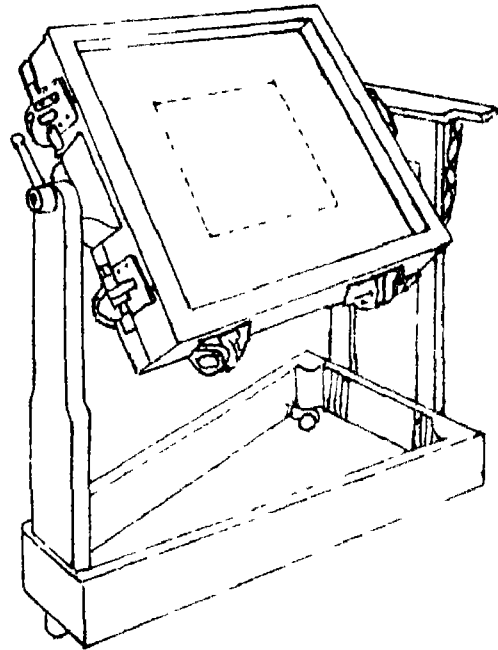
चित्र ३. वैक्युम प्रिंटिंग फ्रेम

जगह एक सा न पड़ने के कारण प्रकाश का एक सा अच्छा असर नहीं होता। अत चित्र ३ में दिखाए गए प्रिंटिंग फ्रेम का उपयोग करने से निर्वात के प्रभाव से नेगेटिव और धातु के सुग्राही प्लेट के तल एक दूसरे से बिलकुल सट कर मिल जाते है, अत. सुग्राही प्लेट पर प्रकाश का एक समान सब जगह अच्छा असर होता है। चित्र में दाहिने हाथ की तरफ निर्वात (vacuum) करने की नली दिखाई गई है।

४. राउटिंग मशीन — ब्लॉकों की खुदाई अम्ल से कर चुकने के बाद, जस्ते अथवा ताँबे की चादर के खुले, अर्थात् रेखारहित, बड़े बड़े स्थानों को राउटिंग मशीन से काटकर निकाल देते हैं, जिससे छपाई करते समय वहाँ रोशनाई के लचीले बेलन के कुछ धस जाने पर रोशनाई न लगने पाए। चित्र ४ में इस मशीन की आकृति दिखाई गई है। इसकी बनावट कारखानों में प्रयुक्त होनेवाली खड़ी मिलिंग (milling) मशीन और संवेदनशील नाजुक बरमे से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इसमें एक बरमा बिजली के मोटर से तीन चार हजार चक्कर प्रति मिनट की रफ्तार से घूमकर अना-

वश्यक भागों को छीलकर निकाल देता है। अतः इसके द्वारा काम बहुत जल्दी और अच्छा होता है। इस यंत्र के अभाव मे यही काम
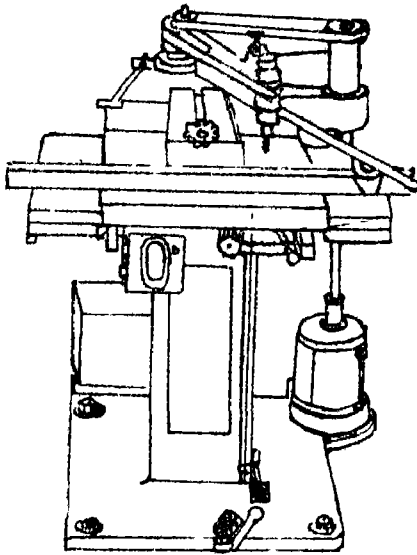
चित्र ४. राउटिंग मशीन

फ्रेट सॉं से भी किया जा सकता है। हाफटोन ब्लॉको के लिये तो उक्त यंत्र का होना अत्यंत ही आवश्यक है।

५. गोल आरी — ब्लॉक तैयार होने पर और लकडी पर जड़ने के पहले, उसके चारों किनारे सीधे और समकोण पर बनाए जाते हैं। यह काम मोटर से चलनेवाली एक गोल आरी मशीन से किया जाता है। यह छोटा यंत्र लकड़ी के चीरघरों के बड़े गोल आरे के नमूने पर ही बना होता है। इसकी आरी के ऊपर काच के प्लेट का
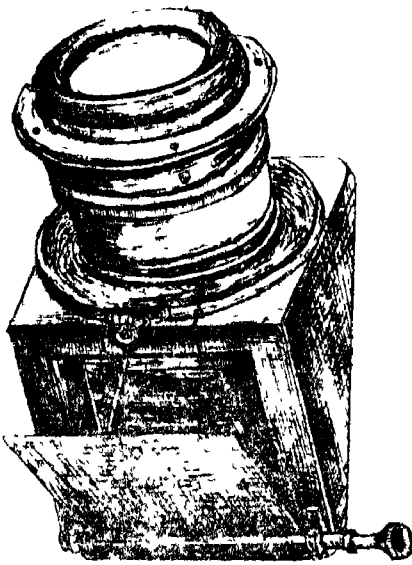
चित्र ५. लस

एक गार्ड लगा रहता है, जिससे ब्लाक के प्लेट को सीधा करने का काम करते समय धातु का जो बारीक बुरादा उड़ता है, आँख में नहीं जाने पाता और काच के भीतर से कटाई का काम भी ध्यान से देखा जा सकता है।

६. रंदा मशीन — ब्लॉक का प्लेट लकड़ी पर जड़ने के बाद, उस सबकी ऊँचाई टाइप के ठीक बराबर करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। यह यंत्र कुछ बढ़ई के रंदानुमा होता है। यह एक जिग (jig) के सहारे से लकड़ी को सही छीलता है और हाथ से चलाया जाता है। दूसरी मशीन गोल प्लेट की चकरीनुमा होती है, जो खड़ी मिलिंग की भाँति घूमकर काटती है, इसका संचालन एक मोटर द्वारा किया जाता है और इसमें ब्लॉक स्वयं ही आगे सरकता रहता है।

७. कैमरे के सहायक उपकरण — (क) कैमरे के लिये लेंस बड़ी ही महत्व की वस्तु है। अतः फोटो उत्कीर्णन के लिये सदैव अनबिंदुक (Anastigmatic) लेंस ही होना चाहिए, जो तीन या अधिक सरल लेंसों को मिलाकर बनाया जाता है। इन लेंसों के होल्डर में एक खाँचा बना होता है, जिसमें छेद को छोटा बड़ा करने के डायफ्राम और उनके आवश्यक स्टॉप लगे रहते हैं। इस काम में इन स्टॉपों का बड़ा महत्व होता है, क्योंकि इनकी स्थिति के अनुसार ही स्क्रीन की बिंदियों की संख्या का निश्चय किया जाता है।

(ख) **प्रिज्म** — सीधी छपाई (direct printing) के सब तरीको मे हाफटोन चित्रो के लिये नेगेटिव को सदैव उलटना पड़ता है,
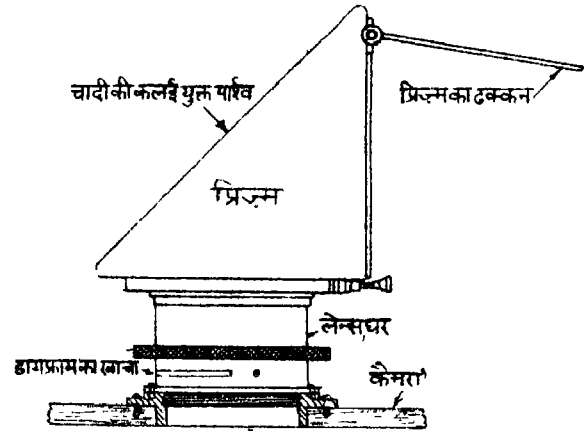
चित्र ६.

अर्थात् बाएँ से दाएँ को। अतः यह काम प्रकाश की किरणों को लेंसों में से गुजरने के पहले एक त्रिपार्श्व प्रिज्म मे से गुजारने से होता है। साधारण फोटो का नेगेटिव उलटा होता है। उसके द्वारा सुग्राही कागज पर चित्र सीधा छप जाता है। लेकिन ब्लॉक बनाने के लिये सुग्राही कागज का स्थान ब्लॉक का सुग्राही प्लेट ले लेता है, जो नेगेटिव ही होना चाहिए। तभी पुस्तक में वह सीधी आकृति छाप सकता है। अतः इसी उद्देश्य से प्रिज्म का उपयोग किया जाता है। प्रिज्म के कर्णीय स्थानवाले पार्श्व पर चाँदी की कलई चढ़ी होती है, जो दर्पण का काम करती है।

(ग) **स्क्रीन** — हाफटोन चित्रों की बनावट बहुत ही छोटे छोटे दानों से मिलकर होती है, जिनके कारण ही चित्र में हलकी और गहरी झांइयाँ (tone) आ पाती हैं। इस प्रकार के बिंदु बनाने के

लिये काच के स्क्रीनों का उपयोग किया जाता है, जिन्हें काच के सुग्राही प्लेट के ठीक पहले कैमरा मे लगा दिया जाता है, जिससे प्रकाश उस स्क्रीन में से छनकर ही सुग्राही प्लेट पर पहुंचे। प्रत्येक स्क्रीन दो काच के प्लेटों को एक दूसरे के ऊपर चिपका कर तैयार किया जाता है। इस पर बहुत पास पास, ४५° के कोण पर, बहुत बारीक बारीक समातर रेखाएँ, हीराकनी की रुखानी से यंत्र द्वारा समविभाजित अंतरों पर खोदकर, उनमे काला रंग भरकर, एक दूसरे पर इस प्रकार से चिपका दिया जाता है कि दोनों काचों की रेखाएँ आमने सामने रहते हुए एक दूसरी को समकोण पर काटती हुई हों, जिससे एक चौकोर जाली के समान दिखाई पड़े। चित्र ७ क, ख और ग में
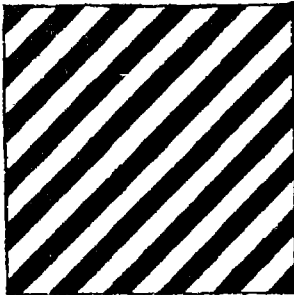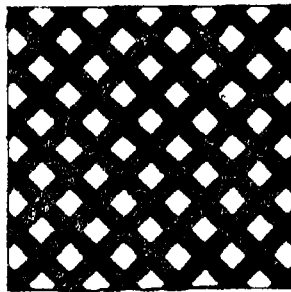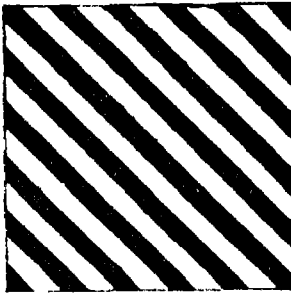
चित्र ७ स्क्रीन

इन रेखाओं को बहुत ही परिवर्धित करके दिखाया गया है। वास्तव में ये रेखाएँ बहुत ही बारीक तथा नजदीक होती हैं। इनकी गिनती प्रति इंच ४५ से लेकर २२५ तक होती है। प्रति इंच रेखाओं की संख्या से ही स्क्रीनो का नाम व्यक्त किया जाता है।

४५,५५,६५ और ८५ नंबर के स्क्रीनों से बने ब्लॉकों का उपयोग सस्ते कागज, अथवा समाचारपत्रों के घटिया कागज, पर छापने के लिये किया जाता है। इनका स्टीरियो (stereo) भी अच्छा बन जाता है। १००, ११०, १२०, १३३ नं० के स्क्रीनों से बने ब्लॉक, मशीन फिनिश, सुपर कैलेंडर्ड और इमिटेशन आर्ट के कागजों पर अच्छे छपते है। साप्ताहिक या मासिक पत्रिकाओं के लिये १२० स्क्रीन अच्छा होता है। तिजारती सूचीपत्रो, फोल्डर आदि के लिये १३३ स्क्रीन के ब्लॉक अच्छे समझे जाते हैं। १५० और १७५ स्क्रीन के ब्लॉक बहुत बढ़िया काम के लिये, बहुत ही बढ़िया कागज पर, छापे जाते हैं। २०० और २२५ स्क्रीन के ब्लॉक वैज्ञानिक चित्रों के लिये ही प्रयुक्त होते हैं, जिनमे बहुत बारीकियाँ दिखाई जाती हैं।

(घ) रंगीन फिल्टर — रंगीन चित्रों के लिये हाफटोन ब्लॉक बनाते समय मूल चित्र से प्रकाश की किरणें कैमरे के प्रिज्म, लैंस और प्लेट के पास लगे स्क्रीन मे से ही होकर नही गुजरतीं, बल्कि लैंसों के पीछे लगे विशेष रंगों के काच द्वारा बने प्लेटों, जिन्हें वर्ण फिल्टर कहते हैं, मे से भी होकर गुजरती हैं, ये प्रकाशतः बहुत ही समतल (optically flat), समरस, रंगीन काचों के होते हैं। इनके रंगों का नमूना फलक के चित्रों मे दिखाया है।

जब लैंस मे से होकर फोटो प्लेट पर प्रकाश जाने लगता है, तब उस फिल्टर के कारण उसके पूरक रंगों (complementary colours) का प्रकाश ही उक्त फोटो प्लेट तक जा पाता है और अन्य रंगो के प्रकाश को वह सोख लेता है।

लाइन ब्लॉक — सफेद कागज पर काली, अथवा किसी भी गहरे एकरस रग की रोशनाई की रेखा वाले, अथवा बड़े धब्बोंयुक्त चित्रों को, रेखाचित्र कहते हैं। इन्हे बनाने के लिये पूर्ववर्णित कैमरे से मूलचित्र का फोटो इच्छित नाप के अनुसार (कुछ छोटा करके) फोटोग्राफिक प्लेट पर लेकर उसे डेवेलप (develop) कर लिया जाता है। फोटो लेने के विशेष प्रकार के प्लेट बनाए जाते हैं, जिन्हें प्रोसेस (process) प्लेट कहते हैं। ये या तो कॉलोडियन युक्त गीले प्लेट होते हैं, या इमल्शनयुक्त सूखे प्लेट होते हैं।

अब नेगेटिव से जस्ते अथवा ताँबे के सुग्राही प्लेट पर चित्र को उतारने की बारी आती है। लाइन ब्लॉक साधारणतया जस्ते के प्लेट पर ही बनाए जाते हैं, क्योंकि वह सस्ता पडता है। जस्ते का सुग्राही प्लेट मसाला चढ़ा तैयार भी खरीदा जा सकता है और चाहे तो स्टूडियो मे भी तैयार किया जा सकता है।

अब प्लेट को जरा सा गरम कर उसपर तालरक्त (dragon blood) का बारीक चूर्ण भुरक देते है। जस्ते को गरम करने से उसपर लगी स्याही चिपचिपी हो जाती है। अतः जहाँ जहाँ स्याही रहती है वहाँ वहाँ तालरक्त चिपक जाता है और फालतू तालरक्त बुरुश से झाड दिया जाता है। फिर चादर को इतना गरम करते हैं कि रेखाओ पर लगा तालरक्त पिघल तो जाए, परतु जलने न पाए। जस्ते के प्लेट को आँच से हटाने के बाद पानी मे भीगे, फलालैन मढ़े बेलनो पर फेरकर जल्दी से ठढा कर लेते है। अब प्लेट की कोरी पीठ और किनारो पर चपडे और स्पिरिट द्वारा बना वार्निश पोतकर निक्षारण मशीन में डालने से, जहाँ जहाँ तालरक्त चिपका रहता है, अथवा वार्निश लगा रहता है, वहाँ वहाँ अम्ल जस्ते को नहीं खा सकता। इस काम के लिये मशीन की टकी मे नाइट्रिक अम्ल का विलयन डाला जाता है।

पहली बार जस्ते को अम्ल में केवल आधे मिनिट तक रखते हैं, क्योंकि अधिक समय रखने से रेखाओं की बगल को भी अम्ल खा जाता है और रेखाएँ कटकर निकल जाती हैं। अत अम्ल से निकालकर बहते पानी से धोकर जस्ते को सुखा लेते हैं और फिर नरम बुरुश को बराबर एक दिशा में चलाकर तालरक्त का बारीक चूर्ण जस्ते की रेखाओं पर पोतने की चेष्टा करते हैं। स्वभावतः चूर्ण केवल रेखाओं के पास ही ठहर पाता है, सपाट जगहों में बुरुश की रगड से हट जाता है। अब जस्ते को गरम कर, उस एक तरफ से लगे तालरक्त को पिघलाकर पक्का कर लेते हैं। तब उलटी दिशा से ठीक पहले की तरह तालरक्त लगाकर उसे पिघलाकर पक्का कर लेते है। फिर इसी प्रकार क्रमश ऊपर और नीचे की तरफ से बुरुश चलाकर तालरक्त लगाते है। लेकिन इस तीसरी और चौथी बेर लगाते समय भी चादर को पहले की तरह ही पट, अर्थात क्षैतिज धरातल मे, रखते हैं। इस प्रकार रेखाओं के चारों तरफ पिघला हुआ तालरक्त चिपक जाता है।

उक्त क्रिया के बाद प्लेट को फिर अम्ल मे डालते हैं और अबकी बार उसे दो मिनट तक अम्ल के पात्र मे रहने देते है। इसके बाद फिर प्लेट को धो और सुखाकर, बारी बारी से चारों ओर से तालरक्त लगा और पिघलाकर, फिर अम्ल मे डालते हैं। यह क्रिया कई बार दोहराई जाती है जब तक कि रेखाएँ काफी उभरी हुई न दिखाई पड़ें।

फिर प्लेट को धोकर, राउटिंग मशीन से फालतू भाग काटकर, निकाल देते हैं और फिर यथाविधि लकड़ी पर जड़ देते हैं।

हाफटोन चित्र — हाफटोन चित्रो के ब्लॉक बनाने की विधि सिद्धांतत तो वही है, जैसी ऊपर लाइन ब्लाकों के लिये बताई गई है। अंतर केवल नेगेटिव बनाने की विधि मे ही है। इस प्रकार के चित्रो मे हलकी और गहरी अनेक प्रकार की टोन (tone) प्रदर्शित करनी पडती है। यह जस्ते या ताँबे के ब्लॉकों के प्लेटो पर बहुत छोटी छोटी बिंदियो के आपसी फासले के द्वारा प्रदर्शित की जाती है। किसी आर्ट पेपर पर छपे बढ़िया चित्र को यदि प्रवर्धक ताल से देखा जाए, तो चित्र मे असंख्य बिंदियाँ ही बिंदियाँ दिखाई देंगी। जहाँ चित्र काला है वहाँ ये बिंदियाँ एक दूसरे से सटी हुई दिखाई देती है और जहाँ चित्र प्राय. श्वेत है वहाँ बहुत विरल और छोटी दिखाई देती है। वास्तव मे इन बिंदियो के घनीभूत तथा विरल होने के कारण ही चित्र कहीं अधिक और कहीं कम काला जान पड़ता है। इस प्रकार से बिंदियाँ बनाने के लिये कैमरे मे सुग्राही प्लेट के बहुत निकट, सामने की तरफ जिधर से प्रकाश लेंस मे से आता है, एक चारखानेदार शीशा लगा दिया जाता है, जिसे हाफटोन स्क्रीन कहते हैं। देखें चित्र ७ (ग)। चित्र ८ मे इसके लगाने का स्थान भी बताया है। चित्र को देखने से मालूम होगा कि कैमरे मे ऐसा प्रबंध रहता है कि उसके बाहर लगे एक हत्थे को चलाने से वह स्क्रीन प्लेट के बहुत पास तक लाया जा सकता है। स्क्रीन का प्लेट से फासला जानने का सूचक भी हत्थे के पास ही लगा है। स्क्रीन का उपयोग करते समय यह ध्यान रखना परमावश्यक है कि वह नेगेटिव बननेवाले सुग्राही प्लेट के समातर दूरी पर रहे, अर्थात स्क्रीन के चारों कोने सुग्राही प्लेट के धरातल से ठीक समान दूरी पर रहें। इससे बिंदियाँ सब एक नाप की बनेंगी, क्योंकि स्क्रीन की रेखाओं के बीच में रहनेवाली पारदर्शक बिंदियो के भीतर से ही फोटो से जो प्रकाश आने पाता है वही काली बिंदियों के रूप मे सुग्राही प्लेट पर अकित हो जाता है। प्रति इंच जितनी ही अधिक रेखाएँ होंगी उतनी ही बारीक बिंदियों का ब्लॉक बनेगा और छपा हुआ चित्र उतना ही सुंदर लगेगा, क्योंकि टोन खूब मिली हुई दिखाई देंगी। स्क्रीन और सुग्राही प्लेट के बीच की दूरी स्क्रीन की बारीकी, कैमरे के लेंस के छेद और अन्य कई बातो पर निर्भर करती है। अत स्क्रीन को उचित दूरी पर रखकर फोटो लेने से ही सही बिंदियां बन सकती हैं। लेंस के साथ प्रिज्म लगाकर फोटो लेते समय कैमरे की मध्य रेखा को रेलनुमा नीचे के फ्रेम से समकोण पर घुमाकर रखना होता है, जैसा चित्र ८ मे दिखाया गया है। इस स्थिति मे ही प्रिज्म का मुँह चित्रपट की ओर हो सकता है। सादी फोटो लेने के लिये प्रिज्म को निकालकर सीधे कैमरे का उपयोग किया जाता है। प्रकाश द्वारा उद्भासन के बाद नेगेटिव को साधारण रीति से डेवलप तथा स्थायी कर, जस्ते या ताँबे के सुग्राही प्लेट पर छापने की बारी आती है, जिसके लिये पूर्ववर्णित वैक्युअम फ्रेम का उपयोग करने से बिंदियाँ बहुत ही साफ छपती जाती हैं।

प्लेट के मसाले पर प्रकाश की रासायनिक क्रिया के कारण, जिस जिस भाग पर प्रकाश पड़ता है उसका मसाला बाहर से अविलेय हो जाता है और शेष विलेय बना रहता है। अत प्रकाश द्वारा उद्भासन के बाद प्लेट को पानी की हलकी फुहार के नीचे अँधेरी कोठरी मे रखकर धोया जाता है, जिससे बिंदियो के बीचवाले खाली स्थानो से मसाला पानी मे घुलकर बह जाय। इसके बाद उस प्लेट को विशेष प्रकार के बैंगनी रग मे डुबोते हैं, जिससे बिंदियाँ अपने मसाले के रँग जाने के कारण स्पष्ट दिखाई देने लगती है। अत चित्र में यदि कहीं कोई त्रुटि रह जाती है तो अब स्पष्ट दिखाई देने के कारण उसे ठीक कर दिया जाता है। अब उस धातु के प्लेट को खूब गरम कर धीरे धीरे ठढा करते है, जिससे उसपर चढा मसाला इतना कडा हो जाता है कि अम्ल से भी नहीं कटता। फिर इस प्लेट की बगलियो तथा पीठ को चपड़ा और स्पिरिट मिला वार्निश लगाकर अम्लसह बना देते है। इसके बाद उसे सिरका और नमक मिले पानी से धोते है, जिससे कि बारीक बिंदियो के बीच के खाली स्थान पर जरा सा भी मसाला न लगा रहे। फिर उसे साफ बहते पानी से धोते है।

यदि वह प्लेट ताँबे का हो, तो उसे आयरन-पर-क्लोराइड, अथवा तूतिया के विलयन मे डालकर, बिजली चालू कर देते हैं, जिससे ताबा धीरे धीरे कटने लगता है और बिंदियो के बीच के स्थानो मे कुछ गहरा हो जाता है। यदि जस्ते के प्लेट पर ब्लॉक बनाना हो तो नाइट्रिक अम्ल का उपयोग किया जाता है। अम्ल का उपयोग करते समय पूर्ववर्णित निक्षारण मशीन से काम लेते है। एक निश्चित समय बाद उन प्लेटो की जाँच की जाती है और जहाँ जहाँ बिंदियों के बीच की जगह काफी गहरी हो जाती है, वहाँ वहाँ एक विशेष प्रकार की वार्निश पोतकर उन्हे सुरक्षित कर देते है और शेष भागों के और अधिक उत्कीर्णन के लिये बिजली के अथवा निक्षारण यंत्र मे रख देते है। इस प्रकार चार पाँच बार मे बारीक बिंदियाँ भी स्पष्ट हो जाती हैं। यदि बीच बीच मे सँभाल के साथ

वार्निश पोतकर नाजुक भागों की रक्षा न की जाए, तो उन भागों की बिंदियाँ आवश्यकता से भी इतनी अधिक छोटी हो जाती हैं कि छापने पर चित्र बहुत फीका लगता है। निक्षारण के बाद के सब काम लाइन ब्लॉकों के समान ही होते हैं।

बहुरंगे हाफटोन चित्र — बहुरंगे हाफटोन चित्रों के ब्लॉक बनाने के संबंध में हमें पहले यह जानना चाहिए कि सफेद प्रकाश के स्पेक्ट्रम में मूल रंग केवल तीन ही होते है, पीला, लाल, और नीला। शेष अन्य प्रकार के दिखाई पड़नेवाले रंग इन्हीं के हलके और

चित्र ८ फोटो लेते समय कैमरे का संयोजन

गहरे मिश्रण से बन जाते हैं। अतः रंगीन चित्र छापने के लिये इन तीनों रंगों के अलग अलग ब्लॉक बनाकर, तथा एक के ऊपर एक छाप देने पर, रंगों का मिश्रण हो जाने से अनेक रंगों के टोन दिखाई देने लगते हैं। फलक के चित्र में ङ, च, और ज क्रमशः पीले, लाल और नीले रंग के हलके गहरे टोन युक्त तीन ब्लॉक है। ङ ब्लाक को पहले छापकर उसपर च ब्लाक छाप देने से दो रंगों की झाँइयाँ मिलकर छ के समान दिखाई देने लगती है, और इसी के ऊपर नीले रंग का ज चिह्नित ब्लॉक छाप देने से झ के समान बहुरंगी वर्णपट बन जाता है। किस रंग के कितने टोन के मिश्रण से कौन सा रंग बनता है यह चित्र के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। बहुरंगे मूल चित्र में से मूल रंगों का विश्लेषण कर अलग अलग नेगेटिव बनाने के लिये लेंस के पीछे किसी विशेष रंग का फिल्टर लगाना होता है, जिससे वह नेगेटिव अपने ही रंग के गहरे और हलके टोनों को यथास्थान अंकित कर सके। कैमरे में फिल्टर लगाने का स्थान चित्र ८ में बताया गया है। फिल्टरों का रंग फलक के चित्र में क, ख, ग और घ में दिखाया है। ये केवल अपने ही संपूरक रंगों की किरणों को अपने में से आर पार जाने देते हैं और शेष को अपने में सोख लेते हैं। उधर सुग्राही प्लेट भी पैंक्रोमैटिक (panchromatic) प्रकार के होने चाहिए।

जैसा एकरंगे हाफटोन ब्लॉक के संबंध में बताया गया है कि सुग्राही प्लेट के सामने प्रकाश के मार्ग में बारीक चारखानेदार एक स्क्रीन लगा दिया जाता है, वैसा ही स्क्रीन रंगीन ब्लॉक बनाते समय भी लगाना पड़ता है, लेकिन वह इस प्रकार का गोल घूमनेवाला बनाया जाता है कि उसके चारखाने की पंक्तियों को घुमाकर किसी भी कोण पर जमाया जा सकता है। जबकि साधारण हाफटोन ब्लॉकों के स्क्रीन की धारियों का कोण ४५° ही रहता है, रंगीन ब्लॉकों के नेगेटिव बनाते समय प्रत्येक रंग के लिये विशेष कोण ही नियत है, जिससे छपाई के समय जब एक पर दूसरे रंग के ब्लॉक छापे जाएँ तो मिश्रित रंगों के स्थानों में मखमलीपन (moired effect) आने के स्थान पर कोई और ही प्रकार की अवांछनीय आकृतियाँ न बन जाएँ। अतः ऊर्ध्वाधर दिशा से यदि एक रंग के दानों की पंक्तियों के झुकाव का कोण ४५° रखा जाता है तो दूसरे रंग के लिये ७५° और तीसरे के लिये १५° रखा जाएगा। प्रकाश द्वारा उद्भासन के बाद उन नेगेटिवों से ताँबे के सुग्राही प्लेटों पर छापने, उन्हें डेवेलप करने तथा तेजाब आदि से उत्कीर्ण करने की विधियाँ ठीक वैसी ही होती हैं जैसी इकरंगे हाफटोन ब्लॉकों के लिये बताई जा चुकी हैं। लेकिन रंगीन ब्लॉकों को उत्कीर्ण करने के लिये उत्कीर्णक में बड़ी कुशलता, नैपुण्य तथा अनुभव होना चाहिए, क्योंकि दानों की गहराई में सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंतर पड़ जाने से रंग के टोन में बड़ा अंतर पड़ जाता है। अतः उत्कीर्णक में विविध रंगों के टोनों को मूल रंगों में विश्लेषित कर उनके हलके और गहरेपन का सही अनुमान लगाने की योग्यता होनी चाहिए। तेजाब से उत्कीर्ण करते समय कहाँ कितना कम उत्कीर्ण करना है और कहाँ कितना ज्यादा करना है, इसके लिये वहाँ पर वार्निश आदि लगाकर उचित नियंत्रण भी करना पड़ता है। कई बार प्रूफ भी उठाने पड़ते हैं और ऐसा काम करना होता है कि अंत में छपाई करने पर ब्लॉकों से छपा चित्र मूल चित्र से बिलकुल मिल जाए।

आजकल एक चौथे रंग के ब्लॉक का भी रंगीन छपाई में उपयोग किया जाता है, जिसके द्वारा सलेटी (grey) काला रंग छपता है। जैसे अन्य तीन रंगों का फिल्मों के द्वारा विश्लेषण कर लिया जाता है वैसे इसका विश्लेषण नहीं हो सकता, क्योंकि काले रंग में सभी रंग मिश्रित रहते हैं। फिर भी काले रंग से छापने का ऐंबर नेगेटिव बनाते समय, अंबरी रंग के फिल्टर का प्रयोग किया जाता है (देखें फलक में चित्र घ)। इस फिल्टर के द्वारा चित्र की समस्त शेड (shade) यथास्थान आ जाते हैं। इसके छापने पर प्रत्येक रंग को आवश्यक गहराई प्राप्त होकर चटकपना आ जाता है और चित्र का फीकापन भी नष्ट हो जाता है तथा छोटी छोटी त्रुटियाँ भी ठीक हो जाती हैं। बनाते समय ब्लॉकों का निरीक्षण करनेवाले उत्कीर्णक के लिये यह मार्गदर्शन प्लेट का भी काम देता है।

सं० ग्रं० — श्री कृष्णप्रसाद दर : आधुनिक छपाई, लॉ जरनल प्रेस, इलाहाबाद, डॉ० गोरखप्रसाद फोटोग्राफी।

[ओ० ना० श०]

ब्लैक, जोसेफ (Black, Joseph, सन् १७२८–९९), प्रसिद्ध रसायनज्ञ, का जन्म बॉर्डो में हुआ था। बेलफास्ट (आयरलैंड) में उनकी शिक्षा प्रारंभ हुई। १७४६ ई० मे वे ग्लासगो विश्वविद्यालय में औषधविज्ञान पढ़ने के लिये भर्ती हो गए और डा० क्यूलेन की शिष्यता में इन्होंने यहाँ रसायन का भी अध्ययन किया। १७५१ ई० में ये एडिनबरा विश्वविद्यालय मे औषधविज्ञान का पाठ्यक्रम पूरा करने के लिये आ गए। यहाँ १७५४ ई० मे इन्होंने अपना मौलिक निबंध 'भोजन द्वारा जनित अम्लता और मैग्नीशियम ऐल्बा' विषय पर प्रस्तुत किया। १७५६ ई० को एक क्रांतिकारी निबंध 'मैग्नीशिया ऐल्बा, बरी का चूना और अम्ल क्षारीय पदार्थ' विषयक प्रकाशित हुआ। यह कार्य वस्तुत: इन्होने १७५० ई० में ही आरंभ कर दिया था। १७५६ ई० मे कार्बोनेटो पर और बरी के चूने (क्विक लाइम) पर प्रयोग करके ब्लैक ने यह सिद्ध कर दिया था कि चूने के पत्थर और बरी के चूने मे केवल एक गैस का अतर है, जिसे आजकल हम कार्बन डाइऑक्साइड कहते हैं और जिसका नाम ब्लैक ने 'फिक्स्ड एयर या संयुक्तवायु' रखा था। लाव्वाज्ये (Lavoisier) ने इस गैस का नाम कार्बोनिक ऐसिड रखा था। १७६६ ई० मे क्यूलेन ने जब एडिनबरा छोड़ा, तो ब्लैक की नियुक्ति यहाँ के विश्वविद्यालय मे रसायन के प्रोफेसर के पद पर हो गई। यहाँ ये मृत्यु पर्यत रहे। ब्लैक लोकप्रिय अध्यापक थे। इन्होने विशिष्ट ऊष्मा एवं गुप्त ऊष्मा पर भी जो प्रयोग किए और जो विचार प्रस्तुत किए (१७५७ ई०), उनका उपयोग जेम्स वाट ने स्टीम इजिन बनाने मे किया। ब्लैक अच्छे चिकित्सक भी थे। [सत्य० प्र०]

ब्लैक सी (काला सागर) स्थिति : ४३° ३०' उ० अ० तथा ३५° ०' पू० दे०। यह लघु एशिया (टर्की) तथा दक्षिण-पूर्वी-यूरोप के मध्य स्थित पूर्व से पश्चिम ७४८ मील लबा तथा अज़ोव सागर सहित उत्तर से दक्षिण ३७४ मील चौड़ा एक आतरिक सागर है। इसके उत्तर तथा उत्तर-पूर्व मे रूस, दक्षिण मे टर्की तथा पश्चिम मे बल्गेरिया एव रोमानिया देश है। इसकी औसत गहराई ३,९३० फुट है। उत्तर की ओर यह उथला तथा मध्य एव दक्षिण मे लगभग ७,३५० फुट तक गहरा हो जाता है। इसमे डैन्यूब, नीस्टर, बूग, नीपर, डॉन आदि बड़ी बड़ी नदियाँ गिरती हैं। इसका सबध एक पतले मार्ग मारमारा और डार्डनेल्ज़ द्वारा भूमध्य सागर से है। इसमे द्वीप नही है। अज़ोव सागर भी एक पतले केर्च (kerch) जलसयोजक द्वारा इससे जुड़ा है। सागर का उत्तरी भाग जाड़ो मे जम जाता है किंतु दक्षिणी भाग का ताप लगभग ७° सें० रहता है। इसके किनारे पर कई प्रसिद्ध बंदरगाह हैं। [न० प्र०]

ब्लॉकमैन, हेनरी फरडीनेंड (१८३८–१८७८) का जन्म जर्मनी के ड्रेस्डन शहर मे ८ जनवरी, १८३८ को हुआ। उसके पिता छपाई का धंधा करते थे। ब्लॉकमैन ने ड्रेस्डन, लाइप्ज़िक और पैरिस मे शिक्षा प्राप्त की। १८५८ मे अंग्रेजी फौज मे भर्ती हुआ, किंतु शीघ्र ही फौज की नौकरी छोड़कर पी० ऐंड ओ० (जहाजरानी कं०) मे दुभाषिये के पद पर नियुक्त हो गया। वारन हेस्टिंग्ज़ द्वारा स्थापित कलकत्ता मदरसा मे १८६० मे सहायक प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुआ। १८६१ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् तीन वर्ष तक डवटन कालेज मे प्राध्यापक रहा। १८६५ में वह कलकत्ता मदरसा की सेवा में वापिस आ गया, और अपनी मृत्यु तक उसका प्रेसीडेंट रहा। ब्लॉकमैन को प्रारंभ से ही एशियाटिक सोसाइटी मे विशेष दिलचस्पी थी और वह उसके भाषाशास्त्रीय विभाग (philological section) का सेक्रेटरी था। एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका मे ब्लॉकमैन के बहुत से लेख छपे। उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य अबुल फजल की आईने-अकबरी की पहली जिल्द का अंग्रेजी भाषा मे अनुवाद करना था। यह पुस्तक १८७३ मे पहली बार कलकत्ता से प्रकाशित हुई। इसका दूसरा सशोधित संस्करण १९२७ मे छपा। यह अनुवाद ब्लॉकमैन ने कई नुस्खो के आधार पर किया, और एक फारसी प्रतिलिपि भी तैयार की जो नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से (बिना ब्लॉकमैन का नाम बताए) १८८२ में प्रकाशित हुई।

ब्लॉकमैन का अनुवाद फ्रांसिस ग्लेडविन के अनुवाद की अपेक्षा, जो १७८३ मे छपा था, कहीं अधिक विश्वसनीय है। ब्लॉकमैन की पादटिप्पणियो ने इस पुस्तक को और भी मूल्यवान् बना दिया है। किंतु ब्लॉकमैन को आईने-अकबरी के सर्वश्रेष्ठ नुस्खे, जो ब्रिटिश म्यूजियम मे सुरक्षित है, प्राप्त न हो सकने के कारण और भूमि-व्यवस्था का समुचित ज्ञान न होने के कारण अंग्रेजी अनुवाद मे बहुत सी अशुद्धियाँ आ गई हैं। ब्लॉकमैन को फारसी और अरबी का बड़ा अच्छा ज्ञान था। उसने एक और पुस्तक दी प्रोसोडी ऑव द पर्शियंस (The Prosody of the Persians) भी लिखी है। ब्लॉकमैन की मृत्यु १३ जुलाई, १८७८ को हुई।

सं० ग्रं० — सी० ई० बकलैंड कृत डिक्शनरी ऑव इंडियन बायोग्राफी [स० च०]

ब्वेनस एयरिज (Buenos Aires) १, प्रात, स्थिति : ३५° ०' द० अ० तथा ५८° ०' प० दे०। यह दक्षिणी अमरीका मे अर्जेंटीना का सब से बड़ा और सर्वाधिक जनसंख्यावाला प्रदेश है जो रीओ डि ला प्लाटा के मुहाने पर एवं ऐटलैंटिक महासागर के किनारे स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग ३,७०,५६९ वर्ग किमी० और जनसख्या लगभग ५४,५७,७०० (१९६०) है। इसके दक्षिणी भाग मे स्थित सेयरा डैल टंडील को छोड़कर बाकी संपूर्ण प्रात विस्तृत एवं अत्यंत उपजाऊ मैदान है। कृषि और पशुपालन यहाँ के मुख्य व्यवसाय है। मास को डिब्बो मे भरना, मछली मारना और अनाज से खाद्य पदार्थ तैयार करना यहाँ के मुख्य उद्योग हैं। मुख्य नगरों मे ला-प्लाटा (राजधानी), ब्वेनस एयरिज, बाइआ ब्लैंका (जलसेना का प्रधान केंद्र) और मरडेल प्लाटा (समुद्रतटीय क्रीड़ास्थल) प्रसिद्ध हैं।

२. नगर, स्थिति : ३४° ३६' द० अ० तथा ५८° २२' प० दे०। यह नगर अर्जेंटीना देश की राजधानी है। तथा ऐटलैंटिक महासागर से लगभग २४० किमी० दूर रीओ डि ला प्लाटा नदी के दाहिने किनारे पर, समुद्री सतह से लगभग २० मीटर ऊँचाई पर स्थित है। इसे 'पूर्व का द्वार' कहा जाता है। पहले प्लाटा का मुहाना इतना छिछला था कि समुद्री जहाजों को भाटा के समय नगर से १६ किमी० दूर ही लगर डालना पड़ता था। किंतु अब नदी की तली खोदकर गहरी बनाई गई है और दलदली भूमि को स्वास्थ्यप्रद बनाया गया है। इस नगर का क्षेत्रफल लगभग १९७ वर्ग किमी० और जनसंख्या लगभग ३७,३३,००० (१९४७) है। यह राष्ट्र का सुव्यवस्थित

राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं व्यावसायिक जीवन का मुख्य केंद्र बन गया है।

आज यह नगर सुप्रसिद्ध आधुनिक बंदरगाह के रूप मे प्राकृतिक कठिनाइयों पर मानव की विजय का प्रतीक बन गया है। एकाकार भवनों की आयताकार बस्तियो, पंक्तिबद्ध वृक्षो से युक्त चौड़े मार्गों तथा जलवितरण एवं सफाई की नालियों और सुंदर क्रीड़ास्थल एवं उद्यानो से यह नगर सुसज्जित है। अच्छे होटलों की संख्या भी अधिक है। देश के औद्योगिक उत्पादन का ४० प्रति शत सामान इसी नगर मे बनता है। कपडा, आटा, तंबाकू, मास तथा चमड़े के उद्योग उल्लेखनीय हैं। देश का अधिकाश आयात तथा निर्यात इसी बंदरगाह से होता है। शिक्षा की सुदर व्यवस्था है। भिन्न भिन्न स्तरों की अनेक शिक्षण संस्थाएँ एव पुस्तकालय हैं। यहाँ लगभग आधा दर्जन आकाशवाणी प्रसारण केंद्र हैं। यहाँ के नागरिको का जीवनस्तर अधिक ऊँचा है। [न० प्र०]

३. झील, ४६° ३५' द० अ० तथा ७२° ३०' प० दे०। दक्षिणी अमरीका मे चिली देश के दक्षिण-पूर्व मे आयसेन प्रांत की, ७०५ फुट की ऊँचाई पर एक ताजे पानी की झील है जो ८० मील लबी तथा १३ मील चौडी है। अंतरराष्ट्रीय सीमारेखा इसे उत्तर-दक्षिण काटती है। इसके चारो तरफ वन तथा पहाड़ हैं। [रा० प्र० सिं०]

भंडारा १ जिला, स्थिति . २०° ४०' से २१° ४७' उ० अ० तथा ७९° २७' से ८०° ४०' पू० दे०। यह भारत के महाराष्ट्र राज्य का एक जिला है। इसके उत्तर मे बालाघाट, पूर्व मे दुर्ग, दक्षिण में चाँदा और पश्चिम मे वर्धा एवं यवतमाल जिले हैं। इसका क्षेत्रफल ३,५८२ वर्ग मील तथा जनसख्या १२,६८,२८६ (१९६१) है। जिले का पूर्वी भाग अधिकतर पहाडी है तथा अन्य क्षेत्रो मे भी वनो से आच्छादित पहाड़ियाँ है। यहाँ लगभग ३०० छोटी छोटी झीलें व तालाब है। उत्तर-पश्चिम मे ज्वार एव दक्षिण-पश्चिम मे धान तथा गेहूँ उत्पन्न होता है। यहाँ मैंगनीज खनिज के विस्तृत भंडार हैं। मैंगनीज खोदना, सिगरेट आदि बनाना प्रमुख उद्योग हैं। यहाँ की जलवायु नागपुर से कुछ ठंढी रहती है। गरमी का ताप लगभग ४४° सें० से ऊपर नही जाता। वर्षा का वार्षिक औसत लगभग ५५ इंच है। गोदिया, तुमसर तथा भंडारा जिले के प्रमुख नगर हैं।

२. नगर, स्थिति : २१° १०' उ० अ० तथा ७९° ४०' पू० दे०। भंडारा जिले मे वेनगंगा नदी के किनारे स्थित एक नगर है। यहाँ सूती कपड़ा, पीतल के तार आदि बनाने का कार्य होता है। पीतल के उद्योग मे इस नगर की ख्याति पूर्वकाल मे अधिक रही है। इसीलिये पीतल की तश्तरी जिसको वहाँ 'भान' कहते हैं के आधार पर ही नगर का नाम भडारा पडा। नगर मे गाओलिस (Gaolis) का बनवाया एक किला है। यहाँ की जनसंख्या २७,७१० (१९६१) है। [सु० च० श०]

भड़ैंती (फार्स) का साधारण अर्थ है निम्नकोटि का प्रहसन जिसका उद्देश्य भावभंगी, मुद्रा, अभिनय, परिस्थिति या हँसी विनोद के द्वारा हास्य उत्पन्न करना होता है और जो चरित्र या रीति विषयक प्रहसनों (कौमेडी ऑफ कैरेक्टर्स ऐंड मैनर्स) से पूर्णतः पृथक् होती है (दे० प्रहसन)। हास्य नाटकों में तो भड़ैंती (फार्स) को प्रधान तात्विक गुण ही समझना चाहिए। इस दृष्टि से उसके लक्ष्य का क्षेत्र केवल स्थानीय, सासारिक अथवा स्वयुगीन परिस्थितियो तक ही परिमित नही होता। मूकाभिनय के रूप मे तो वह भाषा के बंधनो से मुक्त होने के कारण और भी उद्दाम होता है और प्रहसन के अत्यत अशिष्ट तथा विकृत रूपों तक व्याप्त रहता है। उसका प्रारंभिक रूप सर्कस के विदूषक की भाव-भंगियो और क्रियाओ तथा मूकनाटको (पेंटोमीम) के हँसीविनोद मे प्राप्त होता है जो अधिक से अधिक लोगों को क्षण भर हँसा देता है। ज्यों ज्यो यह अभिनय सूक्ष्म और कलात्मक होता चलता है त्यो त्यो उससे भावित होनेवाले दर्शको की सख्या भी कम होती चलती है क्योंकि जब किसी अभिनीत भाव को समझाने के लिये शब्दो या वाक्यो की आवश्यकता पड़ती है और विचारहीन हास्य के बदले धीरे धीरे समझ की मुस्कराहट आने लगती है तब यह प्रेरणा तथा प्रभाव और छोटे मडल तक परिमित हो जाता है।

प्रारभ मे भड़ैंती के लिये प्रयुक्त होनेवाला फार्स शब्द, जिसका अर्थ 'ठूंसना' (स्टफिंग) है, उसी प्रकार की क्रियाओ के लिये आता था जो गिरजाघरो के कर्मकाड मे बीच बीच मे होती रहती थीं। इस भाव-साम्य के कारण इस शब्द का प्रयोग उन दृश्यो के लिये भी होने लगा जो फ्रास के रहस्यात्मक नाटक (मिस्तरे) के बीच मे व्यापक विनोद के लिये जोड दिए जाते थे। इस प्रकार के दृश्य अंगरेजी नाटकचक्र (साइक्लिक प्लेज), नैतिक नाटक (मोरेलिटी) और सतो के नाटक (सेंट्स प्लेज़) मे बहुत पाए जाते हैं। १६वीं शताब्दी में रहस्यात्मक नाटको के समाप्त होने के पश्चात् भड़ैंती (फार्स) और विनोदनाट्य (सोती) का प्रयोग छोटे हास्यनाटकों के रूप मे नाट्यांतर दृश्य (इंटरल्यूड) बनकर गभीर नाटकों मे भी जा पहुँचे।

इंग्लैंड मे सन् १८०० ई० के लगभग वे सब छोटे नाटक ही फ़ार्स कहलाने लगे जो मुख्य नाटक के पश्चात् खेले जाते थे, चाहे वे जिस भी प्रकार के क्यो न हों और इसी लिये १९वीं शताब्दी मे उनका ठीक नाटकीय नामकरण न होने के कारण, उनके मूल रूप ही लुप्त हो गए और अपनी सूक्ष्मता के अतिरिक्त अन्य सब बातों मे भड़ैंती (फार्स) शब्द आचारनाटक (कौमेदी आव मैनर्स), हास्यनृत्य (वादेविले), अटर सटर (एक्सट्रावेगेंजा) और मूक, नाट्य (पेंटोमीम) से लेकर प्रहासक (बरलेस्क) के सब रूपो के लिये प्रयुक्त होने लगा। इन सभी रूपो मे हँसी, विनोद, भड़ैंती, विचित्र वेशभूषा, विकृत भावभगी और अभिनताओं की हास्यक्रिया ही अधिक होती थी और जब इनमे सवाद भी जोड़ दिया जाता था तब इनमे श्लेष, अभिनेता द्वारा बीच बीच मे व्यंग्य तथा विनोदपूर्ण बाते और सामयिक घटनाओ पर टिप्पणी भी होती चलती थी। १९वीं और २०वीं शताब्दी मे भड़ैंती ने, प्रभाव की दृष्टि से शारीरिक क्रिया के प्रहसन का (फार्स ऑफ फिजिकल ऐक्शन) मूल रूप धारण कर लिया था।

शारीरिक क्रिया के फार्स तीन प्रकार से प्रचलित हुए जिन्हें विनोद मे आत्मघाती, पितृघाती और परघाती कहते हैं। इनमें से प्रथम अर्थात् आत्मघाती शारीरिक भड़ैंती में अभिनेता स्वयं अपने

व्यावहारिक विनोद का प्राखेट बनता है। दूसरे में विदूषक का साथी (जमूरा) मूर्ख बनाया जाता है। यह सहायक प्रायः दर्शकों के बीच बैठा रहता है, मानों वह भी भोलाभाला दर्शक मात्र हो। इस प्रकार की सफलता से तीसरे प्रकार की भड़ैती का जन्म हुआ जिसमे वहाँ उपस्थित प्रसिद्ध लोगों पर श्लेष और विनोद करने की प्राचीन परिपाटी के अतिरिक्त सीधे दर्शक ही फंद मे फँसा लिए जाते है। जैसे—सामने दर्शकों मे बैठे हुए किसी तुंदिल या मोटे दर्शक की गोद में सहसा एक भारी बरफ का ढोंका रख दिया जाता है, या समवेत गायक सामने दर्शकों के बीच से अपने गीत मे सम्मिलित होने के लिये लोगों को पुकारते हैं जिससे वहाँ बैठी हुई स्त्रियों को तो बडी झुँझलाहट होती है किंतु अन्य सब को आनंद मिलता है। इन सब प्रकार की भड़ैतियों मे जो परिणाम होता है वह अधिक आनददायक होता है, विशेषतः तब जब कि उस विनोद का आखेट पूर्णत लक्ष्य को ही उलट देता है। तीसरे प्रकार की शारीरिक भड़ैती मे जिस व्यक्ति के साथ विनोद किया जाता है उसे पुरस्कार भी दिया जाता है जैसे, मोटे व्यक्ति की गोद मे बरफ रख देने के पश्चात् उसपर किसी पेय पदार्थ की बहुमूल्य बोतल भी रख दी जाती है और इस प्रकार दृश्य मे जनता के सहयोग की भावना अधिक प्रबल हो जाती है।

भारतीय भड़ैतियों मे अश्लील उक्तियो और अश्लील विनोद का प्राधान्य रहता है और इस कारण निम्न प्रकार की वृत्तियो को तुष्ट करने तथा निम्न संस्कार के लोगों को प्रसन्न करने का प्रयास अधिक रहता है। बिदेसिया नाटक जैसे लोकनाटको मे भी ऐसी भड़ैतियो का अधिक समावेश होता है। काशी के भाँड और शाहपुर के नक्काल अपनी भड़ैती के लिये प्रसिद्ध हैं जो केवल आंगिक या वाचिक व्यंग्य विनोद से ही नही वरन् यथातथ्य अनुकरण के द्वारा हास्य का रूप ही खडा कर देते हैं।

सं० ग्रं०—लियोरुजेज . एटीटच्यूड ऑव सम रेस्टोरेशन ड्रमेटिस्ट्स टूवर्ड फार्स, पी० क्यू० १९४०, एच० सी० लकास्टर फाइव फ्रेंच फार्सेज। (१५५९ से १६६४), १९३७, जं० एच० मकडौनल: सम पिक्टोरियल ग्रास्पेक्ट्स ग्रॉव अर्ली कमीदिया; दलार्ते ऐक्टिंग, एस० पी० ३९, १९४२, कार्ल यग दि इन्फ्लुएंस ग्राव फ्रेंच फार्स अपौन दी प्लेज ऑव जौन हेवुड, १९०४, डब्ल्यू० वेयर ब्लाउत्स ऐंड दी फबूला असेलाना, १९३०। [सी० च०]

भक्ति भजन है। किसका भजन? ब्रह्म का, महान् का। महान् वह है जो चेतना के स्तरो मे मूर्धन्य है, यज्ञियो मे यज्ञिय है, पूजनीयो मे पूजनीय है, सात्वतो, सत्वसपन्नो मे शिरोमणि है और एक होता हुआ भी अनेक का शासक, कर्मफलप्रदाता तथा भक्तो की आवश्यकताओ को पूर्ण करनेवाला है।

मानव चिरकाल से इस एक अनादि सत्ता—ब्रह्म मे विश्वास करता आया है। आधुनिक विज्ञान ने प्रारभ मे इस विश्वास को कुछ धक्का पहुँचाया था, परतु वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धांत हमे देश तथा काल को अतिक्रांत करती हुई एक परम स्रष्टा की शक्ति मे विश्वास करने के लिये बाध्य करता है। जो वैज्ञानिक प्रकृति के विभिन्न रूपो मे विश्वास करके आगे बढता है, वह ईश्वरविश्वास पर आपत्ति कैसे कर सकता है? विश्वास तर्क का आश्रय ग्रहण नही करता। वह एक मान्यता है। विज्ञान अपने अन्वेषणो से इस मान्यता को अधिक महनीय एव गभीर बना देता है। वह हृदयग्राह्य ही नही, बुद्धिगम्य रूप भी धारण कर लेती है।

हमारे हृदय मे नम्रता की एक भावना है जो श्रद्धा की सहज संगिनी है। यह भावना उस परम सत्ता का भी संकेत देती है, संकेत ही नही, उद्घोष भी करती है जिसके सामने हम आदरभाव से प्रणत हो सके। श्रद्धा की भावना प्रथम प्रशसा, फिर आदर और पूजा की भावना मे परिणत हो जाती है। यहाँ एक से बढकर एक प्रशसनीय और आदरणीय है, पर जो प्रशंसनीयो का भी प्रशसनीय, श्रद्धेयो का भी श्रद्धेय और पूजनीयो का भी पूजनीय है, वही श्रद्धाभावना का सबसे ऊँचा आधार है। यही भक्तिभाजन है—यही उपासनीय एव आश्रयणीय है।

जहाँ आचार है, वही श्रेष्ठता है और जहाँ श्रेष्ठता है, वही पवित्रता है। धार्मिक दृष्टि से जहाँ शुभ की सीमा है, पवित्रता की पराकाष्ठा है, वहीं ब्रह्म या भगवान् है। तत्वदर्शी ज्ञानी इसे ब्रह्म कहते है, कर्मकाडी इसे परमात्मा कहते है और भक्त इसी को भगवान् कहते है।

अन्वयव्यतिरेक की पद्धति हमें ससार की सत्तात्मकता से हटाकर चेतना के स्तरो मे ले जाती है, और वहाँ से भी हटाकर आनदधाम के अनुमान मे छोड देती है। भगवान है, काल्पनिक नही वास्तविक, जड नही चेतन, निरानद नही, स्वय आनंदरूप। वे असीम है, देश और काल की परिधि से परे है, सर्वशक्तिमान् हैं, अपने लिये किसी पर आश्रित नही है और आनद के धाम है। भक्त अपनी वृत्तियो को समेटकर उनमे केंद्रित कर देता है वह आत्मतृप्त और आत्मानदी बन जाता है। यह स्थिति भक्तिमार्ग द्वारा ही सपन्न होती है।

आनद न सत के प्रसार मे है, न चित मे, ज्ञान तथा प्रयत्न मे। उसका स्थान न शरीर है, न प्राण, न मन और न बुद्धि। विश्व का एक एक कण, उसका एक एक अवयव विवशता की वह्नि मे, दुःख की दावा मे दग्ध हो रहा है। वह मानव को आनद कैसे दे सकता है? आनंद का निकेतन भगवान् है। जड तत्व जीव दोनो के वही विश्रामस्थल है, एकमात्र अवलबन है। इन्ही के साथ रहना, इन्ही गुणो मे रमण करना और इन्ही को अपना समग्र स्वत्व समर्पित कर देना आनदप्राप्ति का मार्ग है। यही मार्ग भक्तिकाड के नाम से प्रख्यात है।

भक्ति का ज्ञान और कर्म के साथ क्या सबंध है? कर्म गति है, परतु विचारसहित। किसी गति के साथ जब विचार सम्मिलित हो जाता है, उसकी सज्ञा कर्म होती है। तमोगुणी व्यक्ति विचारशून्य होता है, अत जड कहलाता है। जडत्व के ऊपर राग-द्वेष-पूर्ण रजोगुण की स्थिति है। रजोगुणी व्यक्ति क्रियाशील होता है। रजोगुण से ऊपर सत्वगुण की स्थिति है। यह ज्ञान और प्रकाश का क्षेत्र है। तम रज मे तथा रज सत् मे विलीन हो जाता है। सत् किसमे विलीन होगा? भाव मे। भक्ति एक भाव ही है। अतएव कर्म और ज्ञान का पर्यवसान भक्ति मे होता है। कर्म और ज्ञान दोनो ही भक्ति की उपलब्धि के लिये साधन बनते है। भक्ति स्वय आनदरूप प्रभु की प्राप्ति के लिये साधन रूप है।

भक्ति का सौंदर्यशास्त्र से भी घनिष्ठ संबंध है। विश्व में जहाँ जहाँ सौंदर्य है—सुंदर शरीर, शोभन प्राणवत्ता, शुभ्रचेष्टाएँ, आकर्षक आत्माएँ—वहाँ उस मूल सौंदर्य की शाश्वत सुंदरता की शाखाएँ फूटकर आ गई है।

भक्ति साधन तथा साध्य द्विविध है। साधक साधन में ही जब रस लेने लगता है, उसके फलों की ओर से उदासीन हो जाता है। यही साधन का साध्य बन जाना है। पर प्रत्येक साधन का अपना पृथक् फल भी है। भक्ति भी साधक को पूर्ण स्वाधीनता, पवित्रता, एकत्वभावना तथा प्रभुप्राप्ति जैसे मधुर फल देती है। प्रभुप्राप्ति का अर्थ जीव की समाप्ति नहीं है, सयुजा और सखाभाव से प्रभु मे अवस्थित होकर आनंद का उपभोग करना है। आचार्य रामानुज, मध्व, निंबार्क आदि का मत यही है। महर्षि दयानंद लिखते है : जिस प्रकार अग्नि के पास जाकर शीत की निवृत्ति तथा उष्णता का अनुभव होता है, उसी प्रकार प्रभु के पास पहुँचकर दुःख की निवृत्ति तथा आनंद की उपलब्धि होती है। 'परमेश्वर के समीप होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव पवित्र हो जाते है। परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना से आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी वह नही घबराएगा और सबको सहन कर सकेगा।

ईसाई प्रभु में पितृभावना रखते है क्योंकि पाश्चात्य विचारकों के अनुसार जीव को सर्वप्रथम प्रभु के नियामक, शासक एवं दंडदाता रूप का ही अनुभव होता है। ब्रह्मांड का वह नियामक है, जीवों का शासक तथा उनके शुभाशुभ कर्मों का फलदाता होने के कारण न्यायकारी दंडदाता भी है। यह स्वामित्व की भावना है जो पितृभावना से थोड़ी हटकर है। इस रूप मे जीव परमात्मा की शक्ति से भयभीत एवं त्रस्त रहता है पर उसके महत्व एवं ऐश्वर्य से आकर्षित भी होता है। अपनी क्षुद्रता, विवशता एवं अल्पज्ञता की दुःखद स्थिति उसे सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ एवं महान् प्रभु की ओर खीच ले जाती है। भक्ति मे दास्यभाव का प्रारंभ स्वामी के सामीप्यलाभ का अमोघ साधन समझा जाता है। प्रभु की रुचि भक्त की रुचि बन जाती है। अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का परित्याग होने लगता है। स्वामी की सेवा का सातत्य स्वामी और सेवक के बीच की दूरी को दूर करनेवाला है। इसमे भक्त भगवान् के साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगता है और उसके परिवार का एक अंग बन जाता है। प्रभु उसे अपने सगे संबंधी प्रतीत होने लगते है। प्रभु मेरे पिता है, मैं उनका पुत्र हूँ, यह भावना दास्यभावना से अधिक आकर्षणकारी तथा प्रभु के निकट लानेवाली है। उपासना शब्द का अर्थ ही भक्त को भगवान् के निकट ले जाना है।

वात्सल्यभाव का क्षेत्र व्यापक है। यह मानवक्षेत्र को अतिक्रांत करके पशु एवं पक्षियों के क्षेत्र मे भी व्याप्त है। पितृभावना से भी बढ़कर मातृभावना है। पुत्र पिता की ओर आकर्षित होता है, पर साथ ही डरता भी है। मातृभावना मे वह डर दूर हो जाता है। माता प्रेम की मूर्ति है, ममत्व की प्रतिमा है। पुत्र उसके समीप निःशंक भाव से चला जाता है। यह भावना वात्सल्यभाव को जन्म देती है। रामानुजीय वैष्णव सप्रदाय मे केवल वात्सल्य और कर्ममिश्र वात्सल्य को लेकर, जो मार्जारकिशोर तथा कपिकिशोर न्याय द्वारा समझाए जाते हैं, दो दल हो गए थे—टेंकले तथा बडकले एक केवल प्रपत्ति को ही सब कुछ समझते थे। दूसरे प्रपत्ति के साथ कर्म को भी आवश्यक मानते थे।

स्वामी तथा पिता दोनों को हम श्रद्धा की दृष्टि से अधिक देखते हैं। मातृभावना में प्रेम बढ़ जाता है, पर दांपत्य भावना मे श्रद्धा का स्थान ही प्रेम ले लेता है। प्रेम दूरी नही नैकट्य चाहता है और दांपत्यभावना में यह उसे प्राप्त हो जाता है। शृंगार, मधुर अथवा उज्ज्वल रस भक्ति के क्षेत्र मे इसी कारण अधिक अपनाया भी गया है। वेदकाल के ऋषियों से लेकर मध्यकालीन भक्त संतों की हृदयभूमि को पवित्र करता हुआ यह अद्यावधि अपनी व्यापकता एवं प्रभविष्णुता को प्रकट कर रहा है।

भक्ति क्षेत्र की चरम साधना सख्यभाव मे समवसित होती है। जीव ईश्वर का शाश्वत सखा है। प्रकृति रूपी वृक्ष पर दोनों बैठे है। जीव इस वृक्ष के फल चखने लगता है और परिणामतः ईश्वर के सखाभाव से पृथक् हो जाता है। जब साधना करता हुआ भक्ति के द्वारा वह प्रभु की ओर उन्मुख होता है तो दास्य, वात्सल्य, दांपत्य आदि सीढ़ियों को पार करके पुनः सखाभाव को प्राप्त कर लेता है। इस भाव मे न दास का दूरत्व है, न पुत्र का सकोच है और न पत्नी का अधीन भाव है। ईश्वर का सखा जीव स्वाधीन है, मर्यादाओं से ऊपर है और उसका वरेण्य बंधु है। आचार्य वल्लभ ने प्रवाह, मर्यादा, शुद्ध अथवा पुष्ट नाम के जो चार भेद पुष्टिमार्गीय भक्तों के किए है, उनमे पुष्टि का वर्णन करते हुए वे लिखते है : कृष्णाधीनातु मर्यादा स्वाधीन पुष्टिरुच्यते। सख्य भाव की यह स्वाधीनता उसे भक्तिक्षेत्र मे ऊर्ध्व स्थान पर स्थित कर देती है।

भक्ति का तात्विक विवेचन वैष्णव आचार्यों द्वारा विशेष रूप से हुआ है। वैष्णव सप्रदाय भक्तिप्रधान सप्रदाय रहा है। श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीता के अतिरिक्त वैष्णव भक्ति पर अनेक श्लोकबद्ध सहिताओं की रचना हुई। सूत्र शैली मे उसपर नारद भक्तिसूत्र तथा शांडिल्य भक्तिसूत्र जैसे अनुपम ग्रंथ लिखे गए। पराधीनता के समय मे भी महात्मा रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिंधु तथा उज्ज्वलनीलमणि और मधुसूदन सरस्वती ने भक्तिरसायन जैसे अमूल्य ग्रंथों का प्रणयन किया। भक्ति-तत्व-तंत्र को हृदयंगम करने के लिये इन ग्रंथो का अध्ययन अनिवार्यतः अपेक्षित है। आचार्य वल्लभ की भागवत पर सुबोधिनी टीका तथा नारायण भट्ट की भक्तिचंद्रिका भी पठनीय एवं मननीय हैं।

नारद भक्तिसूत्र संख्या दो और शांडिल्य भक्तिसूत्र संख्या दो के अनुसार प्रभु मे पराकाष्ठा की अनुरक्ति रखना ही भक्ति है। परम प्रेमरूपा या परानुरक्ति के समान ही श्रीमद्भागवत मे भी भक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है

> सवै पुसा परो धर्मो यतो भक्ति रधोक्षजे।
> अहैतुक्य प्रतिहता ययात्मा सप्रसीदति ॥ १ २. ६

भगवान् मे हेतुरहित, निष्काम एक निष्ठायुक्त, अनवरत प्रेम का नाम ही भक्ति है। यही पुरुषों का परम धर्म है। इसी से आत्मा प्रसन्न होती है। 'भक्तिरसामृतसिंधु', के अनुसार भक्ति के दो भेद हैं—गौणी तथा परा। गौणी भक्ति साधनावस्था तथा परा भक्ति

सिद्धावस्था की सूचक है। गौणी भक्ति भी दो प्रकार की है : वैधी तथा रागानुगा। प्रथम में शास्त्रानुमोदित विधि निषेध अर्थात् मर्यादा मार्ग तथा द्वितीय में राग या प्रेम की प्रधानता है। आचार्य वल्लभ द्वारा प्रतिपादित विहिता एवं अविहिता नाम की द्विविधा भक्ति भी इसी प्रकार की है और मोक्ष की साधिका है। शांडिल्य ने सूत्रसंख्या १० में इन्ही को इतरा तथा मुख्या नाम दिए हैं।

श्रीमद्भागवत् में नवधा भक्ति का वर्णन है :

श्रवणं कीर्तन विष्णो. स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।। ७,५,२३

नारद भक्तिसूत्र संख्या ८२ मे भक्ति के जो एकादश भेद हैं, उनमें गुण माहात्म्य के अंदर नवधा भक्ति के श्रवण और कीर्तन, पूजा के अंदर अर्चन, पादसेवन तथा वंदन और स्मरण-दास्य-सख्य-आत्मनिवेदन मे इन्हीं नामोंवाली भक्ति अंतर्भुक्त हो जाती है। रूपासक्ति, कांतासक्ति तथा वात्सल्यासक्ति भागवत के नवधा भक्ति-वर्णन में स्थान नही पातीं।

निर्गुण या अव्यक्त तथा सगुण नाम से भी भक्ति के दो भेद किए जाते हैं। गीता, भागवत तथा सूरसागर ने निर्गुण भक्ति को अगम्य तथा क्लेशकर कहा है, परंतु वैष्णव भक्ति का प्रथम युग जो निवृत्तिप्रधान तथा ज्ञान-ध्यान-परायणता का युग है, निर्गुण भक्ति से ही संबद्ध है। चित्रशिखंडी नाम के सात ऋषि इसी रूप मे प्रभुध्यान में मग्न रहते थे। राजा वसु उपरिचर के साथ इस भक्ति का दूसरा युग प्रारंभ हुआ जिसमें यज्ञानुष्ठान की प्रवृत्तिमूलकता तथा तपश्चर्या की निवृत्तिमूलकता दृष्टिगोचर होती है। तीसरा युग कृष्ण के साथ प्रारंभ होता है जिसमे अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई तथा द्रव्यमय यज्ञों के स्थान पर ज्ञानमय एवं भावमय यज्ञों का प्रचार हुआ।

चतुर्थ युग मे प्रतिमापूजन, देवमदिर निर्माण, शृंगारसज्जा तथा षोडशोपचार (कलश-शंख-घटी-दीप-पुष्प आदि) पद्धति की प्रधानता है। इसमे बहिर्मुखी प्रवृत्ति है। पंचम युग मे भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम के अतीव आकर्षक रूप दिखाई देते हैं। वेद का यह पुराण में परिणमन है। इसमे निराकार साकार बना, अनंत सांत तथा सूक्ष्म स्थूल बना। प्रभु स्थावर एवं जगम दोनो की आत्मा है। फिर जंगम चेतना ही क्यो ? स्थावर द्वारा ही उसकी अभिव्यक्ति और भक्ति क्यों न की जाय ?

वैष्णव आचार्य, कवि एवं साधक स्थूल तक ही सीमित नही, वे स्थूल द्वारा सूक्ष्म तक पहुँचे है। उनकी रचनाएँ नाम द्वारा नामी का बोध कराती हैं। उन्होंने भगवान् के जिन नामों, रूपो लीलाओ तथा धामों का वर्णन किया है, वे न केवल स्थूल मास-पिंडों से ही संबधित है, अपितु उसी के समान आधिदैविक जगत् तथा आध्यात्मिक क्षेत्र से भी संबधित हैं। राधा और कृष्ण, सीता और राम, पार्वती और परमेश्वर, माया और ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष, शक्ति और शक्तिमान, विद्युत् और मेघ, किरण और सूर्य, ज्योत्स्ना और चंद्र आदि सभी परस्पर एक दूसरे मे अनुस्यूत हैं। विरहानुभूति को लेकर भक्तिक्षेत्र मे वैष्णव भक्तो ने, चाहे वे दक्षिण के हों या उत्तर के, जिस मार्मिक पीड़ा को अभिव्यक्त किया है, वह साधक के हृदय पर सीधे चोट करती है और बहुत देर तक उसे वहीं निमग्न रखती है। लोक से कुछ समय के लिये आलोक मे पहुँचा देनेवाली वैष्णव भक्तों की यह देन कितनी श्लाघनीय है, कितनी मूल्यवान् है ! और इससे भी अधिक मूल्यवान् है उनकी स्वर्गप्राप्ति की मान्यता। मुक्ति नहीं, क्योंकि वह मुक्ति का ही उत्कृष्ट रूप है, भक्ति ही अपेक्षणीय है। स्वर्ग परित्याज है, उपेक्षणीय है। इसके स्थान पर प्रभुप्रेम ही स्वीकरणीय है। वैष्णव सप्रदाय की इस देन की अमिट छाप भारतीय हृदय पर पडी है। उसने भक्ति को ही आत्मा का आहार स्वीकार किया है।

भक्ति तर्क पर नहीं, श्रद्धा एवं विश्वास पर अवलंबित है। पुरुष ज्ञान से भी अधिक श्रद्धामय है। मनुष्य जैसा विचार करता है, वैसा ही बन जाता है, इससे भी अधिक सत्य इस कथन में है कि मनुष्य की जैसी श्रद्धा होती है उसी के अनुकूल और अनुपात में उसका निर्माण होता है। प्रेरक भाव है, विचार नही। जो भक्ति भूमि से हटाकर द्यावा में प्रवेश करा दे, मिट्टी से ज्योति बना दे, उसकी उपलब्धि हम सबके लिये निस्संदेह महीयसी है। धी के ज्ञान और कर्म दोनों अर्थ हैं। हृदय श्रद्धा या भाव का प्रतीक है। भाव का प्रभाव, वैसे भी, सर्वप्रथम हृदय के स्पंदनों में ही लक्षित होता है।

[मु० रा० श०]

भक्ति (ईसाई) ईसाई विश्वास के अनुसार ईश्वर ने प्रेम से प्रेरित होकर मनुष्य को अपने परमानंद का भागी बनाने के उद्देश्य से उसकी सृष्टि की है (दे० मुक्ति)। प्रथम मनुष्य ने ईश्वर की इस योजना को ठुकरा दिया और इस प्रकार संसार मे पाप का प्रवेश हुआ (दे० आदिपाप)। मनुष्यो को पाप से छुटकारा दिलाने और उनके लिये मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने के उद्देश्य से ईश्वर ने अवतार लिया और ईसा के रूप मे प्रकट होकर मनुष्य के लिये धर्म का तत्व स्पष्ट कर दिया। ईसा ने सिखलाया कि ईश्वर का वास्तविक स्वरूप प्रेम मे हैं; वह एक दयालु पिता है जो सभी मनुष्यों को अपनी सतान मानकर उन्हे अपने पास बुलाना चाहता है। मनुष्य को ईश्वर की यह योजना स्वीकार करनी चाहिए और अपने पापों के लिये पश्चात्ताप करना चाहिए, क्योकि पाप ईश्वर के प्रति विद्रोह है (दे० पाप, ईसाई)। धर्म का सार इसमे है कि मनुष्य ईश्वर पर विश्वास करे, उसपर भरोसा रखे और उसके प्रति प्रेमपूर्ण आत्म-समर्पण करे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसाई धर्म भक्तिभावप्रधान धर्म है, यद्यपि इसमे कर्मकांड की उपेक्षा नही होती (दे० संस्कार)। ईसाइयो की भक्तिभावना निर्गुण ईश्वर की भक्ति तक सीमित नही होती है। वे ईसा को ईश्वर मानते हैं और ईसा के जीवन की घटनाओं पर, विशेषकर उनके दुःखभोग तथा उनकी क्रूस की मृत्यु पर, मनन और ध्यान करते हुए अपने हृदय मे कोमल भक्तिभाव उत्पन्न करते हैं और जीवन की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिये ईसा के उदाहरण से प्रेरणा लेते हैं।

रोमन काथलिक और प्राच्य चर्च में ईसा की माता मरियम तथा संतों से भी प्रार्थना की जाती है क्योकि विश्वास किया जाता है कि वे भी मनुष्यों की बिनतियाँ सुनते हैं और ईश्वर के विधान के अनुसार उनकी सहायता करते हैं। [का० बु०]

भक्तिरसशास्त्र (वैष्णव) उज्ज्वलनीलमणि—महाप्रभु चैतन्य (१४८६–१५३३ ई०) की प्रेरणा से वृंदावन के षट्गोस्वामियों में अन्यतम रूपगोस्वामी (१४७०–१५५४ ई०) ने वैष्णव संप्रदाय के धर्मदर्शन की छाया में भक्तिरसशास्त्र का प्रवर्तन किया। भक्तिरसामृत सिंधु तथा उज्ज्वलनीलमणि वैष्णव रसशास्त्र के जिसमें कामशास्त्र की परंपराओं का रिक्थ है, मौलिक और उपजीव्य ग्रंथ हैं। जयदेव और लीलाशुक (संस्कृत), विद्यापति और चंडीदास (बँगला) की कृष्णभक्तिपरक मधुर रचनाओं तथा कृष्णभक्तों की 'स्वानुभवसिद्ध' भावना ने भक्ति को रसराज मानने तथा उसके सांगोपांग विवेचन के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया था। भक्तिरसामृतसिंधु में भक्ति तथा भक्तिरसों का विशद विवेचन करने के बाद शृंगार अथवा मधुर भक्तिरस का विशेष प्रतिपादन उज्ज्वलनीलमणि का प्रतिपाद्य है। इस मधुर रस का स्थायी भाव कृष्ण तथा गोपियों की पारस्परिक प्रियता (जो संभोग का आदि कारण है) मधुरा रति है। विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों से इस रति के आस्वाद का मधुर रस है, यह रस रहस्य है सखी भक्त इसके अधिकारी नहीं हैं किंतु सभी भक्तिरसों जैसे कि शांत प्रीति, वात्सल्य से यह श्रेष्ठ है। इसे भक्तिरसराज कहा गया है। भक्तिरसामृतसिंधु की पद्धति और आधार पर नाट्यशास्त्र के ग्रंथों में वर्णित भेद प्रभेद के ग्रहण, परिहाण, परिवर्धन के साथ चैतन्य संप्रदाय की सांस्कृतिक चेतना के नए संदर्भ में इन्हीं विभावादि तथा आनुषंगिक प्रसंग का विवेचन उज्ज्वलनीलमणि का विषय है। मधुरा रति के आलंबन विभाव नायकचूडामणि कृष्ण तथा हरिप्रियाएँ है। नायकभेद—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीर प्रशांत के अतिरिक्त ब्रज मे पूर्णतम, मथुरा में पूर्णतर, द्वारका मे पूर्ण के रूप मे नीतिभेद, दक्षिण, षट, धृष्टभेदी को मिलाकर नायक के ९६ भेद माने गए हैं। नायक के पाँच सहायक हैं। नायिका भेद मूलत दो हैं। शृंगार का परमोत्कर्ष इसी मे प्रतिष्ठित है। स्वकीया के साधनपरा, देवी, नित्यप्रिया ये तीन भेद तथा अनेक उपभेद है। अभिसारिका, वासकसज्जा उत्कंठिता आदि आठ भेद हैं, इन सभी भेदोपभेदों को मिलाकर नायिकाभेद ३६० हैं, यो स्वकीया की ही सख्या १६१०८ है। दूती के स्वयंदूती तथा आप्तदूती दो भेद तथा अंतिम के तीन प्रधान उपभेद माने गए हैं। उद्दीपन विभाव कृष्ण तथा हरिप्रियाओं से सबंधित भेदोपभेद से अनेक प्रकार के हैं। अनुभावो मे बाईस अलंकार (भाव, हाव, हेला आदि) सात ईद्भास्वर सात वाचिक (आलाप विलापादि) तथा सात्विक भाव वर्णित हैं। तैंतीस प्रख्यात व्यभिचारिभावों का (उग्रता तथा आलस्य को छोड़कर) भाव के उदयादि के भेद से वर्णन है। अंत मे मधुरा रति के स्वरूप तथा पक्षो का तथा मधुर रस (संयोग विप्रलंभ) के भेदोपभेदो का वर्णन सर्वथा मौलिक है। [रा० चं० द्वि०]

भगतसिंह, सरदार का जन्म अक्टूबर सन् १९०७ ईसवी मे पंजाब के लायलपुर जिले मे प्रसिद्ध देशभक्त तथा त्यागी सिख परिवार मे हुआ। आपकी दादी श्रीमती जयकौर अत्यंत वीर भावनाओं-वाली महिला थीं। पुत्रों तथा पौत्रों का पालन पोषण उन्होंने ही किया और बचपन से उनमें राष्ट्रीयता का संस्कार भरा। यह अति प्रसिद्ध है कि भगतसिंह के चाचा सरदार अजीतसिंह ने ही लाला लाजपत राय को राजनीतिक क्षेत्र की ओर आकृष्ट किया था। परिवार की परंपरा तथा जन्मजात संस्कारों के कारण आपने १४ वर्ष की अवस्था से ही पंजाब की क्रांतिकारी संस्थाओं में कार्य करना शुरू किया। सन् १९१४ तथा १९१५ के लाहौर षड्यंत्रों में सिखों के आत्मबलिदान का प्रभाव भी आपपर पड़ा। सन् १९२३ में आपने इंटरमीडिएट परीक्षा पास की और जब माता पिता ने आपको विवाहबंधन मे बाँधने की तैयारी की तो चुपके से आप लाहौर से निकल भागे।

पंजाब छोड़कर जब आप कानपुर आए तो श्री गणेशशंकर विद्यार्थी का आपको हार्दिक समर्थन एवं सहयोग मिला। देश की स्वतंत्रता के लिये अखिल भारतीय स्तर पर क्रांतिकारी दल का पुनर्गठन करने का श्रेय आपको है। आपने 'प्रताप' कानपुर तथा अर्जुन दिल्ली के सपादकीय विभाग मे क्रमश. बलवंत तथा अर्जुन-सिंह के नाम से कुछ समय तक कार्य किया। पत्रकारिता के साथ साथ आप क्रांतिकारी दल का काम भी करते थे। संकटग्रस्त जनता की सेवा मे भी आपकी गहरी रुचि थी। कानपुर निवास के समय जब गंगा की बाढ़ के कारण भीषण संकट उपस्थित हुआ तो आपने श्री बटुकेश्वर दत्त के साथ पीड़ितों की सराहनीय सेवा की। काकोरी षड्यत्र केस मे चार अभियुक्तो को प्राणदंड तथा अन्य को दीर्घ कारावास के दड से आप उत्तेजित हो गए थे। सन् १९२६ के अक्टूबर में लाहौर मे रामलीला मेले मे किसी ने बम फेंका। इस अभियोग में सरदार भगत-सिंह गिरफ्तार हुए। वस्तुत यह आपके विरुद्ध पुलिस का कुचक्रमात्र था। इन्हीं दिनो आपने नौजवान भारत सभा के संगठन में प्रमुख भाग लिया तथा काकोरी षड्यत्र के शहीदो की स्मृति मे काकोरी दिवस का आयोजन किया। आपने जुलाई, १९२८ में कानपुर में सभा कर देश के क्रांतिकारियो से सपर्क के लिये दौरा किया। उसी वर्ष सितबर मे दिल्ली के किले में देश के विभिन्न राज्यो के क्रांतिकारियो का समेलन हुआ, जिसमे आपके प्रस्ताव के अनुसार दल का नाम हिंदुस्तान रिपब्लिकन असोसिएशन के स्थान पर हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन असोसिएशन रखा गया। आपने विश्व के क्रांतिकारी आंदोलन का गहन अध्ययन किया था।

अक्टूबर, १९२८ ई० मे लाहौर मे साइमन कमीशन का विरोध करने के लिये लाला लाजपत राय के नेतृत्व में विशाल जुलूस निकला। जुलूस पर पुलिस अधिकारियो ने भीषण लाठी वर्षा की, जिससे लाला जी आहत हो गए और १७ नवबर को उनका निधन हो गया। इसके ठीक एक महीने बाद सरदार भगतसिंह ने अपने अन्यतम साथियो श्री राजगुरु तथा श्री चंद्रशेखर आजाद के साथ लाला जी का बदला लिया तथा पुलिस अधिकारी सांडर्स की हत्या की। सरदार भगतसिंह अपने साथियो सहित उक्त हत्याकांड के बाद जिस प्रकार पुलिस की आँख में धूल झोंककर लाहौर से निकल आए वह क्रांतिकारी आंदोलन का अत्यत रोचक तथा रोमांचक प्रकरण है। ८ अप्रैल, १९२९ को सरदार भगतसिंह तथा श्री बटुकेश्वर दत्त ने असेंबली भवन मे सरकारी अफसरों की ओर बम फेंके और स्थिर भाव से खड़े रहे। सरदार भगतसिंह चाहते तो बम फेंककर निकल भाग सकते थे किंतु गिरफ्तारी के पूर्व 'इंकलाब जिंदाबाद'

तथा 'साम्राज्यवाद का नाश' के नारे लगाए तथा हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के परचे वितरित किए, जिनमें जनता से विप्लव के लिये तैयार होने की अपील की गई थी। लाहौर षड्यंत्र का मुकदमा चला। इसके माध्यम से भी सरदार भगतसिंह ने ब्रिटिश सरकार की अत्याचारी तथा अन्यायपूर्ण नीतियो का रहस्योद्घाटन कर देश में क्रांति तथा जाग्रति की भावना फैलाई। अंततः ७ अक्टूबर, १९३० को आपको दोनों साथियों सहित फाँसी की सजा दी गई, जिससे देश में हाहाकार मच गया। आपके प्राणों की रक्षा के लिये समस्त देश ने प्रार्थना की किंतु वह ठुकरा दी गई और २३ मार्च, १९३१ की रात में आपको फाँसी दे दी गई। इन्कलाब जिंदाबाद का नारा लगाते हुए आपने हँसते हँसते मृत्यु का आलिंगन किया। [ल० शं० व्या०]

भगदत्त प्राग्ज्योतिष (आसाम) देश के अधिपति नरकासुर भौमासुर और भूमि के पुत्र थे। एक बार भौमासुर ने इंद्र के कवच और कुंडल छीन लिए। इसपर कृष्ण ने क्रुद्ध होकर भौमासुर के सात पुत्रों का वध कर डाला। भूमि ने कृष्ण से भगदत्त की रक्षा के लिये अभयदान माँगा।

भौमासुर की मृत्यु के पश्चात् भगदत्त प्राग्ज्योतिष के अधिपति बने। भगदत्त ने अर्जुन, भीम और कर्ण के साथ युद्ध किया। हस्ति युद्ध में भगदत्त अत्यंत कुशल थे। कृतप्रज्ञ और वज्रदत्त नाम के इनके दो पुत्र थे, इनमें कृतप्रज्ञ की मृत्यु नकुल के हाथ से हुई। वज्रदत्त राजा होने पर अर्जुन से पराजित हुआ। [ज० चं० जै०]

भगवंतराय खीची (अथवा भगवंतसिंह असोथर) जिला फतेहपुर के रहनेवाले थे। ये कई सुकवियों के आश्रयदाता और बड़े गुणग्राही नरेश थे। महाराज छत्रसाल और छत्रपति शिवाजी का जैसा गुणगान 'भूषण' ने किया वैसे ही अनेक सुकवियों ने इनका भी गुणगान किया। सं० १७९३ वि० में ये अवध के प्रथम नवाब वजीर बुर्हान-उल-मुल्क से युद्ध करते हुए स्वर्गवासी हुए। 'रामायण' और 'हनुमत-पचीसी' इनकी दो रचनाएँ कही जाती हैं। कांडों मे विभक्त रचना 'रामायण' कवित्त छंद में ही लिखी गई हैं। २५ ओजस्वी छदो मे हनुमान के शौर्य पराक्रम का 'हनुमतपचीसी' मे कवित्वपूर्ण वर्णन किया गया है।

इनकी 'हनुमतपचासा' नामक एक और कृति मिली है जिसमे कुल ५२ छद है। संभव है यह कृति 'रामायण' का कोई अंश हो। प्राचीन काव्यसंग्रहों मे इनके छिट पुट रूप मे शृंगारी छद भी पाए जाते हैं। [रा० फे० त्रि०]

भगवत मुदित इनके पिता माधव मुदित चैतन्य संप्रदाय के भक्त सुकवि तथा आगरा के निवासी थे। इनका समय सं० १६३० तथा सं० १७२० वि० के मध्य मे था। यह आगरा में शुजाअ के दीवान थे और वहाँ से विरक्त होकर वृंदावन में आ बसे थे। इन्हें हित संप्रदाय के भक्तों का भी सत्संग प्राप्त था और इन्होंने इस संप्रदाय के ३५ भक्तों का चरित्र रसिक अनन्यमाल मे ग्रंथित किया है। प्रबोधानंद सरस्वती के अनेक वृंदावन शतकों में से एक का इन्होने पद्यानुवाद किया है, जो सं० १७०७ की रचना है। इनके दो सौ सात स्फुट पद अब तक मिले हैं। यह भी चैतन्य संप्रदाय के राधारमणी वैष्णव थे। [ब्र० र० दा०]

भगवानदास यह जयपुर स्थित आंबेर राज्य के राजपूत शासक राजा बिहारीमल का पुत्र था। सन् १५६२ में जब बिहारीमल ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली तो भगवानदास अपने पिता के साथ आगरा गया। अकबर ने इन राजपूतों का यथोचित सत्कार किया। भगवानदास को मुगल सेना में एक उच्च पद पर नियुक्त कर दिया गया। आंबेर पहला राजपूत राज्य था जिसने अकबर की अधीनता स्वीकार की और उससे वैवाहिक संबंध स्थापित करके मित्रता बढ़ाई।

अकबर के आदेश पर भगवानदास कासिम खाँ के साथ पाँच हजार सैनिकों का नेतृत्व करता हुआ कश्मीर विजय को निकल पड़ा। सन् १५८६ मे उसने कश्मीर के शासक यूसुफशाह को सरलतापूर्वक हरा दिया। यूसुफ के पुत्र याकूब ने भगवानदास के विरुद्ध युद्ध करने की धृष्टचेष्टा की। भगवानदास ने उसे भी बुरी तरह हरा दिया। इसके पश्चात् कश्मीर का राज्य मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। पुरस्कार स्वरूप भगवानदास को कुछ जागीर मिली और 'राजा' की उपाधि दी गई। राजा भगवानदास फारसी के विद्वान् थे। उन्होंने कई रचनाएँ की जिनमे फतूहात-ए-आलमगीरी भी संमिलित है। [मि० चं० पां०]

भगवान्दास, डाक्टर (१८६९-१९५८) का जन्म १२ जनवरी, १८६९ ई० मे वाराणसी मे हुआ था। सन् १८८७ मे उन्होने १८ वर्ष की अवस्था मे पाश्चात्य दर्शन मे एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। १८९० से १८९९ तक उत्तर प्रदेश मे विभिन्न जिलों मे मजिस्ट्रेट के रूप मे सरकारी नौकरी करते रहे। सन् १८९९ से १९१४ तक सेंट्रल हिंदू कालेज के संस्थापक-सदस्य और अवैतनिक मत्री रहे। १९१४ मे यही कालेज काशी हिंदू विश्वविद्यालय के रूप मे परिणत कर दिया गया। डा० भगवान्दास हिंदू विश्वविद्यालय के संस्थापक-सदस्यो मे से एक थे। सन् १९२१ मे काशी विद्यापीठ की स्थापना के समय से १९४० तक उसके कुलपति रहे। असहयोग आंदोलन मे भाग लेने के कारण सन् १९२१ मे इन्हे एक वर्ष का कारावास दड मिला। थोडे ही दिनो बाद इन्हे कारावास से मुक्त कर दिया गया। किंतु वर्ष के शेष महीनो मे घर से अलग काशी विद्यापीठ मे रहते हुए एकातवास करके उन्होने कारावास की अवधि पूरी की। १९३५ मे उत्तरप्रदेश के सात शहरो से भारत की केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य चुने गए। सन् १९३८ में उन्होने केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और एकात रूप से दार्शनिक चिंतन एव भारतीय विचारधारा की व्याख्या मे सलग्न रहे। भारत के राष्ट्रपति ने सन् १९५५ मे उन्हे भारतरत्न की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया।

दर्शन — 'अह्‌म एतत् न' ('मैं-यह-नही') ऐसा महावाक्य है कि यदि इसके तीनो शब्दों के अर्थ एक साथ लिए जायँ तो केवल एक एकाकार, एक रस, अखंड, निष्क्रिय, संवित् देख पड़ती है। 'मैं-यह-नही' इसमे कोई क्रिया विक्रिया नही है, कोई परिवर्त परिणमन नही है। केवल एक बात सदा के लिये कूटस्थवत् स्थिर है, अर्थात् केवल 'मैं' है और 'मैं' के सिवाय और कुछ नही है। अथच 'मैं' अपने सिवाय कोई अन्य वस्तु, ऐसे ऐसे रूप रंग नाम आदि का अन्य पदार्थ नही हैं। यदि इस वाक्य के दो खंड कीजिए, पहले

'मैं-यह' और फिर 'यह-नहीं' तो इसी वाक्य मे संसार की सब कुछ क्रिया, इसके संपूर्ण परिवर्त का तत्व, देख पड़ता है 'मैं-यह-हूँ', यह जीवन का, जनन का, शरीरधारण का, स्वरूप है। 'मैं यह नहीं हूँ', यही मरण का, शरीरत्याग का, स्वरूप है। क्रियामात्र का यही द्वंद्व स्वरूप है — लेना और देना, पकड़ना और छोड़ना, बढ़ना और घटना, हँसना और रोना, जीना और मरना, उपाधि का ग्रहण करना और उसमें अहंकार करना और फिर उसको छोड़कर उससे विमुख होना, पहले एक वस्तु मे सुख मानना और फिर उसी वस्तु में पीछे दु:ख मानना। अध्यारोप और अपवाद, प्रवृत्ति और निवृत्ति, इन दो शब्दों में संसार का, ससरण का तत्व सब कह दिया है। द्रष्टा और दृश्य, भोक्ता और भोग्य, विषय और विषयी, ज्ञाता और ज्ञेय, ग्रष्टा और इष्य, कर्त्ता और कार्य, जीव और देह, चेतन और जड़, आत्मा और अनात्मा, 'मैं' और 'यह', दोनों इसमे मौजूद हैं। जिस जिस वस्तु का निषेध, प्रतिषेध, अपलाप, अथवा निराकरण, निरास किया जाता है, उसका पहले अभ्युपगम, अध्यारोप, विधान, सभावन संकल्प, अध्यास कर लिया जाता है। पहले यह माना जाता है कि उसका संभव है और तब उसकी वास्तवता का निषेध होता है। इसी से असत् पदार्थ पर सत्ता का मिथ्या आरोप देख पड़ता है।

इसी महाचेतना में सब संसार की सृष्टि, स्थिति और लय है। 'अहम्' अर्थात् 'मैं' आत्मा का स्वरूप है। 'एतत्' अर्थात् 'यह' अनात्मा का स्वरूप है। इन दोनो का संबंध निषेध रूप है। 'मैं यह नहीं हूँ' इस भावना, इस धारणा, इस संवित् को यदि क्रमदृष्टि से देखिए तो इसमे तीन बातें अवश्य मिलती हैं। पहले तो 'मैं' के सामने 'यह' पदार्थ आता है। इस क्षण मे ज्ञान होता है। इसके पीछे 'मैं' और 'यह' के सयोग वियोग का संभव होता है। यही इच्छा है। तीसरे क्षण मे संयोग वियोग होता है। यह क्रिया है। सयोग वियोग दोहरा शब्द इसलिये कहा जाता है कि पहले संयोग होकर पीछे वियोग होता है। पहले राग, पीछे द्वेष, पहले प्रवृत्ति पीछे निवृत्ति, पहले लेना पीछे देना, पहले जन्म पीछे मरण, पुन जन्म पुनः मरण, यही ससरण क्रिया है।

जैसा भगवानदासजी प्रतिपादित करते थे प्रति क्षण मे प्रत्येक जीव इसी ज्ञान, इच्छा, क्रिया के फेरे मे फिरा करता है। पहले ज्ञान, तब इच्छा, तब क्रिया। और क्रिया के बाद फिर ज्ञान, फिर इच्छा, फिर क्रिया। यह अनत चक्र सर्वदा चल रहा है। अहम्-आत्मा-पुरुष अथवा प्रत्यगात्मा मे जो इन तीन पदार्थों का बीज है उसको सत्-चित् और आनद के नाम से कहते है। अर्थात् ज्ञान चिदात्मक, क्रिया सदात्मक और इच्छा आनंदात्मक। तथा अनात्मा अर्थात् मूल प्रकृति में ये ही तीन पदार्थ सत्वज्ञानात्मक, रजस् क्रियात्मक, और तमस् इच्छात्मक कहलाते हैं। ये ही तीन प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक ब्रह्मांड मे सदा विद्यमान हैं।

मनोविज्ञान—मनोविज्ञान मे डा० भगवान्दास का नाम आवेगों अथवा रागद्वेष के परंपरित वर्गीकरण के लिये स्मरण किया जाता है। सुखद वस्तुओ के लिये आकर्षण और दु:खद वस्तुओ के लिये विकर्षण जब चेतन प्राणियों के संबंध में प्रयुक्त होते हैं, तब ये ही राग अथवा प्रेम और द्वेष का रूप ले लेते हैं। आलंबन के प्रति महत्ता, समानता तथा हीनता की भावना के अनुसार यही राग या प्रेम क्रमशः श्रद्धा, स्नेह तथा दया का रूप ले लेता है और इसी प्रकार द्वेष आलंबनभेद से भय, क्रोध तथा घृणा का रूप ले लेता है। अपने बड़े के प्रति श्रद्धा या भय होता है, बराबर के प्रति स्नेह तथा क्रोध होता है. और छोटे के प्रति दया अथवा घृणा होती है। ये ही छह आवेग अतिरंजित होने अथवा अनुपयुक्त विषयों के साथ संसग्न होने पर मनोविकार बन जाते हैं और अंतिम रूप में अनेक प्रकार के उन्मादों का रूप ले लेते हैं।

वैयक्तिक सामाजिक संगठन — परमात्मा के स्वभाव से, प्रकृति से, उत्पन्न तीन गुण, सत्व, रजस्, तमस्, ही ज्ञान, क्रिया, और इच्छा के मूलतत्व या बीज हैं। डाक्टर साहब के विचारानुसार इनकी प्रधानता से, तीन प्रकार के, तीन प्रकृति के, मनुष्य होते हैं—(१) ज्ञानप्रधान, ज्ञानी, शिक्षक, (२) क्रियाप्रधान, रक्षक, शूर, (३) इच्छाप्रधान, पोषक, संग्रही: और (४) इन तीन के साथ चौथी प्रकृति, 'बालकबुद्धि' जिसमे किसी एक गुण की प्रधानता, विशेष विकास, न देख पड़े, 'गुणसाम्य' हो, वह सेवक, श्रमी। ये हुए चार वर्ण। किसी देश के किसी भी सभ्य समाज मे ये वर्ण अवश्य पाए जाते हैं, पर उतने विवेक से, और उस काम-दाम-आराम के, धर्म-कर्म-जीविका के, विभाजन के साथ नहीं, जैसा भारतवर्ष मे, प्राचीन स्मृतियो ने इनके लिये आदेश किया है।

जैसे समाज के जीवन मे चार मुख्य पेशे हैं वैसे ही प्रत्येक मनुष्य के जीवन मे चार 'आश्रम' हैं; (१) ब्रह्मचारी, विद्या सीखने का, (२) गृहस्थ का, (३) वानप्रस्थ का; (४) संन्यासी का।

मनुष्य के चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष वा ब्रह्मानंद। पहले तीन आश्रमों मे अधिकतर धर्म-अर्थ-काम, और चौथे में विशेष रूप से मोक्ष को साधना चाहिए।

तीन (अथवा चार) ऋणों को लेकर मनुष्य पैदा होता है। (१) देवों का ऋण जिन्होंने पंचमहाभूतों की सृष्टि, परमात्मा के नियमो के अनुसार फैलाई है; जिन महाभूतों से हमारी पंचेंद्रियों के सब विषय बने हैं; (२) पितरों का ऋण, जिनकी सतति, वंश-परंपरा से, हम हैं, जिनसे हमको यह शरीर मिला है, जो देह हमारे सब अनुभवो का साधन है, (३) ऋषियों का ऋण, जिन्होने वह महासंचय, विविध प्रकार के ज्ञानों का, शास्त्रो में भरकर रख दिया है, जिसकी सहायता से हमारा वैयक्तिक और सामाजिक जीवन सभ्य, शिष्ट बनता है, जिसके बिना हम पशुप्राय होते; (४) चौथा ऋण, परमात्मा का, कहा जा सकता है, जो हमारा चेतन ही है, प्राण ही है, जिसके बिना हम निर्जीव होते। इन चार ऋणों के निर्मोचन निर्यातन का उपाय भी चार आश्रमो के धर्म कर्मों का उचित निर्वाह ही है। (१) विद्याग्रहण, और संतति को विद्यादान, से ऋषिऋण चुकता होता है; (२) संतति के उत्पादन, पालन, पोषण से पितरों का ऋण चुकता है; (३) विविध प्रकार के यज्ञ करने से देवों का ऋण चुकता है। यथा, वायु देवता से हमारा श्वास प्रश्वास चलता है, हवा को हम गदा करते हैं; उत्तम सुगंधित पदार्थों के धूप-दीप से, होम हवन से, हवा पुनः स्वच्छ करनी चाहिए। जगल काट काटकर हम लकड़ी को जलाने मे, मकान और सामान के काम मे, खर्च कर डालते हैं। नए लखरॉव, बाग, उद्यान लगाकर फिर नए पेड़ तैयार कर देना

चाहिए। वरुण देव के जल का प्रति दिन हम लोग व्यय करते रहते हैं; नए तालाब, कुएँ, नहर आदि बनाकर, उसकी पूर्ति करनी चाहिए। ये सब यज्ञ हैं। परोपकारार्थ जो भी काम किया जाय वह सब यज्ञ हैं। (४) परमात्मा का ऋण, मुक्ति प्राप्त करने से, सब में एक ही आत्मा को व्याप्त देखने से, चुकता है। क्रम से, चार आश्रमो में चार ऋण अदा होते हैं।

ऐसी ही तीन या चार एषणाएँ, आकांक्षाएँ, वासनाएँ मनुष्य की, स्वाभाविक, होती हैं। (१) लोकैषणा, अहं स्याम्, मे इस लोक और परलोक में सदा बना रहूँ, मेरा नाश कभी न हो, इसका शरीर रूप आहार की इच्छा है, और मानस रूप, संमान, यश, कीर्ति की इच्छा, (२) वित्तैषणा, 'अहं बहु स्याम्', में और अधिक होऊँ, इसका शरीर रूप, सब अंगो की, हाथ पर की, पुष्टि, बलवृद्धि, सौदर्यवृद्धि और मानसरूप, विविध प्रकार के धन दौलत का बढ़ाना; (३) दार सुतैषणा, 'अहं बहुधा स्याम्,' मे अकेला हूँ सो बहुत हो जाऊँ; मेरे पत्नी हो, और बालबच्चे हों, बहुतों पर मेरा अधिकार हो, ऐश्वर्य हो, (४) चौथी एषणा मोक्षैषणा है, इस सब जजाल मे, बहुत भटक चुका, अब इससे छुटकारा हो। ये चार एषणाएँ भी चार पुरुषार्थों की रूपांतर ही हैं और चारो आश्रमो के धर्म कर्म से उचित रीति से पूरी होती हैं।

डा० भगवान्दास 'कर्मणा वर्ण, जन्म अभिकर्मणा' सिद्धात के प्रतिपादक थे। उनके मत से बिना कर्मणा वर्णसिद्धात को माने इस समय, वर्तमान अवस्था मे, किसी भी दूसरे उपाय से हिंदू समाज का कल्याण नहीं हो सकता।

चारों वर्णों के लिये चार मुख्य धर्म अर्थात् कर्तव्य, और चार वृत्तियाँ, जीविका, और चार तोषण, राधन, प्रोत्साहन, हैं। (१) विद्योपजीवी, विद्वान्, शिक्षक, उपदेष्टा, के लिये, ज्ञानसग्रह और ज्ञानप्रचार करना, अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह, यानी, विद्या सिखाकर, किसी विषय का ज्ञान देकर उसके लिये आदरसहित दक्षिणा लेना, किसी 'यज्ञ' में, 'पब्लिक वर्क' में, सार्वजनिक हित के कार्य मे, ज्ञान की, सहायता देकर, दक्षिणा लेना, वा आदर के साथ जो कोई दान दे, 'भेंट', पुरस्कार, दे वह लेना। (१) क्रियोपजीवी, 'शास्त्री', रक्षक, शासक, के लिये अस्त्र शस्त्र के द्वारा, दूसरों की रक्षा करना, और उसके लिये, जो कर, लगान, मालगुजारी, राष्ट्र की ओर से वेतन, मिले, उसे लेना। (३) वार्तोपजीवी, कृषक, गोपालक, वणिक्, के लिये अन्न वस्त्र आदि जीवनोपयोगी, विविध प्रकार के, आवश्यक और विलासीय पदार्थ, उत्पन्न करना, और उचित दाम लेकर देना, और जो इस रोजगार से लाभ हो, वह लेना। (४) श्रमोपजीवी, भृतक, कर्मकर, किंकर के लिये, अन्य तीन वर्णों की सेवा सहायता करके, जो मजदूरी भृत्ति, मिले वह लेना।

धर्मविज्ञान—डा० भगवान्दास ने तटस्थ रूप से धर्मों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। उनके मत से सभी धर्मों के उसूल एक हैं। सभी धर्मो में यह माना गया है कि परमात्मा सबके हृदय मे आत्मा रूप से मौजूद है। सब भूतों, सब प्राणियों के भीतर में बैठा है। सबके आगे, सबके पीछे, 'मैं' ही है। सभी धर्मों मे तीन अंग हैं, ज्ञान, भक्ति, और कर्म। उसूली 'अकायद' यानी ज्ञानकांड और, 'हकीकत' की बातें तो सब मजहबों में एक हैं ही, 'इबादत' यानी भक्तिकांड और 'तरीकत' की बातें भी एक ही हैं, और 'मामिलात यानी कर्मकांड या 'शरियत' की ऊपरी, सतही बातें भी एक या एक सी हैं। यह बात सभी मजहबवाले मानते हैं कि खुदा है और वह एक है, वाहिद है, अद्वितीय है। यह भी सब मानते हैं कि पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख होता है। व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, धर्मार्थ दान ये भी सब मजहबों मे हैं। सभी धर्मों मे धर्म के चार मूल माने गए हैं—श्रुति, स्मृति, सदाचार, और हृदयाभ्यनुज्ञा। खुदा को ला-मकान और निराकार कहते हुए भी सभी उसके लिये खास खास मकान बनाते है, मंदिर, मस्जिद और चर्च आदि के नाम से।

डा० भगवान्दास ने सभी धर्मों के अनुयायियों की नासमझी में भी समता दिखाई है। मेरा मजहब सबसे अच्छा है, दूसरे मजहब-वालों को जबरदस्ती से अपने मजहब में लाना चाहिए, यह अहकार सबमे देखा जाता है। यह नहीं समझते कि खास खास तरीके खास खास देशकाल अवस्था के लिये बताए गए है। अंत मे डा० भगवान्-दास ने इस बात पर बल दिया है कि आदमी की रूह इन सबों मे बड़ी है। आदमियो ने ही मजहब की शक्ल समय समय पर बदल डाली है।

स्वराज की रूपरेखा

डा० भगवान्दास ने श्री चितरंजनदास के साथ मिलकर स्वराज की रूपरेखा जनवरी, १९२३ ई० मे लिखी थी। इस योजना के अनुसार प्रशासन का आधार ग्राम तथा नगर होगे और उनके ऊपर क्रमश जिला, प्रात या राज्य तथा अखिल भारतीय केंद्र होंगे। चुनाव अप्रत्यक्ष प्रणाली से क्रमशः नीचे से ऊपर के सगठन के लिये होगे। प्रत्येक पुरुष या स्त्री, जो भारत मे कम से कम ७ वर्ष रह चुका है और जिसकी उम्र यदि पुरुष है तो २५ वर्ष की और स्त्री है तो २१ वर्ष की है, प्रारंभिक ग्राम या नगर पचायत का मतदाता हो सकता या सकती है। ग्राम अथवा नगर से लेकर राष्ट्र पचायत तक सभी के सदस्य देश के स्थायी निवासी होगे और उनकी उम्र ४० वर्ष से कम न होगी। इसके अतिरिक्त उनके लिये पचायत की मर्यादा के अनुसार अधिकाधिक शिक्षित होना और जीवन के किसी क्षेत्र मे अच्छा कार्य करके संमानप्राप्त होना तथा जीवकोपार्जन के कार्य से निवृत्त होना आवश्यक होगा।

डा० भगवान्दास गांधीयुग के महान् दार्शनिक थे। गाधी जी और रवींद्रनाथ ठाकुर के साथ वह भारत के उन तीन नेताओ मे से एक थे जो ज्ञान, भाव एवं क्रिया के क्षेत्रों का नेतृत्व करते थे और सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् के मूल्यो का प्रतिनिधित्व करते थे। डा० भगवान्दास के साथ दार्शनिको की उन महान् परंपरा का अत होता है जो प्राच्य और पाश्चात्य भूत और वर्तमान के समन्वय पर प्रतिष्ठित थी। डा० भगवान्दास ने अपने दर्शन में हीगेल और शंकराचार्य के दर्शनों का, निर्विकार ब्रह्म के सिद्धांतो का मौलिक रूप के समन्वय किया है।

उनकी प्रमुख रचनाएँ ये हैं—१. मानवधर्मसार, २. प्रणववाद, ३. पुरुषार्थ, ४. समन्वय, ५. विविधार्थ, ६. बुद्धिवाद बनाम शास्त्रवाद ७. दार्शनिक प्रयोजन।

८. दि साइंस ऑव इमोशंस, ९. दि साइंस ऑव पीस; १०. कृष्ण; ११. दि इसेंशल यूनिटी ऑव ऑल रिलीजंस; १२. दि साइंस ऑव सोशल आर्गेनाइजेशन; १३. दि साइंस ऑव दि सेल्फ; १४. एंशेंट साइको-सिंथेसिस वर्सस माडर्न साइको-एनालिसिस।

[रा० रा० शा०]

भगीरथ इक्ष्वाकुवंशीय सम्राट् दिलीप के पुत्र जिन्होंने घोर तपस्या से गंगा को पृथ्वी पर अवतरित कर कपिल मुनि के शाप से भस्म हुए ६० हजार सगरपुत्रों के उद्धारार्थ पीढ़ियों से चले प्रयत्नों को सफल किया था। गंगा को पृथ्वी पर लाने का श्रेय भगीरथ को है, इसलिये इनके नाम पर उन्हें 'भागीरथी' कहा गया। गंगावतरण की इस घटना का क्रमबद्ध वर्णन वायु (४७।३७), विष्णु (४।४।१७), हरवंश (१।१५), ब्रह्मवैवर्त (१।१०), महाभारत (अनु० १२६।२६), भागवत (९।९) आदि पुराणों तथा वाल्मीकीय रामायण (बाल०, १।४२–४४) में मिलता है। [श्या० ति०]

भटनागर, सर शांतिस्वरूप, (सन् १८९४–१९५५) भारतीय वैज्ञानिक का जन्म पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) के जिला शाहपुर के भेड़ा नामक स्थान में हुआ था, जहाँ तीन वर्ष पूर्व एक अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिक, डा० बीरबल साहनी, ने जन्म लिया था। इनके पिता, लाला परमेश्वरीसहाय, स्कूल में अध्यापक थे, और जब शांतिस्वरूप केवल आठ मास के थे, तब उनका स्वर्गवास हो गया। इनके नाना, मुंशी प्यारेलाल ने आठ, नौ साल की उम्र तक इन्हें पाला और पढ़ाया, पर बाद में इनकी शिक्षा का भार इनके पिता के मित्र, लाला रघुनाथसहाय ने अपने ऊपर ले लिया।

लाहौर के दयालसिंह हाई स्कूल से प्रथम श्रेणी में एंट्रेंस की परीक्षा पास कर दयालसिंह कालेज में भरती होने के बाद ये प्रोफेसर रुचिराम साहनी तथा डा० जगदीशचंद्र बसु के संपर्क में आए, जिससे इनका विज्ञानप्रेम प्रगाढ़ हो गया। एम० एस-सी० परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् ये दयालसिंह कालेज में डिमास्ट्रेटर के पद पर नियुक्त हुए, किंतु सन् १९१९ में इसी कालेज से छात्रवृत्ति पा तथा लंदन युनिवर्सिटी में भरती होकर इन्होंने सर विलियम रैमजे इंस्टिट्यूट में अनुसंधान कार्य आरंभ किया। यहाँ आपको एक और छात्रवृत्ति मिली जिससे छुट्टियों में जर्मनी के कैसर विल्हेल्म इंस्टिट्यूट तथा पैरिस की सारबान नामक वैज्ञानिक संस्था में भी आप अध्ययन कर सके। सन् १९२१ में लंदन युनिवर्सिटी से आपको डी० एस० सी० की उपाधि मिली।

भारत में वापस आने पर आप काशी हिंदू विश्वविद्यालय में रसायन के प्रोफेसर नियुक्त हुए, जहाँ आपके अनुसंधान कार्यों से आपकी प्रसिद्धि हुई। सन् १९२४ में आप पंजाब युनिवर्सिटी में प्रोफेसर तथा रसायनशालाओं के डाइरेक्टर होकर चले गए। यहाँ आपकी प्रतिभा और चमक उठी। आपके अनुसंधानों से कई उद्योगपतियों ने लाभ उठाकर, जो धन आपको दिया वह सब आपने युनिवर्सिटी की कैमिकल सोसायटी को दान कर दिया। आगे चलकर भारत सरकार के औद्योगिक एवं वैज्ञानिक अन्वेषण बोर्ड के डाइरेक्टर के पद पर आपकी नियुक्ति से भारतीय उद्योगों को बड़ी सहायता मिली।

डाक्टर भटनागर ने पायस संबंधी विस्तृत खोजें की, जिनसे अन्य वैज्ञानिकों ने भी लाभ उठाया। अणुओं की रचना, उनके चुंबकीय गुण तथा रासायनिक चुंबक विज्ञान के क्षेत्र में आपने विशेष रूप से अन्वेषण किए, जिनसे आपकी गणना संसार के प्रमुख वैज्ञानिकों में की जाने लगी। चुंबकीय रसायन पर अंग्रेजी में सर्वप्रथम प्रकाशित होनेवाला ग्रंथ आपने प्रो० ए० एस० माथुर के सहयोग से लिखा। कोलाइड तथा प्रकाश रसायन पर भी आपने उल्लेखनीय अनुसंधान किए।

इनके अतिरिक्त, डा० भटनागर ने अनेक औद्योगिक महत्व के अनुसंधान किए, जिनमें पेट्रोलियम संबंधी अनुसंधान विशिष्ट हैं। इनसे लाभ उठाकर स्टील ब्रदर्स नामक व्यापारी संस्था ने आपको चार लाख रुपए नकद तथा लाभ का एक अंश दिया। यह धन तथा इस प्रकार की अन्य आय आपने पंजाब युनिवर्सिटी को दे दी। मिट्टी के तेल से अधिक प्रकाश प्राप्त करना, गूदड़ से पश्मीना सिल्क बनाना, वनस्पति तेलों से अधिक उपयोगी वस्तुएँ तैयार करना तथा सुधारित बैकेलाइट, प्लैस्टिक इत्यादि बनाना, ऐसी अनेक नई रीतियों की खोज इन्होंने की।

डा० भटनागर को भारत के अधिकांश विश्वविद्यालयों ने सम्मानित किया था। सन् १९३८ में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के आप सभापति मनोनीत किए गए थे। लंदन की कैमिकल सोसायटी तथा इंस्टिट्यूट ऑव फिजिक्स के आप फेलो तथा फैरेडे सोसायटी के सम्मानित सदस्य चुने गए। भारत की विदेशी सरकार ने भी आपको 'आर्डर ऑव दि ब्रिटिश एपायर' का तमगा तथा नाइट की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। वैज्ञानिक के सिवाय आप साहित्यसेवी तथा उर्दू के कवि भी थे। आपकी मृत्यु १ जनवरी, सन् १९५५ को हुई।

सं० ग्रं० — श्री श्यामनारायण कपूर : भारतीय वैज्ञानिक

[भ० दा० व०]

भटिंडा १. जिला, भारत के हरियाना राज्य का एक जिला है जो उत्तर-पूर्व में संगरूर, पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम में फिरोजपुर तथा दक्षिण में हिसार से घिरा है। इसका क्षेत्रफल २,७०६ वर्ग मील तथा जनसंख्या १०,५५,१७७ (१९६१) है।

२. नगर, स्थिति : ३०° १३' उ० अ० तथा ७५° ०' पू० दे०। भटिंडा जिले का प्रमुख नगर है। प्राचीन काल में इसका नाम 'विक्रमगढ' था। प्रसिद्ध अनाज उत्पादक क्षेत्र में स्थित होने के कारण अनाज के व्यापार का प्रमुख केंद्र है। यहाँ से चीनी, चावल तथा बिनौले का आयात एवं गेहूँ, चना तथा तिलहन का निर्यात किया जाता है। यह ऐतिहासिक स्थान है जहाँ ११८ फुट ऊँचा एक किला है जो कई मील दूर से देखा जा सकता है। इस किले में ३८ बुर्ज हैं। इसकी जनसंख्या ५२,२५३ (१९६१) है।

भट्ट, गदाधर तैलंग देश के हनुमानपुर से यह उत्तर आए। जीव गोस्वामी ने इनका एक पद 'श्याम रंग रँगी' सुनकर इन्हें वृंदावन बुलाया और सं० १६०० के लगभग यह वृंदावन पहुँचे। इन्होंने रघुनाथ भट्ट से दीक्षा ली और उन्हीं के समान श्रीमद्भागवत की सरस कथा सबको सुनाने लगे। इन्होंने मदनमोहन का प्रतिष्ठापक

कर सेवा आरंभ की। यह मंदिर वर्तमान है और इनके वंशज अब तक सेवा करते हैं। भट्ट जी की रचना 'मोहित वाणी' में संकलित तथा प्रकाशित हो चुकी है। इनका समय सं० १५६० से सं० १६३० के मध्य है। [ब्र० र० दा०]

भट्ट गोपाल गोस्वामी कावेरी नदी के तट पर श्रीरंग के पास बेलगुंडी ग्राम में इनका जन्म सं० १५५३ वि० मे हुआ। सं० १५६८ में जब श्रीगौरांग दक्षिण यात्रा करते हुए श्रीरंग आए, वेंकट भट्ट के यहाँ चातुर्मास व्यतीत किया था। गोपाल भट्ट की सेवा से प्रसन्न हो इन्हें दीक्षा दी तथा जाते समय विवाह न करने और अध्ययन एवं माता पिता की सेवा करने का उपदेश दिया। माता पिता की मृत्यु पर सं० १५८८ मे वृंदावन आए। श्रीगौरांग के अप्रकट होने पर वृद्ध गोस्वामियों के विशेष आग्रह पर यह उस आसन पर बैठे। उत्तरी तथा पश्चिमी भारत के बहुत से लोग इनके शिष्य हुए। इसके अनतर यह यात्रा को निकले। देववन में गोपीनाथ को शिष्य बनाया तथा गंडकी नदी से एक शालिग्राम शिला ले आए, जिसकी निरतर पूजा करते। सं० १५६६ मे इनकी अभिलाषा के कारण शिला से राधारमण की मूर्ति का प्राकट्य हुआ। महारासस्थली का स्थान निश्चित कर कुटी बनाई और उसी मे सेवा पूजा करने लगे। स० १६४२ मे भट्ट जी का तिरोधान हुआ। कृष्णतत्व तथा अवतारवाद पर कई स्फुट संदर्भ लिखकर जीव गोस्वामी को सुशृखलित करने को दिया और उन्होंने षट् सदर्भ पूरा किया। इनका हरिभक्तिविलास बृहत् ग्रंथ है, जो वैष्णव स्मृति रूप मे विख्यात है। [ब्र० र० दा०]

भट्ट नारायण अपनी केवल एक कृति वेणीसंहार के द्वारा संस्कृत साहित्य मे अमर हैं। सरकृत वाड्मय मे समुपलब्ध नाटको मे इसका विशिष्ट स्थान है। विद्वज्जन इसे नाट्यशास्त्र के सिद्धातों के अनुकूल दृष्टिकोण से लिखा गया नाटक मानते हैं इसीलिये इसके उदाहरणों को अपने लक्षणग्रंथो में वामन, विश्वनाथ आदि ने विशेष रूप से उद्धृत किया है। नाटकीय सिद्धातों के निदर्शन का विशेष लक्ष्य होने के कारण ही यद्यपि इसमे गतिशीलता का अभाव माना गया है तथापि इसके पद्यों मे रौद्र का जो सरस प्रवाह है वह सहृदय को प्रगतिशील बनाने के लिये पर्याप्त है। इसकी कथावस्तु महाभारत से ली गई है। महाभारत के द्यूत प्रसंग मे पांचाली द्रौपदी का भरी सभा मे दुःशासन के द्वारा घोर अपमान हुआ था। दुर्योधन आदि की आज्ञा से दुःशासन उसे केश पकड़कर घसीट लाया था जिसपर उसने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक इस अपमान का बदला नही चुकाया जायगा, मै अपने इन केशो को नही बाँधूँगी। बलशाली भीम ने उसकी यह प्रतिज्ञा पूर्ण की और दुःशासन का वध कर रुधिर से रंगे हुए हाथो से द्रौपदी की वेणी गूँथी जिससे उसका हृदय शांत हुआ। भट्ट नारायण ने इस कथानक को परम रमणीय नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके निशाचित्रण इतने सजीव हैं कि उनको मनीषिवर्ग ने 'निशानारायण' की उपाधि से अलंकृत किया है। उनका जीवनवृत्त अनिश्चित है किंतु वामन और आनंदवर्धनाचार्य के ग्रंथों मे वेणीसहार के उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि यह उनसे पूर्ववर्ती हैं। वामन का समय बेल्वल्कर ने सप्तम शताब्दी का अंतिम भाग स्वीकृत किया है। इस प्रकार भट्ट नारायण अष्टम शताब्दी से पूर्व के सिद्ध होते हैं। विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर की पारिवारिक परंपरा में यह बात स्वीकृत की जाती है कि सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बंगाल के राजा आदिशूर ने इनको कान्यकुब्ज से बुलवाया था। आदिशूर ने बगाल मे पाल वंश से पूर्व राज्य किया था। [रा० चं० या०]

भट्ट, बाण संस्कृत महाकवियों में बाण भट्ट का विशिष्ट महत्व है। उत्कृष्ट गद्यकाव्यकार के रूप में उन्हे सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त, ऐतिहासिक दृष्टि से भी उनको अपूर्व विशेषता प्राप्त है। संस्कृत इतिहास के वे ऐसे अकेले कलाकार हैं जिनके जीवनवृत्त के विषय मे हमे बहुत सी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त है, जो प्राय उन्हीं के ग्रंथो मे उपलब्ध है। हर्षकालीन राजनीतिक और सामाजिक अनेक विषयों के ज्ञान और सूचना देने के कारण 'हर्षचरित' का विशेष महत्व है। यह भी पता चलता है कि बाण का काल हर्षवर्धन के शासनकाल (६०६ ई० से ६४६ ई०) के आसपास ही था। उस युग में कवि ने काव्यरचना भी की थी। 'हर्षचरित' के तीन आरभिक उच्छ्वासों तथा 'कादबरी' के प्रारंभिक पद्यों मे बाण के वंश और जीवनवृत्त से संबद्ध जो सूचना मिलती है उसका सारांश यह है ·

उनके पूर्वज वेदवेदागनिष्णात और विविध-विद्या-विशारद वात्स्यायन गोत्री थे। सोननद के किनारे 'प्रीतिकूट' मे उनके पूर्वजों का निवास था। इसी वंश मे इनके वृद्ध प्रपितामह हुए थे। उनका नाम 'कुबेर' था और गुप्तवशीय राजाओ द्वारा उन्हे समान प्राप्त हुआ था। उनके पुत्रों मे पाशुपत के अनेक पुत्र थे। उनमे से अर्थपति एक था जिसके ११ पुत्रो मे चित्रभानु थे। इन्ही के पुत्र थे बाण भट्ट। इनकी माता राजदेवी का देहात तभी हो गया था जब बाण शिशु थे। इनका परिवार धनसपन्न था। माता के निधन पर चित्रभानु ने माता पिता दोनों के वात्सल्य और कर्तव्य का भार उठाया। बाण जब १४ वर्ष के थे तभी पिता का स्वर्गवास हो जाने से बड़े दुःखी हुए। पैतृक धन, वैभव, योग्य अभिभावक का अभाव और युवावस्था की चपलता के कारण वे आखेट आदि के व्यसनो मे पड़ गए। घुमक्कडी प्रकृति और अल्हडता के कारण वे आवारा होकर कुसंगति मे जा पडे। नर्तक, गायक, नट, विट आदि मडली बनाकर वे देशाटन को निकल पड़े। जब घूम फिर कर वापस आए तब स्वार्जित अनुभूतियो के कारण उनकी बुद्धि विकसित हुई। जब वे हर्ष के यहाँ पहुचे तो पहले तो 'हर्ष' ने उनपर व्यंग्य कसे तथा उनकी अवहेलना की। पर बाद मे 'बाण' के पांडित्य, शास्त्रज्ञान और काव्यप्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हे राजसभा मे आश्रय, समान और अपना स्नेह दिया। कुछ समय बाद घर लौटने पर लोगों द्वारा और अपने छोटे भाई के बार बार पूछने पर उन्होने 'हर्ष' की प्रशस्ति मे 'हर्षचरित' नामक गद्यकाव्य लिखा।

बाण भट्ट के सर्वाधिक प्रसिद्ध दो ग्रंथ—(१) हर्षचरित (बाण के अनुसार ऐतिहासिक कथा से सबद्ध होने के कारण आख्यायिका) और (२) कादंबरी (कल्पित वृत्ताश्रित होने से कथा)—हैं। 'हर्षचरित' को कुछ लोग ऐतिहासिक कृति मानते हैं। परंतु शैली,

वृत्तवर्णन, कल्पनात्मकता और कथारूढ़ियों (मोटिफ) के प्रयोग विनियोग के कारण इसे 'ऐतिहासिक रोमांस' कहना कदाचित् असंगत न होगा। कादंबरी का आधार कल्पित कथा है। 'सुबंधु' ने गद्यकाव्य की जिस अलंकृत शैली को प्रवर्तित किया, बाण ने उसे विकसित और उन्नत बनाया। कादंबरी में उसका उत्कृष्टतम रूप निखर उठा है। संस्कृत गद्यकाव्यों मे इस कथाकाव्य का स्थान अप्रतिम है। इन दोनों कृतियों में तत्कालीन धर्म, संस्कृति, समाज, परंपरा, आस्थाविश्वास, कला, साहित्य, मनोरंजन, राजकीय वैलासिक जीवन आदि का इतना संश्लिष्ट, ब्योरेवार और जीवंत चित्र है जैसा अन्यत्र दुर्लभ है। बाण की भाषा शैली प्रौढ है, यद्यपि विशेषणो की बहुलता को आडंबर बताकर अनेक आलोचकों ने उसे बोझिल, गतिहीन और अल्पसार बताया है। अंशत: यह सही भी है किंतु आलंकारिक चमत्कारसर्जना युक्त उनकी वर्णनशैली मे विशेषण प्रयोग अर्थहीन नहीं है। वर्ण्यवस्तु का चित्रोत्थापक और ब्योरेवार वर्णन इस कारण लबा चौडा हो गया है जिससे शब्दों द्वारा अंकित सश्लिष्ट बिंब के सभी रंगों और रेखाओं का सूक्ष्मतम चित्रण किया जा सके : चित्रग्राहिणी प्रतिभा की सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति से संपन्न बाण को बिबोत्थापन मे जो सफलता मिली है, वह सस्कृत साहित्य मे कदाचित किसी को भी नही मिली। इन कृतियों को, इन्हीं ब्योरेवार वर्णन के कारण, तत्कालीन सास्कृतिक इतिवृत्त का अनुपम साधन कहा जा सकता है। उनकी शैली में वर्णननैपुण्य, निरीक्षणप्रज्ञा, कवि प्रतिभा, शास्त्रवैदुष्य, रसभावघनता, अलकारचमत्कृति, रीतिप्रौढता आदि गुणों का पूर्ण उन्मेष है। लबे लबे, विशेषण डबरित और समासजटिल भाषाशैली की रचना मे वे जितने पटु और समर्थ हैं— उतने ही कुशल और सफल है समासहीन और प्रभावोत्पादन मे छोटे छोटे लघुतम वाक्यों के अत्यत समर्थ प्रयोग मे। कोमलकांत पदावली और ओजःकांतिमयी शब्दयोजना मे भी उनकी शक्ति विलक्षण थी। कादबरी उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। पर इसकी कथा कुछ उलझी हुई है। पूर्वार्ध की ही रचना—(जो ग्रथ का २/३ भाग है)—बाण कर पाए थे—शायद इस कारण भी कथा सुलझ न पाई। इनके पुत्र पुलिंद (भूषण) ने सफलतापूर्वक उत्तरार्ध लिखकर इसे पूरा किया। पिता की शैली के अनुकरण में उन्हे आंशिक सफलता ही मिली। कहा जाता है कि पद्य मे भी 'बाण' ने कादंबरी कथा लिखी थी। पर उक्त ग्रंथ अबतक अप्राप्त है। 'चडीशत' नामक स्तोत्र को बाणरचित माना जाता है। ('पार्वती परिणय' नाटक को भी कुछ पडित बाणकृत मानते हैं। पर कुछ शोधको ने उसे १४वी शती के वामनभट्ट बाण की कृति माना है)।

सं० ग्रं०—हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर—कलकत्ता विश्वविद्यालय; सस्कृत सुकवि समीक्षा—बलदेव उपाध्याय, 'चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी। सस्कृत साहित्य का इतिहास—वाचस्पति गरोला, वही। संस्कृत काव्यकार—डा० हरिदत्त शास्त्री।

भट्टिकाव्य महाकवि भट्टि की कृति। इसका वास्तविक नाम रावणवध है। इसमें भगवान् रामचद्र की कथा जन्म से लगाकर लंकेश्वर रावण के संहार तक उपवर्णित है। इस महाकाव्य का उपजीव्य ग्रंथ वाल्मीकिकृत रामायण है। कथाभाग के उपकथन की दृष्टि से यह महाकाव्य २२ सर्गों में विभाजित है तथा महाकाव्य के सकल लक्षणों से समन्वित है। रचना का मुख्य उद्देश्य व्याकरण एवं साहित्य के लक्षणों को लक्ष्य द्वारा उपस्थित करने का है।

लक्ष्य द्वारा लक्षणों को उपस्थित करने की दृष्टि से यह महाकाव्य चार काडों में विभाजित है जिममें तीन कांड संस्कृत व्याकरण के अनुसार विविध शब्दरूपों को प्रयुक्त कर रचयिता की उद्देश्यसिद्धि करते हैं। मध्य मे एक कांड काव्यसौष्ठव के कतिपय अंगों को अभिलक्षित कर रचा गया है। रचना का अनुक्रम इस प्रकार है कि प्रथम काड व्याकरणानुसारी विविध शब्दरूपों को प्रकीर्ण रूप से संगृहीत करता हैं। द्वितीय काड अधिकार कांड है जिसमें पाणिनीय व्याकरण के कतिपय विशिष्ट अधिकारों मे प्रदर्शित नियमों के अनुसार शब्दप्रयोग है। तृतीय काड साहित्यिक विशेषताओ को अभिलक्षित करने की दृष्टि से रचा गया है अतएव इस कांड को महाकवि ने प्रसन्नकाड की सज्ञा दी है। इस काड में चार अधिकरण हैं. प्रथम अधिकरण मे शब्दालकार एवं अर्थालंकार के लक्ष्य हैं — द्वितीय अधिकरण मे माधुर्य गुण के स्वरूप का प्रदर्शन लक्ष्य द्वारा किया गया है, तृतीय अधिकरण में भाविकत्व का स्वरूप प्रदर्शन करते हुए कथानक के प्रसंगानुसार राजनीति के विविध तत्वो एवं उपायो पर प्रकाश डाला गया है। प्रसन्न कांड का चौथा अधिकरण इस महाकाव्य का एक विशेष रूप है— इसमे ऐसे पद्यो की रचना की गई है जिनमे संस्कृत तथा प्राकृत भाषा का समानांतर समावेश है, वही पद्य संस्कृत मे उपनिबद्ध है जिसकी पदावली प्राकृत पद्य का भी यथावत् स्वरूप लिए है और दोनो भाषा मे प्रतिपाद्य अर्थ एक ही है। भाषा सम का उदाहरण प्रस्तुत करता हुआ यह अंश भट्टिकाव्य की निजी विशेषता है। अंतिम काड पुन. संस्कृत व्याकरण के एक जटिल स्वरूप तिङन्त के विविध शब्दरूप को प्रदर्शित करता है। यह काड सबसे बडा है।

लक्षणात्मक इन चार काडो मे कथावस्तु के विभाजन की दृष्टि से प्रथम काड मे पहले पाँच सर्ग है जिनमे क्रमश रामजन्म, सीताविवाह, राम का वनगमन एवं सीताहरण तथा राम के द्वारा सीतान्वेषण का उपक्रम वर्णित है। द्वितीय काड अगले चार सर्गों को व्याप्त करता है जिसमे सुग्रीव का राज्याभिषेक, वानर भटों द्वारा सीता की खोज, लौट आने पर अशोकवाटिका का भंग और मारुति को पकडकर सभा मे उपस्थित किए जाने की कथावस्तु वर्णित है। तीसरे, प्रसन्नकाड मे अगले चार सर्ग हैं जिनमें सीता के अभिज्ञान का प्रदर्शन, लका मे प्रभात का वर्णन, विभीषण का राम के पास आगमन तथा सेतुबध की कथा है। अंतिम, तिङन्त कांड अगले नौ सर्ग ले लेता है जिनमे शरबध से लगाकर राजा रामचद्र के अयोध्या लौट आने तक का कथाभाग वर्णित है। चारों काड और २२ सर्गों मे १६२५ पद्य हैं, जिनमे प्रथम पद्य मगलाचरण वस्तुनिर्देशात्मक है तथा अंतिम पद्य काव्योपसहार का है। १६२५ पद्यसंख्या के इस महाकाव्य मे अधिकाश प्रयोग अनुष्टुभ श्लोको का है जिनमे सर्ग छह, नौ तथा १४ वाँ एव २२ वाँ उपनिबद्ध हैं। उपजाति छद मे चार सर्ग है, पहला, दूसरा, ११ वाँ और १२ वाँ। दसवें सर्ग मे विविध छदो का प्रयोग किया गया है जिनमे पुष्पिताग्रा प्रमुख है। इनके अतिरिक्त प्रहर्षिणी, मालिनी, औपच्छदसिक, वंशस्थ, वैतालीय, अश्वललित, नदन, पृथ्वी, रुचिरा, नर्कुटक, तनुमध्या, त्रोटक, द्रुतविलंबित, प्रमिताक्षरा, प्रहरणकलिका, मंदाक्राता, शार्दूलविक्रीडित

एवं स्रग्धरा का छुटपुट प्रयोग दिखाई देता है। साहित्य की दृष्टि से भट्टिकाव्य में प्रधानतः ओजोगुण एवं गौड़ी रीति है, तथापि अन्य माधुर्यादि गुणों के एवं वैदर्भी तथा लाटी रीति के निदर्शन भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

स्वयं प्रणेता के अनुसार भट्टिकाव्य की रचना गुर्जर देश के अंतर्गत बलभी नगर में हुई। भट्टि कवि का नाम 'भर्तृ' शब्द का अपभ्रंश रूप है। कतिपय समीक्षक कवि का पूरा नाम भर्तृहरि मानते हैं, परंतु यह भर्तृहरि निश्चित ही शतकत्रय के निर्माता अथवा वाक्यपदीय के प्रणेता भर्तृहरि से भिन्न हैं। भट्टि उपनाम भर्तृहरि कवि बलभीनरेश श्रीधर सेन से संबधित है। महाकवि भट्टि का समय ईसवी छठी शताब्दी का उत्तरार्ध सर्वसंमत है। अलंकार वर्ग में निर्दशित उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भट्टि और भामह एक ही परंपरा के अनुयायी हैं। भट्टि ने स्वयं अपनी रचना का गौरव प्रकट करते हुए कहा है कि यह मेरी रचना व्याकरण के ज्ञान से हीन पाठकों के लिये नहीं है। यह काव्य टीका के सहारे ही समझा जा सकता है। यह मेधावी विद्वान् के मनोविनोद के लिये रचा गया है, तथा सुबोध छात्र को प्रायोगिक पद्धति से व्याकरण के दुरूह नियमों से अवगत कराने के लिये।

भट्टिकाव्य की प्रौढ़ता ने उसे कठिन होते हुए भी जनप्रिय एवं मान्य बनाया है। प्राचीन पठनपाठन की परिपाटी में भट्टिकाव्य को सुप्रसिद्ध पंच महाकाव्य के अंतर्गत स्थान दिया गया है। लगभग १४ टीकाएँ भट्टिकाव्य पर लिखी गईं जिनमें से सर्वाधिक प्रचलित टीकाएँ जयमंगला, मल्लिनाथ की सर्वपथीन एवं जीवानंद कृत हैं। माधवीयधातुवृत्ति में शंकराचार्य द्वारा भट्टिकाव्य पर प्रणीत टीका का उल्लेख मिलता है। [सु० ना० शा०]

भट्टोजि दीक्षित (१७वीं शताब्दी) इनका निवासस्थान काशी था। पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन की प्राचीन परिपाटी में पाणिनीय सूत्रपाठ के क्रम को आधार माना जाता था। यह क्रम प्रयोगसिद्धि की दृष्टि से कठिन था क्योंकि एक ही प्रयोग का साधन करने के लिये विभिन्न अध्यायों के सूत्र लगाने पड़ते थे। इस कठिनाई को देखकर ऐसी पद्धति के आविष्कार की आवश्यकता पड़ी जिसमें प्रयोगविशेष की सिद्धि के लिये आवश्यक सभी सूत्र एक जगह उपलब्ध हों। भट्टोजि दीक्षित ने प्रक्रिया कौमुदी के आधार पर सिद्धांत कौमुदी की रचना इसी पद्धति पर की। इस ग्रंथ पर उन्होंने स्वयं प्रौढ मनोरमा टीका लिखी। पाणिनीय सूत्रों पर अष्टाध्यायी क्रम से एक अपूर्ण व्याख्या, शब्दकौस्तुभ तथा वैयाकरणभूषण कारिका भी इनके ग्रंथ है। इनकी सिद्धांत कौमुदी लोकप्रिय है।

[रा० चं० पां०]

भदोही स्थिति : २५° २४' उ० अ० तथा ८२° ३८' पू० दे०। भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में बाराणसी जिले की एक तहसील एवं नगर है। वाराणसी से ४५ किमी० पश्चिम में स्थित है। यहाँ की जलवायु गरम तथा नम है और भूमि उपजाऊ है। कृषि के अतिरिक्त कालीन तथा दरी बनाने के कुटीर उद्योग भी यहाँ है। भदोही व्यापारिक केंद्र भी है जहाँ से कालीन, दरियाँ तथा बचे हुए कृषि उत्पाद बाहर भेजे जाते हैं। यहाँ की जनसंख्या २०,३०२ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

भद्र (Porch) ड्योढ़ी या द्वारमंडप किसी भवन के मुखद्वार की सुरक्षा के निमित्त उसके सामने बनाई हुई संरचना है। प्रायः यह तीन ओर से खुली होती है, और छत स्तंभों पर, या कभी कभी बिना स्तंभों के ही मुख्य भवन से निकली हुई बाहुधरनों पर आलंबित रहती है। अनेक प्राचीन मंदिरों में जैसे ऐहोल के दुर्गामंदिर में (५वीं शती), खजुराहो के महादेवमंदिर में (१०-११वीं शती), ओसिया, मारवाड़ के सूर्यमंदिर में (९-१०वीं शती) या मोढेरा, गुजरात के सूर्यमंदिर में भद्र का 'द्वारमंडप' स्वरूप विशेष दृष्टिगोचर है। खजुराहो के मंदिरों में इसे 'अर्द्धमंडप' नाम दिया जाता है। मुख्य मंदिर के अतिरिक्त यह अर्द्धमंडप होने के कारण, ड्योढ़ी भी कहा जाने लगा। कहीं कहीं यह तीन ओर से खुला न होकर केवल सामने की ओर ही खुला रहता है, जैसे कांचीपुरम् (कांजीवरम्) के वैकुंठ पेरूपल मंदिर में (८वीं शती) या भुवनेश्वर के वैताल देवल मंदिर में। कालांतर में मुख्यद्वार के सामने निकले हुए किसी प्रकार के छज्जे को, और अलंकरण के लिये बनाए गए स्तंभों को भी भद्र कहा जाने लगा। पश्चिम में भी 'पोर्च' शब्द का उपयोग वास्तविक ड्योढ़ी या द्वारमंडप के अर्थ में तो होता ही है, मुख्यद्वार पर बने स्तंभों सहित छज्जे के लिये या स्तंभश्रेणी के लिये भी होता है। अमरीका में तो तीन ओर से खुली हुई छतयुक्त कोई भी उप संरचना जो किसी भी भवन से मिली हो 'पोर्च' कही जाती है। इस प्रकार इसमें और किसी बरामदे या शयनप्रांगण में प्रायः कुछ अंतर ही नहीं रह जाता।

अति प्राचीन संरचनाओं से भी भद्र के मूल रूप का अनुमान किया जा सकता है। इस दृष्टि से बाडावार पहाड़ियों में लोमश ऋषि की कुटी (३री शती ई० पू०) उल्लेखनीय है। यद्यपि इसका द्वारमंडप तीन ओर से नहीं, केवल सामने से ही खुला है। स्तंभश्रेणी के रूप में भद्र नासिक की गुफाओं (३री शती) में देखे जा सकते हैं, जिनका अनुकरण बाद में बौद्ध वास्तुकला में अबाध गति से हुआ है। मुख्यद्वार पर होने के कारण अलंकरण की दृष्टि से भी इनका महत्वपूर्ण स्थान था।

मिस्र के भित्तिचित्रों से प्रकट होता है कि वहाँ के घरों में भी कभी कभी भद्र बनाए जाते थे। एथेंस के टावर ऑव विंड्स (१ ली शती ई० पू०) के यूनानी भद्र उल्लेखनीय है। पांपेई में भी ऐसे ही भद्र थे। रोम में कभी कभी घरों के सामने सड़क की ओर लंबी स्तंभ श्रेणी होती थी, जिसे भद्र कहा जा सकता है। रोमैनेस्क (Romanesque) युग में गिरजाघरों में पश्चिमी द्वारों पर बाहर निकला हुआ सामान्य भद्र बनाया जाने लगा। इतालवी रोमैनेस्क कालीन इमारतों में ऐसे ही भद्रों के नमूने वेरोना (१२ वीं शती), मोदेना (१२वीं शती) और परमा (१३वीं शती) में देखे जा सकते हैं। फ्रांस में और विशेषकर बरगंडी में भद्र के स्वरूप में और भी विकास हुआ। वहाँ पर एक ऊँची गुंबजवाली संरचना के रूप में यह इमारत का विशेष महत्वशाली अंग हो गया जो काफी चौड़ा, कभी कभी तो सारे गिरजाघर की चौड़ाई के बराबर ही, होता था।

विविधताप्रेमी इंग्लैंड ने भद्र का इस प्रकार विकास किया कि इसने 'गेलिली' नाम से एक अलग संरचना का ही रूप ले लिया। पुनरुद्धार काल में भद्र का उपयोग पोर्टिको या ओसारा के रूप में

ही होने लगा। किंतु १८वीं शती के अंत तक इंग्लैंड और अमरीका मे सभी घरों में दो या चार स्तभवाले सादे भद्रों का निर्माण आम हो गया।

आजकल भी मंदिर या कलाभवन आदि जैसी प्राचीन परिपाटी की उद्धारक कतिपय विशेष इमारतों को छोड़कर प्रायः सभी महत्वपूर्ण इमारतों में भद्र का प्रयोग उपयोगमूलक हो गया है। उपयोग की दृष्टि से स्तंभ अनावश्यक ही नही, बाधक भी समझे जाने लगे हैं, और द्वार पर छाया के लिये बाहुधरनों पर आलबित सादे भद्र ही पर्याप्त माने जाते हैं। स्तभ होते भी हैं तो पीछे की ओर ही, ताकि द्वार पर आनेवाले वाहनो के लिये तीन ओर से बिल्कुल खुला निर्बाध स्थान उपलब्ध हो सके। वर्तमान ढाँचेदार संरचनापद्धति, सादे छज्जे जैसे भद्रों के लिये विशेष अनुकूल सिद्ध हुई है। अलंकरण के नाम पर संपूर्ति सामग्री की विविधता और कुछ खडी तथा कुछ पडी सीधी रेखाओं को ही प्रमुखता दी जाती है। भारी और अलंकृत स्तभों युक्त भद्र भारवाही सरचनापद्धति के साथ ही, बल्कि उससे भी अधिक तेजी से लुप्त होते जा रहे हैं। [वि० प्र० गु०]

भद्रबाहु महावीर निर्वाण के लगभग १५० वर्ष पश्चात् (ईसवी सन् के पूर्व लगभग ३६७) भद्रबाहु नाम के सुप्रसिद्ध जैन आचार्य हो गए हैं जो दिगबर और श्वेताबर दोनो सप्रदायों द्वारा अंतिम श्रुतकेवली माने जाते है। भद्रबाहु चंद्रगुप्त मौर्य के समकालीन थे। उस समय जब मगध मे भयकर दुष्काल पड़ा तो अनेक जैन भिक्षु भद्रबाहु के नेतृत्व मे समुद्रतट की ओर प्रस्थान कर गए, शेष स्थूलभद्र के नेतृत्व मे मगध मे ही रहे। (दिगबर मान्यता के अनुसार चंद्रगुप्त जब उज्जैनी मे राज्य करते थे तो भद्रबाहु ने द्वादशवर्षीय अकाल पड़ने की भविष्यवाणी की। इसपर भद्रबाहु के शिष्य विशाखाचार्य संघ को लेकर पुन्नार चले गए, जबकि रामिल्ल, स्थूलभद्र और भद्राचार्य ने सिंधुदेश के लिये प्रस्थान किया)। दुष्काल समाप्त हो जाने पर जैन आगमों को व्यवस्थित करने के लिये जैन श्रमणो का एक संमेलन पाटलिपुत्र मे बुलाया गया। जैन आगमों के ११ अंगो का तो सकलन कर लिया गया लेकिन १२वाँ अग दृष्टवाद चौदह पूर्वों के ज्ञाता भद्रबाहु के सिवाय और किसी को स्मरण नही था। लेकिन भद्रबाहु उस समय नेपाल मे थे। ऐसी परिस्थिति मे पूर्वों का ज्ञान सपादन करने के लिये जैन सघ की ओर से स्थूलभद्र आदि साधुओ को नेपाल भेजा गया, और भद्रबाहु ने स्थूलभद्र को पूर्वों की शिक्षा दी।

भद्रबाहु का सबसे प्राचीन उल्लेख देवर्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा ४५३ ई० मे रचित 'कल्पसूत्र' की 'स्थविरावलि' मे मिलता है, जहाँ इन्हें यशोभद्र का शिष्य बताया है। भद्रबाहु बृहत्कल्प, व्यवहार और दशाश्रुतस्कध नाम के तीन छेदसूत्रों के कर्ता माने जाते हैं।

भद्रबाहु ने आचारांग, सूत्रकृतांग, सूर्यप्रज्ञप्ति, व्यवहार, कल्प (बृहत्कल्प) दशाश्रुतस्कंध, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक और ऋषिभाषित नामक दस आगम ग्रंथों पर प्राकृत गाथाओं में निर्युक्तियो की भी रचना की है, लेकिन ये भद्रबाहु दूसरे हैं। इनका समय विक्रम की दूसरी शताब्दी बताया जाता है। भद्रबाहु ने (उपसर्गहर) स्तित की भी रचना की है। मेरुतुंग के प्रबंधचिंतामणि में वराहमिहिर नाम के प्रबध मे वराहमिहिर को भद्रबाहु का ज्येष्ठ भ्राता कहा है। वराहमिहिर ज्योतिषशास्त्र के बड़े विद्वान् थे, इन्होने वाराहीसंहिता नाम के ज्योतिषशास्त्र की रचना की है। राजशेखर के प्रबधकोष मे भी भद्रबाहु और वराहमिहिर का उल्लेख मिलता है।

सं० ग्रं०—जगदीशचंद्र जैन. प्राकृत साहित्य का इतिहास। [ज० चं० जै०]

भद्रावती स्थिति : १३° ५२' उ० अ० तथा ७५° ४०' पू० दे०। भारत में मैसूर राज्य के शिवमोगा जिले का, शिवमोगा से १८ किमी० दूर स्थित एक नगर है। लोहा इस्पात के कारखाने के कारण नगर की काफी प्रसिद्धि है। इस कारखाने की विशेषता यह है कि इसमें ईंधन के रूप मे लकडी के कोयले का उपयोग होता है। लोहा बाबाबूदन की पहाड़ियों एवं चूना मंडी गुड्डा मे प्राप्त किया जाता है। लोहे इस्पात के अतिरिक्त अल्कतरा, अमोनियम सल्फेट, सीमेंट आदि पदार्थों का उत्पादन भी होता है। इसकी जनसंख्या ६५,७७६ (१९६१) है। [सु० चं० श०]

भरणपोषण (Maintenance, मेंटनेंस) विधि द्वारा कतिपय व्यक्ति बाध्य हैं कि वे कुछ व्यक्तियो का, जो उनसे विशेष संबंध रखते हैं, भरणपोषण करें। यही भरणपोषण या गुजारा पाने का अधिकार है। भरणपोषण में अन्न, वस्त्र एवं निवास ही नही वरन् आधारित व्यक्ति के स्तर की सुख और सुविधा की वस्तुएँ भी संमिलित हैं।

भरणपोषण पाने का अधिकार व्यक्तिगत विधि में भी प्रदत्त है और आपराधिक व्यवहारसंहिता धारा ४८८ में भी। हिंदू दत्तक एवं पोषण विधि, १९५६, मे इस अधिकार को विस्तृत कर दिया गया है।

दो प्रकार के व्यक्ति भरणपोषण के अधिकारी हैं १. वे जिनका अधिकार संबंध पर आधारित है, २ वे जिनका आधार देनदार के कब्जे मे संपत्ति होने पर निर्भर है।

प्रत्येक हिंदू अपने वृद्ध माता, पिता, पत्नी, अवयस्क पुत्र, एवं अविवाहित पुत्रियो का (चाहे वे वैध हो या अवैध) भरणपोषण करने के लिये बाध्य है। उपपत्नी, पितामह तथा पितामही और पौत्रादि के पोषण का भार वहन करना, उसके लिये आवश्यक नहीं है। इस व्यक्तिगत दायित्व के अतिरिक्त यदि किसी हिंदू को संपत्ति दाय के रूप मे प्राप्त होती है तो उसका दायित्व हो जाता है कि वह उन सब व्यक्तियों का पोषण करे जिनका पोषण मृतक का वैधानिक या नैतिक कर्तव्य था। उदाहरणार्थ श्वशुर का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह अपनी निर्धन और विधवा पुत्रवधू का भरणपोषण करे, किंतु यदि उसकी मृत्यु के पश्चात् पुत्र उसकी संपत्ति पाते हैं तब उनका विधि के अंतर्गत दायित्व है कि वे उस संपत्ति द्वारा उसका पोषण करें। संयुक्त परिवार के कर्ता का दायित्व है कि वह सभी सदस्यों का उनकी विधवा पत्नियो तथा संतानो का पोषण करे। यदि किसी सदस्य को किसी निर्योग्यता के कारण दाय से वंचित होना पड़ता है तो उसकी सपत्ति (अर्थात् जो भाग उसे मिलता वह) पोषणार्थ उत्तरदायी है।

पत्नी का भरणपोषण — पत्नी को भरणपोषण पाने का अधिकार है, चाहे पति के पास संपत्ति हो अथवा न हो। यदि पत्नी उचित कारणवश, जैसे पति के दुष्टतापूर्ण व्यवहार के कारण या उसके संक्रामक रोगों से आक्रांत होने के कारण, पति से विलग रहती है तब भी वह पोषण की अधिकारिणी है। पति के उत्तराधिकारी से भी वह अधिकार की माँग कर सकती है किंतु यह आवश्यक है कि वह अविवाहित और सुचरित्र रहे। हिंदू उत्तराधिकार विधि, १९५६, के अंतर्गत पत्नी को पति की मृत्यु के बाद संपत्ति का भागी होने का अधिकार है। यदि संयुक्त परिवार के अन्य सदस्य उसे उसका अंश देकर विलग कर दें तो पोषण की माँग पत्नी न कर सकेगी।

उपपत्नी का पोषण—उपपत्नी का संबंध चाहे जितने दीर्घकाल तक क्यों न रहा हो उसे अपने उपपति से पोषण पाने का कोई अधिकार नहीं है किंतु यदि वह मृत्यु पर्यंत उपपति के साथ धर्मपूर्वक रही हो तो उसे अपने उपपति की संपत्ति द्वारा पोषण पाने का अधिकार है।

भरणपोषण का धन — धन का परिमाण, चाहे वह अनुबंध द्वारा निश्चित हो चाहे न्यायालय द्वारा, यदि आवश्यकता हो तो परिवार की आय में कमी या वृद्धि होने पर तदनुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है। किंतु यदि पत्नी को एक बार ही पर्याप्त धन दे दिया गया है और उस धन को वह व्यय कर चुकी है तब उसे पुन: धन पाने का अधिकार नहीं है।

निवास एवं पोषण— विधवा पत्नी तथा अविवाहिता पुत्रियों को यह अधिकार है कि वे परिवार के निवासगृह में रहें। यदि संयुक्त परिवार के अन्य सदस्य वह मकान विक्रय कर देते हैं और क्रेता को इस अधिकार का ज्ञान है तब इस स्थिति में निवास का अधिकार नष्ट नहीं होता। किंतु यदि हस्तांतरी को इस अधिकार का ज्ञान है तब भी वह उन्हें तब तक स्थानच्युत नहीं कर सकता जब तक वह उन्हें कोई अन्य उपयुक्त वासस्थान न दे। किंतु पत्नी या अविवाहिता पुत्रियों के इस अधिकार की माँग उस क्रेता के विरुद्ध नहीं की जा सकती जिसने मकान पति या पिता से क्रय किया हो या जिसने पति या पिता के विरुद्ध डिक्री निष्पासन में लिया हो, या उसकी संपत्ति के विरुद्ध डिक्री निष्पासन में लिया हो, यदि पिता या परिवार का कर्ता किसी ऐसे उद्देश्य के लिये विक्रय करे जो कुटुंब के लाभ का हो तो, या अन्यथा वैध हो तब भी यह अधिकार विनष्ट हो जाता है। इसी प्रकार यदि ऋण चुकाने के लिये संपत्ति का हस्तारण पिता या कर्ता द्वारा किया गया हो और ऋण मान्य हो तो क्रेता का अधिकार पुत्री के अधिकार पर अधिमान पा जाता है। यदि उसकी माँग संपत्ति पर आरोपित हो तो निवास का अधिकार स्थित रहेगा। इसी प्रकार दान या वसीयत द्वारा समस्त संपत्ति हस्तांतरित हो जाने पर भी पोषण का अधिकार बना ही रहेगा।

मुस्लिम विधि में पोषण को नफक कहते हैं। अधिकार तीन कारणों से उत्पन्न होता है—विवाह, संबंध और संपत्ति। विवाह से सर्वाधिक महत्वपूर्ण दायित्व उत्पन्न होता है। पत्नी और संतति का भरणपोषण प्राथमिक कर्तव्य है।

पत्नी को चाहे वह स्वयं साधनसंपन्न हो और पति के पास आय के साधन न हों तब भी पोषण माँगने का अधिकार है। संतति की अपेक्षा पत्नी को अधिमान देना आवश्यक है। पति का वैधिक दायित्व तभी प्रारंभ होता है जब पत्नी मुस्लिम विधि के अनुसार वयस्क हो जाए, आज्ञाकारी हो एवं पति से मिलना अस्वीकार न करे।

यदि विवाह के समय अनुबंध द्वारा पति ने पत्नी को गुजारा, खर्च-ए-पानदान आदि देने का वचन दिया है तो यह अनुबंध वैध रहेगा।

पत्नी का अधिकार पति की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है अतएव मृत्यु के पश्चात् इद्दत की अवधि में पोषण पाने का अधिकार नहीं है। मुस्लिम विवाहभंग विधि, १९३९, के अंतर्गत पोषण के देने पर विवाह भंग हो सकता है। पुत्र के वयस्क होने तक और पुत्रियों का विवाह होने तक पोषण का अधिकार है। विधवा एवं विवाह-विच्छिन्न पुत्रियाँ भी अधिकारी हैं। किंतु पुत्रवधू के अवैध पुत्र को अधिकार नहीं है। अवैध पुत्र अपनी माता से अधिकार माँग सकता है, पिता से नहीं। [श्र० कि० श०]

भरत इस नाम के पाँच प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं जिनमें मुख्य दाशरथि राम के परम उपासक एवं भक्तशिरोमणि कैकेयीसुत हैं। पहले भरत तो प्रथम मन्वंतर के एक राजा थे जो विष्णुभक्त थे, दूसरे वैदिक भरत योद्धा एवं राजा थे जिनके नाम पर एक मानवकुल प्रसिद्ध है (वै० माई०, ऋ० ३।३३।११–१२), तीसरे अयोध्या के भरत अपने नाना केकयराज अश्वपति के ही साथ प्राय: रहे और वहीं उनकी शिक्षा दीक्षा हुई। इनका ब्याह जनकपुर की मांडवी से हुआ था और इन्होंने अपने राज्यकाल में तीन करोड़ गंधर्वों को मारकर उनके देश पर अधिकार किया था। चौथे भरत चंद्रवंशी राजा पुरु के वंश के दुष्यंत एवं शकुंतला के पुत्र भरत दौष्यंति थे। इन्हीं की नवीं पीढ़ी में कुरु हुए जिनके वंशज कौरव कहलाए। भारतवर्ष शब्द इन्हीं के नाम पर बना बतलाया जाता है। पाँचवें भरत प्रसिद्ध ऋषि और नाट्यशास्त्र के प्रणेता तथा आचार्य थे। इनके अतिरिक्त इस नाम के एक अन्य ऋषि भी थे (दे० जडभरत)। [रा० द्वि०]

भरतपुर १. जिला, स्थिति २६° २०' से २७° ४७' उ० अ० तथा ७६° ५३' से ७८° १५' पू० दे०। यह भारत के राजस्थान राज्य का एक जिला है। इसके उत्तर में उत्तर प्रदेश के मथुरा, आगरा, जिले, पूर्व में मध्यप्रदेश राज्य का मुरैना, पश्चिम में सवाई माधोपुर एवं अलवर तथा उत्तर में हरियाना राज्य का गुडगाँव जिला स्थित है। इसका क्षेत्रफल ३,१२७ वर्ग मील एवं जनसंख्या ११,४९,८८३ (१९६१) है। जिला १२ तहसीलों में बँटा है। धरातल प्राय: समतल है केवल उत्तर में यत्र तत्र २०० फुट ऊँची पहाड़ियाँ हैं, जिनमें सुंदर इमारती पत्थर एवं कहीं कहीं लोहा भी मिलता है। बेनगंगा प्रमुख नदी है। पहले यह जिला एक रियासत था।

२. नगर, स्थिति : २७° १३' उ० अ० और ७७° ३०' पू० दे०। भरतपुर जिले का प्रमुख नगर है, जिला जो भूतपूर्व भरतपुर रियासत की प्रमुख राजधानी था। संभवत: पौराणिक भरत के नाम पर ही इसका नाम भरतपुर पड़ा है। नगर में मिट्टी की प्राचीन चहारदीवारी के भग्नावशेष अब भी उपस्थित हैं। नगर में सूरजमल का सुंदर महल है। यहाँ हाथीदाँत तथा चंदन की मुँठवाला चमर

बनाने का कार्य विशेष रूप से होता है। इसकी जनसंख्या ४६,७७६ (१९६१) है। [सु० चं० श०]

भरुच (भरुकच्छ) १. जिला, स्थिति : २०° २५' से २२° १५' उ० अ० तथा ७२° ३१' से ७३° १० पू० दे०। भारत के गुजरात राज्य का जिला है। इसके पश्चिम में खंभात की खाड़ी, दक्षिण में सूरत, पूर्व मे धुलिया तथा उत्तर मे पंचमहल एवं खेड़ा जिले स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल २,९८६ वर्ग मील तथा जनसंख्या ८,६१,६६६ (१९६१) है। इसी जिले में आकर नर्मदा नदी सागर मे गिरती है। माही एवं कोम अन्य नदियाँ भी बहती हैं। सागर की तरफ ५४ मील लंबा एवं २० से ४० मील चौड़ा जलोढ़ मिट्टी का एक ढलुवाँ मैदान स्थित है। इस मैदान की मिट्टी काली एवं उपजाऊ है, कहीं कही भूरी मिट्टी भी मिलती है जिसमे बड़ी मात्रा मे कपास के अतिरिक्त तिल, ज्वार, तुर, गेहूँ, धान, दलहन, बाजरा, एवं तंबाकू उगाए जाते हैं। जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। दिसंबर का ताप लगभग ८° सें० तथा मई का ताप लगभग ४४° सें० रहता है। वर्षा का वार्षिक औसत ३५ इंच है। सूती कपड़ा बुनना प्रमुख उद्योग है।

२. नगर, स्थिति : २१° ४२' उ० अ० तथा ७२° ५९ पू० दे०। भरुच जिले में, नर्मदा नदी के किनारे, इसके मुहाने से लगभग ३० मील ऊपर स्थित नगर है। यहाँ सूती कपड़े के उद्योग, आटा मिल तथा हस्तकला उद्योग स्थित हैं। नगर मे पुरानी किलेबदी के अवशेष मिलते हैं। यहाँ भृगु ऋषि का एक मंदिर है। इसकी जनसंख्या ७३,६३९ (१९६१) है। [रा० स० ख०]

प्राचीन इतिहास — आधुनिक भडौच या भरुच का प्राचीन नाम भरुकच्छ था। यह बौद्धकालीन भारत का एक अति प्रसिद्ध पत्तन था। जातक ग्रंथो मे ई० पू० छठी शती के वाणिज्य एव वणिक पथों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। उनके अध्ययन से पता चलता है कि उस समय भारत का वाणिज्य संबध ससार के अनेक बाहरी देशो से था तथा देश के भीतर विभिन्न प्रदेशों में प्रचुर मात्रा मे व्यापार होता था।

जातक ग्रंथों मे कई प्रशस्त वणिक्पथो का उल्लेख है। सावत्थी (श्रावस्ती) से पतिठान (प्रतिष्ठान-हैदराबाद राज्य का पैठन) तक, द्वितीय सावत्थी से राजगह (राजगृह) तक तथा तृतीय सावत्थी से तक्षशिला तक जाता था। चतुर्थ वणिक्पथ काशी को पश्चिमी समुद्रतट के पत्तनों से संबद्ध करता था। इसी वणिक्पथ पर भरुकच्छ स्थित था। यहाँ से व्यापारी बावेरु (आधुनिक बैबिलोन) को जाते थे। इन वणिक्पथों पर सार्थवाह चलते थे। काशी से भरुकच्छ को चलनेवाले सार्थवाहों मे सहस्र बैलगाड़ियों के एक साथ चलने का उल्लेख जातकों में मिलता है। इनके रक्षार्थ सशस्त्र रक्षक होते थे। [र० उ०]

भल्लट संस्कृत कवि, इनकी लिखी एक ही रचना प्राप्त होती है जिसका नाम 'भल्लट शतक' है। इसका प्रकाशन काव्यमाला सिरीज के 'काव्यगुच्छ' संख्या दो में हुआ है। मुक्तक पद्यों के इस संग्रह मे अन्य अलंकारों की स्थिति होते हुए भी अन्योक्ति की बहुलता है और इस प्रकार की सरस एवं अनूठी अन्योक्तियाँ जिनमे सरसता एवं सरलता के साथ उपदेश या शिक्षा का भी सुंदर पुटपाक हो, संस्कृत साहित्य के विशाल भंडार में भी कम ही प्राप्त होती हैं।

अलंकार शास्त्र के प्रथित आचार्यों ने, जिनमें आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त, क्षेमेंद्र, मम्मट आदि हैं, इनके पद्यों को उत्तम काव्य के दृष्टांत रूप मे बार बार उपस्थित किया है। अपनी कृतियो के माध्यम से विश्व को आह्लादित एवं अनुरंजित करनेवाले संस्कृत साहित्य के प्रमुख कवियों की गणना करते हुए इन्हें 'श्रुतिमुकुटधर' कहा गया है।

भल्लट कश्मीर के निवासी थे। इनके संबध मे कुछ ऐसा विवरण प्राप्त नहीं होता जिससे इनके निवास, गुरु एवं पितृपरपरा तथा राज्याश्रय आदि के संबंध मे कुछ जाना जा सके। भल्लट का उल्लेख करनेवालों मे आनंदवर्धनाचार्य सबसे पूर्ववर्ती है, जिनका समय कश्मीर नरेश अवंतिवर्मा का काल अर्थात् नवी शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है। अतः इस आधार पर भल्लट का समय आठवीं शती का उत्तरार्ध अनुमित है। [वि० त्रि०]

भवन ध्वानिकी (Acoustics of Buildings) ध्वनि विज्ञान की एक नवीन महत्वपूर्ण शाखा है। भवननिर्माण इजीनियरिंग मे इस शाखा का अध्ययन अति आवश्यक है। प्राचीन काल के विशाल गुबजों में शब्द के उच्चारण के बाद कुछ काल तक प्रतिध्वनि गूँजती रहती है, जैसा भुवनेश्वर मंदिर, ताजमहल तथा पटने के गोलघर मे होता है। प्राचीन समय में यूनान एव रोम के नाटक खेलनेवालों ने ऐसे संगीतभवनों या सभाभवनों की आवश्यकता अनुभव की जो प्रतिध्वनि एवं अस्पष्ट आवाज से मुक्त हों, ताकि उच्चरित शब्द प्रत्येक श्रोता के पास स्पष्ट रूप मे पहुँच सके। सर्वप्रथम डी० बी० रीड (D. B Reid) ने सभाभवन की इस कमी पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि एक विशाल कक्ष में ध्वनि के अस्पष्ट सुनाई देने का कारण ध्वनि के अनुरणन (reverberation) द्वारा उत्पन्न प्रतिरोध है।

यूरोप और अमरीका मे राजनीतिक विचारों के बढ़ते हुए प्रचार के कारण एवं बोलते चलचित्रों के आविष्कार के कारण जनसमुदाय के एकत्रित होने के लिये प्रतिध्वनिरहित विशाल कक्षों की आवश्यकता अनुभव की गई। १८६५ ई० मे प्रोफेसर डब्ल्यू० सी० सैबिन (W. C. Sabin) ने एक श्रेष्ठ, प्रतिध्वनिरहित सभाभवन के लिये गणित की सहायता से एक सूत्र निकाला, जिसे सैबिन का सूत्र कहते हैं। यह भवननिर्माण में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

अनुरणन काल (Reverberation Time) — जब एक वक्ता खुले मैदान में भाषण करता है तब ध्वनि की तरंगे सभी दिशाओं मे फैल जाती हैं। श्रोता वक्ता की सीधी तरंगो मे आती हुई प्रतिध्वनि रहित स्पष्ट आवाज को सुनता है। किंतु यदि यही भाषण एक बंद विशाल कक्ष मे एकत्रित जनसमुदाय के सामने किया जाय, तो श्रोता को प्रतिध्वनि के कारण आवाज अस्पष्ट सुनाई देगी, क्योंकि ध्वनि बंद कक्ष की छत, फर्श, दीवार एवं अन्य विभिन्न वस्तुओं से परावर्तित हो जाएगी। ऐसा इसलिये होता है कि कक्ष के ये भाग कठोर प्लास्टर के बने होने के कारण ध्वनि के लिये अच्छे परावर्तक का कार्य करते हैं। परावर्तन मे ध्वनि का कुछ भाग अवशोषित होता है। इसलिये प्रत्येक परावर्तन के पश्चात् ध्वनि की तीव्रता घटती जाती है

और कुछ काल पश्चात्, लगभग ३०० परावर्तन के उपरांत, कक्ष विभिन्न तीव्रता की ध्वनि के मिश्रण से भर जाता है, जिसे प्रायः विसरित ध्वनि (diffused sound) कहते हैं। ऐसी अवस्था मे श्रोता को सीधी तरंगो द्वारा लाई गई ध्वनि के अतिरिक्त बारबार परावर्तन के कारण क्रमशः क्षीण होती हुई अस्पष्ट ध्वनि भी सुनाई देगी। इस प्रकार कई बार परिवर्तित होने से ध्वनि का श्रवणकाल बढ़ जाता है और इसी कारण से ध्वनि साफ साफ नही सुनाई देती है। परावर्तन द्वारा उत्पन्न ध्वनि के इस प्रभाव को ध्वनि का अनुरणन कहते हैं। यह हमारा नित्यप्रति का अनुभव है कि ध्वनि उत्पादक यंत्र के बंद कर देने पर ध्वनि तत्क्षण नष्ट नहीं हो जाती, बल्कि वह कक्ष मे कुछ काल तक गूंजा करती है, जिसकी तीव्रता शनैः शनैः घटती है। इसलिये ध्वनि उत्पादक यंत्र को बंद करने के बाद ध्वनि का जो आभास होता है, उसे हम ध्वनि का अनुरणन कहते हैं। जितने समय तक यह आभास प्रतीत होता है, उसको ध्वनि का अनुरणन काल कहते हैं। चित्र मे यह t से प्रदर्शित किया गया है। इसकी गणना उस समय से की जाती है जब से प्रारंभिक ध्वनि उत्पन्न हुई
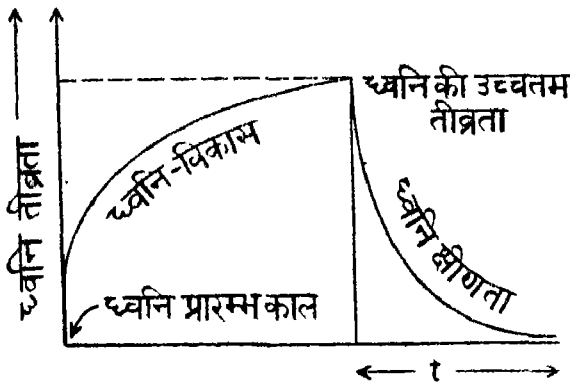
ध्वनि का अनुरणनकाल

हो। निरंतर बोलते ध्वनिउत्पादक मे इस काल की गणना उस समय से की जाती है जब ध्वनिउत्पादक आवाज करना बंद कर दे। कभी कभी ध्वनि के अनुरणनकाल की परिभाषा निम्नलिखित रूप मे भी दी जाती है :

"कक्ष का अनुरणनकाल वह समय है जिसमे ध्वनिउत्पादक द्वारा ध्वनि का उत्पादन करने के बाद ध्वनि अपनी प्रारंभिक तीव्रता की $१०^{-६}$ हो जाती है।" यदि प्रारंभिक तीव्रता I_0 हो तो t समय बाद इसकी तीव्रता निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती है :

$$I_t = I_0 \times 10^{-6} \qquad (१)$$

यहाँ t ध्वनि का अनुरणनकाल है।

अस्तु, एक अच्छे ध्वनिनियंत्रित कक्ष मे ध्वनि का अनुरणन काल कम होना चाहिए। किंतु यह इतना कम भी न होना चाहिए कि ध्वनि बिल्कुल ही अस्पष्ट सुनाई पड़े। ध्वनि के गूंजते रहने का समुचित ज्ञान प्राप्त करना ही एक श्रेष्ठ कक्ष बनाने का रहस्य है। १०,००० घन आयतन के अच्छे ध्वनि नियंत्रित कक्ष का अनुरणनकाल १.०३ सेकंड होता है, जिसमे प्रत्येक शब्द उच्चारण के बाद स्पष्ट सुनाई देता है। ध्वनि के इस अनुरणनकाल को इष्टतम अनुरणनकाल (optimum reverberation time) कहते हैं। इसका सूत्र निम्नलिखित है :

$$T = 75 + 175\sqrt[3]{V} \qquad (२)$$

यहाँ T समय और V कक्ष का आयतन है

प्रोफेसर सैबिन ने ध्वनि के अनुरणनकाल के लिये निम्नलिखित सूत्र निकाला था :

$$T = \frac{KV}{Sa} \qquad (३)$$

जहाँ T = ध्वनि का अनुरणनकाल, K = एक स्थिरांक = ·०५, a = ध्वनि का अवशोषण गुणांक, S = ध्वनि को अवशोषित करनेवाले कक्ष का क्षेत्रफल तथा V = कमरे का आयतन।

यदि कमरे का आयतन और ध्वनि का पूरा अवशोषण (S a) ज्ञात है, तो समय T की गणना की जा सकती है। ध्वनि के अवशोषण को घटा बढ़ाकर अनुरणनकाल को नियंत्रित किया जा सकता है। उपर्युक्त सूत्र ऐसे कक्ष के लिये उपयुक्त है जिसमे कई परावर्तन के पश्चात् ध्वनि श्रोता को स्पष्ट सुनाई देती है, किंतु ध्वनि के प्रसारण जैसे कार्य मे लाए जानेवाले कक्षो का (जिनका अवशोषण अधिक होता है) अनुरणनकाल अगर ऊपर के सूत्र से निकाला जाय, तो कक्ष के वास्तविक अनुरणनकाल की मात्रा से अधिक आएगा। १६२६ ई० मे ईरिंग ने गूंजहीन कक्ष (dead rooms) के लिये निम्नलिखित सूत्र निकाला :

$$T = \frac{KV}{S \log_e \frac{1}{(1-a)}} \qquad (४)$$

सूत्र से निकाले गए T के मान की तुलना विशेष प्रकार के कक्ष के T से की जाती है। यदि दो कालो मे कोई अंतर है, तो ध्वनि के अवशोषण (S a) तदनुरूप बदलते हैं। इसके लिये ध्वनि के अवशोषण गुणांक का ज्ञान आवश्यक है।

ध्वनि के अवशोषण गुणांक की गणना — सैबिन ने विभिन्न पदार्थों के अवशोषण गुणांक की गणना के लिये ५१२ साइकिल प्रति सेकंड आवृत्तिवाले आर्गन पाइप का उपयोग किया था। गद्दे, अथवा ध्वनि को अवशोषित करनेवाली दूसरी वस्तुओ की उपस्थिति मे कमरे का अनुरणनकाल मालूम कर वस्तुओ को कमरे के बाहर निकाल दिया गया। इस प्रकार खिड़की के खुले भाग को इतना घटाया बढ़ाया कि अनुरणन पहले के बराबर हो गया। इस विधि से गद्दे का वह क्षेत्र, जो ध्वनि के अवशोषण के अनुसार खुली खिड़की के एक वर्ग फुट के बराबर है, मालूम किया जा सकता है। खुली खिड़की पर गिरनेवाली ध्वनि का पूर्ण भाग उससे निकल जाता है। इस प्रकार खिड़की ध्वनि के पूर्ण अवशोषण का कार्य करती है। गद्दा, अथवा अन्य कोई वस्तु, ध्वनि को पूर्ण अवशोषित नही कर सकती। इसलिये खिड़की का क्षेत्रफल उसी ध्वनि को अवशोषित करनेवाले गद्दे के क्षेत्रफल का कोई अंश होता है, जिसे ध्वनि का अवशोषण गुणांक कहते है। इसकी गणना निम्न-सूत्र से की जा सकती है :

$$a = \frac{KV}{S}\left(\frac{1}{t_2} - \frac{1}{t_1}\right)$$

यहाँ t_1 तथा t_2 क्रमश. कमरे मे वस्तुओं की अनुपस्थिति एवं उपस्थिति मे ध्वनि के अनुरणनकाल हैं।

सैबिन के सूत्र से स्पष्ट है कि ध्वनि का अनुरणनकाल कक्ष में ध्वनि के अवशोषण की पर्याप्त मात्रा बढ़ाकर आवश्यकतानुसार कम किया जा सकता है। इसकी निम्नलिखित विधियाँ हैं :

(१) कक्ष मे खुली खिड़कियों के प्रबंध से; (२) दीवारों को रँगने से; (३) भारी परतदार परदो के उपयोग से; (४) एक अच्छे श्रोता जनसमुदाय की उपस्थिति से; (५) गोलाकार दीवारो के निराकरण से (इमसे ध्वनि कक्ष मे किसी एक बिंदु पर केंद्रित न होगी), (६) दीवारो और छत आदि को ध्वनि का अवशोषण करनेवाले पदार्थो से मढ़कर समय पर्याप्त भाग मे कम किया जाता है। ध्वनि के अच्छे शोषकों मे सेलोटेक्स (celotex), कार्डबोर्ड, ऐस्बेस्टस आदि पदार्थ हैं तथा गद्दीदार कुर्सियाँ अच्छे ध्वनि अवशोषक का कार्य करती हैं।

सैबिन ने विभिन्न पदार्थों के लिये अवशोपण गुणाक के मान निकाले, जो निम्नलिखित सारणी मे दिए हैं :

नाम	अवशोषण गुणनाक
खुली खिडकी	१·००
काच की खिड़की	०·०२५
ईंट की दीवार	०·०३
गद्देदार कुर्सी	०·३०
सेलोटेक्स	०·३६

इस संदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त अवशोषण गुणांक पदार्थ की मोटाई, उसके उपयोग की विधि तथा आपतित (incident) ध्वनि की आवृत्ति (frequency) पर आधारित है। उन्नी नमदे मे ध्वनि का अवशोषण गुणाक आपतित ध्वनि की आवृत्ति के साथ साथ कैसे बदलता है, यह नीचे की तालिका मे दिखाया गया है .

आवृत्ति	अवशोषण गुणाक
१२८	० ०९
२५६	०·२५
५१२	०·४०
२०२८	० ३३
४०९६	० ३५

ध्वनि के प्रसारणकक्ष का निर्माण (Design of Broadcasting Studio) — भवननिर्माण कला मे अनुरणनकाल विशेष महत्व रखता है। व्याख्यान के लिये निर्मित कक्ष पूर्णत· गूँजरहित होने चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि पूरी पूरी ध्वनि अवशोषित हो जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कक्ष की दीवारें और छत आदि को सेलोटेक्स जैसी सूक्ष्म छिद्रवाली वस्तुओं से मढ़ते हैं। आजकल दफ्ती, कार्डबोर्ड अथवा ऐस्बेस्टॉस को लगभग २ मिमी० व्यास के छिद्र करके उपयोग मे लाया जाता है। संगीत कक्ष को इस प्रकार आयोजित किया जाता है कि ध्वनि की आवृत्ति बढ़ने से अनुरणनकाल घटे। एक ही भवन में विभिन्न कक्ष एक दूसरे से रोधित (insulated) रहते हैं, ताकि एक की ध्वनि दूसरे की ध्वनि से मिलकर विघ्न उत्पन्न न करे।

आजकल प्राय. व्याख्यान आदि के अवसरो पर लाउडस्पीकर का उपयोग होता है। अगर एक से अधिक लाउडस्पीकरों का उपयोग करना है, तो उन्हे एक दूसरे से इतनी दूर रखना चाहिए कि एक ही स्थान पर कई लाउडस्पीकरों की ध्वनि सुनाई न पड़े। लाउडस्पीकर और माइक्रोफोन मे भी पारस्परिक क्रिया (interaction) न होनी चाहिए।

सभाभवन का निर्माण (Design of Auditorium) — आधुनिक समय मे सभाभवन के निर्माण के पहले ही उसके ध्वानिक गुणधर्म (accustic properties) का अध्ययन कर लिया जाता है। इसके लिये जिस भवन का निर्माण करना है उसके एक छोटे से मॉडल का अनुदैर्घ्य खड (longitudinal section) तरग कुड (ripple-tank) मे रखा जाता है। कुंड मे पानी भरा होता है। एक डिपर (dipper) को पानी की सतह पर ऊपर नीचे किया जाता है। इस तरह जो लहरें पैदा होती है, वे लकड़ी के मॉडल (model) मे उसकी आतरिक दीवारो से परावर्तित हो जाती हैं। परावर्तन का अध्ययन करने के लिये तरग कुड मे इस प्रकार का प्रबध करते है कि काच के बने कुड की तलहटी के नीचे रखे आर्क लैंप का प्रकाश पानी की सतह से ४५° पर झुके हुए एक काच के प्लेट से परावर्तित होकर एक पर्दे पर पडे। इस पर्दे पर पानी की सतह पर चलनेवाली लहरो की छाया पड़ती है, जिनका तात्क्षणिक चित्र लेकर कक्ष के बारे मे आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली जाती है। इंग्लैंड की राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला में बिजली की चिनगारी की सहायता से ऐसे मॉडल का अध्ययन किया जाता है। वहाँ पर अनुरणनकाल, अवशोषण गुणाक आदि पर तेजी से शोधकार्य चल रहा है।

ध्वनि का केंद्रीकरण (Focussing of Sound) — कक्ष की विशाल गोलाकार छत या दीवारें अनैच्छिक रूप से ध्वनि को किसी एक बिंदु पर केंद्रित करती है। इस स्थान पर बैठे हुए श्रोता के कान मे सीधी एव परावर्तित ध्वनि भिन्न कला (different phase) विक्षोभ (disturbance) उत्पन्न करेंगी।

प्रतिध्वनि (Echo)— कक्ष मे प्रतिध्वनि की तीव्रता इतनी ही होनी चाहिए कि शब्दो के समान प्रवाह मे विघ्न उपस्थित न हो।

कोलाहल (Extraneous sound) — विगत कुछ वर्षों से विश्व के प्रत्येक भाग मे औद्योगिक यत्रो, यातायात साधनो आदि से अनैच्छिक ध्वनि की मात्रा बढ गई है। इसलिये सभाकक्ष मे इस प्रकार की आवाज को कम करना अति आवश्यक हो गया है। कोलाहल को मापने के लिये इंग्लैंड की राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला के वैज्ञानिक, डेविस (Davis), का प्रयत्न सराहनीय है। अनैच्छिक कोलाहल दो प्रकार से कक्ष में आता है : (१) हवा के द्वारा, इसे वायुचालित कहते हैं, तथा (२) कक्ष की दीवार, छत आदि से होकर चलता है, इसे कक्ष के ढाँचे द्वारा चालित कोलाहल कहते हैं। पहले प्रकार को दुहरे या तिहरे दरवाजो और खिड़कियो के उपयोग से, और दूसरे को दीवारो में अवशोषक पदार्थ, जैसे ऐस्बेस्टस के उपयोग से, कम करते हैं। [सु० सिं० कु०]

भस्मासुर कंकड़ से उत्पन्न एक शिवभक्त दैत्य जिसे यह वरदान था कि जिस किसी के ऊपर वह अपना हाथ रख देगा, वह भस्म हो

जायगा। एक बार यह पार्वती जी पर आसक्त हो गया और शंकर जी को जला देने के लिये उनके पीछे दौड़ा। वे भागकर विष्णु के पास पहुँचे तो विष्णु ने मोहिनी रूप धारणकर भस्मासुर से कहा— 'मैं पार्वती हूँ और तुम्हारे प्रेम को स्वीकार करती हूँ। परंतु तुम्हें मुझे एक नाच दिखाना पड़ेगा'। यह सुनकर राक्षस परम प्रसन्न हुआ और मस्त होकर नाचने लगा। परंतु पार्वती ने कहा — 'ऐसा नाच नहीं, अपना एक हाथ अपने सिर पर और दूसरा अपने पुट्ठों के नीचे रखकर 'मुक्त निद्रा' में नाचो।' प्रेम में पागल भस्मासुर ने जैसे ही अपना एक हाथ सिर पर रखा कि वह वहीं भस्म हो गया और शिवजी की चिंता समाप्त हुई। [रा० द्वि०]

भांडारकर, रामकृष्ण गोपाल डा० भांडारकर साधारण क्लार्क के पुत्र थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा रत्नागिरि के साधारण विद्यालय मे हुई थी। उच्च शिक्षा के लिये ये एलफिंस्टन कालेज मे आए। वहाँ पर बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाओं मे आपने सर्वोत्तम अंक प्राप्त किए। कुछ दिनों तक हैदराबाद मे प्रधानाचार्य का काम उत्तम रीति से करने के बाद आप स्थायी रूप से डेकन कालेज पूना मे आचार्य पद पर नियुक्त हुए और सेवा निवृत्त होने तक यही पर अध्यापन करते रहे। १९०१ मे आप बंबई विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त हुए।

आज से ७०-८० वर्ष पूर्व पुरातत्व विषयों में भारतीयों को आकर्षण नही था। पाली, मागधी आदि प्राकृत भाषाओं का अध्यापन करनेवाले दुर्लभ थे और इन भाषाओं मे ग्रंथरचयिता प्रायः थे ही नही। इसी समय डा० भांडारकर ने प्राकृत भाषाओं, ब्राह्मी, खरोष्ठी आदि लिपियों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर इतिहास संबंधी गवेषणाएँ की, और लुप्तप्राय इतिहास के तत्वों को प्रकाश मे लाए। इस प्रकार इतिहास के प्रामाणिक ज्ञान की ओर भारतीयों की रुचि बढ़ी। क्रमशः सरकार की दृष्टि भारत के हस्तलिखित ग्रंथो की खोज और प्रकाशन की दिशा मे जाने लगी। अतः यह कार्य डा० भांडारकर को सौंपा गया और उन्होने पाँच विशाल ग्रंथों मे अपना कार्य पूर्ण किया। पुरातत्व के इतिहासकारों के लिये ये ग्रंथ मार्गदर्शक हैं। १८८३ में इन्हें विएना मे प्राच्य भाषा विद्वानों के संमेलन मे आमन्त्रित किया गया, और वहाँ पर इनके अध्ययन की गंभीरता एवं अन्वेषण शैली से सरकार तथा विदेशी स्तभित हुए। सरकार ने इन्हे सी० आई० ई० की पदवी से विभूषित किया। इनके अन्य उल्लेखनीय ग्रंथ निम्नलिखित हैं। बाँबे गजेटियर के लिये दक्षिण भारत का इतिहास प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। प्राच्य पवित्र ग्रंथमाला के लिये वायु पुराण का अंग्रेजी में अनुवाद अपूर्ण ही रह गया। इसके अतिरिक्त इनकी कीर्ति को चिरकाल तक अमर बनानेवाले अनेकों निबंध, तथा १८७६ में भवभूति के 'मालती माधव' पर टीका, तथा अंग्रेजी पढ़नेवालों को दृष्टि मे रखते हुए प्रणीत संस्कृत व्याकरण का प्रथम और द्वितीय भाग, जो अत्यंत उपादेय सिद्ध हुआ है, आदि पुस्तकें हैं। आपके संस्मरण में पूना मे भांडारकर ओरियंटल रिसर्च इंटिट्यूट की स्थापना की गई है। अपनी विधवा कन्या का पुनर्विवाह कर इन्होने अपने साहस का परिचय दिया। अत्यधिक आदर और संमान पाने पर भी इनमें अहंमन्यता का भाव नही था। स्वाध्याय और संयम इनके जीवन का मूलमंत्र था। [शु० ते०]

भाई परमानंद प्रसिद्ध क्रांतिकारी, स्वतंत्र विचारक, राष्ट्रीय नेता तथा इतिहास के प्रकांड पंडित थे। आपका जन्म सन् १८७४ ई० में हुआ। पंजाब विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर आप डी० ए० वी० कालेज में प्राध्यापक के रूप मे कार्य करने लगे। भारत की प्राचीन संस्कृति तथा वैदिक धर्म में आपकी रुचि देखकर महात्मा हंसराज ने आपको भारतीय संस्कृति का प्रचार करने के लिये अफीका भेजा। यहाँ आप तत्कालीन प्रमुख क्रांतिकारियो सरदार अजीत सिंह, सूफी अंबाप्रसाद आदि के संपर्क में आए। इन क्रांतिकारी नेताओं से संबंध तथा क्रांतिकारी दल की कारखाई पुलिस की दृष्टि से छिप न सकी। फलतः आपको अफ्रीका छोड़कर दक्षिण अमरीका जाना पड़ा, जहाँ मार्तनिक उपनिवेश में आपकी प्रख्यात क्रांतिकारी लाला हरदयाल से भेंट हुई। भारत मे क्रांति कराने के लिये प्रमुख कार्यकर्ताओं के दल को यहाँ संघटित किया जा रहा था। लाला हरदयाल की प्रेरणा से आप भी इस दल मे संमिलित हो गए।

भारत आने पर गदर पार्टी के सदस्यों के साथ आप भी गिरफ्तार हुए। आपपर मुकदमा चला तथा फाँसी की सजा सुनाई गई। फाँसी की सजा बाद मे आजीवन कारावास मे बदल दी गई और आप सन् १९१५ मे कालापानी की सजा काटने अदमान भेज दिए गए। सन् १९२९ मे आमरण अनशन करने पर आपको रिहा किया गया। आप नवीन उत्साह के साथ स्वदेश आए किंतु इस समय तक देश का राजनीतिक वातावरण परिवर्तित हो चुका था। महात्मा गांधी का सविनय अवज्ञा आंदोलन चल रहा था। भाई परमानंद को कांग्रेस की मुसलमानों के तुष्टीकरण की नीति पसंद न आई और आप उसके कटु आलोचक बन गए। यही कारण है कि आप राष्ट्रीय आंदोलन मे संमिलित नहीं हुए। आंदोलन काल मे आपने राष्ट्रीय विद्यापीठ के कुलगुरु के रूप मे महत्वपूर्ण सेवा की तथा हिंदुओं के हितो की रक्षा के आंदोलनों का निर्देश किया। बाद मे आप हिंदू महासभा मे संमिलित हो गए। महामना पंडित मदनमोहन मालवीय का निर्देश एवं सहयोग आपको बराबर मिला। सन् १९३३ ई० मे आप अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अजमेर अधिवेशन मे अध्यक्ष चुने गए।

देशभक्ति, राजनीतिक दृढ़ता तथा स्वतंत्र विचारक के रूप मे भाई परमानंद का नाम स्मरणीय रहेगा। आपने कठिन तथा संकटपूर्ण स्थितियो का सदा डटकर सामना किया और कभी विचलित नही हुए। आपने हिंदी में भारत का इतिहास लिखा है। इतिहासलेखन मे आप राजाओं, युद्धों तथा महापुरुषो के जीवनवृत्तो को ही प्रधानता देने के पक्ष मे न थे। आपका मत है कि इतिहास मे जाति की भावनाओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं, संस्कृति एवं सभ्यता को भी महत्व दिया जाना चाहिए। आपने अपने जीवन के संस्मरण भी लिखे है।

[ल० शं० व्यास]

भाऊसिंह हाड़ा राव छत्रसाल के पुत्र। मुगल सम्राट् औरंगजेब के दरबार मे एक सेवक। इसे तीन हजारी २००० सवार का मंसब प्राप्त था। शुजाअ के विरुद्ध युद्ध मे तोपखाने की सेना में कार्य किया। वहाँ से लौटने पर इन्हें दक्षिण का प्रबंध सौंपा गया। चाकण दुर्ग (इस्लामाबाद) की विजय मे यह शाइस्ता खाँ के साथ थे। महाराज शिवाजी के विरुद्ध शाइस्ता खाँ के साथ और बाद में मिरजा राजा जयसिंह के साथ थे। चाँदा के राजा पर आक्रमण के समय विशेष

लाँ के साथ थे। औरंगाबाद में बहुत दिनों तक फौजदार रहे। वहाँ अनेक इमारतें बनवाईं, और अपनी वीरता तथा दानशीलता के कारण बहुत प्रसिद्ध हुए। सुल्तान मुहम्मद मुअज्जम से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। सन् १६७७ में इनकी मृत्यु हो गई।

भाखड़ा बाँध पंजाब की शिवालिक घाटी में सतलज नदी पर चंडीगढ़ से आठ मील दूरी पर बना है। यह हमारे देश की समृद्धि और वैज्ञानिक उन्नति का प्रतीक है। संसार के इस सबसे ऊँचे बाँध का निर्माण भारत के लिये गौरव का विषय है। इस बाँध का उद्‌घाटन २२ अक्टूबर, १९६३, को हमारे प्रथम प्रधान मंत्री स्व० श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा संपन्न हुआ था। इस अवसर पर उन्होंने कहा था "यह नवनिर्मित बाँध हमारा आधुनिक देवालय है।"

इसका निर्माण १९४८ ई० मे शुरू हुआ। धरातल से १,७०० फुट नीचे से नीव डालकर इसे ऊपर लाया गया है। इसकी ऊँचाई ७४० फुट, अर्थात् कुतुबमीनार की ऊँचाई से तिगुनी, है। नीचे बाँध की चौड़ाई ३२५ फुट है, जो ऊपर जाकर ३० फुट रह गई है। इसके निर्माण मे आठ लाख टन सीमेंट लगा है। जब सीमेंट का उपयोग किया जा रहा था, तब एक हजार टन सीमेंट की आवश्यकता प्रति दिन होती थी। इसके साथ लगभग ५४ लाख घन गज कंक्रीट लगा है। यह बाँध वस्तुतः कंक्रीट का बना एक विराट संयंत्र है, जिसमे मानव शरीर की नस नाडियों की तरह जाल बिछा हुआ है। सीमेंट के सूखने पर मौसम का असर उसपर कम से कम पड़े, इसके लिये पानी में मिलाने के बाद उसको एक निश्चित ताप तक ठंढा किया जाता था और कंक्रीट का ताप भी इसी प्रकार नियंत्रित किया जाता था। इसपर भी उसमे दरारे पड जाती थी, जिन्हे समय समय पर भरना पड़ता था।
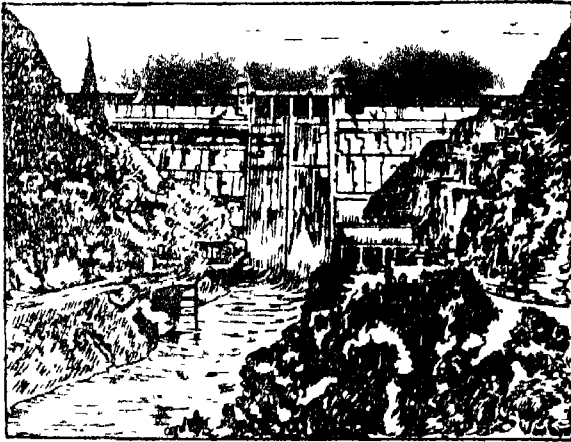
भाखड़ा बाँध

इस बाँध से गोविंदसागर झील का निर्माण हुआ है। यह झील ६० मील लंबी, ६५ वर्ग मील क्षेत्रफल की और ८० लाख एकड़-फुट पानी की धारितावाली है। इसमे से ६६ लाख एकड़-फुट पानी राजस्थान और पंजाब के अभावग्रस्त इलाकों को मिल सकेगा। पानी को ले जाने के लिये तीन हजार मील लंबी नहरें बनी हैं, जिनसे ३६ लाख एकड़ जमीन की सिंचाई होती है। इतनी जलराशि से पानी का रिसना स्वाभाविक है, जो निरंतर होता रहता है। रिसने से निकले पानी को नालियों द्वारा निकालकर टंकी में इकट्ठा किया जाता है, जहाँ से पंप द्वारा बाहर फेंक दिया जाता है। इस झील के निर्माण में ३६६ गाँव और नगर डुबाने पड़े, जिनके उजड़े लोगों की संख्या लगभग ३०,००० थी। इन्हें अन्यत्र बसाया गया है।

घाटी को पानी रहित करने के लिये बाँध के स्थान से पीछे हटकर आधी आधी मील लंबी दो सुरंगें पहाड़ों के बीच से निकाली गई हैं। इन सुरंगो का व्यास ५०-५० फुट है। २,९०,००० क्यूसेक पानी इन सुरंगों से निकल सकता है। इन सुरंगों को खोदने मे प्रायः पाँच वर्ष (१९४८ से १९५३ तक) का समय लगा था। प्रत्येक सुरंग में लगभग दो करोड़ रुपए लगे हैं और ५७,७८,००० घन फुट कंक्रीट लगा है। सिंचाई के लिये पानी निकालने की दो सुरंगें हैं और विद्युदुत्पादक यंत्र के चक्के को पानी के आघात से घुमाने के लिये एक मुड़ी हुई सुरंग बनी है। यहाँ के बिजलीघर से आठ लाख किलोवाट बिजली पैदा हो सकती है। इसी बिजली से नगल के खाद का कारखाना चल रहा है और भी अनेक कारखाने यहाँ से उत्पन्न बिजली से चल सकते है, जिससे राज्य को समृद्धिशाली बनाने में बड़ी सहायता मिलेगी। [फू० स० व०]

भागलपुर १ जिला, स्थिति २४° ३३' से २६° ३४' उ० अ० तथा ८६° १९' से ८७° ३१' पू० दे०। यह भारत के बिहार राज्य में एक जिला है। इसके उत्तर मे पुर्निया और महरसा, पूर्व एवं दक्षिण मे संताल परगना तथा पश्चिम मे मुंगेर जिले पडते है। यहाँ का क्षेत्रफल २,१८३ वर्ग मील तथा जनसंख्या १७,११,१३६ (१९६१) है। गंगा नदी के द्वारा यह दो भागों मे बँट गया है। उत्तर का आधा तिरहुतवाला मैदान जलोढ मिट्टी का बना है, जिसमे कई छोटी छोटी नदियाँ बहती हैं। गंगा नदी के दक्षिण का भाग नीचा है, किंतु लगभग २० मील के बाद भूमि की ऊँचाई बढ़ते बढ़ते छोटा नागपुर के पठार का रूप ले लेती है। गंगा के अलावा तिलगूजा, कोसी, धुसान, तथा धुग्री आदि छोटी छोटी नदियाँ बहती हैं। जलवायु उत्तम तथा स्वास्थ्यप्रद है। दक्षिण मे गर्मी अधिक पड़ती तथा उत्तर मे ठंढ रहती है। यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा ५१ इंच है। वर्षा उत्तर की ओर अधिक बढ़ती जाती है। उत्तम मिट्टी के कारण ऊँचे स्थानो पर धान, गेहूँ, जौ, जई, ईख, कपास, जूट, मक्का, मडुआ, ज्वार, तिलहन, तिल आदि भी अच्छे उगते हैं। यहाँ की प्रमुख फसल धान है। यातायात के साधनो का यहाँ अच्छा विकास हुआ है। शिक्षा मे भी काफी प्रगति हुई है।

२ नगर, स्थिति : २५° १५' उ० अ० तथा ८७° ०' पू० दे०। यह भागलपुर जिले में गंगा के दाहिने किनारे पर, रेल द्वारा कलकत्ता से २६५ मील दूर स्थित एक नगर है। यह यातायात के साधनों, कृषि तथा व्यापार मे उन्नति के कारण काफी प्रगति करता जा रहा है। यहाँ एक सरकार द्वारा और दूसरा जमींदारों द्वारा स्थापित ऑगस्टॉस क्लीवलैंड के दो स्मारक हैं जो १८वीं शती के अंत मे कलक्टर थे। इन्होंने संताल परगने के आदिवासियों को नियंत्रण में लाने मे सफलता प्राप्त की थी। भागलपुर के निकट ही सबोर में एक कृषि कालेज है जहाँ एक समय बिहार सरकार का कृषि विभाग रहता था। यहाँ एक पुराना बरेली तेजनारायण कॉलेज है जिसकी स्थापना १८८७ ई० में हुई थी। हाल ही में वहाँ एक

इंजीनियरी कालेज भी खुला है और एक मेडिकल कालेज खोलने का प्रस्ताव चल रहा है। ये सब कालेज भागलपुर विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं जिसकी स्थापना हाल ही में हुई है।

भागवत (श्रीमद्भागवत) अष्टादश पुराणों मे नितांत महत्वपूर्ण तथा प्रख्यात पुराण। पुराणों की गणना मे भागवत अष्टम पुराण के रूप में परिगृहीत किया जाता है (भागवत १२।७।२३)। आजकल भागवत आख्या धारण करनेवाले दो पुराण उपलब्ध होते हैं—(क) देवीभागवत तथा (ख) श्रीमद्भागवत। अत. इन दोनो मे पुराण कोटि मे किसकी गणना अपेक्षित है ? इस प्रश्न का समाधान आवश्यक है।

विविध प्रकार से समीक्षा करने पर अंततः यही प्रतीत होता है कि श्रीमद्भागवत को ही पुराण मानना चाहिए तथा देवीभागवत को उपपुराण की कोटि में रखना उचित है। श्रीमद्भागवत देवीभागवत के स्वरूपनिर्देश के विषय मे मौन है। परंतु देवीभागवत 'भागवत' की गणना उपपुराणों के अंतर्गत करता है (१।३।१६) तथा अपने आपको पुराणो के अंतर्गत। देवीभागवत के अष्टम स्कंध मे वर्णित भुवनकोश श्रीमद्भागवत के पंचम स्कंध मे प्रस्तुत इस विषय का अक्षरशः अनुकरण करता है। श्रीमद्भागवत मे भारतवर्ष की महिमा के प्रतिपादक आठो श्लोक (५।१६।२१–२८) देवी भागवत मे अक्षरशः उसी क्रम से उद्धृत हैं (८।११।२२–२६)। दोनों के वर्णनों मे अंतर इतना ही है कि श्रीमद्भागवत जहाँ वैज्ञानिक विषय के विवरण के निमित्त गद्य का नैसर्गिक माध्यम पकड़ता है, वहाँ विशिष्टता के प्रदर्शनार्थ देवीभागवत पद्य के कृत्रिम माध्यम का प्रयोग करता है।

श्रीमद्भागवत भक्तिरस तथा अध्यात्मज्ञान का समन्वय उपस्थित करता है। भागवत निगमकल्पतरु का स्वयंफल माना जाता है जिसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मज्ञानी महर्षि शुक ने अपनी मधुर वाणी से संयुक्त कर अमृतमय बना डाला है।

भागवत मे १८ हजार श्लोक, ३३५ अध्याय तथा १२ स्कंध हैं। इसके विभिन्न स्कधो मे विष्णु के लीलावतारों का वर्णन बडी सुकुमार भाषा मे किया गया है। परतु भगवान् कृष्ण की ललित लीलाओं का विशद विवरण प्रस्तुत करनेवाला दशम स्कध भागवत का हृदय है। अन्य पुराणो में, जैसे विष्णुपुराण (पंचम अंश), ब्रह्मवैवर्त (कृष्णजन्म खड) आदि मे भी कृष्ण का चरित् निबद्ध है, परंतु दशम स्कंध में लीलापुरुषोत्तम का चरित् जितनी मधुर भाषा, कोमल पदविन्यास तथा भक्तिरस से आप्लुत होकर वर्णित है वह अद्वितीय है। रासपचाध्यायी (१०।२९-३३) अध्यात्म तथा साहित्य उभय दृष्टियों से काव्यजगत् मे एक अनूठी वस्तु है। वेणुगीत (१०।२१), गोपीगीत (१०।३०), युगलगीत (१०।३५), भ्रमरगीत (१०।४७) ने भागवत को काव्य के उदात्त स्तर पर पहुँचा दिया है।

'विद्यावतां भागवते परीक्षा' — भागवत विद्वत्ता की कसौटी है और इसी कारण टीकासपत्ति की दृष्टि से भी यह अतुलनीय है। विभिन्न वैष्णव संप्रदाय के विद्वानों ने अपने विशिष्ट मत की उपपत्ति तथा परिपुष्टि के निमित्त भागवत के ऊपर स्वसिद्धांतानुयायी व्याख्याओं का प्रणयन किया है जिनमें कुछ टीकाकारों का यहाँ संक्षिप्त संकेत किया जा रहा है—श्रीधर स्वामी (भावार्थदीपिका; १३वीं शती, भागवत के सबसे प्रख्यात व्याख्याकार), सुदर्शन सूरि (१४वी शती की शुकपक्षीया व्याख्या विशिष्टाद्वैतमतानुसारिणी है); विजय ध्वज (पदरत्नावली १६वी शती; माध्वमतानुयायी), वल्लभाचार्य (सुबोधिनी १६वी श०, शुद्धाद्वैतवादी), शुकदेवाचार्य (सिद्धातप्रदीप, निंबार्कमतानुयायी), सनातन गोस्वामी (बृहद्वैष्णवतोषिणी), जीव गोस्वामी (क्रमसंदर्भ)।

देशकाल का प्रश्न—भागवत के देशकाल का यथार्थ निर्णय अभी तक नही हो पाया है। एकादश स्कंध मे (५।३८–४०) कावेरी, ताम्रपर्णी, कृतमाला आदि द्रविडदेशीय नदियों के जल पीनेवाले व्यक्तियों को भगवान् वासुदेव का अमलाशय भक्त बतलाया गया है। इसे विद्वान् लोग तमिल देश के आलवारो (वैष्णवभक्तों) का स्पष्ट संकेत मानते हैं। भागवत मे दक्षिण देश के वैष्णव तीर्थों; नदियों तथा पर्वतो के विशिष्ट सकेत होने से कतिपय विद्वान् तमिलदेश को इसके उदय का स्थान मानते हैं। काल के विषय मे भी पर्याप्त मतभेद है। इतना निश्चित है कि बोपदेव (१३वी श० का उत्तरार्ध) जिन्होंने भागवत से संबद्ध 'हरिलीलामृत', 'मुक्ताफल' तथा 'परमहंसप्रिया' का प्रणयन किया तथा जिनके आश्रयदाता, देवगिरि के यादव राजा महादेव (सन् १२६०–७१) तथा राजा रामचद्र (सन् १२७१-१३०९) के करणाधिपति तथा मत्री, प्रख्यात धर्मशास्त्री हेमाद्रि ने अपने 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' मे भागवत के अनेक वचन उद्धृत किए हैं भागवत के रचयिता नही माने जा सकते। शंकराचार्य के दादा गुरु गौडपादाचार्य ने अपने 'पचीकरणव्याख्या' मे 'जगृहे पौरुष रूपम्' (भा० १।३।१) तथा 'उत्तरगीता टीका' मे 'श्रेय. स्रुति भक्ति मुदस्य ते विभो' (भा० १०।१४।४) भागवत के दो श्लोको को उद्धृत किया है। इससे भागवत की रचना सप्तम शती से अर्वाचीन नही मानी जा सकती।

भागवत का प्रभाव मध्ययुगीय वैष्णव संप्रदायों के उदय मे नितांत क्रियाशील था तथा भारत की प्रांतीय भाषाओं के कृष्ण काव्यों के उत्थान मे विशेष महत्वशाली था। भागवत से ही स्फूर्ति तथा प्रेरणा ग्रहण कर ब्रजभाषा के अष्टछापी (सूरदास, नंददास आदि) निंबार्की (श्रीभट्ट तथा हरिव्यास) राधावल्लभीय (हित हरिवंश तथा हरिदास स्वामी) कवियो ने ब्रजभाषा मे राधाकृष्ण की लीलाओं का गायन किया। मिथिला के विद्यापति, बगाल के चंडीदास, ज्ञानदास तथा गोविंददास, असम के शकरदेव तथा माधवदेव, उत्कल के उपेंद्रभज तथा दीनकृष्णदास, महाराष्ट्र के नामदेव तथा वामन पंडित, गुजरात के नरसी मेहता तथा राजस्थान की मीरांबाई—इन सभी सतो तथा कवियो ने भागवत के रसमय वर्णन से प्रेरणा प्राप्त कर राधाकृष्ण की कमनीय केलि का गायन अपने विभिन्न काव्यो मे किया है। तमिल, आंध्र, कन्नड तथा मलयालम के वैष्णव कवियो के ऊपर भी भागवत का प्रभाव कम नहीं है।

भागवत का आध्यात्मिक दृष्टिकोण अद्वैतवाद का है तथा साधनादृष्टि भक्ति की है। इस प्रकार अद्वैत के साथ भक्ति का सामरस्य भागवत की अपनी विशिष्टता है। इन्ही कारणों से भागवत वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत के साथ संस्कृत की 'उपजीव्य' काव्यत्रयी के अंतर्भुत माना जाता है।

सं॰ ग्रं॰—स्वामी अखंडानंद सरस्वती : श्रीमद्भागवतरहस्य, बंबई, १९६३। बलदेव उपाध्याय : भागवत संप्रदाय, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सं॰ २०१०; डॉ॰ सिद्धेश्वर भट्टाचार्य : फिलॉसफी ऑव श्रीमद्भागवत, दो खंडों में विश्वभारती से प्रकाशित, १९६० तथा १९६२] [ब॰ उ॰]

भागवत धर्म वैष्णव धर्म का अत्यंत प्रख्यात तथा लोकप्रिय स्वरूप। 'भागवत धर्म' का तात्पर्य उस धर्म से है जिसके उपास्य स्वयं भगवान् हों। और वासुदेव कृष्ण ही 'भगवान्' शब्द के वाच्य हैं (कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्—भागवत) अतः भागवत धर्म मे कृष्ण ही परमोपास्य तत्व हैं जिनकी आराधना भक्ति के द्वारा सिद्ध होकर भक्तों को भगवान् का सांनिध्य तथा सेवकत्व प्राप्त कराती है। सामान्यतः यह नाम वैष्णव संप्रदायो के लिये व्यवहृत होता है, परंतु यथार्थतः यह उनमें एक विशिष्ट संप्रदाय का बोधक है। भागवतों का महामंत्र है 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' जो द्वादशाक्षर मंत्र की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। पांचरात्र तथा वैखानस मत 'नारायण' को ही परम तत्व मानते हैं, परंतु इनसे विपरीत भागवत मत कृष्ण वासुदेव को ही परमाराध्य मानता है।

प्राचीनता — इस धर्म की प्राचीनता अनेक पुष्ट प्रमाणों के द्वारा प्रतिष्ठित है। गुप्त सम्राट् अपने को 'परम भागवत' की उपाधि से विभूषित करने मे गौरव का अनुभव करते थे। फलतः उनके शिलालेखों में यह उपाधि उनके नामों के साथ अनिवार्य रूप से उल्लिखित है। विक्रमपूर्व प्रथम तथा द्वितीय शताब्दियों में भागवत धर्म की व्यापकता तथा लोकप्रियता शिलालेखों के साक्ष्य पर निर्विवाद सिद्ध होती है। ईसवी पूर्व प्रथम शतक में महाक्षत्रप शोडाश (८० ई॰ पूर्व से ५७ ई॰ पू॰) मथुरा मंडल का अधिपति था। उसके समकालीन एक शिलालेख का उल्लेख है कि वसु नामक व्यक्ति ने महास्थान (जन्मस्थान) मे भगवान् वासुदेव के एक चतुःशाल मंदिर, तोरण तथा वेदिका (चौकी) की स्थापना की थी। मथुरा में कृष्ण के मंदिर के निर्माण का यह प्रथम उल्लेख है। नानाघाट के गुहाभिलेख (प्रथम शती ई॰ पू॰) मे अन्य देवों के साथ संकर्षण तथा वासुदेव का भी नाम लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित संकर्षण (बलराम) की द्विभुजी प्रतिमा (जिसके दाहिने हाथ मे मूसल और बाएँ हाथ मे हल है) इसी युग की मानी गई है। बेसनगर का प्रख्यात शिलालेख (२०० ई॰ पू॰) इस विषय में विशेष महत्व रखता है। इस शिलालेख का कहना है कि हेलियोदोर ने देवाधिदेव वासुदेव की प्रतिष्ठा मे इस गरुडस्तंभ का निर्माण किया था। यह दिय का पुत्र, तक्षशिला का निवासी था जो राजा भागभद्र के दरबार में अंतलिकित (भारतीय ग्रीक राजा 'एंटिअल किडस') नामक यवनराज का दूत बनकर रहता था। यह यूनानी राजदूत अपने को 'भागवत' कहता है। इस शिलालेख का ऐतिहासिक वैशिष्ट्य यह है कि उस युग में वासुदेव देवाधिदेव (अर्थात् देवों के भी देव) माने जाते थे और उनके अनुयायी 'भागवत' नाम से प्रख्यात थे। भागवत धर्म भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश तक फैला हुआ था और यह विदेशी यूनानियों के द्वारा समादृत होता था। पातंजल महाभाष्य से प्राचीनतर महर्षि पाणिनि के सूत्रों की समीक्षा भागवत धर्म की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये निःसंदिग्ध प्रमाण है।

पाणिनि ने 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्' (४।३।९८) सूत्र में वासुदेव की भक्ति करनेवाले व्यक्ति के अर्थ मे वुन् (अक) प्रत्यय का विधान किया है जिससे वासुदेव भक्त (वासुदेवो भक्तिरस्य) के लिये 'वासुदेवक' शब्द निष्पन्न होता है। इस सूत्र के भाष्य तथा प्रदीप के अनुशीलन से 'वासुदेव' का अर्थ निःसंदिग्ध रूप से परमात्मा ही होता है, वसुदेव नामक क्षत्रिय का पुत्र नही :

संज्ञैषा तत्र भगवतः (महाभाष्य)

नित्य. परमात्मदेवताविशेष इह वासदेवो गृह्यते (प्रदीप) कैयट का कथन है कि यहाँ नित्य परमात्मा देवता ही 'वासुदेव' शब्द से गृहीत किया गया है। काशिका इसी अर्थ की पुष्टि करती है (संज्ञैषा देवताविशेषस्य न क्षत्रियाख्या, ४।३।९८ सूत्र पर काशिका) तत्वबोधिनी मे इसी परंपरा मे 'वासुदेव' का अर्थ परमात्मा किया गया है। पतंजलि के द्वारा 'कंसबध' तथा 'बलिबंधन' नाटकों के अभिनय का उल्लेख स्पष्टतः कृष्ण वासुदेव का ऐक्य 'विष्णु' के साथ सिद्ध कर रहा है—इसे वेबर, कीथ, ग्रियर्सन आदि पाश्चात्य विद्वान् भी मानते हैं। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि पाणिनि के युग में (ई॰ पूर्व षष्ठ शती मे) भागवत धर्म प्रतिष्ठित हो गया था। इतना ही नहीं. उस युग मे देवों की प्रतिमा भी मंदिरो मे या अन्यत्र स्थापित की जाती थी। ऐसी परिस्थिति में पाणिनि से लगभग तीन सौ वर्ष पीछे चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार का यूनानी राजदूत मेगस्थीनीज जब मथुरा तथा यमुना के साथ संबद्ध 'सौरसेनाई' (शौरसेन) नामक भारतीय जाति मे 'हेरिक्लीज' नामक देवता की पूजा का उल्लेख करता है, हमें आश्चर्य करने का अवसर नही होता। 'हेरिक्लीज' शौरि का प्रतिमान बनकर संकर्षण का द्योतक हो, चाहे कृष्ण का। उसकी पूजा भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार का संशयहीन प्रमाण है।

भागवत धर्म अपनी उदारता और सहिष्णुतावृत्ति के कारण अत्यंत प्रख्यात है। इस धर्म मे दीक्षित होने का द्वार किसी के लिये कभी बंद नही रहा। भगवान् वासुदेव के प्रति प्रेम रखनेवाला प्रत्येक जीव इस धर्म मे आ सकता है, चाहे वह जात्या कोई भी हो तथा गुणत कितना भी नीच हो। भागवत पुराण का यह प्रख्यात कथन भागवत धर्म के औदार्य का स्पष्ट परिचायक है :

किरात हूणांध्र पुलिंद पुल्कसा
आभीरकंका यवना खशादय.।
ये ऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यंति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥
—(भा॰ २)

श्लोक का तात्पर्य है कि किरात, हूण, आंध्र, पुलिंद, पुल्कस, आभीर, कक, यवन, खश आदि जंगली तथा विधर्मी जातियों ने और अन्य पापी जनो ने भगवान् के भक्तों का आश्रय लेकर शुद्धि प्राप्त की है, उन प्रभावशाली भगवान् को नमस्कार। यवन हेलियोदोर का भागवत धर्म में दीक्षित होना इस पथ का ऐतिहासिक पोषक प्रमाण है। यह भागवतो की सहिष्णुतावृत्ति का निःसंशय परिचायक तथा उद्बोधक है।

भागवत मत में अहिंसा का साम्राज्य है। भागवत मत वैदिक यज्ञयागों के अनुष्ठानों का विरोधी नहीं है, परंतु वैदिक यज्ञों में यह

हिंसा का प्रबल विरोधी है, नारायणीय पर्व के भगवद्भक्त राजा उपरिचर का आख्यान इसी सिद्धांत को पुष्ट करता है। उस नरपति ने महान् अश्वमेध किया, परंतु उसमें किसी प्रकार के पशु का हिंसन तथा बलिदान नहीं किया गया (संभूताः सर्वसंभारास्तस्मिन् राजन् महाक्रतौ। न तत्र पशुघातोऽभूत् स राजैवं स्थितोऽभवत् ।—शांतिपर्व, अ० ३३६, श्लो० १०)। 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' इस श्रुतिवाक्य का अक्षरश: अनुगमन भागवतों ने ही सर्वप्रथम किया तथा इसका पालन अपने आचारानुष्ठानों में किया।

साध्य पक्ष — भागवत मत का सर्वश्रेष्ठ मान्य ग्रंथ है— श्रीमद्भागवत जो अष्टादश पुराणों में अपने विषयविवेचन की प्रौढ़ता तथा काव्यमयी सरसता के कारण सबसे अधिक महत्वशाली है (दे० 'भागवत')। भागवत के सिद्धांत भागवतधर्म के महनीय तथा माननीय सिद्धांत हैं। भागवत का कथन है कि परमार्थतः एक ही अद्वय ज्ञान है। वही ज्ञानियों के द्वारा 'ब्रह्म', योगियों के द्वारा 'परमात्मा' तथा भगवद्भक्तों के द्वारा 'भगवान्' कहा जाता है। भेद है उपासकों की दृष्टि का तथा उपासना के केवल तारतम्य का। एक अभिन्न परम तत्व नाना उपासना की दृष्टि में भिन्न प्रतीत होता है, परंतु वह अभिन्न अद्वयज्ञान रूप

वदंति तत् तत्वविदस्तत्वं यज् ज्ञानमद्वयम्
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।:
(भाग० १।२।११)

शक्तियों की संपत्ति ही भगवान् की भगवत्ता है। यह शक्ति एक न होकर अनेक हैं तथा अचिंतनीय है। अचिंत्यशक्ति का निवास होने के कारण वह 'लीलापुरुषोत्तम' है। इसी के कारण वह एक होते हुए भी अनेक प्रतीत होता है और भासित होने पर भी वह वस्तुत एक है। इसीलिये वह बहुमूर्तिक होने पर भी एकमूर्तिक है (यजंति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्, भाग० १०।४०।७)। विष्णुपुराण के 'एकानेक स्वरूपाय' तथा गोपालतापिनी के 'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति' वाक्य का लक्ष्य इसी अचिंत्य शक्ति की ओर है। इसी शक्ति के कारण भगवान् आश्रयशून्य, शरीररहित तथा स्वयं अगुण होते हुए भी अपने स्वरूप के द्वारा ही इस सगुण विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करते हैं, परंतु इन व्यापारों की सत्ता होने पर भी उनमें किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता। इसलिये भगवान् का विहारयोग दुःखबोध है, समझने में नितांत कठिन है :

दुःखबोध एवाय तव विहारयोगः, यद् अशरणो शरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैव अविक्रियमाणेन सगुणमगुण. सृजसि पासि हरसि (भाग० ६।९।३४)।

इस प्रकार भगवान् का स्वरूप तीन प्रकार का प्रतीत होता है (क) स्वयंरूप (ख) तदेकात्मक रूप और (ग) आवेशरूप। इनमें 'स्वयंरूप' ही अनन्यापेक्षी मुख्यरूप है। सच्चिदानंद विग्रह, परम सौंदर्यनिकेतन, परमनयनाभिराम स्वयंरूप ही भगवान् का सर्वश्रेष्ठ रूप है। 'तदेकात्मकरूप' स्वयंरूप के साथ एकता रखने पर भी आकृति, आकार तथा चरितादिकों के द्वारा उससे भिन्न के समान प्रतीत होता है। शक्तियों के उत्कर्ष और ह्रास के कारण इस रूप में दो प्रकार होते हैं—विलास तथा स्वांश। 'विलास' का रूप मूलरूप से आकृति में भिन्न रहता है, परंतु गुणों में वह प्राय: समान ही होता है। विलास में शक्ति का प्राकट्य अधिक होता है, परंतु 'स्वांश' में शक्ति का प्राकट्य तदपेक्षया न्यून होता है। स्वयंरूप मे अनंत गुणों की सत्ता होने पर भी ६४ गुणों का अस्तित्व और उनमें भी चार गुणों का अस्तित्व सर्वदा तथा सर्वथा माना जाता है। ये गुण हैं— (१) लोकों को चमत्कृत करनेवाली लीला, (२) प्रेम द्वारा सुशोभित 'प्रियमंडल', (३) चराचर को मुग्ध करनेवाली रूपमाधुरी तथा (४) जड़चेतन को विस्मित करनेवाला मुरलीनिनाद। कृष्ण मे इन चारों का सद्भाव उनकी भगवत्ता सिद्ध करने का परम उपाय है। 'आवेश' रूप मे भगवान् जीवों मे न्यूनाधिक रूप से अपनी शक्ति का आधान करते हैं। यह उनका सबसे छोटा रूप माना जाता है।

साधनपक्ष—भगवान् की उपलब्धि का एकमात्र साधन है—भक्ति। यह भक्ति मुक्ति से भी बढ़कर है। सामान्य जन आनंदमयी मुक्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं, परंतु भक्तों की दृष्टि मे वह नितांत हेय तथा नगण्य वस्तु है। प्रियतम के पादपद्मों की सेवा ही उसका एकमात्र लक्ष्य होता है। भगवान् मुक्ति देने के लिये उत्सुक रहते हैं, परंतु एकांती भक्त उसे कथमपि ग्रहण नहीं करता :

न किंचित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकांतिनो मम।
वाञ्छत्यपि मया दत्त कैवल्यमपुनर्भवम् ॥
(भाग० ११।२०।३४)।

भगवान् का भी आग्रह मुक्ति की अपेक्षा भक्ति पर ही अधिक है। मांगने पर भक्तों को वह मुक्ति तो देते हैं, परंतु भक्ति नहीं :

······भगवान् भजता मुकुंदो
मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम् ॥
(भाग० ५।६।१८)

तीव्र ज्ञान के बल पर मुक्ति की उपलब्धि होना एक सामान्य सर्वपरिचित व्यापार है, परंतु भक्ति की प्राप्ति भगवान् की केवल कृपा से ही साध्य होती है। मुक्ति की अपेक्षा भक्ति के आकर्षण का एक गोपनीय रहस्य है। ज्ञान के द्वारा उपलभ्य ब्रह्मानंद की अपेक्षा प्रेमाभक्ति का दर्जा कहीं ऊँचा है, क्योंकि ब्रह्मानंद रस नहीं होता, किंतु भक्ति रसात्मिका है। वासना के विनाश से उत्पन्न आनंद को भक्त तनिक भी नहीं चाहता, वह वासना के विशोधन (सब्लिमेशन) से जायमान अलौकिक रसानंद के लिये लालायित रहता है। इसीलिये मुक्ति से बढ़कर भक्ति की कक्षा होती है। परंतु यह भक्ति साधनरूपा वैधी भक्ति नहीं है, अपितु साध्यरूपा रागानुगा प्रेमाभक्ति है जिसके विषय मे भागवत प्रवर प्रह्लाद का यह अनुभूत कथन है :

न दानं न तपो नेज्या न शौच न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडंबनम् ॥

रागानुगा भक्ति की यह गंभीर मीमांसा भागवत धर्म की विश्व के धर्मों को महनीय देन है।

सं० ग्रं०—श्रीरूप गोस्वामी . लघुभागवतामृतम्, वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई, जीव गोस्वामी . षट् संदर्भ (विशेषत भक्ति संदर्भ और प्रीति संदर्भ), डॉ० भांडारकर : वैष्णविज्म ऐंड माइनर सेक्ट्स, पूना, १९१८, गोपीनाथ कविराज . भक्तिरहस्य, भारतीय दर्शन और साधना भाग २; बलदेव उपाध्याय . भागवत संप्रदाय, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी सं० २०१०, बलदेव उपाध्याय : भारतीय साहित्य में श्रीसधा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना सं० २०२०। [ब० उ०]

भागीदार, अंशधारी (Share holder) प्रमाडनिक व्यापार के सुसंगठित रूप में विकास को बृहत् रूप देनेवाले लाभो मे एक प्रमुख लाभ यह भी है कि इसमें संस्थापक को अपना कार्यक्षेत्र फैलाने का अवसर मिलता है। वह अनगिनत सख्या मे लोगो को उसके साथ कारोबार में शामिल होने को प्रेरित करता है। प्रत्येक व्यक्ति जो भी संस्थापित प्रमंडल (Incorporated company) में शामिल होता है उसका सदस्य बन जाता है। लेकिन हर सदस्य अंशधारी नही होता। बहुत से प्रमंडल ऐसे हैं, उदाहरणार्थ प्रत्याभूति द्वारा मर्यादित (limited by guarantee) जिनकी अंश पूँजी ही न हो और इसलिये अंशधारी न हों, परंतु उनके सदस्य होते हैं।

निम्नलिखित प्रकारों में किसी भी एक प्रकार से एक व्यक्ति सदस्य बन सकता है। प्रथमतः प्रमंडल अधिनियम १९५६ की धारा ४१ मे व्यवस्था दी गई है कि पार्षद सीमा नियम (memorandum of association) के अभिदाता (subscribers) प्रमडल के सदस्य बनने को सहमत माने जाएँगे, और उनके पजीकरण (Registration) के बाद उन्हे सदस्यों की पंजिका (Register) मे सदस्यो के रूप मे लिखा जायगा।

दूसरे, कोई भी प्रमंडल के अंश क्रय करने को सहमत होकर सदस्य बन सकता है, जैसे आवटन (Allotement) द्वारा या खुले बाजार मे प्रमंडल के अंश क्रय कर या संप्रेक्षण से, जैसे, एक मृत या नष्टनिधि (Bankrupt) सदस्य के अंशों के दायाधिकार (succession) द्वारा। इन सभी स्थितियों में जब तक उसका नाम सदस्यों की पजिका में नही होता वह सदस्य नही माना जाता। अगर उसका नाम सदस्यपंजिका में है तो भले ही वह सदस्य न रहा हो, उसमे होने के नाते वह सदस्य माना जायगा।

सभी व्यक्ति, जो संविदा (contract) के लिये सक्षम (competent) है, विधान के अंतर्गत सदस्य हो सकते हैं। इसलिये एक अल्पवयस्क (minor) और एक विक्षिप्त व्यक्ति सविदासक्षम न होने के कारण सदस्य नही बन सकता। पार्षद सीमा नियम की उद्देश्यात्मक उपधारा (objective clause) द्वारा अधिकृत एक प्रमडल दूसरे प्रमंडल का सदस्य बन सकता है। अंग्रेजी विधान मे एक अल्पवयस्क भी सदस्य बन सकता है लेकिन उसके वयस्क बन जाने के बाद समुचित काल के अदर उसके विकल्प पर संविदा विवर्ज्य (voidable) है।

अपने अंशों को हस्तातरित कर (transfer) या मृत्यु हो जाने पर अपहार (forfeiture) या समर्पण (surrender) अथवा प्रमडल का कार्य समाप्त कर दिए जाने पर और नही तो पार्षद अंतर्नियमो की व्यवस्थाओं के अनुरूप एक व्यक्ति अपनी सदस्यता से वंचित हो सकता है।

सदस्यों का दायित्व प्रमंडल के स्वरूप पर निर्भर है। अगर प्रमंडल अपरिमित दायित्व (unlimited liabilities) वाला है तो प्रत्येक सदस्य का पूर्ण दायित्व उसकी सदस्यता के काल मे प्रमंडल द्वारा अनुबंधित (contracted) सभी ऋणो का भुगतान हो जाता है। अगर प्रमंडल प्रत्याभूति द्वारा परिमित दायित्वपूर्ण है तो प्रमडल के भंग होने पर (winding up) प्रत्येक सदस्य को पार्षद सीमा नियम की दायित्व उपधारा (liability clause) के अंतर्गत निर्दिष्ट (specified) धनराशि का अनिवार्य रूप से भुगतान करना होगा। अगर प्रमंडल अंश परिमित (limited by shares) है तो प्रत्येक सदस्य को अनिवार्यत. अपने अंशों का अधिहित मूल्य चुकाना होगा और अगर उसके अंशों का पूर्ण भुगतान हो गया है तो उसका कोई दायित्व नही रहता। एक भूतपूर्व सदस्य का भी आंशिक देय दायित्व तब हो जाता है जब उसके अंशों के हस्तातरण के एक वर्ष के अंदर प्रमंडल भंग हो जाता है और तब भी, जब कि वर्तमान सदस्य पूर्णरूप से भुगतान कर पाने मे असमर्थ होते हैं; तो भी उसका दायित्व उन ऋणो के भुगतान का है जो उसके सदस्यता से मुक्त होने से पूर्व लिए गए थे। [अ० सि०]

भागीरथी १. हिमालय में गंगोत्री से निकली उस धारा को भागीरथी कहते हैं जो आगे बढने पर अलकनंदा आदि सरिताओ से मिलने के बाद गगा के नाम से पुकारी जाती है।

२ गगा नदी जब पश्चिमी बंगाल में पहुँचती है तब वह कई धाराओ मे बँट जाती है। इन्ही में से एक धारा का नाम भागीरथी है। यह धारा आगे चलकर कलकत्ते के समीप हुगली नदी के नाम से पुकारी जाती है। भागीरथी मुर्शिदाबाद मे २४° ३५' उ० अ० तथा ८८° ५५' पू० दे० पर गंगा से अलग होती है। छोटा नागपुर से आकर इसके दाहिने तट पर अनेक नदियाँ इसमें मिलती हैं। मुर्शिदाबाद से बह कर यह बर्द्धमान और नदिया जिलो की सीमा बनाती है। जलंगी और दामोदर नदियों से मिलने के बाद यह हुगली नदी कहलाने लगती है। पौराणिक कथाओ के अनुसार यह राजा सगर के ६०,००० पुत्रों का, जो ऋषि के शाप से जलकर राख हो गए थे, उद्धार करने के लिये राजा भगीरथ द्वारा इस पृथ्वी पर लाई गई थी। पूर्व काल में गौड़ो, पंडुवों, राजमहल तथा नवद्वीप आदि के राजाओ की राजधानियाँ इसी के किनारे थी। आज भी मुर्शिदाबाद, बरहमपुर, जगीपुर, कतवा और नवद्वीप आदि नगर इसके तट पर बसे हुए है। [सु० चं० श०]

भाजन गणित मे वह क्रिया है जिससे शून्य से भिन्न दो संख्याओं (गुणनखडों) का गुणनफल और इन संख्याओ मे से एक के दिए रहने पर दूसरी ज्ञात की जाती है। दिए हुए गुणनफल को भाज्य, दी हुई संख्या को भाजक और अभीष्ट सख्या को भागफल कहते हैं। स्पष्ट है कि यदि भाज्य य और भाजक क धन पूर्ण संख्याएँ हैं, तो भागफल ल तभी पूर्ण संख्या होगा जब य, क का समापवर्तक हो, किंतु यदि य दो क्रमागत समापवर्त्यों क र और क (र+१) के बीच मे है तो र को भागफल और य−क र को शेष कहते है। इस भाजन क्रिया को सशेष भाजन कहते हैं।

बीजगणित मे भी भाजन की अद्वितीय क्रिया हो सकती है। यह तब जब भाजक और भाज्य केवल एक चर य के बहुपद हों और यह समझा हुआ हो कि शेष को भाजक से कम घात का बहुपद होना चाहिए (देखें अंकगणित और बीजगणित)।

जब भाजक द्विपद य−च के रूप का हो, तो भाजनक्रिया संक्षिप्त की जा सकती है। उदाहरणतः मान लें भाज्य क य^3 + ख य^2 + ग य + घ है, तो इस संक्षिप्त विधि के अनुसार क्रिया को इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है :

क 	ख 	ग 	घ 	च

कच 	छच 	जच

छ 	ज 	झ

जहाँ छ = ख + कच, 	ज = ग + छज, 	झ = घ + जच।
भागफल कय² + छय + ज और शेष झ है।

झ के मान में पहले ज, फिर छ के मान रखने से विदित होगा कि झ = कच³ + खच² + गच + घ, अर्थात् झ बहुपद का वह मान है, जब य = च। इसलिये इस संक्षिप्त विधि के उपयोग से चर का मान दिए रहने पर बहुपद का मान सुगमता से ज्ञात किया जा सकता है। इस विभाजन से हमें निम्न प्रमेय मिलता है :

शेष प्रमेय — यदि किसी बहुपद फ (य) ≡ कयⁿ + खयⁿ⁻¹··· + स में बहुपद य — च से भाग दिया जाय तो शेष कचⁿ + खचⁿ⁻¹ +···+ स बचता है जो फ (च) है, अर्थात् बहुपद में य के स्थान मे च रखने से प्राप्त होता है। इस प्रमेय का उपयोग गुणनखंड ज्ञात करने में होता है (देखें गुणनखंड)। 	[ह० चं० गु०]

भातखंडे, विष्णु नारायण भारतीय संगीत के लक्षण और लक्ष्य में अनुसंधान और स्तरीकरण के अग्रदूत। जन्म—बंबई प्रातातर्गत बालकेश्वर में, १० अगस्त (गोकुलाष्टमी), सन् १८६०, मृत्यु—बंबई में, १६ सितंबर (गणेशचतुर्थी) १९३६। सन् १८८३ मे बी०ए०; १८९० मे एल० एल०बी० पेशा—वकालत। एकाधिक संगीत गुरुओं से शिक्षा ग्रहण।

अनुसंधान कार्य — देश भर के राजकीय, देशी राज्यांतर्गत, संस्थागत, मठ-मंदिर-गत और व्यक्तिगत संग्रहालयों मे हस्तलिखित संगीत ग्रंथों की खोज और उनके नामों का अपने ग्रंथो मे प्रकाशन, देश के अनेक हिंदू मुस्लिम गायक वादकों से लक्ष्य-लक्षण-चर्चा-पूर्वक सारोद्धार, और विपुलसख्यक गेय पदों का संगीत लिपि मे संग्रह, कर्णाटकीय मेलपद्धति के आदर्शानुसार राग वर्गीकरण की दश थाट् पद्धति का निर्धारण। इन सब कार्यों के निमित्त भारत के सभी प्रदेशों का व्यापक पर्यटन किया। संस्कृत एवं उर्दू, फ़ारसी, संगीत ग्रंथो का तत्तद्भाषाविदो की सहायता से अध्ययन और हिंदी अंग्रेजी ग्रंथों का भी परिशीलनकर। अनेक रागों के लक्षणगीत, स्वरमालिका आदि की रचना और तत्कालीन विभिन्न प्रयत्नो के आधार पर सरलतानुरोध से संगीत-लिपि-पद्धति का स्तरीकरण किया।

संगीत-शिक्षा-संस्थाओं से संबंध — मैरिस कॉलेज (वर्तमान भातखंडे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ) माधव संगीत विद्यालय, ग्वालियर, एवं संगीत महाविद्यालय, बड़ोदा, की स्थापना अथवा उन्नति में प्रेरक सहयोगी रहे।

संगीतपरिषदो का आयोजन — १९१६ मे बड़ोदा में देश भर के संगीतज्ञों की विशाल परिषद् का आयोजन किया। तदनंतर दिल्ली, बनारस तथा लखनऊ में संगीत परिषदें आयोजित हुईं।

प्रकाशित ग्रंथ (क) संस्कृत — स्वलिखित मौलिक ग्रंथ—(१) लक्ष्यसंगीतम् १९१० में 'चतुरपडित' उपनाम से प्रकाशित, द्वितीय संस्करण १९३४ में वास्तविक नाम से प्रकाशित। (अपने मराठी ग्रंथों में इसके विपुल उद्धरण अन्यपुरुष में ही दिए हैं)। (२) अभिनवरागमंजरी। आपकी प्रेरणा से संपादित एवं प्रकाशित लघु ग्रंथ (जिनके वे संस्करण आज अप्राप्य हैं। अधिकांश का प्रकाशनकाल १९१४–२० तक)—पुंडरीक विट्ठल कृत (१) रागमाला (२) रागमंजरी (३) सद्रागचंद्रोदय; व्यंकटमखीकृत (४) चतुर्दंडी-प्रकाशिका; (५) रागलक्षणम्; रामामात्यकृत (६) स्वरमेलकला-निधि: (मराठी टिप्पणी सहित); नारद (?) कृत (७) चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्; (८) संगीतसारामृतोद्धार: (तुलजाधिप के संगीतसारामृत का सक्षेप); हृदयनारायण देव कृत (९) हृदय-कौतुकम् (१०) हृदयप्रकाश:; भावभट्ट-कृत (११) अनूपसंगीत-रत्नाकर: (१२) अनूपसंगीतांकुश: (१३) अनूपसंगीतविलास:; अहोबल कृत (१४) संगीतपारिजात., (१५) रागविबोध. (दोनों मराठी टीकासहित); लोचनकृत (१६) रागतरंगिणी; अप्पा तुलसी कृत (१७) रागकल्पद्रुमांकुर:। (इस तालिका मे किंचित् अपूर्णता सभव है)।

(ख) मराठी — (१) हिंदुस्तानी सगीतपद्धति (स्वकृत 'लक्ष्य संगीतम्' का प्रश्नोत्तर शैली मे परोक्ष रूप से क्रमानुरोध निरपेक्ष भाष्य)—ग्रंथमाला मे चार भाग; प्रथम तीन सन् १९१०–१४ मे, एवं चौथा आपके देहांत से कुछ पूर्व प्रकाशित। कुल पृष्ठसंख्या प्राय. २०००। मुख्य प्रतिपाद्य विषय रागविवरण, प्रसंगवशात् अन्य विषयों का यत्र तत्र प्रकीर्ण उल्लेख (२) क्रमिकपुस्तकमालिका—(गेय पदों का स्थूल रूपरेखात्मक सगीत-लिपि-समन्वित बृहत् सकलन)—ग्रंथमाला मे चार खंडों के एकाधिक संस्करण जीवनकाल मे एवं ५वाँ ६ठा देहांत के बाद १९३७ मे प्रकाशित। केवल रागविवरण की भाषा मराठी, सकलित गेय पदों की भाषा हिंदी, राजस्थानी, पजाबी आदि।

(ग) अंग्रेजी (१) A comparative study of some of the leading music systems of the 15th—18th centuries—प्राय. २० मध्ययुगीन लघुग्रंथो का समीक्षात्मक विवरण (२) A short historical survey of the music of upper India—बड़ोदा संगीत परिषद् मे १९१६ मे प्रदत्त भाषण। (दोनों मराठी ग्रंथमालाओं और अंग्रेजी पुस्तकों का हिंदी अनुवाद गत १० वर्षों में प्रकाशित हुआ है)।

प्रमुख सहयोगी — प्रकाशन मे भा० सी० सुकथंकर; संपादन में द० के० जोशी, श्रीकृष्ण ना० रातनजंकर; शास्त्रानुसंधान में अप्पा तुलसी; संकलन मे रामपुर के नवाब और वजीर खाँ, जयपुर के मोहम्मदअली खाँ, लखनऊ के नवाब अली खाँ।

विशेषोल्लेख — संगीतशास्त्र मे अनुसंधानार्थ प्राचीन और मध्ययुगीन संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन की अनिवार्यता दृढ़ स्वर से उद्घोषित् की, एवं भावी अनुसंधान के लिये समस्याओं की तालिकाएँ प्रस्तुत कीं। 	[प्रे० ल० शा०]

भाप पानी की गैसीय अवस्था या जलवाष्प को कहते हैं। शुष्क भाप अदृश्य होती है, परंतु जब भाप में जल की छोटी छोटी बूँदें मिली होती हैं तब उसका रंग सफेद होता है, जैसा रेल के इंजन से निकलती भाप में स्पष्ट दिखाई देता है।

कल्पना कीजिए कि एक बरतन में कुछ पानी रखकर गरम

किया जा रहा है। पानी गरम करने से इसका आयतन थोड़ा बढ़ता है। साधारण दाब पर पानी का महत्तम ताप १००° सें० तक पहुंचता है।

यदि इसे और अधिक गरम किया जाय, तो जल की मात्रा धीरे धीरे वाष्प में परिवर्तित होने लगती है। भाप का आयतन बराबर मात्रा के जल के आयतन की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। जब भाप में जल की बूंदें उपस्थित होती हैं, तो इसे आर्द्र भाप कहते हैं। यदि भाप में जल की बूंदों का सर्वथा अभाव हो, तो यह शुष्क भाप कहलाती है। जिस ताप पर जल उबलता है, वह जल का क्वथनांक होता है।

मानक दाब पर जल का क्वथनांक १००° सें० है। पर दाब के घटने बढ़ने से क्वथनांक भी घटता बढ़ता है। पहाड़ों पर वायुमंडल की दाब कम होती है। अतः वहाँ पानी निम्न ताप पर उबलने लगता है। प्रत्येक निश्चित दाब के लिये क्वथन एक निश्चित ताप पर होता है।

जल को भाप मे बदलने के लिये जो ऊष्मा आवश्यक होती है उसे भाप की गुप्त ऊष्मा (Latent heat) कहते हैं। एक ग्राम जल को, जिसका ताप १००° सें० है, पूर्णतया वाष्पित करने मे ५३६ कैलोरी ऊष्मा आवश्यक होती है। यहाँ कैलोरी ऊष्मा की इकाई है। एक कैलोरी ऊष्मा का वह मान है जो एक ग्राम जल के ताप को १° सें० बढ़ाने के लिये आवश्यक होता है।

भाप के गुण — जब भापइंजन मे भाप का बहुत अधिक व्यावहारिक उपयोग होने लगा, तब भी इसके गुणो का सैद्धांतिक अध्ययन नही हुआ था। अतएव इसके बारे मे विस्तृत जानकारी नही प्राप्त थी। भाप का अध्ययन १९वीं सदी मे जॉन डाल्टन, जेम्स वाट, रेनो इत्यादि ने किया था। भाप के गुणो के बारे मे आधुनिकतम समीक्षा जोसेफ एच. कीनान (Joseph H. Keenan) की मानी जाती है, जो १९३६ ई० मे प्रकाशित हुई थी।

भाप के गुणों का अध्ययन करने के लिये पूर्ण ऊष्मा (enthalpy) का उपयोग किया जाता है। पूर्ण ऊष्मा की मात्रा निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त होती है :

$$h = u + A p v$$

यहाँ u आतरिक ऊर्जा, p दाब, v आयतन और A गुणाक है, जो कार्य के एकक को ऊष्मा के एकक मे परिणत करता है। विभिन्न दाब और ताप पर पूर्ण ऊष्मा का मान इसका गुण व्यक्त करता है। कीनान की समीक्षा मे विभिन्न दाब और ताप पर पूर्ण ऊष्मा का मान सारणी के रूप में दिया है।

यदि गरम वाष्प को ठंढा किया जाय, तो इसका ताप घटते हुए १००° सें० तक आता है और उसके बाद द्रवण आरंभ हो जाता है। द्रवण के लिये छोटे छोटे कणों की आवश्यकता होती है, जिनपर वाष्प जमता है। यदि वाष्प इस प्रकार के कणों से सर्वथा रहित हो और उसे शीघ्रता से ठंढा किया जाय, तो वाष्प का ताप १००° सें० से भी नीचे आ सकता है। इस अवस्था को अतिशीतित भाप (Supercooled steam) कहते हैं। यह अवस्था अस्थायी होती है और शीघ्र ही वाष्प द्रवित होने लगती है।

वाष्प के उपयोग — वाष्प को यांत्रिक ऊर्जा के लिये उपयोग करने का प्रथम श्रेय ऐलेग्जैंड्रिया के 'हीरो' (Hero) नामक व्यक्ति का है। इन्होंने भाप की सहायता से छोटे खिलौने चलाने की व्यवस्था की और छोटे मोटे आश्चर्य दिखाए। बड़े पैमाने पर वाष्प का उपयोग १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे आरंभ हुआ था। जेम्स वाट ने अपने आविष्कार से इसका उपयोग बहुत बढ़ाया। भाप का अधिकाश उपयोग ऊष्मा को यात्रिक ऊर्जा के रूप में परिवर्तित करने मे होता है। कोयले इत्यादि को जलाकर जो ऊष्मा प्राप्त होती है, उससे जल का क्वथन होता है। इस भाप को ऊँचे ताप और दाब पर करके उससे इंजन चलाए जाते हैं। इंजन आदि के लिये अतितप्त भाप का उपयोग अधिक उपयुक्त होता है, क्योंकि इससे इंजन की दक्षता अधिक होती है। इसके अतिरिक्त भाप अतितप्त होने से इंजन के पुर्जो का अपरदन (erosion) कम होता है तथा ऊष्मा की हानि भी कम होती है।

इंजन के अतिरिक्त भाप का बहुत अधिक उपयोग ऊष्मा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिये भी होता है। चूँकि एक ग्राम भाप मे ५३६ कैलोरी ऊष्मा गुप्त ऊष्मा के रूप मे प्राप्त होती है, अत भाप के द्रवण से बहुत अधिक ऊर्जा मुक्त होती है। ठंढे प्रदेशो मे मकान इत्यादि को गरम करने के लिये भाप का उपयोग होता है। मकान के निचले भाग मे पानी गरम किया जाता है, जिससे भाप उत्पन्न होती है। यह भाप नलिकाओ द्वारा अन्य कमरो मे पहुँचाई जाती है, जहाँ धातु के विकिरक (radiator) होते है। ये गरम हो जाते हैं और कमरो को गरम रखते हैं।

इसके अतिरिक्त भारत मे प्राकृतिक चिकित्सा मे, तथा फिनलैंड, स्वीडन इत्यादि देशों मे सर्वसाधारण द्वारा, वाष्पस्नान का बहुत अधिक उपयोग होता है। इसके लिये व्यक्ति एक ऐसे कक्ष मे बैठता है जिसमे गरम वाष्प प्रवेश कराया जाता है। इससे पसीना छूटता है। अत. रोमछिद्रों इत्यादि की सफाई हो जाती है।

[घ० कि० गु०]

भाप इंजन (Steam Engine) ऊष्माशक्ति से यांत्रिक शक्ति का उत्पादन ऊष्मा इंजन (heat engine) द्वारा होता है। ऊष्मा इंजन मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं : अंतर्दहन इंजन (internal combustion engine) और बाह्यदहन इंजन (external combustion engine)। बाह्यदहन इंजन का सर्वोत्तम उदाहरण है, भापइंजन। गरम जल-वाष्प द्वारा चलनेवाले इंजन को 'भाप इंजन' कहते हैं एवं इस तरह के इंजन भाप की ऊष्माशक्ति से यांत्रिक शक्ति का उत्पादन करते हैं।

संक्षिप्त इतिहास — भाप इंजन के आविष्कार का श्रेय सर जेम्स वाट को है, किंतु इस विषय के प्राप्त लेखों से सर्वेक्षण करने के पश्चात् पता चलता है कि न्यूकोमेन नामक वैज्ञानिक ने बहुत पहले भाप द्वारा चलनेवाले एक इंजन का निर्माण किया था एवं उसकी सहायता से कुएँ से जल निकाला था। कुछ लोग जेम्स वाट को इस प्रकार के इंजन का प्रथम आविष्कारक नहीं मानते हैं, क्योंकि जेम्स वाट से करीब ७५ वर्ष पूर्व पेपिन नामक वैज्ञानिक ने भी एक ऐसा इंजन बनाया था जो भाप द्वारा कार्य करता था और इसके लिये उसने एक पिस्टन (piston) और एक सिलिंडर (cylinder)

का उपयोग किया था। इस सिलसिले में विशेषज्ञों का मत है कि सर जेम्स वॉट ने न्यूकोमेन के इंजन के सिद्धांत के आधार पर ही एक बृहदाकार इंजन बनाया था, जिसमे बहुत सी विशेषताएँ थीं। जेम्स वाट के इंजन में कुछ सुधार कर जॉर्ज स्टीवेंसन ने रेलगाड़ी का इंजन बनाया और सर्वप्रथम १८२५ ई० में रेलगाडी चलाई। तब से भाप इंजन में विभिन्न प्रकार के सुधार होते रहे हैं।

भाप इंजन के प्रकार — भाप इंजन के निम्नलिखित मुख्य प्रकार हैं :

(क) एक एवं द्वि-क्रिया इंजन (single and double acting engine)—एक क्रिया इंजन मे भाप पिस्टन के एक ही ओर कार्य करती है एवं द्विक्रिया इंजन मे भाप पिस्टन के दोनों ओर कार्य करती है। यदि इन दोनो प्रकार के इंजनों में अन्य सभी अवस्थाएँ समान हो, तो द्वि-क्रिया इंजन द्वारा प्राप्त शक्ति दूसरे प्रकार के इजन द्वारा प्राप्त शक्ति की दूनी होती है। यही कारण है कि इन दिनो एक क्रिया इंजन कम ही व्यवहार मे लाया जाता है।

(ख) ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज इंजन — सिलिंडर की धुरी के ऊर्ध्वाधर या क्षैतिज होने के अनुसार इंजन ऊर्ध्वाधर या क्षैतिज कहा जाता है। क्षैतिज इजन ऊर्ध्वाधर इंजन से अधिक जगह घेरता है। ऊर्ध्वाधर प्रकार के इंजन में घर्षण आदि कम होता है, जिसके कारण यह क्षैतिज इंजन की तुलना मे अधिक दिन तक चल सकता है।

(ग) निम्न एवं उच्च चाल इंजन (Low and high speed engine) — भाप इंजन की चाल वस्तुत इसके क्रैंक शैफ्ट (crank shaft) के परिक्रमण (revolutions) की प्रति मिनट की चाल होती है। चार फुट पिस्टन स्ट्रोक (piston stroke) एव ८० परिक्रमण प्रति मिनट वाले इंजन मे औसत पिस्टन चाल ६४० फुट प्रति मिनट होगी। यह इंजन निम्न चाल इजन कहा जायगा। साधारणत. १०० परिक्रमण प्रति मिनट की चाल से कम चाल पर चलनेवाले इजन को निम्न चाल इंजन कहते हैं एव २५० परिक्रमण प्रति मिनट की चाल से अधिक चाल पर चलनेवाले इजन को उच्च चाल इजन कहते हैं। १०० और २५० परिक्रमण प्रति मिनट के बीच की चाल पर चलनेवाले इजन को 'मध्यम चाल इजन' (medium speed engine) कहते है। उच्च चाल इजन का सबसे बड़ा गुण यह है कि समान शक्ति के लिये यह बहुत ही छोटे आकार का होता है। उच्च चाल के कारण भाप भी कम ही खर्च होती है, क्योकि इस प्रकार के इंजन मे भाप और सिलिंडर के बीच ऊष्मा स्थानांतरण (heat transfer) मे बहुत ही कम समय लगता है।

(घ) सघनन और असघनन इजन (Condensing and non-condensing engine) — असंघनन इजन वह भाप इजन है जिससे भाप का निकास (exhaust) सीधे वायुमडल में होता है एवं इसके लिये सिलिंडर मे भाप की दाब वायुमंडल की दाब से कभी कम नहीं होनी चाहिए। संघनन इजन मे भाप कार्य करने के बाद सघनित्र मे प्रवेश करती है एव वहाँ वह वायुमंडल की दाब से बहुत ही कम दाब पर जल में परिवर्तित हो जाती है। संघनित्र का व्यवहार करने से भाप अधिक कार्य कर पाती है।

(च) सरल एवं संयोजी इजन (Simple and compound engines) — सरल इजन में प्रत्येक सिलिंडर बॉयलर से सीधे भाप पाता है एव सीधे वायुमडल या संघनित्र मे निकास (exhaust) करता है। सयोजी इजन में भाप एक सिलिंडर मे, जिसे उच्च दाब सिलिंडर कहते हैं, कुछ हद तक प्रसारित होती है और उसके बाद उससे कुछ बड़े सिलिंडर मे, जिसे निम्न दाब सिलिंडर कहते हैं, प्रवेश करती है एवं यहाँ प्रसार की क्रिया पूर्ण होती है। बहुधा निम्न दाब सिलिंडर सघनित्र मे निकास करता है। प्रसार तीन या चार सिलिंडर मे भी हो सकता है एव इन इंजनो को त्रिप्रसार इंजन (triple expansion engine) या चतुष्प्रसार इंजन (quadruple expansion engine) कहते हैं।

प्रत्यागामी इंजन की यंत्रावली — (Reciprocating engine mechanism) — चित्र १. मे इजन के विभिन्न पुर्जे दिखाए गए है। सिलिंडर (१) फ्रेम (frame) (२) के एक ओर बोल्ट (bolt) द्वारा बँधा रहता है। सिलिंडर ढक्कन (cylinder cover) (३) सिलिंडर के दूसरी ओर बोल्ट द्वारा बँधा रहता है। सिलिंडर से ऊष्मा सचार को कम करने के लिये अचालक (non-conductor) परिवेष्टन (lagging) (४) द्वारा सिलिंडर को चारों ओर से ढँक दिया जाता
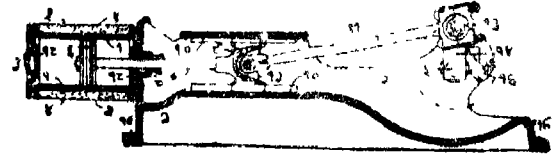
चित्र १.

है। इस परिवेष्टन को इस्पात की चादर (५) से लपेट दिया जाता है ताकि बाहर से देखने में अच्छा लगे। पिस्टन (६) पिस्टन दंड (७) के एक ओर लगा रहता है, जो भरण बक्स (stuffing box) (८) के अंदर से चलता है। क्रॉस हेड (cross head) (९) पिस्टन दंड के दूसरी ओर लगा रहता है और गाइड (guide) (१०) पर टिका रहता है। योजक दंड (connecting rod) (११) का एक किनारा क्रॉस हेड से गजन पिन (gudgeon pin) (१२) द्वारा जोड़ा रहता है। इसका दूसरा किनारा क्रैंक (crank) (१४) से क्रैंक पिन (crank pin) (१३) द्वारा बँधा रहता है। क्रैंक शैफ्ट (crank shaft) (१५) इजन का मुख्य पुर्जा है। यह मुख्य बेयरिंग (bearing) (१६) मे चलता है। इजन मे व्यवहृत स्नेहक तेल (lubricating oil) आदि इजन के फ्रेम के आधार के पास इकट्ठा किए जाते है (१७)। भाप द्वारों (ports) (१८) द्वारा सिलिंडर मे प्रवेश करती हैं, या इससे बाहर निकलती है।

भाप इंजन का कार्यसिद्धांत (working principle) — ऊष्मा इजन की अधिकतम दक्षता(ता$_1$ − ता$_2$)ता$_1$|$(T_1 - T_2)/T_1$|होती है जिसमें ता$_1$ (T_1) और ता$_2$ (T_2) ऊष्मा इजन चक्र (heat engine cycle) मे अधिकतम एव न्यूनतम ताप है। इससे पता चलता है कि इंजन की दक्षता इन दोनों तापो पर निर्भर करती है। भाप इजन की दक्षता उतनी ही बढती जायगी जितनी ता$_1$ (T_1) का मूल्य बढ़ेगा एव ता$_2$ (T_2) का मूल्य घटेगा। ता$_1$ (T_1) के मूल्य को बढ़ाने के लिये बायलर से निकलकर इंजन मे आनेवाली भाप की दाब का बढ़ाना

होगा, क्योंकि भाप की दाब जितनी ही अधिक होगी ता₁ (T_1) का मूल्य उतना ही बढ़ेगा। ता₁ (T_1) को बढाने का एक और उपाय है। वह है भाप को अतितापित करना। अतितापक का बॉयलर में व्यवहार करके भाप का अधिताप बढाया जाता है। ता₂ (T_2) के मान को कम करने के लिये संघनित्र का व्यवहार करना आवश्यक हो जाता है। संघनित्र में ठंडे जल द्वारा भाप जल मे परिवर्तित की जाती है। अत: अच्छे संघनित्र में ता₂ (T_2) का मान ठडे जल के ताप के बराबर हो सकता है। इससे पता चलता है कि भाप इजन में अधिक दाब एवं अधिक अतितप्त भाप द्वारा कार्य कराने से एवं कार्य कराने के बाद भाप को संघनित्र मे प्राप्य ठडे जल के ताप के बराबर ताप पर जल मे परिवर्तित करने से इजन अधिक दक्ष होगा।

बॉयलर से भाप उच्च दाब पर भापपेटी (steam chest) में प्रवेश करती है। पिस्टन जैसे ही स्ट्रोक (stroke) के अत में पहुँचता है, उस समय वाल्व चलता है, जिससे भापद्वार (steam port) खुल जाता है एव भाप सिलिंडर मे प्रवेश करती है। भाप की दाब द्वारा धक्का दिए जाने से पिस्टन आगे बढता है। इसे अग्र स्ट्रोक (forward stroke) कहते हैं। पिस्टन की चाल द्वारा क्रैंक, क्रैंक शाफ्ट एव उत्केंद्रक (eccentric) चलते हैं। उत्केंद्रक के चलने से द्वार कुछ और अधिक खुल जाता है। सिलिंडर मे भाप तब तक प्रवेश करती रहती है जब तक द्वार एकदम बद नही हो जाता। इस समय विच्छेद (cut off) होता है एव इसके बाद सिलिंडर मे भाप का संभरण (supply) नही हो पाता। सिलिंडर मे आई हुई भाप अब प्रसारित होती है एवं इस प्रसार मे भाप का आयतन बढ़ जाता है एवं दाब कम हो जाती है। इसी प्रसार के समय भाप कार्य करती है। अग्र स्ट्रोक के अंत मे वाल्व भाप द्वार को निकास की ओर खोल देता है, जिससे भाप निर्मुक्त होती है। निकली हुई भाप की दाब पश्च दाब (back pressure) के बराबर हो जाती है। निर्मोचन होने के कुछ क्षण के बाद पिस्टन पीछे की ओर लौटता है एव इसे प्रत्यावर्तन स्ट्रोक (return stroke) कहते है। इस स्ट्रोक मे लौटते समय पिस्टन सिलिंडर मे बची हुई भाप का निकास करता जाता है। जब पिस्टन इस स्ट्रोक के अत पर पहुँचता है, वाल्व निकास द्वार को बद कर देता है, जिससे भाप का प्रवाह बद हो जाता है। सिलिंडर शीर्ष और पिस्टन के बीच कुछ भाप बच जाती है, जो निर्मुक्त नही हो पाती है। फिर चक्र की पुनरावृत्ति होती है।

द्वि-क्रिया इजन मे इसी के सदृश चक्र की क्रिया सिलिंडर की दूसरी ओर होती है।

भाप का कार्नो चक्र (Carnot Cycle) — गैस के कार्नो चक्र मे मे दो रुद्धोष्म (adiabatic) एव दो स्थिर ताप वाली क्रियाएँ होती हैं। भाप को व्यवहृत करने पर दो स्थिर ताप वाली क्रियाएँ स्थिर दाब की क्रियाएँ हो जाती हैं, क्योंकि जल या भाप को स्थिर ताप पर रखने के लिये दाब को भी स्थिर रखना होगा। चित्र २ मे भाप का कार्नो चक्र दर्शाया गया है। बिंदु अ से आरभ करने पर चक्र की ये चार क्रियाएँ है (१) बिंदु अ पर जल ता₁ (T_1) ताप एव द₁ (p_1) दाब पर रहता है। यह जल स्थिर ताप पर गरम किया जाता है। जल धीरे धीरे भाप मे परिवर्तित होता जाता है। जब वाष्पीकरण पूरा हो जाता है तब भाप की अवस्था बिंदु ब से एवं यह क्रिया 'अ ब' से दिखाई जाती है। (२) बिंदु ब पर ऊष्मा का प्रदाय बंद हो जाता है एव भाप रुद्धोष्म तरीके से बिंदु स तक प्रसारित होती है। प्रसार के अंत मे दाब एव ताप घटकर क्रमश: दा₂ (p_2) एवं ता₂ (T_2) हो जाता है। यह क्रिया 'ब स' है। (३) बिंदु स से द तक भाप स्थिर ताप ता₂ (T_2) पर संपीडित होती है। इस क्रिया
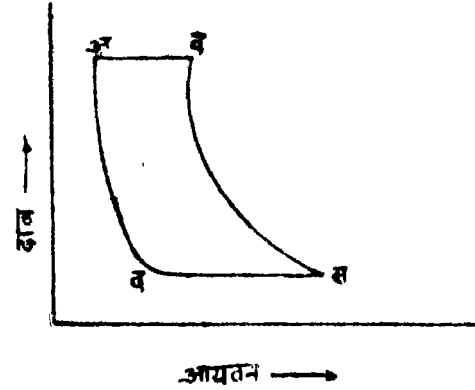
चित्र २.

से भाप का संघनन होता जाता है। द बिंदु पर पहुँचने पर कुछ भाप बच जाती है। (४) द बिंदु पर बची हुई भाप का रुद्धोष्म तरीके से 'द अ' द्वारा संपीडन होता है। इससे इसका आयतन बहुत ही कम हो जाता है। इसके बाद चक्र की पुनरावृत्ति होती है।

रैंकिन चक्र (Rankine Cycle) — रैंकिन चक्र एक सैद्धांतिक चक्र है, जिसके अनुसार भाप इजन कार्य करता है। यह चक्र चित्र ३. मे अंकित किया गया है। मान लिया कि चक्र के आरभ मे सिलिंडर
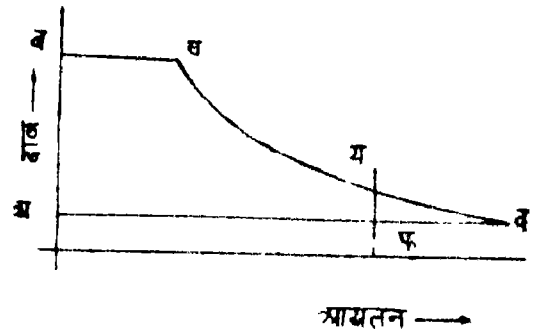
चित्र ३.

के अतरायतन (clearance volume) मे कुछ जल है एवं इस जल का आयतन नगण्य है। इस अवस्था को बिंदु अ से दिखाया गया है। रैंकिन चक्र की ये क्रियाएँ हैं: (१) 'अ ब' संघनित्र से संघनित जल पप द्वारा बॉयलर मे उच्च दाब पर भेजा जाता है। बॉयलर मे यह जल उच्च दाब के संतृप्त ताप (saturation temperature) तक गरम किया जाता है। (२) 'ब स' बॉयलर मे स्थिर दाब दा₁ (p_1) पर गरम जल का वाष्पीकरण होता है। (३) 'स द', बिंदु स पर भाप बॉयलर से भाप इजन मे प्रवेश करती है। भाप इंजन मे भाप का प्रसार रुद्धोष्म तरीके से बिंदु द तक होता है। इस प्रसार के द्वारा भाप कार्य करती है। प्रसार के अंत मे भाप

की दाब दा$_2$ (p_2) हो जाती है। (४) 'द अ' के बिंदु द पर भाप, इंजन में कार्य करने के बाद संघनित्र में प्रवेश करती है। संघनित्र में भाप स्थिर दाब पर जल के रूप में परिवर्तित होती है। बिंदु अ से पुन: चक्र की पुनरावृत्ति होती है।

व्यवहार में रैंकिन चक्र का रूपांतरण — वस्तुत: व्यवहार मे भाप को दाब-आयतन रेखाचित्र के अंतिम छोर बिंदु द तक प्रसारित करने से कुछ भी लाभ नही होता। इस रेखाचित्र का क्षेत्रफल भाप इंजन द्वारा प्राप्त कार्य के बराबर होता है। इसे देखने से पता चलेगा कि यह अंतिम सिरे की ओर बहुत ही संकीर्ण है, जिसके फलस्वरूप प्रसार स्ट्रोक के अंतिम भाग मे प्राप्त कार्य बहुत ही कम होगा। इस संकीर्ण भाग द्वारा प्राप्त कार्य इंजन के गतिमान पुर्जो के घर्षण को भी पूरा कर सकने मे असमर्थ होता है। इसी कारण प्रसार स्ट्रोक बिंदु य पर ही समाप्त कर दिया जाता है। तब बिंदु य से भाप की दाब स्थिर आयतन पर कम होती जाती है एवं बिंदु फ पर पहुँचने पर यह संघनित्र की दाब के बराबर हो जाती है। अत: चित्र ३ में 'अ ब स य फ' रूपांतरित रैंकिन चक्र है।

परिकल्पित और वास्तविक सूचक रेखाचित्र — चित्र ४. मे 'अ ब स द य' परिकल्पित रेखाचित्र एवं '१-२-३-४-५' वास्तविक रेखाचित्र है। भाप इंजन का परिकल्पित सूचक रेखाचित्र वह सैद्धातिक
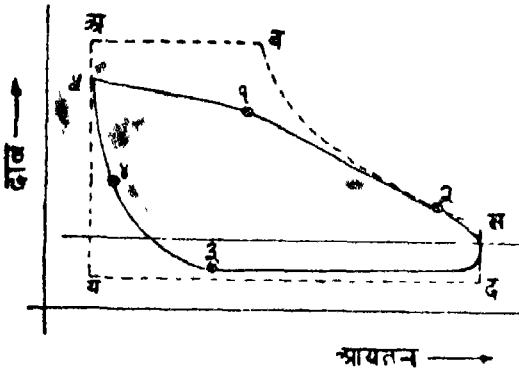
चित्र ४.

रेखाचित्र है जो यह मानकर बनाया जाता है कि इंजन में किसी भी प्रकार की क्षति नही हो रही है। इस प्रकार के रेखाचित्र को बनाते समय ये कल्पनाएँ कर ली जाती हैं: (क) द्वारों का खुलना और बंद होना तात्क्षणिक होता है। (ख) भाप के संघनन द्वारा दाबक्षति (loss) नही होती है। (ग) वाल्व द्वारा अवरोधन क्रिया नहीं होती है। (घ) भाप बॉयलर की दाब पर इंजन मे प्रवेश करती है और संघनित्र की दाब पर उसकी निकासी होती है। (च) इंजन मे भाप का अतिपरवलयिक (hyperbolic) प्रसार होता है।

वस्तुत: वास्तविक इंजन में क्षतियाँ होती हैं। इन क्षतियों के कारण इंजन पर प्रयोग द्वारा मिलने वाले सूचक रेखाचित्र, जिन्हें 'वास्तविक सूचक रेखाचित्र' कहते हैं परिकल्पित रेखाचित्र से विभिन्न होते हैं। बॉयलर से भाप नली द्वारा इंजन में प्रवेश करती है। इस नली में गरम भाप के प्रवाह के कारण कुछ भाप का संघनन हो जाता है, जिसके कारण भाप की दाब कम हो जाती है। वाल्व द्वारा भाप के प्रवेश करते समय अवरोधन के कारण भी दाब में कुछ कमी हो जाती है। इन्हीं सब क्षतियों के कारण इंजन में प्रवेश करते समय भाप की दाब बॉयलर की दाब से कम रहती है। सिलिंडर की दीवारें भाप की तुलना में ठंढी होती हैं। इसके कारण भाप का संघनन होता है। इसके फलस्वरूप विच्छेद बिंदु तक दाब मे धीरे धीरे क्षति होती जाती है। सिलिंडर की दीवारों द्वारा ताप के चालन के कारण प्रसारवक्र वास्तव में अतिपरवलयिक नहीं हो पाता है। भाप का उन्मोचन स्ट्रोक के पूर्ण होने के पहले ही हो जाता है। प्रवेश एवं निकास द्वार के क्रमश: बंद होने और खुलने में लगनेवाले समय के कारण रेखाचित्र मे उन दो बिंदुओं पर कुछ वक्रता आ जाती है। चूँकि कार्य करने के बाद भाप को संघनित्र मे भेजना होता है, इसीलिये निकासी रेखा संघनित्र-दाब-रेखा से ऊपर रहती है। निकास द्वार के बंद होने के बाद सिलिंडर में बची हुई भाप का पिस्टन द्वारा संपीडन होता है। इसके कारण इस बिंदु पर भी रेखाचित्र में कुछ वक्रता आ जाती है। इस संपीडन स्ट्रोक के पूर्ण होने के ठीक कुछ पहले ताजी भाप इंजन में प्रवेश करती है। सिद्धांत एवं व्यवहार में पाए जानेवाले इन्हीं सब विचलनों के कारण दोनों रेखाचित्रों में अत्यंत अंतर हो जाता है। इसके कारण वास्तविक रेखाचित्र का क्षेत्रफल परिकल्पित रेखाचित्र के क्षेत्रफल से कम हो जाता है। इन दोनों क्षेत्रफलो के अनुपात को 'रेखाचित्र गुणक' (diagram factor) की संज्ञा दी गई है। रेखाचित्र गुणक का मान ०·६ से ०·६ तक होता है।

भाप इंजन की अश्व शक्ति — ऊपर बताए गए परिकल्पित सूचक-रेखाचित्र द्वारा पता चलता है कि भाप की दाब पिस्टन के पूरे स्ट्रोक के समान नहीं रह पाती। इंजन की अश्वशक्ति को जानने के लिये भाप की दाब के औसत मान का अंकन करना आवश्यक हो जाता है। इस दाब को माध्य प्रभावी दाब कहते हैं।

परिकल्पित माध्य प्रभावी दाब

$$= \frac{\text{द}_\text{अ}}{\text{प्र}} (\text{१} + \text{लघु प्र}) - \text{द}_\text{प}$$

$$\left[\frac{p_1}{r}(1 + \log_e r) - p_b\right]$$

जहाँ द$_1$ (p_1) = भाप इंजनों में अंतर्गम दाब, द$_\text{प}$ (p_b) = पश्च दाब और प्र (r) = प्रसार का अनुपात है। परिकल्पित सूचक-रेखाचित्र के आधार पर निकाली गई माध्य प्रभावी दाब को 'परिकल्पित माध्य प्रभावी दाब' कहते हैं। वास्तविक सूचक-रेखाचित्र द्वारा प्राप्त माध्य प्रभावी दाब को वास्तविक माध्य प्रभावी दाब कहते हैं।

दोनो मे निम्नलिखित संबंध है:

वास्तविक माध्य प्रभावी दाब = (परिकल्पित माध्य प्रभावी दाब) × रेखाचित्र गुणक

भाप इंजन पर वास्तविक सूचक रेखाचित्र, इंजन सूचक द्वारा प्राप्त होता है। इंजन सूचक एक ऐसा उपकरण है जो दो गतियों को दिखाता है: एक, ऊर्ध्वगति जो दाब की अनुपाती होती है, एवं दूसरी, क्षैतिज गति जो पिस्टन विस्थापन की अनुपाती होती है। इस उपकरण में एक छोटा सा सिलिंडर होता है, जिसमे एक बहुत ही चुस्त पिस्टन एक सिरे से दूसरे सिरे तक चलता है। पिस्टन के

द्वारा पिस्टन दंड चलता है, जिसपर एक कमानी लगी रहती है। कमानी का दूसरा छोर उपकरण के स्थिर हिस्से से कसकर बँधा रहता है। पिस्टन दंड पेंसिल यंत्रावली (pencil mechanism) को चलाता है, जो सूचक पिस्टन (indicator piston) की गति को ड्रम (drum) पर बढ़ाकर दिखाता है। क्षैतिज विस्थापन एक दोलन ड्रम (oscillating drum) की सहायता से प्राप्त होता है। सूचक चित्र एक खास तरह के पत्रक (card) पर लिया जाता है। ड्रम के ऊपर पत्रक को पकड़ने के लिये दो क्लिप (clip) रहते हैं। ड्रम की गति इंजन के पिस्टन की गति को अनुरूपित करती है और इसलिये एक खास माप पर पिस्टन के विस्थापन को दिखाती है।

सूचक रेखाचित्र के आधार पर निकाले गए माध्य प्रभावी दाब को व्यवहार करने से प्राप्त अश्वशक्ति को 'सूचित अश्वशक्ति' (Indicated horse power) कहते हैं।

$$\text{सूचित अश्व शक्ति} = \frac{(\text{दा}_{\text{मा}_1}\,\text{क्षे}_1 + \text{दा}\,\text{मा}_2\,\text{क्षे}_2) \times \text{स्ट्रो}\,\text{प}}{३३,०००}$$

$$\left[\frac{(p_{m1} A_1 + p_{m2} A_2)\,Ln}{33,000}\right]$$

जहाँ $\text{दा}_{\text{मा}1}$ (p_{m1}) और $\text{दा}_{\text{मा}2}$ (p_{m2}) भाप इंजन के दोनो ओर के माध्य प्रभावी दाब पाउंड प्रति वर्ग इंच मे हैं, क्षे_1 (A_1) तथा क्षे_2 (A_2) क्रमश दोनो ओर के क्षेत्रफल वर्ग इंच में है, स्ट्रो (L) = स्ट्रोक (stroke) की लंबाई फुट मे और प (N) = इंजन का परिक्रमण प्रति मिनट है।

सिलिंडर में उत्पन्न की हुई शक्ति का कुछ हिस्सा इंजन के गतिमान पुर्जों के घर्षण मे ही समाप्त हो जाता है। अत क्रैंकशैफ्ट पर प्राप्य ऊर्जा संपूर्ण ऊर्जा से सर्वदा कम रहती है। क्रैंकशैफ्ट पर प्राप्य शक्ति को बहुधा ब्रेक प्रणाली द्वारा मापा जाता है एव इसी के चलते इसे ब्रेक अश्वशक्ति कहते है। इंजन की अश्वशक्ति को मापने के उपकरण को डाइनेमोमीटर (Dynamometer) कहते हैं (देखें, डाइनेमोमीटर)।

इंजन के विभिन्न पुर्जों के घर्षण मे लगनेवाली शक्ति को 'घर्षण अश्वशक्ति' कहते हैं।

घर्षण अश्वशक्ति-सूचित अश्वशक्ति-ब्रेक अश्वशक्ति

भाप इंजन का गतिनियामक (governor) — गति नियामक का मुख्य कार्य इंजन की गति का नियमन करना है। भाप इंजन मे गतिनियामक इन दो तरीको मे से एक की सहायता से परिभ्रमण की गति स्थिर रख पाता है : (१) विच्छेद विंदु को बदलने से तथा (२) भाप की प्रारंभिक दाब को परिवर्तित करने से। शक्ति की माँग के अनुसार भाप की दाब को बढाकर या घटाकर इंजन की गति को नियमन करनेवाले गतिनियामक को अवरोध गतिनियामक (throttling governor) कहते हैं। गतिनियामक एक अवरोध वाल्व को चलाता है, जो मुख्य भाप नली में रखा होता है। इस प्रकार के गतिनियामकों में मुख्य गतिपालक कंदुक गतिनियामक (fly ball governor) होता है। वाल्व संतुलित प्रकार का होता है, अर्थात् भापदाब द्वारा परिणामी बल (resultant force) शून्य होता है। जब इंजन की गति बढ़ती है, गतिनियामक कंदुकों के परिभ्रमण की गति में भी वृद्धि हो जाती है, जिससे केंद्रापसारी बल बढ़ जाता है। बल की यह वृद्धि उन्हें गुरुत्वाकर्षणबल एवं नियंत्रण कमानी के विरुद्ध बाहर चलने को बाध्य करती है। इसके चलते वाल्व कुछ अंश में बंद हो जाता है। वाल्व द्वारा अवरोध होने पर पिस्टन पर कार्य करनेवाली भाप की दाब मे कमी हो जाती है, जिसके कारण उत्पन्न शक्ति भी कम हो जाती है एवं इंजन की गति में कमी होने के कारण वाल्व कमानी ऊपर उठ जाती है एवं पिस्टन पर कार्य करनेवाली भाप की दाब मे वृद्धि हो जाती है, जिसके फलस्वरूप गति बढकर सामान्य गति पर आ जाती है। अवरोध-गतिनियामक द्वारा नियमित भाप इंजन में प्रयोग के बाद यदि इंजन में प्रति घंटे व्यवहृत भाप की तौल को अश्वशक्ति के साथ आँका जाय, तो एक सरल रेखा प्राप्त होगी। यह संबंध सर्वप्रथम विलिअन ने पाया था। अतः इन्ही के नाम पर इसे 'विलिअन की रेखा' (Willian's Line) कहते हैं।

गतिपालक चक्र (flywheel) — बहुधा गतिपालक चक्र ढालवें लोहे का बना होता है। इसमें एक घेरा (rim), एक नाभि (hub) एव नाभि को घेरा से जोडने के लिये भुजाएँ (arms) होती हैं। जिस ईषा (shaft) पर गतिपालक चक्र लगाना होता है, उसका व्यास ऐसा होना चाहिए कि उसपर नाभिक ठीक बैठ जाय। गतिपालक चक्र को ईषा के साथ चाभी के द्वारा अटकाया जाता है।

गतिपालक चक्र का मुख्य कार्य है इंजन के कार्य करते समय ऊर्जा के परिवर्तन द्वारा होनेवाली गति के परिवर्तन को कम करना। यह चक्र इंजन को निष्क्रिय स्थिति (dead centres) के ऊपर ले जाता है। निष्क्रिय स्थिति के समय क्रैंक और योजी दंड स्ट्रोक के किसी भी ओर मे एक सीध मे रहना है और इस समय पिस्टन पर कार्य करनेवाली भाप क्रैंक को घुमाने मे असमर्थ हो जाती है। गतिपालक चक्र को चालक घिरनी (driving pulley) के रूप में भी काम मे लाया जा सकता है। कार्य का सफलतापूर्वक संपादन करने के लिये इनका भारी होना आवश्यक है।

नौ इंजन (Marine Engines) — निम्न गतिवाले भारवाहक जलपोतों (ship) मे बडे नोदक (propellers) लगाए जाते हैं एवं ये नोदक प्रति मिनट ८० परिक्रमण करते है। इस तरह के जहाजों मे भाप इंजन बहुत ही उपयुक्त है। उच्च गति पर चलनेवाले जहाजों मे भाप इंजन की जगह भाप टरबाइन का व्यवहार किया जा रहा है। समुद्रयान मे व्यवहार मे लाए जानेवाले भाप इंजन में त्रिप्रसार प्रकार के इंजन प्रसिद्ध हैं। समुद्रयान इंजन सर्वदा पृष्ठ संघनक (surface condenser) द्वारा युक्त होता है, जिसमें पीतल की नलिकाएँ लगी रहती है। पंप के द्वारा समुद्र का जल संघनित्र में लाया जाता है। समुद्र के जल मे ही संघनित्र में आई हुई भाप का संघनन होता है। यद्यपि आजकल समुद्रयानो मे अंतर्दहन इंजन, भाप टरबाइन एवं गैस टरबाइन व्यवहार मे लाया जा रहा है, फिर भी कुछ खास अवस्थाओं मे भाप इंजन का व्यवहार अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

रेल इंजन (Locomotive Engine) — साधारण रेल इंजन में क्षैतिज भाप इंजन का व्यवहार होता है। यह इंजन रेल इंजन बॉयलर (locomotive boiler) के पास ठोस आधार पर लगा

रहता है। प्राय: सभी रेल इंजनों मे संघनित्र नहीं रहता है। कार्य करने के बाद भाप को सीधे वायुमंडल में छोड दिया जाता है। इस तरह के इंजन दो प्रकार के होते हैं . (१) बहि सिलिंडर इंजन, जिसमे सिलिंडर दूर तक फैले रहते हैं और ये इंजन के फ्रेम के बाहर ही लगाए जाते हैं तथा (२) अंत:सिलिंडर इंजन, जिसमें सिलिंडर इंजन के फ्रेम के अंतर्गत ही एक दूसरे के बगल में रखे जाते हैं। आधुनिक डिजाइन में इन दोनों प्रकारों को जोड़ दिया जाता है, अर्थात् कुछ सिलिंडर इंजन के फ्रेम के अंदर रहते हैं एवं कुछ सिलिंडर बाहर रहते है।

एकदिग्वाही इंजन (Uniflow engine) — चित्र ५. में इस प्रकार के इंजन के मुख्य सिद्धांत को दर्शाया गया है। स्ट्रोक के आरंभ में बॉयलर से भाप यंत्र द्वारा नियंत्रित वाल्व से होकर सिलिंडर मे प्रवेश करती है और पिस्टन को दाएँ ओर ढकेलती है।
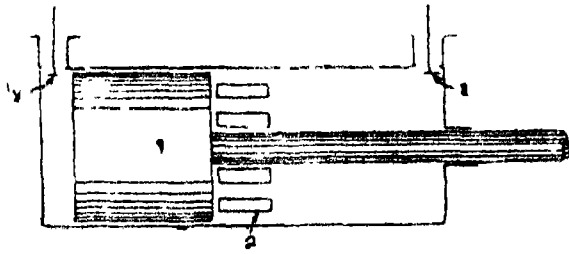
चित्र ५.

यह वाल्व (४) विच्छेद होते ही बंद हो जाता है एवं भाप प्रसारित होती है। स्ट्रोक के अंत में पिस्टन का बायाँ भाग निकास द्वार (२) को खोल देता है। तब भाप इस द्वार से निकल जाती है। जब यह होता है, उस समय पिस्टन (१) का दायाँ भाग अंतर स्थान (clearance space) पर पहुँच जाता है, जिससे वाल्व (३) द्वारा ताजा भाप सिलिंडर के दाँएँ भाग मे प्रवेश करती है। साधारण भाप इंजन के विपरीत, एक दिग्वाही इंजन मे भाप कार्य करने के लिये जिस दिशा में चलती है, उसी दिशा में चलकर वह कार्य करने के बाद निकल जाती है। भाप की एक ही दिशा वाली चाल के कारण इस प्रकार के इंजन को 'एकदिग्वाही इंजन' की संज्ञा दी गई है। इसमे भाप का संघनन कम होता है जिसके कारण बहुत तरह की हानियाँ होने से बच जाती है। यह देखा गया है कि भाप की समान मात्रा द्वारा एकदिग्वाही इंजन मे किया गया कार्य बहुपद इंजन (multistage engine) के कई सिलिंडरों मे किए गए संपूर्ण कार्य के बराबर होता है। [च० भू० मि०]

भाप जनन जल सामान्यत तीन रूपों मे पाया जाता है। ०° सें० से नीचे ताप पर ठोस बर्फ के रूप में, ०° सें० से १००° सें० के बीच तरल जल के रूप मे और १००° सें० से ऊपर ताप पर गैसीय, वाष्प या भाप के रूप में पाया जाता है। १००° सें० से नीचे ताप पर भी जल का वाष्प बनता है। ऐसा ही वाष्प वायुमंडल की वायु मे विद्यमान रहता है। किसी खुले पात्र मे जल रखने से वह धीरे धीरे वाष्प बनकर वायु मे मिल जाता है। यह सब का सामान्य अनुभव है। यहाँ जल का वाष्पन होता है। वाष्पन सब ताप पर होता है। वाष्पन की गति वायुमंडल की आर्द्रता पर निर्भर करती है। यदि जल को गरम किया जाय, तो वाष्प बनने की मात्रा धीरे धीरे बढने लगती है और जल का ताप बढने लगता है। जब ताप १००° सें० के निकट पहुँचता है, तब जल उबलने लगता है। जिस ताप पर जल उबलता है, वह जल का क्वथनांक होता है। किसी द्रव का क्वथनांक वायुमंडल के दबाव पर निर्भर करता है। दबाव के कम होने से क्वथनांक नीचा हो जाता है और दबाव बढने से क्वथनांक ऊँचा हो जाता है। ऊँचे पहाडों पर १००° सें० से नीचे ताप पर जल उबलता है।

जलवाष्प या भाप अदृश्य होती है। पर यदि उसमे जल के कण विद्यमान हो, तो वह दृश्य होता है। रेल इंजन से निकली भाप इसी कारण सफेद होती है और दिखाई पड़ती है। भाप मे यदि जलकण विद्यमान हों, तो ऐसी भाप को 'आर्द्र भाप' कहते है। इसके विपरीत यदि जलकण उपस्थित नहीं है, तो ऐसी भाप को 'शुष्क भाप' कहते हैं। जल जब भाप में परिणत होता है, तब उसका आयतन बढ जाता है। १००° सें० पर जल का एक आयतन भाप के १,६७० आयतन मे बदल जाता है। भाप को १००° सें० से ऊपर भी गरम किया जा सकता है। ऐसी भाप को 'अतितप्त भाप' कहते हैं। ऐसी अतितप्त भाप सामान्य भाप से अधिक कार्य करती है। अत अनेक संस्थानों मे अतितप्त भाप ही काम मे लाई जाती है। उच्च ताप पर गरम होने से अनेक रासायनिक प्रक्रमों का संपादन अतितप्त भाप से जल्द संपन्न होता है।

भाप का उपयोग अंतर्दहन इंजनों और टरबाइनों मे होता है। शीत प्रदेशों मे कमरे भी भाप से गरम रखे जाते है। अनेक रासायनिक प्रक्रमों के संपादन मे, जहाँ उच्च ताप की आवश्यकता पडती है, भाप का उपयोग होता है।

भाप बॉयलरों मे तैयार की जाती है। बॉयलर अनेक किस्म और अनेक आकार के होते है। कुछ बॉयलर क्षैतिज होते है और कुछ ऊर्ध्वाधर। कुछ बायलर गोलाकार होते है और कुछ बेलनाकार। कुछ बॉयलरों मे केवल एक नली होती है और कुछ मे अनेक (देखे बॉयलर)। बॉयलरों मे जल रखकर गरम किया जाता है। गरम करने के लिये बिजली प्रयुक्त हो सकती है, अथवा ईंधन। ईंधन के रूप मे ठोस कोयले या लकडी, द्रव ईंधन, पेट्रोलियम या डीजल तेल, या गैसीय ईंधन, प्राकृतिक गैस, वात्याभट्ठी गैस, कोककुल्हा गैस और उत्पादन गैस प्रयुक्त हो सकती है।

सामान्य कोयला, कोयलाधूल, लिग्नाइट तथा ऐंथ्रासाइट कोयला इस काम मे प्रयुक्त हो सकते है। कोयले का कार्बन जलकर कार्बन डाइऑक्साइड बनता है। एक पाउंड कोयले के जलने से लगभग १४,६०० ब्रिटिश ऊष्मक मात्रक ऊष्मा बनती है और तब उसका समस्त कार्बन जलकर कार्बन डाइऑक्साइड बनता है। यदि कोयले का समस्त कार्बन जलकर केवल कार्बन मोनॉक्साइड बनता है, तो केवल ४,४०० ब्रिटिश ऊष्मक मात्रक ऊष्मा प्राप्त होती है। अत: कोयले के जलने का भट्ठा ऐसा होना चाहिए कि समस्त कार्बन जलकर कार्बन डाइऑक्साइड बने। इसके लिये भट्ठे मे वायु का प्रवेश प्रचुर मात्रा मे होना आवश्यक है। सिद्धांतत. जितनी वायु की आवश्यकता हो सकती है कम से कम उसकी ड्योढी वायु का रहना आवश्यक है। इससे अधिक वायु रहने से ऊष्मा का ह्रास होता है। अधिक वायु

ऊष्मा को लेकर निकल जाती है, जिससे ऊष्मा का ह्रास होता है। भट्ठे में यदि वायु का क्षरण (leakage) होता है, तो उससे भी ऊष्मा का ह्रास होता है, अतः अधिकतम ऊष्मा की प्राप्ति के लिये न बहुत अधिक वायु का प्रयोग होना चाहिए और न इतना कम कि कोयले का कार्बन जलकर पूर्ण रूप से कार्बन डाइऑक्साइड न बने। भट्ठे में जलने से जो गैसें बनती हैं, उनमें कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा सामान्यतः १२ प्रति शत रहती है। भट्ठों के दहन के उत्पादन में धुआँ भी रहता है। संभवतः अपूर्ण दहन से ही धुआँ बनता है। धुएँ में बिना जले कार्बन के कण रहते हैं। ईंधन के वायु के साथ भली भाँति न मिलने से ही धुआँ बनता है। धुआँ बनना रोकने के दो उपाय हैं। एक तो कोयला इतना चूर्ण हो कि वायु के साथ जल्द जल सके, या दहनकक्ष इतना बड़ा हो कि ईंधन अधिक समय तक वायु के संसर्ग में रहे। दोनों उपाय किए गए हैं। धूल के रूप में कोयले का व्यवहार होता है और दहनकक्ष बड़े से बड़े रखे जाते हैं।

ईंधन की ऊष्मा से जल भाप में परिणत होता है। सामान्य ताप पर एक ग्राम जल के ताप को १° से० ऊपर उठाने में एक कैलोरी ऊष्मा खर्च होती है, पर क्वथनांक पर एक ग्राम जल को उसी ताप पर भाप बनाने में ५३७ कैलोरी ऊष्मा खर्च होती है। यह ५३७ कैलोरी भाप की गुप्त ऊष्मा है। जब भाप इंजन में प्रयुक्त होती है तब भाप की यही गुप्त ऊष्मा यांत्रिक या वैद्युत ऊर्जा में बदल जाती है। भाप के ताप और दबाव की वृद्धि से भाप की श्यानता और ऊष्मा संवहन में वृद्धि होती है। भाप की विशिष्ट ऊष्मा जल की विशिष्ट ऊष्मा से प्रायः आधी होती है, पर वायु की विशिष्ट ऊष्मा से दुगुनी होती है। अतः ऊष्मीय ऊर्जा धारण करने की क्षमता भाप में अधिक होती है। आज कल जो बॉयलर प्रयुक्त होते हैं, वे केवल बॉयलर ही नहीं है वरन् उनके साथ अनेक युक्तियाँ लगी हुई हैं, जिनसे उनको केवल बॉयलर न कहकर आजकल बॉयलर संयत्र कहते हैं।

आजकल ऐसे बॉयलर बने हैं जिनमें दबाव १,८०० पाउंड प्रति वर्ग इंच, ताप ५६०° से ६००° सें० तक, तथा भाप की मात्रा प्रति घंटा १०,००,००० पाउंड तक प्राप्त हो सकती है। ऐसे बॉयलर के निर्माण में विशेष प्रकार की इस्पात मिश्रधातु प्रयुक्त होती है, जो इतने ऊँचे ताप और दबाव को सहन कर सकें।

औद्योगिक संस्थानों में उच्च दबाव पर अतितप्त भाप के उत्पादन के प्रक्रम इस प्रकार हैं : ईंधन के जलने से जो ऊष्मा बनती है, उसका अवशोषण जल द्वारा होता है। इससे जल का ताप धीरे धीरे ऊपर उठता है और जल के क्वथनांक तक पहुँच जाता है, फिर जल भाप में परिणत होता है। भाप के दबाव में धीरे धीरे वृद्धि होती है। इससे भाप अतितप्त हो जाती है। अतितप्त भाप की ऊष्मा में वृद्धि होती है। यह कार्य बॉयलर में होता है। बॉयलर की अतिरिक्त भट्ठी रहती है। वायु को पंप करने के लिये पंप या आध्माता (blower) रहते हैं। भाप को अतितप्त करने के लिये वाष्प अधितप्तक जुड़े रहते हैं। उस वायु के, जो भट्ठी में जाती है, पूर्व तापन के लिये वायुतप्तक लगे रहते हैं, पूर्व तप्त वायु के प्रवेश से भट्ठी का ताप नीचे नहीं गिरता, जिससे ईंधन का दहन पूर्ण रूप से होता है और भट्ठी की दक्षता बढ़ जाती है। तप्त वायु के कारण ईंधन में भी लगभग एक प्रति शत की बचत होती है। उच्च ताप और उच्च दबाव के भाप उत्पादन की भट्ठियाँ आजकल अधिकाधिक जल द्वारा ठंढी की जाती है। भाप के संघनन से जो जल बनता है, उसका उपयोग बार बार बॉयलर में हो सकता है। यह जल इसलिये अच्छा होता है कि लवण के रूप में कोई अपद्रव्य इसमें नहीं रहता। बॉयलर में कठोर जल का उपयोग इसलिये अच्छा नहीं है कि कठोर जल के लवण बॉयलर के तलों पर निक्षिप्त होकर उसकी दक्षता को कम कर देते हैं। यदि जल कठोर है, तो उसको कोमल बनाने के संयंत्र भी बॉयलर के साथ साथ रहते हैं। बॉयलर के साथ संभरण जलतप्तक भी रहते हैं, जो उस ताप तक गरम किए जाते हैं जिस दबाव पर बॉयलर का ताप रहता है। इसके लिये खुले तप्तक, या बंद तप्तक, या मितोपयोजक (economizers) प्रयुक्त होते हैं। पहले दोनों में निष्कासित भाप और तीसरे में भट्ठियों की निष्कासित गैसें प्रयुक्त होती हैं।

आजकल एक नये प्रकार के भाप उत्पादन संयत्र का अधिकाधिक उपयोग होता जा रहा है। इसे प्रणोदित प्रवाह (Forced flow) एकदा मध्यात् (Once through) वाष्प उत्पादन संयत्र कहते हैं। इस संयंत्र में पृथक् करनेवाला पीपा नहीं होता है, जलसंभरण संयंत्र में नीचे से होता है और संतत गरम की हुई परिधि से होकर पहले सामान्य भाप के रूप में, तदुपरांत अतितप्त भाप होकर, निष्कासन द्वार तक पहुँचता है। अतितप्त भाप के ताप तथा दबाव का नियंत्रण जल के प्रवेश तथा ईंधन संभरण पर निर्भर करता है। इस रीति द्वारा भाप उत्पादन पर कम खर्च पड़ता है, परंतु इस विधि में अति शुद्ध जल की आवश्यकता पड़ती है। [अ० सि०]

भाभा, होमी जहाँगीर (१९०९–१९६६) जगत्प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी और परमाणु ऊर्जाविद् का जन्म १९०९ ई० में बंबई के एक संभ्रांत पारसी परिवार में हुआ था। इनकी प्राथमिक शिक्षा बंबई में ही हुई, जहाँ से ये इंग्लैंड गए और कैंब्रिज विश्वविद्यालय से गणित में ट्राइपॉस परीक्षा उत्तीर्ण की। १९३२ ई० में इन्हें पाउज बॉल ट्रैवलिंग स्टूडेंटशिप प्राप्त हुआ एवं रोम के सुप्रसिद्ध प्रोफेसर फर्मी और युट्रेच (Utretch) के प्रोफेसर क्रैमर (Crammar) के अधीन इन्होंने अध्ययन संपन्न किया। १९४२ ई० में उन्होंने ऐडैम ऐवार्ड प्राप्त किया। बैंगलूर इंडियन इंस्टिट्यूट ऑव साइंस में अंतरिक्ष किरण अनुसंधान विभाग में परमाणु केंद्रीय भौतिकी के प्रोफेसर नियुक्त हुए। कैंब्रिज विश्वविद्यालय में अंतरिक्ष किरण पर इन्होंने व्याख्यानमाला दी। ३२ वर्ष की अल्पावस्था में ही सन् १९४५ ई० में ये रॉयल सोसायटी के फेलो (F R S) नियुक्त हुए। १९५५ ई० में जेनेवा में होनेवाले शांति उद्देश्यों के लिये परमाणु ऊर्जा के सम्मेलन में अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। भारत सरकार द्वारा भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त होकर, जीवन पर्यंत उस पद पर रहे। फंडामेंटल सोसायटी के टाटा इंस्टिट्यूट के निर्देशक नियुक्त हुए। अनेक विश्वविद्यालयों, जैसे पटना, लखनऊ, बनारस, आगरा आदि, ने इन्हें डी० एस-सी० की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया। भारत के परमाणु केंद्रीय ऊर्जा के विकास में इनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। इनके अनुसार ये कुछ ही मास में परमाणु बम का निर्माण कर सकते थे। संसार के

प्रसिद्ध भौतिकियों में आपका प्रमुख स्थान था और आपके ही कारण संसार के परमाणु ऊर्जा के मानचित्र पर भारत को स्थान मिल सका है। कैनाडा से प्राप्त रियेक्टर को स्थापित कर उसका संचालन करके समस्थानिकों के प्रस्तुत करने मे आपको सफलता मिली है। आपने सैकडों युवक वैज्ञानिकों को परमाणु ऊर्जा संस्थान की स्थापना करके परमाणु ऊर्जा के विकास मे प्रशिक्षित किया है। आपके प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत के अनेक स्थानों, जैसे बिहार, राजस्थान, मद्रास एवं केरल आदि राज्यों मे यूरेनियम तत्व की उपस्थिति का पता लगा है और वहाँ से यूरेनियम प्राप्त करने के उपाय किए जा रहे हैं। [फू० स० व०]

भारत या इंडिया स्थिति : ८° ४' से ३६° ६' उ० अ० तथा ६८° ७' से ९७° २५' पू० दे०। सीमा : दक्षिणी एशिया के तीन प्रायद्वीपों में से मध्यवर्ती प्रायद्वीप पर स्थित सबसे महत्वपूर्ण देश है। क्षेत्रफल मे यह संसार का सातवाँ विशालतम देश है और केवल चीन मे यहाँ से अधिक जनसंख्या पाई जाती है। भारत का क्षेत्रफल १२,६२,२७५ बर्ग मील (३२,६८, ६६२ वर्ग किमी०) और जनसंख्या (सिक्किम सहित किंतु पाकिस्तान अधीनस्थ जम्मू कश्मीर के क्षेत्रों को छोड़कर) ४३,९२,३५,०८२ (१९६१) है। उत्तर से दक्षिण इसकी लंबाई २,००० मील और पूर्व से पश्चिम चौड़ाई १,८५० मील है। कर्क रेखा देश के लगभग बीच से गुजरती है। भारत के उत्तर मे (नेपाल क्षेत्र छोडकर) हिमालय की ऊँची पर्वतमाला है और दक्षिण मे हिंद महासागर। कश्मीर की उत्तरी सीमा पर कराकोरम पहाड़ तथा पामीर का पठार है। हिमालय के उत्तर मे चीन है। पूर्व में बर्मा तथा पूर्वी पाकिस्तान हैं, किंतु पूर्वी पाकिस्तान के पूर्व मे भी असम, नागालैंड और त्रिपुरा के भारतीय क्षेत्र हैं। उत्तर-पश्चिमी सीमा पर पश्चिमी पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान है। बंगाल की खाडी में स्थित अंदमान तथा निकोबार द्वीपसमूह और अरब सागर मे स्थित लक्षदीवी मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप-समूह हैं। पूर्वी हिमालय मे भूटान है जो वैदेशिक सबंध के मामलों मे भारत सरकार के अधीन है पर अन्य बातो में स्वतंत्र है। भूटान के पश्चिम मे सिक्किम भारत सरकार के संरक्षण (प्रोटेक्टरेट) में है।

राजनीतिक विभाग — १५ अगस्त, १९४७ ई० को भारत अंग्रेजों के शासन से मुक्त हुआ किंतु स्वतंत्र होने के साथ ही देश दो भागों मे विभाजित कर दिया गया। जिन भागों मे मुसलमानों की संख्या अधिक थी, उन्हे भारत से पृथक् कर पाकिस्तान नामक राज्य की स्थापना की गई और बचे हुए भाग का नाम भारत या इंडिया ही रहा। विभाजन के फलस्वरूप देश का लगभग २२ प्रति शत क्षेत्र और १७ प्रति शत जनसंख्या तथा अन्न उत्पादन का २५ प्रति शत भाग पाकिस्तान के हिस्से पड़ा। इसके कारण भारत मे खाद्यान्न की समस्या पहले से अधिक जटिल हो गई। कपास के उत्पादन का ४० प्रति शत और जूट के उत्पादन का ८० प्रति शत से भी अधिक भाग पाकिस्तान के हिस्से में पड़ा, जिससे भारत के सूती वस्त्रोद्योग और जूट उद्योग को भारी धक्का पहुँचा।

२६ जनवरी, १९५० ई० को भारत ने अपने को ब्रिटिश कामनवेल्थ के अंतर्गत, एक प्रजातंत्रात्मक राज्य घोषित किया। शासनप्रबंध के विचार से भारत राज्यों का एक संघ है। ब्रिटिश शासनकाल में भारत में देशी राज्यो की संख्या ५६२ थी, जिनमें से कुछ बड़े, किंतु अधिकांश अत्यंत छोटे थे। स्वतंत्रता के बाद, एकीकरण की योजना के अनुसार अधिकांश छोटे छोटे देशी राज्यों को उनके निकटवर्ती राज्यो मे मिला दिया गया; जैसे उडीसा के २६ छोटे छोटे देशी राज्य उड़ीसा राज्य मे मिला दिए गए और इसी प्रकार सरॉय केला तथा खरसवाँ बिहार में तथा रामपुर, टेहरी इत्यादि उत्तर प्रदेश में मिला दिए गए। जिन क्षेत्रो मे अनेक देशी राज्य एक दूसरे से मिले हुए थे, उन्हें मिलाकर राज्यसघो मे परिणत कर दिया गया; जैसे, काठियावाड़ और गुजरात के लगभग २१६ छोटे बड़े राज्यों को मिलाकर सौराष्ट्र की रचना हुई और इसी प्रकार १० देशी राज्यों को मिलाकर राजस्थान, ३५ राज्यो को मिलाकर विंध्यप्रदेश, २० राज्यों को मिलाकर मध्य भारत, तथा ८ देशी राज्यों को मिलाकर पेप्सू राज्य-संघो का निर्माण हुआ। हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर, कोचीन तथा जम्मू कश्मीर देशी राज्य अपनी पुरानी सीमा के ही अंतर्गत अन्य राज्यों की तरह राज्य कहलाने लगे। इस प्रकार भारतीय संघ मे चार प्रकार के राज्यों का निर्माण हुआ जिन्हे अ, ब, स, द, (A, B, C, D) राज्य कहते थे। (१) 'अ' वर्ग के राज्य में पुराने प्रांत शामिल थे और राज्यपाल द्वारा शासित होते थे। इसके अंतर्गत असम, पश्चिमी बगाल, बिहार, उडीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पजाब, बंबई तथा मद्रास आते थे। सन् १९५३ मे मद्रास से अलग होकर आंध्रप्रदेश 'अ' वर्ग का राज्य हो गया। (२) 'ब' वर्ग मे बडे बड़े देशी राज्य और उनके सघ थे। ये राजप्रमुख द्वारा शासित होते थे। इसके अतर्गत सौराष्ट्र, हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर-कोचीन राजस्थान, मध्यभारत और पेप्सू (पटियाला तथा पूर्वी पंजाब की रियासतें) आते थे। (३) 'स' वर्ग के राज्य चीफ कमिश्नर द्वारा शासित होते थे और इनके शासन का उत्तरदायित्व केंद्रीय सरकार पर था। दिल्ली, अजमेर, मेवाडवाड, भोपाल, कुर्ग, विंध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मनीपुर, त्रिपुरा तथा कच्छ के राज्य इसी वर्ग के अतर्गत थे। (४) 'द' वर्ग के राज्य के अतर्गत अंदमान तथा निकोबार द्वीपसमूह थे जो केंद्रीय सरकार द्वारा शासित होत थे। यह स्थिति अक्टूबर, १९५६ ई० तक रही। इनके अलावा जम्मू और कश्मीर राज्य का एक विशेष वर्ग रहा जो 'ब' वर्ग से मिलता जुलता था।

शासन की सुव्यवस्था तथा अन्य सुविधाओं के लिये इन राज्यों का मुख्यत. भाषा के आधार पर १ नवंबर, १९५६ ई० को पुनर्गठन किया गया। पुनर्गठन के फलस्वरूप भारत को १४ राज्यों तथा ६ केंद्रीय शासित प्रदेशों में विभक्त किया गया। १ मई, १९६० ई० को बंबई राज्य को विभाजित कर महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्यों की रचना हुई। अगस्त, १९६१ ई० मे दादरा और नागर हवेली, जो पुर्तगालियों के अधीन थे, केंद्र द्वारा शासित प्रदेश घोषित किए गए। दिसंबर, सन् १९६१ मे गोआ, दामण और दीव जो पुर्तगाल के अधीन थे, भारत सरकार के अधिकार मे आ गए और मार्च, सन् १९६२ में केंद्र द्वारा शासित प्रदेश घोषित किए गए। अगस्त, १९६२ ई० में फ्रांस के अधीनस्थ क्षेत्र पांडिचेरी, कारिकाल, माहि तथा यानाम भारत को लौटा दिए गए और उन्हे केंद्रशासित प्रदेश बना दिया गया। फरवरी, १९६१ ई० मे असम के कुछ पूर्वी भागों को, जो मनीपुर के उत्तर और नेफा के दक्षिण में पड़ते थे, एक अलग राज्य बनाने की

मानचित्र

भारतीय वैज्ञानिक

(देखें पृष्ठ १८९)

बद्रीनाथ प्रसाद

(देखें पृष्ठ २५४)

बाबा कर्तार सिंह

(देखें पृष्ठ ३१०)

बीरबल साहनी

(देखें पृष्ठ ४२६)

←भटनागर, सर शांतिस्वरूप

(देखे पृष्ठ ४५१)

भाभा, होमी जहांगीर→

भावचित्र

(देखें पृष्ठ २४)
प्रीस्टलि, जोसेफ

(देखें पृष्ठ ५६)
प्वेंकारे, ऑंरी

(देखें पृष्ठ १३१)
फेर्मि, एनरिको

(देखें पृष्ठ १३२)
फैराडे, माइकेल

(देखें पृष्ठ १५१)
फ़ोर्ड, हेनरी

(देखें पृष्ठ १५६)
फ्रैंकलिन, बेंजामिन
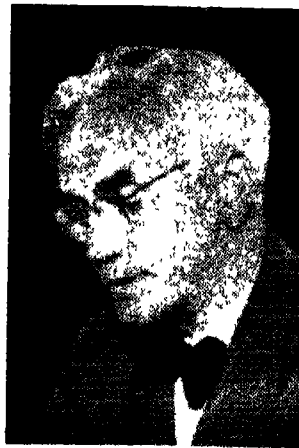
(देखें पृष्ठ १६८)
फ्लेमिंग, सर जॉन एंब्रोस

(देखें पृष्ठ १९२)
बरतोलि, क्लॉड लुइ
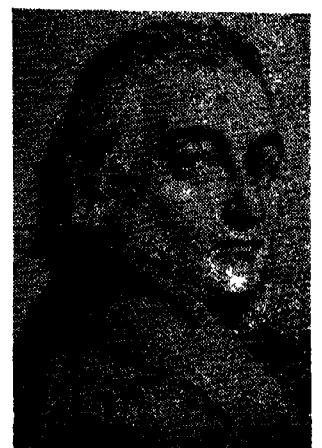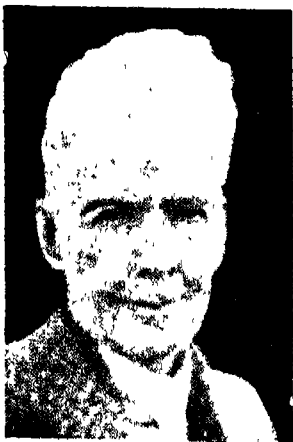
(देखें पृष्ठ १९३)
बरबैंक, लूथर

(देखें पृष्ठ २५६)
बॉयल, राबर्ट
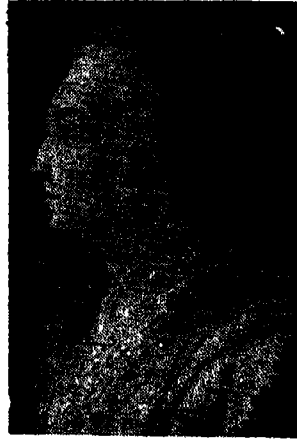
(देखें पृष्ठ ३५२)
बेर्नूलि, जेकब
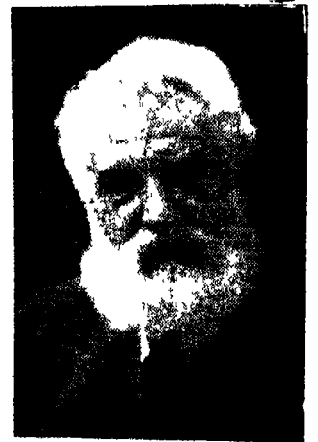
(देखे पृष्ठ ३५३)
बेल, ऐलेक्जेंडर ग्राहम

भारत के राज्य

राज्य तथा मुख्य भाषा (कोष्ठ में)	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	जनसंख्या (१९६१) लाख में	राजधानी
असम, नेफा सहित (असमी)	७८,५२९	११९.०६	शिलौंग
बिहार (हिंदी)	६७,१९६	४६४.५६	पटना
पश्चिमी बंगाल (बंगला)	३३,८२९	३४९.२६	कलकत्ता
उड़ीसा (उड़िया)	६०,१७१	१७५.४८	भुवनेश्वर
उत्तर प्रदेश (हिंदी)	१,१३,६५४	७३७.४६	लखनऊ
मध्य प्रदेश (हिंदी)	१,७१,२१७	३२३.७२	भोपाल
हरियाना (हिंदी) पंजाब (पंजाबी) नवंबर, १९६६ ई० से पूर्व पंजाब के आँकड़े	४७,२०५	२०३.०७	चंडीगढ़
जम्मू कश्मीर (डोगरी तथा कश्मीरी)	८६,०२३	३५.६१	श्रीनगर
राजस्थान (हिंदी)	१,३१,९४३	२०१.५६	जयपुर
गुजरात (गुजराती)	७२,२४५	२०६.३३	अहमदाबाद
महाराष्ट्र (मराठी)	१,१८,७१७	३९५.५४	बंबई
मैसूर (कन्नड)	७४,२२०	२३५.८७	बंगलूर
आंध्रप्रदेश (तेलगू)	१,०६,२८६	३५९.८३	हैदराबाद
मद्रास (तमिल)	५०,३३१	३३६.८७	मद्रास
केरल (मलयालम)	१५,००२	१६९.०४	त्रिवेंद्रम
नागालैंड	६,३६६	३.६९	कोहिमा
केंद्रशासित प्रदेश :		कुल जनसंख्या (सन् १९६१)	
दिल्ली (हिंदी)	५७३	२६,५८,६१२	दिल्ली
हिमाचल प्रदेश (नवंबर, १९६६ से पूर्व के आँकड़े)	१०,८८५	१३,५१,१४४	शिमला
मनीपुर	८,६२८	७,८०,०३७	इंफाल
त्रिपुरा	४,०३६	११,४२,००५	अगरतल्ला
अंदमान और निकोबार द्वीपसमूह	३,२१५	६३,५४८	पोर्टब्लेयर
लक्षदीवी, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीपसमूह	११	२४,१०८	कवराथी
दादरा और नागर हवेली	१८९	५७,९६३	सिलवासा
गोआ, दामण और दीव	१,४२६	६,२६,६७८	पंजिम
पांडिचेरी	१८५	३,६९,०७९	पांडिचेरी

घोषणा की गई और इसके फलस्वरूप १ दिसंबर, १९६३ ई० को नागालैंड भारत का १६वाँ राज्य बनाया गया। १ नवंबर, १९६६ को भाषा के आधार पर पंजाब के विभाजन के फलस्वरूप हरियाना राज्य का जन्म हुआ एवं पुराने पंजाब के पहाड़ी जिले हिमाचल प्रदेश में मिला दिए गए। इस प्रकार भारत में अब १७ राज्य और नौ केंद्र शासित क्षेत्र हैं।

भूगर्भीय संरचना — भूगर्भीय संरचना के आधार पर भारत को हम तीन स्पष्ट विभागों में बाँट सकते हैं : १. दक्षिण का प्रायद्वीपीय पठार, २. उत्तर की विशाल पर्वतमाला तथा ३. इन दोनों के बीच स्थित विस्तृत समतल मैदान।

१. दक्षिणी प्रायद्वीपीय पठार — यह भारत का प्राचीनतम भूखंड है। इसका निर्माण पृथ्वी के अन्य प्राचीनतम भूखंडों की तरह, भूवैज्ञानिक इतिहास के प्रारंभ काल में हुआ था जिसे आद्यमहाकल्प (Archaear Era) कहते हैं। तब से यह बराबर स्थल रहा है और कभी भी समुद्र के नीचे नहीं गया है। इसका प्रमाण इसमें पाई जानेवाली चट्टानों से मिलता है। यह अधिकांशतः प्राचीन आग्नेय तथा कायांतरित चट्टानों से बना हुआ है जिनमें मुख्य ग्रेनाइट, नाइस और शिस्ट हैं। जहाँ कहीं परतदार चट्टानें मिलती हैं, वे भी अत्यंत पुरानी हैं और उनके समुद्र में जमा होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इससे स्पष्ट है कि यह अपने इतने लंबे जीवनकाल में कभी समुद्र के नीचे नहीं गया और बराबर स्थल ही के रूप में वर्तमान रहा है। एक दूसरी विशेषता इस स्थलखंड की यह है कि यह अत्यंत प्राचीन काल से पर्वत निर्माणकारी भूसंचलन से भी मुक्त रहा है। इस बीच में संसार में भूगर्भिक हलचल के जितने भी अवसर आए, उनमें यह अप्रभावित और अक्षुण्ण रहा है। विंध्य पर्वत की परतदार चट्टानें इतनी पुरानी होने पर भी क्षैतिज अवस्था में पाई जाती हैं। भूपटल के इस प्रकार के स्थिर खंडों को शील्ड (shield) कहते हैं। इसमें मोडदार पर्वत नहीं मिलते और जो पर्वत मिलते हैं वे अवशिष्ट अथवा घर्षित वर्ग के हैं। अरावली पर्वत भी एक अवशिष्ट पर्वत है। इसका निर्माण अत्यंत प्राचीन काल में हुआ था और उस समय इसका विस्तार शायद हिमालय पर्वत माला से कम नहीं था, किंतु इस समय हम उसका एक अवशेष मात्र पाते हैं। पूर्वी घाट तथा पश्चिमी घाट भी अवशिष्ट पहाड़ों के उदाहरण हैं। दक्षिणी प्रायद्वीप में जो भी भूसंचलन के प्रमाण मिलते हैं वे केवल लंबवत् संचलन के हैं जिससे दरारों अथवा भ्रंशों का निर्माण हुआ। इस प्रकार का पहला संचलन मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic Era) अथवा गोंडवाना काल में हुआ। समांतर भ्रंशों के बीच की भूमि नीचे धँस गई और उन धँसे भागों में अनुप्रस्थ परतदार चट्टानों का निर्माण हुआ जिनमें मुख्य बालू पत्थर तथा शेल है। इन चट्टानों को गोंडवाना क्रम की चट्टानें कहते हैं। भारत का अधिकांश कोयला इन्हीं परतदार चट्टानों में मिलता है। इनका विस्तार दामोदर, महानदी तथा गोदावरी नदियों की घाटियों में लंबे एवं संकीर्ण क्षेत्रों में पाया जाता है। दूसरा लंबवत् संचालन मध्यजीवी महाकल्प के अंतिम काल में हुआ, जबकि लंबी दरारों से लावा निकलकर प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भागों के विस्तृत क्षेत्र में फैल गया। दक्कन का यह लावा क्षेत्र अब भी लगभग दो लाख वर्ग मील में फैला हुआ पाया जाता है। इस क्षेत्र की चट्टान बेसाल्ट है जिसके विखंडन से काली मिट्टी का निर्माण हुआ है।

अत्यंत प्राचीन काल से स्थिर एवं स्थल भाग रहने के कारण दक्षिणी प्रायद्वीप में अनावृत्तिकरण शक्तिया निरंतर काम करती रही हैं जिसके फलस्वरूप इसका अधिकांश घर्षित हो गया है, अंदर की पुरानी चट्टानें धरातल पर आ गई है और नदियाँ अपक्षरण के आधार तल तक पहुँच गई हैं।

२. हिमालय पर्वतमाला — इसकी संरचना दक्षिणी प्रायद्वीप से बहुत ही भिन्न है। यद्यपि इसके कुछ भागो मे प्राचीन चट्टाने मिलती हैं, तथापि अधिकांशतः यह नवीन परतदार चट्टानो द्वारा निर्मित है, जो लाखों वर्षों तक टेथिस समुद्र मे एकत्रित होती रही थी। इन परतदार चट्टानों की मोटाई बहुत है और वे प्राय भूवैज्ञानिक इतिहास के प्रथम (primary or palaeozoic) या पुराजीवी महाकल्प के कैंब्रियन काल से आरंभ होकर, द्वितीय (secondary or mesozoic) या मध्यजीवी महाकल्प होते हुए, तृतीय (Tertiary) महाकल्प के आरंभ तक समुद्र में जमा होती रही। सागर मे एकत्रित मलबों ने तृतीय महाकल्प में भूसंचलन के कारण विशाल मोडदार श्रेणियो का रूप धारण किया। इस प्रकार हिमालय पर्वतमाला मुख्यत. वैसी चट्टानों से निर्मित है, जो समुद्री निक्षेप से बनी है और दक्षिणी पठार की तुलना मे यह एक स्थल है। इसमे पर्वत निर्माणकारी सचलन के प्रभाव के सभी प्रमाण मिलते है। परतदार चट्टानें जो क्षैतिज अवस्था मे जमा हुई थी, भूसचलन के प्रभाव से अत्यंत मुड गई है और एक दूसरे पर चढ गई है। विशाल क्षेत्रो में वलन (folds), भ्रंश (faults), क्षेप-भ्रंश (thrust faults) तथा शयान वलन (recumbent folding) के उदाहरण मिलते हैं। ये वास्तविक अर्थ मे पर्वत है जिनका निर्माण भूसचलन द्वारा हुआ है। इनकी धरातलीय आकृति मुख्यत इनकी सरचना पर निर्भर है और उसपर अनावृत्तीकरण शक्तियो ने उतना अधिक परिवर्तन नही किया है जितना दक्षिणी प्रायद्वीप मे। यहाँ की नदियाँ अपनी युवावस्था मे हैं और अभी तक अपनी तली को गहरी काटती जा रही है। इसलिये इनमे गहरी, सकीर्ण एवं खड़ी घाटियाँ तथा गार्ज (gorge) मिलते है। सिंधु सतलुज तथा ब्रह्मपुत्र नदियों के महान् गॉर्जो के अतिरिक्त अन्य नदियो ने भी इसमें गहरी घाटियाँ काटी है।

३. उत्तरी भारत का विस्तृत मैदान — यह भूवैज्ञानिक दृष्टि से सबसे नवीन तथा कम महत्वपूर्ण है। हिमालय पर्वतमाला के निर्माण के समय उत्तर से जो भूसचलन आया उसके धक्के से प्रायद्वीप का उत्तरी किनारा नीचे धँस गया जिससे विशाल खड्ड बन गया। हिमालय पर्वत से निकलनेवाली नदियो ने अपने निक्षेपो द्वारा इस खड्ड को भरना शुरू किया, और इस प्रकार उन्होने कालातर मे एक विस्तृत मैदान का निर्माण किया। इस प्रकार यह मैदान मुख्यत हिमालय के अपक्षरण से उत्पन्न तलछट और नदियो द्वारा जमा किए हुए जलोढक से बना है। इसमे बालू तथा मिट्टी की तहें मिलती है, जो अत्यतमूतन (Pleistocene) और नवीनतम काल की हैं। यह विस्तृत मैदान लगभग समतल है और इससे होकर उत्तर भारत (तथा पाकिस्तान) की नदियाँ गगा, सिधु, ब्रह्मपुत्र मंदगति से समुद्र की ओर बहती हैं।

धरातलीय रूप — धरातल के अनुसार भी भारत के तीन मुख्य प्राकृतिक विभाग हैं : उत्तरी पर्वतमाला, उत्तरी भारत का मैदान और दक्षिण का पठार।

(१) उत्तरी पर्वतमाला — भारत के उत्तर में स्थित हिमालय की पर्वतमाला नए और मोड़दार पहाड़ों से बनी है। यह पर्वतश्रेणी असम से कश्मीर तक लगभग १,५०० मील तक फैली हुई है। इसकी चौड़ाई १५० से २०० मील तक है। यह संसार की सबसे ऊँची पर्वतमाला है और इसमें अनेक चोटियाँ २४,००० फुट से अधिक ऊँची हैं। हिमालय की सबसे ऊँची चोटी माउंट एवरेस्ट है जिसकी ऊँचाई २९,०२८ फुट है। यह नेपाल मे स्थित है। अन्य मुख्य चोटियाँ काचनजुगा (२७,८१५ फुट), धौलागिरि (२६,७९५ फुट), नंगा पर्वत (२६,६२० फुट), गोसाईंथान (२६,२९१ फुट), नंदादेवी (२५,६४५ फुट) इत्यादि हैं। गॉडविन ऑस्टिन (माउट के २) जो २८,२५० फुट ऊँची है, हिमालय का नहीं, बल्कि कश्मीर के कराकोरम पर्वत का एक शिखर है। हिमालय प्रदेश मे १६,००० फुट से अधिक ऊँचाई पर हमेशा बर्फ जमी रहती है। इसलिये इस पर्वतमाला को हिमालय कहना सर्वथा उपयुक्त है।

हिमालय के अधिकतर भाग मे तीन समातर श्रेणियाँ मिलती हैं। इन्हे उत्तर से दक्षिण क्रमश: (क) बृहत् अथवा आभ्यांतरिक हिमालय (The great or inner Himalayas), (ख) लघु अथवा मध्य हिमालय (The lesser or middle Himalayas) और (ग) बाह्य हिमालय (Outer Himalayas) कहते हैं। (क) सबसे उत्तर मे पाई जानेवाली श्रेणी सबसे ऊँची है। यह कश्मीर मे नगापर्वत से लेकर असम तक एक दुर्भेद्य दीवार की तरह खडी है। इसकी औसत ऊँचाई २०,००० फुट है। (ख) ज्यों ज्यो हम दक्षिण की ओर जाते हैं, पहाडो की ऊँचाई कम होती जाती है। लघु अथवा मध्य हिमालय की ऊँचाई प्राय १२,००० से १५,००० फुट तक से अधिक नही है। औसत ऊँचाई लगभग १०,००० फुट है और चौड़ाई ४० से ५० मील।
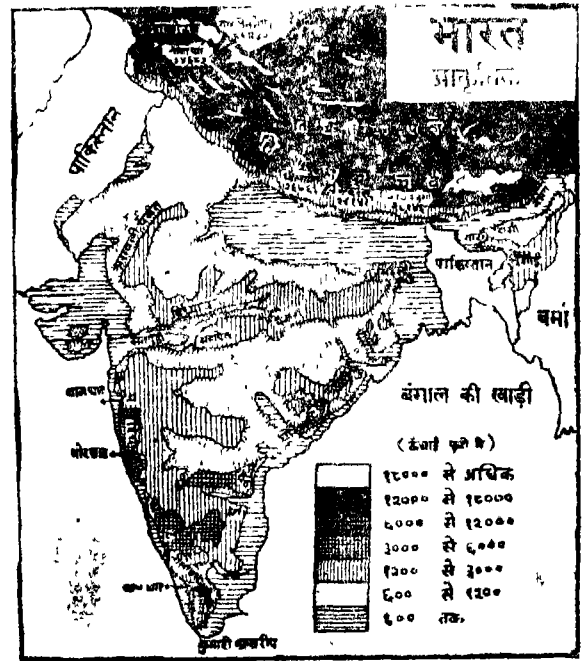
मानचित्र १

इन श्रेणियो का क्रम जटिल है और इससे यत्र तत्र कई शाखाएँ निकलती हैं। बृहत् हिमालय और मध्य हिमालय के बीच अनेक
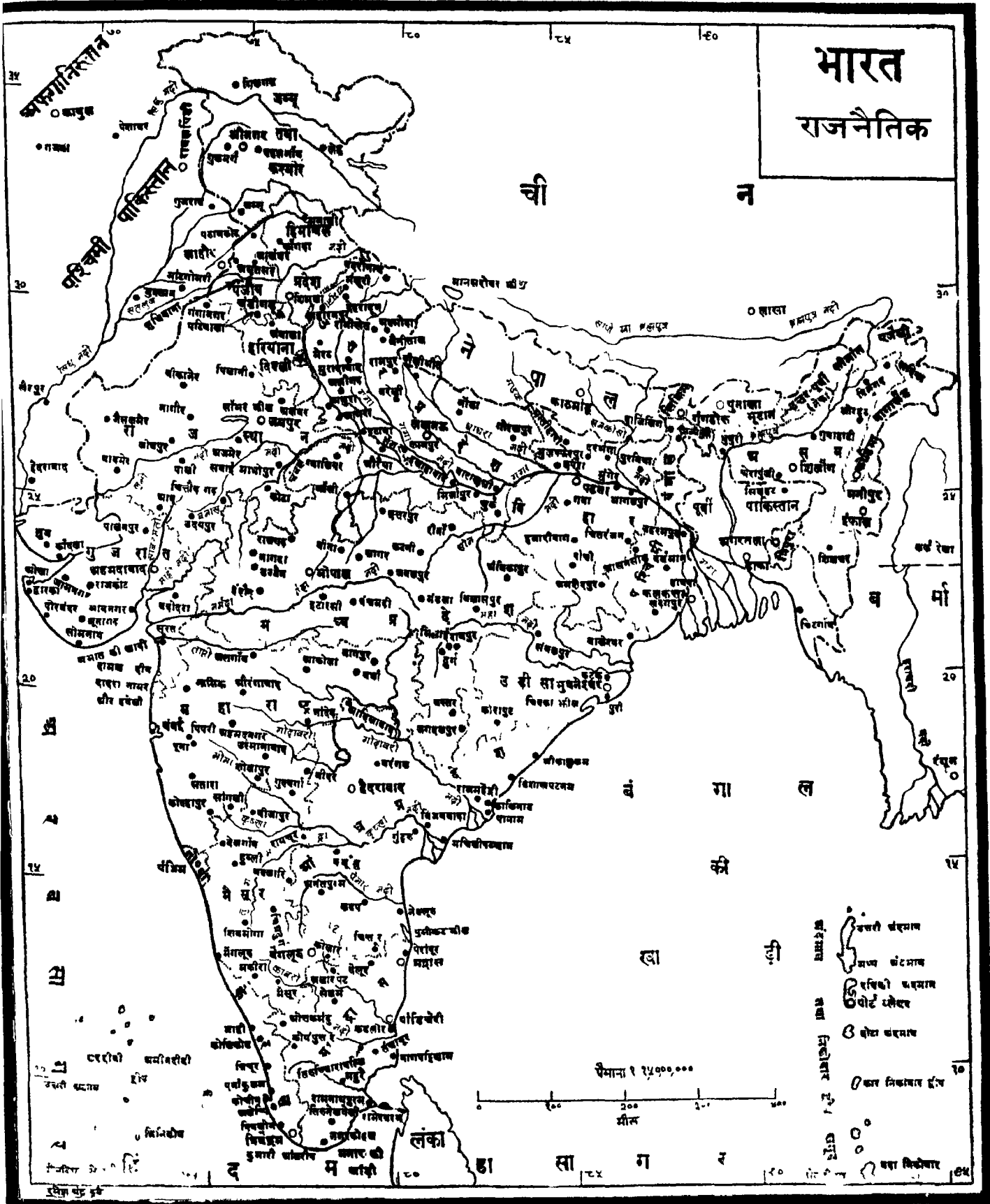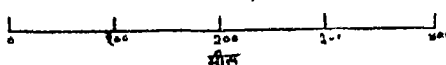
उपजाऊ घाटियाँ हैं जिनमें कश्मीर की घाटी तथा नेपाल में काठमांडू की घाटी विशेष उल्लेखनीय हैं। भारत के प्रसिद्ध शैलावास शिमला, मसूरी, नैनीताल, दार्जिलिंग मध्य हिमालय के निचले भाग में, मुख्यत: ६,००० से ७,५०० फुट तक की ऊँचाई पर स्थित है। (ग) बाह्य हिमालय की औसत ऊँचाई ३,०००–४,००० फुट है (मानचित्र १)। इसे शिवालिक की श्रेणी भी कहते है। यह श्रेणी हिमालय की सभी श्रेणियों से नई है और इसका निर्माण हिमालय निर्माण के अंतिम काल मे कंकड, रेत तथा मिट्टी के दबने और मुडने से हुआ है। इसकी चौडाई पाँच से ६० मील तक है। मध्य और बाह्य हिमालय के बीच कई घाटियाँ मिलती है जिन्हें दून (देहरादून) कहते हैं।

पूर्व मे भारत और बर्मा के बीच के पहाड भिन्न भिन्न नामों से ख्यात है। उत्तर में यह पटकोई की पहाड़ी कहलाती है। दक्षिण मे नागा पहाड़ी, मनीपुर पठार तथा लुशाई की पहाडी हे। नागा पर्वत से एक शाखा पश्चिम की ओर असम मे चली गई हैं जिसमे खासी और गारो की पहाड़ियाँ है। इन पहाडों की औसत ऊँचाई ६,००० फुट है और अधिक वर्षा के कारण ये घने जगलों से आच्छादित हैं।

हिमालय की ऊँची पर्वतमाला को कुछ ही स्थानों पर, जहाँ दर्रे हैं, पार किया जा सकता है। इसलिये इन दर्रों का बडा महत्व है। उत्तर-पश्चिम मे खैबर और बोलन के दर्रे है जो अब पाकिस्तान मे है। उत्तर मे रावलपिंडी से कश्मीर जाने का रास्ता है जो अब पाकिस्तान के अधिकार मे है। भारत ने एक नया रास्ता पठानकोट से बनिहाल दर्रा होकर श्रीनगर जाने के लिये बनाया है। श्रीनगर से जोजीला दर्रे द्वारा लेह तक जाने का रास्ता है। हिमाचल प्रदेश से तिब्बत जाने के लिये शिपकी दर्रा है जो शिमला के पास है। फिर पूर्व मे दार्जिलिंग का दर्रा है जहाँ से चुंबी घाटी होते हुए तिब्बत की राजधानी लासा तक जाने का रास्ता है। पूर्व की पहाडियो मे भी कई दर्रे है जिनसे होकर बर्मा जाया जा सकता है। इनमें मुख्य मनीपुर तथा हुकोंग घाटी के दर्रे है।

(२) उत्तरी भारत का मैदान — हिमालय के दक्षिण मे एक विस्तृत समतल मैदान है जो लगभग सारे उत्तर भारत मे फैला हुआ है। यह गगा, ब्रह्मपुत्र तथा सिंधु और उनकी सहायक नदियों द्वारा बना है। यह मैदान गंगा सिंधु के मैदान के नाम से जाना जाता है। इसका अधिकतर भाग गगा, नदी के क्षेत्र मे पडता है। सिधु और उसकी सहायक नदियो के मैदान का आधे से अधिक भाग अब पश्चिमी पाकिस्तान मे पडता है और भारत मे सतलुज, रावी और व्यास का ही मैदान रह गया है। इसी प्रकार पूर्व मे, गगा नदी के डेल्टा का अधिकांश भाग पूर्वी पाकिस्तान मे पडता है। उत्तर का यह विशाल मैदान पूर्व से पश्चिम, भारत की सीमा के अदर लगभग १,५०० मील लबा है। इसकी चौडाई १५० से २०० मील तक है। इस मैदान मे कही कोई पहाड नहीं है। भूमि समतल है और समुद्र की सतह से धीरे धीरे पश्चिम की ओर उठती गई है। कहीं भी यह ६०० फुट से अधिक ऊँचा नही है। दिल्ली, जो गगा और सिंधु के मैदानो के बीच अपेक्षाकृत ऊँची भूमि पर स्थित है, केवल ७०० फुट ऊँची भूमि पर स्थित है। अत्यंत चौरस होने के कारण इसकी धरातलीय आकृति मे एकरूपता का अनुभव होता है, किंतु वास्तव मे कुछ महत्वपूर्ण अतर पाए जाते हैं। हिमालय (शिवालिक) की तलहटी में जहाँ नदियाँ पर्वतीय क्षेत्र को छोडकर मैदान मे प्रवेश करती हैं, एक संकीर्ण पेटी में कंकड पत्थर मिश्रित निक्षेप पाया जाता है जिसमें नदियाँ अंतर्धान हो जाती हैं। इस ढालुवाँ क्षेत्र को भाभर कहते है। भाभर के दक्षिण में तराई प्रदेश है, जहाँ विलुप्त नदियाँ पुन प्रकट हो जाती है। यह क्षेत्र दलदलो और जगलो से भरा है। इसका निक्षेप भाभर की तुलना में अधिक महीन कणो का है। भाभर की अपेक्षा यह अधिक समतल भी है। कभी कही जंगलो को साफ कर इसमें खेती की जाती है। तराई के दक्षिण मे जलोढ मैदान पाया जाता है। मैदान मे जलोढक दो किस्म के है, पुराना जलोढक और नवीन जलोढक। पुराने जलोढक को बागर कहते हैं। यह अपेक्षाकृत ऊँची भूमि मे पाया जाता है, जहाँ नदियो की बाढ का जल नही पहुँच पाता। इसमें कही कही चूने के ककड मिलते हैं। नवीन जलोढक को खादर कहते हैं। यह नदियों की बाढ के मैदान तथा डेल्टा प्रदेश में पाया जाता है, जहाँ नदियाँ प्रति वर्ष नई तलछट जमा करती हैं। मैदान के दक्षिणी भाग मे कही कही दक्षिणी पठार से निकली हुई छोटी मोटी पहाडियाँ मिलती हैं। इसके उदाहरण बिहार मे गया तथा राजगिरि की पहाडियाँ हैं।

आर्थिक दृष्टि से उत्तरी भारत का मैदान देश का सबसे अधिक उपजाऊ और विकसित भाग है। प्राचीन काल से यह आर्य सभ्यता का केंद्र रहा है। यहाँ कृषि के अतिरिक्त अनेक उद्योग धंधे हैं, नगरों की बहुलता है और यातायात के साधन उन्नत है। यही भारत का सबसे घना आबाद क्षेत्र है और यही देश की लगभग दो तिहाई जनसख्या बसी है।

(३) दक्षिण का पठार — उत्तरी भारत के मैदान के दक्षिण का पूरा भाग एक विस्तृत पठार है जो दुनिया के सबसे पुराने स्थल खंड का अवशेष है और मुख्यत कडी तथा दानेदार कायांतरित चट्टानों से बना है। पठार तीन ओर पहाडी श्रेणियो से घिरा है। उत्तर मे विंध्याचल तथा सतपुडा की पहाडियाँ है, जिनके बीच नर्मदा नदी पश्चिम की ओर बहती है। नर्मदा घाटी के उत्तर विंध्याचल प्रपाती ढाल बनाता है। सतपुडा की पर्वतश्रेणी उत्तर भारत को दक्षिण भारत से अलग करती है, और पूर्व की ओर महादेव पहाड़ी तथा मैकाल पहाडी के नाम से जानी जाती है। सतपुड़ा के दक्षिण अजता की पहाडियाँ है। प्रायद्वीप के पश्चिमी किनारे पर पश्चिमी घाट और पूर्वी किनारे पर पूर्वी घाट नामक पहाड़ियाँ है। पश्चिमी घाट पूर्वी घाट की अपेक्षा अधिक ऊँचा है और लगातार कई सौ मीलो तक, ३,५०० फुट की ऊँचाई तक चला गया है। पूर्वी घाट न केवल नीचा है, बल्कि बगाल की खाडी मे गिरनेवाली नदियो ने इसे कई स्थानो मे काट डाला है जिनमे उत्तर से दक्षिण महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी मुख्य है। दक्षिण मे पूर्वी और पश्चिमी घाट नीलगिरि की पहाड़ी मे मिल जाते हैं, जहाँ दोदाबेटा की ८,७६० फुट ऊँची चोटी है। नीलगिरि के दक्षिण अन्नामलाई तथा कार्डेमम (इलायची) की पहाडियाँ हैं। अन्नामलाई पहाडी पर अनैमुडि, पठार की सबसे ऊँची चोटी (८,८४० फुट) है। इन पहाडियो और नीलगिरि के बीच पालघाट का दर्रा है जिससे होकर पश्चिम की ओर रेल गई है। पश्चिमी घाट

में बंबई के पास थालघाट और भोरघाट दो महत्वपूर्ण दर्रे हैं जिनसे होकर रेलें बंबई तक गई हैं।

उत्तर-पश्चिम में विंध्याचल श्रेणी और अरावली श्रेणी के बीच मालवा का पठार है जो लावा द्वारा निर्मित है। अरावली श्रेणी दक्षिण में गुजरात से लेकर उत्तर में दिल्ली तक कई अवशिष्ट पहाड़ियों के रूप मे पाई जाती है। इसके सबसे ऊँचे, दक्षिण-पश्चिम छोर मे माउंट आबू (५,६५० फुट) स्थित है। उत्तर-पूर्व में छोटानागपुर का पठार है, जहाँ राजमहल पहाडी प्रायद्वीपीय पठार की उत्तर-पूर्वी सीमा बनाती है। किंतु असम का शिलौंग पठार भी प्रायद्वीपीय पठार का ही भाग है जो गगा के मैदान द्वारा अलग हो गया है।

दक्षिण के पठार की औसत ऊँचाई १,५०० से ३,००० फुट तक है। ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है। नर्मदा और ताप्ती को छोडकर बाकी सभी नदियाँ पूर्व की ओर बंगाल की खाडी में गिरती हैं। पठार के पश्चिमी तथा पूर्वी किनारो पर उपजाऊ तटीय मैदान मिलते हैं। पश्चिमी तटीय मैदान संकीर्ण है, इसके उत्तरी भाग को कोंकण और दक्षिणी भाग को मालाबार कहते हैं। पूर्वी तटीय मैदान अपेक्षाकृत चौडा है और उत्तर में उडीसा से दक्षिण में कुमारी अंतरीप तक फैला हुआ है। महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियाँ जहा डेल्टा बनाती हैं वहाँ यह मैदान और भी अधिक चौडा हो गया है। मैदान का दक्षिणी भाग कर्नाटक, और उत्तरी भाग उत्तरी सरकार कहलाता है। इनके तट का नाम क्रमश. कारोमंडल तट तथा गोलकुंडा तट है।

जलवायु — विस्तृत क्षेत्र और प्राकृतिक रूप से विभिन्नता के कारण भारत के भिन्न भागों के जलवायु का भिन्न होना स्वाभाविक है, किंतु मानसूनी प्रभाव के कारण जलवायु की विभिन्नता मे एक समानता पैदा हो जाती है और पूरे भारत की जलवायु को मौसमी जलवायु कहा जाता है। हिमालय की ऊँची पर्वतमाला भारत को मध्य एशिया की वायुराशियो के प्रभाव से पृथक् रखती है। भारत पाकिस्तान का संमिलित स्थलखंड इतना विस्तृत है कि वह मध्य एशिया से अलग अपनी एक स्वतंत्र मानसून प्रणाली बना लेता है। भारत के विभिन्न भागों मे ताप मे काफी विषमता पाई जाती है, किंतु इससे कही अधिक महत्वपूर्ण वर्षा की प्रादेशिक विभिन्नता है। फिर भी सभी जगह ऋतुओं का एक ही क्रम मिलता है और सीमित भागो को छोड़कर सभी जगह प्राय तीन चौथाई से अधिक वर्षा ग्रीष्म ऋतु मे होती है। मोटे तौर पर भारत मे तीन ऋतुएँ होती हैं. (१) शीतऋतु, नवबर से फरवरी तक, यह ऋतु करीब करीब वर्षाहीन है, (२) ग्रीष्म ऋतु, मार्च से जून के आरंभ तक, भीषण गरमी पड़ती है किंतु वर्षा नहीं होती, (३) वर्षा ऋतु, जून के आरभ से अक्टूबर तक; इसमे वर्षा होती है और गरमी कुछ कम हो जाती है।

शीतऋतु — इस समय सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध मे रहता है और ताप दक्षिण से उत्तर की ओर कम होता जाता है। इसलिये उत्तर भारत दक्षिण भारत की अपेक्षा ठंढा रहता है। जनवरी मे मध्य तथा दक्षिण भारत में ताप २१° से २७° सें० के बीच और गंगा के मैदान मे १३° से १८° सें० के बीच रहता है। जनवरी में मद्रास का ताप लगभग २४° सें०, कलकत्ता का १९° सें० और दिल्ली का १५° सें० रहता है। सबसे अधिक सर्दी उत्तर-पश्चिमी भागों में पड़ती है, जहाँ एक ऊँचे दबाव का क्षेत्र बन जाता है। हिमालय की ऊँची दीवार के कारण मध्य एशिया से चलनेवाली बर्फीली हवाएँ भारत तक नही पहुँच पातीं और यहाँ जाड़े का मौसम मृदु रहता है। हवाएँ स्थल से समुद्र की ओर बहती हैं, इसलिये शुष्क होती हैं और वर्षा नही होती। केवल दो ही क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ इस समय थोड़ी बहुत वर्षा होती है. १. भारत का उत्तर-पश्चिमी तथा २. दक्षिण-पूर्वी भाग। उत्तर पश्चिम में वर्षा चक्रवातो से होती है जो दिसंबर से मार्च तक भूमध्यसागर से इराक, ईरान और पाकिस्तान होते हुए भारत पहुँचते हैं। यद्यपि इनसे वर्षा प्राय. एक या दो इंच होती है, फिर भी रबी फसलों के लिये यह अत्यंत लाभदायक है। मद्रास एक दूसरा क्षेत्र है जहाँ थोड़ी बहुत वर्षा जनवरी फरवरी मे होती है। उत्तर-पूर्वी मानसूनी हवा बंगाल की खाड़ी से वाष्प लेती है और कर्नाटक के पूर्वी किनारे पर वर्षा करती है।

ग्रीष्म ऋतु — ज्यों ज्यों सूर्य कर्क रेखा की ओर बढ़ता है, गरमी बढ़ती जाती है और मार्च से गरमी का मौसम शुरू हो जाता है। अप्रैल और मई मे सूर्य भारत पर लंब रूप में रहता है तथा गरमी तीव्र हो जाती है। दक्षिण भारत में पठार की ऊँचाई तथा समुद्र की निकटता के कारण गरमी उतनी अधिक नहीं पड़ती, किंतु उत्तरी मैदान मे औसत ताप मई में ३४° सें० से अधिक रहता है। दिन मे ताप प्राय: ३८° सें० से अधिक और कभी कभी ४९° सें० तक चला जाता है। गरमी और सूखेपन के कारण सभी वनस्पतियाँ सूख जाती हैं और हरियाली प्राय: कही देखने को नही मिलती। अत दक्षिण भारत की अपेक्षा, उत्तर भारत जाड़े में अधिक ठढा और गरमी मे अधिक गरम रहता है। तटीय भागों में समुद्री हवाओ से थोड़ी बहुत वर्षा होती है। इस ऋतु में उत्तर भारत मे प्राय. आँधियाँ आती है जिन्हे नॉर्थवेस्टर (North wester) कहते हैं। इनसे विशेषकर बंगाल तथा असम मे वर्षा होती है। इस वर्षा से असम मे चाय की फसल को तथा अन्य भागों मे आम की फसल को लाभ होता है।

वर्षा ऋतु — जून के आरंभ तक गरमी बढ़ती ही जाती है, किंतु आधे जून से मौसम अचानक बदल जाता है। हवा तेजी के साथ दक्षिण-पश्चिम से बहने लगती है, आकाश बादलो से आच्छादित हो जाता है और गर्जन तर्जन के साथ जोरों की वर्षा होती है। बंबई तट पर दक्षिण-पश्चिमी मानसून लगभग ५ जून को, शुरू होता है, बंगाल में १५ जून को और पहली जुलाई तक सारा भारत इसके प्रभाव में आ जाता है। हवाओ का लक्ष्य उत्तर-पश्चिमी भारत तथा पश्चिमी पाकिस्तान मे स्थित नीचे दबाव का क्षेत्र होता है। दक्षिण-पश्चिमी मानसून वास्तव मे दक्षिणी गोलार्द्ध की दक्षिण-पूर्वी वाणिज्य वायु है, जो विषुवत् रेखा पार करने के बाद फैरेल के नियम के अनुसार अपनी दिशा बदल कर दक्षिण-पश्चिमी मानसून वायु के रूप मे भारत पहुँचती है। दक्षिणी प्रायद्वीप के कारण इस हवा की दो शाखाएँ हो जाती हैं, अरब सागर शाखा और बंगाल की खाड़ी शाखा। उत्तर भारत मे वर्षा बंगाल की खाड़ी शाखा से होती है और दक्षिण भारत में अरब सागर शाखा से। वर्षा के वितरण पर भूमि की आकृति का महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। पश्चिमी घाट के पश्चिमी किनारे पर बहुत ही अधिक वर्षा होती है, किंतु दक्षिणी पठार का अधिक भाग पश्चिमी

घाट की वृष्टिछाया मे पड़ता है। जून से सितंबर के बीच, पश्चिमी किनारे पर स्थित मेंगलूरू में ११० इंच वर्षा होती है, पठार के भीतरी भाग में स्थित बेंगलूरू मे २० इंच और पूर्वी तट पर स्थित मद्रास में केवल १५ इंच।

उत्तर भारत मे हवा की दिशा दक्षिण-पूर्व होती है। बंगाल की खाड़ी से गंगा के मैदान में पश्चिम की ओर वर्षा कम होती जाती है। जून से सितंबर के बीच कलकत्ता में ४७ इंच, पटना मे ४० इंच, इलाहाबाद में ३६ इंच और दिल्ली मे २२ इंच वर्षा होती है। हिमालय से दक्षिण की ओर जाने पर भी वर्षा कम होती जाती है। सबसे अधिक वर्षा असम की पहाड़ियो मे होती है और जहाँ आराकान तथा खासी पहाड़ियाँ मिलती है वहाँ न केवल भारत मे, बल्कि संसार मे सबसे अधिक वर्षा होती है। यहाँ पहाडी पर स्थित चेरापूँजी मे जून से सितंबर के बीच ३१६ इंच (वार्षिक औसत ४२५ इंच) वर्षा होती है। पहाडियों के दूसरी ओर, शिलौग में वर्षा इन चार महीनो में केवल ५६ इंच होती है (देखें मानचित्र २)।

उत्तर-पश्चिम का निम्न दबाव का क्षेत्र, जिधर सारी हवाएँ आकर्षित होती है, स्वयं वर्षारहित है। यहाँ तक पहुँचते पहुँचते बंगाल की खाड़ी शाखा का सारा वाष्प समाप्त हो जाता है। अरब सागर शाखा से भी यहाँ वर्षा नहीं होती, क्योंकि कच्छ से उत्तर यह नही जाती। यही कारण है कि राजस्थान, दक्षिण-पश्चिम पंजाब (तथा पश्चिमी पाकिस्तान) मे १० इंच से भी कम वर्षा होती है।

वर्षा ऋतु मे औसत ताप शुष्क ऋतु से कम होता है, किंतु आर्द्रता के कारण हवा मे इतनी उमस होती है कि मनुष्य शारीरिक कष्ट का अनुभव करता है। यद्यपि भारत मे वर्षा मुख्यत: दक्षिण-पश्चिम मानसून से होती है, तथापि इससे वर्षा इतनी अनिश्चित और अनियमित होती है कि कहा जाता है कि भारतीय कृषि मानसून के साथ जुए का खेल है। किसी वर्ष वर्षा आवश्यकता से अधिक, तो किसी वर्ष कम होती है। फिर कभी मानसून नियत समय से देर से बरसता है, तो कभी समय से पहले ही समाप्त हो जाता है।

वापसी मानसून का मौसम — अक्टूबर से वायुभार मे वृद्धि होने लगती है और मानसून हवाओ का देश के अंदर पहुँचना कठिन हो जाता है। ज्यों ज्यों मानसून हटती जाती है, आकाश स्वच्छ होने लगता है और शीतकाल निकट होने पर भी अक्टूबर मे, विशेषकर दिन मे, ताप बढ जाता है। लौटती मानसून से अक्टूबर से दिसंबर के बीच मद्रास मे लगभग ३२ इंच वर्षा होती है। मद्रास तट मे जाडे मे गरमी की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

वर्षा का प्रादेशिक विवरण—भारत को वार्षिक वर्षा के आधार पर चार विभागो मे बाँटा जा सकता है: (१) अधिक वर्षा के प्रदेश — पश्चिमी घाट तथा पश्चिमी तट, असम, हिमालय की दक्षिणी ढाल तथा बंगाल के कुछ भाग इसमे शामिल है। यहाँ वर्षा ८० इंच से अधिक होती है, प्राकृतिक वनस्पति भूमध्यरेखीय सदाबहार वन है तथा धान मुख्य फसल है। यहाँ सिंचाई की आवश्यकता नही होती। (२) साधारण वर्षा के प्रदेश — यहाँ वर्षा ४० से ८० इंच के बीच होती है। प्राकृतिक वनस्पति पतझड़वाला मानसूनी जंगल हैं, और मुख्य उपज धान है, पर शीतकाल मे अन्य फसलें उपजती हैं। धान की खेती में सिंचाई की आवश्यकता होती है। (३) कम वर्षा के क्षेत्र — यहाँ वर्षा २० से ४० इंच के बीच होती है, वनस्पति कँटीले जंगल और
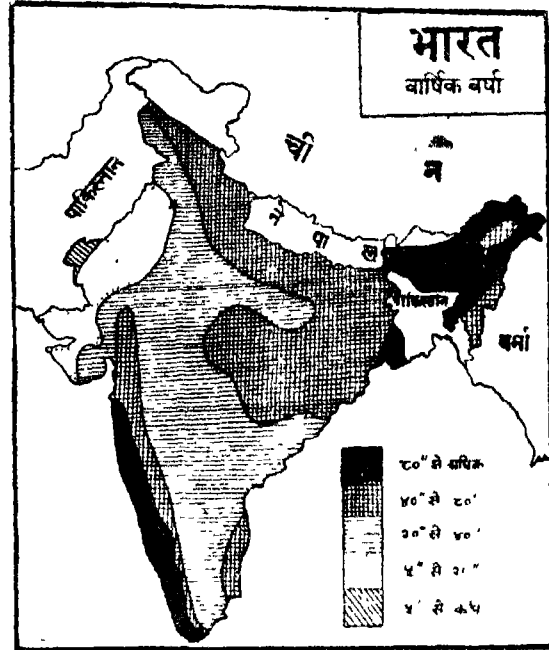
मानचित्र २

झाड़ियाँ हैं। खेती के लिये सिंचाई आवश्यक है। गेहूँ, ज्वार, बाजरा इत्यादि मुख्य अन्न हैं। इसमे दक्षिण भारत के अधिकांश भाग तथा ऊपरी गंगा का मैदान संमिलित है। (४) मरुस्थल तथा अर्द्धमरुस्थल — यहाँ वर्षा २० इंच से कम होती है। यहाँ प्राकृतिक वनस्पति का अभाव है और बिना सिंचाई के खेती असंभव है। इसमे मुख्यत राजस्थान और पंजाब का दक्षिणी भाग आता है। वर्षा के ये विभाग बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनका प्रभाव वनस्पति पर तो पड़ता ही है, इनकी सहायता से सिंचाई तथा भिन्न फसलो के वितरण को भी आसानी से समझा जा सकता है।

प्राकृतिक वनस्पति — वर्षा की मात्रा के साथ साथ वनस्पति भी बदलती जाती है। वनस्पति पर स्थलाकृति का भी प्रभाव पड़ता है। भारत मे लगभग छह प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति मिलती है जिसमे से चार की विशेषताएँ वर्षा से संबधित हैं और दो की स्थलाकृति से (देखें मानचित्र ३.)। (१) सदाबहार वन — ये जंगल ८० इंच से अधिक वर्षावाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं। पश्चिमी घाट मे बंबई के दक्षिण १,५०० से ४,५०० फुट की ऊँचाई के बीच तथा असम और पश्चिमी बंगाल मे हिमालय में ३,५०० फुट की ऊँचाई तक ये वन मिलते हैं और ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ वर्षा १२० इंच से अधिक है, ये विशेष सघन हैं। जहाँ वर्षा कम है वहाँ सदाबहारी वन अर्द्धसदाबहारी वनों मे बदल जाते हैं। अधिक ऊष्मा और वर्षा के कारण सदाबहारी वनों के वृक्ष ऊँचे (१२० से १५० फुट) और घने होते हैं। पश्चिमी घाट में विभिन्न प्रकार की कड़ी लकड़ियो के वृक्ष पाए जाते है, किंतु असम एवं

बंगाल में वृक्षों के प्रकार उतने अधिक नहीं हैं और विस्तृत क्षेत्रों में बाँस पाए जाते हैं। (२) पतझड़वाले मानसूनी जंगल — ये उन प्रदेशों में मिलते हैं, जहाँ वर्षा ४० से ८० इंच तक होती है। ये मुख्यत: पश्चिमी घाट की पूर्वी ढाल, पूर्वी घाट, छोटा नागपुर, पूर्वी मध्य-प्रदेश, उड़ीसा और हिमालय की तराई में पाए जाते हैं। इनकी मुख्य
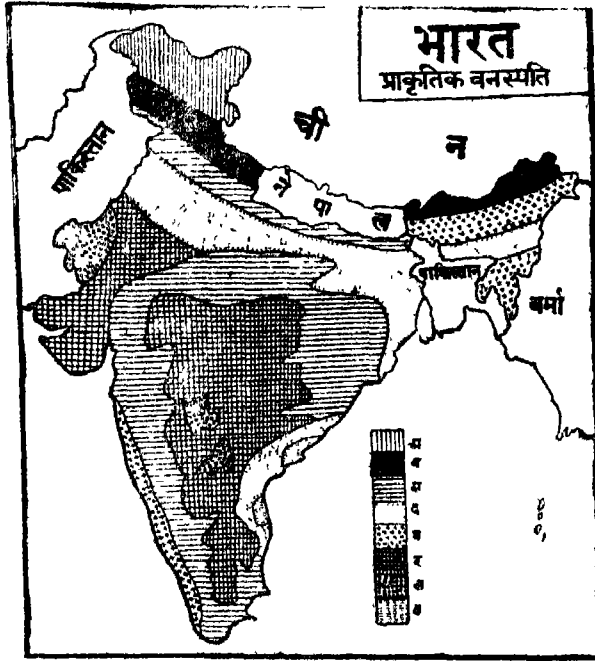
मानचित्र ३

अ उच्च पर्वतीय वन, ब. पर्वतीय वन. स. तटीय या डेल्टाई वन, द मरुस्थली काँटेदार झाड़ियाँ, य खेतिहर क्षेत्र, र साधारण वर्षावाले घास के मैदान, ल. पतझड़वाले मानसूनी वन तथा, व. सदाबहार वन।

विशेषता यह है कि वृक्ष अपनी पत्तियाँ ग्रीष्म ऋतु के आरंभ मे गिरा देते हैं। आर्थिक दृष्टि से ये भारत के सबसे महत्वपूर्ण जंगल हैं और इनमें अनेक उपयोगी लकडी के वृक्ष मिलते हैं, जैसे, सागौन, साखू, चंदन इत्यादि। सागौन मुख्यत. महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में, साखू मुख्यतः छोटा नागपुर, मध्यप्रदेश तथा हिमालय की दक्षिणी ढाल पर मिलता है। सागौन के अच्छे फर्नीचर तथा किवाड बनते है और साखू का उपयोग रेल की पटरियाँ और मकान बनाने में किया जाता है। चंदन सदाबहारी वृक्ष है। यह मैसूर के पास पतझड़वाले जंगलो में बहुत पाया जाता है। अन्य वृक्ष शीशम (पूर्वी हिमालय की ढाल), महुआ (छोटा नागपुर), बड, पीपल तथा हर्र, बहेड़ा, आँवला हैं। (३) सूखे जंगल — ये पूर्वी राजस्थान, पश्चिमी मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र तथा मैसूर के कुछ भाग और आंध्र प्रदेश तथा मद्रास के कुछ भागो में, जहाँ वर्षा २० से ४० इंच है, पाए जाते हैं। इसमे काँटेदार पेड़ पौधे तथा छोटी छोटी झाड़ियाँ मिलती हैं जिनमें बबूल और गोंद उत्पन्न करनेवाले पेड प्रधान हैं। (४) अर्द्धमरुस्थलीय जंगल — ये उन भागो में पाए जाते हैं, जहाँ वर्षा २० इंच से कम है। इसमें वनस्पति नाम मात्र की है। कहीं कही बबूल तथा खजूर के वृक्ष अथवा छोटी छोटी झाड़ियाँ मिलती हैं। इस प्रकार की वनस्पति पश्चिमी राजस्थान, पंजाब तथा दक्षिणी पठार के शुष्क भागों मे मिलती है। (५) पर्वतीय वन — हिमालय पहाड़ पर ऊँचाई के साथ साथ ज्यों ज्यों गरमी कम होती जाती है, वनस्पति की किस्में भी बदलती जाती हैं। पूर्वी हिमालय में पश्चिमी हिमालय से अधिक वर्षा होती है, इसलिये इन दोनों की वनस्पति में ऊँचाई के साथ परिवर्तन एक तरह का नहीं होता है। पूर्वी और पश्चिमी हिमालय के बीच विभाजक रेखा ८६°–८८° पू० दे० है। पूर्वी हिमालय मे ३,००० से ६,००० फुट की ऊँचाई के बीच चौड़ी पत्तीवाले सदाबहार जंगल मिलते हैं जिनमे बाज (oak) और चेस्टनट प्रधान हैं। ८,५०० से ११,५०० फुट की ऊँचाई तक कोणधारी वृक्ष मिलते हैं, किंतु नीचे की ओर को णधारी और चौड़ी पत्तीवाले वृक्षों का मिश्रित वन मिलता है। और अधिक ऊँचाई पर (६,५०० से १२,००० फुट) फर, जुनिपर, चीड, भूर्ज, रोडोडेनड्रॉन मिलते हैं। पश्चिमी हिमालय में वर्षा की कमी के कारण, सबसे नीचे पतझड़ वन मिलते हैं जिनमें साखू के वृक्ष प्रधान हैं। ३,००० से ६,००० फुट की ऊँचाई तक चेस्टनट और पॉपलर मिलते हैं और कुछ अधिक ऊँचाई पर बाज के वृक्ष पाए जाते हैं। ५,००० से ११,००० फुट के बीच कोणधारी (conifer) जंगल मिलते हैं जिनमें देवदार, चीड़ और ब्लू पाइन मुख्य वृक्ष हैं। देवदार विशेषकर ४५-७० इंच वर्षा के क्षेत्रों मे अत्यधिक होते हैं। ११,००० फुट से ऊपर रोडोडेनड्रॉन, सिल्वर फर, जुनिपर तथा भूर्ज के वृक्ष के वन मिलते हैं जिन्हें ऐल्पाइन वन कहते हैं। आर्थिक दृष्टि से पर्वतीय वन के मुख्य वृक्ष देवदार, ब्लू पाइन, चीड़, सिल्वर फर तथा स्प्रूस (spruce) हैं। (६) तटीय वन — समुद्र के किनारे दलदली क्षेत्रों मे पाए जाते है। इन्हे मैनग्रोव जंगल भी कहा जाता है। इस प्रकार के जंगल के लिये दलदल और खारा पानी दोनो आवश्यक हैं। इसका सबसे विस्तृत क्षेत्र गंगा नदी के डेल्टा मे मिलता है जो सुंदरवन के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ सुदरी नामक वृक्ष सबसे अधिक पाया जाता है। इसकी लकडी मुख्यत: जलाने के काम आती है। गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के डेल्टा मे भी मैनग्रोव जंगल पाए जाते है।

भारत मे खेती के प्रसार के कारण मैदानों तथा समतल भूमि से जंगलों को साफ कर दिया गया है और अब केवल पहाड़ी भागों में ही वन पाए जाते हैं। इन जंगलों का क्षेत्रफल २,०४,००० वर्ग मील है जो देश की कुल भूमि का २२ प्रति शत है। इसके अतिरिक्त वनाच्छादित भूमि का वितरण बहुत असमान है। असम एवं मध्य प्रदेश मे वनाच्छादित भूमि इन राज्यों के क्षेत्रफल का क्रमश: ४२ और ३१ प्रति शत, उड़ीसा मे २६ प्रति शत, जम्मू और कश्मीर मे २२ प्रति शत है, किंतु उत्तर प्रदेश में यह प्रति शत ११, पश्चिमी बंगाल मे ६, गुजरात मे ५ और राजस्थान में केवल ३ है।

भारतीय वनों का ७६ प्रति शत भाग सरकारी नियंत्रण के अंतर्गत है। इनमे से कुछ सुरक्षित वन हैं जिनमें पशुचारण तथा लकड़ी काटना निषिद्ध है, और कुछ संरक्षित वनों मे जहाँ सरकारी देखरेख है, स्थानीय निवासियों को पशु चराने तथा लकड़ी काटने की सुविधाएँ प्राप्त हैं। वनों की उचित व्यवस्था के लिये यह आवश्यक है कि वर्तमान वनक्षेत्रों का संरक्षण एवं विस्तार किया जाय एवं यातायात के साधनों का विकास किया जाय और वैज्ञानिक ढंग से वनों का सदुपयोग किया जाय।

मिट्टियाँ — हम भारत की मिट्टियों को चार प्रधान वर्गों में विभाजित कर सकते है : १. जलोढ़ या काप मिट्टी — उत्तर के विस्तृत मैदान तथा प्रायद्वीपीय भारत के तटीय मैदानों में मिलती है। यह अत्यंत उपजाऊ है और इसपर भारत की लगभग आधी आबादी की जीविका निर्भर है। यह मिट्टी हिमालय से निकली हुई नदियों द्वारा लाकर जमा की गई है। पर्वतपदीय भाभर क्षेत्र में मिट्टी रुखड़ी है, मैदान के पश्चिमी भागों में बालू का अंश अधिक है, किंतु गंगा के डेल्टा की ओर मिट्टी महीन और चिकनी होती जाती है। जलोढ मिट्टियों के दो भाग हैं : बाँगर तथा खादर। बाँगर पुराना जलोढक है जहाँ नदियों का जल नहीं पहुँच पाता। खादर नवीन जलोढक है जो नदियों के बाढ़ का मैदान और डेल्टा क्षेत्र में पाया जाता है। अधिकांश क्षेत्रों में मिट्टी दोरस है। उर्वरता मुख्यत. जलतल पर निर्भर करती है। इन मिट्टियो में पोटाश, फॉस्फोरिक एसिड तथा चूना पर्याप्त है किंतु नाइट्रोजन और जीवांशों की कमी है। खादर मे ये तत्व बाँगर की तुलना में अधिक मात्रा में वर्तमान हैं, इसलिये खादर अधिक उपजाऊ है। बाँगर में कम वर्षा के क्षेत्रों में, कहीं कहीं खारी मिट्टी और कहीं लोना लगी हुई मिट्टी पाई जाती है। रेहयुक्त मिट्टी ऊसर अथवा बंजर होती है। (२) काली मिट्टी — लावा के अनावृत्तीकरण से बनी है और महाराष्ट्र तथा गुजरात के अधिकाश भाग और पश्चिमी मध्य प्रदेश मे मिलती है। इसका विस्तार लावा क्षेत्र तक सीमित नही है, बल्कि नदियों ने इसे ले जाकर अपनी घाटियो मे भी जमा किया है। यह बहुत ही उपजाऊ है और कपास की उपज के लिये प्रसिद्ध है। इसलिये इसे कपासवाली काली मिट्टी कहते हैं। इस मिट्टी मे नमी रोक रखने की प्रचुर शक्ति है, इसलिये वर्षा कम होने पर भी सिंचाई की आवश्यकता नही होती। इसका काला रंग शायद अत्यंत महीन लौह अंशों की उपस्थिति के कारण है। इस मिट्टी मे पोटाश तथा चूना पर्याप्त मात्रा में होता है, किंतु नाइट्रोजन, जीवाश तत्व तथा फॉस्फोरिक एसिड की मात्रा कुछ कम है। (३) लाल मिट्टी — इस वर्ग की मिट्टी में अनेक प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती है, जो पठार की पुरानी रवेदार चट्टानों के अनावृत्तीकरण से बनी हैं। इनका सामान्य रंग लाल या लाली लिए हुए अवश्य है, पर इस वर्ग में संमिलित कुछ मिट्टियों का रग भूरा, धूसर तथा काला भी है। इनके रंग, बनावट तथा गुण मे मूल चट्टानो, जलवायु तथा स्थानीय धरातलीय रूप के साथ बहुत अंतर मिलता है। पठार तथा पहाड़ियों पर इन मिट्टियों की उर्वराशक्ति कम है और ये कंकरीली तथा रुखड़ी होती हैं, किंतु नीचे स्थानों मे अथवा नदियों की घाटियों में ये दोरस हो जाती है और अधिक उपजाऊ हैं। इनमें प्रायः उन्हीं खनिजों की कमी है जिनकी कमी काली मिट्टी मे मिलती है, किंतु साधारणतया ये काली मिट्टी से कम उपजाऊ हैं और इनमे निक्षालन (leaching) भी अधिक हुआ है। तटीय मैदानों और काली मिट्टी के क्षेत्र को छोड़कर, प्रायद्वीपीय पठार के अधिकांश भाग मे लाल मिट्टी पाई जाती है। (४) लैटेराइट मिट्टी — यह लैटेराइट नामक चट्टानों के टूटने फूटने से बनती है। यह देखने में लाल मिट्टी की तरह लगती है, किंतु उससे कम उपजाऊ होती है। ऊँचे स्थलों मे यह प्रायः पतली और कंकड़मिश्रित होती है और कृषि के योग्य नहीं रहती, किंतु मैदानी भागों में यह खेती के काम में लाई जाती है। यह दक्षिण भारत के पठार, राजमहल तथा छोटानागपुर के पठार, असम इत्यादि मे सीमित क्षेत्रों मे पाई जाती है। दक्षिण भारत में मैदानी भागों मे इसपर धान की खेती होती है और ऊँचे भागों में चाय, कहवा, रबर तथा सिनकोना उपजाए जाते हैं। इस प्रकार की मिट्टी अधिक ऊष्मा और वर्षा के क्षेत्रों मे बनती है। इसलिये इसमे ह्यूमस की कमी होती है और निक्षालन अधिक हुआ करता है।

कृषि — भारत कृषिप्रधान देश है और यहाँ की लगभग ७० प्रति शत आबादी की जीविका कृषि पर निर्भर है। कृषिगत भूमि के ८० प्रति शत से अधिक भाग पर खाद्यान्न उत्पन्न किए जाते हैं, फिर भी देश में लगभग १० प्रति शत खाद्यान्न की कमी रहती है जिसकी पूर्ति विदेशों से आयात द्वारा की जाती है। ऐसी कोई भी फसल नहीं है, जो पशुओं के चारे के लिये उपजाई जाती हो। जानवरों का चारा मुख्यतः खाद्यान्नो से प्राप्त भूसा है। हम चाहे जिस दृष्टि से देखें प्रति एकड़ उत्पादन, खाद एवं उत्तम बीजों का व्यवहार, सिंचाई का प्रबंध, पशुपालन इत्यादि की दृष्टि से भारत की कृषि अन्य देशों की तुलना मे बहुत पिछड़ी हुई है। प्रत्येक फसल का प्रति एकड उत्पादन विश्व औसत से कम है। यही कारण है कि अच्छी जलवायु और उपजाऊ मिट्टी के बावजूद यहाँ के किसान गरीब हैं। भारतीय कृषि के पिछड़ी होने के और प्रति एकड कम उत्पादन के चार मुख्य कारण है : (१) सिंचाईवाले क्षेत्रों को छोड़कर, भारत के अधिकाश मे खेती मूलतः मानसून वर्षा पर निर्भर है। जिस वर्ष वर्षा समय पर अथवा पर्याप्त मात्रा मे नहीं होती, विस्तृत क्षेत्रों मे या तो फसल बोई नही जाती अथवा नष्ट हो जाती है। कभी कभी बाढ़ से ही काफी क्षति होती है, (२) निरंतर बिना खाद के सदियों तक व्यवहार में लाए जाने के कारण मिट्टी की उत्पादन शक्ति कम हो गई है। मवेशियों की संख्या अधिक होने पर भी गोबर खाद के रूप में इस्तेमाल नही होता बल्कि लकड़ी की कमी के कारण, गोबर को मुख्यतः जलावन के काम मे लाया जाता है। कृत्रिम उर्वरकों का उपयोग भी अधिक दाम, किसानों की अज्ञानता तथा सिंचाई के उचित प्रबध के अभाव के कारण बहुत सीमित है। (३) उसके खेत छोटे हैं और कई छोटे छोटे टुकड़ों मे बिखरे होते हैं जिसके कारण व्यावहारिक ढग से खेती नहीं हो पाती। इस स्थिति का मुख्य कारण उत्तराधिकार सबधी कानून है। छोटे और बिखरे खेतों के कारण काफी जमीन मेड़ मे बर्बाद हो जाती है और उनकी सिंचाई, रखवाली इत्यादि का उचित प्रबंध करना असंभव हो जाता है। फलत. खेती का स्तर नीचा हो जाता है और उपज कम होती है। अधिकाश किसान विभाजित और बिखरे खेतों की बुराइयों से अनभिज्ञ है और प्राय. चकबदी के लिये जल्द तैयार नही होते, यद्यपि पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश मे सहकारी समितियों द्वारा स्वेच्छापूर्वक चकबदी को सफलता मिली है। (४) अधिकांश किसान निर्धन और अनपढ़ हैं, उनके पास इतने पैसे नही कि वे अपने खेतों के लिये खाद और उत्तम बीज खरीद सकें या उन्नत औजार व्यवहार में ला सकें।

सिंचाई — देश के बड़े भाग मे अपर्याप्त तथा अनिश्चित वर्षा के कारण सिंचाई की बड़ी आवश्यकता है। भारत मे संसार के सभी देशों से अधिक सिंचित भूमि पाई जाती है। यहाँ लगभग ६०० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की जाती है, जो भारत की कुल कृषि के

अंतर्गत भूमि का सिर्फ छठा भाग है। अर्थात् इतनी अधिक सिंचित भूमि होने पर भी भारतीय कृषि मुख्यतः वर्षा की अनिश्चितता पर निर्भर है। देश मे अन्न की कमी है और बढती हुई जनसंख्या के पोषण के लिये खाद्यान्नों की उत्पत्ति बढ़ाना आवश्यक है। इस दृष्टि से भी सिंचाई की सुविधा किसानों को अधिकाधिक प्राप्त होना आवश्यक है। सींचने से न केवल फसलों के नष्ट होने का भय जाता रहता है, बल्कि वर्ष मे एक ही खेत से एक से अधिक फसलें उगाई जा सकती हैं और प्रति एकड उपज भी बहुत बढ़ जाती है।

भारत में सिचाई के तीन मुख्य साधन हैं: नहर, तालाब और कुआँ। सिंचित भूमि का ४२ प्रति शत नहरों द्वारा, २० प्रति शत तालाबों द्वारा और ३० प्रति शत कुओं द्वारा सीचा जाता है। नहरें सिंचाई के प्रमुख साधन हैं। इनसे संपूर्ण भारत मे २५५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। नहरों का विकास मुख्य रूप से हरियाना, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा बिहार और गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियों के डेल्टों मे हुआ है।

पंजाब-हरियाना की नहरे — (१) पूर्वी यमुना नहर–यमुना नदी से ताजवाला नामक स्थान पर निकाली गई है, जिससे हरियाना तथा राजस्थान के कुछ भागो मे सिंचाई होती है। इस नहर को मूलत. १४ वी शताब्दी में फिरोजशाह तुगलक ने बनवाया था, (२) सरहिंद नहर — सतलुज नदी से रूपड के पास निकाली गई है। इससे पंजाब और हरियाना मे लगभग १५ लाख एकड भूमि की सिंचाई होती है, (३) ऊपरी बारी दोआब नहर — यह माधोपुर के समीप रावी नदी से निकाली गई है। यह पंजाब मे व्यास और रावी नदियों के बीच आठ लाख एकड भूमि को सीचती है तथा (४) नंगल नहर — १९५४ ई० मे सतलुज से निकाली गई है और भाखड़ा नंगल योजना के अंतर्गत है। इससे पजाब, हरियाना तथा राजस्थान में कुल २० लाख एकड भूमि की सिचाई होती है।

उत्तर प्रदेश की नहरे — (१) पूर्वी यमुना नहर—यमुना नदी के तटपर स्थित फैजाबाद नामक स्थान के पास से निकलती है और दिल्ली से उत्तर, गंगा-यमुना दोआब को सींचती है, (२) आगरा नहर — यमुना नदी के पश्चिमी किनारे से दिल्ली के पास ओखला से निकाली गई है और आगरा तथा मथुरा जिलों को सींचती है, (३) ऊपरी गंगा नहर — गगा नदी से हरद्वार के पास निकलती है। यह गंगा-यमुना दोआब के उत्तरी भाग को सीचती है और निचली गगा नहर को भी पानी देती है। यह लगभग १० लाख एकड भूमि सींचती है, (४) निचली गंगा नहर — गंगा नदी से अलीगढ़ के पास नरोरा से निकाली गई है। यह गंगा यमुना दोआब के मध्य तथा निचले भागो मे लगभग १२ लाख एकड़ भूमि को सीचती है तथा (५) शारदा नहर — घाघरा की सहायक नदी शारदा से, नेपाल की सीमा पर बनबासा नामक स्थान पर निकाली गई है और लखनऊ के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों को सीचती है। यह उत्तर प्रदेश की प्रमुख नहर है और इससे ५४ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। उत्तर प्रदेश मे गन्ने की खेती के लिये इस नहर का विशेष महत्व है।

बिहार की नहरें — (१) सोन नहर — सोन नदी से डेहरी में निकाली गई है और पटना, गया तथा शाहाबाद जिलों मे आठ लाख एकड भूमि को सीचती है। (२) त्रिवेणी नहर — गंडक से त्रिवेणी नामक स्थान से चंपारन में निकाली गई है, (३) ढाका नहर — लाल बकया नदी से चंपारन के पास निकाली गई है। (४) सारन नहर — गंडक से सारन जिले मे निकाली गई है।

दक्षिण भारत की नहरें — दक्षिण भारत मे नहरो से सिंचाई मुख्यतः डेल्टाओं के समतल तथा उपजाऊ भूमि में होती है। कृष्णा, गोदावरी तथा कावेरी तीनों के डेल्टा मे नदियों को बाँध कर नहरें निकाली गई हैं। यद्यपि आंध्रप्रदेश और मद्रास मे तालाब सिंचाई के महत्वपूर्ण साधन हैं, किंतु इन दो राज्यों मे नहरों से सिंचित भूमि तालाबों द्वारा सिंचित भूमि से कम नही है। आंध्र प्रदेश में गोदावरी और कृष्णा के डेल्टा की नहरो (सिंचित भूमि १८ लाख एकड़) के अतिरिक्त तुगभद्रा योजना तथा नागार्जुन सागर योजना की नहरों से विस्तृत क्षेत्रों में सिचाई होती है। मद्रास राज्य में दक्षिण-पश्चिम मानसून काल में कम वर्षा होने के कारण सिंचाई का विशेष महत्व है और यहाँ कृषिगत भूमि के लगभग ४० प्रति शत भाग मे सिंचाई होती है। कावेरी डेल्टा की नहरो (ये ११ वी शताब्दी मे बनाई गई थी) से लगभग १० लाख एकड़ भूमि में, मुख्यतः धान और केलों की सिंचाई होती है। इनके अतिरिक्त मद्रास मे मेटूर बाँध, पेरियर योजना, तथा निचली भवानी योजना की नहरों से बड़े क्षेत्र मे धान, मूंगफली, कपास और तबाकू की सिंचाई होती है।

तालाब — भारत मे लगभग ११५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई तालाबों द्वारा होती है। तालाबों से सिंचाई मुख्यतः आंध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर तथा छोटा नागपुर मे होती है। पथरीले भागों मे, छोटी नदियों के मार्ग मे जगह जगह पर मिट्टी तथा पत्थर से बाँध बनाकर पानी को रोक दिया जाता है जिससे बाँध के ऊपर वर्षा ऋतु मे पानी जमा हो जाता है। इस तरह ये तालाब मामूली अर्थ में समझे जानेवाले तालाबो से भिन्न हैं। तालाबो से पानी नीचे की ओर हलकी ढाल पर गिराया जाता है। इसके लिये प्रायः ढाल को सीढीनुमा काट देते हैं। प्रायः ऐसे खेतो मे धान की खेती होती है। तालाबों से सिंचाई मुख्यत. वर्षा ऋतु मे होती है और जिस वर्ष वर्षा कम होती है, तालाबों से सिंचाई के लिये पूरा पानी नही मिलता। उत्तर प्रदेश तथा उडीसा मे भी तालाबो एवं प्राकृतिक अथवा कृत्रिम गड्ढों मे वर्षा का पानी जमा कर उसे सिंचाई के काम मे लाया जाता है। तालाबों से आंध्र प्रदेश (तेलगाना) तथा मद्रास मे क्रमश: २८ लाख और २२ लाख एकड भूमि की सिंचाई होती है। मद्रास के मदुरे तथा रामनाड जिलो मे तालाबो से सिंचाई का सर्वोत्तम उदाहरण मिलता है।

कुएँ — कुओं द्वारा भारत मे लगभग १७५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। कुआँ सिचाई का पुराना साधन है। कुओं का निर्माण उन क्षेत्रो मे सुगम होता है जहाँ मिट्टी मुलायम हो तथा जलतल ऊँचा हो। एक साधारण कुएँ से लगभग पांच एकड भूमि की सिंचाई होती है, यद्यपि पंजाब तथा हरियाना मे, जहाँ कुएँ बड़े तथा स्थायी हैं, एक कुआँ से लगभग १२ एकड भूमि सीची जाती है। कुओं से सिंचाई अन्य साधनों की तुलना मे मँहगी पड़ती है, क्योंकि

पानी को कुओं से उठाकर खेतों मे डालने मे काफी मेहनत लगती है। इसलिये प्राय: कुओं से सिंचाई वैसी फसलों के लिये की जाती है जो अपेक्षाकृत मँहगी हैं। साथ साथ जहाँ कुओ से सिंचाई होती है वहाँ खेती का स्तर ऊँचा होता है और किसान अधिक से अधिक उपज पैदा करने का प्रयत्न करते हैं। कुओं से पानी निकालने के कई तरीके हैं — ढेकली द्वारा, रहट अथवा पुरवट द्वारा तथा तेल या बिजली चालित इंजनों द्वारा। उत्तर भारत के मैदान मे, जहाँ मिट्टी मुलायम तथा उपजाऊ है और जलतल ऊँचा है, कुओ का अधिक विकास हुआ है। कुओं से सबसे अधिक सिंचाई उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा हरियाना राज्यो में होती है, जहाँ भारत मे कुओ द्वारा सिंचित भूमि का आधे से अधिक भाग पाया जाता है। महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मद्रास तथा बिहार मे भी सिंचाई के लिये कुओ का स्थान महत्वपूर्ण है।

नलकूप — इधर पिछले तीस वर्षों से सिंचाई के लिये नलकूपों का उपयोग किया जा रहा है। लोहे की नली जमीन के अंदर काफी गहराई तक धँसा दी जाती है, और तेल या बिजली चालित इंजिन की सहायता से पानी ऊपर खींचा जाता है। यद्यपि नलकूप के बनाने मे काफी लागत लगती है, फिर भी एक नलकूप से करीब ४०० एकड़ की सिंचाई हो सकती है। इसलिये नलकूप से सिंचाई कुओ की तुलना मे सस्ती पड़ती है। इसके अतिरिक्त जब साधारण कुएँ सूख जाते हैं तब भी नलकूपो से जल मिलता रहता है। उत्तर भारत के मैदान मे धरातल से काफी नीचे एक विस्तृत स्थायी संपृक्तता की पेटी मिलती है। इसको तराई तथा भाभर क्षेत्र मे वर्षा तथा नदियो से जल मिलता रहता है। नलकूप इसी पेटी से जल प्राप्त करते हैं। सबसे पहले पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे नलकूपों का विकास हुआ था और अभी भी सबसे अधिक सिंचाई नलकूपो से यहीं होती है। यहाँ इनसे अधिकतर गन्ने की सिंचाई होती है। पंजाब, हरियाना तथा बिहार मे भी नलकूपो का बहुत विकास हुआ है। कुल मिलाकर भारत मे लगभग तीन लाख एकड़ भूमि नलकूपो द्वारा सींची जाती है।

नदी घाटी योजनाएँ — अभी नदियो का सिर्फ नौ प्रति शत पानी सिंचाई के काम मे आता है और बाकी ९१ प्रति शत बहकर नष्ट हो जाता है। इस पानी को सिंचाई तथा जलविद्युत् उत्पादन के काम मे लाया जा सकता है। इसी उद्देश्य से भारत सरकार तथा राज्य सरकारों ने कई योजनाएँ तैयार की है जिनसे नदियो से सिंचाई की सुविधा के अतिरिक्त उनसे जलविद्युत् उत्पन्न की जा सके, नदियों मे बाढ के प्रकोप को रोका जा सके तथा जलयातायात की सुविधा प्राप्त हो सके और इस प्रकार नदी घाटी का समुचित एवं संतुलित विकास संभव हो सके। इसी कारण इन्हें बहुधंधी योजनाएँ कहते हैं। मुख्य योजनाएँ निम्नलिखित हैं: दामोदर घाटी योजना (बंगाल, बिहार), हीराकुड बाँध योजना (उडीसा, महानदी पर), कोसी योजना (बिहार), भाखडा नंगल योजना (पंजाब, हरियाना, सतलुज नदी पर), रिहंद बाँध योजना (उत्तर प्रदेश, सोन की सहायक रिहंद नदी पर), तुंगभद्रा योजना (आंध्रप्रदेश तथा मैसूर), नागार्जुन सागर योजना (आंध्रप्रदेश मे कृष्णा नदी पर), चंबल योजना (मध्यप्रदेश और राजस्थान) तथा गंडक योजना (बिहार)।

मुख्य फसलें — भारत में उत्पन्न की गई फसलों के दो भाग किए जाते हैं: खरीफ तथा रबी। खरीफ की फसलें वर्षा के आरंभ मे बोई जाती हैं और जाड़े मे काट ली जाती हैं। इनमे मुख्य धान, बाजरा, ज्वार, मकई, कपास, जूट, गन्ना, मूँगफली हैं। रबी वर्षा के अंत में बोई जाती है और मार्च तक काटी जाती है। रबी की मुख्य फसलें
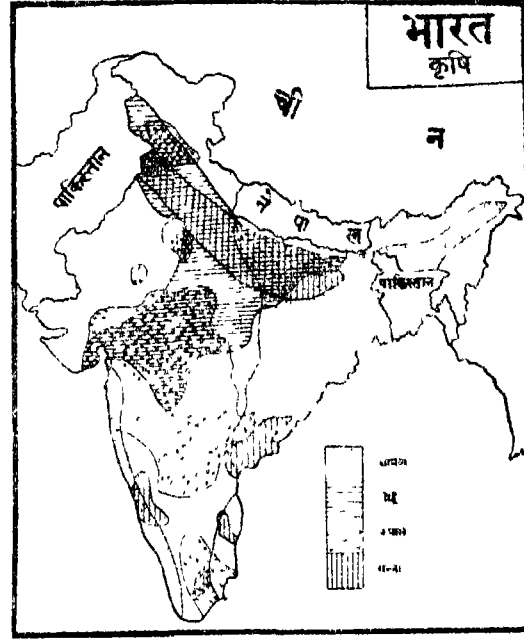
मानचित्र ४

मटर, गेहूँ, जौ, चना, मसूर, तीसी तथा सरसो हैं। भारत का स्थान संसार मे चाय, गन्ना, तिल, मूँगफली, सरसो, राई, इलायची और काली मिर्च के उत्पादन मे प्रथम, चावल, जूट तथा रेंडी मे दूसरा, तीसी, तंबाकू मे तीसरा और कपास के उत्पादन मे चौथा है, यद्यपि संसार मे कपास के अंतर्गत भूमि सबसे अधिक भारत मे ही है (देखें, मानचित्र ४.) १९६३–६४ मे मुख्य फसलो के अंतर्गत भूमि तथा प्रत्येक का कुल उत्पादन नीचे दिया गया है:

फसलें	क्षेत्रफल (हजार हेक्टर मे)	उत्पादन (हजार मेट्रिक टन मे)
धान	३५,४७४	३६,४८९
ज्वार-बाजरा	२८,६८४	१२,६६३
मकई	४,५४६	४,५२७
गेहूँ	१३,३०५	९,७०८
कुल खाद्यान्न	९२,०८१	६९,५५५
कुल खाद्यान्न और दलहन	१,१५,८४९	७९,४३०
मूँगफली	६,८०४	५,२९०
सरसो, राई	३,००४	९०९
कुल तिलहन	१४,५५८	७,०९६
गन्ना	२,२१८	१०,२५८ (गुड)
कपास	७,९१९	५,४२६ (हजार गाठ)
जूट	८६२	५,९५७ (हजार गाठ)

धान — यह भारत की मुख्य फसल है। कुल कृषिगत भूमि के लगभग चौथाई भाग मे धान की खेती होती है। संसार मे धान के अंतर्गत सबसे अधिक भूमि भारत ही मे है, पर प्रति एकड़ उपज कम

होने के कारण यहाँ उत्पादन चीन का लगभग आधा है। गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के समतल तथा उपजाऊ मैदान और दक्षिण भारत के तटीय मैदान इसके लिये विशेष अनुकूल हैं। जिन क्षेत्रों में वर्षा ४० इंच से अधिक है वहाँ इसकी खेती मुख्य रूप से होती है। पहाड़ों पर भी जहाँ वर्षा पर्याप्त है, सीढ़ीनुमा ढालों पर धान की खेती महत्वपूर्ण है। भारत का लगभग दो तिहाई धान देश के उत्तर-पूर्वी भाग के एक अविच्छिन्न क्षेत्र में उत्पन्न होता है, जिसमें पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम, पूर्वी मध्यप्रदेश और पूर्वी उत्तरप्रदेश संमिलित हैं। अन्य उत्पादक राज्य आंध्रप्रदेश, मद्रास तथा केरल हैं। प्रति एकड़ उत्पादन दक्षिण भारत मे उत्तर भारत की तुलना में अधिक है। भारत में धान के अंतर्गत भूमि के लगभग ३६ प्रति शत भाग में सिंचाई होती है। इसलिये जब पर्याप्त या उचित समय पर वर्षा नही होती है तो फसल बड़े क्षेत्रों मे मारी जाती है। भारत को साधारणतया थोड़ा बहुत चावल दूसरे देशों से खरीदने की जरूरत पड़ जाती है।

गेहूँ — धान के बाद गेहूँ भारत का दूसरा मुख्य खाद्यान्न है। भारत की कुल कृषिगत भूमि के दशाश पर गेहूँ उपजाया जाता हैं। गेहूँ के लिये अधिक गरमी और वर्षा दोनों हानिकारक हैं, इसलिये जिन क्षेत्रों में धान की खेती होती है वहाँ प्रायः गेहूँ महत्वपूर्ण नहीं है। यह शुष्कतर भागों मे तथा शीत ऋतु में उत्पन्न किया जाता है। भारत का लगभग संपूर्ण गेहूँ क्षेत्र ४० इंच से कम वर्षावाले भाग में पड़ता है और लगभग ९० प्रति शत उत्पादन उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाना, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान से आता है। इन राज्यों के अतिरिक्त बिहार के उत्तर-पश्चिमी भाग, महाराष्ट्र, तथा गुजरात मे भी गेहूँ की थोड़ी बहुत खेती होती है। उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाना तथा राजस्थान में लगभग ४५ प्रति शत गेहूँ के अतर्गत भूमि सींची जाती है। देश के विभाजन के फलस्वरूप पश्चिमी पजाब और सिंध का गेहूँ पैदा करनेवाला बड़ा इलाका पाकिस्तान में चला गया है। भारत बड़ी मात्रा (प्रति वर्ष २५ से ५० लाख टन तक) गेहूं विदेशो से, मुख्यतः संयुक्त राज्य, अमरीका और आस्ट्रेलिया से आयात करता है।

जौ — भारत मे जौ का मुख्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार है। भारत मे वार्षिक उत्पादन लगभग ३० लाख टन है।

ज्वार, बाजरा आदि, (मिलेट, Millet) — इसके अतर्गत कई मोटे अन्न आते हैं जिनमे ज्वार, बाजरा, तथा रागी (मडुआ) प्रधान हैं। भारत में मिलेट की कृषि के अतर्गत भूमि धान से भी अधिक है। ये अन्न शुष्क प्रदेशों मे जहाँ वर्षा २० से ४० इंच के बीच है, बिना सिंचाई के प्रायः कम उपजाऊ मिट्टी मे काफी मात्रा में उपजाए जाते हैं। प्रायद्वीपीय पठार पर इनकी उपज विशेष महत्वपूर्ण है और वहाँ गरीब लोगों का यह प्रधान भोजन है। वास्तव में धान तथा गेहूँ क्षेत्रों को छोड़कर सारे भारत में नीचे स्तर के लोगों के लिये मिलेट (कदन्न) महत्वपूर्ण खाद्यान्न हैं। यद्यपि ये चावल और गेहूँ से अधिक पुष्टिकर हैं, फिर भी इनकी गिनती निम्न भोज्यान्नों में होती है। ज्वार के मुख्य उत्पादक क्षेत्र महाराष्ट्र, गुजरात और मैसूर हैं, किंतु मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, राजस्थान तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश मे भी काफी ज्वार पैदा किया जाता है। अधिकांश उत्पादन काली मिट्टी पर होता है और महाराष्ट्र अकेले ही भारत के उत्पादन का एक तिहाई ज्वार उत्पन्न करता है। बाजरे का प्रमुख उत्पादक राजस्थान है जो अकेले ही भारत के उत्पादन का एक तिहाई बाजरा उत्पन्न करता है, किंतु गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाना, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मद्रास, आंध्र और मैसूर भी बाजरे के महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। बाजरा ज्वार से भी अधिक शुष्क फसल है और जिन क्षेत्रों में यह उत्पन्न होता है वहाँ वर्षा २० इंच से भी कम है। रागी का उत्पादन मुख्यतः मैसूर, मद्रास, आंध्र तथा महाराष्ट्र मे होता है। यह मुख्यतः दक्षिण भारत की फसल है और मैसूर अकेले ही देश के उत्पादन का ४० प्रति शत से अधिक रागी उत्पन्न करता है।

मकई — यह साधारण वर्षा के क्षेत्रों में उपजाऊ मिट्टी में उत्पन्न की जाती है और चावल तथा गेहूँ के मध्यवर्ती इलाकों मे मुख्यतः उगाई जाती है। उत्तर भारत के मैदान तथा दक्षिण की ओर इससे सटे हुए पठारी भाग मे यह एक महत्वपूर्ण पूरक खाद्यान्न है, किंतु जहाँ वर्षा ६० इंच से अधिक है वहाँ इसका महत्व समाप्त हो जाता है। देश के उत्पादन का लगभग तीन चौथाई उत्पादन बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाना तथा राजस्थान में होता है।

दलहन — दलहन के अंतर्गत चना, अरहर, मसूर, मटर, मूँग, उड़द तथा खेसारी आते हैं। भारत की अधिकाश जनता शाकाहारी है और उन्हें अपने भोजन में प्रोटीन मुख्य रूप से दालों से मिलता है। दाल के पौधे वायु से नाइट्रोजन लेकर भूमि की उपज शक्ति को बनाए रखने मे मदद करते हैं। जानवरो के भोजन में भी दालों तथा दालों से प्राप्त कराई का बहुत महत्व है। चना मुख्यतः उत्तरप्रदेश, पजाब, हरियाना, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार मे उपजता है। अरहर मुख्य रूप से उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश तथा बिहार में उपजाई जाती है। उडद थोडा बहुत भारत के सभी भागो में उत्पन्न किया जाता है, किंतु मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और महाराष्ट्र देश के उत्पादन का आधा उड़द पैदा करते हैं। मूँग का प्रमुख उत्पादन क्षेत्र पूर्वी महाराष्ट्र तथा उत्तरी आंध्रप्रदेश हैं, यद्यपि मध्यप्रदेश, उडीसा, मद्रास, बिहार, राजस्थान, पंजाब, हरियाना और उत्तरप्रदेश मे भी इसका उत्पादन होता है। मसूर मुख्यतः उत्तर और मध्य भारत की फसल है।

तिलहन — संसार मे तिलहन पैदा करनेवाले देशों में भारत का स्थान महत्वपूर्ण है। कुछ तिलहन खाद्य है और कुछ अखाद्य। खाद्य तिलहनों में मूँगफली, तिल, बिनौले, राई तथा सरसो और नारियल मुख्य हैं और अखाद्य तिलहनों में तीसी तथा रेंडी प्रधान हैं। लगभग सभी तेलों का उद्योगों में उपयोग होता है। तिलहनों की खली पशुओं के खिलाने के काम आती है और खेतों के लिये उत्तम खाद भी है। पहले तिलहनों का एक चौथाई से आधा भाग तक विदेशों को निर्यात कर दिया जाता था, किंतु पिछले कुछ वर्षों से सरकार की नीति यह है कि तिलहन की जगह तेलों का निर्यात किया जाय। भारत अकेले संसार की ४० प्रति शत मूँगफली उत्पन्न करता है। लगभग ५० वर्ष पहले भारत में इसका कोई महत्व नही था। भारत सरकार के कृषिविभाग के प्रयत्नों के फलस्वरूप तथा यूरोप में इसकी बढ़ती हुई माँग के कारण देश में इसका प्रचार हुआ और अब इसकी कृषि के अंतर्गत भूमि सभी तिलहनो से अधिक है। अधिकांश उत्पादक दक्षिण भारत से आता है और गुजरात, मद्रास तथा

महाराष्ट्र देश के उत्पादन का लगभग दो तिहाई भाग उत्पन्न करते हैं। मैसूर तथा आंध्रप्रदेश भी महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। संसार में तिल की कृषि के अंतर्गत लगी भूमि का आधा भाग भारत ही में है और संसार का एक तिहाई से अधिक तिल यहीं उत्पन्न होता है। मुख्य उत्पादक क्षेत्र उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, मद्रास, आंध्र, महाराष्ट्र और गुजरात हैं। भारत संसार के उत्पादन के ४० प्रति शत से अधिक राई तथा सरसों उत्पन्न करता है। यहाँ इसका उत्पादन मुख्यतः उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाना, राजस्थान, बिहार, पश्चिमी बंगाल, असम तथा पूर्वी मध्यप्रदेश में होता है। तीसी के दो महत्वपूर्ण उत्पादक मध्य प्रदेश तथा उत्तरप्रदेश हैं जो भारतीय उत्पादन का लगभग ७० प्रति शत उत्पन्न करते है। अन्य उल्लेखनीय राज्य महाराष्ट्र और बिहार हैं। सरकारी आँकड़ो के अनुसार रेंडी के उत्पादन में भारत का स्थान ब्राज़िल के बाद आता है। तीन प्रमुख उत्पादक आंध्र, गुजरात और मैसूर हैं, यों बिहार, उडीसा तथा मद्रास मे भी रेंडी की खेती होती हैं। बिनौला कपास से प्राप्त होता है, अतः इसका भौगोलिक विवरण वही है जो कपास का। अधिकांश उत्पाद पशुओं को खिलाने और जलावन के काम आता है। बिनौले के तेल का उत्पादन थोड़ा है। नारियल उष्ण और आर्द्र जलवायु का वृक्ष है। यह भारत के दोनों तटों तथा मिनिकोय, लक्षदीवी और निकोबार द्वीपसमूह पर पाया जाता है, किंतु केरल मे यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इससे उत्पन्न मुख्य व्यापारिक पदार्थ कोपरा अथवा गरी है। कोपरा के उत्पादन में भारत का स्थान संसार मे तीसरा है, फिर भी भारत साधारणत: नारियल के तेल का मलाया तथा लंका से आयात करता है।

गन्ना — गन्ना भारत की एक महत्वपूर्ण नक़दी फसल है। यहाँ ससार का सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न होता है। उत्तरप्रदेश, पजाब, हरियाना तथा बिहार लगभग तीन चौथाई गन्ना उत्पन्न करते है। यहाँ उपजाऊ मिट्टी और सिचाई की सुविधा है, किंतु दक्षिण भारत की गरम जलवायु गन्ने के लिये अधिक उपयुक्त है। इसलिये यहाँ का गन्ना मोटा होता है और प्रति एकड़ पैदावार उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक है, पर सिंचाई और खाद पर अधिक खर्च के कारण दक्षिण भारत का गन्ना महँगा पड़ता है। फिर भी उच्च प्राकृतिक सुविधाएँ, प्रति एकड़ अधिक उत्पादन एवं बढ़ती हुई माँग के कारण, पिछले कुछ वर्षों में गन्ने की खेती मे दक्षिण भारत मे वृद्धि हुई है और महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, मद्रास तथा मैसूर महत्वपूर्ण उत्पादक हो गए हैं। कोयम्बुतूर (मद्रास) मे गन्ने की अनुसंधानशाला भी है।

तंबाकू — यद्यपि तंबाकू भारत के सभी राज्यों मे थोड़ा बहुत उत्पन्न होता है, तथापि लगभग ६० प्रति शत उत्पादन आंध्रप्रदेश और गुजरात से आता है। अन्य महत्वपूर्ण उत्पादक मद्रास, मैसूर, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल तथा उत्तरप्रदेश हैं। आंध्र प्रदेश का गुंटूर क्षेत्र तंबाकू की उपज के लिये प्रसिद्ध है। गुंटूर सिगरेट की तंबाकू का अनुसंधानकेंद्र है।

चाय — अन्य फसलों की तुलना में यह अपेक्षाकृत कम क्षेत्रो मे उगाई जाती है, किंतु फिर भी यह भारत को विदेशी मुद्रा दिलानेवाली सबसे प्रमुख फसल है। भारत ही संसार मे चाय का मुख्य उत्पादक एवं निर्यातक है। चाय की खेती ऊँचे ताप और अधिक वर्षा के क्षेत्रों में हलकी ढालवाँ भूमि पर बड़े बड़े बागानों में होती है। इसकी खेती तथा उद्योग में लगभग १० लाख श्रमिक काम करते हैं। भारत में तीन क्षेत्रों में चाय का उत्पादन होता है : (१) उत्तर — पूर्वी भारत जिसमें असम, त्रिपुरा और दार्जिलिंग (पश्चिमी बंगाल) के क्षेत्र आते हैं, (२) दक्षिण भारत जिसमे मद्रास, मैसूर एवं केरल में स्थित नीलगिरि, अन्नाईमलाई एवं कार्डमम के पहाड़ी क्षेत्र शामिल हैं, और (३) पश्चिमी हिमालय, जहाँ उत्तर प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी भागों में चाय की थोडी बहुत खेती होती है। सबसे प्रधान क्षेत्र असम और पश्चिमी बंगाल मे स्थित है जो कुल उत्पादन का तीन चौथाई भाग उत्पन्न करते हैं। सबसे उत्तम चाय दार्जिलिंग में उत्पन्न होती है।

कहवा — यद्यपि भारत मे कहवा का उत्पादन दक्षिण भारत में एक छोटे क्षेत्र मे सीमित है, फिर भी दक्षिण भारत मे कहवे की कृषि के अंतर्गत भूमि चाय से कहीं अधिक है। कहवे की खेती मैसूर के कुर्ग, नीलगिरि पहाडी तथा निकटवर्ती केरल और मद्रास राज्यों मे होती है। कहवे के बागान मुख्यत: १,००० फुट से ६,००० फुट की ऊँचाई के बीच पाए जाते हैं।

कपास — यद्यपि पाकिस्तान बन जाने से भारत का सबसे उत्तम कपास पैदा करनेवाला इलाका पश्चिमी पाकिस्तान मे चला गया, फिर भी ससार मे कपास की कृषि के अंतर्गत भूमि सबसे अधिक भारत ही में है। इसके उत्पादन मे भारत का स्थान संयुक्त राज्य अमरीका, रूस और चीन के बाद आता है। सबसे प्रमुख उत्पादक क्षेत्र महाराष्ट्र, गुजरात तथा मैसूर के काली मिट्टी के प्रदेश है, जहाँ मुख्यतः छोटे और मध्यम रेशेवाली देशी कपास उत्पन्न होती है। दूसरा क्षेत्र पंजाब, हरियाना तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश का है जहाँ उपजाऊ जलोढ मिट्टी और नहरों द्वारा सिंचाई की सुविधाएँ प्राप्त हैं और मुख्यत लंबे रेशेवाली अमरीकन कपास की खेती होती है। तीसरा क्षेत्र मद्रास का है जहाँ उच्च कोटि की कबोडिया तथा युगैंडा किस्म की लंबे रेशेवाली कपास काली एवं लाल दोनो किस्म की मिट्टियों पर उपजती है। भारत छोटे रेशेवाली कपास का निर्यात करता है किंतु लगभग उतना ही या उससे कुछ अधिक उत्तम कपास मिस्र, संयुक्तराज्य अमरीका इत्यादि देशो से आयात करता है।

जूट—देश के विभाजन से लगभग तीन चौथाई जूट क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान मे चला गया, किंतु सभी जूट की मिलें जो हुगली नदी के किनारे हैं, भारत के हिस्से में पड़ी। पाकिस्तान और भारत मे अच्छा संबंध नहीं रहने के कारण, भारत को पाकिस्तान से जूट मिलने मे बहुत दिक्कत होती थी। इसलिये पिछले १५-२० वर्षों मे भारत ने जूट के उत्पादन को बहुत बढाया है। भारत मे जूट का क्षेत्र अब पाकिस्तान से अधिक है किंतु भारत का प्रति एकड उत्पादन पाकिस्तान से कम है। इसलिये कुल उत्पादन मे भारत का स्थान पाकिस्तान के बाद आता है। इसकी खेती मुख्यतः गंगा नदी के डेल्टा, ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी तथा बिहार के उत्तर-पूर्वी भागों मे होती है।

फल और सब्जियाँ — भारत मे नाना प्रकार के फल तथा सब्जियाँ उत्पन्न की जाती हैं। उत्तरप्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल भारत के उत्पादन का लगभग तीन चौथाई आम उत्पन्न करते हैं। दक्षिण भारत मे आम मुख्यतः तटीय क्षेत्रों मे होता है जिनमे मद्रास, केरल, महाराष्ट्र

एवं मैसूर हैं, पर बंगाल, बिहार, उड़ीसा और असम भी महत्वपूर्ण हैं। संतरे के उत्पादन मे महाराष्ट्र में नागपुर का क्षेत्र, पश्चिम बंगाल मे दार्जिलिंग, और असम में ब्रह्मपुत्र की घाटी तथा खासी पहाड़ियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। रसदार फलों मे नीबू भी महत्वपूर्ण है। इलाहाबाद का अमरूद तथा मुजफ्फरपुर की लीची प्रसिद्ध है। हिमालय की घाटियों मे समशीतोष्ण जलवायुवाले लगभग सभी फल पैदा होते हैं और कश्मीर तथा कुल्लू इन फलों के लिये विशेष प्रसिद्ध हैं। सब्जियाँ प्राय: स्थानीय उपभोग के लिये बड़े शहरों के आसपास उपजाई जाती हैं जहाँ उन्हें बाजार तथा यातायात की सुविधाएँ प्राप्त हैं। आलू का उत्पादन मुख्य रूप से उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा पंजाब में होता है, यद्यपि दक्षिण भारत मे महाराष्ट्र तथा मैसूर भी महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। बिहार का आलू जो मुख्यत: बिहार शरीफ के पास उपजता है, बीज के लिये पटना आलू के नाम से प्रसिद्ध है।

मसाले — भारत अत्यंत प्राचीन काल से मसालों के व्यापार के लिये प्रसिद्ध रहा है और आज भी इनका भारत के निर्यात में महत्वपूर्ण स्थान है। साथ साथ देश के अंदर भी मसालों की काफी खपत है। मिर्च के प्रधान उत्पादक मद्रास, आंध्र तथा महाराष्ट्र हैं। उत्तर भारत मे महत्वपूर्ण उत्पादक बिहार, हरियाना तथा पंजाब हैं। काली मिर्च लगभग पूर्णत: केरल तथा निकटवर्ती मैसूर और मद्रास राज्यों से आती है। अदरक की खेती सबसे अधिक पश्चिमी घाट की निचली ढालों पर होती है, पर केरल के अतिरिक्त थोड़ा बहुत अदरक बंगाल, मध्य प्रदेश, मैसूर, गुजरात, उड़ीसा तथा हिमाचल प्रदेश में भी होता है। इलायची केरल तथा मैसूर में कार्डेमम पहाड़ियो के क्षेत्र मे होती है। हल्दी मुख्यत आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर तथा मध्य प्रदेश से आती है। दालचीनी मुख्यत मालाबार तथा नीलगिरि में उत्पन्न की जाती है। धनियाँ का प्रधान उत्पादक आंध्रप्रदेश है, किंतु मद्रास, मैसूर तथा महाराष्ट्र भी महत्वपूर्ण हैं। लौंग का उत्पादन मद्रास तथा केरल में होता है।

पशुपालन — सन् १९६१ की गणना के अनुसार भारत मे पशुओं की संख्या ३३·६५ करोड़ है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बैल, गायें और भैंसें हैं। भारत में खेती का सबसे बड़ा साधन बैल है। इसके अलावा देश की अधिकांश जनता के भोजन मे दूध, दही तथा घी का बड़ा महत्व है। भारत मे सभी देशों से अधिक गाय, बैल और भैंसें पाई जाती हैं, पर उनकी नस्ल, भोजन तथा स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान नही दिया जाता। अधिक भागों मे चरागाह की कमी है और पशुओं के लिये चारा भी अलग से नही उपजाया जाता। ऐसी स्थिति मे यह आश्चर्य की बात नही है कि अधिकतर पशु घटिया किस्म के है और गाय और भैंस औसतन बहुत कम दूध देती हैं। प्रति व्यक्ति के लिये कम से कम १० औंस दूध आवश्यक समझा जाता है, किंतु भारत मे प्रत्येक व्यक्ति का औसत हिस्सा केवल ५ औंस बैठता है। भारत में अधिक पशुओं की नही वरन् अच्छे पशुओं की आवश्यकता है।

अच्छी नस्ल की भारतीय गायों मे साहीवाल (पंजाब) तथा गीर (गुजरात) महत्वपूर्ण हैं। अच्छी नस्ल के बैलों मे हेसी (पंजाब), नेल्लुरु (आंध्र), हरियाना (पंजाब), बछौर (उत्तरी बिहार) इत्यादि प्रसिद्ध हैं। कंकरेज और गीर जाति के अच्छे बैल भी होते हैं और अच्छी गायें भी। अच्छी नस्ल की भैंसों मे मुख्य मुर्रा (पंजाब), जफेराबादी (सौराष्ट्र), मेहसाना (गुजरात), सुरती और पंढरपुरी इत्यादि हैं।

ऊँट मुख्यत २० इंच से कम वर्षावाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं और उनको माल ढोने तथा कुओं से सिंचाई के काम मे लाया जाता है। भेड़ें मुख्यत. पंजाब, उत्तरप्रदेश और राजस्थान के शुष्क और पहाड़ी भागों मे पाली जाती हैं और इनसे ऊन तथा मांस प्राप्त होता है। बकरियाँ प्राय सभी जगह, मुख्य रूप से मांस के लिये पाली जाती हैं।

खनिज संपत्ति — क्षेत्रफल तथा जनसंख्या के विचार से भारत खनिजों मे बहुत धनी नही कहा जा सकता, फिर भी कुछ खनिजों के उत्पादन तथा भंडार मे भारत का स्थान संसार मे महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता के बाद से खनिजो के सर्वेक्षण एवं विकास की ओर काफी ध्यान दिया गया है और जिआलोजिकल सर्वे ऑव इंडिया के अतिरिक्त अन्य कई सरकारी संस्थाएँ स्थापित की गई हैं जिनमे इंडियन ब्यूरो ऑव माइंस, नैशनल मिनरल डेवलपमेंट कारपोरेशन, मिनरल इनफारमेशन ब्यूरो, मिनरल एडवाइजरी बोर्ड के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। भारत कोयला, कच्चा लोहा, मैंगनीज, अभ्रक, बौक्साइट, इल्मेनाइट, टाइटेनियम, थोरियम, कायनाइट तथा
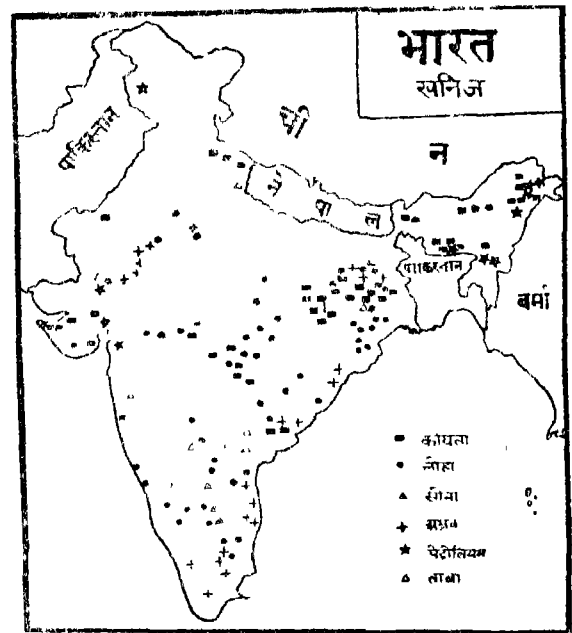
मानचित्र ५

चूना पत्थर मे धनी है, किंतु टिन, तांबा, सीसा, जस्ता, निकेल, गंधक एवं पेट्रोलियम जैसे महत्वपूर्ण खनिज भारत मे थोड़ी मात्रा मे ही पाए जाते हैं। (देखें, मानचित्र ५ एवं ६)। भारत मे खान खोदने के काम मे सात लाख से कुछ कम आदमी लगे हुए हैं, जिनमे से अधिकांश कोयले की खानों मे काम करते हैं।

भारत मे अधिकांश खनिज प्रायद्वीपीय पठार मे धारवाड़ युग की प्राचीन कायांतरित चट्टानों एवं गोंडवाना युग की परतदार चट्टानों में पाए जाते हैं। सबसे धनी इलाका छोटा नागपुर का पठार और इसके

निकटवर्ती भाग हैं जहाँ कोयला, कच्चा लोहा, अभ्रक और बौक्साइट के अतिरिक्त अन्य कई खनिज संचित हैं और जहाँ से अभी भारत के
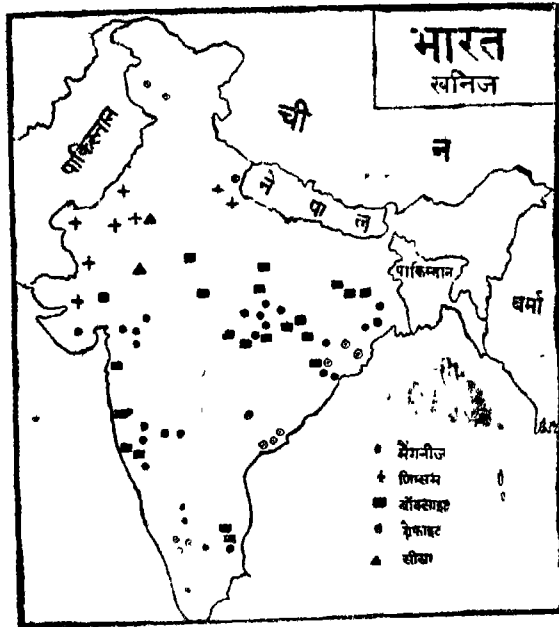
मानचित्र ६

खनिज उत्पादन का अधिक भाग प्राप्त होता है। मूल्य के अनुसार (१९६२) बिहार भारत का ३९ प्रति शत, पश्चिमी बंगाल २२ प्रति शत, मध्यप्रदेश ११ प्रति शत, उड़ीसा छह प्रति शत, आंध्र पाँच प्रति शत तथा मैसूर पाँच प्रति शत खनिज उत्पन्न करता है।

लोहा — ससार का लगभग एक चौथाई कच्चा लोहा अनुमानतः भारत ही मे सचित है, किंतु भारत ससार के कुल उत्पादन का केवल तीन प्रति शत कच्चा लोहा उत्पन्न करता है। यहाँ का अधिकाँश कच्चा लोहा उच्च कोटि का है जिसमे लोह अंश ६० से ६८ प्रति शत है। सर्वप्रधान क्षेत्र बिहार के सिंहभूम और उड़ीसा के निकटवर्ती केंदुझरगढ (क्योझर), सुंदरगढ (बोनाई) तथा मयूरभज जिलो में स्थित है। भारत के कुल प्रमाणित भंडार का ४३ प्रति शत यहीं स्थित है और इसी क्षेत्र से वार्षिक उत्पादन का लगभग दो तिहाई भाग प्राप्त होता है। जमशेदपुर, बर्नपुर, दुर्गापुर तथा रूरकेला के इस्पात के कारखाने इसी क्षेत्र से कच्चा लोहा लेते हैं और बोकारो के प्रस्तावित कारखाने को भी यहीं से कच्चा लोहा दिया जायगा। दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र मध्यप्रदेश मे दुर्ग और बस्तर का है जहाँ से भिलाई के इस्पात के कारखाने को कच्चा लोहा मिलता है। मैसूर की बाबाबूदन पहाड़ी से प्राप्त कच्चा लोहा भद्रावती के इस्पात कारखाने मे व्यवहृत होता है। भारत अपने उत्पादन का एक तिहाई से कुछ कम कच्चा लोहा जापान, चेकोस्लोवाकिया इत्यादि देशों को निर्यात करता है।

मैंगनीज — यह दूसरा खनिज है जिसमे भारत धनी है। भारत संसार के उत्पादन का १० प्रति शत मैंगनीज उत्पन्न करता है और इसका स्थान उत्पादन मे रूस के बाद ही आता है, किंतु रूस का मैंगनीज निम्न कोटि का है और भारत का मैंगनीज उच्च कोटि का इस कारण विदेशों में इसकी बहुत माँग है। भारत अपने उत्पादन का लगभग तीन चौथाई भाग निर्यात करता है। मैंगनीज के मुख्य क्षेत्र महाराष्ट्र के नागपुर और भंडारा जिले तथा मध्य प्रदेश के निकटवर्ती बालाघाट और छिंदवाड़ा जिलो मे स्थित हैं। अन्य क्षेत्र गुजरात मे पंचमहल तथा बड़ौदा, उड़ीसा मे जामदा कोयरा घाटी, सुंदरगढ़ तथा कोराघुट, बिहार में दक्षिणी सिंहभूम, मैसूर मे बल्लारि, उत्तरी कन्नड़ मे तुमकुर तथा शिवमोगा, आंध्र प्रदेश मे श्रीकाकुलम तथा राजस्थान मे जयपुर बाँसवाड़ा तथा उदयपुर हैं।

अभ्रक — इसके उत्पादन तथा निर्यात मे भारत का लगभग एकाधिकार है। भारत संसार के उत्पादन का तीन चौथाई से अधिक अभ्रक उत्पन्न करता है। मुख्य क्षेत्र बिहार में हजारीबाग जिला और निकटवर्ती गया, मुंगेर और भागलपुर जिलो मे स्थित हैं। यहाँ का अभ्रक बहुत उच्च कोटि का मस्कोवाइट अभ्रक है जिसकी संसार के बाजार मे बहुत माँग है। अन्य क्षेत्र राजस्थान में जयपुर-उदयपुर क्षेत्र और आंध्र प्रदेश मे नेल्लूरु है। भारत के उत्पादन का अधिकांश भाग संयुक्तराज्य अमरीका और ब्रिटेन खरीदते हैं।

ताँबा — भारत में ताँबा कम मिलता है और लगभग सभी उत्पादन बिहार के घाटशीला क्षेत्र (सिंहभूम) से आता है। घाटशीला के पास मौभंडार मे इंडियन कॉपर कारपोरेशन का कारखाना है, जहाँ ताँबा गलाया और साफ किया जाता है।

बौक्साइट — भारत मे बौक्साइट का सचित भंडार पर्याप्त है किंतु उत्पादन अभी बहुत कम है। सबसे धनी और मुख्य क्षेत्र बिहार की दक्षिण-पश्चिमी और मध्य प्रदेश की पूर्वी सीमा पर स्थित राँची, पलामू सरगुजा, रायगढ तथा बिलासपुर जिलो के पठारी भाग हैं। बिहार मे उत्पादन केवल राँची मे होता है और राँची अकेले भारत के उत्पादन का दो तिहाई से अधिक बौक्साइट उत्पन्न करता है। मध्य प्रदेश मे अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र मैकाल (अमरकंटक) पहाडी तथा कटनी के क्षेत्र है। बौक्साइट उडीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास तथा जम्मू कश्मीर मे भी पाया जाता है, किंतु थोड़ा बहुत उत्पादन केवल गुजरात और मद्रास से आता है।

अन्य खनिज क्रोमाइट उडीसा के केंदुझरगढ (क्योझर) मयूरभंज तथा बिहार के सिंहभूम जिलो मे मुख्य रूप से पाया जाता है। मैग्नेसाइट के मुख्य क्षेत्र मद्रास मे सेलम, मैसूर मे दोदकन्या पहाड़ियाँ, उत्तर प्रदेश मे अलमोडा, राजस्थान में डूंगरपुर तथा बिहार मे सिंहभूम हैं। भारत संसार मे कायनाइट का मुख्य उत्पादक और निर्यातक है और सिंहभूम मे स्थित लुप्साबुरु (खरसावाँ) क्षेत्र संसार मे सबसे बडा भंडार समझा जाता है। इमारती पत्थरो मे मुख्य ग्रेनाइट, चूना पत्थर, संगमरमर, बालू पत्थर तथा स्लेट है। चूना पत्थर का उपयोग सीमेंट बनाने में होता है। भारत में चूना पत्थर का अपरिमित भडार है। सबसे प्रधान क्षेत्र बिहार, उडीसा, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान मे हैं, किंतु दक्षिण भारत मे भी कई राज्य महत्वपूर्ण है। जिप्सम मुख्यत राजस्थान से आता है, किंतु मद्रास, जम्मू और कश्मीर, गुजरात तथा उत्तर प्रदेश में भी इसके विशाल भंडार हैं। गधक भारत मे केवल कश्मीर की पुगा घाटी मे मिलता

है किंतु उत्पादन अभी संभव नहीं है। हाल में बिहार के शाहाबाद जिले मे अमजोर मे एक विस्तृत पायराइट के क्षेत्र का पता चला है, जिससे गंधक निकाला जा सकता है।

भारत मे बहुमूल्य धातुओं की कमी है। चाँदी केवल राजस्थान मे नाम मात्र को मिलती है। सोना मैसूर के कोलार क्षेत्र से आता है। प्राचीन एवं मध्यकालीन युग तक संसार के कीमती पत्थर और रत्न मुख्यत: भारत से प्राप्त होते थे, किंतु अब इसका महत्व नही रहा। हीरा पन्ना के पास मिलता है। कश्मीर मे उच्च कोटि का नीलम, जंगस्कार श्रेणी मे मिलता है और पन्ना या मरकत राजस्थान में उदयपुर तथा अजमेर मेरवाड़ा के क्षेत्रों मे मिलता है। इल्मेनाइट (टाइटेनियम) केरल तथा मद्रास के तटों की बालू मे मिलता है। केरल मे इल्मेनाइट का संसार मे सबसे बडा संचित भंडार है। इल्मेनाइट के साथ बडी मात्रा मे थोरियम तथा यूरेनियम मिलते हैं जिनका महत्व परमाणु शक्ति के बनाने में है। अन्य खनिज ऐपाटाइट में सिंहभूम और विशाखापत्तनम, ऐस्बेस्टॉस मे आंध्र, बिहार, मैसूर तथा उड़ीसा मे फेलसपार राजस्थान, बिहार, मैसूर में, कैल्साइट राजस्थान एव गुजरात में मिलता है। नमक हिमाचल प्रदेश की खान से, राजस्थान में नमकीन झीलों से तथा पश्चिमी और पूर्वी तटों पर समुद्र के पानी से प्राप्त होता है।

शक्ति के साधन — तीन मुख्य साधन कोयला, पेट्रोलियम तथा जलविद्युत् हैं। इनके अतिरिक्त अणुशक्ति को भी विकसित करने का प्रयत्न किया जा रहा है किंतु अभी इसका महत्व कम है।

कोयला—संसार मे कोयला उत्पन्न करनेवाले देशो मे भारत का स्थान सातवाँ है और संचित भंडार पर्याप्त है। कोयले के उत्पादन में यहाँ पिछले १०-१५ वर्षों में काफी वृद्धि हुई है और भारत अब फ्रांस अथवा जापान से अधिक कोयला उत्पन्न करता है। भारत मे कोयला निम्नलिखित क्षेत्रों मे पाया जाता है : (१) बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में स्थित दामोदर नदी की घाटी, (२) महानदी तथा सोन नदियों की घाटी के बीच पूर्वी मध्य प्रदेश, (३) वर्धा तथा गोदावरी नदियों की घाटियाँ और (४) असम तथा दार्जिलिंग। सबसे महत्वपूर्ण खानें पश्चिमी बंगाल मे रानीगंज एवं बिहार मे झरिया, कर्णपुरा तथा बोकारो मे हैं। दामोदर घाटी क्षेत्र से भारत का लगभग ८० प्रति शत कोयला प्राप्त होता है। भारत मे कोयले के कुल संचित भडार (लगभ ५,००० करोड टन) का ६० प्रति शत भाग दामोदर घाटी मे स्थित है। उच्च कोटि के कोयले का पूरा सचित भंडार इसी क्षेत्र मे सीमित है और कोककारी कोयला, जिसका उपयोग लोहा बनाने मे होता है, लगभग पूर्णत दामोदर घाटी मे ही सीमित है। रानीगज और झरिया मिलकर भारत के उत्पादन का दो तिहाई कोयला उत्पन्न करते है। झरिया का लगभग सभी कोयला कोकिंग किस्म का है। महानदी बेसिन की खानो मे सबसे महत्वपूर्ण कोरबा है जिसका विकास मुख्यत द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल मे हुआ है। असम का कोयला भी कोकिंग किस्म का है किंतु इसमे गधक की मात्रा अधिक होने के कारण इसका लोहा उद्योग मे व्यवहार नही होता। भारत मे कोयले का भौगोलिक वितरण असमान होने के कारण देश के पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों को पर्याप्त मात्रा मे अथवा उचित समय पर कोयला मिलने मे दिक्कत होती है। रेलें जितना सामान ढोती हैं उनमें तौल के अनुसार सबसे मुख्य कोयला ही है। दक्षिण आर्काड् (मद्रास) जिले के निवेली क्षेत्र मे लिग्नाइट का एक विशाल भंडार है जिसे विकसित कर बिजली उत्पन्न करने की बड़ी योजना चल रही है।

पेट्रोलियम — भारत मे पेट्रोलियम कम मिलता है और देश अधिकाशत दूसरे देशों से आयात पर निर्भर करता है। यह भारत के असम के डिगबोई तथा नहरकटिया के क्षेत्र और गुजरात के अंकलेश्वर क्षेत्र मे मिलता है। पिछले १० वर्षों मे भारत के कई क्षेत्रो मे तेल की खोज की गई है और सबसे आशाजनक परिणाम गुजरात मे मिले है जहाँ अंकलेश्वर मे उत्पादन १९६१ ई० से शुरू हुआ है। असम के शिवसागर क्षेत्र मे भी पेट्रोलियम के भडार का पता चला है।

जलविद्युत शक्ति — भारत मे बिजली के कुल उत्पादन का लगभग ६० प्रति शत भाग कोयले से, ३५ प्रति शत पानी से और ५ प्रति शत पेट्रोलियम से प्राप्त होता है। भारत मे पेट्रोलियम का अभाव है और कोयला क्षेत्रों से दूर है, अतः कोयले पर यातायात के खर्च के कारण कोयले से उत्पन्न बिजली महँगी पडती है। ऐसी स्थिति मे जलशक्ति को ही यथासंभव विकसित करने का प्रयत्न उचित प्रतीत होता है। भाग्यवश भारत मे जलशक्ति का विशाल भडार है। भारत मे संभाव्य जलशक्ति ४ करोड १० लाख किलोवाट है। इसमे से अभी केवल पाँच प्रति शत भाग ही विकसित किया जा सका है।

भारत मे जलविद्युत् शक्ति के विकास के दो महत्वपूर्ण क्षेत्र है : (१) प्रायद्वीपीय भारत का पश्चिमी तथा दक्षिणी भाग जिसमे महाराष्ट्र, मद्रास, मैसूर तथा केरल के राज्य संमिलित है और (२) उत्तर-पश्चिमी भारत जिसमे कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पजाब तथा उत्तरप्रदेश के राज्य आते है। कोयले तथा पेट्रोलियम का अभाव तथा जलशक्ति की प्रचुरता दोनो कारणो से इन क्षेत्रो मे जलशक्ति के विकास को प्रोत्साहन मिला है। महाराष्ट्र जलविद्युत् उत्पादन में सभी राज्यों से आगे है। यहाँ टाटा की अधीनस्थ कपनियो ने पश्चिमी घाट पर कई कृत्रिम झीलें बनाई है जिनमें नदियों तथा वर्षा का पानी इकट्ठा किया जाता है और जल लगभग १,७५० फुट की ऊँचाई से खोपली, भीवपुरी तथा भीरा के पावर हाउस मे गिराया जाता है। इन्हे कल्याण तथा ट्राबे के कोयला चालित पावर हाउसो से सबद्ध कर दिया गया है। हाल मे कृष्णा की सहायक नदी कोयना पर बाँध बाँधा गया है जिससे बडी मात्रा मे बिजली उत्पन्न की जाती है। मैसूर मे लगभग सभी बिजली जलशक्ति से उत्पन्न की जाती है। मुख्य स्रोत कावेरी पर शिवसमुद्रम प्रपात और शरावती पर जोगा (गरसोप्पा) प्रपात है। मद्रास मे पाईकारा, मेटूर, पापनाशम, मोमार, पेरियार और कुदा योजनाओ से पनबिजली मिलती है। इन्हें एक दूसरे से तथा मद्रास और मदुरै के थर्मल पावर स्टेशनो से संबद्ध कर दिया गया है। केरल की मुख्य जलविद्युत् योजनाएँ पाल्लीवासल, संगुलम, पोरिंगल तथा इडिक्की हैं। उत्तर-पश्चिम भारत मे हिमाचल प्रदेश मे जोगिंदरनगर (मंडी) एक महत्वपूर्ण जलविद्युत्-उत्पादन-केंद्र है। हाल मे भाखडा-नगल-योजना के विकसित होने से पंजाब हरियाना मे बिजली उत्पादन मे बहुत वृद्धि हुई है। उत्तरप्रदेश मे रिहंद योजना, से तथा उड़ीसा मे हीराकुड बाँध योजना से बड़ी मात्रा मे पनबिजली उत्पन्न की जाती है।

बिहार तथा पश्चिमी बंगाल मे दामोदर घाटी योजना के अंतर्गत थोड़ा बहुत जलविद्युत् का विकास हुआ है, किंतु यहाँ कोयले की खानो की निकटता के कारण अधिकांश बिजली कोयले से उत्पन्न की जाती है। कोयले से प्राप्त बिजली के प्रमुख उत्पादन केंद्र पश्चिमी बंगाल मे कलकत्ता, दुर्गापुर और बंडेल है और बिहार मे बोकारो, पतरात, चद्रपुरा, सिंद्री तथा बरौनी है।

भारत में विद्युत् शक्ति का विकास अभी तक बड़े शहरों तथा औद्योगिक केंद्रों मे मुख्य रूप से सीमित है। मद्रास, केरल, मैसूर, पजाब तथा उत्तरप्रदेश मे इसका उपयोग सिचाई तथा घरेलू उद्योगो के लिये विशेष महत्वपूर्ण है। ग्रामीण क्षेत्रो मे छोटे तथा घरेलू उद्योगो के विकास तथा सिचाई या अन्य कृषि कार्यो मे तरक्की के लिये आवश्यक है कि यथासभव शीघ्रता से देहातो तथा छोटे शहरों को बिजली की सुविधा प्रदान की जाय।

उद्योग धंधे

भारत प्राचीन काल से उद्योग धधों के लिये प्रसिद्ध रहा है। पहले भारत के सूती तथा रेशमी कपड़े, धातु, लकड़ी तथा हाथीदाँत के सामान संसार के सुदूर देशो म भजे जाते थे। इन वस्तुओं का उत्पादन प्राय. छोटे पैमाने पर कारीगरो के घरों मे होता था। अग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद इन उद्योगों का बडी तेजी के साथ ह्रास होने लगा। इग्लैंड से मशीन के बने सस्ते सामान, खासकर सस्ते कपड़े भारत मे बड़े पैमाने पर भजे जाने लगे, अतः यहां के कारीगर बेरोजगार हो गए। लगभग सौ वर्ष हुए, भारत मे नए ढग के बड़े पैमाने के उद्योग मुख्यत बबई और कलकत्ता बंदरगाहो मे खुलने लगे और इनकी उत्तरोत्तर तरक्की होती रही। फिर भी भारत औद्योगिक क्षेत्र मे अभी काफी पीछे है और इन उद्योगो मे देश की जनसंख्या का बहुत ही छोटा भाग काम करता है। द्वितीय एव तृतीय पचवर्षीय योजना-कालो मे भारत के औद्योगिक विकास पर बहुत जोर दिया गया है, जिससे हाल मे औद्योगिक विकास का वेग काफी तीव्र हो गया है।

देश के औद्योगिक विकास की नई नीति १९५६ ई० के प्रस्ताव मे निर्धारित की गई है। इस प्रस्ताव के अनुसार १७ ऐसे उद्योग है जिनके भावी विकास की पूरी जिम्मेदारी सरकार की होगी। इनमे लोहा तथा इस्पात, कोयला तथा कुछ अन्य महत्वपूर्ण खनिज, पेट्रोलियम, हवाई जहाज, सामुद्रिक जहाज, बिजली, इजीनियरिंग, का सामान परमाणुशक्ति, रेलवे, हवाई यातायात इत्यादि है। दूसरे वर्ग मे १२ उद्योगो की सूची दी गई है जिनका धीरे धीरे राष्ट्रीयकरण किया जायगा, किंतु निजी क्षेत्र को सहयोग का मौका रहेगा। इनमें कलपुर्जे, कुछ दवाइयाँ, ऐल्यूमिनियम, कुछ रासायनिक पदार्थ, सड़क तथा सामुद्रिक यातायात शामिल है। अन्य उद्योगों का भावी विकास निजी क्षेत्र के लिये छोड़ दिया गया है। इस प्रस्ताव मे यह भी बतलाया गया है कि किन उद्योगो को पहले विकसित करना आवश्यक है और क्या औद्योगिक प्राथमिकता होगी। इस प्रस्ताव के अनुसार सबसे पहला स्थान लोहा तथा इस्पात, भारी रासायनिक पदार्थ, नाइट्रोजनीय खादें, भारी इंजीनियरिंग सामान तथा मशीन बनानेवाले उद्योगों के विकास को दिया गया है। दूसरा स्थान ऐल्यूमिनियम, सीमेंट, रसायनक, लुगदी, रंग, फॉस्फेटीय खाद और आवश्यक दवाओं को दिया गया है। तीसरी प्राथमिकता राष्ट्र के वर्तमान महत्वपूर्ण उद्योगों, जैसे जूट, सूती कपड़े तथा चीनी के आधुनिकीकरण को दी गई है। चौथा स्थान उत्पादन शक्ति के पूर्ण सदुपयोग को दिया गया है। अत मे उपभोग्य वस्तुओं के, मुख्यत. छोटे तथा कुटीर उद्योगों मे, विकास का स्थान है।

सूती कपड़े का उद्योग — यह भारत का सबसे उन्नत और महत्वपूर्ण उद्योग हैं। सूती कपड़े के कारखानो मे नौ लाख से अधिक मनुष्य काम करते है और इसके अतिरिक्त एक करोड़ जुलाहों (बुनकरो) का जीवननिर्वाह इस उद्योग से होता है। संसार में सूत तथा कपड़े के उत्पादन में भारत का स्थान तीसरा है। भारत मे इस उद्योग के छह क्षेत्र अधिक महत्वपूर्ण है : महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास, पश्चिमी बगाल, उत्तरप्रदेश, तथा मध्यप्रदेश। महाराष्ट्र एवं गुजरात मे भारत के लगभग ४० प्रति शत कारखाने है और देश का लगभग दो तिहाई कपडा तैयार होता है। महाराष्ट्र मे प्रमुख केंद्र बंबई है और गुजरात मे अहमदाबाद। ये दो शहर भारत मे सूती कपडे के दो सबसे बडे केंद्र है। बंबई शहर मे लगभग ६० मिलें हैं और अहमदाबाद मे ६६, किंतु बबई शहर की मिलें बड़ी है और उनका उत्पादन अहमदाबाद का लगभग डेढ़ गुना है। बंबई भारत मे रूई की सबसे बड़ी मंडी है और प्रमुख बदरगाह होने के कारण अन्य कई आर्थिक तथा व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त है। मद्रास एव मैसूर राज्यो में जल विद्युत् शक्ति के विकास से इस उद्योग का विकास संभव हो सका है। मद्रास मे कोयंबुत्तूर, मदुरै तथा मद्रास शहर महत्वपूर्ण केंद्र हैं और मैसूर मे बेंगलूरु। मद्रास मे काफी सूत तैयार किया जाता है जिससे कुटीर उद्योगो मे बड़े पैमाने पर लुंगी, साड़ी तथा चादर तैयार किए जाते हैं। उत्तरप्रदेश का प्रमुख केंद्र कानपुर है। इससे उत्तर-पश्चिम दिल्ली भी एक महत्वपूर्ण केंद्र है। पश्चिमी बगाल मे अधिकाश कारखाने हावडा तथा कलकत्ता के आसपास स्थित हैं और कलकत्ता भारत में सूती कपडों का सबसे बड़ा बाजार है। मध्यप्रदेश के मुख्य केंद्र इंदौर, उज्जैन, ग्वालियर, भोपाल इत्यादि है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से भारत इस अवस्था में पहुच गया है कि वह अन्य देशो को कपड़ा निर्यात कर सके। इस समय ससार के सूती कपड़े निर्यात करनेवाले देशों मे जापान सर्वप्रथम है और उसके बाद भारत का स्थान आता है।

जूट उद्योग — भारत के वैदेशिक व्यापार मे इस उद्योग का विशेष महत्व है, क्योकि भारत के निर्यात मे प्रथम स्थान जूट की बनी चीजों का है और इन्ही से भारत को सबसे अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। जूट की मिले मुख्यत: पश्चिमी बगाल मे हुगली नदी के दोनों किनारो पर, कलकत्ता के दक्षिण ६० मील लंबे किंतु दो मील चौड़े क्षेत्र मे सीमित हैं। छोटे क्षेत्र म केंद्रित होने के कारण यह उद्योग सुसंगठित है और इसका सचालन उत्तम है। अधिकाश कारखाने भारतीय कपनियो के अधिकार मे हैं, किंतु आधे से कुछ कम करघे विदेशी प्रबंधक एजेंसी कपनियो के हाथ मे है जिनमे अधिकांश स्कॉटलैंड की हैं।

ऊनी वस्त्र उद्योग — भारत मे गरम जलवायु होने के कारण इस उद्योग का विकास अपेक्षाकृत कम हुआ है। मुख्य केंद्र पजाब में

धारीवाल, अमृतसर और लुधियाना, उत्तरप्रदेश मे कानपुर, कश्मीर में श्रीनगर, महाराष्ट्र मे बंबई तथा मैसूर में बेंगलूरु हैं।

रेशम उद्योग — देश के विभिन्न भागों मे रेशम के कीडे पाले जाते हैं और उनसे तरह तरह के रेशम तैयार किए जाते है। इनमें मुख्य मलबेरी, टसर, अंडी तथा मूंगा हैं। मलबेरी रेशम के कीड़े शहतूत की कोमल पत्तियाँ खिलाकर पाले जाते हैं, और इनसे रेशम का उत्पादन मैसूर, पश्चिमी बंगाल तथा कश्मीर में होता है। टसर जंगली कीडों से प्राप्त किया जाता है और इसके दो प्रधान क्षेत्र मध्य प्रदेश तथा बिहार हैं। अंडी और मूंगा लगभग पूर्णत असम से आता है। केवल मैसूर तथा कश्मीर मे आधुनिक बिजली चालित सूत्रण (Filatures) है, अन्यथा अधिकांश सूत चर्खे पर लपेटकर तैयार किया जाता है। रेशमी कपड़े बनाना मुख्यत: कुटीर उद्योग है। श्रीनगर तथा बेंगलूरु मे रेशम के बड़े कारखाने हैं।

लोहा तथा इस्पात उद्योग — भारत में उत्तम कच्चे लोहे की प्रचुरता इस उद्योग के लिये सबसे बड़ी प्राकृतिक सुविधा है, किंतु कोकिंग कोयला जो कच्चे लोहे को गलाकर लोहा बनाने के लिये आवश्यक है, अपेक्षाकृत कम मात्रा में पाया जाता है। चूना पत्थर तथा मैंगनीज और ऊष्मासह पदार्थ सभी कच्चा लोहा अथवा कोयले के क्षेत्रों के निकट सुलभ हैं। इस उद्योग के विकास के लिये सबसे उपयुक्त क्षेत्र प्रायद्वीपीय भारत का उत्तर-पूर्वी भाग है जिसमे छोटा नागपुर और उससे सटे हुए पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा के भाग तथा पूर्वी मध्यप्रदेश संमिलित है। इसी प्रदेश मे लगभग सभी कच्चे माल के प्रधान क्षेत्र पाए जाते है और इस्पात के प्रमुख कारखाने केंद्रित हैं। इसलिये इसे कोयला-इस्पात-क्षेत्र (coal steel belt) की संज्ञा दी गई है। भारत मे लोहा तथा इस्पात उद्योग के छह केंद्र हैं : तीन पुराने केंद्र कुल्टी, बर्नपुर (पश्चिमी बगाल), जमशेदपुर (बिहार) और भद्रावती (मैसूर) हैं, तथा तीन नए दुर्गापुर (पश्चिमी बंगाल), रूरकेला (उडीसा) तथा भिलाई (मध्यप्रदेश) हैं। इनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण जमशेदपुर है और सबसे कम उत्पादन भद्रावती का है। रूरकेला, दुर्गापुर तथा भिलाई के कारखाने भारत सरकार द्वारा द्वितीय पचवर्षीय योजनाकाल मे स्थापित किए गए हैं। यद्यपि लोहा तथा इस्पात के उत्पादन मे इधर काफी वृद्धि हुई, फिर भी माँग उत्पादन से कहीं अधिक है। इसलिये सभी वर्तमान केंद्रो में उत्पादन बढाने की योजना है। साथ साथ बिहार मे बोकारो नामक स्थान पर एक नया विशाल कारखाना खोला जा रहा है। इस उद्योग के शीघ्र विकास मे दो बड़ी कठिनाइयाँ पूंजी तथा प्रशिक्षित टेक्निशियनो की कमी है।

ऐल्यूमिनियम उद्योग — ऐल्यूमीनियम बौक्साइट से बनाया जाता है। यह उद्योग केरल मे अलवई, पश्चिमी बंगाल मे बेलूर (कलकत्ता) और आसनसोल, बिहार मे मूरी, उड़ीसा मे हीराकुड, तथा उत्तर-प्रदेश में पिपरी (रिहंद) मे केंद्रित हैं। इसके लिये सस्ती और प्रचुर बिजली का मिलना परमावश्यक है। इसके विकास की बहुत संभावनाएँ हैं, क्योंकि यहाँ बौक्साइट का विशाल भंडार है, जल विद्युत् उत्पन्न करने की कई योजनाएँ है और साथ साथ देश में ऐल्यूमिनियम की बहुत माँग है।

इंजीनीयरिंग उद्योग — इसके अंतर्गत कई उद्योग संमिलित हैं जो मुख्य रूप से लोहा तथा इस्पात से विभिन्न प्रकार के सामान बनाते हैं। इंजीनियरिंग उद्योग मुख्यत: कलकत्ता, जमशेदपुर, राँची तथा भरिया एवं रानीगंज के कोयला क्षेत्र में केंद्रित है। बेंगलूरु, बंबई, मद्रास और कानपुर में भी इनका विकास हुआ है।

चीनी उद्योग — भारत दुनिया में सभी देशों से अधिक गन्ना उत्पन्न करता है और सबसे अधिक चीनी (गुड़ सहित) यहीं तैयार की जाती है। यदि केवल सफेद चीनी को लिया जाय तो भारत का स्थान संसार मे क्यूबा और ब्राजिल के बाद आता है। भारत मे चीनी के कारखानों मे लगभग दो लाख मनुष्य काम करते है और गन्ने की खेती पर लगभग दो करोड़ किसानों और उनके परिवारों की जीविका निर्भर है। अधिकतर कारखाने उत्तरप्रदेश तथा बिहार मे हैं और कई महाराष्ट्र, आंध्र, मैसूर तथा मद्रास में हैं। भारत की चीनी का लगभग ६० प्रति शत भाग उत्तरप्रदेश और बिहार उत्पन्न करते हैं। यद्यपि दक्षिण भारत मे इस उद्योग का उत्तर भारत की तुलना मे विकास कम हुआ है, किंतु दक्षिण मे अनेक प्राकृतिक कारणों एवं आर्थिक सुविधाओं के कारण इसका सापेक्षिक महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। भारत मे प्रति एकड़ उत्पादन तथा गन्ने मे मिठास की मात्रा कम है। फिर भी भारत इतनी चीनी पैदा करता है कि उसे विदेश से मँगाने की आवश्यकता नही पड़ती। १९६४-६५ मे चीनी का उत्पादन ३४ लाख टन था।

सीमेंट उद्योग — सीमेंट बनाने मे मुख्यत चूनापत्थर, चिकनी मिट्टी, जिप्सम तथा कोयले की आवश्यकता होती है। इनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण चूनापत्थर है और अधिकतर कारखाने चूनापत्थर की खानों के पास ही स्थापित किए गए हैं। कुछ कारखाने चूनापत्थर की जगह अन्य चूनेदार पदार्थों का इस्तेमाल करते हैं। सिंद्री का कारखाना खाद के कारखाने से फेंके गए कैल्सियम कार्बोनेट स्लज काम में लाता है। चायबासा (बिहार) तथा भद्रावती (मैसूर) के कारखाने लोहा तथा इस्पात के कारखानो द्वारा फेंके गए ब्लास्ट फरनेस स्लैग पर आधारित है। मुख्य उत्पादक बिहार, मद्रास, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा आंध्रप्रदेश है। बिहार मे इस उद्योग के सबसे अधिक विकसित होने का कारण चूनापत्थर एवं कोयले की प्रचुरता तथा निकटता और कलकत्ते का विस्तृत बाजार है। यहाँ यह उद्योग डालमिया नगर, जपला, बजारी, सिंद्री, खेलारी तथा चायबासा मे स्थित है। मध्यप्रदेश (कैमूर, सतना) तथा उड़ीसा (राजगंगपुर) को भी स्थानीय चूनापत्थर तथा दामोदर घाटी से कोयले की सुविधाएँ प्राप्त है। राजस्थान मे मुख्य केंद्र सवाई माधोपुर और लखेरी हैं, तथा गुजरात में पोरबंदर, द्वारका, सिक्का इत्यादि। इमारतो, सडकों तथा नदीघाटी योजनाओ के लिये सीमेंट की बहुत आवश्यकता है। इसलिये सीमेंट के उत्पादन को तेजी से बढ़ाया जा रहा है, फिर भी देश मे सीमेंट की बराबर कमी रही है।

कागज उद्योग — कागज भारत में मुख्यतः सबाई घास और बाँस से तैयार किया जाता है। मुख्य क्षेत्र पश्चिमी बंगाल है, जहाँ टीटागढ़, काकीनाड़ा, नईहाटी तथा रानीगज के कारखाने हैं। इन्हे बंगाल, बिहार और उड़ीसा से बाँस मिल जाता है। बिहार मे कागज का कारखाना डालमियानगर में है तथा उड़ीसा में ब्रजराजनगर में। ये तीनों राज्य मिलकर भारत के उत्पादन का ६० प्रति शत कागज उत्पन्न

करते हैं। अन्य उल्लेखनीय केंद्र सहारनपुर (उत्तर प्रदेश), जगाधरी (पंजाब), सीरपूर (आंध्र) तथा नेपानगर (मध्यप्रदेश) हैं। नेपानगर अखबारी कागज बनाता है। कागज के उद्योग मे अचानक वृद्धि के कारण तथा बाँस की खेती वैज्ञानिक ढंग से संचालित न होने के कारण कच्चे मालों की कमी हो गई है। कागज और लुगदी बनाने में गन्ने की खोई का उपयोग किया जा सकता है और दक्षिण भारत में कुछ कारखाने खोई का उपयोग करते ही हैं।

काच का उद्योग — काँच एक विशेष प्रकार की बालू से तैयार किया जाता है जो मुख्य रूप से इलाहाबाद के दक्षिण शंकरगढ़ के पास पाई जाती है। काच बनाने की फैक्ट्रियाँ अधिकतर उत्तर प्रदेश में हैं जहाँ मुख्य केंद्र फिरोजाबाद, शिकोहाबाद, नैनी (इलाहाबाद), हाथरस तथा बहजोई हैं। फिरोजाबाद भारत में चूड़ियों का सबसे प्रमुख केंद्र है। आसनसोल और जमशेदपुर के पास कादरा, तथा भरकुंडा (हजारीबाग) मे चादर काच के बड़े कारखाने है। कलकत्ता और बबई के पास कई कारखाने है, जहाँ लैंप, ट्यूब, गिलास, फ्लास्क इत्यादि चीजे बनाई जाती है।

चमड़ा उद्योग — भारत मे जानवरों से इतना अधिक चमडा और खाल मिल जाती है कि न केवल देश मे चमड़ा कमानेवाले उद्योग की जरूरतो की पूर्ति होती है, बल्कि कच्चा चमड़ा, खाल तथा कमाया हुआ चमडा निर्यात भी किया जाता है। अधिकाश बड़े कारखाने उत्तरप्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल मे स्थित है। उत्तर भारत में सबसे प्रमुख केंद्र कानपुर है, किंतु बाटानगर (कलकत्ता), मोकामाघाट तथा दीघा (पटना के पास, बाटा) भी प्रसिद्ध हैं। दक्षिण भारत मे मद्रास चमडा उद्योग का महत्वपूर्ण केंद्र है।

यातायात के साधन — भारत मे सड़कों की कुल लंबाई लगभग ४,४१,००० मील है जिसमे केवल १,४७,००० मील पक्की सड़कें (देखें, मानचित्र ७) है, जो यहाँ की जनसख्या और क्षेत्रफल को देखते हुए कम है। प्रति हजार मनुष्य के लिये भारत मे केवल एक मील सड़क है। महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास तथा मैसूर मे पक्की सडकों की लबाई कच्ची सडको से अधिक है। इसके विपरीत असम और बिहार मे कच्ची सडको की लबाई पक्की सडको से नौ गुनी, पश्चिमी बगाल में छह गुनी और राजस्थान, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश मे लगभग ढाई गुनी है। भारत की सड़को के चार वर्ग है . राष्ट्रीय मुख्य मार्ग, राजकीय मुख्य मार्ग, जिलो की सड़कें और गाँव की सड़कें। राष्ट्रीय मुख्य मार्ग देश की प्रमुख सड़कें है जो देश के विभिन्न भागों को जोडती हैं और जिनका आर्थिक एव सैनिक दृष्टि से राष्ट्र के लिये बड़ा महत्व है। इनके द्वारा राज्य की राजधानियाँ, बडे बड़े औद्योगिक एवं व्यापारिक केंद्र तथा बंदरगाह एक दूसरे से मिला दिए गए हैं। इनकी लंबाई लगभग १५,००० मील है। राज्य मुख्य मार्ग राज्यों की प्रमुख सड़कें हैं जिनके निर्माण और मरंमत की जिम्मेदारी राज्य सरकार की है। इनकी लंबाई लगभग ३५,००० मील है। जिलों की सडको की जिम्मेदारी जिलापरिषदों की है और इनका काम उत्पादन क्षेत्रों को मंडियो और बाजारों से जोड़ना है। इनमे से अधिकांश कच्ची हैं। इनकी लंबाई लगभग १,७४,००० मील है। गाँव की सड़कें पूर्णत: कच्ची हैं और वर्षा के दिनो मे इन्हे काम में लाना प्राय: असंभव हो जाता है। इनकी लंबाई १,८७,००० मील है। सड़कों के विकास के लिये एक बीस वर्षीय योजना (१९६१–८१)
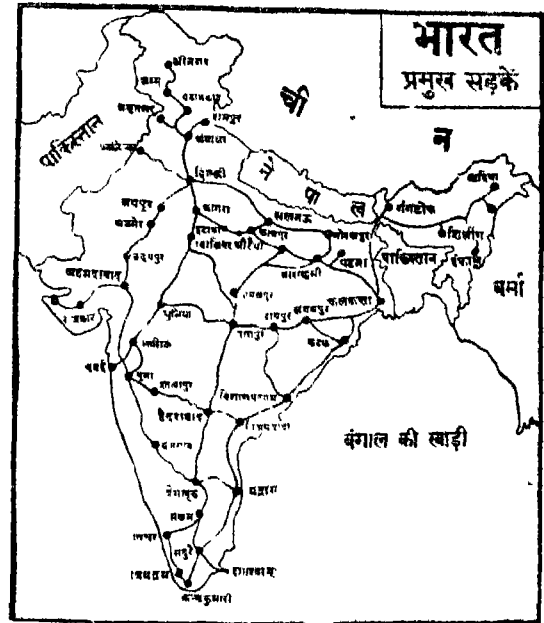
मानचित्र ७.

बनाई गई है जिसका ध्येय सड़कों की कुल लंबाई १९८१ ई० तक ६.५७ लाख मील करना है। देहातो की आर्थिक उन्नति एवं विकास के लिये यह परमावश्यक है कि सडकों का जल्द से जल्द विस्तार किया जाय और उन्हें यातायात की सुविधा प्रदान की जाय।

भारत की रेल व्यवस्था केंद्रीय सरकार के हाथ मे है और इसमें लगभग १२ लाख आदमी काम करते हैं। भारत मे रेलवे लाइनों की कुल लबाई लगभग ३६ हजार मील (५७ हजार किमी०) है। प्रति दिन लगभग ४३ लाख मनुष्य यात्रा करते हैं और कोई साढ़े चार लाख टन सामान ढोया जाता है। रेलें जितना सामान ढोती हैं उनमें तौल के अनुसार सबसे मुख्य कोयला है और उसके बाद खाद्यान्न, यद्यपि रेलवे को सबसे अधिक आमदनी कृषि पदार्थों के ढोने से होती है। भारत मे सबसे पहली रेलवे १८५३ ई० मे बंबई और थाना (२१ मील) के बीच बनी। सन् १८५७ तक कुछ और लाइनें खोली गई जिनमे बबई से कल्याण (३३ मील) कलकत्ता से रानीगज (१२० मील) और मद्रास से आरकोनम (३९ मील) की लाइने थी। सन् १८८० तक रेल लाइनों की लंबाई लगभग ८, ५०० मील हो गई और १९०० ई० तक प्राय. सभी प्रमुख लाइनें बन गई थी। शुरू मे रेल मार्गों पर विभिन्न कंपनियों का अधिकार था, लेकिन बाद मे सरकार ने उन्हे अपने अधिकार मे ले लिया। देश के भिन्न भागों मे रेल की पटरियों की चौड़ाई भिन्न है। बड़ी लाइन में रेल की पटरियों के बीच पाँच फुट छह इंच का अंतर होता है, मीटर गेज अथवा छोटी लाइन मे तीन फुट ३$\frac{3}{8}$ इंच का, और सँकरी लाइन (नैरोगेज) मे दो फुट छह इंच या कभी कभी केवल दो फुट का। बड़ी लाइन (ब्राड गेज) की कुल लबाई १६,८७५

मील, मीटर गेज की १६,६२५ मील हजार और नैरोगेज की ३,१२५ मील है।

भारत में जलमार्ग का महत्व अपेक्षाकृत कम है। गंगा, ब्रह्मपुत्र और उनकी सहायक नदियाँ एवं दक्षिण भारत मे गोदावरी तथा कृष्णा नदियाँ और कुछ नहरें महत्वपूर्ण हैं जिनपर काफी माल ढोया जाता है। नदी यातायात का विशेष महत्व उत्तर पूर्वी भारत मे है जिसमें असम, पश्चिमी बंगाल और बिहार के राज्य शामिल हैं। असम और कलकत्ता के बीच जो लगभग २५ लाख टन माल प्रति वर्ष ढोया जाता है, उसका आधा भाग नदियों द्वारा आता है। इसमें एक बड़ी असुविधा यह है कि ब्रह्मपुत्र नदी का निचला भाग पूर्वी पाकिस्तान मे पड़ता है।

हवाई मार्ग का उपयोग अधिकतर डाक तथा यात्रियों के लिये होता है। भारत के लगभग सभी मुख्य नगर हवाई मार्गों के द्वारा संबंधित हैं। सभी हवाई मार्ग भारत सरकार के अधिकार में है। भारत में कुल ६० हवाई अड्डे हैं जिनमे तीन अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं जहाँ भारतीय वायुयानो के अलावा विदेशी वायुयान भी नियमित रूप से आते हैं—बंबई (शांताक्रूज), कलकत्ता (दमदम) और दिल्ली (पालम)। इंडियन एयर लाइस देश के अंदर तथा कुछ निकटवर्ती देशो जैसे नेपाल, पाकिस्तान, लंका के साथ वायु यातायात की व्यवस्था करता है। विदेशी वायु यातायात का प्रबंध एअर इंडिया इंटरनेशनल कंपनी के हाथ में है।

जनसंख्या — सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या ४३·९ करोड़ है और प्रति वर्ग मील घनत्व ३८४ है। सन् १९५१–१९६१ के बीच आबादी २१·५ प्रति शत बढ़ी है। भारत मे जनसंख्या का वितरण असमान है (देखे, मानचित्र ८.)। उत्तर भारत
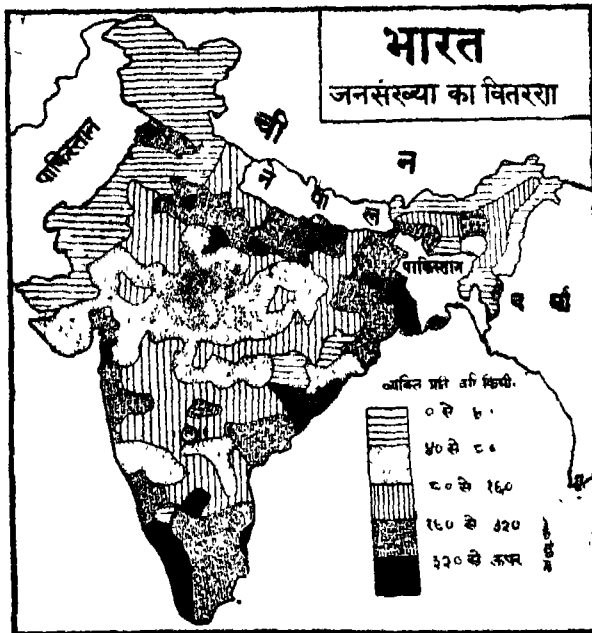
मानचित्र ८.

के मैदान मे आबादी का घनत्व प्रति वर्ग मील ५०० से अधिक है, हिमालय क्षेत्र और राजस्थान मे आबादी प्रायः प्रति वर्ग मील २०० से कम है और दक्षिण के प्रायद्वीपीय पठार मे तटीय मैदानों को छोड़कर अधिकांश में प्रति वर्ग मील घनत्व २०० से ५०० के बीच है। उत्तर भारत के विस्तृत मैदान तथा दक्षिण भारत के तटीय मैदान में भारत की लगभग एक तिहाई भूमि पर यहां की दो तिहाई आबादी पाई जाती है, क्योंकि इन क्षेत्रों मे खेती और भोजन-प्राप्ति की सुविधा है। गंगा, सिंधु के मैदान मे ज्यो ज्यों हम पूर्व से पश्चिम जाते हैं, जनसंख्या का घनत्व कम होता जाता है। पश्चिमी बंगाल मे आबादी का प्रति वर्ग मील घनत्व १,०३२, बिहार मे ६९१, उत्तर प्रदेश मे ६४९ और पंजाब मे ४३० है। इसी दिशा मे वर्षा की मात्रा भी कम होती जाती है और साथ साथ चावल का महत्व भी कम होता जाता है। सबसे घनी आबादी उन प्रदेनो मे पाई जाती है जहाँ धान की खेती होती है, क्योकि सभी अन्नो से धान की प्रति एकड़ उपज अधिक होती है। इसी कारण पश्चिमी बंगाल के अधिकांश जिलो, उत्तरी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश मे आबादी का घनत्व एक हजार प्रति वर्ग मील से अधिक है। इन्ही कारणो से दक्षिण भारत मे केरल मे आबादी का घनत्व प्रति वर्ग मील १,१२७ है। मद्रास मे प्रति वर्ग मील घनत्व ६६९ है, किंतु धान उत्पन्न करनेवाले तटीय मैदानो मे घनत्व अधिक है। असम (२५२ प्रति वर्ग मील), मध्य प्रदेश (१८९), राजस्थान (१५३), हिमाचल प्रदेश (१२४), नागालैंड (५८), अंदमान निकोबार (२०) मे आबादी कम है।

ग्रामीण और नगरीय जनसंख्या — लगभग ८२ प्रति शत भारतवासी देहातों मे रहते हैं और केवल १८ प्रति शत शहरो मे लगभग ३६ करोड़ मनुष्य ग्रामीण हैं और ८ करोड शहरी। भारत मे कुल ५,६४,७१८ गाँव है तथा २,६९० नगर। कुल शहरी आबादी का लगभग आधा भाग ऐसे १०७ शहरो मे है जिनकी आबादी एक लाख या अधिक है। इन मे १३ ऐसे नगर है जिनमे से प्रत्येक की आबादी पाँच लाख से अधिक है। ये कलकत्ता (हावड़ा सहित ३४·४ लाख), बृहत्तर बंबई (४१·५ लाख), दिल्ली (२३·४ लाख), मद्रास (१७·३ लाख), हैदराबाद (१२·५ लाख), अहमदाबाद (१२·१ लाख), बेंगलूरु (१२·१ लाख), कानपुर (९·७ लाख), पूना (७·२ लाख), लखनऊ (६·६ लाख), नागपुर (६·४ लाख) वाराणसी (५·७ लाख) तथा आगरा (५·९ लाख) है।

लिंग अनुपात — भारत मे स्त्रियों की संख्या पुरुषो की तुलना मे कम है। देश मे लगभग २२.६६ करोड़ पुरुष और २१·२९ करोड़ स्त्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रति १,००० पुरुषो पर ९४१ स्त्रियां है। ग्रामीण आबादी मे लिंग अनुपात ९६३ और शहरी आबादी मे ८४५ है। यह लिंग अनुपात पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमरीका के विपरीत है जहाँ स्त्रियो की संख्या पुरुषो से अधिक है। भारत मे जो शहर जितने बड़े हैं वहाँ स्त्रियो की संख्या उतनी ही कम है। बृहत्तर बंबई मे लिंग अनुपात ६६३, कलकत्ता मे ६१२, दिल्ली मे ७७७, कानपुर मे ७३९, अहमदाबाद मे ८०४, मद्रास मे ९०१ और हैदराबाद मे ९२९ है। दक्षिण भारत के शहरो में स्त्रियो और पुरुषों की संख्या मे उतनी विषमता नही है जितनी उत्तर अथवा पश्चिमी भारत मे। भारत मे कुछ ऐसे प्रदेश हैं जहाँ स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है जैसे, पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा उत्तरी बिहार, उत्तरप्रदेश के हिमालय क्षेत्र, उड़ीसा तथा पूर्वी मध्यप्रदेश, आंध्र तट, तामिलनाड तथा

मलाबार तट, कोंकण तट तथा कच्छ और पूर्वी असम तथा असम के पहाड़ी क्षेत्र। इन सभी क्षेत्रों से पुरुष काम की खोज मे अन्य क्षेत्रों मे जाते हैं।

जनसंख्या का व्यावसायिक विन्यास—भारत मे कुल १८.८४ करोड़ श्रमिक हैं जिनमें १२.९० करोड़ पुरुष और ५.९४ करोड़ स्त्रियाँ हैं। इनमें से ९.९५ करोड़ अर्थात् आधे से अधिक किसान हैं और ३.१५ करोड (१७%) कृषि मजदूर हैं। खानों, वनों, बगानों, फल उद्यानों इत्यादि में काम करनेवालो तथा मछली पकड़ने वालों की संख्या ५२ लाख है। कुटीर उद्योगों में काम करनेवालों की संख्या एक करोड़ २० लाख और अन्य उद्योग धंधों में ८० लाख है। व्यापार, वाणिज्य मे ७६ लाख, परिवहन, संग्रह तथा यातायात मे ३० लाख, निर्माण कार्य मे २१ लाख तथा दूसरी नौकरियो में १ करोड़ ६५ लाख व्यक्ति लगे हुए हैं। ८० प्रति शत काम करनेवाली स्त्रियाँ कृषिकार्य मे लगी हुई है। अन्य व्यवसायों मे स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। पुरुष श्रमिकों मे ९५ प्रति शत कृषिश्रमिक हैं।

जनसंख्या समस्या—भारत की विशाल जनसंख्या अपनी जीविका के लिये मूलतः कृषि पर निर्भर है, किंतु प्रत्येक व्यक्ति पर कृषिभूमि एक एकड़ से भी कम है। जनसंख्या बराबर बढ़ती जा रही है, जबकि कृषिभूमि के क्षेत्रफल मे कोई खास वृद्धि नहीं हुई है। दो फसली जमीन तथा सिंचित क्षेत्रों के क्षेत्रफल मे भी जनसंख्या के अनुपात मे वृद्धि नही हुई है। उत्पादन मे अथवा आय मे जो भी वृद्धि होती है वह जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि के कारण समाप्त हो जाती है। अतः देश मे गरीबी और बेकारी का जनसंख्या की वृद्धि से घनिष्ट संबध है। इन समस्याओं के हल के लिये इतना ही आवश्यक नही है कि कृषि और उद्योग धधों का तीव्रता से विकास किया जाय, बल्कि साथ साथ जनसंख्या की वृद्धि को भी नियंत्रित करना आवश्यक है।

धर्म — १९६१ की जनगणना के अनुसार भारतवासियों मे ८३.५ प्रति शत हिंदू, १०.७ प्रति शत मुसलमान, २.५ प्रति शत ईसाई, १.८ प्रति शत सिख तथा ०.५ प्रति शत जेन है।

साक्षरता — पढ़े लिखे लोगो की संख्या २४ प्रति शत है। सबसे अधिक साक्षर लोग केरल (४६.८ प्रति शत), दिल्ली (५२.७ प्रति शत), पांडिचेरी (३७.४ प्रति शत) और अदमान निकोबार द्वीपसमूह मे (३३.६ प्रशि शत) मिलते हैं। मद्रास, गुजरात, महाराष्ट्र तथा पश्चिमी बगाल मे भी प्रति शत २९ मे अधिक है। बिहार मे साक्षर लोगों की संख्या १८.४ प्रति शत और उत्तर प्रदेश मे १७.६ प्रति शत है। सन् १९५१–६१ के बीच साक्षरता का प्रति शत १४.६ से बढकर २४ हो गया है। पुरुषों मे यह प्रति शत ३४.४ है और स्त्रियों मे १२.९।

भाषाएँ—भारत मे १४ प्रधान भाषाएँ है। भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी है। लगभग ४० प्रति शत लोग हिंदी (उर्दू सहित), ७.५ प्रति शत तेलगू, छह प्रति शत मराठी, छह प्रति शत तमिल, छह प्रति शत बँगला, चार प्रति शत गुजराती तथा तीन प्रति शत से कुछ अधिक लोग कन्नड, मलयालम और उड़िया भाषा भाषी है।

वैदेशिक व्यापार तथा बंदरगाह—भारत का अधिकाश वैदेशिक व्यापार समुद्र द्वारा छह बंदरगाहो से होता है—बंबई, कलकत्ता, मद्रास, विशाखापत्तनम, कोचीन तथा कांडला। भारत का ४६ प्रति शत वैदेशिक व्यापार बंबई द्वारा होता है। यहाँ से निर्यात की तुलना में आयात अधिक होता है। यह भारत का प्रमुख यात्री बंदरगाह भी है। कलकत्ता बंदरगाह हुगली नदी पर बगाल की खाड़ी से ८० मील दूर स्थित है। तट से दूर होने के कारण बड़े जहाज ज्वार भाटे के समय आते है। इसकी पृष्ठभूमि बहुत विस्तृत और उपजाऊ है। यहाँ से बंबई की तुलना मे निर्यात अधिक होता है। मद्रास का बंदरगाह कृत्रिम है। विशाखापत्तनम मे समुद्री जहाज बनते हैं तथा यहाँ से मैंगनीज और कच्चा लोहा निर्यात किया जाता है। कोचीन से मसाले निर्यात किए जाते है। स्वतत्रता के बाद काडला (कच्छ की खाड़ी पर स्थित) बंदरगाह का विकास हुआ है। यहां आयात निर्यात से कही अधिक है।

कई ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके निर्यात मे भारत का स्थान सर्वप्रथम है, जैसे जूट के बने सामान, चाय, अभ्रक, मैंगनीज, लोहा इत्यादि। फिर भी देश के आकार तथा जनसंख्या की दृष्टि से वैदेशिक व्यापार कम है। भारत सरकार की नीति, जहाँ तक संभव हो सके, आयात को कम करने और निर्यात को बढाने की है, किंतु फिर भी आयात प्राय. निर्यात से अधिक अनुपात मे बढता रहा है। आयात और निर्यात दोनो मे तैयार माल सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। भारत का मुख्य आयात मशीनरी तथा सवारी के सामान हैं, जो मुख्यतः ब्रिटेन, सयुक्त राज्य, अमरीका, जर्मनी तथा जापान से आते हैं। दूसरा महत्वपूर्ण आयात भोज्य पदार्थ है जिसमे गेहूँ और चावल (विशेषकर गेहूँ) प्रधान है। अन्य आयात रासायनिक पदार्थ, पेट्रोलियम, लोहा तथा इस्पात, बिजली के सामान, कपास, कागज, ऊन, रबर इत्यादि है। भारत के निर्यात मे प्रथम स्थान जूट की बनी चीजों का है, दूसरा स्थान चाय का और तीसरा सूती कपड़ो का। अन्य महत्वपूर्ण निर्यात वनस्पति तेल (मुख्यत. रेड़ी का तेल), चमडा तथा चमड़े के सामान, कच्चा लोहा, मैंगनीज, अभ्रक, काजू, तंबाकू, रूई, मसाले, काफी, ऊन तथा लाह हैं। जूट की बनी चीजे मुख्यत. संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन तथा अर्जेंटीना खरीदते है। चाय प्रधानत ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और रूस जाती है। सूती कपडे पश्चिमी एशिया, दक्षिणी तथा पूर्वी अफ्रीका के देशों तथा इग्लैंड को जाते है। रूई मुख्यत ब्रिटेन तथा जापान खरीदते है। भारत के मैंगनीज तथा अभ्रक का मुख्य खरीदार संयुक्त राज्य अमरीका है, और कच्चे लोहे का जापान।

पहले भारत सबसे अधिक ब्रिटेन से व्यापार करता था और अब भी भारत के निर्यात मे ब्रिटेन का ही स्थान प्रथम है। संयुक्त राज्य, अमरीका का भी स्थान आयात और निर्यात दोनो मे काफी महत्वपूर्ण है। ये ही दोनो देश भारत के वैदेशिक व्यापार में प्रधान है। ब्रिटेन से भारत का व्यापार संतुलित है, किंतु सयुक्त राज्य अमरीका से भारत इतना अधिक माल खरीदता है कि आयात का मूल्य निर्यात से लगभग दुगुना है। जापान, रूस, जर्मनी, फ्रांस, स्विट्सरलैंड इत्यादि देशों से भी आयात अधिक महत्वपूर्ण है। भारत के निर्यात के प्रधान खरीदार ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, जापान, कैनाडा, आस्ट्रेलिया, पश्चिमी जर्मनी, लका, मिस्र तथा मध्य और दक्षिण यूरोप के देश हैं।

इतिहास — अत्यत प्राचीन काल से हिमालय और हिंद महासागर

के बीच स्थित भूखंड का नाम भारत रहा है। भारत के लंबे इतिहास में, उत्तर-पश्चिम से समय समय पर अनेक विदेशी जातियाँ आती रही हैं। सबसे प्रथम महत्वपूर्ण विशाल जनसमुदाय का आगमन आर्यों का हुआ जिनकी भाषा संस्कृत थी। उस समय भी यहाँ सभ्यता ऊँचे स्तर पर थी और कई नगर बसे हुए थे। तब से सदियों तक यहाँ हिंदुत्व का प्रमुत्व रहा। ईसा के पूर्व छठी शताब्दी के अंत में दो महान् व्यक्तियों ने देश के धार्मिक और सास्कृतिक वातावरण को बदल दिया। वे थे गौतम बुद्ध (५४४–४८३ ई०पू०) और महावीर (५४०–४६८ ई० पू०) जिन्होंने क्रमशः बौद्ध तथा जैन धर्मों को जन्म दिया। उस समय सबसे प्रमुख साम्राज्य मगध था जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) थी। सिकंदर के आक्रमण के समय (३२७-३२५ ई० पू०) गंगा के मैदान का अधिकांश भाग नंदवंश के अधिकार में था। किंतु तुरंत ही चंद्रगुप्त मौर्य के नेतृत्व मे मौर्यवंश का उत्थान हुआ। इस वंश ने भारत के महान् सम्राट् अशोक (२७४-२३७ ई० पू०) को जन्म दिया और अशोक के साम्राज्य में केवल तमिलनाड छोड़कर सारा भारत संमिलित था। मौर्य साम्राज्य के ह्रास के तुरंत ही बाद यूनानियों का आक्रमण हुआ और उसके बाद शकों का जिन्होंने शक संवत् चलाया। इसके बाद कुषाणों का आक्रमण हुआ। कुषाण वंश का प्रमुख राजा कनिष्क था जिसके राज्य के अंतर्गत बनारस तक पूरा उत्तर भारत तथा मध्य एशिया के विस्तृत क्षेत्र संमिलित थे। तीसरी शताब्दी से गुप्त वंश की वृद्धि हुई। इस वंश का सबसे विख्यात राजा चंद्रगुप्त विक्रमादित्य हुआ जिसके समय मे संस्कृत साहित्य ऊँचे शिखर पर था। यही महाकवि कालिदास का युग था। सातवी शताब्दी में हर्षवर्धन (६०६-६४७ ई०) उत्तर भारत का सम्राट् बना, किंतु दक्षिण के चालुक्यो ने उसकी प्रभुता को कभी स्वीकार नही किया। हर्षवर्धन साहित्य का बड़ा प्रेमी तथा स्वयं संस्कृत नाटकों का लेखक था। उसके दरबार मे संस्कृत के प्रसिद्ध लेखक बाण रहते थे। हर्ष के ही समय मे चीनी यात्री ह्वेन सांग भारत आया था और उसने उस समय के इतिहास तथा सभ्यता का महत्वपूर्ण वर्णन लिखा है। ६५० से १२०० ई० तक भारत कई राज्यो मे बँट गया। देश जब विभाजित था, वैसी स्थिति में ९९९ ई० मे महमूद गजनवी ने आक्रमण किया और इसके बाद लगभग ५०० वर्षो तक अफगानी मुसलमानों का राज्य रहा। तत्पश्चात् मध्य एशिया के मंगोलों अर्थात् मुगलों के आक्रमण हुए; १३९८ ई० मे तैमूरलंग ने दिल्ली तथा उत्तर भारत को लूटा और सन् १५२६ में बाबर ने दिल्ली के सुलतानों का तख्त उलट दिया। मुगलो का राज्य लगभग दो सौ वर्षों तक रहा। मुगलों के अवसान काल मे देश कई रजवाड़ो में विभाजित हो गया और दक्षिण मे शिवाजी के नेतृत्व में तथा पंजाब में रणजीतसिंह के नेतृत्व में हिंदुत्व का पुनरुत्थान हुआ। देश के विभाजित होने के कारण यूरोपीय प्रभाव के प्रसार को प्रोत्साहन मिला। सबसे पहले पुर्तगालियों का आगमन हुआ। वास्कोडिगामा १४९८ ई० में कालीकट पहुँचा। १६०० ई० में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कपनी की स्थापना हुई। १८वी शताब्दी के अर्ध भाग तक पुर्तगाली, अंग्रेज तथा फ्रांसीसी प्रमुत्व के लिये झगड़ते रहे, अंत में अंग्रेजों की विजय हुई। १७५७ ई० से १८५७ ई० तक भारत का अधिकांश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार मे रहा। सन् १८५७ मे क्रांति हुई और सन् १८५८ मे भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई यद्यपि गवर्नर जनरल की नियुक्ति सन् १७७४ से ही शुरू हो गई थी। १५ अगस्त, १९४७ ई० को भारत अंग्रेजों के शासन से मुक्त होकर एक स्वतंत्र देश हो गया।

संविधान — भारतीय संविधान के अनुसार सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म तथा उपासना की स्वतंत्रता, समान सामाजिक स्थिति तथा अवसर प्राप्त होंगे। भारत एक प्रभुसत्तासंपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य है जिसमें शासन की संसदीय पद्धति अपनाई गई है। ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त है जो भारत का नागरिक हो तथा उस निर्धारित तिथि को, जो उपयुक्त विधानमंडल द्वारा नियत की जायगी, २१ वर्ष से कम वय का न हो और जिसको संविधान अथवा किसी कानून द्वारा अन्यत्र वास, पागलपन, अपराध, भ्रष्टाचार अथवा गैरकानूनी कार्य के आधार पर अयोग्य न ठहराया गया हो।

केंद्रीय कार्यपालिका के अंतर्गत राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा प्रधान मंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद् होती है। राष्ट्रपति का चुनाव सानुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के आधार पर एकल संक्रमणीय मत द्वारा एक निर्वाचक मंडल करता है जिसमे संसद् के दोनों सदनों के तथा राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं। राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार अनिवार्य रूप से भारत का नागरिक, कम से कम ३५ वर्ष की उम्र का तथा लोकसभा का सदस्य बनने का पात्र होना चाहिए। राष्ट्रपति का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है और वह राष्ट्रपति पद के लिये दूसरी बार भी चुना जा सकता है। उपराष्ट्रपति का चुनाव उपर्युक्त विधि द्वारा ससद के दोनों सदनो के सदस्य करते हैं। उपराष्ट्रपति का भी कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है तथा वह राज्यसभा का पदेन सभापति होता है। राष्ट्रपति को कार्यसंचालन में सहायता तथा परामर्श देने के लिये प्रधान मंत्री के नेतृत्व मे एक मंत्रिपरिषद् की व्यवस्था है। प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। अन्य मत्रियों की नियुक्ति के सबध मे प्रधान मत्री राष्ट्रपति को परामर्श देता है। यद्यपि मंत्रिपरिषद् का कार्यकाल राष्ट्रपति की इच्छा पर ही निर्भर करता है, तथापि परिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।

संविधान के अनुसार भारतीय संघ की राजभाषा हिंदी होगी जो देवनागरी लिपि मे लिखी जायगी तथा सरकारी कार्यों के लिये भारतीय अंकों के अतरराष्ट्रीय रूपो का उपयोग होगा किंतु हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी का भी उपयोग सरकारी कार्यों के लिये जारी रखने की व्यवस्था, संसद ने अपने अधिकार के अनुसार की है।

राष्ट्र के प्रतीक — भारत का राष्ट्रीय चिह्न सारनाथ स्थित अशोक के उस सिंहस्तंभ की अनुकृति है जो सारनाथ के संग्रहालय में सुरक्षित है। भारत सरकार ने यह चिह्न २६ जनवरी, १९५० को अपनाया। उसमे केवल तीन सिंह दिखाई पड़ते है, चौथा सिंह दृष्टिगोचर नही है। राष्ट्रीय चिह्न के नीचे देवनागरी लिपि में 'सत्यमेव जयते' अंकित है।

भारत के राष्ट्रीय झंडे में तीन समांतर आयताकार पट्टियाँ हैं। ऊपर की पट्टी केसरिया रंग की, मध्य की पट्टी सफेद रंग की तथा नीचे की पट्टी गहरे हरे रंग की है। झंडे की लबाई चौड़ाई का अनुपात तीन और आठ का है। सफेद पट्टी पर चर्खे की जगह सारनाथ के सिंह स्तंभ वाले धर्मचक्र की अनुकृति है जिसका रंग गहरा नीला है। चक्र

का व्यास लगभग सफेद पट्टी की चौडाई जितना है और उसमें २४ भरे हैं।

कवि रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा लिखित 'जन-गण-मन' के प्रथम अंश को भारत के राष्ट्रीय गान के रूप मे २४ जनवरी, १९५० ई०, को अपनाया गया। साथ साथ यह भी निर्णय किया गया कि बंकिमचंद्र चटर्जी द्वारा लिखित 'वंदेमातरम्' को भी 'जन-गण-मन' के समान ही दर्जा दिया जायगा, क्योंकि स्वतंत्रता संग्राम में 'वंदेमातरम्' गान जनता का प्रेरणास्रोत था।

भारत सरकार ने देश भर के लिये राष्ट्रीय पंचाग के रूप में शक संवत् को अपनाया है। इसका प्रथम मास चैत है और वर्ष सामान्यत: ३६५ दिन का है। इस पचांग के दिन स्थायी रूप से अंग्रेजी पचांग के मास दिनो के अनुरूप बैठते है। सरकारी कार्यों के लिये अंग्रेजी कैलेंडर के साथ साथ राष्ट्रीय पंचाग का भी प्रयोग किया जाता है।

शिक्षा — भारत मे शिक्षा का उत्तरदायित्व मूलत: राज्य सरकारों पर है। केंद्रीय सरकार शिक्षा की सुविधाओं मे तालमेल स्थापित करती है, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से उच्च शिक्षा का स्तर निश्चित करती है और अनुसंधान तथा वैज्ञानिक एवं प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था करती है। शिक्षा की विकास योजनाओ का काम केंद्र तथा राज्य सरकारे मिलकर करती है। पिछले १५ वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई थी। सन् १९५०-५१ मे प्राथमिक शिक्षा के मान्यता-प्राप्त विद्यालयो की सख्या २.१ लाख थी, जो १९६२-६३ में बढ़कर ३.६७ लाख हो गई और इसी अवधि मे विद्यार्थियो की संख्या लगभग १८३ लाख से बढ़कर ३१३ लाख हो गई। माध्यमिक शिक्षा की प्रगति का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि जहाँ सन् १९५०-५१ मे कुल २०,८४४ माध्यमिक विद्यालय, लगभग ५२.३ लाख विद्यार्थी और २.१ लाख अध्यापक थे, वहा सन् १९६२-६३ मे विद्यालयो की सख्या ८२,८४६, विद्यार्थियो की सख्या २२६.७० लाख तथा अध्यापको की सख्या ७.८९, लाख हो गई। सन् १९६४ मे भारत मे ६२ विश्वविद्यालय थे, जिनमे लगभग १२ लाख विद्यार्थी थे। [प० द०]

भारत की अनुसूचित जातियाँ और कबीले

अनुसूचित जातियों की पहली आधिकारिक सूची भारत सरकार के (अनुसूचित जाति) आज्ञापत्र १९३६ के साथ परिशिष्ट रूप मे दी गई थी। यह सूची तत्कालीन असम, बंगाल, बिहार, बबई, मध्यप्रदेश एवं बरार, मद्रास, उडीसा, पंजाब और युक्त प्रान्तों के लिये विशेष रूप से तैयार की गई थी। इसके पूर्व ये जातियाँ दलित वर्गो के रूप मे जानी जाती थीं।

२. 'अनुसूचित जनजाति या कबीला' नाम का उपयोग भारत के संविधान के लागू होने से पूर्व नही किया गया था। भारत सरकार के अधिनियम १९३५ मे 'पिछडे कबीलों' का उल्लेख प्रांतीय लेजिस्लेटिव असेंबलियों के गठन के मिलसिले मे हुआ था; और उसके बाद ही भारत सरकार (प्रांतीय लेजिस्लेटिव असेबलियों) के आज्ञापत्र १९३६ के १३वें अनुच्छेद में इनकी निश्चित सूची दे दी गई। जिन तत्कालीन प्रांतों के लिये पिछडे कबीलों का निश्चयीकरण हुआ था, वे थे असम, बिहार, बंबई, मध्य प्रदेश, मद्रास व उडीसा।

३. संविधान अपनाए जाने के बाद अनुसूचित जातियों, तथा अनुसूचित कबीलों की भी नई तालिकाएँ राष्ट्रपति द्वारा संविधान की ३४१ एवं ३४२ धाराओं की शर्तों के अनुसार अनुज्ञापित की गई।

४. अनुसूचित जाति की संभाव्य कसौटी यह है कि वह अस्पृश्यता के व्यवहारों से उत्पन्न किसी अनर्हता या कठिनाइयों से उत्पीड़ित है या नही।

५. आबादी—पिछली दो जनगणनाओ के आधार पर अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित कबीलो की जनसख्या नीचे दी है :

जनगणना का वर्ष	सम्मिलित कुल संख्या	अनुसूचित जातियो की सख्या	अनुसूचित कबीलों की संख्या
१	२	३	४
१९५१	३६,०९,९१,८९७	५,५३,२७,०२१	२,२५,२५,४७७
१९६१	४३,९०,७२,८९३	६,४५,०४,११३	२,९८,४६,३००

अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित कबीलो की संख्या का अनुपात १९६१ की जनगणना के आधार पर प्राप्त पूरे देश की जनसंख्या का क्रमश: १४.६४% तथा ६.८०% था जबकि यह १९५१ की जनगणना के अनुसार क्रमश: १५.३२% तथा ६.२३% रहा।

६. संवैधानिक सुरक्षा व्यवस्था—भारत का संविधान अनुसूचित जातियो एवं अनुसूचित कबीलो के लिये अनेक सुरक्षात्मक व्यवस्थाएँ प्रस्तुत करता है। ये सारी सुरक्षा व्यवस्थाएँ प्रकट रूप में सविधान की ४६वी धारा मे निहित उस उच्च 'निदेशात्मक सिद्धांत' (Directive principle) को लागू करने के कार्य में सुविधा प्रदान करने के लिये उपबंधित की गई हैं जो निम्नलिखित हैं :

राज्य जनता के पिछडे वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियो (कबीलो) के लोगों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों की अभिवृद्धि के लिये विशेष सावधानी से प्रवृत्त करेगा और सामाजिक अन्याय तथा हर प्रकार के अपशोषण से उनकी रक्षा करेगा।

ये सुरक्षा व्यवस्थाएँ लोकसभा में तथा राज्यों के विधान मंडलों में सुरक्षित सीटों, सरकारी सेवाओं, आर्थिक, शैक्षणिक तथा सामान्य विकास, नागरिक अधिकारों के संरक्षण इत्यादि विषयों से संबद्ध हैं। इनका विवरण नीचे दिया जाता है

(क) लोकसभा तथा राज्यों के विधानमंडलों में प्रतिनिधित्व — सविधान की ३३०, ३३२ तथा ३३४ धाराएँ अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित कबीलों के लिये लोकसभा एवं विधानमंडलों में सीटों के संरक्षण की व्यवस्था करती है। प्रारंभ मे ये संरक्षण संविधान लागू

होने के बाद १० वर्षों तक के लिये किए गए थे। अब यह अवधि संविधान की ३३४वीं धारा के एक संशोधन द्वारा १० वर्ष और आगे तक की कर दी गई है।

संविधान की ८१वीं तथा ३३०वीं धाराओं की शर्तों के अनुसार परिसीमन आयोग (Delimitation commission) ने लोकसभा तथा विधानसभाओं मे चुनाव द्वारा भरी जानेवाली सीटों का निर्धारण विभिन्न राज्यों के लिये जिनमे जम्मू कश्मीर और नागालैंड अपवाद थे, १९६१ की मतगणना के आँकड़ों के आधार पर किया। ऐसी सीटों की कुल संख्या ४९० निर्धारित हुई जो १९५१ की मतगणना के आधार पर ४८१ थी। इन ४९० सीटों में ७५ (१९५१ की जनगणना के आधार पर ७४) अनुसूचित जातियों के लिये तथा ३३ (१९५१ मतगणना के आधार पर २९) अनुसूचित कबीलों के लिये हैं। आयोग ने चुनाव के लिये २७ और भी स्थान निर्धारित किए, जम्मू और कश्मीर के लिये छह, नागालैंड के लिये एक, 'नेफा' क्षेत्र के लिये एक, तथा केंद्र के अधीन अन्यान्य राज्यो के लिये १९। १९५१ की जनगणना के आधार पर जम्मू और कश्मीर के लिये छह, 'नेफा' के लिये एक सीट तथा अन्य संघीय राज्यों के लिये १८ सीटें रखी गई थीं; इन १८ स्थानों में से दो अनुसूचित जातियों के लिये तथा दो अनुसूचित कबीलों के लिये सुरक्षित रखे गए थे।

जहाँ तक राज्य की विधानसभाओं की बात थी, परिसीमन आयोग ने १९६१ की मतगणना के आधार पर ३,२३८ सीटों का निर्धारण किया, जब कि इसके पूर्व १९५१ की जनगणना के आधार पर निर्धारित सीटों की संख्या ३,१०२ थी। इन ३,२३८ सीटों में ४७१ (१९५१ के जनगणनानुसार ४७०) तथा २२७ (१९५१ के जनगणनानुसार २१) सीटों का संरक्षण क्रमश: अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित कबीलों के लिये किया गया है।

सविधान की १६४वीं धारा में कबीलो के हित के लिये एक पृथक् मंत्री की भी गुंजायश बिहार, मध्यप्रदेश एवं उड़ीसा के राज्यों के लिये की गई है। इस मंत्री पर ही अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्ग के भी हितों की रक्षा का प्रभार रहेगा। असम में भी, संविधान के छठे अनुच्छेद की धारा तीन, पैरा १४ के अनुसार राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्य के स्वशासित जिलों तथा स्वशासित क्षेत्रों के लिये जनकल्याण का प्रभार, मंत्रियों में से किसी एक को विशिष्ट रूप से सौंप दे। (नीचे अनुच्छेद घ का अनुभाग (१) तथा (२) देखिए) किंतु तथ्य यह है कि व्यवहार रूप मे उन सभी राज्यों मे, जहाँ अनुसूचित क्षेत्र अथवा अनुसूचित कबीले हैं, कबीलों के जनकल्याण के लिये मंत्रियों की नियुक्ति कर दी गई है, जो अनुसूचित जातियो के कल्याण के लिये भी उत्तरदायी हैं। इसके अतिरिक्त व्यवहारत: सभी ऐसे राज्यों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जातियों के किसी एक व्यक्ति को भी मंत्रिपद दिया गया है, यद्यपि संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है।

(ख) राज्य सेवाओं में प्रतिनिधित्व — संविधान की ३३५वीं धारा में इस बात की गुंजायश रखी गई है कि संघ अथवा राज्य की सेवाओं एवं पदों के लिये नियुक्तियाँ करते समय प्रशासन की क्षमता को बनाए रखने का ध्यान रखते हुए अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों के दावों पर भी विचार किया जाय। १६ (४) वीं धारा राज्यों के लिये इस बात की गुंजायश रखती है कि वह नागरिकों की ऐसी किसी पिछड़ी जाति के लाभार्थ नियुक्तियों अथवा पदों को सुरक्षित रखे जिसके संबंध में वह समझती हो कि राज्य की सेवाओं में उसका उपयुक्त प्रतिनिधित्व नहीं हो सका है।

१६वीं मुख्य धारा में इस बात की गुंजायश रखी गई है कि सरकारी नौकरियो के मामले में धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, वंश, जन्म-स्थान, आवास आदि अथवा इनमे से किसी एक का भी विचार किए बिना ही अवसर प्रदान करने मे समानता बरती जाय।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भारत सरकार ने निश्चय किया है कि जनवरी, १९५० के बाद सेवाओं मे जो स्थान रिक्त हों और जिनकी आपूर्ति भारतव्यापी आधार पर प्रत्यक्ष रूप से की जाय, उनमें अनुसूचित जातियों एवं कबीलों के लिये क्रमश: १२½ तथा ५ प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखे जायँ। तीसरी एवं चौथी श्रेणी के पदों के लिये सीधी भर्ती के लिये जो सामान्यत: किसी स्थान अथवा क्षेत्र के प्रत्याशियों को आकर्षित करती है, प्रदेशों, संघीय राज्यों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित कबीलों की जनसख्या के आनुपातिक आधार पर स्थान सुरक्षित कर दिए गए है।

केंद्रीय सरकार की सेवाओं के लिये नियुक्तियों के विषय मे अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित कबीलों के लिये कुछ और भी सुविधाएँ दी गई है, जैसे .

(क) नियुक्ति के लिये निर्धारित अधिकतम उम्र की सीमा में पाँच वर्ष की छूट तथा तत्संबंधी किसी भी परीक्षा में बैठने अथवा चुने जाने के लिये निर्धारित शुल्क में चतुर्थांश की कटौती।

(ख) परीक्षा द्वारा सीधी भरती किए जाने की स्थिति मे केंद्रीय लोकसेवा आयोग तथा नियुक्ति करनेवाले अन्य अधिकारियो को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों के वैसे प्रत्याशियो को अपना विशेष अनुमोदन देने की स्वतंत्रता जो परीक्षा मे कुछ कम अक प्राप्त कर उत्तीर्ण हुए हों।

(ग) जहाँ भरती परीक्षा द्वारा न होकर अन्य किसी जरिए होती हो, नियुक्ति अधिकारियो को इस बात की छूट है कि वे अनुसूचित जातियो एवं अनुसूचित कबीलों के प्रत्याशियो के लिये अर्हता का कुछ नीचा स्तर मान्य समझें, बशर्ते कि वे प्राविधिक एवं शैक्षणिक योग्यता की अल्पतम सीमा पूरी करते हों।

इसी भाँति विभिन्न राज्य सरकारो ने भी अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित कबीलों के लिये मुख्यत: राज्य मे उनकी जनसंख्या के आधार पर जगहे सुरक्षित कर दी है। इन्होने भी उपर्युक्त सभी अथवा अन्य कई सुविधाएँ भी अनुसूचित या परिगणित जातियों और परिगणित कबीलों को दे रखी हैं।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के प्रत्याशियों के शैक्षणिक स्तर को ऊँचा करने तथा उन्हें अखिल भारतीय प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं के लायक तैयार करने के लिये केंद्रीय सरकार ने इलाहाबाद तथा बंगलोर मे स्थानीय विश्वविद्यालयों द्वारा एक परीक्षापूर्व प्रशिक्षण का कार्यक्रम आरंभ किया है।

(ग) अस्पृश्यता निवारण

अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई है और संविधान की १७वीं धारा के अनुसार 'अस्पृश्यता' का किसी भी रूप मे व्यवहार निषिद्ध ठहराया

गया है। अस्पृश्यता से उत्पन्न किसी भी प्रकार की अनर्हता को बलात् लागू करना इस धारा के अंतर्गत कानून द्वारा दडनीय घोषित कर दिया गया है।

(घ) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के नागरिक अधिकारों की सुरक्षा तथा उनका शोषण न होने देने की व्यवस्था —

संविधान की १५वी धारा किसी भी नागरिक के साथ धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमे किसी एक के आधार पर इन मामलों में भेद भाव बरतने का निषेध करती है — (अ) दूकानों, सार्वजनिक जलपानगृहों, होटलो तथा सार्वजनिक मनोरंजनगृहों में प्रवेश अथवा (आ) कुओं, तालाबों, नहाने के घाटों, सड़को तथा ऐसे सार्वजनिक स्थानों का उपयोग, जो पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से गए सरकारी खर्च से बने हो या सार्वजनिक उपयोग के लिये घोषित किए गए हो। धारा २९ (२) के अंतर्गत किसी भी नागरिक को किसी शिक्षण संस्था में, जो सरकार द्वारा चलाई जाती हो अथवा सरकारी कोष से सहायता पाती हो, मात्र किसी धर्म, नस्ल, जाति, भाषा अथवा इनमे से किसी एक के भी आधार पर प्रवेश करने से रोका नही जा सकता। सविधान की उपर्युक्त शर्तों के सदर्भ में राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े नागरिकों के किसी भी वर्ग, अनुसूचित जातियो अथवा अनुसूचित कबीलों के उत्थान के लिये विशेष सुविधाएँ प्रदान करे।

धारा १९ अन्य बातो के साथ इस बात की भी सुरक्षापूर्ण सुविधा प्रदान करती है कि कोई भी व्यक्ति भारत के पूरे राज्य मे कही भी बेरोकटोक आ जा सकता है, ठहर सकता अथवा बस सकता है तथा सपत्ति प्राप्त या अधिकृत कर सकता है, अथवा उसे इच्छानुसार बेच दे सकता है। इस मामले मे भी राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि इन अधिकारो के उपयोग पर सार्वजनिक हित की दृष्टि से अथवा किसी परिगणित कबीले के हित की रक्षा के लिये युक्तियुक्त सीमा तक बंधन लगा सके।

संविधान की २३वी धारा के अनुसार आदमियों का बेचा या खरीदा जाना, बेगार, तथा अन्य सभी प्रकार के बलात् श्रम निषिद्ध करार दिए गए हैं।

संविधान के उपर्युक्त प्रतिबध अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों के हितों की रक्षा के लिये बड़े ही सहायक सिद्ध हुए है। पिछड़े तथा अज्ञानी होने के कारण ये लोग अवाछनीय व्यक्तियो द्वारा, जिनमे ठीकेदार, महाजन तथा सरकारी महकमो के छोटे अधिकारी तक आते हैं, बराबर बरगला लाए जाते रहे हैं। सरकार ने अब इन्हें ठगे जाने या शोषित किए जाने से बचाने के सबंध मे उचित कदम उठाए हैं।

(ङ) आर्थिक, शैक्षणिक एवं सामान्य विकास — पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत होनेवाले सामान्य विकास कार्यक्रमों से अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों को भी, सामान्य जनसंख्या का अंग होने के नाते, समान रूप से लाभ उठाने का हक है। तथापि ऐसा देखा गया कि इन लाभों में अपना उपयुक्त हिस्सा प्राप्त करने मे ये असमर्थ रहे हैं। अतः देश मे इन समुदायों को सामान्य स्तर पर लाने के लिये संविधान की ४६वी तथा २७५वी धाराओं के अनुसार विशेष कार्यक्रम तैयार किए गए है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में इन लोगों के लिये कोई सुनियोजित कार्यक्रम नही बनाया गया था। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये केवल ३२ करोड रु० (परिगणित जातियों के लिये सात करोड़ तथा परिगणित कबीलों के लिये २५ करोड़ रु०) की व्यवस्था की गई थी। दूसरी योजना की अवधि के अंतर्गत ही इनके लिये सुनियोजित कार्यक्रमों की व्यवस्था हुई। इस योजना मे ७९ करोड़ रुपयों की रकम परिगणित जातियों (२९ करोड़) तथा परिगणित कबीलों (५० करोड) के लिये निर्धारित की गई। इन कल्याणकारी योजनाओं मे केंद्र तथा राज्य सरकारो ने ५०:५० के अनुपात में हिस्सा बटाना स्थिर किया। द्वितीय योजना के कार्यकाल मे अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित कबीलों के हित के लिये कुछ ऐसे भी महत्व-पूर्ण कार्यक्रम स्थिर किए गए जिनके शत प्रति शत व्यय की पूर्ति केंद्र सरकार के ही अनुदान से करना स्थिर हुआ। योजना मे इन समुदायों के लिये निर्धारित कुल ७९ करोड़ रुपयो की रकम मे से ५२·०६ करोड़ रुपए (जिसमें २३·०८ करोड़ अनुसूचित या परिगणित जातियों तथा २८·९८ करोड़ परिगणित कबीलों के लिये है) राज्य क्षेत्र द्वारा (५०:५० के साझे पर) निर्धारित की गई है तथा २६·७४ करोड़ रु० की रकम (५·७३ करोड परिगणित जातियों के लिये तथा २१·०१ करोड़ परिगणित कबीलो के लिये) केंद्रीय सरकार के जिम्मे (शतप्रतिशत अनुदान स्वीकृति के आधार पर) रखी गई। उपलब्ध सूचनाओ से पता चलता है कि प्रथम योजना काल मे जहाँ ३२ करोड़ रु० की रकम स्थिर की गई थी, केवल २६·९१ करोड़ रु० का व्यय ही संभव हो सका (इसमे ७·०८ करोड परिगणित जातियों के लिये तथा १९·८३ करोड़ परिगणित कबीलो के लिये था)। दूसरी योजना के काल में ७९ करोड़ की निर्धारित रकम मे से ७०·९६ करोड़ ही खर्च हुए।

प्रथम तथा द्वितीय योजना कालो मे अनुसूचित कबीलो के लिये अनेक विकास कार्यक्रमो को कार्यान्वित किया गया। इनमे से मुख्य ये हैं—जमीन की बंदोबस्ती, पड़ती भूमि को कृषि योग्य बनाना; बीजो का वितरण तथा प्रदर्शन फार्मों की स्थापना; कर्मचारियों की तथा वनश्रमिकों की सहकार समितियों की स्थापना; सचारव्यवस्था मे सुधार; विशिष्ट वृत्तियों, शुल्को से मुक्ति तथा वजीफों की सुविधाएँ (मैट्रिक पास करने के पहले तथा बाद की); नए स्कूलों तथा आश्रम-विद्यालयो की स्थापना; पीने योग्य जल की आपूर्ति, आवासों की दशा मे सुधार; दवाखानो, जच्चागृहों तथा शिशुकल्याण केंद्रों तथा चलते फिरते स्वास्थ्य संगठनो की स्थापना, इत्यादि इत्यादि।

जहाँ तक अनुसूचित अर्थात् परिगणित जातियो का सवाल था, प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं में जो कार्य हाथ मे लिए गए उनमे सामान्यतः उनके शैक्षणिक विकास एवं अस्पृश्यता निवारण पर ही जोर दिया गया था।

प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं मे प्राप्त अनुभवों के आधार पर तृतीय पंचवर्षीय योजना मे एक काफी सुविचारित कार्यक्रम बनाया गया। एतदर्थ १०० करोड़ रु० की एकमुश्त रकम पूरी योजनावधि के लिये निर्धारित की गई जिसमे से ४० करोड़ रु० (८ करोड़ रु०

केंद्रीय निधि से तथा ३२ करोड़ राज्यनिधि से) परिगणित जातियों के लिये और ६० करोड़ रु० (२२ करोड़ रु० केंद्रीय निधि से तथा ३८ करोड़ रु० राज्य निधि से) परिगणित कबीलों के लिये था।

तीसरी पंचवर्षीय योजना मे अनुसूचित कबीलों के लिये जो कार्यक्रम निश्चित हुआ उसके अंतर्गत ये कार्य आते हैं—रोपनी के काम (shifting cultivation) में लगे हुए व्यक्तियों का पुनर्वासन (rehabilitetion); परिगणित कबीलो की वन श्रमिक सहकार समितियों के कार्यसंचालन की व्यवस्था, कबाइली क्षेत्रों के किसानों तथा बढ़ई, लोहार आदि को विशेष रुपया उधार मिलने की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बहूद्देश्यीय सहकार समितियों की स्थापना, भूमिसुधार; परती भूमि को कृषियोग्य बनाना तथा भूमि संरक्षण; सिंचाई की छोटी मोटी सुविधाएँ; उन्नत बीज, खाद, औजार तथा बैलों की आपूर्ति, उन्नत तरीकों के प्रदर्शन-प्रशिक्षण की सुविधाओं की व्यवस्था; मवेशी, मत्स्योद्योग, कुक्कुट, सूअर, भेड़ पालन का विकास, प्रशिक्षण तथा उत्पादन के मिले जुले केंद्रों की स्थापना और ग्रामोद्योगो में लगे देहाती कारीगरों को सहायता तथा सलाह देने की व्यवस्था, शिक्षा की सभी अवस्थाओं मे फीस का माफ किया जाना, छात्रवृत्तियो तथा छात्रावासो की सुविधा, प्राविधिक प्रशिक्षण के लिये वजीफे एवं शुल्क मुक्ति; दुर्गम स्थानों पर पहुँचने के हेतु पुलियों, पगडंडियो एवं पुलो का निर्माण, गतव्य पथों तथा जीप चलाने लायक जंगली रास्तों का निर्माण, दूरवर्ती एव दुर्गम स्थानों से जोड़नेवाले संपर्क मार्गों की मरम्मत; विभिन्न कबाइली क्षेत्रों मे रोगों की रोकथाम के उपाय, दवादारू के लिये चलते फिरते चिकित्सालयों की सुविधा, जच्चागृहो तथा शिशुकल्याण केंद्रों की स्थापना, आवश्यक स्थानों पर पेय जल की व्यवस्था इत्यादि।

योजना के अंतर्गत कबाइली विकास प्रखंडों की स्थापना का एक बड़ा महत्वाकांक्षी कार्यक्रम भी है. जिसका कार्यान्वियन कबाइली क्षेत्रों में सामुदायिक विकास प्रखडों के ढग पर हो रहा है। द्वितीय योजना काल मे ऐसे ४३ प्रखंड खोले गए जिनमे से प्रत्येक पर २७ लाख रु० खर्च किए गए। तीसरी योजना मे यह रकम २७ लाख के बजाय २२ लाख रुपये प्रति ब्लाक कर दी गई। इसके बाद आगे के पाँच वर्षों के ऐसे हर प्रखड के लिये १० लाख रु० अधिक की गुंजायश की जायगी। इन प्रखंडो की स्थापना में मूल प्रेरक उद्देश्य यह है कि इनके द्वारा कबाइली क्षेत्रों मे सघन तथा समन्वित विकास की स्थिति लाई जाय। तीसरी योजनावधि मे ऐसे ४५० प्रखंड स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया। प्रखंडों पर होनेवाला शत-प्रति-शत व्यय केंद्रप्रेरित कार्यक्रम के आधार पर किया जायगा।

अनुसूचित जातियो के लिये तय किए गए कार्यक्रमों मे शैक्षणिक विकास, आर्थिक उन्नयन, स्वास्थ्य एवं आवास आदि की सुविधाएँ संमिलित हैं। ये सुविधाएँ निस्संदेह अनुसूचित जातियों को मिलनेवाले उन लाभों की अनुपूरक हैं जो उन्हे सामान्य विकास कार्यक्रमों के सिलसिले में योजना के अंतर्गत क्रमश: बढ़नेवाले पैमानों पर प्राप्त हैं। ऐसा इसलिये है कि अनुसूचित जातियाँ अनुसूचित कबीलों से बिलकुल भिन्न स्थिति में है और विस्तृत क्षेत्रों में बिखरी हुई हैं तथा सामान्य आबादी के साथ साथ जीवनयापन कर रही हैं।

निम्नलिखित कार्यक्रम जो अनुसूचित जातियों के कल्याण की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझे गए हैं, केंद्र द्वारा प्रेरित सामान्य कार्यक्रमों के अंतर्गत रखे गए हैं जिनका पूर्ण व्ययभार भारत सरकार ही शत-प्रति-शत वहन करेगी।

(अ) अस्वच्छ कार्यों मे लगे हुए लोगों की काम करने की स्थितियों में सुधार जिनके अंतर्गत सिर पर मल का बोझ ढोने की प्रथा का निवारण भी है।

(आ) मेहतरों और भंगियों के आवासगृहों के निर्माण के लिये धन की सहायता।

(इ) उन अनुसूचित जातियों के घर बनवाने के लिये स्थान की व्यवस्था :

(क) जो अस्वच्छ पेशो मे लगे हुए हैं, और

(ख) जो भूमिहीन श्रमिक है।

प्रथम पचवर्षीय योजनावधि मे १.५८ करोड़ रु० अनुसूचित जातियो के लिये तथा ०.४२ करोड़ रु० अनुसूचित कबीलों के लिये मैट्रिक के बाद की शिक्षा के वजीफों पर खर्च किया गया। दूसरी योजनावधि मे यही व्यय बढकर अनुसूचित जातियो के लिये ६.२६ करोड रु० तथा अनुसूचित कबीलो के लिये १.१० करोड रु० का हो गया। तीसरी योजना के प्रथम दो वर्षों मे यह क्रमश: ४.८२ करोड़ तथा ०.८१ करोड रु० रहा।

१९५४ मे अनुसूचित जातियों तथा कबीलों के लिये विदेशों में अध्ययनार्थ आर्थिक मदद देने की भी व्यवस्था की गई। तब से १९६२-६३ तक अनुसूचित जातियों के ३२ तथा अनुसूचित कबीलों के ३१ व्यक्तियों को ऐसी आर्थिक मदद दी गई। इसके अतिरिक्त कुछ विद्यार्थियो को समुद्रयात्रा का खर्च भी दिया गया।

गैरसरकारी संस्थाओ की भी बडी सख्या अनुसूचित जातियों तथा कबीलों के लिये अनेक क्षेत्रो में अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कर रही है। एक से अधिक राज्यो मे कार्य करनेवाली सस्थाओ को भारत सरकार द्वारा अनुदान सहायता के लिये मान्यता दी गई है। तीसरी योजनावधि में १.२५ करोड़ की रकम इन संस्थाओ के लिये अनुदान के रूप मे स्वीकृत की गई। अनुसूचित जातियों के लिये जिन सस्थाओ को अनुदान की सहायता के लिये चुना गया है वे है — हरिजन सेवक संघ, दिल्ली, भारतीय डिप्रेस्ड क्लासेज लीग, दिल्ली; ईश्वरशरण आश्रम, इलाहाबाद; भारत दलित सेवक सघ, पूना, दि इंडियन रेडक्रास सोसायटी, दिल्ली, दि रामकृष्ण मिशन, नरेंद्रपुर; दि हिंद स्वीपर्स' सेवक समाज, दिल्ली; दि सर्वेंट्स ऑव इंडिया सोसायटी, पूना। अनुसूचित कबीलो के लिये काम करनेवाली जो संस्थाएँ ऐसा अनुदान पा रही हैं वे हैं — भारतीय आदिम जाति सेवक सघ, दिल्ली; रामकृष्ण मिशन, चेरापूँजी; टाटा इस्टीट्यूट ऑव सोशल साइंसेज, बंबई; आंध्र प्रदेश आदिम जाति सेवक संघ, हैदराबाद; दि इडियन कौंसिल ऑव चाइल्ड वेलफेयर, दिल्ली; रामकृष्ण मिशन, शिलांग; तथा सर्वेंट्स ऑव इंडिया सोसायटी, पूना।

(च) अनुसूचित कबीलों के लिये अन्य एहतियाती काररवाइयाँ

१. संविधान की पाँचवीं अनुसूची — इसके अंतर्गत राष्ट्रपति को किसी भी ऐसे पिछड़े अविकसित क्षेत्र को, जहाँ अनुसूचित कबीलों की एक अच्छी खासी आबादी रहती हो, अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर

देने का अधिकार है। इन आठ राज्यों मे ऐसे क्षेत्रों की घोषणा की गई है—आंध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब और राजस्थान। यद्यपि ये अनुसूचित क्षेत्र भी उस राज्य के ही अंग रूप में प्रशासित होते हैं, जिसमे वे स्थित हैं, तथापि इस अनुच्छेद के अनुसार राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया है कि वे (क) केंद्रीय अथवा राज्य सरकार के किसी कानून को वहां न लागू होने दें या संशोधित रूपमें लागू करने का आदेश दें तथा (ख) इन क्षेत्रों मे शांति एवं अच्छे प्रशासन के लिये उपनियम तैयार करें, अन्य बातों के साथ साथ इन उद्देश्यो के लिये सचेष्ट हों—

(१) अनुसूचित कबीलो द्वारा अथवा उनके सदस्यों में भूमि हस्तांतरण को रोकने या प्रतिबंधित करने के लिये।

(२) अनुसूचित कबीलो में भूमि के बटन का नियमन करने के लिये।

(३) अनुसूचित कबीलो के सदस्यों को ऋण देनेवाले लोगो की सूदखोरी का नियंत्रण करने के लिये।

इस पाँचवे अनुच्छेद मे यह भी गुंजायश रखी गई है कि प्रत्येक अनुसूचित क्षेत्रोवाले राज्य अथवा यदि राष्ट्रपति का निर्देश हो तो उन राज्यो मे भी जहाँ अनुसूचित क्षेत्र तो नही किंतु अनुसूचित कबीले है, एक कबाइली सलाहकार समिति की स्थापना की जाय जिसका कर्तव्य यह हो कि वह उस राज्य के अनुसूचित कबीलो के कल्याण व उत्थान संबंधी उन मामलो पर उचित सलाह दे जिसकी ओर राज्य के राज्यपाल महोदय ध्यान दिलावे। इन सभाओ मे १० से अधिक सदस्य नही रहने चाहिए जिसमे यदि हो सके तो तीन चौथाई तक की सख्या मे राज्य की विधानसभा मे अनुसूचित कबीलो के प्रतिनिधि ही रहे। यदि किसी राज्य मे ऐसी कबाइली सलाहकार समिति मे विधानसभा मे स्थित अनुसूचित कबीलो के प्रतिनिधियो की सख्या उनके द्वारा पूरी की जानेवाली निर्धारित जगहो से कम पड़ती हो तो उन शेष जगहो पर केवल अनुसूचित जातियो के ही सदस्य रखे जाने चाहिए। अब तक ऐसी कबाइली सलाहकार समितियाँ आंध्रप्रदेश, गुजरात, बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब और राजस्थान में कायम हुई है। इन सब राज्यो में अनुसूचित कबीले तो हैं किंतु अनुसूचित क्षेत्र नहीं है।

पाँचवें अनुच्छेद (अनुसूची) की एक अन्य व्यवस्था या सुविधा के आधार पर केंद्रीय सरकार का कार्यकारी अधिकार इतना बढा दिया गया है कि वह राज्यो को अनुसूचित क्षेत्रो के प्रशासन के संबध मे निर्देश दे सके। अभी तक इस प्रकार का निर्देश देने का कोई अवसर नही आया है।

(२) **संविधान का छठा अनुच्छेद**--संविधान का छठा अनुच्छेद असम के कबाइली क्षेत्रों के प्रशासन से संबद्ध है। ये क्षेत्र इन विभागों मे बँटे हुए हैं :

(क) स्वायत्त अधिशासी जिले जैसे संयुक्त खासी जैंतिया पहाड़ियों का जिला, गारो पहाड़ियों का जिला, मिजो जिला, उत्तरी कछार पहाड़ियों का जिला, मिकिर पहाडियाँ; तथा

(ख) उत्तर पूर्वी सीमा एजेंसी (नेफा) जिसमे उत्तर पूर्वी सीमा का क्षेत्र (बलिपास सीमा क्षेत्र समेत) तिरप-सीमा भूभाग, अबोर पहाड़ियों का जिला, मिस्मी पहाड़ियों का जिला।

सभी ऐसे स्वायत्त जिलों के लिये अनुच्छेद मे जिला समितियों तथा स्वायत्त क्षेत्रो के लिये क्षेत्रीय समितियाँ स्थापित करने की व्यवस्था रखी गई है। इन समितियो मे २४ से अधिक सदस्य नहीं होंगे जिनमें कम से कम तीन चौथाई सदस्य बालिग मतदान के आधार पर चुने जाएँगे। असम के सभी स्वायत्त जिलों में ऐसी जिला समितियाँ कायम हैं और एक क्षेत्रीय समिति भी मिजो जिले के पावी लखेर क्षेत्र में गठित हुई है।

इन जिला एवं क्षेत्रीय समितियों के अधिकार ये हैं .

(१) कबाइली क्षेत्र मे अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर इतर व्यक्तियो द्वारा किए जानेवाले महाजनी एवं व्यापार के कार्य के नियमन नियंत्रण के लिये नियम बनाना।

(२) शासी जिलों एवं स्वशासी क्षेत्रो मे न्याय की व्यवस्था करना।

(३) प्राइमरी स्कूलों, दवाखानो, बाजारों, काँजीहाउसों, नौघाटों, मत्स्य क्षेत्रों, सडको एवं नहरो की स्थापना, निर्माण एवं प्रबंध करना तथा प्राइमरी स्कूलो मे प्रारंभिक शिक्षा के लिये उपयुक्त भाषा एवं पढ़ाने के लिये उपयुक्त भाषा को व्यवस्थित करना और,

(४) लगानों का निर्धारण एव संग्रह तथा निम्नलिखित कर लगाने और वसूल करने का काम ·

(क) पेशो, व्यापारों, व्यवसायों एवं नौकरियो पर

(ख) जानवरो, सवारियो तथा किश्तियों पर

(ग) बिक्री के लिये बाजार मे लाई गई चीजों तथा नौघाटों पर आनेवाले सामान एवं मुसाफिरो पर; तथा

(घ) स्कूलो, दवाखानो तथा सडको की रखरखाव के लिये।

इन अधिकारो मे निम्नोक्त विषयों के संबध मे कानून बनाने के अधिकार भी संमिलित हैं ·

(क) उन भूमियो का, जो संरक्षित वन के रूप मे नही हैं,

कृषि या पशुचारण अथवा आवासीय या कृषि को अन्य उद्देश्यो, यथा किसी शहर या गाँव के निवासियो के लाभार्थ नियतन, अधिकरण, उपयोग अथवा पृथक्करण।

(ख) ऐसे किसी वन का प्रबंधकार्य जो संरक्षित वन नही है।

(ग) कृषिकार्य के लिये किसी नहर अथवा जलमार्ग का उपयोग।

(घ) 'झूम' प्रणाली अथवा परिवर्ती कृषि के अन्य प्रकार का नियमन।

(ङ) गाँव या कस्बा समितियो अथवा सभाओं की स्थापना तथा उनके अधिकारों का निर्धारण।

(च) गाँव अथवा शहरसंबधी किसी अन्य मामले यथा देहाती या शहरी पुलिस और सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के संबध में।

(छ) मुखियो या प्रधानों की नियुक्ति या उत्तराधिकार।

(ज) संपत्ति की विरासत

(झ) विवाह और

(ञ) सामाजिक रीतिरिवाज

अनुच्छेद में इस बात का भी उपबंध है कि जिन विषयों के संबंध

कानून बनाने का अधिकार जिला सभाओं या क्षेत्रीय सभाओं को है, उनके संबंध में राज्य विधानमंडल का कोई अधिनियम कानून नहीं बना सकता तथा राज्य विधानमंडल का कोई भी अधिनियम जो कच्ची शराब की खपत को रोकने अथवा प्रतिबंधित करने के विषय में है, किसी भी स्वशासी जिले या क्षेत्र में, वहाँ की क्षेत्रीय अथवा जिला सभाओं की सहमति के बिना लागू नहीं किया जा सकता। असम के राज्यपाल को भी इस बात का अधिकार है कि वह संसद द्वारा या असम विधानसभा द्वारा पारित किसी अधिनियम को, जिनका उल्लेख उपर्युक्त उपबंधों में न हुआ हो, नहीं है, सार्वजनिक सूचना द्वारा लागू होने से रोक दे अथवा कुछ संशोधनों के साथ ही किसी स्वायत्त जिले अथवा स्वायत्त क्षेत्र में लागू होने दे।

अनुच्छेद असम के राज्यपाल को अधिकार भी देता है कि वह किसी स्वायत्त क्षेत्र के प्रशासन के संबंध में या उनके द्वारा उल्लिखित किसी विशिष्ट मामले की जाँच करने और तत्संबंधी विवरण देने के लिये किसी भी समय एक आयोग की नियुक्ति कर सके।

राष्ट्रपति की पूर्वानुमति लेकर असम का राज्यपाल, एक नोटिस जारी करके उपर्युक्त सभी अथवा कुछ उपबंधों को 'नेफा' के किसी भी क्षेत्र में लागू कर सकता है। जब तक कोई ऐसी नोटिस नहीं निकाली जाती 'नेफा' क्षेत्र का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल के माध्यम से होता रहेगा। अभी तक ऐसी कोई नोटिस नहीं निकाली गई है।

(छ) अनुसूचित कबीलों के कल्याणार्थ हुई प्रगति के मूल्यांकन की व्यवस्था—

संविधान की ३३९ धारा राष्ट्रपति को इस बात का अधिकार देती है कि वह अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन तथा अनुसूचित कबीलों के कल्याण कार्यों के संबंध मे रिपोर्ट देने के लिये आयोग की नियुक्ति करे। ऐसा एक आयोग श्री यू० एन० ढेबर की अध्यक्षता मे नियुक्त किया गया था जिसने अत्यंत उपयोगी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है। उक्त प्रतिवेदन मे समझाई गई बहुत सी बातो को सरकार ने कार्यान्वित करने की दृष्टि से स्वीकार कर लिया है।

राष्ट्रपति को संविधान की ३३८वीं धारा के अंतर्गत यह अधिकार दिया गया है कि अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित कबीलो के लिये संविधान मे जो रक्षात्मक उपबंध रखे गए हैं, उनके संबंध की सारी बातों की जाँच करने के लिये विशेष अधिकारी की नियुक्ति करे जो हर उपयुक्त अवधि के बाद इस बात का प्रतिवेदन प्रस्तुत करे कि उक्त सुरक्षात्मक उपाय ठीक तरह से काम दे रहे हैं या नहीं। नवंबर, १९५० मे पहली बार ऐसा अधिकारी नियुक्त किया गया, जिसे अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित कबीलों के आयुक्त की संज्ञा दी गई। तब से इस आयुक्त द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष १२ ऐसे वार्षिक विवरण प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

सामान्य बातें—अनुसूचित जातियों की मुख्य समस्या है, उनके प्रति अस्पृश्यता के व्यवहार से उत्पन्न बाधाओं के कारण उनका शैक्षणिक, सामाजिक तथा आर्थिक मामलों में पिछड़ापन। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, यह कुरीति संविधान द्वारा निषिद्ध हो चुकी है तथा अस्पृश्यता का व्यवहार करनेवाले लोगों को दंडित करने का कानून भी बन चुका है। यह कुसंस्कार अब तेजी के साथ गायब होता जा रहा है।

जहाँ तक अनुसूचित जनजातियों (कबीलों) का सवाल है, समस्या बड़ी जटिल है। भारतीय कबीलो के लोग सामाजिक, आर्थिक दशा का ऐसा विस्तार उपस्थित करते हैं, जिसमे प्रायः एकाकी कबाइली जीवन से लेकर विभिन्न मात्रा तक के आधुनिक स्वरूप, यहाँ तक कि सामान्य जनसमुदाय में पूर्ण स्वायत्तीकरण की अवस्था तक शामिल है। उनके कल्याण के लिये अपनाए गए कार्यक्रमों में इस बात की पूरी सतर्कता बरती जाती है कि उनका विकास उनकी स्वतंत्र मेधा के आधार पर हो, और उनपर बाहरी तौर से कुछ भी लादा न जाय। एक लंबे समय से कुछ अवांछनीय व्यक्तियों द्वारा अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये उनका उपयोग किया जाता रहा है, अतः उनसे सौहार्द एवं मैत्रीपूर्ण संपर्क भी अपेक्षित है। उनके कल्याण के लिये बनाई गई परियोजनाएँ इन्ही नीतियों के आधार पर प्रस्तुत की गई हैं। [वि० च०]

भारतचंद्र बंगाल में भारतचंद्र विद्यासुंदर काव्यपरंपरा के श्रेष्ठ कवि हुए हैं। ईश्वरचंद्र गुप्त ने भारतचंद्र की बहुत सी रचनाओं की खोज करके उन्हें 'भारतचंद्रेर ग्रंथावली' नाम से सन् १८५५ ई० में पुस्तकाकार प्रकाशित किया। इसी मे उन्होने उनकी खोजपूर्ण जीवनी भी प्रकाशित की है। इसके अनुसार कवि दक्षिण राढ़ी भुरशिट परगने मे स्थित पेंड़ो वसतपुर ग्राम के निवासी एवं मुखर्जी ब्राह्मण थे। इनके एक पूर्वपुरुष प्रतापनारायण अत्यंत प्रसिद्ध व्यक्ति थे। इनके पिता का नाम नरेंद्रनारायण एवं माता का नाम भवानी था। इनका जन्म १७१२-१३ ई० मे हुआ था एवं मृत्यु ४८ वर्ष की उम्र में सन् १७६०-६१ मे हुई थी। भारतचंद्र ने विवाहोपरात अल्प आयु मे ही गृहत्याग कर दिया और देवानदपुर मे रामचंद्र मुंशी के पास आश्रय लिया। वही इन्होने संस्कृत और फारसी की शिक्षा ग्रहण की। शिक्षाकाल मे ही काव्यरचना भी प्रारंभ कर दी थी। वहीं पर उन्होने अपने आश्रयदाता के अनुरोध से सत्यनारायण संबधी दो छोटे पांचाली काव्य लिखे थे। शिक्षा समाप्त करने के उपरांत वे घर लौट आए। इनकी पैतृक जमींदारी को बर्दवान के दीवान ने आत्मसात् कर लिया था। भारतचंद्र उसे छुड़ाने राजदरबार गए। वहाँ उन्हे बंदी बना लिया गया। किसी प्रकार भाग कर पुरी पहुँचे। वहाँ से वैष्णव धर्म ग्रहण करके वृंदावन की ओर चल दिए। राह से एक आत्मीय उन्हे लौटा लाया। कुछ दिनों के बाद वे गृहत्याग करके जीविका की खोज मे चल दिए। नवद्वीप के राजा कृष्णचंद्र राय ने उन्हें अपने यहाँ आश्रय दिया। मूलाजोड़े नामक ग्राम मे उन्हे जमीन इत्यादि देकर उन्हें अपना सभाकवि बनाया। इनके तीन पुत्र थे परीक्षित, रामतनु और भगवान्।

भारतचंद्र के नाम से कई एक छोटी, बड़ी रचनाएँ प्राप्त हैं। इनकी सुप्रसिद्ध रचना 'अन्नदामंगल' अथवा 'अन्नपूर्णामंगल' है। इसकी रचना राजा कृष्णचंद्र राय की आज्ञा से हुई थी। इसमें तीन स्वतंत्र उपाख्यान हैं। इस काव्य में कई गीत बड़े सुंदर हैं।

भारतचंद्र नागाष्टक एवं गंगाष्टक नाम की दो रचनाएँ संस्कृत में की थीं। रसमंजरी नाम से एक नायक-नायिका-भेद संबंधी अनुवाद ग्रंथ भी प्राप्त है। भारतचंद्र अत्यंत सुंदर कविता

करते थे। शब्दचयन, छंदों का प्रवाह, अलंकारों का प्रयोग, उक्तिचातुर्य सबको लेकर इनकी काव्यप्रतिभा विकसित हुई है। इनकी उक्तियाँ काफी प्रचलित हैं। प्राचीन काव्यों की विषयपरंपरा के प्रतिकूल इन्होंने नए विषयों, जैसे वर्षा, वसंत, वासना इत्यादि पर कविता की है। इनके परवर्ती कवियों पर इनका बहुत प्रभाव है। [र० कु०]

भारत में डच, हॉलैंड के विभिन्न नगरों में भारत से व्यापार करने के उद्देश्य से स्थापित कंपनियों का दिसंबर, १६०१ में एक संमिलित अधिवेशन हेग नगर में हुआ जिसके एक प्रस्ताव के अंतर्गत संयुक्त कंपनी की रूपरेखा निर्धारित की गई, तथा इसे मार्च, १६०२ में राजकीय प्रमाणपत्र (चारटर) प्रदान किया गया। इस संयुक्त कंपनी ने अपना प्रारंभिक प्रयास मलाया प्रायद्वीप अथवा मसाले के द्वीपों तक ही सीमित रखा। जावा में अपनी सत्ता का केंद्र स्थापित करके पुर्तगाल अधिकृत बहुत से स्थानों को हस्तगत कर लिया। १६०३ ई० में कंपनी के डाइरेक्टरों के आदेशानुसार व्यापारिक सुविधाओं की खोज कारोमंडल के तट पर की गई। १६०५ ई० में मसुलीपटम बंदरगाह में प्रथम डच कोठी की स्थापना हुई। शीघ्र ही पेरापोली (निज़ामपटम) में दूसरी कोठी का निर्माण हुआ। अगले वर्ष १६०६ मे गोलकुंडा के सुलतान ने निर्यात कर की दर चार प्रति शत निर्धारित कर दी, परतु स्थानीय कर्मचारियों ने इस आज्ञा का उल्लंघन किया। डच इस व्यवहार से क्रोधित हुए और उन्होंने उस स्थान को त्यागने की धमकी दी। अतः उन्होंने जिंजी के नायक से समझौता करके देवनामपटनम् मे एक कोठी स्थापित कर ली और दुर्ग भी वहाँ बनाया। इसके बाद तीरूपापुलियूर मे भी उन्होंने एक कोठी की स्थापना की।

डचों के रुख से प्रभावित होकर तथा निर्यात व्यापार मे क्षति की संभावना से भय खाकर गोलकुंडा के सुलतान ने उनको पुलीकट मे कोठी बनाने की आज्ञा प्रदान की और इसके साथ साथ पुर्तगालियो को वहाँ से निकाल दिया। पुलीकट मे डचों ने अपने सिक्के ढालना प्रारंभ किया और थोड़े समय बाद सुलतान से यह समझौता कर लिया कि निर्यात कर की जगह वह उसको ३००० पेगोडा प्रति वर्ष दिया करेंगे।

इस प्रकार कारोमंडल तट पर डच व्यापार की निरंतर वृद्धि होती रही। अतः १६१७ मे उनके मुख्य केंद्र पुलीकट मे गवर्नर की नियुक्ति हुई। परंतु जब १७वी शताब्दी के अंतिम चरण मे गोलकुंडा राज्य का विघटन होने लगा और मुगल अग्रसर नीति के परिणामस्वरूप शासनव्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई तब डचों ने १६८६ में पुलीकट से अपना केंद्र हटाकर नागापटम् में स्थापित किया। इसके अतिरिक्त पोर्टो नोवो, सद्रासपटम, पालाकोला, नगलवाजे, विमलीपटम् इत्यादि मे भी उन्होंने व्यापारिक सुविधा हेतु इमारतें बनवाईं।

यद्यपि डच मुख्यतः कारोमंडल तट पर ही अपना ध्यान केंद्रित करते रहे और उन्होंने इसी क्षेत्र में अपने व्यापार को चलाने का पूर्ण प्रयास किया, तथापि वह भारतवर्ष के सामुद्रिक तट के अन्य क्षेत्रों के प्रति बिल्कुल ही उदासीन न रहे। प्रारंभ मे जिन डच साहसी व्यक्तियों ने गुजरात पहुँचने का साहस किया उन्हें कोई विशेष सफलता प्राप्त न हुई। परंतु क्रमशः इस दिशा में भी उनका प्रवेश होता गया। कुछ डच व्यापारी १६०६ और १६०७ में ही सूरत आ पहुँचे परंतु पुर्तगालियों और मुगल अधिकारियों की शत्रुता से भयभीत होकर उन्होंने आत्महत्या कर ली। अंत मे अंग्रेजों की सफलता से प्रोत्साहित होकर उन्होंने भी उधर कदम उठाने का संकल्प किया।

डच कंपनी गुजरात से व्यापार करने के लिये अत्यंत उत्सुक थी। इस आशय से वान ड ब्रोइक १६१६ मे सूरत पहुँचा और सर टामस रो के विरोध के बावजूद स्थानीय लोगों को अपने संपर्क से प्रभावित करके उसने व्यापार के लिये आज्ञा प्राप्त कर ली और दो वर्ष तक सूरत में ही रुका रहा। उसने राजकुमार शाहजहाँ से भी संतोषजनक समझौता कर लिया। शीघ्र ही भड़ौंच, अहमदाबाद, बुरहानपुर, आगरा में डच कोठियाँ स्थापित हो गई जहाँ नील और सूती कपड़ों का व्यापार होने लगा। १६२४ में गुजरात क्षेत्र के लिये एक पृथक् कार्यमंडल बना दिया गया।

१६२७ में कारोमंडल क्षेत्र से कुछ लोगों को बंगाल में व्यापारिक केंद्र स्थापित करने के लिये भेजा गया। सर्वप्रथम डचों ने पिप्पली को चुना, परंतु बाद को ये लोग बालासोर मे जाकर बसे। १६५३ तक इनके व्यापार का इतना प्रसार हो गया कि इन्होंने चिंसुरा, कासिम बाजार, पटना मे भी अपनी कोठियाँ बना लीं। व्यापार से उन्हें अत्यधिक लाभ हुआ।

कार्यक्रम की गतिविधि में डचों को मार्ग मे विभिन्न दिशाओं से आने वाली अड़चनों का सामना करना पड़ा। पुर्तगाली तो उनके घोर शत्रु थे ही, कुछ समय पश्चात् अंग्रेजो ने भी उनका विरोध करना आरंभ कर दिया। परंतु इसका कारण केवल व्यापारिक द्वंद्व ही न था; इसमें यूरोपीय कूटनीति की चालें भी निहित थी। इसके साथ साथ भारतवर्ष के क्षेत्र मे उनको मुगल अधिकारियों की नित्यप्रति परिवर्तनशील मनोवृत्ति भी दुःखी किया करती थी। इतने पर भी ये लोग लगभग एक शताब्दी तक अपना काम चलाते रहे। परतु जब १८वीं शताब्दी के प्रथम दशक से औरंगजेब की मृत्यु के कारण देश की दशा अस्तव्यस्त होने लगी तो इसका दुष्प्रभाव जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ना स्वाभाविक ही था, अत डचों की भी क्षति होने लगी।

यद्यपि इस समय डच सत्ता और व्यापार का प्रमुख केंद्र बटेविया में था परंतु भारत के समुद्रीतटों विशेषत मलाबार, कारोमंडल, तथा बंगाल मे चिंसुरा आदि स्थानो मे भी इनकी कोठियाँ स्थापित हो चुकी थीं। मुगल साम्राज्य के विघटन के पश्चात् इन सब क्षेत्रों में अर्धस्वतत्र राज्यो का प्रादुर्भाव हुआ। अतएव जब सुरक्षा की आवश्यकता से प्रेरित होकर डचों ने अपनी व्यापारिक कोठियों में परिवर्तन कर दिया तब स्थानीय राजनीति मे उनकी रुचि अग्रसर होने लगी। मलाबार क्षेत्र मे हैदरअली मे इनका संघर्ष हुआ और कर्नाटक क्षेत्र मे नवाबों से, अतः बंगाल मे भी इन्होने अपने हाथ पैर चलाना प्रारंभ किया। परंतु स्थानीय शासकों के अतिरिक्त इनके यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियो ने भी इन्हे चैन से न रहने दिया। प्लासी के युद्ध के पश्चात् बगाल मे डचो की परिस्थिति डावाँडोल होने लगी। अंग्रेजों ने इनकी चिंसुरावाली कोठी छीन ली, तथा इस संदेह से प्रेरित होकर कि डचो और मीर जाफर के मध्य कोई गुप्त समझौता है, उनको उत्पीड़ित करना प्रारंभ कर दिया। जब १७८० मे लार्ड

मैकार्टिनी मद्रास का गवर्नर नियुक्त किया गया तब उसको यह आदेश दिया गया कि वह डचों की कोठियों को नष्टभ्रष्ट कर दे। अत: १७८० में अंग्रेजों ने नागापटम् पर अधिकार कर लिया। इस घटना के बहुत पूर्व १७५० ई० में फ्रांसीसी पदाधिकारी डूप्ले ने मसुलीपटम् को डचों के हाथ से छीन लिया था। इसी गतिविधि से डचों का अधिकार भारतवर्ष से हटने लगा और उनकी सत्ता एवं व्यापार दोनों ही का भारत में लोप हो गया। [ब० प्र० स०]

भारत में पुर्तगाली भारत में पुर्तगाली दो उद्देश्यों से प्रेरित होकर आए, एक था व्यापार का प्रसार और दूसरा था मसीही धर्म का प्रचार। सन् १४५३ ई० में कुस्तुनतुनिया में यूरोपवालों की पराजय के उपरांत पूर्वी देशों से संपर्क का स्थलीय मार्ग बंद हो गया। तब यूरोप के समुद्रतटीय प्रदेशों ने उस दिशा में पहुँचने के लिये जलमार्ग खोजने की योजनाएँ बनाना प्रारंभ किया। अत: भारत को ढूँढता हुआ कोलंबस अमरीका जा पहुँचा और अफ्रीका के पश्चिमी तट का सहारा लेकर वास्को ड गामा १४९८ ई० में मलाबार स्थित कालीकट के बंदरगाह पर आ लगा। इन दोनों साहसी नाविकों को पुर्तगाल के सम्राट् ने प्रोत्साहित किया तथा उनकी सफलता के लिये साधन जुटाए।

अपनी तीसरी यात्रा के बाद ही वास्को ड गामा कनानौर में एक व्यापारिक कोठी स्थापित कर सका। चूँकि ड गामा और कालीकट के राजा (जमोरिन) में झगड़ा हो गया था, कोचीन के राजा ने नवागंतुकों का पक्ष लेकर उन्हें व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान कीं और उन्हें क्वीलन और अन्य तटवर्ती स्थानों में कोठियाँ स्थापित करने के उद्देश्य से यथोचित सहायता भी दी। इस प्रकार मलाबार में पुर्तगाली प्रभाव की इतिश्री हुई। प्रथम पुर्तगाली नौसैनिक अधिकारी अलमीडा को सम्राट् ने आदेश दिया था कि भारत पहुँचकर अंजदेव, कनानौर और कोचीन में दुर्गों का निर्माण करके पुर्तगाली सत्ता को अग्रसर करे। शीघ्र ही उसने समस्त हिंद महासागर पर अपना आतंक स्थापित कर लिया और पुर्तगाली साम्राज्य की नींव डाल दी। अलमीडा के उत्तराधिकारी अल्बुकर्क ने गोवा पर १५१० में अधिकार कर लिया। तब उसने अदन तक प्रयाण किया और उसके कृत्यों का यह परिणाम हुआ कि भारतीय सामुद्रिक व्यापार अरब नाविकों के हाथ से पूर्णत: निकल गया। इस महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन का प्रभाव भारतवर्ष के समुद्रतटीय राज्यों पर भी पड़ा।

१५२८ ई० में नूनो ड कुन्हा वायसराय नियुक्त होकर आया। इसने १५३० ई० में गुजरात तट पर स्थित डामन बंदरगाह पर अधिकार कर लिया। मुगल सम्राट् हुमायूँ के आक्रमण से उत्पीड़ित गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने कुन्हा से सहायतार्थ संधि की जिसके अनुसार उसने न केवल गुजरात का सामुद्रिक निर्यात व्यापार ही पुर्तगालियों को सौंप दिया, बल्कि उन्हें ड्यू में एक दुर्ग निर्माण करने की सुविधा भी प्रदान की।

जब गुजराततट पर डामन, ड्यू और बसई पर तथा मलाबार तट पर गोवा, कालीकट, कोचीन और कनानौर पर पुर्तगालियों का दृढ़ अधिकार स्थापित हो गया तब इन्होंने दक्षिण के स्वतंत्र राज्यों के आंतरिक झगड़ों में भी हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। जब बीजापुर के आदिलशाही राज्य में इब्राहीम और अब्दुल्ला में द्वंद्व चला तब पुर्तगालियों ने अब्दुल्ला का इस शर्त पर पक्ष लिया कि वह इनको कोंकण का प्रदेश प्रदान कर देगा। दो बार पुर्तगाली सेना लेकर अब्दुल्ला ने बीजापुर पर आक्रमण भी किया परंतु उसका प्रयास असफल रहा। सं० १५६८-१५७१ में आदिलशाह, निजामशाह एवं कालीकट के जमोरिन ने मिलकर पुर्तगालियों के भारत से निष्कासन की योजना बनाई और इस आशय से उनके सामरिक अड्डों पर आक्रमण भी कर दिया, परंतु अंत में संधि हो गई जिसके द्वारा पुर्तगालियों का उनके अंतर्गत स्थानों पर अधिकार स्वीकार कर लिया गया।

जब मुगल सम्राट् अकबर ने १५७३ में सूरत पर घेरा डाला तो पुर्तगालियों ने संकटग्रस्त दुर्ग के संरक्षकों को सहायता देने से इनकार कर दिया और इस प्रकार सम्राट् की सद्भावना प्राप्त कर ली। बंगाल के मसीही धर्मप्रचारकों से भी १५७६ में सम्राट् बहुत प्रभावित हुआ। उसके आमंत्रण पर गोवा के अधिकारी ने तीन बार शिष्टमंडल मुगल दरबार में भेजे।

बंगाल में पुर्तगालियों के पहुँचने का संकेत सं० १५१८ में मिलता है, परंतु वास्तविक प्रयास इसके दस वर्ष बाद ड कुन्हा की प्रेरणा से हुआ। इसने मारटिन अफंसो को बंगाल में सुविधापूर्ण स्थान चयन करने के उद्देश्य से भेजा। परंतु इसका जहाज विध्वस हो गया और चकेरिया निवासी खुदाबख्श खाँ ने इसे बंदी बना लिया। कुछ समय पश्चात् १५०० पौंड देकर इसे मुक्त करा लिया गया। अफंसो अपने स्वामी का विश्वासपात्र बन गया और उसका प्रतिनिधि होकर बंगाल के सुलतान नुसरतशाह के पास गया परंतु उसको अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त न हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि पुर्तगालियों ने चिटगाँव में आयात नियमों का उल्लंघन करने के कारण उसे क्रुद्ध कर दिया था, अत: उसने उन सबको पकड़कर कारागार में डाल दिया। फिर भी इन लोगों का प्रभाव सीमित मात्रा में स्थापित हो गया और ये लोग व्यापार और धर्मप्रचार में संलग्न हो गए।

१५३७ में बंगाल पर शेर खाँ के आक्रमण के समय वहाँ के संकटग्रस्त शासक ने पुर्तगाली कप्तानों से सहायता की याचना की और यह वचन दिया कि विपत्ति से मुक्त होने के पश्चात् वह उनको चिटगाँव में दुर्ग बनाने के लिये एक स्थान प्रदान करेगा। पुर्तगालियों ने उसकी सहायता की भी परंतु व्यर्थ। शेर खाँ ने समस्त राज्य पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् इस क्षेत्र में अधिकांश पुर्तगाली सामुद्रिक डाकू बन गए और लूट मार के काम में व्यस्त रहने लगे।

इस प्रकार लगभग ७० वर्ष तक पुर्तगालियों का हिंद महासागर के तटों पर प्रभुत्व बना रहा। परंतु जब १५८१ ई० में पुर्तगाल राज्य स्पेन के राज्य में संमिलित हो गया तब पूर्वी देशों में उसकी सत्ता का ह्रास हो गया। अंग्रेजों और डचों की उन्नतिशील नौसैनिक शक्ति ने भारत में पुर्तगाली सत्ता पर लगातार चोट कर उसे नष्ट कर दिया।

भारतवर्ष के तट पर पुर्तगालियों को नष्ट करने का प्रयास १६१० ई० में मिडिल्टन ने सूरत के समीप किया। दो वर्ष बाद बेस्ट ने

पुर्तगाली बेड़े को परास्त करके दक्षिण क्षेत्र में सदा के लिये उनके भय को समाप्त कर दिया। तत्पश्चात् १६१६ में अंग्रेजों ने ओरमुज पर अधिकार करके ईरान में पुर्तगाली सत्ता का अंत कर दिया और इसका प्रभाव भारतवर्ष के तट पर भी पड़ा। अपनी सफलताओं से प्रोत्साहित होकर अंग्रेजों और डच लोगों ने एक साथ मिलकर बंबई द्वीप में स्थित पुर्तगाली कोठी पर भी धावा मारा और सूरत में उनके व्यापारिक केंद्र को नष्ट कर दिया।

जिस प्रकार १६वीं शताब्दी में पुर्तगालियों का उत्थान हुआ, ठीक उसी तरह १७ वीं शताब्दी में उनका पतन भी हुआ। अंग्रेजों और डच लोगों से संघर्ष में उनको निरंतर क्षति ही पहुँचती रही। इसके अतिरिक्त जब पुर्तगाल देश का स्वतंत्र अस्तित्व ही मिट गया तब एक ओर योग्य और कुशल व्यक्तियों के अभाव और दूसरी ओर धनबल और जनबल की कमी के कारण उनका औपनिवेशिक साम्राज्य निर्जीव हो गया। शेरशाह से लेकर शाहजहाँ के समय तक बंगाल मे उनका निरंतर दमन होता रहा अतएव इस क्षेत्र मे उनका अस्तित्व डाकुओं और लुटेरों से अधिक न रह गया था। हिंद महासागर तथा अरब सागर के तटों पर उनकी सत्ता का आधार उनकी नौसेना ही थी। जब इसी पर आघात होने लगे तो उनकी सत्ता स्थिर न रह सकी। धीरे धीरे भारत के समुद्री तट से उन्हे हटना पड़ा और उनके अधिकार मे गोवा, डामन, ड्यू के अतिरिक्त कोई स्थान न रह गया। फिर भी १७ वी शताब्दी मे समय समय पर इन लोगों ने मराठों से लोहा लिया और उन्हे एक जटिल समस्या मे उलझाए रखा। इनकी धार्मिक असहिष्णुता के कारण मुसलमानों और हिंदुओं से इन्हें कोई विशेष सहानुभूति प्राप्त न हो पाई। यद्यपि १६४० मे पुर्तगाल ने स्पेन से अपना संबंध विच्छेद कर लिया लेकिन पूर्व मे उसको भूतपूर्व गौरव पुन. प्राप्त न हो सका। नैपोलियन की साम्राज्यवादी नीति ने उसे और अधिक क्षीण कर दिया।

इतना होते हुए भी जब तक यूरोप की जातियों का भारत पर प्रभुत्व स्थिर रहा तब तक पुर्तगाली भारत मे अपनी अवकृत औपनिवेशिक संस्था से चिपके रहे। परंतु स्वतंत्र भारत इस अपमान को सहन न कर सका। जब नीति सफल न हुई तब सरकार ने बल का प्रयोग करके दादरा और नगर हवेली को अगस्त १९६१, और गोवा, डामन, ड्यू को दिसंबर १९६१ मे अधिकृत कर लिया।

[ब० प्र० स०]

भारत में फ्रांसीसी भारत मे फ्रासीसियों के इतिहास को तीन भागों मे बाँटा जा सकता है: (१) प्रारंभिक काल जब इन लोगो ने व्यापार प्रसार का प्रयत्न किया (२) मध्यकाल जब इन्होने राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया, तथा (३) अंतिम काल जब कि उनके उपायों की असफलता के कारण और उनकी आर्थिक क्षतियों के परिणाम स्वरूप उनकी दशा दयनीय हो गई।

भारत से फ्रांसीसियों का प्रथम संपर्क १५२७ ई० में हुआ जबकि उनके एक पोत ने सूरत (स्वालीरोड) के बंदरगाह मे लंगर डाला परंतु इसके बाद ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग इस ओर से उदासीन से हो गए। १६४२ में रिशलू की सहायता द्वारा फ्रांसीसी मैडागास्कर द्वीप में जा पहुँचे और उन्होंने वहाँ डाफिन नाम के दुर्ग का निर्माण किया।

टैवरनियर जैसे यात्रियों के अनुभवों से प्रभावित होकर लुई चतुर्दश ने १६६४ ई० मे 'द कैमपेन द इडीज द ओरियंताल' की स्थापना की और धनवान् लोगों को प्रोत्साहन देने के विचार से स्वयं ३० लाख लिरा चंदे के रूप मे दिया। इस प्रकार फ्रांसीसी व्यापारिक कंपनी प्रारंभ से ही शासन के हाथ का अस्त्र बन गई। सम्राट् ने ईरान के शाह और मुगल शाहंशाह को व्यक्तिगत पत्र लिखकर उनका सहयोग प्राप्त करने की भी चेष्टा की। अत· जब प्रथम व्यापारिक जहाज स्वाली के बंदरगाह में पहुँचे तब सम्राट् औरंगजेब ने एक फरमान द्वारा फ्रांसीसियों को उन्हीं शर्तों पर व्यापार करने की आज्ञा प्रदान की जो अंग्रेजों और डचों पर लागू थी।

फ्रांसीसियों को अंग्रेजों और डचों के विरोध का सामना करना पडा। फ्रासीसियो ने अपनी नाविक सत्ता का प्रदर्शन करने के उद्देश्य से १६६९ में एक जहाजी बेड़ा अरब सागर मे भेजा जो डामन, बंबई, गोवा, कालीकट, कैनानोर, कोचीन होता हुआ निकल गया। इसका तत्काल फल यह हुआ कि मलाबार तट पर कुछ फ्रांसीसी कोठियाँ स्थापित हो गई और कॉरोमंडल तट पर मसुलीपटम् में एक कोठी स्थापित हो गई। १६७२ मे इन्होने सैनटामी (मायलापुर) पर बालात् अधिकार कर लिया। इसके दो वर्ष बाद इन्होंने पांडिचेरी मे एक कोठी स्थापित की। यद्यपि डचों ने १६९१ मे इसे छीन लिया परंतु रिजविक की सधि के अंतर्गत १६९३ मे इसे वापस कर दिया। १६९० मे चद्रनगर में भी एक कोठी स्थापित हुई। इस प्रकार फ्रासीसियों की प्रगति तो होती रही परंतु व्यापार मे उन्हे निरंतर घाटा ही होता रहा। १७२० मे उनके अधिकार में मसुलीपटम्, कालीकट और माही थे। १७२४ मे उन्होंने माही मे दुर्ग का निर्माण किया और १७३९ मे कारीकाल पर भी अधिकार कर लिया। इन घटनाओं के कुछ पूर्व १७१७ मे जीन ला ने पुरानी कंपनी का पुनर्गठन किया और उसका नाम रखा 'कैमपेन डेस इंडीज'। इस प्रकार फ्रांसीसी व्यापार का प्रथम चरण समाप्त हुआ। सरकार से घनिष्ठ संबंध होने के कारण सदैव इसपर राजनीति का कुप्रभाव पडता रहा। फलत आर्थिक क्षेत्र में यह संस्था कभी भी समृद्धशाली न हो पाई।

इसके द्वितीय चरण का प्रारंभ १७४० से होता है। यद्यपि व्यापार के क्षेत्र मे इसकी प्रगति अब भी मंद होती रही, परंतु राजनीति मे निरतर उग्रता बढने लगी। डचो मे प्रतिद्वंता तो कम हो गई, लेकिन उनकी जगह अंग्रेजो ने ले ली। अब मुगल साम्राज्य संज्ञाहीन हो चुका था। दक्षिण भारत मे जहाँ फ्रासीसियों ने अपने पैर जमाए थे, मराठो का बोलबाला था। मराठे उत्तर की ओर निरंतर बढ़ते जा रहे थे। दक्षिण मे निजामशाही राज्य किसी प्रकार अपना अस्तित्व सुरक्षित किए था और उसके अधीन था कर्नाटक का नवाब। शीघ्र ही इन दोनों क्षेत्रों मे कुछ ऐसी राजनीतिक गुत्थियाँ प्रस्तुत हुईं जिनसे फ्रासीसी लाभ उठाने लगे। इन्होंने स्थानीय संघर्षों में भाग लेना प्रारभ कर दिया।

अब दक्षिण मे आंग्ल-फ्रेंच-द्वंद्व की प्रगति हुई। यूरोप मे १७४०

और १७६३ के मध्य दो घमासान युद्ध हुए, आस्ट्रिया के उत्तराधिकार का युद्ध और सप्तवर्षीय युद्ध। इन दोनों के परिणामस्वरूप भारत मे भी फ्रासीसियों और अंग्रेजों मे भिड़ंत हुई। पहले युद्ध के समय फ्रांसीसियों ने मद्रास पर अधिकार कर लिया जिसके प्रत्युत्तर में अंग्रेजों ने पांडिचेरी पर अधिकार कर लिया। परंतु जब १७४८ में एक्सलाशैपिल की संधि हुई तब दोनों पक्षों ने एक दूसरे के अधिकृत स्थानों को वापस कर दिया। डूप्ले ने और अंग्रेजों ने भी, अर्काट के नवाब से प्रार्थना की कि वह दोनों पक्षों के बीच शांति रखने का प्रयत्न करे। परंतु नवाब संघर्ष को रोकने में असमर्थ रहा।

इस प्रथम ऐंग्लो फ्रेंच युद्ध के तत्काल दो परिणाम हुए : (१) फ्रांसीसियो की नाविक सत्ता की धाक जम गई, और (२) यह स्पष्ट हो गया कि स्थानीय शासक शांति सुरक्षित नही रख सकता। शीघ्र ही अनेक कारणो से करनाटक तथा हैदराबाद मे राजनीतिक विप्लव उत्पन्न हुए और प्रभुता की समस्या ने भीषण रूप धारण किया। जब फ्रांसीसियों ने एक प्रतिद्वंद्वी का साथ दिया तब अंग्रेजो ने दूसरे का पक्ष ग्रहण किया। इस संघर्ष में जो घटनाएँ घटी उनमे अरकाट के क्लाइव द्वारा घेरे की विशेष महत्ता है। दूसरी घटना है डूप्ले का हैदराबाद की गद्दी के लिये मुजफ्फरजंग को और करनाटक की गद्दी के लिये चंदा साहब को सहयोग देना। कृतार्थ होकर दोनों ने डूप्ले को विलिग्रानालर और बाहर के मध्य का क्षेत्र, मसुलीपटम का प्रांत, और डीवी का द्वीप प्रदान किए। यद्यपि अंग्रेजो के हस्तक्षेप के कारण करनाटक मे तो फ्रासीसियों को विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी, परंतु हैदराबाद मे उनका प्रभुत्व स्थापित हो गया, अत ये लोग दक्षिण की राजनीति मे सक्रिय भाग लेने लगे। इस दिशा मे सबसे महत्वपूर्ण कदम था डूप्ले के सहयोगी बुसी का हैदराबाद के नवाब से मुस्तफानगर, एलौर, राजामुंदरी, चिकाकोल की सरकारो का व्यक्तिगत रूप से अनुदान प्राप्त करना। उसने नवाब को यह वचन दिया कि इसके बाद वह अपनी सेना के वेतन के संबंध मे किसी प्रकार की भी माँग न करेगा। यह पहला अवसर था कि जब किसी देशी शासक ने यूरोपीय सुरक्षा सेना की सेवा के बदले भूमि का अनुदान दिया। १७५४ मे फ्रास की सरकार ने डूप्ले को वापस बुला लिया, परतु हैदराबाद में बुसी उसकी निर्धारित नीति पर चलता रहा। जब डूप्ले का स्थान गाडह्यू ने ग्रहण किया तब उसे करनाटक मे अंग्रेजो की सत्ता स्वीकार करनी पडी। फिर भी अपने औपनिवेशिक प्रसार के इस द्वितीय चरण मे फ्रासीसियों को अद्भुत सफलता और कीर्ति प्राप्त हुई जिसका अधिकतम श्रेय डूप्ले को है।

यूरोप मे सप्तवर्षीय युद्ध के छिड़ते ही भारत मे फ्रासीसी सत्ता के इतिहास का अंतिम चरण प्रारंभ हो जाता है। अनुकूल परिस्थिति बदलकर प्रतिकूल हो गई। अंग्रेजो की नाविक शक्ति निरंतर बढती जा रही थी, तथा फ्रासीसियो को विभिन्न क्षेत्रों मे संघर्ष का सामना करना पड़ रहा था। नये गवर्नर एवं सेनापति काउंट लैली ने भारत पहुँचकर सेंट डेविड के दुर्ग पर अधिकार कर लिया, तथा बुसी को हैदराबाद से वापस बुला लिया। यह देखकर नवाब ने अंग्रेजो से मेल कर लिया और उनको उत्तरी सरकार के प्रदेश प्रदान कर दिए। लैली ने मद्रास पर अधिकार करने की चेष्टा की, परंतु उसे सफलता न प्राप्त हुई। उसे पांडिचेरी की ओर प्रस्थान करना पड़ा। रास्ते में वाडेवाश स्थान पर अंग्रेज सेनापति सर आयरकूट ने उसे पराजित किया और बुसी को बंदी बना लिया। अप्रैल, १७६० मे कारीकाल हाथ से निकल गया। अगले वर्ष पांडिचेरी और जिंजी पर भी शत्रु का अधिकार हो गया। इसी प्रकार माही से भी इन लोगों को वंचित होना पडा। जब १७६३ मे पेरिस की संधि द्वारा सप्तवर्षीय युद्ध का अंत हुआ तो एक धारा के अनुसार फ्रांसीसियों को उनके भूतपूर्व अधिकृत प्रदेश लौटा तो दिए गए, परंतु उनको यह छूट न दी गई कि वह उनका दुर्गीकरण करें। उन्होने १७८२ मे मैसूर के सुलतान हैदरअली की अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता की और उसके पुत्र टीपू से मैत्री संबंध स्थापित किया। १७८७ मे पूना तथा हैदराबाद के राज्यों से फ्रांसीसी प्रतिनिधियों को वापस बुला लिया गया और टीपू सुलतान को यह आश्वासन दिया गया कि उसको अंग्रेजो के विरुद्ध यथेष्ट सहायता दी जाएगी। प्रोत्साहित होकर टीपू ने एक राजदूत फ्रांस भेजा और सहयोग की आशा करके उसने ट्रावनकोर की रियासत पर आक्रमण भी कर दिया। यहाँ का राजा अंग्रेजों के आश्रित था। फलतः मैसूर और अंग्रेजो के बीच युद्ध छिड़ गया। इसका परिणाम फ्रांसीसियों के लिये घातक सिद्ध हुआ। टीपू सुलतान ने लड़ते लड़ते जान दी और मलाबार तट पर फ्रांसीसियो की क्षति हुई। नैपोलियन ने पूर्व मे सत्ता जमाने का निष्फल प्रयास किया। सहायक संधियो द्वारा अंग्रेजो ने देशी रियासतो को अपने संरक्षण मे लेकर फ्रासीसी प्रभाव को मूलत. नष्ट कर दिया।

यद्यपि आगामी १५० वर्षों तक फ्रासीसियो का पांडिचेरी इत्यादि नगरो पर अधिकार रहा परंतु वह पुनः सत्तारूढ न हो सके। जब भारतवर्ष स्वतंत्र हो गया तब फ्रेंच सरकार ने बडी बुद्धिमत्ता से संधि द्वारा अपने अधिकृत क्षेत्रों को भारत को लौटा दिया। पांडिचेरी पर वास्तविक रूप से भारतीय अधिकार १९५४ मे हो गया। १९५५ में फ्रास की संसद ने इसकी पुष्टि कर दी। [बं० प्र० स०]

भारत में ब्रिटिश सत्ता यूरोपीय लोग व्यापारियों के रूप मे भारत आए। रानी एलिजाबेथ ने ३१ दिसंबर, १६०० को अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी को एक अधिकारपत्र देकर उसे १५ वर्षों के लिये पूर्वीय व्यापार पर एकाधिकार प्रदान कर दिया। मुख्यतः कप्तान हाकिंस तथा सर टामस रो के प्रयत्नो से कंपनी ने १६१६ तक मुगल सरकार से सूरत, आगरा, अहमदाबाद और भरुच (भड़ौच) मे व्यापारिक कोठियाँ कायम करने की अनुमति प्राप्त कर ली। १६६८ मे कंपनी को चार्ल्स द्वितीय से बंबई प्राप्त हुआ। बंबई चार्ल्स द्वितीय को अपनी पत्नी ब्रगाजा की कैथराइन को पुर्तगाल से मिले दहेज के रूप मे प्राप्त हुआ था। १६११ और १६२६ के बीच कंपनी ने मछलीपट्टम् और अरमागाव मे कोठियाँ खोल लीं। १६३२ और १६३४ मे गोलकुंडा के सुल्तान से कंपनी को दो फरमान मिल गए जिनके द्वारा उसे ५०० पगोडा वार्षिक चुंगी की अादायगी की शर्त पर गोलकुंडा राज्य के अधिकारक्षेत्र के अंतर्गत स्थित बंदरगाहों मे व्यापार करने की अनुमति प्राप्त हो गई। १६३९ में उसे चंद्रगिरि के शासक से मद्रास का केंद्र भी प्राप्त हो गया और यहाँ पर उसने अपनी किलेबंदी कायम कर ली जो आगे चलकर फोर्ट जार्ज नाम से प्रसिद्ध हुई। उत्तर पूर्व की ओर १६३३ में हरिहरपुर और बालासोर

में. १६५१ में हुगली में और इसी सिलसिले में पटना और कासिमबाजार में भी कोठियाँ खुल गईं।

१६५७ में क्रामवेल द्वारा कंपनी को अधिकारपत्र मिल जाने और आगे चलकर चार्ल्स द्वितीय तथा जेम्स द्वितीय द्वारा उसके विशेष अधिकारों एवं शक्ति में वृद्धि कर दिए जाने के बाद उसका निरंतर विस्तार होता गया और उसकी समृद्धि बढ़ती गई। भारत मे होनेवाली कुछ राजनीतिक गड़बड़ियों से भी उसे अनेक भूभागो पर कब्जा करके अपना प्रभाव और शक्ति बढ़ाने के लिये कोशिश करने की हिम्मत होने लगी। इस प्रयत्न में मुगल सरकार से भी उसकी कई मुठभेड़ें हुईं जिनमे अंततः उसे मुँह की खानी पडी और १६९० मे संधि के लिये भी विवश होना पडा। उसी साल जॉब चार्नाक ने सूतानूती मे कोठी कायम की। इस तरह 'ब्रिटिश भारत की भावी राजधानी का शिलान्यास' हो गया। बर्दवान जिले के शोभासिंह नामक जमींदार के विद्रोह करने पर अंग्रेजों को १६९६ मे अपनी नई किलेबंदी करने का बहाना मिल गया। उन्होने १६९८ मे सूतानूती, कालिकाता और गोविंदपुर के तीन गाँवों की जमींदारी ले ली जिसके बदले उन्होंने पुराने भूस्वामियो को १२०० रुपए दिए।

कपनी को १६५१ मे सुल्तान शुजा, १६७२ मे शाइस्ता खाँ और १६८० मे औरंगजेब से फरमान मिले जिनके जरिए उसे व्यापार के लिये कुछ रियायते और विशेष अधिकार प्राप्त हो गए। १७१६-१७१७ मे शाहशाह फर्रुखसियर से एक और फरमान मिला जिससे अंग्रेजों को नए विशेषाधिकार प्राप्त हुए और बगाल मे समय समय पर स्थानीय अधिकारियों द्वारा उपस्थित की जानेवाली बाधाओं के बावजूद उनका व्यापार धीरे धीरे बढ़ता ही गया।

१८वी शताब्दी के मध्य से औरंगजेब के दुर्बल उत्तराधिकारियों के अधीनस्थ मुगल साम्राज्य का जो क्रमिक विघटन और ह्रास हो रहा था उससे लाभ उठाकर अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारिक कंपनियो ने भारत को अपनी शत्रुतापूर्ण कार्रवाइयो का केंद्र बना दिया। भारत मे उनका पहला सघर्ष यूरोप मे आस्ट्रियाई उत्तराधिकार के लिये हुए युद्ध (१७४०-१७४८) के बाद ही हुआ जिसमे पहले फ्रांसीसियो का भाग्य खुलता नजर आया और उन्होने १७४६ मे मद्रास पर कब्जा कर लिया। यद्यपि ला बूर्दोने अंग्रेजो से भारी रकम वसूल कर मद्रास उन्हे वापस कर देना चाहता था किंतु डूप्ले ने ऐसा करने से इनकार कर दिया और अंग्रेजो को १७४८ मे आई-ला-शैपेल मे हुई संधि के बाद ही मद्रास वापस मिल सका।

भारतीय रियासतों की दुर्बलता के कारण यूरोपीय व्यापारियों को राजनीति के अखाड़े मे कूद पड़ने का साहस हो गया और वे दक्खिन की सूबेदारी तथा कर्नाटक की नवाबी के लिये होनेवाले प्रतिद्वंद्वी उत्तराधिकारियो के संघर्ष मे खुलकर एक दूसरे की तरफ से मैदान में आ गए। १७४८ मे निजामुलमुल्क की मृत्यु के बाद दक्खिन की सूबेदारी के उत्तराधिकार के लिये उसके दूसरे पुत्र नासिरजंग और प्रिय पौत्र मुजफ्फरजंग में संघर्ष छिड़ गया। इसी तरह १७४९ मे कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन की मृत्यु के बाद उसकी गद्दी के दो प्रतिद्वंद्वी उत्तराधिकारी मैदान में आ गए—उसका पुत्र मुहम्मद अली और कर्नाटक के नवाब दोस्त अली का दामाद चाँदा साहब। इस संघर्ष मे एक ओर नासिरजंग और मुहम्मद अली थे जिनकी सहायता अंग्रेज कर रहे थे और दूसरी ओर मुजफ्फरजंग और चाँदा साहब थे जिनका पक्ष फ्रांसीसी ले रहे थे। १७५० के अंत तक फ्रांसीसियों का पलडा भारी रहा और ऐसा प्रतीत होता था कि डूप्ले की नीति सफल हो जायगी किंतु शीघ्र ही मद्रास के सिविलियन कर्मचारी राबर्ट क्लाइव द्वारा आर्काट पर कब्जा (सितंबर-अक्तूबर १७५१) कर लिए जाने के बाद अंग्रेजों का भाग्य खुल गया। डूप्ले अब भी दृढ़ सकल्प से युद्ध कर रहा था किंतु १७५४ मे फ्रांस के अधिकारियों ने उसे फ्रांस बुला लिया। अगस्त, १७५४ मे डूप्ले के स्थान पर गोडेहू भारत आया। उसने डूप्ले की नीति उलट दी और अंग्रेजों से संधि कर ली जिसके अनुसार सधि के समय जिन क्षेत्रों पर जिस पक्ष का वास्तविक अधिकार था उसपर वह कायम रहा।

सप्तवर्षीय युद्ध का आरंभ होने के साथ ही भारत में १७५६ मे अंग्रेजो और फ्रांसीसियों की शत्रुतापूर्ण कारवाइयाँ चली। अंग्रेजों ने १७५७ मे चंद्रनगर तथा बंगाल मे स्थित अन्य फ्रांसीसी बस्तियों पर कब्जा कर लिया और २२ जनवरी, १७६० मे वांडीवाश के निर्णायक युद्ध मे फ्रांसीसियों को करारी हार दी। इसके फलस्वरूप पांडिचेरी तथा भारत स्थित अन्य फ्रांसीसी बस्तियो को अंग्रेजों के सामने आत्मसमर्पण कर देना पडा यद्यपि बाद में १७६३ मे पेरिस मे हुई सधि के अनुसार ये बस्तियाँ पुन फ्रांसीसियो को मिल गईं।

१८वी शताब्दी के मध्य मे बगाल मे होनेवाली राजनीतिक उथलपुथल प्लासी (२३ जून, १७५७) और बक्सर (२३ अक्तूबर, १७६४) मे हुए निर्णायक युद्धो से अपनी पूर्णता पर पहुँच गई और इसके फलस्वरूप बगाल मे ब्रिटेन की राजनीतिक सप्रभुता स्थापित हो गई। बगाल और बिहार मे अपना राजनीतिक प्रभुत्व पुन. कायम कर लेने के लिये अभागे मुगल शाहंशाह शाहआलम द्वितीय ने जो भी प्रयत्न किए वे निष्फल रहे और उसे परिस्थितियों से लाचार होकर अत मे १२ अगस्त, १७६५ मे अंग्रेजो को बगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी देनी पडी और इस प्रकार बगाल मे उनका प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा। इस व्यवस्था के अनुसार शाहआलम को बगाल से प्रति वर्ष २६ लाख रुपया नजराना के तौर पर मिलने लगा, बगाल के नवाब को ५३ लाख रुपया सालाना की बँधी रकम मिलने लगी और बाकी सारी मालगुजारी कपनी के नियत्रण मे आ गई। इस तरह से अंग्रेज समृद्ध बगाल प्रात के वास्तविक स्वामी बन गए। उन्होंने भारत के अन्य भागो मे अपनी शक्ति और सत्ता के क्रमिक विस्तार में इसके समस्त साधनो का लाभजनक ढग से उपयोग किया।

यद्यपि प्रभुता का सारतत्व उपर्युक्त रीति से कपनी के हाथो में आ गया, फिर भी क्लाइव ने, जो यहाँ दूसरी बार बंगाल के गवर्नर के रूप मे आया था, अनेक बातो का ख्याल करते हुए प्रात के प्रशासन का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व नही स्वीकार किया और उसे नवाब के ऊपर छोड़ दिया जो नाममात्र का शासक था। इस द्वैध शासन मे, जिसमे उत्तरदायित्व सत्ता से पूर्णत. विच्छिन्न था, प्रशासनिक अव्यवस्था, सामाजिक अराजकता तथा आर्थिक ह्रास गंभीर रूप धारण करने लगा जिससे सामान्य जनता को भारी कठिनाइयों एव तीव्र संकटों का सामना करना पड़ा। अनेक कारणों से भारत का आर्थिक ह्रास

तीव्र होता गया और औद्योगिकता की प्रगति के बावजूद इस ह्रास से उबार पाने का स्वप्न साकार न हो सका। अप्रैल, १७७२ मे बंगाल के गवर्नर के रूप में वारेन हेस्टिंग्ज आया। उसे अपने मालिकों से इस द्वैध शासन की बुराइयों को दूर करने के निर्देश मिले थे। उसने प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार करने का प्रयत्न किया किंतु वह चतुर्दिक् व्याप्त बुराइयों को पूरी तरह दूर न कर सका। अवध के नवाब तथा बेगमों, रुहेलखंड के शासक और बनारस के राजा चेतसिंह के संबंध मे हेस्टिंग्ज ने जो नीतियाँ अख्तियार की उनका एकमात्र लक्ष्य कंपनी का प्रभाव बढ़ाना और उसके रिक्त कोष को भरना था। कतिपय दृष्टियों से हेस्टिंग्ज की ये नीतियाँ आपत्तिजनक भी थीं। नंद-कुमार के मुकदमे में तो न्याय का गला ही घोंट दिया गया।

यद्यपि समसामयिक भारतीय राजे रजवाड़े अपनी पारस्परिक ईर्ष्या एवं आंतरिक कलह के कारण भारत मे बढ़ती हुई ब्रिटिश प्रभुता का संयुक्त रूप से विरोध करने में विफल ही रहे, फिर भी मराठों तथा मैसूर के शासकों ने इसकी बाढ़ को रोकने का भरसक प्रयत्न किया लेकिन अंत में वे भी पराभूत हो गए। मराठों ने अपने योग्य नेता पेशवा माधवराव प्रथम के नेतृत्व मे धीरे धीरे पानीपत के तृतीय युद्ध मे पहुँची हुई क्षति को दूर कर पुनः शक्तिलाभ कर लिया। किंतु १७७२ मे उसकी मृत्यु के बाद मराठे अपने आंतरिक झगडों में फँस गए जिससे अंग्रेजों को उनके मामलों में हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया। फलतः १७७५-१७८२ में प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध हुआ। सालबाई मे मई १७८२ मे हुई संधि से इस युद्ध की समाप्ति हुई। यह संधि मुख्यतः महादजी सिंधियाँ की प्रेरणा से हुई थी। महादजी सिंधिया उत्तर भारत मे अपने विस्तार की स्वतन्त्रता चाहता था। संधि के अनुसार सालसेट्ट पर अंग्रेजों का अधिकार पुष्ट हो गया, माधवराव नारायण को न्यायसमत पेशवा की मान्यता प्राप्त हो गई और राघोबा या रघुनाथ राव को पेंशन देकर गद्दी से वंचित कर दिया गया।

मैसूर के हैदरअली और उसके पुत्र टीपू ने अंग्रेजो के खिलाफ भीषण संकल्प और साहस के साथ संघर्ष किया। आंग्ल मैसूर संघर्ष (१७६७-१७६९) के प्रथम चरण मे हैदर इतना आगे बढ गया था कि मद्रास उसकी पहुँच से केवल पाँच मील दूर रह गया था और अंग्रेज करीब करीब उसके आदेश के अनुसार संधि पर हस्ताक्षर करने को विवश हो गए थे। अंग्रेजों के साथ हुए शक्ति संघर्ष के दूसरे दौर मे १७८२ मे हैदर मर गया किंतु टीपू ने जो एक योग्य सैनिक नेता था, अंग्रेजो के खिलाफ निर्भीक भाव से युद्ध जारी रखा। अंततः १७८४ में मंगलोर मे एक संधि हुई जिसके अनुसार दोनों पक्षों द्वारा विजित प्रदेशों पर उनके विजेताओं का अधिकार स्वीकार कर लिया गया और युद्धबंदियों को रिहा कर दिया गया। कार्नवालिस के शासनकाल मे टीपू और अंग्रेजो के बीच पुनः दो वर्षों तक लड़ाई चली और मार्च, १७९२ मे सेरिंगपट्टम की संधि हुई जिससे टीपू को अपने राज्य का आधा भाग अंग्रेजों को सौंप देना पड़ा। इसके अतिरिक्त उसे लड़ाई के हरजाने के रूप में भारी रकम अदा करनी पड़ी और संधि की शर्तों की पूर्ति के लिये अपने दो पुत्रों को कार्नवालिस के शिविर मे बंधक रखना पड़ा।

सालबाई की संधि के बाद करीब २० वर्षों तक मराठों का अंग्रेजों के साथ शांतिपूर्ण संबंध कायम रहा किंतु धीरे धीरे सदस्यों के 'पारस्परिक अविश्वास और स्वार्थपूर्ण षड्यंत्रों' के कारण मराठा संघ की एकता एवं अटूट दृढ़ता नष्ट हो गई। इसके अतिरिक्त १७९४ और १८०० के बीच महादजी सिंधिया, अहल्या बाई, तुकोजी होल्कर और नाना फडनवीस जैसे योग्य मराठा नेता इस संसार से उठ गए। अनेक षड्यंत्रों एवं प्रतिषड्यंत्रो के बाद १७९६ मे राघोबा का पुत्र बाजीराव द्वितीय पेशवा की मान्यता प्राप्त कर चुका था। मराठे तीव्र पारस्परिक कलह मे बुरी तरह फँस चुके थे। मार्क्वेस वेलेजली के गवर्नर जेनरल पद पर आरूढ़ रहने की कालावधि (१७९८–१८०५) मे मराठों को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी। सहायता देने की अपनी योजना से वेलेज़ली भारत मे ब्रिटिश प्रभाव को बढाने मे पूर्णतः सफल हुआ। इसके अनुसार भारतीय राज्यों को ब्रिटिश संरक्षण स्वीकार करना पड़ता था जिसके लिये उन्हे अपने क्षेत्रो मे ब्रिटिश अधिकारियों के सेनापतित्व में ब्रिटिश फौज रखनी पड़ती थी और उसका व्यय वहन करना पड़ता था। ब्रिटिश सरक्षण की कीमत उन्हें अपनी आजादी बेचकर चुकानी पड़ती थी। जहाँ तक मराठों का प्रश्न था, दुर्बल और कुचक्री पेशवा बाजीराव द्वितीय ने ३१ दिसंबर, १८०२ को बसई की सधिकर राज्य सहायता योजना में शामिल होना स्वीकार कर लिया और अपने को पूरी तरह ब्रिटिश नियन्त्रण मे डाल दिया। इसे राष्ट्रीय अपमान समझकर बरार के रघुजी भोंसले द्वितीय और दौलतराव सिंधिया जैसे दूसरे मराठा नेताओं ने पश्चात्तापग्रस्त पेशवा की मौन सहमति से १८०३–१८०४ में अंग्रेजो के खिलाफ लड़ाई जारी रखी यद्यपि जसवंतराव होल्कर और बड़ोदा के गायकवाड ने उनका साथ नहीं दिया। अंग्रेजों द्वारा लड़ाई दो मुख्य केंद्रों में संचालित होती रही—हिंदुस्तान मे जेनरल लेक के नेतृत्व मे और दक्खिन मे आर्थर वेलेजली के नेतृत्व मे। इसके साथ ही अंग्रेजों ने सहायता योजना कार्यान्वयन के तीन केंद्रो उड़ीसा, बुंदेलखंड और गुजरात मे भी लड़ाई जारी रखी। पाँच महीनों में ही भोंसले और सिंधिया पराजित हो गए और दोनो ने अलग अलग दो संधियाँ की। भोंसले के साथ १७ दिसबर, १८०३ को देवगाँव में संधि हुई और सिंधिया के साथ ३० दिसबर, १८०३ को सुर्जीअर्जुनगाँव मे।

अंग्रेजों का सबसे भयंकर शत्रु टीपू भारत में बढ़ती हुई अंग्रेजी शक्ति के प्रतिरोध का अनवरत प्रयत्न करता रहा। अंत में ४ नवंबर, १७९९ को वह अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टम् की प्रतिरक्षा मे बहादुरी से लड़ता हुआ मारा गया। टीपू के परिवार के लोग वेल्लोर मे नजरबंद कर दिए गए और १८०६ मे वेल्लोर मे हुए सिपाही विद्रोह मे संलग्न होने की आशंका पर उन्हें कलकत्ता भेज दिया गया। मैसूर राज्य के बड़े भाग अंग्रेजों और निज़ाम में परस्पर बाँट लिए गए। बचे खुचे भाग मैसूर के प्राचीन शासक वंश के एक नाबालिग उत्तराधिकारी को दे दिए गए। इसने सहायता योजना संधि स्वीकार कर ली। भारतीय राजनीति में हैदराबाद के निजाम की भूमिका बड़ी ही ढुलमुल किस्म की रही है। पहली सितंबर, १७९८ को वह भी अंग्रेजों की सहायता योजना सधि में शामिल हो गया और अंग्रेजों के संरक्षण का मूल्य चुकाने के लिये उसने अपनी स्वतंत्रता का बलिदान कर दिया। १७९९ मे वेलेजली ने तंजोर के राजा और सूरत के नवाब को पेंशन देकर विदा कर

दिया और उनके क्षेत्रों को अपने अधिकार मे ले लिया। १८०१ मे उसने कर्नाटक के नवाब को विश्वासघाती षड्यंत्र का अभियोग लगाकर हटा दिया और उसके राज्य पर कब्जा कर लिया। अवध को अंग्रेज १७६५ से ही अंतस्थ राज्य मानते थे। वेलेजली ने अवध के नवाब को भी १८०१ में एक ऐसी संधि पर हस्ताक्षर करने के लिये विवश कर दिया जिससे अवध राज्य की सीमा अत्यंत संकुचित हो गई।

आगे ब्रिटिश प्रभुता का प्रसार विशेष रूप से मार्क्वेस ऑव हेस्टिंग्ज के नाम से प्रसिद्ध अर्ल ऑव मोइरा के गवर्नर जेनरल पद पर आरूढ़ रहने के समय हुआ। नेपाल के गुरखा अंग्रेजों से बड़ी बहादुरी से लड़े किंतु उन्हे १८१५–१८१६ मे अंग्रेजों से संधि के लिये विवश होना पड़ा। इस संधि के फलस्वरूप उन्हे अपने दक्षिणी सीमावर्ती तराई क्षेत्रों का दावा छोड़ना पडा, नेपाल के पश्चिम स्थित गढवाल और कुमायूँ जिलों को अंग्रेजों को दे देना पड़ा, सिक्किम से हटना पड़ा और काठमांडू मे ब्रिटिश रेजिडेंट को रखना स्वीकार करना पड़ा। हेस्टिंग्ज ने पिंडारियों और पठानों का भी दमन कर दिया और ब्रिटेन की प्रभुसत्ता राजपूताना और मध्यभारत पर भी स्थापित कर दी। १८१७–१८१९ मे अंग्रेजो से हुए अपने अंतिम संघर्ष में मराठे पूरी तरह हार गए। पेशवाई रद्द कर दी गई। बाजीराव द्वितीय का राज्य ब्रिटिश नियंत्रण में ले लिया गया और उसे कानपुर के निकट बिठूर में अपने जीवन के अंतिम दिन आठ लाख रुपया सालाना पेंशन पर काटने पड़े। पेशवा के राज्य मे से एक अंग को काटकर सतारा की छोटी सी रियासत बनाई गई जिसे शिवाजी के वंशक्रम मे आनेवाले तथा मराठा साम्राज्य के सैद्धांतिक प्रधान प्रतापसिंह को दे दिया गया।

१८२३ तक ब्रिटेन की प्रभुता सतलज से लेकर ब्रह्मपुत्र तक और हिमालय से लेकर कुमारी अंतरीप तक के व्यापक क्षेत्र पर प्रतिष्ठित हो गई। इस अवधि के बाद ब्रिटिश भारत की सीमाएँ उत्तर पश्चिम और पूर्व की ओर उन सीमाओ से भी आगे बढ़ाई जाने लगी जहाँ तक वे अब तक पहुँच चुकी थी। इसके फलस्वरूप ब्रह्मपुत्र के पूर्व मे असमियों और बर्मियों से तथा उत्तर पश्चिमी सीमा के सिखो और सिंधियों तथा पठान और बलूच कबीलों से और उसके भी आगे खैबर दर्रे से परे अफगानों से अंग्रेजों का संघर्ष हुआ।

पूर्वी सीमा पर अपना प्रभाव बढ़ाने के सिलसिले मे अंग्रेजो का सीधा संघर्ष बर्मियों से हुआ। प्रथम संघर्ष (१८२४-१८२६) का अंत याडबू की संधि से हुआ जो २४ फरवरी, १८२६ को संपन्न हुई। इस संधि से अंग्रेजों को कुछ महत्वपूर्ण लाभ हुए। बर्मा सरकार ने युद्ध का हरजाना देना, अपनी राजधानी आवा में ब्रिटिश रेजिडेंट रखना, अराकान, तेनासरिम, असम, कछार और जयंतिया को अंग्रेजों को सौंप देना और मणिपुर को एक स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता प्रदान करना स्वीकार कर लिया। गवर्नर जेनरल डलहौजी के शासनकाल में दूसरा आंग्ल-बर्मी युद्ध हुआ। डलहौजी ने २० दिसंबर, १८५२ को पेगू या निचले बर्मा को ब्रिटिश भारत में मिला लिया। इससे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की पूर्वी सीमा सालवीन नदी के तट तक पहुँच गई और पूर्वी सीमाओं पर और भी प्रभावकारी ब्रिटिश नियंत्रण कायम हो गया। तृतीय आंग्ल बर्मी युद्ध मे ऊपरी बर्मा भी (१८८६ मे) ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया।

१८४३ मे लार्ड एलेनबरो ने सिंध को भी बंबई प्रेसिडेंसी में मिला लिया। रणजीत सिंह के अधीन सिखों का एक सुदृढ़ एवं शक्तिशाली राज्य संघटित हो गया था। १८३९ में सिखो के नेता रणजीत सिंह का देहांत हो गया और सिख सेना राज्य का वास्तविक अधिनायक बन बैठी, उसपर नियंत्रण करनेवाली कोई शक्ति न रह गई। आपसी फूट और कलह के कारण दो युद्धो मे ही अंग्रेजो ने सिख नेताओं को धर दबोचा। ये दो युद्ध क्रमश. हार्डिंज के प्रशासनकाल (१८४५-१८४६) और डलहौजी के समय (१८४८-१८४९) में हुए थे। डलहौजी ने पूर्णत: अपने उत्तरदायित्व पर ३० मार्च, १८४९ को पंजाब को ब्रिटिश भारत मे मिला लिया।

१७५७ से १८५७ के बीच के सौ वर्ष भारत मे न केवल ब्रिटिश राजनीतिक सत्ता के क्रमिक विस्तार की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण हैं बल्कि इस काल का महत्व उस ब्रिटिश भारतीय प्रशासकीय प्रणाली के विकास की दृष्टि से भी है जिसकी स्थापना राजनीतिक सत्ता के विस्तार के स्वाभाविक परिणाम के रूप मे हुई है। वारेन हेस्टिंग्ज, कार्नवालिस, मुनरो, मैलकॉम, मेटकॉफ, बेंटिक और डलहौजी जैसे योग्य ब्रिटिश प्रशासको ने इस प्रशासकीय प्रणाली के विभिन्न अंगो, यथा मालगुजारी और वित्त, कानून और न्याय, पुलिस और कारागार, को विकसित करने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यदि वारेन हेस्टिंग्ज ने इसकी नींव रखी तो कार्नवालिस ने महत्वपूर्ण संशोधन करके इसका विकास किया। १७९३ में कार्नवालिस द्वारा बंगाल में मालगुजारी वसूल करने के लिये इस्तमरारी बंदोबस्त का आरंभ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इससे जमींदार स्थायी भूस्वामी बन गए और उन्हे इसके लिये एक नियत तिथि पर एक निर्धारित वार्षिक मालगुजारी देनी पड़ती थी। हाल के वर्षों मे अनेक बुराइयो के कारण जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया किंतु इसके पूर्व बंगाल और बिहार की आर्थिक स्थिति पर इस प्रथा का बड़ा ही जबर्दस्त प्रभाव था। मद्रास में टामस मनरो ने धीरे धीरे रैयतवारी बंदोबस्त का विकास किया। यह बंदोबस्त सीधे छोटे छोटे किसानो से किया जाता था जिन्हें भूमि पर हर तरह के अधिकार प्राप्त होते थे। इसके बदले मे उन्हें एक निर्धारित लगान देना पड़ता था जिसे राज्य सीधे अपने अधिकारियो द्वारा वसूल करता था।

कार्नवालिस के शासनकाल मे प्रशासन की विभिन्न शाखाओं मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। उसने प्रांतो को जिलो में बाँट दिया। दीवानी और फौजदारी के मुकदमों की सुनवाई के लिये अलग अलग अदालतें कायम की गई और लगान तथा मालगुजारी का कार्य न्यायपालिका के हाथ से ले लिया गया। उसने कलकत्ता में सदर दीवानी अदालत और निजामत अदालत के नाम से अपील के लिये सर्वोच्च न्यायालयो की स्थापना की। उसने चार प्रांतीय अदालतों की भी स्थापना की जो सबसे ऊपर सदर दीवानी और सबसे नीचे जिला अदालत के बीच कार्य करती थी। जिला फौजदारी अदालतें समाप्त कर दी गई और फौजदारी मामलो मे न्याय करने का काम प्रांतीय अदालतों के न्यायाधीशों को सौंप दिया गया जो बारी बारी से दौरे पर जाया करते थे। कलेक्टरो के न्याय पालन और मजिस्ट्रेटों से संबद्ध कर्तव्य

उनसे छीन लिए गए और उन्हें एक नए वर्ग के अधिकारियों के जिम्मे कर दिया गया जो न्यायाधीश कहे जाते थे। कलेक्टरों का काम केवल अधिशासी अधिकारियों के रूप मे रह गया जिनके जिम्मे लगानवसूली का काम रखा गया। बेंटिक ने कई जिलो को मिलाकर डिवीजनों का निर्माण किया। प्रत्येक डिवीजन कमिश्नर ऑव रेवेन्यू ऐंड सर्किट नामक अधिकारी के अधीन रखा गया। उसने प्रांतीय अदालतें समाप्त कर दी, कलेक्टरो को न्यायिक अधिकार दिए और फारसी के स्थान पर अदालती भाषा के रूप मे वर्नाक्यूलर (मातृभाषा) को प्रतिष्ठित किया। कार्नवालिस अधिशासी और न्यायिक सेवाओं मे उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर भारतीयों की नियुक्ति नहीं करता था किंतु बेंटिक ने न्यायिक अधिकारियों के रूप मे भारतीयो की नियुक्ति की। इन्हें आगे चलकर अधीनस्थ या उपन्यायाधीश कहा जाने लगा। १८५४ मे बंगाल, बिहार, उडीसा और असम को एक लेफ्टिनेंट गवर्नर के अधीन किया गया। उसी वर्ष २८ अप्रैल को इसपर श्री एफ० जे० हैलिडे की नियुक्ति हुई।

प्रशासकीय परिवर्तनों के साथ ही साथ इस काल मे कई कल्याणकारी सामाजिक सुधार भी लागू किए गए। इन सुधारो के लिये कंपनी सरकार को अनेक प्रबुद्ध भारतीयों का समर्थन प्राप्त हुआ जिनमे सर्वप्रमुख हैं राजा राममोहन राय और पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर। बाल-हत्या-निषेध तथा सती प्रथा का उन्मूलन १८२६ में एक अधिनियम द्वारा स्वीकृत किया गया और १८५६ मे उड़ीसा के खोडो द्वारा अनुचित नर बलि की प्रथा अवैध कर दी गई और एक विधान द्वारा विधवा विवाह को वैधता प्रदान की गई। इसी अवधि मे भारत मे अंग्रेजी शिक्षा के आरंभ के लिये भी कुछ महत्वपूर्ण कार्य किए गए। १८१३ में चार्टर ऐक्ट के नवीनीकरण से शिक्षा के लिये प्रति वर्ष कम से कम एक लाख रुपए के अनुदान की व्यवस्था की गई। इस धनराशि का व्यय किस रूप मे किया जाय, इस संबंध में कुछ विवाद हुआ किंतु बेंटिक सरकार ने शिक्षासमिति के अध्यक्ष और गवर्नर जेनरल की कौंसिल के कानून सदस्य लार्ड मैकाले के प्रसिद्ध विवरणपत्र द्वारा समर्थन प्राप्त कर ७ मार्च, १८३५ को एक प्रस्ताव द्वारा निर्णय किया कि सुलभ धनराशि का व्यय अंग्रेजी शिक्षा पर ही होना चाहिए। इसके बाद १९ जुलाई, १८५४ को बोर्ड ऑव कंट्रोल के प्रेसिडेंट सर चार्ल्स वुड का प्रसिद्ध संवादपत्र प्रकाशित हुआ जिसने भारत मे नई शिक्षाप्रणाली की नीव रख दी। इसी नीव पर आगे शिक्षा का विकास हुआ। १८५७ में कलकत्ता, मद्रास और बंबई मे तीन विश्वविद्यालयो की स्थापना हुई।

ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार तो होता जा रहा था किंतु इस देश की जनता के विभिन्न वर्गों मे असंतोष की आग भी सुलग रही थी जो समय-समय पर विद्रोह की ज्वालाओं मे फूटती रही है यथा, १८३१-१८३२ में छोटा नागपुर का कोल विद्रोह, १८५५-१८५७ का संताल विद्रोह और इसी तरह के कुछ अन्य विद्रोह। ये सारे विद्रोह १८५७-१८५६ के आदोलन मे चरम परिणति को प्राप्त हो गए। यह आंदोलन सैनिक गदर के रूप में शुरू हुआ किंतु शीघ्र ही देश के विभिन्न भागों मे सामान्य जनविद्रोह के रूप मे विकसित हो गया। भारत मे ब्रिटिश राज के विरुद्ध उठनेवाली यह एक बहुत बड़ी और शक्तिशाली चुनौती थी। यद्यपि सरकार ने इसे बड़े परिश्रम और यत्न से दबा दिया, तथापि आगे चलकर अनेक रूपों मे इसके महत्वपूर्ण परिणाम प्रकट हुए। इसी के फलस्वरूप भारत मे कंपनी शासन का अंत हो गया और इसके विरोध के बावजूद २ अगस्त, १८५८ को भारत के लिये श्रेष्ठतर सरकार की स्थापना के उद्देश्य से पारित कानून के अनुसार भारत ब्रिटिश क्राउन के नियंत्रण में आ गया। इस परिवर्तन की घोषणा लार्ड कैनिंग द्वारा इलाहाबाद मे आयोजित एक दरबार मे सम्राज्ञी के नाम से १ नवंबर, १८५८ को जारी किए गए एक घोषणापत्र से की गई। इस घोषणापत्र द्वारा उन सभी लोगो को क्षमा प्रदान कर दी गई जिनका ब्रिटिश प्रजाजनो की हत्या में प्रत्यक्ष हाथ नही था, भारतीय रजवाड़ो से की गई संधियों और समझौतो को पुष्ट किया गया, भारत मे क्षेत्रीय प्रसार की सारी इच्छा का त्याग कर दिया गया, न्याय, उदारता और धार्मिक सहिष्णुता की नीति का उद्घोष किया गया और यह वचन दिया गया कि सभी सरकारी नौकरियो मे किसी जाति या धर्म का ख्याल किए बगैर सबकी नियुक्तियाँ की जाएँगी। ब्रिटिश सरकार ने अब से उन भारतीय राज्यो के प्रति नई नीति अख्तियार की जो ब्रिटिश क्राउन की प्रभुसत्ता स्वीकार करते हो और ऐसे सभी राज्यो को एक ही शासन व्यवस्था का अग माना गया। सेना और प्रशासन की कुछ अन्य शाखाओं मे भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए।

२०वी शताब्दी के प्रारंभिक वर्षो तक भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद निरंतर वर्धमान था। कर्जन के शासनकाल मे (१८९९-१९०५) यह उत्कर्ष के शिखर पर पहुंच गया किंतु १८७० के बाद से, इसके साथ ही साथ, भारत मे धीरे धीरे राजनीतिक चेतना का भी जागरण होने लगा। १८८५ मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना इस दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है। अनेक वर्षो तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस नरमपंथी नीति का ही अनुसरण करती हुई समय समय पर जनकल्याण के लिये विभिन्न सुधारो तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत प्रातिनिधिक स्वशासन के समारंभ की माग करती रही। किंतु इसी के साथ साथ कांग्रेस के ही अंदर कुछ ऐसे भारतीय राष्ट्रवादियो का भी वर्ग था जिनका विचार आमूल परिवर्तनवादी और उग्र था। वह ब्रिटिश शासन से संपूर्ण मुक्ति की माँग करता था। इस वर्ग के प्रमुख प्रतिनिधि थे बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय और विपिनचंद्र पाल। १९०५ मे कर्जन की बंगाल विभाजन की योजना के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया हुई उसमे भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास मे एक नया मोड़ आ गया। बगाल मे स्वदेशी आदोलन छिड़ा जिसका भारत के दूसरे भागों मे भी व्यापक प्रभाव हुआ। १९०६ मे हुए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन मे उसके राष्ट्रपति दादाभाई नौरोजी ने स्वराज अथवा 'ब्रिटेन या ब्रिटिश उपनिवेशों के अंतर्गत स्वशासन' को भारत का लक्ष्य घोषित किया। आगे चलकर महात्मा गाधी के नेतृत्व मे भारतीय राष्ट्रीय आदोलन शक्तिशाली होने लगा और एक के बाद एक असहयोग आदोलन (१९२०-१९२४), सविनय अवज्ञा आंदोलन (१९३०-१९३४) तथा सन् १९४२-१९४३ के आदोलन के दौरान सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचंद्र बोस जैसे देशभक्तों के अनवरत त्याग और बलिदान के फलस्वरूप १९४७ मे भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हो गई और ब्रिटिश राज समाप्त हो गया।

[का० किं० द०]

भारत में लौह अयस्क (Iron ore in India) भारत, विश्व के उन देशों में से है जहाँ विपुल मात्रा मे लौह अयस्क देश के अनेक भागों में पाया जाता है। इन स्रोतों मे से कुछ ऐसे भी हैं जो वर्तमान समय में यातायात की कठिनाई, अथवा किसी अन्य कारणवश, अधिक आर्थिक महत्व के नही हैं। लगभग एक शताब्दी से इन स्रोतो का सर्वेक्षण होता आया है तथा लगभग अर्द्धशताब्दी से लौह तथा इस्पात के उत्पादन पर विशेष बल दिया गया है।

भारत मे प्राप्त लौह अयस्कों मे चार प्रकार मुख्य हैं :

(१) सर्वाधिक महत्वपूर्ण हेमेटाइट (Hematite) अयस्क है, जो बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश के विशाल निक्षेपों मे विद्यमान है। अपेक्षाकृत कुछ कम महत्व के निक्षेप मैसूर तथा महाराष्ट्र राज्यो में स्थित हैं।

(२) स्फटिक मैग्नेटाइट (Quartz Magnetite) शिलाएँ मुख्यत: मद्रास राज्य के त्रिचनापल्ली तथा सेलम जिलो मे और मैसूर के कुछ भागों मे पाई जाती है।

(३) लिमोनाइट तथा लोहउल्का (Limonite & Siderite ores) बगाल के रानीगज क्षेत्र मे विकसित, अधर गोडवाना क्रम के लौह-प्रस्तर-शेल (shale) के अवयव के रूप मे पाई जाती है।

(४) लैटेराइट अयस्क (Laterite ore) इनका उद्भव विभिन्न प्रकार की शिलाओ से, जिनमे लौह का कुछ अंश रहता हो, हो सकता है। इनमें ऋतुक्षरण (weathering) से सिलिका (silica), क्षारो एवम् क्षारीय मिट्टियो का लोप हो जाता है तथा लौह और ऐल्यूमीनियम के आर्द्र ऑक्साइडों का संकेंद्रण हो जाता है। इस प्रकार प्रसिद्ध लैटेराइट अस्तित्व मे आता है।

लौह अयस्क का भूवैज्ञानिक वितरण— सर्वाधिक महत्वपूर्ण अयस्क हेमेटाइट निक्षेप हैं, जो पूर्व कैंब्रियन युग के पट्टीवाले हेमेटाइट जैस्पर (Banded Hematite Jasper) अवसादो के साहचर्य मे प्राप्त होते हैं। कुछ मैग्नेटाइट निक्षेप इन अवसादो के रूपातरण द्वारा ही उत्पन्न हुए है।

कुछ निक्षेप नवीन शिलाओ मे भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ कडप (Cuddapah), विंध्यन, गोडवाना, मेसोज़ोइक (Mesozoic) तथा तृतीयक (Tertiary) आदि मे, किंतु इनका विशेष आर्थिक महत्व नही है। कुछ महत्वपूर्ण निक्षेप भूवैज्ञानिक विभाजन के साथ आगे दिए जा रहे हैं। (देखें सारणी)

बिहार तथा उडीसा

सिंहभूम, क्योंनझर तथा बोनाई के लौह निक्षेप — बिहार के सिंहभूम तथा इससे सलग्न उडीसा के क्योंनझर तथा बोनाई जिलो मे लोह अयस्क विपुल मात्रा मे वितरित है। इस क्षेत्र मे पाई जानेवाली सरचनाओ (formations) मे अकायातरित (unmetamorphosed), पूर्व कैंब्रियन, अवसादित शिलाएँ, जिन्हें 'लौह अयस्क श्रेणी' भी कहते हैं, कुछ प्राचीन नाइसीय (gneissic) तथा शिस्टाभ (schistose) शिलाएँ एव ग्रेनाइट सम्मिलित हैं।

दक्षिण सिंहभूम तथा संलग्न जिलो मे पट्टीवाली फेरोगिनस (feruginous) शिलाएँ वलित (folded) हैं, जिन्होने ऐसी कूट शृंखला को जन्म दिया है जिसके शृंग उत्तम प्रकार के लौह अयस्क (हेमेटाइट) से आच्छादित हैं। इन निक्षेपों को पट्टीवाले हेमेटाइट जैस्पर कहा जाता है। इनमें हेमेटाइट तथा जैस्पर की पट्टियाँ एक के बाद एक के क्रम मे पाई जाती है। संरचनाओं की अधिकतम मोटाई बोनाई जिले मे लगभग ३,००० फुट है तथा सिंहभूम और क्योंनझर मे कुछ कम है। इस क्षेत्र की संरचना जटिल होने से मोटाई का ठीक ठीक अनुमान लगाना कठिन है।

महत्वपूर्ण निक्षेप

निक्षेप का विवरण	स्थिति
पूर्व कैंब्रियन की लौह अयस्क श्रेणियाँ तथा धारवाड	सिंहभूम (बिहार), बोनाई, क्योंनझर तथा मयूरभंज (उड़ीसा), चांदा, द्रुग, बस्तर तथा जबलपुर (मध्य प्रदेश); रत्नगिरि; गोआ, सेलम; त्रिचनापल्ली, सांडूर; हैदराबाद।
पट्टी वाले लौह अवसाद ग्रेनाइट (granite) मैग्नेनाइट तथा विघटित ग्रेनाइट	जयतिया पर्वत (असम)
कडप क्रम (system)	कर्नूलु (मद्रास)
बिजावर श्रेणी (series)	रीवा (मध्य प्रदेश)
गोडवाना क्रम बराकर तथा महादेव श्रेणियाँ लौह प्रस्तर शेल	वीरभूम रानीगज कोयला क्षेत्र (बगाल)
ट्राइसिक (Triassic)	कश्मीर
ज़ूरेसिक (Jurassic)	काठियावाड
राजमहल पाश (trap)	वीरभूम (बगाल)
उत्तर तृतीयक (Upper tertiary) टीपम समूह (group)	उत्तर असम (upper assam)
लैटेराइट (laterite) [तृतीयक अथवा पश्चात]	बंगाल, हैदराबाद, मद्रास

इन क्षेत्रो मे अनेक प्रकार के अयस्क मिलते हैं, जिनमे चार प्रकार के मुख्य हैं :

(१) स्थूल अयस्क, जिसमे मुख्यत. हेमेटाइट ही होता है। यह गहरे कत्थई से लेकर इस्पात के वर्ण तक का सघन अयस्क है, जो सामान्यत: अयस्ककूटो के शृगों को निर्मित करता है।

(२) पटलित अयस्क (laminated ore) मे पटल पूर्ण रूप से विकसित होते हैं। अवश्य ही यह अयस्क, स्थूल अयस्क से कम सघन होता है तथा इसमे लौह का अनुपात ५५ % से ६० % तक होता है।

(३) शेली (shaly) अयस्क कुछ गहराई पर मिलता है। कुछ अयस्क पर्याप्त, यहाँ तक कि सघन अयस्क जितन, समृद्ध होते हैं तथा कुछ मे लौह का अनुपात ५० % अथवा उससे भी कम होता है।

(४) चूर्ण अयस्क अधिकाशत. नीलश्याम (blue black) वर्ण का होता है। इसके चप्पे (patches) नोआमडी, गुआ, मनोहरपुर तथा अन्य निक्षेपो मे प्राप्त होते है, जहाँ खनन खुले क्षेत्र मे होता है।

पालामऊ जिले के मैग्नेटाइट निक्षेप — पालामऊ जिले में डाल्टनगंज के समीप, लाबी में मैग्नेटाइट प्रयस्क दो समूहों में पाया जाता है। प्रथम समूह गोरे ग्राम के समीप पाँच पहाड़ियों का है, जो उ० उ० प०–द० द० पू० दिशा में १,०० गज तक फैला हुआ है। पहाड़ियों की चौड़ाई ३५० गज है।

प्रयस्क में मुख्यतः मैग्नेटाइट है, जो अंशतः हेमेटाइट द्वारा स्थानांतरित कर दिया गया है। समृद्ध प्रयस्क के दृश्यांश (outcrop) की लंबाई लगभग २,००० फुट तथा चौड़ाई ६० फुट है। प्रयस्क का आपेक्षिक घनत्व ४·३–४·६३ है। इसमें अच्छे वर्ग के मैग्नेटाइट की मात्रा का अनुमान ४,००,००० टन है। कुछ लोग इसका अनुमान ६,००,००० टन तक भी करते हैं। दूसरा वर्ग है बिवाबाथन, जो बिवाबाथन नामक ग्राम के दक्षिण पूर्व में लगभग आधा मील पर स्थित है। यहाँ मैग्नेटाइट शिस्ट (schist) का एक लघु दृश्यांश (outcrop) देखा गया है। इस दृश्यांश से संलग्न क्षेत्र में लौह प्रयस्क के अनेक ढेर बृहत् मात्रा में फैले हुए हैं। मैग्नेटाइट प्रयस्क के अनुमानित भंडार १,००,००० टन हैं।

टाइटेनियमयुक्त तथा वैनेडियमयुक्त मैग्नेटाइट निक्षेप — दक्षिण-पूर्व सिंहभूम तथा मयूरभंज से संलग्न भागों में कुछ टाइटेनियमयुक्त मैग्नेटाइट के निक्षेप, जिनमें वैनेडियम का भी कुछ अवयव संमिलित है, प्राप्त होते हैं। डुब्लावेरा, लांगो, कुदर साही (सिदोरपुर के दक्षिण मे) तथा बेतझरन के समीप प्रयस्क के प्राप्तिस्थान हैं। ये सभी छोटे निक्षेप हैं। सर्वाधिक विशाल निक्षेप मयूरभंज राज्य के कुम्हारडूबी में प्राप्त हुए हैं। इसके आसपास का क्षेत्र, जो ३/४ मील लंबा और ३/८ मील चौड़ा है, प्लवी प्रयस्क (float ore), अथवा मैग्नेटाइट संखड (magnetite debris), से आच्छादित है। प्लवी प्रयस्क के अनुमानित भंडार १० लाख टन के लगभग हैं।

मध्य प्रदेश

विशाल और महत्वपूर्ण लौह निक्षेप बस्तर, चाँदा, दुग तथा जबलपुर जिलों में प्राप्य हैं।

बस्तर जिले के निक्षेप — ये निम्नलिखित हैं :

(अ) बैलाडिला — यहाँ लौह प्रयस्क पूर्वकैंब्रियन अवसादीय लौह संरचनाओं में, जिन्हें 'बैलाडिला लौह प्रयस्क शृंखला' कहते हैं, पाए जाते हैं। मूल शिला पट्टीवाली हेमेटाइट जैस्पर (B. H. J.) है, जो हेमेटाइट द्वारा प्रतिस्थापित कर दी गई है। कुछ छोटे मोटे मैग्नेटाइट निक्षेप भी मिले हैं, किंतु महत्व के नहीं हैं। बैलाडिला शृंखला में दो समांतर कूट हैं, जो उत्तर-दक्षिण मे फैले हुए हैं। लगभग १४ निक्षेपों की स्थिति ज्ञात की जा चुकी है, जिनमें पाँच शृंखला के पश्चिम मे तथा नौ पूर्व मे स्थित हैं। तलीय अवलोकन द्वारा निक्षेपों का अनुमान दो सौ फुट तक की गहराई के लिये ६१ करोड़ टन आंका गया है। इसमे प्लवी प्रयस्क भी संमिलित है। यह अनुमान पूर्णतः विश्वसनीय नहीं है।

(ब) राउघाट (Rowghat) — यहाँ हेमेटाइट के कुछ महत्वपूर्ण निक्षेप मिले हैं। इस क्षेत्र मे लगभग छह निक्षेपों का रेखांकन हो चुका है और १५० फुट तक की गहराई में ७४ करोड़ टन प्रयस्क होने का अनुमान है। कारके गाँव के पश्चिम में राउघाट के दक्षिण पश्चिम कूट में विशालतम निक्षेप स्थित हैं।

दुग जिले के निक्षेप — इस जिले के पश्चिमी भाग में धल्ली तथा रझारा पर्वतश्रेणियों पर, जो लगभग २० मील तक वक्र, किंतु सतत, पंक्ति मे फैली हुई हैं, आस पास के क्षेत्र से ४०० फुट की ऊँचाई पर लौह निक्षेप प्राप्त होते हैं। इनका प्रयस्क उच्च वर्ग का हेमेटाइट है, जिसमें मैग्नेटाइट की कुछ मात्रा भी संमिलित है। १५० फुट गहराई तक प्रयस्क के अनुमानित भंडार १२ करोड़ टन आंके गए हैं।

चाँदा जिले के निक्षेप — लौह प्रयस्क के प्राप्तिस्थान मुख्य रूप से चाँदा जिले के उत्तरी भाग मे सीमित हैं, जहाँ वे लेंसों (lenses) की शृंखला में पट्टीवाले हेमेटाइट जैस्पर के साहचर्य में प्राप्त होते हैं। मुख्य प्राप्तिस्थान लोहारा, पिपलगाँव, असोला तथा दिवालगाँव हैं। लोहारा निक्षेप की चौड़ाई अपेक्षाकृत कम है, किंतु फिर भी १० फुट चौड़ाई को ध्यान में रखते हुए यहाँ २१० लाख टन प्रयस्क मिलने की आशा है। पिपलगाँव, असोला तथा दिवालगाँव के निक्षेप छोटे हैं तथा कुल प्रयस्क का अनुमान १० लाख टन है।

जबलपुर जिले के निक्षेप — लौह प्रयस्क उत्तर पूर्वी भाग की शिलाओं में, जो पहिले बिजावर श्रेणी में समझी जाती थी किंतु अब धारवार वर्ग में संमिलित की जाती हैं, पाया जाता है। मुख्य लौह शिलाएँ अभ्रकी तथा सिलिकामय हैं।

अगरिया पहाड़ी में, जो सिहोरा रेलवे स्टेशन के द० द० पू० में १० मील की दूरी पर स्थित है, लैटेराइट के समृद्ध प्रयस्कों मे लौह की मात्रा ४५–६० % तक विद्यमान है। इसकी अनुमानित मात्रा ७,५०,००० टन है।

इसके अतिरिक्त जौली, सिलोंदी, गोसलपुर तथा घोगरा आदि मे साधारण अथवा निकृष्ट कोटि के निक्षेप हैं। कन्हवाड़ा पहाड़ियों में लैटेराइट पाया जाता है। यहाँ प्रयस्क की कुल मात्रा ४६० लाख टन के लगभग होगी। सरोली में ३५ लाख टन प्रयस्क मिलने की संभावना है।

ग्वालियर जिले के उत्तरी भाग मे लौह प्रस्तर शेलें मिलती हैं। प्रयस्क सघन कठोर हेमेटाइट से लेकर कोमल पदार्थ तक के रूप में प्राप्य है। प्रयस्क में कभी कभी ७०% तक लौह होता है।

बिजावर श्रेणी में नर्मदा नदी के अनुप्रस्थ इंदौर, धार तथा झबुआ जिलों में लौह प्रयस्क अनियमित रूप से वितरित पाया जाता है।

गुना, शिवपुरी, भिलसा, शाजापुर, उज्जैन तथा मंदसौर जिलों में समृद्ध लैटराइट के छद (cappings) पाए गए हैं।

बंगाल

बीरभूम — यहाँ लौह प्रयस्क अनेक स्रोतों से उत्पन्न हुए हैं। दामुदा तथा महादेव श्रेणियों के बालू पत्थर में हेमेटाइट की पट्टिकाएँ मिली हैं। दूसरा स्रोत लैटेराइट का है, जो राजमहल पाश के साहचर्य में पाया जाता है। तामरा देवचा, सी पहाड़ी, दुधिया, काँडा तथा राजमहल पाश की दक्षिण सीमा के समीप खनन कार्य किया गया है।

(२) रानीगंज कोयला क्षेत्र (बर्दवान) — लौह अयस्क दामूदा श्रेणी के मध्य भाग में पाया जाता है जो लौह प्रस्तर शेल कहा जाता है। लौह प्रस्तर शेल की अनुमानित मोटाई लगभग १,४०० फुट है, तथा यह पूर्व पश्चिम दिशा मे कुल्टी से लेकर लगभग ३३ मील की दूरी तक फैली हुई है। टी० डब्ल्यू० एच० ह्यूज (T. W. H. Hughes) के अनुसार इस क्षेत्र के प्रति वर्ग मील में लगभग २० करोड़ टन लौह प्राप्त होने की संभावना है।

महाराष्ट्र और गोआ

लौह अयस्क के निक्षेप धारवाड़ क्रम मे अनावृत्तों (exposures) की शृंखला के रूप में कंकोली के समीप, बाग्दा के पूर्व में स्थित कस्साल के पूर्व-उत्तर-पूर्व में, कुंडा के दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम एवं कट्टा तथा रेडी के समीप पाए जाते हैं। कट्टा तथा रेडी के निक्षेप महत्वपूर्ण हैं और महाराष्ट्र तथा गोआ की सीमा पर वेनगुल्ला के दक्षिण-दक्षिण-पूर्व मे पश्चिमी तट पर स्थित हैं।

गोआ की सीमा मे बिचोलिम के समीप लोहे की खानें प्राप्त होने की सूचना मिली है। दो कूटों, जिनकी पारस्परिक दूरी ४०० मीटर है, पर दो समातर लौह अयस्क की पट्टियाँ हैं। यहाँ के अयस्क मे कुछ कठोर तथा रध्री हेमाटाइट, मैगनेटाइट के सूक्ष्म कणों के साथ प्राप्त होता है।

महाराष्ट्र तथा गोआ के लौह के निक्षेपो में न्यूनतम ७० लाख टन उत्तम प्रकार के अयस्क मिलने की आशा है। इतनी ही मात्रा मे निकृष्ट कोटि के तथा लैटेराइट अयस्क भी प्राप्त हो सकते हैं। उत्तम प्रकार के अयस्क मे लगभग ६०% लौह होता है। समुद्र के समीप होने के कारण इन निक्षेपो का उपयोग मुख्य रूप से जापान के लिये अयस्क निर्यात करने के लिये किया जाता है।

मद्रास

सेलम तथा त्रिचनापल्ली के निक्षेप — मद्रास राज्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण निक्षेप मैगनेटाइट स्फटिक शिलाओं का एक वर्ग है जो त्रिचनापल्ली और सेलम जिलों मे पूर्व-उत्तर-पूर्व पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम दिशा के अनुप्रस्थ फैला हुआ है। इस क्षेत्र के निक्षेपों को निम्नलिखित नौ वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है :

(१) कंज मलाई, (२) गोदु मलाई (३) पेरुम मलाई (४) आत्तुर क्षेत्र (५) चित्तेरी पहाड़ी (६) थीर्थ मलाई (७) नमक्कल तथा रासीपुर क्षेत्र, (८) कोल्लाइ मलाई एव (९) पचाइ मलाई।

सर्वाधिक महत्व के निक्षेप कज मलाई मे ही निहित हैं इसमें कोई संशय नही। कंज मलाई विशाल पहाड़ी है जो सेलम नगर से पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम मे पाँच मील की दूरी पर स्थित है। इसकी रूपरेखा अंडाकार है जिसकी लबाई ४½ मील तथा चौड़ाई २½ मील के लगभग है।

भंडार — अनुमान केवल उन्ही अयस्को का किया गया है जिनमें २५% से कम मैगनेटाइट नहीं है और जहाँ वाणिज्य स्तर पर कार्य किया जा सकता है। डा० एम० एस० कृष्णन् के अनुसार १०० फुट की गहराई तक निम्नलिखित भंडारों की गणना की गई हैं :

निक्षेप	मात्रा
कंज मलाई	५.४६ करोड़ टन
गोदु मलाई	१.२५ ,, ,,
पेरुम मलाई	१.०४ ,, ,,
आत्तुर क्षेत्र	१.१७ ,, ,,
चित्तेरी पहाड़ी	५.५४ ,, ,,
थीर्थ मलाई	४.७५ ,, ,,
नमक्कल रासीपुर	३.३९ ,, ,,
कोल्लाइ मलाई	६.७४ ,, ,,
पचाइ मलाई	१.११ ,, ,,
	योग = ३०.४५ करोड़ टन

कडप जिले के हेमाटाइट निक्षेप — चबाली निक्षेप, कडप क्रम के पुलीवेंडला क्वार्ट्ज़ाइट (Quartzites) के समृद्ध भाग को प्रदर्शित करते है। लौह अयस्क स्फटिक के अनियमित चप्पो मे प्राप्य हैं। अयस्क उत्तम प्रकार का हेमाटाइट है, किंतु कुछ भाग का अपरदन हो गया है। चबाली के समीप ही पगडालापाल्ले निक्षेप भी स्थित हैं। चबाली मे कई सौ हजार टन अयस्क मिलने की संभावना है।

कर्नूलु जिले के निक्षेप—रामाल्ला कोटा तथा बेलदूर्ती के समीप हेमाटाइट निक्षेप मिले हैं। बेलदूर्ती, गानीघाट्ट पहाड़ियों तथा ब्रह्म-मुडम के अंतर्गत अनेक निक्षेप प्राप्त हुए हैं। १०० फुट तक की गहराई के लिये अनुमानित भंडारों की मात्रा ३७ लाख टन है।

मैसूर

हेमाटाइट अयस्क — इन अयस्कों ने पूर्व कैंब्रियन धारवाड़ क्रम के भागों को निर्मित किया है। अयस्क खनिज मुख्यतः हेमाटाइट है जिसके साहचर्य मे थोडा मैगनेटाइट भी मिलता है।

मैगनेटाइट अयस्क — स्फटिक (Quartz) मैगनेटाइट अयस्क लेंस रूप मे माड्डूर, हलागुर तथा सारगुर के समीप एक श्रेणी के अंतर्गत मिलता है।

टाइटेनियम का मैगनेटाइट — यह विरल पट्टिकाओं तथा लेंसों में मैसूर के दक्षिणी भाग मे प्राप्त होता है।

भंडार — चिक्कमंगलूर, चित्राल, दुर्ग तथा तुमकुरु जिलों में हेमाटाइट अयस्क के विशालतम निक्षेप है। यहाँ अल्प गहराई तक ही लगभग १२ करोड़ टन अयस्क उपलब्ध है। इसमे ½ भाग उच्च कोटि का अयस्क है जिसमे ६० % के लगभग लौह है। १०० फुट की सामान्य गहराई मानते हुए कुल भंडारो का अनुमान १०० करोड़ टन होगा जिसमे सभी कोटि के अयस्क समिलित हैं। मैसूर राज्य के अन्य भागो मे १० करोड़ टन से भी अधिक स्फटिक मैगनेटाइट अयस्क तथा तीन करोड़ टन के लगभग टाइटेनियमयुक्त मैगनेटाइट विद्यमान है।

सावूर (बल्लारि) के लौह निक्षेप — लौह अयस्क धारवाड़ (पूर्व कैंब्रियन) शिलाओं मे प्राप्य है। उड़ीसा की भाँति यहाँ भी अयस्क छादों से आच्छादित कूटो की एक शृखला है जो पट्टीवाली लौह संरचनाओं के समृद्ध संवर्धन मे उत्पन्न हुई है। अयस्कों मे उत्तम हेमाटाइट है।

भंडार — ५० से ८० फुट गहराई तक विभिन्न निक्षेपो के अनुमानित भंडार इस प्रकार है :

निक्षेप	मात्रा	
दोनाइ मलाई	२·५६ करोड़ टन	
देवादरी शृंखला	१·५०	,,
कुमारास्वामी काम्माधेरूवू शृंखला	२ ५४	,,
काना वेहाली शृंखला	०·०५	,,
रामन दुर्ग शृंखला	३·०३	,,
तिम्मापानागुडी शृंखला	३·२८	,,
योग =	१२·९६ करोड़ टन	

आंध्र प्रदेश

हैदराबाद मे विभिन्न आकार के अनेक निक्षेप प्राप्त हुए हैं। इनमें महत्वपूर्ण निक्षेप धारवाड़ क्रम मे ही सीमित हैं। कुछ महत्वपूर्ण प्राप्तिस्थान चितियाला, कालेरा, रेबनपल्ली, चंदोली (अंबर पेट) तथा सिंगरेनी क्षेत्र आदि है।

कश्मीर

सर्वप्रथम लौह अयस्क का एक स्तर संगार मार्ग में प्राप्त हुआ था। एक अन्य स्तर अशुद्ध कैल्सियम लौह अयस्क का है जो चूना पत्थर तथा शेलों के संपर्क में उत्तर ट्राऐसिक युग की शिलाओं मे सोफ ग्राम में पाया गया है।

पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश

कुछ साधारण निक्षेप पटियाला (पजाब) तथा हिमाचल प्रदेश में प्राप्त हुए हैं। इनमे कुछ महत्वपूर्ण निक्षेप भी होगे ऐसी संभावना है।

भंडारों का अनुमान

यह स्वयं सिद्ध है कि भारत में हेमाटाइट अयस्क पर्याप्त विस्तारों में वितरित तथा मात्रा की दृष्टि से भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। व्यावहारिक रूप से सभी दशाओं मे भंडारो का अनुमान तलीय निरीक्षणों द्वारा ही किया गया है तथा वृहत् पूर्व सर्वेक्षण नही हुआ है। निम्नांकित अनुमान मे केवल उन्ही अयस्कों की गणना की गई है जिनमे ६०% या उससे अधिक लौह अवयव विद्यमान है। अनुमानित भंडार (करोड टन मे) निम्नलिखित है :

हेमाटाइट अयस्क	भूवैज्ञानिक अनुमान	सभावित अनुमान
बिहार तथा उड़ीसा		
सिंहभूम	१०४·७	
केंदुझरगढ़	९८·८	
बोनाई	६४ ८	
मयूर भज	१ ७	
	२७०·०	८००·०
मध्य प्रदेश		
लोहारा	२·०	
पिपलगाँव	३	
आसोला दिवाल गाँव	·२	
धल्ली राभारा पहाडियाँ	१२ ०	
बैलाडिला	६१ ०	
रावघाट आदि	७४ ०	
जबलपुर (विभिन्न प्रकार)	५ ५	
	१५५·०	३००·०
महाराष्ट्र तथा गोआ		
गोआ रतनगिरि	·७	
आंध्र	३·६	
मद्रास		
बेलदूर्ती (कर्नूलु)	·७	
मैसूर	१२·०	१००·०
सांदूर (बल्लारि)	१३·०	२५·०
हेमेटाइट अयस्क का योग	४५५ ०	१२२५·०

मैगनेटाइट	भूवैज्ञानिक अनुमान	संभावित अनुमान
मद्रास		
सेलम त्रिचनापल्ली	३०·५	१००·०
मैसूर	१३ ०	२०·०
बिहार तथा उड़ीसा		
सिंहभूम, मयूरभंज	·२	
पालामऊ	·१	
हिमाचल प्रदेश		
मंडी	२·५	
मेग्नेटाइट अयस्क का योग	४६·३	१२० ०

लिमोनाइटिक अयस्क	भूवैज्ञानिक अनुमान	संभावित अनुमान
बंगाल		
रानीगंज कोयला क्षेत्र		५०·०

भारतीय लौह व इस्पात उद्योग — अभी तक भारत में लौह व्यवसाय विकासशील अवस्था मे है। देश मे लौह खनिज का वार्षिक उत्पादन लगभग ५१ लाख टन है जिसमे से प्राय ६०% बिहार और उड़ीसा के निक्षेपो से प्राप्त होता है। उत्पादित मात्रा का कुछ भाग जापान आदि देशो को निर्यात किया जाता है। देश मे लौह तथा इस्पात के चार पुराने कारखाने है जिनमें से एक टाटानगर मे, दूसरा आसनसोल के समीप हीरापुर मे, तीसरा कुल्टी मे तथा चौथा मैसूर राज्य मे भद्रावती मे स्थित है। इन सब मे मिलाकर १६ लाख टन कच्चा लोहा तथा १२ लाख टन लोहा और इस्पात उत्पन्न होता है। देश की विशालता तथा जनसंख्या को देखते हुए यह मात्रा बहुत कम है और अत्यधिक परिमाण मे लौह तथा इस्पात तथा उनसे बना हुआ सामान विदेशों से आयात करना अनिवार्य होता है। यत्रो के अतिरिक्त साधारण श्रेणी का लोहा तथा इसके सामान के आयात का वार्षिक मूल्य प्राय २२ करोड़ रुपए के लगभग होता है। इस अभाव को पूरा करने के लिये नवीन लौह तथा इस्पात के कारखानो के निर्माण की योजनाएं बनाई गई है। उडीसा में रूरकेला, मध्यप्रदेश में भिलाई तथा पश्चिमी बंगाल मे दुर्गापुर मे नवीन कारखाने स्थापित हो गए हैं। [बि० सा० दु०]

भारत सर्वेक्षण आधुनिक काल मे किसी भी सभ्य देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये परिशुद्ध मानचित्र अत्यंत आवश्यक है।

प्रशासन, सुरक्षा, कृषि, सिंचाई, वनप्रबंध, उद्योग, संचार, आदि विविध क्षेत्रों में जनता की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानचित्र पहली आवश्यकता है। इस कार्य को समुचित रीति से करने के लिये भारत सरकार ने भारतीय सर्वेक्षण विभाग स्थापित किया है।

इतिहास — ईस्ट इंडिया कंपनी के अफसरों ने १७५० ई० में ही बंबई, कलकत्ता और मद्रास के आसपास प्रशासन, राजस्वनिर्धारण और व्यापार की दृष्टि से जहाँ तहाँ सर्वेक्षण प्रारंभ किया था। १७६७ ई० में मेजर रेनेल बंगाल के प्रथम महासर्वेक्षक नियुक्त हुए। इनकी नियुक्ति का उद्देश्य सफल प्रशासन और वाणिज्यप्रसार के लिये बंगाल का एक बृहत् मानचित्र तैयार करना था। इनके सहायक अधिकतर सैनिक इंजीनियर थे जिन्हें खगोलीय निरीक्षण द्वारा मार्गसर्वेक्षण का अनुभव था और जिन्हें शांति के दिनों में सेना से मुक्त किया जा सकता था। ये मानचित्र सन् १७७६ में इंग्लैंड में उत्कीर्ण और मुद्रित हुए और सारे बंगाल में ६० वर्षों तक ये ही प्राप्य नक्शे थे।

विश्वस्त अभिलेखों और सर्वेक्षणों के आधार पर बना हुआ रेनेल का 'हिंदुस्तान का मानचित्र' इंग्लैंड में १७८२ ई० में उत्कीर्ण हुआ। इस मानचित्र का अधिकांश यात्रियों के रोजनामचों के आधार पर चित्रित हुआ था। समुद्र-तट-रेखा तो नौचालकों के निरीक्षणों के आधार पर कुछ हद तक शुद्ध अंकित हुई थी लेकिन देश के भीतरी भाग का रेखांकन शुद्ध नहीं कहा जा सकता था।

देश भर में धरातल तथा भौगोलिक सर्वेक्षणों के आधारभूत परिशुद्ध बिंदुओं का निर्धारण करने के लिये १८०० ई० में कैप्टन लैंबटन नियुक्त हुए। उन्होंने देश भर में फैले हुए संबंधित बिंदुओं के अक्षांश और देशांतर का ज्ञान करने के लिये आधाररेखा (base line) और त्रिकोणीय ढाँचे (triangulation frame work) पर त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण किया। अन्य भूगणितीय (geodetic) कार्य गौण महत्व के समझे गए। लैंबटन की मृत्यु के बाद इस सर्वेक्षण का नाम १ जनवरी, १८१८ को 'भारत का महान् त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण' (The Great Trignometrical Survey of India) रखा गया और लैंबटन की मृत्यु के पश्चात् कर्नल ऐवरेस्ट ने १८४० ई० के बाद इस कार्य को उत्तर में हिमालय की ओर बढ़ाया।

१८१५ ई० तक बंगाल, मद्रास और बंबई में अलग अलग एक एक महासर्वेक्षक था जो स्थानीय सरकार के अधीन कार्य करता था। १८१५ ई० में तीन स्वाधीन महासर्वेक्षकों के पद को मिलाकर एक पद कर दिया गया, जिसपर कर्नल मैकेंजी भारत के एक महासर्वेक्षक नियुक्त हुए। कर्नल मैकेंजी का पहला कार्य भारत का प्रामाणिक मानचित्र तैयार करना था। १८३० से १८६१ ई० और १८७८ से १८८३ ई० तक भारत का महासर्वेक्षक ही त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण का अधीक्षक था, यद्यपि यह एक स्वतंत्र विभाग बना रहा। भारत का चौथाई इंच ऐटलस चालू होने पर लगभग १८२५ ई० में भारत का मानचित्र सामने आया और इस माला का पहला नक्शा १८२७ ई० में मुद्रित हुआ। यह नक्शा केवल महान त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण के आधार पर ही बना और लंदन में संकलित तथा उत्कीर्ण हुआ। इस ऐटलस में १८६८ ई० तक, जब उत्कीर्णन भारत में होने लगा, देश के आधे से अधिक भाग के मानचित्रों को प्रदर्शित कर दिया गया था। इस ऐटलस का कार्य १९०५ ई० तक आगे बढ़ता रहा। पर १९०५ ई० में १/४ इंच अंश मानचित्रों के एक नए विन्यास और एक इंच नक्शों की लगातार मालाओं ने पुराने मानचित्रों का स्थान ले लिया।

१९०५ ई० के बाद के आधुनिक सर्वेक्षण और मानचित्र — १९०५ ई० तक के किए गए स्थलाकृति सर्वेक्षण आधुनिक आवश्यकताओं को देखते हुए परिमाण और गुण में अपर्याप्त थे। अतएव १९०४-१९०५ ई० में इस समस्या की जाँच के लिये इंडियन सर्वे कमेटी नामक समिति गठित हुई। इस प्रकार भारत में आधुनिक सर्वेक्षण का प्रारंभ १९०५ ई० में हुआ। उक्त समिति ने बृहत् योजना बनाकर भावी सर्वेक्षणों के संबंध में नीति निश्चित की और 'भारतीय सर्वेक्षण' विभाग ने अनेक रंगों में स्थलाकृति मानचित्र माला (जंगलों के नक्शे सहित) तैयार करने का दायित्व सँभाला। राजस्व मानचित्रों का सर्वेक्षण प्रांतों पर छोड़ दिया गया। इस कदम से भारत के सर्वेक्षण विभाग को सारे देश का मानचित्र शीघ्रता से तैयार करने में काफी मदद मिली। इन प्रारंभिक कार्यों से यह विभाग शनैः शनैः स्थलाकृतिक सर्वेक्षण, खोज और दक्षिण एशिया के अधिकांश भूभाग के भौगोलिक मानचित्रों का अनुरक्षण तथा भूगणितीय कार्य के लिये जिम्मेदार बन गया है। आजकल एक सुस्थापित सरकारी विभाग है जिसकी परिशुद्ध भारतीय सर्वेक्षण, मानचित्र सर्वेक्षण और भूगणितीय कार्यों की परंपरा प्रशंसनीय है। देश की विकास योजनाओं के लिये आधुनिक सर्वेक्षणों को निष्पादित करने और स्थलाकृतिक तथा भौगोलिक मानचित्रों के अनुरक्षण में इसका महत्वपूर्ण हाथ है।

मानचित्रों का वर्गीकरण — मानचित्रों के साधारणतया निम्नलिखित प्रकार है . (क) भौगोलिक मानचित्र, (ख) स्थलाकृतिक मानचित्र, (ग) भू कर तथा राजस्व मानचित्र, (ग) नगर तथा कस्बों के दर्शक मानचित्र, (ङ) छावनी मानचित्र, (च) विशिष्ट उपयोग के मानचित्र तथा (छ) विविध मानचित्र।

१. भौगोलिक मानचित्र — इन मानचित्रों में देश की साधारण भौगोलिक आकृतियाँ होती हैं और उनमें अप्रधान स्थलाकृति के विवरण नहीं दिखाए जाते। ऊँची नीची धराकृति (height relief) के ऊँचे नीचे स्तर रंगों या रेखाच्छादन द्वारा दर्शाते हैं। इन मानचित्रों का पैमाना १ इंच से ८ मील से लेकर १:१२० लाख या इससे भी छोटा हो सकता है।

स्थलाकृतिक मानचित्र — स्थलाकृतिक मानचित्रों में सभी प्राकृतिक और कृत्रिम आकृतियाँ विवरण सहित पैमाने के अंदर यथासंभव सुपाठ्य और स्पष्ट रूप दर्शाई जाती है। पहाड़ी आकृतियाँ, समतल रेखा-पद्धति से जिसे समोच्च रेखा कहते है, दिखाई जाती हैं। विशेष आकृति वाले स्थलों को औसत समुद्रतल से ऊपर की ऊँचाई के अंक देकर दिखाया जाता है। भौतिक तथा सांस्कृतिक लक्षणों, राजनीतिक तथा प्रशासनिक सीमाओं, आकृतियों और स्थानों के नामों से युक्त होने के कारण ये मानचित्र बहुत व्यापक होते है। ये मानचित्र ही विविध पैमानों में भौगोलिक मानचित्र तैयार करने के आधार बनते हैं। विकास के लिये मूल योजनाएँ बनाने में भी इन मानचित्रों का बहुत बड़ा हाथ

रहता है। इनका पैमाना एक मील के २·५ इंच से, चार मील के एक इंच तक हो सकता है (भविष्य में मानक स्थलाकृति मानचित्र माला का पैमाना १ : २५,०००; १ : ५०,०००; १ : १००,०००; और १ : २५०,००० होगा)।

भूकर तथा राजस्व मानचित्र — ये मानचित्र राजस्व प्रयोजन के लिये राज्य सरकार द्वारा बनाए जाते है। इनका उद्देश्य स्थलाकृतिक विशेषताओं के दिखाने को छोड़कर गाँव, शहर, जागीर और व्यक्तिगत भूमि संपत्ति का परिसीमन है। इनका पैमाना प्रायः एक मील के १६ इंच का है। माप का चुनाव १ : ५०० से १ : २५,००० तक हो सकता है और ये काली स्याही में ही छापे जाते हैं।

नगर और कस्बों के दर्शक मानचित्र — जैसा कि नाम से प्रकट है इन मानचित्रों मे नगर या कस्बे के सारे विवरण, जैसे सड़क, मकान, नगरपालिका सीमा, सरकारी दफ्तर, अस्पताल, बैंक, सिनेमा, बाजार, शिक्षा संस्थान, अजायबघर, बाग आदि दिखाए जाते हैं। ये मानचित्र स्थानीय संघटनों, परिवहन और नगर विकास समितियों, वाणिज्य संस्थाओं तथा पर्यटकों के लिये उपयोगी होते हैं। पैमाना २४ इंच के १ मील से, ३ इंच के १ मील तक होता है। भविष्य मे दर्शक मानचित्रों का पैमाना १ : २०,००० तथा १ : १५००० होगा।

छावनी मानचित्र — ये मानचित्र विशेष रीति से सैनिक इंजीनियरी सेवा और छावनी अधिकारियो के लिये बने होते है। इनका पैमाना १६ इंच का एक मील और ६४ इंच का एक मील होता है। भविष्य में पैमाना १ : ५००० और १ : १००० होगा।

विविध मानचित्र — अनेक सरकारी विभागों और संस्थाओं को प्रशासन और विकास कार्यो के लिये विशेष विषयो से संबंधित नक्शे की आवश्यकता होती है। ये नक्शे ही अनेक विशेष अध्ययन के लिये उपयुक्त नक्शे के आधार बनते हैं। इनके उदाहरण हैं : तटीय और सिंचाई मानचित्र, सड़क और रेलवे मानचित्र, भूवैज्ञानिक, मौसमविज्ञान, पर्यटक, नागरिक उड्डयन, टेलीग्राफ और टेलीफोन मानचित्र, नैशनल स्कूल और अन्य ऐटलसो के लिये मानचित्र तथा औद्योगिक संयंत्र स्थल आदि के लिये मानचित्र।

विश्व वैमानिक चार्ट आई सी. ए. ओ. (इंटरनैशनल सिविल एवियेशन ऑर्गेनाइज़ेशन) १:१०,००,००० उल्लेखनीय है। इसी प्रकार भारतीय सर्वेक्षण द्वारा तैयार किए हुए अतरराष्ट्रीय असैनिक वैमानिकी के मानचित्र भी महत्व के हैं। इंटरनैशनल सिविल एवियेशन ऑर्गेनाइज़ेशन के सभी सदस्य राष्ट्रों को इन मानचित्रों का तैयार करना आवश्यक है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अपनी सीमा के अंदर की मानचित्र माला तैयार करने के लिये उत्तरदायी हैं। शैली और विन्यास, मानक संकेत, रंग और संगमन (convention) और तैयारी की विधि की एकरूपता के लिये नियम बने हैं जिनका पालन होता है। इन मानचित्रों का पैमाना अधिकतर १:१०,००,००० होता है। १:२,५०,००० पैमाने के आई. सी. ए. ओ. इंस्ट्रूमेंट ऐप्रोच चार्ट, और संसार के सभी महत्वपूर्ण हवाई अड्डों के पैमाने १:३१,६८० के अवतरण चार्ट इन मानचित्रों के अनुषंगी चार्ट हैं।

प्रक्षेप — पृथ्वी का आकार लगभग गोलीय है। प्रक्षेप निर्धारण के लिये भिन्न देशों मे भिन्न आयाम के गोलाभों का उपयोग हुआ है। भारतीय मानचित्रो के लिये स्वीकृत गोलाभ 'एवरेस्ट गोलाभ' है।

मानचित्र प्रक्षेप कागज पर पार्थिव संदर्भ रेखाओं के निरूपण द्वारा पृथ्वी की वक्र सतह को समतल पृष्ठ पर निरूपण करने की पद्धति है। सामान्य रूप से ये अक्षांश की समांतर रेखाएँ और देशांतर (याम्योत्तर) की रेखाएँ हैं। ये भूतल की काल्पनिक, किंतु परिशुद्ध गणितीय गणना के योग्य रेखाएँ हैं। यह तो प्रकट ही है कि भूमंडल, जिसका आकार लगभग गोलीय है, समतल पृष्ठ पर ठीक ठीक निरूपित नही किया जा सकता। अतः समतल कागज पर पृथ्वी की वक्र सतह के निरूपण के लिये प्रक्षेप का आश्रय लिया जाता है। उद्देश्य के अनुसार त्रुटि और विकृति को इच्छित अंश तक सीमित या दूर हटा दिया जाता है (देखे, प्रक्षेप)।

आकार को बनाए रखने के लिये दो बातो का ध्यान रखना आवश्यक है : (१) देशांतर और अक्षांश रेखाएँ प्रक्षेप मे एक दूसरे के लंबवत् हो, (२) किसी निश्चित् बिंदु पर सभी दिशाओं मे पैमाना एक हो चाहे वह भिन्न बिंदुओ पर विभिन्न हो। इसे समरूपी प्रक्षेप कहते हैं। भारतीय सर्वेक्षण के मानक मानचित्रों के लिये उचित हेर फेर के साथ समरूपी शंक्वाकार प्रक्षेप प्रयुक्त होते हैं।

सर्वेक्षण विधियाँ — ठीक भौगोलिक स्थिति मे भू आकृति के रूपांकन के लिये मानचित्र के क्षेत्र के अदर ऐसे प्रमुख नियत्रण बिंदुओं के जाल के प्रथम आवश्यकता है जिनके ग्रीनविच के सापेक्ष सही सही अक्षांश और देशांतर अथवा औसत समुद्रतल से ऊँचाई ज्ञात हो। महान् त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण ने भारत के अधिकांश मानचित्रों के निर्माण मे यह कर लिया है। सार रूप मे यह चौरस भूमि पर इन्वार (invar) धातु के तार या फीते से सावधानी से नापी हुई लगभग १० मील लंबी जमीन होती है जिसे 'आधार' कहते हैं।

आधार की स्थापना के बाद उसपर एक के बाद एक उपयुक्त भुजा और कोण के त्रिभुजों की माला रची जाती है। त्रिभुजों के कोणों का निरीक्षण कर भुजा तथा बिंदुओं के नियामकों की गणना कर ली जाती है। इसे त्रिकोणीय सर्वेक्षण कहते हैं। त्रिभुजों का जाल सर्वेक्षण मे सर्वत्र फैला होता है। मुख्य उपकरण काच चाप थियोडोलाइट है जिसमे ऊर्ध्वाधर तथा क्षैतिज कोणों को चाप के एक सेकंड अंश या इससे भी कम तक सही पढ़ने की क्षमता होती है। ये बिंदु काफी दूर दूर होते हैं। अतः विस्तृत सर्वेक्षण संभव नही। इसके लिये यह आवश्यक है कि महान् त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण के बड़े त्रिभुजों को तोड़कर छोटे छोटे त्रिभुजों का जाल बनाकर सारी जमीन को कुछ मील के अंतर पर स्थित बिंदुओं की माला मे परिणत कर दिया जाय।

पटल चित्रण — इच्छित पैमाने पर प्रक्षेप बनाया जाता है। प्रक्षेप मे नियंत्रण बिंदु अंकित किए जाते हैं। इन बिंदुओं से प्रतिच्छेदन और स्थिति निर्धारण (inter secting and resecting) द्वारा पटलचित्रण और दृष्टिपट्टी की सहायता से विस्तृत सर्वेक्षण किया जाता है। इसे पटल चित्रण (Plane tabling) कहते हैं। भारतीय प्रवणतामापी (clinometes) नामक यंत्र से अतरिक्त ऊँचाई निश्चित की जाती है। ऊँचाई से निश्चित ऊर्ध्वाधर अंतराल पर तलरेखा तक जिसे समोच्च रेखा कहते हैं, खीचे जा सकते हैं, जो भूमि की धराकृति अच्छी तरह प्रदर्शित करते हैं।

हवाई सर्वेक्षण — गत ३० वर्षों में सर्वेक्षण के क्षेत्र में प्रविष्ट, अत्यंत प्रभावकारी विधि हवाई फोटोग्राफ की विधि है। सैनिक और असैनिक उपयोगिता की दृष्टि से हवाई फोटोग्राफी का महत्व प्रथम विश्वयुद्ध काल में ही अनुभव किया जाने लगा था तथा सर्वेक्षण और मानचित्र निर्माणकार्य में इसका उपयोग सर्वप्रथम १९१९ ई० में इंग्लैंड में ऑर्डनांस सर्वे की युद्धोत्तरकालीन योजना में हुआ। तब से यूरोपीय देशों तथा उत्तरी अमरीका में इस दिशा में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। अब तो हवाई फोटोग्राफी या फोटोग्रामेट्री द्वारा सर्वेक्षण एक अनूठी वैज्ञानिक प्रविधि है। हवाई फोटोग्राफ द्वारा सर्वेक्षण की दो विधियाँ हैं : लेखाचित्रीय और यांत्रिकी।

लेखाचित्रीय विधि — भारत में लेखाचित्रीय विधि का कुछ वर्षों से अत्यधिक उपयोग हो रहा है और जहाँ तक स्थलाकृतीय मानचित्र अंकन का प्रश्न है, यह विधि लगभग पूर्णता प्राप्त कर चुकी है। इसका आधारभूत सिद्धांत यह है वास्तविक ऊर्ध्वाधर हवाई फोटोग्राफ में विकिरण रेखाएँ, जो फोटोग्राफ में थल विंदु तक फैली होती है, यथार्थ और स्थिर कोण बनाती है। आकृतियों का उच्चता विस्थापन (height displacements) मानचित्र के समतल में दृष्टि विंदु से ठीक नीचे स्थित एक विंदु से [जिसे अवलंब विंदु (Plumb line) कहते हैं और जो व्यवहार में वास्तविक ऊर्ध्वाधर फोटो (true vertical photograph) का केंद्र माना जाता है] अरीय होते हैं जिससे विवरण, मानचित्र समतल के बाहर उसकी ऊँचाई और अवलंब विंदु से दूरी के ठीक अनुपात में वास्तविक मानचित्र स्थिति से विस्थापित हो जाता है। अभीष्ट शक्ल फोटो प्राप्त कर लेने के बाद त्रिकोणीकरण द्वारा निश्चित नियंत्रण विंदुओं की सहायता और फोटो के अरीय गुण का उपयोग कर प्रक्षिप्त पत्रों पर, जिनका जिक्र हो चुका है, ठीक भौगोलिक स्थिति में फोटो के केंद्र अंकित किए जाते हैं। प्रत्येक फोटो के अरीय गुण का उपयोग कर विविध विवरणों का प्रतिच्छेदन उनकी सही स्थिति निश्चित की जाती है। लेखाचित्रीय विधि की सबसे बड़ी समस्या फोटो से परिशुद्ध उच्चता ज्ञात करना है। इस कठिनाई के कारण प्राय. भूमि सर्वेक्षण विधियों में पूरक उच्चता नियंत्रण का घना जाल बनाया जाता है। इस मार्गदर्शक उच्चताओं की सहायता से त्रिविमदर्शी (stereoscope) के नीचे रखकर फोटो पर समोच्च रेखाएँ खीचकर उन्हे मानचित्र पत्र पर लगा दिया जाता है।

यांत्रिक विधि — उद्भासन (Exposure) के समय कैमरा के प्रकाशाक्ष के ऊर्ध्वाधर न होने के कारण उपर्युक्त लेखाचित्रीय विधि से त्रुटिमुक्त मानचित्र नही बनते। यांत्रिक संकलन (mechanical compilation) त्रिविम आलेखन उपकरण (stereoscopic plotting instruments) में होता है जिससे फोटो ठीक उसी स्थिति में उलटते, झुकते और घूम जाते हैं जिसमें उद्भासन के समय विमान था। ये उपकरण वायुसर्वेक्षण समस्याओं का ठीक समाधान कर देते हैं जब कि लेखाचित्रीय विधियाँ सन्निकट समाधान प्रस्तुत करती है। भारत में आजकल काम आनेवाले आलेखन उपकरण है : वाइल्ड ऑटोग्राफ ४७, वाइल्ड ४८, मल्टीप्लेक्स और स्टीरोटोप।

शुद्ध रेखण — पूर्वोक्त विधियों से विभिन्न सर्वेक्षण खंडों का फोटो लेकर काली छाप तैयार की जाती है। इन्हें पृथक् पृथक् मानचित्रों द्वारा संकलित (mosaiced) कर लिया जाता है। इन संकलनों के बनाने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए, ताकि सर्वेक्षणों की परिशुद्धता बनी रहे। काली छाप को मानचित्र प्रक्षेप पर जिसपर कि त्रिकोणमितीय ढाँचा अंकित है, जोड़ा जाता है। यह इसलिये कि सर्वेक्षण का प्रत्येक भाग ठीक मानचित्रित स्थितियों में जम जाय। इस प्रकार संकलन को अंतिम प्रकाशन (final publication) के डेढगुने आकार में फोटो चित्रित किया जाता है और एक अच्छे रेखणपत्र पर नीली छापों (blue print) का संग्रह प्राप्त कर लिया जाता है। परिवर्धन का कारण यह है कि अंतिम प्रकाशन में रेखाकृति (line work) की स्पष्टता और सुंदरता में वृद्धि हो।

मानचित्र में विवरण की जटिलता के कारण विविध प्राकृतिक तथा कृत्रिम आकृतियाँ सुपठ्यता की दृष्टि से प्रभेदक रंगों (distinctive colours) में प्रस्तुत की जाती हैं। मौलिक रूप से जलाकृतियों के लिये नीला, पहाड़ी तथा मरुस्थल के लिये भूरा या उससे मिलता जुलता, वनस्पति के लिये हरा, कृषि क्षेत्र के लिये पीला, सड़क और बस्तियों के लिये लाल, पहाड़ी आकृति और अन्य विवरणों, जैसे खोह, रेलवे आदि के लिये काले रंग का उपयोग किया जाता है। अनुषंगी विषयों जैसे सीमा पट्टी, जल आदि के लिये अन्य रंगों का उपयोग करते हैं। अच्छे रेखांकन के लिये तीन नीली छाप चाहिए। पहाड़ी तथा मरुभूमि की समोच्च रेखा खीचने के लिये एक नीली छाप काम आती है। दूसरी नीली छाप से वन भूमि, छितरे वृक्ष, तरकारियों, चाय बगानों आदि वनस्पतियों का चित्रण होता है। तीसरी नीली छाप अन्य विवरणों तथा नामों के काम आती है। अच्छे रेखांकन के लिये नक्शानवीसी में कुशलता तथा प्रवीणता होनी चाहिए और परिशुद्ध तथा सुरेख मूल तैयार करने के लिये धैर्य परमावश्यक है। मानचित्र की चरम सुंदरता, सुपठ्यता और परिशुद्धता इस विधि पर निर्भर है।

मानचित्र संकलन — छोटे पैमाने पर स्थलाकृतिक तथा भौगोलिक मानचित्र सामान्यत बड़े पैमाने के नक्शों से संकलित किए जाते हैं। विवरण का इच्छित परिमाण चुन लिया जाता है और प्रकाशित मानचित्रों पर गहरी रेखाओं से अंकित कर दिया जाता है। इन अंकित मानचित्रों का फोटो रेखाचित्र के प्रस्तावित पैमाने पर लिया जाता है। इस घटाए गए पैमाने पर काली छापें ली जाती हैं और उन्हें कागज के ऐसे तख्ते पर जोड़ा जाता है जिसपर संकलित मानचित्र की सीमारेखाएँ शुद्धता से प्रक्षिप्त की गई हों। इस संकलन से रेखण की सामग्री ली जाती है और पूर्ववर्ती पैराग्राफ में वर्णित विधि से उसका शुद्ध रेखण चित्रण किया जाता है।

छपाई की विधियाँ — १८३० ई० के पूर्व भारत में मानचित्र तैयार करने की एक ही विधि थी — हाथ से नकल करने की, जो बहुत मंद और खर्चीली थी। तांबे पर मानचित्र की नक्काशी संभव थी, किंतु भारत में बहुत थोड़े लागी नक्काश थे और रेनल के समय से ही नक्काशी का कार्य लंदन में होता था।

फोटोजिंको छपाई — १८२३ ई० के बाद भारत में लिथो मुद्रण का प्रारंभ हुआ और कलकत्ते में एक सरकारी मुद्रणालय स्थापित हुआ। मानचित्र मुद्रण के लिये इसका बहुत कम उपयोग था लेकिन कलकत्ते में निजी मुद्रणालयों में कई सर्वेक्षण मानचित्र लिथो द्वारा मुद्रित हुए। १८५२ ई० में महासर्वेक्षक के कलकत्ता स्थित कार्यालय में मानचित्र

मुद्रण कार्यालय स्थापित हुआ और १८६६ ई० में देहरादून में एक और मुद्रणालय (फोटोजिंको मुद्रणालय) चालू हुआ। महासर्वेक्षक के कार्यालय में मानचित्र मुद्रण तथा विक्रय की द्रुत प्रगति हुई और १८६८ ई० से मानचित्रों का मुद्रण के लिये इंगलैंड जाना बंद हो गया। तब से लिथो मुद्रण प्रगति कर रहा है और अब तो वह एक वैज्ञानिक विधि के रूप में विकसित हो गया है। इस विधि में जस्ते के प्लेट काम में आते हैं जिनसे रोटरी ऑफसेट मशीनें प्रति घंटे हजारों प्रतियाँ छाप सकती हैं।

पूर्ववर्ती पैराग्राफों में वर्णित विधि से शुद्ध रेखन द्वारा प्राप्त तीन मूल रेखाचित्रों का सही पैमाने पर फोटो लिया जाता है और काच के प्लेटों पर 'गीली प्लेट' विधि द्वारा उनके निगेटिव (प्रतिचित्र) तैयार किए जाते हैं। तीसरे शुद्ध रेखित मूल के निगेटिव से, जिसमें शेष विवरण का समावेश होता है, 'चूर्ण विधि' द्वारा द्वितीय प्रतिलिपि प्राप्त की जाती है। सार रूप मे इस विधि से विलग रंग निगेटिव प्राप्त करने के लिये सस्ता प्रतिकृत निगेटिव प्राप्त किया जाता है। इस विधि से तैयार किए तीन निगेटिवों में से एक पर वे सभी विवरण फोटोपेक से आलेपित कर लिए जाते हैं जिन्हें नीले और लाल रंग में दिखाना होता है, केवल वे ही विवरण उसपर रहने देते हैं जिन्हें काले रंग में छापना है। इसी प्रकार अन्य दो निगेटिवों पर केवल वे ही विवरण रहने देते हैं जिन्हे क्रमशः नीले और लाल मे प्रस्तुत करना होता है और अन्य विवरणों को आलेपित कर दिया जाता है। इन तीन निगेटिवो के परिणाम जस्ते के प्लेटों पर अंतरित कर लिए जाते हैं। ये प्लेट क्रमशः काले, लाल और नीले विवरण के लिये छपाई के प्लेट हो जाते हैं।

रोटरी ऑफसेट छपाई — छपाई प्रारंभ करने के पूर्व यह आवश्यक है कि उन त्रुटियों को पूरी तरह ठीक कर दिया जाय जो जस्ते के प्लेट की तैयारी के लिये की गई विविध प्रक्रियाओं में प्रविष्ट हो गई हों। इसके लिये प्रमाणक मशीन पर एक प्रूफ प्रति समग्र रंगों में तैयार की जाती है। प्लेटों के प्रमाणित होने पर उन्हे छपाई मशीनों मे रखा जाता है। आजकल कई प्रकार की आधुनिक छपाई मशीनें उपयोग में हैं, किंतु आधुनिक छपाई के अनिवार्य यंत्र 'स्वचालित भरण' (Automatic feed) और 'रबर ऑफसेट' हैं। दूसरे शब्दों में यंत्र में कागज का भरण यंत्र के अपने भरण साधन से होता है। जस्ते के प्लेट से छाप रबर के आवरण पर अंतरित की जाती है। रबर का आवरण उस छाप को कागज पर अंतरित कर देता है। कागज और छपाई प्लेट के सीधे संपर्क से जैसी छाप प्राप्त होती है उससे उन्नत और तीव्रतर छाप ऑफसेट विधि से प्राप्त होती है। प्रत्येक कागज के तख्ते को कई बार मशीन में से गुजरना पड़ता है। यह संख्या प्लेटों की संख्या पर निर्भर है और प्लेटो की संख्या अंतिम मानचित्र में रंगों की संख्या पर निर्भर है। आधुनिक मशीनों मे अधिकतर दो रोलर होते हैं। दो रोलरों से एक साथ दो रंगों में दो प्लेटों की छपाई हो सकती है।

भारतीय सर्वेक्षण विभाग में मानचित्र उत्पादन के आँकड़े — भारतीय सर्वेक्षण विभाग निम्नलिखित कोटि और प्रकार के मानचित्रों की तैयारी और देखभाल करता है :

स्थलाकृतिक मानचित्र — (क) समूचे भारत की व्याप्ति, १ : ५०,००० पैमाने पर। (ख) १ : २,५०,००० पैमाने पर मानचित्रों की माला में भारत की पूर्ण व्याप्ति।

अंतरराष्ट्रीय मानचित्र — (क) भारत के लिये अंतरराष्ट्रीय विशिष्टियों पर १ : १०,००,००० कार्टे इंटरनैशनल डयू माड मानचित्र माला — विश्वव्याप्ति के एक भाग के रूप में। (ख) आई० सी० ए० ओ० विशिष्टियों के अनुसार विश्वमाला के एक भाग के रूप में १ : १०,००,००० आई० सी० ए० ओ० मानचित्र। (ग) भारत के हवाई अड्डों के 'इंस्ट्रूमेंट' ऐप्रोच चार्ट पैमाना १ : २,५०,०००, । (घ) २ इंच मे १ मील (१ : ३१,६८०) पैमाने पर भारत के हवाई अड्डों का अवतरण चार्ट (मीट्रिक माप १ : ३०,००० होगी)। (च) प्रधान हवाई अड्डों के लिये १ : १२,००० और लघु हवाई अड्डों के लिये १ : २०,००० पैमाने पर अवरोध चार्ट।

भौगोलिक मानचित्र — (क) दक्षिणी एशिया माला; पैमाना १:२०,००,०००, (ख) भारत और सीमावर्ती देशों का मानचित्र तथा (ग) भारत का सड़क मानचित्र, पैमाना १:२,५०,०००, (घ) भारत का रेलवे मानचित्र, पैमाना १ इंच से ६७·०८ मील (मीट्रिक माप १:३५,००,०००)। (च) भारत का राजनीतिक मानचित्र, (छ) भारत का प्राकृतिक मानचित्र तथा (ज) भारत के पर्यटक मानचित्र, पैमाना १ इंच मे ७० मील (मीट्रिक माप १:४०,००,०००); (झ) भारत और सीमावर्ती देशों का मानचित्र, पैमाने १ इंच में १२८ मील (मीट्रिक माप १:८०,००,०००), (ट) भारत और सीमावर्ती देशों का मानचित्र, पैमाने १ इंच मे १९२ मील (मीट्रिक माप १:१,२०,००,०००), (ठ) भारत और सीमावर्ती देशों का मानचित्र, पैमाना १.१,६०,००,०००, (ड) भारत के राज्यो का मानचित्र, पैमाना १:१०,००,०००, (ढ) चार इंच से एक मील पैमाने पर चुने क्षेत्र के वन मानचित्र (मीट्रिक माप १:२५,००१)।

विविध मानचित्र — (क) भारत के प्रमुख नगरो एवं कस्बो के संदर्शक मानचित्र विविध पैमाने के; (ख) तदर्थ आधार पर केंद्रीय और राज सरकार के विभागो के लिए बहुप्रयोजनी योजना मानचित्र तथा (ग) सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं के लिए अन्य विविध विभागीय मानचित्र।

विविध मानचित्र को छोड़कर १९०५ ई० से अब तक फुट पाउंड पद्धति पर छपे हुए अन्य मानक मानचित्र मालाओं की संख्या लगभग ३,६०० है और हर २५ से ४० वर्षों मे इनका बराबर पुनरीक्षण होता है।

भारतीय सर्वेक्षण विभाग का सगठन — अनेक प्रकार के मानचित्रो की तैयारी और सर्वेक्षण के लिये भारतीय सर्वेक्षण विभाग का सगठन नीचे दिया गया है :

भारत का महासर्वेक्षक जो सैनिक सर्वेक्षण का निदेशक भी होता है, इसका प्रशासनिक और तकनीकी नियंत्रण करता है। महासर्वेक्षक का मुख्य कार्यालय देहरादून में है और उसका कार्यालय उपमहासर्वेक्षक के अधीन है जो निदेशक की कोटि का होता है। वह भारत के महासर्वेक्षक का सहायक होता है और विभाग के तकनीकी काम, बजट और विनिमय, एवं भंडार का उत्तरदायी होता है। अधीक्षक सर्वेक्षक की कोटि का एक अफसर और होता है जिसके पद का

नाम सहायक महासर्वेक्षक है और वही तकनीकी काम और विभाग की नित्यचर्या प्रशासन का उत्तरदायी होता है।

स्थलाकृतिक मंडल निम्नलिखित हैं : (१) मानचित्र प्रकाशन कार्यालय, (२) भूगणितीय तथा अनुसंधान शाखा, (३) हवाई सर्वेक्षण और प्रशिक्षण निदेशालय। भूगणितीय तथा अनुसंधान शाखा को छोड़कर, जो उपनिदेशक के नियंत्रण में हैं, शेष सभी मंडल निदेशालय निदेशक के नियंत्रण में हैं। ये सभी भारत के महासर्वेक्षक के समक्ष उत्तरदायी हैं। प्रत्येक निदेशक के अधीन एक उपनिदेशक होता है जिसके अधीन विविध क्षेत्रीय हवाई सर्वेक्षण और फोटो माप सर्वेक्षण दल और प्रायः एक रेखन कार्यालय होता है। कुल तीन मानचित्र पुनःरचना कार्यालय है : दो देहरादून मे निदेशक, मानचित्र प्रकाशन के अधीन और एक कलकत्ते में निदेशक, पूर्वी मंडल के अधीन।

निदेशक मानचित्र प्रकाशन — इसका मुख्यालय देहरादून में है। इसके अधीन एक रेखन कार्यालय, दो मानचित्र पुनर्रचना कार्यालय (हाथी बरकला लिथो आफिस और फोटोजिंको कार्यालय, छपाई कार्यालय को संमिलित करके), एक मानचित्र संग्रह तथा निकास कार्यालय और एक लघु मोटर परिवहन वर्कशाप है। यह निदेशक मानचित्र संबंधी नियम और नीति के निर्धारण मे भारत के महासर्वेक्षक का परामर्शदाता है। वह इस बात का उत्तरदायी है कि सब विभागीय मानचित्रों का रेखन और पुनःरचना आदेशों के अनुसार हो और वह ही विभाग के रेखन और छपाई के काम का ठीक समन्वय करता है। सभी भौगोलिक मानचित्रों का रेखन, रेखन कार्यालय सं० १ में होता है जो इसके अधीन हैं। मानचित्र विक्रय विभाग, नई दिल्ली का संचालन भी यही निदेशालय करता है।

निदेशक, उत्तरी मंडल — इसका मुख्यालय देहरादून में है। वह उत्तर भारत के जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरप्रदेश और पंजाब तथा मध्यप्रदेश के भागों के कुछ स्थलाकृतिक, छावनी, वन और आयोजन सर्वेक्षण के लिये उत्तरदायी है। इसकी देखरेख मे देहरादून में एक रेखन कार्यालय और कई क्षेत्रीय दल हैं।

निदेशक, दक्षिणी मंडल — इसका मुख्यालय बेंगलूरु मे है। दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर, केरल, मध्य प्रदेश, लकदीवी, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप के कुछ भागों के सर्वेक्षण और मानचित्र बनाने के लिये उत्तरदायी है। दक्षिण भारत मे इसके अधीन कई क्षेत्रीय दल, एक प्रशिक्षण दल और एक रेखन कार्यालय है।

निदेशक, पूर्वी मंडल — इसका मुख्यालय कलकत्ता मे है। पूर्वी भारत मे उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, बिहार, असम (नेफा सहित), सिक्किम, भूटान, अंदमन और निकोबार द्वीप के सर्वेक्षण और मानचित्र बनाने के लिये उत्तरदायी है। इसके अधीन एक मंडल रेखन कार्यालय, एक मुद्रण कार्यालय और कई क्षेत्रीय दल है।

निदेशक, पश्चिमी मंडल — इसका मुख्यालय आबू मे है। यह राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र राज्यों के सर्वेक्षण और मानचित्र बनाने के लिये उत्तरादायी है। इसके अधीन एक रेखन कार्यालय और कई क्षेत्रीय दल हैं।

निदेशक, हवाई सर्वेक्षण और प्रशिक्षण निदेशालय — इसका मुख्यालय देहरादून मे है। यह हवाई सर्वेक्षणों के आयोजन और क्रियान्वयन के लिये उत्तरदायी है और उस कार्य का नियंत्रण करता है जो फोटोमापी सर्वेक्षण की आलेखन मशीनों पर बहुत मितव्ययिता से हो सके। वह सभी अफ़सरों और विभाग के कुछ कर्मचारीवृंद के प्रशिक्षण के लिये भी उत्तरदायी है। उसके अधीन दो प्रशिक्षण दल तथा कई फोटोमापी सर्वेक्षण के दल कार्य करते हैं।

उपनिदेशक, भूगणितीय तथा अनुसंधानशाखा — इसका मुख्यालय देहरादून में है। यद्यपि इसके पद का नाम उपनिदेशक है, तथापि इसे निदेशक के सभी प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हैं। यह भारत भर में सभी भूगणितीय और भूभौतिकीय (Geophysical) सर्वेक्षणों के लिये उत्तरदायी है। इसके कार्य के अंतर्गत है : उच्च परिशुद्ध, प्रधान और गौण तलेक्षण तथा ज्वारीय प्रेक्षण। वह भूगणितीय और भूभौतिकीय अनुसंधान कार्य, विभागीय कार्य, अनुषंगी तालिकाओं (auxiliary tables) और गणना फार्म तैयार कराने के लिये उत्तरदायी है। इसके अधीनस्थ एक गणना दल, एक ज्वारीय दल, एक भूभौतिकीय दल और अन्य क्षेत्रीय दल हैं। देहरादून में इसके अंतर्गत वेधशालाएँ और एक वर्कशॉप भी है।

भारतीय सर्वेक्षण के मानचित्रों का विक्रय — मानचित्रों को सीधे ही भारतीय सर्वेक्षण विभाग के देहरादून, कलकत्ता, बेंगलूरु और दिल्ली के कार्यालय से मोल लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मानचित्र भारत मे सर्वत्र स्थापित मानचित्र विक्रय एजेंसियों से भी खरीदे जा सकते हैं, जो सारे देश मे विख्यात पुस्तक विक्रेताओं और प्रकाशकों को दी गई है। भारतीय सर्वेक्षण के मानचित्र विक्रय कार्यालय इन पतों पर हैं :

मैप रिकार्ड ऐंड इशू ऑफिस, हाथीबरकला, देहरादून। मैप रिकार्ड ऐंड इशू ऑफिस, १३, वुड स्ट्रीट, कलकत्ता। सदर्न सर्कल, सर्वे ऑव इंडिया, २२, रिचमंड रोड, बेंगलूरु। मानचित्र विक्रय विभाग, जनपथ बैरक्स, फ्लोर 'ए', नई दिल्ली। [रा० सि० का०]

भारत सेवक समाज इस संस्था की स्थापना योजना आयोग द्वारा जनसहयोग प्राप्त करने के लिये सन् १९५१ मे बनाई गई, राष्ट्रीय सलाहकार समिति की सिफारिशो के अनुसार १२ अगस्त, १९५२ मे की गई थी।

उद्देश्य—इसके प्रमुख उद्देश्य ये हैं : (१) देश के नागरिकों के लिये अधिक से अधिक सेवा के अवसर मुहैया करना जिससे (क) राष्ट्रीय आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके और भारतीय जनसमुदाय की सामाजिक एवं आर्थिक शक्ति सुदृढ हो सके तथा (ख) देश के साधनहीन एवं पिछड़े लोगो की कठिनाइयाँ और कष्ट दूर किए जा सकें। (२) जनता की उपलब्ध अतिरिक्त शक्ति, साधन और समय का सर्वेक्षण करना और उन्हे संगठित कर सामाजिक तथा आर्थिक विकास के कार्यक्रमो मे उपयोग करना।

सदस्यता—१८ वर्ष का हर ऐसा व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता है, जो सप्ताह मे कम से कम दो घंटे स्वेच्छा से सेवाकार्य के लिये दे सके। सदस्यता का शुल्क एक रुपया वार्षिक है। जिन्होने अपना पूरा समय संस्था की प्रवृत्तियो के लिये समर्पित कर दिया हो, वे इसके आजीवन सदस्य कहलाते हैं।

ऐसी स्वेच्छासेवी संस्थाएँ जो सूचनात्मक या समाजकल्याण के कार्यों मे लगी हों, इसकी संस्था सदस्य हो सकती हैं।

ऐसा कोई भी व्यक्ति, जो समाज का साधारण सदस्य हो और समाज की प्रवृत्तियों अथवा आर्थिक रूप मे निःस्वार्थ सहयोग देता हो, इसका सहायक सदस्य हो सकता है। सदस्यता के संबंध में एक प्रतिबंध यह है कि जो व्यक्ति, हिंसा मे विश्वास करता हो या समाज का उपयोग व्यक्तिगत अथवा राजनीतिक क्षेत्र में करता हो वह इस संस्था का सदस्य नही हो सकता।

संगठन

भारत सेवक ऐसे सदस्य हो सकते हैं, जिन्हे साधारण सदस्य निश्चित व्यवस्था के अनुसार चुन लेते हैं।

समाज की नीति निर्धारित करने का काम भारत सेवक सभा करती है। इसके एक तिहाई सदस्य भारत सेवक संघ द्वारा, एक तिहाई सदस्य भारत सेवक समिति द्वारा भारत सेवक संघ के सदस्यों में से मनोनीत किए जाते हैं और तिहाई सदस्य भारत सेवक संघ के सदस्यों के अतिरिक्त सभापति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। भारत सेवक संघ के सदस्यों का चुनाव भारत सेवक करते हैं। इस संघ की बैठक वर्ष में एक बार होती है।

समाज के दिन प्रति दिन के कार्यों का संचालन केंद्रीय प्रधान मंडल करता है। इसमें नौ सदस्य होते हैं, जिनमे दो सदस्य समाज के ट्रस्टियों द्वारा मनोनीत होते हैं।

इसी तरह केंद्रीय संगठन के अंतर्गत प्रदेश, राज्य, जिला, प्रखंड, नगर, ग्राम तथा मुहल्लो मे भी शाखाओं का संगठन होता है।

कार्यक्षेत्र—लोकसेवा के लिये कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, जनजागरण तथा समाज कल्याण सबंधी कार्य, गंदी बस्तियों का सुधार, परिवार नियोजन आदि विविध कार्य इस संस्था के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आते हैं।

लोककार्य का कार्यक्षेत्र जनजागरण की प्रक्रिया पूरी होने पर शुरू होता है। जनकल्याण के व्यापक कार्यक्रमों में जनसहयोग प्राप्त करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। सारे देश में समाज के सभी विभागों के सक्रिय कार्यकर्ता एवं अन्य स्वेच्छासेवी संस्थाओ के पूरे समय काम करनेवाले कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिये इस विभाग द्वारा दो प्रशिक्षण शिविर, एक दिल्ली तथा एक त्रिवेंद्रम मे चलाए जा रहे हैं। भारत सेवक दल का प्रशिक्षण भी इसी विभाग के अंतर्गत होता है।

जनजागरण के कार्य में विचारगोष्ठियों का आयोजन, योजना सूचना केंद्रों का संचालन, बुलेटिनों, ब्रोशरों तथा छोटी पुस्तिकाओं के जरिए योजना का प्रचार करना और योजना-प्रचार-सप्ताहों का आयोजन करना आदि काम है।

समाज कल्याण के कार्यक्षेत्र में रैनबसेरों का संचालन, उपनगर सुधार कार्यक्रम और महिला-बाल-कल्याण के कार्यक्रम आते हैं। नागरिक क्षेत्र में आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों की वृद्धि रोकने का काम भी अब इसके कार्यक्षेत्र मे आ गया है।

गंदी बस्तियों के सुधार के कार्यक्षेत्र में स्वच्छता-सफाई-अभियान, नागरिक नियमों की शिक्षा के सिवा साक्षरता कक्षाएँ तथा महिला शिल्प कक्षाएँ चलना आदि भी हैं।

निर्माणसेवा — इसका गठन सन् १९५५ में इस आधार पर किया गया था कि राष्ट्रीय धन की बचत की जा सके और सरकारी ठेके के कामों में जो देर और अंधेर होता है, उसे रोका जा सके। कोसी तटबंध, शाहदरा का जमना बाँध, चंबल बाँध, नागार्जुन सागर नहर, दिल्ली की अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों के अनेक मंडलों का निर्माण, हवाई अड्डों, सड़कों तथा भवनों का निर्माण अब तक इस विभाग ने किया है।

गत पाँच वर्षों में ४००·६० लाख रुपयों का निर्माणकार्य किया गया जिसमे से १०६,६५ लाख रुपयों की बचत हुई। इस बचत में से १७·६६ लाख रुपया मजदूरों के कल्याण कार्य पर खर्च किया गया। कई राज्यों में इसकी शाखाएँ खुल चुकी हैं।

युवक एवं श्रम शिविर देश भर मे ग्राम युवकों और विद्यार्थियों के पाक्षिक शिविर लगाता है और शिविर में किए गए श्रमदान कार्यों का मूल्यांकन करता है। अब तक १० हजार शिविर लगाए जा चुके हैं, जिनमें चार लाख से अधिक युवकों ने भाग लिया। इस विभाग में अब प्राथमिक चिकित्सा, गृह विज्ञान, शारीरिक प्रशिक्षण (पी०टी०) एवं "अधिक अन्न उपजाओ आंदोलन" शामिल किया जा चुका है। परिवार नियोजन भी युवक और श्रमशिविर के अंतर्गत है, पर इसकी अपनी अलग कार्यकारिणी है। परिवार-नियोजन-शिविरों का मुख्य संचालक भी प्रादेशिक शिविर सचालक ही होता है।

स्वास्थ्य एवं स्वच्छता अभियान में प्रति वर्ष ग्रीष्मकालीन एवं शारदकालीन स्वास्थ्य सप्ताह मनाया जाता है। २ अक्टूबर को राष्ट्रीय स्वच्छता दिवस और प्रति मास के अंतिम रविवार को स्वच्छता अभियान भी किया जाता है।

प्रशिक्षण शिविर के दो केंद्र हैं एक दिल्ली के समीप अशोक विहार में और दूसरा है केरल के त्रिवेंद्रम नगर में। इन शिविरों में भारत सेवक समाज के सभी विभागों मे काम करनेवाले तथा अन्य स्वेच्छासेवी संस्थाओं के कार्याकर्ता भी प्रशिक्षित किए जाते हैं।

प्रकाशन विभाग समाज से संबंधित साहित्य प्रकाशित करता है। इसके साथ भारत सेवक मासिक पत्र हिंदी तथा अंग्रेजी मे प्रकाशित करता है। इसकी एक कार्यसमिति है, जिसमे सभापति, उपसभापति, मंत्री और कुछ नामजद सदस्य होते हैं। छह प्रातीय भाषाओं में बुलेटिन निकाले जाते है।

योगासन का कार्य आसन और प्राणायाम का जनता में व्यापक प्रचार करता है। इसने ६४ सरल आसनो का चुनाव किया है, जिनके प्रचार के लिये सन् १९५८ मे एक अ० भा० योगासन समिति बना दी गई। देश के प्रायः सभी बड़े बड़े शहरों मे इसकी कक्षाएँ लगती हैं।

गैरसरकारी मूल्य जाँच सेवा — सन् १९६२ मे इसका गठन हुआ। देश के कुछ चुने हुए औद्योगिक क्षेत्रों में (१) मूल्यों की जाँच, (२) सहकारी उपभोक्ता भंडारों की स्थापना, (३) विशुद्ध खाद्य पदार्थों का उत्पादन, (४) उपभोक्ताओ को प्रशिक्षित कर उनमें निरोध शक्ति पैदा करना, (६) मूल्य नियंत्रण के लिये खुदरा थोक व्यापारियो का संगठन आदि कार्य करने की योजना है।

राष्ट्रीय सुरक्षा का सप्तसूत्री कार्यक्रम—चीनी आक्रमण के बाद इसका गठन हुआ है। सैनिक परिवारों को सहायता, जनता के नैतिक बल को टिकाए रखना, प्रतिरक्षा के लिये निर्माण इकाई का गठन,

मूल्यवृद्धि की रोक, बचत अभियान और स्वेच्छा-सेवी-संस्थाओं से सहयोग आदि कार्य हैं, जिन्हें अब समाज के उपर्युक्त विभागों मे मिला दिया गया है।

संयुक्त सदाचार समिति—सन् १६६४ मे सबसे प्रथम दिल्ली मे इसकी शाखा खुली। लोगों मे सदाचार निर्माण कर सरकारी प्रशासन मे व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

आश्रय योजना—भारत सेवक समाज की यह भावी योजना है। इसका मूलोद्देश्य यही है कि इसके माध्यम से निष्ठावान्, सेवाभाववाले और निस्स्वार्थ ऐसे समाजसेवक तैयार किए जायँ, जो अपना सारा जीवन समाजसेवा मे लगा दे और उनके जीवन की पाँचों आवश्यकताओं की पूर्ति उन्हीं आश्रमों के माध्यम से हो।

व्यास समाज के गठन का मुख्य उद्देश्य कथा कीर्तनकारों के माध्यम से गाँव गाँव मे जनचेतना लाना और लोगों में चरित्रनिर्माण की भावना भरना है। १६६० में प्रयाग के कुंभ मेले के अवसर पर पहला, १६६१-६२ मे बंबई में दूसरा और १६६२-६३ मे हरिद्वार मे तीसरा संमेलन किया गया। हरिद्वार मे एक ४० दिन का प्रशिक्षण शिविर भी लगाया गया था, जिसमे ५३ कथा-कीर्तन-कारों को प्रशिक्षित किया गया।

विहंगावलोकन—समाज के सक्रिय कार्यकर्ताओं की संख्या ५०,००० है, जिनमे पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता २,००० है, राज्यों की (प्रदेश) शाखाएँ २०, जिला शाखाएँ ३००, ग्राम समितियाँ ३,८०० है। १६६४ तक भारत सेवक दल के सदस्य ३०,०००, प्रशिक्षित सदस्य १२,०००, गंदी बस्ती सुधार केंद्र ३६, संपर्क किए गए परिवार आठ लाख, समाज कल्याण विस्तार केंद्र २७, लाभान्वित परिवार १३,५०० तथा श्रम सेवा शिविर ६५०४ थे। इधर इन संस्थाओं मे और भी विस्तार हुआ है। [वि० दा० नं०]

भारत सेवाश्रम संघ एक सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक लोकहितैषी संघटन है जिसमे सन्यासी और निःस्वार्थी कार्यकर्ता भ्रातृभाव से कार्य करते हैं। सर्वांगीण राष्ट्रीय उद्धार इसका मुख्य उद्देश्य और संपूर्ण मानवता की नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति इसका सामान्य लक्ष्य है।

संघ के सन्यासियों ने लोक और व्यक्तिगत अभिरुचियों का परित्याग कर देने पर भी अपना निवास छोड़कर एकांतवास नही ग्रहण किया। इसके विपरीत उन्होंने अपने को मानवता की निःस्वार्थ सेवा के लिये अर्पित कर दिया है और इसके द्वारा वे ऊँची योग्यता प्राप्त करने और सर्वशक्तिमान् की यथार्थता को निरूपित करने का प्रयास करते है।

उद्गम—आचार्य स्वामी प्रणवानंद जी, जिन्हे हम सर्वोच्च आध्यात्मिक लोकहितनिर्माण की संज्ञा दे सकते हैं, इस संघ के संस्थापक थे।

इसके पार्श्व इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि विष्णुचरण दास नामक शिव के अनन्य भक्त पर एक बार क्रमश अनेक विपत्तियाँ पड़ी। इनके शमन और शिव को संतुष्ट करने के हेतु आपने वर्ष भर तक निद्रा और भोजन का परित्याग कर घोर तपस्या की। भगवान् शिव दयाभिभूत हो गए और कृपापूर्वक विष्णुराम को यह वरदान दिया कि वह अपने को उनका (शिव का) अवतारी पुत्र मान लें।

उस दैविक लड़के का नाम विनोद पड़ा। शिव की प्रकृति के अनुकूल ही वह सदैव शांत और गंभीर रहता था तथा उसे अपने भोजन और खेल की बहुत कम चिंता रहती थी। जैसे जैसे बालक बढ़ता गया, उसकी वृत्ति अधिक गंभीर होती गई। वह अपने स्कूल संबंधी अध्ययन मे मन न लगा सका। घर में भी वह कई रात्रि जाग्रत रहकर भी बाह्य संसार से पूर्णत अचेतन होकर व्यतीत कर देता था। प्रातःकाल दरवाजा खटखटाए जाने पर ही उसकी चेतना लौटती थी।

आगे चलकर क्रमश छह वर्ष की लंबी अवधि तक उसने बिल्कुल ही निद्रा का परित्याग कर दिया। उस समय वह संपूर्ण दिन अपनी ही कोठरी मे बंद रहकर व्यतीत करता था और संपूर्ण रात्रि तपस्या और आध्यात्मिक अचेतनावस्था मे व्यतीत करता था।

अंत मे भगवान् शिव ने अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ प्रकट होकर इस संघ के निर्माता के श्रेष्ठ मानवीय व्यक्तित्व के माध्यम से १६१७ मे कार्य करना प्रारंभ किया। यही से संघ का प्रारंभ होता है।

उद्देश्य — संघ का उद्देश्य भारत के राष्ट्रीय जीवन का पुनः संगठन और पुनर्निर्माण सार्वलौकिक आदर्शों और सनातन धर्म के सिद्धांतो के आधार पर करना है जो कि हजारों वर्षों से विदेशी आधिपत्य के नीचे छिन्न भिन्न हो गया था।

कार्य — संघ के बहुमुखी कार्य को हम मुख्य रूप से छह भागों मे विभाजित कर सकते है।

(१) संत उपदेश देनेवाले दलों द्वारा धार्मिक और आध्यात्मिक प्रचार।

(२) मनुष्य को ऊँचा उठानेवाली शिक्षा का प्रसार, जो मस्तिष्क और हृदय की शक्तियों को समान रूप से विकसित करती हो।

(३) पवित्र तीर्थस्थानों का सुधार (तीर्थयात्रियों के रहने का मुफ्त प्रबंध, धार्मिक संस्कारों को उचित मूल्य पर संपादित कराने का प्रबंध, पंडों की वृद्धि को रोकना, रोगी तीर्थयात्रियों की मुफ्त चिकित्सा की सुविधा आदि), पाप और अपराध निवारण का प्रयत्न करना।

(४) मानव जाति के प्रति प्रेम प्रकट करनेवाली विभिन्न सेवाएँ (जैसे, बाढ़, अकाल और भूकंप से पीड़ित लोगों की सहायता, जातीय कारणों मे पीड़ित लोगों की रक्षा, युद्धकालीन शरणार्थियों का प्रबंध, कुंभ मेला व्यवस्था आदि)।

(५) हिंदू समाज का पुनर्निर्माण तथा सुधार (जिसके अंतर्गत अस्पृश्यता की भावना को दूर करना, पिछड़ी जातियों का उद्धार, उनका कल्याण आदि शामिल है)।

(६) भारतीय संस्कृति के सार्वलौकिक आदर्शों का भारत मे और विदेशों मे प्रचार।

कार्य का केंद्र — संघ का प्रमुख केंद्र कलकत्ता बालीगंज (२११ रासबिहारी एवेन्यू) मे है और उसकी अनेक शाखाएँ गया (बिहार), वाराणसी, प्रयाग, वृंदावन (उत्तर प्रदेश), कुरुक्षेत्र (पश्चिमी पंजाब),

पुरी (उड़ीसा), सूरत, अहमदाबाद (गुजरात), हैदराबाद (आंध्र) में है। और इन शाखाओं के दर्जनों केंद्र और अनेक हिंदू मिलन मंदिर पूर्वी बंगाल के विभिन्न जिलों और अन्य प्रांतों में हैं। इसके तीन स्थायी और निर्माणशील केंद्र वेस्ट इंडीज, ब्रिटिश गाइना, और लंदन में भी हैं।

संघ के दस मुख्य नियम — (१) लक्ष्य क्या है ? महामुक्ति, आत्मोपलब्धि। (२) धर्म क्या है ? त्याग, संयम, सत्य, ब्रह्मचर्य। (३) महामृत्यु क्या है ? आत्मविस्मृति। (४) आदर्श जीवन क्या है ? आत्मबोध, आत्मविस्मृति, आत्मानुभूति। (५) महापुण्य क्या है ? वीरत्व, पुरुषत्व, मनुष्यत्व, मुमुक्षत्व। (६) महापाप क्या है ? दुर्बलता, भीरुता, कापुरुषता, संकीर्णता, स्वार्थपरता। (७) महाशक्ति क्या है ? धैर्य, स्थैर्य, सहिष्णुता। (८) महासंबल क्या है ? आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आत्ममर्यादा। (९) महाशत्रु कौन है ? आलस्य, निद्रा, तंद्रा, जड़ता, रिपु और इंद्रियगण। (१०) परममित्र कौन है ? उद्यम, उत्साह और अध्यवसाय।

अराजनीतिक और असांप्रदायिक — इस संघ के महान् संस्थापक ने अपनी आध्यात्मिक अचेतनावस्था और अपने सर्वोच्च तेज के प्रताप से घोषित किया कि—(१) यह सार्वलौकिक जाग्रति का युग है। (२) यह सार्वभौमिक पुनरेकीकरण का युग है। (३) यह सार्वलौकिक भाईचारे का युग है। (४) यह सार्वलौकिक निस्तार का युग है।

अतः यह कहना अनावश्यक ही है कि संघ अपने उद्देश्य और कार्यों द्वारा किसी राजनीतिक लक्ष्य का प्रसार नहीं करता और न उसका कोई राजनीतिक उद्देश्य ही है। सांप्रदायिकता और संकीर्णता से भी वह बिलकुल दूर है।

हिंदू राष्ट्रीयता — संघ का प्रमुख उद्देश्य महान् राष्ट्रीयता का निर्माण करना है। और संघ का दृढ़ विश्वास है कि इस लक्ष्य को पूर्ण करने का सबसे महत्वपूर्ण चरण होगा दृढ़ और व्यवहारकुशल हिंदू संस्थाओं का पुनःसंगठन और पुनर्निर्माण।

मुसलमान तथा ईसाई यथेष्ट संगठित हैं और वे अपने ऊपर किए गए किसी भी आघात के विरुद्ध खड़े हो सकते हैं। केवल हिंदू ही, यद्यपि वे संपूर्ण भारतीय जनसंख्या के तीन चौथाई हैं, इतने ऐक्यहीन और तितर बितर है कि किसी भी आक्रमण के विरुद्ध आवाज नहीं उठा सकते। अतः सभी निमित्त और प्रयोजनों को देखते हुए भारत के राष्ट्रनिर्माण का तात्पर्य शक्तिशाली हिंदू राष्ट्रीय भावना का निर्माण मानना होगा।

इस संघ के प्रख्यात संस्थापक ने इस बात पर जोर दिया कि हमारा राष्ट्रनिर्माण संभव नहीं जब तक कि बेमेल हिंदू समूहों को दृढ़, संगठित और व्यवहारकुशल संस्था के रूप में पुन.संगठित न किया जाय।

हिंदू मिलन मंदिर और हिंदू रक्षी दल — भारत के विभिन्न राज्यों के प्रत्येक शहर और गाँव में हिंदू मिलन मंदिर की विभिन्न शाखाओं को स्थापित करके हिंदू समूह को पुनःसंगठित करने का निश्चय किया गया। शिथिल हिंदू समूहों में आत्मरक्षा की भावना भरने के लिये संघ हिंदू मिलन मंदिरों के साथ हिंदू रक्षी दलों का भी संगठन कर रहा है। संघ का विश्वास है कि एकता की शक्ति और आत्मरक्षा ही तितर बितर हुए हिंदू समूहों को पुनर्जीवित और सुसंगठित बनाकर उनमें सच्ची राष्ट्रीय भावना भर सकती है। [बे०]

भारतीय करव्यवस्था सामान्य रूप से शासन संबंधी कार्यसंचालन के लिये व्यक्तिगत इकाइयों पर अनिवार्य उद्ग्रहण के रूप में कर लगाए जाते हैं। करों को सामान्यतः राजस्ववृद्धि का ही साधन माना जाता है किंतु राष्ट्र की अर्थनीति को भी ये प्रभावित करते हैं। कर लगाने का उद्देश्य यथासंभव राष्ट्र की विषमता को दूर करना है। इसलिये जिनकी अधिक आय है, उन्हें कम आयवालों की अपेक्षा अधिक मात्रा में कर देना पड़ता है।

इतिहास — मनुष्य जाति के इतिहास में बहुत बाद में चलकर शासन ने राजस्ववृद्धि के लिये करों का आश्रय लिया था, विशेषकर ऐसे करों का जो उचित रूप से लगाए जाते थे और जिनके संबंध में शासित जनों की सहमति ले ली जाती थी। शताब्दियों तक सार्वजनिक क्षेत्रों से ही मुख्य रूप से राजस्व का संकलन किया जाता था जिसमें घरेलू उपभोग की वस्तुओं पर लगाए गए उत्पादन शुल्क और विदेशी व्यापार पर लगाए गए सीमाशुल्क का स्थान मुख्य था। दास, अधीनस्थ, किसान, विजित तथा अन्य विशेषाधिकार रहित लोगों का यह कर्तव्य माना जाता था कि वे शासकीय वर्ग के लोगों का शुल्क आदि से पोषण करें। करों को दासता के बंधन के रूप में नहीं, अपितु स्वातंत्र्य के चिह्न के रूप में मान्यता देना आधुनिक युग की बात है।

भारत में १८वी शताब्दी के मध्य में अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भूमिकर के अतिरिक्त देश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष कर भी लगाए जाते थे। किंतु इन सब में भूमिकर ही प्रधान था। कुछ काल तक अंग्रेजों ने उनमे से अधिकाश उद्ग्रहणों को जारी रखा किंतु कालातर में उन्हे बंद कर दिया। एक समय ऐसा भी था जब भूमिकर के अतिरिक्त देश में अन्य किसी प्रकार का प्रत्यक्ष कर नही ग्रहण किया जाता था। भारत में सन् १८६० मे प्रथम बार आयकर की व्यवस्था की गई। १८८६ में इसे भारतीय करप्रणाली का स्थायी अंग बना दिया गया, किंतु इसके पूर्व यह शासनव्यवस्था में उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयों के निवारण के लिये समय समय पर अल्प मात्रा में ही लगाया जाता था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय शासन का खर्च अत्यधिक बढ जाने के कारण इस कर का महत्व बढ़ गया और राजस्ववृद्धि का यह एक प्रमुख स्रोत बन गया। सन् १९१७ मे क्रमानुपातिक अधिकर (सूपरटैक्स) तथा १९१८ में अधिलाभकर (एक्सेस प्रॉफिट टैक्स) का प्रवर्तन किया गया।

भारत में आयकर लगाने और वसूल करने की पद्धति को नियमित रूप देने के लिये सन् १९२२ में एक समेकित (कॉनसालिडेटेड) अधिनियम पारित किया गया था। भारतीय आयकर अधिनियम १९२२ की संज्ञा से ज्ञात यह अधिनियम ३१ मार्च, १९६२ तक व्यवहार में रहा। समय समय पर इसमें संशोधन किए जाते रहे और अंत में यह आवश्यक हो गया कि इसे बदल दिया जाए। सितंबर, १९६१ में राष्ट्रपति ने आयकर अधिनियम १९६१ को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और १ अप्रैल, १९६२ से इस नए अधिनियम ने सन् १९२२ के अधिनियम का स्थान ले लिया।

आयकर के अतिरिक्त केंद्रीय शासन ने चार अन्य मुख्य उद्ग्रहणों की भी व्यवस्था की है जिनके नाम हैं—संपदा शुल्क १९५३, धनकर १९५७, उपहारकर १९५८ तथा व्ययकर १९५८।

अन्य कर—उपर्युक्त करों के अतिरिक्त कतिपय उपभोग करों की व्यवस्था है जो सामान्यतः उपभोक्ताओं को अधिक मूल्य के रूप में देने पड़ते हैं, यद्यपि प्रारंभिक रूप मे ये कर उत्पादकों तथा वितरकों पर ही लगाए जाते हैं। इस प्रकार के करों को प्रायः 'अप्रत्यक्ष कर' कहा जाता है। उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं में स्थूल आय या मूल्य के आधार पर ये कर अधिकतर चल करो के रूप में लगाए जाते हैं, जैसे निर्माण की थोक तथा खुदरा अवस्थाओं में विक्रय एवं क्रय कर। अधिक सीमित रूपों में ये कर विलासिता की तथा बहुत सी अन्य वस्तुओं पर...उत्पादन शुल्क के रूप मे लगे देख पड़ते हैं। भारतीय संघीय शासन अंतरप्रांतीय विक्रय पर केंद्रीय विक्रय कर तथा बहुत सी अन्य सामग्रियों पर उत्पादन शुल्क का उद्ग्रहण करता है। विभिन्न प्रातीय शासन भी प्रदेश की सीमा के अंतर्गत विक्रय की गई वस्तुओं पर बिक्रीकर का उद्ग्रहण करते है।

सामान्य वर्गीकरण — करों के आधार वा स्रोतपरक वर्गीकरण के अतिरिक्त अत्यंत महत्वपूर्ण वर्गीकरणों में से एक है—उत्कर्षपरक, आनुपातिक तथा अपकर्षपरक विभाजन। यह वर्गीकरण विशुद्ध आय की तुलना में प्रभावशाली अर्घ अनुपात पर आधारित है। यदि आयवृद्धि के साथ साथ कर के अनुपात मे भी वृद्धि होती है अर्थात् जब किसी व्यक्ति की आय मे वृद्धि के साथ साथ उस आय पर निर्धारित किए जानेवाले कर के प्रतिशत मे भी वृद्धि होती चलती है, तब उस स्थिति मे वह वृद्धिशील कर है। यदि आयवृद्धि से कर के प्रतिशत पर कोई प्रभाव न पड़े तो कर आनुपातिक है। जब आयवृद्धि के साथ साथ कर का प्रतिशत न्यून होता चले तब कर अपकर्षपरक है। ये संज्ञाएँ विशिष्ट कर एवं सामान्य कर व्यवस्था—दोनों मे व्यवहार्य हैं। विशिष्ट करों मे व्यक्तिगत आयकर, मृत्युकर तथा उपहारकर प्रायः सार्वत्रिक उत्कर्षपरक हैं। अधिकतर संपत्ति, विक्रय तथा उत्पादन संबंधी करों का आनुपातिक रूप मे उद्ग्रहण किया जाता है किंतु व्यवहार मे ये कर अपकर्षपरक होते हैं। उदाहरण के लिये अधिक आय की अपेक्षा कम आय पर लगा ७% कर राशि मे अधिक है क्योंकि कम आय पर अधिक मदे करार्ह होती हैं बनिस्बत अधिक आय के।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करो मे देख पड़नेवाला भेद ऐसा है जो बहुत प्रचलित है। सामान्यतः प्रत्यक्ष कर उस व्यक्ति को अदा करना पड़ता है जिसपर यह लगाया जाता है। अप्रत्यक्ष कर वह है जो वास्तविक प्रदाता के नही अपितु किसी अन्य व्यक्ति के जिम्मे पडता है। वास्तविक करदाता या तो वस्तुओं का दाम बढ़ाकर दूसरों से इसे वसूलता है या फिर स्वयं वस्तुओं का कम मूल्य देकर इस कर से मुक्त रहता है। तब भी बहुत बार यह निश्चय कर पाना बड़ा कठिन हो जाता है कि कर प्रत्यक्ष है या अप्रत्यक्ष। व्यवहार मे आय, मृत्यु, उपहार और भूमि से संबंधित करों को प्रत्यक्ष माना जाता है। उपभोग करों को सामान्यतः अप्रत्यक्ष माना जाता है। साधारणतया प्रत्यक्ष कर ही वाक्क्षमता के सिद्धांत पर आधारित होते हैं।

उद्देश्य—शासन की अन्य नीतियों के सामंजस्य पर आधारित कराधान का व्यापक उद्देश्य जनता का अधिकाधिक कल्याण करना है। तात्त्विक कार्यों के सम्यक् संपादन के लिये करों द्वारा ही शासन को आर्थिक दृढ़ता प्राप्त होती है। साथ ही सामाजिक और आर्थिक भलाई भी करों द्वारा होती है क्योंकि कर समाज में व्याप्त अत्यधिक आर्थिक विषमताओं को कम करते हैं, जिससे महार्घता और युद्धकालिक अपसंचय प्रवृत्ति को रोककर राष्ट्र मे आर्थिक दृढ़ता स्थापित करने मे सहयोग प्राप्त होता है।

भारतीय केंद्रीय कर—भारत की तरह के संघीय संविधान में कराधान का अधिकार केंद्र में तथा प्रदेशों अथवा इकाइयों में विभक्त कर दिया जाता है। इन अधिकारों को दृष्टिगत रखते हुए कुछ वस्तुओं पर केंद्र कर लगा सकता है और कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनपर राज्य कर लगा सकते हैं। उदाहरण के लिये भारतीय संविधान के अनुसार आय, उपहार, धन, व्यय और सपदा से संबंधित कर संघीय शासन द्वारा निर्धारित किए जाते हैं तथा राज्य शासन विक्रय, मनोरंजन और कृषि संबंधी उत्पादनों पर कर लगाते हैं।

आयकर — भारत में व्यक्ति, व्यवसाय संघ, संयुक्त हिंदू परिवार, व्यक्तियों के समुदाय, स्थानीय निकायों और कंपनियों पर आयकर अधिनियम १९६१ के अधीन आयकर लगाने की व्यवस्था है। इन इकाइयों को कुछ विशेष स्थितियों के आधार पर स्थूल रूप से बसतिपरक और बसतिरहित इन दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया है। दोनों पर निर्धारित किए जानेवाले कर में भी भेद है। बसतिपरक पर करनिर्धारण भारत या बाहर से हुई उसकी कुल आय के आधार पर होता है तथा बसतिरहित की सामान्यतः उसी आय पर कर लगता है जो उसे भारत के अंतर्गत हुई हो। व्यक्तिगत आय पर कर उत्कर्षपरक होता है; आय के प्रत्येक फलक पर यह बढ़ता रहता है और आय ७०,००० रुपये के ऊपर पहुँचने पर कर की दर ८% हो जाती है। कंपनियों पर कर स्थिर रूप से निर्धारित किया जाता है जो उन्हें अपने मुनाफे के ६०–७० प्रति शत के रूप में देना पड़ता है। जब आय निर्धारित सीमा पर पहुँच जाती है तब उसपर अतिरिक्त कर लगाया जाता है।

धारा १० के अनुसार आय की कुछ मदें करदाता की पूर्ण आय में संमिलित नहीं की जातीं, इसलिये वे (मदें) करों से भी मुक्त हैं: जैसे — कृषि संबंधी आय, छात्रवृत्तियाँ आदि। औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने के लिये कंपनियों को आयकर अधिनियम के अनुसार बहुत सी कटौतियाँ और सुविधाएँ दी जाती हैं, जैसे धारा ३३ के अनुसार विकास कटौती या नवसस्थापित व्यवसायों को षड्वर्षीय करावकाश अथवा धारा ८४ के अंतर्गत होटलों को दी जानेवाली छूट।

आय को छह 'मदो' वा श्रेणियों में विभक्त किया गया है — वेतनों से आय, जमा राशियों पर ब्याज, मकानो से आय, व्यापार तथा व्यवसाय मे मुनाफा या लाभ, पूँजी से लाभ तथा अन्य साधनों से आय। इस विभाजन का उपयोग केवल इतना है कि तत्संबंधी नियम उनपर लागू किए जा सकें। विभिन्न श्रेणियों की आय एक साथ जोड़ ली जाती है और कुल आय पर वर्तुलाकार रूप से कर का निरूपण किया जाता है। कर की दरें करदाता की कुल आय को ध्यान मे रखकर निर्धारित की जाती हैं। कुल आय से अभिप्राय करदाता की शुद्ध आय से है, निर्धारित छूटों को छोड़कर।

'कर निरूपण वर्ष' के लिये कर का निर्धारण करदाता को 'पूर्व वर्ष' मे हुई आय के आधार पर किया जाता है। 'करनिरूपण वर्ष' से अभिप्राय उस वित्तीय वर्षपरिमाण से है जो १ अप्रैल से प्रारंभ

होता है और आनेवाले वर्ष मे ३१ मार्च को समाप्त होता है। 'पूर्व वर्ष' से अभिप्राय उस वित्तीय वर्ष से है जो 'निरूपण वर्ष' प्रारंभ होने के ठीक पूर्व समाप्त होता है।

अधिनियम में घाटे को अलग कर देने और आगे ले जाने की तथा अंतरराष्ट्रीय दोहरे कराधान से बचाव की भी व्यवस्था है।

प्रशासन — आयकर प्रशासन की व्यवस्था के लिये आयकर अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है, जिनमे प्रारंभिक हैं निरीक्षक सहायक आयुक्त, अपीलीय सहायक आयुक्त तथा अपीलीय न्यायाधिकरण। अपीलीय न्यायाधिकरण के किसी निर्णय के संबंध मे उच्च न्यायालय मे अर्जी दी जा सकती है तथा जरूरत होने पर उच्चतम न्यायालय मे भी अपील की जा सकती है।

सामान्यत: सभी करदाताओं से अपेक्षा की जाती है कि वे कर निर्धारण वर्ष समाप्त होने के बाद ३० जून तक पूरा विवरण अधिकारियों के पास भेज दें। ये विवरण केवल सूचनापरक होते हैं। विवरणों मे दी गई या उसके पास उपलब्ध किसी भी अन्य सूचना के आधार पर आयकर अधिकारी कर का निर्धारण करता है। यदि आयकर अधिकारियो को लगे कि किसी व्यक्ति ने वास्तविक आय को अथवा आय से संबंधित दस्तावेजों को छिपाया है, उस अवस्था मे दस्तावेजों की जाँच या दस्तावेज एवं धनराशि अपने अधिकार मे करने के लिये उन्हे अधिनियम मे पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं।

संपदा शुल्क (एस्टेट ड्यूटी)—संपत्ति और उत्तराधिकार विषयक करो के निर्धारण के लिये संविधान द्वारा केंद्रीय शासन को प्रदत्त विशेष अधिकारों के अधीन केंद्रीय शासन ने संपदा शुल्क अधिनियम पारित कर सन् १९५३ मे प्रथम बार संपदा शुल्क का उद्ग्रहण किया था। यह शुल्क इंग्लैंड मे निर्धारित संपदा शुल्क पर आधारित है।

किसी व्यक्ति की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी को मिली या मिलनेवाली संपूर्ण संपत्ति के "प्रधान मूल्य" पर संपदा शुल्क का उद्ग्रहण किया जाता है। यह संपत्ति चल भी हो सकती है और अचल भी हो सकती है। "प्रधान मूल्य" से अभिप्राय उस मूल्य से है जितने में मृत व्यक्ति की मृत्यु के समय संपत्ति को खुले बाजार मे बेचा जा सके। यहाँ प्रचल संपत्ति का अंतर्ग्रहण महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे संपदा शुल्क के अंतर्गत अनेक ऐसी मदें आ जाती हैं जो अन्यथा इस कर के दायरे के बाहर मान ली जा सकती है। किसी व्यक्ति के लिये प्रत्यक्ष या प्रन्यास के माध्यम से उत्तराधिकार रूप मे निश्चित संपत्ति अवस्थापित मानी गई है। संपदा शुल्क अधिनियम उन सभी व्यक्तियो पर लागू होता है—

१—जो भारत के अधिवासी हैं। उनकी मृत्यु के समय उनकी

(अ) भारत मे स्थित चल तथा अचल संपत्ति, एवं

(ब) भारत के बाहर स्थित चल संपत्ति करार्ह होगी।

२—जो भारत के अधिवासी नहीं हैं, उनकी मृत्यु के समय भारत मे स्थित उनकी चल तथा अचल संपत्ति करार्ह होगी एवं—

३—जो भारत के बाहर स्थित चल अवस्थापित संपत्ति का मृत्यु पर्यंत आभोगी रहा हो किंतु शर्त यह कि अवस्थापक अवस्थापन के समय भारत का अधिवासी रहा हो तो उसकी वह संपत्ति करार्ह होगी।

घरेलू सामान, परिधान, भारत के बाहर स्थित अचल संपत्ति आदि बहुत सी मदें धारा ३३ के अनुसार शुल्क से मुक्त हैं। संपदा शुल्क की दर निर्धारित करते समय इन मदों की गणना नहीं की जाती। कुछ मदें ऐसी है जिन्हे यद्यपि संपदा शुल्क से मुक्त माना गया है, तथापि शुल्क की दर तै करते समय उन्हे कुल संपदा मे गिनने की व्यवस्था है (धारा ३४ (१))। कुल संपदा पर जिस दर से कर का निर्धारण किया जाता है, उसी अनुपात मे मुक्त संपत्ति पर जितना कर बैठता है, उतना कर माफ कर दिया जाता है। इस प्रकार की मदो मे से कुछ ये है :

(अ) २,५०० रुपए तक के मूल्य के ऐसे उपहार जो मृत व्यक्ति ने अपनी मृत्युतिथि से अधिकतम छह महीने पूर्व तक सार्वजनिक धर्मार्थ उद्देश्यो के लिये दिए हो (धारा ३३ (१) (अ))।

(ब) १,५०० रुपए तक के मूल्य का अन्य किसी भी प्रकार का एक या एकाधिक उपहार जो मृत्युतिथि से अधिकतम दो वर्ष पूर्व तक दिया गया हो (धारा ३३ (१) (ब))।

(स) मृत व्यक्ति द्वारा अपने जीवन पर खरीदी गई जीवन बीमा पालिसियो की ५,०००, रुपए तक के मूल्य की प्राप्तियाँ (धारा ३३ (१) (ह))।

अधिनियम में संपदा के मान मे से बहुत सी अन्य कटौतियों की भी व्यवस्था है, जैसे अंतिम संस्कार के लिये १,००० रुपए तक। अधिनियम मे एक ऐसी विशेष छूट की भी व्यवस्था है जिसे द्रुत उत्तराधिकार मोक कहा जाता है। यह कटौती संपत्ति के उस भाग पर लगनेवाले संपदा शुल्क मे की जाती है जिस भाग पर मृत व्यक्ति की मृत्युतिथि से पाँच वर्ष पूर्व तक पूर्वाधिकारी की मृत्यु के समय कर का उद्ग्रहण किया जा चुका है (धारा ३१), उदाहरण के लिये इस प्रकार की संपत्ति पर लगनेवाले कर मे १००% कटौती कर दी जाती है यदि उत्तराधिकारी पूर्व मृत व्यक्ति मे तीन महीने के अंदर अंदर मर जाता है। यदि उत्तराधिकारी पूर्व मृत से एक साल के अंदर मर जाता है तो कर मे ५०% की छूट दे दी जाती है (इसी प्रकार कुछ अन्य व्यवस्थाएँ भी है)।

केंद्रीय शासन को यह अधिकार है कि वह अन्य देशो के साथ इस प्रकार के पारस्परिक अनुबंध बना सके जिससे किसी व्यक्ति को भारतीय और विदेशी संपदा करो के अधीन दोहरा कर न देना पड़े। (धारा ३०)।

प्रशासन और प्रक्रिया — संपदा शुल्क का प्रशासन और उसे उगाहने का काम संपदा शुल्क नियंत्रकों द्वारा संपादित किया जाता हैं। केंद्रीय शासन द्वारा नियुक्त ये नियंत्रक राजस्व के केंद्रीय बोर्ड की सामान्य देखरेख मे अपना काम करते है। अपीलीय नियंत्रकों को और अपीलीय न्यायाधिकरण को अपीलें सुनने का अधिकार होता है। इसके बाद उच्च न्यायालय मे भी अपील की जा सकती है।

मृतक के वैधानिक प्रतिनिधि, जिन्हे मृतक की मृत्यु के बाद संपत्ति मिलती है तथा प्रत्ययी, जो मृतक की मृत्यु के बाद संपत्ति के प्रबंधक बनते हैं अथवा संपत्ति के किसी हिस्से मे भागीदार बनते हैं उनसे अपेक्षा की जाती है कि मृतक की मृत्यु के अनंतर छह महीनों के अंदर अंदर संपदा शुल्क नियंत्रक के पास 'खाते' प्रस्तुत कर दें (धारा ५३)। विवरणो तथा लेखो से संतुष्ट होने पर नियंत्रक शुल्क का निर्धारण करेगा एवं संबद्ध व्यक्तियों को माँग की नोटिस देगा जिसमे उल्लिखित समय तथा स्थान पर उन्हे शुल्क की रकम जमा कर देनी चाहिए।

दर — सन् १९६५-६६ के लिये सपदा शुल्क की दरे इस प्रकार हैं :

	की दर
(१) संपदा का मुख्य मूल्य यदि ५०,००० रुपयों के अंदर हो	कुछ नही।
(२) संपदा का मुख्य मूल्य यदि ५०,००० रुपयो से अधिक तथा १,००,००० रुपयों से कम है	४%
(३) संपदा का मुख्य मूल्य यदि १,००,००० रुपयों से अधिक तथा २,००,००० रुपयो से कम है	८%
(४) संपदा का मुख्य मूल्य यदि २,००,००० रुपयो से अधिक तथा ५,००,००० रुपयों से कम है	१५%
(५) संपदा का मुख्य मूल्य यदि ५,००,००० रुपयो से अधिक तथा १०,००,००० रुपयो मे कम है	२५%
(६) सपदा का मुख्य मूल्य यदि १०,००,००० रुपयों से अधिक तथा १५ ००,००० रुपयों से कम है	४०%
(७) संपदा का मुख्य मूल्य यदि १५,००,००० रुपयो से अधिक तथा २०,००,००० रुपयों से कम है	५०%
(८) संपदा का मुख्य मूल्य इससे अधिक होने पर	८५%

धनकर (वेल्थ टेक्स) — निकोलस काल्डोर की सस्तुतियो पर अप्रैल, १९५७ मे प्रथम बार भारत मे शुद्ध धन पर कर की व्यवस्था की गई थी। कैंब्रिज विश्वविद्यालय के काल्डोर महोदय ने भारतीय शासन की प्रार्थना पर भारतीय करप्रणाली का अध्ययन करने के बाद उक्त सस्तुतियाँ की थी।

'मूल्य निर्धारण तिथि' को करदाता के पास कुल जितना कर योग्य या कराहं शुद्ध धन हो, उसी पर धनकर का वार्षिक उद्ग्रहण किया जाता है। शुद्ध धन से अभिप्राय है गणना के वर्ष के अंतिम दिन करदाता के पास जितनी परिसंपत्तियाँ हो, उन सबका कुल मूल्य। किसी भी परिसंपत्ति का मूल्य वही माना जाएगा, जितने मे वह परिसंपत्ति मूल्यनिर्धारण तिथि को खुले बाजार मे बेची जा सके।

धनकर केवल व्यक्तियों को तथा अविभाजित हिंदू परिवारो को ही अदा करना पडता है और यह क्रमिक रूप से वृद्धिशील होता है। प्रारभ मे कपनियो से भी इस कर का समान दर से उद्ग्रहण किया जाता था किंतु सन् १९६०-६१ से कंपनियो को इस से मुक्त कर दिया गया। करग्रहण के उद्देश्य से इन दोनों इकाइयों को स्थानिक और अनिवासी इन दो भागो मे विभक्त कर दिया गया है। इस विभाजन का आधार वही है जो आयकर अधिनियम द्वारा निर्धारित है। कराहंता के निर्धारण मे राष्ट्रीयता का भी विचार किया जाता है। सामान्यतः स्थानिक व्यक्तियो से उनके विश्वव्यापी शुद्ध धन के आधार पर कर ग्रहण किया जाता है और अन्य लोगों से केवल उनके भारत में स्थित धन के आधार पर।

अधिनियम मे कुछ इस प्रकार की परिसंपत्तियो की सूची दी गई है जो धनकर से मुक्त हैं और कराहं धन के निर्धारण मे जिन्हे बिल्कुल नही गिना जाता; जैसे—घरेलू वस्तुएँ, २५,००० रुपए मूल्य तक के गहने, कुछ शर्तो के साथ एक लाख रुपए मूल्य तक का निवासस्थान इत्यादि।

कोई इस ढंग की करसंधि वा समझौते की व्यवस्था नही है जिससे अंतरराष्ट्रीय दोहरा कराधान रोका जा सके अथवा करदाता को कुछ उन्मुक्ति दी जा सके और न ही अदा किए गए विदेशी शुद्ध धन संबंधी कर के लिये आकलन की ही कोई व्यवस्था है जैसी आयकर अधिनियम की धारा ९१ मे है। तब भी सामान्यतः स्थानिक नागरिको को और अविभाजित हिंदू परिवारो को विदेशी शुद्ध धन पर तथा अनिवासी विदेशियो को देशीय शुद्ध धन पर ५०% रियायत की व्यवस्था अधिनियम मे है।

प्रशासन और प्रक्रिया—सामान्य रूप से धनकर अधिनियम मे दी गई प्रशासन और प्रक्रिया संबंधी व्यवस्था पूर्णतः आयकर अधिनियम मे दी गई व्यवस्थाओं की अनुसारिणी है। आयकर विभाग के प्राधिकारी ही धनकर विभाग का काम देखते है। इस प्रकार आयकर अधिकारी ही धनकर अधिकारी हैं। अन्य प्राधिकारी है—निरीक्षक सहायक कमिश्नर, अपीलीय सहायक कमिश्नर धनकर का कमिश्नर और सब से ऊपर अपीलीय न्यायाधिकरण। धनकर अधिकारी के निर्णय के संबंध मे अपीलीय सहायक कमिश्नर के पास अपील की जा सकती है—और वहाँ से अपीलीय न्यायाधिकरण के पास। कानून की व्याख्या से संबंधित अपीलें अपीलीय न्यायाधिकरण के पास से उच्च न्यायालय मे ले जाई जा सकती है और वहाँ से उच्चतम न्यायालय मे।

करदाताओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे प्रति वर्ष ३० जून के पूर्व लेखा स्वयं अधिकारियो के पास भज दे। इस संबंध में उन्हें अधिकारियो से किसी प्रकार की सूचना की प्रतीक्षा नही करनी चाहिए। शुद्ध धन का अंकन करके धनकर अधिकारी उस धन पर लगनेवाले कर का निर्धारण करता है। लेखे और दंड का पुनर्विलोकन किए जाने की भी अधिनियम मे व्यवस्था है।

दरें—सन् १९६६—६५ के लिये धनकर की दरे इस प्रकार हैं—

	कर की दर
(अ) प्रत्येक व्यक्ति के मामले मे	
(१) एक लाख रुपयो तक के शुद्ध धन पर—	कुछ नही
(२) एक लाख के ऊपर पाँच लाख रुपयो तक के शुद्ध धन पर	०·५%
(३) पाँच लाख के ऊपर दस लाख रुपयो तक के शुद्ध धन पर	१·०%
(४) दस लाख के ऊपर बीस लाख रुपयो तक के शुद्ध धन पर	२·०%
(५) बीस लाख रुपए के ऊपर के शुद्ध धन पर	२·५%
(ब) प्रत्येक अविभाजित हिंदू परिवार के मामले मे—	
(१) दो लाख रुपए तक के शुद्ध धन पर—	कुछ नही
(२) दो लाख के ऊपर पाँच लाख रुपए तक के शुद्ध धन पर	०·५%
(३) पाँच लाख के ऊपर दस लाख रुपए तक के शुद्ध धन पर	१·०%
(४) दस लाख के ऊपर बीस लाख रुपए तक के शुद्ध धन पर	२·०%
(५) बीस लाख रुपए के ऊपर के शुद्ध धन पर	२·५%

उपहारकर—उपहारकर अधिनियम १९५८ के अधीन प्रथम बार भारत मे उपहारकर की व्यवस्था की गई थी। यद्यपि यह अधिनियम

१ अप्रैल, १९५८ से व्यवहार में आया था किंतु १ अप्रैल, १९५७ के बाद दिए गए उपहारों पर भी यह अधिनियम लागू होता था। उपहार कर के प्रवर्तन के पूर्व सामान्यत: उपहारों पर कोई कर नहीं लगता था किंतु आसन्न मृत्यु के आधार पर तथा मृत्यु के पूर्व दो वर्षों के अंदर दिए गए उपहारों पर संपदा शुल्क का उद्ग्रहण किया जाता था। उपहारकर संपदाकर का एक आवश्यक पूरक था।

उपहार की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि किसी व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से विद्यमान चल अथवा अचल संपत्ति का अन्य व्यक्ति को, मूल्य का विचार किए बिना, दिया जाना उपहार है। यदि देनेवाला मूल्य या बदले में कोई वस्तु प्राप्त करता है तो उसकी तुलना में उपहार का खुले बाजार मे जो अधिक मूल्य होगा, उसी पर कर लगाया जाता है (धारा ४)।

व्यक्तियों, अविभाजित हिंदू परिवारों, कंपनियों, और व्यक्ति समवायों द्वारा गणना वर्ष में या उसके पूर्व के वर्ष में प्रदत्त उपहारों के कतिपय वर्गों पर उपहारकर के उद्ग्रहण की व्यवस्था है। विभिन्न वर्गों की करदेयता उनकी आवासीय स्थिति पर निर्भर करती है। इस का मूल्यांकन उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार आयकर के लिये। व्यक्तिगत मामलों में व्यक्तियों की राष्ट्रीयता का भी विचार किया जाता है। अत:

(१) सामान्यत: भारत में अवस्थित नागरिकों की भारत मे स्थित अचल संपत्ति में से तथा कहीं भी स्थित चल संपत्ति में से दिए गए उपहारों पर कर उद्ग्रहण की व्यवस्था है।

(२) जो नागरिक भारत में अवस्थित नहीं हैं अथवा सामान्य रूप से अवस्थित नहीं हैं—उनकी भारत स्थित चल अथवा अचल संपत्ति में से दिए गए उपहारों पर कर उद्ग्रहण की व्यवस्था है।

(३) बाह्यदेशीयों की—चाहे वे कहीं के निवासी हों—भारत स्थित वास्तविक अथवा चल संपत्ति में से दिए गए उपहारों पर कर लगाने की व्यवस्था है।

हिंदू अविभाजित परिवार, व्यक्तिसमवाय तथा कंपनियाँ—यदि ये देश में अवस्थित हैं तो इनकी भारत मे स्थित अचल संपत्ति तथा कहीं भी स्थित चल संपत्ति मे से दिए गए उपहारों पर कर उद्ग्रहण की व्यवस्था है। यदि ये आवासी नहीं हैं, तो उस स्थिति में उनकी भारत में स्थित चल अथवा अचल संपत्ति में से दिए गए उपहार कराई होंगे। सरकारी कंपनियाँ, धर्मार्थ संस्थाएँ आदि इस ढग के कुछ निश्चित समुदायों द्वारा दिए गए उपहार करमुक्त हैं।

उपहारकर अधिनियम में बहुत से उपहारों को करमुक्त माना गया है। उदाहरणार्थ पति या पत्नी को प्रदत्त ५०,००० रुपये मूल्य तक के उपहार, किसी आश्रित को उसके विवाह के अवसर पर १०,००० रुपए तक के उपहार, प्रदाता के बच्चों को शिक्षा के लिये दिए गए विवेकसंगत उपहार, ऐसी धर्मार्थ संस्थाओं तथा निधियों को दिए गए उपहार जिनपर आयकर अधिनियम लागू होता है, इत्यादि।

दान की तिथि को उपहार का खुले बाजार में जो मूल्य होगा वही मूल्य उस उपहार का माना जाएगा। खुले बाजार मे विक्रय के अयोग्य संपत्तियों का मूल्यन निर्धारित नियमों के अनुसार किया जाएगा, उदाहरण के लिये जीवन बीमा पालिसियों का मूल्य वही माना जाएगा, जो उनके अर्पित करते समय का होगा।

प्रशासन और प्रक्रिया—आयकर अधिकारी ही उपहारकर का भी प्रशासन करते हैं और इसकी प्रक्रिया भी आयकर, धनकर तथा व्ययकर की प्रक्रियाओं से बहुत मिलती जुलती है। आपत्ति उठाने, अपील करने, वसूल करने तथा दंड आदि की प्रक्रियाएँ आयकर संबंधी प्रक्रियाओं के ही समान हैं।

लागू होने योग्य मुक्तियों का लाभ उठाने के बाद यदि किसी व्यक्ति ने गत वर्ष में कराई उपहार दिए हैं, तो उसे चाहिए कि वह अगले वर्ष के ३० जून तक उपहारकर संबंधी विवरण अधिकारियों के पास भेज दे। किसी भी स्थिति में गृहीता से अपेक्षा नहीं की जाती कि वह विवरण भेजे। इस प्रकार प्रस्तुत किए गए विवरण के आधार पर उपहारकर अधिकारी करनिर्धारण करता है। यदि उपहार कर चुकाने के पूर्व किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसके वैधानिक प्रतिनिधि पर मृत प्रदाता की संपत्ति के विस्तार के आधार पर कर चुकाने का उत्तरदायित्व होगा।

दरें — सन् १९६५-६६ के लिये उपहारकर की दरें इस प्रकार हैं :

	कर की दर
(१) आरंभिक ५,००० रुपये मूल्य तक के कराई उपहारों पर	४%
(२) इसके बाद के १५,००० रुपये मूल्य तक के कराई उपहारों पर	८%
(३) इसके बाद के २५,००० रुपये मूल्य तक के कराई उपहारों पर	१५%
(४) इसके बाद के और एक लाख रुपये मूल्य तक के कराई उपहारों पर	२५%
(५) इसके बाद और आगे दो लाख रुपये मूल्य तक के कराई उपहारों पर	४०%
(६) इससे अधिक उपहार के शेष मूल्य पर	५०%

व्ययकर—व्ययकर अधिनियम, १९५७ के अधीन भारत में प्रथम बार अप्रैल, १९५७ से व्ययकर की व्यवस्था की गई थी। बाद मे कर निर्धारण वर्ष १९६२-६३ से यह समाप्त कर दिया गया था किंतु १ अप्रैल, १९६४ से इसे पुन. प्रचलित कर दिया गया है। इसे आयकर के पूरक के रूप मे माना जाता है जो संगत भी है।

व्यक्तियों द्वारा तथा हिंदू अविभाजित परिवारों द्वारा विगत वर्ष में किए गए व्यय पर यह कर वार्षिक रूप से लिया जाता है। कर प्रदाता कहाँ रहता है, उसकी राष्ट्रीयता क्या है और उसकी हैसियत क्या है, इसका ध्यान रखते हुए उसके द्वारा विश्व में कहीं भी किए गए व्यय पर यह कर लगता है। इसमे भारत के अंतर्गत किया गया व्यय तथा भारतीय स्रोतों से भारत के अंतर्गत तथा भारत के बाहर किया गया व्यय संमिलित है। सामान्यत: ३०,००० रुपए तक की एक मानक मोक या छूट के ऊपर के व्यय पर यह कर क्रमश: अधिक तेजी से बढनेवाले ढंग से लगाया जाता है।

'व्यय' की परिभाषा में बताया गया है कि वह धन अथवा धन के रूप में प्रयुक्त अन्य वस्तु जो खर्च की गई हो या वितरित की गई ऐसी कोई भी राशि जिसके व्यय अथवा वितरित किए जाने से व्यय करनेवाले पर किसी तरह की देयता या दायित्व आ पड़े, (धारा २ ह) 'व्यय' की कोटि में मानी जायगी।

व्यय की कुछ मदें कर से मुक्त हैं जैसे व्यापार के संबंध में होने वाला व्यय, भविष्य निधि अथवा अधिवर्ष निधि (सूपर ऐनुएशन फंड) में दिया गया अंशदान इत्यादि। कराहं व्यय की संगणना में अधिनियम में कुछ कटौतियों की व्यवस्था भी है; जैसे शासन को या स्थानीय अधिकारियों को दिया गया कोई भी कर (व्ययकर समेत), दीवानी या फौजदारी मुकदमों में हुआ व्यय, जिस व्यक्ति पर कर बैठाया जानेवाला हो, उसके स्वयं अपने विवाह या उसके आश्रित के विवाह के उपलक्ष्य में प्रत्येक के लिये हुआ ५,००० रुपए तक का व्यय अधिनियम के अनुसार पूँजीगत व्ययके रूप में सोना चाँदी, बहुमूल्य रत्न, आभूषण, फर्नीचर तथा अन्य घरेलू उपयोग की वस्तुओं पर एवं मोटर गाड़ी या अन्य व्यक्तिगत उपयोग के वाहन आदि पर करदाता या उसके आश्रित द्वारा किया गया व्यय कर के उद्देश्य से पाँच वर्ष की अवधि तक फैला हुआ माना जा सकता है। इस प्रकार के कुल व्यय के ८०% की गणना उसी वर्ष के व्यय में कर ली जाती है जिस वर्ष वह व्यय किया गया हो। शेष २०% अगले चार वर्षों मे से प्रत्येक वर्ष में किए गए व्यय में जोड़ दिया जाता है (धारा ६ (१) (ड))।

प्रशासन और प्रक्रिया — व्ययकर अधिनियम के अंतर्गत प्रशासन और प्रक्रिया प्रायः वैसी ही है जैसी आयकर अधिनियम मे दी गई है। आयकर अधिकारी ही पदेन व्ययकर अधिकारी भी होते हैं। व्यय कर के कमिश्नर तथा अपीलीय सहायक कमिश्नर की नियुक्ति का अधिकार राजस्व के केंद्रीय बोर्ड को है। पुनर्विचार, अपील, संग्रह और दंड संबंधी प्रक्रियाएं वही हैं जो आयकर तथा धनकर के लिये हैं।

करदाताओं से अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक वर्ष की ३० जून तक गत वर्ष का विवरण अधिकारियों के पास भेज दें। इस विवरण के आधार पर व्ययकर अधिकारी उद्ग्रहणीय कर का निर्धारण करता है।

दरें—सन् १९६५-६६ के लिये व्ययकर की दरें निम्नलिखित हैं प्रत्येक व्यक्ति तथा हिंदू अविभाजित परिवार द्वारा किए गए व्यय के उस भाग पर

	कर की दर
१. जो ३६,००० रुपए से अधिक नहीं है	कुछ नहीं
२. जो ३६,००० रुपए से अधिक है किंतु ४८,००० रुपये से कम है।	५%
३. जो ४८,००० रुपए से अधिक है किंतु ६०,००० रुपये से कम है।	७ ५%
४. जो ६०,००० रुपए से अधिक है किंतु ७२,००० रुपये से कम है।	१०%
५. जो ७२,००० रुपए से अधिक है किंतु ८४,००० रुपये से कम है।	१५%
६. जो ८४,००० रुपए से अधिक है।	२०%

निर्धारण वर्ष १९६४-६५ तथा १९६५-६६ के लिये व्ययकर की अधिकतम दर १५% है और वह दर ७२,००० रुपए से अधिक की किसी भी राशि पर लागू होगी, निर्धारण वर्ष १९६६-६७ से व्ययकर की अधिकतम दर २०% होगी और उपरिनिर्दिष्ट पद्धति से लागू होगी।

पूर्ववर्णित पाँच बड़े करों के अतिरिक्त केंद्रीय सरकार अंतर प्रांतीय बिक्री कर, मुद्रांक शुल्क, उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क भी वसूल करती है।

सं० ग्रं० — कांगा एंड पाल्कीवाला : 'दि लॉ एंड प्रेक्टिस् ऑव इनकम टैक्स;' श्रीनिवासन के० 'इनकम टैक्स लॉ'; सुंदरम् वी० रास० 'दि लॉ ऑव इनकम टैक्स इन् इंडिया'; वर्ल्ड टैक्स सीरीज, हार्वर्ड लॉ स्कूल 'टैक्सेशन इन् इंडिया'; नानावती, . दि इस्टेट ड्यूटी ऐक्ट'; कामजी एम० सी० . 'इस्टेट ड्यूटी इन् इंडिया—लॉ एंड प्रेक्टिस'; सेठी आर० बी० : 'दि वेल्थ टैक्स ऐक्ट', सपत आयंगर 'ओ न्यू टैक्सेज'; अय्यर ए० एन० : 'दि एक्सपेंडिचर टैक्स ऐक्ट १९५७; बैनर्जी ए० जी० : 'इंडियन वेल्थ टैक्स ऐंड इंडियन गिफ्ट टैक्स'; मुल्ला डी० एफ० : 'इंडियन स्टैंप ऐक्ट'; दि फिनांस ऐक्ट ऑव द रेलेवेंट इयर ऐंड द लेटेस्ट रूल्ज; अगरवाल, एस० के० : 'सेंट्रल सेल्ज टैक्स ऐक्ट'। [म० सी० बि०]

भारतीय खनिज संपत्ति भारत मे आर्थिक महत्व के लगभग ५५ खनिज पाए जाते है, जिनमे से १६ पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हैं।

कोयला — इसका कुल उत्पादन लगभग ७ करोड़ टन तक है। आशा है कि चतुर्थ योजना के अंत तक यह १० करोड़ टन तक हो जाएगा। इसमे से कोकिंग कोल का, जो इस्पात उद्योगों में व्यवहृत होता है, उत्पादन केवल बिहार में होता है और वहीं से सारे देश में भेजा जाता है। भारत लगभग २० लाख टन कोयला प्रतिवर्ष निर्यात भी करता है (देखें 'कोयला' तथा 'भारत')।

पेट्रोल — भारत मे लगभग १ करोड़ टन पेट्रोल की प्रतिवर्ष खपत होती है। गुजरात तथा असम के स्रोतो से कुल ६५ लाख टन पेट्रोल का उत्पादन होता है। बाकी विदेशो से मँगाया जाता है (देखें पेट्रोलियम तथा 'भारत')।

लोहा — देश में लोहे की कुल मात्रा ६४,२१० करोड टन अनुमानित है। तृतीय पंचवर्षीय योजना तक भारत मे लौह अयस्क का उत्पादन ३ करोड टन था, जिसमे लगभग १ करोड टन का निर्यात किया जाता है (देखें 'भारत में लौह अयस्क' तथा 'भारत')।

ताँबा — औद्योगिक स्तर पर ताँबे के अयस्क केवल बिहार, तथा राजस्थान की खानो से निकाले जाते हैं। मोसाबानी बिहार की प्रमुख खदान है। राजस्थान में खेतरी की खदान प्रसिद्ध है। तीसरी योजना के अंत तक देश मे लगभग १,७०,००० टन ताँबे की खपत थी तथा उत्पादन ४९,००० टन था (देखें ताँबा)।

सीस — यह औद्योगिक स्तर पर राजस्थान की जबर खानों से निकाला जाता है। भारत मे इसका उत्पादन लगभग ६,३८४ टन होता है और विदेशो से भी इसका आयात किया जाता है (देखें सीस)।

जस्ता — भारत मे सीसे की खानों मे जस्ता तथा चाँदी साथ साथ पाई जाती है। इनमे से मुख्य राजस्थान की उदयपुर की खानें तथा बिहार की सिंहभूमि और हजारीबाग की खाने हैं। भारत में इसकी खपत ८६,००० टन है, परतु केवल ५,००० टन उत्पादन है (देखें जस्ता)।

मैंगनीज — भारत मे यह औद्योगिक स्तर पर बालाघाट, छिंदवाड़ा, नागपुर, भंडुआ तथा उड़ीसा राज्य के गंजम तथा कोरापुट जिले में पाया जाता है। प्रतिवर्ष प्रायः १२ लाख टन का उत्पादन होता है। इसका अधिकांश निर्यात कर दिया जाता है (देखें 'मैंगनीज तथा भारत)।

सोना — मैसूर की कोलार तथा हुट्टी खानों से सोने का उत्पादन होता है। १९६२ ई० में ५,०८० किलोग्राम सोने का उत्पादन हुआ था (देखें सोना)।

ऐल्यूमिनियम — भारत में औद्योगिक स्तर पर यह बिहार (रांची, पालामऊ), गुजरात (हलर, कैरा), मध्यप्रदेश (बालाघाट, बिलासपुर, रायगढ़) तथा मद्रास (सलेम) में पाया जाता है। भारत मे उत्पादित समस्त ऐल्यूमिनियम की खपत देश मे हो जाती है। आजादी के बाद से इसके उत्पादन मे ४० गुनी वृद्धि हुई है। (देखें ऐल्यूमिनियम)।

अभ्रक — भारत विश्व मे सर्वाधिक अभ्रक उत्पन्न करता है। १९६२ ई० मे कुल उत्पादन २८,३५४ टन हुआ था। अधिकांश अभ्रक का निर्यात होता है। (देखें 'अभ्रक' तथा 'भारत')।

क्रोमियम — यह क्रोमाइट अयस्क से बनाया जाता है। आंध्र-प्रदेश, बिहार (सिंहभूमि), महाराष्ट्र, मद्रास तथा मैसूर मे औद्योगिक स्तर पर इसका उत्पादन होता है, जो १९६२ ई० मे ६,६६,४८,००० टन था। इसका अधिकाश निर्यात कर दिया जाता है (देखें, क्रोमियम)।

नमक — नमक भारत मे सांभर झील, डेगाना तथा भेदी में पाया जाता है। बाकी नमक समुद्र के पानी से बनाया जाता है। १९६२ मे ऐसे नमक का उत्पादन ३८,८६, १०० टन था (देखें, नमक)।

जिप्सम — देश मे गंधक की खानें न होने से इसका महत्व अधिक बढ़ गया है। यह राजस्थान मे पाया जाता है।

चूने का पत्थर—आंध्र प्रदेश, असम, बंगाल, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, मद्रास, मैसूर, पजाब तथा उत्तर प्रदेश मे यह औद्योगिक स्तर पर प्राप्त किया जाता है। भारत में इसकी मांग १ करोड़ ८० लाख टन है तथा निकट भविष्य मे २५० करोड़ हो जाने की सभावना है। १९६२ ई० मे १ करोड़ ६९ लाख टन का उत्पादन हुआ था (देखें जिप्सम)।

सिलिमैनाइट तथा काइग्रानाइट — तापरोधक वस्तुओ के उत्पादन में इसका प्रयोग किया जाता है। भारत मे यह सिंहभूमि, चागीदीहा, मोहनपुर (बिहार), बोनाई तथा खासी चोटी (असम) मे पाया जाता है। अब देश मे इसकी खपत बढ रही है (देखें काइग्रानाइट)।

मिट्टियाँ — इनमे चीनी मिट्टी, पेपर क्ले, बालू क्ले, स्टोन केयर, ईंट तथा खपरैल बनाने की मिट्टियाँ है। ये मृत्तिकाशिल्प उद्योग के आधार हैं। भारत मे ये मिट्टियाँ विपुल मात्रा में पाई जाती हैं। १९६२ मे इनका उत्पादन ३८९,७१४ टन था।

इल्मेनाइट—सिंहभूमि, मयूर भज, किओंरझर तथा ट्रावनकोर मे यह पाया जाता है। १९६२ ई० में इसका उत्पादन १,३८,००४ टन था। इसका अधिकांश निर्यात कर दिया जाता है (देखें इल्मेनाइट)।

भवननिर्माण के पत्थर — ग्रेनाइट बसाल्ट, डोलेराइट, सैंडस्टोन तथा संगमरमर का उपयोग भवननिर्माण में किया जाता है। इन पत्थरों मे मकराना (राजस्थान) का संगमरमर अधिक प्रसिद्ध है। इसीसे ताजमहल का निर्माण हुआ था। [वि० सा० दु०]

भारतीय जनसंघ देश के इस राजनीतिक दल की स्थापना २१ अक्टूबर, सन् १९५१ ई० को दिल्ली मे हुई। इसके संस्थापक तथा प्रथम अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी थे। स्थापना के दो महीने बाद ही जनसंघ ने देश के महा निर्वाचन मे भाग लेने का निश्चय किया। दल को चुनाव मे हार का सामना करना पड़ा और उसे लोकसभा में तीन, राज्य सभा में एक तथा राज्य विधान मंडलों मे चौतीस स्थान मिले। सन् १९५५-६६ ई० में देश में इस दल के सदस्यों की संख्या चार लाख थी। चतुर्थ महानिर्वाचन में जनसंघ को अनेक राज्यों मे उल्लेखनीय सफलता मिली, जिसके फलस्वरूप लोकसभा में उसने ३५ तथा विधान सभाओं में २६७ स्थान प्राप्त किए। राजनीतिक विचारधारा की दृष्टि से यह दक्षिण पंथी बल है।

दल के राजनीतिक उद्देश्य तथा कार्यक्रम इस प्रकार हैं: (१) व्यक्तिस्वातत्र्य तथा विधिसंमत व्यवस्था पर आधृत लोक तंत्रात्मक शासन; (२) आर्थिक प्रशासनिक विकेंद्रीकरण के द्वारा ग्रामतंत्र; (३) किसान को भूमि का स्वामित्व देनेवाले भूमिसुधार, (४) गोवध निषेध, (५) उद्योग मे निजी पूँजी के विस्तार को प्रोत्साहन; (६) विकेंद्रीकरण, स्वदेशी साधन तथा श्रमप्रधान औद्योगिक प्रणाली पर बल; (७) हड़ताल, तालाबदी को प्रोत्साहन नही; उद्योगों मे लाभ का बँटवारा; (८) बिना शर्त तथा बिना राजनीतिक दबाव के विदेशी पूँजी का स्वागत; (९) विनियंत्रण तथा राष्ट्रीय व्यापार में अंतर राज्यीय सीमाओ की समाप्ति; (१०) आर्थिक विषमता की समाप्ति की दृष्टि से करनियोजन, (११) सभी देशो से मैत्री; (१२) भारत की राष्ट्रमंडल की सदस्यता पर पुनर्विचार, (१३) पाकिस्तान के प्रति 'जैसे को तैसे' की नीति; (१४) तिब्बत की मुक्ति और भारत का पुनः एकीकरण विदेशी नीति का अंग। पाकिस्तान तथा कम्युनिस्ट चीन द्वारा हस्तगत भूमि को मुक्त कराने की दृढ नीति (१५) बेकारी के उन्मूलन, कृषि की प्राथमिकता तथा औद्योगिक क्षेत्र मे आत्मनिर्भरता का प्रयत्न, (१६) देश मे एकात्मक शासन की स्थापना जिसमे सभी राज्यो के अधिकार और स्थान बराबर होगे, (१७) राष्ट्रभाषा के पद पर हिंदी की शीघ्र प्रतिष्ठा तथा सभी विद्यालयो मे हिंदी का पठन अनिवार्य किया जाना, (१८) भ्रष्टाचार की जाँच के लिये एक सत्ता संपन्न आयोग की नियुक्ति, (१९) राष्ट्रीय सुरक्षा को प्राथमिकता देना तथा सैनिक आत्म निर्भरता। सेना के तीनो अंगो का सुदृढ और अद्यतन शस्त्रास्त्रों से, जिनमे अणु अस्त्र भी होंगे, साधनसपन्न बनाना। (२०) शिक्षा का भारतीयकरण तथा अभिनवीकरण; माध्यमिक स्तर तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था।

जनसंघ के सस्थापक अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने संसद् मे इस आशय का कथन किया था कि जनसंघ विरोधी दल के रूप मे अपना विकास करना चाहता है और देश में यह लोकतंत्रीय विकल्प की तैयारी करेगा। जनसंघ सभी धर्म के लोगों तथा वर्ग को अपना सदस्य बनाता है। अनेक मुसलमान भी जनसघ के उम्मीदवार बनकर चुनाव मे विजयी हुए है। मद्रास राज्य मे जनसंघ के प्रथम अध्यक्ष रोमन कैथलिक डा० बी० के० जॉन थे। जम्मू कश्मीर जनसंघ के मंत्री शेख अब्दुल रहमान है। जनसंघ के वर्तमान अध्यक्ष प्रोफेसर बलराज मधोक का मत है कि जनसंघ साप्रदायिक नही, राष्ट्रीय संघटन है—यह इसलिये नही कि इसके सदस्यों मे मुसलिम तथा ईसाई भी हैं, अपितु इसकी विचारधारा तथा नीतियाँ पूर्णतः राष्ट्रीय दृष्टिकोण से परिचालित है। प्रथम के बाद द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ महानिर्वाचन में विरोधी दल के रूप मे जनसंघ की शक्ति निरंतर बढ़ती गई है। चतुर्थ निर्वाचन के फलस्वरूप दिल्ली महापरिषद में जनसंघ को नेतृत्व प्राप्त हुआ है और संसद तथा अनेक राज्यो मे वह सबल प्रतिपक्षी दल के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। [ल० श० व्या]